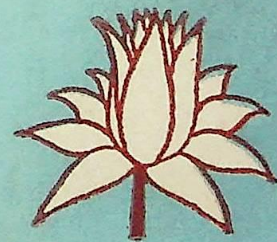
अगरचन्द नाहटा अभिनन्दन-ग्रन्थ



अगरचन्द नाहटा अभिनन्दन ग्रन्थ
प्रकाशन समिति
बीकानेर (राजस्थान)

श्री अगरचंद नाहटा अभिनन्दन ग्रन्थ

•

प्रधान सम्पादक

डॉ० दशरथ शर्मा

सम्पादक-मण्डल

डॉ० भोगीलाल सांडेसरा — श्री रत्नचंद्र अग्रवाल
डॉ० ए० एन० उपाध्ये — डॉ० मनोहर शर्मा
श्री नरोत्तमदास स्वामी — डॉ० कृष्णदत्त वाजपेयी
डॉ० बी० एन० शर्मा

प्रबंध-सम्पादक

श्री रामवल्लभ सोमानी

•

प्रकाशक

श्री हजारी मल बाँठिया
संयोजक
श्री अगरचंद नाहटा अभिनन्दन-ग्रन्थ प्रकाशन समिति
बीकानेर (राजस्थान)

प्रकाशक
श्री हजारीमल बाँठिया
संयोजक–श्री अगरचंद नाहटा अभिनन्दन-ग्रन्थ प्रकाशन समिति
बीकानेर (राजस्थान)

प्राप्तिस्थान : १. श्री अभय जैन ग्रन्थालय
नाहटोंकी गवाड़, बीकानेर (राजस्थान)
फोन : १३६५

२. नाहटा-बन्धु
५२।१६ शक्करपट्टी, कानपुर–१
फोन : ६६१३४

संस्करण : प्रथम (५०० प्रतियाँ)
सन् १९७६ ई०

मूल्य : प्रथम खंड १०१)
दोनों खंड १५१)

मुद्रक :
बाबूलाल जैन फागुल्ल
महावीर प्रेस, भेलूपुर, वाराणसी (उ० प्र०)
फोन : 65848



सिद्धान्ताचार्य श्री अगरचन्द जी नाहटा

प्रकाशक
श्री हजारीमल बाँठिया
संयोजक–श्री अगरचंद नाहटा अभिनन्दन-ग्रन्थ प्रकाशन समिति
बीकानेर (राजस्थान)

प्राप्तिस्थान : १. श्री अभय जैन ग्रन्थालय
नाहटोंकी गवाड़, बीकानेर (राजस्थान)
फोन : १३६५

२. नाहटा-बन्धु
५२।१६ शक्करपट्टी, कानपुर–१
फोन : ६६१३४

संस्करण : प्रथम (५०० प्रतियाँ)
सन् १९७६ ई०

मूल्य : प्रथम खंड १०१)
दोनों खंड १५१)

मुद्रक :
बाबूलाल जैन फागुल्ल
महावीर प्रेस, भेलूपुर, वाराणसी (उ० प्र०)
फोन : 65848



सिद्धान्ताचार्य श्री अगरचन्द जी नाहटा

आत्म-निवेदन

राजस्थान प्राचीनकालसे ही विविधताओंका क्रीड़ास्थल रहा है। कहीं आकाशको छूती-सी पर्वत-शृंखलाएँ हैं, तो कहीं पठार और मैदान। विशाल मरुस्थल भी इस प्रदेशका मुख्य आकर्षण है। राजस्थान वीर-प्रसूता भूमिके नामसे जगविख्यात है। जहाँ इसने अपने गर्भसे अनेक वीरों और चूड़ामणियोंको जन्म दिया वहाँ अनेक साहित्यकारों, लेखकों और कवियोंकी भी प्रसूता रही है। मेरे मामा परमपूज्य श्रद्धेय श्री अगरचन्दजी नाहटा और भ्राता परमपूज्य श्री भँवरलालजी नाहटा भी इस मरुभूमिकी अनमोल देन हैं। आप मेरी माता श्रीमती मगनबाईके अनुज हैं। मेरा जन्म ननिहालमें ही नाहटाजीके घर वि० सं० १९८१ आसौज वदी १० को बीकानेरमें हुआ। मेरे पिता श्री फूलचन्दजी बाँठिया व्यापारनिमित्त कलकत्तामें ही निवास करते थे। अतः ननिहालमें ही मैं अपने बाल्यकाल की अठखेलियाँ करता हुआ युवा हुआ। अपने मामा और नाहटा परिवारके संरक्षणसे ही मैं जीवनके वास्तविक मूल्यको समझ सका। मेरा यह कथन किंचित्मात्र भी अतिशयोक्ति-पूर्ण नहीं होगा कि आज मैं जीवनमें जो कुछ भी कर सका वह सब नाहटा-परिवारके आशीर्वादका ही परिणाम है। मेरे पिताजीसे जहाँ मुझे उदारता, जीवनकी व्यावहारिकता और प्रामाणिकता मिली वहाँ जीवनके अन्य सब पहलुओंपर नाहटा-परिवारकी गहरी छाप मुझपर पड़ी। परमपूज्य स्वर्गीय मामा भेरुदानजीसे सामाजिक संस्थाओंमें काम करना सीखा तो दूसरी तरफ नानाजी स्व० शंकरदानजी नाहटा व मामा सुभैराजजीसे व्यापारिक दिलेरी व साहस, और श्री मेघराजजीसे सहृदयता। मामा अगरचन्दजीने बाल्यकालसे ही साहित्य और लेखनकी तरफ मेरे मानसको मोड़ा, जो शनैः-शनैः मेरे जीवनका एक महत्त्वपूर्ण अंग बन गया। भाईजी श्रीभंवरलालजीसे विनम्रता और माताजीसे परोपकारिताका गुण भी मैंने ग्रहण किया। स्व० अभयराजजीका देहावसान मेरे जन्मसे पूर्व ही हो चुका था। उनकी स्मृतिमें स्थापित ग्रन्थालय आज भी उनकी स्मृति दिला रहा है।

आजसे ३७-३८ वर्ष पूर्वसे ही मामाजी अगरचन्दजी मेरे प्रेरणास्रोत रहे हैं। उनका जीवन-चरित्र मैंने 'सामाजविकास' साप्ताहिक कलकत्ता, 'जैनध्वज' अजमेर व 'अनेकान्त' मासिक सहारनपुरमें लिखा था। सन् १९४०में पुरातत्त्वाचार्य पद्मश्री मुनि जिनविजयश्रीजी बीकानेर पधारे तो उन्होंने मामाजीकी अध्यक्षतामें आयोजित सभामें प्राचीन साहित्यके संरक्षणपर बड़ा महत्त्वपूर्ण भाषण दिया जिससे प्रभावित होकर मैंने अनेक लेख लिखे जिन्हें मामाजीने विभिन्न पत्र-पत्रिकाओंमें प्रकाशित कराकर मेरे उत्साहको दुगना किया। आपकी छत्रछायामें मेरी साहित्यिक रुचि निरन्तर बढ़ती गयी। मैंने मुनिश्री जिनविजयजीका भाषण लिपिबद्ध करके 'अनेकान्त'में प्रकाशित

कराया। उसी वक्त एक लेख मैंने 'जैनध्वज' साप्ताहिक अजमेरमें लिखा—"विद्वानों-की कद्र करना सीखो"। उसमें मैंने जैन-समाजसे आग्रह किया था कि जैन-साहित्य और समाजकी अनवरत सेवामें लीन मुनिश्री जिनविजयजी, श्री अगरचन्दजी नाहटा, श्री भंवरलालजी नाहटा और श्री मोहनलालजी दल्लीचंद देसाईका उनकी अमूल्य सेवाओंके लिए अभिनन्दन करना चाहिये किन्तु जैन-समाजने इस ओर कोई ध्यान नहीं दिया।

आज ३६ वर्षोंके भीतर श्री अगरचन्दजी नाहटा और भंवरलालजी नाहटा अपनी पुरातत्त्वगवेषणा, शोधनिबन्ध और इतिहासको नयी दिशा देनेके कारण न केवल जैन-समाज और राजस्थानके ही वरन् सम्पूर्ण भारतके अत्यन्त लोकप्रिय विद्वान् हो गये हैं। सन् १९६४में सुप्रसिद्ध हास्य-कवि 'काका हाथरसी'की हीरक-जयन्ती समारोह व अभिनन्दन समारोह मेरे ही संयोजनमें हाथरसमें हुआ। उसी क्षण मेरे मस्तिष्कमें आया—पूज्य मामाजी जिनके अतुल स्नेह और आशीर्वादसे आज मैं कुछ बन सका, क्यों न उनके सम्मानमें एक 'अभिनन्दन-ग्रन्थ'के प्रकाशनकी योजना बनायी जाये। मैंने अपना मन्तव्य मामाजीके समक्ष रखा तो उन्होंने यह कहकर इन्कार कर दिया कि "मेरेमें क्या गुण है। मेरेसे अधिक गुणी और सेवा-भावी पुरातत्त्वाचार्य विद्यमान हैं।" आपका यह कथन सुनकर रह-रहकर मेरे मस्तिष्कमें कवि रहीमका उक्त दोहा घूमता था—

"बड़े बड़ाई न करे, बड़े न बोले बोल।
हीरा मुखसे न कहे, लाख हमारा मोल॥

"विद्या ददाति विनयं"की सजीव प्रतिमा तब मैंने मामाजीके रूपमें पायी और बरबस ही मेरा दिल श्रद्धासे गद्गद् हो गया। मामाजीके मना करनेपर भी मैंने डॉ० हरीशके निर्देशनमें अभिनन्दन-ग्रन्थका कार्य प्रारम्भ कर दिया। जिससे भी बात हुई, सबने एक ही स्वरमें कहा—"नाहटा-बन्धुओं का अभिनन्दन ग्रन्थ होना चाहिये।" इससे मेरा उत्साह द्विगुणित हो गया।

१६ मार्च, १९७१को बीकानेरमें नाहटाजीके षष्ठि-पूर्त्तिके दिन चैत वदी ४ को सोनागिरिके कुएँपर महाराजा बीकानेर डॉ० कर्णीसिंहजीके परामर्शपर एक बृहत् सभाका आयोजन नाहटाजीके अभिनन्दनके निमित्त हुआ। सभाकी विशालता और भव्यता देखकर मेरा मन-मयूर नाच उठा। मैंने डॉ० मनोहर शर्मा और श्री लाल-नथमल जोशी आदिके उत्साहित करनेपर घोषणा की कि ४ अक्टूबर, १९७१को नाहटा अभिनन्दन-ग्रन्थ प्रकाशित कर दिल्लीके भव्य समारोहमें उनको भेंट किया जावेगा। इस सभाकी अध्यक्षता महाराज कुमार नरेन्द्रसिंहजीने की थी।

मैं कृतज्ञ हूँ श्री रामवल्लभजी सोमाणीका, जो इस ग्रन्थके प्रबन्ध सम्पादक हैं। उन्होंने इस गुरुतर कार्यको अपने कंधेपर लेना स्वीकार किया। भारत-प्रसिद्ध विद्वानोंका एक संपादक-मंडल इस ग्रन्थके लिए संगठित किया गया और लब्ध-

प्रतिष्ठ विद्वान डॉ० दशरथ शर्माने प्रधान सम्पादक बननेकी अपनी स्वीकृति दे दी। जब विद्वानोंसे नाहटा अभिनन्दन-ग्रन्थके लिए लेख आदिके लिए प्रार्थना की गयी तो इतने महत्त्वपूर्ण लेख आये कि उन सबके प्रकाशित होनेपर नाहटा अभिनन्दन-ग्रन्थ स्वयं अपने आपमें राजस्थानी जैन-साहित्य, संस्कृति और इतिहासका 'एनसाइक्लोपीडिया' बन जायेगा।

इस कार्यको शीघ्र क्रियान्वित करनेके लिए उदयपुरके सुप्रसिद्ध लोक-गायक श्री चन्द्रगन्धर्वने अपना अमूल्य समय दिया और दिल्लीमें विश्वधर्मप्रेरक मुनि सुनीलकुमारजीके सान्निध्यमें अभिनन्दन समारोहकी समितिका निर्माण भी किया। किन्तु दुर्भाग्यवश मेरी व्यक्तिगत उलझनोंके कारण यह नहीं हो सका, इसके लिए मैं स्वयं दोषी हूँ। दिल्लीमें जहाँ भी गया सबने तन, मन और धनसे इस पुनीत कार्यमें सहयोग देनेका वचन दिया।

इधर कुछ वर्षोंमें महँगाई अधिक हो जानेसे जितने बजटमें इस ग्रन्थके प्रकाशन व समारोहकी व्यवस्था सोची थी, वह सारी स्कीम चौपट हो गयी। मैं इतनी बड़ी धनराशिके अभावमें निराश हो गया। दो वर्ष पूर्व जब मैं मद्रास गया तो मेरे परम-मित्र श्री केशरीचंदजी सेठियाने उत्साहित होकर कहा, "**नाहटाजीका सम्मान सरस्वती देवीका सम्मान है**। पैसेकी कोई कमी नहीं, आप १५-२० दिन रुकें, सारी अर्थव्यवस्था यहींसे संग्रहीत हो जावेगी।" मेरा मद्रासमें इतना ठहरना सम्भव नहीं था। फिर एक दिनमें ही २-४ घंटोंके अन्दर ही अर्थसंग्रहके कार्यका श्रीगणेश किया गया। जहाँ भी गया, वहाँ इस योजनाकी प्रशंसा और आवश्यकता बतायी उनमें स्वनामधन्य स्व० सेठ पूनमचंद आर० शाह (साउथ इण्डिया फ्लावर मिल, मद्रास) जिनका कुछ महीनों पूर्व स्वर्गवास हो गया, ने कहा, "नाहटा-बन्धुओंके सम्मानमें एक लाख रुपये देओं तो भी कम है।" फिलहाल मद्रासकी सामाजिक मर्यादाके कारण सिर्फ ५०१) दे रहा हूँ और बाकी बादमें दूँगा। ऐसे ही उत्साहजनक वचन श्री मिलापचन्दजी ढढ्ढा मद्रासवालोंने व्यक्त किये थे।

समय व्यतीत होता गया और आज यह हर्षका विषय है कि यह भव्य आयोजन श्री नाहटा-बन्धुओंकी जन्मस्थली बीकानेरमें ही बीकानेरके कतिपय उत्साही कार्यकर्त्ताओंकी सूझ-बूझ व श्री महावीर जैन—मंडलके तत्त्वावधानमें होना निश्चित हुआ है। श्री भँवरलालजी कोठारी बधाईके पात्र हैं जिन्होंने अभिनन्दन समारोहके गुरुतर कार्यको सहर्ष करना स्वीकार कर लिया। वे इस समारोहके सर्वसम्मत संयोजक चुने गये।

अर्थाभावके कारण ग्रन्थका प्रथम खंड श्री नाहटाजीका जीवन-चरित्र और संस्मरण ही अब तक प्रकाशित हो सका है, वह भेंट किया जा रहा है। दूसरे खंडमें विद्वानोंके लेख संग्रहीत हैं, प्रकाशित किये जायेंगे। आशा है, वह अगले वर्ष प्रकाशित कर नाहटा-बन्धुओंको भेंट किया जायेगा। मैं उन विद्वान् बन्धुओंका आभारी हूँ जिन्होंने अमूल्य लेख-सामग्री भेजकर इस ग्रन्थकी शोभा बढ़ायी है।

श्री महावीर प्रेस, वाराणसीके स्वामी श्री बाबूलालजी जैन फागुल्ल भी धन्यवादके पात्र हैं जिन्होंने साजसज्जा और ग्रन्थ-प्रकाशनमें अभूतपूर्व सहयोग दिया है। ग्रन्थमें जो त्रुटियाँ रह गयी हैं उनका दोषी मैं स्वयं ही हूँ और सब महानुभावोंसे क्षमाप्रार्थी हूँ।

हजारीमल बाँठिया
संयोजक
श्री अगरचंद नाहटा अभिनन्दन-ग्रन्थ
प्रकाशन समिति

१९ मार्च, १९७६
कानपुर

निवेदन

श्री अगरचंदजी नाहटा राजस्थानके प्रतिभा-सम्पन्न साहित्यकार, लेखक, विचारक और इतिहासकार ही नहीं, अपितु समस्त भारतके गौरव हैं। आप बहुमुखी प्रतिभाके धनी हैं। अपने व्यवसायमें लगे रहते हुए भी आपका साहित्य-प्रेम बराबर बना हुआ है। अद्भुत स्मरण-शक्तिके साथ-साथ विद्यानुराग विरले मनुष्योंमें ही होता है। जैसलमेरके शिलालेखोंका जो संग्रह नाहटाजीने किया, वह आपके पुरातत्त्व-प्रेम का द्योतक है। कठिन परिस्थितियोंमें जैसलमेरके रेतीले टीलों, मंदिरों आदिमें जाकर आपने जो संग्रह किया है, वह अद्भुत है। राजस्थानका ही नहीं अपितु भारतके किसी भी भागका ऐसा जैन-लेख-संग्रह अभी तक नहीं छपा है।

इस प्रकार जिस किसी भी कार्यमें श्री नाहटाजी हाथ डालते हैं, वह सांगोपांग पूर्ण होता है। प्राचीन साहित्यके उद्धारके लिए जो कार्य आपने किया, उसकी मिसाल बहुत ही कम देखनेको मिलती है।

विद्यादानके सम्बन्धमें आप बहुत ही उदार हैं। हिन्दी और इतिहासमें शोध करनेवाले विद्वानोंको मुक्तहस्तसे जिस प्रकार नाहटाजीने सहयोग दिया है, वैसी मिसाल बहुत कम है। प्रायः विद्वानोंको शोध-कार्यमें सामग्रीके लिए कई जगह भटकना पड़ता है किन्तु जब वे श्री नाहटाजीके यहाँ आ जाते हैं तो उनको यथेष्ट सामग्री बिना किसी रोक-टोकके एक साथ ही मिल जाती है। इस प्रकार श्री नाहटाजीके अद्भुत व्यक्तित्वके लिए जितना भी कहा जाये, कम होगा।

श्री नाहटाजीको अभिनन्दन-ग्रन्थ भेंट करनेकी योजना प्रारंभमें श्री हजारीमलजी बाँठियाने बनायी थी। श्री नाहटाजी स्वयं नहीं चाहते थे कि उनका अभिनन्दन-ग्रंथ प्रकाशित किया जाये, किन्तु जब काफी दबाव डाला गया तब इन्होंने इसके लिए स्वीकृति दी।

नाहटाजीकी सेवाओंको देखते हुए अभिनन्दन-ग्रन्थ कई वर्ष पूर्व ही प्रकाशित होना चाहिये था, किन्तु राजस्थानमें अन्य साहित्यसेवी मुनि जिनविजयजी, पंडित चैनसुखदासजी आदिके ग्रंथोंमें भी इसी प्रकारसे अप्रत्याशित देर हुई है।

मूलरूपसे डॉ० हरीशने इस कार्यको प्रारंभ किया था किन्तु कई कारणोंसे वे इसे पूर्ण नहीं कर सके। कालान्तरमें डॉ० मनोहरजीकी प्रेरणासे वह कार्य मैंने लिया। स्व० डॉ० ए० एन० उपाध्ये, श्री रत्नचंद्रजी अग्रवाल, डॉ० सांडेसराजी, डॉ० बी० एन० शर्मा और श्री नरोत्तमदासजी स्वामीने सम्पादक-मंडलमें रहनेकी स्वीकृति देकर अपना सहयोग प्रदान किया।

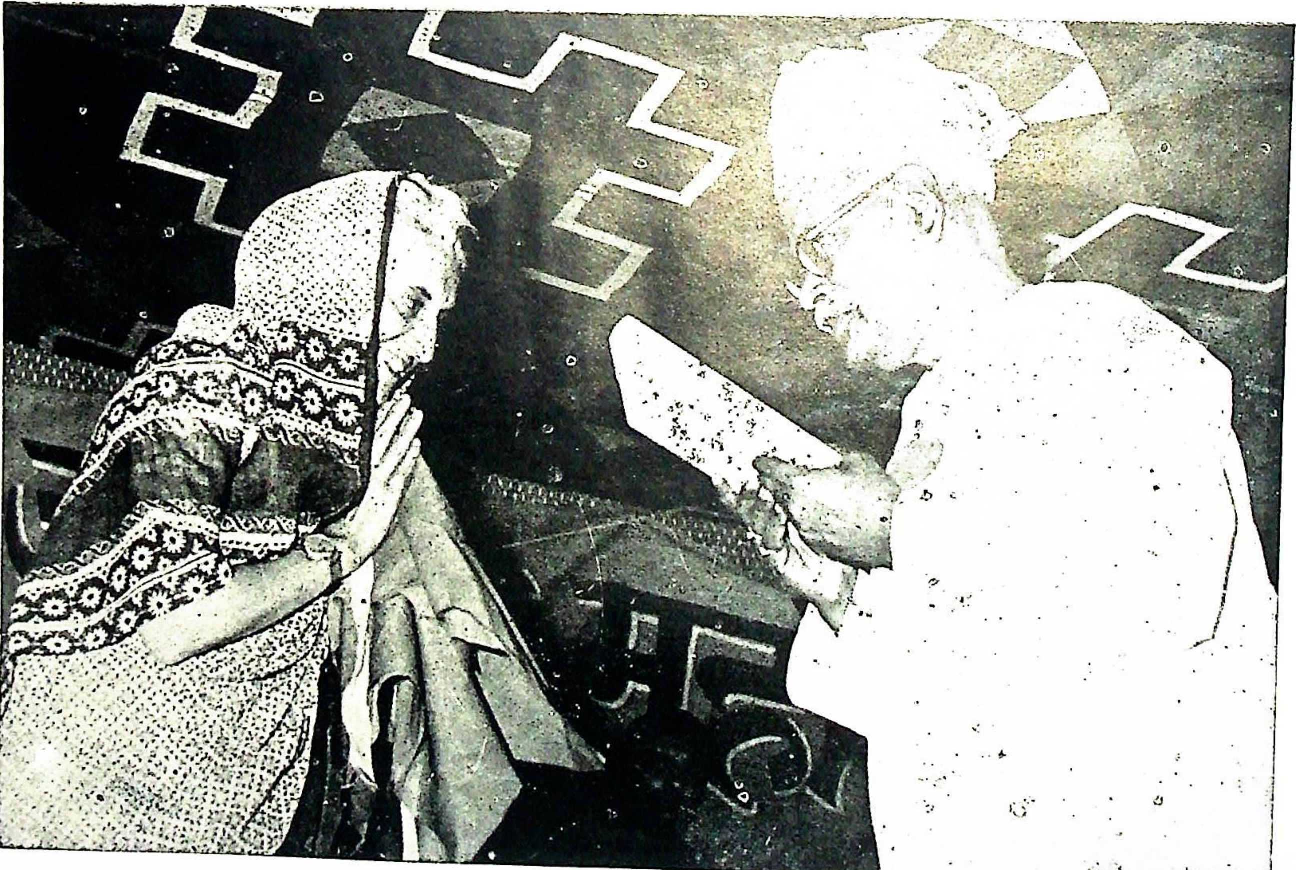
ग्रन्थको मूलरूपसे एक ही भागमें प्रकाशित करनेकी योजना थी, परन्तु अब इसमें २ खंड होंगे। पहले खंडमें श्री नाहटाजीकी जीवनी, संस्मरण आदि हैं। दूसरे खंडमें इतिहास, पुरातत्त्व, साहित्य, धर्म, दर्शन आदि विषयोंके लेख प्रकाशित होंगे।

जीवनी और संस्मरणवाले खंडमें कुछ पृष्ठ यद्यपि अधिक हो गये हैं किन्तु श्री नाहटाजीके सम्बन्धमें आये हुए संस्मरणोंको अविकल रूपसे प्रकाशित करना हमने आवश्यक समझा है। यदि ऐसा नहीं करते तो भेजनेवालोंकी पुनीत भावनाओंपर आघात पहुँचता।

गत २-३ वर्ष पूर्व श्री बाँठियाजीके प्रयत्नसे दिल्लीमें मुनि श्री सुशीलकुमारजीके नेतृत्वमें इस सम्बन्धमें समारोहकी योजना बनायी थी। इसके लिए स्व० मोहनसिंह सेंगर आदि कई सज्जनोंने भी सहयोग देनेका आश्वासन दिया था। किन्तु उस समय ग्रन्थ प्रकाशित नहीं हो सका। कागजकी महँगाई आदिके कारण इस पूरे ग्रन्थके छपनेमें देरीको देखते हुए इसका पहला खंड आपके सम्मुख प्रस्तुत है।

श्रीमान् नाहटाजीने अति महत्त्वपूर्ण कार्य किया है, अतएव आपका अभिनन्दन-ग्रन्थ प्रकाशित करते हुए हम सभी स्वयंको गौरवान्वित अनुभव कर रहे हैं।

रामवल्लभ सोमानी



श्रीमती इंदिरा गांधी 'अगरचन्द नाहटा अभिनन्दन ग्रन्थ' का २१-४-७८ को विमोचन करती हुई।

अनुक्रमणिका

प्रथम खण्ड
जीवन परिचय

१ श्री अगरचन्द नाहटा वंशपरम्परा एवं जीवन-परिचय	डॉ० ईश्वरानंद शर्मा एम० ए०	३
२ नाहटा-वंशप्रशस्ति	भंवरलाल नाहटा	८
३ श्रेष्ठिवर श्री अगरचन्दजी नाहटा और उनकी साहित्य-साधना	प्रो० श्रीचन्दजी जैन	७९
४ श्री भंवरलाल नाहटा : व्यक्तित्व एवं कृतित्व	शास्त्री शिवशंकर मिश्र	८८
५ श्रद्धेय श्री अगरचन्दजी नाहटाका बीकानेर-जैन लेखसंग्रह	प्रो० श्रीचन्द्र जैन	१०४
६ श्री नाहटाजी द्वारा लिखित एवं सम्पादित कतिपय ग्रन्थ	शिखरचन्द्र कोचर	१०९

द्वितीय खण्ड
श्रद्धा-सुमन

७ श्रद्धाके ये प्रसून	उपाध्याय प्रकाशविजय (अब आचार्य प्रकाशचन्दजी)	११५
८ घणमोला नाहटाजीनैं घणैमान	कविवर कन्हैयालाल सेठिया	११५
९ अभिनन्दनम्	डॉ० मनोहर शर्मा	११६
१० अभिनन्दन	उदयराज ऊजल	११६
११ अभिनन्दन	प्यारेलाल श्रीमाल	११६
१२ श्रद्धांजलि	ब्रजनन्दन गुप्त	११७
१३ अगरचन्द नाहटाजीका शत-शत अभिनन्दन	'काका'	११७
१४ साहित्य-गगनके दीप्तिमान नक्षत्र, तुम्हें शत-शत प्रणाम	अनूपचन्द जैन	११८
१५ श्रद्धांजलि	सूरजचन्द डाँगी	११९
१६ सरस्वतीके वरद पुत्र	राधेश्याम शर्मा	११९
१७ श्रद्धांजलि	डॉ० शोभनाथ पाठक	१२०
१८ साहित्य, संस्कृति एवं सुजनताके प्रतीक	कलाकुमार	१२०
१९ ऐसे ज्ञानज्योति दिनकरका अभिनन्दन शत बार है	विमलकुमार जैन	१२२

२० विश्व-कोषमें अमर रहेगा अगरचंदका नाम — कल्याणकुमार 'शशि' — १२३
२१ श्री अगरचन्दजी नाहटाके प्रति — गौरीशंकर गुप्त — १२३
२२ अभिनन्दन — सर्वदेव तिवारी — १२४
२३ अभिनन्दन — सींघल — १२४
२४ गीत डिंगल — रावत सारस्वत — १२५

तृतीय खण्ड

व्यक्तित्व, कृतित्व और संस्मरण

२५ सन्देश — आचार्य श्री तुलसी — १२९
२६ यशस्वी पुत्र — उपाध्याय अमरमुनि — १२९
२७ संशोधक नाहटाजी — गणिवर्य-जनकविजयजी — १३१
२८ श्री नाहटा-बन्धु — मुनि कान्तिसागरजी — १३१
२९ शासनके प्रतिभाशाली पुत्र श्री नाहटाजी — उदयसागरजी — १३२
३० संदेश — विजयधर्मसूरि, मुनि यशोविजयजी — १३२
३१ अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी — मुनिश्री महेन्द्रकुमारजी (प्रथम) — १३३
३२ साहित्यिक सितारे नाहटाजी — पुष्करमुनिजी — १३४
३३ भारतीय संस्कृतिका सम्मान — गणि श्री हेमेन्द्रसागरजी — १३४
३४ एक विशिष्ट संशोधक — भोगीलालजी ज० सांडेसरा — १३५
३५ ज्ञानके अक्षय स्रोत नाहटाजी — कृष्णदत्त वाजपेयी — १३६
३६ अभिवादन — डॉ० उमाकांत प्रेमानंदशाह — १३६
३७ विद्वत्प्रवर श्री अगरचन्दजी नाहटा — पं० विद्याधर शास्त्री — १३७
३८ अभिनन्दनीय नाहटाजी — गोपालनारायण बहुरा — १३८
३९ विद्याव्यासंगी श्री नाहटाजी — दलसुख मालवणिया — १३९
४० ख्यातिप्राप्त विद्वान् — नन्दकुमार सोमानी — १४०
४१ सरस्वतीका सुयोग — शिवलाल जैसलपुरा — १४०
४२ धन्य नाहटाजी ! — धीरजलाल टो० शाह शतावधानी — १४१
४३ विरल साहित्यिक श्री नाहटाजी — पिंगलशी मेघाणन्द गढवी — १४३
४४ नवोदित लेखकवर्ग और श्री नाहटाजी — पार्श्व — १४४
४५ आदरणीय नाहटाजी — पुष्कर चन्दरवाकर — १४७
४६ सरस्वतीके अनन्य सेवक — पं० के० भुजबली शास्त्री — १५०
४७ अमित शोध-सामग्रीके भण्डार श्री अगरचन्द नाहटा — डॉ० कन्हैयालाल सहल — १५१
४८ राजस्थानकी साहित्यिक विभूति — स्वामी श्री मंगलदासजी — १५३
४९ विरोधाभासोंका समन्वय — शोभाचन्द भारिल्ल — १५६
५० सरस्वतीके अनन्य उपासक — दशरथ ओझा — १५७
५१ 'स्वाध्यायान्मा प्रमद'के मूर्तस्वरूप नाहटाजी — सौभाग्यसिंह शेखावत — १६०
५२ साहित्य-तपस्वी श्री नाहटाजी — डॉ० मनोहर शर्मा — १६२

५३ यत् क्रियते तन्नाधिकम्	नेमिचन्द पुगलिया	१६५
५४ अनवरत साहित्योपासक	डॉ० लालचन्द जैन	१६६
५५ बीकानेर और नाहटाजी	डॉ० नारायणसिंह भाटी	१६८
५६ विद्याप्रेमका एक जीवन्त प्रतीक, एक संस्था	डॉ० हीरालाल माहेश्वरी	१६९
५७ नाहटाजी ना हटे	भरत व्यास	१७०
५८ प्रेरणाप्रद व्यक्तित्वके धनी श्री नाहटा-बन्धु	डॉ० रुद्रदेव त्रिपाठी	१७१
५९ जंगम तीर्थ : श्री अगरचन्द नाहटा	डॉ० आनन्दप्रकाश दीक्षित	१७२
६० शोधयोगी श्री नाहटाजी	डॉ० देवेन्द्रकुमार जैन	१७४
६१ विश्वकोषके लिए मेरे कोटिश: प्रणाम	प्रो० राजाराम जैन	१७५
६२ वन्दनीय नाहटाजी	डॉ० ब्रजलाल वर्मा	१७७
६३ विद्या ददाति विनयम्	डॉ० ब्रह्मानन्द	१७७
६४ एक विरल व्यक्तित्व	डॉ० एल० डी० जोशी	१७९
६५ साहित्य-गगनके देदीप्यमान	चिम्मनलाल गोस्वामी (सं० कल्याण	१८०
६६ जैसा मैंने जाना	डॉ० पीताम्बर नारायण शर्मा	१८१
६७ विराट व्यक्तित्व एवं असीम कृतित्व	डॉ० शिवगोपाल मिश्र	१८२
६८ श्रेष्ठि विद्वान् श्री नाहटाजी	डॉ० जितेन्द्र जेटली	१८४
६९ संस्कृति और साहित्यके लिए नाहटाजी की महान देन	प्रभुदयाल मीतल	१८५
७० शोधपुरुष श्री नाहटाजी	रंजनसूरिदेव	१८६
७१ जैनसाहित्यके प्रकांड विद्वान् नाहटाजी	कस्तूरमल बाँठिया	१८९
७२ वाङ्मय पुरुष	प्रो० डॉ० नेमिचन्द्र शास्त्री	१९१
७३ कर्मयोगी श्री नाहटाजी	रिषभदास रांका	१९४
७४ मित्रवर अगरचन्दजी नाहटा	बाबू वृन्दावनदासजी	१९५
७५ साहित्यिक-कल्पद्रुम नाहटाजी	पं० कमलकुमार जैन	१९६
७६ अनोखी प्रतिभाके धनी	पं० अमृतलाल शास्त्री	१९७
७७ अद्भुत व्यक्तित्व	डॉ० दरबारीलाल कोठिया	१९९
७८ अभिनन्दनीय नाहटाजी	पं० गुलाबचन्द्र जैन	१९९
७९ बहुमुखी प्रतिभाके धनी	राजरूपजी टांक	२००
८० आदर्श मार्गदर्शक	पं० नाथूलालजी शास्त्री	२०१
८१ शुभकामना	प्रो० प्रवीणचन्द्र जैन	२०१
८२ स्वनामधन्य-नाहटाजी	सीताराम लालस	२०१
८३ इतिहासज्ञ नाहटाजी	डॉ० विनयमोहन शर्मा	२०२
८४ शोधाञ्जलि नाहटाजी	बनारसीदास चतुर्वेदी	२०२
८५ पांडित्यपूर्ण व्यक्तित्व	पं० मक्खनलाल शास्त्री	२०२
८६ शोधकर्त्ताओंके हृदय-सम्राट्	पं० नेमिचन्द जैन	२०३
८७ अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति-प्राप्त विद्वान्	माणिकचन्द्र नाहर	२०४
८८ अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगीके प्रति श्रद्धा सुमनांजलि	पं० परमेष्ठीदास जैन	२०४

८९ व्यक्तित्व महान्	पं० बालचन्द शास्त्री	२०४
९० चिरजीवी हों	पं० परमानन्द शास्त्री	२०५
९१ अभिनन्दनपर दो शब्द	बलवन्त सिंह मेहता	२०५
९२ साहित्य महारथी	डॉ० पं० पन्नालाल साहित्याचार्य)	२०५
९३ अभिनन्दनीय नाहटाजी	भंवरलाल सिंघी	२०६
९४ इतिहासके श्रेष्ठ पुजारी	फतहचन्द श्रीलालजी	२०६
९५ नाहटाजी—स्व० डॉ० वासुदेवशरण अग्रवालकी दृष्टिमें	डॉ० सत्यनारायण स्वामी	२०७
९६ सरस्वती एवं लक्ष्मीका विरल संगम	मुनि श्री कन्हैयालालजी 'कमल'	२११
९७ सेठ और साहित्य-सेवी	मधुकर मुनि	२११
९८ बहुमुखी प्रतिभाके धनी नाहटाजी	देवेन्द्रमुनि शास्त्री	२१२
९९ साहित्यिक सेठ श्री अगरचंद नाहटा	रामनिवास स्वामी	२१३
१०० शुभकामना	हीरालाल शास्त्री	२१४
१०१ साहित्यिक विभूति नाहटाजी	मंगलदास स्वामी	२१४
१०२ अभिनन्दनीय श्री नाहटाजी	सिद्धराज ढढ्ढा	२१७
१०३ नाहटाजी एक जीवन्त संग्रहालय	जमनालाल जैन	२१८
१०४ नाहटाजी समाजके भूषण	आर्या सुमति (कंवर)	२१९
१०५ श्री नाहटाजीका विशिष्ट व्यक्तित्व	जैनार्या सज्जनश्री	२२०
१०६ गुणोंके प्रति सहज आकर्षण	मुनि कान्तिसागरजी	२२१
१०७ राजस्थानकी साहित्यिक विभूति	डॉ० स्वर्णलता अग्रवाल	२२२
१०८ ज्ञानतपस्वी नाहटाजी	सुश्री जया जैन	२२४
१०९ अविस्मरणीय नाहटाजी	(डॉ०) रामकुमारी मिश्र	२२५
११० अनवरत साहित्यप्रेमी	रुक्मिणी वैश्य	२२६
१११ ज्ञानप्रदीप श्री नाहटाजी	सुशीला गुप्ता	२२७
११२ पागाँ पेचाँदार, वाण्यो बीकानेरको	बालकवि बैरागी	२२९
११३ सौजन्यमूर्त्ति नाहटाजी	रामेश्वर दयाल दुबे	२३२
११४ सच्चे साधक श्री अगरचन्दजी नाहटा	डॉ० इन्द्रचन्द शास्त्री	२३३
११५ सरस्वती और लक्ष्मीका अनोखा संयोग	डॉ० बी० पी० शर्मा	२३४
११६ एक महान् व्यक्तित्व	डॉ० बी० पी० शर्मा	२३६
११७ शोधमनीषी श्रेष्ठिवर श्री अगरचंदजी नाहटा	डॉ० श्यामसुन्दर बादल	२३७
११८ मेरी दृष्टिमें अगरचन्दजी नाहटा	चन्दनमल 'चाँद'	२४०
११९ विशिष्ट योगदान	मुनि सुशीलकुमार	२४२
१२० नाहटाजी एक विरल व्यक्ति	डॉ० रमणलाल ची० शाह	२४२
१२१ आदर्श व्यक्तित्व	प्रो० पृथ्वीराज जैन	२४४
१२२ साहित्य-उपवनका एक माली	डॉ० पवनकुमार जैन	२४६
१२३ सर्वतोन्मुखी प्रतिभाके धनी नाहटाजी	पं० उदयचन्द जैन	२४७
१२४ साहित्यकी साकार मूर्त्ति	विमलकुमार जैन	२४८

१२५ साहित्यके पुण्यश्लोक 'भगीरथ'	डॉ० भगवानसहाय पचौरी	२४९
१२६ श्रद्धेय श्री अगरचन्दजी नाहटा : प्रथम दर्शन	प्रो० नथुनी सिंह	२५०
१२७ प्राचीन साहित्यके उद्धारक-नाहटाजी	डॉ० शिवगोपाल मिश्र	२५२
१२८ मधुर स्मृति	प्रो० अखिलेश	२५३
१२९ साहित्य-तपस्वी नाहटाजी	डॉ० ज्योति प्रसाद जैन	२५६
१३० शोध-वारिधि, नररत्न नाहटाजी	रवीन्द्रकुमार जैन	२५७
१३१ मेरे प्रेरणा-स्रोत	प्यारेलाल श्रीभाल	२५८
१३२ श्री शोधके अजस्र प्रेरणा-स्रोत	डॉ० भागचन्द्र जैन	२६१
१३३ स्रोत और सम्बन्ध	डॉ० महेन्द्रसागर प्रचण्डिया	२६२
१३४ एक महान् साहितियक संत	प्रकाश दीक्षित	२६३
१३५ राजस्थानीरा राजदूत	रतन साह	२६५
१३६ नाहटाजी : एक संस्था	उदय नागौरी	२६८
१३७ जैन-साहित्यके शुभोदयका कणाद ऋषि	ऋषि जैमिनी कौशिक	२६९
१३८ एक व्यक्ति : एक युग	ज्ञान भारिल्ल	२७१
१३९ नाहटा-बन्धु : मेरी दृष्टिमें	महोपाध्याय विनयसागर	२७२
१४० अद्वितीय साहित्य-मनीषी	अनूपचन्द न्यायतीर्थ	२७६
१४१ प्रतिभा, कर्मठता एवं धर्मनिष्ठाके असाधारण धनी : नाहटाजी	डॉ० छगनलाल शास्त्री	२७८
१४२ कुतूहल, श्रद्धा और अपनेपनसे भरा वह नाम	डॉ० नरेन्द्र भानावत	२८०
१४३ अगरचन्द नाहटा : प्राचीन साहित्यशोधक	प्रो० रामचरण महेन्द्र	२८३
१४४ नाहटाजी : एक शिलालेखी व्यक्तित्व	डॉ० महेन्द्र भानावत	२८६
१४५ श्री अगरचन्द नाहटा : एक प्रोफाइल	डॉ० हरिशंकर शर्मा	२८९
१४६ नाहटाजीके प्रति	शिवसिंह चोयल	२९३
१४७ ज्ञान-सूर्य नाहटा	गजसिंह राठोर	२९४
१४८ श्री अगरचन्दजी नाहटा : एक परिचय	डॉ० आज्ञाचन्द भण्डारी	२९७
१४९ नाहटाजीकी राजस्थानीके प्रति ममता	श्रीमंतकुमार व्यास	२९९
१५० साहित्य-साधक श्री नाहटाजी	भूरसिंह राठौर	३००
१५१ अनथक साहित्यखोजी : नाहटाजी	डॉ० दयाकृष्ण विजयवर्गीय	३००
१५२ शोध-निर्देशक अगरचन्दजी नाहटासे भेंट	डॉ० प्रतापसिंह राठौड़	३०२
१५३ नाहटाजीका कृतित्व और व्यक्तित्व	पण्डित हीरालाल जैन	३०४
१५४ साहित्य और कलाके सच्चे उपासक	डॉ० प्रेम सुमन	३०५
१५५ व्यक्तित्व एवं संस्मरण	जोधसिंह मेहता	३०६
१५६ एक प्रेरक व्यक्तित्व	नृसिंह राजपुरोहित	३०७
१५७ अग्रणी अध्येता—नाहटाजी	डॉ० पुरुषोत्तमलाल मेनारिया	३०८
१५८ नाहटाजीसे प्रथम साक्षात्कार	डॉ० किरण नाहटा	३१०
१५९ न तस्य प्रतिमास्ति यस्य नाम महद यशः	डॉ० सत्यव्रत	३१२
१६० महामनस्वी श्री नाहटाजी	पं० श्रीलाल मिश्र	३१३

१६१ विद्या व्यासंग शोधमनीषी — डॉ० ओमानन्द रु० सारस्वत — ३१५
१६२ साहित्यमूर्त्ति श्री अगरचन्दजी नाहटा — डॉ० उदयवीर शर्मा — ३१७
१६३ शोधमनीषी श्री अगरचन्द नाहटा — गोविन्द अग्रवाल — ३१८
१६४ अभिनन्दनमभिनन्दनीयस्य — विश्वनाथ मिश्र — ३१९
१६५ लिखमी अर सरसुतीरा लाडला संत श्री अगरचन्दजी नाहटा — मुरलीधर व्यास — ३१९
१६६ माँ राजस्थानीरा समरथ सपूत नाहटोजी — श्रीलाल नथमल जोशी — ३२२
१६७ स्मृतिपथपर तैरते श्री नाहटाजी — दीनदयाल ओझा — ३२७
१६८ श्रद्धेय नाहटाजीसे भेंट — डॉ० ब्रजनारायण पुरोहित — ३३०
१६९ वयोवृद्ध, तपोवृद्ध एवं ज्ञानवृद्ध श्री नाहटाजी — जयशंकर देवशंकर शर्मा — ३३३
१७० वन्दे महापुरुष ! ते कमनीय कीर्त्तिम् — डॉ० ईश्वरानन्द शर्मा — ३३४
१७१ नाहटाजी : एक सन्दर्भ-ग्रन्थ — यादवेन्द्रचंद्र शर्मा — ३३६
१७२ जैन इतिहास-रत्न : शोधशास्त्री श्री अगरचन्द नाहटा — मोहनलाल पुरोहित — ३३७
१७३ राजस्थानके गौरव एवं विद्वद्रत्न — दे० न० देशबन्धु — ३४१
१७४ सरस्वतीके वरद-पुत्र : श्री अगरचन्दजी नाहटा — माधवप्रसाद सोनी — ३४२
१७५ भारतीय विद्याविदोंमें श्री अगरचन्द नाहटाका स्थान — डाँ० आनन्दमङ्गल वाजपेयी — ३४४
१७६ नाहटाजीका अभिनन्दन — रतिलाल देसाई सं० जैन साप्ताहिक वर्ष ६, अंक २२ — ३४७
१७७ नाहटाजीके सान्निध्यमें — डॉ० सत्यनारायण स्वामी — ३४९
१७८ श्री नाहटाजी शोधके प्रेरणास्रोत — वेदप्रकाश गर्ग — ३५७
१७९ प्रवुद्ध चमकते जैन सितारे : श्री अगरचन्दजी नाहटा — विमलकुमार रांका — ३५८
१८० नाहटा-बन्धुओंकी विशिष्ट उपलब्धि — शुभकरणसिंह बोथरा — ३६१
१८१ नाहटाजीका अद्भुत व्यक्तित्व — रिखबराज कर्णावट — ३६३
१८२ हार्दिक अभिनन्दन — मोतीलाल सुराना — ३६३
१८३ मेरी दृष्टिमें श्री अगरचन्द नाहटा — चन्दनमल 'चाँद' — ३६४
१८४ श्री अगरचन्द नाहटा : एक व्यक्तित्व — ताजमलजी बोथरा — ३६६
१८५ श्री भंवरलालजी नाहटा — ताजमलजी बोथरा — ३६८
१८६ श्री नाहटाजी जैनधर्मके सच्चे सेवक — मानचन्द भण्डारी — ३६८
१८७ साहित्यके सितारे व शोधनिर्देशक श्री अगरचन्दजी नाहटा — प्रकाशचन्द सेठिया — ३६९
१८८ राजस्थानकी महान् विभूति श्री अगरचन्दजी नाहटा — देवेन्द्रकुमार कोचर — ३७०
१८९ श्रेष्ठिवर श्री अगरचन्दजी नाहटा — पं० कन्हैयालाल लोढा — ३७१
१९० मूर्त्तिमान् ज्ञानकोष श्री नाहटाजी — भंवरलाल पोल्याका — ३७२

१९१ मरुभूमिकी देन : अनुकरणीय विद्यापति नाहटाजी	पारसकुमार सेठिया	३७६
१९२ संस्मरण	भंवरलाल नाहटा	३७६
१९३ ज्ञानके खोजी : श्रद्धेय नाहटाजी	विजयशंकर श्रीवास्तव	३८३
१९४ धन्य हो रहा अभिनन्दन करके जिनका अभिनन्दन	शर्मनलाल सरस सकरार	३८५
१९५ वे पुरातत्त्ववेत्तासे तत्त्ववेत्ता बन गये	भंवरलालजी कोठारी	३८६
१९६ भारतविख्यात विभूति	साध्वी चन्द्रप्रभाश्रीजी	३८६
१९७ अभयजैन ग्रन्थालयका २५वर्षीय विकास	भंवरलालजी नाहटा	३८९
१९८ आगन्तुक सम्मतियां		३९४
१९९ श्री भँवरलालजी नाहटा	अध्यात्मयोगी मुनि श्री महेन्द्रकुमार प्रथम	४००
२०० समाज सदा इनका ऋणी रहेगा	श्री यशपाल जैन	४०२
२०१ सि० इ० वि० श्री अगरचन्द नाहटा	श्रीमती गुणसुन्दरी बांठिया	४०४



इतिहास-रत्न-सिद्धान्ताचार्य-शोधमनीषि-विद्यावारिधि-जैन-श्वेताम्बराम्नायिक-राजस्थान-विद्वत्कुल-शिरोमणि-श्रीमद् अगुरुचन्द्र-नाहटा-षट्षष्टि-पूर्ति-समारोह-प्रशस्ति-श्लोक-द्वादशी

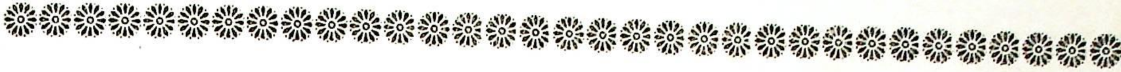
कृतिरियं गौड-श्रीसुनीतिकुमार-देवशर्मणाः काश्यपस्य।
ख्रिस्ताब्दाः १९७६ वर्षे मार्चस्य द्वादशे दिवसे॥

भारते मरुदेशस्य विश्रुतं ख्याति-पञ्चकम्।
शूरता राजपुत्राणां सूरता विदुषां तथा॥१॥
उद्योगे नेतृता ख्याता कौशल्यं तु कलासु च।
दायन्ते वणिजो वित्तं धर्मदेयाय साधवः॥२॥
राजानो यत्र योद्धारः स्त्रियः सर्वा पतिव्रताः।
सम्मानं देशमातुर्यैः प्राणैरपि सुरक्ष्यवे॥३॥
वज्रादपि कठोरं हि वीराणां यत्र जीवनम्।
वीराङ्गणा-चरित्रन्तु मधुरं कोमलं मृदु॥४॥
मरुवाटं नदीहीनं वालु-पर्वत-सङ्कुलम्।
रुक्ष-भूमि हरिद्वर्ज्यं श्रमिष्णु-जन-पोषणम्॥५॥
निखिल-पृथिवी-व्यापी व्यापारो मरु-वासिनाम्।
न केवलं तु व्यापारे विद्यासु मानवीषु च॥६॥
मानसिक्यां तथात्मिक्यां सदा धन्या मरोः कृतिः।
प्रख्याता मरु-वाटस्य श्रेष्ठिनः सूरिणस्तथा॥७॥
विद्या-विनय-धैर्येण पूर्णा लोकहिते रताः।
अधुना मूर्ध्नि तेषां वै अगुरुर्नाहटान्वयः॥८॥
बीकानेर-वास्तव्यः स सत्शिष्यैरनुसेवितः।
प्रज्ञान-सौरभेनास्यामोदितं सुधियां जगत्॥९॥
सर्वेषां वदनीयो यो शीलेन सुकृतेन च।
सर्व-शास्त्रे बुध-श्रेष्ठ आर्षे जैने च वैदिके॥१०॥
इतिहासे पुराणे च भाषासु निखिलास्वपि।
संस्कृते प्राकृते तद्वत् पिङ्गले डिङ्गलेऽपि च॥
बहुभाषा-विलासो य आङ्ग्ल-गूर्जर-हैन्दवे॥११॥
षट्षष्टि-वर्षपूर्तिर्वै सञ्जाता तस्य जीविते।
अगुरुचन्द्र-सूरि-श्रीर् जीव्याद् वै शरदः शतम्॥१२॥

●

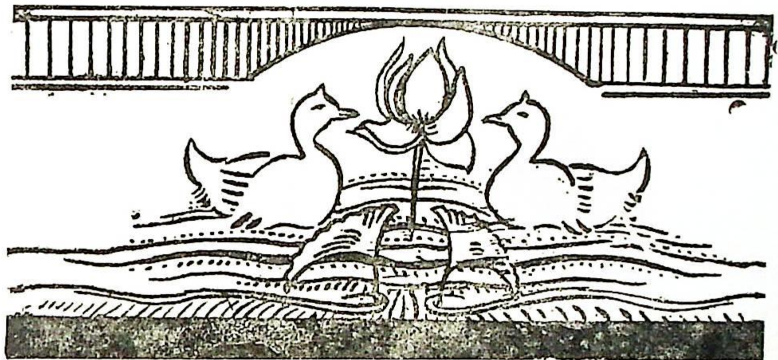


श्री हजारीमल जी बांठिया
संयोजक
अगरचन्द नाहटा अभिनन्दन-ग्रन्थ



प्रथम खण्ड





जीवन-परिचय





श्री अगरचंद नाहटा
वंश-परम्परा एवं जीवन-चरित्र

डॉ० ईश्वरानन्द शर्मा, एम० ए०, पी-एच० डी०, शास्त्री
प्रोफेसर, राजकीय डूंगर स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बीकानेर

जयन्तु ते सुकृतिनः, शोधशास्त्राङ्गपारगाः।
नास्ति येषां यशःकाये, जरामरणजं भयम्॥

आचार्य श्रीतुलसीके शब्दोंमें श्रीअगरचंद नाहटा "जैन-शासनके बहुश्रुत साधना-शील उपासक हैं"[१], श्री देवेन्द्र मुनि उन्हें "बहुमुखी प्रतिभाके धनी"[२] और श्री मधुकर मुनि 'सरस्वती-समुपासक श्रीमन्त सेठ'[३] के नामसे अभिहित करते हैं।

परम साध्वी सज्जनश्री जी आर्याको श्री नाहटा जी ने 'आदर्श श्रावक, अथक परिश्रमी साहित्य-सेवी और अध्यात्म साधक व्यक्ति'[४] के रूपमें प्रभावित किया है; मुनि जिनविजय[५] श्री नाहटा जी को 'समन्व्यसनी' कहते हैं।

श्री श्रीरंजन सूरिदेवके शब्दोंमें श्री नाहटा जी 'शोध पुरुष',[६] श्री देवेन्द्रकुमार जैनके शब्दोंमें 'शोध योगी'[७] और डॉ० नेमिचन्द्र शास्त्रीके अनुसार 'वाङ्मय पुरुष'[८] हैं।

हिन्दी साहित्यके वरेण्य विद्वान् श्री हजारीप्रसाद द्विवेदीने उन्हें 'अवढर दानी',[९] पुरातत्त्व मनीषी श्री वासुदेवशरण अग्रवाल ने 'अतिश्रेष्ठ कर्मठ साहित्यिक',[१०] इतिहासवेत्ता श्री गौरीशंकर हीराचन्द ओझाने 'खोजके बड़े प्रेमी',[११] डा०सत्येन्द्र और श्री नरोत्तमदास स्वामीने उन्हें 'पुरातत्त्वेतिहास-साहित्यके अन्वेषक विद्वान्'[१२]के रूपमें देखा है। श्री माताप्रसाद गुप्तके लिए आप अत्यन्त उदार और अतिरिक्त कृपालु हैं।[१३] श्री चिम्मनलालजी गोस्वामीने उन्हें 'साहित्य-गगनका दैदीप्यमान नक्षत्र' कहा है, श्री हीरालाल शास्त्री, डॉ० हीरालाल माहेश्वरी, श्री भोगीलाल सांडेसरा, श्री दलसुख मालवणिया, डॉ० जेटली प्रभृति मूर्धन्य सरस्वती समुपासकोंके श्री नाहटा आराध्य एवं श्रद्धेय रहे हैं।[१४]

कवियोंकी अमर गिराने आपका सहस्रधाराभिषेक किया है। श्री भरत व्यासकी भावावलीमें आप मधुमय सुगंध फैलानेके लिए साहित्यकी अगरबत्तीके समान सतत सक्रिय[१५] हैं! श्री कन्हैयालाल सेठियाने आपके चरणोंमें भावपुष्पाञ्जलि अर्पित करते हुए स्वर्णधूलि-मरुधराको अपने जन्मसे कृतार्थ करनेवाला बताया है।[१६] श्री विमलकुमारकी रागात्मक वाणीमें आप 'ज्ञान-ज्योति दिनकर'[१७] और 'कवि शशि' की शब्दावलीमें

---

१. आचार्यजी का शुभ सन्देश, ५ अगस्त, १९७१, लाडनूं राजस्थान से। २. श्री देवेन्द्र मुनिका संस्मरण। ३. श्री मधुकर मुनिका सन्देश। ४. श्री आर्या सज्जनश्री जी के आशीर्वचन। ५. मुनि श्रीजिन-विजय जी के पत्र। ६. श्री श्रीरंजन सूरिदेवका आशीर्वाद। ७. श्री देवेन्द्रकुमार जैन के संस्मरण। ८. श्री नेमिचन्द्र शास्त्री का लेख। ९. समयसुन्दर कृति कुसुमाञ्जली, भूमिका, भाग, पृ० १.। १०. बीकानेर जैन लेख संग्रह, प्राक्कथन, पृ० १.। ११ युगप्रधान श्री जिनचन्द्रसूरि, सम्मति, पृ० ६। १२. अगरचन्द नाहटा लेख सूची, प्राक्कथन, पृ० ३। १३. बीसलदेव रासो, प्रस्तावना, पृ० ३। १४. इसी अभिनन्दन ग्रन्थ का संस्मरण भाग। १५. 'मधुमय सुगंध फैलानेको, साहित्य अगरबत्ती जलती' जब तक यह कार्य न हो पूरा, तब तक ये साँस रहे चलती। १६. भेजूं हूँ मैं म्हाँरै हिरदै री सरधा, चढाऊँ हूँ चरणाँ में भावां रा फूल। थाँ नै जलम दे'र धिन हुई, ईं धरती री सोनल धूल। १७. 'ऐसे ज्ञान ज्योति दिनकरका, अभिनन्दन शत बार है'।

'विश्व कोशमें अमर रहेगा अगरचन्दका नाम' जैसी कमनीय कीर्त्तिके भाजन हैं ।[1] राजस्थानीके प्रौढ़कवि श्री उदयराज उज्ज्वलने आपको मातृभाषाके सम्मानका आश्रय बताया है ।[2]

इस प्रकार श्री अगरचन्द नाहटा जंगम-तीर्थ ऋषि-मुनियोंकी अहैतुकी कृपाके भाजन हैं; ज्ञानराशि-रस प्रमुदित पण्डित-मण्डलीके प्रमाण-पुरुष हैं; रसैकप्राण कवियोंकी भावधाराके अजस्र आलम्बन हैं। आप अनेक संस्थाओंके संचालक-निदेशक हैं। आपने अपने अगाध ज्ञान-प्रकाशसे अभिभावकके रूपमें शतशः कृत्वा 'ज्योतिर्गमय' को साकारता प्रदान की है। आपकी ज्ञान-पिपासाने अनेक पुस्तक-कला-रत्नाकरोंको रूपायित किया है। आप शतशः अनुसंधित्सुओंके समर्थ संबल रहे हैं। इतिहासरत्न, सिद्धान्ताचार्य, विद्यावारिधि, राजस्थानी साहित्य वाचस्पति, जैनसंघरत्न, जैसी अतीव सम्मानजनक उपाधियोंसे विभूषित किए गए हैं। श्री नाहटाजी अपने आपमें परम-सारस्वत और विश्वकोष हैं।

ऐसे उत्तम श्लोक श्री अगरचन्द जी नाहटाके दिव्य व्यक्तित्व एवं व्यापक कृतित्वके विषयमें अधिकाधिक जाननेके लिए कौन सुधी समुत्सुक नहीं होगा।

निवृत्ततर्षैरुपगीयमानात् भवौषधात् श्रोत्रमनोऽभिरामात् ।
क उत्तमश्लोक गुणानुवादात्, पुमान् विरज्येत विना पशुघ्नात् ॥[3]

अर्थात्—सतत सन्तुष्ट विवेकशीलोंसे उपगीयमान, भवौषधिभूत, मन और श्रोत्रेन्द्रियोंके लिए अभिराम, उत्तमश्लोक पुरुषोंके गुणानुवादसे पशुघ्न नराधमको छोड़कर और कौन विज्ञ नर विमुख होगा !

वे पुत्र धन्य हैं, जो अपने गुण-प्रकर्षसे अपनी माताकी गोदको श्लाघ्य चरितार्थ कर देते हैं। तुलसीके कारण हुलसीकी गोद[4] और महाराणा प्रतापके कारण उनकी वन्दनीया जननीकी कुक्षि सुन्दर भावोंका आलम्बन बन सकी थी।[5] हमारे चरित-नायककी सतत सरस्वती समुपासना, संकल्प स्थिरता और प्रतिकूल परिस्थितियोंसे जूझनेके सफल उत्साहसे प्रेरित एक कविने माता चुन्नीबाई नाहटाकी कुक्षिकी किस प्रकार सराहना की है, अवलोकनीय है—

धन्य धन्य चुन्नी बाई, जिसने सुत जाया अगरचन्द ।
है नाहटा, ना हटा, सत्पथ से, गिर गये विषम विकराल बन्ध ॥[6]

पुण्य-भूमि भारतके स्वर्णिम इतिहासमें जो गौरव-मंडित स्थान वीर भूमि राजस्थानको प्राप्त है, वही स्थान राजस्थानकी गाथाओंमें सैकतावृतधरा बीकानेरको उपलब्ध है। यह स्थल प्रकृतिका लीला-स्थल है। 'सांवण बीकानेर' तो एक सर्वविदित उक्ति है। आकाशमें सघन घुमड़ते जलधर, उनमें सव्रीडा क्रीडारत सौदामिनीका लास्य, धरापर अंकुरित हरित शस्यावलि, इतस्ततः धरास्थित वीरवधूटी, रजत आभूषणोपम वर्षाजल,[7] मन्द मदिर गतिसे थिरकने वाला हृद्य समीरण, सुदूर वन प्रान्तरमें वृक्षकी उच्च शाखासे उपांतमें प्रतिध्वनित मदिर केका, ग्राम सीमान्तमें सायंकाल प्रविष्ट पशुधनकी क्वणित-रणित घंटियाँ[8] और कृषक-पुत्रके हृदयोल्लाससे अनायासोद्भूत 'तेजा' का स्वर-निनाद कितना आह्लादक है, कितना मादक है और कितना

---

१. 'विश्व कोषमें अमर रहेगा, अगरचन्दका नाम'। २. बीकाणैं विदवान, अेकठ कीधा ईसवर, मातर भासा मांन, इसां सपूतां आसरै। ३ श्रीमद्भागवत दशम स्कन्ध पूर्वार्ध अध्याय १ श्लोक ३। ४. सुरतिय, नरतिय, नागतिय, सब चाहति अस होय। गोद लिए हुलसी फिरैं, तुलसी सो सुत होय। रहीम। ५. माई एहड़ा पूत जण, जैड़ा राण प्रताप; अकबर सूतो ओझकै, जाण सिराणै साप। ६. आचार्य चन्द्रमौलि, 'नाहटा प्रशस्तिका'। ५. निहसे वूठउ घण, विणु नीलाणी, वसुधा थलि थलि जल वसइ प्रथम समागमि वसत्र पदमणी, लीघइ किरि ग्रहणा लसइं; क्रिसन-रुकमणी-री वेलि पद संख्या १९४। ८. मारू देस सुहामणउ, साँवणि साँझी वार', 'ढोला मारूरा दूहा संख्या २५१'।

आकर्षक है । मारूदेशका उक्त सौन्दर्य अपना द्वितीय नहीं रखता, जब बाजरियाँ हरी हो जाती हैं, उनके मध्यमें बेलोंमें फूल लग जाते हैं और सारा भाद्रपद मास बरसता रहता[1] है ।

यहाँ वर्षाऋतु जितनी आह्लादक है; सर्दी और ग्रीष्म भी उतनी ही सुखकर हैं । शीतका आरम्भ इसलिए मधुर है कि काचर-बोर और मतीरोंको वह मीठा कर देता है—

दीयाली रा दीया दीठां, काचर बोर मतीरा मीठा ।

ग्रीष्मका दिन अत्यन्त गर्म होता है लेकिन उसका सुखान्त-रात्रिपक्ष इतना मादक और शीतल होता है कि नींद अमृत-घूँटके समान मधुर लगती है ।

ऊनाले में तपै तावड़ो, लू आंरा लपका । रातड़ली इमरत बरसावै, नींदां रा गुटका ।।

बीकानेरके सुखद ऋतुपरिवर्तन और भौगोलिक परिवेशने स्थानीय जनजीवनको अत्यन्त उत्साही और स्पृहणीय बना दिया है । यहाँका जल आरोग्यप्रद और मानव मधुरभाषी होते हैं—

'देस सुहावउ, जल सजल, मीठा बोला लोइ'

बीकानेरीय भूखण्डका एक दूसरा पक्ष भी है, जो प्रत्यक्षमें आह्लादक न होते हुए भी गुणसर्जक अवश्य है । वर्षाके अभावमें यहाँ कई बार अकालकी स्थिति बन जाती है; कभी-कभी टिड्डीदल कृषककी आशाओंपर तुषारापात कर देता है; जंगल विषैले साँपोंसे भरा रहता है; सघन वृक्ष और शीतल सुखद छाया तो मिलती ही नहीं । लोग भुरट खाते हैं, भेड़ बकरियोंका दूध पीते हैं और ऊनी वस्त्र पहनते हैं । निस्सन्देह ऐसे कष्टकर भूखंडमें कठोरतासे जीवन जीनेवाली जाति स्वभावसे ही साहस-सहिष्णुता और वीरता-दृढ़ताकी धनी होगी । हमारे चरितनायकश्री अगरचन्द नाहटामें अगर ये गुण उभरे हैं तो इन्हें 'स्वर्गादपि गरीयसी' बीकानेरी-वसुन्धराका वरदान ही समझना चाहिए ।

मरुधराके राजनीतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, सामाजिक और नैतिक निर्माणमें ओसवाल जातिका बहुत बड़ा हाथ रहा है । नाहटा, वैद, बछावत, कोठारी, कोचर, सुराणा, खजाँची, राखेचा, मेहता प्रभृति परिवारोंने जनता और जनपतियोंकी तन, मन, धनसे श्लाघ्य सेवा की है । बुद्धि और वैभवके धनी इन लोगोंने साम, दाम, दण्ड और भेद नीति द्वारा समय-समयपर आनेवाली विपत्तियोंसे जनता-जनार्दनकी केवल रक्षा ही नहीं, अपितु उसके सुख-सौभाग्यके संवर्द्धन हेतु प्राण पणसे प्रयत्न भी किये हैं । उन्होंने सन्धि-विग्राहक, रक्षा-सचिव और सेनापति तथा दीवान जैसे पदोंपर साधुवादार्ह कर्त्तव्यपालन किया है । ये अहिंसाके पुजारी, धर्म और धरतीकी रक्षा हेतु खड्गपाणि होकर समरांगणमें जूझते रहे हैं । ये आन-बान और शानके पक्के गिने जाते हैं और युद्धमें इनके बढ़ते चरण कट सकते थे लेकिन वे मुड़ नहीं सकते थे । हमारे चरित-नायकके पूर्वजोंके लिए यह निर्विवाद स्वीकृत ख्याति है कि वे जिस विषम परिस्थितिमें जूझना आरम्भ करते थे, वहाँ अडिगरूप बन जाते थे । शत्रुका दशगुणित बल, उनके उत्साह, शौर्यसम्पन्न व्यक्तित्वको 'भीरु' नहीं बना सकता था । युद्धकर्ममें रत उन पुण्य स्मरणीय पूर्वजोंको स्थानविर्चालित करना टेढ़ी खीर थी; वे अपनेमें अचला नगाधिराजका गुरुतर भार समाहित कर मानों रण-सरोवरमें अवगाहनार्थ उतरते थे और स्वस्थानसे हटनेका नाम तक नहीं जानते थे । इसीलिए वे 'नाहटा' नामसे प्रसिद्ध हुए ।

---

१. बाजरियाँ हरियालियाँ, बिचि बिचि वेलां फूल । जउ भरि वूठउ भाद्रवउ, मारू देस अमूल ।।'
—ढोला मारू रा दूहा संख्या २५० ।

'विश्व कोशमें अमर रहेगा अगरचन्दका नाम' जैसी कमनीय कीर्त्तिके भाजन हैं।[1] राजस्थानीके प्रौढ़कवि श्री उदयराज उज्ज्वलने आपको मातृभाषाके सम्मानका आश्रय बताया है।[2]

इस प्रकार श्री अगरचन्द नाहटा जंगम-तीर्थ ऋषि-मुनियोंकी अहैतुकी कृपाके भाजन हैं; ज्ञानराशि-रस प्रमुदित पण्डित-मण्डलीके प्रमाण-पुरुष हैं; रसैकप्राण कवियोंकी भावधाराके अजस्र आलम्बन हैं। आप अनेक संस्थाओंके संचालक-निदेशक हैं। आपने अपने अगाध ज्ञान-प्रकाशसे अभिभाषकके रूपमें शतशः कृत्वा 'ज्योतिर्गमय' को साकारता प्रदान की है। आपकी ज्ञान-पिपासाने अनेक पुस्तक-कला-रत्नाकरोंको रूपायित किया है। आप शतशः अनुसंधित्सुओंके समर्थ संबल रहे हैं। इतिहासरत्न, सिद्धान्ताचार्य, विद्यावारिधि, राजस्थानी साहित्य वाचस्पति, जैनसंघरत्न, जैसी अतीव सम्मानजनक उपाधियोंसे विभूषित किए गए हैं। श्री नाहटाजी अपने आपमें परम-सारस्वत और विश्वकोष हैं।

ऐसे उत्तम श्लोक श्री अगरचन्द जी नाहटाके दिव्य व्यक्तित्व एवं व्यापक कृतित्वके विषयमें अधिकाधिक जाननेके लिए कौन सुधी समुत्सुक नहीं होगा।

निवृत्ततर्षैरुपगीयमानात् भवौषधात् श्रोत्रमनोऽभिरामात्।
क उत्तमश्लोक गुणानुवादात्, पुमान् विरज्येत विना पशुघ्नात्॥[3]

अर्थात्—सतत सन्तुष्ट विवेकशीलोंसे उपगीयमान, भवौषधिभूत, मन और श्रोत्रेन्द्रियोंके लिए अभिराम, उत्तमश्लोक पुरुषोंके गुणानुवादसे पशुघ्न नराधमको छोड़कर और कौन विज्ञ नर विमुख होगा!

वे पुत्र धन्य हैं, जो अपने गुण-प्रकर्षसे अपनी माताकी गोदको श्लाघ्य चरितार्थ कर देते हैं। तुलसीके कारण हुलसीकी गोद[4] और महाराणा प्रतापके कारण उनकी वन्दनीया जननीकी कुक्षि सुन्दर भावोंका आलम्बन बन सकी थी।[5] हमारे चरित-नायककी सतत सरस्वती समुपासना, संकल्प स्थिरता और प्रतिकूल परिस्थितियोंसे जूझनेके सफल उत्साहसे प्रेरित एक कविने माता चुन्नीबाई नाहटाकी कुक्षिकी किस प्रकार सराहना की है, अवलोकनीय है—

धन्य धन्य चुन्नी बाई, जिसने सुत जाया अगरचन्द।
है नाहटा, ना हटा, सत्पथ से, गिर गये विषम विकराल बन्ध॥[6]

पुण्य-भूमि भारतके स्वर्णिम इतिहासमें जो गौरव-मंडित स्थान वीर भूमि राजस्थानको प्राप्त है, वही स्थान राजस्थानकी गाथाओंमें सैकतावृतधरा बीकानेरको उपलब्ध है। यह स्थल प्रकृतिका लीला-स्थल है। 'सांवण बीकानेर' तो एक सर्वविदित उक्ति है। आकाशमें सघन घुमड़ते जलधर, उनमें सव्रीडा क्रीडारत सौदामिनीका लास्य, धरापर अंकुरित हरित शस्यावलि, इतस्ततः धरास्थित वीरवधूटी, रजत आभूषणोपम वर्षाजल,[7] मन्द मदिर गतिसे थिरकने वाला हृद्य समीरण, सुदूर वन प्रान्तरमें वृक्षकी उच्च शाखासे उपांतमें प्रतिध्वनित मदिर केका, ग्राम सीमान्तमें सायंकाल प्रविष्ट पशुधनकी क्वणित-रणित घंटियाँ[8] और कृषक-पुत्रके हृदयोल्लाससे अनायासोद्भूत 'तेजा' का स्वर-निनाद कितना आह्लादक है, कितना मादक है और कितना

---

१. 'विश्व कोषमें अमर रहेगा, अगरचन्दका नाम'। २. बीकाणें बिदवान, अेकठ कीधा ईसवर, मातर भासा मांन, इसां सपूतां आसरै। ३ श्रीमद्भागवत दशम स्कन्ध पूर्वार्ध अध्याय १ श्लोक ३। ४. सुरतिय, नरतिय, नागतिय, सब चाहति अस होय। गोद लिए हुलसी फिरैं, तुलसी सो सुत होय। रहीम। ५. माई एहड़ा पूत जण, जैड़ा राण प्रताप; अकबर सूतो ओझकै, जाण सिराणें साप। ६. आचार्य चन्द्रमौलि, 'नाहटा प्रशस्तिका'। ५. निहसे वूठउ घण, विणु नीलाणी, वसुधा थलि थलि जल वसइ प्रथम समागमि वसत्र पदमणी, लीधइ किरि ग्रहणा लसइं; क्रिसन-रुकमणी-री वेलि पद संख्या १३४। ८. मारू देस सुहामणउ, साँवणि साँझी वार', 'ढोला मारूरा दूहा संख्या २५१'।

आकर्षक है। मारूदेशका उक्त सौन्दर्य अपना द्वितीय नहीं रखता, जब बाजरियाँ हरी हो जाती हैं, उनके मध्यमें बेलोंमें फूल लग जाते हैं और सारा भाद्रपद मास बरसता रहता[1] है।

यहाँ वर्षाऋतु जितनी आह्लादक है; सर्दी और ग्रीष्म भी उतनी ही सुखकर हैं। शीतका आरम्भ इसलिए मधुर है कि काचर-बोर और मतीरोंको वह मीठा कर देता है—

दीयाली रा दीया दीठां, काचर बोर मतीरा मीठा।

ग्रीष्मका दिन अत्यन्त गर्म होता है लेकिन उसका सुखान्त-रात्रिपक्ष इतना मादक और शीतल होता है कि नींद अमृत-घूँटके समान मधुर लगती है।

ऊनाले में तपै तावड़ो, लू आंरा लपका। रातड़ली इमरत बरसावै, नींदां रा गुटका॥

बीकानेरके सुखद ऋतुपरिवर्तन और भौगोलिक परिवेशने स्थानीय जनजीवनको अत्यन्त उत्साही और स्पृहणीय बना दिया है। यहाँका जल आरोग्यप्रद और मानव मधुरभाषी होते हैं—

'देस सुहावउ, जल सजल, मीठा बोला लोइ'

बीकानेरीय भूखण्डका एक दूसरा पक्ष भी है, जो प्रत्यक्षमें आह्लादक न होते हुए भी गुणसर्जक अवश्य है। वर्षाके अभावमें यहाँ कई बार अकालकी स्थिति बन जाती है; कभी-कभी टिड्डीदल कृषककी आशाओंपर तुषारापात कर देता है; जंगल विषैले साँपोंसे भरा रहता है; सघन वृक्ष और शीतल सुखद छाया तो मिलती ही नहीं। लोग भुरट खाते हैं, भेड़ बकरियोंका दूध पीते हैं और ऊनी वस्त्र पहनते हैं। निस्सन्देह ऐसे कष्टकर भूखंडमें कठोरतासे जीवन जीनेवाली जाति स्वभावसे ही साहस-सहिष्णुता और वीरता-दृढ़ताकी धनी होगी। हमारे चरितनायकश्री अगरचन्द नाहटामें अगर ये गुण उभरे हैं तो इन्हे 'स्वर्गादपि गरीयसी' बीकानेरी-वसुन्धराका वरदान ही समझना चाहिए।

मरुधराके राजनीतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, सामाजिक और नैतिक निर्माणमें ओसवाल जातिका बहुत बड़ा हाथ रहा है। नाहटा, वैद, बछावत, कोठारी, कोचर, सुराणा, खजाँची, राखेचा, मेहता प्रभृति परिवारोंने जनता और जनपतियोंकी तन, मन, धनसे श्लाघ्य सेवा की है। बुद्धि और वैभवके धनी इन लोगोंने साम, दाम, दण्ड और भेद नीति द्वारा समय-समयपर आनेवाली विपत्तियोंसे जनता-जनार्दनकी केवल रक्षा ही नहीं, अपितु उसके सुख-सौभाग्यके संवर्द्धन हेतु प्राण पणसे प्रयत्न भी किये हैं। उन्होंने सन्धि-विग्राहक, रक्षा-सचिव और सेनापति तथा दीवान जैसे पदोंपर साधुवादार्ह कर्त्तव्यपालन किया है। ये अहिंसाके पुजारी, धर्म और धरतीकी रक्षा हेतु खड्गपाणि होकर समरांगणमें जूझते रहे हैं। ये आन-बान और शानके पक्के गिने जाते हैं और युद्धमें इनके बढ़ते चरण कट सकते थे लेकिन वे मुड़ नहीं सकते थे। हमारे चरित-नायकके पूर्वजोंके लिए यह निर्विवाद स्वीकृत ख्याति है कि वे जिस विषम परिस्थितिमें जूझना आरम्भ करते थे, वहाँ अडिगरूप बन जाते थे। शत्रुका दशगुणित बल, उनके उत्साह, शौर्यसम्पन्न व्यक्तित्वको 'भीरु' नहीं बना सकता था। युद्धकर्ममें रत उन पुण्य स्मरणीय पूर्वजोंको स्थानविचलित करना टेढ़ी खीर थी; वे अपनेमें अचला नगाधिराजका गुरुतर भार समाहित कर मानों रण-सरोवरमें अवगाहनार्थ उतरते थे और स्वस्थानसे हटनेका नाम तक नहीं जानते थे। इसीलिए वे 'नाहटा' नामसे प्रसिद्ध हुए।

---

१. बाजरियां हरियालियां, बिचि बिचि बेलां फूल। जउ भरि वूठउ भाद्रवउ, मारू देस अमूल॥'
—ढोला मारू रा दूहा संख्या २५०।

आज का नाहटा-वंश शतियों पूर्व 'नाहट्ट वंश' नामसे अभिहित होता था। यह वंश उपकेश ओसवाल वंशकी शाखाओंमेंसे एक शाखा है।[1] नाहटा वंशोत्पन्न महानुभावोंकी सामाजिक प्रतिष्ठा, अद्वितीय उदारता और आप्तपुरुषोंके प्रति श्रद्धावनत विनय-शीलता सदैव गेय रही है। चतुर्दश शतीमें अनूदित एक ग्रन्थमें पुष्पापीडका वर्णन पठितव्य है :—

यस्मिन् जाग्रत्पुरुषसुमनस्तोमसौरभ्यभंगी, भोगाकृष्टैः बुधमधुकरैस्तन्यते कीर्तिगीतिः।
पृथ्वीकान्ताकमनकरणत्राणशृंगारकोऽसौ, पुष्पापीडो जगति जयति श्रीमदूकेशवंशः॥[2]

जिनके लोकप्रसिद्ध पौरुषरूपी पुष्पके समूहकी सुगन्धि प्राप्त करनेके लिए आकृष्ट विद्वान्‌रूपी भ्रमर कीर्तिगान करते हैं, जो पृथ्वीरूपी नायिकाकी कामनाओंका पूरक है; उसकी रक्षाका प्रसाधक है; ऐसा शोभा सम्पन्न, उकेशवंशोद्भव पुष्पापीड संसारमें सर्वोत्कृष्ट है; उसकी जय हो।

नाहटा वंशोद्भव उदयी आसनागका चित्रण भी ध्यातव्य है। कवि ने आसनागके अनुपम व्यक्तित्वमें कर्मठता, शालीनता और सदाशयता का जो समवेत स्वरूप प्रस्तुत किया है, वह संस्कृत साहित्येतिहास की अनुपम निधि है—

तस्मिन् सिद्धिवधूवशीकृतिविधौ गाढानुबन्धान्यधात्,
यः स्वस्वान्तवसुन्धरान्तरतुलं सम्यक्त्वसत्कार्यणम्।
सर्वांगीणविभूषणं त्वचकलच्छीलं शरीरेऽसकौ,
पुन्नागोऽभवदासनागउदयी, नाहट्टवंशोद्भवः॥[3]

उसने जीवनमें सफलता प्राप्त की थी और भाग्यको भी वशमें कर लिया था। उसके अतिशय प्रेम के कारण जिसने पृथिवी के समान अपने अन्तःकरण को उसमें लगा दिया था, जो सत्य रूपसे सत्कार्य को करता था; जिसके शरीर में सर्वांग का भूषणशील सदा विद्यमान था, ऐसा पुरुषों में श्रेष्ठ 'नाहट्ट' वंश में उत्पन्न उदयी आसनाग हुआ।

प्राचीन साहित्यमें यत्र-तत्र उपलब्ध नाहटा वंशोत्पन्न वरेण्य व्यक्तियोंकी प्रशस्तियोंके अध्ययन-मननसे यह निष्कर्षनिचय असम्भव नहीं है कि प्राकरणिक पुरुष अतीव गुरुभक्त होते थे। वे गुरूपदेश का सश्रद्धा श्रवण करते थे और उसे व्यवहारमें लाकर अपना जीवन सफल बनाते थे। निम्नांकित उद्धरण उपर्यंकित तथ्यका परिचायक है—

इति हितमुपदेशं सन्मरन्दावभासं, जिनकुशलयतीन्दोर्वक्त्रपद्मान्निरीतम्।
मधुकर इव वर्यानन्दसन्दोहसिन्धु, स्म पिबति बत वेगादीश्वरः श्राद्धरत्नम्॥[4]

श्रीजिनकुशल यतीन्द्ररूपी चन्द्रमाके मुखरूपी कमलसे निकले हुए पुष्पधूलिके समान हितकर उपदेशोंको भ्रमरके समान श्रद्धालु, श्रेष्ठ आनन्दोंके सागर नाहटा वंशोद्भव 'श्रीईश्वर' सदा तीव्रतासे पान किया करते थे।

जैसी भावभक्ति, उदाराशयता और सच्चरित्रता हमें नाहटा नर-रत्नोंमें देखने-पढ़नेको मिलती है, वैसी ही धर्म-भावना, पवित्रता और श्रद्धावृत्ति इस वंश की वीराङ्गनाओं में भी उपलब्ध होती है।

---

१ श्रीमदुपकेशवंशः सद्वंशः शोभते सुपर्वाढ्यः। नानाशाखोपगतः, सरसश्चि····तुनो कठिनः॥ तत्र च 'नाहटा' शाखा समस्ति तत्रापि देवगुरुभक्तः। आवश्यक सूत्रवृत्ति। २ प्रज्ञापना सूत्रवृत्ति, श्रीजेसलमेरुदुर्गस्थ जैन ताडपत्रीय ग्रन्थ भंडार सूचीपत्र। ३. 'श्रीमलयगिरिविरचितायां प्रज्ञापनाटीकायां' श्रीजेसलमेरुदुर्गस्थ जैन ताडपत्रीय ग्रन्थ भंडार सूचीपत्रे क्रमांक २८। ४. उपाध्याय लब्धिनिधान रचित प्रज्ञापना टीका, श्रीजेसलमेरुदुर्गस्थ जैन ताडपत्रीय ग्रन्थ भंडार।

इस सन्दर्भ में यथानाम़ तथा गुणवाली धन्या अभिधेया नाहटा कुलाङ्गनाकी प्रशस्तिका पठितव्य है—

समजनि जनी मान्या धन्याभिधास्य, सुधारसप्रसरमधुरव्याहारोद्धा सुशीलरमानघा।
यतिजन सदा सेवा हेवा कताकलिता. हि याऽजनयत निजं नामान्वर्थं विवेकवती सती ॥[1]

उसकी (कुमारपाल की) परम मान्या, अमृत वर्षी मधुर व्यवहारोंवाली, अत्यन्त पवित्र 'धन्या' नामकी सुशीला स्त्री थी; जो यतिजनोंकी सेवामें सदा तत्पर रहती थी; जिस विवेकवती सतीने अपने नामको सार्थक किया था।

जिस वंशमें पिता सद्गुणोंका आकर हो; माता श्रेष्ठ श्रद्धास्वरूपा हो, उसकी सन्तान कितनी सच्चरित्र और सर्वोपकारी होगी; यह कहने की आवश्यकता नहीं है।

स्वः शाखेव सुखावहान् कलफलान् प्रासूत सा सत्सुतान्।........

त्रयोऽपि मूर्ता इव पुरुषार्थाः —....

उसने कल्पवृक्षके समान सबको सुख देनेवाले, सुन्दर फलोंवाले तीन अच्छे, परम पुरुषार्थी पुत्रोंको जन्म दिया।

इसी महनीय नाहटा गोत्रमें जैनधर्मोपासक श्रीयुत् जालसीके वंशमें श्रेष्ठिप्रवर गुमानमलजी उत्पन्न हुए। श्री गुमानमलजी हमारे चरितनायकके उत्तम वृद्ध प्रपितामह थे। वृद्ध प्रपितामह श्री ताराचन्दजी लगभग १५० वर्ष पूर्व बीकानेर में उच्चपदपर राजकीय सेवा करते थे। उनका घर सुसमृद्ध और अत्यन्त प्रतिष्ठित था। बीकानेर नरेश महाराज सूरतसिंहजी से किसी कारणवश आपका मनमुटाव हो गया और आपने राज्यमें आना जाना बन्द कर दिया। जनश्रुति है कि नाहटा श्री ताराचन्दजी बीकानेरीय गाँवों में उगाही करके लाया करते थे और नजरानारूप में दरबार को कुछ हिस्सा भेंट कर देते थे। एक बार इन्होंने गाँव की उगाही न मिलने से कुछ भी नजराना नहीं दिया तो राजाजी ने इन्हें दुगुना नजराना देने को कहलाया। श्री नाहटा नजराना न देनेके अपने पूर्वनिश्चयपर अटल रहे और उन्होंने बीकानेर छोड़कर पार्श्वस्थ[2] गाँव कानासर को अपना निवास स्थान चुन लिया और वहाँ शानशौकतसे रहने लगे। भरेपूरे परिवारमें गायें, भैंसें, ऊँट, बैल प्रभृति पशुधनकी प्रभूतता थी, घरमें काम करनेके लिए दास-दासियाँ नियुक्त थीं;आसपासके गाँवोंमें साख और धाक थी और धन्धा अच्छा चलता था।

कुछ वर्षों तक सानंद समय बीता। एक दिन घरमें अग्नि-प्रकोप हुआ और सारा घर जलकर राख हो गया। इस प्रबल अनलमें बीकानेरके घर, जमीन-जायदादके पट्टे, राजकीय खास रुक्के, परवाने, खाता-बही एवं आवश्यक कागजात सब निःशेष हो गए।

सेठजीने उक्त गाँवको अशुभ जानकर छोड़नेका निश्चय कर लिया। और जलालसर नामक गाँवमें जाकर सपरिवार बस गए।

एकबार इनके घरकी दासी अपने घड़ेमें कुएँ पर दूसरोंसे पहिले पानी भरनेके लिए हठ करने लगी। गाँववालोंने उसकी एक न चलने दी और कहा—यहाँ तो बारी-बारीसे घड़े भरे जायेंगे, यह कुँआ सबका है, न कि तुम्हारे सेठोंके खुदवाया हुआ है। अतः तुम्हारी उतावल नहीं चलेगी।

स्वात्माभिमानी सेठोंके घरकी दासी भी स्वाभिमानिनी थी। उसने तत्काल खाली घड़ा सीधा अपने मस्तक पर रखा और घरकी राह ली। सेठ श्री ताराचन्दजी घरके आगे कई मनुष्योंके बीच पलंग पर बैठे

---

१. उपाध्याय लब्धिनिधान रचित प्रज्ञापना टीका, श्रीजेसलमेरुदुर्गस्थ जैन ताडपत्रीय ग्रन्थ भंडार।

२. यह गाँव बीकानेरसे ८ मील उत्तरमें है।

अंगीठी तप रहे थे । दासीने कहा—सेठां घड़ो उतरावो ! सेठ साहबने नौकरसे घड़ा उतारनेका कहा तो दासी खाली घड़ेको चौकीमें पटक कर घरमें चली गई । बादमें जब सेठ साहबने दासीको खाली घड़ा लानेका कारण पूछा तो उसने कहा—आपका यहाँ कोई कुँआ खुदवाया हुआ नहीं है, तब मुझे ताना सुनना पड़ा ! और इसीलिए मैं खाली घड़ा लिए लौट आई !

सेठ साहबने सारा वृतान्त ज्ञातकर, जब तक उस गाँवमें अपना कूप खुदकर तैयार न हो जाय, तब तक उस गाँवका पानी न पीनेकी प्रतिज्ञा कर ली और अपने चपरासी जलालसाहको शीघ्रातिशीघ्र कुँआ खुदवानेकी आज्ञा देकर कूप-खनन प्रारंभ करवा दिया ।

अब दूसरे गाँवोंसे ऊँटों पर मीठा पानी लाया जाता और प्रणपालक सेठ केवल उसीसे पिपासा शान्त करते थे । संकल्पकी स्थिरतामें सिद्धिका निवास रहता है, सेठांका कूप अविलम्ब तैयार हो गया । धूमधामसे कूप-प्रतिष्ठा हुई और जलालसर ग्राममें स्वनिर्मित कूपको जनसाधारणके लिए उन्मुक्त करके अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण की ।

सेठ साहबका मन जलालसरसे उखड़ा हुआ था । बीकानेर तहसीलमें जलालसरसे अनति दूर दक्षिणमें एक गाँव है; जिसे डांडसर कहते हैं । यह चारणोंका ग्राम था । यहाँके चारण वीर योद्धा और परम देवी-भक्त रहे हैं । उनके पवित्र आचरण और सौहार्द भावने गाँवके जन-मानसको भी प्रभावित किया था; क्योंकि जैसा राजा होता है; प्रजा भी वैसी ही बन जाती है—'यथा राजा तथा प्रजा' । गुणग्राहकता धर्मकथा श्रवण और परोपकार वृत्ति इन लोगोंका आनुवंशिक गुण रहा है । माताजी श्रीकरणीजी पर इनकी अनन्य आस्था है । इनका विश्वास है कि करणीजीके समान कोई देवता नहीं है—

करणी समो न देवता, गीता समो न पाठ । मोती समो न ऊजलो, चन्दण समो न काठ ।।

जलालसर गाँव छोड़नेकी श्री ताराचन्दजी नाहटाकी इच्छाको जानकर डांडूसरके तत्कालीन ठाकुर साहब सेठजीके पास पहुँचे और उन्हें स्थायी रूपसे डांडूसरमें ही बस जानेके लिए आग्रह करने लगे । सेठ श्री ताराचन्दजीने अयाचितको अमृत जानकर ठाकुर साहबके प्रस्तावको सहर्ष स्वीकार किया और सदलबल डांडूसर ग्राममें रहने लगे । इस गाँवमें ओसवाल जातिके लगभग बीस घर पहलेसे ही थे । श्री ताराचन्दजी जैसे सुविख्यात धनी-मानी सेठको पाकर डांडूसर ग्राम अत्यन्त प्रसन्न हुआ । सज्जन और गुणग्राहक ग्रामीणोंमें रहकर श्री ताराचन्दजी बीकानेरको भूलसे गये और बीकानेरका आना जाना समाप्त प्राय: हो गया । सेठ साहब डांडूसरसे प्रसन्न थे और डांडूसर सेठ साहब से । यहाँ तक कि आज तक भी डांडूसर नाहटा (सेठां) वाली प्रसिद्ध है । जामसर रेलवे स्टेशन पर धर्मशाला बनवायी, जहाँ गाँवसे बीकानेर आनेजाने वाले वहाँ ही ठहरते थे ।

कबीरने अपने छोटेसे दोहेमें संसारका बहुत बड़ा शाश्वत सत्य प्रस्तुत कर दिया है—'जो आते हैं; वे जाते हैं, चाहे राजा हों, रंक हों या फकीर हों ।' लेकिन जाते समय सब एक ही तरहसे नहीं जाते—पुण्यात्मा सिंहासनासीन होकर जाते हैं और पापात्मा निगडबद्ध स्थितिमें ।[1] कहनेकी आवश्यकता नहीं कि समय पाकर सेठ श्री ताराचन्दजी धवल कीर्तिके पावन विमान पर आसीन होकर इस संसारसे बिदा हुए । उन्होंने नाहटा वंशको सुग्रामवास तो दिया ही; साथमें स्वाभिमान और सामाजिक-प्रतिष्ठा भी दी ।

परिवर्तिनि संसारे, मृतः को वा न जायते । स जातो येन जातेन, याति वंशः समुन्नतिम् ।।

परिवर्तनशील इस संसारमें कौन नहीं मरता और कौन उत्पन्न नहीं होता ! उत्पन्न होना उसी प्राणीका सार्थक है; जिससे वंश उन्नत होता है ।

---

१. आये हैं सो जायँगे, राजा रंक फकीर, इक सिंहासन चढ़ि चले, इक बँधे जंजीर ।

हमारे चरितनायकके पड़दादा, ताराचन्दात्मज श्री जैतरूपजी नाहटा डाँडूसरमें ही रहे। कीर्त्ति-शेष पितृजीने जो आध्यात्मिक और भौतिक सम्पत्ति उनके लिए छोड़ी थी, उसका सदुपयोग करते हुए वे भी संवत् १८९० के आसपास स्वर्गवासी हुए।

स्वर्गीय श्री जैतरूपजी नाहटाके उदयचन्दजी, राजरूपजी, देवचन्दजी और बुधमलजी नामक चार पुत्र थे। ऊदी नामिका ज्येष्ठ पुत्री बीकानेरसे ८ मील पश्चिम नाल नामक ग्राममें विवाहित थी। हमारे चरित-नायकके पितामह श्री उदयचन्दजी सबसे बड़े भाई थे। उन दिनों लोग विदेशी व्यापारकी ओर आकर्षित होने लगे थे और सुदूर पूर्व तथा दक्षिणकी यात्राएँ होने लगी थीं। अधिकांश व्यक्ति बंगाल, बिहार, आसाम और उड़ीसा जाते थे और दीर्घावधिके पश्चात् आवागमनके सुखद साधनोंके अभावमें कष्टयात्रा पूरी कर स्वदेश लौटते थे।

श्री उदयचन्दजी नाहटा उद्यमशील थे और बाधाओंसे जूझनेकी उनमें सामर्थ्य थी। डांडूसर ग्राममें कृषिकर्म उन्नत स्थितिमें था, अभाव अभियोगकी कोई स्थिति नहीं थी, घर सब प्रकारसे भरापूरा था, लेकिन वे वैश्यधर्म—कृषि, गोरक्षा तो करते ही थे, वाणिज्य भी करना चाहते थे, क्योंकि शास्त्रोंमें कृषि, गोरक्ष्य और वाणिज्य ये तीन काम वैश्य-विहित हैं।[1]

परमोत्साही श्री उदयचन्दजीने परदेश जाकर व्यापार करनेकी प्रबल इच्छा अपनी स्नेहमयी जननीके सम्मुख प्रस्तुत की। माताने कहा "बेटा! पहिले यहीं शहर बीकानेरमें जाकर काम सीखो, तदुपरान्त विदेशका विचार करना अथवा तुम्हारी बहिन नालमें है, वहाँ काम सीखो और तदुपरान्त बीकानेर चले जाओ।"

मनस्वी उदयचन्दजी किसी सम्बन्धीके घर रहना पसन्द नहीं करते थे, इसलिए माताका प्रस्ताव उन्हें रुचिकर प्रतीत नहीं हुआ। साथ ही बहिनका आग्रह भी माताकी आज्ञामें सहायक हुआ और आप अन्यमनस्क भावसे सम्बन्धी-ग्राम नालमें आ गये। नालमें रहते थोड़े ही दिन हुए थे कि एक दिन बहिन ऊदीने भाई उदयचन्दसे कहा—

'भाई! गायों रहाधोंको जवे खायेंगे, अतः वहाँकी पुरानी खतवाय हटाकर साफ बालू रेत डाल दो।' स्वाभिमानी भाई उदयचन्द नाहटा सम्बन्धीके घर कोई भी निकृष्ट काम करना अपने गौरवके प्रतिकूल समझते थे। इसलिए उन्होंने बहिन द्वारा संकेतित कार्य न करके तत्काल ग्राम डाँडूसर लौटनेका निश्चय किया। वीरचरित क्रिया और फलमें अधिक अन्तरालको प्रश्रय नहीं देते। इसलिए श्री उदयचन्द भी निश्चयके साथ ही स्वग्राम, डाँडूसर पहुँच गये।

उन दिनों कुछ परिचित व्यक्ति परदेश जा रहे थे। उत्साही उदयचन्दने विशेष आग्रहके साथ माताजीसे अपना निश्चय दुहराते हुए कहा "माँ—मैं परदेश जाऊँगा; आप सब यहाँ आनन्दपूर्वक रहें।। मैं जहाँ भी जाऊँगा आपके आशीर्वादसे आनन्दसे रहूँगा और साथ हुआ तो पत्र भेज दूँगा।' माँके कल्पनालोकमें परदेशकी दुःखद-कष्टकर लम्बी यात्राका चित्र उभर आया; अपरिचित लोग, अपरिचित भाषा, आवागमनके उचित साधनोंका अभाव, वर्षों पश्चात् पुनः मिलनकी क्षीण आशा, मार्गके मध्य घात लगाकर बैठे जानलेवा डाकू-चोर-लुटेरे; सब कुछ भयावह। लेकिन माँने किसी प्रकारका विघ्न उपस्थित न होने देनेके लिए मूकभाव एवं साश्रुनयनोंसे अपने पुत्रको भारतमाताकी विशाल गोदमें विचरण करनेके लिए हृदयको कठोर बनाकर आशीर्वादपूर्वक अनुमति प्रदान कर दी।

कार्यार्थी मनस्वी-मंडल अपरिचित भविष्यत्के तमस्तोयमें उत्साहकी विरल परन्तु सशक्त रेखासे

१. 'कृषि गौरक्ष्य वाणिज्यं वैश्यकर्म स्वभावजम्', गीता, अ० १८, श्लो० ४४।

मार्गदर्शन प्राप्त करता हुआ अग्रेसर हुआ । पाथेयके रूपमें आत्मीयोंकी मंगल-भावनाएँ उनके साथ थीं । वे मार्गमें कहीं पदाति, कहीं अश्वारोही, कहीं उष्ट्रारूढ और कहीं नौकारोहण करते हुए लक्ष्यकी ओर निरन्तर बढ़ते गये । उन्होंने न बुभुक्षाकी चिन्ता की और न पिपासाकी । भूमि मिली तो उसपर सोकर रात बितायी और पलंग मिला तो उसे भी निर्लिप्तभावसे अपना लिया । ऐसे ही कार्यार्थी मनस्वियोंके लिए भर्तृहरिने लिखा है :—

क्वचिद् कन्थाधारी, क्वचिदपि च दिव्याम्बरधरः, क्वचिद् भूमिशय्यः, क्वचिदपि च पर्यङ्कशयनः ।
क्वचिद् शाकाहारी, क्वचिदपि च मृष्टाशनरुचिः, मनस्वी कार्यार्थी, गणयति न दुःखं न च सुखम् ॥[1]

प्रकरण—पूरब श्रीउदयचन्दजी नाहटा सहित यह कर्मण्य दल संवत् १८९१ के आसपास दिनाजपुर पहुँचा । वहाँ कुछ दिन व्यापार किया और तदुपरान्त सिराजगंज गये और आसामसे माल आनेकी बड़ी मण्डी गवालपाड़ा ज्ञात कर नौकारूढ होकर गवालपाड़ा गये । उन दिनों वहाँ महासिंह मेघराजकी दूकान स्थापित ही हुई थी । श्री मेघराजजी कोठारी गेरसर ग्रामके थे, जो डांडूसरके पास है । श्री उदयचन्दजीने भी गवालपाड़ामें 'उदयचन्द राजरूप' नामसे व्यापारका श्रीगणेश कर दिया और वहाँके एक आसामी व्यक्तिको आपने नौकर रख लिया ।

आप सिराजगंज इत्यादि स्थानोंसे नौकामें माल भर लाते और गवालपाड़ेके दूकानदारोंको बेच देते । और गवालपाड़ासे तमाकू, रबड़ आदि माल नौका द्वारा भेजते थे । चोरी-डकैतीका भय अधिक था, इसलिए मालको नौकामें घासके बीचमें बिछाकर और छिपाकर लाया जाता था । उस समय नौका-यात्रा बड़ी कष्टप्रद और प्रकृति-निर्भर थी । जब अनुकूल वायु होती तो चलना होता अन्यथा सप्ताहों तक उसकी प्रतीक्षामें लंगर डाले पड़ा रहना पड़ता । दाल-चावल आदिका संग्रह रहता था । आवश्यकता होनेपर नौकामें ही दाल-भात या खिचड़ी बना ली जाती थी और बड़े किनारेकी थाली तस्तरी या केलेके पत्तोंपर यथा-तथा खाकर समय यापन कर लेते थे । कभी-कभी बाँसके चूंगोंपर मिट्टी लपेटकर उसीमें भात पकाना पड़ता था । किनारेपर नौका ठहराकर मल विसर्जन हेतु जाते तो जंगलोंमेंसे बड़ी-बड़ी जोंकें आकर चिपक जातीं और खून पीने लगतीं तब पता चलता कि जोंक लग गयी हैं । तत्काल थोड़ा नमक उसपर डाल देते, जिससे वह नीचे गिर पड़ती । नमकके बिना जोंकको छुड़ाना सहज नहीं होता । इसीलिए उन लोगोंको नमककी पुड़िया हमेशा साथ रखनी पड़ती थी ।

उन दिनों आसाममें रबड़, सरसों, लाख, तमाकू आदि बहुतायतसे उत्पन्न होती थीं, जिसे देकर वहाँके आदिवासी व्यापारी लोग विनिमयमें नमक, कपड़ा आदि आवश्यक वस्तु खरीद लेते थे ।

तत्कालीन आसाममें जादू-टोनेका इतना प्रचार था कि वहाँकी औरतोंसे अत्यन्त सतर्क रहना पड़ता था । कहा जाता है कि मारवाड़ी व्यापारी जब आसामी स्त्रियोंके चंगुलमें किसी प्रकार नहीं फँसते तो क्षुब्ध स्त्रियाँ एक चमत्कार दिखा ही देतीं । भात पकाते हुए लोगोंसे वे कहतीं—"क्यों, पोका सिद्ध करते हैं ?" और आश्चर्यका ठिकाना नहीं रहता जब सारा भात कीटसंकुल-लटमय हो जाता और उसे तुरन्त फेंकना पड़ता ।

श्री उदयचन्दजी नाहटाने गवालपाड़ेमें घास-फूसकी छाई हुई (झोंपड़ी जैसी) दुकानमें काम प्रारम्भ किया था । भूकम्प और अग्निप्रकोपका बाहुल्य था, कोठेके द्वार लोहेके थे, जिनपर मिट्टी लपेट दी जाती थी । इससे भीतरकी वस्तुएँ सुरक्षित रह जातीं और अग्निशमनोपरान्त तुरन्त निकाल ली जातीं । उस समयके लौह-द्वार और काष्ठ-विनिर्मित 'कैश बक्स' अब भी गवालपाड़ेकी गद्दीमें सुरक्षित हैं ।

---

१. भर्तृहरि—नीतिशतक ।

श्री उदयचन्दजीने भरी जवानीमें जाकर २२ वर्षकी मुसाफिरी अखण्ड ब्रह्मचर्य पालनपूर्वक सबके साथ मित्रताके साथ की । उस जमानेमें आसामवाले मारवाड़ियोंके सात्त्विक भोजन, शील और कर्मठतासे प्रभावित होकर श्रद्धाकी दृष्टिसे देखते थे एवं 'देवता' कहकर पुकारते थे ।

श्री उदयचन्दजीको वहाँ कतिपय अपूर्व वस्तुएँ भी प्राप्त हुई थीं, लेकिन वे पचास, पचपन वर्ष पूर्व हुई चोरीमें चली गईं । इन प्राचीन दुर्लभ वस्तुओंमें आसामके "गारुखोरे" अब भी विद्यमान हैं । लोगोंका विश्वास है कि ये पूज्य गारुखोरे शनैः शनैः बढ़ते हैं और अपने रक्षकस्वामीका कुशलक्षेम बढ़ाते हैं ।

ग्राम डाँडूसरमें स्थित कल्याणमयी माता एवं इतर पारिवारियोंको गवालबाड़ेकी अभ्युदयकारक सुन्दर व्यापार-व्यवस्थाका तनिक भी समाचार नहीं था । लगभग पाँच वर्ष पश्चात् किसीका साथ होनेपर उदयचन्दजी नाहटाने कुछ द्रव्य और क्षेम-कुशलका समाचार घर भेजा । देशमें इधर दानमलजीके जन्मकी थाली बजी और उसी समय श्री उदयचन्दजीके कुशल समाचार मिले अतः दो बधाइयाँ एक साथ हुईं ।

उदयचन्दजीके अनुज श्री राजरूपजीका विवाह लूणकरणसरके नारायणदासजी छाजेड़के यहाँ हो गया था और उन्हें पुत्ररत्न भी प्राप्त हो चुके थे, लेकिन इन उत्सवोंमें भी उदयचन्दजी अनुपस्थित थे । कतिपय वर्षोंके उपरान्त श्री राजरूपजी गवालपाड़ा गये और वहाँ अग्रज उदयचन्दजीके साथ कुछ वर्ष रहकर उनके साथ स्वदेश लौटे ।

इस प्रकार श्री उदयचन्दजीने २२ वर्षकी सुदीर्घ परदेश-यात्रा पूरी की । अवधिकी दृष्टिसे यह यात्रा नाहटा वंशमें कीर्त्तिमान (Record) समझी जाती है । कहनेकी आवश्यकता नहीं है कि इस सुदीर्घ यात्राने उदयचन्दजीके वंशको उतना ही सुमधुर और सुदीर्घ फल दिया है जिसे सात पीढी बाद वाले भी भोगते नहीं अघाते । इसे कहते हैं—शुभ घड़ी और शुभवेलामें शुभ हाथों द्वारा वपित बीज, कमनीय कल्पवृक्ष बन जाता है और अक्षय्य निधिका आगार बनकर चारों ओर आनन्दकी वर्षा करता है ।

गवालपाड़ेमें छापर निवासी हुकुमचन्दजी नाहटाके विशेष प्रेमसे श्री उदयचन्दजीका वैवाहिक सम्बन्ध छापरमें हुआ और वहाँ निवास करनेके हेतु जमीन खरीद ली गई थी । पर छोटे भाइयों व माताजीके कारण उन्हें डाँडूसरमें आकर निवास करना पड़ा ।

गवालपाड़ेमें महासिंह मेघराज फ़र्म थोड़े अरसे पूर्व ही स्थापित हुआ था आपके साथ उदयचन्दजीकी बड़ी सौहार्दता थी । एक ही धर्मके अनुयायी होनेसे परस्पर खूब सहयोग रहता और आपकी विद्यमानतामें सं० १९०५ में वहाँ गौड़ी पार्श्वनाथ जिनालयकी स्थापना हुई । उन दिनों वहाँ यतियोंके चातुर्मास होते थे और धार्मिक संस्कार, व्याख्यान, पठनपाठन और पर्वाराधन चारुतया सम्पन्न होते थे ।

जब उदयचन्दजी गवालपाड़ामें रहते थे, तब छापर-निवासी नाहटा हुकमचन्दजी भी वहाँ जा पहुँचे थे और उन्हींके पास काम-काज सीखकर अपना स्वतंत्र व्यापार करने लगे थे । श्री उदयचंदजी और श्री हुकमचन्दजीमें परस्पर इतना प्रगाढ़ प्रेम था कि लोग इन्हें 'सहोदर बंधु' समझते थे । आज भी गवाल-पाड़ेके लोग "बाबाजी और काकाजी वालोंकी गद्दी" शब्दका वाग्-व्यवहार करते हैं और उसी प्राचीन स्नेहाधिक्यका स्मरण दिलाते हैं । श्री हुकमचन्दजीके स्नेहाग्रहके कारण छापरमें निवासके लिए उदयचन्दजी द्वारा भूमि भी खरीदी गई लेकिन पारिवारिकोंके अनुमोदनके अभावमें वह विचार सदाके लिए त्याग दिया गया ।

बीकानेरके गुलगुलिया परिवारके पूर्वज उदयचन्दजीके समयमें ही गवालपाड़ा जाकर आपके 'फर्म'में मुनीम नियुक्त हो गये थे । इस परिवारने लगभग ८०-८५ वर्ष तक 'फर्म'को सेवा दी और अब भी कर रहे

हैं। भीनासरके सेठिया भी अनेक वर्षों तक इस 'फर्म' में रहे। आजकल रंगपुर आदि फारनीसगंज कलकत्ता-में उनका स्वतंत्र व्यापार है।

नाहटा वंशके 'अन्नदाता' और 'कल्पवृक्ष' स्वरूप श्री उदयचन्दजीकी गौरव-गाथा इस परिवारमें आज भी प्रेम और श्रद्धाके साथ कही-सुनी जाती है। गवालपाड़ेके दुर्लभ लौह-द्वार नाहटा वंशजोंके लिए किसी भी 'मंदिरद्वार'से कम पवित्र नहीं हैं। वे लौह-कपाट श्री उदयचन्दजी नाहटाके फौलादी व्यक्तित्वका स्मरण दिलाकर विविध प्रेरणाओंके स्रोत बन गये हैं। वंशमें कोई-कोई ही ऐसा नर-रत्न उत्पन्न होता है जिसकी श्रम-साधनाका सुमधुर फल अनेक पीढ़ियों तक प्राप्त होता रहता है।

कहते हैं जब उदयचन्दजी नाहटा स्वदेश लौटे तो घोड़ेकी जीनमें स्वर्णमुद्राएँ भरकर लाये थे और चीनमें निर्मित स्वर्णपत्र भी था। आपने गवालपाड़ेमें नाहटा-वंशकी कीर्त्ति-कौमुदीको चतुर्दिक् प्रसरित किया था और व्यापारी-वर्गमें अपनी प्रामाणिकता स्थापित की थी। आपके हाथमें एक अंगुली अधिक थी, इसलिए लोग आपको 'इक्कीसिया बाबू' कहते थे। आपने अपने कर्मठ जीवनसे स्वयंको सर्वतोभावेन 'इक्कीस' ही प्रमाणित किया।

कहाँ पश्चिमोत्तर राजस्थानका एक छोटा-सा गाँव और कहाँ सुदूर पूर्वका आसामान्तर्गत गवाल-पाड़ा, लेकिन धुनके धनी, परम उत्साही श्री उदयचन्द नाहटाने उसे स्वदेशमें परिवर्तित कर लिया। यह कथन अक्षरशः सत्य है कि—

> को वीरस्य मनस्विनः स्वविषयः, को वा विदेशस्तथा।
> यं देशं श्रयते तमेव कुरुते, बाहुप्रतापार्जितम्॥

मनस्वी वीरके लिए न स्वदेश है और न कोई विदेश। वह जहाँ रहता है, अपने बाहुबलसे उसे अपना बना लेता है। वास्तवमें व्यवसायियोंके लिए कोई दूर नहीं है—'किं दूरं व्यवसायिनाम्'

इस प्रकार यह असंगत नहीं है कि श्री ताराचन्दजी नाहटाने अगर नाहटा वंशको सुग्राम और प्रतिष्ठा दी तो श्री उदयचन्दजी नाहटाने स्ववंशको व्यापारके माध्यमसे लक्ष्मीपतियोंमें सुप्रतिष्ठित किया। स्वाभिमान-की अमन्द मन्दाकिनी दोनों ही महापुरुषोंमें समान वेगसे प्रवाहित होती रही।

श्री उदयचन्दजी नाहटाके चरित्रवर्णन प्रसंगमें हमने उनके अनुज श्री राजरूपजीका भी उल्लेख किया है। श्री राजरूपजी नाहटा हमारे चरित-नायकके पितामह थे। इन्हींके घर चार पुत्र उत्पन्न हुए। १. लक्ष्मीचन्दजी, २. दानमलजी, ३. शंकरदानजी, ४. गिरधारीमलजी (जिनका लघुवयमें निधन हो गया था)।

१. लक्ष्मीचन्दजीका जन्म सं० १९११ में हुआ था। इन्होंने लूणकरणसरमें हजारों मन घासकी दो बागरें सं० १९५५-५६-५७ में दराई। उस समय दुष्कालमें गरीबोंको रोटी-रोजी दी। यह घास इतना अधिक परिमाणमें था कि सं० १९९९ तक दुष्कालोंमें गाँएँ बे-रोकटोक चरती थीं। यह पुण्य-कार्य ४०-४२ वर्ष तक चलता रहा, सेठ साहबकी पुण्य व कीर्त्ति फैलती गई। सं० १९६२ में आपका स्वर्गवास हो गया।

२. दानमलजीका जन्म सं० १९१६ में हुआ। वे भी बड़े सरल और प्रभावशाली व्यक्ति थे। ग्रामीण लोग खेती, औसर व विवाह आदिके लिए आपके पास सहायतार्थ आते, वे कभी खाली हाथ नहीं जाते। डाँडूसर गाँव कर्ज-कोट हो गया तो ऋणमुक्त कराके अल्पवयस्क ठाकुरके साबालिग होने तक सार सँभाल करके गाँव दिलाया। तालाब, देवस्थान आदि जीर्णोद्धार कराये। जोधासरके ठाकुर साहबपर जब राजा नाराज हो गए तो आपने उन्हें इज्जतसे गाँवमें रखा और दरबारसाहबसे वापस गाँव दिलाया। यति-

महात्माओं, स्वधर्मी बन्धुओंके साथ शत्रुञ्जयादि तीर्थोंकी यात्रा की। सं० १९९० में आप स्वर्गवासी हुए। स्वर्गवासके ८ मास पूर्व ही आप भविष्य-संकेत करते रहे। आप देवगतिमें विद्यमान हैं।

श्रीराजरूपजी नाहटाके तृतीय पुत्र स्वनामधन्य श्रीशंकरदानजी नाहटाका जन्म सं० १९३० की आषाढ कृष्णा ८ बुधवारको डाँडूसर ग्राममें हुआ। श्री शंकरदानजी नाहटाको हमारे चरित नायक श्री अगर-चन्दजी नाहटाके पूज्य पिता होनेका महनीय पद प्राप्त है। आपके चरित्र-निर्माणमें श्रीशंकरदानजीके व्यक्तित्व को बहुत अधिक श्रेय सम्प्राप्त है अतः उनके विविध गुण-विभूषित चारित्र्यका संक्षिप्त उल्लेख यहाँ आव-श्यकीय है।

श्री शंकरदानजी नाहटाने डाँडूसरके अत्यन्त शान्त, स्वाभाविक-धर्मप्राण ग्राम्य वातावरणमें वृद्धि पाते हुए योग्य वयमें आवश्यक शिक्षा अर्जित की। उन दिनों बाल-विवाहकी प्रथा विशेषतः प्रचलित थी और अपने सद्गुणोंसे परिवार एवं परिवारेतरोंके अत्यन्त प्रीति-भाजन थे, अतः बारह वर्षकी अवस्थामें ही सं० १९४२ मिति वैशाख कृष्ण पंचमीको आपका शुभ-विवाह आपके ननिहालके गाँव लूणकरणसरमें शहर-सारणी आदि कार्यों द्वारा प्रसिद्धिप्राप्त सेठ नन्दरामजी बोभराके सुपुत्र श्री खेतसीदासजीकी ज्येष्ठ पुत्री श्रीचुन्नीबाईके साथ हो गया। बाल्यकालसे ही आप बड़े परिश्रमी और साहसी थे। ग्राममें रहनेके कारण आप कृषिकर्म और व्यावहारिक कार्योंमें भी अत्यन्त पटु बन चुके थे। आपके चाचा देवचन्दजी और उनके पुत्र भीमसिंहजी एवं मोतीलालजी बीकानेरमें रहने लगे और वहाँ हुण्डी चिट्ठीके लेन-देनका सराफा व्यापार बड़े पैमाने पर खोल दिया था। सैकड़ों गाँवोंसे इस व्यापारका घनिष्ठ सम्बन्ध था। उन्होंने श्री शंकरदानजीको बहुत योग्य समझकर गाँव डाँडूसरसे बीकानेर बुला लिया और इस व्यापारका सारा ज्ञान उन्हें भलीभाँति करा दिया।

व्यापारपाटवकी प्रौढ़ताकी स्थितिमें श्री शंकरदानजीने संवत् १९५० की आश्विन शुक्ल १० को गवालपाड़ेके लिए प्रस्थान किया। यह वही गवालपाड़ा है, जहाँ आपके बाबाजी उदयचन्दजीने श्रम-सीकरोंसे नाहटा वंशके लिए एक अमर वृक्ष-वपन किया था जिसे आपके पिता राजरूपजी बड़े भ्राता लक्ष्मीचन्दजी व दानमलजी द्वारा अनुदिन सिंचन करते, पत्रित-पुष्पित होता हुआ फलित हो रहा था।

श्री शंकरदानजी नाहटाका साहस और सेवा-भाव उच्चस्तरका था। सं० १९५४ में गवालपाड़ामें भयावह भूकम्प हुआ। वहाँके निवासियोंके लिए वह काल-स्वरूप बनकर आया था। भवन धराशायी हो गए, पथ विकट दरारोंसे खोखले बन गए, पृथ्वीसे जल निकलने लगा और आकाशसे वर्षा होने लगी। चारों तरफ जल, हवामें कड़ाकेकी ठण्ढक और आकाशमें बिजलीकी कड़क, घन-गर्जन विद्युत्-तर्जन। देखते-देखते सूचि-भेद्य अन्धकार छा गया, प्रलयकाल उपस्थित हो गया, प्राणी मौत और जिन्दगीके बीच डूबने-उतराने लगे।

निर्वाणोन्मुख द्वीपज्योतिमें जिस प्रकार तेलकी, अन्धकारमें प्रकाशरश्मिकी और निराशाके अम्बरमें आशाकी स्वर्णरेखाकी उपस्थिति जितनी हृद्य और जीवनदायिनी होती है उतनी ही मनोहारिणी उपस्थिति श्री शंकरदानजी नाहटाकी थी। आप संकटापन्नोंके मध्य सेवा और साहसका कवच पहिनकर उतर पड़े। आपने अधीरको धैर्य, विमूढ़को दिशाज्ञान, बुभुक्षितको भोजन, वस्त्रहीनको वस्त्र और अकिञ्चनको स्नेहांचित आत्मीयता प्रदान की। आप संत्रस्त और अभावग्रस्त लोगोंको पहाड़ पर ले गए और उन्हें आश्रय देकर तूफानकी शान्ति होनेपर हाथमें बाँस लेकर कई साथियोंके साथ जीवन-मरणकी परवाह न करते हुए तूफान-ग्रस्त क्षेत्रमें जनहितार्थ प्रविष्ट हुए। सर्वप्रथम आप पार्श्वनाथ भगवान्के मन्दिर गए जो पूरा भूमिमें धँस

चुका था। रामदेव पांडेको भग्न शिखरसे भीतर उतारा गया, जब प्रभु-प्रतिमा सुरक्षित मिली तो अपनेको धन्य माना। प्रभु-प्रतिमाजो बाहर निकाल कर अस्थायी स्थानमें विराजमान की गई। फिर मानवकी प्राथमिक आवश्यकताओंकी सम्पूर्त्ति हेतु सबकी दुकानें सँभालीं।

कहते हैं कि खोजीको राम मिलता है, उसने अपने गुमाश्ता चतुरभुजजी गुलगुलियाको बेहोश पाया, जिन्हें कम्बलमें लपेटकर उपचारपूर्वक सचेत किया। इस अन्वेषणमें आपको सीरेसे भरी हुई एक कढाई हाथ लगी। शंकरदानजी कुछ मारकीनके थान व सीरेकी कढ़ाई लेकर पहाड़पर पहुँचे और कड़ाकेकी ठंढमें संत्रस्त लोगोंको सीरा खिलाया व थानोंके टुकड़े फाड़-फाड़कर यह कहते हुए वितरित कर दिया कि "लो, जीवो तो यह वेष्टन है और मरो तो कफन है। आपकी इस साहसभरी सेवाने चतुर्दिक् आशीर्वाद तो प्राप्त किया ही साथमें आपका यश भी फैला। गवालपाड़े और बीकानेरमें आपकी भूरि-भूरि प्रशंसा हुई।

धर्माराधनके लिए जिनालय-निर्माणकी सर्वप्रथम आवश्यकता थी, जब वह विशाल मन्दिर बनकर तैयार हुआ तो विचार हुआ कि मन्दिरके योग्य मूलनायक भगवान्‌की बड़ी प्रतिमा चाहिए। आपने इसके लिए कई स्थानोंमें भ्रमण किया पर जहाँ जाते यही स्वप्न होता कि मूलनायक वही रहेंगे। अन्तमें निराश लौटकर अपने विशेष प्रिय उपकेशगच्छीय श्री पूज्यजीसे मिले जो नाहटागोत्रीय होनेसे आपको बहुत मानते थे। श्री पूज्यजीने अपने देहरासरसे प्रतिमाएँ देना स्वीकार किया और मुहूर्त्त भी निकाल दिया, अन्तमें समस्त तैयारी हो गई तब रवानगीके समय उनसे भी निराशा ही हाथ लगी। आपने श्री पूज्यजीको प्रचुर भेंट करनेका प्रस्ताव रखा पर उन्होंने कहा, तुम्हारे और हमारे बीच निछरावल(भेंट)का प्रश्न नहीं है पर वस्तुतः वही जो मूलनायक भगवान् पार्श्वनाथ हैं वे ही रहेंगे। अन्तमें सं० १९६८ में आपके बड़े भ्राता श्री दानमलजी नाहटाकी सपत्नीक उपस्थितिमें उपाध्याय जयचन्द्र श्रीगणिके हाथसे प्रासाद-प्रतिष्ठा व बिम्ब-स्थापना अनुष्ठित हुई।

गवालपाड़ेके पार्श्वनाथ मन्दिरकी प्रतिष्ठा और सुव्यवस्थामें श्री शंकरदानजीकी दूरदर्शिता बड़ी लाभकारी सिद्ध हुई। उन्होंने अपने व्यक्तिगत प्रभावसे तत्स्थानीय लोगोंको समझा-बुझाकर. सरसोंपर तीन आना सैकडा धार्मिक लाग (वित्ती) बाँध दी, आगे चलकर कुस्टे (पाट, जूट) की आमदनी अधिक होनेपर कुस्टेपर भी यह लाग प्रारम्भ कर दी गई, जिससे किसीपर व्यक्तिगत बोझ नपड़कर सहज ही मन्दिरजी, ठाकुरबाड़ी, रामदेवालयके मन्दिरके सारे खर्च निकलनेके अतिरिक्त हजारों रुपये भी जमा हो गए।

व्यापारका मूल आधार सद्व्यवहार और प्रामाणिकता है। आप इस तथ्यसे पूर्णतः अवगत थे, इसलिए इन दोनों अमूल्य रत्नोंको आपने सतत व्यवहारमें प्रयुक्त किया। फलस्वरूप व्यापारका स्वतः विस्तार होने लगा। लोग आपकी सचाई, तोल-मोलकी प्रामाणिकता और वितण्डावादमें न फँसानेकी नीतिसे प्रभावित होकर आपसे ही व्यापार-सम्बन्ध बढ़ानेके लिए लालायित रहने लगे। अगर तौलमें कहीं झगड़ा खड़ा होता है तो आज भी इसी फर्मके काँटे बटखरोंसे तौलकर निर्णय किया जाता है। आपकी गद्दियाँ धर्मघरके नामसे प्रामाणिकताके लिए प्रसिद्ध हैं।

गवालपाड़ेका पौधा तो आपश्रीके बाबाजी व पिताजीने लगाया था, पर आपके समयमें वह खूब फला-फूला और उसकी शाखाका विस्तार अनुदित होने लगा। सं० १९५८ में गवालपाड़ेसे १५ मील चापड़ नामक स्थानमें, संवत् १९६५ में बोलपुरमें, सं० १९६८ में कलकत्ता, सं० १९८० में दीपावलीके दिन सिलहट और सं० १९९१ में बाबूरहाटकी दुकानोंकी स्थापना हुई। आपके स्वर्गवासी होनेके पश्चात् भी हाथरस, अमृतसर और बम्बईमें फर्म स्थापित हुए थे। सिलहट और बाबूरहाट पाकिस्तानमें पड़ जानेपर सिलचर, करीमगंज, अगरतला और कानपुरमें व्यापार केन्द्र खोले गए। यह सब आपका ही पुण्य-प्रभाव है।

संतति

सुयोग्य पिताकी सन्तान भी प्रायः गुणवान् और योग्य ही होती है। सं० १९४९ में आपके प्रथम कन्या सोनकुंवर बाई उत्पन्न हुई जो बहुत ही मिलनसार, धर्मिष्ठ और गृहकार्य दक्ष थी। सं० १९५२ में आपके ज्येष्ठ पुत्र श्री भैरूदानजीका जन्म हुआ। आप बीकानेरीय जैन-समाजके ठोस कार्यकर्त्ताके रूपमें शनैः-शनैः ख्यातिप्राप्त हुए।

भैरुदान-परिचय

सामाजिक उन्नतिके लिए कार्यरत रहना आपकी अभिरुचि थी। आप सौम्य और सौजन्यकी साक्षात् मूर्ति थे। ओसवाल-समाजमें रीति, नीति और मर्यादाओंके सुन्दर स्वरूप संरक्षणमें आप सतत प्रयत्नशील रहते थे। आपने अपने मित्रोंके सहयोगसे 'शिक्षा प्रचारक जैन सभा'को जीवन-दान दिया और 'श्री महावीर जैन मंडल'के नामसे उसे ख्याति प्रदान की। बीकानेरके ओसवाल-समाजके उन्नयनमें इस संस्थाका बहुत बड़ा योग है। आपने आजीवन इस संस्थाकी सेवा की। आप 'होली' पर्वको आदर्श पर्वके रूपमें मनानेके पक्षधर थे। होलिकासे दस दिन पूर्व अपने सहयोगियोंके साथ आप गाड़ीमें सुसज्जित वाद्य-यंत्रोंपर होली सुधारक गायन गाते हुए प्रत्येक मोहल्लेमें घूमते और सदाचारका प्रचार करते थे।

उन दिनों कलकत्तामें खादी आन्दोलनका जोर था। महात्मा गान्धीका शंख महाध्वनिसे राष्ट्रको जगा रहा था। आपपर भी देशभक्तिकी छाप पड़ी और खादी पहिननी आरम्भ कर दी। (बीकानेरकी अत्यन्त कठोर राजशाही गंगाशाहीके उच्चपदाधिकारियोंकी दमन-दृष्टि आपके खद्दरधारी स्वरूपपर भी पड़ी, लेकिन आपपर उसका कोई प्रभाव नहीं पड़ा) और आपका खादी पहिनना यथावत् चालू रहा।

आपने जैन श्वेताम्बर पाठशालाके माध्यमसे भी समाज और शिक्षाकी सेवा सम्पादित की। आप इस संस्थाके सभापति और उपसभापति पदको अनेक बार सुशोभित कर चुके थे। श्री महावीरमंडलके भी आप सभापति, सचिव और सदस्य रहे थे। आप निरभिमान और कर्मठ कार्यकर्त्ता थे। सार्वजनिक कार्योंको अपने हाथोंसे करनेमें आप गौरव अनुभव करते थे। आपका विनयशील और धार्मिकस्वरूप बड़ा ही प्रेरक था। अभिवादन शैलीमें मोहकता थी और विवेकमें गहन चिन्तन मन्थन। और आप मान प्रतिष्ठाके भूखे नहीं थे, समाज-सेवाके प्रत्येक कार्यमें आप आगे रहते थे।

निरन्तर कठोर परिश्रमका आपके स्वास्थ्यपर कुप्रभाव पड़ा और आप लीवरके रोगसे पीड़ित रहने लगे। औषध उपचारका कोई सुपरिणाम दृष्टिगत नहीं हुआ। आप अस्थिमात्रावशेष रह गये। वाणी भी वन्द हो गई। लेकिन आपका अन्तर्ज्ञान निरन्तर बना रहा। धार्मिक स्तवन, सज्झाय आप बराबर सुनते रहे। कार्त्तिक शुक्ला पूर्णिमाको भगवान्की सवारी जब नाहटोंकी गवाड़में पधारी तब अकस्मात् प्रभु-कृपासे आपकी वाणी खुल गई। इसीको कहते हैं, 'मूकं करोति वाचालम्' मूक होहिं वाचाल ··· आप भगवान्की भेंट-दर्शन और सवारीमें सम्मिलनके लिए पारिवारिकोंको आग्रहपूर्वक आदेश देने लगे। उसी समय समाजके धनी-मानी-प्रतिष्ठित व्यक्ति आपसे मिलने भी आये। अन्तमें मिती मार्गशीर्ष कृष्णा तृतीया सं० २०१५ को अपनी आत्माको धर्ममें स्थिर रखते हुए, धार्मिक प्रवचनोंको सुनते हुए लगभग ८-४५ पर आपने नश्वर शरीर का त्याग कर दिया। और आप शुभ ध्यानके प्रभावसे स्वर्गमें देवरूपमें उत्पन्न हुए। स्मरण करनेवालोंको आप समय-समयपर साहाय्य करते रहते हैं।

आपके निधनसे समाजने उच्चकोटिका विचारक, निष्काम सेवाव्रती और कर्मठ कार्यकर्त्ता खो दिया। सफल जीवन उसी व्यक्तिका है; जो अपने बान्धवोंको सहारा देता है, और उन्हें जीनेके सुन्दर अवसर प्रदान करता है। अपना पेट तो सभी पाल लेते हैं, लेकिन उन्हें आदर्श नहीं कहा जा सकता है—

यस्य जीवन्ति धर्मेण पुत्रमित्राणि बान्धवाः ।
सफलं जीवितं तस्य, नात्मार्थे को हि जीवति ।।

सेठ शंकरदानजीके द्वितीय पुत्र-स्वनामधन्य-अभयराजजी

संवत् १९५५ की चैत्र कृष्णा ६ को अभयराजजीका जन्म हुआ । स्वर्गीय अभयराजजी जैसे पुत्ररत्न विरले ही होते हैं । उन्होंने अपनी विनयशीलता, नम्रता, सज्जनता, वाग्मितासे सबको मुग्ध कर किया था । वे परम धार्मिक, गहरे विचारक, धैर्यके धनी, उत्साही, अध्ययनशील और सुधारवादी सामाजिक कार्यकर्त्ता थे । वे अनेक संस्थाओंके संस्थापक और सचिव रह चुके थे । सभा-सम्मेलनों और विचारगोष्ठियोंसे उन्हें हार्दिक अनुराग था । वे सर्वथा महामानव बननेके पूर्वरूप थे, सब कुछ तदनुरूप था, लेकिन उनका आयुष्य दीर्घ नहीं था । इसलिए युवावस्थाके प्रारम्भमें ही संवत् १९७७ मिती वैशाख कृष्ण सप्तमीको रोते बिलखते परिवारको छोड़कर आप विकराल कालके शिकार बन गए । आपका यह दुःखद निधन जयपुरमें हुआ था । पिताजी-माताजी एवं सारे परिवार पर वज्राघात-सा हो गया वे जीवनपर्यन्त इस पुत्रके गुण प्रकर्षको विस्मृत न कर सके और वेदना अनुभव करते रहे । उन्होंने माताकी अश्रुधारा देखकर सांत्वना देनेके लिए स्वर्गसे प्रकट होकर परिजनोंको साहाय्य करनेका वचन दिया ।

श्री अभयराजजीकी धर्मपत्नीका भी स्वर्गवास तीन वर्ष बाद हो गया । आपके एकमात्र सन्तान चम्पा-बाई है । श्री अभयराजजीका संक्षिप्त परिचय अभयरत्नसार नामक ग्रंथमें प्रकाशित किया गया है, यह ग्रन्थ आपकी स्मृतिमें प्रकाशित हुआ था ।

आपके पूज्य पिता श्री शंकरदानजी नाहटाने आपकी स्मृतिमें श्री अभय जैन ग्रंथमालाकी स्थापना की और इसके अन्तर्गत जनहितकी दृष्टिसे प्रकाशन कार्य प्रारंभ किया गया ।

विश्वविश्रुत, अप्राप्य, दुर्लभ, हस्तलिखित ग्रन्थोंका आकर "श्री अभयजैन ग्रन्थालय" की स्थापना भी आपके नामपर ही की गई ।

सं० १९५८ में श्री शुभैराजजीका जन्म हुआ । आप बड़े साहसी और व्यापार-विदग्ध हैं । सं० १९६० में मगनकुँवर, सं० १९६२ में मोहनलाल, सं० १९६५ में श्री मेघराज और सं० १९६७ मिती चैत्र कृष्णा चतुर्थीको स्वनामधन्य हमारे चरित-नायक श्री अगरचन्दजी नाहटाका जन्म हुआ ।

इस प्रकार श्री शंकरदानजी नाहटाके छः पुत्र और दो पुत्रियाँ उत्पन्न हुईं, जिनमें सोनकुँवर, अभय-राज और मोहनलाल आपकी विद्यमानतामें ही स्वर्गवासी हो गए ।

सं० १९६८ की आश्विन कृष्ण द्वादशीको आपके ज्येष्ठ पुत्र श्री भैरूंदानजीके घर भँवरलाल नामक पुत्ररत्न उत्पन्न हुआ ।

श्री भँवरलालजी नाहटा साहित्य संसारके विश्रुत विद्वान् हैं । आपने अनेक ग्रन्थोंका सम्पादन, लेखन और प्रकाशन किया है । आप प्राकृत, अपभ्रंश, संस्कृत, बंगला, गुजराती, राजस्थानी प्रभृति भाषाओंके ज्ञाता और कवि हृदय हैं । हमारे चरित-नायक श्री अगरचन्दजी नाहटाको आपका सर्वविध सहयोग उपलब्ध है । आपकी रुचि साहित्योन्मुखी है ।

श्री शंकरदानजी नाहटाके अनेक पौत्र, पौत्रियाँ, दोहिता, दोहिती-प्रपौत्र और प्रपौत्रियाँ उत्पन्न हुईं । इस प्रकार संतान, सरस्वती और लक्ष्मीकी दृष्टिसे आप अपने जीवनकालमें अत्यन्त समृद्ध बन गए ।

पूज्य पुरुषों व हर मनुष्यकी सेवा करना श्री शंकरलालजी नाहटाका जन्मजात गुण था । वे इस पुण्यकार्यमें कभी आलस्य एवं प्रमाद नहीं करते थे । अपने पूज्य माता-पिताके अतिरिक्त अपने चाचा, बड़े भाई, भौजाइयाँ-आदिकी महती सेवा कर उनका जो आशीर्वाद प्राप्त किया, वह सबके लिए प्रेरणाप्रद और

अनुकरणीय है। अपने पितृव्य देवचन्दजीके पुत्र भीमसिंहजी एवं मोतीलालजीका तरुणावस्थामें ही स्वर्गवास हो गया था। अतः आपने अपनी दोनों भौजाइयोंकी आजीवन सेवा की। अपने अग्रज भ्राता श्री दानमलजीकी आपने जो सेवा की, वह अन्यत्र दुर्लभ है। आप उनके प्रत्येक आदेशको शिरोधार्य करते थे और उनकी हर इच्छाकी सम्पूर्ति करना अपना प्रथम कर्त्तव्य समझते थे। आपने उनके नामको अमर बनानेके लिए अपने पुत्र श्री मेघराज नाहटाको दत्तक पुत्रके रूपमें सौंप दिया और इस प्रकार अपने अग्रजकी निःसंतानत्वकी वेदनाको भी उन्मूलित कर दिया। इसी प्रकार अपने ज्येष्ठ भ्राता श्री लक्ष्मीचन्द्रजीकी बहूकी भी आपने आजीवन सेवा की और उनकी पुत्रियोंके विवाह आदिका सारा कार्य बड़ी लगनसे सम्पन्न किया। अन्तमें श्री लक्ष्मीचन्दजी-के नामको अमर रखनेके लिए पहिले अपने पुत्र अभयराजजीको और उनके स्वर्गवासी होनेपर अपने बड़े पौत्र भंवरलालजी को उनके गोद दिया।

श्री शंकरदानजी नाहटा परम धर्मानुरागी थे। नियमित सामायिक और पूजा-पाठ करना आपके जीवनका एक आवश्यक अंग बन गया था। दैनिक धर्म-क्रिया सम्पादित करनेसे पूर्व आप जल तक ग्रहण नहीं करते थे। जिनदर्शन, व्याख्यानश्रवण, व्रत-उपवास-आचरण आपके जीवनका अंग बन गया था और आप इस पक्षको अधिक-से-अधिक परिपुष्ट बनानेके लिए कृतसंकल्प थे।

आपने चिरकाल तक चतुर्दशीका व्रतोपवास किया और उसको पालन करते हुए ही आप उसी तिथिको कीर्त्तिशेष बन गये।

आचार्य श्री जिनकृपाचन्द्रसूरिजीके सं० १९८४में बीकानेर पधारनेपर आपने व आपके बड़े भाईजी ने उन्हें अपने स्थानमें ही ठहराकर बड़ी श्रद्धा-भक्तिसे उनकी सेवा-शुश्रूषा की। आपने इतर समागत साधुओं-की सेवा करनेमें भी अतीव तत्परता दिखलाई।

श्रीजिनकृपाचन्द्रसूरिजीके उपाश्रयका निर्माण एवं ज्ञानभण्डारकी देखभाल आपने जिस निष्ठा और लगनसे की, उसकी अद्यावधि सुचर्चा होती है। श्रीजिनकृपाचन्द्रसूरि धर्मशालाके आप ट्रस्टी थे। इसी प्रकार बड़े उपाश्रयके ज्ञानभण्डारके भी आप व श्री दानमल जी ट्रस्टी रहे। स्थानीय जैन श्वेताम्बर पाठ-शालाके आप सभापति थे।

आपने एकाकी, सपरिवार और इतर इष्टमित्रोंके साथ अनेक बार तीर्थयात्राएँ की थीं। आप सह-यात्रियोंकी सेवा करना महत् पुण्य कार्य समझते थे और ऐसे शुभ अवसरको कभी हाथसे नहीं निकलने देते थे। अनेक तीर्थों और मन्दिरोंके जीर्णोद्धार एवं सुव्यवस्थाके लिए भी आपने स्वोपार्जित द्रव्यका अच्छा सद्व्यय किया था।

आप परम परोपकारी वृत्तिके व्यक्ति थे। जब भी आप किसी अभाव-ग्रस्त प्राणीको पाते, आप उसके अभाव-संकटको दूर करनेके लिए कृत-संकल्प हो जाते और आपको तभी प्रसन्नता होती, जब दुःखी व्यक्ति सुखी हो जाता। ग्रामीणोंकी अभावभरी आत्मकथाएँ आप बड़े ध्यान और मनोयोगसे सुनते थे और अपनी शक्ति-सामर्थ्यके अनुसार उनकी सहायता भी करते थे।

नाड़ी और औषधिका आपको अच्छा ज्ञान था। मियादी-बुखारके तो आप विशेषज्ञ समझे जाते थे। रात-दिन आपके द्वार रुग्णोंके लिए खुले थे। जब भी कोई रोगी आया, आपने उसकी तन-मन और धनसे सेवा की। रोग-निदान और निवारण आपकी परोपकारी-वृत्तिका अभिन्न अंग बन गया था। इसलिए आप रोगीसे कुछ भी नहीं लेते थे, हाँ अभावग्रस्त रोगी या उसके परिवारको देते अवश्य थे।

आपने कष्ट-सहिष्णुता और विपत्तिमें धैर्य अपनानेका मूल रहस्य जान लिया था। आपकी प्रवृत्ति उन महात्माओंसे मेल खाती थी, जो अपने शरीर-आचरणके लिए वज्रसे भी कठोर और परदुःखके लिए कुसुमसे भी कोमल थे।

आप अत्यन्त कर्मठ, कार्यदक्ष व्यक्ति थे। श्रमकी महत्ता आपकी रग-रगमें भरी थी। आप कामको भगवदाराधन समझते थे। आपकी दृष्टिमें कोई काम छोटा या तुच्छ नहीं था। पाकशास्त्र, गोदोहन, पशुसेवा, भवन-निर्माण एवं मरम्मत, बढ़ईगिरी, सिलाई, कृषिकर्म, खाता-बही, तोल-जोख, हिसाब पत्र आदि सबमें आपकी अबाध रुचि और अगाध गति थी। आपके कार्य करनेकी एक शैली थी। जिस काममें आप लगते, उसीमें दत्तचित्त हो जाते। आपकी स्थिति साधनालीन योगी जैसी प्रतीत होती थी।

आप सादा जीवन और उच्च विचारकी साक्षात् प्रतिमूर्त्ति थे। आपकी वेशभूषा अत्यन्त साधारण और खानपान सात्त्विक था। सम्पत्ति पाकर बौखला जाने वाले व्यक्तियोंमें से आप नहीं थे, अपितु आप तो उन लोगोंमें से थे जो अधिक पाकर अधिक गहरे, अधिक विनम्र और अधिक सरल बनते हैं। आपने अप-व्ययके नामपर एक पैसा भी कभी व्यय नहीं किया, लेकिन आवश्यकता और परिस्थितिके आग्रह पर लाखों रुपये व्यय कर दिये।

आपकी वर्णन-शैली अत्यन्त सजीव थी। जब आप कोई अनुभव वृत्त सुनाते तो उसका चित्र सा उभर जाता था। आप असाधारण स्मरण शक्तिके धनी थे। अपने जीवनकी घटनाएँ मिति-संवत्के अनुसार आपको याद थीं। परिवारमें किस व्यक्तिकी कब मृत्यु हुई, कौन कब उत्पन्न हुआ और कब कहाँ किसका विवाह हुआ आदि तथ्य आपकी अंगुलियों पर थे।

पुण्यवान जीवके बिना समाधिमरण प्राप्त होना संभव नहीं है। संवत् १९९९के माघ शुक्ला चतुर्दशी का दिन था। प्रकरण-पुरुष श्री नाहटाजी का वह चौविहार उपवास दिवस था। प्रतिक्रमण करनेके निमित्त आप बाजारसे घर पधारे और दीवानखानेमें एक तकियेके सहारे बैठ गये। हमारे चरित-नायक श्री अगरचन्द-जी नाहटा उस समय किसी साहित्यिक कार्यमें संलग्न थे; पितृश्री को आया देखके प्रतिक्रमणकी तैयारीमें लग गये। पितृश्री ने फरमाया "प्रतिक्रमण तो करना ही है, पर मेरे हृदयमें कुछ वेदना सी हो रही है, अतः थोड़ा तेल ले आओ, मालिश करके फिर प्रतिक्रमण करेंगे!" पितृश्रीकी आज्ञाके अनुसार पुत्रोंने तेलमर्दन किया। श्री शुभैराजजी अंगारोंकी सिगड़ी ले आये और सर्दीका दर्द समझकर सिकताव करने लगे। कुछ समय पश्चात् आपको नींद-सी आने लगी और सेक बन्द कर दिया गया। कुछ क्षण उपरान्त ही श्री अगर-चन्दजी नाहटाने आपके शरीरमें हुए एक कम्पनका अनुभव किया और पार्श्वस्थ भाई शुभैराजजीको इसकी सूचना देते हुए पितृश्रीके वस्त्रावृत मुँहको उघाड़कर देखा तो पुण्यात्मा स्वर्ग प्रयाण कर चुकी थी। सहसा किसीको विश्वास न हुआ। श्रीमेघराजजी नाहटा भी झटिति वहाँ गये। डॉ० सूर्यनारायणजी आसोपा भी आये, परन्तु वहाँ केवल पार्थिव शरीर शेष था, हंस उड़ चुका था।

स्वर्गीय श्री शंकरदानजी नाहटाका जो शरीर अनाथों, कष्ट-पीड़ितों और बेसहारोंका सहारा था; संताप और संवेदनासे अधीर हुए व्यक्तियोंको जो धैर्य और ढाढस दिया करता था; वही आज स्वपारिवारिकों के करुण-क्रन्दनको, उनकी असह्य वेदनाको उपेक्षित बनाकर अनसुनी कर रहा था। जिसके वरद हाथोंकी सुखद शीतल छायाके नीचे नाहटा परिवार सानन्द फल-फूल रहा था, आज वह महान् वृक्ष ही जैसे गिर पड़ा था और उस अनन्त पथकी ओर मुड़कर चल पड़ा था, मानों किसीके साथ उसकी कोई पहिचान ही नहीं थी। पुण्यवानका चेहरा प्रफुल्लित और मृतशरीर भी मन भावना कान्ति फैला रहा था। ठीक है; मौतका वश केवल पार्थिव शरीर पर है; पर वह श्री शंकरदानजी नाहटाकी उस कमनीय कीर्त्तिको नहीं मार सकती;

जिसे उन्होंने परोपकार, सेवाभाव और जनहित सम्पादन करके अर्जित किया था। वह सुखद कीर्त्ति आज भी है और तब तक रहेगी; जब तक उनके वंशजोंमें मानवता, परदुःखकातरता, सेवा-वृत्ति और सत्कर्माचरण भावनाका सन्निवास है। शंकरदानका शरीर चला गया लेकिन नाम शंकरदान अमर रह गया।

आन-बान और स्वाभिमानके धनी जिस नाहटावंशको ताराचन्द्रजी जैसे सुयोग्य सत्पुत्रने राजप्रतिष्ठा, सामाजिक सम्मान और सुग्राममें शुभ फलद स्थायी आवास दिया, उदयचन्द्रजी नाहटा जैसे मनस्वी, कर्मवीर, वंशजने जिसे व्यवसाय विदग्धता, कर्मशीलता और श्रीसम्पन्नता प्रदान की; श्रेष्ठिरत्न शंकरदान नाहटाने अपने सेवाभाव, उदारवृत्ति और साधनानिष्ठासे जिस वंशकी फलकीर्त्तिको चतुर्दिक् प्रसारित किया; समाज-प्राण, वाग्मी नररत्न सेठ श्रीभैरूँदानजी नाहटा जैसे उत्साही, समाज और राष्ट्रसेवी व्यक्तित्वने जिसे चिन्तन-शील-विवेक-बल दिया; स्वर्गीय श्री अभयराजजी नाहटा जैसी प्रतिभाशील देवमूर्त्तिने जिसे अपनी अद्भुत क्षमता, विनयशीलता और विद्वत्तासे विस्मयाविष्टपूर्वक विषादावृत भी किया, श्रीशुभैराजजीकी शुभदृष्टिसे जो कल्याणसुखासीन बना और श्री मेघराजजी नाहटाकी लगनशीलता, मिलनसारिता और परोपकारिताने जिसे उच्चासनस्थ बनाया। ऐसे श्रीसम्पन्न, विपुलपरिवारयुक्त बीकानेरवासी नाहटा परिवारमें श्री शंकरदानजी नाहटाकी धर्मपत्नी श्री चुन्नीबाईकी दक्षिण कुक्षिमें संवत् १९६७ मिती चैत्र कृष्णचतुर्थीको बीकानेरमें कनिष्ठ किन्तु कनिष्ठिकाधिष्ठित एक सारस्वत नररत्न उत्पन्न हुआ, जो हमारा चरितनायक है और जिसे भारत और भारततर भूभागका लक्ष्मी और सरस्वतीका संसार श्रीअगरचन्द नाहटाके नामसे सम्यक्तया जानता है—

चौथ सुतिथि मधु मास पुनीता, कृष्ण पक्ष शुभग्रह सुख प्रीता।
शंकर सुत मा चुन्नी नन्दन, प्रगट भए श्री गोष्पति मंडन॥

अर्थात्—चैत्रमासकी कृष्णा चतुर्थीको माता चुन्नीबाईको प्रसन्न करनेवाले श्री शंकरदानके पुत्र जो लक्ष्मीपति और वाणीपतिके आभूषण हैं, उत्पन्न हुए।[1]

विशेष पुरुषोंके जीवनके साथ कोई न कोई असामान्य घटना या बात प्रायः संलग्न रहती है। हमारे चरित-नायक भी इसके अपवाद नहीं रहे हैं। सामान्यतः जातकका 'नामकरण' उसके जन्मके पश्चाद्वर्त्ती होता है, परन्तु हमारे चरितनायकका नामकरण जन्मसे पहिले ही हो गया था। उत्पत्तिसे पूर्वका यह नामकरण सहेतुक था। संवत् १९५८ में गवालपाड़ा (आसाम)से १०-१२ मील दूर स्थित 'चापड़' नामक स्थानपर नाहटा वंशजोंने एक राजरूप लक्ष्मीचन्द नामसे दुकानका श्रीगणेश किया था। बादमें नाम बदलनेकी आवश्यकता होनेपर संवत् १९६६ में भीनासर (बीकानेर)के सेठियोंने उस दुकानमें अपने पूर्वजका नाम अगरचन्द सहनामके रूपमें रख दिया। इस प्रकार उस दुकानका नाम "अभयकरण (नाहटा) अगरचन्द (सेठिया)" चल पड़ा। पर चतुर व्यवसायी नाहटोंके मुनीम श्री सदारामजी सेठियाको इस अनपेक्षित नामके भावी परिणामको समझनेमें विलम्ब नहीं लगा। उन्होंने झटिति निर्णय लिया कि नाहटा वंशमें अब जो भी प्रथम पुत्र उत्पन्न होगा, उसका नाम 'अगरचन्द' ही रखा जायेगा। इस निर्णयके उपरान्त हमारे चरित-नायकका जन्म हुआ और उन्हें पूर्वनिश्चित नाम 'अगरचन्द' प्राप्त हुआ। इस प्रकार आपने अपने जन्मसे पारिवारिकोंकी दुश्चिन्ताका उन्मूलन तो किया ही, साथमें व्यापार संवृद्धिका शुभ संकेत भी दिया।

जब आप कुछ बड़े हुए तो आपने अपनेको एक भरे-पूरे परिवारका सदस्य पाया। पिता, माता, चार सहोदर, दो बहिनें, बाबा षडीया, चाचा, चाची, दादियाँ, बड़ी माँ आदिकी पर्याप्त संख्या थी। घरमें सेवा-भावो और नौकर-नौकरानी थे। घर ग्रामीण संस्कृति और नागरिक सभ्यताका केन्द्र बना हुआ था। बीकानेरके

१. कविवर आचार्य चन्द्रमौलि—नाहटा प्रशस्तिकासे उद्धृत।

निवास भवनमें ग्राम डांडूसर और उसके आसपासके व्यक्ति प्रायः आते ही रहते थे और पूर्ण सत्कार पाते थे। उस सेवा-टहलमें घरके सभी आबालवृद्ध सक्रिय रहते थे। बालक अगरचन्दको भी यथाशक्ति सेवाका संभार वहन करना पड़ता था। चूँकि नाहटा बन्धुओंका व्यापार दूरवर्ती परदेशमें था, अतः वहाँसे आनेवाले व्यक्ति भी दूकानका कुशल-समाचार अथवा कोई वस्तु देनेके लिए आते थे और रोचक अनुभव सुनाते थे। स्थानीय व्यक्ति भी अपनी विविध समस्याओंका समाधान पानेके लिए उपस्थित होते थे। इस प्रकार श्री नाहटाका घर उनके शैशवमें विभिन्न प्रवृत्तिके लोगोंका केन्द्रस्थल बन गया था और उसके प्रत्यक्ष और परोक्ष संस्कार बालक अगरचन्दपर भी जम रहे थे।

शैशवमें हमारे चरितनायकका सबसे प्रियपात्र था लाभू बाबा। वह नाहटा-परिवारका अत्यन्त विश्वस्त भृत्य था, लेकिन सारा परिवार उसे अपना अभिन्न अंग समझता था और उसका आदर करता था। श्री भंवरलालजी नाहटाने उसका बड़ा सुन्दर रेखाचित्र खींचा है—

'धोतै मूँढैरो छोरो, जवान हो जद वहीं म्हारैं घरमें रैवतो आयो हो। हो तो बौ दो रुपियां को महीनैदार पण म्हांरा घररां लोगां उणनै कदेई नोकरको समझियो नीं—कांई छोटा अर कोई बड़ा—सगला उणरो आदर करता। बड़ा लोग लाभू, लुगायां लाभूजी अर म्हे टाबर 'लाभूबाबोकै बतलावता।'[1] लाभू बाबा बच्चों-को कहानियाँ, दोहे, भजन, हरजस बातें आदि सुनाता था, उन्हें गोदी-कंधे और पीठपर बिठाकर काम करता था, जिससे बच्चे बड़े ही प्रसन्न रहते थे। वह बच्चोंके साथ खाता भी था, उन्हें खिलाता भी था और उन्हें थपथपाकर सुलाता भी था। श्री भंवरलालजी नाहटाके शब्दोंमें :

"टाबरां नै, विसेसकर म्हां तीनों नै—काकोजी मेघराजजी, काकोजी अगरचन्दजी, और मनै, बड़ी हीयाली सूं राखतो। एक नै गोदीमें, दूजा नै खांधा माथै अर तीजै नै मगरां माथै राखियां काम करतो रैतो। म्हांनै घणां ओखाणा अर दूहा सुणावतो। सिंज्या पड़ती जद म्हें लाभू बाबा नै बात कैवण वासतै पकड़नै बैठाय लेता। बाबो म्हांरी फरमास अर रुचि मुजब वांता सुणावतो—कदेई रामायण री—कदेई महाभारतरी कदैई इतिहास री, कदैई धूनीरी, कदैई पैलाद री, कदैई नरसी जी रै माहेरैरी"[2]।

लाभू बाबा एक क्षण भी व्यर्थ और बिना काम बैठना नहीं चाहता था। वह कुछ न कुछ गाता जाता था और तल्लीनतापूर्वक काम करता रहता था। उसे अनेक 'ख्याल' याद थे—प्रभातियाँ याद थीं—राम-चरित मानसकी चौपाइयाँ-दोहे, नीति-वचन आदि प्रायः कंठस्थ थे। वह कहा करता था—'नांणो अंटरो, विद्या कंठरीं'[3]।

नाहटा-परिवार लाभू बाबा की अन्तिम समय तक इज्जत करता रहा और आज भी उस प्रेमपुजारी की स्मृति उसमें वैसी ही बनी है। श्री भंवरलालजी नाहटाके शब्दोंमें—

"लाभू बावै नै सर्गवासी हुयां आज तीस बरस हुग्या; पण म्हांरै मनमें बावैरी अर बावै रै गुणांरी याद आज भी ताजी है"[4]। हमारे चरित-नायक अब भी लाभू बाबाका गुणगान करते नहीं अघाते। लाभू बाबाका निष्कपट सहज स्नेह, उसकी श्रमशीलता और उसका आत्मीयभाव—जब उनके स्मृति पथमें आते हैं तो वे सुदूर अतीतमें खो जाते हैं और उसके व्यक्तित्वसे प्रेरणा प्राप्त करतेसे प्रतीत होते हैं।

श्री नाहटाजीको जब अपनी शैशवलीलाका एक अन्य पात्र याद आता है तो भी वे थोड़ा सा मुस्करा देते हैं। उनके चेहरेकी सहज गंभीरता एक क्षणके लिए दूर हट जाती है और वे स्मितिके साथ उसका नाम

---

१ श्री भंवरलाल नाहटा-बानगी पृ० ७। २. श्रीभंवरलाल नाहटा—'बानगी' पृ० ८। ३. श्रीभंवर-लाल नाहटा—बानगी पृ० ७। ४. श्रीभंवरलाल नाहटा—बानगी पृ० ९।

● श्री अगरचन्द जी नाहटा तथा उनका परिवार मण्डल



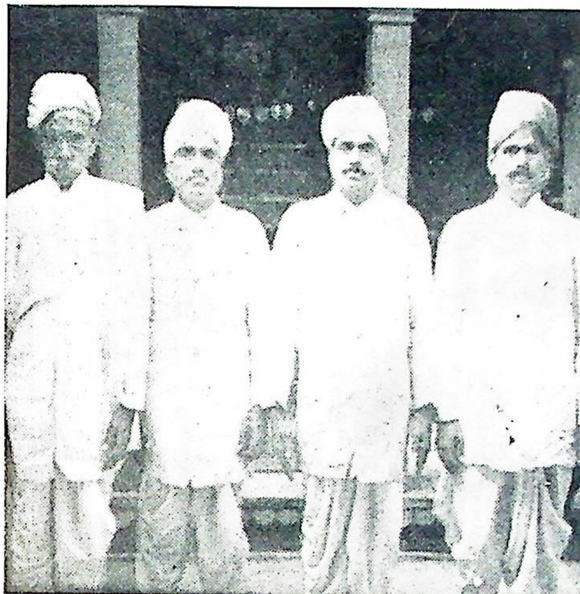
श्री अगरचन्द जी नाहटा



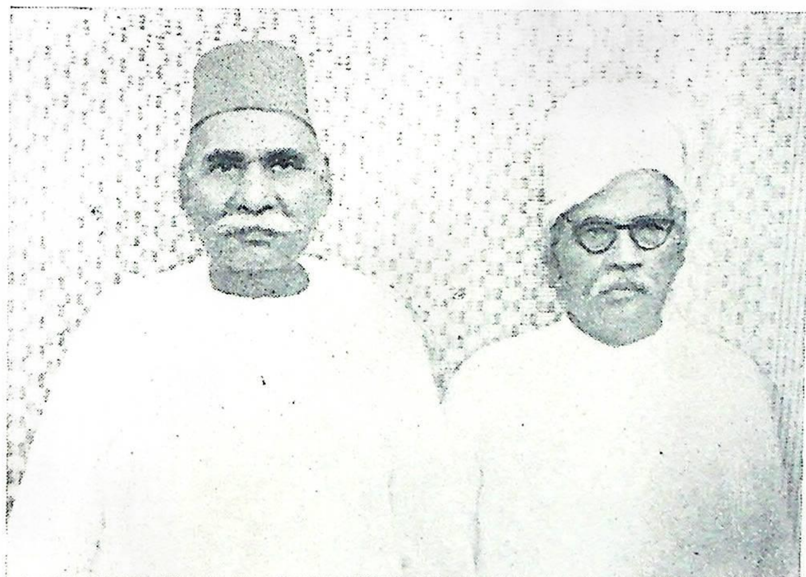
श्री अगरचन्द जी नाहटा की बड़ी माँ साहब
सेठ दानमल जी नाहटा की धर्मपत्नी स्व० श्री पानकँवर जी
पौत्र विमलचन्द व तनसुखराय के साथ।



अगरचन्द नाहटा की मातुश्री
श्रीमती चुन्नीबाई (धर्मपत्नी सेठ शंकरदान जी नाहटा)



भैरूँदान जी, शुभैराज जी, मेघराज जी, अगरचन्द जी नाहटा
(चारों भ्राता)



भँवरलाल नाहटा   अगरचन्द नाहटा

श्री अगरचन्द जी नाहटा के सम्बन्धी



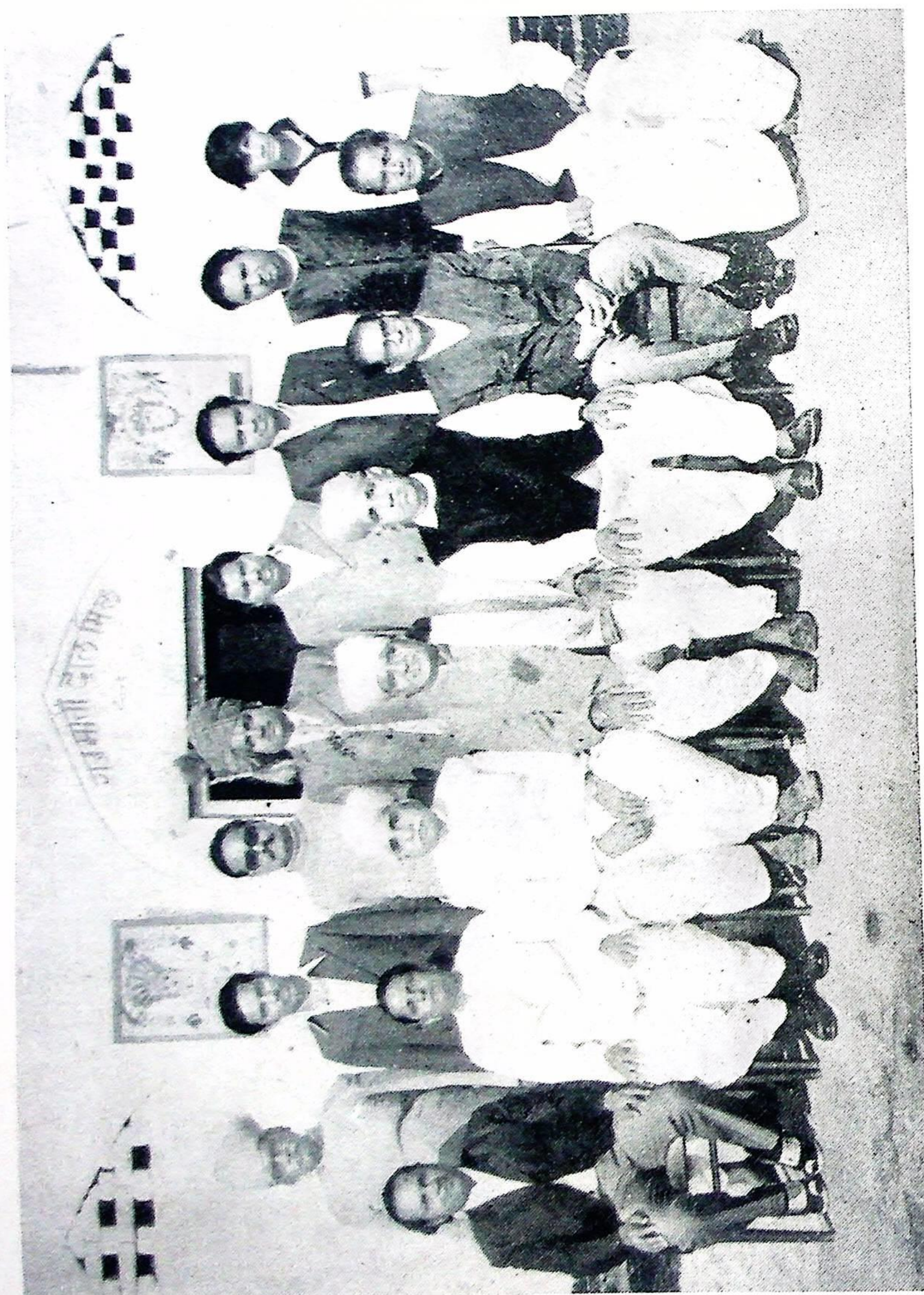
(बहनोई)
स्व० सेठ फूलचन्द जी बाँठिया



(बहिन)
श्रीमती मगनबाई



स्व० श्रीमती पन्नी देवी जी
(श्री अगरचन्द जी नाहटा की धर्मपत्नी)



संयोजक के परिवार के साथ श्री अगरचन्द जी नाहटा ।



सिलहट दुकान के कर्मचारियों के साथ
बैठे हुए—इन्द्रचन्द्र बोथरा, अगरचन्द जी नाहटा, मूलचन्द जी ललवानी, तोलाराम जी डोसी ।
पीछे खड़े हुए—बंगाली सरकार (कर्मचारी) वर्ग ।



अगरचन्द नाहटा　　　　　　भँवरलाल जी नाहटा

(वि० सं० १९९२ कलकत्ता) ।

बताते हैं 'रावतिया नाई'। वह जन्मान्ध था। नाहटाजीके पैतृक गाँवका वह निवासी था और बीकानेर आकर इनके परिवारकी सेवा करने लगा था। घरके जूठे बतन प्रायः वही साफ करता था। वह तेल मालिश करनेमें भी पटु था। नाहटा परिवारके बच्चे जब उससे तेल मालिश कराते तो उसे अन्धा जानकर चिढ़ानेके लिए किसी दूसरे बच्चेका एक हाथ या पाँव उसे पकड़ा देते। इस चालाकीको वह झट ताड़ जाता और हाथ-पैरको टटोल कर कह देता 'ओ पग तो थारो कोयनी'—यह पैर तो तुम्हारा नहीं है। श्रीनाहटाजीके शब्दों-में "वह बड़ा मनमौजी था। जब बैठा-बैठा अकेला उकता जाता तो वेशिर-पैरकी गप्पें हाँकने लगता। कभी कहता 'सेठां, आज तो आंयां रै गाँव कानी बादल दीसै है, गाज-बीज है, मेंह सांतरों बरससी'। अर्थात् सेठ साहब, आज अपने गाँव डांडूसरकी तरफ आकाशमें जलधर दृष्टिगोचर हो रहे हैं, गर्जन और विद्युत्स्फुरण भी है, वर्षा खूब होगी।

हमारे चरितनायकको शैशवमें कभी एकाकीपनका अनुभव नहीं हुआ क्योंकि भ्रातृपुत्र श्री भंवरलालजी नाहटा आपसे छह मास छोटे थे और भ्राता मेघराजजी लगभग ढाई वर्ष बड़े। तीनोंकी सुन्दर और सुखद मंडली थी। खेलना-पढ़ना-पाठशाला जाना और भोजन आदि सब साथ-साथ चलता था। बाल स्वभावसे कभी-कभी आपसमें अल्प समयके लिए ठन जाती तो भतीजे भंवरलालजी मेघराजजीके पक्षमें होते। आनन-फाननमें क्रोध-मनमुटाव मिट जाता और तीनों एक-हृदय होकर उत्फुल्ल भावसे फिर वैसे ही खेलते-खाते और गप्पें हाँकते।

श्री भंवरलालजी नाहटाके शब्दोंमें :—

"कभी-कभी दोनों काकाजीके आपसमें बोलचाल बन्द हो जाती तो मैं मेघराजजीके पक्षमें हो जाता था। थोड़ी देरका मनमुटाव हवा होते देर नहीं लगती और हमारे तीनोंमें परस्पर बड़ा प्रेम रहता। काकाजी मेघराजजी हमारेसे आगे थे और हम दोनों एक ही क्लासमें पढ़ते थे। मेघराजजी चौथी क्लासमें शायद दो तीन वर्ष जमे रहे तो हम दोनों तीसरी क्लासमें थे, फिर पाँचवीं क्लासमें हम तीनों (श्री मेघराजजी नाहटा, श्री अगरचन्दजी नाहटा एवं भ्रातृपुत्र श्री भंवरलालजी नाहटा) साथ-साथ थे।"[1]

हमारे चरितनायकको बचपनमें बड़ी माताका अपार स्नेह प्राप्त हुआ था। माता-पिता कलकत्ता चले गये थे और उन्हें बड़ी माताके पास छोड़ गये थे। श्री नाहटाजीके शब्दोंमें "बड़ी माँ अत्यन्त सरल-हृदया थीं। उनके स्नेहाधिक्यने मेरी माँको भुला दिया था। वह खांखरे (पतली ठंडी रोटी) पर ताजा मक्खन लगाकर सबेरे-सबेरे खानेको देतीं और तब पढ़नेके लिए भेजतीं। एक बार शाला जीवनमें ओरी निकली, बड़ी माँजीने अहर्निश सचेष्ट रहकर खूब सेवा की। वे प्रायः कहती थीं :—

"लड़को बहुत स्यांणों है; न ओय करै न आय करै"। बड़ी माताका स्नेह बाल नाहटाको किसी भी स्थितिमें दुःखी या रोता हुआ नहीं देख सकता था—उन्होंने एक बार मारजाको भी कह दिया था कि "मेरे अगरूको न मारा करो"।

विद्यारम्भ अक्षय तृतीयाको जैन पाठशालामें हुआ। तब यह संस्था सेठिया गवाड़में थी। तत्पश्चात् यह शाला सुनारोंके मोहल्लेमें चली गई और अद्यावधि वहीं पर स्थित है। नाहटाजी एकमात्र इसी शालामें पढ़े। आपने पंचम कक्षा इसीसे उत्तीर्ण की और छठी कक्षामें शालीय अध्ययन समाप्त हो गया।

श्री नाहटाका शालीय-जीवन अत्यन्त श्लाघ्य था। आप परिश्रमी छात्र थे और हमेशा पूरा गृहकार्य करके शाला जानेका स्वभाव था। आपकी तत्कालीन अभ्यास पुस्तिकाओंके सुरक्षित संग्रहको देखनेसे प्रतीत

---

१. श्री भंवरलाल नाहटा : लेख।

होता है कि आपकी विशेष रुचि निबन्ध-प्रवचन-भाषण-लिखने और उन्हें साप्ताहिक सभाओंमें पढ़नेकी थी। आप शालाकी प्रत्येक छात्र-सभाके प्रवक्ताओंमें अपना नाम सर्वप्रथम लिखाते थे।

श्री मयाचन्द टी० शाह उन दिनों जैन पाठशालामें धर्माध्यापक थे। वे जैन-धर्म पढ़ाते थे। हमारे चरित-नायक उम्रमें छोटे अवश्य थे; लेकिन जैनधर्मकी अधिकांश उपदेशावलियाँ, प्रतिक्रमण विधियाँ उनके कंठस्थ थीं और धार्मिक ग्रंथोंके पठन-व्यसनने उनमें निखार लाना आरम्भ कर दिया था। इसलिए शाह साहब आपसे अत्यन्त प्रसन्न थे और अपने अच्छे प्रतिभा सम्पन्न शिष्योंमें आपको समझते थे। जब कभी शालीय उत्सव होता या सामान्य गोष्ठी होती तो श्री नाहटाजीको जैनधर्मपर प्रवचन करनेके लिए कहा जाता। इस प्रवचनका आशय धर्माध्यापकजी द्वारा अध्यापित छात्रोंके माध्यमसे उनकी श्रमशीलताका प्रमाणीकरण होता था। श्री नाहटाकी रुचि खेलोंमें कम थी। उनका अधिकांश समय शालासे मिले गृहकार्य करनेमें लग जाता और शेष समयमें वे आगामी साप्ताहिक सभामें बोलनेके लिए जोरशोरसे तैयारीमें संलग्न हो जाते। उनकी रुचि अधिक-से-अधिक श्लोक-गाथाएँ याद करके अपने भाषणको अधिक धर्मप्राण बनानेकी ओर विशेष थी। श्री नाहटाने अपने शालीय जीवनपर लेखकके प्रश्नका उत्तर देते हुए बताया कि :—

''हमारे शिक्षक हमसे बहुत स्नेह रखते थे। वे हमें ही अपना पवित्र पुत्र समझते थे। व्यवहार अत्यन्त आत्मीयताका था। हमारे सही उत्तर सुनकर उनका रोम-रोम खिल जाता था, उनकी आँखें जैसे हमें आशीर्वाद देनेको समुत्सुक थीं, हम उन्हें सबसे प्रामाणिक और हितैषी समझते थे। हमारी अनन्य आस्था और श्रद्धा हमें निरन्तर आनन्दित रखती थी।

श्री चिम्मनलालजी गोस्वामी (वर्तमान संपादक कल्याण) तब जैन पाठशालाके प्रधानाध्यापक नियुक्त हुए थे। उनका प्रभाव बहुत था। उनकी पाठन शैली, व्यक्तित्व मधुरता और शिक्षक-शिष्योंके साथके आत्मीयता-पूर्ण व्यवहारने उन्हें लोकप्रिय बना दिया था। मैं मन ही मन श्री गोस्वामीजीका अत्यन्त आदर करता और वैसा सज्जन, उच्च विद्वान् बननेका बार-बार संकल्प दुहराता था।''

स्व० श्री रामलोटनप्रसादजी तो अपने शिष्यकी योग्यता को देख गदगद हो जाते थे और भूमि-भूरि प्रशंसा करते थे।

यह निर्विवाद स्वीकृति है कि बचपन, भावी जीवनकी आधार-शिला है। आदर्श, वरेण्य और अनु-करणीय जीवनका निर्माण-स्थल बचपन ही है और नाश-स्थल भी यही है। इसमें जिसकी पकड़ सही होती है। वह आजीवन सफल होता है और जिसकी सही नहीं होती, उसे बिगड़ते भी देर नहीं लगती। महाभारत-का बाल-युधिष्ठिर अपने अन्य साथियोंकी तुलनामें ''सदा सत्य बोलो''के पाठमें थोड़ा पिछड़ गया था, लेकिन यह उसकी मन्द बुद्धिके कारण नहीं था। युधिष्ठिर चिन्तनशील थे और प्रत्येक अच्छी बातको व्यवहारमें उतारना चाहते थे। बाल-नाहटाकी प्रवृत्ति भी प्रायः वैसी ही थी। वे पाठ्य पुस्तकोंमें जो सूक्ति-उपदेश पढ़ते थे, उसे आजीवन व्यवहारमें जमानेके लिए दत्तचित्त रहते थे। परिणामतः आज श्री नाहटा साधिकार इस तथ्य-को चरितार्थ करनेकी स्थितिमें हैं कि उन्होंने बचपनमें जो प्रेरक दोहे पढ़े थे; उन्हींके निष्ठापूर्वक परिपालन करनेसे वे इस स्थितिमें आ पाये हैं। श्रीअगरचन्दजी नाहटाके ही शब्दोंमें:—[1]

---

१. 'वे दोहे जो मुझे प्रेरणा देते हैं' लेखक श्रीअगरचन्द नाहटा—जैन जगत् पृष्ठ ११।

भाटोंकी बहीके अनुसार नाहटा वंश पीढ़ी नामावली

पालनसिंहजीका बेटा— ४ बेटोंसे ४ गोत्र—

१ नारसिंह—'नाहटा'।

२ बुधसिंह—'बाफणा'।

३ मुकतराव—'मुकुन्दीया'।

४ जोगसिंह—'जांगड़'।

पीढ़ियोंसे निवासस्थान

आबू २७, भोज २६, मंडोर १३, जडाया ३, बीकानेर १४, जलालसर गहमर बीकानेर।

नारसिंहजी
|
चंद्रभान
|
इंदुचंदजी
|
कुशानचंदजी
|
संतोकचंदजी
|
नथमलजी
|
बीजराजजी
|
हीराचंदजी
|
थातमलजी
|
उदैचन्दजी
|
शिवजी
|
केशवदासजी
|
गोकलचंदजी
|
गुलाबचंदजी

भोज पीढ़ी २६

सदासुखजी	रूपचंदजी
अभैचंदजी	हनुमानमलजी
पिरथीराजजी	गौरीशंकरजी
गुमानमलजी	जैनसुखजी,
वनेचंदजी	पोकरमलजी

छोगमलजी	धरमचंदजी
भोपतमलजी	आनंददेव
धोकलदासजी	कपिलदेव
कीसनरामजी	सूरतरामजी
केशरीचंदजी	चंद्रसेनजी
जेसराजजी, चांदमलजी	रतनपाल
प्रेमराजजी, हेमराजजी	हुकमजी
सामंतमलजी २७	ठाकुरजी
	पंचायणदासजी
	नेतजी
	गोरजी
	पनसिंहजी
	छतरसिंहजी
	अमरावसिंहजी
	देवसिंहजी
	जयचंदजी
	रामचंदजी
	फूलचंदजी
	भीवराजजी
	दुर्गाप्रसादजी २६ पीढ़ी

मंडोर १३ पीढ़ी		
मंजुलालजी	पतेसिंहजी	
हरीरामजी	माणकचंदजी	
हरजीमलजी	सोनपालजी	
खुसालजी	रामचंदजी	
रूपसीजी	देवचंदजी	
इन्द्राजमलजी	वीरभानजी	
जगमालजी	उतमीचंदजी	
पंचायणदासजी	फतैचंदजी	अखैराज
दीपचन्दजी	कवरपालजी	नरसिंहजी
हेमराजजी		पतसिंहजी
पालनसिंहजी	पदमसीजी	
रायपालजी	भोमसीजी—धोकलदासजी—ठाकुरसी—पंचानदास	
आपजी पीढ़ी १३	सादुलमलजी—जालसीजी	

जोरजी (रामकंवरपीजी सेरजीकी कानसर)

जलालसर सवाईजी,

बडाया ३ पीढ़ी
वसंतमलजी
अजयराजजी
नैणसीजी पीढ़ी ३

जोरजी

|

गुमानमलजी

सरूप कंवर बोथरा बेटी समेरमलजी

|

ताराचंदजी

रतनकंवरपारस बेटी सुखजी

|

जैतरूपजी

हस्तकंवर वेद बेटी खेतसीजी १९०० में फूल घाल्या

उदैचंदजी (१)	राजरूपजी (२)	देवचंदजी (३)	बुधमलजी (४)
उदयकंवर छाजेड़बेटी	सिणगार कंवर	दीपकंवर दुगड़	सावसुखाव वेढ कुंवर
बीजराजजीकी गांव	छाजेड़ बेटी फुसराजजी	बेटी भीखनदास	पेमचंदजी
चुगनी छापरसे ४ कोश	लूणकरणसर		
गोपालपुराके पास			
पहाड़के पास			

मघा बरंठिया उपदेमलजी चांडासर गाँव

उदीबाई गुलगुलिया गुलाबचंदजी नाल गाँव

सेरो बाई गुलगुलिया राजमलजी नाल गाँव

राजरूपजीके

१ लक्ष्मीचंदजी	२ दानमलजी (चांदकवर सेठिया मानकंवर ददा)	३ गिरधारीमल	४ शंकरदानजी

पुत्री गौरीबाई (सुराना)

सुगनी बाई (सांडमूलचंदजी)

हंजू बाई (गोलछा अलकरणजी)

प्रेरकतत्त्व

बचपनमें पाठ्यक्रमकी पुस्तकमें एक दोहा पढ़ा था—

> करत करत अभ्यासके, जड़मति होत सुजान।
> रसरी आवत जाततैं, सिलपर परत निसान॥

साधारण नीतिके इस दोहेको सभी जानते हैं, सभी सुनते हैं, पर मेरे समस्त जीवनके लिए तो यह दोहा वरदान बन गया है। जाने क्या बात हुई कि इस दोहेको मैंने केवल पढ़ा नहीं, केवल गुनगुनाया ही नहीं, यह तो मेरे प्राणोंमें रम गया।

मैं जो कुछ बन गया, उसमें इस दोहेका कितना महत्व है, इसको कैसे बताऊँ।

मेरी स्कूलकी शिक्षा नहींके बराबर समझिये। ५ वीं कक्षातक कुल ले देकर पढ़ पाया। श्री कृपाचन्द्र सूरिके समागम और उपदेशोंसे मैं वाङ्मयके विशाल सागरको थाहने चल पड़ा। साहित्य ठहरा सागर और मैं निराधार; मुझे उस समय न संस्कृतका सम्यक्ज्ञान था, न प्राकृत, अपभ्रंश, मागधी, अर्धमागधी या गुजराती. मारवाड़ी आदि देशी भाषाओंका; फिर भी 'करत-करत अभ्यासके' मुझे प्रेरणा देता रहा। मैं हारा नहीं, ऊबा नहीं, निरन्तर अभ्यासमें रत रहा। फलतः असाध्य और कठिन कार्य सरल बन गया।

मेरे संग्रहमें करीब १५ हजार हस्तलिखित ग्रन्थ हैं, जिनकी पुरानी, विचित्र एवं विभिन्न लिपियाँ हैं। वे सभी मेरे लिए कठिन थीं, पर मुझे आत्म-विश्वास था। 'करत-करत अभ्यासके'। कोई मार्गदर्शक नहीं,

छोगमलजी
भोपतमलजी
धोकलदासजी
कीसनरामजी
केशरीचंदजी
जेसराजजी, चांदमलजी
प्रेमराजजी, हेमराजजी
सामंतमलजी २७

धरमचंदजी
आनंददेव
कपिलदेव
सूरतरामजी
चंद्रसेनजी
रतनपाल
हुकमजी
ठाकुरजी
पंचायणदासजी
नेतजी
गोरजी
पर्नासहजी
छतरसिंहजी
अमरावसिंहजी
देवसिंहजी
जयचंदजी
रामचंदजी
फूलचंदजी
भीवराजजी
दुर्गाप्रसादजी २६ पीढ़ी

मंडोर १३ पीढ़ी
मंजुलालजी
हरीरामजी
हरजीमलजी
खुसालजी
रूपसीजी
इन्द्राजमलजी
जगमालजी
पंचायणदासजी
दीपचन्दजी
हेमराजजी
पालनसिंहजी
रायपालजी
आपजी पीढ़ी १३

पतेसिंहजी
माणकचंदजी
सोनपालजी
रामचंदजी
देवचंदजी
वीरभानजी
उतमीचंदजी
फतैचंदजी
कवरपालजी
पदमसीजी
भोमसीजी—धोकलदासजी—ठाकुरसी—पंचानदास
सादुलमलजी—जालसीजी

जोरजी (रामकंवरपीजी सेरजीकी कानसर)

जलालसर सवाईजी,

अखैराज
नरसिंहजी
पतसिंहजी

बडाया ३ पीढ़ी
वसंतमलजी
अजयराजजी
नैणसीजी पीढ़ी ३

जोरजी
|
गुमानमलजी
सरूप कंवर बोथरा बेटी समेरमलजी
|
ताराचंदजी
रतनकंवरपारस बेटी सुखजी
|
जैतरूपजी

हस्तकंवर वैद बेटी खेतसीजी १९०० में फूल घाल्या

उदैचंदजी (१)	राजरूपजी (२)	देवचंदजी (३)	बुधमलजी (४)
उदयकंवर छाजेड़बेटी	सिणगार कंवर	दीपकंवर दुगड़	सावसुखाव वेढ कुंवर
बीजराजजीकी गांव	छाजेड़ बेटी फुसराजजी	बेटी भीखनदास	पेमचंदजी
चुगनी छापरसे ४ कोश	लूणकरणसर		
गोपालपुराके पास			
पहाड़के पास			

मघा बरंठिया उपदेमलजी चांडासर गाँव
उदीबाई गुलगुलिया गुलाबचंदजी नाल गाँव
सेरो बाई गुलगुलिया राजमलजी नाल गाँव
राजरूपजीके

१ लक्ष्मीचंदजी	२ दानमलजी (चांदकवर सेठिया मानकंवर ददा)	३ गिरधारीमल	४ शंकरदानजी

पुत्री गौरीबाई (सुराना)
सुगनी बाई (सांडमूलचंदजी)
हंजू बाई (गोलछा अलकरणजी)

प्रेरकतत्त्व

बचपनमें पाठ्यक्रमकी पुस्तकमें एक दोहा पढ़ा था—

करत करत अभ्यासके, जड़मति होत सुजान।
रसरी आवत जाततैं, सिलपर परत निसान॥

साधारण नीतिके इस दोहेको सभी जानते हैं, सभी सुनते हैं, पर मेरे समस्त जीवनके लिए तो यह दोहा वरदान बन गया है। जाने क्या बात हुई कि इस दोहेको मैंने केवल पढ़ा नहीं, केवल गुनगुनाया ही नहीं, यह तो मेरे प्राणोंमें रम गया।

मैं जो कुछ बन गया, उसमें इस दोहेका कितना महत्व है, इसको कैसे बताऊँ।

मेरी स्कूलकी शिक्षा नहींके बराबर समझिये। ५ वीं कक्षातक कुल ले देकर पढ़ पाया। श्री कृपाचन्द्र सूरिके समागम और उपदेशोंसे मैं वाङ्मयके विशाल सागरको थाहने चल पड़ा। साहित्य ठहरा सागर और मैं निराधार; मुझे उस समय न संस्कृतका सम्यक्ज्ञान था, न प्राकृत, अपभ्रंश, मागधी, अर्धमागधी या गुजराती. मारवाड़ी आदि देशी भाषाओंका; फिर भी 'करत-करत अभ्यासके' मुझे प्रेरणा देता रहा। मैं हारा नहीं, ऊबा नहीं, निरन्तर अभ्यासमें रत रहा। फलतः असाध्य और कठिन कार्य सरल बन गया।

मेरे संग्रहमें करीब १५ हजार हस्तलिखित ग्रन्थ हैं, जिनकी पुरानी, विचित्र एवं विभिन्न लिपियाँ हैं। वे सभी मेरे लिए कठिन थीं, पर मुझे आत्म-विश्वास था। 'करत-करत अभ्यासके'। कोई मार्गदर्शक नहीं,

सहायक नहीं, पर इस वाक्यने वह कमी पूरी की। अभ्यास चालू रखा और लिपियाँ एवं भाषाओंका विषय-पथ सरल हो गया। लाखसे अधिक हस्तलिखित ग्रन्थ इधर-उधर भारतवर्षके अनेक ज्ञान-भण्डारोंमें देखनेका सुअवसर मुझे मिला। मैं बराबर इसी दोहेको अपना पथ-सम्बल बनाये हुए अडिगभावसे, अस्खलित चरणोंसे आगे बढ़ता चला और आज भी मेरे जीवनका यह ध्रुव-सूत्र बन मेरे पथमें प्रकाश फैला रहा है।

दूसरा दोहा, जो मेरे स्मृति-पटलपर गहरा खुद गया है—

काल करै सो आज कर, आज करे सो अब्ब।
पलमें परलै होयगी, बहुरि करैगो कब्ब॥

इस दोहेके अनुसार मेरी जीवन-धारा प्रवाहित हो रही है और मेरी आदत पड़ गई है कि आजका काम आज ही निबटाना। कलके लिए टालना मुझे सुहाता ही नहीं। बहुतसे व्यक्ति मुझे साश्चर्य पूछते हैं कि आप इतना अधिक कार्य कैसे कर लेते हैं? इसका प्रत्युत्तर इसी दोहेसे मिल जाता है कि जितना काम आज कर सकते हो, उसे कर ही डालनेका प्रयत्न करो, कलके लिए न टालो।

भारतके कोने-कोनेमें मुझे विद्वानोंका ऐसा स्नेह प्राप्त है कि उनकी आज्ञाएँ, शंकाएँ और जिज्ञासाएँ आती ही रहती हैं। हिन्दी-संसारके सामान्य पंडितोंका ही नहीं, गुजराती, मराठी भाषाके सुधीजनोंका भी स्नेह प्राप्त है। अतः उनके पत्र भी बराबर आते रहते हैं। आज जितने पत्र मिले उनका जवाब आज ही देना, यह मेरा नित्यका कार्यक्रम सा बन गया है। जब किसी पत्रकी ओरसे मुझे लेखके लिये लिखा जाता है, तो उसके लिए तुरन्त लेख तैयार करना और भेजना मैं अपना कर्त्तव्य समझता हूँ। काम बढ़ जानेपर भारी हो जाता है। उसे निपटाते रहनेसे स्वपरकी असुविधा नहीं होती। काम होता भी अधिक है।

कभी-कभी एक पत्रके उत्तरके लिए मुझे घण्टों अपने ग्रन्थागारका अवगाहन करना पड़ता है। वह मैं करता हूँ परंतु पत्रका उत्तर यथा संभव उसी दिन देनेका प्रयत्न रहता है। साथ ही विद्वानोंको अपने संग्रहालयोंसे मौके-मौके पर हस्त प्रतियाँ भी भेजनेका कार्य रहता है।

एक बात यहाँ स्पष्ट लिख दूँ कि जब मुझे किसीसे कुछ मंगाना पड़ता है तो अधिकांश विद्वानोंको बराबर लिखना पड़ता है, तब कहीं उनकी तंद्रा भंग होती है। बहुत थोड़े विद्वान् ऐसे हैं, जो दीर्घ-सूत्री न हों। मुझे जिनसे तुरन्त उत्तर मिलते रहते हैं उनमें भण्डारकर ओरिएंटल रिसर्च इन्स्टीयूटके क्यूरेटर श्री० पी० के० गोड़ेका नाम शीर्ष-स्थानीय है।

मेरे जीवनका तीसरा सूत्र यह है—

रे मन! अप्पहु खंच करि; चिंता जाल मप्पाडि।
फल तित्तउ हिज पामिसइ, जित्तउ लिहउ लिलाड़ि॥

(रे मन! अपने आपको खींच ले, अपने आपको चिन्तामें न फँसा। तुम्हे इतना फल तो मिल ही जायेगा, जितना तुम्हारे ललाटमें लिखा है।)

यह पद्य जैन-कथा श्रीपालचरित्रका है और यह भी मेरे दैनिक जीवनमें, गृहस्थ जीवनमें एवं व्यापार व्यवसायके जीवनमें शक्तिका प्रबल स्रोत बन गया है। मेरा मन जब फलके लिए और भविष्यकी चिन्तासे आतुर होने लगता है, उस समय यह मुझे बड़ा बल देता है। उस समय इसका स्मरण कर मैं सुस्थिरता और शांतिका अनुभव करता हूँ। गीताका नैष्कर्म्यभाव और अनासक्ति योगका सन्देश मुझे इसी दोहेसे मिल जाता है। किसीको सम्भवतः इस दोहेमें भाग्यवादकी ध्वनि मिले परन्तु मुझे तो यह दोहा हमेशा कर्मनिरत जीवनमें फलाकांक्षाकी तृष्णासे बचाता रहता है। इससे मैं चिन्ताके भ्रमरजालमें नहीं फँसता और संकल्प-विकल्प कम होकर निराकुलता और शांतिका अनुभव करता हूँ।

अपने भावी जीवनके कार्यक्रममें मैं अब एक चौथे दोहेकी इस पंक्तिको स्थान देना चाहता हूँ—

"एकै साधै सब सधै"

समस्त साधनाका केन्द्र-बिन्दु आत्मा ही होना चाहिए। आत्माको भूलकर अन्य कोई भी साधना करना बेकार है। अतः आत्मानुभवकी साधना करना ही मेरा लक्ष्य है।

शालीय-जीवनके आसपास श्री नाहटा कविताके नामपर 'तुकबन्दी' करने लग गये थे। आपकी कविताका विषय 'धर्म' होता था। पितृश्री शंकरदानजी नाहटा व बड़े भाई भैंरूदासजी कविप्रवृत्तिको देखकर आपको 'कविसम्राट्' कहा करते थे। इस प्रकार आपका समय या तो तुकबन्दी करनेमें बीतता अथवा बड़े-बूढ़ोंके पास बैठकर अच्छी बातें सुननेमें। साधारण लड़कोंके साथ न आप कभी बैठते और न कभी खेलते। श्री भंवरलालजी नाहटाके शब्दोंमें—

"पिताजी हमेशा अगरचन्दजी काकाजीको 'कविसम्राट्' कहा करते; वैसे उन्हें 'बाबू' नामसे भी सम्बोधन किया जाता था। गवाड़के लड़कोंके साथ कभी नहीं खेलते। शामको पाटेपर बड़े-बूढ़ोंके पास बैठते; दादाजीके पैर दबाते ...। हमें बड़ोंका इतना भय और आतंक था कि कभी पतंग उड़ाना तो दूर, लूटनेके लिए भी छतपर नहीं जाते"[१]।

श्री नाहटा जैसा अध्ययनशील, अन्तर्मुखी प्रवृत्तिका प्रतिभावान् बालक उच्चशिक्षा क्यों नहीं प्राप्त कर सका; जब कि घरके सब सदस्य विद्यानुरागी थे और आर्थिक स्थिति सुदृढ़ थी? यह प्रश्न श्रद्धेय श्री नाहटा-जीके सम्मुख प्रस्तुत किया गया। उन्होंने उच्चशिक्षा प्राप्त न कर सकनेके तीन कारण बताये।

प्रथम कारण बताते हुए श्री नाहटाजीने कहा कि "मेरे अग्रज श्री अभयराज नाहटा परिवारमें सर्वाधिक शिक्षित थे। इन्दौरमें वैद्य सम्मेलनमें १ घंटा उन्होंने ओजस्वी भाषण दिया था। वे विद्याव्यसनी और सभा-संगोष्ठियोंमें सोत्साह सक्रिय भाग लेनेवाले सामाजिक कार्यकर्त्ता थे। सारा नाहटा परिवार उनकी वाग्मिता, विद्यानुराग और अध्ययनशीलतापर उल्लसित था; इनके अक्षर बहुत सुन्दर थे। उन्होंने कई पाठ्य पुस्तकें तैयार कीं व अन्त समयमें जयपुरमें जिस रामनिवास बागके कमरेमें ठहरे थे उसकी सभी दीवारोंपर सुवाक्य लिखे और पुस्तकोंका ढेरका ढेर चारों तरफ लगा था। पक्षियोंको हाथपर रखकर दाना चुगाते थे इसी कारण उनकी मृत्युपर मयूर जोर-जोरसे कई दिन तक रोते रहे थे। लेकिन उनके अचिन्तित आकस्मिक निधनसे नाहटा-परिवारपर वज्र-सा पड़ गया। पूज्य पिताजी उनके ग्रन्थोंको शोकवश देख नहीं सकते थे; इसलिए वे दूसरोंसे इधर-उधर करवा दिये गये। इस दुर्घटनाके कारण परिवारमें सन्तानको पढ़ानेके लिए उत्साह नहीं रह गया था और उस मूक अनुत्साहका प्रथम शिकार मुझे ही होना पड़ा।"

द्वितीय कारणपर प्रकाश डालते हुए श्री नाहटाजीने बताया कि बचपनमें उनकी आँखें खराब हो गईं थीं। वे दुखने लगीं और उनसे पानी पड़ने लगा। यह दुष्क्रम काफी लम्बा चला। इसलिए पिताजीने मेरी नेत्रज्योतिक्षीणताकी सम्भावित आशंकासे संत्रस्त होकर अध्ययन-विराम करा दिया।

तृतीय कारणकी ओर संकेत करते हुए श्री नाहटाजीने बताया कि उन दिनों बोलपुरमें आरब्ध दूकान-पर उन्हें रख दिया गया और बंगाली सीखनेके लिए व्यवस्था की गई। व्यापारका ज्ञान करानेकी ओर सबका ध्यान था; इसलिए उच्चशिक्षाको गौण मानकर छोड़ दिया गया।

निस्सन्देह ये तीनों ही कारण अपने आपमें पर्याप्त प्रबल थे और इन परिस्थितियोंमें सामान्यतः वही किया जाता, जो श्री नाहटाजीको करना पड़ा। लेकिन श्री नाहटाजीने अपने गहन अध्ययन, निरन्तर सुचिन्तित

१. श्री भंवरलाल नाहटा संस्मरण।

स्वाध्याय और सद्-असद् विवेकिनी बुद्धिसे यह प्रमाणित कर दिया है कि सरस्वतीके क्षेत्रमें निरन्तर साधनाकी जितनी महती आवश्यकता और गुरुता है, उतनी गरिमा अनध्याय सम्पृक्त श्वेत उपाधिपत्रोंकी नहीं है।

श्री नाहटाजीकी प्राथमिक शिक्षाकी अभ्यास-पुस्तिकाओंका सम्यक् अवलोकन करनेका शुभ अवसर लेखकको मिला है। अक्षर और अंक इतने सुन्दर हैं कि कहते ही नहीं बनता। श्री नाहटाजीने पाँचवीं तक हजारों पृष्ठ लिख दिये थे। उनके अक्षरोंकी बनावट, आकृति, सुघड़ता उत्तरोत्तर निखरती गई है। अंग्रेजी और बंगालीकी हस्तलिखित वर्णावलि भी अत्यन्त सुन्दर थी।

श्री नाहटाजीके आजके अक्षरोंमें और बचपनके अक्षरोंमें चकित कर देनेवाला वैभिन्न्य और वैषम्य है। भारतके अनेक विद्वानोंकी शिकायत है कि श्री नाहटाजीके हस्तलिखित पत्र वे पढ़ नहीं पाते। एक विद्वान्ने लिखा है "आप लिखें, खुदा पढ़े—अपने लिखेको नाहटाजी स्वयं भी पढ़ने बैठें तो माथा चकराने लगेगा..."[1]।

लेखकने बचपनके अतिसुन्दर सुपाठ्य अक्षर और श्री नाहटाके आजके अतीव दुष्पाठ्य अक्षरोके विषय अन्तरालका कारण जाननेकी भावनासे इस प्रसंगमें चरितनायक महोदयसे वार्त्तालाप किया था। वार्त्ता प्रसंगमें उसे आभास हुआ कि श्री नाहटाजी इस तथ्यसे पूर्णतः अवगत हैं कि उनके अक्षर सुपाठ्य नहीं हैं।

उन्होंने इस विषम परिवर्त्तनके लिए अनेक कारण संकेतित किये, जिनमेंसे कतिपय निम्नांकित हैं—

१. अज्ञात सामग्रीको शीघ्रसे शीघ्र प्रकाशमें लानेकी ललक। शोध-जिज्ञासुको प्रायः ऐसी चीजें मिलती रहती हैं, जिनके सद्यः प्रकाशनका लोभ वह संवरण नहीं कर सकता। जिस किसी भी क्षण अलभ्य वस्तु उपलब्ध होती है, उसके विषयमें तत्क्षण लिखनेका मानसिक आग्रह बन जाता है—और हर समय किसी नियुक्त-वेतनभोगी लेखकका उपलब्ध होना सम्भव नहीं होता। इसलिए अधिकांश सामग्री-स्वहस्तसे और वह भी कुछ ही मिनटोंकी परिधिमें लिखकर समाप्त करना मेरे लिये आवश्यक नैतिक बन्धन बन जाता है; फलस्वरूप मेरे हाथोंको अत्यन्त द्रुतगतिसे सक्रिय होना पड़ता है। और अल्प समयमें अधिकसे अधिक लिखना पड़ता है। इस द्रुतगामिताके कारण मेरा अक्षर-विग्रह बिगड़कर दुष्पाठ्यकी सीमाका स्पर्श करने लगा है।

२. श्री नाहटाजीने स्वाक्षरोंको दुष्पाठ्य बनानेमें अपने दस घंटेके निरन्तर दैनिक स्वाध्याय और विविध पत्रिकाओंके लिए लिखे जाने वाले लेखों तथा प्रतिदिन उत्तर चाहने वाले दर्जनों पत्रोंको भी कारणभूत बताया। वे स्वाक्षरोंमें औसतन तीन लेख, एक दर्जन पत्र और दस-पाँच पन्नोंका लेखन कार्य करते ही हैं। इसलिए अक्षरोंकी बनावटमें बहुत शीघ्र परिवर्तन आ गया। उनका यह महद् लेखन अनुदिन बढ़ रहा है। इसलिए उनके अक्षर कभी सुपाठ्य हो सकेंगे, यह सोचना केवल कल्पना मात्र है।

हमारे चरितनायकके शैशवसम्बन्धी भोलापनकी बातें भी परिवारमें कही और सुनी जाती हैं। माता चुन्नीदेवी कहा करती थीं कि "जितने अधिक वर्ष (५ वर्ष) तक मेरे स्तनोंका पान अगरचन्दने किया, उतने अधिक वर्षों तक मेरी और किसी संतानने नहीं किया। एक दिन जब अगरू स्तनपान करनेके लिए हमेशाकी तरह मेरे पास आया तो मैंने स्तनोंको वस्त्रावृत कर निषेधकी हस्तमुद्रा दिखाते हुए कहा "बोबा तो गमग्या" और भोले अगरचन्दने उन्हें हमेशाके लिए गया हुआ समझ कर भुला दिया"।

सं० १९७६-७७में अपनी माता-पिताके साथ जोधपुर गये। वहाँ अभयराजकी चिकित्सा वैद्य लच्छीरामकी चल रही थी।

संवत् १९८०में हमारे चरितनायक अपने अग्रज श्री भैरूंदानजीके विवाहमें झज्झू गये। यह गाँव बीकानेरसे पश्चिममें ३५ मीलकी दूरी पर बसा है। बरात ऊँटों पर गई। धनपतियोंकी बरातके ऊँट और

---

१. श्री जमनालाल जैन वाराणसी, 'नाहटाजी : एक जीवन्त संग्रहालय'।

जानी खूब सजधजसे जाते हैं। रणित झणित सस्वर चौरासी, नेवरी, चठिया पलाण, मौक्तिक माकड़ों, चमचमाती दर्पण खंड जड़ित छेवटी, शालीन, नखराला, गिरवाण, दोलड़ा मो'रा और उस पर राठौड़ी साफा कसे बांकी मूँछों वाला चुस्तवस्त्र परिधीत युवक जब मधुरी चालमें डालनेके लिए उष्ट्र ग्रीवाको मो'रेके सहारे वृत्ताकार बनाता तो करहेका सशब्द नृत्य अश्व नृत्योंपर भी पानी फेर देता।

पड़जानियों और जानियोंके वाहनोंकी प्रतिस्पर्द्धी दौड़ जब ग्राममें मचलती तो ग्राम ललनाओंके कण्ठ भी निनादित हो उठते। अमल अरोगण, प्रशस्तिकरण और स्नेहमिलन राजस्थानी विवाहकी अपनी निधि रहे हैं। हमारे चरितनायकके किशोर हृदय पर इस सुखद वातावरणका बड़ा प्रभाव पड़ा। बीकानेर लौटकर वे अपने गाँव डांडूसर गये। वहाँ मतीरा तोड़-फोड़कर खाना, ककड़ी छीलना और नमक-मिर्चके साथ उसे सस्वाद निगलना, बाजरीके सिट्टे मोरना खाना और शरद्की चाँदनीमें चाँदी जैसे शान्त शीतल सैकत सरोवरों (धारों)में अवगाहन करना—जैसे स्वयंसिद्ध था। स्वतः प्रेरित था और अनिवार्य करणीय था।

एक रात आप गाँव डाँडूसरमें राजस्थानका प्रसिद्ध खाद्यपदार्थ खीचड़ा खा रहे थे। कोई बड़ा कीड़ा उसमें गिर गया और गर्मागर्म खीचड़ेमें गिरकर तद्रूप बन गया। इस जीवहिंसासे आपको बड़ी आत्मग्लानि हुई और आपने सदाके लिए रात्रिभोजनका परित्याग कर दिया। यह घटना संवत् १९८१के आस-पासकी है।

इसी वर्ष हमारे चरितनायक श्री नाहटाजीकी सगाई ग्राम मोलाणिया हाल श्री गंगा शहरके सेठिया श्री मोरसीदासजीकी सुपुत्री चिरसौभाग्यवती श्री पन्नीबाईसे हुई। तब न दहेजका दूषण था और न लड़केके द्वारा लड़की और लड़कीके द्वारा लड़केको देखनेका नाटक। उन दिनों घर और वर देख लिये जाते थे और आवश्यक हुआ तो घरका कोई बड़ा बूढ़ा लड़की देख आता। वाग्दानकी विधि सम्पादित की गई। इसी वर्ष आप अपने व्यापारको समझने और उसका प्रशिक्षण प्राप्त करनेके लिए प्रथम बार परदेश गये।

परदेशमें हमारे चरित्र-नायकके लूणकरणसर वास्तव्य बड़े मामाजी श्री मंगलचन्दजी और छोटे मामाजी श्री भागचन्दजी रहते थे। बड़ी गद्दीमें मंगलचन्दजी और छोटीमें छोटे मामाजी काम करते थे। श्री भागचन्दजी श्री नाहटाजीको खाता-रोकड़, लिखना व माल बेचना-खरीदना आदि सिखाते थे। उन्होंने हमारे चरित्र-नायकको व्याज फैलानेमें पारंगत किया। आपमें कसबढ़की जो वृत्ति उपलक्षित होती है, उसका श्रेय श्री भागचन्दजीको है। आज आप जो अनेक स्थानों पर वस्तु-क्रयमें कस करते हैं, वह देन भी लघुमातुल श्री भागचन्दजीकी है।

कलकत्तामें श्री नाहटाजीके बूआके बेटे भाई श्री रूपचन्दजी गोलछा काम देखते थे। आपको रोकड़ और खातेका प्रशिक्षण इनसे प्राप्त हुआ। रुपये गिनना, तकादा लाना, बाजारसे माल खरीद करना श्री गोलछाजीने ही सिखाया। श्री गोलछाजी प्रसिद्ध दलाल श्री प्रेमचन्दजी नाहटाके साथ हमारे चरित्र-नायकको भेजते और बाजारका रुख समझाते। कलकत्तामें नं० ५/६ आर्मेनियन स्ट्रीटपर नाहटा बंधुओंकी गद्दी थी। वहीं पर बीकानेरके सर्वसुखजी नाहटा सोते थे। वे बड़े हंसोड़ थे। श्री नाहटाजी उनके साथ सामायिकमें मृत्युञ्जयरास, गौतमरास आदि पाठ करते। रिणीके श्री हजारीमलजी बोथरा 'लम्बू लक्कड़'के नामसे विख्यात थे। सर्वसुखजी नाहटासे उनकी खूब पटती थी। लम्बू सेठ बड़े उत्साही और हंसमुख थे, देशसे परदेश पहुँचने वालोंके साथ आप जो मजाक करते थे उसका चित्रण श्री भंवरलालजी नाहटाके शब्दोंमें पठितव्य है।

''कदेई कोई देस सूँ आवतो तो बैंशे सिरावणी रो उबो सिगला रै सूयां पछै सफाचट कर देवतां। एक थोथो नारेल राखता जिको कोई देस सूँ नारेल लावतो जिकोलेर बदगैमें थोथो नारेल घाल देता। अर सावत नारेल नै एक चोट सूँ फोड़ताके गोटो सापतो अलग हुय जावतो। जोटी भेली कर'र भोली बाँध देवता।

गण्डरीवालो आंवतो गिट्टी आ'र डाक देवतो, लोग गण्डेरी दो च्यार[1] पईसां री लेंवता पण लंबू सेठ नै गण्डेरी री बड़ी चिड़ ही।"

श्री हजारीमलजी बोथराने श्री नाहटाजीको माल मिलाने, कपड़ेकी गाँठें बाँधने आदि काममें, शिक्षित किया। एक बार बोलपुरकी दूकानमें हमारे चरितनायकने चावल खरीदके हिसाबमें सौ रुपये अधिक दे दिये, जिससे रुपये घट गये। मामाजी मंगलचंदजीसे बहुत खरी-खोटी सुननेको मिली। उस दिनसे आपको अनुभव हो गया कि रुपये-पैसेका हिसाब सावधानीसे रखना चाहिये। एक बार कलकत्तेमें भी रुपये गिनते समय हजार रुपयेकी गड्डी आलमारीके नीचे खिसक गई। खूब डाँट फटकार पड़ी। इस प्रकार श्री नाहटा रुपये-पैसेके मामलेमें सदाके लिए सजग हो गये। उन्होंने तबसे लेकर आज तक इस प्रकारकी घटनाकी पुनरावृत्ति नहीं होने दी।

श्री नाहटाजी जब सोलह मासकी प्रथम परदेश-यात्रा करके बीकानेर लौटे तो उनके विवाहकी तैयारियाँ हो रही थीं। मिति आषाढ़ कृष्णा १२ संवत् १९८२में आपका विवाह सम्पादित हुआ। आपके ससुर श्री मोहसीदासजी सेठिया थे। पत्नीका नाम पन्नीबाई था। आप साधारण पढ़ीलिखी धार्मिक स्वभावकी पति-व्रता महिला थीं। चूँकि उनका पितृपक्ष तेरह-पंथको मानता था, इसलिये श्री नाहटाजीको मूर्तिपूजक व खर-तरगच्छके ढाँचेमें ढालनेके लिए प्रयत्न करना पड़ा। श्री नाहटाजी अपनी अर्धाङ्गिनीको प्रतिदिन पढ़ाते और याद करनेके लिये पाठ देते। घर वाले इसका विरोध करते, लेकिन नाहटाजी अपने संकल्प पर अडिग रहे। घर वाले कहते, पढ़ाकर क्या बैरिस्टर बनाना है? अथवा हुँडी नावेंका काम करवाना है? ज्यों-ज्यों घर वाले विरोध करते, नाहटाजी अधिक उत्साहके साथ पढ़ाते। अन्तमें नाहटाजी अपने कार्यमें सफल हुए। उनकी पत्नी पत्र लिख लेतीं, घरका हिसाब-किताब रख लेतीं और खरतरगच्छके धार्मिक दैनिक कृत्य भी सम्पादित कर लेतीं। श्रीमती पन्नीबाईका जन्म संवत् १९७०में हुआ था, वे नाहटाजीसे लगभग ढाई वर्ष छोटी थीं।

हमारे चरितनायकके भ्रातृपुत्र श्री भँवरलालजी नाहटाका विवाह भी आषाढ़ कृष्णा १२ संवत् १९८३-को ही हुआ। विवाहोपरान्त दोनों ही परदेशके लिए रवाना होकर कलकत्ता पहुँच गये। श्री भंवरलालजी नाहटाके शब्दोंमें :

"हम लोग फिर कलकत्ता आ गये। काम काज गद्दी पै सिखते-करते प्रतिदिन मन्दिर जानेका नियम तो था ही, सामायिक भी प्रतिदिन करते। सरवसुखजी नाहटाके साथ 'शत्रुंजय रास, गौतमरास' आदि बोलनेसे कंठस्थ हो गये। काकाजी श्री अगरचन्दजी सिलहट रहने लगे।"

संवत् १९८४का वर्ष हमारे चरितनायकके जीवनमें सर्वाधिक महत्त्व रखता है। यह वही वरेण्य वर्ष है; जिसने श्री नाहटाजीको इतिहास, कला, विद्वत्ता और धार्मिकताके महनीय पदका गौरव दिलाया और उनके जीवनकी धाराको नव्य दिशा प्रदान की। इस प्रसंगमें अगर हम यह भी कह दें तो संभवतः अतिशयोक्ति नहीं होगी कि यही वह शुभ वर्ष था जिसने श्री नाहटाजीको अन्धकारसे प्रकाशकी ओर, असद्से सद्की ओर और मृत्युसे अमरताकी ओर उन्मुख किया। मात्र लक्ष्मीके संग्रहका स्वप्न देखनेवाला प्राणी सरस्वतीका अद्वितीय साधक और लक्ष्मीका भी भाजन बना रहकर एक प्रेरक पथ प्रशस्त करनेमें संलग्न हो गया।

परम सौभाग्यका विषय था कि श्री जिनकृपाचन्द्रजी सूरि वसन्त पंचमी संवत् १९८४ को बीकानेर पधारे और वे नाहटा परिवारकी कोठड़ीमें ही विराजे। हमारे चरित-नायकके लिए अपने जीवनको सार्थक बनानेका यह अनुपम अवसर था। उसके संस्कार सरस्वती साधना, धार्मिक ग्रंथ पठन, प्रवचन और काव्य प्रवचनके तो थे ही, उन्हें तब विशेष प्रेरक तत्त्वकी ही आवश्यकता थी। या यों कहें कि श्रेष्ठ धरामें बीज-

---

१. श्री भँवरलाल नाहटा—बानगी पृष्ठ १३।

वपन हो चुका था, अंकुरणकी स्थिति भी थी; लेकिन उसे संवर्द्धक-सुजलकी समीहा थी। उसे ऐसे संरक्षककी भी अपेक्षा थी, जो अपने कुशल वरद हाथोंसे उसे उत्साहित करता, साहित्य और अध्यात्मके क्षेत्रमें डगमगाते पैरोंको संबल देता और निराशाके अन्धकारमें स्वयं प्रकाशपुंज बनकर उपस्थित हो जाता। तृषातुरको शीतल सलिल पानसे, क्षुधातुरको हृद्य भोजन अवाप्तिसे और अभ्यर्थीको इष्ट वस्तु उपलब्धिसे जो परम आनन्द मिलता है, वही परमानन्द ज्ञानसागर जैनाचार्य श्री जिनकृपाचन्द्रजी सूरिके सुखद-शान्त-सौम्य मुखमंडलको देखकर श्री नाहटा जैसे ज्ञानपिपासुको हुआ।

आप गुरु चरणोंमें चित्त लगाने लगे, उनके अगाध ज्ञानगुंफित प्रवचन सुनने लगे और अधिकसे अधिक समय उनके पास बैठकर अपनी शंकाओंका समाधान प्राप्त करने लगे।

श्री गुरु-महाराजके अत्यन्त प्रभावक और प्रेरक-महामहिम व्यक्तित्वने आपके भावसागरमें उत्ताल तरंगें उत्पन्न कर दीं, आपकी श्रद्धापूरित भावधारा शब्दोंका परिधान अपनाकर प्रवाहित होने लगी, आप परम श्रद्धालु भक्त-**कवि श्रावक** बन गये।

गुरु महाराजके व्याख्यान अवसर पर आपको स्वनिर्मित गेरूली सुनानेका शुभ अवसर प्राप्त होता। अनेक भजन भी आप बनाते और भक्त श्रावकोंको गुरुगण सान्निध्यमें गाकर सुनाते। कंठकी मधुरिमा, वाणीका आकर्षण और गायक नाहटाकी भाव-विभोर मनःस्थिति, जनसागरको आत्मविस्मृत कर देती। नाहटाके मुखसे भजन-गीत अधिक सुननेकी उसमें ललक रहती और गुरु महाराज भी युवक नाहटाकी भक्तिमूलक श्रद्धासे संतोषलाभ करते। पितृश्री शंकरदान नाहटा स्वयं अपने कानोंसे सुपुत्रकी भावभीनी भक्ति-रचनाएँ और उनकी मुक्तकंठ प्रशंसा सुन चुके थे। इसलिए वे फूले नहीं समाते और अपने कविसम्राट्को मन ही मन कुशल-क्षेमवान् रहनेका मंगल आशीष देते। श्री भर्तृहरिने ऐसे ही पुत्रोंको 'सुपुत्र' की संज्ञा दी है :—

"प्रीणाति यः सुचरितैः पितरं स पुत्रः"

"पुत्र वही है जो अपने सुचरितसे पिताको प्रसन्न रखता है" जिस प्रकार विकसित-सुगंधित सुवृक्ष समस्त वन-उपवनको सुवासित कर देता है, उसी प्रकार सुपुत्र अपने श्रद्धावनत सौम्य स्वभाव, वरेण्य विचार वीथि और शिष्ट भावाचरण, अभिव्यंजनसे वंशकी कमनीय कीर्त्तिको चतुर्दिक् प्रसरित करता है—

एकेन हि सुवृक्षेण, पुष्पितेन सुगन्धिना। वासितं तद्वनं सर्वं, सुपुत्रेण कुलं यथा॥

इसी अवसरपर युवक नाहटा को अपने विचार व्यक्त करनेका सुन्दर अवसर मिलता। बचपनसे ही श्लोक, गाथाएँ, चरित्रावली और शास्त्रोंका जो गूढ़ ज्ञान आप अर्जित कर चुके थे और सुदीर्घ अवधिसे जो धार्मिक प्रक्रिया प्रशिक्षण आप प्राप्त कर रहे थे, मानों उस समस्त हृदयंगम कृत निदिध्यासनको प्रस्तुत करनेका यह परीक्षण अवसर था, गुरुदेवसे उस प्राप्त ज्ञान-ज्योतिपर शुद्ध और सहीकी मोहर लगवानी थी और जो कुछ फलगु था उसे दूर करना था। प्राप्तको सुरक्षित रखने और प्राप्यको प्राप्त करनेकी विधि भी सीखनी थी। इसी भावनासे आप गुरु महाराजके पण्डित शिष्य उपा० सुखसागरजीके पास अधिकसे अधिक बैठे रहते और अहर्निश ज्ञानचर्चा करके अपने विचारोंका परिष्कार करते। सूर्यकी दिव्य रश्मियाँ भूतलके समस्त पदार्थों पर समान भावसे पड़ती हैं, लेकिन उनसे शिलाखंड उतना नहीं चमकता जितना निर्मल दर्पणांश। ठीक उसी प्रकार गुरु-मंडलीकी उपदेशावली समस्त श्रोताओंके लिए एक जैसी ही थी लेकिन उसका जैसा विस्मयोत्पादक-गूढ़ प्रभाव हमारे चरितनायक पर पड़ा, वैसा प्रभाव इतर श्रोता-श्रावकोंपर उस रूपमें कदाचित् ही पड़ा हो। हिमकरकी शीत-रश्मियोंसे पाषाण-कठोर चन्द्रकान्त मणि, प्रभाकरकी तिग्म-रश्मियोंसे कमलदल अवलि और आर्त्त-दुखी दीनकी वाणी जैसे दीनबन्धु दीनदयालको द्रवित कर देती है, उसी प्रकार

युवक नाहटाकी प्रबल जिज्ञासाने ज्ञानगुरुओंके ममताविरक्त, वैराग्यरसैकमत्त मानसको भी द्रवित कर दिया और वे अपने पात्र श्रावकको इस प्रकार ज्ञानामृत पिलाने लगे जिस प्रकार धेनु वत्सको पिलाती है।

महापुरुष वाणीसे कम कहते हैं। उनकी तपःपूत मनोभावनाका प्रभाव बड़ा प्रबल होता है और जिसपर वह प्रभाव पड़ जाता है; वह उसीकी मस्तीमें दिन-रात छका रहता है। रामकृष्ण परमहंसने नरेन्द्रनाथको क्या कहा था? कुछ भी तो नहीं, लेकिन उनके व्यक्तित्वके प्रभावने नरेन्द्रको दीवाना बना दिया; अर्थात् अध्यात्मने विज्ञानको अभिभूत कर दिया। श्री जिनकृपाचन्द्रसूरिजी व उपा० सुखसागरने अपनी वाणीसे युवक नाहटाको चाहे कुछ न कहा हो, लेकिन किसी न किसी रूपमें उनके सम्मुख श्रीयुत देसाईका शोधपूर्ण लेख प्रस्तुत होना गुरुदेवके इसी मूकभावका व्यंजक था कि "हे युवक! तुम अन्तःसलिला सरस्वतीको प्रकट करो, त्रिगुण, अनर्ह दंभियोंके पाशमें आबद्ध, अपमानित, पाताल गर्भान्धकार पतित-मूर्च्छित सरस्वतीका उद्धार करो और उसे नव्य-जीवन देकर सारस्वत-संसारमें सम्मान-भाजन बनाओ।"

हृदयके उद्गारोंको हृदयवाले ही समझते हैं। गुरुवरने जिस मूकभावनाका सम्प्रेषण उपयुक्त पात्र श्री नाहटाकी ओर किया था, उसे युवक नाहटाके हृदय-ग्राहकने चुपचाप ग्रहण कर लिया। गुरु-शिष्योंके अन्तरात्मा प्रेरित इस अनुबन्धको समझनेवाले तो समझ रहे थे, पर जो नहीं समझे वे नहीं ही समझे। वे 'अनाड़ी' थे और कदाचित् 'हैं' भी। उस ऐतिहासिक दिनके पश्चात् श्री युवक नाहटा—'शोध संसार'के जिज्ञासु छात्र बन गये। गुरुदेवकी मूकभावना शोधोन्मुख युवक नाहटाके मानस पर किस प्रकार अनुदिन जादूई असर करती रही, वह कम विस्मयोत्पादक नहीं है। श्री अंगरचन्दजी व श्री भँवरलालजी नाहटाके शब्दोंमें ही यह प्रसंग सविस्तर पठनीय है और उसका अन्तिम अंश अवश्य ध्यातव्य है—क्योंकि हमारी इस मधुर कल्पनाका उत्पत्ति केन्द्र वही है।

"लगभग चालीस वर्षसे ऊपरकी बात है हमारे दीवानखानेकी अलमारीमें थोड़ी-सी पुस्तकें थीं। इनमें अधिकांश अंग्रेजी पाठ्यपुस्तकें थीं। एक हस्तलिखित पोथिया भी रखा हुआ था, जिसमें जिनराजसूरि-जीकी चौबीसी आदि कृतियाँ थीं। कागज जीर्णशीर्ण बड़कनेवाले थे। यह हमारे घरकी हस्तलिखित संग्रहकी प्रथम पुस्तक थी जो उपेक्षित होते हुए भी हमारे विद्यार्थी जीवनमें संभालकर रखी जाती रही। जब जिन-कृपाचन्द्रसूरिजीका सं० १८८४ की वसंतपंचमीको आगमन हुआ और कुछ धार्मिक साहित्य-अध्ययनकी ओर हमारी रुचि हुई तो महाकवि समयसुन्दरके साहित्यसंग्रहके निमित्त नानाहस्तलिखित संग्रहोंको देखना प्रारम्भ किया। महावीर-मंडलके कुछ गुटके मंगवाकर देखे तो उसमें सं० १८०४ का वह गुटका मिला जिसमें समयसुन्दरजीकी शताधिक कृतियाँ थीं। चिपके हुए पत्रोंको यत्नपूर्वक खोलकर नकलें शुरू कीं। दूसरी भी कितनी ही कृतियोंकी नकलें की गयीं।

इस प्रकार पुरानी लिपि और ग्रन्थोंके परिशीलनमें हमारा प्रवेश हुआ। इस समय हमारा कार्य केवल कृतियोंको देखकर आदि अंत नोट कर लेने व नकल कर लेनेतक ही सीमित था। इतिहासके अभिलेखादि इतर साधनोंपर भी हमारी दृष्टि रहती और उन्हें भी संग्रह करनेका प्रयत्न करते। सं० १९८७ में चिन्तामणिजीके भंडारकी प्रतिमाएँ निकलीं और स्वर्गीय मो० द० देसाईको आमन्त्रित किया गया, परन्तु वे राजकोट आकर सम्भवतः सालीके लग्न समारोहमें रुक गये और बीकानेर नहीं आ सके। हमने प्रतिमाओंके लेख पढ़े। कतिपय संवतोल्लेखवाले लेख थे उनकी नकल भी की गई। वे बम्बईके साँज वर्त्तमान पत्रमें श्री देसाईके मार्फत प्रकाशित भी किये गये। इसी समय हमने बीकानेरके समस्तमन्दिरोंके अभिलेखोंका संग्रह कर लिया और ओझा-जी जैसे विद्वानोंसे भी शिलालेख आदिका अनुभव प्राप्त किया।

समयसुन्दरजीके साहित्यका संग्रह करते समय सुन्दरजीकृत पाप छतीसीके नामसे देसाई द्वारा श्री

पूरणचन्द्रजी नाहरके संग्रहमें कृतियोंको देखकर मैं कुमारसिंह हालमें जाकर उनका कलाभवन देखने लगा। जब नाहरजीको पता लगा तो वे स्वयं आकर मुझे सारे संग्रहको दिखाकर अपने मकानमें ले गये। फिर तो उनके साथ इतना घनिष्ट सम्बन्ध हो गया कि रविवारको ८-८ घंटे हम उनके यहाँ जमकर बैठे रहते। उनके संग्रहको देखकर हमारे मनमें होता कि कभी हम भी ऐसा संग्रह करनेमें सफल हो सकेंगे। सचमुच ही संग्रह-कर्त्ता नाहरजी अद्वितीय पुरुष थे और हमारे जीवनमें उनसे एतद्विषयक बड़ी भारी प्रेरणाएँ प्राप्त हुईं।

सिलहटमें हमारी दुकानमें एक श्री महिमचन्द्र पुरकायस्थनामक मुहर्रिर काम करते थे। वे हमारी शोध वृत्तिसे प्रभावित तो थे ही और हमारे अनुरोधपर उन्होंने बंगाललिपिके (संधिवृत्ति, चंडीमाहात्म्य, पद्म-पुराण) कागज व ताड़पत्रके ग्रन्थ खरीदकर भेजे। कलकत्तेमें हमारे यहाँ काम करनेवाले कार्त्तिक सरदार (उत्कलनिवासी) ने दो एक उत्कल लिपिके ताड़पत्रीय उत्कीर्णित ग्रन्थ पाकर हमारे संग्रहके लिए खरीद दिये। बीकानेरके गोपाल मथेरण आदि व्यक्तियोंसे सम्बन्ध था ही। इस तरह हमारे संग्रहमें कुछ प्राचीन सामग्री संगृहीत हो गई।

हमारे जन्मसे २०-३० वर्ष पूर्व ही सैकड़ों मन अनमोल साहित्य भंडारके तीतर-कबूतर उड़ानेवाले कुशिष्य यतियों द्वारा व अज्ञानी रक्षकों द्वारा नष्ट हो चुका था तथा इस विषयके दलाल अपने डोरे डालकर हस्तलिखित ग्रन्थोंकी हजारों पेटियाँ विदेश पहुँचानेमें भी सफल हो चुके थे।

हस्तलिखित ग्रन्थोंकी खोजके सिलसिलेमें सर्वप्रथम बीकानेरके ज्ञानभंडारोंका अवलोकन प्रारम्भ किया गया। हम उनमेंसे आवश्यक सामग्री लाकर पढ़ते और नकल करते। सं० १९८६ में उपाश्रयोंमें घूमते-फिरते पुराने पोथी पन्ने देखते रहते थे।

कई वर्ष पूर्व एक पुराने भंडारके ग्रन्थ, जो अव्यवस्थित हो चुके थे, निकालकर बाड़ेमें डाल दिये गये। उनमेंसे कुछ तिलोकमुनिने इकट्ठे करके रखे और कुछ मुकनजीयतिने बटोरकर रख लिये। एक बार मैं वहाँ गया और उन पन्नोंको देखने लगा तो मुझे उसमें बहुत-सी महत्त्वपूर्ण सामग्री मिलनेका आभास हुआ। मैंने पन्नालालजी यतिसे पूछा कि यह खंतड़ क्यों संग्रह कर रखा है? उन्होंने कहा ये रद्दी हैं, पखाल एक पानी लगेगा, यतिलोग कूढा बना लेंगे। मैंने कहा—कृपाकर जितना भी इस कूढसेका मुनासिब समझें मेरेसे पैसा लेकर इसके मालिकसे मुझे दिला दें। पन्नालालजीने मुकनजीके एक शिष्यसे, जिसके अधिकारमें वह खंतड़ था, मुझे खूब सस्तेमें दिला दिया। कुल १३) रुपयेमें कितने ही छबड़े भरे हुए ग्रन्थ हमारे हस्तगत हो गये। इस सौदेकी एक शर्तके अनुसार यतियोंके सैकड़ों आदेश पत्र मुझे वापस लौटा देने पड़े थे जो कि इतिहासके लिए एक महत्त्वकी वस्तु थी। फिर भी उसमें कई राजाओंके खास हुक्के, ज्ञानसारजीकी कृतियोंके विकीर्ण पत्र व खरड़े आदि महत्त्वपूर्ण वस्तुएँ प्राप्त हुईं। खंतड़को एक कमरेमें रखकर उसके वर्गीकरणमें लम्बे समय तक कठिन परिश्रम करना पड़ा। आदिपत्र, मध्य पत्र, अन्त्यपत्र, भाष्य, पंचपाठ, त्रिपाठ आदि तथा विभिन्न दृष्टिकोणसे छाँटकर थाग लगाये जाते और एक-एक पन्ना एकत्र करते कितने ही ग्रन्थ पूरे हो जाते और हमारे उत्साहमें वृद्धि करते पर बीच-बीचमें भोला पक्षी कबूतर आकर अपने पंखोंके फड़फड़ाहटसे पन्नोंको उड़ाकर हमारा सारा काम गुड़गोबर कर देते। हमें उनपर बड़ा रोष आता पर निरुपाय थे। पसीनेसे शरीर तरबतर हो जाता और उसपर ग्रन्थोंकी गर्दी आकर शरीरको इतना गन्दा कर देती कि बिना नहाये, कपड़ा बदले कहीं भी बाहर जाना मुश्किल हो जाता। परन्तु इस सौदेमें सैकड़ों ग्रन्थ हमारे संग्रहमें हो गए।

एक बार बड़े उपाश्रयमें त्रिलोकयतिसे ज्ञात हुआ कि उसने २५) रु० में २५-३० बंडल हस्तलिखित ग्रन्थ (अव्यवस्थित खंतड़) खरीदके रखे हैं तथा बाड़ेमेंसे इकट्ठे किये हुए कुछ बंडल भी अलग रखे हुए हैं। मैंने उन्हें समझा-बुझाकर प्रार्थना की कि वे अपने अधिकृत सारा खंतड़ मुझे बेच दें। उन्होंने कहा कि मैं

ज्ञानको बेचता नहीं, स्वयं इन्हें खोजकर ठीक करूँगा। मैंने कहा—आपको वर्षों बीत गये। ये बंडल यों ही पड़े हैं और पड़े रहेंगे। आप यह काम कर नहीं सकेंगे। उन्हें यह बात जँच गई क्योंकि इसमें बड़ी बात यह थी कि एक ही ग्रन्थके कुछ पन्ने हमारे संग्रहमें आ गये और कुछ पन्ने उनके पास रह गये। दोनों संग्रह मिले बिना वे बेकार हो जाते। उन्होंने अपने संग्रह किये हुए सारे बंडल निःशुल्क हमें दे दिये और खरीदे हुए ग्रन्थ भी ३०) देकर मैं उनसे ले आया। हमारे संग्रहमें अभिवृद्धि होने लगी और अधूरे ग्रन्थ भी पूरे होने लगे।

एक बार पन्द्रहवीं शतीकी लिखी हुई पद्यानुकारीतपागच्छ गुर्वावली जो एक महत्त्वपूर्ण प्राचीन कृति थी, का अन्तिम तीसरा पत्र मुझे प्राप्त हो गया और उसके दो पत्र यति मुकनजीके संग्रहमें थे। मैंने कहा, बाबाजी एक ग्रन्थ दो जगह आधा-आधा रहे यह ठीक नहीं। उन्होंने कहा, तुम अन्तिम पत्र मुझे दे दो। मैंने कहा, मुझे देनेमें कोई आपत्ति नहीं परन्तु आपके यहाँ इसका क्या उपयोग होगा? जैसे अन्य पन्ने पड़े नष्ट होते हैं, यही हाल इसका होगा, आप जितना पैसा चाहें ले लें। उन्होंने २ पन्नोंका एक रुपया माँगा। मैं इस जीतके सौदेको खरीदनेमें कैसे चूक सकता था? कहना नहीं होगा कि मैंने उसे तत्काल लाकर अपने संग्रहमें रख लिया। इसी तरह यत्र-तत्र जो भी संग्रह कर सकता, करनेमें विलम्ब या प्रमाद नहीं किया जाता।

एक बार कीर्त्तिसागरजीका चातुर्मास (१९८७) नागौर में था तो मैं वहाँ गया। बाबू कोटड़ीके उपाश्रयमें कितने ही हस्तलिखित ग्रन्थ पड़े थे जिनका अधिकांश भाग तो बेचकर समाप्त कर दिया गया था। उनमें कुछ ग्रन्थ कीर्त्तिसागरजीकी अनुमतिसे मैं बीकानेर ले आया जिसमें एक मखमली जिल्दका ज्ञानसारजीके पदोंका गुटका भी था। परन्तु नागौर संघने जब सुना तो मुझे उन्होंने वापस भेज देनेके लिए पत्र दिया और न भेजने पर लिखा कि हमें पुस्तकें लानेके लिए आदमी भेजना पड़ेगा। मैंने तत्काल वह बंडल उन्हें लौटा दिया। खेद है कि ज्ञानसारजीके पद संग्रहका मैं उपयोग न कर सका और न आज तक किसीने उस गुटकेका उपयोग ही किया।

नागौरमें साध्वीजी कनकश्रीजी महाराजने मुझे एक कल्पसूत्र तथा कुछ अन्य पत्रे दिये थे। इसी तरह समझदार व्यक्ति हमारे पास अपने पासके हस्तलिखित पोथी-पत्रे हमें भेज देनेमें उस सामग्रीका सदुपयोग महसूस करने लगे। पूनरासर निवासी श्री कालूरामजी रावत मलजी बोथराने हमें एक बोरा भरे हुए ग्रन्थ (पूर्ण-अपूर्ण व रद्दी) भेजे थे।

एक बार मैं पालीताना गया तो गुलाबचन्द शामजी भाई कोरडिया, जो जैन पंडित थे और रुग्णावस्थामें विपन्न दशा बिता रहे थे, से स्वर्गीय प्रेमकरणजी मरोटीने मुझे मिलाया। मैंने उन्हें ११) रु० दिये तो उन पण्डितजीने मुझे कुछ हस्तलिखित पत्रे प्रेस कापियाँ व कुछ पुस्तकें भेंट कीं।

राँवड़ीके चौकमें एक हाथी 'जयपुरिया नामक कलाकार रहता था। उसके संग्रहमें शेरकी भालेसे शिकार करते हुए घुड़सवार महाराज पद्मसिंहजीका एक महत्त्वपूर्ण चित्र था, जिसे देखनेपर मैंने खरीदनेकी इच्छा प्रकट की और सौदा लगभग तै हो चुका था परन्तु मुझे उसी दिन कलकत्ते आना था। अतः पीछेसे यह कार्य अवश्य कर देनेके लिए मैंने श्री ताजमलजी बोथराको निवेदन किया। उन्होंने उससे वह चित्र लेकर पूज्य दादाजीको दे दिया। यह चित्र ठा० रामसिंहजीने शंभुदयालजी सक्सेनाके मार्फत ओझाजीको दिखानेके लिए मंगवाया और महाराज माधवसिंहजी उसे ओझाजीसे मांगकर स्वर्गीय महाराजा गंगासिंहजी बहादुरके पास ले गये। पचासों बार लालगढ़ और महकमोंका चक्कर काटकर भी अपने संग्रहकी इस अमूल्य संपत्तिको हम लौटाकर न ला सके, जिसे कि राजसे १०००) रु० उसकी कीमत स्वरूप देना स्वीकार कर लिया था पर हमने बेचना अस्वीकार कर दिया, वास्तवमें महाराजा साहबको यह पता नहीं था कि यह चित्र हमारे संग्रहका है और केवल देखनेके लिए लाया गया है, परन्तु अधिकारी वर्ग उनके सामने मुँह

न खोल सका और आज २५-३० वर्षसे हमारी यह धरोहर लालगढ़में विद्यमान है जिसका उल्लेख ओझाजीने बीकानेर राज्यके इतिहास तकमें किया है, हमारे वर्त्तमान बीकानेरनरेश करणसिंहजीको चाहिए कि वे हमारे संग्रहालयकी धरोहरको सम्मानपूर्वक हमें लौटा देनेकी उदारता दिखायें। अस्तु।

इस प्रकार चित्रादि प्राचीन कलात्मक वस्तुओंके संग्रहमें भी हमारा ध्यान रहता और जहाँसे भी वे प्राप्त होतीं, संग्रह कर ली जातीं। एक बार राजगृहीमें १५ दिन रहना हुआ और वहाँसे कुछ मृण्मूर्त्तियाँ (Terracotas) सील, हरगौरी मूर्ति, एक कुशाणकालीन हविष्ककी स्वर्णमुद्रा व २०-२२ चाँदी व १००-१२५ ताँबेके दो हजार वर्ष प्राचीन पंचमार्कड सिक्कों (Coins) का संग्रह १६०) रुपयेमें खरीदकर लाया गया।

श्री पूज्यजी महाराज श्री जिनचारित्रसूरिजीके संग्रहकी हस्तलिखित ग्रन्थोंको जब काकाजी अगरचन्दजीने व्यवस्थित कर सूची तैयार कर दी तो उन्होंने उदारतापूर्वक अपने संग्रहके कितने ही अपूर्ण ग्रन्थ हमारे संग्रहके लिए भेंट कर दिये थे। पृथ्वीराज रासोकी एक मध्यम संस्करणकी प्रति भी श्री पूज्यजी महाराजने हमें दी थी, जो बाहर एक आलमारीके ऊपर पड़ी थी। हमने उसे डा० बूलरके अवलोकनार्थ डॉ० बनारसीदास जैनको लाहोर भेजा और आज भी वह हमारे संग्रहमें विद्यमान है।

उन दिनों हमें एक ही धुन सवार थी कि संग्रह कैसे हो। रातमें सोते हुए स्वप्न भी ऐसे आते। कभी तो किसी ऐतिहासिक स्थानके दर्शन होते, कभी हस्तलिखित ग्रन्थ-चित्रादि दीखते। आश्चर्यकी बात है कि हरे रंगका एक चित्र स्वप्नमें दिखाई दिया, जिसमें भगवान् ऋषभदेव अपनी पुत्रियों, ब्राह्मी सुन्दरीको लिपि विज्ञान सिखा रहे हैं और सामने पूरी वर्णमाला (ब्राह्मी लिपिकी) लिखी हुई है। श्री देवचन्दजी महाराजके जन्मस्थानके संबन्धकी ऊहापोहमें स्वयं देवचन्दजी महाराज ऋषभदेवजीके मंदिरके (नाहटोंकी गवाड़) सामने मिलते हैं और अपना जन्मग्राम बतलाते हैं जो कि बीकानेर रियासत या जोधपुर रियासतमें है? इस ऊहा-पोहमें विस्मृत हो जाता है। समयसुन्दरजीके माता-पिताके नामकी खोजमें दूसरे ही दिन बड़े उपाश्रयके एक संग्रहके पत्रोंमें उन्हींके शिष्यों द्वारा निर्मित गीत मिल जाते हैं और स्वप्न साकार हो जाता है। चित्तकी एकाग्रता और संग्रह तमन्ना ही इसके मुख्य कारण हो सकते हैं, जो भावनाओंके साकारकी पूर्वसूचनारूप प्रतिभासित हो जाते हैं।

जयपुरके श्री पूज्यजी श्री धरणेन्द्रसूरिजी महाराजने भी कुछ ताड़पत्रीय पन्ने आदि हमारे संग्रहमें आजसे २५ वर्ष पूर्व भेंट किये थे तथा जयपुरके दुकानदारोंके यहाँ घूमघामकर कई बार चित्रोंका संग्रह किया गया।

हस्तलिखित ग्रन्थोंको जो चिपककर थेपड़े हो गये थे, उन्हें खोलनेमें बड़ी सावधानी रखनी होती है, उन्हें उचित मात्रामें सरदी पहुँचाने पर स्याहीका गोंद ढीला हो जाता और उनकी पकड़ ढीली हो जाने-पर वे आसानीसे खुल जाते हैं। जितने मजबूत कागज होते हैं, उतने ही सरलतासे वे खुलते हैं और फटते नहीं।

कभी-कभी असावधानीसे मूल्यवान सामग्री भी गायब हो जाती है। एक बार एक विज्ञप्तिपत्र (संस्कृत) जो हमारे संग्रहमें था, किसीको मरोटियोंमें मिला और वह पत्र किसीने पाकर हमें दे दिया तो खोया हुआ हाथ आ गया। उदयपुरका सचित्र विज्ञप्तिपत्र हमें श्री पूज्यजी श्री जिनचारित्रसूरिजी द्वारा प्राप्त हुआ। रतनगढके उपाश्रयमें रखड़ते हुए महत्त्वपूर्ण बौद्ध चित्रपटको हम जब सम्मेलनके अवसरपर गये तो संग्रह करके लाये। झुंझुणुंकी यात्रामें किवामरासो—दौलत खां की पैड़ी आदि जानकविकी कृतियाँ मिलीं तथा फतेहपुर (शेखावाटी)के यति श्री विसुनदयालजीसे पृथ्वीराज रासोका लघुतम संस्करण प्राप्त हुआ।

प्राचीन सामग्रीको अच्छी तरहसे पैक करके सुरक्षित पंजीकृत (Reagistered) डाकमें भेजना चाहिए। यदि उपेक्षा करनेसे वह इतस्ततः हो जाय तो उसका हमेशा धोखा रह जाता है। हीराणंदसूरिके कलिकालरासकी प्राचीन प्रति, जो हमारे संग्रहमें थी, देसाई महोदयके बंबई मंगाने पर भेजी गई। उस दिन डाकघर बंद हो गया था मैंने बुक पोस्टसे ही वह पोस्ट कर दी। वह देसाई महोदयको न मिली और वे डाक विभागसे पत्र व्यवहार करके भी प्राप्त करनेमें असफल रहे।

एक-एक पत्रको बड़ी सावधानीसे देखनेपर संग्राहकको उसमें कुछ न कुछ मिल ही जाता है। एक २ इंचके पन्नेमें हमें कुछ बारीक अक्षरोंमें लिखे दोहे मिले, जिससे ज्ञानसारजीके माता-पिताका नाम, जन्मस्थान, संवत्, दीक्षाकाल, गृहनाम, राज्यसंबंध आदि प्राप्त हो गये। इसी प्रकार कितनी ही महत्वपूर्ण सामग्री इन विकीर्ण पत्रोंमें, गते (पुठे) बनाये हुए पत्रोंमें मिल जाती हैं। जिसे पुरातत्व, कला-साहित्यका चस्का लग गया हो उसे आजके सिनेमा और मौज-शौक आदि सब फीके लगते हैं, यह कार्य जितना ही विशाल है उतना ही मनोरंजक और सुरुचिपूर्ण है। जब इसमें प्रविष्ट हो जाते हैं तो भूख-प्यास थकावट सब विस्मृत हो जाती है। घंटों कठिन परिश्रम करने पर भी तमन्ना रहती है कि और अधिक कार्य करें। इसमें नई-नई शैली, नये-नये शब्द, नये-नये तथ्योंका वह भंडार भरा पड़ा है, जो पूर्वकालकी सामाजिक-साहित्यिक-धार्मिक और कलापक्षकी जीवित गरिमाका प्रत्यक्षीकरण करा देती है। ऐतिहासिक पृष्ठभूमिपर आये हुए नाना छायाचित्र और धरातलके स्तरपर चढ़कर जो परिवर्त्तन आया है, उसकी सूक्ष्म और पारदर्शी दृष्टि प्राप्त हो जाती है और प्राप्त हो जाता है वह टेलिस्कोप जिसमें भारतीय जनताकी हृदयकी धड़कनें, तद्वर्ती भाव-ऊर्मियाँ और सांस्कृतिक सूक्ष्म विचार कणोंका तुमुल आन्दोलन जो मानवको आत्मविभोर कर देता है। इसे कहते हैं :—

"कैसे छूटे; शोधरस लागी ?" रामरसमें जैसे विघ्नोंका अम्बार अवरोधक बनकर आ जाता है? परंतु भक्तने उसकी कब परवाह की है? शोध-रस लगे श्री नाहटाको भी इस साधनामें अनेक मधुर-कटु अनुभव हुए हैं और अब भी होते जा रहे हैं लेकिन वह लगन छूटनी तो दूर रही, न्यून भी नहीं, अनुदिन पीन होती जा रही है। श्री अगरचन्द जी नाहटाके शब्दोंमें :—

"प्राचीन एवं कला-पूर्ण वस्तुओंका संग्रह एक बहुत ही महत्वपूर्ण कार्य है। प्राचीन संस्कृतिका पता लगानेके लिए यह अत्यन्त आवश्यक भी है। परन्तु यह संग्रह-कार्य कोई साधारण कार्य नहीं है। इसके लिए काफी सूझ-बूझ, परख, धैर्य, लगन और प्रभविष्णुताकी आवश्यकता है। दूसरे शब्दोंमें कहा जाय तो संग्रहकार्य भी एक कला है। गीतामें कहा है "कर्ममें कुशलता ही कला है" और संग्राहकका कई बातोंमें कुशल होना बहुत ही जरूरी है।

अपने जीवनके विगत ३५ वर्ष मैंने शोध एवं संग्रहके कार्यमें बिताये हैं और उस कार्यमें काफी प्रेरणादायक और कटु-अनुभव भी हुए हैं। यहाँ उनमेंसे थोड़ेसे अनुभव या संस्मरण दिये जा रहे हैं। मेरे इस कार्यमें मेरे भ्रातृपुत्र भँवरलाल नाहटाका भी सदा सहयोग रहा है।

वि० संवत् १९८४ को वसन्त-पंचमीको जैनाचार्य जिनकृपाचन्द्रसूरिजीका बीकानेर पधारना हुआ और वे हमारी नानाजीकी कोटड़ीमें ही विराजे। उनके घनिष्ठ एवं निकट सम्पर्कमें हमें बहुत बड़ी धार्मिक एवं साहित्यिक प्रेरणा मिली। राजस्थानके जैनकवि समयसुन्दर संबंधी मोहनलाल देसाईका एक निबन्ध उसी समय हमें पढ़नेको मिला और उससे प्रेरणा पाकर उनकी जीवनी और रचनाओंकी खोजका काम प्रारम्भ कर दिया गया। उस प्रसंगमें सर्वप्रथम बीकानेरके हस्तलिखित ग्रन्थ-भण्डारोंका अवलोकन करते हुए हमें प्राचीन हस्तलिखित प्रतियोंका महत्व विदित हुआ और उनके संग्रह करनेकी प्रेरणा भी मिली।

समयसुन्दरजीकी 'पाप-छत्तीसी' नामक एक रचनाकी हस्तलिखित प्रति कला-मर्मज्ञ स्व० पूर्णचन्द-जी नाहर, कलकत्ता, की लायब्रेरीमें होनेकी सूचना श्री मोहनलाल देसाईने अपने निबन्धमें दी थी, उसे देखनेके लिए हम श्री नाहरजीके यहाँ पहुँचे और उनका संग्रहालय तथा कलाभवन देखकर हमारे मनमें भी प्राचीन कलापूर्ण वस्तुओंके संग्रहकी रुचि उत्पन्न हुई। इन दोनों प्रसंगोंका ही यह परिणाम है कि अब तक हमने करीब बीस हजार हस्तलिखित प्रतियाँ, अपने बड़े भाई स्व० अभयराजजी नाहटाके नामसे स्थापित "अभय जैन ग्रन्थालय"में संग्रहीत कर ली हैं और अपने पूज्य पिताजीकी स्मृतिमें स्थापित "श्री शंकरदान नाहटा कला-भवन"में हजारों चित्र, सैकड़ों सिक्के, मूर्तियां और अनेक कला-पूर्ण प्राचीन वस्तुओंका संग्रह कर सके हैं। इस संग्रहकार्यमें हमें जो सुखकर एवं कटु अनुभव हुए, उनमें कुछ यहां प्रस्तुत किये जा रहे हैं :--

बीकानेरके रांगड़ी चौकमें स्थित बड़े उपाश्रयमें करीब १०० वर्ष पूर्व शताधिक यति रहते थे और उनके पास हस्तलिखित प्रतियाँ भी काफी परिमाणमें थीं। उनमेंसे कुछ यतियोंका संग्रह तो बृहद् ज्ञान-भण्डारमें सुरक्षित हो गया है, पर लावारिस यतियोंके जो ग्रन्थ एक पंचायती-भण्डारमें पड़े थे, उचित सार-सम्हालके अभावमें वह विशिष्ट संग्रह अव्यवस्थित हो गया और उसे रद्दी समझकर एक बाड़ेमें डाल दिया गया था। उनमेंसे कुछ तो कृपाचन्द्रसूरिके शिष्य तिलोक मुनिने अपने पास इकट्ठे करके रख लिये और कुछ मुकनजी यतिने बटोर लिये। एक बार भँवरलालने उसके खन्तड़के कुछ पन्नोंको देखा तो उसे रद्दी समझकर डाले हुए ढेरमें बहुत-सी महत्वकी सामग्री मिलनेकी सम्भावना दिखाई दी। उसने उसी उपाश्रयके यति पन्नालाल-जीसे पूछा कि यह खन्तड़ इस तरह क्यों डाल रखा है? और इसके संग्रहका क्या प्रयोजन है? तो पन्ना-लालजीने कहा : यह रद्दी है पखाल भर पानी लगेगा, यति लोग इसका कूड़ा बना लेंगे। यह सुनकर भँवर-लालको बड़ा दुःख हुआ और उसने कहा कि इस कूटलेका जो भी मुनासिब हो पैसा दिलवाकर जिन्होंने इसे कूटा बनानेके लिये बटोर रखा है, उनसे हमें दिलवा दें। यति पन्नालालजीने मुकुनजीके एक शिष्यके अधि-कारमें जितना भी वह खन्तड़ (अव्यवस्थित हस्तलिखित प्रतियोंका ढेर) था, हमें खूब सस्तेमें दिलवा दिया। कुल २३ रुपयेमें कई छबड़ों-भरे ग्रन्थ हमारे हस्तगत हो गये। इस सौदेकी एक शर्तके अनुसार आचार्यों द्वारा यतियोंको दिये हुए सैकड़ों आदेशपत्र हमें वापस लौटाने पड़े जो कि तत्कालीन इतिवृत्तकी जानकारीके लिए बहुत ही उपयोगी थे। फिर भी उस संग्रहमें राजाओंके दिये हुए कई खास रुक्के, मस्त योगी ज्ञान-सागरजीकी कृतियोंके विकीर्ण पत्र एवं खरडे आदि काफी महत्वकी वस्तुएँ हमें प्राप्त हुईं। पर इस संग्रहको सुव्यवस्थित करनेमें हमें जो कठिन परिश्रम करना पड़ा वह भी चिरस्मरणीय रहेगा।

हस्तलिखित प्रतियाँ खुले पत्रोंके रूपमें होती हैं इसलिये उनके पन्ने इधर-उधर हो जानेपर विशेषतः अनेक प्रतियोंका जब ढेर कर दिया जाता है तो, उनमेंसे एक-एक पत्रको छाँटकर उस प्रतिको पूर्ण करना बहुत ही समय एवं श्रमसाध्य बन जाता है। हमने उन अस्त-व्यस्त पत्रोंको ठीक करनेके लिए एक पूरा कमरा रोका और आदि—पत्र, मध्यपत्र, अन्तपत्र, भाषा, लिपि, टंचपाठ, त्रिपाठ आदि शैलियोंके पन्नोंके अलग-अलग थाग लगाये और एक-एक पत्रको छाँट-छाँटकर सैकड़ों प्रतियोंको पूर्ण किया। ज्योंही एक प्रति पूर्ण होती, हमारा मन उत्साहसे भर जाता और इस तरह पूरी तत्परता एवं उत्साहके साथ उस कार्यमें कई महीने जुटे रहे। बीच-बीचमें भोलापक्षी—कबूतर आकर अपने पंखोंकी फरफराहटसे हमारे छाँटे हुए पन्नोंको जब उड़ाकर हमारे कामको गुड़-गोबर कर देता तो हमें इसपर बड़ा रोष आता, पर निरुपाय थे क्योंकि प्रकाशके लिए कमरेका दरवाजा खुला रखना आवश्यक था। गर्मीके दिनोंमें उन पत्रोंको छाँटते हुए हमारा शरीर पसीनेसे तरबतर हो जाता और उन हस्तलिखित प्रतियोंके साथ जो बहुत-सी धूलकी गर्दी लगी हुई थी वह

हमारे शरीर और कपड़ोंके चिपक जाती। कई घन्टोंतक निरन्तर छँटाईका कार्य करनेके बाद जब हम कमरेसे बाहर आते तो हमारे शरीर और कपड़े इतने गन्दे हो जाते कि बिना नहाये और कपड़ा बदले किसीको मुँह दिखाना कठिन हो जाता। पर कई महीनोंके बाद जब हमें सैकड़ों महत्वपूर्ण ग्रन्थ उस खन्तड़मेंसे प्राप्त हो गये और बहुत-सी महत्वपूर्ण ऐतिहासिक सामग्री मिली तो हमें अपने श्रमका सुफल मिलनेसे बड़ा सन्तोष हुआ।

उसी समय तिलोक मुनिने उसी रद्दीके ढेरमेंसे छाँट-छाँटकर या पन्नोंको इकट्ठाकर २५ रुपयेमें खरीदे हुए खंतड़को कई बन्डलोंमें बाँधकर रखा था। हमने उनसे यह प्रार्थना की थी कि यह सारा खन्तड़ हमें बेच दें, क्योंकि इसी ढेरके बहुतसे पन्ने हमारे खरीदे हुए संग्रहमें आ चुके हैं। तिलोक मुनिने कहा कि मैं ज्ञानको बेचता नहीं, समय मिलनेपर इसको ठीक करूँगा। हमने उनसे कहा कि बहुत दिनोंसे आपके पास ये बन्डल यों ही पड़े हैं और आपको अबतक समय ही नहीं मिला तो कृपया उनको हमें ही दे दें, हम ठीक कर लेंगे। उनको भी हमारी यह बात जँच गई। फलतः खन्तड़मेंसे संगृहीत सारे बन्डल हमें निःशुल्क दे दिये और खरीदे हुए ग्रन्थोंका मूल्य ३० रुपया देकर हम वह सारा संग्रह ले आये। इससे हमें अपने यहाँकी अपूर्ण प्रतियोंको पूर्ण करनेमें बड़ी सुविधा हो गई।

इसी खन्तड़का कुछ अंश जो यति मुकनजीने अपने पास रख छोड़ा था; उसमें संवत् १४८८ की लिखी हुई एक तपागच्छ-गुर्वावलीकी ३ पत्रोंकी प्रतिके २ पत्र भी थे। इस प्रतिका तीसरा पत्र हमारे खरीदे हुए खन्तड़में आ चुका था। इस महत्वपूर्ण प्रतिको पूर्ण करनेके लिए हमने मुकनजीसे बहुत अनुरोध किया तो अन्तमें उन्होंने उन दो पत्रोंका मूल्य एक रुपया माँगा। हमने इसे भी जीतका ही सौदा समझा और तत्काल मुँहमाँगा देकर उन दोनों पत्रोंको खरीद लिया। वैसे दो पत्रोंकी अपूर्ण प्रतिका दो आना भी कोई नहीं देता, पर हमें तो अपनी प्रतिको पूर्ण जो करना था।

प्राचीन वस्तुओंका संग्रह केवल पैसोंके द्वारा ही नहीं होता। इस कार्यमें काफी मिलनसारिता व होशियारीकी जरूरत होती है जो कार्य पैसेके बलपर नहीं होता उसे सम्पन्न करनेके लिए अन्य उपाय सोचने पड़ते हैं, जो व्यक्ति अपनी अधिकृत वस्तु बेचना नहीं चाहता उससे वह वस्तु कैसे ली जा सकती है। इस सम्बन्धकी हमारी एक रोचक अनुभूति यह है कि उस व्यक्तिकी रुचि एवं प्रकृतिका पता लगाना चाहिये। फिर उसीके अनुसार कोई उपाय करनेपर सफलता मिल सकती है। इस सम्बन्धमें हमारा एक संस्मरण यहाँ दिया जा रहा है।

बीकानेरमें पूनमचन्दजी श्रीमाली नामक एक सज्जन मंत्रविद् विद्वान् थे। मुझे किसीसे विदित हुआ कि उनके यहाँ बहुतसे हस्तलिखित जैनग्रन्थोंकी प्रतियाँ पड़ी हैं। तत्काल मैं उनके पास पहुँचा और उन्होंने अपने सहज सौजन्यवश उन प्रतियोंको मुझे दिखा दिया पर वे उन्हें पैसे लेकर देनेवाले नहीं थे। और मुझे किसी तरह भी उनको संग्रह कर लेना ही था। इसलिये श्रीमालीजीको एक दिन मैं अपने घर पर लाया और अपने संग्रहीत वस्तुओंको हमने कितनी सारसम्हालके साथ रखा है, ये दिखाते हुए उनसे कहा कि आपको मंत्रशास्त्रका शौक है, अतः हम अपने संग्रहके मंत्रों-संबंधी छाँटे हुए हस्तलिखित पत्रोंको आपको भेंट दे देंगे और आप कृपया हमें अपने यहाँकी प्रतियाँ हमारे संग्रहके लिए दें दें। हमारी यह सूझ-बूझ काम कर गई। हमारे संग्रहको सुव्यवस्थित देखकर वे प्रभावित हुए और अपने कामको शीघ्र प्राप्त होनेकी अभिलाषाने उन्हें हमारी इष्ट-सिद्धिके लिए तैयार कर दिया। हम दो बोरोंमें भरकर उनकी प्रतियोंको अपने यहाँ ले आये। इनमेंसे सचित्र प्रतियाँ भी थीं जिनको खरीदनेपर मूल्य शताधिक रुपये होता।

अब मेरे अविस्मरणीय एवं कटु अनुभवोंको भी सुनिये।

मारवाड़ जंक्शनके एक यतिजीके अधीनस्थ बहुत-सी हस्तलिखित प्रतियोंके बन्डल वहाँके जैन-मंदिरकी एक आलमारीमें पड़े थे। मैं उन्हें देखने गया तो उन्होंने चाभी नहीं मिलने आदिका कहकर टाल-मटोल की। पर मुझे उन प्रतियोंको देखना ही था इसलिये मैंने एक पत्थरसे लेकर आलमारीके तालेको किसी तरह खोल डाला पर आलमारीके फाटक खुलते ही मुझे मर्मान्तक दुःख हुआ क्योंकि वर्षाका पानी उस आलमारीमें प्रविष्ट होनेसे सारे ग्रन्थ चिपक कर थेपड़े हो गये थे और क्षुद्र जन्तु वहाँ उत्पन्न हो गये थे कि उन प्रतियोंके हाथ लगाते ही असंख्य जन्तु बाहर भागने लगे। फिर भी यतिजीसे मैंने कहा कि इन नष्ट हुए ग्रन्थोंको भी हमें दे दें पर वे इसके लिए तैयार नहीं हुए और दूसरी बार जानेपर विदित हुआ कि उन सैकड़ों प्रतियोंको पानीमें बहा दिया गया।"

कहनेकी आवश्यकता नहीं है कि जो शोधरस श्री नाहटा (चाचा-भतीजे)ने आदरणीय जैन आचार्य श्री जिनकृपाचन्द्रजीसूरि व उपा० सुखसागरजीसे आस्वादित किया था, उसकी ललक प्रतिदिन बढ़ती ही गई। अधिकसे अधिक प्राप्त करनेकी प्रबल इच्छासे आप कहाँ-कहाँ नहीं गये? आप श्मशानोंमें भटके, उजड़े-उखड़े ध्वस्त-अवशेष खण्डहरोंमें भयंकर भुजंगमोंके बिलोंपर गहन अंधकारमें खोज की, भूखे-प्यासे, चिलचिलाती धूपमें मीलों पैदल गये, प्राचीन शिलालेखोंको पढ़ा और उनके छाया-चित्र प्राप्त किये। युगोंसे बन्द कपाटोंको आपने इस पवित्र कार्य हेतु उद्घाटित किया। कहीं चमगादड़ोंसे स्नेह-टक्कर हुई तो कहीं मधुमक्खियोंसे रार और तकरार। कई इंच जमे धूलदलको हाथोंसे इकट्ठा कर बर्तनमें भर उसे शिरपर उठाकर बाहर फेंकनेके अनेक अवसर आपके जीवनमें आये, क्योंकि उसके नीचे दबी सरस्वती आपका आह्वान जो कर रही थी। टूटे-फूटे, बन्द घरों और तहखानोंमें विषैले बिच्छू अपना साम्राज्य बना लेते हैं और यह साम्राज्य कभी-कभी बीसों हाथ लम्बा होता है। इस कष्टकर और भयंकर भूगर्भ मार्गको पार करके ही 'अब पड़ूँ तब पड़ूँ' जैसी जीर्ण-शीर्ण छतके नीचे कूड़े-करकटमें दबी सरस्वतीको पाना-सम्भालना-टटोलना और फिर उसे बोरियोंमें भरकर मस्तकपर रखकर बाहर निर्जन खंडहरमें एकत्र करना और अनेक दिनों तक चनेचबेने खाकर-पानी पीकर सप्ताहान्त कर देना साधारण बात नहीं है। शरीरपर परिधीत वस्त्र धूल धूसरित हो गये हैं, श्रमसीकरोंसे मिलकर रज-कण-दुर्गन्ध देने लगे है, हाथकी अंगुलियोंके नख कच्चे फर्शकी धूलिको साफ करनेके कारण सक्षत हो गये हैं, शिरके केश धूलराशिमें छिपकर अदृश्य हो गये हैं, दाढ़ी 'अस्तित्ववाद' की तरह पुरजोर मचलने लगी है, लेकिन शोधरस-मत्त श्री अगरचन्द नाहटाके मुखमण्डल पर एक विशेष आह्लाद है, एक छवि है, एक स्मिति थिरकन है और वह इस कारण कि जिसे आज तक किसीने नहीं पाया, वह उन्होंने प्राप्त कर लिया। जिस प्रकार कवियोंकी अमरगिरामें 'गोकुल गाँवको पैंडो ही न्यारो' है, ठीक उसी प्रकार 'शोध लगेको पैंडो भी' अद्भुत है; असामान्य है। शोध-पथिक होनेके नाते आप मंदिरोंमें गये, मस्जिदोंमें गये, ग्रन्थी तथा गुरुद्वारेको मस्तक झुकाया और उपाश्रयोंके भाग्य-विधाताओंका विश्वास अर्जित किया। इसी हेतु आपको अनेक पुरातत्त्वालय, हस्तलिखित-पुस्तकालय, बृहद्ज्ञान-ग्रन्थालय, सामाजिक संस्थान, व्यक्तिगत प्रतिष्ठान, टटोलने पड़े; पासके, दूरके, गाँवके, शहरके, आस्तिकोंके, नास्तिकोंके जो भी सारस्वत संग्रह थे; वे आपके सर्वस्व थे और वहां आप दौड़े गये। अगर कोई भंडारद्वार दीवारोंसे ढक दिया है तो आप मजदूरों और कारीगरोंके साथ मिलकर उसे तुड़वा रहे हैं, अगर किसी भंडारकी महत्त्वपूर्ण दीवार गिर पड़ी तो उसके स्थानपर नयी दीवार उठानेमें मदद कर रहे हैं। ऐसी ही स्थितिमें भवभूतिने कहा था :

'लोकोत्तराणां चेतांसि, को वा विज्ञातुमर्हति'

लोकोत्तर पुरुषके चरितको कौन जान सकता है?

किसी कविने ठीक कहा है कि संसारमें बहुत व्यसन हैं, लेकिन श्रेष्ठ व्यसन तो केवल दो हैं, प्रथम विद्या व्यसन और द्वितीय प्रभुभक्तिव्यसन।

व्यसनानि सन्ति बहुधा, व्यसनद्वयमेव केवलं व्यसनम्।
विद्याव्यसनं व्यसनं, अथवा हरिपादसेवनं व्यसनम्॥

हमारे चरित-नायक श्री अगरचन्द जी नाहटाका विद्या-व्यसन उच्चकोटिका है। वे प्रतिदिन दस घंटे पढ़ते-लिखते और मनन-चिन्तन करते हैं। उनके विद्या-व्यसनका इससे बड़ा प्रमाण क्या हो सकता है कि उन्होंने स्वश्रमसे 'श्री अभय जैन ग्रन्थालय' जैसी विश्वविश्रुत संस्थाको जन्म देकर पल्लवित, पुष्पित और फलित किया। इसमें लगभग चालीस हजार हस्तलिखित दुर्लभ ग्रन्थोंका संग्रह है और इतनी ही मुद्रित पुस्तकोंका। इसका समस्त श्रेय आपके विद्या-व्यसनी व्यक्तित्वको है।

श्री शंकरदान नाहटा कलाभवनमें आज तीन हजार दुष्प्राप्य चित्र, सैकड़ों सिक्के, हजारों प्राचीन मूर्त्तियाँ और कलाकृतियाँ सुरक्षित एवं संगृहीत हैं। इसका अनुमानित मूल्य दस लाखसे अधिक है। इस गौरवपूर्ण संग्रहालयको प्रथम श्रेणीके संग्रहालयोंकी श्रेणीमें बिठाना आपके विद्याव्यसनका ही सुफल है।

आपके विद्यावैभवसे प्रभावित होकर देशकी अनेक संस्थाओंने आपका सम्मान किया है। जैन सिद्धान्त भवन, आराने आपको 'सिद्धान्ताचार्य', जिनदत्तसूरिसंघने 'जैन इतिहास रत्न', दी इण्टरनेशनल अकादमी जैन विजडम एण्ड कल्चर, आराने 'विद्यावारिधि' माणिकलरी अष्टम शताब्दी समारोह पर 'संघरत्न' और राजस्थान भाषा प्रचार सभा, जयपुरने 'राजस्थानी साहित्य वाचसपति' जैसी उच्चस्तरीय उपाधिसे आपको विभूषित किया है। देशकी अनेक संस्थाओंने आपको अभिनन्दित किया है। कुछ अभिनन्दन पत्र गद्यमें हैं तो कुछ पद्यमें। अभिनन्दन पत्रोंको पढ़नेसे यह प्रभाव पड़ता है कि आपके विद्याव्यसनी स्वरूपने आपके प्रशंसकों को कितना गहरा प्रभावित किया है। मैं तो यह कहनेकी स्थितिमें हूँ कि शब्दावलीके माध्यमसे अपने भावोंको आपके चरणोंमें समर्पित करने वाले विद्यानुरागी-गुणग्राहक-समर्पक आपसे अभिभूत हैं, आपकी सरस्वतीसे अभिभूत हैं और आपके विद्याव्यसनसे अभिभूत हैं।

श्री श्वेताम्बर जैन महासभा उत्तर प्रदेशकी ओरसे इतिहासरत्न श्री अगरचन्दजी नाहटाके कर-कमलोंमें सादर समर्पित पद्यबद्ध अभिनन्दन-पत्रकी भावभरी पंक्तियाँ पठितव्य हैं—

श्री श्वे० जैन महासभा, उत्तर प्रदेश, की ओर से

इतिहासरत्न श्री अगरचन्दजी नाहटाके करकमलोंमें सादर समर्पित

अभिनन्दन-पत्र

जिनका विद्यातरु सदा, फलित रहा सर्वत्र ।।
उनके करमें भेंट है, यह अभिनन्दन-पत्र ।। १ ।।

× × ×

तुम अगरचन्द अभिधावाले पर निश्चय चन्द्र निराले हो ।
वह नभका चन्द्र कलंकित है, तुम विमल कीर्तिको धारे हो ।।
शुभपथसे किंचित् हटे नहीं, इसलिये नाहटा गोत्र मिला ।
है किन्तु महा आश्चर्य कि बीकानेरमें कैसे कमल खिला ।।
"गुदड़ीमें लाल छिपे रहते" यह तो हम हैं सुनते आये ।
"रेतेमें रत्न छिपे रहते" यह जान आज ही हैं पाये ।।
क्या कहें सरस्वति पुत्र ! तुम्हारा आलम एक निराला है ।
मनमध्य ज्ञान भगवान बसे हाथोंमें ज्ञानकी माला है ।।
इस ज्ञानयोगके अमृतमें अमरत्व ढूँढने वाले हो ।
तुम अगरचन्दसे अमर चन्द्रमा जल्दी बनने वाले हो ।।
संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश आदिके कितने ग्रंथ खोज डाले ।
इतिहास-हारकी लड़ियोंमें हाँ, कितने रत्न जोड़ डाले ।।
देवी शारदा महामुदिता, अमृतवर्षा तुमपर करती ।
अवसर्पिणी काल है, किन्तु ज्ञानकी निर्झरिणी सुखदा झरती ।।
है यथा सुगंधित अगर द्रव्य, है यथा चन्द्रमा सुधा भरा ।
तव कीर्ति-सुगन्ध प्रसारित हो अरु रहे ज्ञान घट सदा भरा ।।
श्री शान्ति प्रभूकी छायामें हस्तिनापुरमें जो आये हो ।
भागीरथवत् निज ज्ञान सुरसरी इस प्रदेशमें लाये हो ।।
बालाश्रम रूपमान सरसे भारतमें यह सुरसरी बहे ।
गुरु 'विजयानन्द'की जय-जय हो, श्री अगरचन्दकी कीर्ति रहे ।।
इस शिलान्यासकी यादगार इक शिलालेख-सी बन जाये ।
जैनोंकी युनीवर्सिटी बने, 'वल्लभ', 'समुद्र'के मन आये ।।

रचयिता
रामकुमार M. A., B. T.
हस्तिनापुर
दिनांक ३१-७-६३

आपकी विद्वत्ताके प्रति प्रणत
ज्ञानचन्द मोधा (सभापति)
विनयकुमार जैन (मन्त्री)
श्री श्वे० जैन० महा०, उत्तर प्रदेश

इस गद्यबद्ध सम्मान-पत्रको भी प्रस्तुत किया जाता है। यह सम्मान-पत्र राजस्थान साहित्य अकादमी, उदयपुरकी ओरसे हमारे चरित-नायक श्री नाहटाजीको समर्पित किया गया था :

राजस्थान साहित्य अकादमी (संगम) उदयपुर

सम्मान-पत्र

श्रीमान् अगरचन्द नाहटा

- राजस्थान प्रदेशकी साहित्यिक तथा सांस्कृतिक चेतनाके प्रसारमें आपके सृजन एवं अध्ययनशील व्यक्तित्वका विशिष्ट योगदान रहा है।
- आपने अपनी साधना तथा विद्वत्ता द्वारा राजस्थानकी प्रतिभाके विकासमें प्रेरणा प्रदान की है।
- आपके कर्तृत्व एवं परिशीलनसे राजस्थानका साहित्य और समाज लाभान्वित हुआ है।

अस्तु—राजस्थान साहित्य अकादमी [संगम] उदयपुर
यह सम्मान–पत्र सादर समर्पित करती है।

निदेशक, उदयपुर — अध्यक्ष

दिनांक ३०.५ १९६८

राजस्थान सरकार तो आपकी विद्वतासे परिचित थी ही, केन्द्रीय सरकारने भी आपकी अगाध ज्ञानराशिसे एक बार लाभ उठाना चाहा था। जब उक्त प्रसंगको श्री भँवरलालजी नाहटाके शब्दोंमें पढ़ना और भी आह्लादक होगा : "जब सरदार वल्लभ भाई पटेलने आबूको राजस्थानसे निकालकर गुजरातमें मिला दिया था, तो श्री नेहरू सरकारने राजस्थानकी न्यायोचित माँगपर सद्विचार करना तै किया, फलतः राजस्थानके प्रमुख विद्वानोंकी एक मंडली नियुक्त हुई, जिसने आबू प्रदेशमें भ्रमण कर ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, वेशभूषा, बोलचाल-भाषा, रीति-रिवाज, कला आदिपर रिपोर्ट दी जिसमें आप भी एक महत्त्वपूर्ण व्यक्ति थे और उन्हींकी रिपोर्टोंसे राजस्थानको उचित न्याय मिला था।[1]

हमारे चरितनायक श्री नाहटाका विद्याव्यसन लभगभग चार युग पुराना है। इस सुदीर्घ अवधिमें आपने लगभग चालीस ग्रंथ लिखे और सम्पादित किये हैं। तीन सौ पत्र-पत्रिकाओंमें आपके तीन हजार लेख प्रकाशित हो चुके हैं। आपके विद्या-व्यसनका लाभ, अनेक पत्र-पत्रिकाओंने आपको संपादक बनाकर अथवा सम्पादक मंडलमें स्थान देकर, लिया है। आपके सम्पादकत्वसे लाभान्वित होनेवाली पत्रिकाओंमें 'राजस्थानी', 'राजस्थान भारती', 'विश्वम्भरा', 'परम्परा', 'मरु-भारती', 'वरदा', 'अन्वेषणा', 'वैचारिकी' आदि प्रमुख हैं। 'राजेन्द्रसूरि स्मारक ग्रन्थको भी आपके सम्पादकत्वका गौरव प्राप्त होता है।

हमारे चरितनायक श्री नाहटाजीके विद्याव्यसनी कल्पवृक्षके सुमधुरफल मुक्तभावसे वितरित हुए हैं। कई लोगोंको ये अमरफल खिलाये गये हैं और अनेकोंको हठात् दिलाये गये हैं। शताधिक शोध-छात्रोंका मार्ग-दर्शन आपने किया है और कर रहे हैं। ऐसे व्यक्तियोंकी संख्या हजारोंसे ऊपर है जिनको आपने आवश्यक जानकारी एवं सम्बन्धित विषयसामग्री प्रदान की है। आप शोध-प्रबन्धोंके परीक्षक भी रह चुके हैं। आपने लाखसे अधिक हस्तलिखित प्रतियोंको खोज निकाला है और अश्रुतपूर्व-अज्ञात ग्रन्थोंका विवरण प्रकाशित किया है।

---

१. श्री भँवरलालजी नाहटाके संस्मरणसे उद्धृत।

आपका विद्याव्यसन उस भगवती भागीरथीके समान है; जिसका सुमधुर जीवन सबको सुलभ होता रहता है। आपको जो भी व्यक्ति, संस्था, विद्यालय, महाविद्यालय, विश्वविद्यालय, शोधसंस्थान सप्रेम निमंत्रित हैं, आप उनका आग्रह स्वीकार करते हुए अपनी असुविधाओं और कठिनाइयोंको ध्याना-न्तरित करते हुए, वहाँ पहुँचते हैं और बड़े ही शिष्ट तथा जिज्ञासु भावसे सुनते हैं और स्वाभिमत प्रस्तुत करते हैं। आप अखिल भारतीय स्तरके अनेक आसनोंके अभिभाषक रहे हैं; जिनमेंसे कतिपयके नाम उल्ले-खनीय हैं:—

१. महाकवि सूर्यमल मिश्रण आसन, उदयपुर।

२. नोपानी भाषणमाला, कलकत्ता विश्वविद्यालय, कलकत्ता।

३. मध्य प्रदेश शासन परिषद्, भोपाल।

४. महाराणा कुंभा संगीत समारोह, उदयपुर।

५. महाराणा कुंभा पंचम शताब्दी महोत्सव, चित्तौड़गढ़।

३. अखिल भारतीय लोक संस्कृति सम्मेलन, बम्बई।

७. व्रज साहित्य मंडल (साहित्य विभाग) उज्जैन।

राष्ट्रके विभिन्न राज्योंमें हुए आपके सम्मानसे एक बार यह फिर चरितार्थ हो जाता है कि विद्वत्ता नृपत्व कभी भी समान नहीं हैं, क्योंकि राजाकी पूजा स्वदेशमें होती है जबकि विद्वान् सर्वत्र पूजा जाता है—

विद्वत्त्वं च, नृपत्वं च नैव तुल्यं कदाचन। स्वदेशे पूज्यते राजा, विद्वान् सर्वत्र पूज्यते॥

आपने अन्धकारमें उपेक्षित भावसे बँधे पड़े ज्ञानभण्डारोंके हस्तलिखित ग्रन्थोंकी अनेक सूचियाँ बनाकर सारस्वत-संसारको उनका परिचय देते हुए उनके महत्त्वपर विद्वज्जनका ध्यान आकृष्ट किया है। आपने नई शोधकृतियोंके आधारपर नई मान्यताएँ स्थापित की हैं और प्राचीन भूलभरी मान्यताओंको अपदस्थ किया है।

आपके द्वारा सम्पन्न सूचीनिर्माणकार्यमें बीकानेरके बृहद् खरतर गच्छ भण्डार बड़ा उपसराकी सूचीका नाम विशेषतः उल्लेखनीय है। इसमें नौ ज्ञान भण्डारोंकी लगभग दस हजार प्रतियोंको छांटा-पढ़ा और उनका आद्यन्त लिख आपने पूर्ण विवरणके साथ सूचीबद्ध कर उन्हें तैयार किया है। इसी प्रकार आपने श्री जिनचारित्रसूरि ज्ञान भण्डार, उपाध्याय जयचन्दजी ज्ञान भण्डार, श्री जिनकृपाचन्द्रसूरि ज्ञान भण्डार तथा श्री अभय जैन ग्रंथालयकी हस्तलिखित करीब ६०००० प्रतियोंकी आवश्यक विवरण सहित सूची तैयार की है। आपने अनेक ज्ञानभण्डारोंकी सूचियोंका संशोधन भी किया है। आपके द्वारा अनेक अप्राप्य एवं अज्ञात छोटी-मोटी सैकड़ों रचनाओंकी प्रतिलिपियाँ की गई हैं और करवाई गई हैं। प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थोंके सूचीनिर्माणका श्रम और समय-साध्य कार्य वही कर सकता है, जिसकी बैठक तकड़ी हो, जिसका धैर्यधन अक्षय्य हो और जिसे शोधरसका चस्का लग चुका हो। कहनेकी आवश्यकता नहीं है कि ये समस्त गुण हमारे चरितनायक श्री नाहटाजीमें विद्यमान हैं। वे कष्टको कष्ट समझते ही नहीं, धीरताके वे अगाध सागर हैं—एक स्थान पर निरन्तर घंटों तक बैठे रहनेकी उनकी सहज प्रवृत्ति है और 'शोधरस' के तो वे 'चाखनहार' हैं। यही कारण है कि उनकी श्रमशीलता और विद्याव्यसनने इतनी विशाल ग्रन्थसूचियोंका निर्माण कर साहित्यसंसारको और भी सम्पन्न बनाया है।

आपके विद्याव्यसनका इससे अधिक और क्या प्रमाण हो सकता है कि आप स्वाध्याय-तल्लीनतामें खाना-पीना तक भूल जाते हैं। भोजन-वेलाका अतिक्रमण होते देख घरवालोंको बार-बार आपके पास सन्देश

भेजना पड़ता है कि 'भोजनका समय हो गया है, चलिए।' इस प्रकारके एक दो सन्देश तो श्री नाहटाजी 'हाँ-हूँ' में टाल देते हैं, लेकिन अपने बड़े भाईका कथन नहीं टाल सकते। तब वे 'बलादाकृष्ट इव' खड़े होकर भोजनार्थ चले जाते हैं और दो-चार ग्रास लेकर झटिति वापिस आप शोधरसपानार्थ स्वाध्यायमें लीन हो जाते हैं। इस प्रकार उनका अधिकांश समय विद्याव्यसनमें ही व्यतीत होता है। उनपर यह उक्ति सर्वतोभावेन चरितार्थ होती है—

विद्याशास्त्रविनोदेन, कालो गच्छति धीमताम्। व्यसनेन तु मूर्खाणां, निद्रया कलहेन च॥

अर्थात् बुद्धिमानोंका समय विद्याशास्त्ररूपी विनोदमें और मूर्खोंका निद्रा, कलह और व्यसनमें व्यतीत होता है।

श्री नाहटाजी विमल-मति हैं, इसलिए आप विद्यातीर्थमें अवगाहन करते हैं। वे ज्ञानी भी हैं, अतः ज्ञानसरोवरमें स्नान करना उन्हें अभीष्ट रहता है। संयमी और साधक होनेके कारण चित्ततीर्थ और श्री सम्पन्नता उन्हें दानतीर्थका पुण्यभाजन बनाती है। उनके इस विमल चारित्र्यको देखकर निम्नांकित श्लोक स्मृतिपथमें उभर जाता है :

विद्यातीर्थे विमलमतयः, ज्ञानिनः ज्ञानतीर्थे, धारातीर्थे अवनिपतयः, योगिनश्चित्ततीर्थे।
पातिव्रत्ये कुलयुवतयः, दानतीर्थे धनाढ्याः, गंगातीर्थे त्वितरमनुजाः पातकं क्षालयन्ति॥

विमल-मति मानव विद्यातीर्थोंमें स्नान करते हैं। ज्ञानी लोग ज्ञानके तीर्थोंमें; राजा असिधारातीर्थमें; योगी चित्ततीर्थमें, कुलांगनाएँ पतिसेवाव्रतमें और धनाढ्य दानतीर्थमें स्नान करते हैं। केवल साधारण मानव ही गंगातीर्थमें स्नान करते हैं और अपने पाप धोते हैं।

हमारे चरितनायक श्री नाहटा विशेषतः आध्यात्मिक और विचार-प्रधान साहित्य पढ़ते हैं। कहानी, उपन्यास, नाटक, यात्रा संस्मरण भी आप पढ़ते हैं; लेकिन यात्रा में। श्री आनन्दघनजी, देवचन्दजी, चिदानन्दजी, राजचन्द्रजी और बुद्धिसागर सूरि आपके प्रिय लेखक-कवि हैं। आपके स्वाध्यायमें उक्त साहित्यकारोंकी रचनाओंका विशेष प्रयोग-उपयोग होता है। उपन्यासकारोंमें आपने चतुरसेन, गुरुदत्त, प्रेमचन्द, प्रसाद और भगवतीप्रसाद वाजपेयीको पढ़ा है। शरत् बाबूके उपन्यासोंको आपने अपेक्षाकृत्त अधिक रुचिसे पढ़ा है। दर्शन भी आपका प्रिय विषय रहा है।

आप ग्रन्थप्रेमी ऐसे हैं कि जहाँ भी जाते हैं, वहाँके हस्तलिखित संग्रहालयोंको अवश्य देखते हैं। अगर कोई नई पुस्तक उपलब्ध होती है तो उसका आद्यन्त परिचय लिखकर हाथोंहाथ उसे प्रकाशनार्थ भेज देते हैं। आपकी एक धुन है कि नईसे नई चीजको पाठक-जगत्के सम्मुख अविलम्ब प्रस्तुत किया जाय। यही कारण है कि किसी नूतन तथ्योपलब्धि पर पूरा लेख लिख और प्रकाशनार्थ प्रेषित करनेके उपरान्त ही नाहटाजी दूसरे काममें लगते हैं।

किसी भी पुस्तकको पढ़नेका श्री नाहटाजीका ढंग अलग-सा है। श्री भंवरलालजी नाहटाके शब्दोंमें "ग्रंथालयमें जो भी ग्रंथ आते हैं, एक बार सभी पर दृष्टि-प्रतिलेखन हो जाता है और जो पढ़ने योग्य हैं, उन्हें पूरा पढ़ डालते हैं। उसमें यदि कहीं भी भूल-भ्रान्ति विदित हुई तो तुरत संशोधन अण्डरलाइन आदि कर डालते हैं। विशेष संशोधन योग्य हुई तो उन भूल-भ्रान्तियोंके सम्बन्धमें लेख भी लिख डालते हैं। प्रेरणादायक गुणोंके अनुकरण हेतु जनतामें उन ग्रंथोंका परिचय कराने वाले नोट भी लिखकर लेखरूपमें प्रकाशित कर देते हैं। कोई भी ज्ञान-भण्डारकी सूची या ग्रंथ जो उनके दृष्टिपथसे निकला है, देखते ही विदित हो जायगा, क्योंकि उस पर काकाजीके संशोधन-टंकण किये रहते हैं।"[1]

---

१. श्री भँवरलालजी नाहटाके संस्मरणसे उद्धृत।

श्री नाहटाजी खूब पढ़ते हैं और खूब लिखते हैं। उन्हें 'मूड'का रोग नहीं लगा है। जब चाहा बड़ा, छोटा, गंभीर, हल्का या भारी लेख लिख दिया। किसी भी विषय पर ५०–६० पृष्ठ और वह भी एक बैठकमें लिख देना, आपके लिए सामान्य बात है। प्रतिदिन इतना अधिक लिखने के कारणोंपर प्रकाश डालते हुए आपने जिज्ञासु लेखकको बताया कि 'मैं साठ पत्र-पत्रिकाओंमें नियमित रूपसे लिखता हूँ; क्योंकि सम्पादकोंका विशेष आग्रह रहता है और मैं किसीका आग्रह टालनेमें बड़ा ही दुर्बल हूँ।'

दूसरे कारण पर प्रकाश डालते हुए आपने बताया कि मेरे पास प्रायः हर प्रकारकी लभ्य, अलभ्य, और दुर्लभ पुस्तकोंका अच्छा संग्रह है। जो भी अन्य ग्रन्थालयसे आते हैं। उन्हें भी संग्रह कर लेता हूँ पत्र-पत्रिकाएँ आती हैं। मैं ज्यों-ज्यों अधिक पढ़ता हूँ; मेरा लेखक मचलता है और मैं लेखनमें संलग्न हो जाता हूँ।

आपने अपने अधिक लिखनेके तृतीय कारणको उपस्थित करते हुए बताया कि "मैं नया-पुराना सब पढ़ता हूँ। उसमें अनेक विचार ऐसे होते हैं जो मेरे विचारोंसे मेल नहीं खाते। फलस्वरूप वैचारिक मन्थन आरंभ हो जाता है और जब तक मैं अपने उक्त प्रकारके विचारोंको शब्दबद्ध नहीं कर देता, वे मेरे मस्तिष्कसे बाहर होते ही नहीं। इसलिए तद्भिन्न विचारोंके लिए कोई भी चिन्तनका अवसर नहीं मिल पाता। यही कारण है कि मैं अपने विचारोंको लिखकर अपना मस्तिष्क रिक्तवत् कर लेता हूँ और तब और किसी विचारको प्रश्रय दे पाता हूँ।

अज्ञात सामग्रीको शीघ्रसे शीघ्र प्रकाशमें लानेकी अदम्य ललकने भी आपके लेखन कार्यको बढ़ाया है। इस तथ्यको आपने चतुर्थ कारणके रूपमें प्रस्तुत किया।

पाँचवें कारणको स्पष्ट करते हुए श्री नाहटाजीने बताया कि 'मेरे जीवनमें नियमितता है—भोजन, शयन, स्वाध्याय, सब नियमबद्ध चलते हैं और लेखन भी नियमके अनुसार अग्रेसर होता है। मेरा अनुभव है कि नियमबद्धतासे काम अधिक होता है और अच्छा होता है। थोड़े समयमें मैं जो अधिक लिख लेता हूँ; इसका बहुत कुछ श्रेय मैं नियमितताको ही देना चाहता हूँ।

निरन्तर लगन और विद्याव्यसनने श्री नाहटाजीको अनेक भाषा-लिपियोंका पारंगत ज्ञाता बना दिया है। आप गुजराती, बंगाली, हिन्दी, संस्कृत, अपभ्रंश, प्राकृत और राजस्थानीके अत्यन्त निष्णात विद्वान् हैं। इन भाषाओंमें लिखते भी हैं और पढ़ते भी हैं। भाषाविज्ञान, इतिहास, आलोचना, दर्शन-धर्म, पुरातत्त्व, कला आपके प्रिय विषय हैं।

श्री नाहटाजीके साहित्यिक ज्ञान-वैभव, उनकी शोधरुचि और सुदृढ़ लगनके विषयमें उनके भ्रातृ-पुत्र शोधमनीषी, महान् लेखक-आलोचक और संपादक श्री भँवरलालजी नाहटासे अधिक प्रामाणिक और कौन हो सकता है? अतः उन्हींकी शब्दावलीसे हमारे चरितनायकके विद्याव्यसनी-सारस्वत स्वरूपको उपसंहृत किया जाता है—"आप साहित्यिकोंके लिए तीर्थरूप हैं और ज्ञानगरिमाकी चलती-फिरती 'इनसाइक्लोपीडिया' हैं। सैकड़ों वर्षोंमें एकाध व्यक्ति ही क्वचित् इस प्रकारकी निष्ठावाला और वह भी व्यापारी-वर्गमें प्राप्त हो जाय, तो बहुत समझिये। साधु-सन्तोंकी बात दूसरी है। वे भी इतना समय निरन्तर लगावें; वैसे कम मिलते हैं परंतु गृहस्थोंमें इतनी अप्रमत्त जागरूकता, एक अनुपम आदर्श और दृष्टान्त जैसी ही है।"[1]

हमारे चरितनायक श्री अगरचन्दजी नाहटाका जीवन धर्मसे ओतप्रोत रहा है। आपने धर्मके माध्यमसे अपने जीवनको पवित्र उन्नत और सफल बनानेका निरन्तर प्रयत्न किया है। परम श्रद्धेय जैन आचार्य

१. श्री भँवरलाल नाहटाके संस्मरणसे उद्धृत।

श्री जिनकृपाचन्द्रसूरिजीके ज्ञान एवं वैराग्य भाव-वर्धक भाषणोंका आपपर बड़ा ही प्रभाव पड़ा। आपने उपाध्याय श्री सुखसागरजी एवं मुनि श्री मंगलसागरजीके सारगर्भित आदेश-उपदेशोंका निरन्तर चिन्तन-मनन किया। उन्हींकी प्रेरणासे आप जैनधर्मके सिद्धान्त-ग्रन्थोंका अध्ययन करने लगे। जब श्री जिनकृपाचन्द्रसूरिजी महाराज बीकानेरमें थे तब आपने कुछ चीजोंको आजीवन त्यागनेका गुरु महाराजके सम्मुख संकल्प लिया, जिनमेंसे कतिपय निम्नांकित हैं—जुआ न खेलना, मांस-मदिरा सेवन न करना, परस्त्रीगमन न करना, रात्रि-भोजन न करना, मधु तथा जमींकन्द न खाना, गाँजा, तम्बाकू, भाँग न पीना, किसी भी दिशामें १५०० कोससे अधिक दूर नहीं जाना और पाँच लाखसे अधिक रुपयोंका संग्रह नहीं करना। (भवन भूमि आदि छोड़कर)।

आप बचपनसे ही जैनधर्म ग्रन्थोंको कंठस्थ करने लगे थे। समय-समय पर आनेवाले पर्व और उत्सवोंका नियम-पालन भी आप करते रहे। अपने पूज्य पिता एवं माताजीकी दैनिक धार्मिक क्रियाओंसे प्रेरणा लेकर आपने भी दैनिक, सामायिक प्रतिक्रमण आदि आरम्भ कर दिये थे। चौदह-पन्द्रह वर्षकी उम्रसे आप नित्य सामायिक करने लगे थे। कलकत्तामें सर्वसुखजी नाहटाके साथ नित्य पाठ करते रहनेसे गौतमरास-शत्रुञ्जय रास आदि भी आपको कंठस्थ हो गये थे। स्वर्गीय अग्रज श्री अभयराजजीके पास आपने आठ-नौ वर्षकी उम्रमें ही अष्टमी और चतुर्दशीको हरा न खानेका संकल्प ले लिया था। अठारह वर्षकी उम्रसे ही आप नित्य चौविहार, अभक्ष अनन्तकाय त्याग, अचार, बासीत्याग शीतला सातम आदिको ठण्डा न खाना। आर्द्रा नक्षत्रके बाद आम्रफल न खाना आदि सभी श्रावकोचित नियमोंमें रह रहे हैं। खाने-पीनेमें आप रसलोलुप नहीं हैं। जब जैसा और जितना मिला, आपने उसे सहर्ष स्वीकार किया। न कभी नमककी शिकायत की और न कभी मिर्चकी, न कच्चेकी और न पक्के की। इसीलिये पाचक आपके विषयमें कहते थे—

"इयां ने जिमावणों सगलासूँ सोरो। न लूण मांगै और न
मिरच, न साते री शिकायत करै और न ठंडै री।"

कभी-कभी आप ऊणोदरी करते हैं। आप प्रातः सायं भोजनके अतिरिक्त दिनमें और कुछ नहीं खाते। प्रायः प्रतिदिन पौरसी रहती है। आप चाय कभी नहीं पीते, दूध भी पौरसी आनेके बाद ही लेते हैं। नवकार श्रीसे पूर्व मुँहमें पानी तक नहीं डालते हैं। उपासनामें पूर्ण आस्था रखते हैं। जब सामायिकमें लग जाते हैं, तब चाहे कितना ही बड़ा विघ्न क्यों न हो, सामायिक पूरा करके ही उठते हैं। इस प्रसंगमें एक घटना पठितव्य है—

एक बार आपके मकानके सामने ही भयंकर अग्निकाण्ड हो गया। पास ही मिट्टीके तेलका गोदाम था। भाईजी वहाँ थे। उन्होंने हमारे चरितनायक श्री नाहटाजीको सूचना दी और वहाँसे चले आनेको कहा लेकिन श्री नाहटाजी आसनसे डिगे नहीं। उन्होंने वहींसे कहा, "मैं अभी सामायिकमें हूँ, जो होगा सो होगा। चिन्ता न करें।"

थोड़ी देरमें अग्नि शान्त हो गयी और नाहटाजीके मकान गोदाम सुरक्षित बच गये। अब तो प्रायः प्रतिदिन आप सात-आठ सामायिक कर लेते हैं।

श्री नाहटाजी मूलतः अध्यात्म क्षेत्रके साधक हैं। दर्शन, धर्म, प्रतिक्रमण, सामायिकमें उनका मन रमता है। अध्यात्मने ही उन्हें साहित्य-क्षेत्रमें प्रविष्ट किया है। उनकी स्मरणशक्ति सदैव अच्छी रही है। वे बचपनमें सैकड़ों भक्तिपूजाके पद याद कर चुके थे और उन्हें सस्वर गाकर सामायिक पूजा करते थे। शनैः शनैः उनका भक्ति-भजनावलीका भाण्डार बढ़ता ही गया। आपने जिन भक्त कवियोंके भजन और पद याद कर रक्खे थे, उनके प्रामाणिक जीवनको जाननेकी जिज्ञासाने आपमें शोधकी प्रवृत्तिको जन्म दिया। अपने दैनिक पूजा-विधानमें जो भक्ति पद आप पढ़ते, सुनते और भक्त श्रोताओंको सुनाते थे, उससे आपमें पदोंकी मार्मिक

व्यंजना समझनेकी क्षमता उत्पन्न हुई और एक अच्छे आलोचकके संस्कार आपमें जमने लगे। आपकी अध्यात्मवृत्तिने आपको पवित्रता, नैतिकता और परदुःख-कातरता जैसे अमूल्य गुण दिये हैं। आपकी दृष्टिमें प्रत्येक धर्मग्रन्थ पवित्र है, उसका प्रतिपद और प्रति अक्षर पवित्र है, उसमें जो ज्ञान और विचार निहित हैं, वे अपने परिवेश और परिस्थितियोंके शाश्वत मूल्य हैं। आपकी इसी आध्यात्मिक साधनाने आपको उच्च-स्तरीय मानवताका विकास दिया है, हर्ष, शोकसे अप्रभावित होनेका अभेद्य कवच दिया है; जिसके बलपर आप वज्र-कठोर परिस्थितियोंमें भी प्रकृतिस्थ बने रहते हैं।

आपका सुदृढ़ विश्वास है कि मानवभव दुर्लभ है और उसके प्रत्येक क्षणका सदुपयोग करना हमारा सर्वोपरि कर्त्तव्य है। यही कारण है कि श्री नाहटाजी एक क्षण भी व्यर्थमें खोना नहीं चाहते और न अनावश्यक बातोंमें ही उनकी रुचि है। उनकी साहित्य-साधना आध्यात्मिक साधनाका माध्यम है। वे कहा करते हैं कि प्राचीन भक्ति साहित्य रसास्वादमें इन्द्रियोंकी चंचलता कम होती है, मनको परमशान्ति मिलती है और नरभवका सदुपयोग होता है। इसी साहित्य व्याजसे भक्तिसाधना, योगसाधना, समत्वसाधना और विकथा बचावका सुखद अवसर प्राप्त करनेके वे आदी हो गये हैं। उनका हृदय और चिन्तन इतना व्यापक, उदार और अध्यात्मकेन्द्रित हो गया है कि वे राजनीतिके रंगमंचपर अनुदिन घटनेवाली घटनाओंको विशेष महत्व नहीं देते। ऐसा प्रतीत होता है, मानों उस क्षेत्रको समझते हुए भी वे उससे नितान्त विमुख बने हुए हैं। यही कारण है कि वे दैनिक समाचार पत्र नहीं पढ़ते और न अपने पुस्तकालयमें ऐसा कोई समाचार पत्र खरीदकर मंगवाते ही हैं। अगर उनके सामने कोई राजनीतिका भक्त कुछ चर्चा भी चला देता है तो वे किसी धार्मिक पत्रिकाका लेख पढ़ना आरम्भ कर देते हैं और वक्ताकी ओरसे ध्यानान्तरित हो जाते हैं।

युगों बीत गये; श्री नाहटाजीने कोई सिनेमा नहीं देखा और खान-पानमें, रहन-सहनमें विशेष रुचि प्रदर्शित नहीं की। आपके जो विचार शतशः पत्रिकाओंमें प्रकाशित होते हैं, उनका एक ही प्रबल स्वर है और वह है 'आध्यात्मिकताका स्वर'। इसलिए श्री नाहटाजीके लिए यह कथन सर्वथा सत्य और समीचीन है कि उनका जीवनरस अध्यात्म है वे उसीमें जीते हैं और उसीमें जीना चाहते हैं।

श्री नाहटाजी अध्यात्मचर्चा करना भी चाहते हैं और सुनने-सुनानेके इच्छुक भी रहते हैं। विकथा चर्चामें वे जितने कृपण हैं; सत्कथामें उतने ही उदार, उत्साही और अतृप्त। अगर उन्हें उनकी जोड़ीका कोई पात्र; अध्यात्म प्रेमी मिल जाए तो घंटों और रात्रियाँ बिता देंगे और उससे और अधिक समय देनेके लिए आग्रह करेंगे। सत्संग, तीर्थाटन और अध्यात्म-पुरुषोंके संस्मरण-अनुभव सुनानेमें श्री नाहटाजीको आनन्द आता है और यह जानकर प्रसन्न भी होते हैं कि सज्जन-संकीर्त्तनके माध्यमसे वे पुण्यार्जन कर रहे हैं। नीचे हम श्री नाहटाजीके सत्संगमें सुने कतिपय संस्मरण-प्रसंग उन्हींकी शब्दावलीमें प्रस्तुत कर रहे हैं—

"संवत् १९८४-८५ में श्री कृपाचन्द्रसूरि और उनके शिष्य सुखसागरजीकी प्रेरणासे हम सपरिवार तीर्थयात्रापर गये। शत्रुञ्जय, पाटण और अनेक तीर्थोंके दर्शन करते हुए आबू पहुँचे और योगीराज मुनिश्री शान्तिविजयजी महाराजके दर्शन किये। देलवाड़ा जाते ये दर्शन रास्तेमें हुए थे। उन्होंने फरमाया—सोते-जागते, उठते-बैठते 'ॐ अर्हं नमः'का जाप करना चाहिये। हमने पुनः दर्शनकी इच्छा व्यक्त करते हुए योगीराजसे समय माँगा तो आपने स्वर-विचारकर कहा; नहीं आना, मिलना नहीं होगा। हमने दर्शनकी प्रबल इच्छाकी पूर्तिके लिए योगीराजको दिन भर खूब ढूँढा परन्तु वे नहीं मिले। उन्होंने जो फरमा दिया था, वही हुआ और हम दर्शनसे वंचित ही रहे।"

योगीराजके विषयमें और अधिक बताते हुए श्री नाहटाजीने कहना जारी रखा "श्री योगीराजकी स्मृति विलक्षण थी। वे अलौकिक अनुभूतियोंके पुरुष थे। उनके सानिध्यमें चित्त परमशान्तिसुखका अनुभव

करता था। एकबार मिलन-प्रसंगमें योगीराज श्री शान्तिविजयजीने कहा, 'नाहटा आगे आओ'। मैं आदेशपालन करता हुआ श्री चरणोंके समीप जा बैठा। उन्होंने फरमाया 'तुम ठीक हो नाहटा'। प्रसंग यह था कि श्री ज्ञानसुन्दरजीने ओसवालोंकी उत्पत्तिके सम्बन्धमें एक गद्य व लेख लिखकर उसका प्रकाशन कराया था। मुझे वे तथ्य प्रामाणिक प्रतीत नहीं हुए और उनका प्रतिवाद किया। योगीराजको इस पूर्वपक्ष और उत्तर पक्षका पूर्णज्ञान था और पूर्वापरका विचारकर उन्होंने अपना निर्णय मेरे पक्षमें दिया था।''

धार्मिक संस्मरण-प्रसंगमें श्री नाहटाजीने बताया—''एक बार मैं प्रतिष्ठा-प्रसंगमें उम्मेदपुर गया। वहाँ श्री विजयशांतिसूरिजी व ललितसूरिजीकी देख-रेखमें वह आयोजन बड़ी धूमधामसे हो रहा था। फलोदीके श्री फूलचन्दजी झाबक, पू० शांतिसूरिजीके पास ही बैठे थे। श्री शांतिसूरिजी महाराज आर्यसमाज दम्पतीके सम्मुख मूर्त्तिपूजाका मंडन प्रस्तुत कर रहे थे। उनकी प्रवहमान वाग्धारा मंडन पक्षके प्रमाणोंका पुंज और आत्मविश्वास संद्योतक अभिव्यक्तिसे स्पष्ट आभास होता था कि कोई अलौकिक शक्ति उन्हें साहाय्य दे रही है।

श्री नाहटाजी ने अपने अनुभव प्रसंगमें बताया कि एक बार उमेदपुरमें श्री विजयशांतिसूरिकी उपस्थितिमें आगे पीछे बैठनेको लेकर वाद-विवाद चला। वाग्युद्ध और फिर डंडे चले—अनेक लोगोंमें उथल-पुथल मच गई। लोग उठकर खड़े हो गए। और आचार्य शान्तिसूरि जी की शांतिको कोसने लगे। लेकिन गुरु पू० शांतिसूरिजी महाराजके भव्य मुख मंडलपर कोई विकृति दृष्टिगोचर नहीं हुई; जबकि यह समस्त विवाद काण्ड उनके सम्मुख ही हुआ था। नाहटाजी कहने लगे कि 'गुरु महाराजके उस निर्विकार व प्रशान्त व्यक्तित्वका मुझपर बड़ा ही प्रभाव पड़ा। उनकी धीरता और सहनशीलता मेरे लिए श्रद्धेय थीं। वह विकट परिस्थिति ऐसी ही थी; जिसमें कोई भी वीर अधीर बन जाता; पर गुरुदेव नहीं बने। मेरे मानसमें उसी समय एक सूक्ति जग गयी :

"विकार हेतौ सति विक्रियन्ते, येषां न चेतांसि त एव धीराः"

विकार हेतुकी उपस्थितिमें भी जो विकारग्रस्त नहीं होते धीर वही हैं।

श्री नाहटाजी हम्पीके जैन योगी पुरुष श्री सहजानन्दघनजीके आश्रम भी पधारते रहे हैं। बीकानेरके उपनगर उदयरामसर शिवबाड़ी आदिमें भी उनके प्रवास आयोजित किये गये। श्री नाहटाजीके कारण अनेक जैन जैनेतर उनसे प्रभावित होते रहे हैं। वे महान् आत्मानुभवी योगीराज थे और योग-साधनाका अच्छा अभ्यास वे जानते तथा बताते थे। बीसवीं शताब्दीके आरंभसे अब तक हुए जैन महापुरुषोंमें आप मूर्धन्य कोटिके सन्त, ज्ञानी और साधक थे।

श्री नाहटाजी ने इसी प्रसंगमें बताया कि भद्रंकरविजयजी महाराज बड़े आध्यात्मिक पुरुष हैं। आपने आबूमें उनके दर्शन किये। श्री नाहटाजीका धार्मिक दृष्टिकोण उदार है। आपके लिए किसी भी धर्म अथवा सम्प्रदायका आध्यात्मिक संत उतना ही पूज्य है; जितना कि जैनधर्मका। आपकी दृष्टिमें संत सब समानभावसे पूजित होने चाहिये। हमें वस्त्रोंके रंगोंपर ध्यान नहीं देना चाहिये—किसी रंगका वस्त्र हो—वह पवित्रज्ञान पुंज एवं सदाचारी अगर है तो हमारा पूज्य है। अपने धर्मयात्राप्रसंगमें आपने निरंजन सम्प्रदायके श्री मंगलदासजी महाराज एवं अनेकों साधु-महात्माओंके विद्वानोंके दर्शन किए। गृहस्थी अध्यात्मप्रेमी श्री मणिभाई पादराकरके साथ भी आपका सत्संग होता था। श्री शुभकरणजी बोथरा जयपुरवालोंके साथ आपकी तत्त्वज्ञानकी चर्चा होती रही है और यह चर्चा रात-रातभर चलती रहती। आपने वैदिक धर्मावलम्बी संतों, मठाधीशों-मंडलेश्वरोंको कभी हाथसे नहीं जाने दिया। आप जैन पत्र-पत्रिकाओंके जितने नियमित और

ध्यानरत पाठक हैं; उतने सजग पाठक कल्याण आदि मासिक पत्रके हैं। आपके धर्म प्रधान लेख भी इसमें प्रायः छपते रहते हैं।

श्री नाहटाजीकी रुचि तीर्थाटनमें विशेष है। वे काम-काजमें से समय निकालकर धार्मिकयात्रापर प्रायः चले ही जाते हैं। उनके लिए पाटण और पांडीचेरी, कलकत्ता और कांची, पुरी और पालीताना, सब तीर्थस्थान श्रद्धास्थल हैं। उन्होंने पावापुरी, रामेश्वरम्, मीनाक्षी, वाराणसी, अरविन्द आश्रम, रामकिशन आश्रम, अयोध्या, मथुरा जैसे तीर्थोंमें भ्रमण ही नहीं किया; भक्तिभावके साथ उसका सदुपयोग किया है। श्रीनाहटाजीने ध्यान साधनाका प्रयत्न किया, लेकिन उससे आपके मनकी चंचलता कम नहीं हुई; अतः आपको योगसाधना और उसकी प्रक्रिया छोड़नी पड़ी और मनकी एकाग्रताके लिए स्वाध्यायको अपनाना पड़ा। स्वाध्यायने आपको चित्तवृत्तिका निरोध तो दिया ही, साथमें ज्ञान और आनन्द अनुभूति भी प्रदान की। आपको भक्तिपद सुनने और सुनानेका बड़ा चाव रहता है। भाव-विभोर, भक्ति रस-विस्मृत, भक्त हृदयके सच्चे सगायन उद्गार सुनकर आप खो-से जाते हैं; आपकी स्थिति समाधिस्थ योगी जैसी हो जाती है और जब आप स्वयं भक्तिपद गाते हैं तो श्रोतागण मुग्ध होकर रसलीन हो जाता है। सब इच्छा आपके सुमधुर मुखसे अधिकसे अधिक सुननेकी रहती है। बम्बई विश्वविद्यालयके गुजराती विभागके अध्यक्ष डॉ० रमणलाल शाहके स्वसुर एवं श्री ताजमलजी बोथरादि आपके पद-भजनोंके गायन पर मुग्ध हैं। वे साग्रह कहते हैं—"नाहटाजी ! आपके मुखसे वो भजन सुननेका है—बस ! एक तो और सुनाइये ही" और हमारे चरितनायक श्री नाहटाजी गाते हैं; फिर गाते हैं और गाते ही जाते हैं। जिस प्रकार हरि अनादि हैं उनकी कथा भी अनन्त है—ठीक उसी प्रकार भावुक भक्त हृदयोंके अगाध भाव कोश मंडलीमें सान्त कब हुए हैं—वही तो एक ऐसा स्थल है जहाँ गाने वालोंको गाते जानेकी और सुनने वालोंको अधिक सुनते रहनेकी ललक विवश करती है। भक्त नाहटाकी जो स्थिति बम्बईमें है; वही कलकत्तामें भी। श्री हनुमानमलजी बोथरादिके प्रयत्नसे सत्संगका आयोजन किया जाता है; भावुक भक्त मंडली उपस्थित होती है और हमारे चरितनायक श्री नाहटाजी अपने कलकंठोंसे भावविभोर कर देनेवाले पद सुनाते हैं; साथमें उनका हृदयंगमकारी विवेचन भी प्रस्तुत करते हैं। इस भक्ति गोष्ठीमें जो अनिर्वचनीय आनन्द उपलब्ध होता है; उसका वर्णन इस तुच्छ लेखनीसे होना नितान्त असंभव है।

वस्तुतः नाहटाजीके दो ही व्यसन हैं। आध्यात्मिक भक्ति-व्यसन और स्वाध्याय, शोध व विद्याव्यसन। गार्हस्थ्य जीवनमें कितनी ही व्यस्तता हो, इन दोनों व्यसनोंकी प्राप्तिके लिए श्री नाहटाजी समय निकाल ही लेते हैं। धर्मगुरुओंके व्याख्यानश्रवणमें कभी आलस्य नहीं दिखाते, समय पर वहाँ पहुँचते हैं और आद्यन्त श्रवण कर उसपर चिन्तन-मनन करते हुए घर लौटते हैं। नाहटाजी अध्यात्मप्रेमी हैं और आध्यात्मिक दृष्टिसे जो जितना ऊँचा साधक है; उनके हृदयमें उसके लिए उतना ही ऊँचा स्थान है। एक दिन वार्त्ता प्रसंगमें उन्होंने कहा था—"मेरी दृष्टिमें म० गान्धी जैसा महापुरुष इन सदियोंमें नहीं हुआ—जब मैंने सुना कि महात्माजीको गोली मार दी गयी तो मैं सामायिक करते-करते रो पड़ा—मुझे इतना दुःख और रुदन मेरे पिताजीके निधन पर भी नहीं हुआ था—जितना महात्माजीकी हत्या पर"।

गन्धः सुवर्णे, फलमिक्षुदण्डे, नाकारि पुष्पं खलु चन्दनस्य।
विद्वान् धनो, नृपतिः दीर्घजीवी, धातुः पुरा कोऽपि न बुद्धिदोऽभूत्॥

सोनेमें गन्ध, ईखमें फल, चन्दनमें पुष्प, विद्वान् धनी और नृपतिको विधाताने दीर्घजीवी नहीं बनाया, क्योंकि वैसा करनेके लिए किसीने उसे सुझाया ही नहीं।

हमारे चरितनायक श्री अगरचन्दजी नाहटाके लिए यह उक्ति यथार्थ नहीं है क्योंकि वे विद्वान् भी हैं और धनी भी हैं। उनकी गणना अच्छे सीमन्त सेठोंमें की जाती है। पंजाब, बंगाल, आसाम और दिल्ली प्रभृति नगरोंमें आपका अच्छा व्यापार है और वह भी आजका नहीं, सैकड़ों वर्ष पुराना। साहित्य संसारमें जिस प्रकार आपकी ख्याति है, विद्वान् आपकी बातको सुप्रामाणिक समझते हैं, उसी प्रकार व्यापार-क्षेत्रमें भी आपकी सुप्रतिष्ठा है, व्यापारी आपकी सम्मतिको जैसे अनुपालनार्थ ही सुनते हैं। जिस प्रकार समाजमें आपकी लोकप्रियता, निःस्पृहता और निर्लोभता प्रसिद्ध है, उसी प्रकार नाहटा वंशमें भी आपकी अत्यन्त प्रतिष्ठा है। बड़े-छोटे सब आपको श्रद्धाभाजन समझते हैं। परिवारकी पवित्र भावना है कि जिस दुकानमें आपका नाम रहता है; वहाँ सुख, शान्ति और श्री सम्पन्नताका अधिवास होता है। यही कारण है कि परिवारकी अधिकांश दुकानोंमें आपका नाम दिया गया है—जैसे—

१. श्री मेघराज अगरचन्द—संवत् १९८० में स्थापित बड़ी गद्दी, सिलहट

२. श्री मेघराज अगरचन्द—रिटेल कपड़ेकी दुकान, सिलहट

३. श्री अगरचन्द नाहटा—गल्लेकी दुकान, सिलहट

४. श्री अभयकरण अगरचन्द—थापड़

५. श्री अभयकरण अगरचन्द—बोलपुर

६. श्री अगरचन्द नाहटा—बाबुर हाट

७. श्री ए० सी० नाहटा एण्ड कंपनी—बम्बई

साहित्य संसारने जिस प्रकार आपका अनेकशः सम्मान किया है, और अनुवर्ष अधिकसे अधिक सम्मानित करनेको लालायित है, उसी प्रकार व्यापारी वर्गने भी आपका भूरिशः सम्मान किया है। संवत् १९९० के आसपासकी एक ऐसी ही घटना हमारे चरितनायकके मुखसे सुननेको मिली थी, उसे प्रायः उन्हींके शब्दोंमें उद्धृत कर रहा हूँ—

"बाबुरहाटकी हमारी दूकान विशेष प्रसिद्ध थी; यह ढाकाके पास थी; तांती कपड़ेका बाजार था; मारवाड़ीकी यही दुकान थी। वहाँ हमारे मुनीमजी थे किसनलालजी बुच्चा। बड़े जोरदार आदमी, साख भी जोरदार—साहसी कर्मठ, अपार सम्पदाके स्वामी जैसा प्रभाव—जैसे सारे हाटको खरीदनेकी शक्ति रखते हों—सबसे अधिक माल खरीदते थे, बड़े-बड़े सशस्त्र सिपाही सुरक्षा और शानके लिए बाहर खड़े रहते। उस गाँवके जमींदार पर नाहटा-व्यापार और वंशका इतना अधिक प्रभाव पड़ा कि जब हमारे चरितनायक वहाँ प्रथम बार पहुँचे तो उनके लिए जमींदार साहबने बड़ी सुन्दर चमकती हुई सुसज्जित कहारोंकी पालकी भेजी; सैकड़ों आदमी स्वागतके लिए भेजे, पुष्प मालाओंकी तो संख्या ही नहीं थी; अपने अधिकारियोंको समारोहके लिए भेजे—सारा गाँव ही स्वागतके लिए जैसे उमड़ पड़ा, हर जबानपर एक ही वाक्य था "सेठ अगरचन्द नाहटा आइसैं, अगरचन्द नाहटा आइसैं"।

श्री नाहटाजीकी व्यापार और साहित्य दोनोंमें समान गति है। आप अपने सेवा भावी कर्मचारियोंको एक मासमें जो व्यवस्था और मार्गदर्शन देते हैं, वह साल भरके लिए पर्याप्त रहता है। वर्षान्तमें आप फिर निर्देश दे देते हैं; जिसका स्वरूप अग्रिम वर्ष के लिए पर्याप्त रहता है। और इस प्रकार आपके पथ-दर्शनमें व्यापार चलता रहता है। आप वर्ष भरके खाता पत्रोंकी परीक्षा कुछ ही घंटोंमें कर देनेमें सक्षम हैं और इसी तीव्र गतिसे सालभरका काम घंटोंमें ही जाँच लेते हैं। नाहटावंशके विभिन्न स्थानोंमें चल रहे व्यापार-व्यवसायमें जो सबसे बड़ा और तनिक पेचीदा है; उस व्यापारको आप ही संभालते हैं और सबसे कम समय में। एक बार आपने प्रतिदिनके मालके स्टाकको जाँचते रहनेका आदेश दिया; गुमाश्तोंने इस कामको असंभव

बताते हुए कहा कि सारे मालको रोज चैक करना उनके बलबूतेसे बाहरकी चीज है। श्री नाहटाजी ने उनकी असुविधाओंको और असमर्थताओंको बड़े ध्यानसे सुना और एक अतिरिक्त कर्मचारीकी नियुक्ति करके उसे ऐसा सुगम पथ बताया कि वह काम जो कठिन समझा जाता था; बड़ी सरलतासे और आनन-फाननमें होने लगा। मुनीम-गुमाश्ते सेठ साहबकी इस प्रतिभासे अभिभूत हो गये। जो व्यापार आप देखते हैं; आपने उसकी नई पद्धति दे दी है। उसपर चलनेसे समस्त कार्य सुखकर हो गया है और लाभ-हानि दर्पणके समान प्रस्तुत हो जाते हैं, इससे समय और श्रम दोनोंकी बचत होती है। आपकी बैठक बड़ी सशक्त है। जबतक सारा हिसाब नहीं मिल जाता; आप उठनेका नाम तक नहीं लेते और वर्षोंका काम कुछ ही घंटोंमें सम्पूर्ण कर जांच तत्सम्बन्धी निर्देश दे झटिति दूसरा काम समाप्त करनेकी धुनमें रम जाते हैं। आपका ध्यान घाटे और डूबनके कारणोंको पकड़नेमें बड़ा सिद्धहस्त है; इसलिए उनकी पुनरावृत्ति प्रायः नहीं होने दी जाती। आप अपने मुनीमों-गुमाश्तों आदिकी असुविधाओंको पूरे ध्यानसे सुनते हैं और उन्हें दूर करते हैं। आपके किसी भी कार्यमें विलम्ब अथवा टालमटोलकी स्थिति नहीं रहती। जो त्वरा निर्णय लेनेमें आप दिखाते हैं; वही त्वरा उसके क्रियान्वयनमें रहती है और उससे भी अधिक उसके भावी परिणामोंको जाँचनेपर। यही कारण है कि आपकी सजगता और सतर्कताके कारण व्यापारश्री अनुदिन समृद्ध होती जा रही है। पहिले आप लगभग आठ-दस मास तक व्यापार संलग्न रहते थे; लेकिन अब आठ-दस मास साहित्यसेवामें तल्लीन रहते हैं। वर्षमें एक-दो मास व्यापारजांचके लिए बड़ी कठिनाईसे निकाल पाते हैं। उन दो मासोंमें भी साहित्यसेवा साथ-साथ होती ही रहती है।

ज्यों-ज्यों आपकी उम्र अधिक होती जा रही है, त्यों-त्यों आपकी चिकीर्षा बढ़ती जा रही है; आप व्यापारसे और भी समय बचाकर साहित्यसेवामें तल्लीन हो जाना चाहते हैं। इस संदर्भमें आपके कतिपय वाक्य बड़े ही हृदयहारक हैं। आपके वे वाक्य वाक्य ही नहीं; अपितु स्वर्णाक्षरोंमें मँढाने योग्य एक महामहिम सारस्वतरत्नके आन्तरिक उद्‌गार हैं। वे प्रेरणाके स्रोत और प्रच्छन्न वेदनाके कदाचित् व्यंजक भी हैं।

''काम बहुत है, समय कम है, दूसरा कर नहीं सकता। इसलिए अधिक-से-अधिक करलेनेकी प्रबल इच्छा है। व्यापारिक कामोंमें भी साहित्यके काम बन्द नहीं करता, व्यापार तो संभाला हुआ है; संभल भी जायेगा; लेकिन साहित्यको कौन संभालेगा—चि० भंवरलाल! वह केवल छहमास ही तो मुझसे छोटा है; अब मेरा साहित्यिक काम कभी बन्द नहीं रहता; वह तो मेरी श्वासके साथ बँधा हुआ है—वह बन्द तभी होगा, जब मेरी श्वास बन्द होगी।''[1]

उत्तुंग शिखर मारवाड़ी पगड़ी, बलखाती सघन निर्दंभ मूँछें, भव्य गौरवमयी मुखाकृति, निर्मल नेत्र, भौंहें, सघन अन्वेषणरत-सूक्ष्मग्राहिणी दृष्टि, महापुरुषलक्षणोपेत कर्णरोम, सुन्दर स्थूलनासिकौष्ठ, व्यूढोरस्क, वृषस्कन्ध, भारी शरीर, सामान्य कद, बन्द गलेका लम्बा कोट, उसपर पड़ा आवर्त्तक सुखासीन श्वेत उत्तरीय, राजस्थानी विधिसे परिधीत धौतवस्त्र और साधारण उपानत्। यह बाह्य स्वरूप है श्री अगरचन्द जी नाहटाका; उस महामहिम मूर्धन्य विद्वान्‌का, जो लक्ष्मीपतियोंमें श्रीमन्त सेठ है तो सरस्वती पुत्रोंमें परम सारस्वत; शोधछात्रोंका जो परम संबल है तो निराश्रितोंका प्रबल आत्मबल। उसने ज्यों-ज्यों विद्यागुण अर्जित किया है; त्यों-त्यों वह विनयावनत होता गया है। विद्या अपने आपमें एक गुण है और वह गुण जब विनयोपेत हो जाता है; तब उसकी शोभा लोचनानन्ददायक काञ्चनमणि संयोगसे न्यून नहीं होती :

विद्याविनयोपेतो हरति न चेतांसि कस्य मनुजस्य।
काञ्चनमणिसंयोगो, नो जनयति कस्य लोचनानन्दम्॥

१. लेखकके साथ श्री अगरचन्दजी नाहटाका वार्ता-प्रसंग।

हमारे चरितनायक श्री नाहटाजी अत्यन्त धर्मभीरु हैं; उनका जीवनरस आध्यात्मिक साधना है; इसलिए वे मन, वचन और कर्मसे किसीका भी अहित करना तो क्या; सोचना भी नहीं चाहते; वे असत्य भाषण-परुषवचन और प्रवंचनकर्मसे बहुत दूर रहनेके अभ्यासी हैं। निरन्तर स्वाध्याय, तपश्चरणसे आत्म-कल्याणके ऊर्ध्वपथको प्राप्त करनेकी सतत सदिच्छता उनमें जाग्रत है, वे ज्ञानयज्ञके पुरोधा हैं; विद्वानोंका हार्दिक नमन और वन्दन उनका नित्य-नैमित्तिक कर्म है। संस्कृत कविकी निम्नांकित भावराशिके आलम्बन मानों श्री नाहटाजी ही रहे हों :

सत्यं तपो ज्ञानमहिंसता च, विद्वत्प्रणामं च सुशीलता च।
एतानि यो धारयते स विद्वान्, न केवलं यः पठते स विद्वान्॥

केवल पुस्तक अध्येता विद्वान् नहीं होता; विद्वान् तो वह है जो सत्य, तप, ज्ञान, अहिंसा, विद्वत्-नमन और सुशीलता जैसे सद्गुणोंको धारण करता है।

श्री नाहटाजी विद्वानोंके भक्त और गुणग्राही पुरुष हैं। वे किसीको देकर जितने प्रसन्न होते हैं; उतने लेकर नहीं। उनकी मान्यता है कि जो अपूर्व आनन्द त्यागमें है, वह ग्रहणमें नहीं है। यह उनका अभिलेख है कि अगर किसीने उनके लिए थोड़ा भी श्रम किया तो श्री नाहटाने उसके लिए दस गुणित किया। उनकी विद्वत्-पूजाका इससे बड़ा प्रमाण और क्या हो सकता है कि वे प्रतिवर्ष किसी न किसी विद्वान्का समारोहपूर्वक स्वागत सम्मान करते हैं और 'पत्रं पुष्पं फलं तोयं'के रूपमें १०१) रुपयोंकी राशि सश्रद्धा अर्पण करते हैं। इस स्वागत कार्यक्रममें वे बहुतसे राजस्थानी विद्वानोंको उक्त राशि प्रदान पुरस्सर सम्मानित कर चुके हैं :

श्री नाहटाजीके व्यक्तित्वमें परगुणदर्शन और परमहत्त्वप्रकाशनकी अदम्य भावना और विशिष्ट आकांक्षा सन्निहित है। उनके द्वारा विविध विद्वानोंको समर्पित ग्रंथोंकी समर्पणभाषामें उक्त तथ्यका स्पष्ट अभिव्यंजन होता है। 'बीकानेर जैन लेख संग्रह'को 'स्वर्गीय श्री पूरणचन्द्रजी नाहर'की पवित्र स्मृतिमें समर्पित करते हुए उन्होंने लिखा है—

"जिन्होंने अपना तन-मन-धन और सारा जीवन जैन पुरातत्त्व, साहित्य, संस्कृति और कलाके संग्रह, संरक्षण, उन्नयन और प्रकाशनमें लगा दिया और जिनके आन्तरिक प्रेम, सहयोग और सौहार्दने हमें निरन्तर सरस्वती-उपासनाकी सत्प्रेरणा दी; उन्हीं श्रद्धेय स्वनामधन्य स्वर्गीय बाबू पूरणचन्दजी नाहरकी पवित्र स्मृतिमें सादर समर्पित......................"

समर्पणकी भावव्यंजनासे स्पष्ट हो जाता है कि श्री नाहटाजी जैसा व्यक्तित्व उसी पर रीझता है जिसने तन-मन-धन और अपने जीवन तकको पुरातत्त्व, साहित्य, संस्कृति और कलाके संग्रह, संरक्षण, उन्नयन और प्रकाशनमें अर्पण कर दिया हो; मैं तो श्री नाहरजीको धन्यवाद देना चाहता हूँ जिन्होंने श्री नाहटा जैसे निकष-पुरुषसे उक्त प्रकारकी गुण-गरिमा मंडित शब्दावली प्राप्त कर ली। इस सन्दर्भमें श्री नैषधकारके निम्नांकित श्लोकका भावार्थ कितना समीचीन और अवसरोचित प्रतीत होता है। कविने वैदर्भीकी प्रशस्तिमें भावाभिव्यंजन किया है कि वह विदर्भ कन्या दमयन्ती धन्य है, जिसने अपने गुणप्रकर्षसे निषधराज-नलको भी आकृष्ट कर लिया। चन्द्रिकाकी प्रशंसा इससे अधिक और क्या हो सकती है; जो सागरमें भी ज्वार ला देती है।

"धन्यासि वैदर्भि! गुणैरुदारैः, यया समाकृष्यत् नैषधोऽपि।
इतः स्तुतिः का खलु चन्द्रिकायाः, यदब्धिमभ्युत्तरलीकरोति॥

श्री नाहटाजीके ग्रन्थ-समर्पणकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि या तो वे दिवंगतोंको समर्पण करते

हैं; अथवा पारिवारिकोंको अथवा वीतराग सन्तोंको अथवा उपयुक्त पात्रोंको । उनके इस समर्पण-मूल्यांकनसे यह तथ्य स्पष्ट हो जाता है कि श्री नाहटाजी भौतिक-समृद्धि अथवा किसी एषणाके निमित्त आदर्श और पात्रताका गला नहीं घोटते । उनके समर्पणमें पात्रगत औचित्यका पूरा ध्यान रक्खा जाता है । उनका समर्पण अन्तर्ध्वनिसे सम्बद्ध अधिक है और लौकिक तुष्टिसे कम । यही कारण है कि श्री नाहटाजीने अपना कोई ग्रंथ किसी स्वार्थ विशेष की सम्पूर्तिके निकृष्टतम उद्देश्यकी अवाप्तिके लिए—किसी अनधिकारीको समर्पित नहीं किया । इससे बड़ी गुण-ग्राहकता और क्या हो सकती है ? यह उच्चस्तरकी निष्काम सेवा-भावना है; जिसकी आज सर्वाधिक आवश्यकता है ।

श्री पूर्णचन्द्रजी नाहरने अगर अपने जीवनको साहित्य एवं कला-सेवामें लगा दिया था तो मोहनलाल दलीचंद देसाईने जैन एवं गुजराती साहित्य उद्धार-संरक्षणके लिए अपना सर्वस्व होम दिया था । वे निष्णात साहित्य महारथी थे; 'जैन गुर्जर कविओ भाग १.२.३ 'जैनसाहित्य नो संक्षिप्त इतिहास' जैसे अमर ग्रंथ रत्न उनके कीर्तिशरीरको अमर बनानेके लिए पर्याप्त हैं । हमारे चरितनायक श्री नाहटाजीने अपना ग्रंथ 'समयसुन्दर कृति कुसुमाञ्जली' इन्हीं प्रातःस्मरणीय श्री देसाईको समर्पित किया है क्योंकि श्री देसाई लिखित 'कविवर समयसुन्दर' निबंधने ही आपको साहित्यक्षेत्रमें आगे बढ़नेकी प्रेरणा दी थी। इसीको कहते हैं—

'त्वदीयं वस्तु गोविन्द ! तुभ्यमेव समर्पये'

किसी सारस्वतसे उऋण होनेका कितना श्लाघ्य पथ है यह जिसे श्री नाहटाजीने अपना रक्खा है । 'तेरा तुझको सौंपते, क्या लागत है मोर' जैसी पवित्र भावनाका दर्शन हमें श्री नाहटा-लिखित ग्रंथ 'युगप्रधान श्री जिनचन्द्रसूरि'के समर्पण सन्दर्भमें भी उपलब्ध होता है । उक्त ग्रंथ परमपूज्य श्री जिनकृपाचन्द्रसूरिजी महाराजको श्री नाहटाने निम्नांकित शब्दावलीमें समर्पित किया है, जो पठितव्य है:—

''आपके सदुपदेशसे हमारे हृदयक्षेत्रमें साहित्यानुराग और साहित्यसेवाका जो भव्य बीज प्रस्फुटित और पल्लवित हुआ है, उसीके फलस्वरूप यह प्रथम पुष्पाञ्जलि प्रेम श्रद्धा और भक्तिपूर्वक आपके कर-कमलोंमें सादर समर्पित है''—

वस्तुतः इस समर्पणमें इतिहास है, यथार्थ छिपा बैठा है । श्री नाहटाजीके अपने गुरुदेवके प्रति अभिव्यक्त ये उद्‌गार एक घटना है जो संवत् १९८४में घटित हुई थी ।

सारांश यह है कि नाहटाजीने अपनी श्रद्धाके पुष्प उन्हीं लोगोंके चरणोंमें चढ़ाये हैं जो अत्यन्त कर्मठ, त्यागी, परिश्रमी और लगनके धनी रहे हैं और जिन्होंने साहित्य, संस्कृति और उनके संरक्षण-उन्नयन तथा प्रचार-प्रसारके लिए अपना सर्वस्व होम दिया है । इस प्रसंगमें लोगोंका यह कथन अक्षरशः सत्य प्रतीत होता है कि श्री नाहटाजीके मुखसे अनौपचारिक भावमूलक हार्दिक 'शाबाशी' लेनी बड़ी कठिन है । ''वे सौ दे देंगे लेकिन 'शाबाशी' नहीं देंगे ।'' इसका कारण यह है कि साधुवाद अत्यन्त अभिभूत मनकी प्रतिक्रिया है और श्री नाहटाजी जैसे कर्मठ, श्रमशील, विद्वान् लेखकको अभिभूत करना साधारण खेल नहीं है । इसलिए उनके 'शाबाशी'की आशा वही रख सकता है; जिसने कबीरके निम्नांकित दोहोंका सार केवल समझा ही न हो अपितु उसे जीवनमें संघटित भी कर लिया हो :

सीस उतारै भुइं धरै, ता पर राखे पाँव ।
दास कबीरा यों कहै, ऐसा होय तो आव ।।१०२।।
कसत कसौटी जो टिकै, ताको शब्द सुनाय ।
सोई हमरा बंस है, कह कबीर समुझाय ।।१३०।।

सांईं सेवत जल गई, मास न रहिया देह।
सांईं जब लगि सेइहों, यह तन होय न खेह ।।१७१।।
ढारसु लखु मरजोवको, धँसि कै पैठि पताल।
जीव अटक मानै नहीं, गहि ले निकर्यो लाल ।।२६६।।[1]

हमारा तात्पर्य यह है कि श्री नाहटाजी की गुणग्रहण भावना अत्यन्त मृदु है; लेकिन गुण संसिद्धिकी उनकी कसौटी अत्यन्त कठोर। उनके सहस्रों मित्रों, आदरणीयों-पूज्योंमेंसे कितने हैं जो उन्हें अभिभूत कर सके हैं ? वस्तुतः बहुत कम।

'भये न केते जगतके, चतुर चितेरे चूर—बिहारी।

श्री नाहटाजी किसी वस्तुका, धनका अथवा समय-श्रमका अपव्यय नहीं करते। अतः वे सुव्ययी हैं। उनकी मान्यता है कि प्रत्येक वस्तुका अधिकसे अधिक उपयोग-लाभ लेना चाहिये; जो ऐसा नहीं करते; श्री नाहटाजीकी दृष्टिमें वे या तो नादान हैं अथवा मदान्ध। उनका सुप्रतिष्ठित तर्क है : फलको आधा ही खाकर फेंक देनेमें जैसे बुद्धिमत्ता नहीं है अथवा किसी अभ्यास पुस्तिकाका केवल आधा पृष्ठ लिखकर छोड़ देनेमें कोई सार नहीं है; उसी प्रकार प्रत्येक उपभोग्य वस्तुको पूरे उपभोगमें न लेना कमसे कम समझदारी तो नहीं है। यह कथन श्री नाहटाजीके लिए अक्षरशः सत्य है कि जहाँ कार्डसे काम चलता है; वहाँ लिफाफा नहीं खर्चेंगे; वे साहित्यके रोकड़िये या मुनीम हैं।[2] लेकिन इसका तात्पर्य यह कदापि नहीं है कि श्री नाहटाजी कंजूस और बद्धमुष्टि हैं। वास्तविकता तो यह है कि जिस व्यक्तिने लाखों रुपये व्यय करके कला और सरस्वती-का उद्धार किया और सौ पचास प्रतिदिन व्यय कर कलात्मक वस्तुएँ अथवा पाण्डुलिपियाँ अब भी खरीदता है; जो भूखों, पीड़ितों और कष्टप्राप्त व्यक्तियोंको अन्न, वस्त्र, औषध आदिसे साहाय्य पहुँचाता है; जो बेकारोंको काम देकर भुगतान करता है; जिसकी इच्छा विद्वत्-पूजन और विद्वानोंका स्वागत करनेकी निरन्तर बनी रहती है; जिसके द्वार शोधछात्रों और विद्वानोंके लिए निःशुल्क आवास और भोजन कराने हेतु सतत उद्घाटित हैं और व्यापार क्षेत्र एवं गार्हस्थ्य दायित्वोंके लिए जो लाखों रुपये प्रतिवर्ष व्यय करता है; वह कंजूस कैसे हो सकता है ?

श्री नाहटाजी धैर्यधनी हैं। विपत्तियोंके टूटने वाले पहाड़ोंको आप अपने शान्त-गंभीर स्वभावसे सह लेते हैं। आपकी रुचि दर्शनमें विशेष है; अतः सुख-दुःख, ग्लानि आदि विषयों पर पढ़ते ही रहते हैं। दुःखकी व्याख्या करते हुए एक दिन श्री नाहटाजीने लेखक को बताया कि :

दुःखका प्रभाव तो बहुत अच्छा है; वह सजगके लिए वरदान है लेकिन उसका भोग वेदना प्रसू होता है। दुःखके भोगकी दशामें मानवको सामान्य परिस्थितिसे थोड़ा ऊपर उठकर तटस्थ दर्शक बननेका अभ्यास करना चाहिये। ऐसा करनेसे दुःखकी असह्य वेदना अपेक्षाकृत न्यून होती जायेगी और शनैः-शनैः गीतामें वर्णित समत्व योगकी स्थिति बनती चलेगी। मनकी अनुकूल वेदनीय दशा और उसकी प्रतिकूल वेदनीय स्थिति पर श्री नाहटाजीका गहन अध्ययन है और वे उसे जीवनकी प्रयोगशालामें भी उतारते हैं। आपपर अनेक संकट पड़े हैं, लेकिन आपने अपना प्राकृतिक सन्तुलन नहीं खोया। आपके घर लाखों रुपयोंकी चोरी हो गयी; पत्नी-का देहान्त हुआ और हमारी दृष्टिमें आपके घरपर अभूतपूर्व वज्राघात तब हुआ जब आपके घरका समस्त दायित्व संभालने वाली, एकमात्र २५ वर्षीया पुत्रवधू, अत्यन्त सुशील, चरित्रवती, सती, पुत्र धर्मचन्दजी

---

१. दोहासंख्या 'कबीर वचनावली' प्रकाशक-नागरी प्रचारिणी सभा काशीके अनुसार है।
२ श्री जमनालाल जैन वाराणसी—नाहटाजी : एक जीवन्त संग्रहालय।

नाहटाकी अर्धांगिनीको कुछ ही घंटोंमें विकराल, निर्दयी कालने कवलित कर घरका सुख, सार संभाल, नाहटाजीकी सेवा, देवर-ननदोंका आश्रय और स्नेह, सब कुछ छीन लिया।[1] जिसने भी यह सुना वह रोया, घरके सब प्राणी आँसूकी नदी बहा रहे थे; लेकिन श्री नाहटाजी प्रकृतिस्थ बने बैठे थे, मानों वे दुःखके इस कालकूटको पी गये थे और ज्ञानजलसे मोहपंकको धो रहे थे।

गीताकारकी भाषामें ऐसा व्यक्ति ही तो 'स्थितधी' कहलानेका अधिकारी है :

दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः, सुखेषु विगतस्पृहः।
वीतरागभयक्रोधः स्थितधीः मुनिरुच्यते॥

दुःखोंमें उद्वेगरहित, सुखोंमें स्पृहात्यागी, राग भय और क्रोधको निःशेष करनेवाला 'स्थितधी' मुनि कहा जाता है।

श्री नाहटाजीका व्यक्तित्व समन्वय-पाटवका विलक्षण उदाहरण है। आप व्यवसायकी दृष्टिसे व्यापारी, कर्मकी दृष्टिसे अध्येता, लेखक तथा रुचिकी दृष्टिसे अध्यात्म-प्रधान धार्मिक फक्कड़ संत हैं। ये तीनों ही स्वरूप प्रकृत्या परस्पर मेल नहीं खाते। व्यापारमें लक्ष्मीका निवास समझा जाता है। उसका लक्ष्य अधिकसे अधिक, येन केन प्रकारेण लक्ष्मीकी उपासना, उसका अर्जन और संरक्षण रहता है; जब कि लेखक और निरन्तर अध्येताका चित्त ज्ञानोन्मुखी होता है; वह चिन्तनकी आदर्शवादितामें मस्त रहता है; और अध्यात्मका क्षेत्र तो इन दोनोंसे भी दूरका है। उसमें लोकैषणाको तनिक भी महत्त्व नहीं दिया जाता।

श्री नाहटाजी कुशल व्यापारी, उच्चकोटिके अध्ययनशील लेखक और अध्यात्मसाधक संत हैं। प्रकृत्या विरोधी इन तीनों क्षेत्रोंकी एक व्यक्तित्वमें संहति कम आश्चर्यकी बात नहीं है। श्री नाहटा जैसे व्यक्तिका साहित्य और कलाप्रिय जीवन अत्यन्त व्ययशील है। वे चलते-फिरते हजारों रुपयोंकी कलात्मक चीजें खरीद लेतें हैं; हस्तलिखित पाण्डुलिपियाँ तो छोड़ते ही नहीं। इस अभिरुचिमें आपने लाखों रुपये व्यय कर दिये हैं और करते जा रहे हैं।

आपका ही कथन है कि "मैं जो भी कलात्मक वस्तु या प्राचीन पाण्डुलिपि खरीदता हूँ; वह बेचनेके लिए नहीं होती"। ऐसी स्थितिमें आपका साहित्यकलाप्रेम व्ययसाध्य है; और संयुक्त व्यापारमें जब कि इतर पारिवारिक केवल व्यापारी हैं; आपके इस बहुल व्ययको, व्यापारके लिए समय अदानको और गार्हस्थमें विशेष रुचि न लेनेको किस प्रकार प्रश्रय देते आ रहे हैं और तब जबकि आप भाइयोंमें सबसे छोटे हैं; और आज्ञावशवर्त्ती हैं। लेखकने इसी जिज्ञासाको श्री नाहटाजीके सम्मुख प्रस्तुत किया। श्री नाहटाजीने बताया कि आरम्भमें घरवालोंको मेरा साहित्य-साधनाका काम अच्छा नहीं लगता था। वे इस कामके प्रतिकूल भी थे। पिताजी-भाई और भ्रातृपुत्रोंकी यही इच्छा थी कि मैं एकान्तभावसे व्यापारमें लगा रहूँ और घरकी श्रीवृद्धिको दिन दूनी रात चौगुनी करूँ।

श्री नाहटाजीने कहा कि 'मेरे पारिवारिक अपनी विभिन्न रुचियोंमें हजारों-लाखों रुपये व्यय करते हैं; लेकिन मैं एक भी पैसा किसी अन्य रुचिमें व्यय नहीं करता; जो थोड़ा-बहुत व्यय करता, वह प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थोंको खरीदनेमें अथवा कलात्मक वस्तुओंमें। मेरे इस भावका पारिवारिकोंपर अनुकूल प्रभाव पड़ा और उन्होंने मुझे हजारों रुपये खरचनेकी छूट दे दी।

मेरे साहित्यिक श्रमका लाभ जिज्ञासु छात्रों और विद्वानोंको भी मिलने लग गया था और मेरे पिताजी प्रभृतिने इसको 'परपरोपकार' समझा और मुझे इस काममें लगे रहनेकी आज्ञा प्रदान की।

---

१. यह दुःखद निधन दिनांक २ अगस्तको हुआ था।

तीसरे कारणपर प्रकाश डालते हुए श्री नाहटाजीने बताया कि मेरे अनेक प्रकारके प्रकाशित लेखोंसे चारों तरफ यश फैला। देश-परदेश-सर्वत्र-सहस्रों मुखोंसे पिताजी आदि परिजनोंको मेरा सुखद यश सुननेको मिला, इसलिए वे बड़े प्रभावित हुए और उन्होंने साहित्यसेवाकी मुझे पूर्ण अनुमति प्रदान कर दी। चतुर्थ कारणकी ओर संकेत करते हुए नाहटाजीने बताया कि मेरी सच्ची लगन और ईमानदारीसे पिताजी प्रभृति बहुत प्रभावित हुए। वे समझ गये थे कि मेरे प्राण साहित्य और कलाके संरक्षण-अध्ययन और उन्नयनमें बसते हैं; इसलिए उन्होंने मुझे साहित्यसाधनासे विमुख करनेका बादमें कभी प्रयत्न नहीं किया। शनैः-शनैः वे मेरे प्रति इतने उदार हो गये कि मेरा एक क्षण भी गार्हस्थ दायित्वोंमें व्यय करना उन्हें अभीष्ट नहीं था। वे स्वयं कार्य कर लेते, पर मुझे न कहते और इस प्रकार मेरे पक्षधर बनकर मुझे अध्ययनका शुभ अवसर स्वयं तो देते ही; दूसरोंसे भी दिलवाते।

पंचम कारण यह भी था कि मैं व्यापार भी सम्भालता था और साहित्यसेवा भी करता था। जो लोग निरन्तर वर्षभर व्यापारमें लगकर जितनी दक्षता ला पाते थे; उसे मैं कुछ महीनोंके क्रमसे ले आता था और शेष समयमें पढ़ता-लिखता रहता था; इसलिए पारिवारिकोंकी ओरसे विशेष आपत्तिका पात्र मैं नहीं बना।

श्री नाहटाजीने अपने व्यक्तित्वमें व्यापार-अध्यात्म और अध्ययनके समन्वयके विषयमें लेखकको बताया कि मेरी मूल अभिरुचि अध्यात्ममें है। साहित्य मेरी आध्यात्मिक साधनाका साधन है और व्यापार लौकिक दायित्वोंके निर्वाहका साधन और प्रकारान्तरसे वह भी मेरी आध्यात्मिक साधनाका साधक ही बन गया है; बाधक नहीं है। व्यापारने मेरी न्यूनतम आवश्यकताओंकी सम्पूर्ति कर मुझे अर्थकी ओरसे निश्चिन्त बना दिया है; इसलिए मैं निर्द्वन्द्वभावसे अपनी साधना—अध्यात्म साधना कर लेता हूँ।

श्री नाहटाने कहा कि अगर मैं अर्थलोलुपताका चेरा बनकर व्यापार करता तो मैं अपनी साधनासे गिर जाता और तृष्णाकी तरुणता मुझे ले डूबती। अतएव मैंने आजसे ४० वर्ष पूर्व सम्पत्तिकी सीमा निर्धारित कर ली थी और वह भी केवल पाँच लाख। आज राज्य सरकारें भी तो यही कर रही हैं; जो मैंने चालीस वर्ष पूर्व कर लिया था। श्री नाहटाजीने बताया कि मैं सुख-दुःखके हर्ष-विषादके समस्त लौकिक दायित्वोंको निबाहता हूँ; लेकिन निर्लिप्त भावसे, केवल करणीय है; इसलिए करता हूँ। यही कारण है कि मेरी अध्यात्मसाधना मुझसे दूर नहीं हुई और मुझे संबल देना उसने छोड़ा नहीं। इसीको गीतामें निष्काम भाव कहते हैं। मेरे समस्त कार्य, विशेषतः लौकिक कार्य, निष्कामभावसे प्रेरित होते हैं। मैं उनमें अपनेको लिप्त नहीं करता, जलमें कमलकी भाँति जीवन जीनेका अभ्यासी हूँ—और उसी जीवन-पद्धतिपर चलते रहना चाहता हूँ।

श्री नाहटाजी शरीरस्थ महान् आलस्यको पास तक नहीं फटकने देते। उन्हें जो करना होता है, तुरत और उसी समय कर डालते हैं। वे समयका एक क्षण भी आलस्य, प्रमाद, तन्द्रा या गपशपमें बिताना नहीं चाहते। उन्होंने यह भलीभाँति हृदयंगम कर लिया है कि आयुका क्षणलेश स्वर्णकोटियोंसे भी प्राप्त नहीं हो सकता और उसीको अगर व्यर्थ गँवा दिया; तो उससे बड़ी हानि और क्या होगी!

आयुषः क्षणलेशोऽपि, न लभ्यः स्वर्णकोटिभिः।
स एव व्यर्थतां नीतः, का नु हानिस्ततोऽधिका॥

श्री नाहटाजीकी प्रवृत्ति संग्रहकारिणी है। उन्होंने उस प्रवृत्तिकी संतुष्टि प्राचीन हस्तलिखित ग्रंथों और प्रकाशित पुस्तकों एवं प्राचीन कलात्मक वस्तुओंके पवित्र संग्रहसे की है। उनका 'श्री अभयजैन ग्रंथालय' और 'शंकरदान नाहटा कलाभवन' इसका प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। आपने संवत् १९७६-७७ के आसपासकी

लिखित कक्षा चार-पाँचकी अपनी अभ्यास पुस्तिकाओंको भी बड़े ध्यानसे सुरक्षित रक्खा हुआ हैं। उस समयके लेख, पद, कवित्त और निबन्ध भी ज्योंके त्यों सुरक्षित पड़े हैं। जो चीज एक बार आपके हस्तगत हो जाती है, उसका अकारण त्याग आपको सह्य नहीं है।

नाहटाजी स्वावलम्बी हैं। हर काम अपने हाथसे करनेके आदी हैं। उन्हें काम करनेमें गौरवकी अनुभूति होती है। पुस्तकालयका छोटा-मोटा साधारण-असाधारण काम स्वयं ही सम्पन्न करते हैं और घर-बाजारका भी आप ही निबटाते हैं।

श्री नाहटाजीकी यात्रा 'कष्टयात्रा' होती है। श्री भँवरलालजी नाहटाके शब्दों में—

"आपकी रेल मुसाफिरी प्रायः कष्टकर होती है; क्योंकि पहलेसे रिजर्वेशन कराते नहीं और कार्य-व्यस्ततासे गाड़ी छूटते-छूटते जाकर पकड़ते हैं। भागते दौड़ते जीमे और तुरन्त चौविहार किया····। आपकी आवश्यकताएँ अल्प हैं; अतः मुसाफिरीमें इने-गिने कपड़े बीडिंगमें डालते हैं और उसमें भी भार अधिकतर पुस्तकोंका ही रहता है। मुसाफिरीमें पेटी रखते नहीं; यदि कुली नहीं मिला तो स्वयं ही बगलमें बीडिंग डालकर चल पड़ते हैं।"

कहनेकी आवश्यकता नहीं कि हमारे चरितनायक श्री अगरचन्दजी नाहटा सरस्वती और लक्ष्मीके वरद-पुत्र हैं। उनके जीवनका रस अध्यात्मरस है। वे अत्यन्त धर्मभीरु लेकिन चारित्र्यपालनमें वज्रसे भी कठोर हैं। श्रम और स्वावलम्बन उनका जीवट है। वे सुव्ययी, धर्मधनी, निर्भय, स्मृतिशील, प्रेरक, और समन्वलशील उदार महापुरुष हैं। ऐसे पुरुषोंके अवतरणसे ही धराका नाम वसुन्धरा सार्थक होता है।

श्री नाहटाजी भरे-पूरे परिवारके मुखिया हैं। आपके पाँच लड़कियाँ और दो लड़के हैं। सबसे बड़ी लड़की जेठी बाई है। शेष लड़कियोंके नाम हैं—शान्तिबाई, किरणबाई, संतोषबाई और कान्ताबाई। धर्मचन्द बड़े पुत्र और विजयचन्द छोटे पुत्र हैं। नाहटाजीने अपनी सन्तानको सुपठित और सुशिक्षित किया है। कान्ता और धर्मचन्द दशम कक्षोत्तीर्ण हैं। विजयचन्दने बारहवीं कक्षा उत्तीर्ण की है। आपके एक पोता और एक्कीस नाती-नातिनें हैं। आपकी वंशावली पृष्ठ २३ से २५ पर।

विद्वद्वरेण्य श्री अगरचन्दजी नाहटाके व्यक्तित्वमें ही उनका कृतित्व सन्निहित है। उन्होंने अनेकरूप होकर माँ सरस्वतीकी सेवा की है और करनेमें संलग्न हैं।

श्री नाहटाजीने हजारों अज्ञात कवियोंको और वीस हजारसे अधिक पाण्डुलिपियोंको सारस्वत संसार-के सम्मुख प्रस्तुत किया है। जो सरस्वती छिन्नभिन्न स्थितिमें जीर्णशीर्ण होकर अन्धकारावृत थी; उसे श्री नाहटाने स्वकरस्पर्शसे स्वस्थ-शुद्ध बनाकर सार्वजनिक एवं सार्वजनीन बना दिया है। उन्होंने अनेक ग्रन्थोंकी सारगर्भित एवं प्रमाणपुष्ट भूमिका-प्रस्तावनाएँ लिखकर नयेसे नये तथ्योंका उद्घाटन किया है। श्री नाहटाकी दृष्टि शोधमुखी है, इसलिए उनके द्वारा लिखित किसी भी लेखमें आप अधिकसे अधिक नये और अश्रुतपूर्व निष्कर्ष अवश्य प्राप्त करेंगे। श्री नाहटाजी शोधकर्ता तो हैं ही; वे शोधसहायक भी हैं। शोध करनेवाले जिज्ञासुओंकी हर संभव सहायता हेतु वे सदैव तत्पर रहते हैं। वे अपने विस्तृत अध्ययन, गहन चिन्तन और स्पष्ट निर्णायक प्रतिभासे हजारों छात्रों और विद्वानोंको लाभ पहुँचा चुके हैं और पहुँचाते ही जा रहे हैं। इस पवित्र कर्ममें न उन्हें आलस्य घेरता है और न तन्द्रा। निःशुल्क भोजन और आवासकी व्यवस्था भी प्रायः नाहटाजीकी ओरसे की जाती है। शोधछात्रोंके लिए श्री अभय जैन ग्रंथालयकी पुस्तकें तो आरक्षित हैं ही, वे आवश्यकता पड़नेपर इतर व्यक्तियों अथवा हस्तलिखित पुस्तकालयोंसे अपने दायित्व-पर पुस्तकें भी दिलाते हैं और इस प्रकार 'शोध-सहायक' के स्वरूपका भी सुन्दर निर्वाह करते हैं।

श्री नाहटाजीका एक स्वरूप प्राचीन ग्रन्थोंके उद्धारक और संग्राहकका भी रहा है। उन्होंने अपने पुस्तकालय श्री अभय जैन ग्रंथालयमें लगभग चालीस हजार प्राचीन पाण्डुलिपियोंका संग्रह किया है और उसे अधिक समृद्ध बनानेके लिए प्रतिपल जागरूक हैं। उन्होंने सहस्रशः हस्तलिखित ग्रन्थोंको द्रव्यकी महती राशिसे क्रय किया है और सरस्वती उद्धारके पवित्र कार्यको सम्पादित करनेके लिए वे कहीं भी जानेको समुत्सुक एवं तत्पर रहते हैं। उनकी इसी भावनाने उन्हें दुर्लभ, प्राचीन, पाण्डुलिपियोंके समृद्ध संग्राहकके रूपमें अखिल भारतीय स्तरपर ख्याति दान किया है।

श्री नाहटाजी कलाकृतियोंके प्रेमी-संग्राहक हैं। उन्होंने अपनी इसी कलाप्रियताके कारण शंकरदान कला भवन जैसी सुविख्यात संस्थाको जन्म दिया है। आज श्री नाहटाजीको प्राचीन कलात्मक वस्तु विक्रय करनेवाले घेरे रहते हैं और प्रतिदिन सैंकड़ों रुपयोंका क्रय होता रहता है।

साहित्यसंसारमें श्री नाहटाजी प्रखर आलोचक, प्राचीन एवं मध्यकालीन हिन्दी साहित्यके गहन अध्येता एवं अध्यात्मप्रेमी निबंधलेखकके रूपमें सुविख्यात हैं। बहुत कम सुधी इस तथ्यको जानते हैं कि श्री नाहटाजी अपने उद्दाम संयमशील, मर्यादावद्ध यौवनमें अत्यन्त समर्थ कवि रहे हैं। उनकी भावधारा सहजोद्भूत प्रतीत होती है और उनका चिन्तन जैनदर्शनभक्ति प्रवण।

श्री नाहटाजी भक्तिक्षेत्रके मुक्तक कवि रहे हैं। उन्होंने अधिकांशतः तीर्थंकरोंके प्रेरणा-प्रसू पावन चारित्र्य गुणोंको अपनी कविताका विषय बनाया है। श्री पार्श्वनाथ जिनाष्टकमें वे प्रभु पार्श्वनाथके अनुपम त्याग, असीम सहिष्णुता और धैर्य-गाम्भीर्य पर मुग्ध हैं।

सागर सम गंभीर धीर मंदार गिरो सम, विजयी कर्म सुवीर और नहीं आवै ओपम।
नाग भयंकर विषधर देखत विष तजि दीनौ, रहे चरण तुम देव सेव करतो गुण लीनौ ॥

भक्त कविका विश्वास है कि श्री पार्श्वप्रभु सर्वज्ञ विज्ञ हैं। सेवकोंके आश्रय और सन्मति हैं। कविका इष्ट सांसारिक सम्पत्ति अर्जन नहीं है। वह पार्श्वभक्तिके गुणप्रकर्षसे परमगतिप्राप्तिका अभिलाषी है—

हो सर्वज्ञ विज्ञ सब भावोंके तुम सन्मति। सेवक जन आधार सार तारो यह विनती।
अगर मदा मन मुदा भक्तिभर ललित गुणस्तुति। तव पद वंदन कर्म निकंदन, प्राप्ति परम गति ॥

आराध्यके अगाध गुणगरिमा भावमें निमज्जित भक्त कवि नाहटाका मानस यदाकदा अहेतुमें हेतुकी कल्पना भी करने लगता है—

रुचिर शान्त अम्लान्त पार्श्वमुख अतिहि मनोहर, देख इन्दु भयो मन्दु सदा आकाश कियो घर!

प्रभु पार्श्वनाथका मुख अत्यन्त मनोहर है। चन्द्रमा उसे देखकर मन्द हो गया और आकाशमें रहने रहने लगा है। कवि प्रभुके 'पारस' नामका माहात्म्य स्मरण कर अत्यन्त आह्लादित अनुभव करता है। उसकी दृष्टिमें पार्श्व नाम अपने आपमें गुणधाम है।

पार्श्वनाम गुणधाम अहा! पारस पत्थर भी! करे लोहको स्वर्ण, कहें फिर क्या प्रभुवर की!

कवि नाहटाके विविध भक्तिस्तवनोंमें श्री 'महावीर स्तवन' का उत्कृष्ट स्थान है। कविकी शैली अत्यन्त प्रौढ़, उक्तिमें सहज आलंकारिक छटा और भावोंमें अजस्र प्रवाह सब मिलकर सहृदय सामाजिकको भक्तिरसाम्बुधिमें अवगाहन प्रदान करते हैं। प्रारंभ-पदमें कवि वर्ण्यके अगाध गुणगणिमाविमंडित चरित्र और अपने अल्पज्ञत्वकी तुलनाके व्याजसे अपना विनयभाव प्रस्तुत करता है—

सिद्धारथ कुल कमल दिवाकर, त्रिशला कुक्षी मानस हंस।
चरम जिनेश्वर महावीर हैं, मंगलमय त्रिभुवन अवतंस ॥

यद्यपि उनमें अनुपम गुण गण, हैं अनन्त नहिं कोई पार।
पा सकता है; किन्तु भक्तिवश, कहता हूँ मैं वही विचार ।।

कविका मानस महावीर प्रभुकी सहनशीलताका स्मरण कर हठादिव मुखरित हो जाता है—

अहो अहो समता थी कैसी, सहे कष्ट मरणान्त अनेक।

सं० १९८४के वसंतपंचमीके शुभदिन खरतरगच्छके आचार्य श्री जिनकृपाचन्द्रसूरिजी बीकानेर पधारे और २ वर्ष विराजे तभी आपने गुरु-गीत बनाये। श्रीनाहटजीके व्यक्तित्वपर श्री कृपाचन्द्रसूरिजीका बड़ा प्रभाव रहा है। जैनदर्शन-भक्ति और शोधश्रमकी प्रेरणा उन्हें उक्त सूरिजी से ही प्राप्त हुई थी। गुरु कृपाचन्द्रजीके प्रति आभारके इस भारको कविने स्वरचित अनेक प्रशस्ति स्तवनोंमें अभिव्यक्त किया है। यथा—

श्री कृपाचन्द्रसूरिराज, देखी तोरी शान्त मुद्रा सुखकारी मेघराज के नंदन कहिये,
अमरा मात उदार चोमू गाम में जन्म आपको, भविजन आनन्दकार।

भक्तहृदय कवि गुरूपदेशवाणीपर मुग्ध प्रतीत होता है। वह उसे 'अमृतधारा'से उत्प्रेक्षित करता है :

बीकानेर में आप पधारे, सौभाग्य अपरंपार। देशना अजब सुहावनी, मानो अमृत की धार ।।

भक्त मानसका कथन है कि श्री कृपाचन्द्रसूरि किसी पूर्वपुण्यके प्रतापसे बीकानेर पधारे हैं और श्रावकोंको कृतार्थ किया है। वह उन दर्शकोंके भाग्यको साधुवाद देता है : जिन्होंने गुरुमहाराजके पावन दर्शन किये हैं। कविका मुमुक्षुहृदय अपने गुरुसे सहजभावमें मुक्तिका मार्ग भी पूछने लगता है :

कविके ही शब्दों में :

बताओ मुक्तिकी राह गुरुज्ञानी
भव जल को नहीं थाह गुरुजी—फिरतो फिरतो हार्यो।
तुम बिन नहीं कोई मेरा सहारा, तुमरी शरण में आयो ।।

इसी प्रकार—

कृपाचन्द्रसूरि राय रे, कोई पुण्य से आये,
शान्ति मूरत्ति सोहणीरे, सहुने आवे दायरे।
पंच महाव्रत कैहै धारी, रक्षा करै छहुँ काय रे ।।

कवि अनेक पदोंमें उपदेशकके रूपमें भी उपस्थित हुआ है। वह जीवको आत्मज्ञान प्राप्त करने को कहता है। उसकी आस्था जिनवचनश्रवणमें है। निंदा, विकथा, आदिसे बचनेकी उसकी शिक्षा सर्वहितकारी है। यथा—

चेतनजी करवो आतम-ध्यान
बुद्धितत्त्व विचारण फोरो, जिन वचन सुणन में कान।
निंदा विकथा मिच्छर भाषा छोड़ मुखसे करो प्रभुगान ।।

अनेक पदोंमें कवि पर्यूषण पर्व मनानेकी शिक्षा देता है। वह इसी प्रसंगमें सुपात्रको दान देनेका आग्रह भी करता है। यथा—

भवि भावधरी, पर्व पजूसण आराधो आनंद सुं।
ए पर्व भलो, छै सहु में सिरदार चिन्तामणि रत्न ज्यूं ।।
अमारी पड़हो बजवाइजे, जिनराज पूजन विधि सुँ कीजै,
वलिदान सुपात्र नै दीजै।

कवि नाहटाने 'अध्यात्म छत्तीसी' शीर्षक रचनाका निर्माण भी किया है। इसमें संसाररो राग विरतिका उपदेश दिया गया है। जैनदर्शनसे सम्बद्ध पारिभाषिक शब्दावलीका आधिक्य इसमें परिलक्षित होता है। कतिपय उदाहरण :

जो जो वस्तु दृश्यमान वह, वह पुद्गल रूप। राचो क्या सोचो जरा, तूँ परमात्म स्वरूप ॥
कर्मबंध नहीं वस्तुतः, जानो निश्चय एह। राग द्वेष नहिं होय जो, उड़े कर्मदल खेह ॥

कविने 'देवतत्त्व छत्तीसी' शीर्षक रचनाका निर्माण भी किया है। यह चिन्तनप्रधान जैनदर्शनसे सम्बद्ध पदावली है। साम्प्रदायिकोंके लिए इसका महत्त्व विशेष है।

कवि नाटहाने शोक गीतियाँ भी लिखी हैं। ऐसी गीतियों में श्रीजिनचारित्रसूरिजीके निधनपर रचित रचना विशेष रूपसे पठितव्य है। इस प्रकारकी गीतियों में भाव-शबलता के उदाहरण द्रष्टव्य हैं :

'जैन शासनके सितारे, स्वर्गमें जाकर बसे। चारित्रसूरि गुणके आकर, चल बसे! हा चल बसे ॥
गोत्र छाजेड़ पाबुदान सुत, मात सोनको धन्य है। जन्म उगणीस सौ बयालीस, चल बसे हा! चल बसे ॥

कहनेकी आवश्यकता नहीं कि युवक कवि श्री नाहटा भावोंकी दृष्टिसे अत्यन्त समृद्ध और भाषाकी दृष्टि-से अतीव समर्थ प्रतीत होते हैं। उनकी वाणीका स्फुरण सहज है। उसमें स्वाभाविकता और सरलता है। उनके अनेक पद पढ़ते समय भारतेन्दुयुगीन कवियोंकी कविताका स्मरण हो आता है। उनकी प्रतिनिधि कविता 'पार्श्व जिन अष्टकम्' है, जिसे हम यहाँ अविकल उद्धृत कर रहे हैं :

श्रीपार्श्व-जिन-अष्टकम्

श्री अगरचन्द नाहटा

गुण अशेष विश्वेश, प्रगट तुम गुणके सागर।
अष्ट कर्म निःशेष शेष, सब दुरित भयाकर ॥
रुचिर शान्त अम्लान्त, पार्श्व मुख अति ही मनोहर।
देख इन्दु भयो मन्दु, सदा आकाश कियो घर ॥१॥
राग द्वेषको त्याग, मार्ग निर्वाण दिखायो।
भये मुक्त गुणयुक्त, जन्म मरणादि गमायो ॥
नील वरण सुखकरण, श्याम पारस मन भायो।
अति प्रमोद मन मोद, प्रभु दरशन मैं पायो ॥२॥
सागर सम गम्भीर, धीर मंदार गिरि सम।
विजयी कर्म सुवीर, और नहीं आवै ओपम ॥
नाग भयंकर विषधर देखत विष तजि दीनौ।
रहे चरण तुम देव सेव करतो गुण लीनौ ॥३॥
ह्वै अनंत सुख मुख देखत जारत दुख दूरै।
अधम वृत्ति अज्ञान रूपी तमको चकचूरै ॥
पार्श्वनाम गुण धाम, अहा पारस पत्थर भी।
करे लोहको स्वर्ण, कहें फिर क्या प्रभुवरको ॥४॥

आतम गुण निष्पन्न, भिन्न पुद्गल परभाव।
भये बुद्ध अति शुद्ध, सिद्ध निज आतम स्वभाव ।।
आतम विभव अनंत, अंत जसु आवत नांहि।
तुलना इस जग मांहि, देनको वस्तु न पांहि ।।५।।
वाणी तव संताप ताप, भव अनल बुझावै।
भटकत भव जल मांहि, उन्हें सन्मार्ग सुझावै ।।
वस्तु स्वभाव स्वरूप, अनूप प्रकाशक भानु।
बहै अमिय रसधार, सार गुण कितै बखानु ।।६।।
स्यादवाद संयुक्त, युक्त नय भंग प्रमाण।
तत्वान्वेषण गहिर रुचिर, निष्पक्ष विनाण ।।
प्राकृत वाणी सुबोध बोध, पावत भट भविजन।
सत्य प्रिय अति हिय, असर तत्काल करत मन ।।७।।
भवसागरके पोत, स्रोत समता सिन्धुके।
बसे जाय मनभाय, सिद्धि सुस्थान जु नीके ।।
निर्विकार वीतराग आग क्रोधादि विनाशी।
गुणागार भव पार करो, यह वीनति प्रकाशी ।।८।।
हो सर्वज्ञ विज्ञ सब भावोंके तुम सन्मति।
सेवक जन आधार सार तारो यह वीनति ।।
'अगर' सदा मन मुदा भक्ति भर ललित गुण स्तुति।
तव पद वंदन कर्म **निकंदन, प्राप्ति** परम गति ।।९।।

श्री नाहटाजीमें मूर्धन्य कोटिके कविमें पाये जानेवाले गुण बीज रूपमें हमें उपलब्ध होते हैं। अगर निरन्तर अभ्यास बना रहता तो वे कविता क्षेत्रके वरवरेण्य कवियोंमेंसे एक होते। यह पूछा जानेपर कि आपने कविता करना क्यों छोड़ दिया, तो श्रीनाहटाने उत्तर दिया :

"कवितामें मेरी रुचि थी लेकिन जब मैंने देखा कि मेरेसे सहस्रगुणित अच्छे कवियोंकी कविता समाजमें उपेक्षित भावसे देखी जाती है। कोई भी व्यक्ति तन-मन-धन और सच्ची लगनसे उसका उद्धार नहीं कर रहा है। ऐसी स्थितिमें मेरे मानसने मुझसे यही कहा, कविता लिखनेका नहीं, उसका उद्धार करनेका समय है और मेरी अन्तः-ध्वनिने मुझे कविता करनेके क्षेत्रसे निकालकर प्राचीन कवियोंकी कृतियोंके शोधक्षेत्रका पथिक बना दिया।

श्री नाहटाजीने अपनी आत्मकथा भी लिखी है। अपने विषयमें तटस्थ भावसे लिखना कितना कठिन होता है यह इसी तथ्यसे स्पष्ट हो जाता है कि हिन्दी-साहित्यमें सच्चे अर्थमें बहुत कम आत्मकथाएँ लिखी गयी हैं। इधर भारतीय भाषाओंमें भी इस विधाका समृद्ध स्वरूप दृष्टिगत नहीं होता। श्री नाहटा-जी इस दृष्टिसे आत्मकथाकी उस परम्परामें आते हैं जिसका आरम्भ श्री बनारसीदास जैनने लगभग चार सौ पहिले 'अर्द्ध कथानक' लिखकर अपनी चारित्रिक त्रुटियोंका उद्घाटन किया था। स्वामी श्रद्धानन्द और महात्मा गाँधीने भी अपने गुण-दोषोंको पाठकोंके सम्मुख रखनेमें तनिक भी मन्दता प्रदर्शित नहीं की। श्री नाहटाजी भी उसी पद्धतिके पदाति हैं। उन्होंने आत्मकथाके रूपमें बहुत थोड़ा लिखा है लेकिन जो लिखा

है वह अत्यन्त विश्वसनीय और सच्चे कच्चे चिट्ठेके रूपमें है। लेखकने यह निःसंकोच भावसे लिखा है कि यौवनके देहली द्वारपर कामोत्तेजक पुस्तक-चित्र और कुसंगने उसको आत्मघाती पथपर अग्रसर कर दिया था और उससे मुक्ति पानेमें उसे कितना हर्ष-विषादका अनुभव हुआ था।....आदि आदि।

अब हम एकैकशः उन पुस्तकोंका परिचय प्रस्तुत कर रहे हैं, जिन्हें या तो श्री नाहटाजीने लिखा है या सम्पादित किया है अथवा शुभ आशीर्वाद दिया है।

विधवा कर्त्तव्य

श्री अगरचन्दजी नाहटाकी प्रथम कृति होनेका सौभाग्य इस पुस्तकको है। इसे लेखकने जैनाचार्य श्री १००८ श्री जिनकृपाचन्द्रसूरीश्वरजी महाराजकी शिष्या साध्वी श्री महिमाश्रीजीको समर्पित किया है। इसका प्रकाशन संवत् १९८६ है।

पाटणके प्रसिद्ध भण्डारसे प्राप्त, ताड़पत्रांकित, गाथाबद्ध 'विधवा कुलक' नामक लेखका विवेचन-सहित हिन्दी अनुवाद इस पुस्तकमें किया गया है। यह कुलक 'जैनधर्मप्रकाश' नामक गुजराती मासिक पत्रमें भी प्रकाशित हुआ था। लेखकने समाजके ही अभिन्न अंग विधवा समाजको उनके कर्तव्यके प्रति जागरूक करनेके लिए इस पुस्तकका प्रकाशन किया है। लेखकने ग्रन्थादिमें अपने गुरु श्री जिनकृपाचन्द्रसूरीश्वरको नमन किया है और इस ग्रन्थरचनाके मूल प्रेरणास्रोत उन्हींको बताया है :

पूर्वाचार्य कृत कुलकका, करूँ भाषा अनुवाद। विधवा कर्त्तव्य वर्णवूं, सद्गुरु भणे सुप्रसाद ॥

पुस्तकके 'विवेचन' उपशीर्षकमें युवक नाहटाका विचार मन्थन झलकता है। मूलगाथाको बात को स्पष्ट करनेके लिए वे अनेक उदाहरणोंको प्रस्तुत करते हुए, दिन रात घटनेवाले क्रिया-व्यापारोंका खुलकर उल्लेख करते हैं; जिससे गाथाका मूलभाव अत्यन्त स्पष्ट होकर हृदयंगम हो जाता है। प्रत्येक 'गाथा'पर उनका विवेचन सुन्दर विचारोंका एक छोटा-सा निबन्ध बन जाता है; जिसे स्वतन्त्ररूपसे भी अगर पढ़ें तो वह अपूर्ण प्रतीत नहीं होता और उसका स्वाध्याय पवित्र प्रेरणाका संचार करनेमें सक्षम सिद्ध होता है।

गाथामें प्रस्तुत कथ्यको अधिक स्पष्ट और प्रभावक बनानेके लिए लेखकने अनेक उद्धरण दिये हैं; जिससे उसके व्यापक अध्ययनका संकेत मिलता है।

लगभग आधी पुस्तकमें, गाथा भावार्थ और विवेचन है। शेषार्द्ध भागमें विधवा सञ्जीवन यापनके लिए व्यावहारिक उपदेश-कर्तव्य, दिनचर्या, आदिपर प्रकाश डाला गया है। इस पुस्तकमें यहाँतक बताया गया है कि विधवाको कपड़े कैसे पहिनने चाहिये; भोजन कैसा और कैसे करना चाहिये—कहाँ बैठना और कहाँ नहीं बैठना चाहिये आदि। लेखकने इस प्रसंगमें घरवालोंको भी मार्गदर्शन दिया है कि वे विधवाओंके साथ किस प्रकारका व्यवहार करें। उसने समाजको भी विधवाओंके प्रति अपने दायित्वको वहन करनेके लिए सजग किया है। पुस्तकान्तमें श्री देवचन्दजीकी मर्मस्पर्शी पंक्ति दी गयी है :

'बाधक भाव अद्वेष पणे तजेजी, साधकसे गतराग'

अर्थात्—आत्मिक उन्नतिमें जो साधक हो उसे बिना रागभावसे ग्रहण करो और जो बाधक हो उसे द्वेषरहित होकर छोड़ दो।

युगप्रधान श्री जिनचन्दसूरि

यह महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ श्री अभय जैन ग्रंथमालासे सप्तम पुष्पके रूपमें प्रस्फुटित हुआ है। इसका प्रकाशन संवत् १९९२ है। समर्पणकी भावभरी भाषासे अभिव्यंजित होता है कि उक्त पुस्तक निर्मिति-लेखनमें जैनाचार्य श्री जिनकृपाचन्द्रजी सूरीश्वरका पूर्ण आशीर्वाद रहा है और उनके श्रीमुखसे जो ज्ञानराशि एवं उत्प्रेरण

लेखक द्वयने प्राप्त किये थे; उन्हींके प्रसाद स्वरूप यह पुस्तक लिखी जा सकी। अतः उन्हींकी वस्तु उन्हें ही समर्पित करनेमें लेखकद्वयने जो आनन्दका अनुभव किया है; वह एक वास्तविकता है।

लेखकद्वयने अपने सारगर्भित वक्तव्यमें बहुमूल्य शोधसामग्री प्रस्तुत की है। उन्होंने उसमें अनेक प्रश्न उठाये हैं और उनका विद्वत्तापूर्ण समाधान-उत्तर भी दिया है। इस शोधपूर्ण ग्रन्थको लिखने-सामग्री संकलन करने और उसकी प्रामाणिकताको जांचनेमें लेखकद्वयको पाँच वर्षों तक निरन्तर श्रम करना पड़ा है। उन्होंने अपने श्रमको व्यंजित करते हुए वक्तव्यमें एक श्लोक उद्धृत किया है—

विद्वानेव विजानाति, विद्वज्जनपरिश्रमम्।
न हि वन्ध्या विजानाति, गुर्वी प्रसववेदनाम्॥

विद्वान्‌का परिश्रम विद्वान् ही जानता है। गुर्वी प्रसववेदनाको वन्ध्या नहीं जानती।

प्रामाणिकता-सारगर्भितता और सरल शैलीने इस ग्रंथको अत्यन्त लोकप्रिय बना दिया। विद्वद्वर्य श्री लब्धिमुनिजीने इसे आधार बनाकर सूरिजीके चरित्रको संस्कृत पदावलिमें पुस्तकीकरण किया है यह गुजराती अनुवादमें प्रकाशित हो चुका है। इसकी प्रस्तावना श्री मोहनलाल दलीचंद देसाई ने लिखी है; जो अत्यन्त विद्वत्तापूर्ण है। यह ग्रन्थ संस्कृत, प्राकृत, हिन्दी, गुजराती, बंगला, अंग्रेजी प्राचीन भाषाओं और सैकड़ों हस्तलिखित प्राचीन पाण्डुलिपियों, प्रशस्तियों, पट्टावलियों, विकीर्ण पत्रों, रिपोर्टों आदिके गहन अध्ययन चिन्तन और मननके आधारपर लिखा गया है; अतः इसकी प्रामाणिकता निस्सन्देह है। पुस्तकको उपयोगी बनानेके लिए लेखकद्वयने सांकेतिक अक्षरोंका स्पष्टीकरण, अनुक्रमणिका, चित्रसूची, सम्मति, विशेषनाम सूची और शुद्धाशुद्धि पत्रक भी दिये हैं।

पुस्तककी सामग्री, उसका चिन्तन, उसमें प्रस्तुत तर्क और प्रस्तुति—अत्यन्त प्रौढ़ हैं। लेखकोंके प्रकाण्ड पाण्डित्य, अत्यन्त सूक्ष्मदर्शिनी दृष्टि और उसकी शोधप्रवृत्तिको स्पष्टतः इस ग्रन्थमें अवलोकित किया जा सकता है।

नीरक्षीरविवेकी शोध विद्वान् और इतिहासकार उस समय बड़ी दुविधामें पड़ जाते हैं जब उन्हें किसी चरित्रकी अलौकिक एवं अत्यन्त चमत्कारिक घटनाओंको लिखना पड़ता है। वे इस प्रकारके विस्मयोत्पादक अलौकिक घटनाचक्रको अगर ध्यानान्तरित करते हैं तो लाखों भावुक भक्तोंकी भावनापर आघात पहुँचता है और अगर वैसा करते है; अलौकिक घटनाओंको अपने पूर्ण समर्थनके साथ प्रस्तुत करते हैं तो इतिहासकारके पथसे च्युत हो जाते हैं। श्री नाहटाजीकें लेखन-कर्ममें उक्त प्रकारका धर्मसंकट आ पड़ा था। उन्होंने मध्यम मार्ग अपनाया और जीवनी प्रकरणोंसे भिन्न एक अलग अध्यायमें समस्त चमत्कारिक घटनाओंको सुव्यवस्थित कर दिया। इस प्रकार वे इस ग्रन्थमें इतिहासकारके पुनीत कर्तव्यका जहाँ पालन कर सके हैं; वहाँ उन्होंने धार्मिक जनताकी भावनाका आदर भी किया है।

ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह

श्री अगरचन्द्रजी नाहटा एवं श्री भंवरलालजी नाहटाके सहवर्त्ति संपादकत्वमें संवत् १९९४ में श्री अभय जैन ग्रंथमालाके अष्टम पुष्पके रूपमें इस ग्रंथरत्नका प्रकटन हुआ है। पुस्तकका समर्पण श्री दानमल जी नाहटाकी स्वर्गस्थ आत्माको उनके अनुज और उक्त ग्रंथके प्रकाशक श्री शंकरदानजी नाहटाने किया है। प्रकाशक नाहटा श्री अगरचन्दजीके पिता एवं श्री भंवरलालजीके पितामह थे।

यह ग्रंथ तीन दृष्टियोंसे अत्यन्त उपयोगी है। पहला दृष्टिकोण ऐतिहासिकताका है; द्वितीय भाषिकताका और तृतीय साहित्यिकताका। इसमें कतिपय साधारण काव्योंके अतिरिक्त प्रायः सभी काव्य ऐतिहासिक दृष्टिसे संग्रह किये गये हैं। अद्यावधि प्रकाशित संग्रहोंसे भाषासाहित्यकी दृष्टिसे यह संग्रह सर्वाधिक

उपयोगी है; क्योंकि इसमें १२ वीं शताब्दीसे लेकर बीसवीं शताब्दी तक लगभग आठ सौ वर्षोंके, प्रत्येक शताब्दीके थोड़े-बहुत काव्य अवश्य संग्रहीत हैं। इस संग्रहसे भाषाविज्ञानके अभ्यासियोंको शताब्दीवार भाषाओंके अतिरिक्त कई प्रान्तीय भाषाओंका भी अच्छा ज्ञान हो सकता है। कतिपय काव्य हिन्दी, कई राजस्थानी और कुछ गुजरातीके हैं। अपभ्रंश भाषाके लिए तो यह संग्रह विशेषतः महत्त्वपूर्ण है वैसे इसमें संस्कृत और प्राकृतके काव्य भी दे दिये गये हैं।

काव्यकी दृष्टिसे जिनेश्वरसूरि, जिनोदयसूरि, जिनकुशलसूरि, जिनपतिसूरि आदिके रास-विशेष महत्त्व रखते हैं।

इसमें रास सार भी दे दिया गया है जो अति संक्षिप्त और सारगर्भित है। लेखकद्वयने काव्य रचनाकालका संक्षिप्त शताब्दी अनुक्रम भी दिया है। श्री हीरालाल जैनने इसकी विद्वत्तापूर्ण प्रस्तावना लिखी है। 'प्रति परिचय' शीर्षकके अन्तर्गत उन पाण्डुलिपियोंका परिचय दिया गया है; जिनका उपयोग इस ग्रन्थमें किया गया है। प्रकाशक, पाण्डुलिपि, ताड़पत्र, हस्तलिपि आदिसे सम्बद्ध एकादश चित्रोंसे ग्रंथ सुसज्जित है, पुस्तकान्तमें कठिन शब्दकोष और विशेष नामोंकी सूची देकर उसे और भी उपयोगी बना दिया गया है। सर्वान्तमें 'शुद्धाशुद्धि पत्रम्' रक्खा गया है।

समयसुन्दर कृति कुसुमाञ्जलि

श्री अगरचन्द नाहटा एवं श्री भंवरलाल नाहटाके संग्रहकत्व एवं सम्पादकत्वमें श्री अभय जैन ग्रंथ-मालाके पंचदशम पुष्पके रूपमें प्रस्फुटित यह कृति अपना विशेष महत्त्व रखती है। इसमें कविवर समय-सुन्दरकी ५६३ लघु रचनाओंका संग्रह है। श्री हजारीप्रसादजी द्विवेदीने इसकी भूमिका लिखकर-इस ग्रंथके महत्त्वका उद्‌घाटनपूर्वक पुरस्सरण किया है। महोपाध्याय श्री विनयसागरजीने अपनी प्रखर विद्वत्तासे समय-सुन्दरके व्यक्तित्व एवं कृतित्वका सार संभरित मूल्यांकन किया है और उस महाकविको असाधारण मेधावी, और सर्वतोमुखी प्रतिभाके धनीके रूपमें प्रस्तुत किया है। यह शोधपूर्ण साहित्यिक कृति परम अध्यवसायी, सहृदय, शोधनिरत, महान् परिश्रमी और निष्णात साहित्य महारथी स्व० श्री मोहनलाल दलीचन्द देसाईको समर्पित की गयी है।

समयसुन्दर कृति कुसुमाञ्जलिग्रंथ भाषा, छन्द, शैली और ऐतिहासिक सामग्रीकी दृष्टिसे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इसमें सन् १६८७के अकालका बड़ा ही जीवन्त वर्णन है। वह बड़ा हृदयद्रावक और प्रभावक है। इस ग्रंथकारके विषयमें श्री नाहटाजीने नागरी प्रचारिणी पत्रिकाके सं० २००९के प्रथम अंकमें जो लिखा था, उससे ज्ञात होता है कि श्री समयसुन्दरकी जन्मभूमि मारवाड़ प्रान्तका सांचौर स्थान है। ये पोरवाड़ वंशके रत्न थे और इनका जन्मकाल संभवतः संवत् १६२० है। अकबरके आमंत्रणपर इनके दादागुरुजी भी लाहौरमें सम्राट्से मिलने गये थे तो ये भी गये थे। इन्होंने संस्कृतमें पच्चीस और भाषामें तेईस ग्रंथ लिखे थे। संवत् १७०२में चैत्र शुक्ला त्रयोदशीके दिन अहमदाबादमें इन्होंने अनशन आराधनापूर्वक शरीरत्याग किया।

'समयसुन्दर कृति कुसुमाञ्जलि'से कविकी कवित्वशक्तिकी प्रौढ़ताका निदर्शन होता है। कविकी भाषामें भावोंको अभिव्यक्त करनेकी अद्‌भुत क्षमता है। कविका ज्ञान परिसर बहुत ही विस्तृत है; इसलिए वह किसी भी कर्म विषयको बिना आयासके सहज ही संभाल लेता है। कवि द्वारा प्रयुक्त छन्दों और रागोंसे तत्कालीन व्रजभाषामें प्रचलित पद शैलीके अध्ययनमें सहायता मिल सकती है।

वस्तुतः नाहटाजीने इस ग्रंथका संपादन-प्रकाशन करके हिन्दी साहित्यके अध्येताओंके सामने बहुत

अच्छी सामग्री प्रस्तुत की है। वैसे कवि अत्यन्त व्यापक है और उसकी लिखित-रचित सामग्रीका पार पाना बड़ा कठिन है—

'समयसुन्दरना गीतड़ा, भींता पर ना चीतरा या कुंभेराणां ना भींतड़ा।'

कविने अष्टलक्षी ग्रंथकी रचनाके १ पदके आठ लाख प्रामाणिक अर्थ पंडित विद्वत् सभा अकबरकी में मान्य करवाया था।

दानवीर सेठ श्री भैरूँदानजी कोठारीका संक्षिप्त जीवनचरित्र

जैसा कि नामसे ही स्पष्ट है; यह अत्यन्त लघु पुस्तिका दानवीर सेठ भैरूँदानजीके जीवनकी रूप-रेखा मात्र प्रस्तुत करते हुए लिखी गयी है। प्रकृत्या यह पुस्तक न होकर लेखकका वक्तव्य है जो पुस्तकायित कर दिया गया है। स्व० सेठ साहबके दानीरूपको विज्ञापित करना लेखकका लक्ष्य रहा है। उसने प्रकारान्तर-से यह व्यंजित किया है कि धनका होना उतना महत्त्वपूर्ण नहीं है जितना उसका सदुपयोग महत्त्वपूर्ण होता है। लक्ष्मीपतियोंके लिए यह लघु पुस्तक प्रेरक बन सकती है।

युगप्रधान श्री जिनदत्तसूरि

प्रस्तुत पुस्तकके लेखक नाहटाद्वय हैं। इसका प्रकाशन श्री अभय जैन ग्रंथमालाके बारहवें पुष्पके रूपमें हुआ है। इसे लेखकोंने अपने स्व० पिता एवं पितामह श्री शंकरदानजी नाहटाको समर्पित किया है। इसका प्रकाशन संवत् २००३ है।

नाहटाद्वयने इस पुस्तकको लिखे जानेमें श्री जिनदत्तसूरिचरित्रनिर्णायक समिति फलौदीके द्वारा प्रकाशित उस विज्ञप्तिको कारण माना है; जिसमें उक्त समितिने ता०. २१-७-१९३४ के पूर्व सूरिजीका जीवन-चरित्र लिख भेजनेका निवेदन किया था। इस ग्रन्थको लिखनेके लिए लेखकद्वयको पर्याप्त श्रम करना पड़ा, तदर्थ जैसलमेरकी यात्रा भी करनी पड़ी। इस पुस्तककी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें गतानुगतिकता नहीं है। प्रत्येक घटना और तथ्यको ऐतिहासिकताके आधारपर परखनेका प्रयत्न किया गया है। सूरिजीके प्रामाणिक चरित्रको प्रस्तुत करके अन्तमें विशेष बातें, गोत्रसूची, पदव्यवस्था, कतिपय स्तवन और विशेष नामसूची दी गयी है।

राजस्थानमें हिन्दीके हस्तलिखित ग्रंथोंकी खोज—द्वितीय भाग

यह कृति हिन्दीके अज्ञात हस्तलिखित ग्रंथोंकी शोधविवरणिका है। इसका प्रकाशन प्राचीन साहित्य शोध संस्थान उदयपुरकी ओरसे सन् १९४७में किया गया था।

श्री अगरचन्दजी नाहटा लिखित इस पुस्तककी अनेक विशेषताएँ और मौलिकताएँ हैं।

इस ग्रंथमें मूल ग्रंथके उद्धरण अधिक प्रमाणमें लिये गये हैं और लेखककी ओरसे कुछ भी नहीं या कमसे कम लिखनेकी नीति अपनायी गयी है। ग्रन्थका नाम, ग्रन्थकार, उनका जितना भी परिचय ग्रंथमें है, ग्रंथका रचनाकाल, ग्रंथ रचनेका आधार आदि ज्ञातव्य, जिस ग्रंथमें संक्षेप या विस्तारसे जितना मिला, विवरणमें दे दिया गया है जिससे प्रत्येक व्यक्ति ऊपर निर्दिष्ट लेखकके लिखित सारको स्वयं जाँचकर निर्णय कर सकें। इसकी द्वितीय विशेषता यह है कि इसमें एक-एक विषयके अधिकसे अधिक अज्ञात ग्रंथोंका विवरण संगृहीत किया गया है और उनका विषयानुसार वर्गीकरण कर दिया गया है। इसकी तीसरी विशेषता यह है कि इसमें ऐसे विषय एवं ग्रंथोंके विवरण हैं जो हिन्दी साहित्यके इतिहासमें एक नवीन जानकारी उपस्थित करते हैं, जैसे नगर वर्णनात्मक गजल साहित्य। "हिन्दी ग्रंथोंकी टीकाएँ" विभाग भी अपनी विशेषतासे परिपूर्ण है। इसमें हिन्दी ग्रंथोंपर तीन संस्कृत टीकाएँ एवं एक राजस्थानी टीकाका विवरण दिया गया है। अभी तक हिन्दी ग्रंथों पर संस्कृतमें टीकाएँ रची जानेकी जानकारी शायद यहाँ पहली ही बार दी गई है।

जसवंत उद्योत

श्री अगरचन्दजी नाहटाके सम्पादकत्वमें श्री सादूल प्राच्य ग्रन्थमालासे संवत् २००६में इस ग्रन्थका प्रकाशन हुआ है।

यह ग्रंथ जोधपुरके राठौड़ोंके इतिहाससे सम्बद्ध है। ग्रन्थान्तमें प्रस्तुत पद्यमें कविने सूर्यवंशी बृहद्-बाहु तककी वंशावली विष्णुपुराणसे एवं उसके परवर्त्ती ६० राजाओंका विवरण लोककथाके आधारसे दिये जानेका उल्लेख किया है। माननीय ओझाजीके मतानुसार सीहाके पिता सेतरामसे परवर्ती राजाओंके नामादि तो इतिहाससे बहुत कुछ समर्थित हैं; पर जयचन्द गाहड़वालके साथ उनका सम्बन्ध जोड़ना स्पष्टतः भूल है; जब कि पं० विश्वेश्वरनाथ रेऊ गाहड़वाल व राठौड़ोंका एक ही वंश मानकर इसे ठीक समझते हैं।

जसवंत उद्योतके प्रारंभमें इसका रचनाकाल संवत् १७०५ आषाढ शुक्ला तृतीया दिया है; पर इस ग्रन्थमें संवत् १७०७के कार्त्तिकमें हुई पोहकरण विजय तकका वृत्तान्त पाया जाता है; अतः प्रस्तुत ग्रन्थकी रचनाका प्रारंभ संवत् १७०५में होकर १७०८के करीब परिसमाप्ति हुई समझनी चाहिये; क्योंकि इसके पीछे-का कोई वृत्तान्त इस काव्यमें नहीं पाया जाता।

जोधपुरके राजवंशमें महाराजा जसवन्त सिंह बड़े साहित्यप्रेमी, विद्वान् एवं प्रतापी राजा हुए हैं। कवि उनके आश्रयमें ही रहता था और कई वर्षों तक साथ रहनेके कारण उसे राठौड़ोंके इतिहासकी अच्छी जानकारी हो गयी थी। फलतः उसने कई स्थानोंमें राठौड़ वंशके प्रधान पुरखाओंसे चली शाखाओंका व उनके विशिष्ट व्यक्तियोंका महत्वपूर्ण निर्देश किया है। मुहणोत नैणसीकी ख्यातसे भी प्रस्तुत ग्रंथ प्राचीन एवं महाराजा जसवंत सिंहकी विद्यामानतामें रचना होनेसे इसका ऐतिहासिक महत्व और भी बढ़ जाता है। इससे काव्यकी एक मात्र प्रति अनूप संस्कृत लाइब्रेरीमें है।

क्यामखांरासा

मुस्लिम कवि जान रचित क्यामखांरासाका सम्पादन श्री दशरथ शर्मा एवं श्री अगरचन्द नाहटा व भँवरलाल नाहटा द्वारा तथा प्रकाशन राजस्थान पुरातत्व मंदिर जयपुरकी राजस्थान पुरातन ग्रंथमालासे संवत् २०१० में हुआ।

यह रासा अनेक दृष्टियोंसे महत्त्वपूर्ण है। इसकी साहित्यिक महत्ता उच्चकोटि की है। इसकी शैलीमें प्रवाह है। प्रेम पूर्ण आख्यायिकाओं और प्राकृतिक वर्णनोंसे कवि जान भी इसे सुसज्जित कर सकता था; वह वीर रसका ही नहीं, शृङ्गार रसका भी कवि था; किन्तु उसने सरल ओजस्विनी भाषामें अपने वंशके इतिहासको ही प्रस्तुत करना उचित समझा; उसने यथाशक्ति मितभाषिता और सत्यका आश्रय लिया। इसकी भी एकमात्र प्रति झुंझुनूके जैन भण्डारसे प्राप्त हुई।

बीकानेरके दर्शनीय जैन मन्दिर

श्री अगरचन्दजी नाहटाने यह अत्यन्त लघुकाय पुस्तिका संवत् २०१८ में लिखी और प्रकाशित की। इसमें बीकानेरके दर्शनीय जैन मंदिरोंका प्रामाणिक इतिहास दिया गया है। सुन्दर, कलात्मक जैन मंदिरोंके आधिक्यके कारण बीकानेरको जैनतीर्थोंमें स्थान प्राप्त है।

बीकानेर ज वंदीए, चिरनंदीये रे, अरिहंत देहरा आठ-तीर्थ ते नमुं रे।

कविवर समयसुन्दरके समय बीकानेरमें आठ मंदिर रहे होंगे; लेकिन आजकल उनकी संख्या चालीस-के लगभग है।

बीकानेरकी तीर्थयात्रा पर जानेवाले जैन यात्रियोंके लिए उक्त पुस्तक अच्छी पथदर्शिका है। इसका

यही महत्त्व है। स्थानकवासी साधु-सम्मेलन भीमसरके प्रसंगसे हजारों व्यक्ति बाहरसे आये थे उनके मंदिर दर्शनकी सुगमताके लिए पुस्तक रूपमें लिखकर प्रकाशित कर दी गई थी।

श्रीमद् देवचन्द्र स्तवनावली

श्रीमद् देवचन्द्रजीके प्रामाणिक जीवन और उनके भक्तिरस आपूरित पदोंके संकलनसे श्री अगरचन्दजी नाहटाने उक्त पुस्तक लिखकर संवत् १०१२ में प्रकाशित की है।

श्रीमद् देवचन्द्रजीका जन्म वि० संवत् १७४६ में बीकानेरके निकटवर्ती किसी ग्राममें हुआ था। आप शनैःशनैः संस्कार विकास करते-करते उच्चकोटिके साधक कवि बन गये। आपने स्वरचित स्तवनोंमें तत्त्व-ज्ञानके साथ-साथ भक्तिका अखण्ड प्रवाह बहाया है। श्री नाहटाजीने भक्तकविके जीवनचरित्रको लिखते समय जैन दर्शन पर भी प्रसंग वश प्रकाश डाला है, वह प्रकाश कहीं सूचनात्मक है और कहीं तुलनात्मक। भक्त श्रावकोंके लिए पुस्तकका मूल्य बहुत है। वह परम उपयोगी है।

बीकानेर जैन लेख संग्रह

श्री नाहटाद्वयकी कल कीर्त्तिको चतुर्दिक् प्रसरित करनेवाले ग्रंथरत्नोंमेंसे उक्त ग्रंथ भी एक है। ग्रंथके प्राक्कथन लेखक श्री वासुदेवशरण अग्रवालने श्री नाहटाजीके प्रकाण्ड पाण्डित्य, श्रमनिष्ठा और शोध-रुचिकी भूरि-भूरि प्रशंसा की है।

इस ग्रंथका प्रकाशन श्री अभय जैन ग्रंथमालाके पंचदश पुष्पके रूपमें सन् १९५६ में हुआ। इसमें बीकानेर राज्यके २६१७ तथा जेसलमेरके १७१ अप्रकाशित लेखोंका संग्रह है। प्रारम्भमें शोधपूर्ण-विद्वत्ता-परिपूर्ण विस्तृत भूमिका दी गयी है। परिशिष्टमें बृहद् ज्ञान भण्डारकी वसीयत, श्री जिनकृपाचन्द्रसूरि धर्मशालाका व्यवस्थापत्र और पर्यूषणोंमें कसाईबाड़ा बन्दीके मुचलकेकी नकल है।

बीकानेर जैन लेख संग्रहमें ९वीं-१०वीं शताब्दीसे लेकर आज तकके करीब ग्यारह सौ वर्षोंके लगभग ३००० लेख हैं। इस लेख संग्रहकी एक विशेष बात यह है कि इसमें श्मशानोंके लेख भी खूब लिये गये हैं। बीकानेरके जैन इतिहाससे सम्बद्ध इतनी ज्ञानवर्द्धक ठोस भूमिका भी इसी ग्रन्थकी दूसरी उल्लेखनीय विशेषता है। बीकानेर राज्य भरके समस्त लेखोंके एकीकरणका प्रयत्न भी इस ग्रन्थकी अन्य विशेषता है।

प्रस्तुत लेखोंमें इतनी विविध ऐतिहासिक सामग्री भरी पड़ी है कि उन सब बातोंके अध्ययनके लिए सैकड़ों व्यक्तियोंकी जीवन साधना आवश्यक है। इन लेखोंमें राजाओं, स्थानों, गच्छों, आचार्यों, मुनियों, श्रावक-श्राविकाओं, जातियों और राजकीय, धार्मिक, सामाजिक, सांस्कृतिक इतनी अधिक सामग्री भरी पड़ी है कि जिसका पार पाना कठिन है। इसी प्रकार इन मन्दिर एवं मूर्त्तियोंसे भारतकी शिल्प स्थापत्य, मूर्त्तिकला और चित्रकला आदिके विकासकी जानकारी ही नहीं मिलती; पर समय-समयपर लोक-मानसमें भक्तिका किस प्रकार विकास हुआ, नये-नये देवी देवता प्रकाशमें आये, उपासनाके केन्द्र बने, किस-किस समय भारतके किन-किन व्यक्तियोंने क्या क्या महत्त्वके कार्य किये; उन समस्त गौरवशाली इतिहासोंकी सूचना इन शिलालेखों, पत्रलेखों, ताड़पत्र लेखों और मूर्तिलेखोंमें पायी जाती है। श्री नाहटाजीने लेख संग्रहके क्षेत्रमें यह बहुत बड़ा काम किया है। ग्रन्थके प्रत्येक चित्रफलकपर उनका कठिन श्रम झलकता है और उनकी अगाध विद्वत्ता ग्रंथके आद्यन्त भागमें। इस उत्कृष्ट कोटिके ग्रंथ प्रणयनके लिए नाहटाद्वयकी जितनी ही प्रशंसा की जाय; वह थोड़ी है। इसमें करीब १०० चित्र भी दे दिये गये हैं।

बम्बई चिन्तामणि पार्श्वनाथादि स्तवनपद संग्रह

उक्त पुस्तक संवत् २०१४ में श्री अगरचन्द भँवरलालजी नाहटाके सम्पादकत्वमें ट्रस्टी गण श्री

चिन्तामणि पार्श्वनाथ मंदिर बम्बईके द्वारा प्रकाशित की गयी। इसमें बम्बईके चिन्तामणि पार्श्वनाथकी स्तुति-पदोंकी संख्या अपेक्षाकृत अधिक है, अतः पुस्तकका नाम बम्बई चिन्तामणि पार्श्वनाथपर रखा गया है। ये समस्त स्तवन वाचक श्री अमरसिंधुरजी रचित हैं। श्री अमरसिंधुरजीने बम्बईमें रहते हुए ही अधिकांश रचनाएँ की हैं और एक विशिष्ट कार्य यह किया कि श्री चिन्तामणि पार्श्वनाथका मंदिर, धर्मशाला व उपाश्रय श्रावकोंको उपदेश देकर प्रतिष्ठित किया। इन सबके लिए उन्हें आठ वर्षों तक प्रयत्न करना पड़ा।

भक्त श्रावकोंके लिए यह पुस्तक अनुपम रत्न है।

ज्ञानसार ग्रन्थावली

श्री अगरचन्दजी नाहटा एवं श्री भँवरलालजी नाहटा द्वारा सम्पादित एवं श्री अभय जैन ग्रंथमाला द्वारा प्रकाशित यह पुस्तक सन् १९५९ में तैयार हो सकी। इसमें महायोगी ज्ञानसारजी द्वारा रचित पदावली एवं अन्य रचनाओंका संग्रह है। योगीराजकी प्रामाणिक जीवनी भी दी गयी है। महापण्डित श्री राहुल सांकृत्यायनने इसकी भूमिका-प्राक्कथनमें उचित ही लिखा है कि 'ज्ञानसार ग्रन्थावलीका प्रकाशन करके श्री नाहटाजीने हिन्दी साहित्यके ऊपर बड़ा उपकार किया है।" भाषा, भाव, ऐतिह्य और धार्मिकताकी दृष्टिसे पुस्तक अतीव महत्त्वपूर्ण है।

छिताईचरित

यह पुस्तक श्री हरिहरनिवास द्विवेदी एवं श्री अगरचन्दजी नाहटाके सम्पादकत्वमें विद्यामन्दिर प्राचीन ग्रन्थमालाके तृतीय पुष्पके रूपमें सन् १९६० में प्रकाशित हुई है। सम्पादक श्री द्विवेदीने ठीक ही लिखा है।

"छिताईचरित हिन्दीका गौरव ग्रन्थ है। हिन्दीकी लौकिक आख्यान काव्यधाराकी श्रेष्ठ रचनाके रूपमें, राजनैतिक इतिहासकी घटनाओंके कथाबीजपर आधारित सर्वप्रथम प्रामाणिक रचनाके रूपमें....छिताई-चरितका स्थान हिन्दी साहित्यमें अत्यन्त श्रेष्ठ है....इतनी महत्त्वपूर्ण रचनाकी प्रतियाँ खोज निकालनेके लिए हिन्दी संसार उन (श्री अगरचन्दजी नाहटा)का सदा ऋणी रहेगा।"

यह सत्य है कि श्री नाहटाजीको छिताईचरित लेखन-शोधन-संशोधन और मुद्रणमें अनेक कठिनाइयों-का सामना करना पड़ा था; लेकिन वे हमारे दृष्टिमें "कठिनाइयाँ" हो सकती हैं; श्री नाहटाजी तो उन्हें 'प्रेरक तत्त्व' कहते हैं; इसलिए उनके लिए वे वरदानभूत हैं। निस्सन्देह श्री नाहटाजी छिताई-चरित प्रकाशनमें तथाकथित वरदानके विशेष पात्र रहे होंगे; यह हमारी और द्विवेदीजीकी मान्यता है।

पीरदान लालस ग्रन्थावली

यह पुस्तक श्री अगरचन्दजी नाहटा द्वारा सम्पादित और सादूल राजस्थानी रिसर्च इन्स्टीट्यूट बीकानेर द्वारा सन् १९६०में प्रकाशित हुई है। सम्पादकने इसे चारण जातिके दो उज्ज्वल रत्नों—श्री शंकर-दान जेठी भाई और श्री उदयराजजी उज्ज्वलके करकमलोंमें सादर समर्पित किया है।

प्रस्तुत ग्रन्थावलीमें नारायण नेह, परमेसर पुराण, हिंगलाज रासो, अलख आराध, अजंपा जाप, ज्ञानचरित और पातिक पहार नामक सात ग्रन्थों और ३० डिंगल गीतोंको स्थान प्राप्त हुआ है। लालसजी-की ये समस्त रचनाएँ प्रायः भक्तिप्रधान हैं। इन रचनाओंमें दूहा, चौपई, गाहा, चौसर, मोतीदाम, कवित्त, भुजंगी, पद्धरी, झम्पाताली और डिंगल गीतोंके अटूट तालों साणोर आदि कई ग्रन्थोंका प्रयोग हुआ है। पुस्तकांतमें शब्दकोश और अन्तरकथाएँ देकर उसकी उपयोगिताको और भी बढ़ा दिया गया है। पुस्तकके प्रारम्भमें कवि पीरदान लालसकी हस्तलिपिका चित्र भी दिया गया है।

जिनहर्ष ग्रन्थावली

श्री अगरचन्दजी नाहटा द्वारा सम्पादित और श्री सादूल राजस्थानी रिसर्च इन्स्टीट्यूट बीकानेर द्वारा सन् १९६० में प्रकाशित 'जिनहर्ष ग्रन्थावली' श्री अगरचन्दजी नाहटाके ३० वर्षके शोधश्रमका रूपीकरण है। उन्होंने कविकी लगभग ४०० लघु रचनाएँ इस ग्रन्थावलीमें प्रकाशित की हैं।

महाकवि जिनहर्ष सरस्वतीके वरद पुत्र थे। उन्होंने निरन्तर ६० वर्ष तक काव्यसाधना की थी। उनके भावुक पवित्र हृदय और विवेकशील मस्तिष्कने माँ सरवस्तीके रत्नकोशको सम्भरित करनेके लिए सात महाकाव्य, इक्कीस एकार्थकाव्य, इक्कावन खण्डकाव्य और लगभग २०० मुक्तक रचनाओं तथा हजारों फुटकर पदोंका निर्माण किया था। उन्होंने लगभग एक लाख परिमित संख्या पद बनाये थे।

श्री नाहटाजीने ऐसे सरस्वती पुत्रको प्रकाशमें लानेका सदैव प्रयत्न किया। उन्हींके निर्देशसे प्रस्तुत पंक्तियोंके लेखकने "महाकवि जिनहर्ष एक अनुशीलन" शीर्षकसे शोधप्रबन्ध प्रस्तुत करके राजस्थान विश्व विद्यालयसे पी-एच. डी. की उपाधि प्राप्त की।

वस्तुतः महाकवि जिनहर्ष इतने व्यापक और विशाल हैं कि उन पर अनेक दृष्टियोंसे विचारविमर्श किया जा सकता है।

जिनराजसूरि-कृति-कुसुमांजलि

प्रस्तुत पुस्तकका सम्पादन श्री अगरचन्दजी नाहटा और प्रकाशन सादूल राजस्थानी रिसर्च इन्स्टीट्यूट बीकानेरने संवत् २०१७ में किया। सम्पादकने इस कृतिको श्री बुद्धिमुनिजी महाराजके करकमलोंमें श्रद्धा एवं भक्तिपूर्वक समर्पित किया है। प्रस्तुत पुस्तक ऐतिहासिकता, भक्तिभावना, भाषा और साहित्यकी दृष्टिसे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। सम्पादक महोदयने पुस्तकारम्भमें श्री जिनराजसूरिका प्रमाणपुष्ट जीवनचरित और उनकी साहित्यसेवापर प्रकाश डाला है। पुस्तकमें कतिपय चित्र भी दिये गये हैं। कृतिका साहित्यिक अध्ययन प्रस्तुत करके एक अभावकी पूर्ति की गयी है। पुस्तकान्तमें दिये गये राजस्थानी शब्दकोश और श्री जिनराज सूरि प्रयुक्त देशी सूचीसे उसकी उपयोगिता बढ़ गयी है।

धर्मवर्द्धनग्रन्थावली

प्रस्तुत पुस्तकका सम्पादन श्री अगरचन्द नाहटा और प्रकाशन सादूल राजस्थानी रिसर्च इन्स्टीट्यूटने संवत् २०१७ में किया है। सम्पादकने इसका समर्पण राजस्थानीके विद्वान् श्री नरोत्तमदासजी स्वामीको किया है। पुस्तकारम्भमें कवि धर्मवर्द्धनकी हस्तलिपिका चित्रण और पुस्तकान्तमें धर्मवर्द्धन ग्रन्थावलीमें प्रयुक्त देशियोंकी सूची दी गयी है। पुस्तकमें कविवर धर्मवर्द्धनजीकी प्रामाणिक जीवनी और उनकी गुरुपरम्पराका परिचय दिया गया है। कविके स्मारक स्तूपका चित्र भी कृतिके आरम्भमें रखा गया है। कविवरकी साहित्यसाधनाका अति सुन्दर और सन्तुलित मूल्यांकन प्रसिद्ध विद्वान् डॉ. मनोहर शर्माकी सबल लेखनीसे हुआ है, जो स्तुत्य है। इस संग्रहकी एक मात्र प्रति बीकानेरके ज्ञान भंडारमें है।

सीताराम चौपाई

इस पुस्तकके सम्पादक श्री अगरचन्द नाहटा और भँवरलाल नाहटा हैं। इसका प्रकाशन सादूल राजस्थानी रिसर्च इन्स्टी-ट्यूटसे संवत् २०१९ में हुआ है।

महोपाध्याय कविवर समयसुन्दर १७वीं सदीके महान् विद्वान् और कवि थे। आपका साहित्य बहुत विशाल है। आपने गद्य और पद्य दोनों ही विधाओंमें साहित्यसर्जना की थी। आपकी पद्य रचनाओंमें सीताराम चौपाई सबसे बड़ी रचना है। इसका परिमाण ३७०० श्लोक परिमित है। जैन परम्परा की रामकथाको इस काव्यमें गुंफित किया गया है।

प्राचीन काव्योंकी रूप परम्परा

इस पुस्तकका प्रकाशन भारतीय विद्या मन्दिर शोध प्रतिष्ठान बीकानेरने सन् १९६२ में किया। श्री अगरचन्द नाहटा द्वारा लिखित प्राचीन काव्योंकी रूप परम्परा पुस्तक उनके गत ३१ वर्षोंमें लिखे गये प्राचीन भाषा-काव्योंकी रूप परम्पराके सम्बन्धमें लेखोंका संग्रह है जो समय-समय पर नागरी प्रचारिणी पत्रिका, हिन्दी अनुशीलन, सम्मेलन पत्रिका, भारतीय साहित्य, कल्पना प्रभृतिमें प्रकाशित होते रहे हैं। इस पुस्तकमें चर्चित काव्य रूपोंमेंसे अधिकांशकी परम्परा अपभ्रंशकालसे निरन्तर चली आ रही है।

सभा शृंगार

इस पुस्तकके संकलनकर्ता तथा सम्पादक श्री अगरचन्दजी नाहटा हैं। इसका प्रकाशन नागरी प्रचारिणी सभासे संवत् २०१९ में हुआ।

सभा शृंगार वर्णक साहित्यकी कोटिमें आता है। इस साहित्यका सम्बन्ध किसी वस्तुके उस परि-निष्ठित वर्णनसे होता है जिसे सार्वजनिक रीतिसे आदर्श वर्णनके रूपमें स्वीकार कर लिया जाता था। इस प्रकारके वर्णनमें कवि और कलाकार दोनों ही सहायक होते हैं एवं श्रोता तथा वक्ता दोनोंको इस प्रकारके वर्णनोंमें वस्तुका ज्वलन्त चित्र प्राप्त होता है। इसलिये श्री नाहटा सम्पादित सभा शृंगार पुस्तकमें उपयो-गिता असंदिग्ध है।

पंच भावनादि सज्झाय सार्थ

प्रस्तुत पुस्तक श्री अगरचन्द नाहटाके सम्पादकत्वमें श्री भंवरलाल नाहटाने सम्पादित की है। इसके कर्ता श्रीमद्देवचन्द हैं। पुस्तकमें पंच भावनाओंका पद्यात्मक वर्णन हैं। परिशिष्टमें तपस्वी मुनियोंकी जीवनियाँ दी गयी हैं।

रत्न परीक्षा

यह पुस्तक अभय जैन ग्रन्थमाला बीकानेरसे नाहटा अगरचन्द भंवरलालके सम्पादकत्वमें प्रकाशित हुई है। रत्नपरीक्षा सम्बन्धी इनीगिनी पुस्तकोंमें इस पुस्तकका महत्त्वपूर्ण स्थान है। पुस्तकके भूमिका भागमें विद्वान् सम्पादकोंने रत्न परीक्षा सम्बन्धी हिन्दी साहित्यके ग्रन्थोंका सविवरण उल्लेख किया है। इसमें चोटीके विद्वानोंके लेख भी संग्रहीत हैं। परिशिष्टमें नवरत्नपरीक्षा, मोहरांरीपरीक्षा इत्यादि देकर पुस्तकको और भी उपयोगी बनाया गया है।

दादा श्री जिनकुशलसूरि

श्री अगरचन्द नाहटा एवं भंवरलाल नाहटाने इस पुस्तकको लिखकर द्वितीयावृत्ति १९६३ में प्रका-शित की है। इसकी भूमिका मुनि जिनविजयजीने लिखी है। पुस्तकमें दादाजीकी प्रमाणपुष्ट जीवनी प्रस्तुत की गयी है। पुस्तकान्तमें उनके ग्रन्थोंकी रचना और शिष्यपरम्परापर प्रकाश डाला गया है। पुस्तकान्तमें सूरिजी रचित कतिपय प्राकृत संस्कृत स्तवन भी दिये गये हैं।

भक्त-माल सटीक

इस पुस्तकका सम्पादन श्री अगरचन्दजी नाहटाने किया है। राघवदासकी यह मूल रचना है और चतुरदासने इसकी टीका लिखी थी। यद्यपि नाभादासजीकी भक्तमालके अनुकरणमें ही राघवदासने अपनी भक्तमाल बनायी, फिर भी वह तद्वत् नहीं है। यह उससे काफी बड़ी है और इसमें अनेक सन्त एवं भक्तजनोंका उल्लेख है जिनका उल्लेख नाभादासजीने नहीं किया है। नाभादासजीने जहाँ केवल वैष्णव भक्तोंको स्थान दिया है वहाँ श्रीराघवदासने, जो कि स्वयं दादूपन्थी थे, अपने पंथके सन्तोंके अतिरिक्त रामानुज, विष्णुस्वामी, कबीर, नानक आदि अन्य मतावलम्बियोंका भी विवरण दिया है।

राजस्थानी साहित्यकी गौरवपूर्ण परम्परा

यह पुस्तक श्रीअगरचन्दजी नाहटा द्वारा कलकत्ता विश्वविद्यालयकी रघुनाथप्रसाद नोपानी स्मृति व्याख्यानमालाके अन्तर्गत दिये व्याख्यानोंका संकलन है। इन व्याख्यानोंमें उन्होंने राजस्थानी साहित्यकी गौरवपूर्ण परम्परापर प्रकाश डालते हुए उसके विकासको दिखाया है। उन्होंने यह भी बताया है कि राजस्थानमें संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंशमें कौन-कौनसे गौरवग्रन्थ रचे गये। उन्होंने मध्यकालीन राजस्थानी साहित्यपर भी सारगर्भित विवेचन प्रस्तुत किया है। राजस्थानी लोक साहित्यपर भी उनका विचार मन्थन हुआ है।

मणिधारी श्री जिनचन्द्रसूरि

यह पुस्तक नाहटाद्वय द्वारा मणिधारी श्रीजिनचन्द्र सूरिके अष्टम शताब्दी महोत्सवके उपलक्ष्यमें सूरिजीकी जीवनीके रूपमें प्रकाशित की गयी है। इसमें मणिधारीजीकी अत्यन्त प्रभावक पाण्डित्यपूर्ण और परहितकाररत व्यक्तित्वको उभारा गया है। अन्तमें सूरिजीपर बने अष्टक स्तवन भी दिये गये हैं। सबसे अन्तमें 'सार्थक व्यवस्था शिक्षा कुलकम्' दिया गया है।

अष्टप्रवचनमाता सज्झाय सार्थ

सम्पादक श्री अगरचन्द नाहटाने श्री देवचन्द्रकृत अष्टप्रवचनमाता सज्झायोंको इस पुस्तकमें संग्रहीत किया है। उन्होंने सज्झायोंका हिन्दीमें अर्थ देकर पुस्तकको और भी श्रावकोपयोगी बना दिया है।

ऐतिहासिक काव्यसंग्रह

प्रस्तुत काव्यसंग्रहके सम्पादक श्री अगरचन्दजी नाहटा हैं। इसमें स्था० जैन इतिहासके निर्माणमें उपयोगी महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक काव्योंका संकलन किया गया है। इसका प्रकाशन मुनि श्री हजारीमल स्मृति प्रकाशन ब्यावरने किया है। इस संग्रहकी अधिकांश रचनाएँ अप्रकाशित हैं। इसमें अनेक विधाओंका समावेश हुआ है। उनकी संख्या लगभग २१ से अधिक है।

शिक्षासागर

यह राजस्थानके मुसलमान कवि जानका लिखा हुआ उपदेशप्रधान नीतिकाव्य है। सम्पादक श्री अगरचन्द नाहटाने अपने प्राक्कथनमें बल दिया है कि इस कवि पर खूब अनुसंधान कार्य होना चाहिए। इसका प्रकाशन राजस्थान साहित्य समिति बिसाऊसे हुआ है।

बी बी बांदीका झगड़ा

कवियित्री ताजकी लिखी हुई इस पुस्तिकाका सम्पादन श्री अगरचन्द नाहटाने और प्रकाशन राजस्थान साहित्य समिति बिसाऊकी ओरसे हुआ है। इस रचनाका उद्देश्य स्त्रीसमाजमें प्रचलित कहावतोंके प्रयोगका रहा है। प्रस्तुत काव्यमें कहीं-कहीं आध्यात्मिक सन्देश भी व्यंजित होता है। कवयित्री ताजकी इस विविध रचनाकी केवल दो ही प्रतियाँ प्राप्त हैं। १. अभयराज ग्रन्थ भण्डारमें २. अनूप संस्कृत लाइब्रेरी में।

रुक्मणी मंगल

इसका कवि पदमा तेली था। उसने प्राचीन राजस्थानीमें इस पद्यपुस्तककी रचना की। बिसाऊकी राजस्थान साहित्य समितिने श्री अगरचन्दजी नाहटाके सम्पादकत्वमें इस पुस्तकका प्रकाशन किया है। पुस्तक भाषा और भावोंकी दृष्टिसे अत्यन्त मनोहर है। रुक्मणी मंगल राजस्थानीका अत्यन्त लोकप्रिय व प्रसिद्ध

भक्ति काव्य है। इसके बड़े-बड़े अभिवर्द्धित संस्करण कई उपलब्ध हैं पर मूल लघुकाव्यका एक मात्र संग्रह इसकी प्राचीनतम प्रतिसे यह सम्पादन किया गया है।

श्री नाहटाजीके सम्पादकत्वमें निम्नांकित पुस्तकें छप रही हैं—

१. मरु-गूर्जर जैनकवि और उनकी रचनाएँ।

२. दम्पति विनोद (इन्स्टीट्यूटसे कई वर्ष पूर्व मुद्रित पर प्रकाशित अब होगी।)

३. प्राचीन गुर्जर काव्य संचय (ला० द० मन० वि० स० स०)

निम्नांकित पुस्तकें श्रद्धेय श्री अगरचन्दजी नाहटाके सत्परामर्शसे उनके साहित्यप्रेमी विद्वान् भ्रातृ-पुत्र श्री भँवरलालजी नाहटाके सम्पादकत्वमें प्रकाशित हुई हैं। पुस्तकोंकी भूमिकाएँ अत्यन्त सारगर्भित विद्वत्तापूर्ण और प्रमाणपुष्ट हैं। कतिपय भूमिकाएँ तो अपनेआपमें एक शोधपूर्ण ग्रन्थका रूप ले लेती हैं।

पुस्तक नामावली

१. सहजानन्द-संकीर्त्तन। २. बानगी। ३. जीवदया प्रकरण-काव्यत्रयी। ४. विनयचन्द्र-कृति-कुसुमांजलि। ५. पद्मिनीचरित्रं चौपई। ६. युगप्रधान श्री जिनचन्द्रसूरिचरितम्। ७. समयसुन्दर रास पंचक। ८. हम्मीरायण। ९. राजगृह। १०. सती मृगावती।

श्री नाहटाजीका कृतित्व पुस्तकों तक ही सीमित नहीं है वे गत चालीस वर्षोंसे विभिन्न पत्र पत्रिकाओंमें निरन्तर लिखते आ रहे हैं। उनके लगभग तीन हजार सारगर्भित लेख पत्र-पत्रिकाओंमें प्रकाशित हो चुके हैं। वे प्रतिमास लगभग साठ पत्र-पत्रिकाओंमें लिखते रहे हैं। उनके लेखोंकी अपूर्ण सूची संवत् २०१० में प्रकाशित हुई थी, उस सूचीमें उनके लेखोंकी संख्या १०८४ बताई गयी है। लेकिन आज नाहटाजीके लेखोंकी संख्या ३००० से ऊपर हो गयी है। वे ज्यों-ज्यों वृद्ध होते जाते हैं उनका विवेक-चिन्तन प्रौढ़ और लेखनशक्ति अधिक सक्रिय और सबल होती जाती है।

श्री नाहटाजीके लेखोंको विषय-वर्गीकरणकी दृष्टिसे हम निम्नांकित शीर्षक एवं उपशीर्षक दे सकते हैं—

विभाग १ : सन्दर्भ, इतिहास, पुरातत्त्व, कला

१. **सन्दर्भ**—ये लेख नागरी प्रचारिणी पत्रिका, हिन्दुस्तानी, ज्ञानोदय, जैनधर्मप्रकाश प्रभृति पत्रिकाओंमें प्रकाशित हुए हैं। इनका वर्ण्य विषय विविध है। अधिकांश लेख भाषा वैज्ञानिक और दार्शनिक विषयोंसे सम्बद्ध हैं।

२. **इतिहास**—ये लेख महावीर सन्देश, जैन सिद्धान्त भास्कर, अनेकान्त, राजस्थान भारती प्रभृति पत्रिकाओंमें प्रकाशित हुए हैं। इनमें राजवंशोंके इतिहास, जैन इतिहास, प्राचीनतम सामाजिक एवं सांस्कृतिक स्थितिसे सम्बद्ध लेख अत्यन्त प्रसिद्ध हैं।

३. **पुरातत्त्व नगर, तीर्थ, मन्दिर, प्रतिमा लेख आदि**—नाहटाजीने राजपूतानेकी बौद्ध वस्तुएँ, चित्र-कला जैनमूर्तिकला, आबू, चित्तौड़ आदिपर शतशः लेख लिखे हैं। इनका प्रकाशन धर्मदूत, शोधपत्रिका, कल्पना, लोक वाणी, जैनसत्यप्रकाश प्रभृति पत्रिकाओंमें हुआ है।

४. **जैन सम्प्रदाय तथा गच्छ**—नाहटाजीने जैनधर्म सम्प्रदाय और गच्छोंपर अनेक प्रकारसे प्रकाश डाला है। यति समाजकी उन्नतिके लिए जहां उन्होंने नये उपाय सुझाये हैं वहाँ उन्होंने प्राचीन जैनधर्मके गुण भी गाये हैं। उन्होंने अपने लेखोंमें अनेक प्रकारके छोटे-मोटे साम्प्रदायिक प्रश्न भी उठाये हैं और गच्छ

विद्वानोंसे समाधान चाहा हैं। उन्होंने अनेक गच्छोंकी पट्टावलियाँ भी प्रस्तुत की हैं और संशोधनकी आवश्यकतापर बल दिया है। इस प्रकारके लेख प्रायः जैनध्वज, श्रमण, जैनसत्यप्रकाश, वीरवाणी और महावीरसन्देश जैसी पत्रिकाओंमें छपते रहे हैं।

५. जैन जातियाँ और वंश—इस उपशीर्षकमें श्री नाहटाजीने जैनधर्म और जातिवाद ओसवंश स्थापना जैसे लेखोंको लिखा है। इन लेखोंमें उनका पुरातत्त्वविद् और इतिहासज्ञका स्वरूप सामने आता है। उनके ये लेख अनेकान्त, जैनभारती, ओसवाल नवयुवक जैसे पत्रोंमें प्रकाशित होते रहे हैं।

६. जैन महापुरुष—नाहटाजीने जैन आचार्यों तथा विद्वानोंकी प्रमाणपुष्ट जीवनियाँ लिखकर उन्हें विद्वत् समाजके सम्मुख प्रस्तुत किया है। जैन समाजमें पूजित श्री कृष्ण, वत्सराज उदयन, सम्राट विक्रम, आचार्य हरिभद्रसूरि तथा सती मृगावती, राजीमति आदिपर प्रकाश डालकर उन्होंने उनके आदर्श स्वरूपको जिज्ञासुओंके सम्मुख प्रस्तुत किया है। उसी उपशीर्षकमें उन्होंने युगप्रधान जिनचन्द्रसूरि और सम्राट् अकबर जैसे ऐतिहासिक लेख भी लिखे हैं।

७. जैन महापुरुष (श्रावक)—इस शीर्षकमें श्री नाहटाजीने अनेक प्रश्न उठाये। जैसे, क्या पैथड़साह पल्लीवाल थे, क्या भामाशाह गौड़ थे। श्री मोहनलाल दलीचन्द देसाई और श्री पूर्णचन्दजी नाहर जैसे विद्यारत्नके प्रति उन्होंने अपनी श्रद्धा संस्मरणके माध्यमसे इसी शीर्षकमें व्यक्त की है। पण्डितरत्न सुखलालजी और पण्डित भगवतजीपर तो श्री नाहटाजीने लिखा ही, उन्होंने जैनेतर महापुरुषों तथा विद्वानोंपर भी मुक्तहस्त लिखा है। चूँकि श्री नाहटाजीका जीवनरस आध्यात्मिकरस है। इसलिए उन्हें महर्षि रमण, अरविन्द और यतीजीने बहुत प्रभावित कियां है। उन्होंने अपनी इस भावनाको महर्षि रमणका आत्मज्ञान शीर्षक लेखमें व्यंजित किया है। इस प्रकारके नाहटाजीके लेख राजस्थान क्षितिज, जैन जगत्, वीरवाणी, प्रजामित्र जैसे पत्रोंमें प्रकाशित होते रहे हैं।

विभाग २ : साहित्य

श्री नाहटाजी शोधमनीषी हैं। वे शोधरसके आस्वादक हैं और शोध और साहित्यका पुरातन सम्बन्ध है। साहित्यकी अधुनातन नवीन विधाओंसे नाहटाजीका अनुराग नहीं है। वे मध्यकालीन, भक्त कवियोंकी कविताओंके अध्ययन, मनन और अन्वेषणमें ही दत्तचित्त रहते हैं। चूँकि साहित्यमें शोधका क्षेत्र प्रायः पुरातनसे सम्बद्ध है, इसलिए नाहटाजी शोधक्षेत्रमें संलग्न रहते हैं, उन्होंने अपने अनुभवके बलपर हस्तलिखित ग्रन्थोंकी समस्याओंसे सम्बद्ध अनेक लेख लिखे हैं। उन्होंने हजारों जैन ज्ञान भण्डारोंको देखा, पढ़ा और सुव्यवस्थित एवं सूचीबद्ध किया है। लगभग एक लाख पाण्डुलिपियोंकी वे सूची बना चुके हैं। नाहटाजीने ज्ञान भण्डारोंके अपने अनुभवोंको अनेक लेखोंके माध्यमसे प्रकाशित किया है।

श्री नाहटाजीने साहित्यका इतिहास और साहित्यकारोंको भी अपना निबंध विषय बनाया है।

उन्होंने जैन और जैनेतर साहित्यपर समान भावसे अपनी कलम चलायी है। इस प्रकारके निबंधोंमें उन्होंने पृथ्वीराजरासोकी प्रामाणिकता आदिपर तथा कल्पसूत्रपर विशेष प्रकाश डाला है। उन्होंने संस्कृत साहित्य और साहित्यकारोंपर भी पर्याप्त निबंध लिखे हैं। इसी प्रकार प्राकृत साहित्य और साहित्यकार, अपभ्रंश साहित्य और साहित्यकार, राजस्थानी साहित्य और साहित्यकार आपके प्रिय विषय रहे हैं। आपने आलोचना साहित्यको भी अच्छी देन दी है। साहित्यिक संस्थाओंपर भी आपने अनेक निबंध लिखे हैं।

इस प्रकार आपके साहित्य विभागके निबंधोंकी संख्या सहस्रात्मकसे भी अधिक हो जाती है। आपके ये निबंध साहित्यसंदेश, जैनजगत्, जैनध्वज जैसी बीसियों पत्रिकाओंमें छपते रहे हैं।

विभाग ३ : जैन-धर्म और जैन-समाज

इस शीर्षकमें आपने जैनधर्म और समाज पर सैकड़ों निबंध लिखे हैं। ऐसे निबंधोंमें आपने धार्मिक मान्यताओं और परम्परित विवेकानुमोदित पद्धतियोंका समर्थन किया है। आपका स्वर नैतिकता और सच्चरित्रता-का स्वर है और उसीके व्यापक प्रसार-प्रचारके लिए आप लिखते रहते हैं। आपने जिज्ञासा भावसे अनेक प्रश्न प्रकाशित करवाये थे जिनका सुन्दर समाधान कुँवर आणंदजीने किया था। ये प्रश्नोत्तर जैनधर्मप्रकाशमें प्रकाशित हुए हैं। ऐसे निबंधोंकी संख्या भी हजारसे ऊपर है।

विभाग ४ : अध्यात्म-आचार-शिक्षा-अर्थशास्त्र

श्री नाहटाजीका जीवन अध्यात्मोन्मुखी है। वे स्वयं पापप्रवृत्तियोंसे बचते है और दूसरोंको बचानेके लिए लेख लिखकर उपाय बताते हैं। ऐसे निबंधोंमें उनका एक ही प्रबल स्वर है और वह है आत्मविस्तार-आत्मोन्नतिका स्वर। उनकी शिक्षा है कि आवश्यकताओंको कम करो; कहना नहीं-करना सीखो। और ये सब उन्होंने विभिन्न पत्रिकाओंमें छपे निबंधोंके माध्यमसे बताया है। उनके सैकड़ों ऐसे लेख कल्याण, जीवन साहित्य, अखंड ज्योति प्रभृति पत्र-पत्रिकाओंमें छपते रहे हैं।

श्री अगरचन्दजी नाहटा सरस्वती और लक्ष्मीके वरद पुत्र हैं। उन्होंने माँ भारतीका उद्धार तो किया ही है साथमें अनेक ग्रंथरत्नोंसे उसका कोष भी भरा है। कलात्मक वस्तुओंके संग्रहसे उन्होंने जिस कला भवनको जन्म दिया है; उसमें आज लाखों रुपयोंके मूल्यकी दुर्लभ वस्तुएँ संगृहीत हैं। श्री नाहटाजीके कारण बीकानेर शोध छात्रोंका तीर्थस्थल बन गया है। श्री नाहटाजीमें उच्चकोटिकी मानवताका विकास हुआ है। वे परदुःखकातर, विश्वसनीय और निष्कपट सखा एवं मार्गदर्शक हैं। उनके जीवनका प्रमुखरस अध्यात्म है और वे इसीकी साधनामें दत्तचित्त हैं।

श्री नाहटाजी एकरूप होकर भी अनेकरूप हैं। वे विद्वानोंके वरेण्य, दीनदुखियोंके शरण्य और जिज्ञासुओंके ज्ञानार्णव हैं। वे सफल गृहस्थ, अच्छे पिता, कर्तव्यपरायण पति, स्नेहशील नाना और दादा हैं। व्यापारियोंकी दृष्टिमें वे 'दक्ष व्यापारी' और समाजसेवकोंमें समाज हितकारी हैं। धर्मप्राण व्यक्तियोंके वे धर्मसिन्धु और ज्ञानपिपासुओंके लिए वे अमृतबिन्दु हैं। अगर-तगर और चन्द्र रश्मियोंकी शीतलता, आत्मीयता तथा सुजनतासे कौन भ्रान्त हुआ है; उसी प्रकार सुगन्धित एवं परम शीतल व्यक्तित्व श्री अगर-चन्दजी नाहटासे किसका मन भरा है! किसीका भी नहीं। श्री नाहटाजीका व्यक्तित्व और कृतित्व अत्यन्त व्यापक आकाशके समान है: आकाशमें हर क्षमताका जीव अपने सामर्थ्यके अनुसार भरपूर उड़ तो सकता है; लेकिन उसका ओर-छोर नहीं पा सकता; ठीक उसी प्रकार श्री नाहटाके चरित पर यथाशक्ति लिखना तो संभव है; पर उसकी सम्पूर्णताकी सीमाका स्पर्श करना अत्यन्त कठिन है।

यावतः स्खलनं क्वापि भवत्येव प्रमादतः।
हसन्ति दुर्जनास्तत्र समादधति सज्जनाः॥

नाहटा-वंश-प्रशस्तिः

रचना-ज्येष्ठ शुक्ला ११, सम्वत् २०२३

सरस्वतीं नमस्कृत्य गुरुदेवप्रसादतः। वर्णयामि समासेन स्वीयां वंशप्रशस्तिकाम् ॥ १ ॥
अस्त्युपकेशवंशेऽस्मिन् नाहटा-नाम-गोत्रकः। विद्या-वैभव-सम्पन्नो राजते वैक्रमे पुरे ॥ २ ॥
पूते खरतरे गच्छे क्षत्रियान् परमारजान्। जिनादिर्बोधयामास दत्तान्तो मुनिसत्तमः ॥ ३ ॥
नाहटा-'जालसी'-वंशे अर्हद्धर्मानुवर्तकः। तस्मिन्नमानमल्लस्य ताराचन्द्रः सुतोऽभवत् ॥ ४ ॥
तत्सुतो जैतरूपाख्यो ग्राम-डांडूसर-स्थितः। राज्ञा सम्मानितश्चापि ग्रामलोकेन पूजितः ॥ ५ ॥
चत्वारस्तत्सुता आसन् धर्म-कर्म-परायणाः। ऊदी-नाम्नी सुता जाता नालग्रामे विवाहिता ॥ ६ ॥
सुश्रेष्ठ्युदयचन्द्राख्यो राजरूपो द्वितीयकः। देवचन्द्रस्तृतीयश्च बुधमल्लश्चतुर्थकः ॥ ७ ॥
ग्वालपाड़ा-नगर्यां च, गत्वा ह्युदयसंज्ञकः। व्यापारं स्थापयामास तत्र वाणिज्यवृत्तिकः ॥ ८ ॥
प्रवासं च विधायैष वर्ष-द्वाविंशपूर्वकम्। अर्थलाभं यशोलाभं कृतवान् निजभ्रातृयुक् ॥ ९ ॥
तस्याभवन् त्रयः पुत्राः राजरूपस्य धीनिधेः। लक्ष्मीचन्द्रस्तथा दान-मल्लः शंकरदानकः ॥१०॥
प्रथमोऽस्थान्निजे गेहे द्वितीयोदयचन्द्रकः। तृतीयो देवचन्द्रस्य गृहेऽभूच्च सुदत्तकः ॥११॥
रु[११]द्राङ्के[९]न्दु[१]शुभे वर्षे लक्ष्मीचन्द्रो ह्यजायत। द्विषष्टिवैक्रमे स्वर्गं चतस्रश्च गताः सुताः ॥१२॥
'पन्नाधाई' वरावरजी कालीबाईति चाभिधा। गोग्रासढिंगलान् या वै विततार सहस्रशः ॥१३॥

> श्रृङ्गाराङ्केन्दु (१९१६) सद्वर्षे जातो वै दानमल्लकः।
> उदारो धार्मिकश्चैव ख्यातनामा सुकीर्त्तितः ॥ १४ ॥
> खनिधिद्वयचन्द्रे (१९९०) च श्रावणे प्रतिपत्तिथौ।
> क्षमाप्य सकलान् भूतान् दिवं यातः समाधिना ॥ १५ ॥

गोमसी-मोतीलालाख्यौ देवचन्द्रस्य पुत्रकौ। स्वर्यातौ, गृहीतो वै शंकरदानो दत्तकः ॥१६॥
श्रेष्ठिशंकरदानस्य गुणानां बृहतीं ततिम्। वर्णयितुं न शक्तोऽहं धीर-वीर-मनस्विनः ॥१७॥
शून्यनेत्राङ्कचन्द्राब्दे(१९३०)जातः शंकरदानकः। आजानुबाहु-पुण्यात्मा, अङ्गुष्ठरसवल्लिकः ॥१८॥
पुनीता चुन्नीबाई च गृहश्री रत्नकुक्षिका। बोथरा-खेतसी-पुत्री सौख्यसम्पत्प्रवर्धिनी ॥१९॥
श्रद्धालुर्धार्मिकः श्रेष्ठी सौम्यो दीर्घविचारकः। परोपकारलीनात्मा ह्यप्रमादी विशेषतः ॥२०॥
दक्षो व्यापारवाणिज्ये नाडीज्ञानविशारदः। ज्योतिर्भैषज्यशास्त्रज्ञः साधुभक्तिपरायणः ॥२१॥
श्रीकृपाचन्द्रसूरेर्वै खरतरनभोरवेः। अभयजैनग्रन्थानां माला सच्छिक्षया कृता ॥२२॥
दानमल्लस्य गेहे च चातुर्मास्ये निधापिता। सद्धर्मज्ञानवृद्ध्यै वै स्वापत्येषु विशेषतः ॥२३॥
एकोनद्विसहस्राब्दे माघशुक्ले चतुर्दशे। त्यक्त्वा चतुर्विधाहारं स्वर्यातः शुभभावतः ॥२४॥
श्रेष्ठि-शंकरदानस्य पञ्च पुत्राः सदाशयाः। पुत्रिके च प्रजाते द्वे स्वर्णा-मग्नाभिधानिके ॥२५॥
ज्येष्ठो भैरवदानोऽभूत् प्रशान्तो नरसत्तमः। देवनिघ्नो गुरोर्भक्तः सर्वलोकस्य सेवकः ॥२६॥

> युग्मबाणमिते (१९५२) वर्षे जन्म यस्य महामतेः।
> मण्डलादि-समाध्यक्ष-भारो व्यूढश्च तेन वै ॥२७॥
> मार्ग (शीर्ष) कृष्णतृतीयायां बाणेन्दुविंशतौ तथा।
> प्रस्थानं कृतवान् स्वर्गं भैरुदानः श्रेष्ठिवरः ॥२८॥

शान्तः स्वभयराजश्च विद्याशीलो गुणाग्रणीः ।
शिक्षा-समाज-सेवायां व्यापृतश्च दिवानिशम् ॥२९॥
बाणबाणाङ्कचन्द्राब्दे (१९५५) जन्म यस्य शुभे क्षणे ।
मधुकृष्णस्य षष्ठ्यां वै भार्या गङ्गा बभूव च ॥३०॥
सप्तसप्ततिवैशाखे (१९७७) स्वस्तिथिः कृष्णसप्तमी ।
जाता स्वभयराजस्य चम्पा नाम्नी सुपुत्रिका ॥३१॥
तृतीयः शुभराजश्च साहसिक-शिरोमणिः । व्यापारदक्षो वर्चस्वी प्रमादमुक्तः कर्मठः ॥३२॥
वसुबाणनिधौ चन्द्रे (१९५८) मासे मार्गसुशीर्षके ।
शुक्लषष्ठ्यां सुवेलायां जन्म यस्य महामतेः ॥३३॥
युगप्रधान-योगीन्द्र-सहजानन्दगुरोः कृपा । आत्मज्ञानरसास्वादो भक्तिशीलो विशेषतः ॥३४॥
पञ्चषष्टितमेऽब्द आश्विनकृष्णे त्रयोदशे । जातो मघासुनक्षत्रे चतुर्थो मेघराजकः ॥३५॥
चौरैरपहृता यस्य शैशवे स्वर्ण-शृंखला । साहसेनोद्धृता येन संस्तुतः कोट्टपालकैः ॥३६॥
ऋषि-वसु-निधौ चन्द्रे दानमल्लस्य दत्तकः । परोपकार-प्रेमी च नानागुणगणान्वितः ॥३७॥
पञ्चमोऽगरचन्द्रो वै धर्मिष्ठो ज्ञानवान् महान् । अध्यात्मरससिक्तो यः क्रियाशीलः सतांवरः ॥३८॥
ऋषि-ऋत्वङ्क-चन्द्राब्दे (१९६७) चतुर्थ्यां चैत्रकृष्णके ।
अग्रचन्द्रस्य संजातो बीकानेरे शुभोद्भवः ॥३९॥
बहुज्ञो ज्ञानपूतश्च लेखने निशि वासरे । पुरातत्त्वेतिवृत्तस्य व्यापृतः शोधने तथा ॥४०॥
हिन्द्या च राजस्थान्या च नाना ग्रन्था गवेषिताः ।
निबन्धा लिखिता नैकाः सूचीपत्रं विशेषतः ॥४१॥
जिनदत्तप्रभोरष्ट-शताब्द्युत्सव-संगमे । जैनेतिहासरत्नाख्यं विरुद प्राप्तवान् महत् ॥४२॥
अल्यादिगंजेऽखिलविश्वजैनसंस्थागतैर्विज्ञजनैः प्रदत्तः ।
यस्मा उपाधिर्वरणीय एव विद्यादिशोभी किल वारिध्यन्तः ॥४३॥
आरानगर्यां गुणिवर्यमध्ये सम्मानितो यः किल राज्यपालैः ।
सिद्धान्तयुक्ते भवने पुराणे सिद्धान्त-प्राचार्य-पदेन मान्यः ॥४४॥
ग्रन्थाः सम्पादिता येन भूमिकालोचनायुताः । अप्रमत्तः सदा विज्ञो ह्यश्रान्तः शास्त्रशीलने ॥४५॥
श्रीविक्रमपुराधीश-शार्दूलसिंह-भूमिपैः । स्थापितं शोधसंस्थानं राजस्थान्यां यशस्करम् ॥४६॥
निदेशकपदं तत्र प्राप्य मान्यं प्रशस्तकम् । व्याख्याता लिखिताश्चैव ग्रन्थास्तेन महर्द्धिकाः ॥४७॥
श्रेष्ठिनो भैरूदानस्य रत्नत्रयीव सुतत्रयी । भंवर-हर्षचन्द्रश्च विमलचन्द्रकस्तथा ॥४८॥
सप्त सुपुत्रिका जाता पैपा-इचर्ज-संपदः । छोटा-बाधू पुन पांची कमलाबाईति सप्तमी ॥ ४९ ॥
वसु-दर्शनांके चन्द्रे शुभे आश्विनमासके । अश्लेषायुतद्वादश्यां जन्म मंगलवासरे ॥ ५० ॥
श्रेष्ठिनो लक्ष्मिचन्द्रस्य दत्तको भंवरलालकः । भाषा-लिपि-पुरातत्त्व-कथा-साहित्य-लेखकः ॥ ५१ ॥
अग्रचन्दस्य सहायः कार्ये शीघ्रगतिः पुनः । सम्पादिताः कृता ग्रन्था बहुला वै अनूदिताः ॥ ५२ ॥
पुत्रः पार्श्वकुमारोऽभूत् एम०काम० उपाधिकः । द्वितीयः पद्मचन्द्रश्च पौत्रः पौत्री तथैव च ॥ ५३ ॥
श्रीकान्ता-चन्द्रकान्तेति जाता च पुत्रिकाद्वयी ।
सुशील-सुनीलवरौ समीरश्च राजेशकः रूपकः ॥ ५४ ॥
सुतास्तुर्या हर्षचन्द्रो ललिताशोकदिलोपाः । प्रदीपाख्यश्चिरञ्जीवी विद्याध्ययनतत्परः ॥ ५५ ॥

श्रेष्ठिश्रीशुभराजस्य तनसुखोऽतिप्रियः । तनयः प्रकाशाभिधः पुत्रिके प्रतिभाप्रभे ॥ ५६ ॥
आत्मजौ मेघराजस्य केसरि वंशिलालकौ ।
तनसुखः कनिष्ठश्च जाताः पञ्च सुताः शुभाः ॥ ५७ ॥
भँवरी-सूरज-पुष्पा-माणकदेवी च निर्मला ।
नीलम-प्रेमा-ताराश्च, पौत्र्यः, पौत्रो देवेन्द्रकः ॥ ५८ ॥
अग्रचन्द्रमनस्विनः द्वौ सुतौ पञ्च पुत्रिकाः ।
धर्मचन्द्रो विजयश्च ज्येष्ठी शान्तिश्च कन्यके ॥ ५९ ॥
किरणसन्तोषकान्ताश्च पौत्रो राजेन्द्रनामकः ।
चिरं नन्दतु सद्वंशः नाहटा वटवृक्षवत् ॥ ६० ॥ पुनश्च
बुधमल्लस्य त्रिलोक-तेजकर्णाभिधौ सुतौ । रेखचन्द्रस्तुलारामस्तेजकर्णस्य द्वौ सुतौ ॥ ६१ ॥
बालचन्द्रो द्वितीयस्य छगनीनाथीति सूते । सत्पुत्रो बालचन्द्रस्य मनोहरः स्वर्गतः ॥ ६२ ॥
मोहिनी विदुषी पुत्री सद्वैराग्ये च दीक्षिता । पार्श्वे विचक्षणश्रियश्चन्द्रप्रभेति विश्रुता ॥ ६३ ॥
शब्दशास्त्र-कोश-काव्यजैनागमानां पारगा । शतध्यात्री बोधदात्री शीलालङ्कारभूषिता ॥ ६४ ॥
कीर्त्तिजुषो ग्रन्थालयः स्थापितो विश्वविश्रुतः ।
लिखित-मुद्रित-ग्रन्थाः सन्ति यत्रार्धलक्षकाः ॥ ६५ ॥
मुद्रा-चित्र-पुरातत्त्व-मूर्त्तिसत्कः सुसंग्रहः । श्रेष्ठिशंकरदानस्य कलाभवने प्रदर्शितः ॥ ६६ ॥
तयोरेव शुभनाम्ना कृतः सुकृतकोषकः । सप्तक्षेत्रे सुपुण्यस्य वृद्धयर्थं सुमहाशयैः ॥ ६७ ॥
जलालसरसुग्रामे ग्रामे डाँडूसरे तथा । कारितौ सजलौ कूपौ परोपकृतिहेतवे ॥ ६८ ॥
ग्रामे जामसरे शुभे धर्मशालापि कारिता । शिक्षालयेभ्यश्च दत्तो, द्रव्यराशिर्मुहुर्मुहुः ॥ ६९ ॥
श्रीजिनकृपाचन्द्राख्य-सूरीन्द्रसदुपाश्रये । जीर्णोद्धाराद्विस्तीर्णं व्याख्यानगृहं कारितम् ॥ ७० ॥
शत्रुञ्जये जिनदत्त-ब्रह्मचर्याह्व आश्रमे । कारितो हॉलः पुण्यार्थं, राजगृहपावापुरे ॥ ७१ ॥
आदिनाथप्रभोश्चैत्ये, नाहटागापाटके । गर्भगृहे सुमनोज्ञ संगमर्मरः कारितः ॥ ७२ ॥
रजतमयी सदङ्गी पुनर्भक्त्यर्थं ढौकिता । नानापुण्यकार्येषु च दत्तमना अहर्निशम् ॥ ७३ ॥
अमृतसर 'दा'वाट्या रूप्यकाणि सहस्रशः । अन्येष्वपि स्थानेषु च सत्कार्येषु वै दत्तवान् ॥ ७४ ॥
मणिसागरोपाध्यायान् सुगुरूनाकार्य पुनः । वर्षा-सुवासद्वयं च कारयामास भक्तितः ॥ ७५ ॥
तीर्थराजो विमलाद्रेरुपत्यकायां श्रद्धया । कारापिता धर्मशाला जैनभवनं विश्रुतम् ॥ ७६ ॥
श्रीजगजीवनाश्रमे कोलायते गृहद्वारं । निर्मितं भूरिदानेन भूरिकीर्त्तिश्चोपार्जिता ॥ ७७ ॥
पार्श्वनाथप्रभोश्चैत्ये आसामे ग्वालपाटके । कारिता श्रीमहासिंहकोष्ठागारिकादि सह ॥ ७८ ॥
कृतमुद्धारप्रतिष्ठाञ्च ध्वस्तालयभूकम्पया । जयचन्द्रोपाध्यायेन दानमल्ले उपस्थिते ॥ ७९ ॥
ठाकुरवाडीसम्पत्तिर्वृत्तिर्मर्यादा च शुभा । कारिता शंकरदानेन स्वयं महत्परिश्रमैः ॥ ८० ॥
डाण्डूसर-जोधासर-महाजनादिपुराणां । कृत्वा हि राजपुत्राणां साहाय्यं संचित यशः ॥ ८१ ॥
कालिकातापुर्यां जैने भवने प्रचुरं धनं । दत्तं गवालपाड़े च औषधालयहेतवे ॥८२॥
अभयग्रन्थमालायां नानाग्रन्थाः प्रकाशिताः । अल्पमूल्या अमूल्याश्च सर्वोपकृति हेतवे ॥८३॥
अभयरत्नसारश्च पूजासंग्रहनामकः । सतीमृगावतीसंज्ञो विधवाकृत्यतुर्यकः ॥८४॥
जिनराजभक्त्यादर्शः स्नात्रपूजेति पुस्तिका । भक्तिकर्त्तव्यात्मसिद्धि-दर्शनीयमन्दिराह्वाः ॥८५॥
जिनचन्द्रसूरिवृत्तं बुधश्लाघ्यं सत्शोधकं । ऐतिह्यकाव्यसंग्रहो वृत्तं सोमसंघपतेः ॥८६॥

श्रीजिनकुशलसूरेर्मणिधारिणश्च पुनः । गुरोर्जिनदत्तसूरेश्चरितं वैदुषीयुतम् ।।८७।।
कुसुममाला तथैव ग्रन्थावलिः ज्ञानसारः । रत्नपरीक्षा रामाय(णं) काव्यत्रयी जीवदया ।।८८।।
बीकानेर-जैन-लेख-संग्रह-नामको ग्रन्थः । त्रिसहस्रलेखात्मको विस्तृतभूमिकायुतः ।।८९।।
गुरोः सहजानन्दस्य संकोर्त्तनं सदुत्तमं । एते स्वकीयसंस्थया ग्रन्थाः सर्वे प्रकाशिताः ।।९०।।
पुनरपि श्रीमद्देव-चन्द्रग्रन्थमाला शुभा । स्थापिता द्विशताब्द्यन्ते श्रीजिनभक्तिभावतः ।।९१।।
चौबीसी-बीसी-स्तवाश्च सार्थाः पंच सुभावनाः । अष्टक-प्रवचनाली सार्थः स्वाध्यायसंग्रहः ।।९२।।
चत्वारश्चरितग्रन्थाः कृता बुद्धिमुनिना । बुधेन लब्धि मुनिना काव्यानि च निर्मितानि ।।९३।।
अगरचन्द्रेण कृता बद्धा भँवरलालेन । शार्दूलसंस्थया ग्रन्थाः काले काले प्रकाशिताः ।।९४।।
सभाशृङ्गारउद्योतो जसवन्तादिर्भक्तमा(लकः) । राजगृह-कायमरासो फेरूग्रन्थावली च ।।९५।।
राजस्थाने हस्तलेखा खण्डद्वये प्रकाशिताः । निर्मिता च प्राचीना काव्यरूपपरम्परा ।।९६।।
जिनराजेण प्रणीता कुसुमाञ्जलिर्विश्रुता । धर्मवर्द्धन-जिनहर्ष, सीतारामचतुष्पदी ।।९७।।
कविसमयसुन्दर-कृताः रासाश्च पंचकाः । हम्मीरायण पद्मिनी-पीरदान ग्रन्थावली ।।९८।।
कालिकाता-शान्तिचैत्यसार्धशताब्दिकायां च । स्मारिकेतिवृत्तसत्का सम्पादिता ज्ञानप्रदा ।।९९।।

चन्द्रांकनिधिवसुचन्द्रे (१८९१) ग्वालपाडास्थानके ।
ब्रह्मपुत्रनदीतीरे सद्व्यापारश्च स्थापितः ।।१००।।

उदय-राजरूपकौ सुप्रसिद्धौ महीतले । पश्चाच्चापड़े स्थाने च राजरूपलक्ष्मीचन्द्रौ ।।१०१।।
वसुबाणांकचन्द्राब्दे (१९५८) विपणि स्थापितवन्तौ । पश्चादभयकरणागरचन्द्रनाम्ना पुनः ।।१०२।।
इन्द्रियदर्शननिधिचन्द्रे बोलपुरे वरे । शान्तिनिकेतने शुभे व्यापारालयः स्थापितः ।।१०३।।
एकोनसप्ततिवर्षे कालिकातापुरे वरे । राजरूप-भैरूदाननाम्ना व्यापारः स्थापितः ।।१०४।।
शून्यसिद्ध्यंके चन्द्रे च श्रीहट्टे स्थापना कृता । मेघागरचन्द्रनाम्ना शुभफलदायिनः ।।१०५।।
चन्द्रांके बाबूरहाटे अगरचन्द्र नाहटे । तिनाम्नाढतदारी च कृता कर्पटहट्टिका ।।१०६।।
द्विसहस्राब्दे द्व्युत्तरे हाथरसामृतसरश्रीचरकरीमोगंजादिषु व्यापारः स्थापितः ।।१०७।।
मोहमय्यां कलकत्तायां हट्टिकादि व्यापारकः । त्रिपुरे आउट् एजेन्सी संचालिता बृहत्तरा ।।१०८।।
प्रशस्ति मालिका एषा सुधीजनसदाग्रहात् । कृता भँवरलालेन गीर्वाणभाषया मुदा ।।१०९।।
त्रयपक्षखयुग्माब्दे ज्येष्ठ शुक्ल सुवासरे । एकादश्यां विक्रमाख्ये सत्पुरे निर्मिते वरे ।।११०।।

श्रेष्ठिवर श्री अगरचंदजी नाहटा और उनकी साहित्य-साधना

प्रो० श्रीचन्द जी जैन, एम० ए० एल-एल० बी०

एक विशिष्ट व्यक्तित्व

लक्ष्मीपुत्र होकर भी श्री नाहटाजीने अपने जीवनको साहित्यसाधनामें लीन किया तथा भगवती सरस्वतीके श्रीचरणोंमें स्वयम्को निष्कामभावसे समर्पित कर एक ऐसा उदात्त आदर्श उपस्थित किया जो व्यापक दृष्टिसे शिक्षितोंको प्रभावित कर रहा है। अध्ययन-शीलता किस प्रकार सामान्य शिक्षाप्राप्तको गहन मनीषी बना सकती है—इस तथ्यको प्रमाणित करनेके लिए विद्यावारिधि श्री नाहटाका जीवन-चरित्र पर्याप्त है।

श्री नाहटा स्वयं एक संस्था हैं, जिसके प्रांगणमें बैठकर हजारों शोधस्नातकोंने अपनी साधनाको सफल बनाया है तथा साहित्य-जिज्ञासुओंने निज कामना की पूर्ति की है और आज भी कर रहे हैं।

उदार दृष्टिवाले होनेके कारण श्री नाहटाका ज्ञानमंदिर सबके लिए खुला हुआ है। ज्ञान-पिपासु यहाँ सुगमतासे प्रवेश पा सकता है। तन, मन और धन इन तीनोंका समन्वयात्मक सहयोग श्री नाहटाके श्री नाहटा विशाल ज्ञान-देवालयमें निरन्तर द्रष्टव्य है। कहा जाता है कि "अतिपरिचयादवज्ञा सन्ततगमनादनादरो भवति"—मान घटे नितके घर आए—लेकिन इस शोधमनीषीका सतत साहचर्य अनादरके स्थान पर आदर-प्रदाता कहा गया है।

पूर्णरूपसे सम्पन्न परिवारके मध्यमें रहते हुए श्री नाहटाजीकी साहित्यिक साधना अबाधगतिसे चल रही है एवं आपके गहन अध्ययन तथा चिंतनने आपको मनीषियोंकी प्रशस्त श्रेणीमें समादृत कर दिया है। ऐसी स्थितिमें निम्न कथन कहाँ तक सिद्धान्ताचार्य श्री नाहटाके सम्बन्धमें लागू हो सकेगा, यह विचारणीय है।

यस्यास्ति वित्तं स नरः कुलीनः, स पण्डितः स श्रुतवान्गुणज्ञः।
स एव वक्ता स च दर्शनीयः, सर्वे गुणाः काञ्चनमाश्रयन्ति।

धनवान ही कुलीन कहा जाता है तथा वही पंडित; श्रुतवान् और गुणज्ञ होता है एवं वही वक्ता तथा वही दर्शनीय कहा गया है। सत्य तो यह है कि स्वर्णके साथ ही सब गुण रहते हैं।

पुरुषार्थमें अटूट श्रद्धा एवं आस्था रखनेवाले श्री नाहटाके कर्मठ व्यक्तित्वने ही उन्हें यशस्वी और गुणवान् बनाया है।

साधारण वेश-भूषासे निज शरीरको ढके रहनेवाले श्रेष्ठिवर श्री नाहटा बड़े विनम्र तथा विवेकशील हैं। गोस्वामी तुलसीदासकी निम्न उक्ति आपके संबंधमें पूर्णरूपेण व्यवहृत होती है :—

बरसहिं जलद भूमि नियराए। यथा नवहिं बुध विद्या पाए[1]॥

श्री नाहटाकी कर्मसाधना लोक-कल्याणकारी है। वस्तुतः आपका 'स्व' परमें इतना लीन हो गया है कि उसे पृथक् करना अत्यन्त कठिन है।

लगभग पाँच हजार निबन्धोंको लिखकर जो यश एक समर्थ निबन्धकारके रूपमें श्री नाहटाने अर्जित किया है। उसकी कुछ विवेचनात्मक चर्चा यहाँ की जाती है:—

१. भवन्ति नम्रास्तरवः फलोद्गमैर्नवाम्बुभिर्भूरिविलम्बिनो घनाः।
अनुद्धताः सत्पुरुषाः समृद्धिभिः स्वभाव एवैष परोपकारिणाम्॥

निबंधकी परिभाषा एवं उसके विविध रूप

मानव अपने विचारोंको प्रकट करनेके लिए सदा उत्सुक रहा है। कभी वह अपनी भावनाको पद्यके सहारे व्यक्त करता हैं तो कभी गद्यको माध्यम बनाकर अपनी सहज अनुभूतियोंको सरस अभिव्यक्ति देता है। समयानुसार इस अभिव्यक्तिके माध्यमोंमें परिवर्तन होता रहा है। एक समय था कि प्रकाशनकी असुविधाओं-के कारण इंसानने पद्यको विशेषतः अपनाया और गद्यकी ओर कम ध्यान दिया। शनैः शनैः भावाभिव्यक्तिको अनुरंजित करनेके हेतु विविध साधनोंको अपनाया गया और आज निबन्धोंके प्रति प्रत्येक विद्वान्का अधिक आकर्षण देखा जा रहा है। सुगठित रचना निबंध कहलाती है। फिर भी एक व्यापक परिभाषा देना कठिन है। विविध प्रकारोंकी परिभाषाएँ देकर मनीषियोंने अपने विचारोंको प्रकट किया है तथा निबंधको कभी व्यापक रूपमें परखा है तो कभी इसे संकुचित रूपमें आबद्ध कर दिया है।

'आचार्य' पंडित रामचन्द्र शुक्ल निबंधको गद्यकी कसौटी मानते हैं और निबंधका चरम उत्कर्ष वहाँ स्वीकार करते हैं जहाँ एक-एक पैराग्राफमें विचार दबा-दबाकर ठूँसे गए हों और एक-एक वाक्य किसी सम्बद्ध विचार खण्डके लिए हों। स्पष्ट है कि शुक्लजी विचार गाम्भीर्य तथा भाषाकी सामासिकताको तर-जीह देते हैं लेकिन बाबू गुलाबरायने स्वच्छन्दता, निजीपन एवं सजीवतापर बल दिया है—निबंध उस गद्य रचनाको कहते हैं जिसमें एक सीमित आकारके भीतर किसी विषयका वर्णन या प्रतिपादन एक विशेष निजीपन, स्वच्छन्दता, सौष्ठव और सजीवता तथा आवश्यक संगति और सम्बद्धताके साथ किया गया हो। निबंधकी इस परिभाषामें आये विशेष निजीपन, स्वच्छन्दता, सौष्ठव, सजींवता सापेक्षिक शब्द हैं; और फिर विशेष निजीपन तथा स्वच्छन्दता एक साथ रहें ही यह जरूरी नहीं है। बेकनके निबंधोंमें विशेष निजीपन है लेकिन स्वच्छन्दता नहीं है। इसके साथ ही सीमित आकार भी किसी खास मात्राका बोधक नहीं है। बाबूजीने जो भी सराहनीय बातें एक रचनामें होनी चाहिए वे सब यहाँ रख दी हैं, किन्तु परिभाषा देखनेमें अच्छी होनेपर भी अस्पष्ट है।[1]

निबंध आज अपने रूढ़ या प्राचीन अर्थोंसे निकलकर साहित्यमें एक नये रूपमें प्रयुक्त होने लगा है। परम्परागत अर्थोंसे वह भिन्न है। रचना, लेख, प्रबंध सभीका क्षेत्र प्रायः निश्चित है। रचना किसी भी कृतिको कह सकते हैं। अंग्रेजीके कम्पोजीशन और रचनामें प्रायः समानता है। लेख किसी विषयपर लिखे गये निर्वैयक्तिक लघु-निबंधके लिए प्रयुक्त होता है, इसकी तुलना अंग्रेजी 'आर्टीकल'से की जा सकती है। ये कोई भी निबंधका स्थान नहीं ले सकते। निबंध इनसे कई अंशोंमें भिन्न है।

निर्वैयक्तिकता निबंधमें संभव नहीं, वह निबंधके अन्तर मनन और आत्मानुभूतियोंका व्यक्त रूप है। प्राचीन संस्कृत परम्पराके अनुसार निबंध केवल बौद्धिक अभिव्यक्तिका माध्यम था। दार्शनिक विश्लेषणोंको निबंधका रूप दिया जाता था। आजके निबंधका वास्तविक अर्थ एवं स्वरूप बदल गया है। तार्किकताको स्थान नहीं रहा। तार्किकताका स्थान सहृदयताने ले लिया है। उसमें व्यक्तित्व, भावों, विचारों तथा अनु-भूतियोंका सहज-स्वाभाविक अंकन रहता है, विचारोंका खंडन-मंडन नहीं। अतएव वर्तमान निबंधको अतीत-की स्थापित निबंधोंकी कसौटीपर कसना अनुचित होगा। जीवन-समाजके प्रगतिशील स्वरूपपर हमें ध्यान रखना होगा।

निबंध निर्बंध रचनाकी विधा है। निबन्धकार स्वच्छन्दतापूर्वक जिस किसी भी विषयपर अपने आन्तरिक विचार बिना किसी आडम्बरके व्यक्त करता है। आत्मीयता, सरलता, अनुभूति प्रवणताकी प्रधा-नता रहती है। न उसपर कोई नियंत्रण है और न निषेध।"[2]

---

१. डॉ० मोहन अवस्थी—हिन्दी साहित्यका अद्यतन इतिहास, पृष्ठ १४७।

२. डॉ० गंगाप्रसाद गुप्त—हिन्दी साहित्यमें निबंध और निबंधकार, पृष्ठ ४-५।

निबंधोंके विविधरूप हमें आज उपलब्ध हो रहे हैं तथा पाश्चात्य निबंधकारोंका आजके भारतीय निबंध लेखकोंपर पर्याप्त प्रभाव पड़ रहा है। ऐसी स्थितिमें निबंधोंके भिन्न-भिन्न रूपोंको एक विशिष्ट वर्गीकरणमें आवद्ध करना सरल नहीं है।

कतिपय विद्वानोंने विषयको आधार मानकर निबंधोंको वर्गीकृत किया है तो कुछ साहित्य-विशारदोंने वाह्य आकार-प्रकारको अंगीकार कर निबंधोंकी विविध श्रेणियोंको अंकित किया है। कुछ ऐसे भी आधुनिक समीक्षक हैं जिन्होंने शैलीको विशेषता देकर निबंधोंको विभिन्न रूपोंमें विभाजित करनेका प्रयास किया है।

साधारणतया निबंधोंको १. विचारात्मक, २. वर्णनात्मक, ३. आलोचनात्मक या साहित्यिक, ४. आख्यात्मक और ५. भावात्मक रूपोंमें विभक्त किया गया है। (देखिए संस्कृत निबंध-नवनीतम्—ले० डॉ० पारसनाथ द्विवेदी तथा श्री वंशीधर चतुर्वेदी)

बोधपक्ष, भावपक्ष, संवेदना, विधानक कल्पना एवं शैली तत्त्वोंसे समन्वित निबंध-कलाका आज जो उत्कर्ष दिखाई दे रहा है, वह गद्य-साहित्यके परमोज्ज्वल भविष्यका परिचायक है।

डॉ० राममूर्ति त्रिपाठीके मतानुसार लाघव, आपेक्षिक गांभीर्य, अपूर्णता संबंधनिर्वाहका कलात्मक ढंग, भाषा और शैलीकी प्रौढि तथा सोद्देश्यता; ये आदर्श निबंधकी विशेषताएँ हैं। (द्रष्टव्यः हिन्दी साहित्यका इतिहास, पृष्ठ २५२)

निबंध निरूपणमें शैलीका विशेष महत्त्व है। यह शैली ही निबंधको रोचक तथा प्रभावशाली बनाती है। इसीके माध्यमसे पाठक लेखककी आत्मीयतासे परिचित होता है और तथा अपने आपको उसमें एकाकार करनेका प्रयत्न भी करने लगता है। एक ओर शैली निबंधके कई रूपोंको जन्म देती है तो दूसरी ओर इनकी आन्तरिक भावना तथा अनुभूतिको विविध रूपोंमें समलंकृत भी करती है।

"शैली व्यक्तित्व एवं अभिव्यक्तिको विशिष्टता प्रदान करती है। शब्दचयन, ध्वनियोजना, अलंकार संश्लिष्ट रूप बना देते हैं। वही उसे अन्योंसे अलग करती है। वामन द्वारा प्रतिपादित 'यह विशिष्ट पद रचना'का भाव पाश्चात्य एवं भारतीय साहित्यमें स्वतः स्वीकृत हो गया है।

..................वस्तुतः शैली किसी लेखककी कृतिको समझनेमें बहुत सहायक होती है।...... इससे (शैलीसे) कभी भी लेखकका व्यक्तित्व अलग नहीं रहता। हमारे भाव, विचार, भाषा, ढंग, व्यक्तित्व सभी शैलीमें आ जाते हैं।.........निबंध साहित्यमें शैलीके ९ रूप मान्य हैं: १. प्रसाद शैली, २. व्यास शैली, ३. समास शैली, ४. विवेचन शैली, ५. व्यंग्य शैली, ६. तरंग शैली, ७. विक्षेप शैली, ८. प्रलाप शैली और ९. धारा शैली।"[1]

इस प्रकार लिखनेके ढंगको (शैलीको) निबंध-साहित्यमें प्रधानता देकर साहित्य-मनीषियोंने कहावतों, मुहावरों, सूक्तियों, अलंकारों आदिके प्रति जो आकर्षण प्रदर्शित किया है वह प्रत्येक दृष्टिसे अभिनंदनीय है।

श्री नाहटाकी निबंध-कला

श्री नाहटाकी निबंध-कला उस उद्यानके समान है जिसमें विविध रंगोंके सुरभित पुष्प खिलते रहते हैं। जीवन-यापनके साधनोंको यथावसर अपनाते हुए आपने अपनी साहित्यिक अभिरुचिको निरन्तर परिष्कृत किया एवं जीवनके गहन अनुभवोंके साथ आपने जो कुछ लिखा है अथवा जो भी कुछ लिख रहे हैं उसमें गहनता आत्मीयता, निष्पक्षता, भावमुग्धता, आध्यात्मिकता, दार्शनिकता, अनुरंजित अभिव्यक्तियाँ, सांस्कृतिक-चेतना, ऐतिहासिक शोध-तत्परता, प्राचीनता एवं आधुनिकताका सुखद समन्वय, राजनैतिक नव-चेतना, लोक-

१. हिन्दी साहित्यमें निबंध और निबंधकार : डॉ० गंगाप्रसाद गुप्त, पृ० ३१।

संस्कृति अनुरक्ति, निश्चल आस्था-विश्वास, अन्तरानुभूति-भावुकता, विशालचिन्तन-शीलता, विवेचन-क्षमता, कुशल समालोचक-मौलिकता, सरसता-रोचकता आदि अनेक विशेषताएँ परिलक्षित होती हैं। धर्म, कर्म, शिक्षा, मानवता, अहिंसा, अनेकान्तवाद, साहित्य-इतिहास, पुरातत्त्व, कला, विनोद, शब्द-चर्चा, गोत्र-जाति, राजा, प्रजा, संस्मरण, कल्पसूत्र, कृषि, स्तुति, अर्थ, काम-मोक्ष, कथा, पुराण, भूगोल, सन्त-परम्परा, सज्जन-दुर्जन, अनुरक्ति-विरक्ति, लोक-कथा, प्ररूढ़ियाँ, पुरातन एवं आधुनिक गद्य-पद्यात्मक साहित्य-विश्लेषण, वैदिक-पौराणिक एवं स्मृति-विषयक तत्त्व-चिन्तन, विविध लोक-भाषा चिन्तन, भाग्य आदि शताधिक विषयों-पर साधिकार लिखकर श्री नाहटाजीने अपने विशाल अध्ययन एवं विस्तृत गंभीर-विवेचनकी जो प्राणवन्त अनुभूतियाँ प्रस्तुत की हैं वे उनकी शोध-परक विचार-धाराकी अविच्छिन्न कला कृतियाँ है। राजस्थानी साहित्यकी विवेचनामें श्री नाहटाजीकी मान्यताएँ चिरकालसे सर्वमान्य हैं।

आपके निबन्ध साहित्यिक विश्लेषणके साथ-साथ वाञ्छित विषयके प्रतिपादनमें एक मौलिक दृष्टि-कोण प्रस्तुत करते हैं। फलतः शोध-पत्र-पत्रिकाओंमें ये प्रकाशित होते रहते हैं एवं मनीषी सम्पादक उन्हें छापकर अपने पत्रोंको गौरवान्वित समझते हैं। धार्मिक, सामाजिक, राजनैतिक एवं सांस्कृतिक पत्रोंमें श्री नाहटाके निबंध पूर्ण सम्मानके साथ प्रकाशित होते रहते हैं। कतिपय ये पत्र-पत्रिकाएँ हैं, जिनमें श्री नाहटाके सुविचारित तथा मार्मिक निबंध प्रकाशित होते रहते हैं : १. कल्पना, २. नया-समाज, ३. नागरी-प्रचारिणी पत्रिका, ४. भारतीय विद्या, ५. भारतीय संस्कृति, ६. मरुभारती, ७. मरुवाणी, ८. राजस्थान भारती, ९. राजस्थान साहित्य, १०. राष्ट्र भारती, ११. सम्मेलन पत्रिका, १२. सरस्वती, १३. साहित्य, १४. साहित्य संदेश, १५. सप्त सिन्धु, १६. हिन्दी अनुशीलन, १७ हिन्दुस्तान, १८. हिन्दुस्तानी, १९ आलोचना, २०. नवनीत, २१. नवभारत टाइम्स, २२. कल्याण, २३. अवन्तिका, २४. जनपद, २५. आज, २६. जनपथ, २७. अखंड ज्योति, २८. कलाधर, २९. जैन जागृति, ३०. जैन भारती, ३१. जैन-सन्देश, ३२. नई दिशा, ३३. महावीर सन्देश, ३४. युगान्तर, ३५. लोक-जीवन, ३६. ब्रज भारती, ३७. राजस्थान-क्षितिज, ३८. राष्ट्रदूत, ३९. वीर, ४०. वीर सन्देश, ४१. संगीत आदि लगभग १५० पत्र-पत्रिकाओंमें श्री नाहटाके विविध विषयोंपर आलोचनात्मक निबंध निकल चुके हैं और निकल रहे हैं। आपके वार्धक्यमें नव-जीवनकी प्रखर ज्योति निरन्तर प्रकाशमान है एवं साहित्य-साधनाकी भावना एक विशिष्ट तन्मयतासे दिनोंदिन वर्धमान भी है।

श्री नाहटाके विविध निबंधोंमें यह प्रायः देखा जाता है कि वे विषयानुसार प्रत्येक लेखके प्रारंभमें 'उपक्रमके रूपमें' कुछ ऐसी भावोत्पादक पंक्तियाँ लिखते हैं जो निबंधकी आन्तरिक भावनाको प्रकट करती हैं एवं जिस प्रकार नींवकी सुगठित परिसमाप्तिपर प्रासाद अथवा गृहका निर्माण शीघ्रातिशीघ्र होने लगता है उसी प्रकार यह उपक्रम निबंधकी पूर्णतामें विशेषतः सहायकके रूपमें यहाँ ग्राह्य माना जाता है। उप-क्रमात्मक यह वैशिष्ट्य श्री नाहटाकी निबन्धकलाकी एक असाधारण विशेषता है। यहाँ यह स्मरणीय है कि इस लघु भूमिकाकी भाषा-शैली निबंधकी रूप-रेखापर अवलंबित रहती है। शोध-परक लेखोंके उपक्रमोंकी भाषा संस्कृतनिष्ठ एवं शैलीमें सर्वत्र गाम्भीर्य रहता है लेकिन लोक-साहित्यसे सम्बद्ध निबंधोंमें लोक-भाषा जनित माधुर्यके साथ जन-जनमें प्रचलित शब्दोंका आधिक्य रहता है। उपक्रम भी सरस, सरल तथा संवेद-नात्मक रहते हैं। 'एक मुसलमान कविकी अज्ञात रचना 'पेमाइ कथा'का उपक्रम इस प्रकार है :

'हिन्दी भाषा और साहित्यके निर्माणमें मुसलमानोंका भी उल्लेखनीय योग रहा है। राजस्थानमें सन्तवाणीसंग्रहकी जो हस्तलिखित प्रतियाँ मिलती हैं उनमें मुसलमान कवियोंके पद, साखी आदि रचनाएँ भी मिली हैं। १४ वीं शताब्दीसे लेकर १९ वीं शताब्दी तकके अनेक मुसलमान कवियोंकी रचनाएं मेरे

अवलोकनमें आई हैं' उनमेंसे बहुतसे कवि और उनकी रचनायें हिन्दी साहित्य संसारमें अभी तक अज्ञात सी हैं। (भारतीय साहित्य, वर्ष ८ अंक ४)

'कवयित्री पदमाके तीन अप्रकाशित गीत'का प्रारंभिक अंक उपक्रमात्मक है, जिसका आरंभ निबंध-की प्रासंगिक भावनाकी परिपूर्णताका सांकेतिक चिह्न है :

'चारण जातिमें कवि तो हजारों हुए हैं और ख्यात एवं बात आदि गद्य रचनाओंके लेखक कई चारण विद्वान् हो गये हैं। पर इस जातिमें कवयित्रियां दो-चार ही हुई हैं जब कि शक्तिके अवताररूपमें कई चारण देवियाँ समय-समय पर प्रकट होकर चारणों एवं राजा-महाराजाओं तथा जन-साधारण द्वारा पूजी जाती रही हैं। करणीजीकी मान्यता तो सर्वत्र प्रसिद्ध है ही। उनकी स्तुतिरूपमें काफी साहित्य रचा गया है। वर्तमान चारण कवयित्री सौभाग्य देवी रचित 'करणी करुणा कुंज'के सम्बन्धमें मेरा लेख प्रकाशित हो चुका है। प्राचीन चारण कवयित्रियोंमें झीमां चारणी और पद्मा चारणी तथा बिरजू बाईका नाम लिया जाता है। इनमेंसे प्रथम कवयित्री झीमांके मुँहसे कहलाये हुए पद्य खीची अचलदास और लालाजी मेवाड़ी और उमादेकी बातमें प्राप्त होते हैं। ये पद्य वास्तवमें झीमांने ही बनाये थे या बातको लिखने या रचने वालेने भावनाका दूहा अपनी ओरसे जोड़कर झीमांके मुखसे कथा-प्रसंगमें कहला दिये हों, यह विचारणीय है। [विश्वम्भरा, पृ० ५०]

'महाराणा कुम्भारचित गीतगोविन्दका अर्थ शीर्षक निबन्धसे सम्बन्धित उपक्रममें वीरता एवं साहित्यिक निष्ठाका एक विलक्षण समन्वय प्रस्तुत किया गया है जो निबन्धकलाकी एक अविस्मरणीय विभूति है।

'राजस्थानके शासक अपनी वीरताके लिए तो प्रसिद्ध हैं ही, पर साहित्यिक क्षेत्रमें भी उनकी विशिष्ट देन है। संस्कृत, राजस्थानी व हिन्दी तीनों भाषाओंमें राजस्थानके राजाओं, जागीरदारों और ठाकुरों और उनके आश्रित कवियोंकी सैकड़ों रचनाएँ प्राप्त हैं। मेवाड़का राजवंश अपनी आन-बानके लिए प्रसिद्ध है ही पर १५वीं शताब्दीमें इस राजवंशमें एक ऐसे राणा हुए, जिनकी वीरताके साथ-साथ साहित्य और कलाका प्रेम विशेषरूपसे उल्लेखनीय हैं।' [शोध पत्रिका, पृ० ६०]

'जैन-तंत्र-साहित्य' निबन्धका प्रारम्भिक अंश संक्षिप्त होता हुआ भी व्यापक है तथा साधारण होनेपर भी असाधारण है। इसमें जैनधर्मकी प्राचीनताके साथ तंत्र-साहित्यकी पुरातनताका भी उल्लेख हुआ है :

''जैनधर्म भारतका एक प्राचीनतम धर्म है। उसके प्रवर्तक चौबीस तीर्थंकर भारतभूमिमें ही पैदा हुए, यहीं साधनाकर उन्होंने सिद्धि प्राप्त की। भगवान ऋषभदेव, जिनका पावन चरित्र भागवत आदि पुराणोंमें भी पाया जाता है, यावत् वेदोंमें भी नामोल्लेख प्राप्त है, जैन मान्यतानुसार सारे ज्ञान-विज्ञान या संस्कृतिके प्रवर्तक आदिपुरुष थे। इसीलिए उन्हें आदिनाथ या आदीश्वर कहा जाता है। नाथपंथके प्रवर्त्तक भी आदि-नाथ माने जाते हैं, पर सम्भव है वे बादके कोई अन्य व्यक्ति हों। प्राचीन जैनागमोंके अनुसार भगवान् ऋषभ-देवसे पूर्व यह आर्यावर्त्त भोगभूमि थी। अर्थात् उस समयके लोग वृक्षोंके फलादिसे अपना जीवननिर्वाह करते थे। असि,मसि और कृषिका व्यवहार तबतक नहीं था। एक बालक और बालिकाका युग्म साथ ही जन्मता और वयस्क हो जानेपर उनका सम्बन्ध पति-पत्नीका हो जाता था।

उनकी समस्त आवश्यकताओंकी पूर्ति दस प्रकारके कल्पवृक्षोंसे होती थी, इसीलिए परवर्ती साहित्यमें कल्पवृक्षकी उपमा इस अर्थमें रूढ़ हो गयी कि जिसके द्वारा मनोवाञ्छितकी पूर्ति हो जाय और वस्तु प्राप्त हो जाय वह कल्पवृक्षके समान है। आदि···· [श्री मरुधर केसरी मुनि श्री मिश्रीलालजी महाराज अभिनन्दन ग्रन्थ पृ० १२३]

साहित्य, इतिहास, भाषा आदिसे सम्बद्ध शोधात्मक निबन्धोंमें एक ओर प्राचीन साहित्यके विनाशकी

और सन्ताप अभिव्यक्त किया गया है तो दूसरी ओर इस प्रकारके उदात्त साहित्यके संरक्षण एवं प्रकाशनकी तरफ प्रबुद्ध विद्वत्समाजका ध्यान भी आकर्षित किया गया है। इस प्रकारके लघु उपक्रम बड़े उपयोगी सिद्ध हुए हैं। श्री नाहटाकी निबन्धकलाका यह वैशिष्टय अन्य निबन्धकारोंके लेखांमें अप्राप्त-सा है। इस सन्दर्भमें निम्न कतिपय निबन्ध पठनीय हैं :

१. एक अज्ञात ऐतिहासिक बेलि (शोधपत्रिका)।

२. खरतरगच्छके आचार्योंसम्बन्धी कतिपय अज्ञात ऐतिहासिक रचनाएँ। (श्री महावीर जैन विद्यालय सुवर्ण महोत्सव ग्रन्थ)।

३. कवि विजयशेखरके कतिपय अनुपलब्ध रास। (परिषद् पत्रिका)

४. कविवर जान और उसके ग्रन्थ। (राजस्थान भारती)

५. कविवर सूरत मिश्र। (व्रजभारती—सं० २००९)

६. कवि जगतनन्द सम्बन्धी कुछ विशेष जानकारी। (व्रजभारती अंक १ वर्ष १६)

७. एक मुसलमान कविकी अज्ञात रचना : पेमाइ कथा। आदि इस प्रकारके निबन्धोंकी एक बड़ी संख्या है।

लोक-साहित्य एवं संस्कृतिके निबन्धोंकी उपक्रमात्मक पंक्तियाँ बड़ी साधारण तथा सर्वजनबोधगम्य हैं। प्रचलित शब्दोंका प्रयोग करके श्री नाहटाने इस तथ्यको प्रमाणित कर दिया है कि वे संस्कृतनिष्ठ भाषाके लिखनेमें पूर्ण समर्थ होते हुए भी लोक-गम्य बोलीमें भी पूर्ण अधिकारसे लिख सकते हैं।

राजस्थानी-भाषाका बात-साहित्य बहुत ही विशाल और महत्त्वका है। विविध प्रकारकी सैकड़ों वार्त्ताएँ गत ३०० वर्षोंमें लिखी जाती रही हैं जिनमेंसे कई केवल गद्यमें हैं, कई पद्यमें और कई गद्य-पद्य-मिश्रित। [कृपाराम बणा सूर कृत सगुणा-सत्र सालरीं बना]

राजस्थानी भाषाका बात-साहित्य बहुत विशाल व विविध प्रकारका है। बहुत सी बातें ऐतिहासिक वाक्यों व स्थानोंसे सम्बन्धित हैं, यद्यपि वे अर्द्ध ऐतिहासिक ही कही जा सकती हैं, पर उनके द्वारा बहुत सी नई व कामकी जानकारी मिलती है। एक बात कई प्रकारसे लिखी हुई मिलती है। [एक अपूर्ण प्राप्त महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक बात]

यह विश्व विविध प्रकारके प्राणियोंका शम्भु-मेला है। प्रत्येक मनुष्यकी आकृति, भाषा और प्रकृति अलग-अलग प्रकारकी पाई जाती है। कोई प्रकृतिसे बहुत ही सरल होता है तो कोई बहुत ही धूर्त प्रकृतिका होता है। अनादिकालसे यह प्रवाह चला आ रहा है। ग्रन्थातरोंमें धूर्तोंकी कहानियोंका अच्छा वर्णन मिलता है। यह तो आज भी हमारे प्रत्यक्ष है ही ? कई-कई धूर्त बड़ी गप्पें हाँका करते हैं जिनको सुनकर बड़ी हँसी आती है और कौतूहल होता है। (धूर्त्ताख्यान नवीं शतीका एक महत्त्वपूर्ण अमूल्य ग्रन्थ)

श्री मान् नाहटाजीकी यह प्रवृत्ति विशेषतः प्रशंसनीय है कि वे शोधात्मक निबन्धोंमें अपनी मान्यताको प्रतिष्ठित करनेके लिए संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, हिन्दी आदिके उद्धरणोंको देते हैं तथा तर्कोंके माध्यमसे स्वकथनकी परिपुष्टि करते हैं। यह इनकी तार्किकशैली साहित्यिक शोध-निबन्धोंमें सर्वत्र परिलक्षित होती है। इस सम्बन्धमें आदिकालीन राजस्थानी जैन साहित्य मथुरामें रचित तीन हिन्दी ग्रन्थ, महाकवि सूर्यमल्ल मिश्रणकी वीर सतसईकी पूर्ति, जैन प्रबन्ध-ग्रन्थोंमें उद्धृत प्राचीन भाषा-पद्य, प्राचीन जैनग्रन्थोंमें कुल और गोत्र, कृष्ण-रुकमणि वेलिकी टीकाएँ, कतिपय वर्णनात्मक राजस्थानी गद्य-ग्रन्थ, कवि मयण बम्बका महत्त्वपूर्ण परिचय, १५वीं शताब्दीका महत्त्वपूर्ण अज्ञात ग्रन्थ, पृथ्वीराज रासोमें उल्लिखित ५२ वीरोंकी नामावली, दवावैत संज्ञक

रचनाओंकी परम्परा, तारातंबोलके यात्रा सम्बन्धी कतिपय उल्लेख एवं पत्र, प्राचीन जैन राजस्थानी गद्य-साहित्य, राजस्थानी साहित्यका आदिकाल आदि-आदि निबन्ध उल्लेख्य हैं।

आयु-वृद्धिके साथ साहित्यकारकी अनुभूतियोंमें सघनता आती है, जीवनकी कर्कश-कठोर और कोमल भावनाएँ पनपकर एक विशाल प्रतिमाके रूपमें स्थापित हो जाती हैं एवं सांसारिक सम्पर्कजनित अनुभव, जो कभी क्षणिक होते थे, वे वार्धक्यमें पाषाण-रेखाकी भाँति गहरे और स्थिर बन जाते हैं। चिन्तनकी चपलतामें स्थिरता आ जाती है और वाणी गहनतम शब्दोंसे मुखरित हो उठती है। यही गहनता, निजात्मचिन्तन-शीलता, अनुभवपरिपक्वता, गम्भीरता, परोपकारनिरता, उदारता, भाव-प्रवणता एवं परदुःखकातरता साहित्यकारके अखिल साहित्यको सूक्तियोंका एक अनुपम भाण्डार बना देती हैं। ऐसी स्थितिमें महावरकी लालिमा सतीत्वका ओज बनती है, मुखका लालित्य दिनकरके तेजमें परिणत हो जाता है, मंथरगतिका चापल्य एक दृढ़ संकल्पका उद्घोष करने लगता है तथा केशोंकी कालिमा रौद्रका भयावह रूप धारण कर लेती है। नयनोंकी चपल चितवनमें अगाध अनुभव एक ऐसी अनुरक्ति समुत्पन्न कर देता है जो जनताके प्रबोधनार्थ प्रतिक्षण सुभाषितोंके रूपमें मुखरित होने लगती है।

यौवनका मदिर सरस राग-रति-रंग वार्धक्यके गहन चिन्तनके रंगोंसे रंजित होकर जीवनकी वास्त-विकतासे अवगत होता है और उसके कल्पित अभिमानकी व्यग्रता शीघ्र तिरोहित हो जाती है। इसीलिए परिपक्व बुद्धि समुत्पन्न वाणीके स्वर जगतमें सुभाषितके रूपमें अंगीकार किये जाते हैं।

यहाँ श्री नाहटाजीकी कुछ सूक्तियाँ (सुभाषित) उद्धृत की जाती हैं जो उनके निबंधोंमें अनायास आ गयी हैं—

(१)

यह विश्व विविध प्रकारके प्राणियोंका शम्भु मेला है। प्रत्येक मनुष्यकी आकृति, भाषा और प्रकृति अलग-अलग प्रकारकी पायी जाती है। (नवीं शतीका एक महत्त्वपूर्ण अमूल्य ग्रन्थ—धूर्ताख्यान)।

(२)

स्त्री जाति भावुक और कोमल स्वभावशीला होते हुए भी जब वह अपने सत्त्व, तेज और कर्त्तव्यनिष्ठा-पर आती है तो बड़े-बड़े शूरवीरोंके छक्के छुड़ा देती है। सहनशीलताकी तो वह साकार मूर्ति है, अतः रण-क्षेत्रमें चण्डिकाका रूप धारण करती है तो अपनी शीलरक्षाके लिए, मर्यादारक्षाके लिए हँसती-हँसती जौहर (यमगृह) की जलती अग्निमें कूद पड़ती है। (कविवर धर्मवर्द्धनकृत गोलछोंकी सती दादीका कवित्त)

(३)

मनुष्य विचारता कुछ है और होता कुछ है। प्रयत्न करनेपर भी वह भवितव्यताको टाल नहीं सकता और इच्छा न होनेपर भी कुछ ऐसे प्रसंग घट जाते हैं जिन्हें बुद्धिपूर्वक कोई भी मनुष्य कभी नहीं कर सकता। (मथुराका एक विचित्र प्रसंग)

(४)

१. शक्तिका सदुपयोग और दुरुपयोग व्यक्तिपर निर्भर है।
२. केवल इस लोककी ही नहीं परलोककी भी सिद्धि मानवकी बुद्धिपर ही निर्भर है।
३. जीवन सही रूपमें एक कला है। इस कलाकी प्राप्ति करना प्रयत्नसाध्य है।

(मूरख-लक्षण, साधना, पृ० २७,२८)

श्री भँवरलाल नाहटा : व्यक्तित्व एवं कृतित्व

शास्त्री, शिवशंकर मिश्र, एम. ए., साहित्यरत्न

जीवन स्वयं एक साधना है और सिद्धिकी प्रतीति भी। जीना, जीनेकी कामना और जीनेको जीवनका लक्ष्य बनाये रखना, तीनों ही चेष्टायें साधारण मानवजीवनको अभीष्ट होती हैं। पर महापुरुषों, चिन्तकों व मनीषियोंके जीवनकी कलायें इनसे सर्वथा भिन्न होती हैं। वस्तुतः अन्तर लक्ष्यमें है। जीनेके लिए जीना एक अलग चीज है और जीनेको शाश्वत बनाये रखनेकी साधना अलग है। इसी प्रवृत्तिगत भेदमें मानवजीवनकी साधना-विधाओंमें भी अंतर हो जाता है। भौतिक सुखकी खोजमें व्यस्त जीवनके क्रियाकलाप और आध्यात्मिक सुखकी सिद्धिकी साधना तथा सामाजिक सुखसमृद्धिकी कामनाको प्रतिफलित करनेकी रससाधनाओंमें पर्याप्त अन्तराल होता है परन्तु कुछ एक कर्मयोगी ऐसे भी होते हैं, जो भौतिक, आध्यात्मिक व सामाजिक सभी सुखोंके प्रयासमें सामंजस्य बनाये रखनेमें सफल होते हैं। ऐसे महामानव प्रायः विरले ही होते हैं। प्रारब्ध इनके लिए हस्तामलकवत् होता है। ये संचित कर्मके प्रातिभज्ञानके धनी होते हैं और इसीलिये इनके क्रियमाण कर्म इन्हें सशक्त बनाये रखनेमें समर्थ होते हैं। ऐसे विरल कर्मठ व्यक्तियोंका जीवन प्रायः आत्मोन्मुख ही होता है क्योंकि आसक्तिमें इनकी आस्था नहीं होती, केवल कर्म ही अथ होता है और वही इति भी। सम्मान, यश और प्रतिष्ठा इनके भोग्य नहीं। श्रद्धा और आदर इनको देय हैं, ग्राह्य नहीं। सम्भवतया इसीलिये श्रेय और प्रेय दोनों ही इन्हें ढूँढते फिरते हैं। समाजकी सजग चेतनायें इनके समक्ष स्वयं श्रद्धावनत होती हैं और इन्हें अपनी कृतिका सुयश प्राप्त करनेका सहसा अवसर प्राप्त हो जाता है।

अपनी स्वाभाविक अनुभूतिको अभिव्यक्त करनेका जो मुझे अवसर मिला है, उसकी प्रतीतिके आधार 'श्री नाहटा-बन्धु' हैं।

डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदीने श्री अगरचन्द नाहटा और श्री भँवरलाल नाहटाको इसी नामसे पुकारा है और इनकी देनको विज्ञापनरहित साहित्य-साधनाकी अमर प्रवृत्तिकी संज्ञा दी है। मेरा अपना संपर्क दोनों ही चिन्तकोंसे रहा है। आप दोनों चाचा और भतीजे हैं। एक साधना है तो दूसरा सिद्धि। इनके पूरक प्रयत्न इतने मिश्रित हैं कि "को बड़ छोट कहत अपराधू, गनि गुन दोष समुझिहहिं साधू", महात्मा तुलसी-दासकी विनम्र प्रार्थना ही सहायक हो पाती है। वैसे एक कारण हैं तो दूसरा कार्य, एक प्रतीति है तो दूसरा प्रतिफलन, एक ज्ञान है तो दूसरा भक्ति, या महाप्राण निरालाके शब्दोंमें एक विमल हृदय उच्छ्वास है तो दूसरा कान्तकामिनी कविताका प्रतीक। फलतः जीवन, जीवनकी विधि, उसकी गति व जीवनकी समस्त सारभूत प्रक्रियाओंमें अभेद समानता इन्हें पृथक् रूपमें नहीं देख सकती। वैसे सेव्य-सेवक भावनाओंमें जो एकरसता है, वह अनिवार्य रूपसे इनमें ओत-प्रोत है। मुझे प्रसन्नता है कि भारतीय विद्वत्-समाजकी सहज बोध्य सर्जनशील चेतनाने इन दोनों ही महानुभावोंके अभिनंदनमें भी एकरसता व तादात्म्य बनाये रखनेका प्रयास किया है। अभिनन्दन ग्रन्थके आयोजकोंमें अग्रणी श्री हजारीमल बाँठियाके सदाग्रहने मुझे श्री भँवरलालजीके व्यक्तिगत, सामाजिक, साहितियक व आध्यात्मिक जीवनकी झाँकी देनेकी प्रेरणा दी है। प्रस्तुत आकलन अंतरंग साहचर्यको कहाँ तक सजीव बना सकेगा, सहृदय पाठकोंकी प्रज्ञाचक्षु ही इसे विश्वास दे सकेगी। इस गम्भीर चेतना-पुंज सरस्वतीके वरद-पुत्रके जीवनका जितना भी अंश साकार हो सकेगा, उतनी अपनी समझ, शेष अपनी अल्पज्ञताकी विवशता ही होगी। शास्त्र कहता है—"क्वचित्-खल्वाट



श्री भँवरलाल जी नाहटा

.निर्धनम्'', यह धन, सम्पत्ति, अन्य भोगोपकरण भी हो सकते हैं और विद्या-बुद्धि, यशमान, ज्ञान और भक्ति भी। प्रशस्त ललाट, मांसल-स्कंद, विस्तृत वक्षस्थल, घनी मूँछें, निर्मल दृष्टि तथा चिन्तन-शील भृकुटि-विलास, आपके प्रभावशाली व्यक्तित्वके प्रतीक हैं, रीति-नीति परम्पराके परिवेशमें अतीतके उज्ज्वल व तपस्यारत महर्षिके ओजसे आभासित भव्यरूप सहज आकर्षक बन जाता है। लक्ष्मी आपको प्यार देती हैं और सरस्वती प्रातःकालीन समीरके समान दुलार तथा शक्ति स्वयं अनवरत अध्यवसायकी सतत प्रेरणामें दत्तचित्त रहती है। भगवान् महावीरका अनुशासन आपको आत्मबोध देता है और सद्गुरु सहजानन्दघनकी दीक्षा आपको आत्मबल। संयम आपका आचरण है और अध्ययन आपकी आत्मनिष्ठा। निष्काम कर्म आपमें साकार हुआ है और ध्यान व धारणाओंकी संगतिने आपके भीतर और बाहरकी अनुभूति और कृतिको समन्वित कर रखा है। निर्मल चित्त, विमल मानस तथा तपःपूत आचरण जिस दुर्लभ व्यक्तित्वका निर्माण कर सके हैं, वह अन्यत्र दुर्लभ है। आश्चर्य यह है कि नितान्त आत्मोन्मुख होकर भी आपका सामाजिक जीवन इतना व्यस्त है कि अन्तर्विरोधके कारण भी कारणोंका आधार चाहते हैं। सम्भवतया बोधकी स्थिति-में व्यक्ति व्यक्ति न रहकर समाज हो जाता है। समरसता शायद समदृष्टिकी अमरसाधनाका ही फल होती है। कहते हैं कि अनुभूतिकी तीव्रता ही अभिव्यक्तिकी आधारशिला होती है और इसीलिए संवेदन-शील प्रकृति साधारणीकरणके आवेगके प्रबल प्रवाहको रोक नहीं पाती, और इसीलिए आपमें अवरोध नहीं, अस्वीकार नहीं। जो कुछ है सहज है, सरल है, ग्राह्य है और अनुकरणीय है।

एक धनीमानी और समृद्ध परिवारने आपको जन्म दिया है। अभावके संसारसे दूर, भावनाओंके संसारमें आत्मविश्वासके चरण सतत गतिशील रहे हैं। इसका प्रधान कारण एक बृहत् परिवारकी संयुक्त व समन्वित पवित्र प्रेरणा, परिचर्या तथा पावन परम्परा ही रही है। अर्थ, धर्म और कामके लिए जीवन कभी व्यग्र नहीं हुआ। पूर्वज कर्मठ थे। पिता श्री भैरूदानजी तथा पितृव्य श्री शुभराजजी, मेघराजजी, व अगर-चन्दजीकी छत्र-छायामें साधना और सिद्धिकी भौतिक संतुष्टि आपको तीनों ही पुरुषार्थोंको सुलभ बना रखी थी। आज भी वही वातावरण आपको आपके मध्यमायुकी ओर अग्रसर कर रही है। पितामह श्री शंकर-दानजीकी व्यावहारिक एवं व्यापारिक कुशलता आपको निर्द्वंद्व, निर्भीक एवं निरापद बनानेमें सहायक हुई है; यह अस्वीकार नहीं किया जा सकता। इतने बड़े कुटुम्बमें व्याप्त पूज्य-पूजक भावनाओंकी धार्मिक सहि-ष्णुता आजके वैयक्तिक परिवारोंकी दुनियाँमें असम्भव नहीं तो दुर्लभ अवश्य है। अर्थोपार्जन व कर्मभोगकी स्वाभाविक गतिमें धर्म-साधनाका मणिकांचन संयोग भी आपके परिवारकी ही विशेषता रही है। साधु-समागम, तीर्थाटन, जप, तप, दान व मन्दिर-निर्माण, धार्मिक-उत्सवोंके अवसरपर सक्रिय धार्मिक कृत्य आदि, त्याग, संयम व अपरिग्रहकी मनोवृत्ति परिवारके प्रत्येक प्राणीके लिए अभीष्ट है। फलतः कर्त्तव्य-निष्ठाके साथ-साथ आपकी प्रकृतिमें सौजन्य, कुलीनता तथा निरभिमान व्यावहारिक, सामाजिक व धार्मिक चेतनाका समन्वय मिलता है तो आश्चर्य नहीं वरन् संतोष ही होता है। आप कुलदीपक हैं, परिवारकी मर्यादा हैं, अपने समाजके प्रकाश स्तम्भ हैं और हैं अपने जीवनकी ज्योति, जो अनेक जन्म-संसिद्धिके रूपमें आपको अनायास सुलभ हुई है।

वस्तुतः मेरा अपना परिचय सर्वप्रथम श्री पारसकुमारसे हुआ था। ये पूर्णतया आपकी प्रतिकृति हैं। "आत्मा वै जायते पुत्रः" की प्रतीति तो मुझे आपके सान्निध्यसे ही प्राप्त हुई है। परम सुशील, संयमी, सभ्य व पूर्ण व्यावहारिक पुत्र, जो सम्पत्तिशाली कहे व माने जाने वाले वर्गके परिवारोंमें खोजनेसे ही प्राप्त हो सकते हैं, मुझे यह आभास दे दिया था कि धनकी परिधिमें भी धर्मके केन्द्रबिन्दु, मानवता, सज्जनता सहृदयताका अभाव नहीं है। ठीक यही भाव मुझे प्रिय अनुज श्री हरखचन्दके साहचर्य्यसे ज्ञात हुआ। मुझे

वे आपके पूरक प्रतीक हुए। भौतिक एवं आध्यात्मिक प्रकृतिके अद्वितीय समन्वय जहाँ आँसुओंकी कीमत है, विरागका राग है और है अनुरागमें विरागकी अद्भुत झलक। हरखचन्दजी सम्भवतया आँसू और मुसुकानके बीचकी कड़ी हैं। धर्म उनका सहायक है, अर्थ उनकी प्रेरणा है और काम उनकी सृष्टिका संस्थान। शील और संकोच जो आदर और सन्मानकी भूमिका अदा करते हैं, आप दोनों भाइयोंको ईश्वर-प्रदत्त हैं। मेरा तात्पर्य मात्र इतना ही है कि श्री भँवरलालजीकी परिधि इतनी शान्त व मनोहर है, इतनी सर्जनशील व प्रभुताविहीन है कि ऐसी परिस्थितिमें ही उनके सम्पूर्ण गुणोंकी परख हो सकती है।

सत्य, अहिंसा, अस्तेय व अपरिग्रह आदि जैनधर्मके मूल-भूत सिद्धान्तोंकी विस्तृत व्याख्यायें हैं, विविध परिणतियाँ हैं। साधु व गृहस्थ-धर्मोंके पृथक्-पृथक् आचरण भी हैं। विधि-निषेधकी विभिन्न मर्यादाओंकी भी सीमायें नहीं हैं। लेकिन सतत जागरूक व्यक्ति मत-मतान्तरों, दार्शनिक विवादों एवं विधि-निषेधोंसे ऊपर होता है। सिद्धान्त वस्तुतः आचरणकी मर्यादा निर्धारण करनेमें सहायक होते हैं। वे स्वयं आचरण नहीं होते। फलतः विश्वासोंमें तर्क, सिद्धान्तके निर्णयके लिए गौण बन जाते हैं। कर्तव्य श्रद्धा चाहते हैं और आचरण सामाजिक विश्वास। या थोड़ा ऊपर उठने पर हम कहेंगे कि आचरण आत्मविश्वास चाहते हैं जिसमें परका भी समान अस्तित्व होता है। वस्तुतः परम्परा-निर्वाह अन्य वस्तु होती है और कर्तव्यनिष्ठा अलग। यदि कहीं दोनोंका सम्मिश्रण उपलब्ध होता है तो वह अद्भुत होता है। इसीलिये साधारण व्यक्तित्वसे वह व्यक्तित्व विशेष हो जाता है और उसे हम महान् आत्मा कहनेको बाध्य होते हैं। श्री भँवरलालजीमें जैनधर्म साकार दृष्टिगोचर होता है। यहाँ जो कुछ है, मनसा वाचा कर्मणा है द्विधा नहीं और इसीलिये द्विधाके प्रति आवेश भी नहीं। आक्रोश नहीं और न ही शिकायत ही है क्योंकि आचरणमें किफायत नजर नहीं आती। यहाँ परम्परा है। परम्पराकी आनुभूतिक धरोहर है। तर्क और सिद्धान्तोंके मननकी चिन्तनधारा है। विश्वास और श्रद्धा है। तेरापंथ भी उनके लिए उतना ही सहज बोध्य है, जितना मन्दिर मार्ग। यहाँ धर्म बाह्याडम्बर नहीं जितना दिखावा है, वह लोकाचार है। फलतः आपकी साधना एकांगी नहीं, सर्वांगीण है। मुनि जिनविजय तथा मुनि कांतिसागर, कृपाचन्दसूरि और श्री सुखसागरजी, मुनि पुण्यविजय, श्री हरिसागरसूरि, मणिसागरसूरि, कवीन्द्रसागरसूरिके सत्संगने आपको धर्म चेतना दी है तो मुनि नगराज, मुनि महेन्द्रकुमार 'प्रथम', जैसे व्यक्तित्वने आपको अपना स्नेह दिया है। बुद्धिगम्य-ग्रहण आपकी मानसिक पुकार है, संस्कार-जन्य स्वीकार आपके हृदयकी। नयनकी भीख भँवरलालजीको अनुकूल है, पर अन्तश्चेतनाकी पावन धारा, जिसमें आपका मन अवभृथ स्नान करता है, वहाँ आपका एक अलग अस्तित्व भी है। उस मानसतीर्थमें सबके लिए समान स्थान है। अनेकान्तवादी विचारधारा ही आपके एकान्त व सार्वजनिक चिन्तनका मार्ग प्रशस्त कर सकी है। सद्गुरु श्री सहजानन्दजी, जिन्हें देखने व सुननेका एक बार मुझे अवसर मिला है और जो आपके दीक्षागुरु भी हैं; मुझे यह लिखनेका साहस देते हैं कि भँवरलालजी मन और वाणीसे अपने गुरुकी मुक्त अनुभूतिके कायल हैं। श्री सहजानन्दजी शुद्ध-बुद्ध अनुभूत योगके प्रतीक श्रमण रहे हैं। उनमें धर्मोंकी, भारतीय दर्शनोंकी, और भारतीय नैतिक जीवन मूल्योंकी अद्भुत समन्विति रही है। भँवरलालजीमें जो गौरव है, वह गुरुका है, परिवारका है, पूर्वजोंका है और है लोकाचारका मर्यादित व स्वीकृत संयोग। स्पष्टतः यह मनीषी महा-मानव समुद्रकी तरह गुरु गम्भीर है। समस्त संसारकी विचार-सरिता इस महासागरमें निमज्जित होकर इसमें एकरस हो चुकी है। लगता है, भगवान् महावीर की वाणी "मित्ती मे सव्वभूएसु वैरं मज्झं न केणई" ने ही आपको आतिथ्यकी कामना दी है। आत्मकल्याण, लोक मंगल तथा विश्वजन-हितायके जैनानु-शासनका सार्वभौम उद्घोष आपका अभीष्ट है, इसीलिये आपकी धर्मदृष्टि उदार है। करुणा और दया

आपके **उपजीव्य** आधार हैं। धर्म यद्यपि शोध-विषय नहीं है, मात्र विश्वास ही उसका शोध है जिसे आत्म-निरीक्षण या आत्मविश्लेषण कहा जाता है, फिर भी आपकी सजग चेतना परम्परा और सत्यके बीच सामंजस्य स्थापित करनेमें सतत संलग्न रही है। सत्य यह है **कि कालभेदसे मतभेद होता है और मतभेदसे मनभेद**। यही मनभेद विकल्पको जन्म देता है और विकल्प असमंजसकी स्थितिमें मानवचेतनाको अस्थिर बना देता है जिसे हम क्रान्तिका धरातल कह लेते हैं। यहीं द्विधा उत्पन्न होती है। फलतः विचारोंमें संतुलन रह नहीं पाता और वाद-विवादकी स्थिति व्यक्ति, समाज, राष्ट्र व अन्तर्राष्ट्र-मनको विचलित कर देती है। यह सारी स्थिति कालभेदको लेकर चलती है। काल स्वयं बँधता है क्षणोंमें, घंटों और दिनोंमें, मास और वर्षोंमें और फिर युगों और शताब्दियोंमें। **शायद इसीलिये सामाजिक चेतनाके प्रतीक धर्मके अविरल विभाज्य-बिन्दुओंके प्रवाहको काल भी नहीं पचा पाता है** क्योंकि महापुरुषों और कालपुरुषके इसी अन्तर्द्वन्द्वके शोधनकी आवश्यकता मनीषियों व चिन्तकोंकी कालजयी मेधा, सदा अनुभव करती रही है। अतीतको वर्तमान और भविष्यको भी सजग वर्तमान बनानेकी साधना कितनी स्तुत्य है, यह मनीषी पाठक ही विचार करेंगे। मैंने तो इस व्यक्तित्वकी चेष्टाओंकी प्रतीतिके लिए अपनी अनुभूति भर व्यक्त की है। भंवर-लालजीकी अन्तर्दृष्टि इतनी सूक्ष्म रही है, जितनी कालकी गति। इसीलिये इस मौनचिन्तककी प्रज्ञा सदा वातावरण-सापेक्ष होते हुए भी बिखरी हुई धर्मकी कड़ियोंमें व्यामोहरहित गांठ बाँधती चली आयी है। वे कहा करते हैं कि :

"वेदा विभिन्नाः स्मृतयो विभिन्नाः नैको मुनिर्यस्य मतिर्न भिन्ना।
धर्मस्य तत्त्वं निहितं गुहायां महाजनो येन गतः स पन्थाः॥"

आप अडिग हैं, निश्चल हैं। सचमुच विज्ञापन-रहित हैं। अपने विश्वासोंको ही जीवनके नैतिक मूल्योंका आधार मानते आये हैं। यदा कदा ऐसे अवसरोंपर जब वे आलोच्य बने हैं, इन्होंने कहा है कि **भर्तृहरि** ठीक कहते हैं :

"निन्दतु नीति-निपुणा, यदि वा स्तुवन्तु लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम्।
अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा न्याय्यात् पथः प्रविचलन्तिपदं न धीराः॥"

अध्ययन, चिन्तन, मनन, अध्यवसाय व निदिध्यासन, आपके जीवनके स्थिर-चित्र हैं। सद्गुरु साथ हैं, जैनानुशासन पासमें है, अविचल निष्ठा है, फलतः इनमें विकल्प नहीं, द्विधा नहीं, एक बोध है। प्राण-वान् विश्वास है। क्योंकि आपके लिए धर्म साधन और सिद्धि दोनों ही है। प्रमाणके लिए अभी-अभी एक जीवन्त प्रश्नपर आपके विचार देखनेको मिले हैं। भगवान् महावीरके दिव्य प्रयाणके पावन स्थल पावा-पुरीको लेकर एक विवाद उठ खड़ा हुआ है। कन्हैयालालजी सरावगीकी **इस विषयमें** एक पुस्तक मुझे भी पढ़नेको मिली थी। मैंने भँवरलालजीसे प्रश्न किया था कि आपकी इस विषयमें क्या सम्मति है? आपने स्पष्ट उत्तर दिया—"**भाई भगवान् महावीरकी २५०० वीं जयंती मनानेका भारत सरकारने निश्चय किया है। युगपुरुष एकदेशीय नहीं होते, उनका आदेश समस्त संसारके लिए होता है। उनके जन्म और निर्वाणके स्थानके निर्णय, विशुद्ध ऐतिहासिक व पुरातात्त्विक प्रश्न हैं। इसपर एकान्तिक विचार करना किसी भी सम्प्रदायके लिए उचित नहीं। मेरा तो अपना ख्याल है कि हजारों वर्षोंसे लोक-श्रद्धा मध्यमपावा, जो बिहार प्रान्तमें स्थित है, को ही प्रभुका प्रयाण-स्थल समझकर अपनी भक्ति प्रगट करती आ रही है। इसलिये राजनैतिक या निहित स्वार्थमें लिप्त कुछेक वर्ग या सम्प्रदायकी तात्त्विक व्याख्या सामयिक लाभके लिए ही है। विदेशी विद्वानोंने प्रायः बौद्ध-त्रिपिटकों ही को अपने इतिहास लेखनमें सहायक माना है। जैन-**

सिद्धान्त व जैनागमोंमें व्यक्त विचार उन्हें एकांगी नजर आये हैं, फलतः उनका: निर्णय स्पष्ट नहीं हो सकता क्योंकि सम्प्रदायगत विद्वेष एक दूसरेको हेय समझनेको बाध्य हैं। मेरा अपना विचार है कि यद्यपि लोक-परम्परा लोकाचारके द्वारा बिहारस्थित मध्यमपावाकी युगपुरुषकी निर्वाणभूमिको अपने विश्वासका केन्द्र मानती आयी है सो हम उस लोक मंगलमयी लोकभावनाके समक्ष नत होनेको बाध्य हैं" हमारा इतिहास इसके विरुद्ध नहीं है। आपने 'जैन भारती'मे एक निबंध लिखकर इस भ्रमको असामयिक, अतात्त्विक तथा अनैतिहासिक प्रमाणित करनेका प्रयास किया है। तात्पर्य यह कि यह मनीषी सत्य और आचारमें सामंजस्य का समर्थक है।

भँवरलालजी शिक्षित और दीक्षित दोनों ही हैं। पर शिक्षाको, जिस रूपमें आधुनिक युग द्वारा प्रमाणित किया जाता है, मात्र ५ वीं क्लास तककी है। इसे हम प्रारंभिक या प्राइमरी एजुकेशन कहा करते हैं। अंग्रेजी साहित्यमें एक मुहावरा है द थ्री आर्स (The three R's) लिखना, पढ़ना और हिसाब किताब (रीडिंग, राइटिंग तथा रिथमेटिक) नितान्त अपर्याप्त। पर प्रतिभा स्कूल, कालेज व युनिवरसीटियों में निर्मित नहीं होती। वह जन्मजात होती है। इनके तो पेटमें ही दाढ़ी थी। पूर्वजन्मके पूत संस्कारोंने इस महान् व्यक्तित्वको देशकी समस्त भाषाएँ विस्तृत संसारकी मुक्त पाठशालामें सहजमें ही, समय और अभ्यास के अभ्यस्त अध्यापकों द्वारा पढ़ा दी हैं। वस्तुतः प्रातिभज्ञान स्वयंभू होते हैं। प्रारब्ध और क्रियमाण कर्म जिन संस्कारोंको जन्म देते हैं वे संचित होते रहते हैं। उसी संचयकी सिद्धि एक 'जीनियस' के रूपमें प्रगट होती है। कुछ तो संस्कार, कुछ व्यक्तित्वकी अभिरुचि और कुछ वातावरण; सभीके पारस्परिक सहयोगकी परिणति एक ऐसे विवेकका सृजन करती है, जिसे हम मानसिक शक्ति कहते हैं। यही मानसिक शक्ति प्रतिभाके नामसे जानी जाती है। इसे प्रमाणपत्रकी आवश्यकता नहीं होती। यह स्वयंसिद्ध प्रमाणपत्र होती है। संसारकी शिक्षण संस्थाएँ इनकी कायल होती हैं। विद्वत् समाज इनका सम्मान करता है। इस-लिए कि प्रतिभा स्वयं शुद्धबुद्धज्ञानकी अधिष्ठात्री होती है। वह सामाजिक स्वीकृतिकी अपेक्षा नहीं रखती, प्रत्युत स्वीकार ही स्वयं उसकी योग्यता स्वीकार करनेको बाध्य होता है। **संस्कृत, पाली, प्राकृत, अपभ्रंश, अवधी, बंगला, गुजराती, राजस्थानी तथा हिन्दी आदि समस्त भाषाओंमें पारंगत, प्राचीन** ब्राह्मी, कुटिल आदि युगकी भाषाओंकी सतत परिवर्तित लिपियोंकी वैज्ञानिक वर्णमालाके अद्भुत ज्ञानके अभ्यस्त श्री भँवर-लालजीकी प्रतिभाके कायल, प्रायः इनके सभी अन्तरंग विद्वान् मित्र हैं। मूर्तिकला, चित्रकला, वास्तुकला तथा ललित कलाओंकी आपमें परख है। आपकी अभिरुचि प्रायः भाषाशास्त्र, लिपि-विज्ञानमें है। फलतः पुरातात्त्विक अनुसंधानकी ओर अग्रसर होनेमें आपका लिंग्विस्टिक एप्रोच पर्याप्त सहायक हुआ है। न जाने कितने ज्ञात अज्ञात ग्रन्थोंकी प्रतिलिपियाँ जो विशिष्ट विद्वानोंसे लौटकर आयीं, बीकानेरके अपने संग्रहालयमें उपस्थित हैं। अनुसंधान और शोध हेतु अनेकानेक दुर्लभ चित्रकलाओंके नमूने, वस्तु व मूर्तिकलाकी प्रामाणिक प्रतिमाएँ, अमूल्य प्राचीन ग्रन्थोंकी प्रतिलिपियाँ आपने संग्रह की हैं, देखने मात्रसे इस नर-रत्नकी प्रकृतिका परिचय प्राप्त हो जाता है। पुरातत्त्व व नृतत्त्व-विज्ञानके अतिरिक्त इतिहास-शोधनकी प्रकृतिने भी आपका झुकाव शिलालेखोंकी ओर उन्मुख किया है। प्रायः सभी शिलालेखों की, चाहे प्राचीनतम ही क्यों न हो, लिपि पढ़ने व उसका उचित अर्थ लगानेमें आपको किंचित् मात्र भी कठिनाई नहीं पड़ती। **अतीतके गर्भमें मानव अर्जित ज्ञानकी संचित राशिको ढूँढ़ कर बाहर निकालनेमें आपने जो समय-समयपर सहायता की है, वह स्तुत्य है।** प्राचीन संस्कृति व सभ्यताके विस्मृत तथ्योंके संग्रह करनेकी इनकी प्रबल आकांक्षाने इन्हें गहन अध्ययनकी अभिरुचि प्रदान की है। राजनीतिज्ञ, सामाजिक व सांस्कृतिक परिस्थितियोंकी समाजशास्त्रीय विश्लेपणात्मक चिन्तन-धाराने ही आपके अतीत और वर्तमानके बीच सामंजस्य संस्थापनमें योगदान किया है।

पाठक लोग जिज्ञासु अवश्य होंगे कि आखिर इस अपरिमित ज्ञानके उपजीव्य स्रोत क्या हैं? आपकी बहुज्ञता व तथ्य-संग्रहकारिणी प्रवृत्तिके मूल स्रोत क्या हैं? प्रश्न स्वाभाविक होगा। निश्चय ही व्यक्तित्व व्यक्तिगत और वातावरणकी शक्तिके संतुलनका परिणाम होता है। वस्तुतः भँवरलालजी पितृव्य श्री अगरचन्दजीके आग्रहके परिणाम हैं। उनके आज्ञापालनकी उत्कट अभिलाषाके क्रियान्वयनने अपनी शक्तिका उपयोग कर आपने अपना स्वतः निर्माण किया है। जिज्ञासा उनकी, कार्य इनका। विचार उनके और लेखनी इनकी। भावना उनकी और प्रतीति इनकी। इस प्रकार भक्ति, श्रद्धा, विनय, आज्ञाकारिता तथा अपनी स्वाभाविक रुचिकी सम्मिलित-साधनाके परिणामस्वरूप श्री भँवरलालजी श्री अगरचन्दजीके ज्ञानकी अभीष्ट प्यासके सरोवर बनते गये हैं। विषयवस्तुके भावपक्षके जिज्ञासु काकाजीके कलापक्ष और कभी भावपक्षके रूपमें, आपने कलाकी साकार प्रतिमाका निर्माण अपनी अनवरत लेखनीसे किया है। कहते हैं वेदव्यासजीकी अभिव्यक्तिको लिपिबद्ध करनेकी शक्ति किसी देवशक्तिको नहीं हुई। केवल गणेशजीने यह भार ग्रहण किया। लेकिन गणेशजीने यह स्पष्ट कर दिया था कि यदि आप (वेदव्यासजी) कहीं रुकेंगे तो उनकी लेखनी भी बंद हो जायगी। वेदव्यासजीने हाँ भर ली। उन्होंने कुछ श्लोकोंके पश्चात् एकआध श्लोक गूढ़ अर्थवाला बोलना प्रारम्भ किया और श्री गणेशजीसे मात्र इतना ही कहा कि आप अर्थ समझकर ही लिखेंगे। गणेशजी गूढार्थ-श्लोकों पर रुक जाते और तब तक कृष्णद्वैपायन श्री वेदव्यासकी चिन्तनधारा नवीन श्लोकोंका निर्माण कर लेती। यह क्रम चलता रहा और एक अद्भुत वाङ्मयका निर्माण होता रहा। कथाके अंशमें कितनी सत्यता है, आजका वैज्ञानिक व्यक्ति शायद न समझ पाये पर फलितार्थ समझनेमें वह भी भूल नहीं करेगा कि दोनों महान् थे, दोनों ही दैवी शक्तियाँ थीं। यहाँ भी **भावपक्ष जितना अभिव्यक्तिके लिये व्याकुल है तो कलापक्ष भी उतना ही आतुर**। दोनोंकी **इन्टेन्शिटी** समान है और तभी सद्वाङ्मयकी सृष्टि सम्भव हो सकी है। राजस्थानके ये दो सजग प्रहरी कला, ज्ञान, विज्ञान, सभ्यता, संस्कृति, धर्म और नीति व्यक्तिगत व सामाजिक जीवनके मूल्योंकी खोजमें सतत व्यस्त रहे हैं। यह तृष्णा बुरी नहीं है। ये अध्यवसायी, स्वाध्यायी कालक्षेपके प्रमादसे रहित हैं। इनके समक्ष :

> "भोगा न भुक्ता वयमेव भुक्ताः, तपो न तप्तं वयमेव तप्ताः।
> कालो न यातो वयमेव याताः, तृष्णा न जीर्णा वयमेव जीर्णाः॥"

एक वरदान है, निराशामय अभिशाप नहीं, क्योंकि ये स्रष्टा हैं, स्रष्टाके शोधक हैं तथा नवीन सर्जनके कारण और कार्य दोनों ही हैं। मध्यदेशीय संस्कृतिके संरक्षण, पोषणमें किसी प्रकारकी बाधा इन्हें प्रिय नहीं हुई है। **जब कभी किसी प्रकारका आक्षेप आया है, बीकानेरकी दृष्टि इस व्यस्त नगरीकी ओर उठी है और संकेतमात्रने भँवरलालजीके रोम-रोमको जागृत किया है। इतिहास जागृत हुआ है, लिपि नवीन हुई है, विचार व्यवस्थित हुए हैं। विद्वत्-समाज कृतार्थ हुआ है**। तात्पर्य यह कि अगरचन्दके भँवर, अगरके सुगंधका आभासमात्र पाकर भुनभुनाने लगे हैं। भँवरलालजी परागके प्रेमी हैं। इनका स्रोत बीकानेरके पुष्पराज श्री अगरचन्द हैं, इसमें दो मत नहीं हो सकते। काका और भतीजेकी यही दैवी-शक्ति इनके वाङ्मयकी सृष्टि करती रही है। ऐसा ही हुआ है और इसी वातावरणने इनके एक पृथक् व्यक्तित्वका निर्माण किया है। देश, काल, परिस्थिति और वातावरण प्रायः अपना सभी अलग अस्तित्व रखते हैं पर जगत्की गतिमें वे सामूहिक योगदान देते हैं। **राजस्थान, बंगाल, आसाम, मणिपुर आदि पूर्वसे लेकर** पश्चिमपर्यन्त तथा हम्पीसे लेकर आबू पर्वत तथा दक्षिणी व पश्चिमी प्रान्तोंके धार्मिक व साहित्यिक संस्थान इनके विचार बिन्दुओंके अविरल प्रवाहमें अपने पद चिह्न छोड़ते गये हैं। गणमान्य विद्वानोंके सामयिक सहयोग, सम्पर्क व साहचर्यने इन्हें समुत्सुक किया है, कर्त्तव्यकी प्रेरणा दी है, अध्ययनकी विधा दी है। जो विद्वान् आपके सम्पर्क व सान्निध्यमें

आये हैं पाठक स्वयं विचार करेंगे कि इस मनीषीका अक्षर-ज्ञान कितना अ—क्षर होता गया होगा। जैनाचार्य, प्रसिद्ध पुरातत्ववेत्ता डॉ० मुनि जिनविजयके आप कृपापात्र हैं। मुनि कान्तिसागरजीका कर्मठ जीवन इन्हें दुलार दे सका है। त्रिपिटिकाचार्य महापंडित राहुल सांकृत्यायन इनके निकट सम्पर्कमें रहे हैं। ओरियन्टल लैंग्वेजेजके प्रसिद्ध विद्वान् डॉ० सुनीतिकुमार चटर्जी, डॉ० सुकुमार सेन, डॉ० गौरीशंकर ओझा जैसे भाषा-शास्त्री लिपि-विशेषज्ञोंका सान्निध्य आपको सम्बल देता रहा है। प्रिंस आफ वेल्स म्यूजियमके डायरेक्टर डॉ० मोतीचन्द आपके मित्रोंमें हैं। प्रसिद्ध विद्वान् डॉ० वासुदेवशरण अग्रवालसे आपका सम्बन्ध एक अविदित कहानी बन गया है। प्रसंगवश उसका उल्लेख किया जायेगा। हिन्दी साहित्यके मूर्धन्य विद्वान् व आलोचक डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी, डॉ० दशरथ शर्मा तथा अन्य समसामयिक मनीषी-वर्गका स्नेह व सौहार्द आपको अनायास उपलब्ध होता आया है। अब हम अनुमान कर सकते हैं कि प्राइमरी शिक्षा समाप्त करने वाला यह भारतीय चिन्तक कितना शिक्षित, दीक्षित व प्रामाणिक ज्ञानका स्वाध्यायी धनी है और इस धनकी धरोहरका उद्गम स्थान कहाँ है। प्रकाशित पुस्तकोंकी भूमिकामें अंकित विद्वानोंकी सम्मतियाँ उक्त कथनकी साक्षी हैं। स्थान विशेषपर इनकी चर्चा पाठकोंको इस विषयकी प्रतीति दे सकेगी। मुझे विश्वास है प्रसंगात् आपके लिपिज्ञानके प्रति डॉ० सुनीतिकुमार चटर्जीके उद्गार पर्याप्त होंगे। **महानुभावी** संप्रदायका एक ग्रन्थ है "पावापाठ"। ग्रन्थ प्राचीन नहीं, प्रत्युत ३०० वर्ष पहलेकी कृति है। ग्रन्थ मराठीमें लिखा गया है पर लिपि उसकी सांकेतिक है। अगरचंदजीने उस पुस्तकको देशके जानेमाने विद्वानोंके **पास पढ़ने तथा उसका अर्थ करने** सानुरोध भेजा था, पर पुस्तक बैरंग वापस लौट आयी। अब बीकानेरकी प्रतिभाने कलकत्ता स्थित अपनी शक्तिका संस्मरण किया। भँवरलालजीने लिपिकी एक वर्णमाला तैयार की और ग्रन्थ आद्योपान्त पढ़ डाला। आवश्यकता हुई कि वैज्ञानिक पद्धति पर लिपि विज्ञानके मार्गदर्शक, भाषावैज्ञानिकों द्वारा अपने पठनके औचित्यको विश्लेषित किया जाय। भँवरलालजीने सुनीति बाबूको वह ग्रन्थ दिखाया और पढ़कर सुनाया। सुनीति बाबूने आपकी भूरि-भूरि प्रशंसा की और कहा—"आपनी चोमोत्कार कार्ज्ज कोरेचेन।" सुनीति बाबूके हाथोंपर शब्द खेलते हैं, भाषाएँ उनकी चेरी हैं, विश्रुत विद्वान् हैं। उनकी यह आश्चर्य भरी स्वीकृति इस मूक साधकके ज्ञानकी अविदित कथा है। ऐसे ही एक बार श्री जिनदत्तसूरिकृत "अपभ्रंश-काव्यत्रयी" की व्याख्यामें आये एक प्रसंगपर भँवरलालजीने आपत्ति की और महापण्डित राहुल सांकृत्यायनने अपनी मनःस्थिति ठीक की। प्रसंग था "कज्जौ करइ बुहारी बुड्ढी" महापण्डितने अर्थ किया था "घरमें बुड्ढी औरतें झाड़ू देनेका काम करती हैं" आपने लिखा कि—पता नहीं भाषामर्मज्ञ और समाज-मनोवैज्ञानिक तथा प्रसिद्ध समाजशास्त्रीने ऐसा क्यों लिखा। पद्य तो कहता है कि कज्जो (कूड़ाकरकट) बुड्ढी (बद्ध, संगठित-बँधे हुए) बुहारी (झाडू] से ही सम्भव है। कुछ ऐसी ही पचासों आनुमानिक व्याख्याओंका प्रत्याख्यान इस प्राचीन भाषा-मर्मज्ञने किया है। 'ढोलामारू दोहा' के कई स्थलों पर की गई उचित आपत्ति नागरी-प्रचारिणी पत्रिकामें अंकित है। डॉ० माताप्रसाद गुप्त जो इलाहाबाद युनिवर्सिटीके एक इने-गिने प्राध्यापकोंमें रहे हैं, उन्होंने हिन्दीके आदि कालीन ग्रन्थों, जो विश्वविद्यालयीय उच्च कक्षाओंमें पाठ्य थे, की व्याख्याएँ प्रस्तुत कीं, जैसे हम्मीरायण तथा वसंतविलास इनकी आलोचनाके केन्द्र बन गये हैं। वस्तुस्थिति यह है कि हिन्दी साहित्यका आदिकाल जैन व बौद्ध महात्माओं, साधकों व सिद्धोंकी पृष्ठभूमि पर खड़ा है। नाथपंथकी साहित्यिक देन भी हिन्दीके लिए एक स्तम्भ है, जिसने मध्यकालीन साहित्यको पूर्ण रूपसे प्रभावित किया है। फलतः अपभ्रंश साहित्यकी वैज्ञानिक विधाओंकी जानकारीके अभावमें वस्तुस्थितिका ज्ञान असम्भव है। शौरसेनी प्राकृतमें उपलब्ध समस्त ज्ञान गरिमा अपभ्रंश भाषामें लिपिबद्ध हैं और यह सारा वाङ्मय देशके पश्चिमोत्तर भागमें लिखा

गया है। फलतः आंचलिक भाषाओंकी वास्तविक परख किये बिना हम तात्कालीन साहित्यके प्रति न्याय नहीं कर सकेंगे। राजस्थानकी समस्त आंचलिक भाषा-लोक संस्कृति तथा लोक भावनाओंके क्रमिक विकासके लिए यदि हम विज्ञानके घिसेपिटे नियमों व सिद्धान्तोंकी कसौटीपर कसते रहे तो वह हमारे अज्ञानके प्रयासका विकल्प ही होगा। १००० से लेकर १३७५ तक सम्पूर्ण वाङ्मयसे सुचारु रूपसे अध्ययनके लिये तत्तद्देशीय प्रतिभाओंको ही अधिकारी निर्देशक स्वीकार करना पड़ेगा, अन्यथा विश्वविद्यालयीय अध्यापन-शैली व शोध-प्रणाली केवल प्रिन्सिपुल बनकर रह जायेगी और हम अज्ञानान्धकारमें आँख मूँद कर टटोलने-की मान्य प्रणाली पर चलनेके अभ्यस्त हो जायेंगे। लोकभाषा, लोकाचारकी भावनाओंमे ओत-प्रोत होती है, चारणोंकी कृतियोंको मात्र भाषा-वैज्ञानिक ही निर्णय कर पाये, यह तात्त्विक दृष्टिसे असम्भव है। यही बात सिद्धों व योगियोंकी अभिव्यक्तियोंके प्रति लागू है। मेरा आग्रह मात्र इतना ही है साहित्य जनमानसका संचित प्रतिबिम्ब होता है, फलतः जनमानसकी भावना जो सामयिक रससाधनाका वर्चस्व पाकर अभिव्यक्त होती है उसकी अभिव्यक्तिकी विधा उसके सम्पर्क व सान्निध्यमें रहनेवाले विद्वान् ही कर सकते हैं और वही मान्य भी होना चाहिये।

दशवीं शताब्दी के पश्चात्का पश्चिमी भारत **विशेषतया** राजस्थान और उत्तरी भारत (पंजाब, उत्तरप्रदेश, बिहार तथा बंगाल) ऐतिहासिक दृष्टिकोणसे उतना भ्रामक नहीं होना चाहिये। तात्कालीन सामाजिक व सांस्कृतिक परिवेश भी उतने धुंधले नहीं हैं। फिर भाषाके प्रश्नको लेकर १०वीं से १४वीं शताब्दी तक साहित्य-सृजनके प्रति भ्रामक विचारोंकी आवश्यकता ही क्या है? शौरसेनी, मागधी तथा अर्द्धमागधी प्राकृतसे निःसृत क्षेत्रीय भाषाओंकी बदलती हुई व्यंजनाशक्ति, ध्वनि, शब्द तथा वाक्यांशोंमें अंतरकी स्थिति तत्तद्देशीय विद्वानों द्वारा निर्णीत होनी चाहिये। रासो ग्रन्थोंके विषयमें रामचन्द्र शुक्ल, श्यामसुन्दर दास, राहुल सांकृत्यायन, डॉ० रामकुमार वर्मा, डॉ० धीरेन्द्र वर्मा तथा डॉ० भोलानाथजीके विचार असमंजसकी स्थिति उत्पन्न कर सकते हैं पर डॉ० मोतीलाल मेनारिया, गौरीशंकर ओझा तथा अन्ततः डॉ० दशरथ शर्मा आदि विद्वानोंकी सम्मति क्यों न निर्णायक मानी जाय। नाहटा बन्धुओंने इस दिशामें प्राचीनतम प्रतियोंकी अनेकानेक प्रतिलिपियाँ तैयार करके जो स्तुत्य काम किया है, इनका यह प्रयास इस दिशामें विशेष सहायक हुआ है। अन्तः और बाह्य-साक्ष्यकी प्रामाणिक स्थितिके लिए इनका अमूल्य सहयोग हिन्दी साहित्यके आदिकालके लेखकों, आलोचकों व मनोवैज्ञानिकोंके लिए वरदान सिद्ध हुआ है और होता रहेगा। उक्त विचार श्री भँवरलालजीने अनेकों बार व्यक्त किया है, मैंने तो प्रसंगवश उनकी चर्चा की हैं। बंगला और मागधीको लेकर भी यही विवाद विद्यापतिके विषयमें चर्चाका विषय बनता रहा है। मेरी समझमें दोष Methodist ,Scholars के मानसकी विकल्प स्थितिका है। किसी भी विषयका प्रारम्भ ही वस्तुतः विवादग्रस्त होता है, पर उसकी अक्षुण्ण परम्परा विवादोंको वाग्जाल समझ कर त्यागती रही है। नाहटा-बन्धुओंने आलोचनाकी भूमि दी है, आलोचनाएँ कम की हैं। साहित्यका उद्धार किया है, निर्णयकी पृष्ठ-भूमि दी है; यह निर्विवाद सत्य है।

साहित्य-साधना कर्म और ज्ञान-साधनासे पृथक् नहीं रखी जा सकती क्योंकि साहित्य-साधनाके साथ कर्म और ज्ञानका पूरा सम्मिश्रण होता है। फलतः अभिव्यक्ति चाहे स्वान्तः सुखाय हो या बहुजन हिताय, दोनोंमें अन्तर नहीं होता। इसलिये कि जो स्वान्तःसुखाय है; वह बहुजनके परिवेशका ही परिणाम है। व्यक्ति और समाजकी आवश्यकताओंसे सम्बन्धित भावनायें ही अभिव्यक्तिके माध्यमसे साहित्यकी संज्ञा पाती हैं। अतः 'स्व' और 'पर'के ज्ञानकी प्रेरणाका फल कर्म यदि भावानुभूतिकी तीव्रताके प्रवाहको साहित्यकी

विधा देता है तो सृजनकी प्रकृति तीनों ही मनःप्रवृत्तियों की प्रकृति स्वीकार की जानी चाहिये अन्यथा कर्मयोग व ज्ञानयोग दोनों ही भावयोगसे पृथक् केवल एक शास्त्रीय मर्यादा बन कर रह जायेंगे। यदि मनेन रागात्मिका वृत्ति ही काव्यके आधार माने जायेंगे तो विरागजन्य भावाभिव्यक्तियोंको नोटिस मात्र समझ कर हम तिरस्कृत करते रहेंगे और भक्तिरससाधकोंकी विशाल कृतियाँ साहित्यकी श्रेणीसे अलग पुस्तकालयोंकी निधि बन कर ही रह जायेंगी। मेरा तात्पर्य यह है कि मनकी समस्त स्थितियों व प्रकृतियोंको राग-विराग किसी भी स्थितिमें-यदि रसानुभूति होती है और वह अभिव्यक्ति पानेके आवेगसे व्याकुल होकर, विमल उच्छ्‌वास होकर, व्यक्त होती है तो आलोचकोंकी रसव्यंजनाकी श्रेणीमें गिनी जानी चाहिये अन्यथा हम मानव मनके प्रति न्याय नहीं कर सकेंगे और अनेकानेक प्रतिभाएँ विलुप्त हो जायेंगी। नाहटा-बंधुओंके सृजन स्वांतः-सुखाय व बहुजनहिताय दोनों ही हैं। भँवरलालजीने प्रायः स्वान्तःसुखाय रचनायें ही की हैं और जहाँ ज्ञान और कार्य दोनोंका ही समवेत सृजन हुआ है वहाँ सामाजिक चेतनाका प्रतिफलन ही स्वीकार करना पड़ेगा। इनकी कृतियोंको हम मौलिक, अनूदित तथा सम्पादित, इन तीन विभिन्न श्रेणियोंमें रखेंगे। रचनाओंके आकलन स्वयं अपने महत्त्व प्रगट करेंगे। पाठक और विद्वद्वर्ग तथा अन्यान्य चिन्तक निर्णय करेंगे कि इन स्वतंत्र प्रकृतिके साहित्य साधकोंके सृजनकी भूमि क्या है ?, इनकी आकांक्षायें क्या हैं ? और इनका कथ्य क्या है ?

काल-क्रमानुसार निम्नांकित विरचित व सम्पादित ग्रंथोंके सम्पादन, अनुवाद, व्याख्या, चरित्रचित्रण, संस्मरण, शोध एवं अनुसंधानात्मक विषयोंके अतिरिक्त काव्य, स्तवन, प्रशस्ति विषयक पुस्तकोंकी सूची प्रस्तुत है। पुरातत्वके प्रति इनके आकर्षणने, धर्मके प्रति आस्थाने और साहित्यके प्रति इनकी चित्तवृत्तिने इनकी बहुदर्शिनी-बहुस्पर्शिनी प्रतिभाको विविध विषयोंकी ओर उन्मुख किया है। श्री अगरचन्द नाहटाके साथ सम्पादित ग्रन्थोंकी सूचीके पूर्व इनके द्वारा स्वतंत्ररूपसे सम्पादित व विरचित पुस्तकोंकी तालिका इस प्रकार है—

प्रकाशित

१. सती मृगावती (स० १९८७)
२. राजगृह (स० २००५)
३. समयसुन्दर रास-पंचक (स० २०१७)
४. हम्मीरायण (स० २०१७)
५. उदारता अपनाइये (स० २०१७)
६ पद्मिनीचरित चौपई (स० २०१८)
७. सीतारामचरित्र (स० २०१८)
८. विनयचन्द्रकृति कुसुमांजलि (स० २०१९)
९. जीवदया प्रकरण काव्यत्रयी (स० २०२१)
१०. सहजानन्द संकीर्तन (स० २०२२)
११. बानगी (राजस्थानी भाषामें) (स० २०२२)
१२. पावापुरी (स० २०३०)
१३. श्री जैन श्वेताम्बर पंचायती मन्दिरका सार्द्ध शताब्दी स्मृतिग्रंथ
१४-१५. जिनदत्तसूरि सेवा संघ द्वारा प्रकाशित स्मारिका द्वय
प्रथम (स० २०२३) तथा द्वितीय (स० २०२९)

अप्रकाशित

१. काव्य—चन्द्रदूत (हिन्दीमें दोहोंके रूपमें)

२. स्तवन—सहजानंद गुरुदेवाष्टक (संस्कृतमें)

३. प्रशस्ति—नाहटा वंश प्रशस्ति (१०८ श्लोकोंमें संस्कृत काव्य)

४. अनुवाद—कीर्तिलता (अवधीसे हिन्दीमें अनुवाद)

५. अनुवाद—द्रव्य-परीक्षा (प्राकृतसे हिन्दीमें)

६. अनुवाद—नगरकोटप्रशस्ति (प्राकृत मिश्रित अपभ्रंशका संस्कृत छाया अनुवाद व हिन्दीकरण)

७. अनुवाद—अलंकार दप्पणम् (प्राकृतका संस्कृत छायानुवाद तथा हिन्दी व्याख्या)

८. सागरसेठ चौपई—जिसका अनुवाद, अंग्रेजी संस्कृत शब्दकोष संयुक्त संपादन ।

अतिरिक्त

शताधिक कहानियाँ, संस्मरण तथा फुटकर आलोचनात्मक लेख । प्रतिलिपियोंकी संख्या प्रायः सहस्राधिक है ।

उपर्युक्त ग्रन्थ आपके लिंग्विस्टिक एस्थेटिक सेन्सकी तीव्र अनुभूतिकी बाह्याभिव्यक्त कृतियाँ हैं । आपके अतीत रसकी प्रीतिके प्रमाण हैं तथा हैं आपके प्राचीन ग्रन्थोंके उद्धारकी साहसिक प्रक्रियायें, जो शोध व अन्वेषणकी प्रवृत्तिके परिचायक हैं । पितृव्य श्री अगरचन्दजीके साथ सम्पादित अमूल्य ग्रन्थोंकी तालिका आप **दोनोंके** प्रयासकी दिशाका स्पष्ट परिज्ञान देंगी ।

१. युगप्रधान जिनचन्द्रसूरि (सं० १९९२)

इस ग्रंथका संस्कृत काव्यानुवाद कलकत्तासे एवं गुजराती अनुवाद भी बम्बईसे प्रकाशित है । २०२९ में अभी-अभी तृतीय संस्करण प्रकाशित हुआ है ।

२. ऐतिहासिक जैन काव्य-संग्रह (सं० १९९४) डॉ० हीरालाल जैनकी भूमिकासे सम्बलित ।

३. दादा जिनकुशलसूरि (सं० १९९५) द्वितीयावृत्ति (सं० २०१९)

४. मणिधारी जिनचन्द्रसूरि (सं० १९९७) द्वितीयावृत्ति (सं० २०२७) इस ग्रन्थका संस्कृत काव्यानुवाद भी सामने आया है ।

५. युगप्रधान जिनदत्तसूरि (सं० २००३)

६. बीकानेर जैन लेखसंग्रह (सं० २०१२)

७. समयसुन्दरकृति कुसुमांजलि (सं० २०१३)

८. बम्बई पार्श्वनाथस्तवनसंग्रह (सं० २०१४)

९. ज्ञानसार-ग्रंथावली (सं० २०१५)

१०. सीताराम चौपई (सं० २०१९)

११. रत्न -परीक्षादि (फेरु ग्रन्थावली) (सं० २०१७)

१२. रत्न-परीक्षा (सं० २०२०)

१३. क्यामखाँ रासो

१४. मणिधारी अष्टम शताब्दी स्मारक ग्रन्थ (सं० २०२७)

युगल प्रयासकी महत्ता प्रायः विशिष्ट विद्वानोंकी प्रज्ञाचक्षुसे परीक्षित हैं । महापंडित राहुल सांकृत्यायन, डॉ० हीरालाल जैन, डॉ० गौरीशंकर ओझा, डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी, डॉ० मोतीचंद, मुनि कान्तिसागर

तथा मुनि जिनविजयजी आदि जैनसाहित्यके मर्मज्ञ, पुरातत्त्ववेता, प्रकाण्ड आलोचक व इतिहास-विशेषज्ञोंकी दृष्टिमें इनके कार्य स्तुत्य तथा महत्त्वपूर्ण हैं। फलतः आलोचना भारसे मुक्त होकर भी अपनी लेखनी इस मनीषी-द्वयकी अमूल्य कृतियोंकी सूची देनेसे विरत नहीं हो सकी है। कार्य या कृतित्व प्रयासकी कसौटी चाहते हैं और उनकी सफलता या असफलता पंडितोंपर निर्भर करती है। व्यक्तित्वकी परखके लिए वस्तुतः व्यक्तित्वकी अन्तर्दृष्टिके ज्ञानकी आवश्यकता होती है पर आज तक मानवमनीषा सतत अभ्यासके बावजूद भी किसी भी व्यक्तित्वकी सही परख करनेमें असमर्थ ही रही है। इसलिये कि समय, समाज, परि-स्थिति और व्यक्तिकी चित्तवृत्तिके जितने अध्ययन हो सके हैं, सभी अध्ययनके प्रोसेसमें हैं। फलतः प्रोसेससे संतुष्ट होकर अन्तिमेत्थमकी बातपर बल देना हास्यास्पद ही हुआ है। विज्ञानकी कसौटी-के लिए तो स्थिर मानदंड हैं। इसीलिये उनके सिद्धान्त कथनमें बहुधा एक्युरेसी देखी जाती है पर पदार्थके गुणात्मक परिवर्तनकी परिणति जिस चेतनाको जन्म देती है उसके गुणात्मक तथ्यके गुणात्मक अन्तर्द्वंद्वसे उनकी चेतना विधाओंका आकलन आज भी अधरमें लटका हुआ है। अतः मानव अन्तरात्माकी ग्रंथि खोलने-के प्रयत्न मात्र वाग्विलास होकर निर्णयके लिए किसी स्वस्थ मानदंडकी खोजमें अब भी व्यस्त हैं। किन्तु सामाजिक चेतनाका यह अस्थिर मानदंड ही श्रेयस्कर है। इसलिये कि इसमें चेतनाकी स्वतंत्रताका आभास मिलता रहता है जिसे हम एंगिल आफ थाट्स् कहते हैं। नाहटा बन्धुओंकी कृति भी एंगिल आफ् थाट्ससे द्रष्टव्य है क्योंकि रुचि विशेषकी विभिन्नता ही एकताकी कड़ी होती है। अतः समग्ररूपसे उद्देश्यके धरातल-का मूल्यांकन करनेवाले 'रस-साधकों व रसज्ञ आलोचकोंसे मेरा यही आत्मनिवेदन होगा, वैसे कोई जोर जबर्दस्ती नहीं है, मात्र सदाग्रह है जो अमान्य नहीं ही होगा'। ऐसा विश्वास पालनेमें मुझे रत्ती भर भी संदेह नहीं दृष्टिगोचर होता। अन्यथा ये महाकवि भवभूतिकी मार्मिक उक्तिको ही दुहरा कर संतोष रखेंगे, कि—

"उत्पत्स्यते च मम कोऽपि समानधर्मा, कालो ह्ययं निरवधिः विपुला च पृथ्वी"

इस "सादा जीवन उच्च विचार"के प्रतीक शान्त व गम्भीर व्यक्तित्वमें कितनी वाक्यपटुता है, प्रत्युत्पन्न मति है, आशुकाव्य-स्फुरणके बीज हैं। इनके कुछ संस्मरणोंके उद्धरण इसे प्रमाणित करेंगे—

बात बहुत पुरानी है। एक बार बीकानेरमें सर मनू भाई मेहताके भाई श्री वी० एम० मेहता जो महाराजाके प्रधानमन्त्री थे, की अध्यक्षतामें एक कवि सम्मेलनका आयोजन था। श्री भँवरलालजी वहाँ उपस्थित थे। अध्यक्षने आपसे भी कुछ सुनानेके लिए कहा। आप उठे और एक आशुकविकी भाँति आठ भाषाओंमें, जिनमें संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, अंग्रेजी, बंगला, हिन्दी भाषायें भी सम्मिलित थीं, एक कविता पढ़कर सुनायी। कवितामें भगवान् महावीरकी स्तुति की जिसका संक्षयण इस प्रकार हुआ है—

"अष्ट भाषा मयैषा वर्द्धमानप्रभुस्तुतिः। स्वभक्त्या सकौतुकेन विक्रमाख्यपुरे कृतः॥"

एक बार आप श्री अगरचन्दजीके साथ, राजस्थान हिन्दी साहित्य सम्मेलनके अवसरपर (रतनगढ़में) उपस्थित थे। वहाँ पुस्तकोंकी प्रदर्शनीमें आप दोनों महानुभाव अपनी रुचिके अनुसार पुस्तकें उलटपलट रहे थे। अगरचन्दजीके हाथ नेवारी लिपिकी कई प्रतियाँ आयीं। आपने देखा और समझनेकी भी चेष्टा की। किन्तु लिपिका कोई ओरछोर न मिला। आपने श्री भँवरलालजीसे उन्हें देखनेको कहा। आपने पुस्तकें लीं और वर्णमाला बनानेमें व्यस्त हो गये। दूसरे दिन सारी प्रतियां पढ़कर चाचाजीको सुना दीं तथा उसके सम्बन्धमें एक लेख भी प्रकाशित किया।

ऐसे ही एक बार आप बीकानेर जैनसंघकी ओरसे श्री हरिसागरजीके पास उन्हें बीकानेर ले आनेके उद्देश्यसे नागौर पधारे। आपके साथ बीकानेरके कुछ सम्भ्रान्त व्यक्ति भी थे। श्री हरिसागरजी नागौरमें ही चातुर्मास बितानेके लिये वचनबद्ध थे। अनुनय, विनयके पश्चात् भी कुछ हल नहीं निकला। अन्तमें श्री

भँवरलालजीकी काव्यचेतना प्रस्फुटित हुई और आपने श्रीगुरुके चरणोंमें निवेदनार्थ अपनी विवशता व्यक्त की, जो द्रष्टव्य है—

"कृत्वानेक परिश्रमोऽपि गुरुव:
न स्वीकृता वीनती
श्रीमन्नागपुरीयसंघविदिता
हृदयेन कृपणा महा
गच्छोन्नति च शासनस्य शोभा
सम्मान संघस्य च
न श्रुत्वा न विमर्षिता कथंचित्
कलयामि कथयामि किम्"

× × × × ×

श्री ताजमल बोथरा कलकत्तेके एक विशिष्ट समाजसेवी, धनी मानी व्यक्ति हैं। आपने एक दिन भँवरलालजीसे आग्रह किया कि बंगालमें सराक जाति लाखोंकी संख्यामें निवास करती है। ये जैन श्रावक जातिके वंशज हैं। उनके लिए बंगलामें श्रावककृत्यकी विशेष आवश्यकता है। यदि ऐसा ही कुछ हो जाय तो बड़ा उपकार होगा। भावुक श्री भँवरलालजीको यह बात मनको लग गई और बात ही बातमें इस कवि-मनीषीने बंगला भाषामें २७ एक पद्योंमें श्रावक कृत्य लिख डाला—

श्रावक तुमि उठे पड़ो अत्यन्त सकाले
दुइ दण्डो रात्रि थाकिते उषार अन्तराले
अल्पो लाभे अल्पारम्भे हय जे व्यापार
शोषण-दूषण रहित नीति श्रम आधार
नदी-पुकुर वन ठीका हिंसामय व्यापार
लोहारस बीच-अस्थि आदि परिहार
जल-दुग्ध धृततेल छाकना दिया राखो
प्रमार्जन आदिकाज्जे जीवयल देखो "श्रावक-कृत्य"

× × × × ×

जैन भवनमें वैद्य जसवंतरायके अनुरोधपर श्री विजयवल्लभसूरिजी जयन्तीके अवसरपर जब कुछ कहनेके लिए कहा तो तत्काल आपने प्राकृतमें गाथायें बनाकर सुनायीं और सभी सम्भ्रान्त व्यक्तियोंको आश्चर्यमें डाल दिया। गाथायें इस प्रकार थीं—

सिरीवल्लह सुगुरुणं तवगच्छगयण सूर चंदाणं
वंदामि भत्ति-भावेण सग्गारोहण दिणो अज्ज १
आसोय कण्ह पक्खे इक्कारसी राइय तइय पहरे
मुंबाणामा णयरी बहु सड्ढ समाकुले दीवे २
सावय जण उवयारो किच्चा संठाविओऽणेगे
विज्जालयादि पवरा सव्वपिओ भूय कय अत्थो ३
पत्तो सुरालयम्मि इंदादि पडिबोहणा कज्जे
भारहवासी भत्ताण पूरिज्जंतु सयलमण इच्छा ४

इसी प्रसंगमें आपकी आत्माभिव्यक्तिका एक नमूना उपस्थित करनेके लोभका संवरण नहीं कर पा रहा हूँ। आपके दीक्षागुरु श्री सहजानंदजीके निधनका समाचार आपको अजमेरसे बीकानेर जाते समय ट्रेनमें मिला और आपने अपने पूज्य श्रीपादके प्रति अपनी भावनाओंको प्राकृतका यह रूप दिया।

अज्झत तत्तस्स सुपारगामी, एगावयारी पूइय सुरिन्दो।
मुणीन्द मउड़ो सुजुगप्पहाणो, गुरूवरो सहजाणंद णामो ॥१॥
निव्वाणवत्तो सुसमाहिजत्तो, कत्तीय धवले तइयातिहीए।
निच्छत्त जाओ इह भरहखित्तो धम्मस्स एगो सायार रूवो ॥२॥
खेयेण खिन्नो सुमुमुक्खु संघो जाओ निरालंब समग्गलोओ।
विदेह खित्तट्ठिय ते महप्पा भत्ताण देहिं निव्वुइ सुसत्तो ॥३॥

प्राकृतके एक ग्रन्थ जीवदया प्रकरणकी प्राचीन प्रति उपलब्ध होनेपर जब आपने उसे श्री हरषचंदजी बोथराको दिखायी थी, आपने आग्रह किया कि प्राकृत पद्योंका हिन्दी पद्यानुवाद भी प्रस्तुत करनेका प्रयास करें तो ग्रन्थ अधिक मूल्यवान हो जायगा। आपने अनुरोध स्वीकार कर लिया और प्रायः चार-पाँच दिनोंमें ही गद्य-पद्यानुवाद हरिगोतिका छंदमें अभिव्यक्त कर डाली। काव्य-प्रतिभाके धनी आपकी सहज अनुवादकी शैली मूलभावोंकी कितनी अंतरंगिणी बन सकी है एक आध उदाहरण पाठकोंके लिए पर्याप्त होंगे।

संसय तिमिर पयंगं भवियायण कुमय पुन्निमा इंदं।
काम गइंद मइंदं जग जीव हियं जिणं नमिउं ॥१॥
संशय तिमिरहर तरणि सम जिनका परम विज्ञान है,
भविजन कुमुद सुविकासकारक चंद्रसम छविमान है।
करिवर्य मकरध्वज विदारण सिंहसम उपमान है,
जगके हितंकर तीर्थपतिको नमन मंगल खान है ॥१॥
दियहं करेह कम्मं दारिद्द हएहिं पुट्ठ भरणत्थं।
रयणीसु गेय णिद्दा चिंताए धम्म रहियाणं ॥३८॥
लाया नहीं है पूर्वके सत्कर्म अपने साथमें
तो पेट भरनेके लिए कैसे बचेगा हाथमें ?
दिवस भर है कष्ट करता कठिन श्रम बिन धर्मके
रातमें निद्रा न पाता, फल मिले दुष्कर्मके ॥३८॥

और अन्तमें प्राकृत भाषाके एकमात्र अलंकार-शास्त्र : "अलंकार दप्पण" नामक-ग्रन्थ जैसलमेरके भंडारसे ताड़पत्रीय प्रतिलिपिमें प्राप्त हुआ था। श्री अगरचन्दजीके अनुरोधपर इस प्रतिभाशाली शारदाके वरदपुत्रने हिन्दी अनुवादके साथ-साथ संस्कृत छायानुवाद कर इस दुर्लभ ग्रन्थकी महत्तापर चार चाँद लगा दिया जो विद्वानोंके लिए स्पर्द्धाकी वस्तु है। एक उदाहरण इस प्रकार है।

संखलोवमा जहा—शृंखलोपमा यथा
सगस्स व कणअ-गिरी कंचन-गिरिणु व महिअलं होउ
महि वीढस्सवि भरधरणपच्चलो तह तुमं चेअ
स्वर्गस्ववकनकगिरि कंचनगिरिणैव इव महीतलं भवतु।
महीपीठस्यापि भारधरणप्रव्यक्तस्तथा त्वं चैव ॥

इस प्रकार अनेकानेक संस्मरण आपके सान्निध्यमें मुझे सुननेको मिले हैं जिन्हें अंकितकर अपने विषय को बढ़ाना उचित नहीं समझता। गद्दीपर बैठकर क्षणमें पुस्तकावलोकन, प्रतिलिपिकरण, निबन्धलेखन, तथा क्षणमें व्यापारिक सम्बन्धोंका रक्षण व पोषण न जाने कितनी बार देखा है। कोई आयाम नहीं, प्रयास नहीं, स्वाभाविक गतिसे लेखनी बहीखातोंपर चलते-चलते साहित्यिक लेखनमें व्यस्त हो जाया करती है। धन भी है धर्म भी, ज्ञान भी है विवेक भी, राग भी है विराग भी, कितनी समरसता है एकरसतामें भी, आश्चर्य होता है। नामकी भूख नहीं, केवल कर्तव्यकी प्रेरणा है। सम्भवतया इसीलिये इनकी सज्जनताका फायदा उठाने वाले कितने ही मान्य विद्वानोंने इनकी कितनी अज्ञात कृतियोंको अपने सन्मानका विषय बनाया है। प्रसंगवश एक उदाहरण देनेमें मुझे संकोच नहीं है। प्रसिद्ध प्राच्य विद्या विशारद पुरातत्त्ववेत्ता डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल, जो आप लोगोंके लिए एक गर्वका विषय थे, इनके साहित्यके समर्थक व सहायक भी, श्री भँवरलालजी की दो कृतियाँ—"कीर्तिलता" तथा "द्रव्यपरीक्षा" के साथ न्याय नहीं कर सके। अवधी भाषाकी कृति, कीर्तिलताका अनुवादकर भँवरलालजीने डॉ० साहबको देखनेके लिए भेजा था, पर अग्रवाल साहबने इनके नामका सन्मान ही रहने दिया। यही बात पुरातत्त्वसम्बन्धी द्रव्यपरीक्षाके विषयमें भी कथ्य है। इस अमूल्य ग्रन्थके आधारपर उन्होंने अंग्रेजीमें लेखबद्धकर अपने नामसे छपा डाला। उनके दिवंगत होनेपर शायद ये दोनों पुस्तकें बीकानेर संग्रहालयमें सुरक्षित रखी गई हैं, जिसे उनके पुत्रने लौटाई हैं। शायद विज्ञापन ही व्यक्तित्वकी सच्ची परख है और इनके पास विज्ञापन नहीं। आप अगरचन्दजीके अनुरोधके वशंवद हैं। इन्हें जो कुछ भी सामाजिक-साहित्यिक सम्मान मिला है, काकाजीकी ही कृपाका फल है ऐसी इनकी आत्मस्वीकृति है।

भँवरलालजीका जीवन सीधासादा है। आपका अन्तर जितना निर्मल व पवित्र है उतना ही व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन भी। धोती, कुर्ता तथा पगड़ी यही सामान्य परिधान है। व्यवहारकुशल, वाणी सुखद, जीवन कर्मठ और कृति सुन्दर। यही कारण है कि सामाजिक, धार्मिक व सांस्कृतिक सभाओं, सम्य व संस्कृत विचारगोष्ठियों व अन्यान्य संस्थाओंसे आपका जीवन सम्बन्ध है। ऐसे ही पुरुषोंके लिए शायद यह उक्ति चरितार्थ है—

"काव्यशास्त्रविनोदेन कालो गच्छति धीमताम्

विषम परिस्थितिमें धैर्य आपकी विशेषता है, धन है, यश है, पर अभिमान नहीं, अभिरुचि नहीं, कोई व्यसन नहीं, भाषणपटुता और लेखनसिद्धिका विचित्र समायोग है। अतः भर्तृहरिजीके शब्दोंमें आप महान् आत्माओंकी उक्त सिद्ध प्रकृतिके प्रतीक हैं। लोकमंगलकी लालसा है, पर-जन्मके कृतार्थकी कामना है। हृदयमें विश्वास है और परमशक्तिमानमें श्रद्धा तथा भक्ति है। व्यतीत आपकी स्मृतिमें है और सजग वर्तमान हाथोंमें, फिर नियतिके लिए अधिक चिन्ता नहीं। जैनधर्म, जैनसाहित्य, जैनसभा, जैनसम्मेलन आपके विना अपूर्ण हैं। आपके सार्वजनिक जीवनके लिए इतना ही कहना पर्याप्त है। निम्नांकित सम्मानित पद कथनकी पुष्टि करेंगे।

अध्यक्ष—जैनभवन, कलकत्ता
मंत्री—श्री जिनदत्तसूरि सेवासंघ
मंत्री—राजस्थानी साहित्य परिषद्
मंत्री—श्री जैन श्वेताम्बर उपाश्रय कमेटी,
ट्रस्टी—श्री जैन श्वेताम्बर पंचायती मंदिर, कलकत्ता

ट्रस्टी—जैनभवन, कलकत्ता
ट्रस्टी—जैनभवन, पालीताना,
सम्पादक—कुशल-निर्देश, (मासिक पत्रिका)

अपने आठ वर्षोंके सम्पर्कके फलस्वरूप श्री भँवरलालजीके व्यक्तित्वकी जो छाया मुझपर पड़ी है, मैंने शब्दोंकी परिधिमें बाँधनेकी यथासम्भव चेष्टा की है, पर भिन्न रुचि, भिन्न चिन्तनप्रणाली, प्रमाद या अज्ञानवश यदि असमर्थ रहा हूँ तो वह क्षम्य मानी जानी चाहिये।

संक्षिप्त जीवन-परिचय

भँवरलालजीका जन्म संवत् १९६८के आश्विन महीनेके कृष्णपक्षकी द्वादशीको हुआ है। परम साध्वी, सुशीला, श्रीमती तीजाबाईकी गोदमें इनका लालन-पालन हुआ। पिता श्री भैरूदानजी एक कर्मठ व्यवसायी, लोकप्रिय तथा धार्मिक प्रकृतिके व्यक्ति थे। अध्यवसाय उनका लक्ष्य था और जीवन पवित्र। फलतः पुत्रकी भावनाओंमें कभी अन्तर नहीं आ पाया। वैसे पूरा-का-पूरा नाहटा परिवार एक अपनी पूज्य परम्परा रखता है। केवल उदरपूर्ति व भोगविलासकी कामनासे धनोपार्जन इस परिवारकी चेष्टा नहीं रही। तप:पूत चरित्र, धार्मिक निष्ठा तथा सतत प्रयास जिनका विकास श्री भँवरलालजीमें क्रमशः हुआ इनके व्यक्तित्वकी समय-शिलापर चित्र बनता गया। जैन शिक्षालय बीकानेरमें ही आपका विद्यारम्भ मुहूर्त हुआ पर शिक्षा इन्हें मात्र ५वीं कक्षा तक मिली। चाचा अभयराजजी, जिन्हें संसार प्रिय नहीं लगा, स्वर्ग सिधार गये, आपको संयम व व्रतकी शिक्षा दे गये। फलतः होश संभालनेके साथ ही जैनशासनकी विभिन्न साधनाओंमें आपका मन रमने लगा, जिसका क्रम हम आज भी यथावत् पाते हैं। अध्ययनकी रुचि आपको श्री अगरचन्दजी काकाजीसे मिली। दोनों ही महानुभाव प्रायः हमउम्र रहे हैं लेकिन पूज्य-पूजककी भावना यथावत् है। मर्यादाने आँखकी शर्मका शान बनाये रखा है। व्यापारिक उत्थान-पतनकी चिन्तासे दूर, भावनाओंके संसारमें खुले पंख उड़नेकी अनन्त कामना इन शरद्पुत्रोंको सशक्त बनाये रखे है। पूज्य माताजीका प्यार कुछ समय तक ही मिल पाया था क्योंकि उनकी पुकार आ गयी थी। पिताश्रीने तीन विवाह किये थे आप द्वितीय पत्नीकी देन हैं। माताजी की मृत्युके पश्चात् १० वर्ष बाद आप श्री लक्ष्मीचन्दजी की गोद चले गये। आपको पूरे परिवारका स्नेह सुलभ रहा। १४ वर्षकी अवस्थामें आपका शुभ पाणिग्रहण संस्कार सं० १९८३की मिती आसाढ़ वदी १२को श्री रावतमल सुराणाकी सौभाग्यवती कन्या श्रीमती जतन देवीके साथ सम्पन्न हुआ। आपके दो पुत्ररत्न श्री पारसकुमार और पदमचन्द तथा दो सुशीला पुत्रियाँ श्रीकान्ता तथा चन्दकान्ता हैं। पुत्रियाँ अपने सम्पन्न घरोंमें पुत्र, धन-धान्य-पूर्ण सुखमय जीवन व्यतीत कर रही हैं और प्रथम पुत्र श्री पारसकुमार, जो मेरे एक घनिष्ठ मित्रोंमें हैं, कुशल व्यवसायी, शुद्ध व्यावहारिक शान्त पर गम्भीर व्यक्तित्वसे समन्वित तथा वर्तमान युगकी उच्चतम शिक्षा, एम० काम०, एल० एल० बी०की उपाधिसे विभूषित योग्य नवयुवक हैं। इनमें सामाजिक व नैतिक मर्यादा है, व्यक्तित्वको परखनेकी अपनी दृष्टि है। समय, समाज व परिस्थितियोंके साथ गतिशील होनेकी शक्ति है। साहस है और है एक आत्मबोध, जिसमें संतुष्टिके समापनकी विचित्र शक्ति संनिहित है। कर्तव्य इनका लक्ष्य है और सिद्धि इनकी प्रेरणा। वर्तमान इनसे संतुष्ट है और ये वर्तमानसे संतुष्ट। फलतः भविष्य इनका अपना है। इनकी आकांक्षायें इनके प्रयत्नकी सीमाओंमें ही शरण पाती हैं। आप अपनी प्रिय पत्नी और अपने चार पुत्रों तथा एक पुत्रीके साथ सुखी हैं। प्रिय श्री पदमने बी० एस-सी० तक अध्ययन क्रम जारी रखा, आजकल पिताजीके साथ व्यवसायमें संलग्न है। नितान्त इन्ट्रोवर्टी, कर्मठ शान्त व सुशील परिवारकी मर्यादाके अनुकूल इनका

जीवन है। आपका भी विवाह एक सुशिक्षित व धर्मशीला महिलासे सम्पन्न हुआ है। एक सुन्दर-सा पुत्र आपकी गोदका श्रृंगार है। इसी छोटेसे परिवारके साथ भँवरलालजी पर्याप्त संतुष्ट रहते हैं। भाग्यकी विडम्बनाने कभी भी इन्हें निराश नहीं किया। जन्म लेने, परिवार सृजन करने व उसके पालन करनेकी विशेष चिन्ता आपको कभी नहीं हुई। एक छोटे सुन्दर सौम्य ढंगसे सजे हुए अपने शान्त कुटीरमें आपका ६२वाँ वर्ष व्यतीत हो रहा है। परिवार सजग है, धर्म सजग है और सजग है आपका कर्तव्य। रीति-नीति परम्परायें आपको अतीतसे जोड़ जाती हैं। साहित्यानुराग व सामाजिक पुकार आपको वर्तमानसे संलग्न कर रखे हैं और भविष्य मुक्तिके संदेशसे आपको विश्वस्त कर जाता है। अवकाशके आवश्यक क्षण लेखन अध्ययन आदिमें व्यतीत होते हैं। पंचप्रतिक्रमण, जीव-विचार, नवतत्त्व, आगमसार, पैंतीस बोल थोकड़ा आपकी आस्थाके मनन चिन्तन तो बचपनमें पड़े हुए हैं। इन्हें अपने भाइयोंका भी आदर सम्मान व सहयोग प्राप्त है। श्री हरखचन्दजी तो व्यक्ति नहीं, मानवरूपमें एक दैवीशक्ति व शीलसे विभूषित दुर्लभ प्राणी हैं। जो भी व्यक्ति एक बार उनके सम्पर्कमें आया इस कथनको अत्युक्ति न समझेगा, ठीक ऐसे ही विमल बाबू भी हैं। सभी सुखी सम्पन्न व समृद्ध हैं।

अन्तमें जैसा मैंने लिखा है किसी भी व्यक्तित्वके मूल्यांकनके लिए जितनी दृष्टि अपेक्षित है उसके मानदंडकी जितनी विभिन्न विधायें हैं। मेरा अपना आकलन पूर्ण है, मैं स्वीकार नहीं कर सकता। वशिष्टजीकी बुद्धिमहासागरके समान भरतजीके व्यक्तित्वकी महिमाके तीरपर अवलाकी तरह खड़ी जैसे नौके व तटका चिन्ह नहीं पा सकी उसी प्रकार कोई भी चिन्तक इस महान् गम्भीर व्यक्तित्वकी थाह नहीं पा सकता। मैंने तो न्यूटनकी तरह इस ज्ञानगरिमाके सागर तटपर बच्चोंकी तरह खेलते हुए कुछ कंकडिया ही बटोरी हैं। हर तरंगोंको पहचाननेकी शक्ति भला तटपर खड़े रहनेवाले कायरको कैसे सुलभ हो सकती है? मैं तो मात्र सीपीसे सन्तुष्ट हूँ; डूबनेकी शक्ति नहीं, फलतः मोतीकी आवका दर्शन ही कैसे होगा? यह भार तो मैंने सक्षम व साहसी व्यक्तियोंपर ही छोड़ दिया है। पाठकोंकी जिज्ञासायें और अधिक जाननेकी होंगी पर उनसे मेरा विनम्र निवेदन होगा कि इनकी कृतियोंके माध्यमसे इन्हें जाननेका प्रयास करेंगे। एक बात मैं अवश्य कहूँगा कि भँवरलालजीने वही किया है तो इनकी चेतनाने स्वीकृति दी है और वह करेंगे जिसे इनका अपना निर्मल मन स्वीकार करेगा। इनमें अब भी कुछ कर गुजरनेकी साध है और ६२ वर्षकी अवस्थामें भी इनमें Animal Spirit का अभाव नहीं है। अतः कुछ नवीन, कुछ सुन्दर, कुछ सत्य तथा कुछ शिव देखने, समझने, व ग्रहण करनेकी हमारी कामनायें प्रतीति अवश्य चाहेंगी। परमात्मा आपको चिरायुष करें। जैन समाज कृतज्ञ होगा, सृजनको गति मिलेगी और साहित्य व समाज आपकी अमरतापर गर्व करेगा। शेष अचिन्त्य है, और शास्त्र कहता है "अचिन्त्या खलु ये भावाः न तांस्तर्केण योजयेत्। सुतराम्!

"ज्ञाने गतिर्मतिर्भावे बुद्धिर्लोकारंजने।
संसिद्धिस्तेन श्रीवृद्धिरायुर्विद्या यशो बलम्॥" इत्यलम्

●

श्रद्धेय श्री अगरचंदजी नाहटाका बीकानेर जैन लेख संग्रह

प्रो० श्रीचन्द्र जैन, एम० ए०, एल० एल० बी०

श्री नाहटाका समस्त जीवन सरस्वतीकी आराधनाके लिए समर्पित है। कहा जाता है कि सरस्वती और लक्ष्मीका सहज विरोध है, लेकिन नाहटाजीका व्यक्तित्व इस कथनका अवश्यमेव एक अपवाद है। आप-पर जितनी सरस्वतीकी कृपा है उतनी ही लक्ष्मीकी अनुकम्पा है। व्यापार-निपुण होते हुए आप एक सशक्त समालोचक, संपादक, लेखक तथा अन्वेषक हैं।

पाँच हजारसे भी अधिक आपके निबन्ध इस तथ्यको प्रमाणित करते हैं कि आप बहुज्ञ हैं और ऐसा कोई साहित्यिक विषय नहीं है जिसके आप गम्भीर विचारक न हों। सम्पादकरूपमें आपने ऐसे कई ग्रन्थोंका सम्पादन किया है जिनके अध्ययनमें मनीषियोंकी भी मनीषा कुंठित हो जाती है। राजस्थानी साहित्य-संस्कृतिके तो आप अधिकारी विद्वान् हैं। राजस्थानका कोई भी ऐसा साहित्यिक पत्र नहीं है जिसमें आपके प्रौढ़ विचारोत्पादक निबन्ध प्रकाशित न होते हों। विभिन्न अभिनन्दन ग्रन्थोंके तो आप सम्पादक रहे हैं। कई संस्थाओंके आप संस्थापक हैं, अभिभापक हैं एवं सदस्य हैं। सुधी सम्पादकके रूपमें आपने राजस्थान भारती, राजस्थानी, मरुभारती, शोध-पत्रिका, मरुभूमि, आदिकी जो सार्वभौमिक प्रतिष्ठा निर्मित की है वह आपके अगाध-पांडित्य एवं अथक श्रमका उदाहरण ही है।

जैन-अजैन समस्त पत्र-पत्रिकाओंमें आपके जो लेख प्रकाशित होते रहते हैं वे इस सत्यको साकार बनाते हैं कि आपका अध्ययन कितना विस्तृत एवं व्यापक है। आपकी विशेष रुचि जैनसाहित्य, इतिहास, राजस्थानी संस्कृति एवं हिन्दीके प्राचीन साहित्यके अनुशीलनमें अधिक है। परिणामस्वरूप आपके अवकाशके क्षण भी निरन्तर चिन्तन-मननमें ही व्यतीत होते हैं। आपके साहचर्यका जिनको पुण्योदयसे अवसर मिला है वे यही कहते हैं कि पूज्य नाहटाजी तो अजरामरवत् सरस्वतीकी आराधनामें ही लगे रहते हैं। आज वे वार्धक्यमें हैं, फिर भी एक युवकके समान उनमें उत्साह है, प्रेरणा है तथा कार्य करनेकी क्षमता है। और तो और, आधुनिक युवक भी उन्हें सतत क्रियाशील देखकर चकित रह जाता है।

इस निबन्धमें मैं केवल उनके द्वारा सम्पादित बीकानेर जैनलेखसंग्रहके सम्बन्धमें कुछ लिखनेका साहस कर रहा हूँ। इस संग्रहका प्राक्कथन डॉ० वासुदेवशरण अग्रवालने लिखा है जो उनके गहन पाण्डित्यका अपूर्वरूप है।

यह तो स्पष्ट ही है कि लेखोंका संग्रह कठिन साधनाकी अपेक्षा करता है। बहुभाषाविद्, तत्त्ववेत्ता, तथा धैर्यवान् महापंडित ही ऐसे गूढ़ विषयकी ओर आकर्षित हो सकता है। सामान्य व्यक्तिको तो इस प्रकारकी रचनाओंके प्रति न रुचि होती है और न अनुरक्ति उत्पन्न हो पाती है।

इस प्रकारके लेख बड़े महत्त्वके होते हैं। इनमें युगीन संस्कृतिके साथ-साथ इतिहास, भूगोल, कर्म-काण्ड, राजनीति, समाजविज्ञान आदि कई ऐसे विषय निहित रहते हैं, जिनका अनुशीलन प्रत्येक परिस्थितिमें आवश्यक माना गया है।

मूर्तिकला, स्थापत्यकला, चित्रकला, नृत्यकला, संगीतकला, लेखनकला आदिका प्रारंभिक स्वरूप

क्या था और उसमें शनैः-शनैः किस प्रकार परिवर्तन आया, इसका क्रमिक इतिहास इन लेखोंके अध्ययनसे भलीभाँति जाना जा सकता है।

मानवने किस प्रकार उन्नति की है तथा उसने अपने अवरोधोंको किस प्रकार निर्मूल बनाया है यह एक ऐसा विषय है जिसका पूर्ण परिज्ञान इन प्राचीन लेखोंके समीक्षात्मक अनुशीलनसे ही संभव है।

साधु-सन्तोंने निरन्तर भ्रमण कर आत्मोद्धारके साथ किन रूपोंमें जन-जागृतिको सबल बनाया है और जैनधर्मके सूक्ष्म तत्त्वोंका प्रचार किस रूपमें किया है, यद्यपि यह विषय ऐतिहासिक अवश्य है लेकिन इन पुरातन लेखोंमें भी इसपर पर्याप्त प्रकाश डाला गया है।

धार्मिक श्रद्धासे वशीभूत होकर धनिकोंने अपनी संपत्तिका उपयोग एक ओर राष्ट्रहितमें किया है तो दूसरी ओर सुरम्य देवालयोंके निर्माणमें करके अपनी धर्मभावनाको मूर्त्तरूप दिया है।

इस लेख-संग्रहमें बीकानेर राज्यके २६१७, जेसलमेरके १७१ अप्रकाशित लेख हैं, जिनकी विस्तृत भूमिका भी प्रस्तुत की गयी है। इन लेखोंके अध्ययनसे यह ज्ञात हो सकेगा कि जैनमंदिरोंका क्या इतिहास है, इस धरतीपर किस प्रकार जैन-साहित्यकी रचना हुई है, साधु-साध्वियोंने कितनी गहन साधना करके स्व-पर रूपको निखारा है तथा सार्वजनिक कार्योंमें संलग्न रहकर नराधिपोंने अपनी सेवा-वृत्तिको किस प्रकार जनताके हितार्थ अर्पित किया है। जैनोंका एक ऐसा भी रूप है जो जन-जनके लिए आदर्श है। यह ठीक है कि ये लक्ष्मीपुत्र हैं, फिर भी इनकी दानशीलता अनुकरणीय है। देवमंदिरोंके साथ निर्मित उपासरे, धर्म-शालाएँ, ज्ञान-भण्डार, दान-भण्डार, सती स्मारक, उत्सव-गृह, भोजन शाला आदि इन अहिंसाप्रेमियोंकी उदारता के अमर कीर्ति स्तंभ हैं।

इन लेखोंके संग्रहमें जो कठिनाइयाँ श्रद्धेय श्री नाहटाको आई हैं, उनका विवरण उनके ही मुखसे सुनिए :

"इन लेखोंके संग्रहमें अनेक कठिनाइयोंका सामना करना पड़ा है, पर उसके फलस्वरूप हमें विविध प्राचीन लिपियोंके अभ्यास व मूर्तिकला व जैन-इतिहास सम्बन्धी ज्ञानकी भी अभिवृद्धि हुई। अनेक शिला-लेख व मूर्ति-लेख ऐसे प्रकाशहीन अँधेरे में हैं, जिन्हें पढ़नेमें बहुत ही कठिनता हुई। मोमबत्तियाँ, टौर्चलाइट, छाप लेनेके साधन जुटाने पड़े, फिर भी कहीं-कहीं पूरी सफलता नहीं मिल सकी। इस प्रकार बहुत-सी मूर्तियोंके लेख उन्हें पच्ची करते समय दब गए एवं कई प्रतिमाओंके लेख पृष्ठ भागमें उत्कीर्णित हैं, उनको लेनेमें बहुत ही श्रम उठाना पड़ा और बहुतसे लेख तो लिये भी न जा सके, क्योंकि एक तो दीवार और मूर्तिके बीच में अन्तर नहीं था, दूसरे मूर्तियोंकी पच्ची इतनी अधिक हो गई कि उनके लेखको, बिना मूर्तियों-को वहाँसे निकाले पढ़ना संभव नहीं रहा। मूर्त्तियाँ हटाई नहीं जा सकीं, अतः उनको छोड़ देना पड़ा।.... कई शिलालेखोंको बड़ी मेहनतसे साफ करना पड़ा, गुलाल आदि भरकर अस्पष्ट अक्षरोंको पढ़नेका प्रयत्न किया गया। कभी-कभी एक लेखके लेनेमें घंटों बीत गए। फिर भी सन्तोष न होनेसे कई बार उन्हें पढ़ने-को, शुद्ध करनेको जाना पड़ा।....इस प्रकार वर्षोंके श्रमसे जो बन पड़ा, पाठकोंके सन्मुख है। हम केवल ५ कक्षा तक पढ़े हुए हैं; न संस्कृत-प्राकृत भाषाका ज्ञान, व न पुरानी लिपियोंका ज्ञान, इन सारी समस्याओं-को हमें अपने श्रम व अनुभवसे सुलझानेमें कितना श्रम उठाना पड़ा है, यह भुक्तभोगी ही जान सकता है। कार्य करनेकी सबल जिज्ञासा, सच्ची लगन और श्रमसे दुस्साध्य काम भी सुसाध्य बन जाते हैं, इसका थोड़ा परिचय देनेके लिए यहाँ कुछ लिखा गया है।" (बीकानेर जैन लेखसंग्रह, वक्तव्य, पृ० ७)

सत्य तो यह है कि "मनस्वी कार्यार्थी गणयति न दुःखं न च सुखम्।"

श्री नाहटाजी जैसे कर्मठ निष्ठावान्, लगनशील एवं कर्त्तव्यलीन व्यक्तिका ही यह साहस है कि इतना कठिन कार्य आपने सुगमतासे किया और एक आदर्श प्रस्तुत कर हिन्दी लेखकोंको असुविधाओंके बीच आगे बढ़नेके लिए प्रोत्साहित किया, विद्वान् ही विद्वान्के श्रमकी संस्तुति कर सकता है। इस सुभाषितके अनुसार डॉ० अग्रवालने अपने प्राक्कथनमें लिखा है कि "श्री अगरचंद नाहटा व भँवरलाल नाहटा राजस्थानके अतिश्रेष्ठ कर्मठ साहित्यिक हैं। एक प्रतिष्ठित व्यापारी परिवारमें उनका जन्म हुआ। स्कूल-कालेजी शिक्षासे प्रायः बचे रहे। किन्तु अपनी सहज प्रतिभाके बलपर उन्होंने साहित्यके वास्तविक क्षेत्रमें प्रवेश किया और कुशाग्रबुद्धि एवं श्रम दोनोंकी भरपूर पूँजीसे उन्होंने प्राचीन ग्रंथोंके उद्धार और इतिहासके अध्ययनमें अभूत-पूर्व सफलता प्राप्त की। पिछली सहस्राब्दी में जिस भव्य और बहुमुखी जैनधार्मिक संस्कृतिका राजस्थान और पश्चिमी भारतमें विकास हुआ, उसके अनेक सूत्र नाहटाजीके व्यक्तित्वमें मानों बीजरूपसे समाविष्ट हो गए। उन्हींके फलस्वरूप प्राचीन ग्रन्थ भण्डार संघ आचार्य मंदिर, श्रावकोंके गोत्र आदि अनेक विषयोंके इतिहासमें नाहटाजीकी सहज रुचि है, और इस विविध सामग्रीके संकलन, अध्ययन और व्याख्यामें लगे हुए वे अपने समयका सदुपयोग कर रहे हैं।

जिस प्रकार नदी प्रवाहमें से बालुका धोकर एक-एक कणके रूपमें पीपीलिक सुधर्ण प्राप्त किया जाता था, उसी प्रकारका प्रयत्न 'बीकानेर जैन लेख संग्रह' नामक प्रस्तुत ग्रन्थमें नाहटाजीने किया है। समस्त राज-स्थानमें फैली हुई देव-प्रतिमाओंके लगभग तीन सहस्र लेख एकत्र करके विद्वान् लेखकोंने भारतीय इतिहासके स्वर्ण कणोंका सुन्दर चयन किया है। यह देखकर आश्चर्य होता है कि मध्यकालीन परम्परामें विकसित भारतीय नगरोंमें उस संस्कृतिका कितना अधिक उत्तराधिकार अभी तक सुरक्षित रह गया है। उस सामग्रीका उचित संग्रह और अध्ययन करनेवाले पारखी कार्य-कर्त्ताओंकी आवश्यकता है।········प्रस्तुत संग्रहके लेखोंसे जो ऐतिहासिक और सांकृतिक सामग्री प्राप्त होती है उसका अत्यन्त प्रामाणिक और विस्तृत विवेचन विद्वान् लेखकोंने अपनी भूमिकामें किया है।······· श्री नाहटाजीने इस सुन्दर ग्रन्थमें ऐतिहासिक ज्ञानसंवर्द्धनके साथ-साथ अत्यन्त सुरभित सांस्कृतिक वातावरण प्रस्तुत किया है, जिसके आमोदसे सहृदय पाठकका मन कुछ कालके लिए प्रसन्नतासे भर जाता है। सचित्र विज्ञप्तिपत्रोंका उल्लेख करते हुए १८९८के एक विशिष्ट विज्ञप्ति पत्रका वर्णन किया गया है, जो बीकानेरके जैन संघकी ओरसे अजीमगंज बंगालमें विराजित जैना-चार्यकी सेवामें भेजनेके लिए लिखा गया था। इसकी लंबाई ९७ फुट है, जिसमें ५५ फुटमें बीकानेरके मुख्य बाजार और दर्शनीय स्थानोंका वास्तविक और कलापूर्ण चित्रण है। लेखकोंने इन सब स्थानोंकी पहिचान दी है।

इस पुस्तकमें जिस धार्मिक और साहित्यिक संस्कृतिका उल्लेख हुआ है उसके निर्माणकर्त्ताओंमें ओसवाल जातिका प्रमुख हाथ था। 'उन्होंने ही अपने हृदयकी श्रद्धा और द्रव्यराशिसे इस संस्कृतिका समृद्ध रूप संपादित किया था। यह जाति राजस्थानकी बहुत ही धर्मपरायण और मितव्ययी जाति थी किन्तु सांस्कृतिक और सार्वजनिक कार्योंमें वह अपने धनका सदुपयोग मुक्तहस्त होकर करती थी।

ग्रन्थमें संग्रहीत लेखोंको पढ़ते हुए पाठकका ध्यान जैनसंघकी ओर भी अवश्य जाता है। विशेषतः खरतरगच्छके साधुओंका अत्यन्त विस्तृत संगठन था। बीकानेरके राजाओंसे वे समानताका पद और सम्मान पाते थे। उनके साधु अत्यन्त विद्वान् और साहित्यमें निष्ठा रखनेवाले थे। इस कारण उस समय—यह उक्ति प्रसिद्ध हो गयी थी कि "आतम ध्यानी आगरै पंडित बीकानेर।"········प्रस्तुल संग्रहमें जो तीन सहस्रके लगभग लेख हैं उनमेंसे अधिकांश ११वींसे सोलहवीं शतीके बीचके हैं। उस समय अपभ्रंश भाषाकी परम्परा-का साहित्य और जीवनपर अत्यधिक प्रभाव था। इसका प्रमाण इन लेखोंमें आये हुए व्यक्तिवाची नामोंमें

पाया जाता है। जैनाचार्योंके नाम प्रायः सब संस्कृतमें हैं, किन्तु गृहस्थ स्त्री-पुरुषोंके नाम जिन्होंने जिनालय और मूर्तियोंको प्रतिष्ठापित कराया, अपभ्रंश भाषामें हैं। ऐसे नामोंकी संख्या इन लेखोंमें लगभग दस सहस्र होगी। यह अपभ्रंश भाषाके अध्ययनकी मूल्यवान् सामग्री है।

उदाहरणके रूपमें यहाँ कुछ जैनलेख प्रस्तुत हैं जो स्वयं युगीन तथ्योंको प्रकट रहे हैं—

(१)

६०॥ सं० १३३४ वर्षे वैशाख सुदी १० श्री वृहद् गच्छे श्री धर्कट वंशे सा० देवचंद्र भार्या वर्णासरी पुत्र सा० वानरेण भार्या लाडी पुत्र खेता तथा देदा पिथि मसीहु चांगदेव प्रभृति कुटुंब सहितेन पूर्वज श्रेयसे श्री पार्श्वनाथ बिंबं कारिता प्रतिष्ठितं च श्री जयदेवसूरि शिष्यैः श्री माणदेव........(सूरिभिः) [१८५]

—बी० जै० ले० सं०, पृष्ठ २२

(२)

सं० १५२५ वर्षे फागुण सुदी ७ शनौ नागर ज्ञातीय श्रे० रामा भा० शणी पुत्र नगाकेन भा० धनी पु० नाथा युतेन श्री अचल गच्छे श्री जयकेसरि सुरीणामुपदेशेन श्री श्रेयांसनाथ बिंबं का० प्र० श्री सूरिभिः (१०४५)

—बी० जै० ले० सं०, पृष्ठ १२८

(३)

।। सं० १६६४ प्रमिते वैशाख सुदि ७ गुरु पुष्ये राजा श्री रायसिंह विजयराज्ये श्री विक्रमनगर वास्तव्य श्री ओसवाल ज्ञातीय गोलवच्छा गोत्रीय सा० रूपा भार्या रूपादे पुत्र मिन्ना भार्या माणिकदे पुत्ररत्न सा० वन्नाकेन भार्या वल्हादे पुत्र नथमल्ल कपूरचन्द्र प्रमुख परिवार सश्रीकेन श्री श्रेयांस बिबं कारित प्रतिष्ठितं च। श्री बृहत्खरतर गच्छाधिराज श्री जिनमाणिक्यसूरि पट्टालंकार (हार) श्री साहि प्रतिबोधक। युगप्रधान श्री जिनचंद्रसूरिभिः ।। पूज्यमानं चिरं नंदतु।। श्रेयः। (११५४)

—बी० जै० ले० सं०, पृष्ठ १४४

(४)

अथ शुभाब्दे १९२४ शाके १७७९ चैतन्मिते ज्येष्ठ मासे शुक्ल पक्षे पंचमी तिथौ गुरुवासरे। श्री मत्वृहत्खरतर गच्छे। जं यु। भ। प्र। श्री जिनसौभाग्यसूरीश्वराणामाज्ञया श्री। कीर्त्तिरत्नसूरिशाखायां उ। श्री अमृतसुन्दरगणिस्तच्छिष्य वा। श्री जयकीर्तिगणिस्तच्छिष्य पं० प्र० प्रतापसौभाग्य मुनि स्तदंतेवासिना पं० प्र० सुमतिविशाल मुनिनाऽयं शुभोपाश्रयः कारितः पं० समुद्रसोमादि हेतवे। बीकानेर पुराधीशः राजेश्वरः शिरोमणिः श्री सरदार सिंहाख्यो नृपो विजयते तराम्? यावन्मेरुर्मही मध्ये चाम्बरे शशिभास्करौ। तावत्साध्वालयश्चेषश्चिरं तिष्ठतु शर्म्मदः।२। कारीगर सूत्रधार। भीखाराम। श्री (२५४७)

—बी० जै० ले० सं०, पृष्ठ ३५८

(५)

महोपाध्याय रामलालजीके उपाश्रयका लेख—

(२५५३)

।। ॐ। ह्रीं। श्रीं। नमः ।।

ब्रह्मा विष्णु शिव शक्ति आदि स्वरूप श्री ऋषभ वीतरागायनमः दादासाहिब श्री जिनकुशलसूरि संतानीय क्षेमधाड़ शाखायां श्री साधु महाराज पं०। प्र। श्री युक्तिवारध रामलाल ऋद्धिसार मुनिना ओसवाल माहेश्वरी अग्रवाल ब्राह्मणादि समस्त बीकानेर वास्तव्य प्रजाके कुष्ट भगंदरादि अनेक कष्ट मिटाय कर वे विद्या-शाला तथा ज्ञानशाला स्थापना करी है, इसमें सर्व मतोंके पुस्तकका भण्डार स्थापन करा है, इसमें ऐसा नियम किया गया है कि पुस्तक तथा विद्याशाला कोई लेवेगा या बेचेगा सो सर्वशक्तिमान परमेश्वरसे गुनह-

गार होगा चेला सपूतोंकी मालकी एक गद्दीधर को रहेगी अगर कपूताई करेगा दीक्षा लजावेगा तदारक पंच तथा कमेटी करेगी सं० । १९५४ । वै० शु० । ५ ॥ —बी० जै० ले० सं०, पृ० ३६०

इन जैनलेखोंसे कतिपय ये तथ्य मुखरित होते हैं :

१. तत्सम शब्दोंके साथ देशज शब्दोंका प्रयोग ।

२. तत्कालीन शासकोंका प्रशस्ति-गान ।

३. युगीन साधु-सन्तोंके प्रति आभार-प्रदर्शन ।

४. सम्बन्धित धार्मिक महापुरुषोंका उल्लेख ।

५. देवालयोंमें मूर्ति-स्थापना करनेवालोंके नाम आदिके साथ परिवारकी संक्षिप्त चर्चा ।

६. गोत्र-वंशादिका उल्लेख ।

७. धार्मिक कृत्योंकी प्रेरक प्रशंसा ।

८. धर्म कार्योंको करानेवाले पंडितों एवं आचार्योंकी नामावली ।

९. युग-परिवर्तनके साथ भाषा-शैली आदिमें परिवर्तन ।

१०. तिथि संवत् आदिका उल्लेख ।

११. परमपूज्य उस तीर्थंकरका नामोल्लेख जिसका बिम्ब स्थापित किया गया है ।

१२. देवालय-भवन प्रणेता एवं मूर्तिकार आदिके पूर्ण नाम पता आदिकी चर्चा ।

१३. विविध गच्छोंकी चर्चा ।

१४. उपाश्रय, धर्मशाला, मंदिर, ज्ञानशाला, औषधालय आदिसे सम्बद्ध लेखोंमें सार्वजनिक उपयोगार्थ शर्तोंका उल्लेख एवं प्रबन्धकोंकी नियुक्ति आदिकी नियमावली ।

१५. विश्वकल्याणकी भावनाका सर्वत्र उल्लेख आदि आदि ।

इस प्रकार श्री अगरचंदजी नाहटाने इन लेखोंका संग्रह करके एक ऐसे अभावकी पूर्ति की है, जो इतिहासके उन पृष्ठोंको प्रामाणिक सिद्ध करेगा जिनके सम्बन्धमें समय-समयपर कई शंकाएँ प्रदर्शित की गयी हैं तथा आज भी उठायी जाती हैं ।

श्री नाहटाजी द्वारा लिखित एवं सम्पादित कतिपय ग्रन्थ

शिखरचन्द्र कोचर
अवकाश-प्राप्त जिला एवं सत्र न्यायाधीश, बीकानेर

श्री नाहटाजी द्वारा लिखित एवं सम्पादित ग्रन्थोंकी संख्या साठसे ऊपर है। उनमेंसे कतिपय ग्रंथोंका संक्षिप्त परिचय निम्न-लिखित है—

१. युगप्रधान श्री जिनचन्द्रसूरि

यह ग्रन्थ श्री नाहटाजीने अपने भतीजे श्री भँवरलालजीके सान्निध्यमें लिखा है, और विक्रमी संवत् १९९२में प्रकाशित हुआ है। मध्य-कालीन भारतीय इतिहास-वेत्ताओंको विदित है कि सम्राट् अकबरपर जैन-धर्मका प्रभाव पड़ा था। जिन जैनाचार्योंने उसे विशेषरूपसे प्रभावित किया था, उनके नाम हैं—श्री हीर-विजयसूरिजी एवं श्री जिनचन्द्रसूरिजी। श्री हीरविजयसूरिजीका जीवन-चरित्र तो मुनि विद्याविजयजी द्वारा कई वर्ष पूर्व काफी खोज-शोधपूर्वक प्रकाशित किया जा चुका था, किन्तु श्री जिनचन्द्रसूरिजीका प्रामाणिक जीवन-चरित्र पर्याप्त ऐतिहासिक सामग्री उपलब्ध न होनेके कारण प्रकाशित नहीं किया जा सका था। इस अभावकी पूर्ति इस ग्रन्थके विद्वान् लेखकोंने कई वर्षोंके परिश्रम एवं अनुसन्धानसे की है। इस ग्रन्थमें कई चित्रों, फरमान-पत्रों, उत्कीर्ण लेखों तथा अन्यान्य उपलब्ध प्राचीन सामग्रीका समावेश किया गया है, जिससे इसकी उपयोगिता एवं प्रामाणिकता बहुत बढ़ गयी है। इस ग्रन्थके अनुवाद गुजराती एवं संस्कृत भाषाओंमें भी प्रकाशित हो चुके हैं। इस पुस्तककी प्रस्तावना प्रसिद्ध गुजराती लेखक स्व० श्री मोहनलाल दलीचन्द देसाईने लिखी है।

२. ऐतिहासिक जैनकाव्यसंग्रह

इस ग्रन्थका सम्पादन श्री नाहटाजीने अपने भतीजे श्री भँवरलालजीके सान्निध्यमें किया है और विक्रमी संवत् १९९४ में प्रकाशित हुआ है। इस ग्रन्थकी प्रस्तावना प्रसिद्ध विद्वान् प्रोफेसर हीरालाल जैनने लिखी है। इस ग्रन्थमें बारहवीं शताब्दीसे लेकर बीसवीं शताब्दी तक, लगभग आठ सौ वर्षोंके, ऐतिहासिक जैन-काव्य संग्रहीत हैं, जिनसे जैन-इतिहास तथा भाषाओंके क्रमिक विकासपर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। ये काव्य, अपभ्रंश, प्राकृत, संस्कृत, राजस्थानी, गुजराती आदि भाषाओंमें हैं, जिनके अध्ययनसे इन भाषाओंके विज्ञान तथा व्याकरण आदिको हृदयंगम करनेमें प्रचुर सहायता प्राप्त होती है। कई काव्य रस, अलंकार, पद-विन्यास, भाषा-सौष्ठव, अर्थ-गांभीर्य आदि गुणोंकी दृष्टिसे भी अनुपम हैं जिनके मनन एवं अनुशीलनसे अनिर्वचनीय आनन्दकी प्राप्ति होती है। ग्रन्थके प्रारम्भमें "काव्योंका ऐतिहासिक सार" नामसे विस्तृत भूमिका तथा "संक्षिप्त कवि-परिचय" भी दिये गये हैं, जिनसे इस ग्रन्थकी उपयोगितामें अभिवृद्धि हो गयी है।

३. दादा श्री जिनकुशलसूरि

यह पुस्तक श्री नाहटाजीने अपने भतीजे श्री भँवरलालजीके सान्निध्यमें लिखी है और इसका प्रथम संस्करण विक्रमी संवत् १९९६में प्रकाशित हुआ है। खरतर-गच्छमें "दादाजी"के नामसे सुप्रसिद्ध चार महान् आचार्य हुए हैं—१. युगप्रधान श्री जिनदत्तसूरिजी, २. मणिधारी श्री जिनचन्द्रसूरिजी, ३. श्री जिनकुशल-

सूरिजी और ४. युगप्रधान श्री जिनचन्द्रसूरिजी। इन चारों महान् आचार्योंके अनेक स्मारक देशके कोने-कोनेमें विद्यमान हैं और उनमें धर्म-प्राण जनताकी अटूट श्रद्धा है। विद्वान् लेखकोंने यह ग्रन्थ काफी परिश्रमपूर्वक लिखा है और इसकी प्रस्तावना प्रसिद्ध जैन-विद्वान् मुनि जिनविजयजीने लिखी है।

४. मणिधारी श्री जिनचन्द्रसूरि

यह पुस्तक भी श्री नाहटाजीने अपने भतीजे श्री भँवरलालजीके सान्निध्यमें लिखी है और इसका प्रथम संस्करण विक्रमी संवत् १९९७में प्रकाशित हुआ है। इस पुस्तकमें उपर्युक्त चार "दादाजी"मेंसे द्वितीय "दादाजी"का जीवनचरित्र, विद्वान् लेखकों द्वारा उपलब्ध ऐतिहासिक सामग्रीके आधारपर वर्णित किया गया है। इसकी प्रस्तावना सुप्रसिद्ध विद्वान् डॉ० दशरथ शर्माने लिखी है।

५. युगप्रधान श्री जिनदत्तसूरि

यह पुस्तक भी श्री नाहटाजीने अपने भतीजे श्री भँवरलालजीके सान्निध्यमें लिखी है और इसका प्रथम संस्करण विक्रमी संवत् २००३में प्रकाशित हुआ है। विद्वान् लेखकों द्वारा उपर्युक्त चार "दादाजी"मेंसे प्रथम "दादाजी"का चरित्र-चित्रण इस ग्रन्थमें विशेष खोज-शोध एवं परिश्रम-पूर्वक किया गया है। इस ग्रंथकी प्रस्तावना सुप्रसिद्ध जैन लेखक मुनि कान्तिसागरजीने लिखी है।

६. ज्ञान-सार-ग्रन्थावली

इस ग्रन्थका सम्पादन श्री नाहटाजीने अपने भतीजे श्री भंवरलालजीके सान्निध्यमें किया है, और इसकी प्रथमावृत्ति वीर-संवत् २४८५ में प्रकाशित हुई है। उन्नीसवीं शताब्दीमें योगिराज ज्ञानसार नामक एक महान् संत हो गये हैं, जिनका साधारण जनतासे लेकर राजा-महाराजाओं तकपर बड़ा प्रभाव था और जिन्होंने उस प्रभावका उपयोग अपनी व्यक्तिगत स्वार्थ-सिद्धिके लिए नहीं, किन्तु सर्व-साधारणके लाभके लिए किया था। विद्वान् सम्पादकोंने इस ग्रन्थके द्वारा इन महान् संतकी जीवनी कई वर्षके परिश्रम और छान-बीनके पश्चात् प्रस्तुत की है और उनकी विशिष्ट आध्यात्मिक रचनाओंको प्रकाशित किया है। इस ग्रन्थकी प्रस्तावना प्रसिद्ध विद्वान् स्व० राहुल सांकृत्यायनने लिखी है। इस ग्रन्थके प्रारम्भमें योगिराज श्रीमद्ज्ञानसारजीके व्यक्तित्व एवं कृतित्वका ११२ पृष्ठोंमें विस्तृत परिचय, विद्वान् सम्पादकों द्वारा दिया गया है।

७. बीकानेर जैन लेख संग्रह

श्री नाहटाजीने कई वर्षोंके अनवरत परिश्रमसे बीकानेर एवं जैसलमेरके तीन सहस्रसे अधिक अप्रकाशित लेखोंका संग्रह किया और उन्हें अपने भतीजे भँवरलालजीके सान्निध्यमें वीराब्द २४८२ में विस्तृत भूमिकादि सहित इस बृहदाकार ग्रंथके रूपमें प्रकाशित किया। इस ग्रंथमें नवमी-दशमी शताब्दीसे लेकर वर्तमान काल तकके लेखोंका संग्रह किया गया है जिससे तत्कालीन इतिहास पर अपूर्व प्रकाश पड़ता है। इस ग्रंथके रूपमें इस ग्रंथके विद्वान् सम्पादकोंने भारतीके भण्डारमें एक अनुपम रत्न प्रस्तुत किया है और एतद्विषयक अनुसंधान-कर्ताओंका सुन्दर मार्ग-दर्शन किया है। इस ग्रंथका प्राक्कथन प्रसिद्ध विद्वान् डॉ० वासुदेवशरण अग्रवालने लिखा है। इन लेखोंसे बीकानेरके प्रामाणिक जैन इतिहासके अतिरिक्त तत्कालीन जैन स्थापत्य-कला, मूर्ति-कला तथा चित्र-कलापर भी पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। इन लेखोंके द्वारा हमें अनेक स्थानों, राजाओं, गच्छों, आचार्यों, मुनियों, श्रावक-श्राविकाओं, जातियों आदिका परिचय मिलता है और तत्कालीन रीति-रिवाजों, उपासना-पद्धतियों तथा धार्मिक, सामाजिक एवं राजकीय परिस्थितियोंका विशद ज्ञान प्राप्त होता है। उदाहरणार्थ, भूमिकाके पृष्ठ ८७ से ९३ तकपर सचित्र विज्ञप्ति-पत्रोंका वर्णन किया गया है, जिनके अवलोकनसे तत्कालीन सामाजिक, राजनैतिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियोंका भलीभाँति

परिचय प्राप्त होता है और उनमें दिये हुए चित्र तो हमारे समक्ष तत्कालीन जीवन-शैलीका चल-चित्र सा प्रस्तुत कर देते हैं। इस ग्रंथकी विस्तृत भूमिकामें बीकानेरके जैन-इतिहास, बीकानेरके राज्य-स्थापन एवं जैनोंका हाथ, बीकानेर नरेश तथा जैनाचार्य, बीकानेरमें ओसवाल जातिके गोत्र, बीकानेरमें रचित जैन-साहित्य, बीकानेरके जैन-मंदिरोंका इतिहास, जैन-उपाश्रयोंका इतिहास, बीकानेरके जैन ज्ञान-भंडार बीकानेरके जैन-श्रावकोंका धर्म-प्रेम आदि विषयोंका विशद विवेचन किया गया है।

८. समय-सुन्दर-कृत्ति-कुसुमांजलि

सत्रहवीं शताब्दीमें उपाध्याय समयसुन्दर नामक एक प्रकांड जैन विद्वान् और महान् कवि हो गये हैं, जिन्होंने विपुल साहित्यका निर्माण किया और अनेक ग्रंथोंपर विद्वत्तापूर्ण टीकाएँ लिखीं। जैन-शास्त्रोंमें पारंगत विद्वान् होनेके अतिरिक्त उनका व्याकरण, न्याय, अनेकार्थ कोष, छंद, साहित्य, संगीत आदिपर भी पूर्ण अधिकार था, जिसके कारण उनकी रचनाओंका विद्वत्समाज तथा जन-साधारणमें बड़ा भारी आदर था, और आज भी है। उनके प्रखर पांडित्यका परिचय इसी बातसे चल जाता है कि उन्होंने सम्राट् अकबरकी विद्वत्सभामें दिये आठ अक्षरों ''राजानो ददते सौख्यं'' पर आठ लाख अर्थोंकी रचना की। यह ग्रन्थ 'अर्थ-रत्नावली''के नामसे प्रसिद्ध है। इन महान् कविकी ५६३ लघु रचनाओंका संग्रह श्री नाहटाजीने अपने भतीजे श्री भँवरलालजीके सान्निध्यमें विक्रम संवत् २०१३में उपर्युक्त नामसे प्रकाशित किया है। इस ग्रन्थके प्रारंभमें विद्वान् संपादकों तथा महोपाध्याय विनयसागरजी द्वारा इन महान् कविके व्यक्तित्व एवं कृतित्वका विस्तृत विवेचन किया गया है। इस ग्रन्थकी भूमिका प्रसिद्ध विद्वान् डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदीने लिखी है।

९. रत्नपरीक्षा

इस ग्रंथका संपादन भी श्री नाहटाजीने अपने भतीजे श्री भँवरलालजीके सान्निध्यमें किया है। विद्वान् संपादकोंने ठक्करफेरूकी लगभग छः सौ वर्ष प्राचीन इस रचनाको विशद भूमिकाके साथ प्रकाशित किया है। ग्रन्थके प्रारंभमें उसका परिचय ८० पृष्ठोंमें डॉ० मोतीचन्द्र द्वारा दिया गया है, जिससे इस विषयपर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है।

१०. सीताराम चौपाई

महोपाध्याय कविवर समयसुन्दरकृत इस ग्रन्थका संपादन नाहटाजीने अपने भतीजे श्री भँवरलालजीके सान्निध्यमें किया है और यह ग्रन्थ संवत् २०१९ में प्रकाशित हुआ है। इस ग्रन्थके प्रारंभमें संपादकीय भूमिका तथा प्रो० फूलसिंह ''हिमांशु'' द्वारा ''राजस्थानीका एक रामचरितकाव्य''के शीर्षकसे इस ग्रन्थ तथा उसके लेखकका विस्तृत परिचय, सीतारामचरित्रसार तथा डॉ० कन्हैयालाल सहल द्वारा लिखित ''सीताराम चौपाई'में प्रयुक्त राजस्थानी कहावतें नामक लेख दे दिये हैं, जिनसे इस ग्रन्थकी उपयोगितामें चार चाँद लग गये हैं।

११. श्रीमद् देवचन्द्र स्तवनावली

इस पुस्तकका संपादन श्री नाहटाजीने अपने भतीजे श्री भँवरलालजीके सान्निध्यमें किया है, और यह पुस्तक संवत् २०१२में प्रकाशित हुई है। अठारहवीं शताब्दिमें श्रीमद् देवचन्द्रजी नामक एक प्रसिद्ध विद्वान् सन्त हुए हैं, जिन्होंने संस्कृत, प्राकृत, हिन्दी, गुजराती आदि भाषाओंसे अनेक ग्रन्थों, सज्झायों, स्तवनों आदिकी रचना की है, जिनका प्रचलन वर्तमान कालमें भी अत्यधिक है। पुस्तकके प्रारंभमें श्री नाहटाजीने श्रीमद् देवचन्द्रजीके व्यक्तित्व तथा कृतित्वके संबंधमें पर्याप्त प्रकाश डाला है।

१२. धर्मवर्द्धनग्रंथावली

इस ग्रन्थका संपादन श्री नाहटाजीने किया है और यह ग्रन्थ संवत् २०१७में प्रकाशित हुआ है।

इस ग्रंथके प्रारंभमें श्री नाहटाजीने महोपाध्याय धर्मवर्द्धनके व्यक्तित्व एवं कृतित्वके सम्बन्धमें विस्तृत जानकारी दी है। ये अठारहवीं शताब्दीके एक महान् विद्वान् संत थे और उन्होंने संस्कृत तथा राजस्थानी भाषाओंमें काव्य-रचना की है। इनकी पाँच बड़ी रचनाओंको छोड़कर अवशिष्ट समस्त उपलब्ध रचनाओंका समावेश इस ग्रन्थमें किया गया है, जो श्री नाहटाजीके अनेक वर्षोंकी खोज-शोध तथा परिश्रमका फल है। इस ग्रन्थकी भूमिका राजस्थानीके सुप्रसिद्ध विद्वान् डॉ० मनोहर शर्माने लिखी है।

१३. जिनराजसूरि-कृति-कुसुमांजलि

सत्रहवीं शताब्दिके उत्तरार्द्धमें खरतर-गच्छमें श्री जिनराजसूरि नामक प्रसिद्ध आचार्य हुए हैं, जिन्होंने संस्कृत तथा राजस्थानी भाषाओंमें अनेक ग्रन्थोंकी रचना की है। उनमेंसे कतिपय उपलब्ध राजस्थानी काव्यों-का प्रकाशन श्री नाहटाजीने इस ग्रन्थके द्वारा किया है। यह ग्रन्थ विक्रम संवत् २०१० में प्रकाशित हुआ है। इस ग्रन्थके प्रारम्भमें श्री नाहटाजीने श्री जिनराजसूरिके व्यक्तित्व एवं कृतित्वपर अच्छा प्रकाश डाला है। इस ग्रन्थके साहित्यिक अध्ययनके सम्बन्धमें प्रो० नरेन्द्र भानावतका एक लेख ग्रन्थके प्रारम्भमें प्रकाशित हुआ है।

१४. बीकानेरके दर्शनीय जैनमन्दिर

श्री नाहटाजीने बीकानेरके दर्शनीय जैनमन्दिरोंके सम्बन्धमें सामान्य जानकारीके लिए यह पुस्तिका लिखी है, जो विक्रम संवत् २०१२ में प्रकाशित हुई है। यह पुस्तिका एतद्विषयक ज्ञानके लिए बड़ी उपयोगी सिद्ध हुई है।

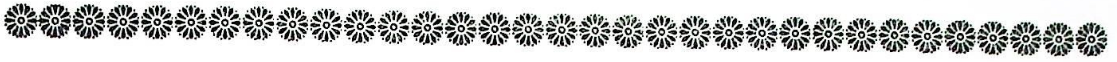
१५. मणिधारी श्री जिनचन्द्रसूरि अष्टम शताब्दी स्मृति-ग्रन्थ

खरतर-गच्छमें "दादाजी"के नामसे सुप्रसिद्ध चार आचार्योंमेंसे द्वितीय "दादाजी"का अष्टम शताब्दी समारोह गत वर्ष दिल्लीमें बड़े पैमानेपर मनाया गया था। उस सुअवसरपर श्री नाहटाजी तथा उनके भतीजे श्री भंवरलालजी द्वारा सम्पादित इस ग्रन्थका प्रकाशन समारोह-समिति द्वारा किया गया था। इस ग्रन्थके प्रथम खण्डमें विभिन्न विषयोंपर ४३ महत्वपूर्ण निबन्ध प्रकाशित किये गये हैं, जिनमेंसे २० निबन्ध इस ग्रन्थके विद्वान् सम्पादकों द्वारा लिखित हैं। इस ग्रन्थके द्वितीय खंडमें खरतर-गच्छ साहित्य-सूची दी गयी है, जिसे विद्वान् सम्पादकोंने ४० वर्षोंकी खोज-शोध और परिश्रमके उपरांत तैयार की है और जो खरतर-गच्छके सम्बन्धमें अनुसन्धान करनेवाले व्यक्तियोंके लिए बहुत ही उपयोगी है। इस ग्रन्थमें अनेक प्राचीन एवं अर्वाचीन चित्र भी दिये गये हैं, जिनसे उसकी शोभामें अभिवृद्धि हुई है।

●



उपराष्ट्रपति जत्ती द्वारा अगरचन्द जी नाहटा पुरस्कृत (सन् १९७४ दिल्ली) ।



द्वितीय खण्ड





श्रद्धा-सुमन





श्रद्धा-के-ये प्रसून

उपाध्याय प्रकाशविजय

मां सरस्वती के अथक पुजारी
अहर्निश लेखनी के उपासक
कर्तव्य निष्ठ
धर्मोद्धारक
लाख लाख वन्दन तुझको
जो दीप ज्योति जागृत तुमसे !
दीप से जलें सहस्र दीप
प्रकाशमान हो विश्व आंगन
मुखरित हो नन्दन वन, कानन,
प्रज्वलित प्रकाश में
तिमिर भागे
मानव जागे
उज्ज्वल हो वसुधा का मस्तक
मां सरस्वती के अथक पुजारी ।

× × ×

अवरुद्ध न हो पाई तेरी
वह अथक आराधना
ये शुभ्र पत्र कागज के पृष्ठ
किंचित् किंचित् शब्दों के गोरखधंधों से
लीपित हो लक्षित हो
गुंफित हो
वन गए
चित्रित हो
इन्द्र धनुष के सप्तरंगों से रंजित,
महाग्रन्थ !
महाप्राण !
काव्य-शोधित-चित्र
साहित्य आभारी है
समाज आभारी है
धन्य-धन्य यह महाप्रयास-तेरा
ए-सरस्वती के अथक उपासक !

●

घणमोला श्री नाहटाजी नै घणैमान

कन्हैयालाल सेठिया

कलम री नोक सूं उठा'र
वगत रो पड़दो
प्रगटायौ ग्यान-दिव्लां री रतन-जोत
भूल्योड़ी वातां'र ख्यातां नै
सरम रो संजीवण दे'र करी
पाछी हरी—
जक्यां नै निगळ लीन्ही ही
सरब-भक्षी मौत,
इसी सुण्योड़ी है'क लिछमी'र सुरसती
रया करै है अेक-दूसरी सूं अपूठी
पण थे तो थांरी जीवण रीकळा सूं
ईं कैवत नै कर दीन्ही साव ही झूठी,
कणाँ ढुळै रात कणाँ ऊगै दिन
थां रो तो पळ-छिण
वीतै है साधना में
सबद री आराधना में
भेजूं हूँ मैं म्हारै हिरदै री सरधा
चढाऊं हूँ चरणां में भावां रा फूल
थाँ नै जळम दे'र धिन हुई
ईं धरती री सोनळ धूळ ।

●

अभिनन्दनम्

डॉ० मनोहर शर्मा, एम० ए०, पी-एच० डी०

श्रेष्ठि-वंश-समुद्भूतः, सरस्वत्या उपासकः। राजस्थान-धरा-रत्नं, विद्या-विनय-भूषितः ॥१॥
सततं साधना-शीलः, पुण्याचार-परायणः। मुनिरूपो गृही चैव, राग-द्वेष-विवर्जितः ॥२॥
छात्र-वर्ग-हिते लीनः, सुधी-वृंद-समादृतः। ज्ञान-विज्ञान-योर्धाता, ग्रंथागार-विधायकः ॥३॥
साहित्य-शोधको धीरः, लुप्त-ग्रंथ-प्रकाशकः। सुकृतिस् तत्त्व-मर्मज्ञः, मातृभाषा-सुसेवकः ॥४॥
कर्मण्यो धर्म-चेताश्च, सदा सर्व-हिते रतः। दिव्यतेजाश् चिरं जीव्याद्, अग्रचंद्रो महामतिः ॥५॥

●

अभिनन्दन

श्री उदयराज ऊजल

अगरचंद सुकृत 'उदय', सम्पति गृह सरसात। रहै प्रेम सुखशांति जय, सदा धर्म के साथ ॥१॥
अगरचंद सेवा 'उदय', उज्ज्वल राजस्थान। डूबत साहित्य देशको, करत उद्धार महान ॥२॥
भासा राजस्थानकी, राजसथानी नाम। को कुबुधी मेहण करै, रुख पाले श्री रांम ॥३॥
मातर भासा मूल, जीवारी रजथानरी। तूटै पत्रा तूल, धनपंतां दिस ही धरौ ॥४॥
आपर जाय अनेक, धनवंता रजपट धरा। अगरचंद तूं अेक, तारकभासा मातरौ ॥५॥
बांगड़ सम व्रह लाह, धनवंता आया धरा। इवे गता अहलाह, साहितरी सेवा बिना ॥६॥
वीकांणी विदवांन, अेकठ कीधा ईसवर। मातरभासा मांन, इसां सपूतां आसरे ॥७॥
आवे लहर अनेक, दाहण भासादेसरी। हरे सुमेर नहेक, नरां अगरचंद नाहटौ ॥८॥

●

अभिनन्दन

श्री प्यारेलाल श्रीमाल 'सरस'

श्री शारदा दोनों मिलकर करती जिसका अभिनन्दन।
अमृत-सागर ज्ञान-सुधाकर अगरचन्दजी को वन्दन ॥
गरिमा तुम साहित्य क्षेत्र की जैन-जगत के गौरव तुम।
रत्न देश के विद्या-वारिधि, मानवता की सौरभ तुम ॥
चंद्र-किरण सा मृदु शीतल है मनमोहक व्यक्तित्व तुम्हारा।
दया दान के परम उपासक वीर-वचन अस्तित्व तुम्हारा ॥
जीवन को है सफल बनाया जन्मभूमि को धन्य किया।
नाम अमर कर दिया वंश का मात पिता को धन्य किया ॥
हर्ष हमें शुभ अवसर पाकर करते आज 'सरस' अभिनंदन।
टाल सभी अवगुण को तुमने बना लिया निज जीवन चंदन ॥

●

श्रद्धाञ्जलि

श्री व्रजनन्दन गुप्त 'व्रजेश'

अम्ब ! भारती समोद,
सहज सुभाय भरी-
चारु चन्द्र मुख ही सौं,
चन्द्र जस गा रही ।
ज्ञानकी अखण्ड ज्योति,
जग मग चहूँ ओर-
ललित निबन्धन में-
दिव्य छवि पा रही ।

कहत 'व्रजेश' बीका-
नेर की कनी हू धन्य,
देश औ विदेशन में-
कीरति कमा रही ।
हिन्दी राष्ट्र-भारती के
मंजु मौन मन्दिर में,
अगर सुगन्ध नित्य-
नई-नई छा रही ।।

●

अगरचन्द नाहटाजी का शत शत अभिनन्दन

श्री 'काका'

जिनका अभिनन्दन करने को उत्सुक अभिनंदन है। सरस्वती के पुत्र नाहटा जी का अभिनंदन है ।।

(१)

बचपन से ही सरस्वती की सतत साधना करके। लिखे पचासों ग्रंथ आपने मनमें जन-हित धरके ।।
शोध पूर्ण कई लेख लिखे जग में जिनका बंदन है। सरस्वती के पुत्र नाहटा जी का अभिनंदन है ।।

(२)

श्री सिद्धान्ताचार्य और इतिहासरत्न जैसे पद। कई मिले पर नाम मात्रको आया नहीं जिन्हें मद ।।
अस्सी सहस पुराणों, ग्रंथों का कीना मंथन है। सरस्वती के पुत्र नाहटा जी का अभिनंदन है ।।

(३)

प्राचीन इतिहास, आपको, सरस्वती का वर है। जैन अजैन सभी धर्मों की रहती जिन्हें खबर है ।।
भारत मां हो गई धन्य पाकर ऐसा नन्दन है। सरस्वती के पुत्र नाहटा जी का अभिनन्दन है ।।

(४)

लक्ष्मी, सरस्वती दोनों की कृपा जिनपर भारी। फिर भी सादा वेष और मन है जिनका अविकारी ।।
सरस्वती सेवा को 'काका' जिनका तन-मन-धन है। अगरचन्द नाहटा जी का शत शत अभिनन्दन है ।।

●

साहित्य-गगन के दीप्तिमान नक्षत्र, तुम्हें शत शत प्रणाम

श्री अनूपचन्द, न्यायतीर्थ, साहित्यरत्न

(१)

अभिनन्दनीय आदर्श पुरुष !
उद्भट विद्वत्ता-महा धाम ।
अमृत बरसाता रहे सदा
शुभ अगरचंद यह अमर नाम ।।

(२)

संस्कृत हिन्दी औ प्राकृत का
अध्ययन तुम्हारा है विशाल ।
गुजराती राजस्थानी का
तुमही से उन्नत आज भाल ।।

(३)

साहित्य-शोध के कामों में
तन मन धन अर्पण किया आज ।
निःस्वार्थ भावना से प्रेरित
साहित्य मनीषी ! योगिराज ।।

(४)

तुम सफल समालोचक अद्भुत ।
निर्भीक प्रवक्ता पत्रकार ।
आगम ग्रंथों के अभ्यासी
प्रतिभाशाली साहित्यकार ।।

(५)

कोई भी ऐसा पत्र नहीं
जिसमें न तुम्हारा छपा लेख ।
आश्चर्य चकित हैं महारथी
साहित्यिक गति विधि देखदेख ।।

(६)

साहित्य प्रणेता कोई भी
कैसा भी आवे किसी काल ।
सब कुछ सामग्री पाकर के
वह हो जाता तुमसे निहाल ।।

(७)

तुम प्रबल पारखी पुरातत्त्व !
इतिहास निपुण औ कर्मनिष्ठ ।
साहित्य शिरोमणि ! गुण-ग्राहक !
नित सत्यपरायण धर्म निष्ठ ।।

(८)

तुम परम सादगी के पुतले
भावुक, जिज्ञासु, अति उदार ।
हित-मित प्रिय भाषी विद्वत् प्रिय !
श्रद्धेय ! प्रचारक सद्विचार ।।

(९)

अज्ञात पुरानी रचनाएं
लाकर प्रकाश में किया काम ।
साहित्य जगत में उस ही से
हो गया तुम्हारा अमर नाम ।।

(१०)

साहित्य क्षेत्र में है इतना
सम्मान तुम्हारा कर्म वीर
जिस ओर लेखिनी चली गयी
बन गई लोह की वह लकीर ।।

(११)

उद्घाटित नूतन तथ्य करो,
शतशः वर्षों तक रह ललाम ।
साहित्य-गगन के दीप्तिमान
नक्षत्र तुम्हें शत शत प्रणाम ।।

●

श्रद्धाञ्जलि

सूरजचन्द डाँगी

अगरचंद सुरभिन सदा, साक्षी सूरजचंद। आत्मा का निज भाव है, शुद्ध सच्चिदानंद ॥
शुद्ध सच्चिदानन्द वीर्य ध्रुव शांति है। दर्शन ज्ञान सौख्य सदा विश्रांति है ॥
जीवन सुन्दर मधुर मिटी विभ्रांति है। अन्तर्दृष्टि सहज हित सम्यक क्रांति है ॥

●

सरस्वतीके वरद् पुत्र

श्री राधेश्याम शर्मा 'श्याम'

हे सरस्वती के वरद पुत्र, शत बार तुम्हारा अभिनन्दन !
इस धरती पर तुम 'चन्द्र' रूप,
शीतल किरणों को बिखराकर।
दे रहे मनुज को ज्ञान अमित
साहित्य-संस्कृति को निखरा कर।
शोधक, साहित्यिक सजग रूप,
तुम एकनिष्ठ सेवारत हो।
हो धर्म ध्वजा के प्रबल प्राण,
कृतियों के पुनरुद्धारक हो।
क्षत-विक्षत ग्रंथों को चुनकर,
तुमने उनको नव प्राण दिये।
साहित्य-सृजन के नायक बन,
भूले-भटकों को त्राण दिये।
तुम हो निशिदिन साधनालीन,
संस्कृति को सब कुछ दान किया।
लिखकर तुम ने सद्ग्रंथ अमित,
जन-जीवन का कल्याण किया।
साधना-पंथ के अडिग पथिक,
तुम युग-युग तक अभियान करो।
निज ज्ञान-रश्मि को ज्योतित कर,
जन-मंगल का संधान करो।
साहित्य जगत् के अभियानी,
महको, महके जैसे चंदन !
हे सरस्वती के वरद पुत्र,
शत बार तुम्हारा अभिनंदम !

श्रद्धाञ्जलि

शोभनाथ पाठक

अपरिग्रह स्याद्वाद सत्यव्रत उद्घोषक शतशः प्रणाम।
गरिमा ग्रन्थों की आंक रहे आलोकित जिससे धरा धाम ।।
रत्नत्रय से संवरे पुद्गल की परख, निखार रहे।
चन्दा समशांति उडेल रहे, नित सत्य शील का स्रोत बहे ।।
दर्शन की पैठ अनूठी है जो आज विश्व की थाती है।
नादानी में भटके जन को बस यहीं शांति मिल पाती है ।।
हम कितना और बखान करें, युग में विद्या वारिधि भर दो।
टालेंगे त्रिविध ताप युग का, हे ईश ! इन्हें जीवन बल दो ।।



साहित्य, संस्कृति एवं सुजनता के प्रतीक

श्री कलाकुमार

हे वाणी के वर वरद सुवन, शतकोटि तुम्हारा अभिनन्दन !
इतिहास मनुज का नहीं-
मनुजता का पलपल दुहराता है,
चीत्कार मनुज का नहीं—
मनुजता का विह्वल घहराता है।
जो 'तमसो मा ज्योतिर्गमय' का किया प्रथम मंत्रोच्चारण।
हे अमर ज्योति के संधानक, शत कोटि तुम्हारा अभिनन्दन ।।
खुल गये कपाट, उठ गये ललाट,
खिल गये मनुजता के शतदल।
धुल गये कषाय-उर-अन्तराय—
बह चले सरित, भर स्वर कलकल।
प्राची के स्वर्णिम प्रांत बीच, गा उठे विहग मंगल-वंदन।
शुचिता, ऋजुता के सौम्य सेतु, शत कोटि तुम्हारा अभिनन्दन ।।
था हुआ एक साधक महान्-
की अडिग साधना, ज्ञान-ध्यान;
शिव-जटा-यूथ से ललक-किलक-
था हुआ देवसरि पुरश्चरण।
तुम अपर भगीरथ बन आये, वसुधा के वर वसु अमर प्राण !
हे नव-जीवन के वरदायक, शतकोटि तुम्हारा अभिनन्दन !!

अगम गगन से उतर धरा पर
सरस सुवासित अगरचन्द वर।
अगरु-धूममय-सुख-सौरभ से—
हुआ धरा का महमह प्रांतर।
ललित-कलित वसुधा के कण-कण हुलस-किलक करते अभिवंदन।
अवनी के विभु-वरदान सुघड़, शतकोटि तुम्हारा अभिनन्दन ।।

धवल चन्द्रिका अमल ऊर्मिता,
कुलकुल खिलखिल किरण-किरण मिल,
नव-जीवन-संजीवन लेकर,
सरस लासमय हास सँजोकर,
उतरी भू, ले मंगल स्पंदन, विनत विश्व-हित ऊर्ध्वारोहण !
सत्-शिव-सुन्दर के संवाहक, शतकोटि तुम्हारा अभिनन्दन !!

कितनी कृतियाँ, 'कितने सर्जक,
थे बने काल के क्रूर असन,
तुम साध-दीप को कर ज्योतित,
कर रहे अहर्निश प्राण-वपन।
तेरी साधें तेरी कृतियाँ, माँ भारति के मंगल अर्चन !
साहित्य-सिंधु के अवगाहक, शतकोटि तुम्हारा अभिनंदन !!

निष्कम्प शिखा के ज्योति अमल,
सुखकर बिहान के विकच कमल,
माँ भारति के हे चिर साधक !
जन-जन-मंगल के आराधक !
हे अगरचंद ! दीपक अमंद, हे धर्मप्राण ! हे युगचारण !
हे मानवता के सम्बोधक, शतकोटि तुम्हारा अभिनंदन !!

है धन्यभाग वसुधा ललाम,
साहित्य, संस्कृति, सुजनधाम,
हैं धन्य धरा के प्राण-प्राण
ले लेकर तेरे सुयश-नाम।
हे साधपंथ के सौम्यव्रती, युग-युग जीओ बन कीर्तिमान !
हे वाणी के वर वरदसुवन, शतकोटि तुम्हारा अभिनंदन !!



ऐसे ज्ञान ज्योति दिनकर का अभिनंदन शत वार है

श्री विमलकुमार जैन सोंरया

'अगरचंद नाहटा' सा जन बना हृदय का हार है,
ऐसे ज्ञानज्योति दिनकर का अभिनंदन शत वार है।

जिसने अपने सद विवेक से जन-जन को आलोक दिया,
जिसने अपने पुण्य प्रयासों से मानव को योग दिया।
जिसने क्षमता समता से मानव मन को आह्लाद दिया,
जिसने अक्षय ज्ञान पुन्ज से नव युग को निर्माण दिया।।

जो धरती पर बन आया माँ सरस्वती का प्यार है,
ऐसे ज्ञान ज्योति दिनकर का अभिनंदन शत वार है।

जिसने अपने पौरुषसे अपना इतिहास बनाया है।
जिसने अपने कर्त्तव्योंसे जगमें निर्माण कराया है।।
जिसने अपनी सद्‌वाणीसे मानव को पथ दर्शाया है।
जिसने अपनी कृत करणीसे पावन तम गुरुपद पाया है।।

जो इस युगके बुधजन गण का बना एक आधार है।
ऐसे ज्ञान ज्योति दिनकर का अभिनंदन शत वार है।।

जिसकी पावन पुण्य लेखनीसे आलोकित लोक है।
जिसकी ज्ञानमयी प्रतिभा को जग जन देता धोक है।।
जिसने अपने बुध विवेकसे मिटा दिया सब शोक है।
जिसने आगे आने वाले युग को दिया आलोक है।।

जो जन-जनके लिए बना अब अलख ज्ञान का द्वार है,
ऐसे ज्ञान ज्योति दिनकर का अभिनंदन शत वार है।।

जिसके शंखनादसे पावन धर्म जगा इन्सानमें,
जो नरसे नारायण बनकर विचरा सम्यक् ज्ञानमें।।
भारत माँ की पावन वाणी का जिसमें सम्मान है।
अगणित जन जिसकी शिक्षासे दीक्षित हुए महान है।।

उस जन की यह आज अर्चना का गूंथा शुभ हार है।
ऐसे ज्ञान ज्योति दिनकर का अभिनंदन शत वार है।।

•

विश्व-कोषमें अमर रहेगा अगरचन्द का नाम

श्री कल्याणकुमार शशि

इतना दिया पुस्तकालय को साहित्यिक भण्डार
नित मुमुक्षु जग पायेगा, नव अन्वेषणके द्वार
शिक्षा-पट पर लिखे रहेंगे, यह समस्त उपकार
जो प्रशस्तियाँ लुप्त प्राय थीं किया पुनर्उद्धार
पूरा जीवन निर्विकार, 'साहित्यिक सेवा ग्राम'
विश्वकोषमें अमर रहेगा, अगरचन्द का नाम

तुम्हें, समर्पित दिखा स्वयम् ही अन्वेषज्ञी ज्ञान
एक लक्ष्य ही रहा निरन्तर, नूतन अनुसन्धान
जीवन की असारताओंमें हैं कृतित्व महान
इस नश्वर जगमें ऐसे ही जीवन आयुष्मान
अन्तरङ्ग, बहिरङ्ग रहे, जिनके सदैव निष्काम
विश्वकोषमें अमर रहेगा, अगरचन्द का नाम

नई विधाएँ देनेवाला, किया सतत निर्माण
भरे अमरताके शरीरमें, नित आलोकित प्राण
मंथनमें समदृष्टि रहे सब गीता, वेद, पुराण
लिखा वही, जिसका जैसा भी, मिला अकाट्य प्रमाण
ऐसी सफल लेखनी, जिसने लिया नहीं विश्राम
विश्वकोषमें अमर रहेगा अगरचन्द का नाम

कोई ऐसा क्षेत्र नहीं है जिसमें दिखे न आप
मुखरित दीखी दिशा दिशामें लेखन की पद-चाप
बाधाओंमें रहा प्रगति मय कर्मठ कार्य-कलाप
युगों-युगों, तक अमर रहेगी, अमर, कलम की छाप
ऐसे कलम-कार मानव को, शत शत वार प्रणाम
विश्वकोषमें अमर रहेगा, अगरचन्द का नाम

●

श्री अगरचन्दजी नाहटाके प्रति

गौरी शंकर गुप्त

मूर्त्ति हो सौजन्य की, तब साधना अभिराम !
समर्पित जीवन तुम्हारा अमर-उज्ज्वल नाम !!
सहज मूल्यांकन न संभव है कि ऐसा काम !
तुम्हें अर्पित सुमन श्रद्धाके असंख्य प्रणाम !!

●

अभिनन्दन

सर्वदेव तिवारी "राकेश"

अभिनन्दन, हे विद्या-वारिधि, बुद्धि-बृहस्पति, मुनिवर !
अक्षरजीवी, ऋषि-कुल-गौरव, स-हित-भावना-भास्वर !
अगरु-गन्धसे पूरित कण-कण श्री-शारदा-निकेतन,
गहन स्वेद-सरि बही, लुप्त या गुप्त बन गए चेतन !
रम्य लताएँ लक्ष-लक्ष साहित्य-कुंजमें लहर भरीं,
चंचल रस-मारुत-विलासमें बढ़ी भारती जीर्ण तरी !
दमकाया वाणी का दर्पण, अक्षर-अक्षर चमक उठे,
नाम गणेशी-मन्त्र बना है, नित नव गणपति दमक उठे !
हर्षित कला, धर्म या संस्कृति-गौतम-नारी रजसे,
टापे को उपवनमें बदला, अपर सृष्टि रच अज-से !
स्वयं शीलमें पुस्तक-आलय, विश्वकोष जीवित पर,
धर्म, काव्य, संस्कृतिके संगम, शोध-तमिस्रा भास्कर !



अभिनन्दन

श्री सींथल, बीकानेर

अभिनन्दन है आपका, भक्ति भावके साथ ।
गर्व नहीं है मानका, गहत ज्ञान परमार्थ ।।
रक्षक रामको जो रहे, वन्दे नर अरु नार ।
चंचल चित वशमें रहे, तब बेड़ा हो पार ।।
दया युक्त हो लघुन पे, दान ज्ञानका देह ।
जीव सफल होवे तभी, सदा सज्जनसे नेह ।।
नाम नरोत्तमसे हुआ, महिमा बढ़ी अपार ।
हरदम लिखते लेख हैं, हंस वंश पय सार ।।
टाले अविद्या भूतको, तत्त्व ग्रन्थका लेह ।
तत्त्व सदा वा वाणीमें, कवि वानीको देह ।।

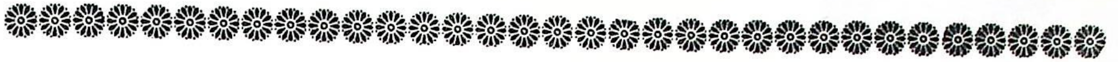


गीत डिंगल

श्री रावत सारस्वत

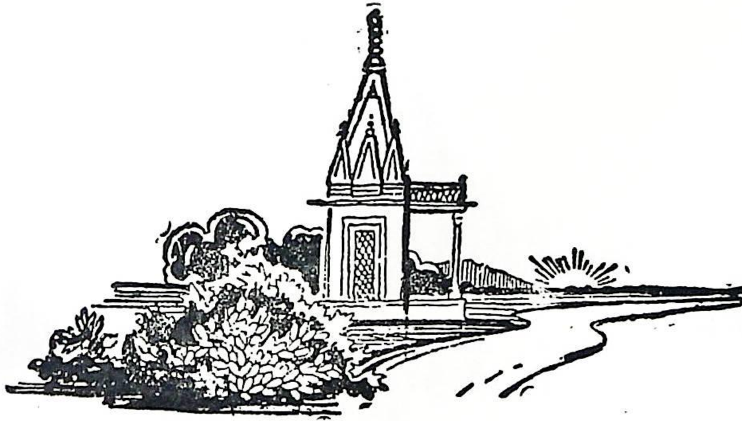
भल पाद्य रखी पूरी पिड़लाई, माद्य रखी सिरिगालैं जेम ।
करतब करे कमाई कीरत, नीकी भांत निभाया नेम ।।१।।
माचै मोह न मिलिया माया, माथापच ही मोह मचै ।
राचै रंग न रीझ रमा री, सारद री ही सीख जचै ।।२।।
रुलिया रतन न रंच रुखाल्या, नूनां पानां जतन किया ।
हुलसी पोथ्यां हरख हियै में, पुखराजां मुख पीत धिया ।।३।।
गलियो गरब गरथ-भंडारां, ग्रन्थ-भंडारां दरब थियो ।
मातम तोसाखानां मनियो, पोथीखानां परब कियो ।।४।।
सोधै सुब्रण ओखधां सोधै, सोधै लगन जूजुआ सोध ।
पुरुखां रै जस करतब री पण, सारां सिरै थाहरी सोध ।।५।।
आखै देस कमाई कीरत, 'नाहटा' नाम सुनाम हियो ।
बीकानेर बसायो बीकै, तै पण तीरथ धाम कियो ।।६।।





तृतीय खण्ड



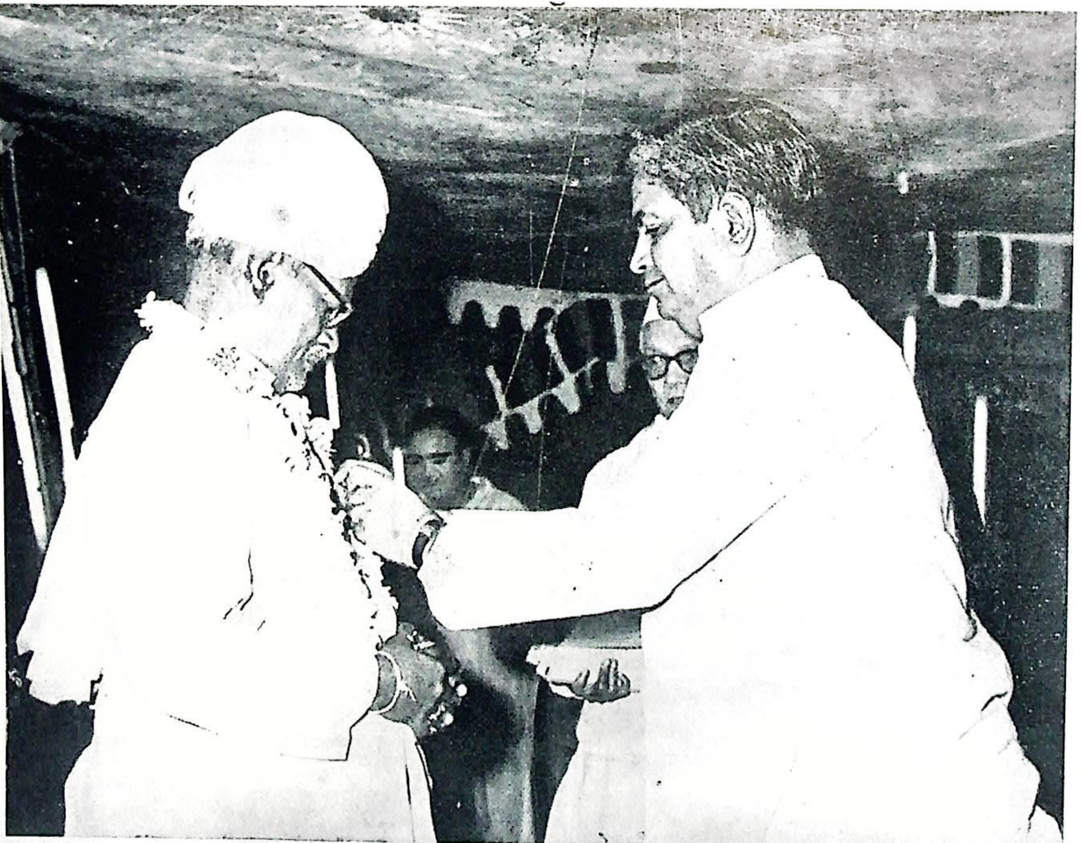


व्यक्तित्व, कृतित्व और संस्मरण





● सम्मानित तथा पुरस्कृत



राजस्थानी साहित्य अकादमी, उदयपुर में श्री मोहनलाल जी सुखाड़िया, नाहटा जी को पदक लगाते हुए ।

हमारे शरीर और कपड़ोंके चिपक जाती। कई घन्टोंतक निरन्तर छँटाईका कार्य करनेके बाद जब हम कमरेसे बाहर आते तो हमारे शरीर और कपड़े इतने गन्दे हो जाते कि बिना नहाये और कपड़ा बदले किसीको मुँह दिखाना कठिन हो जाता। पर कई महीनोंके बाद जब हमें सैकड़ों महत्वपूर्ण ग्रन्थ उस खन्तड़मेंसे प्राप्त हो गये और बहुत-सी महत्वपूर्ण ऐतिहासिक सामग्री मिली तो हमें अपने श्रमका सुफल मिलनेसे बड़ा सन्तोष हुआ।

उसी समय तिलोक मुनिने उसी रद्दीके ढेरमेंसे छाँट-छाँटकर या पन्नोंको इकट्ठाकर २५ रुपयेमें खरीदे हुए खंतड़को कई बन्डलोंमें बाँधकर रखा था। हमने उनसे यह प्रार्थना की थी कि यह सारा खन्तड़ हमें बेच दें, क्योंकि इसी ढेरके बहुतसे पन्ने हमारे खरीदे हुए संग्रहमें आ चुके हैं। तिलोक मुनिने कहा कि मैं ज्ञानको बेचता नहीं, समय मिलनेपर इसको ठीक करूँगा। हमने उनसे कहा कि बहुत दिनोंसे आपके पास ये बन्डल यों ही पड़े हैं और आपको अबतक समय ही नहीं मिला तो कृपया उनको हमें ही दे दें, हम ठीक कर लेंगे। उनको भी हमारी यह बात जँच गई। फलतः खन्तड़मेंसे संगृहीत सारे बन्डल हमें निःशुल्क दे दिये और खरीदे हुए ग्रन्थोंका मूल्य ३० रुपया देकर हम वह सारा संग्रह ले आये। इससे हमें अपने यहाँकी अपूर्ण प्रतियोंको पूर्ण करनेमें बड़ी सुविधा हो गई।

इसी खन्तड़का कुछ अंश जो यति मुकनजीने अपने पास रख छोड़ा था; उसमें संवत् १४८८ की लिखी हुई एक तपागच्छ-गुर्वावलीकी ३ पत्रोंकी प्रतिके २ पत्र भी थे। इस प्रतिका तीसरा पत्र हमारे खरीदे हुए खन्तड़में आ चुका था। इस महत्वपूर्ण प्रतिको पूर्ण करनेके लिए हमने मुकनजीसे बहुत अनुरोध किया तो अन्तमें उन्होंने उन दो पत्रोंका मूल्य एक रुपया माँगा। हमने इसे भी जीतका ही सौदा समझा और तत्काल मुँहमाँगा देकर उन दोनों पत्रोंको खरीद लिया। वैसे दो पत्रोंकी अपूर्ण प्रतिका दो आना भी कोई नहीं देता, पर हमें तो अपनी प्रतिको पूर्ण जो करना था।

प्राचीन वस्तुओंका संग्रह केवल पैसोंके द्वारा ही नहीं होता। इस कार्यमें काफी मिलनसारिता व होशियारीकी जरूरत होती है जो कार्य पैसेके बलपर नहीं होता उसे सम्पन्न करनेके लिए अन्य उपाय सोचने पड़ते हैं, जो व्यक्ति अपनी अधिकृत वस्तु बेचना नहीं चाहता उससे वह वस्तु कैसे ली जा सकती है। इस सम्बन्धकी हमारी एक रोचक अनुभूति यह है कि उस व्यक्तिकी रुचि एवं प्रकृतिका पता लगाना चाहिये। फिर उसीके अनुसार कोई उपाय करनेपर सफलता मिल सकती है। इस सम्बन्धमें हमारा एक संस्मरण यहाँ दिया जा रहा है।

बीकानेरमें पूनमचन्दजी श्रीमाली नामक एक सज्जन मंत्रविद् विद्वान् थे। मुझे किसीसे विदित हुआ कि उनके यहाँ बहुतसे हस्तलिखित जैनग्रन्थोंकी प्रतियाँ पड़ी हैं। तत्काल मैं उनके पास पहुँचा और उन्होंने अपने सहज सौजन्यवश उन प्रतियोंको मुझे दिखा दिया पर वे उन्हें पैसे लेकर देनेवाले नहीं थे। और मुझे किसी तरह भी उनको संग्रह कर लेना ही था। इसलिये श्रीमालीजीको एक दिन मैं अपने घर पर लाया और अपने संग्रहीत वस्तुओंको हमने कितनी सारसम्हालके साथ रखा है, ये दिखाते हुए उनसे कहा कि आपको मंत्रशास्त्रका शौक है, अतः हम अपने संग्रहके मंत्रों-संबंधी छँटे हुए हस्तलिखित पत्रोंको आपको भेंट दे देंगे और आप कृपया हमें अपने यहाँकी प्रतियाँ हमारे संग्रहके लिए दें दें। हमारी यह सूझ-बूझ काम कर गई। हमारे संग्रहको सुव्यवस्थित देखकर वे प्रभावित हुए और अपने कामकी शीघ्र प्राप्त होनेकी अभिलाषाने उन्हें हमारी इष्ट-सिद्धिके लिए तैयार कर दिया। हम दो बोरोंमें भरकर उनकी प्रतियोंको अपने यहाँ ले आये। इनमेंसे सचित्र प्रतियाँ भी थीं जिनको खरीदनेपर मूल्य शताधिक रुपये होता।

अब मेरे अविस्मरणीय एवं कटु अनुभवोंको भी सुनिये।

मारवाड़ जंक्शनके एक यतिजीके अधीनस्थ बहुत-सी हस्तलिखित प्रतियोंके बन्डल वहाँके जैन-मंदिरकी एक आलमारीमें पड़े थे। मैं उन्हें देखने गया तो उन्होंने चाभी नहीं मिलने आदिका कहकर टाल-मटोल की। पर मुझे उन प्रतियोंको देखना ही था इसलिये मैंने एक पत्थरसे लेकर आलमारीके तालेको किसी तरह खोल डाला पर आलमारीके फाटक खुलते ही मुझे मर्मान्तिक दुःख हुआ क्योंकि वर्षाका पानी उस आलमारीमें प्रविष्ट होनेसे सारे ग्रन्थ चिपक कर थेपड़े हो गये थे और क्षुद्र जन्तु वहाँ उत्पन्न हो गये थे कि उन प्रतियोंके हाथ लगाते ही असंख्य जन्तु बाहर भागने लगे। फिर भी यतिजीसे मैंने कहा कि इन नष्ट हुए ग्रन्थोंको भी हमें दे दें पर वे इसके लिए तैयार नहीं हुए और दूसरी बार जानेपर विदित हुआ कि उन सैकड़ों प्रतियोंको पानीमें बहा दिया गया।"

कहनेकी आवश्यकता नहीं है कि जो शोधरस श्री नाहटा (चाचा-भतीजे)ने आदरणीय जैन आचार्य श्री जिनकृपाचन्द्रजीसूरि व उपा० सुखसागरजीसे आस्वादित किया था, उसकी ललक प्रतिदिन बढ़ती ही गई। अधिकसे अधिक प्राप्त करनेकी प्रबल इच्छासे आप कहाँ-कहाँ नहीं गये? आप श्मशानोंमें भटके, उजड़े-उखड़े ध्वस्त-अवशेष खण्डहरोंमें भयंकर भुजंगमोंके बिलोंपर गहन अंधकारमें खोज की, भूखे-प्यासे, चिलचिलाती धूपमें मीलों पैदल गये, प्राचीन शिलालेखोंको पढ़ा और उनके छाया-चित्र प्राप्त किये। युगोंसे बन्द कपाटोंको आपने इस पवित्र कार्य हेतु उद्घाटित किया। कहीं चमगादड़ोंसे स्नेह-टक्कर हुई तो कहीं मधुमक्खियोंसे रार और तकरार। कई इंच जमे धूलदलको हाथोंसे इकट्ठा कर बर्तनमें भर उसे शिरपर उठाकर बाहर फेंकनेके अनेक अवसर आपके जीवनमें आये, क्योंकि उसके नीचे दबी सरस्वती आपका आह्वान जो कर रही थी। टूटे-फूटे, बन्द घरों और तहखानोंमें विषैले बिच्छू अपना साम्राज्य बना लेते हैं और यह साम्राज्य कभी-कभी बीसों हाथ लम्बा होता है। इस कष्टकर और भयंकर भूगर्भ मार्गको पार करके ही 'अब पड़ूँ तब पड़ूँ' जैसी जीर्ण-शीर्ण छतके नीचे कूड़े-करकटमें दबी सरस्वतीको पाना-सम्भालना-टटोलना और फिर उसे बोरियोंमें भरकर मस्तकपर रखकर बाहर निर्जन खंडहरमें एकत्र करना और अनेक दिनों तक चनेचबेने खाकर-पानी पीकर सप्ताहान्त कर देना साधारण बात नहीं है। शरीरपर परिधीत वस्त्र धूल धूसरित हो गये हैं, श्रमसीकरोंसे मिलकर रज-कण-दुर्गन्ध देने लगे हैं, हाथकी अंगुलियोंके नख कच्चे फर्शकी धूलिको साफ करनेके कारण सक्षत हो गये हैं, शिरके केश धूलराशिमें छिपकर अदृश्य हो गये हैं, दाढ़ी 'अस्तित्ववाद' की तरह पुरजोर मचलने लगी है, लेकिन शोधरस-मत्त श्री अगरचन्द नाहटाके मुखमण्डल पर एक विशेष आह्लाद है, एक छवि है, एक स्मिति थिरकन है और वह इस कारण कि जिसे आज तक किसीने नहीं पाया, वह उन्होंने प्राप्त कर लिया। जिस प्रकार कवियोंकी अमरगिरामें 'गोकुल गाँवको पैंडो ही न्यारो' है, ठीक उसी प्रकार 'शोध लगेको पैंडो भी' अद्भुत है; असामान्य है। शोध-पथिक होनेके नाते आप मंदिरोंमें गये, मस्जिदोंमें गये, ग्रन्थी तथा गुरुद्वारेको मस्तक झुकाया और उपाश्रयोंके भाग्य-विधाताओंका विश्वास अर्जित किया। इसी हेतु आपको अनेक पुरातत्त्वालय, हस्तलिखित-पुस्तकालय, बृहद्ज्ञान-ग्रन्थालय, सामाजिक संस्थान, व्यक्तिगत प्रतिष्ठान, टटोलने पड़े; पासके, दूरके, गाँवके, शहरके, आस्तिकोंके, नास्तिकोंके जो भी सारस्वत संग्रह थे; वे आपके सर्वस्व थे और वहां आप दौड़े गये। अगर कोई भंडारद्वार दीवारोंसे ढक दिया है तो आप मजदूरों और कारीगरोंके साथ मिलकर उसे तुड़वा रहे हैं, अगर किसी भंडारकी महत्त्वपूर्ण दीवार गिर पड़ी तो उसके स्थानपर नयी दीवार उठानेमें मदद कर रहे हैं। ऐसी ही स्थितिमें भवभूतिने कहा था :

'लोकोत्तराणां चेतांसि, को वा विज्ञातुमर्हति'

लोकोत्तर पुरुषके चरितको कौन जान सकता है?

किसी कविने ठीक कहा है कि संसारमें बहुत व्यसन हैं, लेकिन श्रेष्ठ व्यसन तो केवल दो हैं, प्रथम विद्या व्यसन और द्वितीय प्रभुभक्तिव्यसन।

> व्यसनानि सन्ति बहुधा, व्यसनद्वयमेव केवलं व्यसनम्।
> विद्याव्यसनं व्यसनं, अथवा हरिपादसेवनं व्यसनम्॥

हमारे चरित-नायक श्री अगरचन्द जी नाहटाका विद्या-व्यसन उच्चकोटिका है। वे प्रतिदिन दस घंटे पढ़ते-लिखते और मनन-चिन्तन करते हैं। उनके विद्या-व्यसनका इससे बड़ा प्रमाण क्या हो सकता है कि उन्होंने स्वश्रमसे 'श्री अभय जैन ग्रन्थालय' जैसी विश्वविश्रुत संस्थाको जन्म देकर पल्लवित, पुष्पित और फलित किया। इसमें लगभग चालीस हजार हस्तलिखित दुर्लभ ग्रन्थोंका संग्रह है और इतनी ही मुद्रित पुस्तकोंका। इसका समस्त श्रेय आपके विद्या-व्यसनी व्यक्तित्वको है।

श्री शंकरदान नाहटा कलाभवनमें आज तीन हजार दुष्प्राप्य चित्र, सैकड़ों सिक्के, हजारों प्राचीन मूर्त्तियाँ और कलाकृतियाँ सुरक्षित एवं संगृहीत हैं। इसका अनुमानित मूल्य दस लाखसे अधिक है। इस गौरवपूर्ण संग्रहालयको प्रथम श्रेणीके संग्रहालयोंकी श्रेणीमें बिठाना आपके विद्याव्यसनका ही सुफल है।

आपके विद्यावैभवसे प्रभावित होकर देशकी अनेक संस्थाओंने आपका सम्मान किया है। जैन सिद्धान्त भवन, आराने आपको 'सिद्धान्ताचार्य', जिनदत्तसूरिसंघने 'जैन इतिहास रत्न', दी इण्टरनेशनल अकादमी जैन विजडम एण्ड कल्चर, आराने 'विद्यावारिधि' माणिकलरी अष्टम शताब्दी समारोह पर 'संघरत्न' और राजस्थान भाषा प्रचार सभा, जयपुरने 'राजस्थानी साहित्य वाचस्पति' जैसी उच्चस्तरीय उपाधिसे आपको विभूषित किया है। देशकी अनेक संस्थाओंने आपको अभिनन्दित किया है। कुछ अभिनन्दन पत्र गद्यमें हैं तो कुछ पद्यमें। अभिनन्दन पत्रोंको पढ़नेसे यह प्रभाव पड़ता है कि आपके विद्याव्यसनी स्वरूपने आपके प्रशंसकों को कितना गहरा प्रभावित किया है। मैं तो यह कहनेकी स्थितिमें हूँ कि शब्दावलीके माध्यमसे अपने भावोंको आपके चरणोंमें समर्पित करने वाले विद्यानुरागी-गुणग्राहक-समर्पक आपसे अभिभूत हैं, आपकी सरस्वतीसे अभिभूत हैं और आपके विद्याव्यसनसे अभिभूत हैं।

श्री श्वेताम्बर जैन महासभा उत्तर प्रदेशकी ओरसे इतिहासरत्न श्री अगरचन्दजी नाहटाके कर-कमलोंमें सादर समर्पित पद्यबद्ध अभिनन्दन-पत्रकी भावभरी पंक्तियाँ पठितव्य हैं—

श्री श्वे० जैन महासभा, उत्तर प्रदेश, की ओर से

इतिहासरत्न श्री अगरचन्दजी नाहटाके करकमलोंमें सादर समर्पित

अभिनन्दन-पत्र

जिनका विद्यातरु सदा, फलित रहा सर्वत्र ।।
उनके करमें भेंट है, यह अभिनन्दन-पत्र ।। १ ।।

× × ×

तुम अगरचन्द अभिधावाले पर निश्चय चन्द्र निराले हो।
वह नभका चन्द्र कलंकित है, तुम विमल कीर्तिको धारे हो ।।
शुभपथसे किंचित् हटे नहीं, इसलिये नाहटा गोत्र मिला।
है किन्तु महा आश्चर्य कि बीकानेरमें कैसे कमल खिला ।।
"गुदड़ीमें लाल छिपे रहते" यह तो हम हैं सुनते आये।
"रेतेमें रत्न छिपे रहते" यह जान आज ही हैं पाये ।।
क्या कहें सरस्वति पुत्र ! तुम्हारा आलम एक निराला है।
मनमध्य ज्ञान भगवान बसे हाथोंमें ज्ञानकी माला है ।।
इस ज्ञानयोगके अमृतमें अमरत्व ढूँढने वाले हो।
तुम अगरचन्दसे अमर चन्द्रमा जल्दी बनने वाले हो ।।
संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश आदिके कितने ग्रंथ खोज डाले।
इतिहास-हारकी लड़ियोंमें हाँ, कितने रत्न जोड़ डाले ।।
देवी शारदा महामुदिता, अमृतवर्षा तुमपर करती।
अवसर्पिणी काल है, किन्तु ज्ञानकी निर्झरिणी सुखदा झरती ।।
है यथा सुगंधित अगर द्रव्य, है यथा चन्द्रमा सुधा भरा।
तव कीर्ति-सुगन्ध प्रसारित हो अरु रहे ज्ञान घट सदा भरा ।।
श्री शान्ति प्रभूकी छायामें हस्तिनापुरमें जो आये हो।
भागीरथवत् निज ज्ञान सुरसरी इस प्रदेशमें लाये हो ।।
बालाश्रम रूपमान सरसे भारतमें यह सुरसरी बहे।
गुरु 'विजयानन्द'की जय-जय हो, श्री अगरचन्दकी कीर्ति रहे ।।
इस शिलान्यासकी यादगार इक शिलालेख-सी बन जाये।
जैनोंकी युनीवर्सिटी बने, 'वल्लभ', 'समुद्र'के मन आये ।।

रचयिता
रामकुमार M. A., B. T.
हस्तिनापुर
दिनांक ३१-७-६३

आपकी विद्वत्ताके प्रति प्रणत
ज्ञानचन्द मोधा (सभापति)
विनयकुमार जैन (मन्त्री)
श्री श्वे० जैन० महा०, उत्तर प्रदेश

इस गद्यबद्ध सम्मान-पत्रको भी प्रस्तुत किया जाता है। यह सम्मान-पत्र राजस्थान साहित्य अकादमी, उदयपुरकी ओरसे हमारे चरित-नायक श्री नाहटाजीको समर्पित किया गया था :

राजस्थान साहित्य अकादमी (संगम) उदयपुर

सम्मान-पत्र

श्रीमान् अगरचन्द नाहटा

- राजस्थान प्रदेशकी साहित्यिक तथा सांस्कृतिक चेतनाके प्रसारमें आपके सृजन एवं अध्ययनशील व्यक्तित्वका विशिष्ट योगदान रहा है।
- आपने अपनी साधना तथा विद्वत्ता द्वारा राजस्थानकी प्रतिभाके विकासमें प्रेरणा प्रदान की है।
- आपके कर्तृत्व एवं परिशीलनसे राजस्थानका साहित्य और समाज लाभान्वित हुआ है।

अस्तु—राजस्थान साहित्य अकादमी [संगम] उदयपुर
यह सम्मान-पत्र सादर समर्पित करती है।

निदेशक, उदयपुर   अध्यक्ष

दिनांक ३०. ५ १९६८

राजस्थान सरकार तो आपकी विद्वतासे परिचित थी ही, केन्द्रीय सरकारने भी आपकी अगाध ज्ञानराशिसे एक बार लाभ उठाना चाहा था। जब उक्त प्रसंगको श्री भँवरलालजी नाहटाके शब्दोंमें पढ़ना और भी आह्लादक होगा : "जब सरदार वल्लभ भाई पटेलने आबूको राजस्थानसे निकालकर गुजरातमें मिला दिया था, तो श्री नेहरू सरकारने राजस्थानकी न्यायोचित माँगपर सद्विचार करना तै किया, फलतः राजस्थानके प्रमुख विद्वानोंकी एक मंडली नियुक्त हुई, जिसने आबू प्रदेशमें भ्रमण कर ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, वेशभूषा, बोलचाल-भाषा, रीति-रिवाज, कला आदिपर रिपोर्ट दी जिसमें आप भी एक महत्त्वपूर्ण व्यक्ति थे और उन्हींकी रिपोर्टोंसे राजस्थानको उचित न्याय मिला था।[1]

हमारे चरितनायक श्री नाहटाका विद्याव्यसन लगभग चार युग पुराना है। इस सुदीर्घ अवधिमें आपने लगभग चालीस ग्रंथ लिखे और सम्पादित किये हैं। तीन सौ पत्र-पत्रिकाओंमें आपके तीन हजार लेख प्रकाशित हो चुके हैं। आपके विद्या-व्यसनका लाभ, अनेक पत्र-पत्रिकाओंने आपको संपादक बनाकर अथवा सम्पादक मंडलमें स्थान देकर, लिया है। आपके सम्पादकत्वसे लाभान्वित होनेवाली पत्रिकाओंमें 'राजस्थानी', 'राजस्थान भारती', 'विश्वम्भरा', 'परम्परा', 'मरु-भारती', 'वरदा', 'अन्वेषणा', 'वैचारिकी' आदि प्रमुख हैं। 'राजेन्द्रसूरि स्मारक ग्रन्थको भी आपके सम्पादकत्वका गौरव प्राप्त होता है।

हमारे चरितनायक श्री नाहटाजीके विद्याव्यसनी कल्पवृक्षके सुमधुरफल मुक्तभावसे वितरित हुए हैं। कई लोगोंको ये अमरफल खिलाये गये हैं और अनेकोंको हठात् दिलाये गये हैं। शताधिक शोध-छात्रोंका मार्ग-दर्शन आपने किया है और कर रहे हैं। ऐसे व्यक्तियोंकी संख्या हजारोंसे ऊपर है जिनको आपने आवश्यक जानकारी एवं सम्बन्धित विषयसामग्री प्रदान की है। आप शोध-प्रबन्धोंके परीक्षक भी रह चुके हैं। आपने लाखसे अधिक हस्तलिखित प्रतियोंको खोज निकाला है और अश्रुतपूर्व-अज्ञात ग्रन्थोंका विवरण प्रकाशित किया है।

---

१. श्री भँवरलालजी नाहटाके संस्मरणसे उद्धृत।

आपका विद्याव्यसन उस भगवती भागीरथीके समान है; जिसका सुमधुर जीवन सबको सुलभ होता रहता है। आपको जो भी व्यक्ति, संस्था, विद्यालय, महाविद्यालय, विश्वविद्यालय, शोधसंस्थान सप्रेम निमंत्रित हैं, आप उनका आग्रह स्वीकार करते हुए अपनी असुविधाओं और कठिनाइयोंको ध्यानान्तरित करते हुए, वहाँ पहुँचते हैं और बड़े ही शिष्ट तथा जिज्ञासु भावसे सुनते हैं और स्वाभिमत प्रस्तुत करते हैं। आप अखिल भारतीय स्तरके अनेक आसनोंके अभिभाषक रहे हैं; जिनमेंसे कतिपयके नाम उल्लेखनीय हैं:—

१. महाकवि सूर्यमल मिश्रण आसन, उदयपुर।
२. नोपानी भाषणमाला, कलकत्ता विश्वविद्यालय, कलकत्ता।
३. मध्य प्रदेश शासन परिषद्, भोपाल।
४. महाराणा कुंभा संगीत समारोह, उदयपुर।
५. महाराणा कुंभा पंचम शताब्दी महोत्सव, चित्तौड़गढ़।
३. अखिल भारतीय लोक संस्कृति सम्मेलन, बम्बई।
७. व्रज साहित्य मंडल (साहित्य विभाग) उज्जैन।

राष्ट्रके विभिन्न राज्योंमें हुए आपके सम्मानसे एक बार यह फिर चरितार्थ हो जाता है कि विद्वत्ता नृपत्व कभी भी समान नहीं हैं, क्योंकि राजाकी पूजा स्वदेशमें होती है जबकि विद्वान् सर्वत्र पूजा जाता है—

विद्वत्त्वं च, नृपत्वं च नैव तुल्यं कदाचन। स्वदेशे पूज्यते राजा, विद्वान् सर्वत्र पूज्यते॥

आपने अन्धकारमें उपेक्षित भावसे बँधे पड़े ज्ञानभण्डारोंके हस्तलिखित ग्रन्थोंकी अनेक सूचियाँ बनाकर सारस्वत-संसारको उनका परिचय देते हुए उनके महत्त्वपर विद्वज्जनका ध्यान आकृष्ट किया है। आपने नई शोधकृतियोंके आधारपर नई मान्यताएँ स्थापित की हैं और प्राचीन भूलभरी मान्यताओंको अपदस्थ किया है।

आपके द्वारा सम्पन्न सूचीनिर्माणकार्यमें बीकानेरके वृहद् खरतर गच्छ भण्डार बड़ा उपसराकी सूचीका नाम विशेषतः उल्लेखनीय है। इसमें नौ ज्ञान भण्डारोंकी लगभग दस हजार प्रतियोंको छांटा-पढ़ा और उनका आद्यन्त लिख आपने पूर्ण विवरणके साथ सूचीबद्ध कर उन्हें तैयार किया है। इसी प्रकार आपने श्री जिनचारित्रसूरि ज्ञान भण्डार, उपाध्याय जयचन्दजी ज्ञान भण्डार, श्री जिनकृपाचन्द्रसूरि ज्ञान भण्डार तथा श्री अभय जैन ग्रंथालयकी हस्तलिखित करीब ६०००० प्रतियोंकी आवश्यक विवरण सहित सूची तैयार की है। आपने अनेक ज्ञानभण्डारोंकी सूचियोंका संशोधन भी किया है। आपके द्वारा अनेक अप्राप्य एवं अज्ञात छोटी-मोटी सैकड़ों रचनाओंकी प्रतिलिपियाँ की गई हैं और करवाई गई हैं। प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थोंके सूचीनिर्माणका श्रम और समय-साध्य कार्य वही कर सकता है, जिसकी बैठक तकड़ी हो, जिसका धैर्यधन अक्षय्य हो और जिसे शोधरसका चस्का लग चुका हो। कहनेकी आवश्यकता नहीं है कि ये समस्त गुण हमारे चरितनायक श्री नाहटाजीमें विद्यमान हैं। वे कष्टको कष्ट समझते ही नहीं, धीरताके वे अगाध सागर हैं—एक स्थान पर निरन्तर घंटों तक बैठे रहनेकी उनकी सहज प्रवृत्ति है और 'शोधरस' के तो वे 'चाखनहार' हैं। यही कारण है कि उनकी श्रमशीलता और विद्याव्यसनने इतनी विशाल ग्रन्थसूचियोंका निर्माण कर साहित्यसंसारको और भी सम्पन्न बनाया है।

आपके विद्याव्यसनका इससे अधिक और क्या प्रमाण हो सकता है कि आप स्वाध्याय-तल्लीनतामें खाना-पीना तक भूल जाते हैं। भोजन-वेलाका अतिक्रमण होते देख घरवालोंको बार-बार आपके पास सन्देश

भेजना पड़ता है कि 'भोजनका समय हो गया है, चलिए।' इस प्रकारके एक दो सन्देश तो श्री नाहटाजी 'हाँ-हूँ' में टाल देते हैं, लेकिन अपने बड़े भाईका कथन नहीं टाल सकते। तब वे 'बलादाकृष्ट इव' खड़े होकर भोजनार्थ चले जाते हैं और दो-चार ग्रास लेकर झटिति वापिस आप शोधरसपानार्थ स्वाध्यायमें लीन हो जाते हैं। इस प्रकार उनका अधिकांश समय विद्याव्यसनमें ही व्यतीत होता है। उनपर यह उक्ति सर्वतोभावेन चरितार्थ होती है—

विद्याशास्त्रविनोदेन, कालो गच्छति धीमताम्। व्यसनेन तु मूर्खाणां, निद्रया कलहेन च॥

अर्थात् बुद्धिमानोंका समय विद्याशास्त्ररूपी विनोदमें और मूर्खोंका निद्रा, कलह और व्यसनमें व्यतीत होता है।

श्री नाहटाजी विमल-मति हैं, इसलिए आप विद्यातीर्थमें अवगाहन करते हैं। वे ज्ञानी भी हैं, अतः ज्ञानसरोवरमें स्नान करना उन्हें अभीष्ट रहता है। संयमी और साधक होनेके कारण चित्ततीर्थ और श्री सम्पन्नता उन्हें दानतीर्थका पुण्यभाजन बनाती है। उनके इस विमल चारित्र्यको देखकर निम्नांकित श्लोक स्मृतिपथमें उभर जाता है :

विद्यातीर्थे विमलमतयः, ज्ञानिनः ज्ञानतीर्थे, धारातीर्थे अवनिपतयः, योगिनश्चित्ततीर्थे।
पातिव्रत्ये कुलयुवतयः, दानतीर्थे धनाढ्याः, गंगातीर्थे त्वितरमनुजाः पातकं क्षालयन्ति॥

विमल-मति मानव विद्यातीर्थोंमें स्नान करते हैं। ज्ञानी लोग ज्ञानके तीर्थोंमें; राजा असिधारातीर्थमें; योगी चित्ततीर्थमें, कुलांगनाएँ पतिसेवाव्रतमें और धनाढ्य दानतीर्थमें स्नान करते हैं। केवल साधारण मानव ही गंगातीर्थमें स्नान करते हैं और अपने पाप धोते हैं।

हमारे चरितनायक श्री नाहटा विशेषतः आध्यात्मिक और विचार-प्रधान साहित्य पढ़ते हैं। कहानी, उपन्यास, नाटक, यात्रा संस्मरण भी आप पढ़ते हैं; लेकिन यात्रा में। श्री आनन्दघनजी, देवचन्दजी, चिदानन्दजी, राजचन्द्रजी और बुद्धिसागर सूरि आपके प्रिय लेखक-कवि हैं। आपके स्वाध्यायमें उक्त साहित्यकारोंकी रचनाओंका विशेष प्रयोग-उपयोग होता है। उपन्यासकारोंमें आपने चतुरसेन, गुरुदत्त, प्रेमचन्द, प्रसाद और भगवतीप्रसाद वाजपेयीको पढ़ा है। शरत् बाबूके उपन्यासोंको आपने अपेक्षाकृत्त अधिक रुचिसे पढ़ा है। दर्शन भी आपका प्रिय विषय रहा है।

आप ग्रन्थप्रेमी ऐसे हैं कि जहाँ भी जाते हैं, वहाँके हस्तलिखित संग्रहालयोंको अवश्य देखते हैं। अगर कोई नई पुस्तक उपलब्ध होती है तो उसका आद्यन्त परिचय लिखकर हाथोंहाथ उसे प्रकाशनार्थ भेज देते हैं। आपकी एक धुन है कि नईसे नई चीजको पाठक-जगत्के सम्मुख अविलम्ब प्रस्तुत किया जाय। यही कारण है कि किसी नूतन तथ्योपलब्धि पर पूरा लेख लिख और प्रकाशनार्थ प्रेषित करनेके उपरान्त ही नाहटाजी दूसरे काममें लगते हैं।

किसी भी पुस्तकको पढ़नेका श्री नाहटाजीका ढंग अलग-सा है। श्री भंवरलालजी नाहटाके शब्दोंमें "ग्रंथालयमें जो भी ग्रंथ आते हैं, एक बार सभी पर दृष्टि-प्रतिलेखन हो जाता है और जो पढ़ने योग्य हैं, उन्हें पूरा पढ़ डालते हैं। उसमें यदि कहीं भी भूल-भ्रान्ति विदित हुई तो तुरत संशोधन अण्डरलाइन आदि कर डालते हैं। विशेष संशोधन योग्य हुई तो उन भूल-भ्रान्तियोंके सम्बन्धमें लेख भी लिख डालते हैं। प्रेरणादायक गुणोंके अनुकरण हेतु जनतामें उन ग्रंथोंका परिचय कराने वाले नोट भी लिखकर लेखरूपमें प्रकाशित कर देते हैं। कोई भी ज्ञान-भण्डारकी सूची या ग्रंथ जो उनके दृष्टिपथसे निकला है, देखते ही विदित हो जायगा, क्योंकि उस पर काकाजीके संशोधन-टंकण किये रहते हैं।"[१]

---

१. श्री भँवरलालजी नाहटाके संस्मरणसे उद्धृत।

श्री नाहटाजी खूब पढ़ते हैं और खूब लिखते हैं। उन्हें 'मूड'का रोग नहीं लगा है। जब चाहा बड़ा, छोटा, गंभीर, हल्का या भारी लेख लिख दिया। किसी भी विषय पर ५०–६० पृष्ठ और वह भी एक बैठकमें लिख देना, आपके लिए सामान्य बात है। प्रतिदिन इतना अधिक लिखने के कारणोंपर प्रकाश डालते हुए आपने जिज्ञासु लेखकको बताया कि 'मैं साठ पत्र-पत्रिकाओंमें नियमित रूपसे लिखता हूँ; क्योंकि सम्पादकोंका विशेष आग्रह रहता है और मैं किसीका आग्रह टालनेमें बड़ा ही दुर्बल हूँ।'

दूसरे कारण पर प्रकाश डालते हुए आपने बताया कि मेरे पास प्रायः हर प्रकारकी लभ्य, अलभ्य, और दुर्लभ पुस्तकोंका अच्छा संग्रह है। जो भी अन्य ग्रन्थालयसे आते हैं। उन्हें भी संग्रह कर लेता हूँ पत्र-पत्रिकाएँ आती हैं। मैं ज्यों-ज्यों अधिक पढ़ता हूँ; मेरा लेखक मचलता है और मैं लेखनमें संलग्न हो जाता हूँ।

आपने अपने अधिक लिखनेके तृतीय कारणको उपस्थित करते हुए बताया कि "मैं नया-पुराना सब पढ़ता हूँ। उसमें अनेक विचार ऐसे होते हैं जो मेरे विचारोंसे मेल नहीं खाते। फलस्वरूप वैचारिक मन्थन आरंभ हो जाता है और जब तक मैं अपने उक्त प्रकारके विचारोंको शब्दबद्ध नहीं कर देता, वे मेरे मस्तिष्कसे बाहर होते ही नहीं। इसलिए तद्भिन्न विचारोंके लिए कोई भी चिन्तनका अवसर नहीं मिल पाता। यही कारण है कि मैं अपने विचारोंको लिखकर अपना मस्तिष्क रिक्तवत् कर लेता हूँ और तब और किसी विचारको प्रश्रय दे पाता हूँ।

अज्ञात सामग्रीको शीघ्रसे शीघ्र प्रकाशमें लानेकी अदम्य ललकने भी आपके लेखन कार्यको बढ़ाया है। इस तथ्यको आपने चतुर्थ कारणके रूपमें प्रस्तुत किया।

पाँचवें कारणको स्पष्ट करते हुए श्री नाहटाजीने बताया कि 'मेरे जीवनमें नियमितता है—भोजन, शयन, स्वाध्याय, सब नियमबद्ध चलते हैं और लेखन भी नियमके अनुसार अग्रेसर होता है। मेरा अनुभव है कि नियमबद्धतासे काम अधिक होता है और अच्छा होता है। थोड़े समयमें मैं जो अधिक लिख लेता हूँ; इसका बहुत कुछ श्रेय मैं नियमितताको ही देना चाहता हूँ।

निरन्तर लगन और विद्याव्यसनने श्री नाहटाजीको अनेक भाषा-लिपियोंका पारंगत ज्ञाता बना दिया है। आप गुजराती, बंगाली, हिन्दी, संस्कृत, अपभ्रंश, प्राकृत और राजस्थानीके अत्यन्त निष्णात विद्वान् हैं। इन भाषाओंमें लिखते भी हैं और पढ़ते भी हैं। भाषाविज्ञान, इतिहास, आलोचना, दर्शन-धर्म, पुरातत्त्व, कला आपके प्रिय विषय हैं।

श्री नाहटाजीके साहित्यिक ज्ञान-वैभव, उनकी शोधरुचि और सुदृढ़ लगनके विषयमें उनके भ्रातृ-पुत्र शोधमनीषी, महान् लेखक-आलोचक और संपादक श्री भँवरलालजी नाहटासे अधिक प्रामाणिक और कौन हो सकता है? अतः उन्हींकी शब्दावलीसे हमारे चरितनायकके विद्याव्यसनी-सारस्वत स्वरूपको उपसंहृत किया जाता है—"आप साहित्यिकोंके लिए तीर्थरूप हैं और ज्ञानगरिमाकी चलती-फिरती 'इन-साइक्लोपीडिया' हैं। सैकड़ों वर्षोंमें एकाध व्यक्ति ही क्वचित् इस प्रकारकी निष्ठावाला और वह भी व्यापारी-वर्गमें प्राप्त हो जाय, तो बहुत समझिये। साधु-सन्तोंकी बात दूसरी है। वे भी इतना समय निरन्तर लगावें; वैसे कम मिलते हैं परंतु गृहस्थोंमें इतनी अप्रमत्त जागरूकता, एक अनुपम आदर्श और दृष्टान्त जैसी ही है।"[1]

हमारे चरितनायक श्री अगरचन्दजी नाहटाका जीवन धर्मसे ओतप्रोत रहा है। आपने धर्मके माध्यमसे अपने जीवनको पवित्र उन्नत और सफल बनानेका निरन्तर प्रयत्न किया है। परम श्रद्धेय जैन आचार्य

---

१. श्री भँवरलाल नाहटाके संस्मरणसे उद्धृत।

श्री जिनकृपाचन्द्रसूरिजीके ज्ञान एवं वैराग्य भाव-वर्धक भाषणोंका आपपर बड़ा ही प्रभाव पड़ा। आपने उपाध्याय श्री सुखसागरजी एवं मुनि श्री मंगलसागरजीके सारगर्भित आदेश-उपदेशोंका निरन्तर चिन्तन-मनन किया। उन्हींकी प्रेरणासे आप जैनधर्मके सिद्धान्त-ग्रन्थोंका अध्ययन करने लगे। जब श्री जिनकृपाचन्द्रसूरिजी महाराज बीकानेरमें थे तब आपने कुछ चीजोंको आजीवन त्यागनेका गुरु महाराजके सम्मुख संकल्प लिया, जिनमेंसे कतिपय निम्नांकित है—जुआ न खेलना, मांस-मदिरा सेवन न करना, परस्त्रीगमन न करना, रात्रि-भोजन न करना, मधु तथा जमींकन्द न खाना, गाँजा, तम्बाकू, भाँग न पीना, किसी भी दिशामें १५०० कोससे अधिक दूर नहीं जाना और पाँच लाखसे अधिक रुपयोंका संग्रह नहीं करना। (भवन भूमि आदि छोड़कर)।

आप बचपनसे ही जैनधर्म ग्रन्थोंको कंठस्थ करने लगे थे। समय-समय पर आनेवाले पर्व और उत्सवोंका नियम-पालन भी आप करते रहे। अपने पूज्य पिता एवं माताजीकी दैनिक धार्मिक क्रियाओंसे प्रेरणा लेकर आपने भी दैनिक, सामायिक प्रतिक्रमण आदि आरम्भ कर दिये थे। चौदह-पन्द्रह वर्षकी उम्रसे आप नित्य सामायिक करने लगे थे। कलकत्तामें सर्वसुखजी नाहटाके साथ नित्य पाठ करते रहनेसे गौतमरास-शत्रुञ्जय रास आदि भी आपको कंठस्थ हो गये थे। स्वर्गीय अग्रज श्री अभयराजजीके पास आपने आठ-नौ वर्षकी उम्रमें ही अष्टमी और चतुर्दशीको हरा न खानेका संकल्प ले लिया था। अठारह वर्षकी उम्रसे ही आप नित्य चौविहार, अभक्ष अनन्तकाय त्याग, अचार, बासीत्याग शीतला सातम आदिको ठण्डा न खाना। आर्द्रा नक्षत्रके बाद आम्रफल न खाना आदि सभी श्रावकोचित नियमोंमें रह रहे हैं। खाने-पीनेमें आप रसलोलुप नहीं हैं। जब जैसा और जितना मिला, आपने उसे सहर्ष स्वीकार किया। न कभी नमककी शिकायत की और न कभी मिर्चकी, न कच्चेकी और न पक्के की। इसीलिये पाचक आपके विषयमें कहते थे—

> "इयां ने जिमावणों सगलासूँ सोरो। न लूण मांगै और न
> मिरच, न साते री शिकायत करै और न ठंडै री।"

कभी-कभी आप ऊणोदरी करते हैं। आप प्रातः सायं भोजनके अतिरिक्त दिनमें और कुछ नहीं खाते। प्रायः प्रतिदिन पौरसी रहती है। आप चाय कभी नहीं पीते, दूध भी पौरसी आनेके बाद ही लेते हैं। नवकार श्रीसे पूर्व मुँहमें पानी तक नहीं डालते हैं। उपासनामें पूर्ण आस्था रखते हैं। जब सामायिकमें लग जाते हैं, तब चाहे कितना ही बड़ा विघ्न क्यों न हो, सामायिक पूरा करके ही उठते हैं। इस प्रसंगमें एक घटना पठितव्य है—

एक बार आपके मकानके सामने ही भयंकर अग्निकाण्ड हो गया। पास ही मिट्टीके तेलका गोदाम था। भाईजी वहाँ थे। उन्होंने हमारे चरितनायक श्री नाहटाजीको सूचना दी और वहाँसे चले आनेको कहा लेकिन श्री नाहटाजी आसनसे डिगे नहीं। उन्होंने वहींसे कहा, "मैं अभी सामायिकमें हूँ, जो होगा सो होगा। चिन्ता न करें।"

थोड़ी देरमें अग्नि शान्त हो गयी और नाहटाजीके मकान गोदाम सुरक्षित बच गये। अब तो प्रायः प्रतिदिन आप सात-आठ सामायिक कर लेते हैं।

श्री नाहटाजी मूलतः अध्यात्म क्षेत्रके साधक हैं। दर्शन, धर्म, प्रतिक्रमण, सामायिकमें उनका मन रमता है। अध्यात्मने ही उन्हें साहित्य-क्षेत्रमें प्रविष्ट किया है। उनकी स्मरणशक्ति सदैव अच्छी रही है। वे बचपनमें सैकड़ों भक्तिपूजाके पद याद कर चुके थे और उन्हें सस्वर गाकर सामायिक पूजा करते थे। शनैः शनैः उनका भक्ति-भजनावलीका भाण्डार बढ़ता ही गया। आपने जिन भक्त कवियोंके भजन और पद याद कर रक्खे थे, उनके प्रामाणिक जीवनको जाननेकी जिज्ञासाने आपमें शोधकी प्रवृत्तिको जन्म दिया। अपने दैनिक पूजा-विधानमें जो भक्ति पद आप पढ़ते, सुनते और भक्त श्रोताओंको सुनाते थे, उससे आपमें पदोंकी मार्मिक

व्यंजना समझनेकी क्षमता उत्पन्न हुई और एक अच्छे आलोचकके संस्कार आपमें जमने लगे। आपकी अध्यात्मवृत्तिने आपको पवित्रता, नैतिकता और परदुःख-कातरता जैसे अमूल्य गुण दिये हैं। आपकी दृष्टिमें प्रत्येक धर्मग्रन्थ पवित्र है, उसका प्रतिपद और प्रति अक्षर पवित्र है, उसमें जो ज्ञान और विचार निहित हैं, वे अपने परिवेश और परिस्थितियोंके शाश्वत मूल्य हैं। आपकी इसी आध्यात्मिक साधनाने आपको उच्च-स्तरीय मानवताका विकास दिया है, हर्ष, शोकसे अप्रभावित होनेका अभेद्य कवच दिया है; जिसके बलपर आप वज्र-कठोर परिस्थितियोंमें भी प्रकृतिस्थ बने रहते हैं।

आपका सुदृढ़ विश्वास है कि मानवभव दुर्लभ है और उसके प्रत्येक क्षणका सदुपयोग करना हमारा सर्वोपरि कर्त्तव्य है। यही कारण है कि श्री नाहटाजी एक क्षण भी व्यर्थमें खोना नहीं चाहते और न अनावश्यक बातोंमें ही उनकी रुचि है। उनकी साहित्य-साधना आध्यात्मिक साधनाका माध्यम है। वे कहा करते हैं कि प्राचीन भक्ति साहित्य रसास्वादमें इन्द्रियोंकी चंचलता कम होती हैं, मनको परमशान्ति मिलती है और नरभवका सदुपयोग होता है। इसी साहित्य व्याजसे भक्तिसाधना, योगसाधना, समत्वसाधना और विकथा बचावका सुखद अवसर प्राप्त करनेके वे आदी हो गये हैं। उनका हृदय और चिन्तन इतना व्यापक, उदार और अध्यात्मकेन्द्रित हो गया है कि वे राजनीतिके रंगमंचपर अनुदिन घटनेवाली घटनाओंको विशेष महत्त्व नहीं देते। ऐसा प्रतीत होता है, मानों उस क्षेत्रको समझते हुए भी वे उससे नितान्त विमुख बने हुए हैं। यही कारण है कि वे दैनिक समाचार पत्र नहीं पढ़ते और न अपने पुस्तकालयमें ऐसा कोई समाचार पत्र खरीदकर मंगवाते ही हैं। अगर उनके सामने कोई राजनीतिका भक्त कुछ चर्चा भी चला देता है तो वे किसी धार्मिक पत्रिकाका लेख पढ़ना आरम्भ कर देते हैं और वक्ताकी ओरसे ध्यानान्तरित हो जाते हैं।

युगों बीत गये; श्री नाहटाजीने कोई सिनेमा नहीं देखा और खान-पानमें, रहन-सहनमें विशेष रुचि प्रदर्शित नहीं की। आपके जो विचार शतशः पत्रिकाओंमें प्रकाशित होते हैं, उनका एक ही प्रबल स्वर है और वह है 'आध्यात्मिकताका स्वर'। इसलिए श्री नाहटाजीके लिए यह कथन सर्वथा सत्य और समीचीन है कि उनका जीवनरस अध्यात्म है वे उसीमें जीते हैं और उसीमें जीना चाहते हैं।

श्री नाहटाजी अध्यात्मचर्चा करना भी चाहते हैं और सुनने-सुनानेके इच्छुक भी रहते हैं। विकथा चर्चामें वे जितने कृपण हैं; सत्कथामें उतने ही उदार, उत्साही और अतृप्त। अगर उन्हें उनकी जोड़ीका कोई पात्र; अध्यात्म प्रेमी मिल जाए तो घंटों और रात्रियाँ बिता देंगे और उससे और अधिक समय देनेके लिए आग्रह करेंगे। सत्संग, तीर्थाटन और अध्यात्म-पुरुषोंके संस्मरण-अनुभव सुनानेमें श्री नाहटाजीको आनन्द आता है और यह जानकर प्रसन्न भी होते हैं कि सज्जन-संकीर्त्तनके माध्यमसे वे पुण्यार्जन कर रहे हैं। नीचे हम श्री नाहटाजीके सत्संगमें सुने कतिपय संस्मरण-प्रसंग उन्हींकी शब्दावलीमें प्रस्तुत कर रहे हैं—

"संवत् १९८४-८५ में श्री कृपाचन्द्रसूरि और उनके शिष्य सुखसागरजीकी प्रेरणासे हम सपरिवार तीर्थयात्रापर गये। शत्रुञ्जय, पाटण और अनेक तीर्थोंके दर्शन करते हुए आबू पहुँचे और योगीराज मुनिश्री शान्तिविजयजी महाराजके दर्शन किये। देलवाड़ा जाते ये दर्शन रास्तेमें हुए थे। उन्होंने फरमाया—सोते-जागते, उठते-बैठते 'ॐ अर्हं नमः'का जाप करना चाहिये। हमने पुनः दर्शनकी इच्छा व्यक्त करते हुए योगीराजसे समय माँगा तो आपने स्वर-विचारकर कहा; नहीं आना, मिलना नहीं होगा। हमने दर्शनकी प्रबल इच्छाकी पूर्तिके लिए योगीराजको दिन भर खूब ढूँढा परन्तु वे नहीं मिले। उन्होंने जो फरमा दिया था, वही हुआ और हम दर्शनसे वंचित ही रहे।"

योगीराजके विषयमें और अधिक बताते हुए श्री नाहटाजीने कहना जारी रखा "श्री योगीराजकी स्मृति विलक्षण थी। वे अलौकिक अनुभूतियोंके पुरुष थे। उनके सानिध्यमें चित्त परमशान्तिसुखका अनुभव

करता था। एकबार मिलन-प्रसंगमें योगीराज श्री शान्तिविजयजीने कहा, 'नाहटा आगे आओ'। मैं आदेशपालन करता हुआ श्री चरणोंके समीप जा बैठा। उन्होंने फरमाया 'तुम ठीक हो नाहटा'। प्रसंग यह था कि श्री ज्ञानसुन्दरजीने ओसवालोंकी उत्पत्तिके सम्बन्धमें एक गद्य व लेख लिखकर उसका प्रकाशन कराया था। मुझे वे तथ्य प्रामाणिक प्रतीत नहीं हुए और उनका प्रतिवाद किया। योगीराजको इस पूर्वपक्ष और उत्तर पक्षका पूर्णज्ञान था और पूर्वापरका विचारकर उन्होंने अपना निर्णय मेरे पक्षमें दिया था।''

धार्मिक संस्मरण-प्रसंगमें श्री नाहटाजीने बताया—''एक बार मैं प्रतिष्ठा-प्रसंगमें उम्मेदपुर गया। वहाँ श्री विजयशांतिसूरिजी व ललितसूरिजीकी देख-रेखमें वह आयोजन बड़ी धूमधामसे हो रहा था। फलोदीके श्री फूलचन्दजी झाबक, पू० शांतिसूरिजीके पास ही बैठे थे। श्री शांतिसूरिजी महाराज आर्यसमाज दम्पतीके सम्मुख मूर्त्तिपूजाका मंडन प्रस्तुत कर रहे थे। उनकी प्रवहमान वाग्धारा मंडन पक्षके प्रमाणोंका पुंज और आत्मविश्वास संद्योतक अभिव्यक्तिसे स्पष्ट आभास होता था कि कोई अलौकिक शक्ति उन्हें साहाय्य दे रही है।

श्री नाहटाजी ने अपने अनुभव प्रसंगमें बताया कि एक बार उमेदपुरमें श्री विजयशांतिसूरिकी उपस्थितिमें आगे पीछे बैठनेको लेकर वाद-विवाद चला। वाग्युद्ध और फिर डंडे चले—अनेक लोगोंमें उथल-पुथल मच गई। लोग उठकर खड़े हो गए। और आचार्य शान्तिसूरि जी की शांतिको कोसने लगे। लेकिन गुरु पू० शांतिसूरिजी महाराजके भव्य मुख मंडलपर कोई विकृति दृष्टिगोचर नहीं हुई; जबकि यह समस्त विवाद काण्ड उनके सम्मुख ही हुआ था। नाहटाजी कहने लगे कि 'गुरु महाराजके उस निर्विकार व प्रशान्त व्यक्तित्वका मुझपर बड़ा ही प्रभाव पड़ा। उनकी वीरता और सहनशीलता मेरे लिए श्रद्धेय थीं। वह विकट परिस्थिति ऐसी ही थी; जिसमें कोई भी वीर अधीर बन जाता; पर गुरुदेव नहीं बने। मेरे मानसमें उसी समय एक सूक्ति जग गयी :

''विकार हेतौ सति विक्रियन्ते, येषां न चेतांसि त एव धीराः''

विकार हेतुकी उपस्थितिमें भी जो विकारग्रस्त नहीं होते धीर वही हैं।

श्री नाहटाजी हम्पीके जैन योगी पुरुष श्री सहजानन्दघनजीके आश्रम भी पधारते रहे हैं। बीकानेरके उपनगर उदयरामसर शिववाड़ी आदिमें भी उनके प्रवास आयोजित किये गये। श्री नाहटाजीके कारण अनेक जैन जैनेतर उनसे प्रभावित होते रहे हैं। वे महान् आत्मानुभवी योगीराज थे और योग-साधनाका अच्छा अभ्यास वे जानते तथा बताते थे। बीसवीं शताब्दीके आरंभसे अब तक हुए जैन महापुरुषोंमें आप मूर्धन्य कोटिके सन्त, ज्ञानी और साधक थे।

श्री नाहटाजी ने इसी प्रसंगमें बताया कि भद्रंकरविजयजी महाराज बड़े आध्यात्मिक पुरुष हैं। आपने आबूमें उनके दर्शन किये। श्री नाहटाजीका धार्मिक दृष्टिकोण उदार है। आपके लिए किसी भी धर्म अथवा सम्प्रदायका आध्यात्मिक संत उतना ही पूज्य है; जितना कि जैनधर्मका। आपकी दृष्टिमें संत सब समानभावसे पूजित होने चाहिये। हमें वस्त्रोंके रंगोंपर ध्यान नहीं देना चाहिये—किसी रंगका वस्त्र हो—वह पवित्रज्ञान पुंज एवं सदाचारी अगर है तो हमारा पूज्य है। अपने धर्मयात्राप्रसंगमें आपने निरंजन सम्प्रदायके श्री मंगलदासजी महाराज एवं अनेकों साधु-महात्माओंके विद्वानोंके दर्शन किए। गृहस्थी अध्यात्मप्रेमी श्री मणिभाई पादराकरके साथ भी आपका सत्संग होता था। श्री शुभकरणजी बोथरा जयपुरवालोंके साथ आपकी तत्त्वज्ञानकी चर्चा होती रही है और यह चर्चा रात-रातभर चलती रहती। आपने वैदिक धर्मावलम्बी संतों, मठाधीशों-मंडलेश्वरोंको कभी हाथसे नहीं जाने दिया। आप जैन पत्र-पत्रिकाओंके जितने नियमित और

ध्यानरत पाठक हैं; उतने सजग पाठक कल्याण आदि मासिक पत्रके हैं। आपके धर्म प्रधान लेख भी इसमें प्रायः छपते रहते हैं।

श्री नाहटाजीकी रुचि तीर्थाटनमें विशेष है। वे काम-काजमें से समय निकालकर धार्मिकयात्रापर प्रायः चले ही जाते हैं। उनके लिए पाटण और पांडीचेरी, कलकत्ता और कांची, पुरी और पालीताना, सब तीर्थस्थान श्रद्धास्थल हैं। उन्होंने पावापुरी, रामेश्वरम्, मीनाक्षी, वाराणसी, अरविन्द आश्रम, रामकिशन आश्रम, अयोध्या, मथुरा जैसे तीर्थोंमें भ्रमण ही नहीं किया; भक्तिभावके साथ उसका सदुपयोग किया है। श्रीनाहटाजीने ध्यान साधनाका प्रयत्न किया, लेकिन उससे आपके मनकी चंचलता कम नहीं हुई; अतः आपको योगसाधना और उसकी प्रक्रिया छोड़नी पड़ी और मनकी एकाग्रताके लिए स्वाध्यायको अपनाना पड़ा। स्वाध्यायने आपको चित्तवृत्तिका निरोध तो दिया ही, साथमें ज्ञान और आनन्द अनुभूति भी प्रदान की। आपको भक्तिपद सुनने और सुनानेका बड़ा चाव रहता है। भाव-विभोर, भक्ति रस-विस्मृत, भक्त हृदयके सच्चे सगायन उद्‌गार सुनकर आप खो-से जाते हैं; आपकी स्थिति समाधिस्थ योगी जैसी हो जाती है और जब आप स्वयं भक्तिपद गाते हैं तो श्रोतागण मुग्ध होकर रसलीन हो जाता है। सब इच्छा आपके सुमधुर मुखसे अधिकसे अधिक सुननेकी रहती है। बम्बई विश्वविद्यालयके गुजराती विभागके अध्यक्ष डॉ० रमणलाल शाहके स्वसुर एवं श्री ताजमलजी बोथरादि आपके पद-भजनोंके गायन पर मुग्ध हैं। वे साग्रह कहते हैं—"नाहटाजी! आपके मुखसे वो भजन सुननेका है—बस! एक तो और सुनाइये ही" और हमारे चरितनायक श्री नाहटाजी गाते हैं; फिर गाते हैं और गाते ही जाते हैं। जिस प्रकार हरि अनादि हैं उनकी कथा भी अनन्त है—ठीक उसी प्रकार भावुक भक्त हृदयोंके अगाध भाव कोश मंडलीमें सान्त कब हुए हैं—वही तो एक ऐसा स्थल है जहाँ गाने वालोंको गाते जानेकी और सुनने वालोंको अधिक सुनते रहनेकी ललक विवश करती है। भक्त नाहटाकी जो स्थिति बम्बईमें है; वही कलकत्तामें भी। श्री हनुमानमलजी बोथरादिके प्रयत्नसे सत्संगका आयोजन किया जाता है; भावुक भक्त मंडली उपस्थित होती है और हमारे चरितनायक श्री नाहटाजी अपने कलकंठोंसे भावविभोर कर देनेवाले पद सुनाते हैं; साथमें उनका हृदयंगमकारी विवेचन भी प्रस्तुत करते हैं। इस भक्ति गोष्ठीमें जो अनिर्वचनीय आनन्द उपलब्ध होता है; उसका वर्णन इस तुच्छ लेखनीसे होना नितान्त असंभव है।

वस्तुतः नाहटाजीके दो ही व्यसन हैं। आध्यात्मिक भक्ति-व्यसन और स्वाध्याय, शोध व विद्याव्यसन। गार्हस्थ्य जीवनमें कितनी ही व्यस्तता हो, इन दोनों व्यसनोंकी प्राप्तिके लिए श्री नाहटाजी समय निकाल ही लेते हैं। धर्मगुरुओंके व्याख्यानश्रवणमें कभी आलस्य नहीं दिखाते, समय पर वहाँ पहुँचते हैं और आद्यन्त श्रवण कर उसपर चिन्तन-मनन करते हुए घर लौटते हैं। नाहटाजी अध्यात्मप्रेमी हैं और आध्यात्मिक दृष्टिसे जो जितना ऊँचा साधक है; उनके हृदयमें उसके लिए उतना ही ऊँचा स्थान है। एक दिन वार्त्ता प्रसंगमें उन्होंने कहा था—"मेरी दृष्टिमें म० गान्धी जैसा महापुरुष इन सदियोंमें नहीं हुआ—जब मैंने सुना कि महात्माजीको गोली मार दी गयी तो मैं सामायिक करते-करते रो पड़ा—मुझे इतना दुःख और रुदन मेरे पिताजीके निधन पर भी नहीं हुआ था—जितना महात्माजीकी हत्या पर"।

गन्धः सुवर्णे, फलमिक्षुदण्डे, नाकारि पुष्पं खलु चन्दनस्य।
विद्वान् धनो, नृपतिः दीर्घजीवी, धातुः पुरा कोऽपि न बुद्धिदोऽभूत्॥

सोनेमें गन्ध, ईखमें फल, चन्दनमें पुष्प, विद्वान् धनी और नृपतिको विधाताने दीर्घजीवी नहीं बनाया, क्योंकि वैसा करनेके लिए किसीने उसे सुझाया ही नहीं।

हमारे चरितनायक श्री अगरचन्दजी नाहटाके लिए यह उक्ति यथार्थ नहीं है क्योंकि वे विद्वान् भी हैं और धनी भी हैं। उनकी गणना अच्छे सीमन्त सेठोंमें की जाती है। पंजाब, बंगाल, आसाम और दिल्ली प्रभृति नगरोंमें आपका अच्छा व्यापार है और वह भी आजका नहीं, सैकड़ों वर्ष पुराना। साहित्य संसारमें जिस प्रकार आपकी ख्याति है, विद्वान् आपकी बातको सुप्रामाणिक समझते हैं, उसी प्रकार व्यापार-क्षेत्रमें भी आपकी सुप्रतिष्ठा है, व्यापारी आपकी सम्मतिको जैसे अनुपालनार्थ ही सुनते हैं। जिस प्रकार समाजमें आपकी लोकप्रियता, निःस्पृहता और निर्लोभता प्रसिद्ध है, उसी प्रकार नाहटा वंशमें भी आपकी अत्यन्त प्रतिष्ठा है। बड़े-छोटे सब आपको श्रद्धाभाजन समझते हैं। परिवारकी पवित्र भावना है कि जिस दुकानमें आपका नाम रहता है; वहाँ सुख, शान्ति और श्री सम्पन्नताका अधिवास होता है। यही कारण है कि परिवारकी अधिकांश दुकानोंमें आपका नाम दिया गया है—जैसे—

१. श्री मेघराज अगरचन्द—संवत् १९८० में स्थापित बड़ी गद्दी, सिलहट
२. श्री मेघराज अगरचन्द—रिटेल कपड़ेकी दुकान, सिलहट
३. श्री अगरचन्द नाहटा—गल्लेकी दुकान, सिलहट
४. श्री अभयकरण अगरचन्द—थापड़
५. श्री अभयकरण अगरचन्द—बोलपुर
६. श्री अगरचन्द नाहटा—बाबुर हाट
७. श्री ए० सी० नाहटा एण्ड कंपनी—बम्बई

साहित्य संसारने जिस प्रकार आपका अनेकशः सम्मान किया है, और अनुवर्ष अधिकसे अधिक सम्मानित करनेको लालायित है, उसी प्रकार व्यापारी वर्गने भी आपका भूरिशः सम्मान किया है। संवत् १९९० के आसपासकी एक ऐसी ही घटना हमारे चरितनायकके मुखसे सुननेको मिली थी, उसे प्रायः उन्हींके शब्दोंमें उद्धृत कर रहा हूँ—

"बाबुरहाटकी हमारी दूकान विशेष प्रसिद्ध थी; यह ढाकाके पास थी; तांती कपड़ेका बाजार था; मारवाड़ीकी यही दुकान थी। वहाँ हमारे मुनीमजी थे किसनलालजी बुच्चा। बड़े जोरदार आदमी, साख भी जोरदार—साहसी कर्मठ, अपार सम्पदाके स्वामी जैसा प्रभाव—जैसे सारे हाटको खरीदनेकी शक्ति रखते हों—सबसे अधिक माल खरीदते थे, बड़े-बड़े सशस्त्र सिपाही सुरक्षा और शानके लिए बाहर खड़े रहते। उस गाँवके जमींदार पर नाहटा-व्यापार और वंशका इतना अधिक प्रभाव पड़ा कि जब हमारे चरितनायक वहाँ प्रथम बार पहुँचे तो उनके लिए जमींदार साहबने बड़ी सुन्दर चमकती हुई सुसज्जित कहारोंकी पालकी भेजी; सैकड़ों आदमी स्वागतके लिए भेजे, पुष्प मालाओंकी तो संख्या ही नहीं थी; अपने अधिकारियोंको समारोहके लिए भेजे—सारा गाँव ही स्वागतके लिए जैसे उमड़ पड़ा, हर जबानपर एक ही वाक्य था "सेठ अगरचन्द नाहटा आइसे, अगरचन्द नाहटा आइसे"।

श्री नाहटाजीकी व्यापार और साहित्य दोनोंमें समान गति है। आप अपने सेवा भावी कर्मचारियोंको एक मासमें जो व्यवस्था और मार्गदर्शन देते हैं, वह साल भरके लिए पर्याप्त रहता है। वर्षान्तमें आप फिर निर्देश दे देते हैं; जिसका स्वरूप अग्रिम वर्ष के लिए पर्याप्त रहता है। और इस प्रकार आपके पथ-दर्शनमें व्यापार चलता रहता है। आप वर्ष भरके खाता पत्रोंकी परीक्षा कुछ ही घंटोंमें कर देनेमें सक्षम हैं और इसी तीव्र गतिसे सालभरका काम घंटोंमें ही जाँच लेते हैं। नाहटावंशके विभिन्न स्थानोंमें चल रहे व्यापार-व्यवसायमें जो सबसे बड़ा और तनिक पेचीदा है; उस व्यापारको आप ही संभालते हैं और सबसे कम समय में। एक बार आपने प्रतिदिनके मालके स्टाकको जाँचते रहनेका आदेश दिया; गुमाश्तोंने इस कामको असंभव

बताते हुए कहा कि सारे मालको रोज चैक करना उनके बलबूतेसे बाहरकी चीज है । श्री नाहटाजी ने उनकी असुविधाओंको और असमर्थताओंको बड़े ध्यानसे सुना और एक अतिरिक्त कर्मचारीकी नियुक्ति करके उसे ऐसा सुगम पथ बताया कि वह काम जो कठिन समझा जाता था; बड़ी सरलतासे और आनन-फाननमें होने लगा । मुनीम-गुमाश्ते सेठ साहबकी इस प्रतिभासे अभिभूत हो गये । जो व्यापार आप देखते हैं; आपने उसकी नई पद्धति दे दी है । उसपर चलनेसे समस्त कार्य सुखकर हो गया है और लाभ-हानि दर्पणके समान प्रस्तुत हो जाते हैं, इससे समय और श्रम दोनोंकी बचत होती है । आपकी बैठक बड़ी सशक्त है । जबतक सारा हिसाब नहीं मिल जाता; आप उठनेका नाम तक नहीं लेते और वर्षोंका काम कुछ ही घंटोंमें सम्पूर्ण कर जांच तत्सम्बन्धी निर्देश दे झटिति दूसरा काम समाप्त करनेकी धुनमें रम जाते हैं । आपका ध्यान घाटे और डूबनके कारणोंको पकड़नेमें बड़ा सिद्धहस्त है; इसलिए उनकी पुनरावृत्ति प्रायः नहीं होने दी जाती । आप अपने मुनीमों-गुमाश्तों आदिकी असुविधाओंको पूरे ध्यानसे सुनते हैं और उन्हें दूर करते हैं । आपके किसी भी कार्यमें विलम्ब अथवा टालमटोलकी स्थिति नहीं रहती । जो त्वरा निर्णय लेनेमें आप दिखाते हैं; वही त्वरा उसके क्रियान्वयनमें रहती है और उससे भी अधिक उसके भावी परिणामोंको जाँचनेपर । यही कारण है कि आपकी सजगता और सतर्कताके कारण व्यापारश्री अनुदिन समृद्ध होती जा रही है । पहिले आप लगभग आठ-दस मास तक व्यापार संलग्न रहते थे; लेकिन अब आठ-दस मास साहित्यसेवामें तल्लीन रहते हैं । वर्षमें एक-दो मास व्यापारजांचके लिए बड़ी कठिनाईसे निकाल पाते हैं । उन दो मासोंमें भी साहित्यसेवा साथ-साथ होती ही रहती है ।

ज्यों-ज्यों आपकी उम्र अधिक होती जा रही है, त्यों-त्यों आपकी चिकीर्षा बढ़ती जा रही है; आप व्यापारसे और भी समय बचाकर साहित्यसेवामें तल्लीन हो जाना चाहते हैं । इस संदर्भमें आपके कतिपय वाक्य बड़े ही हृदयहारक हैं । आपके वे वाक्य वाक्य ही नहीं; अपितु स्वर्णाक्षरोंमें मँढाने योग्य एक महामहिम सारस्वतरत्नके आन्तरिक उद्‌गार हैं । वे प्रेरणाके स्रोत और प्रच्छन्न वेदनाके कदाचित् व्यंजक भी हैं ।

"काम बहुत है, समय कम है, दूसरा कर नहीं सकता । इसलिए अधिक-से-अधिक करलेनेकी प्रबल इच्छा है । व्यापारिक कामोंमें भी साहित्यके काम बन्द नहीं करता, व्यापार तो संभाला हुआ है; संभल भी जायेगा; लेकिन साहित्यको कौन संभालेगा—चि० भंवरलाल ! वह केवल छहमास ही तो मुझसे छोटा है; अब मेरा साहित्यिक काम कभी बन्द नहीं रहता; वह तो मेरी श्वासके साथ बँधा हुआ है—वह बन्द तभी होगा, जब मेरी श्वास बन्द होगी ।"[1]

उत्तुंग शिखर मारवाड़ी पगड़ी, बलखाती सघन निर्दंभ मूंछें, भव्य गौरवमयी मुखाकृति, निर्मल नेत्र, भौंहें, सघन अन्वेषणरत-सूक्ष्मग्राहिणी दृष्टि, महापुरुषलक्षणोपेत कर्णरोम, सुन्दर स्थूलनासिकौष्ठ, व्यूढ़ोरस्क, वृषस्कन्ध, भारी शरीर, सामान्य कद, बन्द गलेका लम्बा कोट, उसपर पड़ा आवर्त्तक सुखासीन श्वेत उत्तरीय, राजस्थानी विधिसे परिधीत धौतवस्त्र और साधारण उपानत् । यह बाह्य स्वरूप है श्री अगरचन्द जी नाहटाका; उस महामहिम मूर्धन्य विद्वान्‌का, जो लक्ष्मीपतियोंमें श्रीमन्त सेठ हैं तो सरस्वती पुत्रोंमें परम सारस्वत; शोधछात्रोंका जो परम संबल है तो निराश्रितोंका प्रबल आत्मबल । उसने ज्यों-ज्यों विद्यागुण अर्जित किया है; त्यों-त्यों वह विनयावनत होता गया है । विद्या अपने आपमें एक गुण है और वह गुण जब विनयोपेत हो जाता है; तब उसकी शोभा लोचनानन्ददायक काञ्चनमणि संयोगसे न्यून नहीं होती :

विद्याविनयोपेतो हरति न चेतांसि कस्य मनुजस्य ।
काञ्चनमणिसंयोगो, नो जनयति कस्य लोचनानन्दम् ।।

---

१. लेखकके साथ श्री अगरचन्दजी नाहटाका वार्ता-प्रसंग ।

हमारे चरितनायक श्री नाहटाजी अत्यन्त धर्मभीरु हैं; उनका जीवनरस आध्यात्मिक साधना है; इसलिए वे मन, वचन और कर्मसे किसीका भी अहित करना तो क्या; सोचना भी नहीं चाहते; वे असत्य भाषण-परुषवचन और प्रवंचनकर्मसे बहुत दूर रहनेके अभ्यासी हैं। निरन्तर स्वाध्याय, तपश्चरणसे आत्म-कल्याणके ऊर्ध्वपथको प्राप्त करनेकी सतत सदिच्छता उनमें जाग्रत है, वे ज्ञानयज्ञके पुरोधा हैं; विद्वानोंका हार्दिक नमन और वन्दन उनका नित्य-नैमित्तिक कर्म है। संस्कृत कविकी निम्नांकित भावराशिके आलम्बन मानों श्री नाहटाजी ही रहे हों :

सत्यं तपो ज्ञानमहिंसता च, विद्वत्प्रणामं च सुशीलता च।
एतानि यो धारयते स विद्वान्, न केवलं यः पठते स विद्वान्॥

केवल पुस्तक अध्येता विद्वान् नहीं होता; विद्वान् तो वह है जो सत्य, तप, ज्ञान, अहिंसा, विद्वत्-नमन और सुशीलता जैसे सद्गुणोंको धारण करता है।

श्री नाहटाजी विद्वानोंके भक्त और गुणग्राही पुरुष हैं। वे किसीको देकर जितने प्रसन्न होते हैं; उतने लेकर नहीं। उनकी मान्यता है कि जो अपूर्व आनन्द त्यागमें है, वह ग्रहणमें नहीं है। यह उनका अभिलेख है कि अगर किसीने उनके लिए थोड़ा भी श्रम किया तो श्री नाहटाने उसके लिए दस गुणित किया। उनकी विद्वत्-पूजाका इससे बड़ा प्रमाण और क्या हो सकता है कि वे प्रतिवर्ष किसी न किसी विद्वान्का समारोहपूर्वक स्वागत सम्मान करते हैं और 'पत्रं पुष्पं फलं तोयं'के रूपमें १०१) रुपयोंकी राशि सश्रद्धा अर्पण करते हैं। इस स्वागत कार्यक्रममें वे बहुतसे राजस्थानी विद्वानोंको उक्त राशि प्रदान पुरस्सर सम्मानित कर चुके हैं :

श्री नाहटाजीके व्यक्तित्वमें परगुणदर्शन और परमहत्त्वप्रकाशनकी अदम्य भावना और विशिष्ट आकांक्षा सन्निहित है। उनके द्वारा विविध विद्वानोंको समर्पित ग्रंथोंकी समर्पणभाषामें उक्त तथ्यका स्पष्ट अभिव्यंजन होता है। 'बीकानेर जैन लेख संग्रह'को 'स्वर्गीय श्री पूरणचन्द्रजी नाहर'की पवित्र स्मृतिमें समर्पित करते हुए उन्होंने लिखा है—

"जिन्होंने अपना तन-मन-धन और सारा जीवन जैन पुरातत्त्व, साहित्य, संस्कृति और कलाके संग्रह, संरक्षण, उन्नयन और प्रकाशनमें लगा दिया और जिनके आन्तरिक प्रेम, सहयोग और सौहार्दने हमें निरन्तर सरस्वती-उपासनाकी सत्प्रेरणा दी; उन्हीं श्रद्धेय स्वनामधन्य स्वर्गीय बाबू पूरणचन्दजी नाहरकी पवित्र स्मृतिमें सादर समर्पित......................"

समर्पणकी भावव्यंजनासे स्पष्ट हो जाता है कि श्री नाहटाजी जैसा व्यक्तित्व उसी पर रीझता है जिसने तन-मन-धन और अपने जीवन तकको पुरातत्त्व, साहित्य, संस्कृति और कलाके संग्रह, संरक्षण, उन्नयन और प्रकाशनमें अर्पण कर दिया हो; मैं तो श्री नाहरजीको धन्यवाद देना चाहता हूँ जिन्होंने श्री नाहटा जैसे निकष-पुरुषसे उक्त प्रकारकी गुण-गरिमा मंडित शब्दावली प्राप्त कर ली। इस सन्दर्भमें श्री नैषधकारके निम्नांकित श्लोकका भावार्थ कितना समीचीन और अवसरोचित प्रतीत होता है। कविने वैदर्भीकी प्रशस्तिमें भावाभिव्यंजन किया है कि वह विदर्भ कन्या दमयन्ती धन्य है, जिसने अपने गुणप्रकर्षसे निषधराज-नलको भी आकृष्ट कर लिया। चन्द्रिकाकी प्रशंसा इससे अधिक और क्या हो सकती है; जो सागरमें भी ज्वार ला देती है।

"धन्यासि वैदर्भि! गुणैरुदारैः, यया समाकृष्यत् नैषधोऽपि।
इतः स्तुतिः का खलु चन्द्रिकायाः, यदब्धिमभ्युत्तरलीकरोति॥

श्री नाहटाजीके ग्रन्थ-समर्पणकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि या तो वे दिवंगतोंको समर्पण करते

हैं; अथवा पारिवारिकोंको अथवा वीतराग सन्तोंको अथवा उपयुक्त पात्रोंको । उनके इस समर्पण-मूल्यांकनसे यह तथ्य स्पष्ट हो जाता है कि श्री नाहटाजी भौतिक-समृद्धि अथवा किसी एषणाके निमित्त आदर्श और पात्रताका गला नहीं घोटते । उनके समर्पणमें पात्रगत औचित्यका पूरा ध्यान रक्खा जाता है । उनका समर्पण अन्तर्ध्वनिसे सम्बद्ध अधिक है और लौकिक तुष्टिसे कम । यही कारण है कि श्री नाहटाजीने अपना कोई ग्रंथ किसी स्वार्थ विशेष की सम्पूर्तिके निकृष्टतम उद्देश्यकी अवाप्तिके लिए—किसी अनधिकारीको समर्पित नहीं किया । इससे बड़ी गुण-ग्राहकता और क्या हो सकती है ? यह उच्चस्तरकी निष्काम सेवा-भावना है; जिसकी आज सर्वाधिक आवश्यकता है ।

श्री पूर्णचन्द्रजी नाहरने अगर अपने जीवनको साहित्य एवं कला-सेवामें लगा दिया था तो मोहनलाल दलीचंद देसाईने जैन एवं गुजराती साहित्य उद्धार-संरक्षणके लिए अपना सर्वस्व होम दिया था । वे निष्णात साहित्य महारथी थे; 'जैन गुर्जर कविओ भाग १.२.३ 'जैनसाहित्य नो संक्षिप्त इतिहास' जैसे अमर ग्रंथ रत्न उनके कीर्तिशरीरको अमर बनानेके लिए पर्याप्त हैं । हमारे चरितनायक श्री नाहटाजीने अपना ग्रंथ 'समयसुन्दर कृति कुसुमाञ्जली' इन्हीं प्रातःस्मरणीय श्री देसाईको समर्पित किया है क्योंकि श्री देसाई लिखित 'कविवर समयसुन्दर' निबंधने ही आपको साहित्यक्षेत्रमें आगे बढ़नेकी प्रेरणा दी थी। इसीको कहते हैं—

'त्वदीयं वस्तु गोविन्द ! तुभ्यमेव समर्पये'

किसी सारस्वतसे उऋण होनेका कितना श्लाघ्य पथ है यह जिसे श्री नाहटाजीने अपना रक्खा है । 'तेरा तुझको सौंपते, क्या लागत है मोर' जैसी पवित्र भावनाका दर्शन हमें श्री नाहटा-लिखित ग्रंथ 'युगप्रधान श्री जिनचन्द्रसूरि'के समर्पण सन्दर्भमें भी उपलब्ध होता है । उक्त ग्रंथ परमपूज्य श्री जिनकृपाचन्द्रसूरिजी महाराजको श्री नाहटाने निम्नांकित शब्दावलीमें समर्पित किया है, जो पठितव्य हैः—

"आपके सदुपदेशसे हमारे हृदयक्षेत्रमें साहित्यानुराग और साहित्यसेवाका जो भव्य बीज प्रस्फुटित और पल्लवित हुआ है, उसीके फलस्वरूप यह प्रथम पुष्पाञ्जलि प्रेम श्रद्धा और भक्तिपूर्वक आपके कर-कमलोंमें सादर समर्पित है"—

वस्तुतः इस समर्पणमें इतिहास है, यथार्थ छिपा बैठा है । श्री नाहटाजीके अपने गुरुदेवके प्रति अभिव्यक्त ये उद्गार एक घटना है जो संवत् १९८४में घटित हुई थी ।

सारांश यह है कि नाहटाजीने अपनी श्रद्धाके पुष्प उन्हीं लोगोंके चरणोंमें चढ़ाये हैं जो अत्यन्त कर्मठ, त्यागी, परिश्रमी और लगनके धनी रहे हैं और जिन्होंने साहित्य, संस्कृति और उनके संरक्षण-उन्नयन तथा प्रचार-प्रसारके लिए अपना सर्वस्व होम दिया है । इस प्रसंगमें लोगोंका यह कथन अक्षरशः सत्य प्रतीत होता है कि श्री नाहटाजीके मुखसे अनौपचारिक भावमूलक हार्दिक 'शाबाशी' लेनी बड़ी कठिन है । "वे सौ दे देंगे लेकिन 'शाबाशी' नहीं देंगे ।" इसका कारण यह है कि साधुवाद अत्यन्त अभिभूत मनकी प्रतिक्रिया है और श्री नाहटाजी जैसे कर्मठ, श्रमशील, विद्वान् लेखकको अभिभूत करना साधारण खेल नहीं है । इसलिए उनके 'शाबाशी'की आशा वही रख सकता है; जिसने कबीरके निम्नांकित दोहोंका सार केवल समझा ही न हो अपितु उसे जीवनमें संघटित भी कर लिया हो :

सीस उतारै भुइं धरै, ता पर राखे पाँव ।
दास कबीरा यों कहै, ऐसा होय तो आव ।।१०२।।
कसत कसौटी जो टिकै, ताको शब्द सुनाय ।
सोई हमरा बंस है, कह कबीर समुझाय ।।१३०।।

साईं सेवत जल गई, मास न रहिया देह।
साईं जब लगि सेइहों, यह तन होय न खेह ॥१७१॥
ढारसु लखु मरजीवको, धँसि कै पैठि पताल।
जीव अटक मानै नहीं, गहि ले निकर्यो लाल ॥२६६॥[1]

हमारा तात्पर्य यह है कि श्री नाहटाजी की गुणग्रहण भावना अत्यन्त मृदु है; लेकिन गुण संसिद्धिकी उनकी कसौटी अत्यन्त कठोर। उनके सहस्रों मित्रों, आदरणीयों-पूज्योंमेंसे कितने हैं जो उन्हें अभिभूत कर सके हैं ? वस्तुतः बहुत कम।

'भये न केते जगतके, चतुर चितेरे चूर—बिहारी।

श्री नाहटाजी किसी वस्तुका, धनका अथवा समय-श्रमका अपव्यय नहीं करते। अतः वे सुव्ययी हैं। उनकी मान्यता है कि प्रत्येक वस्तुका अधिकसे अधिक उपयोग-लाभ लेना चाहिये; जो ऐसा नहीं करते; श्री नाहटाजीकी दृष्टिमें वे या तो नादान हैं अथवा मदान्ध। उनका सुप्रतिष्ठित तर्क है : फलको आधा ही खाकर फेंक देनेमें जैसे बुद्धिमत्ता नहीं है अथवा किसी अभ्यास पुस्तिकाका केवल आधा पृष्ठ लिखकर छोड़ देनेमें कोई सार नहीं है; उसी प्रकार प्रत्येक उपभोग्य वस्तुको पूरे उपभोगमें न लेना कमसे कम समझदारी तो नहीं है। यह कथन श्री नाहटाजीके लिए अक्षरशः सत्य है कि जहाँ कार्डसे काम चलता है; वहाँ लिफाफा नहीं खर्चेंगे; वे साहित्यके रोकड़िये या मुनीम हैं।[2] लेकिन इसका तात्पर्य यह कदापि नहीं है कि श्री नाहटाजी कंजूस और बद्धमुष्टि हैं। वास्तविकता तो यह है कि जिस व्यक्तिने लाखों रुपये व्यय करके कला और सरस्वती-का उद्धार किया और सौ पचास प्रतिदिन व्यय कर कलात्मक वस्तुएं अथवा पाण्डुलिपियाँ अब भी खरीदता है; जो भूखों, पीड़ितों और कष्टप्राप्त व्यक्तियोंको अन्न, वस्त्र, औषध आदिसे साहाय्य पहुँचाता है; जो बेकारोंको काम देकर भुगतान करता है; जिसकी इच्छा विद्वत्-पूजन और विद्वानोंका स्वागत करनेकी निरन्तर बनी रहती है; जिसके द्वार शोधछात्रों और विद्वानोंके लिए निःशुल्क आवास और भोजन कराने हेतु सतत उद्घाटित हैं और व्यापार क्षेत्र एवं गार्हस्थ्य दायित्वोंके लिए जो लाखों रुपये प्रतिवर्ष व्यय करता है; वह कंजूस कैसे हो सकता है ?

श्री नाहटाजी धैर्यधनी हैं। विपत्तियोंके टूटने वाले पहाड़ोंको आप अपने शान्त-गंभीर स्वभावसे सह लेते हैं। आपकी रुचि दर्शनमें विशेष है; अतः सुख-दुःख, ग्लानि आदि विषयों पर पढ़ते ही रहते हैं। दुःखकी व्याख्या करते हुए एक दिन श्री नाहटाजीने लेखक को बताया कि :

दुःखका प्रभाव तो बहुत अच्छा है; वह सजगके लिए वरदान है लेकिन उसका भोग वेदना प्रसू होता है। दुःखके भोगकी दशामें मानवको सामान्य परिस्थितिसे थोड़ा ऊपर उठकर तटस्थ दर्शक बननेका अभ्यास करना चाहिये। ऐसा करनेसे दुःखकी असह्य वेदना अपेक्षाकृत न्यून होती जायेगी और शनैः-शनैः गीतामें वर्णित समत्व योगकी स्थिति बनती चलेगी। मनकी अनुकूल वेदनीय दशा और उसकी प्रतिकूल वेदनीय स्थिति पर श्री नाहटाजीका गहन अध्ययन है और वे उसे जीवनकी प्रयोगशालामें भी उतारते हैं। आपपर अनेक संकट पड़े हैं, लेकिन आपने अपना प्राकृतिक सन्तुलन नहीं खोया। आपके घर लाखों रुपयोंकी चोरी हो गयी; पत्नी-का देहान्त हुआ और हमारी दृष्टिमें आपके घरपर अभूतपूर्व वज्राघात तब हुआ जब आपके घरका समस्त दायित्व संभालने वाली, एकमात्र २५ वर्षीया पुत्रवधू, अत्यन्त सुशील, चरित्रवती, सती, पुत्र धर्मचन्दजी

---

१. दोहासंख्या 'कबीर वचनावली' प्रकाशक-नागरी प्रचारिणी सभा काशीके अनुसार है।

२ श्री जमनालाल जैन वाराणसी—नाहटाजी : एक जीवन्त संग्रहालय।

नाहटाकी अर्धांगिनीको कुछ ही घंटोंमें विकराल, निर्दयी कालने कवलित कर घरका सुख, सार संभाल, नाहटाजीकी सेवा, देवर-ननदोंका आश्रय और स्नेह, सब कुछ छीन लिया।[1] जिसने भी यह सुना वह रोया, घरके सब प्राणी आँसूकी नदी बहा रहे थे; लेकिन श्री नाहटाजी प्रकृतिस्थ बने बैठे थे, मानों वे दुःखके इस कालकूटको पी गये थे और ज्ञानजलसे मोहपंकको धो रहे थे।

गीताकारकी भाषामें ऐसा व्यक्ति ही तो 'स्थितधी' कहलानेका अधिकारी है :

दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः, सुखेषु विगतस्पृहः।
वीतरागभयक्रोधः स्थितधीः मुनिरुच्यते॥

दुःखोंमें उद्वेगरहित, सुखोंमें स्पृहात्यागी, राग भय और क्रोधको निःशेष करनेवाला 'स्थितधी' मुनि कहा जाता है।

श्री नाहटाजीका व्यक्तित्व समन्वय-पाटवका विलक्षण उदाहरण है। आप व्यवसायकी दृष्टिसे व्यापारी, कर्मकी दृष्टिसे अध्येता, लेखक तथा रुचिकी दृष्टिसे अध्यात्म-प्रधान धार्मिक फक्कड़ संत हैं। ये तीनों ही स्वरूप प्रकृत्या परस्पर मेल नहीं खाते। व्यापारमें लक्ष्मीका निवास समझा जाता है। उसका लक्ष्य अधिकसे अधिक, येन केन प्रकारेण लक्ष्मीकी उपासना, उसका अर्जन और संरक्षण रहता है; जब कि लेखक और निरन्तर अध्येताका चित्त ज्ञानोन्मुखी होता है; वह चिन्तनकी आदर्शवादितामें मस्त रहता है; और अध्यात्मका क्षेत्र तो इन दोनोंसे भी दूरका है। उसमें लोकैषणाको तनिक भी महत्त्व नहीं दिया जाता।

श्री नाहटाजी कुशल व्यापारी, उच्चकोटिके अध्ययनशील लेखक और अध्यातमसाधक संत हैं। प्रकृत्या विरोधी इन तीनों क्षेत्रोंकी एक व्यक्तित्वमें संहति कम आश्चर्यकी बात नहीं है। श्री नाहटा जैसे व्यक्तिका साहित्य और कलाप्रिय जीवन अत्यन्त व्ययशील है। वे चलते-फिरते हजारों रुपयोंकी कलात्मक चीजें खरीद लेते हैं; हस्तलिखित पाण्डुलिपियाँ तो छोड़ते ही नहीं। इस अभिरुचिमें आपने लाखों रुपये व्यय कर दिये हैं और करते जा रहे हैं।

आपका ही कथन है कि "मैं जो भी कलात्मक वस्तु या प्राचीन पाण्डुलिपि खरीदता हूँ; वह बेचनेके लिए नहीं होती"। ऐसी स्थितिमें आपका साहित्यकलाप्रेम व्ययसाध्य है; और संयुक्त व्यापारमें जब कि इतर पारिवारिक केवल व्यापारी हैं; आपके इस बहुल व्ययको, व्यापारके लिए समय अदानको और गार्हस्थमें विशेष रुचि न लेनेको किस प्रकार प्रश्रय देते आ रहे हैं और तब जबकि आप भाइयोंमें सबसे छोटे हैं; और आज्ञावशवर्त्ती हैं। लेखकने इसी जिज्ञासाको श्री नाहटाजीके सम्मुख प्रस्तुत किया। श्री नाहटाजीने बताया कि आरम्भमें घरवालोंको मेरा साहित्य-साधनाका काम अच्छा नहीं लगता था। वे इस कामके प्रतिकूल भी थे। पिताजी-भाई और भ्रातृपुत्रोंकी यही इच्छा थी कि मैं एकान्तभावसे व्यापारमें लगा रहूँ और घरकी श्रीवृद्धिको दिन दूनी रात चौगुनी करूँ।

श्री नाहटाजीने कहा कि 'मेरे पारिवारिक अपनी विभिन्न रुचियोंमें हजारों-लाखों रुपये व्यय करते हैं; लेकिन मैं एक भी पैसा किसी अन्य रुचिमें व्यय नहीं करता; जो थोड़ा-बहुत व्यय करता, वह प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थोंको खरीदनेमें अथवा कलात्मक वस्तुओंमें। मेरे इस भावका पारिवारिकोंपर अनुकूल प्रभाव पड़ा और उन्होंने मुझे हजारों रुपये खरचनेकी छूट दे दी।

मेरे साहित्यिक श्रमका लाभ जिज्ञासु छात्रों और विद्वानोंको भी मिलने लग गया था और मेरे पिताजी प्रभृतिने इसको 'परपरोपकार' समझा और मुझे इस काममें लगे रहनेकी आज्ञा प्रदान की।

---

१. यह दुःखद निधन दिनांक २ अगस्तको हुआ था।

तीसरे कारणपर प्रकाश डालते हुए श्री नाहटाजीने बताया कि मेरे अनेक प्रकारके प्रकाशित लेखोंसे चारों तरफ यश फैला। देश-परदेश-सर्वत्र-सहस्रों मुखोंसे पिताजी आदि परिजनोंको मेरा सुखद यश सुननेको मिला, इसलिए वे बड़े प्रभावित हुए और उन्होंने साहित्यसेवाकी मुझे पूर्ण अनुमति प्रदान कर दी। चतुर्थ कारणकी ओर संकेत करते हुए नाहटाजीने बताया कि मेरी सच्ची लगन और ईमानदारीसे पिताजी प्रभृति बहुत प्रभावित हुए। वे समझ गये थे कि मेरे प्राण साहित्य और कलाके संरक्षण-अध्ययन और उन्नयनमें बसते हैं; इसलिए उन्होंने मुझे साहित्यसाधनासे विमुख करनेका बादमें कभी प्रयत्न नहीं किया। शनैः-शनैः वे मेरे प्रति इतने उदार हो गये कि मेरा एक क्षण भी गार्हस्थ दायित्वोंमें व्यय करना उन्हें अभीष्ट नहीं था। वे स्वयं कार्य कर लेते, पर मुझे न कहते और इस प्रकार मेरे पक्षधर बनकर मुझे अध्ययनका शुभ अवसर स्वयं तो देते ही; दूसरोंसे भी दिलवाते।

पंचम कारण यह भी था कि मैं व्यापार भी सम्भालता था और साहित्यसेवा भी करता था। जो लोग निरन्तर वर्षभर व्यापारमें लगकर जितनी दक्षता ला पाते थे; उसे मैं कुछ महीनोंके क्रमसे ले आता था और शेष समयमें पढ़ता-लिखता रहता था; इसलिए पारिवारिकोंकी ओरसे विशेष आपत्तिका पात्र मैं नहीं बना।

श्री नाहटाजीने अपने व्यक्तित्वमें व्यापार-अध्यातम और अध्ययनके समन्वयके विषयमें लेखकको बताया कि मेरी मूल अभिरुचि अध्यात्ममें है। साहित्य मेरी आध्यात्मिक साधनाका साधन है और व्यापार लौकिक दायित्वोंके निर्वाहका साधन और प्रकारान्तरसे वह भी मेरी आध्यात्मिक साधनाका साधक ही बन गया है; बाधक नहीं है। व्यापारने मेरी न्यूनतम आवश्यकताओंकी सम्पूर्ति कर मुझे अर्थकी ओरसे निश्चिन्त बना दिया है; इसलिए मैं निर्द्वन्द्वभावसे अपनी साधना—अध्यात्म साधना कर लेता हूँ।

श्री नाहटाने कहा कि अगर मैं अर्थलोलुपताका चेरा बनकर व्यापार करता तो मैं अपनी साधनासे गिर जाता और तृष्णाकी तरुणता मुझे ले डूबती। अतएव मैंने आजसे ४० वर्ष पूर्व सम्पत्तिकी सीमा निर्धारित कर ली थी और वह भी केवल पाँच लाख। आज राज्य सरकारें भी तो यही कर रही हैं; जो मैंने चालीस वर्ष पूर्व कर लिया था। श्री नाहटाजीने बताया कि मैं सुख-दुःखके हर्ष-विषादके समस्त लौकिक दायित्वोंको निबाहता हूँ; लेकिन निर्लिप्त भावसे, केवल करणीय है; इसलिए करता हूँ। यही कारण है कि मेरी अध्यात्मसाधना मुझसे दूर नहीं हुई और मुझे संबल देना उसने छोड़ा नहीं। इसीको गीतामें निष्काम भाव कहते हैं। मेरे समस्त कार्य, विशेषतः लौकिक कार्य, निष्कामभावसे प्रेरित होते हैं। मैं उनमें अपनेको लिप्त नहीं करता, जलमें कमलकी भाँति जीवन जीनेका अभ्यासी हूँ—और उसी जीवन-पद्धतिपर चलते रहना चाहता हूँ।

श्री नाहटाजी शरीरस्थ महान् आलस्यको पास तक नहीं फटकने देते। उन्हें जो करना होता है, तुरत और उसी समय कर डालते हैं। वे समयका एक क्षण भी आलस्य, प्रमाद, तन्द्रा या गपशपमें बिताना नहीं चाहते। उन्होंने यह भलीभाँति हृदयंगम कर लिया है कि आयुका क्षणलेश स्वर्णकोटियोंसे भी प्राप्त नहीं हो सकता और उसीको अगर व्यर्थ गँवा दिया; तो उससे बड़ी हानि और क्या होगी !

आयुषः क्षणलेशोऽपि, न लभ्यः स्वर्णकोटिभिः।
स एव व्यर्थतां नीतः, का नु हानिस्ततोऽधिका॥

श्री नाहटाजीकी प्रवृत्ति संग्रहकारिणी है। उन्होंने उस प्रवृत्तिकी संतुष्टि प्राचीन हस्तलिखित ग्रंथों और प्रकाशित पुस्तकों एवं प्राचीन कलात्मक वस्तुओंके पवित्र संग्रहसे की है। उनका 'श्री अभयजैन ग्रंथालय' और 'शंकरदान नाहटा कलाभवन' इसका प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। आपने संवत् १९७६-७७ के आसपासकी

लिखित कक्षा चार-पाँचकी अपनी अभ्यास पुस्तिकाओंको भी बड़े ध्यानसे सुरक्षित रक्खा हुआ है। उस समयके लेख, पद, कवित्त और निबन्ध भी ज्योंके त्यों सुरक्षित पड़े हैं। जो चीज एक बार आपके हस्तगत हो जाती है, उसका अकारण त्याग आपको सह्य नहीं है।

नाहटाजी स्वावलम्बी हैं। हर काम अपने हाथसे करनेके आदी हैं। उन्हें काम करनेमें गौरवकी अनुभूति होती है। पुस्तकालयका छोटा-मोटा साधारण-असाधारण काम स्वयं ही सम्पन्न करते हैं और घर-बाजारका भी आप ही निबटाते हैं।

श्री नाहटाजीकी यात्रा 'कष्टयात्रा' होती है। श्री भँवरलालजी नाहटाके शब्दों में—

"आपकी रेल मुसाफिरी प्रायः कष्टकर होती है; क्योंकि पहलेसे रिजर्वेशन कराते नहीं और कार्य-व्यस्ततासे गाड़ी छूटते-छूटते जाकर पकड़ते हैं। भागते दौड़ते जीमे और तुरन्त चौविहार किया····। आपकी आवश्यकताएँ अल्प हैं; अतः मुसाफिरीमें इने-गिने कपड़े बीडिंगमें डालते हैं और उसमें भी भार अधिकतर पुस्तकोंका ही रहता है। मुसाफिरीमें पेटी रखते नहीं; यदि कुली नहीं मिला तो स्वयं ही बगलमें बीडिंग डालकर चल पड़ते हैं।"

कहनेकी आवश्यकता नहीं कि हमारे चरितनायक श्री अगरचन्दजी नाहटा सरस्वती और लक्ष्मीके वरद-पुत्र हैं। उनके जीवनका रस अध्यात्मरस है। वे अत्यन्त धर्मभीरु लेकिन चारित्र्यपालनमें वज्रसे भी कठोर हैं। श्रम और स्वावलम्बन उनका जीवट है। वे सुव्ययी, धर्मधनी, निर्भय, स्मृतिशील, प्रेरक, और समन्वलशील उदार महापुरुष हैं। ऐसे पुरुषोंके अवतरणसे ही धराका नाम वसुन्धरा सार्थक होता है।

श्री नाहटाजी भरे-पूरे परिवारके मुखिया हैं। आपके पाँच लड़कियाँ और दो लड़के हैं। सबसे बड़ी लड़की जेठी बाई है। शेष लड़कियोंके नाम हैं—शान्तिबाई, किरणबाई, संतोषबाई और कान्ताबाई। धर्मचन्द बड़े पुत्र और विजयचन्द छोटे पुत्र हैं। नाहटाजीने अपनी सन्तानको सुपठित और सुशिक्षित किया है। कान्ता और धर्मचन्द दशम कक्षोत्तीर्ण हैं। विजयचन्दने बारहवीं कक्षा उत्तीर्ण की है। आपके एक पोता और एक्कीस नाती-नातिनें हैं। आपकी वंशावली पृष्ठ २३ से २५ पर।

विद्वद्वरेण्य श्री अगरचन्दजी नाहटाके व्यक्तित्वमें ही उनका कृतित्व सन्निहित है। उन्होंने अनेकरूप होकर माँ सरस्वतीकी सेवा की है और करनेमें संलग्न हैं।

श्री नाहटाजीने हजारों अज्ञात कवियोंको और बीस हजारसे अधिक पाण्डुलिपियोंको सारस्वत संसार-के सम्मुख प्रस्तुत किया है। जो सरस्वती छिन्नभिन्न स्थितिमें जीर्णशीर्ण होकर अन्धकारावृत थी; उसे श्री नाहटाने स्वकरस्पर्शसे स्वस्थ-शुद्ध बनाकर सार्वजनिक एवं सार्वजनीन बना दिया है। उन्होंने अनेक ग्रन्थोंकी सारगर्भित एवं प्रमाणपुष्ट भूमिका-प्रस्तावनाएँ लिखकर नयेसे नये तथ्योंका उद्घाटन किया है। श्री नाहटाकी दृष्टि शोधमुखी है, इसलिए उनके द्वारा लिखित किसी भी लेखमें आप अधिकसे अधिक नये और अश्रुतपूर्व निष्कर्ष अवश्य प्राप्त करेंगे। श्री नाहटाजी शोधकर्ता तो हैं ही; वे शोधसहायक भी हैं। शोध करनेवाले जिज्ञासुओंकी हर संभव सहायता हेतु वे सदैव तत्पर रहते हैं। वे अपने विस्तृत अध्ययन, गहन चिन्तन और स्पष्ट निर्णायक प्रतिभासे हजारों छात्रों और विद्वानोंको लाभ पहुँचा चुके हैं और पहुँचाते ही जा रहे हैं। इस पवित्र कर्ममें न उन्हें आलस्य घेरता है और न तन्द्रा। निःशुल्क भोजन और आवासकी व्यवस्था भी प्रायः नाहटाजीकी ओरसे की जाती है। शोधछात्रोंके लिए श्री अभय जैन ग्रंथालयकी पुस्तकें तो आरक्षित हैं ही, वे आवश्यकता पड़नेपर इतर व्यक्तियों अथवा हस्तलिखित पुस्तकालयोंसे अपने दायित्व-पर पुस्तकें भी दिलाते हैं और इस प्रकार 'शोध-सहायक' के स्वरूपका भी सुन्दर निर्वाह करते हैं।

श्री नाहटाजीका एक स्वरूप प्राचीन ग्रन्थोंके उद्धारक और संग्राहकका भी रहा है। उन्होंने अपने पुस्तकालय श्री अभय जैन ग्रंथालयमें लगभग चालीस हजार प्राचीन पाण्डुलिपियोंका संग्रह किया है और उसे अधिक समृद्ध बनानेके लिए प्रतिपल जागरूक हैं। उन्होंने सहस्रशः हस्तलिखित ग्रन्थोंको द्रव्यकी महती राशिसे क्रय किया है और सरस्वती उद्धारके पवित्र कार्यको सम्पादित करनेके लिए वे कहीं भी जानेको समुत्सुक एवं तत्पर रहते हैं। उनकी इसी भावनाने उन्हें दुर्लभ, प्राचीन, पाण्डुलिपियोंके समृद्ध संग्राहकके रूपमें अखिल भारतीय स्तरपर ख्याति दान किया है।

श्री नाहटाजी कलाकृतियोंके प्रेमी-संग्राहक हैं। उन्होंने अपनी इसी कलाप्रियताके कारण शंकरदान कला भवन जैसी सुविख्यात संस्थाको जन्म दिया है। आज श्री नाहटाजीको प्राचीन कलात्मक वस्तु विक्रय करनेवाले घेरे रहते हैं और प्रतिदिन सैकड़ों रुपयोंका क्रय होता रहता है।

साहित्यसंसारमें श्री नाहटाजी प्रखर आलोचक, प्राचीन एवं मध्यकालीन हिन्दी साहित्यके गहन अध्येता एवं अध्यात्मप्रेमी निबंधलेखकके रूपमें सुविख्यात हैं। बहुत कम सुधी इस तथ्यको जानते हैं कि श्री नाहटाजी अपने उद्दाम संयमशील, मर्यादाबद्ध यौवनमें अत्यन्त समर्थ कवि रहे हैं। उनकी भावधारा सहजोद्भूत प्रतीत होती है और उनका चिन्तन जैनदर्शनभक्ति प्रवण।

श्री नाहटाजी भक्तिक्षेत्रके मुक्तक कवि रहे हैं। उन्होंने अधिकांशतः तीर्थंकरोंके प्रेरणा-प्रसू पावन चारित्र्य गुणोंको अपनी कविताका विषय बनाया है। श्री पार्श्वनाथ जिनाष्टकमें वे प्रभु पार्श्वनाथके अनुपम त्याग, असीम सहिष्णुता और धैर्य-गाम्भीर्य पर मुग्ध हैं।

सागर सम गंभीर धीर मंदार गिरो सम, विजयी कर्म सुवीर और नहीं आवै ओपम।
नाग भयंकर विषधर देखत विष तजि दीनौ, रहे चरण तुम देव सेव करतो गुण लीनौ॥

भक्त कविका विश्वास है कि श्री पार्श्वप्रभु सर्वज्ञ विज्ञ हैं। सेवकोंके आश्रय और सन्मति हैं। कविका इष्ट सांसारिक सम्पत्ति अर्जन नहीं है। वह पार्श्वभक्तिके गुणप्रकर्षसे परमगतिप्राप्तिका अभिलाषी है—

हो सर्वज्ञ विज्ञ सब भावोंके तुम सन्मति। सेवक जन आधार सार तारो यह विनती।
अगर मदा मन मुदा भक्तिभर ललित गुणस्तुति। तव पद वंदन कर्म निकंदन, प्राप्ति परम गति॥

आराध्यके अगाध गुणगरिमा भावमें निमज्जित भक्त कवि नाहटाका मानस यदाकदा अहेतुमें हेतुकी कल्पना भी करने लगता है—

रुचिर शान्त अम्लान्त पार्श्वमुख अतिहि मनोहर, देख इन्दु भयो मन्दु सदा आकाश कियो घर !

प्रभु पार्श्वनाथका मुख अत्यन्त मनोहर है। चन्द्रमा उसे देखकर मन्द हो गया और आकाशमें रहने रहने लगा है। कवि प्रभुके 'पारस' नामका माहात्म्य स्मरण कर अत्यन्त आह्लादित अनुभव करता है। उसकी दृष्टिमें पार्श्व नाम अपने आपमें गुणधाम है।

पार्श्वनाम गुणधाम अहा ! पारस पत्थर भी ! करे लोहको स्वर्ण, कहें फिर क्या प्रभुवर की !

कवि नाहटाके विविध भक्तिस्तवनोंमें श्री 'महावीर स्तवन' का उत्कृष्ट स्थान है। कविकी शैली अत्यन्त प्रौढ़, उक्तिमें सहज आलंकारिक छटा और भावोंमें अजस्र प्रवाह सब मिलकर सहृदय सामाजिकको भक्तिरसाम्बुधिमें अवगाहन प्रदान करते हैं। प्रारंभ-पदमें कवि वर्ण्यके अगाध गुणगणिमाविमंडित चरित्र और अपने अल्पज्ञत्वकी तुलनाके व्याजसे अपना विनयभाव प्रस्तुत करता है—

सिद्धारथ कुल कमल दिवाकर, त्रिशला कुक्षी मानस हंस।
चरम जिनेश्वर महावीर हैं, मंगलमय त्रिभुवन अवतंस॥

यद्यपि उनमें अनुपम गुण गण, हैं अनन्त नहिं कोई पार।
पा सकता है; किन्तु भक्तिवश, कहता हूँ मैं वही विचार ॥

कविका मानस महावीर प्रभुकी सहनशीलताका स्मरण कर हठादिव मुखरित हो जाता है—

अहो अहो समता थी कैसी, सहे कष्ट मरणान्त अनेक।

सं० १९८४के वसंतपंचमीके शुभदिन खरतरगच्छके आचार्य श्री जिनकृपाचन्द्रसूरिजी बीकानेर पधारे और २ वर्ष विराजे तभी आपने गुरु-गीत बनाये। श्रीनाहटजीके व्यक्तित्वपर श्री कृपाचन्द्रसूरिजीका बड़ा प्रभाव रहा है। जैनदर्शन-भक्ति और शोधश्रमकी प्रेरणा उन्हें उक्त सूरिजी से ही प्राप्त हुई थी। गुरु कृपाचन्द्रजीके प्रति आभारके इस भारको कविने स्वरचित अनेक प्रशस्ति स्तवनोंमें अभिव्यक्त किया है। यथा—

श्री कृपाचन्द्रसूरिराज, देखी तोरी शान्त मुद्रा सुखकारी मेघराज के नंदन कहिये,
अमरा मात उदार चोमू गाम में जन्म आपको, भविजन आनन्दकार।

भक्तहृदय कवि गुरूपदेशवाणीपर मुग्ध प्रतीत होता है। वह उसे 'अमृतधारा'से उत्प्रेक्षित करता है :

बीकानेर मे आप पधारे, सौभाग्य अपरंपार। देशना अजब सुहावनी, मानो अमृत की धार ॥

भक्त मानसका कथन है कि श्री कृपाचन्द्रसूरि किसी पूर्वपुण्यके प्रतापसे बीकानेर पधारे हैं और श्रावकोंको कृतार्थ किया है। वह उन दर्शकोंके भाग्यको साधुवाद देता है : जिन्होंने गुरुमहाराजके पावन दर्शन किये हैं। कविका मुमुक्षुहृदय अपने गुरुसे सहजभावमें मुक्तिका मार्ग भी पूछने लगता है :

कविके ही शब्दों में :

बताओ मुक्तिकी राह गुरुज्ञानी
भव जल को नहीं थाह गुरुजी—फिरतो फिरतो हार्यो।
तुम बिन नहीं कोई मेरा सहारा, तुमरी शरण में आयो ॥

इसी प्रकार—

कृपाचन्द्रसूरि राय रे, कोई पुण्य से आये,
शान्ति मूरति सोहणीरे, सहुने आवे दायरे।
पंच महाव्रत कैहै धारी, रक्षा करै छहुँ काय रे ॥

कवि अनेक पदोंमें उपदेशकके रूपमें भी उपस्थित हुआ है। वह जीवको आत्मज्ञान प्राप्त करने को कहता है। उसकी आस्था जिनवचनश्रवणमें है। निंदा, विकथा, आदिसे बचनेकी उसकी शिक्षा सर्वहितकारी है। यथा—

चेतनजी करवो आत्म-ध्यान
बुद्धितत्त्व विचारण फोरो, जिन वचन सुणन में कान।
निंदा विकथा मिच्छर भाषा छोड़ मुखसे करो प्रभुगान ॥

अनेक पदोंमें कवि पर्यूषण पर्व मनानेकी शिक्षा देता है। वह इसी प्रसंगमें सुपात्रको दान देनेका आग्रह भी करता है। यथा—

भवि भावधरी, पर्व पजूसण आराधो आनंद सुं।
ए पर्व भलो, छै सहु में सिरदार चिन्तामणि रत्न ज्यूं ॥
अमारी पड़हो बजवाइजे, जिनराज पूजन विधि सुँ कीजै,
वलिदान सुपात्र नै दीजै।

कवि नाहटाने 'अध्यात्म छत्तीसी' शीर्षक रचनाका निर्माण भी किया है। इसमें संसारसे राग विरतिका उपदेश दिया गया है। जैनदर्शनसे सम्बद्ध पारिभाषिक शब्दावलीका आधिक्य इसमें परिलक्षित होता है। कतिपय उदाहरण :

जो जो वस्तु दृश्यमान वह, वह पुद्‌गल रूप। राचो क्या सोचो जरा, तूँ परमात्म स्वरूप ॥
कर्मबंध नहीं वस्तुतः, जानो निश्चय एह। राग द्वेष नहिं होय जो, उड़े कर्मदल खेह ॥

कविने 'देवतत्त्व छत्तीसी' शीर्षक रचनाका निर्माण भी किया है। यह चिन्तनप्रधान जैनदर्शनसे सम्बद्ध पदावली है। साम्प्रदायिकोंके लिए इसका महत्त्व विशेष है।

कवि नाटहाने शोक गीतियाँ भी लिखी हैं। ऐसी गीतियों में श्रीजिनचारित्रसूरिजीके निधनपर रचित रचना विशेष रूपसे पठितव्य है। इस प्रकारकी गीतियों में भाव-शबलता के उदाहरण द्रष्टव्य हैं :

'जैन शासनके सितारे, स्वर्गमें जाकर बसे। चारित्रसूरि गुणके आकर, चल बसे ! हा चल बसे ॥
गोत्र छाजेड़ पाबुदान सुत, मात सोनको धन्य है। जन्म उगणीस सौ बयालोस, चल बसे हा ! चल बसे ॥

कहनेकी आवश्यकता नहीं कि युवक कवि श्री नाहटा भावोंकी दृष्टिसे अत्यन्त समृद्ध और भाषाकी दृष्टि-से अतीव समर्थ प्रतीत होते हैं। उनकी वाणीका स्फुरण सहज है। उसमें स्वाभाविकता और सरलता है। उनके अनेक पद पढ़ते समय भारतेन्दुयुगीन कवियोंकी कविताका स्मरण हो आता है। उनकी प्रतिनिधि कविता 'पार्श्व जिन अष्टकम्' है, जिसे हम यहाँ अविकल उद्धृत कर रहे हैं :

श्रीपार्श्व-जिन-अष्टकम्

श्री अगरचन्द नाहटा

गुण अशेष विश्वेश, प्रगट तुम गुणके सागर।
अष्ट कर्म निःशेष शेष, सब दुरित भयाकर ॥
रुचिर शान्त अम्लान्त, पार्श्व मुख अति ही मनोहर।
देख इन्दु भयो मन्दु, सदा आकाश कियो घर ॥१॥
राग द्वेषको त्याग, मार्ग निर्वाण दिखायो।
भये मुक्त गुणयुक्त, जन्म मरणादि गमायो ॥
नील वरण सुखकरण, श्याम पारस मन भायो।
अति प्रमोद मन मोद, प्रभु दरशन मैं पायो ॥२॥
सागर सम गम्भीर, धीर मंदार गिरि सम।
विजयी कर्म सुवीर, और नहीं आवै ओपम ॥
नाग भयंकर विषधर देखत विष तजि दीनो।
रहे चरण तुम देव सेव करतो गुण लीनो ॥३॥
ह्वै अनंत सुख मुख देखत जारत दुख दूरै।
अधम वृत्ति अज्ञान रूपी तमको चकचूरै ॥
पार्श्वनाम गुण धाम, अहा पारस पत्थर भी।
करे लोहको स्वर्ण, कहें फिर क्या प्रभुवरको ॥४॥

आतम गुण निष्पन्न, भिन्न पुद्गल परभाव।
भये बुद्ध अति शुद्ध, सिद्ध निज आतम स्वभाव ।।
आतम विभव अनंत, अंत जसु आवत नांहि।
तुलना इस जग मांहि, देनको वस्तु न पांहि ।।५।।
वाणी तव संताप ताप, भव अनल बुझावै।
भटकत भव जल मांहि, उन्हें सन्मार्ग सुझावै ।।
वस्तु स्वभाव स्वरूप, अनूप प्रकाशक भानु।
बहै अमिय रसधार, सार गुण कितै बखानु ।।६।।
स्यादवाद संयुक्त, युक्त नय भंग प्रमाण।
तत्वान्वेषण गहिर रुचिर, निष्पक्ष विनाण ।।
प्राकृत वाणी सुबोध बोध, पावत भट भविजन।
सत्य प्रिय अति हिय, असर तत्काल करत मन ।।७।।
भवसागरके पोत, स्रोत समता सिन्धुके।
बसे जाय मनभाय, सिद्धि सुस्थान जु नीके ।।
निर्विकार वीतराग आग क्रोधादि विनाशी।
गुणागार भव पार करो, यह वीनति प्रकाशी ।।८।।
हो सर्वज्ञ विज्ञ सब भावोंके तुम सन्मति।
सेवक जन आधार सार तारो यह वीनति ।।
'अगर' सदा मन मुदा भक्ति भर ललित गुण स्तुति।
तव पद वंदन कर्म **निकंदन, प्राप्ति** परम गति ।।९।।

श्री नाहटाजीमें मूर्धन्य कोटिके कविमें पाये जानेवाले गुण बीज रूपमें हमें उपलब्ध होते हैं। अगर निरन्तर अभ्यास बना रहता तो वे कविता क्षेत्रके वरवरेण्य कवियोंमेंसे एक होते। यह पूछा जानेपर कि आपने कविता करना क्यों छोड़ दिया, तो श्रीनाहटाने उत्तर दिया :

''कवितामें मेरी रुचि थी लेकिन जब मैंने देखा कि मेरेसे सहस्रगुणित अच्छे कवियोंकी कविता समाजमें उपेक्षित भावसे देखी जाती है। कोई भी व्यक्ति तन-मन-धन और सच्ची लगनसे उसका उद्धार नहीं कर रहा है। ऐसी स्थितिमें मेरे मानसने मुझसे यही कहा, कविता लिखनेका नहीं, उसका उद्धार करनेका समय है और मेरी अन्तः-ध्वनिने मुझे कविता करनेके क्षेत्रसे निकालकर प्राचीन कवियोंकी कृतियोंके शोधक्षेत्रका पथिक बना दिया।

श्री नाहटाजीने अपनी आत्मकथा भी लिखी है। अपने विषयमें तटस्थ भावसे लिखना कितना कठिन होता है यह इसी तथ्यसे स्पष्ट हो जाता है कि हिन्दी-साहित्यमें सच्चे अर्थमें बहुत कम आत्मकथाएँ लिखी गयी हैं। इधर भारतीय भाषाओंमें भी इस विधाका समृद्ध स्वरूप दृष्टिगत नहीं होता। श्री नाहटाजी इस दृष्टिसे आत्मकथाकी उस परम्परामें आते हैं जिसका आरम्भ श्री बनारसीदास जैनने लगभग चार सौ पहिले 'अर्द्ध कथानक' लिखकर अपनी चारित्रिक त्रुटियोंका उद्घाटन किया था। स्वामी श्रद्धानन्द और महात्मा गाँधीने भी अपने गुण-दोषोंको पाठकोंके सम्मुख रखनेमें तनिक भी मन्दता प्रदर्शित नहीं की। श्री नाहटाजी भी उसी पद्धतिके पदाति हैं। उन्होंने आत्मकथाके रूपमें बहुत थोड़ा लिखा है लेकिन जो लिखा

कवि नाहटाने 'अध्यात्म छत्तीसी' शीर्षक रचनाका निर्माण भी किया है। इसमें संसारसे राग विरतिका उपदेश दिया गया है। जैनदर्शनसे सम्बद्ध पारिभाषिक शब्दावलीका आधिक्य इसमें परिलक्षित होता है। कतिपय उदाहरण :

जो जो वस्तु दृश्यमान वह, वह पुद्गल रूप। राचो क्या सोचो जरा, तूँ परमात्म स्वरूप ॥
कर्मबंध नहीं वस्तुतः, जानो निश्चय एह। राग द्वेष नहिं होय जो, उड़े कर्मदल खेह ॥

कविने 'देवतत्त्व छत्तीसी' शीर्षक रचनाका निर्माण भी किया है। यह चिन्तनप्रधान जैनदर्शनसे सम्बद्ध पदावली है। साम्प्रदायिकोंके लिए इसका महत्त्व विशेष है।

कवि नाटहाने शोक गीतियाँ भी लिखी हैं। ऐसी गीतियों में श्रीजिनचारित्रसूरिजीके निधनपर रचित रचना विशेष रूपसे पठितव्य है। इस प्रकारकी गीतियों में भाव-शबलता के उदाहरण द्रष्टव्य हैं :

'जैन शासनके सितारे, स्वर्गमें जाकर बसे। चारित्रसूरि गुणके आकर, चल बसे ! हा चल बसे ॥
गोत्र छाजेड़ पाबुदान सुत, मात सोनको धन्य है। जन्म उगणीस सौ बयालोस, चल बसे हा ! चल बसे ॥

कहनेकी आवश्यकता नहीं कि युवक कवि श्री नाहटा भावोंकी दृष्टिसे अत्यन्त समृद्ध और भाषाकी दृष्टि-से अतीव समर्थ प्रतीत होते हैं। उनकी वाणीका स्फुरण सहज है। उसमें स्वाभाविकता और सरलता है। उनके अनेक पद पढ़ते समय भारतेन्दुयुगीन कवियोंकी कविताका स्मरण हो आता है। उनकी प्रतिनिधि कविता 'पार्श्व जिन अष्टकम्' है, जिसे हम यहाँ अविकल उद्धृत कर रहे हैं :

श्रीपार्श्व-जिन-अष्टकम्

श्री अगरचन्द नाहटा

गुण अशेष विश्वेश, प्रगट तुम गुणके सागर।
अष्ट कर्म निःशेष शेष, सब दुरित भयाकर॥
रुचिर शान्त अम्लान्त, पार्श्व मुख अति ही मनोहर।
देख इन्दु भयो मन्दु, सदा आकाश कियो घर॥१॥
राग द्वेषको त्याग, मार्ग निर्वाण दिखायो।
भये मुक्त गुणयुक्त, जन्म मरणादि गमायो॥
नील वरण सुखकरण, श्याम पारस मन भायो।
अति प्रमोद मन मोद, प्रभु दरशन मैं पायो॥२॥
सागर सम गम्भीर, धीर मंदार गिरि सम।
विजयी कर्म सुवीर, और नहीं आवै ओपम॥
नाग भयंकर विषधर देखत विष तजि दीनौ।
रहे चरण तुम देव सेव करतो गुण लीनौ॥३॥
ह्वै अनंत सुख मुख देखत जारत दुख दूरै।
अधम वृत्ति अज्ञान रूपी तमको चकचूरै॥
पार्श्वनाम गुण धाम, अहा पारस पत्थर भी।
करे लोहको स्वर्ण, कहें फिर क्या प्रभुवरकी॥४॥

आतम गुण निष्पन्न, भिन्न पुद्गल परभाव।
भये बुद्ध अति शुद्ध, सिद्ध निज आतम स्वभाव ॥
आतम विभव अनंत, अंत जसु आवत नांहि।
तुलना इस जग मांहि, देनको वस्तु न पांहि ॥५॥
वाणी तव संताप ताप, भव अनल बुझावै।
भटकत भव जल मांहि, उन्हें सन्मार्ग सुझावै ॥
वस्तु स्वभाव स्वरूप, अनूप प्रकाशक भानु।
बहै अमिय रसधार, सार गुण कितै बखानु ॥६॥
स्यादवाद संयुक्त, युक्त नय भंग प्रमाण।
तत्वान्वेषण गहिर रुचिर, निष्पक्ष विनाण ॥
प्राकृत वाणी सुबोध बोध, पावत भट भविजन।
सत्य प्रिय अति हिय, असर तत्काल करत मन ॥७॥
भवसागरके पोत, स्रोत समता सिन्धुके।
बसे जाय मनभाय, सिद्धि सुस्थान जु नीके ॥
निर्विकार वीतराग आग क्रोधादि विनाशी।
गुणागार भव पार करो, यह वीनति प्रकाशी ॥८॥
हो सर्वज्ञ विज्ञ सब भावोंके तुम सन्मति।
सेवक जन आधार सार तारो यह वीनति ॥
'अगर' सदा मन मुदा भक्ति भर ललित गुण स्तुति।
तव पद वंदन कर्म **निकंदन, प्राप्ति** परम गति ॥९॥

श्री नाहटाजीमें मूर्धन्य कोटिके कविमें पाये जानेवाले गुण बीज रूपमें हमें उपलब्ध होते हैं। अगर निरन्तर अभ्यास बना रहता तो वे कविता क्षेत्रके वरवरेण्य कवियोंमेंसे एक होते। यह पूछा जानेपर कि आपने कविता करना क्यों छोड़ दिया, तो श्रीनाहटाने उत्तर दिया :

''कवितामें मेरी रुचि थी लेकिन जब मैंने देखा कि मेरेसे सहस्रगुणित अच्छे कवियोंकी कविता समाजमें उपेक्षित भावसे देखी जाती है। कोई भी व्यक्ति तन-मन-धन और सच्ची लगनसे उसका उद्धार नहीं कर रहा है। ऐसी स्थितिमें मेरे मानसने मुझसे यही कहा, कविता लिखनेका नहीं, उसका उद्धार करनेका समय है और मेरी अन्तः-ध्वनिने मुझे कविता करनेके क्षेत्रसे निकालकर प्राचीन कवियोंकी कृतियोंके शोधक्षेत्रका पथिक बना दिया।

श्री नाहटाजीने अपनी आत्मकथा भी लिखी है। अपने विषयमें तटस्थ भावसे लिखना कितना कठिन होता है यह इसी तथ्यसे स्पष्ट हो जाता है कि हिन्दी-साहित्यमें सच्चे अर्थमें बहुत कम आत्मकथाएँ लिखी गयी हैं। इधर भारतीय भाषाओंमें भी इस विधाका समृद्ध स्वरूप दृष्टिगत नहीं होता। श्री नाहटा-जी इस दृष्टिसे आत्मकथाकी उस परम्परामें आते हैं जिसका आरम्भ श्री बनारसीदास जैनने लगभग चार सौ पहिले 'अर्द्ध कथानक' लिखकर अपनी चारित्रिक त्रुटियोंका उद्घाटन किया था। स्वामी श्रद्धानन्द और महात्मा गाँधीने भी अपने गुण-दोषोंको पाठकोंके सम्मुख रखनेमें तनिक भी मन्दता प्रदर्शित नहीं की। श्री नाहटाजी भी उसी पद्धतिके पदाति हैं। उन्होंने आत्मकथाके रूपमें बहुत थोड़ा लिखा है लेकिन जो लिखा

है वह अत्यन्त विश्वसनीय और सच्चे कच्चे चिट्ठेके रूपमें है। लेखकने यह निःसंकोच भावसे लिखा है कि यौवनके देहली द्वारपर कामोत्तेजक पुस्तक-चित्र और कुसंगने उसको आत्मघाती पथपर अग्रसर कर दिया था और उससे मुक्ति पानेमें उसे कितना हर्ष-विषादका अनुभव हुआ था।....आदि आदि।

अब हम एकैकशः उन पुस्तकोंका परिचय प्रस्तुत कर रहे हैं, जिन्हें या तो श्री नाहटाजीने लिखा है या सम्पादित किया है अथवा शुभ आशीर्वाद दिया है।

विधवा कर्त्तव्य

श्री अगरचन्दजी नाहटाकी प्रथम कृति होनेका सौभाग्य इस पुस्तकको है। इसे लेखकने जैनाचार्य श्री १००८ श्री जिनकृपाचन्द्रसूरीश्वरजी महाराजकी शिष्या साध्वी श्री महिमाश्रीजीको समर्पित किया है। इसका प्रकाशन संवत् १९८६ है।

पाटणके प्रसिद्ध भण्डारसे प्राप्त, ताड़पत्रांकित, गाथाबद्ध 'विधवा कुलक' नामक लेखका विवेचन-सहित हिन्दी अनुवाद इस पुस्तकमें किया गया है। यह कुलक 'जैनधर्मप्रकाश' नामक गुजराती मासिक पत्रमें भी प्रकाशित हुआ था। लेखकने समाजके ही अभिन्न अंग विधवा समाजको उनके कर्तव्यके प्रति जागरूक करनेके लिए इस पुस्तकका प्रकाशन किया है। लेखकने ग्रन्थादिमें अपने गुरु श्री जिनकृपाचन्द्रसूरीश्वरको नमन किया है और इस ग्रन्थरचनाके मूल प्रेरणास्रोत उन्हींको बताया है :

पूर्वाचार्य कृत कुलकका, करूँ भाषा अनुवाद। विधवा कर्त्तव्य वर्णवूं, सद्गुरु भणे सुप्रसाद॥

पुस्तकके 'विवेचन' उपशीर्षकमें युवक नाहटाका विचार मन्थन झलकता है। मूलगाथाको बात को स्पष्ट करनेके लिए वे अनेक उदाहरणोंको प्रस्तुत करते हुए, दिन रात घटनेवाले क्रिया-व्यापारोंका खुलकर उल्लेख करते हैं; जिससे गाथाका मूलभाव अत्यन्त स्पष्ट होकर हृदयंगम हो जाता है। प्रत्येक 'गाथा'पर उनका विवेचन सुन्दर विचारोंका एक छोटा-सा निबन्ध बन जाता है; जिसे स्वतन्त्ररूपसे भी अगर पढ़ें तो वह अपूर्ण प्रतीत नहीं होता और उसका स्वाध्याय पवित्र प्रेरणाका संचार करनेमें सक्षम सिद्ध होता है।

गाथामें प्रस्तुत कथ्यको अधिक स्पष्ट और प्रभावक बनानेके लिए लेखकने अनेक उद्धरण दिये हैं; जिससे उसके व्यापक अध्ययनका संकेत मिलता है।

लगभग आधी पुस्तकमें, गाथा भावार्थ और विवेचन है। शेषार्द्ध भागमें विधवा सञ्जीवन यापनके लिए व्यावहारिक उपदेश-कर्तव्य, दिनचर्या, आदिपर प्रकाश डाला गया है। इस पुस्तकमें यहाँतक बताया गया है कि विधवाको कपड़े कैसे पहिनने चाहिये; भोजन कैसा और कैसे करना चाहिये—कहाँ बैठना और कहाँ नहीं बैठना चाहिये आदि। लेखकने इस प्रसंगमें घरवालोंको भी मार्गदर्शन दिया है कि वे विधवाओंके साथ किस प्रकारका व्यवहार करें। उसने समाजको भी विधवाओंके प्रति अपने दायित्वको वहन करनेके लिए सजग किया है। पुस्तकान्तमें श्री देवचन्दजीकी मर्मस्पर्शी पंक्ति दी गयी है :

'बाधक भाव अद्वेष पणे तजेजी, साधकसे गतराग'

अर्थात्—आत्मिक उन्नतिमें जो साधक हो उसे बिना रागभावसे ग्रहण करो और जो बाधक हो उसे द्वेषरहित होकर छोड़ दो।

युगप्रधान श्री जिनचन्दसूरि

यह महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ श्री अभय जैन ग्रंथमालासे सप्तम पुष्पके रूपमें प्रस्फुटित हुआ है। इसका प्रकाशन संवत् १९९२ है। समर्पणकी भावभरी भाषासे अभिव्यंजित होता है कि उक्त पुस्तक निर्मिति-लेखनमें जैनाचार्य श्री जिनकृपाचन्द्रजी सूरीश्वरका पूर्ण आशीर्वाद रहा है और उनके श्रीमुखसे जो ज्ञानराशि एवं उत्प्रेरण

लेखक द्वयने प्राप्त किये थे; उन्हींके प्रसाद स्वरूप यह पुस्तक लिखी जा सकी। अतः उन्हींकी वस्तु उन्हें ही समर्पित करनेमें लेखकद्वयने जो आनन्दका अनुभव किया है; वह एक वास्तविकता है।

लेखकद्वयने अपने सारगर्भित वक्तव्यमें बहुमूल्य शोधसामग्री प्रस्तुत की है। उन्होंने उसमें अनेक प्रश्न उठाये हैं और उनका विद्वत्तापूर्ण समाधान-उत्तर भी दिया है। इस शोधपूर्ण ग्रन्थको लिखने-सामग्री संकलन करने और उसकी प्रामाणिकताको जांचनेमें लेखकद्वयको पाँच वर्षों तक निरन्तर श्रम करना पड़ा है। उन्होंने अपने श्रमको व्यंजित करते हुए वक्तव्यमें एक श्लोक उद्धृत किया है—

विद्वानेव विजानाति, विद्वज्जनपरिश्रमम्।
न हि वन्ध्या विजानाति, गुर्वीं प्रसववेदनाम्॥

विद्वान्का परिश्रम विद्वान् ही जानता है। गुर्वी प्रसववेदनाको वन्ध्या नहीं जानती।

प्रामाणिकता-सारगर्भितता और सरल शैलीने इस ग्रंथको अत्यन्त लोकप्रिय बना दिया। विद्वद्वर्य श्री लब्धिमुनिजीने इसे आधार बनाकर सूरिजीके चरित्रको संस्कृत पदावलिमें पुस्तकीकरण किया है यह गुजराती अनुवादमें प्रकाशित हो चुका है। इसकी प्रस्तावना श्री मोहनलाल दलीचंद देसाई ने लिखी है; जो अत्यन्त विद्वत्तापूर्ण है। यह ग्रन्थ संस्कृत, प्राकृत, हिन्दी, गुजराती, बंगला, अंग्रेजी प्राचीन भाषाओं और सैकड़ों हस्तलिखित प्राचीन पाण्डुलिपियों, प्रशस्तियों, पट्टावलियों, विकीर्ण पत्रों, रिपोर्टों आदिके गहन अध्ययन चिन्तन और मननके आधारपर लिखा गया है; अतः इसकी प्रामाणिकता निस्सन्देह है। पुस्तकको उपयोगी बनानेके लिए लेखकद्वयने सांकेतिक अक्षरोंका स्पष्टीकरण, अनुक्रमणिका, चित्रसूची, सम्मति, विशेषनाम सूची और शुद्धाशुद्धि पत्रक भी दिये हैं।

पुस्तककी सामग्री, उसका चिन्तन, उसमें प्रस्तुत तर्क और प्रस्तुति—अत्यन्त प्रौढ़ हैं। लेखकोंके प्रकाण्ड पाण्डित्य, अत्यन्त सूक्ष्मदर्शिनी दृष्टि और उसकी शोधप्रवृत्तिको स्पष्टतः इस ग्रन्थमें अवलोकित किया जा सकता है।

नीरक्षीरविवेकी शोध विद्वान् और इतिहासकार उस समय बड़ी दुविधामें पड़ जाते हैं जब उन्हें किसी चरित्रकी अलौकिक एवं अत्यन्त चमत्कारिक घटनाओंको लिखना पड़ता है। वे इस प्रकारके विस्मयोत्पादक अलौकिक घटनाचक्रको अगर ध्यानान्तरित करते हैं तो लाखों भावुक भक्तोंकी भावनापर आघात पहुँचता है और अगर वैसा करते हैं; अलौकिक घटनाओंको अपने पूर्ण समर्थनके साथ प्रस्तुत करते हैं तो इतिहासकारके पथसे च्युत हो जाते हैं। श्री नाहटाजीके लेखन-कर्ममें उक्त प्रकारका धर्मसंकट आ पड़ा था। उन्होंने मध्यम मार्ग अपनाया और जीवनी प्रकरणोंसे भिन्न एक अलग अध्यायमें समस्त चमत्कारिक घटनाओंको सुव्यवस्थित कर दिया। इस प्रकार वे इस ग्रन्थमें इतिहासकारके पुनीत कर्तव्यका जहाँ पालन कर सके हैं; वहाँ उन्होंने धार्मिक जनताकी भावनाका आदर भी किया है।

ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह

श्री अगरचन्द्रजी नाहटा एवं श्री भंवरलालजी नाहटाके सहवर्त्ति संपादकत्वमें संवत् १९९४ में श्री अभय जैन ग्रंथमालाके अष्टम पुष्पके रूपमें इस ग्रंथरत्नका प्रकटन हुआ है। पुस्तकका समर्पण श्री दानमल जी नाहटाकी स्वर्गस्थ आत्माको उनके अनुज और उक्त ग्रंथके प्रकाशक श्री शंकरदानजी नाहटाने किया है। प्रकाशक नाहटा श्री अगरचन्दजीके पिता एवं श्री भंवरलालजीके पितामह थे।

यह ग्रंथ तीन दृष्टियोंसे अत्यन्त उपयोगी है। पहला दृष्टिकोण ऐतिहासिकताका है; द्वितीय भाषिकताका और तृतीय साहित्यिकताका। इसमें कतिपय साधारण काव्योंके अतिरिक्त प्रायः सभी काव्य ऐतिहासिक दृष्टिसे संग्रह किये गये हैं। अद्यावधि प्रकाशित संग्रहोंसे भाषासाहित्यकी दृष्टिसे यह संग्रह सर्वाधिक

उपयोगी है; क्योंकि इसमें १२ वीं शताब्दीसे लेकर बीसवीं शताब्दी तक लगभग आठ सौ वर्षोंके, प्रत्येक शताब्दीके थोड़े-बहुत काव्य अवश्य संग्रहीत हैं। इस संग्रहसे भाषाविज्ञानके अभ्यासियोंको शताब्दीवार भाषाओंके अतिरिक्त कई प्रान्तीय भाषाओंका भी अच्छा ज्ञान हो सकता है। कतिपय काव्य हिन्दी, कई राजस्थानी और कुछ गुजरातीके हैं। अपभ्रंश भाषाके लिए तो यह संग्रह विशेषतः महत्त्वपूर्ण है वैसे इसमें संस्कृत और प्राकृतके काव्य भी दे दिये गये हैं।

काव्यकी दृष्टिसे जिनेश्वरसूरि, जिनोदयसूरि, जिनकुशलसूरि, जिनपतिसूरि आदिके रास-विशेष महत्त्व रखते हैं।

इसमें रास सार भी दे दिया गया है जो अति संक्षिप्त और सारगर्भित है। लेखकद्वयने काव्य रचनाकालका संक्षिप्त शताब्दी अनुक्रम भी दिया है। श्री हीरालाल जैनने इसकी विद्वत्तापूर्ण प्रस्तावना लिखी है। 'प्रति परिचय' शीर्षकके अन्तर्गत उन पाण्डुलिपियोंका परिचय दिया गया है; जिनका उपयोग इस ग्रन्थमें किया गया है। प्रकाशक, पाण्डुलिपि, ताड़पत्र, हस्तलिपि आदिसे सम्बद्ध एकादश चित्रोंसे ग्रंथ सुसज्जित है, पुस्तकान्तमें कठिन शब्दकोष और विशेष नामोंकी सूची देकर उसे और भी उपयोगी बना दिया गया है। सर्वान्तमें 'शुद्धाशुद्धि पत्रम्' रक्खा गया है।

समयसुन्दर कृति कुसुमाञ्जलि

श्री अगरचन्द नाहटा एवं श्री भंवरलाल नाहटाके संग्रहकत्व एवं सम्पादकत्वमें श्री अभय जैन ग्रंथ-मालाके पंचदशम पुष्पके रूपमें प्रस्फुटित यह कृति अपना विशेष महत्त्व रखती है। इसमें कविवर समय-सुन्दरकी ५६३ लघु रचनाओंका संग्रह है। श्री हजारीप्रसादजी द्विवेदीने इसकी भूमिका लिखकर-इस ग्रंथके महत्त्वका उद्घाटनपूर्वक पुरस्सरण किया है। महोपाध्याय श्री विनयसागरजीने अपनी प्रखर विद्वत्तासे समय-सुन्दरके व्यक्तित्व एवं कृतित्वका सार संभरित मूल्यांकन किया है और उस महाकविको असाधारण मेधावी, और सर्वतोमुखी प्रतिभाके धनीके रूपमें प्रस्तुत किया है। यह शोधपूर्ण साहित्यिक कृति परम अध्यवसायी, सहृदय, शोधनिरत, महान् परिश्रमी और निष्णात साहित्य महारथी स्व० श्री मोहनलाल दलीचन्द देसाईको समर्पित की गयी है।

समयसुन्दर कृति कुसुमाञ्जलिग्रंथ भाषा, छन्द, शैली और ऐतिहासिक सामग्रीकी दृष्टिसे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इसमें सन् १६८७के अकालका बड़ा ही जीवन्त वर्णन है। वह बड़ा हृदयद्रावक और प्रभावक है। इस ग्रंथकारके विषयमें श्री नाहटाजीने नागरी प्रचारिणी पत्रिकाके सं० २००९के प्रथम अंकमें जो लिखा था, उससे ज्ञात होता है कि श्री समयसुन्दरकी जन्मभूमि मारवाड़ प्रान्तका सांचौर स्थान है। ये पोरवाड़ वंशके रत्न थे और इनका जन्मकाल संभवतः संवत् १६२० है। अकबरके आमंत्रणपर इनके दादागुरुजी भी लाहौरमें सम्राट्से मिलने गये थे तो ये भी गये थे। इन्होंने संस्कृतमें पच्चीस और भाषामें तेईस ग्रंथ लिखे थे। संवत् १७०२में चैत्र शुक्ला त्रयोदशीके दिन अहमदाबादमें इन्होंने अनशन आराधनापूर्वक शरीरत्याग किया।

'समयसुन्दर कृति कुसुमाञ्जलि'से कविकी कवित्वशक्तिकी प्रौढ़ताका निदर्शन होता है। कविकी भाषामें भावोंको अभिव्यक्त करनेकी अद्भुत क्षमता है। कविका ज्ञान परिसर बहुत ही विस्तृत है; इसलिए वह किसी भी कर्म विषयको बिना आयासके सहज ही संभाल लेता है। कवि द्वारा प्रयुक्त छन्दों और रागोंसे तत्कालीन व्रजभाषामें प्रचलित पद शैलीके अध्ययनमें सहायता मिल सकती है।

वस्तुतः नाहटाजीने इस ग्रंथका संपादन-प्रकाशन करके हिन्दी साहित्यके अध्येताओंके सामने बहुत

अच्छी सामग्री प्रस्तुत की है। वैसे कवि अत्यन्त व्यापक है और उसकी लिखित-रचित सामग्रीका पार पाना बड़ा कठिन है—

'समयसुन्दरना गीतड़ा, भींता पर ना चीतरा या कुंभेराणां ना भींतड़ा।'

कविने अष्टलक्षी ग्रंथकी रचनाके १ पदके आठ लाख प्रामाणिक अर्थ पंडित विद्वत् सभा अकबरकी में मान्य करवाया था।

दानवीर सेठ श्री भैरूँदानजी कोठारीका संक्षिप्त जीवनचरित्र

जैसा कि नामसे ही स्पष्ट है; यह अत्यन्त लघु पुस्तिका दानवीर सेठ भैरूँदानजीके जीवनकी रूप-रेखा मात्र प्रस्तुत करते हुए लिखी गयी है। प्रकृत्या यह पुस्तक न होकर लेखकका वक्तव्य है जो पुस्तकायित कर दिया गया है। स्व० सेठ साहबके दानीरूपको विज्ञापित करना लेखकका लक्ष्य रहा है। उसने प्रकारान्तर-से यह व्यंजित किया है कि धनका होना उतना महत्त्वपूर्ण नहीं है जितना उसका सदुपयोग महत्त्वपूर्ण होता है। लक्ष्मीपतियोंके लिए यह लघु पुस्तक प्रेरक बन सकती है।

युगप्रधान श्री जिनदत्तसूरि

प्रस्तुत पुस्तकके लेखक नाहटाद्वय हैं। इसका प्रकाशन श्री अभय जैन ग्रंथमालाके बारहवें पुष्पके रूपमें हुआ है। इसे लेखकोंने अपने स्व० पिता एवं पितामह श्री शंकरदानजी नाहटाको समर्पित किया है। इसका प्रकाशन संवत् २००३ है।

नाहटाद्वयने इस पुस्तकको लिखे जानेमें श्री जिनदत्तसूरिचरित्रनिर्णायक समिति फलौदीके द्वारा प्रकाशित उस विज्ञप्तिको कारण माना है; जिसमें उक्त समितिने ता०. २१-७-१९३४ के पूर्व सूरिजीका जीवन-चरित्र लिख भेजनेका निवेदन किया था। इस ग्रन्थको लिखनेके लिए लेखकद्वयको पर्याप्त श्रम करना पड़ा, तदर्थ जैसलमेरकी यात्रा भी करनी पड़ी। इस पुस्तककी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें गतानुगतिकता नहीं है। प्रत्येक घटना और तथ्यको ऐतिहासिकताके आधारपर परखनेका प्रयत्न किया गया है। सूरिजीके प्रामाणिक चरित्रको प्रस्तुत करके अन्तमें विशेष बातें, गोत्रसूची, पदव्यवस्था, कतिपय स्तवन और विशेष नामसूची दी गयी है।

राजस्थानमें हिन्दीके हस्तलिखित ग्रंथोंकी खोज—द्वितीय भाग

यह कृति हिन्दीके अज्ञात हस्तलिखित ग्रंथोंकी शोधविवरणिका है। इसका प्रकाशन प्राचीन साहित्य शोध संस्थान उदयपुरकी ओरसे सन् १९४७में किया गया था।

श्री अगरचन्दजी नाहटा लिखित इस पुस्तककी अनेक विशेषताएँ और मौलिकताएँ हैं।

इस ग्रंथमें मूल ग्रंथके उद्धरण अधिक प्रमाणमें लिये गये हैं और लेखककी ओरसे कुछ भी नहीं या कमसे कम लिखनेकी नीति अपनायी गयी है। ग्रन्थका नाम, ग्रन्थकार, उनका जितना भी परिचय ग्रंथमें है, ग्रंथका रचनाकाल, ग्रंथ रचनेका आधार आदि ज्ञातव्य, जिस ग्रंथमें संक्षेप या विस्तारसे जितना मिला, विवरणमें दे दिया गया है जिससे प्रत्येक व्यक्ति ऊपर निर्दिष्ट लेखकके लिखित सारको स्वयं जाँचकर निर्णय कर सकें। इसकी द्वितीय विशेषता यह है कि इसमें एक-एक विषयके अधिकसे अधिक अज्ञात ग्रंथोंका विवरण संगृहीत किया गया है और उनका विषयानुसार वर्गीकरण कर दिया गया है। इसकी तीसरी विशेषता यह है कि इसमें ऐसे विषय एवं ग्रंथोंके विवरण हैं जो हिन्दी साहित्यके इतिहासमें एक नवीन जानकारी उपस्थित करते हैं, जैसे नगर वर्णनात्मक गजल साहित्य। "हिन्दी ग्रंथोंकी टीकाएँ" विभाग भी अपनी विशेषतासे परिपूर्ण है। इसमें हिन्दी ग्रंथोंपर तीन संस्कृत टीकाएँ एवं एक राजस्थानी टीकाका विवरण दिया गया है। अभी तक हिन्दी ग्रंथों पर संस्कृतमें टीकाएँ रची जानेकी जानकारी शायद यहाँ पहली ही बार दी गई है।

जसवंत उद्योत

श्री अगरचन्दजी नाहटाके सम्पादकत्वमें श्री सादूल प्राच्य ग्रन्थमालासे संवत् २००६में इस ग्रन्थका प्रकाशन हुआ है।

यह ग्रंथ जोधपुरके राठौड़ोंके इतिहाससे सम्बद्ध है। ग्रन्थान्तमें प्रस्तुत पद्यमें कविने सूर्यवंशी बृहद्-बाहु तककी वंशावली विष्णुपुराणसे एवं उसके परवर्त्ती ६० राजाओंका विवरण लोककथाके आधारसे दिये जानेका उल्लेख किया है। माननीय ओझाजीके मतानुसार सीहाके पिता सेतरामसे परवर्ती राजाओंके नामादि तो इतिहाससे बहुत कुछ समर्थित हैं; पर जयचन्द गाहड़वालके साथ उनका सम्बन्ध जोड़ना स्पष्टतः भूल है; जब कि पं० विश्वेश्वरनाथ रेऊ गाहड़वाल व राठौड़ोंका एक ही वंश मानकर इसे ठीक समझते हैं।

जसवंत उद्योतके प्रारंभमें इसका रचनाकाल संवत् १७०५ आषाढ शुक्ला तृतीया दिया है; पर इस ग्रन्थमें संवत् १७०७के कार्त्तिकमें हुई पोहकरण विजय तकका वृत्तान्त पाया जाता है; अतः प्रस्तुत ग्रन्थकी रचनाका प्रारंभ संवत् १७०५में होकर १७०८के करीब परिसमाप्ति हुई समझनी चाहिये; क्योंकि इसके पीछे-का कोई वृत्तान्त इस काव्यमें नहीं पाया जाता।

जोधपुरके राजवंशमें महाराजा जसवन्त सिंह बड़े साहित्यप्रेमी, विद्वान् एवं प्रतापी राजा हुए हैं। कवि उनके आश्रयमें ही रहता था और कई वर्षों तक साथ रहनेके कारण उसे राठौड़ोंके इतिहासकी अच्छी जानकारी हो गयी थी। फलतः उसने कई स्थानोंमें राठौड़ वंशके प्रधान पुरखाओंसे चली शाखाओंका व उनके विशिष्ट व्यक्तियोंका महत्वपूर्ण निर्देश किया है। मुहणोत नैणसीकी ख्यातसे भी प्रस्तुत ग्रंथ प्राचीन एवं महाराजा जसवंत सिंहकी विद्यमानतामें रचना होनेसे इसका ऐतिहासिक महत्व और भी बढ़ जाता है। इससे काव्यकी एक मात्र प्रति अनूप संस्कृत लाइब्रेरीमें है।

क्यामखांरासा

मुस्लिम कवि जान रचित क्यामखांरासाका सम्पादन श्री दशरथ शर्मा एवं श्री अगरचन्द नाहटा व भँवरलाल नाहटा द्वारा तथा प्रकाशन राजस्थान पुरातत्व मंदिर जयपुरकी राजस्थान पुरातन ग्रंथमालासे संवत् २०१० में हुआ।

यह रासा अनेक दृष्टियोंसे महत्त्वपूर्ण है। इसकी साहित्यिक महत्ता उच्चकोटि की है। इसकी शैलीमें प्रवाह है। प्रेम पूर्ण आख्यायिकाओं और प्राकृतिक वर्णनोंसे कवि जान भी इसे सुसज्जित कर सकता था; वह वीर रसका ही नहीं, शृङ्गार रसका भी कवि था; किन्तु उसने सरल ओजस्विनी भाषामें अपने वंशके इतिहासको ही प्रस्तुत करना उचित समझा; उसने यथाशक्ति मितभाषिता और सत्यका आश्रय लिया। इसकी भी एकमात्र प्रति झुंझुनूके जैन भण्डारसे प्राप्त हुई।

बीकानेरके दर्शनीय जैन मन्दिर

श्री अगरचन्दजी नाहटाने यह अत्यन्त लघुकाय पुस्तिका संवत् २०१[illegible] में लिखी और प्रकाशित की। इसमें बीकानेरके दर्शनीय जैन मंदिरोंका प्रामाणिक इतिहास दिया गया है। सुन्दर, कलात्मक जैन मंदिरोंके आधिक्यके कारण बीकानेरको जैनतीर्थोंमें स्थान प्राप्त है।

बीकानेर ज वंदीए, चिरनंदीये रे, अरिहंत देहरा आठ-तीर्थ ते नमुं रे।

कविवर समयसुन्दरके समय बीकानेरमें आठ मंदिर रहे होंगे; लेकिन आजकल उनकी संख्या चालीस-के लगभग है।

बीकानेरकी तीर्थयात्रा पर जानेवाले जैन यात्रियोंके लिए उक्त पुस्तक अच्छी पथदर्शिका है। इसका

यही महत्त्व है । स्थानकवासी साधु-सम्मेलन भीमसरके प्रसंगसे हजारों व्यक्ति बाहरसे आये थे उनके मंदिर दर्शनकी सुगमताके लिए पुस्तक रूपमें लिखकर प्रकाशित कर दी गई थी ।

श्रीमद् देवचन्द्र स्तवनावली

श्रीमद् देवचन्द्रजीके प्रामाणिक जीवन और उनके भक्तिरस आपूरित पदोंके संकलनसे श्री अगरचन्दजी नाहटाने उक्त पुस्तक लिखकर संवत् १०१२ में प्रकाशित की है ।

श्रीमद् देवचन्द्रजीका जन्म वि० संवत् १७४६ में बीकानेरके निकटवर्ती किसी ग्राममें हुआ था । आप शनैःशनैः संस्कार विकास करते-करते उच्चकोटिके साधक कवि बन गये । आपने स्वरचित स्तवनोंमें तत्त्वज्ञानके साथ-साथ भक्तिका अखण्ड प्रवाह बहाया है । श्री नाहटाजीने भक्तकविके जीवनचरित्रको लिखते समय जैन दर्शन पर भी प्रसंग वश प्रकाश डाला है, वह प्रकाश कहीं सूचनात्मक है और कहीं तुलनात्मक । भक्त श्रात्रकोंके लिए पुस्तकका मूल्य बहुत है । वह परम उपयोगी है ।

बीकानेर जैन लेख संग्रह

श्री नाहटाद्वयकी कल कीर्त्तिको चतुर्दिक् प्रसरित करनेवाले ग्रंथरत्नोंमेंसे उक्त ग्रंथ भी एक है । ग्रंथके प्राक्कथन लेखक श्री वासुदेवशरण अग्रवालने श्री नाहटाजीके प्रकाण्ड पाण्डित्य, श्रमनिष्ठा और शोधरुचिकी भूरि-भूरि प्रशंसा की है ।

इस ग्रंथका प्रकाशन श्री अभय जैन ग्रंथमालाके पंचदश पुष्पके रूपमें सन् १९५६ में हुआ । इसमें बीकानेर राज्यके २६१७ तथा जेसलमेरके १७१ अप्रकाशित लेखोंका संग्रह है । प्रारम्भमें शोधपूर्ण-विद्वत्तापरिपूर्ण विस्तृत भूमिका दी गयी है । परिशिष्टमें बृहद् ज्ञान भण्डारकी वसीयत, श्री जिनकृपाचन्द्रसूरि धर्मशालाका व्यवस्थापत्र और पर्यूषणोंमें कसाईबाड़ा बन्दीके मुचलकेकी नकल है ।

बीकानेर जैन लेख संग्रहमें ९वीं-१०वीं शताब्दीसे लेकर आज तकके करीब ग्यारह सौ वर्षोंके लगभग ३००० लेख हैं । इस लेख संग्रहकी एक विशेष बात यह है कि इसमें श्मशानोंके लेख भी खूब लिये गये हैं । बीकानेरके जैन इतिहाससे सम्बद्ध इतनी ज्ञानवर्द्धक ठोस भूमिका भी इसी ग्रन्थकी दूसरी उल्लेखनीय विशेषता हैं । बीकानेर राज्य भरके समस्त लेखोंके एकीकरणका प्रयत्न भी इस ग्रन्थकी अन्य विशेषता है ।

प्रस्तुत लेखोंमें इतनी विविध ऐतिहासिक सामग्री भरी पड़ी है कि उन सब बातोंके अध्ययनके लिए सैकड़ों व्यक्तियोंकी जीवन साधना आवश्यक है । इन लेखोंमें राजाओं, स्थानों, गच्छों, आचार्यों, मुनियों, श्रावक-श्राविकाओं, जातियों और राजकीय, धार्मिक, सामाजिक, सांस्कृतिक इतनी अधिक सामग्री भरी पड़ी है कि जिसका पार पाना कठिन है । इसी प्रकार इन मन्दिर एवं मूर्त्तियोंसे भारतकी शिल्प स्थापत्य, मूर्त्तिकला और चित्रकला आदिके विकासकी जानकारी ही नहीं मिलती; पर समय-समयपर लोक-मानसमें भक्तिका किस प्रकार विकास हुआ, नये-नये देवी देवता प्रकाशमें आये, उपासनाके केन्द्र बने, किस-किस समय भारतके किन-किन व्यक्तियोंने क्या क्या महत्त्वके कार्य किये; उन समस्त गौरवशाली इतिहासोंकी सूचना इन शिलालेखों, पत्रलेखों, ताड़पत्र लेखों और मूर्तिलेखोंमें पायी जाती है । श्री नाहटाजीने लेख संग्रहके क्षेत्रमें यह बहुत बड़ा काम किया है । ग्रन्थके प्रत्येक चित्रफलकपर उनका कठिन श्रम झलकता है और उनकी अगाध विद्वत्ता ग्रंथके आद्यन्त भागमें । इस उत्कृष्ट कोटिके ग्रंथ प्रणयनके लिए नाहटाद्वयकी जितनी ही प्रशंसा की जाय; वह थोड़ी है । इसमें करीब १०० चित्र भी दे दिये गये हैं ।

बम्बई चिन्तामणि पार्श्वनाथादि स्तवनपद संग्रह

उक्त पुस्तक संवत् २०१४ में श्री अगरचन्द भँवरलालजी नाहटाके सम्पादकत्वमें ट्रस्टी गण श्री

चिन्तामणि पार्श्वनाथ मंदिर बम्बईके द्वारा प्रकाशित की गयी। इसमें बम्बईके चिन्तामणि पार्श्वनाथकी स्तुति-पदोंकी संख्या अपेक्षाकृत अधिक है, अतः पुस्तकका नाम बम्बई चिन्तामणि पार्श्वनाथपर रक्खा गया है। ये समस्त स्तवन वाचक श्री अमरसिंधुरजी रचित हैं। श्री अमरसिंधुरजीने बम्बईमें रहते हुए ही अधिकांश रचनाएँ की हैं और एक विशिष्ट कार्य यह किया कि श्री चिन्तामणि पार्श्वनाथका मंदिर, धर्मशाला व उपाश्रय श्रावकोंको उपदेश देकर प्रतिष्ठित किया। इन सबके लिए उन्हें आठ वर्षों तक प्रयत्न करना पड़ा।

भक्त श्रावकोंके लिए यह पुस्तक अनुपम रत्न है।

ज्ञानसार ग्रन्थावली

श्री अगरचन्दजी नाहटा एवं श्री भँवरलालजी नाहटा द्वारा सम्पादित एवं श्री अभय जैन ग्रंथमाला द्वारा प्रकाशित यह पुस्तक सन् १९५९ में तैयार हो सकी। इसमें महायोगी ज्ञानसारजी द्वारा रचित पदावली एवं अन्य रचनाओंका संग्रह है। योगीराजकी प्रामाणिक जीवनी भी दी गयी है। महापण्डित श्री राहुल सांकृत्यायनने इसकी भूमिका-प्राक्कथनमें उचित ही लिखा है कि 'ज्ञानसार ग्रन्थावलीका प्रकाशन करके श्री नाहटाजीने हिन्दी साहित्यके ऊपर बड़ा उपकार किया है।" भाषा, भाव, ऐतिह्य और धार्मिकताकी दृष्टिसे पुस्तक अतीव महत्त्वपूर्ण है।

छिताईचरित

यह पुस्तक श्री हरिहरनिवास द्विवेदी एवं श्री अगरचन्दजी नाहटाके सम्पादकत्वमें विद्यामन्दिर प्राचीन ग्रन्थमालाके तृतीय पुष्पके रूपमें सन् १९६० में प्रकाशित हुई है। सम्पादक श्री द्विवेदीने ठीक ही लिखा है।

"छिताईचरित हिन्दीका गौरव ग्रन्थ है। हिन्दीकी लौकिक आख्यान काव्यधाराकी श्रेष्ठ रचनाके रूपमें, राजनैतिक इतिहासकी घटनाओंके कथाबीजपर आधारित सर्वप्रथम प्रामाणिक रचनाके रूपमें····छिताई-चरितका स्थान हिन्दी साहित्यमें अत्यन्त श्रेष्ठ है····इतनी महत्त्वपूर्ण रचनाकी प्रतियाँ खोज निकालनेके लिए हिन्दी संसार उन (श्री अगरचन्दजी नाहटा)का सदा ऋणी रहेगा।"

यह सत्य है कि श्री नाहटाजीको छिताईचरित लेखन-शोधन-संशोधन और मुद्रणमें अनेक कठिनाइयोंका सामना करना पड़ा था; लेकिन वे हमारे दृष्टिमें "कठिनाइयाँ" हो सकती हैं; श्री नाहटाजी तो उन्हें 'प्रेरक तत्त्व' कहते हैं; इसलिए उनके लिए वे वरदानभूत हैं। निस्सन्देह श्री नाहटाजी छिताई-चरित प्रकाशनमें तथाकथित वरदानके विशेष पात्र रहे होंगे; यह हमारी और द्विवेदीजीकी मान्यता है।

पीरदान लालस ग्रन्थावली

यह पुस्तक श्री अगरचन्दजी नाहटा द्वारा सम्पादित और सादूल राजस्थानी रिसर्च इन्स्टीट्यूट बीकानेर द्वारा सन् १९६०में प्रकाशित हुई है। सम्पादकने इसे चारण जातिके दो उज्ज्वल रत्नों—श्री शंकरदान जेठी भाई और श्री उदयराजजी उज्ज्वलके करकमलोंमें सादर समर्पित किया है।

प्रस्तुत ग्रन्थावलीमें नारायण नेह, परमेसर पुराण, हिंगलाज रासो, अलख आराध, अजंपा जाप, ज्ञानचरित और पातिक पहार नामक सात ग्रन्थों और ३० डिंगल गीतोंको स्थान प्राप्त हुआ है। लालसजीकी ये समस्त रचनाएँ प्रायः भक्तिप्रधान हैं। इन रचनाओंमें दूहा, चौपई, गाहा, चौसर, मोतीदाम, कवित्त, भुजंगी, पद्धरी, झम्पाताली और डिंगल गीतोंके अटूट तालों साणोर आदि कई ग्रन्थोंका प्रयोग हुआ है। पुस्तकांतमें शब्दकोश और अन्तरकथाएँ देकर उसकी उपयोगिताको और भी बढ़ा दिया गया है। पुस्तकके प्रारम्भमें कवि पीरदान लालसकी हस्तलिपिका चित्र भी दिया गया है।

जिनहर्ष ग्रन्थावली

श्री अगरचन्दजी नाहटा द्वारा सम्पादित और श्री सादूल राजस्थानी रिसर्च इन्स्टीट्यूट बीकानेर द्वारा सन् १९६० में प्रकाशित 'जिनहर्ष ग्रन्थावली' श्री अगरचन्दजी नाहटाके ३० वर्षके शोधश्रमका रूपीकरण है। उन्होंने कविकी लगभग ४०० लघु रचनाएँ इस ग्रन्थावलीमें प्रकाशित की हैं।

महाकवि जिनहर्ष सरस्वतीके वरद पुत्र थे। उन्होंने निरन्तर ६० वर्ष तक काव्यसाधना की थी। उनके भावुक पवित्र हृदय और विवेकशील मस्तिष्कने माँ सरवस्तीके रत्नकोशको सम्भरित करनेके लिए सात महाकाव्य, इक्कीस एकार्थकाव्य, इक्कावन खण्डकाव्य और लगभग २०० मुक्तक रचनाओं तथा हजारों फुटकर पदोंका निर्माण किया था। उन्होंने लगभग एक लाख परिमित संख्या पद बनाये थे।

श्री नाहटाजीने ऐसे सरस्वती पुत्रको प्रकाशमें लानेका सदैव प्रयत्न किया। उन्हींके निर्देशसे प्रस्तुत पंक्तियोंके लेखकने "महाकवि जिनहर्ष एक अनुशीलन" शीर्षकसे शोधप्रबन्ध प्रस्तुत करके राजस्थान विश्व विद्यालयसे पी-एच. डी. की उपाधि प्राप्त की।

वस्तुतः महाकवि जिनहर्ष इतने व्यापक और विशाल हैं कि उन पर अनेक दृष्टियोंसे विचारविमर्श किया जा सकता है।

जिनराजसूरि-कृति-कुसुमांजलि

प्रस्तुत पुस्तकका सम्पादन श्री अगरचन्दजी नाहटा और प्रकाशन सादूल राजस्थानी रिसर्च इन्स्टीट्यूट बीकानेरने संवत् २०१७ में किया। सम्पादकने इस कृतिको श्री बुद्धिमुनिजी महाराजके करकमलोंमें श्रद्धा एवं भक्तिपूर्वक समर्पित किया है। प्रस्तुत पुस्तक ऐतिहासिकता, भक्तिभावना, भाषा और साहित्यकी दृष्टिसे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। सम्पादक महोदयने पुस्तकारम्भमें श्री जिनराजसूरिका प्रमाणपुष्ट जीवनचरित और उनकी साहित्यसेवापर प्रकाश डाला है। पुस्तकमें कतिपय चित्र भी दिये गये हैं। कृतिका साहित्यिक अध्ययन प्रस्तुत करके एक अभावकी पूर्ति की गयी है। पुस्तकान्तमें दिये गये राजस्थानी शब्दकोश और श्री जिनराज सूरि प्रयुक्त देशी सूचीसे उसकी उपयोगिता बढ़ गयी है।

धर्मवर्द्धनग्रन्थावली

प्रस्तुत पुस्तकका सम्पादन श्री अगरचन्द नाहटा और प्रकाशन सादूल राजस्थानी रिसर्च इन्स्टीट्यूटने संवत् २०१७ में किया है। सम्पादकने इसका समर्पण राजस्थानीके विद्वान् श्री नरोत्तमदासजी स्वामीको किया है। पुस्तकारम्भमें कवि धर्मवर्द्धनकी हस्तलिपिका चित्रण और पुस्तकान्तमें धर्मवर्द्धन ग्रन्थावलीमें प्रयुक्त देशियोंकी सूची दी गयी है। पुस्तकमें कविवर धर्मवर्द्धनजीकी प्रामाणिक जीवनी और उनकी गुरुपरम्पराका परिचय दिया गया है। कविके स्मारक स्तूपका चित्र भी कृतिके आरम्भमें रखा गया है। कविवरकी साहित्यसाधनाका अति सुन्दर और सन्तुलित मूल्यांकन प्रसिद्ध विद्वान् डॉ. मनोहर शर्माकी सबल लेखनीसे हुआ है, जो स्तुत्य है। इस संग्रहकी एक मात्र प्रति बीकानेरके ज्ञान भंडारमें है।

सीताराम चौपाई

इस पुस्तकके सम्पादक श्री अगरचन्द नाहटा और भँवरलाल नाहटा हैं। इसका प्रकाशन सादूल राजस्थानी रिसर्च इन्स्टी-ट्यूटसे संवत् २०१९ में हुआ है।

महोपाध्याय कविवर समयसुन्दर १७वीं सदीके महान् विद्वान् और कवि थे। आपका साहित्य बहुत विशाल है। आपने गद्य और पद्य दोनों ही विधाओंमें साहित्यसर्जना की थी। आपकी पद्य रचनाओंमें सीताराम चौपाई सबसे बड़ी रचना है। इसका परिमाण ३७०० श्लोक परिमित है। जैन परम्परा की रामकथाको इस काव्यमें गुंफित किया गया है।

प्राचीन काव्योंकी रूप परम्परा

इस पुस्तकका प्रकाशन भारतीय विद्या मन्दिर शोध प्रतिष्ठान बीकानेरने सन् १९६२ में किया। श्री अगरचन्द नाहटा द्वारा लिखित प्राचीन काव्योंकी रूप परम्परा पुस्तक उनके गत ३१ वर्षोंमें लिखे गये प्राचीन भाषा-काव्योंकी रूप परम्पराके सम्बन्धमें लेखोंका संग्रह है जो समय-समय पर नागरी प्रचारिणी पत्रिका, हिन्दी अनुशीलन, सम्मेलन पत्रिका, भारतीय साहित्य, कल्पना प्रभृतिमें प्रकाशित होते रहे हैं। इस पुस्तकमें चर्चित काव्य रूपोंमेंसे अधिकांशकी परम्परा अपभ्रंशकालसे निरन्तर चली आ रही है।

सभा श्रृंगार

इस पुस्तकके संकलनकर्ता तथा सम्पादक श्री अगरचन्दजी नाहटा हैं। इसका प्रकाशन नागरी प्रचारिणी सभासे संवत् २०१९ में हुआ।

सभा श्रृंगार वर्णक साहित्यकी कोटिमें आता है। इस साहित्यका सम्बन्ध किसी वस्तुके उस परिनिष्ठित वर्णनसे होता है जिसे सार्वजनिक रीतिसे आदर्श वर्णनके रूपमें स्वीकार कर लिया जाता था। इस प्रकारके वर्णनमें कवि और कलाकार दोनों ही सहायक होते हैं एवं श्रोता तथा वक्ता दोनोंको इस प्रकारके वर्णनोंमें वस्तुका ज्वलन्त चित्र प्राप्त होता है। इसलिये श्री नाहटा सम्पादित सभा श्रृंगार पुस्तकमें उपयोगिता असंदिग्ध है।

पंच भावनादि सज्झाय सार्थ

प्रस्तुत पुस्तक श्री अगरचन्द नाहटाके सम्पादकत्वमें श्री भंवरलाल नाहटाने सम्पादित की है। इसके कर्ता श्रीमद्देवचन्द हैं। पुस्तकमें पंच भावनाओंका पद्यात्मक वर्णन है। परिशिष्टमें तपस्वी मुनियोंकी जीवनियाँ दी गयी हैं।

रत्न परीक्षा

यह पुस्तक अभय जैन ग्रन्थमाला बीकानेरसे नाहटा अगरचन्द भंवरलालके सम्पादकत्वमें प्रकाशित हुई है। रत्नपरीक्षा सम्बन्धी इनीगिनी पुस्तकोंमें इस पुस्तकका महत्त्वपूर्ण स्थान है। पुस्तकके भूमिका भागमें विद्वान् सम्पादकोंने रत्न परीक्षा सम्बन्धी हिन्दी साहित्यके ग्रन्थोंका सविवरण उल्लेख किया है। इसमें चोटीके विद्वानोंके लेख भी संग्रहीत हैं। परिशिष्टमें नवरत्नपरीक्षा, मोहरांरीपरीक्षा इत्यादि देकर पुस्तकको और भी उपयोगी बनाया गया है।

दादा श्री जिनकुशलसूरि

श्री अगरचन्द नाहटा एवं भंवरलाल नाहटाने इस पुस्तकको लिखकर द्वितीयावृत्ति १९६३ में प्रकाशित की है। इसकी भूमिका मुनि जिनविजयजीने लिखी है। पुस्तकमें दादाजीकी प्रमाणपुष्ट जीवनी प्रस्तुत की गयी है। पुस्तकान्तमें उनके ग्रन्थोंकी रचना और शिष्यपरम्परापर प्रकाश डाला गया है। पुस्तकान्तमें सूरिजी रचित कतिपय प्राकृत संस्कृत स्तवन भी दिये गये हैं।

भक्त-माल सटीक

इस पुस्तकका सम्पादन श्री अगरचन्दजी नाहटाने किया है। राघवदासकी यह मूल रचना है और चतुरदासने इसकी टीका लिखी थी। यद्यपि नाभादासजीकी भक्तमालके अनुकरणमें ही राघवदासने अपनी भक्तमाल बनायी, फिर भी वह तद्वत् नहीं है। यह उससे काफी बड़ी है और इसमें अनेक सन्त एवं भक्तजनोंका उल्लेख है जिनका उल्लेख नाभादासजीने नहीं किया है। नाभादासजीने जहाँ केवल वैष्णव भक्तोंको स्थान दिया है वहाँ श्रीराघवदासने, जो कि स्वयं दादूपन्थी थे, अपने पंथके सन्तोंके अतिरिक्त रामानुज, विष्णुस्वामी, कबीर, नानक आदि अन्य मतावलम्बियोंका भी विवरण दिया है।

राजस्थानी साहित्यकी गौरवपूर्ण परम्परा

यह पुस्तक श्रीअगरचन्दजी नाहटा द्वारा कलकत्ता विश्वविद्यालयकी रघुनाथप्रसाद नोपानी स्मृति व्याख्यानमालाके अन्तर्गत दिये व्याख्यानोंका संकलन है। इन व्याख्यानोंमें उन्होंने राजस्थानी साहित्यकी गौरवपूर्ण परम्परापर प्रकाश डालते हुए उसके विकासको दिखाया है। उन्होंने यह भी बताया है कि राजस्थानमें संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंशमें कौन-कौनसे गौरवग्रन्थ रचे गये। उन्होंने मध्यकालीन राजस्थानी साहित्यपर भी सारगर्भित विवेचन प्रस्तुत किया है। राजस्थानी लोक साहित्यपर भी उनका विचार मन्थन हुआ है।

मणिधारी श्री जिनचन्द्रसूरि

यह पुस्तक नाहटाद्वय द्वारा मणिधारी श्रीजिनचन्द्र सूरिके अष्टम शताब्दी महोत्सवके उपलक्ष्यमें सूरिजीकी जीवनीके रूपमें प्रकाशित की गयी है। इसमें मणिधारीजीकी अत्यन्त प्रभावक पाण्डित्यपूर्ण और परहित-काररत व्यक्तित्वको उभारा गया है। अन्तमें सूरिजीपर बने अष्टक स्तवन भी दिये गये हैं। सबसे अन्तमें 'सार्थक व्यवस्था शिक्षा कुलकम्' दिया गया है।

अष्टप्रवचनमाता सज्झाय सार्थ

सम्पादक श्री अगरचन्द नाहटाने श्री देवचन्द्रकृत अष्टप्रवचनमाता सज्झायोंको इस पुस्तकमें संग्रहीत किया है। उन्होंने सज्झायोंका हिन्दीमें अर्थ देकर पुस्तकको और भी श्रावकोपयोगी बना दिया है।

ऐतिहासिक काव्यसंग्रह

प्रस्तुत काव्यसंग्रहके सम्पादक श्री अगरचन्दजी नाहटा हैं। इसमें स्था० जैन इतिहासके निर्माणमें उपयोगी महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक काव्योंका संकलन किया गया है। इसका प्रकाशन मुनि श्री हजारीमल स्मृति प्रकाशन ब्यावरने किया है। इस संग्रहकी अधिकांश रचनाएँ अप्रकाशित हैं। इसमें अनेक विधाओंका समावेश हुआ है। उनकी संख्या लगभग २१ से अधिक है।

शिक्षासागर

यह राजस्थानके मुसलमान कवि जानका लिखा हुआ उपदेशप्रधान नीतिकाव्य है। सम्पादक श्री अगरचन्द नाहटाने अपने प्राक्कथनमें बल दिया है कि इस कवि पर खूब अनुसंधान कार्य होना चाहिए। इसका प्रकाशन राजस्थान साहित्य समिति विसाऊसे हुआ है।

बी बी बांदीका झगड़ा

कवियित्री ताजकी लिखी हुई इस पुस्तिकाका सम्पादन श्री अगरचन्द नाहटाने और प्रकाशन राजस्थान साहित्य समिति बिसाऊकी ओरसे हुआ है। इस रचनाका उद्देश्य स्त्रीसमाजमें प्रचलित कहावतोंके प्रयोगका रहा है। प्रस्तुत काव्यमें कहीं-कहीं आध्यात्मिक सन्देश भी व्यंजित होता है। कवयित्री ताजकी इस विविध रचनाकी केवल दो ही प्रतियाँ प्राप्त हैं। १. अभयराज ग्रन्थ भण्डारमें २. अनूप संस्कृत लाइब्रेरी में।

रुक्मणी मंगल

इसका कवि पदमा तेली था। उसने प्राचीन राजस्थानीमें इस पद्यपुस्तककी रचना की। बिसाऊकी राजस्थान साहित्य समितिने श्री अगरचन्दजी नाहटाके सम्पादकत्वमें इस पुस्तकका प्रकाशन किया है। पुस्तक भाषा और भावोंकी दृष्टिसे अत्यन्त मनोहर है। रुक्मणी मंगल राजस्थानीका अत्यन्त लोकप्रिय व प्रसिद्ध

भक्ति काव्य है। इसके बड़े-बड़े अभिवर्द्धित संस्करण कई उपलब्ध हैं पर मूल लघुकाव्यका एक मात्र संग्रह इसकी प्राचीनतम प्रतिसे यह सम्पादन किया गया है।

श्री नाहटाजीके सम्पादकत्वमें निम्नांकित पुस्तकें छप रही हैं—

१. मरु-गूर्जर जैनकवि और उनकी रचनाएँ।

२. दम्पति विनोद (इन्स्टीट्यूटसे कई वर्ष पूर्व मुद्रित पर प्रकाशित अब होगी।)

३. प्राचीन गुर्जर काव्य संचय (ला० द० मन० वि० स० स०)

निम्नांकित पुस्तकें श्रद्धेय श्री अगरचन्दजी नाहटाके सत्परामर्शसे उनके साहित्यप्रेमी विद्वान् भ्रातृ-पुत्र श्री भँवरलालजी नाहटाके सम्पादकत्वमें प्रकाशित हुई हैं। पुस्तकोंकी भूमिकाएँ अत्यन्त सारगर्भित विद्वत्तापूर्ण और प्रमाणपुष्ट हैं। कतिपय भूमिकाएँ तो अपनेआपमें एक शोधपूर्ण ग्रन्थका रूप ले लेती हैं।

पुस्तक नामावली

१. सहजानन्द-संकीर्त्तन। २. बानगी। ३. जीवदया प्रकरण-काव्यत्रयी। ४. विनयचन्द्र-कृति-कुसुमांजलि। ५. पद्मिनीचरित्रं चौपई। ६. युगप्रधान श्री जिनचन्द्रसूरिचरितम्। ७. समयसुन्दर रास पंचक। ८. हम्मीरायण। ९. राजगृह। १०. सती मृगावती।

श्री नाहटाजीका कृतित्व पुस्तकों तक ही सीमित नहीं है वे गत चालीस वर्षोंसे विभिन्न पत्र पत्रिकाओंमें निरन्तर लिखते आ रहे हैं। उनके लगभग तीन हजार सारगर्भित लेख पत्र-पत्रिकाओंमें प्रकाशित हो चुके हैं। वे प्रतिमास लगभग साठ पत्र-पत्रिकाओंमें लिखते रहे हैं। उनके लेखोंकी अपूर्ण सूची संवत् २०१० में प्रकाशित हुई थी, उस सूचीमें उनके लेखोंकी संख्या १०८४ बताई गयी है। लेकिन आज नाहटाजीके लेखोंकी संख्या ३००० से ऊपर हो गयी है। वे ज्यों-ज्यों वृद्ध होते जाते हैं उनका विवेक-चिन्तन प्रौढ़ और लेखनशक्ति अधिक सक्रिय और सबल होती जाती है।

श्री नाहटाजीके लेखोंको विषय-वर्गीकरणकी दृष्टिसे हम निम्नांकित शीर्षक एवं उपशीर्षक दे सकते हैं—

विभाग १ : सन्दर्भ, इतिहास, पुरातत्त्व, कला

१. सन्दर्भ—ये लेख नागरी प्रचारिणी पत्रिका, हिन्दुस्तानी, ज्ञानोदय, जैनधर्मप्रकाश प्रभृति पत्रिकाओंमें प्रकाशित हुए हैं। इनका वर्ण्य विषय विविध है। अधिकांश लेख भाषा वैज्ञानिक और दार्शनिक विषयोंसे सम्बद्ध हैं।

२. इतिहास—ये लेख महावीर सन्देश, जैन सिद्धान्त भास्कर, अनेकान्त, राजस्थान भारती प्रभृति पत्रिकाओंमें प्रकाशित हुए हैं। इनमें राजवंशोंके इतिहास, जैन इतिहास, प्राचीनतम सामाजिक एवं सांस्कृतिक स्थितिसे सम्बद्ध लेख अत्यन्त प्रसिद्ध हैं।

३. पुरातत्त्व नगर, तीर्थ, मन्दिर, प्रतिमा लेख आदि—नाहटाजीने राजपूतानेकी बौद्ध वस्तुएँ, चित्र-कला जैनमूर्तिकला, आबू, चित्तौड़ आदिपर शतशः लेख लिखे हैं। इनका प्रकाशन धर्मदूत, शोधपत्रिका, कल्पना, लोक वाणी, जैनसत्यप्रकाश प्रभृति पत्रिकाओंमें हुआ है।

४. जैन सम्प्रदाय तथा गच्छ—नाहटाजीने जैनधर्म सम्प्रदाय और गच्छोंपर अनेक प्रकारसे प्रकाश डाला है। यति समाजकी उन्नतिके लिए जहां उन्होंने नये उपाय सुझाये हैं वहां उन्होंने प्राचीन जैनधर्मके गुण भी गाये हैं। उन्होंने अपने लेखोंमें अनेक प्रकारके छोटे-मोटे साम्प्रदायिक प्रश्न भी उठाये हैं और गच्छ

विद्वानोंसे समाधान चाहा है। उन्होंने अनेक गच्छोंकी पट्टावलियाँ भी प्रस्तुत की हैं और संशोधनकी आवश्यकतापर बल दिया है। इस प्रकारके लेख प्राय: जैनध्वज, श्रमण, जैनसत्यप्रकाश, वीरवाणी और महावीरसन्देश जैसी पत्रिकाओंमें छपते रहे हैं।

५. जैन जातियाँ और वंश—इस उपशीर्षकमें श्री नाहटाजीने जैनधर्म और जातिवाद ओसवंश स्थापना जैसे लेखोंको लिखा है। इन लेखोंमें उनका पुरातत्त्वविद् और इतिहासज्ञका स्वरूप सामने आता है। उनके ये लेख अनेकान्त, जैनभारती, ओसवाल नवयुवक जैसे पत्रोंमें प्रकाशित होते रहे हैं।

६. जैन महापुरुष—नाहटाजीने जैन आचार्यों तथा विद्वानोंकी प्रमाणपुष्ट जीवनियाँ लिखकर उन्हें विद्वत् समाजके सम्मुख प्रस्तुत किया है। जैन समाजमें पूजित श्री कृष्ण, वत्सराज उदयन, सम्राट विक्रम, आचार्य हरिभद्रसूरि तथा सती मृगावती, राजीमति आदिपर प्रकाश डालकर उन्होंने उनके आदर्श स्वरूपको जिज्ञासुओंके सम्मुख प्रस्तुत किया है। उसी उपशीर्षकमें उन्होंने युगप्रधान जिनचन्द्रसूरि और सम्राट् अकबर जैसे ऐतिहासिक लेख भी लिखे हैं।

७. जैन महापुरुष (श्रावक)—इस शीर्षकमें श्री नाहटाजीने अनेक प्रश्न उठाये। जैसे, क्या पैथड़साह पल्लीवाल थे, क्या भामाशाह गौड़ थे। श्री मोहनलाल दलीचन्द देसाई और श्री पूर्णचन्दजी नाहर जैसे विद्यारत्नके प्रति उन्होंने अपनी श्रद्धा संस्मरणके माध्यमसे इसी शीर्षकमें व्यक्त की है। पण्डितरत्न सुखलालजी और पण्डित भगवतजीपर तो श्री नाहटाजीने लिखा ही, उन्होंने जैनेतर महापुरुषों तथा विद्वानोंपर भी मुक्तहस्त लिखा है। चूँकि श्री नाहटाजीका जीवनरस आध्यात्मिकरस है। इसलिए उन्हें महर्षि रमण, अरविन्द और यतीजीने बहुत प्रभावित किया है। उन्होंने अपनी इस भावनाको महर्षि रमणका आत्मज्ञान शीर्षक लेखमें व्यंजित किया है। इस प्रकारके नाहटाजीके लेख राजस्थान क्षितिज, जैन जगत्, वीरवाणी, प्रजामित्र जैसे पत्रोंमें प्रकाशित होते रहे हैं।

विभाग २ : साहित्य

श्री नाहटाजी शोधमनीषी हैं। वे शोधरसके आस्वादक हैं और शोध और साहित्यका पुरातन सम्बन्ध है। साहित्यकी अधुनातन नवीन विधाओंसे नाहटाजीका अनुराग नहीं है। वे मध्यकालीन, भक्त कवियोंकी कविताओंके अध्ययन, मनन और अन्वेषणमें ही दत्तचित्त रहते हैं। चूँकि साहित्यमें शोधका क्षेत्र प्राय: पुरातनसे सम्बद्ध है, इसलिए नाहटाजी शोधक्षेत्रमें संलग्न रहते हैं, उन्होंने अपने अनुभवके बलपर हस्तलिखित ग्रन्थोंकी समस्याओंसे सम्बद्ध अनेक लेख लिखे हैं। उन्होंने हजारों जैन ज्ञान भण्डारोंको देखा, पढ़ा और सुव्यवस्थित एवं सूचीवद्ध किया है। लगभग एक लाख पाण्डुलिपियोंकी वे सूची बना चुके हैं। नाहटाजीने ज्ञान भण्डारोंके अपने अनुभवोंको अनेक लेखोंके माध्यमसे प्रकाशित किया है।

श्री नाहटाजीने साहित्यका इतिहास और साहित्यकारोंको भी अपना निबंध विषय बनाया है।

उन्होंने जैन और जैनेतर साहित्यपर समान भावसे अपनी कलम चलायी है। इस प्रकारके निबंधोंमें उन्होंने पृथ्वीराजरासोकी प्रामाणिकता आदिपर तथा कल्पसूत्रपर विशेष प्रकाश डाला है। उन्होंने संस्कृत साहित्य और साहित्यकारोंपर भी पर्याप्त निबंध लिखे हैं। इसी प्रकार प्राकृत साहित्य और साहित्यकार, अपभ्रंश साहित्य और स हित्यकार, राजस्थानी साहित्य और साहित्यकार आपके प्रिय विषय रहे हैं। आपने आलोचना साहित्यको भी अच्छी देन दी है। साहित्यिक संस्थाओंपर भी आपने अनेक निबंध लिखे हैं।

इस प्रकार आपके साहित्य विभागके निबंधोंकी संख्या सहस्रात्मकसे भी अधिक हो जाती है। आपके ये निबंध साहित्यसंदेश, जैनजगत्, जैनध्वज जैसी बीसियों पत्रिकाओंमें छपते रहे हैं।

विभाग ३ : जैन-धर्म और जैन-समाज

इस शीर्षकमें आपने जैनधर्म और समाज पर सैकड़ों निबंध लिखे हैं। ऐसे निबंधोंमें आपने धार्मिक मान्यताओं और परम्परित विवेकानुमोदित पद्धतियोंका समर्थन किया है। आपका स्वर नैतिकता और सच्चरित्रता-का स्वर है और उसीके व्यापक प्रसार-प्रचारके लिए आप लिखते रहते हैं। आपने जिज्ञासा भावसे अनेक प्रश्न प्रकाशित करवाये थे जिनका सुन्दर समाधान कुँवर आणंदजीने किया था। ये प्रश्नोत्तर जैनधर्मप्रकाशमें प्रकाशित हुए हैं। ऐसे निबंधोंकी संख्या भी हजारसे ऊपर है।

विभाग ४ : अध्यात्म-आचार-शिक्षा-अर्थशास्त्र

श्री नाहटाजीका जीवन अध्यात्मोन्मुखी है। वे स्वयं पापप्रवृत्तियोंसे बचते हैं और दूसरोंको बचानेके लिए लेख लिखकर उपाय बताते हैं। ऐसे निबंधोंमें उनका एक ही प्रबल स्वर है और वह है आत्मविस्तार-आत्मोन्नतिका स्वर। उनकी शिक्षा है कि आवश्यकताओंको कम करो; कहना नहीं-करना सीखो। और ये सब उन्होंने विभिन्न पत्रिकाओंमें छपे निबंधोंके माध्यमसे बताया है। उनके सैकड़ों ऐसे लेख कल्याण, जीवन साहित्य, अखंड ज्योति प्रभृति पत्र-पत्रिकाओंमें छपते रहे हैं।

श्री अगरचन्दजी नाहटा सरस्वती और लक्ष्मीके वरद पुत्र हैं। उन्होंने माँ भारतीका उद्धार तो किया ही है साथमें अनेक ग्रंथरत्नोंसे उसका कोष भी भरा है। कलात्मक वस्तुओंके संग्रहसे उन्होंने जिस कला भवनको जन्म दिया है; उसमें आज लाखों रुपयोंके मूल्यकी दुर्लभ वस्तुएँ संगृहीत हैं। श्री नाहटाजीके कारण बीकानेर शोध छात्रोंका तीर्थस्थल बन गया है। श्री नाहटाजीमें उच्चकोटिकी मानवताका विकास हुआ है। वे परदुःखकातर, विश्वसनीय और निष्कपट सखा एवं मार्गदर्शक हैं। उनके जीवनका प्रमुखरस अध्यात्म है और वे इसीकी साधनामें दत्तचित्त हैं।

श्री नाहटाजी एकरूप होकर भी अनेकरूप हैं। वे विद्वानोंके वरेण्य, दीनदुखियोंके शरण्य और जिज्ञासुओंके ज्ञानार्णव हैं। वे सफल गृहस्थ, अच्छे पिता, कर्तव्यपरायण पति, स्नेहशील नाना और दादा हैं। व्यापारियोंकी दृष्टिमें वे 'दक्ष व्यापारी' और समाजसेवकोंमें समाज हितकारी हैं। धर्मप्राण व्यक्तियोंके वे धर्मसिन्धु और ज्ञानपिपासुओंके लिए वे अमृतबिन्दु हैं। अगर-तगर और चन्द्र रश्मियोंकी शीतलता, आत्मीयता तथा सुजनतासे कौन भ्रान्त हुआ है; उसी प्रकार सुगन्धित एवं परम शीतल व्यक्तित्व श्री अगर-चन्दजी नाहटासे किसका मन भरा है! किसीका भी नहीं। श्री नाहटाजीका व्यक्तित्व और कृतित्व अत्यन्त व्यापक आकाशके समान है: आकाशमें हर क्षमताका जीव अपने सामर्थ्यके अनुसार भरपूर उड़ तो सकता है; लेकिन उसका ओर-छोर नहीं पा सकता; ठीक उसी प्रकार श्री नाहटाके चरित पर यथाशक्ति लिखना तो संभव है; पर उसकी सम्पूर्णताकी सीमाका स्पर्श करना अत्यन्त कठिन है।

यावतः स्खलनं क्वापि भवत्येव प्रमादतः।
हसन्ति दुर्जनास्तत्र समादधति सज्जनाः॥

नाहटा-वंश-प्रशस्तिः

रचना-ज्येष्ठ शुक्ला ११, सम्वत् २०२३

सरस्वतीं नमस्कृत्य गुरुदेवप्रसादतः। वर्णयामि समासेन स्वीयां वंशप्रशस्तिकाम् ॥ १ ॥
अस्त्युपकेशवंशेऽस्मिन् नाहटा-नाम-गोत्रकः। विद्या-वैभव-सम्पन्नो राजते वैक्रमे पुरे ॥ २ ॥
पूते खरतरे गच्छे क्षत्रियान् परमारजान्। जिनादिर्बोधयामास दत्तान्तो मुनिसत्तमः ॥ ३ ॥
नाहटा-'जालसी'-वंशे अर्हद्धर्मानुवर्तकः। तस्मिन्ग्मानमल्लस्य ताराचन्द्रः सुतोऽभवत् ॥ ४ ॥
तत्सुतो जैतरूपाख्यो ग्राम-डांडूसर-स्थितः। राज्ञा सम्मानितश्चापि ग्रामलोकेन पूजितः ॥ ५ ॥
चत्वारस्तत्सुता आसन् धर्म-कर्म-परायणाः। ऊदी-नाम्नी सुता जाता नालग्रामे विवाहिता ॥ ६ ॥
सुश्रेष्ठ्युदयचन्द्राख्यो राजरूपो द्वितीयकः। देवचन्द्रस्तृतीयश्च बुधमल्लश्चतुर्थकः ॥ ७ ॥
ग्वालपाड़ा-नगर्यां च, गत्वा ह्युदयसंज्ञकः। व्यापारं स्थापयामास तत्र वाणिज्यवृत्तिकः ॥ ८ ॥
प्रवासं च विधायैष वर्ष-द्वाविंशपूर्वकम्। अर्थलाभं यशोलाभं कृतवान् निजभ्रातृयुक् ॥ ९ ॥
तस्याभवन् त्रयः पुत्राः राजरूपस्य धीनिधेः। लक्ष्मीचन्द्रस्तथा दान-मल्लः शंकरदानकः ॥१०॥
प्रथमोऽस्थान्निजे गेहे द्वितीयोदयचन्द्रकः। तृतीयो देवचन्द्रस्य गृहेऽभूच्च सुदत्तकः ॥११॥
रु[११]द्राङ्के[९]न्दु[१]शुभे वर्षे लक्ष्मीचन्द्रो ह्यजायत। द्विषष्टिवैक्रमे स्वर्गं चतस्रश्च गताः सुताः ॥१२॥
'पन्नाधाई' वरावरजी कालीबाईति चाभिधा। गोग्रासढिगलान् या वै विततार सहस्रशः ॥१३॥

श‍ृङ्गाराङ्केन्दु (१९१६) सद्वर्षे जातो वै दानमल्लकः।
उदारो धार्मिकश्चैव ख्यातनामा सुकीर्त्तितः ॥ १४ ॥
खनिधिद्वयचन्द्रे (१९९०) च श्रावणे प्रतिपत्तिथौ।
क्षमाप्य सकलान् भूतान् दिवं यातः समाधिना ॥ १५ ॥

गोमसी-मोतीलालाख्यौ देवचन्द्रस्य पुत्रकौ। स्वर्यातौ, गृहीतो वै शंकरदानो दत्तकः ॥१६॥
श्रेष्ठिशंकरदानस्य गुणानां बृहतीं ततिम्। वर्णयितुं न शक्तोऽहं धीर-वीर-मनस्विनः ॥१७॥
शून्यनेत्राङ्कचन्द्राब्दे(१९३०)जातः शंकरदानकः। आजानुबाहु-पुण्यात्मा, अङ्गुष्ठरसवल्लिकः ॥१८॥
पुनीता चुन्नीबाई च गृहश्री रत्नकुक्षिका। बोथरा-खेतसी-पुत्री सौख्यसम्पत्प्रवर्धिनी ॥१९॥
श्रद्धालुर्धार्मिकः श्रेष्ठी सौम्यो दीर्घविचारकः। परोपकारलीनात्मा ह्यप्रमादी विशेषतः ॥२०॥
दक्षो व्यापारवाणिज्ये नाडीज्ञानविशारदः। ज्योतिर्भैषज्यशास्त्रज्ञः साधुभक्तिपरायणः ॥२१॥
श्रीकृपाचन्द्रसूरेर्वै खरतरनमोरवेः। अभयजैनग्रन्थानां माला सच्छिक्षया कृता ॥२२॥
दानमल्लस्य गेहे च चातुर्मास्ये निधापिता। सद्धर्मज्ञानवृद्ध्यै वै स्वापत्येषु विशेषतः ॥२३॥
एकोनद्विसहस्राब्दे माघशुक्ले चतुर्दशे। त्यक्त्वा चतुर्विधाहारं स्वर्यातः शुभभावतः ॥२४॥
श्रेष्ठि-शंकरदानस्य पञ्च पुत्राः सदाशयाः। पुत्रिके च प्रजाते द्वे स्वर्णा-मग्नाभिधानिके ॥२५॥
ज्येष्ठो भैरवदानोऽभूत् प्रशान्तो नरसत्तमः। देवनिघ्नो गुरोर्भक्तः सर्वलोकस्य सेवकः ॥२६॥

युग्मबाणमिते (१९५२) वर्षे जन्म यस्य महामतेः।
मण्डलादि-समाध्यक्ष-भारो व्यूढश्च तेन वै ॥२७॥
मार्ग (शीर्ष) कृष्णतृतीयायां बाणेन्दुविंशतौ तथा।
प्रस्थानं कृतवान् स्वर्गं भैरुदानः श्रेष्ठिवरः ॥२८॥

शान्तः स्वभयराजश्च विद्याशीलो गुणाग्रणीः ।
शिक्षा-समाज-सेवायां व्यापृतश्च दिवानिशम् ॥२९॥
बाणबाणाङ्कचन्द्राब्दे (१९५५) जन्म यस्य शुभे क्षणे ।
मधुकृष्णस्य षष्ठयां वै भार्या गङ्गा बभूव च ॥३०॥
सप्तसप्ततिवैशाखे (१९७७) स्वस्तिथिः कृष्णसप्तमी ।
जाता स्वभयराजस्य चम्पा नाम्नी सुपुत्रिका ॥३१॥
तृतीयः शुभराजश्च साहसिक-शिरोमणिः । व्यापारदक्षो वर्चस्वी प्रमादमुक्तः कर्मठः ॥३२॥
वसुबाणनिधौ चन्द्रे (१९५८) मासे मार्गसुशीर्षके ।
शुक्लषष्ठ्यां सुवेलायां जन्म यस्य महामतेः ॥३३॥
युगप्रधान-योगीन्द्र-सहजानन्दगुरोः कृपा । आत्मज्ञानरसास्वादी भक्तिशीलो विशेषतः ॥३४॥
पञ्चषष्टितमेऽब्द आश्विनकृष्णे त्रयोदशे । जातो मघासुनक्षत्रे चतुर्थो मेघराजकः ॥३५॥
चौरैरपहृता यस्य शैशवे स्वर्ण-शृंखला । साहसेनोद्धृता येन संस्तुतः कोट्टपालकैः ॥३६॥
ऋषि-वसु-निधौ चन्द्रे दानमल्लस्य दत्तकः । परोपकार-प्रेमी च नानागुणगणान्वितः ॥३७॥
पञ्चमोऽगरचन्द्रो वै धर्मिष्ठो ज्ञानवान् महान् । अध्यात्मरससिक्तो यः क्रियाशीलः सतांवरः ॥३८॥
ऋषि-ऋत्वङ्क-चन्द्राब्दे (१९६७) चतुर्थ्यां चैत्रकृष्णके ।
अग्रचन्द्रस्य संजातो बीकानेरे शुभोद्भवः ॥३९॥
बहुज्ञो ज्ञानपूतश्च लेखने निशि वासरे । पुरातत्त्वेतिवृत्तस्य व्यापृतः शोधने तथा ॥४०॥
हिन्द्या च राजस्थान्या च नाना ग्रन्था गवेषिताः ।
निबन्धा लिखिता नैकाः सूचीपत्रं विशेषतः ॥४१॥
जिनदत्तप्रभोरष्ट-शताब्द्युत्सव-संगमे । जैनेतिहासरत्नाख्यं विरुद प्राप्तवान् महत् ॥४२॥
अल्यादिगंजेऽखिलविश्वजैनसंस्थागतैर्विज्ञजनैः प्रदत्तः ।
यस्मा उपाधिर्वरणीय एव विद्यादिशोभी किल वारिध्यन्तः ॥४३॥
आरानगर्यां गुणिवर्यमध्ये सम्मानितो यः किल राज्यपालैः ।
सिद्धान्तयुक्ते भवने पुराणे सिद्धान्त-प्राचार्य-पदेन मान्यः ॥४४॥
ग्रन्थाः सम्पादिता येन भूमिकालोचनायुताः । अप्रमत्तः सदा विज्ञो ह्यश्रान्तः शास्त्रशीलने ॥४५॥
श्रीविक्रमपुराधीश-शार्दूलसिंह-भूमिपैः । स्थापितं शोधसंस्थानं राजस्थान्यां यशस्करम् ॥४६॥
निदेशकपदं तत्र प्राप्य मान्यं प्रशस्तकम् । व्याख्याता लिखिताश्चैव ग्रन्थास्तेन महर्द्धिकाः ॥४७॥
श्रेष्ठिनो भैरुदानस्य रत्नत्रयीव सुतत्रयी । भंवर-हर्षचन्द्रश्च विमलचन्द्रकस्तथा ॥४८॥
सप्त सुपुत्रिका जाता पेपा-इचर्ज-संपदः । छोटा-बाधू पुन पांची कमलाबाईति सप्तमी ॥ ४९ ॥
वसु-दर्शनाङ्के चन्द्रे शुभे आश्विनमासके । अश्लेषायुतद्वादश्यां जन्म मंगलवासरे ॥ ५० ॥
श्रेष्ठिनो लक्ष्मिचन्द्रस्य दत्तको भंवरलालकः । भाषा-लिपि-पुरातत्त्व-कथा-साहित्य-लेखकः ॥ ५१ ॥
अग्रचन्दस्य सहायः कार्ये शीघ्रगतिः पुनः । सम्पादिताः कृता ग्रन्था बहुला वै अनूदिताः ॥ ५२ ॥
पुत्रः पार्श्वकुमारोऽभूत् एम०काम० उपाधिकः । द्वितीयः पद्मचन्द्रश्च पौत्रः पौत्री तथैव च ॥ ५३ ॥
श्रीकान्ता-चन्द्रकान्तेति जाता च पुत्रिकाद्वयी ।
सुशील-सुनीलवर्गौ समीरश्च राजेशकः रूपकः ॥ ५४ ॥
सुतास्तुर्या हर्षचन्द्रो ललिताशोकदिलीपाः । प्रदीपाख्यश्चिरञ्जीवी विद्याध्ययनतत्परः ॥ ५५ ॥

श्रेष्ठिश्रीशुभराजस्य तनसुखोऽतिप्रियः। तनयः प्रकाशाभिधः पुत्रिके प्रतिभाप्रभे ॥ ५६ ॥
आत्मजौ मेघराजस्य केसरि वंशिलालकौ।
तनसुखः कनिष्ठश्च जाताः पञ्च सुताः शुभाः ॥ ५७ ॥
भँवरी-सूरज-पुष्पा-माणकदेवी च निर्मला।
नीलम-प्रेमा-ताराश्च, पौत्र्यः, पौत्रो देवेन्द्रकः ॥ ५८ ॥
अग्रचन्द्रमनस्विनः द्वौ सुतौ पञ्च पुत्रिकाः।
धर्मचन्द्रो विजयश्च ज्येष्ठी शान्तिश्च कन्यके ॥ ५९ ॥
किरणसन्तोषकान्ताश्च पौत्रो राजेन्द्रनामकः।
चिरं नन्दतु सद्वंशः नाहटा वटवृक्षवत् ॥ ६० ॥ पुनश्च
बुधमल्लस्य त्रिलोक-तेजकर्णाभिधौ सुतौ। रेखचन्द्रस्तुलारामस्तेजकर्णस्य द्वौ सुतौ ॥ ६१ ॥
बालचन्द्रो द्वितीयस्य छगनीनाथीति सुते। सत्पुत्रो बालचन्द्रस्य मनोहरः स्वर्गतः ॥ ६२ ॥
मोहिनी विदुषी पुत्री सद्वैराग्ये च दीक्षिता। पार्श्वे विचक्षणश्रियश्चन्द्रप्रभेति विश्रुता ॥ ६३ ॥
शब्दशास्त्र-कोश-काव्यजैनागमानां पारगा। शतध्यात्री बोधदात्री शीलालङ्कारभूपिता ॥ ६४ ॥
कीर्त्तिजुषो ग्रन्थालयः स्थापितो विश्वविश्रुतः।
लिखित-मुद्रित-ग्रन्थाः सन्ति यत्रार्धलक्षकाः ॥ ६५ ॥
मुद्रा-चित्र-पुरातत्त्व-मूर्त्तिसत्कः सुसंग्रहः। श्रेष्ठिशंकरदानस्य कलाभवने प्रदर्शितः ॥ ६६ ॥
तयोरेव शुभनाम्ना कृतः सुकृतकोषकः। सप्तक्षेत्रे सुपुण्यस्य वृद्ध्यर्थं सुमहाशयैः ॥ ६७ ॥
जलालसरसुग्रामे ग्रामे डाँडूसरे तथा। कारितौ सजलौ कूपौ परोपकृतिहेतवे ॥ ६८ ॥
ग्रामे जामसरे शुभे धर्मशालापि कारिता। शिक्षालयेभ्यश्च दत्तो, द्रव्यराशिर्मुहुर्मुहुः ॥ ६९ ॥
श्रीजिनकृपाचन्द्राख्य-सूरीन्द्रसदुपाश्रये। जीर्णोद्धाराद्विस्तीर्णं व्याख्यानगृहं कारितम् ॥ ७० ॥
शत्रुञ्जये जिनदत्त-ब्रह्मचर्याह्व आश्रमे। कारितो हॉलः पुण्यार्थं, राजगृहपावापुरे ॥ ७१ ॥
आदिनाथप्रभोश्चैत्ये, नाहटागापाटके। गर्भगृहे सुमनोज्ञे संगमर्मरः कारितः ॥ ७२ ॥
रजतमयी सदङ्गी पुनर्भक्त्यर्थं ढौकिता। नानापुण्यकार्येषु च दत्तमना अर्हनिशम् ॥ ७३ ॥
अमृतसर 'दा'वाट्या रूप्यकाणि सहस्रशः। अन्येष्वपि स्थानेषु च सत्कार्येषु वै दत्तवान् ॥ ७४ ॥
मणिसागरोपाध्यायान् सुगुरूनाकार्य पुनः। वर्षा-सुवासद्वयं च कारयामास भक्तितः ॥ ७५ ॥
तीर्थराजो विमलाद्रेरुपत्यकायां श्रद्धया। कारापिता धर्मशाला जैनभवनं विश्रुतम् ॥ ७६ ॥
श्रीजगजीवनाश्रमे कोलायते गृहद्वारं। निर्मितं भूरिदानेन भूरिकीर्त्तिश्चोपार्जिता ॥ ७७ ॥
पार्श्वनाथप्रभोश्चैत्ये आसामे ग्वालपाटके। कारिता श्रीमहासिंहकोष्टागारिकादि सह ॥ ७८ ॥
कृतमुद्धारप्रतिष्ठाञ्च ध्वस्तालयभूकम्पया। जयचन्द्रोपाध्यायेन दानमल्ले उपस्थिते ॥ ७९ ॥
ठाकुरवाडीसम्पत्तिर्वृत्तिर्मर्यादा च शुभा। कारिता शंकरदानेन स्वयं महत्परिश्रमैः ॥ ८० ॥
डाण्डूसर-जोधासर-महाजनादिपुराणां। कृत्वा हि राजपुत्राणां साहाय्यं संचित यशः ॥ ८१ ॥
कालिकातापुर्यां जैने भवने प्रचुरं धनं। दत्तं गवालपाड़े च औषधालयहेतवे ॥८२॥
अभयग्रन्थमालायां नानाग्रन्थाः प्रकाशिताः। अल्पमूल्या अमूल्याश्च सर्वोपकृति हेतवे ॥८३॥
अभयरत्नसारश्च पूजासंग्रहनामकः। सतीमृगावतीसंज्ञो विधवाकृत्यतुर्यकः ॥८४॥
जिनराजभक्त्यादर्शः स्नात्रपूजेति पुस्तिका। भक्तिकर्त्तव्यात्मसिद्धि-दर्शनीयमन्दिराह्वाः ॥८५॥
जिनचन्द्रसूरिवृत्तं बुधश्लाघ्यं सत्शोधकं। ऐतिह्यकाव्यसंग्रहो वृत्तं सोमसंघपतेः ॥८६॥

श्रीजिनकुशलसूरेर्मणिधारिणश्च पुनः । गुरोजिनदत्तसूरेश्चरितं वैदुषीयुतम् ॥८७॥
कुसुममाला तथैव ग्रन्थावलिः ज्ञानसारः । रत्नपरीक्षा रामाय (णं) काव्यत्रयी जीवदया ॥८८॥
बीकानेर-जैन-लेख-संग्रह-नामको ग्रन्थः । त्रिसहस्रलेखात्मको विस्तृतभूमिकायुतः ॥८९॥
गुरोः सहजानन्दस्य संकीर्त्तनं सदुत्तमं । एते स्वकीयसंस्थया ग्रन्थाः सर्वे प्रकाशिताः ॥९०॥
पुनरपि श्रीमद्देव-चन्द्रग्रन्थमाला शुभा । स्थापिता द्विशताब्द्यन्ते श्रीजिनभक्तिभावतः ॥९१॥
चौबीसी-बीसी-स्तवाश्च सार्थाः पंच सुभावनाः । अष्टक-प्रवचनाली सार्थः स्वाध्यायसंग्रहः ॥९२॥
चत्वारश्चरितग्रन्थाः कृता बुद्धिमुनिना । बुधेन लब्धि मुनिना काव्यानि च निर्मितानि ॥९३॥
अगरचन्द्रेण कृता बद्धा भँवरलालेन । शार्दूलसंस्थया ग्रन्थाः काले काले प्रकाशिताः ॥९४॥
सभाशृङ्गारउद्योतो जसवन्तादिर्भक्तमा(लकः) । राजगृह-कायमरासो फेरूग्रन्थावली च ॥९५॥
राजस्थाने हस्तलेखा खण्डद्वये प्रकाशिताः । निर्मिता च प्राचीना काव्यरूपपरम्परा ॥९६॥
जिनराजेण प्रणीता कुसुमाञ्जलिर्विश्रुता । धर्मवर्द्धन-जिनहर्ष, सीतारामचतुष्पदी ॥९७॥
कविसमयसुन्दर-कृताः रासाश्च पंचकाः । हम्मीरायण पद्मिनी-पीरदान ग्रन्थावली ॥९८॥
कालिकाता-शान्तिचैत्यसार्धशताब्दिकायां च । स्मारिकेतिवृत्तसत्का सम्पादिता ज्ञानप्रदा ॥९९॥

चन्द्रांकनिधिवसुचन्द्रे (१८९१) ग्वालपाडास्थानके ।
ब्रह्मपुत्रनदीतीरे सद्व्यापारश्च स्थापितः ॥१००॥

उदय-राजरूपकौ सुप्रसिद्धौ महीतले । पश्चाच्चापड़े स्थाने च राजरूपलक्ष्मीचन्द्रौ ॥१०१॥
वसुबाणांकचन्द्राब्दे (१९५८) विपणि स्थापितवन्तौ । पश्चादभयकरणागरचन्द्रनाम्ना पुनः ॥१०२॥
इन्द्रियदर्शननिधिचन्द्रे बोलपुरे वरे । शान्तिनिकेतने शुभे व्यापारालयः स्थापितः ॥१०३॥
एकोनसप्ततिवर्षे कालिकातापुरे वरे । राजरूप-भैरूदाननाम्ना व्यापारः स्थापितः ॥१०४॥
शून्यसिद्ध्यंके चन्द्रे च श्रीहट्टे स्थापना कृता । मेघागरचन्द्रनाम्ना शुभफलदायिनः ॥१०५॥
चन्द्रांके बाबूरहाटे अगरचन्द्र नाहटे । तिनाम्नाढतदारी च कृता कर्पटहट्टिका ॥१०६॥
द्विसहस्राब्दे द्व्युत्तरे हाथरसामृतसरश्रीचरकरीमोगंजादिषु व्यापारः स्थापितः ॥१०७॥
मोहमय्यां कलकत्तायां हट्टिकादि व्यापारकः । त्रिपुरे आउट् एजेन्सी संचालिता बृहत्तरा ॥१०८॥
प्रशस्ति मालिका एषा सुधीजनसदाग्रहात् । कृता भँवरलालेन गीर्वाणभाषया मुदा ॥१०९॥
त्रयपक्षत्रयुग्माब्दे ज्येष्ठ शुक्ल सुवासरे । एकादश्यां विक्रमाख्ये सत्पुरे निर्मिते वरे ॥११०॥

श्रेष्ठिवर श्री अगरचंदजी नाहटा और उनकी साहित्य-साधना

प्रो० श्रीचन्द जी जैन, एम० ए० एल-एल० बी०

एक विशिष्ट व्यक्तित्व

लक्ष्मीपुत्र होकर भी श्री नाहटाजीने अपने जीवनको साहित्यसाधनामें लीन किया तथा भगवती सरस्वतीके श्रीचरणोंमें स्वयम्को निष्कामभावसे समर्पित कर एक ऐसा उदात्त आदर्श उपस्थित किया जो व्यापक दृष्टिसे शिक्षितोंको प्रभावित कर रहा है। अध्ययन-शीलता किस प्रकार सामान्य शिक्षाप्राप्तको गहन मनीषी बना सकती है—इस तथ्यको प्रमाणित करनेके लिए विद्यावारिधि श्री नाहटाका जीवन-चरित्र पर्याप्त है।

श्री नाहटा स्वयं एक संस्था हैं, जिसके प्रांगणमें बैठकर हजारों शोधस्नातकोंने अपनी साधनाको सफल बनाया है तथा साहित्य-जिज्ञासुओंने निज कामना की पूर्ति की है और आज भी कर रहे हैं।

उदार दृष्टिवाले होनेके कारण श्री नाहटाका ज्ञानमंदिर सबके लिए खुला हुआ है। ज्ञान-पिपासु यहाँ सुगमतासे प्रवेश पा सकता है। तन, मन और धन इन तीनोंका समन्वयात्मक सहयोग श्री नाहटाके श्री नाहटा विशाल ज्ञान-देवालयमें निरन्तर द्रष्टव्य है। कहा जाता है कि "अतिपरिचयादवज्ञा सन्ततगमनादनादरो भवति"—मान घटे नितके घर आए—लेकिन इस शोधमनीषीका सतत साहचर्य अनादरके स्थान पर आदर-प्रदाता कहा गया है।

पूर्णरूपसे सम्पन्न परिवारके मध्यमें रहते हुए श्री नाहटाजीकी साहित्यिक साधना अबाधगतिसे चल रही है एवं आपके गहन अध्ययन तथा चिंतनने आपको मनीषियोंकी प्रशस्त श्रेणीमें समादृत कर दिया है। ऐसी स्थितिमें निम्न कथन कहाँ तक सिद्धान्ताचार्य श्री नाहटाके सम्बन्धमें लागू हो सकेगा, यह विचारणीय है।

यस्यास्ति वित्तं स नरः कुलीनः, स पण्डितः स श्रुतवान्गुणज्ञः।
स एव वक्ता स च दर्शनीयः, सर्वे गुणाः काञ्चनमाश्रयन्ति।

धनवान ही कुलीन कहा जाता है तथा वही पंडित; श्रुतवान् और गुणज्ञ होता है एवं वही वक्ता तथा वही दर्शनीय कहा गया है। सत्य तो यह है कि स्वर्णके साथ ही सब गुण रहते हैं।

पुरुषार्थमें अटूट श्रद्धा एवं आस्था रखनेवाले श्री नाहटाके कर्मठ व्यक्तित्वने ही उन्हें यशस्वी और गुणवान् बनाया है।

साधारण वेश-भूषासे निज शरीरको ढके रहनेवाले श्रेष्ठिवर श्री नाहटा बड़े विनम्र तथा विवेकशील हैं। गोस्वामी तुलसीदासकी निम्न उक्ति आपके संबंधमें पूर्णरूपेण व्यवहृत होती है :—

बरसहिं जलद भूमि नियराए। यथा नवहिं बुध विद्या पाए[1]॥

श्री नाहटाकी कर्मसाधना लोक-कल्याणकारी है। वस्तुतः आपका 'स्व' परमें इतना लीन हो गया है कि उसे पृथक् करना अत्यन्त कठिन है।

लगभग पाँच हजार निबन्धोंको लिखकर जो यश एक समर्थ निबन्धकारके रूपमें श्री नाहटाने अर्जित किया है। उसकी कुछ विवेचनात्मक चर्चा यहाँ की जाती है:—

---

१. भवन्ति नम्रास्तरवः फलोद्गमैर्नवाम्बुभिर्भूरिविलम्बिनो घनाः।
अनुद्धताः सत्पुरुषाः समृद्धिभिः स्वभाव एवैष परोपकारिणाम्॥

निबंधकी परिभाषा एवं उसके विविध रूप

मानव अपने विचारोंको प्रकट करनेके लिए सदा उत्सुक रहा है। कभी वह अपनी भावनाको पद्यके सहारे व्यक्त करता है तो कभी गद्यको माध्यम बनाकर अपनी सहज अनुभूतियोंको सरस अभिव्यक्ति देता है। समयानुसार इन अभिव्यक्तिके माध्यमोंमें परिवर्तन होता रहा है। एक समय था कि प्रकाशनकी असुविधाओं-के कारण इंसानने पद्यको विशेषतः अपनाया और गद्यकी ओर कम ध्यान दिया। शनैः शनैः भावाभिव्यक्तिको अनुरंजित करनेके हेतु विविध साधनोंको अपनाया गया और आज निबन्धोंके प्रति प्रत्येक विद्वान्का अधिक आकर्षण देखा जा रहा है। सुगठित रचना निबंध कहलाती है। फिर भी एक व्यापक परिभाषा देना कठिन है। विविध प्रकारोंकी परिभाषाएँ देकर मनीषियोंने अपने विचारोंको प्रकट किया है तथा निबंधको कभी व्यापक रूपमें परखा है तो कभी इसे संकुचित रूपमें आबद्ध कर दिया है।

'आचार्य' पंडित रामचन्द्र शुक्ल निबंधको गद्यकी कसौटी मानते हैं और निबंधका चरम उत्कर्ष वहाँ स्वीकार करते हैं जहाँ एक-एक पैराग्राफमें विचार दबा-दबाकर ठूँसे गए हों और एक-एक वाक्य किसी सम्बद्ध विचार खण्डके लिए हों। स्पष्ट है कि शुक्लजी विचार गाम्भीर्य तथा भाषाकी सामासिकताको तर-जीह देते हैं लेकिन बाबू गुलाबरायने स्वच्छन्दता, निजीपन एवं सजीवतापर बल दिया है—निबंध उस गद्य रचनाको कहते हैं जिसमें एक सीमित आकारके भीतर किसी विषयका वर्णन या प्रतिपादन एक विशेष निजीपन, स्वच्छन्दता, सौष्ठव और सजीवता तथा आवश्यक संगति और सम्बद्धताके साथ किया गया हो। निबंधकी इस परिभाषामें आये विशेष निजीपन, स्वच्छन्दता, सौष्ठव, सजीवता सापेक्षिक शब्द हैं; और फिर विशेष निजीपन तथा स्वच्छन्दता एक साथ रहें ही यह जरूरी नहीं है। बेकनके निबंधोंमें विशेष निजीपन है लेकिन स्वच्छन्दता नहीं है। इसके साथ ही सीमित आकार भी किसी खास मात्राका बोधक नहीं है। बाबूजीने जो भी सराहनीय बातें एक रचनामें होनी चाहिए वे सब यहाँ रख दी हैं, किन्तु परिभाषा देखनेमें अच्छी होनेपर भी अस्पष्ट है।[1]

निबंध आज अपने रूढ़ या प्राचीन अर्थोंसे निकलकर साहित्यमें एक नये रूपमें प्रयुक्त होने लगा है। परम्परागत अर्थोंसे वह भिन्न है। रचना, लेख, प्रबंध सभीका क्षेत्र प्रायः निश्चित है। रचना किसी भी कृतिको कह सकते हैं। अंग्रेजीके कम्पोजीशन और रचनामें प्रायः समानता है। लेख किसी विषयपर लिखे गये निर्वैयक्तिक लघु-निबंधके लिए प्रयुक्त होता है, इसकी तुलना अंग्रेजी 'आर्टीकल'से की जा सकती है। ये कोई भी निबंधका स्थान नहीं ले सकते। निबंध इनसे कई अंशोंमें भिन्न है।

निर्वैयक्तिकता निबंधमें संभव नहीं, वह निबंधके अन्तर मनन और आत्मानुभूतियोंका व्यक्त रूप है। प्राचीन संस्कृत परम्पराके अनुसार निबंध केवल बौद्धिक अभिव्यक्तिका माध्यम था। दार्शनिक विश्लेषणोंको निबंधका रूप दिया जाता था। आजके निबंधका वास्तविक अर्थ एवं स्वरूप बदल गया है। तार्किकताको स्थान नहीं रहा। तार्किकताका स्थान सहृदयताने ले लिया है। उसमें व्यक्तित्व, भावों, विचारों तथा अनु-भूतियोंका सहज-स्वाभाविक अंकन रहता है, विचारोंका खंडन-मंडन नहीं। अतएव वर्तमान निबंधको अतीत-की स्थापित निबंधोंकी कसौटीपर कसना अनुचित होगा। जीवन-समाजके प्रगतिशील स्वरूपपर हमें ध्यान रखना होगा।

निबंध निर्बंध रचनाकी विधा है। निबन्धकार स्वच्छन्दतापूर्वक जिस किसी भी विषयपर अपने आन्तरिक विचार बिना किसी आडम्बरके व्यक्त करता है। आत्मीयता, सरलता, अनुभूति प्रवणताकी प्रधा-नता रहती है। न उसपर कोई नियंत्रण है और न निषेध।"[2]

---

१. डॉ० मोहन अवस्थी—हिन्दी साहित्यका अद्यतन इतिहास, पृष्ठ १४७।

२. डॉ० गंगाप्रसाद गुप्त—हिन्दी साहित्यमें निबंध और निबंधकार, पृष्ठ ४-५।

निबंधोंके विविधरूप हमें आज उपलब्ध हो रहे हैं तथा पाश्चात्य निबंधकारोंका आजके भारतीय निबंध लेखकोंपर पर्याप्त प्रभाव पड़ रहा है। ऐसी स्थितिमें निबंधोंके भिन्न-भिन्न रूपोंको एक विशिष्ट वर्गीकरणमें आबद्ध करना सरल नहीं है।

कतिपय विद्वानोंने विषयको आधार मानकर निबंधोंको वर्गीकृत किया है तो कुछ साहित्य-विशारदोंने वाह्य आकार-प्रकारको अंगीकार कर निबंधोंकी विविध श्रेणियोंको अंकित किया है। कुछ ऐसे भी आधुनिक समीक्षक हैं जिन्होंने शैलीको विशेषता देकर निबंधोंको विभिन्न रूपोंमें विभाजित करनेका प्रयास किया है।

साधारणतया निबंधोंको १. विचारात्मक, २. वर्णनात्मक, ३ आलोचनात्मक या साहित्यिक, ४. आख्यात्मक और ५. भावात्मक रूपोंमें विभक्त किया गया है। (देखिए संस्कृत निबंध-नवनीतम्—ले० डॉ० पारसनाथ द्विवेदी तथा श्री बंशीधर चतुर्वेदी)

बोधपक्ष, भावपक्ष, संवेदना, विधानक कल्पना एवं शैली तत्त्वोंसे समन्वित निबंध-कलाका आज जो उत्कर्ष दिखाई दे रहा है, वह गद्य-साहित्यके परमोज्ज्वल भविष्यका परिचायक है।

डॉ० राममूर्ति त्रिपाठीके मतानुसार लाघव, आपेक्षिक गांभीर्य, अपूर्णता संबंधनिर्वाहका कलात्मक ढंग, भाषा और शैलीकी प्रौढ़ि तथा सोद्देश्यता; ये आदर्श निबंधकी विशेषताएँ हैं। (द्रष्टव्यः हिन्दी साहित्यका इतिहास, पृष्ठ २५२)

निबंध निरूपणमें शैलीका विशेष महत्त्व है। यह शैली ही निबंधको रोचक तथा प्रभावशाली बनाती है। इसीके माध्यमसे पाठक लेखककी आत्मीयतासे परिचित होता है और तथा अपने आपको उसमें एकाकार करनेका प्रयत्न भी करने लगता है। एक ओर शैली निबंधके कई रूपोंको जन्म देती है तो दूसरी ओर इनकी आन्तरिक भावना तथा अनुभूतिको विविध रूपोंमें समलंकृत भी करती है।

"शैली व्यक्तित्व एवं अभिव्यक्तिको विशिष्टता प्रदान करती है। शब्दचयन, ध्वनियोजना, अलंकार संश्लिष्ट रूप बना देते हैं। वही उसे अन्योंसे अलग करती है। वामन द्वारा प्रतिपादित 'यह विशिष्ट पद रचना'का भाव पाश्चात्य एवं भारतीय साहित्यमें स्वतः स्वीकृत हो गया है।

................वस्तुतः शैली किसी लेखककी कृतिको समझनेमें बहुत सहायक होती है।..... इससे (शैलीसे) कभी भी लेखकका व्यक्तित्व अलग नहीं रहता। हमारे भाव, विचार, भाषा, ढंग, व्यक्तित्व सभी शैलीमें आ जाते हैं।........निबंध साहित्यमें शैलीके ९ रूप मान्य हैं : १. प्रसाद शैली, २. व्यास शैली, ३. समास शैली, ४. विवेचन शैली, ५. व्यंग्य शैली, ६. तरंग शैली, ७. विक्षेप शैली, ८. प्रलाप शैली और ९. धारा शैली।"[१]

इस प्रकार लिखनेके ढंगको (शैलीको) निबंध-साहित्यमें प्रधानता देकर साहित्य-मनीषियोंने कहावतों, मुहावरों, सूक्तियों, अलंकारों आदिके प्रति जो आकर्षण प्रदर्शित किया है वह प्रत्येक दृष्टिसे अभिनंदनीय है।

श्री नाहटाकी निबंध-कला

श्री नाहटाकी निबंध-कला उस उद्यानके समान है जिसमें विविध रंगोंके सुरभित पुष्प खिलते रहते हैं। जीवन-यापनके साधनोंको यथावसर अपनाते हुए आपने अपनी साहित्यिक अभिरुचिको निरन्तर परिष्कृत किया एवं जीवनके गहन अनुभवोंके साथ आपने जो कुछ लिखा है अथवा जो भी कुछ लिख रहे हैं उसमें गहनता आत्मीयता, निष्पक्षता, भावमुग्धता, आध्यात्मिकता, दार्शनिकता, अनुरंजित अभिव्यक्तियाँ, सांस्कृतिक-चेतना, ऐतिहासिक शोध-तत्परता, प्राचीनता एवं आधुनिकताका सुखद समन्वय, राजनैतिक नव-चेतना, लोक-

---

१. हिन्दी साहित्यमें निबंध और निबंधकार : डॉ० गंगाप्रसाद गुप्त, पु० ३१।

संस्कृति अनुरक्ति, निश्चल आस्था-विश्वास, अन्तरानुभूति-भावुकता, विशालचिन्तन-शीलता, विवेचन-क्षमता, कुशल समालोचक-मौलिकता, सरसता-रोचकता आदि अनेक विशेषताएँ परिलक्षित होती हैं। धर्म, कर्म, शिक्षा, मानवता, अहिंसा, अनेकान्तवाद, साहित्य-इतिहास, पुरातत्त्व, कला, विनोद, शब्द-चर्चा, गोत्र-जाति, राजा, प्रजा, संस्मरण, कल्पसूत्र, कृषि, स्तुति, अर्थ, काम-मोक्ष, कथा, पुराण, भूगोल, सन्त-परम्परा, सज्जन-दुर्जन, अनुरक्ति-विरक्ति, लोक-कथा, प्ररूढ़ियाँ, पुरातन एवं आधुनिक गद्य-पद्यात्मक साहित्य-विश्लेषण, वैदिक-पौराणिक एवं स्मृति-विषयक तत्त्व-चिन्तन, विविध लोक-भाषा चिन्तन, भाग्य आदि शताधिक विषयों-पर साधिकार लिखकर श्री नाहटाजीने अपने विशाल अध्ययन एवं विस्तृत गंभीर-विवेचनकी जो प्राणवन्त अनुभूतियाँ प्रस्तुत की हैं वे उनकी शोध-परक विचार-धाराकी अविच्छिन्न कला कृतियाँ हैं। राजस्थानी साहित्यकी विवेचनामें श्री नाहटाजीकी मान्यताएँ चिरकालसे सर्वमान्य हैं।

आपके निबन्ध साहित्यिक विश्लेषणके साथ-साथ वाञ्छित विषयके प्रतिपादनमें एक मौलिक दृष्टि-कोण प्रस्तुत करते हैं। फलतः शोध-पत्र-पत्रिकाओंमें ये प्रकाशित होते रहते हैं एवं मनीषी सम्पादक उन्हें छापकर अपने पत्रोंको गौरवान्वित समझते हैं। धार्मिक, सामाजिक, राजनैतिक एवं सांस्कृतिक पत्रोंमें श्री नाहटाके निबंध पूर्ण सम्मानके साथ प्रकाशित होते रहते हैं। कतिपय ये पत्र-पत्रिकाएँ हैं, जिनमें श्री नाहटाके सुविचारित तथा मार्मिक निबंध प्रकाशित होते रहते हैं: १. कल्पना, २. नया-समाज, ३. नागरी-प्रचारिणी पत्रिका, ४. भारतीय विद्या, ५. भारतीय संस्कृति, ६. मरुभारती, ७. मरुवाणी, ८. राजस्थान भारती, ९. राजस्थान साहित्य, १०. राष्ट्र भारती, ११. सम्मेलन पत्रिका, १२. सरस्वती, १३. साहित्य, १४. साहित्य संदेश, १५. सप्त सिन्धु, १६. हिन्दी अनुशीलन, १७ हिन्दुस्तान, १८. हिन्दुस्तानी, १९ आलोचना, २०. नवनीत, २१. नवभारत टाइम्स, २२. कल्याण, २३. अवन्तिका, २४. जनपद, २५. आज, २६. जनपथ, २७. अखंड ज्योति, २८. कलाधर, २९. जैन जागृति, ३०. जैन भारती, ३१. जैन-सन्देश, ३२. नई दिशा, ३३. महावीर सन्देश, ३४. युगान्तर, ३५. लोक-जीवन, ३६. ब्रज भारती, ३७. राजस्थान-क्षितिज, ३८. राष्ट्रदूत, ३९. वीर, ४०. वीर सन्देश, ४१. संगीत आदि लगभग १५० पत्र-पत्रिकाओंमें श्री नाहटाके विविध विषयोंपर आलोचनात्मक निबंध निकल चुके हैं और निकल रहे हैं। आपके वार्धक्यमें नव-जीवनकी प्रखर ज्योति निरन्तर प्रकाशमान है एवं साहित्य-साधनाकी भावना एक विशिष्ट तन्मयतासे दिनोंदिन वर्धमान भी है।

श्री नाहटाके विविध निबंधोंमें यह प्रायः देखा जाता है कि वे विषयानुसार प्रत्येक लेखके प्रारंभमें 'उपक्रमके रूपमें' कुछ ऐसी भावोत्पादक पंक्तियाँ लिखते हैं जो निबंधकी आन्तरिक भावनाको प्रकट करती हैं एवं जिस प्रकार नींवकी सुगठित परिसमाप्तिपर प्रासाद अथवा गृहका निर्माण शीघ्रातिशीघ्र होने लगता है उसी प्रकार यह उपक्रम निबंधकी पूर्णतामें विशेषतः सहायकके रूपमें यहाँ ग्राह्य माना जाता है। उप-क्रमात्मक यह वैशिष्ट्य श्री नाहटाकी निबन्धकलाकी एक असाधारण विशेषता है। यहाँ यह स्मरणीय है कि इस लघु भूमिकाकी भाषा-शैली निबंधकी रूप-रेखापर अवलंबित रहती है। शोध-परक लेखोंके उपक्रमोंकी भाषा संस्कृतनिष्ठ एवं शैलीमें सर्वत्र गाम्भीर्य रहता है लेकिन लोक-साहित्यसे सम्बद्ध निबंधोंमें लोक-भाषा जनित माधुर्यके साथ जन-जनमें प्रचलित शब्दोंका आधिक्य रहता है। उपक्रम भी सरस, सरल तथा संवेद-नात्मक रहते हैं। 'एक मुसलमान कविकी अज्ञात रचना 'पेमाइ कथा'का उपक्रम इस प्रकार है:

'हिन्दी भाषा और साहित्यके निर्माणमें मुसलमानोंका भी उल्लेखनीय योग रहा है। राजस्थानमें सन्तवाणीसंग्रहकी जो हस्तलिखित प्रतियाँ मिलती हैं उनमें मुसलमान कवियोंके पद, साखी आदि रचनाएँ भी मिली हैं। १४ वीं शताब्दीसे लेकर १९ वीं शताब्दी तकके अनेक मुसलमान कवियोंकी रचनाएँ मेरे

अवलोकनमें आई हैं' उनमेंसे बहुतसे कवि और उनकी रचनायें हिन्दी साहित्य संसारमें अभी तक अज्ञात सी हैं। (भारतीय साहित्य, वर्ष ८ अंक ४)

'कवयित्री पदमाके तीन अप्रकाशित गीत'का प्रारंभिक अंक उपक्रमात्मक है, जिसका आरंभ निबंधकी प्रासंगिक भावनाकी परिपूर्णताका सांकेतिक चिह्न है :

'चारण जातिमें कवि तो हजारों हुए हैं और ख्यात एवं वात आदि गद्य रचनाओंके लेखक कई चारण विद्वान् हो गये हैं। पर इस जातिमें कवयित्रियां दो-चार ही हुई हैं जब कि शक्तिके अवतारूपमें कई चारण देवियाँ समय-समय पर प्रकट होकर चारणों एवं राजा-महाराजाओं तथा जन-साधारण द्वारा पूजी जाती रही हैं। करणीजीकी मान्यता तो सर्वत्र प्रसिद्ध है ही। उनकी स्तुतिरूपमें काफी साहित्य रचा गया है। वर्तमान चारण कवयित्री सौभाग्य देवी रचित 'करणी करुणा कुंज'के सम्बन्धमें मेरा लेख प्रकाशित हो चुका है। प्राचीन चारण कवयित्रियोंमें झीमां चारणी और पद्मा चारणी तथा बिरजू बाईका नाम लिया जाता है। इनमेंसे प्रथम कवयित्री झीमांके मुँहसे कहलाये हुए पद्य खीची अचलदास और लालाजी मेवाड़ी और उमादेकी बातमें प्राप्त होते हैं। ये पद्य वास्तवमें झीमांने ही बनाये थे या बातको लिखने या रचने वालेने भावनाका दूहा अपनी ओरसे जोड़कर झीमांके मुखसे कथा-प्रसंगमें कहला दिये हों, यह विचारणीय है। [विश्वम्भरा, पृ० ५०]

'महाराणा कुम्भारचित गीतगोविन्दका अर्थ शीर्षक निबन्धसे सम्बन्धित उपक्रममें वीरता एवं साहित्यिक निष्ठाका एक विलक्षण समन्वय प्रस्तुत किया गया है जो निबन्धकलाकी एक अविस्मरणीय विभूति है।

'राजस्थानके शासक अपनी वीरताके लिए तो प्रसिद्ध हैं ही, पर साहित्यिक क्षेत्रमें भी उनकी विशिष्ट देन है। संस्कृत, राजस्थानी व हिन्दी तीनों भाषाओंमें राजस्थानके राजाओं, जागीरदारों और ठाकुरों और उनके आश्रित कवियोंकी सैकड़ों रचनाएँ प्राप्त हैं। मेवाड़का राजवंश अपनी आन-बानके लिए प्रसिद्ध है ही पर १५वीं शताब्दीमें इस राजवंशमें एक ऐसे राणा हुए, जिनकी वीरताके साथ-साथ साहित्य और कलाका प्रेम विशेषरूपसे उल्लेखनीय हैं।' [शोध पत्रिका, पृ० ६०]

'जैन-तंत्र-साहित्य' निबन्धका प्रारम्भिक अंश संक्षिप्त होता हुआ भी व्यापक है तथा साधारण होनेपर भी असाधारण है। इसमें जैनधर्मकी प्राचीनताके साथ तंत्र-साहित्यकी पुरातनताका भी उल्लेख हुआ है :

"जैनधर्म भारतका एक प्राचीनतम धर्म है। उसके प्रवर्तक चौबीस तीर्थंकर भारतभूमिमें ही पैदा हुए, यहीं साधनाकर उन्होंने सिद्धि प्राप्त की। भगवान ऋषभदेव, जिनका पावन चरित्र भागवत आदि पुराणोंमें भी पाया जाता है, यावत् वेदोंमें भी नामोल्लेख प्राप्त है, जैन मान्यतानुसार सारे ज्ञान-विज्ञान या संस्कृतिके प्रवर्तक आदिपुरुष थे। इसीलिए उन्हें आदिनाथ या आदीश्वर कहा जाता है। नाथपंथके प्रवर्त्तक भी आदिनाथ माने जाते हैं, पर सम्भव है वे बादके कोई अन्य व्यक्ति हों। प्राचीन जैनागमोंके अनुसार भगवान् ऋषभदेवसे पूर्व यह आर्यावर्त्त भोगभूमि थी। अर्थात् उस समयके लोग वृक्षोंके फलादिसे अपना जीवननिर्वाह करते थे। असि,मसि और कृषिका व्यवहार तबतक नहीं था। एक बालक और बालिकाका युग्म साथ ही जन्मता और वयस्क हो जानेपर उनका सम्बन्ध पति-पत्नीका हो जाता था।

उनकी समस्त आवश्यकताओंकी पूर्ति दस प्रकारके कल्पवृक्षोंसे होती थी, इसीलिए परवर्ती साहित्यमें कल्पवृक्षकी उपमा इस अर्थमें रूढ़ हो गयी कि जिसके द्वारा मनोवाञ्छितकी पूर्ति हो जाय और वस्तु प्राप्त हो जाय वह कल्पवृक्षके समान है। आदि'''' [श्री मरुधर केसरी मुनि श्री मिश्रीलालजी महाराज अभिनन्दन ग्रन्थ पृ० १२३]

साहित्य, इतिहास, भाषा आदिसे सम्बद्ध शोधात्मक निबन्धोंमें एक ओर प्राचीन साहित्यके विनाशकी

ओर सन्ताप अभिव्यक्त किया गया है तो दूसरी ओर इस प्रकारके उदात्त साहित्यके संरक्षण एवं प्रकाशनकी तरफ प्रबुद्ध विद्वत्समाजका ध्यान भी आकर्षित किया गया है। इस प्रकारके लघु उपक्रम बड़े उपयोगी सिद्ध हुए हैं। श्री नाहटाकी निबन्धकलाका यह वैशिष्टय अन्य निबन्धकारोंके लेखांमें अप्राप्त-सा है। इस सन्दर्भमें निम्न कतिपय निबन्ध पठनीय हैं :

१. एक अज्ञात ऐतिहासिक बेलि (शोधपत्रिका)।

२. खरतरगच्छके आचार्योंसम्बन्धी कतिपय अज्ञात ऐतिहासिक रचनाएँ। (श्री महावीर जैन विद्यालय सुवर्ण महोत्सव ग्रन्थ)।

३. कवि विजयशेखरके कतिपय अनुपलब्ध रास। (परिषद् पत्रिका)

४. कविवर जान और उसके ग्रन्थ। (राजस्थान भारती)

५. कविवर सूरत मिश्र। (व्रजभारती—सं० २००९)

६. कवि जगतनन्द सम्बन्धी कुछ विशेष जानकारी। (व्रजभारती अंक १ वर्ष १६)

७. एक मुसलमान कविकी अज्ञात रचना : पेमाइ कथा। आदि इस प्रकारके निबन्धोंकी एक बड़ी संख्या है।

लोक-साहित्य एवं संस्कृतिके निबन्धोंकी उपक्रमात्मक पंक्तियाँ बड़ी साधारण तथा सर्वजनबोधगम्य हैं। प्रचलित शब्दोंका प्रयोग करके श्री नाहटाने इस तथ्यको प्रमाणित कर दिया है कि वे संस्कृतनिष्ठ भाषाके लिखनेमें पूर्ण समर्थ होते हुए भी लोक-गम्य बोलीमें भी पूर्ण अधिकारसे लिख सकते हैं।

राजस्थानी-भाषाका बात-साहित्य बहुत ही विशाल और महत्त्वका है। विविध प्रकारकी सैकड़ों वार्त्ताएँ गत ३०० वर्षोंमें लिखी जाती रही हैं जिनमेंसे कई केवल गद्यमें हैं, कई पद्यमें और कई गद्य-पद्य-मिश्रित। [कृपाराम बणा सूर कृत सगुणा-सत्र सालरी बना]

राजस्थानी भाषाका बात-साहित्य बहुत विशाल व विविध प्रकारका है। बहुत सी बातें ऐतिहासिक वाक्यों व स्थानोंसे सम्बन्धित हैं, यद्यपि वे अर्द्ध ऐतिहासिक ही कही जा सकती हैं, पर उनके द्वारा बहुत सी नई व कामकी जानकारी मिलती है। एक बात कई प्रकारसे लिखी हुई मिलती है। [एक अपूर्ण प्राप्त महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक बात]

यह विश्व विविध प्रकारके प्राणियोंका शम्भु-मेला है। प्रत्येक मनुष्यकी आकृति, भाषा और प्रकृति अलग-अलग प्रकारकी पाई जाती है। कोई प्रकृतिसे बहुत ही सरल होता है तो कोई बहुत ही धूर्त प्रकृतिका होता है। अनादिकालसे यह प्रवाह चला आ रहा है। ग्रन्थान्तरोंमें धूर्तोंकी कहानियोंका अच्छा वर्णन मिलता है। यह तो आज भी हमारे प्रत्यक्ष हैं ही ? कई-कई धूर्त बड़ी गप्पें हाँका करते हैं जिनको सुनकर बड़ी हँसी आती है और कौतूहल होता है। (धूर्त्ताख्यान नवीं शतीका एक महत्त्वपूर्ण अमूल्य ग्रन्थ)

श्री मान् नाहटाजीकी यह प्रवृत्ति विशेषतः प्रशंसनीय है कि वे शोधात्मक निबन्धोंमें अपनी मान्यताको प्रतिष्ठित करनेके लिए संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, हिन्दी आदिके उद्धरणोंको देते हैं तथा तर्कोंके माध्यमसे स्वकथनकी परिपुष्टि करते हैं। यह इनकी तार्किकशैली साहित्यिक शोध-निबन्धोंमें सर्वत्र परिलक्षित होती है। इस सम्बन्धमें आदिकालीन राजस्थानी जैन साहित्य मथुरामें रचित तीन हिन्दी ग्रन्थ, महाकवि सूर्यमल्ल मिश्रणकी वीर सतसईकी पूर्ति, जैन प्रबन्ध-ग्रन्थोंमें उद्धृत प्राचीन भाषा-पद्य, प्राचीन जैनग्रन्थोंमें कुल और गोत्र, कृष्ण-रुकमणि बेलिकी टीकाएँ, कतिपय वर्णनात्मक राजस्थानी गद्य-ग्रन्थ, कवि मयण बम्बका महत्त्वपूर्ण परिचय, १५वीं शताब्दीका महत्त्वपूर्ण अज्ञात ग्रन्थ, पृथ्वीराज रासोमें उल्लिखित ५२ वीरोंकी नामावली, दवावैत संज्ञक

रचनाओंकी परम्परा, तारातंबोलके यात्रा सम्बन्धी कतिपय उल्लेख एवं पत्र, प्राचीन जैन राजस्थानी गद्य-साहित्य, राजस्थानी साहित्यका आदिकाल आदि-आदि निबन्ध उल्लेख्य हैं।

आयु-वृद्धिके साथ साहित्यकारकी अनुभूतियोंमें सघनता आती है, जीवनकी कर्कश-कठोर और कोमल भावनाएँ पनपकर एक विशाल प्रतिमाके रूपमें स्थापित हो जाती हैं एवं सांसारिक सम्पर्कजनित अनुभव, जो कभी क्षणिक होते थे, वे वार्धक्यमें पाषाण-रेखाकी भाँति गहरे और स्थिर बन जाते हैं। चिन्तनकी चपलतामें स्थिरता आ जाती है और वाणी गहनतम शब्दोंसे मुखरित हो उठती है। यही गहनता, निजात्मचिन्तन-शीलता, अनुभवपरिपक्वता, गम्भीरता, परोपकारनिरता, उदारता, भाव-प्रवणता एवं परदुःखकातरता साहित्यकारके अखिल साहित्यको सूक्तियोंका एक अनुपम भाण्डार बना देती हैं। ऐसी स्थितिमें महावरकी लालिमा सतीत्वका ओज बनती है, मुखका लालित्य दिनकरके तेजमें परिणत हो जाता है, मंथरगतिका चापल्य एक दृढ़ संकल्पका उद्घोष करने लगता है तथा केशोंकी कालिमा रौद्रका भयावह रूप धारण कर लेती है। नयनोंकी चपल चितवनमें अगाध अनुभव एक ऐसी अनुरक्ति समुत्पन्न कर देता है जो जनताके प्रबोधनार्थ प्रतिक्षण सुभाषितोंके रूपमें मुखरित होने लगती है।

यौवनका मदिर सरस राग-रति-रंग वार्धक्यके गहन चिन्तनके रंगोंसे रंजित होकर जीवनकी वास्त-विकतासे अवगत होता है और उसके कल्पित अभिमानकी व्यग्रता शीघ्र तिरोहित हो जाती है। इसीलिए परिपक्व बुद्धि समुत्पन्न वाणीके स्वर जगतमें सुभाषितके रूपमें अंगीकार किये जाते हैं।

यहाँ श्री नाहटाजीकी कुछ सूक्तियाँ (सुभाषित) उद्धृत की जाती हैं जो उनके निबंधोंमें अनायास आ गयी हैं—

(१)

यह विश्व विविध प्रकारके प्राणियोंका शम्भु मेला है। प्रत्येक मनुष्यकी आकृति, भाषा और प्रकृति अलग-अलग प्रकारकी पायी जाती है। (नवीं शतीका एक महत्त्वपूर्ण अमूल्य ग्रन्थ—धूर्त्ताख्यान)।

(२)

स्त्री जाति भावुक और कोमल स्वभावशीला होते हुए भी जब वह अपने सत्त्व, तेज और कर्त्तव्यनिष्ठा-पर आती है तो बड़े-बड़े शूरवीरोंके छक्के छुड़ा देती है। सहनशीलताकी तो वह साकार मूर्ति है, अतः रण-क्षेत्रमें चण्डिकाका रूप धारण करती है तो अपनी शीलरक्षाके लिए, मर्यादारक्षाके लिए हँसती-हँसती जौहर (यमगृह) की जलती अग्निमें कूद पड़ती है। (कविवर धर्मवर्द्धनकृत गोलछोंकी सती दादीका कवित्त)

(३)

मनुष्य विचारता कुछ है और होता कुछ है। प्रयत्न करनेपर भी वह भवितव्यताको टाल नहीं सकता और इच्छा न होनेपर भी कुछ ऐसे प्रसंग घट जाते हैं जिन्हें बुद्धिपूर्वक कोई भी मनुष्य कभी नहीं कर सकता। (मथुराका एक विचित्र प्रसंग)

(४)

१. शक्तिका सदुपयोग और दुरुपयोग व्यक्तिपर निर्भर है।

२. केवल इस लोककी ही नहीं परलोककी भी सिद्धि मानवकी बुद्धिपर ही निर्भर है।

३. जीवन सही रूपमें एक कला है। इस कलाकी प्राप्ति करना प्रयत्नसाध्य है।

(मूरख-लक्षण, साधना, पृ० २७,२८)

(५)

प्राणिमात्रकी कुछ न कुछ इच्छा होती है और अपनी-अपनी कामना-पूर्ति हो यह सब प्राणी चाहते हैं। सारी प्रवृत्तियाँ किसी न किसी इच्छाकी पूर्तिके लिए होती हैं, चाहे वह अच्छी हो या बुरी।

(साधना, साधक और सिद्धि)

(६)

१. जीवनके प्रति प्राणिमात्रकी सहज ममता व आकर्षण होनेसे लगाकर वृद्ध तक सभी कथा-कहानी सुननेको उत्सुक दिखाई देते हैं।

२. व्यक्ति अकेला जन्म लेता है पर जन्म लेनेके साथ-साथ ही वह अपने चारों ओर कुछ व्यक्तियों-को अपने प्रति विशेष आकर्षित पाता है।

३. संसार प्रेममय है। इसीसे जीवनमें सरसता आती है और एक दूसरेके सम्बन्ध मीठे होते चले जाते हैं। प्रेमके बिना जीवन सूखा है, रूखा है वह प्रेम अनेक प्रकारका है।

४. प्राणियोंमें स्त्री और पुरुषका सम्बन्ध एक विशिष्ट आकर्षणका परिणाम है और इस आकर्षणमें बहुत ही जबरदस्त खिंचाव होनेसे इस सम्बन्धको घनिष्ठ प्रेम कहा जाता है।

५. प्रेम करना सरल है व निभाना कठिन है। (मोगल और महेन्द्रकी प्रेमकथा)

(७)

कथा-कहानी मानवके लिए मनोरंजन एवं शिक्षा-प्राप्तिका उल्लेखनीय साधन रहा है।

(तीन सौ पाँच कथाओंकी एक सूची)

(८)

संत और भक्तजनोंके प्रति आदर और श्रद्धाका भाव भारतीय संस्कृतिका एक अभिन्न अंग है।

(परसरामरचित बालणचरित)

(९)

१. वाक्-शक्ति मनुष्यको दी हुई प्रकृतिकी विशेष देन है।

२. देखनेके पीछे अनुभव करनेकी विशेष शक्ति आवश्यक है और वह केवल मानवको ही प्राप्त है।

३. वस्तुओंका ज्ञान कर लेना एक बात है और अपने अनुभवको सुन्दर एवं साकार रूपमें दूसरोंके समक्ष वाणी द्वारा उपस्थित करना दूसरी बात है। (कतिपय वर्णनात्मक राजस्थानी गद्य-ग्रन्थ)

(१०)

१. जैन साहित्यमें नैतिकता और धर्मकी प्रधानता है और शान्त रसकी मुख्यता तो सर्वत्र पायी जाती है।

२. जैन विद्वानोंका उद्देश्य जन-जीवनमें आध्यात्मिक जागृति फूँकना था। नैतिक और भक्तिपूर्ण जीवन ही उनका चरमलक्ष्य था।

३. तत्वज्ञान सूखा विषय है। साधारण जनताकी वहाँ तक पहुँच नहीं और न उसमें उनकी रुचि व रस हो सकता है। (राजस्थानी जैन साहित्य २)

(११)

१. पुत्र-मरण शोक असहनीय होता है।
२. मूर्ख ही अपने रहस्योंको प्रकट करते रहते हैं।
३. अनावश्यक संग्रह अवांछनीय है।
४. अयोग्यको उपदेश नहीं देना चाहिए।
५. अत्यधिक लोभ नहीं करना चाहिए।
६. चिन्ता चिताके समान कही गयी है।
७. जो हो गया है—उसके लिए शोक करना निरर्थक है तथा भविष्यकी भी चिन्ता नहीं करनी चाहिए।

(चौबीस श्लोकों पर चौबीस लोक-कथाएँ)

इस प्रकारकी हजारों सूक्तियाँ (सुभाषित) श्री नाहटाजीके निबंधोंमें गुम्फित हैं।

आत्माभिव्यक्ति निबन्धकलाकी एक विशिष्ट आधारभूमि है। ऐसी स्थितिमें श्री नाहटाके विचारात्मक एवं आलोचनात्मक लेख विशेषरूपसे उल्लेखनीय हैं।

भाषा-विषयक उदारता

श्री नाहटाने तत्सम तद्भव-देशज शब्दोंको उपयोग करते हुए अन्य भाषाओंके भी प्रचलित शब्दोंको अपनी अभिव्यक्तिको सक्षम बनानेके लिए अपनाया है। साथ ही साथ कलाके लिए सिद्धान्तकी पूर्ण उपेक्षा करते हुए, मानवमात्रके हितको ध्यानमें रखा और तदनुकूल साहित्य-सर्जना की तथा इसी उद्देश्यकी पूर्तिके लिए वे अपनी साधनामें संलग्न हैं :

पद-स्थापना, नामोल्लेख, परस्पर, विचित्र, श्रद्धा-विशेष, मोक्ष, प्रभावविभूति विभ्रम, आध्यात्मिक जागृति, ऐतिहासिक, विकसित, प्रफुल्लित, व्यक्ति, कौटुम्बिकता, सहानुभूति, शान्ति, क्लान्ति और गौरव-गाथा आदि शब्दोंके साथ श्री नाहटाजीने बतीसी, शामिल, जगह, हुक्म, सर करना, जरूरी, हाकिमी, लगभग, परवाने, रक्के, नकलें, इस्तेमाल, जबरदस्त, बात, असलियत, ख्याल, नामठाम, जहाज, कंथा, खटोली, खंखेरना, कोरे पन्ना, चौंरी मांडना, असली रूप, पुन्य, सासू छानना, अटपटी बातों, कइयों, हिवाली गूढा गर्ज, गुटकों, हकीकत, ख्यात, फिट करना, पधारना गाड़ियाँ, सौत, लोरियाँ, वाह, वाह, खूब, खूब, बहार, घटिया, विचरना, चौमासा, आदि हजारों शब्दों-क्रियाओं आदिका पर्याप्त संख्यामें प्रयोग किया है। ऐसा प्रतीत होता है कि श्री नाहटा गो० तुलसीदासजीके निम्नस्थ छंदमें मुखरित भाषा विषयक मान्यताके अनुयायी हैं—

का भाषा का संस्कृत प्रेम चाहिए साँच। काम जो आवै कामरी, का ले करै कमाँच।

आदर्शवादी परम्पराके पोषक श्री नाहटाजीके आलोचनात्मक तथा शोध-परक निबंध बड़े ही महत्व पूर्ण हैं। इनमें सर्वत्र ठोस चिन्तन तथा निष्पक्ष उद्भावना अकाल प्रमाणोंसे परिपुष्ट है। इस प्रकारके निबन्धोंमें तार्किक शैली प्रधानरूपसे अंगीकृत है।

आपकी शैलीके विविधरूप द्रष्टव्य हैं। इसमें कहीं भी कृत्रिमता नहीं है। यदि भावनाप्रधान निबंधोंमें दार्शनिकता एवं मनोवैज्ञानिकताका अनोखा समन्वय है तो लोकसाहित्य विषयक लेखोंमें (विशेषतः लोक-कथाओं एवं गाथाओंके विवेचनात्मक अनुशीलनमें) व्याख्यात्मक शैली ग्राह्य कही जा सकती है।

विषयानुसार कहीं वाक्य छोटे हैं तो कही लम्बे। कहीं तत्सम शब्दोंका बाहुल्य है तो कहीं देशज शब्दोंकी अधिकता है। यों तो सहजता सर्वत्र विद्यमान है, लेकिन कहीं-कहींपर गंभीर निबंधोंमें गहन चिन्तनके कारण, क्लिष्टता भी आ गयी है और दार्शनिकताके कारण साधारण जनमानसके लिए ऐसे निबंध दुरुह हो गये हैं।

समयाभावके कारण जैसा मैं लिखना चाहता था वैसा न लिख सका। फिर भी श्रद्धेय श्री नाहटाजीके प्रति जो एक लम्बे समयसे आदरकी भावना मेरे मानसमें समाविष्ट थी, उसे यहाँ व्यक्त करनेका प्रयास अवश्य किया है।

श्री भँवरलाल नाहटा : व्यक्तित्व एवं कृतित्व

शास्त्री, शिवशंकर मिश्र, एम. ए., साहित्यरत्न

जीवन स्वयं एक साधना है और सिद्धिकी प्रतीति भी। जीना, जीनेकी कामना और जीनेको जीवनका लक्ष्य बनाये रखना, तीनों ही चेष्टायें साधारण मानवजीवनको अभीष्ट होती हैं। पर महापुरुषों, चिन्तकों व मनीषियोंके जीवनकी कलायें इनसे सर्वथा भिन्न होती हैं। वस्तुतः अन्तर लक्ष्यमें है। जीनेके लिए जीना एक अलग चीज है और जीनेको शाश्वत बनाये रखनेकी साधना अलग है। इसी प्रवृत्तिगत भेदमें मानवजीवनकी साधना-विधाओंमें भी अंतर हो जाता है। भौतिक सुखकी खोजमें व्यस्त जीवनके क्रियाकलाप और आध्यात्मिक सुखकी सिद्धिकी साधना तथा सामाजिक सुखसमृद्धिकी कामनाको प्रतिफलित करनेकी रससाधनाओंमें पर्याप्त अन्तराल होता है परन्तु कुछ एक कर्मयोगी ऐसे भी होते हैं, जो भौतिक, आध्यात्मिक व सामाजिक सभी सुखोंके प्रयासमें सामंजस्य बनाये रखनेमें सफल होते हैं। ऐसे महामानव प्रायः विरले ही होते हैं। प्रारब्ध इनके लिए हस्तामलकवत् होता है। ये संचित कर्मके प्रातिभज्ञानके धनी होते हैं और इसीलिये इनके क्रियमाण कर्म इन्हें सशक्त बनाये रखनेमें समर्थ होते हैं। ऐसे विरल कर्मठ व्यक्तियोंका जीवन प्रायः आत्मोन्मुख ही होता है क्योंकि आसक्तिमें इनकी आस्था नहीं होती, केवल कर्म ही अथ होता है और वही इति भी। सम्मान, यश और प्रतिष्ठा इनके भोग्य नहीं। श्रद्धा और आदर इनको देय हैं, ग्राह्य नहीं। सम्भवतया इसीलिये श्रेय और प्रेय दोनों ही इन्हें ढूँढते फिरते हैं। समाजकी सजग चेतनायें इनके समक्ष स्वयं श्रद्धावनत होती हैं और इन्हें अपनी कृतिका सुयश प्राप्त करनेका सहसा अवसर प्राप्त हो जाता है।

अपनी स्वाभाविक अनुभूतिको अभिव्यक्त करनेका जो मुझे अवसर मिला है, उसकी प्रतीतिके आधार 'श्री नाहटा-बन्धु' हैं।

डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदीने श्री अगरचन्द नाहटा और श्री भँवरलाल नाहटाको इसी नामसे पुकारा है और इनकी देनको विज्ञापनरहित साहित्य-साधनाकी अमर प्रवृत्तिकी संज्ञा दी है। मेरा अपना संपर्क दोनों ही चिन्तकोंसे रहा है। आप दोनों चाचा और भतीजे हैं। एक साधना है तो दूसरा सिद्धि। इनके पूरक प्रयत्न इतने मिश्रित हैं कि "को बड़ छोट कहत अपराधू, गनि गुन दोष समुझिहहिं साधू", महात्मा तुलसी-दासकी विनम्र प्रार्थना ही सहायक हो पाती है। वैसे एक कारण हैं तो दूसरा कार्य, एक प्रतीति है तो दूसरा प्रतिफलन, एक ज्ञान है तो दूसरा भक्ति, या महाप्राण निरालाके शब्दोंमें एक विमल हृदय उच्छ्वास है तो दूसरा कान्तकामिनी कविताका प्रतीक। फलतः जीवन, जीवनकी विधि, उसकी गति व जीवनकी समस्त सारभूत प्रक्रियाओंमें अभेद समानता इन्हें पृथक् रूपमें नहीं देख सकती। वैसे सेव्य-सेवक भावनाओंमें जो एकरसता है, वह अनिवार्य रूपसे इनमें ओत-प्रोत है। मुझे प्रसन्नता है कि भारतीय विद्वत्-समाजकी सहज बोध्य सर्जनशील चेतनाने इन दोनों ही महानुभावोंके अभिनंदनमें भी एकरसता व तादात्म्य बनाये रखनेका प्रयास किया है। अभिनन्दन ग्रन्थके आयोजकोंमें अग्रणी श्री हजारीमल बाँठियाके सदाग्रहने मुझे श्री भँवरलालजीके व्यक्तिगत, सामाजिक, साहित्यिक व आध्यात्मिक जीवनकी झाँकी देनेकी प्रेरणा दी है। प्रस्तुत आकलन अंतरंग साहचर्यको कहाँ तक सजीव बना सकेगा, सहृदय पाठकोंकी प्रज्ञाचक्षु ही इसे विश्वास दे सकेगी। इस गम्भीर चेतना-पुंज सरस्वतीके वरद-पुत्रके जीवनका जितना भी अंश साकार हो सकेगा, उतनी अपनी समझ, शेष अपनी अल्पज्ञताकी विवशता ही होगी। शास्त्र कहता है—"क्वचित्-खल्वाट



श्री भँवरलाल जी नाहटा

निर्धनम्'', यह धन, सम्पत्ति, अन्य भोगोपकरण भी हो सकते हैं और विद्या-बुद्धि, यशमान, ज्ञान और भक्ति भी। प्रशस्त ललाट, मांसल-स्कंद, विस्तृत वक्षस्थल, घनी मूँछें, निर्मल दृष्टि तथा चिन्तन-शील भृकुटि-विलास, आपके प्रभावशाली व्यक्तित्वके प्रतीक हैं, रीति-नीति परम्पराके परिवेशमें अतीतके उज्ज्वल व तपस्यारत महर्षिके ओजसे आभासित भव्यरूप सहज आकर्षक बन जाता है। लक्ष्मी आपको प्यार देती है और सरस्वती प्रातःकालीन समीरके समान दुलार तथा शक्ति स्वयं अनवरत अध्यवसायकी सतत प्रेरणामें दत्तचित्त रहती है। भगवान् महावीरका अनुशासन आपको आत्मबोध देता है और सद्गुरु सहजानन्दघनकी दीक्षा आपको आत्मबल। संयम आपका आचरण है और अध्ययन आपकी आत्मनिष्ठा। निष्काम कर्म आपमें साकार हुआ है और ध्यान व धारणाओंकी संगतिने आपके भीतर और बाहरकी अनुभूति और कृतिको समन्वित कर रखा है। निर्मल चित्त, विमल मानस तथा तपःपूत आचरण जिस दुर्लभ व्यक्तित्वका निर्माण कर सके हैं, वह अन्यत्र दुर्लभ है। आश्चर्य यह है कि नितान्त आत्मोन्मुख होकर भी आपका सामाजिक जीवन इतना व्यस्त है कि अन्तर्विरोधके कारण भी कारणोंका आधार चाहते हैं। सम्भवतया बोधकी स्थिति-में व्यक्ति व्यक्ति न रहकर समाज हो जाता है। समरसता शायद समदृष्टिकी अमरसाधनाका ही फल होती है। कहते हैं कि अनुभूतिकी तीव्रता ही अभिव्यक्तिकी आधारशिला होती है और इसीलिए संवेदन-शील प्रकृति साधारणीकरणके आवेगके प्रबल प्रवाहको रोक नहीं पाती, और इसीलिए आपमें अवरोध नहीं, अस्वीकार नहीं। जो कुछ है सहज है, सरल है, ग्राह्य है और अनुकरणीय है।

एक धनीमानी और समृद्ध परिवारने आपको जन्म दिया है। अभावके संसारसे दूर, भावनाओंके संसारमें आत्मविश्वासके चरण सतत गतिशील रहे हैं। इसका प्रधान कारण एक बृहत् परिवारकी संयुक्त व समन्वित पवित्र प्रेरणा, परिचर्या तथा पावन परम्परा ही रही है। अर्थ, धर्म और कामके लिए जीवन कभी व्यग्र नहीं हुआ। पूर्वज कर्मठ थे। पिता श्री भैरूदानजी तथा पितृव्य श्री शुभराजजी, मेघराजजी, व अगर-चन्दजीकी छत्र-छायामें साधना और सिद्धिकी भौतिक संतुष्टि आपको तीनों ही पुरुषार्थोंको सुलभ बना रखी थी। आज भी वही वातावरण आपको आपके मध्यमायुकी ओर अग्रसर कर रही है। पितामह श्री शंकर-दानजीकी व्यावहारिक एवं व्यापारिक कुशलता आपको निर्द्वंद्व, निर्भीक एवं निरापद बनानेमें सहायक हुई है; यह अस्वीकार नहीं किया जा सकता। इतने बड़े कुटुम्बमें व्याप्त पूज्य-पूजक भावनाओंकी धार्मिक सहि-ष्णुता आजके वैयक्तिक परिवारोंकी दुनियाँमें असम्भव नहीं तो दुर्लभ अवश्य है। अर्थोपार्जन व कर्मभोगकी स्वाभाविक गतिमें धर्म-साधनाका मणिकांचन संयोग भी आपके परिवारकी ही विशेषता रही है। साधु-समागम, तीर्थाटन, जप, तप, दान व मन्दिर-निर्माण, धार्मिक-उत्सवोंके अवसरपर सक्रिय धार्मिक कृत्य आदि, त्याग, संयम व अपरिग्रहकी मनोवृत्ति परिवारके प्रत्येक प्राणीके लिए अभीष्ट है। फलतः कर्त्तव्य-निष्ठाके साथ-साथ आपकी प्रकृतिमें सौजन्य, कुलीनता तथा निरभिमान व्यावहारिक, सामाजिक व धार्मिक चेतनाका समन्वय मिलता है तो आश्चर्य नहीं वरन् संतोष ही होता है। आप कुलदीपक हैं, परिवारकी मर्यादा हैं, अपने समाजके प्रकाश स्तम्भ हैं और हैं अपने जीवनकी ज्योति, जो अनेक जन्म-संसिद्धिके रूपमें आपको अनायास सुलभ हुई है।

वस्तुतः मेरा अपना परिचय सर्वप्रथम श्री पारसकुमारसे हुआ था। ये पूर्णतया आपकी प्रतिकृति हैं। ''आत्मा वै जायते पुत्रः'' की प्रतीति तो मुझे आपके सान्निध्यसे ही प्राप्त हुई है। परम सुशील, संयमी, सभ्य व पूर्ण व्यावहारिक पुत्र, जो सम्पत्तिशाली कहे व माने जाने वाले वर्गके परिवारोंमें खोजनेसे ही प्राप्त हो सकते हैं, मुझे यह आभास दे दिया था कि धनकी परिधिमें भी धर्मके केन्द्रबिन्दु, मानवता, सज्जनता सहृदयताका अभाव नहीं है। ठीक यही भाव मुझे प्रिय अनुज श्री हरखचन्दके साहचर्य्यसे ज्ञात हुआ। मुझे

वे आपके पूरक प्रतीक हुए। भौतिक एवं आध्यात्मिक प्रकृतिके अद्वितीय समन्वय जहाँ आँसुओंकी कीमत है, विरागका राग है और है अनुरागमें विरागकी अद्भुत झलक। हरखचन्दजी सम्भवतया आँसू और मुसुकानके बीचकी कड़ी हैं। धर्म उनका सहायक है, अर्थ उनकी प्रेरणा है और काम उनकी सृष्टिका संस्थान। शील और संकोच जो आदर और सन्मानकी भूमिका अदा करते हैं, आप दोनों भाइयोंको ईश्वर-प्रदत्त हैं। मेरा तात्पर्य मात्र इतना ही है कि श्री भँवरलालजीकी परिधि इतनी शान्त व मनोहर है, इतनी सर्जनशील व प्रभुताविहीन है कि ऐसी परिस्थितिमें ही उनके सम्पूर्ण गुणोंकी परख हो सकती है।

सत्य, अहिंसा, अस्तेय व अपरिग्रह आदि जैनधर्मके मूल-भूत सिद्धान्तोंकी विस्तृत व्याख्यायें हैं, विविध परिणतियाँ हैं। साधु व गृहस्थ-धर्मोंके पृथक्-पृथक् आचरण भी हैं। विधि-निषेधकी विभिन्न मर्यादाओंकी भी सीमायें नहीं हैं। लेकिन सतत जागरूक व्यक्ति मत-मतान्तरों, दार्शनिक विवादों एवं विधि-निषेधोंसे ऊपर होता है। सिद्धान्त वस्तुतः आचरणकी मर्यादा निर्धारण करनेमें सहायक होते हैं। वे स्वयं आचरण नहीं होते। फलतः विश्वासोंमें तर्क, सिद्धान्तके निर्णयके लिए गौण बन जाते हैं। कर्तव्य श्रद्धा चाहते हैं और आचरण सामाजिक विश्वास। या थोड़ा ऊपर उठने पर हम कहेंगे कि आचरण आत्मविश्वास चाहते हैं जिसमें परका भी समान अस्तित्व होता है। वस्तुतः परम्परा-निर्वाह अन्य वस्तु होती है और कर्तव्यनिष्ठा अलग। यदि कहीं दोनोंका सम्मिश्रण उपलब्ध होता है तो वह अद्भुत होता है। इसीलिये साधारण व्यक्तित्वसे वह व्यक्तित्व विशेष हो जाता है और उसे हम महान् आत्मा कहनेको बाध्य होते हैं। श्री भँवरलालजीमें जैनधर्म साकार दृष्टिगोचर होता है। यहाँ जो कुछ है, मनसा वाचा कर्मणा है द्विधा नहीं और इसीलिये द्विधाके प्रति आवेश भी नहीं। आक्रोश नहीं और न ही शिकायत ही है क्योंकि आचरणमें किफायत नजर नहीं आती। यहाँ परम्परा है। परम्पराकी आनुभूतिक धरोहर है। तर्क और सिद्धान्तोंके मननकी चिन्तनधारा है। विश्वास और श्रद्धा है। तेरापंथ भी उनके लिए उतना ही सहज बोध्य है, जितना मन्दिर मार्ग। यहाँ धर्म बाह्याडम्बर नहीं जितना दिखावा है, वह लोकाचार है। फलतः आपकी साधना एकांगी नहीं, सर्वांगीण है। मुनि जिनविजय तथा मुनि कांतिसागर, कृपाचन्दसूरि और श्री सुखसागरजी, मुनि पुण्यविजय, श्री हरिसागरसूरि, मणिसागरसूरि, कवीन्द्रसागरसूरिके सत्संगने आपको धर्म चेतना दी है तो मुनि नगराज, मुनि महेन्द्रकुमार 'प्रथम', जैसे व्यक्तित्वने आपको अपना स्नेह दिया है। बुद्धिगम्य-ग्रहण आपकी मानसिक पुकार है, संस्कार-जन्य स्वीकार आपके हृदयकी। नयनकी भीख भँवरलालजीको अनुकूल है, पर अन्तश्चेतनाकी पावन धारा, जिसमें आपका मन अवभृथ स्नान करता है, वहाँ आपका एक अलग अस्तित्व भी है। उस मानसतीर्थमें सबके लिए समान स्थान है। अनेकान्तवादी विचारधारा ही आपके एकान्त व सार्वजनिक चिन्तनका मार्ग प्रशस्त कर सकी है। सद्गुरु श्री सहजानन्दजी, जिन्हें देखने व सुननेका एक बार मुझे अवसर मिला है और जो आपके दीक्षागुरु भी हैं; मुझे यह लिखनेका साहस देते हैं कि भँवरलालजी मन और वाणीसे अपने गुरुकी मुक्त अनुभूतिके कायल हैं। श्री सहजानन्दजी शुद्ध-बुद्ध अनुभूत योगके प्रतीक श्रमण रहे हैं। उनमें धर्मोंकी, भारतीय दर्शनोंकी, और भारतीय नैतिक जीवन मूल्योंकी अद्भुत समन्विति रही है। भँवरलालजीमें जो गौरव है, वह गुरुका है, परिवारका है, पूर्वजोंका है और है लोकाचारका मर्यादित व स्वीकृत संयोग। स्पष्टतः यह मनीषी महा-मानव समुद्रकी तरह गुरु गम्भीर है। समस्त संसारकी विचार-सरिता इस महासागरमें निमज्जित होकर इसमें एकरस हो चुकी है। लगता है, भगवान् महावीर की वाणी "मित्ती मे सव्वभूएसु वेरं मज्झं न केणई" ने ही आपको आतिथ्यकी कामना दी है। आत्मकल्याण, लोक मंगल तथा विश्वजन-हितायके जैनानु-शासनका सार्वभौम उद्घोष आपका अभीष्ट है, इसीलिये आपकी धर्मदृष्टि उदार है। करुणा और दया

आपके **उपजीव्य** आधार हैं। धर्म यद्यपि शोध-विषय नहीं है, मात्र विश्वास ही उसका शोध है जिसे आत्म-निरीक्षण या आत्मविश्लेषण कहा जाता है, फिर भी आपकी सजग चेतना परम्परा और सत्यके बीच सामंजस्य स्थापित करनेमें सतत संलग्न रही है। सत्य यह है **कि कालभेदसे मतभेद होता है** और **मतभेदसे मनभेद**। यही मनभेद विकल्पको जन्म देता है और विकल्प असमंजसकी स्थितिमें मानवचेतनाको अस्थिर बना देता है जिसे हम क्रान्तिका धरातल कह लेते हैं। यहीं द्विधा उत्पन्न होती है। फलतः विचारोंमें संतुलन रह नहीं पाता और वाद-विवादकी स्थिति व्यक्ति, समाज, राष्ट्र व अन्तर्राष्ट्र-मनको विचलित कर देती है। यह सारी स्थिति कालभेदको लेकर चलती है। काल स्वयं बँधता है क्षणोंमें, घंटों और दिनोंमें, मास और वर्षोंमें और फिर युगों और शताब्दियोंमें। **शायद इसीलिये सामाजिक चेतनाके प्रतीक धर्मके अविरल विभाज्य-बिन्दुओंके प्रवाहको काल भी नहीं पचा पाता है** क्योंकि महापुरुषों और कालपुरुषके इसी अन्तर्द्वन्द्वके शोधनकी आवश्यकता मनीषियों व चिन्तकोंकी कालजयी मेधा, सदा अनुभव करती रही है। अतीतको वर्तमान और भविष्यको भी सजग वर्तमान बनानेकी साधना कितनी स्तुत्य है, यह मनीषी पाठक ही विचार करेंगे। मैंने तो इस व्यक्तित्वकी चेष्टाओंकी प्रतीतिके लिए अपनी अनुभूति भर व्यक्त की है। भंवर-लालजीकी अन्तर्दृष्टि इतनी सूक्ष्म रही है, जितनी कालकी गति। इसीलिये इस मौनचिन्तककी प्रज्ञा सदा वातावरण-सापेक्ष्य होते हुए भी बिखरी हुई धर्मकी कड़ियोंमें व्यामोहरहित गांठ बाँधती चली आयी है। वे कहा करते हैं कि :

"वेदा विभिन्नाः स्मृतयो विभिन्नाः नैको मुनिर्यस्य मतिर्न भिन्ना।
धर्मस्य तत्त्वं निहितं गुहायां महाजनो येन गतः स पन्थाः॥"

आप अडिग हैं, निश्चल हैं। सचमुच विज्ञापन-रहित हैं। अपने विश्वासोंको ही जीवनके नैतिक मूल्योंका आधार मानते आये हैं। यदा कदा ऐसे अवसरोंपर जब वे आलोच्य बने हैं, इन्होंने कहा है कि भर्तृहरि ठीक कहते हैं :

"निन्दतु नीति-निपुणा, यदि वा स्तुवन्तु लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम्।
अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा न्याय्यात् पथः प्रविचलन्तिपदं न धीराः॥"

अध्ययन, चिन्तन, मनन, अध्यवसाय व निदिध्यासन, आपके जीवनके स्थिर-चित्र हैं। सद्गुरु साथ हैं, जैनानुशासन पासमें है, अविचल निष्ठा है, फलतः इनमें विकल्प नहीं, द्विधा नहीं, एक बोध है। प्राण-वान् विश्वास है। क्योंकि आपके लिए धर्म साधन और सिद्धि दोनों ही है। प्रमाणके लिए अभी-अभी एक जीवन्त प्रश्नपर आपके विचार देखनेको मिले हैं। भगवान् महावीरके दिव्य प्रयाणके पावन स्थल पावा-पुरीको लेकर एक विवाद उठ खड़ा हुआ है। कन्हैयालालजी सरावगीकी **इस विषयमें** एक पुस्तक मुझे भी पढ़नेको मिली थी। मैंने भँवरलालजीसे प्रश्न किया था कि आपकी इस विषयमें क्या सम्मति है? आपने स्पष्ट उत्तर दिया—"**भाई भगवान् महावीरकी २५०० वीं जयंती मनानेका भारत सरकारने निश्चय किया है। युगपुरुष एकदेशीय नहीं होते, उनका आदेश समस्त संसारके लिए होता है। उनके जन्म और निर्वाणके स्थानके निर्णय, विशुद्ध ऐतिहासिक व पुरातात्त्विक प्रश्न हैं। इसपर एकान्तिक विचार करना किसी भी सम्प्रदायके लिए उचित नहीं। मेरा तो अपना ख्याल है कि हजारों वर्षोंसे लोक-श्रद्धा मध्यमपावा, जो बिहार प्रान्तमें स्थित है, को ही प्रभुका प्रयाण-स्थल समझकर अपनी भक्ति प्रगट करती आ रही है। इसलिये राजनैतिक या निहित स्वार्थमें लिप्त कुछेक वर्ग या सम्प्रदायकी तात्त्विक व्याख्या सामयिक लाभके लिए ही है। विदेशी विद्वानोंने प्रायः बौद्ध-त्रिपिटकों ही को अपने इतिहास लेखनमें सहायक माना है। जैन-**

सिद्धान्त व जैनागमोंमें व्यक्त विचार उन्हें एकांगी नजर आये हैं, फलतः उनका: निर्णय स्पष्ट नहीं हो सकता क्योंकि सम्प्रदायगत विद्वेष एक दूसरेको हेय समझनेको बाध्य हैं। मेरा अपना विचार है कि यद्यपि लोक-परम्परा लोकाचारके द्वारा बिहारस्थित मध्यमपावाकी युगपुरुषकी निर्वाणभूमिको अपने विश्वासका केन्द्र मानती आयी है सो हम उस लोक मंगलमयी लोकभावनाके समक्ष नत होनेको बाध्य हैं" हमारा इतिहास इसके विरुद्ध नहीं है। आपने 'जैन भारती'मे एक निबंध लिखकर इस भ्रमको असामयिक, अतात्त्विक तथा अनैतिहासिक प्रमाणित करनेका प्रयास किया है। तात्पर्य यह कि यह मनीषी सत्य और आचारमें सामंजस्य का समर्थक हैं।

भँवरलालजी शिक्षित और दीक्षित दोनों ही हैं। पर शिक्षाको, जिस रूपमें आधुनिक युग द्वारा प्रमाणित किया जाता है, मात्र ५ वीं क्लास तककी है। इसे हम प्रारंभिक या प्राइमरी एजुकेशन कहा करते हैं। अंग्रेजी साहित्यमें एक मुहावरा है द थ्री आर्स (The three R's) लिखना, पढ़ना और हिसाब किताब (रीडिंग, राइटिंग तथा रिथमेटिक) नितान्त अपर्याप्त। पर प्रतिभा स्कूल, कालेज व युनिवरसीटियों में निर्मित नहीं होती। वह जन्मजात होती है। इनके तो पेटमें ही दाढ़ी थी। पूर्वजन्मके पूत संस्कारोंने इस महान् व्यक्तित्वको देशकी समस्त भाषाएँ विस्तृत संसारकी मुक्त पाठशालामें सहजमें ही, समय और अभ्यास के अभ्यस्त अध्यापकों द्वारा पढ़ा दी हैं। वस्तुतः प्रातिभज्ञान स्वयंभू होते हैं। प्रारब्ध और क्रियमाण कर्म जिन संस्कारोंको जन्म देते हैं वे संचित होते रहते हैं। उसी संचयकी सिद्धि एक 'जीनियस' के रूपमें प्रगट होती है। कुछ तो संस्कार, कुछ व्यक्तित्वकी अभिरुचि और कुछ वातावरण; सभीके पारस्परिक सहयोगकी परिणति एक ऐसे विवेकका सृजन करती है, जिसे हम मानसिक शक्ति कहते हैं। यही मानसिक शक्ति प्रतिभाके नामसे जानी जाती है। इसे प्रमाणपत्रकी आवश्यकता नहीं होती। यह स्वयंसिद्ध प्रमाणपत्र होती है। संसारकी शिक्षण संस्थाएँ इनकी कायल होती हैं। विद्वत् समाज इनका सम्मान करता है। इस-लिए कि प्रतिभा स्वयं शुद्धबुद्धज्ञानकी अधिष्ठात्री होती है। वह सामाजिक स्वीकृतिकी अपेक्षा नहीं रखती, प्रत्युत स्वीकार ही स्वयं उसकी योग्यता स्वीकार करनेको बाध्य होता है। **संस्कृत, पाली, प्राकृत, अपभ्रंश, अवधी, बंगला, गुजराती, राजस्थानी तथा हिन्दी आदि समस्त भाषाओंमें पारंगत, प्राचीन** ब्राह्मी, कुटिल आदि युगकी भाषाओंकी सतत परिवर्तित लिपियोंकी वैज्ञानिक वर्णमालाके अद्भुत ज्ञानके अभ्यस्त श्री भँवर-लालजीकी प्रतिभाके कायल, प्रायः इनके सभी अन्तरंग विद्वान् मित्र हैं। मूर्तिकला, चित्रकला, वास्तुकला तथा ललित कलाओंकी आपमें परख है। आपकी अभिरुचि प्रायः भाषाशास्त्र, लिपि-विज्ञानमें है। फलतः पुरातात्त्विक अनुसंधानकी ओर अग्रसर होनेमें आपका लिंग्विस्टिक एप्रोच पर्याप्त सहायक हुआ है। न जाने कितने ज्ञात अज्ञात ग्रन्थोंकी प्रतिलिपियाँ जो विशिष्ट विद्वानोंसे लौटकर आयीं, बीकानेरके अपने संग्रहालयमें उपस्थित हैं। अनुसंधान और शोध हेतु अनेकानेक दुर्लभ चित्रकलाओंके नमूने, वस्तु व मूर्तिकलाकी प्रामाणिक प्रतिमाएँ, अमूल्य प्राचीन ग्रन्थोंकी प्रतिलिपियाँ आपने संग्रह की हैं, देखने मात्रसे इस नर-रत्नकी प्रकृतिका परिचय प्राप्त हो जाता है। पुरातत्त्व व नृतत्त्व-विज्ञानके अतिरिक्त इतिहास-शोधनकी प्रकृतिने भी आपका झुकाव शिलालेखोंकी ओर उन्मुख किया है। प्रायः सभी शिलालेखों की, चाहे प्राचीनतम ही क्यों न हो, लिपि पढ़ने व उसका उचित अर्थ लगानेमें आपको किंचित् मात्र भी कठिनाई नहीं पड़ती। **अतीतके गर्भमें मानव अर्जित ज्ञानकी संचित राशिको ढूँढ़ कर बाहर निकालनेमें आपने जो समय-समयपर सहायता की है, वह स्तुत्य है।** प्राचीन संस्कृति व सभ्यताके विस्मृत तथ्योंके संग्रह करनेकी इनकी प्रबल आकांक्षाने इन्हें गहन अध्ययनकी अभिरुचि प्रदान की है। राजनीतिज्ञ, सामाजिक व सांस्कृतिक परिस्थितियोंकी समाजशास्त्रीय विश्लेषणात्मक चिन्तन-धाराने ही आपके अतीत और वर्तमानके बीच सामंजस्य संस्थापनमें योगदान किया है।

पाठक लोग जिज्ञासु अवश्य होंगे कि आखिर इस अपरिचित ज्ञानके उपजीव्य स्रोत क्या हैं ? आपकी बहुज्ञता व तथ्य-संग्रहकारिणी प्रवृत्तिके मूल स्रोत क्या हैं ? प्रश्न स्वाभाविक होगा । निश्चय ही व्यक्तित्व व्यक्तिगत और वातावरणकी शक्तिके संतुलनका परिणाम होता है । वस्तुत. भँवरलालजी पितृव्य श्री अगरचन्दजीके आग्रहके परिणाम हैं । उनके आज्ञापालनकी उत्कट अभिलाषाके क्रियान्वयनमें अपनी शक्तिका उपयोग कर आपने अपना स्वतः निर्माण किया है । जिज्ञासा उनकी, कार्य इनका । विचार उनके और लेखनी इनकी । भावना उनकी और प्रतीति इनकी । इस प्रकार भक्ति, श्रद्धा, विनय, आज्ञाकारिता तथा अपनी स्वाभाविक रुचिकी सम्मिलित-साधनाके परिणामस्वरूप श्री भँवरलालजी श्री अगरचन्दजीके ज्ञानकी अभीष्ट प्यासके सरोवर बनते गये हैं । विषयवस्तुके भावपक्षके जिज्ञासु काकाजीके कलापक्ष और कभी भावपक्षके रूपमें, आपने कलाकी साकार प्रतिमाका निर्माण अपनी अनवरत लेखनीसे किया है । कहते हैं वेदव्यासजीकी अभिव्यक्तिको लिपिबद्ध करनेकी शक्ति किसी देवशक्तिको नहीं हुई । केवल गणेशजीने यह भार ग्रहण किया । लेकिन गणेशजीने यह स्पष्ट कर दिया था कि यदि आप (वेदव्यासजी) कहीं रुकेंगे तो उनकी लेखनी भी बंद हो जायगी । वेदव्यासजीने हाँ भर ली । उन्होंने कुछ श्लोकोंके पश्चात् एकआध श्लोक गूढ़ अर्थवाला बोलना प्रारम्भ किया और श्री गणेशजीसे मात्र इतना ही कहा कि आप अर्थ समझकर ही लिखेंगे । गणेशजी गूढार्थ-श्लोकों पर रुक जाते और तब तक कृष्णद्वैपायन श्री वेदव्यासकी चिन्तनधारा नवीन श्लोकोंका निर्माण कर लेती । यह क्रम चलता रहा और एक अद्भुत वाङ्मयका निर्माण होता रहा । कथाके अंशमें कितनी सत्यता है, आजका वैज्ञानिक व्यक्ति शायद न समझ पाये पर फलितार्थ समझनेमें वह भी भूल नहीं करेगा कि दोनों महान् थे, दोनों ही दैवी शक्तियाँ थीं । यहाँ भी **भावपक्ष जितना अभिव्यक्तिके लिये व्याकुल है तो कलापक्ष भी उतना ही आतुर** । दोनोंकी **इन्टेन्शिटी** समान है और तभी सद्वाङ्मयकी सृष्टि सम्भव हो सकी है । राजस्थानके ये दो सजग प्रहरी कला, ज्ञान, विज्ञान, सभ्यता, संस्कृति, धर्म और नीति व्यक्तिगत व सामाजिक जीवनके मूल्योंकी खोजमें सतत व्यस्त रहे हैं । यह तृष्णा बुरी नहीं है । ये अध्यवसायी, स्वाध्यायी कालक्षेपके प्रमादसे रहित हैं । इनके समक्ष :

"भोगा न भुक्ता वयमेव भुक्ताः, तपो न तप्तं वयमेव तप्ताः ।
कालो न यातो वयमेव याताः, तृष्णा न जीर्णा वयमेव जीर्णाः ।।"

एक वरदान है, निराशामय अभिशाप नहीं, क्योंकि ये स्रष्टा हैं, स्रष्टाके शोधक हैं तथा नवीन सर्जनके कारण और कार्य दोनों ही हैं । मध्यदेशीय संस्कृतिके संरक्षण, पोषणमें किसी प्रकारकी बाधा इन्हें प्रिय नहीं हुई है । **जब कभी किसी प्रकारका आक्षेप आया है, बीकानेरकी दृष्टि इस व्यस्त नगरीकी ओर उठी है और संकेतमात्रने भँवरलालजीके रोम-रोमको जागृत किया है । इतिहास जागृत हुआ है, लिपि नवीन हुई है, विचार व्यवस्थित हुए हैं । विद्वत्-समाज कृतार्थ हुआ है** । तात्पर्य यह कि अगरचन्दके भँवर, अगरके सुगंधका आभासमात्र पाकर भुनभुनाने लगे हैं । भँवरलालजी परागके प्रेमी हैं । इनका स्रोत बीकानेरके पुष्पराज श्री अगरचन्द हैं, इसमें दो मत नहीं हो सकते । काका और भतीजेकी यही दैवी-शक्ति इनके वाङ्मयकी सृष्टि करती रही है । ऐसा ही हुआ है और इसी वातावरणने इनके एक पृथक् व्यक्तित्वका निर्माण किया है । देश, काल, परिस्थिति और वातावरण प्रायः अपना सभी अलग अस्तित्व रखते हैं पर जगत्की गतिमें वे सामूहिक योगदान देते हैं । **राजस्थान, बंगाल, आसाम, मणिपुर आदि पूर्वसे लेकर** पश्चिमपर्यन्त तथा हम्पीसे लेकर आबू पर्वत तथा दक्षिणी व पश्चिमी प्रान्तोंके धार्मिक व साहित्यिक संस्थान इनके विचार बिन्दुओंके अविरल प्रवाहमें अपने पद चिह्न छोड़ते गये हैं । गणमान्य विद्वानोंके सामयिक सहयोग, सम्पर्क व साहचर्यने इन्हें समुत्सुक किया है, कर्तव्यकी प्रेरणा दी है, अध्ययनकी विधा दी है । जो विद्वान् आपके सम्पर्क व सान्निध्यमें

आये हैं पाठक स्वयं विचार करेंगे कि इस मनीषीका अक्षर-ज्ञान कितना अ—क्षर होता गया होगा। जैनाचार्य, प्रसिद्ध पुरातत्त्ववेत्ता डॉ॰ मुनि जिनविजयके आप कृपापात्र हैं। मुनि कान्तिसागरजीका कर्मठ जीवन इन्हें दुलार दे सका है। त्रिपिटिकाचार्य महापंडित राहुल सांकृत्यायन इनके निकट सम्पर्कमें रहे हैं। ओरियन्टल लैंग्वेजेजके प्रसिद्ध विद्वान् डॉ॰ सुनीतिकुमार चटर्जी, डॉ॰ सुकुमार सेन, डॉ॰ गौरीशंकर ओझा जैसे भाषा-शास्त्री लिपि-विशेषज्ञोंका सान्निध्य आपको सम्बल देता रहा है। प्रिंस आफ वेल्स म्यूजियमके डायरेक्टर डॉ॰ मोतीचन्द आपके मित्रोंमें हैं। प्रसिद्ध विद्वान् डॉ॰ वासुदेवशरण अग्रवालसे आपका सम्बन्ध एक अविदित कहानी बन गया है। प्रसंगवश उसका उल्लेख किया जायेगा। हिन्दी साहित्यके मूर्धन्य विद्वान् व आलोचक डॉ॰ हजारीप्रसाद द्विवेदी, डॉ॰ दशरथ शर्मा तथा अन्य समसामयिक मनीषी-वर्गका स्नेह व सौहार्द आपको अनायास उपलब्ध होता आया है। अब हम अनुमान कर सकते हैं कि प्राइमरी शिक्षा समाप्त करने वाला यह भारतीय चिन्तक कितना शिक्षित, दीक्षित व प्रामाणिक ज्ञानका स्वाध्यायी धनी है और इस धनकी धरोहरका उद्‌गम स्थान कहाँ है। प्रकाशित पुस्तकोंकी भूमिकामें अंकित विद्वानोंकी सम्मतियाँ उक्त कथनकी साक्षी हैं। स्थान विशेषपर इनकी चर्चा पाठकोंको इस विषयकी प्रतीति दे सकेगी। मुझे विश्वास है प्रसंगात् आपके लिपिज्ञानके प्रति डॉ॰ सुनीतिकुमार चटर्जीके उद्‌गार पर्याप्त होंगे। **महानुभावी** संप्रदायका एक ग्रन्थ है "पावापाठ"। ग्रन्थ प्राचीन नहीं, प्रत्युत ३०० वर्ष पहलेकी कृति है। ग्रन्थ मराठीमें लिखा गया है पर लिपि उसकी सांकेतिक है। अगरचंदजीने उस पुस्तकको देशके जानेमाने विद्वानोंके **पास पढ़ने तथा उसका अर्थ करने** सानुरोध भेजा था, पर पुस्तक बैरंग वापस लौट आयी। अब बीकानेरकी प्रतिभाने कलकत्ता स्थित अपनी शक्तिका संस्मरण किया। भँवरलालजीने लिपिकी एक वर्णमाला तैयार की और ग्रन्थ आद्योपान्त पढ़ डाला। आवश्यकता हुई कि वैज्ञानिक पद्धति पर लिपि विज्ञानके मार्गदर्शक, भाषावैज्ञानिकों द्वारा अपने पठनके औचित्यको विश्लेपित किया जाय। भँवरलालजीने सुनीति बाबूको वह ग्रन्थ दिखाया और पढ़कर सुनाया। सुनीति बाबूने आपकी भूरि-भूरि प्रशंसा की और कहा—"आपनी चोमोत्कार काज्ज कोरेचेन।" सुनीति बाबूके हाथोंपर शब्द खेलते हैं, भाषाएँ उनकी चेरी हैं, विश्रुत विद्वान् हैं। उनकी यह आश्चर्य भरी स्वीकृति इस मूक साधकके ज्ञानकी अविदित कथा है। ऐसे ही एक बार श्री जिनदत्तसूरिकृत "अपभ्रंश-काव्यत्रयी" की व्याख्यामें आये एक प्रसंगपर भँवरलालजीने आपत्ति की और महापण्डित राहुल सांकृत्यायनने अपनी मनःस्थिति ठीक की। प्रसंग था "कज्जो करइ बुहारी बुड्ढी" महापण्डितने अर्थ किया था "घरमें बुड्ढी औरतें झाड़ू देनेका काम करती हैं" आपने लिखा कि—पता नहीं भाषामर्मज्ञ और समाज-मनोवैज्ञानिक तथा प्रसिद्ध समाजशास्त्रीने ऐसा क्यों लिखा। पद्य तो कहता है कि कज्जो (कूड़ाकरकट) बुड्ढी (बद्ध, संगठित-बँधे हुए) बुहारी (झाड़ू] से ही सम्भव है। कुछ ऐसी ही पचासों आनुमानिक व्याख्याओंका प्रत्याख्यान इस प्राचीन भाषा-मर्मज्ञने किया है। 'ढोलामारू दोहा' के कई स्थलों पर की गई उचित आपत्ति नागरी-प्रचारिणी पत्रिकामें अंकित है। डॉ॰ माताप्रसाद गुप्त जो इलाहाबाद युनिवर्सिटीके एक इने-गिने प्राध्यापकोंमें रहे हैं, उन्होंने हिन्दीके आदि कालीन ग्रन्थों, जो विश्वविद्यालयीय उच्च कक्षाओंमें पाठ्य थे, की व्याख्याएँ प्रस्तुत कीं, जैसे हम्मीरायण तथा वसंतविलास इनकी आलोचनाके केन्द्र बन गये हैं। वस्तुस्थिति यह है कि हिन्दी साहित्यका आदिकाल जैन व बौद्ध महात्माओं, साधकों व सिद्धोंकी पृष्ठभूमि पर खड़ा है। नाथपंथकी साहित्यिक देन भी हिन्दीके लिए एक स्तम्भ है, जिसने मध्यकालीन साहित्यको पूर्ण रूपसे प्रभावित किया है। फलतः अपभ्रंश साहित्यकी वैज्ञानिक विधाओंकी जानकारीके अभावमें वस्तुस्थितिका ज्ञान असम्भव है। शौरसेनी प्राकृतमें उपलब्ध समस्त ज्ञान गरिमा अपभ्रंश भाषामें लिपिबद्ध हैं और यह सारा वाङ्‌मय देशके पश्चिमोत्तर भागमें लिखा

गया है। फलतः आंचलिक भाषाओंकी वास्तविक परख किये बिना हम तात्कालीन साहित्यके प्रति न्याय नहीं कर सकेंगे। राजस्थानकी समस्त आंचलिक भाषा-लोक संस्कृति तथा लोक भावनाओंके क्रमिक विकासके लिए यदि हम विज्ञानके घिसेपिटे नियमों व सिद्धान्तोंकी कसौटीपर कसते रहे तो वह हमारे अज्ञानके प्रयासका विकल्प ही होगा। १००० से लेकर १३७५ तक सम्पूर्ण वाङ्मयसे सुचारु रूपसे अध्ययनके लिये तत्तद्देशीय प्रतिभाओंको ही अधिकारी निर्देशक स्वीकार करना पड़ेगा, अन्यथा विश्वविद्यालयीय अध्यापन-शैली व शोध-प्रणाली केवल प्रिन्सिपुल बनकर रह जायेगी और हम अज्ञानान्धकारमें आँख मूँद कर टटोलनेकी मान्य प्रणाली पर चलनेके अभ्यस्त हो जायेंगे। लोकभाषा, लोकाचारकी भावनाओंमे ओत-प्रोत होती है, चारणोंकी कृतियोंको मात्र भाषा-वैज्ञानिक ही निर्णय कर पाये, यह तात्त्विक दृष्टिसे असम्भव है। यही बात सिद्धों व योगियोंकी अभिव्यक्तियोंके प्रति लागू है। मेरा आग्रह मात्र इतना ही है साहित्य जनमानसका संचित प्रतिबिम्ब होता है, फलतः जनमानसकी भावना जो सामयिक रससाधनाका वर्चस्व पाकर अभिव्यक्त होती है उसकी अभिव्यक्तिकी विधा उसके सम्पर्क व सान्निध्यमें रहनेवाले विद्वान् ही कर सकते हैं और वही मान्य भी होना चाहिये।

दशवीं शताब्दी के पश्चात्का पश्चिमी भारत **विशेषतया** राजस्थान और उत्तरी भारत (पंजाब, उत्तरप्रदेश, बिहार तथा बंगाल) ऐतिहासिक दृष्टिकोणसे उतना भ्रामक नहीं होना चाहिये। तात्कालीन सामाजिक व सांस्कृतिक परिवेश भी उतने धुंधले नहीं हैं। फिर भाषाके प्रश्नको लेकर १०वीं से १४वीं शताब्दी तक साहित्य-सृजनके प्रति भ्रामक विचारोंकी आवश्यकता ही क्या है? शौरसेनी, मागधी तथा अर्द्धमागधी प्राकृतसे निःसृत क्षेत्रीय भाषाओंकी बदलती हुई व्यंजनाशक्ति, ध्वनि, शब्द तथा वाक्यांशोंमें अंतरकी स्थिति तत्तद्देशीय विद्वानों द्वारा निर्णीत होनी चाहिये। रासो ग्रन्थोंके विषयमें रामचन्द्र शुक्ल, श्यामसुन्दर दास, राहुल सांकृत्यायन, डॉ० रामकुमार वर्मा, डॉ० धीरेन्द्र वर्मा तथा डॉ० भोलानाथजीके विचार असमंजसकी स्थिति उत्पन्न कर सकते हैं पर डॉ० मोतीलाल मेनारिया, गौरीशंकर ओझा तथा अन्ततः डॉ० दशरथ शर्मा आदि विद्वानोंकी सम्मति क्यों न निर्णायक मानी जाय। नाहटा बन्धुओंने इस दिशामें प्राचीनतम प्रतियोंकी अनेकानेक प्रतिलिपियाँ तैयार करके जो स्तुत्य काम किया है, इनका यह प्रयास इस दिशामें विशेष सहायक हुआ है। अन्तः और बाह्य-साक्ष्यकी प्रामाणिक स्थितिके लिए इनका अमूल्य सहयोग हिन्दी साहित्यके आदिकालके लेखकों, आलोचकों व मनोवैज्ञानिकोंके लिए वरदान सिद्ध हुआ है और होता रहेगा। उक्त विचार श्री भँवरलालजीने अनेकों बार व्यक्त किया है, मैंने तो प्रसंगवश उनकी चर्चा की हैं। बंगला और मागधीको लेकर भी यही विवाद विद्यापतिके विषयमें चर्चाका विषय बनता रहा है। मेरी समझमें दोष Methodist, Scholars के मानसकी विकल्प स्थितिका है। किसी भी विषयका प्रारम्भ ही वस्तुतः विवादग्रस्त होता है, पर उसकी अक्षुण्ण परम्परा विवादोंको वाग्जाल समझ कर त्यागती रही है। नाहटा-बन्धुओंने आलोचनाकी भूमि दी है, आलोचनाएँ कम की हैं। साहित्यका उद्धार किया है, निर्णयकी पृष्ठ-भूमि दी है; यह निर्विवाद सत्य है।

साहित्य-साधना कर्म और ज्ञान-साधनासे पृथक् नहीं रखी जा सकती क्योंकि साहित्य-साधनाके साथ कर्म और ज्ञानका पूरा सम्मिश्रण होता है। फलतः अभिव्यक्ति चाहे स्वान्तः सुखाय हो या बहुजन हिताय, दोनोंमें अन्तर नहीं होता। इसलिये कि जो स्वान्तःसुखाय है; वह बहुजनके परिवेशका ही परिणाम है। व्यक्ति और समाजकी आवश्यकताओंसे सम्बन्धित भावनायें ही अभिव्यक्तिके माध्यमसे साहित्यकी संज्ञा पाती हैं। अतः 'स्व' और 'पर'के ज्ञानकी प्रेरणाका फल कर्म यदि भावानुभूतिकी तीव्रताके प्रवाहको साहित्यकी

विधा देता है तो सृजनकी प्रकृति तीनों ही मनःप्रवृत्तियों की प्रकृति स्वीकार की जानी चाहिये अन्यथा कर्मयोग व ज्ञानयोग दोनों ही भावयोगसे पृथक् केवल एक शास्त्रीय मर्यादा बन कर रह जायेंगे। यदि मनेन रागात्मिका वृत्ति ही काव्यके आधार माने जायेंगे तो विरागजन्य भावाभिव्यक्तियोंको नोटिस मात्र समझ कर हम तिरस्कृत करते रहेंगे और भक्तिरससाधकोंकी विशाल कृतियाँ साहित्यकी श्रेणीसे अलग पुस्तकालयोंकी निधि बन कर ही रह जायेंगी। मेरा तात्पर्य यह है कि मनको समस्त स्थितियों व प्रकृतियोंको राग-विराग किसी भी स्थितिमें-यदि रसानुभूति होती है और वह अभिव्यक्ति पानेके आवेगसे व्याकुल होकर, विमल उच्छ्वास होकर, व्यक्त होती है तो आलोचकोंकी रसव्यंजनाकी श्रेणीमें गिनी जानी चाहिये अन्यथा हम मानव मनके प्रति न्याय नहीं कर सकेंगे और अनेकानेक प्रतिभाएँ विलुप्त हो जायेंगी। नाहटा-बंधुओंके सृजन स्वांतःसुखाय व बहुजनहिताय दोनों ही हैं। भँवरलालजीने प्रायः स्वान्तःसुखाय रचनायें ही की हैं और जहाँ ज्ञान और कार्य दोनोंका ही समवेत सृजन हुआ है वहाँ सामाजिक चेतनाका प्रतिफलन ही स्वीकार करना पड़ेगा। इनकी कृतियोंको हम मौलिक, अनूदित तथा सम्पादित, इन तीन विभिन्न श्रेणियोंमें रखेंगे। रचनाओंके आकलन स्वयं अपने महत्त्व प्रगट करेंगे। पाठक और विद्वद्वर्ग तथा अन्यान्य चिन्तक निर्णय करेंगे कि इन स्वतंत्र प्रकृतिके साहित्य साधकोंके सृजनकी भूमि क्या है?, इनकी आकांक्षायें क्या हैं? और इनका कथ्य क्या है?

काल-क्रमानुसार निम्नांकित विरचित व सम्पादित ग्रंथोंके सम्पादन, अनुवाद, व्याख्या, चरित्रचित्रण, संस्मरण, शोध एवं अनुसंधानात्मक विषयोंके अतिरिक्त काव्य, स्तवन, प्रशस्ति विषयक पुस्तकोंकी सूची प्रस्तुत है। पुरातत्वके प्रति इनके आकर्षणने, धर्मके प्रति आस्थाने और साहित्यके प्रति इनकी चित्तवृत्तिने इनकी बहुदर्शिनी-बहुस्पर्शिनी प्रतिभाको विविध विषयोंकी ओर उन्मुख किया है। श्री अगरचन्द नाहटाके साथ सम्पादित ग्रन्थोंकी सूचीके पूर्व इनके द्वारा स्वतंत्ररूपमे सम्पादित व विरचित पुस्तकोंकी तालिका इस प्रकार है—

प्रकाशित

१. सती मृगावती (स० १९८७)
२. राजगृह (स० २००५)
३. समयसुन्दर रास-पंचक (स० २०१७)
४. हम्मीरायण (स० २०१७)
५. उदारता अपनाइये (स० २०१७)
६ पद्मिनीचरित चौपई (स० २०१८)
७. सीतारामचरित्र (स० २०१८)
८. विनयचन्द्रकृति कुसुमांजलि (स० २०१९)
९. जीवदया प्रकरण काव्यत्रयी (स० २०२१)
१०. सहजानन्द संकीर्तन (स० २०२२)
११. बानगी (राजस्थानी भाषामें) (स० २०२२)
१२. पावापुरी (स० २०३०)
१३. श्री जैन श्वेताम्बर पंचायती मन्दिरका सार्द्ध शताब्दी स्मृतिग्रंथ
१४-१५. जिनदत्तसूरि सेवा संघ द्वारा प्रकाशित स्मारिका द्वय
प्रथम (स० २०२३) तथा द्वितीय (स० २०२९)

अप्रकाशित

१. काव्य—चन्द्रदूत (हिन्दीमें दोहोंके रूपमें)
२. स्तवन—सहजानंद गुरुदेवाष्टक (संस्कृतमें)
३. प्रशस्ति—नाहटा वंश प्रशस्ति (१०८ श्लोकोंमें संस्कृत काव्य)
४. अनुवाद—कीर्तिलता (अवधीसे हिन्दीमें अनुवाद)
५. अनुवाद—द्रव्य-परीक्षा (प्राकृतसे हिन्दीमें)
६. अनुवाद—नगरकोटप्रशस्ति (प्राकृत मिश्रित अपभ्रंशका संस्कृत छाया अनुवाद व हिन्दीकरण)
७. अनुवाद—अलंकार दप्पणम् (प्राकृतका संस्कृत छायानुवाद तथा हिन्दी व्याख्या)
८. सागरसेठ चौपई—जिसका अनुवाद, अंग्रेजी संस्कृत शब्दकोष संयुक्त संपादन।

अतिरिक्त

शताधिक कहानियाँ, संस्मरण तथा फुटकर आलोचनात्मक लेख। प्रतिलिपियोंकी संख्या प्रायः सहस्राधिक है।

उपर्युक्त ग्रन्थ आपके लिंग्विस्टिक एस्थेटिक सेन्सकी तीव्र अनुभूतिकी बाह्याभिव्यक्त कृतियाँ है। आपके अतीत रसकी प्रीतिके प्रमाण हैं तथा हैं आपके प्राचीन ग्रन्थोंके उद्धारकी साहसिक प्रक्रियायें, जो शोध व अन्वेषणकी प्रवृत्तिके परिचायक हैं। पितृव्य श्री अगरचन्दजीके साथ सम्पादित अमूल्य ग्रन्थोंकी तालिका आप दोनोंके प्रयासकी दिशाका स्पष्ट परिज्ञान देंगी।

१. युगप्रधान जिनचन्द्रसूरि (सं० १९९२)

इस ग्रंथका संस्कृत काव्यानुवाद कलकत्तासे एवं गुजराती अनुवाद भी बम्बईसे प्रकाशित है। २०२९ में अभी-अभी तृतीय संस्करण प्रकाशित हुआ है।

२. ऐतिहासिक जैन काव्य-संग्रह (सं० १९९४) डॉ० हीरालाल जैनकी भूमिकासे सम्बलित।

३. दादा जिनकुशलसूरि (सं० १९९५) द्वितीयावृत्ति (सं० २०१९)

४. मणिधारी जिनचन्द्रसूरि (सं० १९९७) द्वितीयावृत्ति (सं० २०२७) इस ग्रन्थका संस्कृत काव्यानुवाद भी सामने आया है।

५. युगप्रधान जिनदत्तसूरि (सं० २००३)
६. बीकानेर जैन लेखसंग्रह (सं० २०१२)
७. समयसुन्दरकृति कुसुमांजलि (सं० २०१३)
८. बम्बई पार्श्वनाथस्तवनसंग्रह (सं० २०१४)
९. ज्ञानसार-ग्रंथावली (सं० २०१५)
१०. सीताराम चौपई (सं० २०१९)
११. रत्न -परीक्षादि (फेरु ग्रन्थावली) (सं० २०१७)
१२. रत्न-परीक्षा (सं० २०२०)
१३. क्यामखाँ रासो
१४. मणिधारी अष्टम शताब्दी स्मारक ग्रन्थ (सं० २०२७)

युगल प्रयासकी महत्ता प्रायः विशिष्ट विद्वानोंकी प्रज्ञाचक्षुसे परीक्षित हैं। महापंडित राहुल सांकृत्यायन, डॉ० हीरालाल जैन, डॉ० गौरीशंकर ओझा, डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी, डॉ० मोतीचंद, मुनि कान्तिसागर

तथा मुनि जिनविजयजी आदि जैनसाहित्यके मर्मज्ञ, पुरातत्त्ववेता, प्रकाण्ड आलोचक व इतिहास-विशेषज्ञोंकी दृष्टिमें इनके कार्य स्तुत्य तथा महत्त्वपूर्ण हैं। फलतः आलोचना भारसे मुक्त होकर भी अपनी लेखनी इस मनीषी-द्वयकी अमूल्य कृतियोंकी सूची देनेसे विरत नहीं हो सकी है। कार्य या कृतित्व प्रयासकी कसौटी चाहते हैं और उनकी सफलता या असफलता पंडितोंपर निर्भर करती है। व्यक्तित्वकी परखके लिए वस्तुतः व्यक्तित्वकी अन्तर्दृष्टिके ज्ञानकी आवश्यकता होती है पर आज तक मानवमनीषा सतत अभ्यासके बावजूद भी किसी भी व्यक्तित्वकी सही परख करनेमें असमर्थ ही रही है। इसलिये कि समय, समाज, परिस्थिति और व्यक्तिकी चित्तवृत्तिके जितने अध्ययन हो सके हैं, सभी अध्ययनके प्रोसेसमें हैं। फलतः प्रोसेससे संतुष्ट होकर अन्तिमेत्थमकी बातपर बल देना हास्यास्पद ही हुआ है। विज्ञानकी कसौटीके लिए तो स्थिर मानदंड हैं। इसीलिये उनके सिद्धान्त कथनमें बहुधा एक्युरेसी देखी जाती है पर पदार्थके गुणात्मक परिवर्तनकी परिणति जिस चेतनाको जन्म देती है उसके गुणात्मक तथ्यके गुणात्मक अन्तर्द्वंद्वसे उनकी चेतना विधाओंका आकलन आज भी अधरमें लटका हुआ है। अतः मानव अन्तरात्माकी ग्रंथि खोलनेके प्रयत्न मात्र वाग्विलास होकर निर्णयके लिए किसी स्वस्थ मानदंडकी खोजमें अब भी व्यस्त हैं। किन्तु सामाजिक चेतनाका यह अस्थिर मानदंड ही श्रेयस्कर है। इसलिये कि इसमें चेतनाकी स्वतंत्रताका आभास मिलता रहता है जिसे हम एंगिल आफ थाट्स् कहते हैं। नाहटा बन्धुओंकी कृति भी एंगिल आफ् थाट्ससे द्रष्टव्य है क्योंकि रुचि विशेषकी विभिन्नता ही एकताकी कड़ी होती है। अतः समग्ररूपसे उद्देश्यके धरातलका मूल्यांकन करनेवाले 'रस-साधकों व रसज्ञ आलोचकोंसे मेरा यही आत्मनिवेदन होगा, वैसे कोई जोर जबर्दस्ती नहीं है, मात्र सदाग्रह है जो अमान्य नहीं ही होगा'। ऐसा विश्वास पालनेमें मुझे रत्ती भर भी संदेह नहीं दृष्टिगोचर होता। अन्यथा ये महाकवि भवभूतिकी मार्मिक उक्तिको ही दुहरा कर संतोष रखेंगे, कि—

"उत्पत्स्यते च मम कोऽपि समानधर्मा, कालो ह्ययं निरवधिः विपुला च पृथ्वी"

इस "सादा जीवन उच्च विचार"के प्रतीक शान्त व गम्भीर व्यक्तित्वमें कितनी वाक्यपटुता है, प्रत्युत्पन्न मति है, आशुकाव्य-स्फुरणके बीज हैं। इनके कुछ संस्मरणोंके उद्धरण इसे प्रमाणित करेंगे—

बात बहुत पुरानी है। एक बार बीकानेरमें सर मनू भाई मेहताके भाई श्री वी० एम० मेहता जो महाराजाके प्रधानमन्त्री थे, की अध्यक्षतामें एक कवि सम्मेलनका आयोजन था। श्री भँवरलालजी वहाँ उपस्थित थे। अध्यक्षने आपसे भी कुछ सुनानेके लिए कहा। आप उठे और एक आशुकविकी भाँति आठ भाषाओंमें, जिनमें संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, अंग्रेजी, बंगला, हिन्दी भाषायें भी सम्मिलित थीं, एक कविता पढ़कर सुनायी। कवितामें भगवान् महावीरकी स्तुति की जिसका संक्षयण इस प्रकार हुआ है—

"अष्ट भाषा मयैषा वर्द्धमानप्रभुस्तुतिः। स्वभक्त्या सकौतुकेन विक्रमाख्यपुरे कृतः॥"

एक बार आप श्री अगरचन्दजीके साथ, राजस्थान हिन्दी साहित्य सम्मेलनके अवसरपर (रतनगढ़में) उपस्थित थे। वहाँ पुस्तकोंकी प्रदर्शनीमें आप दोनों महानुभाव अपनी रुचिके अनुसार पुस्तकें उलटपलट रहे थे। अगरचन्दजीके हाथ नेवारी लिपिकी कई प्रतियाँ आयीं। आपने देखा और समझनेकी भी चेष्टा की। किन्तु लिपिका कोई ओरछोर न मिला। आपने श्री भँवरलालजीसे उन्हें देखनेको कहा। आपने पुस्तकें लीं और वर्णमाला बनानेमें व्यस्त हो गये। दूसरे दिन सारी प्रतियां पढ़कर चाचाजीको सुना दीं तथा उसके सम्बन्धमें एक लेख भी प्रकाशित किया।

ऐसे ही एक बार आप बीकानेर जैनसंघकी ओरसे श्री हरिसागरजीके पास उन्हें बीकानेर ले आनेके उद्देश्यसे नागौर पधारे। आपके साथ बीकानेरके कुछ सम्भ्रान्त व्यक्ति भी थे। श्री हरिसागरजी नागौरमें ही चातुर्मास बितानेके लिये वचनबद्ध थे। अनुनय, विनयके पश्चात् भी कुछ हल नहीं निकला। अन्तमें श्री

भँवरलालजीकी काव्यचेतना प्रस्फुटित हुई और आपने श्रीगुरुके चरणोंमें निवेदनार्थ अपनी विवशता व्यक्त की, जो द्रष्टव्य है—

"कृत्वानेक परिश्रमोऽपि गुरुव:
न स्वीकृता वीनती
श्रीमन्नागपुरीयसंघविदिता
हृदयेन कृपणा महा
गच्छोन्नति च शासनस्य शोभा
सम्मान संघस्य च
न श्रुत्वा न विमर्षिता कथंचित्
कलयामि कथयामि किम्"

× × × × ×

श्री ताजमल बोथरा कलकत्तेके एक विशिष्ट समाजसेवी, धनी मानी व्यक्ति हैं। आपने एक दिन भँवरलालजीसे आग्रह किया कि बंगालमें सराक जाति लाखोंकी संख्यामें निवास करती है। ये जैन श्रावक जातिके वंशज हैं। उनके लिए बंगलामें श्रावककृत्यकी विशेष आवश्यकता है। यदि ऐसा ही कुछ हो जाय तो बड़ा उपकार होगा। भावुक श्री भँवरलालजीको यह बात मनको लग गई और बात ही बातमें इस कवि-मनीषीने बंगला भाषामें २७ एक पद्योंमें श्रावक कृत्य लिख डाला—

श्रावक तुमि उठे पड़ो अत्यन्त सकाले
दुइ दण्डो रात्रि थाकिते उषार अन्तराले
अल्पो लाभे अल्पारम्भे हय जे व्यापार
शोषण-दूषण रहित नीति श्रम आधार
नदी-पुकुर वन ठीका हिंसामय व्यापार
लोहारस बीच-अस्थि आदि परिहार
जल-दुग्ध धृततेल छाकना दिया राखो
प्रमार्जन आदिकाज्जे जीवयल देखो

"श्रावक-कृत्य"

× × × × ×

जैन भवनमें वैद्य जसवंतरायके अनुरोधपर श्री विजयवल्लभसूरिजी जयन्तीके अवसरपर जब कुछ कहनेके लिए कहा तो तत्काल आपने प्राकृतमें गाथायें बनाकर सुनायीं और सभी सम्भ्रान्त व्यक्तियोंको आश्चर्यमें डाल दिया। गाथायें इस प्रकार थीं—

सिरीवल्लह सुगुरुणं तवगच्छगयण सूर चंदाणं
वंदामि भत्ति-भावेण सग्गारोहण दिणो अज्ज १
आसोय कण्ह पक्खे इक्कारसी राइय तइय पहरे
मुंबाणामा णयरी बहु सड्ढ समाकुले दीवे २
सावय जण उवयारो क्रिच्चा संठाविओऽणेगे
विज्जालयादि पवरा सव्वपिओ भूय कय अत्थो ३
पत्तो सुरालयम्मि इंदादि पडिबोहणा कज्जे
भारहवासी भत्ताण पूरिज्जंतु सयलमण इच्छा ४

इसी प्रसंगमें आपकी आत्माभिव्यक्तिका एक नमूना उपस्थित करनेके लोभका संवरण नहीं कर पा रहा हूँ। आपके दीक्षागुरु श्री सहजानंदजीके निधनका समाचार आपको अजमेरसे बीकानेर जाते समय ट्रेनमें मिला और आपने अपने पूज्य श्रीपादके प्रति अपनी भावनाओंको प्राकृतका यह रूप दिया।

अज्झत तत्तस्स सुपारगामी, एगावयारी पूइय सुरिन्दो।
मुणीन्द मउड़ो सुजुगप्पहाणो, गुरूवरो सहजाणंद णामो ॥१॥
निव्वाणवत्तो सुसमाहिजत्तो, कत्तीय धवले तइयातिहीए।
निच्छत्त जाओ इह भरहखित्तो धम्मस्स एगो सायार रूवो ॥२॥
खेयेण खिन्नो सुमुमुक्खु संघो जाओ निरालंब समग्गलोओ।
विदेह खित्तट्ठिय ते महप्पा भत्ताण देहिं निव्वुइ सुसत्तो ॥३॥

प्राकृतके एक ग्रन्थ जीवदया प्रकरणकी प्राचीन प्रति उपलब्ध होनेपर जब आपने उसे श्री हरषचंदजी बोथराको दिखायी थी, आपने आग्रह किया कि प्राकृत पद्योंका हिन्दी पद्यानुवाद भी प्रस्तुत करनेका प्रयास करें तो ग्रन्थ अधिक मूल्यवान हो जायगा। आपने अनुरोध स्वीकार कर लिया और प्रायः चार-पाँच दिनोंमें ही गद्य-पद्यानुवाद हरिगोतिका छंदमें अभिव्यक्त कर डाली। काव्य-प्रतिभाके धनी आपकी सहज अनुवादकी शैली मूलभावोंकी कितनी अंतरंगिणी बन सकी है एक आध उदाहरण पाठकोंके लिए पर्याप्त होंगे।

संसय तिमिर पयंगं भवियायण कुमय पुन्निमा इंदं।
काम गइंद मइंदं जग जीव हियं जिणं नमिउ ॥१॥
संशय तिमिरहर तरणि सम जिनका परम विज्ञान है,
भविजन कुमुद सुविकासकारक चंद्रसम छविमान है।
करिवर्य मकरध्वज विदारण सिंहसम उपमान है,
जगके हितंकर तीर्थपतिको नमन मंगल खान है ॥१॥
दियहं करेह कम्मं दारिद्द हएहिं पुट्ठ भरणत्थं।
रयणोसु गेय णिद्दा चिंताए धम्म रहियाणं ॥३८॥
लाया नहीं है पूर्वके सत्कर्म अपने साथमें
तो पेट भरनेके लिए कैसे बचेगा हाथमें?
द्विवस भर है कष्ट करता कठिन श्रम विन धर्मके
रातमें निद्रा न पाता, फल मिले दुष्कर्मके ॥३८॥

और अन्तमें प्राकृत भाषाके एकमात्र अलंकार-शास्त्र : "अलंकार दप्पण" नामक-ग्रन्थ जैसलमेरके भंडारसे ताड़पत्रीय प्रतिलिपिमें प्राप्त हुआ था। श्री अगरचन्दजीके अनुरोधपर इस प्रतिभाशाली शारदाके वरदपुत्रने हिन्दी अनुवादके साथ-साथ संस्कृत छायानुवाद कर इस दुर्लभ ग्रन्थकी महत्तापर चार चाँद लगा दिया जो विद्वानोंके लिए स्पर्द्धाकी वस्तु है। एक उदाहरण इस प्रकार है।

संखलोवमा जहा—श्रृंखलोपमा यथा
सगस्स व कणअ-गिरी कंचन-गिरिणु व महिअलं होउ
महि बीढ़स्सवि भरधरणपच्चलो तह तुमं चेअ
स्वर्गस्ववकनकगिरि कंचनगिरिणैव इव महीतलं भवतु।
महीपीठस्यापि भारधरणप्रव्यक्तस्तथा त्वं चैव ॥

इस प्रकार अनेकानेक संस्मरण आपके सान्निध्यमें मुझे सुननेको मिले हैं जिन्हें अंकितकर अपने विषय को बढ़ाना उचित नहीं समझता। गद्दीपर बैठकर क्षणमें पुस्तकावलोकन, प्रतिलिपिकरण, निबन्धलेखन, तथा क्षणमें व्यापारिक सम्बन्धोंका रक्षण व पोषण न जाने कितनी वार देखा है। कोई आयाम नहीं, प्रयास नहीं, स्वाभाविक गतिसे लेखनी बहीखातोंपर चलते-चलते साहित्यिक लेखनमें व्यस्त हो जाया करती है। धन भी है धर्म भी, ज्ञान भी है विवेक भी, राग भी है विराग भी, कितनी समरसता है एकरसतामें भी, आश्चर्य होता है। नामकी भूख नहीं, केवल कर्तव्यकी प्रेरणा है। सम्भवतया इसीलिये इनकी सज्जनताका फायदा उठाने वाले कितने ही मान्य विद्वानोंने इनकी कितनी अज्ञात कृतियोंको अपने सन्मानका विषय बनाया है। प्रसंगवश एक उदाहरण देनेमें मुझे संकोच नहीं है। प्रसिद्ध प्राच्य विद्या विशारद पुरातत्त्ववेत्ता डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल, जो आप लोगोंके लिए एक गर्वका विषय थे, इनके साहित्यके समर्थक व सहायक भी, श्री भँवरलालजी की दो कृतियाँ—"कीर्तिलता" तथा "द्रव्यपरीक्षा" के साथ न्याय नहीं कर सके। अवधी भाषाकी कृति, कीर्तिलताका अनुवादकर भँवरलालजीने डॉ० साहबको देखनेके लिए भेजा था, पर अग्रवाल साहबने इनके नामका सन्मान ही रहने दिया। यही बात पुरातत्त्वसम्बन्धी द्रव्यपरीक्षाके विषयमें भी कथ्य है। इस अमूल्य ग्रन्थके आधारपर उन्होंने अंग्रेजीमें लेखबद्धकर अपने नामसे छपा डाला। उनके दिवंगत होनेपर शायद ये दोनों पुस्तकें बीकानेर संग्रहालयमें सुरक्षित रखी गई हैं, जिसे उनके पुत्रने लौटाई हैं। शायद विज्ञापन ही व्यक्तित्वकी सच्ची परख है और इनके पास विज्ञापन नहीं। आप अगरचन्दजीके अनुरोधके वशंवद हैं। इन्हें जो कुछ भी सामाजिक-साहित्यिक सम्मान मिला है, काकाजीकी ही कृपाका फल है ऐसी इनकी आत्मस्वीकृति है।

भँवरलालजीका जीवन सीधासादा है। आपका अन्तर जितना निर्मल व पवित्र है उतना ही व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन भी। धोती, कुर्ता तथा पगड़ी यही सामान्य परिधान है। व्यवहारकुशल, वाणी सुखद, जीवन कर्मठ और कृति सुन्दर। यही कारण है कि सामाजिक, धार्मिक व सांस्कृतिक सभाओं, सभ्य व संस्कृत विचारगोष्ठियों व अन्यान्य संस्थाओंसे आपका जीवन सम्बन्ध है। ऐसे ही पुरुषोंके लिए शायद यह उक्ति चरितार्थ है—

"काव्यशास्त्रविनोदेन कालो गच्छति धीमताम्

विषम परिस्थितिमें धैर्य आपकी विशेषता है, धन है, यश है, पर अभिमान नहीं, अभिरुचि नहीं, कोई व्यसन नहीं, भाषणपटुता और लेखनसिद्धिका विचित्र समायोग है। अतः भर्तृहरिजीके शब्दोंमें आप महान् आत्माओंकी उक्त सिद्ध प्रकृतिके प्रतीक हैं। लोकमंगलकी लालसा है, पर-जन्मके कृतार्थकी कामना है। हृदयमें विश्वास है और परमशक्तिमानमें श्रद्धा तथा भक्ति है। व्यतीत आपकी स्मृतिमें है और सजग वर्तमान हाथोंमें, फिर नियतिके लिए अधिक चिन्ता नहीं। जैनधर्म, जैनसाहित्य, जैनसभा, जैनसम्मेलन आपके विना अपूर्ण हैं। आपके सार्वजनिक जीवनके लिए इतना ही कहना पर्याप्त है। निम्नांकित सम्मानित पद कथनकी पुष्टि करेंगे।

अध्यक्ष—जैनभवन, कलकत्ता
मंत्री—श्री जिनदत्तसूरि सेवासंघ
मंत्री—राजस्थानी साहित्य परिषद्
मंत्री—श्री जैन श्वेताम्बर उपाश्रय कमेटी,
ट्रस्टी—श्री जैन श्वेताम्बर पंचायती मंदिर, कलकत्ता

ट्रस्टी—जैनभवन, कलकत्ता

ट्रस्टी—जैनभवन, पालीताना,

सम्पादक—कुशल-निर्देश, (मासिक पत्रिका)

अपने आठ वर्षोंके सम्पर्कके फलस्वरूप श्री भँवरलालजीके व्यक्तित्वकी जो छाया मुझपर पड़ी है, मैंने शब्दोंकी परिधिमें बाँधनेकी यथासम्भव चेष्टा की है, पर भिन्न रुचि, भिन्न चिन्तनप्रणाली, प्रमाद या अज्ञानवश यदि असमर्थ रहा हूँ तो वह क्षम्य मानी जानी चाहिये।

संक्षिप्त जीवन-परिचय

भँवरलालजीका जन्म संवत् १९६८के आश्विन महीनेके कृष्णपक्षकी द्वादशीको हुआ है। परम साध्वी, सुशीला, श्रीमती तीजाबाईकी गोदमें इनका लालन-पालन हुआ। पिता श्री भैरूदानजी एक कर्मठ व्यवसायी, लोकप्रिय तथा धार्मिक प्रकृतिके व्यक्ति थे। अध्यवसाय उनका लक्ष्य था और जीवन पवित्र। फलतः पुत्रकी भावनाओंमें कभी अन्तर नहीं आ पाया। वैसे पूरा-का-पूरा नाहटा परिवार एक अपनी पूज्य परम्परा रखता है। केवल उदरपूर्ति व भोगविलासकी कामनासे धनोपार्जन इस परिवारकी चेष्टा नहीं रही। तप:पूत चरित्र, धार्मिक निष्ठा तथा सतत प्रयास जिनका विकास श्री भँवरलालजीमें क्रमशः हुआ इनके व्यक्तित्वका समय-शिलापर चित्र बनता गया। जैन शिक्षालय बीकानेरमें ही आपका विद्यारम्भ मुहूर्त हुआ पर शिक्षा इन्हें मात्र ५वीं कक्षा तक मिली। चाचा अभयराजजी, जिन्हें संसार प्रिय नहीं लगा, स्वर्ग सिधार गये, आपको संयम व व्रतकी शिक्षा दे गये। फलतः होश संभालनेके साथ ही जैनशासनकी विभिन्न साधनाओंमें आपका मन रमने लगा, जिसका क्रम हम आज भी यथावत् पाते हैं। अध्ययनकी रुचि आपको श्री अगरचन्दजी काकाजीसे मिली। दोनों ही महानुभाव प्रायः हमउम्र रहे हैं लेकिन पूज्य-पूजककी भावना यथावत् है। मर्यादाने आँखकी शर्मका शान बनाये रक्खा है। व्यापारिक उत्थान-पतनकी चिन्तासे दूर, भावनाओंके संसारमें खुले पंख उड़नेकी अनन्त कामना इन शरद्पुत्रोंको सशक्त बनाये रखे है। पूज्य माताजीका प्यार कुछ समय तक ही मिल पाया था क्योंकि उनकी पुकार आ गयी थी। पिताश्रीने तीन विवाह किये थे आप द्वितीय पत्नीकी देन हैं। माताजी की मृत्युके पश्चात् १० वर्ष बाद आप श्री लक्ष्मीचन्दजी की गोद चले गये। आपको पूरे परिवारका स्नेह सुलभ रहा। १४ वर्षकी अवस्थामें आपका शुभ पाणिग्रहण संस्कार सं० १९८३की मिती आसाढ़ बदी १२को श्री रावतमल सुराणाकी सौभाग्यवती कन्या श्रीमती जतन देवीके साथ सम्पन्न हुआ। आपके दो पुत्ररत्न श्री पारसकुमार और पदमचन्द तथा दो सुशीला पुत्रियाँ श्रीकान्ता तथा चन्दकान्ता हैं। पुत्रियाँ अपने सम्पन्न घरोंमें पुत्र, धन-धान्य-पूर्ण सुखमय जीवन व्यतीत कर रही हैं और प्रथम पुत्र श्री पारसकुमार, जो मेरे एक घनिष्ठ मित्रोंमें हैं, कुशल व्यवसायी, शुद्ध व्यावहारिक शान्त पर गम्भीर व्यक्तित्वसे समन्वित तथा वर्तमान युगकी उच्चतम शिक्षा, एम० काम०, एल० एल० बी०की उपाधिसे विभूषित योग्य नवयुवक हैं। इनमें सामाजिक व नैतिक मर्यादा है, व्यक्तित्वको परखनेकी अपनी दृष्टि है। समय, समाज व परिस्थितियोंके साथ गतिशील होनेकी शक्ति है। साहस है और है एक आत्मबोध, जिसमें संतुष्टिके समापनकी विचित्र शक्ति संनिहित है। कर्तव्य इनका लक्ष्य है और सिद्धि इनकी प्रेरणा। वर्तमान इनसे संतुष्ट है और ये वर्तमानसे संतुष्ट। फलतः भविष्य इनका अपना है। इनकी आकांक्षायें इनके प्रयत्नकी सीमाओंमें ही शरण पाती हैं। आप अपनी प्रिय पत्नी और अपने चार पुत्रों तथा एक पुत्रीके साथ सुखी हैं। प्रिय श्री पदमने बी० एस-सी० तक अध्ययन क्रम जारी रखा, आजकल पिताजीके साथ व्यवसायमें संलग्न है। नितान्त इन्ट्रोवर्टी, कर्मठ शान्त व सुशील परिवारकी मर्यादाके अनुकूल इनका

जीवन है। आपका भी विवाह एक सुशिक्षित व धर्मशीला महिलासे सम्पन्न हुआ है। एक सुन्दर-सा पुत्र आपकी गोदका शृंगार है। इसी छोटेसे परिवारके साथ भँवरलालजी पर्याप्त संतुष्ट रहते हैं। भाग्यकी विडम्बनाने कभी भी इन्हें निराश नहीं किया। जन्म लेने, परिवार सृजन करने व उसके पालन करनेकी विशेष चिन्ता आपको कभी नहीं हुई। एक छोटे सुन्दर सौम्य ढंगसे सजे हुए अपने शान्त कुटीरमें आपका ६२वाँ वर्ष व्यतीत हो रहा है। परिवार सजग है, धर्म सजग है और सजग है आपका कर्तव्य। रीति-नीति परम्परायें आपको अतीतसे जोड़ जाती हैं। साहित्यानुराग व सामाजिक पुकार आपको वर्तमानसे संलग्न कर रखे हैं और भविष्य मुक्तिके संदेशसे आपको विश्वस्त कर जाता है। अवकाशके आवश्यक क्षण लेखन अध्ययन आदिमें व्यतीत होते हैं। पंचप्रतिक्रमण, जीव-विचार, नवतत्त्व, आगमसार, पैंतीस बोल थोकड़ा आपकी आस्थाके मनन चिन्तन तो बचपनमें पड़े हुए हैं। इन्हें अपने भाइयोंका भी आदर सम्मान व सहयोग प्राप्त है। श्री हरखचन्दजी तो व्यक्ति नहीं, मानवरूपमें एक दैवीशक्ति व शीलसे विभूषित दुर्लभ प्राणी हैं। जो भी व्यक्ति एक बार उनके सम्पर्कमें आया इस कथनको अत्युक्ति न समझेगा, ठीक ऐसे ही विमल बाबू भी हैं। सभी सुखी सम्पन्न व समृद्ध हैं।

अन्तमें जैसा मैंने लिखा है किसी भी व्यक्तित्वके मूल्यांकनके लिए जितनी दृष्टि अपेक्षित है उसके मानदंडकी जितनी विभिन्न विधायें हैं। मेरा अपना आकलन पूर्ण है, मैं स्वीकार नहीं कर सकता। वशिष्टजीकी बुद्धिमहासागरके समान भरतजीके व्यक्तित्वकी महिमाके तीरपर अबलाकी तरह खड़ी जैसे नौके व तटका चिन्ह नहीं पा सकी उसी प्रकार कोई भी चिन्तक इस महान् गम्भीर व्यक्तित्वकी थाह नहीं पा सकता। मैंने तो न्यूटनकी तरह इस ज्ञानगरिमाके सागर तटपर बच्चोंकी तरह खेलते हुए कुछ कंकडिया ही बटोरी हैं। हर तरंगोंको पहचाननेकी शक्ति भला तटपर खड़े रहनेवाले कायरको कैसे सुलभ हो सकती है? मैं तो मात्र सीपीसे सन्तुष्ट हूँ; डूबनेकी शक्ति नहीं, फलतः मोतीकी आबका दर्शन ही कैसे होगा? यह भार तो मैंने सक्षम व साहसी व्यक्तियोंपर ही छोड़ दिया है। पाठकोंकी जिज्ञासायें और अधिक जाननेकी होंगी पर उनसे मेरा विनम्र निवेदन होगा कि इनकी कृतियोंके माध्यमसे इन्हें जाननेका प्रयास करेंगे। एक बात मैं अवश्य कहूँगा कि भँवरलालजीने वही किया है तो इनकी चेतनाने स्वीकृति दी है और वह करेंगे जिसे इनका अपना निर्मल मन स्वीकार करेगा। इनमें अब भी कुछ कर गुजरनेकी साध है और ६२ वर्षकी अवस्थामें भी इनमें Animal Spirit का अभाव नहीं है। अतः कुछ नवीन, कुछ सुन्दर, कुछ सत्य तथा कुछ शिव देखने, समझने, व ग्रहण करनेकी हमारी कामनायें प्रतीति अवश्य चाहेंगी। परमात्मा आपको चिरायुष करें। जैन समाज कृतज्ञ होगा, सृजनको गति मिलेगी और साहित्य व समाज आपकी अमरतापर गर्व करेगा। शेष अचिन्त्य है, और शास्त्र कहता है "अचिन्त्या खलु ये भावाः न तांस्तर्केण योजयेत्। सुतराम्!

"ज्ञाने गतिर्मतिर्भावे बुद्धिर्लोकारंजने।
संसिद्धिस्तेन श्रीवृद्धिरायुर्विद्या यशो बलम्॥" इत्यलम्

●

श्रद्धेय श्री अगरचंदजी नाहटाका बीकानेर जैन लेख संग्रह

प्रो० श्रीचन्द्र जैन, एम० ए०, एल० एल० बी०

श्री नाहटाका समस्त जीवन सरस्वतीकी आराधनाके लिए समर्पित है। कहा जाता है कि सरस्वती और लक्ष्मीका सहज विरोध है, लेकिन नाहटाजीका व्यक्तित्व इस कथनका अवश्यमेव एक अपवाद है। आप-पर जितनी सरस्वतीकी कृपा है उतनी ही लक्ष्मीकी अनुकम्पा है। व्यापार-निपुण होते हुए आप एक सशक्त समालोचक, संपादक, लेखक तथा अन्वेषक हैं।

पाँच हजारसे भी अधिक आपके निबन्ध इस तथ्यको प्रमाणित करते हैं कि आप बहुज्ञ हैं और ऐसा कोई साहित्यिक विषय नहीं है जिसके आप गम्भीर विचारक न हों। सम्पादकरूपमें आपने ऐसे कई ग्रन्थोंका सम्पादन किया है जिनके अध्ययनमें मनीषियोंकी भी मनीषा कुंठित हो जाती है। राजस्थानी साहित्य-संस्कृतिके तो आप अधिकारी विद्वान् हैं। राजस्थानका कोई भी ऐसा साहित्यिक पत्र नहीं है जिसमें आपके प्रौढ़ विचारोत्पादक निबन्ध प्रकाशित न होते हों। विभिन्न अभिनन्दन ग्रन्थोंके तो आप सम्पादक रहे हैं। कई संस्थाओंके आप संस्थापक हैं, अभिभाषक हैं एवं सदस्य हैं। सुधी सम्पादकके रूपमें आपने राजस्थान भारती, राजस्थानी, मरुभारती, शोध-पत्रिका, मरुभूमि, आदिकी जो सार्वभौमिक प्रतिष्ठा निर्मित की है वह आपके अगाध-पांडित्य एवं अथक श्रमका उदाहरण ही है।

जैन-अजैन समस्त पत्र-पत्रिकाओंमें आपके जो लेख प्रकाशित होते रहते हैं वे इस सत्यको साकार बनाते हैं कि आपका अध्ययन कितना विस्तृत एवं व्यापक है। आपकी विशेष रुचि जैनसाहित्य, इतिहास, राजस्थानी संस्कृति एवं हिन्दीके प्राचीन साहित्यके अनुशीलनमें अधिक है। परिणामस्वरूप आपके अवकाशके क्षण भी निरन्तर चिन्तन-मननमें ही व्यतीत होते हैं। आपके साहचर्यका जिनको पुण्योदयसे अवसर मिला है वे यही कहते हैं कि पूज्य नाहटाजी तो अजरामरवत् सरस्वतीकी आराधनामें ही लगे रहते हैं। आज वे वार्धक्यमें हैं, फिर भी एक युवकके समान उनमें उत्साह है, प्रेरणा है तथा कार्य करनेकी क्षमता है। और तो और, आधुनिक युवक भी उन्हें सतत क्रियाशील देखकर चकित रह जाता है।

इस निबन्धमें मैं केवल उनके द्वारा सम्पादित बीकानेर जैनलेखसंग्रहके सम्बन्धमें कुछ लिखनेका साहस कर रहा हूँ। इस संग्रहका प्राक्कथन डॉ० वासुदेवशरण अग्रवालने लिखा है जो उनके गहन पाण्डित्यका अपूर्वरूप है।

यह तो स्पष्ट ही है कि लेखोंका संग्रह कठिन साधनाकी अपेक्षा करता है। बहुभाषाविद्, तत्त्ववेत्ता, तथा धैर्यवान् महापंडित ही ऐसे गूढ़ विषयकी ओर आकर्षित हो सकता है। सामान्य व्यक्तिको तो इस प्रकारकी रचनाओंके प्रति न रुचि होती है और न अनुरक्ति उत्पन्न हो पाती है।

इस प्रकारके लेख बड़े महत्त्वके होते हैं। इनमें युगीन संस्कृतिके साथ-साथ इतिहास, भूगोल, कर्म-काण्ड, राजनीति, समाजविज्ञान आदि कई ऐसे विषय निहित रहते हैं, जिनका अनुशीलन प्रत्येक परिस्थितिमें आवश्यक माना गया है।

मूर्तिकला, स्थापत्यकला, चित्रकला, नृत्यकला, संगीतकला, लेखनकला आदिका प्रारंभिक स्वरूप

क्या था और उसमें शनैः-शनैः किस प्रकार परिवर्तन आया, इसका क्रमिक इतिहास इन लेखोंके अध्ययनसे भलीभाँति जाना जा सकता है।

मानवने किस प्रकार उन्नति की है तथा उसने अपने अवरोधोंको किस प्रकार निर्मूल वनाया है यह एक ऐसा विषय है जिसका पूर्ण परिज्ञान इन प्राचीन लेखोंके समीक्षात्मक अनुशीलनसे ही संभव है।

साधु-सन्तोंने निरन्तर भ्रमण कर आत्मोद्धारके साथ किन रूपोंमें जन-जागृतिको सबल वनाया है और जैनधर्मके सूक्ष्म तत्त्वोंका प्रचार किस रूपमें किया है, यद्यपि यह विषय ऐतिहासिक अवश्य है लेकिन इन पुरातन लेखोंमें भी इसपर पर्याप्त प्रकाश डाला गया है।

धार्मिक श्रद्धासे वशीभूत होकर धनिकोंने अपनी संपत्तिका उपयोग एक ओर राष्ट्रहितमें किया है तो दूसरी ओर सुरम्य देवालयोंके निर्माणमें करके अपनी धर्मभावनाको मूर्त्तरूप दिया है।

इस लेख-संग्रहमें बीकानेर राज्यके २६१७, जेसलमेरके १७१ अप्रकाशित लेख हैं, जिनकी विस्तृत भूमिका भी प्रस्तुत की गयी है। इन लेखोंके अध्ययनसे यह ज्ञात हो सकेगा कि जैनमंदिरोंका क्या इतिहास है, इस धरतीपर किस प्रकार जैन-साहित्यकी रचना हुई है, साधु-साध्वियोंने कितनी गहन साधना करके स्व-पर रूपको निखारा है तथा सार्वजनिक कार्योंमें संलग्न रहकर नराधिपोंने अपनी सेवा-वृत्तिको किस प्रकार जनताके हितार्थ अर्पित किया है। जैनोंका एक ऐसा भी रूप है जो जन-जनके लिए आदर्श है। यह ठीक है कि ये लक्ष्मीपुत्र हैं, फिर भी इनकी दानशीलता अनुकरणीय है। देवमंदिरोंके साथ निर्मित उपासरे, धर्मशालाएँ, ज्ञान-भण्डार, दान-भण्डार, सती स्मारक, उत्सव-गृह, भोजन शाला आदि इन अहिंसाप्रेमियोंकी उदारता के अमर कीर्ति स्तंभ हैं।

इन लेखोंके संग्रहमें जो कठिनाइयाँ श्रद्धेय श्री नाहटाको आई हैं, उनका विवरण उनके ही मुखसे सुनिए :

"इन लेखोंके संग्रहमें अनेक कठिनाइयोंका सामना करना पड़ा है, पर उसके फलस्वरूप हमें विविध प्राचीन लिपियोंके अभ्यास व मूर्तिकला व जैन-इतिहास सम्बन्धी ज्ञानकी भी अभिवृद्धि हुई। अनेक शिला-लेख व मूर्ति-लेख ऐसे प्रकाशहीन अँधेरे में हैं, जिन्हें पढ़नेमें बहुत ही कठिनता हुई। मोमबत्तियाँ, टॉर्चलाइट, छाप लेनेके साधन जुटाने पड़े, फिर भी कहीं-कहीं पूरी सफलता नहीं मिल सकी। इस प्रकार बहुत-सी मूर्तियोंके लेख उन्हें पच्ची करते समय दब गए एवं कई प्रतिमाओंके लेख पृष्ठ भागमें उत्कीर्णित हैं, उनको लेनेमें बहुत ही श्रम उठाना पड़ा और बहुतसे लेख तो लिये भी न जा सके, क्योंकि एक तो दीवार और मूर्तिके बीच में अन्तर नहीं था, दूसरे मूर्तियोंकी पच्ची इतनी अधिक हो गई कि उनके लेखको, बिना मूर्तियों-को वहाँसे निकाले पढ़ना संभव नहीं रहा। मूर्त्तियाँ हटाई नहीं जा सकीं, अतः उनको छोड़ देना पड़ा।.... कई शिलालेखोंको बड़ी मेहनतसे साफ करना पड़ा, गुलाल आदि भरकर अस्पष्ट अक्षरोंको पढ़नेका प्रयत्न किया गया। कभी-कभी एक लेखके लेनेमें घंटों बीत गए। फिर भी सन्तोष न होनेसे कई बार उन्हें पढ़ने-को, शुद्ध करनेको जाना पड़ा।....इस प्रकार वर्षोंके श्रमसे जो बन पड़ा, पाठकोंके सन्मुख है। हम केवल ५ कक्षा तक पढ़े हुए हैं; न संस्कृत-प्राकृत भाषाका ज्ञान, व न पुरानी लिपियोंका ज्ञान, इन सारी समस्याओं-को हमें अपने श्रम व अनुभवसे सुलझानेमें कितना श्रम उठाना पड़ा है, यह भुक्तभोगी ही जान सकता है। कार्य करनेकी सबल जिज्ञासा, सच्ची लगन और श्रमसे दुस्साध्य काम भी सुसाध्य बन जाते हैं, इसका थोड़ा परिचय देनेके लिए यहाँ कुछ लिखा गया है।" (बीकानेर जैन लेखसंग्रह, वक्तव्य, पृ० ७)

सत्य तो यह है कि "मनस्वी कार्यार्थी गणयति न दुःखं न च सुखम्।"

श्री नाहटाजी जैसे कर्मठ निष्ठावान्, लगनशील एवं कर्त्तव्यलीन व्यक्तिका ही यह साहस है कि इतना कठिन कार्य आपने सुगमतासे किया और एक आदर्श प्रस्तुत कर हिन्दी लेखकोंको असुविधाओंके बीच आगे बढ़नेके लिए प्रोत्साहित किया, विद्वान् ही विद्वान्के श्रमकी संस्तुति कर सकता है। इस सुभाषितके अनुसार डॉ० अग्रवालने अपने प्राक्कथनमें लिखा है कि "श्री अगरचंद नाहटा व भँवरलाल नाहटा राजस्थानके अतिश्रेष्ठ कर्मठ साहित्यिक हैं। एक प्रतिष्ठित व्यापारी परिवारमें उनका जन्म हुआ। स्कूल-कालेजी शिक्षासे प्रायः बचे रहे। किन्तु अपनी सहज प्रतिभाके बलपर उन्होंने साहित्यके वास्तविक क्षेत्रमें प्रवेश किया और कुशाग्रबुद्धि एवं श्रम दोनोंकी भरपूर पूँजीसे उन्होंने प्राचीन ग्रंथोंके उद्धार और इतिहासके अध्ययनमें अभूत-पूर्व सफलता प्राप्त की। पिछली सहस्राब्दी में जिस भव्य और बहुमुखी जैनधार्मिक संस्कृतिका राजस्थान और पश्चिमी भारतमें विकास हुआ, उसके अनेक सूत्र नाहटाजीके व्यक्तित्वमें मानों बीजरूपसे समाविष्ट हो गए। उन्हींके फलस्वरूप प्राचीन ग्रन्थ भण्डार संघ आचार्य मंदिर, श्रावकोंके गोत्र आदि अनेक विषयोंके इतिहासमें नाहटाजीकी सहज रुचि है, और इस विविध सामग्रीके संकलन, अध्ययन और व्याख्यामें लगे हुए वे अपने समयका सदुपयोग कर रहे हैं।

जिस प्रकार नदी प्रवाहमें से बालुका धोकर एक-एक कणके रूपमें पौपीलिक सुवर्ण प्राप्त किया जाता था, उसी प्रकारका प्रयत्न 'बीकानेर जैन लेख संग्रह' नामक प्रस्तुत ग्रन्थमें नाहटाजीने किया है। समस्त राज-स्थानमें फैली हुई देव-प्रतिमाओंके लगभग तीन सहस्र लेख एकत्र करके विद्वान् लेखकोंने भारतीय इतिहासके स्वर्ण कणोंका सुन्दर चयन किया है। यह देखकर आश्चर्य होता है कि मध्यकालीन परम्परामें विकसित भारतीय नगरोंमें उस संस्कृतिका कितना अधिक उत्तराधिकार अभी तक सुरक्षित रह गया है। उस सामग्रीका उचित संग्रह और अध्ययन करनेवाले पारखी कार्य-कर्त्ताओंकी आवश्यकता है।.......प्रस्तुत संग्रहके लेखोंसे जो ऐतिहासिक और सांकृतिक सामग्री प्राप्त होती है उसका अत्यन्त प्रामाणिक और विस्तृत विवेचन विद्वान् लेखकोंने अपनी भूमिकामें किया है।.......श्री नाहटाजीने इस सुन्दर ग्रन्थमें ऐतिहासिक ज्ञानसंवर्द्धनके साथ-साथ अत्यन्त सुरभित सांस्कृतिक वातावरण प्रस्तुत किया है, जिसके आमोदसे सहृदय पाठकका मन कुछ कालके लिए प्रसन्नतासे भर जाता है। सचित्र विज्ञप्तिपत्रोंका उल्लेख करते हुए १८९८के एक विशिष्ट विज्ञप्ति पत्रका वर्णन किया गया है, जो बीकानेरके जैन संघकी ओरसे अजीमगंज बंगालमें विराजित जैना-चार्यकी सेवामें भेजनेके लिए लिखा गया था। इसकी लंबाई ९७ फुट है, जिसमें ५५ फुटमें बीकानेरके मुख्य बाजार और दर्शनीय स्थानोंका वास्तविक और कलापूर्ण चित्रण है। लेखकोंने इन सब स्थानोंकी पहिचान दी है।

इस पुस्तकमें जिस धार्मिक और साहित्यिक संस्कृतिका उल्लेख हुआ है उसके निर्माणकर्त्ताओंमें ओसवाल जातिका प्रमुख हाथ था। 'उन्होंने ही अपने हृदयकी श्रद्धा और द्रव्यराशिसे इस संस्कृतिका समृद्ध रूप संपादित किया था। यह जाति राजस्थानकी बहुत ही धर्मपरायण और मितव्ययी जाति थी किन्तु सांस्कृतिक और सार्वजनिक कार्योंमें वह अपने धनका सदुपयोग मुक्तहस्त होकर करती थी।

ग्रन्थमें संग्रहीत लेखोंको पढ़ते हुए पाठकका ध्यान जैनसंघकी ओर भी अवश्य जाता है। विशेषतः खरतरगच्छके साधुओंका अत्यन्त विस्तृत संगठन था। बीकानेरके राजाओंसे वे समानताका पद और सम्मान पाते थे। उनके साधु अत्यन्त विद्वान् और साहित्यमें निष्ठा रखनेवाले थे। इस कारण उस समय—यह उक्ति प्रसिद्ध हो गयी थी कि "आतम ध्यानी आगरै पंडित बीकानेर।".......प्रस्तुत संग्रहमें जो तीन सहस्रके लगभग लेख हैं उनमेंसे अधिकांश ११वींसे सोलहवीं शतीके बीचके हैं। उस समय अपभ्रंश भाषाकी परम्परा-का साहित्य और जीवनपर अत्यधिक प्रभाव था। इसका प्रमाण इन लेखोंमें आये हुए व्यक्तिवाची नामोंमें

पाया जाता है। जैनाचार्योंके नाम प्रायः सब संस्कृतमें हैं, किन्तु गृहस्थ स्त्री-पुरुषोंके नाम जिन्होंने जिनालय और मूर्तियोंको प्रतिष्ठापित कराया, अपभ्रंश भाषामें हैं। ऐसे नामोंकी संख्या इन लेखोंमें लगभग दस सहस्र होगी। यह अपभ्रंश भाषाके अध्ययनकी मूल्यवान् सामग्री है।

उदाहरणके रूपमें यहाँ कुछ जैनलेख प्रस्तुत हैं जो स्वयं युगीन तथ्योंको प्रकट रहे हैं—

(१)

६०॥ सं० १३३४ वर्षे वैशाख सुदी १० श्री वृहद् गच्छे श्री धर्कट वंशे सा० देवचंद्र भार्या वर्णासिरी पुत्र सा० वानरेण भार्या लाडी पुत्र खेता तथा देदा पिथि मसीहु चांगदेव प्रभृति कुटुँब सहितेन पूर्वज श्रेयसे श्री पार्श्वनाथ बिंबं कारिता प्रतिष्ठितं च श्री जयदेवसूरि शिष्यैः श्री माणदेव·······(सूरिभिः) [१८५]

—बी० जै० ले० सं०, पृष्ठ २२

(२)

सं० १५२५ वर्षे फागुण सुदी ७ शनौ नागर ज्ञातीय श्रे० रामा भा० शणी पुत्र नगाकेन भा० धनी पु० नाथा युतेन श्री अचल गच्छे श्री जयकेसरि सुरीणामुपदेशेन श्री श्रेयांसनाथ बिंबं का० प्र० श्री सूरिभिः (१०४५)

—बी० जै० ले० सं०, पृष्ठ १२८

(३)

।। सं० १६६४ प्रमिते वैशाख सुदि ७ गुरु पुष्ये राजा श्री रायसिंह विजयराज्ये श्री विक्रमनगर वास्तव्य श्री ओसवाल ज्ञातीय गोलवच्छा गोत्रीय सा० रूपा भार्या रूपादे पुत्र मिन्ना भार्या माणिकदे पुत्ररत्न सा० वन्नाकेन भार्या वल्हादे पुत्र नथमल्ल कपूरचन्द्र प्रमुख परिवार सश्रीकेन श्री श्रेयांस बिबं कारित प्रतिष्ठितं च। श्री बृहत्खरतर गच्छाधिराज श्री जिनमाणिक्यसूरि पट्टालंकार (हार) श्री साहि प्रतिबोधक। युगप्रधान श्री जिनचंद्रसूरिभिः ।। पूज्यमानं चिरं नंदतु॥ श्रेयः। (११५४)

—बी० जै० ले० सं०, पृष्ठ १४४

(४)

अथ शुभाव्दे १९२४ शाके १७७९ चैतन्मिते ज्येष्ठ मासे शुक्ल पक्षे पंचमी तिथौ गुरुवासरे। श्री मत्वृहत्खरतर गच्छे। जं यु। भ। प्र। श्री जिनसौभाग्यसूरीश्वराणामाज्ञया श्री। कीर्त्तिरत्नसूरिशाखायां उ। श्री अमृतसुन्दरगणिस्तच्छिष्य वा। श्री जयकीर्तिगणिस्तच्छिष्य पं० प्र० प्रतापसौभाग्य मुनि स्तदंतेवासिना पं० प्र० सुमतिविशाल मुनिनाख्यं शुभोपाश्रयः कारितः पं० समुद्रसोमादि हेतवे। बीकानेर पुराधीशः राजेश्वरः शिरोमणिः श्री सरदार सिंहाख्यो नृपो विजयते तराम्? यावन्मेरुर्मही मध्ये चाम्बरे शशिभास्करौ। तावत्साध्वालयश्चेषश्चिरं तिष्ठतु शर्म्मदः।२। कारीगर सूत्रधार। भीखाराम। श्री (२५४७)

—बी० जै० ले० सं०, पृष्ठ ३५८

(५)

महोपाध्याय रामलालजीके उपाश्रयका लेख—

(२५५३)

॥ ॐ। ह्रीं। श्रीं। नमः ॥

ब्रह्मा विष्णु शिव शक्ति आदि स्वरूप श्री ऋषभ वीतरागायनमः दादासाहिब श्री जिनकुशलसूरि संतानीय क्षेमधाड़ शाखायां श्री साधु महाराज पं०। प्र। श्री युक्तिवारध रामलाल ऋद्धिसार मुनिना ओसवाल माहेश्वरी अग्रवाल ब्राह्मणादि समस्त बीकानेर वास्तव्य प्रजाके कुष्ट भगंदरादि अनेक कष्ट मिटाय कर वे विद्या-शाला तथा ज्ञानशाला स्थापना करी है, इसमें सर्व मतोंके पुस्तकका भण्डार स्थापन करा है, इसमें ऐसा नियम किया गया है कि पुस्तक तथा विद्याशाला कोई लेवेगा या वेचेगा सो सर्वशक्तिमान परमेश्वरसे गुनह-

गार होगा चेला सपूतोंकी मालकी एक गद्दीधर को रहेगी अगर कपूताई करेगा दीक्षा लजावेगा तदारक पंच तथा कमेटी करेगी सं० । १९।५४ । वै० शु० । ५ ॥ —बी० जै० ले० सं०, पृ० ३६०

इन जैनलेखोंसे कतिपय ये तथ्य मुखरित होते हैं :

१. तत्सम शब्दोंके साथ देशज शब्दोंका प्रयोग ।

२. तत्कालीन शासकोंका प्रशस्ति-गान ।

३. युगीन साधु-सन्तोंके प्रति आभार-प्रदर्शन ।

४. सम्बन्धित धार्मिक महापुरुषोंका उल्लेख ।

५. देवालयोंमें मूर्ति-स्थापना करनेवालोंके नाम आदिके साथ परिवारकी संक्षिप्त चर्चा ।

६. गोत्र-वंशादिका उल्लेख ।

७. धार्मिक कृत्योंकी प्रेरक प्रशंसा ।

८. धर्म कार्योंको करानेवाले पंडितों एवं आचार्योंकी नामावली ।

९. युग-परिवर्तनके साथ भाषा-शैली आदिमें परिवर्तन ।

१०. तिथि संवत् आदिका उल्लेख ।

११. परमपूज्य उस तीर्थंकरका नामोल्लेख जिसका बिम्ब स्थापित किया गया है ।

१२. देवालय-भवन प्रणेता एवं मूर्तिकार आदिके पूर्ण नाम पता आदिकी चर्चा ।

१३. विविध गच्छोंकी चर्चा ।

१४. उपाश्रय, धर्मशाला, मंदिर, ज्ञानशाला, औषधालय आदिसे सम्बद्ध लेखोंमें सार्वजनिक उपयोगार्थ शर्तोंका उल्लेख एवं प्रबन्धकोंकी नियुक्ति आदिकी नियमावली ।

१५. विश्वकल्याणकी भावनाका सर्वत्र उल्लेख आदि आदि ।

इस प्रकार श्री अगरचंदजी नाहटाने इन लेखोंका संग्रह करके एक ऐसे अभावकी पूर्ति की है, जो इतिहासके उन पृष्ठोंको प्रामाणिक सिद्ध करेगा जिनके सम्बन्धमें समय-समयपर कई शंकाएँ प्रदर्शित की गयी हैं तथा आज भी उठायी जाती हैं ।

●

श्री नाहटाजी द्वारा लिखित एवं सम्पादित कतिपय ग्रन्थ

शिखरचन्द्र कोचर
अवकाश-प्राप्त जिला एवं सत्र न्यायाधीश, बीकानेर

श्री नाहटाजी द्वारा लिखित एवं सम्पादित ग्रन्थोंकी संख्या साठसे ऊपर है। उनमेंसे कतिपय ग्रंथोंका संक्षिप्त परिचय निम्न-लिखित है—

१. युगप्रधान श्री जिनचन्द्रसूरि

यह ग्रन्थ श्री नाहटाजीने अपने भतीजे श्री भँवरलालजीके सान्निध्यमें लिखा है, और विक्रमी संवत् १९९२में प्रकाशित हुआ है। मध्य-कालीन भारतीय इतिहास-वेत्ताओंको विदित है कि सम्राट् अकबरपर जैन-धर्मका प्रभाव पड़ा था। जिन जैनाचार्योंने उसे विशेषरूपसे प्रभावित किया था, उनके नाम हैं—श्री हीर-विजयसूरिजी एवं श्री जिनचन्द्रसूरिजी। श्री हीरविजयसूरिजीका जीवन-चरित्र तो मुनि विद्याविजयजी द्वारा कई वर्ष पूर्व काफी खोज-शोधपूर्वक प्रकाशित किया जा चुका था, किन्तु श्री जिनचन्द्रसूरिजीका प्रामाणिक जीवन-चरित्र पर्याप्त ऐतिहासिक सामग्री उपलब्ध न होनेके कारण प्रकाशित नहीं किया जा सका था। इस अभावकी पूर्ति इस ग्रन्थके विद्वान् लेखकोंने कई वर्षोंके परिश्रम एवं अनुसन्धानसे की है। इस ग्रन्थमें कई चित्रों, फरमान-पत्रों, उत्कीर्ण लेखों तथा अन्यान्य उपलब्ध प्राचीन सामग्रीका समावेश किया गया है, जिससे इसकी उपयोगिता एवं प्रामाणिकता बहुत बढ़ गयी है। इस ग्रन्थके अनुवाद गुजराती एवं संस्कृत भाषाओंमें भी प्रकाशित हो चुके हैं। इस पुस्तककी प्रस्तावना प्रसिद्ध गुजराती लेखक स्व० श्री मोहनलाल दलीचन्द देसाईने लिखी है।

२. ऐतिहासिक जैनकाव्यसंग्रह

इस ग्रन्थका सम्पादन श्री नाहटाजीने अपने भतीजे श्री भँवरलालजीके सान्निध्यमें किया है और विक्रमी संवत् १९९४ में प्रकाशित हुआ है। इस ग्रन्थकी प्रस्तावना प्रसिद्ध विद्वान् प्रोफेसर हीरालाल जैनने लिखी है। इस ग्रन्थमें बारहवीं शताब्दीसे लेकर बीसवीं शताब्दी तक, लगभग आठ सौ वर्षोंके, ऐतिहासिक जैन-काव्य संग्रहीत हैं, जिनसे जैन-इतिहास तथा भाषाओंके क्रमिक विकासपर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। ये काव्य, अपभ्रंश, प्राकृत, संस्कृत, राजस्थानी, गुजराती आदि भाषाओंमें हैं, जिनके अध्ययनसे इन भाषाओंके विज्ञान तथा व्याकरण आदिको हृदयंगम करनेमें प्रचुर सहायता प्राप्त होती है। कई काव्य रस, अलंकार, पद-विन्यास, भाषा-सौष्ठव, अर्थ-गांभीर्य आदि गुणोंकी दृष्टिसे भी अनुपम हैं जिनके मनन एवं अनुशीलनसे अनिर्वचनीय आनन्दकी प्राप्ति होती है। ग्रन्थके प्रारम्भमें "काव्योंका ऐतिहासिक सार" नामसे विस्तृत भूमिका तथा "संक्षिप्त कवि-परिचय" भी दिये गये हैं, जिनसे इस ग्रन्थकी उपयोगितामें अभिवृद्धि हो गयी है।

३. दादा श्री जिनकुशलसूरि

यह पुस्तक श्री नाहटाजीने अपने भतीजे श्री भँवरलालजीके सान्निध्यमें लिखी है और इसका प्रथम संस्करण विक्रमी संवत् १९९६में प्रकाशित हुआ है। खरतर-गच्छमें "दादाजी"के नामसे सुप्रसिद्ध चार महान् आचार्य हुए हैं—१. युगप्रधान श्री जिनदत्तसूरिजी, २. मणिधारी श्री जिनचन्द्रसूरिजी, ३. श्री जिनकुशल-

सूरिजी और ४. युगप्रधान श्री जिनचन्द्रसूरिजी। इन चारों महान् आचार्योंके अनेक स्मारक देशके कोने-कोनेमें विद्यमान हैं और उनमें धर्म-प्राण जनताकी अटूट श्रद्धा है। विद्वान् लेखकोंने यह ग्रन्थ काफी परिश्रमपूर्वक लिखा है और इसकी प्रस्तावना प्रसिद्ध जैन-विद्वान् मुनि जिनविजयजीने लिखी है।

४. मणिधारी श्री जिनचन्द्रसूरि

यह पुस्तक भी श्री नाहटाजीने अपने भतीजे श्री भँवरलालजीके सान्निध्यमें लिखी है और इसका प्रथम संस्करण विक्रमी संवत् १९९७में प्रकाशित हुआ है। इस पुस्तकमें उपर्युक्त चार "दादाजी"मेंसे द्वितीय "दादाजी"का जीवनचरित्र, विद्वान् लेखकों द्वारा उपलब्ध ऐतिहासिक सामग्रीके आधारपर वर्णित किया गया है। इसकी प्रस्तावना सुप्रसिद्ध विद्वान् डॉ० दशरथ शर्माने लिखी है।

५. युगप्रधान श्री जिनदत्तसूरि

यह पुस्तक भी श्री नाहटाजीने अपने भतीजे श्री भँवरलालजीके सान्निध्यमें लिखी है और इसका प्रथम संस्करण विक्रमी संवत् २००३में प्रकाशित हुआ है। विद्वान् लेखकों द्वारा उपर्युक्त चार "दादाजी"मेंसे प्रथम "दादाजी"का चरित्र-चित्रण इस ग्रन्थमें विशेष खोज-शोध एवं परिश्रम-पूर्वक किया गया है। इस ग्रंथकी प्रस्तावना सुप्रसिद्ध जैन लेखक मुनि कान्तिसागरजीने लिखी है।

६. ज्ञान-सार-ग्रन्थावली

इस ग्रन्थका सम्पादन श्री नाहटाजीने अपने भतीजे श्री भंवरलालजीके सान्निध्यमें किया है, और इसकी प्रथमावृत्ति वीर-संवत् २४८५ में प्रकाशित हुई है। उन्नीसवीं शताब्दीमें योगिराज ज्ञानसार नामक एक महान् संत हो गये हैं, जिनका साधारण जनतासे लेकर राजा-महाराजाओं तकपर बड़ा प्रभाव था और जिन्होंने उस प्रभावका उपयोग अपनी व्यक्तिगत स्वार्थ-सिद्धिके लिए नहीं, किन्तु सर्व-साधारणके लाभके लिए किया था। विद्वान् सम्पादकोंने इस ग्रन्थके द्वारा इन महान् संतकी जीवनी कई वर्षके परिश्रम और छान-बीनके पश्चात् प्रस्तुत की है और उनकी विशिष्ट आध्यात्मिक रचनाओंको प्रकाशित किया है। इस ग्रन्थकी प्रस्तावना प्रसिद्ध विद्वान् स्व० राहुल सांकृत्यायनने लिखी है। इस ग्रन्थके प्रारम्भमें योगिराज श्रीमद्ज्ञानसारजीके व्यक्तित्व एवं कृतित्वका ११२ पृष्ठोंमें विस्तृत परिचय, विद्वान् सम्पादकों द्वारा दिया गया है।

७. बीकानेर जैन लेख संग्रह

श्री नाहटाजीने कई वर्षोंके अनवरत परिश्रमसे बीकानेर एवं जैसलमेरके तीन सहस्रसे अधिक अप्रकाशित लेखोंका संग्रह किया और उन्हें अपने भतीजे भँवरलालजीके सान्निध्यमें वीराब्द २४८२ में विस्तृत भूमिकादि सहित इस बृहदाकार ग्रंथके रूपमें प्रकाशित किया। इस ग्रंथमें नवमी-दशमी शताब्दीसे लेकर वर्तमान काल तकके लेखोंका संग्रह किया गया है जिससे तत्कालीन इतिहास पर अपूर्व प्रकाश पड़ता है। इस ग्रंथके रूपमें इस ग्रंथके विद्वान् सम्पादकोंने भारतीके भण्डारमें एक अनुपम रत्न प्रस्तुत किया है और एतद्विषयक अनुसंधान-कर्ताओंका सुन्दर मार्ग-दर्शन किया है। इस ग्रंथका प्राक्कथन प्रसिद्ध विद्वान् डॉ० वासुदेवशरण अग्रवालने लिखा है। इन लेखोंसे बीकानेरके प्रामाणिक जैन इतिहासके अतिरिक्त तत्कालीन जैन स्थापत्य-कला, मूर्ति-कला तथा चित्र-कलापर भी पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। इन लेखोंके द्वारा हमें अनेक स्थानों, राजाओं, गच्छों, आचार्यों, मुनियों, श्रावक-श्राविकाओं, जातियों आदिका परिचय मिलता है और तत्कालीन रीति-रिवाजों, उपासना-पद्धतियों तथा धार्मिक, सामाजिक एवं राजकीय परिस्थितियोंका विशद ज्ञान प्राप्त होता है। उदाहरणार्थ, भूमिकाके पृष्ठ ८७ से ९३ तकपर सचित्र विज्ञप्ति-पत्रोंका वर्णन किया गया है, जिनके अवलोकनसे तत्कालीन सामाजिक, राजनैतिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियोंका भलीभाँति

परिचय प्राप्त होता है और उनमें दिये हुए चित्र तो हमारे समक्ष तत्कालीन जीवन-शैलीका चल-चित्र सा प्रस्तुत कर देते हैं। इस ग्रंथकी विस्तृत भूमिकामें बीकानेरके जैन-इतिहास, बीकानेरके राज्य-स्थापन एवं जैनोंका हाथ, बीकानेर नरेश तथा जैनाचार्य, बीकानेरमें ओसवाल जातिके गोत्र, बीकानेरमें रचित जैन-साहित्य, बीकानेरके जैन-मंदिरोंका इतिहास, जैन-उपाश्रयोंका इतिहास, बीकानेरके जैन ज्ञान-भंडार बीकानेरके जैन-श्रावकोंका धर्म-प्रेम आदि विषयोंका विशद विवेचन किया गया है।

८. समय-सुन्दर-कृति-कुसुमांजलि

सत्रहवीं शताब्दीमें उपाध्याय समयसुन्दर नामक एक प्रकांड जैन विद्वान् और महान् कवि हो गये हैं, जिन्होंने विपुल साहित्यका निर्माण किया और अनेक ग्रंथोंपर विद्वत्तापूर्ण टीकाएँ लिखीं। जैन-शास्त्रोंमें पारंगत विद्वान् होनेके अतिरिक्त उनका व्याकरण, न्याय, अनेकार्थ कोष, छंद, साहित्य, संगीत आदिपर भी पूर्ण अधिकार था, जिसके कारण उनकी रचनाओंका विद्वत्समाज तथा जन-साधारणमें बड़ा भारी आदर था, और आज भी है। उनके प्रखर पांडित्यका परिचय इसी बातसे चल जाता है कि उन्होंने सम्राट् अकबरकी विद्वत्सभामें दिये आठ अक्षरों "राजानो ददते सौख्यं" पर आठ लाख अर्थोंकी रचना की। यह ग्रन्थ 'अर्थ-रत्नावली"के नामसे प्रसिद्ध है। इन महान् कविकी ५६३ लघु रचनाओंका संग्रह श्री नाहटाजीने अपने भतीजे श्री भँवरलालजीके सान्निध्यमें विक्रम संवत् २०१३में उपर्युक्त नामसे प्रकाशित किया है। इस ग्रन्थके प्रारंभमें विद्वान् संपादकों तथा महोपाध्याय विनयसागरजी द्वारा इन महान् कविके व्यक्तित्व एवं कृतित्वका विस्तृत विवेचन किया गया है। इस ग्रन्थकी भूमिका प्रसिद्ध विद्वान् डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदीने लिखी है।

९. रत्नपरीक्षा

इस ग्रंथका संपादन भी श्री नाहटाजीने अपने भतीजे श्री भँवरलालजीके सान्निध्यमें किया है। विद्वान् संपादकोंने ठक्करफेरूकी लगभग छः सौ वर्ष प्राचीन इस रचनाको विशद भूमिकाके साथ प्रकाशित किया है। ग्रन्थके प्रारंभमें उसका परिचय ८० पृष्ठोंमें डॉ० मोतीचन्द्र द्वारा दिया गया है, जिससे इस विषयपर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है।

१०. सीताराम चौपाई

महोपाध्याय कविवर समयसुन्दरकृत इस ग्रन्थका संपादन नाहटाजीने अपने भतीजे श्री भँवरलालजीके सान्निध्यमें किया है और यह ग्रन्थ संवत् २०१९ में प्रकाशित हुआ है। इस ग्रन्थके प्रारंभमें संपादकीय भूमिका तथा प्रो० फूलसिंह "हिमांशु" द्वारा "राजस्थानीका एक रामचरितकाव्य"के शीर्षकसे इस ग्रन्थ तथा उसके लेखकका विस्तृत परिचय, सीतारामचरित्रसार तथा डॉ० कन्हैयालाल सहल द्वारा लिखित "सीताराम चौपाई'में प्रयुक्त राजस्थानी कहावतें नामक लेख दे दिये हैं, जिनसे इस ग्रन्थकी उपयोगितामें चार चाँद लग गये हैं।

११. श्रीमद् देवचन्द्र स्तवनावली

इस पुस्तकका संपादन श्री नाहटाजीने अपने भतीजे श्री भँवरलालजीके सान्निध्यमें किया है, और यह पुस्तक संवत् २०१२में प्रकाशित हुई है। अठारहवीं शताब्दिमें श्रीमद् देवचन्द्रजी नामक एक प्रसिद्ध विद्वान् सन्त हुए हैं, जिन्होंने संस्कृत, प्राकृत, हिन्दी, गुजराती आदि भाषाओंसे अनेक ग्रन्थों, सज्झायों, स्तवनों आदिकी रचना की है, जिनका प्रचलन वर्तमान कालमें भी अत्यधिक है। पुस्तकके प्रारंभमें श्री नाहटाजीने श्रीमद् देवचन्द्रजीके व्यक्तित्व तथा कृतित्वके संबंधमें पर्याप्त प्रकाश डाला है।

१२. धर्मवर्द्धनग्रंथावली

इस ग्रन्थका संपादन श्री नाहटाजीने किया है और यह ग्रन्थ संवत् २०१७में प्रकाशित हुआ है।

इस ग्रंथके प्रारंभमें श्री नाहटाजीने महोपाध्याय धर्मवर्द्धनके व्यक्तित्व एवं कृतित्वके सम्बन्धमें विस्तृत जानकारी दी है। ये अठारहवीं शताब्दीके एक महान् विद्वान् संत थे और उन्होंने संस्कृत तथा राजस्थानी भाषाओंमें काव्य-रचना की है। इनकी पाँच बड़ी रचनाओंको छोड़कर अवशिष्ट समस्त उपलब्ध रचनाओंका समावेश इस ग्रन्थमें किया गया है, जो श्री नाहटाजीके अनेक वर्षोंकी खोज-शोध तथा परिश्रमका फल है। इस ग्रन्थकी भूमिका राजस्थानीके सुप्रसिद्ध विद्वान् डॉ० मनोहर शर्माने लिखी है।

१३. जिनराजसूरि-कृति-कुसुमांजलि

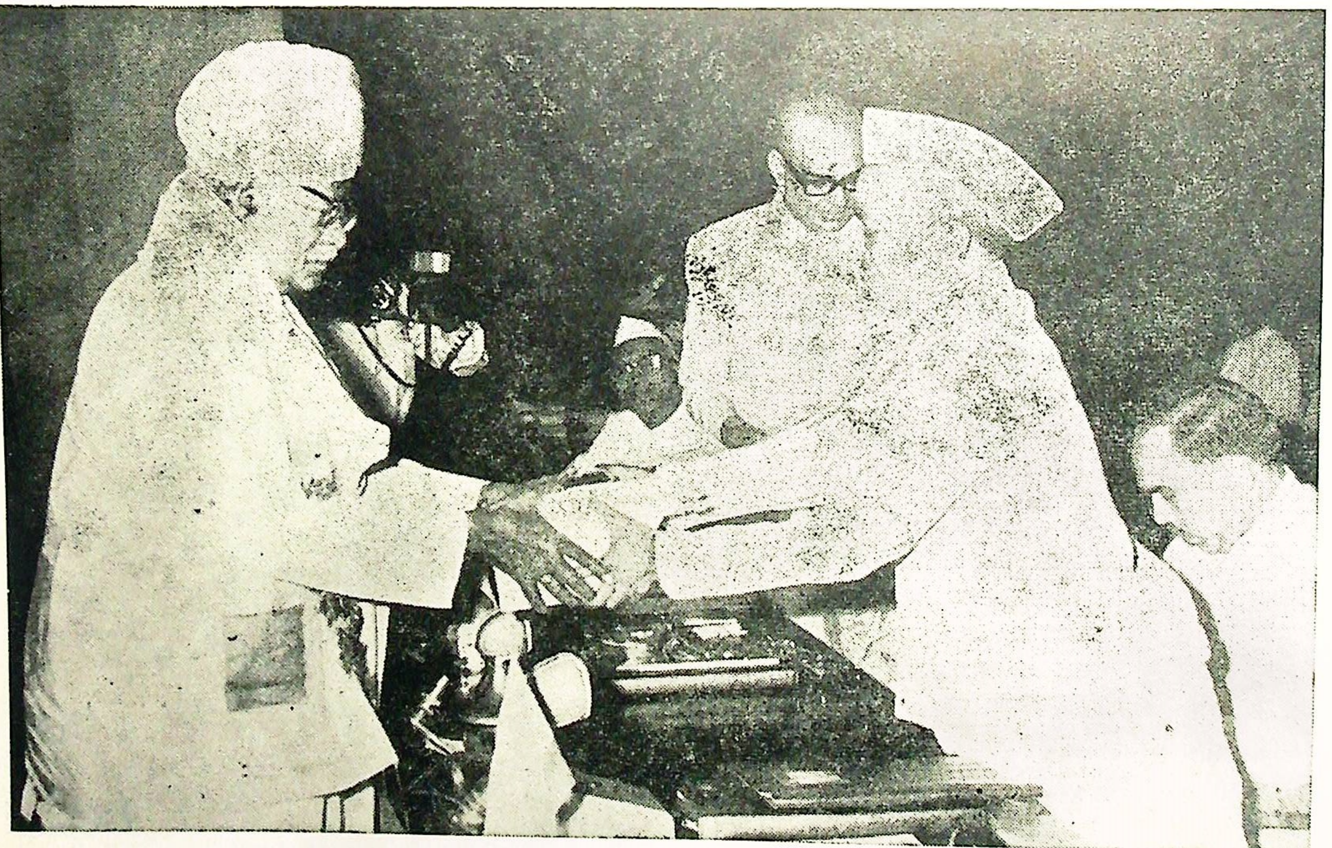
सत्रहवीं शताब्दिके उत्तरार्द्धमें खरतर-गच्छमें श्री जिनराजसूरि नामक प्रसिद्ध आचार्य हुए हैं, जिन्होंने संस्कृत तथा राजस्थानी भाषाओंमें अनेक ग्रन्थोंकी रचना की है। उनमेंसे कतिपय उपलब्ध राजस्थानी काव्यों-का प्रकाशन श्री नाहटाजीने इस ग्रन्थके द्वारा किया है। यह ग्रन्थ विक्रम संवत् २०१० में प्रकाशित हुआ है। इस ग्रन्थके प्रारम्भमें श्री नाहटाजीने श्री जिनराजसूरिके व्यक्तित्व एवं कृतित्वपर अच्छा प्रकाश डाला है। इस ग्रन्थके साहित्यिक अध्ययनके सम्बन्धमें प्रो० नरेन्द्र भानावतका एक लेख ग्रन्थके प्रारम्भमें प्रकाशित हुआ है।

१४. बीकानेरके दर्शनीय जैनमन्दिर

श्री नाहटाजीने बीकानेरके दर्शनीय जैनमन्दिरोंके सम्बन्धमें सामान्य जानकारीके लिए यह पुस्तिका लिखी है, जो विक्रम संवत् २०१२ में प्रकाशित हुई है। यह पुस्तिका एतद्विषयक ज्ञानके लिए बड़ी उपयोगी सिद्ध हुई है।

१५. मणिधारी श्री जिनचन्द्रसूरि अष्टम शताब्दी स्मृति-ग्रन्थ

खरतर-गच्छमें "दादाजी"के नामसे सुप्रसिद्ध चार आचार्योंमेंसे द्वितीय "दादाजी"का अष्टम शताब्दी समारोह गत वर्ष दिल्लीमें बड़े पैमानेपर मनाया गया था। उस सुअवसरपर श्री नाहटाजी तथा उनके भतीजे श्री भंवरलालजी द्वारा सम्पादित इस ग्रन्थका प्रकाशन समारोह-समिति द्वारा किया गया था। इस ग्रन्थके प्रथम खण्डमें विभिन्न विषयोंपर ४३ महत्वपूर्ण निबन्ध प्रकाशित किये गये हैं, जिनमेंसे २० निबन्ध इस ग्रन्थके विद्वान् सम्पादकों द्वारा लिखित हैं। इस ग्रन्थके द्वितीय खंडमें खरतर-गच्छ साहित्य-सूची दी गयी है, जिसे विद्वान् सम्पादकोंने ४० वर्षोंकी खोज-शोध और परिश्रमके उपरांत तैयार की है और जो खरतर-गच्छके सम्बन्धमें अनुसन्धान करनेवाले व्यक्तियोंके लिए बहुत ही उपयोगी है। इस ग्रन्थमें अनेक प्राचीन एवं अर्वाचीन चित्र भी दिये गये हैं, जिनसे उसकी शोभामें अभिवृद्धि हुई है।

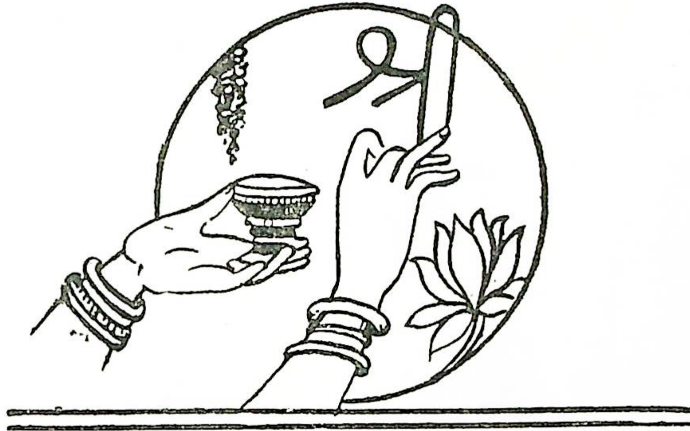


उपराष्ट्रपति जत्ती द्वारा अगरचन्द जी नाहटा पुरस्कृत (सन् १९७४ दिल्ली)।



द्वितीय खण्ड





श्रद्धा-सुमन





श्रद्धा-के-ये प्रसून

उपाध्याय प्रकाशविजय

मां सरस्वती के अथक पुजारी
अर्हनिश लेखनी के उपासक
कर्तव्य निष्ठ
धर्मोद्धारक
लाख लाख वन्दन तुझको
जो दीप ज्योति जागृत तुमसे !
दीप से जलें सहस्र दीप
प्रकाशमान हो विश्व आंगन
मुखरित हो नन्दन वन, कानन,
प्रज्वलित प्रकाश में
तिमिर भागे
मानव जागे
उज्ज्वल हो वसुधा का मस्तक
मां सरस्वती के अथक पुजारी ।

× × ×

अवरुद्ध न हो पाई तेरी
वह अथक आराधना
ये शुभ्र पत्र कागज के पृष्ठ
किंचित् किंचित् शब्दों के गोरखधंधों से
लीपित हो लक्षित हो
गुंफित हो
वन गए
चित्रित हो
इन्द्र धनुष के सप्तरंगों से रंजित,
महाग्रन्थ !
महाप्राण !
काव्य-शोधित-चित्र
साहित्य आभारी है
समाज आभारी है
धन्य-धन्य यह महाप्रयास-तेरा
ए-सरस्वती के अथक उपासक !

●

घणमोला श्री नाहटाजी नै घणैमान

कन्हैयालाल सेठिया

कलम री नोक सूं उठा'र
वगत रो पड़दो
प्रगटायौ ग्यान-दिवलां री रतन-जोत
भूल्योड़ी वातां'र ख्यातां नै
सरम रो संजीवण दे'र करी
पाछी हरी—
जक्यां नै निगळ लीन्ही ही
सरब-भक्षी मौत,
इसी सुण्योड़ी है'क लिछमी'र सुरसती
रया करै है अेक-दूसरी सूं अपूठी

पण थे तो थांरी जीवण रीकळा सूं
ईं कैवत नै कर दीन्ही साव ही झूठी,
कणाँ ढळै रात कणाँ ऊगै दिन
थां रो तो पळ-छिण
वीतै है साधना में
सबद री आराधना में
भेजूं हूँ मैं म्हारै हिरदै री सरधा
चढाऊं हूँ चरणां में भावां रा फूल
थाँ नै जळम दे'र धिन हुई
ईं धरती री सोनळ धूळ ।

●

अभिनन्दनम्

डॉ० मनोहर शर्मा, एम० ए०, पी-एच० डी०

श्रेष्ठि-वंश-समुद्भूतः, सरस्वत्या उपासकः । राजस्थान-धरा-रत्नं, विद्या-विनय-भूषितः ।।१।।
सततं साधना-शीलः, पुण्याचार-परायणः । मुनिरूपो गृही चैव, राग-द्वेष-विवर्जितः ।।२।।
छात्र-वर्ग-हिते लीनः, सुधी-वृंद-समादृतः । ज्ञान-विज्ञान-योर्धाता, ग्रंथागार-विधायकः ।।३।।
साहित्य-शोधको धीरः, लुप्त-ग्रंथ-प्रकाशकः । सुकृतिस् तत्त्व-मर्मज्ञः, मातृभाषा-सुसेवकः ।।४।।
कर्मण्यो धर्म-चेताश्च, सदा सर्व-हिते रतः । दिव्यतेजाश् चिरं जीव्याद्, अग्रचंद्रो महामतिः ।।५।।

●

अभिनन्दन

श्री उदयराज ऊजल

अगरचंद सुकृत 'उदय', सम्पति गृह सरसात । रहै प्रेम सुखशांति जय, सदा धर्म के साथ ।।१।।
अगरचंद सेवा 'उदय', उज्ज्वल राजस्थान । डूबत साहित्य देशको, करत उद्धार महान ।।२।।
भासा राजस्थानकी, राजसथानी नाम । को कुबुधी मेहण करै, रुख पाले श्री रांम ।।३।।
मातर भासा मूल, जीवारी रजथानरी । तूटै पत्रा तूल, धनपंतां दिस ही धरौ ।।४।।
आपर जाय अनेक, धनवंता रजपट धरा । अगरचंद तूं अेक, तारकभासा मातरौ ।।५।।
बांगड़ सम ब्रह लाह, धनवंता आया धरा । इवे गता अहलाह, साहितरी सेवा बिना ।।६।।
वीकांणौ विदवांन, अेकठ कीधा ईसवर । मातरभासा मांन, इसां सपूतां आसरे ।।७।।
आवे लहर अनेक, दाहण भासादेसरी । हरे सुमेर नहेक, नरां अगरचंद नाहटौ ।।८।।

●

अभिनन्दन

श्री प्यारेलाल श्रीमाल 'सरस'

श्री शारदा दोनों मिलकर करती जिसका अभिनन्दन ।
अमृत-सागर ज्ञान-सुधाकर अगरचन्दजी को वन्दन ।।
गरिमा तुम साहित्य क्षेत्र की जैन-जगत के गौरव तुम ।
रत्न देश के विद्या-वारिधि, मानवता की सौरभ तुम ।।
चंद्र-किरण सा मृदु शीतल है मनमोहक व्यक्तित्व तुम्हारा ।
दया दान के परम उपासक वीर-वचन अस्तित्व तुम्हारा ।।
जीवन को है सफल बनाया जन्मभूमि को धन्य किया ।
नाम अमर कर दिया वंश का मात पिता को धन्य किया ।।
हर्ष हमें शुभ अवसर पाकर करते आज 'सरस' अभिनंदन ।
टाल सभी अवगुण को तुमने बना लिया निज जीवन चंदन ।।

●

श्रद्धाञ्जलि

श्री व्रजनन्दन गुप्त 'व्रजेश'

अम्ब ! भारती समोद,
सहज सुभाय भरी-
चारु चन्द्र मुख ही सौं,
चन्द्र जस गा रही ।
ज्ञानकी अखण्ड ज्योति,
जग मग चहूँ ओर-
ललित निबन्धन में-
दिव्य छवि पा रही ।

कहत 'व्रजेश' बीका-
नेर की कनी हू धन्य,
देश औ विदेशन में-
कीरति कमा रही ।
हिन्दी राष्ट्र-भारती के
मंजु मौन मन्दिर में,
अगर सुगन्ध नित्य-
नई-नई छा रही ।।

●

अगरचन्द नाहटाजी का शत शत अभिनन्दन

श्री 'काका'

जिनका अभिनन्दन करने को उत्सुक अभिनंदन है । सरस्वती के पुत्र नाहटा जी का अभिनंदन है ।।

(१)

बचपन से ही सरस्वती की सतत साधना करके । लिखे पचासों ग्रंथ आपने मनमें जन-हित धरके ।।
शोध पूर्ण कई लेख लिखे जग में जिनका बंदन है । सरस्वती के पुत्र नाहटा जी का अभिनंदन है ।।

(२)

श्री सिद्धान्ताचार्य और इतिहासरत्न जैसे पद । कई मिले पर नाम मात्रको आया नहीं जिन्हें मद ।।
अस्सी सहस पुराणों, ग्रंथों का कीना मंथन है । सरस्वती के पुत्र नाहटा जी का अभिनंदन है ।।

(३)

प्राचीन इतिहास, आपको, सरस्वती का वर है । जैन अजैन सभी धर्मों की रहती जिन्हें खबर है ।।
भारत मां हो गई धन्य पाकर ऐसा नन्दन है । सरस्वती के पुत्र नाहटा जी का अभिनन्दन है ।।

(४)

लक्ष्मी, सरस्वती दोनों की कृपा जिनपर भारी । फिर भी सादा वेष और मन है जिनका अविकारी ।।
सरस्वती सेवा को 'काका' जिनका तन-मन-धन है । अगरचन्द नाहटा जी का शत शत अभिनन्दन है ।।

●

साहित्य-गगन के दीप्तिमान नक्षत्र, तुम्हें शत शत प्रणाम

श्री अनूपचन्द, न्यायतीर्थ, साहित्यरत्न

(१)

अभिनन्दनीय आदर्श पुरुष !
उद्भट विद्वत्ता-महा धाम ।
अमृत बरसाता रहे सदा
शुभ अगरचंद यह अमर नाम ।।

(२)

संस्कृत हिन्दी औ प्राकृत का
अध्ययन तुम्हारा है विशाल ।
गुजराती राजस्थानी का
तुमही से उन्नत आज भाल ।।

(३)

साहित्य-शोध के कामों में
तन मन धन अर्पण किया आज ।
निःस्वार्थ भावना से प्रेरित
साहित्य मनीषी ! योगिराज ।।

(४)

तुम सफल समालोचक अद्‌भुत ।
निर्भीक प्रवक्ता पत्रकार ।
आगम ग्रंथों के अभ्यासी
प्रतिभाशाली साहित्यकार ।।

(५)

कोई भी ऐसा पत्र नहीं
जिसमें न तुम्हारा छपा लेख ।
आश्चर्य चकित हैं महारथी
साहित्यिक गति विधि देखदेख ।।

(६)

साहित्य प्रणेता कोई भी
कैसा भी आवे किसी काल ।
सब कुछ सामग्री पाकर के
वह हो जाता तुमसे निहाल ।।

(७)

तुम प्रबल पारखी पुरातत्त्व !
इतिहास निपुण औ कर्मनिष्ठ ।
साहित्य शिरोमणि ! गुण-ग्राहक !
नित सत्यपरायण धर्म निष्ठ ।।

(८)

तुम परम सादगी के पुतले
भावुक, जिज्ञासु, अति उदार ।
हित-मित प्रिय भाषी विद्वत् प्रिय !
श्रद्धेय ! प्रचारक सद्‌विचार ।।

(९)

अज्ञात पुरानी रचनाएं
लाकर प्रकाश में किया काम ।
साहित्य जगत में उस ही से
हो गया तुम्हारा अमर नाम ।।

(१०)

साहित्य क्षेत्र में है इतना
सम्मान तुम्हारा कर्म वीर
जिस ओर लेखिनी चली गयी
बन गई लोह की वह लकीर ।।

(११)

उद्‌घाटित नूतन तथ्य करो,
शतशः वर्षों तक रह ललाम ।
साहित्य-गगन के दीप्तिमान
नक्षत्र तुम्हें शत शत प्रणाम ।।

●

श्रद्धाञ्जलि

सूरजचन्द डाँगी

अगरचंद सुरभिन सदा, साक्षी सूरजचंद । आत्मा का निज भाव है, शुद्ध सच्चिदानंद ।।
शुद्ध सच्चिदानन्द वीर्य ध्रुव शांति है । दर्शन ज्ञान सौख्य सदा विश्रांति है ।।
जीवन सुन्दर मधुर मिटी विभ्रांति है । अन्तर्दृष्टि सहज हित सम्यक क्रांति है ।।

●

सरस्वतीके वरद् पुत्र

श्री राधेश्याम शर्मा 'श्याम'

हे सरस्वती के वरद पुत्र, शत बार तुम्हारा अभिनन्दन !

इस धरती पर तुम 'चन्द्र' रूप,
शीतल किरणों को बिखराकर।
दे रहे मनुज को ज्ञान अमित
साहित्य-संस्कृति को निखरा कर।

शोधक, साहित्यिक सजग रूप,
तुम एकनिष्ठ सेवारत हो ।
हो धर्म ध्वजा के प्रबल प्राण,
कृतियों के पुनरुद्धारक हो ।

क्षत-विक्षत ग्रंथों को चुनकर,
तुमने उनको नव प्राण दिये ।
साहित्य-सृजन के नायक बन,
भूले-भटकों को त्राण दिये ।

तुम हो निशिदिन साधनालीन,
संस्कृति को सब कुछ दान किया ।
लिखकर तुम ने सद्ग्रंथ अमित,
जन-जीवन का कल्याण किया ।

साधना-पंथ के अडिग पथिक,
तुम युग-युग तक अभियान करो ।
निज ज्ञान-रश्मि को ज्योतित कर,
जन-मंगल का संधान करो ।

साहित्य जगत् के अभियानी,
महको, महके जैसे चंदन !
हे सरस्वती के वरद पुत्र,
शत बार तुम्हारा अभिनंदम !

श्रद्धाञ्जलि

शोभनाथ पाठक

अपरिग्रह स्याद्वाद सत्यव्रत उद्घोषक शतशः प्रणाम।
गरिमा ग्रन्थों की आंक रहे आलोकित जिससे धरा धाम॥
रत्नत्रय से संवरे पुद्गल की परख, निखार रहे।
चन्दा समशांति उडेल रहे, नित सत्य शील का स्रोत बहे॥
दर्शन की पैठ अनूठी है जो आज विश्व की थाती है।
नादानी में भटके जन को बस यहीं शांति मिल पाती है॥
हम कितना और बखान करें, युग में विद्या वारिधि भर दो।
टालेंगे त्रिविध ताप युग का, हे ईश! इन्हें जीवन बल दो॥



साहित्य, संस्कृति एवं सुजनता के प्रतीक

श्री कलाकुमार

हे वाणी के वर वरद सुवन, शतकोटि तुम्हारा अभिनन्दन!
इतिहास मनुज का नहीं-
मनुजता का पलपल दुहराता है,
चीत्कार मनुज का नहीं—
मनुजता का विह्वल घहराता है।
जो 'तमसो मा ज्योतिर्गमय' का किया प्रथम मंत्रोच्चारण।
हे अमर ज्योति के संधानक, शत कोटि तुम्हारा अभिनन्दन॥
खुल गये कपाट, उठ गये ललाट,
खिल गये मनुजता के शतदल।
धुल गये कषाय-उर-अन्तराय—
बह चले सरित, भर स्वर कलकल।
प्राची के स्वर्णिम प्रांत बीच, गा उठे विहग मंगल-वंदन।
शुचिता, ऋजुता के सौम्य सेतु, शत कोटि तुम्हारा अभिनन्दन॥
था हुआ एक साधक महान्-
की अडिग साधना, ज्ञान-ध्यान;
शिव-जटा-यूथ से ललक-किलक-
था हुआ देवसरि पुरश्चरण।
तुम अपर भगीरथ बन आये, वसुधा के वर वसु अमर प्राण!
हे नव-जीवन के वरदायक, शतकोटि तुम्हारा अभिनन्दन!!

अगम गगन से उतर धरा पर
सरस सुवासित अगरचन्द वर।
अगरु-धूममय-सुख-सौरभ से—
हुआ धरा का महमह प्रांतर।
ललित-कलित वसुधा के कण-कण हुलस-किलक करते अभिवंदन।
अवनी के विभु-वरदान सुघड़, शतकोटि तुम्हारा अभिनन्दन॥

धवल चन्द्रिका अमल ऊर्मिता,
कुलकुल खिलखिल किरण-किरण मिल,
नव-जीवन-संजीवन लेकर,
सरस लासमय हास सँजोकर,
उतरी भू, ले मंगल स्पंदन, विनत विश्व-हित ऊर्ध्वारोहण !
सत्-शिव-सुन्दर के संवाहक, शतकोटि तुम्हारा अभिनन्दन !!

कितनी कृतियाँ, 'कितने सर्जक,
थे बने काल के क्रूर असन,
तुम साध-दीप को कर ज्योतित,
कर रहे अहर्निश प्राण-वपन।
तेरी साधें तेरी कृतियाँ, माँ भारति के मंगल अर्चन !
साहित्य-सिंधु के अवगाहक, शतकोटि तुम्हारा अभिनंदन !!

निष्कम्प शिखा के ज्योति अमल,
सुखकर बिहान के विकच कमल,
माँ भारति के हे चिर साधक !
जन-जन-मंगल के आराधक !
हे अगरचंद ! दीपक अमंद, हे धर्मप्राण ! हे युगचारण !
हे मानवता के सम्बोधक, शतकोटि तुम्हारा अभिनंदन !!

हैं धन्यभाग वसुधा ललाम,
साहित्य, संस्कृति, सुजनधाम,
हैं धन्य धरा के प्राण-प्राण
ले लेकर तेरे सुयश-नाम।
हे साधपंथ के सौम्यव्रती, युग-युग जीओ बन कीर्तिमान !
हे वाणी के वर वरदसुवन, शतकोटि तुम्हारा अभिनंदन !!

●

ऐसे ज्ञान ज्योति दिनकर का अभिनंदन शत वार है

श्री विमलकुमार जैन सोंरया

'अगरचंद नाहटा' सा जन बना हृदय का हार है,
ऐसे ज्ञानज्योति दिनकर का अभिनंदन शत वार है।

जिसने अपने सद विवेक से जन-जन को आलोक दिया,
जिसने अपने पुण्य प्रयासों से मानव को योग दिया!
जिसने क्षमता समता से मानव मन को आह्लाद दिया,
जिसने अक्षय ज्ञान पुञ्ज से नव युग को निर्माण दिया॥

जो धरती पर बन आया माँ सरस्वती का प्यार है,
ऐसे ज्ञान ज्योति दिनकर का अभिनंदन शत वार है।

जिसने अपने पौरुषसे अपना इतिहास बनाया है।
जिसने अपने कर्त्तव्योंसे जगमें निर्माण कराया है॥
जिसने अपनी सद्वाणीसे मानव को पथ दर्शाया है।
जिसने अपनी कृत करणीसे पावन तम गुरुपद पाया है॥

जो इस युगके बुधजन गण का बना एक आधार है।
ऐसे ज्ञान ज्योति दिनकर का अभिनंदन शत वार है॥

जिसकी पावन पुण्य लेखनीसे आलोकित लोक है।
जिसकी ज्ञानमयी प्रतिभा को जग जन देता धोक है॥
जिसने अपने बुध विवेकसे मिटा दिया सब शोक है।
जिसने आगे आने वाले युग को दिया आलोक है॥

जो जन-जनके लिए बना अब अलख ज्ञान का द्वार है,
ऐसे ज्ञान ज्योति दिनकर का अभिनंदन शत वार है॥

जिसके शंखनादसे पावन धर्म जगा इन्सानमें,
जो नरसे नारायण बनकर विचरा सम्यक् ज्ञानमें॥
भारत माँ की पावन वाणी का जिसमें सम्मान है।
अगणित जन जिसकी शिक्षासे दीक्षित हुए महान है॥

उस जन की यह आज अर्चना का गूंथा शुभ हार है।
ऐसे ज्ञान ज्योति दिनकर का अभिनंदन शत वार है॥

●

विश्व-कोषमें अमर रहेगा अगरचन्द का नाम

श्री कल्याणकुमार शशि

इतना दिया पुस्तकालय को साहित्यिक भण्डार
नित मुमुक्षु जग पायेगा, नव अन्वेषणके द्वार
शिक्षा-पट पर लिखे रहेंगे, यह समस्त उपकार
जो प्रशस्तियाँ लुप्त प्राय थीं किया पुनर्उद्धार
पूरा जीवन निर्विकार, 'साहित्यिक सेवा ग्राम'
विश्वकोषमें अमर रहेगा, अगरचन्द का नाम

तुम्हें, समर्पित दिखा स्वयम् ही अन्वेषणी ज्ञान
एक लक्ष्य ही रहा निरन्तर, नूतन अनुसन्धान
जीवन की असारताओंमें है कृतित्व महान
इस नश्वर जगमें ऐसे ही जीवन आयुष्मान
अन्तरङ्ग, बहिरङ्ग रहे, जिनके सदैव निष्काम
विश्वकोषमें अमर रहेगा, अगरचन्द का नाम

नई विधाएँ देनेवाला, किया सतत निर्माण
भरे अमरताके शरीरमें, नित आलोकित प्राण
मंथनमें समदृष्टि रहे सब गीता, वेद, पुराण
लिखा वही, जिसका जैसा भी, मिला अकाट्य प्रमाण
ऐसी सफल लेखनी, जिसने लिया नहीं विश्राम
विश्वकोषमें अमर रहेगा अगरचन्द का नाम

कोई ऐसा क्षेत्र नहीं है जिसमें दिखे न आप
मुखरित दीखी दिशा दिशामें लेखन की पद-चाप
बाधाओंमें रहा प्रगति मय कर्मठ कार्य-कलाप
युगों-युगों, तक अमर रहेगी, अमर, कलम की छाप
ऐसे कलम-कार मानव को, शत शत वार प्रणाम
विश्वकोषमें अमर रहेगा, अगरचन्द का नाम

●

श्री अगरचन्दजी नाहटाके प्रति

गौरी शंकर गुप्त

मूर्त्ति हो सौजन्य की, तब साधना अभिराम !
समर्पित जीवन तुम्हारा अमर-उज्ज्वल नाम !!
सहज मूल्यांकन न संभव है कि ऐसा काम !
तुम्हें अर्पित सुमन श्रद्धाके असंख्य प्रणाम !!

●

अभिनन्दन

सर्वदेव तिवारी "राकेश"

अभिनन्दन, हे विद्या-वारिधि, बुद्धि-बृहस्पति, मुनिवर !
अक्षरजीवी, ऋषि-कुल-गौरव, स-हित-भावना-भास्वर !
अगरु-गन्धसे पूरित कण-कण श्री-शारदा-निकेतन,
गहन श्वेद-सरि बही, लुप्त या गुप्त बन गए चेतन !
रम्य लताएँ लक्ष-लक्ष साहित्य-कुंजमें लहर भरीं,
चंचल रस-मारुत-विलाससे बढ़ी भारती जीर्ण तरी !
दमकाया वाणी का दर्पण, अक्षर-अक्षर चमक उठे,
नाम गणेशी-मन्त्र बना है, नित नव गणपति दमक उठे !
हर्षित कला, धर्म या संस्कृति-गौतम-नारी रजसे,
टापे को उपवनमें बदला, अपर सृष्टि रच अज-से !
स्वयं शीलमें पुस्तक-आलय, विश्वकोष जीवित पर,
धर्म, काव्य, संस्कृतिके संगम, शोध-तमिस्रा भास्कर !



अभिनन्दन

श्री सींथल, बीकानेर

अभिनन्दन है आपका, भक्ति भावके साथ ।
गर्व नहीं है मानका, गहत ज्ञान परमार्थ ।।
रक्षक रामको जो रहे, वन्दे नर अरु नार ।
चंचल चित वशमें रहे, तब बेड़ा हो पार ।।
दया युक्त हो लघुन पे, दान ज्ञानका देह ।
जीव सफल होवे तभी, सदा सज्जनसे नेह ।।
नाम नरोत्तमसे हुआ, महिमा बढ़ी अपार ।
हरदम लिखते लेख हैं, हंस वंश पय सार ।।
टाले अविद्या भूतको, तत्त्व ग्रन्थका लेह ।
तत्त्व सदा वा वाणीमें, कवि बानीको देह ।।



गीत डिंगल

श्री रावत सारस्वत

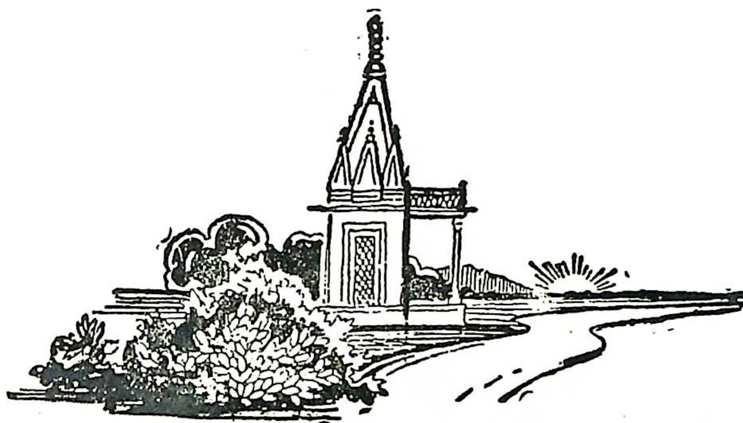
भल पाद्य रखी पूरी पिंढ़लाई, माद्य रखी सिरिगालैं जेम ।
करतब करे कमाई कीरत, नीकी भांत निभाया नेम ।।१।।
मांचै मोह न मिलिया माया, माथापच ही मोह मचै ।
राचै रंग न रीझ रमा री, सारद री ही सीख जचै ।।२।।
रुलिया रतन न रंच रुखाल्या, नूनां पानां जतन किया ।
हुलसी पोथ्यां हरख हियै में, पुखराजां मुख पीत थिया ।।३।।
गलियो गरब गरथ-भंडारां, ग्रन्थ-भंडारां दरब थियो ।
मातम तोसाखानां मनियो, पोथीखानां परब कियो ।।४।।
सोधै सुव्रण ओखधां सोधै, सोधै लगन जूजुआ सोध ।
पुरुखां रै जस करतब री पण, सारां सिरै थाहरी सोध ।।५।।
आखै देस कमाई कीरत, 'नाहटा' नाम सुनाम हियो ।
बीकानेर बसायो बीकै, तै पण तीरथ धाम कियो ।।६।।





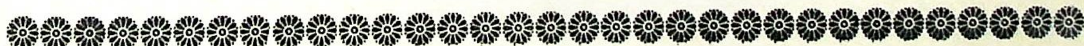
तृतीय खण्ड



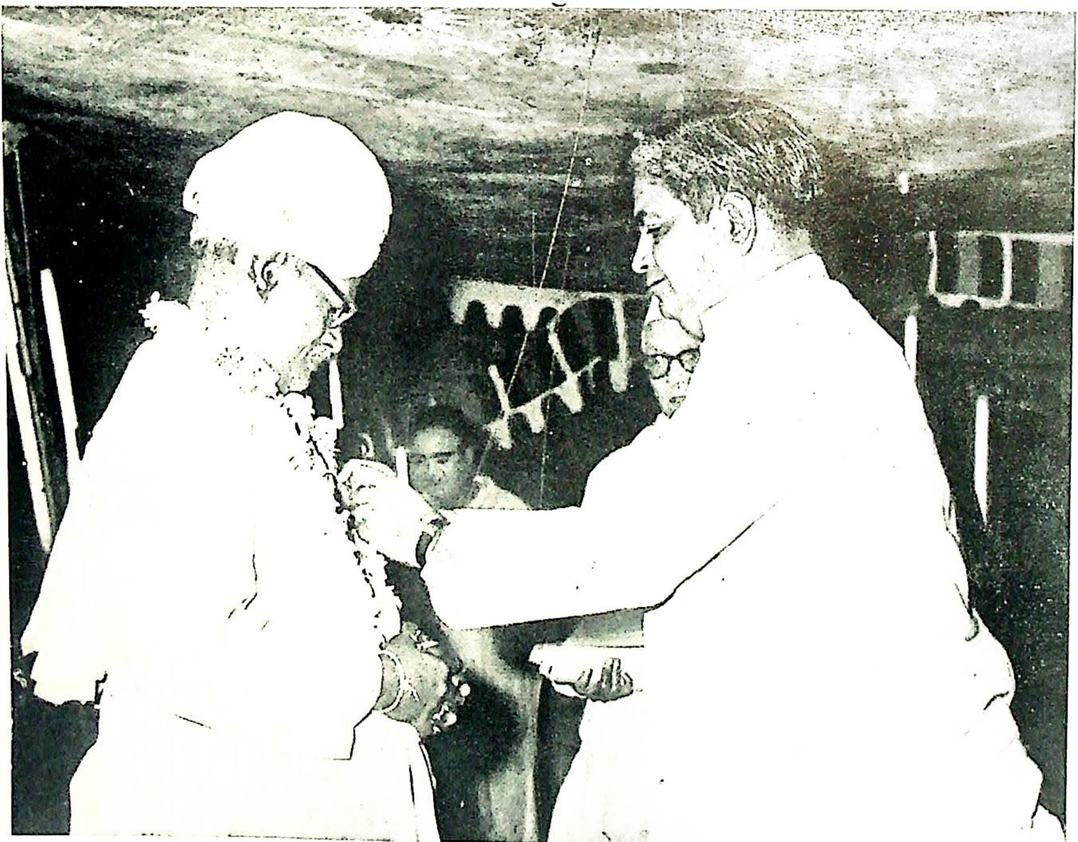


व्यक्तित्व, कृतित्व और संस्मरण

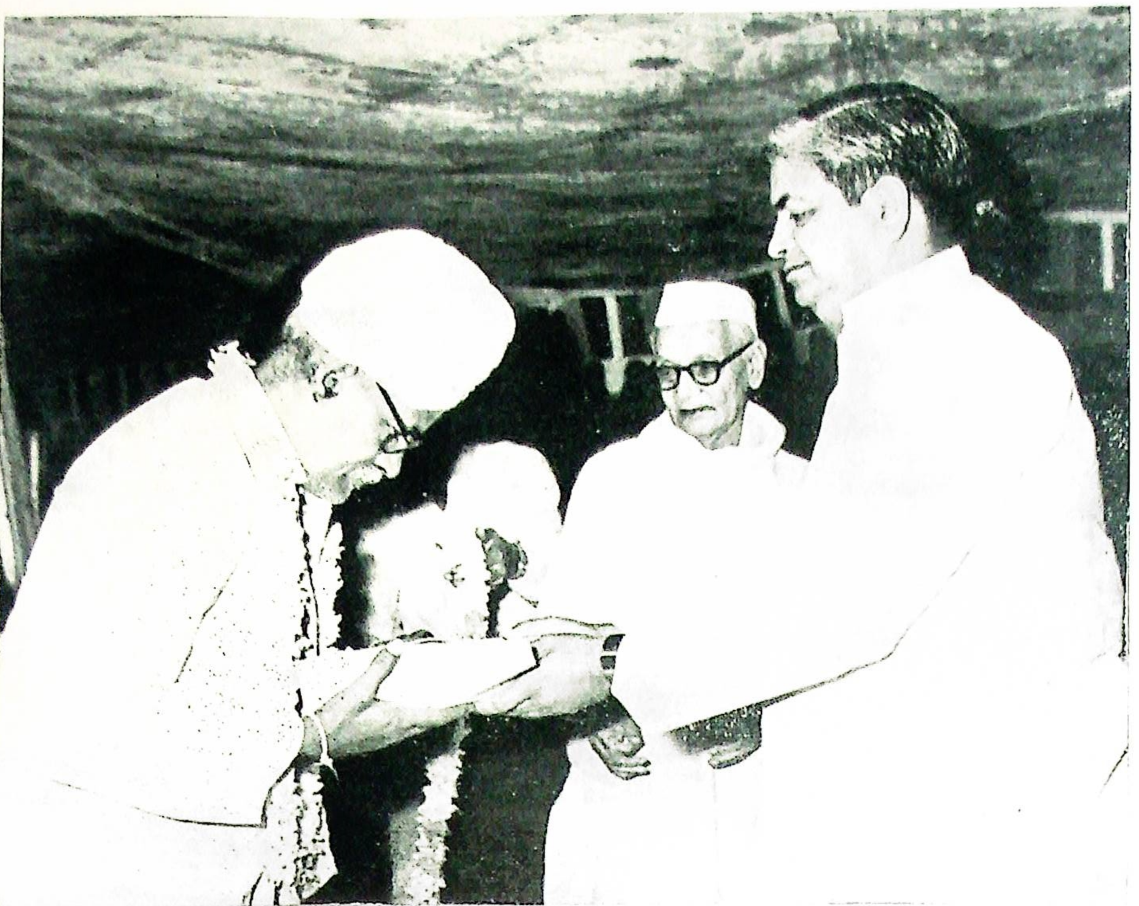




● सम्मानित तथा पुरस्कृत



राजस्थानी साहित्य अकादमी, उदयपुर में श्री मोहनलाल जी सुखाड़िया, नाहटा जी को पदक लगाते हुए ।



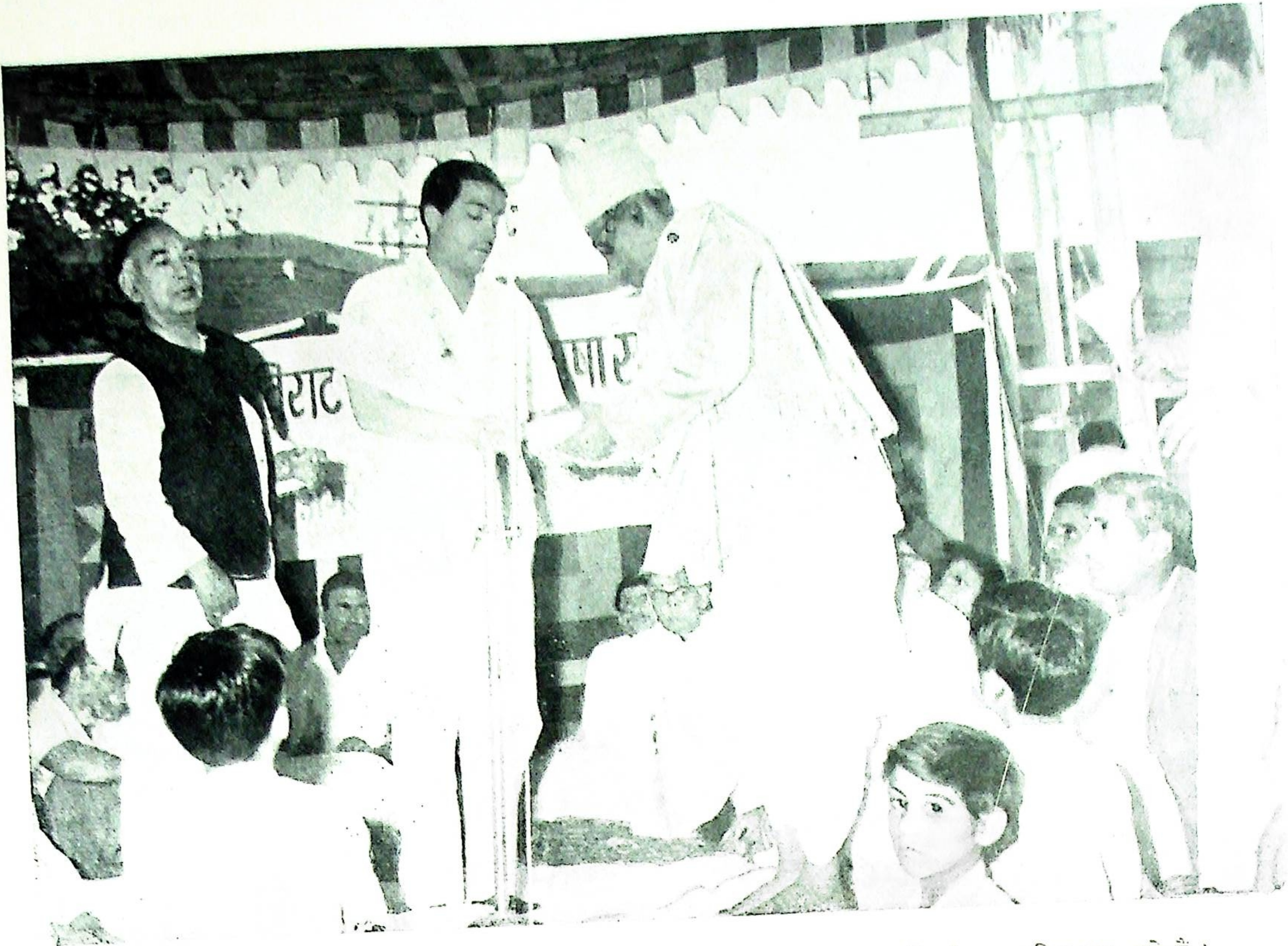
राजस्थानी साहित्य अकादमी, उदयपुर में
श्री मोहनलाल जी सुखाडिया और हरिभाऊ उपाध्याय द्वारा सम्मान पत्र प्राप्त ।



विराट राजस्थानी भाषा सम्मेलन बीकानेर द्वारा नाहटा जी का नागरिक अभिनन्दन

इसमें बड़े भ्राता शुभराज जी, मेघराज जी, भाणेज हजारीमल जी बांठिया, पुत्र धरमचन्द्र, विजयचन्द्र व पौत्र राजेन्द्रकुमार परिलक्षित हैं।

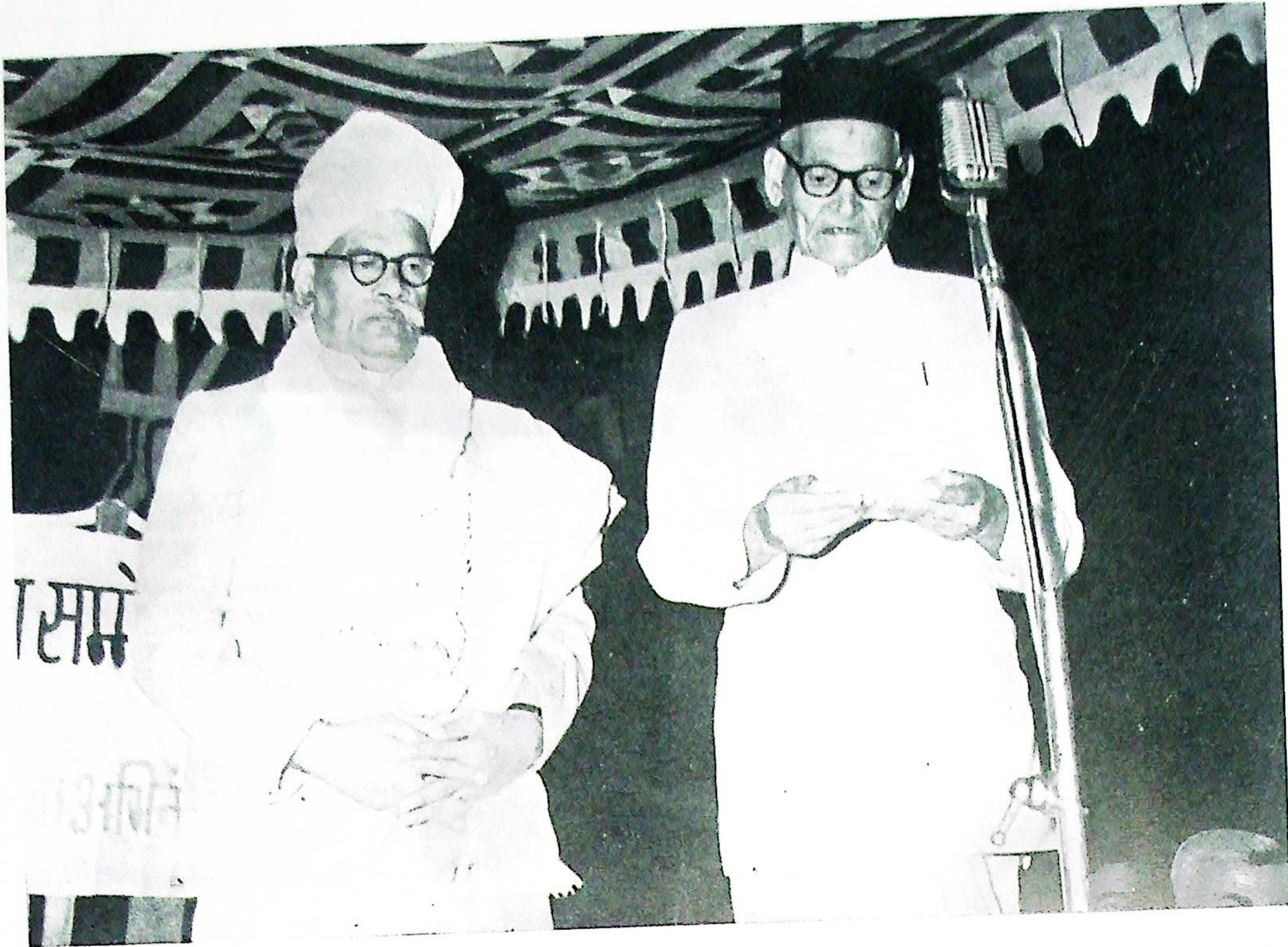
विद्वानों में मुरलीधर व्यास, मनोहर जी शर्मा, श्रीलाल, नथमल जोशी, मूलचन्द्र प्राणेश आदि उपस्थित हैं।



षष्टिपूर्ति अभिनन्दन समारोह में महाराजकुमार नरेन्द्र सिंह बीकानेर नाहटा जी को सम्मानित कर रहे हैं।
पीछे भाणेज हजारीमल जी बांठिया खड़े हैं।



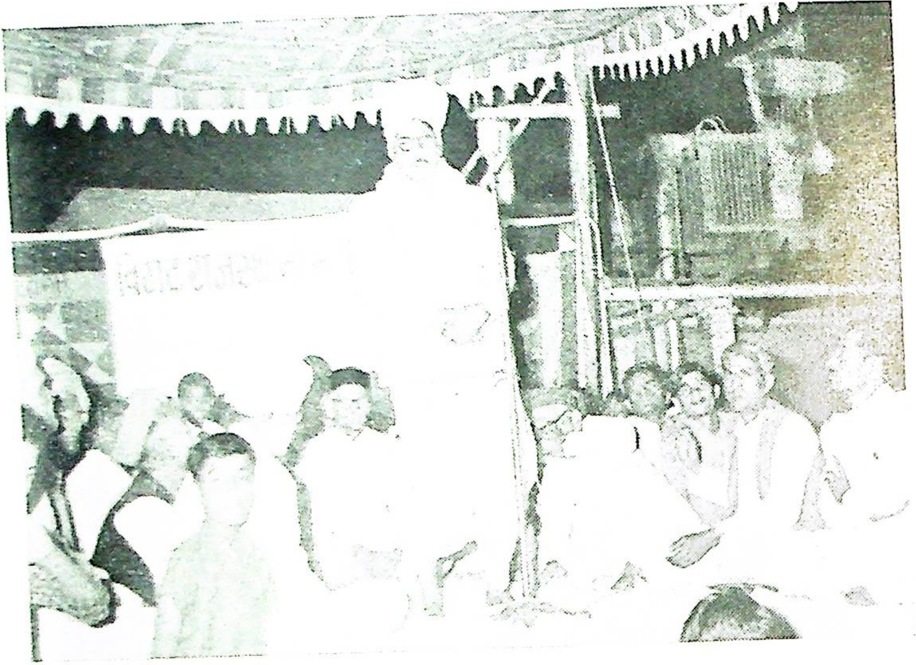
षष्टी पूर्ति पर बीकानेर नागरिक अभिनन्दन में भाषण देते हुए नाहटा जी ।



षष्ठी पूर्ति पर नागरिक अभिनन्दन के समय श्री अगरचन्द जी नाहटा, डॉ० मनोहर शर्मा के साथ ।



बम्बई में ९ मार्च '७१ को मानतुंगसूरि सारस्वत समारोह समिति द्वारा भक्तामर रहस्य भेंट कर सम्मानित होते नाहटा जी और समारोह संचालक ।



बीकानेर में विराट राजस्थानी भाषा सम्मेलन में श्री अगरचन्द नाहटा के षष्टिपूर्ति के समय नागरिक अभिनन्दन ।



श्री मानतुंगसूरि सारस्वत समारोह समिति द्वारा अभिनन्दन (९-३-७१)

सन्देश

आचार्य श्री तुलसी

श्री अगरचन्दजी नाहटा जैन-शासनके बहुश्रुत और साधनाशील उपासक हैं। आगम-साहित्यके अनुसार श्रुत और शील दोनोंकी समन्विति ही जीवनकी पूर्णता है। श्रुतविहीन शील और शीलविहीन श्रुत ये दोनों साधनाको सिद्धिकी भूमिका तक नहीं ले जा सकते।

नाहटाजीने जैन-साहित्यको अनेक विद्वानों तक पहुँचाया है और उनका ध्यान आकृष्ट किया है। उन्होंने व्यावसायिक जीवन जीते हुए भी साहित्य-साधनाकी है यह अन्य श्रावकोंके लिए अनुकरणीय है।

तेरापंथ धर्मसंघके अध्ययन और साहित्यको दूसरों तक पहुँचानेमें नाहटाजीकी लेखनी मुक्त रही है। इनके द्वारा दूसरोंका परिचय हमें मिला है। इस प्रकार ये अनेक संघों और विद्वानोंके बीच माध्यमका काम करते रहे हैं।

जैन-शासनकी वर्तमान स्थिति संतोषजनक नहीं है। वर्तमानके संदर्भमें उसमें अनेक नए उन्मेष और नए आयाम अपेक्षित हैं। भगवान महावीरकी पच्चीसवीं निर्वाण शताब्दीमें जैनधर्मके विकासका सुन्दरतम अवसर है। संगठनको अधिक मजबूत करनेकी आवश्यकता है। यह समय सबके लिए समन्वय और सद्-भावनाकी वृद्धि का है। इस कार्यमें सब साधुओं और श्रावकोंका समन्वित प्रयत्न आवश्यक है। इसकी पूर्तिमें साधुओंकी भाँति श्रावक भी योग्य बनें और जैन शासनको प्रभावी बनाएँ।

●

यशस्वी पुत्र

श्री उपाध्याय अमरमुनि

श्री अगरचन्दजी नाहटा दो माताओंके यशस्वी पुत्र हैं। यह नहीं कि एक के औरस पुत्र हैं, तो दूसरीके दत्तक हैं, गोद लिए हुए। दोनों ही माताओंके वे एक समान साक्षात् अंगजात पुत्र हैं। आप कहेंगे, यह असम्भव है। मैं कहूँगा, इस असम्भवमें ही तो श्री नाहटाजीकी गरिमा है। सम्भवतामें कहीं अद्भुतता-की चमत्कृति होती है? नहीं, असम्भवताकी सम्भवतामें ही वह विलक्षण चमत्कार है, जो श्री नाहटाजीने कर दिखाया है।

आप जैसे कि माँ लक्ष्मीके यशस्वी पुत्र हैं, वैसे ही मां सरस्वतीके भी लब्धप्रतिष्ठ पुत्र हैं। दोनोंकी ही एक समान सहज कृपा है नाहटाजी पर। पुरानी उक्ति है सरस्वती और लक्ष्मीमें वैर है। किंतु श्री नाहटाजीके यहाँ तो दोनों ही लीलायित हैं। ऐसा सुयोग विरल ही कहीं मिल पाता है।

नाहटाजीने एक व्यापारी कुलमें जन्म लिया है। वह भी राजस्थानीय मरु प्रदेशके व्यापारी कुलमें, जहाँ इस प्रकारके शिक्षणकी, साहित्यिक अध्ययन एवं सृजनकी कम ही सम्भावना रहती है यह भी नहीं कि नाहटाजीने व्यापार क्षेत्र छोड़ दिया हो और एकान्त साहित्य क्षेत्र ही अपना लिया हो। प्रारम्भसे ही वे

दोनों क्षेत्रोंमें काम करते रहे हैं, अब भी कर रहे हैं। जहाँ वे एक कुशल एवं सुदक्ष व्यापारी हैं, वहाँ एक गम्भीर विद्वान, सूक्ष्मदर्शी चिन्तक एवं सफल साहित्यकार भी हैं। इसे कहते हैं, एक साथ दो घोड़ोंपर सवार होकर दौड़ लगाना। सन्तुलनकी इस अद्भुत क्षमतापर जनमन कैसे न चमत्कृत हो जाएगा।

नाहटाजीको देखें, तो लगता है, कोई मारवाड़ी सेठ है। वही सिर पर पगड़ी, पुरानी शैलीका साधारण कोट या कुर्ता और धोती। कौन कहेगा, इस मुद्रामें कोई साहित्यकार भी हो सकता है। साहित्यकार होनेकी सहसा कोई कल्पना ही नहीं हो सकती। श्री नाहटाजी आजके युगके धनी एवं साहित्यकार होते हुए भी अपनी परम्परागत सादगीमें और वानुभूति रखते हैं। कोई अहंकार नहीं, प्रदर्शन नहीं, दंभ नहीं, दिखावा नहीं। जो है वह सहज है, निष्फल है, निर्मल है। इस प्रकार शिष्टता एवं शालीनताकी साक्षात् जीवित मूर्त्ति हैं नाहटाजी।

एक अध्यवसायशील व्यक्ति कितना महान् एवं विराट कार्य कर सकता है, नाहटाजी इसके प्रत्यक्ष उदाहरण हैं। प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थों का एक विशाल पुस्तकालय है नाहटाके पास, उनका अपना ही संग्रहीत एवं नियोजित। मैंने अपनी बीकानेर यात्रामें जब वह गृह पुस्तकालय देखा तो, विस्मय-विमुग्ध हो गया मैं। जैसा मैंने सुना था, उससे कहीं अधिक ही देखा मैंने आँखोंसे। प्राकृत, संस्कृत, अपभ्रंश, राजस्थानी, गुजराती और हिन्दीके सहस्राधिक दुर्लभ ग्रन्थों का यह ज्ञान भण्डार है, काव्य, नीति आदिसे सम्बन्धित अनेकानेक अद्भुत रचनाएँ संग्रहीत हैं। नाहटाजी का यह गृह पुस्तकालय बीकानेर जैसी मरुभूमिमें वह सतत प्रवहमान ज्ञाननिर्झर है, जहाँ दूर-दूर तकके ज्ञानपिपासु अपनी प्यास बुझाने आते हैं। वस्तुतः बीकानेर श्री नाहटाजीके यशस्वी कृतित्वके कारण साहित्यकारोंके लिए आज एक पावन तीर्थधाम बन गया है।

शोध क्षेत्रमें काम करने वाले भारतीय विद्वान् या छात्र कहींके भी हों, नाहटाजीसे अवश्य कुछ परिबोध एवं परामर्श पाने की बात सोचते हैं। सोचते ही नहीं, पाने जैसा पाते भी हैं वे उनसे। नाहटाजीके निर्देशनमें अनेक पी-एच० डी० हो चुके हैं और हो रहे हैं। नाहटाजी का द्वार एतदर्थ सबके लिए खुला है। उनका निर्देशन इतना सक्षम, सबल एवं प्रमाणभूत होता है कि शोधकर्ता का पथ प्रशस्त हो जाता है। वह शीघ्र ही गतिशील होकर अपने निर्धारित लक्ष्य पर पहुँच जाता है, उसकी रचना विद्वज्जगतमें प्रतिष्ठा प्राप्त कर लेती है। ऐसे अनेक विद्वान् और छात्र मेरे परिचयमें आए हैं। जिन्होंने अपने शोधकार्यमें सहयोग पाने की चर्चा करते हुए नाहटाजी की मुक्त कण्ठसे प्रशंसा की है। ठीक ही कहा है—

'नहि कृतमुपकारं साधवो विस्मरन्ति।'

श्री नाहटाजी की साहित्यिक विधा मुख्य रूपसे इतिहास है। अनेक प्राचीन विद्वानोंके महनीय व्यक्तित्व एवं कृतित्व को नाहटाजी की सधी हुई परिष्कृत प्रतिभाने कितना उजागर किया है, यह देख सकते हैं, उनके यत्र-तत्र प्रकाशित विस्तृत निबन्धोंमें। नाहटाजी की इतिहास सम्बन्धी स्थापनाएँ यों ही नहीं होती हैं, उनकी पृष्ठभूमिमें होता है तलस्पर्शी गहन गम्भीर चिन्तन एवं मनन। इतिहाससे सम्बन्धित अब तक उन्होंने जो भी दिया है, वह इतना प्रमाणपुरस्सर दिया है, कि उसे कोई यों ही चुनौती नहीं दे सकता। इतिहासके अतिरिक्त धर्म, दर्शन, आख्यान, नीति आदिसे सम्बन्धित रचनाएँ भी उनकी इतनी हैं कि उनका एक विराटकाय संग्रह हो सकता है। मैं साहित्यिक संस्थाओंके अधिकारी सज्जनोंसे अनुरोध करूँगा कि नाहटाजीके निबन्धों तथा अन्य रचनाओं को पुस्तक रूपमें प्रकाशित किया जाए, ताकि विभिन्न विषयोंके अध्येताओंको उनकी विचार सामग्री सहज रूपसे एकत्र उपलब्ध हो सके।

श्री नाहटाजी का अभिनन्दन एक प्रचलित परम्परा का पालन मात्र नहीं है। वस्तुतः वे अभिनन्दनीय हैं, अपने सृजन की चिरस्मरणीय गरिमासे। मौलिक अभिनन्दन वही है, जो व्यक्तिके अपने गौरवपूर्ण व्यक्तित्व एवं कृतित्वसे प्रभावित होकर जनमानसमें उभरा करता है। यह वह आलोक है, जो विद्युत् की तरह चमक कर सहसा अन्धकारमें सदाके लिए विलीन नहीं हो जाता है। महाकालके पथपर आने वाले लम्बे पडावों को पार करता हुआ यह समुज्जवल यशः प्रकाश भविष्य की ओर बढ़ता जाता है और इस पथ के अनेक भूले-भटके यात्रियों को प्रेरणा का परिबोध देता जाता है।

श्री नाहटा अपने 'अगरचन्द' नामके अनुरूप ही अगरवर्तिका की तरह दिनानुदिन महकते रहें तथा चन्द्र की तरह चमकते रहें। साहित्यिक जगत् को उनसे अभी और भी आशाएँ हैं। उन्हें अभी और भी बहुत कुछ देना है। मुझे आशा ही नहीं, दृढ़ विश्वास है कि अब तक उन्होंने जो दिया है, उससे भी कहीं अधिक श्रेष्ठ एवं श्लाघनीय वे देते रहेंगे, जिसपर अनागत की प्रबुद्ध प्रजा सात्विक गौरवानुभूति करती रहेगी।

●

संशोधक नाहटाजी

गणिवर्य-जनकविजयजी

श्री अगरचन्द नाहटा ग्रन्थ समितिकी पत्रिका मिली। आप लोगोंका प्रयास स्तुत्य है। नाहटाजीने भगवान महावीरके आदर्श श्रमणोपासकके तुल्य जीवन व्यतीत किया है। साहित्यिक एवं प्राचीन ग्रन्थोंके संशोधन विषयमें तो एक अद्भुत कार्य करके अपनी साहित्यरुचिको चार चांद लगाए हैं।

●

श्री नाहटा-बन्धु

श्री मुनि कान्तिसागरजी

इतिहास शिरोमणि, पुरातत्वज्ञ श्री अगरचन्दजी, श्री भंवरलाजी नाहटा भारतके नामांकित विद्वानोंकी गणनामें अपना स्थान रखते हैं। इन्होंने सैकड़ों अलभ्य ग्रन्थोंका सम्पादन व प्रकाशनका कार्य किया है। जन्मजात-व्यावसायिक एवं लक्ष्मी पुत्र होनेपर भी इतिहास व पुरातत्वके विषयमें जो शोध व खोजकी है, वह अनुमोदनीयके साथ-साथ अनुकरणीय भी है। इस प्रकार व्यापारिक जीवन होते हुए भी साहित्य-सेवामें इतना समय देनेवाले विरले ही व्यक्ति होंगे।

जैसलमेरका साहित्य-भंडार तो अपने आपमें अनूठा है ही, किन्तु नाहटा बन्धुओंका साहित्य-संग्रह भी बीकानेरमें अद्वितीय है। युग प्रधान जिनचन्द्रसूरि आदि ग्रन्थोंका लेखन, सम्पादन, इतिहासज्ञोंको सतत नूतन ज्ञातव्यकी उपलब्धियाँ कराते हैं। नाहटा बन्धुओंकी धर्मनिष्ठा, साहित्य प्रेम, सरलता, ज्ञानार्जनमें एकाग्रता आदि अनेक गुण ऐसे हैं जिनके कारण मानवका आकर्षित होना स्वाभाविक है।

इन सब विशिष्ट गुणोंके साथ ही इनमें एक सर्वोपरि विशेषता यह है कि जीवनमें कदाग्रह दृष्टिका अभाव है। जब कभी व जिस किसीने खरतरगच्छ-साहित्यपर प्रहार किया तो इन्होंने सदा उचित उत्तर दिया है, सत्यको सामने रखा है और उसमें सदा निष्पक्ष दृष्टिका ही परिचय दिया है। इसीका परिणाम है कि उन्होंने औचित्यका उल्लंघन कभी नहीं किया।

●

शासनके प्रतिभाशाली पुत्र श्री नाहटाजी

श्री उदय सागरजी

श्रेष्ठीवर श्री अगरचन्दजी नाहटा अभिनन्दन-समारोह समिति द्वारा यह जानकर हार्दिक प्रसन्नता हुई कि साहित्य मनीषी श्री नाहटाजीका अभिनन्दन किया जा रहा है। श्री नाहटाजीका मेरा सम्पर्क गत ४० वर्षोंसे रहा है। एक प्रतिष्ठित एवं सम्पन्न परिवारमें जन्म लेकर जैन समाजमें साहित्य सृजनकी जो सेवाएँ एक प्रतिभाशाली जैन शासनके पुत्रके रूपमें की हैं, वह सदैव ही जैन जगतमें स्मरणीय रहेगी। सच्चे अर्थोंमें वे सरस्वतीके वरद पुत्र हैं। साहित्यकारका जीवन गुलाबके पुष्पकी भाँति होता है। गुलाबका पुष्प कांटोंके मध्य रहकर भी सबको सौरभ देता है। हवाका झोंका आया कि मिट्टीमें मिलता हुआ भी वह अपनी सौरभ मिट्टीके कणोंको दे देता है। उसी प्रकार साहित्यकार अपने साहित्य द्वारा सभीको लाभान्वित करता है।

श्री नाहटाजीने अपनी लेखनी द्वारा जैन-समाजकी जो सेवाएँकी हैं, वह शतमुख प्रशंसनीय हैं और युग-युग तक भावी पीढ़ियोंको दिव्य प्रेरणा देती रहेंगी। श्री नाहटाजीने साहित्यकार, लेखक, इतिहासकार एवं तत्त्ववेत्ताके रूपमें कार्य करके अपनी साहित्य-साधनासे जैन समाज एवं खतरगच्छको जो अमूल्य रत्न प्रदान किये हैं उनको देखकर यही कहना उचित है कि आप सच्चे अर्थोंमें जैन समाज एवं खतरगच्छके प्रतिभाशाली पुत्र हैं। मेरी हार्दिक कामना है कि इस अभिनन्दन समारोहसे समाजकी युवापीढ़ी प्रेरणा लेकर भावी जीवनको सफल बनावे।

●

संदेश

विजयधर्मसूरि मुनि यशोविजयजी

सौजन्य स्वभावी, धर्मश्रद्धालु विद्वान् नाहटा भाइओंके लिए भव्य अभिनन्दन-समारोहका जो आयोजन किया गया है वह अत्युचित ही है। पत्रिका पढ़कर अति आनन्द हुआ। एक सुखी सद्गृहस्थ अपने गृहस्थोचित कार्यमें रत होते हुए भी समयका कितना कीमती सदुपयोग करके ज्ञान साधना-उपासना कर सकता है, उसका जीवन उदाहरण नाहटा भाइयोंमें है। श्री अगरचन्दजीकी सेवा-ज्ञानसेवा इतनी विशाल है कि पढ़कर कोई व्यक्ति आश्चर्यका अनुभव किये बिना नहीं रह सकता।

हम आपकी सम्यग् ज्ञानोपासनाका भूरि-भूरि अनुमोदना करते हैं और आप स्व-परकल्याणको साधनाके पथपर उत्तरोत्तर अधिक पदार्पण करते रहें, ऐसी शुभकामना करते हैं।

नाहटा अभिनन्दन समारोह भव्य बनें और कवि कालिदासकी 'तत्राऽपि श्लोकद्वयं' शाकुन्तल नाटककी उक्तिके अनुसार देशकी प्रजा, उसमें राजस्थानकी प्रजा, उसमें जैन प्रजा, अपना कर्त्तव्य पूरा करें, और समारोह सानन्द सम्पन्न हो, यही शासनदेवसे प्रार्थना है।

●

अभीक्षण ज्ञानोपयोगी

मुनिश्री महेन्द्रकुमारजी 'प्रथम'

संघकी वैयावृत्ति, प्रवचनकी प्रभावना, तीव्रतर तपस्या, कायोत्सर्ग आदि कर्म-निर्जराके महान् हेतु हैं। कर्म-निर्जराके अन्य माध्यमोंमें अभीक्षण ज्ञानोपयोगी भी एक सबल माध्यम है, जिसका अवष्टम्भ सामान्य व्यक्तिके द्वारा नहीं हो सकता। ज्ञानावरणीय कर्मका क्षयोपशम उसमें विशेष निमित्त होता है। तत्व-चर्चा या दर्शन-मीमांसाके साथ-साथ परम्पराओंका ऐतिहासिक पर्यालोचन व साहित्यके विभिन्न स्रोतोंके उद्गम और विकासका लेखा-जोखा भी आधुनिक स्वाध्याय-परम्परामें अनुबद्ध हो गया है। श्री अगरचन्दजी नाहटा उसी नवीन श्रृंखलाकी एक बड़ी कड़ी हैं। जैन-शासनके इतिहासकी सूक्ष्मतम सूचनाओंके आकलनमें उन्होंने अपना जितना समय लगाया है, उतना ही उन्होंने पाया भी है। वह प्राप्ति उनके कर्म-निर्जरणमें जहाँ सहयोगिनी है, वहाँ जैन-शासनके गौरवको वृद्धिगंत करने तथा नवीन तथ्योंकी ओर जैन व अजैन व्यक्तियोंको आकर्षित करनेमें भी सफल हुई है। प्राचीन तथ्योंकी प्रामाणिक जानकारीमें जिन मूर्धन्य व्यक्तियोंका स्थान है, उनमें श्री नाहटाजी अग्रणी हैं।

आधुनिक शिक्षा-दीक्षा तथा वातावरणसे सर्वथा दूर होते हुए भी श्री नाहटाजीने जो साहित्य-सेवाकी है, वह उनकी जैनधर्मके प्रति गहरी निष्ठा की अभिव्यंजना तो है ही, साथ-साथ उनकी सूक्ष्म तथा ग्राहक दृष्टिकी भी साक्षिका है। उनका अपना निजी वृहत् ग्रन्थागार ग्रन्थोंकी महनीयता तथा संख्याकी विपुलताके कारण जहाँ 'विद्वानों' को आकर्षित करता है, वहाँ उनके व्यवस्था-कौशलसे भी प्रभावित किये बिना नहीं रह सकता।

वि० सं० २०२१ की घटना है। युग-प्रधान आचार्य श्री तुलसीका चतुर्मास बीकानेरमें था। मैं उन दिनों 'कालू यशोविलास' का सम्पादन कर रहा था। उसी सन्दर्भमें एक प्रसंगपर मुझे भगवती-सूत्रकी प्राचीन तथा विभिन्न प्रतियोंके अवलोकनकी अपेक्षा हुई। मैं श्री नाहटाके ग्रन्थागारमें पहुँचा। नाहटाजीने कुल पाँच-सात मिनटमें ही मेरे सामने भगवती-सूत्रकी हस्तलिखित तथा मुद्रित बीसों प्रतियाँ रख दीं। मुझे वे परिचय देने लगे कि, अमुक प्रतिका लेखन-संवत् अमुक है और अमुकका अमुक। मुझे अपेक्षित सन्दर्भको खोजनेमें बहुत सुगमता हुई। ग्रन्थागारमें पुस्तकों तथा हस्तलिखित प्रतियोंके रखनेका उनका तरीका अत्यन्त आधुनिक और सरल लगा।

श्री नाहटाजी अनेक प्रसंगोंपर मुझसे मिले हैं। जब-जब उनके साथ किसी भी पहलूपर चर्चा हुई है, वह बहुत सरस, बहुत गम्भीर तथा नवीन तथ्योंसे परिपूर्ण हुई है। नई शोधका उनका अनवरत क्रम चलता रहता है; अतः वे हर समय नई सूचना देनेके अधिकारी रहते हैं। जैनधर्म व राजस्थानी भाषाके विभिन्न पहलुओंपर शोध-कर्त्ताओंके लिए उन्होंने जहाँ अपने ग्रन्थागरके द्वार उन्मुक्त कर रखे हैं, वहाँ अपनी ज्ञान-गरिमासे भी उनका मार्ग-दर्शन किया है।

भगवान श्री महावीरने चार प्रकारके व्यक्ति बतलाये हैं—१. श्रुत (ज्ञान) सम्पन्न, २. शील (चारित्र) सम्पन्न, ३. श्रुत व शील सम्पन्न तथा ४. श्रुत व शील रहित। श्री नाहटाजी श्रुताराधनामें अहर्निश क्रियाशील हैं। उनका अभीक्षण ज्ञानोपयोग वस्तुतः ही जैन-समाजके अन्य श्रद्धालुओंके लिए भी महान् प्रेरक है। यदि इस प्रकारके अनेक विद्वान् हो जायें, तो सचमुच ही जैन-संस्कृतिके वे चलते-फिरते सूचना-केन्द्र हो सकते हैं। श्री नाहटाजीका सम्मान वस्तुतः उनकी श्रुताराधनासे होनेवाली कर्म-निर्जराके प्रति आत्मीय भावका प्रकटीकरण है।

●

साहित्यिक सितारे नाहटाजी

श्री पुष्कर मुनिजी

श्री अगरचन्दजी नाहटा जैन समाजके एक चमकते दमकते साहित्यिक सितारे हैं। वे प्रकृष्ट प्रतिभा सम्पन्न व्यक्ति हैं। साहित्यिक क्षेत्रमें उनकी सर्वत्र ख्याति है। इतिहास और पुरातत्त्वके वे गम्भीर ज्ञाता हैं। किस आचार्यका जन्म कब हुआ, कहाँ हुआ और उनकी कौन-कौन सी कृतियाँ हैं? आप किसी भी समय उनसे पूछ सकते हैं। वे आपको उसका सम्पूर्ण विवरण सुना देंगे। आप उनकी अजब-गजबकी स्मरण शक्ति देखकर चकित हो जायेंगे। श्री नाहटाजी वस्तुतः विश्वकोश हैं।

नाहटाजीका जन्म वैश्यकुलमें हुआ है। वैश्योंका मूलव्यवसाय व्यापार है। वे लक्ष्मी पुत्र होते हैं, प्रायः सरस्वतीसे उनका वास्ता नहीं होता। नाहटाजी इसके अपवाद हैं। उन्होंने अपनी लगनसे साहित्यिक क्षेत्रमें विकास किया है। उन्होंने नोटोंसे तिजोरी नहीं भरी किन्तु महत्त्वपूर्ण ग्रन्थोंसे पुस्तकालयको सजाया है। हजारों अनुपलब्ध और अप्राप्य ग्रन्थ उनके संग्रहालयमें हैं। वे ग्रन्थोंको केवल इकट्ठा ही नहीं करते उन्हें पढ़कर उसपर अपने महत्त्वपूर्ण विचार भी व्यक्त करते हैं। उन्होंने बहुत अधिक लेख अज्ञात कवि-लेखकोंकी कृतियोंपर लिखे हैं, जो उनकी बहुश्रुतताके परिचायक हैं।

उनका अभिनन्दन समारोह मनाया जा रहा है, यह उचित है। मेरी हार्दिक मंगल कामना है कि वे चिरायु होकर अत्यधिक साहित्यिक और सांस्कृतिक सेवा कर यशस्वी बनें।



भारतीय संस्कृतिका सम्मान

गणि श्री हेमेन्द्रसागरजी

श्रेष्ठिवर श्री अगरचन्दजी नाहटा अभिनन्दन-समारोहकी पत्रिका मिली। पढ़कर अत्यन्त आनन्द हुआ। इनके अभिनन्दन-ग्रन्थमें मेरा बयान होना—मन्तव्य प्रस्तुत करना—मैं अपना कर्त्तव्य समझता हूँ।

श्री अगरचन्दजी नाहटा एवं श्री भँवरलाल नाहटा द्वारा धार्मिक, साहित्यिक एवं कलापूर्ण ग्रन्थों और रचनाओंका पुनरुद्धार ही इनका जयन्ति (जीवित) कार्य हैं। सचमुच इनका यही उच्च श्रेणीका व्यापार है।

जैन-दर्शन, साहित्य और ऐतिहासिक क्षेत्रमें आपने अजोड़-जीवन प्राप्त किया है। इस प्रकारके साधु-स्वभावके और जैन-समाजके पुत्रका सम्मान करना, यह सभी लोगोंका परम कर्त्तव्य है। राजस्थान भरमें आपकी साहित्य-सेवा और समाज-सेवाका कार्य सबसे बड़ा है। श्री अभय जैन ग्रन्थालयमें लगभग अगणित हस्तलिखित प्रतियाँ और मुद्रित ग्रन्थ विद्यमान हैं। श्री शंकरदान कलाभवनमें ३००० चित्र, सैकड़ों सिक्के और प्राचीन मूर्तियाँ एवं कलापूर्ण वस्तुयें विद्यमान हैं।

विद्यावारिधि, इतिहासरत्न, सिद्धान्ताचार्य और शोधमनीषी राजस्थानी साहित्य वाचस्पति श्री अगर-चन्दजी नाहटाका यह सम्मान भारतीय संस्कृतिका सम्मान है।

ऐसे स्वर्णावसर पर मैं अपना परम कर्त्तव्य समझता हूँ कि स्वयं उपस्थित रहूँ। किन्तु, यह मेरे लिये अशक्य है। फिर भी मेरे हृदयसे यही ध्वनि निकलती है कि ऐसे महान् कार्य हेतु सम्पूर्ण सहयोग और अपनी शुभेच्छा प्रेषित कर दूँ।

अभिनन्दन-समारोहमें समग्र भारतके खरतरगच्छीय जैन संघ हिलें-मिलें और नाहटा कुटुम्बकी ओरसे की गई साहित्य-सेवा रूपी यह सौरभ फूले-फले और समाजकी इस प्रकारसे शोध करनेवाले सुपुत्र बनें, यही प्रभुसे प्रार्थना है।



एक विशिष्ट संशोधक

श्री भोगीलालजी ज० सांड़सरा

मारू-गुर्जर भाषा साहित्य एवं जैन-इतिहास साहित्य और संस्कृतिके एक विशिष्ट संशोधक श्री अगरचन्दजी नाहटा मेरे मित्र-वर्गमेंसे हैं। मैं, लगभग पिछले ४० वर्षोंसे इनके नामसे परिचित रहा हूँ और अनुमानतया ३५ वर्षोंसे मेरा इनके साथ नियमित साहित्यिक पत्रव्यवहार चालू है।

आजसे लगभग २५ वर्ष पूर्व अहमदाबादमें मुझे इनसे साक्षात्कार करनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ। तब ऐसा प्रतीत हुआ कि मैं किसी ऐसे व्यक्तिसे मिल रहा हूँ, जो अपनी ओरसे जिज्ञासु एवं शोध-कार्य करनेवालोंकी सहायता करनेवाला है। मुझे आपकी साहित्यिक प्रवृत्तिका अधिकाधिक परिचय मिलता गया।

सन् १९५० में सद्गत पू० मुनि श्री पुण्यविजयजी जब जैसलमेरके ग्रन्थ-भण्डारके उद्धार हेतु जैसलमेर पधारे तब मैं और मेरे मित्र डॉ० जितेन्द्र जेतली भी जैसलमेर गये थे। उन दिनोंमें उन भण्डारोंके कार्य हेतु अपने दो सहायक विद्वान् श्री नरोत्तमदास स्वामी और श्री बद्रीप्रसाद साकरियाको साथ लेकर श्री नाहटाजी भी वहाँ आये थे। वहीं पर हमारा परस्पर परिचय और विशिष्ट-मैत्री सम्बन्ध स्थापित हुआ। जब हम वहाँसे वापस लौटे तो श्री नाहटाजीके साथ ही बीकानेर आये और इन्हींके अतिथि बने।

बीकानेर आकर हमें नाहटाजीके ग्रन्थ-संग्रहका, बीकानेरके अन्य ग्रन्थ-भण्डारोंका एवं बीकानेरकी सुप्रसिद्ध अनूप संस्कृत लाइब्रेरीका अवलोकन करनेका लाभ मिला। मैंने इस भ्रमणका वर्णन 'एक साहित्यिक यात्रा' शीर्षकसे अपने गुजराती लेखमें किया है, जो ''संशोधन नी कैड़ी'' में पृ० २५१-२६२ पर प्रकाशित हुआ है।

व्यवसायसे व्यापारी होते हुए भी आप, अपनी प्रिय विद्या-प्रवृत्तिके लिये किसप्रकारसे सतत कार्यशील रहते हैं, यह हमें बीकानेर-प्रवासमें स्पष्ट प्रतीत हो गया। बादमें तो हम परस्पर अनेक बार मिलते रहे हैं। मैं जब अहमदाबाद छोड़कर बड़ौदा आ गया और यहाँ बड़ौदा के प्राच्य विद्यामन्दिरके अध्यक्ष पदपर नियुक्त हुआ तो इसके अनन्तर भी हमारा साहित्यिक-सहयोग सतत चलता ही रहा है और नाहटाजीको लेखन एवं संशोधनके प्रति सतत जागरूक होनेका मुझे लाभ मिलता रहा।

हमारी यह मैत्री साहित्यिक ही न होकर व्यक्तिगत भी है। मेरी गुजराती पुस्तक 'जैन आगम साहित्यमें गुजरात' को ई० सन् १९५५ में बम्बई सरकार द्वारा २००० रु० का पुरस्कार मिला, तब इस ग्रन्थका एवं मेरे परिचयमें आपका एक विस्तृत लेख एक हिन्दी पत्रमें आपने प्रकाशित कराया। मेरी अंग्रेजी पुस्तक 'लाइब्रेरी सर्कल आफ महामात्य वास्तुपाल एण्ड इट्स कन्ट्रीब्यूशन टू संस्कृत लिटरेचर' आपको ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक-दृष्टिसे उत्तम प्रतीत हुआ। नाहटाजीकी सूचनासे सद्गत श्री कस्तूरमलजी बांठियाने इसका हिन्दी अनुवाद किया, जो बनारस विश्वविद्यालयमें विद्याश्रम द्वारा प्रकाशित किया गया है।

नाहटाजीने अब तक संशोधनात्मक हजारों लेख लिखे हैं। मेरे सम्पादनमें प्रसिद्ध होनेवाले त्रैमासिक 'स्वाध्याय' को भी आपके लेख मिलते रहे हैं। इनमेंसे चुने हुए मन-पसन्द लेख ग्रन्थके रूपमें प्रकाशित हों तो उत्तम रहे।

इन महानुभाव मित्र एवं समर्थ संशोधकको मैं अपनी शुभकामनायें अर्पण करता हूँ। मेरी कामना है कि आप आरोग्यमय दीर्घायुः प्राप्त करें और आपका यह जीवन-कार्य अत्यधिक वेगसे अग्रसर हो।

●

ज्ञानके अक्षय स्रोत नाहटाजी

श्री कृष्णदत्त वाजपेयी

१९४३में अपने व्यवसाय-कार्यसे कलकत्ता जाते समय नाहटाजी डॉ० वासुदेवशरण अग्रवालसे लखनऊ संग्रहालयमें मिलने गये। अग्रवालजीने मुझे उनसे मिलाया। नाहटाजीकी अतिसाधारण वेशभूषा तथा ज्ञान-गरिमाकी विशिष्टताने मुझे बहुत प्रभावित किया। जैन कलाके संबंधमें उनसे बातचीत करते समय मुझे बड़ा आनंद मिला। इसके बाद तो नाहटाजी मेरे पत्राचारके एक प्रमुख व्यक्ति बन गये।

१९४६में मैं मथुरा संग्रहालयका अध्यक्ष बना। उस समयसे हमारे पारस्परिक सम्पर्क बढ़े। नाहटाजी कई बार मथुरा पधारे। ब्रज साहित्य मंडल, मथुराकी ओरसे एक बार उनका अभिनंदन किया गया। हम सभी इससे गौरवान्वित हुए।

नाहटाजीकी व्यावसायिकी बुद्धि धनार्जनमें कितनी सफल रही, यह मैं नहीं जानता। परंतु साहित्य-के क्षेत्रमें तो उन्होंने निस्संदेह कमाल कर दिया है। उनके बहुसंख्यक ग्रंथ तथा लेख इसके प्रमाण हैं। वे शोधार्थियोंके लिए महान प्रेरणा-स्रोत हैं। उनका विपुल ग्रंथ-भंडार तथा आंतरिक ज्ञान भंडार—दोनों ही साहित्य-प्रेमियों और अनुसंधित्सुओंके लिए खुले हैं। हिंदी भाषा और साहित्यकी उन्होंने असाधारण सेवा की है। जैनधर्मके विभिन्न क्षेत्रों पर उनका कार्य स्वर्णाक्षरोंमें अंकित रहेगा।

नाहटाजीने जितना जोड़ा है उससे कहीं अधिक लुटाया है। यह साहित्यिक दानवीर चिरायु हो और बहुसंख्यक जनोंको दिशा तथा प्रेरणा प्रदान करता रहे, यही भगवान्से प्रार्थना है।



अभिवादन

डॉ० उमाकांत प्रेमानंद शाह

करीब उन्नीस सौ बावनमें जब अहमदाबादमें अखिल भारतीय ओरियन्टल कॉन्फ्रेन्स मिलने वाली थी, तब प्राचीन हस्तलिखित ग्रंथोंका एक बड़ा आयोजन हुआ था और आगम प्रभाकर स्वर्गस्थ मुनि श्री पुण्य विजयजीने अनेक जैन भंडारोंसे करीब आठ हजार हस्तलिखित प्रतियाँ मंगवाकर स्वयं अपनी ओरसे छानबीन करके प्रत्येक प्रतिका सिलेक्शन करके प्रदर्शनकी रचना की थी। उस समय उनकी सहायताके लिए मेरेको और मेरे जैसे इनके अन्य शिष्योंको रातदिन कुछ दिनों तक अपने साथ उस कार्यमें लगाये हुए थे। जब यह कार्य रातदिन चलता था, तब एक दिन शामको श्री अगरचंदजी नाहटा वहाँ पधारे और उनके स्वभावके अनुसार तुरंत ही प्रतियोंकी सूचियाँ पढ़नेमें और अपने लिए नोंध करनेमें लग गये। मैं उस समय हाजिर था। मुनि श्री पुण्यविजयजीने उनसे परिचय करवाया। यह मेरी उनसे प्रथम भेंट थी। मैं उनके विद्या प्रेमसे प्रभावित हो गया था। उनमें इतना प्रबल उत्साह और इतनी प्रबल कार्यशक्ति देखकर मैंने मनोमन इनको फिरसे प्रणाम किया।

उस समयसे आज तक हमारा परिचय बढ़ता रहा है। फिर तो प्रथम मुलाकातके बाद करीब छः सालके बाद मैं बीकानेर गया और उन्होंने अपने श्री अभयपुस्तकालयमें ही मुझे ठहराया और उनका पूरी तरहसे आतिथ्य का लाभ मैंने पाया। मेरे साथ वह जगह-जगह घूमें। वह एक दिनकी स्मृति आज तक

बनी हुई है। श्री नाहटाजी कुछ वर्ष पहले मेरे घर भी पधारे और हमारे प्राच्य-विद्यामंदिरको भी देखा। हमारा पत्र व्यवहार अब भी चालू है।

उस प्रथम भेंटको तो आज करीब बीस बरस हुए और फिर भी मैं देख रहा हूँ कि अभी भी इनका विद्या प्रेम, संशोधन और लेखन-कार्य चल रहा है। इनका कार्य क्षेत्र काफी बड़ा है और जैन साहित्य, प्राचीन मारुगुर्जर (ओल्ड वेस्टर्न राजस्थानी और गुजराती) भाषा साहित्य, वर्तमान हिंदी साहित्य और मरुभूमिकी प्राचीन लोक भाषा आदिकी इनकी ओरसे बहुत ही सेवा होती चली आई है।

इन सब क्षेत्रोंमें कई संस्थायें कितने ही प्रकाशन और कितने ही प्राचीन हस्तलिखित ग्रंथोंके संशोधन परीक्षण और संरक्षणमें इनका कई तरहका सहयोग है। ऐसे हमारे पूज्य श्री अगरचंदजी नाहटाको मेरी ओरसे नम्रतापूर्वक अभिवादन है।



विद्वत्प्रवर श्री अगरचन्दजी नाहटा

श्री पं० विद्याधर शास्त्री

वंश परम्परासे एक सफल व्यापारी होकर भी श्रीयुत अगरचन्दजी नाहटाने ज्ञान विज्ञानके क्षेत्रमें जिस यशस्वी स्थानको प्राप्त किया है, उस स्थानके अधिकारी विद्वान् केवल राजस्थानमें ही नहीं अपितु समस्त भारतमें भी यदाकदाचित् ही उपलब्ध होते हैं।

जैन संस्कृतिके मौलिक तत्वों और उसके इतिहास पर तो आपका असामान्य अधिकार है ही परन्तु इसके साथ ही हिन्दी-संस्कृत अपभ्रंश और राजस्थानीके दुर्लभ प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थों और प्रावतन अभिलेखोंके संग्रह तथा अनुशीलनमें आपकी जो अनुपम अभिरुचि है, उसके कारण आपका ज्ञान क्षेत्र इतना विस्तीर्ण हो चुका है कि उसके द्वारा आप निरन्तर विविध विषयोंके शोधमें प्रवृत्त अनेक पी-एच. डी. और डी. लिट्. के शोध स्नातकोंकी सदैव स्मरणीय सहायता करते रहते हैं।

स्नातकोंकी इस सहायताके अतिरिक्त आप जैन साहित्य और राजस्थानीके साहित्य पर जिन विस्तीर्ण भाषण मालाओंको प्रस्तुत करते रहे हैं उनसे भी समस्त भारतके विद्वान् प्रभावित होते हैं और सदैव उनको सुननेकी प्रतीक्षामें रहते हैं।

ज्ञान-विज्ञानके क्षेत्रकी इस निजी विशेषताके साथ ही आपने अभय जैन ग्रन्थ भण्डारकी स्थापना और अपने भातृज श्रीयुत भंवरलाल नाहटाके साथ अभिलेख संग्रह और नाना मुनिजनोंकी वैदुष्यपूर्ण वाणियोंके सुसम्पादित प्रकाशनसे राजस्थानके शोध क्षेत्रको जो देन दी है, वह सर्वथा अद्वितीय है।

जैन मुनियोंकी वाणियोंके प्रकाशनके अतिरिक्त हिन्दी, संस्कृत और राजस्थानीमें यत्र तत्र विकीर्ण ज्योतिष, आयुर्वेदिक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थोंका उद्धार भी आप सदैव करते रहते हैं।

भारतके प्रायः समस्त साहित्यिक और सांस्कृतिक पत्रोंमें हजारोंसे ऊपर आपके जो लेख छपे हैं, जिनसे आपके व्यापक ज्ञानका परिचय मिलता है।

आपके कारण बीकानेरका ज्ञान-गौरव समस्त भारतमें प्रतिष्ठित हुआ है। परमातमा आपको दीर्घायु करें और आप निरंतर वर्तमानके समान सदा साहित्यकी वृद्धि करते रहें।



अभिनन्दनीय नाहटाजी

श्री गोपालनारायण बहुरा

श्री अगरचन्दजी नाहटासे मेरी पहली भेंट सन् १९४८में हुई थी। यद्यपि उनके विषयमें कई बार मेरे सम्मान्य मित्र श्री महताबचन्द्रजी खारैड प्रायः चर्चा करते रहते थे परन्तु साक्षात्कार उसी दिन हुआ जब वे एक दिन जयपुर महाराजाका पोथीखाना देखने आये थे। उस समय मैं पोथीखानाके अध्यक्षके पद पर कार्य करता था। श्री नाहटाजी अपनी बीकानेरी ऊँची पगड़ी, बन्द गलेका कोट, परन्तु बटन कुछ खुले हुए, धोती और देशी जूते पहने हुए सामान्य वेशभूषामें मेरे पास आए और बिना किसी भूमिका या औपचारिक परिचयके ही राजस्थानी भाषाके प्राचीन ग्रन्थोंकी प्रतियोंके विषयमें पूछताछ करने लगे। जब मैंने उनका नामधाम पूछा तब मुझे श्री खारैड़जीके इस कथनका यथार्थ ज्ञान हो गया कि श्री नाहटाजी अनावश्यक औपचारिकतासे बहुत दूर रहते हैं और अपनी धुनमें कामकी बातोंको ही अधिक महत्त्व देते हैं।

इसके बाद जब राजस्थान पुरातत्त्व मन्दिर (अब राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान) की संस्थापना सन् १९५०में जयपुरमें हुई और मुनि श्री जिनविजयजी उसके सम्मान्य संचालक बने तबसे तो श्री नाहटाजी-के उनके पास व प्रतिष्ठानमें पधारनेके प्रसंग बनते ही रहे और मेरा व उनका परिचय बढ़ता गया। प्राचीन साहित्योद्धार और संशोधनके लिए उनकी लगन और श्रमशीलता देखकर सहज ही सम्मान भावना मेरे मनमें जागी। मैंने जब कभी किसी भी जानकारीके लिए इनको लिखा था इनसे पृच्छा व्यक्त की तो इन्होंने अविलम्ब उसका उत्तर दिया। मैंने उनको चलता-फिरता ज्ञानकोष मान लिया। यही नहीं संशोधन क्षेत्रमें कार्य करने वाले एवं अन्य सम्बन्धित लोगोंसे सम्बन्ध बनाए रखना और उनको ज्ञानवर्धनके लिए प्रेरित करते रहने का अखण्ड व्रत-सा उन्होंने ले रखा है। पत्राचारके सोतेको वे अपनी ओरसे कभी सूखने नहीं देते और सम्बन्धोंको ताजा बनाए रखते हैं। उनकी स्मरण शक्ति भी बड़ी विलक्षण है। महीनों बाद भी जब पत्र लिखते हैं तो पूर्व पत्रके प्रसंग ज्योंके त्यों दोहरा देते हैं और विषय फिर अपनी मूल अवस्थामें हरा हो जाता है। उत्तर न देने अथवा विलम्ब हो जाने पर वे कभी बुरा नहीं मानते और ऊपरी सभी बातोंको एक ओर रखकर विशुद्ध शैक्षणिक पक्षको अपनाते हुए सम्बोधित व्यक्तिको सत्साहित्यिक कार्य अथवा संशोधनके लिए सजग और प्रेरित करते रहते हैं।

श्री नाहटाजी व्यापारी होते हुए भी साहित्यसेवी हैं, धनी होते हुए भी निरभिमान हैं, आधुनिक ढंगसे शिक्षा प्राप्त न होते हुए भी विद्वान् हैं, परस्पर विरोधी बहुविध कार्य व्यापृत रहते हुए भी विलक्षण स्मृतिशाली हैं, मितव्ययी होते हुए भी उदार हैं, स्वधर्मनिष्ठ होते हुए भी सर्वधर्मानुरागी हैं, कला और विद्याके अनन्य उपासक हैं।

अभय जैन ग्रन्थ-संग्रह और ग्रन्थमालाके मूलमें जो भावना श्री नाहटाजीकी रही है, वह सर्व विदित है। इस ग्रन्थ संग्रहकी विशेषता यह है कि अन्यत्र अनुपलब्ध अथवा कष्टेन उपलब्ध सामग्री यहाँ पर सहज ही प्राप्त हो जाती है। जहाँ भी जो कुछ जैसे भी प्राप्त हो, उसको संगृहीत कर लेना श्री नाहटाजीका व्रत है। 'सर्व संग्रहः कर्तव्यः' कः कालो फलदायकः' यही उनका मूल मन्त्र है; और सच भी है इनके द्वारा संग्रहीत सामग्रीका उपयोग होता ही रहता है। साथ ही, श्री नाहटाजीका कला-संग्रह भी इनकी परिष्कृत रुचिका परिचायक है। इसमें आलतू-फालतू वस्तुओंको स्थान नहीं मिल पाता। रुचि और ज्ञानवर्धक सद्वस्तुएं ही इसमें यथेष्ट रूपमें एकत्रित की गई हैं।

श्री नाहटाजीकी लेखन शैली स्वाभाविक और आडम्बर शून्य है। इनका विशुद्ध ज्ञान और तथ्यात्मक सूचनाएँ ही इनके लेखोंमें अवतरित होती हैं। ज्ञान पर गलेफ़ लगाना इनको रुचिकर नहीं है। हजारों लेख और शत-संख्या-चुम्बिनी इनके द्वारा संकलित, सम्पादित तथा लिखित पुस्तकें संशोधक-वर्गमें ही नहीं, चिन्तनशील पाठकोंको भी उपकृत कर रही हैं। इनके विकसित व्यक्तित्वका उद्घोष कर रही हैं।

राजस्थानी भाषा और राष्ट्रभाषा हिन्दीके उन्नायक, एवं समुद्धारकर्ता मनीषी नाहटाजी राजस्थानकी गौरवमयी विभूति हैं। इनका अभिनन्दन राजस्थान प्रदेशकी साहित्यिक समृद्धिके एक सद्न्यासकर्ताका अभिनन्दन है।

●

विद्याव्यासंगी श्री नाहटाजी

श्री दलसुख मालवणिया

श्री अगरचन्दजी नाहटा एक व्यापारी होते हुए भी साहित्य-संशोधनमें पूरा रस रख सकते हैं—यह व्यापारियोंके लिए एक आदर्श उपस्थित करता है। केवल व्यापार नहीं किन्तु अन्य भी अपनी रुचिके विषयमें भी रस लेनेसे जीवनमें एकरूपता नहीं रहती, वह वैविध्यपूर्ण बन जाता है—जीवनमें रस रहता है।

श्री नाहटाजीने संस्कृत-प्राकृतका व्यवस्थित अभ्यास ही नहीं किया किन्तु 'पढता पंडित होय' इस न्यायसे उनकी गति संस्कृत-प्राकृतमें भी हो गई है। यह उनके दृढ़ और निरंतर अध्यवसायका परिणाम है।

श्री नाहटाजी शायद हिन्दी स्कूलमें भी बहुत नहीं पढ़े हैं किन्तु अनेक हिन्दी लेखकोंको लेखकी सामग्री तो देते ही हैं। इसके अलावा कई पी-एच. डी. के छात्रोंका अपूर्ण विषयमें मार्ग दर्शन करते हैं—यह भी उनके निरंतर विद्याव्यासंगका ही परिणाम है।

हिन्दीके कविओं—खास कर आदिकाल और मध्यकालके कविओंके इतिहासके विषयमें तो वे एक विशेषज्ञ हो गए हैं। एक नामके कई कवि हों तो उनका विवेक कर देना—यह उनकी विशेषता है। जैन लेखकोंके विषयमें तो उनका ज्ञान किसी भी पंडितसे अधिक है—यह कहा जा सकता है।

श्री नाहटाजीने अनेक ग्रन्थोंकी खोज की है किन्तु अनेक अज्ञात लेखकोंका भी उद्धार किया है। हिन्दीकी और जैनोंकी कोई भी पत्रिका देखें तो उसमें श्री नाहटाजीका लेख किसी नये तथ्य को प्रकाश देता है। न मालूम उन्होंने अपने साठ वर्षकी आयुमें कितने लेख लिखे। उसकी गिनती शायद पूरी तरहसे वे नहीं जानते होंगे।

वे जहाँ भी जाते हैं किसी नई हस्तप्रतिकी तलाशमें रहते हैं या अपनी किसी शंकाका समाधान करनेके लिए हस्तप्रतिके भंडारकी खोजमें रहते हैं। उन्होंने स्वयं अपना हस्तप्रति-भंडार भी उतना बड़ा बना लिया है, जो किसी बड़ी संस्थासे टक्कर ले सकता है। अतिशयोक्तिके बिना कहा सकता है कि वे व्यापारी होकर भी चलती-फिरती एक संस्था ही नहीं, अच्छे प्राध्यापक भी हैं।

उनकी कमाई कितनी है, कहा नहीं जा सकता किन्तु अच्छे व्यापारीके नाते कमाई ठीक-ठाक अच्छी होगी। किन्तु जीवनमें अति सादगी है और कहीं-कहीं तो अनावश्यक कृपणता वे करते हैं। वह इसलिए

नहीं कि पैसे अधिक जमा हो जाय किन्तु इसलिए कि उस बचतसे आवश्यक हस्तप्रति खरीदनेमें सुविधा रहे।

उनकी सज्जनता और अतिथि सत्कार वे जानते हैं, जिन्होंने बीकानेरमें उनका घर देखा है। सब कार्य छोड़कर वे अतिथिसत्कार करते हैं और बड़े प्रेमसे अपना संग्रह दिखाते हैं।

विद्यारसिक होकर भी वे अपने जैनधर्मके क्रियाकाण्डोंका भी उचित रूपमें पालन करते हैं। व्यवसाय फैला हुआ है फिर भी धर्म-गृहस्थ धर्मके नियमोंका पालन मैंने उनमें देखा है। तीर्थयात्रा, मुनिदर्शन, रात्रि भोजन त्याग आदि ऐसे नियम हैं, जिनका पालन उनके लिए सहज हो गया है। आमतौरपर देखा यह जाता है कि जो विद्यारसिक हो जाता है वह बाह्य क्रियाकाण्डमें रस नहीं लेता किन्तु नाहटाजी तो व्यवसाय, विद्यारस और धर्मरस इन तीनोंमें समानरूपसे दत्तचित्त हैं। उन्हींसे सुना हैं वर्षमें १।२ मास ही व्यवसाय संभालनेमें जाते हैं। बाकी १० मास अध्ययन संशोधनमें रत रहते हैं। ऐसे व्यक्ति विरल ही होंगे जो इस प्रकार की अपनी जीवन व्यवस्था बनाकर जीता हो।

श्री नाहटाजी शतायु हों और धर्म और समाजकी सेवा करते रहें यह शुभेच्छा।

●

ख्याति प्राप्त विद्वान्

श्री नन्दकुमार सोमानी

श्री अगरचन्द नाहटा राजस्थानके ख्यातिप्राप्त विद्वान् हैं। राजस्थानी भाषाके उत्थानके लिए आप निरन्तर प्रयत्नशील रहे हैं। राजस्थानके कई अज्ञात ग्रंथोंको ढूँढ निकालनेका आपने सतत प्रयत्न किया है एवं अब भी करते आ रहे हैं।

यह जानकर अत्यन्त प्रसन्नता हुई है कि ऐसे प्रतिभा सम्पन्न व्यक्तिको अभिनन्दन ग्रंथ समर्पित किया जा रहा है। इनकी निरन्तर साहित्यिक साधनाको देखते हुये इनका पूर्ण राष्ट्रीय स्तरपर सम्मान किया जाना चाहिये। मैं अपनी ओरसे शुभ कामनायें भेजता हूँ।

●

सरस्वतीका सुयोग

श्री शिवलाल जैसलपुरा

बहुत वर्ष पूर्व मैंने श्री अगरचन्दजी नाहटाका नाम सुना था। आप, वर्षके कुछ भाग कलकत्तेमें रहकर व्यापार और शेष भाग अपने जन्म-स्थान बीकानेरमें रहकर साहित्योपासनामें व्यतीत करते हैं। मुझे जब यह ज्ञात हुआ तो मेरे हृदयमें आपके प्रति श्रद्धा उत्पन्न हो गई।

आपने अनेक दुर्लभ एवं अप्राप्य हस्तलिखित ग्रन्थोंका संग्रह किया है। प्राचीन एवं अप्रकाशित

राजस्थानी काव्योंका संशोधन-सम्पादन किया है और शोध सम्बन्धी तो आपने हजारों ही लेख लिखे हैं, आपके प्रत्येक लेखमें मौलिकता दृष्टिगत होती है।

आप, वर्षोंसे बीकानेरकी शोध-संस्था भारतीय विद्यामंदिर और सार्दूल राजस्थानी रिसर्च इन्स्टीट्यूटके साथ जुड़े हुए हैं। आपकी प्रेरणा एवं आपके मार्ग-दर्शन द्वारा इन संस्थाओंने अब तक अनेक शोध-ग्रन्थ प्रकाशित किये हैं। गुजरात के और उत्तर भारतके विश्वविद्यालयोंमें शोध-कार्य करनेवाले अनेक छात्रोंको आप द्वारा मार्ग-दर्शनका लाभ मिला है।

प्राचीन-मध्यकालीन गुजराती साहित्यकी बहुत-सी हस्तलिखित प्रतियाँ राजस्थानमें सुरक्षित पड़ी हैं। गुजरातके विद्वानोंको जब-जब इनकी आवश्यकता हुई तब-तब श्री नाहटाजीने उन-उन मूल प्रतियोंको अथवा उन-उन की प्रतिलिपियोंको उदारतापूर्वक भेजा है। इस प्रकारसे प्राचीन-मध्यकालीन गुजराती साहित्यके शोध-कार्यमें श्री नाहटाजीका विशेष महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। स्वयं मुझे प्राचीन-मध्यकालीन बारहमासा संग्रह तैयार करते समय जब इससे सम्बन्धित साहित्यकी आवश्यकता हुई तो श्री नाहटाजीने उदारतापूर्वक मुझे सहायता कर अपने औदार्यका परिचय दिया।

श्री नाहटाजी केवल राजस्थानके ही नहीं अपितु समस्त भारतके एक महामना विद्वान् हैं, जो भारत-में अन्यत्र क्वचित् ही दृष्टिगोचर होते हैं। लगभग ३० वर्षसे आप द्वाराकी गई सतत साहित्य-सेवा विद्वानोंके लिए प्रेरणादायक है। प्रभु, आपको स्वस्थ एवं दीर्घायु बनावें।

धन्य नाहटाजी !

विद्याभूषण शतावधानी श्री धीरजलाल टोकर शी शाह

जैन-साहित्यके गहन ज्ञाता, समर्थ लेखक और उच्च कोटिके तत्वचिन्तकके रूपमें श्रीमान् अगरचन्दजी नाहटाने मेरे हृदयमें अत्यन्त आदरणीय स्थान प्राप्त कर लिया है।

सन् १९३१में अहमदाबाद, साहित्य-प्रवृत्तिका केन्द्र-स्थल बना हुआ था। वहाँ मैंने बाल ग्रन्थावलीके प्रकाशनोपरान्त 'जैन ज्योति' नामक एक सचित्र मासिक-पत्रके प्रकाशनका कार्य अपने हाथमें लिया था। उन दिनोंमें ही श्री अगरचन्दजी नाहटाकी एक विद्वान् लेखकके रूपमें ख्याति मैं सुन चुका था। अतः मैंने अपने मासिक-पत्रके १–२ अंक आपको भेंट करते हुए आपसे अपने लेखोंकी प्रसादी इस पत्रमें प्रकाशित करने हेतु भेजनेका निवेदन किया। इसके उत्तरमें मुझे आपकी ओरसे प्रोत्साहन-पूर्ण पत्र मिला और साथ ही दो लेख भी प्राप्त हुए। इतनी सरलतासे और ऐसे सद्भावसे एक विद्वान् अपने लेख भेज दे, यह मेरी कल्पनाके बाहरकी बात थी। इसीलिये श्री नाहटाजीके सौजन्य पर मेरे हृदयमें आपके प्रति अत्यन्त आदर उत्पन्न हो गया।

आपके लेख अत्यन्त व्यवस्थित एवं विविध विषयोंको भली प्रकारसे स्पर्श करते हुए थे। उनमें कहीं किसी प्रकारके संशोधनकी आवश्यकता नहीं थी। इससे मेरे हृदयमें आपकी विद्वत्ताके प्रति आदर उत्पन्न हुआ और वह दिनोंदिन वृद्धिगत होता गया।

बादमें तो आपसे सम्पर्क साधनेकी जिज्ञासा जागृत हुई, जो अल्प समयमें ही सफल हो गई। सन् १९३२के मई मासमें मैं अपने एक मित्रके साथ ब्रह्म-देश, शामदेश और वहाँसे चीनकी सीमा पर प्रवास करने-की भावना लेकर रवाना हुआ और कलकत्ता पहुँचा। यहाँ सर्वप्रथम श्री पूर्णचन्द्र नाहरसे मेरी मुलकात हुई। ये भी 'जैन ज्योति' मासिकमें प्रकाशनार्थ समय-समय पर अपने लेख भेजा करते थे। आपका ग्रन्थ-संग्रह अपूर्व माना जाता था। अतः इसे देखनेकी जिज्ञासा होना स्वाभाविक ही था। तत्पश्चात् वहाँकी ४, जगमोहन मल्लिक स्ट्रीटमें स्थित 'नाहटा ब्रदर्स'की दुकानमें गया। वहीं पर श्री अगरचन्दजी नाहटा और आपके भतीजे श्री भँवरलालजी नाहटासे परिचय हुआ। इन दोनोंकी सादगी, सरलता और जैन-साहित्यके प्रति अप्रतिम भक्ति देखकर मैं मुग्ध हो गया। मुझे यह जानकर अत्यन्त आश्चर्य हुआ कि ६-७ दूकानोंका काम-काज सँभालते हुए भी आप इतना विद्या-व्यासंग प्राप्त कर सके और इसीमें मस्त रहते हैं।

इसके कुछ वर्ष पश्चात् मैं आपसे बीकानेरमें भी मिला। आपने यहाँ मुझे अपना निजी अभय जैन पुस्तकालय दिखाया, जिसमें अगणित जैन-धर्म ग्रन्थोंके अतिरिक्त हस्तलिखित पुस्तकोंका एक अच्छा-सा संग्रह था। साथही पुरातत्वसे सम्बन्धित कुछ वस्तुएँ भी इसमें संग्रहीत थीं। आप मुझे अपने साथ लेकर नगरमें स्थित अन्य ग्रन्थ-भण्डार एवं राज्य द्वारा संचालित पुस्तकालय दिखाने हेतु रवाना हो गये।

आपके साथ बैठकर भोजन करते हुए मैं यह जान सका कि आप अत्यन्त सादा एवं सात्विक आहार लिया करते हैं। आपके द्वारा प्रेमपूर्वक खिलाई गई बाजरीकी रोटी और घरकी गायका दही अभी भी मेरे स्मृतिपटलपर ज्योंका त्यों विद्यमान है। मुझे आपके साथ समय-समयपर भोजन करनेके अन्य अवसर भी प्राप्त हुए हैं। इससे मैं यह जान सका कि आप पर्व-तिथियोंके दिन हरे शाक आदिका त्याग करते हैं। इतना ही नहीं इसके उपरान्त अन्य भी कई नियमोंका आप पालन करते रहते हैं।

आपने अद्यावधि कितने लेख लिखे होंगे ? यह बताना कठिन है। गुजराती, हिन्दी आदिके समाचार-पत्रोंमें समय-समयपर आपके लेख प्रकाशित होते रहते हैं और उनमें विषयोंकी विविधता भी दृष्टिगोचर होती रहती है। ग्रन्थ-निर्माणके क्षेत्रमें भी आपका योग बहुत सुन्दर है। इनमें खरतरगच्छके आचार्यवर्ग एवं इसके साहित्यके सम्बन्धमें आपने काफी लिखा है। इससे कुछ लोगोंकी यह धारणा बन गई है कि आप-का झुकाव खतरगच्छकी ओर विशेष है। किन्तु, ऐसी धारणा बना लेना एक गम्भीर भूल होगी। आपने कभी भी साम्प्रदायिक व्यामोह व्यक्त नहीं किया है। इतना ही नहीं अपितु प्रसंग-प्रसंगपर आपने अपने उदार-विचार व्यक्त कर समस्त जैन-समाजमें संगठन एवं ऐक्यका समर्थन किया है।

मेरे विचारसे वर्तमान जैन समाजमें ऐसा एक भी लेखक नहीं कि जो अपने लेखों द्वारा विविधिता एवं संख्यामें आपकी समता कर सके।

कुछ वर्ष पूर्व मेरे विचारमें आया कि श्रीमान् नाहटाजी द्वारा की गई साहित्यिक-सेवाका सार्वजनिक रूपसे अभिनन्दन किया जाय और ऐसा हुआ भी। भारतके सुप्रसिद्ध बम्बई नगरमें इसी वर्ष श्रीमानतुंगसूरि सारस्वत समारोहमें विश्वविद्यालय अनुदान कमीशनके चेयरमैन पद्मभूषण डॉ० दौलतसिंह कोठारीके द्वारा सम्मानित होनेवाले विद्वानोंमें आपको अग्र स्थान दिया गया था।

तत्पश्चात् अल्प समयमें ही आपका सार्वजनिक सम्मान करनेका आयोजन किया गया। मुझे इससे अत्यन्त प्रसन्नता हुई है। जिस महापुरुषने अपने जीवनका इस प्रकारसे सदुपयोग कर भावी प्रजाके लिए एक उत्तम आदर्श प्रस्तुत किया है, उसके लिए मैं मात्र इतने ही शब्द कहूँगा कि 'धन्य नाहटाजी !'

●

विरल साहित्यिक श्री नाहटाजी

पिंगलशी मेघाणन्द गढवी

देश-विदेशके ऐतिहासिक पृष्ठों पर अनेक चित्र उभरे और नष्ट हो गये। अनेक प्रकारकी संस्कृतियों-का सृजन हुआ और वे नष्ट हो गईं। फिर भी भारतवर्षमें वैदिक-कालसे लेकर आज तक भारतीय जनताने देश-रक्षाके कार्यमें अपना अद्भुत पराक्रम दिखाते हुए संस्कृतिकी गौरव-वृद्धि की और उत्साहको बनाये रखकर विश्वमें यश प्राप्त किया। हमारे देशमें ऐतिहासिक विद्वान् एवं साहित्य-संशोधकोंने इस कार्यमें जो सहयोग दिया, वह सामान्य नहीं है।

यदि हमारे देशके इतिहासविद् पण्डितोंने इस प्रकारके साहित्यकी भेंट जनताको नहीं दी होती तो हमारे पास केवल उन यशःपुंज विद्वानोंके नाममात्र ही शेष रहते।

प्राचीन भारतीय इतिहास और संस्कृति-संशोधन क्षेत्रमें अवर्णनीय सहयोग देनेवालोंमें साहित्यिक-संशोधकके रूपमें बीकानेर निवासी श्री अगरचन्द नाहटाजीका नाम सुप्रसिद्ध है। आप संस्कृत-साहित्य, लोक-साहित्यके पूर्ण ज्ञाता होनेके साथ-साथ चारणी-साहित्यके भी उतने ही उपासक एवं ज्ञाता हैं। आपने चारणी-साहित्यके कतिपय विवादास्पद प्रश्नोंको हल करनेमें निर्णयात्मक प्रमाण प्रस्तुत कर अपनी प्रकाण्ड विद्वत्ताका परिचय दिया है।

आपसे मैं जितना दूर रहता हूँ, उतना ही आपकी प्रवृत्तिके समीप रह रहा हूँ। आपके साहित्य-व्यवसायका सौरभ राजस्थानकी सीमाओंका उल्लंघन कर कच्छ, सौराष्ट्र और गुजरातके साहित्योपासकोंके घर-घर पहुँच गई है।

किसी भी साहित्यकारको किसी सन्त, कवि, भक्त, दाता, वीर-पुरुष किम्बा किसी साम्प्रदायिक जानकारीकी आवश्यकता होनेपर वह श्री नाहटाजीसे पत्र-व्यवहार प्रारम्भ करता है और पूछी गई जानकारी श्री नाहटाजी द्वारा पूर्ण हो जाती है। अतः हम निःसंकोच यह कह सकते हैं कि नाहटाजी अब व्यक्ति नहीं अपितु साहित्यकी एक जीवित-संस्था ही बन गये हैं।

नाहटाजीने इतिहासके साथ-साथ काव्य-शास्त्रमें विद्यमान ऐतिहासिक प्रमाण, उल्लेख, प्रकार, भाव, अनुभाव आदि विषयोंपर समाचारपत्रोंमें लेखों द्वारा एवं ग्रन्थ-प्रकाशन द्वारा हमारी लूटी जा रही लोक-कथाओं, लोक-गीतों, चारणी-साहित्य और इसी प्रकारसे कण्ठस्थ साहित्यको, पुनर्जीवन प्रदान किया है।

आपने वाजिविनोद, कथारत्नाकर और जैन मुनिके प्रबन्ध-संग्रह ग्रन्थ एवं कतिपय हस्तलिखित ग्रन्थोंका अध्ययन तथा संशोधन कर नष्ट होते हुए साहित्यको बचा लेनेकी प्रशंसनीय सेवा की है।

आपका कथन है कि साहित्य-क्षेत्रमें राजस्थान, कच्छ, गुजरात, सौराष्ट्र प्रदेशोंके मध्य बहुत ही समानता और सांस्कृतिक ऐक्य प्रवर्तित है। सौराष्ट्र और कच्छकी ऐतिहासिक वार्तायें एवं लोक-कथायें और चारणी-साहित्य, राजस्थानमें प्रचुर मात्रामें उपलब्ध होता है।

आपके उपर्युक्त मन्तव्य परसे यह समझ सकते हैं कि नाहटाजीकी साहित्यिक सूझबूझ मात्र राजस्थान तक ही सीमित नहीं, अपितु कच्छ, सौराष्ट्र, गुजरात एवं उत्तर भारत तक प्रसरित है।

ऐसे बहुश्रुत, इतिहास-रत्न, श्रेष्ठिवर, विद्यावारिधि श्री अगरचन्दजी नाहटाका सम्मान, भारतीय संस्कृतिको स्वस्थ, सुरक्षित बनाये रखनेके लिये जड़ी-बूटीके समान सिद्ध होगा।

•

नवोदित लेखकवर्ग और श्री नाहटाजी

श्री पार्श्व

श्री अगरचन्दजी नाहटाके व्यक्तित्वका सृजन मुख्यतया पाँच प्रकारसे हुआ है। पंडित, संशोधक, विवेचक, संग्राहक और व्यावहारिक रूपमें। किन्तु मैं इनमें एक अन्य प्रकारको भी सम्मिलित करना चाहता हूँ। वह है 'मार्ग-दर्शक'। आपके पाण्डित्य, पर्येषणा, बहुश्रुतत्त्व, संग्रहनिष्ठा एवं व्यापारपटुताके सम्बन्धमें ज्ञातावर्ग अपनी-अपनी ओर से इस अभिनन्दन ग्रन्थमें प्रकाश डालेंगे और आपके अपरिमित विद्या-व्यासंगकी यथास्थित प्रशस्ति करेंगे ही। मुझे तो मात्र एक नवोदित लेखकके रूपमें आपके व्यक्तित्वके छठे प्रकारका मूल्यांकन करना उचित प्रतीत होता है।

आपके लेख एवं पुस्तकों द्वारा लगभग १८ वर्षकी आयुमें मैंने जब अपने विचार व्यक्त करने और अपने आपको 'लेखक' मान लिया, तभी से आपका अप्रत्यक्ष परिचय मुझे प्राप्त हो गया। किन्तु उस समय मेरे मस्तिष्कमें भाषाका भूत सवार था। उच्च अलंकारयुक्त भाषा ही उत्तम पुस्तकें लिखने हेतु पर्याप्त हैं यह मेरी उन दिनोंकी मान्यता थी। और इसी ही धुनमें 'श्री आर्यरक्षितसूरि' 'श्री जयसिंहसूरि', 'श्री कल्याण सागरसूरि' आदिके जीवन चरित्र लिखता गया। किन्तु मात्र भाषाके प्रवाहसे ही साहित्य-सागरको पार कर लेना मुझे अशक्य प्रतीत हुआ। जैसे-जैसे इस दिशामें अग्रसर होता गया वैसे-वैसे मुझे अपनी मर्यादाओंका ज्ञान होता गया। श्री नाहटाजीने भी खरतरगच्छके युगप्रधान आचार्योंके जीवनचरित्र सम्बन्धी प्रमाणभूत पुस्तकें लिखी हैं। उनके साथ मेरी उपर्युक्त पुस्तकोंकी तुलना करनेपर मुझे अपनेमें संशोधन-वृत्तिकी न्यूनता स्पष्ट अनुभवमें आई। प्रमाणोपेत ग्रन्थोंके सृजनमें सुप्रयुक्त भाषाके उपरान्त अन्वेषण-शक्तिको भी क्रियाशील करना चाहिये, तबसे मैं ऐसा मानने लगा।

अब मैं सक्रिय रूपसे इस दिशामें विचार करने लग गया। तिसपर भी मेरे बाल मानसमें एक नवीन रहस्यका प्रादुर्भाव हुआ कि ऐतिहासिक प्रमाणोंकी अनुपस्थितिमें अपनी अन्वेषणात्मक शैलीकी योजना कैसे की जा सकती है? संशोधन-कला एवं प्रमाणोंकी उपलब्धि परस्परावलम्बी होती है। प्रमाणोंको उद्धृत करना किम्वा निर्देश करना बिना संशोधन-कलाके प्राकट्यके प्रायः अपूर्ण रह जाते हैं। इसी प्रकारसे संशोधनात्मक प्रयास बिना प्रमाणोंकी खोज अशक्यवत् ही प्रतीत होती है। श्री नाहटाजी तो प्रमाणोंकी एक लम्बी संख्या सम्मुख रख कर अपने मन्तव्यका प्रतिपादन करते हैं। आपकी लेखन-शैलीमें विवरणात्मक विचारोंका अतिरेक दृष्टिगत नहीं होता। मैं इस शैलीसे प्रभावित हुआ। किन्तु, आपने ऐतिहासिक प्रमाणोंका खजाना कहाँसे हस्तगत कर लिया? मेरे मनमें यह प्रश्न स्वाभाविक रूपसे उत्पन्न हो गया। अतः आपके साथ पत्र-व्यवहार करने हेतु प्रेरित हुआ।

आप जैसे लब्ध-प्रतिष्ठ लेखक, मुझ जैसे बने हुए लेखककी ओर ध्यान देंगे भी? यह प्रश्न मेरे सम्मुख हिचकिचाहट उत्पन्न कर रहा था। किन्तु, मेरी जिज्ञासाने इस द्विविधापर विजय प्राप्त कर ली और आपको भेजने हेतु एक पत्र लिख ही दिया। इस पत्रमें मैंने अपनी ओरसे मेरी लगन एवं ध्येयका वर्णन कर उत्साह-जनक वर्णन करते हुए आपसे मार्ग-दर्शनकी प्रार्थना की। बादमें मुझे स्मरण हुआ कि राजस्थान निवासी होनेके कारण आपको जो पत्र भेजा जाय वह हिन्दीमें लिखा हुआ हो तो उत्तम रहे। अतः मैंने अपने एक हिन्दी भाषी मित्रसे उसका हिन्दी अनुवाद करवा कर आपको भेजा, जिसके साथ उत्तर प्राप्त करने हेतु एक लिफाफा भी भेजा था। आपको उत्तर देनेका स्मरण बना रहे, इस आशयसे ही। मैं आपकी ओरसे उत्तरकी प्रतीक्षा करता रहा।

मुझे आपकी ओरसे लौटती डाकसे उत्तर मिल गया। उसमें आपने मेरी प्रवृत्तिकी सराहना की और अपनी ओरसे यथाशक्य सहायता देनेका भी विश्वास दिखाया। पत्र पढ़कर मेरे आनन्दका पारावार नहीं रहा। अतः आपकी ओरसे भेजे गये इस प्रेरणा-संदेशने मेरे उत्साहमें वृद्धि कर दी।

मैंने दो-तीन पत्र हिन्दी अनुवाद करवाकर आपको भेजे। बादमें आपने मेरी इस कठिनाईको जानकर मुझे गुजरातीमें ही पत्र लिखनेकी सूचना भेजी। तबसे मैं अपने पत्र गुजरातीमें लिखता रहा और आप हिन्दी में। आपके अक्षर सुवाच्य न होनेके कारण मैंने आपके सम्मुख अपनी कठिनाई निवेदन की। अर्थात् आप अपने पत्र किसी औरसे लिखवाकर या टाइप कराकर भेजते रहें। इस प्रकारसे हम दोनोंके मध्य पत्रोंका आदान-प्रदान चलता रहा।

मेरे हृदय पर आपके बहुश्रुतत्वकी छाप तो पहलेसे ही थी किन्तु, नवोदित लेखकोंको प्रोत्साहित करनेकी आपकी वृत्तिने मेरे कोमल-मानस पर एक गहरी छाप अंकित कर दी, वह भी ऐसी कि कदापि विस्मृत न हो सके। आपहीने मेरी लेखन-प्रवृत्तिको गतिशील बनाया। मुझे ऐसा प्रतीत होने लगा कि जैसे नवीन-युगमें मेरा यश प्रवेश हो रहा है।

आपके साथ सतत पत्र-सम्पर्कसे उत्कीर्ण लेख, ग्रन्थ-प्रशस्तियें, प्रति-पुष्पिकायें आदि आदि साहित्यके विशेष अध्ययनकी मुझे विशेष प्रेरणा मिली। इसीके कारण मुझमें ऐतिहासिक रासो, प्रबन्ध, पट्टावलियों आदि आदिकी प्रतिलिपियें संगृहीत करनेकी लगन उत्पन्न हुई। मुझे आपके पाससे अभिनव पाठ (पठन-सामग्री) प्राप्त होती रहती थी। अब मेरी लेखन-शैलीको नवीन मोड़ प्राप्त हुआ और 'अंचलगच्छीय लेख-संग्रह' के नामसे उत्कीर्ण लेखोंका मेरा प्रथम संग्रह प्रकाशित हुआ। इसमें आपने अपनी ओरसे 'किंचित् वक्तव्य' लिखकर मुझे प्रोत्साहित किया। आप, मेरी त्रुटियोंकी ओर संकेत करनेसे भी नहीं चूके।

इस प्रकारसे आप सुप्रसिद्ध प्रखर विद्वानोंकी भ्रान्तियें, त्रुटियें, स्खलन आदिका संशोधन करनेमें नहीं हिचकिचाते थे। कभी-कभी तो ऐसा भी प्रसंग आ जाता कि कोई विद्वान् अपने लेख पर आपकी ओरसे आलोचना किये जानेपर क्षुब्ध होकर स्पष्टीकरण भी प्रकट करने हेतु बाध्य हो जाता था। तब श्री नाहटाजी अपनी ओरसे प्रमाण प्रस्तुत करते हुए अपने विचार व्यक्त करते। इस प्रकारसे पक्ष-विपक्षके मध्य अपनी अपनी विद्वत्ताके तीक्ष्ण तीर छूटते रहते। इतना होनेपर भी आपके मनमें किसी भी प्रकारकी कटुता दृष्टिगत नहीं होती। आप अनेकों पत्रोंमें लिखते ही रहते हैं। आप चाहें जिस विषय पर लेख लिखें, उनमें प्रसंगोपान्त चल रही साहित्य-प्रवृत्तिका ध्यान भी आकर्षित करते रहते हैं, जिनमें आपकी ओरसे प्रोत्साहन-भाव भी व्यक्त होता रहता है। नवोदित लेखकोंके लिए आपकी ओरसे इस प्रकारका उल्लेख कितना अधिक उत्साह-वर्द्धक होता है, इसका अनुभव स्वयं मुझे भी हुआ है। मेरी साहित्य-प्रवृत्तिके सम्बन्धमें आपने 'बिहार राष्ट्र भाषा परिषद्' पटनाके अंकमें ऐसा ही उल्लेख किया है। उसकी एक प्रति आपने मुझे भेजी। आपके समान बड़े आदमी मेरे जैसे बालककी पीठको इस प्रकारसे थपथपा दें, तब किसका सीना गज-गज भर न फूलेगा? इस प्रकारसे आपने मुझमें आतम-विश्वासका संचार कर दिया। ऐसे असंख्य-दृष्टान्त बताये जा सकते हैं कि श्री नाहटाजीका नवोदित लेखकोंके प्रति कितना वात्सल्यभाव है, जो ऐसे प्रसंगोंसे विदित हो जाता है।

'अंचलगच्छदिग्दर्शन' के समान गूढ़ ग्रन्थ लिखनेका श्रेय सद्गत आचार्य श्री नेमसागरसूरिजीने मुझपर डाला, तब मुझे अत्यन्त कठिनाईका सामना करना पड़ा था। यद्यपि यह रचना मेरी महत्वाकांक्षाओंकी पूर्ति करने योग्य थी तथापि उत्तरदायित्वका भार अत्यधिक ही था। श्री नाहटाके समर्थ मार्ग-दर्शनके अधीन मैंने स्थिरतापूर्वक लेखनी अपने हाथमें ली और विश्वासपूर्वक लिखता गया। इस अवधिमें मेरा और आप (श्री नाहटाजी) के मध्य पत्रोंको आदान-प्रदान शृंखलाबद्ध चलता रहा। जो-जो मेरे उपयुक्त था, उन-उनको

आपने निःस्पृह-भावसे मुझे प्रदान किया। यदि मुझे आपकी ओरसे मार्ग-दर्शन प्राप्त न होता तो यह कहना मेरे लिये अशक्य है कि तब क्या होता है ? प्रस्तुत ग्रन्थ द्वारा मेरी विद्वत्समाजमें ख्याति हो गई। इसका श्रेय श्री नाहटाजीको ही है, इसमें किसी भी प्रकारकी अतिशयोक्ति नहीं है। आप द्वारा प्रेषित साहित्य-सामग्रीके आधारपर ही तो मैं विद्वत्मण्डलीमें खड़े रहने योग्य बन सका।

उक्त ग्रन्थके लेखनमें पूरे पाँच वर्ष व्यतीत हो गये। इसके प्रकाशक श्री मुलुण्ड अंचलगच्छ जैनसंघ, बम्बई द्वारा मुझे ताकीद करनेका प्रोत्साहन मिलता रहा। इस ग्रन्थके प्रेरक श्री सूरिजीका स्वास्थ्य बिगड़ने लग गया था। अतः ताकीद (शीघ्रता) करनेका अर्थ मैं समझ चुका था। यदि मुझे कल्पनाके घोड़े दौड़ाने ही होते तो मैं इसे कभीका पूर्ण कर देता और यह ग्रन्थ सम्पूर्ण हो जाता। किन्तु, यहाँ तो परिस्थिति ही दूसरी थी। दुर्भाग्यसे ग्रन्थ समाप्त होनेसे पूर्व ही वे दिवंगत हो गये। अगले वर्ष उत्साहपूर्वक ग्रन्थका अनावरण हुआ जो मेरे जीवनकी धन्य-घड़ी थी। ग्रन्थ-प्रेरक आचार्यश्री अब नहीं रहे, यह शोक भी विस्मृत कर देने योग्य नहीं था। उनका वर्षों पुराना स्वप्न साकार हो, उससे पूर्व ही वे हममेंसे चले गये। इसमें मेरी निष्फलता का संकेत मिलता है। मुझे अपनी स्थितिको स्पष्ट करनेका प्रयास इस ग्रन्थकी प्रस्तावनामें करना पड़ेगा, अतः इसे टालने हेतु अपनी ओरसे प्रस्तावना तक नहीं लिखी। इस अभावके साथ-साथ श्री नाहटाजी सहित अनेक विद्वानोंने मुझे कितनी और किस प्रकारकी साहित्य-सहायता दी है, इसका अपेक्षित वर्णन बिना लिखे ही रह गया।

तत्पश्चात् मुझे श्री नाहटाजीसे सर्वप्रथम साक्षात्कार करनेका अवसर पालीतानामें मिला। यह मेरे मार्ग-दर्शनके प्रति मुझे अपनी ओरसे पूज्य भाव व्यक्त करनेका स्वर्णावसर था। आपने इस अवसर पर मुझे विशेष जानकारी प्रदान की। परस्पर अनेकों विषयोंपर चर्चा हुई। रात्रिमें आपकी और सद्गत मुनि कान्तिसागरजीके मध्य हुई विद्वत्तापूर्ण चर्चा सुननेका आनन्द भी मुझे प्राप्त हुआ। इस प्रकारसे रात्रिके १२ बजे तक दोनों प्रकाण्ड विद्वानोंके मध्य चल रही ज्ञान-गोष्ठियोंको मैं एकाग्रचित्तसे सुनता रहा था, यह मुझे अद्यावधि स्मरण है। यह था मेरे और आपके मध्य हुए प्रथम साक्षात्कारका प्रसंग। तदनन्तर मुझे आपसे मिलनेका कोई अवसर ही नहीं मिला।

मुझपर आपकी इतनी गहरी छाप पड़ी कि मुझे विविध स्थानोंकी यात्रा कर वहाँके ऐतिहासिक प्रमाणोंको एकत्रित करनेकी मेरी इच्छा जागृत हुई। आपकी ओरसे इस दिशामें मुझे सूचित किया गया जो मुझे अत्यन्त पसन्द आया। तदनुसार मैंने प्रति वर्ष नवीन-नवीन प्रदेशोंमें जा-जाकर खोज (शोध) हेतु प्रवास करनेकी योजना बनाई। मैंने जहाँ जहाँ से उपलब्ध हुई उस महत्वपूर्ण साहित्य-सामग्रीको एकत्रित की। उसके आधारपर मैंने 'ज्ञातिशिरोमणि' 'अंचलगच्छीय प्रतिष्ठा-लेख' 'गुर्जरदेशाध्यक्ष सुन्दरदास राजा विक्रमादित्य कौन था ?' आदि आदि पुस्तकें लिखीं जो प्रकाशित होती गयीं। अल्प समयमें ही 'अंचलगच्छीय रास संग्रह' नामक ऐतिहासिक रासोंका एक बृहद् संग्रह भी प्रस्तुत किया जायगा। जिसमें श्री नाहटाजी द्वारा प्रेषित साहित्य-सामग्री भी होगी।

अंचलगच्छ द्वारा जैन-शासनको दी गई अमूल्य भेंटकी विवरण-सूची सामान्यतया लम्बी है, जिसके लिए समस्त लोग गौरव-लाभ प्राप्त कर सकते हैं। किन्तु अंचलगच्छका प्रभाव वर्तमानमें लुप्त-सा होते हुए, उसके साहित्यके प्रति भी हमारी उपेक्षावृत्तिका जागृत होना, मनपर प्रभाव डालता है। गच्छ अभिनिवेषने भी इसमें सहयोग दिया होगा। यहाँ एतद्विषयक चर्चा अप्रस्तुत है। श्री नाहटाजी इस प्रकारकी संकीर्ण-वृत्तियोंके भोग कहीं भी नहीं बने, यह स्पष्ट है। इस प्रकारके साक्षात्कारका अपने अनुभव में मुझे कहीं भी अवसर नहीं मिला। जिस प्रकार वर्तमान लेखक 'वाड़ाबन्दी' (पक्षपात) से कभी मुक्त नहीं रह सकते, ऐसे

समयमें, श्री नाहटाजी मुक्त-मानससे सभीके साथ हिल-मिल जाते हैं और सर्वत्र अपने स्नेह एवं सद्भावनाका प्रसार करते रहते हैं आपकी इस प्रकारकी सम-दर्शिता एवं सहृदयताकी सौरभ आपके लेखों द्वारा सर्वत्र प्रसारित होती हैं। यही कारण है कि अपने समाजकी आप एक बहुमूल्य-निधि माने जा सकेंगे, ऐसी मेरी धारणा है।

श्री नाहटाजी अंतिम दोनों पीढ़ियोंको (युवक-समाज एवं भावी युवकोंको) अपनी ओरसे सतत ज्ञान-लाभ प्रदान करते रहते हैं, जो अद्यावधि चालू ही है। शोधकर्ता अपने द्वारा उपार्जित कष्ट-साध्य अन्वेषणके फलको अन्तमें अन्यको प्रदान कर स्वयं कृतकृत्यताका अनुभव करे, इस प्रकारके विरले व्यक्तियोंमें आगम प्रभाकर मुनि पुण्यविजयजीके कालधर्म प्राप्त कर लेनेके अनन्तर वर्तमानमें कदाचित् एक मात्र श्री नाहटाजी ही अग्रगण्य संशोधक होंगे, यह सगौरव कहा जा सकता है। आपके बहुरंगी व्यक्तित्वको आपकी ध्यानाकर्षक विशिष्टता ही मानी जा सकती है।

आपकी लेखनी न्याग्रा-प्रपातके समान गतिशील प्रवाह और कहीं भी समाप्त न होनेवाली स्याही मानों अक्षरोंकी पंक्तियों द्वारा अविश्रान्त रही हो और आपके ज्ञान-वर्द्धक पत्र, लेख, ग्रन्थ आदि वर्तमान पत्रोंकी गतिसे समस्त देशमें प्रसारित हो रहे हैं। मेरे जैसे कई नवोदित लेखक, संशोधक एवं ज्ञानार्थीवर्ग श्री नाहटाजीके कर्मठ ज्ञान-यज्ञके विश्वविद्यालयके द्वारा खटखटाते होंगे। किन्तु, कुलपतिके रूपमें वयोवृद्ध—ज्ञानवृद्ध आप सभीका सस्मित स्वागत करते हैं और अपने ज्ञानकी अमूल्य झोलीको निस्पृहभावसे सभीके समक्ष उडेल देते हैं। मन ही मन यह कह कर "पुत्रात् शिष्यात् पराजयम्।" अपनी लेखनी को विश्राम देता हूँ।

●

आदरणीय नाहटाजी

श्री पुष्कर चन्दरवाकर

यह कहना कठिन है कि हम दोनोंके मध्य कब, किस प्रश्न या किस मुद्दे पर प्रथम पत्र-व्यवहार प्रारम्भ हुआ? मेरे पास तो इस हेतु वर्तमानमें है केवल एक मात्र विस्मृति।

अलबत्ता इतना याद है कि जब मैं पढारमेंसे लोकगीत प्राप्त कर रहा था, उस समय नल सरोवर परके गाँवोंमें विचरण कर रहा था। उनमें के शियाल गाँवमें गया तो वहाँ स्व० पढार भक्त छगन पढारसे मिला। वयोवृद्ध, अशक्त, अपंग और अकिंचन। जिनकी आँखोंका तेज नष्ट हो चुका हो, डाढ़ी पर बाल उग आये हों, आँखकी पुतलियोंके आस-पास मात्र लालिमाकी झलक हो, शिरपर चीर-चीर हुआ—फटा हुआ—और चींथियें निकल रहा एक वस्त्र हो, शरीरपर पहना हुआ वस्त्र ऐसा कि उसकी बाहें ही नदारद, कमरपरसे एक मैली-कुचैली धोती पहने हुए हों, नाकमेंसे स्राव बहता हो और आँखोंमेंसे अश्रु-धारा प्रवाहित होती हो, शरीरमें से दुर्गन्ध आती हो। ऐसे पढार भक्त और भजनीक, जिनकी कोई भी खबर लेनेवाला नहीं था। मैं, उनसे मिला तो उन्होंने मुझे अनेक भजन लिखाये और साथ ही लिखाया रूपांदेका रासड़ा।

मैंने इस रासको जब 'बुद्धिप्रकाश'में प्रकाशित कराया, तब मुझे श्री नाहटाजीका पत्र मिला और साथमें मिली एक प्रति 'रूपांदे री वेल', ऐसा मुझे स्मरण है।

श्री नाहटाजीकी ओरसे उक्त लेख प्राप्त होनेके पश्चात् मैंने तुलनात्मक दृष्टिसे उस रासड़ेका संपादन किया और रूपांदेकी गहराईमें उतरनेका अवसर भी श्री नाहटाजीने ही दिया। तत्पश्चात् गुजरातकी लोक-जिह्वा पर चढ़े हुए रूपांदेके भजन एवं पद हैं या नहीं, इसकी खोज अपने हाथमें लेनेका मुझे स्मरण है।

इसके बाद पड़दा गिरा! बरसके बरस व्यतीत हो गये। मानों सम्पर्क ही टूट गया हो। पत्र-व्यवहार बन्द हो गया था। फिर भी विस्मृत नहीं हुए थे।

आदरणीय श्री नाहटाजीको जब कभी गुजरातका कोई मिलता तो आप उससे पूछते कि 'चन्दर-वाकरजी क्या करते हैं? लोक-गीत किम्वा लोक-वार्ताओंका सम्पादन करते हैं?'

मेरे एक मित्रने श्री नाहटाजीको उत्तर दिया कि "इन दिनोंमें तो उनकी कहानियाँ ही प्रसिद्ध हो रही हैं।"

"आप उन्हें मेरे नामसे कहें कि लोक-साहित्य एकत्रित करना चालू रखें। करने योग्य कार्य यही है।"

श्री नाहटाजीका मुझे उपर्युक्त सन्देश प्राप्त हुआ। किन्तु वास्तवमें तो मैं वहाँ कहानियाँ लिखने हेतु ही लोक-साहित्यका चयन करने गया था। वहाँ नमाज पढ़ते हुए मुझसे मस्जिद ही चिपट गई। मेरे लेखनसे मुझे ऐसा प्रतीत होने लगा। एकांकी लिखना तो लगभग छूट ही गया था। लघु-वार्तायें लिखी जा रही हैं किन्तु, निरूपण स्वरूप ताजगी प्राप्त नहीं हुई। ऐसा मुझे क्षोभ एवं असन्तोष रहता है। कहानियाँ लिखी जा रही हैं किन्तु, लोक-जीवनकी—लोक-साहित्यके संग्रह हेतु मैं भटक रहा हूँ। आबूसे दमण गंगा तक! और द्वारिकासे दाहोद तक! अनेक मानवीयोंसे मिलना होता है। उनमें व्यापारी, कारखानेवाले, कृषक लोग, खेतिहर लोग, शिक्षक, सरकारी तन्त्रके अधिकारीवर्ग, सम्पादक वर्ग, सम्वाददाता लोग, मजदूर लोग, चोर एवं बाबू लोग और स्त्री-समाजमेंसे भी अनेकानेक! ये लोग मुझमें सतत चेतना जागृत कर मुझे हैरान—परेशान करते रहते हैं। मुझसे यह राम-कहानी अपने स्नेही एवं हितेच्छु श्री नाहटाजीसे नहीं कही जाती और न मुझसे सही भी जाती।

लोक-साहित्यके कार्यार्थ आज मैं सौराष्ट्र विश्वविद्यालयमें जा बैठा हूँ। किन्तु, फिर भी चारणी-साहित्यकी हस्तलिखित प्रतियोंके मध्य स्थानीय ऐतिहासिक-सामग्रीके ढेरके मध्य पशु-पालकोंकी डाँणियोंके इहवृत्तके मध्य अमेरिकी अध्यापकके साथ स्व० मेघाणीकी कर्म-भूमिमें भटकते-भटकते शिरपर Folklore of Gujarat की तलवार लटक रही है। तिसपर भी क्षेत्र संशोधनके कार्य हेतु भटकते समय मिल गये दरबारश्री सातामाई खाचर, सुरिंग मामा जैसे पात्र। ये न तो कहीं विश्राम लेने देते हैं और न ही 'अंगद-विष्टि" का सम्पादन-कार्य पूर्ण करने देते हैं।

फिर भी माननीय श्री नाहटाजीकी ओरसे प्रेषित शुभेच्छा-पूर्ण वाणी मेरे कानोंमें गूँजती ही रहती है कि, "लोक-साहित्यकी खोजमें अपना समय लगाओ।"

वयोवृद्ध परिजनवत् हैं, सतविचार—"सेवी हैं, गुणी-जन हैं, विद्वान हैं, सारशोधक संशोधक हैं साहित्यके—लोक साहित्यके और धर्मशास्त्रके।

तब आप मुझे मिले नहीं थे। फिर भी मैंने इन्हें पत्र लिखनेका साहस कर लिया कि, "चन्दर ऊग्ये-चालवू" नामक गीत कथायें Ballads संग्रह प्रकाशित हो रहा है। अतः आप इसकी प्रस्तावना लिख भेजें।"

आपकी ओरसे मुझे तुरन्त ही उत्तर प्राप्त हुआ कि "अवश्य"।

उस उमंग, उस साहस और उस आकांक्षाको मनके गह्वरमें ही रखना पड़ा क्योंकि, प्रकाशन संस्था चाहती थी कि ग्रन्थ दस-बारह दिनोंमें ही बाजारमें आ जाय। मैं उन दिनोंमें गाँधी जन्मभूमिमें था और

वहींसे दौड़कर अहमदाबाद पहुंचा। दिनभर कार्यालयमें बैठकर छपे हुए पृष्ठोंका प्रूफ देख-देखकर शीघ्र ही उन्हें छाप देने हेतु देता रहा। परिणामस्वरूप यह पुस्तक एक पारिवारिक समान वयोवृद्ध, सन्मित्र, ज्ञानवान, संशोधक एवं पीठ पण्डितकी प्रस्तावनाके बिना ही मुद्रित हो गई।

श्री नाहटाजी उदार निकले और मैं कैसा ? इसपर विचार करते ही कमकमाटी छूट पड़ती है। वे दानश्री निकले और मैं नादान ! वे बरस गये किन्तु मैं उस वर्षाको झेल नहीं सका ! 'चन्दर उग्यूं चालवु' उनकी बिना प्रस्तावनाके ही प्रकाशित कर दिया गया। किन्तु मुझपर उन (श्री नाहटाजी)का एक बहुत बड़ा ऋण कि यह ग्रन्थ आपको अर्पण न करनेसे मुझे थकावट एवं उत्साहहीनता प्रतीत होने लगी।

इस घटनाके बाद भी हमारे मध्य पत्र-व्यवहार चलता ही रहा। आपके हस्ताक्षर 'अति सुवाच्य' होनेके कारण एकाध बार मुझे स्पष्ट रूपसे लिख देना पड़ा कि आप तो दुस्तर नहीं किन्तु आपके अक्षर मुझे दुस्तर प्रतीत होते हैं। इसके बादसे ही श्री नाहटाजीके पत्र या तो टंकित किये हुए या किसी अन्य द्वारा लिखाये गये रूपमें मिलने लग गये।

ई० सन् १९६८ का वर्ष, राजस्थान साहित्य एकादमीका एवार्ड मिला तब मेरे मनमें विचार उठा कि यह श्री नाहटाजीको मिलेगा। मैं ध्रांगध्रासे उदयपुर गया। कार्यक्रमके दिन संध्या समय मैंने श्री नाहटा-जीके दर्शन किये। प्रौढ़ एवं वृद्धजनकी कल्पना तो किये हुए था ही। गुणज्ञता एवं धैर्य तो आपके लेखोंसे ज्ञात होता था किन्तु आपकी सादगीकी मुझे कल्पना ही नहीं थी। घुटनोंके ऊपर तककी लाँग लगाई हुई धोती, मलमलका कुरता पहने हुए और ऊँची मारवाड़ी पागको धारण किये हुए एवं कपालपर केशरका तिलक तथा पाँवोंमें देशी जूते पहने हुए, श्यामवर्णी काया और भरावदार शरीर ! इस तनमें लोक-साहित्या-लंकारका प्रखर व्यक्तित्व दृष्टिगत हुआ। संशोधककी तीव्र एवं तीक्ष्ण दृष्टि प्रतीत हुई। महामानवता, प्रेम, उत्साह और सरलता आपमें टपक रही थी। वाणीमें माधुर्य, वणिक् धर्मकी साक्षी पूर्ण करनेवाले नजर आये। ऐसे साधु, शाह-सौदागर और संशोधकके दर्शन कर मैं पावन हुआ और कितनी ही बातें कीं।

हाँ, यह तो कहना भूल ही गया कि आपने बीचमें एक बार अपने संशोधन-लेखोंकी एक पुस्तिका Monogra मुझे भेजी थी, स्मरण है। उसे आज भी सुरक्षित रखे हुए हूँ। वह मेरे लिये एक सन्दर्भ-सूचीके समान है।

सन् ६९ से सौराष्ट्र विश्वविद्यालयमें गुजराती लोक साहित्यके रीडर पदपर मैं आमन्त्रित किया गया, तभीसे हमारे मध्य इस कार्यार्थ पत्र-व्यवहारकी वृद्धि हुई है। 'अंगदविष्टि'की हस्तलिखित प्रतिकी खोजमें श्री० नाहटाजी भी थे। इसकी एकसे अधिक हस्तलिखित प्रतियाँ हमे सौराष्ट्र विश्वविद्यालयके चारणी-साहित्यके हस्तलिखित ग्रन्थ-भण्डार हेतु मिली हैं। श्री नाहटाजी द्वारा प्रेरित किये जानेपर ही अब उसकी सूची आदिका भार उठा लिया है।

बीचमें यह कहना तो रह ही गया। सौराष्ट्रके चारण एवं चारणी-साहित्यपर एक निबन्ध लिखकर उसे साइक्लोस्टाइल द्वारा मुद्रित कराकर मैंने सभी मित्रों एवं स्नेहियोंको संशोधन एवं परिवर्द्धन हेतु भेजा था। उस समय सर्वप्रथम अपने विचार भेजनेवाले श्री नाहटाजी ही थे। तब मैं समझ सका कि आप चारणी साहित्यके उपासक-प्रहरी हैं। आपने इस सम्बन्धमें मुझे कुछ रचनात्मक टिप्पणियाँ भी भेजीं।

अन्तमें मैं जब ध्रांगध्रा था, तब मेरे एक विद्यार्थी जिन्हें अपने निजी कार्यार्थ बीकानेर जाना था, को मैंने वहाँ श्री नाहटाजीसे मिलनेको कहा। वे भाई, आपसे मिलकर आये। इनपर नाहटाजीका अच्छा प्रभाव पड़ा। इन्होंने जो कुछ मुझे बताया उसे मैं यहाँ व्यक्त कर रहा हूँ—"मैं उनसे, उनके ग्रन्थभण्डारमें

मिला। आप शरीरपर धोती पहने हुए थे। वेश आपका बिल्कुल सादा था। हस्तलिखित पुस्तकोंके आपके चारों ओर ढेर लगे हुए थे। आप नीचा शिर किये हुए उन हस्तलिखित पुस्तकोंमें कुछ न कुछ पढ़ते ही रहते हैं। कल्पना ही नहीं की जा सकती कि आप ही श्री नाहटाजी होंगे। मैं जब आपसे मिला तो इन महापण्डितने प्रेम एवं ममतापूर्ण मेरा सत्कार किया। मुझे आप एक प्रेमी, सज्जन एवं उद्यमशील वयोवृद्ध पण्डित प्रतीत हुए।"

इस प्रकारके उद्यमशील, प्रेमी, कार्यनिष्ठ, सात्विक एवं धर्मशील संशोधकको धर्मशास्त्र, मध्यकालीन मारू-भाषा साहित्य और लोक-संस्कृतिके समुद्धारार्थ परम कृपालु प्रभु पूरे सौ शरदका आयुष्य प्रदान करें। यही मेरी ईश-प्रार्थना है।

मरु-भूमिमें विकसित यह पुष्प स्थायी रूपसे महकता रहे और तरोताजा बना रहे। यही शुभेच्छा है।

●

सरस्वती के अनन्य सेवक

सिद्धान्ताचार्य पं० के० भुजबली शास्त्री

सरस्वतीके अनन्य सेवक श्री अगरचन्दजी नाहटाका और मेरा परिचय एवं सम्बन्ध लगभग ३५ वर्षोंसे है। यह सम्बन्ध सर्वप्रथम शोध-सम्बन्धी श्रेष्ठ त्रैमासिक पत्र "जैनसिद्धान्तभास्कर" से हुआ। उन दिनों, मैं आरा (बिहार) के सुप्रसिद्ध "जैनसिद्धान्तभवन"में पुस्तकालयाध्यक्ष पदपर काम करता रहा। इसी संस्थाकी ओरसे उपर्युक्त "जैनसिद्धान्तभास्कर" प्रकाशित होता रहा। इस त्रैमासिक पत्रका कुल कार्य मुझे ही देखना पड़ता था। "जैनसिद्धान्तभास्कर"में नाहटाजी भी लिखते रहे। अतः इस सम्बन्धमें आपके साथ मैं बराबर पत्र व्यवहार करता रहा।

सन् १९३६ में, एक आवश्यक कार्यवश मुझे जयपुर जाना पड़ा। वहाँपर मैं एक मास तक ठहरा रहा। इसी बीचमें मैं उदयपुर, जोधपुर और बीकानेर आदि राजस्थानके प्रमुख नगरोंको देखनेको गया। जोधपुरसे बीकानेर सुबह पहुँचा। उस समय मैं रेलवे स्टेशनसे सीधा राजकीय धर्मशालामें जाकर ठहरा। हाँ, बीकानेर मेरे पहुँचनेकी सूचना मैंने नाहटाजीको पहले ही दे दी थी। करीब सुबह ९ बजे, नाहटाजी मुझे देखने वास्ते धर्मशालामें पहुँचे। वहाँपर थोड़ी देर इधर-उधरकी बातें हुईं। फिर नाहटाजी साग्रह मुझे अपने घरपर लिवा ले गये। वहाँपर उन्होंने ३-४ रोज तक, सानन्द मुझे अपने आतिथ्यमें रखा और वहाँके राजमहलसे लेकर राजकीय, शैक्षणिक, धार्मिक और सामाजिक सभा संस्थाओंको दिखलाकर, उन संस्थाओंका परिचय कराया। नाहटाजी मिलनसार व्यक्ति हैं। इस प्रवासमें मुझे कई बातोंका अनुभव हुआ। उन अनुभवोंमें राजस्थानमें पानीके अभावका अनुभव भी एक था। नाहटाजी से मेरा प्रत्यक्ष परिचय इसी बार हुआ।

यद्यपि नाहटाजी एक व्यापारी परिवारमें जन्म लिये हैं, परंतु आपका सारा समय सरस्वती-सेवामें ही व्यतीत होता है। प्रायः प्रत्येक जैन पत्र-पत्रिकाओंमें बराबर मैं आपका लेख देख रहा हूँ। इसी प्रकार कतिपय जैनेतर पत्रोंमें भी। मुझे आश्चर्य होता है कि नाहटाजी इतने लेख कैसे लिख लेते हैं।

लेख भी विविध विषयोंपर। नाहटाजी बड़े परिश्रमी आदमी हैं। हर समय आप खोजमें ही लगे रहते हैं। विविध विषयोंमें आपकी गति है। नाहटाजी को अन्वेषणमें बड़ा प्रेम है। साथ ही साथ आपकी स्मरणशक्ति बहुत मजबूत है। इसके बिना इतना काम नहीं हो सकता। १९३६ के बाद नाहटाजी आरा और कलकत्तामें दो-तीन बार मिले। मेरे साथ उनका पत्रव्यवहार तो बराबर चलता रहा है।

इस समय आपका सम्मान किया जाना सर्वदा समुचित है। विद्वानोंका सम्मान होना ही चाहिए। मेरी हार्दिक शुभभावना है कि नाहटाजी दीर्घकाल तक नीरोग रहकर इसी प्रकार निरंतर, निरंतराल सरस्वतीकी पवित्र सेवा करते रहें।

●

अमितशोध-सामग्रीके भण्डार श्री अगरचन्द नाहटा

डॉ० कन्हैयालाल सहल

आजसे लगभग बीस वर्ष पहले राजस्थानी कहावतों-संबंधी अपने शोध-प्रबंधके हेतु सामग्री एकत्र करनेके लिए मैं बीकानेर गया था। जब मैं पहले-पहल श्री नाहटाजीसे मिला तो मैं उनके व्यक्तित्वसे अत्यंत प्रभावित हुआ। मैंने सुन रखा था कि वे शोध-सामग्रीके भण्डार हैं, बहुत ही सहृदय व्यक्ति हैं तथा शोधार्थियोंकी सहायता करनेके लिए अनुक्षण तैयार रहते हैं। नागरी प्रचारिणी आदि सुप्रसिद्ध पत्रिकाओंमें मैंने उनके अनेक शोधपूर्ण लेख भी पढ़ रखे थे। खुमाणरासो आदिके संबंधमें उन्होंने महत्त्वपूर्ण विचार प्रकट किए थे, जिससे हिंदी साहित्यके इतिहास-लेखकों और शोध-विद्वानोंका ध्यान उधर सहज ही आकृष्ट हुआ था। परिणामस्वरूप हिंदी साहित्यके आदिकालका पुनः परीक्षण होने लगा और उसके पुनर्विवेचनकी आवश्यकता प्रतीत होने लगी।

मैंने देखा कि राजस्थानका ही नहीं, बल्कि देशका एक प्रसिद्ध शोधक विद्वान् अपने पुस्तकालयके कक्षमें बड़े सादे लिबासमें बैठा हुआ है। बातचीतमें भी कहीं दर्प उनको छू तक नहीं गया है। आलस्य उनमें नाम मात्रका भी नहीं। उन्होंने अपना एक भवन ही पुस्तकालय और वाचनालयको अर्पित कर दिया है, जहाँ शोधार्थी छात्र और विद्वान् आते रहते हैं और उनके विशाल पुस्तकालयसे लाभान्वित होते हैं। जहाँ अन्यत्र कोई ग्रंथ उपलब्ध नहीं होता, वह श्री नाहटाजीके पुस्तकालयमें प्राप्त हो जाता है। किसी ग्रंथका नाम बताते ही, वे अपना अन्य कार्य छोड़कर भी शोधार्थीके लिए वह ग्रंथ यथाशीघ्र उपलब्ध करनेमें जुट जाते हैं। असंख्य महत्त्वपूर्ण पांडुलिपियाँ उनके पुस्तकालयको सुशोभित कर रही हैं। प्रायः देखा जाता है कि जिन विद्वानोंके पास पांडुलिपियाँ होती हैं, वे शोधार्थियोंके पास पांडुलिपियाँ भेजते नहीं किंतु श्री नाहटाजीकी इस संबंधमें उदारता बेमिसाल है क्योंकि डाक द्वारा भी वे अनुसंधित्सुओंको अपनी पांडुलिपियाँ भेजते रहते हैं जो शोधार्थी उनके यहाँ पहुँच जाता है, उसकी तो वे सभी प्रकार सहायता करते हैं। उसे तनिक भी कठिनाई हुई तो वे उसके निराकरणमें जुट जाते हैं।

राजस्थानी कहावतोंके संबंधमें संस्कृत, पालि, प्राकृत, अपभ्रंश, हिंदी—सभी संबद्ध और आवश्यक पुस्तकें उन्होंने मेरे लिए सुलभ कर दीं। इतना ही नहीं, कहावतोंके जो हस्तलिखित संग्रह उनके पास थे,

वे भी मेरे प्रयोगके लिए, बिना किसी हिचकिचाहटके, प्रस्तुत कर दिए। शोध-प्रबंधकी रूप-रेखा आदिके संबंधमें भी उनसे पूरा विचार-विमर्श होता रहा और मैंने उससे पर्याप्त लाभ उठाया।

श्री नाहटाजीके अथक परिश्रमको देखकर मेरी आँखें खुल गईं। मैं अपने तईं यह समझा करता था कि पढ़ने-लिखने में मैं बहुत परिश्रम करता हूँ और मेरा जीवन बड़ा ही सुव्यवस्थित और नियमित है। किंतु श्री नाहटाके अनवरत स्वाध्याय और उनकी श्रमशीलताको देखकर मैं चकित रह गया। मैंने भोजनके बाद भी उन्हें कभी विश्राम करते हुए नहीं पाया। आजकल भी उनके यहाँ प्रातः ४ बजेसे लेकर रातको १० बजे तक काम चलता रहता है। रोज कई घण्टे तो केवल पत्र लिखनेमें व्यतीत होते हैं। ६० पत्रिकाओंमें लगभग १०० लेख सदा भेजे हुए रहते हैं और अनवरत नए तैयार होते रहते हैं।

'मरु-भारती' के संबंधमें भी श्री नाहटाजीसे निरंतर परामर्श मुझे मिलते रहते हैं। वे यह देखकर क्षुब्ध होते हैं कि जितना काम मुझे करना चाहिए, प्रशासनिक-व्यस्तताके कारण उतना काम मैं कर नहीं पाता। उनका सात्विक आक्रोश भी मेरे लिये बड़ा मधुर होता है और अंतमें चलकर उपादेय ही सिद्ध होता है।

जब राजस्थानी लोक-कथाओंके मूल अभिप्रायोंका मैं अध्ययन करने लगा और इस संबंधमें मेरी कुछ पुस्तकें भी प्रकाशित हुईं तो उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई। राजस्थानी लोक-कथाओंके विशेष संदर्भमें जब कथानक रूढ़ियों के व्यापक अध्ययनको ही मैंने अपने डी० लिट्० का विषय चुना और वह राजस्थान विश्वविद्यालय द्वारा स्वीकृत भी हो गया तो श्री नाहटाजीकी प्रबल इच्छा हुई कि मैं उनके पास जाकर बीकानेर रहूँ और अपने शोध-प्रबंधको पूरा कर लूं। इसमें कोई संदेह नहीं कि जब कभी यह सुयोग मुझे मिलेगा, श्री नाहटाजीके प्रोत्साहन और उनके द्वारा अमित शोध-सामग्रीकी सुलभताके कारण यह शोध-प्रबंध भी सुचारु रूपसे लिखा जा सकेगा।

श्री नाहटाजीके व्यक्तित्वका एक रूप वह भी है जब वह कुछ समय आसाम आदिकी ओर जाकर व्यापार-व्यवसायमें अर्थार्जन करते हैं। इस प्रकार उपार्जित अर्थका वे जो सदुपयोग करते हैं, वह उनके निकटस्थ मित्रोंको भलीभाँति विदित है।

श्री अगरचन्दजी नाहटा बहुत ही संस्कार-सम्पन्न, सहृदय, सेवाभावी और स्वाध्यायी व्यक्ति हैं। कल्याण आदि अनेक पत्र-पत्रिकाओंमें उनके नैतिक मूल्य विषयक लेख छपते रहते हैं, जिनसे उनके अंतरंगकी झाँकी मिलती रहती हैं।

न जाने कितने शोधक छात्रों और विद्वानोंने उनके पुस्तकालयसे लाभ उठाया होगा, न जाने अपने हाथसे कितने प्रेरक पत्र श्री नाहटाजीने अन्य शोधार्थियोंको लिखे होंगे और न जाने राजस्थानी और हिंदीके साहित्य-भंडारकी अभिवृद्धिके लिए उनके कितने लेख अब तक प्रकाशित हो चुके होंगे। हाँ, उनके अक्षरोंको पढ़ना अवश्य एक टेढ़ी खीर है। किसी पांडुलिपिको पढ़कर उसका अर्थ लगाना शायद सरल है किंतु उनके चींटीकी-सी टाँग वाले अक्षरोंको पढ़ना एक दुष्कर व्यापार है। ऐसा याद पड़ता है कि डॉ० दशरथ शर्माने एक बार मुझे लिखा था—श्री नाहटाका पत्र आता है तो पहले दिन दो एक वाक्य पढ़कर छोड़ देता हूँ, फिर दूसरे दिन कुछ वाक्य पढ़ता हूँ—इस तरह उनके पत्रको पढ़नेमें दो-तीन दिन लग जाते हैं। निश्चित रूपसे श्री नाहटाजीके अक्षरोंमें बाबत मैं अतिशयोक्ति कर रहा हूँ किंतु कभी-कभी अतिशयोक्ति बिना कांम चलता नहीं। और फिर शेक्सपियरके जगत्प्रसिद्ध नाटक Hamlet में कभी पढ़ा था—बड़े आदमियोंके अक्षर ऐसे

ही होते हैं। गांधीजी कौनसे अच्छे अक्षर लिखते थे और पं० महावीर प्रसादजी द्विवेदीकी हस्तलिपि भी क्या सुन्दर कही जा सकती है।

जो भी हो, श्री नाहटाजी अपने अनुपम गुणोंके कारण अत्यंत अभिनंदनीय हैं और ऐसे व्यक्तित्वका जितना सम्मान किया जाय, थोड़ा है। भगवानसे मेरी यही हार्दिक प्रार्थना है कि श्री अगरचन्दजी नाहटा ताधिक वर्षों तक जीवित रहकर शोध-जगत्को समृद्ध करते रहें।



राजस्थानकी साहित्यिक विभूति

स्वामी श्री मंगलदासजी

युग-युगान्तरोंसे हमारा यह आर्य संस्कृतिका जन्मदाता महान् भारत देश भू-मण्डलमें अपना विशेष स्थान रखता आया है। यह पुण्यश्लोक पावनदेव अपने अनेक प्रदेशोंको अपने अंचलमें लिये हुए है। उन प्रदेशोंमें अपनी विविध विशेषताओंके कारण हमारा यह राजस्थान प्रदेश भी हरण गौरवशाला व समाद रणाप प्रथम पंक्तिमें अपना विशेष स्थान रखता है। राजस्थानकी वैसे तो ख्याति वीरप्रसवाके रूपमें है—पर इस पावन भूने जिस प्रकार अनेक शौर्यशाली वीरोंको जन्म दिया—उसी तरह इस भूमिमें दानी-त्यागी, तपस्वी-भक्त, महात्मा, विद्वानों, कवि, रचनाकार, प्रभावी शासक, पतिव्रताओं व सतियोंको अगणित संख्यामें जन्म दिया है। राजस्थानमें संस्कृत, प्राकृत, डिंगल, पिंगलमें रचित व अप्रकाशित इतना प्राचीन साहित्य है, जिसका कि अभी हमारे देशके साहित्यिकोंको ही पूरा पता नहीं है। इस ओर अभी जिस प्रकारका ध्यान दिया जाना था वैसा ध्यान नहीं दिया गया है। खेद है कि इस उदासीनताके कारण दिन प्रतिदिन प्राचीन साहित्यका लोप होता जा रहा है। मूर्तियाँ, चित्र तथा अन्य कलाकृतियोंकी चोरी तथा प्राचीन साहित्यका व्यापार जोरोंपर है, जिससे इस अनुपम निधिको दिन-दिन क्षति पहुँच रही है। इनकी रक्षाके लिए सतत् जागरूक प्रहरी चाहिये, जैसे कि हमारे चरित-नायक नाहटाजी हैं। इन प्राचीन साहित्यके परमोपासक, विनीत, मृदुभाषी, निरभिमानी, सतत साहित्य साधकके मानी नाहटाजीको जन्म देनेका गौरव इसी राजस्थानकी भूमिको है। नाहटाजीकी जन्मस्थलीकी महत्ताका महत्त्व प्राप्त हुआ—राठौर कुलभूषण महाराज बीकाजी द्वारा स्थापित बीकानेर नगरको। नाहटाजीने अपनी उत्कृष्ट विविधताओंसे जन्मदाता नगरके गौरवको गौरवशाली बनानेमें अपना अथक प्रयोग किया है व कर रहे हैं।

व्यक्तित्व

नाहटाजी बहुत ही सादगीप्रिय व्यक्ति हैं। उनकी वेषभूषा परम्परागत सामाजिक रीतिके अनुसार है। यदि कोई अपरिचित व्यक्ति पहली बार नाहटाजीसे साक्षात् करेगा तो शायद वह उनकी उस मारवाड़ी वेशभूषाको देखकर इस भ्रान्तिमें उलझेगा कि क्यों? साहित्य का अनन्य उपासक तथा प्राचीन साहित्यकी खोजमें अनवरत अपनेको लगनेवाला यही व्यक्ति है? उनकी पगड़ी-धोती-कुरता-साफा-कोट उन्हें सीफो रूपमें एक व्यावसायिक व्यक्ति प्रकट करता है न कि कोई उच्चकोटिका साहित्यप्रेमी। उनका बाल्यकाल व शिक्षा-दीक्षा बीकानेर नगरमें ही हुई। उनका परम्परागत व्यावसायिक धंधा है। तदर्थ उनका आवागमन कलकत्ता आदि भारतके प्रमुख नगरोंमें भी होता रहा है। आरंभसे ही उनमें साहित्य अनुशीलनकी अभिरुचि

भी थी—वही अभिरुचिकाल पाकर वर्धित होती गई जिसने आगे चलकर उन्हें प्राचीन साहित्यकी सेवा कार्यमें तत्पर किया। आपका स्वभाव अत्यन्त सरल तथा कोमल है। नम्रता तो आपके कूट-कूटकर भरी हुई है। एक बार जो व्यक्ति आपसे मिल लेता है वह सब ही दिनके लिए आपका हो जाता है। अहंकारका तो आपमें लेश भी नहीं है—सीधी-सादी भाषामें आपसे वार्त्ता करते हुए व्यक्तिमें आपके प्रति आत्मीय भावना स्वतः ही बिना प्रयास घर कर लेती है। आपका द्वार सबके लिए समानसे खुला रहता है। साधारणसे साधारण जिज्ञासु तथा बड़ेसे बड़े साहित्यिकके साथ मानवीय व्यवहारमें किसी प्रकारका भेद आपसे नहीं बनेगा। शोध-छात्रोंके लिए आपका सहयोग सर्वदा सुलभ रहता है। साहित्यप्रेमियों, साहित्यलेखकों, सम्पादकों, साहित्य-मर्मज्ञोंके लिए आपका घर उन्हींके घरके समान उपयोगमें आता है। समागत अतिथियोंका सम्मान भारतीय परम्परानुसार अत्यन्त सौहार्दपूर्ण भावनासे किया जाता है। आपका शान्त विनीत मृदुल स्वभाव हर अपरि-चितको अपनी ओर आकर्षित कर लेता है। आपके पूरे व्यक्तित्वके महत्त्वको शब्दों द्वारा व्यक्त कर सकना शक्य नहीं है। यही कहना अभीष्ट है कि आप महान् व्यक्तित्वके धनी हैं।

साहित्यसाधना

नाहटाजीका मुख्य विषय साहित्यसाधना है, वे पर्याप्त समयसे इसी कार्यमें लगे हुए हैं। अपने इस लक्ष्यपूर्तिके लिए न मालूम कैसे-कैसे प्रयास किये व कठिनाइयोंसे संघर्ष किया है। जहाँ भी उन्हें ज्ञात हुआ कि अमुक जगह अमुक रचना प्राप्य है आप तभीसे उसके अवलोकन व पाण्डुलिपिके प्रयासमें लग जाते हैं उस रचनाका वहाँ जाकर अवलोकन करते हैं जिसके पास वह है उसकी प्रतिलिपिकी व्यवस्था करते हैं। आपके इस प्रयाससे अनेकों रचनाग्रन्थ जो कि बिना जानकारीके संसारसे ओझल थे, वे प्रकाशमें आये। वैसे आपने प्राचीन जैनसाहित्यकी रचनाओंका अपने यहाँ अच्छा संग्रह किया है तथा उसके विषयनिमें अब भी लगे हुए हैं। जैनसाहित्यकी अनेक रचनाओंका सम्पादन कर उनको फिर जीवनप्रकाशका उत्कृष्ट प्रणाम है कि आपका साहित्यसाधनाका लक्ष्य कितना उच्चकोटिका है। आपके इस ग्रन्थागारमें न केवल जैन रचनाओं-का ही संग्रह है अपितु उसमें सन्त साहित्य-डिंगल कवियोंकी रचनाओं प्रख्यात खाते तथा पिंगलकी रचनाओंका भी उपयुक्त संग्रह है। आपने जिस तरह जैन साहित्यका सम्पादन कर उनको सुरक्षित किया उसी तरह अन्य साहित्यकी रचनाओंका सम्पादन कर उन्हें भी नवजीवन प्रदान किया है।

इस सम्पादन कार्यके साथ-साथ आपने साहित्यिक प्रामाणिक पत्रिकाओंमें शोधमय लेख भी लिखकर साहित्यसेवियोंको नई-नई जानकारी देनेका कार्य भी जारी रखा है। आपके अनेकों लेख तो अनुपलब्ध साहित्य रचनाओंके परिचयात्मक विवेचन हैं जिससे रचनाकार-रचना तथा रचनाकालका सम्यक् बोध प्राप्त होता है। आप वैसे राजस्थानके साहित्य गगनके उदीयमान नक्षत्र ही नहीं हैं अपितु आप तो अब हमारे अन्तः भारतीय साहित्य जगत्के साहित्यकोंकी उच्चश्रेणीमें समाविष्ट हैं। राजस्थानकी वे सर्वसंस्थायें जो साहित्यके संरक्षणके प्रकाशन-संग्रह कार्यमें संलग्न हैं आपके अनुभव व विवेकका पूरा-पूरा लाभ उठानेमें सर्वदा तत्पर रहती हैं। आप राजस्थान प्राच्य विद्यामन्दिरकी समितिके सम्माननीय सदस्य हैं। वैसे ही आप साहित्य अकादमीके भी मान्य सदस्य हैं। इसी तरह जो-जो ऐसी अन्य संस्थाएँ हैं, जो कि साहित्यिक कार्यमें लगी हुई हैं आपका उनसे भी किसी न किसी रूपमें सम्बन्ध बना हुआ है—किसीके आप मान्य लेखक हैं तो किसी के आप सहायक हैं, किसीके ग्राहक हैं, किसीके सहयोगी हैं। आप सद्गृहस्थ तथा कुटुम्बीजन हैं अतः आपको उन सब कर्त्तव्योंका वहन करना पड़ता है—साथ ही अपने प्रमुख लक्ष्य—साहित्य उपासनामें किसी प्रकार कमी या बाधा न आने देना आपका व्यावहारिक वैशिष्टय है।

प्राचीन साहित्यकी पाण्डुलिपियोंका प्रदेश भेद तथा लेख कापी विभिन्नताके कारण अध्ययन मनन सहज साध्य नहीं है इसके लिए धैर्यके साथ तन्मयतासे अपनेको सूझ-बूझके साथ लगाना पड़ता है ? प्रत्येक शिक्षितज्ञ है तौ भी इसमें सफल होना संभव नहीं है। विविध प्रवृत्तियोंमें प्रवृत्त नाहटाजीकी इस क्षेत्रमें सफलताका श्रेय उनकी अत्यधिक लगन व तत्परताको है। वे समाजसेवक गृहस्थ भी है इन सबके साथ-साथ वे एक निष्ठावान् साहित्यसेवी भी हैं। अपर क्षेत्रोंका भारवहन करते हुए उनने जिस प्रकारसे जितना कार्य प्राचीन साहित्यकी सेवाका किया है उसके उदाहरण बहुत ही कम देखनेमें आते हैं। वेधी तथा स्मार्तके धनी हैं जिससे उनका साहित्यिक ज्ञान सुस्थिर व स्थायी है। प्राचीन साहित्यकी पाण्डुलिपियोंमें कभी-कभी कई तरहकी उलझनोंका सामना करना पड़ता है। किसी पांडुलिपिमें रचनाकारका नाम नहीं है तो किसीमें रचनाकाल नहीं है। किसीमें रचनास्थानका उल्लेख नहीं है तो किसीमें पाण्डुलिपि करने वालेका नाम व कालके उल्लेखका अभाव होता है। ऐसी रचनाओंको उक्त प्रकारकी उलझनोंको सुलझानेके लिए कैसा और कितना प्रयास करना होता है इसकी जानकारी उन्हींको ज्ञात है जो स्वयं प्राचीन साहित्यकी सेवामें संलग्न हैं।

नाहटाजीमें उक्त कार्यके लिये अदम्य उत्साह है वे इस प्रसंगमें किसी भी बाधा से न तो घबराते हैं न ही अनुत्साहित होते हैं—वे सिर्फ तथा अपनी ऊहनासे सब प्रकारकी बाधाओंपर विजय पा लेते हैं। वे अपने आपमें एक सच्चे साहित्यसाधक हैं। वे चिरकाल तक इस साहित्यसाधनामें लगे रहें ताकि प्राचीन साहित्य-की सुरक्षा सेवा इनसे बराबर बनती रहे।

सम्पादन व खोज पूर्णलेख

नाहटाजीने, जैसा कि मैंने ऊपर उपयुक्त किया है कि वे न केवल प्राचीन साहित्यके संग्रहप्रेमी हैं अपितु उनका लक्ष्य है उस साहित्यको प्रकाशमें लाकर उसे सुरक्षित कर देना, तदर्थ सम्पादन-प्रकाशनकी आवश्यकता होती है। अपने बलबूतेपर ही इन उभय कार्यों (सम्पादन-प्रकाशन)की पूर्तिका भी पूरा प्रयास करते हैं। आपने अनेक ग्रंथोंका सम्पादन भी किया है तथा प्रकाशन भी। प्राचीन साहित्यकी जैसे-जैसे नवीन पांडुलिपियों-की प्राप्ति होती है उनकी प्रतिलिपि करा कर संग्रहीत करना तथा समय-समयपर उन प्राप्त ग्रन्थोंके परिचया-त्मक निबन्ध लेख उन शोध पत्रिकाओंमें प्रकाशित करना जिससे साहित्यप्रेमियों व साहित्यिकों को नवीन ग्रन्थ व रचनाओंका पता लगता रहे। प्रकाशनमें अंशकी आवश्यकता होती है, सभी परिचयात्मक लेख लिखनेसे पहले गहराईसे अनुशीलनकी आवश्यकता रहती है। साथ ही रचनाके पूर्वापरका गहराईसे ग्रन्थन कर ग्रन्थगत रहस्यका पता लगाया जाता है। नवीन रचनाओंके परिचयात्मक लेखोंमें कभी-कभी ऐसे मौके भी आ जाते हैं कि उसके सही निष्कर्ष तक पहुँचना काफी कठिनाईपूर्ण हो जाता है। उस स्थितिमें अपनी सूझ-बूझसे ही अपना दृष्टिकोण अभिव्यक्त करना पड़ता है—और तथ्य निर्णयके लिए अन्य प्रमाणोंकी तलाश करनी पड़ती है। फिर भी कुछ बातें ऐसी रह जाती हैं जिनको संशयात्मक स्थितिमें ही रख देना पड़ता है। जिन सज्जनोंने नाहटाजीके इस प्रकारके निबन्ध पढ़े हैं वे कह सकते हैं कि उनका इस विषयके प्रयास कितना महत्त्वपूर्ण है। अस्तु नाहटाजीकी कार्यपद्धति व उनका प्राचीन साहित्यके लिये कितना अगाध स्नेह है उसका पूरा विवरण शक्य नहीं है क्योंकि हृदयगत भावोंको उसी रूपमें व्यक्त कर सकना कठिन समस्या है। इन पंक्तियोंसे हम नाहटाजीके साहित्यक्षेत्रमें किये जाने वाले प्रयासोंका संक्षेपमें दिग्दर्शन मात्र विशेष है विशेष अनुमानसे ज्ञातव्य है।

कामना

नाहटाजीके अभिनन्दनका संकल्प करनेवाले सज्जन अत्यन्त धन्यवादके पात्र हैं। क्योंकि उन्होंने एक

अतीव औचित्यपूर्ण आवश्यक कार्यकी ओर समुचित ध्यान दिया है। साहित्य क्षेत्रका कार्य एक कठिन साधना है—सर्वसाधारण उस काम व प्रयासकी जानकारीसे अपरिचित रहते हैं। साहित्यप्रेमी ही साहित्यसेवीका सच्चा मूल्यांकन कर सकता है। आजका युग भौतिक व अर्थ प्रधानताका युग है। इसमें ज्ञानका महत्त्व आज तो यह आभाणक सर्वतोभावेन मान्य है।

सर्वे गुणा: काञ्चनमाश्रयन्ति

मनुष्यके सर्वगुण विधा तथा शालीनता अर्थके पर्याय है। गुण विधामें शालीनताकी बजाय अर्थके महत्व-को सर्वोपरि स्थान प्राप्त है। विद्वानोंकी साहित्य-सेवियोंकी-श्रेष्ठ व सज्जन पुरुषोंकी समाजमें जैसी मान्यता होनी चाहिये वह नहीं है। अत: ऐसे कालमें जो सज्जन इस ओर ध्यान देते हैं तथा प्रयास करते हैं वे स्तुत्य हैं। वे एक ऐसे आवश्यक कार्यकी पूर्ति करते हैं जिससे हमारे इतिहास, हमारी सभ्यताका पूरा-पूरा सम्बन्ध जुड़ा हुआ है। जो समाज अपने विद्वानों साहित्यसेवियोंका समादर करता है। उनके महत्वको स्वीकार करता है वह समाज अपने अस्तित्व व महत्ताकी पूर्ति करता है, राजस्थानमें आज भी ऐसे अनेकानेक मौन साहित्यसाधक हैं जिनका हमें ठीकसे परिचय नहीं है। उनको भी प्रकाशमें लानेकी आवश्यकता है। हमारे समाजकी साहित्य संपत्तिके ये ही सच्चे प्रहरी हैं जो अनवरत अपने प्रयासोंसे उस दुर्लभ महान संपत्तिका संरक्षण व विवेचन करते है, हमारी उनके लिये यही कामना है कि वे दीर्घकाल तक अपनी महती सेवा द्वारा साहित्यक सम्पत्ति-का विवेकन व संरक्षण करते रहें। नाहटाजी भी उन्हीं साहित्य साधकोमें हैं अत: वे स्वस्थ व दीर्घ-जीवी होकर अपने लक्ष्यमें तत्पर होकर प्राचीन साहित्यके अन्वेषण-संरक्षण, विवर्धनमें अपना चिर साहित्य प्रदान करते रहें।

●

विरोधाभासोंका समन्वय

श्री शोभाचन्द्र भारिल्ल

श्री और सम्पत्तिके विरोधका मथन करके जिसने अपने जीवन द्वारा अनेकान्तवादको समर्थन प्रदान किया और चिररूढ़ इस विरोधकी धारणाका निराकरण किया, उस महान् व्यक्तित्वका अभिनन्दन करना अपने आपमें कितना आनन्ददायक है। श्री नाहटाजी के अभिनन्दनका शुभ संकल्प सर्वप्रथम जिनके मनमें उत्पन्न हुआ, वे भी अभिनन्दनीय बन गए।

चार दशाब्दियोंसे भी अधिक समय बीत गया। बीकानेरमें उनसे मेरा प्रथम साक्षात्कार हुआ। शुद्ध स्वदेशी बीकानेरी वेष-भूषा, सिरपर पगड़ी, गलेमें दुपट्टा, बंद गलेका कोट और दोनों लांघकी धोती! साहित्यिकका कोई लक्षण नजर नहीं आया। चित्तपर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा। उस समय कल्पना ही नहीं आई कि साधारण प्रतीत होने वाले इस व्यक्तिमें असाधारण व्यक्तित्व छिपा है, बीकानेरकी भोगभूमिमें रहते हुए भी इसका अन्तस् साहित्यके संसारमें रमण कर रहा है और सरस्वतीकी उपासनामें तन्मय है।

तब से अब तक लगातार नाहटाजी के सम्पर्क में हूँ। अनेकों बार साक्षात्कार हुआ है। उनकी बहुमुखी और महत्त्वपूर्ण साहित्यिक कृतियोंसे परिचय रहा है। जैसा-जैसा परिचय प्रगाढ़ होता गया, उनकी सादगी, सरलता, अन्तरकी स्वच्छता, निष्कलुषता और संवेदनशीलताके साथ-साथ उनकी प्रगाढ़ विद्वत्ता,

व्यापक प्रतिभा और असीम साहित्यानुरागकी आह्लादक अनुभूतियाँ वृद्धिगत होती गयीं। आज कौन नहीं जानता कि नाहटाजी विविध विद्याओंके वारिधि हैं, जैनसिद्धान्तशास्त्रके आचार्य हैं, इतिहास और पुरातत्त्व संबंधी शोधमें अग्रसर हैं।

सच तो यह है कि नाहटाजी का व्यक्तित्व इतना विराट् है कि शब्दोंकी परिधिमें वह समा नहीं सकता। राजस्थानी और जैन-साहित्यके लिए उनकी देन बहुमूल्य है। वे व्यक्ति नहीं संस्था हैं, यह कहना भी उनके लिए हल्का पड़ता है। अभय जैन ग्रंथालय जैसी विशाल संस्थाके संस्थापक और संचालक तो वे हैं ही, इससे भी अधिक उन्होंने उसका स्वयं उपयोग किया है, उसमें अन्तर्निहित अमूल्य रत्नोंको सर्वसाधारणके समक्ष प्रस्तुत किया है और शताधिक अन्वेषकों एवं जिज्ञासुओंका प्रशस्त पथप्रदर्शन किया है।

साहित्यिक संस्थानोंकी स्थापना करने वाले अनेक श्रीमन्त हो सकते हैं, साहित्यके मुद्रणमें भी अनेकोंने आर्थिक योग दिया है, अनेक दे रहे हैं, परन्तु क्या नाहटाजी उनकी श्रेणीमें हैं? सरस्वतीकी श्रीवृद्धि करनेमें उन्होंने सर्वतोभावेन समग्र जीवन सर्मपित किया है। इस दृष्टिसे वे अपनी श्रेणीमें अकेले ही हैं। उनकी समता कहीं दृष्टिगोचर नहीं होती। 'सागरः सागरोपमः' यह उक्ति उनके जीवनपर पूर्णरूपसे चरितार्थ होती है।

कैसा अद्भुत व्यक्तित्व है नाहटाजी का! अनेक विरोधाभास उसमें किस खूबीके साथ समन्वित हो गये हैं! पुरातनता और नूतनताका समन्वय उनमें देखनेको मिलता है। श्रद्धा और विवेकपूर्ण तर्कका एकीभाव कम महत्त्वपूर्ण नहीं। उलूकवाहनी और हंसवाहनीमें सख्यभाव स्थापित करनेमें उन्होंने कमाल हासिल किया है।

निःसन्देह नाहटाजी न केवल जैनसमाजके गौरव हैं, न सिर्फ राजस्थानकी प्रतिभाके प्रतीक हैं, वरन् समग्र भारतके साहित्यसेवियोंके लिए भी अभिमानकी वस्तु हैं। इस अनूठे व्यक्तित्वका अभिनन्दन करना एक पवित्र कर्त्तव्यका पालन करना है। हार्दिक कामना है कि नाहटाजी चिरजीवी हों और उनकी सेवाएँ चिरकाल तक देशको उपकृत करती रहें।

●

सरस्वतीके अनन्य उपासक

श्री दशरथ ओझा

सन् १९५० की एक सुखद घटना है। संस्कृत, प्राकृत और हिन्दी नाटकोंपर शोधकार्य कर रहा था। कतिपय प्राचीन नाटक कहीं उपलब्ध नहीं हो रहे थे। अपने सुहृद विद्वद्वर डॉ० दशरथ शर्माके सामने मैंने अपनी समस्या रखी। उन्होंने मुझे श्री अगरचन्द नाहटा बीकानेरका पता बताया और परिचयके लिए एक पत्र भी दिया। मैं वह पत्र लेकर बीकानेर पहुँचा। नाहटोंके गुवाड़में ऊँची-ऊँची अट्टालिकायें दिखाई पड़ीं। एक भव्य भवनके द्वारपर पहुँचा। द्वारपर एक व्यक्तिने मेरा स्वागत किया और मुझे दूसरी मंजिलपर श्री नाहटाजी के पास पहुँचा दिया। नाहटाजी उस समय प्राकृतकी एक पांडुलिपिको पढ़नेमें संलग्न थे। मैंने अपना परिचय दिया। उन्होंने जिस आत्मीयतासे मेरा स्वागत किया वह आज भी हृदयपर अंकित है। सरस्वतीके इस उपासकके स्नेह-सौजन्यपर मैं मुग्ध हो गया। उन्होंने मुझे साथ लेकर अपना विशाल पुस्तकालय दिखाया। एक बड़े विस्तृत 'हाल' का कोना-कोना प्राचीन एवं नवीन पुस्तकोंसे भरा पड़ा था। उससे

संलग्न अनेक कमरोंमें चारों ओर पुस्तकोंका विपुल भंडार भरा था। कई कमरोंमें प्राचीन हस्तलेख पांडुलिपियाँ ताड़पत्रोंपर लिखी हुई दिखाई पड़ीं। सभी आलमारियोंको पुस्तकें एवं पांडुलिपियाँ सुशोभित कर रही थीं। ऐसा प्रतीत होता था कि हम किसी विश्वविद्यालयके ग्रंथागारमें पहुँच गए हों। मुझे उस समय और भी आश्चर्य होता था जब वह मेरी आवश्यकताके अनुसार संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश और हिन्दीके नाटकोंको अविलम्ब सामने लाकर रख देते थे। मेरी ऐसी दशा हो गई जैसी राजस्थानके प्यासे पथिककी जलाशय मिलनेपर होती है। वह यही चाहता है कि सारा सरोवर एक घूँटमें पी डालूँ।

नाहटाजी की संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, राजस्थानी आदिकी ज्ञान-राशि देखकर प्राचीन उद्भट आचार्य हेमचन्द्रकी स्मृति आ रही है। आचार्य हेमचन्द्रको उपर्युक्त सभी भाषाओंपर पूरा अधिकार था। उन्होंने जिस भाषाके साहित्यपर लेखनी उठाई उसी भाषाके साहित्यको पराकाष्ठा तक पहुँचा दिया। नाहटा जीने अपना जीवन उसी आचार्यकी परम्परामें ढाल लिया है। इनकी बहुज्ञताका प्रमाण देखना हो तो इनकी रचनाओं और विशेषकर विभिन्न पत्रिकाओंमें प्रकाशित लेखोंको देखना चाहिए। इनके लेखोंका वैविध्य देखकर आश्चर्य होता है। भारतीय दर्शनोंमें नाहटाजी की गहन पैठ है। ऐसा प्रतीत होता है कि इन्होंने भारतीय दर्शनोंका कोना-कोना छान डाला है। जैन, बौद्ध, शंकर, अद्वैत, विशिष्टाद्वैत, शुद्धाद्वैत दर्शनोंका इन्होंने अनेक बार स्पष्टीकरण किया है। भक्तोंके वैष्णव-दर्शन, कबीरादि सन्तोंकी निर्गुण उपासना, प्रेमाश्रयी कवियोंकी सूफी साधना तथा अन्य विविध साधना-पद्धतियोंका इन्होंने गहराईमें पैठकर अध्ययन किया है। वह जिस दर्शनका सैद्धान्तिक विवेचन करने लगते हैं उसीमें अपने प्रातिभ ज्ञान और गहन अध्ययनके बलपर अन्य दार्शनिकोंसे आगे निकल जाते हैं। इसका एक कारण है। इन्हें ज्ञानोपार्जनकी ऐसी सच्ची लगन है जो इन्हें अहर्निश अध्ययनकी प्रेरणा देती रहती है। विभिन्न दार्शनिक सिद्धान्तोंके तुलनात्मक अध्ययनसे इनकी बुद्धि इतनी प्रखर हो गई है कि दिव्य आलोकमें वह दर्शनशास्त्रके सूक्ष्मातिसूक्ष्म रहस्योंको अनायास देख लेते हैं।

दार्शनिक सिद्धान्तोंके विश्लेषण और उनका साहित्यमें प्रयोग तो नाहटाजीकी अनेक विशेषताओंमें एक है। हिन्दी जगत्को नाहटाजीका सबसे बड़ा योगदान यह है कि उन्होंने अपभ्रंश, अवहट्ट और प्राचीन हिन्दीके ऐसे शताधिक ग्रन्थोंको पाठकोंके सम्मुख रखा जिनका किसीको ज्ञान भी नहीं था। विस्मृत रासो परम्पराका पुनरुद्धार नाहटाजीके ही प्रयासोंका फल है। उन्होंने ऐतिहासिक रासोका प्रकाशन कर रास साहित्यकी अमूल्य गुप्त निधिका उद्घाटन किया। उन्हींसे प्रेरणा प्राप्त कर रास एवं रासान्वयी काव्योंका विधिवत् परीक्षण एवं विश्लेषण किया गया। सन् ५६-५७में इन्हीं रास ग्रन्थोंके सम्बन्धमें पुनः बीकानेर गया। वहाँ लगभग एक महीना ठहरा। नाहटाजीके पास अनेक प्राचीन रास ग्रन्थोंकी पांडुलिपियाँ मिलीं। नाहटाजीको प्राचीन पांडुलिपियोंको पढ़नेका अद्भुत अभ्यास है। राजस्थानमें हस्तलिखित ग्रन्थोंका अतुल भंडार गाँव-गाँवमें छिपा पड़ा है। नाहटाजीको इस बिखरी ग्रन्थ राशिका पूरा ज्ञान है। अनुपलब्ध हस्तलिखित ग्रन्थों की प्राप्तिके उनके निजी स्रोत हैं, जिनके द्वारा वह प्राचीन पांडुलिपियोंका प्रतिवर्ष संग्रह करते रहते हैं।

नाहटाजीका संग्रहालय भारतकी अमूल्य निधि है। किसी राज्य सरकारकी सहायताके बिना ही इतना विशाल संग्रहालय निर्मित करना नाहटाजी जैसे सरस्वतीके अनन्य उपासकके लिए ही सम्भव है। जो कार्य नागरी प्रचारिणी सभाने अनेक व्यक्तियोंके सहयोग और राज्यकोशकी सहायतासे काशीमें सम्पन्न किया, उसी कार्यको राजस्थानमें एक व्यक्तिने एकमात्र अपनी साधनासे परिपूर्ण किया। काशी नागरी प्रचारिणी सभासे मेरा सम्बन्ध वर्षोंसे चला आ रहा है। पं० रामनारायण मिश्र, बाबू श्यामसुन्दर दास, ठा० शिवकुमार सिंह, रायकृष्ण दास प्रभृति समर्थ हिन्दी समर्थकोंने जो कार्य राज्यसरकारकी सहायतासे किया उसे एकाकी

नाहटाजीने अपने ही साधनोंके द्वारा सम्पन्न किया। यदि उनको सरकारी साधन प्राप्त हो जाएँ तो सैकड़ों अलभ्य ग्रन्थ विस्मृतिके गर्त्तसे बाहर निकाले जा सकते हैं।

नाहटाजीने तपस्याकी अग्निमें अपनेको तपा डाला है। उनका जीवन जैन मुनियोंकी तरह तपोमय बन गया है। धर्ममें उनकी दृढ़ निष्ठा है। सदाचारके नियमोंकी अवहेलना उन्हें खलती है। साहित्य और दर्शनको वह जीवनके उन्नयनका साधन मानते हैं। वह जो कुछ लिखते हैं उसमें समाजके विकासकी ओर मूलतः दृष्टि रहती है। उनकी साहित्य साधना अन्य किसी फलको लक्ष्यमें रखकर नहीं होती। समाजके हितमें वह अपना हित समझते हैं। समाजके चरित्र-विकासमें वह अपना विकास मानते हैं। प्राचीन ऋषियों-की वाणीको सर्वजन सुलभ करना उनके जीवनका लक्ष्य है।

नाहटाजीने अपने पैतृक व्यवसाय व्यापारकी उपेक्षा की। सरस्वतीकी उपासनामें लक्ष्मीकी ओरसे तटस्थ हो गए। कलकत्ता एवं आसाममें इनका बहुत बड़ा व्यापार है पर इन्हें करेंसी नोट गिननेकी अपेक्षा प्राचीन पांडुलिपियोंके पन्नोंकी गणनामें अधिक आनन्द आता है। जिस परिवारपर लक्ष्मीका सदा वरद-हस्त रहा हो, उसका एक साधक निर्लोभ और निर्लिप्त भावसे सोलह-सोलह घण्टे निरन्तर सरस्वतीकी उपासनामें लगा रहे, यह आश्चर्यका विषय नहीं तो क्या है ? इसीका परिणाम है कि उनका जीवन तपोमय बन गया है। कहा जाता है कि "विद्या ददाति विनयं विनयाद्याति पात्रताम्"—नाहटाजी विनम्रताकी मूर्ति हैं। गहन तत्त्वचिन्तकके समान वह बहुत ही मितभाषी हैं। विद्यासे विनीत बननेवाले तो अनेक मिलेंगे किन्तु विनयसे ऐसी पात्रताकी उपलब्धि विरलोंमें होगी जो सभी सद्गुणोंके आधार बन सके।

नाहटाजीकी स्मृति आते ही कार्य करनेकी प्रेरणा मनमें हिलोरें लेने लगती है। आपके सम्पर्कमें आकर अनेक व्यक्तियोंने परिश्रमका पाठ पढ़ा। आपकी कर्मठताके अनेक प्रमाण हैं। प्राचीन साहित्य पर शोधकार्य करनेवाले प्रत्येक छात्रको किसी न किसी रूपमें आप सहायता पहुँचाते हैं। शोधसामग्रीका तो प्रचुर भण्डार आपके पास भरा पड़ा है। शोधार्थी उस ज्ञान सरोवरमें छककर पान करता है। सबकी जिज्ञासाओंका समाधान आप प्रस्तुत करते हैं। सबके प्रश्नोंका तुरन्त उत्तर देते हैं। अलभ्य पुस्तकों एवं पत्रिकाओंसे आवश्यक अंश उद्धृत कर शोधार्थीके पास भेजनेको सदा तत्पर रहते हैं। इनके शोधसम्बन्धी लेख देशकी अनेक पत्रिकाओंमें प्रायः प्रतिमास प्रकाशित होते हैं। आश्चर्य होता है कि आप इतना कार्य एक साथ कैसे कर लेते हैं।

इन सब गुणोंके अतिरिक्त उनकी एक बड़ी विशेषता है निरभिमानता। वह जिज्ञासु एवं शोधार्थीको यह भान नहीं होने देते कि वह किसी प्रकार अल्पज्ञ है। सबके स्वाभिमानका ध्यान रखते हुए वह ज्ञानार्जन-का सुगम मार्ग बताते हैं। प्राचीन महर्षियोंकी पद्धतिका अनुसरण करनेवाला बीकानेरका यह सन्त ज्ञान-विज्ञानकी मूर्ति, विनयकी प्रतिमा, परहितचिन्तनमें सदा संलग्न, सरस्वतीका उपासक दीर्घजीवी रहे यही हार्दिक कामना है। देशकी साहित्यिक संस्थाएँ सामूहिक रूपसे हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनके वार्षिकोत्सव पर इनका अभिनन्दन करें यही मेरा प्रस्ताव है।

●

'स्वाध्यायान्मा प्रमद' के मूर्तस्वरूप नाहटाजी

श्री सौभाग्यसिंह शेखावत

राजस्थानके उच्चकोटिके वयोवृद्ध विद्वान् श्री अगरचन्दजी नाहटा बहुमुखी प्रतिभाके धनी हैं। प्राकृत, अपभ्रंश, राजस्थानी, गुजराती और हिन्दी भाषाओंपर आपका समान रूपसे अधिकार है। प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थोंकी लिपियों, शिलाखण्डोंपर उत्कीर्ण लेखों, ताम्रपत्रों और पत्र-फरमानोंको खोज निकालने तथा पढ़नेमें आप विचक्षण मतिके व्यक्ति हैं। राजस्थान, गुजरात, मालवा और हरियाणाके जन-संकुल नगरोंकी संकीर्ण गलियोंमें स्थित अंधेरे तलगृहोंमें जीवनके अन्तिम श्वास गिनते तथा दूर-दूरके कस्बोंमें पंसरियों की हाटोंमें कौड़ीके मोल बिकते ग्रंथ-रत्नोंके उद्धारकके रूपमें नाहटाजी चिर-परिचित मनीषा हैं। अन्वेषण और लेखनमें अहोरात्र संलग्न रहनेकी नाहटाजीमें अद्वितीय लगन है।

मेरा उनसे साक्षात्कार सर्वप्रथम कलकत्तासे प्रकाशित 'राजस्थान' और 'राजस्थानीय' शोध पत्रिकाओंके माध्यमसे हुआ। यद्यपि उनके दर्शनका अवसर तो 'राजस्थान साहित्य एकादमी' की स्थापनाके बाद एकादमीके उद्घाटन समारोहपर उदयपुरमें ही मिला। परन्तु उनकी साहित्य साधनासे इससे पूर्व ही परिचित हो चुका था।

तरुणाई, प्रौढ़ता और वृद्धता तीनों अवस्थाओंमें वे एकनिष्ठ लगनसे साहित्य-साधनामें रत रहते आ रहे हैं। समयका सदुपयोग करनेवाला ऐसा व्यक्ति मैंने अपने जीवनमें अन्य नहीं देखा। एकादमीके उद्घाटन-के बाद तो उनसे मेरा सम्पर्क घनिष्ठ होता गया। एकादमीकी सरस्वती सभाके सदस्यके नाते परस्पर मिलने और साथ-साथ बैठकोंमें भाग लेने तथा साहित्यिक योजनाओं पर विचार-विमर्श करनेके कारण उनकी स्पष्ट और बेलाग विचारधारासे मैं प्रभावित हुआ। विवादास्पद प्रसंगोंमें भी वे शान्त, धीर गम्भीर निर्णय लेते हैं। अपरिचितसे परिचय बढ़ाकर उसको आत्मीय बनाना नाहटाजीकी प्रकृतिका सहज अंग है। यही नहीं श्री नाहटाजी कभी किसीसे राग-द्वेष और दुराव-छिपाव नहीं रखते। उनके संग्रहालयमें जो पुस्तक-निधि है, उसका उपयोग कोई भी साहित्यकार चाहे जब कर सकता है—कोई बन्धन नहीं, कोई बाधा नहीं और कोई नियम नहीं।

मैं बीकानेरमें उनसे जब कभी भी मिला प्राचीन ग्रन्थोंके पत्रोंको टटोलते, ग्रन्थ परिचय लिखते और शोध-विद्वानोंके पत्रोंका उत्तर देते ही उनको पाया।

नाहटाजीमें अन्तरंग और बहिरंग दोनोंमें सदैव एकरंग और एकरस व्यक्तित्व है। अपने अभय जैन ग्रन्थागार पुस्तकालयमें और प्रवासकालीन साहित्यिक सभा-सम्मेलनोंमें उनके आचारण और व्यवहारमें कभी कोई अन्तर मैंने नहीं देखा।

मुझे उनके साथके दो प्रसंगोंका स्मरण आता है। महाराणा कुंभा चतुर्थ शताब्दी समारोहका प्रथम त्रिदिवसीय अधिवेशन उदयपुरमें हो रहा था। महाराणा भगवतसिंहजीने उसका उद्घाटन किया था और नाहटाजीने उसकी अध्यक्षता की थी। उस अधिवेशनमें 'महाराणा कुंभा और उनके डिंगल गीत' शीर्षक एक निबन्ध मैंने भी पढ़ा था। सम्मेलनकी द्वितीय दिनकी कार्यवाहीके सम्पन्न होनेपर विद्वानोंने नाहटाजी-को घेर लिया। मैं उनसे शोध पत्रिकाके लिए निबंधके विषयमें बात करना चाहता था परन्तु वे अत्यधिक व्यस्त थे। तब मैंने उनसे दूसरे दिन मिलनेका समय चाहा। उन्होंने अगले दिन प्रातः सात बजे मिलना तय किया। मैं डॉ० महेन्द्र भानावतको साथ लेकर सुबह उनके प्रवासकालीन आवास-स्थानपर पहुँचा तो पता चला कि वे सात बजकर पाँच मिनट तक हमारी प्रतीक्षा करते रहे और फिर एक स्थान पर हस्तलिखित

ग्रन्थ देखने चले गये हैं। डॉ० भानावत और मैं एक क्षण मौन मन ही मन उनकी समयकी पाबंदी पर विचार करते रहे और फिर आतिथेयको बिना कोई सूचना दिये लौट गए।

ग्यारह बजे महाराणा कुंभा शताब्दिक समारोह स्थल पर जब वे पहुँचे तो सर्वप्रथम हमारे पास आये और कहा—"आपकी प्रतीक्षा की।" आप जब नियत समय पर नहीं पहुँचे तो मैं हस्तलिखित ग्रन्थोंका संग्रह देखने चला गया। चार घंटेमें मैंने अज्ञात ७ ग्रन्थ खोज निकाले।" उसी समय मुझे सहसा 'स्वाध्या-यान्मा प्रमद' का मन्त्र याद हो आया और लगा कि स्वाध्यायसे कभी प्रमाद मत करो का रहस्य नाहटाजीने समझा है। सच तो यह कि नाहटाजी 'स्वाध्यायान्मा प्रमद' के स्वयं मूर्तिमन्त रूप हैं।

दूसरा प्रसंग है बीकानेरका। मैं राजस्थान शोध संस्थान चौपासनीकी त्रैमासिक पत्रिका 'परम्परा' के 'राजस्थानी रूक्के परवाने' अंककी सामग्रीका चयन करनेके लिए पुरालेखा विभाग, बीकानेर गया था। मैंने नाहटाजीको जोधपुरसे प्रस्थान करनेके दो दिन पूर्व मेरी बीकानेर यात्राकी सूचना भेजी थी। बीकानेरमें मैंने ग्रीन होटलमें अपना सामान रखा और पुरालेखा विभागकी राह पकड़ी।

पुरालेखा विभागमें तब स्व० नाथूरामजी खड्गावत निदेशक थे। वहाँ पहुँचते ही मैंने उनके कार्यालयमें प्रवेश किया और जोधपुरसे बीकानेर आनेका अपना मन्तव्य प्रकट किया। खड्गावतजीने मेरी ओर एक सरसरी नजरसे देखते हुए तपाकसे उत्तर दिया—"मैं आपको पहिचानता नहीं। राजस्थान पाकि-स्तानके सीमान्तका प्रान्त है। पाकिस्तानके एक गुप्तचरने राजस्थानके प्राचीन दस्तावेजोंकी प्रतिलिपियाँ प्राप्त करनेकी कोशिश की थी तबसे हम किसी अपरिचितको ऐसी सुविधा प्रदान नहीं करते।" मैं एक क्षण स्तब्ध रहा। फिर उनसे कहा बीकानेरमें प्रो० विद्याधरजी शास्त्री, प्रो० नरोत्तमदासजी स्वामी और श्री अगरचन्दजी नाटहासे मेरा परिचय है। इनमेंसे जिसके लिए भी आप कहें, मैं अपना पहिचान पत्र ले आऊँ। नाहटाजीका नाम सुनकर उन्होंने फिर मेरी और देखा और कहा—"आप नाहटाजीको कैसे जानते हैं?" मैंने विनम्रतापूर्वक कहा—"मैं पिछले एक दशकसे कुछ लिखता-पढ़ता रहा हूँ। इसलिए नाहटाजीसे मेरा परिचय है।" तब तक उन्होंने मेरा नाम नहीं पूछा था। मैंने अपना नाम बताया तो वे झट पलंगसे उठे और मुझसे हाथ मिलाते हुए बोले—"आपने मुझे पहिले अपना नाम क्यों नहीं बताया। मैंने आपका नाम खूब सुना है। कल रात्रिको ही आकाशवाणी जयपुरसे आपकी वार्ता-राजस्थानी ख्यातोंमें सांस्कृतिक जीवनकी झलक' सुनी है। आपका आलेख मुझे पसन्द आया।"

पुरालेखा विभागके रियासती पत्रालयका अवलोकन कर मैं सायंकाल होटलमें आया और भोजन करके अभय जैन ग्रन्थालय पहुँचा। नाहटाजीके पास ६०-७० पत्र-पत्रिकाएँ बिखरी पड़ी थीं। मुझे देखते ही बोले, "अभी शाम-की गाड़ीसे आए हैं?" मैंने कहा, "मैं तो सुबह ही आ गया था और आते ही पुरालेखा विभाग चला गया।" "आपने अपना सामना कहाँ रखा?" मैंने कहा, "होटल में।" होटलका नाम सुनते ही नाहटाजीने तत्काल मनमें कुछ पीड़ा-सी महसूस करते हुए कहा—"वहाँ क्यों रखा? क्या यहाँ आपका घर नहीं था? अभी चलो और सामान यहाँ ले आओ।" मैंने कई प्रकारके तर्क दिये परन्तु मेरी एक भी दलील उनको प्रभावित नहीं कर सकी। और सुबह मुझे होटल छोड़कर उनके ग्रन्थागारमें ही बिस्तर लगाना पड़ा।

मैं चार दिन उनके यहाँ रहा और उनके साथ ही भोजन किया। वहाँ भी मैंने उनके प्रत्येक कार्यमें नियमितता देखी। नियत समय पर प्रातः मन्दिर जाना, फिर आगत पत्रोंके उत्तर देना, आगन्तुक शोध विद्यार्थियोंसे उनके शोध-विषय पर वार्तालाप करना और उनके उपयोगकी सामग्रीकी सूचना देना उनका प्रतिदिनका कार्य था।

अज्ञात नये कवियों, लेखकों तथा उनकी कृतियोंको खोजना और उनपर निबन्ध लिखना नाहटाजीके जीवनका अनिवार्य अंग और मनका व्यसन बन चुका है। वे जिस तन्मयतासे लिखते हैं उसी आत्मीयतासे दूसरे लोगोंको लिखनेके लिए प्रोत्साहित भी करते रहते हैं। वे जब किसी विद्वानको पत्र लिखते हैं तो एक ही पत्रमें कितने ही कार्योंकी जानकारी माँग लेते हैं। उत्तरदाताके प्रमादसे पूछे गए एक भी प्रश्नका उत्तर छूट गया तो वे तुरन्त पुनः पत्र लिखकर पूछते हैं।

मैं राजस्थानी शोध संस्थान, चौपासनीमें शाहपुर राज्यका ऐतिहासिक रेकर्ड लाया था। नाहटाजीको जब यह सूचना मिली तो वे बहुत प्रसन्न हुए और तत्काल मुझे पत्र लिखकर कहा—"शाहपुराकी तरह राजस्थानके दूसरे ठिकानोंका संग्रह भी आपको चौपासनीमें ले आना चाहिए। हमारी यह निधि नष्ट हो जायेगी। आपका राजस्थानके जागीरदारों-सरदारोंसे अच्छा परिचय है।"

उन बातोंको चार साल बीत गए। अब भी वे महीनेमें एक बार मुझे वह बात लिख ही देते हैं। इस प्रकार ग्रन्थोंको नष्ट होनेसे बचानेके लिए वे सतत प्रयत्नशील रहते हैं। पिछले ४५ वर्षोंमें नाहटाजीने तीन-चार हजारके लगभग शोध निबन्ध लिखे हैं और ३५ हजार हस्तलिखित ग्रन्थोंका संग्रह किया है। अनेक महत्त्वपूर्ण पुस्तकोंका सम्पादन किया है।

यद्यपि साहित्य-जगत्में नाहटाजीको जैन-साहित्यके अधिकारी विद्वान्के रूपमें अधिकतर पहचाना जाता रहा है, परन्तु वस्तुतः वे प्राकृत, अपभ्रंश, राजस्थानी और गुजरातीके भी अध्येता विद्वान् हैं। अज्ञात ग्रन्थों और साहित्यकारोंके परिचयकी दृष्टिसे तो वे एक चलते-फिरते पुस्तकालय कहे जा सकते हैं। राजस्थानको अपने इस सरस्वतीपुत्र पर गर्व है और राजस्थान भारतीको उनसे बहुत आशाएँ हैं।

•

साहित्य तपस्वी श्री नाहटाजी

डा० मनोहर शर्मा

वैसे मेरा सम्पर्क तो सुप्रसिद्ध साहित्य-संशोधक श्री अगरचंदजी नाहटाके साथ १९३७ से ही बना हुआ है परन्तु उनसे साक्षात्कार सर्वप्रथम सन् १९४७में ही हो सका और वह भी एक नाटकीय ढंगसे। उन दिनों मैं जयपुरमें बिसाऊ-हाउसमें रहता था और ठाकुर साहबके बालकोंका 'गार्डियन-ट्यूटर' था।

एक दिन लगभग ग्यारह बजेका समय था और मैं किसी कार्यवश डेरे (बिसाऊ-हाउस) के फाटकसे बाहर निकला। मैं दीवारके पास लघुशंका करनेके लिए बैठा कि एक लम्बा-चौड़ा व्यक्ति, धोती और लम्बा सफेद कोट धारण किए हुए तथा बीकानेरकी ओसवाली शैलीकी पगड़ी बाँधे हुए मेरे पास ही आकर खड़ा हो गया। वह व्यक्ति मेरे उठनेकी प्रतीक्षामें था और जब मैं खड़ा हुआ तो उसने डेरेमें रहनेवाले मेरे ही नामके व्यक्तिसे मिलनेकी इच्छा प्रकट की। मैंने आश्चर्यके साथ उसे ऊपरसे नीचे तक गहरी नजरसे देखा परन्तु सम्पूर्ण स्मृतिको समेटने पर भी उसे पहिचान न पाया। ऐसी स्थितिमें मैंने कुछ मुसकराकर उसका शुभ नाम पूछा तो तत्काल उसके मुखसे निकला—"म्हारो नांव अगरचंद है।" इसी क्रममें मैंने भी तत्काल उत्तर दिया कि जिस व्यक्तिसे आप मिलना चाहते हैं, वह मैं स्वयं ही हूँ। इतना कहना था कि श्री नाहटाजी-

ने मुझे दोनों हाथोंसे छातीसे लगाकर ऊँचा उठा लिया। साहित्य-क्षेत्रमें इतने लम्बे समयसे कार्य करते रहने-पर भी ऐसा स्नेह-सम्मेलन प्राप्त करनेका मुझे दूसरा कोई अवसर प्राप्त नहीं हो सका है।

फिर मैं श्री नाहटाजी को लेकर अपने कमरेमें आ गया और बहुत देर तक साहित्यिक-विषयोंपर वार्तालाप होता रहा। श्री नाहटाजी की यह विशेषता है कि जब कभी वे किसी नगरमें जाते हैं तो वहांके सभी साहित्य-सेवियोंसे मिलना, उनकी प्रगतिका परिचय प्राप्त करना, उन्हें प्रेरणा देना वे अपना एक आवश्यक कर्तव्य समझते हैं।

[२]

श्री नाहटाजीके साथ मेरी आत्मीयता बढ़ती ही गई। मैं जब कभी किसी कार्यसे बीकानेर आता तो उन्हींके श्री अभयजैन ग्रंथालयमें डेरा डालता और लगभग सारा ही समय विविध ग्रंथोंके अवलोकन या टिप्पणी-लेखनमें लगाता। एक दिन मैं अकेला पुस्तकालयमें बैठा कुछ लिख रहा था कि पोस्टमैनने श्री नाहटा-जीके नामकी ढेर-सी डाक लाकर वहाँ रख दी। यह सोचकर कि श्रीनाहटाजीकी डाक तो सम्पूर्ण रूपसे साहित्यिक ही होगी, मैं उसे देखने लगा।

एक कार्ड बम्बईसे आया था। उसमें लिखा था—"आपका पत्र मिला परन्तु उसमेंसे कुछ भी नहीं पढ़ा जा सका। बस, इससे अधिक आपको उत्तरमें क्या लिखा जावे?"

दूसरे कार्डमें इस प्रकार लिखा था—"आपका पत्र प्राप्त हुआ। उसमेंसे जो कुछ पढ़ा जा सका, उसका उत्तर नीचे लिखे अनुसार है.....।"

इसके बाद मैंने कोई पत्र नहीं देखा और डाकमें आए पत्र-पत्रिका आदि खोलकर पढ़ने लगा। थोड़ी देर बाद श्री नाहटाजी अपनी हवेलीसे पुस्तकालयमें आए तो मैंने उनके सामने उपर्युक्त पत्रोंकी चर्चा हँसते हुए की। वे सरल-भावसे बोले—"बात ठीक है। म्हारी लिखावट इसी ई है। पण पत्ररो जबाब देवणो जरूरी समझ'र हूं कई पत्र हाथ सूं ई लिख दूं। आज आप तकलीफ करो।"

मैं बड़े उत्साहके साथ उनके पत्र लिखनेके लिए तैयार हो गया। श्री नाहटाजी बोलते थे और मैं लिखता था। एकके बाद दूसरा, इस प्रकार लगभग २० पत्र उन्होंने लिखवाए। उनमें कई कार्ड और कई लिफाफे थे। मेरी तो कमर दर्द करने लगी परन्तु फिर भी मैं पत्र-लेखनका यह कार्य बीचमें न छोड़ सका। जब सभी पत्रोंके उत्तर दिए जा चुके, तब चैन मिला। फिर उस दिन मैं कोई काम नहीं कर सका और भाई मोहनलालजी पुरोहितके घर जाकर, उनसे जैसलमेरी गीत सुनकर ही मैंने अपना दिमाग फिरसे ताजा किया।

इससे प्रकट होता है कि श्री नाहटाजी कितने व्यस्त रहते हैं और पत्र-व्यवहारमें कितने सचेष्ट हैं। वे चाहते हैं कि साहित्यके लिए जितना श्रम वे स्वयं करते हैं उतनी ही मेहनत अन्य साहित्यिक-बंधुओंको भी करनी चाहिए।

[३]

बीकानेरकी 'श्री सादुल राजस्थानी रिसर्च इन्स्टीच्यूट' राजस्थान भरमें सबसे पुरानी साहित्यिक संस्था है। इस संस्थाके द्वारा नवम्बर सन् १९५९में 'पृथ्वीराज जयन्ती'का आयोजन किया गया और समारोहकी अध्यक्षता करनेके लिए मुझे निमंत्रित किया गया। इसी अवसरपर संस्था द्वारा स्थापित 'पृथ्वीराज आसन'से विशेष भाषण भी देना था। इन्स्टीच्यूटके डायरेक्टर श्री नाहटाजी थे। मैं बीकानेर आया और अपनी आदत-के अनुसार इन्स्टीच्यूटका अतिथि न बनकर श्री नाहटाजी का ही मेहमान बना। समारोहका सब काम यथा-विधि सम्पन्न हुआ। एक रात मैं मित्रोंसे मिलकर लगभग ११ बजे श्री अभयजैन ग्रंथालयमें पहुँचा। मैंने वहाँ

देखा कि चारों ओर ग्रंथोंका ढेर लगा था और उनके बीचमें बैठे श्री नाहटाजी अपने अध्ययनमें लीन थे। मैं उनकी निष्ठा और एकाग्रता देखकर दंग रह गया। सारा बीकानेर सुखसे सो रहा था परन्तु वह साहित्य-तपस्वी अपनी साधनामें लीन था। उसकी बिरादरीके अन्य उद्योगपति भी ऐसे समयमें ऐसी ही साधनामें तल्लीन रहते होंगे परन्तु उनके सामने उनके व्यापारिक बही-चोपड़ोंका ढेर रहता होगा न कि हस्त-प्रतियोंका पहाड़।

मैंने श्री नाहटाजीके कार्यमें कोई बाधा नहीं डाली और सोनेके लिए अपने कपड़े ठीक करने लगा। जब श्री नाहटाजीने ग्रन्थका प्रसंग पूरा पढ़ लिया तो वे भी सोनेके लिए अपनी हवेली चले गए। उपर्युक्त प्रसंगमें श्री नाहटाजीकी साहित्यिक-सिद्धिका रहस्य स्पष्ट समझा जा सकता है—जो चलता रहता है, वही अमृतको प्राप्त करता है।

[४]

काफी वर्षों पहिले मैंने पी-एच० डी० हेतु शोध-ग्रंथ लिखनेकी इच्छा की थी परन्तु वह कार्य यों ही छोड़ दिया। फिर भी विविध विषयोंपर लिखनेका कार्य जारी रहा। जब मैं रामगढ़के रूइया कालेजमें आ गया तो डॉ० कन्हैयालालजी सहलने मुझे जगाया कि पी-एच० डी० विषयक कार्य पूरा कर डालना उचित ही है। मैं तैयार हो गया। यह चर्चा सन् १९६३ की है।

मैंने राजस्थानी कहानियोंका विशेष अध्ययन किया था, अतः 'बाल-साहित्य' पर शोधग्रन्थ तैयार करनेका निश्चय किया और सामग्री-संकलन हेतु मैं श्री नाहटाजीके पास बीकानेर आया। मुझे पता था कि राजस्थानी-बातोंसे सम्बन्धित हस्तप्रतियोंका संग्रह बीकानेरमें लगभग पूरा ही प्राप्त हो सकता है। श्री अभय जैन ग्रन्थालयमें अधिकांश बातें नकल करवाकर श्री नाहटाजी कभीसे सुरक्षित कर चुके थे। यह सम्पूर्ण सामग्री मेरे सामने थी परन्तु मैं बीकानेर अधिक समय तक ठहरनेकी स्थितिमें नहीं था। काम लम्बा था और रामगढ़में रहकर ही पूरा किया जा सकता था। मैंने श्री नाहटाजीसे सम्पूर्ण सामग्री अपने साथ ले जानेके लिए इजाजत माँगी तो वे असमंजसमें पड़ेसे प्रतीत हुए क्योंकि वे स्वयं अपने लेखोंमें उसका प्रसंगानुसार प्रयोग करते ही रहते थे। मैंने उनका असमंजस दूर करते हुए कहा—"किसी भी साहित्य-सामग्रीपर उस व्यक्तिका सबसे ज्यादा हक है, जो उसका अध्ययन करना चाहता है। अब आप स्वयं निर्णय कर लीजिए कि आपके ग्रन्थागारमें संचित राजस्थानी बातों सम्बन्धी सम्पूर्ण सामग्री आपकी है या मेरी ?"

श्री नाहटाजी कुछ हँसे और तत्काल बोले—"सारी सामग्री आपकी है, आप इच्छानुसार साथै ले पधारो।" मैं अपने कामकी सम्पूर्ण सामग्री साथ ले आया।

इस प्रसंगसे प्रकट है कि श्री नाहटाजी जिन हस्तप्रतियोंको अपने प्राणोंसे भी ज्यादा प्यार करते हैं, उन्हें वे उपयोगके लिए सुपात्रको देनेमें कभी संकोच नहीं करते परन्तु उन्हें यह विश्वास हो जाना चाहिए कि सामग्री लेनेवाला व्यक्ति वस्तुतः विद्यार्थी है। श्री नाहटाजीकी इस उदारतासे न जाने कितने शोधकर्ता-विद्वान् लाभान्वित हुए हैं और अब भी हो रहे हैं।

आगे जाकर उपर्युक्त प्रसंगने यहाँ तक विस्तार प्राप्त किया कि जब मैं सन् १९६७ में श्री शार्दूल संस्कृत विद्यापीठ, बीकानेरमें आ गया तो श्री नाहटाजीने अपने घरपर यहाँतक व्यवस्था कर दी कि उनकी अनुपस्थितिमें भी जब कभी मैं माँगूँ तो पुस्तकालयकी चाबी तत्काल मुझे दे दी जावे और वहाँकी पुस्तकोंका मैं इच्छानुसार उपयोग करता रहूँ।

●

यत् क्रियते तन्नाधिकम्

श्री नेमिचन्द पुगलिया

श्रुतमिदं च ज्ञातम्, श्रीमद् अगरचन्द नाहटा महोदयानामभिनन्दनं भविष्यति वा करिष्यन्ति जनाः। चिन्तितं चेतसि समाजोऽयं जागृतः। अविस्मृतिरेषा ये सुप्तास्त एव जागृताः, न तु मृताः जागृताः। यत् साहित्योपासकनां, लेखकानां, संशोधकानां, प्रबोधकानां, पाठकानां, प्रचारकाणां, च सामूहिकोऽयं सत्कार समारंभः समायोजितः सहर्ष ससुखम्।

विचारयाम्यहं संशयात्मा किं व्यापारिणोऽपि साहित्यकाराः भवन्ति ? भवन्त्येव नाऽत्र संदेहः। भवतां दर्शनाच्च परिचयात्प्राप्त प्रत्युत्तरोऽहं स्वयमेव।

साहित्यसेविनः स्वाध्यायरसिकाः भवन्त्यत एव भवद्भिः प्रतिदिनं प्रत्यूषसि पंचवादनसमये समुत्थाय घंटात्रयपर्यन्तं नियमितरूपेण क्रियते स्वाध्यायः।

साहित्यस्रष्टारः सोद्यमाः नत्वलसाः लसन्त्यत एव श्रीमद्भिः आबाल्यात् यत् कर्त्तव्यं, यत् स्मर्त्तव्यं, यल्लिखितव्यं, यत् प्रत्युत्तरितव्यं, यत् स्रष्टव्यं, यत् प्रष्टव्यं, यत् संग्रहणीयं, यत् क्रयणीयं, यत् सूचनीयं, यत् विवेचनीयं, यत् संशोधनीयं, यत् प्रबोधनीयं, यत् विश्वसनीयं, यत् निष्कासनीयं, यत् देयं, यदुपादेयं, यत् पठनीयं, यत् पाठनीयं, यत् आचरणीयं, यत् विचारणीयं, यत् वचनीयं, यत् निर्वचनीयं तत्सर्वं न विलम्बा-लम्बनमवलम्बितम्।

साहित्याराधकाः स्वल्पाऽहारिणः संयमित समयाः, परिमितहित खाद्य पेय वस्त्वोपभोक्तार एव ? उपशोभन्ते; अत एव श्रीमन्तो न निशायां दिवसेऽपि वार द्वयादधिकं भुंजते, भोजनमपि सात्त्विकं, न च राजसिकम्।

साहित्यशोधकर्त्तारः सरलात्मानः साधुवेषभूषाऽभिमंडिताः संश्रूयन्त अत एव भवतां वेषोऽपि भारतीयः तस्मिन्नपि राजस्थानीयः, तस्मिन्नपि बीकानेरीयः, तस्मिन्नपि नाधुनिकः, सर्वथा नाहटा परिवार पर-म्परा परिलक्षितः।

साहित्यधनाः अन्यस्मै प्रेरणा-प्रदातारः एव भवन्ति अत एव भवतां प्रेरणया स्थानीयास्तथा परस्था-नीया अनेके छात्राः, अध्यापकाः, शोधकार्यकर्त्तारः, लेखकाः, जिज्ञासवः लाभान्विताः अभूवन्, भवन्ति भवि-ष्यन्ति च नात्र संशयप्रवेशः।

एतादृशानां वयोवृद्धानां अनेक पदाभिलंकृतानां, विद्यावारिधीनाम् इतिहासरत्नानां, सिद्धान्ताचार्याणां, शोधमनीषिणां श्रीमद् अगरचन्द-नाहटा-महोदयानां यावदभिनन्दनं तावन्नाधिकं, किन्त्वल्पमल्पतरमल्पतममेव मन्येऽहमत्र।

•

अनवरत साहित्योपासक

डॉ० लालचन्द जैन

श्री नाहटाजी की साहित्य-साधनासे, उनकी सरल-सौम्य प्रकृतिसे, उनसे प्राप्त अतिशय स्नेह एवं शोध-क्षेत्रमें दिशा-निर्देशनसे मैं सदैव प्रेरणा लेता रहा हूँ। मुझे गर्व है कि उनका कृतिकार, उनका मानव, उनका सम्पूर्ण व्यक्तित्व एक अमित आभा और अनूठी गरिमासे सम्पुटित है, अगणित व्यक्तियोंके लिए प्रेरणा-पुंज है, आदर्श राजपथ है।

सन् १९६६ के ग्रीष्मावकाशने मुझे श्री नाहटाजीसे मिलनेका अवसर दिया। पत्र-व्यवहार सन् १९६४ से ही था क्योंकि मैं "जैन कवियोंके ब्रजभाषा-प्रबन्धकाव्योंका अध्ययन" विषयपर शोधकार्य कर रहा था। इससे पूर्व सन् १९५८-५९में जब मैं एम० ए० का विद्यार्थी था, तब महाराजा कॉलेज जयपुरमें नाहटाजीका एक व्याख्यान हुआ था। उस समय उनके सम्बन्धमें मेरे मानसमें जो चित्र बना, उसे कतिपय शब्दोंमें प्रस्तुत करता हूँ—

एक साथीने मुझसे कहाकि 'आज नाहटाजीका भाषण होगा। बड़े विद्वान् हैं वह। बहुत बड़े आदमी हैं वह''''आदि-आदि'। मैंने सोचाकि नाहटाजी अंग्रेजी पोशाकमें होंगे, अंग्रेजी बाल रखाए होंगे, अंग्रेजियत के रंग-ढंगमें होंगे। लेकिन जब उनके दर्शन हुए तो पाया कि उनके मुखपर घनी मूंछें हैं, सिरपर भारी फेंटा है, लम्बा कुरता है, दुलाँगी धोती है, पैरोंमें जूतियाँ हैं। मैं उनको आश्चर्यके साथ देखता रहा—देखता रहा; उनके सम्बन्धमें सोचता रहा—सोचता रहा। जब उनका भाषण सुना तो मेरे आश्चर्यका ठिकाना न रहा। दुरूह विषयको सरल विधिसे स्पष्ट करना उनके बायें हाथका खेल था। गहराईमें डूबकर, प्रमाणोंको चुन-चुनकर सामने रखनेमें उन्हें जैसे अलौकिक आनन्दकी अनुभूति हो रही थी। वह बोलते जा रहे थे और हम सुननेमें तल्लीन थे। उस दिन मैंने उनको सुना था। उनसे व्यक्तिगत रूपसे मिल नहीं पाया था। मुझे दुःख है कि संकोच और लज्जाने मुझे मिलने नहीं दिया। गाँवका रहनेवाला, कठिनाइयोंमें पलने और पढ़नेवाला मैं ऐसे मेधावीसे मिलते हुए लजाता था।

महाराजा कॉलिजमें उनके केवल दर्शन हुए, उनसे भेंट नहीं हुई। मैं इसे भेंट नहीं मानता क्योंकि भेंटमें परस्पर विचार-विनिमय होना चाहिए और वह था नहीं। असलमें भेंट हुई सन् १९६६के जूनमें। यह भेंट दो-चार घण्टेकी नहीं थी। मैं तो लगभग पन्द्रह दिन तक उनके संरक्षणमें रहा, उन्हींके ग्रन्थालयमें रहा, उन्हींके यहाँ खाता-पीता रहा। मुझे याद है कि उन्होंने बड़ी मुश्किलसे चार-पाँच दिन अन्यत्र खाने दिया, वह भी इसलिये कि मैं बालकोंकी भाँति हठी बन गया था। मैं सोचता हूँ कि आज कितने हैं ऐसे, जो स्नेहके साथ ज्ञानका दान देते हों, सुपथ दर्शाते हों, अपने यहाँ रखते हों और अपनी गाँठसे खिलाते भी हों।

अब देखिये, उनका साधक रूप। उनका यह रूप तो और भी हृदयस्पर्शी है। सचमुच वे सरस्वतीके पुत्र हैं। मौन तपस्यामें उनका अखण्ड विश्वास है। उनका अपना कोई संसार है, तो वह है ग्रन्थोंका संसार यही संसार उनके कर्मका, तपका, आनन्दका, जीवन और जागरणका संसार है। हस्तलिखित ग्रन्थों और पुस्तकोंके ढेरके मध्य आसन लगाकर बैठे हुए उनकी छवि अद्भुत लगती है। उस छविमें एक दिव्य आकर्षण होता है और उसके द्वारा एक अनूठे आदर्शकी प्रतिष्ठा होती है। लम्बी आयु पाकर, ढलती हुई अवस्थामें पहुँचकर कोई व्यक्ति कितने ही घण्टे कागजके पत्रोंसे अपनी आँखोंको चिपटाये रखे, अपना दिल और दिमाग उन्हींके लिए समर्पित कर दे, उसे हम क्या कहेंगे? प्रश्न करनेपर कोई व्यक्ति एकके पश्चात् दूसरे-का यथोचित उत्तर देता चले, रुकनेका नाम न ले और इस प्रकार उसके वचनोंसे जिज्ञासुओंकी जिज्ञासा शान्त होती चली जाये, उसे हम क्या कहेंगे? ऐसे व्यक्तिके सम्बन्धमें सामान्यतः दो धारणाएँ बनेंगी।

प्रथम यह कि वह पूरा और सच्चा साहित्यसेवी है, उसका जीवन साहित्यकी सेवाके लिए है। द्वितीय यह कि वह प्रतिभावान् मनीषी है, प्रत्युत्पन्नमति है और उसकी प्रतिभा एवं क्षमता 'स्व' के उपयोगके लिए नहीं, 'पर' के उपयोगके लिए है।

नाहटाजीके समीप रहते हुए मैंने यह अनुभव किया कि साहित्यिक क्षेत्रमें उनकी दृष्टि बिल्कुल अर्थपरक नहीं है। इस काममें अर्थसे उनका कोई सम्बन्ध नहीं। यह दूसरी बात है कि ईश्वरने उन्हें अर्थ-सम्पन्नता दे रखी है, फिर भी उनकी निर्लोभिता, उनका त्याग, उनकी उदारता स्पृहणीय है। नहीं तो इस अर्थयुगमें लोग अर्थके लिए न जाने क्या-क्या करते हैं, कहाँ-कहाँ दौड़ते हैं और इतना ही नहीं जान देने-लेने-को उतारू हो जाते हैं। इसके विपरीत नाहटाजी हैं, जो ग्रन्थोंके संग्रहपर, शोधार्थियोंपर, ग्रन्थालय देखने जाने वालोंपर उलटा खर्च करते हैं। इस प्रकार वह आर्थिक हानि और कष्ट सहकर भी अमित संतोषका अनुभव करते हैं, मानों साहित्यकी उपासना उनके जीवनका एक महत्त्वपूर्ण अंग है, आत्माकी भूख-प्यासकी शान्तिका एक सबल साधन है। उनका ऐसा साधक-रूप न केवल लुभावना है, अपितु निराला भी है।

उपर्युक्त संदर्भ में एक बात और जोड़ देनी चाहिए। यह माना कि नाहटाजीके पास बी० ए०, एम० ए० की उपाधि नहीं है। यहाँ तक कि उनके पास मैट्रिक या मिडिल पासका प्रमाणपत्र भी नहीं है। स्वयं उन्हींके शब्दोंमें—"मैं बहुत कम पढ़ा-लिखा हूँ। मैंने छट्ठीं कक्षा भी पास नहीं की। व्यवस्थित अध्ययन चला ही नहीं..........।" इन शब्दोंमें उनकी सरलता, स्पष्टता एवं निश्छलता छिपी हुई है। मेरी दृष्टिमें अभावोंको खोलकर रख देनेसे व्यक्ति महान् बनता है। फिर मैं इसे अभावकी संज्ञा भी कैसे दूँ? यह अभाव है कहाँ? मात्र बड़ी-बड़ी उपाधियाँ धारण करनेसे व्यक्ति महान् नहीं बनता। वह महान् बनता है लगन और संकल्पके साथ निरन्तर कर्म करनेसे, आदर्श जीवन व्यतीत करनेसे, जीवनको जीवनकी तरह भोगनेसे। नाहटाजी इसके उदाहरण हैं। पूर्ण जिज्ञासा, रुचि एवं तन्मयताके साथ लगातार ग्रन्थोंका अध्ययन-अनुशीलन करनेसे उनके ज्ञानकी परिधि कहाँ तक बढ़ गई, यह कहना कठिन है। उनके प्राणोंका कर्ममय स्पन्दन सबके लिए प्रेरणाका स्रोत है। निश्चय ही कर्ममें रत मनुष्यकी शक्ति निस्सीम हो जाती है। उसके लिए कठिनसे कठिन काम सरलसे सरल हो जाता है, पत्थर फूल बन जाता है। वस्तुतः सतत साधना ऐसी ही होती है। नाहटाजी अपनी अनवरत साधनासे ही विकासकी इस अवस्थाको प्राप्त हुए हैं।

कहना न होगा कि साधनाने उनको बहुत ऊँचा चढ़ा दिया है। इस ऊँचाईसे मेरा अभिप्राय यह है कि अध्ययनकी गहराईने ज्ञानके क्षेत्रमें उनको गरिमामयी बना दिया है। मेरे लिए यह विस्मयकी बात है कि कितने ही जैन कथानक उनकी दृष्टिमें घूमते रहते हैं। उन कथानकोंके मर्मसे वह भली-भाँति परिचित हैं। मैंने जब अपने ऐतिहासिक नाटक 'अमर सुभाष'की प्रति उनको भेंटमें दी तो उसे देखकर वह बोले—

"जैन कथानकोंको लेकर जब आपकी इच्छा नाटक लिखनेकी हो तो समय लेकर इधर आइये। मैं आपको एक-से-एक ऐसे अप्रतिम कथानक दूँगा, जिनके आधारपर अच्छे नाटकोंका प्रणयन किया जा सकता है।"

मुझे खेद है कि तबसे अब तक मैं बीकानेर न जा सका, जबकि वहाँ जानेकी चाह अब भी ज्यों-की-त्यों बनी हुई है। सोचता हूँ कि जब मेरा लिखनेका काम बराबर चल रहा है तो वह संयोग भी आयेगा, जब नाहटाजीकी भावनाके अनुरूप इसी निमित्त मैं उनके पास पहुँचूँगा, उनको कष्ट देकर उनके साहचर्यसे लाभ उठाऊँगा।

नाहटाजीके धैर्य एवं गांभीर्यकी चर्चा और करूँगा। इस संदर्भकी एक घटना मेरे सम्मुख चित्रवत् है। मेरे बीकानेरके प्रवासकालमें ही नाहटाजीके यहाँ दस-पन्द्रह हजार या इससे अधिक राशिके आभूषणादि-

की चोरी हो गई। निस्सन्देह यह एक आकस्मिक धक्का था, यह एक गहरी चोट थी। लेकिन उस समय भी वह पूर्ण शान्त एवं गंभीर थे। देखता था कि उनकी दैनिक चर्यामें कोई अन्तर नहीं आया है। अध्ययन-अनुशीलनकी गति वही है, ग्रन्थोंसे लगाव उतना ही है, उस कामके लिए समय उतना ही है। मैं यह नहीं मानता कि चोरी हो जानेका उनको दुःख न था; वह तो होगा किन्तु वह होगा भीतर ही, बाहर वह अभि-व्यक्त नहीं हो पा रहा था। ऐसे अवसरकी धीरता और गंभीरता वास्तवमें वरेण्य थी। विपत्तिमें धैर्य न खोकर, अविकल रहकर गंभीर बना रहने वाला मानव सामान्य मानवसे बहुत ऊँचा होता है।

वे क्षण भूलने योग्य नहीं हैं, जो नाहटाजीके पास रहकर बिताये। वे क्षण मेरी स्मृतियाँ हैं—मधुर आनन्ददायिनी और अमिट स्मृतियाँ—ऐसी स्मृतियाँ, जो मेरे जीवनमें ऐतिहासिक महत्त्व रखती हैं।

●

बीकानेर और नाहटाजी

डॉ० नारायणसिंह भाटी

पूरे बीकानेरमें मेरे लिए आकर्षणकी कोई वस्तु है तो वे हैं अगरचन्दजी नाहटा। संस्थानके कार्यसे कई बार बीकानेर जानेका अवसर आता ही रहता है। कई बार बड़ी व्यस्तता रहती है परन्तु ऐसा शायद ही कभी हुआ हो जब नाहटाजीसे मिले बिना लौट आनेके लिए मन राजी हो गया हो।

नाहटाजीके घर तक पहुँचनेमें किसी भी अपरिचित आदमीको कोई कठिनाई नहीं हो सकती। साहित्यकारकी तो बात छोड़ दीजिये, हर तांगे वाले से पूछ लीजिये, किसी चलते फिरते डाकियेसे पूछ लीजिये, वह फौरन साहित्यकार नाहटाजी, लाइब्रेरी वाले नाहटाजी, मूँछों वाले नाहटाजीका पता बता देगा और बहुत बार तो मोहल्ले (नाहटोंकी गवाड़) तक पहुँचते-पहुँचते ही यह सूचना भी मिल ही जाती है कि नाहटाजी यहाँ हैं या कहीं बाहर गये हुए हैं।

मैं जब भी उनसे मिला, या तो वे लाइब्रेरीमें ग्रंथ देखनेमें व्यस्त मिले या घरपर, न मंदिरमें, न बाजारमें और न रिश्तेदारके घरपर। हाँ, एक-दो बार यह पता अवश्य लगा कि वे अनूप संस्कृत लाइब्रेरी गये हुए हैं और अभी-अभी लौट आएँगे। वे हर व्यक्तिसे बड़ी सरलतासे मिलते हैं और लाइब्रेरीमें पहुँचते-पहुँचते कामकी बात शुरू कर देते हैं।

मैंने उनमें सबसे बड़ी बात यह देखी कि आलस्य जैसी चीज उनको छू तक नहीं गई है। किसी भी शोध-विद्यार्थीके पहुँचनेपर वे अविलंब उसकी सहायतार्थ तैयार हो जाते हैं। बस्तोंमें से ग्रंथ टटोलकर निका-लना, पुरानी फाइलें ढूँढ़कर निकालना आदि उनके जीवनकी सामान्य गति-विधि बन गई है। मैं जब डिंगल गीतोंपर शोधकार्य कर रहा था तो एक बार इस निमित्त ही वहाँ पहुँचा। सामग्रीकी बात करते-करते बोले, "जैनियोंने डिंगल गीत लिखे तो हैं पर उनका मिलना बड़ा कठिन है।" और फिर धीरेसे उठकर एक बस्ता निकाला तथा कचरदासके कुछ गीत निकाल कर दिये। मैं उनकी स्मरण-शक्ति देख कर दंग रह गया और साथ ही मुझे यह बात भी समझमें आ गई कि हजारों अज्ञात कृतियोंको नाहटाजी किस प्रकार प्रकाशमें ले आये। नयी कृतियोंको प्रकाशमें लानेकी उनकी सी आतुरता मैंने किसी साहित्यकारमें नहीं देखी। वे बिना किसी प्रकारकी विद्वत्ता बघारे फौरन साहित्य-जगतको नई कृतिसे अवगत करना जैसे अपना कर्तव्य समझते हैं।

प्रायः साहित्यकारोंमें देखा जाता है कि एक-दो महत्वपूर्ण कृति हाथ लगनेपर बरसों तक उसका अचार बनाते रहते हैं। उस कृतिसे किस प्रकार ख्याति अर्जित की जाय, कैसे कोई आर्थिक लाभ उठाया जाय या डिग्री प्राप्त कर ली जाय आदि विचार करते रहेंगे और उस कृतिको दिखायेंगे तक नहीं। परन्तु नाहटाजी इन बातोंसे ऊपर हैं। अपने पास ही नहीं अनूप संस्कृत लाइब्रेरी आदि अन्य स्थानोंपर भी कोई कृति शोधकर्ताके कामकी होगी तो उसे उपयोगके लिए प्राप्त करवानेकी भी पूरी चेष्टा करेंगे। उनको इस प्रकार कार्यरत देखकर मुझे जो प्रसन्नता होती है वह शब्दातीत है।

मुझे हर बार यह ख्याल आये बिना नहीं रहता कि राठौड़ पृथ्वीराजने जिस नगरमें रहकर वेलि जैसे डिंगलके सर्वश्रेष्ठ काव्यका सृजन किया और डॉ० टैसीटरी जैसे विद्वान्ने राजस्थानी साहित्यका उद्धार किया, वह नगर कितना भाग्यशाली है कि वहाँ नाहटाजी जैसे कर्मठ साहित्य-सेवी विद्यमान हैं।

नाहटाजीका अभय-जैन ग्रन्थालय राष्ट्रकी महत्त्वपूर्ण निधि है और बीकानेरके लिए गौरवकी वस्तु है। यदि उसे सार्वजनिक रूप देकर उसकी स्थायी व्यवस्था वहाँकी जनता नाहटाजी की देखरेखमें करे तो नाहटाजी और बीकानेरका नाम साहित्य-जगतमें कल्पान्तर तक अमर रहेगा।

जय राजस्थानी !

●

विद्याप्रेमका एक जीवन्त प्रतीक, एक संस्था

डॉ० हीरालाल माहेश्वरी, डी० फिल्०, डी० लिट्०

श्री अगरचन्दजी नाहटाका नाम विद्याप्रेमका जीवन्त प्रतीक और संस्थाका बोधक है।

उनकी स्कूली शिक्षा अधिक नहीं हो पाई। बातचीतके प्रसंगमें यदाकदा वे स्वयं ऐसा कहा भी करते हैं, किन्तु स्वाध्याय और निरन्तर अध्ययनशीलताके कारण आज वे देशके मूर्धन्य शोधकर्ता और विद्वान् माने जाते हैं। इस क्षेत्रमें दूसरोंके लिए वे प्रेरणा-स्रोत हैं। जिज्ञासुओं, शोधार्थियों और विद्यार्थियोंकी सहायता तो वे निरन्तर करते ही रहते हैं—हर प्रकारसे उनकी सतत विद्यानिष्ठा और साहित्य-साधना देखकर कभी-कभी बहुत ही आश्चर्य होता है। कहाँसे मिलती है उनको यह प्रेरणा ? उनको कभी थकते नहीं देखा इस साधनामें। क्यों नहीं थकते वे ? लक्षाधिक रुपए लगाकर उन्होंने दुर्लभ हस्तलिखित प्रतियोंका संग्रह-संचयन किया है; जो उपलब्ध नहीं हो सकीं—उनमेंसे अधिकांशकी प्रतिलिपियाँ करवाई हैं। क्यों और किसलिए ?

इन प्रश्नोंके उत्तर विभिन्न लोग विभिन्न प्रकारसे देंगे। किन्तु मूल बातपर सभी एकमत होंगे—वह यह कि साहित्य-साधना उनकी आत्माका विशिष्ट संस्कार है; उनकी आत्मा और इस साधना का तादात्म्य है, दोनोंकी तदाकार स्थिति है। इन सबकी प्रेरणा उनको स्वात्मासे ही मिलती है। मेरी समझमें इन सबका एक ही उत्तर है—आत्म-प्रेरणा। पर क्या सभी यह कर पाते हैं ? नहीं, सबके लिए यह सम्भव नहीं है। युगोंकी सतत साधना इसके लिए अपेक्षित है। मनकी एकाग्रता, दुनियादारी और दैनंदिन सैकड़ों बाधाओं, घटनाओं और अनेक भाँतिकी हलचलोंको स्थितप्रज्ञकी भाँति सहना, उनको निभाते भी चलना तथा साथ ही यह साधना करते जाना—बड़े जीवट, असीम धैर्य और अद्भुत मनोशक्तिका कार्य है। नाहटाजीमें ये गुण हैं। उनके ये ही गुण उनको वैशिष्ट्य प्रदान करते हैं। निराला है उनका व्यक्तित्व !

नाहटाजीकी साहित्यिक-सांस्कृतिक देनका मूल्यांकन तो अभी किंचित् भी नहीं हुआ है। किसीने प्रयास भी नहीं किया प्रतीत होता। यह अब होना चाहिए। जिस दिन यह होगा, साहित्यके अनेक अंधेरे, अनुन्मीलित, रंचमात्र या अर्द्ध-प्रकाशित कोने उजागर होंगे; अनेक नवीन मान्यताओंको आधारभूमि मिलेगी; साहित्य-चिन्तनका प्रवाह नया मोड़ लेता दृष्टिगत होगा और होगा गर्व हमारी संस्कृतिको समग्रतामें। भारतीके सैकड़ों अन्धकारपूर्ण पथोंपर नाहटाजीने मांगलिक, नवीन, चिर-स्मरणीय किन्तु ठोस दीप संजोए और जलाए हैं। क्या इसका लेखा-जोखा थोड़ेसे शब्दों द्वारा किया जा सकता है ? जो काम सुगठित संस्थाएँ वर्षोंके प्रयाससे भी सम्यक्रूपेण नहीं कर पातीं, उनको नाहटाजीने अकेले कर दिखाया है और संस्थाओंसे भी अच्छे रूपमें।

नाहटाजी एक व्यक्ति नहीं, एक संस्था हैं। ऐसी एक संस्था, जिसके अन्तर्गत अनेक उपसंस्थाएँ निरन्तर कार्य करती हैं। सो संस्था हैं नाहटाजी ! अपने क्षेत्रमें वे अप्रतिम विद्वान् हैं। करोड़ोंमें एक हैं नाहटाजी !

मैं भारतीके ऐसे वरदपुत्रकी दीर्घायु-कामना करता हूँ और हृदयके श्रद्धा-सुमन भावरूपमें उन्हें अर्पित करता हूँ। इनका जितना भी स्वागत किया जाय, कम है।

●

नाहटाजी नाहटे

श्री भरत व्यास

करीब पच्चीस वर्ष बीते, मुझे हल्की सी याद है। मैं श्रीयुक्त नाहटाजीके बीकानेर वाले घरमें गया था। वहाँसे वे मुझे बड़े स्नेहके साथ अपने पुस्तकालयमें ले गये और वहाँ उनका साधना संग्रह देखा, तो उनपर मेरी इतनी श्रद्धा हो गई कि उस दिनके बाद आज तक यह श्रद्धा प्रतिदिन बढ़ती ही गई। अब उनके अभिनन्दनके समाचार सुनकर इसके संयोजकों और सुयोग्य सम्पादकोंको धन्यवाद देनेको जी चाहता है।

राजस्थानी साहित्यमें जो काम नाहटाजीने अनवरत परिश्रम, लगन और साधनासे किया है, वह साहित्यिक इतिहासमें युग-युगों तक अमर-रहेगा।

एक व्यापारिक समाजमें उत्पन्न होकर उन्होंने साहित्यसागरमें गोते लगाकर जो विविध मोतियोंका चयन किया है, उन्हें देखकर आश्चर्य, आनन्द, और श्रद्धासे हमारा हृदय भर जाता है। मन सोचने लगता है कि इतना सादा और साधारण जीवन व्यतीत करनेवाला व्यक्ति कितना महान् और असाधारण है।

लम्बा डौल, घुटनों तककी धोती, जाँघ तक टुलता हुआ लम्बा कोट, राजस्थानी शैलीकी मूँछें, शोधकार्यकी खोज करनेवाला पुराना चश्मा और चेहरेकी लम्बाईसे भी लम्बी बाँई तरफको झुकनेवाली केशरिया पगड़ी, निरन्तर चिन्तन करता हुआ चेहरा, तथा बोलनेमें मितव्ययता, इन सब गुणोंका समन्वय करनेवाले, सादा जीवन और उच्च-विचारको व्यक्तित्वका रूप देनेवाले व्यक्तिका नाम श्री अगरचन्दजी नाहटा है। वे अगरकी तरह स्वयं जल-जलकर सारे वातावरणको सुगन्धित करते रहते हैं। अपने अथक और अनवरत परिश्रमसे जीवनपर्यन्त न हटनेकी प्रतिज्ञा करके अपनी 'नाहटा' जातिको गौरवान्वित किया है।

इस दुरूह राहपर चलकर नाहटाजीने जो-जो मंजिलें तय की हैं, उसका स्वयं एक इतिहास है। कभी-कभी उन्हें देखता हूँ तो ऐसा लगता है, कि ये गुपचुप रहनेवाले बुद्धिमें कितने विराट हैं ? "न भूतो न भविष्यति"की कहावतको चरितार्थ करनेवाले ये राजस्थानके रत्न साहित्यके प्रांगणमें सदा जगमगाते रहेंगे।

सीधे और दिनके प्रकाशमें सफर करनेवाले तो बहुतसे जीवनयात्री देखे हैं, किन्तु अमावस्याकी अँधेरी रातमें और ऊबड़-खाबड़ पगडंडियोंको पार करनेवाला ये महायात्री अनुपम है। उनके कृतित्वकी समीक्षा करना आलोचकोंका काम है। कवि-हृदय तो उनके भव्य प्रकाशमय व्यक्तित्वके सामने केवल श्रद्धावनत हो सकता है।

श्रेष्ठिवर श्री अगरचन्दजी नाहटाके इस अभिनन्दन समारोहपर मेरा हृदय ईश्वरसे यही कामना करता है, कि राजस्थानके इस दृढ़ 'साहित्य-सिपाही'की उम्र जहाँ तक हो सके लम्बी करता जाये, ताकि राजस्थानका साहित्य सारे संसारकी साहित्य-वाटिकामें अलग ही निराले फूलकी तरह खिला लगे और इस साहित्य-तपस्वीके हीरक अभिनन्दन समारोहकी प्रतीक्षा करते रहें।

मधुमय सुगन्ध फैलानेको, 'साहित्य-अगर वत्ती' जलती—
जब तक यह कार्य न हो पूरा, तब तक ये साँस रहे चलती।



प्रेरणाप्रद व्यक्तित्वके धनी श्री नाहटाबन्धु

डॉ० रुद्रदेव त्रिपाठी

संसारमें कुछ विरले ही व्यक्ति होंगे, जिनमें सरस्वती और श्रीका समीचीन समन्वय हो। श्री अगर-चन्दजी नाहटा एवं श्री भँवरलालजी नाहटा ये दोनों ही बन्धु इस समन्वयके प्रतीक हैं। जीवनकी विभिन्न क्रियाओंसे ऊपर उठकर श्री नाहटाबन्धुने वर्षोंसे श्रीसाधनाके साथ-साथ सरस्वतीकी साधनामें भी उतना ही मनोयोग दिया और अपनी ओजस्विनी लेखनीसे प्रसूत वैदुष्यपूर्ण साहित्यसे जनजीवनको आन्दोलित किया।

आजसे लगभग २० वर्ष पूर्व मैं श्री धीरजलाला टोकरशी शाह शतावधानी, बम्बईके साथ जैन-साहित्यसे सम्बद्ध ग्रन्थोंका अवलोकन करने कलकत्ता गया था। वहीं इन दोनों बन्धुओंके दर्शन हुए। राज-स्थानकी ठेठ परम्पराके मूर्तिमान् प्रतीकके रूपमें भव्य पगड़ी, ओजपूर्ण श्मश्रु और तेजोमय व्यक्तित्वने मेरे मनपर एक अमिट छाप अंकित की। वहाँ रायल एशियाटिक सोसायटीके संग्रहालयसे नमस्कार महामन्त्र-पर रचित प्राचीन ग्रन्थोंके शोधनमें तथा उन्हें उपलब्ध करवानेमें श्री भँवरलालजी नाहटाने अपना पर्याप्त समय हमारे साथ व्यय किया और बादमें निर्वाचित प्रतियोंकी प्रतिलिपियाँ करवाने, उनके फोटो उतरवाने आदिमें उनका अनन्य सहयोग किसी साहित्यसेवीको यह निःसंकोच प्रेरणा देता है कि सत्कार्योंकी सिद्धिके लिए 'सह वीर्यं करवावहै' मंत्र अवश्य अपनाना चाहिये।

दूसरी बार 'श्री महावीर वचनामृत' (मेरे द्वारा अनूदित) ग्रन्थ झारग्राम (बंगाल) में पूज्य विनोबाजीको हम समर्पित करने गये तब कलकत्तासे लगभग ६० प्रतिष्ठित साहित्यकार एवं सम्मानित उद्योगपतियोंका एक शिष्टमण्डल स्वतन्त्र रूपसे एक रिजर्व डिब्बेमें साथ गया था। उसमें श्री भँवरलालजी नाहटाजी भी थे। इस यात्रामें अतिनिकट रहनेसे श्री नाहटाजीके व्यक्तित्वका निखार और भी अधिक उर्वर प्रतीत हुआ।

लौटते समय रात्रिमें स्टेशनपर जिस रसमय वातावरणकी सृष्टि हुई, उसमें राजस्थानी काव्यधाराका आनन्द बिखेरनेका कार्य श्री नाहटाजीने ही किया था।

आपको किसी साहित्यिक ग्रन्थके बारेमें संशय हो अथवा निर्णयके लिए प्रामाणिक नाम-धामादि जानने हों तो एक पत्र बीकानेर भेजिये और सप्रमाण जानकारी प्राप्त कीजिये। यह कार्य श्री अगरचन्दजी नाहटा—जो कि एक 'जंगमकोष' स्वरूप हैं—तत्काल बड़ी उदारतासे करते हैं।

उनके पास विशाल संग्रह है उन पुस्तकों और पाण्डुलिपियोंका, जिन्हें श्री नाहटाजो वर्षोंसे परिपुष्ट करते आये हैं। वास्तवमें उनके द्वारा उपार्जित धनका सदुपयोग वे माँ शारदाकी ऐसी ही सेवाओंमें करते आये हैं। (संस्कृत विश्वविद्यालय में आमन्त्रित सम्मेलनमें भी, श्री नाहटाजीका साथ मिला)।

गत वर्ष बम्बईमें श्रीमानतुंगसूरि सारस्वत समारोहके मंचपर इन पंक्तियोंका लेखक और श्री अगरचन्दजी नाहटा एक साथ ही पद्मभूषण, श्री डी० एस० कोठारीके करकमलोंसे सम्मानित हुए थे।

जब मैं उन्हैल-उज्जैनमें अध्यापक था, तब वे उन्हैल भी पधारे थे। उन सब क्षणोंका सुखद स्मरण श्री नाहटाजीके प्रेरणाप्रद व्यक्तित्वका अनूठा उदाहरण प्रस्तुत करता है। इस अवसरपर मैं इन दोनोंकी उत्तरोत्तर साहित्यश्रीकी अभिवृद्धिके साथ सुदीर्घ और सुखमय जीवनकी कामना करता हूँ।

●

जंगम तीर्थ : श्री अगरचन्द नाहटा

डॉ० आनन्दप्रकाश दीक्षित

'अगरचन्द नाहटा' लेखकोंमें एक ऐसा नाम है, जिसे जाने बिना हिन्दी साहित्यका ज्ञान अधूरा रहता है। धोती, लम्बा कोट पहने और राजस्थानी पगड़ी धारण किये किसी व्यक्तिको अकस्मात् कहीं देखनेपर नहीं लगता कि हम किसी विशिष्ट व्यक्तिको देख रहे हैं, किसी विशिष्ट साहित्यकारके सामने हैं; किन्तु परिचय प्राप्त करनेपर सहसा सुखद आश्चर्यकी अनुभूति से नहीं बचा जा सकता। ओह! यह हैं नाहटाजी जिनकी लेखनी अविराम गतिसे अज्ञात, अल्पज्ञात अथवा सुज्ञात साहित्यका परिचय, विवेचन और विश्लेषण कराती हुई साहित्येतिहास और आलोचनाको समृद्ध बना रही है। सादे लिबासमें लिपटा हुआ यह व्यक्ति अपने स्वभावकी सादगी, सरलता और भद्रताका ही प्रभाव अंकित नहीं करता, अपने विपुल ज्ञानसे आतंकित भी करता है।

नाहटाजीके पास ग्रंथ-राशिकी ऐसी विपुलता है, शोधके प्रति उनमें ऐसी लगन है और विभिन्न स्रोतोंकी कुछ ऐसी जानकारी है कि सामान्यतः उसके दर्शन अन्यत्र संभव नहीं हैं। हिन्दीके कितने पूर्वतः अज्ञात ग्रंथों और उनके लेखकोंकी विस्तृत जानकारी नाहटाजीने साहित्य-संसारको दी है, इसका स्वयं अपना अलग ही एक इतिहास है। कितने अलभ्य ग्रंथोंका संपादन उन्होंने किया है, इसकी तालिका उनके ज्ञानकी विस्तृतिकी परिचायक है। कितनी पत्रिकाओंके वे संपादक हैं और कितनी शोधपरक एवं सामान्य पत्रिकाओं में वे निरन्तर लिखते हैं, इसका ज्ञान अभिभूत किये बिना नहीं रहता। हिन्दीकी बहुत कम पत्रिकायें होंगी, जिनमें श्री नाहटाने कुछ न लिखा हो और प्राचीन साहित्यका शायद ही कोई अनुसंधाता हो जिसके लिए नाहटाजी एक सहारा न बन गये हों। और यह सब तब है जबकि वे अपने व्यवसायकी व्यवस्था भी स्वयं बनाये रहते हैं।

श्री अगरचंद नाहटाको विगत २०-२२ वर्षोंसे जाननेका सौभाग्य मुझे भी प्राप्त है। इस बीच श्री नाहटाजीकी सजगताके अनेक प्रमाण और उनके अद्वेष-व्यवहारका परिचय अनेक बार मिलता रहा है। अपने प्रमाद और दीर्घसूत्री स्वभावके कारण मैं भले ही अपने व्यवहारमें पिछड़ गया हूँ, नाहटाजी कभी नहीं चूके। खोये हुए को खोज निकालनेकी शक्ति जैसी ग्रंथोंके सम्बन्धमें उनमें है उससे कम व्यक्तिके सम्बन्धमें नहीं है। उनका सहज सद्‌गुण है सद्‌भावपूर्णता। उनकी निर्लेपताका परिचय भी अनेक बार मुझे मिला है।

नाहटाजीके सद्‌भावका ज्ञान मुझे पहली बार तब हुआ जब १९५३ में मेरे द्वारा संपादित 'वेलि क्रिसन रुकमणी री'का पहला संस्करण उनके हाथमें पहुँचा। राजस्थानके एक पण्डितम्मन्य लेखकने जहाँ संपादनसे पूर्व मेरी जिज्ञासाओंका उत्तर न देकर मुझे विद्वानोंकी ओरसे निराश किया था, वहाँ नाहटाजीने पुस्तक पाते ही उसकी पंक्ति-पंक्तिको पढ़ा, अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त की और मेरे प्रयत्नको सराहा। जिन स्थलोंसे उन्हें सन्तोष न हुआ उनपर भी वे साफ कहनेसे पीछे न रहे। साथ ही उन्होंने लिखा कि दूसरे संस्करणके समय वे चाहेंगे कि सचित्र प्रति प्रकाशित हो और उसके लिए मुझे वे संपूर्ण सामग्री उपलब्ध करा देंगे। नाहटाजी-के इस पत्रने मुझे बल दिया और उनकी स्पष्टवादिताने उनसे मतभेद प्रकट करनेका साहस भी। मेरे और उनके बीच पत्र-व्यवहारका सूत्र जुड़ गया। तबसे 'वेलि'का तीसरा संस्करण निकलने तक वे बराबर उसके परिशोधन-परिवर्तनको लक्षित करते रहे और जबकि आलोचनाके क्षेत्रमें प्रवेश करनेवाले एकाध लेखकने 'वेलि'के प्रथम संस्करणसे आगे पढ़ने और जाननेसे वैर ठान लिया और तीनों संस्करणोंके रहते पहलेसे ही जूझते रहे, श्री नाहटाजीने अपनी सजगताका परिचय सदैव नयेकी जानकारीसे दिया। मैं अपनी विवशताओं-के कारण सचित्र 'वेलि' तो प्रकाशित न कर सका, किन्तु नाहटाजीके सद्‌भावसे वंचित भी कभी नहीं रहा। ऐसे निर्मत्सर और सहज स्नेही आलोचक कम ही हैं।

नाहटाजी स्वयं एक संस्था हैं, व्यक्ति नहीं। काम करनेकी धुनके पक्के नाहटाजी काम करा लेनेकी विधि भी जानते हैं। वर्षों पहले नाहटाजीने मेरे पास एकके बाद एक कई हस्तलिखित ग्रंथोंकी प्रतिलिपियाँ स्वतः भेजीं और मुझे उनपर लेख लिखनेको प्रेरित किया। आज भी वे मेरी गतिविधिका निरन्तर परिचय रख रहे हैं। नयी दिशाओंका संकेत उनसे कई बार प्राप्त होता है।

नाहटाजी सच्चे अध्येता और गुणज्ञ हैं। हिन्दीमें ऐसे पाठकों की कमी है, जो अध्ययनके उपरान्त अपनी प्रतिक्रियासे लेखकोंको परिचित कराएँ—मैं भी उनमेंसे ही एक हूँ। किन्तु मजाल है कि नाहटाजी कोई रचना देखें और लेखक उनकी प्रतिक्रियाके लाभसे वंचित रह जाय। कई बार उन्होंने मित्रोंके लेखोंको पढ़कर अपनी ओर से ही उन त्रुटियों या तथ्योंपर नया प्रकाश डाला है जो लेखककी भूल बन गये हैं। सच, नाहटाजी साहित्यिक मशाल ले, जङ्गमतीर्थ हैं।

●

शोधयोगी श्री नाहटाजी

डॉ० देवेन्द्र कुमार जैन

१. आप हिन्दीकी कोई भी पत्र-पत्रिका उठाएँ, चाहे वह छोटी हो या बड़ी, साहित्यिक हो या सामाजिक, उसमें श्री अगरचन्दजी नाहटाका लेख जरूर होगा। श्री नाहटाने यह दावा कभी नहीं किया कि वे बहुत बड़े विद्वान् या लिक्खाड़ हैं। परन्तु उन्होंने जो साहित्यसेवा की है, वह कई विद्वान् भी मिलकर नहीं कर सकते।

२. मझोला कद, श्याम वर्ण, स्थूल गठा शरीर, आंखोंपर चश्मा और सिरपर बीकानेरी पगड़ी। उनके व्यक्तित्व और वेशभूषामें प्रान्तीय संस्कृति सुरक्षित है। यह है उनका रेखाचित्र। साठ वर्ष पूरे कर लेनेपर भी उनमें युवकोचित उत्साह और निष्ठा है? सादगी और नम्रताकी मूर्ति। यदि आपको यह न बताया जाय कि यह नाहटा हैं तो आप कल्पना भी नहीं कर सकते हैं कि इन्होंने इतनी बड़ी साहित्यसेवा की होगी।

३. मुझे याद है कि १९५० के आसपाससे मैं उनके नामसे परिचित था। परन्तु प्रत्यक्ष भेंट ५-७ वर्ष पहले ही संभव हो सकी, वह भी लाडनूमें। वहाँ मैं पू० आचार्य श्री तुलसीके सान्निध्यमें हुई जैनसाहित्य गोष्ठीमें भाग लेने गया था। श्री नाहटा बहु उद्देश्यीय व्यक्ति हैं। वे खोजी, संग्राहक संपादक, लेखक और मार्गदर्शक सभी कुछ हैं! न जाने कितनी संस्थाओंसे वे सम्बद्ध हैं। फिर भी लगता है कि वह सन्तुष्ट नहीं हैं। वे अपने आपमें एक बहुत बड़ी संस्था एवं मिशन हैं। दूसरोंके अनुसंधान कार्यमें इतनी सक्रिय दिलचस्पी, कि आप उन्हे लिख भर दीजिए, आप देखेंगे उनसे सारी सूचनाएँ खुद-ब-खुद चली आ रही हैं, जैसे वह टेलीप्रिंटर हों। जो जानकारी उनके पास नहीं है, वे बता देंगे कि वह कहाँसे मिल सकती है?

४. मुझे यह कहने या लिखनेमें जरा भी संकोच नहीं कि श्री नाहटा ज्ञानके संग्रह और सूचनाओंके जीवित संदर्भ हैं। और हैं ज्ञानके सच्चे शोधयोगी और निस्पृह साधक! राजस्थानी भाषा, साहित्य और पुरातत्त्व तथा जैनसाहित्यके क्षेत्रमें पिछले तीन चार दशकोंमें जो मौलिक कार्य हुआ है, इसका बहुत बड़ा श्रेय श्री नाहटाजीको है। अपने व्यावसायिक उत्तरदायित्वमें व्यस्त करते हुए भी इतना काम कर लेना उन्हींके बूतेकी बात है। श्री नाहटाके बारेमें यह कहना कठिन है कि वे क्या हैं? वे क्या नहीं हैं? वे शोधार्थी और मार्गदर्शक दोनों हैं। वे एक ऐसी संस्था हैं, जिसके भवनकी नींवकी पत्थरसे लेकर उसके कलशके कंगूरे वे स्वयं हैं। वे सिद्धि और साधना दोनों हैं!

५. खोजमें भी उनका व्यावसायिक दृष्टिकोण बदस्तूर कायम है। शोधके क्षेत्रमें भी वे थोड़ी पूँजीसे अधिकसे अधिक मुनाफा कमानेकी ताक में रहते हैं। यह उनकी लोभवृत्तिका नहीं, अपितु सूझ-बूझका परिचायक है। बड़े-बड़े पुस्तक भंडारोंकी व्ययसाध्य (और श्रमसाध्य भी) छान-बीनके अतिरिक्त कभी-कभी वे गुदड़ीसे भी लाल ढूँढ़नेमें पीछे नहीं रहते। बंबईकी बात है, हम लोग एक जैन गोष्ठीमें भाग लेनेके लिए सुखानन्द धर्मशालामें ठहरे थे। इतनेमें देखा, "श्री नाहटाजी 'पुस्तकों'के अटालेके साथ उपस्थित हैं।" पूछनेपर पता चलाकि फुटपाथसे ये बहुत सी पुस्तकोंका लाटका लाट खरीदकर लाये हैं? कहना न होगा उसमें कई महत्त्वपूर्ण और उपयोगी पुस्तकें थीं। उनका कहना था कि कभी-कभी गृहस्थ लोग पुरानी पोथियाँ कचरा समझकर कौड़ीके भाव बेंच देते हैं। परन्तु पुरानी पुस्तक छोटी हो या बड़ी, वह कभी-कभी इतिहास या परंपराकी टूटी हुई कड़ीको जोड़नेका महत्त्वपर्ण काम करती है!

उनकी बातोंसे ऐसा लगता है कि उनकी इच्छा यह नहीं है कि उनका नाम यशस्वी शोधविद्वानोंमें

लिखा जाय । वे उन शोध करनेवालोंमेंसे हैं जो खोजकर महत्त्वपूर्ण सामग्रीको तथ्यात्मक ढंगसे उपलब्ध करानेमें अपना श्रम सार्थक समझते हैं, जिससे कि वह कभी अध्येताके अध्ययन और विश्लेषणकी आधारभूत सामग्री बन सके ?

६. श्री नाहटाजी स्नेही इतने हैं कि एक बार परिचय होनेपर चुम्बककी तरह आपको खींच लेंगे। ज्ञानके क्षेत्रमें वे सम्प्रदायवादसे दूर। यदि आपसे उनका परिचय है और वे आपकी बस्तीमें आये हैं तो बिना पूर्व-सूचनाके आपके घर आ जायेंगे ? बात सम्भवतः ६६-६७ की है (ठीक तिथि श्री नाहटाजीको याद होगी) वे म० प्र० शासन साहित्य परिषद् द्वारा आयोजित 'राजस्थानीमें कृष्णकाव्य'पर व्याख्यान देनेके लिए जब इन्दौर आये तो मेरे घर भी आ गये। मैंने कहा, "नाहटा साहब आप ?"

बोले, "हाँ आपसे मिलना था।"

मैंने कहा, "कुछ ग्रहण कीजिए।"

बोले, "नहीं आज व्रत है। मेरे यहाँ कई रिस्तेदार हैं चिंताकी बात नहीं।"

मैं चुप। श्री नाहटाकी शिक्षादीक्षा किसी विश्वविद्यालयमें नहीं हुई। **वे जो कुछ हैं वह स्वप्ररणा, शोधकी निःस्वार्थ निष्ठा और अपनी सतत् साधनासे हैं। वे व्यवसायी होकर भी मनीषी हैं, गृहस्थ होकर भी तपस्वी हैं।** कभी-कभी सोचता हूँ कि अगर, अगरचन्दजी नाहटा न होते तो शोधका क्या हुआ होता ?

मैं हृदयसे कामना करता हूँ कि नाहटा साहब स्वस्थ और दीर्घजीवी हों और वे शोधकी कई मंजिलें पार करें। मैं यह उनकी नहीं हिन्दी शोधकार्यके दीर्घजीवनकी शुभकामना कर रहा हूँ क्योंकि श्री नाहटाजी जो कार्य कर रहे हैं, वह वस्तुतः शोधकी आधार-शिला रख रहे हैं। वे वह भूमि तैयार कर रहे हैं, जिसपर शोधका भावी भवन बनेगा। मुझे पूर्ण विश्वास है उसमें उनके व्यक्तित्वका निश्चित आभास होगा। **मैं चाहता हूँ कि वे स्वयं भी इसे देख सकें। इसलिए वे दीर्घजीवी हों।**

●

विश्वकोषके लिए मेरे कोटिशः प्रणाम

प्रो० डॉ० राजाराम जैन

सन् १९५४के दिसम्बरकी घटना है, तब मैं ज्ञानोदय (कलकत्ता)का सह-सम्पादक था। एक दिन एक लम्बे-चौड़े कुछ साँवले रंगका, राजस्थानी पद्धतिकी ऊँची पीली एवं कुछ अस्त-व्यस्त सी पगड़ी लगाये, घुटनेके करीब धोती बाँधे और व्यापारी टाइपका लम्बा, पीतलके बटनवाला कोट पहिने हुए एक सज्जन कार्यालयमें पधारे और मेरे विषयकी इंक्वायरी मुझसे ही करने लगे। उस समय मैं कलकत्तेके लिए एक नया-नया प्राणी ही था, अतः मुझे आश्चर्य लगा कि एक व्यापारी आखिर मुझे जानता कैसे है और क्यों मेरी खोज कर रहा है ? मैंने अपने विषयमें कुछ बताये बिना ही उनका नाम पूछ लिया और जब उन्होंने अपना नाम बताया तो मैं दंग रह गया, तत्काल ही आसन छोड़कर खड़ा हो गया और उन्हें सविनय प्रणाम किया। वे थे स्वनामधन्य अगरचन्दजी नाहटा, सरस्वतीके एक महान् वरद पुत्र।

श्रद्धेय नाहटाजीके नामसे मैं १९४६-४७से ही सुपरिचित था। 'सम्मेलन-पत्रिका', 'काशी नागरी-प्रचारिणी सभा पत्रिका' प्रभृति पत्रिकाओंमें प्रकाशित उनके शोध-निबन्ध बड़े चावसे पढ़ा करता था। 'बीसल-देवरासो', 'पृथिवीराजरासो' प्रभृति प्राचीन हिन्दी ग्रन्थोंके प्रकाशनमें, उनके ऐतिहासिक कार्यों एवं मूल्य-निर्धा-रणमें उनका कितना जबर्दस्त हाथ रहा है, इसका मूल्यांकन एड़ी-चोटीके विद्वानोंने किया है और मुझे उनकी जानकारी थी। उनकी इन्हीं साधनाओंके कारण मैं उन्हें परोक्षतः अपना श्रद्धेय तथा साहित्य-जगत्का गौरव-पुत्र मान चुका था। किन्तु साक्षात्कार हुआ मानव-समुद्रकी उस महान् वैभवशाली कलकत्ता-नगरीमें जहाँ मुझ

जैसे व्यक्तिको कोई पूछनेवाला भी न था। श्रद्धेय नाहटाजी मूक-साहित्यकारोंकी इस विवशताको अच्छी तरह समझते हैं तथा बड़े-बड़े नगरोंमें दीपक लेकर उनकी बड़ी ही लगनके साथ खोज-बीन करते रहते हैं। वे हर प्रकारकी सहानुभूति, यथासम्भव सुविधाएँ एवं आवश्यक पथ-निर्देशोंके साथ उन्हें आश्वस्त कर उत्साहित एवं प्रेरित करना मानों अपना कर्त्तव्य समझते हैं। उनका मेरे साथ प्रत्यक्ष-परिचयका यही प्रारम्भिक इतिहास है। इसके बाद तो वे सदाके लिए मेरे अपने हितैषी, गुरुतुल्य पथ-निर्देशक हो गये। उनसे सदैव पत्र-व्यवहार बना रहा और हर प्रकारसे मुझे साहाय्य मिलता रहा। इस बीचमें मैं कलकत्ता छोड़कर शहडोल, वैशाली एवं उसके बाद आरा आ गया।

उन्हें यह ज्ञात था कि मैं मध्यकालीन महाकवि रइधूपर शोध-कार्य कर रहा हूँ। अपनी जानकारीमें मैं रइधूका समग्र-साहित्य खोजकर उपलब्ध कर चुका था कि एक दिन सहसा ही नाहटाजीका पत्र मिला। उन्होंने पत्रमें अपने कलकत्ता प्रवासमें नाहर संग्रहालयके निरीक्षण एवं उसमें सुरक्षित रइधूके एक अलभ्य ग्रन्थ 'सावयचरिउ'के सुरक्षित रहनेकी चर्चा ही नहीं की बल्कि यह भी लिखा कि यदि यह ग्रन्थ मुझे न मिला हो तो सूचना पाते ही वे उसे संस्थाधिकारियोंसे निःशुल्क अध्ययनार्थ दिलवा देंगे। उनकी कृपासे वह ग्रन्थ मुझे शीघ्र ही मिल भी गया। अन्यथा, उस ग्रन्थरत्नका मिलना तो दूर रहा, मुझे उसकी गन्ध भी न मिल पाती।

सन् १९६८-६९में जब मैं श्रद्धेय डॉ० ए० एन० उपाध्येके आदेशसे रइधू-ग्रन्थावलीके सम्पादन एवं अनुवादकी योजना तैयार कर रहा था, तब तक मुझे विश्वास था कि रइधूका समग्र-साहित्य एवं महत्त्वपूर्ण प्रतियोंकी सूचनाएँ मैं एकत्र कर चुका हूँ। किन्तु अपनी अपूर्णताका ज्ञान मुझे पुनः उस समय हुआ जब श्री नाहटाजीने एक पत्र द्वारा मुझे सूचना दी कि 'पासणाहचरिउ' की एक सचित्र प्राचीनतम प्रति दिल्लीके श्वेताम्बर जैन शास्त्र भण्डारमें सुरक्षित है। उनकी कृपा एवं उसके मन्त्री आदरणीय श्री सुन्दरलाल जैनकी सज्जनता एवं कृपाके कारण मुझे उसकी एक फोटो काफी भी प्राप्त हो गई। आजकल मैं उसके बहुमुखी सदुपयोगके विषयमें विचार कर रहा हूँ।

श्रद्धेय नाहटाजी हमारे युगके महान् साहित्यकार, समीक्षक, प्राचीन जीर्ण-शीर्ण एवं अप्रकाशित ग्रंथोंके उद्धारक, कलापूर्ण सामग्रियोंके संरक्षक, साधनविहीन साहित्यकारों, शोधकर्त्ताओं एवं तत्त्व-जिज्ञासुओंके अकारण ही कल्याणमित्र हैं। वे स्वभावतः ही विना किसी तर्कके विश्वास कर लेने वालोंमेंसे हैं। उनकी इस प्रवृत्तिने उन्हें कितनी बार कई उलझनोंमें फँसा दिया होगा, इसकी जानकारी तो नहीं मिल सकी, किन्तु उनकी इस निश्छल-उदारताके कारण कितने ही व्यक्ति लाभान्वित हुए होंगे, इसमें सन्देह नहीं।

श्रद्धेय नाहटाजीने किसी भी विश्वविद्यालयसे कोई उपाधि ग्रहण नहीं की किन्तु अपनी जन्मजात प्रतिभा, संस्कार एवं स्वाध्यायके बलपर उन्होंने विविध ज्ञान-विज्ञानका तुलनात्मक गहन अध्ययन किया है और आज उनके ज्ञानका धरातल इतना उच्च हो गया है कि पी-एच०, डी०, डी० लिट् जैसी उपाधियाँ उनके लिए तुच्छ हैं, वे उनका मापदण्ड नहीं बन सकतीं। यथार्थतः वे विश्वकोष (Encyclopeadia) का रूप धारण कर चुके हैं। अतः उनके व्यक्तित्व एवं कृतित्वके मूल्यांकनके लिए उन जैसे ही साधक, तपस्वी, कर्मठ एवं प्रतिभाकी साक्षात् मूर्तिकी आवश्यकता है। मुझ जैसे नगण्य व्यक्तिके पास उनके विषयमें कुछ भी लिखने अथवा कहनेकी योग्यताका सर्वथा अभाव है। हाँ, अपनी श्रद्धाञ्जलियाँ मौन-भाषामें व्यक्त कर मैं देवाधिदेवसे उनके स्वस्थ दीर्घायुष्यकी कामना करता हूँ कि वे शतायु हों और निरन्तर हमें अपने अनुभवोंसे लाभान्वित कराते हुए उत्साहित एवं प्रेरित करते रहें।



वन्दनीय नाहटाजी

डॉ० व्रजलाल वर्मा, एम० ए०, पी-एच डी०

बारह तेरह वर्ष बीत गये—जब मैंने अपने 'संत कवि रज्जव' सम्बन्धी शोध प्रबन्धकी सामग्री-गवेषणा हेतु राजस्थानकी चार यात्राएँ लगातार दो वर्षकी अवधि में की थीं। वहाँ चार विद्वान् राजस्थानी-हिन्दी-साहित्यमें निष्णात सुनाई पड़े—पहले पुरोहित हरिनारायणजी शर्मा, दूसरे स्वामी मंगलदासजी महाराज जयपुर, स्वामी नारायणदासजी पुष्कर तथा श्री अगरचन्द नाहटा, बीकानेर। इनमें पुरोहितजी तो दिवंगत हो चुके थे—उनकी कृतियोंसे मुझे शोधका प्रशस्त मार्ग मिला—शेष वृहत्त्रयीसे मुझे प्रत्यक्ष परामर्श, सम्मतियाँ, नाना समस्याओंका समाधान मिला।

मैं बीकानेरमें नाहटोंके गवाड़ जाकर श्री अगरचन्द नाहटा से मिला। उनका पुस्तकालय भी देखा। व्यापारके जटिल क्षीण तन्तुओंपर सरस्वती किस ओज एवं शक्तिके साथ प्रतिष्ठित रह सकती है, यह मुझे वहीं जाकर देखनेको मिला।

सन्त कवि रज्जबपर कुछ सूचनाओं तथा रज्जब-वानीके पाठालोचन तथा शब्दार्थ ज्ञान हेतु मैंने एक पत्र डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदीको कभी लिखा था किन्तु उन्होंने स्पष्ट लिखा कि मुझको रज्जबके सम्बन्धमें जितना प्रकाशित है, उससे अधिक ज्ञात नहीं है। सच्चे विद्वान कितनी सहजतासे अपनी—नाजानकारीको स्वीकारते हैं—यह इस प्रसंगमें मुझे देखनेको मिला। पं० परशुरामजी चतुर्वेदीका उत्तर भी इसी परम्परामें मिला। श्री स्वामी मंगलदासजी तथा श्री अगरचन्द नाहटासे ही रज्जबजीके सम्बन्धमें कुछ जानकारी प्राप्त हुई—तथा पुष्करके महात्मा स्वामी नारायणदासजीका परिचय भी इन्हीं महाभाग जनोंसे प्राप्त हुआ। नाहटा-जीने उदारतापूर्वक अपने पुस्तकालयकी पुस्तकें देखनेका सुअवसर एवं स्वीकृति मुझे दी।

नाहटाजीके विद्याव्यसन, विशेष रूपसे राजस्थानकी अज्ञात साहित्यिक सामग्रीकी जानकारीपर मैं विस्मित हुआ। प्रचुर अप्रकाशित सामग्रीका उन्होंने संग्रह किया है।

श्री नाहटाके संरक्षणमें राजस्थानसे कई पत्र पत्रिकाओंका त्राण और कल्याण हुआ है। पुरा-साहित्यकी आत्मासे परिचय राजस्थानके जिन मनीषियोंका है, उनमें श्री नाहटाजी शीर्षस्थ लोगोंमेंसे एक हैं।

नाहटाजीका अभिनंदन हो रहा है। मैं आयाजकोंको बधाई देता हुआ पुण्य चरण नाहटाजीको अपना प्रणाम अर्पित करता हूँ।

भवन्ति भव्येषु हि पक्षपाताः।

●

'विद्या ददाति विनयम'

डॉ० ब्रह्मानन्द

श्री अगरचन्दजी नाहटाका नाम हिन्दीका कौन विद्यार्थी नहीं जानता है? मैं भी उनका नाम बहुत दिनोंसे सुनता आ रहा था। सहसा, एक दिन कलकत्ताके श्रीरामचन्द्रजीके मन्दिरमें स्थित पुस्तकालयमें उनसे भेंट हो गई। यह लगभग १९५८ की बात है। वे कलकत्तामें आये थे और अपने व्यवसायके उद्देश्यसे आसाम जाने वाले थे। श्री नाहटाजी लायब्रेरीमें पुस्तक देखनेमें तल्लीन थे। वे एकाग्रचित्त हो किसी पुस्तकको बहुत देर तक देखते रहे। उनकी वह मुद्रा मुझे आजतक स्मरण है।

वे राजस्थानी वेशभूषासे सुसज्जित थे। उस समय बीकानेरी पगड़ी पहने हुए थे। बड़े भव्य जान पड़े। लायब्रेरियनने उनसे मेरा परिचय कराया। उनके नेत्रोंसे स्नेह टपकता था। रंग कुछ साँवला था। मुद्रा बड़ी गंभीर थी। साहित्यिक विषयों पर थोड़ी देरतक चर्चा चलती रही।

श्री नाहटाजीके प्रथम दर्शनसे मेरे मनपर यह प्रभाव पड़ा कि ये बड़े सज्जन, मधुरभाषी और सारल्यकी साक्षात् प्रतिमा हैं। साहित्यकी अनेक विधाओंके विद्वान लेखक होते हुए भी वे बहुत विनयशील हैं। अहंकार छू तक नहीं गया है।

नाहटाजीने हिन्दी साहित्य और भाषाको जो योगदान किया है, वह अनुपम है। उनका विद्या-व्यसन किसी डिग्री या पुरस्कार-प्राप्तिके लिए नहीं है। सरस्वतीकी साधना उनका स्वभाव बन गया है। यदि मैं यह कहूँ तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी कि हिन्दीके विद्वानों और साहित्यकारोंमें श्री अगरचन्दजी नाहटा सबसे अधिक स्वार्थहीन व्यक्ति हैं।

श्री नाहटाजीसे दूसरी बार मेरी भेंट नाहटोंकी गवाड़, बीकानेरमें स्थित उनके निवासस्थानपर हुई। उस समय मैं राजकीय महाविद्यालय (डूँगर कॉलेज) में प्राध्यापक था। कई दिनोंसे मनमें विचार उत्पन्न हुआ कि नाहटाजीसे मिलूँ। मेरे ही एक सहकर्मी बन्धु डॉ० श्यामसुन्दर दीक्षित उनके निर्देशनमें अनुसंधान कार्य कर रहे थे। उनसे नाहटाजीके बारेमें पता लगता रहता था। एक दिन मैं ढूँढ़ता हुआ उनके घर पहुँच गया। नाहटाजी घरमें ही थे। उन्होंने सहज मुस्कानसे ऊपर आनेके लिये कहा। मैं ऊपर गया था। वे पत्र आदि लिखनेमें लगे थे। उन्होंने कहा, 'भोजन कर लिया है? यदि नहीं किया हो तो कर लो।'

मैंने कहा, 'भोजन तो कर लिया है। प्यास लगी है।' उन्होंने टीपीकल राजस्थानी बर्तनसे पानी पिलाया। नाहटाजी जैनधर्मावलम्बी होनेके कारण जल आदिको सँभालकर रखते हैं, मकान बहुत साफ-सुथरा था। हर एक वस्तु बहुत व्यवस्थित ढंगसे रखी हुई थी।

मैंने उनसे जिज्ञासा प्रकट की, "आप इतना अध्ययन क्यों करते हो? इससे आपको क्या लाभ है?"

उन्होंने सहज गंभीरतासे कहा, "यह मेरा व्यसन है। किसीका व्यसन मदिरा-पान है, किसीका धूम्रपान है मेरा तो यही व्यसन है। मुझे इसी व्यसनने जीवनमें बहुत आनंद और सन्तोष प्रदान किया है।"

मैंने दूसरा प्रश्न किया। बीकानेरमें अबतक कितने अप्रकाशित हस्तलिखित ग्रन्थ हैं? उन्होंने कहा "लगभग कई हजार हस्तलिखित ग्रन्थ लालगढ़ पैलेस स्थित महाराज बीकानेरके पुस्तकालय और संग्रहालयमें हैं। ज्ञान-भण्डार अनूपसंस्कृत लायब्रेरीमें भी बहुत हैं। मेरे संग्रहालयमें भी पर्याप्त हैं।" उन्होंने अपना संग्रहालय खोलकर दिखाया। बहुत देर तक बातचीत करनेके पश्चात् मैंने उनसे विदा ली। उन्होंने फिर आनेके लिए कहा।

जब मैं उनके निवासस्थानसे निकला तो मनमें कई प्रकारके विचार उठने लगे। यह उसी परम्पराका व्यक्ति है, जो सन्तों, भक्तों और जैनमुनियोंकी रही है। उन्होंने केवल स्वान्तः सुखाय ही साहित्यकी सृष्टिकी थी। इसका यह अर्थ नहीं है कि उनका स्वान्तः सुखाय साहित्य-सृजन केवल स्वार्थके पंकमें धँसा हुआ था। वस्तुतः इस प्रकारके साहित्यकारोंका साहित्य सृजन 'बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय' ही होता था। लोक मंगलकी कामना उनके मनमें सर्वोपरि थी।

श्री अगरचन्दजीनाहटाका यह विद्या व्यसन केवल उनके लिए ही नहीं है। उनके इस व्यसनसे हिन्दी साहित्य और भाषाको बहुत लाभ हुआ है। भगवान्से प्रार्थना है कि इस प्रकारका व्यसन हिन्दीके अन्य साहित्यकारोंको भी लग जाये तो हिन्दी और भारतका बहुत कल्याण हो।

कई विद्वानोंने उनकी तुलना महापण्डित राहुल सांकृत्यायनसे की है। कई महानुभाव उनकी समता आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदीसे करते हैं। पर्वतमें किस शिखर की तुलना किस शिखरसे की जाये ? प्रत्येक शिखरका अपना महत्त्व है। अतः विद्याके सागरमें अवगाहन करनेवाले विद्वानोंकी तुलना करना उचित नहीं है। न मालूम कौन व्यक्ति क्या रत्न सरस्वती के मन्दिरमें समर्पित कर दे ! साहित्यके जो रत्न श्री अगरचन्द-जी नाहटा हिन्दी भाषा और साहित्यको प्रदान किये हैं, उनकी चमक हजारों वर्षों तक धूमिल नहीं होगी। आशा है, अपने भावी जीवन में उनके द्वारा और अधिक रत्न माँ भारतीके मंदिरमें समर्पित होंगे।

●

एक विरल व्यक्तित्व

प्रोफेसर डॉ. एल. डी. जोशी, एम. ए., पी-एच. डो.

मारवाड़ी पगड़ी, बन्दगलेका मारवाड़ी कोट, मोजड़ी और दोनों छोर कसी हुई धोती, घनी मूंछों-वाले प्रभावशाली चेहरे पर चश्मोंसे चमकती हुई आँखोंवाले नाहटाजीको प्रथम बार अखिल भारतीय लोक साहित्य सम्मेलनके बंबई अधिवेशनमें देखा तो मुझे हँसी आयी कि मारवाड़ी काकाको साहित्यका ठीक शौक चर्राया कि साहित्य गोष्ठीका आनंद ले रहे हैं ! परंतु मेरा कथन समाप्त हो उसके पूर्व ही प्रोफेसर के. का. शास्त्रीजीने कहा कि 'जानते नहीं, ये तो श्री अगरचंदजी नाहटा हैं !'

नाहटाजीका नाम मैंने वर्षोंसे सुना था। भला राजस्थान वासी ऐसा कौन साहित्य प्रेमी होगा जो नाहटाजीके नामसे अपरिचित हो।

हिन्दी साहित्यकी तथा हिन्दी की विभिन्न शोध पत्रिकाओंमें नाहटाजीके गवेषणा पूर्व लेख पढ़कर मैं प्रभावित हो चुका था। संशोधन तथा मौलिक प्रतिभासे संपन्न नाहटाजीके लेखोंको पढ़कर उनके एक विद्वान व्यक्तित्वकी कल्पना मेरे मनमें घरकर गई थी। राजस्थानकी अनेक महत्त्वपूर्ण परंतु विस्मृत कड़ियोंको नाहटा-जीकी तीक्ष्ण दृष्टिने ढूंढ़ निकालनेमें अपूर्व कार्य किया है। खासकर जैन साहित्यकी अनेकानेक मणिमालाओंको विस्मृतिके गर्भमेंसे बाहर निकालकर हमारी ज्ञान-संपदामें शामिल करनेका अद्वितीय कार्यकर नाहटाजीने प्रदेश तथा साहित्यकी अनन्य सेवा की है।

सादूल राजस्थानी रिसर्च-इन्स्टीट्यूट बीकानेरके डायरेक्टर एवं राजस्थान भारतीके संपादकके रूपमें नाहटाजीकी सेवा बेजोड़ है यह कहनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। मेरे जितने भी लेख राजस्थान भारतीमें छपे हैं, उनका श्रेय भी मैं नाहटाजीको ही देता हूँ क्योंकि उनके सतत आग्रह एवं प्रेम पूर्ण प्रेरणासे ही ऐसा संभव हो सका।

चाहे कलकत्ता हों या बीकानेर, प्रवासमें हों या घर पर नाहटाजीके नाम लिखे पत्रका प्रत्युत्तर अवि-लम्ब प्राप्त होगा ही यद्यपि उनकी लिखावट कुछ अजीब ढंगकी है तथापि पढ़नेमें परिश्रमके पश्चात् भी भाव समझनेका आनंद कम नहीं होता है।

राजस्थान संबंधी प्रकाशनोंके प्रचार की नाहटाजीको सदैव चिन्ता रही है और राजस्थानी साहित्यके प्रचार एवं प्रसारके लिये ये हमेशा ही प्रयत्नशील रहे हैं।

राजस्थानके किसी भी भागसे संबंधित संशोधनके प्रति नाहटाजीको सदा ही प्रेम रहा है। इतना ही नहीं नयी शोध समाग्रीको प्रकाशित करानेका इन्होंने अपना भरसक प्रयत्न भी किया है। ऐसी छपी हुई

सामग्रीका संग्रह करनेकी विरल वृत्ति भी नाहटाजीमें रही है। यह सद्भाव नाहटाजीके अपनी मातृभूमिके प्रति प्रेमका परिचायक है।

साहित्य प्रेमी होनेके साथ ही विद्वान नाहटाजी उद्योग प्रेमी तथा राष्ट्रवादी देशभक्त भी हैं। मारवाड़ी वेशभूषा धारण करने पर भी कृपणता अथवा संकुचित प्रादेशिक भावनाओंसे नाहटाजी सर्वथा ही मुक्त हैं। जहाँ राजस्थानी साहित्य-संस्कृतिके प्रति उनमें असीम अनुराग है, वहीं उनके विशाल हृदयमें समग्र देशके साहित्य संशोधनकी तीव्र उत्कण्ठा भी रही है। अखिल भारतीय लोक साहित्य तथा उसके सम्मेलनोंमें भी नाहटाजीने सदैव सहयोग दिया है। राजस्थानी लोक साहित्य समितिमें भी श्री नाहटाजीका नाम तथा स्थान अपने कृतित्व तथा व्यक्तित्वके कारण प्रमुख रहा है।

संक्षेपमें मैं यही कहूँ कि नाहटाजी जैसी विरल व्यक्तित्व वाली विभूति साहित्य-संशोधनकी दृष्टिसे राजस्थानकी भूमिमें युगों बाद ही अवतरित होती है। नाहटाजीका अभिनन्दन हो रहा है, उसे मैं यों कहूँ कि 'राजस्थानकी जीती जागती रिसर्च लेबोरेटरीका अभिनन्दन हो रहा है' इस विरल व्यक्तिके लिये हमारी शुभ कामना है—शतं जीव शरदः!

●

साहित्य-गगन के दैदीप्यमान

श्री चिम्मनलाल गोस्वामी

श्रीअगरचन्द नाहटाको मैं सन् १९२३ से जानता हूँ। उन दिनों मैं बीकानेरके जैन पाठशाला हाई-स्कूलका प्रधानाध्यापक था। मेरे आनेके पूर्व वह एक मिडिल स्कूल था। श्री अगरचन्द पाँचवीं कक्षाकी परीक्षा पास करके स्कूल छोड़ चुके थे और पूर्व सम्बन्धके नाते स्कूलमें आया-जाया करते थे। उस समय किसको पता था कि श्री अगरचन्द आगे चलकर राजस्थानके साहित्य-गगनके एक दैदीप्यमान नक्षत्र होकर चमकेंगे।

भगवत्कृपासे दस ही वर्ष बाद मैं गोरखपुर चला आया और भारतवर्षके सुप्रसिद्ध आध्यात्मिक पत्र 'कल्याण' से मेरा सम्बन्ध हो गया। कुछ ही वर्षों बाद श्रीअगरचन्दके लेख कई पत्र-पत्रिकाओंमें निकलने लगे और धीरे-धीरे 'कल्याण' के भी ये एक सम्मान्य एवं विशिष्ट लेखक बन गये।

राजस्थानी साहित्यके तो ये एक विशेषज्ञ माने जाने लगे और बीकानेरके 'सादूल राजस्थानी शोध-संस्थान'के निदेशकके रूपमें इन्होंने राजस्थानी साहित्यके जाज्वल्यमान रत्नोंको प्रकाशमें लाकर उक्त साहित्यकी अभूतपूर्व सेवा की। इनके लेख बड़े ही विचारपूर्ण एवं शिक्षाप्रद होते हैं तथा अत्यन्त सरल एवं सुबोध भाषामें लिखे रहनेके कारण बड़े ही हृदयग्राही भी। जैनमतके अनुयायी होते हुए भी इनके सनातन हिन्दूधर्मके प्रति बड़े उदार भाव हैं और इन्होंने हिन्दूधर्मके सिद्धान्तोंका बड़ी ही आदर-बुद्धिसे अनुशीलन भी किया है।

ये चरित्रके बड़े निर्मल हैं और धनी होते हुए भी बड़ा ही सादा जीवन व्यतीत करते हैं। एक व्यापारी होनेपर भी इनका विद्या-व्यसन एवं साहित्यानुराग सराहनीय एवं प्रेरणाप्रद है।

राजस्थानी होनेके नाते मुझे इनके कृतित्वपर गर्व है। मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई कि इनके जीवनके साठ वर्ष व्यतीत हो जानेपर विद्वद्वर्ग इन्हें अभिनन्दन-ग्रन्थके द्वारा सम्मानित करना चाहता है। मैं उनके इस समयोचित प्रयास एवं गुणग्राहकताका हृदयसे समर्थन करता हूँ। भगवान् करें श्रीअगरचन्द शतायु हों और भविष्यमें भी इनके द्वारा हिन्दी एवं राजस्थानी साहित्यकी बहुमूल्य सेवा होती रहे।

●

जैसा मैंने जाना

डॉ. पीताम्बर नारायण शर्मा

किसी परिहासप्रिय आलोचकने विधातापर आक्षेप करते हुए कहा है—

गन्धः सुवर्णे फलमिक्षुदण्डे
नाकारि पुष्पं खलु चन्दनस्य ।
विद्वान् धनाढ्यो नृपतिश्चरायुर
धातुःपुरा कोऽपि न बुद्धिदोऽभूत् ।।

ल्युडविक्र स्टर्नबाक संपादित **चाणक्य नीति संप्रदाय**, भाग २, खण्ड २, श्लोक ३३४, पृ. २१२)

—विधाताको पहले कोई अकल देने वाला नहीं हुआ। कदाचित् इसीलिए उसने सोने में सुगन्ध, गन्नेमें फल और चन्दन के वृक्ष पर फूल नहीं लगाये । इतना ही नहीं, वह विद्वान को धनी और राजा को दीर्घजीवी नहीं बनाता ।

इसे हम विधाताका नियम कह सकते हैं । किन्तु, नियममें अपवाद भी होते हैं । श्री अगरचन्दजी नाहटा जैसे व्यक्ति विधाताके इस नियमके अपवाद माने जा सकते हैं । श्री नाहटाजी विद्वान् होते हुए भी श्रेष्ठी हैं । उनका निर्माण करते हुए कदाचित् विधाताको कोई बुद्धि देनेवाला मिल गया होगा ।

श्री अगरचन्दजी नाहटा व्यापारी-व्यवसायी होते हुए भी उत्कट विद्याव्यसनी हैं। यह उनके चरित्र-की विरल विशेषता ही कही जायेगी ।

सन् १९५७-५८ के बीच संस्थान संचालक आचार्य विश्वबन्धुजीके विशेष आमन्त्रणपर श्री नाहटा-जी विश्वेश्वरानन्द संस्थान, साधु आश्रम, होशियारपुरमें पधारे थे । उन दिनों संस्थानके लगभग दस हजार हस्तलेखोंका 'हस्तलेख ग्रन्थ परितालिका'के लिए विवरण तैयार किया जा रहा था । श्री नाहटाजीको संस्थानमें संगृहीत कतिपय जैन हस्तलेखोंके वर्गीकरण तथा विवरण तैयार करनेमें सहायतार्थ आमन्त्रित किया गया था ।

संस्थान पुस्तकालयाध्यक्ष श्री शिवप्रसाद शास्त्रीजीके शब्दोंमें—श्री नाहटाजी सिरपर राजस्थानी निराली पगड़ी धारण किये, बड़ी-बड़ी मूँछों वाले, धोती-कुर्ता पहने, भरे-भरे वदनकी भव्य एवं हँसमुख आकृतिके व्यक्ति हैं । उनकी सौम्य प्रकृति एवं जैनसाहित्यका अगाध पाण्डित्य मनको मुग्ध करनेवाली है ।

श्री अगरचन्दजी नाहटा संस्थानमें चार-पाँच दिन ठहरे थे । इस अल्पकालमें ही वे अपने व्यक्तित्व एवं कृतित्वकी एक अमिट छाप यहाँके लोगोंपर छोड़ गये, जिसे आज भी बड़े आदरके साथ स्मरण किया जाता है ।

मुझे अभी तक श्री अगरचन्दजी नाहटासे साक्षात्कार करनेका सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ है । किन्तु, उनके कृतित्व द्वारा मैं उन्हें बहुत समयसे जानता हूँ । पत्र द्वारा मेरा परिचय अपने शोध-प्रबन्धकी तैयारीके दौरान सन् १९६३ से है । श्री नाहटाजीके सपनावती कथा, छिताई वार्ता, प्रेमावती कथा आदि लेख नागरी प्रचारिणी पत्रिका, सम्मेलन पत्रिका आदिमें प्रकाशित मैंने देखे । कुछ अन्य लेखोंकी सूचना भी मुझे मिली । किन्तु, वे पत्रिकाएँ तथा वे अंक हमारे संस्थान-पुस्तकालयमें नहीं थे। मुझे अपनी शोध-प्रबंध (जायसी-पुराकथा-मीमांसा)के लिए इस सामग्री तथा अन्य सूचनाओंकी आवश्यकता थी । मैंने पत्र द्वारा श्री नाहटा-जीसे प्रार्थना की और मुझे शीघ्र ही मेरी इच्छित सामग्रीकी प्रतिलिपि तथा सूचनाएँ मिल गयीं । यह सब

पाकर मुझे प्रसन्नताके साथ-साथ कुछ विस्मय भी हुआ, कि वह कैसा व्यक्ति है। कितना सहृदय है, जिसे शोध-कर्ताओंसे इतनी गहरी सहानुभूति है। कुछ भी पूर्व-परिचय न होनेपर भी उसने मुझे निराश नहीं किया। नहीं तो विद्वानों द्वारा पत्रोत्तरमें आलस्य अथवा उपरामता बरतनेकी शिकायत प्रायः सर्वत्र सुनी जाती है। श्री अगरचन्दजी नाहटा इस बातमें भी अपवाद ही प्रमाणित होते हैं।

मेरी भाँति अनेक शोध-कर्ता श्री नाहटाजीसे उपकृत हुए हैं और हो रहे हैं। वे सभी मेरी ही भाँति सरस्वतीके साधक इन श्रेष्ठिवरके प्रति अपनी कृतज्ञता, श्रद्धा एवं सम्मान प्रकट कर रहे हैं और करते रहेंगे।

●

विराट व्यक्तित्व एवं असीम कृतित्व

डॉ० शिवगोपाल मिश्र

मैं प्रारम्भसे ही जिन तीन महान विभूतियोंसे प्रभावित हुआ, वे थीं—राहुलजी, वासुदेवशरण अग्रवाल एवं श्री अगरचन्दजी नाहटा। यदि इन तीनोंको मैं हिन्दी साहित्यके तीन आधारस्तम्भ कहूँ तो कोई अतिशयोक्ति न होगी। इनमेंसे प्रथम दो विभूतियाँ अब इहलोकको त्यागकर परलोकवासी हो चुकी हैं किन्तु सौभाग्यसे नाहटाजी अपने जीवनके ६० वर्ष पार करके भी हिन्दी साहित्यकी श्रीवृद्धिमें दत्त-चित्त हैं।

हिन्दी साहित्यके इतिहासमें नाहटाजीका अपूर्व योगदान रहा है। यदि मिश्रबन्धुओंको हिन्दीके अनेक कवियोंको उद्घाटित करने और आचार्य रामचन्द्र शुक्लजी को हिन्दी साहित्यका प्रामाणिक इतिहास लिखनेका श्रेय प्राप्त है तो श्री नाहटाजीको प्राचीनसे प्राचीन हिन्दी कृतियोंको प्रकाशमें लानेका श्रेय प्राप्त है। इस दिशामें नाहटाजीका योगदान अद्वितीय है। वे हिन्दी साहित्यके महान् इतिहासज्ञ हैं।

यद्यपि राजस्थानके इतिहासमें कर्नल टाडका बहुत नाम है किन्तु मैं नाहटाजीको उनसे भी बढ़कर मानता हूँ। साहित्यकी सरस्वतीको मरुभूमिमें सतत प्रवह रखनेमें नाहटाजीके भगीरथ-प्रयासकी जितनी भी प्रशंसा की जाय थोड़ी है।

नाहटाजीके विराट व्यक्तित्वके अपरिहार्य अंग हैं—उनकी सरलता, निश्छलता, उनका विद्या-व्यसन एवं उनकी संचयवृत्ति। वे इतने सरल हैं, उनकी वेषभूषा ऐसी है और वे अहंकारसे इतने परे हैं कि कोई भी उनसे मिलकर अपने अन्तरतमकी बात कह-सुन सकता है। वे सरलता की साक्षात् प्रतिमूर्ति हैं। धोती, कुर्ता और पगड़ी, यही है उनकी वेशभूषा।

उनमें छलकपट रंच भर भी नहीं है। आये दिन तमाम शोधछात्र उनसे पाण्डुलिपियों के सम्बन्धमें जानकारी माँगते रहते हैं, जिन्हें वे नूतनतम सूचनासे उपकृत करनेके साथ ही कभी-कभी मूल पाण्डुलिपि भी भेज देने तककी सदाशयता दिखाते हैं। यदि कोई अनुसंधित्सु किसी महत्त्वपूर्ण कृतिकी प्रतिलिपि चाहता है तो वे उसका भी प्रबन्ध कर देते हैं। बदलेमें वे उन व्यक्तियोंसे ऐसी ही जानकारी या सूचना प्राप्त करने-में तनिक भी हिचकका अनुभव नहीं करते। मैंने उन्हें कई बार प्रतिलिपि कराकर सामग्री प्रेषित की है।

नाहटाजीको पढ़नेका व्यसन है। उन्होंने स्वयं एक स्थानपर लिखा है कि स्कूली शिक्षा बहुत कम रही है किन्तु उन्होंने स्वाध्यायके बलपर इतना ज्ञान अर्जित किया है। नाहटाजी मूलतः व्यवसायी हैं। साहित्य तो उनका व्यसन है जो अब उनका जीवन-रक्त बन चुका है।

मुझे सर्वप्रथम १९५९में नाहटाजीके दर्शन करने तथा बीकानेर जाकर एक मास तक उनके सम्पर्कमें आनेका सुअवसर प्राप्त हुआ। उन्होंने न केवल मेरे ठहरने तथा सुख सुपासका प्रबन्ध किया था वरन अपने एक शिष्यको अनूप संस्कृत लाइब्रेरी तक मुझे ले जाने तथा बीकानेरके प्रसिद्ध स्थलोंको दिखानेके लिए नियुक्त कर दिया था।

उनके विद्याव्यसनका प्रतीक अभय जैन ग्रंथालय है। यह दुमंजिला भवन है, जिसमें अगणित अमूल्य पाण्डुलिपियोंके अतिरिक्त चित्र तथा पुरातत्व सामग्री संगृहीत है। एक व्यक्तिकी विलक्षण पठनरुचि तथा संग्रहप्रवृत्तिका इसीसे अनुमान लगता है। नाहटाजी इस ग्रन्थालयके निदेशक हैं। वे इसके उन्नयनके लिए पुस्तकोंकी खरीदसे लेकर रजिस्टरमें उनको दर्ज करने तकका कार्य स्वयं करते हैं। वे बाहरसे एकत्र की गई पाण्डुलिपियोंका स्वयं अनुसंधान करके उनका परिचय लिखते हैं। शायद ही कोई ऐसा साहित्यकार हो, जिसे इतनी पाण्डुलिपियोंमें डूबने-उतरानेका सुख प्राप्त हुआ हो। ऐसे ही विरल मनस्वी श्री रायकृष्ण-दास हैं, जिन्होंने अपने बूतेपर 'भारत कलाभवन'का निर्माण किया है। ऐसी विभूतियाँ कम ही हैं।

नाहटाजीके विद्याव्यसनका एक प्रमुख अंग है पत्राचार। वे पत्र लिखनेमें जितनी तत्परता दिखाते हैं उतनी तत्परता मैंने राहुलजी तथा डॉ० वासुदेवशरणजी अग्रवालमें पाई थी। आप कैसी भी सूचना क्यों न माँगें, सहज भावसे वे उसे बिना किसी देरीके आप तक पहुँचा देंगे। यह मानवीयताका अत्यन्त पुष्ट पहलू है। एक बार पत्रव्यवहार स्थापित हो जानेपर वे स्वयं भी पत्र लिखकर कुशल समाचारोंसे लेकर गहन साहित्यिक चर्चाकी पूछताछ करते रहते हैं। मेरे पास उनके शताधिक पत्र होंगे जिनमें उन्होंने मेरी पुस्तकों-की आलोचना, सम्मति आदिसे लेकर मेरे स्वास्थ्य एवं मेरे परिवारके कुशल क्षेम का जिक्र किया है। वैसे मैं नाहटाजी की लिखावट पढ़ लेता हूँ किन्तु एक बार कुछ शब्द मैं नहीं पढ़ पाया तो प्रमोदवश मैंने लिख भेजा कि कृपया अक्षर साफ लिखा करें। तबसे वे या तो टाइप करके या दूसरेसे पत्र लिखाकर और उसमें अपने हस्ताक्षर करके मुझे अनुगृहीत करते रहे हैं।

नाहटाजी अनन्य जिज्ञासु हैं। नवीन पुस्तकोंकी सूची, नई पत्रिकाओंके पते और नई पाण्डुलियोंकी सूचनायें प्राप्त करते रहना मानों उनका कार्यक्रम बन चुका है। यही नहीं कि वे हिन्दी साहित्यकी पत्रिकाओं में ही अभिरुचि लेते हों, वे विज्ञानविषयक पत्रिकाओंके सम्बन्धमें भी रुचि लेते रहे हैं। मुझे स्मरण है, एक बार उन्होंने मुझसे 'विज्ञान' के सम्बन्धमें जानकारी चाह थी और तदनन्तर मेरे अनुरोधपर एक लेख भी प्रकाशनार्थ भेजा था। जब-जब मैंने नई पत्रिकायें निकालीं—चाहें 'अन्तरवेद' रहा हो या 'अपरा'—नाहटा-जीने अपने शुभाशीर्वादसे मुझे प्रोत्साहित किया है।

नाहटाजीका कृतित्व असीम है। उनकी विद्या-मन्दाकिनी विनयसम्पन्न होनेके कारण ऐसे करारों-को स्पर्श करती हुई अग्रसर हुई है कि 'साठसहस्र' सगरके ही पुत्र नहीं, मनुके सभी पुत्र-मनुज—उससे तर गये हैं। नाहटाजीने अपने विचारोंको, अपनी विद्वत्ताको लेखोंके रूपमें प्रस्तुत किया है और इन लेखोंको उन्होंने मुक्तहस्तसे लुटाया है, विभिन्न पत्र-पत्रिकाओंने इन लेखोंको प्रकाशित करनेमें गौरवका अनुभव किया है। फलस्वरूप नाहटाजी हर पढ़ेलिखे घरमें प्रवेश पा सके हैं। मेरे विचारसे नाहटाजी अवढर दानी हैं। अपनी प्रतिभाको प्रकाशमें लानेके लिए उन्होंने काफी श्रम किया है। उन्होंने भारत भरके ग्रंथागारोंको छान डाला है तब उनकी लेखनी चली है। वे परम लिक्खाड़ हैं। 'कल्याण'से लेकर 'हिंदुस्तानी' तकमें उनके लेख पढ़े जा सकते हैं। एक बार उन्होंने मुझे अपने लेखोंकी एक सूची भेंट की थी, जिसमें कमसे कम एक सहस्र शीर्षकोंका उल्लेख था। अब इनकी संख्या अवश्य ही दूनी-तिगुनी हो चुकी होगी।

नाहटाजीकी अभिरुचि प्राचीन साहित्यके प्रति रही है। उन्हें जैनसाहित्यपर एकाधिकार प्राप्त है।

उन्होंने 'समयसुन्दरकृति कुसुमांजलि' नामक एक ग्रंथका सम्पादन बहुत पहले किया था। इस सम्बन्धमें मेरा ज्ञान अल्प है, अतः मैं इस दिशामें किये गये नाहटाजीके कार्यका समुचित मूल्यांकन करनेमें असमर्थ हूँ किन्तु राजस्थानी साहित्य तथा हिंदी साहित्यके सम्बन्धमें उन्होंने जो संकलन-सम्पादन किया है, वह अवश्य ही अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

नाहटाजीके कार्यका स्मारक स्वरूप है "राजस्थानमें हिन्दी ग्रंथोंकी खोज"। इनके दो भागोंका संकलन-सम्पादन नाहटाजीने किया है। यह कई भागोंमें छपा है। अकेले एक व्यक्तिने जितना कार्य कर दिखाया है, वह बड़ीसे बड़ी संस्थायें नहीं कर पातीं। इसीलिये मैं उन्हें जीती-जागती संस्था कहता हूँ। वे स्वयंमें साहित्यिक तीर्थ बन चुके हैं। जिस किसीको हिन्दी पाठालोचन या प्राचीन साहित्यपर कार्य करना है, उसे नाहटाजीके दर्शन करने ही होंगे।

नाहटाजी स्वयंमें हिन्दी साहित्यके एक युग स्वरूप रहे हैं। उन्होंने स्वयं नवीनसे नवीनतम सामग्री प्रस्तुत की है और अन्योंको नई दिशायें प्रदान की हैं। उनका उदार पथ-प्रदर्शन बहुतोंको प्राप्त हुआ है। मेरे लिये तो वे सतत प्रेरणाके स्रोत रहे हैं। ऐसे युगपुरुषको मैं श्रद्धावनत होकर प्रणाम करता हूँ।

●

श्रेष्ठि विद्वान् श्री नाहटाजी

डॉ० जितेन्द्र जेटली

विश्वमें लक्ष्मी और सरस्वतीका सुभग समन्वय अपने भारतवर्षमें विरल ही प्रतीत होता है। उसमें भी मरुभूमि या राजस्थान तथा गुजरात ये दोनों प्रदेश सरस्वतीकी अपेक्षा लक्ष्मीके प्रति अधिकतर आकृष्ट होनेकी वजहसे यह समन्वय और भी विरल है। अन्य प्रदेशों जैसे कि महाराष्ट्र, बंगाल, मद्रास वगैरहमें विद्वानोंका सम्मान जिस परिमाणमें किया जाता है और देखा जाता है उस परिणाममें राजस्थान और गुजरातमें नहीं है। इतना ही इस कटु सत्यका तात्पर्य है। कभी-कभी सामान्य बातोंमें भी अपवाद हुआ करता है। वैसा अपवाद श्रेष्ठी श्री अगरचन्दजी नाहटा हैं। वे केवल अच्छे व्यापारी और अच्छे श्रेष्ठी ही नहीं हैं अपितु वे राजस्थानमें इने-गिने सारस्वतोंमेंसे एक हैं।

मेरा और उनका परिचय जब महामना स्व० मुनिश्री पुण्यविजयजी जैसलमेरके ज्ञान भण्डारोंके उद्धारके वास्ते गये थे, उस समय हुआ। मैं अपनी संस्थाकी ओरसे इस कार्यमें यत्किञ्चित्साहाय्य देनेके वास्ते भेजा गया था और अगरचन्दजी अपनी संशोधन विषयक रसिकता और लगनके कारण वहाँ आ गये। वे केवल तीर्थयात्राके उद्देश्यसे वहाँ नहीं आये थे परन्तु वे उन दिनोंमें उस कार्यमें लगे हुए विद्वानोंके साथ चर्चाके अलावा अपने संशोधनको आगे बढ़ाने आये थे।

वे यद्यपि एक अच्छे व्यापारी हैं परन्तु व्यापारका कार्य वे वर्षमें केवल २-३ महीना ही व्यवस्थित रूपसे करते हैं। उनकी व्यवस्थासे उनका कारोबार व्यवस्थित रूपसे चलता रहता है। आठ-दस मास तक वे बराबर संशोधन कार्यमें लगे रहते हैं। उनके आमन्त्रणसे मैं और डॉ० सांडेसराजी बीकानेर गये थे। उन्होंने परिश्रमके साथ बीकानेरके सभी ज्ञान भण्डार साथमें चलकर दिखलाये और कौन सी सामग्री हमें हमारे विषयके वास्ते कहाँसे मिल सकती है, इसका भी मार्गदर्शन दिया था। अनेक अप्राप्य हस्तलिखित ग्रन्थ उनकी सहायतासे देखनेके लिये प्राप्त हो सके। उनकी सहायतासे ही हम बीकानेर राज्यके हस्तलिखित पुस्तकोंके निजी संग्रहको देख सकें।

हमें मार्गदर्शन देनेके अलावा साथमें वे अपना संशोधन कार्य करते रहते थे। मेरी समझमें भारतीय भाषाओंकी अनेक संशोधन पत्रिकाओंमें उनका कुछ न कुछ प्रदान अभी तक चालू है। विद्वानोंके साथ अपने वाणिज्यके व्यवसायको छोड़कर संशोधन विषयक अनेक ज्ञानगोष्ठियोंमें उन्हें इतना आनन्द आता है कि वे उस समय भूल जाते हैं कि वे एक व्यापारी हैं। विद्वानोंको उनकी लगन और सारस्वतोपासना देखकर यह बात विस्मृत सी हो जाती है कि अगरचन्दजी नाहटा एक अच्छे व्यापारी हैं। इस गौरवके कारण उनका निजी हस्तलिखित पुस्तकोंका संग्रह करीब चालीसहजारसे भी अधिक है। उसी तरह मुद्रित पुस्तकोंका भी उतना ही विपुल संग्रह है। उनके निजी अभय जैन ग्रन्थालय में अनेक पत्र-पत्रिकाएँ तथा संशोधन सामयिक आते हैं।

ऐसे श्रेष्ठिसारस्वतका जैन संघकी अनेक सेवा संस्थाओंसे सम्बन्ध हो उसमें आश्चर्य नहीं है परन्तु नागरी प्रचारिणी, भारतीय विद्याभवन जैसी सर्वसम्मान संस्थाओंसे भी उनका गाढ़ सम्बन्ध है।

ऐसे सुयोग्य श्रेष्ठिसारस्वतको परमकृपालु भगवान दीर्घ आयुष्य प्रदान करें, यही शुभभावना है।

●

संस्कृति और साहित्यके लिए नाहटाजीकी महान् देन

श्री प्रभुदयाल मीतल

श्री अगरचन्दजी नाहटा राजस्थानके होते हुए भी वस्तुतः समस्त भारतवर्षके हैं, क्योंकि उनकी महान् देनसे देशभरकी संस्कृति और साहित्यकी समृद्धिमें अनुपम योग मिला है। उनके दीर्घकालीन अनुसंधानसे ऐसे महत्त्वपूर्ण तथ्य प्रकाशमें आये हैं कि वे भारतीय संस्कृति और साहित्यके इतिहासमें प्रचुर काल तक प्रमुख स्थान प्राप्त करते रहेंगे।

नाहटाजी विगत ४० वर्षोंसे अनुसंधान-अध्ययन, शोध-समीक्षा और लेखन-संपादनके गुरुतर कार्योंमें लगे हुए हैं। उन्होंने अकेले ही इन क्षेत्रोंमें इतना विपुल कार्य किया है, जितना दस विद्वान् भी कठिनतासे कर सकेंगे। उनके कार्यक्षेत्रकी परिधि बड़ी व्यापक एवं विशाल है और उनके मित्र, प्रशंसक और पाठक देशभरमें बिखरे हुए हैं।

उन्होंने जैन धर्म, दर्शन, साहित्य और इतिहास तथा राजस्थानकी भाषा, ऐतिहासिक परंपरा और साहित्यिक समृद्धिका बड़ा गहन अध्ययन एवं व्यापक अनुसंधान किया है और फिर उन विषयोंपर खूब जम कर लिखा है। उनके तत्संबंधी लेख प्रायः दो सौ पत्र-पत्रिकाओंमें प्रकाशित हुए हैं। हिन्दीका शायद ही कोई ऐसा सामयिक पत्र हो, जिसमें उनके अनेक लेख प्रकाशित न हुए हों।

मेरा उनसे ३० वर्ष पुराना परिचय है, जो उनके लेखोंके माध्यमसे ही हुआ है। अब तो उक्त परिचयने घनिष्ठ मित्रताका रूप धारण कर लिया है। वे 'ब्रजभारती'में आरम्भसे अब तक बराबर लिखते रहे हैं। उनके लेखोंसे ब्रजसंस्कृति एवं साहित्यके विविध अंगोंपर महत्त्वपूर्ण प्रकाश पड़ा है। मेरे आग्रहपर उन्होंने ब्रज साहित्य मंडलके मथुरा अधिवेशनपर आयोजित 'ब्रज साहित्य परिषद'की अध्यक्षता की थी और 'सूर-विचार-संगोष्ठी'में योग दिया था। उन अवसरोंपर उनके विद्वत्तापूर्ण भाषणोंसे उपस्थित विद्वत् जन बड़े प्रभावित हुए थे।

उनके अनुसंधानोंका लाभ विद्वानों, प्राध्यापकों, शोधार्थियों और लेखकोंने समान रूपसे उठाया है। उनसे विविध भाँतिकी सहायता लेकर सैकड़ों शोधार्थी 'डाक्टरेट'की उपाधियाँ प्राप्त करनेमें सफल हुए हैं।

विश्वविद्यालय और शिक्षा क्षेत्रसे सीधा सम्बन्ध न होनेपर भी उन्होंने इनके लिए जितना कार्य किया है, उतना न तो किसी प्राध्यापकने किया और न किसी दूसरे विद्वान् ने। कैसी विडंबनाकी बात है, जिस विद्वत्-शिरोमणिसे ज्ञानके क्षेत्रका इतना विस्तार हुआ है, उसे किसी विश्वविद्यालयने 'डाक्टरेट'की 'आनरेरी' उपाधिसे सम्मानित करनेकी आवश्यकता नहीं समझी, यद्यपि उससे उक्त विश्वविद्यालयका ही सम्मान होता।

बड़े हर्ष की बात है कि विद्वानोंमें नाहटाजीके साहित्यिक ऋणसे किंचित उऋण होनेकी भावना जागृत हुई और उसके लिए उनका अभिनन्दन किया जा रहा है। मैं इस सुअवसरपर अपने मित्र नाहटाजीको हार्दिक बधाई देता हूँ। मेरी भगवान श्रीकृष्णसे प्रार्थना है कि वे उन्हें शतायु करें और जीवनपर्यन्त संस्कृति तथा साहित्यको समृद्ध करते रहनेकी शक्ति प्रदान करें।

❁

शोधपुरुष श्री नाहटाजी

श्री श्रीरंजन सूरिदेव

साहित्यके क्षेत्रमें, जब साहित्यकारके जीवनकी लम्बी साधनाके आकलनका क्षण आता है, तब साधक साध्य बन जाता है। कहना न होगा कि हस्तलिखित पोथियोंके इतिहास-लेखक श्री अगरचन्दजी नाहटा स्वयं इतिहास बन गये हैं। फलतः, वे सम्पूर्ण साहित्य-जगत्के लिए जहाँ साध्य हो गये हैं, वहीं उल्लेख्य भी।

श्री नाहटाजीसे मेरा सर्वप्रथम पात्रिक परिचय पुण्यश्लोक आचार्य शिवपूजन सहाय तथा आचार्य नलिनविलोचन शर्मा जैसे पत्रकार-वरिष्ठद्वयके संयुक्त सम्पादकत्वमें प्रकाश्यमान बिहार हिन्दी साहित्य-सम्मेलन (पटना)के शोध त्रैमासिक 'साहित्य'में प्रथम जैनागम 'आचारांगसूत्र'के अध्ययन-विषयक लेखके सन्दर्भमें हुआ। श्री नाहटाजी, निसन्देह एक अधीती शोध-मनीषी हैं। उन्होंने मेरे उक्त लेखमें समाविष्ट कतिपय परिमार्जनीय त्रुटियोंकी ओर संकेत करते हुए मुझे एक पत्र लिखा था। यह बात वर्तमान शतीके छठे दशकके प्रारम्भकी है। उस समयसे अबतक श्री नाहटाजीके साथ मेरा अविच्छिन्न पत्र-सम्पर्क बना हुआ है। उन्होंने अपने पत्रोंके द्वारा न केवल मेरी जैनागम और जैन-परम्परा-विषयक जिज्ञासाओंको ही शान्त किया, अपितु इस दिशामें अक्लान्त भावसे आगे बढ़ते चलनेके सात्त्विक प्रोत्साहनसे भी मुझे परिबृंहित किया।

श्री नाहटाजीसे मेरा प्रथम साक्षात्कार, सन् १९६३ ई०के दिसम्बरमें, बिहारके प्रमुख जैनकेन्द्र आरा शहरमें, प्रसिद्ध प्राकृत पंडित डॉ० नेमिचन्द शास्त्रीके सारस्वत उद्यमसे, यशोधन जैनाचार्य डॉ० ए० एन० उपाध्येकी अध्यक्षतामें आयोजित जैन सिद्धान्त-भवनके हीरक-जयन्ती-समारोहके अवसरपर हुआ। उक्त समारोहकी जैन विद्वद्गोष्ठीमें मुझे भी एक 'शोधपत्र' प्रस्तुत करनेका सौभाग्य उपलब्ध हुआ था इसी अवसरपर श्री नाहटाजीको 'सिद्धान्ताचार्य'की उपाधिसे अलंकृत किया गया था। श्री नाहटाजीके प्रत्यक्ष दर्शनसे जैसे मुझे कृतार्थता मिल गई। शलाकापुरुष जैसी, विस्तृत आयामवाली उनकी आवर्जक आकृति धोती, मिरजई और उन्नत उष्णीषके परिधानमें बड़ी ही प्राणमयी एवं प्रकाशवती प्रतीत हुई। 'विद्या ददाति विनयं' जैसी शाश्वत मूल्यकी सूक्तिको सार्थक करनेवाली वरेण्यतासे विभूषित श्री नाहटाजीके तरल सौजन्यसे होनेवाली आत्मीयत्वकी अजस्र वर्षासे मैं सुधास्नात हो उठा और उनके यथाप्राप्त अल्पावधि-मात्र सम्पर्कसे ही ऐसा अनुभव हुआ कि जैसे मैं अपने किसी जनमान्तर-परिचित विद्वान् अभिभावकके स्नेहलुप्त परिवेशसे पर्यावृत हो गया हूँ। उनकी शुचि-रुचिर भव्यता जैसे मेरे उत्सुक मानसमें सहजभावसे संक्रान्त हो गई।

श्री नाहटाजीकी स्मृतिसे मेरी व्यस्तता समयकी रिक्तता भरती चली गई। दूसरी बार उनका सत्संग बम्बईमें, सन् १९६८ ई०में, प्राप्त हुआ। कलकत्ताके 'श्री श्वेताम्बर जैन तेरापन्थी महासभा' द्वारा, आचार्य श्री तुलसीकी वाचनाप्रमुखतामें पुरःसृत आगम-ग्रंथोंके विमोचनके निमित्त समारोह आयोजित विद्वद्गोष्ठीमें 'शोधपत्र' प्रस्तुत करनेके लिए पदार्पित पण्डितोंकी मालामें श्री नाहटाजी सुमेरुकी भाँति सुशोभित हुए थे। उक्त गोष्ठीमें गुणग्राहक श्री नाहटाजीने जब मेरे शोधपत्रकी अनुशंसा की, तब मैं पुनः एक बार उनके सहज साहित्यिक वात्सल्य से भींग उठा।

श्री नाहटाजीको हस्तलिखित पोथियोंका 'शोध-अवधूत' कहा जाय, तो कोई अत्युक्ति नहीं। अवधूत'की परिभाषा देते हुए प्रसिद्ध कोशकार पं० वामन शिवराम आप्टेने कहा है कि 'अवधूत' उस संन्यासीको कहते हैं, जिसने सांसारिक बन्धनों तथा विषय-वासनाओंको त्याग दिया है। इसके अतिरिक्त, 'अवधूत' को 'आत्मन्येव स्थितः' भी कहा गया है। तो, अवधूतकी यही 'आत्मस्थता' श्री नाहटाजीकी अपनी अद्वितीय विशिष्टता है। वे संग्रहालयोंसे कबाड़खानोंतक, 'हस्तलिखित' या 'दुर्लभ मुद्रित' पोथियोंकी खोजमें, तीर्थभावसे अटन करते हैं। बम्बईमें मैंने देखा कि प्राचीन पोथियों और पत्र-पत्रिकाओंकी खोजमें वे अपनी सुध-बुध खोकर संग्रहालयोंमें जितनी श्रद्धासे घूम रहे हैं, उतनी ही तल्लीनतासे कबाड़खानोंकी खाक छान रहे हैं। और, वहाँसे प्राप्त जीर्ण-शीर्ण पोथियों और पत्र-पत्रिकाओंको इस गौरवके साथ प्रदर्शित कर रहे हैं, मानों अनमोल हीरे-मोतियोंका खजाना ही उनके हाथ लग गया हो। उनके इस शोध-परिचंक्रमण या अभियानमें एक दिन मैं भी आवेष्टित हो गया और घुणाक्षरन्यायसे बम्बईके विख्यात प्रिंस ऑव वेल्स म्यूजियमके तत्कालीन निदेशक प्रसिद्ध पुरातत्त्वज्ञ डॉ० मोतीचन्द्रके महिमामय सान्निध्यका प्रायोदुर्लभ सौभाग्य मुझे सहज ही सुलभ हो गया। कहना अपेक्षित न होगा कि श्री नाहटाजीके निजी विशाल पुस्तकालय (अभय जैन ग्रंथालय)में अनेक कबाड़खानोंसे उपलब्ध विविध ग्रंथरत्नोंकी बहुत बड़ी संख्या सुरक्षित है। कालिदासने कहा भी है : 'न रत्नमन्विष्यति मृग्यते हि तत्।'

श्री नाहटाजी न केवल 'ग्रन्थी भवति पण्डितः'को ही सार्थक करते हैं, अपितु वे ग्रंथरत्नोंकी परखमें निपुण जौहरीकी भी सफल भूमिका निबाहनेमें प्रख्यात हैं, हालाँकि, आजकलका फैशन तो यह है कि ग्रन्थोंका विभ्राट् संकलन करके उनमें यत्र-तत्र लाल पेंसिलसे चिह्न लगाकर उन्हें केवल बैठकखानेकी आलमारियोंकी शोभा बढ़ानेके लिए ही छोड़ दिया जाता है। कथित संकलनकर्त्ता यथा संकलित पुस्तकोंकी भूमिका तक पढ़नेका कष्ट नहीं कर पाते। फिर भी, उनका स्वयं सर्वस्वीकृत अधीती होनेका दावा करना सहज गर्वस्फीत धर्म हुआ करता है। किन्तु, इसके विपरीत, श्री नाहटाजी सही मानेमें एक ईमानदार अधीती हैं। सम्पूर्ण भारतकी शायद ही कोई पत्र-पत्रिका छूटी हो, जो श्री नाहटाजीके हस्तलिखित पुस्तकोंके अध्ययन-विषयक लेख-सम्पदासे वंचित हो। ख्याल ही नहीं, हकीकतकी बात तो यह है कि श्री नाहटाजीके सहस्राधिक ऐसे लेख प्रकाशमें आ चुके हैं, जिनसे हस्तलिखित पोथियोंकी खोजकी दिशामें नई विचार-शिला स्थापित हुई है। श्री नाहटाजी न केवल स्वयंकृत शोधकी परिधि तक ही सीमित हैं, वरंच वे अखिलभारतीय स्तरपर सम्पन्न साहित्यिक शोधकार्यकी व्यापकताके भी पूर्ण विज्ञाता हैं। आवश्यकता इस बातकी है कि यत्र-तत्र-विकीर्ण उनके हस्तलिखित ग्रन्थ-विषयक शोधपूर्ण लेखोंका पुस्तकाकार प्रकाशन प्रस्तुत किया जाय, जिससे शोध-इतिहासमें अद्यावधि अनास्वादित अनेक दृष्टिकोणोंके उद्घाटनकी सम्भावना भी सुनिश्चित है।

श्री नाहटाजी अविश्रान्त लेखनीके धनी हैं, तो अविराम अध्ययनके उत्तमर्ण भी। फलतः, साहित्यिक शोध-जगत् निस्सन्देह उनका अधमर्ण है कि उसने उनके द्वारा प्रस्तुत अगण्य अछूते सन्दर्भोंको समा-

कलित करके अपने शोध-विनियोगको सांग और सनाथ किया है। मुझे बिहार-हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन तथा बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्के शोध-त्रैमासिक 'साहित्य' और 'परिषद्-पत्रिका'की सम्पादन-सम्बद्धताका साग्रह संयोग सुलभ रहा है। उक्त दोनों शोध-पत्रिकाएँ श्री नाहटाजीके अनेक हस्तलिखित ग्रन्थोंके शोध-अध्ययन-विषयक लेखोंसे गौरवान्वित हुई हैं। और, इसी सारस्वत व्याजसे उनसे मेरी निरतिशय निकटताका सम्पर्क स्थापित हो पाया है। निश्चय ही, वे मेरे लिए न केवल योगक्षेमकी जिज्ञासा रखते हैं, अपितु जैनवाङ्-मयके अध्ययनके क्षेत्रमें मेरी प्रामाणिक प्रगतिका लेखा-जोखा भी लेते रहते हैं। सत्यतः, ऐसी उदारता और आत्मीयताके वितरणकी अकृपणता बहुत कम विद्वानोंमें परिलक्षित होती है।

सरस्वतीके वरद पुत्र श्री नाहटाजी बीकानेरके प्रमुख व्यवसायियोंमें परिगणित होते हैं। असम-राज्यमें उनका बहुत बड़ा व्यवसाय फैला हुआ है। फिर भी, उनकी लक्ष्मीको उनकी सरस्वतीसे किसी प्रकारका भी सपत्नी-भाव नहीं है। वरंच उनके सारस्वत व्यवसायके समक्ष उनका आर्थिक व्यवसाय नितान्त गौण हो हो गया है। वे मुख्यतः सारस्वत सामग्रीके ही अंगुलिगण्य आध्यात्मिक व्यवसायी हैं। असलियत तो यह है कि श्री नाहटाजी 'वाणिज्ये वसति लक्ष्मीः'के सिद्धान्तसे कहीं अधिक इस सिद्धान्तके निष्ठावान् समर्थक हैं कि 'विद्याधनं सर्वधनप्रधानम्।'

श्री नाहटाजी पत्राचार-पुंगव पुरुष हैं, पत्र लिखनेकी सहजात तत्परताकी दृष्टिसे भी उनकी द्विती-यता नहीं है। पात्रिक संस्कारसे सम्पन्न वे तो स्मृतिशक्तिके महानिधि ही हैं। अहोरात्र नवीन शोध-प्रकाशनोंकी जिज्ञासामें सोने और जगनेवाले श्री नाहटाजी जैसा संयमी और धीर व्यक्तिकी सहज ही विर-लता हुआ करती है। कहते हैं, जो लाकातिग विद्वान् होते हैं, उनकी हस्तलिपि प्रायः सुस्पष्ट नहीं होती। मुझे अनन्य प्रतिभापति महामहोपाध्याय पं० रामावतार शर्मा एवं उनके 'आत्मा वै जायते पुत्रः'के अक्षरशः अन्वर्थयिता आत्मज आचार्य नलिनविलोचन शर्माकी हस्तलिपियोंके अध्ययन-मननका सघन संयोग उपलब्ध रहा है। श्री नाहटाजीकी हस्तलिपि भी उसी विद्वत्-परम्पराका पोषण करती है। श्री नाहटाजीके अनेक ऐसे पत्र मेरे पास सुरक्षित हैं। और, परिषद्में भी यदि उनके हाथका लिखा कोई पत्र आता है, तो अर्थसंगतिके लिए मुझे ही उनके अक्षरोंको टटोलना पड़ता है। संस्कृति-वाङ्मयके धुरन्धर पं० मथुराप्रसाद दीक्षित-लिखित संस्कृत-नाटक 'वीरप्रताप'में एक जगह उट्टंकित है : 'पूज्यानां चरितानि वाच्यपदवीं नायान्ति लोके क्वचित्।' तो, महामनीषियों की अर्थगर्भ हस्तलिपि अवाच्य होनेपर भी वाच्यपदवी (निन्दा) को नहीं प्राप्त होती। क्योंकि, उनके अक्षरोंकी वक्ररेखाओंमें निहित उनके सरल विचार ही महार्घ और अन्वेष्टव्य हुआ करते हैं। यही कारण है कि महात्मा गान्धी एवं आचार्य विनोबा जैसे राष्ट्रनायक अपनी अस्पष्ट लिपिकी अपेक्षा अपने विशद विचारोंसे ही महान् हुए।

शोध-साहित्यके इतिहासमें श्री नाहटाजी जैसा बहुभाषाभिज्ञ लेखक दूसरा नहीं मिलेगा बहुत सिर खुजलानेपर भी उनका ही नाम पहला रहेगा। श्री नाहटाजी संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश आदि प्राच्य भाषाओंके मर्मज्ञ तो हैं ही, राजस्थानकी अनेक उपभाषाओंपर भी उनका प्रभुत्व है। उन्हें हस्तलिखित पोथियोंका 'जंगम विश्वकोश' कहा जाना चाहिए उनके द्वारा हस्तलिखित पोथियोंकी शोध-समस्याओंको शाश्वत प्रश्न बनाकर उपस्थित करनेकी विधि सदा आकर्षक रही है, जिसका नूतन कल्प और विन्यास प्रस्तुत करनेमें उनकी ततोऽधिक प्रतिष्ठा है।

श्री नाहटाजी साहित्यिकोंमें प्रमुखतः शोधकर्त्ता हैं और शोधकर्त्ताओंमें विशेषतः साहित्यिक। परि-णामतः, उन्होंने शोधको साहित्य और साहित्यको शोधका विशिष्ट अंग बनानेकी चिन्ता बराबर की है। ऐसी

स्थितियोंमें उनके लिए साहित्यिक गम्भीरता शोधीकरण ही है, जिसमें शंकाएँ वैज्ञानिक पद्धतिसे उठाई गई हैं और उनका समाधान आधिकारिक वचोभंगीमें उपस्थित किया गया है। अतएव, उनका शोधकार्य साहित्यके विभिन्न अज्ञात दृष्टिकोणोंके ऐक्य-प्रतिपादनका रमणीय विन्यास ही माना जायगा। शोधका काव्य-संवलित विन्यास सर्वप्रथम श्री नाहटाजीके ही कार्योंमें मिलता है। शोधकार्यको व्यापक विस्तार देनेका श्रेय उनको ही है। उन्होंने शोधपरक कृतियोंकी विपुल समीक्षा की है, जिसकी संख्या अपरिमेय है और जिनका महत्व स्वयं उनके लिए जीवन-दर्शनके समान है। निस्संशय, उनका समग्र जीवन शोधका ही पर्याय बन गया है। इसलिए, उनके शोध-कार्योंके मूल्यका सही-सही अंकन-प्रत्यंकन एवं विश्लेषण-व्यालोचन जबतक नहीं होता, तबतक हम उनके प्रति सच्ची श्रद्धांजलि अर्पित करनेमें पश्चात्पद ही रहेंगे। क्योंकि, वे जीवन-भर जिन शोध-आकांछाओंको पालते-सहलाते रहे हैं, उनसे हिन्दी-साहित्यके इतिहासके संरचनात्मक संघटन तथा उसके पुनर्विचारकी स्थिति उत्पन्न हो गई है।

प्रत्येक शोधकर्त्ता जहाँ समसामयिक इतिहासका प्रत्यक्षद्रष्टा होता है, वहीं अतीतके इतिहासका विश्लेषक भी। शोधकर्त्ताको अतीत और वर्तमानके सीमान्तोंकी विषम भूमिपर चलना पड़ता है। इस प्रायोदुष्कर कार्यमें श्री नाहटाजीकी कसौटी अपनी है तथा तर्क है उनका साधन। फिर भी, अपनी उपपत्तियोंको सिद्ध करनेके लिए उन्होंने तथ्योंके 'सुविधाजनक आकलन'को न तो निकष बनाया है और न ही प्रामाणिकताका ही सम्फेट या गर्वोद्घोष किया है। अपनी उपलब्धियोंको प्रतिमान माननेकी विवशता भी उनमें नहीं है।

शोधके क्षेत्रमें प्रश्न अनेक हैं, समस्याएँ विविध हैं। सभी प्रश्नोंके उत्तर नहीं दिये जा सकते और न प्रत्येक समस्याका समाधान ही अन्तिम समाधान हुआ करता है। फिर भी, श्री नाहटाजीके समाधान निरर्थक नही हैं और शोध-जगत्के अवबोधको उद्ग्रीव बनाये रखना भी अपने-आपमें बहुत बड़ा काम है। फलतः, अपने जीवनके एकमात्र व्रत शोधानुष्ठानके प्रति एकनिष्ठताकी दृष्टिसे शोधपुरुष श्री नाहटाजी वरेण्य तो हैं ही, अभिनन्दनीय भी हैं।

•

जैन साहित्य के प्रकांड विद्वान नाहटाजी

श्री कस्तूरमल बाठिया

गेहुआ रंग, लंबा कद, छरहरा बदन, ऊँची किन्तु उलझी हुई गंगाजमुनी मूँछें, कमरमें ढीली धोती और उसकी भी लांग आधी खुली, वही या तो बदनपर लिपटी हुई अथवा गंजी पहने हुए, आँखोंपर चश्मा लगाकर हेसियनके बोरे या चटाईपर बैठे हुए, जिसकी मुखमुद्रा गंभीर और शान्त है, ऐसे साहित्य-साधकको आप श्री अभय जैन ग्रंथालय बीकानेरमें दिनमें प्रायः सोलह घंटे बैठे पायेंगे। वे घरसे बाहर बहुत कम जाते हैं। यदि कामसे कहीं जाना हुआ तो बदनपर बंगाली कुर्ता, सिरपर मारवाड़ी पगड़ी, जिसके पेच अस्त-व्यस्त हैं। कन्धेपर सफेद दुपट्टा, पैरोंमें चर्मरहित जूते। यह है उनकी बाहरी वेशभूषा।

अपरिचित व्यक्ति उन्हें देखे तो सहसा विश्वास नहीं होता कि यह सीधा-सादा दीखनेवाला व्यक्ति विद्वान् भी है और धनवान भी। उनसे प्रत्यक्ष बात किये या संपर्कमें आये बिना पता नहीं चलेगा कि वह इतने विद्वान हैं कि उनकी ख्याति केवल राजस्थानी जगत्में ही नहीं, भारतके हिन्दी साहित्य जगत्में भी है। हिन्दी शोध जगत्के तो वह चमकते हुए नक्षत्र हैं।

नाहटाजीकी शिक्षा नाममात्र याने हिन्दीके पांचवें दर्जे तक हुई। स्कूली शिक्षा उन्हें भले ही

इतनी कम मिली हो लेकिन उन्होंने सतत अध्ययन और स्वाध्यायके द्वारा बहुमुखी प्रतिभा प्राप्त की है। उन्होंने प्राकृत, अपभ्रंश, गुजराती और संस्कृत तथा हिन्दीका अच्छा ज्ञान प्राप्त किया है और पांडित्य भी। लोगोंको यह सुनकर विस्मय होता है कि केवल पांच दर्जे तक पढ़े नाहटाजी विद्वान अधिकारी लेखक कैसे बनें ? यह सब नाहटाजीकी लगन, स्वाध्याय और मनन-चिन्तनका परिणाम है। नाहटाजीको जन्मजात संस्कारी विद्वान् कहा जाय तो उसमें अतिशयोक्ति नहीं होगी।

आजकल विश्वविद्यालयोंके छात्रों और कॉलेजोंके प्रोफेसरोंमें एम० ए० पास कर लेनेके बाद डाक्टरेट-की पदवी पानेकी घुड़दौड़-सी लगी रहती है। वे थीसिस लिखकर डॉक्टर बनना चाहते हैं, और हजारों व्यक्ति डॉक्टर बन भी गये हैं, पर मेडिकल डाक्टरोंके लिए तो शिक्षाकी सुव्यवस्था है। जगह-जगह बड़े-बड़े कॉलेज हैं किन्तु साहित्यके डाक्टरोंके लिये कोई सुविधा नहीं है। विश्वविद्यालयोंमें भी इस दिशामें अध्ययनके लिये पुस्तकालयोंमें पुस्तकें सीमित पाई जाती हैं।

बड़े राजकीय पुस्तकालयोंसे ग्रन्थ प्राप्तकर अध्ययन करना हरएकके लिए सुलभ एवं संभव नहीं है। फिर भी सैकड़ोंने परिश्रम कर विभिन्न विषयोंपर थीसिस लिखकर "डाक्टरेट"की पदवी प्राप्त की है। हिन्दीमें शोधकार्य करनेके लिए विद्यार्थियोंको विषय मिलना कठिन हो रहा है। इसलिए साहित्यिकोंका ध्यान राजस्थानी भाषा और जैनसाहित्यकी ओर आकर्षित हो रहा है। राजस्थानी भाषा और जैनसाहित्यमें विशाल भंडार भरा पड़ा है, जिसकी ओर पिछले १०–१२ वर्षोंमें साहित्य अन्वेषकोंका ध्यान गया है।

नाहटाजी राजस्थानी भाषा और जैनसाहित्यके चोटीके विद्वानोंमें माने जाते हैं। उनके पास अपना निजी अनुभव तो है ही परन्तु साथमें एक बड़ा पुस्तकालय भी है, जहाँ चालीस हजार हस्तलिखित ग्रन्थ और इतने ही मुद्रित ग्रंथोंका विशाल संग्रहालय है। भारतके व्यक्तिगत संग्रहालयोंमें यह सबसे बड़ा है। इसे देखकर डॉ० वासुदेवशरण अग्रवालके मुँहसे निकल गया—"यह साहित्य-तीर्थस्थान है"। अभय जैन ग्रन्थालयमें सैकड़ों अमूल्य ग्रंथों एवं पुरातत्वकी पुस्तकोंका संग्रह है। वहाँपर भारतके एक छोरसे दूसरे छोर तकके विद्वान् आते हैं या वहाँसे ग्रन्थ मँगाकर लाभ उठाते हैं। नाहटाजी मुक्तहस्तसे इस अमूल्य साहित्यनिधिको निःस्वार्थ भावसे वितरित करते हैं। पुस्तकालयकी विपुल सामग्रीका जितना उपयोग हो सके, उतना ही उन्हें संतोष होता है।

आजकल कई साहित्यिक अन्वेषक ऐसे मिलेंगे जो नाहटाजीसे थीसिस लिखनेके लिए विषय पूछते हैं। उनके लिए उपलब्ध साहित्य सामग्री की जानकारी एवं उनका मार्गदर्शन चाहते हैं। नाहटाजी कभी किसीको ना नहीं करते, सभीको यथासंभव सहयोग देते हैं, अपने अनुभवसे साहित्य अन्वे-षकके मार्गको प्रशस्त कर देते हैं, अपने पास जो पुस्तकें नहीं होतीं, वे दूसरी जगहसे अपने नाम या कीमतसे भी मँगाकर सहायता करते हैं। शोधके कुछ विद्यार्थी इनके पास आकर निवास भी करते हैं, शिष्य-भावसे उनके पास बैठकर लाभ उठाते हैं। नाहटाजीकी यह विशेषता है कि अपना सब काम करते हुए भी ऐसे विद्यार्थियोंको उचित मार्ग-दर्शन व सहायता करते हैं। राजस्थानी एवं जैनसाहित्यमें शोध करनेवाले विद्यार्थी भलीभाँति जानते हैं कि इन दोनों विषयोंपर शोधकार्य करना हो और थीसिस लिखना हो तो नाहटाजीकी सहायता अनिवार्य है। केवल नवीन शोध अन्वेषक ही नहीं, डाक्टरेटकी पदवी प्राप्त विद्वान भी शंकासमाधानके लिए नाहटाजीसे मार्ग-दर्शन चाहते हैं।

हाल ही की बात है कि अहमदाबादसे "डाक्टरेट" प्राप्त विद्वानका पत्र आया था, जो भारतके एक प्राचीन ग्रन्थ विमलदेवसूरिके "पउमचरिय" पर शोध कर रहे हैं। यह ग्रन्थ प्राकृत भाषाका है और वीर-

निर्वाणके ५३० वर्षके बाद लिखा गया था। इस ग्रन्थके विषयमें उठी कई शंकाओंके बारेमें उन्होंने कई विद्वानोंसे बातचीत की थी, किन्तु किसीसे उन्हें संतोषजनक और निश्चित मत नहीं मिल सका। उनमेंसे किसीने शंकाओंके समाधानके लिए नाहटाजीसे पूछनेके लिये ही लिखा। तात्पर्य यह कि नाहटाजीके दृष्टिकोण एवं विचारोंको भारतके बड़े-बड़े विद्वान भी प्रमाणित और तथ्यपूर्ण मानते हैं।

नाहटाजीका प्रिय विषय है प्राचीन शोध। वे इस विषयके प्रकांड पंडित माने जाते हैं। उनके करीब ३००० निबंध और विभिन्न विषयोंपर लिखे विद्वत्तापूर्ण लेख विभिन्न पत्र-पत्रिकाओंमें प्रकाशित हुए हैं। उनके लेख शोधपूर्णताके साथ-साथ नवीनतासे परिपूर्ण भी होते हैं। प्राचीन और नवीनका संतुलन उनमें होता है। वे हमेशा कहते हैं कि पिसे हुएको फिर दुबारा क्यों पिसना। इसीलिए उनके लेखोंमें नवीनता और स्वतंत्र विचार होते हैं। उन्हें लिखने-पढ़नेका व्यसन-सा हो गया है। नाहटाजी द्वारा लिखित और संपादित करीब डेढ़-दो दर्जन पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं।

हिन्दीमें वीरगाथाकाल, पृथ्वीराजरासो, विमलदेवरासो, खुमाणरासो, आदिकी जो नवीन शोध नाहटाजीने हिन्दी-संसारको दी है, इसके लिए हिन्दी साहित्य जगत् नाहटाजीका ऋणी रहेगा। शोधकार्यमें भी नाहटाजी गहरी दृष्टिसे काम लेते हैं। हिन्दीके महारथियोंके शोधकार्यमें भी वे भूल निकालते हैं। वह कहा करते हैं कि आजकल लोग परिश्रम करना नहीं चाहते। पकी-पकायी ही सबको अच्छी लगती है। हिन्दीके विद्वान् नई शोधके लिये परिश्रम न करके इधर-उधरका देखकर अपनी शोधकी इतिश्री मान लेते हैं। हिन्दीके जितने भी इतिहास शुरू-शुरूमें निकले, वे सब एक दूसरेकी नकल मात्र हैं, नवीन सामग्री नगण्य-सी है। यह खटकने जैसी बात है। हिन्दीके साहित्यिकोंको चाहिए कि वे हिन्दी भाषाको समृद्ध बनानेके लिए दिव्य तपस्या करें।

नाहटाजीका जीवन अत्यन्त सादगीपूर्ण एवं धार्मिक है। अभिमान, झूठ, कपट आदिसे कोसों दूर रहते हैं। उन्होंने जैन सिद्धान्तोंको अपने जीवन व्यवहारमें गहराईसे उतारा है। वे रात्रिमें भोजन तो क्या पानी भी नहीं पीते। कहीं १-२ मील चलना हो तो वह पैदल ही चलेंगे। प्रत्येक कार्यमें वे मितव्ययता करते हैं। ऐसे साहित्य-मनीषीका जरूर ही अभिनंदन होना चाहिए। राजपूताना विश्वविद्यालय एवं भारत सरकारको भी ऐसे विद्वानका उचित सम्मान करना चाहिए।

●

वाङ्मय पुरुष

प्रो० डॉ० नेमिचन्द्र शास्त्री

'पुरुषार्थी मनुष्यके सम्मुख लक्ष्मी हाथ जोड़कर खड़ी रहती है।' यह एक प्राचीन उक्ति है। पर पुरुषार्थी व्यक्ति सरस्वतीके भी कृपाभाजन बन सकते हैं, इसे जिन विद्वानोंने अपने कृतित्वसे चरितार्थ किया है, उनमें श्री अगरचन्द नाहटाका नाम विशेष उल्लेखनीय है। विद्यालयीय शिक्षाके न मिलनेपर भी अपने सतत स्वाध्याय और अनवरत श्रमके कारण मूर्धन्य सारस्वतोंमें स्थान प्राप्त करनेका श्रेय नाहटाजीको है। नाहटाजीको मैं हरिभद्रका या पंडितराज जगन्नाथका नवीन संस्करण मानता हूँ। ऐसा कोई विषय नहीं, जिसका स्पर्श नाहटाजीकी लेखनीने न किया हो। ज्योतिष, वैद्यक, तन्त्र, आगम, गणित, मन्त्र, अलंकार शास्त्र, काव्य, दर्शन आदि सभी विषयोंपर शोधात्मक और परिचयात्मक निबन्ध लिखकर माँ भारतीकी श्री-वृद्धि की है। इतिहास और शोध-खोज सम्बन्धी ऐसे अनेक प्रबन्ध इन्होंने लिखे हैं, जिनसे भारतीय इतिहासके काल-निर्णय सम्बन्धी तिमिरका नाश हुआ है।

आजसे लगभग २५, ३० वर्ष पूर्व पृथ्वीराजरासोकी प्रामाणिकताके सम्बन्धमें विवाद उत्पन्न हुआ था। इतिहासकारोंके दो दल थे। प्रथम दल इस ग्रन्थको प्रामाणिक घोषित करता था और द्वितीय दल अप्रामाणिक। इसी समय नाहटाजीके कुछ निबन्ध प्रकाशित हुए, जिनमें उन्होंने प्राचीन प्रतियोंके आधारपर पृथ्वीराजरासोके इस विवादका निर्णय किया।

नाहटाजीका चिन्तन पक्ष भी अत्यन्त पुष्ट है। इन्होंने अनेक साहित्यिक कृतियोंका मूल्यांकन कर अप्रकाशित साहित्यको विद्वज्जगत्के समक्ष प्रस्तुत किया है। पुरुषार्थ और अध्यवसायसे मनुष्य अलौकिक अनुपम और मननीय वस्तुको भी प्राप्त कर लेता है। इस संदर्भमें हमें नाटककार भासकी एक उक्तिका स्मरण आता है, जिसमें उन्होंने अलभ्य वस्तुओं की प्राप्तिका साधन अध्यवसायको बताया है—

काष्ठादग्निर्जायते मथ्यमानाद्
भूमिस्तोयं खन्यमाना ददाति।
सोत्साहानां नास्त्यसाध्यं नराणां
मार्गारब्धाः सर्वयात्राः फलन्ति॥

नाहटाजीने वाङ्मयपुरुषके रूपमें जन्म ग्रहण किया है। राजशेखरकी काव्यमीमांसामें हमें काव्य पुरुषका अंकन मिलता है। इस काव्यपुरुषकी समकक्षता हम नाहटा वाङ्मयपुरुषसे कर सकते हैं। हमें इस वाङ्मयपुरुषमें दर्शन और इतिहासकी पीठिकाएँ भी प्राप्त होती हैं। इतिहाससे वैज्ञानिक अन्वेषणकी सृष्टि और चिन्तनकी प्रक्रिया इस वाङ्मयपुरुषमें समाहित है। तथ्यानुसन्धान और सत्यान्वेषणकी प्रक्रिया पूर्वाग्रहोंसे मुक्त होनेके कारण नयी दिशा और नवीन चिन्तनको उत्पन्न करती है। पुरातत्त्वान्वेषणात्मक निबन्धोंने इस वाङ्मयपुरुषमें जीवन्त कलाका संचार किया है।

आश्चर्य तो यह है कि विश्वविद्यालयकी उपाधियोंसे मुक्त रहनेपर भी शताधिक शोधछात्रोंका मार्गदर्शन एवं सहस्राधिक जिज्ञासुओंको आवश्यक अध्ययन सामग्री प्रदान करनेका श्रेय इस निष्काम साधकको है। मैंने आपके द्वारा सम्पादित 'ऐतिहासिक जैनकाव्यसंग्रह' का अवलोकन कर आपकी प्रतिभा और क्षमता-का परिचय प्राप्त किया था। जैन सिद्धान्त भास्करके नियमित लेखकके रूपमें मैं आपसे सन् १९४४ ई० से ही परिचित हूँ। मैंने पाया कि नाहटाजीको पत्र मिलनेमें डाककी गड़बड़ीके कारण विलम्ब हो सकता है, पर निबन्ध भेजनेमें इन्हें विलम्ब नहीं होता। वीणापाणिका वरदहस्त आपको प्राप्त है। राजस्थानकी वीरभूमि ऐसे सारस्वतको प्राप्तकर कृतार्थ है। निःस्वार्थसाधकके रूपमें राजस्थानी भाषामें लिखित ३०-४० ग्रन्थोंका सम्पादन और प्रकाशन कर अपने वाङ्मयपुरुषत्वको चरितार्थ किया है। राजशेखरने काव्यपुरुषकी उत्पत्तिके प्रसंगमें बताया है कि एक बार बृहस्पतिके शिष्योंने उनसे पूछा कि सरस्वतीके पुत्र काव्य-पुरुष कौन हैं? बृहस्पतिने काव्यपुरुषकी उत्पत्ति एवं चरित्रका निरूपण करते हुए बताया कि पुत्र उत्पत्तिके पश्चात् पुत्रने माँ सरस्वतीके चरणोंका स्पर्श करते हुए छन्दोबद्ध भाषामें कहा—

यदेतद्वाङ्मयं विश्वमर्थमूर्त्या विवर्त्तते।
सोऽस्मि काव्यपुमानम्ब! पादौ वन्देय तावकौ॥

अर्थात् सारा वाङ्मय विश्व जिसके द्वारा अर्थरूपमें परिणत० हो जाता है, वह काव्य-पुरुष मैं तुम्हारे चरणोंकी वन्दना करता हूँ।

इस रूपकको हम नाहटा वाङ्मयपुरुषपर भी घटित कर सकते हैं। इस वाङ्मयपुरुषका शब्द और

अर्थ शरीर है, संस्कृत भाषा मुख है, प्राकृत भाषाएँ भुजाएँ हैं। अपभ्रंश भाषा जंघा है, राजस्थानी, गुजराती आदि भाषाएँ वक्षस्थल हैं, विश्लेषण-क्षमता, चिन्तन-प्रक्रिया, प्रतिपादन-शैली वाणी है। इस प्रकार यह वाङ्मय पुरुष सरस्वती का ज्येष्ठ पुत्र है और इसे उनका पूरा प्यार और दुलार प्राप्त है।

इस वाङ्मय पुरुषकी कीर्त्ति अक्षुण्ण है। यह प्रतिभाका धनी है, स्वयं वुद्ध गुरु है और है उच्चकोटिका साधन। कर्मठतः, लगन, त्याग और निःस्वार्थ भावने इस वाङ्मय पुरुषको इतनी दिव्यता प्रदान की है, जिससे यह स्वयं बुद्ध गुरुके रूपमें ख्यात है। इस २०वीं शताब्दीमें जैन-साहित्यकी रक्षा, सेवा और प्रगतिमें दिया गया नाहटाजीका योगदान स्वर्णाक्षरोंमें अंकित रहेगा। हिन्दी-साहित्यका प्रत्येक शोधार्थी इनकी ज्ञान भागीरथीकी शीतलतासे परिचित है। श्री नाहटाजीके व्यक्तित्वकी दो प्रमुख दिशाएँ हैं—अध्ययन और साहित्य-सृजन। अध्ययन बलसे संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश आदि विभिन्न भाषाओं और उनके साहित्योंका अतलतलस्पर्शी पांडित्य प्राप्त किया है। अपूर्व क्षयोपशमके साथ निरन्तर श्रम-साधना द्वारा ज्ञानार्जन और ज्ञान वितरण दोनों ही कार्य व्यक्तिके रूपमें नहीं किन्तु संस्थाके रूपमें मान्य है। नाहटाजी न तो राजनीतिक नेता हैं और न धर्मनेता ही। वे ऐसे साहित्यके स्रष्टा हैं, जो तटस्थ दृष्टिसे नयी स्थापनाओं और उद्भावनाओं द्वारा नये प्रतिमान स्थापित कर रहे हैं। ये सर्वथा न प्राचीनताके समुत्थापक हैं और न सर्वथा अर्वाचीनता के सम्पोषक हैं। सत्य और औचित्य ही इनके लिये जीवनके सच्चे प्रतिमान हैं।

साहित्य स्रष्टाके रूपमें नाहटाजी युग-युगान्तर तक आलोकित रहेंगे। इनकी मौलिक प्रतिभा प्रत्येक निबन्धमें झाँकती है। जिस विषयको ये ग्रहण करते हैं, उसके ऐतिहासिक और सांस्कृतिक दोनों ही पक्षोंको पूर्णतया उपस्थित करनेका प्रयास करते हैं।

ग्रंथ-निर्माण और सम्पादनके अतिरिक्त नाहटाजीने बीकानेरके ग्रन्थागारोंकी सूचियाँ तैयार करके शोधार्थियोंके लिये महनीय प्रभूत सामग्री प्रस्तुत की है। आप संस्था होनेके साथ विश्वकोष भी हैं। किसी भी विषयकी जानकारी आपसे प्राप्त की जा सकती है। किस प्राचीन लेखककी कौनसी कृति किस ग्रन्थ-भण्डारमें है, इसका परिज्ञान नाहटाजीको निर्भ्रान्ति रूपसे है। राजस्थानमें हस्तलिखित ग्रन्थोंकी खोज और शोध सम्बन्धी कार्य भी आपके द्वारा सम्पन्न हुए हैं। इन शोध खोजोंका विवरण ग्रन्थ रूपमें प्रकाशित है।

नाहटाजीका व्यक्तित्व नारिकेल सम है। वे साहित्यिक दायित्वके निर्वाहके लिए कड़ीसे कड़ी आलोचना कर सकते हैं। साहित्यकारोंकी कृतियाँमें त्रुटियाँ निकालना उनका स्वभाव है, पर नये साहित्यकारोंको उत्साहित करनेमें वे कभी पीछे नहीं रहते। उनके साहित्यिक व्यक्तित्वमें जो कठोरता है, वह स्वभावजन्य नहीं, सिद्धान्तजन्य है। स्वभाव तो उनका नवनीतसे भी अधिक कोमल है। सत्य तो यह है कि उनका व्यक्तित्व एक कर्मयोगी का है। सिद्धान्तकी रक्षाके लिए नाहटाजी कठोर भी बन सकते हैं, पर यथार्थतः वे सभीका उत्थान और मंगल चाहते हैं। जो भी उनके सम्पर्क में आया, वह उनका प्रशंसक ही बन गया है। मेरी दृष्टिमें नाहटाजीके व्यक्तित्वमें हिमालय जैसी उत्तुङ्गता और विराटता समाहित है। हिमालयकी हिमधवल गगनस्पर्शी चोटियोंका जब-जब स्मरण आता है, हृदय श्रद्धासे नगराजके प्रति नत हो उठता है। हिमालयकी करुणा जब अगणित निर्झरों और सरिताओंके रूपमें विगलित होती है, तो देशकी बंजरभूमि भी शस्त्रोंकी उर्वर जननी बन बैठती है। हिमालय उत्तर दिशामें जाने कितनी दूर अपनी विराटताको लेकर खड़ा है।

नाहटाजीकी गणना भारतके उन मनीषियोंमें सम्मिलित है, जिनके त्याग एवं सेवाओंके गारेसे किसी भी देश या समाजका गौरवपूर्ण इतिहास निर्मित होता है। नाहटाजी जैसा मेधावी विद्वान्, कर्मठ, सत्यशोधक,

सुलेखक, युगनिर्माता एवं चिन्तक शताब्दियोंमें ही किसी देश, समाज या राष्ट्रको प्राप्त होते हैं। मैं इस अभिनन्दन समारोहके अवसरपर उनके दीर्घायुष्य, स्वास्थ्य एवं यशके लिए मंगल-कामना करता हूँ। वे अपने इस उत्तरार्ध जीवनमें अपनी साहित्य-साधना द्वारा वाङ्मयकी अभिवृद्धि करते रहें, यही हार्दिक अभिलाषा है। मैं इस साहित्य-तपस्वीको अपनी श्रद्धा-भक्ति समर्पित करता हूँ।

●

कर्मयोगी श्री नाहटाजी

श्री रिषभदास राँका

व्यक्तिका मूल्यांकन प्रत्येक व्यक्ति अपनी-अपनी कसौटीके अनुसार करता है। सबके पास अपने-अपने गज हैं, जिनके द्वारा वे दूसरोंके व्यक्तित्वको मापते और आँकते हैं। किन्तु कुछ ऐसे व्यक्तित्व भी होते हैं, जिनका मूल्यांकन किसी निश्चित मापदण्ड या गजके द्वारा नहीं होता, वरन् उनका व्यक्तित्व एवं कृतित्व स्वयं ही अपनी छाप दूसरोंपर छोड़ देता है।

श्रीनाहटाजी ऐसे व्यक्तित्वके धनी हैं, जिनकी साहित्य-साधना एवं निरन्तर कर्मशील जीवन ही उनका परिचय हैं। उनका जन्म राजस्थानके व्यवसायी परिवारमें हुआ। पैतृक-परम्पराके अनुसार व्यवसायके प्रति उनका दायित्व था और उस दायित्वको आज भी वे वर्षमें महीनोंका समय लगाकर कुशलतासे निभाते हैं। लेकिन उनका मन एवं हृदय एक ऐसी जिज्ञासा एवं शोधवृत्तिसे ओत-प्रोत है कि वे उसे अपने जीवनका मुख्य ध्येय मानकर उसमें रचे-पचे हुए हैं। साधारण स्कूली-शिक्षा प्राप्त एक व्यापारीके पास पी–एच० डी० की डिग्री पानेवाले विद्वान् व्यक्ति विद्यार्थीकी भांति ज्ञानार्जन करते हुए देखकर सहसा किसीको भी आश्चर्य हो सकता है लेकिन जिसने उनका सामीप्य प्राप्त किया है, वे जानते हैं कि भले ही उनके पास कोई डिग्री न हो किन्तु उनका ज्ञानभंडार विशाल है। प्राचीन हस्तलिखित हजारों ग्रंथोंका उद्धार एवं नित्य नई-नई शोधके द्वारा श्री अगरचंदजी नाहटाने अन्वेषणके इतिहासमें जो योगदान किया और कर रहे हैं, वह वस्तुतः आश्चर्यजनक एवं स्तुत्य है। अपने विशाल पुस्तकालय एवं संग्रहालय द्वारा देश-विदेशके विद्वानोंको नई रोशनी देनेवाले श्रीनाहटाजी अत्यन्त परिश्रमी, स्वाध्यायी एवं कर्मयोगी हैं।

उनकी पत्नीका देहावसान हुए कुछ ही दिन बीते थे। मैं बीकानेर उनसे मिलने गया तो देखा-चारों तरफ पुस्तकोंका ढेर लगाये अत्यन्त तन्मयतासे श्रीनाहटाजी कर्मयोगीकी तरह अपना अध्ययन कर रहे हैं। उनके कार्यमें कहीं भी गतिरोध नहीं था और न मनपर उस दुःखद घटनाका कोई प्रभाव ही। ऐसी स्थिति एक सच्चे साधक की होती है भले ही उसका साधना क्षेत्र अध्यात्म हो या साहित्य।

श्री नाहटाजीके साथ वर्षोंके आत्मीय सम्बन्धमें मैंने उनकी एक बहुत बड़ी विशेषता यह भी पाई कि वे साम्प्रदायिकताके रोगसे ग्रसित नहीं हैं। जहाँ कहीं भी अच्छी बात नजर आती है, वे उसका हृदयसे समर्थन करते हैं और जो बात उनको उचित नहीं लगती उसके लिए स्पष्टता एवं निर्भयतापूर्वक अपने विचार व्यक्त करते हैं। इस प्रकारके कई प्रसंग उनके साथ आये लेकिन उनका सत्यके प्रति आग्रह कभी नहीं टूटा।

स्वयं साहित्यके क्षेत्रमें अथवा शोधकार्यमें संलग्न रहते हुए दूसरों को प्रेरित एवं उत्साहित करना उनकी विशेषता हैं। छोटी-छोटी पत्र-पत्रिकाओंमें भी वे अपने लेख और विचार भेजते रहते हैं और नये

उत्साही युवकोंका अध्ययन एवं लेखनकी प्रेरणा देते रहते हैं । राजस्थानी साहित्य, अपभ्रंश एवं प्राकृत ग्रंथोंके पुनरुद्धारका जो कार्य उनके द्वारा हुआ है, उसके लिए साहित्य-जगत् सदा उनका आभारी रहेगा ।

जैन समाजमें एकता, समन्वय एवं प्रेमके लिए उनकी आन्तरिक तड़प है । इसके लिए वे समय-समय पर लेख, भाषण और चर्चाओंके माध्यमसे अपने विचार व्यक्त करते रहते हैं । केवल विचारों तक ही वे सीमित न रहकर क्रियात्मक रूपमें भी सदा आगे रहते हैं । यही कारण है कि चारों सम्प्रदायोंके जैन आचार्यों साधु-साध्वियों एवं श्रावक-समाजमें वे समान रूपसे प्रिय हैं ।

श्री नाहटाजी सामान्य शिक्षा प्राप्त उस वणिक् समाजके व्यक्ति हैं, जिसके लिए कहा जाता है कि उसके पास लक्ष्मी तो होती है किन्तु सरस्वती नहीं होती । नाहटाजीने इस उक्तिको वर्तमान समयमें भी गलत सिद्ध कर दिया है । हाँ, नाहटाजीकी लिखावटको पढ़नेके लिए प्रयत्न करना पड़ता है और साधारणतः उसे पढ़ पाना कठिन ही होता है, परन्तु उनके विचार बहुत ही मूल्यवान होते हैं ।

स्वभावसे सरल, मिलनसार और नम्र । व्यवहारमें कहीं भी अहंकारका समावेश नहीं और न पांडित्य-का प्रदर्शन ही । धोती-कुर्तेका पहनावा, गलेमें चादर और सिर पर राजस्थानी बीकानेरी पगड़ी । एक सामान्य मनुष्यकी भाँति इस सहज और स्वाभाविक रूपमें छोटे-बड़े समारोहोंसे लेकर दैनिक कार्यक्रममें वे उपस्थित रहते हैं । जीवनमें त्याग-वैराग्यका भी समावेश है । किसी प्रकारका कोई व्यसन नहीं और न प्रमाद ही । सतत ज्ञानकी पिपासा एवं जिज्ञासुभाव दूसरोंके लिए अत्यन्त प्रेरणाप्रद हैं ।

यह अभिनन्दन समारोह उनका नहीं बल्कि उनकी साधना, सेवा और सात्त्विक वृत्तियोंका है । वे इसे पसन्द नहीं भी करें किन्तु उनके मित्रों, शुभेच्छुओं एवं गुणग्राहकोंका यह कर्तव्य हो जाता है कि वे अपनी भावना व्यक्त करें । आवश्यकता इस बातकी है कि ऐसे समारोह केवल परम्परागत या प्रदर्शन भावनाके लिए न करते हुए प्रेरक बनें, इसका प्रयास किया जाय ।

अभिनन्दन समारोहके अवसरपर मित्रवर श्री नाहटाजीके प्रति अपनी मंगल कामना व्यक्त करता हुआ मैं ईश्वरसे प्रार्थना करता हूँ कि वे दीर्घायु होकर साहित्य, समाज एवं राष्ट्रकी सेवामें अधिकसे अधिक योगदान करते रहें ।

●

मित्रवर अगरचन्द जी नाहटा

श्री वृन्दावनदासजी बी० ए०, एल० एल० बी०

मित्रवर अगरचन्दजी नाहटासे मेरा व्यक्तिगत और साहित्यिक परिचय है । व्यक्तिगत परिचय तो अभी कुछ ही वर्षोंका है परन्तु साहित्यिक परिचय बड़ा पुराना है । मैं अपने बाल्यकालसे ही अनेक पत्र-पत्रिकाओंमें नाहटाजी के लेख पढ़ता रहता था । ऊँचेसे ऊँचे स्तरकी पत्रिका हो अथवा सामान्य स्तरकी छोटी-मोटी, नाहटाजी का शोधपूर्ण लेख उन सब में अवश्य ही दिखाई दे जाता था । इसलिये कुछ पहले तक मैं नाहटाजीको अपनेसे बड़ी उम्रका साहित्यिक समझता था परन्तु तीन-चार वर्ष पहले जब अनायास ही एक बार नाहटाजीने मेरे निवास-स्थानपर पधारकर दर्शन दिये, तब मेरे आश्चर्यका ठिकाना न रहा । मुझे उसी दिन ज्ञात हुआ कि नाहटाजी तो मुझसे ४, ५ वर्ष छोटे हैं । इस प्रसंगसे यह सिद्ध है कि नाहटाजीने

अपनी साहित्य साधना बाल्यकाल से ही आरंभ कर दी थी और यही कारण है कि वे इतनी अधिक मात्रा-में लेखन, शोध और संग्रह कर पाये।

श्री अगरचन्दजी नाहटाके लेख प्रधानतया शोधात्मक ही होते हैं, इस कारण उनका साहित्यिक महत्त्व अत्यधिक है। नाहटाजीने स्वयं बड़ा विशाल संग्रह किया है परन्तु इसके साथ ही उन्होंने समस्त राजस्थानी-संग्रहको खूब छाना है। उनके लेखों से साहित्यकी नई कृतियाँ उभरकर आई हैं, बहुत सी गुत्थियाँ सुलझी हैं और अनेक नई स्थापनाएँ हुई हैं। अनेक कवियों, लेखकोंके जीवन-वृत्तों के सम्बन्ध में साहित्यिक जगत्में अनेक भ्रान्तियाँ प्रचलित थीं, जिन्हें नाहटाजीने अकाट्य प्रमाणोंके माध्यमसे निवृत्त किया है। नाहटाजीने अनेक हस्तलिखित प्रतियोंकी ओर अनुसन्धित्सुओंका ध्यान आकर्षित किया है, जिनके अभावमें शोधार्थी छपपटा रहे थे और साहित्यिक बन्धु अन्धकारमें थे। हिन्दी साहित्यकी लगभग सभी शोध पत्रिकाएँ नाहटाजीकी बड़ी ऋणी हैं। लगभग तीन हजार शोधपूर्ण लेख लिखकर नाहटाजीने उनको और हिन्दी-संसारको उपकृत किया है।

जैन साहित्यपर नाहटाजीका अध्ययन बड़ा गहन है। उनका इस साहित्यपर लेखन भी पुष्कल है। मुझे इस पीढ़ी में जैनसाहित्य से हिन्दीवालोंका तादात्म्य करानेवाले किसी ऐसे साहित्यिकका नाम नहीं मालूम, जिसने इस दिशामें नाहटाजीसे अधिक काम किया हो।

नाहटाजीका व्रजभाषा से भी असीम प्रेम है। वे व्रजभाषा साहित्यके मर्मज्ञ हैं। व्रजसाहित्यमण्डल के वे जन्मदाताओंमेंसे हैं। कई बार उससे सम्बद्ध साहित्य परिषद् और अनेक साहित्यिक समारोहों के वे अध्यक्ष रह चुके हैं। मण्डलकी मुखपत्रिका त्रैमासिक व्रजभारती के वे अनन्य लेखक हैं। उनके लेख पत्रिका की अधिकांश प्रतियोंमें निकल चुके हैं।

अभिनन्दनके इस शुभ उत्सवपर मैं मित्रवर नाहटाजीको अपनी हार्दिक बधाई प्रस्तुत करता हूँ और सर्वशक्तिमान् से प्रार्थना करता हूँ कि वे शतायु हों और इसी प्रकार साहित्यिकों को प्रेरणा देते रहें।

●

साहित्यिक-कल्पद्रुम नाहटाजी

पं० कमलकुमार जैन शास्त्री

राजस्थान अपने मध्यकालीन अतीतमें जहाँ स्वाभिमान, स्वतंत्रता और शौर्यका एक उज्जवल और अनुपम आदर्श रहा है, वहाँ उसकी मरुभूमि में अनेक साहित्यिक हरित भूमियाँ भी दृष्टिगत होती रही हैं। मरु-उद्यानकी इन्हीं अनेकानेक वृक्ष वल्लरियों के मध्य अभी बीकानेर के कुंज में एक ऐसा कल्पद्रुम भी है, जो बारहों मास साहित्यिक सुन्दर फल-फूलों से हरा-भरा और अवनत (विनम्र) रहा है। उस सदा बहार वृक्षको पाठकगण श्रीअगरचन्द नाहटाके नामसे जानते हैं। अगर-चन्दनकी शीतल सुवास और प्रकाश-मान वर्तिकासे माँ सरस्वतीका मन्दिर जितना आज महक रहा है, संभवतः उतना कभी और महका हो········स्मरण नहीं :—

पुरातत्त्व, इतिहास और शोध सामग्रियोंसे भरा हुआ साहित्य स्वयं आज श्री नाहटाजीके प्रति कृतज्ञता ज्ञापन हेतु लालायित हो उठा है। हस्तलिखित ग्रन्थों का जितना उद्धार और मूल्यांकन श्री नाहटा द्वारा

हुआ है, उतना कदाचित् अन्य साहित्य सेवियों द्वारा नहीं। संपादन, लेखन और शोधकार्योंमें अविरल लगे रहनेपर भी आप सामाजिक और सार्वजनिक सेवाओं-में अग्रिम योग-दान देते रहते हैं।

सिद्धान्ताचार्य, विद्या-वारिधि, संघ-रत्न आदि अनेक लौकिक उपाधियाँ आपकी विद्वत्ताके चरणोंमें लोटती हैं, परन्तु इनकी उपलब्धिके लिए आपने कभी महत्त्वाकांक्षी होकर तपस्यायें नहीं कीं प्रत्युत वे तो आपके सतत स्वाध्याय प्रेमके कारण ही ऋद्धि-सिद्धियोंकी भाँति आपकी दासियाँ बनने चली आईं।

लक्ष्मी और सरस्वतीको ३६ के अंकोंमें खेलते तो सर्वत्र ही सबने देखा-परखा है परन्तु ६३ के अंकमें क्रीड़ा करती हुई ये युगल देवियाँ श्री अगरचन्दजी नाहटाके आँगनमें ही देखी जा सकती हैं।

आपकी सतत साहित्य-साधना, शोध-कार्य एवं अविरल स्वाध्याय प्रेमने जिनवाणीके मन्दिरमें श्रुत-देवता की ऐसी मनोरम मूर्ति विराजमान की है, जिसके दर्शन मात्रसे दिगम्बर और श्वेताम्बरका वैषम्य स्वयमेव काफूर हो जाता है। पंथ व्यामोह को तो आप विषधर-दंशित बेहोशी मानते हैं।

महाप्रभाविक बृहत् सचित्र अमर भक्तामर आदि पंच स्तोत्रोंके सम्बन्धमें मेरा पत्र-व्यवहार बहुधा आपसे होता रहता है, उचित निर्देशनों, ऐतिह्य सुझावों, पुरातत्त्वीय प्रेषणों (सामग्रियों), हस्तलिखित ग्रन्थोंके माध्यमसे आपके द्वारा जो साहाय्य व सहयोग मुझे मिलता रहता है, उसे कभी भी विस्मृत नहीं किया जा सकता। मैं क्या, बल्कि सभी शोधस्नातक रूपी एकलव्योंके लिए तो आप परोक्ष द्रोणाचार्य ही हैं, देखें, मेरा सौभाग्य कब आपके साक्षात्कार पूर्ण अभिनन्दनके लिए जाग्रत् होता है।

●

अनोखी प्रतिभाके धनी

श्री अमृतलाल शास्त्री

श्रद्धेय नाहटाजीने अपनी ज्ञान पिपासाको शान्त करनेके लिए व अनुसन्धानको साधार बनानेके लिए अपने द्रव्यसे बीकानेरमें दो महत्त्वपूर्ण संस्थाओंकी संस्थापना की है—(१) अपने बड़े भाई स्व० अभयराजजी की स्मृतिमें **श्री अभय जैन ग्रन्थालय**, जिसमें ४० हजार हस्तलिखित दुर्लभ ग्रन्थोंका और ४० हजार महत्त्व-पूर्ण प्रकाशित ग्रन्थोंका अपूर्व संग्रह है, तथा (२) अपने पूज्य पिता स्व० सेठ शङ्करदानजीकी संस्मृतिमें **श्री शङ्करदान नाहटा कलाभवन,** जिसमें ३०० प्राचीन चित्र, सैकड़ों सिक्के, प्राचीन प्रतिमाएँ और विविध कला-कृतियाँ संगृहीत हैं।

इन दोनों संस्थाओंके साथ **राजस्थानी साहित्य परिषद्**का भी संचालन नाहटाजी स्वयं कर रहे हैं। संचालनके अतिरिक्त आपने अभयजैन ग्रन्थमालासे २५ एवं राजस्थानी साहित्य परिषद्से ९ विशिष्ट ग्रन्थोंका प्रकाशन भी किया है।

अन्य संस्थाओंको सक्रिय सहयोग—वृहत्खरतरगच्छ जैन ज्ञान भण्डारको जिसकी देख-रेख भी आप करते हैं, १० हजार हस्तलिखित प्राचीन प्रतियोंकी विषयवार सूची अपने हाथसे तैयार की। इसी तरह बीकानेरके श्रीजिनदत्त सूरि ज्ञान भण्डार एवं उपा० जयचन्द्र ज्ञान भण्डारके १० हजारसे भी अधिक प्राचीन ग्रन्थोंकी सूची बनानेमें स्वयं परिश्रम किया है। इस तरह तीनों संस्थाओंको नाहटाजीने सक्रिय सहयोग दिया है।

संस्मरणीय सेवाएँ—(१) श्री सादूल राजस्थानी रिसर्च इन्स्टीट्यूट बीकानेरमें लगातार कई वर्षोंतक निदेशकका पद संभालना, (२) महानिबन्ध (थीसिस) लिखनेवाले सैकड़ों अनुसन्धाताओंको मार्गदर्शन कराना,

(३) ७० ग्रन्थोंका सम्पादन, जिनमें ३५ प्रकाशित भी हो चुके हैं, (४) ३००० से अधिक विशिष्ट लेख लिखना, जो ३०० पत्र-पत्रिकाओंमें प्रकाशित हो चुके हैं, (५) 'राजस्थान भारती' आदि अनेक पत्रिकाओंका कुशल सम्पादन करना, (६) वैदुष्यपूर्ण प्रमाणोंके आधारपर राजस्थानी भाषाको साहित्यिक मान्यता दिलवाना, (७) ऐतिहासिक प्रबल प्रमाणोंको लेखबद्ध करके, जो 'लोकवाणी' पत्रिकामें प्रकाशित हुए थे, 'आबू' को राजस्थानमें ही पुनः बनवाये रखना और (८) वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी और कलकत्ता विश्वविद्यालय, कलकत्ता आदिकी संगोष्ठियोंमें शोधपूर्ण विशिष्ट निबन्ध प्रस्तुत करना—आदि तथ्योंके आधारपर स्पष्ट हैं कि नाहटाजी अनोखी प्रतिभाके धनी हैं। यही कारण है कि आपकी गणना भारतवर्षके विशिष्टतम विद्वानोंमें की जाती है। आपकी सेवाएँ सदा संस्मरणीय रहेंगी।

सन् १९६५की बात है वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालयमें उसके तत्कालीन कुलपति महामहिम श्री विश्वनाथदासजी, राज्यपाल उत्तर प्रदेशने एक विराट् तन्त्र सम्मेलन करवानेका सुझाव दिया था। फलतः उक्त विश्वविद्यालयके वरिष्ठ अधिकारियोंने एक मीटिंग की, जिसमें विश्वविद्यालयके सभी विभागोंके अध्यक्षोंके अतिरिक्त अनेक स्थानीय विद्वान् भी उपस्थित हुए थे। पर्याप्त विचार-विमर्शके पश्चात् तन्त्रसम्मेलनकी रूप रेखा बनायी गयी, विशिष्ट तान्त्रिक विद्वानोंको आमन्त्रित करनेके लिए उनके नाम और पते नोट किये गये, तथा सम्मेलनकी मिति निश्चित की गयी। इसी अवसरपर मैंने सोचा कि इस सम्मेलनमें जैन तन्त्र साहित्यके मर्मज्ञ विद्वानोंको भी आमन्त्रित किया जाना चाहिए। तुरन्त ही मैंने अपने इस विचारको अधिकारियोंके समक्ष रखा, जिसे उन्होंने विना किसी आपत्तिके स्वीकार कर लिया। जब प्रस्तुत विषयके अधिकारी विद्वानोंके नाम पूछे गये तो मैंने श्री अगरचन्द्रजी नाहटा और डा० श्रीकस्तूरचन्द्रजी कासलीवालके नाम व पते नोट करा दिये।

मैंने नाहटाजी और कासलीवालजीको विश्वविद्यालयकी ओरसे पत्र लिखे। दोनोंने शीघ्र ही उत्तर दिया कि वे तन्त्र-शास्त्रके मर्मज्ञ नहीं हैं, फिर भी जैन तन्त्र-साहित्य-विषयक निबन्ध[१] तैयार करके ठीक समयपर उपस्थित हो जायँगे। दोनों विद्वान् ठीक समयपर सम्मेलनमें उपस्थित हुए और उन्होंने निबन्ध पाठके अतिरिक्त जैनतन्त्र विषयक शताधिक जैन ग्रन्थोंकी पाण्डलिपियों और चार्टोंको प्रदर्शित करके सभी श्रोताओंको प्रभावित किया।

मुझे विश्वास नहीं था कि नाहटाजी तन्त्र सम्मेलन में जैनतन्त्र-साहित्य पर ऐसा सुन्दर विस्तृत निबन्ध प्रस्तुत करके जैनेतर तान्त्रिक विद्वानोंको प्रभावित कर सकेंगे। पर प्रतिभाके धनी नाहटाजीने उस अवसरपर ऐसा चमत्कार दिखलाया कि स्थानीय तान्त्रिक विद्वान् अभी तक उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा किया करते हैं।

●

१. दोनों निबन्ध यथाशीघ्र विश्वविद्यालयकी ओरसे प्रकाशित होनेवाले हैं।

अद्‍भुत व्यक्तित्व

डॉ० दरबारीलाल कोठिया, एम. ए. न्यायाचार्य

साहित्य, इतिहास और पुरातत्त्ववेत्ता स्वर्गीय पण्डित जुगलकिशोरजी 'युगवीर' मुख्तारके द्वारा संस्थापित एवं संचालित वीरसेवामन्दिर सरसावा (सहारनपुर) में जब ग्रन्थ-संशोधन, सम्पादन और लेखनका कार्य करता था, तबसे बन्धुवर श्री अगरचन्दजी नाहटाको जानता हूँ। यह लगभग १९४३ ईस्वी की बात है। 'अनेकान्त' में आपके लेख छपते थे और उनका प्रूफ हम और बन्धुवर पण्डित परमानन्दजी शास्त्री देखते थे। नाहटाजीकी लिखावटको हरेक नहीं पढ़ सकता। उसे वही पढ़ सकता है, जो उनकी लिपिको पढ़नेका अभ्यस्त हो गया है। स्वर्गीय मुख्तार साहब उनकी लिपिको खूब अच्छी तरह पढ़ लेते थे। अतः जब नाहटाजीके लेखको पढ़नेमें कठिनाई होती तो मुख्तार साहबसे सहायता ले लेता था। फिर कुछ दिन बाद मैं भी अभ्यस्त हो गया।

नाहटाजीके लिए कोई विषय अविषय नहीं है। साहित्यपर वे लिखते हैं, इतिहासपर वे लिखते हैं और पुरातत्त्वपर भी उनकी लेखनी चलती है। मूर्तियों, मन्दिरों, गणों और गच्छोंपर भी उनने लिखा है। लेखककी गलती पकड़ना और उसपर संशोधन-लेख लिखना, यह भी नाहटाजीसे छूटा नहीं है। एक पत्रिकामें वे लिखते हों, सो यह भी नहीं, जैनेतर, भाषा साहित्यिक, प्रान्तीय और राष्ट्रीय सभी पत्र-पत्रिकाओंमें उनके लेख रहते हैं। एक शब्दमें कहा जाय तो उन्हें 'लिक्खाड़' कहा जा सकता है। हमें आश्चर्य होता है कि नाहटाजी इतना कैसे लिख लेते हैं!

१९४४ में वीर शासन महोत्सवपर कलकत्तामें प्रथम वार उनसे साक्षात्कार हुआ। मैंने इससे पहले उन्हें नहीं देखा था। जब मुझे बताया गया कि ये श्रीनाहटाजी हैं तो मुझे विश्वास नहीं हुआ। उनकी राजस्थानी पगड़ी और वेश-भूषा मुझे श्रीमन्त सेठका परिचय दे रहे थे, विद्वान् लेखक या सरस्वती-उपासक का नहीं।

नाहटाजी लगनके पक्के, संयमित भाषी, कर्त्तव्य-पटु, नम्र, निरभिमानी किन्तु स्वाभिमानी और गुणग्राही विद्वान् हैं। सरस्वती और लक्ष्मी दोनोंका उनपर वरदहस्त है। निःसन्देह नाहटाजी अद्‍भुत व्यक्तित्वके धनी हैं। उनकी साहित्यिक सेवाओं के उपलक्ष्यमें उन्हें जो अभिनन्दन-ग्रन्थ भेंट करनेका निश्चय हुआ, वह सराहनीय है। हम इस अवसरपर अपनी मङ्गल कामनाएँ करते हुए प्रमुदित हैं। यह उनका सत्कार नहीं, अपितु सरस्वती और सारस्वतका सम्मान है।—जय सरस्वती।

●

अभिनन्दनीय नाहटाजी

श्री गुलाबचन्द्र जैन

श्री नाहटाजीका नाम शोध-संसारमें कौन नहीं जानता? मेरे पूज्य गुरुवर स्व० पं० चैनसुखदासजी न्यायतीर्थ भूतपूर्व अध्यक्ष श्री दि० जैन संस्कृत कालेज, जयपुरके तो परम मित्रोंमें से हैं। गुरुजीने अनेकों बार श्री नाहटाजीके अथक परिश्रम की मुक्तकण्ठसे प्रशंसा की है। और कहा है कि राजस्थानभरमें यह एक ही मनीषी है जो शोध की अपार सामग्री का भण्डार ही नहीं रखता, सैकड़ों प्रकार के शोध-विद्यार्थियों को दिशा-निर्देश भी करता है।

यद्यपि मुझे मेरे गुरुवरके वचनोंपर पूर्ण विश्वास था किन्तु फिर भी मेरे हृदयमें ऐसे महामनीषीके दर्शनों की उत्कट अभिलाषा जागृत हुई और गत वर्ष उनकी शोधशालामें, बीकानेरमें जा दर्शन किये।

चारों ओर पुस्तकोंका ढेर लगा है। पत्र-पत्रिकाओं की भीड़ मची है। एक ओर कोई टाइप-राइटर मशीन लिए बैठा है। कुछ छात्र अपने शोध प्रबन्धपर विचार-विमर्श करने हेतु बैठे हैं। और आप विराज रहे हैं मात्र दो वर्गफुट की साधारण छोटी-सी गद्दी पर। कोई पहचान भी नहीं सकता कि यही इस अपार संग्रहालय का संग्राहक है।

परिचय देते ही किस नम्रता और मिठाससे वार्तालाप किया और संग्रहालय को ऊपरसे नीचे तक बतलाया कुछ कहनेमें नहीं आता। मैं तो आपके संग्रह की लगन, खोज और अर्थ-व्ययको देखकर अवाक् रह गया। कितनी जाति की वस्तुओं का संग्रह है, कुछ कहा नहीं जा सकता। वह तो साक्षात्कारसे ही मालूम किया जा सकता है।

मैं नाहटाजीके अपार परिश्रम व उनकी साहित्य, इतिहास और संस्कृतिके प्रति सच्ची खोज की लगन तथा प्रकाशनकी अभिरुचि को देखकर भूरि-भूरि प्रशंसा करता हूँ और उनका हार्दिक अभिनन्दन करता हूँ। मैं भगवान् महावीरसे प्रार्थना करता हूँ कि आपको स्वस्थ दीर्घ जीवन प्रदान करें और जिस कार्यमें आप जुटे हुए हैं, उसके लिए आपको शतगुणी क्षमता प्रदान करें।

●

बहुमुखी प्रतिभा के धनी

श्री राजरूपजी टोंक

रत्न-गर्भा, वीरप्रसूता माँ भारतीकी गौरवमयी गोदमें अनेक नर-पुंगव प्रतिभा-सम्पन्न, ग्रन्थकार, शोधकार तथा सन्त-महात्मा अवतरित हुए हैं। उन्हीं नररत्नोंमें स्वनामधन्य श्री अगरचन्दजी नाहटा भी अपनी ज्योतिपुंज प्रतिभाकी एक महत्त्वपूर्ण कड़ी जोड़ रहे हैं।

आपको जन्म देकर भारतभूमि धन्य हुई। आप केवल प्रकाण्ड विद्वान् ही नहीं, अपितु हिन्दी, गुजराती, संस्कृत-प्राकृतके ज्ञाता भी हैं। आप अनेक जैन-ग्रन्थोंके शोधक एवं इतिहासकार भी हैं। आपने अनेक विषयोंकी शोध कर अपनी गहन प्रतिभा तथा विद्वत्ताका परिचय दे समाजको चमत्कृत कर दिया है। आपका केवल जैन-समाजमें ही नहीं, अपितु समस्त विद्वत्-समाजमें एक महत्त्वपूर्ण स्थान है। आप बहुत ही सरल प्रकृतिके व्यक्ति तथा सादा जीवन उच्च विचारके प्रतीक हैं।

भारत की राजधानी दिल्ली में राष्ट्रीय स्तरके एक समारोहका आयोजन किया गया है, जिसमें आपको अभिनंदन-ग्रंथ भेंट किया जायेगा। राष्ट्रीय स्तरका यह समारोह आपकी महानता तथा सम्पन्न प्रतिभा का प्रतीक है।

इस शुभ अवसरपर हम अपनी अनेकानेक शुभकामनायें तथा बधाइयाँ समर्पित करते हैं। जगन्नियन्ता प्रभु आपको युग-युग तक अमर रखे ताकि आप अपनी प्रतिभा तथां भावनाओंको जन-समुदायमें बिखेरकर मानव जातिको लाभान्वित करते रहें।

●

आदर्श मार्गदर्शक

पं० नाथूलालजी शास्त्री

श्रीसिद्धांताचार्य अगरचन्दजी नाहटा हिन्दी जगत्के प्रसिद्ध लेखक हैं। आपका अध्ययन विशाल और विचार उदार हैं। प्रायः जैनाजैन पत्रिकाओंमें आपकी शोध-खोजपूर्ण रचनाएँ हमेशा प्रकाशित होती रहती हैं। जैन साहित्यकी आपकी सेवाएँ अपूर्व हैं। समाजके वातावरण को मधुर बनानेमें आपका बहुत बड़ा हाथ है। मैं आपको न्यायप्रिय एवं समाजका सच्चा हितैषी, साहित्यसेवी विद्वान् मानता हूँ और आपसे अत्यन्त प्रभावित हूँ। समाजमें ऐसे प्रबुद्ध समाजसेवापरायण व्यक्ति क्वचित् ही दृष्टिगोचर होंगे, जो अपना सारा समय साहित्यसेवा और साहित्यकारोंको सहयोग देनेमें व्यतीत करते हुए निःस्पृह होकर त्यागमय जीवन-यापन कर रहे हैं।

मानवताके जो सद्गुण अपेक्षित हैं, अपने मर्यादित जीवनमें उन्हें धारण किए हुए नाहटाजी हमारे आदर्श मार्गदर्शक हैं।

मैं नाहटाजीके चिरायु होनेकी मंगल कामना करते हुए आशा करता हूँ कि वे जीवन के सभी संघर्षोंमें विजयी बनते हुए अपने स्वपरकल्याणके लक्ष्य पर सतत आगे बढ़ते रहें।

●

शुभ कामना

प्रवीणचन्द्र जैन

अपने पुण्य-प्रतापसे ज्ञान सम्पत्ति और भौतिक संपत्तिके स्वामी हैं। भौतिक संपदाका वितरण आपने कितना और कैसा किया है यह तो मुझे विदित नहीं, पर गत पंद्रह वर्षोंसे तो मैं बराबर देखता आया हूँ कि आप ज्ञानका वितरण खुले मनसे और सर्वात्मना निरंतर करते रहते हैं। मेरी कामना है, कि इसे आपका ज्ञानावरणीय कर्म एवं अंतराय कर्म दोनों कर्मोंका नाश हो। आप भावी जीवनमें चाहे इस शरीरसे या अगले मानव शरीरसे या अशरीरी होकर कैवल्य प्राप्त करें और अज्ञानी जीवोंको ज्ञान मार्गकी ओर चलते रहनेकी प्रेरणा दें। यही मेरी शुभ कामना है।

●

स्वनामधन्य—नाहटाजी

सीताराम लाळस

मैं 'नाहटा अभिनन्दन समारोह समिति'को धन्यवाद देता हूँ कि वह राजस्थानके स्वनामधन्य, विद्वज्जनके प्रति आभार प्रदर्शित करके उनके सम्मान हेतु ग्रन्थ प्रकाशित करनेका आयोजन करने जा रही है। इससे बड़ी प्रसन्नता हुई।

मेरी अस्वस्थताके कारण चिकित्सकोंने मुझे पूर्ण विश्राम करनेकी सलाह दी है और निकट समयमें ही उपचार हेतु चिकित्सालयमें भर्ती करवाया जा रहा है। अतः इस स्थिति में, आपकी सेवाओंके लिये अपने सुविचार प्रदर्शित करनेमें मैं असमर्थ हूँ।

●

इतिहासज्ञ नाहटाजी

विनयमोहन शर्मा

श्री नाहटाजीको अभिनन्दन ग्रन्थ भेंट किया जा रहा है यह जानकर बड़ी प्रसन्नता हुई। नाहटाजीकी अनेक विषयोंमें गति है। पर उनकी सबसे महान् साहित्य सेवा हिन्दीके प्राचीनतम साहित्यको प्रकाशमें लानेका कार्य है। राजस्थान और अन्य स्थानोंके जैन ग्रंथागारोंसे उन्होंने अलभ्य ग्रन्थोंको प्राप्त किया है। उनमेंसे अनेकोंका सम्पादन किया और इस तरह हिन्दी-साहित्यके इतिहासको बहुमूल्य सामग्री प्रदान की है। हिन्दीके कई अज्ञात कवियोंको प्रकाशमें लानेका उन्हें श्रेय है।

उनकी महत्त्वपूर्ण सेवाका सत्कार होना ही चाहिए। क्या ही अच्छा होता, यदि राजस्थान विश्वविद्यालय उनके शोधकार्यके लिए उन्हें आदर्श डी० लिट्० की उपाधि प्रदानकर अपनेको गौरवान्वित करता।

परमात्मा श्रीनाहटाजीको दीर्घायु प्रदान करें, जिससे वे साहित्यकी श्रीवृद्धि करते रहें, इस प्रार्थनाके साथ—

●

श्रद्धाञ्जलि नाहटाजी

बनारसीदास चतुर्वेदी

श्रेष्ठिवर श्रीअगरचन्दजी नाहटाके अभिनन्दन समारोहपर मैं अपनी विनम्रतापूर्ण श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ। बहुत वर्षोंसे मैं श्रद्धेय नाहटाजीके शोध-पूर्ण लेख पढ़ता रहा हूँ और जिस लगनके साथ वे अपना काम करते रहते हैं, वह सर्वथा प्रशंसनीय तथा अनुकरणीय है। मेरा उनका कुछ पत्र-व्यवहार भी हुआ था। वह फिजी द्वीपमें 'सारग्रा-सदावृक्ष'के प्रचारके बारेमें था। मुझे खेद है कि मैं उन्हें वह लेख विशाल भारतसे तलाश करके न भेज सका और तदर्थ मैं क्षमाप्रार्थी हूँ।

उनके लेखोंकी सूची पढ़कर मुझे आश्चर्य होता है। उनके संग्रहालयकी प्रशंसा भी मैंने सुन रखी है। ऐसे सुयोग्य वयोवृद्ध साहित्य-सेवी विद्वान्का सम्मान करके हम स्वयं अपनेको ही गौरवान्वित करेंगे। श्रद्धेय नाहटाजीको मेरा प्रणाम।

●

पाण्डित्यपूर्ण व्यक्तित्व

पं० मक्खनलाल शास्त्री

विद्यावारिधि, इतिहासरत्न, सिद्धान्ताचार्य शोध-मनीषी श्रीमान् श्रेष्ठिवर्य पं० अगरचन्द्रजी नाहटा महोदयका पाण्डित्यपूर्ण व्यक्तित्व महान् है। उनकी प्राप्त उपाधियोंसे ही उनका महत्त्व नहीं आँका जा सकता है। उनकी अनेक साहित्य-रचनाएँ एवं उनके ऐतिहासिक खोज आदि महत्त्वपूर्ण कार्य ऐसे हैं, जिनसे उनका पाण्डित्य प्रसिद्ध है। उनके परिचयकी सूचीसे उनके ग्रन्थ-लेखन, ग्रन्थ संग्रह एवं कलाभवन आदिसे उनकी सतत साधना तथा उनकी महती कृतियोंका परिचय मिलता है। चालीस हजार हस्तलिखित प्रतियाँ और

चालीस हजार मुद्रित ग्रन्थोंका संग्रह उन्होंने अपने मनन और खोजके लिये किया है। यह एक असाधारण एवं गौरवपूर्ण बात है।

जैन पत्रोंमें उनके लेख निकलते रहते हैं, वे मेरे अवलोकनमें आते हैं। उन लेखोंमें उनके विशाल एवं निष्पक्ष हृदयकी पूरी-पूरी झलक दीखती है। श्वेताम्बर धर्मावलंवी होनेपर भी उन्होंने दिगम्बर जैन धर्मके विषयमें कभी कोई बात विरुद्ध नहीं लिखी है। वे समन्वयवादी विद्वान् हैं। इससे उनका व्यक्तित्व वस्तुतत्त्वका परिचायक एवं धार्मिक मूल्यांकनका प्रशंसनीय प्रतीक है।

●

शोधकर्त्ताओंके हृदय-सम्राट्

नेमिचन्द्र जैन एम. ए.

किसी कवि ने कहा हैं :

यदि नित्यमनित्येन निर्मलं मलवाहिना।
यशःकायेन लभ्येत तन्न लब्धं भवेन्नु किम् ॥

सचमुच सिद्धान्ताचार्य श्री अगरचन्द्रजी नाहटा उक्त सिद्धान्तको अपने जीवनमें उतारनेवाले एक सर्वतोमुखी प्रतिभा-सम्पन्न विद्वान् हैं। मृदुभाषी, सौम्य तथा मिलनसार प्रकृतिके नाहटाजी अपने व्यवहारसे प्रत्येक मिलनेवालेको आकर्षित किये बिना नहीं रहते। तत्त्व जिज्ञासु को तत्त्वज्ञान देनेवाले उदीयमान लेखकों को लेखन-कलाका ज्ञान देनेवाले, आलोचनाके क्षेत्रमें प्रयत्नशील को आलोचनात्मक दृष्टि प्रदाता, स्वयं समर्थ लेखक एवं समालोचकके रूपमें भारतके नवरत्न श्री अगरचन्द्रजी नाहटाको कौन नहीं जानता है। देश का कोई ऐसा पत्र नहीं, जिसमें उनका निबंध न छपता हो। धार्मिक, सामाजिक, राज-नैतिक आलोचनात्मक सभी प्रकारके निबन्धों का एकमात्र लेखन-ज्ञान नाहटाजीके पास विद्यमान है। नाहटाजीको चलता-फिरता पुस्तकालय कहा जाय तो इसमें कोई अत्युक्ति नहीं होगी।

शोधार्थी छात्रोंके लिये तो नाहटाजी कल्पवृक्ष हैं। किसी भी शोधार्थीका उन्हें आभासभर मिलना चाहिये, वे स्वयं पत्रव्यवहारसे उस शोधार्थीसे अपना सम्बन्ध जोड़ लेनेमें सिद्धहस्त हैं। शोधार्थी को शोध की दिशा तथा शोधकार्यके लिये सामग्री प्रदान करना नाहटा जी अपना परम कर्तव्य समझते हैं।

अगर नाहटाजीको नवयुवकोंका सम्राट् कहा जाय तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। नवयुवकोंमें जो उत्साह एवं तत्परता दृष्टिगोचर नहीं होती, वह नाहटाजीमें देखने को मिलती है।

नाहटाजीका अपना एक विशाल पुस्तकालय है जिसमें हजारों हस्तलिखित विविध विषयोंके ग्रन्थ उपलब्ध हैं। जैन कवियों, लेखकों पर कार्य करनेवाला ऐसा कोई शोधार्थी नहीं है, जो नाहटाजीसे उपकृत न हो। विविध संस्थाओंके संस्थापक, कुशल पत्रकार एवं पत्र-सम्पादक, कुशल कार्यकर्त्ता, समर्थ सलाहकार, जैन समाजके समृद्ध धनिकोंमें एक, अपने प्रेरणास्पद कार्योंसे नवयुवकोंको प्रेरणा प्रदान करनेवाले श्री अगरचन्द्रजी नाहटाको अपनी श्रद्धापूर्ण अञ्जलि समर्पित करता हुआ उनके चिरायु होनेकी कामना करता हूँ।

●

अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति-प्राप्त विद्वान्

श्री माणिकचन्द्र नाहर एम० ए०

अंतर्राष्ट्रीय ख्याति-प्राप्त भाषा एवं शिक्षा-शास्त्री, कुशल एवं अधिकृत धार्मिक मनीषी, वरेण्य विद्वान् तथा मूर्धन्य निबंधकार श्री अगरचंदजी नाहटाका आप अभिनंदन समारोह आयोजित कर रहे हैं, यह राष्ट्रीय महत्त्वका कार्य अत्यंत ही गौरवका है। नाहटाजी दीर्घायु हों, समारोह सफल हो, ग्रंथ उनका कीर्ति-स्तंभ हो—इसी शुभकामनाके साथ—

●

अभीक्ष्णज्ञानोपयोगी के प्रति श्रद्धा-सुमनाञ्जलि

पं० परमेष्ठीदास जैन

विद्वद् ् श्री अगरचन्द्रजी नाहटासे मेरा परिचय विगत ४० वर्ष से है। अपने सम्पादनकालमें मैंने जैनमित्र और वीरपत्रमें उनके दर्जनों लेख सगौरव प्रकाशित किये हैं। जिस अंकमें श्री नाहटाजीका लेख छपता वह अंक सहज ही महत्त्वपूर्ण बन जाता था। जहाँ तक मेरा ध्यान है, समूचे जैन-समाज में इतनी अधिक विपुल मात्रामें लिखनेवाला दूसरा कोई व्यक्ति नहीं है।

उन्होंने जीवनभर निष्कामभावसे जो साहित्य-सेवा की है, वह सदैव स्मरणीय रहेगी। श्री नाहटाजी का मेरे प्रति विशेष स्नेहभाव रहा है। यही कारण है कि वे गत वर्ष हैदराबादसे देहली जाते हुए विना किसी पूर्व सूचनाके ही ललितपुर स्टेशनपर उतर गये और सीधे मेरे प्रेस पर आ पहुँचे। उनके इस आकस्मिक मिलन और स्नेहके कारण मुझे अवक्तव्य आनन्दानुभव हुआ। अपने विशिष्ट वेश-भूषादिमें वे केवल शुद्ध व्यापारी-सेठ मालूम होते हैं। किन्तु जब मैंने अपने मित्रोंको बतलाया कि श्रीनाहटाजी कितने महान् साहित्यकार विद्वान् हैं तो वे लोग आश्चर्यचकित रह गए। यद्यपि श्री नाहटाजी मेरे घर कुछ ही घंटे ठहरे थे किन्तु वे किसी भी प्रकारका आराम किये बिना मेरे घरमें संग्रहीत पुस्तकें पढ़ते रहे। ऐसा अभीक्ष्णज्ञानोपयोगी गृहस्थ मैंने सर नहीं देखा।

उनके इस अभिनन्दन-समारोहके मंगल-प्रसंगपर मैं भी अपने हार्दिक श्रद्धा-सुमन समर्पित करता हूँ।

●

व्यक्तित्व महान्

पं० बालचन्द्र शास्त्री

श्री अगरचन्द्रजी नाहटाका अभिनन्दन किया जा रहा है, यह जानकर विशेष प्रसन्नता होती है। गुणी जनका यथोचित सम्मान होना ही चाहिये। यह सम्मान-कर्ताकी ज्ञानवृद्धिका भी कारण है। नाहटाजी का व्यक्तित्व महान् है। सम्पन्न होकर भी वे सरस्वतीके उपासक हैं। उनकी साहित्यसेवा स्तुत्य है। शायद ही ऐसा कोई पत्र या पत्रिका होगी, जिसमें नाहटाजीका निबन्ध दृष्टिगोचर न हो। उनके निजी पुस्तकालयमें अनेक विषयोंके मुद्रित और हस्तलिखित ग्रन्थोंका विशाल संग्रह है। इतना विशाल संग्रह तो अनेक सार्वजनिक पुस्तकालयोंमें भी नहीं देखा जाता। सरस्वती और लक्ष्मीमें जो स्वाभाविक विरोध प्रसिद्ध है, उसके नाहटाजी अपवाद हैं। हमारी हार्दिक कामना है कि नाहटाजी चिरजीवी होकर इसी प्रकारसे धर्म व साहित्यकी पुनीत सेवा करते रहें।

●

चिरजीवी हों

पं० परमानन्दजी शास्त्री

श्री अगरचन्द्रजी नाहटा अच्छे लेखक और सम्पादक हैं। उनका परिचय मुझे बहुत दिनोंसे है। उनके लेख अनेक पत्र-पत्रिकाओंमें छपते रहते हैं। उन्हें अप्रकाशित साहित्यको प्रकाशमें लानेकी बड़ी लगन है। उसीका परिणाम है कि वे स्वयं साहित्यिक कार्योंमें प्रवृत्त रहे हैं और दूसरोंको भी प्रेरणा देकर कार्य कराते रहते हैं। श्वेताम्बर समाजमें ऐसे व्यक्ति कम ही मिलेंगे जिन्हें साहित्य-सेवाकी उत्कट लगन हो।

अभी हालमें उन्हें अभिनंदन-ग्रंथ समर्पित किया जानेवाला है। ऐसे साहित्यकों की सेवाका समाजको मूल्यांकन करना चाहिये। उन जैसी लगनका मैंने दूसरा व्यक्ति नहीं देखा। मैं कामना करता हूँ कि श्री अगरचन्द्रजी नाहटा चिरजीवी हों, जिससे वे अधिक साहित्य-सेवा कर सकें।

●

अभिनन्दन पर (मालार्पण के साथ) दो शब्द

बलवन्त सिंह मेहता

श्री अगरचन्दजी नाहटा जैन ही नहीं वरन् राजस्थान के साहित्य-जगत् के एक अपूर्व विद्वान् होने के नाते राजस्थानके गौरव-स्तम्भ हैं। वे शोध विद्वानोंमें श्रम और साधनाका ऐसा अपूर्व समन्वय लिये हुए हैं कि न केवल शोधकर्मियों वरन् विश्वविद्यालयोंके स्नातकोत्तरों एवं विद्वानोंको भी आपके शोधकार्यके सहयोगकी सदैव अपेक्षा रहती है।

शोधके क्षेत्रमें आपकी मौलिक देनके प्रति जैन एवं साहित्य जगत् आपका सदैव ऋणी रहेगा।

आपसे एक बार साक्षात्कार होने के बाद शायद ही कोई विरला होगा जो आपकी सादगी, संयमी जीवन और शोधकी निष्ठासे प्रभावित हुए बिना रह सकेगा।

आपकी षष्टि पूर्तिके उपलक्ष्यमें आपका हृदयसे अभिनन्दन करता हुआ, शतायु होनेकी मंगल कामना करता हूँ।

●

साहित्य महारथी

पं० पन्नालाल साहित्याचार्य

विविध पत्रपत्रिकाओंमें प्रकाशित होनेवाले अनेक लेखोंको देखकर मन अब भी आश्चर्यमें डूब जाता है कि अगरचन्दजी नाहटा कितना लिखते हैं? इनका अध्ययन कितना अगाध है? साहित्यिक, ऐतिहासिक, धार्मिक तथा पुरातत्त्व आदिसे सम्बद्ध आपके लेख, एक नई दिशा तथा नई चेतना प्रदान करते हैं। साहित्य संग्रहकी ओर ही आपकी अभिरुचि नहीं है किन्तु उसका सूक्ष्मतम अध्ययन करनेमें भी आपकी बड़ी अभिरुचि है। दिगम्बर और श्वेताम्बर-दोनों आम्नायोंके ग्रन्थोंका प्रगाढ़ अध्ययन आपने किया है।

श्री सम्मेद शिखरजी में संपन्न स्याद्वाद महाविद्यालयके स्वर्ण जयन्ती महोत्सवके समय सभामें बहुत ऊंची पगड़ी बाँधकर बैठे हुए चिन्ता निमग्न एक व्यक्तिको देखकर मैंने पं० कैलाशचन्दजीसे पूछा कि इन महाशयकी पगड़ी तो सबसे निराली दिखती है ? कौन हैं यह ? पण्डितजो ने उत्तर दिया—आप नहीं जानते ? यह बीकानेरके अगरचन्दजी नाहटा हैं। पण्डितजोके द्वारा आपका परिचय प्राप्त कर मैं नाहटाजीके पास खिसक गया जिससे प्रत्यक्ष परिचयकी अभिलाषा हम दोनोंकी पूर्ण हुई। पत्राचारका परिचय तो बहुत पहलेसे था, परन्तु प्रत्यक्ष परिचयका अवसर उसी समय प्राप्त हुआ था।

इस साहित्य महारथीके प्रति मेरे हृदयमें बहुत श्रद्धा है। अभिनन्दनकी वेलामें मैं आपके दीर्घायुष्य होनेकी मङ्गलकामना करता हूँ।

•

अभिनन्दनीय नाहटाजी

भँवरमल सिंघी

भाई अगरचन्दजी नाहटाने साहित्य और इतिहासके क्षेत्रमें जो शोधकार्य किया है, जो सामग्री अपने संपादन और लेखनके द्वारा दी है, वह बहुमूल्य है और बहुमूल्य रहेगी। जिस संकल्पसे, निष्ठासे और श्रम-साधनासे उन्होंने आजीवन साहित्य-सेवा की है, वह अनुकरणीय है। परन्तु क्या सहज ही उनका अनुकरण किया जा सकता है? जिस समाजमें अर्थ ही अनुकरणीय है, वहाँ विद्या-साधनामें लगे रह जीवनको सफल बनाना बड़ा कठिन कार्य है। वह कठिन है, इसीलिए अभिनन्दनीय है।

भाई अगरचन्दजी को मैं २५-३० वर्षों से जानता हूँ और उनकी मूक साहित्य-साधनाका प्रशंसक रहा हूँ। भाई भँवरलालजी नाहटाने भी इस कार्यमें अगरचन्दजीको जो सहयोग दिया है, वह भी अति मूल्यवान है। अतः अभिनन्दन भी दोनोंका साथ-साथ हो, यह उचित ही है। इन दोनोंके सतत प्रयत्नोंके बिना बहुत सी दुर्लभ ऐतिहासिक सामग्री अंधेरेमें ही पड़ी रह जाती। दोनोंके अनेक-अनेक अभिनन्दन सहित—

•

इतिहासके श्रेष्ठ पुजारी

फतहचन्द श्रीलालजी

जब मैं बालकथा और श्री आत्मानन्द जैन गुरुकुल गुजरानवालामें पढ़ता था तबसे ही आपके प्रति मेरी श्रद्धा थी। अनेक पत्र-पत्रिकाओंमें आपके लेख आते थे। आपका नाम तो मेरे मस्तिष्कमें अपना घर कर बैठा ही था परन्तु साक्षात्कार नहीं हुआ था।

जब आचार्य श्री विजयवल्लभसूरीश्वरजी महाराज साहबका चातुर्मास बीकानेरमें रामपुरिया भवनमें हुआ उस वक्त मैं आचार्यश्रीका इतिहास लिखता था, आपके प्रिय शिष्य श्रीसमुद्रविजयसूरीश्वरजी व विशुद्धविजय-जी महाराजकी उर्दूकी डायरियोंका हिन्दीमें अनुवाद करता था तथा मुनिराजश्री विशारदविजयजी को पढ़ाता भी था। नाहटा जीसे साक्षात्कार हुआ। आपका विस्तृत सरस्वती मंदिर भी देखा। आपके भतीजे श्री भवँरलालजी भी उत्साहप्रद निकले। नाहटा साहबकी सरलता, ज्ञानपिपासा, शांतचित्तता, सरलता मेरे मनपर

छा गई। पश्चात् जब मैं श्री केसरियाजी जैनगुरुकुल चित्तौड़गढ़ में गृहपतिका कार्य करता था आप भी कार्य वशात् चेदेरिया गाँवमें श्री जिनविजयजीसे मिलने पधारे थे तब कुछ समय साथ रहनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ था। इतिहासके उच्चकोटिके विद्वान् व अन्य विषयोंमें निष्णांत पारंगत शिखर स्थानीय गणमान्य व्यक्तिकी निखालसता, अपनी भाषा व भूषापर गौरवने मेरे मनपर अनोखी छाप डाली। वही बीकानेरी पगड़ी, ऊँची-ऊँची दो लांगी जाड़ी धोती, ठेठ मारवाड़ी वेशका आदर्श थी। बोलचालमें आत्मनिर्भरता, आत्मसम्मानके साथ निरभिमानता की वह सौम्यमूर्ति आज भी मेरे मनमें बसी हुई है।

पश्चात् तो मेरी प्रार्थनापर आपके कई पत्र मिलते रहे। मैं 'महात्मा संदेश' व 'महात्मा बंधु' नामक मासिक-पत्र चित्तौड़ से निकालता था तब आपके लेख समयपर अवश्य मिल जाते थे। आपके लेखोंसे मुझे प्रेरणा, उत्साह व ज्ञानवर्द्धन प्राप्त होता रहा है।

अभी भी मैं सुमेरपुरसे 'वर्द्धमान-संदेश' पत्रिका निकाल रहा हूँ उसके लिए आपका लेख कभीसे प्राप्त है।

मुझे आश्चर्य है कि इस 'समय नहीं' के जमानेमें आप इतना समय कहाँसे निकाल लेते हैं। हर साहित्यिक सभा में उपस्थिति व हर ऐतिहासिक ग्रंथमें आपका लेख देखकर प्रसन्नता होती है।

उम्रकी दृष्टिसे आपमें कोई थकावट प्रतीत नहीं होती जहाँ अन्य लेखक प्रमाद सेवन करते हैं वहाँ आप सतत जागृत मिलते हैं। आपकी शोध-बुद्धि व शोध-उत्कंठा जैन-समाज व जैन-साहित्य को बरदान सिद्ध हुई है और आगे भी होगी। आपने ऐसे कई लेख-प्रशस्तियाँ व शास्त्रीय प्रमाणोपेक्षित तथ्य प्रगट किए हैं, जो कल्पनामें भी नहीं थे।

आप जैनसमाजके चमकते सितारे हैं, अमूल्य हीरे हैं एवं इतिहासके श्रेष्ठ पुजारी हैं। एक व्यक्तिका विद्वान् होनेके साथ ही उदारधनी होना कहीं नहीं पाया जाता। लक्ष्मी व सरस्वती का एक ही साथ एक ही वरराजा को वरमाला पहनाना अनहोनी बात है, परन्तु दोनों देवियाँ आपपर प्रसन्न हैं। आपने अपने पुस्तकालयमें जिन अमूल्य ग्रंथोंका संग्रह किया है उसकी कद्र चाहे आजके समाजकी दृष्टिमें न हो परन्तु भावी समाज इसका मूल्यांकन करेगा।

आपकी प्रेरणासे कई विद्यार्थी आगे बढ़े हैं, कितनोंको चेतना मिली है। बीकानेरका ही नहीं, वरन पूरे भारतवर्षका जैन समाज आपके सुकृत्योंका ऋणी है।

शासनदेव आपको चिरायु व सशक्त रखे ताकि आपके द्वारा देश, धर्म व समाजकी सेवा निरंतर होती रहे। आपका व्यक्तिगत धर्मस्नेह मुझपर है उसमें वृद्धि होती रहे, यही अपेक्षा है।

●

नाहटाजी : स्व० डॉ० वासुदेवशरण अग्रवालकी दृष्टिमें

डॉ० सत्यनारायण स्वामी

स्व० डा० वासुदेवशरण अग्रवाल श्रद्धेय नाहटाजी के अभिन्न और आदरणीय मित्र थे। दोनों दूध और पानी की तरह परस्पर घुल-मिलकर एक थे। उनकी विद्यमानतामें यदि प्रस्तुत ग्रंथ निकलता तो, कोई आश्चर्य नहीं, वे ही इसके प्रमुख सूत्रधार होते। दोनोंकी विद्वत्ता और महानता तो असंदिग्ध है ही, यहाँ मात्र उनके अनवद्य स्नेह को अंकित करने का विनम्र प्रयास किया जा रहा है। संगृहीत उद्धरण नाहटाजीको लिखे डाक्टर साहबके पत्रोंसे और उन्हींकी लिखी नाहटाजीके ग्रंथोंकी भूमिकाओंसे लिये गये हैं।

प्रोविंशियल म्यूजियम
लखनऊ, दि० २८-७-४३

विज्ञशिरोमणि श्री नाहटाजी,

नमः। आपका १४ तारीखका कृपापत्र मिला। आपके विद्वत्तापूर्ण लेखोंको पढ़कर मुझे पहले भी आपके नामका परिचय था, परन्तु इस पत्रकी प्राप्तिसे आपकी विद्यानुरागिता और सज्जनताका एक नया परिचय मिला और चित्तमें बहुत आनन्द प्राप्त हुआ। आप सचमुच अध्यवसायशील विद्वान् हैं और जैन-साहित्य तथा इतिहासकी खोजका जो बहुमूल्य कार्य आप कर रहे हैं वह अद्भुत है। 'श्रीजिनप्रभसूरि' पर आपका लेख अनेक मूल्यवान् सूचनाओंसे अलंकृत है। इसी प्रकार 'सत्यासीया दुष्काल छत्तीसी' लेख भी सामाजिक इतिहासके लिए अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। यदि आप कृपा करके अपने अन्य उपलब्ध लेखोंकी प्रतियाँ भी भेज सकें तो मैं बहुत आभारी हूँगा।

× × ×

मैं अपने कुछ लेखोंके रिप्रिंट भेजता हूँ। आशा है आपके साथ साहित्यिक परिचय उत्तरोत्तर वृद्धि को प्राप्त होकर विशेष उपयोगी सिद्ध होगा।

विनीत —वासुदेवशरण

[२]

आपकी प्राचीन शोधविषयक प्रवृत्तिसे इस प्रकार परिचित होकर अपरिचित आनन्द हुआ। आपका कार्य विशेषतः हिन्दी भाषाका भंडार भर रहा है इस बातसे और भी अधिक परितोष है।

× × ×

'युगप्रधान श्री जिनचन्द्रसूरि' पुस्तक बहुत ही छान-बीनके बाद सच्ची ऐतिहासिक पद्धतिसे लिखी गई है। भारतीय इतिहासके अनेक भूले स्रोतोंसे यह हमारा परिचय कराती है। इसमें संदेह नहीं कि अकबर-कालीन जिन महात्माओंने भारतीय धर्मके सम्मानार्थ प्रयत्न किया था, उनमें जैन समाजमें श्री हरिविजय, विजयसेन, सिद्धिचन्द्र, भानुचन्द्रके अतिरिक्त युगप्रधान श्री जिनचन्द्रसूरिका भी प्रधान स्थान स्वीकृत करना पड़ेगा। अवश्य ही इनकी गणना उस युगके उदात्त मस्तिष्कोंमें की जानी चाहिए। जिस उच्च परिस्थितिमें जातीय और संप्रदायगत पक्षपाती पीछे छूट जाते हैं, विशुद्ध ऐतिहासिककी उस ऊँची आसंदीसे जब अकबरीय युगका समग्र अध्ययन किया जायगा, तब जैनाचार्य सूरि महोदयों द्वारा की हुई सांस्कृतिक सेवाका पूरा महत्त्व प्रकाशमें आएगा। मैं हृदयसे चाहता हूँ कि आपके द्वारा इसी प्रकार ऐतिहासिक शोधका कार्य जारी रहे।

(लखनऊ, १८-८-४३)

[३]

आश्विन शुक्ल ८ को एक पत्र सेवामें भेजा था जिसमें जैन-साहित्यमें प्राचीन रासोकी परंपरापर निबंध लिखनेकी प्रार्थना की गई थी। आशा है आपने इसे स्वीकार कर लिया है। कुछ नवीन सामग्री आपके द्वारा विक्रमांकको मिलनी चाहिए। आपका अध्ययन विशाल है और आप जब लिखते हैं खूब सारगर्भित लिखते हैं। अतएव मेरा विशेष आग्रह आप से है क्योंकि विक्रमांकके द्वारा अधिक से अधिक हिंदी जनता तक आपकी सामग्री और सूचना पहुँचाई जा सकेगी।

(लखनऊ, ५।११ कार्तिक शुक्ल ८, सं० २००० वि०)

[४]

मुझ विदित है कि आप बिना दिखावेके ठोस साहित्य सेवा करनेके व्रती हैं और आपने अपनी अंतरात्माकी लगनसे प्राचीन साहित्य शोध संबंधी प्रचुर सामग्रीका संग्रह किया है। ईश्वर करें यह सब सामग्री सुरक्षित रूपमें एक संस्थामें रक्खी जा सके जो भविष्यमें साहित्य शोधके कार्यको और आगे बढ़ावे।

(नई दिल्ली, १२-१०-४९)

[५]

आपका लेख 'कवि-समय-सुन्दर' पर मैंने अभी विशेष रीतिसे पढ़ा। इसमें आपने बहुत परिश्रम और खोजसे समय सुन्दरके विषयकी जानकारीका संग्रह किया है। मध्यकालीन हिंदी साहित्यके सोलहवीं शतीके इतिहासके लिए इस प्रकारकी सूचनाएँ किसी दिन अनमोल समझी जायँगी।

(नई दिल्ली, ३-१२-४९)

[६]

चौपई, बत्तीसी, छत्तीसी, बावनी, अष्टक, स्तवन, सज्झाय आदि-आदि साहित्य रचनाके जो अनेक प्रकार जैन कवियोंने अपनाए उनपर विस्तृत लेख कभी अवश्य होना चाहिए। आप कृपया इस संबंधकी सामग्रीका संकलन करते रहें और कभी पत्रिकाके लिए लिखें।

(नई दिल्ली, ३-१२-४९)

[७]

आपने जैन-साहित्य के अवलोकनके लिए जो प्रेरणा मुझे दी है, उसके लिए बहुत अनुग्रह मानता हूँ। मैं अवकाश मिलते ही इस साहित्यका पारायण करूँगा। आगम साहित्य तो मुझे बहुत ही प्रिय है। मैं भी समझता हूँ कि उससे परिचित हुए बिना संस्कृतिविषयक मेरा ज्ञान अधूरा रहेगा।

(काशी विश्वविद्यालय, ९-९-५२)

[८]

मेरी दीर्घसूत्रताने आपका धैर्यबांध भी क्षुभित कर दिया। मुझे सचमुच लज्जा आती है क्योंकि मैं अपने आपको इससे अधिक उद्यमी नहीं बना पाता।

× × ×

'साल्व जनपद' लेख मैंने अधिक प्रचारकी दृष्टिसे सरल भावसे दोनों पत्रोंको भेज दिया था। 'राजस्थान भारती' और 'अवंतिका' के पाठक बिल्कुल अलग हैं। मैंने इसमें त्रुटि नहीं मानी। पर आप ठीक न समझें तो आगे ध्यान करूँगा। कभी-कभी लेखोंके तगादोंसे आकुल होकर भी एक लेख कई जगह देकर जान बचाता रहा हूँ। आपके जैसे लेख सिद्धि की स्पृहा करता हूँ।

(काशी विश्वविद्यालय, १६-१२-५२)

[९]

आपका १३-९-५३ का पत्र मुझे पूना-बड़ौदा यात्रासे लौटनेपर मिला। आपके स्नेहयुक्त प्रसन्न मानोभावसे मैं गद्‌गद् हो गया हूँ। यह आपकी सहिष्णुता उदारता है जो आपने क्षमापनपर्वके अवसर मुझे लिखा है। वस्तुतः इस पुण्यपर्वके उपलक्ष्यमें आपसे क्षमापन चाहता हूँ कि मेरे दीर्घसूत्री स्वभावके कारण आपको असुविधा रही है।

(काशी विश्वविद्यालय, २५-९-५३)

[१०]

श्री अगरचन्दजी नाहटा विख्यात शोधकर्ता विद्वान् हैं। उनके द्वारा संपादित सभा-शृंगार ग्रन्थ सांस्कृतिक शब्दावलीकी दृष्टिसे महत्त्वपूर्ण है।

नाहटाजीने इस संग्रहमें विषयका विभाजन किया है। वह उनका अपना है। वर्णन संग्रहोंको यथारूप न छापकर उनमेंसे एक जैसे विषयोंका संकलन कर दिया है।

हम श्री नाहटाजीके अनुगृहीत हैं कि उन्होंने परिश्रमपूर्वक इस प्रकारके साहित्यकी रक्षा की।

(भूमिका, 'सभा शृंगार' ६-४-५९)

[११]

श्री अगरचंद नाहटा व भँवरलाल नाहटा राजस्थानके अतिश्रेष्ठ कर्मठ साहित्यिक हैं। एक प्रतिष्ठित व्यापारी परिवारमें उनका जन्म हुआ। स्कूल-कालेजी शिक्षासे प्रायः बचे रहे। किन्तु अपनी सहज प्रतिभाके बलपर उन्होंने साहित्यके वास्तविक क्षेत्रमें प्रवेश किया, और कुशाग्रबुद्धि एवं श्रम दोनोंकी भरपूर पूँजीसे उन्होंने प्राचीन ग्रन्थोंके उद्धार और इतिहासके अध्ययनमें अभूतपूर्व सफलता प्राप्त की। पिछली सहस्राब्दीमें जिस भव्य और बहुमुखी जैन धार्मिक संस्कृतिका राजस्थान और पश्चिमी भारतमें विकास हुआ, उसके अनेक सूत्र नाहटाजीके व्यक्तित्वमें मानो बीजरूपसे समाविष्ट हो गए हैं। उन्हींके फलस्वरूप प्राचीन ग्रन्थ भंडार, संघ, आचार्य, मंदिर, श्रावकोंके गोत्र आदि अनेक विषयोंके इतिहासमें नाहटाजी की सहज रुचि है और उस विविध सामग्रीके संकलन, अध्ययन और व्याख्यामें लगे हुए अपने समयका सदुपयोग कर रहे हैं। लगभग एक सहस्र संख्यक लेख और कितने ही ग्रन्थ इन विषयोंके सम्बन्धमें हिन्दीकी पत्र-पत्रिकाओंमें प्रकाशित करा चुके हैं। अभी भी मध्याह्नके सूर्यकी भाँति उनके प्रखर ज्ञानकी रश्मियाँ बराबर फैल रही हैं। जहाँ पहले कुछ नहीं था, वहाँ अपने परिश्रमसे कण-कण जोड़कर अर्थका सुमेरु संगृहीत कर लेना, यही कुशल व्यापारिक बुद्धिका लक्षण है। इसका प्रमाण श्री अभय जैन पुस्तकालयके रूपमें प्राप्त है। नाहटाजीने पिछले तीस वर्षोंमें निरन्तर प्रयत्न करते हुए लगभग पन्द्रह सहस्र हस्तलिखित प्रतियाँ वहाँ एकत्र की हैं एवं पाँच सौ के लगभग गुटकाकार प्रतियोंका संग्रह किया है। यह सामग्री राजस्थान एवं देशके साहित्यिक एवं सांस्कृतिक इतिहासके लिए अतीव मौलिक और उपयोगी है।

जिस प्रकार नदी-प्रवाहमेंसे बालुका धोकर एक-एक कणके रूपमें पौपीलिक सुवर्ण प्राप्त किया जाता था, कुछ उसी प्रकारका प्रयत्न 'बीकानेर जैन लेख संग्रह' नामक प्रस्तुत ग्रन्थमें नाहटाजीने किया है।

प्रस्तुत संग्रहके लेखोंसे जो ऐतिहासिक और सांस्कृतिक सामग्री प्राप्त होती है, उसका अत्यन्त प्रामाणिक और विस्तृत विवेचन विद्वान् लेखकोंने अपनी भूमिकामें किया है।

बीकानेरकी यात्राका एक बड़ा आकर्षण श्री अगरचंदजी नाहटाके प्राचीन ग्रन्थोंके संग्रह और कलात्मक वस्तुओंके संग्रहको देखना था। वह अभिलाषा यहाँ आकर पूरी हुई। श्री नाहटाजीने जिस लगनसे इस संग्रहको बनाया है वह प्रशंसनीय है। संग्रहमें लगभग १५ सहस्र हस्तलिखित ग्रन्थ हैं जिनमें हिन्दी भाषा और साहित्यके आठ सौ वर्षों की अनमोल सामग्री भरी हुई है। नाहटाजीने अकेले एक संस्थाका काम पूरा किया है। आगे आनेवाली पीढ़ियाँ इसके लिए उनकी आभारी रहेंगी।

जिस तत्परतासे उन्होंने संग्रहका कार्य किया है उससे भी अधिक उत्साह और परिश्रमसे आप इस सामग्रीके आधारपर लेखन और प्रकाशनका काम कर रहे हैं। अबतक वे लगभग पाँच सौ लेख लिख चुके हैं जो अधिकांश उनके अपने संग्रहकी साहित्यिक सामग्रीपर आश्रित हैं। एक सहस्र वर्षों तक जैनोंने हिन्दी भाषाके भंडारको विविध कृतियोंसे सम्पन्न बनाया। वह ग्रन्थराशि गुजरात राजस्थान, संयुक्त प्रान्तके

जैन सरस्वती भण्डारोंमें सौभाग्यसे सुरक्षित है। नाहटाजीका ग्रन्थ संग्रह इसी प्रकारका एक सरस्वती भण्डार है। शीघ्र ही हिन्दीकी शोध संस्थाओंको इस सामग्रीके व्यवस्थित प्रकाशनका उत्तरदायित्व संभालना चाहिए। आशा है नाहटाजीके जीवनकालमें ही यह कार्य बहुत कुछ आगे बढ़ेगा। यह जानकर प्रसन्नता हुई कि आप अभीतक अपने संग्रहको बढ़ा रहे हैं और भविष्यमें एक पृथक् भवनमें उसको स्थापित करना चाहते हैं। इस कार्यमें उनके विद्याप्रेमी भतीजे श्री भँवरलाल नाहटा भी उनके सहयोगी हैं जिन्होंने अधिकांश कलाकी सामग्री एकत्र करनेमें सहायता दी है। नाहटाजी जिस मुक्त हृदयसे अपनी प्रिय सामग्रीको विद्वानोंके लिए सुलभ कर देते हैं इसका व्यक्तिगत अनुभव करके मेरा हृदय गद्‌गद् हो गया। निस्सन्देह नाहटा-संग्रह हिन्दी साहित्यकी एक अमूल्य निधि है। ईश्वर उसका संवर्धन करे।

वासुदेशरण अग्रवाल

सरस्वती एवं लक्ष्मीका विरल संगम

मुनि श्री कन्हैयालालजी 'कमल'

श्रीमान् अगरचन्दजी नाहटाका अभिनन्दन-समारोह मनाया जा रहा है, यह शुभ संवाद पाकर हृदयमें प्रमोद-भाव जग उठा। श्रीनाहटाजी उदार विचारोंके समन्वय प्रेमी विद्वान् हैं। उनकी दृष्टि ऐतिहासिक है, साथ ही अनेकांत प्रधान भी। एक संप्रदाय विशेषके अनुयायी होते हुए भी वे सांप्रदायिक मानसके नहीं हैं, ऐसा मैंने उनके लेखों आदिसे जाना है और मुझे इसकी विशेष प्रसन्नता हुई है।

श्रीनाहटाजीने जैन-साहित्य और जैन-इतिहासके सम्बन्धमें बहुत ही खोज-बीन करके प्रचुर दुर्लभ सामग्री पाठकोंके समक्ष प्रस्तुत की है। वे अनुसंधित्सु और अध्ययनशील वृत्तिके हैं। एक ही साथ लक्ष्मी और सरस्वतीका संगम उनमें देखा जा सकता है। विद्या, विनय और विवेककी त्रिपुटी उनका आदर्श है और मैं इसे ही एक सच्चे विद्वान्की कसौटी मानता हूँ। ऐसे विद्वान्का अभिनन्दन वास्तवमें गुणानुरागका परिचायक है और यह सबके लिए अनुकरणीय है।

सेठ और साहित्य-सेवी

श्री मधुकर मुनि

श्रीयुत अगरचन्दजी नाहटा एक सरस्वती-समुपासक साहित्यसेवी श्रीमन्त सेठ हैं।

साहित्य-सेवा नाहटाजीके जीवनका लक्ष्य है। हमारी जानकारीमें जो भी समाचार-पत्र हैं, चाहे वे दैनिक हों अथवा साप्ताहिक, पाक्षिक, मासिक व त्रैमासिक हों, प्रायः उन सबमें आपके निबंध निकलते रहे हैं।

अनेक पुस्तकोंका सम्पादन भी आपने किया है। मुनि श्री हजारीमल स्मृति प्रकाशनसे प्रकाशित 'ऐतिहासिक-काव्यसंग्रह'का संपादन भी आपने ही किया है। मुनिश्री हजारीमल स्मृति ग्रंथकी संयोजनामें भी आपका अच्छा सहयोग रहा है।

इतिहास अन्वेषणकी ओर आपकी अभिरुचि अधिक है। आपके निबंधोंमें ऐतिहासिक-अनुसंधानके तथ्य अधिक मिलते हैं।

यद्यपि नाहटाजीके चरण अब वार्धक्यकी ओर बढ़ते जा रहे हैं, फिर भी आपमें युवावस्था-सी मजबूती है और कर्मठता है। अतः आप अब भी अतीव उत्साहके साथ साहित्य-सेवा करते जा रहे हैं।

नाहटाजीके लिए जो अभिनंदन समारोह हो रहा है, उसके लिए शुभ कामना है। साहित्यसेवाके माध्यमसे नाहटाजी आध्यात्मिकताके चरम विकासकी ओर बढ़ते चलें।

बहुमुखी प्रतिभाके धनी : नाहटाजी

श्री देवेन्द्रमुनि शास्त्री

महान् साहित्यकार श्री अगरचन्दजी नाहटाका व्यक्तित्व और कृतित्व अत्यधिक गरिमामय रहा है। वे बहुमुखी प्रतिभाके धनी हैं और वे विचारोंकी दृष्टिसे हिमालयसे भी अधिक ऊँचे हैं और सागरसे भी अधिक गंभीर हैं। वे विचारक हैं, चिन्तक हैं, लेखक हैं, समालोचक हैं, संशोधक हैं। इतिहास और पुरातत्त्व उनका प्रिय विषय है, उन्होंने अनेकों अज्ञात लेखक कवियोंकी कृतियोंकी खोज की हैं। जहाँसे भी कुछ भी प्राप्त हुआ उसे प्राप्त करनेका प्रयास किया है। जैन लेखकों व कवियों पर ही नहीं, वैदिक परम्परा-के लेखकों व कवियोंपर भी उन्होंने अच्छी तरहसे लिखा है। सम्प्रदायवादके चिन्तनसे मुक्त होकर तटस्थ दृष्टिसे चिन्तन करना उनका स्वभाव रहा है। परन्तु नाहटाजी इस बातके अपवाद रहे हैं। आश्चर्य तो इस बात पर है कि ऐसा कोई विषय नहीं, जिसपर उन्होंने नहीं लिखा हो। भारतकी ऐसी कोई जैन-अजैन पत्रि-का नहीं, जिसमें उनके लेख न छपे हों। तीन हजारसे भी अधिक निबन्ध लिखना कोई साधारण बात नहीं है, पर परिताप है कि उनके निबन्धोंके संग्रह आजतक प्रकाशित नहीं हो सके हैं। उनके कितने ही निबन्ध इतने महत्त्वपूर्ण व शोधप्रधान हैं कि विज्ञ पढ़कर झूमने लगते हैं। आवश्यकता है कि उनके निबन्धोंका विषय की दृष्टिसे वर्गीकरण कर पृथक्-पृथक् जिल्दोंमें प्रकाशन करवाया जाए, जिससे वे सभीके लिये उपयोगी हो सकें।

नाहटाजीसे सर्वप्रथम मेरा परिचय सन् १९५५ में जयपुरमें हुआ था, उस समय मैं 'जिनवाणी' पत्रिकाका सम्पादन करता था। उसके पश्चात् १९६२ में वे मुझे जोधपुरमें मिले थे, जहाँपर मैं पूज्य गुरुदेव राजस्थान केशरी प्रसिद्ध वक्ता पं० प्रवर श्री पुष्कर मुनिजीके नेतृत्वमें श्री अमरजैन ज्ञान भण्डारका सूचीपत्र तैयार कर रहा था। नाहटाजीने हस्तलिखित ग्रन्थोंका सूचीपत्र देखकर प्रसन्नता व्यक्त की। उस समय मैंने अपनी सम्पादित 'जिन्दगी की मुस्कान', 'साधनाका राजमार्ग', आदि पुस्तकें उन्हें भेंट की। जैन इतिहासके सम्बन्धमें चर्चा चलनेपर उन्होंने लोंकाशाह आदिके सम्बन्धमें अनेक बातें बतलाई और कहा कि आप जिन ग्रन्थोंका उपयोग करना चाहें मेरे संग्रहालयसे सहर्ष मँगा सकते हैं।

आचार्य भद्रबाहु रचित कल्पसूत्रका मैंने सम्पादन किया और वह सन् १९६८ में 'श्री अमर जैन आगम शोध संस्थान गढ़सिवानासे प्रकाशित हुआ। ग्रंथ अभिप्रायार्थ नाहटाजीको भेजा गया। नाहटाजीने ग्रंथको देखकर हार्दिक प्रसन्नता व्यक्त की। उन्होंने भावनगरसे प्रकाशित 'जैन' पत्रके पर्युषण विशेषाङ्कमें लिखा कि आजतकके प्रकाशित और सम्पादित कल्पसूत्रमें यह कल्पसूत्र सर्वश्रेष्ठ है। उन्होंने मुझे अनेक संशो-धन भी भेजे, जिसका उपयोग अभी प्रकाशित हुए कल्पसूत्रके गुजराती संस्करणमें मैंने किया है।

'भगवान् पार्श्व : एक समीक्षात्मक अध्ययन', 'साहित्य और संस्कृति', 'ऋषभदेव : एक परिशीलन', ग्रन्थोंपर भी उन्होंने अपने सुझाव दिये हैं, जिनको देखकर मुझे अनुभव हुआ है कि नाहटाजीका कितना गंभीर अध्ययन है। साथ ही उनमें कितनी सरलता व स्नेह है। उन्होंने समय-समयपर अनुपलब्ध ग्रन्थ मुझे उपयोग करनेके लिए भी भेजे हैं।

'भगवान् अरिष्टनेमि और कर्मयोगी श्रीकृष्ण : एक अनुशीलन' ग्रन्थ मैंने लिखा। नाहटाजीने उसकी पाण्डुलिपि देखकर अनेक स्थलोंपर संशोधनके लिए सूचना दी। साथ ही उसपर उन्होंने महत्त्वपूर्ण भूमिका भी लिख दी। वह ग्रन्थ 'श्रीतारक गुरु जैन ग्रन्थालय पदराड़ा, जि० उदयपुरसे प्रकाशित हुआ।

अभी नाहटाजी श्रीमानतुंगसूरि सारस्वत समारोहमें बम्बई आये तो पुनः दीर्घकालके पश्चात् साक्षात् मिलनेका अवसर मिला। अनेकों साहित्यिक विषयोंपर उनसे खुलकर वार्तालाप हुआ। वार्तालापके प्रसंगमें मुझे ऐसा अनुभव हुआ कि नाहटाजी वस्तुतः चलते-फिरते पुस्तकालय हैं। ये लक्ष्मी-पुत्र ही नहीं, सरस्वती पुत्र भी हैं। इनका अभिनन्दन किया जा रहा है। उनका अभिनन्दन वस्तुतः उनके बहुविध गुणोंका अभिनन्दन है, ये चिरायु होकर अत्यधिक साहित्यिक व धार्मिक सेवा करें, यही हार्दिक मंगल कामना है।

●

साहित्यिक सेठ श्री अगरचंद नाहटा

श्री रामनिवास स्वामी

'विवेक विकास' का प्रकाशन जुलाई सन् १९६८में प्रारम्भ किया था। तब यह आवश्यकता अनुभव हुई कि राजस्थानके कतिपय साहित्यकारोंसे सम्पर्क किया जाय। राजस्थानी भाषा व इतिहासके सुपरिचित लेखक श्री सवाई सिंह धमोराने जिनका 'विवेक विकास' के साथ आरम्भसे ही निकटका संबन्ध रहा है, इस संबन्धमें अगरचन्द नाहटाका भी नाम लिया। यह प्रारम्भिक परिचय है श्री नाहटाका विवेक-विकास परिवार से।

इसके उपरान्त तो उनसे पत्र-व्यवहार होता ही रहा है। परस्पर विचारों का आदान-प्रदान भी है। विवेक-विकास को इस बातकी प्रसन्नता है कि हमारे यहाँ कतिपय शोध-छात्र अध्ययन हेतु आते रहते हैं। राजस्थानी भाषा और साहित्यके अतिरिक्त इतिहास-संबन्धी अनेकानेक गुत्थियों पर चर्चायें ही होती रहती हैं। हमारे सम्पादक मण्डलके सदस्य संदर्भमें सदा ही नाहटाजीका नाम लिया करते हैं। कतिपय छात्रोंको बीकानेर जाते समय नाहटाजीके पुस्तकालयमें अमुक-अमुक ग्रन्थ देखियेगा, इस प्रकारका परामर्श देते रहते हैं।

श्री नाहटाजी का पुस्तकालय वास्तवमें राजस्थानी व राजस्थान की दृष्टिसे अनुपम देन हैं। जिस प्रकार सेठ लोग धन अर्जित करते हैं, श्री नाहटाने उसी प्रकार साहित्यिक पाण्डुलिपियाँ एकत्रित कर अपने सेठ नाम को सार्थक किया है। इस दिशामें सेठोंकी सी संचय-वृत्ति और और अभ्यास उनका वंशानुगत है। इसीलिए हम उन्हें साहित्यिक सेठ कहते संकोच नहीं करते। समाज-वादके इस युगमें आर्थिक विशेषता को मिटाने हेतु संकल्प लिये हुए राजनीतिज्ञ सम्भवतः पूँजी बटोरनेवाले सेठों की सम्पति सीमित कर दें परन्तु इस साहित्यिक सेठ की संचित निधि पर उनका यह अस्त्र भी नहीं चलेगा। पूँजीवादी सेठ समाप्त हो सकते हैं परन्तु यह साहित्यकार सेठ तब भी उसी शान से डटा रहेगा जिस प्रकार आज डटा है। नाहटाजी सदैव अमर-सेठ रहेंगे।

ऐसे साहित्यकारका अभिनन्दन होना वास्तवमें एक शुभ संकेत है, जिससे भावी पीढ़ी प्रेरणा लेगी।

'विवेक विकास' परिवार इस अवसर पर हार्दिक अभिनन्दन प्रस्तुत करता है और शुभकामना करता है कि श्री नाहटाजी साहित्य सेवार्थ दीर्घजीवी हों।

●

शुभकामना

श्री हीरालाल शास्त्री

मैं भाई श्री अगरचन्दजी नाहटाके साहित्यिक कार्यकी प्रशंसा चिरकालसे सुनता आ रहा था। कुछ समय पहले मेरा हैदराबादमें उनसे साक्षात्कार हुआ। तब मैं उनकी मौलिक प्रतिभासे अत्यन्त प्रभावित हुआ।

अभी नाहटा अभिनन्दन स्मारिकाकी विवरणिकाको देखनेसे मुझे मालूम हुआ कि जितना मैंने सुन रखा था या जितनी मैंने कल्पना कर रखी थी, उससे कई गुना ज्यादा काम भाई नाहटाजीके हाथ से हो चुका है। इतने बड़े काममें उनको अपने भतीजे श्री भँवरलालजी नाहटाका सहयोग भी मिला, यह अवश्य ही हर्ष का विषय है।

मैं श्री नाहटाजीकी प्रगल्भता और निष्ठाके लिए उनका सस्नेह अभिनन्दन करता हूँ और उनकी उत्तरोत्तर अधिकाधिक सफलताके लिए अपनी हार्दिक शुभकामना प्रकट करता हूँ।



साहित्यिक विभूति नाहटाजी

श्री मंगलदास स्वामी

युगयुगान्तरोंसे हमारा यह आर्य संस्कृतिका जन्मदाता महान् भारत देश भूमण्डलमें अपना विशेष स्थान रखता आया है। यह पुण्यश्लोक पावन देश अपने अनेक प्रदेशोंको अपने अंचलमें लिये हुए है। इन प्रदेशोंमें अपनी विभिन्न विशेषताओंके कारण हमारा यह राजस्थान प्रदेश भी महान् गौरवशाली व समादरणीय प्रथम पंक्तिमें अपना विशिष्ट स्थान रखता है। राजस्थानकी वैसे तो ख्याति वीर-प्रसवाके रूपमें है पर इस पावन भू ने जिस प्रकार अनेक शौर्यशाली वीरोंको जन्म दिया उसी तरह इस भूमिने दानी-त्यागी-तपस्वी, भक्त, महात्मा, विद्वान्, कवि, रचनाकार, प्रभावी शासक-यति, व्रतियों व सतियोंको भी अगणित संख्यामें जन्म दिया है। राजस्थानमें संस्कृत-प्राकृत, डिंगल, पिंगलमें संचित व अप्रकाशित इतना प्राचीन साहित्य है जिसका कि अभी हमारे देशके साहित्यिकों का ही पूरा पता नहीं है। इस ओर अभी जिस प्रकारका ध्यान दिया जाना था वैसा ध्यान नहीं दिया गया है। खेद है कि इस उदासीनताके कारण दिन-प्रतिदिन प्राचीन साहित्यका लोप होता जा रहा है। मूर्तियों, चित्र, तथा अन्य कलाकृतियोंकी चोरी तथा प्राचीन साहित्यका व्यापार जोरों पर है जिससे इस अनुपम निधिको दिन-दिन क्षति पहुंचाई जा रही है। जिसकी रक्षाके लिये सतत जागरूक प्रहरी चाहिये। जैसे कि हमारे चरित नायक नाहटाजी हैं। इन प्राचीन साहित्यके परमोपासक, विनीत, मृदुभाषी, निरभिमानी, सतत साहित्य साधना के धनी नाहटाजीको जन्म देनेका गौरव इसी राजस्थानकी भूमि को है। नाहटाजीकी जन्मस्थलीकी महत्ताका महत्त्व प्राप्त हुआ राठौर कुलभूषण महाराज बीकाजी द्वारा स्थापित बीकानेर नगरको नाहटाजीने अपनी उत्कृष्ट विविधताओंसे जन्मदातृनगरीके गौरवको गौरवशाली बनानेमें अपना अथक प्रयोग किया है व कर रहे हैं।

व्यक्तित्व

नाहटाजी बहुत ही सादगी-प्रिय व्यक्ति हैं। उनकी वेश-भूषा परम्परागत सामाजिक रीतिके अनुसार है। यदि कोई अपरिचित व्यक्ति पहिली बार नाहटाजी से साक्षात् करेगा तो शायद वह उनकी इस मारवाड़ी वेश-भूषाको देखकर इस भ्रान्ति में उलझेगा कि क्यों? साहित्यका अनन्य उपासक तथा प्राचीन साहित्यकी

खोजमें अनवरत अपनेको लगानेवाला यही व्यक्ति है। उनकी पगड़ी-धोती-कुरता-सादा कोट उन्हें सीधे रूपमें एक व्यावसायिक व्यक्ति प्रगट करेगा न कि कोई उच्चकोटिका साहित्य-प्रेमी। उनका बाल्यकाल व शिक्षा बीकानेर नगर में ही हुई। उनका परम्परागत व्यावसायिक धन्धा है। तदर्थ उनका आवागमन कलकत्ता आदि भारतके प्रमुख और औद्योगिक नगरोंमें भी होता रहता है। आरम्भसे ही उनमें साहित्य अनुशीलनकी अभिरुचि थी—वही अभिरुचि काल पाकर विकसित होती गयी जिसने आगे चलकर उन्हें प्राचीन साहित्यकी सेवाके लिये तत्पर किया। आपका स्वभाव अत्यन्त सरल तथा कोमल है। नम्रता तो आपमें कूट-कूटकर भरी हुई है। एक बार जो व्यक्ति आपसे मिल लेता है वह सर्वदाके लिए आपका हो जाता है। अहंकारका तो आपमें लेश भी नहीं है—सीधी-सादी भाषामें आपसे वार्ता करते हुए प्रत्येक व्यक्तिमें आपके प्रति आत्मीय भावना स्वतः ही बिना प्रयास घर कर लेती है। आपका द्वार सबके लिए समान रूपसे खुला रहता है। साधारणसे साधारण जिज्ञासु तथा बड़ेसे बड़े साहित्यिकके साथ मानवीय व्यवहारमें किसी प्रकारका भेद आपसे नहीं बनेगा। शोध छात्रोंके लिए आपका सहयोग सर्वदा सुलभ रहता है। साहित्य-प्रेमियों, साहित्य-लेखकों, सम्पादकों, साहित्य मर्मज्ञोंके लिए आपका घर उन्हींके घरके समान उपयोगमें आता है। समागत अतिथियों-का सम्मान भारतीय परम्परानुसार अत्यन्त सौहार्द्रपूर्ण भावनासे किया जाता है। आपका शान्त, विनीत, मृदुल स्वभाव हर अपरिचितको अपनी ओर आर्कषित कर लेता है। आपके पूरे व्यक्तित्वका महत्त्व शब्दों द्वारा व्यक्त कर सकना शक्य नहीं है यही कहना पर्याप्त है कि आप महान् व्यक्तित्वके धनी हैं।

साहित्य-साधना

नाहटाजी का मुख्य विषय साहित्यसाधना है। वे पर्याप्त समयसे इसी कार्यमें लगे हुए हैं। उन्होंने इस लक्ष्यपूर्ति के लिए न मालूम कैसे-कैसे प्रयास किये व कठिनाइयोंसे संघर्ष किया है। जहाँ भी उन्हें ज्ञात हुआ कि अमुक जगह अमुक रचना प्राप्त है आप तभीसे उसके अवलोकन व पांडुलिपियोंके प्रयासमें लग जाते हैं। उस रचनाका वहाँ जाकर अवलोकन करते हैं। जिसके पास वह है उसकी प्रतिलिपिकी व्यवस्था करते हैं। आपके इस प्रयाससे अनेकों रचना-ग्रन्थ जो कि विना जानकारीके किसी वसतेमें लिपटे संसारसे ओझल थे वे प्रकाशमें आये। वैसे आपने प्राचीन जैन साहित्यकी रचनाओंका अपने यहाँ अच्छा संग्रह किया है तथा उसके विवर्धनमें अब भी लगे हुए हैं। जैन साहित्यकी अनेक रचनाओं का सम्पादनकर उनको चिरजीवन प्रदान किया है। आपका "अभय-ग्रन्थागार" इसका उत्कृष्ट प्रमाण है कि आपकी साहित्य साधनाका लक्ष्य कितना उच्चकोटिका है। आपके इस ग्रन्थागारमें न केवल जैन रचनाओंका ही संग्रह है अपितु इसमें सन्त-साहित्य-डिंगल-कवियों को रचनायें-प्राचीन ख्याति-तथा पिंगलकी रचनाओंका भी उपयुक्त संग्रह है। आपने जिस तरह जैन-साहित्यका सम्पादन कर उनको सुरक्षित किया उसी तरह अन्य साहित्यकी रचनाओंका सम्पादन कर उन्हें भी नवजीवन प्रदान किया है।

इस सम्पादन कार्यके साथ-साथ आपने साहित्यिक प्रामाणिक पत्रिकाओं में शोधमय लेख भी लिखकर साहित्य सेवियोंको नई-नई जानकारी देनेका कार्य भी जारी रखा है। आपके अनेकों लेख तो अनुपलब्ध साहित्य रचनाओंके परिचयात्मक विवेचन है जिससे रचनाकार-रचना तथा रचना कालका सम्यक् बोध प्राप्त होता है। आप वैसे राजस्थानके साहित्य-गगनके उदीयमान नक्षत्र ही नहीं हैं अपितु आप तो अब हमारे अंतः भारतीय साहित्य जगतके साहित्यिकोंको उच्च श्रेणीमें समाविष्ट हैं। राजस्थानकी वे सब संस्थाएँ जो साहित्यके संरक्षण, प्रकाशन व संग्रह कार्यमें संलग्न हैं आपके अनुभव व विवेकका पूरा-पूरा लाभ उठानेमें सर्वदा तत्पर रहती हैं। आप राजस्थान प्राच्य विद्यामन्दिरकी समितिके सम्माननीय सदस्य हैं। वैसे ही आप साहित्य एकाडेमीके भी मान्य सदस्य हैं। इसी तरह जो-जो ऐसी अन्य संस्थायें हैं जो कि साहित्यिक कार्यमें

लगी हुई हैं आपका उनसे भी किसी-न-किसीके रूपमें सम्बन्ध बना हुआ है—'किसीके आप मान्य लेखक हैं तो किसीके आप सहायक हैं, किसीके ग्राहक हैं, किसीके सहयोगी हैं। आप सद्गृहस्थ तथा कुटुम्बीजन हैं। अतः आपको सब कर्त्तव्योंका वहन करना पड़ता है। साथ ही अपने प्रमुख लक्ष्य साहित्य उपासनामें किसी प्रकार कमी या बाधा न आने देना आपके व्यावहारिक वैशिष्ट्य हैं। प्राचीन साहित्यकी पांडुलिपियोंका प्रदेश भेद तथा लेखकोंकी विभिन्नताके कारण अध्ययन मनन सहज साध्य नहीं है। इसके लिए धैर्यके साथ तन्मयतासे अपनेको सूझबूझके साथ लगाना पड़ता है ? प्रत्येक शिक्षित भी है तो भी इसमें सफल होना संभव नहीं है। विविध प्रवृत्तियोंमें प्रवृत्त नाहटाजीकी इस क्षेत्रकी सफलता उनकी अत्यधिक लगन व तत्परताको है। वे समाज-सेवी भी हैं साथ-साथ व्यवसायी भी और वे कभी सुव्यवस्थित गृहस्थ भी हैं। इन सबके साथ-साथ वे एकनिष्ठावान् साहित्य सेवी भी हैं। आपके क्षेत्रोंका भाव वहन करते हुए उनमें जिस प्रकारसे जितना कार्य प्राचीन साहित्यकी सेवाका किया है उसके उदाहरण बहुत ही कम देखनेमें आते हैं। धी वे तथा स्मृतिके धनी है। जिससे उनका साहित्यिक ज्ञान सुस्थिर व स्थायी है। प्राचीन साहित्यकी पांडुलिपियोंमें कभी-कभी कई तरहकी उलझनोंका सामना करना पड़ता है। किसी पांडुलिपिमें रचनाकारका नाम नहीं है तो किसीमें रचनाकाल नहीं है। किसीमें रचना स्थानका उल्लेख नहीं हैतो किसीमें पांडुलिपि करनेवालेका नाम व कालके उल्लेखका होता है। ऐसी रचनाओं की उक्त प्रकारकी उलझनोंको सुलझानेके लिए कैसा और कितना प्रयास करना होता है इसकी जानकारी उन्हींको ज्ञात है जो स्वयं प्राचीन साहित्यकी सेवामें संलग्न हैं।

नाहटाजी में उक्त कार्यके लिए अदम्य उत्साह है। वे इस प्रसंगमें किसीभी बाधासे न तो घबराते हैं न ही अनुत्साहित होते हैं। वे धैर्य तथा अपनी ऊहनासे सब प्रकारकी बाधाओंपर विजय पा लेते हैं। वे अपने आपमें एक सच्चे साहित्य साधक हैं। वे चिरकालतक इस साहित्य-साधनामें लगे रहें ताकि प्राचीन साहित्यकी सुरक्षा सेवा बराबर बनती रहे।

सम्पादन व खोजपूर्ण लेख

नाहटाजी जैसा कि मैंने ऊपर व्यक्त किया है कि वे न केवल प्राचीन साहित्यके संग्रहप्रेमी है अपितु उनका लक्ष्य है—उस साहित्यको प्रकाशमें लाकर उसे सुरक्षित कर देना। तदर्थ सम्पादन-प्रकाशन की आवश्यकता होती है। नाहटाजी अपने बलबूते पर ही इन उभय कार्यों (सम्पादन-प्रकाशन) की पूर्तिका भी पूरा प्रयास करते हैं। आपने अनेक ग्रन्थोंका सम्पादन भी किया है तथा प्रकाशन भी। प्राचीन साहित्यकी जैसे-जैसे नवीन पांडुलिपियोंकी प्राप्ति होती है उनकी प्रतिलिपि कराकर संग्रहीत करना तथा समय-समय पर उन प्राप्त ग्रन्थोंके परिचयात्मक निबंध लेख उन शोध-पत्रिकाओंमें प्रकाशित करना जिससे साहित्य-प्रेमियों व खोजमें लगे साहित्यिकोंका नवीन ग्रन्थों व रचनाओं का पता लगता रहे। प्रकाशनमें अर्थकी आवश्यकता होती है तथा परिचयात्मक लेख लिखनेसे पहिले न गहराईसे अनुशीलनकी आवश्यकता रहती है। साथ ही रचनाके पूर्वापरका गहराईसे मन्थन कर ग्रन्थगत रहस्यका पता लगाया जाता है। नवीन रचनाओंके परिचयात्मक लेखों में कभी-कभी ऐसे मौके भी आ जाते हैं कि उसके सही निष्कर्ष तक पहुँचना काफी कठिनाई पूर्ण हो जाता है। उस स्थितिमें अपनी सूझ-बूझसे ही अपना दृष्टिकोण अभिव्यक्त करना पड़ता है। और तथ्य निर्णयके लिए अन्य प्रमाणोंकी तलाश करनी पड़ती है। फिर भी कुछ बातें ऐसी रह जाती हैं जिनको संशयात्मक स्थितिमें ही रख देना पड़ता है। जिन सज्जनोंमें नाहटाजीके इस प्रकारके निबन्ध पढ़े हैं वे कह सकते हैं कि उनका एतद् विषयक प्रयास कितना महत्त्वपूर्ण है। अस्तु, नाहटाजीकी कार्य पद्धति व उनका प्राचीन साहित्यके लिए कितना अगाध स्नेह है उसका पूरा विवरण शक्य नहीं है क्योंकि हृदयगत भावोंको उसी रूपमें व्यक्त कर

सकना कठिन समस्या है। इन पंक्तियोंसे हमें नाहटाजीके साहित्य क्षेत्रमें किये जानेवाले प्रयासोंका संक्षेपमें दिग्दर्शन मात्र है, विशेष अनुमानसे ज्ञातव्य हैं।

कामना

नाहटाजीके अभिनंदनका संकल्प करनेवाले सज्जन अत्यन्त धन्यवादके मात्र है। क्योंकि उन्होंने एक अतीव औचित्यपूर्ण आवश्यक कार्यकी ओर समुचित ध्यान दिया है। साहित्य क्षेत्रका कार्य एक कठिन साधना है। सर्वसाधारण उस प्रयासकी जानकारीसे अपरिचित रहते हैं। साहित्य-प्रेमीही साहित्य सेवी का सकाम मूल्यांकन कर सकता है। आजका युग भौतिक अर्थ प्रधानताका युग है। इसमें ज्ञानका महत्त्व उस रूपमें मान्य नहीं है। जिस रूपमें वह होना चाहिए।

"सर्वे गुणाः काञ्चनमाश्रयन्ति"

मनुष्यके सब गुण विद्या तथा शालीनता अर्थके आयाम हैं। गुण-विद्या शालीनताकी वजाय अर्थके महत्त्वको सर्वोपरि स्थान प्राप्त है। विद्वानोंकी-साहित्यसेवियोंकी-श्रेष्ठ व सज्जनपुरुषोंकी समाजमें जैसी मान्यता होनी चाहिए वह नहीं है। अतः ऐसे कालमें जो सज्जन इस ओर ध्यानमें हैं तथा प्रयास करते हैं वे वस्तुतः एक ऐसे आवश्यक कार्यकी पूर्ति करते हैं जिससे हमारे इतिहास हमारी सभ्यताका पूरा-पूरा संबंध जुड़ा हुआ है। जो समाज अपने विद्वानों, साहित्यसेवियोंका समादर करता है, उनके महत्त्वको स्वीकार करता है। वह समाज अपने अस्तित्व व महत्ताकी पूर्ति करता है। राजस्थानमें आज भी ऐसे अनेक मौन साहित्य साधक हैं जिनका हमें ठीकसे परिचय नहीं है। उनको भी प्रकाशमें लानेकी आवश्यकता है। हमारे समाज की साहित्यिक संपत्तिके ये ही सच्चे प्रहरी हैं जो अनवरत अपने प्रयासोंसे उस दुर्लभ महान् सम्पत्तिका संरक्षण व विवर्धन करते हैं। हमारी उनके लिए यही कामना है कि वे दीर्घकालतक अपनी महती सेवा द्वारा साहित्यिक सम्पत्तिका विवर्धन व संरक्षण करते रहें। नाहटाजी भी उन्हीं साहित्यिक साधकोंमें हैं अतः वे स्वस्थ व दीर्घजीवी होकर अपने लक्ष्यमें तत्पर होकर प्राचीन साहित्यके अन्वेषण-संरक्षण, विवर्धनमें अपना चिर सहयोग प्रदान करते रहें।

●

अभिनंदनीय श्री नाहटाजी

श्री सिद्धराज ढड्ढा

श्री अगरचंदजी नाहटाका अभिनन्दन किया जा रहा है, यह जानकर प्रसन्नता हुई। श्री नाहटाजीसे मेरा परिचय काफी पुराना है। हालांकि कार्यक्षेत्र थोड़ा भिन्न होनेसे अधिक संपर्कमें अवश्य नहीं आया। नाहटाजीके प्रति मेरे मनमें शुरूसे ही आदर रहा है, लगन, अध्यवसाय और एकनिष्ठ कार्यसे मनुष्य कितना बड़ा काम सम्पादित कर सकता है, उसका एक ज्वलन्त उदाहरण श्री नाहटाजी हैं। जिस जाति और वर्गमें नाहटाजी जन्में, उसमें सरस्वतीकी उपासनाकी परम्परा कम ही है। यह बात नाहटाजीकी उपलब्धियोंको और भी विशिष्टता प्रदान करती है। वे अनेक वर्षों तक साहित्योपासना करते रहें, इस शुभ कामनाके साथ।

●

नाहटाजी : एक जीवन्त संग्रहालय

श्री जमनालाल जैन

अगरचन्दजी नाहटा ! यह एक ऐसा नाम है, जिसके बारेमें 'साहित्य जगत्'में प्रविष्ट मामूली-सा आदमी या नया-नया आदमी भी अपरिचित नहीं रह सकता, न रह सकेगा। ऐसी कोई पत्रिका नहीं, जिसमें नाहटाजी न लिखते हों।

लेखक प्रायः लापरवाह होते हैं। भूलना वे अपनी विशेषता समझते हैं। खोये-खोये रहनेमें वे अपनी प्रतिष्ठा मानते हैं। हिसाब किताब रखनेको वे बेकारका झंझट समझते हैं। मस्तीमें जीना, नशे जैसी हालत बनाये रखना, अधिक जागरण करना साहित्यकारके आरोपित गुण समझे जाते हैं। मतलब यह कि विचार और आचारपर किसी भी तरहका बंधन साहित्यकारको बोझ मालूम देता है और वह स्वयं इसे दकियानूसी-पन समझता है।

लेकिन अगरचन्दजी नाहटा इन सब बातोंमें भिन्न हैं। वे धार्मिक प्रकृतिके, सत्यनिष्ठ, हिसाब-किताब में पक्के, निर्व्यसनी और परिश्रमी व्यक्ति हैं। साहित्यकी सेवा करनेवाला ऐसा आदमी हो भी सकता है, यह शंका हर एकके मनमें उठती है और सचमुच इसमें दोष देखनेवालेका नहीं, नाहटाजीके व्यक्तित्वका ही ज्यादा है।

ऊँचा पूरा डील-डौल, मूछोंसे भरा चेहरा, श्याम वर्ण, सिरपर रंगीन ऊँची पगड़ी, लम्बा कोट—पूरी मारवाड़ी और सेठिया-पोशाक धारण करनेवाला कोई व्यक्ति भला कैसे साहित्य-साधक माना जाय ?

आचार्य कुंदकुंदने कहा है, 'जो कर्ममें शूर होता है, वह धर्ममें शूर होता है।' नाहटाजीपर यह कथन पूरी तरह लागू होता है। लेकिन उनपर यह उक्ति भी पूरी तरह लागू होती है कि जो हिसाबमें पक्का, वह जीवनमें भी पक्का।' नाहटाजी व्यवसायमें पक्के हैं, हिसाबमें पक्के हैं। जहाँ कार्डसे काम चलता है, वहाँ लिफाफा कभी नहीं खर्चेंगे। उनके हिसाबमें पक्के होनेका असर साहित्यपर भी पड़ा है। गजबकी खाता-रोकड़ है, उनके पास साहित्य की। किस चरित्रको, कितने लेखकोंने, कितनी भाषाओंमें, कब-कब लिखा है, इसका पूरा विवरण उनके साहित्यिक बहीखातेमें मिल जायगा।

उनके घरपर जो संग्रहालय है, जो दर्शनीय सामग्री है, वह उन्होंने कितनी तपस्या, लगन, मेहनतसे इकट्ठा की है, यह देखकर ही अंदाज लगाया जा सकता है।

नाहटाजी एक व्यक्ति नहीं, एक व्यक्तित्व नहीं, पूरे एक संस्था हैं और उनके कामका अगर लेखा-जोखा किया जाय तो पता चलेगा कि जो काम उन्होंने स्वयं अपने अकेलेके बलपर किया है, वह बीसों बरसमें पचीसों विद्वान तथा लाखों रुपयोंकी सहायतासे भी नहीं हो सकता था।

वे स्कूलमें बहुत कम पढ़े हैं। यह बात वे स्वयं कहते हैं! दर्जा ६ तककी पढ़ाई हुई उनकी। लेकिन ये दर्जे शुरू कबसे हुए ? क्या कबीर किसी स्कूलमें गये थे ? स्कूल-कालेजकी पढ़ाई तो वे करते हैं, जिन्हें नौकरी करनी है, बाबू बनना है। नाहटाजीकी पढ़ाई ऐसे स्कूलमें हुई, जहाँसे निकलकर आदमी आतमाको पहचानने लगता है।

एक कवि हो गये हैं बनारसीदास। चार शतक पहलेकी बात है। वणिक् कुलमें पैदा हुए और रुचि बढ़ी पढ़नेमें। बापने उपदेश दिया, "बहुत पढ़ाई ब्राह्मणभाट करते हैं, अपना काम तो वाणिज्य करना है।" किया भी उसने वाणिज्य पर आखिर असफल हो गया। छोड़कर लग गया साहित्यकी उपासना में। लेकिन नाहटाजीने व्यवसाय नहीं छोड़ा और साहित्यकी सेवा भी करते रहे। उन्होंने सिद्ध कर दिया कि लक्ष्मीका

निवास वहीं होता है, जहाँ सरस्वतीकी पूजा होती है। लक्ष्मी भी हंसवाहिनीके भक्तको मानती है। बनारसी-दासजी जहाँ असफल हुए, वहाँ नाहटाजी सफल रहे।

नाहटाजी जीवंत संग्रहालय हैं। उन्होंने जैन साहित्य-जैनधर्म, जैन पुरातत्त्व आदिकी अनवरत सेवा की है। उनकी सेवाओंका सही मूल्यांकन होना कठिन है। लेकिन इतना तो होना ही चाहिए कि उनके कार्योंकी यह परंपरा बराबर चलती रहे। एक विश्व-विद्यालयका पूरा काम उन्होंने किया है।

मुझे उनका सहज स्नेह मिला है। यह मेरा सद्भाग्य है।

●

नाहटाजी समाजके भूषण

आर्या सुमति

हम बीकानेरमें थे। किसीने कहा—"आप नाहटाजीसे अवश्य मिलें और उनके ज्ञानभण्डारको भी देखें।" मेरे मनमें साहित्य और साहित्यकारोंके प्रति सम्मान है। मैं वहाँ गयी। नाहटाजीको देखा—वे पूर्ण राजस्थानी वेशमें थे और लगनके साथ पुस्तकोंके बीचमें शोध कार्य कर रहे थे। मेरे आश्चर्यका ठिकाना न रहा। यह लक्ष्मीपुत्र सरस्वती साधनामें इतनी नम्रतासे कैसे कार्य कर रहा है?

नाहटाजीने तीस हजार हस्तलिखित प्राचीन ग्रन्थ एवं प्रकाशित चालीस हजार पुस्तकें संगृहीत कर रखी हैं। हस्तलिखित पुस्तकोंका संकलन आसान नहीं है। बहुत ही कष्टसाध्य है। उत्साही नाहटाजीने उन ग्रन्थोंका संकलन किया है। उनकी इस अद्भुत कार्य-क्षमता पर गौरव होता है। केवल संकलन ही नहीं, वे स्वयं घंटों-घंटों पढ़ते भी हैं, लिखते हैं और चिन्तन करते हैं। इनके इस साधनाकी फलश्रुति है। करीब तीन हजारसे अधिक ऐतिहासिक और शोधपूर्ण लेख भारतके विभिन्न पत्र-पत्रिकाओंमें प्रकाशित हो चुके हैं। साथ ही शोधछात्रोंको मार्गदर्शन भी करते रहे हैं।

मैंने अभी दिल्लीमें नाहटाजीसे कहा था—भगवान् महावीरके बाद साधु-परंपराका इतिहास सुरक्षित है किन्तु चन्दनबालाकी परंपराका इतिहास प्रायः विलुप्त है। कोई किसी साध्वीका कहीं-कहीं उल्लेख मिलता है किन्तु उसे इतिहास नहीं कहा जा सकता है। उन्होंने बड़े विनोदमें कहा—लेखनी पुरुषोंके हाथमें थी। उन्होंने अपना इतिहास लिख दिया। अब आगेका इतिहास आपसे बनेगा, अतः आपलोग लेखनी पकड़ लीजिए।

उन्होंने आगे कहा—मुझसे जो बन सकता है, मैं करूँगा। साध्वियोंका जहाँ कोई उल्लेख मिलता है, उसका संकलन करके भेजूँगा। सुधर्मा पत्रिकामें उनके इसी विषयके लेख प्रकाशित भी हुए हैं और हो रहे हैं।

प्रायः देखा जाता है कि जो विद्वान् होते हैं, वे अपने आपको दूसरोंसे अलग और विशिष्ट समझते हैं। किन्तु नाहटाजी नम्र हैं, मिलनसार हैं। अध्यात्म और ध्यानके प्रति उनकी रुचि है। वे समाजके गौरव हैं, साहित्यकारोंमें मूर्धन्य हैं और प्रतिष्ठित लेखक हैं। वे राष्ट्रके सम्माननीय व्यक्ति हैं। हमें आशा है कि भविष्यमें उनकी ज्ञानसाधनासे नयी दिशाएँ मिलती रहेंगी। इस महान् सरस्वती-पुत्रको दीर्घायु करें, यही शासनदेवसे मेरी प्रार्थना है।

●

श्री नाहटाजीका विशिष्ट व्यक्तित्व

जैनार्या सज्जन श्री

बहुत-सा आगम साहित्य, देशकी विषम परिस्थितियों और अनुत्तरदायित्वपूर्ण अयोग्य व्यक्तियोंके हाथोंमें रहनेसे कहीं तो दीमकोंका भक्ष्य, कहीं जल-प्लावन और कहीं अग्निदाहमें नष्ट हो चुका है। आगम साहित्यके अतिरिक्त अन्य-वृत्तियाँ, टीकाएँ, निर्युक्तियाँ, चूर्णियाँ, प्रकीर्णक एवं प्रकरणादि तथा विभिन्न विषयोंपर रचित साहित्यका भी बहुत बड़ा भाग संघकी लापरवाही या उपर्युक्त कारणोंसे नष्ट हो गया और हो रहा है। अभी तो यह पूरा पता तक नहीं चल सका है कि हमारे ज्ञान भण्डार कहाँ थे क्योंकि अधिकांश यतिवर्ग जिसके पास यह अमूल्य निधि थी, गृहस्थ बन चुका है। यहाँ तक कि जैनधर्मी भी नहीं रहा है। सारे भारतमें इनके निवासार्थ समाज द्वारा निर्मित स्थान-उपाश्रय, पौषधशालाएँ आदि थे और उन्हींमें प्रायः ज्ञान भण्डार थे। इनके अयोग्य उत्तराधिकारियोंने इस सम्पत्तिकी उचित देखभाल नहीं की, जिससे सुरक्षा नहीं हो सकी। जो सुरक्षित और बहुमूल्य स्वर्णाक्षरी शैय्याक्षरी कलात्मक साहित्य सामग्री थी, उसमें से भी बहुत-सी प्राचीनता प्रेमी विदेशी या स्वदेशी व्यक्तियोंके हाथोंमें चली गयी अब भी कुछ देश व धर्म-द्रोही धनलोलुपों द्वारा पहुँच रही है। यह कटु सत्य हमें स्वीकार करना ही पड़ेगा कि कुछ व्यक्ति जो स्वयंको संघका अंग कहते हैं, वे भी इस पाप-व्यापार में सम्मिलित हैं। आये दिन होनेवाली मूर्तियोंकी चोरियाँ, इसकी साक्षी हैं। सौभाग्यसे संघके कुछ मनीषिजनोंका ध्यान जैन साहित्य और पुरातत्त्वकी ओर आकृष्ट हुआ और वे इसकी सुरक्षाके कार्यमें लग गये। कहीं सूचियाँ बनीं, कहीं सुव्यवस्था की गयी और कहीं प्रकाशनका पुण्य कार्य तथा संशोधनका पुनीत प्रयत्न चालू है।

इस पवित्र अथ च अति आवश्यक कार्यमें संलग्न कई स्वनाम धन्य महानुभाव तो दिव्यलोकमें प्रस्थान कर चुके हैं और कई इस पावन कार्यमें अनवरत परिश्रम कर रहे हैं ? और सुरक्षामें लगे हुए हैं।

उन्हींमें-से दो हैं बीकानेरके सुप्रसिद्ध श्री अगरचन्दजी नाहटा महोदय, एवं इन्हींके भ्रातृज श्री भँवरलालजी नाहटा। श्री भँवरलालजी, नाहटा महोदयके अनन्य सहयोगी हैं।

बीकानेरमें आपका बड़ा संग्रहालय है जिसके दो विभाग हैं :—१. "अभय जैन ग्रन्थालय" २. शंकरदान नाहटा कलाभवन। ग्रन्थालयमें ८०००० ग्रन्थोंका संग्रह है; जिसमें आधे हस्तलिखित व आधे मुद्रित हैं।

कला-भवनमें प्राचीन मूर्त्तियाँ, ३००० चित्र, सैकड़ों सिक्के और कलापूर्ण कृतियोंका विशाल संग्रह है। लक्षाधिक हस्तलिखित ग्रन्थ प्रतियोंकी भी खोज करनेका श्रेय आपको है। चालीस वर्षसे आप इस पुनीत कार्यमें व्यस्त हैं। अधिकतर समय इसी कार्यमें व्यतीत होता है।

आपने बीकानेर स्थित ९ ज्ञान भण्डारोंकी विवरणसहित सूची तैयार की है। अनेकों ज्ञानभण्डारोंमें प्राप्त व अन्यत्र अप्राप्य एवं अज्ञात छोटी-मोटी सैकड़ों रचनाओंकी प्रतिलिपियाँ की हैं व करवाई हैं। संशोधन-सम्पादन-प्रकाशन भी किया व कराया है।

आपका अनवरत साहित्य-सेवा कार्य वास्तवमें अनुमोदनीय, प्रशंसनीय और अनुकरणीय है।

व्यवसायी व्यक्तिका साहित्य-साधना करना कितना कठिन है। यह अनुमान सहज ही किया जा सकता है। आपका बड़ा व्यवसाय कई स्थानोंपर चल रहा है। उसे भी सँभालते रहते हैं। विश्वके साहित्यकारोंसे आपमें एक बड़ी भारी विशेषता यह है कि आपका रहन-सहन, वेश-भूषा और आहार-विहार सादगी

और साहित्यिकतासे परिपूर्ण है। राजस्थानी संस्कृतिको आपके जीवनके सभी व्यवहारोंमें मूर्त्तिमान देखा जा सकता है।

जैनत्वकी झाँकी आपके प्रत्येक व्यवहारमें साकार हो उठती है। आप मात्र साहित्य सेवी ही नहीं, बल्कि श्रावक गुण भूषित सच्चे जैन हैं। प्रभु दर्शन, पूजन, सामायिक, प्रतिक्रमण, स्वाध्याय, व्रत, नियम, तीर्थ-यात्रा आदि धार्मिक कार्य आपकी जीवन-चर्याके अभिन्न अंग हैं। आपको सैकड़ों, स्तवन सज्झाय दोहे श्लोक आदि कण्ठस्थ हैं। आप जब तल्लीन और भाव-विभोर होकर पूजाएँ और स्तवन सज्झायादि गाते हैं, तो श्रोतृवर्ग तन्मय हो जाता है।

आप जैन साहित्यका ही मात्र कार्य नहीं कर रहे। भारतके विभिन्न धर्मोंके धार्मिक, सामाजिक, नैतिक और वीर रस पूर्ण आदि अनेक प्रकारके राजस्थानी साहित्य तथा पुरातत्त्वका अनुसंधान, संशोधन, सम्पादन और प्रकाशन भी यथासमय सुविधानुसार करते कराते रहते हैं।

आपको जैनसंघके उत्थानको लगन सदा लगी रहती है। विशाल जैनशासनमें खरतरगच्छकी परम्परा भी एक विशिष्ट स्थान रखती है। आप इसी परम्पराके अनुगामी हैं। इस पुनीत परम्पराके नाते खरतरगच्छीय साधु साध्वियोंसे भी आपका सम्पर्क बना रहता है और जब दर्शनार्थ या विशेष अवसरोंपर आते हैं, तब हमें भी आपसे हार्दिक प्रेरणाएँ मिलती रहती हैं, कि आप युगानुकूल अभिभाषिकाएँ और लेखिकाएँ बनें। आत्म-साधनामें आगे बढ़ें।

आप केवल साहित्य साधक ही नहीं, आध्यात्मिक साधनामें भी अग्रसर हैं और जैन धर्मानुकूल यम, नियम, आसन प्राणयाम, ध्यान आदिकी प्रयोगात्मक साधना करते रहते हैं।

माननीय नाहटाजीके विषयमें जितना लिखा जाय वह थोड़ा ही है। आपका अभिनन्दन हो रहा हैं। यह जानकर मैं प्रसन्नता और गौरवका अनुभव कर रही हूँ।

श्री नाहटाका अभिनन्दन केवल उन्हींका ही अभिनन्दन नहीं, वह तो जैन संस्कृतिका जैन श्रावक समाजकी एक अद्भुत प्रतिभाशाली विभूतिका अभिनन्दन है। विश्ववन्द्य भगवान् महावीर द्वारा प्रज्ञापित अहिंसा सत्य आदि तत्त्वमयी उस सनातन ऐहिक-पारलौकिक सुखशान्तिप्रद वाणीका अभिनन्दन है, जिसकी श्री नाहटा विभिन्न प्रकारसे सदा सेवा करते रहते हैं और अपने अभिभाषणों, लेखों, सम्पादनों और प्रकाशनों द्वारा जन-जन तक पहुँचा देनेमें तत्पर रहते हैं।

●

गुणोंके प्रति सहज आकर्षण

मुनि कान्तिसागर

जब मैंने प्रथम बार यह सुना कि साहित्य-सेवी श्री अगरचन्दजी नाहटाका अभिनन्दन-समारोह आयोजित किया जा रहा है तो मनमें हर्ष एवं प्रसन्नताकी लहर दौड़ गई। बड़ी खुशी हुई कि हमारी भारतीय-संस्कृति-में विद्वानोंकी पूजाका जो क्रम अति प्राचीन कालसे चला आ रहा था, वह आज भी विद्यमान है। यह गौरवका विषय है।

श्री नाहटाजीका अधिकांश समय सरस्वतीकी उपासनामें ही व्यतीत होता है। जैन-समाजमें तो इनके जितना ज्ञानार्जनमें समय व्यतीत करनेवाला व्यक्ति दुर्लभ ही है। इस कल्पनाके लिए अवकाश ही नहीं कि

इन्होंने अपने जीवनका अधिकतर समय किस क्षेत्रमें लगाया ? 'प्रत्यक्षको क्या प्रमाण ? सादगी, सरलता, नम्रता आदि अनेक गुण इनके जीवनमें एक साथ उभरे हैं, जिनके कारण स्वतः ही मन इनकी ओर आकर्षित हो जाता है।

जीवनके क्षणोंका सदुपयोग करनेके लिए अनेक मानवीय गुणोंके विकासमें इनमें स्पष्ट परिलक्षित मानवको आकर्षित करता है। इन सब गुणोंके अतिरिक्त एक विशिष्ट गुण इनके जीवनमें और है, जिसका महत्त्व इन सब गुणोंसे भी कहीं अधिक है। वह है आत्मिक-साधनाकी वृत्ति। इसका अनुभव उन्हीं व्यक्तियों-को होगा, जिन्होंने इनके जीवनको निकटसे देखा है। अनेक प्रवृत्तियोंमें प्रवृत्त रहते हुए भी हर समय आप इन भावोंमें रमण करते रहते हैं कि मैं आत्मद्रव्य हूँ, अमूर्त हूँ, अखंड हूँ एवं शाश्वत रहनेवाला हूं। संयोग-वियोग आदि नाना अवस्थाओंका जो अनुभव होता है, यह स्वभावगत नहीं, संसर्गके कारण है। जब तक चेतन जड़के संसर्गमें है तब तक संसार परिभ्रमण है। जब यह जडसे पृथक् होनेकी आत्मसाधनामें पूर्णरूपेण लग जायेगा, उसी क्षण आत्मा 'स्व' रूपमें लीन हो जायेगी। श्री नाहटाजी आत्म-उत्थानके लिए अंतरंग साधना करनेमें सुपुप्त नहीं, वरन् जागृत हैं। प्रातःकाल तीन-चार घंटेका समय ये चिंतन, मनन व स्वाध्यायमें ही व्यतीत करते हैं। इस कार्यमें कभी-कभी तो आप इतने लीन हो जाते हैं कि इन्हें यह ध्यान ही नहीं रहता कि कब तीन-चार घंटे व्यतीत हो गये।

इस प्रकार श्री नाहटाजीके जीवनगत-गुणोंका अवलोकन करते हुए हम यह निश्चित रूपसे कह सकते हैं कि आप जैन समाजके एक विशिष्ट व्यक्ति हैं। व्यावहारिक धार्मिक उपासना पद्धतिमें खरतरगच्छ संघमें आपका विशेष स्थान है।

आपकी प्रतिभाका लाभ जैन समाज ही नहीं, अपितु समस्त साहित्य जगत् उठा रहा है, जिससे विद्वत् वर्ग परिचित है।

हमारी शुभ कामना है कि आप दीर्घकाल तक साहित्य सेवा, शासनसेवा एवं आत्मसाधनामें संलग्न रहकर जीवनके क्षणोंका सदुपयोग करते रहें।

●

राजस्थानकी साहित्यिक विभूति

डा० स्वर्णलता अग्रवाल

विश्वविख्यात कवि गोस्वामी तुलसीदासने न किसी विश्व विद्यालयमें अध्ययन किया, न परीक्षायें पास कीं, वह अपनी प्रतिभा एवं आन्तरिक स्फुरणाके बलसे हिंदी जगत्की अनुपम विभूति बन गये। उनका रामचरितमानस सैकड़ों वर्ष पुराना होकर भी आज तक भारतीय इतिहासमें अपना अनुपम स्थान बनाए हुए है। न केवल रामचरितमानस बल्कि गोस्वामीजीकी अन्य रचनायें भी भाव एवं कला दोनों ही दृष्टियोंसे अद्वितीय हैं—उनकी ये कृतियाँ साहित्यिक प्रतिभाके लिये प्रेरणाका स्रोत सिद्ध हुई हैं।

इसी प्रकार बीकानेरकी मरुधरामें जन्म लेकर श्री अगरचन्द नाहटाने सुसंस्कृत उर्वर मानस प्राप्त किया और विरोधी सामाजिक व पारिवारिक परिस्थितियोंके कारण बिना तथाकथित शिक्षा प्राप्त किये ही जन्मजात प्रतिभा और कलाप्रेमके फलस्वरूप राजस्थानकी अनुपम साहित्यिक विभूति बन गये।

हिन्दीमें एक लोकोक्ति हैं 'बालकके पाँव पालनेमें ही देखे जाते हैं।' तदनुसार श्री नाहटाजी किशोरावस्थासे ही सत्संग लाभकर जैनधर्मका ज्ञानार्जन करते रहे और अपने पिता तथा निवृवती ज्ञानभंडारोंमें शोधात्मक वृत्तिसे लिपि व भाषाका ज्ञान बढ़ाने लगे। आपके वंशमें परम्परागत व्यापारिक व्यवसाय होते हुए आपकी अभिरुचि साहित्य और कलामें रम गई, जिसके फलस्वरूप नाहटाजी निजी प्रयासोंसे ही दो ऐसे संस्थानोंको जन्म दे सके, जो राजस्थानमें महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त किये हुए हैं। ज्येष्ठ भाई श्री अभयराज नाहटाके असामयिक देहावसानपर आपने अभय ग्रन्थालय स्थापित किया, जिसमें राजस्थानी एवं अन्य भाषाओं-की विविध विषयक लगभग ८० हजार पुस्तकें हैं। एवं अपने पूज्य पिता श्रीशंकरदान नाहटाकी पुण्य स्मृतिमें उनके नामसे शंकरदान नाहटा कलाभवन स्थापित किया, जिसमें असंख्य अनुपम कला-कृतियाँ उपलब्ध हैं।

पी-एच० डी० के लिये शोध आरम्भ करनेपर विशेष रूपसे मुझे श्री नाहटाजीके निकट सम्पर्कमें आनेका अवसर मिला। मेरा शोध विषय था राजस्थानी लोकगीत और श्री नाहटाजी राजस्थानी साहित्यके धनी ठहरे। अतः मार्गदर्शक श्रद्धेय श्री नरोत्तमदास स्वामीने सर्व प्रथम मुझे आपका नाम बताया। मैं नाहटाजीके साहित्य प्रेम एवं विद्वत्ताके विषयमें पहलेसे ही बहुत कुछ सुन चुकी थी। कई बार समय समयपर होनेवाली गोष्ठियों तथा सभाओंमें आपके दर्शन करने एवं प्रवचन सुननेका भी सौभाग्य प्राप्त हो चुका था। किन्तु सन् १९५२ में आपके व्यक्तित्वकी जो छाप मेरे मस्तिष्कपर पड़ी, वह चिर स्मरणीय है।

अपने ग्रन्थागारमें मूर्तिमान सरस्वती पुत्रकी भाँति विराजमान नाहटाजीका वरद हस्त मेरे शोधकार्यके लिये प्राप्त होते ही मानों मुझे महान् सम्बल मिल गया। आपने अत्यन्त स्नेहपूर्वक मुझे सब प्रकारकी सहा-यता देना स्वीकार किया। ग्रन्थालयमें ऊपर-नीचे आगे-पीछे चारों ओर पुस्तकोंके अम्बार लगे थे—मेरे विषयसे संबंधित अनेकों पुस्तकें व पत्र-पत्रिकाएँ वह स्वयं खोजकर निकाल-निकालकर देते रहे। मैं देखकर स्तम्भित रह गई—इस अथाह साहित्य पयोधिमें कहाँ क्या-क्या होगा इसकी जानकारी उनके स्मृति पथमें भली प्रकार बनी हुई थी—यह था उनके गम्भीर एवं व्यापक ज्ञानका परिमाण। आज परीक्षाओंके बोझसे बोझिल नई पीढ़ीका मानस निर्धारित पाठ्य क्रमके सीमित ज्ञानको भी भली प्रकार हृदयंगम नहीं कर पाता—जब कि जन्म जात कला प्रेमी मानसमें उस अनन्त ज्ञानकी चेतना पूर्ण रूपेण स्मृति पथमें जागृत है।

साहित्यमें पढ़ा था—"कवि र्मनीषी परिभू स्वयंभू"

ऐसे उस कवि रूपको साक्षात् नाहटाजीके व्यक्तित्वमें पाकर मैं कृतकृत्य हो गई। उनके सान्निध्यमें शोध कार्यको अग्रसर करना एक आनन्ददायी विषय था। समय-समयपर उनसे पुस्तकें लाने तथा उनके व्यक्तिगत ज्ञानसे लाभान्वित होने हेतु उनके पास जाना बना रहा, सम्पर्क बढ़ता गया। साहित्यिक जगत्में बीकानेरमें होनेवाली संगोष्ठियोंमें भी नाहटाजीके विचारोंको सुननेसे उनके अध्ययन एवं ज्ञानका और भी व्यापक रूप प्रकट होता रहा—मुझे स्मरण है एकवार सादुल इन्स्टीच्यूटके तत्वावधानमें होनेवाली संगोष्ठीमें उन्होंने पत्र पढ़ा था, जिससे लोककथा संबन्धी गम्भीर तथ्योंका उद्घाटन हुआ। राजस्थानी भाषा संबंधी हो या साहित्य सम्बन्धी, जैन धर्म सम्मेलन हो या गीता जयन्ती समारोह, दर्शनका कोई भी विषय हो अथवा साहित्य एवं कला सम्बन्धी नाहटाजी प्रत्येक विषयपर अधिकार पूर्वक बोलते हैं और लिखते हैं। आपकी चतुर्मुखी प्रतिभाको साधना द्वारा विकसित करके नाहटाजीसे अल्प कालमें साहित्य और कलाके क्षेत्रमें इतनी उपलब्धियाँ कर सके।

आपके व्यक्तित्वका आदर्श इस सत्यका ज्वलन्त प्रमाण है कि मानवमें प्रकृति जन्य अनन्त शक्ति और क्षमता है, शिक्षाके द्वारा इस शक्ति एवं क्षमताका विकास करके उद्घाटन मात्र किया जा सकता है।

श्री नाहटाजीके जीवनकी अनुपम उपलब्धियाँ छात्र-छात्राओं एवं प्रौढ़ नवयुवकोंके लिये प्रेरणाका

स्रोत है। विश्वविद्यालयकी उच्चातिउच्च डिग्रियें प्राप्त करे या न करे यदि कोई व्यक्ति साहित्य कला अथवा विज्ञानके क्षेत्रमें विशिष्ट कार्य करनेकी अभिरुचि विकसित करके निष्ठापूर्वक अपने आदर्श पूर्तिकी ओर अग्रसर हो तो बहुत बड़े-बड़े कार्य करके वह अपने जीवनकी सार्थकताके साथ-साथ राष्ट्रीय संस्कृति और सभ्यताके विकासमें महत्त्वपूर्ण योगदान देता हुआ देशकी सुख समृद्धि बढ़ानेमें सहायक हो सकता है।

श्री नाहटाजीने अनवरत साधना द्वारा अपनी प्रकृत प्रतिभाको विकसित करके राजस्थानी साहित्य और कलाके क्षेत्रमें जो अभूतपूर्व कार्य किया है, वह मानव जीवनकी सार्थकताका ज्वलन्त उदाहरण है। आशा है उनके सान्निध्यमें रहकर कार्यरत अनेकों युवा पीढ़ोके कला प्रेमीजन उनके पद चिह्नोंपर चलते हुए उनके कार्यको उत्तरोत्तर आगे बढ़ानेमें समर्थ होंगे।

●

ज्ञान तपस्वी नाहटाजी

सुश्री जया जैन, एम० ए०

भारत विचित्र देश है। एक ओर मरुभूमिकी चमकीली रेत अपनी अनोखी आभासे हमारा ध्यान आकृष्ट करती है तो दूसरी ओर अथाह जलराशि हमारे नेत्रोंको तृप्त करती है। राजस्थानकी पावन भूमिमें जौहरकी ज्वालामें जलनेवाले सूरमाओंकी कमी नहीं तो दूसरी ओर हरिभद्र, चन्दवरदायी जैसे प्रतिभा सम्पन्न लेखकोंकी भी कमी नहीं। अगरचन्द नाहटा इसी राजस्थानके ऐसे सारस्वत हैं, जिन्होंने हिन्दी, गुजराती आदि भाषाओंके लेखकोंमें अपना महत्त्वपूर्ण स्थान बनाया है। नाहटाजी का व्यक्तित्व ऐसा अधीती व्यक्तित्व है, जिसके समक्ष बड़े-बड़े उपाधिकारी फीके पड़ जाते हैं।

किसीके व्यक्तित्वका अध्ययन उसकी प्रवृत्तियोंके अध्ययन से हीं किया जा सकता है। नाहटाजी की प्रवृत्ति प्रारम्भ से ही स्वाध्यायकी ओर रही है। इस शताब्दीके मूर्धन्य लेखकों और चिन्तकोंमें नाहटाजी का गणनीय स्थान है। उनकी प्रतिभा विलक्षण है। साथ ही उनका श्रुतज्ञान भी अनन्त है। प्रतिभा दो प्रकार की होती है। प्रथम तो वह प्रतिभा है जो जीवनकी संगत और उत्फुल्ल परिस्थितियोंमें अपने विकासका मार्गके कंकड़-पत्थरोंको हटाकर अनुकूल वातावरणका सृजन करती हुई चरम सीमा पर पहुंचनेका प्रयास करती है। इसमें इतनी समता होती है कि जीवनकी बाधाएँ मार्ग अवरुद्ध नहीं कर पातीं। द्वितीय प्रतिभा इस प्रतिभासे सर्वथा भिन्न होती है। वह जीवनकी असंगत और संघर्षशील परिस्थितियोंमें ही अपने विकासका मार्ग खोजती है। यह प्रतिभा संघर्षके साथ खेलती हुई आगे बढ़ती है।

श्री नाहटाजी में यह दूसरे प्रकारकी प्रतिभा है, जो प्रतिकूल परिस्थितियोंमें अपने विकासका मार्ग तैयार करती हैं। नाहटाजी स्वनिर्मित साहित्य तपस्वी हैं। साधनाही इनके जीवनका लक्ष्य है और यही साधना इन्हें आगे बढ़नेके लिए निरन्तर प्रेरणा देती है। उनके शताधिक ग्रन्थ और सहस्राधिक निबन्ध प्रत्येक शोधार्थीके लिए उपयोगी एवं मार्गदर्शक हैं। उनका विशाल ग्रन्थागार तथा उस ग्रन्थागारकी सहस्रों पांडुलिपियाँ हिन्दी अध्येताओंके लिए आकर्षणका केन्द्र हैं।

आज बीकानेर नाहटाजी के कारण ही तीर्थभूमि है। अभय जैन पुस्तकालयमें नाहटाजी की जीवन प्रतिमा शोधस्थितियोंके मन और आत्माको पवित्र बनानेमें अग्रसर रहती है। दूर-दूरके अध्येता भी उनके

ज्ञानसे लाभान्वित होते हैं। मैं ऐसे ज्ञान तपस्वी, कर्मठ योगी, आत्म साधक सारस्वतको उनके अभिनन्दन साहित्यके पावन अवसरपर अपने भाव-कुसुमोंकी भेंट अर्पित करती हुई उनके दीर्घ जीवनकी कामना करती हूँ। राजस्थानका यह लाड़ला कई दशकतक जीवित रहे और अपने ज्ञान-भास्करकी अरुणिमासे हमें आलोकित करता रहे, यही हार्दिक अभिलाषा है। मैं पुनः-पुनः अभिनन्दन करती हूँ।

●

अविस्मरणीय नाहटाजी

श्रीमती (डा०) रामकुमारी मिश्र

बाल्यकालसे ही नाहटाजी की विद्वत्ताकी प्रशंसा अपने पूज्य पितासे बारम्बार सुननेपर भी मैं उनके व्यक्तित्व से बहुत समय तक अपरिचित रही। अनुमानको वास्तविक रूप देनेके लिए घरमें रखी हुई 'राजस्थान भारती' एवं 'शोध-पत्रिका' के लेखोंको देखा, समझनेकी कोशिश की किन्तु यह आज भी स्मरण है कि मैं उन्हें सही-सही समझ नहीं पाई। एम० ए० प्रथम वर्षके पाठ्यक्रममें निर्धारित 'पृथ्वीराज रासो' का अध्ययन करते समय श्री नाहटाजी का प्रसंग आया तो डा० माताप्रसाद गुप्तने प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थोंके उद्धारकके रूपमें उनकी चर्चा की।

नाहटाजी के व्यक्तित्वका वास्तविक मूल्यांकन मैं तब कर सकी जब विवाहोपरान्त अपने पतिके माध्यमसे उनके निकट सम्पर्कमें आई। तब मैं डी० फिल० की शोध छात्रा थी और 'बिहारी सतसई का भाषा वैज्ञानिक अध्ययन' मेरे शोधका विषय था। भाषा वैज्ञानिक अध्ययनके पूर्व 'बिहारी सतसई' का पाठ संशोधन आवश्यक था क्योंकि प्रामाणिक पाठके बिना इसका भाषागत अध्ययन सम्भव भले हो जाता किन्तु समीचीन न था। भाषा वैज्ञानिक पिताकी पुत्री होने के नाते जहाँ एक ओर मुझे भाषागत अध्ययन करना था, वहीं दूसरी ओर प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थके प्रति आकृष्ट वैज्ञानिक किन्तु विद्वान् पति की पत्नी होने के नाते मुझे प्रामाणिक पाठ तैयार करना आवश्यक हो गया।

प्राचीनतम कृतियोंको उपलब्ध करानेमें नाहटाजी का सहयोग वांछनीय था। आरम्भमें उन्होंने पत्रों द्वारा 'बिहारी सतसई' की प्रतियोंके सम्बन्धमें जानकारी दी और फिर वहाँ आकर ग्रन्थागारोंसे आवश्यक सामग्री जुटानेके लिए सलाह दी। बीकानेर जाने पर अनूप संस्कृत लाईब्रेरी एवं अभय जैन ग्रन्थालयकी बहुमूल्य कृतियों से लाभान्वित करानेमें उनका सहयोग उनकी उदारताका द्योतक था। यही नहीं, उन्होंने कुछ प्रतियोंकी प्रतिलिपि कराकर भी मेरे पास भेजीं, जिससे मैं अपने दुष्कर कार्यको सुगम-रूप देनेमें समर्थ हो सकी। बीच-बीचमें उनके आये हुए पत्रोंसे भी मुझे प्रोत्साहन मिलता रहा। साहित्यकारके प्रति उनकी यह जागरूकता उनके उच्चकोटि के साहित्यकार होनेका प्रमाण प्रस्तुत करती है।

नाहटाजी से मुझे पुनः सहायता एवं परामर्शकी अपेक्षा उस समय हुई जब मैं यू० जी० सी० फेलोके रूपमें अपने डी० लिट्० कार्यके लिए प्रविष्ट हुई। सूफी साहित्यका अवधी ग्रन्थ चँदायन अपूर्ण स्थितिमें ही उपलब्ध हो सका था और पूर्ण जानकारीके लिए इसकी अन्य प्रतियोंको देखना आवश्यक था। ऐसी स्थितिमें नाहटाजी ने चंदायनकी प्रकाशनामिमुख कृतिके छपे फर्मे मेरे पास भेजकर मेरे कार्य को अग्रसर करने में पूर्ण सहायता की।

नाहटाजी से लाभान्वित होनेवाले शोध-छात्रों एवं साहित्य-प्रेमियोंकी [संख्या अनन्त है, जो उनके चिरऋणी रहेंगे। दूसरोंके प्रति उदारता एवं प्रोत्साहन देनेकी भावना नाहटाजी की निजी विशेषताओं में से हैं।

नाहटाजी का जीवन शोध-प्रबन्धके खुले पृष्ठोंके समान हैं। वहाँ से कोई भी व्यक्ति अपनी इच्छानुसार अपने हितकी सामग्री संचित अथवा उद्धृत कर सकता है। ऐसे सरल, स्नेही, विद्वान् एवं साहित्य-मर्मज्ञके अभिनन्दन के अवसरपर अपनी श्रद्धाके पुष्प चढ़ाकर मैं अपनेको धन्य मानती हूँ।



अनवरत साहित्य प्रेमी

रुक्मिणी वैश्य

श्रीयुत् नाहटाजीके बारेमें मैं काफी समयसे सुनती आ रही थी। विश्वविद्यालयमें आनेपर अपने अध्ययनके साथ राजस्थानकी प्रमुख पत्रिकाओंमें आपके लेख पढ़नेका अवसर मुझे मिला। लेख पढ़नेके साथ-साथ राजस्थानी-साहित्यके इस मूर्धन्य विद्वान्से मिलनेकी इच्छा दिन प्रतिदिन तीव्र होती गयी।

अपने अनुसंधानके विषयमें चर्चा करते समय आदरणीय डा० सत्येन्द्रने आपके बारेमें कई नवीन बातें बताईं, जिनसे मैं अनभिज्ञ थी। आपने मुझे सुझाव दिया कि मैं अपने विषयसे सम्बन्धित सामग्री केवल नाहटाजीके यहाँसे ही प्राप्त कर सकती हूँ। हुआ भी यही, जो अप्राप्य सामग्री थी, सब मुझे आपके श्री अभय जैन ग्रन्थालयमें ही प्राप्त हुई।

मैंने अपने विषयसे सम्बन्धित साहित्यकी जानकारी हेतु प्रथम पत्र-नाहटाजीको लिखा। उस पत्रका उत्तर मुझे पूरी जानकारी सहित अविलम्ब मिला। इससे आपकी साहित्यिक रुचि एवं निःस्वार्थ सहयोग-भावना का आभास मुझे हुआ। इसी पत्रके बाद दूसरा पत्र मिला कि आप राजस्थानी भाषा सम्मेलनमें जयपुर पहुंच रहे हैं। समय तारीख एवं मिलनेका स्थान आदि सभी महत्त्वपूर्ण बातें पत्रमें लिखी हुई थीं। राजस्थानी भाषा सम्मेलन २१,२२,२३ मार्च १९६० को राजकीय प्रवास भवन जयपुरमें हुआ था। तभी आपका प्रथम साक्षात्कार करनेका सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ। जैसा अनुमान एवं कल्पना थी, उससे कहीं अधिक आपको पाया। समयाभाव एवं विद्वानोंसे घिरे हुए साहित्यिक चर्चा करते हुए भी आपने मुझे अपना अमूल्य समय देकर विषयसे सम्बन्धित अनेक कठिनाइयोंको सहज एवं सुगम किया। आपसे प्राप्त स्नेहको मैं कभी भुला नहीं सकती।

आपके द्वारा दर्शायी गई साहित्यिक पगडण्डियोंपर चलनेका मैं प्रयास कर रही थी। परन्तु मार्गमें मुझे भाषा सम्बन्धी अनेक कठिनाइयोंका सामना करना पड़ रहा था। इसके अलावा मुझे कुछ हस्तलिखित प्रतियाँ प्राप्त करनी थी। अतः मैंने अपने शोध कार्य हेतु बीकानेर आनेकी सूचना नाहटाजीको दी। प्रत्युत्तर में आपने शीघ्र ही आनेको लिखा।

मैं अपने अनुसंधान कार्यके लिए बीकानेर पन्द्रह दिन रही। बीकानेर आनेका यह मेरा प्रथम अवसर था। मार्गोंसे अनभिज्ञ होनेके कारण मैंने राह चलते एक युवकसे नाहटाजीके निवास स्थानके बारेमें पूछा। वह बड़े आश्चर्यसे कहने लगा कि आप नाहटाजीको नहीं जानतीं? उनकी ख्याति तो सर्वत्र है। मेरे कहनेपर कि मैं बीकानेर पहली बार आई हूँ उसने मुझे आपके निवास स्थान तक पहुँचा दिया।

जिस समय मैं आपके यहाँ पहुँची, आप भोजन कर रहे थे। आते ही आपने रहने आदिकी व्यवस्था के बारेमें पूछा और सन्तुष्ट हो जानेपर ही विषयसे सम्बन्धित बात की। जब मैंने कुछ हस्तलिखित ग्रन्थ देखनेकी जिज्ञासा प्रकट की तो आप उसी समय, जब कि दोपहरके ठीक साढ़े बारह बजे थे, मेरे साथ पुस्तकालय गये और ग्रन्थोंके नाम, ग्रन्थांक बिना रजिस्टरकी सहायताके मुझे नोट करवा दिये। मैं आपकी स्मरण-शक्ति देखकर दंग रह गयी। साथ ही मुझे लगा कि आप तो विश्वके महान् कोष स्वयं ही हैं। फिर सूची-पत्रकी आवश्यकता आपको क्या हो सकती है।

श्री अभय जैन ग्रन्थालयमें जो आपका निजी पुस्तकालय है मेरे विषयसे सम्बन्धित अधिकांश सामग्री मुझे मिली। आपके भण्डारके अतिरिक्त जो सामग्री जहाँ मिल सकती थी, उसके बारेमें भी केवल बताया ही नहीं, प्राप्त करनेमें भी पूर्ण सहयोग दिया। वे भण्डार ट्रस्टीजके आधीन हैं और इन्हें खुलवाना बड़ा मुश्किल है परन्तु श्रद्धेय नाहटाजीने इन सभी परेशानियोंके बावजूद भण्डार खुलवाये तथा जो ग्रन्थ भण्डारके बाहर नहीं दिये जा सकते हैं, अपनी जिम्मेदारीपर मुझे दिलवाये। जिन ग्रन्थोंकी मैं काफी समयसे प्रतीक्षा कर रही थी वे मुझे इस प्रकार सुलभ हुए। सहयोगकी यह भावना उनकी साहित्यके प्रति रुचि तो प्रदर्शित करती ही है, साथ ही यह भी सिद्ध होता है कि श्री नाहटाजी शोधछात्रोंकी परेशानियोंसे विज्ञ हैं और सहयोग देते रहते हैं। ऐसा महान् विद्वान् दुनियामें विरला ही कोई होता है।

जो विद्यार्थी राजस्थानी साहित्यकी गहन बौद्धिकतामें न जाकर राजस्थानी साहित्यके अमूल्य अप्राप्य मोतियोंको कूलसे ही प्राप्त करना चाहते हैं, उनके लिये नाहटाजीके लेखोंसे बढ़कर अन्य कोई श्रेष्ठ माध्यम नहीं है। श्री नाहटाजी अपने विविध और विशाल अनुभव तथा विपुल अध्ययन एवं चिन्तनको समग्र मानसिक ताजगी और सजग दृष्टिके साथ राजस्थानी साहित्यको अर्पित कर रहे हैं। ईश्वर करे वे शतायु होकर निरन्तर सेवा करते रहें।

●

ज्ञान-प्रदीप श्री नाहटाजी

सुशीला गुप्ता

मान्य विद्वानोंके मुखसे श्री अगरचन्दजी नाहटाके सम्बन्धमें मैंने बहुत कुछ सुन रखा था। एम० ए० में 'हिन्दी साहित्य' विशेष डिंगल विषय होनेके कारण मुझे व्यक्तिशः श्री नाहटाजीसे सम्पर्क साधनेकी बात अनेक विद्वानोंने कही। समय-समयपर मैंने उनके लेख और विभिन्न शोधप्रबन्धोंमें उनके विद्वत्तापूर्ण विचारोंका पठन किया था। मैं मन ही मन हिचक रही थी कि इस प्रकारके सुप्रतिष्ठित विद्वान्से, जिनके पास सैकड़ों शोध छात्र मार्गदर्शन हेतु प्रतिवर्ष आते हैं, मैं बिना कुछ सम्पर्कके कैसे बात करूँगी ?

एक लम्बे समय तक इसी उधेड़-बुनमें रही कि एक दिन भारतीय विद्यामन्दिर शोधप्रतिष्ठानमें श्री नाहटाजीका पधारना हुआ। जहाँतक मुझे स्मरण है, उन दिनों प्रतिष्ठानके द्वारा श्री नाहटाजीकी पुस्तक 'प्राचीन काव्योंकी रूप परम्परा' का प्रकाशन हो रहा था और वे इस ग्रन्थमें नवीन जानकारी सम्मिलित करने हेतु आये थे। उस दिन संस्थाके भूतपूर्व संचालक श्री अक्षयचन्द्रजी शर्मा और वे सीधे ही पुस्तकालयमें आकर

कई पुस्तकें खड़े-खड़े ही माँगने लगे। मुझे यह पहिचानते देर न लगी कि वे ही श्री अगरचन्दजी नाहटा हैं। श्री नाहटाजीके निकटसे दर्शन करनेका वह मेरा प्रथम अवसर था।

मैंने श्री नाहटाजीसे बैठनेका निवेदन किया और जो पुस्तकें उन्होंने चाहीं, उनके समक्ष प्रस्तुत कर दीं। पर्याप्त समय तक श्री नाहटाजी वे पुस्तके देखते मात्र ही नहीं रहे, अपितु उनमेंसे कई सन्दर्भोंको उन्होंने अपनी जेबसे कागज और पेन निकालकर लिख भी लिया। मुझे लगा कि प्रत्येक व्यक्ति इसी तत्परतासे ज्ञानार्जन करे तो उसके पास अक्षय ज्ञान भण्डार सहज रूपसे संचित हो सकता है। श्री नाहटाजी उस दिन चले गये और मैं उनके सम्मुख अपने विषयके सम्बन्धमें कुछ भी निवेदन न कर पाई। परीक्षा हेतु मुझे उनके यहाँसे जो जानकारी और सामग्री चाहिये थी, मैं समय-समयपर अवश्य मँगाती रही। अभी तक मेरा संकोच दूर नहीं हुआ था।

एम० ए० परीक्षा उत्तीर्ण करनेके पश्चात् जब मैं 'राजस्थानी लोक महाभारत' पर शोधप्रबन्ध हेतु प्रारूप बना रही थी, उस समय मुझे श्री नाहटाजीके मार्गदर्शनकी अत्यन्त आवश्यकता थी। मैंने बीकानेरके विद्वानोंसे अपने विषयके सम्बन्धमें जब भी चर्चा की, प्रत्येकने एक स्वरसे श्री नाहटाजीका नाम बताया। अब सिवाय सम्पर्क साधने के अन्य कोई मार्ग रह ही नहीं गया था। मैं साहस बटोर कर श्री नाहटजी के यहाँ पहुँची।

श्री नाहटाजी अपने निजी अभय जैन ग्रन्थालयमें शताधिक पुस्तकोंके मध्य बनियान पहने हुए एक दिव्य साधककी भाँति बैठे पत्र-पत्रिकाओंका अध्ययन कर रहे थे। प्रवेश द्वारकी ओर उनका मुख था, सामने सत्तर-अस्सी पत्र-पत्रिकाएँ बिखरी पड़ी थीं और वे अपने हाथमें नागरी प्रचारिणी पत्रिकाका अंक लिये हुए उसका अध्ययन कर रहे थे। मुझे देखते ही उन्होंने पत्रिकाको उल्टा रख दिया और बड़े ही वात्सल्य भावसे बैठनेको कहा।

श्री नाहटाजीकी स्नेह सिक्त वाणीमें मुझे पितृ तुल्य वात्सल्यकी झलक मिली और व्यवहारमें अत्यधिक नम्रता, सम्भवतः जिसकी मैंने कल्पना भी नहीं की थी। मेरे मनमें विचार आया क्यों न मैं यहाँ पहले आ गई? जब मैंने श्री नाहटाजीके समक्ष शोधप्रबन्धके प्रारूपकी समस्त कठिनाइयोंके सम्बन्धमें निवेदन किया तो वे एक गुरुकी भाँति मेरे साहसको बढ़ाते हुए बोले, "इसमें कठिनाईकी क्या बात है? लो मैं तुम्हें अभी लिखाता हूँ, लिखो।" मैंने उनके निर्देशनके अनुसार समस्त प्रारूप थोड़ी सी देरमें ही लिख लिया और जहाँ मेरे लिखनेमें त्रुटि रही, वहाँ-वहाँ भी उन्होंने संशोधन करवा दिया।

जब मैंने पूरा प्रारूप तैयार कर लिया तो मेरे समक्ष निर्देशकका प्रश्न उत्पन्न हुआ। सौभाग्यसे उन्होंने पूछ ही लिया कि तुम्हारा निर्देशक कौन है? यदि कोई तुम्हारा निर्देशक निश्चित न हुआ हो तो मैं डॉ० भानावतको पत्र लिख देता हूँ। मुझे अँधेरेमें भटकती हुई को जैसे प्रकाश मिल गया हो, ऐसा अनुभव हुआ। मैंने तो मात्र इतना ही कहा कि आपकी बहुत कृपा होगी। उत्तरमें उन्होंने कहा, "तुम चिन्ता न करना। किसी भी प्रकारकी कठिनाई हो तो पूछनेके लिए किसी भी समय आ जाना और इस पुस्तकालयको अपना ही समझकर इसका उपयोग करना। तुम न आ सको तो किसीको भी भेज देना, मैं समस्त उपयोगी सामग्री भिजवा दूंगा।"

इस भेंटके उपरान्त श्री नाहटाजी ने मुझे अनेक बार गुरुवत् ज्ञान दिया तो पथ प्रदर्शककी तरह अनेक बार मार्गदर्शन भी। जब-जब मुझे कठिनाई हुई, उन्होंने मेरी प्रत्येक समस्याको वात्सल्य भावसे सुलझाया और वांछित ग्रन्थोंको सदैव उपलब्ध किया।

वस्तुतः आज राजस्थानके इस मनीषीके सदृश कितने ऐसे विद्वान् हैं, जो इस प्रकार सौजन्य और उदारताके साथ मार्गदर्शन देते हैं। सम्भवतः इसी प्रकारकी सहायताके फलस्वरूप आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदीने श्री नाहटाजी को 'औढ़रदानी' के नामसे सम्बोधित किया है।

आज भी जब मैं श्री नाहटाजी के दर्शन करती हूँ मुझे उस भेंटका स्मरण हो आता है और मैं रह-रहकर सोचती हूँ कि श्री नाहटाजी जितने बड़े विद्वान् हैं, उतने ही नम्र और उदारमना व्यक्ति भी। वे मेरे शोध-प्रबन्ध हेतु मेरे गुरू और मार्गदर्शक हैं और जो कुछ कर रही हूँ वह उन्हींकी सहज अनुकम्पाका परिणाम है। उन्होंने मेरा साहस न बढ़ाया होता और डा० भानावतको पत्र न लिखा होता तो मेरा यह कार्य कभी भी पूरा नहीं हो पाता।

मैं राजस्थानके इस महनीय सरस्वती-पुत्रकी दीर्घायु हेतु ईश्वरसे मंगल कामना करती हुई यही निवेदन करना चाहूँगी कि वे अपनी ज्ञान राशिसे छात्र-छात्राओंको उद्‌बोधित करते रहें और सभी अनुसंधित्सुओं से भी साग्रह कहना चाहूँगी कि वे इस ज्योति-पुरुषसे सदा-सर्वदा आलोक लेकर अपने अज्ञानको दूर करते रहें।

●

पागाँ पेचाँदार, वागयो बीकानेरको

श्री बालकवि बैरागी

सन् सम्वत् तो मुझे याद नहीं रहा पर बाकीको मैं भूल नहीं पाया हूँ। उज्जैनमें 'मालव लोक साहित्य परिषद्'की ओर से मेलेके विशाल मंचपर मालवी कविसम्मेलन था। यह कवि-सम्मेलन हर साल आयोजित होता है और मालवीके नये पुराने कई कविगण इसमें कविता पाठ करते हैं। मेला लगता है क्षिप्राके किनारे और भीड़ उसमें इतनी रहती है कि सामान्यतया आप मान नहीं सकेंगे। मैं कहूँ कि कोई चालीस-पचास हजार नर-नारी इस कवि-सम्मेलनको रातभर सुनते हैं, तो आपको कैसा लगेगा? दूर-दूर देहातोंसे बैलगाड़ियाँ जोत कर कुटुम्ब सहित आये हुए किसान, उनके बच्चे, उनके परिजन आसपास लगे कस्बों और खेड़ोंके अधकचरे पढ़े लिखे नौजवान, माँ बहिनें, बाबूलोग और सरकारी नौकर चाकर तथा नेता-ऐता और न जाने कौन-कौन लोग, साहित्य मर्मज्ञ और आलोचक, सब इस कवि-सम्मेलनमें जुटते हैं और मैंने कहा न कि सारी रात सुनते हैं। सूरजकी पहली किरण कब आती है और कार्तिक महीनेका कोई दिन कब गरम हो जाता है, इसका अनुमान उस दिन लग नहीं पाता है। मालवीका मेह कभी रिमझिम तो कभी धाड़ मार बरसता रहता है, कवियों और जनताके बीच कोई औपचारिकताकी दीवाल नहीं रह पाती है। तब लगता है कि भाषाकी अपनी भी एक अनौपचारिकता होती है। भाषा वस्तुतः दूरी और निकटताके लिए बहुत बड़ा नहीं, सबसे बड़ा तत्त्व है यह सिद्ध होता है। ऐसे कवि-सम्मेलनका अध्यक्ष कौन हो इसकी तलाश मालवी परिवारके लोग हरसाल करते हैं। पूरे साल यह खोज हम मालवीके कवि लोग सारे देशमें घूमते-फिरते करते रहते हैं और अपने-अपने प्रस्तावोंपर विचार करते हैं। अपनी-अपनी पसन्दके व्यक्तियोंके लिए लड़ते हैं, जिद करते हैं और जो व्यक्ति तय होता है उसको पूरा सम्मान देकर उसके चरणोंमें बैठकर कविता पाठ करते हैं। नई, पुरानी, कच्ची, पक्की, फूहड़, अधकचरी, परिपक्व, श्रेष्ठ और सब तरहकी रचनाएँ पूरी मस्तीसे पढ़ते हैं। यह कवि-सम्मेलन वर्ष भर मालवीके लिए दिशा-निर्देश करता है। कवि सोचते हैं कि वे किधर जा रहे हैं और समाजके साथ उनकी संगत कैसी है।

बरसों पहिले इसी कवि-सम्मेलनके लिए मालवीके मनीषी दादा श्री चिन्तामणि उपाध्यायने हम सब कवियोंको नोटिस दी कि 'इस बार तुम किसी अध्यक्षकी तलाश नहीं करोगे।' दादाका हुकुम। सब चुप हो गये।

मैंने साहस करके पूछ ही लिया कि 'हमारा यह अधिकार हमसे इस बार छीना क्यों जा रहा है। हम लोग कवि-सम्मेलनोंमें साल भर घूमकर एक यही काम तो मनसे मालवीके लिए करते हैं कि हमारा आशीर्वाददाता विद्वान् हमको ठीक-ठीक मिल सके।' दादाने पूरे आत्म-विश्वाससे कहा कि 'इस बार अध्यक्ष मैंने तय कर लिया है और चाहे जो हो वही व्यक्ति आयेगा।' फिर उनसे पूछा 'दादा! आखिर उस तोप का नाम तो बताओ जो इस बार अभीसे हमारी छातीपर तन गई है, ऐसी कौनसी आकाशगंगाका बेटा आपने बुलानेका सोचा है'। दादा मुस्कराये और मालवीके एक लोकगीतकी एक पंक्ति उत्तरमें कह गये 'पागाँ पेचाँदार, वाण्यो बीकानेर को'। हम कविगण बैठे चाय-चुस्की कर रहे थे। दादाने हमारी जिज्ञासाको समझकर कहा 'यह तय किया है कि श्री अगरचन्द नाहटा इस बार हमारे अध्यक्ष होंगे, और यह इच्छा तो मेरी है ही पर इस नाम का सुझाव मालवीके आदि-पुरुष पं० सूर्यनारायणजी व्यासकी तरफसे आया है और अब तुम सबको यह नाम स्वीकार करना ही होगा'। हम सब लोग सिटपिटा गये चुप हो गये, सूर्यनारायणजी व्यास और चिन्तामणिजी उपाध्याय जहाँ बीचमें आ जायें मालवीके कलमगर हर बात सिर झुककर स्वीकार कर लेते हैं। अपनी अच्छी से अच्छी कविताओंको इन महानुभावके कहनेसे फाड़कर फेंकनेमें भी हम लोग गौरवका अनुभव करते हैं। बस तबसे हम लोग अगरचन्दजी नाहटाके लिए प्रतीक्षातुर हो गये। नाम तो सुना हुआ था। यदा-कदा कई एक लेख पढ़-पढ़ा भी लिए थे परन्तु नाहटाजी को देखा नहीं था। न फोटो, न फ्रेम, उनके बारे में यहाँ-वहाँ पूछताछ करते रहे। कोई कहता था कि भयंकर पगड़ी धारी एक सेठ है। कोई कहता था कि मूँछोंपर बल देना उनकी आदत है। कोई कहता था कि इतने पढ़े लिखे हैं और कोई कहता था कि उनका पढ़ाई-लिखाईसे कोई रिश्ता ही नहीं है। किसीने लोकसाहित्यका उनको दिवाकर बताया तो किसीने यह फतवा दिया कि नाहटाजी भीषण रूपसे जैनी हैं। सिवाय जैनके वे कुछ नहीं हैं, उनकी हर अदासे जैनीपनकी गंध आती है, वर्णन सुनते रहे और उनके बारेमें हम लोग अनुमान लगाते रहे।

मेलेका दिन आया, नाहटाजी उज्जैन पधारे। मैं किसी दूसरे कविसम्मेलनसे घूमता फिरता उज्जैन आने वाला था। दूसरे कविगणभी अपने-अपने कार्यक्रम निपटाकर आनेवाले थे। इस सम्मेलनसे हमारा अपनापन और घरोपा इतना है कि कोई कवि रातको चार बजे भी मंचपर पहुँचा तो भी चलेगा, पारिश्रमिक की किसीकी कोई जिद नहीं होती, जो जब भी आता है पूरी मस्तीसे आता है।

आठ बजेसे आयोजन शुरू हो गया। मैं कोई दस बजे मंचपर पहुँचा था। देखा टखनोंसे ऊपर तक चढ़ी हुई धोती, लम्बा बन्द गलेका भूरा कोट, आँटे और पेचों वाली मोटी पगड़ी, गहरी खिंची हुई तनी मूँछे, चश्मा और पूरा रौबीला बड़ासा मुँह-माथा लिए एक आदमी अपने सेठों जैसे साहूकारी अन्दाजमें गादी पर रखे हुए लोटके ऊपर बैठा हुआ है। लोट चपटा होकर दब गया था। शरीरका वजन भी तो पड़ रहा था न। चुप चाप दादासे पूछा 'क्या यही आपका बीकानेरी बनिया है'। दादा मुस्कराये और बोले 'हाँ'। मैंने पूछा 'अध्यक्षीय भाषण हो गया क्या'। वे चिढ़े, बोले 'जब समयपर नहीं आया है तो कार्यवाहीपर पूछनेका कोई अधिकार तेरा नहीं है। जब अपना नम्बर आये तब कविता पढ़ देना। समझ लेना कि आजका अध्यक्ष सारी कविताको पानी पिला देगा'। नाहटाजी के व्यक्तित्वका आतंक तो मुझपर पड़ही चुका था। दादाने उनकी मेधाका सिक्काभी मुझ पर बैठा दिया। कवि सम्मेलनमें कविता पाठ शुरू हो चुका था। जनतामें रसकी हिलोरें बराबर उठ रहीं थीं। मैंने गौरसे और गहराईसे देखा तथा पाया कि अध्यक्ष महोदय पर किसी कविता का कोई असर नहीं है। और वे किसीभी कवितापर कोई प्रतिक्रिया या दाद व्यक्त नहीं कर रहे हैं। लगा कि कैसे अरसिक आदमीसे पाला पड़ा है। कोई बारह बजे तक मालवीके वे सब कविता पढ़गये जो कि प्रति वर्ष नये-नये लिखना शुरू करते हैं—अपनी प्रारंभिक रचनाएँ। हमलोग इसको प्रोत्साहनका दौर कहते हैं।

यह नई फसलकी बुवाई होती है। धरतीको हम लोग इस प्रकार बीज देते हैं और अच्छी फसलकी आशा करते हैं। आधी रातके बाद मालवीके गंभीर कवियोंका कविता-पाठ शुरू हुआ। पहिले कविकी दूसरी या तीसरीही पंक्तिपर नाहटाजी चश्मा उतारकर लोटसे नीचे उतर गये और गादीपर सरककर बैठ गये। लगा कि एक असुविधा उनको कहीं है। फिर उनके मुंहसे बोल फूटने लगे और वे चिन्तामणिजीसे कविके बारेमें जानकारी लेने लगे। कविता समाप्त होते-होते वे अध्यक्ष नहीं रहकर श्रोता बन चुके थे और पूरे खुल गये थे। कोई दो बजे उन्होंने कहा "मैं फिर भाषण देना चाहता हूँ, मुझे कुछ बोलना है।" मुझे तो पता भी नहीं था कि पहिले वे क्या बोले थे। दादाने उनसे निवेदन किया कि वे शेष दो तीन कवियोंको और सुनलें और फिर आशीर्वाद दें। वे मान गये। हम सब कविता पाठका एक दौर पूरा कर चुके तो वे बरबस माइकपर आ गये। उनका अधिकार तो था ही माइकपर आकर उन्होंने राजस्थानी और मालवी साहित्यके लिये बोलना शुरू किया। लगा सागरकी एक-एक लहर किनारेसे ठट्ठ मारकर टकरा रही है, किनारेका कण-कण भींग रहा है। वे बोले जा रहे थे। कुछ अनुमान नहीं लगा कि वे कितनी देर बोले पर वे अनथक बोले जा रहे थे। अमूमन कवि सम्मेलनोंमें जनता अध्यक्षको बड़े प्रेमसे हूट कर दिया करती है। परन्तु उनका बोलना कविता से कम प्रभावशाली नहीं था। यहाँ तक कह गये कि 'मैं मालवीको राजस्थानीकी बेटी मानता हूँ और इस नाते इसके पितृवंशका परिजन होता हूँ। मुझे अपार प्रसन्नता है कि मेरी बेटीका कुल ठीक है और उसके बच्चे उसकी भली प्रकार सेवा कर रहे हैं। मेरी बधाई और आशीर्वाद। वास्तवमें आजका दिन मेरे जीवनका एक सार्थक दिन है और मैं इस बातको कभी नहीं भूल सकूंगा कि मैंने एक सही साहित्यिक समारोह को अध्यक्षता की थी। मेरा उज्जैन आना नहीं, लोक साहित्यकी सेवा करना आज फल रहा है, मुझे मेरी तपस्याका पहिला फल मिला है'। करीब-करीब वे विगलित हो उठे और उनकी बड़ी-बड़ी आँखोंमें लोक साहित्यका प्राण-परनाला उछल आया, वे बह गये, हम सब बह गये, यहाँ से वहाँ तक सन्नाटा था। लोग समझ नहीं पारहे थे कि इस यारका उत्तर मालवासे उनको कैसा दिया जायेगा। यह काम तो हम लोगों पर था।

शायद दूसरे दिन सबेरे वे चले गये। मुझे पता नहीं कि वे कब और कैसे गये पर उस एक अध्यक्षता में वे हम लोगों पर इतना बोझ डाल गये हैं कि उस बोझको ढोते-ढोते हम कवि लोग निहाल हो रहे हैं। इस वजन ने कंधोंको झुकाया है दुखाया नहीं। मन करता है वे एक बार फिर मिलें और उनके सामने इन दस पाँच सालोंका हिसाब फिर रख दें, कहें 'ले सेठ यह वह पूंजी है जो तेरे गुरसे हमने कमाई है'। पता नहीं वह दिन कब मिलेगा।

भक्त कवि 'पदमजी'का महान कथा-ग्रन्थ। 'रुक्मणी मंगल' मैंने पढ़ा है। मेरे पिता कथा वाचक रहे हैं और उन कथाओंमें यत्र-तत्र सेठका चित्र खींचा गया है। 'पदमजी' की रस-पगी लेखनी ने मेरे दिल दिमागपर भारतके एक बनियेकी मूर्ति बना रखी है। मुझे लगता है नाहटाजी वैसे ही सेठ हैं, वैसे ही बनिये हैं। मुझे क्या मतलब है कि वे कितने पढ़े-लिखे हैं और कैसा लिखते-पढ़ते हैं। इससे मेरा क्या बनता बिगड़ता है कि वे जैनी है या वैष्णव। उनके माथे पर सेर सूत बंधा है, उनकी मूंछों पर बल है, चेहरे पर रौब है पर आँखोंमें लोक साहित्यकी करुणा अँजी है।

वे एक बार मिले तो अपनी उम्र हम मालवी वालोंको दे गये थे, अबकी बार कभी फिर मिले तो अपनी तपस्या भी दे देंगे। भगवान हमें इस योग्य बनाये। सुनते हैं बनिया देनेमें बड़ा कंजूस होता है पर लोक-कथाओंमें मैंने बनिये का जगह-जगह लुटता देखा है, नाहटाजी दे भी देते हैं और लुट भी जाते हैं।

●

सौजन्य मूर्ति नाहटाजी

श्री रामेश्वरदयाल दुबे

सस्ता साहित्य मंडलकी ओर से जब आचार्य विनोवाभावेको उन्हींपर आधारित एक ग्रन्थ उस दिन भेंट किया गया, तब उन्होंने कहा था कि इस प्रकारके समारोहोंको मैं इस रूपमें लेता हूँ कि किसी सेवककी सेवाओंको जनताने स्वीकार किया है और उनका आदर किया है। यह लोक स्वीकृति उचित भी है और आवश्यक भी।

कभी-कभी सोचता हूँ कि क्या यह आवश्यक न होगा कि जीवनकालमें ही यह अल्प संतोष व्यक्तिको दिया जाय। मृत्युके बाद होने वाले शोक प्रस्तावों और स्मृति-समारोहोंका मूल्य कितना भी हो व्यक्तिके लिए उनका कोई अर्थ नहीं रहता। इसलिए ऐसे समारोहोंको मैं आदरकी दृष्टिसे देखता हूँ। श्रेष्ठिवर श्री अगरचन्दजी नाहटाजी के गहन अध्ययन और प्रकाण्ड विद्वत्ताके संबंधमें बहुतसे लोग प्रकाश डालेंगे। मैं तो यहाँ उनके मानवीय रूपपर एक दो संस्मरण देना चाहता हूँ।

जहाँ तक स्मरण है, मेरी उनसे प्रथम भेंट सिलचरमें हुई थी। लम्बा, ऊँचा कद, मारवाड़ी पगड़ीमें उनका व्यक्तित्व बड़ा ही प्रभावशाली लगा था। किन्तु उनके सरल, सौम्य स्वभावने उस प्रभावको आत्मीयतामें बदल दिया था। सुनता था जो जितना बड़ा होता है उतना ही वह विनम्र होता है। उस दिन श्री नाहटाजी इसका एक उदाहरण सिद्ध हुए थे। इस शोध-पंडितके गवेषणापूर्ण निवंधों को जब-जब पत्र-पत्रिकाओंमें पढ़ता हूँ, तब सोचने लगता हूँ कि यह कैसा आदमी है कि जिसे पुरानी पोथियोंमें डूबनेमें इतना आनन्द आता है। सिलचरकी वह शाम भूल नहीं सकता। जब मैं उनकी स्नेह वर्षामें खूब भीगा था।

अभी कुछ वर्ष पहले श्री नाहटाजी भारत जैन महामंडलके किसी समारोहमें सम्मिलित होनेके लिए वर्धा पधारे थे। तब राष्ट्रभाषा प्रचार समितिके प्रांगण में भी पधारनेकी कृपा की थी। कार्यकर्ताओंकी एक सभा बुलाकर हमें उनका सम्मान करनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ था। समितिके कार्य कल्याणको देखकर उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई थी और उन्होंने अपना सन्तोष व्यक्त किया था।

आजका साहित्यकार डिगरियोंके आधारपर विद्वान् माना जाता है। किन्तु श्री नाहटाजी इसके प्रत्यक्ष अपवाद हैं। उनके मार्ग-दर्शनसे लाभ उठाकर न जाने कितने छात्र डाक्टर (पी-एच० डी०) बन गए। श्री नाहटाजी को कुछ बननेकी फुरसत ही नहीं मिली। वे तो बनानेमें ही सुख पाते रहे।

ऐसे श्रेष्ठिवर नाहटाजी के प्रति मैं अपनी विनम्र श्रद्धा व्यक्त करता हूँ।

सच्चे साधक श्री अगरचन्दजी नाहटा

डॉ० इन्द्रचन्द्र शास्त्री

धर्म, राजनीति, कला, शिक्षा आदि प्रत्येक क्षेत्रमें दो प्रकारके व्यक्ति मिलते हैं। कुछ उसे आजीविकाके रूपमें अपनाते हैं और कुछ साधनके रूपमें। प्रथम मनोवृत्ति सम्बद्ध क्षेत्रको कलुषित कर डालती है। उस समय वह साधन बन जाता है और आजीविका अथवा अन्य स्वार्थ साध्य। फलस्वरूप तदनुसार परिवर्तन और सम्मिश्रण होने लगते हैं।

धर्मके क्षेत्रमें जीवन शुद्धिकी बात गौण हो गई और अनुयायियोंके संग्रहकी मुख्य। धर्मजीवी वर्गने साधारण जनताको आकृष्ट करनेके लिए अपने महापुरुषोंके साथ चमत्कारपूर्ण घटनाएँ जोड़नी शुरू कीं और मिथ्या आडम्बर उत्तरोत्तर बढ़ने लगे। दर्शनशास्त्र सत्यका अन्वेषक न रहकर शास्त्रार्थोंसे घिर गया। प्रतिपक्षीपर विजय उसका मुख्य तत्त्व बन गया और इसके लिए छल, जाति निग्रह, स्थान आदि अनुचित उपाय भी काममें लाए जाने लगे।

कला राजदरबारकी वस्तु बन गई। सुन्दरियाँ वहाँ जाकर नृत्य करने लगीं। चित्रकार, संगीतज्ञ तथा कवि अपनी-अपनी प्रतिभाका प्रदर्शन करने लगे। सभीका ध्यान सत्तारुढ़ सामन्तको प्रसन्न करनेपर रहता था। जो ऐसा नहीं कर पाता था, उसे गरीबीमें दिन काटने पड़ते थे। राजनीतिमें कुर्सियोंके लिए प्रतियोगिता प्रारम्भ हो गई और राष्ट्रहित खटाईमें पड़ गया।

दूसरी ओर वह युग भी सामने आता है जब ये बातें आजीविकाका साधन नहीं बनी थीं। उपनिषद् कालमें ऋषि शिष्योंको नहीं खोजते थे, प्रत्युत शिष्य उन्हें खोजते थे। जनक सरीखे राजा ब्रह्मज्ञानी थे और अपने हाथसे खेती करते थे। याज्ञवल्क्य ऋषिको आत्माका स्वरूप जाननेके लिए उनके पास आना पड़ा। वाचस्पति मिश्रने सभी दर्शनोंपर टीकाएँ लिखी हैं और निष्पक्ष विवेचकके रूपमें उनका स्थान सर्वोपरि है। कहा जाता है कि एक बार उन्हें राजाने आमंत्रित किया। नदीतटपर पहुंचे तो नाविक ने पार उतारनेके लिए पैसे मांगे, किन्तु उनकी जेबमें कुछ नहीं था। नाविक ने कहा, बिना पैसे काम नहीं चलेगा। यह सुनकर वे वापिस लौट आए और राजा से मिलनेका इरादा ही छोड़ दिया।

नाहटा जी से मेरा परिचय तीस वर्ष से भी पुराना है। विद्याके प्रति उनका झुकाव आजीविका लेकर नहीं हुआ। प्रारम्भ से ही सम्पन्न परिवारमें पले। विद्याको आयका साधन बनानेकी आवश्यकता नहीं थी। फिर भी इस ओर झुकाव एक सात्त्विक निष्ठाको प्रकट करता है। भगवद्गीतामें दैवी सम्पद्के जो २६ गुण बताए गए हैं, उनमें तीसरा है "ज्ञानयोगव्यवस्थितिः"। नाहटा जी इसके साकार रूप हैं।

इससे भी बड़ी बात उनकी सरलता एवं गुणग्राहकता है। मैंने उन्हें अनेक समारोहोंमें देखा है। उत्तेजनाके वातावरणमें भी वे शान्त रहे। पूछनेपर सच्ची बात प्रकट कर दी, किन्तु खण्डन-मण्डन में नहीं उलझे। प्रत्येक व्यक्तिकी अच्छी बातको समर्थन देना तथा गुणोंका अभिनन्दन करना उनका स्वभाव है। इस बातकी वे परवाह नहीं करते कि वे कितने ऊँचे आसन पर हैं।

एक बात और है। प्रायः विद्याजीवी वर्ग ऊँचे-ऊँचे आदर्शोंकी बातें करता है, स्वीकृत सिद्धान्तकी डींगे हांकता है। कहता है, इसमें विश्वकी समस्त समस्याओंका समाधान है, किन्तु स्वयं कुछ नहीं करता। उसकी धारणाएँ वाणी तक सीमित होती हैं। शास्त्रीय शब्दोंमें कहा जाए तो उसमें दीपक सम्यक्त्व होता है। जहाँ दूसरोंको रोशनी देने पर भी अपने तले अंधेरा है। इसके विपरीत नाहटा जी में जो सम्यक्त्व है, उसे कारक कहा जाएगा, जहाँ विश्वास वाणी से आगे बढ़कर कुछ करनेकी प्रेरणा दे रहा है। वे सच्चे श्रावक

हैं। व्रतोंका पालन करते हैं। समय-समय पर त्याग एवं तपस्या में लगे रहते हैं। ज्ञानके सच्चे उपासक हैं। जैन परिभाषा में वे सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान और सम्यक् चारित्र्य तीनों के आराधक हैं।

मेरी हार्दिक कामना है कि वे चिरजीवी हों। धनिक वर्ग उनसे ज्ञानोपासनाकी प्रेरणा प्राप्त करे, विद्याजीवी वर्ग त्यागकी और साधक वर्ग सच्ची साधनाकी, जहाँ प्रत्येक क्षेत्र साधन न रहकर अपने-आप में साध्य बन जाता है।

•

सरस्वती और लक्ष्मीका अनोखा संयोग

डॉ० बी० पी० शर्मा

सन् १९५३ अक्टूबर मासमें स्व० डॉ० बनारसीदास जैन के निर्देशनमें मैंने पृथ्वीराज रासो (लघु संस्करण) का सम्पादन प्रारम्भ किया था। काम कठिन एवं परिश्रम साध्य था। पाठसंशोधनकी कार्य प्रणालीसे मैं सर्वथा अनभिज्ञ और प्राचीन पाण्डुलिपियोंके पढ़नेका अनभ्यासी। परन्तु स्व० डॉ० जैन की यह प्रबल इच्छा थी कि रासो की चारों वाचनाओं में से किसी एक वाचनाका भी पाठ संशोधनकी दृष्टि से सम्पादन हो जाए तो हिन्दी साहित्य के आदि ग्रन्थ——रासो के प्रकाशन से हिन्दी साहित्यकी एक विशेष क्षति-पूर्ति होगी और भाषा विकासकी दृष्टि से हिन्दी जगत् को एक विशेष लाभ पहुँचेगा। डॉ० जैन की इस प्रबल आकांक्षाके पीछे एक विशेष कारण था। उन्होंने पंजाब यूनिवर्सिटी लाहौरके अपने अध्यापन काल (१९२६-१९४७) में उक्त विश्वविद्यालयके तत्कालीन वाईस चान्सलर श्री ए० सी० वूलनरकी प्रेरणासे रासो का पाठ संशोधनकी दृष्टि से सम्पादन कार्य प्रारम्भ किया था। (डॉ० वूलनर संस्कृतके प्रसिद्ध जर्मनी विद्वान् थे) रासो साहित्यके विशिष्ट विद्वान् वयोवृद्ध पं० मथुराप्रसाद दीक्षित (हिमाचलमें बघाट-नरेशके राजगुरु) इस कार्यमें उनके सहयोगी थे। इस सम्बन्धमें डॉ० जैनने उक्त विश्वविद्यालयके तत्त्वावधानमें साहित्य सदन अबोहर, काशी नागरी प्रचारिणी सभा एवं बीकानेर आदि अनेक स्थानोंपर जाकर रासोकी विभिन्न वाचनाओं की पाण्डुलिपियोंका अध्ययन किया था और कुछ पाण्डुलिपियाँ लाहौर विश्वविद्यालयमें भी मंगवाई गई थीं। इस कार्य में डॉ० ए० सी० वूलनरकी, जो इस खोज-योजनाके प्रेरणा-स्रोत थे, १९३८ में अचानक मृत्यु हो गई और मासोपरान्त पं० मथुराप्रसाद दीक्षित भी स्वर्ग सिधार गए। एकाकी रह जाने के कारण डॉ० जैन का जोश भी ठण्डा पड़ गया। अगस्त सन् १९४७ में देश विभाजन के समय डॉ० जैन द्वारा सभी एकत्रित रासो सम्बन्धी खोज-सामग्री लाहौर में डॉ० जैनके कृष्णनगर स्थित मकानके साथ ही अग्निमें जलकर स्वाहा हो गई। जैन जी जान बचाकर अपने मूल निवास स्थान लुधियाना आ गए। इन्हीं दिनों मैं भी लाहौरसे फटेहाल लुधियाना पहुँचा और संयोगवश डॉ० साहबके मुहल्लेमें ही मुझे भी किराएका मकान मिला। भाग्यवश यहाँ आर्य कालेज लुधियानामें मुझे अध्यापन कार्य मिल गया था। पड़ोसी के नाते शनैः-शनैः डॉ० जैनसे परिचय बढ़ता गया। जैसा कि स्वाभाविक था, हमारी वार्तालापका विषय साहित्य चर्चा ही रहता। वे मेरी साहित्यिक अन्तर्रुचि एवं प्रवृत्तिको परखते एवं टटोलते रहते। इनकी संगतिसे मुझे एक विशेष आनन्द मिलता। उनका मुझपर पुत्रवत् स्नेह था और मेरी उनपर पितृवत् श्रद्धा

थी । डॉ० जैन रासोके विधिवत् सम्पादनकी आवश्यकतापर बल देते रहते । उनके अन्तर्मनमें यह बात खटकती थी कि हिन्दी साहित्यका आदि ग्रन्थ रासो पाण्डुलिपियोंमें ही बन्द पड़ा है। अन्ततः १९५३ अक्टूबर में इस कार्यको मैंने अपने हाथ में लिया, यद्यपि पंजाबके विश्वविद्यालयीय कुछ हिन्दी-विद्वानोंने मुझे इस विषयमें निरुत्साहित किया कि इतना कठिन परिश्रम साध्य काम तुमसे अकेले नहीं हो सकेगा; जबकि काशी नागरी प्रचारिणी सभा जैसी उच्च संस्था द्वारा नियुक्त सम्पादक मण्डल भी इस कार्यको पूर्ण नहीं कर सका था। इधर जैन जीके अन्तर्मनको स्व० डा० ए० सी० वूलनरकी इच्छा (रासोका विधिवत् सम्पादन) कचोट रही थी। परिणामतः रासो-लघुसंस्करणके विधिवत् सम्पादनका पूर्वरूप तैयार हो गया और पंजाब विश्वविद्यालय-सोलनको स्वीकृति के लिए भेज दिया। १९५४ अप्रैल में इस स्वीकृतिके मिलनेके साथ ही अचानक हृदयगति रुक जाने से डॉ० जैन का निधन हो गया। मैं स्तब्ध रह गया। जीवनमें मैं कभी भी इतना व्यथित नहीं हुआ था जितना इस समय। मैं एक पिता के स्नेह एवं सच्चे निःस्वार्थी निर्देशक से वंचित हो गया था। सब कुछ खाली-खाली एवं शून्य दिखाई देने लगा। कारण—मैं बाल्य काल से ही माता पिता के दुलार प्यार से शून्य रहा। आश्रयहीन और बेसहारे, इधर-उधर भटकते संस्कृत पाठशालाओंमें दूसरेके सहारेसे भाग्यवशात् मैं कुछ विद्याध्ययन कर सका था। निराश हो गया था। सोचता कि अब यह काम सिरे नहीं चढ़ सकेगा। क्योंकि पंजाबमें कोई ऐसा विद्वान् नहीं था जिससे इस विषय में मैं विचार विमर्श भी कर सकता। चार पाँच मास योंही निठल्ले बैठे बीत गए।

डूबतेको कभी कभार विधिवशात् सहारा मिल जाया करता है। स्व० जैन साहित्यिक चर्चा करते समय प्रायः श्री अगरचन्द जी नाहटा का जिक्र किया करते थे। कई दिनोंके आत्मिक चिन्तनके पश्चात् श्री नाहटा जी को इस कार्य में सहायक होने के लिए मैंने पत्र लिखा। तत्काल इनका मुझे उत्साहवर्धक उत्तर मिला। जाम हुई गाड़ी फिर से चलने लगी। इसके पश्चात् पत्र व्यवहार द्वारा एक ऐसी आत्मीयता पैदा हुई कि नाहटाजी रासो सम्पादन सम्बन्धी प्रत्येक कठिनाईका समाधान करते। मुझे सबसे बड़ी कठिनाई अनूप संस्कृत लाइब्रेरी बीकानेर से अध्ययनार्थ मँगवाई गई तीन पाण्डुलिपियोंके पढ़ने में रही। जो पाठ मुझसे पढ़ा नहीं जा सकता था उसे मैं मोमी कागज़पर वास्तविक प्रतिलिपि (फोटोस्टेट) करके भेज देता था। नाहटा जी तत्काल उसे सही पढ़कर आधुनिक लिपिमें लिखकर मुझे भेज देते। इस प्रकार रासो सम्पादन सम्बन्धी प्रत्येक औघट घाटीको नाहटा जी के सहयोग से मैं पार कर सका। रासोका लघुसंस्करण छपकर अब विद्वानों के हाथों में है। नाहटा जी की इस सामयिक एवं निःस्वार्थ सहायताका मुझपर कितना भार है—मैं ही इसे अनुभव कर सकता हूँ।

जून १९७१ तक नाहटाजीके मैं साक्षात् दर्शन नहीं कर सका था। गत १८ वर्षों के अन्तराल में हिन्दी शोधपत्रिकाओंमें छपनेवाले अनेक गवेषणा पूर्ण लेखों एवं आलोचनात्मक निबंधोंके अध्ययन द्वारा ही मेरा इनसे सम्बन्ध रहा। इनके प्रति मेरी एक विशेष आस्था उत्तरोत्तर पनपती रही। इन्हीं दिनों मुझे संत रविदास-वाणीकी खोजके लिए बीकानेर जानेका अवसर मिला।

नाहटाजीके साक्षात् दर्शनों से मैं गद्गद् हो उठा। ऐसा सौम्य एवं नम्र व्यक्तित्व बहुत ही कम व्यक्तियोंमें मुझे देखनेको मिला है। व्यापारी वर्ग से सम्बन्धित रहते हुए भी इनकी साहित्य सेवा अद्वितीय एवं अमूल्य है। हिन्दी साहित्यकी अनेक उलझनें इनके परिश्रमसे सुलझ पाई हैं, पाण्डुलिपियोंमें पड़े अनेक अमूल्य ग्रन्थोंका इनके अथक परिश्रम एवं प्रयत्नोंसे प्रकाशन हो सका है। भारतके विभिन्न विश्वविद्यालयोंके शोधार्थी छात्रोंको इनका अमूल्य एवं निःस्वार्थ सहयोग मिलता है। साहित्य सेवा, समाज सेवा एवं परोपकार

ही इनके जीवनके तीन लक्ष्य हैं। इनके 'नाहटा कलाभवन' में अनेक अनुपलब्ध पाण्डुलिपियों तथा अलभ्य कलावस्तुओंका अद्भुत संग्रह है। लक्ष्मी एवं सरस्वतीका अनोखा संयोग नाहटा जी के जीवनमें मुझे देखनेको मिला है। इस कला भवनमें सुरक्षित "संत वाणी संग्रह" से मुझे लगभग सौ नए पदोंकी उपलब्धि हुई ऐसे निःस्वार्थ साहित्य एवं समाज सेवी महामानव शतायु हों ऐसी मेरी मंगल कामनाएँ इनके प्रति हैं।

●

एक महान् व्यक्तित्व

डा० बी० पी० शर्मा

१ जुलाई को प्रातः स्नानादि से निवृत्त होकर आठ बजे के लगभग नाहटोंकी गवाड़में श्री अगरचन्द जी नाहटाजीके द्वार पर आ पहुँचा। घर ढूढ़नेमें कोई विशेष कठिनाई नहीं हुई। दरवाजा खटखटाया; एक व्यक्ति धोती बाँधे बाहर आया। उसका बाकी शरीर नंगा था, जिससे मालूम होता था कि अभी स्नान किया है और कपड़े पहिनने हैं। मैंने नमस्कार करके पूछा, "मुझे नाहटाजीसे मिलना है। "मैं ही नाहटा हूँ।" यद्यपि नाहटाजीसे पुराना परिचय था पर पत्र व्यवहार द्वारा ही। आज से बारह वर्ष पूर्व इन्हीं के सहयोगसे मैंने पृथ्वीराज रासोका सम्पादन किया था। श्रद्धा से प्रणाम किया।

नाहटाजी हिन्दी साहित्यके क्षेत्रमें जाने-माने विद्वान् हैं। व्यापारी रहते हुए भी साहित्यसे प्रेम है। सरस्वती और लक्ष्मीका अद्भुत संयोग है। भारतके प्रत्येक कोनेसे शोधार्थी विद्वान् नाहटाजीके कला-भवन में पहुँचते हैं। इनके कला-भवन में प्राचीन कला-कृतियों, प्राचीन पाण्डुलिपियों एवं अलभ्य पुस्तकोंका भण्डार है। पुस्तकों के ढेर के मध्य बैठे नाहटाजी प्रसिद्ध फ्रैंच लेखक वाल्टेयर जैसे प्रतीत होते हैं।

आप स्वभाव से विनम्र, दानशील एवं उदारचित्त विद्वान् हैं। आगन्तुक शोधार्थियों की उत्सुकता से एवं प्रसन्नता से प्रसन्न होना, इनके स्वभावकी विशेषता है। मैंने तीन दिन प्रातः आठ बजे से सायं ६ बजे तक इनके अध्ययन-कक्ष में बैठ कर "संत वाणी संग्रह" पाण्डुलिपि से गुरु रविदासकी वाणी के लगभग १०० पदों प्रतिलिपि की।

दुपहरका भोजन नाहटाजीके घरपर ही चलता था। इन तीन दिनोंमें अनेक व्यक्ति यहाँ आये। नाहटाजी यदि बाहर गये होते तो उनके पीछे, इन लोगोंसे मुझे निपटना पड़ता था। एक स्त्री अपने आठ-दस सालके बालक को लेकर वहाँ आई। उसने राजस्थानीमें कुछ कहा। उसकी बात मेरी समझमें बहुत कम आई। वह नाहटाजीसे अपने स्कूली बालकके लिए पाठ्य-पुस्तकें मांगने आई थी। एक पीत वस्त्रधारी साधु आये, बिना किसी झिझकके ऊपर आ गये। प्रश्न किया—"नाहटाजी कहां हैं?" "मैंने पूछा" क्यों? "कबूतरोंके लिए बजरा खरीदना है—पैसे चाहिए।" तीसरे दिन जयपुरसे ३०० मीलकी यात्रा करके शोधार्थी छात्रा पहुंची। नाहटाजी उसे सारे दिन पाण्डुलिपियां एवं अन्य पुस्तकें दिखाते रहे और सायं तक उसके प्रस्तावित शोध प्रबन्धका पूरा खरड़ा बनाकर उसे सौंप दिया।

मैं तो सोचता हूं कि नाहटाजी भारतेन्दु हरिश्चन्द्रसे कम नहीं हैं। इनकी यह साहित्य-साधना गत चालीस वर्षोंसे अनवरत चल रही है। ३७ ग्रन्थोंका इन्होंने सम्पादन किया है। भारतीय पत्र-पत्रिकाओंमें इनके तीन हजार शोध लेख छप चुके हैं। इनकी इन्हीं विशेषताओंसे प्रभावित होकर भारतके विद्वत्-समाजने इनके सम्मानमें अभिनन्दन समारोह किया है।

●

शोधमनीषी श्रेष्ठिवर श्रीअगरचन्दजी नाहटा

सा० महो० डॉ० श्यामसुन्दर बादल साहित्याचार्य

सम्मान्यबन्धु श्री अगरचन्द्रजी नाहटासे हमारा गत कई वर्षसे परिचय है, इधर कुछ वर्षोंसे उनके स्नेहपूर्ण पत्रों द्वारा हमारा उनसे अर्द्ध मिलन होता ही रहता है, जैसा कि एक लोकोक्तिसे स्पष्ट है—

"पत्री आधा मिलन है।"

सौभाग्यसे अभी कुछ दिन पूर्व हमें उनके चित्रके भी दर्शन हुए। 'विशाल-भालको दवाये हुए सरलतासे सिरपर बँधा हुआ साफा (पगड़ी), चिन्तनशील लोचनोंपर चढ़ा हुआ चश्मा, घनी-घनी मूँछें, सात्त्विक वेश-भूषा से आच्छादित समोन्नत कलेवर एवं स्मितपूर्ण गम्भीर मुखाकृति।' इन्हीं कुछ स्थूल रेखाओं द्वारा बन्धुवर नाहटाजीके भौतिक पिण्डका शब्द-चित्रण किया जा सकता है।

विगत चैत्रकृष्ण चतुर्थीको (वि० २०२८) श्री नाहटाजीने वासठवें वर्षमें प्रवेश किया है, पर साहित्यके क्षेत्रमें आपकी गतिशील लेखनी उनपर 'साठा सो पाठा' की उक्तिको चरितार्थ कर रही है। बन्धुवर नाहटाजी माँ श्री और सरस्वतीके समान रूपेण परमाराधक साधक हैं। यद्यपि आप लगभग चालीस वर्षसे एक सफल लेखकके रूपमें निरन्तर राष्ट्र-भाषा हिन्दीकी सेवा करते चले आ रहे हैं, पर इस जनका आपसे परिचय आज पच्चीस वर्ष पूर्व सन् १९४७ ई. में तब हुआ था—जब श्रद्धेय दादाजी (साहित्य-वारिधि डा. बनारसीदासजी चतुर्वेदी) द्वारा मुझे 'प्रेमी-अभिनन्दन-ग्रन्थ' उपहृत किया गया था, जिसमें मुझे नाहटाजीका 'जैन साहित्यका भौगोलिक महत्त्व' शीर्षक लेख पढ़नेको मिला था। इसमें प्राचीन जैन-आगमोंकी चार विधाओं एवं 'भगवती सूत्र', 'जीवाभिगम' 'प्रज्ञापना' 'जम्बू द्वीप प्रज्ञप्ति' आदि कई मौलिक ग्रन्थोंके उद्धरण देते हुए आपने जो भौगोलिक तथ्य खोज निकाले थे, वे भारतीय इतिहासकारोंके लिए बड़े महत्त्व के हैं। लेखके अन्तमें इन्होंने जैन-तीर्थ विषयक प्रकाशित ग्रन्थों, विशिष्ट लेखों, जैन प्रतिमा लेख-संग्रह, एवं कलापूर्ण जैन-शिला स्थापत्यकी चित्रावलिकी एक ऐसी सूची भी दे दी है, जिसमें उनके लेखकोंके नाम, प्रकाशन-स्थान, तथा मूल्य भी दिये गये हैं, जिससे आवश्यकतानुसार उन्हें प्राप्त किया जा सके। स्व. वासुदेव-शरण अग्रवालने अपने 'भूमिको देवत्व प्रदान' शीर्षक एक लेखमें अथर्ववेदके निम्न वचनों द्वारा भूमिको वन्द-नीय माता बतलाया है—

"माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः।"
"ॐ नमो मात्रे पृथिव्यै।"

प्रस्तुत लेखमें नाहटाजीने श्री भद्रबाहु रचित आचारांग निर्युक्तिका निम्न उद्धरण देकर भूमिके विशिष्ट अंगभूत तीर्थोंको नमस्करणीय माना है—

"अट्ठावय उज्जिंते गयगग्गपए य धम्मचक्के य।
पासरहा वत्तणयं चमरूप्पायं च वन्दामि॥"

तदनन्तर सन् १९४९ ई. में प्रकाशित 'वर्णी-अभिनन्दनग्रन्थ' में तो यह जन नाहटाजीके साथ सह-लेखकके रूपमें सम्बद्ध हुआ था। यह भी श्रद्धेय दादाजीकी कृपाका ही फल था। उक्त ग्रन्थमें संस्मरणात्मक रेखाचित्र विधाका 'मेरे गुरुदेव' शीर्षक मेरा एक लेख प्रकाशित हुआ था, जिसे मैंने दादाजीकी प्रेरणा ही से लिखा था। बन्धुवर श्रीखुशालचन्द्रजी जैनने मुझे उस विशालग्रन्थकी प्रति भी प्रदान की थी। इस ग्रन्थमें बन्धुवर नाहटाजीने "प्राचीन सिन्ध प्रान्तमें जैनधर्म" शीर्षक लेख लिखा था। इस लेखमें सिन्ध प्रान्त एवं उसमें भी केवल 'खरतरगच्छ' को ही आपने अपनी लेखनीका लक्ष्य बनाया है। जैसा कि निम्न उद्धरणोंसे स्पष्ट है :—

"भारतकी प्रसिद्ध नदियाँ गंगा-सिन्धुको जैन शास्त्रोंमें शाश्वत कहा है। इनकी इतनी प्रधानता थी कि सिन्धुके किनारे बसा प्रान्त ही सिन्धु हो गया था। तथा ग्रीक आक्रमणकारियोंने तो पूरे भारतको ही इन नदीके नामानुसार पुकारना प्रारम्भ कर दिया था।"

"गणधर सार्द्धशतक (सं० १२९५) तथा बृहद् वृत्तिमें उल्लेख है कि 'खरतरगच्छ' के आचार्य वल्लभसूरि कामरुकोट तथा जिनदत्तसूरि उच्च नगर गए थे। इसके बाद इस गच्छके मुनियोंके सिन्ध आवागमनकी धारा अविरलरूपसे बहती रही।"

नाहटाजीने इस लेखमें कुछ ऐसे स्थानोंकी तालिका भी दी है जिससे स्पष्ट है कि ११वीं शतीके मध्य से ही सिन्ध प्रान्त धर्मविहारमें रत जैनाचार्योंका कार्यक्षेत्र हो गया। लेखके अन्तमें निष्कर्ष देते हुए उन्होंने निम्न रूपमें एक बड़ी मार्मिक बात कह डाली है—

"किन्तु भारतीय धर्मोंके लिए समय कैसा घातक होता जा रहा है, कि मुलतान आदि कतिपय स्थानोंके सिवा सिन्ध (वर्तमान पंजाब, सीमा-प्रान्त तथा सिन्ध) में जैनियोंके दर्शन भी दुर्लभ हो गये हैं और टोरी पार्टीके द्वारा प्रारब्ध भारत-कर्तनने तो इन प्रान्तोंसे समस्त भारतीय धर्मोंको ही अर्द्धचन्द्र दे दिया है।"

गर्दनपर धक्का देकर निकाल देनेके अर्थमें 'अर्द्धचन्द्र देना' संस्कृतका एक महावरा है। इस प्रकार नाहटाजीने अपने लेखोंमें संस्कृत बहुल शब्दावली और मुहावरोंके प्रयोगसे राष्ट्र-भाषाको समृद्ध बनानेमें भी बड़ा योग दिया है। नाहटाजी किसी सम्प्रदाय-विशेषमें अपनेको केन्द्रित नहीं रखते। उनके लेख सार्वभौमिक उपयोगके हैं। 'कल्याण' मासिकके वर्ष ४१ के संख्या ६ के अंकमें 'मानव कर्त्तव्य' एवं वर्ष ४२ के संख्या ३ के अंकमें 'अभयकी उपासना' आदि लेख मानवमात्रको कल्याणका मार्ग दर्शन कराते हैं।

अभी लगभग एक वर्ष पूर्व ही 'व्रजभारती' में फाल्गुण सं० २०२७ वि० के अंकमें वयोवृद्ध लेखक श्रद्धेय गौरीशंकरजी द्विवेदीने "सूरतिमिश्र अमरेश कृत अमरचन्द्रिका" शीर्षक एक लेख लिखा था। 'अमरचन्द्रिका' विहारी सतसईकी एक प्रसिद्ध टीका है। इस लेखपर 'व्रजभारती' के ही भाद्रपद वि० २०२८ में श्रीनाहटाजीने कुछ संशोधन प्रस्तुत किये थे। टीकाकी प्रतिलिपिकी भिन्नताने ही यह मतभेद उपस्थित किया था। आपने "अमरचन्द्रिका टीका सम्बन्धी कतिपय संशोधन" शीर्षक अपने उक्त लेखमें द्विवेदीजीकी मान्यताओंके विरुद्ध कुछ संशोधन प्रस्तुत किये थे। ये संशोधन उनकी अपनी प्रतिलिपियोंके अनुसार प्रामाणिक हैं। फलतः विनम्रता की प्रतिमूर्ति द्विवेदीजीने सामान्य मत-भेदके साथ आपके संशोधनोंको अपने लेखके अन्तमें निम्न वचन द्वारा स्वीकृत कर लिया था—

"यह अकिंचन लेखक श्रीनाहटाजीका आभारी है कि उन्होंने उचित संशोधन की ओर ध्यान आकर्षित किया।"

उक्त आलोचनात्मक एवं प्रत्यालोचनात्मक लेखोंमें दोनों मनीषियोंकी विनम्रता दर्शनीय है। इन लेखोंसे यह भी स्पष्ट हो जाता है कि ये दोनों विद्वान् लेखक कितने संग्रही भी हैं, जिनके संग्रहालयोंमें वि० सं० १७९४ में लिखी गई 'अमरचन्द्रिका' टीकाकी हस्तलिखित प्रतिलिपियाँ भी संग्रहीत हैं और एक नहीं दो-दो।

'व्रजभारती' के ही वर्ष २४ के अंक ३ में नाहटाजीका "नाइक गोविन्द प्रसाद विरचित गोविन्द वल्लभ काव्य" नामक एक अन्य लेख भी मेरे सामने है। यह काव्य-कृति वि० सं० १७५६ के पूर्वकी सिद्ध की गयी है। पृष्ठ संख्या २२ है, अतः स्पष्ट है कि यह एक खण्ड-काव्य होना चाहिए। इस काव्य विषयक एक परिचयात्मक लेखमें भी नाहटाजीने भक्तिके विषयमें अपने मौलिक विचार व्यक्त किये हैं। जैसे :—

"भक्तिमें वास्तवमें बड़ी शक्ति है। ज्ञान और योगमार्गकी अपेक्षा वह सरल भी है। ज्ञानका

सम्बन्ध मस्तिष्कसे है और भक्तिका सम्बन्ध हृदयसे। भक्तके लिए भगवान् ही सर्वस्व है। उनके चरणोंमें पूर्णरूपसे अर्पित हो जाना ही सच्ची भक्ति है। पर ऐसी शुद्ध और उच्च स्थिति विरल भक्त ही प्राप्त कर सकते हैं''।

इस समय उपलब्ध हुए इन्हीं कुछ लेखोंके आधारपर हम कह सकते हैं कि श्रीनाहटाजीके लेख शोधपूर्ण होते हैं। ऐसे महत्त्वपूर्ण लेख जिस लेखकने तीन-चार हजारकी संख्यामें लिखे हों वह राष्ट्र-भाषा हिन्दीका कितना बड़ा साधक होना चाहिए। उनके ग्रन्थोंके पढ़नेका सौभाग्य मुझे नहीं मिल सका। उनकी संख्या भी कम नहीं है उनके द्वारा लिखित या सम्पादित ग्रन्थोंकी संख्या सैंतीस है। इनके अतिरिक्त कुछ ग्रन्थ अप्रकाशित रूपमें पड़े हुए हैं। इतना अधिक कार्य उनकी महती साधनाका परिणाम है।

बन्धुवर नाहटाजी लेखक ही नहीं एक सहृदय मानव हैं। अपने गुरुजनों, विद्वानों, कलाकारों एवं महापुरुषोंके प्रति आपका हृदय श्रद्धासे ओत-प्रोत रहता है। स्व० पिताजीकी स्मृतिमें उनके द्वारा संस्थापित ''शंकरदान नाहटा-कलाभवन'' एवं स्व० भ्राता श्री अभयराजजी नाहटाकी स्मृतिमें ''श्री अभय जैन पुस्तकालय'' (बीकानेर) नामक संस्थाएँ इस बातका प्रबल प्रमाण हैं। आपके भतीजे श्री भँवरलालजी नाहटाकी उत्कृष्ट साहित्य साधनाएँ अपने पितृव्य चरणकी साहित्य-साधनाओंमें इसी प्रकार विलीन सी रहती हैं जैसे राष्ट्रकवि स्व० मैथिलीशरणजी गुप्तकी साहित्य-साधनाओंमें स्व० श्री सियाराम शरण गुप्त की। फिर भी आज जिस प्रकार अपनी अमर कृतियों द्वारा वे गुप्त-बन्धु अमर हैं, उसी प्रकार हमारे नाहटा-बन्धु भी सदैव अपनी अमर कृतियोंके द्वारा अमर रहेंगे।

नाहटाजीके अभय जैन ग्रंथालयमें लगभग चालीस सहस्र प्रकाशित ग्रन्थ हैं और इतने ही हैं अप्रकाशित। आपकी महती संग्रह-शीलताका यह एक प्रत्यक्ष प्रमाण है। संक्षेपमें वे सर्वतोमुखी प्रतिभाके धनी हैं। आपने समीक्षक, ग्रन्थ लेखक, सम्पादक, संग्राहक एवं निदेशक आदि विविध रूपोंमें हिन्दीके साहित्यको समृद्ध बनाकर राष्ट्र-भाषा का गौरव बढ़ाया। इसी प्रकार कई सांस्कृतिक और धार्मिक संस्थाओंके जन्मदाता अध्यक्ष एवं सदस्यके रूपमें उन्होंने राष्ट्रके नैतिक उत्थानमें सहयोग प्रदान किया। श्री नाहटाजीसे पथ प्रदर्शन पाकर अनेक शोध-कर्त्ताओंने अपने-अपने शोध-कार्योंमें सफलता प्राप्त की। ऐसे महान् साधकके प्रति निम्नरूपमें इस लेखकको कवि अपनी शुभ कामनाएँ अर्पित करता है और परम पितासे प्रार्थना करता है कि श्री नाहटजी शतंजीवी हों और वे सदैव सानन्द एवं सोत्साह अपने पथपर अग्रसर होते रहें।

साहित्य-साधकः श्रीमान् राष्ट्र-भाषा-समृद्धिदः।
नाहटोऽयमगरचन्द्रो जीवेच्छरदः शतम्॥

है साहित्य-साधना इन सी कहिए किसकी ?
नर्तन करती रहे लेखनी नित ही जिसकी।
पत्र-पत्रिकाओंमें जिसके लेख भरे हैं।
जाने कितने ग्रन्थ इन्होंने रचे अरे हैं!

अगर सुरभि दे, चन्द्रसम-
सकल ताप हरते रहें।
पथ से पग ना हटा नित-
अगरचन्द्र बढ़ते रहें॥



मेरी दृष्टिमें श्री अगरचन्दजी नाहटा

श्री चन्दनमल 'चाँद', एम० ए०, साहित्यरत्न

स्वस्थ शरीर, लम्बा कद, धोती कुर्तेपर बन्द गलेका सफेद कोट, सिरपर बीकानेरी पगड़ी, मोटे फ्रेमका चश्मा लगाये बड़ी-बड़ी मूँछोंवाले श्याम वर्ण, व्यक्तिको कलकत्तेके एक समारोहमें बैठा देखकर मुझे लगा कोई सेठ है जिसे लक्ष्मीकी कृपासे इस साहित्यिक समारोहमें भी मंचपर प्रतिष्ठित कर दिया गया है। लेकिन जब संयोजकने परिचय देते हुए कहा कि साहित्य, कला और पुरातत्त्वके शोधक श्री अगरचन्दजी नाहटा आपके सामने विचार व्यक्त करेंगे और वही सेठ माईकके सामने खड़ा हुआ तो मैं चौक उठा। एम० ए० की परीक्षामें हिन्दी साहित्यके इतिहासके प्रश्नोंको हल करते समय जिस अगरचन्द नाहटाका नामोल्लेख पृथ्वीराज रासोकी प्रामाणिकताके सन्दर्भमें कई स्थानोंपर किया था, क्या यही वे नाहटाजी हैं ? मेरी कल्पना में उभरता हुआ उनका स्वरूप प्रत्यक्षके इस स्वरूपसे एकदम भिन्न था। लेकिन जब उनका धारा प्रवाह शोधपूर्ण वक्तव्य हुआ तो विश्वास करना ही पड़ा कि ये ही वे श्री नाहटाजी हैं जिनकी विद्वत्ताका मैं कायल था और जिनसे मिलनेकी मेरी भावना अत्यन्त प्रवल थी। संयोग ही कहना चाहिए कि मेरी जन्मभूमि श्रीडूँगरगढ़ बीकानेरके निकट होते हुए भी उनसे प्रत्यक्ष पहली बार वहीं मिलना हुआ था। कलकत्तेकी उस दूर-दूरकी मुलाकातके बाद तो अबतक नाहटाजीसे मिलने, चर्चा करने और पत्र-व्यवहारके अनेक अवसर प्राप्त हुए हैं और ज्यों-ज्यों उनके साथ परिचय एवं निकटता बढ़ी है उनके व्यक्तित्वके अनेक पहलू मेरे सन्मुख स्पष्टतासे उजागर हुए हैं।

श्री नाहटाजीके अध्ययन-लेखनसे हिन्दी, राजस्थानी और प्राकृतके पाठक भलीभाँति परिचित हैं। उनके सैकड़ों लेख एवं ग्रंथ उनकी विद्वत्ता के परिचायक हैं। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओंमें प्रतिमाह नियमित रूपसे उनके शोधपूर्ण निबन्ध प्रकाशित होते हैं। अतः मैं इस सम्बन्धमें अधिक कुछ न लिखकर नाहटाजीके व्यक्तित्वपर ही कुछ लिखना चाहूँगा।

श्री नाहटाजी वैश्यकुलके सम्पन्न परिवारमें लक्ष्मीके लाडले होते हुए भी साहित्यके अनुरागी कैसे बने, और मुश्किलसे मिडिल तककी स्कूली शिक्षाके बावजूद भी एम० ए० और पी-एच० डी० के विद्यार्थियोंके मार्गदर्शक बननेकी योग्यता कैसे प्राप्त की, यह सचमुच प्रेरणा एवं आश्चर्यजनक है। ज्ञानकी अखण्ड प्यास, विद्याकी लगन, सत्यके अनुसन्धानकी तीव्र भावना और सतत श्रम ही इस सफलताके साधन हो सकते हैं और श्री नाहटाजीके व्यक्तित्व में ये गुण सहजरूपसे मिलते हैं। स्वभावसे सरल, निराभिमानी किन्तु वाणीसे अत्यन्त स्पष्ट तथा निर्भीक।

जो सत्य लगा उसे कहनेमें कहीं संकोच अथवा भय नहीं। खुले रूपमें उसे कहना और लिखना वे अपना धर्म मानते हैं। इसमें किसीको प्रिय-अप्रिय लगे तो इसकी परवाह नहीं। जैन संस्कार इनके जीवनमें रमे हुए हैं। सात्त्विकता और सहजता इनके व्यक्तित्वके दो महत्त्वपूर्ण गुण है। कहीं कोई दिखावा, प्रदर्शन और बड़प्पन नहीं। मिलनसारिता ऐसी कि सामान्य व्यक्ति को अपने पांडित्यके बोझसे कभी बोझिल नहीं होने देते और विद्वानोंके बीच विद्वान्की तरह उसी सहजतासे पगड़ी लगाये गलेमें चादर डाले शोध प्रबन्ध पढ़ रहे होते हैं या चर्चामें व्यस्त।

सादगी और धार्मिक संस्कार उनकी अपनी विशेषता है। रात्रि भोजन नहीं करना, जमीकन्द नहीं खाना, सामायिक और नियमित स्वाध्याय करना उनकी दिनचर्याके अंग हैं लेकिन प्रवासमें भोजन आदिके लिए मेजबानको कोई कष्ट देना उनको पसन्द नहीं। जहाँ उनकी सुविधा और संस्कारोंके अनुकूल व्यवस्था नहीं वहाँ अलगसे अतिरिक्त व्यवस्थाके लिए मेजबानको परेशानी देना नहीं चाहते। स्वयं संयमसे काम चला

लेते हैं। पिछले वर्ष बम्बईमें विश्वविद्यालयकी प्राकृत सेमिनारके लिए आमंत्रित होकर बम्बई पहुँचे तो भारत जैन महामण्डलके कार्यालयमें भी गये। संध्याका समय था। भगवान् महावीरके २५सौं वें निर्माण महोत्सवके सम्बन्धमें प्रकाशित होनेवाले साहित्यकी चर्चामें डूब गये। सुझाव देने लगे और इधर सूर्य अस्ताचलकी ओर बढ़ने लगा। मैंने पूछा—'संध्याका भोजन ?' सहजतासे बोले—'रात्रि भोजन तो नहीं करता।' फिर मुझे संकोचमें पड़ा देखकर बोले कि परेशानीकी कोई बात नहीं, यदि कुछ फल, दूध वगैरह मिल सके तो काम चल जायगा। आफिसमें बैठकर ही थोड़े फल एवं दूध लिया और फिर साहित्य-चर्चामें डूब गये। न भोजनकी चिन्ता, न नियममें व्यवधान। साहित्य और विद्याकी धुनमें ही मस्त रहकर आनन्द मान लेना स्वभाव है।

जैन समाजमें समन्वय, प्रेम और मैत्रीपूर्ण वातावरणके लिए श्री नाहटाजी सदा प्रयत्नशील रहते हैं। सम्प्रदायका भेद नहीं, साम्प्रदायिकता के आग्रहसे मुक्त हैं। श्वेताम्बर आचार्य हों या दिगम्बर मुनि, स्थानकवासी हों या तेरापंथी-सबके साथ आपका निकटतम सम्बन्ध है। जिन आचार्यों, साधुओं एवं साध्वियोंके ज्ञान, ध्यानसे प्रभावित होते हैं उनकी प्रत्यक्ष और परोक्षमें प्रसन्नता पूर्वक चर्चा करते हैं। जिस विचारको ठीक समझते हैं उसको अपने लेखों और ग्रन्थोंमें उद्धृत करते हुए यह ध्यानमें नहीं रखते कि वे उनके सम्प्रदायके हैं या नहीं। नाहटाजीकी इसी गुणग्राहकताने उनको किसी सम्प्रदाय विशेषका नहीं बल्कि सारे जैन समाजका प्रिय विद्वान् बना दिया।

श्री नाहटाजी कर्मयोगी हैं। साहित्य-मन्दिरके ऐसे पुजारी जो प्रतिपल अपनी साहित्य-साधनामें संलग्न रहते हैं, कहीं भी रहें, कहीं भी जायें उनकी शोध-वृत्ति और जिज्ञासा प्रतिपल सजग रहती है। संग्रह और परिग्रह धार्मिक दृष्टिसे गुण नहीं है किन्तु आपने संग्रहको भी गुणके रूपमें प्रतिष्ठित कर दिया। हजारों हस्तलिखित दुर्लभ ग्रंथ, हजारों प्रकाशित ग्रंथ, प्राचीन कलाकृतियां, मूल्यवान सिक्कों आदिका उनका निजी संग्रहालय संग्रह तो अवश्य है किन्तु परिग्रह नहीं।

वर्षके बारह महीनोंमें से ग्यारह महीनों वे अपने संग्रहालय और पुस्तकालयमें बैठकर अध्ययन एवं लेखनमें रत रहते हैं। वे ज्ञानका कोरा बोझ नहीं ढोते उसे चरित्रमें उतारते हैं। श्री रिषभदासजी रांका ने उनका एक संस्मरण बड़ा ही सुन्दर लिखा है जिससे उनके धैर्यपूर्ण अनासक्त व्यक्तित्वका एक रूप सामने आता है। श्री नाहटाजीकी धर्मपत्नीका कुछ दिनों पहले ही स्वर्गवास हुआ था। श्रीरांकाजी राजस्थानकी यात्रामें थे अतः श्री नाहटाजीके अपने प्रतिसंवेदन व्यक्त करने बीकानेर उनके घर गये। वहाँ उन्होंने देखा कि श्रीनाहटाजी अपने पुस्तकालयमें बैठे तल्लीनतापूर्वक कुछ लिख रहे हैं और उनके चेहरेपर विषाद अथवा शोककी कोई छाया नहीं थी। सहधर्मिणी पत्नीके निर्धनको कुछ ही दिन बीते थे लेकिन उस निधनको नियमित मानकर धैर्यपूर्वक सहन करना एवं कर्ममय जीवनमें योगीकी तरह तल्लीन हो जाना महत्त्वपूर्ण घटना है।

नाहटाजीकी एक दुर्लभ विशेषता यह भी है कि वे नये साहित्यकारों, नई पीढ़ीके युवा लेखकोंको प्रोत्साहित करते हैं। उनकी विद्वत्ता **वह वटवृक्ष नहीं जिसके नीचे कोई नन्हा पौधा पनप हो नहीं सकता वरन् उस मेघकी तरह है जो नये अंकुरोंको प्रस्फुटित होनेके लिए प्रोत्साहनका जल देता है।** मैंने आजसे लगभग कई वर्षों पूर्व अपनी नई प्रकाशित दो पुस्तकें उन्हें भेजी थीं। जिसकी प्राप्ति और बधाईका हाथों-हाथ पत्र उन्होंने भिजवाया। उस समय तक उनसे मेरा साक्षात्कार नहीं हुआ था लेकिन उनके उस पत्रसे मुझे अत्यन्त आनन्द और उत्साह मिला था। इसी प्रकार अनेक छोटे बड़े, नये पुराने लेखकों और कवियों की विशेषताओंको सराहते, प्रोत्साहित करते रहते हैं।

श्री नाहटाजी के सम्पूर्ण व्यक्तित्व को समझना उतना ही कठिन है जितना कठिन उनकी लिखावट

को पढ़ना है। मैंने उनकी लिखावट के सम्बन्धमें उनसे जब शिकायत की तो वे मुस्कुराकर टाल गये। वैसे उनके पत्र पढ़ते-पढ़ते एवं जैनजगत्‌में प्रकाशित होनेवाले लेखोंको टाईप कराते-कराते उनकी लिखावट पढ़ने में तो लगभग सफल हो गया हूँ किन्तु उनके व्यक्तित्व को पूरी तरह से समझना उतना सरल और सहज नहीं। अतः अभिनन्दनके इस अवसर पर आडी तिरछी रेखाओं से उनके व्यक्तित्वका एक लघु रेखाचित्र प्रस्तुत करते हुए शुभ कामना करता हूँ कि वे सफल स्वास्थ्यपूर्ण शतायु बनकर साहित्य की सेवा करते रहें।



विशिष्ट योगदान

विश्वधर्म हरिराम के संचालक मुनि सुशीलकुमार जैन

समाजके विकसित एवं विकासशील मुनिवरोंको व उदीयमान विद्वानोंको आप निरन्तर प्रेरणा देते रहे हैं। यह आनन्दका विषय है। आपके उदात्त एवं विराट् अनुसंधान परख विचारोंने साहित्य एवं संस्कृतिके भण्डारोंको अभिनव एवं गौरवमय स्वरूप प्रदान किया है। इसके लिए हम सब आपके आभारी हैं।

साहित्यमें ऐसी कौनसी विधा होगी जिसके विकासमें आपका योगदान न रहा हो। इतिहासका कोई कोना हो, धर्मका कोई अनुसंधान हो, समाज विकासका कोई कार्यक्रम हो, सभीको आपने अपने ठोस सुझावों, अविस्मरणीय सेवाओं एवं मूल्यवान सहयोग तथा सुझावोंसे उसे आप्लावित किया है।

संस्कृति और साहित्यके स्रोत में आपको मैं सदासे सरस्वतीके वरद पुत्रके रूपमें मानता आया हूँ। आपके द्वारा सरस्वती-पुत्रोंको साहित्यका एवं संस्कृतिका सार्वभौम प्रकाश मिलता रहे और आप विश्वको आध्यात्मिक धरातलपर एकताकी कड़ीमें जोड़ते रहें; इसी मंगल कामनाके साथ।



नाहटाजी एक विरल व्यक्ति

डॉ० रमणलाल ची० शाह अध्यक्ष—गुजराती विभाग, बम्बई युनिवर्सिटी

नाहटाजीसे जितने लोग मिले होंगे उनसे भी बहुत अधिक लोग उनके नामसे सुपरिचित होंगे। जो नाहटाजीके निकट सम्पर्कमें आते हैं, वे उनके विरल व्यक्तित्व से प्रभावित हुए बिना नहीं रहते।

नाहटाजीने अत्यल्प वयमें लेखन प्रवृत्ति चालू की। आज पाँच दशकोंसे भी अधिक समयसे वे नियमित लिखते आये हैं। ई० सन् १९६० में नाहटाजीके साथ मेरा प्रथम बार पत्र व्यवहार हुआ था गुणविनयकृत 'नल दवदंती रास' की हस्तलिखित प्रतिके विषयमें। नाहटाजीका नाम वर्षोंसे सुन रहा था अतः तब भी मैंने उनको लगभग सत्तर वर्षकी उम्रके समझ रखा था, परन्तु जब मैं अपनी पत्नी के साथ बीकानेर गया तब नाहटाजी को पहली बार देखा। नाहटाजीको देखते ही मैंने उन्हें अपनी धारणासे अत्यन्त अल्प उम्रके पाकर खूब आश्चर्य अनुभव किया।

नाहटाजी राजस्थानके अधिवासी हैं और इनकी वेशभूषा भी सीधी-सादी मारवाड़ी है। इन्हें राह चलते देखकर किसीको भी यह न लगेगा कि ये इतने बड़े विद्वान् और सुप्रसिद्ध लेखक हैं। नाहटाजीकी वेशभूषा बिल्कुल सादी है। कपड़ोंकी सजधजके पीछे वे समय बर्बाद नहीं करते। कभी-कभी तो मुसाफिरीमें कपड़े मैले हो गये हों तो भी वे उनकी न तो पर्वाह करते और न संकोच ही रखते।

नाहटाजीकी जैसी सादी वेशभूषा है वैसे ही उनका स्वभाव भी अत्यन्त सरल है। खाने-पीने या रहन सहनके बाबत ये किसी खास वस्तुका शौक या आग्रह नहीं रखते। एक बार मेरे यहाँ बम्बईमें नाहटाजी पधारे। प्रातःकाल उठते ही एक कार्यक्रममें जाना था, वे नवकारसी या पौरसी करते थे इसलिए बिना खाये पिये ही हम चले गये। उस कार्यक्रममें विलम्बसे छुट्टी मिली, वहाँसे श्री महावीर जैन विद्यालयके कार्य-क्रममें और भोजनके लिए हमारे यहाँ जाना था। मैंने नाहटाजीसे कहा कि घरपर चाय-पानी करके फिर अपने विद्यालयके कार्यक्रममें जावें। परन्तु नाहटाजीने यह स्वीकार नहीं किया। उस दिन लगभग १॥ बजे मध्याह्नमें भोजन मिला फिर भी वे आकुल या अस्वस्थ हों ऐसी बात नहीं थी वे तो जैसे थे वैसे ही प्रसन्न थे।

नाहटाजी अपने कामोंमें बहुत नियमित होते हैं और अति शीघ्रतापूर्वक कामको निपटाते हैं। प्रतिदिन प्रातःकाल वे जल्दी उठकर सामयिक करने लगते हैं और सामयिकमें बहुत-सा अध्ययन मनन कर लेते हैं। अपने लेखन योग्य अध्ययन मनन भी सामायकके समय कर लेते हैं। एकबार मेरे यहाँ नाहटाजी पधारे तब पाँच बजे उठकर उन्होंने सामयिक ले ली। लाइटका स्विच कहाँ है यह इन्हें पता नहीं। अचानक मेरी आँख खुली तो देखा कि नाहटाजी सामयिक लेकर बैठे हैं और अन्धेरेमें हो पुस्तक पढ़ रहे थे। ग्रीष्मकाल था अतः साधारण प्रकाश हो गया था। नाहटाजी बराबर आँखके पास पुस्तक रखकर पढ़ रहे थे। यह दृश्य देखकर लगा कि वास्तवमें नाहटाजी धन्यवादार्ह हैं।

नाहटाजीका अधिकांश लेखन कार्य इनकी सामायिकके बदौलत है। सामाजिक या साहित्यिक क्षेत्रमें उच्चतर स्थान प्राप्त व्यक्तिको लेखन कार्यमें बहुतसे विक्षेप पड़ जाते हैं, कुटुम्बके सदस्योंको तो बाधा देनेका अधिकार हो सकता है पर मित्र, सम्बन्धी, मिलने-जुलनेवाले, संस्थाके कार्यकर्त्ता अपनी अनुकूलतानुसार चलते हैं जिससे भी लेखन कार्यमें विक्षेप पड़ना स्वाभाविक है परन्तु सामायिक एक इसका अच्छा उपाय है। स्वर्गीय मोतीचन्द कापड़ियाने अपना अधिकांश लेखन कार्य सामायिकमें ही किया था, इसी प्रकार नाहटाजीके लेखनकार्यमें भी इनकी सामायिककी बहुत बड़ी देन है।

नाहटाजी बम्बई आते हैं तब इनके बिस्तरमें कपड़ोंकी अपेक्षा पुस्तकें ही अधिक होती हैं। कितनी ही पुस्तकें ये दूसरोंको देनेके लिये ले आते हैं और बम्बईसे जाते समय कितनी पुस्तकें इनके खरीद की हुई और और कितनी ही इन्हें भेंट मिली हुई होती हैं, इससे विदित है कि इनका विद्या प्रेम कितना अधिक है।

नाहटाजी गृहस्थ हैं, परन्तु इनके हृदयमें वैराग्यका रंग गहरा-गहरा लगा हुआ है। कदाचित् ऐसी अनुकूलता मिली होती तो नाहटाजीने लघुवयमें दीक्षा ले ली होती। वे पूज्य० स० भद्रमुनिके गाढ सम्पर्कमें आये थे और उनके उपदेशोंका नाहटाजीपर बहुत बड़ा असर पड़ा था। पू० भद्रमुनि हम्पीमें स्थिर हुए उसके बाद नाहटाजी पू० भद्रमुनिको वन्दनार्थ बारम्बार हम्पी जाते थे।

नाहटाजी गृहस्थ हैं, फिर भी कमाने की इन्होंने कोई खास पर्वाह नहीं की। पूर्व के पुण्योदय से इनका अच्छा व्यापार चलता है और इनके भाई व इनके पुत्र व्यापार संभालते हैं। परन्तु जवानी में भी नाहटाजीने वर्षमें चार महीना व्यवसाय और आठ महीने स्वाध्याय व लेखन कार्य में व्यतीत करने की योजना बना ली। इसी योजना के कारण ही एक संस्था द्वारा कार्य हो सके जितना कार्य अकेले हाथों से लेखन कार्य किया है। नाहटाजी के रस का विषय तो ग्रंथ और सामायिक है। वे अपने (रुचिकर) विषय के ग्रन्थ कहाँ-कहाँ से

प्रकाशित हुए हैं इसकी जानकारी रखते हैं और उन्हें अयत्नपूर्वक प्राप्त कर पढ़ जाते हैं। नाहटा जी बहुत से सामयिक पत्रादि नियमित पढ़ते हैं, इस प्रकार वे सर्वदा सुसज्ज और सुज्ञात रहते हैं। मेरे पास जब-जब उनके पत्र आते हैं तब-तब नवीन प्रकाशन और बम्बई युनिवर्सिटी के नव्य महानिबन्धों की जानकारी के लिए एक पंक्ति अवश्य ही लिखते हैं।

पत्र लेखन में नाहटा जी बहुत ही नियमित हैं। मेरे जैसे पत्र लेखन में मन्दशील व्यक्ति द्वारा नाहटा जी को एक पत्र लिखा जाय तब तक उनके तीन चार पत्र आ जाते हैं। वर्षों के त्वरित लेखन कार्य के कारण नाहटाजी के अक्षर सरलतासे पढ़े जाएं जैसे नहीं रहे। प्रारम्भ में जब इनके पत्र आते तो मेग्नीफाइंग ग्लास लेकर मुझे बैठना पड़ता और जैसे तैसे आध घंटा में पत्र पढ़ पाता, अब तो नाहटाजीके अक्षर व मरोड़से सुपरिचित हो गया अतः उतना समय नहीं लगता। फिर भी पत्र टाइप करके भेजनेकी मेरी सूचनाके कारण जब टाइपिस्टकी सुविधा होती है तो वे वैसा ही करते हैं।

नाहटाजीको ग्रंथ और सामयिकोंकी जितनी स्पृहा रहती है उतनी स्थान या अधिकारकी नहीं रहती। मुझे एक प्रसंग खूब याद है कि जब मैं बीकानेर में इनके यहाँ था तो कोई विद्वान् लेखक और प्राध्यापक इनसे मिलने आये। उन प्राध्यापकने नाहटाजीसे एक बात कही कि आप पी-एच० डी० के मार्ग दर्शक निर्देशक बननेके लिए अर्जी दें। किन्तु अत्यधिक आग्रहके बावजूद भी आपने कहा—यूनिवर्सिटीको गाइड रूपमें मुझे चुनना हो तो भले चुने पर, मेरी तरफसे गाइड बननेके लिए कोई भी प्रयत्न नहीं होगा। यह सुनकर नाहटाजीके प्रति मेरे हृदयमें बहुत सम्मान हुआ।

नाहटाजीने प्राचीन गुजराती और राजस्थानी भाषामें लिखे हुए रास, फागु इत्यादि प्रकारके जैन साहित्य तथा संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंशमें लिखे हुए साहित्यका खूब संशोधन किया है। इनके अभय-जैन ग्रन्थालय में पचास हजार से भी अधिक हस्तलिखित प्रतियाँ एकत्र हैं। इस दिशा में नहटाजीने जो भगीरथ कार्य दिया है वह अविस्मरणीय रहेगा। भविष्य के संशोधकोंको बहुत सी टूटती कड़ियें नाहटाजीके लेखन संशोधन से जुड़ी हुई मिलेंगी।

नाहटाजी ने इतने वर्षोंमें छोटे मोटे हजारों लेख लिखे हैं उनकी सम्पूर्ण सूची तैयार होनेकी आवश्यकता है और लेखोंको ग्रन्थ रूपमें प्रकाशित करनेका कार्य किसी संस्थाको हाथमें लेना आवश्यक है।

नाहटाजी इस अवस्थामें भी बहुत कार्य करते हैं, और कर सकते हैं, परमात्मा इन्हें शतायु करे और हमें अब भी बहुत-सा साहित्य प्राप्त हो यही अभिलाषा है।

●

आदर्श व्यक्तित्व

श्री पृथ्वीराज जैन, एम. ए.

जैनधर्म, दर्शन, इतिहास साहित्य और संस्कृतिका शायद ही कोई ऐसा विद्यार्थी हो, जिसने श्रद्धेय नाहटाजी-का नाम न सुना हो अथवा उनके लेखोंसे अवगत न हो। इतना ही क्यों किसी भी राजस्थानी भाषा-का या हिन्दी पत्र-पत्रिकाका सामान्य पाठक भी भारतीय साहित्यके इस अद्भुत देदीप्यमान नक्षत्रके शुभनामसे एवं उनकी ओजस्विनी विद्वत्ताप्रवाहिनी लेखनीसे सुपरिचित हैं। उनकी निष्ठापूर्ण साहित्य आराधना शोध प्रवृत्ति और सतत स्वाध्यायशीलता गत ४५ वर्षोंसे अनवरत अविच्छिन्न रूपमें साहित्य जगत्से तादात्म्य

सम्बन्ध बनाए हुए हैं। समाजके महान् पुण्योदयसे नाहटाजी अपनी आयुकी ६०शरद् ऋतुएँ पूर्णकर ६१वीं में पदार्पण कर चुके हैं। इस शुभावसर पर उनका जो अभिनन्दन हो रहा है, वह साहित्यिक जगत्की उन हार्दिक पुनीत शुभ कामनाओंका प्रतीक है, जो शासनदेवसे उनकी कार्यप्रवृत्त दीर्घायुकी याचना करती है ताकि उनके द्वारा की जानेवाली शासन सेवाका काम निर्बाध गतिसे प्रगति करता रहे।

नाहटाजी से मेरा प्रत्यक्ष सम्पर्क एवं परिचय आजसे लगभग २६ वर्ष पूर्व उस समय हुआ जब बीकानेरकी एक संस्थामें मुख्याध्यापकके पदपर मेरी नियुक्ति हुई। उससे पहले उनके अक्षरदेहका सामान्य परिचय था। प्रथम भेंट में ही उनकी सादगी, सज्जनता, विनम्रता, साहित्य सेवाकी भावना, परिश्रमशीलता एवं धार्मिकताकी जो छाप मेरे हृदयपर पड़ी, वह आजतक अक्षुण्ण रहते हुए निखरती ही गयी है। वास्तविकता यह है कि मुझे अपने अन्तःकरणमें अनेक बार इस विषयमें लज्जा और संकोचका अनुभव होता है कि नाहटाजी जैसे व्यक्ति किसी विद्यालय, महाविद्यालय या विश्वविद्यालयके प्रांगणमें शिक्षा प्राप्त करते हुए भी, किसी उपाधिको धारण न करते हुए भी, साहित्यकी इतनी महती सेवा कर सकते हैं, जब कि मेरे जैसे अनेक सुशिक्षित उनके कार्यका एकांश भी अपने जीवनमें अवतरित नहीं कर सके हैं।

ओसवाल वैश्यकुलमें जन्म लेकर पैतृक व्यवसाय व्यापारमें प्रविष्ट होकर भी आजीवन विद्यासेवी रहनेवाले नाहटाजी किस सहृदयको प्रभावित एवं आकृष्ट न करेंगे? महाकवि बाणने कादम्बरीमें लक्ष्मीका वर्णन करते हुए लिखा है कि सरस्वतीके वरदपुत्रोंसे वह ईर्ष्या करती है, उनसे दूर रहती है। नाहटाजीका भव्य आदर्श जीवन इस मान्यताका एक अपवाद है।

नाहटाजीके अनुकरणीय व्यक्तित्वकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि ये स्वतः तो साक्षात् सारस्वत हैं ही, अपने सम्पर्कमें आनेवाले शिक्षितजनों बुद्धिजीवियोंके लिए भी प्रेरणा और प्रोत्साहनके अक्षय स्रोत हैं। मैं तो समझता हूँ कि वे अब एक व्यक्ति नहीं रहे, साहित्यिक गतिविधियोंके एक विशाल केन्द्र अथवा संस्थाका रूप धारण कर चुके हैं। उनकी ज्ञानोपासना आत्मसाधना और दूसरोंको प्रेरणा मानो त्रिवेणीके रूपमें प्रवाहित है और इस दृष्टिसे पवित्र एवं आदरणीय भी हैं। यह भी विश्वासपूर्वक कहा जा सकता है कि दर्शन, ज्ञान तथा चरित्र, उनके व्यक्तित्वका अविभाज्य अंग बन चुके हैं।

ज्ञानाराधन उनके जीवनका एकमात्र व्रत है और धार्मिक संस्कार पूजा सामायिक आदि उनकी दैनिक जीवन चर्यामें स्थायी स्थान रखते हैं। विविध साहित्यिक प्रवृत्तियोंमें निमग्न रहते हुए भी स्मित मुख है।

वे स्मितमुख विनोदशील हैं, मिलनसार हैं, अतिथिभक्त हैं, अहंकार रहित हैं, सदाचार एवं सद्व्यवहारकी मूर्ति हैं।

साहित्यके क्षेत्रमें उन्होंने जो कुछ कार्य किए हैं वे स्तुत्य होनेके साथ-साथ स्वर्णाक्षरोंमें अमररूपेण अंकित किए जा सकते हैं। हमारा बहुमूल्य साहित्यिक वैभव अनेक शताब्दियोंसे हस्तलिखित शास्त्रोंके रूपमें ज्ञान भंडारोंके तालोंमें तहखानोंमें आबद्ध था। उसके महत्त्वसे, अपनी महान् सम्पत्तिसे हम अपरिचित थे। १९वीं शताब्दीमें जैनाचार्य स्व० श्रीमद्विजयानन्द सूरीश्वरजी जैसे युगनिर्माताने भण्डारोंके उद्धारकी ओर, समाज का ध्यान आकृष्ट किया। प्रवर्तक श्री कान्तिविजयजी उनके योग्य शिष्य श्री चतुरविजयजी तथा उनके सुयोग्य शिष्य आगमप्रभाकर मुनि पुङ्गव श्री पुण्यविजयजी जैनने युग द्रष्टा उस महान् आचार्यके इस कार्यका उत्तरदायित्व ग्रहण कर इस विषयमें प्रशंसनीय कार्य किया। पूर्व और पश्चिमके विद्वान् भंडारोंमें अन्य दार्शनिक परम्पराओंके साहित्यको भी सुरक्षित देखकर विस्मित हुए—जैन श्रावकों एवं गृहस्थों में जिन व्यक्तियोंने ज्ञान भंडारों व हस्तलिखित ग्रन्थोंकी खोजका, शोधका संशोधनका सुरक्षाका प्रकाशनके

प्रयत्नोंका अनथक परिश्रम किया उनमें नाहटाजी का नाम सर्वोपरि है। आज तक लगभग एक लाख हस्त-लिखित ग्रन्थ उनकी दृष्टिमें आए हैं। उनके अपने अभय जैन ग्रन्थालयमें जहाँ ४० हजार मुद्रित ग्रन्थ व पुस्तकें हैं वहाँ ४० हजार हस्तलिखित प्रतियाँ भी। देशके किसी कोनेमें उन्हें ऐसे भंडारकी या ग्रन्थकी सूचना मिलनी चाहिए, वे जेबसे खर्चकर अनेक कष्ट सहकर भी वायुगतिसे वहाँ पहुंचेंगे और पूरा पता करेंगे।

उनका अपना संग्रहालय केवल पुस्तकों शास्त्रों तक ही सीमित नहीं, अपितु उसमें अनेक कला मूर्तियाँ चित्र पुराने सिक्के व मूर्तियाँ आदि भी समाविष्ट हैं। उनका परिवार साहित्यिक एवं सांस्कृतिक गतिविधियों के लिए हजारों रुपये प्रति वर्ष खर्च करता है। आजतक नाहटाजी के लगभग तीन सौ पत्र-पत्रिकाओंमें तीन हजारसे भी ऊपर लेख प्रकाशित हो चुके हैं। प्रकाशित ग्रन्थोंकी संख्या भी तीस से ऊपर है। अनेक पुस्तकोंकी आपने विद्वत्तापूर्ण प्रस्तावनाएँ लिखी हैं। वे संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश हिन्दी गुजराती राजस्थानी भाषाओंमें प्रवीण हैं। जैन समाजकी बहुत सी संस्थाओंके वे पदाधिकारी और कर्मठ सदस्य हैं। अनेक शोध पत्र-पत्रिकाओंके सम्पादक मण्डलमें उनका नाम है। उन्होंने कोई परीक्षा नहीं दी किन्तु उनके प्रकाण्ड पाण्डित्य साहित्य सेवासे प्रभावित हो कुछ विश्वविद्यालयोंने उन्हें पी-एच. डी. के छात्रोंका निर्देशक स्वीकृत किया है। उनके भाषणोंके एक-एक शब्दसे गहन विद्वत्ता प्रकट होती है। उनके साहित्य सेवा परायण जीवन तथा अनुपम विद्यानुरागसे प्रभावित हो समाज एवं साहित्यिक जगत् भिन्न-भिन्न अवसरोंपर उन्हें इतिहास रत्न सिद्धान्ताचार्य तथा विद्यावारिधि आदि पदवियोंसे विभूषित कर चुका है। गत मार्चमें बम्बईमें श्री मानतुङ्ग सूरि सारस्वत समारोहमें जिन आठ विद्वानों, समाज-सेवियों व शिक्षा-शास्त्रियोंका सम्मान हुआ, उनमें नाहटाजी विशेष रूपेण उल्लेखनीय हैं। साहित्य सेवाके इस महारथीका कोटिशः हार्दिक अभिनन्दन एवं दीर्घायुके लिए अन्तः प्रार्थना।

•

साहित्य उपवन का एक माली

डॉ० पवन कुमार जैन, एम. ए., पी-एच. डी.

यह लिखते हुए मुझे लेशमात्र भी संकोच नहीं हो रहा है कि नाहटाजीसे मेरा प्रत्यक्ष परिचय अधिक पुराना नहीं है। मुझे उनके दर्शनका सौभाग्य कभी प्राप्त नहीं हुआ। मैंने उन्हें कभी निकट से देखा नहीं। कभी बात नहीं की किन्तु पुस्तकालयोंमें, उनके ग्रन्थोंमें, उनसे अनेकों बार मिल चुका हूँ। दि० २६-९-७१ को उनके अभिनन्दन समारोहके विषयका पत्र प्राप्त हुआ था। उस पत्र पर नाहटाजीका चित्र छपा था। मैंने तो उनका एक काल्पनिक चित्र बना रखा था। किन्तु यह चित्र उससे विपरीत था—राजस्थानी पगड़ी, आँखों पर चश्मा, होटों पर भरी हुई मूँछोंमें उनका व्यक्तित्व, इस प्रकार झलक रहा था, जैसे पके अंगूरोंमें उनका रस। बहुत देर तक टकटकी लगाये उनका चित्र देखता रहा।

मैं सोचने लगा, क्या यही वह व्यक्ति है जिसने १९६८ में जब मैं पी-एच० डी० उपाधिके लिए शोध प्रबन्ध लिख रहा था, मुझे 'सलोकों काव्यों'की सूची भेज कर मेरा मार्गदर्शन किया था। साहित्यके क्षेत्रमें इतना उदार और सहृदय व्यक्ति मेरे जीवनमें दूसरा नहीं आया। हिन्दीके मठाधीश जहाँ नवयुवकों को उपेक्षा की दृष्टिसे देखते हैं, दिशा ज्ञानके स्थान पर भटकाव उत्पन्न करते हैं, वहाँ नाहटाजी शोध एवं

साहित्य-निर्माणके क्षेत्रमें नवयुवकोंके मार्गमें शूलोंको हटाकर फूल बिखेरते रहे हैं। 'वीर'के सम्पादक पं० परमेष्ठीदास जैनने उनके सम्बन्धमें ठीक ही लिखा है—'नाहटाजीने शताधिक शोध-छात्रोंका मार्ग-दर्शन किया और जीवन भर साहित्य-सेवामें रत रहे। उनके द्वारा निष्काम भावसे की जाने वाली महती साहित्य-सेवा सदैव स्मरणीय रहेगी।'

साहित्यका ऐसा कौन-सा अंधेरा कोना है जिसमें नाहटाजी ज्ञान दीप लेकर न पहुँचे हों। आपने सब कुछ किया है—संपादन, मौलिक ग्रन्थ-लेखन, सूचि-निर्माण, संग्रह या शोध छात्रों का मार्ग दर्शन। एक ही व्यक्ति पर लक्ष्मी और सरस्वती दोनोंकी कृपा हो, ऐसा बहुत कम देखनेमें आता है। नाहटाजी के जीवन में लक्ष्मी और सरस्वती का अनोखा संगम दर्शनीय हैं।

नाहटाजी ने साहित्य-मन्दिरकी वेदीपर अगणित ग्रन्थ पुष्पों को चढ़ाकर जो सेवा की है, क्या साहित्य-संसार उसे कभी भूल सकेगा? उनके नामके साथ विद्यावारिधि, इतिहासरत्न, सिद्धान्ताचार्य, शोधमनीषी जैसे विशेषण भी उनके महत्त्वपर प्रकाश डालनेमें असमर्थ हैं। स्वतन्त्रता-आन्दोलनमें जो स्थान गांधीजी का है, वही स्थान साहित्यके क्षेत्रमें नाहटाजी का है। संसारके किसी भी देशमें, जब भारतके स्वतन्त्रता आन्दोलन-की चर्चा की जायगी, तो गांधीजीका नाम अवश्य स्मरण किया जायेगा। इसी प्रकार राजस्थानी और हिन्दी साहित्यका नाम जहाँ भी आयेगा, नाहटाजी का नाम श्रद्धासे लिया जायेगा। यदि ताजमहलका सम्पूर्ण निर्माण शाहजहाँ आलकंरिक शैलीमें करता, तो सम्भवतः ताजका इतना प्रभाव न होता। उसीकी सादगीमें जो बात है वह आलकंरिकतामें न रहती। इसी प्रकार जो बात 'नाहटा' शब्द में है वह विद्यावारिधि जैसे आलंकारिक शब्दोंमें कहाँ?

●

सर्वतोमुखी प्रतिभाके धनी नाहटाजी

श्री उदयचन्द्र जैन

श्रीमान् अगरचन्दजी नाहटा एक सुप्रसिद्ध लेखक, विचारक और मूर्धन्य विद्वान् हैं। जनवरी १९६३ में जैन सिद्धान्त भवन आराके हीरक जयन्ती महोत्सवके अवसरपर मुझे आपसे मिलनेका पहली बार सौभाग्य प्राप्त हुआ था। उक्त अवसरपर बिहारके तत्कालीन राजपाल श्री अनन्तशयनम् आयंगरके कर कमलों द्वारा आपको सिद्धान्ताचार्यकी उपाधिसे विभूपित किया गया था। इसके बाद दो तीन बार और भी आपसे मिलने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। मैं आपके व्यक्तित्व तथा विद्वत्तासे बहुत ही प्रभावित हूँ। नाहटाजी का जीवन हम लोगोंके लिए अनुकरणीय है।

आपसे अपरिचित व्यक्ति आपकी वेशभूषा देखकर यही कल्पना करेगा कि आप कोई बड़े सेठ हैं। आप धनकी दृष्टिसे बड़े सेठ चाहे न भी हों किन्तु अध्ययन और लेखनकी दृष्टिसे महान् पुरुष अवश्य हैं। आपने विधिवत् विशेष शिक्षा प्राप्त नहीं की है और न डिग्रियोंका संग्रह किया है। परन्तु आपने अपनी लगन और अध्यवसायसे जो ज्ञान प्राप्त किया है, वह अनुकरणीय और प्रशंसनीय है।

आप व्यवसायके क्षेत्रमें रहते हुए भी अपना अधिकांश समय साहित्य सेवा और ज्ञानार्जनमें लगा रहे हैं, यह एक गौरव की बात है। आप लेखन कलामें सिद्धहस्त हैं। कैसा भी विषय क्यों न हो, उसपर आपकी

लेखनी निर्बाधगतिसे चलती है और उस विषयका प्रतिपादन इतनी अच्छी तरहसे कर दिया जाता है कि साधारण व्यक्ति भी उसे सरलतासे हृदयंगम कर लेता है। आपकी लेखनीसे कोई भी विषय अछूता नहीं बचा है। जैन पत्रोंमें ही नहीं किन्तु प्रायः समस्त भारतीय प्रमुख पत्र पत्रिकाओंमें आपके विद्वत्तापूर्ण और खोजपूर्ण लेख सदा ही प्रकाशित होते रहते हैं। इतने अधिक लेख शायद ही किसी दूसरे विद्वान्‌के प्रकाशित हुए हों। यदि आपके लेखोंका संग्रह किया जाय तो उसे कई भागोंमें प्रकाशित किया जा सकता है। आप सदा ही साहित्य तथा समाजकी सेवामें संलग्न रहते हैं। आप विशेष रूपसे जैन साहित्य की और उसमें भी राजस्थानी जैनसाहित्यकी विशेष सेवा कर रहे हैं। आपने साहित्य सेवाकी दृष्टिसे एक पुस्तकालयकी भी स्थापना की है जिसमें प्रकाशित तथा अप्रकाशित ग्रन्थोंका बड़ा भारी संग्रह है। आपका दृष्टिकोण उदार तथा व्यापक है। आपके हृदयमें साम्प्रदायिकताके लिये कोई स्थान नहीं है।

ऐसे महान् विद्वान्‌का अभिनन्दन बहुत पहले ही किया जाना चाहिए था। यह हर्षका विषय है कि कुछ लोगों का ध्यान इस ओर गया है और अब आदरणीय नाहटाजीका अभिनन्दन किया जा रहा है। इस अवसरपर नहटाजीको अभिनन्दन ग्रन्थका भेंट किया जाना एक महत्त्वपूर्ण बात है। मैं भी इस शुभ वेलामें नाहटाजीका हार्दिक अभिनन्दन करता हूँ और कामना करता हूँ कि आप चिरायु होकर इसी प्रकार साहित्य तथा समाज की सेवा चिरकाल तक करते रहें।

●

साहित्यकी साकार मूर्ति

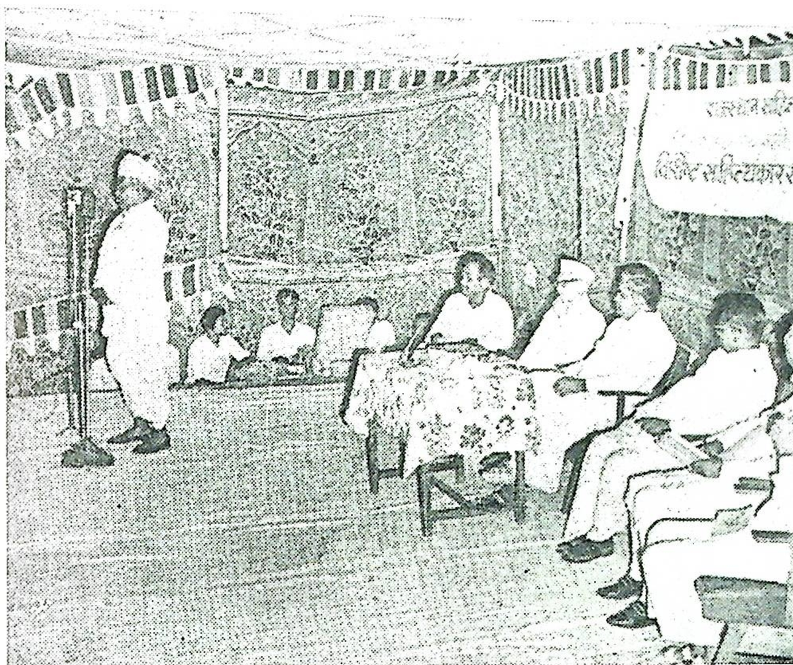
श्री विमल कुमार जैन सोंरया

विद्यावारिधि श्री अगरचन्द्रजी नाहटा इस युगके युगप्रधान साहित्यकार, उच्चकोटि के लेखक, सफल आलोचक और समीक्षक एवं प्रतिभा-सम्पन्न विद्वान् हैं। मुझे अपने स्नातकोत्तर विद्यार्थी जीवनमें श्री नाहटाजीके साहित्यको गम्भीरता से पढ़नेका सौभाग्य मिला। तभीसे श्रीनाहटाजीके साहित्यसे अपरिमित आकर्षण बढ़ा।

मैं अपने स्वर्गीय पिता श्री गुलजारीलालजी सोंरयाके संग्रहणीय पुस्तकालयमें आजसे ३०-४० वर्ष पुरानी अनेक प्रकार की पत्र-पत्रिकाओंकी फाइलें उलटता हूँ तो पाता हूँ कि प्रायः कोई ही ऐसी अभागी फाइल होगी जिसमें श्री नाहटाजीकी लेखनीका प्रेरणादायी शोधात्मक निबन्ध लिखा गया हो। जहाँ तक मैंने पाया श्री नाहटाजीने प्रत्येक विषय पर अपनी सशक्त लेखनी चलाई है।

श्री नाहटाजीने अपने इतनेसे जीवनमें अनन्त साहित्य धारा बहाकर अनेकों विद्वानोंको दिशादृष्टि दी है। हजारों शोधार्थी इनके साहित्यसे अनुप्राणित हुए हैं। ऐसे साहित्य-महारथीके सम्मानमें प्रकाशित हो रहे अभिनन्दन ग्रंथके लिये मेरी अनेक शुभ कामनाएं हैं।

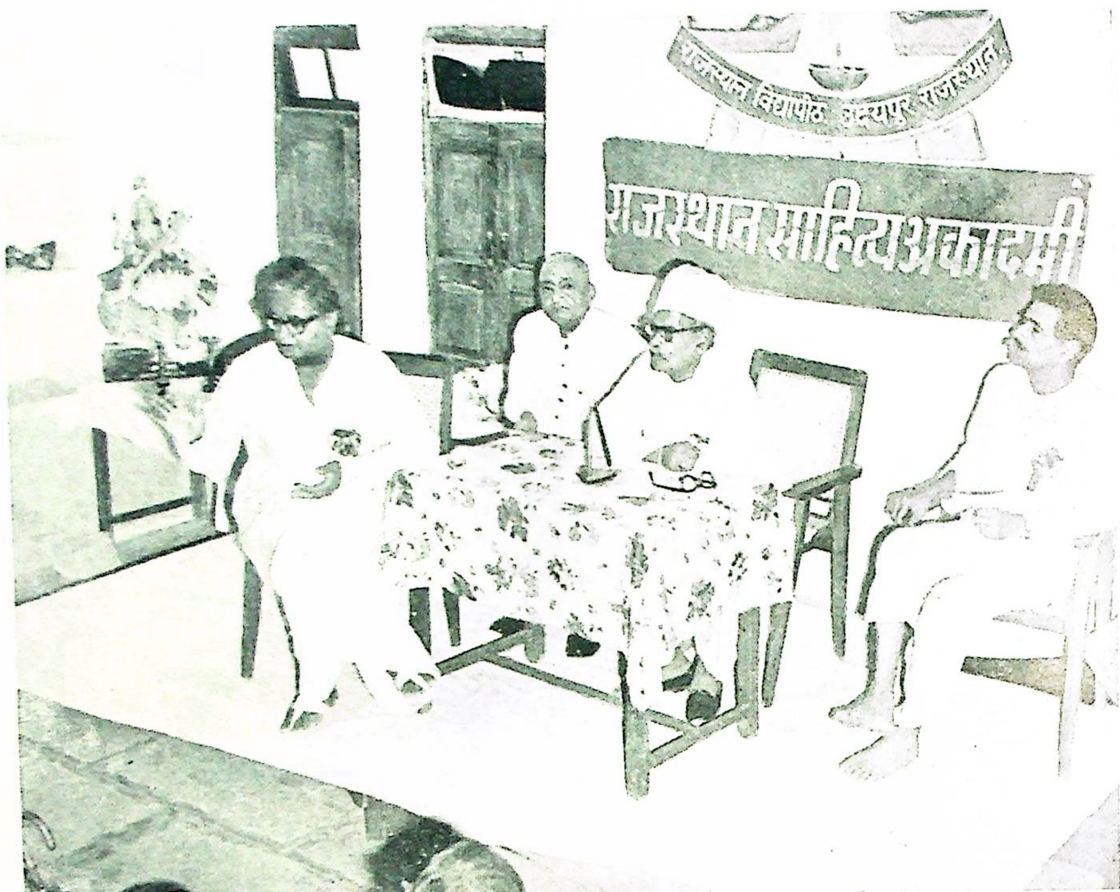
●



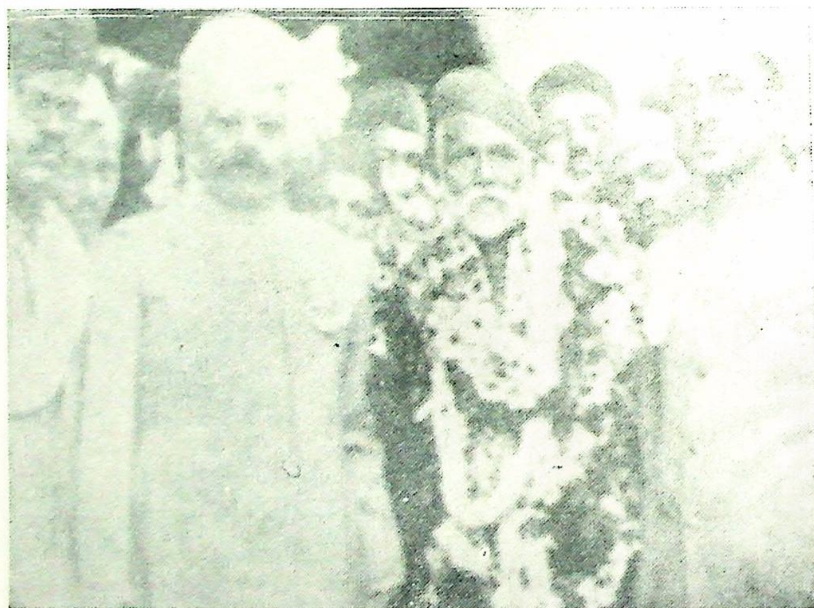
राजस्थान साहित्य अकादमी में विशिष्ट साहित्यकार सम्मेलन में भाषण देते हुए श्री अगरचन्द जी नाहटा ।



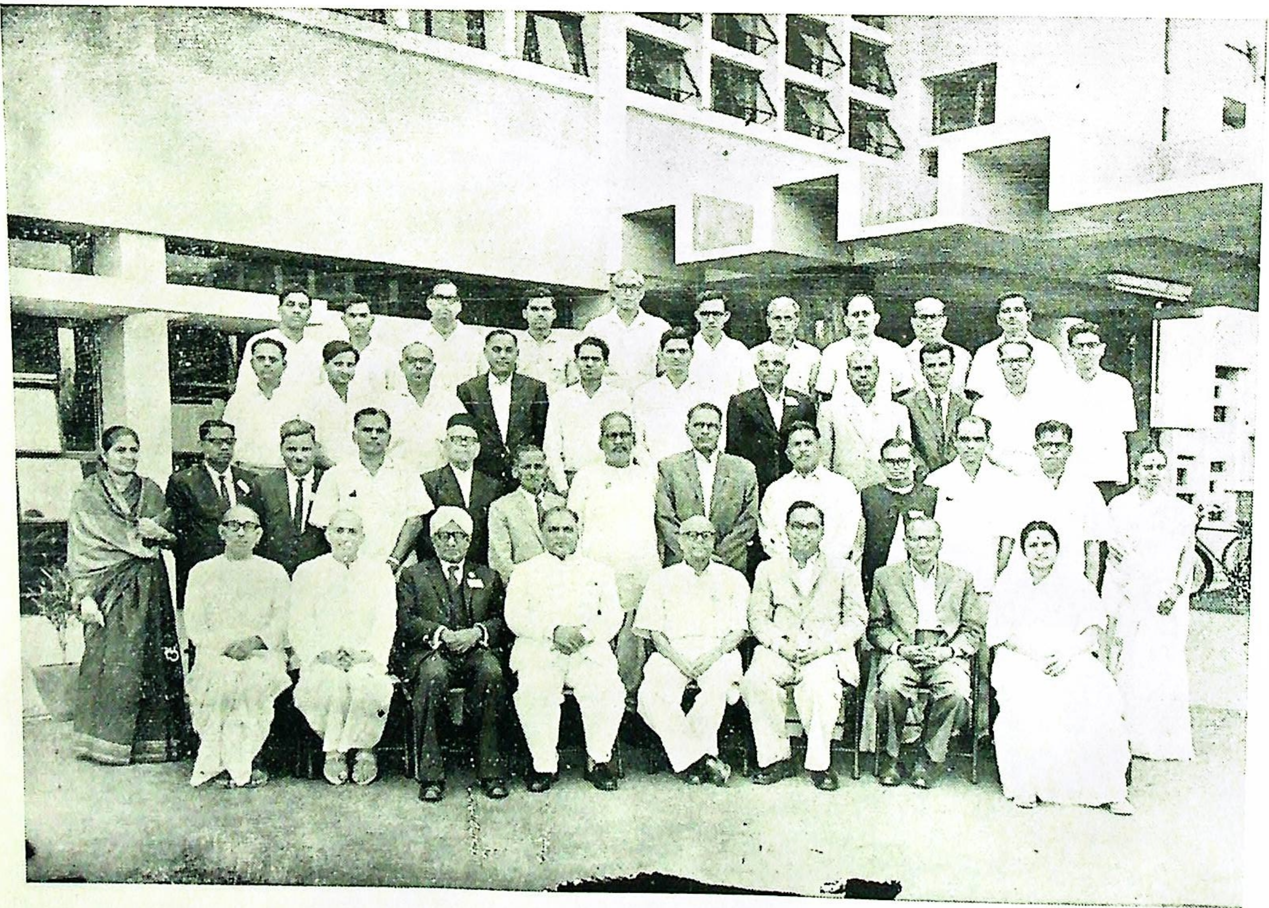
राजस्थानी भाषा सन्मेलन में श्री अगरचन्द जी नाहटा का अभिनन्दन ।



राजस्थान साहित्य अकादमी, उदयपुर में विचार-विमर्श करते नाहटा जी



श्री गुलाबचन्द जी ढड्ढा, श्री बहादुर सिंह सिंघी और
श्री विजय सिंह नाहर के साथ अगरचन्द नाहटा
कलकत्ता में ओसवाल महासम्मेलन में।



कोल्हापुर के प्राकृत भाषा सम्मेलन में एकत्र विद्वत्मण्डली के साथ खड़े हुए अगरचन्द जी नाहटा ।



वम्बई में सम्मानित विद्वत् मण्डली के बीच नाहटा जी ।

साहित्य के पुण्यश्लोक भगीरथ

डॉ० भगवान सहाय पचौरी

फसलें कटकर खलिहानोंमें पहुँचती हैं। खलिहानों से गोदामोंमें और गोदामोंसे सौ टंच स्वर्ण बनकर वे साहूकारोंकी तिजोरियोंकी शोभा बढ़ाती हैं। देश सम्पन्न कहलाता है और देशवासी खुशहाल कहे जाते हैं। पीछे एक वर्ग रह जाता है, खेतोंके कूड़ोंमें-से, गर्तों में से दबे-ढँके अन्नके दानोंको एक-एक चुनकर उठाकर राशि बनानेके लिये। वे अन्नके दाने, जो किसानके लिये, साहूकारके लिये किसी अर्थके नहीं थे, अर्थ बनकर जगमगाते चमकते हैं। ये ही अन्नकण 'सिला' कहलाते हैं और उन मणियोंको चुनने-खोजने बटोरने वाले 'सिलहार' कहे जाते हैं। वेदमें इस सिलेको 'पावनतम' कहा गया है और मैं ऐसे सिलहार को ऋषि कहता हूँ। इन तपःपूत 'ऋषियों'के शुभसीकरों पर वेद-ऋचाएं बलिहार होती हैं। साहित्यकी फसल कटकर जब गोदामोंमें और गोदामोंसे तिजोरियों में पहुँच जाती है, तब साहित्यके खोजी सिलहार-की संवेदना जाग्रत होकर अन्धेरे-धूल-धुँआ-सीलन-सड़न-दुर्गन्ध भरे गोलम्बरों-अलमारियों-ग्रन्थागारों और उन प्राचीन बस्तोंके अन्धेरे-अज्ञात कूँड़ोंमें भटकती है, जहाँ सहस्रों ज्ञानराशिके कणों ग्रन्थरत्नों-को दीमक चूहे-कीट-पतंग-सील-पानी और न जाने कौन-कौन अपना भोज्य बना रहे होते हैं। यह सिलसिला जितना पुराना होता है, उतनी ही उसके खोज-उद्धारकी संभावनाएँ भी क्षीण रहती हैं। हमारी उपेक्षा, हमारा प्रमाद, हमारी मौजी प्रवृत्तिके कारण न जाने कितने ऐसे रत्न अकाल ही नष्ट हो गए और हो रहे हैं तथा कितने ही प्रकाश की किरणोंको तरस रहे हैं। साहित्यके खोजियोंसे यह तथ्य छिपा नहीं है। प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थोंकी यह पूंजी जब प्रकाशमें आती है तो गोदामों और तिजोरियोंके स्वामियोंकी बाँहें खिल उठती हैं। इनसे इतिहास तो अपना प्रामाणिक मार्ग खोजनेमें समर्थ होता ही है, ज्ञान विज्ञानकी नई-नई दिशाएं भी खुल जाती हैं। श्रेष्ठवर श्री अगरचन्द नाहटा उक्त प्रकारके साहित्यके खोजी सिलहारों के सम्राट् निरपवाद रूपसे कहे जा सकते हैं। पत्थर बने सगरसुतोंका उद्धार करनेको भगीरथने तपोबलसे गंगाको भू पर उतारा था। कोटि-कोटि पत्थरोंको नया जीवनदान दिया है साहित्यके इस भगीरथने—इसमें शायद ही किसी को वैमत्य हो। उनके जीवनको प्रायः तीस वर्ष इसी खोज-साधना में व्यतीत हुए हैं।

नाहटाजीको साहित्य-भगीरथ कहनेकी सार्थकता है। उनके महनीय परिश्रम और उनकी समृद्धि सारस्वत-उपलब्धियोंको देखकर सहसा आश्चर्यमें डूब जाना पड़ता है। अनेक साधन-सम्पन्न संस्थाएं मिल-कर इतना महान् उद्योग नहीं कर सकतीं, ऐसा मेरा विश्वास है। मेरे समक्ष संवत् २०१० वि० में प्रका-शित श्री नरोत्तमदास स्वामी द्वारा संकलित रायल अठपेजी आकारकी श्री नाहटाजीके लेखोंकी ६८ पृष्ठों-की सूची है। आज संवत् २०२८ है। १८ वर्ष और ऊपर हो गये। अब तक यह तालिका इससे प्रायः दूनी तो हो ही गई होगी। किन्तु प्रस्तुत तालिकाको ही लें, तो भी यह कार्य साहित्यमें अमर बना देनेको पर्याप्त है। इसमें प्रकाशित लेखोंकी संज्ञा ११६१ है। इस समय यह संख्या ३००० से कदापि कम नहीं हो सकती, ऐसा अनुमान है। सं० २०१० तक नाहटाजी देशके उच्चकोटिकी १४१ पत्र-पत्रिकाओंमें छप चुके थे। आज वे कितने और छपे हैं, इसका अनुमान उनकी कर्मठता, लगन, लेखन-गति और उनके परिश्रमसे सहज ही लगाया जा सकता है।

उन्होंने कई लाख हस्तलिखित प्रतियोंका निरीक्षण किया है। अगणित पाण्डुलिपियों और कई हजार चित्रादिका निजी संग्रह किया है। तीस हजार पाण्डुलिपियोंकी वैज्ञानिक विवरणात्मक सूची भी वे बहुत पहले तैयार कर चुके हैं। ऐसा शायद ही कोई विषय है जिसे उनकी लगनपूर्ण साधनाने अछूता छोड़ा हो।

सन्दर्भ, इतिहास, पुरातत्त्व, कला, साहित्य, अध्यात्म, धर्म, सम्प्रदाय, महापुरुष, साहित्यकार, संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, नगर, तीर्थ, मन्दिर, साहित्य संस्था, पुस्तकालय, आचार, शिक्षा, ज्योतिष, गणित, अर्थशास्त्र, व्याकरण, ज्ञान-विज्ञान आदि सभी पर उनकी खोजपूर्ण लेखनी समान गतिसे सक्रिय रही है, लगता है भारतवर्षका हिन्दीका शायद ही कोई साहित्यिक पत्र ऐसा बचा होगा जिसमें उनकी खोज न छपी हो। प्राचीन जैन पुस्तकालयों और ग्रन्थागारोंमें भी शायद ही कोई उनकी दृष्टिसे बचा हो। जैन साहित्यका खोजी तो शताब्दियों तक उनके समान शायद ही भारत उत्पन्न कर सकेगा। प्राचीन साहित्य के रूपों के नाहटाजी निर्विवाद एकमेव पारखी विशेषज्ञ हैं। उनको कई भाषाओंका चूड़ान्त ज्ञान प्राप्त है।

नाहटाजी ने सं० १९८४में लेख आदि लिखना आरम्भ किया था। विधवा कर्तव्य उनका प्रथम प्रकाशित ग्रन्थ है। सं० २०१० तक उनके प्रकाशित ग्रन्थोंकी संख्या ६१ थी। वे अनेक ख्याति प्राप्त साहित्यिक-सांस्कृतिक-धार्मिक-सामाजिक संस्थाओंके संस्थापक, अभिभाषक, ट्रस्टी, सदस्य हैं। वे राजस्थानी-भारती, (बीकानेर), राजस्थानी, (कलकत्ता), शोध-पत्रिका (उदयपुर), मरुभारती (पिलानी), वरदा, परम्परा आदि प्रसिद्ध पत्र-पत्रिकाओंके सम्पादक तथा संपादक मंडलमें रहे हैं। नाहटाजीकी खोज और उनके लेखन के प्रमुख विषय हैं—जैन साहित्य, इतिहास, राजस्थानी साहित्य और प्राचीन हिन्दी साहित्य। नाहटा-जी ने साहित्यमें सर्वोच्च शोधकारका गौरव प्राप्त किया है। ऐसा कोई विद्वान् या विश्वविद्यालय देशके ओर-छोर तक नहीं जो प्रत्यक्षपरोक्ष नाहटाजी के शोध कार्यसे इस जीवनमें उपकृत न हुआ हो। वे एक आदर्श खोजी हैं, और युगके खोजियोंके मार्गदर्शक प्रेरणा-स्तम्भ हैं। शताब्दियाँ उनकी ऋणी रहेंगी। अपने खोज के क्षेत्रमें वे कोई प्रतिद्वन्द्वी नहीं रखते। जैसी उनकी आकृति-प्रकृति है, वैसी ही विशाल-महान् उनकी सारस्वत-उपलब्धियाँ भी हैं। लक्ष्मी और सरस्वतीके सर्वतोभावेन समान रूप से लाड़ले साहित्यके इस भगीरथके दीर्घायुष्यकी हमारी हार्दिक कामना है।

●

श्रद्धेय श्री अगरचन्दजी नाहटा : प्रथम दर्शन

प्रो० नथुनी सिंह

मैंने गुरुवर डॉ० चन्द्रकुंवरप्रकाशसिंह (अध्यक्ष, हिन्दी विभाग मगध विश्वविद्यालय बोधि गया) का आदेश-पाथेय लेकर अपने शोधके सन्दर्भमें राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान जोधपुरकी यात्रा की। वहाँ ४-५ दिनके अध्ययन-अनुशीलनके पश्चात् मैंने अनुभव किया कि मेरी सामग्रीकी उपलब्धि यहाँ सम्पूर्णतः सम्भव नहीं है। इसी सन्दर्भमें वहाँके वरिष्ठ शोध-सहायकोंसे मेरी बातें हुईं और डॉ० पुरुषोत्तमलाल मेनारिया (कार्यकारी निदेशक, राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर) से भी शोधके सन्दर्भमें कुछ गम्भीर वार्ता हुई। डॉ० मेनारियाने मुझे बीकानेर की यात्रा करनेकी सलाह दी और कहा कि बीकानेरमें श्री अगरचन्दजी नाहटा आपकी अधिक सहायता कर सकेंगे। नाहटाजीसे प्रत्यक्ष परिचय नहीं रहनेके उपरान्त भी उनके विपुल साहित्यसे परिचय तो था ही, अतः मैंने आज्ञा शिरोधार्य कर ली।

ऐसे जब मैं राँची विश्वविद्यालयके अन्तर्गत एम० ए०का छात्र था, तब सर्वप्रथम डॉ० जयनारायण मंडल (अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, राँची कॉंग्रेस, राँची) के श्रीमुखसे मैंने श्री अगरचन्दजी नाहटाका नाम सुना था। हिन्दी साहित्यके इतिहासके आदिकालके पठन-पाठनके सन्दर्भमें डा० मंडलने श्री नाहटा एवं डा०

मोतीलाल मेनारियाकी खोज-पड़तालकी बात चलायी थी। बादमें अपभ्रंश और हिन्दी साहित्यके इतिहासके आदिकालके अध्ययन-अनुशीलनके समय मैंने नाहटाजीका महत्त्व समझा। गुरुवर डॉ० नेमिचन्द शास्त्री (अध्यक्ष, संस्कृत एवं प्राकृत विभाग, जैन कालेज, आरा) ने भी मेरी शोध-सन्दर्भमें श्रीनाहटाजी की बात चलायी थी और उनसे अपेक्षित सहायताकी आवश्यकता प्रकट की थी।

ऐसी मन:स्थितिमें मैं जोधपुरसे बीकानेर चल पड़ा। रात भरकी असीम परेशानीके उपरान्त मैं सुबह बीकानेर पहुँचा। गाड़ीमें मेरे मानस-क्षितिज पर एक प्रश्न बार-बार कौंध रहा था कि मैं सर्वप्रथम श्री नाहटाजीसे क्या कहूँगा? यदि दरवाजा बन्द हो तो कैसे खुलवाऊँगा? परन्तु शीघ्र ही एक पंक्ति समाधान बनकर आई—

'नाहटाजी तो बोलो, जरा दरवाजा तो खोलो।
मैं आया हूं अकेला बीकानेर में।'

खैर, सौभाग्य था कि दरवाजा खुलवानेकी आवश्यकता नहीं हुई। ऐसे उदारमना नाहटाजीका दरवाजा मेरे जैसे पाठकके लिए सर्वदा एवं सर्वथा खुला हुआ है।

एक बहुत बड़ा आलिशान मकान, चारों ओर पुस्तकोंका ढेर। उन्हीं ढेरोंके बीचमें दो वृद्ध मनुष्य गम्भीर अनुशीलनमें रत थे। मेरी बुद्धिको यह समझते देर नहीं लगी कि श्री नाहटा कौन हैं, तत्क्षण श्री देवकीनन्दनजी 'देशबन्धु' ने संकेत भी किया। मैंने जाकर चरण-स्पर्श किया और अपना परिचय दिया। मैंने बहुत थोड़ेमें अपना प्रयोजन बतलाया और डॉ० मेनारियाका संस्तुति-पत्र भी दिखलाया।

'नाहटा' शब्दने उनकी काल्पनिक प्रतिमूर्तिको मेरे मानस-क्षितिज पर दूसरा चित्र अंकित किया था। भोजपुरी एवं हिन्दीमें 'नाटा' कदका वाचक एक चलता एवं प्रसिद्ध शब्द है। मैं समझता था कि यशस्वी स्वर्गीय प्रधान मन्त्री श्री लालबहादुर शास्त्रीकी भाँति यह भी नाटा आदमी अंगूठीका नगीना है। साहित्य-क्षेत्रमें अंगूठीका नगीना होनेके बावजूद आपका शरीर पूरे डीलडौलका है और कहना चाहें तो कह सकते हैं कि हिन्दी साहित्य संसारमें कविवर निराला, पं० नलिनविलोचन शर्मा, डॉ० धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी और डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदीकी परम्परामें नाहटाजी भी आयेंगे। विधाताने इन लोगोंको प्रतिभा देनेमें तो उदारता दिखलायी ही, शारीरिक संरचना, गठन और डील-डौल देनेमें भी कोई कंजूसी नहीं की। इस मानीमें ये उन्हीं लोगोंके समान परम भाग्यशाली हैं।

मैं अपने शोधके सन्दर्भमें बातचीत करने लगा। मेरा विषय है, अपभ्रंश और हिन्दीके काव्य रूपोंका तुलनात्मक अध्ययन।' इस विषय पर उन्होंने स्वयं काफी लिखा है। उन्होंने उन पत्र-पत्रिकाओं की चर्चा की, जिनमें काव्यरूपोंके सम्बन्धमें उनके निबन्ध निकल चुके हैं। उन पुस्तकों एवं विद्वानोंकी ओर भी मेरा ध्यान आकर्षित किया, जिन लोगोंने अपनी कृतियोंमें इस विषयपर अनुसन्धान एवं अनुशीलन किया है। उनके निर्देशनके अनुसार मैं पत्र-पत्रिकाओंको उलटता रहा और मैंने पाया कि काव्यरूपों पर जितनी खोज इस व्यक्तिने की है, हिन्दी-जगत्में उसका जोड़ा नहीं है।

मैं तीन दिनों तक उनके सम्पर्कमें रहा और मैंने पाया कि इस उम्रमें भी इनपर बुढ़ापाका तनिक भी प्रभाव नहीं है। साठ वर्षसे अधिक उम्र होने पर भी अभी यौवन उनपर थिरक रहा है, जवानी अंगड़ाई ले रही है, किस मानीमें? सरस्वतीकी असीम आराधनामें। चौबीस घंटेमें अभी भी १६-१७ घंटे वे अध्ययन पर लगा रहे हैं। एक बैठकमें ५-६ घंटे तक न हिलना-न डुलना। बहुतोंके धैर्य एवं परिश्रमकी परीक्षा हो जाती है। देखा, बहुत देखा परन्तु सरस्वतीका ऐसा आराधक, साहित्य-साधनाका ऐसा अपूर्व पुजारी नहीं देखा। राजस्थानके बालू-काटोंके बीच यह अपूर्व गुलाब खिला हुआ है।

नाहटाजीने साहित्य-साधनाको अपने जीवनका मुख्य प्रयोजन मान लिया है। घरमें एकमात्र महिला अपनी पुत्र वधूके अकाल दिवंगत हो जानेपर भी चेहरेपर शिकन नहीं, साहित्य-साधनामें व्यतिरेक नहीं। यह साहित्य-जगत्का सबसे बड़ा कर्मयोगी है।

इनकी काव्यरूपों एवं साहित्यके इतिहासके धुँधले पृष्ठों पर जो महत्त्वपूर्ण खोज हुई है, उसपर हिन्दी साहित्यके अनेक विद्वान् शोध कर रहे हैं। यही नहीं, सैकड़ों शोधछात्रोंका ये मार्ग-दर्शन कर रहे हैं, हजारों जिज्ञासुओंको आवश्यक सूचनाएँ एवं सामग्री प्रदान कर रहे हैं। ये ऐसे साहित्यिक दानी हैं कि इनके यहाँसे कोई खाली हाथ नहीं लौटता।

अतः परमात्मासे मेरी प्रार्थना है कि इस विधावारिधि, इतिहासरत्न, सिद्धान्ताचार्य, शोध-मनीषीको उनके लिए नहीं, उनके परिवार वालोंके लिए नहीं, उनके नगरके लिए नहीं बल्कि पूरे साहित्य-जगत्के लिए उनके यशकी भाँति उनके पार्थिव शरीरको कालजयी बनावें।



प्राचीन साहित्यके उद्धारक—नाहटाजी

डॉ० शिवगोपाल मिश्र

१९५६ ई० में नाहटाजी ने मेरे अनुरोधपर अपने लेखों और कृतियोंकी एक सूची प्रेषित की थी जिसमें उनके १००० से अधिक लेख १५० से भी अधिक हिन्दीकी पत्र-पत्रिकाओंमें प्रकाशित होनेकी सूची थी। मैं उन दिनों कुतुबनकी 'मृगावती' के सम्पादनका प्रयास कर रहा था और मुझे नाहटाजी के अमूल्य सहयोगकी आकांक्षा थी।

सहस्राधिक लेखोंकी सूची देखकर मेरे मन में सहसा विचार उमड़ा कि आखिर नाहटाजी ने इतने लेख कैसे लिख लिये ? क्या उनके पास कोई विशेष योग्यता है या केवल ज्ञान-पिपासाके वशीभूत होकर वे ऐसा कर रहे हैं ? ज्यों-ज्यों मैं उनके सम्पर्कमें आता गया त्यों-त्यों इनका समाधान होता गया। मैंने देखा कि प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थोंकी जानकारी रखने तथा लगातार नवीन ग्रन्थोंकी खोज करते रहनेमें उनकी विशेष रुचि है। यद्यपि वे पाँचवीं कक्षा तक ही शिक्षा प्राप्त कर सके किन्तु उनकी ज्ञान-पिपासाने उन्हें लगातार नये-नये ग्रन्थों से परिचित होने, उनकी विषय-वस्तु को हृदयंगम करने तथा उस जानकारीको अनुसंधित्सुओंतक सहज भावसे सम्प्रेषित करनेमें ऐसा उन्मुख किया है कि पिछले ४० वर्षों से वे इसी कार्य में लगे रहे हैं।

यदि हिन्दी के हस्तलिखित ग्रन्थोंकी खोजका सही-सही मूल्यांकन किया गया तो इसमें संदेह नहीं कि उसमें नाहटाजी का स्थान सर्वोपरि होगा। उन्होंने हस्तलिपियोंको एकत्र करने, उन्हें पढ़ने तथा विवरण लिखकर पत्रिकाओंमें प्रकाशित करते रहनेमें जो तत्परता दिखाई है, वह विरले ही व्यक्तियोंके लिए सम्भव है।

नाहटाजी का एक अन्य विशेष गुण रहा है दूसरों पर शीघ्र ही विश्वास करके उनके समक्ष अपनी ज्ञान राशिको उपयोगके लिए प्रस्तुत कर देना। यही कारण है कि उन्हें उन महान् कृतियोंके सम्पादनका श्रेय नहीं मिल पाया जिन्हें उन्होंने या तो पहले खोजा या खोजकर दूसरोंके उपयोगके लिए प्रस्तुत किया।

नाहटाजी के कृतित्वका यह प्रधान अंग है। इसके अतिरिक्त उन्होंने भाषा तथा साहित्य, जैन धर्म, पुरातत्व आदि के क्षेत्र में भी उल्लेखनीय योगदान किया है। उनके द्वारा स्थापित 'अभय जैन ग्रंथालय' उनकी सुरुचि एवं उनके कर्तृत्वका उद्घोषक है। किसी प्रकारकी ख्यातिकी परवाह किये बिना नाहटाजी एकान्त भावसे हिन्दीकी सेवा करते रहे हैं।

अपने हिन्दी साहित्यके इतिहास सम्बन्धी ज्ञानके आधार पर उन्होंने इतिहासकी भद्दी से भद्दी भूलों-की ओर संकेत किया है। वे प्राचीन परम्परा के होते हुए भी चिर नवीन हैं। वे परम जिज्ञासु हैं और अपने से छोटों से भी सीखनेमें संकोच नहीं करते।

प्रेरणा के स्रोत

नाहटाजी ने स्वीकार किया है[1] कि पुस्तकोंके विवरण लेनेकी पद्धतिमें जैन साहित्यके महारथी स्व० मोहनलाल देशाईसे उन्होंने प्रेरणा प्राप्त की। अन्यत्र वे लिखते हैं[2] कि अनुभवी विद्वान्का सहयोग प्राप्त न होने पर हमने अपनी अत्यधिक साहित्य रुचि और अदम्य उत्साहसे प्रेरित होकर यथासाध्य सम्पादन किया है.......हम विद्वान् नहीं हैं, अभ्यासी हैं........।

नाहटाजी का विशेष झुकाव जैन साहित्यकी ओर रहा है। वे स्वयं जैनी हैं किन्तु वे लिखते हैं[3] कि ज्ञानसारजी के साहित्यसे हमारा सम्बन्ध विद्यार्थी कालसे है। हमने अपनी माँ के लिए पहले पाठ नकल किया और जब कृपाचन्द्रसूरि बीकानेर पधारे और चातुर्मास किया तो उनके सम्पर्कसे जैन तत्त्व ज्ञान और साहित्यकी ओर रुचि विकसित हुई।

साहित्यान्वेषणके साथ-साथ उन्होंने[4] अपना ध्यान कूड़े-कचरेमें डाले जाने वाले प्राचीन साहित्यकी अमूल्य निधिकी ओर फेरा जो विनष्ट हो रहा था।

ऐसे कर्मठ तपस्वी, साहित्यकार एवं प्राचीन साहित्यके उद्धारककी सेवामें शतशत अभिनन्दन एवं विनीत प्रणाम है।

●

मधुर स्मृति

प्रो० अखिलेश, एम० ए०

सन् १९५८ में एम० ए० परीक्षा उत्तीर्ण करने के उपरान्त अनुसन्धान कार्य करने की ओर मेरी सहज प्रवृत्ति हुई और मैं अपने मनोनुकूल विषय चयन-करने हेतु प्रयत्नशील हुआ। आगरे से स्व० बाबू गुलाबराय एम० ए० एवं आदरणीय डा० सत्येन्द्र जी (जयपुर विश्वविद्यालय के हिन्दी विभागाध्यक्ष) के कुशल सम्पादन में 'साहित्य सन्देश' नियमित रूप से प्रकाशित होता था। उसमें 'अज्ञात कविपरिचय' नामक लेखमाला के लेखकके रूप में प्रायः आदरणीय श्री अगरचन्दजी नाहटाके लेख प्रकाशित होते थे। संयोगवश

१. राजस्थानमें हिन्दी के हस्तलिखित ग्रन्थोंकी खोज, भाग २, प्रस्तावना।

२. ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह की भूमिका।

३. ज्ञानसार ग्रंथावलीकी भूमिका।

४. वही।

एक दिन आदरणीय डॉ० ब्रजलालजी वर्मा (डी० ए० बी० कॉलेज कानपुर) से नाहटाजी की विद्वत्ता और एकान्त साहित्यसाधनाकी चर्चा सुनकर मेरा भावुक मन नाहटाजीकी ओर आकर्षित हुआ और मैंने अपने विषय-चयन हेतु किंचित् संकोच-वश पत्र व्यवहार प्रारम्भ किया। तीसरे दिन नाहटाजीका स्नेहिल पत्र मुझे प्राप्त हुआ, जिसमें उन्होंने अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक मेरा मार्ग-दर्शन करना स्वीकार करते हुए सूचित किया कि राजस्थान में अनुसंधान कार्य हेतु सैकड़ों विषय हैं, कठिनाई यह है कि कोई काम करने वाला ही नहीं मिलता।' लम्बे परामर्श के उपरान्त ''जैन कवि वाचक मालदेव और उनका साहित्य''नामक विषय पर कार्य करना तय किया क्योंकि मैं चाहता था कि अनुसन्धान कार्य की सारस्वत गरिमा और पवित्रता को सुरक्षित रखने हेतु ऐसे विषय का चयन किया जाना चाहिये, जो सर्वथा नवीन और साहित्यिक दृष्टि से उपयोगी हो। सागर विश्वविद्यालय की अनुसन्धान समिति ने डॉ० ब्रजलाल के निर्देशन में शोध कार्य करने की स्वीकृति प्रदान की। बस यह मेरा नाहटा जी से प्रथम परिचय था।

अब विषय तो स्वीकृत हो चुका था परन्तु अन्यान्य समस्यायों के कारण लगभग दो वर्ष तक इधर-उधर की सूचनाएँ एकत्र करने के अतिरिक्त शोध कार्य में विशेष प्रगति न हो सकी। विषय राजस्थान से सम्बन्धित था। अधिकांश सामग्री वहीं थी परन्तु जाना न हो पाया। इस बीच मेरे प्रमाद को भंग करने हेतु नाहटाजी के पचीसों पत्र मुझे झकझोरते रहे और उस दिन तो मैं आश्चर्य चकित अवाक् रह गया जब शोध में प्रकाशित कविवर मालदेव की रचनाओं का विस्तृत परिचय मेरी जानकारी हेतु उन्होंने भेजा और प्रेम भरी फटकार सुनाते हुए शीघ्र ही बीकानेर आने के लिये आमंत्रित किया। मरता क्या न करता! एक दिन कानपुर सेन्ट्रल स्टेशन से महीनों की शोध यात्रा की तैयारी कर राजस्थान के लिये रवाना हुआ और अपने आने की अग्रिम सूचना तार द्वारा नाहटाजी को भेज दी।

कानपुर से बीकानेर का लम्बा सफर! चौवीस घंटे से भी अधिक का समय! गाड़ी सुबह सात बजे बीकानेर पहुँची। बीकानेर में पानी की कमी का मैंने मन ही मन अनुमान कर लिया था। अत: स्टेशन पर ही नहा धोकर नाहटों की गवाड़ (नाहटाजीका निवास स्थान) के लिये प्रस्थान करना उचित जान पड़ा। स्टेशन से बाहर आते ही मुझे सुखद आश्चर्य की अनुभूति यह जानकर हुई कि श्री नाहटाजीसे अधिकांश ताँगेवाले परिचित से हैं। तांगे द्वारा नाहटाजीके यहाँ पहुँचा। नाहटाजी श्री अभय जैन ग्रंथालय से घर की ओर भोजन हेतु आ रहे थे। तांगा रुका! मुझे देखते ही बोले ''मैं आज प्रतीक्षा ही कर रहा था और मुझे निश्चय था कि तुम इसी गाड़ी से आओगे। अच्छा हुआ आ गये। मार्ग में कोई विशेष कठिनाई तो नहीं हुई। लम्बा सफर था न! मेरी विचित्र स्थिति हो गयी जैसे मेरे मानस में काल्पनिक नाहटाजी की आकृति भाद्रपद की घनघोर घटा यामिनी में तीक्ष्ण दामिनी की भांति कौंधकर अकस्मात् विलुप्त हो गयी। अब मेरे सामने ढलती वय का एक ऐसा व्यक्ति खड़ा था जिसके सिर पर लम्बी ऊँची पगड़ी, बड़ी-बड़ी सघन किन्तु अधिकांश श्वेत मूँछें और उनके नीचे दमकती हुई ओष्ठ दीप्ति, आँखों पर मोटे फ्रेम का चश्मा, प्रशस्त ललाट, लम्बी सुघड़ नासिका, गेहुँवावर्ण—जो अब अपेक्षाकृत श्यामल हो चला है। श्वेत कुर्त्ती और धोती का सुन्दर आकर्षक राजस्थानी परिधान! स्नेहस्निग्ध व्यक्तित्व! किसी राजस्थानी चारण का गाया हुआ निम्नांकित दोहा मैं सस्वर गुनगुना उठा—

तन चोरवा मन ऊजला, भीतर राखै भावा।
किनकावुरान चीतवै, ताकूँ रंग चढ़ावा॥

नाहटाजीने मुझे हृदय से लगा लिया और घूरते ही बोले—जल्दी से नहा धो लो फिर भोजन किया जाय। मैं प्रतीक्षा कर रहा हूँ।

जिसे आदमी मनमें बड़ा मान लेता है उसके बारे में सार्वजनिक रूपसे कुछ कहते हुए संकोच करता है। इसे मेरा सौभाग्य समझिये चाहे स्वभाव, जीवन के सभी क्षेत्रों में मुझे ऐसे व्यक्ति रत्नों का सांनिध्य प्राप्त होता रहा है, जिन्होंने अनायास ही मुझे अभिभूत कर दिया है परन्तु मैंने यथासम्भव अपनी यह भावना शीलवश कभी उनपर प्रकट नहीं की क्योंकि कई बार आदर को व्यक्त कर देना, सो भी आदरणीय के सामने, एक प्रकार की वाचालता सी प्रतीत होती है। नाहटाजीके प्रथम साक्षात्कार के समय मानस में आन्दोलित विपुलभावोर्मियां तो शांत हो गईं परन्तु उनकी अयाचित कृपा दृष्टि से मेरे नेत्र सजल हो उठे।

नाहटाजीके सांनिध्य में रहकर मैंने कविवर मालदेवकी दशाधिक रचनाओं की दुर्लभ प्राचीन पांडु-लिपियों से प्रतिलिपियाँ और काव्यमें व्यक्त विचारों को भलीभाँति समझता रहा। बीकानेर नरेश के अनूप संस्कृत पुस्तकालय और अन्यान्य स्थानों से सामग्री-संचयनका कार्य उन्हीं की देख-रेख में सम्पादित हुआ। उनकी निस्पृह निरुपाधिक एकान्त साधना प्रातः से सायंतक श्री अभय जैन ग्रंथालय में विगत चालीस वर्षोंसे अव्याहत गति से सतत प्रवाहमान है।

अभी तक नाहटाजीके सुयोग्य मार्ग-दर्शनमें सैकड़ों शोध-छात्रोंने प्राचीन इतिहास और साहित्यकी विभिन्न विधाओंमें शोध-कार्य द्वारा विश्वविद्यालयोंसे डाक्टरेटकी उपलब्धियाँ प्राप्त कर चुके हैं। राजस्थानकी विशिष्ट साहित्यिक पत्रिकाओंका उन्होंने वर्षों योग्यता पूर्वक सम्पादन किया है और भारतकी प्रसिद्ध पत्रि-काओंमें उनके तीन हजारसे भी अधिक विचार पूर्ण लेख प्रकाशित हो चुके हैं।

नाहटाजीके सम्पर्कमें बीते वे दिन आज बलात् स्मरण हो रहे हैं। राजस्थान, उत्तर प्रदेश, बिहार-उड़ीसा, बंगाल, आसाम आदि प्रान्तोंमें फैले हुए व्यापारिक सम्बन्धोंकी चिन्ताओंसे तटस्थ वीतरागी नाहटा-जी भी भारतीके भांडारको नितनूतन रत्नोंसे आपूरित करनेके लिए कृतसंकल्प हैं। अनवरत अध्ययनके कारण उनकी नेत्र-ज्योति क्षीण हो रही है परन्तु उनको इसकी चिन्ता कहाँ। मनस्वी शरीरकी सीमाओंमें कब बँध सके हैं? उन्हें तो जीवनके एक-एक क्षणको परहित हेतु अविकल भावसे उत्सर्ग करना है—

काछ हठा, कर बरसणा, मन चंगा मुख मिट्ठ,
रण सूरा जग वल्लभा, सो मैं बिरला दिट्ठ,

नाहटाजी इस उक्तिके साकार स्वरूप है। परमचरित्रवान्, मोहवासना और भौतिक एषणाओंने उन्हें कभी पराभूत नहीं किया। विवेक ही उनका पथ-प्रदर्शन है और मधुर-भाषण सहज प्रकृति। 'रणशूर' तो वे हैं ही। अनेक साहित्यिक विधाओंमें उनकी एक साथ सहज गति और गहरी पैठ देखकर 'जगवल्लभ' की उक्ति भी सही चरितार्थ होती है। श्री नाहटाजी की मानस-सीपी अभी और कृतियोंके आबदार मोती देगी––उनके भावोंके और सरसिज फूलेंगे विचारोंका अभी और मकरन्द निर्पारित होगा, ज्ञानकणोंका अभी और पराग विकीर्ण होगा––यह हमारा विश्वास है।

मैं नाहटाजीके अभिनन्दनको मां भारतीका अभिनन्दन मानता हूँ और उनके दीर्घ जीवनकी कामना करता हुआ अपने विनम्र प्रणाम अर्पित करता हूँ—

वन्दनाके इन स्वरोंमें एक स्वर मेरा मिला लो!

●

साहित्य-तपस्वी नाहटाजी

डॉ० ज्योतिप्रसाद जैन, लखनऊ

बन्धुवर श्री अगरचन्द नाहटा एक सद्गृहस्थ और सफल व्यापारी हैं। प्रारम्भिक शिक्षा-दीक्षा उनकी विशेष नहीं हुई—शायद हाईस्कूल पास भी नहीं हैं और न किसी संस्कृत विद्यालय या परीक्षालयकी ही कोई उल्लेखनीय परीक्षा उत्तीर्ण हैं। एक सामान्य बणिक्पुत्रको जो कामचलाऊ स्वभाषामें पढ़ने लिखने व हिसाब आदिकी चटसाली शिक्षा होती है उसीको लेकर वह चले।

वेषभूषा, आहार-विहार एवं आदतें अत्यन्त सादा, तड़क भड़कसे कोसों दूर हैं।

वास्तवमें, उपरोक्त पृष्ठभूमि वाले व्यक्तिसे जिस बातकी आशा प्रायः नहीं की जाती, उसे नाहटाजीने आश्चर्यजनक रूपमें करके दिखा दिया। साहित्यके क्षेत्रमें जिस चाव, उत्साह, लगन और अध्यवसायके साथ गत लगभग चालीस वर्षोंसे वह उत्कट एवं निरन्तर साधना करते चले आये हैं और फलस्वरूप जैसी और जो-जो उपलब्धियाँ उन्होंने प्राप्त की हैं, उसके अन्य उदाहरण अति विरल हैं।

पुरानी हस्तलिखित प्रतियोंकी खोज-तपास, अपने निजी पुस्तकालयमें उनका अथवा उनकी प्रतियों का संग्रह-संरक्षण, उनपर शोध और उक्त शोध खोजके परिणामोंसे विद्वद्जगत्को तत्परताके साथ परिचित कराते रहना नाहटाजीकी प्रमुख साहित्यिक प्रवृत्तियाँ रही हैं।

उनको दृष्टि मूलतः ऐतिहासिक है। तुलनात्मक अध्ययनकी ओर विशेष झुकाव है। उनका कार्य-क्षेत्र प्रमुखतया जैन साहित्य रहा है, उसमें भी विशेष रूपसे देशभाषाओं—हिन्दी, राजस्थानी, आदिमें रचित श्वेताम्बर साहित्य, किन्तु वह वहींतक सीमित नहीं है। दिगम्बर अथवा स्थानकवासी आदि साहित्य को जब जहाँ उनके दृष्टिपथमें आया बिना साम्प्रदायिक पक्षपातके उसी प्रकार उनकी दिलचस्पीका विषय बना। इतना ही नहीं, जैनेतर हिन्दी एवं राजस्थानी साहित्य की शोध खोजमें भी नाहटाजीका योगदान पर्याप्त महत्त्वपूर्ण रहा है। विभिन्न विश्वविद्यालयोंके अनेक शोधार्थियोंको भी उनसे अमूल्य सहायता मिलती रहती है।

कई साहित्यिक पत्र-पत्रिकाओंके तथा अभिनन्दनग्रन्थ, स्मृतिग्रन्थ, स्मारिकाओं आदिके सम्पादनमें सक्रिय भाग लेनेके अतिरिक्त दर्जनों छोटी-बड़ी पुस्तकों की रचना नाहटाजीने की है। विभिन्न जैनाजैन पत्र-पत्रिकाओंमें प्रकाशित उनके लेखों की संख्या तो तीन सहस्रसे अधिक हो तो आश्चर्य नहीं।

आप दूसरे लेखकों को कृतियों की समीक्षा भी खरी करते हैं। त्रुटियों या गलतियों को दो-टूक सीधे शब्दोंमें, बिना किसी तकल्लुफके, गिना डालते हैं। साथ ही यदि स्वयं उनके किसी कथन या कृति की समालोचना कोई दूसरा करता है तो उसे भी अन्यथा नहीं लेते और अपनी भूल सुधार करनेमें संकोच नहीं करते।

श्री नाहटाजी की भाषा और शैली पंडिताऊपनसे अछूती, सीधी, सरल, तथ्यपरक होती है। किन्तु लिखते ऐसा शिकस्त हैं कि उनके लेखों और पत्रों को, जब-जब वे स्वयं अपने हाथसे लिखा ही भेज देते हैं, पढ़ना एक अच्छी खासी कसरत हो जाती है। अपनी तो हम जानते हैं कि तीस वर्षसे कुछ अधिक समयसे उनके साथ पत्राचार है और उनके हाथके लिखे सैकड़ों पत्र प्राप्त हुए, पढ़े भी—पढ़ने पड़े, किन्तु अब भी यह दावा नहीं कर सकते कि उनका पत्र पाया और खटाखट पढ़कर सुना दिया। वैसे नाहटाजी बहुधा यह कृपा करते हैं कि अपने किसी सहायक आदिसे अपने लेखों की, और कभी-कभी पत्रों को भी नकल करवा कर अथवा बोलकर उनसे लिखाकर भेजते हैं।

छः-सात वर्ष पूर्व आरामें जैन सिद्धान्त भवनकी हीरक जयन्तीके अवसर पर मिलना हुआ था, उसके बाद अभी तक सुयोग नहीं मिला। किन्तु पत्रोंके आदान-प्रदानमें कोई व्यवधान नहीं पड़ा। कई बार उनके साथ मतभेद भी हुए किन्तु शुद्ध साहित्यिक (एकेडेमिक) स्तर पर ही रहे, पारस्परिक सम्बन्धोंमें कभी भी रंचमात्र कटुता नहीं आई, वरंच सौहार्दमें वृद्धि ही हुई। जितने जबरदस्त लिक्खाड़ वह हैं, कम ही देखनेमें आते हैं। मित्रोंको लिखनेकी निरन्तर प्रेरणा देने वालोंमें भी हमारे अपने अनुभवमें तो अद्वितीय सिद्ध हुए हैं। यह बात दूसरी है कि उनकी प्रेरणाएँ हमारी अपनी व्यस्तताओं, अस्वास्थ्य और सबसे अधिक प्रमादके कारण विशेष फलवती नहीं हो पातीं और चाहकर तथा चेष्टा करके भी लिखनेकी होड़में हमने स्वयं को उनसे सदैव कोसों पीछे पाया।

भाई अगरचन्द नाहटा अवश्य ही न शकल सूरतसे तपस्वी हैं, न रहन-सहनमें तपस्वी हैं, किंतु साहित्य की साधनामें उनका जो सतत एकनिष्ठ अध्यवसाय है, वह किसी तपस्वीसे कम नहीं है।

हिन्दी साहित्य जगत् पर सामान्यतः और जैनसाहित्य जगत्पर विशेषतः उनका जो उत्तरोत्तर वृद्धिगंत ऋण है, उससे उऋण नहीं हुआ जा सकता। ऐसे मनस्वी, मनीषी ज्ञानाराधक बन्धु एवं सहयोगीके सुयोगसे कौन गौरवान्वित अनुभव न करेगा। हमारी हार्दिक शुभ-कामना है कि बन्धुवर नाहटाजी शतायु हों और स्वस्थ सानन्द रहते हुए भारतीके भंडारको उत्तरोत्तर अधिकाधिक भरते रहें।

•

शोध वारिधि, नररत्न नाहटाजी

श्री रवीन्द्र कुमार जैन

सन् १९५७ की बात है, मैंने कविवर बनारसीदास पर, कुछ महत्त्वपूर्ण हस्तलिखित प्रतियाँ, जो श्री अगरचन्दजी नाहटाके निजी पुस्तकालयमें थीं, देखनेकी इच्छा नाहटाजी के समाने प्रकट की थी। नाहटाजी ने तत्काल जो उत्तर दिया वह आज भी मुझे अक्षरशः याद हैं। "मेरे निजी पुस्तकालयमें लगभग ३०,००० हस्तलिखित ग्रन्थ हैं। उनमें अनेक आपके काम के हैं। आप कभी भी आकर उनका यथेच्छ उपयोग कर सकते हैं। मैंने यह संग्रह आप जैसे शोधकोंके लिए ही तो किया है। आप आइए और मेरे घरमें मेरे भाई की भाँति रहिए। आशा है, आप शीघ्र बीकानेर आएँगे।"

मैं नाहटाजीका पत्र प्राप्त करते ही बीकानेर गया। उन्होंने मुझे वहाँ अपना पूरा पुस्तकालय सौंप दिया और स्वयं मेरे लिए अनेक उपयोगी हस्तलिखित एवं मुद्रित प्रतियाँ जुटायीं। मेरा शोधका विषय उनका भी प्रिय-विषय था। अतः उन्होंने उसमें सहज ही आशातीत रुचि ली। कविवर बनारसीदासकी रचनाओंपर समीक्षात्मक एवं गवेषणात्मक उनके कई लेख प्रकाशित हो चुके थे। केवल ग्रन्थोंका सुझाव देना और विषयपर अपना महत्त्वपूर्ण मन्तव्य प्रकट करना ही उनके महान् एवं शोधानुरागी व्यक्तित्वके लिए पर्याप्त न था; अतः स्वयं बड़ी तन्मयता एवं सतर्कतासे उन्होंने मेरी उस समय तक तैयार की गयी पांडुलिपिको सुना और कई महत्त्वपूर्ण सुझाव भी दिये। मैं नाहटाजी के घर लगभग आठ दिन रहा। प्रतिदिन वे मुझे तीन-चार घंटे का समय देते रहे। मुझपर उनके इस दिव्य व्यक्तित्त्वकी अमिट छाप उसी समय पड़ गयी। वे अत्यन्त सरल स्वभावी, सादगीमय, विद्याप्रेमी एवं विद्वत्प्रेमी हैं। वे मूलतः महान् नैतिक एवं सांस्कृतिक मूल्योंमें

आस्था रखनेवाले व्यक्ति हैं। प्रायः लोग स्वयं विद्वान् होते हैं, स्वयंके उन्नयनके लिए ग्रन्थ लिखते हैं और स्वयंके लिए ही धन व्यय आदि भी करते हैं। श्री नाहटाजीमें स्वयंकी अपेक्षा दूसरोंको विद्वान् देखनेका देवोपम गुण है। वे एक क्षणके लिए भी सम्पर्कमें आये व्यक्तिको भूलते नहीं। प्रत्येक को बारीकीके साथ याद रखते हैं। मैं उनके प्रति जितनी भी कृतज्ञता व्यक्त करूँ थोड़ी होगी, फिर उन्हें यह पसन्द भी नहीं है।

उनके परिवारने भी मुझे ऐसा अपनाया कि मैंने एक क्षणके लिए भी यह अनुभव नहीं किया कि मैं अपने घरसे दूर हूँ। प्रायः लोगोंको अपने निजी रिश्तेदार भी एक ही दिनमें भार लगने लगते हैं फिर गैरोंको तो कौन पूछता है? परन्तु नाहटाजीके घरमें यह भेदक-रेखा मैंने नहीं देखी। एक दो दिनके बाद तो मैं स्वयं ही सहजतासे अपनी आवश्यकताकी सभी वस्तुएँ प्राप्त कर लेता था। स्नान, भोजन, चाय-पान आदिके लिए मुझे कोई बुलाये तभी जाऊँ, ऐसी बात न थी। नाहटाजी ने स्वयं ही कहा था 'आपका घर है, संकोच मत कीजिए।''

आज मैं शुद्ध हृदयसे यह अनुभव करता हूँ कि नररत्न श्री अगरचन्दजी नाहटाके गुणोंका स्मरण करना, सचमुच स्वयंमें कुछ बृहत्तर पा लेनेका ही एक भव्य प्रयास है। उनका अभिनन्दन कर उनको अभिनन्दन ग्रन्थ समर्पित करनेका भव्य आयोजन शतशः प्रशंसनीय एवं औचित्यपूर्ण है।

भारतकी शायद ही कोई साहित्यिक, सांस्कृतिक एवं शोधपरक पत्रिका हो, जिसमें श्री नाहटाजीके महत्त्वपूर्ण एवं शोध परक लेख प्रकाशित न होते रहे हों।

अन्तमें मैं यही कहूँगा कि वे साधारण होते हुए भी असाधारण हैं, विद्वान् एवं परम शोधक होते हुए भी विनयी हैं और वयोवृद्ध होते हुए भी विचारों, भावनाओं तथा शोधवृत्तिके स्तरपर चिर युवा हैं। वे व्यक्ति होते हुए भी एक संस्था हैं, एक युग हैं।

●

मेरे प्रेरणास्रोत

श्री प्यारेलाल श्रीमाल 'सरस'

एम० ए०, संगीत प्रवीण, वाद्य-विशारद,

२६ नवम्बर १९६१की सुबहका समय। उज्जैनमें आयोजित अखिल भारतीय लोक संस्कृति सम्मेलनमें मैं सेमिनारमें अपना निबन्ध 'शास्त्रीय एवं लोक संगीत—एक तुलनात्मक विवेचन' पढ़ रहा था। मुझे नहीं मालूम कि उपस्थित विद्वानोंमें स्वनामधन्य श्री अगरचन्दजी नाहटा भी हैं। मैं जब एम० ए० का छात्र था, तभीसे उनके नामसे भलीभाँति परिचित हो चुका था व उनके प्रति श्रद्धावनत था। उनकी विद्वत्ताके प्रभावने मेरे मनपर उनकी कुछ ऐसी तस्वीर बना दी थी कि सूटबूटमें कोई रोबदार चेहरेवाला व्यक्ति होगा अथवा धोती कुर्ते वाला होगा तो भी गुरु गम्भीर भावमुद्राधारी चेहरे वाला होगा। इस कारण भी उस समय उन्हें अपनी सादी परम्परागत बीकानेरी पोशाकमें पहचानना मेरे लिये सम्भव नहीं था। निबन्धवाचन के तत्काल पश्चात् मैं शाजापुर चला गया।

कुछ दिनोंके बाद साप्ताहिक पत्र 'श्वेताम्बर जैन' की प्रति मेरे पास आई। 'व्यक्ति दर्शन' स्तम्भके अन्तर्गत मैं अपना परिचय पढ़कर अवाक् रह गया और अधिक आश्चर्य तो यह देखकर हुआ कि उसके लेखक थे श्री अगरचन्दजी नाहटा। अखिल भारतीय क्या, अन्तर्राष्ट्रीय स्तरका विद्वान् कहूँ तो अतिशयोक्ति न होगी। ऐसा महान् व्यक्ति मुझ अकिंचनके सम्बन्धमें समय निकालकर दो शब्द लिखे, यह मेरे लिये कम गौरवकी बात नहीं थी। उन्होंने 'श्वेताम्बर जैन' में लिखा—'उज्जैनके श्री प्यारेलाल श्रीमालके नाम एवं लेखोंसे तो मैं परिचित था पर एक बार अखिल भारतीय लोक संस्कृति सम्मेलनके अधिवेशनमें मुझे उज्जैन जाना पड़ा तो वहाँ श्री प्यारेलाल श्रीमालका एक निबन्ध 'लोक संगीत एवं शास्त्रीय संगीत'के सम्बन्धमें सुननेको मिला। उससे उनके संगीत प्रेम व जानकारीसे मैं विशेष प्रभावित हुआ। यद्यपि उनसे बातचीत करनेका मौका वहाँ नहीं मिल सका पर उनकी आकृति और व्यवहारसे उनके व्यक्तित्वका कुछ आभास मिल गया। ....आवश्यकता है ऐसे छिपे हुए रत्नोंका समाजकी ओरसे उचित सम्मान किया जाये, उनसे लाभ उठाये और उन्हें आगे बढ़नेमें प्रोत्साहित करे।'

मेरे सम्बन्धमें इतने विस्तारसे जानकारी श्री नाहटा साहबको किसने दी होगी, जब मैंने यह विचार किया तो मुझे लगा कि फरवरी १९६२ के 'संगीत'में श्री शीतलकुमार माथुर 'संगीत प्रभाकर' द्वारा लिखित मेरी जीवनीसे उन्होंने सहायता ली होगी। बड़ी देर तक फिर मैं यह सोचता रहा कि जो व्यक्ति सैकड़ों दुर्लभ ग्रन्थोंके मनन चिन्तनमें व्यस्त है, जिसका मस्तिष्क सैकड़ों कठिन विषयोंकी सामग्रीका कोष बन चुका है, उसकी स्मरण शक्ति यह भी बतानेके लिए समर्थ है कि किस मासके किस पत्रमें संगीतके एक अदनेसे उपासक प्यारेलाल श्रीमालकी जीवनी छपी हुई है। श्री नाहटा साहबकी इस तीव्र स्मरण शक्तिका लोहा मानते हुए मुझे अपने उन सहपाठियोंपर तरस आया, जिनकी स्मृतिसे मेरी शक्ल कुछ ही अरसा गुजरनेके बाद ओझल हो चुकी है।

'श्वेताम्बर जैन' को पढ़कर मेरे अभिभावक श्री सौभाग्यमलजी जैन वकीलने मुझे बताया कि मेरे निबन्धपठन वाले दिन शामको श्री नाहटा साहबसे उनकी भेंट हुई थी। श्री नाहटा साहबने प्राचीन ग्रन्थोंको देखनेकी तथा जैन समाजके प्रमुख लोगोंसे मिलनेकी इच्छा प्रकट की। प्रमुख लोगोंमें किसीने स्थानीय मिल मालिकका नाम बताया। तब वे तुरन्त बोले—'मुझे ऐसे व्यक्तियोंसे मिलना है जो कलाकार हों, साहित्यकार हों, समाजसेवी हों।' तब श्री सौभाग्यमलजीने मेरा नाम सुझाते हुए कहा कि वे आज निबन्धपठनके बाद शाजापुर चले गये हैं।

समाजमें कलाकार, साहित्यकार, समाजसेवीकी इस प्रकार खोज करने वाले तथा उदीयमान प्रतिभाओंको प्रोत्साहन देने वाले श्री नाहटा साहबके समान जैन समाजमें कितने लोग मिलेंगे? आज भारतवर्षमें दूर-दूर से अनेक पण्डित और शोध-छात्र उनसे मार्ग दर्शन प्राप्त कर रहे हैं। श्री नाहटा साहब सच्चे अर्थोंमें एक जौहरी हैं। वे यत्रतत्र बिखरे रत्नोंकी परख जानते हैं। उनके अन्तरमें इस बातकी तड़प है कि इन रत्नोंका सही मूल्यांकन हो, सही उपयोग हो ताकि समाज और राष्ट्रका भला हो। यही कारण है कि उन्होंने बिना मेरे साक्षात्कारके, बिना किसी प्रकारके विशेष परिचयके मुझे पहचान लिया व मुझे प्रोत्साहन प्रदान किया।

वे केवल 'श्वेताम्बर जैन' में मेरा परिचय भेजकर ही चुप नहीं रहे, अपितु एक पत्र भी मुझे भेजा जिसमें उन्होंने लिखा कि आप जैन संगीत पर शोध कार्य कीजिए व तत्सम्बन्धी पार्श्वनाथ जैन संगीतसार, संगीतोपनिषद् सारोद्धार आदि ग्रन्थोंके नाम भी सुझाये। इस अमूल्य प्रेरणाने मेरे जीवनको एक नई दिशा

प्रदान की है और उनके आशीर्वाद से इस कार्यमें जुट गया हूँ। जैन संगीतके प्रति उत्पन्न मेरी इस रूझानने अब मुझे 'आनन्दघनजी महाराज' पर भी लेखनी उठानेको विवश किया है।

देशके प्रकाण्ड विद्वान्का इतना मुझपर अनुग्रह! मैं व्यग्र था उनके दर्शनोंके लिए। सहसा एक दिन एक मित्र बोला—"श्री नाहटाजी उज्जैन आये हुए हैं और आपको याद किया है" मेरे हर्षकी सीमा नहीं थी। पहली बार दर्शन किये। बीकानेरी पगड़ी, लम्बाकोट, दोलंगी धोती। बातचीतसे यह पता नहीं लग रहा था कि किसी महापण्डितसे बात कर रहा हूँ या किसी एक सामान्य व्यापारीसे जो संकोच, शिष्टाचार और बातचीतका व्यवस्थित तारतम्य मैं मनमें जुटा कर ले गया था, वह उनके मिलते ही न जाने कहाँ काफूर हो गया। सादगी और सरलताको मैं मूर्तरूपमें देख रहा था। अपना वेश, अपनी भाषा, अपनी संस्कृतिकी बात करने वाले तो बहुत देखे किन्तु श्री नाहटाजीको देखकर मुझे लग रहा था कि बात करना कुछ अलग होता है और आचरण करना कुछ अलग। उसी दिन शामको आपके सम्मानमें जैन समाजकी ओर से एक समारोह आयोजित किया गया। इस आयोजनमें जो विचार आपने प्रकट किये, उनसे मुझे आपकी उत्कट लगन, कठिन परिश्रम, अनन्य विद्यानुरागके बारेमें विस्तारसे प्रेरणास्पद जानकारी मिली।

श्री नाहटाजी से मेरी दूसरी भेंट हम्पी (मैसूर राज्य) में श्रीमद्‌राजचंद्रजी शताब्दी महोत्सव के अवसर पर हुई। स्व० श्री सहजानंदजी महाराजजीने दोपहर ३ से ४ का समय श्री नाहटा साहब के विचारों को सुननेके लिये नियत करा दिया था। उपस्थित विशाल समुदाय ने कई विकाश योजनाएँ बनायीं व झुकाव आमंत्रित किये। श्री नाहटाजी एकमात्र व्यक्ति थे जिन्होंने सुझाव रखा कि श्रीमद् राज-चन्द्रजीके साहित्यका विभिन्न भाषाओं में अनुवाद कराया जावे व उनका अधिकसे अधिक प्रचार किया जावे। मेरी समझमें यह सबसे महत्त्वका सुझाव था। जिस जैन महापुरुषने विश्ववन्द्य बापू का निर्माण किया उस महापुरुषका नाम विश्वके जन-जन के मुँहपर जहां होना चाहिये वहां जैन समाज के ही अधि-कांश लोग नहीं जानते। यह कितने बड़े दुर्भाग्य की बात है। यह स्थिति प्रमाणित करती है कि हम लोग प्रचार कार्यमें कितने उदासीन हैं। मुझे खेद है कि श्री नाहटाजी के इतने महत्त्वपूर्ण सुझाव पर पूरी तरह अमल नहीं किया गया। हां, एकत्रित चन्देसे धर्मशाला बनवानेमें अवश्य संयोजकों ने विशेष रुचि ली।

श्री नाहटाजी साहब के विचारोंमें पूर्वाग्रह नहीं है। वे बदलते युगके साथ दौड़ लगाते हैं और जब तक उनकी वैचारिक दौड़ युगानुकूल चलती रहेगी, वे कभी बूढ़े नहीं हो सकते, सदैव युवा हैं ऐसा मानता हूँ। कहावत है—बड़े से बड़ा व्यक्ति वह है जो छोटी से छोटी बातका ध्यान रखता हो। सरस जैन भज-नावली भाग ३ की प्रति मैंने भेजी तो तुरन्त मुझे सम्मति प्राप्त हुई, जिसमें श्री नाहटाजी ने लिखा—"वास्तवमें फिल्मी विकार वर्द्धक गीतोंकी जगह ऐसे गीतोंका प्रचार होना ही चाहिए। फिल्मी तर्जोंके गीत बनाते रहिए। पत्र-पत्रिकाओंमें भी छपवाते रहें, इससे प्रचार बढ़ेगा। आपका प्रयास सराहनीय है।" यह भजना-वली फिल्मी गीतोंकी धुनपर आधारित है। कई विद्वान् पण्डित और आचार्य भी फिल्मी धुनोंको आधार बनाना हेय समझते हैं किन्तु वे ये नहीं जानते कि भजनों को सर्वाधिक लोकप्रिय बनाने तथा उनका प्रचार करनेके लिए फिल्मी धुनसे बढ़कर अन्य माध्यम नहीं हो सकता है। स्वनुभावके आधार पर मैं कह सकता हूँ कि फिल्मी धुनों के आधार पर भी उत्तम काव्य रचना हो सकती है। धर्म प्रचारके लिए मेरे इस लघु कार्य को उपयोगी जानकर उन्होंने तुरन्त सम्मति भेज दी। अब बताइए, इस छोटेसे कार्य पर ध्यान देने वाला व्यक्ति क्यों नहीं महान् होना चाहिए।

एक दो पुस्तकें लिख लेने पर जो लोग समझते हैं कि जीवनमें बहुत बड़ा काम कर लिया और

उसके बाद अपने आपको कार्य निवृत मान लेते हैं। उनके लिए श्री नाहटाजी साहेब का जीवन ज्वलंत आदर्श है। श्री नाहटाजीके लेखोंके केवल शीर्षककी सूची ही पुस्तिका बन जायेगी। इतना पठन-पाठन और लेखन करने वालेमें आज इस आयुमें भी वही स्फूर्ति एवं कार्यक्षमता विद्यमान है, जो एक युवकमें पाई जाती है। उनके स्वास्थ्य कार्य क्षमताका कारण जहां तक मैं समझता हूं सामायिक, प्रतिक्रमण व्रतादिका यथेष्ट परिपापालन हैं। जिस व्यक्तिसे आपको यथासमय उत्तर प्राप्त नहीं होता और मिलने पर वह कह सकता है कि "मुझे खेद है कि उत्तर भेजनेका ध्यान ही नहीं रहा अथवा अमुक अमुक कारणसे विलम्ब हुआ।" वह मात्र अपनी लापरवाहीके दोषको छिपाता है। यह दोष भी आदमीको बड़ा आदमी नहीं बनने देता क्योंकि जो पत्रका उत्तर देनेमें आलसी है, वह जीवनके अन्य कार्योंमें भी आलस करता ही है। अनावश्यक पत्रोंका उत्तर न देना एक अलग बात है। जिन लोंगोका 'पत्रव्यवहार श्री नाहटा जीसे है वे यह स्वीकार करेंगे कि उनका उत्तर अपेक्षित समयसे पूर्व ही प्राप्त होता है।

जीवनमें कई बार कई लोग सहसा बिना बनाये गुरु बन जाते हैं। मेरे जीवनमें श्री नाहटा जी का यही स्थान है। उनसे मैंने जीनेकी कला सीखी है। मैं मानता हूं कि मेरे अतिरिक्त अनेकोंने सीखी होगी क्योंकि दीपक जब जलता है तो रोशनी किसी एक पतंगे तक सीमित नहीं करता, जहां जहां तक उसकी पहुँच होती है उसमें आने वाले हर प्राणीको वह प्रकाशित कर देता है।

परमपितासे यही विनय है कि वह लक्ष्मी और सरस्वती के वरद पुत्र श्री अगरचन्दजी नाहटाको दीर्घायु करें।

●

श्री शोध के अजस्र प्रेरणा स्रोत

डॉ० भागचन्द्र जैन भास्कर

श्रद्धेय श्री अगरचन्दजी नाहटा प्रतिभाके धनी साहित्यकार हैं। उनकी पैनी दृष्टि और प्रभावी लेखनी से एक ओर जहाँ विविध साहित्यकी सर्जना हुई है, वहीं दूसरी ओर साहित्यकारों, शोधकों और अध्येताओंका जन्म भी हुआ है। नाहटाजीकी शोधप्रियता, सरलता और स्नेहिल सहानुभूतिने उन्हें ज्ञानके क्षेत्र में अत्यन्त लोकप्रिय बना दिया है उन्हें चलता-फिरता एक विश्वकोश भी कहा जाय तो अत्युक्ति नहीं होगी। वही कारण है कि शोधकों को जिस किसी भी सूचना की आवश्यकता होती है। वे नाहटाजी को पत्र लिखते रहते हैं और नाहटाजी भी उपलब्ध सूचनाओंसे तत्काल अवगत कराने का प्रयत्न करते हैं।

मैंने सन् १९६० में जब संस्कृतका एम. ए. पूरा किया तो पी-एच.डी. करने की बात मनमें आयी और तुरन्त नाहटाजी को विषय पानेकी इच्छासे पत्र लिख दिया। लगभग एक सप्ताह बाद ही उनका उत्तर मुझे प्राप्त हो गया जिसमें शोध विषयों की एक अच्छी खासी तालिका दी हुई थी। मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ कि इतना व्यस्त व्यक्ति उत्तर देनेमें इतना तत्पर कैसे है।

अभी सन् १९६८ में कोल्हापुरमें प्राकृत संगोष्ठी हुई थी। वहां आपसे प्रथम भेंट करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ बड़े स्नेह और प्रेमसे वे गले मिले। काफी देर तक साहित्य के सन्दर्भमें विचार विमर्श हुआ। वे निःसन्देह शोधके अजस्र प्रेरणा-स्रोत हैं। हम उनके स्वास्थ्य और दीर्घायु होनेकी कामना करते हैं।

●

स्रोत और सम्बन्ध

डॉ० महेन्द्र सागर प्रचण्डिया

मेले दशहरे तथा पर्व-पखवारे व्यक्तिसे व्यक्तिको मिलानेके प्रायः सहज साधन हुआ करते हैं । इसी प्रकार साबरमतीसे तटवर्ती ऐतिहासिक नगर अहमदाबादमें सन् १९५२में आयोजित एक साहित्यिक अनुष्ठान-में मुझे अनेक साहित्यिकोंसे साक्षात्कार हुआ था । मैं अहमदाबाद अपने आदरणीय मातुल श्रीमान् बा० कामताप्रसाद जैन (अलीगंज) के साथ गया था ।

टखनोंकी ओर लपकती हुई सफेद धोती, बंदगलेका कोट तथा राजस्थानी धजका पीला ऊँची पागार का साफा धारण किये बधा शरीर भ० रणछोड़जीके रंगसे समता रखने वाला वर्ण, गौरवतापूर्ण काली मूँछें मुझ जैसा नव सिखिया कलमका मजदूर पूछे, ये सज्जन हैं कौन? बाबू कामता प्रसाद जैन द्वारा मैं जान पाया कि चर्चित सज्जन राजस्थानी वाङ्मयके विश्वकोश तथा सरस्वती और लक्ष्मीदेवीके बेनजीर उपासक श्रीमान् पं० अगरचन्द नाहटा हैं । यद्यपि नाहटाजीसे मेरा यह पहला आत्मसाक्षात्कार था तथापि उनके नाम-से मैं उस समयसे ही परिचित हूँ जब मैं पृथ्वीराजरासोकी प्रामाणिकता विषयक अध्ययन कर रहा था ।

अहमदाबादमें मेरे प्रथम परिचयके पश्चात् उन्होंने मुझे शोध करनेके लिए उत्प्रेरित किया । गवेषणा की गम्भीरता लगन और हस्तलिखित ग्रन्थोंकी जानकारीमें बेजोड़ महापंडित अगरचन्दजी नाहटाके निर्देशनमें पी-एच० डी० उपाधिके लिये गवेषणा करनेकी भावना मेरे मनमें उत्पन्न हुई और जब मैं के० एम० मुंशी हिन्दी विद्यापीठ, आगरा विश्वविद्यालय का संस्थागत अनुसंधित्सु बना तो संयोग से मुझे निर्देशन मिला श्रद्धेय डा०सत्येन्द्रजी का । यह जानकर मुझे भारी प्रसन्नता हुई कि डाक्टर साहबका नाहटाजीसे अत्यन्त निकट का सम्बन्ध है ।

मैं बीकानेर पहुँचा और नाहटाजीसे मिला । उन्होंने घर ही मुझे ठहराया बिल्कुल परिजनों की भाँति मेरे साथ आहार-व्यवहार ? अपने अभय पुस्तकालयके अतिरिक्त नगरके अन्य ग्रन्थभाण्डारोंमें अपने साथ ले जा कर मेरा मार्ग दर्शन करना, ग्रन्थोंकी प्राप्तिमें आगत कठिनाइयोंको अपने व्यक्तित्व तथा सुझ-बूझसे हल करवा देना तथा अपनी गंभीर जानकारीके बल बूतेपर हमारे निर्णयोंको पुष्ट करना वस्तुतः नाहटाजी की उदारता और विद्यादानका सजीव और अजीब उदाहरण है ।

नाहटाजीके यहाँ दूसरी बार मैं अपने आदरणीय बन्धु प्रो० श्रीकृष्णजी वार्ष्णेय, अध्यक्ष हिन्दी विभाग, श्री वार्ष्णेय कालिज अलीगढ़के साथ शोध कार्यसे ही गया । सारी सुविधाएँ मान्य नाहटाजी द्वारा पुनः प्राप्त हुई और डॉ० वार्ष्णेयजीके मनपर श्री नाहटाजीकी माँ सरस्वतीकी सेवाओंका अच्छा प्रभाव पड़ा । और आज वे भी उनके प्रशंसक हो गये ।

तीसरी बार मैं अपने प्रिय शिष्य श्री ब्रजेन्द्रपाल सिंह चौहानके साथ नाहटा निवासपर गया । श्री चौहान जैन कवि श्री भूधरदासपर शोध कार्य कर रहे थे । सदैवकी भाँति इस बार भी नाहटाजीने हम लोगोंको सारस्वत सहायता प्रदानकर हमें आगे बढ़नेके लिए प्रोत्साहित किया । नाहटाजी समूचे राजस्थानमें बिखरे हस्तलिखित ग्रन्थोंके वस्तुतः साकार इन्साइक्लोपीडिया हैं ।

इसके अतिरिक्त नाहटाजीसे मेरा मिलना अनेक अहिंसा-सम्मेलनों तथा सभाओंमें हुआ, जहाँ वे मुझे एक ओजस्वी वक्ता, विचारक और समाज सेवीके रूपमें परिलक्षित हुए । मुझे स्मरण है कि श्री नाहटाजी जब मैं राजामण्डी, आगरामें रहता था, मेरे निवासपर पहुँचे । मेरी देवीजीसे मेरे विषयमें पड़तालकर जब वे

मेरी गैरहाजिरीमें लौटने लगे तो देवीजीने आपका नाम पूछा और यह जानकर कि आप नाहटाजी हैं तो बच्चोंसे लेकर मेरे परिवारके सभी सदस्योंका हर्ष हिमालयकी नाईं आकाशको स्पर्श करने लगा।

आधुनिक हिन्दी निबन्ध साहित्य यदि एकत्र किया जाय तो नाहटाजी पहले और अकेले निबन्धकार छाँटमें आयेंगे, जिनके द्वारा सर्वाधिक निबन्ध लिखे गये हैं। आश्चर्यकी बात यह है कि हिन्दीका कोई ऐसा पत्र नहीं होगा, जिसमें नाहटाजीका लेख न प्रकाशित हुआ हो और इसमें भी बड़ी बात है कि उन पत्रोंकी प्रतियाँ नाहटाजीके ग्रन्थालयमें सुरक्षित रखी हैं। यदि हिन्दी पत्रिका साहित्यपर कोई शोध काम करना चाहे तो उसे माननीय नाहटाजीकी शरणमें जाना ही पड़ेगा।

नाहटाजी अनेक साहित्यिक पत्र-पत्रिकाओंके कर्मठ सम्पादक रहे हैं। आपके सम्पादनमें अनेक ऐतिहासिक ग्रन्थोंका प्रणयन हुआ है जो राजमान्य ग्रन्थायतोंमें शोभा तथा श्रृंगार बने हुए हैं। राजस्थानी तथा इतर हिन्दीमें प्रकाशित अभिनन्दन तथा स्मृति ग्रन्थोंके सम्पादकोंको देखा जाय तो सामान्यतः प्रत्येक ग्रन्थमें नाहटाजीका नाम सुरक्षित मिलेगा। नाहटाजी वस्तुतः विचारोंके विश्वविद्यालय हैं और साहित्य सर्जनाके विद्यापीठ। आश्चर्य है कि इतने बड़े मेधावी गवेषक तथा सुलेखकके कृतित्व और व्यक्तित्व पर पी-एच० डी० उपाधि के लिए शोध कार्य आरम्भ नहीं हुआ है। मेरे विचारसे नाहटाजीके व्यक्तित्व और कृतित्वपर निश्चय ही अनेक शोध ग्रन्थोंकी संरचना हो सकती है।

नाहटाजीकी उनकी साहित्यिक सेवाओंसे प्रभावित होकर देशकी अनेक मान्य संस्थाओंने अपनी सर्वोच्च उपाधियोंसे विभूषित किया है, जिनमें आरा (बिहार) की सिद्धान्ताचार्य और दी इण्टर नेशनल अकादमी ऑफ जैन विज़डम एण्ड कल्चरकी विद्यावारिधि उल्लेखनीय है। वास्तविकता यह है कि नाहटाजीको सम्मानितकर ये संस्थायें स्वयं ही गर्वित और गौरवान्वित हुई हैं।

नाहटाजी तेरापन्थ श्वेताम्बर जैन समाजके गण्य परिवारके पोषक तथा जिनशासनके सच्चे और अच्छे उपासक हैं। आज भी आपका जीवन नाना व्रतों, संकल्पों और अनुष्ठानोंसे अनुप्राणित रहता है। यही कारण है कि नाहटाजी ६१ वर्षीय होते हुए भी कामकाजमें नवयुवकसे लगते हैं।

एक स्थल पर स्वनाम धन्य पं० शांतिप्रिय द्विवेदीने लिखा है, कि वाणी चरित्रकी प्रतिध्वनि होती है—नाहटाजीके जीवन पर यह कथनी सत्य चरितार्थ होती हैं। आपकी वाणी आपके चरित्र की परिचायक है। बड़ी बात यह है कि आप कथनी और करनीके गंगा-जमुनी संगम हैं।

नाहटाजी मेरे ही नहीं, वे तो प्रत्येक मां सरस्वतीके उपासकोंके उतने ही सगे सम्बंधी हैं जितने की किसी भी परिवारके बुजुर्ग हुआ करते हैं।

●

एक महान् साहित्यिक संत

श्रीप्रकाश दीक्षित

१४ सितम्बर, १९७१ को जब मैं अपने विभागीय कक्षमें पहुंचा, तो मेजपर एक अन्तर्देशीय पत्र रखा हुआ पाया। पत्र-प्रेषक के स्थान पर टाइप था—अगरचन्द नाहटा, बीकानेर (राज०)।

अभी-अभी चार-पाँच दिन पहले ही तो मैंने उन्हें एक पत्र लिखा था और इतनी जल्दी उत्तर! मैं सुखद आश्चर्य में डूब गया। मुझे लगा, जैसे मैं किसी स्वप्न में खो गया हूँ अथवा किसी कल्पना-लोक की सैरमें विभोर हो गया हूं! मुझे अपनी स्थिति तकका ज्ञान न रहा।

मैंने पत्र लिखनेसे पूर्व न जाने कितना साहस संजोया था। सोचता था कि पत्र लिखूँ। न जाने, उत्तर देंगे या नहीं। सुन रखा था कि वे बड़े व्यस्त रहते हैं। अत्यधिक अध्ययनशील हैं। इस वृद्धावस्थामें भी पुस्तक आँखोंसे ही लगाये ही रहते हैं। कभी एक क्षण भी व्यर्थ नहीं गँवाते। अध्ययन, मनन, अनुशीलन, चिन्तन और लेख उनके दैनिक जीवनके अमिट अंग हैं। साहित्य-सेवाकी अजीब धुन है उनमें। लगभग दस-पन्द्रह दिन उधेड़-बुनमें पड़े रहनेके बाद ही साहस जुटाकर मैं वह पत्र लिख पाया था।

पीरियड प्रारंभ होनेमें मुश्किलसे एक मिनट शेष था। पत्र प्राप्त होनेपर उसे पढ़नेका लोभ संवरण-कर सकना हरएकके वशकी बात नहीं। किसी अनासक्त पुरुषकी बात मैं कहता नहीं। पत्र हाथमें आते ही उसे पढ़नेकी जो सहज स्वाभाविक उत्सुकता जगती है, उससे अपनेको पृथक् रखना मेरे हाथमें नहीं। फिर, श्री नाहटाजीका पत्र। उसने तो मेरी उत्सुकताको आतुरतामें ही परिणत कर दिया।

सुख मिश्रित आश्चर्य एवं उत्सुकतापूर्ण आतुरतासे स्पन्दित हो, मैंने पत्र खोला। जैसे-जैसे मैंने पढ़ा, मैं प्रसन्नतामें डूबता गया। मैंने जितनी सूचनाएँ चाही थीं, उनसे कहीं अधिक उनके पत्रमें थीं। मैंने पी-एच. डी. के लिए अपने स्वीकृत विषय 'राजस्थानीके शृंगार रस परक दोहा साहित्यका अध्ययन' से सम्बन्धित सामग्रीके संकलनमें सहायता प्रदान करनेकी याचना उनसे की थी। श्री नाहटाजीने कई प्रकाशित-अप्रकाशित मूल एवं सन्दर्भ ग्रन्थोंके प्राप्ति-स्थान ही नहीं बताए, प्रत्युत उनमें कई ग्रन्थ डाक द्वारा भेज देनेके लिए भी कहा और कई ग्रन्थ नकल करवाकर भेजनेका वचन दिया। उन्होंने एक ऐसे ग्रन्थसे भी अवगत कराया, जिससे मैं बिल्कुल अपरिचित था। उन्होंने कई-एक ऐसे विद्वानोंका नामोल्लेख कर, उनसे सम्पर्क स्थापित करनेके लिए भी लिखा, जिन्होंने राजस्थानी दोहोंपर शोधकार्य किया था।

एक-दो बार ही नहीं, मैंने उस पत्रको कई बार पढ़ा। मुझे लगा, जैसे मैं कोई 'साहित्य कोश' पढ़ रहा हूं। मैं श्रद्धाभिभूत हो गया। एक क्षणके लिए मैं न जाने किन-किन भावोंमें और कहाँ-कहाँ डूबने-उतराने लगा। मेरे मनमें श्री नाहटाजीका जो चित्र अंकित था, उसमें श्रद्धादेवी भाव-तूलिकासे विविध रंग भरने लगीं। कितने विद्वान् हैं वे? जिस समय मेरा पत्र पहुंचा, तत्क्षण उन्होंने पत्रोत्तर टाइप कराकर भिजवा दिया। एक दिनकी भी टाल-मटोल न की! उनके सत्यनिष्ठ मनने किसी बहानेका भी आश्रय न लिया। कितने निरालस्य और कर्मठ हैं वे! साहित्यका कितना ज्ञान है उन्हें? वे निस्सन्देह एक साहित्यकोश ही हैं; अन्यथा इतनी अधिक जानकारी तुरंत ही कैसे दे देते हैं? किसी पत्र-लेखकके पत्रोत्तर चाहने की प्रतीक्षा-कुलतासे कितने परिचित हैं वे? स्यात्, इसीलिए मेरे पत्रका उत्तर उन्होंने शीघ्र ही दे दिया। एक अपरिचितके प्रति भी वे कितना सहज-स्वाभाविक स्नेह रखते हैं और उनके निश्छल एवं निस्पृह हृदयमें आत्मीयता एवं उदारता का अगाध उदधि ही उमड़ रहा है, यह मुझे उसी दिन ज्ञात हुआ। अब वह चित्र मेरे श्रद्धा मनमें सजीव हो चुका था और मैं उसे एक सप्राण 'साहित्य कोश' के रूपमें देखकर, अपने लघु हृदयका श्रद्धार्घ्य चढ़ाता हुआ, भाव-विह्वल हो रहा था।

एक-एक करके उनके कई पत्र आए और डाक द्वारा दो ग्रंथ भी दो प्रत्येक पत्रमें शोध-सम्बन्धी किसी-न-किसी ग्रंथकी सूचना और प्रेरक संदेश रहता है। श्री नाहटाजीका साहित्यकार अत्यन्त निस्पृह, सरल सजग, शोध-पटु, प्रेरक और ईमानदार है। उनकी शोध परक दृष्टि अत्यन्त सूक्ष्म एवं व्यापक है और शोधकार्यके प्रति उनमें उत्साह तथा अनुराग अपार है। पवन और प्रकाश-रहित स्थानों पर अज्ञात-वासका दण्ड भोगते हुए प्राचीन हस्तलिखित ग्रंथोंका उद्धार कराना और उन साहित्य-सर्जकों को पुनर्जीवन दिलाना उनके जीवनकी प्रमुख साध है। शोधार्थीकी सहर्ष सहायता करना ही जैसे उनका स्वाभाविक धर्म ही है। मानो, उन्होंने अपना समस्त जीवन साहित्य-साधना और शोध कार्यके निमित्त ही समर्पित कर

रखा हो। सैकड़ों अनुसंधाता उनकी कृपादृष्टिसे कृतकार्य हो सकते हैं। वे अनुसंधायकोंके लिए अजस्र प्रेरणास्रोत हैं। एक बार भी यदि कोई किसी तरह उनके सम्पर्कमें आ गया, तो समझो कि उनके कृपामृतसे सराबोर हो गया।

'मति अति नीच ऊँचि रुचि आछी।
चहिअ अमिअ जग जुरइ न छाछी।।'

इस उक्तिको चरितार्थ करनेवाला मुझ जैसा व्यक्ति भी इस महान् साहित्यिक संतके स्नेहामृत-का भाजन बन गया, इसे मैं अपना सौभाग्य समझूँ या उस संतकी प्रकृत उदारता और कृपा?

वस्तुतः, वन्दनीय है वह साहित्यिक संत और अभिनंदनीय है उसका महान् साहित्यकार तथा साहित्य कोश, जिसके कृपाभावने मुझे भी सौभाग्यशाली बना दिया।

प्रभुसे प्रार्थना है कि समादरणीय श्री नाहटाजीके साहित्यिक कल्पवृक्षकी सुखद एवं स्निग्ध छाया शताधिक वर्षों तक शोधार्थियों एवं साहित्यकारों को आश्रय प्रदान करती रहे और युग-युग तक साहित्य-साधकोंको शक्ति प्रदान कर राष्ट्रभाषा की अभिवृद्धि करती रहे।

आज सोचता हूँ कि कितना महान् था वह शुभ क्षण, जब मैंने उन्हें वह पत्र लिखा था—

शरद्-चन्द्र शत वर्ष हर्षयुत 'अगरचंद' के गाये गान,
शत बसंत फूलों को भरकर भेंट करें सादर मुस्कान।
हिन्दी हुई समृद्ध प्राप्तकर जिनका साहित्यिक अनुदान,
उनसे राजस्थान न केवल उपकृत हिन्दी-हिन्दुस्तान।।



राजस्थानी रा राजदूत

श्री रतन साह, कलकत्ता

श्री अगरचन्दजी नाहटा राजस्थानी भाषा-प्रेमियों खातिर एक व्यक्ति विसेस नीं रैया है—वै भासा-इतिहासका एक अध्याय है। उण रै अभिनन्दन ग्रंथमें लिखता टेम कलम थोड़ी कांपै कै उण सरीखै विसाल अर महान् भासा-ऋषि खातिर मेरे द्वारा प्रयोगमें लायै जाणै हाला सबद उण रै जोग होगा कै नई? भाषा-इतिहास मांय कोई एक मिनख ओंयारो नजर नीं आवै है कै जिणसू अणरी तुलना करी जा सकै। नाहटाजी रो व्यक्तित्व सूरज री किरण रो रंग है जींरो सानी मिले नीं—प्रिज्म (Prism) नै सांमी रख, र ओ किरण नै रंगपट पर साहूँ रंगामें तोड़ा तो एक-एक रंग री जोड़ भला ओं इतिहास रै पानामें नीगै आवै। नाहटाजीमें चौदहवीं सदी रै इटली-पुनर्जागरण रै विद्वान् पोगियो व्रसिओलिनि (Poggio-Bracciolini) री झलक दीखै, जिको इटली रै पुरातन नै देख'र बोनल्यो, 'इब भारी भरकम लास री तरियां उपेक्षित रूपमें पड़ी है, जधां-जधांसे खज्योड़ी, खायोड़ी, ओ नै झाड़ो-संवारो', राजस्थानी खातिर ए ही सबद नाहटाजी जधां-जधां बोलता कि रैवै है। दूजा लोग सुण'र चेत्या हो या ता हो, खुद नाहटाजी अरबिना रोड्यूक (Duke of urbino) बणैगा जिको कै पुरातन काल सै लगा'र बीं टेम तक रो बृहत्तम लाइब्रेरी री निर्माण ४० बरसां ताधी १४ लिपिकां नै लगा'र कर्‌यो।

नाहटाजी रो पुस्तकालय राजस्थानी रो तीरथ है। ओर सब बांता नै बाद देय'र खाली ओ संग्रहालय ही उण नै अभिनंदन रो अधिकारी बणा देवै है। तीन चार बरस पैली मैं जद बीकानेर गयो तो टैस्टिरोरी री समाधि रा दरसण करणै रै बाद नाहटाजी रै संग्रहालय नै देखणै री इच्छा राखी--नाहटाजी बीं टेम बीकानेरसें नीं हा पण श्री श्रीलालजी नथमलजी जोशी म्हानै पूरो संग्रहालय दाखायो—अर मैं अनुभव करूं कै बो पुस्तकालय नाहटाजी री राजस्थानी री सेवा रो इतिहासिक नमूनो है।

मेरो नाहटाजी सै मिलणै रो सौभाग्य पैली पोत १९६५ में हुयो। ओर मैं अपणै आप नै सौभाग्यसाली समझूं कै इण ६ बरसांमें नाहटाजी रो मनैं ओस जोग स्नेह, मार्ग दर्शन व सहयोग मिल्यो।—राजस्थानी खातिर नाहटाजी हर रूपमें, हर रंगमें, तय्यार है। मैं लाडेसर रो प्रकासन बंद कर दियो पण आज भी ओजूं प्रकासन री पूरी-पूरी सम्भावना बणी पड़ी है—ओंरो श्रेय नाहटाजी अर ओंकार पारीक नै है—जिणांरी चिढियां कम वेसी दिनां रै पछै तै सूंम्हारी दफ्तर री मेज पर आ धमकै अर मनैं कर्तव्य रो बोध करावै। नाहटाजी रै बाबत ओर कुछ नीं लिख'र मैं कुछेक घटनावां रो जिकर कर्‌यो चावूं हूं, जिकी कै उण रै व्यक्तित्व री मुहबोलती परतां है।

प्रेरणा रा स्रोत

सन् १९६५ री बात है—कलकत्ता विश्वविद्यालय की ओर सूं आयोजित एक भाषण मालामें श्री नाहटाजो राजस्थानी साहित्य पर भाषण देणै खातिर आमन्त्रित हा। घणो दुःख है कै बीं भासणां मांय मुस्किल सै ४०-५० लोगों री उपस्थिति ही। उण दिनां मैं कानून अर कामर्सरी पढाई खत्म ही करी ही—सो विश्वविद्यालय सै सम्बन्ध बणयोड़ो हो। मैं भी भासण सुण्या। राजस्थानी (मारवाड़ी) लोगां नै, प्रवासमें खाली पीसो कमाणै हाकी कोम री दृष्टि सैं जाण्यो जावै है। हीन-दृष्टि सैं देख्यो जावै है। बाहरी लोगां नै आ ही बात नजर आवै-पण साच तो कुछा ओर ही है। मेरो ओ निश्चित मत हो कै आवां आपणी भासा नै उजालैमें नई ल्यावां जद तक आपणै समाज रो ऊजलो रूप भी चौड़े नई' आ सकै। पण मेरो ज्ञान आपणी भासा रै सम्बंधमें बिलकुल थोड़ो हो, ओं बोल'र पुराणा एनसाइक्लोपिडियाज अर दूजा ग्रंथ बांचणा पड़्या—मनमें ढाढस बंधी कै राजस्थानी अेक सुतंत्र व समरथ भासा रैई है। कलकत्तैमें राजस्थानी रो कोई उत्साहवर्द्धक वातावरण नई हो। श्री अम्बू शर्मा सैं थोड़ी भोत चरचा होती अर म्हे दोनूं बिना पांख रै पक्षियां री तरै कोसीसां करता, उड़ान नीं भर पाता। नाहटाजी सै ओं भासण मालां री टेम भेंट हुई। मारवाड़ी छात्र संघमें मैं उण रो भासण आयोजित करवाणो चावै हा—मैं नाहटाजी नै पूछ्यो कै आप राजस्थानी भासा री संवैधानिक मान्यता रै सन्दर्भमें बोलणैरी कृपा करोगा के ? नाहटाजी जो सबद म्हानै कैया, वै आज भी मेरै याद है।'' ओं दिसामें सोचणियां अर सुणणिया लोग अठे है के ?'' अर म्हानै बै कैयो कै आपणीं भासा हर कसौटी पर, हर टेस्ट पर पूर्ण भासा है—कोई भी इसो प्रश्न उठै जीं रो उत्तर थे नई' दे सको तो मनैं लिख दियो—पूरी खातिरी सैं आपां पेटो भर देवागा। थे कोई तरै सैं भी मता घबरायो।

मैं आज आ बात लिखतो नीं हिचकिचाऊँ कै उण री ओं तरै री बातां रै कारण ओ म्हें कलकत्तैमें राजस्थानी रो सुवाल बुलन्द कर्‌यो अर लाडेसर रै रूपमें विरोधियांरी चुनौतियां रो उत्तर दे सक्या। लाडेसर रै सुरूरा अंक देखकर कुछ साहित्यकार जिणां नै म्हे म्हारी कमियां वता दी ही, बीं रै बावजूद भी आ राय दी ही कै म्हे लाडेसर बन्द कर देवां ओर कुछ दिनां उणरै द्वारा बताये गये साहित्यकारां सैं राय मसविरो करां, दिग्दर्शनमें काम करां। बीं टेम डा० मनोहर शर्मा अर रावत सारस्वत रै अलावा श्री

नाहटाजी ही हा, जि का कमर थेपेड़ी-अर आगै बढ़ण री राय दी। ओं तरै सैं नाहटाजी अटूट प्रेरणा रा स्रोत नजर आवै।

नाहटाजी अर सेठ गोविन्ददास—कलकत्तैमें आयोजित अेक समारोहमें सेठजी अर नाहटाजी दोनूं आमन्त्रित हा। सेठजी हिन्दी री तारीफमें बोलता बोलता राजस्थानी रै बारै में कुछ ओं तरै की बात कैयी जीं सैं री अरथ हो कै राजस्थानी रो अलग अस्तित्व नईं है, क्यूंकै इण रो कोई व्याकरण, सबस कोस नईं है। नाहटाजी मेंच पर ही ओं बात रो विरोध करणै री कैई, जणां सेठजी आपरी गलती मानी अर कैयी कै म्हारो मतलब अरे नईं हो। नाहटाजी री ओं तरैरी दबंगता कई जवां देखणैमें आई है। (ओं घटना री टेम मैं खुद उपस्थित नईं हो—सुण्योड़ी बात लिखी है)।

नाहटाजी अर डा० सुनीति कुमार चटर्जी—केन्द्रीय साहित्य अकादमी री विसेसग्य समिति री ओर सूं राजस्थानी भासा नै साहितियक-मानता दियै जाणै री सिफारिस कर दी गई है—ओं बात री सूचना राजस्थान सरकार अर राजस्थानी साहित्य अकादमी कोई नै भी नईं वी। श्री नाहटाजी जघां जघां पोस्टकार्ड गेर'र सूचना दी। कार्यकर्तावां रा सुपना साचा हुया—ओं मोटी जीत पर घणो हरख होयो। म्हैं कलकत्तैमें ओं वेला एक महत्त्वपूर्ण गोष्ठि करणै री सोची। कुछेक दिनां बाद श्री नाहटाजी रो भी कलकत्तै आणो हुयो। सभा रो आयोजन कर्‌यो गयो। मैं चावे हो कै डा० सुनीतिकुमार चटर्जी ओं सभा री अध्यक्षता करै। उणसै मिलणै गयो। बै कुछ टेकनीकल दिक्कतां प्रकट करता हुयां कैयो कै मैं अध्यक्षता तो नईं करतो पण श्री नाहटाजी भी आयोड़ा है तो उणरी बात सुणनेरी इच्छा जरूर ही—लेकिन बी टेम ओ एशियाटिक सोसाइटी री कोई सभा ही, सो वै बोल्या कै मैं आ नीं पाऊंगा। डा० चटर्जी कैयो कै राजस्थानी रै अलावा अेक दो अन्य भासावाँ नै भी साहितियक-मानता दे णै खातिर विचार-विमर्श हो पण उणरा विद्वान् दिल्ली आणैमें डर्‌या। आपरा नाहटाजी दबंगता सैं अकादमीमें, आया, अर उणरी भेस-भूसा, बात रै ढंग नै देख'र ओ लोगां नै विस्वास हो गयो कै राजस्थानी सुतंत्र भासा है। राजस्थानी री सुतंत्रता रै बाबत कोई नै भी सन्देह होणै री चीज ही नइं ही—सो यिसेसग्व समिति आपरी सिफारिस भेज दी है। मैं नाहटाजी मैं भोत प्रभावित होयो हूँ। दूसरे दिन मैं नाहटाजी नै डा० सा'ब रै घरां ले गयो। दोनूं व्यक्तियों री मुलाकातमें मनैं भी सामिल होणै रो सोभाग्य मिल्यो अर मनैं लिखतां खुसी है कै नाहटाजी बीं पूरी मुलाकातमें मायड़ भासा री उन्नति खातिर भविस्यमें के कदम उठाणा चायै, ओं बात पर ही चरचा करता रैया।

राजस्थानी नै प्रान्तीय भासा रो हक दियावो—अब अन्तमें बीं सभा री अेक घटना ओर याद आवै, जिकी कै मानता रै उपलक्षमें राजस्थानी प्रचारिणी सभा करी ही। सभा भांप श्री लोढाजी रै प्रस्ताव नै कै राजस्थानी नै प्रान्तीय भासा रो दरजो देवणो चाये—पूरो समर्थन मिल्यो। ओं सभामें ओ, श्री भंवरमलजी सिंघी भी उपस्थित हा। अर बै ओ सन्देह प्रकट कर्‌यो कै राजस्थानी शिक्षा रो माध्यम नई रैयी है—अर अब ओं तरै री भांग सैं सायद कुछ दिक्कतां खड़ी हो ज्यावैं। श्री नाहटाजी आपरै भासण मांय सिंघीजी रै ओं संदेह नै आधारहीन बतायो अरै कैयो कै राजस्थानी भोत दिनां तक राजस्थानमें प्राथमिक शिक्षा री माध्यम रैयी है अर ओं नै शिक्षा रो माध्यम बणायां ई प्रांत री चूंतरफा प्रगति हो सकैगी।

किरणी ही घटनावां है, जिकी श्री नाहटाजी रै बारैमें लिखी जा सकै है। मैं राजस्थानी प्रणारिणी

सभा, लाडेसर अर कलकत्तै रै दूजै राजस्थानी साहित्य-प्रेमियों री ओर सूं श्री नाहटाजी रो अभिनंदन कुरूं हूँ अर कामना करुं कै उणरो सहयोग राजस्थानी नै भोक बरसां ताणी मिलै।

●

नाहटाजी : एक संस्था

श्री उदय नागौरी

गत चालीस वर्षोंसे हजारों अज्ञात ग्रंथों को प्रकाशमें लाकर नाहटाजीने हिन्दी साहित्य की जो सेवा की है उसे कौन नहीं जानता ? सीलन भरे अंधेरे बन्द कमरोंमें प्राचीन लिपियों एवं ग्रंथों को ध्यानसे देखते हुए जिसने उन्हें देखा है, वही जान सकता है इनके अथक परिश्रम एवं अटूट धैर्य को, जब भी, जैसी सामग्री इन्हें मिले, ये किसी पत्रिकामें उसे प्रकाशित कर देते हैं जिससे सबको उसका परिचय मिले। चार हजारसे अधिक लेख प्रकाशित करनेके बाद भी इनका ध्येय यही रहा कि साहित्य अन्वेषण, पठन, सृजन, संरक्षणमें अधिकाधिक समय लगे। युवक-सा जीवट, संतों का चिंतन एवं सादगी का मिश्रण देखकर सहसा हमें कहना पड़ता है कि नाहटाजी का व्यक्तित्व किसी संस्थासे कम नहीं।

सन् १९५६ में नाहटाजीसे प्रथम परिचय हुआ था। तदनन्तर तो क्रमशः आपसे सम्पर्क बढ़ता ही गया और ज्ञात हुआ कि सादगी इनका स्वभाव है, कोई दिखावटी बात नहीं। बीकानेरी पगड़ी, ऊँची धोती, साधारण कमीज और चश्मेके मध्य इनका व्यक्तित्व कुल मिलाकर स्थानीय व्यापारी जैसा ही प्रतीत होता है परंतु वार्तालाप और सम्पर्क द्वारा ज्ञानके अथाह समुद्रसे प्राप्त अनुभव रूपी मणियां हमें प्राप्त होती हैं। सैंकड़ों पत्र-पत्रिकाओंमें प्रकाशित हुए आपके लेखों का अम्बार अनेक पुस्तकोंमें संगृहीत किया जा सकता है। आप अहंकारसे कोसों दूर हैं। कोई भी समस्या हो, संदर्भ ग्रंथोंके बारेमें आपसे पूछिए और देखिए कि असंख्य पृष्ठ खुल रहे हैं आपके लिए। जो व्यक्ति किसी को बाह्य वेश भूषासे देखते-नापते हों उनको अपनी धारणा बदलनी होगी इस सादगी की प्रतिमूर्ति को देख कर।

नाहटाजीके सम्पर्कमें आने पर कोई व्यक्ति शिथिल नहीं रह सकता। यदि किसीमें साहित्य-सृजनके लक्षण दृष्टिगोचर हुए तो नाहटाजी उसे समय-समय पर तीक्ष्ण करनेके लिए प्रेरणा देंगे।

आर्थिक कठिनाईमें फँसे छात्रों को आंशिक कार्य देकर आप सहायता देते हैं और साथ ही कठोर परिश्रम की प्रेरणा। जब कोई कहता है कि—'समय नहीं मिलता' तो नाहटाजी पूरा समय विश्लेषण कर स्पष्ट कर देते हैं कि समय नहीं मिलना एक बहाना मात्र है, वास्तविकता नहीं।

संक्षेपमें कहा जा सकता है कि आपका विराट् व्यक्तित्व पूरी एक संस्था है। ७०-८० हजार ग्रन्थों के निजी संग्रहमें जाकर अभीष्ट विषय की पुस्तकके बारेमें पूछिए तो रजिस्टर व सूचियों का सिर दर्द दूर। जैसे सारे रजिस्टर इन्हें कंठस्थ हैं। कैसी विचक्षण स्मरण शक्ति है ! ईश्वरसे प्रार्थना है कि आप शतायु हों।

●

जैन साहित्यके शुभोदयका कणाद ऋषि

श्री ऋषि जैमिनी कौशिक 'बरुआ'

बीकानेर भारतके राजनीतिक नक्शे पर महाराजा गंगासिंहजीके कारण विख्यात हुआ, विश्वके शूटिंग मानचित्र पर महाराजा करणी सिंहजीके कारण और राष्ट्रभारतीके मानचित्र पर अगरचंदजी नाहटाके कारण—यह मेरी निश्चित मान्यता है।

उन भारतीय लेखकोंमें, जिन्होंने भारतकी प्राचीनताको आधुनिक वाङ्मयमें प्रतिष्ठित और समुद्रित किया है, उनकी संख्या कई हजार है। ये सम्पूर्ण भारतमें फैले हुए हैं। लेकिन जैन साहित्य और इतिहासके जिन अपठनीय पृष्ठों को, जिन्होंने पठनीय बनाया है और उनका पूर्वापर सम्बंध सार्वदेशीय इतिहाससे सूत्रबद्ध कर दिया है, उनमें अगरचंदजी नाहटाका नाम सबसे अग्रणी पंक्तिमें प्रतिष्ठित हो चुका है। मैं संकोचवश अग्रणी पंक्तिमें कह रहा हूँ, अन्यथा मेरा विचार यह है कि अग्रणी पंक्तिमें भी वे ज्येष्ठ भावके अधिकारी हैं।

काशी नागरी प्रचारिणी सभा काशीमें एक बार सन् १९५५-५६ की बात है, हम कुछ लेखक-मित्र चाय-चक्रमका रसास्वादन ले रहे थे। सहसा ही उन भारतीय लेखकों की चर्चा चल पड़ी, जिन्होंने २०वीं सदीके प्रारंभमें ब्रिटिश हिस्टोरियनोंसे कसकर लोहा लेते हुए, भारतीय सत्यकी प्रतिष्ठा भारतके हितमें अत्यधिक की और अपनी शक्ति भर भारतीय इतिहासको भारतीयकरणकी रीति-नीतिसे परिशुद्ध किया। बात काशीसे चली, पंजाबको दायरेमें लेती हुई, गुजरात और दक्षिण भारतके स्वनामधन्य लेखकों पर होती हुई, बंगालके लेखकों पर जाकर बात टिक गई। उसी समय मैंने बात को राजस्थानकी ओर अभिमुखी बनाते हुए डा० गौरीचंद हीराचंद ओझा पर सबकी विचारधारा केन्द्रित कर दी, जिनके सम्मानमें काशी नागरी प्रचारिणी सभाने एक आयु-संवर्द्धन ग्रंथ भी प्रकाशित किया था। मैंने कहा, "यदि जेम्स टाड राजस्थानके इतिहासका १९वीं सदीमें एक विदेशी सूत्रधार है तो भारतीय सूत्रधार ओझाजी हुए। टाडमें किवंदन्तियोंका प्रमाद अधिक है, ओझाजीमें तथ्यपूर्ण विवेक अधिक केशरका स्वाद देता है।" इस मंतव्य पर कुछ मतामत चला ही था, कि मुझे एक विनोद सूझा और मैंने कहा, "जबकि अन्य भारतीय लेखक यूरोपीय वेशभूषाके व्यामोहमें अपनेको सज-संवरनेका लोभ रोक नहीं पा रहे थे, उस समय ओझाजीने और हमारे अगरचंदजी नाहटाने अपनी पगड़ियोंका चमत्कार धूमधामसे बकरार रखा। एक ब्राह्मण और एक वैश्य, लेकिन दोनोंने राजस्थानकी पगड़ियोंको सारे भारतमें पूजित करवाया।" इस बात पर सभी मित्र हँस पड़े और ओझाजीसे बात हटकर अगरचंदजी नाहटा पर आकर स्थिर हो गई।

मैंने कहा कि यदि नाहटाजीकी लिखी हुई सामग्रीको एक सिलसिलेसे काशीकी गलियोंमें बिछाया-जाये, तो शायद काशीकी कोई गली ही अछूती रह सके। सभी मित्रोंको इसपर आश्चर्य हुआ। मुझे बातके दौरान कहना पड़ा कि नाहटाजी अपने जैन धर्मके प्रति इतने सत्यनिष्ठ हैं कि वे उसकी मर्यादाओंके प्राचीर को दृढ़ हुआ देखा चाहते हैं। कर्मसे व्यापारी, धर्मसे लेखक, और मुझसे विनोद किये बिना नहीं रहा गया, मैंने एक कहानी सुनाई, जिसे काशीके मित्रोंको यह एहसास हो सके कि अगरचंदजीका यथार्थ परिचय वास्तव में क्या है?

मैंने कहा कि राजस्थानके एक गांवमें एक उजाड़ खंडहर गढ़ (किला) एकांत जंगलमें पड़ा हुआ था। एक दिन संयोगसे, पहले रेतीला तूफान चला और फिर घनघोर बारिस होने लगी। दो दिशाओंसे दो

ऊंटोंपर तीन सवार आ गये। एक ऊंटपर सिर्फ एक राजपूत था, जो किसी छोटे ठिकाणे का शासक था, और दूसरे ऊंटपर कोई नवयुवक बाणिया ससुरालसे अपनी सेठाणीको विदा करवा कर ला रहा था। फूटे गढ़में दोनोंने शरण ली और जमीनपर बैठ गये। लेकिन अकलमंद बाणिये युवकने ऊंटकी काठीपरसे गलीचा निकालकर राजपूतके नीचे बिछाकर कहा, "ठाकुर साहब, यहां बिराजिये। राजपूतके अहंको जरा तस्कीन हुई और उसने अपने सम्मानको गर्वीला बनानेके लिए मूंछोंपर ताव देते हुए गलीचेपर आसन ग्रहण कर लिया। थोड़ी देर बाद उसने बोरेमें से ससुरालकी मिठाई निकालकर राजपूतको और खिला दी। इधर रात सिरपर उतरती रही, बारिशका समा तेज होता गया। आखिर जब सोनेकी तैयारी हुई, तो बाणियेका बेटा अपने रजाई गद्दे बिछाकर एक अलग कोनेमें अपनी सेठाणीके साथ सो गया लेकिन राजपूतजी गलीचे-पर बिना ओढ़ना बिछौना सिर्फ बैठे रहे। अब वे अंधेरेमें किसे दिखाने अपनी मूंछों पर दें? सुबह तक उन्होंने गलीचे पर बैठकर कष्ट पाते रात निकाली। जब भोर हुआ तो बाणियेका बेटा सेठाणी को लेकर ऊंटपर बैठा और ऊंघते राजपूतके नीचे अपना गलीचा बिछा रहने दिया। राजपूतको बहुत क्रोध था कि मुझे रातको सोनेको बिछौना नहीं मिला। लेकिन जब बाणियेका बेटा ऊंटपर राम-राम कहकर चलने लगा तो राजपूतने इसे भी अपना अपमान समझा कि यह गलीचा मुझपर दया दिखाकर छोड़कर जा रहा है। उसने आवाज देकर बाणियेका ऊंट वापस बुलवाया और हवामें गलीचा फेंकते हुए कहा, "बाणियेका छोरा, गलीचा यहाँ छोड़कर जा रहा है? कहीं आगे सेठाणी मत छोड़ जाना।" बाणियेके बेटेने कहा, "ठाकुर साहब, मैं तो छोड़ भी दूं, पर या सेठाणी मूने पूरी जिंदगी ताईं छोड़ै तो थानै खबर देश्यूं।"

मित्रोंने जोरका कहकहा लगाया, तब मैंने अगरचंदजी नाहटाके जीवन दर्शनका सरलीकरण करते हुए कहा, "अगरचंदजीके पास सारे भारतके इतिहासकी सामग्री बहुत है, लेकिन जैनधर्मकी सामग्री उनका पतिव्रता पत्नीकी तरह पीछा ही नहीं छोड़ती !!"

यह बात काशीकी है।

अगरचंदजीका जीवन अभीतक अनेक दृष्टियोंसे रहस्यमय बना हुआ है। उनका कितना समय साहित्य-सृजनमें जाता है, कितना समय वे अपने व्यापारमें देते हैं, यह अभी तक अलिखित रहा है। परिवारमें उनका वरद हस्त किस तरह सक्रिय है और अपने समाजमें उनका हस्त किस तरह वरद बना हुआ है, इस पर भी किसीने अध्ययन और शोध-अनुसंधान नहीं किया है। लेकिन जितना हमने उन्हें निकटसे देखा है, हम उसके बलपर एक अद्भुत रहस्योद्घाटन अवश्य कर देना चाहते हैं कि अगरचंदजीके पास अभी इतनी सामग्री अलिखित पड़ी है कि यदि कोई शोध-अनुसंधानका विद्यार्थी उनके पास केवल मौखिक डिक्टेशन लेनेका तप-साधन कर सके तो कमसे कम हजार-हजार पृष्ठों के पांच ग्रंथ तो आगामी पांच वर्षोंमें सहज भावसे तैयार किये जा सकते हैं।

मेरा विनय भावसे साहित्यके ऐसे मनीषीको श्रद्धा-निवेदन।

●

एक व्यक्ति : एक युग

श्री ज्ञान भारिल्ल

जैन समाजकी कुछ विशिष्ट परम्पराएँ हैं। उनमेंसे एक है साहित्यका निर्माण। जैन मुनियों ने तो शताब्दीसे हमारे साहित्यका भंडार भरा ही है, अनेक जैन श्रेष्ठि भी प्रत्येक युगमें साहित्यनुरागी रहे हैं। उन्होंने कवि-लेखकोंको आश्रय दिया तथा स्वयं भी साहित्य सृजन किया। यह धारा आज भी अटूट चली आ रही है।

श्रद्धेय श्री अगरचन्दजी नाहटा एक ऐसे ही विद्वान् श्रेष्ठि हैं, जिन्हें न केवल एक साहित्यकार बल्कि राजस्थानमें साहित्य सृजनका एक युग कहा जा सकता है। प्रातः से सन्ध्या तक कतिपय दैनिक कार्यों की अवधिको छोड़कर एक ही आसनमें वे साहित्यकी शोध-खोज तथा लेखनमें दत्तचित्त रहते हैं। उनकी यह एकान्त, अचल साधना हम अपेक्षाकृत युवक कहलाने वाले लोगोंके लिये एक व्यावहारिक पाठ ही है। साधना के बिना कोई सिद्धि कभी मिलती नहीं, यह तथ्य पूरी तरहसे हृदयंगम करके यदि आजके अनेक साहित्यकार अपने साहित्य कर्ममें प्रवृत्त हो सकें तो निश्चय ही वह अपना भी कल्याण करें तथा मां सरस्वतीके भंडारकी भी श्रीवृद्धि हो।

नाहटाजीके विषयमें क्या कुछ लिखा जाय? मेरा तो जन्म बीकानेरमें ही हुआ, तब अवश्य ही उन्होंने मुझे अपनी गोदमें खिलाया होगा, क्योंकि मेरे पिताजीकी जो कि एक जाने-माने जैन विद्वान् हैं, नाहटाजीसे आरम्भसे ही घनिष्ठ आत्मीयता रही है। फिर मैं जब दो ही वर्षका था तब पिताजी बीकानेर छोड़कर जैन गुरुकुल ब्यावरमें प्रधानाचार्य होकर आ गये। बीकानेर तो छूटा किन्तु बीकानेरके व्यक्तियोंसे सम्बन्ध बराबर बना रहा। विभिन्न समारोहोंमें नाहटाजी बराबर उपस्थित होते रहे। खैर, तब तक तो मैं बालक ही था, यदि उस समयकी कोई स्मृति मेरे मनमें शेष है तो वह है नाहटाजी तथा श्री श्रेष्ठि चम्पालाल जी बाँठियाकी ऊँची लहरदार बीकानेरी पगड़ियाँ।

जब मैं बड़ा हो गया, पढ़ लिख गया, कुछ लिखने भी लग गया तो एक समय ऐसा भी आया जब मैं राजस्थान साहित्य अकादमीका प्रथम सचिव बनकर उदयपुर गया। नाहटाजी अकादमीके सदस्य थे। अकादमी के विभिन्न कार्यक्रमों तथा समारोहमें वे अवश्य सम्मिलित होते थे और मुझे उनका स्नेह सदैव प्राप्त होता रहता था।

वह युग भी बीता। कुछ वर्ष इधर-उधर रहने के पश्चात् मैं शिक्षा विभाग के प्रकाशन अनुभागका अधिकारी बनकर बीकानेर ही जा पहुँचा। तब तो नाहटाजीसे समय-समय पर मिलना जुलना होता ही रहा, यद्यपि उतना नहीं जितना होना चाहिए था। और इस बातकी शिकायत नाहटाजीको मुझसे बराबर बनी भी रही जो कि जायज भी थी, क्योंकि वे मुझसे पुत्रवत् स्नेह करते हैं। कुछ तो कार्य व्यस्तताके कारण तथा कुछ अपने स्वभावजन्य आलस्यके कारण मैं अपनी और उनकी बीकानेरमें उपस्थितिका पूरा लाभ नहीं उठा पाया। किन्तु लाभ तो मैंने उठाया ही। प्राचीन जैन साहित्यमें एकसे एक अद्भुत कथाएँ भरी पड़ी हैं। मैं आजकल उन कथाओंकी खोजबीन कर आधुनिक शैलीमें उपन्यासके रूपमें लिखनेमें रुचि रखता हूँ। मन रमता है। नाहटाजीने मुझे, जब भी मैंने चाहा, कोई न कोई सुन्दर कथा खोज कर दी। पूरी सामग्री जुटा दी। इस तरह मैंने कुछ लिखा।

मैं अब बीकानेर नहीं हूँ। किन्तु श्रद्धेय नाहटाजीसे दूर भी नहीं हूँ। आँखें बन्द करके सोचता

हूँ तो अपने विशाल ग्रन्थागारमें आसन पर जमे हुए किसी प्राचीन ग्रन्थके जीर्ण पत्र उलटते-पलटते नाहटाजी मुझे दिखाई देते हैं।

प्रभुसे मैं तो यही विनय कर सकता हूँ कि ऐसे तपस्वी विद्वान्को वे चिरकाल तक हमारे बीच रखें और उनकी आशीर्वाद रूप छाँह हम पर बनी रहे।

●

नाहटा-बन्धु : मेरी दृष्टि में

महोपाध्याय श्री विनयसागर

खरतरगच्छके अनन्य उपासक, धर्मप्रेमी, राजस्थानी-हिन्दी और जैन-साहित्यके कोशके समान भाण्डागारिक, व्यापारी होनेपर भी सहस्राधिक लेखों के लेखक, प्राचीन लिपियोंके विशेषज्ञ, अनुसन्धित्सुओंके प्रेरक एवं शिक्षक, श्रेष्ठिवर्य श्री अगरचन्दजी नाहटा और श्री भँवरलालजी नाहटाका मेरे जीवनसे बहुत ही निकटतम और घनिष्ठतम सम्बन्ध रहा है। वि० सं० २००० से आज तक अर्थात् २०२८ तक यह सम्पर्क अविच्छिन्न रूपसे वर्द्धित रहा है। हालाँकि, इस मध्यमें नामलिप्सा, अर्थ आदि कतिपय प्रसंगोंको लेकर कई बार हमारे आपसी मतभेद भी हुए हैं, ऐसा होनेपर भी आज तक हमारे बीचमें आन्तरिक-प्रेम, साहित्य-साधना और गच्छ सेवामें तनिक भी अन्तर नहीं आने पाया है।

२९ वर्षोंके इस दीर्घ-सम्पर्कपर विचार करता हूँ तो, मेरे हृदय-पटल पर मुनि जीवन और गार्हस्थ्य-जीवनके संस्मरण उभर आते हैं। मैंने बाल्यावस्थामें, वि० सं० १९९६ में खरतरगच्छालङ्कार आचार्यदेव श्रीजिनमणिसागर सूरिजी महाराजके पास भागवती दीक्षा ग्रहण की थी। दीक्षाके चौथे वर्ष मैं अपने पूज्य गुरुजीके साथ बीकानेर आया था। सम्भवतः वहीं सर्वप्रथम नाहटा-बन्धुओंसे मेरा परिचय हुआ था। बीकानेरमें रहते हुए नाहटा-बन्धुओंने मेरे जीवनको किस प्रकार मोड़ दिया—इस बातका परिचय मैंने प्रतिष्ठा-लेख-संग्रह प्रथम भागमें 'अपनी बात' लिखते हुए लिखा था—

"वि० सं० २००० का चातुर्मास मेरे शिरच्छत्र पूज्येश्वर आचार्यदेव श्री जिनमणिसागर सूरिजी महाराजका बीकानेरमें श्री नाहटाजीके शुभ प्रासाद 'शुभविलास' में हुआ। उस समय मेरी अवस्था १३ वर्षकी थी। पूज्येश्वर गुरुदेवने अध्ययनके लिये व्यवस्था कर रखी थी। शिक्षक व्याकरण-काव्य आदिका अभ्यास करवाता था। उस समय मैं सिद्धान्त कौमुदीका दूसरा खण्ड पढ़ रहा था, पर बाल्यावस्थाके कारण अध्ययनमें तनिक भी रुचि नहीं थी और व्याकरण जैसा शुष्क विषय होनेके कारण मैं अध्ययनसे घबड़ाता था तथा बहाने किया करता था। ऐसी मेरी मानसिक स्थिति और पढ़ाईचोर भावनाको देखकर श्री अगरचन्दजी नाहटाने (जो पूज्येश्वर गुरुदेवके भक्त होनेके साथ-साथ मुझे विद्वान् और क्रियापात्र साधु देखना चाहते थे) गुरु महाराजकी आज्ञा प्राप्तकर साहित्यकी तरफ मेरी रुचिको बढ़ाना प्रारम्भ किया। उन्होंने सर्वप्रथम हस्तलिखित ग्रन्थोंकी लिपिके अभ्यासकी ओर मुझे प्रवृत्त किया। मैं भी उस समय 'पढ़ाई' से विरक्तमना सा था। अतः मुझे भी यह मार्ग रुचिकर प्रतीत हुआ और मैं इस प्रयत्नमें अग्रसर हुआ। बड़ोंके आशीर्वाद से इसमें मैं सफल भी हुआ। उन्हीं दिनों मैंने नाहटाजीके संग्रहके लगभग ३००० हस्तलिखित ग्रन्थोंकी सूची भी तैयार की।

इन्हीं दिनों चातुर्मासमें ही गुरुदेव भक्तवर्गको 'उपधान तप' की तपश्चर्या करवा रहे थे । इसी समय बीकानेरके प्रमुख मन्दिर (चिन्तामणिजी) के भण्डारस्थ लगभग १२०० प्रतिमाएँ, जो विशिष्ट समयपर भण्डारसे बाहर निकाली जाती थीं और अष्टाह्निका महोत्सव, शान्तिस्नान, रथयात्रादि महोत्सवके साथ पुनः भूमिगृहमें विराजमान कर दी जाती थीं, इस 'उपधान तप' महोत्सवके उपलक्षमें बाहर निकाली गई । वहाँके दूसरे प्रधान मन्दिर महावीर स्वामीजीके भण्डारस्थ प्रतिमाएँ भी इस समय प्रयत्न पूर्वक निकाली गई थीं ।

श्री नाहटाजीका कई वर्षोंसे विचार और प्रयत्न था कि 'बीकानेर जैन लेख संग्रह' निकाला जाय । वे बीकानेर नगर और उस राज्यमें स्थित समस्त मन्दिरोंके लेख ले चुके थे । पर चिन्तामणिजीके भण्डार-स्थ मूर्तियोंके लेख जो उन्होंने पूर्व लिये थे, वे गुम हो गये थे । अतः उनकी पुनः आवश्यकता थी । इस प्रसंग को लेकर लेखोंकी लिपि-वाचनके उद्देश्यसे उन्होंने मुझे भी इस कार्यमें लगाया । मैं तैयार था ही, उत्साह पूर्वक जुट गया । श्री अगरचन्दजी एवं श्री भँवरलालजी नाहटाके सहयोगसे उस समय लगभग २००-२५० लेख मैंने लिये थे । उस समयसे मेरा लिपि बांचने का भी अभ्यास हो गया ।''

स्पष्ट है कि नाहटा-बन्धुओंका सहयोग और सतत प्रेरणाका ही फल था कि मेरी रुचि साहित्य साधना की ओर अग्रसर हुई और परिणाम स्वरूप मैं प्रवास करता हुआ जहाँ भी जाता, मन्दिरस्थ मूर्तियोंके लेख लिया करता था एवं तत्रस्थ ज्ञान-भण्डारोंका अवलोकन तथा निजी संग्रहका संवर्द्धन करता रहता था । इस प्रकार मैंने २००० दो हजार मूर्ति-लेखोंका संग्रह किया । नाहटाजीकी प्रेरणासे ही १२०० बारह सौ लेखोंका प्रथम भाग 'प्रतिष्ठा लेख संग्रह' के नामसे प्रकाशित भी किया ।

× × ×

खरतरगच्छीय विद्वानों द्वारा निर्मित साहित्य समुद्रके समान विशाल है। उस विशाल सागरमें से बूंद सदृश लघुतम कृतियोंके प्रकाशन एवं सम्पादनके लिए भी नाहटा-बन्धु प्रेरित करते रहे । "मैं भी" 'सम्पादक हूँ' इस नामलिप्साके वशीभूत होकर, अपरिपक्व ज्ञान तथा बुद्धि होते हुए भी मैंने ४-५ लघुकृतियाँ सम्पादित कर दीं । भूमिकायें नाहटाजी लिखते रहे । सम्पादन-क्षेत्रमें मेरे प्रेरक नाहटा-बन्धु रहे तो, इस क्षेत्र को मेरे लिए प्रशस्त करने वाले ये पूजनीय स्वयं श्री जिनमणि सागर सूरिजी, स्वयं अनुयोगाचार्य श्री बुद्धि-मुनिजी गणि, स्व० आगमप्रभाकर मुनिराज श्री पुण्यविजयजी और डा० फतहसिंहजी । वस्तुतः इन्हीं विभूतियों की कृपासे इस क्षेत्रमें मैं कुछ योग्यता अर्जित कर सका हूँ ।

× × ×

वि० सं० २००४ में मेरी मानसिक वृत्तियाँ बदलीं । अब मुझे अपनी अपूर्णताका अनुभव हुआ । इस समय पढ़ाई-चोर जीवन पर हृदयमें पश्चात्ताप भी हुआ । अतः अन्य समग्र प्रवृत्तियोंका त्याग कर मैं विद्या-भ्यास करने लगा । सं० २००८ तक साहित्याचार्य आदि अनेक उपाधियाँ प्राप्त कीं ।

नाहटा-बन्धुओंके आग्रहसे सं २००८ का चातुर्मास करनेके लिए मैं बीकानेर आया । यहीं पर मुनि-राज श्री पुण्यविजयजीसे मेरा सर्व प्रथम परिचय हुआ । नाहटाजीका मुझे बीकानेर बुलानेका आशय भी यही था कि, मैं श्री पुण्यविजयजीके सम्पर्कमें रहकर कुछ योग्यता अर्जित कर सकूँ, उनकी इस आशाको कुछ अंशों में मैंने पूर्ण भी की ।

मुझे स्मरण है कि सं० २००८ में जिस दिन मैं बीकानेर पहुँचा था, उसी दिवस मैंने श्री अगरचन्द-जी नाहटासे कहा था कि, ''आप मुझे विधिवत् वन्दन न किया करें, क्योंकि साधुताके अनुरूप गुण मेरे में हैं नहीं और आपके ही सम्पर्क, प्रेरणा और सहयोगसे मैं योग्य हुआ हूँ, अतः आप मेरे लिए गुरु-तुल्य हैं ।

इस पर श्री नाहटाजीने कहा था, 'यह असम्भव है। आप हमारे गुरु हैं और हम आपके भक्त। लघु दीक्षित भी वन्द्य होता है जबकि आपकी दीक्षा-पर्याय ११-१२ वर्षकी है और आप योग्य विद्वान् भी हैं। प्रेरणा और सहयोग देना हमारा कर्त्तव्य है। परम्परानुसार वन्दन-व्यवहारका मार्ग प्रशस्त एवं आवश्यक भी है। अतः इसमें परिवर्तनकी कल्पना भी नहीं की जा सकती।

× × ×

विचारभेद होनेके कारण सन् १९५६ में, युगप्रधान दादा जिनदत्तसूरि अष्टम शताब्दी समारोहके अवसरपर अजमेरमें मैंने मुनि-वेषका त्याग कर, गृहस्थ-जीवन अंगीकार किया था। वेषका त्याग कर देने पर भी नाहटा-बन्धुओंने मेरे से मुख नहीं मोड़ा। बल्कि, गच्छ का एक योग्य विद्वान् मानते हुए मुझे हर-तरहसे सहयोग देते रहे हैं और आदरकी दृष्टिसे देखते रहे हैं। उनके गुणानुरागकी यह एक झलक है।

× × ×

संयोगवश सन् १९६६ अक्टूबरसे १९६७ दिसम्बरके प्रथम सप्ताह तक बीकानेरमें नाहटाजीके मकानमें ही मुझे सपरिवार रहनेका सौभाग्य मिला। निकटसे मैंने अगरचन्दजीकी दिनचर्याका अध्ययन किया जो वस्तुतः अनुपम सी प्रतीत होती है।

प्रातः उठते ही "क्या सोवे उठ जाग बाऊरे" आनन्दघनजी आदि के पद गाते हुए नीचे उतरते हैं। शौचादिसे निवृत्त होकर सामायिक करते हैं। सामायिकमें परम्परानुसार माला आदि नहीं फेरते हैं, बल्कि नवीन प्रकाशित साहित्यका अध्ययन करते हैं। अर्थात् श्रुत-सामायिक प्रतिदिन नियमित रूपसे दो या तीन घंटे करते हैं। पश्चात् स्नानादिसे निवृत्त होकर मन्दिर जाते हैं और भगवान्की पूजा करते हैं। पूजनोपरान्त कभी-कभी अल्पाहार लेते हैं। इसके बाद यदि साधु-साध्वियोंके व्याख्यान होते हों तो व्याख्यान सुननेके लिए उपाश्रय चले जाते हैं। पश्चात् भोजन कर अभय जैन पुस्तकालयमें बैठकर लेखन-मनन आदि साहित्यक कार्यों में व्यस्त हो जाते हैं। पत्राचार आदि भी इसी समय करते हैं। मध्याह्नको चाय आदि नहीं पीते हैं। सायं-काल सूर्यास्तसे पूर्व भोजन कर पुनः ग्रन्थालयमें आ जाते हैं और श्रुत-सामायिक ग्रहण कर लेखन-मननमें संलग्न हो जाते हैं। कभी-कभी मस्तीकी दशामें 'अपूर्व अवसर एवो क्यारे आवशे, क्यारे थइशुं बाह्यान्तर निर्ग्रन्थ जो।' श्री मद्रायचन्द्र, आनन्दघन, चिदानन्द, जिनराजसूरि आदि महापुरुषोंके पद स्वरलहरीके साथ गुनगुनाने लगते हैं। १०-११ बजे सोनेके लिए घर पर जाते हैं।

× × ×

निकटसे देखने पर नाहटा-बंधुओंके जीवनकी जो विशेषतायें मेरे देखनेमें आई हैं, वे इस प्रकार हैं—

१. लक्षाधिपति एवं व्यापारी होने पर भी श्री अगरचन्दजीके जीवनमें साहित्य-साधन प्रधान होनेसे वर्षमें ९-१० महीने बीकानेर रहते हुए साहित्य-सेवा करते हैं और २-३ महीने व्यापार एवं हिसाब-किताब देखने हेतु बाहर रहकर, साहित्य और अर्थका सन्तुलन बनाए रखते हैं। श्री भँवरलालजी कुछेक वर्षोंसे अधिकतर कलकत्ता रहते हैं। वहाँ रहते हुए भी वे ग्रन्थोंकी प्रतिलिपियाँ, लेख, कहानी आदि लिखते हुए श्री अगरचन्दजीके साहित्य-क्षेत्रको प्रत्येक दृष्टिसे अभिवर्द्धित करनेमें संलग्न रहते हैं।

२. साहित्यिक-जगत्में प्रसिद्ध एवं आर्थिक दृष्टिसे सम्पन्न होने पर भी इन दोनोंकी वेशभूषामें तनिक भी परिवर्तन नहीं हुआ है। वही धोती, कुर्ता, लम्बा कोट, मारवाड़ी पगड़ी और राठौड़ी मूँछ। सामान्य वेष और सामान्य भोजन इनको पहचाननेमें भी कभी-कभी कठिनाई पैदा कर देती है।

३. सामान्य शिक्षा अर्थात् ४-५ कक्षा तक शिक्षा होते हुए भी निरन्तर लगन और परिश्रमसे आज दोनोंकी प्रतिभायें अपने-अपने क्षेत्रमें विशिष्ट स्थान रखती हैं। राजस्थानी, हिन्दी, गुजराती भाषाओं एवं

प्राचीन लिपियों पर दोनोंका समान अधिकार है। जहाँ, अगरचन्दजी परिचयात्मक लेख लिखनेमें और शोध-छात्रोंको निर्देश एवं सहयोग देनेमें अग्रसर हैं, वहाँ भँवरलालजी राजस्थानी कहानियाँ, लेख और प्रति-लिपियाँ करनेमें प्रवृत्त हैं। अगरचन्दजीकी अपेक्षा भी भँवरलालजी गुप्तकालीन आदि प्राचीन-लिपियाँ पढ़नेमें एवं प्राकृत तथा अपभ्रंश भाषामें सिद्धहस्त हैं और प्राकृत-भाषामें स्फुट-रचनायें भी करते हैं। साथ ही चित्र कलाके विशेषज्ञ भी हैं।

४. श्री अगरचन्दजीकी यह विशेषता है कि कोई भी विद्वान् अथवा शोध प्रेमी उनका सहयोग प्राप्त करनेको उत्सुक होकर आता है तो, उसे अपने संग्रहालयमें ठहरानेकी मुफ्त व्यवस्था ही नहीं करते अपितु अपने घर पर भोजन करानेको भी प्रयत्नशील रहते हैं, ताकि शोधार्थीका समय नष्ट न हो। स्वयंका संग्रह तो उसके उपयोगके लिए पूर्णतया विश्वासके साथ खोल ही देते हैं और अन्य संग्रहालयोंके ग्रन्थ भी भाग-दौड़-कर अपने नामसे 'ईस्यू' कराकर, शोधार्थीको लाकर दे देते हैं। अन्य संस्थानोंकी तरह इनके यहाँ समयका प्रतिबन्ध नहीं है। चौबीसों घण्टे शोधार्थी वहाँ बैठकर साहित्यका उपयोग कर सकता है। रात्रिको भी यदि कोई वहाँ बैठकर काम करना चाहे तो, उसके लिए संग्रहालयमें यह व्यवस्था भी कर देते हैं। न केवल ग्रंथों-का सहयोग ही अपितु नये-नये परामर्श एवं दिशा-निर्देश देनेमें भी सर्वदा तत्पर रहते हैं। इसी प्रकारके विद्वानोंका भी अभीष्ट-ग्रंथ प्राप्त करवानेमें सदा प्रयत्नशील नजर आते हैं।

५. श्री अगरचन्दजी नाहटाजीकी स्मरण-शक्तिको प्रज्ञाका अनुपम चमत्कार कहें या ग्रंथागार कहें! चिन्त्य है। नाहटाजीके जीवनका यह नियम रहा है कि वे जहाँ कहीं भी जाते हैं वहाँके संग्रहालयोंका निरी-क्षण अवश्य करते हैं। नवीन कृतियोंके नाम, कर्ता, रचना संवत् और लेखनकालका स्फुट कागजों पर या मस्तिष्क-डायरीमें नोट कर लेते हैं। वर्षों क्या, युगोंके बाद भी वे यह बतलानेमें समर्थ हैं कि इस कवि की अमुक रचना, उस समयकी लिखी हुई या इससे प्राचीन प्रति अमुक भण्डारमें प्राप्त है और उस भण्डारके अमुक व्यवस्थापक हैं आदि। इस विलक्षण स्मरण-शक्तिके श्री अगरचन्दजी धनी हैं।

६. आठ-दस घण्टों तक नियमित रूपसे एक स्थान पर, एक आसनसे बैठकर कार्य करनेकी क्षमता आज, इस अवस्थामें भी विद्यमान है।

७. पत्रका उत्तर देनेमें कभी उपेक्षा नहीं करते। इधर पत्र पढ़ा और उत्तर लिखवा दिया या लिख दिया।

८. साहित्यके क्षेत्रमें धर्म, जाति या ऊँच-नीचका भेद इन दोनोंके जीवनमें नहीं है। गरीब और योग्य शोधार्थीको ये आर्थिक सहयोग भी प्रदान करते हैं।

९. अगरचन्दजी आज भी मीलों पैदल चल लेते हैं। १५-२० किलो ग्राम तकका बोझ बगलमें दबा-कर चलते हुए सड़कों पर नजर आ सकते हैं। छोटी-मोटी दूरीको ये पैदल ही तय करना पसन्द करते हैं। जहाँ इस प्रकार व्यावहारिक जीवनमें ये स्वावलम्बी प्रतीत होते हैं, वहाँ कतिपय प्रसंगोंमें इनकी कृपणता भी प्रकट होती है।

१०. समयका अधिक से अधिक उपयोग करनेकी अगरचन्दजीकी अभिलाषा बनी रहती है।

× × ×

नाहटा द्वय जैन-धर्मके अनुयायी हैं। खरतरगच्छके प्रति असीम अनुराग है। देवार्चन, व्याख्यान श्रवण, सामायिक आदि तो इनकी दिनचर्याके अंग हैं ही। पर्व-दिवसोंमें उपवासादि तपस्या भी करते हैं और प्रतिक्रमण भी करते हैं। धार्मिक कार्योंमें हजारों रूपये व्यय भी करते हैं। ये प्रवासमें हों या घर पर,

नियमित रूप से सूर्यास्तके बाद चतुर्विधाहारका त्याग करते हैं। अर्थात् सूर्यास्तके पश्चात् रात्रिमें किसी भी अवस्थामें भोजन-पानी ग्रहण नहीं करते हैं। प्रायः सूर्योदयके ४८ मिनट पश्चात् ही मुख धावन आदि करते हैं। इन दोनोंके जीवनमें चाय-पान, सिगरेट आदि किसी भी प्रकारके व्यसन को स्थान नहीं है। कतिपय प्रसंगोंमें इनमें रूढ़िवादिताके संस्कार भी प्रकट होते हैं।

× × ×

वि० सं० १९८४ में आचार्यश्रेष्ठ स्व० श्री जिनकृपाचन्द्रसूरिजी महाराज और स्व० उपाध्याय श्री सुखसागरजी महाराजके साँनिध्यमें इन चाचा-भतीजों (अगरचन्दजी काका हैं और भँवरलालजी भतीजे) के हृदयोंमें जो साहित्य-सेवाका अंकुर प्रस्फुटित हुआ था वह ४४ वर्षोंके निरन्तर सिञ्चन और रखवालीसे कितना अभिवृद्धिको प्राप्त हुआ है, साहित्य-जगत्के सन्मुख है। अभय जैन ग्रंथालय, जिसमें ५ हजार हस्तलिखित ग्रन्थ, हजार मुद्रित ग्रन्थ, हजारोंकी संख्यामें प्रेसकापियाँ, प्राचीनतम चित्रपट, सहस्रों चित्र, सिक्के, मूर्तियाँ आदिका अनुपम एवं विशाल संग्रह है, वह इन बन्धुओंके अथाह परिश्रम एवं लगनका द्योतक है।

व्यक्तिगत रूपसे लाखों रूपये खर्चकर इस संग्रहालयका निर्माण करनेमें स्व० श्री दानमलजी और स्वयं श्री शंकरदानजी नाहटाके परिवारोंके सदस्य, स्वयं श्री भैंरोदानजी, श्री शुभराजजी और श्री मेघराजजीने जो सहयोग इन चाचा-भतीजेको दिया है, इसके लिये वे अभिनन्दनीय हैं।

युगप्रधान जिनचन्द्रसूरि, मणिधारी जिनचन्द्रसूरि, जिनकुशलसूरि, युगप्रधान जिनदत्तसूरि, बीकानेर जैन लेख संग्रह आदि ऐतिहासिक पुस्तकें, जिनराजसूरि, समयसुन्दर, धर्मवर्द्धन, विनयचन्द्र, ज्ञानसागर आदि ग्रंथावलियाँ, ४ चार हजारके लगभग पत्र-पत्रिकाओंमें प्रकाशित लेख लिखकर, इन दोनोंने श्रेष्ठि पुत्र होते हुए भी माँ भारतीके भण्डारकी अभिवृद्धि करते हुए, राजस्थानी-हिन्दी और जैन साहित्यकी जो सेवा की है, वह अनुपम, प्रशंस्य और चिरस्मरणीय है।

× × ×

श्री अगरचन्दजी एवं भँवरलालजीका आज भी मेरे प्रति जो सौजन्यपूर्ण असीम प्रेम है, मेरे प्रति इनकी जो अभिलाषायें हैं उसके लिये मैं इन दोनोंका पूर्णरूपसे आभारी हूँ। अस्तु,

अन्तमें 'जीवेम शरदः शतम्' शुभकामनाके साथ आशा करता हूँ, कि भविष्यमें भी नाहटा-बन्धु इसी प्रकार साहित्य-सर्जन एवं सेवा करते हुए वागीश्वरीके कोषागारको समृद्ध करते रहें।

●

अद्वितीय साहित्य मनीषी

श्री अनूपचन्द न्यायतीर्थ 'साहित्यरत्न'

सन् १९४४ की बात होगी—गुरुवर्य्य पं० चैनसुखदासजी न्यायतीर्थके साँनिध्यमें न्याय मध्यमा, की परीक्षा हेतु आप्त मीमांसा, प्रमेयरत्नमाला एवं परीक्षामुख आदि न्याय ग्रंथों का अध्ययन चल रहा था। जाड़ेके दिन थे—हम लोग (लेखक, पं० सुरज्ञानीचंदजी न्यायतीर्थ एवं बा० मुन्नालालजी) रात्रिके समय संस्कृत कालेज भवनमें बैठे पाठ लगा रहे थे। पूज्य पंडित साहब पास वाले बड़े दीवानजीके मंदिरमें शास्त्र-प्रवचन करनेके पश्चात् करीब ९ बजे हमको आकर पढ़ाते थे। रात्रिके करीब पौने ९ बजे होंगे-कालेज की सीढ़ियोंसे चढ़कर महलमें प्रवेश करते हुए सांवले वर्ण, गठवां बदन, लम्बी मूंछें, सरपर ऊँची पगड़ी लगाये,

तीन लांग की धोतीपर लम्बा कोट और उसपर भी एक शाल ओढ़े-एक व्यक्तिने आकर पूछा—क्या पंडितजी शास्त्र प्रवचन करके नहीं आये।' मैंने कहा 'आने ही वाले हैं बिराजिये।' कहते ही ये महापुरुष बिलकुल हमारे पास ही बैठ गये। हम लोग क्या पढ़ रहे थे इस सम्बन्ध में पूछताछ करने लग गये। प्राचीन जैनाचार्यों एवं विद्वानोंके सम्बन्धमें नई जानकारी उनके मुँहसे सुनकर हमें आश्चर्य होने लगा और सोचने लगे कि यह आदमी कोई बड़ा दूकानदार होगा अथवा सेठ होगा इनको जैन साहित्य एवं इतिहास की बातोंसे क्या प्रयोजन। ये महाशय अधिक पढ़े लिखे भी नजर नहीं आते किन्तु बातें विद्वानोंकी सी करते हैं। हम लोग यह सोच ही रहे थे कि सामनेसे लकड़ी की सीढ़ियोंसे चढ़कर खिड़कीसे पंडित साहब भी प्रवचनसे लौटकर आ गये। नाहटाजीने खड़े होकर पंडितजी का अभिवादन किया। पंडितजी बड़ी प्रसन्न मुद्रामें कहने लगे 'अरे नाहटाजी आप कब पधारे? आपको कितनी देर आये हो गयी? आपने अब तक कहलाया भी नहीं। आपको कितनी देर प्रतीक्षा करनी पड़ी।' कुशलक्षेम के पश्चात् दोनों मनीषी पंडितजीके बिस्तर पर ही बिराज गये। "पंडितसे पंडित मिले करे ज्ञान की बात" वाली कहावतके अनुसार आपसमें वार्तालाप चलता रहा। हमने यह सब देखकर दाँतों तले अंगुली दबा ली। जैन साहित्य, इतिहास एवं पुरातत्त्वके धुरन्धर विद्वान् को जिसका कि केवल अब तक नाम ही सुनते थे सामने देखकर दंग रह गये। ऐसे सीधे सादे सादगीके पुतले सरस्वतीके वरद पुत्रके दर्शनोंसे हम अपने आपको भाग्यशाली मानने लगे। हमारी कल्पनामें तो 'धोता बड़ा, पोथा बड़ा पण्डिता पगड़ा बड़ा' वाले नाहटाजी समाये हुए थे। सीधे सादे सेठजी जैसे नाहटाजी नहीं। जैनधर्मके इन दोनों महान् धुरंधर विद्वानों की जैन साहित्यके उद्धार तथा प्रचार एवं प्रसार की बातें करीब डेढ़ घण्टे तक चलती रहीं। तत्पश्चात् जाते-जाते नाहटाजीने पण्डित साहब को इस बात की बहुत-बहुत बधाई दी कि वे कितनी लगनके साथ शिष्यों को तैयार कर रहे हैं। नाहटाजीसे यह मेरा पहिला परिचय था। न्यायतीर्थ एवं 'साहित्य रत्न' की परीक्षा पास करनेके पश्चात् मेरा झुकाव पूज्य पण्डित साहब की प्रेरणा एवं डा० कासलीवाल जैसे साहित्य महारथीके सहयोगसे जैन साहित्य शोध एवं खोज की ओर हो गया। इस क्षेत्रमें आनेके पश्चात् तो नाहटाजी का पूर्ण स्नेह प्राप्त होने लगा। श्रीमहावीर क्षेत्र द्वारा संचालित साहित्य शोध विभागके माध्यमसे तो उनसे और भी गहरा सम्बन्ध हो गया। जब कभी आते बिना मिले जाने का काम नहीं।

राजस्थानके जैन ग्रंथ भण्डारों की सूचियों का तृतीय एवं चतुर्थ भाग डा० कासलीवाल तथा मेरे सम्पादकत्वमें प्रकाशित हुआ तबसे तो नाहटाजीसे और भी अधिक सम्पर्क स्थापित हो गया। सूचियोंमें कहीं-कहीं त्रुटियों का होना भी स्वाभाविक था किंतु ग्रन्थ सूचियोंके सम्बन्धमें उनका अभिमत सदा ही रचनात्मक रहा।

नाहटाजी जैसे खरे एवं सच्चे समालोचक बहुत कम देखनेमें आते हैं। उन जैसा साहित्य-खोजी पुरातत्त्व प्रेमी एवं साहित्य का मूल्यांकन करने वाला साहित्यके क्षेत्रमें बिरला ही मिलेगा। नाहटाजी की हिन्दीके जैन ग्रन्थ एवं ग्रन्थके सम्बन्धमें ही नहीं अपितु राजस्थानी, एवं गुजराती भाषाके ग्रन्थ एवं ग्रन्थकारोंके सम्बन्धमें भी पूर्ण जानकारी है। कहीं भी कोई त्रुटि हो इनकी सूक्ष्म दृष्टिसे बच नहीं पाती।

जैसा कि मैंने प्रारम्भमें सोचा था नाहटाजी कोई सेठ ही नहीं हैं। वे लक्ष्मी पुत्र एवं सरस्वती पुत्र दोनों हैं। उनके व्यापारिक संस्थान हैं—वर्षमें २–३ महीने वे उनकी देख भाल करते हैं—शेष आठ दस महीनोंमें साहित्य सेवा करना ही उनका कार्य है। जब देखो तब साहित्य-साधनामें ही रत दिखाई देते हैं। यह इनकी सतत साहित्य साधना ही का फल है कि हिन्दी साहित्यके किसी भी विषय पर शोध करने वाले

का शोध प्रबन्ध बिना नाहटाजीके देखे अधूरा ही रहेगा । नाहटाजी का अपना निजी पुस्तकालय है जिसमें हजारों की संख्यामें ग्रन्थ हैं । स्मरण शक्ति इतनी प्रबल है कि जो भी ग्रन्थ चाहते हैं तत्काल निकाल लेते हैं । पत्र पत्रिकाएँ इतनी आती हैं और संग्रहीत हैं कि जिनकी कोई संख्या नहीं है। कोई सी पत्रिका बची होगी जिसमें उनका शोध पूर्ण लेख न हो ।

मैं एक बार राज्य कार्यसे बीकानेर गया और दूसरे दिन नाहटाजीसे मिला तो नाराज होकर बोले क्या तुम्हारे लिये यहाँ स्थान नहीं था जो धर्मशालामें ठहरे ? तुम्हें सीधे यहाँ आना चाहिये था । अब जब तक ठहरो भोजन मेरे यहाँ ही करना—"मैंने उन्हें समझाया कि मेरे साथ और भी लोग हैं और वे मुझे भोजनके लिये क्षमा करें ।" यह था उनका विद्वानोंके साथ स्नेह । उनने मुझे अपना पुस्तकालय, संग्रहालय आदि बताये । कोई भी विद्वान् उनके पास जाकर एकाकीपन नहीं पाता । शोधार्थियोंके लिये उनके यहाँ निःशुल्क भोजन तथा आवास व्यवस्था पूरे समय तक रहती है ।

नाहटाजी अपने धुनके पक्के हैं । एक बार वे जयपुर आये, महावीर भवन पहुँचे । वहाँ कोई नहीं मिला तो वहाँसे आदमी को साथ ले सीधे घर पर चले आये । खुद ही ने आवाज लगाई—नीचे लिवाने पहुँचते ही देखने योग्य ग्रन्थों की सूची हाथमें पकड़ा दी । मैंने कहा यह सब काम हो जावेगा पहिले भोजन कर लीजिये । उनका उत्तर था—भोजनसे अधिक यह काम आवश्यक है, पहिले मेरे साथ चलकर ग्रन्थ देखने की व्यवस्था कर दो बादमें भोजन तो होता रहेगा । आज्ञा-पालन करना पड़ा और भोजन पीछे ही किया । भोजन भी बिलकुल सादा । कोई आडम्बर नहीं । भोजनके तुरन्त बाद में ही काममें लग गये । यह है उनकी साहित्य सेवामें लगन एवं अन्य कार्योंके प्रति निस्पृहता ।

नाहटाजी कभी-कभी हमसे नाराज भी रहते हैं और वह भी इस बात पर कि उनके पत्रों का उत्तर शीघ्र ही नहीं दिया जाता । एक बार मैंने उनसे कह दिया कि उत्तर क्या दें, आप लिखते ही ऐसा हैं कि उसे कोई लिपि विशेषज्ञ ही समझ पावे । वे हँसने लगे और इसके बाद उनके पत्र या तो टाइप किये हुए या अन्य किसी द्वारा लिखे हुए आने लगे । वे पत्रोत्तर देनेमें स्वयं तेज हैं और उससे भी तेज हैं वे लेख भेजनेमें । पत्र डालते ही पत्रोत्तरके साथ लेख भी मिल जायगा जैसे कि हर विषयके लेख उनके पास तैयार ही रखे हों ।

वास्तवमें नाहटाजी एक अद्वितीय साहित्य मनीषी हैं । जैन साहित्य एवं इतिहासके अधिकारी विद्वान् हैं । विद्वत् समाज में उनकी प्रतिभा चहुँमुखी है । नाहटाजी जैसे शोधक विद्वान् पर जैन समाज को ही नहीं सम्पूर्ण राष्ट्र को गर्व है । उनकी यशःपताका सदैव साहित्य जगत्में फहराती रहे और वे साहित्य सेवामें लगे ही रहें ऐसी हमारी मंगल कामना है । वे सैंकड़ों वर्षों तक जीवित रहकर भारतीय वाङ्मय का उद्धार कर गौरव बढ़ाते रहें ऐसी भगवान्से प्रार्थना है ।



प्रतिभा, कर्मठता एवं धर्मनिष्ठाके असाधारण धनी : श्रीनाहटाजी

(श्रीनाहटाजीसे प्रथम साक्षात्कार : एक संस्मरण)

डॉ० छगनलाल शास्त्री, एम० ए० (त्रय), पी-एच० डी०

लगभग तैंतीस-चौंतीस वर्ष पूर्वकी घटना है । मैं सरदारशहर (जो मेरा जन्म स्थान है) में श्रीमान्

सेठ श्रीचन्द्रजी गणेशदासजी गधैयाके यहाँ श्रीयुत नेमचन्दजीके सुपुत्र आयुष्मान् सम्पतकुमारको पढ़ाता था। गधैया परिवार सरदारशहरका एक अत्यन्त सम्भ्रान्त समृद्ध और शालीन परिवार है। जैन श्वेताम्बर तैरापन्थका यह अत्यन्त सेवी रहा है और आज भी है। तेरापन्थके श्रावक-समुदायमें इस परिवारकी बड़ी प्रतिष्ठा तथा आदर है। इस परिवारके श्रेष्ठी जन धार्मिक सेवाकी भावनासे सदा ओत-प्रोत रहे हैं। सात्त्विक विचार तथा साहित्यिक अभिरुचिके अन्यान्य सम्पन्न परिवारोंकी तरह इस परिवारको भी प्राचीन ग्रन्थोंके संग्रहका शौक रहा हैं। फलतः स्वर्गीय सेठ श्रीचन्दजी, गणेशदासजी तथा वृद्धिचन्दजी अनेक ग्रन्थ-भण्डारोंसे हस्तलिखित ग्रन्थ खरीदते रहते थे। जहाँ प्राप्त हुए, वहाँ उन्होंने पूरेके पूरे भण्डार भी खरीद लिये। फलतः आज भी उनके यहाँ सहस्रोंकी संख्यामें हस्तलिखित ग्रन्थोंका संग्रह है। श्रीमान् अगरचन्दजी नाहटा, जिनसे मेरा तब तक बहुत साधारण परिचय था, अपने भ्रातृ-पुत्र श्री भँवरलालजीके साथ गधैयाजीके यहाँ सरदारशहर आये। सेठ साहबसे मुझे मालूम हुआ कि ये जैन साहित्यके अनुसंधित्सु हैं, पारिवारिक परंपरासे उनका उनसे कुछ संबंध भी है। ये अपने यहाँके ग्रन्थ-संग्रहको देखेंगे, मैं भी उनके साथ रहूँ, और जैसा अपेक्षित हो, सहयोग भी करूँ।

यों श्री नाहटाजीका नैकट्य पानेका मुझे अवसर मिला। मैं तब तक संस्कृत आदिका एक दृष्टिसे अच्छा अध्ययन कर चुका था। युवा था, मनमें पाण्डित्यका मान भी था, जो अब काफी कम हो गया है। अस्तु-मुझे सहसा लगा—यह पगड़ी वाला सेठ संस्कृत, प्राकृत भाषाओंके ग्रन्थोंकी खोज करेगा? हाँ इतना तो तब तक सुन रखा था कि श्री नाहटाजी राजस्थानीके अच्छे जानकार है, गवेषक हैं परन्तु संस्कृत, प्राकृत जैसी भाषाओंको भी समझनेकी उनमें क्षमता है, यह नहीं जनता था। परन्तु जब उनके गवेषणा-कार्यके क्रमको देखा, ग्रन्थोंकी प्रशस्तियोंको पढ़ते सुना, कई ग्रन्थोंके नोट्स लेते देखा, बहुत सूक्ष्म और गहरी बातों पर चर्चा करते पाया, तब अनुभव हुआ कि निःसन्देह इस व्यक्तिको विद्या संस्कारसे लब्ध है, और सूझ बहुत पैनी है, भले ही तथाकथित विद्याध्ययनका अवसर इन्हें न मिला हो, विश्वविद्यालयकी उपाधियां इन्होंने प्राप्त न की हों। इसमें कोई संशय नहीं कि इनका ज्ञान बहुत प्रांजल एवं गंभीर है, मेधा बहुत उर्वर है।

यह हुआ गंभीर चिन्तन, तलस्पर्शी विवेक और सूक्ष्मभाव-गाहिनी बुद्धिका पक्ष। श्री नाहटाजीके जीवनका दूसरा एक और पक्ष हैं, जो इससे कम महत्त्व नहीं रखता। वह है उनका अनवरत, अथक एवं श्रमशील जीवन। मैं यह देखकर आश्चर्यचकित रह जाता था कि वे किस प्रकार अपने कार्यमें तन्मय होकर बिना रुके उसे करते जाते थे। अनिवार्य दैनिक कार्यों के अतिरिक्त उनका समग्र समय अपने गवेषणा-कार्यमें ही लगता। जहाँ फल नहीं, कर्म ही आनन्दमय हो जाता है, वहाँ आत्मस्थ या स्थितप्रज्ञकी दशा आती है, कर्म योग सध जाता है आसक्ति स्वयं छूट जाती है। नाहटाजी एक कर्मयोगी हैं। प्रसादने कामायनीमें एक बड़ी मार्मिक बात कही है :—

कर्म का भोग, भोगका कर्म।
यही जड़का चेतन आनन्द ॥

इन दो पंक्तियोंमें कर्मयोगके विराट-दर्शन का नवनीत छिपा है। प्रसादका यहां आशय है कि साधारणतया वैषयिक भोगमें आनन्द लेता है, कर्ममें नहीं। वहां वह उदासीन बना रहता है। जैसा आनन्द वह भोगमें लेता है, वैसा यदि कर्ममें लेने लगे और जो उदासीनता कर्ममें बरतता है, वैसी भोगमें बरतने लगे अर्थात् उधर लोलुप न बन केवल (गृहस्थ की दृष्टिसे) अनिवार्य कर्तव्य भावना लिये प्रवृत्ति रहे तो उसके जीवनमें सच्चे आनन्द का स्रोत कहीं रुकता नहीं, उत्तरोत्तर बहता ही जाता है जिस मानव को वैसा

आनन्द लेने की वृत्ति वह जाती है, वह अनवरत कर्मरत रहते हुए भी कभी परिश्रान्त नहीं होता, आकुल नहीं बनता। न उसे फलासक्ति आ घेरती है और न उदासीनता ही। श्री नाहटाजी ऐसे असाधारण व्यक्तित्व के धनी हैं, जिनके उदग्र कर्मठतामय जीवनमें साधन साध्यका द्वैत एक हो जाता है।

जब मैं उन दिनों उन्हें एक अनूठी, तीव्र और उत्सुकता भरी लगनके साथ काममें जुटे हुए देखता तो मनमें ऐसा अनुभव होता कि इस मनीषीसे साहित्य जगत्का एक बहुत बड़ा हित सधने वाला है और कहना नहीं होगा कि वैसा हुआ भी।

श्री नाहटाजीके जीवन का एक पहलू है, जो उक्त दोनों पहलुओंसे कम महत्त्वपूर्ण नहीं लगता। सरदारशहरके उस त्रिदिवसीय प्रवासमें जहां मैंने नाहटाजीमें प्रतिभा और कर्मनिष्ठता का चमत्कार देखा, वहां मुझसे यह भी छिपा नहीं रहा कि वे कितनी अडिग धर्मनिष्ठासे ओतप्रोत हैं। अत्यधिक व्यस्तताके वावजूद वे सामायिक (जैन साधना का एक सावधिक अभ्यास-क्रम) करना भी नहीं छोड़ते। शायद मन्दिरों में दर्शन भी करते। व्यस्तता का अर्थ उनके विचारमें यह नहीं लगा कि कार्य कर रहे हैं, सायंकाल हो गया, भोजन नहीं हो सका तो न सही, विलम्बसे हो जाएगा। यह अव्यवस्था का रूप है, जिसे नाहटाजी पसन्द नहीं करते।

यों तो चौंतीस वर्ष पूर्वके प्रथम परिचयमें मैंने नाहटाजीके जीवनमें कर्म, धर्म और ज्ञान, त्रिवेणीकी जो झलक देखी, उनके सतत पुरुषार्थ उद्यम और अध्यवसायका सम्बल पाकर वह उत्तरोत्तर बढ़ती ही गयीं। नाहटाजी आज एक साहित्यिक स्तंभके रूपमें हमारे बीच विद्यमान हैं, जिस पर हमें गर्व है। वे शतायु, स्वस्थ, सबल एवं सदैव कार्यक्षम रहें, हमारी यही हार्दिक कामना है।



कुतूहल, श्रद्धा और अपनेपनसे भरा वह नाम

डॉ० नरेन्द्र भानावत, एम० ए०, पी-एच० डी०

सन् १९५०-१९५१ की बात है। मैं उन दिनों हाईस्कूलका छात्र था और श्री गोदावत जैन गुरुकुल, छोटीसादड़ीके छात्रावासमें रहता था। उस समय प्रकाशित होनेवाली अधिकांश हिन्दी पत्र-पत्रिकाएँ वहाँ आती थीं, जैन पत्रिकाएँ भी। मैं उन्हें रुचिपूर्वक पढ़ा करता था। प्रायः प्रतिदिनका मेरा संध्या-समय उन्हीं-में गुजरता था। मेरे सामने कई लेखकों और कवियोंकी रचनाएँ आती थीं। मैं स्वयं उन दिनों कविता करना और लेख लिखना सीख-सा रहा था। 'वीरपुत्र', 'बालसखा' 'जैनप्रकाश' आदि में मेरी कविताएं छपने भी लगी थीं। उस समय रह-रहकर जो नाम मुझे अधिकांश पत्र-पत्रिकाओंमें बार-बार देखनेको मिलता था वह था 'श्री अगरचन्द नाहटा'। तभीसे इस नामके प्रति मेरे मनमें एक विशेष कुतूहल, श्रद्धा और अपने-पनका भाव भर गया था। मैं सोचा करता था—कैसा होगा यह व्यक्ति, जो छोटे से छोटे पत्रसे लेकर बड़े से बड़े पत्रमें लगातार अपने लेख भेजता रहता है, कितना वैविध्यपूर्ण और विस्तृत होगा उसका ज्ञान, दिनमें कितने समय वह पढ़ता-लिखता होगा और कितना समृद्ध होगा उसका अपना पुस्तकालय !

संयोगकी बात कि जुलाई १९५२में मैं बीकानेर पहुँचा और स्व० दानवीर सेठ श्री भैरोदानजी सेठियाकी असीम कृपासे मुझे सेठिया जैन छात्रावासमें रहनेका अवसर मिला। सेठियाजीका मुझपर विशेष

स्नेह था। उन्हींकी प्रेरणासे मैं कॉलेज शिक्षाके साथ-साथ 'साहित्यरत्न' की तैयारी भी करने लगा। अधिकांश पुस्तकें मुझे 'सेठिया लायब्रेरी' से मिल गई थीं। शेष पुस्तकोंके लिए बाबूजी [स्व० भैरोदानजी सेठियाको सभी इसी नामसे पुकारा करते थे] ने मुझसे कहा कि नाहटोंकी गुवाड़में 'अभय जैन ग्रन्थालयमें भी देख लेना, वहाँ श्री अगरचन्दजी होंगे।

मेरी प्रसन्नताकी सीमा न रही। मैं उसी समय नाहटोंकी गुवाड़के लिए रवाना हो गया। शायद अगस्तका महीना था। जोरोंकी गरमी पड़ रही थी। दोपहरका समय था। मैं पूछता-पूछता सीधा अभय जैन ग्रंथालय पहुँचा। एक तिमंजिला मकान। प्रवेशके लिए छोटा था दरवाजा, जो खुला होनेपर भी बन्द सा रहता है। कोई भी थोड़ा धक्का देकर, उसे खोलकर, फिर हौलेसे बन्दकर, ऊपरकी मंजिलमें जा सकता है। यही स्थल नाहटाजीकी साहित्य-साधनाका केन्द्र है।

मैंने ऊपर जाकर देखा, मुख्य कमरा चारों ओर किताबोंसे आवृत है। बीचमें एक ओर पत्र-पत्रिकाओंका ढेर लगा है, दूसरी ओर कई पुस्तकें खुली-अधखुली पड़ी हैं। दरी बिछी हुई है, उसपर गादी तकिया लगा है। कमरेमें पंखा है पर वह इस समय बन्द है। मुझे पुस्तकों और पत्र-पत्रिकाओंके ढेरमें किसी व्यक्तिको खोजने में कुछ क्षण लगे। वह व्यक्ति, बाहरसे आया हुआ कोई शोधछात्र-सा लगा। उसने पासके कमरेकी ओर इशारा भर कर दिया।

इस कमरेमें टेबल, कुर्सी, बेंच आदि थी। कमरा इतना छोटा कि वह इन्हीं सबसे भरा था। अलमारियोंमें किताबें थीं। टेबल, कुर्सी, बेंच आदि पर भी किताबें जमी हुई थीं। इन सबके बीच बेंच के बीचोंबीच एक व्यक्ति, किसी साधक सा समाधि लिये अध्ययन में लीन था। बदन पर धोती के अलावा कोई कपड़ा नहीं था। गरमीके कारण कुरता, बनिआइन आदि उतार दिये गये थे। मैंने नमस्कार कर, नाम पता आदि बतानेके बाद किताबोंके लिए कहा। उस व्यक्तिने बिना बिलम्ब किये एक रजिस्टर मेरी ओर बढ़ा दिया। मैंने अपने कामकी आवश्यक किताबें नाम व नम्बर बताये, तुरन्त किताबें निकाल दी गईं और और एक दूसरा रजिस्टर मेरी ओर बढ़ा दिया गया। मैंने उसमें किताबों की एन्ट्री कर दी और किताबें लेकर अपने घर आ गया। इस प्रसंगसे नाहटाजीके व्यक्तित्वकी कई विशेषताएँ एक एक कर प्रकट हुईं। निरभिमानता, कार्यतल्लीनता, मितभाषिता, आत्मनिर्भरता, उदारता, नियमित अध्ययनशीलता, सतत जागरूकता और वात्सल्य भाव।

इस प्रसंगके बाद नाहटाजीसे मेरा सम्पर्क उत्तरोत्तर बढ़ता गया। उनके व्यक्तित्व और वातावरण से मुझे कई अनूठी प्रेरणाएँ मिलीं।

नाहटाजीके सम्पर्कसे मुझे ऐसा लगा कि उनकी सफलताका रहस्य दो बिन्दुओं में निहित है—अप्रमाद भाव और जिज्ञासावृत्ति। उन्होंने भगवान् महावीरकी इस वाणीको 'समयं गोयम मा पमायए'—अपने जीवनमें चरितार्थ कर लिया है। आज साठ वर्ष की अवस्थामें भी बिना सहारे आठ-दस घंटेकी लगातार बैठक लगा लेना, उन जैसे धुनी गवेषकका ही कार्य है। युवा छात्रोंका हाल तो यह है कि वे एक घंटा भी तल्लीन होकर क्लासोंमें नहीं बैठ सकते, जबकि उनके लिए कुर्सी है, टेबल है, सब सुविधा और सहारा है। मैंने तपती दोपहरीमें नाहटाजीको एकरस होकर कार्य करते देखा है। वह भी बिना पंखेका सहारा लिए। मैंने एक दिन अनायास यों ही पूछ लिया-क्या आपको पंखेसे 'एलर्जी' है। वे जरा मुस्कराये और बोले—पंखेकी हवा व्यक्तिको थोड़ी देर बाद काहिल बना देती है, उससे नींद आने लगती है, वह जागरूक होकर काम नहीं कर सकता, यह गर्मी, जो तुम महसूस करते हो, थोड़े समयकी है, पालथी मारकर बैठ जाओ और काममें लग जाओ तो गर्मी-वर्मी सब भूल जाओगे।'' यह है कामके प्रति निष्ठा और सच्ची साहित्य-साधनाका रूप।

पत्र-व्यवहारमें नाहटाजी बड़े जागरूक रहते हैं। प्रतिदिन पत्र लिखने-लिखानेके लिए उन्होंने अपना कुछ समय २-३ घंटे नियत कर रखा है। सामान्यतः वे दूसरोंसे बोलकर ही पत्र लिखाते हैं, क्योंकि नाहटाजीकी लिपि स्पष्ट व सुन्दर नहीं है। उसे पढ़ लेना सहज नहीं है। जो पूर्वापर प्रसंगको थोड़ा बहुत जानता हो, वह तो फिर भी उन टेढ़े-मेढ़े अक्षरोंमें अपने कामका अर्थ ढूँढ़ लेगा। पर वे इतने जागरूक रहते हैं कि संयोगसे किसी दिन दूसरेका मिलान न हो तो वे स्वयं ही पत्र लिखना आरंभ कर देते हैं, उन्हें इस बातकी चिन्ता उस समय नहीं रहती कि इस पत्रको कोई पढ़ सकेगा या नहीं। किसी पत्रके उत्तरकी प्रतीक्षामें वे अधिक दिन नहीं निकाल सकते। इसीलिए उनके यहाँ स्मरण-पत्र भेजनेकी लम्बी श्रृंखला लगी रहती है। एक-एक कार्यके लिए मुझे लगातार दो-तीन वर्षों तक प्रति माह स्मरण-पत्र मिलते रहे हैं और उनकी श्रृंखला तब कहीं जाकर टूटी जब वह कार्य पूरा हो गया। दिनरात व्यस्त रहने वाले वणिक् परिवारके साहित्य-मनीषीकी यह पत्राचारगत उदारता आजके तथाकथित 'बड़े' कहलाने वाले लोगोंके लिए प्रेरणादायी बन सकती है।

गहन ज्ञानके धनी होकर भी नाहटाजी नये ज्ञान और तथ्यकी प्राप्तिके लिए सदा जिज्ञासु रहते हैं। यह जिज्ञासावृत्ति उन्हें सदा जागरूक और नियमित बनाये रखती है। किसी नये ग्रंथ, कलात्मक वस्तु, या नये तथ्यकी जानकारीके लिए वे सदैव प्रयत्नशील रहते हैं। अपनी व्यावसायिक यात्राओंमें भी उनकी यह साहित्य-जिज्ञासा वृत्ति मन्द नहीं होती। जब किसी ग्रन्थागारमें उन्हें कोई नया ग्रन्थ या नया ज्ञातव्य प्राप्त होता है तो वे उसे पूरे पढ़े बिना और आवश्यक नोट लिये बिना नहीं छोड़ते। इसके लिए वे अपने अन्य आवश्यक कार्यक्रम, यहाँ तक कि खाना भी, रद्द करते देखे गये हैं। आचार्य श्री विनयचन्द्र ज्ञान भण्डार, जयपुरकी कुछ प्रतियोंको देखते हुए, मैंने स्वयं उनके इस जिज्ञासा-भावको देखा-परखा है।

नाहटाजीने अबतक जितने निबन्ध लिखे हैं, कदाचित् संख्यामें, विश्वमें और किसी विद्वान्ने नहीं। औसतन वे प्रतिदिन एक निबन्ध पिछले वर्षोंमें लिखते रहे हैं। इसका अर्थ यह नहीं कि वे नया पढ़ते न हों। नित्य कुछ न कुछ नया पढ़ते रहनेकी भावनासे उन्होंने अपना बड़ा सुन्दर कार्य क्रम बना रखा है। वे प्रतिदिन दो चार सामायिक करते हैं। 'सामायिक' के लगभग इन दो घंटोंमें वे प्रतिदिन नया साहित्य पत्र-पत्रिकाएँ आदि पढ़ते ही रहते हैं। नित्यका यह क्रम होनेसे वे एक वर्षमें हजारों नये पृष्ठ पढ़ लेते हैं।

अप्रमाद भाव और जिज्ञासा-वृत्तिके परिणाम स्वरूप नाहटाजी दूसरोंके लिए सदैव उदार, सहयोगी और प्रेरक बने रहते हैं। बार-बार पत्र लिखकर किसी साहित्य-शोध कार्यमें लगे रहनेकी प्रेरणा देना, किये जा रहे साहित्यिक कार्यकी प्रगतिके सम्बन्धमें बार-बार पूछताछ करते हुए आवश्यक निर्देश देते रहना, नये शोध-विषय सुझाते रहना, नाहटाजीका स्वभाव-सा बन गया है। उनका पुस्तकालय एवं ग्रन्थागार सबके लिए सदैव खुला रहता है। कोई किसी भी समय, यहाँ तक कि उनकी अनुपस्थितिमें भी, जाकर उसका उपयोग कर सकता है।

मुझे अपने शोधकार्य और अन्य साहित्यिक प्रवृत्तियोंमें नाहटाजीसे बड़ी प्रेरणा और सम्बल मिला है। इस अवस्थामें भी वे मनोयोगपूर्वक गवेषणाके नये-नये क्षितिज उद्घाटन करनेमें लगे हुए हैं।

प्राचीन भाषा और साहित्यका यह गवेषक विद्वान् शताधिक वर्षों तक हमारा मार्ग-दर्शन करता रहे यही शुभेच्छा।

●

श्री अगरचन्द नाहटा : प्राचीन साहित्य शोधक

प्रो० रामचरण महेन्द्र

हिन्दी साहित्य तथा उसकी गतिविधिसे हो सकता है ? अथवा ये किसी निकट सम्बन्धी व्यापारके लिए जयपुर पधारे हैं।

मैं देख रहा हूँ ट्रंक इनके पास नहीं हैं। केवल दो बिस्तरे हैं। छोटी बड़ी पोटलियाँ हैं, एक छोटी पीपी है। कुछ और फुटकर सामान। हो न हो पश्चात् कमरेके बाहर दरवाजे पर तीन नाम दर्ज कर दिये गये। प्रो० रामचरण महेन्द्र, श्री अगरचन्द्र नाहटा, श्री भँवरलाल नाहटा।

श्री अगरचन्द्रजी नाहटा, मेरे मनमें नाहटाजीकी जो कल्पना थी, चूर चूर हो गयी। मैं सोचने लगा ~ हैं श्री अगरचन्द्रजी नाहटा—प्राचीन हिन्दी अपभ्रंश, राजस्थानी भाषाओंके शोधकर्ता सदा जोवनमें साहित्यको प्रधानता देनेवाले साधक, प्राचीन चित्रकला, हस्तलिपियोंके संग्राहक, प्राचीन ज्ञानके बिखरे पन्नों को एक स्थान पर एकत्र करनेवाले सैकड़ों लेख प्राचीन पुस्तकों व जैन साहित्य पर प्रकाश डालने व सम्पादन करनेवाले राजस्थानी लेखक तथा विचारक, बीकानेरमें सांस्कृतिक संग्रहालयके स्थापक।

धीरे-धीरे हम परस्पर खुले। नाहटाजीसे एक हिन्दी लेखकके नाते पुरानी जान पहिचान निकल आई। प्रायः दोनों एक प्रकारकी विचारधारा और उद्देश्योंके साहित्य सेवी होने के कारण जल्दी ही घुलमिल गये। तीन दिन साथ रहनेका सौभाग्य मिला।

नाहटाजीका जीवन सरल और आडम्बर शून्य है। बाहरसे देखनेपर आपको विदित होगा मानो किसी सरल हृदय ग्रामीण मारवाड़ीसे बातें कर रहे हैं। उन्हें किसी प्रकारका घमण्ड छू तक नहीं गया है। प्राचीन शोध, पुराने ग्रंथों विशेषतः जैन ग्रन्थोंकी खोज, आध्यात्म चिंतन, पठन-पाठन यही उनका जीवन है।

वे प्रातः साढ़े चार बजे या पाँच बजे जागकर भजन पूजा जाप इत्यादिके अभ्यस्त हैं। मैं प्रायः उन के भजन रंजनकी मधुर ध्वनि सुनकर ही जागता रहा। वे आध्यात्म चिंतन तथा भजनोच्चारण करते समय आत्मविभोर हो उठते हैं। उन्हें यह ज्ञान नहीं रहता कि वे कहाँ हैं।

स्थिति यह है कि जब कभी समय मिलता है, मैं उनके पीछे और मेरी लेखनी साथ ही साथ रहती हुई। टहलने, भोजन करने, मीटिंग तथा अन्य स्थानोंमें हम साथ रहे। नाना साहित्यिक चर्चाएँ चलीं। उनकी साहित्य साधनाके सम्बन्धमें अनेक प्रश्न पूछे, टीकाओंका समाधान किया, भावी योजनाओंका कार्य-क्रम मालूम किया।

नाहटाजीसे बातें करके प्रत्येक व्यक्ति ऐसा अनुभव करता है जैसे एक हृदय दूसरेसे मिल रहा हो, मध्यमें कृत्रिम दिखावे की कोई दीवार नहीं।

मैं प्रश्न कर रहा हूँ। नाहटाजी अपने जीवनके रहस्योंको खोलते जा रहे हैं।

मेरा प्रथम प्रश्न यह है कि आपकी साहित्य साधना कब, कैसे और किन परिस्थितियोंमें प्रारम्भ हुई।"

नाहटाजी कह रहे हैं अबसे २७ साल पूर्व संवत् १९८४ में हमारे गुरुजी श्री जिन कृपाचन्द्रसूरिका चातुर्मास बीकानेरमें हमारे भवन कोटरीमें हुआ था। उनकी शिष्ट मण्डली प्रधानतः श्री सुखसागरजीके सम्पर्कमें, गुरुजी तथा इनके शिष्यके व्याख्यानादि सुनकर जैनधर्म सम्बन्धी मेरी धार्मिक भावनाएँ बढ़ीं। एक दिन "जैनआणंद काव्य महोदधि" के सातवें भौतिकमें "कविवर समयसुन्दर" नामक मोहनलाल दलिचन्द

देसाई लिखित लेख पढ़नेमें आया। राजस्थानमें ये कवि अत्यन्त लोकप्रिय थे। इनकी कई रचनाएँ मुझे भी नित्य पढ़नेमें आती थीं। इसलिए विचार हुआ कि राजस्थानके इस कविके सम्बन्धमें गुजरातके एक विद्वान्ने इतनी अधिक शोधकर प्रकाश डाला है, तो राजस्थानमें शोध करने पर और भी नई जानकारी मिलनी चाहिये। उसी उद्देश्यको समझ कर बीकानेरके भण्डारोंकी हस्तलिखित प्रतियाँ देखना प्रारम्भ कर दिया। और उनमें जो जो रचनाएँ उनको तथा अन्य कवियोंकी अच्छी लगीं, उनकी प्रतिलिपियाँ तैयार करना प्रारंभ कर दिया। यही शोध कार्य करते-करते मैं साहित्य क्षेत्रमें प्रविष्ट हुआ। गुरुमहाराजके गुणानुवादके रूपमें कुछ हिन्दी कविताएँ करनेका शौक लगा, कई वर्ष पश्चात् लेख इत्यादि लिखने प्रारम्भ किये।

मैंने आगे प्रश्न पूछा—

"आपकी कौन-कौन कृतियाँ कब कब प्रकाशित हुईं? इनका अनुभव सुनाइये।"

वे बोले "जैन धर्म प्रकाश" नामक पत्र में "विधवाकुलक" नामक प्राचीन लघु रचना लगभग संवत् १९८५ गुजराती अनुवादसे प्रकाशित हुई थी, उसे पढ़कर मैंने हिन्दीमें विवेचन लिखना प्रारम्भ किया था, "विधवा कर्तव्य" शीर्षकसे मैंने स्वतंत्र पुस्तकके रूपमें प्रकाशित किया। तदनंतर कविवर समयसुन्दरके दादा गुरु नितचंद सूरिका संक्षिप्त परिचय लिखा, जो पहले ३० वर्षमें किया था, फिर जैसे सामग्री उपलब्ध होती गई, बढ़ता गया, चौथीबार में वह ग्रन्थ ४०० पृष्ठोंके आकार का हो गया, यह सं० १९९० में "युगप्रधान जिनचन्द्रसूरि" के नामसे अभय जैन ग्रंथमाला बीकानेरने प्रकाशित किया, इसमें सवासौ ग्रंथों का निचोड़ था। यह ग्रंथ अत्यन्त लोक-प्रिय हुआ, इसीके आधार पर संस्कृतमें दो हजार अनुष्टुप् छंदोंमें एक काव्य जैनमुनि लब्धमुनिने किया। गुजरातीमें भी अनुवाद हुआ, श्री मोहनलाल दलिचंद देसाईने ४२पृष्ठोंमें इसकी प्रस्तावना तथा स्व० ओझाजीने इसकी सम्मति लिखकर प्रोत्साहित किया।

उसी समयसे जैन भण्डारोंमें जो प्राचीन अपभ्रंश और प्राचीन राजस्थानी रचनायें हैं, उनमेंसे ऐतिहासिक रचनाओंका संग्रह तथा संपादन कर "ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह" के नामसे प्रकाशित किया, यह ग्रंथ साढे छै सौ पृष्ठोंका है। इसमें १२ वीं शताब्दीसे २० वीं शताब्दीके प्रारंभ तकको अप्रकाशित ऐतिहासिक रचनायें प्रत्येक शताब्दी और पूर्वार्द्ध और उतरार्द्धमें रचित हैं, का संग्रह है। भाषा विज्ञानके अध्ययनकी दृष्टिसे यह ग्रन्थ मूल्यवान समझा गया है, डा० हीरालाल जैनने इसकी प्रस्तावना लिखी थी।

खरतरगच्छमें चार आचार्य दादासाहबके नामसे प्रसिद्ध हैं।।उनकी मूर्तियाँ, पादुकायें और मन्दिर सैकड़ों स्थानों में हैं युगप्रधान जिनचन्द्रसूरि उन्हीं चारोंमें चौथे हैं। इनकी जीवनी प्रकाशित करनेके पश्चात् अन्य तीन आचार्योंकी जीवनियां भी जैन भण्डारोंकी हस्तलिखित प्रतियोंसे एकत्रित कर क्रमशः दादा जिनकुशल-सूरी, मणिधारी जिनचन्द्रसूरी तथा युग प्रधान जिनदत्तसूरी नामक तीन ग्रन्थ प्रकाशित किये। इनकी प्रस्ता-वना मुनि० जिनविजयजी, डा० दशरथ शर्मा, तथा मुनि कान्तिसागरजीने लिखी। इन तीनोंके भी संस्कृत और गुजरातीमें अनुवाद प्रकाशित हुए।

इसी समय जैन प्रतिमाओंके लेख संग्रहीत किये और समस्त बीकानेर राज्यके श्वेतांबर मन्दिरके ढाई हजार संग्रह करके "बीकानेर जैन लेखसंग्रहके नामसे ग्रंथ लिखा है, जो शीघ्र ही लेखों प्रकाशित होने वाला है। इसकी प्रस्तावना ११२ पृष्ठोंकी है। इसमें बीकानेर राज्यके मन्दिर, उपाश्रय, ज्ञान-भण्डार, जैनोंसे राजकीय सम्बन्धों पर विस्तारसे प्रकाशन डाला गया है। यह ग्रंथ १५ वर्षोंके परिश्रम का परिणाम है। मैंने आगे नाहटाजीसे पूछा—

आपके शोध सम्बन्धी लेखोंका प्रिय विषय क्या है?

वे बोले'' मैं सदासे हिन्दी, राजस्थानी, जैनसाहित्योंमें दिलचस्पी लेता रहा हूँ। इतिहासकी सामग्री तथा लुप्त होते हुए प्राचीन साहित्यको प्रकाशमें लानेमें सदा प्रयत्नशील रहा हूँ मेरे पचासों लेख जो विचार-प्रधान हैं, पिछले २८ वर्षसे हिन्दी और गुजराती १४० पत्र पत्रिकाओंमें लगभग १२००० फुटकर लेख प्रकाशित हुए हैं। इनमें बहुमूल्य इतिहास और साहित्यकी सामग्री है। यह लगभग ६००० पृष्ठोंका मैटर है। यदि कोई साहसी प्रकाशन इन्हें प्रकाशित करें तो पांच पांचसौ पृष्ठोंके लगभग १२ संकलन प्रकाशित हो सकते हैं।''

नाहटाजी आजकल ''पृथ्वीराज रासो'' की हस्तलिखित प्रतियोंसे एक प्रमाणित संस्करण तैयार कर रहे हैं अतः मैंने इसी खोजके संबन्धमें नाहटाजीसे पूछे--

वे ''बोले २० वर्ष पूर्व आत्मानन्द पत्रमें डा० बनारसीदास जैनने एक विज्ञप्ति प्रकाशित की थी। कि ''पृथ्वीराज रासोंकी हस्तलिखित प्रतियोंके संबन्धमें जिनकी जानकारी हो वे मुझे सूचित करें, मेरे संग्रह में भी इसकी एक महत्वपूर्ण प्रति प्राप्त हो चुकी थी। उसीकी सूचना मैंने इन्हें दी। वे उस प्रति तथा अनूप-संस्कृत लाइब्रेरी बीकानेरकी अन्य प्रतियोंको देखनेके लिये बीकानेर पधारे। हमारी प्रति तो वे साथ ले गये, क्योंकि उन्हें जो ओरिएन्टल लाइब्रेरी लाहौरमें अपूर्ण प्रति मिली थी। उस संस्करणकी पूर्ण प्रति थी। अनूप संस्कृत लाइब्रेरी की ''रासो'' की प्रतियां मुझे विदित हुआ, कि हमारे संस्करणकी प्रतियोंसेभी लगभग आधे परिमाणका लघु संस्करण थी। तभीसे मेरा ध्यान ''रासो'' की हस्तलिखित प्रतियोंके शोधकी ओर गया, क्योंकि काशीनागरीप्रचारणी सभासे प्रकाशित वृहत् संस्करण लगभग ६६ हजार श्लोक परिमाण का है। हमारे संग्रहकी प्रति इससे चतुर्थांश परिमाणकी है। इस लिए समस्या यह हुई कि ''रासो'' में इन तीन संस्करणोंके परिमाणमें बहुत अन्तर है, उसकी प्रामाणिकताकी खोजकी जाय। प्राप्त प्रतियों की शोध कर ''पृथ्वीराज रासोकी हस्तलिखित प्रतियाँ'' के नामसे एक लेख १५ वर्ष पूर्व राजस्थानी पत्रिकामें प्रकाशित किया गया है. अबतक ''रासो'' की प्रतियोंकी शोध ही करता रहा हूँ।''

नाहटाजीके आध्यात्मिक लेख जीवनके अनुभवोंसे परिपूर्ण हैं। उनमें हमें एक ऐसे अनुभवी विशाल हृदयके अनुभव होते हैं, जिसने जीवनके हर पहलूको गहराईसे देखा है। अतः मैंने नाहटाजीसे उनके जीवन मनोविज्ञान तथा अध्यात्मिक विषयक भावोंकी मूल भावनाके विषयमें पूछा—

वे बोले'' जैन मुनियोंमें कृपाचन्दसूरीके सम्पर्क तथा सत्संगके समय आध्यात्मज्ञान प्रसार मण्डल आगरासे प्रकाशित श्रीमद् देवचंद और बुद्धिसागर सूरीके आध्यात्मिक ग्रंथ मेरे देखनेको आये. उनमेंसे कुछ ग्रन्थ मंगवाये गये और सिलहट (आसाम) - अब पूर्वी पाकिस्तानमें अपने निजी व्यापारके सम्बन्धमें जाने पर साथ ले गया। वहां उनका अध्ययन करनेसे मेरा आध्यात्मिक प्रेम जागरूक हुआ। श्रीमद् राजचंद्र, चिदानंद, आनन्दघन, देवचंद और बुद्धिसागर सूरीके ग्रन्थोंके परायणसे आध्यात्मिक भावनाको बहुत बल प्राप्त हुआ। जैन एवं अन्य दर्शकोंके ग्रन्थों को पढ़नेकी रुचि प्रारम्भसे रही है। इस लिए दर्शन और आध्यात्मका ज्ञान बढ़ता गया. इस विषय को लेकर मैंने अनेक लेख धार्मिक पत्र पत्रिकाओंमें लिखे हैं।''

हम बातचीत करते करते एक दूसरेके निकट आ गये हैं। अतः अब मैंने उसकी भावी योजनाओं तथा रुचिके विषयों की बावत जानकारी चाही। नाहटाजी अथक परिश्रमी हैं—पकी हुई अवस्थामें उनका हिन्दी प्रेम और शोध सम्बन्धी जोश देखकर चकित रह गया।

वे बोले ''मेरा विशेष कार्य हस्तलिपियों, चित्रों तथा मुद्राओं आदिका संग्रह है। इनका एक विशाल संग्रहालय अपने निवास स्थान बीकानेरमें एक स्वतन्त्र भवनमें किया है। इसमें मेरे द्वारा इकट्ठा की हुई

हस्तलिपियों ग्रन्थोंकी संख्या २० हजार है। इतने ही लगभग प्रकाशित ग्रन्थ पत्र पत्रिकायें हैं । "अभय जैन ग्रंथालय" के नामसे इसका संग्रह हुआ है। अपने पूज्य ज्येष्ठ बन्धु अभयराजजी की स्मृतिमें इस ग्रन्थालय की स्थापना की है। अपने पूज्य पिता स्व० शंकरदानजी की स्मृतिमें नाहटा कलाभवन स्थापित किया है। जिसमें सहस्राधिक प्राचीन चित्र, मुद्रायें और कलापूर्ण प्राचीन विविध सामग्रीका संचय किया गया है।

आपने अनेक ग्रन्थोंमें संस्कृत अपभ्रंश, प्राकृत, डिंगल इत्यादि भाषाओं का शास्त्रीय अध्ययन किया होगा। जब मैंने उनसे उनकी शिक्षाके संबंधमें प्रश्न किया तो वे बोले—

"मेरी शिक्षा अधिक न हो सकी। केवल ५वीं कक्षा पास की थी, छठी तक आते जाते शिक्षा बंद सी हो गई थी। केवल अध्ययन स्वाध्याय और श्रमसे ही मैंने अपने आपको आगे बढ़ाया है। एक मात्र व्यवसायमें लगे रहकर अपनी लगनमें तमाम झंझटोंके रहते भी मैं सदासे विद्यार्थी रहा हूँ। मेरा तो विचार है कि हमारी लगन, श्रम तथा उद्योग वे ताव हैं, जो ज्ञान क्षेत्रमें हमारे लिए पूर्ण लाभदायक सिद्ध हो सकते हैं।

नाहटाजी दृढ़ता पूर्वक अपनी दिशामें आगे बढ़ते जा रहे हैं। वर्षमें ३ महीने व्यापारमें लगाकर शेष सारा समय आप शोध कार्यमें देते हैं। व्यर्थके आडम्बर से दूर रहते हैं। उनका जीवन साहित्यमें भरपूर है। उनके निम्नलिखित पद मैं भूल नहीं पाता हूँ।

"मेरा भावी प्रोग्राम अपने संग्रहालय को पूर्ण कर, उसका उपयोग कर उसे प्रकाशमें लाकर आध्यात्म की ओर बढ़ने का है। मैं सदा अन्य अन्वेषकों, अनुसन्धान कर्ताओं, हिन्दी प्रेमियों को शोध कार्यमें सहयोग देने, आगे बढ़ाने, सहायता करनेमें प्रयत्नशील रहा हूं।"

धन्य रे साहित्य···साधक।

●

नाहटाजी : एक शिलालेखी व्यक्तित्व

डॉ० महेन्द्र भानावत

[एक]

सन् १९५५ में जब कॉलेज में दाखिला लिया ही था, बीकानेरमें हम लोग अगरचन्द भैरोदान सेठिया जैन ग्रन्थालयमें रहते थे। अधिकतर मेवाड़के और उसमें भी एक ही गांवके हमलोगों की संख्या ज्यादा थी। मेरे बड़े भाई डॉ० नरेन्द्र भानावत पहलेसे ही वहाँ अध्ययन रत थे। प्रारम्भसे ही लेखन-पाठन में उनकी उग्र गति थी और पत्र-पत्रिकाओंमें खूब लिखते छपते भी थे। सुबह होते-होते एक दिन उनके पास एक व्यक्ति आया। घुटनों ढकी किसी तरह कमरमें ठसोली हुई दोलंगी धोती, जिसकी एक लांग चलते-चलते भी खुल जानेको मुकर हो उठती है, सफेद जब्बा जिसकी दोनों तरफ की जेबें कागजी कटपीसोंसे बैलेंस्ड, अंकुराई दाढ़ी, मोटे पेचोंकी ऊँची उठी हुई मैल खाई मारवाड़ी पगड़ी, ममत्वहीन मूँछें, एक तरफ घिसे तलेके रिजेक्टेड जूते और इन सबके बीच कोठारमें पड़े गेहुएँ रंग-सा भरापूरा सेठ-व्यक्तित्व। मुझे नहीं मालूम कि यही व्यक्तित्व नाहटाजीका है। नाम सुन रखा था पर साहित्यका चूल्हा परिंडा मैंने तब तक नहीं संभाला था। पता नहीं क्यों केवल कविताएँ पढ़ता था, यदा कदा उन्हें पत्र-पत्रिकाओंमें भी भेज देता था। मेरे संतोषके लिए यह पर्याप्त था। अतः नाहटाजीके आने और चले जानेपर भी मेरा मन सामान्य ही बना रहा।

[दो]

भाई साहब और मैं दोनों एक ही परिवारके बच्चोंको ट्यूशन पढ़ाने जाया करते थे। एक दिन भाई साहबने नाहटाजीके उधर होकर निकलनेकी बात कही। उस दिन पहली बार मैंने अभय जैन ग्रन्थालय की सड़क नापी। भाईसाहब नाहटाजीसे मिलने ऊपर चले गये मगर मैं नीचे ही खड़ा रहा। भाई साहबके बहुत कहनेपर भी ऊपर जानेकी मुझमें कोई दिलचस्पी पैदा नहीं हुई। नाहटाजीको जब पता चला तो उन्होंने भी मुझे खिड़कीसे आवाज दी,'महेन्द्रजी, ऊपर आजाइयेगा।' उनकी हृष्ट पुष्ट आवाज चार व्यक्तियोंका संयुक्त घोल लिये थी। उसमें ठेठ मारवाड़ीपन था। मैं ऊपर नहीं गया और सीधा अपने ग्रन्थालय पहुँचा।

[तीन]

दीवालीके कुछ दिन पूर्व एक दिन नाहटाजी ग्रन्थालय आये और मुझसे कहने लगे कि 'इन दिनों मेरे पास लिखनेवाला कोई नहीं है और दीवाली पर दो एक लेख प्रकाशनार्थ बाहर भेजने आवश्यक हैं, अतः आप कल सुबह आकर यह काम कर दें तो ठीक रहेगा।' मेरे कुछ कहने नहीं कहने की उन्होंने कोई बाट नहीं देखी और वे एक दृढ़ विश्वासी की तरह अपनी धुनमें वहाँसे प्रस्थान कर गये। मैं दूसरे दिन प्रातः आठ बजे करीब उनके वहाँ पहुँच गया। देखता हूँ नाहटाजी सामायिक वेशमें बैठे हुए पन्ने उलट रहे हैं। उनके पूरे कमरेमें जेटकी जेट किताबें पड़ी हुई हैं जैसे कोई खेत गाडरोंसे भरा हो और उनके बीच कोई गाडरी अपने मनमें कोई निश्चिन्त लगन लिये अपने साफेका पलेवण कर रहा हो। मैंने उन्हें प्रणाम किया। उन्होंने कहा, 'आइये, मैं आपही का इन्तजार कर रहा था' और वे पालथी मारकर महावीरस्थ हो गये। थोड़ी देर बाद उन्होंने मुझे पेन और पाठेका दस्ता पकड़ाते हुए लिखाना प्रारम्भ कर दिया। दीवालीके दो लेख। एक लघु-लघु तथा दूसरा गुरु-गुरु। उनके लिखानेका ढंग ठीक वैसा ही था जैसे कोई होनहार शिक्षक अपने होशियार छात्र को पाठ लिखा रहा हो।

उनकी निगाह मेरी लेखनीपर और मैं विश्रामकी विभूति लिये बिना फ्रंटियर मेल लिखता ही जा रहा हूँ। उन्हें दो लेख पूर्ण करने हैं और मुझे दो घन्टे। बीच लेखमें नाहटाजीको एक जगह कहीं कोटेशन देना था। वे तपाकसे उठे, दीवालके सहारे लगे पुस्तकोंके अम्बारमें से एक पुस्तक लाये, तत्काल सम्बन्धित कोटेशन निकाला, मुझे लिखाया और पुनः उसे अपने डेरे पहुंचा आये। फिर वहीं उनकी पालथी और मेरी कलम।

उनके ग्रन्थालयमें सैकड़ों किताबें, पत्र-पत्रिकाएं, हस्तलिखित ग्रंथ, पट्टे परवाने, रुक्के, ताम्रपत्र, सिक्के, चित्र तथा पांडुलिपियाँ हैं मगर नाहटाजीको उनके केटेलाग और इन्डेक्सकी आवश्यकता नहीं। उन्हें सब ज्ञात है। कोई चीज ऐसी नहीं है, जिसकी नींव-सींवसे वे परिचित न हों। एक सच्चे पहरियेकी भाँति वे प्रत्येकके रोयें-रोयेंसे परिचित हैं। जैसा उनका अद्भुतालय, वैसी ही अद्भुत उनकी स्मरण शक्ति। मैं चकित हूँ उनकी याददाश्ती कितनी अवधानमूलक, व्यवस्थित, विचित्र, टीपटाप और अपटू डेट है।

[चार]

नाहटाजी एक प्रखर खोजक हैं। इस क्षेत्रमें उनका कोई मुकाबला नहीं। शोध खोजके लिए मनसा वाचा, कर्मणा उन्होंने अपने आपको समर्पित कर दिया है। अज्ञातको ज्ञात करने, अधूरे ज्ञानको पूर्ण ज्ञात करने तथा ज्ञात को उत्तम ढंगसे ज्ञात करने में उनकी गहरी पैठ, धुन, धैर्य, कर्मठ कुशलता और कार्य क्षिप्रताकी कोई सानी नहीं। राजस्थानका शायद ही कोई हस्तलिखित ग्रन्थागार हो, जहाँ उनकी पहुँच नहीं हुई हो।

कहनेको नाहटाजीके पास कोई डिग्री नहीं है मगर वे डिग्रियोंके सम्राट् हैं। वे विश्वविद्यालयके ठप्पे-वाले गाइड भी नहीं हैं मगर वे गाइडोंके भी गाइड हैं। उनका ग्रंथागार अनुसंधित्सुओंके लिए एक ऐसा तीर्थ है, जहाँका चन्दन-तिलक लिये बिना शोध की कोई सिद्धि होती नहीं, कर्मका भँवरा ठिकाने लगता नहीं और प्रामाणिक परिपक्वताकी मणि हाथ लगती नहीं।

[पाँच]

सन् ५८ तक मैं बीकानेर रहा। यदा-कदा उनके वहाँ आना-जाना हो जाया करता। हमारे वहाँके कुछ साथी तो नियमित रूपसे वहाँ लेखन तथा लिपि-नकलका काम भी पाते थे। नाहटाजी जहाँ भी मिलते, कुशल क्षेमके रूपमें सबसे पहले यही पूछते—'आजकल क्या कर रहे हैं? इन दिनोंमें क्या लिखा? फलाने विषय पर लिखिये। फलां पत्रमें रचना भेज दीजिए। फलां विशेषांक निकल रहा है। फलां अभिनन्दन ग्रंथ निकल रहा है। ये-ये विषय हैं आपके लिखनेके लिए। सामग्री मेरे पास बहुत हैं, आइयेगा और लेख जल्दी तैयार कर दीजियेगा।' ऐसे लोगोंकी संख्या बहुत है, जो उनसे प्रेरणा प्राप्तकर लेखनकी ओर, नियमित लेखनकी ओर प्रवृत्त हुए हैं। वे कोरी प्रेरणा ही नहीं देते हैं, उसे फलित रूपमें देखनेके लिए कोई कसर बाकी नहीं रखते। वे पीछे पड़ जाते हैं और जब तक कार्य पूरा नहीं होता वे पिंड नहीं छोड़ते। ठीक उसी प्रकार जैसे कोई मांगनेवाला अपनी उगाई-पुताई पटानेके लिए लगातार पीछे पड़ा रहता है और जब तक उसका लेन-देन क्लीयर नहीं कर देता, सुखपूर्वक नहीं रह सकता। अन्तर केवल इतना ही है कि नाहटाजीमें किसी प्रकारकी कोई स्वार्थ लिप्सा या गैर-भावना नहीं है न कोई पूजा-प्रतिष्ठा या उनके भक्तोंकी-पूजनोंकी संख्या वृद्धिका दृष्टिकोण ही निहित रहा है। वे तो चाहते हैं कि यह क्षेत्र इतना विशाल और समृद्धिपूर्ण है कि एक दो व्यक्तियोंसे यह काम पूरा नहीं हो सकता अतः अधिक से अधिक लोग इस ओर प्रवृत्त हों।

नाहटाजीका प्रत्येक काम नियमित रूपसे सम्पन्न होता है। प्रातः सामायिक और उसमें स्वाध्याय। सामायिकमें नियमित रूपसे ग्रन्थोंका पठन। एक सामायिकमें बीस-तीस पृष्ठ पढ़नेसे महीनेमें लगभग छः-सौ-सात सौ पृष्ठ और वर्षमें करीब साढ़े आठ हजार पृष्ठोंका पठन। यदि दो सामायिक प्रतिदिन हुई तो सत्रह हजार पृष्ठोंका वाचन, फिर हिसाब लगाया जाय उनके ३५-४० वर्षोंके अध्ययन स्वाध्यायको तो यह संख्या लाखों तक पहुँचेगी। हजारों ग्रन्थ और लाखों पृष्ठ। नाहटाजीका यह क्रम, वे जहाँ कहीं भी हों, अनवरत चलता ही रहता है।

उनकी सबसे बड़ी विशेषता यह भी है कि वे प्रत्येक व्यक्तिको अन्दरकी दृष्टिसे देखते हैं। चाहे वह छोटा हो अथवा बड़ा। प्रत्येकके कार्डका यथोचित उत्तर देते हैं। पोस्टकार्ड स्वयं लिखते हैं। उनकी राईटिंगको प्रत्येक पढ़नेका साहस नहीं कर सकता। यह लिपि सभी लिपियोंसे भिन्न, सभी भाषाओंका सम्मिलित मोर्चा लिये होती है। यह सुविधाके लिए '**नाहटा लिपि**' कही जा सकती है। उदयपुरमें मुझे ज्ञात है, नाहटाजी कइयोंको चिट्ठियाँ लिखते हैं, नये व्यक्तियोंकी अधिकांश चिट्ठियाँ मैंने उलथाई हैं। मैं एक दृष्टिसे उनकी लिपि पढ़नेका एक्सपर्ट स्वीकारा जाने लग गया हूँ। नाहटाजीने सैकड़ों व्यक्तियोंको हजारों चिट्ठियाँ लिखी हैं। यदि उनका संग्रह कर लिया जाय तो भी एक बहुत बड़ी खोज-राशि एकत्र हो सकती है।

[छः]

नाहटाजी पूर्णरूपेण साहित्यिक सेठ हैं। सरस्वती और लक्ष्मी उनके यहाँ युगल रूपमें प्रतिष्ठित हैं। वे वणिक् सेठ हैं, अतः अपना पैसा फालतू खर्च नहीं करते। लक्ष्मीके लिए सरस्वतीका उपयोग करते मैंने

उनको कभी नहीं देखा पर सरस्वतीके लिए लक्ष्मीका चलन करते मैंने उन्हें कई बार देखा है। लक्ष्मी उनके पास बरसती हैं पर वे सरस्वतीको अधिक सरसब्ज करते हैं। वर्षमें सरस्वतीको यदि ग्यारह कपड़े देते हैं तो लक्ष्मीको केवल एक। मगर उनकी सरस्वतीकी क्या कोई लक्ष्मी आंकेगा ? उनकी सरस्वती कई लक्ष्मियों से भारी और अधिक जड़ाऊ पड़ती है।

नाहटाजी प्रतिदिन जितना पढ़ते हैं, उतना लिख भी लेते हैं। जहाँ उनके पढ़े हुए ग्रन्थोंकी संख्या हजारों तक पहुँची है, वहाँ उनके लिखे लेखोंकी संख्या भी उतनी ही है। छोटा-से-छोटा और बड़ा-से-बड़ा कोई पत्र उठा कर देख लीजिये उसमें नाहटाजी अवश्य मिल जायेंगे। किसने इतना लिखा है और कौन इतना छपा है ? मुझे कोई नाम याद नहीं आ रहा है। अद्भुत है इनका लेखन। मशीन भी अनबैलेंस्ड हो जाती है काम करते-करते। मगर यह व्यक्ति यंत्र-तंत्र और मंत्र सभीको पीछे धकेलता हुआ अनवरत अपनी साधना-निष्ठा और धुनमें लगा हुआ है।

[सात]

नाहटाजी बहुत संयमी और बहुत नियमी हैं। रहन-सहन, खान-पान, बोल-चाल सबमें वे बहुत सीधे और सादे हैं। उनपर आडंबरकी जूं तक नहीं रेंगती, लींक तक नहीं फटकती। वे पक्के जैनी हैं। उनके अपने कई व्रत, नियम और उपवास हैं। रात्रिको वे भोजन नहीं लेते हैं। पानीका भी आगार रखते हैं। बंधी बंधाई तिथियोंमें बंधीबंधाई सब्जियोंके अतिरिक्त वे आहार भी मर्यादित ही लेते हैं।

नाहटाजी एक ऐसा व्यक्तित्व है, जिसपर लिखनेके लिए दो-दो कलमें साथ-साथ जोती जा सकती हैं। मेरा मन उनके ढेरों संस्मरणोंसे उपजीवित है। उनका एक-एक संस्मरण एक-एक माला बन सकता है। मगर आज उन मालाओंको फिरानेवाले कितने मिलेंगे ?

चैतन्यका उद्धार तो सभी करते हैं मगर जड़का उद्धार करने वाले बिरले ही होते हैं। नाहटाजीने यह बीड़ा उठाया। उन्होंने कूड़ा करकट तथा रद्दी समझे जानेवाले हस्तलिखित ग्रंथों आदि का उद्धार कर कई अज्ञात कवियोंको प्रतिष्ठित किया। हमारी प्राचीन सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक संपदाको श्रीहीन होनेसे बचाया और इस धरोहरको व्यवस्थित रूपसे संगृहीत करनेका राजकीय और सार्वजनिक रूपसे सभीका ध्यान आकृष्ट किया। वस्तुतः उनका व्यक्तित्त्व एक शिलालेखी व्यक्तित्व है, जो आज हमारी समझमें उतना उभरकर नहीं आ रहा और शिलालेखोंका महत्त्व तात्कालिक समझमें आता भी कम ही है, मगर समय बतायेगा कि वस्तुतः समयकी वह शिला भी धन्य हो गई जिसपर नाहटाजी जैसा व्यक्तित्व अंकित होकर सदाके लिए एक स्मृति छोड़ गया। उनकी षष्टिपूर्ति पर मेरा एक मन नहीं, मेरे जैसे अनेकों मन स्वतः ही उन्हें वन्दन करनेके लिए उमड़ पड़ते हैं।

●

श्री अगरचन्द नाहटा : एक प्रोफाइल

डॉ० हरिशंकर शर्मा 'हरीश'

प्रातः कालकी बेला। पूजाका समय। स्थान ढूंढ़ता-ढूंढ़ता मैं कला-भवन आया। नीचेके वाचनालयमें सशंकित होकर प्रवेश किया और हिन्दी साहित्यकी लगभग समस्त पत्र पत्रिकाओंको देख कर मन आश्चर्यसे भर गया। लगता था, किसी भी भूखे मस्तिष्कका यहाँ सरलतासे वर्षों तक निर्वाह हो सकता है।

किसी भी साहित्यिककी, धार्मिक जिज्ञासुको और शोध प्रेमीकी प्यास यहाँ तृप्त हो सकती है। खड़ा-खड़ा मैं पन्ने पलटने लगा। बहुत समय निकल गया। पुनः बाहर निकलनेको उद्यत हुआ ही था कि एक सम्भ्रांत सज्जनने भीतर प्रवेश किया। नमस्तेके पश्चात् मैंने कहा···· "जी·········मैं नाहटाजीके दर्शन करने आया हूँ ·······आप बता सकते हैं, वे कहाँ हैं ?

कहो भाई, मैं ही हूँ।

ऊँची-ऊँची धोती, विशाल मस्तिक, अधपके बाल, खिलती मूँछें, मझला कद, सुगठित शरीर, अनुकरणीय स्फूर्ति और स्मितिमें डूबा उनका प्रकाशमय आनन, वृषभ स्कंध और ऊर्जस्वित उत्साहको मैं स्नेह भरे एक बोलमें समझ गया। मैंने श्रद्धासे उन्हें प्रणाम किया, उन्होंने आशीर्वाद दिया। उन्होंने विश्वास भरे स्वरमें पूछा—कब आये ?

जी············मैं रातको आगया था।

अच्छा बैठो, मैं अभी आता हूँ············कहते हुए वे बाहर चले गये।

अर्द्धनग्न शरीर पर धोती लिपटी हुई, हाथ में चंदनका थाल लेकर वे घरकी ओर बढ़ गये। कला-भवनके सामने ही जैन मन्दिरको देखकर मेरे लिए उनको उस वेशमें उस समय समझना अधिक कठिन नहीं हुआ।

यों तो राजस्थान तपोभूमि रहा है। वीर प्रभूके कणमें जाने अनजाने विदित नहीं, कितने असाधारण साधक हो गये हैं। पर जीवनकी इन २५ रेखाओंको पार करते मुझे अबतक देशमें साहित्यका ऐसा सरल साधक दिखाई नहीं पड़ा। विश्वास नहीं हुआ कि मरुभूमिमें जीवनका यह मधुर स्रोत!············साधनाकी यह उत्ताल शैवालिनी। प्रगति और परंपराका यह विचित्र समन्वय ! यह व्यक्तित्व !

जैन साहित्यका शोध-स्नातक होनेके कारण प्रयागसे मैं बीकानेर आया था। नाहटाजीके दर्शन पहले किए नहीं। यों पत्र व्यवहार पहले हो गया था। कई दिनोंसे आशीर्वाद पाता रहता था। विचारों और व्यक्तित्वके मननमें डूबा ही था कि वे कला-भवन आये और मुझे भोजन करनेके लिए कहा। मैं चुपचाप चला गया। वे सामने बैठ गये, पद्मासन लगाये, तपस्वीकी भाँति मेरे कार्यका विवरण पूछते रहे। मैंने कहा—नाहटा-जी, मैं तो मिट्टीका एक लोथ हूँ, आप जैसा चाहें, ढालें। कुशल शिल्पीके हाथोंसे तो मिट्टीके कुरूप खिलौने भी सुन्दर हो जाते हैं, हिली हुई नींव भी मजबूत बन जाती है। मेरा विषय भी अत्यन्त कठिन है, अध्ययन नहींके बराबर है और अस्वस्थ भी रहता हूँ। आदिकालीन जैन-अजैन रचनाओंके आप मर्मज्ञ आचार्य हैं। मैं बोल गया। वे ध्यानसे सुनते गये, जैसे मैं कोई सार पूर्ण बात कह रहा हूँ। पर अभिव्यक्तिमें तो विनम्र निवेदन और अपनी अध्ययनगत असमर्थता मात्र थी।

भोजन करते-करते मैंने देखा, उनका वरदहस्त मेरी ओर उठ गया। "अब चिन्ता मत करो, यहाँ तुम्हें सब ग्रन्थ मिलेंगे। अच्छे कार्योंमें बाधाएँ तो आती हैं, निराशामें आशाकी किरण सदैव छिपी रहती है। अध्ययन एक तप है। निरंतर अध्ययन और अभ्यास ही सिद्धिकी कुंजी है, लक्ष्यकी प्राप्ति है।" यह कहकर वे चुप हो गये।

मैंने देखा, कैसा अपूर्व साधक है, निश्छल, सरल, गंभीर और हँसमुख।

हिन्दी साहित्यका यह महाविद्वान् दूसरा रामचन्द्र शुक्ल है ! जिसमें गांधीसी कार्यनिष्ठा है, प्रार्थना और ईश्वरीय विश्वासके प्रति प्रबल धारणा है। टैगौर-सी सौजन्यता, सौम्यता और अध्ययनके प्रति अदम्य उत्साह है। शुक्लजीकी भाँति जिसमें गंभीर चिन्तनकी प्यास है और नेपोलियनकी भाँति लक्ष्य प्राप्तिकी धुन है। अव्याहत जुटे रहनेका उसमें महान् गुण है।

नाहटाजीकी भाषामें एक ओज है, राजस्थानी सिंहकी गरज है, पर्याप्त गंभीरता है और अनुभूति तथा अभिव्यक्तिका अनूठा समन्वय है।

इसके पूर्व मैं सोचता था कि नाहटाजी कोई बहुत ही शुष्क और नीरस व्यक्ति होंगे क्योंकि उनके विविध लेखों और गंभीर तथा कठिन साहित्यके विवेचनमें डूबे रहनेसे कोई भी व्यक्ति यह कल्पना कर सकता था। पर कल्पना और यथार्थ सत्यका अनावरण साकार दर्शन पर ही हुआ। धारणा निर्मूल सिद्ध हुई।

मैं उनके पास अध्ययनमें रत हो गया। रोज-रोज उनके जीवनके मूलतत्त्वों और उनकी साधनाके रहस्योंको समझनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ।

उनकी दिनचर्या देखकर मैं हतप्रभ हो गया। सुबह ५ से ६ भजन, ६ से ९ तक लेखन, ९ से ११ तक भजन और १ से ५ तक मनन, परिशीलन, निर्देशन और आये हुए पत्रोंका प्रत्युत्तर देना। फिर ६ से १० तक प्रतियोंका वही अध्ययन।

मैंने पूछा, नाहटाजी आपका कितने शुष्क और गंभीर विषयोंमें मन लगता है। क्या यौवनमें ही आपकी यही दिनचर्या थी? स्फुलिंगके थोड़ा-सा छेड़नेकी ही आवश्यकता थी। अनुभवोंका गंभीर मेघ बरस पड़ा।

"जवानीमें मैं भी बहुत ही गंभीर था", वे बोलते गये, "लोग कहते थे मैं बूढ़ोंकी सी बातें किया करता हूँ, नाच-रंग, सिनेमा, खेल-कूद कुछ भी पसंद नहीं आता था। सिर्फ गंभीर अध्ययनमें ही मेरी रुचि थी।"

"आजकलके कॉलेजके विद्यार्थियोंकी भाँति अनेक भाषाओंका ज्ञान तो मुझे नहीं है। क्रमबद्ध अध्ययन भी मैं नहीं कर सका। अपने शोध और पुरातत्त्व जन्य दृष्टिकोणको ही तल्लीनतासे पोषित करता रहा। निरंतर अध्ययन और एकांत साधना ही मुझे प्रिय थी। किसीसे अधिक बोलना, अकारण विवाद करना, मेरी रुचिसे परेकी वस्तु थी। मैं विद्वान् नहीं हूँ पर अभ्यासी हूँ, राहोंका अन्वेषी हूँ।"........कहते-कहते वे उठ गये........"करत-करत अभ्यासके जड़मति होत सुजान"

मैंने पूछा कार्यभार आप पर बढ़ता नहीं? उठते-उठते उन्होंने कहा, "बढ़े क्यों? आलस्यसे मेरी बिल्कुल मित्रता नहीं। स्वालंबन और "काल करे सो आज कर" ही मेरे जीवनके सूत्र हैं।"

विशाल अध्ययनका यह समुद्र इसी तरह मरुभूमिमें हिलोरें ले रहा है। ४५ वर्षकी वयमें भी शरीर स्वस्थ है और मन तो ज्ञानके ज्योतिकणोंकी इन्द्रधनुषी रेखाओंमें गुँथा हुआ है। किसी भी प्रकाश-किरणके लिए व्याकुल जिज्ञासुको यहाँसे निराश नहीं लौटना पड़ेगा।

पत्रोंका यथा समय प्रत्युत्तर देना, यह साधक अपना कर्त्तव्य समझा है जबकि हिन्दीके दो प्रतिशत विद्वानोंमें भी यह बात नहीं है। नाहटाजीको तो यह एक क्रम-सा बन गया है।

सच तो यह है कि विद्वत्ता सच्चे और आडंबर शून्य जीवनमें ही पलती है। और नाहटाजी इसके साकार प्रतिरूप हैं। अपभ्रंश, संस्कृत, हिन्दी, राजस्थानी, गुजराती आदि भाषाओंका यह साधक एक प्रत्यक्ष कोष है। इन भाषाओंकी शोधमें यह तपस्वी डूब-डूबकर खेला है और खेल-खेलकर डूबा है।

एक सम्मेलनमें जाते हुए मैंने पूछा—"नाहटाजी, आपकी शिक्षा कहाँ तक हुई?" सिर्फ ५वीं कक्षा तक वे तीव्र स्वरमें बोले"........मुझे विश्वास नहीं हुआ, पर यथार्थ यही है। मैंने सोचा, साधकके लिये अव्यावहारिक शिक्षा व कृत्रिम डिग्रियोंकी क्या आवश्यकता है। तुलसीदास कहाँ पढ़े थे? मीराने कौनसे विद्यालयमें शिक्षा पाई थी? और अपूर्व साधक प्रसाद एवं विद्वान् शुक्लजीने कितनी डिग्रियाँ ली हैं?

अपनी अध्ययन-प्रेरणाके बारेमें बतलाते हुए उन्होंने कहा, "जैनमुनि श्री कृपाचन्द्र सूरि ही मेरी प्रेरणाके स्रोत रहे हैं·········। और अब तो मेरा जीवन बहुत कुछ बँधा-बँधाया, नियमित और संयमित हो गया है। पिछले तीस वर्षोंसे ही मैं अपने कार्यमें अव्याहत जड़ रहा हूँ। गड़ी हुई पुरातन साहित्यक संपत्तिके स्थल ढूँढकर रखता हूँ, ठहर-ठहरकर चलनेकी अपेक्षा निरंतर कार्य करना मैं अधिक अच्छा समझता हूँ।"

ये बातें करते-करते ही एक दिन मैं उनसे उलझ गया, नाहटाजी ! आप इतना अधिक लिखते हैं कि आपके लेख एक साथ कोई देखना चाहे तो उसके लिए असम्भव हो जाता है क्योंकि लगभग सब मिलकर २०० पत्र-पत्रिकाओंमें आपके लेख छपते रहते हैं·········।"

"हाँ भाई, यही प्रश्न मुझसे हजारीप्रसाद द्विवेदीने भी किया था। सोच रहा हूँ, इनको एक साथ प्रकाशित कर दूँ। अब तक लगभग ११०० लेख शोधपूर्ण साहित्यिक विषयों पर और ५०० लेख सामाजिक, चरित्र-निर्माण तथा आध्यात्मिक विषयों पर छप चुके हैं। चित्रकला, इतिहास, पुरातत्त्वकी शोध ही इन लेखोंका प्रमुख विषय है। अभय ग्रंथालयसे अनेक ग्रंथ भी प्रकाशित हो चुके हैं। हो सकेगा तो यह कठिनाई भी दूर होगी।

प्रतिदिन वही धैर्य, वही लगन, वही मस्ती, वही मुस्कान, देख-देख मैं हैरान हो जाता। २० हजार हस्तलिखित प्रतियोंका परिशीलन, लक्षाधिक हस्तलिखित प्रतियोंका निरीक्षण, तीस हजारसे अधिक हस्त-लिखित ग्रंथोंकी सूचीका निर्माण। जैन साहित्य, इतिहास, राजस्थानी और हिन्दीकी प्राचीन निधि तथा देशी भाषाओंकी एक-एक नसको जाननेवाला यह कुशल चिकित्सक हमारे देशका एक जागरूक स्फुलिंग है, निर्माण केन्द्र है, साकार तपस्वी है। और जो कुछ है, सब भीतर ही, नाहटाजी बाहर कुछ भी नहीं हैं। जब मैं कुछ पूछता, वे मेरी ओर इस तरह देखते कि उन्हें मुझसे कुछ मिल रहा है। पर यह तो एकदम असत्य था। मैं ही उन्हें ठग रहा था। सत्य तो यह है कि वे सबसे सदैव इसी तरह ठगे जाते हैं।

यह तो हुआ महान् अध्येता और विदग्ध विद्वान् श्री नाहटाका व्यक्तित्व। पर मानव नाहटाका जीवन भी आदर्शकी कड़ियोंसे निर्मित हुआ है। वह किसी भी मानवके लिए आदर्श बनानेके योग्य हैं। उनमें दया, शील, और पितावत् महान् स्नेह है। परिवारके हर व्यक्तिकी सुविधाका वे पूरा ध्यान रखते हैं। बच्चोंमें बच्चोंकी सी बातें, विचारकोंमें महान् विचारक, सफल पिता, सफल व्यवसायी, वे सभी कुछ एक साथ हैं। सादा भोजन, उच्च विचार, ईश्वर भक्ति वर्षमें ३ माह, व्यापारकी साधना, यही उनका जीवन क्रम है।

त्यागी इतने कि वर्षके ९ महीने साहित्यको अर्पण। वे सत्पथके प्रेरक, शान्ति लताके मूल और क्रोध भुजंगके महामंत्र हैं। यद्यपि श्री नाहटाजी सबके कुछ और कुछ के सब कुछ हैं, पर फिर भी उनकी एक निश्चित दिशा है, गन्तव्य ध्रुव सत्य है। "एकहि साधे सब सधे, सब साधे सब जाय" उनके जीवनका सूत्र है। सं० १९८४ से ही यह तपस्वी हस्तलिखित प्रतियों, लिपियों, चित्रों, खण्डहरों, शिलालेखों, ताड़पत्रों आदिके विशाल क्षेत्रमें खेलता जा रहा है। ग्रंथालयका कला-भवन अनेक प्राचीन वस्तुओंसे सुसज्जित है, जो दर्शनीय है।

एक प्रश्नके उत्तरमें उन्होंने कहा, "नामका लालच मुझे नहीं, पारिश्रमिककी चिन्ता नहीं, बस लिखनेसे संतोष मिलता है। और यह आनन्द ही जीवनका रहस्य है। प्राप्तिसे ज्यादा आनन्द खोजमें है।" और यह साधक निरंतर गतिशील है। वही सरलता, वही दृढ़ता और वही अविरल तप।

अन्धेरी राहोंको नाहटाजीने अच्छी तरह देखा है। देखा ही नहीं, प्रकाशित भी किया है। वे पाषाण भी हैं तो नींवके, बूँद भी हैं तो स्वातिकी काँटे भी हैं, तो चिन्तनके, शुष्क भी हैं तो साकार ज्ञानसे, कोई उन्हें कुछ समझे। मेरी धड़कनोंमें तो पर्याप्त नग्न यथार्थका स्पन्दन है।

समयको यह महान् साधक कलममें बाँध रहा है, दिन प्रतिदिन, बिना किसी व्यतिक्रमके। किसी भी विद्यार्थी, किसी भी प्रकाशकको निराश होनेकी आवश्यकता नहीं है। जिसे चाहिए वह दौड़े, नहीं तो समय निकल जायेगा।

राजस्थानी धरतीका यह औढरदानी बाँट रहा है, साहित्यामृत, पंचामृत। ईर्ष्या द्वेष और यहाँ तक कि स्पर्धासे भी बिल्कुल शून्य। सरलता भी उन्हें देखकर लजा जाती होगी ?

ज्ञान शृंगकी भाँति बड़ी सी पगड़ी, शब्दकोषकी भाँति विशाल कोट और नयनों पर पड़ा यह प्राचीन उपनयन, सब एकसे एक बढ़कर हैं। गृद्ध-दृष्टि, आलोचनाकी पकड़, विषयका निचोड़, इनके गुण हैं। जो लिखते हैं, डूबकर लिखते हैं। उस समय खाने-पीनेकी चिन्ता नहीं।

विनोदमें मैंने कहा, "नाहटा ! आपका लेखन (अक्षर) भी कभी शोधकी वस्तु हो जायेगा।" हँसते हुए बोले, "अधिक लिखनेसे इसकी प्रगति बिगड़ गई है। यों मैं पहले काफी अच्छा लिख लेता था।" बंगला, गुजराती, शुद्ध मारवाड़ी (राजस्थानी) भाषा बोलनेमें वे विशेष पटु हैं। अंग्रेजी अच्छी तरह पढ़ व समझ लेते हैं।

इतना सब कुछ होते हुए भी शुक्लजीकी तरह इनकी भाषा दुरूह नहीं। सरलता उसका जन्मजात गुण है। शब्दोंमें पर्याप्त शक्ति है। विषय प्रतिपादनमें एक विद्वान्‌की कला है। मुझे लगा, सरस्वतीकी इन पर बहुत ही प्रीति है।

किसी भी विश्वविद्यालयके लिए यह गौरवकी वस्तु होगी कि वह उन्हें सम्मानके रूपमें "डाक्टर" के पदसे विभूषित करे। भारत सरकारका ध्यान भी मैं विनम्रतासे इधर आकर्षित करूँगा कि राजस्थानका यह तपस्वी पद्मविभूषण या पद्मश्री पदके लिए योग्य पात्र है। कहना न होगा, नाहटाजी साहित्यके "डाक्टरों के डाक्टर" हैं।

मरुभूमिका यह समुद्र ठाठें मारता जाय, कूल किनारे तोड़ता जाय, शोध और पुरातत्त्वके रत्नोंको उगलता जाय, सीपियोंमें स्वाति-सा मचलता जाय। उनका आरोग्य मुस्कराता जाय। "जीवेम शरदः शतम्" के साथ, यही मंगल कामना है।

●

नाहटाजीके प्रति

श्री शिवसिंह चोयल (सीरवी)

सन् १९४१ ई० से आदरणीय नाहटाजीसे मेरा सम्पर्क रहा है। आपने भारतीय इतिहास और साहित्यकी सेवा करनेके अतिरिक्त राजस्थानी साहित्यकी भी अमूल्य एवं महत्त्वपूर्ण सेवा की है। इन्होंने अपने जीवनमें पूर्वजोंके द्वारा चली आ रही व्यापारिक परम्पराको कायम रखते हुए जो उल्लेखनीय कार्य किया है, वह इनका हस्तलिखित ग्रंथ संग्रहालय कहा जाता है। इनका एक भवन तो केवल हस्तलिखित ग्रंथों-का ही भण्डार है। भारतका प्रत्येक साहित्यकार और इतिहासकार नाहटाजीके इस महत्त्वपूर्ण ग्रंथ संग्रहा-लयसे शताब्दियों तक लाभ उठाता रहेगा। बिना किसी डिग्री पास (उत्तीर्ण) किये ही धुनके धनी और लक्ष्मी के लाडले पुत्र नाहटाजीने भारतके प्रत्येक प्रान्तमें जाकर संस्कृत, हिन्दी, राजस्थानी और अन्य भाषाओंके पाये जाने वाले हस्तलिखित ग्रंथोंकी पांडुलिपियोंको प्राप्त करनेमें अथक परिश्रम किया है।

आप साहित्यकार ही नहीं, बल्कि एक महान् इतिहासकार भी हैं। आपके लेखोंमें जैनधर्मके अति-

रिक्त भारतीय संस्कृतिके भी दर्शन होते हैं । इन्होंने फुटकर लेखोंके अतिरिक्त कुछ ऐसे ग्रन्थोंका संपादन भी किया है, जो लोक-साहित्यकी अमूल्य निधि हैं । श्रीनाहटाजीने किसी कॉलेजमें जाकर शिक्षाकी कोई डिग्री प्राप्त नहीं की है । साधारण काम चलाऊ शिक्षा प्राप्त करके आपने साहित्य क्षेत्रमें पदार्पण किया और अपनी सच्ची लगन और परिश्रमके बल पर साहित्यजगत्को बड़ी महत्त्वपूर्ण एवं अमूल्य कृतियाँ प्रदान कीं, जो अन्य लोगोंके लिए आदर्श कही जा सकती हैं ।

जैन-धर्म, दर्शन तथा साहित्य और इतिहासके आप प्रकांड विद्वान् हैं, इसलिए इनको जैन इतिहास रत्नका पद मिला, जो इनकी योग्यता और साहित्य सेवाको देखते हुए सर्वथा उचित है ।

आप स्वभावसे बड़े सरल, मिलनसार और दयालु हैं । एक बार भी इनसे जो मिल जाता है, वह इनके व्यक्तित्वसे प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता । मेरे एक पड़ोसी अपने कार्य वश एक बार बीकानेर गए तब आदरणीय नाहटाजीके यहाँ भी इनके दर्शनार्थ मेरा एक पत्र लेकर इनकी सेवामें पहुँचे । उनके हृदयमें आजतक नाहटाजी बसे हुए हैं ।

मैं नाहटाजीके प्रति अपनी हार्दिक शुभ कामना प्रकट करता हूँ और इनकी दीर्घायुके लिए ईश्वरसे प्रार्थना करता हूँ ।

●

ज्ञान-सूर्य नाहटा

श्री गजसिंह राठोर

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो, न मेधया वा बहुना श्रुतेन ।
यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनुं स्वाम् ॥

कठोपनिषद्की यह पारम्परिक आध्यात्मिक अनुश्रुति नाहटाजी पर शत प्रतिशत घटित होती है । नाहटाजी न तो किसी विश्वविद्यालयके उपाधि प्राप्त स्नातक हैं, न किसी गुरुकुलसे उच्चशिक्षा प्राप्त शिक्षा शास्त्री । इन्होंने अपने अगाध अन्तरमें अहर्निश गहरी डुबकियाँ लगाकर प्रचण्ड ज्ञान मार्तण्डका देदीप्यमान आत्म-स्वरूप प्राप्त किया है ।

नाहटाजीका नाम मैं बहुत वर्षोंसे सुनता आ रहा हूँ । भिन्न रुचिके साहित्यिकों, समालोचकों और अपने मित्रोंसे सुनी बातों और विभिन्न कर्णपरम्पराओंके माध्यमसे फैली किंवदन्तियोंने मेरे हृत्पटल पर नाहटाजीका कुल मिला कर एक बड़ा ही विचित्र रेखाचित्र अंकित कर दिया था । मेरा अन्तर इस अद्भुत प्रतिभा सम्पन्न व्यक्तिसे कुछ क्षण बात करनेके लिये वर्षोंसे व्यग्र हो रहा था । अनेक बार इनसे संपर्ककी चाह मनमें जगी पर मैंने उस चाहको पूरा करनेका कभी प्रयास नहीं किया, क्योंकि मेरी धारणाके अनुसार मैं उन परमाणुओंसे बना हुआ हूँ जो न स्वयंको अन्यमें घुलने देते हैं और न अन्यको ही स्वयंमें, परंतु प्रकृतिका यह अटल नियम है कि जो इच्छा एक बार अन्तरमें उद्भूत हो जाती है वह देर-अबेरसे कभी न कभी अवश्य साकार होती है ।

प्रकृतिके इस अपरिहार्य क्रमके अनुसार गतवर्ष भाद्रपद शुक्ला सप्तमीको मुझे महान् इतिहासकार जैनाचार्य श्री हस्तीमलजी महाराज साहब द्वारा रचित "जैनधर्मका मौलिक इतिहास—प्रथम खण्ड" नामक

ग्रन्थकी पाण्डुलिपिके सम्बन्धमें परामर्श हेतु ख्यातनामा विद्वान् नाहटाजीके पास बीकानेर जानेका सुअवसर प्राप्त हुआ।

जैनधर्मके आद्य तीर्थ प्रवर्तक भगवान् ऋषभदेवके समयसे अन्तिम तीर्थंकर भगवान् महावीरके निर्वाण काल तककी जैनधर्मके इतिहासकी मुख्य-मुख्य घटनाओंका विवरण नाहटाजीको सुना कर उनके सम्बन्धमें नाहटाजीके सुझाव मुझे आशुलिपिमें लिखने थे। आगमों, दुरूह प्राकृत, अपभ्रंश और संस्कृतमें लिखे अगणित धर्म ग्रंथों, प्राचीन आचार्योंकी हस्तलिखित निर्युक्तियों, चूर्णियों, अवचूर्णियों, टीकाओं और रब्बोंमें इतस्ततः उल्लिखित इतने सुदीर्घ अतीतके ऐतिहासिक एवं धार्मिक तथ्योंको महामनीषी आचार्य श्रीहस्तीमल-जी महाराजने अपने भगीरथ प्रयाससे सहज, सरल-सरस भाषामें क्रमबद्ध किया था। उन सबके सम्बन्धमें प्रामाणिक परामर्श देना अपने आपमें कितना बड़ा गुरुतर कार्य था, इसका सही अनुमान लगानेमें कल्पना की उड़ान भी थक जाती है। इस गुरुतर कार्यके लिए सबकी आँखें नाहटाजी पर आकर रुकी थीं यही नाहटाजी के विराट् व्यक्तित्वका दिग्दर्शन करानेके लिए पर्याप्त है।

मैं पाण्डुलिपिके दो बड़े पुलिन्दे लिए नाहटाजीके विशाल ज्ञान भण्डारमें पहुँचा। जब मैंने छरहरी बुनावटकी केसरिया रंगकी बड़ी बीकानेरी पगड़ी सिर पर रखे नाहटाजीको पुस्तकोंके बड़े-बड़े ढेरोंके बीच अलमस्तीसे बैठे देखा तो मुझे सहसा उर्दूके एक शायरका यह शेर याद आ गया—

हमें दुनियाँ से क्या मतलब के मकतब है वतन अपना।
मरेंगे हम किताबों पर, बरक होंगे कफन अपना॥

केवल रात्रिमें शमा पर दीवाना रहने वाला परवाना रात-दिन अपनी पुस्तकों पर फ़िदा होने वाले इस आध्यात्मिक दीवानेसे हार मान कर अपना मुँह छुपाये अदृश्य हो चुका था।

सरस्वतीके इस अनन्य उपासककी तन्मय साधना देख कर मैं हर्ष विभोर हो उठा। उस समय मेरे मानसमें एक साथ उठे अनेक विचारोंने जो तूफान खड़ा कर दिया उसका हूबहू चित्रण करना मेरी लेखनी की शक्तिसे बाहरकी बात है। जहाँ तक मुझे याद पड़ता है, पहला विचार मेरे मनमें यह आया कि अथाह शास्त्र सागरके आलोडन-विलोडनसे बड़े श्रमके पश्चात् निकाले गये इस मक्खनके सम्बन्धमें क्या इस व्यक्तिसे उचित परामर्श मिल सकेगा, जो देखनेमें सैकड़ों बरस पहलेके मारवाड़ी सेठका हूबोहूब प्रतिरूप प्रतीत होता है। दूसरे ही क्षण मेरी निगाह नाहटाजीकी, भ्रूभंगीको भेद कर निकलती हुई तीक्ष्ण और कुछ तिर्छी दृष्टि पर पड़ी। मुझे वह चिरपरिचित-सी लगी। मैंने पहचान लिया कि यह तो वही लोहलेखनी के धनी आचार्य चतुरसेन शास्त्रीकी अन्तर्वेधी दृष्टि है। मैं इस दृष्टिके अद्भुत चमत्कारसे अच्छी तरह परिचित था। मेरे समस्त ऊहापोह शान्त हो गये और मैं अपने कार्यकी सिद्धिकी आशासे आश्वस्त हो गया।

नाम और कार्यका परिचय पाते ही नाहटाजीने सहज स्वरमें कहा, "मैं आपका इन्तजार कर रहा था। मेरे पास पहले सूचना आ गई थी। आप जितना समय चाहे लें। प्रातःकाल सामायिक करता हूँ, उस समय भी धार्मिक कार्य होनेके कारण इस कार्यको किया जा सकेगा। दिनके अतिरिक्त रात्रिको भी हम लोग बड़ी देर तक बैठ सकते हैं। आप बाहरसे आये हैं, अतः आपके कार्यको प्राथमिकता दी जायगी।"

उसी दिन कार्य आरम्भ किया गया। आवश्यक कार्योंके लिए थोड़ेसे अवकाशको छोड़कर प्रातःकाल-से रात्रिके ग्यारह बजे तक नाहटाजीने पूर्ण मनोयोगसे पाण्डुलिपिको सुना, अनेक स्थलों पर अमूल्य सुझाव दिये, अनेक ऐतिहासिक तथ्योंके मूलाधार ग्रन्थोंके उद्धरण बताए और अनेक स्थलोंकी औचित्यता अथवा अनौचित्यता पर चर्चा की और ९० हजार पुस्तकोंके अपने विशाल पुस्तक भण्डारमें से पलक झांपते-झांपते

आवश्यक पुस्तकोंको निकाल ईप्सित स्थल तत्काल बता कर मेरी दिल जमई की। मैं भौंचक्का-सा रह गया इस अद्‌भुत स्मरणशक्तिको देख कर। चार दिन तक निरन्तर यह क्रम चलता रहा। प्रत्येक तथ्यका असंदिग्ध ज्ञान, प्रत्येक विषय पर पूर्ण प्रभुत्व, प्रत्येक गुत्थीको अनायास ही सुलझानेकी आदि अद्‌भुत व्युत्पन्न-मति आदि गुणोंसे ओत-प्रोत ज्ञान और गुणोंके भण्डार इस महामानवको अपनी आँखोंके सामने, साक्षात् देख कर मेरे अन्तरका अपने विद्यार्थी जीवनमें जमा यह विश्वास सदा सर्वदाके लिए सुदृढ़, सशक्त, अमिट और अमर बन गया कि हेमचन्द्राचार्यको जो कलिकाल सर्वज्ञकी उपाधि विद्वानोंने दी है, उसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं। प्राचीन कालमें इस आर्यधरा पर केवल ज्ञानी, ब्रह्मज्ञानी विद्यमान थे। इस प्रकारके विवरण जो आज हमें हमारे धर्म ग्रन्थोंमें देखनेको मिलते हैं उनपर संदेह करना केवल मूर्खता और हठधर्मिता मात्र है।

कार्य समाप्ति पर ऐतिहासिक एवं सैद्धान्तिक विषयों पर मैंने नाहटाजीके सम्मुख अपनी अनेक जिज्ञासाएँ रखीं और उन्होंने बड़ी सरल सीधी और स्पष्ट भाषामें मेरी सभी जिज्ञासाओंका समाधान किया। मुझे अतिशय आह्लादके साथ ही साथ आश्चर्य भी हुआ और मैं विस्फारित नेत्रोंसे उनकी ओर देखते ही रह गया। हठात् मेरे मुँहसे एक ऐसा प्रश्न निकल गया, जिसके लिए तत्क्षण ही स्वयं मुझे अपनी अक्ल पर तरस आया कि तुझे आम खानेसे मतलब है या आमके पत्ते गिनने से ?

प्रश्न था— 'आपने संस्कृत और प्राकृतकी कौन-कौन सी उपाधि परीक्षाएँ पास की हैं ?''

नाहटाजी मुस्कराए और मेरा अंतर हिल उठा।

नाहटाजीने तत्क्षण सहज स्वरमें कहा—''पांचवीं कक्षातक।''

मैंने अविश्वासके स्वरमें पूछा—''कहाँ ?''

''मेरे अपने नगरके स्कूल में।''

''फिर इस अगाध ज्ञानके पीछे राज क्या है ?'' मैंने प्रश्न किया।

नाहटाजीका छोटा सा उत्तर था—''स्वाध्याय।''

अब नाहटाजीको कुतूहल सूझा। उन्होंने कहा अब मेरी पारी है—''आप राठोर राजपूत हैं फिर यह संस्कृत, प्राकृत और जैन धर्मके प्रति रुचि कैसे ?''

मेरे जीवनमें मुझे यदा कदा यही प्रश्न सुननेको मिला है अतः मैंने अपना वही चालीस साल पुराना उत्तर दोहरा दिया—''श्रीमन् ! मुझे अपने विद्यार्थी जीवनमें मुख्यतः शिक्षा इन्हीं तीन विषयोंकी मिली है।''

नाहटाजीने मार्गदर्शन करते हुए कहा, ''आप जैन-दर्शन ओर हिन्दू-दर्शनपर तुलनात्मक लेख लिखिये और मुझे सूचना कीजिये, मैं पत्रपत्रिकाओंको कहकर उन्हें प्रकाशित करवा दूंगा।

मैंने केवल उनका जी रखनेके लिये कहनेको तो कह दिया कि प्रयास करूंगा पर मेरे अन्तरमें तो उथल-पुथल मची हुई थी कि एक ओर तो एक प्राइमरी शिक्षा प्राप्त कर्मठ व्यक्तिने दृढ़ अध्यवसायके साथ अनवरत अध्ययनसे भारतके चोटीके विद्वानों, शोधकों, इतिहासवेत्ताओं, साहित्यिकों और लेखकोंमें सर्वोच्च स्थान प्राप्त कर लिया है और दूसरी ओर महान् अकर्मण्य मैं हूँ जिसने ४० साल पहले 'न्यायतीर्थ' और 'व्याकरणतीर्थ' की उपाधियाँ प्राप्त करके भी जीवन भर भाड़ ही झोंका। उसी समय अदृश्य ब्रह्माण्डमें छुपे हितोपदेशकार विष्णुशर्माके स्वर मेरे कर्णरन्ध्रोंमें गूंज उठे—

हा हा पुत्रक नाधीतं, सुगतैतापु रात्रिपु।
तेन त्वं विदुषां मध्ये, पंके गौरिव सीदसि ।।

हृदयमें गहरी अभिलाषा जगी कि महाभारतकार वेदव्यास और श्री कृष्ण भगवान् द्वारा बनाये गये ज्ञानसूर्य सरशय्याशायी पितामह भीष्मके चरणोंमें बैठकर धर्मराज युधिष्ठिरने अपने हृदयमें ज्ञानगंगाको

प्रवाहित किया था, उसी प्रकार इस कलिकालमें ज्ञानसूर्य नाहटाजीके चरणोंमें बैठकर अपने मरु हृदयमें ज्ञानगंगाको प्रवाहित करूँ। अपने जीवनकी यह चाह कभी पूरी होगी भी कि नहीं, इस आशंकामें मैंने उस समय मन ही मन दृढ़ निश्चय किया कि अपने जीवनके इस संध्याकालको अनवरत अध्ययनमें बिताऊँगा।

नाहटाजीने मुझे अपना संग्रहालय भी दिखाया जिसमें करीनेसे रखी गई अमूल्य कलाकृतियों विभिन्न शैलियोंके चित्रों, पुराने सिक्कों और दस्तकारीकी तरह-तरहकी अगणित वस्तुओंके अणु-अणुमें हमारी प्राचीन आर्य संस्कृति मुखरित हो रही थी। इस संग्रहालयको देखकर मेरे हृत्पटलपर नाहटाजीका कलाप्रेमीके रूपमें दूसरा विराट् स्वरूप अंकित हो गया।

आज देखा यह जाता है कि विद्वान् साहित्यिकों और कलाकारोंको औरोंके मुँहकी ओर ताकना पड़ता है, श्रीमन्तोंकी कृपापर निर्भर रहना पड़ता है। परंतु अनुपम दूरदर्शी नाहटाजी तन, मन और धनसे सम्पूर्णतः स्वावलम्बी हैं। जिसे चाह हो वह उनके मुँहकी ओर देखे परंतु उन्हें किसी और के मुँहकी ओर ताकनेकी आवश्यकता नहीं।

कुल मिलाकर मैं नाहटाजीके अगाध ज्ञान और अद्भुत कलाप्रेमको देखकर बड़ा प्रभावित हुआ। उनसे विदा होते समय मुझे ऐसा खला मानो मैं अपने अतिसन्निकटके कुटुम्बीसे बिछुड़ रहा हूँ।

मैंने निश्चय किया कि यदि मुझे कभी अवसर मिला तो मैं डिमडिमघोषसे भारतके निवासियोंको सूचित करूँगा कि बीकानेरकी मरुभूमिमें साक्षात् ज्ञानसूर्य देदीप्यमान हो रहा है। जिस किसीको अपने अंतरमें ज्ञानका आलोक उद्भाषित करना हो, शोध करना हो, सैद्धान्तिक बोध करना हो, कलाको परखनेकी कला या धन कमानेकी कला सीखना हो वह अगाध ज्ञानके भण्डार, कलाके अद्भुत पारखी और व्यवसायवेत्ताओंमें विशेषज्ञ श्रीमान् अगरचन्दजी नाहटाकी सेवामें पहुँचकर उनसे यथेप्सित वस्तु प्राप्त करें।

मेरी सर्वशक्तिमान् परमपिता परमेश्वरसे प्रार्थना है कि वह नाहटाजीको 'जीवेद्धै शरदां शतम्' का वर प्रदान कर इन्हें भारतीय वाङ्मय और संस्कृतिकी ओर अधिकाधिक सेवा करते रहनेका सुअवसर प्रदान करे और श्री नाहटाजीने जो भारतीय वाङ्मयकी अमूल्य सेवाका मानदण्ड प्रस्तुत किया है वह युगयुगान्तर तक अनन्त आकाशमें सूर्यकी तरह चमकता रहे।

●

श्री अगरचन्दजी नाहटा : एक परिचय

डॉ० आज्ञाचन्द भंडारी, जोधपुर

कलाका उद्भव आनन्दसे और परिणति रसमें होती है। शोधकार्य भी साहित्यके अन्तर्गत एक प्रकारकी कलात्मक विधा है। सौभाग्यसे राजस्थानी साहित्य और भाषाके क्षेत्रमें श्री अगरचंदजी नाहटाके रूपमें राजस्थानको एक उच्चकोटिके शोध कलाकार प्राप्त हुए हैं। राजस्थानी भाषा एवं जैनसाहित्यके प्रेमियों, साहित्यकारों एवं शोधार्थियोंके लिए नाहटाजी माँ सरस्वतीके वरदानस्वरूप हैं।

कलाकारका जीवन समाजके लिए प्रेरणाका स्रोत होता है। साधनाके क्षेत्रमें वह स्वयं अपने ही व्यक्तित्वसे रस ग्रहण करता है। उसी रसकी शाश्वत धाराका स्रोत समाजके मध्य प्रवाहित होता रहता है। ऐसे मेधावी एवं कर्मठ कलाकार हजारोंमें ही नहीं, लाखोंमें एक-दो ही होते हैं। श्री नाहटाजी उनमेंसे एक हैं।

श्री नाहटाजी माँ शारदाके वरद हस्तका शुभ आशीर्वाद एवं वरदान प्राप्त किए हुए हैं। एक लंबे समयसे आप राजस्थानी भाषा एवं साहित्यके साथ ही साथ जैनसाहित्यके संबंधमें गवेषणात्मक कार्य करते हुए तथा अतलकी गहराइयोंसे जो अमूल्य निधियाँ साहित्यिक जगत्को प्रस्तुत करते रहे हैं, वे उनकी प्रखर मेधाशक्ति, दूरदर्शिता एवं उनके साहसिक परिश्रमकी परिचायक हैं। श्री नाहटाजीका सम्पूर्ण जीवन शोध-कार्यके क्षेत्रमें उस विशाल वृक्षकी भाँति है, जो अपने सम्पर्कमें आनेवाले प्रत्येक शोधार्थीको शीतल छाया एवं मधुर फल तो प्रदान करता ही है, किन्तु साथ ही साथ उस वृक्षका प्रत्येक तत्त्व वैधिक दृष्टिसे समाजके लिए लाभदायक सिद्ध होता है।

श्री नाहटाजी जैसे उच्चकोटिके अध्यवसायी, धुनके धनी, लगनशील एवं कर्तव्यपरायण व्यक्तिके संबंधमें अधिक कुछ कहनेसे उनके मेधावी व्यक्तित्वपर शब्दजालका आवरण आ सकता है, फिर भी साहित्य-के क्षेत्रमें मौन भी नहीं रहा जा सकता।

साहित्यिक जगत्में शोधकार्यके अतिरिक्त व्यावहारिकताकी दृष्टिसे भी नाहटाजीका सामाजिक वैशिष्ट्य अनुकरणीय है। कोई भी शोधार्थी जो एक बार आपके सम्पर्कमें आ जाता है वह आपका संसर्ग छोड़नेको कभी तैयार नहीं होता। नाहटाजी भी मुक्तहस्तसे उसे कुछ न कुछ तथ्य प्रदान करते ही रहते हैं। यह आपकी व्यावहारिकता एवं मिलनसारीका ही प्रतिफलन है।

श्री नाहटाजीका शोध कक्ष ही वर्षोंसे की हुई उनकी साहित्यिक तपश्चर्या तथा शोधकार्यका एक ऐसा दर्पण है जिसमें झाँकनेपर नाहटाजीके सम्पूर्ण व्यक्तित्वकी झलक प्राप्त हो सकती है। साधारणतः दर्पणमें झाँकनेपर व्यक्ति अपना ही प्रतिबिंब देखता है, किन्तु नाहटाजीके संग्रहालय रूपी दर्पणमें झाँकनेपर दर्शक अपने व्यक्तित्वको खो देता है और नाहटाजीके व्यक्तित्वकी झलक पाने लगता है, यही उनके कला-त्मक व्यक्तित्वका विरोधाभास है।

शोधकार्यके क्षेत्रमें, शोधकर्ताके लिए एक-एक पल अमूल्य होता है। श्री नाहटाजी जब कभी भी शोधके संबंधमें किसीके लिए समय निर्धारित करते हैं तो वे पूर्व निर्धारित समयके भीतर ही विषय संबंधी सम्पूर्ण सामग्रीसे शोधकर्ताको अवगत करानेको तैयार रहते हैं। यही कारण है कि नाहटाजीका शोधात्मक निर्णय एवं तथ्य संबंधी ज्ञान कसौटीपर पूर्ण तथा खरा उतरता है।

सामान्यतः वाणिज्य और साहित्यमें विरोध दिखाई देता है। समाजकी औसत धारणा रहती आई है कि वाणिज्य और उद्योगमें तत्परशील व्यक्ति एक अच्छा साहित्यकार नहीं हो सकता, किन्तु मेरी ऐसी मान्यता है कि वाणिज्य अपनी चरमावस्थामें साहित्यके अन्तर्गत आ सकता है, परन्तु साहित्य वाणिज्य नहीं हो सकता। यदि साहित्यको वाणिज्यमें लानेका प्रयास किया गया तो साहित्य नामकी कोई वस्तु शेष नहीं रह जायगी। श्री नाहटाजी वाणिज्यमें कुशल हैं, किन्तु उनका वाणिज्य उनके साहित्य एवं शोधकार्यके समुद्रमें स्वयमेव लीन हो रहा है। दूसरे शब्दोंमें नाहटाजीका गवेषणात्मक व्यक्तित्व उनके वाणिज्यपर पूर्णरूपसे हावी हो चुका है। नाहटाजी सेठ हैं अवश्य, किन्तु नाहटाजीका सेठ उनके शोधकर्ताका सहायक बन चुका है।

राजस्थानके आधुनिक कालके विद्वानोंमें नाहटाजी अग्रणी हैं। आपने अपनी मातृभाषा और साहित्य-से उदासीन राजस्थानवासियोंका अपनी मातृभाषाकी ओर ध्यान आकृष्ट किया और उसकी साहित्यिक समृद्धि एवं विशेषताओंको उनके सामने रखा। एक नहीं, अनेक तमाच्छन्न तथा संदिग्ध ग्रंथोंपर समुचित प्रकाश डालकर साहित्य प्रेमियोंका मार्गदर्शन करते रहते हैं। उसके अतिरिक्त नाहटाजी सिद्धहस्त लेखक

हैं। आपका ध्यान सदा विषयके स्पष्टीकरणकी ओर रहता है, अतएव एक ही बातको प्रकारांतरसे इस तरह समझाते हैं कि पाठक हृदय पटलपर स्थायी रूपसे अंकित हो जाती है। शब्दाडंबर, पांडित्यप्रदर्शन और विषयवस्तुका अनावश्यक विस्तार आपमें नहीं मिलता। जो कुछ भी कहना होता है उससे संक्षेपमें, शालीनता एवं हृदयग्राही ढंगसे विना किसी झिझकके कहते हैं।

अंतमें हम ईश्वरसे प्रार्थना करते हैं कि माँ सरस्वतीके मंदिरमें श्री नाहटाजी राजस्थानी भाषा और साहित्यके विविध भाव भरे सुमन राजस्थानी भारतीके चरणोंमें अर्पित करते रहें तथा अच्छे स्वास्थ्यको धारण करते हुए दीर्घायु हों।

●

नाहटाजीकी राजस्थानीके प्रति ममता

श्रीमंतकुमार व्यास

बात उस समय की है जब स्व० अद्भुतजी शास्त्री एवं सूर्यशंकर पारीकने रतनगढ़में साहित्य सम्मेलनका आयोजन किया था। सम्मेलनमें भाग लेनेके लिए राजस्थानके सभी इलाकों से साहित्यकार एकत्रित हुए थे। मैं भी सम्मिलित हुआ था। समारोह के विभिन्न कार्यक्रमोंमें राजस्थानीके लिए विचार-विमर्श चला और राजस्थानी साहित्य सम्मेलन गठित करनेका निश्चय किया गया। संयोजक बना दिया मुझे और बनानेवालोंको निर्देश था श्री अगरचन्दजी नाहटा का।

श्री नाहटाजीने मुझे संयोजक बनाकर बीकानेरके भारतीय विद्या मन्दिरमें अध्यापकके स्थान पर मेरी नियुक्ति भी करा दी और राजस्थानीका प्रचार-प्रसार करने हेतु कार्यालय भी कायम करा दिया। उनका परामर्श था कि राजस्थानीमें एकांकी लिखकर उनका यत्र-तत्र प्रदर्शन किया जावे किन्तु मैं ऐसा कुछ भी नहीं कर सका। लेकिन यह तो मेरी ही कमी थी उनकी प्रेरणामें तो कभी कोई कमी आई नहीं।

वैसे नाहटाजी भारत प्रसिद्ध साहित्य-संशोधक हैं। उन्होंने अपनी विशाल लाइब्रेरी बहुत ही लगनके साथ सजायी है, जहाँ बैठकर अनेक व्यक्ति डाक्टरेट की उपाधि प्राप्त कर चुके हैं। इनकी जितनी स्मरण शक्ति है, उतनी ही कार्यशक्ति और उतनी ही तीव्र लेखन शक्ति भी है।

भारतके इतने बड़े विद्वान् की राजस्थानीके प्रति ममता एक बड़ी बात है। राजस्थानी साहित्यमें कौन-कौन लिख रहे हैं? कैसा लिख रहे हैं? उनका प्रकाशन हो रहा है या नहीं? किसीकी प्रेरणाके अभावमें लिखनेकी शक्ति तो खतम नहीं हो रही है आदि बातोंके प्रति ये हमेशा जागरूक रहते हैं। मैं समझता हूँ राजस्थानी भाषाका प्रौढ़ या नवागत कोई भी ऐसा साहित्यकार नहीं होगा, जिसके पास इनका प्रेरक-पत्र न पहुँचा हो। ये सबका ध्यान रखते हैं और पत्रके जरिए बराबर लिखनेका प्रोत्साहन देते रहते हैं। इतना ही नहीं इनकी यह भी प्रेरणा रहती है कि नये आदमीको कलम थमाकर लिखना सिखावो। आलस्यका इनके पास काम नहीं। एक, दो, दस, बीस तब तक ये पत्र लिखते रहेंगे जब तक कि उनका प्रत्युत्तर न दे दिया जावे या सम्बन्धित कार्य पूरा न हो जावे।

एक बार नाहटाजीने कहा, "मैं दैनिक अखबार नहीं पढ़ता।" पूछनेपर उन्होंने बताया कि इससे दिमाग अनावश्यक रूपसे बोझल रहता है। फिर भी वे ज्ञानके अक्षय भंडार हैं। साधारण धोती, कमीज,

और पगड़ीकी पोशाकमें नाहटाजी सादगीकी सौम्य मूर्ति प्रतीत होते हैं। नाहटाजीने अन्वेषण कर जितना लिखा है, राजस्थानमें उतना शायद ही किसीने लिखा हो तथा लोगोंको ज्ञानज्योति दी हो।

राजस्थान सरकारको चाहिए कि वह प्रान्तके इतने सीधे-सादे व महान् विद्वान्की तरफ भारत सरकारका ध्यान आकृष्ट कर सम्मानित करावें। नाहटाजीकी साहित्यिक सेवायें प्रान्त द्वारा भुलाई जाने योग्य कदापि नहीं हैं क्योंकि इन्होंने सदा ही नवागत साहित्यकारोंका स्वागत किया और प्रेरणा प्रकाशन दिया है।

•

साहित्य साधक श्री नाहटाजी

श्री भूरसिंह, राठौड़

श्री नाहटाजीने जैन और राजस्थानी साहित्यकी जो सेवा की है और कर रहे हैं, वह अक्षय रहेगी। मैं आपसे काफी समयसे परिचित हूँ। जब-जब भी मैंने आपसे भेंट की है, आपको मैंने अपने साहित्य संग्रहालयमें ढेरों पुस्तकोंसे घिरे हुए, साहित्यके अध्ययन व मननमें रत और साहित्योद्धार जैसे पुनीत कार्यमें तल्लीन देखा है।

आपके लेखों और लिखित तथा सम्पादित ग्रंथोंने जैन और राजस्थानी साहित्यके असंख्य रत्नोंकी सुरक्षा ही नहीं की, उसे पठित जगत्के सम्मुख रखकर उसके मूल्यांकनके लिए विद्वानोंकी आँखें खोल देने एवं मार्ग प्रशस्त करने जैसा महत्त्वपूर्ण कार्य किया है।

ऐसे कर्मठ साहित्यिकका यदि हम अभिनन्दन करते हैं तो एक बड़ी भारी भूलसे बचते हैं।

•

अनथक साहित्य खोजी : श्री नाहटाजी

डॉ० दयाकृष्ण विजयवर्गीय विजय'

उदयपुर राजस्थान साहित्य अकादमीकी सरस्वती सभाकी बैठक, जहाँ अनेक परिचितोंके बीच बैठे श्री नाहटाजीको मैंने आकृतिसे ही अनुमान लिया था। भारी सुघड़ देह, आँखों पर भारी-सा चश्मा, सिर पर ओसवाली पगड़ी, लम्बा कोट, साहित्यकारकी कम, किसी श्रेष्ठिकी अधिक छवि दे रहे थे तो भी मेरा श्रद्धा-भाव इस रूप विशेषसे विचलित होनेवाला नहीं था; बल्कि उसकी पुष्टि ही तब हुई, जब उन्होंने किसी प्रसंग पर खड़े होकर अपने विचार प्रकट किये। उनकी वाणीमें विषयके ज्ञानकी गम्भीरता तथा प्रौढ़ता बोल रही थी। उदयपुरमें ऐसे ही प्रसंगों पर फिर १-२ बार और आपके दर्शनोंका मुझे सौभाग्य प्राप्त हुआ।

श्री नाहटाजीके व्यक्तित्वके उपरान्त मुझे कृतित्वके निकट आनेका भी अवसर मिला, जब मैं राजस्थान विश्वविद्यालयसे 'राजस्थानी काव्यमें शृंगार-भावना' शीर्षकसे शोध प्रबन्ध लिखनेमें लगा हुआ था। राजस्थानीमें लौकिक एवं चारणी काव्योंके अतिरिक्त प्रचुर मात्रामें जैन काव्य भी विद्यमान हैं; जिनमें

श्रृंगारके दर्शन होते हैं । इस तथ्यको प्रकटानेवाले कितने ही लेख पढ़नेको मिले, जिनमें मुझे जैन-काव्यके अनथक खोजी एवं संग्राहकके रूपमें श्री अगरचन्दजी नाहटाके दर्शन हुए और उनके अथक परिश्रम एवं साहित्य प्रेमके प्रति मेरी श्रद्धा सहज ही प्रगाढ़ हो उठी ।

शोध-प्रबन्ध लेखनके समय ७ दिन तक जोधपुरमें रहना पड़ा था । प्राच्य विद्या प्रतिष्ठानमें कई पाण्डुलिपियाँ उस समय देखी थीं । उसी समय बीकानेर जाकर आपका 'अभय जैन ग्रन्थालय' देखनेकी भी उत्कट लालसा थी; किन्तु समयाभावके कारण मेरे मनकी वह साध पूरी नहीं हो सकी । उस अभावकी पूर्ति विभिन्न पत्र-पत्रिकाओंमें प्रकाशित आपके लेखोंने ही की । लक्ष्मीके वेशमें पल रही देवी सरस्वतीके उनमें मुझे दर्शन हुए, यदि यह कहूँ तो अत्युक्ति न होगी ।

श्री नाहटाजीको मिले इतिहास रत्न, सिद्धान्ताचार्य, विद्यावारिधि जैसे सम्मानीय अलंकरण श्री नाहटाजीको भेंटकर स्वयं अलंकृत हो गये हैं । श्री नाहटाजी हिन्दी राजस्थानी साहित्य भवन के शिल्पी हैं, जिन्होंने बड़ी योग्यता एवं परिश्रमसे, दूर-दूर से ला-लाकर एक-एक ईंट रूपी पुस्तक चुन-चुनकर रखी है । भारतकी कौन-सी पत्रिका है, जिसे श्री नाहटाजीके लेखोंने स्पर्श नहीं किया हो । श्री नाहटाजी साहित्य अन्वेषक, संग्राहक एवं सम्पादकके रूपमें वर्षों पूर्व ही प्रतिष्ठित हो चुके हैं—यह निर्विवाद है । 'अभय जैन ग्रन्थालय' 'श्री शार्दूल राजस्थानी रिसर्च इन्स्टीट्यूट' आपकी साहित्यिक सेवाओं एवं साहित्य प्रेमके जीवन्त निदर्शन हैं । 'राजस्थान भारती' का कुशल सम्पादन कर आपने अपनी साहित्यिक योग्यताकी छाप सबके मनों पर छोड़ी है ।

राजस्थानमें राजस्थानी भाषाके अभ्युदयमें श्री नाहटाजीका योगदान सर्वदा प्रशंसनीय रहेगा । श्री नाहटाजीने अपनी शोध वृत्तिके माध्यमसे प्राचीन राजस्थानीकी दुर्लभ पाण्डुलिपियोंकी खोज राजस्थानी के साहित्य भंडारको भरा है । जैन मुनियों द्वारा लिखित राजस्थानी भाषा साहित्यको प्रकाशमें लानेका श्रेय यदि किसीको दिया जा सकता है तो वह श्री नाहटाजीको ही । आपने राजस्थानी-विद्वानोंकी अनेक मान्यताओं एवं धारणाओंको मूल-प्रतियोंके साक्ष्यमें संशोधित किया है । आपने जन-मानसमें बैठी इस धारणाको भी निर्मूल सिद्ध किया है कि राजस्थानीमें मात्र चारणी डिंगल साहित्य है और वह भी वीर रसपूर्ण, आपने शान्त रसात्मक जैन साहित्यको प्रकाशमें लाकर न केवल रसानुभूतिकी विविधता ही प्रस्तुत की है, अपितु भाषा एवं व्याकरणका विभेद भी दर्शाया है । चारण कवियोंकी भाषा जहाँ डिंगल है, वहाँ जैन कवियोंकी भाषा बोलचालकी मूल राजस्थानी । राजस्थानीका यह स्वरूप हिन्दी भाषाके अधिक निकट है । इस खोजके लिये श्री अगरचन्दजी नाहटा साहित्य जगत्में सदैव स्मरण किये जाते रहेंगे ।

श्री नाहटाजी यद्यपि लक्ष्मी एवं सरस्वतीका वरदान एक साथ वरण किये हैं; तदपि वे प्रकृतिसे अतीव सरल एवं विनम्र हैं । उन्हें अभिमान जैसी वस्तु तो छू कर भी नहीं गई है । आपकी वाणी एवं व्यवहारमें कहीं भी दर्प एवं अहंकार बोलता नहीं दीखता । सादा जीवन उच्च विचारवाली कहावत आप पर पूर्णतः चरितार्थ होती है ।

श्री नाहटाजीने अपने कृतित्वका कीर्तिमान स्थापित किया है ।

•

शोध-निर्देशक श्री अगरचन्दजी नाहटा से भेंट

डॉ० प्रताप सिंह राठौड़, एम० ए०, पी-एच० डी०

१० दिसम्बर, १९६६ की बात है। बिड़ला इन्स्टीट्यूट पिलानीमें हिन्दी विभागके अन्तर्गत मेरा 'बगड़ावत' विषय डॉ० कन्हैयालालजी सहलके निर्देशनमें पंजीकृत हो चुका था। डॉ० साहबके आदेशसे सामग्री-संकलन हेतु मुझे बीकानेरकी शोध-यात्रा करनी पड़ी। पिलानीसे बस द्वारा मैं सीकर होकर शाम को तीन बजे बीकानेर पहुँचा। शार्दूल-छात्रावासमें बिस्तर रखकर ४ बजे ताँगेसे नाहटोंकी गवाड़ पहुँचा। सड़कके पास ही हाथमें खाली लोटा लिये लघुशङ्कासे निवृत्त एक सज्जन खड़े थे। 'नमस्कार' करके मैंने पूछा, "जी! अगरचन्द जी नाहटा को मकान कुण सो है?" उत्तरमें पूछा गया—"आपरो कांई नाँव है?" मैंने अपना संक्षिप्त परिचय कि मैं, प्रतापसिंह राठौर पिलानीसे आ रहा हूँ। अभिप्राय स्पष्ट करनेसे पूर्व ही सज्जन बोल उठे कि मैं ही अगरचन्द नाहटा हूँ, आइए। उनके साथ चलते हुए मैं सोचने लगा कि क्या यही नाहटा जी हैं?

वे मुझे बैठकमें छोडकर हाथ-मुँह धोकर शीघ्र लौटे। डॉ० साहबका कुशलक्षेम पूछा। फिर चाबियों का गुच्छा लेकर चल पड़े। पीछे-पीछे मैं भी चला। सामने एक मकानपर लिखा था—"श्री अभय जैन ग्रन्थालय"। बादमें ज्ञात हुआ कि नाहटाजीके भाई अभयराजजीकी स्मृतिमें बनवाया गया है। भीतर मसनद और गद्दा लगा था। नाहटाजीके आसन ग्रहण करते ही मैं भी बैठ गया।

थोड़ी गंभीर मुद्रामें बैठे नाहटाजीने प्रश्न किया—"आपका शोध-विषय क्या है?" 'बगड़ावत'-संक्षिप्त-सा उत्तर सुनते ही तपाकसे बोले—"विषय आपने स्वयं चुना है या सहल जीने दिया है?" दोनों ही बातें हैं—मैंने कहा।

"खैर! विषय तो अच्छा है किंतु 'बगड़ावत' लोकगाथाके विभिन्न रूपान्तर प्राप्य हैं। सभीका संकलन करना जरूरी है।"

आपने एक साथ ही इस सन्दर्भमें अनूप संस्कृत लाइब्रेरी (बीकानेर), भारतीय लोक-कला मंडल (उदयपुर), संगीत-नाटक अकादमी (जोधपुर), प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान (उदयपुर) और नानानाथ योगी आदिसे सामग्री संग्रह करनेकी सलाह दी। उन्होंने बगड़ावतोंके संदर्भ खोजनेके लिए चौहान कुल-कल्प-तरु, मारवाड़ी मर्दुमशुमारी रिपोर्ट १८९१ अनेक पत्रिकाओं और कोशोंकी भी सूची नोट करवा दी।

सभी स्थानों, व्यक्तियों और पुस्तकों सम्बन्धी नाहटाजीकी विस्तृत जानकारी देखकर मैं चकित रह गया। प्रथम भेंटके समय ही शोधार्थीसे ऐसी मिलनसारिता, सहानुभूति और सहयोग-भावना उनकी व्यापक उदारताकी परिचायक है।

बड़े उत्साहसे शोध-सामग्री लाकर अध्येताके सामने रख देना, अध्ययन करते जाना और साथ ही लिपिकको लिखाते जाना एवं शोधार्थीको भी बीच-बीचमें महत्त्वपूर्ण निर्देशन देते चलना नाहटाजी जैसे कर्मठ विद्वान्, उदारमना शोध-जिज्ञासु और गवेषकके बूतेकी ही बात है। साधारण आदमी ऐसे कार्य एक साथ सम्पन्न नहीं कर सकता। नाहटाजी जैसे स्पष्टवादी, तेज स्मरणशक्ति वाले, ज्ञानके अथाह भाण्डार भारतमें बिरले ही हैं। मुझे तो वे चलते-फिरते 'विशाल साहित्य-कोश' जान पड़े।

चारों ओर सैकड़ों ग्रन्थ पड़े हैं और बीचमें आसनस्थ सफल साधक श्री अगरचन्दजी नाहटा। साधना भी इतनी कठिन कि प्रातः ५ बजेसे सर्दीमें रात्रिके ११ बजे तक पढ़ते-लिखते जाना। बाहरसे आए-हुए शोधार्थियोंका मार्ग-प्रशस्त करते जाना। उनकी अधिकतम सुख-सुविधाओंका खयाल रखना। ऐसे

विद्या-व्यसनी, शोध-अधिकारी सचमुच धन्य हैं जिनका सम्पूर्ण जीवन ही साहित्य-साधनामें लगा हुआ है। माँ सरस्वतीके प्रति गहननिष्ठा और गम्भीर चिन्तनके कारण ही ऐसा संभव है। इनकी विद्वत्ता, आत्मीयता, स्नेहशीलता और सहयोग-भावनाके कारण प्रतिवर्ष मरु-प्रदेश, बीकानेरकी साहित्य-सरितामें स्नान करके अनेक शोध-यात्री कृतकृत्य हो उठते हैं।

लगभग एक सप्ताह नाहटाजीके सानिध्य-सम्पर्कमें रहना पड़ा। इस प्रथम भेंटका मुझपर इतना प्रभाव पड़ा कि मेरा मन पुनः पाण्डित्यसे लाभान्वित होनेके लिये उद्विग्न हो उठा। तत्पश्चात् निरन्तर पत्राचार होता रहा।

२५ नवम्बर १९६७ ई० को दो सप्ताहके लिए शोध-सामग्री हेतु फिर बीकानेर जाना पड़ा। इस बार विषय 'बगड़ावत'से बदलकर ''राजस्थानी-वीराख्यान'' ले चुका था। इसके चुनावका श्रेय भी मैं श्रद्धेय नाहटाजी को देता हूँ। प्रथम भेंटमें वे अपना स्पष्टवादी दृष्टिकोण व्यक्त न करते तो ऐसा नहीं हो पाता। इसका मुझे बड़ा सन्तोष है चिरकाल तक इनका ऋणी रहूँगा।

यात्राके दौरान आपने आग्रह किया, 'मेरे यहाँ ठहर जाओ, तकलीफ उठानेकी जरूरत नहीं।'' मैंने मन ही मन इनकी उदारता, आत्मीयता और कष्टसाध्यस्थितिके ज्ञान की प्रशंसा करके इनकार कर दिया। मेरे पास एक कैमरा भी था। अतः संकोचके साथ एक दिन इनसे फोटो खिंचवानेकी इच्छा प्रकट की और वे सहमत हो गये।

दूसरे दिन १० बजे सायंकाल उनकी तिमंजली इमारतपर फोटो उतारी किन्तु अकेले नहीं जीवनसंगिनी सहधर्मिणी श्रीमती पन्नी देवीके साथ। गौरवर्णकी लगभग ६० वर्षीय हँसमुख मुद्राको सामने देखते ही मैं श्रद्धावनत हो गया। सुन्दर साड़ी और स्वर्णाभूषणोंसे सुसज्जित यह नारी लज्जा, उल्लास और उत्साहसे परिपूर्ण थी। इसी बीच शृंगारमंडित उनकी पुत्रवधू भी आ पहुँची। पुत्रवधूके साथ ही सुपुत्री, पुत्र विजयचन्द और दोहित्र प्रकाशके 'पोज' लिए। तभी बड़े पुत्र धर्मचन्दजी आ पहुंचे। मैंने हँसकर नाहटाजीकी पुत्रवधू को पतिदेवके साथ एक 'पोज' पुनः देने को कही। हँसते हुए वे दम्पति कुर्सियोंपर बैठ गये। इस प्रकारके वे फोटू कभी-कभी अनायास ही नाहटाजीके स्नेह, आत्मीयता और कर्मठताकी याद दिला देती हैं।

खेद है कि इस साधक की साधनाका मूल्यांकन करके किसी विश्वविद्यालयने आज तक इसे उपाधियोंसे विभूषित नहीं किया। हजारों पाण्डुलिपियोंके संरक्षक, हजारों लेखोंके रचयिता, हजारों चित्रों-सिक्कोंके संग्रहकर्ता, सच्चे शोध-अध्येता, शोध निर्देशक और साहित्यसाधक नाहटाजी को ईश्वर दीर्घायु करके 'जीवेम शरदः शतम्'की उक्तिको चरितार्थ करें।

●

नाहटाजीका स्वाध्याय और [illegible]

[illegible] सिद्धान्तशास्त्री

जिन व्यक्तियोंने [illegible] प्रत्यक्ष [illegible] [illegible] विभिन्न ज्ञान-भण्डारोंकी [illegible] [illegible] [illegible] कुछ भी [illegible] [illegible] जानते हैं कि श्री [illegible] हस्तलिखित [illegible] ग्रन्थोंका स्वाध्याय करते रहते हैं। उनका यह दैनिक स्वाध्याय [illegible] रहता है। उन्होंने अपने इस दैनिक स्वाध्यायके बल पर विशाल ज्ञान ही नहीं प्राप्त किया है, [illegible] भारतके प्रायः सभी प्रसिद्ध ज्ञान-भण्डारोंका अवलोकन करके अनेक नवीन ग्रन्थोंका भी अन्वेषण किया है और आज भी उन्हें जहाँ कहीं भी नवीन शास्त्र-भण्डारका पता लगता है, वे तुरन्त ही वहाँके ग्रन्थोंका [illegible] करते हैं, वहाँके ग्रन्थोंकी सूची मँगाते हैं और किसी नवीन ग्रन्थके दृष्टिगोचर होते ही तुरन्त उसे मँगाकर उसका स्वाध्याय कर अपने ज्ञानभण्डारकी वृद्धि करते रहते हैं। उनकी इस ज्ञान-पिपासाका ही यह सुफल है कि उनके निजी भण्डारमें हजारों हस्तलिखित एवं मुद्रित ग्रन्थ विद्यमान हैं और उनकी संख्या दिन पर दिन बढ़ती ही जा रही है।

उनकी नित्य स्वाध्यायशीलताके अतिरिक्त यह भी एक उत्तम प्रवृत्ति है कि जहाँ कहीं भी कोई नवीन बात मिली, या नवीन ग्रन्थका पारायण किया, तो उसे तुरन्त नोट किया और लेख-बद्ध करके तुरन्त उसके योग्य पत्र-पत्रिकाओंमें प्रकाशनार्थ भेज दिया। उनकी इस शुभ प्रवृत्तिका ही यह सुफल है कि प्रायः सभी पत्र-पत्रिकाओंमें उनके लेख प्रकाशित होते रहते हैं।

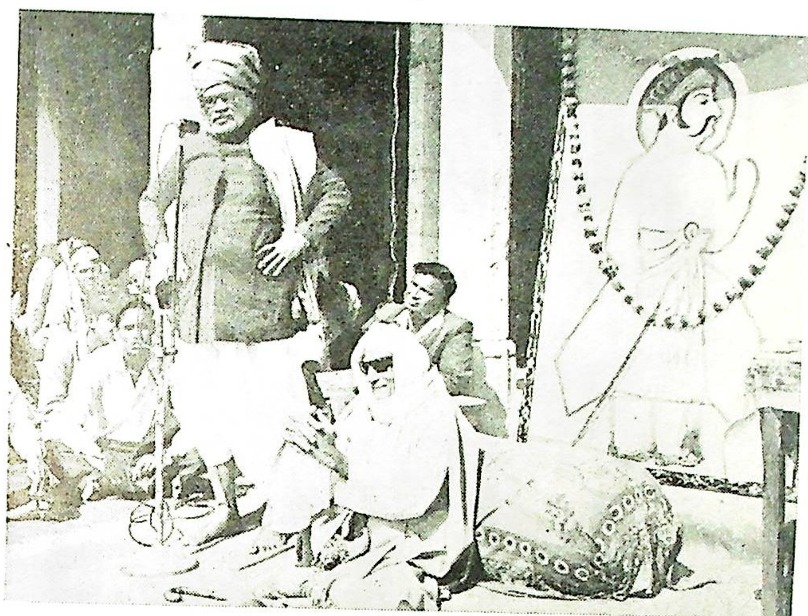
मेरा नाहटाजीसे काफी पुराना परिचय है। जब मैं वीरसेवा मन्दिर दिल्लीमें था, तब भी वे आसाम या मद्राससे आते-जाते मिलनेको आते और नवीन ग्रन्थोंकी जानकारी लेते रहते। यहाँ ब्यावरके सरस्वती भवन में मेरे आते ही उन्होंने समस्त हस्तलिखित ग्रन्थोंकी सयपूर्ण विवरणके साथ सूची मंगाई और उसमें जो-जो नवीन ग्रन्थ उन्हें द्रष्टव्य प्रतीत हुए, उन्हें मंगा करके देखा और उनका परिचय भी लेखों द्वारा जैन-पत्रों में प्रकाशित किया।

अभी पिछले वर्ष वे ब्यावर आये और मेरे अनुसन्धान कार्यकी बात पूछी, तो मैंने अपनी संचित सामग्री उन्हें दिखाई। देखते ही बोले, "इतनी अधिक नवीन सामग्री के पास होते हुए भी आप इसे पत्र-पत्रिकाओंमें क्यों नहीं देते? आप तो प्रतिमास अनेकों लेखोंके द्वारा समाजके जिज्ञासु धर्मको बहुत कुछ नवीन ज्ञान प्रदान कर सकते हैं।" यह है उनका ज्ञान-पिपासुओंकी पिपासा शान्त करने-करानेका एक उदाहरण।

श्री नाहटाजीकी संशोधक दृष्टि एवं स्मरण शक्ति अद्भुत है। जहाँ कहीं भी जिस किसीके निबन्ध-में कुछ भी अशुद्धियाँ त्रुटि दृष्टिगोचर होती है, वे उसे तुरन्त सप्रमाण लेखोंके द्वारा उनके लेखकोंका ध्यान उस ओर आकर्षित करते हैं और उनकी भूलका परिमार्जन करते हैं।

अपने व्यवसायको करते हुए भी उनका ज्ञानाध्यवसाय सचमुच विद्वज्जनोंके लिए स्पृहणीय एवं अनुकरणीय है। मैं श्री नाहटाजीके दीर्घायुकी कामना करता हूँ कि उनके द्वारा जिज्ञासुवर्गको एक लम्बे समय तक नवीन ज्ञान प्राप्त होता रहे।

●



श्री अगरचन्द नाहटा, पुरातत्त्वाचार्य श्री जिनविजय जी के अध्यक्षता में महाराणा कुंभा आसन, उदयपुर में भाषण देते हुए ।



हाथरस में भाषण देते हुए श्री अगरचन्द जी नाहटा ।

नाहटाजी का कर्तव्य और व्यक्तित्व

पण्डित हीरालाल सिद्धान्तशास्त्री

जिन लोगोंको श्री अगरचन्दजी नाहटासे प्रत्यक्ष भेंट करने का अवसर मिला है, वे यह देखकर आश्चर्य से चकित होते हैं कि मारवाड़ी वेष-भूषाका यह व्यक्ति इतने विशाल ज्ञान-भण्डारका धनी कैसे बन गया ? खासकर उस दशामें जबकि उन्होंने किसी संस्कृत महाविद्यालय या अंग्रेजीके किसी कालेजमें कुछ भी शिक्षण प्राप्त नहीं किया है। किन्तु जिन्होंने उनके समीप कुछ दिन बिताये हैं, वे जानते हैं कि श्री नाहटाजी बिना किसी नागाके प्रतिदिन नियमित नये-नये ग्रन्थोंका स्वाध्याय करते रहते हैं। उनका यह दैनिक स्वाध्याय प्रवासमें भी बराबर चालू रहता है। उन्होंने अपने इस दैनिक स्वाध्याय के बल पर विशाल ज्ञान ही नहीं प्राप्त किया है, अपितु भारतके प्रायः सभी प्रसिद्ध ज्ञान-भण्डारोंका अवलोकन करके अनेक नवीन ग्रन्थोंका भी अन्वेषण किया है और आज भी उन्हें जहाँ कहीं भी नवीन शास्त्र-भण्डारका पता लगता है, वे तुरन्त ही वहांसे सम्पर्क स्थापित करते हैं, वहांके ग्रन्थोंकी सूची मंगाते हैं और किसी नवीन ग्रन्थके दृष्टिगोचर होते ही तुरन्त उसे मंगाकर उसका स्वाध्याय कर अपने ज्ञानभण्डारकी वृद्धि करते रहते हैं। उनकी इस ज्ञान-पिपासाका ही यह सुफल है कि उनके निजी भण्डारमें हजारों हस्तलिखित एवं मुद्रित ग्रन्थ विद्यमान हैं और उनकी संख्या दिन पर दिन बढ़ती ही जा रही है।

उनकी नित्य स्वाध्यायशीलताके अतिरिक्त यह भी एक उत्तम प्रवृत्ति है कि जहाँ कहीं भी कोई नवीन बात मिली, या नवीन ग्रन्थका पारायण किया, तो उसे तुरन्त नोट किया और लेख-बद्ध करके तुरन्त उसके योग्य पत्र-पत्रिकाओंमें प्रकाशनार्थ भेज दिया। उनकी इस शुभ प्रवृत्तिका ही यह सुफल है कि प्रायः सभी पत्र-पत्रिकाओंमें उनके लेख प्रकाशित होते रहते हैं।

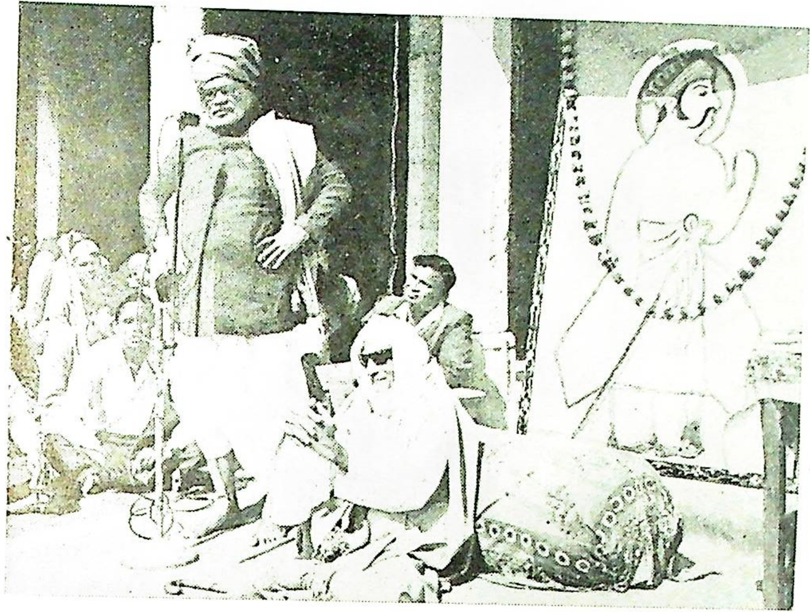
मेरा नाहटाजीसे काफी पुराना परिचय है। जब मैं वीरसेवा मन्दिर दिल्लीमें था, तब भी वे आसाम या मद्राससे आते-जाते मिलनेको आते और नवीन ग्रन्थोंकी जानकारी लेते रहते। यहाँ ब्यावरके सरस्वती भवन में मेरे आते ही उन्होंने समस्त हस्तलिखित ग्रन्थोंकी मयपूर्ण विवरणके साथ सूची मंगाई और उसमें जो-जो नवीन ग्रन्थ उन्हें द्रष्टव्य प्रतीत हुए, उन्हें मंगा करके देखा और उनका परिचय भी लेखों द्वारा जैन-पत्रों में प्रकाशित किया।

अभी पिछले वर्ष वे ब्यावर आये और मेरे अनुसन्धान कार्यकी बात पूछी, तो मैंने अपनी संचित सामग्री उन्हें दिखाई। देखते ही बोले, "इतनी अधिक नवीन सामग्री के पास होते हुए भी आप इसे पत्र-पत्रिकाओंमें क्यों नहीं देते ? आप तो प्रतिमास अनेकों लेखोंके द्वारा समाजके जिज्ञासु धर्मको बहुत कुछ नवीन ज्ञान प्रदान कर सकते हैं।" यह है उनका ज्ञान-पिपासुओंकी पिपासा शान्त करने-करानेका एक उदाहरण।

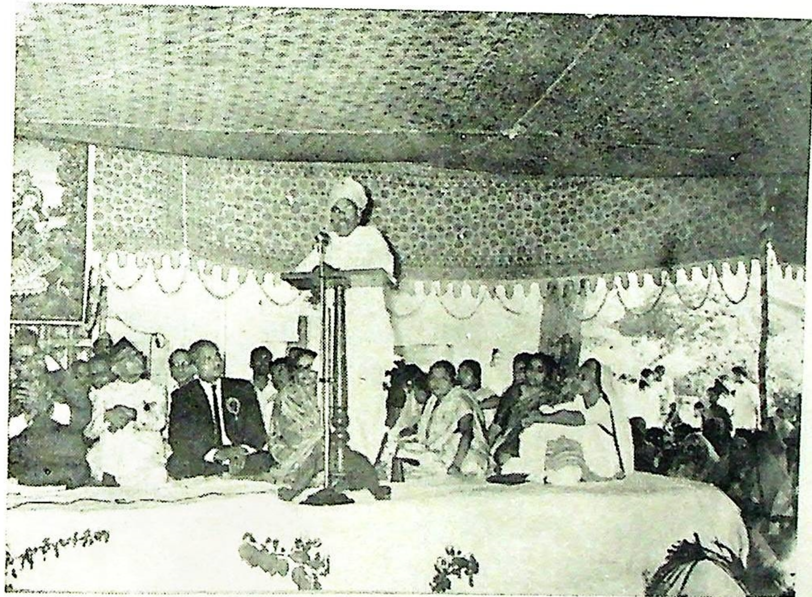
श्री नाहटाजीकी संशोधक दृष्टि एवं स्मरण शक्ति अद्‌भुत है। जहाँ कहीं भी जिस किसीके निबन्ध-में कुछ भी अशुद्धियाँ त्रुटि दृष्टिगोचर होती है, ये उसे तुरन्त सप्रमाण लेखोंके द्वारा उनके लेखकोंका ध्यान उस ओर आकर्षित करते हैं और उनकी भूलका परिमार्जन करते हैं।

अपने व्यवसायको करते हुए भी उनका ज्ञानाध्यवसाय सचमुच विद्वज्जनोंके लिए स्पृहणीय एवं अनुकरणीय है। मैं श्री नाहटाजीके दीर्घायुकी कामना करता हूँ कि उनके द्वारा जिज्ञासुवर्गको एक लम्बे समय तक नवीन ज्ञान प्राप्त होता रहे।

●



श्री अगरचन्द नाहटा, पुरातत्त्वाचार्य श्री जिनविजय जी के अध्यक्षता में महाराणा कुंभा आसन, उदयपुर में भाषण देते हुए।



हाथरस में भाषण देते हुए श्री अगरचन्द जी नाहटा।



भारतीय संस्कृति संसद कलकत्ता में राजस्थानी लोक साहित्य की रसधार पर
श्री सीताराम जी सेक्सरिया की अध्यक्षता में भाषण करते हुए।

साहित्य और कलाके सच्चे उपासक

श्री प्रेम सुमन

आदरणीय श्री अगरचन्दजी नाहटाके अन्तः एवं बाह्य दोनों व्यक्तित्वोंको मुझे निकटसे जाननेका अवसर मिला है और हर व्यक्ति, जो उनके सांनिध्यमें थोड़ा भी रहा हो, उनके इन व्यक्तित्वोंसे प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता। किसी भी साहित्यकार व शोधवेत्ताके दुहरे व्यक्तित्व की टोह पाना बड़ा कठिन है, विशेषकर तब, जब वह न किसी पद पर कार्य कर रहा हो और न ही उसके अधीन कार्य करनेकी मजबूरी हो। नाहटाजी ऐसे ही असम्पृक्त व्यक्ति हैं, विभिन्न पदोंसे और अनेक मातहतों से। शायद यही कारण है कि उन्हें जिन पदोंपर भी खींचा गया, उनके आदर्शोंके अनुसार वहाँ कार्य नहीं हो सका। नाहटाजी पुनः अपनी साहित्य साधनामें लीन हो गये। ऐसी कई संस्थाओं और साहित्य सृजनके अथाह सागरमें मैंने उन्हें डुबकियाँ लगाते देखा है। मेरी नजरमें ऐसी हिम्मत और जीवटके वे पहले व्यक्ति हैं, जिन्होंने सब कुछ झेलते हुए भी अध्ययन-अनुसन्धानके कार्यको नहीं छोड़ा। स्वयं किया तथा अपने सम्पर्कमें आनेवाले प्रत्येक जिज्ञासुसे भी कराया।

२-३ सितम्बर '६७ तक मैं केवल शोध सम्राट् एवं प्रसिद्ध साहित्यकार अगरचन्द नाहटाको ही जानता था। बीकानेर जाकर जब उनके दरवाजे पर खड़ा हुआ तो एक महाश्रेष्ठिके दर्शन हुए। सायंकाल उनके पुस्तकालय में पहुँचा तो श्रद्धेय स्व० डॉ० वासुदेवशरण अग्रवालका अध्ययन कक्ष स्मरण हो आया। दो दिन बाद जब जैन साहित्य व संस्कृतिके विभिन्न पक्षोंपर विचार-विमर्श हुआ तो प्रतीत हुआ कि विश्व-कोश भी सजीव होते हैं। कुछ निजी कार्योंमें उनके सहयोग और तत्परताको देखकर सहधर्मी और सहकर्मी-के प्रति सम्यक्त्वका वात्सल्य गुण साकार होता प्रतीत हुआ। धार्मिक-आयोजनोंमें उनकी सक्रियता और पुस्तकालयमें १८ घन्टे अध्ययनशीलताके संयोगपर विचार करनेसे लगा कि जीवन और धर्म दो अलग बातें नहीं हैं। इस प्रकार कुल मिलाकर एक आदर्श साहित्यसेवी एवं धर्मपरायणके रूपमें श्री नाहटाजी मेरे प्रथम परिचयमें अवतरित हुए। जैन समाजका गौरव निश्चित रूपसे उनके इस व्यक्तित्वसे बढ़ा है।

श्री नाहटाजीके पाण्डित्यने एक बहुप्रचलित भ्रमको तोड़ा है। आधुनिक शिक्षा और ज्ञानके संबंधमें अधिक कहनेकी आवश्यकता नहीं। यदि नाहटाजी उच्च शिक्षा प्राप्त करते तो आज अनेक विषयोंकी सूचनाएँ उनके पास होतीं, ज्ञान नहीं, जो अनवरत अभ्यास और स्वाध्यायसे उन्होंने अर्जित किया है। मैं शोध-सम्बन्धी ज्ञानकी बात नहीं कर रहा अपितु जैन तत्त्वज्ञानकी ओर मेरा संकेत है, जिसको नाहटाजीने अपने चरित्रमें भी उतारा है। सादगी एवं अल्पव्ययता उनके जीवनमें व्याप्त है।

व्यक्ति परिग्रही एवं अपरिग्रही दोनों एक साथ कैसे हो सकता है? यह नाहटाजीको देखकर जाना जा सकता है। वे अपरिग्रही हैं, भोग-विलासकी सामग्रियोंके प्रति तथा आधुनिक तड़क-भड़कके प्रति, पद-सम्मानके प्रति। किन्तु वे परिग्रही हैं, हस्तलिखित ग्रन्थोंके, अच्छे साहित्यके एवं कलात्मक प्राचीन वस्तुओं के। अभय जैनग्रन्थालय एवं कला भवन इसका परिणाम है। प्राचीन संस्कृतिके इन वाहनोंकी सुरक्षाके प्रति श्री नाहटाजी कितने प्रयत्नशील रहते हैं, यह इसीसे जाना जा सकता है कि वे अपनी सांसा-रिक सम्पदाकी देखभाल करने वर्षमें दो माह आसाम जाते हैं, और शेष दस माह ग्रन्थालयकी सुरक्षा और समृद्धिमें व्यतीत करते हैं।

मैंने नाहटाजीको कलात्मक वस्तुओंका मोलभाव करते हुए भी देखा है और साहित्यको खरीदते हुए भी। जब भी मैंने उनसे कहा, 'वस्तुएँ कीमती हैं, महत्त्वपूर्ण हैं, फिर क्यों आप इसका मोलभाव करते हैं?'

उनेका हमेशा यही जवाब रहा, "पहली बात तो यह कि जो वस्तु या ग्रन्थ जितने कम दाममें मिल जायेगा, उसकी बचतसे दूसरा खरीदा जा सकता है और कम पैसोंमें अधिक वस्तुओंकी सुरक्षा हो सकती है। दूसरी बात यह कि वस्तुओंको वेचनेवाले भी जानते हैं कि मोलभाव करता हूँ, अतः वे उनकी कीमत बढ़ाकर ही बताते हैं। उतनेमें कैसे खरीद लिया जाय?" यहाँपर मैं उनकी व्यापारिक कुशलताका परिचय पाता रहा हूँ।

अन्तमें एक बात और कहना चाहूँगा। श्री नाहटाजीने अनेकोंको शोध-कार्यमें प्रेरित किया है। अब उनके कार्योंपर भी शोधकार्य आवश्यक हो गया है। मैंने उन्हें प्रतिदिन सुबह नयी-नयी पुस्तकोंका स्वाध्याय करते देखा है। पुस्तक पढ़नेके बाद वे उसकी समीक्षा पुस्तकके अन्तिम कोरे पृष्ठपर लिख दिया करते हैं। ऐसी हजारों पुस्तकें प्राप्त की जा सकती हैं। शायद ही उनकी समीक्षा प्रकाशमें आई हो। यदि सबपर विधिवत् अध्ययन किया जाय तो अनेक ग्रन्थोंकी भूलें परिमार्जित हो सकती हैं। साथ ही श्री नाहटाजीका समीक्षक व्यक्तित्व भी उभरकर सामने आयेगा। आदरणीय नाहटाजी आज भी जिस लगन और परिश्रमसे स्वाध्याय-रत हैं, उससे भारत भारतीकी समृद्धि सुनिश्चित है, साहित्य और कलाके ऐसे एकनिष्ठ उपासकको मेरे अनन्त प्रणाम।

•

व्यक्तित्व एवं संस्मरण

श्री जोधसिंह मेहता

श्री अगरचन्दजी नाहटासे प्रथम बार आजसे लगभग २५ वर्ष पूर्व, राजस्थान विद्यापीठ, उदयपुरमें मिलनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ था। तदनन्तर फिर एक बार उदयपुर में ही व्यक्तिगत भेंट हुई। आपके लेख कतिपय पत्र-पत्रिकाओंमें पढ़नेका भी मुझे अवसर मिला। आपको सादे मारवाड़ी वेशमें परिभूषित देख कर, किसीको यह भान नहीं हो सकता कि नाहटाजीके व्यक्तित्वमें, सार्वभौम विद्वत्ता, साहित्यिक रुचि और शोध-प्रियता छिपी हुई है। आपके गहन अध्ययनका प्रकाश, विविध विषयोंपर आपके खोज-पूर्ण व्याख्यानों लेखों और पुस्तकोंसे प्रत्यक्ष सामने आता है। आपके पास जैन साहित्यकी प्राचीन और अर्वाचीन-सामग्री भी प्रचुर मात्रामें संग्रहीत है और इस विषयपर आपका ज्ञान भी विस्तृत और विद्वत्तापूर्ण है। कई शोध विद्यार्थी, मार्गदर्शनके लिये आपके पास आते रहते हैं। एवं कई विषयोंपर शोध सामग्री पाकर अचम्भित हो जाते हैं। व्यक्तिगत पुस्तकालय जो आपका है, वह राजस्थानमें ही नहीं, शायद भारतमें भी सबसे बड़ा है।

गत ३-४ माह पूर्व, जबकि उदयपुरमें, भगवान् महावीरके २५००वें निर्वाण-कल्याणक महोत्सवके लिये, राजस्थान जैन संस्कृति परिषद्की स्थापना हुई, तबसे मैं आपके नजदीक सम्पर्कमें आया तो मुझे आश्चर्य हुआ कि एक मामूली पढ़े लिखे व्यक्तिका साहित्यिक क्षेत्रमें इतना अपूर्व विकास कैसे हुआ। इसका उत्तर आपसे ही मिला कि अभ्यास और परिश्रमसे ही इसमें सफलता हुई है। आपके बौद्धिक विकासको देखकर, प्रसिद्ध कहावत "करत करत अभ्यास ते जड़मति होत सुजान" चरितार्थ होती है। यही एक मात्र कारण है कि आपने साहित्यके और सांस्कृतिक क्षेत्रमें, राजस्थानमें ही नहीं अपितु भारतमें प्रमुख स्थान प्राप्त किया है।

राजस्थान जैन संस्कृति परिषद्की १३-१४ और १५ सितम्बर १९७१ की कार्यकारिणी तथा विद्वद्-मंडलकी विशेष बैठक आपकी अध्यक्षतामें सफलता पूर्वक सम्पन्न हुई। जैन संस्कृति और राजस्थानी ग्रंथकी रूप-रेखा तैयार करनेमें, आपसे बड़ी सहायता मिली। इस अवसरपर सर्वानुमतिसे आप अध्यक्ष निर्वाचित हुए। हमें आशा है कि आपकी अध्यक्षतामें, जैन संस्कृतिके विकासमें राजस्थानका योगदानपर विशाल और विस्तृत ग्रंथ संपादन करनेमें, आपसे पूर्ण सहायता, सहयोग और सफलता मिलेगी।

●

एक प्रेरक व्यक्तित्व

श्री नृसिंह राजपुरोहित, खांडप

मैंने जीवनमें सर्वप्रथम श्री अगरचन्दजी नाहटाका नाम कब सुना, कुछ याद नहीं। आज जीवनके ढूहेपर खड़े होकर पृष्ठभूमिकी ओर दृष्टिपात करता हूँ तो अनेक धुंधले चित्र दृष्टिगत होते हैं, अनेक बिसरे प्रसंग स्मरण हो आते हैं।

मैं पढ़ने हेतु गाँव छोड़कर बाहर रहता था। छुट्टी-छपाटीमें जब कभी गाँव लौटता तो 'जीसा' को सुनाने हेतु कुछ मसाला साथ लेकर अवश्य आता। एक बार कल्याण मासिकका कोई अंक हाथ लग गया। उसे उन्हें पूरा पढ़कर सुनाया। उन्हें खूब पसन्द आया। उसी अंकमें एक लेख था, जिसका नाम आज याद नहीं, परंतु इतना बखूबी याद है कि उसके लेखक श्री अगरचन्दजी नाहटा थे। श्री नाहटाजीका एक लेखक-के रूपमें मेरा यह प्रथम परिचय था।

बादमें बड़े होनेपर साहित्य-जगत्से परिचित हुआ तो मैं लेखक नाहटाजीसे अधिकाधिक प्रभावित होता गया। मुझे इस बातका गर्व था कि वे राजस्थानके निवासी हैं।

सन पचास-इक्यावनके करीब मैंने राजस्थानी भाषामें कहानियाँ लिखनी शुरू कीं। आगे चलकर संकलन निकालनेकी इच्छा हुई। प्रथम संकलनका नामकरण 'रातवासौ' किया गया। संकलन हेतु कुछ विद्वानोंकी सम्मतियाँ मंगवानेकी आवश्यकता महसूस हुई। मुझे सर्वप्रथम श्री नाहटाजीका स्मरण हो आया। मुखपृष्ठ छपनेके पूर्व संकलन उनको भेजा गया और सर्वप्रथम आपहीका आशीर्वाद मुझे प्राप्त हुआ।

इसके पश्चात् तो पत्रव्यवहार द्वारा संपर्क स्थायी-सा बन गया। परन्तु आपके दर्शनका अवसर प्राप्त नहीं हुआ। काफी समय निकल गया और मैं मन ही मन चाहने लगा कि कभी बीकानेर चलकर आपसे मिलना चाहिए। लेकिन कुछ काम काजके झंझटोंसे और कुछ गांव छोड़कर बाहर जानेकी कम आदतके कारण उक्त प्रसंग टलता ही गया।

आखिर एक बार किसी कार्यवश बीकानेर जाना हुआ। रेलवेस्टेशनके पास ही किसी होटलमें ठहरा था। दो एक दिन अन्य झंझटोंमें फँसा रहा परन्तु मनमें श्रीनाहटाजीसे मिलनेकी इच्छा बराबर बनी रही। तीसरे दिन पूछता-पाछता नाहटोंके गवाड़में जा पहुँचा। एक सज्जन मुझे ठेठ आपके पुस्तकालयके द्वार तक पहुँचाने आए। मैं चुपचाप सीढ़ियोंपर चढ़ता हुआ ऊपर जा पहुँचा। सामने जो दृश्य दिखाई दिया वह बड़ा प्रेरणादायी था। फर्शसे लगाकर छत तक कमरा व्यवस्थित रूपसे पुस्तकोंसे भरा पड़ा था। फर्शपर भी पुस्तकोंका अम्बार सा लगा था और उनके बीचमें एक आदमी बैठा था—निस्संग, निःशब्द, दीन दुनियासे

बेखबर साहित्यके सागरमें लीन । धोती बंडीसे आवेष्ठित थुलथुल शरीर, घनी खिचड़ी मूँछे, सफाचट खोपड़ी और चश्मेसे झांकते ज्योतिपूर्ण सजग नेत्र । मैं स्तब्ध रह गया । क्षण भरके लिए असमंजसमें पड़ गया कि समाधिमें लीन इस साहित्यिक संतको डिस्टर्ब करूँ या नहीं ! पर इस प्रकार अधिक समयतक खड़े रहना भी संभव नहीं था अतः अभिवादन द्वारा मैंने उनका ध्यान आकृष्ट किया । स्नेहपूर्ण दृष्टिसे अभिवादनका उत्तर देते हुए उन्होंने मेरा परिचय पूछा तो गद्‌गद हो गए । प्रश्नोंकी झड़ी सी लग गई—कैसे आया हूँ ? कार्य बना या नहीं ? कहाँ ठहरा हूँ ? कोई असुविधा तो नहीं, लेखनकी क्या प्रगति है, शोधके लिए कौन-सा विषय ठीक रहेगा । इत्यादि । वार्तालाप द्वारा आपके मानवीय गुणोंका आभास पाकर मैं अभिभूत हो उठा ।

इसके पश्चात् मुझे आपका पुस्तकालय एवं संग्रहालय देखनेका शुभ अवसर प्राप्त हुआ । निचले कक्षसे लगाकर ऊपरी खंडतककी विपुल ज्ञान राशि एक अमूल्य खजाना है । दुर्लभ पांडुलिपियाँ आपके जीवनभरकी अक्षय निधि हैं ।

यही मेरी श्री नाहटाजीके साथ प्रथम मुलाकात थी । यह काफी वर्षों पहिलेकी बात है । परन्तु इन वर्षोंमें आप निरंतर मेरी खोज खबर लेते रहे हैं । मेरे लेखनकी क्या प्रगति है, इस सम्बन्धमें हर तीसरे-चौथे महीने तो आप ज्ञात कर ही लेते हैं । मेरा तो अपना निजी अनुभव है (दूसरोंकी बात मैं नहीं कहता) कि राजस्थानी लेखनके क्षेत्रमें खोज-खबर लेनेवाला और प्रेरणा देनेवाला यदि कोई व्यक्तित्व आज राजस्थानमें मौजूद है तो वह श्री नाहटाजी ही हैं ।

न मालूम कितने ज्ञान-पिपासु आपकी क्रोड़में अपनी तृषा शांत कर चुके होंगे, कितने शोध स्नातक आपसे मार्गदर्शन प्राप्त कर 'डॉक्टर' बन चुके होंगे और बन रहे होंगे ।

मेरे मनमें समय-समयपर अनेक बार यह प्रश्न उठता है कि इस साहित्यिक संतसे हमने बहुत कुछ प्राप्त किया मगर बदलेमें उन्हें दिया क्या ? क्या राजस्थानी-समाजने इस प्रतिभाको उचित सम्मान देनेकी दिशामें कभी सोचा भी है ! मैं समझता हूँ इस मामलेमें हमने अत्यन्त कृपणतासे काम लिया है । समय रहते हमें इस ओर शीघ्र ध्यान देना चाहिए । राजस्थानके विश्वविद्यालयोंको भी एक योग्य विद्वान्‌का उचित सम्मान कर अपनी निष्पक्ष परम्परा कायम करनी चाहिए ।

मैं आपके शतायु होनेकी शुभ कामना करता हुआ आशा करता हूँ कि माँ राजस्थानीको आपकी सेवाका अधिकसे अधिक अवसर प्राप्त होगा ।

●

अग्रणी अध्येता-नाहटाजी

डॉ० पुरुषोत्तम लाल मेनारिया एम० ए०, पी-एच० डी०, साहित्यरत्न

सुदूर आसाम और कलकत्तामें चलनेवाले अपने परम्परागत व्यवसायकी अपेक्षा राजस्थानमें रहते हुए विद्या-व्यसनको महत्त्व देनेवाले तथा कठोर परिश्रम और पवित्र जीवनके पक्षधर श्री अगरचन्द नाहटा देशके अग्रणी अध्येताओंमें हैं । अध्येता भी ऐसे कि प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थोंके क्षेत्रमें राजस्थानी, हिंदी, संस्कृत और गुजराती आदि भाषा-साहित्य सम्बन्धी कोई अनुसन्धान-कार्य इनके मार्ग-दर्शन तथा सहयोगके

बिना, सामान्यतः पूर्ण नहीं हो सकता। विपुल हस्तलिखित ग्रन्थ-सम्पदाके संग्राहक और अध्येता होनेके नाते सम्बन्धित क्षेत्रमें आपकी जानकारी विश्वसनीय मानी जाती है।

श्रीमान् नाहटाजीसे मैं १९४० के लगभग परिचित हो चुका था। राजस्थान साहित्य सम्मेलनकी उदयपुरमें स्थापनाके साथ ही 'राजस्थान साहित्य' नामक मासिक पत्रका प्रकाशन प्रारम्भ हुआ तो इसमें धारावाहिक रूपसे संगीत, अलंकार, छन्द, रत्नपरीक्षादि विभिन्न विषयोंपर लिखित हस्तलिखित ग्रन्थोंके सम्बन्धमें श्री नाहटाजीके अध्ययन और अनुसन्धानपरक लेख प्रकाशित होने लगे। एक निबन्धके प्रकाशनके साथ ही कई नये निबन्ध अग्रिम प्राप्त होते जाते। कालान्तरमें प्रचारिणी पत्रिका, हिन्दुस्तानी, शोध-पत्रिका आदि देशकी प्रसिद्ध पत्रिकाओंके साथ ही प्रान्तके अन्य पत्र भी आपकी उदारताके पात्र रहने लगे। सभी चमत्कृत-से थे कि बीकानेरका एक सेठ अपने उद्योग-व्यवसायको गौण मानता हुआ किस प्रकार साहित्यमें इतनी रुचि प्रकट कर रहा है?

श्रीमान् नाहटाजीसे साक्षात्कारका अवसर १९४५ में प्राप्त हुआ। यह घटना इस प्रकार है। प्राचीन साहित्य शोध संस्थानके संचालकके नाते राजस्थानमें हस्तलिखित ग्रन्थोंकी खोजका राजस्थान व्यापी कार्यक्रम प्रारम्भ किया तो सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण और सक्रिय सहयोग श्रीमान् नाहटाजीसे प्राप्त हुआ। बीकानेर-क्षेत्रके हस्तलिखित ग्रन्थोंका विवरणात्मक सूचीपत्र बनानेका कार्य श्री नाहटाजीने स्वीकार किया। कार्य निश्चित समयमें यथाविधि पूरा हो जावे, तदर्थ सहयोगके लिये मेरे बीकानेर पहुँचनेका निश्चय हुआ। महाकवि 'सूर्यमल्ल आसन' से श्रीमान् पं० नरोत्तदासजी स्वामीके राजस्थानी भाषा-साहित्य विषयक तीन सुविस्तृत व्याख्यानोंके आयोजन-संयोजनके उपरान्त मैं भी बीकानेरके लिये रेलमें बैठ गया था। वह स्वाधीनता-पूर्वका समय था और मैं सम्पूर्ण खादी पहनता था। गुप्तचर विभाग वालोंने मुझे कांग्रेस या प्रजामण्डलका व्यक्ति माना। तब भारतसे अंग्रेजोंका जाना और भारतीय स्वाधीनता लगभग निश्चित समझे जाने लगे थे एवं खादी-धारी सम्मानकी दृष्टिसे देखे जाते थे। बीकानेर राज्यकी सीमामें पहुँचते ही स्टेशनों पर मुझसे ससम्मान किन्तु अनेक प्रकारकी पूछताछ होने लगी। किन्तु बीकानेर रेलवे स्टेशन पर गाड़ीके रुकते ही श्रीमान् भँवरलालजी नाहटा मुझे लेने पहुँच गये। श्रीमान् स्वामीजी उदयपुरसे एक दिन पूर्व ही पहुँचे थे और मेरी बीकानेर-यात्राकी सूचना उन्होंने दे दी थी। गुप्तचर विभाग वाले श्री भँवरलालजीसे बातचीत करते ही निश्चिन्त हो गये। मुझे स्टेशनसे सीधा ही श्रीमान् भँवरलालजी निवासस्थान पर ले गये।

तब अभय जैन-ग्रन्थालयका अलग भवन नहीं था। श्री नाहटाजी अपनी व्यावसायिक गद्दी पर ही साहित्य-साधनामें संलग्न मिले। गद्दीके एक ओर कक्षमें हस्तलिखित ग्रन्थोंका भण्डार था। आवश्यकतानुसार सूची-रजिस्टरमें देखकर वे ग्रन्थ निकालते रहते। पहुंचा तब भी नाहटाजी एक प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थका विवरण लिख रहे थे। मैं भी इसी कार्यमें लग गया। दो-तीन दिनोंमें ही अभय जैन ग्रन्थालयके महत्त्वपूर्ण ग्रन्थोंके विवरण हमने लिख लिये। फिर दोनों ही अनूप संस्कृत पुस्तकालयमें पहुँचे। तब यह पुस्तकालय गढ़में था। वहाँ जाने हेतु सर पर पगड़ी बाँधना अनिवार्य था। मैंने पहले ही श्रीमान् नाहटाजीसे पगड़ी लेकर अपने थैलेमें बाँध ली थी। अनूप संस्कृत पुस्तकालयका कार्य पूरा कर बीकानेरके ग्रन्थ भण्डारोंमेंसे विवरण लिये गये। थोड़े ही समयमें एक भागके स्थान पर दो भाग तैयार हो गये। वहीं विवरणोंका विषय विभाजन किया गया। इस विषयमें श्रीमान् नाहटाजीने लिखा है, "मैं अपना कार्य शीघ्रतासे सम्पन्न कर सकूँ इसके लिये सहायतार्थ श्री पुरुषोत्तमजी मेनारिया साहित्यरत्न भी कुछ समय बाद बीकानेर आ गये। बहुतसे ग्रन्थोंके नोट्स मैंने पहले ही ले रक्खे थे। उनके आनेसे यह कार्य पूरे वेगसे चलाया गया और दस-

बारह दिनोंमें ही कुल मिलाकर एक भागकी जगह दो भागोंमें योग्य विवरण संगृहीत हो गये—(राजस्थानमें हिन्दीके हस्तलिखित ग्रन्थोंकी खोज, भाग–२, ११४७ ई० प्रस्तावना पृष्ठ, ६)।

बीकानेर तब भी राजस्थानमें साहित्यिक-सांस्कृतिक अनुसन्धान कार्यका विशेष केन्द्र था। श्री शार्दूल राजस्थानी रिसर्च सोसाइटी की स्थापना हो चुकी थी और लगभग सभी अध्येता इसी संस्थाके सक्रिय सहयोगी थे। पूरी मण्डली बीकानेरमें काम पर जमी थी और एक विशेष प्रेरक केन्द्र बनी हुई थी। बीकानेर पहुंचते ही स्व० नाथूरामजी खड्गावतने मेरे सम्मानमें एक आयोजन किया। सबसे प्रत्यक्ष परिचयके साथ ही राजस्थानीमें नई रचनाओंका आस्वादन प्राप्त हुआ। बादमें स्व० खड्गावतजी आजीवन मेरे लिये प्रेरक ही नहीं, मार्गदर्शन भी बने रहे।

इस बीकानेर-प्रवासके पश्चात् श्रीमान् नाहटाजीसे मेरा घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित हो गया। हस्तलिखित ग्रन्थोंकी खोजके सम्बन्धमें कई बार मैं बीकानेर गया और श्रीमान् नाहटाजी भी उदयपुर, जयपुर तथा जोधपुर स्वयं पधारकर सहयोगका आदान-प्रदान करते रहे। मेरे प्रत्येक पत्रको समुचित महत्त्व देते हुए उन्होंने तुरन्त ही आवश्यक कार्य पूर्ण करनेका प्रयत्न किया है। सन् १९४० से अब तक विद्यापीठ शोध संस्थान अथवा प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जहाँ भी मैंने कार्यभार ग्रहण किया श्रीमान् नाहटाजीने पूर्ण क्रियात्मक सहयोग दिया है।

श्रीमान् नाहटाजी अपने आपमें एक क्रियाशील संस्थाके रूपमें हैं। चारों ओरसे अध्येता इनके पास बीकानेर पहुँचते हैं और यथाशक्य सबका आप मार्गदर्शन करते हैं। बड़ी संख्यामें चारों ओरसे इनके पास पत्र भी पहुँचते हैं। प्रत्येक पत्रका उत्तर देते हुए अध्येताकी जिज्ञासा पूरी करनेका और उन्हें मार्गदर्शनका भरसक प्रयत्न करते हैं। श्रीमान् नाहटाजीका कार्य जितना ही त्वरित और विस्तृत हुआ है, इनका लेखन उनका उतना ही अस्पष्ट रहा है। प्राच्यविद्या प्रतिष्ठानके जयपुरमें स्थापित होनेपर इनके सम्बन्ध अनेक अध्येताओं से स्थापित हुए तथा इनके पत्र भी बड़ी संख्यामें पहुँचने लगे। तब मेरा एक कार्य अध्येताओंके लिये इनके पत्रोंको पढ़ना भी हो गया।

हमारे देशके सामने सांस्कृतिक अनुसन्धान-सम्बन्धी क्षेत्रमें एक लम्बा मार्ग है। इस क्षेत्रमें हम अनेक विकासशील देशोंसे पीछे हैं। सम्पूर्ण भारत मुख्यतः राजस्थान प्रदेश साहित्यिक-सांस्कृतिक सामग्रीसे बहुत सम्पन्न है। इस सामग्रीके व्यापक सर्वेक्षण, संग्रह, संरक्षण, सम्पादन, प्रकाशन और उपयोगसे देशके अभ्युत्थान तथा सर्वांगीण विकासमें महत्त्वपूर्ण योग मिलता है। अतएव श्रीमान् नाहटाजी जैसे सरस्वती-पुत्रों एवं इनकी सेवाओंका विशेष महत्त्व है।

यही कामना है कि श्रीमान् नाहटाजी सुदीर्घ, स्वस्थ और शान्तिमय जीवन प्राप्त करें।

•

नाहटाजीसे प्रथम साक्षात्कार

श्री किरण नाहटा

जब मैं नाहटाजीके अध्ययन-कक्ष (जोकि उनका पुस्तकालय भी है)में पहुँचा, तब वहाँ जो कुछ देखा वह सब कल्पनातीत था। सेठ-लोगोंकी पुरानी स्टाइलकी 'गद्दी'की भान्ति उस कक्षमें एक ओर दीवारसे सटकर एक बड़ा गद्दा लगा हुआ था और उस पर 'गद्दी'में ही काम ली जानेवाली काष्ठकी छोटी-

सी मुनीमी टेबल रखी हुई थी । चारों ओर पुस्तकों, पत्र-पत्रिकाओं एवं बिखरे हुए कागजोंका अम्बार और उनके मध्य नाहटाजी बिल्कुल सादो वेशभूषामें, अपने पारम्परिक लिबासमें बैठे हुए थे । उन्होंने अपनी पगड़ी एक ओर रख छोड़ी थी और गर्मीके दिन होनेके कारण अपना कुर्ता भी उतार रखा था । पास ही ५-४ व्यक्ति बैठे हुए थे । एक तो कोई शोध-छात्र थे, जो कि अपने नोट्स लेनेमें व्यस्त थे, दूसरी ओर बैठे हुए व्यक्तिको नाहटाजी अपने नाम आये हुए पत्रोंके उत्तर लिखवा रहे थे । तीसरे सज्जन कतिपय प्राचीन वस्तुएँ विक्रयार्थ लेकर आये हुए थे और चौथे सज्जन पठनार्थ कोई धार्मिक पुस्तक लेने आये थे । उन सबसे घिरे नाहटाजी शान्त चित्त, स्थिर मुद्रामें अपने कार्यमें संलग्न मैंने नमस्कार किया और उन्होंने मेरा परिचय जानकर पास-ही बैठनेको कहा ।

मैं बैठकर अपने कार्यके बारेमें कुछ कहनेको हुआ कि उससे पूर्व ही वे शोधार्थी महोदय किसी हस्तलिखित ग्रंथके बारेमें पूछने लगे । प्रत्युत्तरमें नाहटाजीने क्षण भरके लिए सोचा और बैठे-बैठे ही सामने पट्टरियोंपर लदे लाल बस्तोंकी ओर इशारा करते हुए उन्हें बताया कि वहाँसे अमुक नम्बरका बस्ता उतार लाओ और उसमें अमुक नम्बरकी प्रतिका अमुक पृष्ठ निकाल कर देखो ।

पाँच मिनट बाद ही जब मैंने उन सज्जनको सही सन्दर्भको पाकर उसकी नकल उतारते हुए देखा तो मैं स्तम्भित हुए बिना नहीं रहा । भला जिनके वैयन्तिक संग्रहमें ३५ हजारके आस-पास हस्तलिखित ग्रंथ (या उनकी प्रतियाँ) सुरक्षित हों, वह बिना किसी कटलॉग और पुस्तकाध्यक्षकी सहायतासे इस फूर्तिसे अपेक्षित पुस्तक निकालकर माँगनेवालेके हाथोंमें थमा दे, इससे अधिक तीव्र स्मरण शक्तिका परिचय और क्या हो सकता है ?

हस्तलिखित प्रति माँगनेवाले सज्जनको उचित निर्देश देकर उन्होंने तत्काल पत्र-लेखकको लिखवाना (डिक्टेशन) शुरू कर दिया । अभी वे कठिनाईसे दो पंक्ति भी नहीं बोल पाये कि पुरानी वस्तुओंका वह विक्रेता बोल उठा, 'क्यों सेठ साहब, माल जचा ? देखिये क्या कलात्मक वस्तु है ! सा'ब, निश्चित रूपसे ५०० वर्ष पुराना है । मैंने यहाँके एक अति प्रसिद्ध और प्राचीन घराने से प्राप्त किया है ।

उसकी बातें सुनकर नाहटाजी क्षणभरके लिए हँसे । यह वही हँसी थी, जो किसी अनुभवी बुजुर्गके नौसिखियेसे उपदेशात्मक बातें सुनकर बरबस होठोंपर उभर आती है ।

मुझे निर्देश देनेके साथ ही उन्होंने एक अन्य पगड़ीधारी सज्जनसे पूछा, ''आपको .शान्तिनाथ चरित्र चाहिए ? तो देखिये इसके बारे में ऐसा है कि अभी हिन्दी की पुस्तकें तो मेरे पास हैं नहीं । आप चाहें तो गुजरातीकी पुस्तक अवश्य ही, मैं आपको दे सकता हूँ ।'

वे सज्जन तपाकसे बोल उठे—'नाहटाजी गुजराती तो हूं जाणूँ कोनी ।'

उनकी बात पूरी होनेसे पूर्व ही नाहटाजींका उत्तर तैयार था । उन्होंने कहा, 'जानते नहीं तो क्या है ? सीखिये ! आप योंही पाटेपर बैठे दिनभर गप्प-शप्प लगाते रहते हैं, ताश खेलते रहते हैं; अब कुछ समय तो ज्ञानार्जनके लिए भी देना चाहिए । क्या है आप तीन दिनोंमें गुजराती सीख जायेंगे । मारवाड़ीके लिए गुजराती सीखना क्या कठिन बात है ?' और बिना कोई दूसरी बात सुने एक पुस्तक निकालकर उन सज्जनके हाथों थमा दी ।

तभी पोस्टमैन चिट्ठियों एवं पत्र-पत्रिकाओं आदिका एक बड़ा पुलिन्दा नाहटाजीके हाथोंमें थमा गया (जो कि उनकी दैनन्दिन डाक थी) । दूसरे ही क्षण वे उस डाकको देखनेमें व्यस्त हो गये साथ-ही-साथ पत्र लेखकको बिना एक बार भी यह पूछे कि इससे पूर्व मैंने क्या लिखवाया था, पत्र भी लिखवाते रहे । अब मैं भी एक कागज लेकर पुस्तकोंकी सूची बनानेमें संलग्न हो गया ।

यह था मेरा नाहटाजीसे प्रथम साक्षात्कार । उसके पश्चात् तो मैं उनके चरणोंमें महीनों बैठकर कार्य कर चुका हूँ और उस अवधिमें उन्हें अति निकटसे देखकर कितने क्या अनुभव किये हैं, कितनी क्या प्रेरणा प्राप्त की है—उन सबका लेखा-जोखा एक लम्बी कहानी बन जायेगा । अतः मैं विस्तार भयसे यहीं अपनी बातको समाप्त कर रहा हूँ ।

●

न तस्य प्रतिमास्ति यस्य नाम महद् यशः

श्री सत्यव्रत 'तृषित'

श्रीयुत अगरचन्दजी नाहटासे मेरा परिचय बहुत पुराना नहीं है । बात सन् १९६२ की है । तब मैं डी. ए. वी. कॉलेज, अमृतसरमें प्राध्यापक था । मैंने सरस्वतीमें 'पंजाब और संस्कृत साहित्य' जैसे गहन विषय पर एक लेख लिखनेकी चपलता की । पाँच हजार वर्षोंके विशाल अन्तरालमें निर्मित साहित्यकी विपुल राशिके साथ न्याय करना मेरे लिये कहाँ सम्भव था ? नाहटाजीने तुरन्त निबन्धकी कमियोंका प्रतिवाद किया । यही मेरा नाहटाजीसे प्रथम परिचय था । सन् १९६४ से राजस्थान मेरा कर्मक्षेत्र बना । इसके पश्चात् तो मुझे नाहटाजीको बहुत निकटसे देखने तथा समझने और अनेक बार उनका आतिथ्य ग्रहण करनेका सौभाग्य मिला । गत दो-तीन वर्षसे तो 'अभय जैन ग्रन्थालय' मेरा घर ही बना हुआ है ।

नाहटाजीके व्यक्तित्वमें भारतीय संस्कृतिकी गौरवशाली परम्परा साकार हो उठी है । वे सौजन्य तथा औदार्यकी साक्षात् प्रतिमा हैं । विनम्रता उनकी स्पर्द्धनीय थाती है । धनाढ्य व्यापारी कुलमें जन्म लेकर एक यशस्वी साहित्यकार बन जाना स्वयंमें एक विस्मयकारी घटना है । नाहटाजी इसे अपने पूर्वजन्मोंके संस्कारोंका सुफल कहते हैं । अवश्यही नियतिने उन्हें व्यापारके जालमें फाँसनेकी दुश्चेष्टा की थी, किन्तु प्रतिभा को बन्दी बनाना किसी भी सत्ताके बूतेकी बात नही है । उनकी साहित्यिक प्रतिभाके विकासमें उनके दिवंगत पिताजीका अमूल्य सहयोग रहा है, जिन्होंने अपनी तत्त्व भेदी दृष्टिसे उनकी प्रतिभाको आंक कर उन्हें प्रारम्भमें ही व्यापारके भारसे मुक्त कर दिया । नाहटाजीने अपने पिताजीके विश्वास और अभिलाषाके अंकुरको प्रतिभाके पीयूषसे सींच कर अश्वत्थ का रूप दे दिया है ।

श्रीयुत नाहटाजी साहित्यके सजग प्रहरी हैं । साहित्यका जितना उद्धार उन्होंने अकेले किया है, वह अनेक संस्थाओंके सामूहिक प्रयत्नोंसे भी सम्भव नहीं था । देशका शायद ही कोई ऐसा भण्डार हो, जिसका मन्थन नाहटाजीने न किया हो । अज्ञात तथा दुर्लभ ग्रन्थोंका संग्रह करनेमें वे सदैव तत्पर हैं । उनकी इस संशोधक वृत्तिका मूर्तरूप उनका 'अभय जैन ग्रन्थालय' है, जिसमें संस्कृत, प्राकृत, हिन्दी, अंग्रेजी आदिके लगभग एक लाख ग्रन्थ संगृहीत हैं । इनमें आधी तो हस्त प्रतियाँ हैं । नाहटाजीके संग्रहमें ऐसे अनेक ग्रन्थ विद्यमान हैं, जिनकी पाण्डुलिपियाँ अन्यत्र कहीं भी प्राप्य नहीं हैं । अपनी उदारताके कारण उन्होंने निजी ग्रन्थालयको सार्वजनिक-सा रूप दे दिया है । कोई भी शोधक, किसी भी समय वहाँ जाकर संकलित सामग्रीका उपयोग कर सकता है । शायदही हिन्दीका कोई ऐसा शोधछात्र अथवा विद्वान् हो, जिसने उनके पुस्तकालयका उपयोग न किया हो । वस्तुतः, 'अभय जैन ग्रन्थालय' अब एक प्रख्यात शोधसंस्थान बन चुका है, जहाँ सदैव, देशके विभिन्न भागोंसे आए हुए शोध-विद्वान् कार्यरत

रहते हैं। स्वयं नाहटाजी ही नवप्राप्त साहित्य तथा तत्सम्बन्धी जानकारीको 'रायटर' की भाँति, तत्काल प्रकाशित करते रहते हैं।

नाहटाजीका जीवन एक श्रावक तथा साहित्यकारका सात्त्विक जीवन है। उनकी धर्मनिष्ठा उनके साहित्य-निर्माणका सम्बल है। इसीलिये हिन्दीके ख्याति-प्राप्त लेखक तथा विद्वान् होते हुए भी वे जैन साहित्यके विशेषज्ञ हैं। जैन साहित्यकी सामग्री, चाहे वह किसी भी भाषामें हो तथा प्रकाशित-अप्रकाशित किसी भी रूपमें हो, उन्हें राई-रत्ती ज्ञात है। वे जैन साहित्यके साक्षात् सन्दर्भग्रन्थ अथवा गतिशील पुस्तकालय हैं।

अब तक देशकी विभिन्न पत्र-पत्रिकाओंमें उनके करीब पाँच हजार लेख प्रकाशित हो चुके हैं। उनकी लिखी अथवा सम्पादित ३०-३५ पुस्तकें अलग हैं। उनके बहुतसे निबन्ध तो शोध-प्रबन्धोंके आधार बने हैं, जो उनकी प्रखर विद्वत्ता तथा शोध-दृष्टिके सारस्वत-स्मारक हैं। वास्तविकता तो यह है कि नाहटाजी देशकी शोधप्रतिभा तथा साहित्यनिष्ठाके प्रतीक बन चुके हैं।

महापण्डित राहुल सांकृत्यायन तथा प्रज्ञाके अमर-शिल्पी ऋषितुल्य डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल जैसे उद्भट विद्वान् भी उनकी प्रतिभा तथा कर्मठताका सिक्का मानते थे। इतना होते हुए भी नाहटाजी अपनी विद्वत्ताको इस सहजतासे ओढ़ते हैं कि उन्हें आभास भी नहीं होता कि वे वाग्देवीके मानसपुत्र हैं। उनकी मारवाड़ी भूषा, बच्चोंकी-सी मधुर मुस्कान तथा हृदयकी सरलताको देखकर कोई अपरिचित व्यक्ति यह अनुमान भी नहीं कर सकता कि वे देशके प्रकाण्ड साहित्यकार हैं। आजके विज्ञापनके युगमें भी उन्हें न प्रचारकी आवश्यकता है, न यश अथवा औपचारिक प्रतिष्ठाकी आकांक्षा। फिर भी जितना सम्मान तथा यश उन्हें मिला है, वह किसी बिरले को ही प्राप्त होता है। किन्तु जहाँ देशकी कुछ संस्थाओंने विभिन्न रूपोंमें, उनकी साहित्यिक सेवाओंके प्रति अपनी श्रद्धांजलि अर्पित की है, वहाँ राजस्थान-के विश्वविद्यालय कुम्भकर्णी नींदमें सोये पड़े हैं। वे देश-विदेशके पेशेवर विद्वानोंको सम्मानित करके तो स्वयंको गौरवान्वित समझते हैं, किन्तु नाहटाजी जैसे निस्स्पृह साहित्यकारकी सुध उन्हें अभी नहीं आई है, वैसे नाहटाजी इन विश्वविद्यालययोंकी सभी उपाधियोंसे ऊपर हैं, महान् हैं। इस मूक तपस्वीको औपचारिक उपाधियोंकी आवश्यकता ही क्या ?

मैं नाहटाजीके चरणोंमें प्रणामांजलि अर्पित करता हूँ। वीतराग प्रभुसे प्रार्थना है कि वे इस परोपकारी विद्वान्को शतायु करें, जिससे समाजको उनके ज्ञानालोकसे मार्गदर्शन प्राप्त होता रहे।

●

महामनस्वी श्रीनाहटाजी

श्रीलाल मिश्र

सर्वप्रथम सन् १९३७ में ।मैंने बम्बईके मारवाड़ी पुस्तकालयमें उ० प्र० की हिंदुस्तानी पत्रिकामें श्रीनाहटाजीका लेख देखा। उस समय राजस्थानसे कोई साहित्यिक पत्रिका नहीं निकलती थी। कुछ समयके लिए श्रीहरिभाऊजी उपाध्यायके सम्पादनमें एक सुन्दर पत्रिका 'त्यागभूमि' मासिक निकली थी, जो कुछ

वर्षों तक चली। राजस्थानके साहित्याकाशमें एक नए नक्षत्रके उदयपर स्वाभाविक था कि उससे परिचित होनेकी जिज्ञासा हो। उस समय स्वामीजी तथा पारीकजी प्रकाशमें आ चुके थे और इनकी रचनाएँ साहित्यिक पत्रिकाओंमें निकल चुकी थीं। उ० प्र० से ना० प्र० पत्रिका तथा सम्मेलन-पत्रिका उच्चस्तरकी पत्रिकाएँ समझी जाती थीं। उपर्युक्त तीनों पत्रिकाओंमें किसी लेखककी रचनाका प्रकाशित होना, उसको लेखकके रूपमें मान्यता मिलना समझा जाता था। बादमें इन पत्रिकाओं तथा अन्यान्य पत्रिकाओंमें भी श्री नाहटाजीके लेख देखनेको मिले। जिज्ञासा बढ़ती ही गई।

सन् १९५४ में स्कूलके कामसे बीकानेर जाना हुआ तो सर्वप्रथम मैं आपसे आपके पुस्तकालयमें मिला। तबतक आप काफी ख्याति प्राप्त कर चुके थे। आप अधबैंया कुर्ता पहने हुए हस्तलिखित ग्रंथोंके पन्ने उलट रहे थे और चारों ओर फर्शपर बिछी हुई दरीपर हस्तलिखित ग्रंथोंके ढेर लगे थे। घनी मूछोंवाले गंभीर मुखने मुझे प्रभावित किया। प्रथम साक्षात्में ही मैंने इन्हें मितभाषी और कार्यमें विश्वास करनेवालेके रूपमें देखा। कुछ समय साहित्यचर्चा हुई और मैं चला आया।

दूसरी बार गया तो वे वहीं मिले और उसी तरह कार्य संलग्न। मैं भीखजनपर एक लेख लिखना चाहता था। उसके विषयमें चर्चा की तो तत्काल ही उन्होंने एक पत्रिका निकाल कर दी, जिसमें भीखजनके बारेमें लिखा हुआ था। इस कविकी अन्यत्र कहीं चर्चा नहीं हुई थी। मुझे आश्चर्य हुआ उनकी स्मृतिपर कि इतनी पत्रिकाओंके ढेरमेंसे वह कामकी पत्रिका तुरंत निकालकर दे दी मानों पहलेसे ही वे उसे ढूँढकर तैयार बैठे हों।

इस प्रसंगसे दो बातोंकी मेरे मस्तिष्कपर छाप पड़ी। एक तो किसी भी जिज्ञासु समानधर्मीको तत्काल सक्रिय सहयोग देने की, दूसरी उनकी स्मरण-शक्ति की कि हजारों पुस्तकोंके ढेरमें उन्हें याद है कि क्या चीज, किस जगह है।

उस समयतक तथा उसके बाद तो उनके पास कितने ही शोध-छात्र आए और उन्होंने इनकी वृत्तियोंका भरपूर लाभ उठाया। ये मूर्तिमान संदर्भ हैं। ये उस समय 'राजस्थान-भारती' निकालनेवाली संस्था श्रीसार्दूल राजस्थान रिसर्च इंस्टीट्यूट, बीकानेरके अध्यक्ष थे और उसके संपादक-मंडलमें तो ये इसके प्रथम अंकसे ही थे। ये इस संस्थाके संस्थापक सदस्य भी हैं।

मैं इंस्टीट्यूट गया। वहाँ 'राजस्थान-भारती'के संपादक श्रीबद्रीप्रसादजी साकरिया तथा कार्यालय मंत्री श्रीमुरलीधरजी व्याससे मिला। इन दोनों ही वयोवृद्ध सज्जनोंसे परिचय प्राप्त कर बड़ी प्रसन्नता हुई। बादमें यह परिचय स्थायी स्नेहमें परिवर्तित हो गया। मैंने वहाँसे पत्रिकाके पिछले सारे अंक लिए और लौट आया। घर आकर मैंने सभी अंकोंको आद्योपान्त पढ़ा। इस पत्रिकाके भाग ४, अंक २-३ जुलाई-अक्टूबर ५४ के अन्तमें श्री नाहटाजीके लेखोंकी सूची तथा संक्षिप्त परिचय देखा। परिचयमें सबसे महान् आश्चर्य इनकी शिक्षाके विषयमें पढ़कर हुआ, केवल ५वीं कक्षा तक और लेखोंकी संख्या ११६१। ये लेख प्रांतकी और देशकी सभी मुख्य पत्रिकाओंमें फैले हुए हैं।

आपने लक्षाधिक हस्तलिखित प्रतियोंका अवलोकन किया है तथा श्री अभय जैन ग्रंथालयमें और शंकरदान नाहटा कला भवनमें उस समयतक आप बीस हजार हस्तलिखित ग्रंथों एवं हजारों चित्रोंका संग्रह कर चुके थे। इस कार्यको देखते हुए ऐसा लगता है कि यह एक आदमीके वशकी बात नहीं है परन्तु यह एक ठोस वास्तविकता है जिससे इन्कार नहीं किया जा सकता। इनका जीवन नए साहित्यिकों तथा अल्पशिक्षित व्यक्तियोंके लिए आदर्श तथा प्रेरणाप्रद है। इन्होंने अपने जीवनके प्रतिक्षणका सदुपयोग किया है। इसके पीछे इनकी लगन और अध्यवसाय हैं जिसने इनको आज साहित्य-जगत्में ख्यातिके शिखरपर पहुँचा दिया है।

मैं प्रातः, दोपहर, रात्रिको जब भी इनके पास गया हूँ ये पुस्तकालयमें ही मिले हैं और मैंने इन्हें हस्तलिखित या मुद्रित पुस्तकोंके अध्ययनमें व्यस्त ही पाया है।

एक बार मैं इनसे सन् ६० में मिलने गया तो इन्होंने मेरे सामने पृथ्वीराज जयंतीकी अध्यक्षता करने और पृथ्वीराज आसनसे अभिभाषण तैयार करनेका प्रस्ताव रखा। मुझे ठीक याद है, उस दिन जयन्तीके बीचमें केवल दस दिन रहे थे। मैंने कहा—इतने समयमें दो भाषण कैसे तैयार होंगे? मुझे शामको ही डूंड-लोर लौटना था। इन्होंने आग्रह किया और आसनके लिए विषय भी सुझा दिया। इस स्नेहमय, निश्छल तथा निःस्वार्थ आग्रहको मैं टाल नहीं सका और समयपर मैंने दोनों ही कार्य सम्पन्न किए। यह है इनका प्रेरित करने और मुझ जैसे आलसी आदमीसे काम लेनेका ढंग। ये जब बाहर निकलते है तो दोलांगकी नीची धोती, कमीज, बन्द गलेका कोट और सरपर ओसवालीकी पगड़ी लगाकर पूरी पोशाकमें निकलते हैं। उस वेषमें देखकर कौन जान सकता है कि यह मूर्तिमान ज्ञान-भंडार इस वेषमें परिवेष्टित हैं।

ऐसे मनस्वी व्यक्तिका, जिसने अपना सारा जीवन साहित्य-सेवामें खपा दिया, जिसका सिद्धान्त वाक्य यही रहा 'मनस्वी कार्यार्थी न च गणयति दुःखं न च सुखम्' और जिसने रत्नदीप बनकर नए साहित्यकारोंको आलोक दिखाया, अभिनन्दनकर साहित्य-जगत् अपनी कर्तव्यपूर्ति ही करता है और स्वयं गौरवान्वित होता है। इस रूपमें हम उनके प्रति अपनी श्रद्धा व कृतज्ञता प्रकट करते हैं तथा उनके दीर्घजीवनकी कामना करते हैं, जिससे कि साहित्यालोक वृद्धिगत होता रहे।

●

विद्याव्यासंग शोधमनीषी

डॉ० ओमानन्द रु० सारस्वत

राजस्थानकी सीमाको पार करके, अखिल भारतीय स्तरपर जिन कतिपय राजस्थानी साहित्यकारों-की ख्याति पहुँची है, उनमें श्रीअगररचन्द नाहटा एक मूर्धन्य व्यक्ति हैं। टैसीटरी, ग्रियर्सन और टॉड आदि विदेशी विद्वानोंने जिस प्रकार राजस्थानी भाषा, साहित्य, संस्कृति एवं इतिहासको प्रकाशमें लानेका ऐति-हासिक कार्य किया है, उसी प्रकार आधुनिक विद्वानोंमें श्रीनाहटाजीका कार्य भी अतिशय श्लाघनीय है।

वर्षों पहले, अपने शोध-कार्यके सिलसिलेमें जब मैं राजस्थानके विभिन्न भूभागोंमें घूमता-घूमता बीकानेर पहुंचा, तो कितने ही व्यक्तियों, संस्थाओं और स्थितियोंके बीच मुझे सर्वाधिक आकर्षित दो व्यक्तियोंने किया--श्रीअगरचन्द नाहटा और श्रीबदरीप्रसाद साकरिया। अनुसंधित्सुके प्रति आपकी सहानुभूति, सह-कारिता एवं विचारावलि एक सच्चे शोधमनीषीकी संज्ञासे अभिभूत है। आनन्द (गुजरात)के समशीतोष्ण वातावरणसे बीकानेरकी भयंकर लू और टांटफाड़ धूपमें जब मैं पहुँचा तो शोधकार्यकी गहनताकी अपेक्षा अपने स्वास्थ्यकी गंभीरतापर विचार करना अधिक जरूरी समझ बैठा। लेकिन श्रीनाहटाजीके सान्निध्यमें लू और गर्मीकी भीषणता भी शोध-प्रक्रियाकी प्रेरक ही बनकर रह गई।

होटलसे तांगेवाला मुझे टेढ़ी-घुमावदार सड़कों-गलियोंमेंसे नाहटोंकी गवाड़में ले आया—

'नमस्कार! मैं श्रीनाहटाजीसे मिलना चाहता हूँ।'

'नमस्ते। आइये, विराजिये। मैं ही अगरचन्द हूँ..........'

वाक्य पूर्ण होनेके पूर्व ही मेरी कल्पनाएँ खण्डित होती जा रही थीं। मैं किसी 'स्कालर' या 'रिसर्चर' का 'इमेज' बाँधे था—अपटूडेट आफिस, एयरकंडिसंड वातावरण, गोदरेजके बहुमूल्य सोफे, सजावटसे पूर्ण राजसी कमरा, चपरासियोंकी स्टार्चड ड्रेस, फोन की कई वेरायटीज, अतिशय व्यवस्थित पुस्तकालय, कीमती आलमारियोंमें संगृहीत पाण्डुलिपियाँ आदि-आदि न जाने कितनी ही कल्पनाएँ मेरे प्रोफेसरी मानस-पटलपर अंकित थीं। किन्तु नाहटाजीको सादे गद्देपर तकियेके सहारे किताबों, कागजों, पत्रिकाओं, पाण्डुलिपियों आदिके मध्य खोया हुआ एक साधारण बीकानेरी पोशाकमें 'सीदा-सादा' बैठा देखकर सारी कल्पनाएँ, भोगे यथार्थकी भांति, सामान्य धरातलपर उतर आईं। मुझे लगा कि बड़े-बड़े 'रिसर्च इंस्टीट्यूट'की भव्य अट्टालिकाओं और उनकी सजावट, फर्नीचर आदिपर खर्चा करना व्यर्थ है। मानवमें यदि शोध-जिज्ञासा है तो वह साधारणसे कमरेमें भी परितुष्ट हो सकती है।

'आप कहाँसे पधारे हैं?'

'जी, मैं पिलानीसे आ रहा हूँ।'

'अच्छा-अच्छा! तो डॉ० कन्हैयालालजी सहलके विद्यार्थी हैं। ठीक हैं, विषय क्या रखा है?'

'राजस्थानी दोहा-साहित्य।'

'ओहो, दोहा-साहित्य।'—कहकर नाहटाजीने कमर सीधी की और एक बार अपना चश्मा उतारकर नेत्र बन्द कर लिये—मानों मौन रूपमें कह रहे हों कि इस दोहा-साहित्यकी अगाधताका पार पाना बड़ा कठिन है।

दोहोंके बारेमें कितने ही संदर्भ, परिवेश और कोण देख-सुनकर एक बार तो मैं हतप्रभ-सा हो गया, परन्तु कृष्णका शिष्य होनेके कारण गीताकी कर्मभूमिपर मैं लड़ चुका था। नाहटाजीने अपने ग्रंथालयके दोहों और ग्रंथोंकी जानकारी देनी प्रारंभ की। मैं थक गया, पर वे नहीं थके। विद्याव्यासंग और शोधमनीषीके ये ही तो गुण हैं। उन्होंने मुझे मात्र जानकारी ही नहीं दी, अपितु दोहोंकी प्रतिलिपि आदिकी व्यवस्था भी करवाकर दी। मुझे इस शोधकार्यके 'फील्ड-वर्क'में बड़े-बड़े कटु अनुभव हुए हैं, यहाँपर उन अनुभवोंको विपरीत पाकर मैं नाहटाजीकी ओर देखता ही रह गया।

बीकानेरी पगड़ी और पोषाक, तेजस्वी और जिज्ञासु आँखें, गरिमामंडित चेहरा और मूँछें, मृदु स्वभाव और अतल ज्ञान, हाथोंकी मुद्राएँ और व्यस्तता—सब मिलकर अगरचन्दजीके व्यक्तित्वको एक ऐसा स्पर्श देते हैं, जो अपने आपमें विरल हैं। वर्षों पहले पिलानीमें देखे बीकानेरी प्रो० सूर्यकरण पारीककी धुँधली-स्मृति रह-रहकर कौंधने लगी थी। सोचता हूँ, शोधके क्षेत्रमें 'बीकानेरी' संज्ञासे ईर्ष्या करने लगूँ।

सैकड़ों शोधछात्रोंने नाहटाजीसे ज्योति ली है। इसका कारण, व्यापारी होते हुए भी आप निरन्तर विद्याव्यासंग रहे हैं। पाण्डुलिपियों और ग्रन्थोंका पारायण चलता ही रहता है। आपके लेखों और अभिभाषणोंसे आपकी विद्वत्ता और विश्लेषणकी कलाके स्पष्ट दर्शन होते हैं।

लगभग चालीस वर्षोंसे आपका जो लेखन-कार्य चल रहा है, उसके परिणामस्वरूप चालीसों ग्रन्थ और हजारों लेखादि प्रकाशित हुए हैं। इसमें हस्तलिखित ग्रन्थोंकी खोज और सूची-निर्माण जैसा महत्त्वपूर्ण कार्य शोधके क्षेत्रमें आवश्यक ही नहीं, अपितु अनिवार्य है। इसमें भी पाण्डुलिपियोंका संग्रह भी एक जटिल कार्य है। आपने श्रम, समय और धन लगाकर सम्पूर्ण भारतका पर्यटन किया है तथा अनेकानेक अनुपलब्ध पाण्डुलिपियोंका संग्रह, परिचय, एवं प्रकाशन किया है।

नियतिके क्रममें ऐसे मानुष-फल बहुत कम पकते हैं। लाखों साहित्यजीवियोंकी शुभ भावनाएँ हैं कि 'तुम जीवो हजारों साल, सालके दिन हों लाख-हजार।'

●

साहित्यमूर्त्ति श्री अगरचन्दजी नाहटा

श्री उदयवीर शर्मा एम० ए०, बी० एड०

पींड्यां सूं बतळावती ऊँची धोती, चोड़ो लिलाड़, काळा धोळा केस, कटारी सी तीखी सोवणी रोबीली मूंछ्या, मझलो कद, तगड़ो सरीर; पकती ऊमरमें भी सरावणा जोग फुरती, हांसतो मोवणो मुखड़ो, जोध जवानां नै मात करणियो उत्साह, प्यारा बैण अर मोटा नैण हाळा, धुन रा धणी, आप री मिहनत मीन्नत सूं कीरत कमावणियां उद्भट साहित्यकार श्री अगरचन्दजी नाहटा राजस्थानी साहित्य रा जीवन-धन है। आप जूनै अर नूवै साहित्य रा सूचना केन्द्र है। नूंई सूं नूंई जाणकारी भी आप सूं छानी को रै सकै नीं।

आप समै रो मोल जाणणिया अर करणियां है। एक छिण भी अकारथ कोनी खोवै। के तो साहित्य साधनामें, के नूवा साहित्यकारां अर साहित्य रै निरमाणमें, अर के भजन-भावमें लाग्या रैणिया है श्री नाहटा जी। काया रा धणी श्री नाहटाजी दिनूगै तड़काऊ चार बजै सूं लगेर रात पड़ै १०-११ तक काम करता ई रैवै। घणखरो बखत सुरसत-सेवा में ही लगावै, जणां ही सुरसत इनां पर राजी होयरी है।

श्री नाहटाजी रो जीवन सदा ही इकरंगो रह्यो है। आज जिया पढ़ाई-लिखाई में झूझता रै है बिया ही आप बचपनमें हा। बचपन सूं ही गैरो ग्यान ग्रहण करणै री रुचि राखणिया रैया है। शोध अर जूनी जाणकारी लेवणी आपरो उद्देश्य रैयो है। इकलग पढणो अर एकान्त साधना आपरी सुफलता री सीढचां है।

साहित्य रा सागर है नाहटा जी। आज भी देस री २००-२५० पत्र-पत्रिकावांमें आपरा लेख एकर साथ छपतां रै वै। अब तक आप कई हजार लेख छपवां चुक्या है।

आपरै पुस्तकालय मै आंख्यां देखै जणां बेरो पड़ै कैं यो विद्वान किसोक है। छोटा-मोटा, छप्योड़ा अणछप्योड़ा, हस्तलिखित, पत्र-पत्रिकावां सै मिलार कोई ळगवां पोथियां अर सगला री सांची सूची है श्री नाहटा जी। चाहे जणां जाय र बतल्याल्यो पोथी त्यार है।

श्री नाहटाजी दया, सील अर स्नेह रा खजाना है। छोटे साहित्यकार सूं लेयर बड़ै तक सूं वै खुलकर बात करै। कोई भेदभाव नीं। सत्य लाए नै आप रै ग्यान रो परसाद देवै।

हिन्दी साहित्य रै इतिहास नै नुवो मोड़ देवण तांई भारतेन्दु हरिश्चन्द्रजी एक साहित्यकार मंडल बणायो हो। इण भाँति ही आप भी एक साहित्यकार मंडल बणा राख्यो है। आप री प्रेरणा सूं घणा साहित्यकार त्यार होया है, नाम कमावणियां लूंठा साहित्यकार बण्या है।

राजस्थानी अर जैन साहित्यमें पी-एच० डी० लेवणियां नै आप खनै आया सरै। आप कागदी डिगरी हाळा विद्वान कोनी पण ग्यान रा सागर है। डाक्टर री डिगरी बिना श्री नाहटाजी लोगां ने डाक्टर थणावै। आप जिसा मनीसी तपसी अर लगनी विद्वान मिलणा दोहरा भोत! आपनै भारत सरकार री ऊँची सूं ऊँची सम्मान-पदवी दी जा सकै है। आप वींरा खरा पात्र है।

आप सैकड़ी बरसां तक सुरसत माता री सेवा में ळण्या रैवै अर परै जीवण रो एक दिन हजार बरसां रै बरोबर हो, या ही भगवान सूं अरदास हैं।

शोध-मनीषी श्री अगरचन्द नाहटा

श्री गोविन्द अग्रवाल, लोक-संस्कृति शोध-संस्थान, नगर श्री, चूरू

श्रीअगरचन्दजी नाहटा भारतवर्षके लब्धप्रतिष्ठ विद्वान् हैं। उनके विषयमें खूब पढ़ा, खूब सुना। लेकिन अति निकटसे दर्शन-लाभका अवसर आजसे कोई ५ वर्ष पूर्व बीकानेरमें प्राप्त हुआ। "चूरू मण्डल" के इतिहासके संदर्भमें राजस्थान-अभिलेखागार आदिसे सामग्री जुटाने हेतु मैं बीकानेर गया हुआ था। दिन भरके कामसे निपटकर नाहटाजीके दर्शन करने चला तो अँधेरा हो गया था। उनका मकान जानता न था, गलियाँ अपरिचित थीं और अंधेरा बढ़ रहा था, अतः एक तांगा किराये पर लिया।

जाकर देखा तो नाहटाजी अभय जैन ग्रन्थालयमें कार्यरत थे, कुछ अन्य सज्जन भी बैठे थे। नाहटाजीसे यद्यपि पहले साक्षात्कार नहीं हुआ था, लेकिन मेरा नाम वे जानते थे, अतः नाम बतलाना मात्र ही परिचय था। उनकी अंतरंग गोष्ठीमें मैं भी सम्मिलित हो गया। मैंने अपनी "राजस्थानी लोक कथाएँ" नामक पुस्तकोंके दो भाग उन्हें भेंट किये। उनको देखकर वे बहुत प्रसन्न हुए और मुझे इस कार्यमें लगे रहनेके लिए खूब प्रोत्साहित किया। वहाँसे लौटा तो एक नवीन उत्साह मनमें भरा था।

फिर चूरू-मण्डलके इतिहासके सिलसिलेमें कई बार बीकानेर जाना पड़ा। अगली बार बहुत सवेरे ही नाहटाजीसे मिलने गया तो देखा कि वे मेरेसे पहले ही ग्रंथालयमें मौजूद हैं। पुस्तकों और पत्र-पत्रिकाओं आदिके ढेर चारों ओर लगे थे और वे उनमें डूबे हुए थे। मुझे कुछ पुस्तकें देखनी थीं, सहसा ध्यान आया कि पुस्तकोंके इन ढेरोंसे इच्छित पुस्तकें जल्दी नहीं मिल सकेंगी। परन्तु पुस्तकोंके नाम बतलाते ही नाहटाजीने इतनी शीघ्रतासे पुस्तकें निकालकर मेरे सामने रख दीं कि देखकर आश्चर्य हुआ, क्योंकि वैज्ञानिक रीतिसे व्यवस्थित पुस्तकालयोंसे भी इतनी जल्दी वांछित पुस्तकें नहीं मिल पातीं।

अगली बार बीकानेर गया तो एक शामको डॉ० मनोहरजी शर्मा मिले। उन्होंने बतलाया कि नाहटाजीकी धर्मपत्नीजीका स्वर्गवास हो गया है। दूसरे दिन सवेरे मैं ग्रंथालय गया तो वहाँ एक अन्य सज्जन बैठे थे। उन्होंने कहा कि नाहटाजी अभी आनेवाले हैं। कुछ देर बाद नाहटाजी आये, सिरपर शोक-सूचक हरे रंगकी ऊँची पाघ थी, चेहरे पर क्षोभकी हल्की-सी परत। मैंने नमस्कार किया और इससे पहले कि मैं कुछ कहूं, उन्होंने हमारे कार्यकी प्रगति आदिके बारे में चर्चा प्रारंभ कर दी। कुछ देरकी बात-चीतके बाद वे सदैवकी तरह ही साहित्य-साधनामें लीन हो गये, जैसे कोई विशेष घटना नहीं घटी थी।

इसके बाद भी एकाध बार और नाहटाजीके यहाँ जाना हुआ और जब भी गया उन्हें सदैव साधना-निरत ही पाया। नाहटाजी का प्रत्येक क्षण साहित्य-साधनाके लिए अर्पित है। हर जिज्ञासु, साधक व शोधके विद्यार्थीके लिए उनका द्वार खुला है। शोधके विद्यार्थी निरंतर उनके पास आते रहते हैं और नाहटाजी उन्हें यथोचित मार्ग-दर्शन देते हैं। नाहटाजीके पास शोध-विषयक प्रचुर सामग्री एकत्रित हैं। यों वे स्वयं चलती-फिरती जीवंत संस्था हैं। वास्तवमें अनेक संस्थाएँ भी उतना काम नहीं कर पातीं. जितना उन्होंने किया है और कर रहे हैं।

जैन साहित्यके तो वे विश्वकोश ही हैं। शोधके क्षेत्रमें उन्होंने जितना कार्य किया है, उतनेसे शोधके अनेक छात्र पी०-एच० डी० की उपाधि प्राप्त कर सकते हैं। आशा है, राजस्थान विश्वविद्यालय नाहटाजी की साहित्य-साधनाका उचित मूल्यांकन कर उन्हें डी० लिट की उपाधिसे विभूषित कर उपाधिको सार्थक बनाएगा।

●

अभिनन्दनमभिनन्दनीयस्य

श्रीविश्वनाथमिश्रः प्रधानाचार्यः, श्रीशार्दूल संस्कृत विद्यापीठ बीकानेर (राजस्थान)

को नु खलु अभिनन्दनीयतामर्हति । जायन्तां लोके नानाविधा लोकाः, सम्पद्यन्तां तैः क्षणभंगुराणि कार्यजातानि, क्रियन्तामुपायाः स्वाभीष्टसिद्धये, लभ्यन्तामुच्चतमानि पदानि कैश्चिदपि, पर यस्य कार्य-मशाश्वतिकम्, यश्च यतते केवलम् आत्मतुष्टये, यत्र नौदार्यम्, न सौहार्दं, न वैचक्षण्यम्, न लोकनैपुण्यम्, न वा सारस्वतरसौन्मुख्यम्, वर्ततां नामासौ लोकेऽस्मिन् कथञ्चित् परं कथमिवासौ अभिनन्दनीयतामर्हेत् ?

इह खलु विविधवैचित्र्योपेते जगज्जाले, भवति यस्य प्रज्ञा विशाला, यस्य सुकोमले मानसेऽनवरतं प्रवहति परमपवित्रपानीयप्रवाहपूरा सुविमला सहृदयतासरित्, यश्चाविरतं रमते सारस्वतसमज्यासु, यस्य निरन्तरं गतिमती लेखनी सृजति किमप्यपूर्वं सारस्वतलोकचक्रवालं, यत्रानुद्घाटितान्युद्घाट्यन्ते; अप्रका-शितानि प्रकाश्यन्ते, अज्ञातानि विज्ञाप्यन्ते, अद्योतितानि समुद्द्योत्यन्ते, किं बहुना परिपूर्यन्ते भाण्डागाराः भगवत्याः सुरसरस्वत्यास्तथ्यभरितैर्निर्माणप्रकारैः नूनमेतादृशो जनो भवति सर्वेषामभिनन्दनीयः प्रशंसनीयः, अनुकरणीयश्च ।

श्रीअगरचन्दनाहटामहोदयो वर्तते एतादृश एव विलक्षणो विचक्षणश्च । यस्याकृतौ सरलता, वाचि स्निग्धता, हृदये विशालता, प्रतिभायां नवनवोन्मेषशालीनता च प्रतिपदं संलक्ष्यते । यश्च कर्मणि कुशलः, सततं जागरूकः, भारत्याः समुपासकः, भाषणे प्रवीणः, लेखने सुदक्षः, अन्वेषणे अप्रतिमः, आराधको भारतीयसंस्कृतेः, पोषकः प्राचीनतायाः, प्रतिमूर्तिः विनम्रतायाः, किं बहुना आदर्शः अनुकरणीयानामस्ति । यश्चानवरतमविश्रान्तं वरदोपासनापरायणस्तिष्ठति । यश्च निर्दिशति अनुसन्धानपरायणान् प्रतिदिनम्, यश्च लिखत्यजस्रम् । सत्यमेतादृक् जना भवति देशस्य गौरवायालम् । इत्थंभूतं जनं कोऽभिनानुमन्येत, को नाभिनन्देत्, प्रशंसेच्च । श्रीनाहटामहोदयस्याभिनन्दनं सर्वथा तथ्यमेवावलम्बते । महानुभावोऽयं दीर्घायुषा युज्यतामिति वर्तते मे हृद्या समीहा ।

●

लिखमी अर सरसुती रा लाडला संत श्री अगरचन्दजी नाहटा

श्री मुरलीधर व्यास 'राजस्थानी'

आ बात, अड़गड़ै आधै सईकै अर्थात् ४० बरसां पैली री है, जद् म्हारी ओळखाण पैल्ली-पोत श्री नाहटाजी सूं, नागरी भंडार रै किणी उच्छब रै मोके माथै, स्वर्गीय राज-जोतसी श्री विष्णुदत्तजी ज्योतिषाचार्य, उण बेला रै मंत्री नागरी भण्डार री मारफत हुई ही । उण समै ज्योतिसाचारजजी कै यो हो कै श्रीनाहटाजी, सईका जूनी हस्तलिखित अलभ साहित्यक पोथियां री, बीकानेर अर बारै, खोज-पड़ताल कर कर एक विसाल सूची त्यार की है; जिको कामकै भलै-भलै साहित्य सेवियां री बूथीं रै बारै है । अै, औ सरसुती सेवा रो पुण्यकार्य नहीं करता तो अलभ्य अर अमोलो साहित्य अंधकार सूं ग्रसित रैवतैथकां पाठकां नेई आपरै परचै, परकास अर अमोलै ज्ञान सूं अंधकारमें पडियो राखतो ।

उण दिन सूं, म्हां दोनुवां मेल-मिळाप, तर-तर-तर-तर बधतोई गयो । अर पछै, म्हांरी सर समरथ मां राजस्थानी री उपेक्षा अर उणमै प्रांत री मातृभाषा रै सिघासण ऊपर बिराजमान करावण रै प्रण्म कार्य रै निमित खरै प्रयह नाम जुट जावणरै सवाल नै लेय र म्हां दोनोंमें खरो बंधुत्व बणग्यो ।

श्री नाहटाजी रीईज, प्रेरणा सूं, म्हां लोगां, राजस्थानी साहित्य परिषद् री स्थापना कीवी-सायत सन् १९३० रै आसरै । जिणरी साहित्यिक साप्ताहिक गोष्ठियां, नेमसूं, श्री गुणप्रकाशक सज्जनालय भवन हुया करतीं । प्रत्येक साहित्यकार, पणले राखियो हो कै गोष्टीमें नवीं रचना सुणावै । इण सूं मोकळा नवा लेखक परकासमें आया अर मोकळोई मातृभासा रो पस्वार हुयो ।

सादूल राजस्थानी रिसर्च इन्स्टीट्यूट री स्थापनामें आपरी प्रेरणा अर अरपिरचयतन वैरो रैयो । आप इन्स्टीट्यूटरा बरसां तांई, निरदेशक रैया । अर आपरी लगन सूंईज, इन्स्टीट्यूट सूं ''राजस्थान भारती'' नांवरी पिरसिद्ध शोध पत्रिका रो पिरकासन सरू हुयो । अर हुयो तीस-पैंतीस अमोली पोथ्यां रो पिरकासन ।

आप, अभै जैन ग्रंथालै री थरपना कीवी, जिणमें ५०-६० हजार जैन व जैनेतर हस्तलिखित ग्रंथ रहना रो संग्रै है । भारत रै छात्रा लेखकां, कवियांरी पोथ्यां, ग्रंथाळेमें भरी पड़ी है । अर भारत व विदेसरा सोधराव सादा पत्र बराबर आंवता रै वै है । इणरै पाखती सैनडां कळा कृतियां कळा-कक्षरी सोभा कधाय रैया है ।

आपरै ग्रंथालैमें, शोधन, कर्तावांनै जोयीजती सामगरी, सोरी-सोरी-सोरी मिळसकै है नै बठै ई वैठार आपरो काम-काज करणेरा सुभीतो ठूक सकै है ।

राजस्थान साहित्य अकादमी, उदयपुर रै आप संस्थापक सदस्य है । दशाव्दी सम्मेलन माथै, अकादमी, आपनै 'राजस्थान रै वरिष्ट साहित्यकार' रै रूपमें सुवरण पदक सूं अलंकृत किया हा ।

राजस्थानी भासा नै साहित्यिक मान्यता मिळणै रै मोटै हरखमें, सोनगिरी कूवैरै खनै होवणियै विसाल समारोहमें, आपरी वरसरी अगली आयुरी प्राप्ति री खुसीमें आपरो नागरिक सनमान हुयो हो ।

श्री नाहटाजी, शोध संबंधी अर बीजा उपयोगी विसयां पर तीन हजार वेसी लेख लिखिया है, जिकै, भारत रै लगै-रगै सगलैई नवजादीक पत्रोंमें धिरकासित हुय चुका है । अर हालतांई लिखताई जाय रैया है—लिखताई जाय रैया है । दिन अर रात । साधना रतयोगी अर संतरी तरै । थकण रो नांवई को लेवैनी ।

आप मोकळी पोथ्यां निरमायी है अर मोकळयां रो संपादन करियो है, जिकांरी साहित्य जगतमें मोकली सरावणा हुई है ।

अवार इणी जुलाई मास सन् १९७१ री ११ वीं तारीखनै, राजस्थानी भासा पिरचार सभारी परिख्या समिति, आपरै दीक्षान्त समारोह [कीकाणी व्यासां रो चौक, बीकानेर] में आपनै मानद [ऑनरैरी] उपाधी ''राजस्थान साहित्य वाचस्पति'' सूं अलंकृत किया हा ।

ग्रंथाळै ने, भरी-पूरो राखण सारू, आप साहित्यिक सामगरी नै कळा-कृतियाँ री प्राप्तिमें, खुलै हाथां खरच करै है । पण, इयां, बीजी बातांमें पाई-पाई रो है साव करणमें आप ''पक्का बाणिया'' है ।

आपरो, अन्तसरो ध्येय, सरसुती री साची सेवा, नै अन्तसमें सतगुरुजी रै चरण कमळां सूं उभर-चोड़ी धरम भावना नै, खण-खणमें बद्योत री दैणै रो है।

'वाणियो अर लिखमी' नातो आदू सूं है। जद लिखमी री साधना-मानता सूं। आप विरत कियां रैय लकै है ? सालमें तीन महीना, आप, दुकानों रो काम-काज संभालण सारू वारै जावै है, बाकीरां नव महीनामें सरसुती री साधनामें अवधूत बण्या जुरया रैवै है। इसै वडै नांव अर ख्याति रै मिनख सूं, कोई देस-परदेस रो छावा विदवान अर सिख्य सासतरी, कदैई संजोगबस मिलण नै पधारै, तो, उणरी मनो कल्पित मूरती सूं पखार एक वीजोई अलोदरी सिकल-आधी धोती पैरियोडी नै आधी ओढ़ियोड़ी, सीधी-सादी, पण आपरै अन्तसमें अगाध पांड़ित्य भरियोड़ी नै जोय' र, एक रसी तो, लाई चकरीज जावै अर खण भर सोचण नै वेबस हुय जावै, कै. वो, 'अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति वाळै मोटै विद्वान श्री नाहटाजी सूं मिल रैयो है कै कोई बीजै सूं ? कदास, वैरी ओळखाणमें भूल तो नहीं हुयी है ? भलै जद चरचा छिड़ै तद, वो संतोस री सांस लेवै कै है तो ऐईज नाहटाजी। जद वारै, अगाध ज्ञान सूं तिरपत होय' अर सरधासूं वांनै माथो निवाय है।

श्री नाहटाजी, खुद तो, साहित्य रा 'डाक्टर' कोनी पण सैकडी सोध विद्वाना नै मारग दरसण देय र डाक्टर वणाय दिया। अै, खरै अरथांमें 'डाक्टर रो जामणा' है। आकैवां तो, अण आपतर नै अलोदारी वात नी लागै।

ओ हुयो आपरो साहित्यिक रूप जिकै ऊपर अन्तस रै अजळासरी गैरी छाप खरैखर पड़ी है। विना, इयां, हुयां, साहित्य सूका, सूना, अरस अर ऊण उपयोगी रैय जानै।

अबै जोवो, इणां रो मांयलो धरस रूप:—

(१) आप, ध्यान-धारणामें सतरै आना खरै-खर।
(२) जीरणामें अजोड़।
(३) समै रा पावंद।
(४) समैरो खरो मोल जाणनिया।
(५) साधु पिर किर तीरा।
(६) बिना मोट-वडाई सगळां सूं मेळ-मिळाप।
(७) साहित्यकार बंधुयांरै घरै जाय र, उणांरी सुख-सायत पूछणमें व उणांरी साहित्य-संरचना रो व्योरो पूछणमें तत्पर।
(८) ढीलास, जोय र अर्णानै प्राणमयी प्रेरणा देखणमें आगै।
(९) सुख-दुखमें, बणै जिसी, उणांनै, सारी तरैरी सायता देवणमें त्यार।
(१०) चरो भेळो कर र अथवा बीजै उपावांसूं उण बंधुवांरै रचियौड़ै ग्रंथानै छपावणमें पिरयतनसील।
(११) सादो वेस–सादो ढंग।
(१२) ऊँचा-उजळा विचार।
(१३) बैर-विरोध, राग-द्वेस सूं परै-धणापरै।
(१४) देव-पुरस अर परकास-पुंज।
(१५) मानखै नै, ऊजळो-फूटरो बणावणमें कमर कसियोड़ा।

इसा महापुरसांनै जलम देय र भूमी धन-धन हुई है ।

म्हारी मोकळी आसीस है के श्री नाहटाजी, दीर्घायु, शतायु अर चिरंजीवी रैय 'र, आपरै पांडित्य अर संत पणै सूं मान खैरी सेवा करता रैवै । इणी मंगळमयी कामना रै सागै, हूँ, म्हारी लेखणीने विसराम देवं ू हूं ।

•

मां राजस्थानी रा समरथ सपूत नाहटोजी

श्रीलाल नथमलजी जोशी

इतिहास बतावै कै झूंपड़्यांमें रतन जलमै; गढामें सूरमा अवतरै अर हवेल्यांमें बौपारी सेठ पैदा हुवै । इसा अपवाद जोयां भी नीठ लाधसी के हवेलीमें, लिछमीजी रै घरमें, कोई सरस्वती रो पूत जलमग्यो हुवैं । लिछमी रै घरमें जलम लेवण कारण सरस्वती नै काईं पड़ी कै वा टाबर री देख-रेख करै ? नतीजो ओ हुयो कै सरस्वती रै मिंदरमें टावर रो प्रवेश ई नईं हुयो । अर जे हुयो; तो खाली नांव रो । सरस्वती री तरफ सूं छिटकायोड़ो देख्यो, तो लिछमी उण टावर नै थपथपायो—आ बेटा, तूं क्यूं घबरावै ? थारी मां तनै नई लडावै, तो कोई बात कोनी, हूं भी थारी मां हूं, म्हारे घरै तैं जलम लियो है । जद लिछमी टाबर नै आपरी छत्तरछैयांमें लेवण लागी. तो सरस्वती नै कद बरदास हुवतो ? बा बोली—क्यूं बैन, पारका पूत कियां खोसण लागगी ? लिछमी कैयो—थारो अैतराज तो ठीक है, पण म्हारै घरमें जायोड़ै माथै कीं तो म्हारो ई अधिकार हुवैलो ?

आमतौर सूं लिछमी अर सरस्वती आपसमें झगड़ो ई राखै, आपसमें समझो तो कदमकाल ई करै, पण इण मौके सुमत सूझी । लिछमी बोली—"बेटो तो थारो है, पण अगरचंद मइनां खातर म्हारी हाजरी में तू भेजती रैवै, तो फेर मनै कोई अैंतराज कोनी । बारै मइनांमें नव मइना थारा, तूं मां है, लारला तीन मइना म्हारा सरस्वती अैकर तो विचारमें पड़गी, फेर उदारता बरततां हुंकारो भर लियो ।

लिछमीजी टुरण लाग्या । वांरी जीभ माथै अै सबद उथळीजता हा—"अगरचन्द मइनां, अगर चन्द, अगर चन्द ।" बांनै ध्यान आयो अर सरस्वती नै कैयो, आपांरै करार नै तूं भूल नईं जावै, इण कारण इण री नांव हूं थरपसुं—अगरचन्द । अगर अर चन्नण ज्यूं आपरी मैक सूं वातावरण खुसबू फैलावै, इणी तरै थारो औ लाल आपरी कोरत दिग्दिगंतमें फैलासी, पण बीस बरसां री ऊमर पायां अगरमें रस भरीजै, इण कारण अगरचन्द री कीरत भी बीस बरसां रो हुयां फैलणी सरू हुवैली ।"

बीकानेर रै धनी-मानी सेठ संकरदानजी नाहटै री धरमपत्नी श्रीमती चुन्नीबाई री कूख सूं सं० १९६७ री चैत वदी ४ नै हुयो । वां दिनां बीकानेरमें सरकारी मदरसा तो हा, पण रवीन्द्रनाथ ठाकुर ज्यूं इस्कूली पढाईमें ही टाबर नाहटै री पढाई पुणं हुणै जोग नईं : इणी कारण बा पढाई पांचवीं किलांस सूं आगै नईं चाल सकी । उण जमानेमें साधारण काम चलावण सारू पांच किलास अंग्रेजी रो ग्यान भी काफी हो, घर रा कारबार हुवण रै कारण नोकरी तो जोवणी ही कोनी ।

इस्कूल तो छूटगी, पण आपरै मनमें ग्यान री जिकी भूख ही, वा भी बुझगी हुवै, आ बात कोनी वा तो दिनूं ड़े दिन बधती ई गई । इण कारण आप साहित्यिक अर सामाजिक अनेक विषयां री पोथ्यां

रो अध्ययन कर्‌यो। जद घड़ो भरीजै तो पाणी बारै आवैं ई। अठारै बरसां री ऊमरमें आपरै विचारामें परिपक्वता आवण लागगी अर उणी दिनां आप 'विधवा कर्त्तव्य' नांव सूं हिन्दीमें पोथी लिखी जिकी सं० १९८६ वि० में छपगी।

गौतम बुद्ध नै हर बगत ऊंडै विचारामें डूब्योड़ा देखर माईत डरचा कै बेटो हाथ मांय सूं निकळै है। इणी तरैं व्यापार खानी कम रुचि अर साहित्यमें अगाध प्रेम देखर आपरै माईनां सोच्यो कै टावर हाथ सूं नईं निकट जावै। ज्यूं राजस्थानी साहित्य री भूख तिस डाक्टर टैसी टोरी नै अळेगी इटली सूं ठेट भारत अर बीकानेर तईं लिआई, इणो तरै ग्यान री भूख. तिस सूं युवक नाहटो जी इत्तां तड़फण लागग्या कै आपरो निजू ग्रन्थागार बणायां बिना काम पार पड़तो ओखो लागण लागग्यो। इण कारण आप जेष्ठ भ्राता स्व० अभयराजजी री यादमे श्री अभय जैन ग्रंथालय री स्थापना करी, जिणमें आज चालीस हजार छप्पीड़ी पोथ्यां अर लगभग चालीस हजार ई पाण्डुलिप्यां है। शोधार्थियां–सारू इत्ती सामग्री अेक ठौड़ मिलण आळा इणी-गिणी संस्थावांमें इण रो स्थान है।

इण ग्रंथालय री स्थापना सूं आपरै ग्यानार्जन री लगन तो सावित हुवै ई है, इण रै सागै समाज नै लाभान्वित करण री अर स्वार्थ-त्याग री भावनात्रां भी चवड़ै आवे। इसा मोकळा मिनख है; जिकां हजारूं ग्रन्थ आपरै निजू संग्रहमें धर राख्या है, पण दूजै आदमी नै पोथी रै आंगळी ई लगावणदै कोनी, बांचण खातर देवणो तो अळगो रैयो। पण नाहटैजी रै ग्रन्थालय रो ना तो कोई प्रवेश शुल्क है; ना मासिक शुल्क, ना बठै जामनी रा रुपिया भरणा पड़ै। आप पांच, दस, बीस, जचै जित्ती पोथ्याँ घरे लावो, परोटो, लिछमी रै लाडलैमें इत्ती उदारता ? पण बेटो सरस्वती रो है नी। इण उदारता रो दुरुपयोग भी हुवै-कोई पोथ्यां पाछी आवै कोनी, केई फाट-फूटर आवै, पण फेर भी पढारां खातर श्री अभय जैन ग्रन्थालय रा बारणा खुल्ला है।

छोटा तो बड़ां नै जाणै पण बडीड़ा छोटा नै ओळखै कोनी। नाहटैजी नैं आज सूं ३६ बरसां पैली म्हैं जैन-समाज रै अेक उत्सव माथै देख्या। रामपुरिया जैन स्कूल रै विद्यार्थी रै नातै, म्हारो भी अेक-दो गीत गावण रो 'आइटम' हो। हजारूं मिनख लूगायां री भीड़, अेक तेईस-चौईस बरसां रो पंछो जवान— तीन लांग री धोती, चुण्योड़ो चोळो, केसरिया पाघ—राजस्थानीमें भासण देवै। उण बगत मनै ठा पड़ी कोनी कै वक्ता राजस्थानी अर शोध रा उदीयमान विद्वान श्री अगरचन्दजी नांहटो है। इण रै थोड़ा बरसां पछै जद राजस्थानी विद्यापीठ रै तत्वावधानमें साप्ताहिक गीस्ठ्यांमें मिलणो हुयो, तो बो जूनो चितराम फेर उभरग्यो अर ध्यांन आयो कै उण दिन श्री अगरचन्दजी नाहटो ई हा।

जिका अणजाण शोधार्थी बारै सूं PH. D. करण खातर नाहटैजी कनै आवै, वांरी कल्पना सदेई धोखा खावती रैसी। आज जद आडै सूं आडो आदमी पैंट पैरै इण हालतमें आवणआळां रै मनमें भाव उठै––नाहटोजी मूंछचा सफाचट राखता हुसी, टेरालीन रा पैंट-बुशर्ट पैरता हुसी, टाई तो पक्कायत लगावता हुसी, काईं ठा बीकानेर ययां सूं बोलसी' क नी ? पण अठै आयां सगळा भय भाग जावै। कल्पतरु ज्यूं आप सगळी मनोकामना पूरै। तरु इण खातर कै ग्रन्थालयमें आयां पछै 'तरु' खिसकै तो खिसकै––ईत्ता आप आसण रा साचा है। इणी कारण जिका भी शोधार्थी अठै आवै, बांरो सगळो प्रयोजन सध जावै अर वै पाछा हरख्या हरख्या जावै।

डा० टैसी टोरी, पं० सूर्यकरणजी पारीक अर प्रो० नरोत्तमदासजी स्वामी राजस्थानी भासा रै प्रचार बाबत जिको काम सरू कर्‌यो, उण सूं नाहटोजी बैगा ई प्रभावित हुयग्या अर आपरी आ धारणा

बणगी कै राजस्थानीभासा नै पनपावणो चाईजै, कारण अठै रै टाबरा र बौद्धिक-विकास तदे ई संभव है जद कै बांनै सरू सूं मायड़ भासा रै माध्यम सूं पढ़ाई कराईजै। इण कारण आपरो प्रमुख विषय प्राचीन ग्रंथां माथै शोधकार्य हुवतां थकां भी राजस्थानी भासा रै प्रचार खानी भी आप पूरो ध्यान दियो। राजस्थानी सूं रुचि राखणियो जिको आदमी आपरै ध्यानमें आय जावै, वो फेर आपरी निजर सू ओलै नईं हुय सकै।

राजस्थानी विद्यापीठमें रचनापाठ री वेळा नाहटैजी सूं पैली बार परिचय हुयो; फेर जद विद्यापीठ री गोस्ठ्यां तो बंध हुयगी ही, पण 'राजस्थान भारती' रो अंक त्यार करणो हो, तो राजस्थानी विभागमें रचना देवण खातर आप्र मनै याद कर्‌यो। मनै सनेसो मिल्यो कै नाहटैजी अेक कहाणी मंगवाई है। नाहटैजी जिसा विद्वान म्हारै कनै सूं कहाणी मंगबावै, अर बा भी 'राजस्थान भारती' में। म्हारै खातर आ घणै हरख री बात ही अर इण तरै म्हैं म्हारी पैळो राजस्थानी कहाणी 'छत्तरछैया' त्यार करी। उण सूं पैलो म्हारी राजस्थानी अर हिन्दी री दूजी रचनावां छप जरूर चुकी ही।

इण सूं पैली री अेक घटना रो उल्लेख भी जरूरी लागै। गुणप्रकाशक सज्जनालयमें राजस्थानी-गोस्ठी रै दौरान म्हारी अेक रचनामें म्हैं—गांव सूं बैन नै लावण खातर—'बाथड़' सबद रो प्रयोग कर्‌यो। नाहटोजी धीरै सीक बोल्या 'बाथड़' री जागा 'रळी' सबद ओपतो है। म्हैं उणी बगत सुधार कर लियो। मनै ख्याल भी आयो कै सायद पैली ही सबदां रै अरथ माथै इत्तो विचार नईं करतो, पण नाहटैजो रे सुझाव पछै हूं ध्यान राखण लागग्यो।

देखणमें तो ऊ ऊरवै है कै जद विद्वानां रै घरे जावां तो बांनै बोलण खातर ई फुरसत नीठ लाधती दीसै; अर बै जे बोले तो भी इसा भाव बतायां बिना नईं रैवै कें आगन्तुक माथै किरियावर करै हैं। पण नाहटोजी खाली बोलण री फुरसत काढ र ई राजी नईं हुय जावै, राजस्थानीमें दो आखर मांडणियां लिखारां रै घरे भी पूग जावै अर बांरो लेखो-जोखो देखै अर तेज गत सूं लिखण री प्रेरणा देवै। **प्रसिद्ध विद्वानांमें इण तरै प्रेरणा देवणआळा नाहटोजी संभवत: अकेला ई है।** अेक पाश्चात्य लिखार बाबत भी म्हैं बांच्यो कै वै छोटै-मोटै लिखारां रै कागदां रो उथळो पक्कायत देवता; पण नाहटैजी ज्यूं घरे जायर सँभाळणआळा विद्वान आज तइं सूण्यां-देख्या कोनी।

नाहटैजी री आ प्रेरणा-फेरी घणी फळदाई हुवै। कलम काटी ज्योडा म्हारै जिसा कदमकाळे लिखणिया भी विचारमें पड़ जावै कै इयां पोल चलायां सरै कोनी, अर अबकै नाहटोजी आवै जित्तै कीं-न-कीं ओपती रचना जरूर त्यार रैवणी चाईजै। वे पूछसी कईं लिख्यो र लिख रहत हो।

जद स्वामीजी रो स्थानान्तरण बीकानेर सूं बारै हुयग्यो तो साप्ताहिक गोस्ठ्यां रो काम नाहटैजी इन्स्टीट्यूट रै अन्तर्गत लेय लियो और बरसां तईं आपरै अभय जैन ग्रन्थालयमें गोस्ठ्यां हुई, जिणामें उपस्थित हुवणआळा। सगळा ई कोई-न-कोई नवी रचना लाएर सुणावता।

शोध रा विद्वान आमतौर सूं हस्तलिखित ग्रन्थां माथै शोध करै अर आपरी मान्यतावां रै आधार माथै थोमिस अथवा नवो ग्रन्थ त्यार करै। नाहटोजो इण दरजैमें नईं आवै। आपरो प्रमुख काम तो है हस्तलिखित ग्रंथा माथै नईं पण बांरी आपरी खोज करणी। जद भी आपनै मालम पड़ै कै फलाणी जागा फलाणो ग्रन्थ उपलब्ध हुवण री संभावना है तो आप उणनै पावण सारू कोई कसर नईं राखै—आपरा आदमी भेजै, पइसो खरचै अर खुद भी गांव गांव घूमै।

शोध रै सागै आप कळा रा भी मोटा पारखी, प्रेमी अर हिमायती हैं। इण कळा-प्रेम रै फळ-सरूप ई आप स्व० पिताजी सेठ शंकरदानजी नाहटै री स्मृतिमें अेक कला-भवन री भी थरपणा करी है,

जिणमें सिक्का, मूरत्यां अर कळा-कृतियां रै सिवाय तीन हजार दुरलभ चित्र भेळा कर राख्या है। नाहटैजी रै इण कळां प्रेम सूं कळा सागै लगाव राखणिया लोग परिचित है अर प्राय: रोजीनै कोई-न-कोई आदमी कोई चित्र या कळाकृति लेयर आपरै कनै पूगै ई हैं। इण तरै इण कळा-भवन री श्री वृद्धि रा बारणा भी खुल्ला है अर इणमें संदेह नईं कै अैक दिन आपरो कळा भवन भी ग्रन्थालय जिसो बडो आकार बणाय लेसी।

धरम, साहित्य अर इतिहास रै क्षेत्रांमें आप जिकी अमोलक सेवा करी है, उण रै प्रताप आप क्रमश: 'विद्यावारिधि', 'सिद्धान्ताचार्य' अर 'इतिहास रत्न' जिसी रळियावणी उपाधियां सूँ अलंकृत हुया है तथा न्यारै-न्यारै क्षेत्रांमें आपरो जिको सेवा हैं, उण पर हरेक माथै न्यारो ग्रन्थ लिखीजण री गुंजायश है।

इणी तरै आप द्वारा रच्योड़ै अर संपादित ग्रन्था माथै भी घणै विस्तार सूं लिख्यां पार पड़ै। आपरा निबंध भी सैकड़ूं नईं हजारां री संख्यामें है, जिण सूं आपरी साधना रो अन्दाजो सहज ही लाग जावे।

म्हारै विचार सूं नाहटैजी कनै जे सगळा सूं बडो कोई चीज है- तो बा है,—साधना, साधना। अर हूं समझूं कै जे नाहटैजी नै 'साधनाचार्य' रो उपाधि जे दी जावती, तो बा संभवत: सगल्यां सूं बेस! ओपती लागती।

इणीं तरै नाहटैजी री अन्यत्र दुर्लभ विशेषता रो बखाण भी कर्‌यां बिना रैईजै कोनी अर बा है आपरी अक्रोध री वृत्ति। आप सूं ऊँचा अर बड़ां कनैं सूं तो सगळा ई लोग खरी-खोटी बात दोरी-सोरी सुण लेवै, पण आपरी बराबरी आळै अथवा आप सूं नीची हैसियत आळै सूं हळका बोल सुण्यां पछै भी सेर रो उथलो सवा सेर सूं नईं देवै, इसा 'स्थितप्रज्ञ' धरती माथै नीठ निरावळ ई लाधै। भगवान नाहटैजी नै अक्रोध रों गुण उदारता सूं बांट्‌यो है। छोटां री मूरखता भरी छेड़छाड़ माथै भी आप उखड़ै कोनी, मुळकै—सायद भगवान सूं अरदास करै कै थोड़ी सावळ बुद्धि देवै तो ठीक रैवै। व्यक्तिगत जीवणमें आपरी क्षमा रा दरसण हुवता ई रैवै।

आपरी षष्टिपूर्ति रै अवसर माथै अनेक आयोजन हुया, जिणांमें बीकानेरै सोनगिरी चौक रो आयोजन परम विशाल हो। जठै म्हारै साथ्यां नै डर हो कै उपस्थिति काईं ठा कित्तीक हुसी। पण बठै तो मिनख माया ई कोनी। इण सभा रो सभापतित्व डा० मनोहर शर्मा कर्‌यो अर आयोजन बीकानेरी प्रमुख सात शैक्षणिक, साहित्यिक व शोध संस्थावां री तरफ सूं हुयो, जिणांमें राजस्थानी भासा समिति; बीकानेर, अग्रणी ही।

नाहटोजी धर्मनिष्ठ व्यक्ति है। आप नेम सूं भजन-पूजन आराधना करै। धरम रे करड़ै नेमां नै भी आप पाळै। उदाहरण सारू जेठ असाढ री गरमीमें भी आप सूरज आथम्यां पछै जल नईं पीवै। ईण धार्मिक साधना रो बेळा भी सरधालू लोग आपरो सान्निध्य-लाभ उठावै अर सिंझ्या री प्रार्थना आपरै सागै कर्‌या करै। पण इण साधना रै बिचालै भो के कोई साहित्य-प्रेमी आयग्यो तो उण रो मांग पैलो पूरो करण रो—पोथी या सुझाव देवण रो ध्यान पक्कायत राखसी। ओ इण बात रो सबूत है कै धर्मनिष्ठ हुवण रै साथै साहित्य नैं आप सर्वोपरि दरजो देय राख्यो है।

म्हारा केई साहित्यकार भाई तो सवाल उठावै नवी अर पुराणो पीढी रै संघर्ष रो, पण नाहटैजी नै हमेसा इण बात रो फिकर रैयो है कै साहित्यकारा री नवी पीढी त्यार हुई कोनी। जे कोइ कदमकाळ अैक-दो ओळ्यां मांड दै तो उण सूं कीं हुवणी जाणी कोनी। इण कारण जठै भी नाहटैजी नै थोड़सीक

प्रतिभा रा दरसण हुवै बै उण नै आगै लावण री चेष्टा करे। स्व० गिरधारी सिंहजी पड़िहार जदपी राजस्थानी में घणा बरसां सं ू ओष्ठखीजताको हा नी, पण जद बै अेकाअेक आगै आया, तो झट बांरो नांव 'बांठिया पुरस्कार' सारू सामनै आयग्यो।

दूजै सेठां सारू ज्यूं इष्ट रुपियो है; नाहटैजी रों इष्ट साहित्य है। बीकानेर री जैठ असाढ री गरमीमें थे-म्हें बैठा अळसावण ळाग जासां अर तावड़ैमें आडा हुयर तीन-च्यार घंटा मजै सूं गमाय देसां, पण (**बगत गमावणो नाहटोजो सीख्या ई कोनी**) मौसम रो इणां माथै असर कोनी। सरदी रै डर सूं बैगा विछावणांमें बड़ै कोनी तो गरमी रै कारण उबास्यां नै नूंतो देवे कोनी। जिको आदमी इण तरै अथक गति सूं साहित्य रै सागरमें डूबक्यां लगावतो ई रेवै, बो पक्कायत सागर-तळ सूं घणमोला रतन काढर लावै अर तीर माथै ऊमोड़ा अनुभवी अर विद्वान चकरायोड़ा हुवै ज्यूं देखता रैवै। 'चरैवेति चरैवेति'— चालता रैवो, चालता रैवो, इण सूत्र नै नाहटैजी आपरे सामनें राख्यो हुवै ज्यूं माळम पड़ें। फेर वें ऊंचै आसण रा अधिकारी कियां नईं वणै ?

घणी वार देखणमें आई है के आछा-आछा लिखार भी मंच माथै उभर आपरा विचार सावळै जाहिर कर सकै कोनी, कारण वक्तृता भी तो खुद अेक कळा है। आ कळा भी किणीमें ईश्वर-दत्त ई हुवै, जरूरी कोनी। जिका लोग सरूमें मंच माथै, ऊंभतां ई धुजण लाग जावै, याद कर्‌योड़ी या घोट्योड़ी बातां अेकदम भूल जावै अर जिकां री आंख्यां आगै जमीन घूमती लागै, बै ई सागी लोग अभ्यास करतां करतां धड़ल्लै सूं भाषण देवण लाग जावै। नाहटैजी भी आपरै जीवणमें साहित्यिक ज्ञान रै सागै-सागै भाषण कळा रो क्रमिक विकास कर्‌यो है, अर आज तो आपरी शैली इत्ती मनभावणी है कै अनेक विश्वविद्यालयां री तरफ सूं आपरे कनै भाषण सारू निमन्त्रण आवता ई रैवै है।

इण संबंधमें नाहटैजी री कळकत्ता-यात्रा री चरचा भी करीज सकै है। बठै अेक सार्वजनिक सभामें आप राजस्थानी भाषा बाबत परिचयात्मक भाषण दियो जिण सूं प्रभावित हुयनै स्व० सेठ सोहनलालजी दूगड़ उणी बगत पाँच हजार रुपियां रो चेक राजस्थानी री पोथ्यां छपावण सारू भेंट कर दियो। उणी रकम सूं म्हारी पोथी—'सवड़का', व्यासजी री 'इक्कैवाळो' अर डा० जयशंकर देवशंकर जी री 'प्रकृति से वर्षा ज्ञान' दो भागांमें छपी।

राजस्थान भासा प्रचार सभा, जयपुर (परीक्षा विभाग, बीकानेर) रै पाठयक्रममें शोध रे छात्रां सारू 'राजस्थानी साहित्य वाचस्पति' री उपाधि रो प्रावधान है। इण उपाधि सूं वै विद्वान भी सम्मानित कर्‌या जा सकै है, जिकां री साहित्य, इतिहास, संस्कृति आदि रै क्षेत्रांमें नामजादीक सेवा गिणीजती हुवे। भासा प्रचार सभा री तरफ सूं जुलाई १९७१ में अेक विराट आम सभा हुई जिणमें राजस्थानी रै तीन विद्वानां नै 'राजस्थानी साहित्य वाचस्पति' री उपाधि सूं सम्मानित कर्‌या। अै है सर्व श्री अगरचंदजी नाहटो, मुरलीधरजी व्यास, 'राजस्थानी' अर सीतारामजी लाळस।

नवी पीढ़ी रा कैवावाणियां के ई लोग छांटा म्हांखै कै पुराणी पीढ़ी रा लोग खाली बोदी पोथ्या सूं माथो लगावता रैया, इण रै सिवाय वां राजस्थानी री कोई सेवा नईं करी। इण संदर्भ आ वात भुलणजोग कोनी कै राजस्थानी नै जिकी साहित्यिक भाषा रै रूपमें मान्यता मिली है, उणरो सेवरो आपांनै प्राचीन साहित्य रै माथै ई बांधणो चाइजै; नवो साहित्य हाल इत्ती प्रचुर मात्रामें लिखीज्यो कोनी कै आपां छाती ताणर उभ जावां। **प्राचीन साहित्य नै जिका साधक अर तपसी प्रकाशमें लाया है, बांरै मांय नाहटैजी रो प्रमुख स्थान है।** इण कारण राजस्थानी री साहित्यिक मान्यता सारू आपां प्राचीन

लेखकां-कवियां रो जियां आभार मानां, बियां शोध विद्वानां सारू भी आभारी हुवणो जरूरी है। लोकमें प्रसिद्ध है—भींतड़ा पड़ जावै, पण गीतड़ा रैय जावै। ठीक है, गीतड़ा रंय जावै, पण गीतड़ां री पोथ्यां भी पड़ी-पड़ी दीमकां रो भोजन बणण लाग जावै। अर जिका श्रमशील साधक आ पोथ्या री रिछपाळ करै, भूल्यै-बिसर्यै लिखारां कवियां नै पाछा प्रकाशमें लावै, बै आपारी घणी-घणी सरधा रा पात्र है। इण पात्रतामें नाहटैजी रो नांव निश्चित रूप सूं अग्रणी है।

बीकानेर अर राजस्थान प्रदेश ई नईं आखै देस खातर आ गीरवै री बात है कै नाहटैजी जिसा विद्वान आज आपां रै बिचाळै है अर उणां री षष्टिपूर्ति माथै च्यारूमेर सूं उणां रै अभिनन्दन सारू शुभ-कामना संदेश आवैं अर अेक अभिनन्दन-ग्रंथ आपां उणांनै भेट करां।

भगवान सूं प्रार्थना है कैं नाहटैजी ने सर्वथा सुखी राखै ताकि बै साहित्य-साधनामें अवार ज्यूं ई दत्तचित्त हुयोड़ा रैवै अर मां राजस्थानी अर आखै देश री सांगोपांग सेवा करता रैवैं।

●

स्मृति पटलपर तैरते श्री नाहटाजी

श्री दीनदयाल ओझा

मैं जब भी मेरेपर अनुकंपा रखने और मार्ग दर्शन देनेवाले साहित्यकारोंको स्मरण करता हूँ तो सर्वप्रथम श्री अगरचन्द नाहटाके दर्शन करता हूँ। श्री नाहटाजी को 'साहित्य रत्न' की परीक्षासे पूर्व मैं नहीं जानता था। हाँ उनके उद्धरणोंका प्रयोग अवश्य स्थान-स्थान पर किया करता था। जब मुझे 'राजनीति रत्न' करनेका अवसर मिला और पुस्तकें लेने गुरुवर श्री अक्षयचंद्रजी शर्माके साथ 'अभय जैन ग्रंथालय पहुंचा तो वहाँ श्री अगरचंदजी नाहटा बनियान पहने, पालथी लगाये कुछ किताबोंको देख रहे थे। उनके चतुर्दिक् किताबों-पत्रों और हस्तलिखित ग्रंथोंके ढेर थे। मैं समझ गया कि श्री नाहटाजी यही हैं। मैंने प्रणाम किया और श्री शर्माजीने मेरा परिचय कराते हुए कहा—ये दीनदयाल ओझा हैं, हमारे भारतीय विद्यामंदिरके छात्र हैं, इन्हें पुस्तकोंकी जरूरत हो तो आप मेरे नामसे दे देना।

इतना सब कुछ सुन लेनेके उपरान्त श्री नाहटाजीने मेरी ओर ध्यानसे देखा। मुझे लगा आज परीक्षा हो रही है पर उन्होंने मुझे कहाँके हो, कहाँ काम करते हो आदि प्रश्न पूछे और उठकर जो किताबें चाहिए थो नाम पूछ-पूछकर मुझे ला दी और अपने रजिस्टरमें लिखने और हस्ताक्षर कर देनेको कहा।

मैंने जब यह कहा कि मैं जैसलमेरका हूँ तो उन्होंने तुरन्त ही कहा कि तुम्हें तो जैसलमेर पर लिखना चाहिए। मैं उन दिनों लेखनकी ओर प्रवृत्त नहीं हुआ था, अतः मैंने कहा—क्या लिखूँ, किसपर लिखूं? बड़े सहज भावसे उत्तर देते हुए कहा—तुम जैसलमेरके हो और यह कहते हो किस पर लिखूं। वहाँके तो एक-एक पत्थर, एक-एक गीत, एक-एक कथा, एक-एक भवन पर बीसों लेख लिखे जा सकते है। तुम लोकगीतों और लोक कथाओंपर लिख लावो। और कुछ न हो सके तो जैसलमेरी बोलीमें ही लिख लाना मैं छपवां दूँगा।

मैं दूसरे दिन दो रचनाएँ लेकर श्री नाहटाजीके पास पहुँचा। उन्होंने मुझे पढ़कर सुनानेको कहा। जैसे ही मैंने रचनाएँ पढ़कर सुनाईं उन्होंने तुरन्त ही कहा—बड़ा अच्छा लिखा है और लिखो मैं छपवा दूँगा।

कुछ दिनों पश्चात् मेरी वे रचनाएँ 'मरु भारती' (पिलानी) में छपीं। उन मुद्रित रचनाओंको आज जब भी याद करता हूँ तो मुझे ऐसा लगता है जैसे श्री नाहटाजी लेखनकी निरन्तर प्रेरणा देते जा रहे हैं कि तुम लिखो।

इस घटनाके पश्चात् श्री नाहटाजीसे संबंध उत्तरोत्तर गहरे होते रहे और मैं वहाँ बैठकर लिखने, पढ़ने और नोट लेने का कार्य करता रहा। मुझे हस्तलिखित ग्रंथ पढ़ने नहीं आते थे। कई अक्षर बड़े अटपटे लिखे होते थे। श्रीनाहटाजीने इस समस्त बाधाओंसे समय समयपर सहायता देकर पार किया। परिणाम यह हुआ कि मैं अनूप संस्कृत लाइब्रेरी और अन्यान्य ग्रंथागारोंके प्राचीन ग्रंथ पढ़ने ही नहीं लगा अपितु उन्हें संग्रह भी करने लगा। आज भी कोई प्राचीन हस्तलिखित प्रति पढ़ने बैठता हूँ तो उन दिनोंकी समस्त बातें आँखों आगे आ खड़ी होती हैं।

बढ़ते हुए इस संपर्कका एक और सुपरिणाम निकला। वह यह था कि मैंने सादूल राजस्थानी इन्स्टीट्यूटकी सदस्यताका आवेदन पत्र दिया था। उन दिनों श्री नाहटाजी इन्स्टीट्यूटके अध्यक्ष थे। उन्होंने एक लेख लिख लानेका कहा। मैंने एक सुन्दर लेख तैयार किया और उसे पढ़कर एक गोष्ठीमें सुनाया। इस बीच मेरे कई लेख विभिन्न पत्रोंके द्वारा प्रकाशमें आ चुके थे। श्री नाहटाजीने मुझे इन्स्टीट्यूटका सदस्य ही नहीं बनाया अपितु साहित्य परिषद् का भी सदस्य बना दिया। आज भी जब कभी इन्स्टीट्यूट जाता हूँ तो वे दिन स्मरण आए विना नहीं रहते।

नाहटाजी सौजन्यकी तो मूर्ति हैं। जब कभी मेरे योग्य कार्य देखा अथवा कोई बाहरका व्यक्ति भी मिलने आ गया और उसे मेरी सहायताकी आवश्यकता ज्ञात हुई तो तुरन्त नाहटाजीने बुलवाकर उस व्यक्ति विशेषसे मिलाकर सदा आगे लानेकी कोशिश की।

वैसे तो सभी मिलने जुलने वाले होते हैं, परन्तु निरन्तर साहित्य साधनाकी ओर प्रेरित करनेवाले विरले ही होते हैं। आज भी कई महीनोंमें कुछ नहीं लिखा जाता तो तुरन्त बुलाकर यही कहते हैं—क्यों भाई! लिखना क्यों बंद कर दिया? क्या किताबें नहीं या आलस्यमें बैठे हैं? यह मत करो कुछ साहित्य सेवा करो। समय जो जा रहा है, वह लौट कर आनेका नहीं। अभी तो युवक हो। मेहनत करो। जब भी कोई रचना किसी पत्रमें स्थान पाती है तो मुझे उस प्रथम श्रमका स्मरण हो आता है जो श्रीनाहटाजीकी पावन प्रेरणासे प्रारंभ किया था।

प्रत्येकपर स्नेह-वृष्टि करना तो उनका स्वभाव सा हो गया है: निकटका संपर्क होने पर मैं प्रायः अभय जैन ग्रंथालय जो श्री नाहटाजीका निजी पुस्तकालय है और जिसमें ४० हजारके करीब हस्तलिखित ग्रन्थ हैं, जाता तो वहां नित नूतन सामग्रीके दर्शन होते। श्रीनाहटाजी सदैव जैसलमेर पर लिखनेके लिए अनुप्राणित करते रहते। फलस्वरूप मैंने जैसलमेर पर एक पुस्तक लिखनेका निर्णय किया: जब मैंने 'जैसलमेर दिग्दर्शन' लिखना प्रारम्भ ही किया था तो अनेक कठिनाइयाँ आ उपस्थित हुईं। परन्तु श्रीनाहटाजीने उन कठिनाइयोंको अपने ज्ञानलोक एवं सत्यपरायणता द्वारा दूर किया और पग पग पर मुझे अत्यधिक वात्सल्य भावसे मार्गदर्शन दिया। आज जब भी मैं 'जैसलमेर दिग्दर्शन' को देखता हूँ तो मुझे वे समस्त घटनाएं एक साथ स्मरण हो आती हैं।

श्रीनाहटाजीको प्रत्येक विद्वान्से कार्य करवानेकी अनोखी सूझ है। वे जितने ज्ञानी, गुणी और मर्मज्ञ हैं उतने ही व्यवहार कुशल भी। अपने सद्व्यवहार द्वारा प्रत्येकका हृदय जीत लेते हैं। मैं पिछले १५-२० वर्षोंसे उनके संपर्कमें हूँ परन्तु मैंने उन्हें कभी क्रोधित अथवा असंतुलित नहीं देखा। जीवनमें उन्हें कई ऐसे शोध कार्य करनेवाले नये-पुराने सभी विद्वान् मिले, जिन्होंने सामग्री लेकर अथवा श्रीनाहटाजीसे अपना स्वार्थ सिद्ध करके फिर मुँह ही नहीं दिखलाया ऐसे व्यक्तियोंके प्रति भी उनके मानसमें सदा सद्-भावना ही बनी रही। आश्चर्य तो इस बातका है कि वे जब भी लौटकर नाहटाजीके पास आये तो उन्होंने उसी स्नेह भावसे बातचीत ही नहीं की अपितु उसे हर संकटसे उबारा। यह है श्रीनाहटाजीके हृदयकी पवित्रता और सात्त्विक भावना। आजके इस भौतिक युगमें ऐसे विरले ही पावन हृदय मानव दिखाई देते हैं।

श्रीनाहटाजी बहुमुखी प्रतिभाके धनी हैं। इतिहास, कला, पुरातत्त्व, लोक साहित्य, प्राचीन साहित्य आदि सभी विषयोंपर गवेषणात्मक कार्य करना उनका स्वभाव सा हो गया है। मैं जब भी जैसलमेर जाता हूँ सदैव आप कुछ-न-कुछ सामग्री मँगाते ही रहते हैं। एक बार मुझे याद है आपने 'कँडियाके' से पत्थर मँगवाए जो वहाँ विशिष्ट आकारोंमें उपलब्ध होते हैं। जब वे पत्थर मैंने नाहटाजीको ला दिये तो वे बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने बड़े मधुर स्वरोंमें कहा—आज आपने मेरा कार्य किया। मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ कि जैसलमेरमें इन पत्थरोंका कोई मूल्य नहीं है परन्तु श्रीनाहटाजीने अपने कला भवनमें इन्हें कितने अच्छे ढंगसे संभाल कर रखा है। इसी तरह आपके कला भवनमें चित्र-पट्टिकाएँ, चित्रपट, अन्य कलापूर्ण वस्तुएँ, अलभ्य चित्र-सचित्र ग्रन्थ न जाने कितनी सामग्री आपके पास एकत्रित है यह सब संग्रह-भावना श्री नाहटा-जीकी कलाप्रियताका परिचय देती है। कास ऐसे कलानुरागी राजस्थानके प्रत्येक भागमें होते तो प्रत्येक स्थानकी कलापूर्ण सामग्री आज जिस रूपमें नष्ट हो रही है, नहीं होती।

नाहटाजीकी सबसे बड़ी विशेषता मिलन की है। जब भी बीकानेर रहते हैं और अधिक दिनों तक कोई साहित्यकार अथवा लेखक नहीं मिल पाते तो वे सीधे उनके घर चले जाते हैं और कुशलादि पूछनेके उपरान्त बड़े सहज भाव और मधुर उपालंभ देते हुए कहते हैं क्यों, इन दिनों दिखाई नहीं दिये? क्या लिख रहे हो आदि आदि प्रश्नोंकी झड़ी लग जाती है। वह आश्चर्यमें डूबा यही कहता है कोई काम हो गया आदि। इस स्नेह भावको जब गहराईसे देखा जाय तो प्रतीत होता है कि वे कितने सहृदय और छोटे बड़ेके भेद-भावसे परे हैं। उनके दिलमें जो लिख रहा है वह लेखक है और आज नहीं तो कल विकासकी ओर बढ़ेगा। अतः उसे हर दिशामें प्रोत्साहन मिलना चाहिए। अगर प्रोत्साहन पूरा नहीं मिला तो यह विकसित होनेवाला पुष्प अपने यौवनसे पूर्व ही मुरझा जायेगा। साहित्य जगत्की कितनी बड़ी क्षति होगी। अतः नित नई पौध तैयार करना, उन्हें समुचित सहायता एवं मार्गदर्शन देना उनका स्वभाव सा हो गया है।

राजस्थानी भाषा साहित्य, संस्कृति और पुरातत्त्वके आप अन्यतम अनुरागी हैं। जहाँ कहीं भी राजस्थानीकी चर्चा होती है, वे सदैव आगे रहते हैं। हृदयमें अपनी मातृभाषाके प्रति जो सहज अनुराग होना चाहिए वह श्री नाहटाजीके पावन हृदयमें अवस्थित है। और यही कारण है कि वे राजस्थानीके उत्थानके लिए दिन-रात प्रयत्न करते रहते हैं। इस दिशामें उनके प्रयत्न लेखों आदिके रूपमें ही नहीं व्यक्तिः भी सराहनीय एवं अभिनन्दनीय हैं। अगर ऐसे ही राजस्थानी भाषाके हृदयसे अनुरागी दस-बीस

ही हो जावें तो राजस्थानीकी प्रतिष्ठा अपनी चरम सीमापर पहुँच सकती है और उसे अपना उचित स्थान सहज भावसे प्राप्त हो सकता है।

श्री नाहटाजीकी अनेक विशेषताएँ हैं उन विशेषताओंका जिस किसीने उचित लाभ लिया वे वास्तवमें धन्य हो गये। श्री नाहटाजी अपने आपमें एक संदर्भ-पुस्तकालयकी तरह ज्ञान राशिको संजोये हुए हैं। जब भी कभी किसी विषयमें पूछ-ताछ करनी हो तो प्रश्न करते ही तुरन्त उत्तर तैयार है। आजसे शताधिक वर्षों पूर्वकी सामग्री कहाँ मिलेगी किस भण्डारमें है—आपको भली भाँति स्मरण है। यही कारण है कि भारतके विभिन्न भागोंसे आपके पास निरन्तर शोध-छात्र आते हैं और लाभान्वित होते हैं। राजस्थानी कवयित्रियों पर कार्य करते समय आपने जो सहायता मुझे दी, वह आज भी स्मरण है। अगर आपका उचित मार्गदर्शन न मिला होता तो संभवतः मेरा यह कार्य अपूर्ण ही रह जाता।

श्री नाहटाजीके पावन प्रसंगोंको जब भी स्मरण करता हूँ तो वे एकके बाद एक निरन्तर आते रहते हैं। वस्तुतः वे एक सहृदय और सच्चे साहित्यकार हैं जिनका हृदय गंगा-सा पवित्र, हिमालय सा सुदृढ़ और निर्झर सा अमृत वृष्टि करने वाला है। उनका एक ही ध्येय है—निरन्तर कार्य करते रहो। चलते रहो। स्वयं काम आपका परिचय देगा। वह घर-घर जाकर आपकी भावनाओंको सुनायेगा। नाहटाजीकी ये पावन प्रेरणा आज भी मुझे अनुप्राणित करती है और जब भी मैं उनके पास आता हूँ तो सामग्री छन्दका ग्रन्थोंसे ज्ञान सीखनेके साथ-साथ उनके व्यक्तित्वसे भी बहुत कुछ प्राप्त करता हूँ।

आपके पास भारतके विभिन्न क्षेत्रोंसे अनेक पत्र प्रतिदिन आते हैं। परन्तु आप किसी भी पत्रका उत्तर दिये बिना नहीं रहते। इसी तरह चाहे कोई छोटा पत्र हो या बड़ा आप उसे लेख अवश्य देते हैं। ग्रन्थोंकी सुन्दर प्रेरणाप्रद, सम्मति देना, आशीर्वचन लिखना भी आपका एक स्वभाव-सा हो गया है। जब मैंने अपने विभिन्न ग्रन्थों पर सम्मतियाँ चाहीं तो आपने बड़ी सहृदयतासे उनपर प्रेरणाप्रद सम्मतियाँ लिखकर प्रोत्साहित किया।

श्री नाहटाजीके ये रंग-बिरंगे चित्र जब भी स्मृति पटल पर तैरते उभरते हैं तो सहज भावसे एक सहृदय साहित्यकारके दर्शन होते हैं जिसे देखकर हृदय गद्‌गद् होने लगता है और सिर चरणोंमें झुक जाता है। ऐसे वरेण्य पुरुषको मेरा भी नमन।

●

श्रद्धेय नाहटाजीसे भेंट

डॉ० व्रजनारायण पुरोहित

जून सन् १९५८ की बात है। सुबहके करीब साढ़े आठका समय रहा होगा। मैं श्री अभयजैन ग्रंथालयके कमरेमें गया। मैंने चारों ओर दृष्टिपात किया तो पुस्तकों व पत्रोंके अतिरिक्त बहुतसे 'बस्ते' भी रखे हुए नजर आये। चारों ओर देखने लगा। पूर्णतः शान्त वातावरण में निस्तब्धताको आघात पहुँचानेवाला वहाँ कोई नहीं था। मैं 'किसी'के आनेकी प्रतीक्षा करने लगा और सोचने लगा कि बिना किसी पुस्तकाध्यक्षके यह ग्रन्थालय खुला कैसे? परन्तु मेरा कौतूहल कुछ ही क्षणोंमें शान्त हो गया। जब एक-दो पलों के अन्तरसे

ही दो व्यक्ति कमरेमें प्रविष्ट हुए। एक व्यक्तिके पासके कमरेकी पुस्तकोंको टटोलकर कुछ ग्रन्थ हाथमें लेकर आया, जो अप-टू-डेट था। दूसरे ही पल एक सज्जनने जूती खोलकर 'कमरे'में प्रवेश किया। ऊंची-ऊंची पगड़ी, श्वेत कोट व धोती पहने हुए और गलेमें सफेद दुपट्टा धारण किये हुए थे वे। उन्नत ललाट, गठे हुए बदन व सौम्य स्वरूप वाले उन महानुभावने धीरेसे पूछा "कहिये कहाँसे आये हैं ?"

मैंने कहा, "यहीं (बीकानेर) से। मुझे श्री अगरचन्दजी के दर्शन करने हैं।

वे बोले—"रिसर्च करते हैं ?"

मैंने कहा—"जी हाँ, इसी सिलसिलेमें उनसे कुछ निवेदन करना है। वे कबतक आ जावेंगे ?"

उन्होंने मुस्कराकर कहा—"हां, तो फरमाइये न।"

मुझे वस्तु-स्थिति को समझते देर नहीं लगी। अपनी झेंप मिटाते हुए मैंने कहा—"क्षमा कीजिए, यह मेरा ही कसूर है कि इसी शहरमें रहते हुए भी मैं आपके दर्शनोंसे वञ्चित रहा मैं..........."

मैं कुछ और कहना चाहता था पर उन्होंने मेरे शोधके 'विषय' के विषय में पूछा। मैंने विषय[1] बतलाया और आवश्यक सामग्री व निर्देशनके लिए निवेदन किया। मैं झिझक रहा था कि अभी तक अपरिचित होनेके कारण मुझे सहयोग मिलेगा या नहीं ? सामग्री प्राप्त करनेमें बाधाओंको निवारण करने हेतु मैंने निवेदन किया—"यदि पुस्तकों आदिके लिए किसी जामिनकी आवश्यकता हो तो मैं श्रद्धेय शास्त्रीजी (आदरणीय विद्याधरजी शास्त्री विद्यावाचस्पति) अथवा श्रद्धेय स्वामी जी (विद्यामहोदधि श्री नरोत्तमदासजी स्वामी)से लिखवा कर ला सकता हूँ। और मेरे बड़े भाई साहब पं० लक्ष्मीनारायणजी पुरोहित एडवोकेटसे परिचित ही होंगे ?"

हाँ-हाँ मैं पण्डित जी से परिचित हूं और हमारे घरू सम्बन्ध हैं सभी से। पर अपने यहां सिफारिश की आवश्यकता नहीं है। सिफारिश इतनी है कि आप रिसर्च करते हैं।?'

मैं श्रद्धासे नत हो गया और गदगद् होकर उनकी ओर देखने लगा। पर वे तो एक आलमारीको टटोल रहे थे। मैं कुछ कहने ही वाला था कि उन्होंने मेरे समक्ष दो ग्रन्थ लाकर रख दिये और कहने लगे—"अभी इन्हें देख लीजिए, फिर यथासम्भव सामग्री जुटानेमें जो भी सहयोग अपेक्षित होगा, मिलेगा।"

इतना कहकर एक रजिस्टर में मेरा नाम व पता (मुझे पूछकर) लिख लिया तथा दोनों ग्रन्थ मेरे खातेमें लिखकर मुझे घर ले जानेके लिए दे दिये।

मैंने झिझकते हुए पूछा—"ये ग्रन्थ कितने दिनों तक रख सकता हूँ ?"

"आवश्यक सामग्री नोट करके लौटा दीजिए। पुस्तकोंको अपनी समझें।"

"पुस्तकोंको अपनी समझेंका भाव मैं समझ गया और नाहटाजीके मनकी वेदनाको भी ताड़ गया। वहाँ पड़ी हुई कुछ पुस्तकोंकी दशा देखकर ज्ञात हुआ कि इनका पोस्ट-मार्टम नहीं तो 'आपरेशन' अवश्य हो गया है। अस्तु।

नाहटाजीने एक बात और कही। उन्होंने कहा—"आपके भाई साहब से हमारा पुराना परिचय है पर मेरे लिए आपका इतना परिचय काफी है कि आप 'शोधार्थी' हैं।"

इस प्रथम दर्शनसे ही मैं इतना आश्वस्त हुआ कि अपनी सफलताकी मंजिल तक निर्बाध पहुँचनेका विश्वास कर लिया। मैंने एक ग्रन्थ (विक्रम स्मृति ग्रन्थ)को टटोला जिसमें श्रद्धेय नाहटाजीका एक शोधपूर्ण

---

१. विक्रमादित्य एवं तत्सम्बन्धी साहित्य।

निबन्ध था। दूसरे ग्रन्थमें भी अभीप्सित सामग्री थी। मैंने उस निबन्धमें वर्णित सामग्री (रचनाओं)की उपलब्धिके लिए पूछा तो इतना ही उत्तर मिला कि आप पहले इन निबन्धोंको पढ़ लीजिये और 'रूपरेखा' बनाकर विश्वविद्यालयसे स्वीकृति प्राप्त कर लीजिये।

मैंने 'रूपरेखा' बनाने में सर्वाधिक उपयोग नाहटाजी के उस निबन्धका ही किया और 'प्रबन्ध' लिखने में अभय जैन ग्रन्थालयमें सुरक्षित अधिकांश हस्तलिखित प्रतियों का। नाहटाजी की महती कृपा से ही अन्यत्र सुरक्षित 'बस्ते' भी मुझे देखने को मिल सके। अन्यथा उन 'बस्तों' के दर्शन करना मेरे लिए संभव नहीं होते।

नाहटाजी के इस निबन्ध जैसे न मालूम कितने अन्य निबन्ध होंगे जो मेरे जैसे उपाधि प्राप्त करनेकी इच्छा रखनेवालोंके लिए आधार बने हों! अस्तु।

नाहटाजीको नमस्कार करके मैं वहांसे रवाना हुआ। मैं प्रसन्न था और नाहटाजीको उन ग्रन्थोंको विशेष सावधानी से थैलेमें डालकर ले जा रहा था। उस दिन मैंने उनसे प्रेरणा लेते हुए सोचा कि शोध कार्य केवल उपाधि-प्राप्तिके लिए ही नहीं होना चाहिए और न ही दूधमें पानी मिलने वाली प्रवृत्ति ही अपनाई जानी चाहिए।

पुस्तकोंपर दयाभाव रखनेकी सीख भी नाहटाजीने अत्यन्त मधुर ढंगसे दी। उनकी सीख सही है क्योंकि पुस्तकोंके साथ क्रूरता करनेसे वे रुग्ण होकर रुष्ट हो जाती हैं।

मैंने 'रूपरेखा' तैयार करके नाहटाजी को दिखलाई। उन्होंने एक-आध स्थान पर सुझाव देकर उसे पसन्द किया। फिर मैं उनके 'ग्रन्थालय' में आने जाने लगा और आवश्यक (मुद्रित व हस्तलिखित-ग्रन्थ) घर लाने लगा। इतनी सुविधा प्राप्त करके मैं कृतकृत्य हो गया।

नाहटाजीकी कार्य-कुशलताको देखकर मैं आश्चर्यचकित होता रहता हूँ। जब भी जाता हूँ, उन्हें ग्रन्थोंकी ढेरियों के बीच आसीन देखता हूँ। वे समय को व्यर्थ खोना तो शायद सीखे ही नहीं हैं। हर-समय पढ़ते-लिखते रहना तथा अपने नित्य कार्य घड़ीको सुंइयोंके आधारपर करना। नियमसे पत्र लिखना या लिखाना भी उनके कार्यक्रमका एक आवश्यक अंग है। नित्य आनेवाली 'डाक'को देखकर प्रतीत होता है मानों किसी 'सरकारी कार्यालय'में आने वाली 'डाक' हो।

मनुष्यका मस्तिष्क आराम भी चाहता है पर नाहटाजीका मस्तिष्क चौबीस घण्टोंकी अवधिमें १४ से १६ घन्टोंतक कार्यरत रहता है। मैंने उन्हें ग्रन्थालयमें सोते हुए या आराम करते हुए देखा ही नहीं। 'काम से काम' करते रहना ही उनका अभ्यास हो गया है। न कभी 'गप्प-शप्प' करते हैं और न किसी प्रकार की व्यर्थकी बात ही।

शनिवार-रविवारके दिन 'ग्रन्थालय' में साहित्य-गोष्ठीका आयोजन नियमित रूपसे किया जाता रहा है। नाहटाजी व आठ-दस अन्य व्यक्ति एकत्र होकर साहित्य-चर्चा करते हैं और नये लेखकोंको प्रेरित करते हैं कुछ लिखनेके लिए। सप्ताहमें जो भी विशेष रचना की जाती है उसे वहाँ सुनाई जाती है और फिर आवश्यक चर्चा होती है उस रचनाके विषयमें। इस प्रकारकी परिचर्चा एक दिन हो रही थी। मैंने नाहटाजीसे एक विषय बतलाया जिसे मैंने दूसरी बार पी-एच. डी. की उपाधिके लिए शोध-प्रबन्ध लिखनेके लिए चुना था।[1] उन्होंने उस विषयसे सम्बन्धित बहुतसे ग्रन्थोंका विवरण उल्लेख तत्काल बतला दिया। मैं विस्मित था कि इतनी स्मरण शक्ति, इतना अध्ययन और इतनी कर्तव्यनिष्ठा कितने अध्ययनशीलताका

१. तेरापन्थी जैन श्वेताम्बर सम्प्रदायका राजस्थानी और हिन्दी साहित्य।

परिणाम होगा। और इससे बढ़कर मैं उनकी उदारता देखकर दंग था कि 'तेरापन्थ' के इतर सम्प्रदायके अनुयायी होने पर भी उनमें संकीर्णताका कहीं भी लेशमात्र नहीं है।

नाहटाजीके सम्पर्कमें जो व्यक्ति आते हैं वे उनकी सहज सहयोग देनेकी उदार वृत्ति, सादगीसे जीवन यापन करनेकी प्रवृत्ति, विज्ञापनसे अरुचि, मिथ्या आडम्बरसे विरक्ति, तथा आत्मीयताकी भावनासे प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकते। अपने परिचित किसी छोटे या महान् व्यक्तिके यहाँ खुशी या गमीके अवसर पर जाने में वे संकोच नहीं करते। उनके व्यवहारमें निष्कपट भाव सर्वदा देखनेको मिलता है।

अन्तमें कृतज्ञता पूर्वक इतना ही कहना पर्याप्त समझता हूँ कि नाहटाजीके जिस स्नेहका भाजन मैं बन सका हूँ बस मेरे लिए गौरवकी बात है। ऐसे महान् व्यक्तित्त्वकी अहैतुक कृपाका ध्यान आते ही सिर श्रद्धासे नत हो जाता है। मनमें सदैव कामना रहती है कि श्रद्धेय नाहटाजी चिरंजीवी हों तथा साहित्यिक शोध-साधनामें रत रहकर माँ भारतीके अक्षय भण्डारको अलभ्य रत्नोंसे अलंकृत करते रहें।



वयोवृद्ध, तपोवृद्ध एवं ज्ञानवृद्ध श्री नाहटाजी

श्री जयशंकर देवशंकर शर्मा

श्री अगरचन्दजी नाहटा जैसे प्रतिभासम्पन्न व्यक्तिके लिये लिखना सूर्यको दीपकसे दिखानेके समान है। आपके सान्निध्यमें रहकर अनेकोंने साहित्य-साधना की है और शोध-कार्य किया है। ऐसे व्यक्तिके सम्बन्धमें क्या लिखा जाय, यह एक जटिल कार्य है।

मेरे बीकानेर आगमनके पश्चात् राजस्थानीके साधक श्री मुरलीधरजी व्यासके माध्यमसे मैं आपके सम्पर्कमें आया। यदि मैं नहीं भूलता हूँ तो यह राजस्थानी साहित्यकी एक मीटिंगका अवसर था। आपकी सादगी, साहित्य-साधना और मितव्ययताका ज्यों-ज्यों मुझे पता लगा, मेरी आपकी ओर श्रद्धा बढ़ने लगी। आप मिलनसार, निरभिमानी एवं इतिहासके प्राचीन वृत्तोंके प्रकाण्ड विद्वान् हैं।

आपमें राजस्थानीके प्रति अगाध प्रेम है और आप सदैव इस प्रयत्नमें रहते हैं कि आधुनिक-शिक्षा प्राप्त व्यक्ति भी राजस्थानी भाषाकी ओर आकर्षित हों। प्रेरणा देने, साधन जुटा देनेमें आपका सहयोग सदैव हर एकको मिलता रहा है और आशा है भविष्यमें भी मिलता रहेगा।

साहित्य एवं पुरातत्त्व-सामग्रीकी खोज करना और उसे प्राप्त करना सदैव आपका लक्ष्य रहा है, जिसका प्रत्यक्ष प्रमाण आप द्वारा संचालित 'अभय जैन ग्रन्थालय, बीकानेर' है। यद्यपि इस संस्थाका नाम जैन ग्रन्थालय है किन्तु इसमें जैनेतर साहित्य भी प्रचुर मात्रामें उपलब्ध है। यह तो मानना ही होगा कि जैन साधुओं द्वारा प्राचीन कालमें साहित्य-सेवा प्रचुर मात्रामें हुई और उनका संग्रह भी जैन विद्वान् एवं जैन संस्थाओं द्वारा हुआ है। इसलिए अभय ग्रन्थालयके स्थान पर अभय जैन ग्रन्थालय नाम उपयुक्त ही है।

मैं चिकित्सा क्षेत्रमें कार्य कर रहा हूँ किन्तु साहित्य-साधनाकी ओर भी रुचि रखता हूँ। श्री नाहटा-जी द्वारा मेरी रुचिको प्रोत्साहन मिलता रहा और साथ-ही-साथ तदनुकूल सामग्री भी। यही कारण है कि

मैं इस दिशामें यत्किंचित् कार्य कर सका। आप ही की प्रेरणा एवं परामर्शके आधारपर मैं 'प्रकृतिसे वर्षा ज्ञान' का पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध तैयार कर सका। आपने इसके प्रकाशनकी व्यवस्था की। मैं आपकी इस कृपाके लिए पूर्ण आभारी हूँ।

यह मेरा सौभाग्य है कि इस अवसर पर मैं अपनी ओरसे आपको श्रद्धा-सुमन प्रस्तुत कर रहा हूँ। ऐसे मनीषी-विद्वान्का सान्निध्य जिस किसीको प्राप्त होगा, वह निहाल हो जायेगा।

प्रभु आपको शतायुः करें और आपके स्वास्थ्यकी रक्षा करें ताकि आप द्वारा निरन्तर साहित्य-साधना होती रहे और मां राजस्थानीका भण्डार भरा जाता रहे।



वन्दे महापुरुष ! ते कमनीय कीर्त्तिम्

डॉ० ईश्वरानन्द शर्मा शास्त्री, एम. ए., पी-एच. डी.

उत्तुंग शिखर मारवाड़ी पगड़ी, ओठों पर सघन पीन बलखानेको उत्सुक मूंछें, निर्मल नेत्रोंमें सरल पैनी दृष्टि, मुखाकृत पर शालीनता और सज्जनताकी युग्मधारा, गतिमें गौरव, बन्द गलेका कोट, उसपर पड़ा उत्तरीय मारवाड़ी धोती और साधारण उपानत्—यह व्यक्तित्व है उस महापुरुषका—श्री अगरचन्द नाहटाका जो सैकतावृतधरा मरुधरामें ज्ञानगंगा प्रवहण कर रहा है, शोधसागरतितीर्षुओंको सेतु बनकर पार उतार रहा है और ज्ञानामृत भोजनसे अहर्निश छका रहनेके कारण कालगाल विलुप्त सरस्वतीको समुद्धृत कर रहा है।

मैंने श्री नाहटाजीके लिये श्रद्धाके जिस बीजको कभी मानसधरा पर अनायास बोया था; वह उनके प्रभावक, निश्छल आत्मीयता भरे सरल व्यक्तित्वके जीवनदानसे अंकुरित, पुष्पित और फलित होता गया और अब उसका फल मधुर तो है ही, आनन्दप्रद भी है।

बात कुछ वर्ष पूर्वकी है। मैं शोधगुरु और शोध विषयके अन्वेषणमें लगा हुआ था। वर्ष पर वर्ष बीत गये, न शोधगुरु ही मिला और न विषय ही। कहते हैं, बारह वर्षोंके बाद घूरेके दिन भी बदलते हैं और मेरे भी बदले। आनन फाननमें शोधगुरु मिल गये और श्री नाहटाजीने शोध विषयोंका अम्बार सा प्रस्तुत कर दिया। एक-से-एक आकर्षक, नये-पुराने, अछूते-अर्द्धछूते, अपूर्ण-पूर्ण कई तरहके, राजस्थानी, हिन्दी, मराठी जैन कवि, जैनेतर कवि—सभी भव्य, आकर्षक और प्रेरक। ऐसी स्थितिमें विषयचयनमें मेरी वही दशा हुई, जो दशा निर्धन व्यक्तिकी चमकते हुए रत्नोंसे भरे भण्डारमें प्रथम बार पहुंचनेपर होती है। मैंने अनुभव किया कि श्री नाहटाजीका हृदय, जिज्ञासुओंके लिए कितना संवेदनशील, कितना सहायक और कितना अधिक मार्गदर्शक है। उन्होंने अपने विशाल पुस्तकालयमें शोध विद्वानोंके लिये आवास व्यवस्था भी कर रक्खी है। श्री नाहटाजीके आत्मीय भावकी पीन परतके कारण कोई भी छात्र यह अनुभव नहीं कर पाता कि वह अपना घर छोड़कर कहीं अन्यत्र रह रहा है। आप किसी भी समय और कोई भी साहित्यिक उलझन श्री नाहटाजीके सम्मुख प्रस्तुत कर सकते हैं—वहाँ समाधान तैयार है। श्री नाहटाजी तन, मन और धनसे जिज्ञासु शोध-छात्रोंकी सहायता करते हैं और करवाते भी हैं। प्रस्तुत

लेखकको अपने शोधकार्यके निमित्त लगभग दो मासकी गुजरात और राजस्थानकी यात्रा करनी पड़ी थी। इस सरस्वती यात्राको सफल बनानेमें श्री नाहटाजीका बहुत बड़ा हाथ था। उन्होंने लेखकके लिए पाटण, अहमदाबाद, बड़ौदा, छाणी, सूरत, मैंहसाणा, जैसलमेर आदिके आचार्यों, सूरियों, पट्टाधीश्वरों, धनीमानी सज्जनोंको अनेक पत्र लिखे और यात्राको श्रेयस्कर बनाया। लेखकने अपने सारस्वत प्रवासमें यह अनुभव किया कि भारतके विभिन्न प्रान्तों, परिवारों और धनीमानी प्रतिष्ठितोंमें श्री नाहटाका कितना अधिक आदर सम्मान है। धर्माचार्य उन्हें अपना आशीर्वाद भाजन अभिन्न अंग समझते हैं तो धनीमानी वर्ग उन्हें प्रतिष्ठित परिवारका। विद्वत् वर्गकी दृष्टिमें श्रीनाहटा कनिष्ठिकाधिष्ठित विद्वानोंमें से हैं तो शोध संसारमें औढ़र दानी। भारतके किसी भी प्रान्तमें चले जाइये; श्री नाहटाजीकी कलकीर्ति वहाँ आपका स्वागत करनेके लिये पहलेसे ही तत्पर मिलेगी।

श्री नाहटाजीने समयके महत्त्वको समझा है। वे जीवनका एक क्षण भी व्यर्थ जाने देना नहीं चाहते। दिन रातके चौबीस घण्टोंमें वे प्रति पलका सदुपयोग उठाते हैं। मैं संस्कृतकी इस शब्दावलीको उनमें अक्षरशः चरितार्थ पाता हूँ कि उम्रका क्षणलेश करोड़ों स्वर्णमुद्राओंसे नहीं खरीदा जा सकता। उसी अमूल्य अलभ्य क्षणको अगर व्यर्थमें बिता दिया तो उससे अधिक हानि और क्या हो सकती है।[1] श्री नाहटाजी प्रतिदिन १४ घण्टे पढ़ते हैं, लिखते हैं और लिखाते हैं। वे न निन्दा करते हैं और न निन्दा सुनते हैं। अगर कोई व्यक्तिगत आक्षेपों पर आ जाता है अथवा निन्दापरक सही बातें भी कहता है तो श्रीनाहटा-जी उसे 'विकथा' की संज्ञा देकर टाल देते हैं और अपवाद सुननेकी अनिच्छासे अपने पठन कार्यमें लीन हो जाते हैं। श्रोताको रुचिरहित पाकर वक्ताका कथनोत्साह भी मन्द पढ़ जाता है। इसका सुफल यह मिलता है कि परदोष-दर्शनके पापसे तो हम बचते ही हैं—हमारा अमूल्य समय रूपी हीरा भी कोड़ियोंमें नहीं बिकता।

श्री नाहटाजी शोधरस पीन भ्रमर हैं। उन्हें नई उपलब्धिसे अपार सन्तोष मिलता है, वे गद्गद् हो जाते हैं। कभी-कभी तो इस रसमें वे इतने तल्लीन हो जाते हैं कि उन्हें खाने-पीने तककी सुध नहीं रहती। उनकी यह ध्यानस्थिति तभी टूटती है जब घरवाले बार-बार आवाज देकर उन्हें याद दिलाते हैं कि 'भोजनका समय हो गया है'—अधिक देर स्वास्थ्यके लिये अहितकर है आदि आदि।

श्री नाहटाजी को मैं निरा शिक्षाशास्त्री, साहित्य रसिक और कलाप्रेमी ही समझता था, लेकिन अवसर पर मेरे अनुभवने बताया कि वे परम कारुणिक महामानव भी हैं। बीकानेरका ग्राम जीवन निरन्तर तीन सालोंसे दुर्दान्त दुर्भिक्षकी द्रष्ट्राके नीचे दब चुका था चतुर्दिक अभावकी स्थितिने धैर्य धनियोंका भी मन विचलित कर दिया था। चूंकि मेरा मन भी संकट प्राप्त जनतासे सहानुभूति रखता है, इसलिए मैंने शोधरसमें लीन श्री नाहटाजी को ग्रामीणोंके दुःख दर्द, अभाव अभियोगकी कहानी सुनायी। मुझे यह देखकर आश्चर्य हुआ कि महामानवके नेत्र सजल थे, करुणाका आपूर अपने चरम स्तर पर था। उन्होंने अपना समस्त ध्यान इस दर्दकी स्थितिपर केन्द्रित करते हुए स्वयंकी जेबसे और नाहटा धर्मार्थ न्याससे और धनी मानियोंसे सक्रिय सांहाय्य देना दिलाना स्वीकार किया और उन्हें तब और भी प्रसन्नता हुई जब उनका दान-पात्र लोगों तक पहुँचा। जब कभी मैं उनके पास बैठता हूँ, वे गाँव और गाँववालोंका हालचाल अवश्य पूछते हैं।

---

१. आयुषः क्षणलेशोऽपि न लभ्यो स्वर्णकोटिभिः।
स एव व्यर्थतां नीतः, का नु हानिस्ततोऽधिका ॥

मैं जब भी श्री नाहटाजीके दर्शनार्थ गया मैंने उन्हें किसी-न-किसी कार्यमें रत पाया। आलस्य तो छू तक नहीं गया है। जो काम उन्हें करना होता है, तुरन्त करते हैं और कार्यावसान रूपी परिणाम फलसे ही प्रसन्न होते हैं। पत्रोत्तर देनेमें श्री नाहटाकी शीघ्रता वरेण्य हैं। वे प्रतिदिन दर्जनों पत्र लिखते हैं और इस अवसर पर उन लोगोंकी मीठी चुटकी भी लेते हैं जो आलस्यके वशीभूत होकर पत्रोत्तर नहीं देते।

श्री नाहटाजी अन्तर्मुखी प्रवृत्तिके मूक साधक हैं। वे गृहस्थ योगी हैं। सांसारिक सुख साधनोंकी समुपस्थितिसे भी वे उनके प्रति व्यामोह नहीं रखते। लक्ष्मीका आगमन अथवा निर्गमन उन्हें साधनासे विचलित नहीं कर पाता।

संसार यात्रामें सदैव साथ देनेवाली, पतिपरायणा अर्धाङ्गिनीके स्वर्गवासी होनेसे जो असाध्य दुःख नाहटा परिवार पर आ पड़ा था; उस दुःखको श्री नाहटाजीने समत्व योगीके समान सहन किया और वे दुःखकी अवधिमें शीघ्र ही प्रकृतिस्थ बन गये। सांसारिक कृत्यों और दायित्वोंका परिपालन करते हुए भी वे उनमें लिप्त नहीं होते। संकट, कष्ट और दुःखकी घड़ीमें जब-जब मैंने श्री नाहटाजी को देखा है, मैं उनसे प्रभावित हुआ हूँ और उनके स्थितधी व्यक्तित्वने मुझे गीताके स्थितधीका सामीप्य सुख प्रदान किया है।[1]

मेरी दृष्टिमें श्री नाहटाजी निश्छल सखा, स्पष्टवक्ता, पथप्रदर्शक, वचनबद्ध बन्धु, सच्चे सहायक, गहरे गुरु, संयमधनी और धर्मभीरु-महामानव हैं। मैं उनके सुखद भविष्य और दीर्घायुष्यकी कमनीय कामना करता हूँ।

●

श्री नाहटाजी : एक संदर्भ ग्रंथ

श्री यादवेन्द्र शर्मा

व्यवसाय और साहित्य सृजनका सम्बन्ध जरा कठिन ही है। जो व्यवसायी हैं, वह साहित्यकार नहीं और जो साहित्यकार हैं वह व्यवसायी नहीं हैं, ऐसी धारणा प्रचलित है। राजस्थानी लोगोंकी पृष्ठ-भूमिमें देखा भी जाय तो इस कथनमें कुछ वास्तविकता परिलक्षित होती है। राजस्थानका एक बहुत बड़ा समुदाय व्यापारी है, विशुद्ध व्यापारी इतना विकट व्यापारी है कि उसने अपनी 'नैसर्गिकता, साहित्य, संस्कृति और जन-जीवनको विस्मृत कर दिया। केवल पैसा, पैसा और पैसा।

ऐसी स्थितिमें कुछ नाम अपवाद स्वरूप लिये जा सकते हैं। उनमें श्री अगरचन्दजी नाहटाका नाम उल्लेखनीय है। श्री नाहटाजी पिछले अनेक वर्षोंसे प्राचीन साहित्य व अनुपलब्ध ग्रन्थोंका अन्वेषण कर रहे हैं। येन केन प्रकारेण वे हस्तलिखित ग्रन्थोंको एकत्रित कर रहे हैं। केवल एकत्रित ही नहीं, वे उन ग्रन्थोंका सम्पादन व प्रकाशन भी करवाकर उनको दूसरोंके लिए उपलब्ध भी करा रहे हैं।

---

१. दुःखेष्वनुद्विग्नमना, सुखेषु विगतस्पृहः।
वीतरागभयक्रोधः स्थितधीः मुनिरुच्यते॥

उनका अभय जैन ग्रन्थालय एक तीर्थस्थली है। तीर्थोंकी संगमस्थली कहूँ तो भी अत्युक्ति नहीं होगी क्योंकि उस तीर्थमें जैनधर्मकी विशाल सरिता तो प्रवाहित होती ही है, साथमें अन्य धर्मोंकी कई नहरें भी देखनेको मिल जाती हैं।

श्रीनाहटाजीको उदार भी कहा जा सकता है और अनुदार भी। अविश्वासकी जरा सी झलक भी उन्हें कंजूस कर देती है परन्तु, यदि आपने उनका विश्वास प्राप्त कर लिया है तो वे खजानेकी 'कूँची' तक देनेमें एक पल भी नहीं हिचकेंगे।

मेरा सम्बन्ध उनसे काफी पुराना है। वस्तुतः राजस्थानी भाषाके लेखनके प्रति मुझे जो सम्मान हुआ, वह अत्यधिक रूपसे श्री अगरचन्दजी नाहटाकी ओरसे ही मिला है। वैसे मुझे कुरेदनेमें राजस्थानी साहित्य स्रष्टा श्री मुरलीधर व्यासजी भी कम नहीं रहे किन्तु श्री नाहटाजीका सहयोग इसलिए स्तुत्य है कि उन्होंने मेरी रचनाओंके प्रकाशनका भी भार वहन करनेका आश्वासन दिया था। श्री नाहटाजीने राजस्थानी भाषाके निर्माण और परिष्कृत करनेमें महत्त्वपूर्ण कार्य किया है।

श्री नाहटाजीका जीवन एक संयमीका जीवन है। विलासी-जीवनसे दूर एक नियमित जीवन। कब व्यापार करना है और कब अन्वेषण व ग्रन्थ संग्रह करना है, उन्होंने इस हेतु वर्षका विभाजन कर रखा है। इतना ही नहीं, अपने समस्त कार्यकलापोंको रोककर श्रीनाहटाजी शोध-कर्त्ताओंको प्राथमिक सहयोग देते हैं।

शोधकर्त्ताओंके लिए श्रीनाहटाजीको एक कोष भी कह दें तो अत्युक्ति नहीं होगी। वर्षोंकी पुरानी पत्र-पत्रिकाओंकी सूचियाँ उनके मस्तिष्कमें 'अल्फावेटिक' ढंगसे मानों लगी हुई हैं। कौन-सी पुस्तक कौन सी जगह है, उसमें आपके विषयसे सम्बन्धित सामग्री कौनसे अध्यायमें है, यह भी आपको श्रीनाहटाजी बता देंगे।

श्री नाहटाजी लोक-साहित्य, प्राचीन विधियाँ व जैन-साहित्यके ज्ञाता हैं। जैन परिप्रेक्ष्यमें प्राचीन ग्रन्थों व संदर्भोंको देखने और उनको अन्वेषित करनेमें वे कठोर श्रम करते हैं। यही कारण है कि श्रीनाहटा-जी द्वारा काफी जैन साहित्य प्रकाशमें आया है।

श्रीनाहटाजी राजस्थानी हैं, पक्के राजस्थानी। राजस्थानी भाषाके प्रेमी हैं और राजस्थानी पहनावा भी पहनते हैं। कहीं भी जायेंगे पर मरुधराकी शान 'पगड़ी' को सिर पर रखे बिना नहीं जायेंगे। इसीलिए वे एक राजस्थानीके रूपमें पहचाने जाते हैं। पुराने मूल्योंसे प्रतिबद्ध श्रीनाहटाजी लिखित अलिखित ग्रंथ संग्रहका जो महान् कार्य कर रहे हैं, उनके लिये उन्हें राजस्थानका प्रचंडकर्मी कहें तो भी अतिशयोक्ति नहीं होगी। राजस्थान ऐसे योग्य वरद पुत्रको पाकर गौरवान्वित है।

●

जैन इतिहास-रत्न : शोधशास्त्री श्रीअगरचन्द नाहटा

श्री मोहनलाल पुरोहित

महापुरुष, और ये कलाकार, साहित्यकार, मनीषी-विद्वान् आदि प्रतिभाके धनी तो होते ही हैं, साथ ही ये लोग भगवान्के घरसे दैवी-शक्ति लेकर इस धरापर अवतीर्ण होते हैं। इनका दैनिक-जीवन और क्रिया-कलाप अपनी विचित्रताओंसे भरा हुआ रहता है। त्याग-तपस्या, सदाचार, संयम, परोपकार, पर-दुःखकातरता,

अनोखी सूझ-बूझ, कर्तव्य-परायणता, सादगी आदि सात्त्विक-गुण जैसे इन्हें विरासतमें मिले हों—इनके दैनिक जीवनमें एक-रस होकर, घुल-मिलकर अभिन्न-अंग बन गये हों।

श्रीअगरचन्द नाहटा भारतके एक बहुत ही बड़े शोध-शास्त्री हैं। शोधका ऐसा कोई भी अंग नहीं कहा जा सकता, जिसपर इस मूकसाधक, प्रकाण्ड-पण्डितने अपनी लेखनी न उठाई हो।

भारतके हर कोने-कोनेसे कई शोधके विद्यार्थी श्रीनाहटाजीकी प्रतिभाका लाभ उठा चुके हैं। श्रीअगरचन्दजी, राजस्थानी, प्राकृत, अपभ्रंश और गुजराती भाषाके तो प्रकाण्ड-पण्डित हैं ही—आपका ज्ञान जैनधर्म, भारतीय-दर्शन, इतिहास, पुरातत्त्व, मूर्तिकला और चित्रकला आदि पर भी गहन और अनूठा है। भारतकी ऐसी शायद ही कोई साहित्यिक-संस्था रहीं होगी, जिसका सीधा-सम्पर्क श्रीनाहटाजीसे न रहा हो। इनकी प्रतिभाका सांगोपांग आभास इनकी बहुमुखी सेवाओंकी प्रचुरतासे मिलता है।

व्यक्तिगत मान-प्रतिष्ठासे कोसों दूर, दोषान्वेषण अथवा छिद्रान्वेषणसे परे, सरस्वतीके इस लाडले पुत्रको कभी भी अपने पुस्तकालयमें अध्ययन-रत और लेखन-कार्यमें रत देखा जा सकता है। लाखों नहीं, तो हजारों व्यक्ति आपके निकट-सम्पर्कमें आये होंगे। फिर भी हमारा संन्निकटका या व्यक्तिगत-सम्पर्क ऐसा कुछ रहा है—कुछ संस्मृतियाँ ऐसी रही हैं, जो किसी भी हालतमें भुलाई नहीं जा सकतीं।

साहित्यकारका जीवन एक समुद्रकी तरह गम्भीर और गंगाके समान पावनप्रवाहमय रहता है। समुद्रकी गहराई और उसके पानीको लेकर यदि कोई उसका माप-तोल करना चाहे, तो भले ही किसी साहित्यकारके जीवनकी व्याख्या करनेमें वह सफल मनोरथ हो सकता है। हम तो यहाँ श्रीनाहटाजीके जीवन-का पक्ष, 'सादगी' को लेकर ही कुछ झाँकियाँ प्रस्तुत करना चाहेंगे। और यह सत्य भी है—Simplicity is next to godliness—श्री नाहटाजीके जीवनमें सादगी और उच्च-विचार [Simple Living and High Thinking.] जैसे उनके जीवनके अभिन्न-अंग बन गये हों। सादगीके तो मानों श्री नाहटाजी प्रतीक ही बन गये हों।

[एक]

वैसे तो श्री नाहटाजीके निबन्धोंको पढ़नेका सुअवसर मुझे सन् १९३६ से मिलता रहा है। जैसलमेर भी आप सन् १९४२ में आये; लेकिन आपसे साक्षात्कार होनेका शुभ अवसर मुझे सन् १९५० में बीकानेरमें मिला। उन दिनों मैं लोक-साहित्यके विषयको लेकर एक पुस्तक लिखनेकी योजनामें था और मुझे तद्-विषयकी पुस्तकोंकी बड़ी ही आवश्यकता थी। काफी-कुछ इधर-उधरके पुस्तकालयोंकी खोज-बीन करनेके उपरान्त किसी भले आदमीसे ज्ञात हो सका कि ये पुस्तकें तो श्री नाहटाजीके यहाँ 'श्री अभय जैन-ग्रन्थालय' में आपको बड़ी आसानीसे मिल सकती हैं। फिर भला क्या था—वैसे भी आपके दर्शन तो करने ही थे, मैं उस दिन सायंकाल चल पड़ा, आपसे मिलनेके लिये।

आपके मोहल्लेमें जिस समय पहुँचा उस समय लगभग छः बजनेको थे। मैंने यहाँ पहुँचकर एक सज्जनसे पूछा, 'श्री नाहटाजीका मकान कहाँ है ?' वह सज्जन एक लकड़ीके पाटेपर बैठा हुआ था। यहींसे बैठे-बैठे उसने इशारा करते हुए बताया—वह रही लाल-पत्थरवाली बड़ी-सी हवेली। मैं उस निर्देशित हवेलीके पास पहुँचा ही था कि मैंने देखा—वहाँ एक व्यक्ति खड़ा है।

मैंने उनसे पूछा—कष्ट तो आपको होगा, लेकिन मैं क्षमा चाहता हूँ, 'क्या आप मुझे श्रीनाहटाजीका मकान बता सकते हैं ?' सज्जनने बड़ी गम्भीर मुद्रामें पूछा,' आपको उनसे कोई विशेष कार्य ?' मैंने फौरन छूटते ही कहा, इन दिनों कुछ लिखनेकी झक सवार हो चली है। एक पुस्तककी आवश्यकता है। काफी कुछ

ग्रन्थालयोंकी छानबीन कर चुका हूँ—पुस्तक नहीं मिल सकी। श्री नाहटाजीके 'ग्रन्थालय' में बताते हैं यह पुस्तक है। वैसे उनसे एक लम्बे अर्सेसे मिलनेकी साध भी है।

यह भला आदमी इतना सुनते ही फौरन उलटे पैरों मेरे साथ चल पड़ा, अपने ग्रन्थालयको। स्मरण रहे—ग्रन्थालय आपके मकानके बहुत ही समीप है।

ऊँची-ऊँची धोती, साधारण कोटिका बनियान, सिर नंगा, बाल अस्त-व्यस्त बिखरे हुए ऐसा प्रतीत हो रहा था जैसे कंघीके दर्शन इन्हें एक लंबे समय तक नहीं कराये गये हों। रंग साँवला, ललाट काफी चौड़ा, जिसपर जीवनके ठोस अनुभवकी रेखाएँ स्पष्ट प्रतीत हो रही थीं। चाल बड़ी तेज, मित-भाषी।

एकही झटकेमें 'ग्रन्थालय' का ताला खुला और हम दोनों उसकी ऊपरकी मंजिलमें आ-पहुँचे। मैंने देखा—यहाँ तो पुस्तकोंका अंबार लगा पड़ा है। नीचे, ऊपर, दाएँ, बाएँ, अलमारियोंमें, यत्र-तत्र कोनों में, पुस्तकें ही पुस्तकें रखी पड़ी हैं। सज्जनने पूछा, 'आपको कौन-सी पुस्तक चाहिए ?' मैंने पुस्तकका नाम बताते हुए पूछा—श्रीनाहटाजी कब मिल सकते हैं? आलमारीमेंसे मेरी इच्छित पुस्तक निकालकर मुझे देते हुए, उसने बहुत-ही धीरेमें कहा—कहिए क्या काम है ? मैंने पुनः अपने गलेको जरा साफ करते हुए रूखाईसे उत्तर दिया—मुझे आपसे नहीं मिलना है। और न आपसे मेरा कोई कार्य ही बनना-बनाना है। मुझे तो श्रीनाहटाजीसे मिलना है। वे मुझे कब मिल सकते हैं ? उस सज्जनने गम्भीर एवं बड़े सधे हुए स्वरमें कहा—कहिए भी आपको क्या काम है ?

अपने पत्रकार युगमें मैं काफी कुछ घूमा-भटका हूँ। काफी लोगोंसे मेरा मिलने-मिलानेका काम भी पड़ा है। मैंने सुन रखा था—श्रीनाहटाजीका सम्बन्ध कलकत्तासे है। आपका कारोबार, व्यवसाय आदि कलकत्ता, सिलचर आदि बड़े नगरोंमें भी फैला हुआ है। मैंने समझा, हो-न-हो यह व्यक्ति श्रीनाहटाजी का कोई निजी-नौकर 'भईया' (पूर्वी लोगोंको हमारे यहाँ राजस्थानमें 'भईया' कहते हैं) होगा। घरका भी यह काम काज करता होगा और ग्रन्थालयका भी।

मैंने देखा, सज्जन जरा मुस्कराहटके साथ बड़ी ही मधुर वाणीमें कहने लगा, नाराज होने जैसी तो कोई बात नहीं है। आप अपना कार्य तो कहें। मैं तो सभी साहित्यकारोंका दास ही हूँ और आपका भी'।

मैं उछल पड़ा। मैं चाहता था—ऐसे 'विनम्र, सादगीके अवतार साहित्य-तपस्वीकी पावन-चरण धूलिसे अपने आपको पवित्र कर सकूँ—उन्होंने फौरन मुझे दोनों हाथोंमें बाँधकर छातीसे लगा लिया। मेरा कंठ अवरुद्ध हो चला। मैं केवल इतना ही कह सका—मां-भारती आज धन्य है; आप जैसे वरिष्ठ पुत्रको पाकर। आप सचमुच भारतीय साहित्य-जगत्के देदीप्यमान नक्षत्र हैं। आपको पाकर आज मैं अपना जीवन धन्य समझता हूँ—श्रद्धेयवर, मेरा नमस्कार स्वीकार करें।

[दो]

सम्भवत: यह घटना सन् १९५१-५२ की रही हो—हमलोग (मैं और श्री नाहटाजी) बैठे साहित्यिक-चर्चा कर रहे थे। पाठकोंको यह तो ज्ञात ही होगा, कि श्री नाहटाजीका अपना एक निजी पुस्तकालय है। पुस्तकालयका नाम है—श्री अभय जैन-ग्रन्थालय।

एक पुस्तक-विक्रेताका एजेण्ट उस दिन आ पहुँचा पुस्तकालयमें और लगा दिखाने पुस्तकें। पुस्तकें अधिकतर-कहानियाँ, उपन्यास, और नाटक आदिको लेकर ही थीं।

एजेण्ट एक-एक पुस्तक अपने बैगमेंसे निकालता और उसकी थोड़ेमें समीक्षा भी करता जाता। वह जितनी बार भी अपनी ओरसे पुस्तककी उपयोगिताको लेकर प्रशंसाके पुल बाँधता, श्रीनाहटाजी अपना सिर हिलाकर अस्वीकृति का-सा संकेत करते और मैं सिर हिलाकर स्वीकृतिका संकेत देता उसे।

जब वह एजेंण्ट इस प्रकार आठ-दस पुस्तकें दिखा गया और सभी पुस्तकोंको लेकर श्रीनाहटाजी यही 'एक संकेत' रहा—उन्हें यह रुचिकर नहीं है। तो अपना सौदा बना हुआ न देखकर वह झुंझला उठा। मुझे खादी कपड़ों में, काला चश्मा लगाये, टिपटाप जो देखा, तो समझा—सम्भवतः श्रीअगरचन्द नाहटा यही हैं। इसके पास में बैठा तो कोई अन्य व्यक्ति हो सकता है। अपनी झुँझलाहट और खीजमें आकर उसने कहा, 'देखिए, मैं ये ढेर सारी पुस्तकें आपको नहीं दिखा रहा हूँ—श्री अगरचन्द नाहटाको दिखा रहा हूँ; फिर आप बीच-बीचमें सिर क्यों हिला रहे हैं ?

अब तो मैं बड़े जोरसे हँस पड़ा। मैंने कहा—भाई! तुम जिसे श्री अगरचन्द नाहटा समझे बैठे हो, यह तो मोहनलाल पुरोहित है। श्री अगरचन्द नाहटा तो यही हैं, जो यह पासमें बैठे हुए हैं। बेचारा पुस्तक एजेंण्ट अब क्या कुछ बोलता। उसने पुस्तकें उठाईं, थैला सम्भाला और चुपचाप वहाँसे चल पड़ा।

[तीन]

श्री नाहटाजीकी यह प्रमुख विशेषता रही है—वे सभी साहित्यकारों, कलाकारोंका समान दृष्टि-से सम्मान करते हैं। यह छोटा है या बड़ा, ऐसा भेद-भाव श्री नाहटाजीके यहाँ कहाँ ? जब भी किसी साहित्यकारसे भेंट होगी, फौरन पूछेंगे—क्या कुछ हो रहा है ? और फिर उसे भविष्यके लिए प्रेरित करते रहते हैं। कहने का तात्पर्य यही कि श्री नाहटाजी अपनी ओरसे सभी साहित्यकारोंको प्रेरणा देते ही रहते हैं।

श्री नाहटाजी जितने विशाल और खुले हृदयके हैं, उनका पुस्तकालय [श्री अभय जैन-ग्रन्थालय] भी सभी साहित्यकारोंके लिए समान रूपसे खुला रहता है। कभी भी कोई साहित्यिक-बन्धु चला जाये, वे अपने सभी आवश्यक कार्योंको एक ओर रख उस साहित्यकारको उसकी इच्छित पुस्तक फौरन दिलवाने की व्यवस्था कर देते हैं। कभी ऐसा रहा है—पुस्तकालयके प्रबन्धकको पुस्तकके निकालनेमें विलम्ब हो जाता है तो श्रीअगरचन्दजी नाहटा स्वयं उठकर पुस्तक निकालकर ले आते हैं। पाठकोंको यह पढ़कर हर्ष भी होगा तो ताजुब भी—श्री नाहटाजी साहित्यिक-बन्धुके घर स्वयं जाकर पुस्तक पहुँचा आते हैं! मेरे जीवन में ऐसे अनेकों अवसर आये हैं, जब श्रीनाहटाजी मुझे पुस्तकें घर आकर दे गये हैं। वे यह सहन नहीं कर सकते—एक साहित्यकार पुस्तक-विशेषके अभावमें अपना समय नष्ट करे और साथ-ही प्रतिभाका उपयोग न कर सके।

श्री नाहटाजीको, उनकी विशेष वेष-भूषा देखकर कोई भी व्यक्ति सहजमें अनुमान नहीं कर सकता—यह एक इतना बड़ा साहित्यकार भी हो सकता है। यदि मेरा अनुमान सही है तो मैं कह सकता हूँ कि भारतवर्ष तो क्या विदेशोंमें भी ऐसा एक-आध ही साहित्यकार रहा होगा जो शोध-निबन्ध जैसी गहन-विधाको लेकर श्री नाहटाजीकी समतामें खड़ा होनेका साहस कर सकता हो। श्री नाहटाजी ऐसे एक व्यक्ति हैं जिन्होंने आजतक चार-पाँच हजार निबन्ध लिखकर माँ-सरस्वतीके भण्डारकी श्रीवृद्धि करनेका सौभाग्य प्राप्त किया है। इनकी इस अपूर्व साधना पर जहाँ मरुभूमिको गौरव है, उनके मित्र वर्गको भी—उनपर बहुत बड़ा अभिमान है।

एक बार श्री नाहटाजी मेरे घर पर आये। उस समय तक न तो पत्नी ही उन्हें जानती थी और न बच्चोंका ही उनसे साक्षात्कार हो सका था। सुबहका यही कोई साढ़े आठ—नव बजेका समय था। उन्होंने दरवाजे पर आकर आवाज लगाई, पुरोहितजी हैं क्या ? मेरी बड़ी लड़की (आज वह ३४-३५ वर्ष की है) ने फौरन दरवाजा खोला और पूछा आप कौन ? उत्तर मिला, 'हूँ अगरो।'

मैं उस समय अपने अध्ययन-कक्ष [Study Room] में एक कहानी लिख रहा था। दूसरी मंजिल पर कमरा ऊँचा होनेके कारण बच्चीने बड़े जोरोंकी आवाज लगाई, 'पिताजी! एक आदमी आया है।'

लिखते समय जब किसी लेखक या साहित्यकारको छेड़ा जाये, या उसके लिखनेके कार्यमें विघ्न-बाधा डाली जाये तो ऐसेमें तिलमिलाना और झल्लाना उसका स्वाभाविक कर्म है। मैं भी जरा विचलित हो उठा और वहींसे बैठे-बैठे मैंने पूछा,' कौन है ??? उत्तर मिला, 'हूँ अगरो।' मैं उस समय अपना सन्तुलन ठीक नहीं कर पाया था। अतः उत्तरको ठीक प्रकारसे सुनकर भी मैं सही निर्णयपर नहीं पहुँच सका और दुबारा जोरसे पूछ ही बैठा, 'अगरा कौन ?? और तभी बड़ी संयत और गम्भीर आवाजमें सुनाई दिया, 'हूँ अगरचन्द।'

मैं ऊपरसे भागकर नीचे आया। उन्हें अपनी छातीसे लगाते हुए मैंने कहा, 'नाहटाजी, आपने तो कमाल ही कर दिया !!! इस समय कैसे आनेका कष्ट किया। अब उन्हें अपने कमरेमें ऊपरको ले जाते हुए मैंने पत्नीको और सभी बच्चोंको सम्बोधित करते हुए बताया, 'अरे-यह तो श्रीअगरचन्दजी नाहटा हैं, राजस्थानके ही नहीं, भारतके एक-बहुत बड़े विचारक, साहित्यकार, इतिहासवेत्ता और सबसे बड़े संशोधक हैं।

●

राजस्थानके गौरव एवं विद्वद्रत्न

श्री दे० न० देशबन्धु

श्री अगरचन्दजी नाहटा अपनी महत्तासे प्रशंसित हिन्दी एवं राजस्थानीके मूर्धन्य विद्वान् हैं। बीकानेरके ओसवाल समाजमें प्रतिष्ठित व्यापारी परिवारमें आपका जन्म हुआ। बचपनमें ज्यादा शिक्षा प्राप्त नहीं हो सकी, लेकिन फिर भी अपनी सहज प्रतिभा, कुशाग्र बुद्धि, एवं अथक परिश्रमके बल पर ४० वर्षोंसे साहित्य एवं इतिहास आदि की महान् सेवा कर चुके हैं और इसीमें सदा कार्यरत मिलते हैं।

श्री अगरचन्दजी नाहटा प्रसिद्ध लेखक, समालोचक एवं एक सफल अन्वेषक हैं। आप लेखकके अतिरिक्त अनेक पत्र-पत्रिकाओंके सम्पादक भी हैं। आपने हिन्दी एवं राजस्थानी भाषामें कितने ही नये तथ्य उपस्थित किये हैं जिनका शोध क्षेत्रोंमें अच्छा स्वागत हुआ है। देशके किसी भी कौनेसे आनेवाला शोधार्थी नाहटाजीके सादे जीवन, विनम्र स्वभाव एवं परिपूर्ण सहयोगकी प्रवृत्तिको देखकर निर्भय हो अपनी समस्या उनके सामने रखता है और नाहटाजी उसकी जटिल-से-जटिल समस्या का तुरन्त समाधान कर देते हैं। इस प्रकार देशके विभिन्न विश्वविद्यालयोंसे पी-एच० डी० कर रहे शोध छात्रोंका सही मार्ग दर्शन करते रहनेके कारण आपको शोधके क्षेत्रका महान् पथ-प्रदर्शक होनेका गौरव भी प्राप्त है।

श्रीअगरचन्द नाहटा से मेरा प्रथम परिचय सन् १९६५ में मेरे अभिन्न मित्र श्री दाऊलाल शर्मा के माध्यम से हुआ और तभी से मेरा नाहटाजीसे निरन्तर सम्पर्क बना हुआ है। वह उदार एवं समय-असमयपर अपने हितैषियों एवं मित्रोंके दुःख दर्दमें काम आनेवाले व्यक्ति हैं। उनके यहाँ आते-जाते रहनेके कारण उनकी शिक्षाके क्षेत्रमें उदार वृत्तिका संस्मरण याद आ गया है जिसे लिखे बिना नहीं रहा जा रहा है।

तारीख एवं वार तो मुझे स्मरण नहीं है परन्तु इतना अवश्य याद है कि मैं उनके पास किसी कार्यवश गया था। मैं और श्री नाहटाजी आपसमें वार्तालाप कर ही रहे थे कि एक कालेजका विद्यार्थी उनके पास आकर बड़ा उदास सा बैठ गया। थोड़ी देर बाद नाहटाजीने उससे हाल-चाल और पढ़ाईके सम्बन्धमें पूछा। वह लड़का बड़ा ही दुखी मनसे कह रहा था कि मेरे पिताजीको ४-५ माहसे वेतन नहीं मिल रहा है ऐसी स्थितिमें मैं बिना पुस्तकोंके पढ़ भी कैसे सकूँगा? नाहटाजीने उससे पूछा कि यदि पुस्तकोंका इन्तजाम हो जाये तो तुम्हें आगे पढ़नेमें कोई बाधा तो नहीं होगी। वह बोला-मुझे पुस्तकें उपलब्ध

हो जाये तो मैं अन्य बाधाओंको अकेले ही झेल लूँगा। श्री नाहटाजीने उससे पूछा कि पुस्तकें यहाँ उपलब्ध हो जायेंगी क्या ? कहा कि प्राप्त हो जाएँगी कुछ बाजारसे तथा कुछ सेकेण्ड हैण्ड मिल जाती हैं। नाहटाजीने उससे कहा कि पुस्तकोंके पैसे मुझसे ले जाना और पुस्तकें खरीद लाना और 'अभय जैन ग्रन्थालय' में पंजीकृत कराके अपने नाम लिखाकर पढ़ाई शुरू कर दो। जब पढ़ाई पूरी हो तो पुस्तकें वापस जमा करा देना ताकि यही पुस्तकें अगले वर्ष अन्य किसी छात्रके काम आ जाएँगी। वह बड़ी प्रसन्नताके साथ बिदा हुआ।

देखनेमें तो यह एक छोटी सी बात है परन्तु देशवासियोंको शिक्षित बनानेकी दृष्टिसे देखा जाय तो बहुत ही महत्त्वपूर्ण है।

श्रीयुत नाहटाजी उन इने-गिने व्यक्तियोंमें हैं जिन्होंने भारतीय संस्कृतिकी अमूल्य धरोहर प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थोंको सुरक्षित करके भारतीय संस्कृतिकी महान् सेवा की है। जब आम लोगोंको इस बातका ज्ञान भी नहीं था कि इन ग्रन्थोंका कोई महत्त्व है। मैं स्वयं जब छोटा था उस समयके कई संस्मरण मुझे याद हैं। मेरे पूज्य पिताजी नित्य लीलास्थ गोस्वामी श्रीउद्धवलालजीके संग्रह किये हुए अमूल्य ग्रन्थ अव्यवस्थित रूपसे रखे रहनेके कारण आये दिन टूटते फटते जा रहे थे और मेरी माताजी एवं मेरे बहिन भाई आग जलानेके प्रयोगमें इन्हीं टूटे-फटे पन्नोंका उपयोग किया करते थे। यह स्थिति सिर्फ मेरे ही घरपर हो ऐसा नहीं, वरन् उस समय प्रायः सभी घरोंमें हस्तलिखित ग्रन्थोंकी यही दुर्गति हो रही थी। उस समय श्री अगरचन्दजी नाहटाने प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थोंको संग्रह करके जिस प्रकार सुरक्षित किया है उसके लिए उनका सारा साहित्य जगत् सदा ऋणी रहेगा।

श्री अगरचन्द नाहटाकी आम जनतामें प्रशंसा होती है तो वह स्वाभाविक ही है। किसी भी व्यक्ति की प्रशंसा उसके गुणके आधारपर हो होती है। फिर नाहटाजीकी महत्ता एवं प्रतिभा ही ऐसी है जो कोई भी विद्वान् उनकी विद्वत्ताको देखकर नतमस्तक हुए बिना नहीं रहता।

•

सरस्वतीके वरद-पुत्र : श्रीअगरचन्दजी नाहटा

श्रीमाधव प्रसाद सोनी, एम० ए० रिसर्च स्कालर

श्री अगरचंदजी नाहटाके कृतित्वका परिचय तो मुझे विगत कई वर्षोंसे पत्र-पत्रिकाओंके माध्यमसे था, किन्तु उनके व्यक्तित्वसे परिचित होनेका सौभाग्य मुझे सन् १९६९ में मिला, जब मैं अपनी शोध-सम्बन्धी समस्याओंको लेकर बीकानेर उनके निवासस्थानपर गया। स्मित-हास, जीवनमें उल्लास, प्राचीन और अर्वाचीन समस्त वाङ्मयके प्रति अनुराग, कर्मठ, बोलनेमें संयत और मृदु-भाषी, मां सरस्वती-की आराधनामें लीन यह साधक भारतके उन साहित्य-मनीषियोंमें से है, जिनकी गणना उँगलियोंपर की जा सकती है।

आजसे लगभग ६० वर्ष पूर्व श्री नाहटाजीका जन्म राजस्थानके बीकानेर नगरमें हुआ था। यद्यपि अध्ययन सम्बन्धी सुविधायें आपके अध्ययनकालमें विश्वविद्यालयी स्तरकी उपलब्ध नहीं थीं, किन्तु फिर भी आपके विद्याके संस्कार प्रबल थे। वीर-प्रसवनी धरा राजस्थान और यहाँके रण-बाँकुरोंकी कहानियाँ तथा गौरव-गाथायें अपने पूर्वजोंसे सुनी थीं। फलतः राजस्थानकी संस्कृति और साहित्यने भी आपको

प्रभावित किया । सत्साहित्य आपको जहाँ भी और जिस भी भाषामें मिला, आपने उसका आस्वादन करनेका प्रयास किया । यही कारण है कि आपका प्राकृत, पाली, अपभ्रंश, गुजराती, संस्कृत हिन्दी और राजस्थानी पर असाधारण अधिकार है।

"सादा जीवन और उच्च विचार" की उक्तिको चरितार्थ करनेवाले सौम्य-स्वरूप श्री नाहटाजीको मैंने देखा तो मैं आश्चर्यचकित रह गया । राजस्थानी पगड़ी, बन्द गलेका जोधपुरी कोट, धोती और देशी जूतियाँ यह है आपका पहनावा ।

आपकी साहित्य-साधना और साहित्यानुरागका क्या कहें ? आप द्वारा संचालित आपका "अभय-जैन-ग्रंथालय" बेजोड़ ग्रन्थालयोंमें से है, जिसमें गुण और परिमाण दोनों ही दृष्टियोंसे देखनेपर साहित्यका वैविध्य मिलता है । जिस प्रकार जैन-यतियोंने अपने उपाश्रयोंमें साहित्यको सम्हाला, उसका पोषण तथ संवर्धन किया, वैसी ही प्रवृत्ति आपकी भी है । एक ओर जहां आप ग्रन्थालयमें आये शोध-विद्वानोंकी समस्याओंका समाधान करते हैं, वहाँ दूसरी ओर आप वहीं बैठकर ढेर सारे पत्रोंका प्रतिदिन उत्तर देकर साहित्य-तृषितोंको तृप्त भी करते हैं । नाहटाजीके जीवन और साहित्य-साधनाका यदि सही रूपसे आकलन किया जाये तो उनका व्यक्तित्व और कृतित्व अलगसे एक शोध-प्रबन्धका विषय बन सकता है ।

श्रीनाहटाजीका जीवन और साहित्य दोनों ही बहुमुखी रहे हैं । एक ओर जहाँ अनेक पत्र-पत्रिकाओं में हजारों लेख लिखकर आपने प्राचीन तथा अर्वाचीन विशाल राजस्थानी साहित्यको प्रकाशमें लानेका अथक प्रयास किया है, वहाँ दूसरी ओर आपकी शोधकी पैनी दृष्टि तथा सम्पादन कार्यमें कुशाग्रता दिखाई देती है । राजस्थान ही नहीं वरन् भारत का ऐसा कोई प्राचीन पुस्तक-भंडार शायद ही शेष रहा हो जिसका अवलोकन आपने न किया हो । आपने व्यक्तिगत रूपसे तथा सह-सम्पादकके रूपमें अनेक प्राचीन ग्रन्थोंका संपादन किया है, जिनमें प्रमुख हैं : सीताराम चौपई, जिनहर्ष ग्रन्थावली, धर्मवर्द्धन ग्रंथावली, पीरदान लालस-ग्रन्थावली, छिताई-चरित्र, क्यामखांरासा और भक्तमाल आदि ।

शोध-कार्यमें व्यक्तिगत रुचि लेकर शोध-सम्बन्धी तथ्योंको प्रकाशमें लानेके लिए भरसक चेष्टा करते हैं और शोधार्थियोंसे पूर्ण आत्मीयता रखते हुए उन्हें दिशा-संकेत देकर उनका मार्ग प्रशस्त करते हैं । आप द्वारा लिखे गये लेख चुस्त, छोटे तथा तथ्यपरक अधिक होते हैं और उनमें अनावश्यक सामग्रीके लिए कोई स्थान नहीं होता । 'साहित्यकारकी कृतिमें उसका व्यक्तित्व झाँकता है' के अनुसार आपके लेखोंको पढ़कर कोई भी जानकार यह सहज ही पता लगा लेता है कि अमुक लेख नाहटाजी द्वारा लिखित है ।

साहित्यके चयनमें समाज, धर्म, जाति आदिकी संकीर्णताओंसे ऊपर उठकर जहाँ भी और जब भी किसी साहित्यमें आपको नवीनता दिखाई दी आपने उसे आदर दिया और अपने ग्रन्थालयमें उसकी पाण्डुलिपियाँ मँगवाने का प्रयास किया । आपके अभय-जैन-ग्रन्थालयमें जहाँ एक ओर जैन साहित्य और जैन-दर्शनके अलभ्य और पुरातन ग्रन्थ मौजूद हैं, वहाँ दूसरी ओर चारण साहित्य, इतिहास, दर्शन, धर्म, जीवनियाँ आदि से सम्बन्धित ग्रन्थ भी पर्याप्त मात्रामें हैं । देशके विभिन्न भागोंसे आने वाली सभी पत्र-पत्रिकायें अपने पुराने और दुर्लभ अंकों सहित आपके यहाँ मौजूद हैं । लगभग ३५,००० हजार पांडुलिपियोका संग्रह आपके यहाँ है । किसी भी विश्वविद्यालयका कोई भी शोध-विद्वान् आपके यहाँ आकर इन पुस्तकोंका लाभ ले सकता है । मेरा तो यह दावा है कि एक बार आपके संपर्कमें आ जाने पर कौन ऐसा व्यक्ति होगा जो आपके गहन पाण्डित्यसे प्रभावित न हो ।

माँ सरस्वतीकी साधनामें रत श्रीअगरचन्दजी नाहटाके इस अभिनन्दन-पर्व पर मैं आपका हार्दिक

अभिनन्दन करता हूँ और आपके शतायु होनेकी कामना करता हूँ। प्रभु आपको और अधिक बल दे, जिससे शेष आयुमें भी आप साधनामें लगकर विभिन्न ग्रन्थ-रत्नोंकी खोज तथा सम्पादन कर माँ सरस्वतीका शृंगार कर सकें।

●

भारतीयविद्याविदों (Indologists) में श्रीअगरचन्द नाहटाका स्थान

डा० आनन्दमङ्गल बाजपेयी

भारतीयविद्या (Indology) ने विदेशोंमें प्रभूत ख्याति अर्जित की हैं। जर्मनी, इग्लैंड, फ्रांस, अमेरिका आदि देशोंके विद्वानोंने बहुत श्रमपूर्वक भारतीयविद्याका अध्ययन किया और प्राप्त सामग्रीके आधार पर विविध ग्रंथ लिखे। उन पाश्चात्य विद्वानोंके कार्यसे ही यहाँके विद्वानोंका ध्यान इस ओर आकृष्ट हुआ। आज संसारमें शेक्सपियर और कालिदासकी काव्यगत तुलना की जाने लगी है। गान्धार कलामें एशियाकी सांस्कृतिक चेतनाका मूल्यांकन होने लगा है। वैदिक भाषा और हिब्रूमें मूल भारोपीय भाषाका विकास लक्षित किया जाने लगा है। एशियाके सुन्दर देशोंके मठ-मन्दिरोंकी रचना-पद्धतिमें बौद्ध प्रतीक खोजे जाने लगे हैं और जैनदर्शनके विज्ञानवादका आजके यूरोपीय विज्ञानके परिप्रेक्ष्यमें अध्ययन होने लगा है। यह सब भारतीय विद्याके अध्ययन विवेचनका परिणाम है।

किन्तु, इसका श्रेय पाश्चात्य विद्वानोंको ही नहीं है। भारतीय विद्वानों और मनीषियोंके सतत अध्यवसायका फल इसे मानना चाहिए। स्वामी विवेकानन्द, डॉ० राधाकृष्णन, डॉ० काशीप्रसाद जायसवाल, डॉ० पी० वी० कणे, डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल, प्रो० कृष्णदत्त बाजपेयी, श्रीअगरचन्द नाहटा प्रभृति विद्वान् तत्त्ववेत्ताओंने भारतीय विद्याके विविध पक्षों पर प्रकाश डाला है। इसी सन्दर्भमें श्रीअगरचंद नाहटाके कार्यका किंचित् निभालन प्रस्तुत करना यहाँ अभीप्सित है।

पाश्चात्य विद्वानोंने भारतीय विद्याके क्षेत्रमें जो कार्य किया है, उसका अपना ऐतिहासिक महत्त्व है। अंग्रेज यहाँ शासक बनकर आये थे। यहाँके धन-वैभव पर उन्होंने अपना अस्तित्व जमाया। साथ ही, यहाँके भाषा, जाति, धर्म, सांस्कृतिक चेतना, कला और साहित्यको अत्यन्त हीन एवं निकृष्ट सिद्ध करने हेतु इस सबका ज्ञान प्राप्त किया। उनकी मूल भावना यह थी कि पराजित भारतीय जातिमें प्रगतिशीलता नहीं है, इसी कारण वह शताब्दियोंसे परास्त एवं परतन्त्र बनी रही है। वे विद्वान साधन-सम्पन्न थे और उनमें अपने देश तथा अपनी यूरोपीय संस्कृति को संसारके सम्मुख गौरवपूर्ण सिद्ध करनेकी सच्ची लगन थी। संस्कृत-प्राकृत आदि भाषाएँ न जानते हुए भी वे भारतीय पण्डितोंकी सहायतासे प्राचीन शिलालेख, ताम्रपत्र आदि पढ़कर अपना नाम रोशन करना भलीभाँति जानते थे। उन्होंने अंग्रेजी भाषाके माध्यमसे भारतीयविद्या कुछ सही, कुछ गलत रूपमें संसारके सामने प्रकाशित की। शासकीय भाषाके माध्यमसे जो भी प्रकाशित होता था, उसकी प्रामाणिकता उन दिनों स्वतः सिद्ध थी। परिणामतः हमने उनकी बात पर विश्वास करके आत्मविश्वास खो दिया। अपने धर्मको रूढ़िग्रस्त समझा, अपनी भाषाको (संस्कृतको) Dead Language मृतभाषा मान लिया, वैदिक ऋषियोंको पशुचारणयुग (Pastoral Age) का चरवाहा समझ लिया और अपनी कलाकृतियाँ लंदन म्यूजियममें रखवा दीं। कुछ विद्वानों जैसे मैक्समूलर, पिशेल प्रभृतिने अंग्रेज

इतिहासकारोंकी भारतीय विद्या विषयक भ्रान्त मान्यताओंका खण्डन भी किया किन्तु तब हमारा स्वाभिमान खो गया था। हम अपने भारतको अपनी दृष्टिसे नहीं अल्बेरूनी, टाड, कनिंघम और प्लाटकी दृष्टिसे देखनेमें गर्व अनुभव कर रहे थे। फलतः अपनी सांस्कृतिक, कलात्मक एवं शैक्षणिक परंपराएँ हमने खो दीं। दूसरेके संकेतपर हमने अपनी मणियाँ लुटा दीं और दूसरेका कांच बटोरते फिर रहे हैं।

फिर भी, बीसवीं शतीमें भारतीय नवजागरण हुआ और यहाँके मनीषियोंने उसे समझा। भारतीय विद्याकी व्याख्या उन्होंने नए सिरेसे, नए ढंगसे, नए ही रूपमें संसारके समक्ष रखी। स्वामी विवेकानन्द तथा डॉ० राधाकृष्णन जैसे मनीषियोंने भारतके प्राचीन दर्शनकी महत्ता प्रतिपादित की। पश्चिमी देशोंमें जाकर उन्होंने भौतिकतासे दृप्त अहंकारी जातियोंको बतलाया कि भारतीय दर्शन एक शक्तिशाली जीवन एवं प्रबुद्ध जातिका दर्शन है, उसमें संसारके समस्त प्राणियोंके लिए अपार करुणा है, कोटि-कोटि प्राणियोंको शाश्वत शान्तिका संदेश देनेकी क्षमता है।

प्रजातन्त्र, गणतन्त्र, साम्यवाद आदि शासन-प्रणालियोंको अद्यतन माननेकी पश्चिमी प्रवृत्तिकी विडंबना डॉ० काशीप्रसाद जायसवाल तथा श्रीपाद अमृत डाँगेने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थों (हिन्दू पॉलिटी, भारत ....साम्यसंघ.....) में की है। भारतके प्राचीन मालव-कठ आदि गणों और गणसंघोंका प्रामाणिक विवेचन डॉ० जायसवालने Hindu Polity में खूब विस्तारसे किया है। श्री डाँगेने वैदिक युगमें साम्यसंघकी स्थितिका परिचय दिया है।

इसी प्रकार डॉ० पी. वी. कणेने 'हिन्दू धर्मशास्त्र' लिखकर लोगोंका ध्यान इस ओर आकृष्ट किया कि हमारा धर्म रूढ़िग्रस्त नहीं रहा है। समयके अनुसार उसमें अपेक्षित परिवर्तन होते रहे हैं। ग्रन्थके 'कलिवर्ज्य' प्रकरण में यह विवेचन देखा जा सकता है। इसके अतिरिक्त भारत की प्राचीन मूर्तिकला, चित्र-कला, स्थापत्यकला, संगीत कला आदि की ओर भी विद्वानों ने ध्यान आकृष्ट किया। डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल, डॉ० मोतीचन्द्र, डॉ० भगवतशरण उपाध्याय, आनन्दकुमार स्वामी, प्रो० कृष्णदत्त वाजपेयी प्रभृति विद्वानों और पुरातत्त्वविदोंने अपने ग्रन्थोंमें भारतीय पुरातत्त्वके संदर्भमें जिन तथ्योंका प्रतिपादन किया, उनसे भारतीय सभ्यताकी उन्नति और गुरुता सिद्ध हुई और संसारके अन्य देशोंसे भी, यहाँ की उन्नत संस्कृति एवं कलाका परिचय पाने हेतु विद्यार्थी आने लगे। आज भारतके विश्वविद्यालयोंमें सैकड़ों पश्चिमी देशवासी छात्र Indology (भारतीय विद्या) विषयमें अनुसंधान कार्य कर रहे हैं।

खेदके साथ कहना पड़ता है कि हमारी जिस उन्नत प्राचीन संस्कृतिको विदेशी छात्र अधिकसे अधिक समझ लेनेकी चेष्टा कर रहे हैं, हम उसके ज्ञानसे अछूते हैं। न हम अपनी प्राचीन भाषाओंसे परिचित हैं, न कलासे। हमारे प्राचीन ग्रन्थ हैं, हमारे मठ-मन्दिर, स्तूप और उपाश्रय हैं, हमारे देवी-देवताओंकी मूर्तियाँ हैं, फिर भी हम उन सबसे अपरिचित हैं। विदेशी लेखक हमें उनके बारेमें बताएँ, यह कितनी लज्जाकी बात है। उक्त भारतीय विद्वानोंने अपने ग्रन्थोंके माध्यमसे हम भारतीयोंको आत्मपरिज्ञान कराया है। **राजस्थानके प्रसिद्ध भारतीय विद्याविद् श्री अगरचन्द नाहटा भी इसी श्रेणीके विद्वान् हैं। उनका कर्तृत्व भारतीय विद्या का स्वाभिमानपूर्ण वैज्ञानिक व्याख्या प्रस्तुत करता है।**

अपने बचपनसे ही मैं देखता आ रहा हूँ कि भारतकी सभी प्रसिद्ध पत्रिकाओंमें अगरचन्द नाहटाके प्रशस्त लेख प्रकाशित होते रहे हैं। हिंदी और संस्कृतके विद्वान् लेखकोंने अपने ग्रन्थोंमें कला, साहित्य, संस्कृति, दर्शन आदि विषयोंके विवेचन-संदर्भमें श्रीनाहटाजीका सादर उल्लेख किया है। राजस्थान साहित्यकी गद्य-पद्य विधाओं, लोकसाहित्य तथा लोककलाओंका रूपविकास नाहटाजीने अनेकों लेखों तथा

ग्रन्थोंके माध्यमसे प्रस्तुत किया है। हिंदीके विद्वान् 'डिंगल' काव्यकी रूढ़ियों और रचनागत विशिष्टताओंके विषयमें निर्भ्रान्त नहीं थे। नाहटाजीने उस भ्रांतिका मूलोच्छेदन कर दिया है और आजके राजस्थानी साहित्यका प्राचीन साहित्यसे संबंध दिखलाकर परम्परा का निर्धारण भी किया है।

राजस्थानसे जैन-दर्शन कला एवं साहित्यका प्राचीन एवं मध्यकालमें खूब विकास हुआ परन्तु उसके विषयमें अभी तक प्रामाणिक सामग्री का अभाव था। श्री अगरचन्द नाहटाने प्राचीन जैन-साहित्यको प्रकाशित कर इस अभावकी पूर्ति की। उन्होंने इसी संदर्भमें 'जिनराजसूरिकृति कुसुमांजलि', 'सीताराम चौपाई', 'जिनहर्षग्रन्थावली' आदि ग्रन्थरत्नोंका संपादन किया है। जैन-मतका जो प्रभाव राजस्थानी कला एवं साहित्यपर पड़ा, उसका सही मूल्यांकन उन्होंने किया है[1]।

श्री अगरचन्द नाहटा भारतीय विद्याके व्याख्याता और प्रकाशक ही नहीं उसके अद्वितीय संकलन-कर्ता भी हैं। प्राचीन साहित्यकी संस्कृत, प्राकृत, पाली, अपभ्रंश जैनमागधी, गुजराती, राजस्थानी, ब्रजभाषा आदि भाषाओंमें हस्तलिखित प्रतियोंका जैसा प्रामाणिक संकलन श्री नाहटाजीके पास उपलब्ध है वैसा भारतके दो-एक विद्वानोंके पास ही मिल सकता है। दो वर्ष पूर्व मैंने 'भारतीय अङ्गविद्या' पर कुछ लिखनेकी बालसुलभ चेष्टा की थी। तदर्थ मैंने श्रद्धेय प्रो० कृष्णदत्त वाजपेयीसे निवेदन किया था और निर्देशन माँगा था। उन्होंने इस संदर्भमें श्रीनाहटाका उल्लेख करते हुए मुझे जो पत्र लिखा था, वह इस प्रकार है—

प्रिय वाजपेयी जी,

सागर विश्वविद्यालय

नमस्कार

दि० जु० २३, १९६९

आपका ८-३-६९ का पत्र यथा समय मिला था। यह जान कर प्रसन्नता हुई कि आपने 'अंगविज्जा' ग्रन्थका अध्ययन किया है तथा उसके अनुवादमें आपकी रुचि है। मेरे विचारसे इस ग्रन्थ तथा तद्-विषयक अन्य साहित्यके आधारपर आप हिन्दीमें 'भारतीय अंगविद्या' शीर्षक नया ग्रन्थ लिखें....—आपको इस विषयका साहित्य बीकानेरमें श्री अगरचंद नाहटाके पुस्तकालयमें तथा जोधपुरके प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान-में प्राप्त हो सकेगा।

भवदीय

ह० कृष्णदत्त वाजपेयी

प्राचार्य तथा अध्यक्ष

प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति

तथा पुरातत्त्व विभाग, सागर विश्वविद्यालय

किन्हीं कारणोंसे मैं उस कार्यसे विरत रहा किन्तु पूज्य वाजपेयीजीके पत्रसे सहज ही ज्ञात होता है कि श्री अगरचन्द नाहटाका हस्तलेखागार कितना मूल्यवान है। 'राजस्थानी हस्तलिखित ग्रन्थोंका विवरण' नामक ग्रन्थमें श्री नाहटाजीने काफी ग्रन्थों का परिचय भी दिया है। अच्छा हो, अपने पास रखे सभी ग्रन्थोंका ऐसा ही विवरण वे प्रस्तुत करें, जिससे लोग लाभान्वित हो सकें।

श्री नाहटाजी भारतकी प्राचीन भाषाओं संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश आदिके प्रकाण्ड विद्वान् हैं।

---

१. ये तीनों ग्रन्थ श्री शार्दूल शोध संस्थान बीकानेरसे प्रकाशित हुए हैं।

ग्रन्थ-संपादन एवं पाठशोधके क्षेत्रमें उन्होंने नवीन दिशानिर्देश किया है और राजस्थानअंचलके दार्शनिक, धार्मिक, कलात्मक एवं लोकसाहित्यपरक ग्रन्थों का उद्धार कर उन्होंने भारतीयविद्याके प्रकाशनमें अभूतपूर्व योग दिया है।

मैं ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि वह ऐसे महान् साहित्यसेवी एवं भारतीयविद्याविद् श्रीअगरचंद नाहटा को दीर्घायु प्रदान करे।

●

नाहटाजीका अभिनन्दन

जैन साप्ताहिक, वर्ष ६८ अंक २२

कोई व्यक्ति जन्मसे वणिक् व्यवसायके साथ व्यापारी होते हुए भी जीवनपर्यन्त विद्यासेवी हो, ऐसा सुयोग बहुत ही कम देखनेमें आता है। इसपर भी अर्थपरायण और निरन्तर व्यापार-परायण जैन-गृहस्थ वर्गमेंसे धार्मिक एवं अन्य प्राचीन साहित्य और भाषाके अध्ययन, संशोधनको जीवन-व्रत बनाकर निष्ठापूर्वक इसमें निमग्न हो जानेवाले व्यक्ति तो बहुत ही विरले दृष्टिगत होते हैं। राजस्थान और जैन-समाजमें सुप्रसिद्ध विद्वान् श्रीयुत अगरचन्द नाहटा इसी प्रकारके एक विरल व्यक्ति हैं, जिसकी सतत विद्या-साधना अन्य लोगोंके लिये प्रेरणादायक उदाहरण-स्वरूप बनकर हर एक का प्रशंसा-पात्र बनने योग्य है।

जैन-संघका विरासती ज्ञान, इसके प्राचीन एवं अर्वाचीन ज्ञानभण्डारों द्वारा संगृहीत हस्तलिखित प्रतियों में सुरक्षित है यह बात सर्वविदित है। जिस प्रकारसे इन समृद्ध ग्रन्थसंग्रहोंमें जैन एवं जैनधर्मके समस्त मतों (फिरकों)का धर्म-साहित्य सुरक्षित रखा गया है उसी प्रकारसे अन्य धर्मोंका एवं सामान्य किंवा सर्वग्राही विद्याओंकी समस्त शाखाओंका संस्कृत, प्राकृत एवं अन्य लोक-भाषाओंमें रचे गये साहित्यको भी प्रचुर मात्रामें सुरक्षित रखा गया है।

क्रियाके आचरणके समान ही ज्ञानकी साधनाको भी जैन-धर्ममें जीवन-साधनाका एक अनिवार्य अंग होने के कारण इसे आत्म-साधनामें प्रथम स्थान देकर साहित्य सृजन एवं रक्षणको धार्मिक कर्तव्यके समान ही महत्त्व दिया गया है। यही कारण है कि स्थान-स्थान पर जैन-भण्डारोंकी स्थापनाएँ की गईं और समस्त विद्याओंकी पुस्तकोंकी रक्षा करना एक श्लाघनीय परम्परा, प्राचीन कालसे ही जैन संघमें चली आ रही है। इस प्रकारसे जैनसंघने समस्त भारतीय साहित्यकी और भारतीय साहित्यके ही एक अंग-स्वरूप जैन-साहित्य की रक्षार्थ जो लगन व्यक्त की है, उसकी अपने देशके महत्त्वपूर्ण तथा अन्य देशोंके विद्वानोंने मुक्तकण्ठसे प्रशंसा की है।

इतना होते हुए भी मध्ययुगमें और विशेषकर जबसे अपने देशमें अंग्रेजी राज्यकी स्थापना हुई उससे पूर्व के वर्षोंमें एवं अंग्रेजी शासन-कालके प्रारम्भिक समयमें भी हमारी लापरवाही एवं हमारे अज्ञानके कारण स्थान-स्थानपर हजारों ही हस्तलिखित प्रतियाँ दीमक, वर्षा किंवा सुरक्षा की समुचित व्यवस्थाके अभावके कारण नष्ट हो गईं। अनेकों हस्तलिखित-ग्रन्थ हमारे अज्ञानके कारण विदेश चले गये। इस

प्रकारसे हमारी साहित्य-निधि हमारे हाथोंमें से पर्याप्त संख्या में चली गई। वर्तमानमें भी हमारे अनेकों हस्तलिखित ग्रन्थ-भण्डार असुरक्षित एवं उपेक्षित स्थितिमें ही पड़े हैं।

हमारी साहित्य-सम्पत्तिको इस प्रकार की उपेक्षित स्थितिमें जिन व्यक्तियोंने इन हमारे ज्ञान-भण्डारों एवं हस्तलिखित ग्रन्थोंकी रक्षा करनेके कार्यमें अग्रगण्य भाग लिया है उन्होंने धर्मसंघ और साहित्य रक्षा-कर हमारे ऊपर अत्यन्त उपकार किया है। इस दिशामें श्री नाहटाजीने जो विशेष रुचि दिखाई है और हमारी साहित्यविरासतको सुरक्षित रखनेका जो कष्ट उठाया है, उसके लिये वे धन्यवादके पात्र हैं। श्री नाहटाजीने साहित्य-संशोधन एवं साहित्य-सृजनके क्षेत्रमें जो कार्य किया है, वह यदि नहीं किया गया होता और मात्र प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थों की रक्षा हेतु जो कार्य किया है उतना ही करते तो भी यह निस्संकोच कहा जा सकता है कि इनकी सरस्वती-सेवा सदैव स्मरणीय ही बनी रहती। इनके सतत प्रयत्न से कितनी ही हस्तलिखित प्रतियाँ सुरक्षित रहकर विद्वानोंके लिये सुलभ हो सकी हैं।

श्री नाहटाजीकी विद्या-साधनाके कार्यकलापपर विचार करते हैं तो ऐसा प्रतीत होता है कि विद्यालय, महाविद्यालयका विशेष अध्ययन किये बिना ही एक निष्ठावान विद्या-सेवी बननेकी इनमें क्षमता रही है। यश-कीर्ति पूर्ण सफलता प्रदान करा दे ऐसी विद्यारुचि, सूझबूझ एवं कार्यनिष्ठा तो मानों आपको बचपनसे ही पुरस्कारस्वरूप प्राप्त थी जिसका आप, उत्तरोत्तर अधिकाधिक लाभ लेकर अपने विकास-की साधना करते हुए भी आप अपनी ६० वर्षकी वृद्ध आयुमें भी इसे (साधना को) अखण्डरूपसे चालू रखे हुए हैं, यह प्रसन्नता की बात है। जब कभी भी देखा जाय तो आप हस्तलिखित प्रतियोंकी खोज करने, इनकी सुरक्षा करनेमें ही लगे मिलते हैं। आप संशोधित एवं सम्पादित तथा प्रकाशित धार्मिक, सामाजिक लेख लिखने अथवा विद्यार्थियों एवं शोधकार्य करनेवाले तथा जिज्ञासुओंको मार्ग-दर्शन किंवा सहायता हेतु उन्हें आवश्यक सामग्री देनेके कार्यमें सदैव लगे हुए ही मिलते हैं। यह है आपके विद्यानुरागके भाव। इस हेतु व्यक्त की जा रही आपकी इस प्रकार की उत्कट प्रवृत्ति, आदर्श एवं श्लाघनीय है।

श्री नाहटाजीका परिपक्व विद्यानुराग न होता तो एक व्यापारीके रूपमें ये लक्ष्मीके रंगमें रंगे जाकर विद्यानुरागके दुर्गम-क्षेत्रको कभीका छोड़ देते। व्यापार चलानेके लिये ये सुदूर आसाम प्रदेशमें जा बसे और वर्षों तक वहां रहे थे। किन्तु आपके अन्तरमें विद्याकी ओर गहरे अनुरागका एक ऐसा स्रोत बह रहा था कि जो व्यापार-सम्पादन करते हुए मुरझाने की अपेक्षा सतत प्रवाहित होता रहा। इतना ही नहीं, जैसे-जैसे समय व्यतीत होता गया वैसे-वैसे ही आपके हृदयमें व्यापार-वृत्ति कम होती गई और विद्या-नुरागकी भावना दिनोंदिन ऐसी प्रबल होती गई कि अन्तमें आपने इसे अपने जीवन का ध्येय ही बना लिया। श्री नाहटाजी एक सुप्रसिद्ध विद्वान्के रूपमें जो गौरव प्राप्त कर सके, इसका कारण यही है।

श्री नाहटाजीने अनेकों प्राचीन ग्रन्थोंका संशोधन एवं सम्पादन कर उनका उद्धार किया है। इसके उपरान्त भी आपने जैनसंस्कृति और इतिहासके अनेक प्रसंगोंपर प्रकाश डालते हुए साहित्यका सृजन किया है। प्राचीन साहित्य सम्बन्धी सामग्रीका संग्रह करनेकी आपकी प्रवृत्तिके कारण ही बहुमूल्य साहित्य सुरक्षित रह पाया है। यह सब आपके विद्यानुरागका ही परिणाम है।

श्री नाहटाजीकी विद्योपासनाकी एक अन्य विशेषता भी है जिसका यहाँ वर्णन कर देना उचित होगा। प्राचीन साहित्य और कला का संशोधन, सम्पादन-प्रकाशन किंवा संरक्षण मर्यादित होता है और जनो-पयोगी लेखन-प्रवृत्ति तक यह भाग्य से ही विस्तृत हो सकता है। किन्तु, श्री नाहटाजीकी बात अलग है। आप, समस्त मत-मतान्तरों वाले जैनसंघोंको स्पर्श करते हुए धार्मिक, सामाजिक किंवा शिक्षण-साहित्य

विषयक वर्तमान प्रश्नोंको समझकर उनका निराकरण कर सकते हैं। जैनसंघके समस्त मत (पंथ) जो लेखक आदरपूर्वक अपनाते हों, इस प्रकारके लेखक हमारेमें कितने हैं ? श्री नाहटाजी ऐसे ही लेखक हैं। यह इनकी अनोखी विशेषता है। इसके उपरान्त जैनेतर जनताके लिए भी आपने अगणित लेख लिखे हैं। आपसे लेख माँगते ही वह तुरन्त मिल जाता है। श्री नाहटाजी इस प्रकारसे एक सिद्धहस्त लेखक हैं।

एक विद्याव्यसनीके अनुरूप ही आपका धर्ममय जीवन है। श्री नाहटाजीकी विद्या-साधनाको श्रद्धा-सुमन अर्पित करते हुए आपकी तन्दुरुस्ती और दीर्घजीवनकी हम कामना करते हैं। हमारी आन्तरिक यही शुभेच्छा है कि आप अपने सत्कार्य द्वारा विशेष यशस्वी बनें।



नाहटाजीके सान्निध्यमें

डॉ० सत्यनारायण स्वामी

[१]

कौन व्यक्ति कितना प्रशंसनीय है, अभिनन्दनीय है, यह उसके उन शब्दोंसे जाना जा सकता है, जिनसे कि वह दूसरोंकी प्रशंसा करता है। यह बात मेरे मनमें उस समय घर कर गई थी, जब एक दिन श्री अगरचन्दजी नाहटाने वाराणसीमें डॉक्टर वासुदेवशरण अग्रवालका परिचय देते हुए भावविभोर होकर मुझे बतलाया था—डॉक्टर साहब प्राचीन भारतीय ऋषिके नवीन संस्करण हैं। पाणिनिवादके प्रवर्तक डॉक्टर साहबकी अप्रतिम विद्वत्ता और उनके ऋषिकल्प जीवनपर भला किसे संदेह हो सकता है ? मैंने डॉक्टर साहबको प्रणाम कर उनका आशीर्वाद प्राप्त किया। मैंने देखा—कुशलक्षेम की सामान्य बातोंके बाद श्री नाहटाजी और अग्रवाल साहब अपनी साहित्यिक चर्चामें जुट गये थे। एक दूसरे को पाकर दोनों हर्ष-विह्वल थे, आनन्दका पार न था। और मेरा मन कह रहा था—ऋषि एक नहीं, दो हैं, डॉक्टर साहब भी और नाहटाजी भी। डॉक्टर साहब नाहटाजीकी साहित्यसेवाकी भूरि-भूरि प्रशंसा कर रहे थे। मेरे जीवनके धन्य क्षणोंमें वे क्षण चिरस्मरणीय रहेंगे। यह बात है दिनांक ९-३-१९६५ ई० की।

[२]

पूज्य नाहटाजीसे मेरा परिचय बड़ी विचित्र स्थितिमें हुआ था। सन् १९६०में मैंने अपने बी० ए० के एक साथी श्रीउदयलाल नागोरीके हाथमें एक बार अभयजैन ग्रन्थालयकी एक पुस्तक देखी। पुस्तक मेरे भी कामकी थी। श्री नागोरीने उसकी दूसरी प्रति उसी पुस्तकालयमें होनेकी सूचना दी। मैंने उस पुस्तकालयके सम्बन्ध में अपनी अनभिज्ञता व्यक्त की तो उन्हें आश्चर्य हुआ—अरे, बीकानेरमें रहकर अगरचन्दजी नाहटाका पुस्तकालय नहीं जानते ! और उनने स्वयं साथ चलकर मुझे वह 'ग्रन्थालय' बत-लाया। नाहटाजी उस समय पुस्तकालयसे बाहर गए हुए थे। निराश होकर हमें लौटना पड़ा। नाहटाजी-का नाम तो इससे पूर्व अनेक पत्र-पत्रिकाओंमें देख चुका था। 'कल्याण'में प्रकाशित उनके आध्यात्मिक लेखोंसे भी मैं प्रभावित था। उनके दर्शन करनेकी लालसा बहुत दिनोंसे थी ही, अब मौका भी मिल

गया। दूसरे दिन दोपहरके समय फिर उनके ग्रन्थालय पहुँचा। वे कुछ लिख पढ़ रहे थे। उनके तनपर मात्र एक धोती थी और उसको भी उन्होंने लंगोटा बना रखा था। इसपर भी हालत यह कि पंखेके नीचे बैठे-बैठे नाहटाजी पसीनेसे तर हो रहे थे। इधर-उधर पुस्तकें बिखर रही थीं। मनने गवाही नहीं दी कि ये नाहटाजी हो हैं। सोचा–होंगे उनके कोई कर्मचारी! उन्हींसे पूछ बैठा नाहटाजी कब मिल सकेंगे? उत्तर था–'बोलो, हूँ ई इं 'अगरचन्दकठै-सूं पधारणों हुयो' आप-रो? विस्मयको एकबारगी दबाकर मैंने उन्हें अपना परिचय दिया। और अपने आने का प्रयोजन बतलाने लगा। साथ ही साथ मैं उनके भव्य व्यक्तित्व के अंतरंग और बहिरंगका दर्शन लाभ भी लिये जा रहा था। मुझे विद्यार्थी जानकर उन्होंने अपना आवश्यक काम थोड़ी देर के लिए छोड़ दिया और देखते-देखते मेरी रुचि और उपयोगकी सामग्रीका मेरे आगे ढेर लगा दिया। उन्हें राजस्थानी में बोलते देख मैं भी उसी भाषा में बात करने लगा। अपनी अभिलषित पुस्तकको घर ले जानेकी इच्छा हुई तो उनसे पुस्तकालयके नियम पूछे। बोले–"आपणी घरू लाइब्रेरी है। दिनूगें छत्र-सूं लेयर रात-री दस बजी ताईं खुली राखा हां। थे कणै ई आ सको हो। रैयी बात फीस-री सौ अठै-री फीस मात्र विद्या-प्रेम है।" फिर मुझे घरपर पढ़नेके लिए उन्होंने विना किसी झिझकके सीताराम चतुर्वेदी संपादित कालिदास-ग्रन्थावली जैसा बृहत्काय ग्रन्थ दे दिया। और यों, पहली ही भेंटमें पूज्य नाहटाजीने मुझे अपना लिया था। उनके सौजन्यने मुझे मंत्रमुग्ध कर लिया। कुछ दिन तो खाली समयमें, दिन और रातको, नाहटाजी और अभय जैन ग्रंथालय का ही ध्यान बना रहता। इस बीच बी० ए० की परीक्षा समाप्त हो चुकी थी और गर्मी की छुट्टियाँ प्रारम्भ हो गयी थीं।

[३]

छुट्टियोंके दिनों में तो मैं प्रातः छः बजे ही नाहटाजीके ग्रंथालयमें पहुँच जाया करता था। नाहटाजीका सामीप्य अब अधिकाधिक मिलने लगा। इस प्रकार मुझे उनकी दिनचर्याको निकटसे देखनेका सौभाग्य मिला। उन दिनों नाहटाजी प्रातः साढ़े पाँच बजे उठते और शौचादिसे निवृत्त हो छः बजे पुस्तकालय पहुँच जाते। नाहटाजीका मकान और पुस्तकालय दोनों पास-पास हो हैं। लगभग साढ़े आठ बजे तक उनका सामायिक-स्वाध्याय चलता, जिसमें अधिकांशतः डाकमें आई नयी पुस्तकों और पत्र-पत्रिकाओंका पठन ही प्रमुख था। तत्पश्चात् घर जाकर स्नान आदिसे निवृत्त हो वे देव-वंदनार्थ मंदिर जाते। उसी समय यदि कहीं किन्हीं विशिष्ट जैन साधु-साध्वियोंका प्रवचन होता तो वहाँ जाते अन्यथा नाश्तेके रूपमें लगभग आधा सेर दूध लेकर नौ-साढ़े नौ बजे तक फिर पुस्तकालयमें आते और अपने लेखन-कार्य में जुट जाते। संदर्भ के लिए बीस-पचीस पुस्तकें तो उनके आसपास अवश्य ही रहती थीं। ग्यारह-साढ़े ग्यारह बजे वे खाना खाने जाते और बारह बजेके लगभग वे फिर पुस्तकालयमें ही होते। कोई शोधार्थी आया हुआ होता तो उसे उसके विषय संबंधी जानकारी और सामग्री सबसे पहले देकर फिरसे अपने काममें जुट जाते। हस्तलिपि अच्छी नहीं होनेसे कभी कोई कर्मचारी होता तो उसे बोल-बोलकर अपना लेखन कार्य कराते या फिर वे स्वयं ही लिख लिया करते थे। इसी समय में यदि कोई अध्ययन और लेखनसे भी अधिक बजनी काम हो जाता तो उसे भी निपटा आते, अन्यथा दो बजे तक निरन्तर उनका लेखन-कार्य चलता रहता था। फिर वे बाहरसे आयी हुई डाक संभालते। दो बजे उनके चिट्ठियाँ लिखनेका समय होता था। चार बजे तक लिखे हुवे पत्रोंका ढेर लग जाता। पाँच बजेके लगभग घरसे आवाज आती—"बाबूसा, जीम लो।" नाहटाजीका नियम है कि वे प्रतिदिन सूर्यास्त के पूर्व ही भोजनादिसे निवृत्त हो जाते हैं। सूर्यास्त हुआ कि उनका खाना-पीना बंद, फिर चाहे कितनी ही भूख-प्यास शेष रह जाय। छह-साढ़े छह बजे वे पुस्तकालयमें

पहुँच जाते। उस समय तक उनका लेखक—जिसे बोल-बोलकर वे अपने लेख लिखवाया करते थे—आ जाता। उन दिनों श्री जेठमल उनके लेखादि लिखनेका काम किया करते थे। रातके दस बजे तक उनका यह काम चलता रहता। तत्पश्चात् उनके सोनेका समय हो जाता और वे अपने साधना-सदनसे शयनागारको चल देते।

[४]

अब तक पुस्तकालयमें नाहटाजीके सान्निध्यमें बैठा मैं केवल वहाँ पड़ी पुस्तकों और पत्र-पत्रिकाओंकी फाइलें ही देखता रहता था। इच्छा होती थी कि नाहटाजी मुझसे कभी किसी कामके लिए कहें और उसे मनोयोगपूर्वक करके अपनेको धन्य मानूँ। पर उनने कभी किसी कामके लिए मुझे नहीं कहा। नाहटाजी अपने काममें व्यस्त रहते और मैं अपनी लगनमें मगन। पर यदा-कदा थोड़ी-थोड़ी बातचीत होती तो मुझे लगता—वे मुझपर अतीव प्रसन्न हैं। सोचता—शायद नाहटाजी मुझे अभी केवल जमकर बैठने की ट्रेनिंग दे रहे हैं। दिन बीते जा रहे थे।

छुट्टियोंमें मैं प्रायः दिनभर ग्रंथालयमें बैठा रहता, नाहटाजीकी उपस्थितिमें भी और उनकी अनुपस्थिति-में भी। पुस्तकालयमें दिनभरमें अनेक तरहके लोग आते—मजदूरसे लेकर मिलमालिकों तक, स्कूलके विद्यार्थियों-से लेकर युनिर्वसिटीके स्कालरों तक, अनपढ़से लेकर प्रकांड पंडितों तक; परिचित भी और अपरिचित भी। सब अपनी-अपनी समस्याओंके साथ आते और जब वे लौटते तो उनके साथ होता उनकी समस्याओंका समाधान और नाहटाजी की आत्मीयताका भाव।

अब नाहटाजीका साहचर्य मेरे लिए पुस्तकालय तक ही नहीं रह गया था। पुस्तकालयसे बाहर भी यत्र-तत्र वे मुझे अपने साथ ले जाने लगे थे। बीकानेरमें नाहटाजीके साथ-साथ मैं अनेक विशिष्ट और सार्वजनिक सभा-सोसाइटियों, संतजनोंके व्याख्यानों और सम्मेलनोंमें गया हूँ। मैंने देखा है, ऐसे अधिकांश स्थानोंपर नाहटाजीको भी बोलना पड़ा है—कभी अभिभाषकके रूपमें, कभी वक्ताके रूपमें, कभी अतिथिके रूपमें और कभी-कभी सभापतिके रूपमें भी। श्रोताओंको मुग्ध कर लेनेका नाहटाजीके पास जैसे कोई मन्त्र ही है। अपनी बातको, बिना विषयांतर हुए, बुलंदगीके साथ कहनेमें वे बड़े कुशल हैं।

[५]

नाहटाजीकी डाकमें ढेर-सारी चिट्ठियाँ आती हैं। एक दिन मैंने उनके नाम आये पत्रोंकी अव्यवस्थित स्थितिकी ओर इंगित किया तो बोले—"थे केई दिना-सूं काम-रै वास्तै कैया करो हो, ओ काम थे कर दो। आं सगला पत्रां-नै आं-रै लेखकां-रै नांव-सूं अकारादि क्रम सूं जचाय-र राख दो।" नाहटाजीने पहली बार अपने कामके लिए मुझसे कहा था। पत्रिकाएं छोड़कर मैं पत्रोंकी ओर मुड़ा। काम बड़ा रुचिकर था। मैं पत्रोंको छांटने लगा। पत्रोंको पढ़नेकी मुझे पूरी छूट मिल चुकी थी। हजारों पत्रोंमें विशिष्ट-विशिष्ट लोगोंके लिखे अनेक महत्त्वपूर्ण पत्र मैं पढ़ लेता और फिर उन्हें यथाक्रम रख देता। पत्र क्या थे, नाहटाजीके दर्पण थे। अधिकांश पत्र साहित्यकोंके ही होते थे, परन्तु अन्य लोगोंके पत्र भी पर्याप्त मात्रामें उनके पास आते रहे हैं। पत्रोंमें बधाई, कृतज्ञताज्ञापन, शंका-समाधान, नवीन ज्ञातव्य और प्रशंसा-जैसे स्वर प्रधान होते। मैंने तन्मय होकर उस समय तकके उपलब्ध उनके अधिकांश पत्रोंको यथाक्रम कर दिया। कहनेकी आवश्यकता नहीं कि नाहटाजीको मेरा काम पसन्द आ गया था। फिर तो वे मुझे सपारिश्रमिक काम भी देने लग गये थे।

[६]

छुट्टियां बीत चुकी थीं। मैं बी. ए. की परीक्षामें उत्तीर्ण हो गया था। अब परिस्थिति थी—मुझे

नौकरी करनी चाहिए, पर इच्छा थी कि मैं एम. ए. भी करूँ। नाहटाजी उन दिनों सार्दूल राजस्थानी रिसर्च इंस्टीच्यूटके डाइरेक्टर थे। उनके सामने समस्या रखी—पढ़ाई करूँ या नौकरी ? नाहटाजीने तो तत्काल हल निकाल दिया—'दोनों।' मेरे 'कैसे ?' के प्रत्युत्तरमें उनने कहा—हमारी इंस्टीट्यूटमें एक लिपिक-का स्थान रिक्त है। तुम उसमें अपनी पढ़ाईके समयके अतिरिक्त सुबह अथवा शामको कुल मिलाकर प्रति-दिन छह घण्टे काम कर दिया करो और पढ़ाई भी चालू कर दो। मेरी खुशीका पार नहीं था। सोना और सुगन्ध दोनों अनायास सुलभ हो रहे थे। उस दिन कालेजमें एडमिशन लेनेकी अन्तिम तिथि थी। तत्काल कालेज पहुँचकर फीस जमा करा दी और एम. ए. (प्रीवियस) हिन्दीमें एडमिशन ले लिया। उन दिनों संस्था में श्री मुरलीधरजी व्यास और बदरीप्रसाद साकरिया काम किया करते थे। व्यासजी राजस्थानी मुहावरोंका संकलन कर रहे थे और साकरियाजी संस्थाकी मुखपत्रिका 'राजस्थान भारती'का संपादन किया करते थे और मुझे दोनों विद्वानोंका सान्निध्य और उनके साथ काम करनेका सुयोग प्राप्त हुआ। राजस्थानी भाषा और साहित्य के प्रति आकर्षण भी मुझे तभीसे हुआ। मैं प्रातः सात बजेसे दोपहरके एक बजे तक संस्थामें काम करता और दो बजे जब मेरी पढ़ाई शुरू होती, मैं कालेज में होता था। कालेजका पुस्तकालय बड़ा समृद्ध है। अपने पाठ्यक्रमकी अधिकांश पुस्तकें वहींसे लीं परन्तु नाहटाजीसे भी इस सम्बन्धमें मुझे यथेष्ट सहायता प्राप्तहुई।

[७]

दो वर्ष और बीते और मेरी एम. ए. की धारा पूरी हो गयी। नाहटाजी का आशीर्वाद लेने गया तो उन्होंने कहा—लगे हाथों पी-एच. डी. भी कर डालो, विषय और सामग्रीका अपने पास भण्डार भरा है। मनमें इच्छा जागी और कुछ ही दिनोंमें वह बलवती भी हो गयी—पी-एच. डी. भी की जाय। पर निर्देशन कौन करे। सौभाग्यकी बात, उस समय तक राजस्थान तथा राजस्थानीके मूर्धन्य विद्वान् और साहित्यकार प्रा० नरोत्तमदासजी स्वामी उदयपुर से सेवामुक्त होकर यहाँ लौटकर आये थे। उन्होंने कृपापूर्वक मुझे अपने निर्देशनमें शोध प्रबन्ध लिखनेकी अनुमति दे दी। नाहटाजी और स्वामीजी की सलाहके बाद शोधका विषय तय हुआ—महाकवि समयसुन्दर और उनकी राजस्थानी रचनाएँ। महाकवि समयसुन्दरके साहित्य की खोजके कामसे ही नाहटाजीने अपना साहित्यिक जीवन प्रारम्भ किया था। उन्होंने अपने पास उपलब्ध एतद्विषयक सम्पूर्ण सामग्री मुझे जिस स्नेह और उदारताके साथ एक ही बारमें उपयोगके लिए दे दी उसका वर्णन शब्दातीत है। महाकविके जीवन और साहित्यके सम्बन्धमें नाहटाजीको प्रभूत ज्ञान है और वे मुझे भरसक सहयोग भी देते रहे हैं। यह सोचकर स्वामीजी मेरे कामके सम्बन्धमें निश्चिन्त हो गये थे। विषय का रजिस्ट्रेशन राजस्थान विश्व-विद्यालयसे करवाया गया। अब मेरा शोध-कार्य चालू था।

[८]

इसी बीच सन् १९६३ में मैं राजकीय सेवामें चला गया। डूंगर कालेजमें पुस्तकालय-लिपिक के रूपमें मेरी नियुक्ति हो गयी।

सन् १९६४ के मार्च माहमें मारवाड़ी सम्मेलन, बम्बईका स्वर्णजयन्ती महोत्सव मनाया जानेको था। निश्चित तिथिसे दो-तीन दिन पूर्व नाहटाजीका एक कर्मचारी डूंगर कालेजमें मेरे पास आया—आपको बम्बई जाना हो तो आज दोपहरको नाहटाजीसे अवश्य मिल लें। वे आज ही बम्बई जा रहे हैं। छुट्टीका भी प्रबन्ध करके आयें, लगभग दस दिन लग सकते हैं। पहली बार महानगरी बम्बई जानेका अवसर मिल रहा था। यात्राका प्रयोजन बिना जाने भी कुतूहलवश मैंने छुट्टी मन्जूर करवा ली और नाहटाजीके

पास जा पहुंचा । उन्होंने बताया कि मारवाड़ी सम्मेलनने उन्हें आमन्त्रण दिया है और यहांके एक-दो साहित्यकारोंको साथ लेकर आनेका अनुरोध किया है । बस मुझे तैयार होनेमें क्या देर लगती ! निश्चित समय पर बम्बई पहुँचे ।

मारवाड़ी सम्मेलनने अपना स्वर्णजयन्ती समारोह बड़े ही शानदार ढंगसे मनाया था । भारत भरसे मारवाड़ी लोग आये थे । समारोहके अन्तर्गत सम्मेलनकी अनेक सभाएं हुईं, कवि-सम्मेलन हुआ, साहित्यिक गोष्ठियाँ हुईं और सांस्कृतिक कार्यक्रमोंका आयोजन किया गया । सभी कार्य-क्रमोंमें उच्चकोटिके नेताओं, कार्यकर्ताओं, विद्वानों और कलाकारोंका जमघट लगा रहा । मैंने उससे पूर्व उतना सुन्दर समारोह कभी नहीं देखा था । आश्चर्य-चकित हुआ मैं कभी समारोह की गतिविधियाँ देखता और कभी नाहटाजीको ही देखता रहता-कितना अनुग्रह रखते हैं ये मुझ पर ! वहाँकी साहित्यिक गोष्ठियोंमें तो नाहटाजीने भाग लिया ही, सम्मेलनने एक खुले मञ्च पर उन्हें राजस्थानी भाषा और साहित्य पर बोलनेके लिए भी विशेष रूपसे आमन्त्रित किया था ।

तब पहली बार मुझे चौबीसों घण्टे नाहटाजीके साथ रहने का मौका मिला था । सम्मेलनके प्राय: सभी विशिष्ट व्यक्तियोंका परिचय करवाया । खाली समयमें वे वहांके अपने इष्ट-मित्रोंके यहाँ मिलने जाते तो भी मुझे अपने साथ ही रखते थे । जैनमुनि श्री चित्रभानुजी, शतावधानी श्री धीरजलाल टोकरशी शाह, प्रो० रमणलाल शाह आदि अनेक सहृदय विद्वानों का आतिथ्य लाभ भी बम्बई प्रवास की एक विशिष्ट उपलब्धि रही ।

(९)

नाहटाजीके साथ प्रवासका एक अन्य अवसर मुझे मार्च १९६५ में मिला । तब बनारसके संस्कृत विश्वविद्यालयमें अखिल भारतीय तन्त्र सम्मेलनका आयोजन किया गया था, जिसमें नाहटाजीको भी भाग लेने जाना था । उस सम्मेलनसे कुछ दिन पूर्व प्रयागमें हिन्दी साहित्य सम्मेलनका विशेष अधिवेशन भी सम्पन्न होनेको था । नाहटाजीने एक लम्बा कार्य-क्रम बनाया—लगभग एक माहका । इस बार फिर मेरी इच्छा हुई कि नाहटाजीके साथ जाकर ये शहर भी देखे जायं । नाहटाजीके सामने इच्छा व्यक्त की तो उन्होंने सहर्ष स्वीकार कर लिया ।

यात्रा प्रारम्भ हुई । बीकानेरसे दिल्ली पहुँचे । वहाँ हम एक जैन उपाश्रम में ठहरे थे, जो स्टेशनके पास ही था । वहांसे नाहटाजीको एक अन्य उपाश्रयमें वहाँका हस्तलिखित ग्रन्थोंका संग्रह देखने जाना था । नाहटाजीके साथ मैं भी दूसरे दिन प्रातः वहाँ गया । नाहटाजीने मुझे वहीं रुकने को कहा और बताया कि थोड़ी देर बाद वहींसे खाना खाने चलेंगे । प्रतीक्षामें समय बड़ी देरसे कटता है । बारह बजे तक प्रतीक्षा की, पर नाहटाजी थे कि अपने आसनसे हिले तक नहीं, सारे रजिस्टरोंको जैसे आत्मसात् ही कर लेना चाहते थे । दो बजे तक अपने रामके तो पेटमें चूहे कूदने लग गये थे । नाहटाजीके पास जाकर संकेत किया—मैं थोड़ा बाजार में घूमकर आ रहा हूँ । मुझे लगा, नाहटाजी उस समय तक यह भूल ही गये थे कि मैं भी उनके साथ हूँ । मेरा संकेत समझकर वे खेद जताने लगे—घूम तो आओ ही, पर पहले खाना जरूर खा लेना । शामका खाना हम साथ ही खायेंगे । हुआ भी यही, नाहटाजी दिनभर बिना भूख-प्यासकी परवाह किये निरन्तर उस संग्रहके रजिस्टरों और पोथी-पत्रों को देखते रहे । दूसरे दिन वहाँ के कुछेक दर्शनीय स्थान देखे ।

दिल्लीके बाद हम गये हाथरस । वहाँ नाहटाजीके भानजे श्री हजारीमल बांठिया रहते हैं । श्री

डा० एल० पी० तेस्सितोरीके परमभक्त और राजस्थानी साहित्यके प्रेमी हैं। उस समय वे हाथरसमें नहीं थे। एक दिन वहाँ रहकर हम लोग आगरा पहुँचे।

आगरा का मुख्य आकर्षण तो ताजमहल ही होना चाहिए ? परन्तु जब ताज देखनेकी बात नाहटाजी के सामने रखी तो बोले—इन पत्थरकी इमारतोंको देखनेके लिए इतना लालायित होनेकी क्या जरूरत हैं, ये तो देखेंगे ही। आओ पहले यहाँ के कुछ विशिष्ट व्यक्तियोंसे मिल आयें। ऐसी विरल विभूतियोंसे मिलने का सुयोग तो भाग्य से मिलता है। वहाँ सबसे पहले हम सन्मति ज्ञानपीठके उ०अमर मुनि जी के यहाँ मिलने गये। मुनिश्री उस समय बीमार थे। अनेक भक्तों से घिरे मुनिजी नाहटाजीको देखते ही पुलकायमान हो उठे। सबके सामने उन्मुक्त हृदयसे उन्होंने नाहटजी द्वारा सम्पादित जैन शासन और साहित्यकी सेवाओंकी प्रशंसा की। अपनी सद्यः प्रकाशित कतिपय कृतियां भी उन्होंने नाहटाजीको भेंट कीं और पूरा आतिथ्य-सत्कार किया। वहाँ से विदा होने के बाद अनेक लेखकों, प्रकाशकों तथा पुस्तक-विक्रेताओं से मिलते हुए हम ताज की ओर रवाना हुए। ताज देखा। ताज तो ताज ही है। उसकी प्रशंसामें कितनों ने क्या नहीं कहा ? वहाँ थोड़ी देर बैठनेकी, दूबमें लेटनेकी और शांतिसे सोचनेकी तबियत हुई परन्तु हमारे नाहटाजीको इतनी फुरसत कहाँ थी। शामकी ट्रेनसे ही मथुरा रवाना होना था। पर ज्यों-त्यों करके हमने वहाँसे चलकर आगरेका किला भी देख ही लिया।

अगले दिन मथुराका भ्रमण किया। तीन लोक से न्यारी मथुरा हमें विशेष लुभा न सकी। कुछेक दर्शनीय स्थान और परिचित लोगों से मिलकर हम शामको ही ट्रेन से प्रयाग के लिये रवाना हो गये।

प्रयाग हिन्दी का गढ़ है। हिन्दी साहित्य सम्मेलनके विशेष अधिवेशनका निमन्त्रण-पत्र नाहटाजीको मिला ही था। हम दोनों वहीं उतरे। सम्मेलनमें राष्ट्रके ख्यातिप्राप्त अनेक विद्वानोंका जमघट लगा था। विद्वानोंके ठहरने और भोजन आदिकी सम्पूर्ण व्यवस्था सम्मेलनकी ओरसे की गई थी। सम्मेलन तीन दिन चला। कहना न होगा, वहाँ प्रादेशिक भाषाओंके साथ हिन्दीके सम्बन्धोंपर राजस्थानीको लेकर नाहटाजीने ही अपना सारगर्भित भाषण दिया था। मुझे पहली बार वहाँ हिन्दी क्षेत्रीय उतने विद्वानोंके दर्शनलाभका अवसर मिला। स्वयं नाहटाजीने अनेक विद्वानोंका परिचय करवाया। श्री नर्मदेश्वरजी चतुर्वेदीके यहाँ नाहटाजीने आतिथ्य स्वीकार किया था। एक दिन विश्व-विद्यालय भी गये जहाँ डाक्टर रामकुमार वर्माने अपने विद्यार्थियोंके लिए 'राजस्थानी भाषा और साहित्य' पर नाहटाजीसे साग्रह एक भाषण करवाया।

प्रयागमें भी हम अनेक साहित्यिक संस्थानों, प्रकाशकों और पुस्तकालयों आदिमें गये। सरस्वती प्रेस, हिन्दुस्तानी एकादमी और विश्व-विद्यालयीय पुस्तकालयमें मन कुछ विशेष रमा।

एक दिन हम त्रिवेणी-स्नानके लिए गये। वहाँ एक रोचक घटना घटी। ज्योंही हम स्नान करने पानी की ओर बढ़े कि एक मल्लाह हमारे पास आया और बोला—सेठ साहब, आपको त्रिवेणीकी सैर कराएं। एक-एक रुपया लूँगा, आनन्द आ जायेगा। नाहटाजीने ना कर दी। मल्लाहने कहा—दोनों का डेढ़ रुपया दे देना, बस ! नाहटाजीने कहा—नहीं भाई, हमें सैर नहीं करनी है। मल्लाहने पैसे कुछ और कम किये—कोई बात नहीं एक रुपयेमें दोनोंको का बिठा लूँगा। पर नाहटाजीने ना कर दी सो कर ही दी। मल्लाह भाँगकी मस्तीमें था। वह बोला—सेठ साहब, त्रिवेणी में तो संगम-स्थल पर जानेका ही माहात्म्य है। आप तो बहुत दूरसे पधारे हैं, फिर दो-चार आनेके लिए यह मौका क्यों खो रहे हैं ? लो, आप

आठ आने ही देना, हम आपकी जय बोलेंगे। सेठ साहबकी नाको हाँमें बदलनेवाले ही बदल सकते हैं, हरेकके वशकी बात कहाँ ? मैंने संकोचवश कुछ भी नहीं कहा। अब तक तो मल्लाह अपनी नाव नाहटाजीके करीब ही ले आया था। बोला—कोई बात नहीं सेठ साहब, आप कुछ भी मत देना, हमारी नावको तो पावन कर दो। मैं मन-ही-मन राजी हुआ—अब सेठ साहब क्या मना करेंगे ? किताबोंमें पढ़ा नौका-विहार आज प्रत्यक्ष कर लेंगे। पर उस दिन तो शायद वह नौका-विहार मेरे भाग्यमें नहीं था क्योंकि मल्लाह यदि मस्त था तो हमारे सेठ साहब भी पूरे अलमस्त थे। बड़े सहज भावसे उत्तर दिया—भई, हमारे धर्ममें नदीके बीचमें जाना और उसमें स्नान करना वर्ज्य है। उसमें तो जितने कम पानीसे नहाया जाय उतना ही ज्यादा अच्छा माना गया है। तू हमारा पीछा छोड़ दे। और स्वयंने देखते-देखते दो-चार लोटे पानीसे नहाकर धोती बदल ली। मल्लाहने साश्चर्य मेरी ओर देखा। मैं क्या करता ? मैंने आँखोंमें ही कह दिया—बन्धु छुट्टी करो, मैं भी यों ही नहा लेता हूँ। अबकी आयेंगे तब मिलेंगे और मैंने तीन डुबकी लगाकर त्रिवेणी-स्नानका फल पाया।

प्रयागके बाद नम्बर आया बनारस का। बनारसमें हम एक धर्मशालामें ठहरे। बनारसके संस्कृत विश्व-विद्यालयमें अखिल भारतीय तंत्र सम्मेलन हो रहा था। वहाँ हम दो दिन देर से पहुँचे थे। वहाँ स्थानीय पंडितोंके अतिरिक्त देशभरसे अनेक तांत्रिक और तंत्र-साहित्यके ज्ञाता एकत्र हुए थे, जिनमें काश्मीरके पंडितोंकी संख्या अधिक थी। सम्मेलनका संयोजन प्रायः संस्कृतके माध्यमसे ही हो रहा था परन्तु कभी-कभी हिन्दी भी कानोंमें पड़ जाती थी। विद्वानोंके निवन्ध प्रायः संस्कृतमें थे। नाहटाजीका निवन्ध 'जैन तंत्र साहित्य' हिन्दीमें लिखा था। उस दिन अभिभाषकोंकी संख्या अधिक होनेसे सभी विद्वानोंसे निबन्धका पूरा पाठ न कर उसका सार बतानेकी प्रार्थना की गई थी। नाहटाजीने भी अपने विस्तृत निबन्धका सार ही पढ़कर सुनाया था।

बनारसमें संस्कृत विश्व-विद्यालयके अतिरिक्त हिन्दू विश्व-विद्यालय भी देखा। वहाँ हम डॉक्टर वासुदेव शरण अग्रवालसे (अब स्वर्गीय) मिलने उनके निवास-स्थान पर गये। डॉक्टर साहब अपने काममें जुटे हुए थे। दोनों एक दूसरे को पाकर धन्य हो रहे थे। दो पृथिवीपुत्रोंके परस्पर मिलनेकी उस वेलाका स्मरण आज भी हृदयको आह्लादित कर रहा है। हम वहाँ काफी देर ठहरे थे और तब तक उन दोनोंने अनेक विद्याओंके ओर-छोर माप लिये थे। चलते समय डॉक्टर साहबने नाहटाजीको अपनी कुछ नवीन कृतियाँ भेंट कीं और मुझे आशीर्वाद-स्वरूप मेरी डायरीमें एक सूक्ति-सी लिख दी—'दृढ़ संकल्पपूर्वक विद्याभ्यासको जीवन-व्रत बनाओ।'

वहीं हम भारतके एक और मनीषी डॉ० गोपीनाथ कविराजके दर्शनार्थ गये। बड़ी मुश्किलसे उनके निवासस्थानका पता लगा पाये थे। संयोगकी बात, उस दिन कविराजजीका मौनव्रत था, इसलिए हम उनके दर्शनमात्र ही कर सके, गिरा-ज्ञानसे वंचित रहना पड़ा। हाँ, नाहटाजीके कुछ प्रश्नोंका उन्होंने संकेतसे उत्तर अवश्य दे दिया था।

बनारसके काशी विश्वनाथ मन्दिर, भारत माताका मन्दिर, विश्व-विद्यालयका शिवमन्दिर, भारतीज्ञानपीठ, गंगाजीके घाट, विश्वविद्यालय और उसका पुस्तकालय, नागरी प्रचारिणी सभा, सत्यनारायण मानस मन्दिर और शहरकी सँकरी गलियाँ आदि तो आज भी स्मृतिपटपर अंकित हो रही हैं, जहाँ कदम-कदमपर नाहटाजीने मुझे अपने साथ रखा था।

बनारससे हम कलकत्ताको रवाना हुए। बहुत लम्बा रास्ता था। बनारससे कुछ नई पुस्तकें ले ही

आये थे, सारे रास्ते उनका स्वाध्याय चलता रहा। यह भी ध्यातव्य है कि नाहटाजीने पूरी यात्रामें भी अपनो समाई (सामायिक-स्वाध्याय) में किसी प्रकारकी कमी नहीं आने दी थी। जब भी थोड़ा खाली समय मिला कि वे अपने स्वाध्यायमें जुट जाते।

कलकत्तामें नाहटाजीको स्वयंकी गद्दी है—नाहटा ब्रदर्स, जो जगमोहन मल्लिक लेनमें स्थित है। हम वहीं उतरे। नाहटाजीके भ्रातृज श्री भँवरलालजी नाहटा उस समय वहीं थे। उतरते ही, सभी से अत्यल्प, पर अनौपचारिक कुशल-क्षेमकी बातें करके नाहटाजी तो जुट गये अपनी डाक देखनेमें, जो पन्द्रह दिनों से वहाँके पते पर Redirect होकर जमा हो रही थी। सभी पत्र खोलकर पढ़े, पत्रिकाओंके लेख आदि देखे और भँवरलालजीको उन पत्रोंके उत्तर लिखनेकी हिदायत देने लगे। साहित्य तो नाहटाजीके रग-रग में रमा है, कलकत्तेमें उनसे विलग कैसे हो जाय? देखने तो आये थे, व्यापार, और काम चल रहा है साहित्यका। मैं दंग था—भँवरलालजीसे उन्होंने खाते और रोकड़ की बहियाँ नहीं मांगी, बल्कि वे रजिस्टर मांगे जिनमें बीकानेरसे भेजी हुई उनकी हस्तलिखित प्रतियोंकी भँवरलालजीने नकलें करके रखी थीं। अथवा कुछ ग्रन्थों का संपादन कर रखा था। भँवरलालजीने अपनी साहित्यिक गतिविधिका पूरा-पूरा विवरण दिया। वे तो साहित्य और नाहटाजी दोनोंके पुजारी हैं न! नम्रताके मूर्तिमंत प्रतीक। नाहटाजीकी साहित्य-साधना में उनका महत्त्वपूर्ण योगदान है।

कलकत्तामें नाहटाजीको अपने कामसे रुकना था परन्तु मुझे अपने कामसे चलना था क्योंकि छुट्टियाँ समाप्त हो रही थीं। इसलिए कलकत्तेसे मुझे बिना घूमे-फिरे नाहटाजीसे विदा लेकर बीकानेर लौटना पड़ा।

[१०]

नाहटाजो जिस दुनियाँमें रहते हैं उसकी वे कोई खबर नहीं रखते पर जो नई दुनियाँ (राजस्थानी और जैन साहित्य का क्षेत्र) उन्होंने बसाई है, उससे वे बेखबर नहीं हैं। यही कारण है कि नाहटाजी कभी कोई दैनिक पत्र नहीं पढ़ते और न ही रेडियो सुनते हैं। कहते हैं—इस दुनियाँमें तो जो होना है, वह होगा ही। हम इसमें क्या हेर-फेर कर सकते हैं? इसलिये रेडियो और अखबारसे क्या लाभ? परन्तु दूसरी ओर, आप देखिये, उनके यहाँ आने वाली साहित्यिक साप्ताहिक, पाक्षिक, मासिक और त्रैमासिक पत्रिकाओंमें प्रकाशित सूचनाओंका उन्हें सर्वदा और अद्यतन ध्यान रहता है।

नाहटाजीका काम भी साहित्य है, व्यसन भी साहित्य है और मनोरंजन भी साहित्य ही है। आज उनका नाम मूर्धन्य साहित्यकारों, साहित्य-संशोधकोंमें लिया जाता है परन्तु इस साहित्य को अपनाने के लिए उन्हें कितने कठोर पथ पर चलना पड़ा होगा, यह उनके दीर्घकालीन अभ्यासके अतिरिक्त और कौन बता सकता है। दुरूह से दुरूह प्राचीन शिलालेखों और हस्तलिखित प्रतियों को पढ़नेका उन्होंने स्वयमेव अभ्यास किया था, न तो इसमें उन्होंने किसीसे सहायता मांगी और न वे ऐसा चाहते ही थे। यही तो उनकी तपस्या थी, उनकी साधना थी। मनोयोगपूर्वक की गई साधना फल तो लायेगी ही। हां, इस फलप्राप्तिमें निमित्त तो कुछ न कुछ बन ही जाता है। नाहटाजी अपने जीवनकी सफलतामें इन तीन दोहोंकी भूमिकाको महत्त्व देते हैं, जिनसे वे पग-पग पर प्रभावित होते रहते हैं—

१. करत-करत अभ्यासके, जड़मति होत सुजान।
रसरी आवत जात ते, सिल पर होत निसान॥

२. काल करै सो आज कर, आज करै सो अब ।
पलमें परलै होयगो, बहुरि करैगो कब ॥

३. रे मन अप्पहु खंच करि, चिन्ता जाल म पाड़ि ।
फल तित्तउ हिज पामिस्यइ, जित्तउ लिह्यउ लिलाड़ि ॥

सरलता और सादगी नाहटाजीके जीवनके अन्यतम गुण हैं । आचार और विचारोंकी एकरूपता ही उनके निर्मल व्यवहारकी कुन्जी है । मुझ पर उनका जो अपार स्नेह है, उसीका परिणाम है कि मैं अनेकानेक बाधाओंके बावजूद 'महाकवि समयसुन्दर और उनकी राजस्थानी रचनाएँ' विषय पर शोध प्रबन्ध लिखकर उनके प्रारम्भ किये कामको कुछ आगे बढ़ा सका हूँ । उनके अभिनन्दनके इस पावन अवसर पर मैं उनके दीर्घायुष्यकी मंगलकामना करता हूँ ।

नाहटाजीके अभिनन्दनको अभिवंदन !

●

श्री नाहटाजी, शोधके प्रेरणा-स्रोत

श्री वेदप्रकाश गर्ग

परम श्रद्धेय श्रेष्ठिवर श्री अगरचन्दजी नाहटा तथा उनके भ्रातृपुत्र श्री भँवरलालजी नाहटा, राजस्थान, देश तथा हिन्दी-जगत् के विश्रुत, स्वनामधन्य शोध-मनीषी हैं । लक्षाधिक धार्मिक, साहित्यिक, सांस्कृतिक एवं कलापूर्ण ग्रन्थों और कृतियों के पुनरुद्धारक, संग्रहकर्त्ता तथा प्रसारक इन विद्वद्द्वयने अपनी आदर्श-सेवाओंसे एक विशिष्ट पद प्राप्त किया है ।

श्री भँवरलालजी नाहटाके लेखोंको मैं पत्र-पत्रिकाओंमें पढ़ता रहा हूँ, लेकिन मेरा प्रत्यक्ष कोई सम्बन्ध उनसे नहीं रहा और न ही कभी साक्षात्कार का सौभाग्य प्राप्त हो सका, किन्तु श्री अगरचन्दजी नाहटासे मेरा एक शोधकर्त्ताके नाते बराबर सम्बन्ध बना रहा है । उनके दर्शनोंका सौभाग्य भी मुझे प्राप्त हुआ है । ब्रज-साहित्य-मंडलके मथुरा अधिवेशनके अवसरपर वे साहित्य-परिषद्की अध्यक्षता करनेके लिए वहाँ पधारे थे । मैं भी उक्त अधिवेशनमें मण्डलका सदस्य होनेके नाते, भाग लेनेके लिए मथुरा गया था । वहीं उनसे भेंटका अवसर मिला था । मेरा उनसे पत्र-सम्बन्ध इस भेंटसे पूर्व ही हो चुका था । अतः बड़ी आत्मीयतासे उन्होंने मुझसे बात-चीत की । उनका अध्यक्षीय-भाषण उनकी विद्वत्ताके अनुरूप अनेक ज्ञातव्योंका भण्डार था ।

दैवी कृपासे अनुसन्धान-कार्यमें रुचि होनेके कारण मैंने प्रारम्भसे श्री नाहटाजीको अपना आदर्श समझा है । उनकी कार्य-प्रणालीको अपनाकर उनके चरण-चिह्नोंपर चलनेका यथासामर्थ्य कुछ प्रयास किया है । शोध-विषयक जब भी कोई समस्या मेरे सामने आयी, मैंने श्री नाहटाजीको कष्ट दिया । उन्होंने निस्संकोच तुरन्त सहायता कर मेरी कठिनाइयोंको दूर किया । वे इस प्रकारके सहायता-कार्यके लिए सदा तत्पर रहते

आये थे, सारे रास्ते उनका स्वाध्याय चलता रहा। यह भी ध्यातव्य है कि नाहटाजीने पूरी यात्रामें भी अपनो समाई (सामायिक-स्वाध्याय) में किसी प्रकारकी कमी नहीं आने दी थी। जब भी थोड़ा खाली समय मिला कि वे अपने स्वाध्यायमें जुट जाते।

कलकत्तामें नाहटाजीको स्वयंकी गद्दी है—नाहटा ब्रदर्स, जो जगमोहन मल्लिक लेनमें स्थित है। हम वहीं उतरे। नाहटाजीके भ्रातृज श्री भँवरलालजी नाहटा उस समय वहीं थे। उतरते ही, सभी से अत्यल्प, पर अनौपचारिक कुशल-क्षेमकी बातें करके नाहटाजी तो जुट गये अपनी डाक देखनेमें, जो पन्द्रह दिनों से वहाँके पते पर Redirect होकर जमा हो रही थी। सभी पत्र खोलकर पढ़े, पत्रिकाओंके लेख आदि देखे और भँवरलालजीको उन पत्रोंके उत्तर लिखनेकी हिदायत देने लगे। साहित्य तो नाहटाजीके रग-रग में रमा है, कलकत्तेमें उनसे विलग कैसे हो जाय? देखने तो आये थे, व्यापार, और काम चल रहा है साहित्यका। मैं दंग था—भँवरलालजीसे उन्होंने खाते और रोकड़ की वहियाँ नहीं मांगी, बल्कि वे रजिस्टर मांगे जिनमें बीकानेरसे भेजी हुई उनकी हस्तलिखित प्रतियोंकी भँवरलालजीने नकलें करके रखी थीं। अथवा कुछ ग्रन्थों का संपादन कर रखा था। भँवरलालजीने अपनी साहित्यिक गतिविधिका पूरा-पूरा विवरण दिया। वे तो साहित्य और नाहटाजी दोनोंके पुजारी हैं न! नम्रताके मूर्तिमंत प्रतीक। नाहटाजीकी साहित्य-साधना में उनका महत्त्वपूर्ण योगदान है।

कलकत्तामें नाहटाजीको अपने कामसे रुकना था परन्तु मुझे अपने कामसे चलना था क्योंकि छुट्टियाँ समाप्त हो रही थीं। इसलिए कलकत्तेसे मुझे बिना घूमे-फिरे नाहटाजीसे विदा लेकर बीकानेर लौटना पड़ा।

[१०]

नाहटाजी जिस दुनियाँमें रहते हैं उसकी वे कोई खबर नहीं रखते पर जो नई दुनियाँ (राजस्थानी और जैन साहित्य का क्षेत्र) उन्होंने बसाई है, उससे वे बेखबर नहीं हैं। यही कारण है कि नाहटाजी कभी कोई दैनिक पत्र नहीं पढ़ते और न ही रेडियो सुनते हैं। कहते हैं—इस दुनियाँमें तो जो होना है, वह होगा ही। हम इसमें क्या हेर-फेर कर सकते हैं? इसलिये रेडियो और अखबारसे क्या लाभ? परन्तु दूसरी ओर, आप देखिये, उनके यहाँ आने वाली साहित्यिक साप्ताहिक, पाक्षिक, मासिक और त्रैमासिक पत्रिकाओंमें प्रकाशित सूचनाओंका उन्हें सर्वदा और अद्यतन ध्यान रहता है।

नाहटाजीका काम भी साहित्य है, व्यसन भी साहित्य है और मनोरंजन भी साहित्य ही है। आज उनका नाम मूर्धन्य साहित्यकारों, साहित्य-संशोधकोंमें लिया जाता है परन्तु इस साहित्य को अपनाने के लिए उन्हें कितने कठोर पथ पर चलना पड़ा होगा, यह उनके दीर्घकालीन अभ्यासके अतिरिक्त और कौन बता सकता है। दुरूह से दुरूह प्राचीन शिलालेखों और हस्तलिखित प्रतियों को पढ़नेका उन्होंने स्वयमेव अभ्यास किया था, न तो इसमें उन्होंने किसीसे सहायता मांगी और न वे ऐसा चाहते ही थे। यही तो उनकी तपस्या थी, उनकी साधना थी। मनोयोगपूर्वक की गई साधना फल तो लायेगी ही। हां, इस फलप्राप्तिमें निमित्त तो कुछ न कुछ बन ही जाता है। नाहटाजी अपने जीवनकी सफलतामें इन तीन दोहोंकी भूमिकाको महत्त्व देते हैं, जिनसे वे पग-पग पर प्रभावित होते रहते हैं—

१. करत-करत अभ्यासके, जड़मति होत सुजान।
रसरी आवत जात ते, सिल पर होत निसान॥

२. काल करै सो आज कर, आज करै सो अब ।
पलमें परलै होयगो, बहुरि करैगो कब ॥

३. रे मन अप्पहु खंच करि, चिन्ता जाल म पाड़ि ।
फल तित्तउ हिज पामिस्यइ, जित्तउ लिह्यउ लिलाड़ि ॥

सरलता और सादगी नाहटाजीके जीवनके अन्यतम गुण हैं । आचार और विचारोंकी एकरूपता ही उनके निर्मल व्यवहारकी कुन्जी है । मुझ पर उनका जो अपार स्नेह है, उसीका परिणाम है कि मैं अनेकानेक बाधाओंके बावजूद 'महाकवि समयसुन्दर और उनकी राजस्थानी रचनाएँ' विषय पर शोध प्रबन्ध लिखकर उनके प्रारम्भ किये कामको कुछ आगे बढ़ा सका हूँ । उनके अभिनन्दनके इस पावन अवसर पर मैं उनके दीर्घायुष्यकी मंगलकामना करता हूँ ।

नाहटाजीके अभिनन्दनको अभिवंदन !

●

श्री नाहटाजी, शोधके प्रेरणा-स्रोत

श्री वेदप्रकाश गर्ग

परम श्रद्धेय श्रेष्ठिवर श्री अगरचन्दजी नाहटा तथा उनके भ्रातृपुत्र श्री भँवरलालजी नाहटा, राजस्थान, देश तथा हिन्दी-जगत् के विश्रुत, स्वनामधन्य शोध-मनीषी हैं । लक्षाधिक धार्मिक, साहित्यिक, सांस्कृतिक एवं कलापूर्ण ग्रन्थों और कृतियों के पुनरुद्धारक, संग्रहकर्त्ता तथा प्रसारक इन विद्वद्द्वयने अपनी आदर्श-सेवाओंसे एक विशिष्ट पद प्राप्त किया है ।

श्री भँवरलालजी नाहटाके लेखोंको मैं पत्र-पत्रिकाओंमें पढ़ता रहा हूँ, लेकिन मेरा प्रत्यक्ष कोई सम्बन्ध उनसे नहीं रहा और न ही कभी साक्षात्कार का सौभाग्य प्राप्त हो सका, किन्तु श्री अगरचन्दजी नाहटासे मेरा एक शोधकर्त्ताके नाते बराबर सम्बन्ध बना रहा है । उनके दर्शनोंका सौभाग्य भी मुझे प्राप्त हुआ है । व्रज-साहित्य-मंडलके मथुरा अधिवेशनके अवसरपर वे साहित्य-परिषद्की अध्यक्षता करनेके लिए वहाँ पधारे थे । मैं भी उक्त अधिवेशनमें मण्डलका सदस्य होनेके नाते, भाग लेनेके लिए मथुरा गया था । वहीं उनसे भेंटका अवसर मिला था । मेरा उनसे पत्र-सम्बन्ध इस भेंटसे पूर्व ही हो चुका था । अतः बड़ी आत्मीयतासे उन्होंने मुझसे बात-चीत की । उनका अध्यक्षीय-भाषण उनकी विद्वत्ताके अनुरूप अनेक ज्ञातव्योंका भण्डार था ।

दैवी कृपासे अनुसन्धान-कार्यमें रुचि होनेके कारण मैंने प्रारम्भसे श्री नाहटाजीको अपना आदर्श समझा है । उनकी कार्य-प्रणालीको अपनाकर उनके चरण-चिह्नोंपर चलनेका यथासामर्थ्य कुछ प्रयास किया है । शोध-विषयक जब भी कोई समस्या मेरे सामने आयी, मैंने श्री नाहटाजीको कष्ट दिया । उन्होंने निस्संकोच तुरन्त सहायता कर मेरी कठिनाइयोंको दूर किया । वे इस प्रकारके सहायता-कार्यके लिए सदा तत्पर रहते

है। उन्होंने मेरे समान सैकड़ों शोधार्थियोंका मार्ग-दर्शन किया है तथा अनेक व्यक्तियोंको आवश्यक जानकारी व सामग्री प्रदान कर उपकृत किया है। वे अनुसंधित्सुओंके प्रेरणा-स्रोत हैं।

गम्भीर व्यक्तित्ववाले श्री नाहटाजी बड़े शान्त, सरल, मिलनसार एवं सहृदय व्यक्ति हैं। अपनी धार्मिक मान्यताओंके प्रति वे आस्थावान हैं किन्तु संकीर्णता उनमें लेशमात्र भी नहीं है। वे मौन साधक हैं। आडम्बर उन्हें पसन्द नहीं। प्रचार और यशसे दूर रहकर एकान्तभावसे कार्य करना उनका उद्देश्य है। वे अन्वेषण-कार्यके भीष्म पितामह हैं।

श्री नाहटाजी मुख्यतः व्यापारी हैं। अपने व्यावसायिक कार्योंमें संलग्न रहते हुए भी वे साहित्यिक तथा सांस्कृतिक कार्योंके करनेमें पूर्ण रुचि लेते हैं। वे अपने व्यापारिक कार्योंसे कैसे अवकाश निकाल पाते हैं, जब इस तथ्यपर विचार करता हूँ, तो आश्चर्य होता है। विद्यालयी-शिक्षा नहींके बराबर होते हुए भी श्री नाहटाजीने अपने विद्या-प्रेम और अध्यवसायसे उच्चतम योग्यता प्राप्त की है। उन्हें श्री और सरस्वती दोनोंकी कृपा प्राप्त है। उनकी प्रतिभा बहुमुखी और उनका कृतित्व परिमाण-बहुल है। वे ४० वर्षोंसे साहित्य-साधनामें रत हैं। उनके द्वारा लिखित एवं सम्पादित ग्रंथोंकी संख्या लगभग ५० है और पचासों ही ग्रन्थोंकी उन्होंने भूमिकाएँ लिखी हैं। उनके विविध विषयोंपर विशेषकर शोधपरक लगभग ३००० लेख देशकी विभिन्न पत्र-पत्रिकाओंमें प्रकाशित हो चुके हैं। लक्षाधिक हस्तलिखित प्रतियोंकी खोज कर अनेक अज्ञात ग्रंथोंके विवरणोंको वे प्रकाशमें लाये हैं। हस्तलिखित प्रतियोंकी खोज करना और अज्ञातग्रंथोंको प्रकाश में लाना उनका विशिष्ट कार्य है। वे अपने दायित्वके प्रति सतर्क हैं। इसीलिए वे ग्रन्थों तथा लेखकोंकी त्रुटियोंका संशोधन तथा परिमार्जन समय-समय पर करते रहते हैं। अनेक ज्ञानभंडारोंकी हस्तलिखित प्रतियोंकी आवश्यक विवरणों सहित सूचियाँ उन्होंने बड़े परिश्रम तथा लगनके साथ तैयार की हैं, जो शोध-कार्यके लिए विशेष सहायक हैं। 'श्री अभय जैन ग्रन्थालय' तथा 'शंकरदान नाहटा कला भवन' उनके विद्या-प्रेम, कला-अभिरुचि तथा संग्राहकवृत्तिके कीर्ति-स्तम्भ हैं। उनका लेखन-कार्य अत्यन्त त्वरा गतिपूर्ण है।

श्रद्धेय नाहटा बन्धुओंकी षष्ठिपूर्तिके शुभ प्रसङ्गमें उनकी अप्रतिम साहित्य-साधना और अमूल्य सेवाओंके उपलक्ष्यमें इस विद्वद्-पूजनके पवित्र अनुष्ठानका आयोजन सर्वथा उचित है। इस अवसरपर मैं नतमस्तक होकर उनका अभिनन्दन करता हूँ। प्रभुसे प्रार्थना है कि वे शताधिक वर्षोंतक हमारे बीच रहकर हम सबका मार्ग-दर्शन करते रहें।

●

प्रबुध चमकते जैन सितारे : श्री अगरचन्दजी नाहटा

श्री विमल कुमार रॉका,

श्री अगरचन्दजी नाहटाका नाम जैन जगत्‌में एक उज्ज्वल नाम है। जैन जगत्‌का पढ़ा लिखा ही नहीं बल्कि अनपढ़े लोग भी उनके नामसे भलीभाँति परिचित हैं।

अवश्यमेव यश गाथा तो जरूर गायी ही जानी चाहिए। हमने देखा है कि समय-समय पर लोगोंने

उन्हें ''जैनसंघरत्न'' ''राजस्थानी साहित्य वाचस्पति'' एवं ''जैनजगत्के चाँद'' आदि उपाधियोंसे अलंकृत कर उनके जीवनमें चार चांद अवश्य लगाये हैं।

बिना किसी भी डिग्रीको हासिल किये ही जैन जगत् में उथल-पुथल मचा देने वाले मूक सेवक व मिलनसार सहयोगी और वस्तु स्थितिको परखनेवाले यशस्वी कर्मवीर आप सदा रहे हैं हमारे श्री नाहटाजी।

सरस्वतीके वरदपुत्र हैं ही, महादेवी लक्ष्मीको भी हार खानी ही पड़ी। कमाया भी खूब व दान दिया भी खूब आपने अपने जीवनकालमें। बड़े परिवारके प्रमुख होकर भी हमारे नाहटाजी सदा हर काममें अपने पारिवारिक जनों व मित्रोंसे खूब ही सलाह मशविरा किये बिना कोई नया काम कभी नहीं करते हैं। यही वजह है कि आपको सदा अपने हर काममें गहरी सफलता मिलती है।

विचारोंके बड़े बलवान् धीर पुरुष सदा रहे हैं। कम बोलना और जो भी बोलना, तोल-तोलकर बोलना उनमें दैवी गुण है। घर व परिवारमें भी इसी मर्यादाका पूर्ण पालन करना-कराना उन्हें अत्यधिक प्रिय भी है तथा घर आये मेहमानका भ्रातृवत् सत्कारसम्मान करना उन्हें सबसे ज्यादा प्रिय लगता है। परिवारके हर बन्धु चाहे छोटा या बड़ा हो, नित्य पूछताछ करना, दैवी गुणोंकी एक उनकी थाती रही है।

सन्तोंका समागम तो इतना उन्हें सुहाता है कि वे घण्टों उनके चरणोंमें ज्ञानचर्चामें बिता देते हैं। आगम, शास्त्र, व्यवहार, लौकिक आदि मसलोंपर तरह-तरहका विचार, समीक्षा, वादविवाद करना उन्हें प्राणवत् प्रिय है। पर जहाँ भी सम्प्रदायवादकी बू दिखी, उठकर चल दिये वहाँसे। पं० रत्न आचार्य प्रवर श्री हस्तीमलजी महारासाबके अनन्य भक्त होते हुए भी वक्त-वक्त उनसे अपनी बातोंके लिए अड़ जाया करते हैं। आप जब तक निष्कर्ष पूर्ण नहीं पा जाते स्थानक ही में वासा कर देते देखे गये हैं।

लेखकके साथ तत्त्वज्ञ विचारक भी नम्बर एकके रहे हैं। साहित्यप्रेम, साहित्यसृजन व पठन-पाठनका भी उन्हें कम शौक नहीं। हम नित्य ही पत्र-पत्रिकाओंमें उनके लेख-सामग्री देखते ही रहते आये हैं। लेखन शैली आपकी उत्कृष्ट व मँजी हुई सदा दिखी है। आप उपदेशात्मक लेख नहीं लिख, जीवनमें सुधार लाने वाले लेख अमूमन लिखते अत्यधिक हैं।

प्राकृत साहित्यका हिन्दी रूपान्तर करने-करानेका काम आपने बहुत कुछ किया है तथा स्वबुद्धिसे प्रयोग खुदने बहुत किया है।

कार्य जो छेड़ दिया उसे पूर्ण तो करना ही चाहिए, उनसे यह सबकरूप सीखा ही जा सकता है।

पदके कायल श्री नाहटाजी कभी नहीं रहे। मेरी भावनाका वह श्लोक—'लाखों वर्षों तक जीऊँ या मृत्यु आज ही आ जावे'' या ''कोई बुरा कहे या अच्छा लक्ष्मी आवे या जावे'' वे सदा याद रखते हैं। लक्ष्मी आवे या जावे जीवनमें कभी गहन विचार किया तक नहीं। सदा विनीत रहनेवाले कर्मठ कर्मवीर हैं।

विएगएण णरो गंधेण, चंदण सोमयाई रयणियरो
महुरर सेण अभयं, जण पिय्यतम् लहई भुवणे॥

अर्थात् जैसे संसारमें सुगन्धके कारण, चन्दन, सौम्यताके लिए शशि एवं मधुरताके लिए अमृत यशस्वी है इसी प्रकार विनयके लिए ही मनुष्यके आपका प्रिय बने हुए हैं। उन्होंने जीवनमें घमण्ड तो

हैं। उन्होंने मेरे समान सैकड़ों शोधार्थियोंका मार्ग-दर्शन किया है तथा अनेक व्यक्तियोंको आवश्यक जानकारी व सामग्री प्रदान कर उपकृत किया है। वे अनुसंधित्सुओंके प्रेरणा-स्रोत हैं।

गम्भीर व्यक्तित्ववाले श्री नाहटाजी बड़े शान्त, सरल, मिलनसार एवं सहृदय व्यक्ति हैं। अपनी धार्मिक मान्यताओंके प्रति वे आस्थावान हैं किन्तु संकीर्णता उनमें लेशमात्र भी नहीं है। वे मौन साधक हैं। आडम्बर उन्हें पसन्द नहीं। प्रचार और यशसे दूर रहकर एकान्तभावसे कार्य करना उनका उद्देश्य है। वे अन्वेषण-कार्यके भीष्म पितामह हैं।

श्री नाहटाजी मुख्यतः व्यापारी हैं। अपने व्यावसायिक कार्योंमें संलग्न रहते हुए भी वे साहित्यिक तथा सांस्कृतिक कार्योंके करनेमें पूर्ण रुचि लेते हैं। वे अपने व्यापारिक कार्योंसे कैसे अवकाश निकाल पाते हैं, जब इस तथ्यपर विचार करता हूँ, तो आश्चर्य होता है। विद्यालयी-शिक्षा नहींके बराबर होते हुए भी श्री नाहटाजीने अपने विद्या-प्रेम और अध्यवसायसे उच्चतम योग्यता प्राप्त की है। उन्हें श्री और सरस्वती दोनोंकी कृपा प्राप्त है। उनकी प्रतिभा बहुमुखी और उनका कृतित्व परिमाण-बहुल है। वे ४० वर्षोंसे साहित्य-साधनामें रत हैं। उनके द्वारा लिखित एवं सम्पादित ग्रंथोंकी संख्या लगभग ५० है और पचासों ही ग्रन्थोंकी उन्होंने भूमिकाएँ लिखी हैं। उनके विविध विषयोंपर विशेषकर शोधपरक लगभग ३००० लेख देशकी विभिन्न पत्र-पत्रिकाओंमें प्रकाशित हो चुके हैं। लक्षाधिक हस्तलिखित प्रतियोंकी खोज कर अनेक अज्ञात ग्रंथोंके विवरणोंको वे प्रकाशमें लाये हैं। हस्तलिखित प्रतियोंकी खोज करना और अज्ञातग्रंथोंको प्रकाश में लाना उनका विशिष्ट कार्य है। वे अपने दायित्वके प्रति सतर्क हैं। इसीलिए वे ग्रन्थों तथा लेखकों-की त्रुटियोंका संशोधन तथा परिमार्जन समय-समय पर करते रहते हैं। अनेक ज्ञानभंडारोंकी हस्तलिखित प्रतियोंकी आवश्यक विवरणों सहित सूचियाँ उन्होंने बड़े परिश्रम तथा लगनके साथ तैयार की हैं, जो शोध-कार्यके लिए विशेष सहायक हैं। 'श्री अभय जैन ग्रन्थालय' तथा 'शंकरदान नाहटा कला भवन' उनके विद्या-प्रेम, कला-अभिरुचि तथा संग्राहकवृत्तिके कीर्ति-स्तम्भ हैं। उनका लेखन-कार्य अत्यन्त त्वरा गतिपूर्ण है।

श्रद्धेय नाहटा बन्धुओंकी षष्ठिपूर्तिके शुभ प्रसङ्गमें उनकी अप्रतिम साहित्य-साधना और अमूल्य सेवाओंके उपलक्ष्यमें इस विद्वद्-पूजनके पवित्र अनुष्ठानका आयोजन सर्वथा उचित है। इस अवसरपर मैं नतमस्तक होकर उनका अभिनन्दन करता हूँ। प्रभुसे प्रार्थना है कि वे शताधिक वर्षोंतक हमारे बीच रहकर हम सबका मार्ग-दर्शन करते रहें।

•

प्रबुध चमकते जैन सितारे : श्री अगरचन्दजी नाहटा

श्री विमल कुमार राँका,

श्री अगरचन्दजी नाहटाका नाम जैन जगत्में एक उज्ज्वल नाम है। जैन जगत्का पढ़ा लिखा ही नहीं बल्कि अनपढ़े लोग भी उनके नामसे भलीभाँति परिचित हैं।

अवश्यमेव यश गाथा तो जरूर गायी ही जानी चाहिए। हमने देखा है कि समय-समय पर लोगोंने

उन्हें "जैनसंघरत्न" "राजस्थानी साहित्य वाचस्पति" एवं "जैनजगत्के चाँद" आदि उपाधियोंसे अलंकृत कर उनके जीवनमें चार चांद अवश्य लगाये हैं।

बिना किसी भी डिग्रीको हासिल किये ही जैन जगत् में उथल-पुथल मचा देने वाले मूक सेवक व मिलनसार सहयोगी और वस्तु स्थितिको परखनेवाले यशस्वी कर्मवीर आप सदा रहे हैं हमारे श्री नाहटाजी।

सरस्वतीके वरदपुत्र हैं ही, महादेवी लक्ष्मीको भी हार खानी ही पड़ी। कमाया भी खूब व दान दिया भी खूब आपने अपने जीवनकालमें। बड़े परिवारके प्रमुख होकर भी हमारे नाहटाजी सदा हर काममें अपने पारिवारिक जनों व मित्रोंसे खूब ही सलाह मशविरा किये बिना कोई नया काम कभी नहीं करते हैं। यही वजह है कि आपको सदा अपने हर काममें गहरी सफलता मिलती है।

विचारोंके बड़े बलवान् धीर पुरुष सदा रहे हैं। कम बोलना और जो भी बोलना, तोल-तोलकर बोलना उनमें दैवी गुण है। घर व परिवारमें भी इसी मर्यादाका पूर्ण पालन करना-कराना उन्हें अत्यधिक प्रिय भी है तथा घर आये मेहमानका भ्रातृवत् सत्कारसम्मान करना उन्हें सबसे ज्यादा प्रिय लगता है। परिवारके हर वन्धु चाहे छोटा या बड़ा हो, नित्य पूछताछ करना, दैवी गुणोंकी एक उनकी थाती रही है।

सन्तोंका समागम तो इतना उन्हें सुहाता है कि वे घण्टों उनके चरणोंमें ज्ञानचर्चामें बिता देते हैं। आगम, शास्त्र, व्यवहार, लौकिक आदि मसलोंपर तरह-तरहका विचार, समीक्षा, वादविवाद करना उन्हें प्राणवत् प्रिय है। पर जहाँ भी सम्प्रदायवादकी बू दिखी, उठकर चल दिये वहाँसे। पं० रत्न आचार्य प्रवर श्री हस्तीमलजी महारासाबके अनन्य भक्त होते हुए भी वक्त-वक्त उनसे अपनी बातोंके लिए अड़ जाया करते हैं। आप जब तक निष्कर्ष पूर्ण नहीं पा जाते स्थानक ही में वासा कर देते देखे गये हैं।

लेखकके साथ तत्त्वज्ञ विचारक भी नम्बर एकके रहे हैं। साहित्यप्रेम, साहित्यसृजन व पठन-पाठनका भी उन्हें कम शौक नहीं। हम नित्य ही पत्र-पत्रिकाओंमें उनके लेख-सामग्री देखते ही रहते आये हैं। लेखन शैली आपकी उत्कृष्ट व मँजी हुई सदा दिखी है। आप उपदेशात्मक लेख नहीं लिख, जीवनमें सुधार लाने वाले लेख अमूमन लिखते अत्यधिक हैं।

प्राकृत साहित्यका हिन्दी रूपान्तर करने-करानेका काम आपने बहुत कुछ किया है तथा स्वबुद्धिसे प्रयोग खुदने बहुत किया है।

कार्य जो छेड़ दिया उसे पूर्ण तो करना ही चाहिए, उनसे यह सबकरूप सीखा ही जा सकता है।

पदके कायल श्री नाहटाजी कभी नहीं रहे। मेरी भावनाका वह श्लोक—'लाखों वर्षों तक जीऊँ या मृत्यु आज ही आ जावे" या "कोई बुरा कहे या अच्छा लक्ष्मी आवे या जावे" वे सदा याद रखते हैं। लक्ष्मी आवे या जावे जीवनमें कभी गहन विचार किया तक नहीं। सदा विनीत रहनेवाले कर्मठ कर्मवीर हैं।

विएगएण णरो गंधेण, चंदण सोमयाई रयणियरो
महुरर सेण अभयं, जण पिय्यतम् लहई भुवणे ॥

अर्थात् जैसे संसारमें सुगन्धके कारण, चन्दन, सौम्यताके लिए शशि एवं मधुरताके लिए अमृत यशस्वी है इसी प्रकार विनयके लिए ही मनुष्यके आपका प्रिय बने हुए हैं। उन्होंने जीवनमें घमण्ड तो

हैं। उन्होंने मेरे समान सैकड़ों शोधार्थियोंका मार्ग-दर्शन किया है तथा अनेक व्यक्तियोंको आवश्यक जानकारी व सामग्री प्रदान कर उपकृत किया है। वे अनुसंधित्सुओंके प्रेरणा-स्रोत हैं।

गम्भीर व्यक्तित्ववाले श्री नाहटाजी बड़े शान्त, सरल, मिलनसार एवं सहृदय व्यक्ति हैं। अपनी धार्मिक मान्यताओंके प्रति वे आस्थावान हैं किन्तु संकीर्णता उनमें लेशमात्र भी नहीं है। वे मौन साधक हैं। आडम्बर उन्हें पसन्द नहीं। प्रचार और यशसे दूर रहकर एकान्तभावसे कार्य करना उनका उद्देश्य है। वे अन्वेषण-कार्यके भीष्म पितामह हैं।

श्री नाहटाजी मुख्यतः व्यापारी हैं। अपने व्यावसायिक कार्योंमें संलग्न रहते हुए भी वे साहित्यिक तथा सांस्कृतिक कार्योंके करनेमें पूर्ण रुचि लेते हैं। वे अपने व्यापारिक कार्योंसे कैसे अवकाश निकाल पाते हैं, जब इस तथ्यपर विचार करता हूँ, तो आश्चर्य होता है। विद्यालयी-शिक्षा नहींके बराबर होते हुए भी श्री नाहटाजीने अपने विद्या-प्रेम और अध्यवसायसे उच्चतम योग्यता प्राप्त की है। उन्हें श्री और सरस्वती दोनोंकी कृपा प्राप्त है। उनकी प्रतिभा बहुमुखी और उनका कृतित्व परिमाण-बहुल है। वे ४० वर्षोंसे साहित्य-साधनामें रत हैं। उनके द्वारा लिखित एवं सम्पादित ग्रंथोंकी संख्या लगभण ५० है और पचासों ही ग्रन्थोंकी उन्होंने भूमिकाएँ लिखी हैं। उनके विविध विषयोंपर विशेषकर शोधपरक लगभग ३००० लेख देशकी विभिन्न पत्र-पत्रिकाओंमें प्रकाशित हो चुके हैं। लक्षाधिक हस्तलिखित प्रतियोंकी खोज कर अनेक अज्ञात ग्रंथोंके विवरणोंको वे प्रकाशमें लाये हैं। हस्तलिखित प्रतियोंकी खोज करना और अज्ञातग्रंथोंको प्रकाश में लाना उनका विशिष्ट कार्य है। वे अपने दायित्वके प्रति सतर्क हैं। इसीलिए वे ग्रन्थों तथा लेखकों-की त्रुटियोंका संशोधन तथा परिमार्जन समय-समय पर करते रहते हैं। अनेक ज्ञानभंडारोंकी हस्तलिखित प्रतियोंकी आवश्यक विवरणों सहित सूचियाँ उन्होंने बड़े परिश्रम तथा लगनके साथ तैयार की हैं, जो शोध-कार्यके लिए विशेष सहायक हैं। 'श्री अभय जैन ग्रन्थालय' तथा 'शंकरदान नाहटा कला भवन' उनके विद्या-प्रेम, कला-अभिरुचि तथा संग्राहकवृत्तिके कीर्ति-स्तम्भ हैं। उनका लेखन-कार्य अत्यन्त त्वरा गतिपूर्ण है।

श्रद्धेय नाहटा बन्धुओंकी षष्ठिपूर्तिके शुभ प्रसङ्गमें उनकी अप्रतिम साहित्य-साधना और अमूल्य सेवाओंके उपलक्ष्यमें इस विद्वद्-पूजनके पवित्र अनुष्ठानका आयोजन सर्वथा उचित है। इस अवसरपर मैं नतमस्तक होकर उनका अभिनन्दन करता हूँ। प्रभुसे प्रार्थना है कि वे शताधिक वर्षोंतक हमारे बीच रहकर हम सबका मार्ग-दर्शन करते रहें।



प्रबुध चमकते जैन सितारे : श्री अगरचन्दजी नाहटा

श्री विमल कुमार रॉका,

श्री अगरचन्दजी नाहटाका नाम जैन जगत्में एक उज्ज्वल नाम है। जैन जगत्का पढ़ा लिखा ही नहीं बल्कि अनपढ़े लोग भी उनके नामसे भलीभाँति परिचित हैं।

अवश्यमेव यश गाथा तो जरूर गायी ही जानी चाहिए। हमने देखा है कि समय-समय पर लोगोंने

उन्हें ''जैनसंघरत्न'' ''राजस्थानी साहित्य वाचस्पति'' एवं ''जैनजगत्‌के चाँद'' आदि उपाधियोंसे अलंकृत कर उनके जीवनमें चार चांद अवश्य लगाये हैं।

बिना किसी भी डिग्रीको हासिल किये ही जैन जगत् में उथल-पुथल मचा देने वाले मूक सेवक व मिलनसार सहयोगी और वस्तु स्थितिको परखनेवाले यशस्वी कर्मवीर आप सदा रहे हैं हमारे श्री नाहटाजी।

सरस्वतीके वरदपुत्र हैं ही, महादेवी लक्ष्मीको भी हार खानी ही पड़ी। कमाया भी खूब व दान दिया भी खूब आपने अपने जीवनकालमें। बड़े परिवारके प्रमुख होकर भी हमारे नाहटाजी सदा हर काममें अपने पारिवारिक जनों व मित्रोंसे खूब ही सलाह मशविरा किये बिना कोई नया काम कभी नहीं करते हैं। यही वजह है कि आपको सदा अपने हर काममें गहरी सफलता मिलती है।

विचारोंके बड़े बलवान् धीर पुरुष सदा रहे हैं। कम बोलना और जो भी बोलना, तोल-तोलकर बोलना उनमें दैवी गुण है। घर व परिवारमें भी इसी मर्यादाका पूर्ण पालन करना-कराना उन्हें अत्यधिक प्रिय भी है तथा घर आये मेहमानका भ्रातृवत् सत्कारसम्मान करना उन्हें सबसे ज्यादा प्रिय लगता है। परिवारके हर बन्धु चाहे छोटा या बड़ा हो, नित्य पूछताछ करना, दैवी गुणोंकी एक उनकी थाती रही है।

सन्तोंका समागम तो इतना उन्हें सुहाता है कि वे घण्टों उनके चरणोंमें ज्ञानचर्चामें बिता देते हैं। आगम, शास्त्र, व्यवहार, लौकिक आदि मसलोंपर तरह-तरहका विचार, समीक्षा, वादविवाद करना उन्हें प्राणवत् प्रिय है। पर जहाँ भी सम्प्रदायवादकी बू दिखी, उठकर चल दिये वहाँसे। पं० रत्न आचार्य प्रवर श्री हस्तीमलजी महारासाबके अनन्य भक्त होते हुए भी वक्त-वक्त उनसे अपनी बातोंके लिए अड़ जाया करते हैं। आप जब तक निष्कर्ष पूर्ण नहीं पा जाते स्थानक ही में वासा कर देते देखे गये हैं।

लेखकके साथ तत्त्वज्ञ विचारक भी नम्बर एकके रहे हैं। साहित्यप्रेम, साहित्यसृजन व पठन-पाठनका भी उन्हें कम शौक नहीं। हम नित्य ही पत्र-पत्रिकाओंमें उनके लेख-सामग्री देखते ही रहते आये हैं। लेखन शैली आपकी उत्कृष्ट व मँजी हुई सदा दिखी है। आप उपदेशात्मक लेख नहीं लिख, जीवनमें सुधार लाने वाले लेख अमूमन लिखते अत्यधिक हैं।

प्राकृत साहित्यका हिन्दी रूपान्तर करने-करानेका काम आपने बहुत कुछ किया है तथा स्वबुद्धिसे प्रयोग खुदने बहुत किया है।

कार्य जो छेड़ दिया उसे पूर्ण तो करना ही चाहिए, उनसे यह सबकरूप सीखा ही जा सकता है।

पदके कायल श्री नाहटाजी कभी नहीं रहे। मेरी भावनाका वह श्लोक—'लाखों वर्षों तक जीऊँ या मृत्यु आज ही आ जावे'' या ''कोई बुरा कहे या अच्छा लक्ष्मी आवे या जावे'' वे सदा याद रखते हैं। लक्ष्मी आवे या जावे जीवनमें कभी गहन विचार किया तक नहीं। सदा विनीत रहनेवाले कर्मठ कर्मवीर हैं।

विएगएण णरो गंधेण, चंदण सोमयाई रयणियरो
महुरर सेण अभयं, जण पिय्यतम् लहई भुवणे॥

अर्थात् जैसे संसारमें सुगन्धके कारण, चन्दन, सौम्यताके लिए शशि एवं मधुरताके लिए अमृत यशस्वी है इसी प्रकार विनयके लिए ही मनुष्यके आपका प्रिय बने हुए हैं। उन्होंने जीवनमें घमण्ड तो

हैं। उन्होंने मेरे समान सैकड़ों शोधार्थियोंका मार्ग-दर्शन किया है तथा अनेक व्यक्तियोंको आवश्यक जानकारी व सामग्री प्रदान कर उपकृत किया है। वे अनुसंधित्सुओंके प्रेरणा-स्रोत हैं।

गम्भीर व्यक्तित्ववाले श्री नाहटाजी बड़े शान्त, सरल, मिलनसार एवं सहृदय व्यक्ति हैं। अपनी धार्मिक मान्यताओंके प्रति वे आस्थावान हैं किन्तु संकीर्णता उनमें लेशमात्र भी नहीं है। वे मौन साधक हैं। आडम्बर उन्हें पसन्द नहीं। प्रचार और यशसे दूर रहकर एकान्तभावसे कार्य करना उनका उद्देश्य है। वे अन्वेषण-कार्यके भीष्म पितामह हैं।

श्री नाहटाजी मुख्यतः व्यापारी हैं। अपने व्यावसायिक कार्योंमें संलग्न रहते हुए भी वे साहित्यिक तथा सांस्कृतिक कार्योंके करनेमें पूर्ण रुचि लेते हैं। वे अपने व्यापारिक कार्योंसे कैसे अवकाश निकाल पाते हैं, जब इस तथ्यपर विचार करता हूँ, तो आश्चर्य होता है। विद्यालयी-शिक्षा नहींके बराबर होते हुए भी श्री नाहटाजीने अपने विद्या-प्रेम और अध्यवसायसे उच्चतम योग्यता प्राप्त की है। उन्हें श्री और सरस्वती दोनोंकी कृपा प्राप्त है। उनकी प्रतिभा बहुमुखी और उनका कृतित्व परिमाण-बहुल है। वे ४० वर्षोंसे साहित्य-साधनामें रत हैं। उनके द्वारा लिखित एवं सम्पादित ग्रंथोंकी संख्या लगभण ५० है और पचासों ही ग्रन्थोंकी उन्होंने भूमिकाएँ लिखी हैं। उनके विविध विषयोंपर विशेषकर शोधपरक लगभग ३००० लेख देशकी विभिन्न पत्र-पत्रिकाओंमें प्रकाशित हो चुके हैं। लक्षाधिक हस्तलिखित प्रतियोंकी खोज कर अनेक अज्ञात ग्रंथोंके विवरणोंको वे प्रकाशमें लाये हैं। हस्तलिखित प्रतियोंकी खोज करना और अज्ञातग्रंथोंको प्रकाश में लाना उनका विशिष्ट कार्य है। वे अपने दायित्वके प्रति सतर्क हैं। इसीलिए वे ग्रन्थों तथा लेखकों-की त्रुटियोंका संशोधन तथा परिमार्जन समय-समय पर करते रहते हैं। अनेक ज्ञानभंडारोंकी हस्तलिखित प्रतियोंकी आवश्यक विवरणों सहित सूचियाँ उन्होंने बड़े परिश्रम तथा लगनके साथ तैयार की हैं, जो शोध-कार्यके लिए विशेष सहायक हैं। 'श्री अभय जैन ग्रन्थालय' तथा 'शंकरदान नाहटा कला भवन' उनके विद्या-प्रेम, कला-अभिरुचि तथा संग्राहकवृत्तिके कीर्ति-स्तम्भ हैं। उनका लेखन-कार्य अत्यन्त त्वरा गतिपूर्ण है।

श्रद्धेय नाहटा बन्धुओंकी षष्ठिपूर्तिके शुभ प्रसङ्गमें उनकी अप्रतिम साहित्य-साधना और अमूल्य सेवाओंके उपलक्ष्यमें इस विद्वद्-पूजनके पवित्र अनुष्ठानका आयोजन सर्वथा उचित है। इस अवसरपर मैं नतमस्तक होकर उनका अभिनन्दन करता हूँ। प्रभुसे प्रार्थना है कि वे शताधिक वर्षोंतक हमारे बीच रहकर हम सबका मार्ग-दर्शन करते रहें।

●

प्रबुध चमकते जैन सितारे : श्री अगरचन्दजी नाहटा

श्री विमल कुमार रॉका,

श्री अगरचन्दजी नाहटाका नाम जैन जगत्में एक उज्ज्वल नाम है। जैन जगत्का पढ़ा लिखा ही नहीं बल्कि अनपढ़े लोग भी उनके नामसे भलीभाँति परिचित हैं।

अवश्यमेव यश गाथा तो जरूर गायी ही जानी चाहिए। हमने देखा है कि समय-समय पर लोगोंने

उन्हें "जैनसंघरत्न" "राजस्थानी साहित्य वाचस्पति" एवं "जैनजगत्के चाँद" आदि उपाधियोंसे अलंकृत कर उनके जीवनमें चार चांद अवश्य लगाये हैं।

बिना किसी भी डिग्रीको हासिल किये ही जैन जगत् में उथल-पुथल मचा देने वाले मूक सेवक व मिलनसार सहयोगी और वस्तु स्थितिको परखनेवाले यशस्वी कर्मवीर आप सदा रहे हैं हमारे श्री नाहटाजी।

सरस्वतीके वरदपुत्र हैं ही, महादेवी लक्ष्मीको भी हार खानी ही पड़ी। कमाया भी खूब व दान दिया भी खूब आपने अपने जीवनकालमें। बड़े परिवारके प्रमुख होकर भी हमारे नाहटाजी सदा हर काममें अपने पारिवारिक जनों व मित्रोंसे खूब ही सलाह मशविरा किये बिना कोई नया काम कभी नहीं करते हैं। यही वजह है कि आपको सदा अपने हर काममें गहरी सफलता मिलती है।

विचारोंके बड़े बलवान् धीर पुरुष सदा रहे हैं। कम बोलना और जो भी बोलना, तोल-तोलकर बोलना उनमें दैवी गुण है। घर व परिवारमें भी इसी मर्यादाका पूर्ण पालन करना-कराना उन्हें अत्यधिक प्रिय भी है तथा घर आये मेहमानका भ्रातृवत् सत्कारसम्मान करना उन्हें सबसे ज्यादा प्रिय लगता है। परिवारके हर बन्धु चाहे छोटा या बड़ा हो, नित्य पूछताछ करना, दैवी गुणोंकी एक उनकी थाती रही है।

सन्तोंका समागम तो इतना उन्हें सुहाता है कि वे घण्टों उनके चरणोंमें ज्ञानचर्चामें बिता देते हैं। आगम, शास्त्र, व्यवहार, लौकिक आदि मसलोंपर तरह-तरहका विचार, समीक्षा, वादविवाद करना उन्हें प्राणवत् प्रिय है। पर जहाँ भी सम्प्रदायवादकी बू दिखी, उठकर चल दिये वहाँसे। पं० रत्न आचार्य प्रवर श्री हस्तीमलजी महारासाबके अनन्य भक्त होते हुए भी वक्त-वक्त उनसे अपनी बातोंके लिए अड़ जाया करते हैं। आप जब तक निष्कर्ष पूर्ण नहीं पा जाते स्थानक ही में वासा कर देते देखे गये हैं।

लेखकके साथ तत्त्वज्ञ विचारक भी नम्बर एकके रहे हैं। साहित्यप्रेम, साहित्यसृजन व पठन-पाठनका भी उन्हें कम शौक नहीं। हम नित्य ही पत्र-पत्रिकाओंमें उनके लेख-सामग्री देखते ही रहते आये हैं। लेखन शैली आपकी उत्कृष्ट व मँजी हुई सदा दिखी है। आप उपदेशात्मक लेख नहीं लिख, जीवनमें सुधार लाने वाले लेख अमूमन लिखते अत्यधिक हैं।

प्राकृत साहित्यका हिन्दी रूपान्तर करने-करानेका काम आपने बहुत कुछ किया है तथा स्वबुद्धिसे प्रयोग खुदने बहुत किया है।

कार्य जो छेड़ दिया उसे पूर्ण तो करना ही चाहिए, उनसे यह सबकरूप सीखा ही जा सकता है।

पदके कायल श्री नाहटाजी कभी नहीं रहे। मेरी भावनाका वह श्लोक—'लाखों वर्षों तक जीऊँ या मृत्यु आज ही आ जावे" या "कोई बुरा कहे या अच्छा लक्ष्मी आवे या जावे" वे सदा याद रखते हैं। लक्ष्मी आवे या जावे जीवनमें कभी गहन विचार किया तक नहीं। सदा विनीत रहनेवाले कर्मठ कर्म-वीर हैं।

विएगएण णरो गंधेण, चंदण सोमयाई रयणियरो
महुरर सेण अभयं, जण पिय्यतम् लहई भुवणे ॥

अर्थात् जैसे संसारमें सुगन्धके कारण, चन्दन, सौम्यताके लिए शशि एवं मधुरताके लिए अमृत यशस्वी है इसी प्रकार विनयके लिए ही मनुष्यके आपका प्रिय बने हुए हैं। उन्होंने जीवनमें घमण्ड तो

शायद ही किया हो। मैंने कई मर्तबा उनके मुखसे सुना है कि वर्षा वर्षेगी तो सभी ठौर ही फिर क्यों तरसना उस हित।

सहनशीलता एवं मिठासके तो खीरसागर ही है। स० १९४९ के दिसम्बर मास की बात है जब मैं कान्फ्रेन्सके ११वें अधिवेशन हेतु रेलसे मद्रास जा रहा था तो अहमदाबादसे चढ़ रेलमें, भीड़का कोई पार नहीं, पैर डिब्बेमें बढ़ा ही नहीं पा चुका था हमारे चरित्रनायक श्री नाहटाजी उसी डिब्बेमें विराजमान थे। स्वधर्मी भाईके नाते मैं पूछ बैठा कि आपका नाम—तो प्रेमसे जबाब दिया कि—मैंने अगरचन्द नाहटा केवे हैं। मैं भौचक्का-सा हो कुछ पीछे हटा तो झट मेरा हाथ पकड़ कहा—भाई इतने क्यों चमके? बात-चीतके दौरान मेरा भी नाम पूछ बैठे। मैं बोला—मेरा विमलकुमार राँका नीमाजवाला। मेरा नाम सुनते ही वे बोले, अरे भाई तुम हो राँकाजी, आओ। एक सीट तुरन्त दे दी। तुम तो बड़े प्रतिभाशाली लेखक व कवि भी हो। जब तक हम बम्बई नहीं पहुँचे बहुत ही आवभगत की। तथा मुझे जबरदस्ती एक दिनके लिए बम्बईमें उतार अपने वहाँ ले गये। खानेपर पुनः स्टेशन तक पहुँचाने आये। रेलमें बिठा एक पुस्तक "ज्ञानकी गरिमा" भी भेंट की जो उनके द्वारा ही लिखित है।

ओसवाल बन्धुओंको, सभीको भ्रातृवत् प्रेमसे देखते रहे हैं। आप गहरे मिलनसार सज्जन भी हैं। ओसवाल नामसे ही आपको बड़ी रुचि रही है। आप कबके मध्यत्वर्गी कर्मठ धर्मनेता वर्षोंसे रहे हैं। कम शिक्षा प्राप्त कर भी आपने साहित्य जगत्में खूब धूम मचाई है।

श्रमणोंमें आपसी मनमुटाव उन्हें सदा अखरता रहा है। पर इस तरफ वे कभी भी खींचातानी नहीं करते। कहीं बोलनेका अवसर आपको इस बावत दिया भी गया तो भी आप उसमें नहीं उलझे क्योंकि उन्हें यह मसला प्रिय ही नहीं। जब लाग लपेट ही नहीं रखते तो फिर क्यों उलझें इस उलझनमें।

उनके विचारोंमें सदा लेखनी व संघ एकताका ही सार होता है। डरना तो उनके जीवन-इतिहासमें लिखा ही नहीं भगवान्ने।

कान्फ्रेन्सका नाम तो आप लेतेपर रुचि उस मार्गमें आपकी नहीं है। फिर भी कान्फ्रेन्सके कोई कर्ण-धार उन तक पहुँच जाय तो घण्टों चर्चा, विश्लेषण व सहायता भी मनमानी कर देते हैं।

रूढ़िवाद, अंधश्रद्धा व मूर्तिपूजाके कट्टर विरोधी रहे ही। निर्गुणवादमें उनकी पक्की आस्था है। टोना-टोटका करना व शीतलामाता या मैसेजी वगैराको पूजना भी उन्हें नहीं सुहाता है। वे पक्के श्रद्धावान हैं जप व माला के अटूट।

जैन-अजैन सभी पत्रिकायें व पत्र उनकी सामग्रीके लिए लालायित रहते ही दिखे हैं। लिखते तथा भेजते ही रहते हैं। कलम उठाई, कुछ गुनगुनाया, घण्टोंमें कुछ न कुछ लिख ही देते हैं। आपके ही लेख बड़े समयोचित व एकता के सच्चे मार्गदर्शक रहे हैं।

नाम-वासना उन्हें कभी भी प्रिय नहीं। पर वे लिखते ही रहे हैं निरन्तर अपना कर्तव्य मान-कर ही।

आपके यहाँ अपना एक छोटा सा 'सहायता ट्रस्ट' खोल रखा है जिससे कई असहायों व उदीयमान बच्चों को छात्रवृत्ति भी देते हैं। आपकी दानप्रियता सदा मूक रही है। जो भी उनतक माँगन गया, खाली कभी नहीं लौटा तथा उल्टे यह उसे रवाना करते हैं कि—ये ले जाओ पर किसीको कहना मत।

ये हमारे छिपे नवरत्न हैं जो बड़े लाल लाडले माताके पुत्र हैं। आज साठ (६०) से आगे निकल चुके हैं। आज उनके जीवनकी हीरक जयन्तीपर हमारा जैनजगत् एक अमूल्य ग्रन्थका प्रकाशन कर उन्हें

अलंकृत कर रहे हैं । मुझे भी इस ग्रंथ हेतु कुछ लिखनेका आदेश मिला है सो, सोहनराज द्विवेदीकी उस रावतीके अनुसार—

वन्दाके इन स्वरोंमें एक स्वर मेरा भी मिला लो।
हो जाओ बलिशीश अगणित एक स्वर मेरा भी मिला लो।

के अनुसार मैं भी चन्द पंक्तियाँ लिख भेज रहा हूँ सो स्वीकृत की जाँय । ऐसे मौकेपर मैं भी उन्हें

"प्रबुद्ध चमकते जैन सितारे"

उपाधि प्रदान कर दूं तो कोई अतिशयोक्ति नहीं कि यह बात गलत हो। इसी आशाके साथ मैं लेखक भी आपका हार्दिक अभिनन्दन करता हुआ छोटी-सी सामग्री श्रद्धारूप भेज रहा हूँ सो अभिनन्दन ग्रन्थ द्वारा उनके चरणकमलोंको सदा-सर्वदा छूती रहे तथा उनके दीर्घ जीवनकी प्रभु पितासे प्रार्थना भी करती रहे।



नाहटा बन्धुओंकी विशिष्ट उपलब्धि

श्री शुभकरण सिंह

हमारे लिए तरुण वय काल था अतः इसे विवर्तकाल भी कहें तो अयुक्त नहीं होगा। सभीके जीवन में यह समय आता ही है एवं अपने-अपने संयोगके अनुसार उपलब्ध वातावरणका स्थायी-अस्थायी प्रभाव ग्रहण करना ही पड़ता है किन्तु जब किसीको उस वयमें सामान्योंकी भांति राग-रंगकी प्रवृत्तियोंसे तनिक सम्हल कर विद्याध्ययनका विस्तृत अवकाश न मिलने पर भी, पठन-शोध-लेखन वृत्तिकी ओर सोत्साह झुकते ही नहीं, बढ़ते हुए देखा तो स्वभावतः आकर्षण हुआ। प्रेरणाका स्रोत कुछ भी क्यों न हो कायिक आमोद-प्रमोदके बहावसे अपने आपको यथा संभव वंचित रख एवं सुसांसारिक नियमोंका यथाशक्य अनुगमन कर जीवनकी धाराको अपने पारिवारिक व्यवसायका अवलम्बन करते हुए भी साहित्य-साधन व ज्ञानार्जनकी ओर उन्मुख करना उस वयमें असहनीय कहा जायेगा।

नाहटा बन्धुओंने अपने जीवनके प्रारम्भमें ही साहित्य-साधनाका आग्रह मानों अतीतार्जित संस्कारोंसे पाया हो-ऐसा प्रतीत होता है। कलकत्ता महानगरीमें हम कतिपय समरुचि मित्र यत्र-तत्र सप्ताहांतमें सन्ध्या समय उन दिनों किसी स्थान पर परस्पर-नैतिक-धार्मिक विचार चिन्तनके लिए एकत्रित हुआ करते थे। इन प्रसंगोंमें नाहटा बन्धुओंका सहयोग अनिवार्य था। चर्चा प्रसंगमें अनेक संध्याएं प्रातःकालमें परिणत हो जातीं-समय, विचार आदान-प्रदानमें बहता रहता नाहटा बन्धु ऊँबते कभी नहीं देखे गये। विशेषकर श्री अगरचन्दजी अपनी मधुर स्वर-लहरीमें योगी आनन्द घनजीके पद या स्तवनोंको गाते व उन पद्योंमें भरे हुए आध्यात्मिक भावोंका स्पष्टीकरण करने व उन्हें हृदयंगम करनेकी चर्चा-धारा बह चलती।

जीवनको कैसे विवेककी ओर बढ़ाया जाय? जैन संस्कार पाकर भी तदनुसार जीवनको मात्र

परम्परागत आचरण तक ही सीमित रखना यथेष्ट है क्या ? जीव जड़के चिर सम्बन्धको व्युच्छिन्न करनेकी ओर, हम जैन संस्कार पाकर भी स्वेच्छासे स्वभावत: प्रवृत्त क्यों नहीं होते ? ऐहिक आभिजात्य प्रदर्शनकी ओर हम सहसा क्यों झुक जाया करते हैं ? मनोद्वेगोंको युक्त समय पर रोकनेमें हम कैसे समर्थ हो सकें ? आदिसे लेकर · · · जीवके जन्म जन्मान्तर प्रवाही अस्तित्वको स्पष्ट रूपसे कैसे प्रमाणित किया जाय ? हमारी बाह्य रुचि न रहने पर भी अनावश्यक प्रसंगों पर मोहावेश या कषायोंका उदय कैसे उपस्थित होता है एवं इसका परिमार्जन करने हेतु हम आचार व्यवहारको कैसे परिवर्तित व्यवस्थित करें ? ध्यान-साधनाकी रुचि व अभ्यास कैसे ग्रहण व उद्दीप्त किया जाय कि कायिक सुखोंकी अपेक्षा सद्भावनात्मक वैचारिक अनुभूतियोंकी ओर हम आकर्षित हो सकें ? ज्ञानका अर्थ व उद्दिष्ट दिशा क्या है ? जैन दर्शन सम्मत ज्ञानकी स्व पर प्रकाशक परिभाषाका ध्येय विस्तार कैसा व कितना माना जाय कि हमें मार्गदर्शन मिल सके ? पुण्य व पापकी व्यावहारिक किन्तु प्रवाह परिस्थिति परिवर्तित व्याख्याओं व धारणाओंके अनिर्धारित तुमुलके अवेष्टनसे प्रताड़ित होकर हम आज जो दिग्भ्रान्त हो उठते हैं उसका कोई आत्मोन्नति-सम्मत विश्लेषण व स्पष्टीकरण किया जा सकता है कि नहीं ? रुचि प्रेरित मानसिक साधनाका अवलंबन कैसे किया जाय तदर्थ किन-किन अस्वस्थ वैषयिक प्रवृत्तियोंकी तिलाञ्जलि देनी आवश्यक है ? गंभीर दार्शनिक प्रश्नों व समस्याओंको अपनी-अपनी मेधानुसार सुलझानेका निष्कपट प्रयत्न भी सदा चलता रहता—उपासना की व्यक्ति विशेषके दृष्टिकोणसे क्या मर्यादा है ? व्यावहारिक व आन्तरिक उपासनाकी सीमा रेखाएँ किन भावनाओंके उद्वर्तनके सहारे निर्धारित की जा सकती हैं । संकोच विकास अथवा सुख-दुःख कायिक इंगित ही क्या चेतन-अचेतनकी सीमा निर्धारित करनेका मापदण्ड है ? प्रत्येक जीवके कर्मोंकी सत्ता क्या अपना इतना स्वतंत्र अस्तित्व रखती है कि जीव उसके प्राबल्य वश सदा सर्वदा ही नतमस्तक होनेको बाध्य होता रहे । इसका अपवाद कब कैसे व क्यों होता है या हो सकता है ?

कितने संवादोंकी यहाँ गणना की जाय बीच-बीचमें कारणवश व्यवधान पड़ने पर भी यह क्रम वर्षों तक चलता रहा । नाहटाबन्धु इन चर्चाओंमें अपेक्षाकृत अधिक लगनसे भाग लिया करते, प्रेरक बनते, उत्साहित करते व अपने अध्ययन-मनन शोधके उपहारोंको मित्रोंमें अनवरत बाँटते रहते ।

चर्चा प्रसंगमें अनेक बार आधुनिक विज्ञानकी कई नई उपलब्धियाँ, जिनका पद विषयक जैन तत्त्व विवेचनकी सम्मतियोंसे संतुलन करना आवश्यक प्रतीत होता, गहन मनोविशेषका हेतु बन जातीं । उस समय नाहटा बन्धुओंका जैन सिद्धान्त आग्रह देखते बनता—जैन विवेचन युक्तिबाह्य प्रमाणित होने पर उनके हृदयमें आघात पहुँचता और उसका समन्वय (युक्तिसिद्ध) किये जाने पर बाँछें खिल जातीं ।

इन संवाद-चर्चा गोष्ठियोंका मनोभावों व आचरण पर कितना प्रभाव पड़ता था यह तो उसमें भाग लेने वाले व्यक्ति ही निर्णय कर सकते हैं । परन्तु नाहटा बन्धुओंके उन अवसरों पर परिस्फुट होने वाले उत्साह व लगनके साक्षी तो सभी रहे हैं तभी उनके आह्वान पर अनेक बार उनके स्व स्थान पर इन गोष्ठियोंका आयोजन होता रहा है । साहित्य साधनाके साथ-साथ विचार आदान-प्रदान साधना, वह भी सूक्ष्म निर्णय व समन्वय दृष्टि मनोनियोग पूर्वक करनेकी कृति सहित नाहटा बन्धुओंकी विशिष्ट उपलब्धि है ।

आशा ही नहीं, विश्वास भी है कि वे अनागत कालमें भी पूर्वकी भाँति, साहित्य सेवा परायण बने रहेंगे एवं अपने अध्ययन मनन लेखनके फलस्वरूप नये-नये विचार उपहार भावी संततिके लिये देते रहेंगे ।

•

श्री नाहटाजीका अद्भुत व्यक्तित्व

श्री रिखबराज कर्णावट, एडवोकेट, जोधपुर

स्वनामधन्य श्री अगरचन्दजी नाहटाका नाम मैं अपने विद्यार्थी-जीवनसे सुनता आ रहा था। उनके द्वारा किया गया शोध कार्यका विवरण उनके लेखोंके माध्यमसे मुझे पत्र-पत्रिकाओंमें पढ़नेको मिलता रहा। उनकी गवेषणा व सत्यान्वेषणकी शक्तिका मैं कायल था। उनके व्यक्तित्व व रहन-सहनके सम्बन्धमें मैंने एक विशेष प्रकारकी धारणा बना रखी थी किन्तु प्रथम साक्षात्कार में जब मैंने श्री नाहटाजीके दर्शन किये तो मैं कुछ क्षणोंके लिए विश्वास नहीं कर सका कि बीकानेरी पगड़ी व ठेठ राजस्थानी वेषभूषामें ऐसा महान् विद्वान् देखनेको मिलेगा। नाहटाजीकी व्यक्तिकी भाँति राजस्थानी भाषामें निरहंकार वार्ता करते देख कर मैं उनके प्रति आकर्षित हुए बिना न रह सका। उसके बाद तो ज्यों-ज्यों मिलनेका काम पड़ता गया, मेरी भक्ति उनके प्रति उत्तरोत्तर बढ़ती गई।

श्री नाहटाजी व्यवसायसे व्यापारी हैं। व्यापारी चतुर, परिश्रमी व लगनशील होता है। शोधके कामोंमें उनके ये गुण स्पष्टतया परिलक्षित होते हैं। अनेक दुर्लभ छिपे हुए ग्रन्थोंका पता लगाकर श्री नाहटाजीने भारतीय वाङ्मयकी अद्भुत सेवा की है। जब मैंने यहा सुना कि सरस्वती मांकी अनवरत सेवा करनेवाले इस सपूतको अभिनन्दन ग्रन्थ भेट करनेका निर्णय हुआ है तो मेरा हृदय प्रसन्नता व प्रफुल्लतासे भर गया। भारतीके इस वरद पुत्रका अभिनन्दन करने मात्रसे हमारे कर्त्तव्यकी इतिश्री नहीं हो जाती। जो महान काम इस विभूतिने अपने हाथमें लिया और जिसे वे बिना रुके अभी तक करते आ रहे हैं, उस काममें गति देनेमें हमारा भरपूर सहयोग हो और जो मशाल इन्होंने जलाय है, उसे मन्द न होने देनेकी प्रतिज्ञा योग्य विद्वान् लें तो श्री नाहटाजीको सन्तोष होगा। श्री नाहटाजी चिरायु होकर अपने मित्रोंको भी इस शोधकार्यको बढ़ानेमें प्रेरणा प्रदान कर उनका मार्ग प्रशस्त करते रहें।

●

हार्दिक अभिनन्दन

श्री मोतीलाल खुराना

- मां भारतीकी सेवामें सदैव रत।
- अहिंसा परमो धर्मः की ज्ञान ज्योति प्रज्वलित रखने वाले।
- पुरातन आध्यात्मिक ग्रन्थोंको अपना समस्त जीवन समर्पित करने वाले।
- जिनकी लेखनी कभी विश्राम नहीं लेती।
- जो सभी पत्र-पत्रिकाओंको अपना ही मानते हैं।
- उन श्री अगरचन्दजी नाहटाके प्रति अपनी समस्त शुभ कामनाएँ प्रेषित करते हुए हार्दिक अभिनन्दन करता हूँ।

मेरी दृष्टिमें श्री अगरचन्द नाहटा

श्री चन्दनमल 'चाँद' एम० ए०, साहित्यरत्न

स्वस्थ शरीर, लम्बा कद, धोती कुर्ते पर बन्द गलेका सफेद कोट, सिर पर बीकानेरी पगड़ी, मोटे फ्रेमका चश्मा लगाये बड़ी-बड़ी मूँछों वाले श्याम वर्ण, व्यक्ति कलकत्तेके एक समारोहमें बैठा देखकर मुझे लगा कि कोई सेठ है जिसे लक्ष्मीकी कृपासे इस साहित्यिक-समारोहमें भी मंच पर प्रतिष्ठित कर दिया गया है। लेकिन जब संयोजकने परिचय देते हुए कहा कि साहित्य, कला और पुरातत्वके शोधक श्री अगरचन्दजी नाहटा आपके सामने, अपने विचार व्यक्त करेंगे और वही सेठ माईकके सामने खड़ा हुआ तो मैं चौंक उठा। एम० ए० की परीक्षामें हिन्दी साहित्यके इतिहासके प्रश्नोंको हल करते समय जिन अगरचन्द नाहटाका नामोल्लेख पृथ्वीराज रासोकी प्रामाणिकताके सन्दर्भमें कई स्थानों पर किया था, क्या यही वे नाहटा हैं ? मेरी कल्पनामें उभरता हुआ उनका स्वरूप प्रत्यक्षके इस स्वरूपसे एकदम भिन्न था। लेकिन जब उनका धारा-प्रवाह शोधपूर्ण वक्तव्य हुआ तो विश्वास करना ही पड़ा कि ये ही वे श्री नाहटाजी हैं, जिनकी विद्वत्ताका मैं कायल था और जिनसे मिलनेकी मेरी भावना अत्यन्त प्रबल थी। संयोग ही कहना चाहिए कि मेरी जन्मभूमि श्री डूंगरगढ़ बीकानेरके निकट होते हुए भी उनसे पहली बार वहीं प्रत्यक्ष मिलना हुआ। कलकत्तेकी उस दूर-दूरकी मुलाकातके बाद तो अब तक नाहटाजीसे मिलने, चर्चा करने और पत्र-व्यवहारके अनेक अवसर प्राप्त हुए हैं और ज्यों-ज्यों उनके साथ परिचय एवं निकटता बढ़ी है, उनके व्यक्तित्वके अनेक पहलू मेरे सन्मुख स्पष्टतासे उजागर हुए हैं।

श्री नाहटाजीके अध्ययन-लेखनसे हिन्दी, राजस्थानी और प्राकृतके पाठक भलीभांति परिचित हैं। उनके हजारों लेख एवं सैकड़ों ग्रन्थ उनकी विद्वत्ताके परिचायक हैं। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रतिमाह नियमित रूपसे उनके शोधपूर्ण निबन्ध प्रकाशित होते रहते हैं। अतः मैं इस सम्बन्धमें अधिक कुछ न लिखकर नाहटाके व्यक्तित्व पर ही कुछ लिखना चाहूँगा।

श्री नाहटाजी वैश्यकुलके सम्पन्न परिवारमें लक्ष्मीके लाडले होते हुए भी साहित्यके अनुरागी कैसे बने, और मुश्किलसे प्राइमरी तककी स्कूली-शिक्षाके बावजूद उन्होंने एम० ए० और पी-एच० डी०के विद्यार्थियोंके मार्गदर्शक बननेकी योग्यता कैसे प्राप्त की, यह सचमुच प्रेरक एवं आश्चर्यजनक है। ज्ञानकी अखण्ड प्यास, विद्याकी लगन, सत्यके अनुसन्धानकी तीव्र भावना और सतत श्रम ही इस सफलताके साधन हो सकते हैं और श्री नाहटाजीके व्यक्तित्वमें ये गुण सहजरूपसे मिलते हैं। स्वभावसे सरल, निरभिमानी किन्तु वाणीसे अत्यन्त स्पष्ट तथा निर्भीक।

जो सत्य लगा उसे कहनेमें कहीं संकोच अथवा भय नहीं। खुले रूपमें उसे कहना और लिखना वे अपना धर्म मानते हैं। इसमें किसीको प्रिय-अप्रिय लगे तो इसकी परवाह नहीं। जैन संस्कार इनके जीवनमें रमे हुए हैं। सात्त्विकता और सहजता इनके व्यक्तित्वके दो महत्त्वपूर्ण गुण हैं। कहीं कोई दिखावा प्रदर्शन और बड़प्पन नहीं। मिलनसारिता ऐसी कि सामान्य व्यक्तिको अपने पांडित्यके बोझसे कभी बोझिल नहीं होने देते और विद्वानोंके बीच विद्वान्की तरह उसी सहजतासे पगड़ी लगाये गलेमें चादर डाले शोध-प्रबन्ध पढ़ रहे होते हैं या चर्चामें व्यस्त।

सादगी और धार्मिक संस्कार उनकी अपनी विशेषता है। रात्रि भोजन नहीं करना, जमीकन्द नहीं खाना, सामायिक और नियमित स्वाध्याय करना उनकी दिनचर्याके अंग हैं। परन्तु

प्रवासमें भोजन आदिके लिए मेजबानको कोई कष्ट देना उनको पसन्द नहीं। जहाँ उनकी सुविधा और संस्कारोंके अनुकूल व्यवस्था नहीं, वहाँ अलगसे अतिरिक्त व्यवस्थाके लिए मेजबानको परेशानी देना नहीं चाहते। स्वयं संयमसे काम चला लेते हैं।

पिछले दिनों बम्बई विश्व-विद्यालयकी प्राकृत सेमिनारके लिए आमंत्रित होकर बम्बई पहुँचे तो भारत जैन महामंडलके कार्यालयमें भी आये। संध्याका समय था। भगवान् महावीरके २५ सौंवे निर्वाण-महोत्सवके सम्बन्धमें प्रकाशित होने वाले साहित्यकी चर्चामें डूब गये। सुझाव देने लगे और इधर सूर्य अस्ताचलकी ओर बढ़ने लगा। मैंने पूछा—"संध्याका भोजन"?. सहजतासे बोले—"मैं रात्रि-भोजन तो नहीं करता।" फिर मुझे संकोचमें पड़ा देखकर बोले कि परेशानीकी कोई बात नहीं, यदि कुछ फल, दूध वगैरह मिल सके तो काम चल जायेगा। आफिसमें बैठकर ही थोड़े फल एवं दूध लिया और फिर साहित्य-चर्चामें डूब गये। न भोजनकी चिन्ता, न नियममें व्यवधान। साहित्य और विद्याकी धुनमें ही मस्त रहकर आनन्द मान लेना उनका स्वभाव है।

जैन समाजमें समन्वय, प्रेम और मैत्रीपूर्ण वातावरणके लिए श्री नाहटाजी सदा प्रयत्नशील रहते हैं। सम्प्रदायका भेद नहीं, साम्प्रदायिकताके आग्रहसे मुक्त हैं। श्वेताम्बर आचार्य हों या दिगम्बर मुनि, स्थानकवासी हों या तेरापन्थी—सबके साथ आपका निकटतम सम्बन्ध है। जिन आचार्यों, साधुओं एवं साध्वियोंके ज्ञान, ध्यानसे वे प्रभावित होते हैं, उनकी प्रत्यक्ष और परोक्ष प्रसन्नतापूर्वक चर्चा करते हैं। जिस विचारको ठीक समझते हैं उसको अपने लेखों और ग्रन्थोंमें उद्धृत करते हुए यह ध्यानमें नहीं रखते कि वे उनके सम्प्रदायके हैं या नहीं। नाहटाजीकी इसी गुणग्राहकताने उनको किसी सम्प्रदाय विशेष का नहीं बल्कि सारे समाजका प्रिय विद्वान् बना दिया है।

श्री नाहटाजी कर्मयोगी हैं। साहित्य-मन्दिरके ऐसे पुजारी, जो प्रतिपल अपनी साहित्य साधना में संलग्न रहते हैं। कहीं भी रहें, कहीं भी जायें उनकी शोध-वृत्ति और जिज्ञासा प्रतिपल सजग रहती है। संग्रह और परिग्रह धार्मिक दृष्टिसे गुण नहीं है किन्तु आपने संग्रहको भी गुणके रूपमें प्रतिष्ठित कर दिया है। हजारों हस्तलिखित दुर्लभ ग्रन्थ, हजारों प्रकाशित ग्रन्थ, प्राचीन कलाकृतियां, मूल्यवान सिक्कों आदिका उनका निजी संग्रहालय एक संग्रह तो अवश्य है किन्तु परिग्रह नहीं।

वर्षके बारह महीनोंमें से ग्यारह महीने वे अपने संग्रहालय और पुस्तकालयमें बैठकर अध्ययन एवं लेखनमें रत रहते हैं। वे ज्ञानका कोरा बोझ नहीं ढोते, उसे चरित्रमें उतारते हैं।

नाहटाजीकी एक दुर्लभ विशेषता यह भी है कि वे नये साहित्यकारों, नई पीढ़ीके युवा लेखकोंको प्रोत्साहित करते हैं। उनकी विद्वत्ता वह वटवृक्ष नहीं, जिसके नीचे कोई नन्हा पौधा पनप ही नहीं सकता वरन् उस मेघकी तरह है जो, नये अंकुरोंको प्रस्फुटित होनेके लिए प्रोत्साहनका जल देता है। मैंने आजसे लगभग कई वर्षों पूर्व अपनी नई प्रकाशित दो पुस्तकें उन्हें भेजी थीं, जिसकी प्राप्ति और बधाईका पत्र उन्होंने हाथोंहाथ भिजवाया। उस समय तक उनसे मेरा साक्षात्कार नहीं हुआ था लेकिन उनके उस पत्रसे मुझे अत्यन्त आनन्द और उत्साह मिला। इसी प्रकार अनेक छोटे-बड़े, नये-पुराने लेखकों और कवियोंकी विशेषताओंको वे सराहते, प्रोत्साहित करते रहते हैं।

श्री नाहटाजीके सम्पूर्ण व्यक्तित्वको समझना उतना ही कठिन है, जितना कठिन उनकी लिखावटको पढ़ना। मैंने उनकी लिखावटके सम्बन्धमें उनसे जब शिकायत की तो वे मुस्कुराकर टाल गये। वैसे उनके पत्र पढ़ते-पढ़ते एवं जैनजगत्में प्रकाशित होनेवालों लेखोंको टाईप कराते-कराते उनकी लिखावट पढ़नेमें

मेरी दृष्टिमें श्री अगरचन्द नाहटा

श्री चन्दनमल 'चाँद' एम० ए०, साहित्यरत्न

स्वस्थ शरीर, लम्बा कद, धोती कुर्ते पर बन्द गलेका सफेद कोट, सिर पर बीकानेरी पगड़ी, मोटे फ्रेमका चश्मा लगाये बड़ी-बड़ी मूँछों वाले श्याम वर्ण, व्यक्ति कलकत्तेके एक समारोहमें बैठा देखकर मुझे लगा कि कोई सेठ है जिसे लक्ष्मीकी कृपासे इस साहित्यिक-समारोहमें भी मंच पर प्रतिष्ठित कर दिया गया है। लेकिन जब संयोजकने परिचय देते हुए कहा कि साहित्य, कला और पुरातत्वके शोधक श्री अगरचन्दजी नाहटा आपके सामने, अपने विचार व्यक्त करेंगे और वही सेठ माईकके सामने खड़ा हुआ तो मैं चौंक उठा। एम० ए० की परीक्षामें हिन्दी साहित्यके इतिहासके प्रश्नोंको हल करते समय जिन अगरचन्द नाहटाका नामोल्लेख पृथ्वीराज रासोकी प्रामाणिकताके सन्दर्भमें कई स्थानों पर किया था, क्या यही वे नाहटा हैं ? मेरी कल्पनामें उभरता हुआ उनका स्वरूप प्रत्यक्षके इस स्वरूपसे एकदम भिन्न था। लेकिन जब उनका धारा-प्रवाह शोधपूर्ण वक्तव्य हुआ तो विश्वास करना ही पड़ा कि ये ही वे श्री नाहटाजी हैं, जिनकी विद्वत्ताका मैं कायल था और जिनसे मिलनेकी मेरी भावना अत्यन्त प्रबल थी। संयोग ही कहना चाहिए कि मेरी जन्मभूमि श्री डूंगरगढ़ बीकानेरके निकट होते हुए भी उनसे पहली बार वहीं प्रत्यक्ष मिलना हुआ। कलकत्तेकी उस दूर-दूरकी मुलाकातके बाद तो अब तक नाहटाजीसे मिलने, चर्चा करने और पत्र-व्यवहारके अनेक अवसर प्राप्त हुए हैं और ज्यों-ज्यों उनके साथ परिचय एवं निकटता बढ़ी है, उनके व्यक्तित्वके अनेक पहलू मेरे सन्मुख स्पष्टतासे उजागर हुए हैं।

श्री नाहटाजीके अध्ययन-लेखनसे हिन्दी, राजस्थानी और प्राकृतके पाठक भलीभांति परिचित हैं। उनके हजारों लेख एवं सैकड़ों ग्रन्थ उनकी विद्वत्ताके परिचायक हैं। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रतिमाह नियमित रूपसे उनके शोधपूर्ण निबन्ध प्रकाशित होते रहते हैं। अतः मैं इस सम्बन्धमें अधिक कुछ न लिखकर नाहटाके व्यक्तित्व पर ही कुछ लिखना चाहूँगा।

श्री नाहटाजी वैश्यकुलके सम्पन्न परिवारमें लक्ष्मीके लाडले होते हुए भी साहित्यके अनुरागी कैसे बने, और मुश्किलसे प्राइमरी तककी स्कूली-शिक्षाके बावजूद उन्होंने एम० ए० और पी-एच० डी०के विद्यार्थियोंके मार्गदर्शक बननेकी योग्यता कैसे प्राप्त की, यह सचमुच प्रेरक एवं आश्चर्यजनक है। ज्ञानकी अखण्ड प्यास, विद्याकी लगन, सत्यके अनुसन्धानकी तीव्र भावना और सतत श्रम ही इस सफलताके साधन हो सकते हैं और श्री नाहटाजीके व्यक्तित्वमें ये गुण सहजरूपसे मिलते हैं। स्वभावसे सरल, निरभिमानी किन्तु वाणीसे अत्यन्त स्पष्ट तथा निर्भीक।

जो सत्य लगा उसे कहनेमें कहीं संकोच अथवा भय नहीं। खुले रूपमें उसे कहना और लिखना वे अपना धर्म मानते हैं। इसमें किसीको प्रिय-अप्रिय लगे तो इसकी परवाह नहीं। जैन संस्कार इनके जीवनमें रमे हुए हैं। सात्त्विकता और सहजता इनके व्यक्तित्वके दो महत्त्वपूर्ण गुण हैं। कहीं कोई दिखावा प्रदर्शन और बड़प्पन नहीं। मिलनसारिता ऐसी कि सामान्य व्यक्तिको अपने पांडित्यके बोझसे कभी बोझिल नहीं होने देते और विद्वानोंके बीच विद्वान्‌की तरह उसी सहजतासे पगड़ी लगाये गलेमें चादर डाले शोध-प्रबन्ध पढ़ रहे होते हैं या चर्चामें व्यस्त।

सादगी और धार्मिक संस्कार उनकी अपनी विशेषता है। रात्रि भोजन नहीं करना, जमीकन्द नहीं खाना, सामायिक और नियमित स्वाध्याय करना उनकी दिनचर्याके अंग हैं। परन्तु

प्रवासमें भोजन आदिके लिए मेजबानको कोई कष्ट देना उनको पसन्द नहीं। जहाँ उनकी सुविधा और संस्कारोंके अनुकूल व्यवस्था नहीं, वहाँ अलगसे अतिरिक्त व्यवस्थाके लिए मेजबानको परेशानी देना नहीं चाहते। स्वयं संयमसे काम चला लेते हैं।

पिछले दिनों बम्बई विश्व-विद्यालयकी प्राकृत सेमिनारके लिए आमंत्रित होकर बम्बई पहुँचे तो भारत जैन महामंडलके कार्यालयमें भी आये। संध्याका समय था। भगवान् महावीरके २५ सौंवे निर्वाण-महोत्सवके सम्बन्धमें प्रकाशित होने वाले साहित्यकी चर्चामें डूब गये। सुझाव देने लगे और इधर सूर्य अस्ताचलकी ओर बढ़ने लगा। मैंने पूछा—"संध्याका भोजन" ?. सहजतासे बोले—"मैं रात्रि-भोजन तो नहीं करता।" फिर मुझे संकोचमें पड़ा देखकर बोले कि परेशानीकी कोई बात नहीं, यदि कुछ फल, दूध वगैरह मिल सके तो काम चल जायेगा। आफिसमें बैठकर ही थोड़े फल एवं दूध लिया और फिर साहित्य-चर्चामें डूब गये। न भोजनकी चिन्ता, न नियममें व्यवधान। साहित्य और विद्याकी धुनमें ही मस्त रहकर आनन्द मान लेना उनका स्वभाव है।

जैन समाजमें समन्वय, प्रेम और मैत्रीपूर्ण वातावरणके लिए श्री नाहटाजी सदा प्रयत्नशील रहते हैं। सम्प्रदायका भेद नहीं, साम्प्रदायिकताके आग्रहसे मुक्त हैं। श्वेताम्बर आचार्य हों या दिगम्बर मुनि, स्थानकवासी हों या तेरापन्थी—सबके साथ आपका निकटतम सम्बन्ध है। जिन आचार्यों, साधुओं एवं साध्वियोंके ज्ञान, ध्यानसे वे प्रभावित होते हैं, उनकी प्रत्यक्ष और परोक्ष प्रसन्नतापूर्वक चर्चा करते हैं। जिस विचारको ठीक समझते हैं उसको अपने लेखों और ग्रन्थोंमें उद्धृत करते हुए यह ध्यानमें नहीं रखते कि वे उनके सम्प्रदायके हैं या नहीं। नाहटाजीकी इसी गुणग्राहकताने उनको किसी सम्प्रदाय विशेष का नहीं बल्कि सारे समाजका प्रिय विद्वान् बना दिया है।

श्री नाहटाजी कर्मयोगी हैं। साहित्य-मन्दिरके ऐसे पुजारी, जो प्रतिपल अपनी साहित्य साधना में संलग्न रहते हैं। कहीं भी रहें, कहीं भी जायें उनकी शोध-वृत्ति और जिज्ञासा प्रतिपल सजग रहती है। संग्रह और परिग्रह धार्मिक दृष्टिसे गुण नहीं है किन्तु आपने संग्रहको भी गुणके रूपमें प्रतिष्ठित कर दिया है। हजारों हस्तलिखित दुर्लभ ग्रन्थ, हजारों प्रकाशित ग्रन्थ, प्राचीन कलाकृतियां, मूल्यवान सिक्कों आदिका उनका निजी संग्रहालय एक संग्रह तो अवश्य है किन्तु परिग्रह नहीं।

वर्षके बारह महीनोंमें से ग्यारह महीने वे अपने संग्रहालय और पुस्तकालयमें बैठकर अध्ययन एवं लेखनमें रत रहते हैं। वे ज्ञानका कोरा बोझ नहीं ढोते, उसे चरित्रमें उतारते हैं।

नाहटाजीकी एक दुर्लभ विशेषता यह भी है कि वे नये साहित्यकारों, नई पीढ़ीके युवा लेखकोंको प्रोत्साहित करते हैं। उनकी विद्वत्ता वह वटवृक्ष नहीं, जिसके नीचे कोई नन्हा पौधा पनप ही नहीं सकता वरन् उस मेघकी तरह है जो, नये अंकुरोंको प्रस्फुटित होनेके लिए प्रोत्साहनका जल देता है। मैंने आजसे लगभग कई वर्षों पूर्व अपनी नई प्रकाशित दो पुस्तकें उन्हें भेजी थीं, जिसकी प्राप्ति और बधाईका पत्र उन्होंने हाथोंहाथ भिजवाया। उस समय तक उनसे मेरा साक्षात्कार नहीं हुआ था लेकिन उनके उस पत्रसे मुझे अत्यन्त आनन्द और उत्साह मिला। इसी प्रकार अनेक छोटे-बड़े, नये-पुराने लेखकों और कवियोंकी विशेषताओंको वे सराहते, प्रोत्साहित करते रहते हैं।

श्री नाहटाजीके सम्पूर्ण व्यक्तित्वको समझना उतना ही कठिन है, जितना कठिन उनकी लिखावटको पढ़ना। मैंने उनकी लिखावटके सम्बन्धमें उनसे जब शिकायत की तो वे मुस्कुराकर टाल गये। वैसे उनके पत्र पढ़ते-पढ़ते एवं जैनजगत्में प्रकाशित होनेवालों लेखोंको टाईप कराते-कराते उनकी लिखावट पढ़नेमें

तो लगभग सफल हो गया हूँ किन्तु उनके व्यक्तित्वको पूरी तरहसे समझना उतना सरल और सहज नहीं। अतः अभिनन्दनके इस अवसर पर आड़ी-तिरछी रेखाओंसे उनके व्यक्तित्वका एक लघु रेखाचित्र प्रस्तुत करते हुए मैं शुभकामना करता हूँ कि वे सफल स्वास्थ्यपूर्ण शतायु बनकर साहित्यकी सेवा करते रहें।

●

श्री अगरचन्द नाहटा : एक व्यक्तित्व

श्री ताजमलजी बोथरा

भाई साहब श्री अगरचन्दजी नाहटासे मेरा सम्बन्ध हुए प्रायः ४ युग व्यतीत होने आये हैं। सं० १९८४-८५ की बात होगी जब हम गाँव पूनरासरमें रहा करते थे और बीच-बीच में मैं बीकानेर आया करता था। उस समय पूज्य महाराज साहब १००८ श्री जिन कृपाचन्द्रसूरिजी इनके बीकानेर स्थित नोहरेमें ही विराजा करते थे और उक्त महाशय, पूज्य महाराज साहबकी सेवामें प्रायः वहीं मिलते। उनसे वहीं बीच-बीचमें मुलाकातें होतीं। इस तरह सं० १९८७ की वह शुभ घड़ी भी आई जब कि हम लोग बीकानेर में आ बसे तबसे हमारा और इनका सम्पर्क बढ़ने लगा। हमारा सम्बन्ध दृढ़तर होनेका यह भी एक कारण था कि इनकी पूज्य मातुश्रीजी बोथरोंकी लड़की होनेके नाते मेरे पूज्यपिताजीको भाईजीके नामसे सम्बोधित किया करती थीं, और वे इनको बाई साहबके नामसे सम्बोधित किया करते थे, इस तरह इन भाई-बहिनोंका संबंध भी दृढ़तम हो गया। पिताजीको ये लोग मामाजी और हमलोग इन भाइयोंको भाई साहबके नामसे पुकारते। इस तरह हमारा समागम बढ़ने लगा। समागम जरूर बढ़ने लगा पर केवल व्यावहारिकही, ज्ञान गरिमा की दृष्टिसे नहीं। मुझे कई जगह इनके साथ यात्रा करनेका सुअवसर प्राप्त हुआ। कई तीर्थों एवं मीटिंगों आदिमें भी इनके साथ गया।

आपका व्यापारिक ज्ञान भी उच्चकोटि का था। आप पहले आसाममें जहाँ कि आपका कारोबार था, जाया करते थे और महीनों वहीं रहा करते तथा काम-काज देखा करते थे पर उस व्यस्तता पूर्ण वातावरण में भी आपका साहित्यिक प्रेम स्पष्टरूपसे परिलक्षित होता था। जब देखिये तब साहित्य सेवामें ही लीन। व्यापारिक कार्योंसे अवकाश मिलते ही आप साहित्य साधना में जुट जाया करते थे। वहाँके योग्य विद्वानों, साहित्यकारोंसे मिलना-जुलना समय-समय पर जब भी धार्मिक, जयंतिया, सभाओं आदिका भव्य आयोजन होता उस समय स्थानीय विद्वान् मंडलिया आदि साहित्यिक गोष्ठी आदिका आयोजन करना अपनी अपनी साहित्यिक अभिरुचिका परिचय देता रहा। इस तरह कई वर्ष समयकी गतिने आपके कार्यक्रमोंमें भी कुछ परिवर्तन कर दिया। इधर अब कई वर्षोंसे वर्षमें एक बार जाते हैं, उसमें भी तो कई घण्टा वही काम।

जब मैं इनकी साहित्य सेवाका अन्दाज लगाता हूँ तो मस्तिष्क चक्कर काटने लगता है। दैनिक एवं मासिक लेकर प्रायः एक सौ तो पत्र आते हैं। उन सबोंको देखना जिनको कुछ लिखना आवश्यक हो उनको लिखना, अन्यान्य विषयों पर लेख लिखवाना, कई पत्रादि लिखवाना, आये हुए महानुभावोंसे बातचीत

करना, कोई मीटिंग आदि हो तो उनमें भी सम्मिलित होना, खास खास दिनोंमें व्याख्यान श्रवण करने जाना और अपना अध्ययन अध्यापन करना । आदि आपके जीवनके प्रधान कार्यक्रमसे बन गये हैं । शायद ही कोई जैन-अजैन ऐसा पत्र होगा जिसने इन्हें लेख आदि भेजनेका अनुरोध किया हो और इन्होंने इसे नहीं भेजा हो । किसी भी विषय पर आपकी लेखनी अबाध गतिसे अग्रसर होती है । बिना इस बातकी अपेक्षा किये ही कि यहाँ कौन सा शब्द उपयुक्त होगा, आपकी लेखनी इस गतिसे दौड़ पड़ती है यही कारण है कि आज ये इतने बड़े लेखक हो गये हैं । शताधिक शोध छात्रोंको पथ-प्रदर्शन, हजारों व्यक्तियोंको साहित्यिक एवं धार्मिक सामग्री प्रदान करना इनके लिए साहजिक था ।

आपके संग्रहमें ४०००० हस्तलिखित ग्रन्थ: ४००० मुद्रित ग्रन्थ एवं कलाभवनमें ३००० चित्र होंगे । आप इतनी विशाल साहित्य सामग्रीको लिये उसमें अकेले ही तप रहे हैं । उनसे कोई भी सज्जन जो जितना चाहे लाभ ले सकता है । आपने अपने ऐतिहासिक एवं साहित्यिक ज्ञानसे जैन धर्म और खासकर खरतरगच्छकी जो महिमा बढ़ायी है उसकी जितनी भी प्रशंसा की जाय कम है । आपको जैसे भी अवसर प्राप्त होता है आप दिन भरमें ६–७ सामायिकें कर लेते हैं, जिससे पठन पाठनका कार्य सुचारु रूपसे हो जाता है । आप सदा यही कहते रहते हैं कि मेरे पर तो इन सामायिकों का बड़ा भारी उपकार है और आज जो मैं इस अवस्था पर हूँ उसका मूल कारण ही ये ही है । इसी प्रकार सामायिक करनेकी प्रेरणा सबको देते रहते हैं ।

मेरे पर तो स्नेहके साथ ही साथ इतनी कृपा है जिसकी अन्यथा अपेक्षा नहीं की जा सकती है । करीब २॥ वर्ष पूर्वकी बात होगी जबकि कलकत्तेमें एक बहुत बड़ी बीमारीसे छुटकारा पानेके पश्चात् नई जिन्दगी लेकर जब उसके ४ महीने पश्चात् बीकानेर विश्राम लेनेके लिये गया तो आप मेरी सुख शाता पृच्छाके लिए पधारा करते । एक दिन आपने फरमाया कि 'अपना सम्बन्ध और पूज्य मामा साहबका स्नेह मुझे प्रेरित करता है कि तुम्हें कुछ आध्यात्मिक प्रेरणा दूं । इसलिए मैंने सोचा है कि घण्टाभरके लिए यहाँ आऊं और हम ज्ञान चर्चा करें । आपके साथ ज्ञान चर्चाके योग्य तो मैं था ही कहीं । यह तो आपकी कृपाके सिवाय और था ही क्या ? उसी दिनसे आपने पधारना प्रारम्भ कर दिया और हमारा यह क्रम चलता रहा । चलता रहा तब तक, जब तक कि मैं आपके यहाँ जाने योग्य नहीं हो गया । फिर भी जब मैं गया तो आपने कहा कि 'तुम अभी क्यों आये हो मैं वहाँ आता ही । मैंने कहा कि 'अब मैं आ सकता हूँ इसलिए आया हूँ । आपने बड़ा भारी कष्ट किया इसके लिए मैं आपका हार्दिक आभारी हूँ ।''

मैं बहुत व्यक्तियोंके सम्पर्कमें आया, बहुत व्यक्तियोंसे मिला पर ऐसा कर्त्तव्यपरायण निष्ठावान एवं लगन वाला मानसिक कार्यकर्त्ता मेरी नजरोंमें नहीं आया । जब कभी देखिये तभी अध्ययन मनन एवं पठनका कार्य चलता ही रहता है । इनके अध्ययनको देखकर नं तो आश्चर्यका ठिकाना ही नहीं रहता कि क्या ही गजबका है इनका क्षयोपशम कि वे थकते ही नहीं, चाहे रात-दिन पढ़ते ही रहें ।

इनके पुस्तकालय को लीजिये ! चारों ओर पुस्तके छिटकी हुई पड़ी हैं । बीचमें नाहटाजी बैठे अपने कार्यमें व्यस्त हैं । आस-पासमें किसीको आप लिखा रहे हैं तो कोई अपने आप लिख रहे हैं । कोई इनसे प्रश्न पूछता है तो कोई अपने शोध कार्य सम्बन्धी अध्ययनमें लीन है । इनके साधु जीवनकी कहाँ तक प्रशंसा की जाय । न खानेकी चिन्ता, न पीनेकी और न सोने की ही और न नहाने निपटे की ही । जहाँ जो खानेकी मिल गया वही ठीक । न नमकीनका विचार और न मीठेका ही सोच जहाँ जो मिल गया वही ठीक । कई यात्राओंमें नाहटाजीको खाते पीते देखकर मनमें विचार आता कि नाहटाजीका इन चीजोंको

और इस तरहसे खाना इनको अवश्य बीमारीका शिकार बना देगा। पर सब हजम। स्वास्थ्य पर भी गुरुदेवकी ऐसी कृपा है कि ६१ वर्षकी उम्रमें भी सब कुछ हजम समयका सदुपयोग तो ऐसा देखनेमें ही आता जहाँ दो मिनट भी समय मिला कि लगे पढ़ने। समयका ऐसा सदुपयोग देखकर मनमें आता है कि कहाँ तो इनका सदुपयोग और कहाँ मेरा दुरुपयोग। मनमें आता है कि इनका फोटो उतरवाकर रखलूं और समय-समय पर दर्शन करता रहूँ।

इनके सम्बन्धमें कहाँ तक लिखा जाय, जितना लिखूं उतना ही कम है। इन्होंने हमारे समाजका जो गौरव बढ़ाया है वह अकथनीय है। गुरुदेव इन्हें चिरायु करें और वे एक वीर युवाकी तरह माँ सरस्वती की सेवा करते रहें, यही शुभेच्छा है।

●

श्री भँवरलालजी नाहटा

श्री ताजमलजी बोथरा

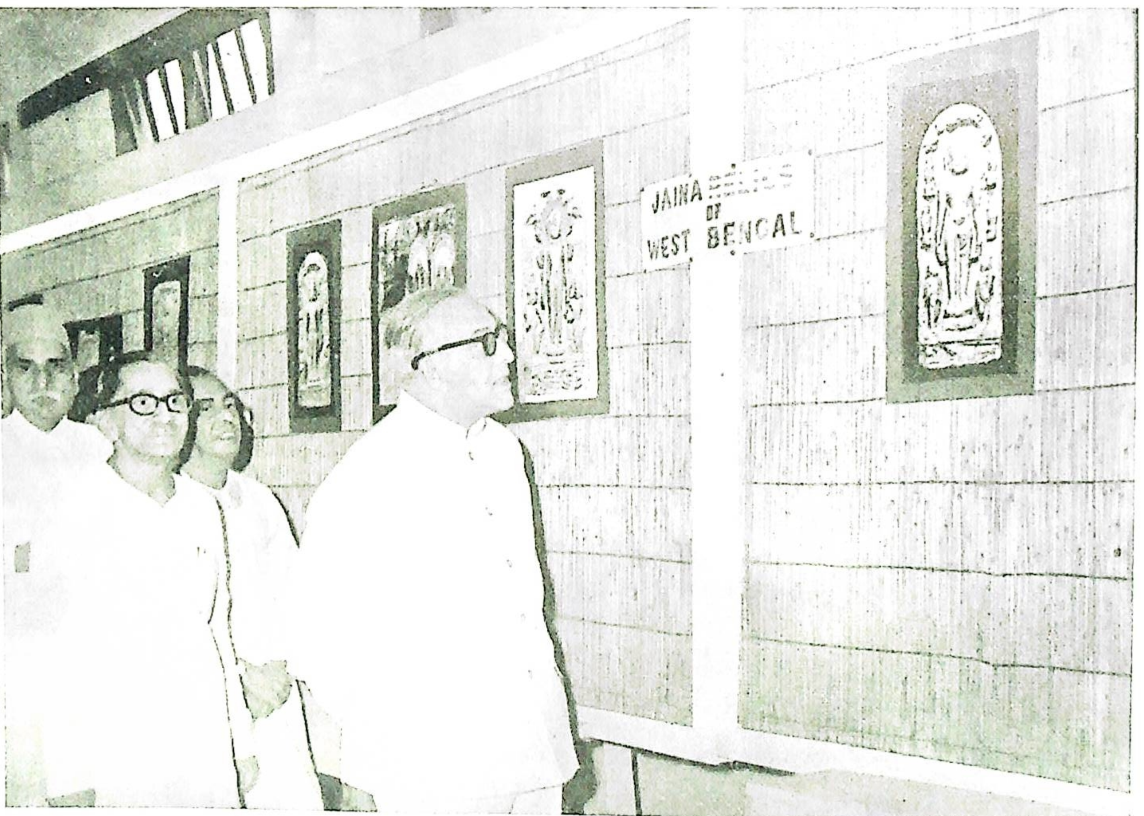
करीब ४३-४४ वर्ष हुए होंगे जब मैं अपने गाँव पूनरासरमें रहा करता था। तब मुझे ख्याल आता है कि एक दिन किसी साप्ताहिक अखबारको पढ़ते हुए मैंने एक छोटी सी कविता पढ़ी, जिसमें उसके रचयिता का नाम श्री भंवरलालजी नाहटा लिखा था। यद्यपि उस वक्त मैं उन्हें जानता नहीं था पर उसे देखकर मुझे हर्ष हुआ। उसके एक-दो वर्ष पश्चात् ही उनका और मेरा परिचय हो गया और तबसे आज तक वही प्रेम भाव चला आ रहा है। भाई साहब श्री अगरचन्दजीके साथ ही साथ आपके साथ भी प्रेमाधिक होता जा रहा है। आप श्रीमान् अगरचन्दजीके भ्रातृज हैं। आपकी व्यावहारिक शिक्षा भी श्री अगरचन्दजीके समान ही समझिये पर क्षयोपशम तेज होनेके कारण ही इतनी उन्नति कर पाये हैं। आप हिन्दी, संस्कृत, गुजराती, प्राकृत एवं बंगला आदि सभी भाषाओंसे अपना काम निकाल लेते हैं और थोड़े बहुत काव्यों की रचना भी कर लेते हैं। आप पुरातत्त्वका भी ज्ञान रखते हैं आप लेखादि भी लिखा करते हैं। आप लिपिकार बहुत उच्चकोटिके हैं। चाहे आप जितना भी इन्हें लिखनेको दे दीजिये लिख डालेंगे। मुझे जब कभी भी किसी प्राचीन, राजस्थानी भाषा आदिके शब्दोंका अर्थ आदि जाननेकी आवश्यकता होती है तो मैं सीधा इन्हींके पास दौड़ा जाता हूँ। गुरुदेव इन्हें दीर्घायु करें और ये पूर्ण स्वस्थ रहकर जैन समाजकी सेवा करते रहें, यही मंगल कामना है।

●

श्री नाहटाजी जैनधर्मके सच्चे सेवक

श्री मानचन्द भन्डारी

बीकानेर निवासी श्री अगरचन्दजी सा० नाहटा ६१ वे वर्षमें प्रवेश कर रहे है। उसके उपलक्षमें अभिनंदन ग्रन्थ भेंट कार्यका विचार प्रशंसनीय है। श्री नाहटाजीने ऐतिहासिक खोजके साथ जैनधर्मके विषयमें जो पुस्तकें लिखी हैं, वास्तवमें सराहनीय है।



भँवर लाल अध्यक्ष (जैन भवन)   विजय सिंह जी नाहर   सुकोमल कान्ति घोष   A. L. डायस

और इस तरहसे खाना इनको अवश्य बीमारीका शिकार बना देगा। पर सब हजम। स्वास्थ्य पर भी गुरुदेवकी ऐसी कृपा है कि ६१ वर्षकी उम्रमें भी सब कुछ हजम समयका सदुपयोग तो ऐसा देखनेमें ही आता जहाँ दो मिनट भी समय मिला कि लगे पढ़ने। समयका ऐसा सदुपयोग देखकर मनमें आता है कि कहाँ तो इनका सदुपयोग और कहाँ मेरा दुरुपयोग। मनमें आता है कि इनका फोटो उतरवाकर रखलूं और समय-समय पर दर्शन करता रहूँ।

इनके सम्थन्धमें कहाँ तक लिखा जाय, जितना लिखूं उतना ही कम है। इन्होंने हमारे समाजका जो गौरव बढ़ाया है वह अकथनीय है। गुरुदेव इन्हें चिरायु करें और वे एक वीर युवाकी तरह माँ सरस्वती की सेवा करते रहें, यही शुभेच्छा है।

●

श्री भँवरलालजी नाहटा

श्री ताजमलजी बोथरा

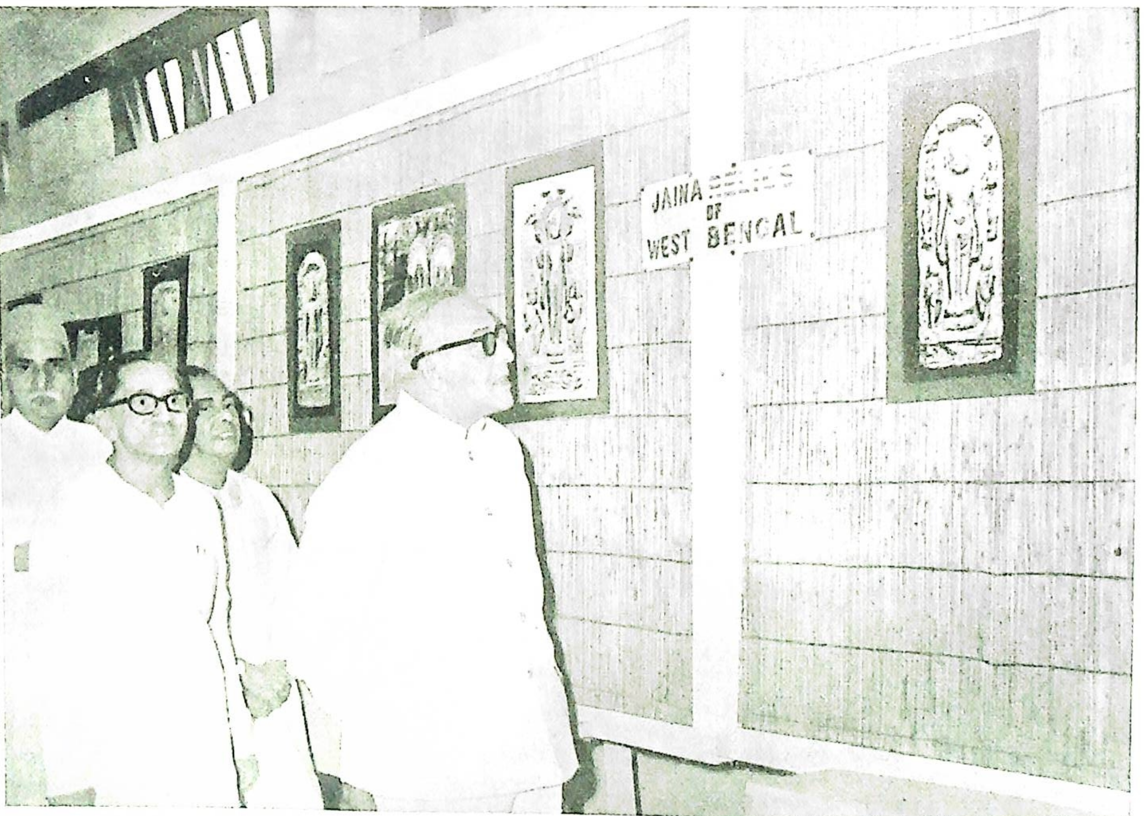
करीब ४३-४४ वर्ष हुए होंगे जब मैं अपने गाँव पूनरासरमें रहा करता था। तब मुझे ख्याल आता है कि एक दिन किसी साप्ताहिक अखबारको पढ़ते हुए मैंने एक छोटी सी कविता पढ़ी, जिसमें उसके रचयिता का नाम श्री भंवरलालजी नाहटा लिखा था। यद्यपि उस वक्त मैं उन्हें जानता नहीं था पर उसे देखकर मुझे हर्ष हुआ। उसके एक-दो वर्ष पश्चात् ही उनका और मेरा परिचय हो गया और तबसे आज तक वही प्रेम भाव चला आ रहा है। भाई साहब श्री अगरचन्दजीके साथ ही साथ आपके साथ भी प्रेमाधिक होता जा रहा है। आप श्रीमान् अगरचन्दजीके भ्रातृज हैं। आपकी व्यावहारिक शिक्षा भी श्री अगरचन्दजीके समान ही समझिये पर क्षयोपशम तेज होनेके कारण ही इतनी उन्नति कर पाये हैं। आप हिन्दी, संस्कृत, गुजराती, प्राकृत एवं बंगला आदि सभी भाषाओंसे अपना काम निकाल लेते हैं और थोड़े बहुत काव्यों की रचना भी कर लेते हैं। आप पुरातत्त्वका भी ज्ञान रखते हैं आप लेखादि भी लिखा करते हैं। आप लिपिकार बहुत उच्चकोटिके हैं। चाहे आप जितना भी इन्हें लिखनेको दे दीजिये लिख डालेंगे। मुझे जब कभी भी किसी प्राचीन, राजस्थानी भाषा आदिके शब्दोंका अर्थ आदि जाननेकी आवश्यकता होती है तो मैं सीधा इन्हींके पास दौड़ा जाता हूँ। गुरुदेव इन्हें दीर्घायु करें और ये पूर्ण स्वस्थ रहकर जैन समाजकी सेवा करते रहें, यही मंगल कामना है।

●

श्री नाहटाजी जैनधर्मके सच्चे सेवक

श्री मानचन्द भन्डारी

बीकानेर निवासी श्री अगरचन्दजी सा० नाहटा ६१ वे वर्षमें प्रवेश कर रहे है। उसके उपलक्षमें अभिनंदन ग्रन्थ भेंट कार्यका विचार प्रशंसनीय है। श्री नाहटाजीने ऐतिहासिक खोजके साथ जैनधर्मके विषयमें जो पुस्तकें लिखी हैं, वास्तवमें सराहनीय है।



भँवर लाल अध्यक्ष (जैन भवन) विजय सिंह जी नाहर सुकोमल कान्ति घोष A. L. डायस



पुरातत्त्वाचार्य मुनि जिनविजय जी अभिनन्दन समारोह चित्तौड़ में
महातीर्थ पावापुरी पुस्तक समर्पण करते हुए श्री भँवरलाल जी नाहटा ।



भँवरलाल जी नाहटा — विजय सिंह जी नाहर — सुकोमलकान्ति घोष — डायस — शंकर प्रसाद मित्र, प्रधान न्यायाध्यक्ष, Calcutta High Court



पुरातत्त्वाचार्य मुनि जिनविजय जी अभिनन्दन समारोह चित्तौड़ में
महातीर्थ पावापुरी पुस्तक समर्पण करते हुए श्री भँवरलाल जी नाहटा ।



भँवरलाल जी नाहटा   विजय सिंह जी नाहर   सुकोमलकान्ति घोष   डायस   शंकर प्रसाद मित्र
प्रधान न्यायाध्यक्ष
Calcutta High Court



शिवदास चौधरी (एसियाटिक सो० लाइब्रेरियन)	गंभीरचंदजी बोथरा	विजय सिंह नाहर	सुनीतिकुमार चटर्जी	भँवरलाल जी नाहटा (अध्यक्ष जैन भवन)

श्री नाहटाजीसे मेरा सम्पर्क काफी समयसे है। यों मिलनेका अवसर बहुत कम प्राप्त हुआ किन्तु पत्र व्यवहार कई वर्षोंसे चलता है। इनकी लिखी हुई पुस्तकें व लेख मैं रुचिपूर्वक पढ़ता हूँ और उनके प्रति मेरी सद्भावना एवं श्रद्धा अटूट है।

श्री नाहटाके दिलमें जैनधर्मके प्रचार व प्रसारका जोश है। इसी कारण वे समय-समय पर विद्वत्तापूर्ण लेख लिखते रहते हैं। जिनके पढ़नेसे जैनधर्मके प्रति श्रद्धा उत्पन्न होना स्वाभाविक है। यही नहीं, ऐतिहासिक जानकारी भी प्राप्त होती है।

सबसे बड़ी खूबी उनमें यह है कि वे सरल एवं निरभिमानी हैं। वे हर एक व्यक्तिके कथनोंका उत्तर संतोषजनक देते हैं। साथ ही नेक सलाह देनेमें भी संकोच नहीं करते।

२ वर्ष पूर्व जब श्री कापरदाजी तीर्थ स्वर्णजयन्ती महोत्सव ग्रंथके प्रबंधक था मैंने आपसे पत्र व्यवहार द्वारा काफी जानकारी प्राप्त की। मेरे अनुरोध पर आपने श्री नाकोडाजी व सांचोर तीर्थके लिए लेख लिखकर भेजे। साथ ही श्री नाकोडाजी तीर्थके शिलालेखोंकी नकलें व श्री कापरदा तीर्थके सम्बंधमें रचे पुराने रासा वि० सं० १६७३-८३ व ९५ की प्रतिलिपियाँ भी भेजीं जिससे मुझे काफी सहायता मिली।

श्री नाहटाजी किसीके पत्रका उत्तर देनेमें विलम्ब नहीं करते। उनका ऐसा नियम है कि आज पत्र प्राप्त हुआ उसका उतर एक या दो दिनमें दे ही देते। उनके पास काफी कार्य रहते हुए भी वे किसीकी प्रार्थनाको नहीं ठुकराते, यथायोग्य सहयोग देकर उन्हें सन्तुष्ट करनेकी भावना रखते हैं।

उनको जैनधर्मके प्रत्येक गच्छके सम्बन्धमें काफी जानकारी है। विशेषकर खरतरगच्छके सम्बन्धमें जितनी जानकारी उनको है, शायद ही किसी और को हो, ऐसा मेरा अनुभव है। उन्होंने इस गच्छकी जो सेवा की है•चिरस्मरणीय रहेगी।

श्री नाहटाजी समय समय पर सभाओंमें भी अपने विचार व्यक्त करते हैं। उनके वक्तव्यसे सभाजन इसलिए अधिक प्रभावित होते हैं कि वे सच्ची व ऐतिहासिक बातोंपर ही विशेष प्रकाश डालते हैं।

हाल हीमें दिगम्बरदास जैनका एक लेख छपा है उसमें "भगवान महावीरको चोइसवाँ तीर्थंकर सिद्ध करना" इसके लिए ११ सदस्यके नाम हैं जिसमें श्रीनाहटाजीका नाम भी आपको "सिद्धान्त चक्रवर्ती" के नामसे सम्बोधित कर "यथानाम तथा गुण" की कहावतको चरितार्थ किया है। वास्तवमें नाहटाजी जैसे विद्वान् लेखक श्वे० जैनमें कम हैं। जैन धर्मालविम्बयोंको गर्व है कि इस संघमें आप जैसे इतिहासप्रेमी सज्जन विद्यमान हैं। अन्य धर्मावलम्बियोंसे आपका काफी सम्पर्क हैं और आपकी पुस्तक व लेख पढ़कर संतोष व्यक्त करते हैं।

मैं उनकी दीर्घायु व स्वास्थ्य ठीक बना रहे, इसकी शुभ कामना करता हूँ। •

साहित्यके सितारे व शोध-निर्देशक
श्री अगरचन्दजी नाहटा

श्री प्रकाशचन्द सेठिया

शान्त स्वभावी, मृदुभाषी, अहं एवं क्रोधादिसे कोसों दूर परम सन्तोषी श्रीनाहटाजीका व्यक्तित्व प्रभावशाली एवं अत्यन्त ही सरल है। आर्थिक सम्पन्नता होते हुए भी आप मात्र धोती, कुर्ता, दुपट्टा व पगड़ी



शिवदास चौधरी (एसियाटिक सो० लाइब्रेरियन) | गंभीरचंदजी बोथरा | विजय सिंह नाहर | सुनीतिकुमार चटर्जी | भँवरलाल जी नाहटा (अध्यक्ष जैन भवन)

श्री नाहटाजीसे मेरा सम्पर्क काफी समयसे है। यों मिलनेका अवसर बहुत कम प्राप्त हुआ किन्तु पत्र व्यवहार कई वर्षोंसे चलता है। इनकी लिखी हुई पुस्तकें व लेख मैं रुचिपूर्वक पढ़ता हूँ और उनके प्रति मेरी सद्भावना एवं श्रद्धा अटूट है।

श्री नाहटाके दिलमें जैनधर्मके प्रचार व प्रसारका जोश है। इसी कारण वे समय-समय पर विद्वत्तापूर्ण लेख लिखते रहते हैं। जिनके पढ़नेसे जैनधर्मके प्रति श्रद्धा उत्पन्न होना स्वाभाविक है। यही नहीं, ऐतिहासिक जानकारी भी प्राप्त होती है।

सबसे बड़ी खूबी उनमें यह है कि वे सरल एवं निरभिमानी हैं। वे हर एक व्यक्तिके कथनोंका उत्तर संतोषजनक देते हैं। साथ ही नेक सलाह देनेमें भी संकोच नहीं करते।

२ वर्ष पूर्व जब श्री कापरदाजी तीर्थ स्वर्णजयन्ती महोत्सव ग्रंथके प्रबंधक था मैंने आपसे पत्र व्यवहार द्वारा काफी जानकारी प्राप्त की। मेरे अनुरोध पर आपने श्री नाकोडाजी व सांचोर तीर्थके लिए लेख लिखकर भेजे। साथ ही श्री नाकोडाजी तीर्थके शिलालेखोंकी नकलें व श्री कापरदा तीर्थके सम्बंधमें रचे पुराने रासा वि० सं० १६७३-८३ व ९५ की प्रतिलिपियाँ भी भेजीं जिससे मुझे काफी सहायता मिली।

श्री नाहटाजी किसीके पत्रका उत्तर देनेमें विलम्ब नहीं करते। उनका ऐसा नियम है कि आज पत्र प्राप्त हुआ उसका उतर एक या दो दिनमें दे ही देते। उनके पास काफी कार्य रहते हुए भी वे किसीकी प्रार्थनाको नहीं ठुकराते, यथायोग्य सहयोग देकर उन्हें सन्तुष्ट करनेकी भावना रखते हैं।

उनको जैनधर्मके प्रत्येक गच्छके सम्बन्धमें काफी जानकारी है। विशेषकर खरतरगच्छके सम्बन्धमें जितनी जानकारी उनको है, शायद ही किसी और को हो, ऐसा मेरा अनुभव है। उन्होंने इस गच्छकी जो सेवा की है॰ चिरस्मरणीय रहेगी।

श्री नाहटाजी समय समय पर सभाओंमें भी अपने विचार व्यक्त करते हैं। उनके वक्तव्यसे सभाजन इसलिए अधिक प्रभावित होते हैं कि वे सच्ची व ऐतिहासिक बातोंपर ही विशेष प्रकाश डालते हैं।

हाल हीमें दिगम्बरदास जैनका एक लेख छपा है उसमें "भगवान महावीरको चोइसवाँ तीर्थंकर सिद्ध करना" इसके लिए ११ सदस्यके नाम हैं जिसमें श्रीनाहटाजीका नाम भी आपको "सिद्धान्त चक्रवर्ती" के नामसे सम्बोधित कर "यथानाम तथा गुण" की कहावतको चरितार्थ किया है। वास्तवमें नाहटाजी जैसे विद्वान् लेखक श्वे० जैनमें कम हैं। जैन धर्मालविम्बयोंको गर्व है कि इस संघमें आप जैसे इतिहासप्रेमी सज्जन विद्यमान हैं। अन्य धर्मावलम्बियोंसे आपका काफी सम्पर्क हैं ओर आपकी पुस्तक व लेख पढ़कर संतोष व्यक्त करते हैं।

मैं उनकी दीर्घायु व स्वास्थ्य ठीक बना रहे, इसकी शुभ कामना करता हूँ। •

साहित्यके सितारे व शोध-निर्देशक

श्री अगरचन्दजी नाहटा

श्री प्रकाशचन्द सेठिया

शान्त स्वभावी, मृदुभाषी, अहं एवं क्रोधादिसे कोसों दूर परम सन्तोषी श्रीनाहटाजीका व्यक्तित्व प्रभावशाली एवं अत्यन्त ही सरल है। आर्थिक सम्पन्नता होते हुए भी आप मात्र धोती, कुर्ता, दुपट्टा व पगड़ी

ही पहनते हैं। सच ही तो है—व्यक्ति वस्त्रोंसे नहीं, गुणोंसे पहचाना जाता है। यही नहीं, भावोंकी उच्चताके कारण आप कई शुभ कार्योंमें आर्थिक योग भी देते रहते हैं। सात्त्विक जीवन यापन करते हुए भी आप अपने अध्ययनको निरन्तर विस्तृत बनाते जा रहे हैं। अध्ययन व लेखन कार्यमें व्यस्त होते हुए भी आप समय-समय पर विभिन्न सभाओं, आयोजनोंमें भी सम्मिलित होते हैं व हर आगन्तुकसे इस तरहका व्यवहार करते हैं कि इसका तो स्वयं ही अनुभव किया जा सकता है। आपकी भाषणकला व शैली अत्यन्त आकर्षक एवं ज्ञानवर्द्धक है। आपके विस्तृत व्यक्तित्वका अनुभव तो सम्पर्कमें आकर ही किया जा सकता है।

जहाँतक मेरा नाहटाजीसे परिचयका संबन्ध है, मुझे अपने आपपर गर्व होना चाहिए कि श्रीनाहटाजी मेरे अत्यन्त निकट सम्बन्धी व पूज्य हैं। परन्तु हम नवयुवकोंका यह दुर्भाग्य ही है कि हमने घरकी ज्ञानगंगासे भी लाभान्वित होनेका कभी प्रयास तक नहीं किया। यद्यपि कुछ साथी प्रसंगवश कहा करते हैं कि श्री नाहटाजीके निर्मल ज्ञानका लाभ अवश्य प्राप्त करना चाहिए मगर व्यवहारमें कोई भी उनके पास बैठकर उनके विचारोंसे लाभान्वित होनेका प्रयास नहीं करता, तथापि नाहटाजी स्वयं मुझे बुलावा भेजकर कुछ देना चाहते हैं।

मैंने अनुभव किया है कि आप इस ६१ वर्षकी वृद्धावस्थाके बावजूद अपनी साधनामें ज्योंके त्यों संलग्न हैं। आपकी कार्यक्षमता अद्भुत है। आप पुस्तकालय व संग्रहालयके संचालन, पुस्तकों, पत्र-पत्रिकाओं आदिके लेखन व प्रकाशनके साथ ही रात्रिमें ग्यारह बजे तक अध्ययन भी किया करते हैं और सुबह भी ब्राह्ममुहूर्त्तमें उठकर फिर अपनी साधनामें जुट जाते हैं। साहित्यिक साधनाके अतिरिक्त आप धार्मिक क्रियाएँ—सामायिक, प्रतिक्रमण, देवपूजन, आदि भी नियमित रूपसे करते रहते हैं।

निष्कर्षके तौरपर हम यही कह सकते हैं, कि नाहटाजी अपनी साधनाकी सफलता हेतु हर संभव उचित प्रयास करते हैं। वह गृहस्थमें रहते हुए भी अत्यन्त सरल व सात्त्विक जीवन यापन करते हैं।

आवश्यकता इस बातकी है कि आपके नवयुवक व सम्पूर्ण नयी पीढ़ी श्री नाहटाजीके लिये दीर्घायुकी कामना करते हुए उनके जीवनसे गुणग्रहण करके साहित्य व समाजकी सेवा की ओर प्रवृत्त हो। आपके द्वारा इस पवित्र वसुन्धरा पर निरन्तर ज्ञान सुधारसकी वृष्टि होती रहे—यही कामना है।



राजस्थानकी महान् विभूति श्री अगरचन्दजी नाहटा

श्री देवेन्द्रकुमार कोचर (B. Com. LL. B.)

राजस्थान बहुत प्राचीन कालसे ही अपने शौर्य, साहित्य एवं कलाके कारण अपना विशिष्ट स्थान बनाये हुए है। राजस्थान अनेक प्रसिद्ध शूरवीरों, विद्वानों, कवियों एवं कलाकारोंकी जन्मभूमि होनेके साथ-साथ उनकी प्रश्रय भूमि भी रहा है, जिनका भारतीय इतिहासमें विशिष्ट स्थान है। अर्वाचीन कालमें राजस्थानकी भूमि जिन महान् विभूतियोंको जन्म देकर कृतार्थ हुई, उनमें एक विभूति श्रीअगरचन्दजी नाहटा भी हैं।

साहित्यके क्षेत्रमें इनका योगदान विशेष महत्त्वका है। स्वयं जाने माने लेखक सम्पादक होनेके साथ-साथ अनेक साहित्यकार आपके सांनिध्यसे आज देशमें अपना विशिष्ट स्थान प्राप्त कर चुके हैं। आपका

"अभय जैन ग्रन्थालय" अपने आपमें विशिष्ट स्थान बनाये हुए है। इसमें लगभग ४० हजार हस्तलिखित एवं उतनी ही मुद्रित अर्थात् लगभग ८० हजार ग्रन्थोंका महत्त्वपूर्ण संग्रह है। आपने अपने अग्रज स्व. श्री अभयराज जी नाहटाकी स्मृतिमें स्थापित 'श्रीअभय जैन ग्रन्थमाला' से २५ ग्रन्थ प्रकाशित कराये हैं। इसके अतिरिक्त अपने पिताकी स्मृतिमें स्थापित 'सेठ शंकरदान नाहटा कला भवन' में दुर्लभ सिक्कों, प्राचीन प्रतिमाओं एवं नानाविध कलाकृतियोंका महत्त्वपूर्ण संग्रह है। आप राजस्थानमें चल रही साहित्यिक प्रवृत्तियोंके संरक्षक एवं पोषक रहे हैं। आपकी लगन एवं अथक प्रयासके फलस्वरूप ही आज राजस्थानके विभिन्न साहित्यकारोंकी रचनाएँ प्रकाशमें आ सकी हैं।

इस उत्कट साहित्य साधनाके अलावा आपका व्यक्तिगत जीवन भी विशेष महत्त्वका है। आपका जीवन सादगी, सच्चरित्रता एवं निष्कटतासे ओतप्रोत है। आपके जीवनकी सबसे बड़ी विशेषता नियमितता है। प्रातःकालीन ब्राह्ममुहूर्तमें उठकर सामायिक जैसी पवित्र एवं जीवनके लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण क्रियासे अपनी दिनचर्या आरम्भ करते हैं एवं साहित्य व धार्मिक आराधनासे ओत-प्रोत क्रियाएँ रात्रिके ११ बजे तक अबाध गतिसे चलती हैं। इसमें व्यवधान उत्पन्न नहीं होता।

शासनदेवसे प्रार्थना है कि इस नरपुंगवको दीर्घायु प्रदान करें, जिससे वे लम्बे समय तक देश व समाजकी सेवा कर सकें।

श्रेष्ठिवर श्री अगरचन्दजी नाहटा

श्री कन्हैयालाल लोढ़ा एम. ए.

श्रेष्ठिवर श्रीअगरचन्द जी नाहटा राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त लेखक हैं। आपने धर्म, दर्शन, आचार, नीति, साहित्य, इतिहास आदि विविध विषयोंका सुन्दर व सांगोपांग विवेचन किया है उससे आपकी प्रखर बुद्धि, मौलिक विचार एवं प्रकर्षविद्वत्ता स्पष्ट झलकती है।

आपका स्वभाव बड़ा ही मिलनसार, हृदय बड़ा उदार, बुद्धि बड़ी ही प्रखर, और विचार बड़े ही गम्भीर हैं। आपके मिलनसार स्वभाव एवं उदार हृदयका ही प्रभाव है कि केवल जैनसमाज नहीं अपितु प्रत्येक समाज व संस्था आपकी उपस्थिति व सदस्यतासे अपनेको सौभाग्यशाली मानती है।

आपकी शोधमें विशेष रुचि है। प्राचीन साहित्यका अनुसंधान करते समय आपके समक्ष जो नवीन विषय-वस्तु आई वह जिस धर्म, सम्प्रदाय, संस्था, पत्रके लिए उपयोगी है, उसे निष्पक्षभावसे लेख-बद्ध कर भेज दी। आप अनेक शोधकर्त्ता छात्रोंको बराबर मार्गदर्शन कर प्रेरणा देते व उत्साह बढ़ाते रहते हैं। भारतके ऐतिहासिक शोध-कार्यमें आपकी महत्त्वपूर्ण देन है।

आप सरलता, सहृदयता, सज्जनता एवं सदाशयताकी तो साक्षात् मूर्त्ति ही हैं। इन गुणोंसे सभी संस्थाओं व व्यक्तियोंसे आपका आत्मीय संबंध है। आपका उद्देश्य सदैव सर्जनका रहा है विध्वंसका नहीं। अतः आपने संस्था व व्यक्तिकी उन्नतिमें ही सदैव योगदान दिया है, उसके दोषोंपर दृष्टि डालकर द्वेष कभी नही किया।

ही पहनते हैं। सच ही तो है—व्यक्ति वस्त्रोंसे नहीं, गुणोंसे पहचाना जाता है। यही नहीं, भावोंकी उच्चताके कारण आप कई शुभ कार्योंमें आर्थिक योग भी देते रहते हैं। सात्त्विक जीवन यापन करते हुए भी आप अपने अध्ययनको निरन्तर विस्तृत बनाते जा रहे हैं। अध्ययन व लेखन कार्यमें व्यस्त होते हुए भी आप समय-समय पर विभिन्न सभाओं, आयोजनोंमें भी सम्मिलित होते हैं व हर आगन्तुकसे इस तरहका व्यवहार करते हैं कि इसका तो स्वयं ही अनुभव किया जा सकता है। आपकी भाषणकला व शैली अत्यन्त आकर्षक एवं ज्ञानवर्द्धक है। आपके विस्तृत व्यक्तित्वका अनुभव तो सम्पर्कमें आकर ही किया जा सकता है।

जहाँतक मेरा नाहटाजीसे परिचयका संबन्ध है, मुझे अपने आपपर गर्व होना चाहिए कि श्रीनाहटाजी मेरे अत्यन्त निकट सम्बन्धी व पूज्य हैं। परन्तु हम नवयुवकोंका यह दुर्भाग्य ही है कि हमने घरकी ज्ञानगंगासे भी लाभान्वित होनेका कभी प्रयास तक नहीं किया। यद्यपि कुछ साथी प्रसंगवश कहा करते हैं कि श्री नाहटाजीके निर्मल ज्ञानका लाभ अवश्य प्राप्त करना चाहिए मगर व्यवहारमें कोई भी उनके पास बैठकर उनके विचारोंसे लाभान्वित होनेका प्रयास नहीं करता, तथापि नाहटाजी स्वयं मुझे बुलावा भेजकर कुछ देना चाहते हैं।

मैंने अनुभव किया है कि आप इस ६१ वर्षकी वृद्धावस्थाके बावजूद अपनी साधनामें ज्योंके त्यों संलग्न हैं। आपकी कार्यक्षमता अद्भुत है। आप पुस्तकालय व संग्रहालयके संचालन, पुस्तकों, पत्र-पत्रिकाओं आदिके लेखन व प्रकाशनके साथ ही रात्रिमें ग्यारह बजे तक अध्ययन भी किया करते हैं और सुबह भी ब्राह्ममुहूर्त्तमें उठकर फिर अपनी साधनामें जुट जाते हैं। साहित्यिक साधनाके अतिरिक्त आप धार्मिक क्रियाएँ—सामायिक, प्रतिक्रमण, देवपूजन, आदि भी नियमित रूपसे करते रहते हैं।

निष्कर्षके तौरपर हम यही कह सकते हैं, कि नाहटाजी अपनी साधनाकी सफलता हेतु हर संभव उचित प्रयास करते हैं। वह गृहस्थमें रहते हुए भी अत्यन्त सरल व सात्त्विक जीवन यापन करते हैं।

आवश्यकता इस बातकी है कि आपके नवयुवक व सम्पूर्ण नयी पीढ़ी श्री नाहटाजीके लिये दीर्घायुकी कामना करते हुए उनके जीवनसे गुणग्रहण करके साहित्य व समाजकी सेवा की ओर प्रवृत्त हो। आपके द्वारा इस पवित्र वसुन्धरा पर निरन्तर ज्ञान सुधारसकी वृष्टि होती रहे—यही कामना है।



राजस्थानकी महान् विभूति श्री अगरचन्दजी नाहटा

श्री देवेन्द्रकुमार कोचर (B. Com. LL. B.)

राजस्थान बहुत प्राचीन कालसे ही अपने शौर्य, साहित्य एवं कलाके कारण अपना विशिष्ट स्थान बनाये हुए है। राजस्थान अनेक प्रसिद्ध शूरवीरों, विद्वानों, कवियों एवं कलाकारोंकी जन्मभूमि होनेके साथ-साथ उनकी प्रश्रय भूमि भी रहा है, जिनका भारतीय इतिहासमें विशिष्ट स्थान है। अर्वाचीन कालमें राजस्थानकी भूमि जिन महान् विभूतियोंको जन्म देकर कृतार्थ हुई, उनमें एक विभूति श्रीअगरचन्दजी नाहटा भी हैं।

साहित्यके क्षेत्रमें इनका योगदान विशेष महत्त्वका है। स्वयं जाने माने लेखक सम्पादक होनेके साथ-साथ अनेक साहित्यकार आपके सांनिध्यसे आज देशमें अपना विशिष्ट स्थान प्राप्त कर चुके हैं। आपका

"अभय जैन ग्रन्थालय" अपने आपमें विशिष्ट स्थान बनाये हुए है। इसमें लगभग ४० हजार हस्तलिखित एवं उतनी ही मुद्रित अर्थात् लगभग ८० हजार ग्रन्थोंका महत्त्वपूर्ण संग्रह है। आपने अपने अग्रज स्व. श्री अभयराज जी नाहटाकी स्मृतिमें स्थापित 'श्रीअभय जैन ग्रन्थमाला' से २५ ग्रन्थ प्रकाशित कराये हैं। इसके अतिरिक्त अपने पिताकी स्मृतिमें स्थापित 'सेठ शंकरदान नाहटा कला भवन' में दुर्लभ सिक्कों, प्राचीन प्रतिमाओं एवं नानाविध कलाकृतियोंका महत्त्वपूर्ण संग्रह है। आप राजस्थानमें चल रही साहित्यिक प्रवृत्तियोंके संरक्षक एवं पोषक रहे हैं। आपकी लगन एवं अथक प्रयासके फलस्वरूप ही आज राजस्थानके विभिन्न साहित्यकारोंकी रचनाएँ प्रकाशमें आ सकी हैं।

इस उत्कट साहित्य साधनाके अलावा आपका व्यक्तिगत जीवन भी विशेष महत्त्वका है। आपका जीवन सादगी, सच्चरित्रता एवं निष्कटतासे ओतप्रोत है। आपके जीवनकी सबसे बड़ी विशेषता नियमितता है। प्रातःकालीन ब्राह्ममुहूर्तमें उठकर सामायिक जैसी पवित्र एवं जीवनके लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण क्रियासे अपनी दिनचर्या आरम्भ करते हैं एवं साहित्य व धार्मिक आराधनासे ओत-प्रोत क्रियाएँ रात्रिके ११ बजे तक अबाध गतिसे चलती हैं। इसमें व्यवधान उत्पन्न नहीं होता।

शासनदेवसे प्रार्थना है कि इस नरपुंगवको दीर्घायु प्रदान करें, जिससे वे लम्बे समय तक देश व समाजकी सेवा कर सकें।



श्रेष्ठिवर श्री अगरचन्दजी नाहटा

श्री कन्हैयालाल लोढ़ा एम. ए.

श्रेष्ठिवर श्रीअगरचन्द जी नाहटा राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त लेखक हैं। आपने धर्म, दर्शन, आचार, नीति, साहित्य, इतिहास आदि विविध विषयोंका सुन्दर व सांगोपांग विवेचन किया है उससे आपकी प्रखर बुद्धि, मौलिक विचार एवं प्रकर्षविद्वत्ता स्पष्ट झलकती है।

आपका स्वभाव बड़ा ही मिलनसार, हृदय बड़ा उदार, बुद्धि बड़ी ही प्रखर, और विचार बड़े ही गम्भीर हैं। आपके मिलनसार स्वभाव एवं उदार हृदयका ही प्रभाव है कि केवल जैनसमाज नहीं अपितु प्रत्येक समाज व संस्था आपकी उपस्थिति व सदस्यतासे अपनेको सौभाग्यशाली मानती है।

आपकी शोधमें विशेष रुचि है। प्राचीन साहित्यका अनुसंधान करते समय आपके समक्ष जो नवीन विषय-वस्तु आई वह जिस धर्म, सम्प्रदाय, संस्था, पत्रके लिए उपयोगी है, उसे निष्पक्षभावसे लेख-बद्ध कर भेज दी। आप अनेक शोधकर्त्ता छात्रोंको बराबर मार्गदर्शन कर प्रेरणा देते व उत्साह बढ़ाते रहते हैं। भारतके ऐतिहासिक शोध-कार्यमें आपकी महत्त्वपूर्ण देन है।

आप सरलता, सहृदयता, सज्जनता एवं सदाशयताकी तो साक्षात् मूर्त्ति ही हैं। इन गुणोंसे सभी संस्थाओं व व्यक्तियोंसे आपका आत्मीय संबंध है। आपका उद्देश्य सदैव सर्जनका रहा है विध्वंसका नहीं। अतः आपने संस्था व व्यक्तिकी उन्नतिमें ही सदैव योगदान दिया है, उसके दोषोंपर दृष्टि डालकर द्वेष कभी नहीं किया।

नाहटाजी केवल विचारक व लेखक ही नहीं, कर्मठ कार्यकर्त्ता व सुधारक भी हैं। समय-समयपर अपने समाजको महत्त्वपूर्ण सुझाव दिये एवं उन्हें व्यावहारिक व रचनात्मक रूप भी दिया। अभी-अभी आपने एक अत्यन्त उपयोगी सुझाव प्रस्तुत किया है कि श्वेताम्बर समाजके अनेक विद्वान् व विचारक जो छिपे व इधर-उधर बिखरे हुए हैं, उन्हें प्रकाश में लाया जाय और इन्हें संगठित कर परस्पर प्रेरणा देने, प्रगति करने, पूरक बनने व ऊँचा उठानेके लिए प्रोत्साहन दिया जाय।

सर्वतोमुखी प्रतिभाके धनी नाहटाजी भारतकी अमूल्य निधि हैं। आपने तन, मन, धन, लेखन, प्रवचन आदिसे धर्म व समाजकी जो महान् सेवा की है एतदर्थ आप शतशः अभिनंदनके पात्र हैं। आप शतायु हों धर्म, समाज व राष्ट्रकी सेवा करते रहें, यही मेरी शुभ भावना है।



मूर्तिमान् ज्ञानकोष—श्री नाहटा

श्री भँवरलालजी पोल्याका

जबसे मैंने होश संभाला और हिन्दी पत्र-पत्रिकाओंको रुचि मेरे हृदयमें जागृत हुई तबसे ही श्री अगरचन्दजी नाहटासे उनकी कृतियोंके कारण मेरा परोक्ष परिचय हुआ। पत्रिकाओंमें जिन लेखकोंकी रचनाएँ मैं ध्यानपूर्वक पढ़ता था उनमें श्री नाहटाजी भी थे। शायद ही कभी ऐसा हुआ हो कि उनकी लिखी कोई रचना मेरे हाथमें आई हो और मैंने उसे विना पढ़े छोड़ा हो। इसका कारण था उनकी रचनामें अकाट्य युक्तियों एवं तर्कों द्वारा तथ्योंका प्रस्तुतीकरण। जब किसी विद्वान् द्वारा प्रस्तुत ऐतिहासिक तथ्यों के विपरीत वे अपनी बात उसके विरुद्ध रखते थे तो सचमुच ही बड़ा आनन्द आता था। एक विद्वान् द्वारा दूसरे विद्वान्की स्थापनाओंका निराकरण उनके निबन्धोंमें पढ़ता था तो एक प्रकारसे आत्मतुष्टिका अनुभव करता था। तुष्टिपानका यह लोभ ही मुझे प्रारम्भमें उनकी रचनाओंको पढ़नेके लिए प्रेरित करता रहा। अब भी यह प्रवृत्ति कायम है किन्तु दृष्टिकोणमें परिवर्तन हो गया है। अब उनकी रचनाएँ मैं अपने स्वयंके ज्ञानकोषकी वृद्धि हेतु ही पढ़ता हूँ।

श्री नाहटाजीका जन्म बीकानेरके एक व्यापारिक परिवारमें हुआ अतः इनके पिताकी इच्छा इन्हें एक सफल व्यापारी बनानेकी रही हो तो इसमें आश्चर्य क्या? उनके पिताकी यह इच्छा फलवती भी हुई और श्री नाहटा साहित्य सेवीके साथ-साथ सफल व्यापारी एवं लक्ष्मीपति भी बने। शायद यही कारण है कि उनकी रहन-सहनमें एक व्यापारीकी सादगी परिलक्षित होती है। ऊँची चौड़े पाड़की बीकानेरी ढंगसे बंधी पगड़ी, श्यामल चेहरे पर घनी काली मूंछें, लम्बा बन्द गलेका कोट और घुटनोंसे कुछ ही नीची तीन लांगकी धोती इस पहनावेमें वे सचमुच ही पहली नजरमें कोई सेठ मालूम होते हैं। बिना परिचय दिये कोई शायद ही उन्हें इस वेषभूषामें साहित्यकारके रूपमें अनुमान कर सके। इस सम्बन्धमें स्वर्गीय पूज्य गुरुदेव श्री पं० चैनसुखदासजी एक संस्मरण सुनाया करते थे। नाहटाजी जब प्रथम बार किसी कारणवश जयपुर आए तो स्वभावतः वे पण्डित साहबसे मिलने हेतु संस्कृत कालेज आए। पण्डित साहब उस समय

भोजन करने हेतु अथवा किसी अन्य कार्यवश कालेजसे बाहर गये थे अतः श्री नाहटाजी बाहर ही कालेजके गोखे पर बैठ गए। कुछ देर बाद पण्डित साहब जब आए तो आपने उतरकर उनसे नमस्कार किया। पण्डित साहबने नीचेसे ऊपर तक उन्हें देखा। पहले देखा तो था नहीं इसलिए पहचाननेका तो प्रश्न ही पैदा नहीं होता था। श्रीनाहटाजीने स्वयं ही यह कह कर अपना परिचय दिया कि हूँ अगरचन्द नाहटा हूँ। पण्डित साहबका कहना था कि इस प्रकार उनको अपने सामने पाकर उन्हें सुखद आश्चर्य हुआ था और वे उनकी सादगीसे बड़े प्रभावित हुए थे। उस समय श्री नाहटाजीके चश्मेकी एक कमानी भी कुछ टूटी सी थी। बादमें जब मैं स्वयं बीकानेर गया और नाहटाजीके प्रत्यक्ष दर्शन किए तो स्वयं भी उनकी सादगी, सीधेपन एवं दूसरोंको सहारा देकर आगे उठानेकी प्रवृत्ति आदि गुणोंसे प्रभावित हुए बिना नहीं रहा।

सन् १९५९ में जब मैं अपनी राजकीय सेवाओंके कारण बीकानेर गया तो सर्वप्रथम मैंने श्री नाहटाजीके प्रत्यक्ष दर्शन किये। ज्यों ही मेरा उनका परिचय हुआ उन्होंने बड़ा प्रेम प्रदर्शन किया। यह उनहीके कारण था कि जब तक मैं बीकानेर रहा श्वेताम्बर समाजके प्रत्येक उत्सवमें उन्होंने आग्रहपूर्वक मुझे निमन्त्रित किया और अपने विचार वहाँ प्रस्तुत करनेका अलभ्य अवसर दिया। दिगम्बर समाजके तो वहाँ गिने चुने ही घर हैं अतः उनकी ओरसे तो इस प्रकारका कोई आयोजन वहाँ होता ही नहीं था।

श्री नाहटाजीको हिन्दीके साथ साथ राजस्थानी भाषासे भी बड़ा प्रेम है और उसकी श्रीवृद्धि करनेका भी आपका बड़ा प्रयत्न रहता है। एक बार जब मैं बीकानेर था तो आपने कहा कि राजस्थानी हमारी मातृभाषा है अतः उस ओर भी हमें ध्यान देना चाहिये। बातों ही बातोंमें तै हुआ कि सप्ताहमें एक ऐसी गोष्ठीका आयोजन हो जिसमें राजस्थानीमें ही वार्तालाप, भाषण, चर्चा आदि हों। मैंने भी उसमें सम्मिलित होनेकी हाँ कर दी और प्रथम कार्यवाहीमें सम्मिलित भी हुआ। सच मानिए जब मैं वहाँ अपनी टूटी-फूटी जयपुरी भाषामें बोला तो अपनी असमर्थता और अज्ञानके कारण शर्मसे झुक-झुक गया। उस गोष्ठीमें वही मेरी प्रथम और अन्तिम उपस्थिति थी और शायद वह गोष्ठी आगे उस रूपमें चली भी नहीं।

श्री नाहटाजीमें किसी प्रकारका साम्प्रदायिक आग्रह नहीं है। मेरे बीकानेर प्रवास कालमें एक क्षुल्लक सहजानन्द वहाँ आए। आपने एवं आपके भाई श्री अभैराजजी ने उन्हें अपने शिववाड़ीके उद्यानमें ठहराया, उनके आहार-पान आदिकी व्यवस्था की और उनके प्रवचनोंका भी प्रबंध किया। साधुओंके पास मैं बचपनसे ही नहीं जाता या बहुत कम जाता हूँ किन्तु नाहटाजीके आग्रह पर मैं उनके पास गया। क्षुल्लकजीका कहना था कि वे भगवान् महावीरके समवसरणमें साधु थे और मनकी कमजोरीके कारण मुक्ति लाभ नहीं कर सके तथा जन्म मरणके चक्करमें भटक रहे हैं। आदि। ऐसा उन्हें जातिस्मरण हुआ है। उन्होंने वहाँ यह भी कहा कि वे अष्टापद जहाँसे भगवान ऋषभदेवने मुक्ति लाभ किया, के ठीक स्थानसे परिचित हैं एवं अष्टापद पर भरतने जिनमंदिरोंका निर्माण कराया, वे जहाँ हैं, वह स्थान भी जानते हैं। इस समय वह स्थान बर्फसे ढका हुआ है। बर्फ हटाने पर मंदिर निकल सकते हैं। उनके इस कथनका विश्वास कर नाहटाजी स्वयं तो नहीं किन्तु उनके बड़े भाई वहाँसे उनके साथ हिमालयकी ओर गए किन्तु बर्फसे ढके होनेसे वह प्रयत्न सफल नहीं हुआ और अष्टापद संबंधी ज्ञान जहाँका तहाँ ही रहा। इसही सिलसिलेमें मुझे नाहटाजीकी मितव्ययिता एवं व्यावहारिकताका भी ज्ञान हुआ। इनही क्षुल्लकजीका भाषण एक बार बीकानेरसे ३-४ मील दूरी पर आयोजित किया गया था जिसे सुनने हेतु मैं और मेरी श्रीमतीजी भी जा रहे थे। तांगेमें जब दरवाजेके बाहर निकले तो देखा श्री नाहटाजी खड़े हैं। बैठनेका आग्रह किया तो बोले कि इसही लिए तो खड़ा हूँ कि कोई ऐसी सवारी मिल जाय जिसमें स्थान हो, नहीं तो व्यर्थ ही पूरे तांगेके

पैसे देने पड़ेंगे। छोटेसे छोटे कागजको भी आप फेंकते नहीं। उनका भी उपयोग करते हैं। मेरे पास जो उनके लेख आते हैं उन पर कई बार तो १-१।। इंच तक कागज लगा हुआ आता है जिस पर आपकी बात लिखी हुई होती है।

श्री नाहटाजीने अब तक हजारों निबंध एवं बीसियों पुस्तकें लिखी हैं जो ऐतिहासिक महत्त्व की हैं। भारतकी विख्यात जैनाजैन पत्रिकाओंमें आपके निबंध प्रकाशित होते हैं जिनमें हिन्दी, प्राकृत, संस्कृत अपभ्रंश आदि भाषाओंके लेखकों आदिसे संबंधित महत्त्वपूर्ण जानकारी प्राप्त होती है। साहित्यिक कृतियोंके लेखकों आदिसे संबंधित कई गुत्थियाँ एवं विवाद आपके निबंधोंके कारण ही सुलझना संभव हुआ है। 'पृथ्वीराज रासो' संबंधी विवादका अन्त इसका एक छोटा सा उदाहरण है।

आप बड़े कुशाग्र बुद्धि हैं तथा दूसरे लेखकोंकी छोटीसे छोटी बातकी ओर भी आपका ध्यान तत्काल आकृष्ट होता है। प्रमाणमें एक उदाहरण प्रस्तुत है—

'बाबू छोटेलाल जैन स्मृति ग्रंथ'में आपका एक निबंध '५वीं शतीके प्राकृत ग्रंथ वसुदेव हिन्दीकी रामकथा' शीर्षकसे प्रकाशित हुआ था जिसके संबंधमें श्रद्धेय गुरुवर्य पं० चैनसुखदासजीने अपने सम्पादकीयमें लिखा था, ग्रंथके नामके साथ जो हिन्डी शब्द लगा है हमारे विचारमें वह हिन्दीका ही पूर्वरूप है। वसुदेव हिन्डी अर्थात् वसुदेव भाषा अर्थात् हिन्दी भाषामें वसुदेव चरित्र। अगर हमारा यह विचार सत्य है तो हिन्दी शब्द और हिन्दी भाषाका प्रादुर्भाव ५वीं शतीसे भी अधिक पूर्वमें चला जाता है। भाषा संबंधी शोधकर्त्ताओंके लिए 'वसुदेव हिन्डी' वास्तवमें एक महत्त्वपूर्ण कड़ी सिद्ध हो सकता है।" आपने ४-३-६८ को पण्डित साहबको लिखा—"आपने वसुदेव हिन्डीमें हिन्डी शब्दको हिन्दीका पूर्वरूप माना है वह ठीक नहीं है। हिन्डीका मतलब है भ्रमण करना, घूमना। श्री कृष्णके पिता वसुदेवने जगह-जगह घूमकर बहुतसे विवाह किए उसहीका मुख्य वर्णन इस ग्रंथमें है। प्रासंगिक रूपसे इसमें बहुत सी कथाएँ आई हैं। ......" सम्पादकीयमें जो भी लिखा गया वह विचार मैंने ही गुरुदेवको दे दिया था और शीघ्रतावश वह सम्पादकीय में चला भी गया। चूंकि यह विचार मैंने ही सर्व प्रथम उनको दिया था अतः उन्होंने नाहटाजीका वह पत्र मुझे दे दिया कि मैं इस संबंधमें लिखूँ। आज भी यह पत्र मेरे पास इसलिए सुरक्षित है कि इस संबंध में कुछ लिखना है। समयाभाव किंवा आलस्यवश ही कुछ लिख नहीं पाया और भविष्यमें लिख सकूँगा या नहीं कहा नहीं जा सकता अतः संक्षेपमें इस संबंधमें कुछ संकेत इस आशाके साथ करना चाहता हूँ कि समर्थ विद्वान् इस विषय पर पूर्वाग्रहोंसे हटकर नए दृष्टिकोणसे विचार करें। डा० देवेंद्रकुमार जैनने अपने "अपभ्रंश भाषा और साहित्य" नामक पुस्तकके प्रथम संस्करणमें पृष्ठ १००१ पर लिखा है—

"स्वयं पाणिनिने कुछ धातु पाठ दिये हैं जिनका संबंध डा० जोशी प्राकृत धातुओंसे मानते हैं जैसे—हिन्ड गत्यर्थे—हिन्डइ (अपभ्रंश), हांट (बंगला), हिंटणां (कुमाउनी)। इन धातुओंका व्यवहार संस्कृतमें नहीं होता।" श्री श्यामसुन्दर लाल दीक्षित एम० ए०, सा० रत्न, प्रभाकरने एक 'माडर्न हिन्दी कोष'का सम्पादन किया है जिसमें भी हिण्डनका अर्थ घूमना किया है। पालना या झूला भी हिण्डोला इसलिए कहलाता है कि वह इधर-उधर घूमता है। जयपुरमें हिण्डोलेको हींदा कहते हैं और उसमें झूलनेको हींदना। हिण्डोल एक प्रकारका राग होता है जिसके प्रभावसे झूलना अपने आप झूलने लगता है ऐसा संगीत शास्त्रोंमें कहा है। श्री दीक्षितके कोषमें हिण्डोलका संस्कृत रूप हिन्दोल बताया है। सं० दोलाका अपभ्रंश रूप डोला, सं० दहति शब्दका अपभ्रंश रूप डहइ है। इस सबका निष्कर्ष हमारे विचारमें यह निकला कि ये

सब शब्द एक ही क्रियासे संबंधित हैं और इनमें 'ड' का 'द' में परिवर्तन भी हुआ है। इस क्रियाका अर्थ यात्रा करना और इधर-उधर घूमना दोनों ही होता है। इस तरह हिन्डीका एक अर्थ यात्रा करनेवाला, इधर उधर घूमनेवाला भी होगा और उसकी भाषा भी हिन्डी ही कहलावेगी। आर्य जब सप्तसिंधु एवं सिंधसे गंगाके मैदानोंकी ओर बढ़े तो वे एक स्थानपर स्थिर नहीं रहते थे। वे अपने निवास-स्थानके लिए उपयुक्त स्थानकी खोजमें इधर-उधर घूमते रहते थे। इन ही लोगोंकी भाषाने विकसित होकर वर्तमान हिन्दी का रूप लिया है और यह प्रायः उस प्रदेश तक फैली हुई हैं जहाँ तक कि ये आर्य लोग गए। इस प्रकारसे मैंने हिन्डी शब्दको हिन्दीका पूर्वरूप अर्थात् अपभ्रंश रूप माना था। मेरे विचारमें इसमें कोई असंगति नहीं है और भाषाशास्त्रियोंको इसपर और ऊहापोह करना चाहिये।

सन् १९२९-३० के आस-पास नाहटाजीने जिस अभय जैन ग्रन्थालयकी अपने बड़े भाई श्री अभयराजजी नाहटाकी स्मृतिमें स्थापना की थी वह ग्रंथालय ही नहीं महत्त्वपूर्ण संग्रहालय भी है। इसमें ४० हजारके करीब हस्तलिखित, ४० हजार मुद्रित ग्रंथ तो हैं ही, साथ ही हजारों ऐतिहासिक महत्त्वके जैनाचार्यों, यतियों, राजाओंके पत्र, पट्टे, पंचांग, चित्र, विज्ञप्ति पत्र, मुद्राएँ, डिब्बियां, कलमदान, गंजफा, दांत, पीतल आदिकी कलापूर्ण सामग्री है। यह सब श्रीनाहटाजीने अपने स्वयंके द्रव्य एवं श्रमसे एकत्र किया है। आज इसका मूल्य द्रव्यमें नहीं आँका जा सकता। नाहटाजी जो समय-समय पर साहित्यिक मणि मुक्ताएँ प्रस्तुत करते हैं वे प्रायः सब ही इस सागरमें गोता लगाकर निकाली हुई होती हैं। जबतक नाहटाजी बीकानेर रहते हैं वे प्रतिदिन नित्य नियमसे प्रातः अध्ययनार्थ दो-तीन घण्टे यहाँ अवश्य बैठते हैं। इसके लिए यहाँ ही आपके लिए एक पृथक् कमरा है। इस समय आप किसीसे भी, जहाँ तक मुझे मालूम है, नहीं मिलते। आज नाहटाजी जो कुछ भी स्वयं बने हैं और साहित्य जगत्को जो वो दे पाए हैं उसमें इस ग्रंथालयका योग कम नहीं है। शायद ही किसी अन्य लक्ष्मीपुत्रने इतने परिश्रमसे ऐसी महत्त्वपूर्ण संस्थाका निर्माण किया हो। नाहटाजीके जीवनका प्रत्येक क्षण ज्ञानोपयोगमें व्यतीत होता है। आप यदि उनसे कभी मिलें तो वे आपसे बातें भी इस हीसे संबंधित करेंगे।

श्री नाहटाजी ऐतिहासिक विद्वान्, गद्य लेखक तो हैं ही कवि भी हैं। यद्यपि इसके लिए उनके पास समय बहुत कम है। नवम्बर सन् ५३ की 'वीरवाणी' वर्ष ६ अंक ५ में आपकी 'श्री महावीर स्तवन' शीर्षक एक सुन्दर कविता प्रकाशित हुई थी। प्रायः साहित्यकार या तो गद्य लेखनमें निष्णात होते हैं या पद्य-लेखनमें। ऐसे विरले ही होते हैं जो दोनों विधाओंपर अधिकार रखते हों। श्री नाहटाजी भी उनमेंसे एक हैं।

श्री नाहटाजी जैसे विद्वान्, मनीषी, साम्प्रदायिकतासे परे रहनेवाले सज्जनका अभिनन्दन करनेका देरसे ही सही, जो निर्णय जैन समाजने किया है वह उचित है। हमारी कामना है कि श्री नाहटाजी दीर्घजीवी होकर एवं स्वस्थ रहकर भविष्यमें भी इस ही प्रकार माँ भारतीके भण्डारको भरते रहें।

●

पैसे देने पड़ेंगे। छोटेसे छोटे कागजको भी आप फेंकते नहीं। उनका भी उपयोग करते हैं। मेरे पास जो उनके लेख आते हैं उन पर कई बार तो १-१॥ इंच तक कागज लगा हुआ आता है जिस पर आपकी बात लिखी हुई होती है।

श्री नाहटाजीने अब तक हजारों निबंध एवं बीसियों पुस्तकें लिखी हैं जो ऐतिहासिक महत्त्व की हैं। भारतकी विख्यात जैनाजैन पत्रिकाओंमें आपके निबंध प्रकाशित होते हैं जिनमें हिन्दी, प्राकृत, संस्कृत अपभ्रंश आदि भाषाओंके लेखकों आदिसे संबंधित महत्त्वपूर्ण जानकारी प्राप्त होती है। साहित्यिक कृतियोंके लेखकों आदिसे संबंधित कई गुत्थियाँ एवं विवाद आपके निबंधोंके कारण ही सुलझना संभव हुआ है। 'पृथ्वीराज रासो' संबंधी विवादका अन्त इसका एक छोटा सा उदाहरण है।

आप बड़े कुशाग्र बुद्धि हैं तथा दूसरे लेखकोंकी छोटीसे छोटी बातकी ओर भी आपका ध्यान तत्काल आकृष्ट होता है। प्रमाणमें एक उदाहरण प्रस्तुत है—

'बाबू छोटेलाल जैन स्मृति ग्रंथ'में आपका एक निबंध '५वीं शतीके प्राकृत ग्रंथ वसुदेव हिन्दीकी रामकथा' शीर्षकसे प्रकाशित हुआ था जिसके संबंधमें श्रद्धेय गुरुवर्य पं० चैनसुखदासजीने अपने सम्पादकीयमें लिखा था, ग्रंथके नामके साथ जो हिन्डी शब्द लगा है हमारे विचारमें वह हिन्दीका ही पूर्वरूप है। वसुदेव हिन्डी अर्थात् वसुदेव भाषा अर्थात् हिन्दी भाषामें वसुदेव चरित्र। अगर हमारा यह विचार सत्य है तो हिन्दी शब्द और हिन्दी भाषाका प्रादुर्भाव ५वीं शतीसे भी अधिक पूर्वमें चला जाता है। भाषा संबंधी शोधकर्त्ताओंके लिए 'वसुदेव हिन्डी' वास्तवमें एक महत्त्वपूर्ण कड़ी सिद्ध हो सकता है।" आपने ४-३-६८ को पण्डित साहबको लिखा—"आपने वसुदेव हिन्डीमें हिन्डी शब्दको हिन्दीका पूर्वरूप माना है वह ठीक नहीं है। हिन्डीका मतलब है भ्रमण करना, घूमना। श्री कृष्णके पिता वसुदेवने जगह-जगह घूमकर बहुतसे विवाह किए उसहीका मुख्य वर्णन इस ग्रंथमें है। प्रासंगिक रूपसे इसमें बहुत सी कथाएँ आई हैं। ......" सम्पादकीयमें जो भी लिखा गया वह विचार मैंने ही गुरुदेवको दे दिया था और शीघ्रतावश वह सम्पादकीय में चला भी गया। चूंकि यह विचार मैंने ही सर्व प्रथम उनको दिया था अतः उन्होंने नाहटाजीका वह पत्र मुझे दे दिया कि मैं इस संबंधमें लिखूँ। आज भी यह पत्र मेरे पास इसलिए सुरक्षित है कि इस संबंध में कुछ लिखना है। समयाभाव किंवा आलस्यवश ही कुछ लिख नहीं पाया और भविष्यमें लिख सकूँगा या नहीं कहा नहीं जा सकता अतः संक्षेपमें इस संबंधमें कुछ संकेत इस आशाके साथ करना चाहता हूँ कि समर्थ विद्वान् इस विषय पर पूर्वाग्रहोंसे हटकर नए दृष्टिकोणसे विचार करें। डा० देवेंद्रकुमार जैनने अपने "अपभ्रंश भाषा और साहित्य" नामक पुस्तकके प्रथम संस्करणमें पृष्ठ १००१ पर लिखा है—

"स्वयं पाणिनिने कुछ धातु पाठ दिये हैं जिनका संबंध डा० जोशी प्राकृत धातुओंसे मानते हैं जैसे—हिन्ड गत्यर्थे—हिन्डइ (अपभ्रंश), हांट (बंगला), हिंटणां (कुमाउनी)। इन धातुओंका व्यवहार संस्कृतमें नहीं होता।" श्री श्यामसुन्दर लाल दीक्षित एम० ए०, सा० रत्न, प्रभाकरने एक 'माडर्न हिन्दी कोष'का सम्पादन किया है जिसमें भी हिण्डनका अर्थ घूमना किया है। पालना या झूला भी हिण्डोला इसलिए कहलाता है कि वह इधर-उधर घूमता है। जयपुरमें हिण्डोलेको हींदा कहते हैं और उसमें झूलनेको हींदना। हिण्डोल एक प्रकारका राग होता है जिसके प्रभावसे झूलना अपने आप झूलने लगता है ऐसा संगीत शास्त्रोंमें कहा है। श्री दीक्षितके कोषमें हिण्डोलका संस्कृत रूप हिन्दोल बताया है। सं० दोलाका अपभ्रंश रूप डोला, सं० दहति शब्दका अपभ्रंश रूप डहइ है। इस सबका निष्कर्ष हमारे विचारमें यह निकला कि ये

सब शब्द एक ही क्रियासे संबंधित हैं और इनमें 'ड' का 'द' में परिवर्तन भी हुआ है। इस क्रियाका अर्थ यात्रा करना और इधर-उधर घूमना दोनों ही होता है। इस तरह हिन्डीका एक अर्थ यात्रा करनेवाला, इधर उधर घूमनेवाला भी होगा और उसकी भाषा भी हिन्डी ही कहलावेगी। आर्य जब सप्तसिंधु एवं सिंधसे गंगाके मैदानोंकी ओर बढ़े तो वे एक स्थानपर स्थिर नहीं रहते थे। वे अपने निवास-स्थानके लिए उपयुक्त स्थानकी खोजमें इधर-उधर घूमते रहते थे। इन ही लोगोंकी भाषाने विकसित होकर वर्तमान हिन्दी का रूप लिया है और यह प्रायः उस प्रदेश तक फैली हुई हैं जहाँ तक कि ये आर्य लोग गए। इस प्रकारसे मैंने हिन्डी शब्दको हिन्दीका पूर्वरूप अर्थात् अपभ्रंश रूप माना था। मेरे विचारमें इसमें कोई असंगति नहीं है और भाषाशास्त्रियोंको इसपर और ऊहापोह करना चाहिये।

सन् १९२९-३० के आस-पास नाहटाजीने जिस अभय जैन ग्रन्थालयकी अपने बड़े भाई श्री अभयराजजी नाहटाकी स्मृतिमें स्थापना की थी वह ग्रंथालय ही नहीं महत्त्वपूर्ण संग्रहालय भी है। इसमें ४० हजारके करीब हस्तलिखित, ४० हजार मुद्रित ग्रंथ तो हैं ही, साथ ही हजारों ऐतिहासिक महत्त्वके जैनाचार्यों, यतियों, राजाओंके पत्र, पट्टे, पंचांग, चित्र, विज्ञप्ति पत्र, मुद्राएँ, डिब्बियां, कलमदान, गंजफा, दांत, पीतल आदिकी कलापूर्ण सामग्री है। यह सब श्रीनाहटाजीने अपने स्वयंके द्रव्य एवं श्रमसे एकत्र किया है। आज इसका मूल्य द्रव्यमें नहीं आँका जा सकता। नाहटाजी जो समय-समय पर साहित्यिक मणि मुक्ताएँ प्रस्तुत करते हैं वे प्रायः सब ही इस सागरमें गोता लगाकर निकाली हुई होती हैं। जबतक नाहटाजी बीकानेर रहते हैं वे प्रतिदिन नित्य नियमसे प्रातः अध्ययनार्थ दो-तीन घण्टे यहाँ अवश्य बैठते हैं। इसके लिए यहाँ ही आपके लिए एक पृथक् कमरा है। इस समय आप किसीसे भी, जहाँ तक मुझे मालूम है, नहीं मिलते। आज नाहटाजी जो कुछ भी स्वयं बने हैं और साहित्य जगत्को जो वो दे पाए हैं उसमें इस ग्रंथालयका योग कम नहीं है। शायद ही किसी अन्य लक्ष्मीपुत्रने इतने परिश्रमसे ऐसी महत्त्वपूर्ण संस्थाका निर्माण किया हो। नाहटाजीके जीवनका प्रत्येक क्षण ज्ञानोपयोगमें व्यतीत होता है। आप यदि उनसे कभी मिलें तो वे आपसे बातें भी इस हीसे संबंधित करेंगे।

श्री नाहटाजी ऐतिहासिक विद्वान्, गद्य लेखक तो हैं ही कवि भी हैं। यद्यपि इसके लिए उनके पास समय बहुत कम है। नवम्बर सन् ५३ की 'वीरवाणी' वर्ष ६ अंक ५ में आपकी 'श्री महावीर स्तवन' शीर्षक एक सुन्दर कविता प्रकाशित हुई थी। प्रायः साहित्यकार या तो गद्य लेखनमें निष्णात होते हैं या पद्य-लेखनमें। ऐसे विरले ही होते हैं जो दोनों विधाओंपर अधिकार रखते हों। श्री नाहटाजी भी उनमेंसे एक हैं।

श्री नाहटाजी जैसे विद्वान्, मनीषी, साम्प्रदायिकतासे परे रहनेवाले सज्जनका अभिनन्दन करनेका देरसे ही सही, जो निर्णय जैन समाजने किया है वह उचित है। हमारी कामना है कि श्री नाहटाजी दीर्घजीवी होकर एवं स्वस्थ रहकर भविष्यमें भी इस ही प्रकार माँ भारतीके भण्डारको भरते रहें।

●

मरुभूमिकी देन : अनुकरणीय विद्यापति नाहटाजी

श्री पारसकुमार सेठिया

पूज्यवर श्री अगरचन्दजी नाहटा जैसे मनीषीके व्यक्तित्व एवं उनके विचारों तथा उनके द्वारा रचित ग्रन्थोंकी गम्भीरताकी दृष्टिसे उनकी महानताके सम्बन्धमें कुछ लिखने या कहनेकी न तो मुझमें कोई क्षमता ही है और न अधिकार ही है। मेरे लिये आपके व्यक्तित्वके बारेमें कुछ कहना सूर्यको दीपक दिखाना है। आपका त्याग अतुलनीय है। आप उन कर्मठ व्यक्तियोंमें-से हैं, जिन्हें स्वयंसिद्ध कहा जाता है। आपने अथक परिश्रम करके अपने साहित्यिक जीवनका सर्वतोमुखी विकास किया है। प्रसन्नतापूर्वक साहित्यिक पुरुषार्थ करनेमें आप अत्यन्त कुशल हैं और यही कारण है कि राष्ट्र और समाजमें आप अपना गौरवपूर्ण स्थान बनाने में सफल हुए हैं। आपकी साहित्यिक साधना और कर्मठता अनुकरणीय है। आपने अपने वित्त और श्रमका सदुपयोग साहित्यसेवाके लिए किया है। उसके लिए तो आप सर्वथा धन्यवादके पात्र हैं। साथ ही आपने एक विशाल पुस्तकालय स्थापित किया है। वह एक ऐसा कल्पवृक्ष है जो सदा फूलता-फलता रहेगा और जिसकी अमृतमयी छायामें ज्ञानार्थियोंकी अनेक पीढ़ियाँ तृप्तिलाभ करती रहेंगी।

आप अहंकार-शून्य व्यक्ति हैं। आपकी सादगी और मिलनसारिता देखकर कौन कह सकता है कि आप ऐसे वैभव-सम्पन्न व्यक्ति हैं। आपको आडम्बरपूर्ण परिधानसे सख्त घृणा है। आप मिष्टभाषी एवं साथ ही मितभाषी भी हैं।

●

संस्मरण

श्री भँवरलालजी नाहटा

वचपन

काकाजी अगरचंदजी मेरेसे छः महीने बड़े और काकाजी मेघराजजी तीन वर्ष बड़े हैं। हम तीनोंका पढ़ना, खेलना, जीमना आदि सब एक साथ चलता था। कभी-कभी दोनों काकाजीके आपसमें बोलचाल हो जाती तो मैं मेघराजजीके पक्षमें रह जाता था। थोड़ी देरका मनमुटाव हवा होते देर नहीं लगती और हम तीनोंमें परस्पर बड़ा प्रेम रहता। काकाजी मेघराजजी हमारे से आगे थे और हम दोनों एक ही क्लासमें पढ़ते थे। मेघराजजी चौथी क्लासमें शायद दो-तीन वर्ष जमे रहे तो हम दोनों तीसरी क्लासमें थे। फिर पाँचवीं क्लासमें हम लोग साथ रहे। दोनों काकाजी फिर स्कूल छोड़कर बोलपुर आ गये और बोलपुरमें बँगलाका सामान्य अभ्यास किया। उन दिनों जैन पाठशालाकी पढ़ाई सब स्कूलोंसे अच्छी थी। हम लोग अंग्रेजी, हिन्दी, भूगोल, संस्कृत, ज्योमेट्री और ऐलजेब्रा तक पढ़ने लगे थे। धार्मिक ज्ञान दोनों प्रतिक्रमण व जीवविचार पूरा कर नवतत्त्व, २५ बोल और पंचप्रतिक्रमण पढ़ने लगे थे। दोनों काकाजीके बंगाल आ जानेसे मैं अकेला पड़ गया और छठीं क्लासमें थोड़े दिन पढ़नेके बाद मेरा भी स्कूल छूट गया। काकाजी दोनों जब बीकानेर आए तो उन्हें बँगला लिखते-पढ़ते देख मैं भी देखा-देखी बीकानेरमें ही बँगला लिखना-पढ़ना सीख गया। वाणिका अक्षर आदि भी सीखते देर न लगी। जैसे आजकल पढ़ाई ट्यूटरपर ही प्राइमरीसे ठेठ तक निर्भर रहती है हमारी कभी नहीं रही। प्रायः हम ट्यूटरके पास नहीं पढ़े और न किताबों, पाटी या कापियों-

का विशेष खर्च था। स्कूलका काम हम बराबर घरपर कर लेते और छतपर सुबह-सुबह घूमते हुए धर्मकी गाथा याद कर लेते। पिताजी हमेशा अगरचंदजी काकाजीको कविसम्राट् कहा करते वैसे उन्हें 'बाबू' नामसे भी सम्बोधित किया जाता था।

सहपाठी

हमारे सहपाठी थे जीवनमलजी कोचर, जसकरनजी कोचर, रतनलालजी सुराना, राधाकृष्ण सुनार, हरिसिंह राजपूत आदि। मुकुनलालजी कोचर, जसराज सोनार वगैरह भी हमारे ऊपरकी कक्षामें थे। मेघराज गोपाछा भी शायद हमारे साथ ही थे। स्कूलमें खेलकूद आदिमें हमलोग कम भाग लेते, गवाड़के लड़कोंके साथ तो कभी नहीं खेलते। सं० १९८० में मेघराजजीका विवाह हो गया था। उसके बाद हमलोगोंने १९८१में स्कूल छोड़ दिया। यों हम लोग कभी गवाड़में किसी भी खेलमें भाग नहीं लेते क्योंकि शामको पाटेपर बड़े-बूढ़ोंके पास बैठना व दादाजी (दोनों—दानमलजी, शंकरदानजी) के पैर दबाना नित्य क्रम था। आसकरणजी कोठारी आदि पाटेपर आ जाते और हमें लीलावती गणित आदिके सवाल पूछते, ज्ञान, अनुभवकी बातें सुननेको मिलतीं। हमें बड़ोंका इतना भय और आतंक था कि कभी पतंग उड़ाना तो दूर, लूटनेके लिए भी छतपर नहीं जाते, कभी जाते और दादाजी नीचेसे पुकारते तो हम लोग तीनों अलग-अलग रास्तेसे, कोई बाहरसे—कोई किसी सीढ़ीसे, कोई किसी घरमेंसे आता ताकि वे यह न समझ सकें कि ये लोग तीनों एक साथ छतपरसे आ रहे हैं। सं० १९८२के शेषमें कलकत्तेमें हिन्दू-मुसलमानोंका दंगा हुआ तो कोई काम-काज था नहीं, डेढ़ महीने व्यापी दंगेमें रात-दिन गप्पें मारना और ताश खेलना ही रह गया था। थोड़ी-थोड़ी ताश खेलनी आने लगी और बीकानेरमें बालचंदजी नाहटा जो हम सबमें छोटे और पढ़नेमें बिलकुल मुँह चुरानेवाले थे उनके संगतमें लुक-छिपके ताश खेलने लगे। लेकिन बड़ोंके सामने कभी हमने ताश नहीं खेली और पुकारनेपर उसी चालसे अलग-अलग रास्तोंसे उतरकर नीचे आ जाते।

सं० १९८३के आषाढ़ वदी १२ को हम दोनोंका एक ही दिन विवाह हुआ और हम लोग फिर कलकत्ता आ गये। काम-काज गद्दीमें सीखते-करते। प्रतिदिन मंदिर जानेका नियम तो था ही सामायिक भी प्रतिदिन करते सरबसुखजी नाहटाके साथ शत्रुंजयरास गौतमरास आदि बोलनेसे कण्ठस्थ हो गये। काकाजी सिलहट रहने लगे यों मैं भी सं० १९८२ में पर्यूषणके बाद सिलहट गया और खाज-खुजली हो जानेसे दीवालीके थोड़े दिन बाद कार्त्तिक महोत्सवजीपर कलकत्ता आ गया, उसके बाद अधिकांश कलकत्ता ही रहा।

सं० १९८४ में श्री जिनकृपाचंदसूरिजी माघ सुदि ५ को बीकानेर पधारे, उस समय मैं बीमार था (गोगोलाव कोचरोंकी बारातमें गया, रातमें बुखार होकर शरीर जुड़ गया) फिर ठीक होनेपर व्याख्यानमें जाना, प्रतिक्रमण करना, दिनमें भी सुखसागरजीके पास बैठना, आगमसार आदिका अभ्यास करना चालू रहा। सा० वल्लभश्रीजीके पास कुछ दिन संस्कृत भी पढ़ी फिर अस्वस्थ होनेसे अभ्यास छूट गया। काकाजीकी 'कवि सम्राट्' बचपनकी उपाधि सार्थक हो गयी और उन्होंने बहुत-सी गहूंलियाँ (श्रीजिनकृपाचंदसूरिजी) कई छत्तीसियाँ, स्तवनादि लिखे। मैं भी कुछ गहूंलिया लिखता था। गहूंली संग्रहमें वे गहूंलियाँ छपी हैं। गहूंली संग्रह बीकानेर सेठिया प्रेसमें छपा और उसके माध्यमसे हमने प्रूफ करेक्शन करना सीखा। कलकत्तेमें सर्वप्रथम हमारी ओरसे अभयरत्नसार छपा वह तो पिताजी और काकाजीने पं० काशीनाथ जैनके मार्फत छापा। दूसरा ग्रन्थ पूजासंग्रहमें हमारे दोनोंके कुछ स्तवन छपे हैं उसका संशोधन हमने तिलकविजयजी पंजाबीसे कराया, वे उस समय सूर्यमलजी यतिके पास ठहरे थे और श्राद्धविधि प्रकरण छपा रहे थे। हमने उन्हें अग्रिम

ग्राहक बनानेमें सहयोग दिया।

हमारे यहाँ उस समय सौ दो सौ पुस्तकें ही नहीं थीं, क्योंकि काकाजी अभयराजजीका देहान्त जयपुर में हुआ और उनके पास रही हुई सैकड़ों पुस्तकें दादाजी वहीं छोड़ आये थे। काकाजी अभयराजजीका देहान्त १९७७में हुआ। इतः पूर्व जब वे बीकानेरमें थे, हम लोगोंको आठमचौदसका हरी और रात्रिभोजनका उन्होंने ही नियम दिलाया था, काकाजीने उस जमानेमें कुछ पाठ्य-पुस्तकें लिखी थीं जिन्हें संशोधनार्थ किसीको दी थीं पर वापस नहीं आईं। हमने थोड़ी-बहुत पुस्तकें मँगानी प्रारंभ कीं। पादरासे कुछ ग्रन्थ आगमसार, आत्म····आदि मँगवाये जिससे अध्यात्म रुचि जगी। मो० द० देसाईका कविवर समयसुन्दर निबन्ध आत्म-महोदधिमें पढ़ा तो इच्छा हुई कि ग्रन्थमालाको आगे चलाना है तो समयसुन्दरजीका साहित्य शोधकर हिन्दीमें निकालना है। तो बीकानेर ज्ञानभंडारोंकी शोध प्रारम्भ की। श्री महावीर जैनमंडलसे सं० १८०४ का लिखा एक गुटका मिला जिसमें उनकी शताधिक कृतियाँ थीं, फिर सभी कवियोंका साहित्य देखना प्रारंभ किया, स्तवनादि भाषा कृतियाँ संग्रह कीं। ज्ञानभंडारोंको देखा तो उनकी सूचियाँ भी बनाईं, काकाजीने बड़े ज्ञान-भंडार, कृपाचंद्रसूरि भंडार, जयचन्दजीके भंडार आदिकी सूचियाँ १ मुसाफिरीमें बनाईं, दूसरे वर्ष मैंने बीका-नेरमें बोरोंकी सेरीके उपाश्रयकी सूची बनाई और कलकत्ते आकर सूर्यमलजी मुनिके उपाश्रय (रंगसूरि पोशाल) की ग्रन्थसूची बनाई। नाहरजीके यहाँका विशाल संग्रह समयसुन्दरजीकी पापछतीसी आदि देखनेके लिये गये और उनसे घनिष्ठता बढ़ी तो प्रत्येक रविवारको वहाँ जाकर सारा दिन उनके साथ बीतता। काकाजीने जैनधर्म प्रचारक सभासे प्रकाशित जैनधर्म प्रकाशमें प्रकाशित विधवाकुलकके अनुवादका हिन्दीमें विवेचन करके विधवा-कर्त्तव्य लिखा, उसी वर्ष मैंने समयसुन्दरजीकृत रासके आधारसे सती मृगावती पुस्तिका लिखी। दोनों पुस्तकें आगरा श्वे० जैन प्रेससे छपाकर प्रकाशित कीं एवं तत्पश्चात् स्तोत्र पूजादि-संग्रह प्रकाशित किया। शांबप्रद्युम्न चौ० (समयसुन्दर) के आधारसे सार लिखा जो अधूरा पड़ा था। ३५ वर्ष बाद पूरा करके पंजाबकी सप्तसिंधु पत्रिकामें छपाया गया। उसी समय मुनिपतिचरित्रका काम शुरू किया जो अधूरा ही रहा। काकाजीने मनुष्य भव दुर्लभता (१० दृष्टान्त) और सम्यक्त्व स्वरूप नामक पुस्तकें लिखीं जो अद्यावधि अप्रकाशित हैं। सं० १९८६ में मैंने कलकत्ता 'चन्द्रदूत' क्षापणापत्र श्री जिन-कृपाचन्द्रसूरिजीको बीकानेर भेजा। बीकानेरके जैन अभिलेखोंका संग्रह प्रारंभ किया और हजारों लेख एकत्र किये। सतियोंके लेख भी मेघराजजी काकाजीके सहयोगसे एकत्र किये। गौ० ही० ओझाके कहनेसे ना० प्र० सभाका मेम्बर बना। जटमलनाहरकृत पद्मिनी चौ० प्रतिके प्रसंगसे ठा० रामसिंहजीने बुलाया। उन्हें हस्त० ग्रंथादि बतलाये। ओझाजीसे परिचय बढ़ा, वे अपने घर भी आये। ज्ञानभंडार दिखाया, लायब्रेरी देखी। मंदिरोंमें भी गये, अभिलेख दिखाये, जांगलकूप वाला लेख भी दिखाया। शिलालेख आदिके सम्बन्धमें बहुत-सी बातें हुईं।

नाहरजीके संग्रहको देखकर अपने भी संग्रह करनेकी इच्छा बलवती होती गई। कई वस्तुओंका संग्रह किया। हस्तलिखित ग्रंथोंका संग्रह रद्दी कूटलेके खरीदसे प्रारंभ हुआ। सर्वप्रथम ११) में, फिर २) में, फिर ३०) में जो कूटला लाया सुबहसे शामतक अथक परिश्रम करके हजारों ग्रंथ निकाले। इतनी इतिहास सामग्री, विकीर्णपत्र, आदेशपत्र, पत्र-व्यवहार आदि प्रचुर परिमाणमें संग्रह हुआ। चित्र, पूठे, कूटेकी सामग्री आदि भी पर्याप्त संग्रह होने लगी। नाथालाल छगनलाल शाह आये तो उन्हें भी १३ पूठे और सचित्र शालिभद्र चौ० कुल ९५) में दिलाई (गोपाल यथेक्षासे) मैंने भी कुछ वस्तुएँ खरीदीं। तिलोक-मुनिसे लगभग ३० बंडल हस्त-ग्रंथ ३०)में तथा इतनी ही करीब सामग्री भेट रूपमें प्राप्त की। जयपुरमें सस्ते पैसोंमें बीसों चित्र खरीद लिये। सं० १९९१ में कुछ ग्रंथ पालीतानासे गुलाबचंद शामजी भाई

कोरडियासे लाया। उसे कुछ रुपये सहायता दी। पालीतानेके कुछ लेख संग्रह किये। सतीवावके शिलालेखको प्रगट करके ऐतिहासिक भ्रांति दूर की। यु० प्र० श्री जिनचन्द्रसूरि ग्रन्थ जिनकृपाचंदसूरिश्रीको पालीताने जाकर भेंट किया। आबूजीमें विद्याविजयजी जयंतविजयजी आदिसे मिला। उनके शिलालेखादि देखे। यु०प्र० जिनचन्द्रजीके महान् शासन सेवा प्रकरणके पृष्ठ उनके अनुरोधसे बदल डाले जिसमें सिद्धि चन्द्रका नाम था।

काकाजी अगरचंदजीने सं० १९८५ के बाद रात्रिभोजनका त्याग कर दिया। प्रतिदिन हम सुखसागर जीके साथ प्रतिक्रमण करते। हमें महीनेमें बारह दिनका हरी, रात्रिभोजनका त्याग था। चौमासेमें तो मैं ये भी रात्रिभोजन त्याग दिया। बाकी दिन तिथिके अतिरिक्त काम पड़ता तो रातमें कभी-कभी भोजन हो जाता पर सं० २०१० से सर्वथा त्याग दिया।

काकाजी की स्वाध्याय क्रम बहुत जबर्दस्त था, श्रीमद्राजचंद, देवचन्द, आनन्दघन, चिदानन्द आदिके साहित्यका विशेष था। सिलहटके व्यस्त व्यापार में भी सामायिक दोनों वक्त होता था। एक बार आप कालीघाटके मकानमें सामायिक कर रहे थे। रातका समय, आग लगी जोर की। बगलमें हमारा किरासन गुदाम और सामने मकान थे। सामने आग बढ़ती देखकर काकाजीको कहा आप उठिये, सर्वनाश हो जायगा। उन्होंने कहा—कोई चिन्ताकी बात नहीं। गुरुदेवकी कृपासे अग्नि शांत हो गई। आत्मविश्वास बड़ी चीज है। आपकी लेखसिद्धि इतनी जबरदस्त है कि किसी भी विषयमें और कैसा भी जटिल हो तुरंत दस-बीस पेज लिख डालना आपके लिए आसान है। लोगोंको लेखन कार्यके मूडकी आवश्यकता होती है लेकिन यहां तो हर समय इसके लिए प्रस्तुत हैं।

समयका काकाजी इतना सदुपयोग करते हैं कि सुबहसे रात ग्यारह बजे तक निरर्थक पांच मिनट भी खोना आपको बर्दाश्त नहीं। रोज इतनी डाक आती है पर जवाब हाथका हाथ दे देते हैं। लायब्रेरीकी तीस चालीस हजार मुद्रित और तीस-पैंतीस हजार हस्तलिखित प्रतियोंमें से कोई भी पुस्तक तुरंत निकालकर प्रस्तुत कर देते हैं। किसीसे कुछ भी लेखादि तैयार कराना हो तो स्वयं मिनिटोंमें सारा साहित्य-साधन जुटा डालते हैं। आवश्यकताएँ अल्प हैं अतः मुसाफिरीमें इनेगिने कपड़े वेडिंगमें डालते हैं और उसमें भी भार अधिकतर पुस्तकोंका ही रहता है। मुसाफिरीमें पेटी रखते नहीं यदि कुली नहीं मिला तो स्वयं ही बगलमें डालकर चल पड़ते हैं। कहीं भी जावें इतना व्यस्त प्रोग्राम रहता है कि दस दिनका काम एक दिनमें सलटा डालनेकी तमन्ना-शक्ति होनेसे अविश्रान्त उसी धुनमें लगे रहते हैं। यही कारण है कि आपकी रेल मुसाफिरी प्रायः कष्टकर होती है क्योंकि पहलेसे रिजर्वेशन कराते नहीं और कार्य व्यस्ततासे गाड़ी छूटते-छूटते जाकर पकड़ते हैं। खानेपीनेकी पर्वाह नहीं, दो वक्त खानेके अतिरिक्त व्यस्ततामें कुछ लेनेका अवकाश ही कहां। भागते दौड़ते जीमे और तुरंत चौविहार किया। रोज पांच छः सामायिक कर लेना आपका नित्यक्रम है। इसे हम श्रुत सामायिक कह सकते हैं क्योंकि अधिकांश स्वाध्याय ग्रंथोंका अध्ययन ही रहता है। इतने व्यस्त प्रोग्राम में भी व्याख्यान, पूजा, सभा-सोसाइटीमें जानेका समय निकाल लेते हैं क्योंकि उनके उद्देश्योंमें शारीरिक खुराकसे अधिक बल मानसिक या आत्मिक-खुराककी ओर बना है।

विशाल अध्ययन

काकाजी अगरचंदजीके बहुश्रुत होनेमें इनके स्वाभाविक गुण विशेष कारणभूत हैं। ये अपना समय व्यर्थ एक मिनट भी नहीं खोते। ग्रन्थालयमें जो भी ग्रंथ आते हैं एक बार सभीपर दृष्टि प्रतिलेखन हो जाता है और जो पढ़ने योग्य हैं उन्हें पूरा पढ़ डालते हैं। यदि कहीं भी भूल भ्रांति विदित हुई तो तुरंत संशोधन अंडर लाइन आदि कर डालते हैं। विशेष संशोधन योग्य हुई तो उन मूल भ्रांतियोंके सम्बन्धमें लेख भी लिख डालते हैं। प्रेरणादायक गुणोंके अनुकरण हेतु जनतामें उन ग्रंथोंका परिचय करानेवाले नोट भी

लिखकर लेख रूपमें प्रकाशित कर देते हैं। कोई भी ज्ञान भंडारकी सूची या ग्रंथ जो उनके दृष्टिपथ से निकला है देखते ही विदित हो जायगा क्योंकि उसपर उनके संशोधन टंकण किए रहते हैं।

हिन्दी साहित्यके इतिहास या जैन साहित्यपर जो भी अन्धानुकरणसे लिखनेकी प्रवृत्ति और बिना ग्रन्थ देखे उस विषयकी जानकारी या उल्लेख करनेकी आदत प्रायः साहित्यकारोंमें देखी जाती है आपके लेख उस विषयकी मूलभ्रान्तियां दूर कर वास्तविक सत्य प्रकट करनेवाले होते हैं अतः साहित्यिक रेस मैदानमें सरपट कलम चलानेवालोंको आपके आलोचनात्मक चाबुकसे सतर्क रहना पड़ता है।

बचपनसे ही आपकी ज्ञानजिज्ञासा इतनी प्रबल थी कि सभी विषयके ग्रन्थोंको पढ़ डालते और धार्मिक व तत्त्वज्ञानके विविध ग्रन्थोंपर साधु-मुनिराजोंसे चर्चा-जिज्ञासा करते एवं जैन समाजके सुप्रसिद्ध प्रवुद्ध बहुश्रुत कुँवरजीकाका (कुँवरजी आणंदजी—भावनगर) से प्रतिमास अनेक प्रश्न किया करते जो जैनधर्म प्रकाशमें नियमित प्रकाशित होते रहते थे। तीर्थयात्रा और साहित्यिक भाषाओंका आपको खूब शौक है। प्रतिवर्ष समय निकालकर जाते-आते रहते हैं जिससे आपका सार्वभौम अनुभव अभिवर्द्धित होता है।

सामायिक-श्रुतसामायिक

आपको नियमित सामायिक करनेकी प्रवृत्ति बचपन से ही है। यों तो बचपनसे ही पर्यूषणादि पर्वाराधन सामायिक प्रतिक्रमणादिकी प्रवृत्ति १०-११ वर्षकी अवस्थासे ही थी पर १४-१५ वर्षकी उम्रमें १९८२ में कलकत्तामें नित्य सामायिक करते व सरवसुखजी नाहटाकी प्रेरणासे गौतमरास-शत्रुञ्जयरास आदि भी कण्ठस्थ हो गए थे। दो प्रतिक्रमण पूरे व पंचप्रतिक्रमणका कुछ भाग जीवविचार नवतत्त्व, ३५ बोल तो पाठशालामें ही पूरा हो चुका था। कलकत्तेमें बाबूलाल जी समपुरिया जो प्रज्ञाचक्षु थे—को स्वाध्याय करानेके हेतु कर्म-ग्रंथ—संग्रहणी—उपदेश प्रासाद आदि अनेक ग्रंथोंका पारायण हो गया। श्री जिनकृपाचंद्रसूरिजीके चौमासेमें सं० १९८५ में हम लोगोंने आगमसार आदि पढ़नेके साथ-साथ अनेक ग्रंथोंका अध्ययन किया। स्कूलमें पढ़ी हुई थोड़ी संस्कृतकी भी पुनरावृत्ति हो गई। व्याख्यानमें सुने हुए विषय संस्कृतादि सुभाषित याद हो जाते व इस प्रकार ज्ञानका विकास होने लगा। सूरिजीके अगाध ज्ञान और चारित्रगुणोंसे प्रभावित होकर उनके गुण वर्णनात्मक काव्य—गहूंलियोंका निर्माण भी प्रचुर संख्यामें किया और वे गहूंली संग्रहमें प्रकाशित हो गये हमारे प्रूफ संशोधनादिका अनुभव तभी सुखसागरजी महाराजके सांनिध्यमें प्रारंभ होता है।

पिताजी इन्हें बचपनसे ही कविसम्राट् कहा करते थे। इस समय स्तवन, गहूंली व छत्तीसियों आदिके निर्माणने यह चरितार्थ कर दिया। इसके बाद गद्यलेखनकी ओर विशेष प्रवृत्ति हुई। पहला ग्रंथ इन्होंने विधवा-कर्तव्य लिखा फिर मानव भव दुर्लभता व सम्यक्त्व स्वरूपादि इनकी प्रारंभिक कृतियाँ हैं। नित्य सामायिक व संध्याको प्रतिदिन सुखसागरजीके पास प्रतिक्रमण करनेसे वह अभ्यास चालू हो गया। बीकानेरसे सिलहट जानेपर भी काकाजीने सामायिक प्रतिक्रमणका अभ्यास चालू रक्खा और उस समय श्री बुद्धिसागरसूरिजीके ग्रंथ जो मैंने पारदासे मँगाये थे काकाजीने अभ्यास किया और अध्यात्म ज्ञानकी ओर अभिरुचि बढ़ी। श्रीमद्राजचन्द्र ग्रंथके अध्ययनसे उनके प्रति आदरभाव जागृत हुआ। उनका 'अपूर्व अवसर एवं हे प्रभु हे प्रभु प्रार्थनादि प्रतिक्रमणके पश्चात् गानेसे तल्लीनता उन्हें एक अलग ही लोकमें ले जाती। सिलहटमें मच्छरोंका अत्यधिक उपद्रव था फिर भी सामायिक स्वाध्यायमें वे निश्चित रहते थे। एक बार हमारे मकानके सामने ही भयंकर अग्निकाण्ड हो गया। पास ही हमारा किरासन गुदाम था। पिताजी वहाँ थे, उन्होंने सूचना दी तो काकाजीने कहा, मैं अभी सामायिकमें हूँ जो होगा सो होगा, चिन्ता न करें। थोड़ी देरमें देखते हैं अग्नि शांत हो गई और हमारे मकान गुदाम आदिको कोई आँच नहीं आई। आप

उस समय अपनी डायरीमें सामयिक विचार भी लिखा करते थे।

अब तो प्रायः प्रतिदिन ७-८ सामायिक हो जाती हैं जिसमें अध्ययनका काम चालू रहता है। आपकी स्मरणशक्ति इतनी तेज है कि इतनी बड़ी लाइब्रेरीकी पुस्तकें बिना सूची देखे तुरंत निकाल देते हैं। किसी विषयपर शोध करनेवाले व्यक्तिके समक्ष तुरंत पुस्तकों व सामग्रीके ढेर कर देते हैं जिससे उसके कार्यमें किसी प्रकारका विलम्ब न हो।

बचपनमें आपके अक्षर बहुत सुन्दर थे पर अधिक लिखने व अक्षरों पर ध्यान न रखनेसे वे दुरूह और अवाच्य हो गये पर बोलकर लिखानेका अभ्यास इतना अधिक हो गया कि चाहिए कोई लिखनेवाला। आप अपने विशाल अध्ययनके बलपर लेख-सिद्ध हो गये और दिनमें यदि लिखनेवाला हो तो पचासों पेज आसानीसे लिखा सकते हैं। अनेक बार ऐसे प्रसंग आए जिसमें किसी भाषण, लेख, ग्रन्थको अविलम्ब तैयार करना था तो आप बैठ गये और समयसे पूर्व काम पूर्ण करके ही उठे।

आपमें आलस्यका तो लेशमात्र भी अंश नहीं है। प्रतिदिन सामायिक, पूजन, व्याख्यान आदि सारे कार्य सम्पन्न करते हुए भी मीटिंगोंमें जाना, लाइब्रेरियों-ज्ञानभंडारोंसे ग्रंथादि लाना प्रत्येक कार्य आश्चर्यजनक गतिसे कर डालते हैं। जो कार्य हमारे आलस्य-उपेक्षासे महीनों संपन्न नहीं होते वे कार्य तुरन्त करनेके लिए सामग्री प्रस्तुत कर देते हैं।

स्मरण-शक्तिका यह एक चमत्कार ही कहा जा सकता है कि जैन-साहित्यके हजारों कवियोंकी छोटी-मोटी हरेक कृतियाँ और उनमें उपलब्ध-अनुपलब्ध पूछनेपर तुरन्त बता देते हैं कि यह कृति अमुक ज्ञान-भंडारमें है।

स्वयं इतना अधिक कार्यरत रहते हैं कि समय थोड़ा और काम बेशी। यही कारण है आप प्रायः हरेक काममें ठीक समयपर ही पहुँच पाते हैं। रेल मुसाफिरीमें भी आप प्रायः गाड़ीके छूटनेके समय ही मुश्किलसे पहुँच पाते हैं और भीड़-भड़क्केमें आरामका ख्याल किये बिना ही अपनी यात्रा सम्पन्न कर लेते हैं।

आप दूसरोंको कार्य करनेमें प्रेरित करते रहते हैं। लोगोंको लिखनेके लिए विषय नहीं मिलता, सामग्री नहीं मिलती और आप तो इसके लिए समुद्र हैं। कोई काम करनेवाला चाहिए चौबीसों घंटे काम करे तो भी सामग्रीका अभाव नहीं। आपको तो अथक परिश्रम करनेवाला लगनशील व्यक्ति चाहिये। केवल बातें बनानेवाले और कामको जरा भी न करनेवाले व्यक्तिके साथ आप अपना समय बर्बाद नहीं करना चाहते। ज्यादा बातें बनाना आपको कतई पसन्द नहीं, आप कामसे काम रखते हैं।

आपकी जिनप्रतिमा और जैन-सिद्धान्तोंपर अटूट श्रद्धा है। अपनी मान्यतामें निश्चल होते हुए भी भिन्न मान्यतावाले व्यक्तियों—धर्माचार्यों और कार्यकर्त्ताओंके प्रति उतने ही उदार और सहृदय हैं कि प्रत्येक व्यक्ति आपके व्यक्तित्व और स्वस्थ निष्पक्ष आलोचना और अनुभव प्रधान निर्णयपर आकृष्ट हो जाता है।

आपकी मित्रमण्डली बड़ी व्यापक है, कार्यक्षेत्र विशाल है। कोई भी विषय किसी भी धर्म संप्रदाय या जातिका हो निष्पक्ष शोध, प्रबुद्ध लेखन और निर्देशन द्वारा अधिकारपूर्वक नेतृत्व करनेके कारण किससे क्या काम लेना, यह कार्य आसानीसे संपन्न कर लेते हैं। आपका पत्रव्यवहार बहुत विशाल होना स्वाभाविक है। आपका द्वार उनके लिए हर समय खुला है जो आपसे किसी भी विषयमें निर्देश, सम्मति या सामग्री प्राप्त करना चाहता हो। आपके पास जो सामग्री है उसे देना तो सहज औदार्य है पर अन्यत्र स्थानोंसे कष्टपूर्वक जुटाकर प्रस्तुत कर देना और शोधक व अभ्यासियोंके लिए सुलभ कर देना यह आपका विलक्षण गुण है। प्रतिदिन आये हुए पत्रोंका उत्तर देनेरूप कार्य निष्पन्न करनेमें भी आपका बहुत सा समय लग जाता है पर

आप आजका काम कल पर नहीं छोड़ते अन्यथा इतना विशाल कार्य कदापि नहीं हो पाता। डाक निकालनेके समय तक और उसके बाद तक आप काम निपटाते रहते हैं।

किसी भी धार्मिक साहित्यिक शैक्षणिक कार्योंमें आप सबसे आगे रहते हैं। जयन्तियोंमें आपकी उपस्थिति अनिवार्य है। वक्तृत्व कला आपकी ओजपूर्ण और सारतत्त्वसे ओत-प्रोत रहती है। विशाल अध्ययन एवं अथाह ज्ञान होनेके कारण आप किसी भी पिक्चर पर घन्टों बोल सकते हैं और सैकड़ों पेज लिख सकते हैं। स्कूलकी पाँचवीं कक्षा तक शिक्षित व्यक्ति ग्रेजुएटोंके ग्रेजुएट व डाक्टरोंके डाक्टर हैं। चुने हुए विषयपर डिग्री हासिल करनेवालोंको आपके अथाह ज्ञानके सामने मस्तक झुका लेना पड़ता है। किसी भी विषयके शोध छात्र आपके शरणमें आनेपर ही अपनेको सही निर्देशन व नेतृत्वमें आया महसूस करता है। और जिस विषयपर कुछ भी साहित्य उपलब्ध न होता हो वह आपके सानिध्यमें प्रचुर सामग्री सम्पन्न अपना अध्ययन कक्ष बना सकता है। आप बहुतसे विद्वानोंके लेखकोंके कवियोंके प्रेरणास्रोत हैं व गुरु हैं। उच्चकोटिके धर्माचार्यों, साधु-साध्वियों व विद्वानोंको उचित परामर्श देने योग्य होनेके कारण हर क्षेत्रमें आपका आदर है और आपकी सम्मतिको बड़ा ही मूल्यवान व आदरणीय, करणीय गिना जाता है।

व्रत नियम, वृत्ति संक्षेप

आप बचपनसे ही व्रतनियमकी ओर अग्रसर रहे हैं। काकाजी अभयराजजीके पास प्रायः ८-९ वर्षकी उम्रमें आठम चौदस हरी न खाने व रात्रिभोजनका नियम ले लिया था। १८ वर्षकी उम्रमें नित्य पौविहार, अभक्ष्य अनन्तकाय त्याग, आचार, विदूल वासी त्याग, शीतलासातम आदि ठण्डा न खाना, आर्द्रा नक्षत्रके बाद आमफल त्याग आदि सभी श्रावकोचित नियमोंमें रहते हैं। खाने-पीनेमें रसलोलुपता नहीं, कभी-कभी ऊणोदरी आदि करना, ऊपरसे नमक न लेना, जैसा हो उसीमें सन्तोष आदि गुणोंके कारण भोजन आलोचनादि विकथाओंसे विरत रहते हैं। आप दो वखत भोजनके सिवा प्रायः कुछ नहीं लेते। प्रतिदिन प्रायः पौरसी रहती है। चाय तो कभी भी नहीं पीते, दूध भी पोरसी आनेके बाद ही लेते हैं। नवकारसीसे पूर्व तो मुँहमें पानी डालनेका प्रश्न ही नहीं। इस अवस्थामें भी कठिन परिश्रममें लगे रहना यह तो अभ्यस्त हो गया है। यात्रामें आपके पास थोड़ेसे वस्त्र बीडिंगमें डाले रखते हैं, पेटी भी नहीं रखते। आपके पास भार रहता तो मात्र पुस्तकोंका, साहित्य सामग्रीका। ग्रन्थोंका शौक इतना है कि प्रति वर्ष हजारों पुस्तकें संग्रह कर लेते हैं। नाटक, सिनेमा आदि खेल-तमाशे देखनेके लिये तो आपके पास समय ही कहाँ? बेकारीकी गपशप और हथाई करनेसे बिलकुल दूर रहते हैं। इतने व्यस्त रहते हुए भी जहाँ मिलने-जुलने जाना आवश्यक है और सामाजिक मर्यादा पालनका प्रसंग हो तो उसमें अपना समय देनेमें पीछे नहीं हटते। अनेक संस्थाओंसे सम्बन्वित होनेसे व सार्वजनिक गतिविधियोंको सक्रिय योगदान करनेमें भी आप पश्चात्पद नहीं रहते। कई वर्षोंसे आप प्रायः व्यापारसे निवृत्तसे हैं फिर भी वर्षमें दो मास अपने व्यापारिक केन्द्रोंमें हो आते हैं। कामकाज देखकर उचित निर्देश देना व पत्र व्यवहार द्वारा निर्देश करना प्रेरणा देना आपका सतत चालू रहता है। खाता बही और हिसाब किताबके काम आप तुरन्त निरीक्षण कर निपटा देते हैं।

चित्रकला, शिल्पकला, पुरातत्त्व, भाषा विज्ञान व लिपि विज्ञानपर आपका अच्छा अभ्यास है। किसी भी वस्तु विषयको देखकर उसका मूल्याङ्कन करना व उसके तलस्पर्शी सतहपर अधिकार पूर्वक कह देना यह आपकी बहुश्रुतता और विशेषज्ञताका द्योतक है। कलकत्ता यूनिवर्सिटीमें आपके भाषण, बम्बई यूनिवर्सिटीमें महानिबन्ध परीक्षक होना, उदयपुर वाराणसी, दिल्ली आदि स्थानोंमें आपके विविध विषयोंमें भाषण होना इसका प्रबल प्रमाण है। विविध संस्थाओंने विद्वत्तासे प्रभावित होकर संघ रत्न आदि

विविध उपाधियोंसे विभूषित किया है, सम्मानित किया है। आपकी विद्वत्ताके विषयमें इससे अधिक क्या प्रमाण हो सकते हैं। जब सरदार वल्लभभाई पटेलने आबूको राजस्थानसे निकालकर गुजरातमें मिला दिया था तो नेहरू सरकारने राजस्थानकी न्यायोचित मांगपर सद्विचार करना तै किया तो राजस्थानके प्रमुख विद्वानोंकी एक मंडली नियुक्त हुई जिसने आबू प्रदेशमें भ्रमणकर ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, वेशभूषा, बोलचाल रीतिरिवाज आदिपर रिपोर्ट दी जिसमें आपभी एक महत्त्वपूर्ण व्यक्ति थे और उन्हीं रिपोर्टोंसे राजस्थानका उचित न्याय किया था। राजस्थानी भाषापर आपको बचपनसे ही प्रेम है। उसकी शोधमें आपने हजारों रचनाएँ प्राप्त कीं और खोज रिपोर्टें लिखीं, भाषण दिए, ग्रंथ लिख दूसरों द्वारा भी प्रचुर निर्माण करवाया। ये सब कार्य मातृभाषा राजस्थानीकी बड़ी भारी महत्त्वपूर्ण सेवाएँ हैं।

आपने पचासों ग्रंथों और हजारों निबन्धोंका लेखन, संपादन प्रकाशन तथा, कई पत्रोंका सम्पादन किया। जैनसाहित्य और राजस्थानी के इतिहासमें ये कार्य अभूतपूर्व और नींवके सुदृढ पत्थर हैं।

आपके पास कोई भी छोटे मोटे पत्र संपादक आदि लेख माँगते रहते हैं और आप उन्हें निराश न कर यथोचित लेख तुरन्त दे डालते हैं यह आपके औडरदानी होनेका अद्भुत उदाहरण है जो बिना विशाल ज्ञान और लौह लेखनीके धनी बिना यह कार्य हर किसीके वशका नहीं है।

सरकारी अर्द्ध सरकारी या जानतिक सार्वजनिक संस्थाएँ जो कार्य पचासों वर्षोंमें लाखोंके अर्थव्ययसे नहीं कर सकतीं यह कार्य आपने व्यक्तिगत रूपसे समाप्त किया है। अबभी आपके पासजो प्रचुर सामग्री है पचासों विद्वानोंको सामग्री सप्लाई करनेके लिए पर्याप्त है जिससे वर्षोंतक उन्हें दिमागी खुराक प्राप्त होती रहे।

आप साहित्यिकोंके लिए तीर्थरूप हैं और ज्ञान-गरिमाकी चलती फिरती इनसाइक्लोपीडिया है। सैकड़ों वर्षोंमें एकाध व्यक्ति ही क्वचित् इसप्रकारकी निष्ठावाला और वह भी व्यापारी वर्गमें प्राप्त हो जाय तो बहुत समझिये। साधु सन्तोंकी बात दूसरी है वे भी इतना समय निरन्तर लगावें वैसे कम मिलते हैं पर गृहस्थोंमें इतनी अप्रमत्त जागरूपता एक अनुपम आदर्श और दृष्टान्त जैसी ही है।

●

ज्ञानके खोजी : श्रद्धेय नाहटाजी

श्री विजयशंकर श्रीवास्तव

अधीक्षक पुरातत्त्व व संग्रहालय विभाग, जोधपुर

ज्ञानके खोज स्वयंमें एक ऐसी उपलब्धि है—जो खोजीको अनिर्वचनीय सुख एवं आत्मिक शान्ति या संतोष प्रदान करती है और इसीके सम्बलसे वह जीवन पर्यन्त कर्मठतापूर्वक कार्यरत रहता है। श्रद्धेय अगरचंद नाहटा इसके मूर्तरूप हैं। उनके व्यक्तित्व व कृतित्वके संदर्भमें मेरे मानस पटलपर 'दिनकर'जी की वे पंक्तियाँ सदा मुखरित हो उठी हैं जिसमें नाहटाजी जैसे कर्मठ व्यक्तित्वको ही स्मरण कर लिखा गया होगा, "बड़ा वह आदमी जो जिन्दगी भर काम करता है।" निश्चयतः नाहटाजीने "ज्ञानकी खोजमें,

ओज सब खो दिया।"

समूचे देशमें नाहटाजी साहित्य, संस्कृति, इतिहास व पुरातत्त्वके संग्राहक व शोधक रूपमें ख्याति प्राप्त कर चुके हैं। जैन वाङ्मय व पुरातत्त्वके क्षेत्रमें उनका विशिष्ट योगदान है। दर्जनों पुस्तकें व सहस्रों लेख वह प्रकाशित कर चुके हैं। राजस्थानके प्राचीन साहित्य' इतिहास व पुरातत्वके तो वह जीते जागते शब्दकोश हैं। ज्ञानके अर्जन, संरक्षण व प्रकाशनमें उन जैसे दत्त-चित्त एवंकर्मठ विद्वान् ही युवापीढीके लिए सदा प्रेरणा-स्रोत रहे हैं। पुस्तकों व पत्रिकाओंके अथाह समुद्रमें गोते लगानेवाले नाहटाजी विद्यादानमें कितने उदार हैं यह सर्वविदित है। मुझे उनके व्यक्तित्वका यह पक्ष सदा ही आकर्षित करता रहा है। किसी भी विषयपर, किसी भी समय, किसीको भी—यदि शोध खोज संबंधी सूचना अपेक्षित है या शङ्का-समाधान करना है तो जितनी त्वरा व तत्परतासे नाहटाजी उसके निष्पादनमें रुचि लेते हैं वह विरले विद्वानोंमें ही देखा जाता है। १८वर्षोंके सम्पर्कमें मुझे ऐसे अवसर स्मरण नहीं आते हैं—जब उससे शोध संबंधी किसी भी प्रकारकी सहायताकी आवश्यकता हुई हो और उन्होंने अन्यमनस्कता प्रदर्शित की हो। ज्ञानके विस्तारमें उनकी इस उदारताने उन्हें नयी पीढ़ीके शोधक व खोजी विद्वानोंके बीच आशातीत रूपसे लोकप्रिय बना रखा है। अनेक बार देशके विभिन्न संभागोंमें मेरे सहकर्मियों एवं साथियोंने जब कभी उनसे भेंट हुई, नाहटाजीकी इस विशाल हृदयताकी भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुए अपना श्रद्धापूर्वक आभार व्यक्त किया है। वैदिक ऋषियों-की परंपरामें उन्होंने सदा अपना जीवनदर्शन रखा—"शतहस्तं समाहारं सहस्र हस्तं समाविरम्।"

कर्मठता उनकी साहित्य-साधनाका रहस्य है। किसी भी काममें जुट जानेपर उसे पूरा कर लेनेपर ही दम लेना उनकी आदत है। बाधाएँ, व्यवधान व कठिनाइयां—उनके मार्गमें अवरोधक हों यह उन्हें स्वीकार नहीं। उनपर विजय पानेकी कलामें वह निष्णात हैं। उनकी मान्यता है कि शोधार्थीकी सफलताकी आधारशिला उसका अध्यवसाय परिश्रम, लगन व निष्ठा है। जिसमें ये गुण न हों उन्हें इस 'ज्ञानके मार्गपर चलनेका अनर्थक दुस्साहस न करना चाहिए। नाहटाजीका विपुल-साहित्य इस तथ्यका प्रमाण है कि जो भी उन्होंने लिखा उसमें अप्रकाशित, अज्ञात एवं सर्वथा नवीन सामग्रीका पूर्णतः समावेश किया। उनके साहित्यका बीज-मंत्र हैं " न अमूलं लिख्यते किञ्चित्।

"बीकानेर जैन लेख संग्रह"में बीकानेर व निकटवर्ती क्षेत्रोंकी हजारोंकी संख्यामें अप्रकाशित जैनमूर्ति व स्मारक अभिलेखोंका संकलन व प्रकाशन—उनके अध्यवसायका जीवन्त प्रमाण है। विभिन्न प्राचीन जैन आचार्योंकी जीवनियोंके प्रणयनमें भी उन्होंने मूलशोध सामग्री व ऐतिहासिक दृष्टि विन्दुको ही प्रमुखता दी। सत्यका उद्घाटन उनका लक्ष्य रहा। देशके विविधानेक शोध संस्थानोंसे नाहटाजीका निकटका सम्बन्ध है। शार्दूल राजस्थानी रिसर्च इंस्टीच्यूट, बीकानेरसे लम्बी अवधितक उनका घनिष्ठ रहा। संस्थानके माध्यमसे साहित्य व इतिहास सम्बन्धी अनेक अज्ञात रचनाओंको विभिन्न विद्वानोंसे संपादित करा—राजस्थानके इतिहास व संस्कृतिके विभिन्न पक्षोंको प्रकाशित करानेमें उन्होंने विशेष रुचि ली। संस्थानकी मुख पत्रिका 'राजस्थान भारती'के डॉ० टैसीटोरी, पृथ्वीराज राठोड़ एवं महाराजा कुंभाविशेषांक—नाहटाजी तथा उनके सहयोगियोंके कुशल संयोजन, परिष्कृत संपादन एवं अध्यवसायके परिचायक हैं। इन विशेषांकोंके माध्यमसे राजस्थानके सन्दर्भमें जो नवीन ठोस सामग्री प्रकाशमें आई उसका देश विदेशमें जिस प्रकार स्वागत हुआ—वह स्तुत्य है

ऐसे बहु-श्रुत विद्वान् अपनी लेखनीसे राजस्थानकी सांस्कृतिक व प्राचीन संपदाके संरक्षण व प्रकाशन-में अधिकाधिक योगदान करें, यही कामना है।

धन्य हो रहा अभिनंदन करके जिनका अभिनंदन

श्री शर्मनलाल जैन 'सरस' सकरार (झाँसी)

नयी दिशा दे रहा देशको, जिनका जीवन नंदन।
धन्य हो गया अभिनंदन, करके जिनका अभिनंदन ॥

(१)

जीवनभर जिसने समाजका, हर क्षण अलख जगाया।
अगरचंद न-हटा नाहटा, जिसपर कदम बढ़ाया ॥
किया सत्यका सदा समर्थन, तोड़ भ्रांतिका घेरा।
प्रज्ञा-दीप जला धरतीपर, जिसने हरा अँधेरा ॥
दिये सैकड़ों ग्रंथ, किया साहित्य देशका भारी।
वृद्धापनमें तरुण-गतिसे, कलम आज भी जारी ॥
ऐसे ज्ञान-दिवाकरका, हम करें किस तरह वंदन।
धन्य हो रहा अभिनंदन, करके जिनका अभिनंदन ॥

(२)

जैन-जातिके रत्न, देश-गौरव, जन-जनके प्यारे।
युगों-युगों तक रहें आप, युगके बनकर रखवारे ॥
पाकर सत सहयोग आपका, जन-मन बने विनोदी।
बीकानेर नगरकी सूनी कभी न होवे गोदी ॥
जिसकी श्वास-श्वासने भूकी, माटी कर दी चंदन।
'सरस' कलम कर रही सरस हो उनके पदका वंदन।
धन्य हो रहा अभिनंदन, करके जिनका अभिनंदन ॥

वे पुरातत्त्ववेत्तासे तत्त्ववेत्ता बन गये

भँवर लाल कोठारी

जबसे मैं कुछ जानने-समझने योग्य बना, लगभग तबसे ही श्रीयुक्त अगरचन्दजी सा० नाहटाको देखने, सुनने व समझनेके अवसर मुझे उपलब्ध हुए।

मैंने उन्हें चारों ओर फैले-बिखरे पुस्तकों, ग्रंथों, पांडुलिपियोंके अंबारके बीच ज्ञानके अथाह सागरमें गहरा गोता लगाते हुए एक गोताखोरके रूपमें देखा और पाया कि ज्ञानके रज्जुको पकड़कर जब वे अन्तर-तलमें उतर जाते हैं तो अनेकानेक अनमोल रत्न उसी प्रकार इस तलपर ला उडेलते हैं जिस प्रकार गोता-खोर अथवा खनिक समुद्रके अन्तस्तल अथवा वसुन्धराके गर्भमेंसे रत्नोंको बटोर लाता है।

प्रारम्भमें जब वे मिलते थे तो जिज्ञासाएँ उभरती थीं। अब जब भी मिलते हैं तो समाधान मिल जाता है।

यह चमत्कार है नियमित सामायिक समभावपूर्वक स्वयंका अध्ययन-ध्यान अर्थात् स्वाध्याय करनेका। वे आज पुरातत्त्ववेत्तासे तत्त्ववेत्ता बन गये। अध्ययनसे ध्यानको उपलब्ध हो गये।

अभिनन्दनके इन क्षणोंमें उनके व्यक्तित्व और कृतित्वका अभिनन्दन और समाधानकारक स्थितित्वका वंदन।

•

भारत-विख्यात विभूति

साध्वीश्री चन्द्रप्रभाश्रीजी

श्रमण-संस्कृतिकी तेजोमय आभासे आभासित दिव्य विभूति श्री अगरचन्दजी नाहटा ऊँची बीकानेरी पगड़ी, स्वच्छ धवल वस्त्र, ऊँची दो-लंगी धोती, पैरोंमें गोरक्षक जूते तथा आँखोंपर उपनेत्र धारण किये हुए प्रथम दर्शनमें एक सम्पन्न किन्तु सात्त्विक धनाधीश ही प्रतीत होते हैं। बात-चीत करनेपर दर्शक व आगन्तुकको यह जानकर बड़ा आश्चर्य होता है कि इस सामान्य वेशसे परिवेष्टित यह व्यक्ति कोई सामान्य जन नहीं है अपितु गंभीर ज्ञानका अथाह सागर अपने अन्तस्‌में समाहित किये हुए श्रमण-संस्कृतिके तत्त्वज्ञान-का अभिनव व्याख्याता व भाष्यकार है।

इस महामनाकी प्रखर तेजस्वी लेखनीसे निस्सृत शाश्वत चिन्तन-प्रवाहकी सात्त्विक सरिता भारतकी प्रायः सभी उच्च-स्तरीय पत्रिकाओंमें अपने अबाध-प्रवाहके साथ सतत प्रवहमान है। आप अपने देशके उन तपोपूत ज्ञानवृद्ध लेखकों एवं विचारकोंमें हैं, जो गत ५ दशकोंसे निरन्तर अपने साहित्य एवं गवेषणापूर्ण सम्पादनोंसे भारतीय साहित्यको समृद्ध करते आ रहे हैं। जन-जीवनकी सामान्यसे सामान्य समस्यासे लेकर धर्म और दर्शन जैसे गंभीरतम विषयोंकी समस्याओं तकका समानरूपसे समाधानपरक चिन्तन अत्यन्त सरल किन्तु प्रसादमयी भाषामें प्रस्तुत करना आपकी लेखनीका विलक्षण कौशल है। हम अनुमान नहीं लगा सकते कि इस मेधावी प्रतिभाकी कितनी गहराई है? निश्चय ही इस प्रतिभा-पुत्रको अपने ज्ञान-भण्डारके सम्वर्द्धन हेतु कल्पनातीत स्वाध्याय-साधना करनी पड़ती है। यही कारण है कि आपका अध्ययन केवल स्वाध्याय मात्र न होकर एक स्वतंत्र अध्ययन तथा मनन-चिन्तन केवल मन-मन्थक मात्र ही न होकर सभी प्रकारके पूर्वाग्रहोंसे मुक्त स्थितिमें अपने नव्य नवीन मौलिक स्वरूपमें हमारे समक्ष आते हैं।

मैं अपनी सहज एवं सात्विक श्रद्धा-भक्तिके साथ आपके जीवन व कृतित्वकी अवतारणाके विषयमें बिना किसी अतिशयोक्तिके साथ यह निःसंकोच कह सकती हूँ कि वीतराग भगवान महावीरने अपनी परम पुनीत श्रमणीय संस्कृतिकी पवित्र परम्पराको युगानुरूप स्वरूप प्रदान करने तथा उसका प्रचार-प्रसार व संवर्द्धन करने हेतु ही इस प्रज्ञा-प्रतिभासम्पन्न व्यक्तित्वका इस धराधामपर सम्प्रेषण किया है, अन्यथा यह कैसे संभव है कि गृहस्थ-जीवनके सम्पूर्ण उत्तरदायित्वोंका सम्यक् प्रकारसे निर्वहन करते हुए उससे भी द्विगुणित उत्साह एवं प्रबल शक्तिमत्ताके साथ सामाजिक, धार्मिक, साहित्यिक एवं आध्यात्मिक प्रवृत्तियोंके विकासार्थ केवल सामान्य योगदान ही नहीं अपितु उनमें अपना पूर्ण सक्रिय सहयोग, प्रेरणा व उद्दात्त दिशा-बोधन भी आप करते रहें।

आपके द्वारा संस्थापित एवं संचालित श्री अभय जैन पुस्तकालयमें अन्य अमूल्य बृहद् पुस्तकोंके साथ अलभ्य प्राचीन आगम ग्रन्थोंकी पाण्डुलिपियोंका भी विपुल संग्रह है, जिसके कारण यह ग्रन्थागार शोध-अध्येताओंके लिए सदा ही आकर्षणका केन्द्र बना रहता है। इतना बृहद् संकलन कोई एकाएक नहीं कर सकता। इसके लिए विपुल द्रव्य-राशि, लम्बा समय तथा बड़ी ही सूझ-बूझकी अपेक्षा है। किन्तु हम देखते हैं कि मान्य श्री नाहटाजीका अपनी बाल्यकालीन कल्पनाका स्वरूप आज इस साकार स्थितिमें है। एक ही व्यक्ति द्वारा स्थापित व संचालित यह ग्रन्थागार अपने देशमें अपने प्रकारका एक ही है, जिसमें इतनी अधिक पाण्डुलिपियाँ इतने सुनियोजित ढंगसे एक साथ उपलब्ध हो सकें। आप अब भी इसके संवर्धन एवं सुनि-योजनके लिए पूर्ण प्रयत्नवान हैं। इससे लाभ उठानेवाले देश-विदेशके शोधार्थी छात्र पूज्य नाहटाजीके प्रति कितनी हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करते होंगे, इसका अनुमान लगाना भी हमारे लिए अत्यंत आह्लादकारी है।

प्रातः शय्यात्यागसे लेकर रात्रिमें शयन-विश्रामपर्यन्त आपकी अपनी एक विशिष्ट दिनचर्या है, जिसकी परिपालना आप पूर्ण सतर्कता एवं उत्साह तथा सावधानीके साथ करते हैं। जिन कार्यों व रचनाओंका सम्पादन कार्य आपने एक बार प्रारंभ कर दिया, उन्हें अनवरत श्रम करके पूर्ण सम्पादित करके ही विश्राम लेते हैं। किसी भी योजनाकी क्रियान्वितिको अर्धसम्पन्नावस्थामें छोड़ना आपका स्वभाव नहीं। नियम-पालन-की कठोरताके आप बड़े पक्षधर हैं। नियमानुसार दिनचर्याकी पूर्ति आपका सहज स्वभाव है। इसीका परिणाम है कि जितना कार्य कई संस्थाएं मिलकर सम्पन्न नहीं कर सकतीं, उनसे कहीं अधिक कार्य आपने एकाकी रूपसे सम्पन्न किया है। आप धुनके धनी व लगनके पक्के हैं।

आपकी रचनाओंके विषयोंकी विविधता भी बड़ी व्यापक है। नैतिक व आध्यात्मिक जीवनसे सम्ब-न्धित शायद ही कोई ऐसा विषय हो, जिसपर आपकी लेखनी नहीं चली हो। एक साथ अनेक विषयोंसे सम्बन्धित रचना-प्रक्रिया सदा चलती रहती है। इन सबको देखकर ऐसा लगता है कि आपका मस्तिष्क विश्वकोष ही है। प्राचीन पाण्डुलिपियोंमें छिपे हुए तत्त्व सर्वसाधारण एवं विद्वज्जन दोनोंके लिए समानोपयोगी रूपमें प्रस्तुत करनेकी क्षमता आपकी लेखनीकी अपनी मौलिकता है।

अद्भुत रचनाभिव्यक्तिके साथ आपकी वक्तृत्व-शक्तिकी क्षमता भी अनुपम है। घंटों तक किसी भी विषयपर बिना थके हुए निरन्तर नवीन विचारों व उद्भावनाओंको गंभीर प्रवाहमें प्रस्तुत करना, आपकी वाणीका कौशल है। मुझे अनेक बार आपकी ऐसी अमृत-वाणीको श्रवण करनेका सौभाग्य मिला है। अपने भाषणमें जब आप जैनागम निगमोंके साथ अन्यान्य दार्शनिक सम्प्रदायोंके उद्धरण प्रस्तुत करते हैं तो आपके गंभीर ज्ञानकी गहराईपर आश्चर्य होता है। विषय प्रतिपादनमें आप उन्हीं शास्त्रीय वचनोंका सहारा लेकर भगवानकी वाणीके सार्वभौम स्वरूपकी जब प्रस्तुति करते हैं तो आपकी विलक्षण समायोजन क्षमताके दर्शन होते हैं। ऐसा केवल तत्त्वदर्शीके लिए ही संभव है, सामान्य विद्वत्तासे यह संभव नहीं।

आपका जीवन न केवल गृहस्थोंके लिए ही अनुकरणीय व श्रद्धास्पद है अपितु साधु-जीवनके लिए भी सदा प्रेरणादायी रहा है। गृहस्थ होते हुए भी एक आदर्श सन्तके समान आपकी जीवनचर्या है। सब प्रकारसे सम्पन्न परिवारमें जन्मे व पले श्री नाहटाजी कभी भी सांसारिक-भौतिक आकर्षणोंकी ओर आकर्षित नहीं हुए, कभी भी भौतिक देह-सुखको अपना जीवन-लक्ष्य नहीं बनाया, किन्तु इसके साथ ही अपने सांसारिक कर्त्तव्योंके प्रति भी कभी भी विमुख नहीं रहे। आज भगवत्-कृपासे आपका पुत्र-पौत्रादिसे भरा-पूरा परिवार है, सभी प्रकारकी सुख-सम्पन्नता है किन्तु आपका अन्तर्मन इन सबके प्रति निर्लिप्त, निर्मम तथा अनासक्त है।

पू० श्री नाहटाजीको जितनी निकटतासे देखते हैं, आपकी उच्चताकी भावभूमि अधिकाधिक उच्च होती हुई ही पाते हैं। हम अनुभव करते हैं कि आपका जीवन गीतोक्त स्थितप्रज्ञ तथा दैवी गुणसम्पदासे संयुक्त है। विकास ही आपका जीवन-सूत्र है। अपना विकास व सबका विकास, इसीकी प्रभासनामें आप निरन्तर लगे रहते हैं। सबको सतत आगे बढ़ते रहनेकी प्रेरणा देना आपका स्वयं-स्फूर्त स्वभाव है। चाहे कोई साधु हो या गृहस्थ, युवा हो या वृद्ध, विद्यार्थी हो या व्यवसायी, आप सभीको सही जीवन-दिशा देने, सभीके अन्तरमें छिपी आत्मशक्तिको जागृत करनेका प्रयास करते रहते हैं।

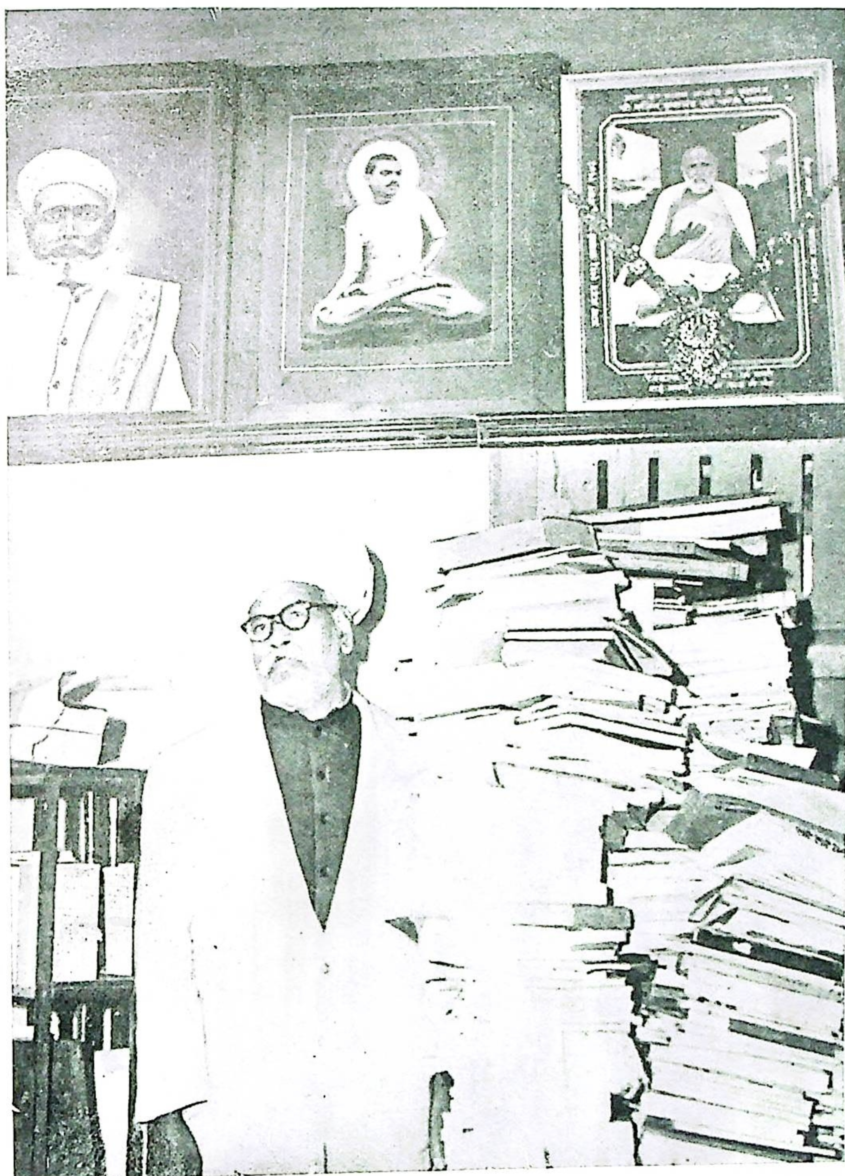
आपका सम्पूर्ण जीवन आध्यात्मिकतापर आधारित है। अतः आप साधक पहले हैं तथा और कुछ बादमें। आगम-ग्रन्थोंमें वर्णित साधनाके विभिन्न सोपानोंके अनुसार आपकी आत्म-विकास-विषयिनी ध्यान-साधना सदा चलती रहती है। इस युगके महान् योगी श्री कृपाचन्द्रजी सूरिजी महाराज तथा श्री सहजानन्द-जी महाराज आदिके साथ आपका केवल बाह्य सम्पर्क ही नहीं रहा है, अपितु आत्म-विकास-विषयक आन्त-रिक सम्पर्क भी रहा है और उनकी आन्तरिक शान्तिसे अनुप्राणित होकर आपने अपनी अन्तश्चेतनाको जागृत किया है।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि आत्म-शिल्पी व आत्मजयी व्यक्ति अपने विकास-पथपर सदा बढ़ता ही जाता है, चाहे परिस्थिति उसके अनुकूल हो या प्रतिकूल। प्रायः ऐसा भी अनुभवमें आता है कि परम्परित जीवन-यापन मार्ग व लक्ष्यको छोड़कर अपने व अपने परिवारके लिए सर्वथा नये उद्देश्योंकी प्राप्तिकी ओर जब कोई बढ़ता है तो उसके परिजन किसी अंशमें बाधक हुआ करते हैं। इस दृष्टिसे आप बड़े भाग्यशाली हैं क्योंकि आपका परिवार सदा ही आपकी साहित्य-साधनामें सहयोगी ही रहा है। आपके अग्रज सेठ श्री शुभराजजी व मेघराजजीको आपके सृजन-कार्योंपर सदा गर्व रहा है तथा आपके भतीजे श्री भँवरलालजी तो सही अर्थमें आपके अनुयायी ही हैं। वे स्वयं आत्मज्ञान-पिपासु, अच्छे लेखक तथा कुशल वक्ता हैं। उन्होंने अनेक प्राचीन आगम-ग्रन्थोंका आपके साथ सम्पादन किया है और वर्तमानमें "कुशल निर्देश" मासिक पत्रका सम्पादन भी आपके आग्रहपूर्ण आदेशसे कर रहे हैं।

आपकी दृष्टि विशाल है। जैन-धर्मके चारों सम्प्रदायोंके साधु-साध्वियोंके प्रति आपकी श्रद्धा-दृष्टि एक समान है। यही नहीं, संत तो सभी धर्मोंके आपके लिए सदा ही पूज्य एवं वन्दनीय हैं। इसी प्रकार विद्वान व विचक्षण, चाहे कहींका भी क्यों न हो, उसे आप अवश्य ही सुनते हैं और सम्मान देते हैं। सार-ग्रहणमें किसी भी प्रकारका संकोच-भाव आपमें नहीं है।

श्रमण-संस्कृतिके इस उन्नायक तपस्वीसे हमें बहुत आशा-आकांक्षाएं हैं। 'सर्वजनहिताय' व 'सर्वजन-सुखाय'के अमर सूत्रोंको अपनेमें समाहित करनेवाली हमारी श्रमण-परम्पराके व्यापक प्रचार व प्रसारके लिए आपका सत्प्रयास सदा चलता रहे। आप सुदीर्घ काल तक अपने मनन, चिन्तन व सृजनसे संसारको सही दिशाबोध देते रहें, यही भगवान महावीरसे मेरी अन्तःकामना है।





अभय जैन ग्रन्थालय में नाहटा जी



अभय जैन ग्रन्थालय में ग्रन्थों के ढेर के पास खड़े नाहटा जी

श्री अभय जैन ग्रंथालयका २५ वर्षीय विकास

श्री भँवरलालजी नाहटा

महापुरुषोंके सत्संग और सत्-साहित्यके अध्ययनसे जीवनमें बहुत बड़ा परिवर्तन आता है, यह हमारे जीवनका भी अनुभूत तथ्य है। छठी कक्षामें प्रवेश होनेके बाद ही हमारा पाठशालाका अध्ययन समाप्त हो गया। सौभाग्यसे उस अध्ययनकी कमीकी पूर्तिका एक सुअवसर हमें सम्वत् १९८४में प्राप्त हुआ। मेरे दादाजी दानमलजी व शंकरदानजी खरतरगच्छीय महान् आचार्य जिनकृपाचंद्रसूरिजीके विशेष भक्त रहे हैं क्योंकि ये सूरिवर बीकानेरके ही विद्वान् व्यक्ति थे। जब उन्होंने सारे परिग्रहका त्याग कर साधु आचारके पालनका निश्चय किया, तो अपने उपाश्रय, ज्ञानभंडार एवं अन्य वस्तुओंकी देखभालका जिम्मा बीकानेरके जिन व्यक्तियोंपर छोड़ा था उनमें हमारे परिवारके सदस्य भी थे। बहुत वर्षोंसे कृपाचन्द्रसूरिजीका बीकानेर पधारना नहीं हुआ था, इसलिये बीकानेरकी जैन जनतामें उनके चातुर्मास करानेका बड़ा उत्साह था। फलौधीमें जब वे विराज रहे थे, बीकानेरका संघ उनसे विनती करनेके लिए गया, उनमें मेरे दादाजी भी थे। जैसलमेर ज्ञानभंडारका जीर्णोद्धार आदि करानेके बाद संवत् १९८४के वसंतपंचमीके दिन सूरि-महाराज बीकानेर पधारे और हमारे ही कोटडी वड़े भवन)में विराजे। फलतः उनके सत्संगका लाभ खूब मिलने लगा। प्रतिदिन उनका व्याख्यान सुनते, वन्दना करते, उनके शिष्योंके साथ धार्मिक-चर्चा भी चलती रहती और उनके पास जो भी ग्रंथ व पत्र-पत्रिकाएँ आतीं उनको भी बहुत ही रुचिपूर्वक देखते व पढ़ते। हमारे साहित्यिक जीवनका प्रारंभ उसी सत्संग और सत्-साहित्यके स्वाध्यायसे होता है।

संवत् १९८४में जिनकृपाचन्द्रसूरिजीने भक्ति-गर्भित स्तुतियोंकी रचना प्रारम्भ की जो 'गहुंली-संग्रह' नामक ग्रंथमें उस समय छपी थी, अर्थात् तुकबन्दीरूप पद्यमय भजन-गीत बनानेका हमारा प्रयास प्रारम्भ हो गया था। एक बार 'जैनसाहित्य संशोधक' और 'आनन्दकाव्य महोदधि' मौक्तिक ७में प्रकाशित जैन-साहित्य महारथी श्री मोहनलाल दलीचन्द देसाईका एक विशिष्ट और महत्त्वपूर्ण निबंध 'कविवर समयसुन्दर' नामक पढ़नेको मिला तो मनमें यह स्फूर्ति व प्रेरणा हुई कि कविवर समयसुन्दर राजस्थानके एवं खरतरगच्छके कवि हुए हैं, उनके सम्बन्धमें बम्बई हाईकोर्टके एक वकीलने गुजरातमें रहते हुए इतना खोजपूर्ण निबन्ध लिखा है, पर उससे तो बहुत अधिक नई जानकारी बीकानेरमें ही मिल सकती है, क्योंकि बीकानेरमें हमारी ही गवाड़ (मोहल्ला)में ओ खरतरगच्छके आचार्य शाखाका उपासरा है, वह समयसुन्दरजीके उपासरेके नामसे ही प्रसिद्ध है, और उसमें समयसुन्दरजीकी शिष्य-परम्पराके यति चुनीलालजी भी उस समय रहते थे। बस इसी एक कविकी रचनाओं एवं जीवनीकी खोजके लिए हमने प्राचीन हस्तलिखित प्रतियोंको और ज्ञानभंडारोंको देखना प्रारंभ किया। संयोगसे स्थानीय 'महावीर जैनमंडल'के ग्रंथालयमें कुछ हस्तलिखित प्रतियोंको देखते हुए एक गुटका ऐसा मिला, जिसमें समयसुन्दरजीकी अनेक छोटी-मोटी रचनाओंका महत्त्वपूर्ण संग्रह था, इससे हमारा उत्साह बहुत बढ़ गया क्योंकि पहली और साधारण-सी खोजमें ही हमें बहुत बड़ी उपलब्धि मिल गयी। फिर तो बड़े उपासरेके ज्ञानभंडार एवं उपाध्याय जयचन्दजी और कृपाचन्द्रसूरिजीके ज्ञानभंडारकी एक-एक हस्तलिखित प्रतिको देख करके विवरणात्मक सूची बनायी गयी, जिससे अनेक नये कवियों एवं उनकी रचनाओंकी जानकारी मिली। उस समय हमें जो रचनायें विशेष पसन्द आतीं उनकी नकल भी हम अपने लिये करते रहते थे और कवियोंकी छोटी-से-छोटी रचनाओंका विवरण भी अपनी छोटी-छोटी नोटबुकोंमें करने लगे। इस तरह केवल एक कवि समयसुन्दरकी खोज करते हुए हमारा शोध-क्षेत्र विस्तृत होता चला गया।

उन्हीं दिनों श्री कृपाचन्द्रसूरिजीके एक यतिशिष्य तिलकचन्दजी बड़े उपासरेमें रहने लगे थे। उन्होंने देखा कि अनेक हस्तलिखित प्रतियोंका ढेर उपासरेके कूड़े-करकटमें पड़ा हुआ है। उन्होंने उसमेंसे कुछ इकट्ठा करना प्रारम्भ किया और कुछ यति मुकनचन्दजीने बटोरना शुरू किया तो हमें भी प्रेरणा हुई कि इन हस्त-लिखित प्रतियोंका संग्रह करना चाहिए जिससे हमारे पास साहित्य और शोधकी अच्छी सामग्री इकट्ठी हो जाय। हमें कुछ प्रतियां तो वैसे ही मिल गयीं और कुछ खरीद भी की। इस तरह हस्तलिखित ग्रंथोंके खोजके साथ संग्रहका कार्य भी प्रारम्भ हो गया, पर उस समय जो संग्रह किया गया था वह अधिकांश अस्तव्यस्त था और हस्तलिखित पत्रोंके ढेरमें से लिया गया था, अतः उनमें बहुत-सी धूलि-धूसरित थीं व कांटे भी थे; पन्ने तो प्रायः सभी अस्तव्यस्त बिखरे हुए थे, अतः हमने एक छोटे कमरेमें उन पत्रोंकी छंटाई करनी प्रारम्भ की। कोई पत्र कहीं मिला तो कोई पत्र कहीं, और कोई कहीं दूसरी प्रतियोंके साथ लगा हुआ या दबा हुआ मिला। जब हम छंटाई करने उस कमरेमें जाते तो कपड़े धोये हुए नये पहने हुए होते, पर वहाँसे काम करके वापस निकलते तो कपड़ोंपर धूल भर जाती और एकदम मैले हो जाते, कहीं कांटे चुभ जाते, हाथों और चेहरेपर भी धूल जम जाती, पर इस कठिन परिश्रममें भी हमें नयी-नयी सामग्री मिलती रहती और कार्यमें उत्साह बढ़ता रहता। अपूर्ण प्रतियाँ जब पूरी हो जातीं और कोई नया ग्रंथ मिल जाता तो हमें इतना आनन्द होता कि मानों शरीरमें सवा सेर खून बढ़ गया हो।

हजारों हस्तलिखित प्रतियोंके अवलोकन और पढ़नेसे हमारे ज्ञानमें दिनों-दिन अभिवृद्धि होती गयी, प्राचीन लिपियोंका अभ्यास बढ़ने लगा, प्राकृत, संस्कृत, अपभ्रंश, राजस्थानी, हिन्दी, गुजराती, इन पाँचों भाषाओंके ग्रंथ हमें पढ़नेको मिलते। अतः इन भाषाओंका ज्ञान भी बढ़ा और साथ ही अनेक विषयोंके ग्रंथ देखनेसे विविध विषयोंका ज्ञान विस्तृत होता चला गया। इधर छपे हुए ग्रंथोंका अध्ययन भी जारी रहा। फलतः पाठशालाके अध्ययनमें जो कमी रह गयी थी, उसमें सतगुणी वृद्धि होती गयी। लाखों ग्रंथोंको देखने एवं पढ़नेका अवसर मिलता गया और हस्तलिखित प्रतियोंका संग्रह भी उत्तरोतर बढ़ता चला गया। इधर ज्यों-ज्यों नयी जानकारी मिलती गयी त्यों-त्यों उसके शीघ्र प्रकाशन करनेका प्रयत्न चलने लगा। उस सामग्रीके आधारसे ग्रंथ लिखे व सम्पादित किये जाने लगे और हजारों लेख अनेक पत्र, पत्रिकाओंमें छपते रहे।

चाचाजी अगरचन्दजी अपने पिताजीके सबसे छोटे पुत्र हैं। उनके बड़े भाइयोंमें श्री अभयराजजी नाहटा हमारे परिवारमें सबसे अधिक पढ़े-लिखे थे। दुर्भाग्यवश उनको ऐसी प्राणघातक बीमारी लगी कि २२ वर्षकी अवस्थामें ही उनका जयपुरमें स्वर्गवास हो गया। वे जयपुरके रामबागमें सुप्रसिद्ध वैद्य लच्छीराम-जीसे इलाज करा रहे थे। तब कई महीने अगरचन्दजी, माताजी व भजेईके साथ उनके पास रहे थे। उस समय उनकी आयु केवल १० वर्षकी ही थी। पर देखते रहे कि रुग्ण अवस्था होनेपर भी उनके गुरुभ्राता अभयराजजी नये-नये ग्रंथोंको पढ़ते ही रहते थे। सोते समय भी उनके तकियेके नीचे पुस्तकें रखी रहतीं, शायद वे पढ़ते-पढ़ते ही सोते थे। उनकी स्वाध्याय-रुचिका अगरचन्दपर बड़ा प्रभाव पड़ा और उनकी मृत्युके बाद तो उनके पिताजी व माताजीको इतना गहरा सदमा पहुँचा कि जयपुरमें अभयराजजीके पास जो भी पुस्तकें थीं उनको वहीं लोगोंको दे दी गयीं। उनकी एक भी पुस्तक बीकानेर नहीं लायी गयी। घरवालोंको ऐसा लगा कि अधिक योग्य और पढ़ा-लिखा व्यक्ति इस तरह एकाएक चला गया तो अब अन्य लड़कोंका अधिक पढ़ना ठीक नहीं। अतः हमारी पढ़ाई भी अधिक आगे नहीं बढ़ सकी, इसमें यह भी एक कारण बन गया।

मेरे दादाजीने, अभयराजजीकी स्मृतिमें कोई अच्छा या उपयोगी काम किया जाय, इस दृष्टिसे अपने गुरु जिनकृपाचन्द्रसूरिजीके परामर्शसे एक उपयोगी ग्रन्थ-प्रकाशनका निश्चय किया। फलतः 'अभयरत्न सार' नामक एक बड़ा ग्रंथ कलकत्तेसे छपाया गया। इसीसे हमारे 'अभयजैन ग्रंथमाला'का प्रकाशन-कार्य चालू

हुआ। दूसरा ग्रंथ 'पूजा संग्रह' निकाला। इसके बादसे ही हमारे लिखे हुए ग्रन्थ इस ग्रन्थमालामें छपने लगे और अब तक अभयजैन ग्रन्थमाला द्वारा ३० ग्रंथ प्रकाशित हो चुके हैं।

हस्तलिखित प्रतियोंके साथ-साथ उपयोगी मुद्रित-ग्रन्थोंका संग्रह भी किया जाने लगा। जब यह संग्रह कुछ अच्छे रूपमें हो गया तो ग्रंथालयकी स्थापना की जानी जरूरी हो गयी। स्वर्गीय अभयराजजी एक ज्ञानी पुरुष थे और ग्रंथोंके संग्रह और अध्ययनमें उनकी गहरी अभिरुचि थी। इसलिए ग्रंथालय उन्हींके नामसे चालू करना ज्यादा उपयुक्त समझा गया। इस तरह 'अभयजैन ग्रंथालय'की स्थापना हो गयी। दिनों-दिन ग्रन्थोंकी संख्या बढ़ती चली गयी। जो ग्रंथ केवल तीन अलमारियोंमें सीमित थे, आज १००से भी अधिक अलमारियां ग्रन्थोंसे भर गयी हैं। अब तो हस्तलिखित और मुद्रित ग्रन्थोंकी संख्या १ लाख तक पहुंच गयी है। इस तरह एक छोटा-सा पौधा, वट-वृक्षके रूपमें विस्तरित होता गया है। करीब ४५००० (पैंतालीस हजार) हस्तलिखित प्रतियोंका अत्यन्त मूल्यवान, दुर्लभ और महत्त्वपूर्ण संग्रह इस ग्रन्थालयमें हो चुका है और करीब उतने ही मुद्रित ग्रन्थ भी संग्रहीत हो चुके हैं। हजारों पत्र-पत्रिकाएँ, विद्वानोंके लेखोंके रीप्रिंट्स और अन्य विविध प्रकारकी सामग्री इस ग्रन्थालयमें संग्रहीत हो चुकी है। कई वर्ष पूर्व इसके लिए जो तीनतल्ला बिल्डिंग बनवाया गया था उसमें अब ग्रंथ रखनेकी तिलभर भी जगह नहीं रही। ग्रंथोंके संग्रह और अध्ययनकी रुचि बढ़ती ही जा रही है। अतः जगह न होते हुए भी नित्य नये मुद्रित व हस्तलिखित ग्रंथ संग्रहीत होते ही जा रहे हैं। हस्तलिखित प्रतियोंके संग्रहमें तो इतना अधिक उत्साह व आंतरिक प्रेरणा है कि उचित मूल्यमें कोई भी हस्तलिखित प्रति मिली तो खरीद ली जाती है, उसे छोड़नेकी इच्छा ही नहीं होती। जहाँ कहींसे भी ग्रंथ मिल सकते हैं, वहाँपर स्वयं जाकर या अपने आदमीको भेजकर उनको खरीद लेनेका ही प्रयत्न रहता है।

गत ४२ वर्षोंसे हस्तलिखित प्रतियोंके संग्रहका प्रयत्न निरंतर चालू है। पर गत २५ वर्षोंमें इस दिशामें जितना अधिक कार्य हुआ है उतना पहले नहीं हो सका था क्योंकि स्वतन्त्रता-प्राप्तिके बाद हस्तलिखित प्रतियाँ बिकनेके लिए जितनी बाहर आयी हैं, इससे पहली कभी नहीं आयीं। मुद्रण-युगमें हस्तलिखित प्रतियोंका पठन-पाठन बंद-सा हो गया। अतः जिनके पास भी हस्तलिखित प्रतियोंका संग्रह था वे अब उनकी उपयोगिता नहीं रहनेसे बेचनेको तैयार हो गये। राजा-महाराजाओं, ठाकुरों, यतियों, विद्वानों और कवियोंके वंशजोंने अपने संग्रह बेचने प्रारम्भ कर दिये। जब ऐसे संग्रह उचित मूल्यमें मिलनेकी खबर पहुँची तो काकाजी अगरचंदजीने बाहर जाकरके भी और लोगोंको पत्र लिखकर भी ऐसे संग्रह खरीद करने प्रारम्भ कर दिये। स्वर्गीय मुनि कान्तिसागरजीका जब ग्वालियरमें चौमासा था, तो उन्होंने सूचना दी कि जैनेतर वेद आदि ग्रंथोंका एक अच्छा संग्रह बिक रहा है तो अगरचंदजी वहाँ पहुँचे और उसे खरीद लिया। इसी तरह जयपुरके कबाड़ियोंसे अच्छा संग्रह बिकनेकी सूचना मिली तो वहाँपर जाकर ले लिया गया।

भारतका विभाजन होनेपर पंजाबका ग्रंथ-संग्रह भी खूब बिकने लगा। हमारे मित्र स्वर्गीय डॉ० बनारसीदास जैनने एक कबाड़ीको कह दिया कि नाहटाजी जो हस्तलिखित ग्रंथोंका संग्रह कर रहे हैं, उन्हें तुम प्रतियोंके बंडल भेजते रहो वे उनका उचित दाम लगाकर रुपये भेजते रहेंगे। फलतः उस पंजाबी कबाड़ीने कई वर्षों तक बड़े-बड़े पुलिन्दे पार्सल करके ग्रंथ भेजे। इस तरह इधर-उधरसे प्रयत्नपूर्वक संग्रह करते-करते ही इतना बड़ा संग्रह हो सका है।

अबसे कोई तीस वर्ष पहले हमने अपने यहाँकी हस्तलिखित प्रतियोंकी सूची बनायी थी, उस समय तो करीब ५००० प्रतियाँ ही थीं। इसके बाद करीब २७ वर्ष पहिले जो सूची बनी थी उस समय करीब १५००० प्रतियाँ थीं। हमारे इस ग्रंथालय एवं कला-भवन-संग्रहालयके संबंधमें मेरा एक लेख 'राजस्थान

भारती'के अप्रैल १९४६के अंकमें प्रकाशित हुआ था तथा हमारे 'बीकानेर जैनके लेख-संग्रह'में बीकानेरके ग्रंथ-भण्डारोंका जो विवरण दिया गया था, उसमें भी 'अभय जैन ग्रंथालय'का जो विवरण दिया गया है उसमें भी १५००० हस्तलिखित प्रतियों व ५०० गुटकोंका उल्लेख है। इसी तरह हस्तलिखित प्रतियोंके साथ-साथ प्राचीन चित्र, मूर्तियों, सिक्कों आदिका भी संग्रह करना प्रारम्भ किया और अपने स्वर्गीय महान् उपकारी श्री शंकरदानजीके नामसे नाहटा-कलाभवनकी स्थापना की गयी। वह संग्रह भी बढ़ता ही चला गया। इसमें विविध कलात्मक और प्राचीन वस्तुओंका दर्शनीय एवं महत्त्वपूर्ण संग्रह है।

विविध विषयोंपर जब लेख लिखने चालू हुए तो मुद्रित ग्रंथोंकी भी बहुत आवश्यकता प्रतीत हुई क्योंकि अन्य ग्रंथालयोंसे एक साथ अधिक ग्रंथ पढ़नेको मिल नहीं सकते थे, और सब समय ग्रंथालयोंसे ग्रंथ प्राप्त करना भी संभव नहीं होता। किस समय किस ग्रंथकी जरूरत हो जाय, यह भी पहलेसे निश्चित नहीं किया जा सकता और बिना संदर्भ-ग्रंथोंके बहुत बार लेख लम्बे समय तक रुके रहते हैं। इसलिए छपे हुए आवश्यक ग्रंथोंका संग्रह करना भी जरूरी हो गया तो उनकी भी संख्या बढ़ती ही गयी। इसी तरहसे पत्र-पत्रिकाओंमें भी बहुत-सी सामग्री व जानकारी निकलती रहती है। उनको भी मंगाकर उनकी फाइलें ग्रंथा-लयमें रखना जरूरी हो गया। इस तरह मुद्रित ग्रंथों व पत्र-पत्रिकाओंका भी काफी अच्छा संग्रह हो गया है। साधारणतया लोग पत्र-पत्रिकाओंका संग्रह नहीं करते हैं, उन्हें रद्दीके भावमें बेच देते हैं। पर हमने अपने संग्रहकी सब सामग्रीको सुरक्षित रखनेका प्रयत्न कियां है, बहुत बार रद्दी बेचनेवालोंसे भी ग्रंथों एवं पत्रिकाओंके अंक खरीद करके संग्रह बढ़ाया गया है। इसीका परिणाम है कि हमारे ग्रंथालयमें बहुत-सी ऐसी सामग्री है जो अन्यत्र कहीं नहीं मिलती। अतः विद्यार्थियोंको दूर-दूरसे यहाँपर आकर लाभ उठाना पड़ता है।

हस्तलिखित ग्रंथोंकी खोजके लिए अनेक जैन-जेनेतर ज्ञान-भंडारोंमें जाना पड़ा है और लाखों हस्त-लिखित प्रतियां देखकर उनमेंसे जो-जो महत्त्वपूर्ण एवं अमूल्य एवं दुर्लभ प्रतियां देखने व जाननेमें आयीं, उनके नोट्स ले रखे हैं। जहाँ तक संभव हुआ अन्यत्रके महत्त्वपूर्ण दुर्लभ ग्रंथोंको अपने संग्रहमें भी रखना आवश्यक समझकर सैकड़ों रचनाओंकी नकलें करवायी हैं और बहुत सी प्रतियोंके तो काफी खर्च करके फोटो एवं माइक्रोफिल्म करवा ली गयी हैं। इस तरह जो महत्त्वपूर्ण ग्रंथ मूल-हस्तलिखित प्रतिके रूपमें प्राप्त नहीं किया जा सका, उसकी प्रतिलिपि करवाके 'अभयजैन ग्रंथालय' में संग्रहीत की गयी हैं।

भारतकी अनेक भाषाओं एवं लिपियोंकी हस्तलिखित प्रतियां संग्रह करनेका प्रयत्न किया गया है। इससे दक्षिण भारतके कन्नड़ और तमिल, पूर्वभारतके बंगला, उत्तर भारतके पंजाबी, सिन्धी भाषा और गुरुमुखी लिपि तथा उर्दू, फारसी, काश्मीरी और पश्चिमकी प्राकृत, संस्कृत, अपभ्रंश, हिन्दी, राजस्थानी, गुजराती भाषाओंके विविध विषयोंके ग्रंथ और उन स्थानोंकी लिपियोंमें लिखे हुए हस्तलिखित ग्रंथ संग्रहीत किये जा सके हैं। जिस भाषा और लिपिकी प्राचीन प्रति नहीं मिल सकी, वहाँकी आधुनिक प्रति भी प्राप्त की गयी है। जैसे—ताड़पत्रकी प्रतियां जैन ज्ञान भण्डारोंमें १५ वीं शताब्दी तककी ही प्राप्त होती हैं पर कन्नड़ और तमिलमें इसके बादकी काफी मिलती हैं। उड़ीसामें तो कुछ वर्षों पहिले तक ताड़पत्रपर लिखनेकी प्रणाली थी। अतः उड़ियालिपिकी ताड़पत्रपर लिखी हुई (जो अक्षरोंको खोद करके लिखा हुआ है) एक-दो प्रति प्राप्त की गयी है। बंगाल, आसाममें पहले वृक्षोंके छालपर ग्रंथ लिखे जाते थे। अतः बंगालसे ऐसी प्रतियां खरीद ली गयीं। इसी तरह चित्रशैलियोंकी दृष्टिसे भारतमें जो बहुत-सी चित्रशैलियां रही हैं उनमें भी जितनी अधिक शैलियोंके चित्र मिल सके, संग्रहीत किये गये हैं। महाराष्ट्रकी भी कई सचित्र व अचित्र

प्रतियाँ हैं। कन्नड़ और बंगला-भाषाके नागरीलिपिमें लिखे गये ग्रन्थोंकी भी कुछ प्रतियाँ हैं। अतः अब केवल संख्याकी दृष्टिसे ही नहीं, विविधता और महत्त्वको ध्यानमें रखते हुए भी बहुत बड़ी सामग्री संग्रहीत की गयी है। आज भी यही दृष्टि व प्रयत्न है कि जिन विषयों, भाषाओं और लिपियोंके ग्रन्थ हमारे ग्रंथालय में नहीं हों, उनको अधिक मूल्य देकर भी संग्रहीत किया जाय। इस तरह गत २५ वर्षोंमें इस ग्रंथालयका एवं संग्राहलयका जो उत्तरोत्तर विकास होता गया उसकी यह संक्षिप्त जानकारी पाठकोंके सम्मुख रखी गयी है। आशा है, इससे प्रेरणा प्राप्तकर अधिकाधिक लाभ उठाया जायगा।

अभय जैन ग्रन्थालय एवं कलाभवनके दर्शकोंकी कतिपय आगन्तुक-सम्मतियाँ

बीकानेरकी यात्राका एक बड़ा आकर्षण श्री अगरचन्दजी नाहटाके प्राचीन ग्रन्थोंके संग्रह और कलात्मक वस्तुओंके संग्रहको देखना था। वह अभिलाषा यहाँ आकर पूरी हुई। श्री नाहटाजीने जिस लगनसे इस संग्रहको बनाया है वह प्रशंसनीय है। संग्रहमें लगभग १५ सहस्र हस्तलिखित ग्रन्थ हैं जिनमें हिन्दी भाषा और साहित्यके आठ सौ वर्षोंकी अनमोल सामग्री भरी हुई है। नाहटाजीने अकेले एक संस्था का काम पूरा किया है। आगे आनेवाली पीढ़ियाँ इसके लिए उनकी आभारी रहेंगी।

जिस तत्परतासे उन्होंने संग्रहका कार्य किया है उससे भी अधिक उत्साह और परिश्रमसे आप इस सामग्रीके आधारपर लेखन और प्रकाशनका काम कर रहे हैं। अबतक वे लगभग पाँच सौ लेख लिख चुके हैं जो अधिकांश उनके अपने संग्रहकी साहित्यिक सामग्रीपर आधारित हैं। एक सहस्र वर्षों तक जैनोंने हिन्दी भाषाके भण्डारको विविध कृतियोंसे सम्पन्न बनाया। वह ग्रन्थराशि गुजरात, राजस्थान, संयुक्त प्रान्तके जैन सरस्वती भण्डारोंमें सौभाग्यसे सुरक्षित है। नाहटाजीका ग्रन्थ-संग्रह इसी प्रकारका एक सरस्वती भण्डार है। शीघ्र ही हिन्दीकी शोध-संस्थाओंको इस सामग्रीके व्यवस्थित प्रकाशनका उत्तरदायित्व सँभालना चाहिए। आशा है नाहटाजीके जीवनकालमें ही यह कार्य बहुत कुछ आगे बढ़ेगा। यह जानकर प्रसन्नता हुई कि आप अभीतक अपने संग्रहको बढ़ा रहे हैं और भविष्यमें एक पृथक् भवनमें उसको स्थापित करना चाहते हैं। इस कार्यमें उनके विद्या-प्रेमी भतीजे श्री भंवरलाल नाहटा भी उनके सहयोगी हैं जिन्होंने उनको कलाकी अधिकांश सामग्री एकत्र करनेमें सहायता दी है। नाहटाजी जिस मुक्त हृदयसे अपनी प्रिय सामग्रीको विद्वानोंके लिए सुलभ कर देते हैं इसका व्यक्तिगत अनुभवकरके मेरा हृदय गद्‌गद् हो गया। निस्संदेह नाहटा संग्रह हिन्दी साहित्यकी एक अमूल्य निधि है। ईश्वर उसका संवर्धन करें।

वासुदेवशरण अग्रवाल
सुपरिण्टेण्डेण्ट पुरातत्त्व विभाग
नयी दिल्ली
३०-३-४८

Was Pleased to see the wonderful and valuable collection of Nahata Family at Bikaner,

P. L. Vaidya
Professor of Sanskrit
Wadia College, Poona
3-3-47

Dr. Bhogilal J. Sandesra M.A. Ph.D.
Professor of Ardh Magadhi Jugrati,
B. J. Institute of learning and reserch.
Jugrat Vidya Sabha, Bhadra.

Ahemdabad,
Date : 7th Nov. 1950.

From 28th to 30th October I was at Bikaner as a guest of Shri Agarchandji Nahata. I saw his great Manuscript library which contains about 15000 old manuscripts and also his assume of antiquities and Piefure gallary. Seldom one comes across much a devoted reserch worker and a great lover of learning as Shri Nahata, ever ready to help other co-workers in the field in all possible ways. Any person interested in Indological reserch and Indian art comming to Bikaner will be immensely benifitted, if he pays just a visit to Shri Abhaya Library and the museum located it so ably and efficiently managed by Shri Nahata.

Sect. Bhogilal J. Sandesra.

१९५०के अक्टूवरके अन्तिम सप्ताहमें जैसलमेरसे अहमदावाद लौटनेके पहले बीकानेर देखनेकी इच्छासे मैं और अध्या० डॉ० श्री भोगीलाल सांडेसरा बीकानेर गये थे। वहाँ दर्शनीय अन्यान्य स्थानों, के साथ प्राचीन हस्तलिखित पुस्तकोंका और प्राचीन कलाकृतियोंका संग्रह भी देखा। यह संग्रह देखकर मुझे विशेष प्रसन्नता इसलिए हुई कि इस जमानेमें भी उच्च अभ्यास और संशोधनोंके योग्य प्राचीन ग्रन्थोंका और कलाकृतियोंका ऐसा संग्रह इतने व्यवस्थित रूपसे, किसी संस्थाने नहीं, वरन् एक व्यक्तिने किया है। भारतके प्राचीन और मध्यकालीन इतिहास, साहित्य और संस्कृतिके अभ्यासकों को जब भी अवसर मिले यह संग्रह अवश्य देखना चाहिए। मुझे पूर्ण आशा है कि उन्हें इससे कुछ नया प्रकाश जरूर मिलेगा।

Sd. लि० जितेन्द्र जेटली
जितेन्द्र सु० जेटली, एम० ए० न्यायाचार्य
५४, प्रीतमनगर, अहमदाबाद—६

श्री अगरचन्दजी नाहटाकी कला-सम्बन्धी रुचि बड़ी ही सराहनीय है। मैं तो इस कला संग्रहालयको देखकर मुग्ध हो गया। जो अवतक राज्याश्रय द्वारा न हो सका वह श्री नाहटाजी अपने अथक परिश्रमसे पूरा करनेकी चेष्टा कर रहे हैं और बहुत अंश तक सफल भी हुए हैं। आपके भतीजे श्री भँवरलालजीका योग सोनेमें सुहागाका कार्य कर रहा है। भारतीय संस्कृति के पुनरुत्थानमें और विशेषतया राजस्थानी संस्कृतिको जीवित रखने एवं गौरवान्वित करनेमें आपके सदृश्य कला-प्रेमियोंकी स्वतन्त्र भारतको आवश्यकता है। आप तो मेरे लिये पूज्य हैं और श्रद्धा के पात्र हैं। आशा है बीकानेर एवं राजस्थानके धनीमानी आपका अनुकरण करेंगे और हमारे सांस्कृतिक भण्डारकी उत्तरोत्तर वृद्धिमें सहयोग पहुँचायेंगे।

सत्यप्रकाश
राजस्थान पुरातत्व संग्रहालय विभाग
जयपुर
दिनांक २१-३-५१

संयोगसे बीकानेर आनेका अवसर प्राप्त हुआ । श्री अगरचन्दजी नाहटा और श्री भँवरलालजी नाहटाका वृहद्संग्रह देखनेकी इच्छा बहुत दिनोंसे मनमें थी जो अब पूरी हुई । यह संग्रह तो एक ऐसा साहित्य-समुद्र है कि इसमें अवगाहनके लिए काफी समय चाहिए । श्री नाहटाजीने साहित्यिक जगतकी जो सामग्री एकत्र की है, उसके लिए कई पीढ़ियाँ उनका गुणगान करेंगी । इस अद्भुत संग्रहमें इतने रत्न भरे पड़े हैं कि युगों तक उनका मूल्य बढ़ता ही जायेगा और जितना ही इनका परिशीलन किया जायेगा, जगतको उतना ही रस मिलेगा। भगवान नाहटाजीको इतना सामर्थ्य दें कि वे इसे उत्तरोत्तर बढ़ाते जायें ।

उदयशङ्कर शास्त्री
उप० संग्रहाध्यक्ष
भारत कला भवन, हिन्दू विश्वविद्यालय
काशी–५

This has been a most interesting collection. It is truly a great credit that one man have organised so fine a collection of books, manuscripts and objects of art. I have been particularly interested to see the collection of Rajasthani Painting works.

W. S. Kula
Scholar of Oriental Shindia
London University
London.
11-10-1952

भाई श्री नाहटाजीके इस अनूठे पुस्तकालय और कला-संग्रहका दर्शन करके अतीव आनंदकी प्राप्ति हुई । दुर्लभ हस्तलिखित ग्रन्थों, चित्रों तथा अन्य सामग्रीकी खोज और संग्रह जिस लगन, अध्यवसाय और तत्परतासे श्री नाहटाजीने किया है वह अत्यन्त ही सराहनीय है । राजस्थान एक तरहसे स्वयं ही उत्तर भारतके साहित्य, कला और संस्कृतिका संग्रहालय है । यहाँकी भूमि, जलवायु, ऐतिहासिक परिस्थितियाँ और सामाजिक संगठन सभी इस संग्रहमें सहायक हुई हैं, लेकिन आजकल वह सारी सामग्री जिस प्रकार नष्ट-भ्रष्ट होती जा रही है वह प्रत्येक राजस्थानी तथा संस्कृतिप्रिय भारतीयके लिए चिन्ताका विषय है । इन परिस्थितियोंमें श्री अगरचन्दजी नाहटाका प्रयत्न और भी अधिक अभिनन्दनीय है । यह संग्रह अधिकाधिक संवर्द्धित हो और इसका प्रकाशन भारतीय कला और संस्कृति, इतिहास और पुरातत्त्वको अधिकाधिक प्रकाश में लायें तथा अध्ययनशील युवकोंको अपनी धरोहरकी रक्षा करने और उससे प्रेरणा पानेकी स्फूर्त्ति दें, यही मेरी कामना है ।

जवाहरलाल जैन,
जयपुर
१९-११-५२

नाहटाजीका संग्रहालय अतीतके पृष्ठोंका उद्घाटन करता है । नाहटाजीके दर्शन पाकर मैं स्वयंको भाग्यशाली मानता हूँ कि मेरे युग में ऐसे व्यक्ति है जिन्होंने समाज को उसकी धरोहर सौंपी है ।

प्रवीणचन्द्र जैन
२-१-१९५३

श्री अगरचन्दजी नाहटाका संग्रहालय देखनेका आज सौभाग्य हुआ। इनका संग्रह भारतवर्षमें अपने ढंगका अनूठा है। और संग्रहकर्त्ता स्वयं विद्वान् हैं, यह सबसे बड़ी बात है। इस तरहके संग्रहकर्त्ता और संग्रह जितने भी अधिक हों अच्छा है।

गोपीकृष्ण कानोड़िया
विवेकानन्द रोड,
कलकत्ता-६
३१-१-१९५४

I delighted to sei the collection of Mr. Agarchand Nahata.

Vyanehet
Keeper Indian Sechar Vehet
Museum London
31-11-1954

जिसकी चर्चा वर्षोंसे कानोंमें पड़ रही थी उस पुरातत्त्व सम्बन्धी संग्रहको आज देखनेका सौभाग्य मिला। ग्रन्थ-संग्रह तो बड़ा है ही, उसके साथ पुरातन वस्तु-संग्रह और चित्र-संग्रह तो अमूल्य है। कुछ वस्तुएँ अत्यन्त दुर्लभ हैं और उनका मूल्यांकन नहीं हो सकता। यह एक चिन्तन, मनन और तल्लीनताका काम है कि जिसमें श्री नाहटाजीने अपना सर्वस्व होम कर दिया है।

विद्वान् और कलाकार व्यक्तियोंके लिए यह अमूल्य निधि है। देशमें ऐसे थोड़े ही व्यक्ति हैं, जिन्होंने सर्वस्वके साथ-साथ अपना शरीर और अपना मन भी इसीमें ढाल दिया है। आनेवालोंके लिए यह उपयोगी सामग्री सदैव काम देती रहेगी।

केशवानन्द
ग्रामोत्थान विद्यापीठ, सांगरीया
राजस्थान
११-७-५४

अगर चन्द—संग्रह लखे, मिल्यो अमन्द-अनन्दः,
वढ़ता रहे, हरि चतुरचित्ति, गगन मांहि ज्यों चन्द।

दुलारेलाल भार्गव,
प्रधान सम्पादक, संस्थापक माधुरी, सुधा
और गंगा पुस्तकमाला आदि

एक अनधिकारी जिज्ञासुके नाते मैं यहाँ आया था, पर यह विश्वास लेकर जा रहा हूँ कि मैंने यहाँ कुछ सीखा। सचमुच यह सरस्वतीका मन्दिर है और श्री अगरचन्दजी उसके सिद्ध पुरोहित। हमारे देशको ऐसे विद्यागत-प्राण सत्यशोधकोंकी आवश्यकता है।

मन्मथनाथ गुप्त
११-१-५८

I delighted to visit to Sri Nahata's collections of Paintings and Manuscripts. Really it is a collection of a devoted scholar.

Daylal Bactt
Briteri Buseum, London
12 Jan. 1955

श्रीयुत् नाहटाजीके इस अनुपम संग्रहालयमें आनेका सौभाग्य प्राप्तकर अपार हर्ष हुआ। यह संग्रहालय प्राचीन तथा आधुनिक अमुद्रित, मुद्रित एवं दुर्लभ ग्रन्थों का भण्डार है। उच्च शिक्षित एवं अनुसन्धित्सु वर्गके लिए यह अद्वितीय शोधस्थल है। साहित्यके विद्यार्थियोंके लिए यह पथ-प्रदर्शक है। यहाँपर एक क्षण व्यतीत करना अक्षय ज्ञान संचयन के समान है।

कपिलदेव तैलङ्ग
तैलङ्ग भवन
टीकमगढ़ (म०प्र०)
२३-६-५९

मैं लगभग एक सप्ताहसे नाहटाजीके पुस्तकालय, हस्तलिखित ग्रन्थ तथा कलात्मक संग्रहको देख रहा हूँ। बड़े सौभाग्यका विषय है कि राजस्थानी साहित्य और कलाका अनूठा संग्रह, जिससे सैकड़ों शोधप्रेमियोंको लाभ पहुंच रहा है बीकानेरमें है। नाहटाजीका यह कर्म-योग सर्वथा स्तुत्य है। आपके अथक परिश्रमका फल आज हम अनेकों लेखों व पुस्तकोंमें पाते हैं और आपके जीवनसे प्रेरणा लेते हैं।

गोपीनाथ शर्मा
अध्यक्ष—इतिहास विभाग
म०भू० कॉलेज, उदयपुर
३-७-५९

श्री नाहटाजीका अभय जैन ग्रन्थालय व संग्रहालय देखा और मुग्ध हो गया। ऐसा लगा जैसे प्रथम बार किसी विद्या-व्यसनीके कक्षमें आया हूँ। पुस्तकोंका ऐसा सुव्यवस्थित संग्रह और अन्य कलाकृतियोंका संग्रह राजस्थानके लिए गर्वकी वस्तु है।

गणपतिचन्द भण्डारी
हिन्दी प्राध्यापक
श्री महाराजकुमार कॉलेज, जोधपुर
११-१०-५९

श्रीमान् अगरचन्दजी नाहटाके अभय जैन ग्रन्थालय तथा कला-भवनके दर्शन किये। कई दिन तक संग्रहालयमें अनुसंधान विषयक कार्य किया। बीकानेरमें इतने बड़े ग्रन्थागारको देखकर महान हर्ष हुआ। श्री नाहटाजीकी सतत साधना एवं तपस्या साकार रूपमें नेत्रोंके सामने प्रस्तुत हो जाती हैं आपका विद्या-व्यसन, अथक अध्यवसाय, तपस्या-भाव एवं कार्य-पटुता प्रत्येक विद्याप्रेमी और अनुसंधानकर्त्ताके लिए

अनुकरणीय हैं। पुरातन-साहित्यके शोधके लिए यह संग्रहालय विशेष रूपसे आवश्यक सामग्री प्रदान करने-वाला है और यह ग्रन्थालय राष्ट्रके लिए गौरवकी वस्तु है।

टीकमसिंह तोमर
हिन्दी विभाग
बलवन्त राजपूत कॉलेज, आगरा
१७-१०-५२

आज ता० २८-७-६०को श्री अगरचन्द नाहटाजीके पुरातन सामग्रीके संग्रहको देखनेका सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ। उनकी अनुपस्थितिमें यह संग्रह देखा, इसका खेद रहा। किन्तु यह संग्रह बड़े महत्त्वका है और नाहटाजीको पुरातन संस्कृतिसे कितना लगाव है इससे यह भान हो जाता है। संग्रहके प्रदर्शन और संरक्षणके लिए स्थानका अभाव है। आशा है, नाहटाजी इसके लिए भी कोई उपाय निकाल सकेंगे ताकि यह अमूल्य संस्कृति निधि स्थायी रहे एवं आनेवाली पीढ़ियोंको पूर्ण प्रेरणा दे सके। संग्रहकी और भी अधिक समृद्धिके लिए मैं हार्दिक कामना करता हूँ।

यज्ञदत्त शर्मा
सुपरिण्टेण्डेण्ट, पुरातत्त्व विभाग
नयी दिल्ली
२८-७-६०

कल बीकानेरमें आपका ग्रन्थ-भण्डार और कला-संग्रह देखकर मैं मुग्ध हो गया हूँ। किसी एक व्यक्तिका इतना बड़ा ग्रन्थ-वैभव हो, यह इस भौतिक युगमें तो विस्मयजनक ही है। कई मित्रोंसे आपके इस भण्डारका यश सुनता रहा था। प्रत्यक्ष देखकर चकित रह गया।

आप स्वयं चलते-फिरते जीवित संग्रहालय हैं, अद्भुत संस्था ही हैं और वह भी जागरूक एवं कर्त्त-व्यरत! बीकानेर ही नहीं समस्त राजस्थानका परम सौभाग्य है कि इतना वैभवपूर्ण कोष उसके आँचलमें एक व्यक्तिने प्रतिष्ठितकर वैभवशाली बना दिया है। वह स्थायी निधि हो और सदैव ज्ञानका आलोक देता रहेगा। मेरा हार्दिक अभिनन्दन।

सूर्यनारायण व्यास
राजभवन, जयपुर
राजस्थान
१४-१२-६६

श्री नाहटाजीसे उनके लेखों द्वारा पिछले बीस वर्षोंसे परिचित था, परन्तु साक्षात्कारका अवसर नहीं प्राप्त हो सका था। आज वह अवसर अनायास ही प्राप्त हो गया। मुझे इनसे मिलकर तथा इनके निजी पुस्तकालय एवं कला-संग्रहको देखकर अतीव हर्ष हुआ। आप जैसे साहित्य एवं इतिहास प्रेमियों द्वारा ही देशके इन विषयों की अविचल परम्परा शताब्दियों से अक्षुण्ण बनी हुई है। आपका कला-संग्रह अपने ढंगका अनूठा है। पुस्तकालय अपने में पूर्ण है और शोध कार्यके लिए सर्वथा उपयुक्त है।

रामवृक्ष सिंह
गोरखपुर विश्वविद्यालय
३०-११-७०

श्री गुरु रविदास वाणीकी खोजमें मुझे बीकानेर आना पड़ा। नाहटाजीसे पत्र-व्यवहार द्वारा निश्चित समयपर मैं यहाँ पहुँचा। नाहटाजीके दर्शन एवं उनके व्यक्तित्वसे मैं बड़ा प्रभावित हुआ। व्यापारी होते हुए भी साहित्यसे ऐसा अनुराग एवं खोजकी सूझबूझ कम ही व्यक्तियोंमें देखनेको मिलती है। इतनी पाण्डु-लिपियोंका भण्डार भी कम ही देखनेमें आया जैसा कि नाहटाजीके भण्डारमें है। इन्हींके सन्तवाणी-संग्रहसे मैंने रैदासवाणीकी प्रतिलिपि की है। नाहटाजीका सौजन्य तो अद्वितीय है।

वेणीप्रसाद शर्मा
अध्यक्ष हिन्दी विभाग
डी० ए० वी० कॉलेज
चण्डीगढ़
४-७-७१

अनुकरणीय हैं। पुरातन-साहित्यके शोधके लिए यह संग्रहालय विशेष रूपसे आवश्यक सामग्री प्रदान करनेवाला है और यह ग्रन्थालय राष्ट्रके लिए गौरवकी वस्तु है।

टीकमसिंह तोमर
हिन्दी विभाग
बलवन्त राजपूत कॉलेज, आगरा
१७-१०-५२

आज ता० २८-७-६०को श्री अगरचन्द नाहटाजीके पुरातन सामग्रीके संग्रहको देखनेका सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ। उनकी अनुपस्थितिमें यह संग्रह देखा, इसका खेद रहा। किन्तु यह संग्रह बड़े महत्त्वका है और नाहटाजीको पुरातन संस्कृतिसे कितना लगाव है इससे यह भान हो जाता है। संग्रहके प्रदर्शन और संरक्षणके लिए स्थानका अभाव है। आशा है, नाहटाजी इसके लिए भी कोई उपाय निकाल सकेंगे ताकि यह अमूल्य संस्कृति निधि स्थायी रहे एवं आनेवाली पीढ़ियोंको पूर्ण प्रेरणा दे सके। संग्रहकी और भी अधिक समृद्धिके लिए मैं हार्दिक कामना करता हूँ।

यज्ञदत्त शर्मा
सुपरिण्टेण्डेण्ट, पुरातत्त्व विभाग
नयी दिल्ली
२८-७-६०

कल बीकानेरमें आपका ग्रन्थ-भण्डार और कला-संग्रह देखकर मैं मुग्ध हो गया हूँ। किसी एक व्यक्तिका इतना बड़ा ग्रन्थ-वैभव हो, यह इस भौतिक युगमें तो विस्मयजनक ही है। कई मित्रोंसे आपके इस भण्डारका यश सुनता रहा था। प्रत्यक्ष देखकर चकित रह गया।

आप स्वयं चलते-फिरते जीवित संग्रहालय हैं, अद्भुत संस्था ही हैं, और वह भी जागरूक एवं कर्त्तव्यरत! बीकानेर ही नहीं समस्त राजस्थानका परम सौभाग्य है कि इतना वैभवपूर्ण कोष उसके आँचलमें एक व्यक्तिने प्रतिष्ठितकर वैभवशाली बना दिया है। वह स्थायी निधि हो और सदैव ज्ञानका आलोक देता रहेगा। मेरा हार्दिक अभिनन्दन।

सूर्यनारायण व्यास
राजभवन, जयपुर
राजस्थान
१४-१२-६६

श्री नाहटाजीसे उनके लेखों द्वारा पिछले बीस वर्षोंसे परिचित था, परन्तु साक्षात्कारका अवसर नहीं प्राप्त हो सका था। आज वह अवसर अनायास ही प्राप्त हो गया। मुझे इनसे मिलकर तथा इनके निजी पुस्तकालय एवं कला-संग्रहको देखकर अतीव हर्ष हुआ। आप जैसे साहित्य एवं इतिहास प्रेमियों द्वारा ही देशके इन विषयों की अविचल परम्परा शताब्दियों से अक्षुण्ण बनी हुई है। आपका कला-संग्रह अपने ढंगका अनूठा है। पुस्तकालय अपने में पूर्ण है और शोध कार्यके लिए सर्वथा उपयुक्त है।

रामवृक्ष सिंह
गोरखपुर विश्वविद्यालय
३०-११-७०

श्री गुरु रविदास वाणीकी खोजमें मुझे बीकानेर आना पड़ा । नाहटाजीसे पत्र-व्यवहार द्वारा निश्चित समयपर मैं यहाँ पहुँचा । नाहटाजीके दर्शन एवं उनके व्यक्तित्वसे मैं बड़ा प्रभावित हुआ । व्यापारी होते हुए भी साहित्यसे ऐसा अनुराग एवं खोजकी सूझबूझ कम ही व्यक्तियोंमें देखनेको मिलती है। इतनी पाण्डु-लिपियोंका भण्डार भी कम ही देखनेमें आया जैसा कि नाहटाजीके भण्डारमें है। इन्हींके सन्तवाणी-संग्रहसे मैंने रैदासवाणीकी प्रतिलिपि की है । नाहटाजीका सौजन्य तो अद्वितीय है ।

वेणीप्रसाद शर्मा
अध्यक्ष हिन्दी विभाग
डी० ए० वी० कॉलेज
चण्डीगढ़
४-७-७१

ज्ञान-प्रवण तथा भक्ति-प्रवण श्री भँवरलालजी नाहटा

अध्यात्म योगी मुनिश्री महेन्द्रकुमारजी 'प्रथम'

सत्ता, सम्पत्ति व शारीरिक सौन्दर्य व्यक्तित्वकी बहिर्मुखता है। साहित्य, साधना तथा अनवरत स्वाध्याय अन्तरंग व्यक्तित्वकी अभिव्यंजना है। अपूर्ण व्यक्ति बहिर्मुखताको प्रधानता देता है। साधक सदैव अन्तरंगमें रमण करता है। उसका दर्शन नेत्र-सापेक्ष नहीं होता। उसका श्रवण कर्णनिरपेक्ष होता है। उसका चिन्तन किसी अज्ञातका तलस्पर्शी होता है। वह प्रतिक्षण अन्वेषण-परायण रहता है। स्थूलतामें वह कभी विहार नहीं करता। उसकी वाणी अधिकांशतः मौन होती है, किन्तु, जब वह मुखर होती है, अनेक नये आयाम प्रस्तुत कर देती है। उसकी लेखनी उस निराकारताको साकार करती है और सहस्रों-सहस्र विद्वानोंको प्रीणित कर देती है। साधनाके उत्तुंग शृंगसे स्वाध्याय एवं प्रज्ञाके उभय तटोंके बीच साहित्यकी मन्दाकिनी कल-कल रवसे प्रवाहित होती है। जैनधर्मके प्रमुख उपासक श्री भँवरलालजी नाहटा ऐसे ही मनीषी हैं, जो श्रद्धाकी गहराईमें उतरकर अन्वेषणके माध्यमसे अनेक बहुमूल्य रत्न पानेमें सफल हुए हैं।

जैनधर्मकी पहुँच प्रागैतिहासिक है। चौबीस तीर्थंकरोंके युगमें इस धर्मने अनेक प्रकारसे उद्वर्तन पाया है। किन्तु, समयकी प्रलम्बताने बहुत सारे महनीय कार्योंको अतीतकी परतोंके नीचे दबा दिया है। आज उन परतोंको हटाकर यथास्थितिका उद्घाटन अपेक्षित है। इस कार्यमें मूर्त्तियाँ, अभिलेख, सिक्के, ताम्रपत्र, चित्र, स्तूप तथा उत्कीर्ण स्तम्भ, प्राचीन शास्त्रोंके पृष्ठ आदि योगभूत होते हैं। किन्तु, इस सामग्रीके ज्ञाता, उसके अनुशीलक तथा निर्णयमें सक्षम व्यक्ति विरल ही होते हैं। इतिहासका यह सबसे जटिल पहलू होता है, पर, जब इसके निष्कर्ष प्रस्तुत होते हैं, सर्वसामान्यको भी अतीव आह्लाद होता है। प्रसिद्ध इतिहासकार श्री भँवरलालजी नाहटाने इस क्षेत्रसे संबद्ध अनेक जटिलताओंको अपनेपर ओढ़-कर जैन-इतिहासके अनेक अनुद्घाटित रहस्योंको सप्रमाण प्रस्तुत किया है। इस महनीय कार्यके पीछे कई दशकोंका उनका अथक श्रम साकार हुआ है। कला, पुरातत्त्व, साहित्य, चित्र, तीर्थस्थान, मूर्त्तियाँ, सिक्के, लिपि आदिसे सम्बद्ध जैन-परम्पराके किसी भी प्रश्नके उपस्थित किये जानेपर श्री नाहटाजी द्वारा तत्काल प्रामाणिक उत्तर प्रस्तुत हो जाता है। तिथि, संवत् आदिका गणनात्मक ब्यौरा भी साथ ही अभिव्यक्त हो जाता है। प्रायः तिथि, संवत् आदि कण्ठाग्र कम ही मिलते हैं, पर, नाहटाजी इसके अपवाद हैं। किसी भी पहलूसे सम्बद्ध सन्दर्भ-पद्य भी साथ ही उपस्थित हो जाते हैं। प्रज्ञा पारमिताका ऐसा सुखद योग उसे ही प्राप्त होता है, जिसे ज्ञानावरणीय कर्मका क्षयोपशम प्राप्त हो। श्री भँवरलालजी नाहटा देव, गुरु व धर्ममें हार्दिक अनुरक्ति तथा श्रद्धाके आधारपर उस विरल योगको प्राप्त करने में सफल हैं।

श्री भँवरलालजी नाहटाका ज्ञान छलकनेवाले घटकी तरह नहीं है। विज्ञापन-भावनासे सर्वथा दूर रहकर अनवरत ठोस कार्यमें वे एकाग्र रहते हैं। दिखावे व आडम्बरसे सर्वथा दूर हैं। वे वयसे प्रौढ़ हो चुके हैं, तो ज्ञान व अनुभवोंसे भी प्रौढ़ हैं। नियमित धार्मिक चर्यामें अपनेको संयोजित रखते हैं। नाना स्तवनोंका जब तन्मय होकर संगायन करते हैं, तो किसी भी भक्त हृदयकी सहज स्मृति हो उठती है। ज्ञान-प्रवणताके साथ सहज हार्दिक भक्ति-प्रवणताका सुयोग मणि-कांचनके योगका विलक्षण उदाहरण है।

श्री नाहटाजी पिछले कई वर्षोंसे मेरे साथ सम्पर्कित थे। शोधके अनेक प्रसंगोंपर बहुत बार गहन चर्चाएँ होती थीं। किन्तु, विगत एक वर्षकी अवधिने उस सम्पर्कको और प्रगाढ़ता प्रदान की है। उनकी निश्छल भक्ति-प्रवणताने किसी भी प्रकारकी दूरीको रहने नहीं दिया है। सारा दूरत्व सिमट गया है। सच ही है, धर्मका संश्लेष सदैव एकत्वकी अभिवृद्धि करता है। श्री नाहटाजीका सन्मान ज्ञान-प्रवणता तथा भक्ति-प्रवणताका प्रतीक है। जिन व्यक्तियोंने इस योजनाको आगे बढ़ाया है, निःसन्देह उन्होंने मूक साधकों-की अनवद्य साधनाको अभिनन्दित कर एक नये प्रसंगकी ओर जन-मानसको आकर्षित किया है।

ज्ञान-प्रवण तथा भक्ति-प्रवण श्री भँवरलालजी नाहटा

अध्यात्म योगी मुनिश्री महेन्द्रकुमारजी 'प्रथम'

सत्ता, सम्पत्ति व शारीरिक सौन्दर्य व्यक्तित्वकी बहिर्मुखता है। साहित्य, साधना तथा अनवरत स्वाध्याय अन्तरंग व्यक्तित्वकी अभिव्यंजना है। अपूर्ण व्यक्ति बहिर्मुखताको प्रधानता देता है। साधक सदैव अन्तरंगमें रमण करता है। उसका दर्शन नेत्र-सापेक्ष नहीं होता। उसका श्रवण कर्णनिरपेक्ष होता है। उसका चिन्तन किसी अज्ञातका तलस्पर्शी होता है। वह प्रतिक्षण अन्वेषण-परायण रहता है। स्थूलतामें वह कभी विहार नहीं करता। उसकी वाणी अधिकांशतः मौन होती है, किन्तु, जब वह मुखर होती है, अनेक नये आयाम प्रस्तुत कर देती है। उसकी लेखनी उस निराकारताको साकार करती है और सहस्रों-सहस्र विद्वानोंको प्रीणित कर देती है। साधनाके उत्तुंग शृंगसे स्वाध्याय एवं प्रज्ञाके उभय तटोंके बीच साहित्यकी मन्दाकिनी कल-कल रवसे प्रवाहित होती है। जैनधर्मके प्रमुख उपासक श्री भँवरलालजी नाहटा ऐसे ही मनीषी हैं, जो श्रद्धाको गहराईमें उतरकर अन्वेषणके माध्यमसे अनेक बहुमूल्य रत्न पानेमें सफल हुए हैं।

जैनधर्मकी पहुँच प्रागैतिहासिक है। चौबीस तीर्थंकरोंके युगमें इस धर्मने अनेक प्रकारसे उद्वर्तन पाया है। किन्तु, समयकी प्रलम्बताने बहुत सारे महनीय कार्योंको अतीतकी परतोंके नीचे दबा दिया है। आज उन परतोंको हटाकर यथास्थितिका उद्‌घाटन अपेक्षित है। इस कार्यमें मूर्त्तियाँ, अभिलेख, सिक्के, ताम्रपत्र, चित्र, स्तूप तथा उत्कीर्ण स्तम्भ, प्राचीन शास्त्रोंके पृष्ठ आदि योगभूत होते हैं। किन्तु, इस सामग्रीके ज्ञाता, उसके अनुशीलक तथा निर्णयमें सक्षम व्यक्ति विरल ही होते हैं। इतिहासका यह सबसे जटिल पहलू होता है, पर, जब इसके निष्कर्ष प्रस्तुत होते हैं, सर्वसामान्यको भी अतीव आह्लाद होता है। प्रसिद्ध इतिहासकार श्री भँवरलालजी नाहटाने इस क्षेत्रसे संबद्ध अनेक जटिलताओंको अपनेपर ओढ़-कर जैन-इतिहासके अनेक अनुद्‌घाटित रहस्योंको सप्रमाण प्रस्तुत किया है। इस महनीय कार्यके पीछे कई दशकोंका उनका अथक श्रम साकार हुआ है। कला, पुरातत्त्व, साहित्य, चित्र, तीर्थस्थान, मूर्त्तियाँ, सिक्के, लिपि आदिसे सम्बद्ध जैन-परम्पराके किसी भी प्रश्नके उपस्थित किये जानेपर श्री नाहटाजी द्वारा तत्काल प्रामाणिक उत्तर प्रस्तुत हो जाता है। तिथि, संवत् आदिका गणनात्मक ब्यौरा भी साथ ही अभिव्यक्त हो जाता है। प्रायः तिथि, संवत् आदि कण्ठाग्र कम ही मिलते हैं, पर, नाहटाजी इसके अपवाद हैं। किसी भी पहलूसे सम्बद्ध सन्दर्भ-पद्य भी साथ ही उपस्थित हो जाते हैं। प्रज्ञा पारमिताका ऐसा सुखद योग उसे ही प्राप्त होता है, जिसे ज्ञानावरणीय कर्मका क्षयोपशम प्राप्त हो। श्री भँवरलालजी नाहटा देव, गुरु व धर्ममें हार्दिक अनुरक्ति तथा श्रद्धाके आधारपर उस विरल योगको प्राप्त करने में सफल हैं।

श्री भँवरलालजी नाहटाका ज्ञान छलकनेवाले घटकी तरह नहीं है। विज्ञापन-भावनासे सर्वथा दूर रहकर अनवरत ठोस कार्यमें वे एकाग्र रहते हैं। दिखावे व आडम्बरसे सर्वथा दूर हैं। वे वयसे प्रौढ़ हो चुके हैं, तो ज्ञान व अनुभवोंसे भी प्रौढ़ हैं। नियमित धार्मिक चर्यामें अपनेको संयोजित रखते हैं। नाना स्तवनोंका जब तन्मय होकर संगायन करते हैं, तो किसी भी भक्त हृदयकी सहज स्मृति हो उठती है। ज्ञान-प्रवणताके साथ सहज हार्दिक भक्ति-प्रवणताका सुयोग मणि-कांचनके योगका विलक्षण उदाहरण है।

श्री नाहटाजी पिछले कई वर्षोंसे मेरे साथ सम्पर्कित थे। शोधके अनेक प्रसंगोंपर बहुत बार गहन चर्चाएँ होती थीं। किन्तु, विगत एक वर्षकी अवधिने उस सम्पर्कको और प्रगाढ़ता प्रदान की है। उनकी निश्छल भक्ति-प्रवणताने किसी भी प्रकारकी दूरीको रहने नहीं दिया है। सारा दूरत्व सिमट गया है। सच ही है, धर्मका संश्लेष सदैव एकत्वकी अभिवृद्धि करता है। श्री नाहटाजीका सन्मान ज्ञान-प्रवणता तथा भक्ति-प्रवणताका प्रतीक है। जिन व्यक्तियोंने इस योजनाको आगे बढ़ाया है, निःसन्देह उन्होंने मूक साधकोंकी अनवद्य साधनाको अभिनन्दित कर एक नये प्रसंगकी ओर जन-मानसको आकर्षित किया है।

●

समाज इनका सदैव ऋणी रहेगा

श्री यशपाल जैन

लगभग ३५ वर्ष पहलेकी बात है, मैं उस समय कड़लेश्वर (मध्यप्रदेश)में रहा करता था। श्री बनारसीदास चतुर्वेदी तथा मैं 'मधुकर' मासिक पत्र निकालते थे। उस पत्रके लिए बहुत-सी रचनाएँ आया करती थीं। एक दिन एक लिफाफा मिला। उसमें एक लेख था, लेखक थे श्री अगरचन्द नाहटा। यह नाहटाजीसे पहला सम्पर्क हुआ। प्राप्त लेख 'मधुकर'में छाप दिया। फिर तो एकके बाद एक अनेक लेख उनके मुझे मिलते रहे।

उसके बाद मैं दिल्ली आ गया और 'जीवन साहित्य'का सम्पादन करने लगा। श्री नाहटाजीके लेख इस पत्रके लिए भी आने लगे। एक दिन देखता क्या हूँ कि एक सज्जन मिलने आये। बंद गलेका कोट, दो लांगकी धोती, सिरपर पगड़ी, वर्ण श्यामल, कद ऊँचा, बड़ी-बड़ी मूँछें, वेश-भूषासे एकदम मारवाड़ी लगते थे। बैठते ही बोले, "मेरा नाम अगरचन्द नाहटा है।" बंधुवर अगरचन्द नाहटासे यह मेरी पहली प्रत्यक्ष भेंट थी।

उनके लेख मुझे पसन्द आते थे। उनकी रुचि बड़ी व्यापक थी। इतिहास और शोधकी ओर उनका बड़ा झुकाव था और जो भी रचना वे भेजते थे, वह किसी ऐतिहासिक विषयसे सम्बन्धित अथवा शोधपर आधारित होती थी।

मुझे स्मरण है—उस पहली भेंटमें मैंने उनसे पूछा था, "आप शोधपूर्ण विषयोंपर इतने लेख कैसे लिख लेते हैं?"

उन्होंने जो उत्तर दिया था, वह भी मैं भूल नहीं पाया हूँ। उन्होंने कहा था, "मुझे लिखनेका बहुत अभ्यास है। मैं दिनभर में १० लेख लिख सकता हूँ।"

उनकी इस बातसे जहाँ मुझे विस्मय हुआ, वहाँ उनके प्रति आदरकी भावना भी उत्पन्न हुई। व्यापार करते हुए कोई व्यक्ति इतना अध्ययनशील, और वह भी गम्भीर इतिहास और साहित्यका पढ़नेवाला हो सकता है, यह मेरे लिये अत्यंत कौतूहलकी वस्तु थी।

इसके बाद तो नाहटाजीसे बीसियों बार मिलना हुआ। बीकानेरमें मुद्रित पुस्तकों और हस्तलिखित ग्रन्थोंका उनका विपुल संग्रह देखा। सच यह है कि ज्यों-ज्यों उनसे सम्पर्क बढ़ा, उनके प्रति मेरी आत्मीयतामें वृद्धि होती गयी। मैंने पाया कि वे मूलतः विद्या-व्यसनी हैं।

आचार्य श्री जिन कृपाचन्द्रसूरिके सान्निध्यमें वे ३ वर्ष रहे और ४५ वर्ष पूर्वसे उनका लेखन निरन्तर चल रहा है। उन्होंने लगभग ४ हजार लेख लिखे हैं जो ४०० पत्र-पत्रिकाओंमें प्रकाशित हुए हैं। कोई ३ दर्जन पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं और करीब ६० ग्रन्थोंका सम्पादन किया है।

इतना ही नहीं उन्होंने कई ग्रन्थमालाएँ प्रकाशित की हैं। अपने स्वर्गीय बड़े भ्राता श्री अभयराजजीके नामपर अभय-ग्रन्थमाला निकाली है, जिसके अन्तर्गत ३० ग्रन्थ निकल चुके हैं।

नाहटाजीकी रुचि केवल साहित्य तक ही सीमित नहीं है। अपने पिता श्री सेठ शंकरदानजी नाहटाकी स्मृतिमें उन्होंने एक कलाभवनका निर्माण किया है जिसमें प्राचीन चित्रों व कलात्मक सामग्रीका बड़ा सुन्दर व उपयोगी संग्रह है।

अनेक संस्थाओंसे वे सक्रिय रूपमें सम्बद्ध हैं। इन संस्थाओंके द्वारा साहित्य, संस्कृति, कला, इतिहास आदिकी उल्लेखनीय सेवा हुई है व हो रही है।

नाहटाजीने जैनधर्मका गहन अध्ययन किया है व जैनदर्शनको गहराईसे समझा है। उनके विचार बहुत ही सुलझे हुए हैं। वे अच्छे वक्ता हैं। मुझे अनेक अवसरोंपर उन्हें सुननेका मौका मिला है। वह गूढ़से गूढ़ बातोंको भी सरलतासे स्पष्ट कर देते हैं।

श्री नाहटाजीको उनकी विद्वत्ताके कारण आराके जैन भवनने सिद्धांताचार्य, अलीगढ़के जैन मिशनने विद्या-वारिधि, महाकौशल मूर्त्ति-पूजक संघने सिद्धांत-महोदधि, राजस्थानी संस्थाने साहित्य-वाचस्पति और साहित्य-तपस्वी आदि कई उपाधियोंसे विभूषित किया है।

लेखन नाहटाजीका पेशा नहीं है। पेशेसे वे व्यापारी हैं। विद्या अर्जन व लेखनकी वृत्ति तो उन्हें प्रभुसे वरदानके रूपमें मिली है। वे खूब पढ़ते हैं और जो ज्ञान प्राप्त करते हैं, उसे कंजूसकी तरह दबाकर नहीं रखते, मुक्त भावसे पाठकोंमें वितरित करते हैं। नयीसे नयी पुस्तकोंके संग्रहकी उनमें अदम्य लालसा है। फलतः आज उनके संग्रहालयमें विभिन्न विषयोंकी हजारों पुस्तकें हैं। उससे भी बड़ी उनकी सेवा हस्त-लिखित प्राचीन ग्रन्थोंका संकलन है। उनके ज्ञान-भण्डारमें मुद्रितसे भी अधिक हस्तलिखित ग्रन्थ हैं। वे बड़े पारखी हैं। जौहरीकी भाँति उनकी निगाह ग्रन्थ-रत्नोंपर सहज ही पहुँच जाती है और वे उन्हें प्राप्त करके ही चैन लेते हैं।

गम्भीर प्रकृतिके दिखाई देनेवाले नाहटाजीका अन्तर बड़ा ही तरल है। वे बहुत ही मिलनसार व प्रेमल स्वभावके हैं। उनके हृदयमें वात्सल्यकी धारा निरन्तर प्रवाहित रहती है। जब कभी वे दिल्ली आते हैं तो यथासंभव बिना मिले नहीं जाते। भगवान महावीरके २५००वें निर्वाण-महोत्सवके प्रसंगमें तो हमलोग जाने कितनी बार मिले। मैंने देखा कि उनके मनमें अनेक योजनाएँ घूम रही थीं। वे चाहते थे, इस मंगल अवसरपर कुछ ठोस काम हो, कुछ बढ़िया ग्रन्थ प्रकाशित हों। वे जब भी मिलते, बड़े विस्तारसे चर्चा करते।

मुझे यह देखकर बड़ा हर्ष हुआ कि श्री नाहटाजी साम्प्रदायिकतासे परे हैं। दिगम्बर और श्वेताम्बर, तेरापन्थी और स्थानकवासी आम्नायोंके मतभेदोंमें उनकी कोई दिलचस्पी नहीं। वे चाहते हैं कि विवादा-स्पद बातोंमें न उलझकर उन चीजोंको लिया जाय, जिनमें सभी आम्नायोंमें मतैक्य है। भगवान महावीरने तो जो कुछ कहा था, वह सम्पूर्ण मानव-जातिके लिए था, उनके समवसरणमें सभी लोग बिना भेदभाव एकत्रित होते थे, यहाँ तक कि पशु-पक्षियों तकके लिए उनके द्वार खुले थे।

श्री नाहटाजीकी सेवाएँ निःसन्देह सराहनीय हैं। अन्धकारमें पड़े इतिहासके न जाने कितने पृष्ठोंको वे प्रकाशमें लाये हैं और उनका यह सत्प्रयास निरन्तर चल रहा है। ऐसे बहुतसे हस्तलिखित ग्रन्थोंका, जो मन्दिरोंमें या भण्डारोंमें विस्मृत पड़े थे, उन्होंने पाठकोंको परिचय कराया है और उनकी उपयोगिताको ओर समाजका ध्यान आकर्षित किया है।

मेरी दृष्टिमें यह नाहटाजीकी ऐसी सेवा है जिसके लिए जैन समाज ही नहीं, भारतीय समाज उनका चिर-ऋणी रहेगा। स्मरण रहे कि नाहटाजीने यह सेवा किसी स्वार्थ-भावसे नहीं की है—न पैसेके लालचसे, और न यशकी इच्छासे। उनकी दृष्टि शुद्ध परमार्थकी रही है।

प्रभुसे मेरी कामना है कि हमारे ये बन्धु दीर्घायु हों, स्वस्थ रहें और उनके हाथों समाज तथा देशकी आगे भी सतत् सेवा होती रहे।

●

समाज इनका सदैव ऋणी रहेगा

श्री यशपाल जैन

लगभग ३५ वर्ष पहलेकी बात है, मैं उस समय कड़लेश्वर (मध्यप्रदेश)में रहा करता था । श्री बनारसीदास चतुर्वेदी तथा मैं 'मधुकर' मासिक पत्र निकालते थे । उस पत्रके लिए बहुत-सी रचनाएँ आया करती थीं । एक दिन एक लिफाफा मिला । उसमें एक लेख था, लेखक थे श्री अगरचन्द नाहटा । यह नाहटाजीसे पहला सम्पर्क हुआ । प्राप्त लेख 'मधुकर'में छाप दिया । फिर तो एकके बाद एक अनेक लेख उनके मुझे मिलते रहे ।

उसके बाद मैं दिल्ली आ गया और 'जीवन साहित्य'का सम्पादन करने लगा । श्री नाहटाजीके लेख इस पत्रके लिए भी आने लगे । एक दिन देखता क्या हूँ कि एक सज्जन मिलने आये । बंद गलेका कोट, दो लांगकी धोती, सिरपर पगड़ी, वर्ण श्यामल, कद ऊँचा, बड़ी-बड़ी मूँछें, वेश-भूषासे एकदम मारवाड़ी लगते थे । बैठते ही बोले, "मेरा नाम अगरचन्द नाहटा है ।" बंधुवर अगरचन्द नाहटासे यह मेरी पहली प्रत्यक्ष भेंट थी ।

उनके लेख मुझे पसन्द आते थे । उनकी रुचि बड़ी व्यापक थी । इतिहास और शोधकी ओर उनका बड़ा झुकाव था और जो भी रचना वे भेजते थे, वह किसी ऐतिहासिक विषयसे सम्बन्धित अथवा शोधपर आधारित होती थी ।

मुझे स्मरण है—उस पहली भेंटमें मैंने उनसे पूछा था, "आप शोधपूर्ण विषयोंपर इतने लेख कैसे लिख लेते हैं ?"

उन्होंने जो उत्तर दिया था, वह भी मैं भूल नहीं पाया हूँ । उन्होंने कहा था, "मुझे लिखनेका बहुत अभ्यास है । मैं दिनभर में १० लेख लिख सकता हूँ ।"

उनकी इस बातसे जहाँ मुझे विस्मय हुआ, वहाँ उनके प्रति आदरकी भावना भी उत्पन्न हुई । व्यापार करते हुए कोई व्यक्ति इतना अध्ययनशील, और वह भी गम्भीर इतिहास और साहित्यका पढ़ने-वाला हो सकता है, यह मेरे लिये अत्यंत कौतूहलकी वस्तु थी ।

इसके बाद तो नाहटाजीसे बीसियों बार मिलना हुआ । बीकानेरमें मुद्रित पुस्तकों और हस्तलिखित ग्रन्थोंका उनका विपुल संग्रह देखा । सच यह है कि ज्यों-ज्यों उनसे सम्पर्क बढ़ा, उनके प्रति मेरी आत्मीयतामें वृद्धि होती गयी । मैंने पाया कि वे मूलतः विद्या-व्यसनी हैं ।

आचार्य श्री जिन कृपाचन्द्रसूरिके सान्निध्यमें वे ३ वर्ष रहे और ४५ वर्ष पूर्वसे उनका लेखन निरन्तर चल रहा है । उन्होंने लगभग ४ हजार लेख लिखे हैं जो ४०० पत्र-पत्रिकाओंमें प्रकाशित हुए हैं । कोई ३ दर्जन पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं और करीब ६० ग्रन्थोंका सम्पादन किया है ।

इतना ही नहीं उन्होंने कई ग्रन्थमालाएँ प्रकाशित की हैं । अपने स्वर्गीय बड़े भ्राता श्री अभयराज-जीके नामपर अभय-ग्रन्थमाला निकाली है, जिसके अन्तर्गत ३० ग्रन्थ निकल चुके हैं ।

नाहटाजीकी रुचि केवल साहित्य तक ही सीमित नहीं है । अपने पिता श्री सेठ शंकरदानजी नाहटा-की स्मृतिमें उन्होंने एक कलाभवनका निर्माण किया है जिसमें प्राचीन चित्रों व कलात्मक सामग्रीका बड़ा सुन्दर व उपयोगी संग्रह है ।

अनेक संस्थाओंसे वे सक्रिय रूपमें सम्बद्ध हैं । इन संस्थाओंके द्वारा साहित्य, संस्कृति, कला, इतिहास आदिकी उल्लेखनीय सेवा हुई है व हो रही है ।

नाहटाजीने जैनधर्मका गहन अध्ययन किया है व जैनदर्शनको गहराईसे समझा है। उनके विचार बहुत ही सुलझे हुए हैं। वे अच्छे वक्ता हैं। मुझे अनेक अवसरोंपर उन्हें सुननेका मौका मिला है। वह गूढ़से गूढ़ बातोंको भी सरलतासे स्पष्ट कर देते हैं।

श्री नाहटाजीको उनकी विद्वत्ताके कारण आराके जैन भवनने सिद्धांताचार्य, अलीगढ़के जैन मिशनने विद्या-वारिधि, महाकौशल मूर्त्ति-पूजक संघने सिद्धांत-महोदधि, राजस्थानी संस्थाने साहित्य-वाचस्पति और साहित्य-तपस्वी आदि कई उपाधियोंसे विभूषित किया है।

लेखन नाहटाजीका पेशा नहीं है। पेशेसे वे व्यापारी हैं। विद्या अर्जन व लेखनकी वृत्ति तो उन्हें प्रभुसे वरदानके रूपमें मिली है। वे खूब पढ़ते हैं और जो ज्ञान प्राप्त करते हैं, उसे कंजूसकी तरह दबाकर नहीं रखते, मुक्त भावसे पाठकोंमें वितरित करते हैं। नयीसे नयी पुस्तकोंके संग्रहकी उनमें अदम्य लालसा है। फलतः आज उनके संग्रहालयमें विभिन्न विषयोंकी हजारों पुस्तकें हैं। उससे भी बड़ी उनकी सेवा हस्त-लिखित प्राचीन ग्रन्थोंका संकलन है। उनके ज्ञान-भण्डारमें मुद्रितसे भी अधिक हस्तलिखित ग्रन्थ हैं। वे बड़े पारखी हैं। जौहरीकी भाँति उनकी निगाह ग्रन्थ-रत्नोंपर सहज ही पहुँच जाती है और वे उन्हें प्राप्त करके ही चैन लेते हैं।

गम्भीर प्रकृतिके दिखाई देनेवाले नाहटाजीका अन्तर बड़ा ही तरल है। वे बहुत ही मिलनसार व प्रेमल स्वभावके हैं। उनके हृदयमें वात्सल्यकी धारा निरन्तर प्रवाहित रहती है। जब कभी वे दिल्ली आते हैं तो यथासंभव बिना मिले नहीं जाते। भगवान महावीरके २५००वें निर्वाण-महोत्सवके प्रसंगमें तो हमलोग जाने कितनी बार मिले। मैंने देखा कि उनके मनमें अनेक योजनाएँ घूम रही थीं। वे चाहते थे, इस मंगल अवसरपर कुछ ठोस काम हो, कुछ बढ़िया ग्रन्थ प्रकाशित हों। वे जब भी मिलते, बड़े विस्तारसे चर्चा करते।

मुझे यह देखकर बड़ा हर्ष हुआ कि श्री नाहटाजी साम्प्रदायिकतासे परे हैं। दिगम्बर और श्वेताम्बर, तेरापन्थी और स्थानकवासी आम्नायोंके मतभेदोंमें उनकी कोई दिलचस्पी नहीं। वे चाहते हैं कि विवादा-स्पद बातोंमें न उलझकर उन चीजोंको लिया जाय, जिनमें सभी आम्नायोंमें मतैक्य है। भगवान महावीरने तो जो कुछ कहा था, वह सम्पूर्ण मानव-जातिके लिए था, उनके समवसरणमें सभी लोग बिना भेदभाव एकत्रित होते थे, यहाँ तक कि पशु-पक्षियों तकके लिए उनके द्वार खुले थे।

श्री नाहटाजीकी सेवाएँ निःसन्देह सराहनीय हैं। अन्धकारमें पड़े इतिहासके न जाने कितने पृष्ठोंको वे प्रकाशमें लाये हैं और उनका यह सत्प्रयास निरन्तर चल रहा है। ऐसे बहुतसे हस्तलिखित ग्रन्थोंका, जो मन्दिरोंमें या भण्डारोंमें विस्मृत पड़े थे, उन्होंने पाठकोंको परिचय कराया है और उनकी उपयोगिताकी ओर समाजका ध्यान आकर्षित किया है।

मेरी दृष्टिमें यह नाहटाजीकी ऐसी सेवा है जिसके लिए जैन समाज ही नहीं, भारतीय समाज उनका चिर-ऋणी रहेगा। स्मरण रहे कि नाहटाजीने यह सेवा किसी स्वार्थ-भावसे नहीं की है—न पैसेके लालचसे, और न यशकी इच्छासे। उनकी दृष्टि शुद्ध परमार्थकी रही है।

प्रभुसे मेरी कामना है कि हमारे ये बन्धु दीर्घायु हों, स्वस्थ रहें और उनके हाथों समाज तथा देशकी आगे भी सतत् सेवा होती रहे।

●

सिद्धान्ताचार्य, इतिहासरत्न, विद्यावारिधि

श्री अगरचन्द नाहटा

श्रीमती गुणसुन्दरी बाँठिया, एम० ए०, कानपुर

"आतो स्वर्गां ने शरमावें, इणपर देव रमणने आवे।
इण रो यश नर-नारी गावें, धरती धोराँरी, मीराँरी, भगराँरी।"

ऐसी यशस्विनी भूमि है राजस्थानकी। प्रकृतिने इस वीर-भूमि का अद्‌भुत रंगोंसे शृङ्गार किया है। एक तरफ हरे-भरे मैदान और आकाशको छूती-सी पर्वत शृंखलाएँ हैं तो दूसरी तरफ पठार और विशाल मरु-प्रदेश इसकी शोभामें चार चाँद लगा देते हैं। यह भूमि प्राकृतिक सौन्दर्यकी स्वामिनी होनेके साथ-साथ महान कवियों, विद्वानों, सन्तों और कलाकारोंकी भी जननो रही है। इसी मरुभूमि की अनमोल प्रतिभा हैं श्री अगरचन्द नाहटा।

नाहटाजीमें लक्ष्मी और सरस्वतीका अनूठा संगम है। दोनों माताओंके समान रूपसे दुलारे हैं। नाहटाजी अतुल धनराशिके होते हुए भी आप साधू-सा जीवन जीते हैं। आपका जन्म वि० स० १९६७के चैत वदी ४को बीकानेरमें हुआ। १७-वर्षकी अल्पायुमें ही आपमें साहित्य और कलाके प्रति अद्‌भुत रुचिका विकास हुआ। विगत ४५ वर्षोंमें आपके ४५ ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं। तीन सौ पत्र-पत्रिकाओंमें इनके पाँच हजारसे भी अधिक महत्त्वपूर्ण लेख प्रकाशित हो चुके हैं।

लेखक और सम्पादकके साथ-साथ आप वहुत बड़े संग्राहक भी हैं। आपके अभय जैन ग्रन्थालयमें पचास हजार हस्तलिखित और इतनी ही मुद्रित, अर्थात एक लाख ग्रन्थोंका महत्त्वपूर्ण संग्रह है। अपने पिताश्रीकी स्मृतिमें स्थापित सेठ शंकरदान नाहटा कला-भवनमें तीन हजार प्राचीन चित्र, सैकड़ों सिक्के, प्राचीन प्रतिमाएँ और नानाविध कलाकृतियोंका विशिष्ट संग्रह हैं।

आपकी साहित्य और कलाकी सेवाओंसे प्रभावित होकर जैन साहित्य भवन, आराने आपको बिहारके राज्यपालकी अध्यक्षतामें "सिद्धान्ताचार्य"की पदवीसे सम्मानित किया। इन्टरनेशनल एकाडमी ऑफ जैन कल्चरने आपको "विद्या-वारिधि" से विभूषित किया। श्री जिनदत्तसूरि-सेवा-संघ ने "इतिहास-रत्न" की पदवीसे विभूषित कर आपका गौरव वढ़ाया। बम्बईकी श्रीमान सूरिसारस्वत समारोहकी विद्वत् परिषदने आपको "पद्म-भूषण" की उपाधि प्रदान की।

१८ वर्षकी अल्पायुमें आपने 'विधवा-कर्त्तव्य' नामक ग्रन्थ लिखा। इसके पश्चात् तो आपके निबन्ध और ग्रंथ लेखनकी प्रवृत्ति सदा चालू रही। आपके द्वारा लिखित ग्रंथोंमेंसे 'प्राचीन काव्य रूपोंकी परंपरा', 'युगप्रधान जिनचन्दसूरि', 'बीकानेर जैन लेख संग्रह', 'हस्तलिखित ग्रन्थोंकी खोज', 'प्राचीन ऐतिहासिक काव्य' और, राजस्थानी साहित्यकी गौरवपूर्ण परंपरा, विशेष उल्लेखनीय हैं।

अनेक विद्वानों द्वारा लिखित ग्रंथोंकी आपने प्रस्तावना लिखी। हजारों अज्ञात रचनाओंका परिचय साहित्य-जगतको कराया। सैकड़ों शोधछात्रोंको मार्गदर्शन और साहित्य-सामग्री दे रहे हैं। हस्तलिखित प्रतियोंकी खोज और नवीन जानकारी प्रकाशमें लाते रहना तो आपका व्यसन-सा हो गया है। श्री अभय जैन ग्रन्थालयमें हजारों अज्ञात एवं अनन्य अप्राप्य रचनाओंका आपने संग्रह किया है। अतः शोध विद्यार्थी और विद्वानोंके लिए वह एक साहित्य तीर्थ-सा वन गया है।

नाहटाजीकी धर्ममें गहरी श्रद्धा है। आध्यात्म और दर्शन आपका सदासे प्रिय विषय रहा है। निष्काम कर्ममें आपकी गहरी निष्ठा है। स्वाध्याय और साहित्य-साधनामें लीन रहते हैं। आपका जीवन अप्रमादी और कर्मठ रहा है।

नाहटाजी राजस्थानी भाषाके प्रबल समर्थक और मर्मज्ञ विद्वान हैं। साहित्य अकादमी दिल्लीने राजस्थानी भाषाकी मान्यताके लिए जो समिति बुलायी थी उसमें राजस्थानी भाषाका पक्ष समर्थनके लिए आपको ही निमन्त्रित किया गया था। आपके विशिष्ट व्यक्तित्व और तर्कसंगत उद्धरणोंसे प्रभावित हो समितिने सर्वसम्मतिसे राजस्थानी भाषाको साहित्यिक मान्यता देना स्वीकार कर लिया।

आबूको गुजरात प्रदेशसे पुनः राजस्थानमें लानेका बहुत बड़ा श्रेय नाहटाजीको है। इसके समर्थनमें आपने बहुत महत्त्वपूर्ण लेख लोकवाणी आदिमें प्रकाशित कराये। गुजरातके समर्थक श्री अमृत पाण्याके एक-एक तर्कका जवाब बड़ी सूझ-बूझ व विद्वत्तापूर्वक दिया।

राजस्थानकी साहित्य एवं कला समृद्धिको प्रकाशमें लानेका जो आपने भागीरथ प्रयत्न किया है वह विरल एवं अन्यतम है। राजस्थानी साहित्य अकादमी, उदयपुर द्वारा तत्कालीन मुख्यमंत्री श्री मोहनलाल सुखाड़ियाने अपने करकमलोंसे राजस्थानके उच्चतम विद्वानके रूपमें आपका स्वागत कर एक अभिनन्दन-प्रशस्ति प्रमाण-पत्र भेंट किया। बीकानेर महाराज डॉ० कर्णीसिंहजीने सार्वजनिक कल्याणके लिए अपने प्रिवीपर्सके पाँच लाख रुपयोंका जो ट्रस्ट बनाया है उसमें आपको भी एक ट्रस्टी नियुक्त किया है। यह आपकी अपार विद्वत्ता और लोकप्रियताका परिचायक है।

श्रीअगरचन्दजी नाहटाकी षष्टि पूर्तिके शुभ अवसरपर बीकानेरके नागरिकों और साहित्यिक संस्थाओंकी तरफसे ता० १४-३-७१को, प्रो० स्वामी नरोत्तमदासजीकी अध्यक्षतामें बीकानेरके महाराज कुमार श्री नरेन्द्रसिंहजीके करकमलों द्वारा नागरिक अभिनन्दन किया गया।

नाहटाजीकी साहित्यिक और धार्मिक सेवाओंके लिए १० अप्रैल १९७६को बीकानेरमें अभिनन्दन किया जा रहा है। इसके लिए एक समिति बनायी गयी है। एक वृहद् अभिनन्दन ग्रन्थ जो जैन साहित्य, राजस्थानी भाषा साहित्य और पुरातन सम्बन्धी लेखोंका वृहद् कोष है, आगामी १०-१२ अप्रैलको प्रकाशित हो रहा है। इस ग्रन्थका सम्पादन देशके विख्यात विद्वानों—डॉ० दशरथ शर्मा, डॉ० एन. एन. उपाध्ये, डॉ० भोगीलाल साँडेसरा, प्रो० नरोत्तमदास, श्री रतनचन्द्र अग्रवाल, डॉ० बी. एन. शर्मा एवं प्रबन्ध सम्पादक श्री रामवल्लभ सोमाणी जयपुर हैं। नाहटाजीके साथ-साथ उनके भ्रातज श्री भँवरलालजी नाहटाका भी राजस्थानी साहित्यको बहुत महत्त्वपूर्ण योगदान है। दोनों चाचा-भतीजोंका सम्मान अभिनन्दन-ग्रन्थ द्वारा किया जा रहा है।

ऐसे सरस्वती-पुत्र और राजस्थानके अनमोल रत्न श्री नाहटाजीका उनके ६५ वर्षकी पूर्तिपर हार्दिक अभिनन्दन करते हैं और प्रभुसे प्रार्थना करते हैं कि वे चिरायु होकर माँ भारती और देशकी निरन्तर सेवा करते रहें।

•

सिद्धान्ताचार्य, इतिहासरत्न, विद्यावारिधि

श्री अगरचन्द नाहटा

श्रीमती गुणसुन्दरी बाँठिया, एम० ए०, कानपुर

"आतो स्वर्ग ने शरमावें, इणपर देव रमणने आवे।

इण रो यश नर-नारी गावें, धरती धोराँरी, मीराँरी, भगराँरी।"

ऐसी यशस्विनी भूमि है राजस्थानकी। प्रकृतिने इस वीर-भूमि का अद्‌भुत रंगोंसे शृङ्गार किया है। एक तरफ हरे-भरे मैदान और आकाशको छूती-सी पर्वत शृंखलाएँ हैं तो दूसरी तरफ पठार और विशाल मरु-प्रदेश इसकी शोभामें चार चाँद लगा देते हैं। यह भूमि प्राकृतिक सौन्दर्यकी स्वामिनी होनेके साथ-साथ महान कवियों, विद्वानों, सन्तों और कलाकारोंकी भी जननी रही है। इसी मरुभूमि की अनमोल प्रतिभा हैं श्री अगरचन्द नाहटा।

नाहटाजीमें लक्ष्मी और सरस्वतीका अनूठा संगम है। दोनों माताओंके समान रूपसे दुलारे हैं। नाहटाजी अतुल धनराशिके होते हुए भी आप साधू-सा जीवन जीते हैं। आपका जन्म वि० स० १९६७के चैत वदी ४को बीकानेरमें हुआ। १७-वर्षकी अल्पायुमें ही आपमें साहित्य और कलाके प्रति अद्‌भुत रुचिका विकास हुआ। विगत ४५ वर्षोंमें आपके ४५ ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं। तीन सौ पत्र-पत्रिकाओंमें इनके पाँच हजारसे भी अधिक महत्त्वपूर्ण लेख प्रकाशित हो चुके हैं।

लेखक और सम्पादकके साथ-साथ आप वहुत बड़े संग्राहक भी हैं। आपके अभय जैन ग्रन्थालयमें पचास हजार हस्तलिखित और इतनी ही मुद्रित, अर्थात एक लाख ग्रन्थोंका महत्त्वपूर्ण संग्रह है। अपने पिता-श्रीकी स्मृतिमें स्थापित सेठ शंकरदान नाहटा कला-भवनमें तीन हजार प्राचीन चित्र, सैकड़ों सिक्के, प्राचीन प्रतिमाएँ और नानाविध कलाकृतियोंका विशिष्ट संग्रह हैं।

आपकी साहित्य और कलाकी सेवाओंसे प्रभावित होकर जैन साहित्य भवन, आराने आपको विहारके राज्यपालकी अध्यक्षतामें "सिद्धान्ताचार्य"की पदवीसे सम्मानित किया। इन्टरनेशनल एकाडमी ऑफ जैन कल्चरने आपको "विद्या-वारिधि" से विभूपित किया। श्री जिनदत्तसूरि-सेवा-संघ ने "इतिहास-रत्न" की पदवीसे विभूषित कर आपका गौरव वढ़ाया। वम्बईकी श्रीमान सूरिसारस्वत समारोहकी विद्वत् परिषदने आपको "पद्म-भूषण" की उपाधि प्रदान की।

१८ वर्षकी अल्पायुमें आपने 'विधवा-कर्त्तव्य' नामक ग्रन्थ लिखा। इसके पश्चात् तो आपके निबन्ध और ग्रंथ लेखनकी प्रवृत्ति सदा चालू रही। आपके द्वारा लिखित ग्रंथोंमेंसे 'प्राचीन काव्य रूपोंकी परंपरा', 'युगप्रधान जिनचन्दसूरि', 'बीकानेर जैन लेख संग्रह', 'हस्तलिखित ग्रन्थोंकी खोज', 'प्राचीन ऐतिहासिक काव्य' और, राजस्थानी साहित्यकी गौरवपूर्ण परंपरा, विशेष उल्लेखनीय हैं।

अनेक विद्वानों द्वारा लिखित ग्रंथोंकी आपने प्रस्तावना लिखी। हजारों अज्ञात रचनाओंका परिचय साहित्य-जगतको कराया। सैकड़ों शोधछात्रोंको मार्गदर्शन और साहित्य-सामग्री दे रहे हैं। हस्तलिखित प्रतियोंकी खोज और नवीन जानकारी प्रकाशमें लाते रहना तो आपका व्यसन-सा हो गया है। श्री अभय जैन ग्रन्थालयमें हजारों अज्ञात एवं अनन्य अप्राप्य रचनाओंका आपने संग्रह किया है। अतः शोध विद्यार्थी और विद्वानोंके लिए वह एक साहित्य तीर्थ-सा वन गया है।

नाहटाजीकी धर्ममें गहरी श्रद्धा है । आध्यात्म और दर्शन आपका सदासे प्रिय विषय रहा है । निष्काम कर्ममें आपकी गहरी निष्ठा है । स्वाध्याय और साहित्य-साधनामें लीन रहते हैं । आपका जीवन अप्रमादी और कर्मठ रहा है ।

नाहटाजी राजस्थानी भाषाके प्रबल समर्थक और मर्मज्ञ विद्वान हैं । साहित्य अकादमी दिल्लीने राजस्थानी भाषाकी मान्यताके लिए जो समिति बुलायी थी उसमें राजस्थानी भाषाका पक्ष समर्थनके लिए आपको ही निमन्त्रित किया गया था । आपके विशिष्ट व्यक्तित्व और तर्कसंगत उद्धरणोंसे प्रभावित हो समितिने सर्वसम्मतिसे राजस्थानी भाषाको साहित्यिक मान्यता देना स्वीकार कर लिया ।

आबूको गुजरात प्रदेशसे पुनः राजस्थानमें लानेका बहुत बड़ा श्रेय नाहटाजीको है । इसके समर्थनमें आपने बहुत महत्त्वपूर्ण लेख लोकवाणी आदिमें प्रकाशित कराये । गुजरातके समर्थक श्री अमृत पाण्याके एक-एक तर्कका जवाब बड़ी सूझ-बूझ व विद्वत्तापूर्वक दिया ।

राजस्थानकी साहित्य एवं कला समृद्धिको प्रकाशमें लानेका जो आपने भागीरथ प्रयत्न किया है वह विरल एवं अन्यतम है । राजस्थानी साहित्य अकादमी, उदयपुर द्वारा तत्कालीन मुख्यमंत्री श्री मोहनलाल सुखाड़ियाने अपने करकमलोंसे राजस्थानके उच्चतम विद्वानके रूपमें आपका स्वागत कर एक अभिनन्दन-प्रशस्ति प्रमाण-पत्र भेंट किया । बीकानेर महाराज डॉ० कर्णीसिंहजीने सार्वजनिक कल्याणके लिए अपने प्रिवीपर्सके पाँच लाख रुपयोंका जो ट्रस्ट बनाया है उसमें आपको भी एक ट्रस्टी नियुक्त किया है । यह आपकी अपार विद्वत्ता और लोकप्रियताका परिचायक है ।

श्रीअगरचन्दजी नाहटाकी षष्टि पूर्तिके शुभ अवसरपर बीकानेरके नागरिकों और साहित्यिक संस्थाओंकी तरफसे ता० १४–३–७१को, प्रो० स्वामी नरोत्तमदासजीकी अध्यक्षतामें बीकानेरके महाराज कुमार श्री नरेन्द्रसिंहजीके करकमलों द्वारा नागरिक अभिनन्दन किया गया ।

नाहटाजीकी साहित्यिक और धार्मिक सेवाओंके लिए १० अप्रैल १९७६को बीकानेरमें अभिनन्दन किया जा रहा है । इसके लिए एक समिति बनायी गयी है । एक वृहद् अभिनन्दन ग्रन्थ जो जैन साहित्य, राजस्थानी भाषा साहित्य और पुरातन सम्बन्धी लेखोंका वृहद् कोष है, आगामी १०–१२ अप्रैलको प्रकाशित हो रहा है । इस ग्रन्थका सम्पादन देशके विख्यात विद्वानों—डॉ० दशरथ शर्मा, डॉ० एन. एन. उपाध्ये, डॉ० भोगीलाल सांडेसरा, प्रो० नरोत्तमदास, श्री रतनचन्द्र अग्रवाल, डॉ० बी. एन. शर्मा एवं प्रवन्ध सम्पादक श्री रामवल्लभ सोमाणी जयपुर हैं । नाहटाजीके साथ-साथ उनके भ्रातज श्री भँवरलालजी नाहटाका भी राजस्थानी साहित्यको बहुत महत्त्वपूर्ण योगदान है । दोनों चाचा-भतीजोंका सम्मान अभिनन्दन-ग्रन्थ द्वारा किया जा रहा है ।

ऐसे सरस्वती-पुत्र और राजस्थानके अनमोल रत्न श्री नाहटाजीका उनके ६५ वर्षकी पूर्त्तिपर हार्दिक अभिनन्दन करते हैं और प्रभुसे प्रार्थना करते हैं कि वे चिरायु होकर माँ भारती और देशकी निरन्तर सेवा करते रहें ।

•

श्री अगरचन्द नाहटा अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशनार्थ

आर्थिक सहयोग देनेवालोंकी शुभ नामावलि

संरक्षक

२५०१) श्री कानमलजी सेठिया, कलकत्ता।
[Continental Transport Agency]

अभिभावक

१००१) श्रीमती मगन बाई बाँठिया, बीकानेर धर्मपत्नी स्व० सेठ फूलचंदजी बाँठिया।
१००१) श्रीमान् उदयराजजी गोलिया एण्ड संस, बम्बई।

सम्मानीय सदस्य

५०१) सेठ अगरचंद मानमल चौरडिया ट्रस्ट, मद्रास।
५०१) सेठ लालचंदजी ढढ्ढा ट्रस्ट, मद्रास।
५०१) सेठ पूनमचन्द आर० शाह, मद्रास।
५०१) श्री निर्मलकुमारजी जैन, सिलचर।
५०१) श्री जेठमल जी केशरीचन्द जी सेठिया ट्रस्ट, मद्रास।
५०१) श्री नेमचन्दजी नथमलजी रिखवदासजी भंसाली, बीकानेर।
५०१) श्री हमीरमलजी चंपालालजी बाँठिया, भीनासर।
५०१) श्री सुगनचन्दजी घोडावत, धर्मनगर।
५०१) श्री राजरूपजी दुलीचन्दजी टांक, जयपुर।
५०१) श्री रावतमलजी भैंरुदानजी सुराणा, कलकत्ता।
५०१) श्री मे० नाहटा ब्रादर्स, सिलचर।

सदस्य

२५१) श्री शिवचन्दजी जतनमलजी डागा, मद्रास।
२५१) श्री रतनचन्दजी चोरड़िया ट्रस्ट, मद्रास।
२५१) श्री मेहता कवीरचन्दजी वैद, कलकत्ता।
२५१) श्री झँवरीमलजी पगारिया, वम्बई।
२५१) श्री उमरावमलजी सुराणा, मद्रास।
२५१) श्री मगनमलजी भँवरलालजी मन्नूलालजी पारख, वीकानेर।
२५१) श्री सहसमलजी लोढा, पंडियरिया।
२५१) श्री महेशकुमारजी जैन, दुर्ग।

२५१) श्री सुन्दरलालजी नाहटा चेरिटेबल ट्रस्ट मद्रास ।
२५१) श्री दीपचन्दजी नाहटा, कलकत्ता ।
२५१) श्री जालमचन्दजी, रिखबराजजी, मनमोहनचन्दजी बाफणा, आगरा ।
२५१) श्री नरेशचन्दजी पारसमलजी, कानपुर ।
२५१) श्री शा० मोतीचन्द पारसमल, कानपुर ।

सहयोगी

२०१) श्री देवीचन्दजी पारख, दाढ़ी ।
१५१) श्री कालूरामजी बाफना, बालाघाट ।
१२५) श्री बादरमलजी चोरडिया, मद्रास ।
१२५) श्री भँवरलालजी बोथरा, धर्मनगर ।
१०१) श्री चन्दनमलजी सुराना, रायपुर ।
१०१) श्री श्रीचन्दजी लूनावत, रायपुर ।
१०१) श्री उदयकरणजी रीद्धकरणजी, दुर्ग ।
१०१) श्री मिसरीलालजी लोढा, दुर्ग ।
१०१) श्री कुंदनमलजी हमीरमलजी लोढा, दुर्ग ।
१०१) श्री पृथ्वीराजजी प्रकाशचन्दजी डाकलिया, पंडरिया ।
१११) श्री धनराजजी चौपडा, गोंदिया ।
१००१) प्रख्यात् वक्ता मुनि पूज्य कान्तीसागरजी महाराज के सदुपदेश से संग्रहित मा० सेठ मंगलचन्द चम्पालाल, ब्यावर ।

श्री अगरचन्द नाहटा अभिनन्दन समारोह समिति के पदाधिकारी

संरक्षक :

श्री हरिदेव जोशी, मुख्य मन्त्री, राजस्थान
श्री राजबहादुर, केन्द्रीय मंत्री
श्री रामनिवास मिर्धा, केन्द्रीय राज्यमंत्री
श्री चन्दनमल बैद, वित्तमंत्री, राजस्थान
श्री डा० करणीसिंह संसद-सदस्य, बीकानेर
श्री सेठ कस्तूरभाई लालभाई, अहमदाबाद
श्री शाहू शांतिप्रसाद जैन, दिल्ली
श्री डा० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या, कलकत्ता
श्री शादीलाल जैन, बम्बई
श्री सेठ अचलसिंह, संसद-सदस्य, दिल्ली
श्री पद्मश्री मोहनमल चोरड़िया, मद्रास
श्री विजयसिंह नाहर, कलकत्ता
श्री गुमानमल चोरड़िया, जयपुर
श्री अक्षयकुमार जैन, दिल्ली
श्री प्रभुदयाल डाबलीवाल, कलकत्ता
श्री सीताराम शेखसरिया, कलकत्ता
श्री भागीरथ कानोड़िया, कलकत्ता

अध्यक्ष :

पद्मविभूषण डा० श्री दौलतसिंह कोठारी, दिल्ली

उपाध्यक्ष :

विद्यावाचस्पति पं० विद्याधर शास्त्री, बीकानेर
श्री प्रो० नरोत्तमदास स्वामी, बीकानेर
श्री डा० छगन मोहता, बीकानेर

मन्त्री :

श्री भंवरलाल कोठारी, बीकानेर

सहमन्त्री :

श्री मूलचन्द पारीक, बीकानेर
श्री जसकरण सुखाणी, बीकानेर
श्री प्रकाश सेठिया, बीकानेर

कोषाध्यक्ष :

श्री लालचन्द कोठारी, बीकानेर

अभिनन्दन ग्रन्थ :

प्रधान संपादक—डा० श्री दशरथ शर्मा, दिल्ली
प्रबंध संपादक—श्री रामवल्लभ सोमानी, जयपुर
व्यवस्थापक—श्री हजारीमल बांठिया, कानपुर

●

श्री अगरचन्द नाहटा अभिनंदन ग्रन्थ

(द्वितीय भाग)

•

प्रधान सम्पादक

डॉ० दशरथ शर्मा

सम्पादक-मण्डल

डॉ० भोगीलाल सांडेसरा — श्री रत्नचंद्र अग्रवाल

डॉ० ए० एन० उपाध्ये — डॉ० बी० एन० शर्मा

श्री नरोत्तमदास स्वामी — डॉ० कृष्णदत्त वाजपेयी

डॉ० मनोहर शर्मा

प्रबंध-सम्पादक

श्री रामवल्लभ सोमानी

•

प्रकाशक

श्री हजारीमल बाँठिया

संयोजक

श्री अगरचंद नाहटा अभिनन्दन-ग्रन्थ प्रकाशन समिति

बीकानेर (राजस्थान)

श्री अगरचन्द नाहटा अभिनन्दन समारोह समिति के पदाधिकारी

संरक्षक :

श्री हरिदेव जोशी, मुख्य मन्त्री, राजस्थान
श्री राजबहादुर, केन्द्रीय मंत्री
श्री रामनिवास मिर्धा, केन्द्रीय राज्यमंत्री
श्री चन्दनमल बैद, वित्तमंत्री, राजस्थान
श्री डा० करणीसिंह संसद-सदस्य, बीकानेर
श्री सेठ कस्तूरभाई लालभाई, अहमदाबाद
श्री शाहू शांतिप्रसाद जैन, दिल्ली
श्री डा० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या, कलकत्ता
श्री शादीलाल जैन, बम्बई
श्री सेठ अचलसिंह, संसद-सदस्य, दिल्ली
श्री पद्मश्री मोहनमल चोरड़िया, मद्रास
श्री विजयसिंह नाहर, कलकत्ता
श्री गुमानमल चोरड़िया, जयपुर
श्री अक्षयकुमार जैन, दिल्ली
श्री प्रभुदयाल डावलीवाल, कलकत्ता
श्री सीताराम शेखसरिया, कलकत्ता
श्री भागीरथ कानोड़िया, कलकत्ता

अध्यक्ष :

पद्मविभूषण डा० श्री दौलतसिंह कोठारी, दिल्ली

उपाध्यक्ष :

विद्यावाचस्पति पं० विद्याधर शास्त्री, बीकानेर
श्री प्रो० नरोत्तमदास स्वामी, बीकानेर
श्री डा० छगन मोहता, बीकानेर

मन्त्री :

श्री भंवरलाल कोठारी, बीकानेर

सहमन्त्री :

श्री मूलचन्द पारीक, बीकानेर
श्री जसकरण सुखाणी, बीकानेर
श्री प्रकाश सेठिया, बीकानेर

कोषाध्यक्ष :

श्री लालचन्द कोठारी, बीकानेर

अभिनन्दन ग्रन्थ :

प्रधान संपादक—डा० श्री दशरथ शर्मा, दिल्ली
प्रवंध संपादक—श्री रामवल्लभ सोमानी, जयपुर
व्यवस्थापक—श्री हजारीमल बांठिया, कानपुर

श्री अगरचन्द नाहटा अभिनदन ग्रन्थ

(द्वितीय भाग)

•

प्रधान सम्पादक

डॉ० दशरथ शर्मा

सम्पादक-मण्डल

डॉ० भोगीलाल सांडेसरा
श्री रत्नचंद्र अग्रवाल
डॉ० ए० एन० उपाध्ये
डॉ० बी० एन० शर्मा
श्री नरोत्तमदास स्वामी
डॉ० कृष्णदत्त वाजपेयी
डॉ० मनोहर शर्मा

प्रबंध-सम्पादक

श्री रामवल्लभ सोमानी

•

प्रकाशक

श्री हजारीमल बाँठिया

संयोजक

श्री अगरचंद नाहटा अभिनन्दन-ग्रन्थ प्रकाशन समिति

बीकानेर (राजस्थान)

प्रकाशक

श्री हजारीमल बाँठिया

संयोजक, श्री अगरचंद नाहटा अभिनन्दन-ग्रन्थ प्रकाशन समिति

बीकानेर (राजस्थान)

प्राप्तिस्थान : १. श्री अभय जैन ग्रन्थालय
नाहटोंकी गवाड़, बीकानेर (राजस्थान)

२. नाहटा-बन्धु
५२।१६ शक्करपट्टी, कानपुर–१
फोन : ६६१३४

३. नाहटा ब्रदर्स
४. जगमोहन मल्लिक लेन
कलकत्ता–७
फोन : ३३४७५५

प्रथम संस्करण
सन् १९७७ ई०

मूल्य : प्रथम खंड १०१) द्वितीय खंड १००)
दोनों खंड १५१)

मुद्रक :

बाबूलाल जैन फागुल्ल

महावीर प्रेस, भेलूपुर, वाराणसी–१

फोन : ६५८४८



सिद्धान्ताचार्य श्री अगरचन्दजी नाहटा

प्रकाशक

श्री हजारीमल बाँठिया

संयोजक, श्री अगरचंद नाहटा अभिनन्दन-ग्रन्थ प्रकाशन समिति

बीकानेर (राजस्थान)

प्राप्तिस्थान : १. श्री अभय जैन ग्रन्थालय
नाहटोंकी गवाड़, बीकानेर (राजस्थान)

२. नाहटा-बन्धु
५२।१६ शक्करपट्टी, कानपुर–१
फोन : ६६१३४

३. नाहटा ब्रदर्स
४. जगमोहन मल्लिक लेन
कलकत्ता–७
फोन : ३३४७५५

प्रथम संस्करण
सन् १९७७ ई०

मूल्य : प्रथम खंड १०१) द्वितीय खंड १००)
दोनों खंड १५१)

मुद्रक :

बाबूलाल जैन फागुल्ल
महावीर प्रेस, भेलूपुर, वाराणसी–१
फोन : ६५८४८



सिद्धान्ताचार्य श्री अगरचन्दजी नाहटा

संपादकीय निवेदन

सिद्धान्ताचार्य, संघ रत्न, जैन इतिहास रत्न, राजस्थानी साहित्य वाचस्पति, विद्यावारिधि, साहित्य वाचस्पति (हि० सा०) श्री अगरचंद नाहटा देश के प्रतिभासंपन्न विद्वान् हैं। उनका व्यक्तित्व बहुमुखी है। वे कला के महान् प्रेमी व मर्मज्ञ,पुरातत्त्व और इतिहास के गंभीर अनुसंधानकर्ता, प्राचीन साहित्य और प्राचीन ग्रन्थों के अध्यवसायी अन्वेषक, संग्राहक एवं उद्धारक, मातृभाषा राजस्थानी और राष्ट्रभाषा हिन्दी के श्रेष्ठ सेवक और अग्रणी साहित्यकार; मननशील विचारक, विशिष्ट साधक, सफल व्यापारी और कर्मठ कार्यकर्त्ता हैं। उनका जीवन 'सादा जीवन और उच्च विचार' इस उक्ति का श्रेष्ठ निदर्शन है। वे भारत के गौरव हैं। ऐसे विशिष्ट महापुरुष को यह अभिनंदन ग्रन्थ समर्पित करते हुए हमें गर्व का अनुभव हो रहा है।

श्री नाहटाजी का जन्म आज से ६७ वर्ष पूर्व वि० सं० १९६७ सन् (१९११ ई०) की चैत्र वदि ४ को राजस्थान के बीकानेर नगर में सम्पन्न जैन परिवार में हुआ था। पारिवारिक परिपाटी के अनुसार आपकी स्कूली शिक्षा अधिक नहीं हुई। पाँचवीं कक्षा की शिक्षा पूर्ण होने के पश्चात् सं० १९८१ में जब आपकी अवस्था १४ वर्ष की थी, पैत्रिक व्यवसाय-व्यापार में दीक्षित होने के लिए आपको बेलपुर कलकत्ते भेज दिया गया। स्कूली शिक्षा अधिक न होने पर भी अपनी अद्भुत लगन और अपने अध्यवसायपूर्वक निरन्तर अध्ययन के फलस्वरूप आपने अपने ज्ञान की परिधि को बहुत विस्तृत कर लिया।

सं० १९८४ में, १७ वर्ष की अवस्था में, आप श्री आचार्यप्रवर श्री कृपाचंद्रसूरि के संपर्क में आये। यह आपके जीवन का एक महत्त्वपूर्ण मोड़ साबित हुआ। उसने आपके सामने आत्म शोध और साहित्य शोध का नया क्षेत्र खोल दिया; आपके जीवन की दिशा को व्यापार से बदलकर शोध-खोज की ओर मोड़ दिया। व्यापार से आपने मुँह नहीं मोड़ा पर अध्ययन और अनुसंधान ही अब जीवन का मुख्य ध्येय बन गया। इस क्षेत्र में भी आप सफलता की चोटी पर पहुँचने में समर्थ हुए। चार सौ (४००) से ऊपर पत्र पत्रिकाओं में ४००० से ऊपर लेख लिखकर एक कीर्तिमान स्थापित किया। आपने सहस्रशः ग्रन्थों का तथा शतशः प्राचीन साहित्यकारों का अन्धकार से उद्धार किया।

नाहटाजी की कुछ उल्लेखनीय उपलब्धियों का उल्लेख इस प्रकार किया जा सकता है—

१. हस्तलिखित ग्रन्थों की खोज

पिछले पचास वर्षों में नाहटाजी ने सैकड़ों ज्ञात और अज्ञात हस्तलिखित ग्रंथ-भंडारों की छानबीन की और सहस्रशः प्राचीन, नये और महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों का पता लगाकर उनका उद्धार किया है। इनमें अज्ञात ग्रन्थ भी हैं और ज्ञात ग्रन्थों की विशेष महत्त्वपूर्ण प्रतियाँ भी, जिनमें पृथ्वीराजरासो, वीसलदे-रास, ढोलामारू रा दूहा, वेलि क्रिसन रुकमणी री जैसे पूर्व ज्ञात ग्रन्थों की अनेक महत्त्वपूर्ण नयी प्रतियों; सूरसागर, पदमावत, बिहारी सतसई जैसे ग्रन्थों की प्राचीनतम प्रतियों तथा चंदायन, हम्मीरायण क्याम-खाँ रासो एवं छिताईचरित जैसे अभी तक अज्ञात अथवा कम ज्ञात ग्रन्थों की विशेष रूप से उल्लेखनीय प्रतियों के नाम गिनाये जा सकते हैं।

नाहटाजी जब यात्रा में जाते हैं तो गंतव्य स्थानों पर जहाँ किसी हस्तलिखित ग्रन्थ-भंडार की सूचना उन्हें मिलती है वहाँ पहुँचकर उसको अवश्य देखते हैं और वहाँ विद्यमान महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों का विवरण संकलित करके उसको प्रकाशित करवाते हैं।

२. हस्तलिखित ग्रन्थभंडारों की सूचियों का निर्माण

नाहटाजी ग्रन्थभण्डारों की छान-बीन करके नये ग्रन्थों और नयी प्रतियों को प्रकाश में ही नहीं लाये किंतु रातदिन परिश्रम करके उनने अनेकों भंडारों के ग्रन्थों की विवरणात्मक सूचियाँ भी प्रस्तुत कीं।

३. अभयजैन ग्रन्थालय नाम से हस्तलिखित ग्रन्थों के विशाल भंडार की स्थापना

अपने स्वर्गीय बड़े भ्राता अभयराजजी नाहटा को स्मृति में अभय जैन ग्रंथालय और अभय जैन ग्रंथमाला की स्थापना की गई।

अपने साहित्यिक जीवन के आरंभ से ही नाहटाजी ने हस्तलिखित प्रतियों की खोज और संग्रह के काम का श्रीगणेश कर दिया था। धीरे-धीरे उनके ग्रंथालय में लगभग पैंसठ हजार हस्तप्रतियों का संग्रह हो गया। ये ग्रंथ संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, हिन्दी, राजस्थानी, गुजराती, पजाबी, काश्मीरी, कन्नड़, तमिल, अरबी, फारसी, बंगला, अंग्रेजी, उड़िया, आदि विविध भाषाओं के और विविध विषयों के हैं। अनेक ग्रन्थ ऐसे हैं जो अत्यंत महत्त्वपूर्ण होने के साथ-साथ दुर्लभ भी हैं। अनेक ग्रंथ तो अन्यत्र अलभ्य ही हैं। इनके अतिरिक्त मध्यकालीन और उत्तरकालीन पुरालेखों (विविध प्रकार के दस्तावेज, पत्र, व्यापारिक पत्र, पट्टे-परवाने, बहियाँ आदि कागजपत्रों) का बड़ा भारी संग्रह भी ग्रंथालय में एकत्रित है।

४. अभय जैन ग्रन्थालय के अंतर्गत मुद्रित पुस्तकों का संग्रह

इसमें शोधकार्य के लिए आवश्यक संदर्भ-ग्रंथों, और शोधोपयोगी प्राचीन इतिहास, पुरातत्त्व, कला, साहित्य आदि विविध विषयों की पुस्तकों का बृहत् संग्रह है। ग्रन्थों की संख्या ४५ हजार से ऊपर है।

उक्त दोनों ही लक्षाधिक ग्रंथों के संग्रहों से शोध-विद्वान् और शोध-छात्र भरपूर लाभ उठाते हैं।

५. पत्र-पत्रिकाओं की पुरानी फाइलों का संग्रह

अभय जैन-ग्रन्थालय में विविध विषयों की पत्र-पत्रिकाओं की, विशेषतः शोधपत्रिकाओं की, पुरानी फाइलें बड़े परिश्रम के साथ प्राप्त करके संगृहीत की गयी हैं। ये फाइलें शोध-विद्वानों के बड़े काम की हैं क्योंकि साधारणतया पत्रिकाओं के पुराने अंक सहज ही प्राप्त नहीं होते।

६. शंकरदान नाहटा कलाभवन की स्थापना

नाहटा जी अद्वितीय संग्राहक हैं, उन्होंने अपने पिताश्री की स्मृति में एक महत्त्वपूर्ण कलाभवन की स्थापना की। इसमें प्राचीन चित्र, मूर्तियाँ, सिक्के आदि, छोटी-बड़ी कलाकृतियों तथा अन्यान्य संग्रहणीय वस्तुओं का अच्छा संग्रह किया गया है। व्यक्तिगत संग्राहलयों में यह बहुत ही महत्त्वपूर्ण एवं उल्लेखनीय है।

७. विविध विषयों पर ४००० से ऊपर शोधपरक एवं अन्यान्य निबंधों[1] का लेखन और प्रकाशन—

इन निबंधों की क्षेत्र-सीमा बहुत विस्तृत है। उनमें विभिन्न भाषाओं के विभिन्न ग्रंथकारों और उनके ग्रंथों, तथा पुरातत्त्व, कला, इतिहास, साहित्य, लोक साहित्य, लोक-संस्कृति आदि विविध विषयों के विभिन्न पक्षों पर नयी-से-नयी जानकारी दी गयी है। इस निबंधों को मुख्यतया चार विभागों में बांटा जा सकता है—

१. पुरातत्त्व, कला, इतिहास।

---

१. इन निबन्धों की सूची शीघ्र ही प्रकाशित की जायेगी।

२. साहित्य—संस्कृत साहित्य, प्राकृत साहित्य, अपभ्रंश साहित्य, प्राचीन राजस्थानी, गुजराती एवं हिंदी साहित्य, ग्रंथकार और उनके ग्रंथ ।

इन निबन्धों की सूची शीघ्र ही प्रकाशित की जायेगी ।

३. लोक जीवन, लोक संस्कृति, लोक-साहित्य ।

४. धर्म, दर्शन अध्यात्म, आचार-विचार, लोक व्यवहार ।

ये निबंध देश के विभिन्न स्थानों से प्रकाशित होने वाली ४०० से ऊपर पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए हैं । इतने अधिक एवं विविध विषयक शोध-निबंध विश्व में शायद ही किसी दूसरे विद्वान् ने लिखे हों ।

८. बीकानेर राज्यभर के जैन अभिलेखों (शिलालेखों, मूर्तिलेखों, धातुलेखों) का विशाल संग्रह और प्रकाशन ।

९. अनेक महत्त्वपूर्ण ग्रंथों का विस्तृत प्रस्तावनाओं के साथ संपादन ।

१०. शोधार्थियों का तीर्थस्थान

नाहटाजी का स्थान शोधविद्वानों और शोधछात्रों के लिए मानो कल्पवृक्ष ही है । यही कारण है कि उनके यहाँ शोधार्थी लोग बराबर आते रहते हैं । शोधार्थियों को जो सहायक सामग्री, ग्रंथ आदि चाहिए वह अधिकतर उनके पुस्तकालय में उपलब्ध हो जाती है । यदि नहीं होती है तो ज्ञान के विश्वकोश-रूप नाहटाजी से सहज ही पता लग जाता है कि कहाँ-कहाँ उपलब्ध हो सकती है । वे स्वयं भी अनेक बार अन्यान्य स्थानों से शोधार्थी के लिए व्यवस्था कर देते हैं । कोई मुद्रित पुस्तक प्राप्त नहीं होती है तो पुस्तक को अपने पुस्तकालय में मंगवाकर उसे सुलभ कर देते हैं । अनेक बार नाहटाजी अपनी निजी प्रतियाँ भी उपयोग के लिए शोधार्थियों को भेज देते हैं । शोधार्थी विद्वानों और छात्रों को उनके यहाँ शोध-सामग्री ही नहीं प्राप्त होती किंतु निवास और भोजन की व्यवस्था भी वे प्रायः स्वयं ही अपने यहाँ कर देते हैं ।

शोध-छात्रों के साथ नाहटाजी का व्यवहार अतीव उदारता पूर्ण और सहानुभूति-पूर्ण होता है । वे उनकी सब प्रकार की सहायता करने को सदा तत्पर रहते हैं । नाहटाजी से उन्हें शोध-सामग्री और आवश्यक पुस्तकें ही प्राप्त नहीं होतीं किन्तु विषय-निर्वाचन से लेकर अंत तक निर्देशन भी मिलता है । छात्रों के घर चले जाने के बाद भी अनेक बार पत्र द्वारा उनकी प्रगति का हाल पूछते हैं और यदि नयी जानकारी ज्ञात होती है तो उसकी सूचना भी तुरंत देते हैं । शोधविद्वान् और शोधछात्र नाहटाजी के पुस्तकालय को इच्छाफल-दाता तीर्थस्थान मानते हैं । ऋषि तुल्य डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल और श्री हजारीप्रसादजी द्विवेदी ने उन्हें औढरदानी बतलाया है ।

११. अद्भुत स्मृति कोष

अद्भुत स्मरण शक्ति के धनी श्री नाहटाजी जिस ग्रंथ का भी एक बार अवलोकन कर लेते हैं उसके वाक्यांशों तक का संदर्भ उनके मानस पटल पर स्थायी रूप से अंकित हो जाता है । फलस्वरूप श्री नाहटाजी ने जहाँ अलभ्य ग्रंथों का संग्रहालय स्थापित किया है वहाँ वे स्वयं भी एक चलते फिरते ज्ञान भंडार, ज्ञान कोष बने हुए हैं । यह प्रकृति की आपको अनुपम देन है ।

१२. महान् आत्मसाधक

साहित्य शोध के साथ-साथ श्री नाहटाजी आत्मानुभूति के क्षेत्र में भी संतवत् ऋषितुल्य महान् साधक हैं । प्रतिदिन प्रातः २-३ बजे से आपका स्वाध्याय, ध्यान, मनन, चिन्तन का साधना परक क्रम प्रारंभ होता है जो दिनचर्या की अन्य गतिविधियों के साथ निर्बाध रूप से रात्रि शयन तक चालू रहता है । अनुभूति की यह स्थिति विरल साधकों को ही प्राप्त होती है ।

१३. जन-जन के प्रेरणा स्रोत

श्री नाहटाजी ने स्वयं तो अपनी कर्मठता और अध्यवसाय से अतुलनीय उपलब्धि की ही है पर साथ ही संपर्क में आने वाले सभी व्यक्तियों को नानाविध प्रेरणा देकर चिंतन, अध्ययन, लेखन, शोध आदि किसी न किसी विशिष्टकार्य की ओर प्रवृत्त किया है।

१४. सरस्वती एवं लक्ष्मी दोनों के लाडले सपूत

प्रायः यही देखा-पाया जाता है कि सरस्वती के आराधकों पर लक्ष्मी की कृपा कम ही रहती है एवं लक्ष्मी के उपासकों पर सरस्वती का वरद हस्त कम ही रहता हैं पर नाहटाजी इसके विरल अपवादी है, आप दोनों देवियों के समान रूप से लाड़ले सपूत हैं। साहित्य तपस्वी के साथ-साथ कुशल व्यापरी भी हैं।
१५ इधर साहित्य सेवियों में आध्यात्मिक साधक विरल ही होते हैं पर नाहटाजी दोनों क्षेत्रों में समान रुचि, गति एवं अधिकार रखते हैं। धर्म और दर्शन भी उनके जीवन-प्राण हैं। प्रातः २-३ बजे से सामायिक स्वाध्याय, भजन-पूजन, व्रत-नियम की आराधना-साधना का प्रवाह चालू होता है। साथ ही साहित्य सेवा भी चलती रहती है। नाहटा जी लेखक के साथ-साथ गंभीर चिन्तक एवं मनीषी हैं। निरन्तर स्वाध्यायशील, अन्वेषक एवं साधक हैं।

ऐसा विरल एवं विलक्षण व्यक्तित्व, वहुमुखी प्रतिभा, अनेकानेक विशेषताओं का सुभग संयोग बहुत ही कम पाया जाता है।

ऐसे साहित्य तपस्वी, आत्मानंदी साधक का अभिनंदन एक गुणपुंज विभूति का अभिनंदन है।

माँ भारती के ऐसे कर्मठ का और देश के ऐसे प्रतिभा-संपन्न विद्वान् का समुचित अवसर पर समुचित अभिनंदन करने का विचार नाहटाजी के सुहृदों, सहयोगियों और प्रेमियों के मन में बहुत समय से उठ रहा था। उनके एकमात्र भान्जे (भगिनी पुत्र) श्री हजारीमल बांठिया ने इस विचार को मूर्त रूप देने का बीड़ा उठाया। उनके प्रयत्न के फलस्वरूप एक तदर्थ समिति वनायी गयी। इस समिति ने अभिनंदन-समारोह की रूपरेखा वनायी। नाहटाजी की षष्ट्यब्द-पूर्ति की तिथि निकट आ रही थी अतः निश्चय किया गया कि अभिनंदन-समारोह षष्ट्यब्दपूर्ति की तिथि पर ही मनाया जाय और तभी उन्हें एक अभिनंदन-ग्रंथ भी भेंट किया जाय। समिति के सामने बहुत वड़ी समस्या अर्थ की थी परंतु कर्मठ श्री बांठियाजी ने आवश्यक अर्थ-संग्रह का भार अपने पर लेकर समिति को इस ओर से भी निश्चिन्त कर दिया।

तदनंतर तदर्थ-समिति के स्थान पर भारत के प्रसिद्ध शिक्षाशास्त्री और विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के तत्कालीन सभापति डॉ० श्री दौलतसिंहजी कोठारी की अध्यक्षता में औपचारिक अगरचंद नाहटा अभिनंदनोत्सव-समिति का गठन किया गया जिसके पदाधिकारी इस प्रकार थे—

अध्यक्ष	डॉ० दौलतसिंह कोठारी
उपाध्यक्ष	विद्यावाचस्पति पं० विद्याधर शास्त्री
मंत्री	श्री भंवरलाल कोठारी
	आचार्य नरोत्तमदास स्वामी
	डॉ० छगन मोहता
सहमंत्री	श्री मूलचंद पारीक
	श्री प्रकाशचंद सेठिया
	श्री जसकरण सुखाणी

कोषाध्यक्ष श्री लालचंद कोठारी

संयोजक श्री हजारीमल बांठिया

इनके अतिरिक्त अनेक विद्वानों, साहित्यकारों, सामाजिक कार्यकर्ताओं, संसद-सदस्यों, नेताओं, पत्र-संपादकों तथा जाने-माने धनी-मानी महानुभावों ने सहर्ष समिति के संरक्षक वनना स्वीकार किया।

इस अभिनंदनोत्सव समिति ने अभिनदन-ग्रंथ के लिए संपादक-मंडल का गठन किया जिसके सदस्य निम्नलिखित विद्वान् वनाये गये—

अध्यक्ष—डा० दशरथ शर्मा—भूतपूर्व अध्यक्ष, इतिहास-विभाग जोधपुर विश्वविद्यालय तथा निदेशक राजस्थान राज्य प्राच्यविद्या-प्रतिष्ठान (अव स्वर्गस्थ)

सदस्य—डा० आदिनाथ नेमिनाथ उपाध्ये, कोल्हापुर (,, ,,)

डा० भोगीलाल सांडेसरा, बड़ोदा

डा० रत्नचन्द्र अग्रवाल, जयपुर

डा० कृष्णदत्त वाजपेयी, सागर

डा० बी० एन० शर्मा, दिल्ली

स्थानीय संपादक—प्रो० नरोत्तमदास स्वामी, बीकानेर

डा० मनोहर शर्मा, बिसाऊ, बीकानेर

प्रवंध-संपादक—श्री रामवल्लभ सोमाणी, जयपुर

संयोजक—श्री हजारीमल बांठिया

अभिनन्दन-ग्रन्थ के तैयार होने और छपने में बहुत अधिक समय लग गया। आवश्यक आर्थिक व्यवस्था करने और छपाई में विशेष विलंब हुआ। नाहटाजी की षष्टचब्द पूर्ति की तिथि आयी। बीकानेर में अभिनन्दन का आयोजन तो हुआ पर ग्रन्थ समर्पित नहीं किया जा सका।

निश्चय किया गया कि अभिनन्दन ग्रन्थ को दो भागों में प्रकाशित किया जाय और अभिनन्दन का उत्सव भी दो वार करके मनाया जाय। तदनुसार अप्रेल १९७६ में, जब अभिनन्दन ग्रन्थ के प्रथम भाग का मुद्रण पूरा हो गया तो, अभिनन्दनोत्सव के प्रथम समारोह को नाहटाजी की जन्मभूमि और कर्मभूमि बीकानेर में मनाने का आयोजन किया गया। इस समारोह का विवरण इस द्वितीय भाग के परिशिष्ट में दे दिया गया है।

अभिनन्दन ग्रंथ के दो भाग हैं—प्रथम भाग व्यक्तिगत हैं, उसमें जीवनी, आशीर्वाद, शुभकामनाएँ, संदेश श्रद्धांजलियाँ और संस्मरण दिये गये हैं। दूसरे भाग में नाहटाजी के सम्मान में लिखित विद्वानों के शोध-निबंधों का संकलन है। इस भाग के तीन खंड हैं—पहले खंड में पुरातत्त्व, इतिहास तथा कला संबंधी निबंध हैं, दूसरा खंड भाषा और साहित्य विषयक निबंधों का है और तीसरे में विविध विषयक संकीर्ण लेख हैं। प्रत्येक खंड में अपने अपने विषयों के धुरंधर विशेषज्ञ विद्वानों की रचनाएँ संकलित हुई हैं।

अभिनन्दन-ग्रंथ के लिए संस्मरण और शोध-निबंध बड़ी संख्या में प्राप्त हुए। आर्थिक स्थिति इस योग्य न थी कि सभी रचनाओं को अभिनन्दन ग्रन्थ में स्थान दिया जा सकता। यदि सब निबंधों को स्थान दिया जाता तो पृष्ठ-संख्या चार-पाँच हजार तक जा पहुँचती। अतः केवल कतिपय चुने हुए शोध-निबंध ही ग्रन्थ में दिये जा सके हैं। ग्रन्थ के लिए पूर्व निर्धारित दर्शन, धर्म आदि विषयों पर भी बहुत महत्त्वपूर्ण निबंध प्राप्त हुए थे पर उन्हें भी इस ग्रंथ में सम्मिलित नहीं किया जा सका।

अभिनन्दन ग्रंथ के लिए रचनाएँ विशेष अनुरोध के साथ मंगवायी गयी थीं। हमें अत्यन्त खेद है कि हम, आर्थिक स्थिति के कारण उन सबका उपयोग नहीं कर सके। उनके विद्वान् लेखकों से क्षमा माँगने के अतिरिक्त अब हमारे लिए दूसरा चारा नहीं है।

अभिनन्दन-ग्रन्थ के प्रकाशन में भी अप्रत्याशित देर हो गयी। अनेक लेख हमारे पास कई वर्ष पूर्व आ चुके थे। उनके लेखकों का धैर्य निस्संदेह कड़ी कसौटी पर कसा गया है। अनेक लेखकों से उपालंभ भरे पत्र भी मिले और अब भी मिल रहे हैं। मैं सभी महानुभावों से हृदय से क्षमायाचना करता हूँ।

लेखों को संगृहीत करने में डा० बी० एन० शर्मा तथा डा० कंसारा आदि ने बड़ी सहायता दी। उनका सहयोग अगर नहीं होता तो इतने अच्छे लेख प्राप्त नहीं हो पाते।

संपादन-कार्य में प्रधान संपादक डा० दशरथ शर्मा तथा डा० रत्नचन्द्र अग्रवाल से बराबर मार्गदर्शन मिला। श्री नरोत्तमदास स्वामी और डा० मनोहर शर्मा से लेखों के चयन और संपादन में जो सक्रिय सहयोग मिला उसके लिए, मैं समझ नहीं पा रहा हूँ कि, किन शब्दों में आभार प्रकट करूँ। वे अपने ही हैं—इतने अधिक अपने हैं कि उनके प्रति आभार प्रकट करने की औपचारिकता बरतना उनके अपनेपन के महत्त्व को कम करना होगा।

श्री नाहटाजी जैसे महापुरुष का अभिनन्दन करके हम उनकी गरिमा की वृद्धि नहीं करेंगे; उनका सम्मान करके वास्तव में हम अपना ही सम्मान करेंगे, यह अभिनन्दन तो वस्तुतः हमारे हृद्गत भाव-सुमनों का सुरभित गुच्छक मात्र है।

यह विशेष रूप से स्मरणीय है कि श्रीनाहटाजी के अध्ययन और शोध-खोज-रत कर्मठ जीवन के पचास वर्ष इसी वर्ष संवत् २०३४ में पूर्ण हो रहे हैं। इस साहित्य साधना व आत्मसाधना की **स्वर्ण जयन्ती** के उपलक्ष्य में अभिनन्दन ग्रन्थ का यह द्वितीय भाग प्रकाशित एवं समर्पित किया जा रहा है।

रामवल्लभ सोमाणी
प्रबन्ध-सम्पादक

नाहटाजी के प्रेरणा-स्रोत जीवनसूत्र

१. करत-करत अभ्यास के, जड़मति होत सुजान।
रसरी आवत-जात ते, सिल पर परत निसान॥

२. काल करै सो आज कर, आज करै सो अब्ब।
पल में परलै होयगी, बहुरि करैगो कब्ब॥

३. एकै साधे सब सधै, सब साधे सब जाय॥

४. रे मन। अप्पहु खंच करि, चिंता-जालि म पाडि।
फल तित्तउ हिज पामिसइ, जित्तउ लिहिउ लिलाडि॥
(श्रीपाल चरित्र)

अनुक्रमणिका

द्वितीय खण्ड

खण्ड १ : इतिहास और पुरातत्त्व

१.	प्रतिहार काल में पूजित राजस्थान के कुछ अप्रधान देवी-देवता	डॉ० दशरथ शर्मा	३
२.	मध्यकालीन मारु-गुर्जर चित्रकला के प्राचीन प्रमाण	डॉ० उमाकांत प्रेमानन्द शाह	७
३.	पल्लू की प्रस्तर प्रतिमाएं	श्री देवन्द्र हाण्डा	११
४.	ओसियां	डॉ० ब्रजेन्द्रनाथ शर्मा	१८
५.	मध्यप्रदेश की प्राचीन जैन कला	प्रो० कृष्णदत्त वाजपेयी	२२
६.	प्राचीन व्रजमण्डल में जैनधर्म का विकास	श्री प्रभुदयाल मीतल	२५
७.	भारतीय नौसेना ऐतिहासिक सर्वेक्षण	श्री गायत्रीनाथ पंत	३४
८.	Chandra Images From Rajasthan	R. C. Agrawala	४४
९.	Prehistoric Background of Rajasthani Culture	V. N. Misra	४९
१०.	Mewar Painting	Kuwar Sangram Singh	६८
११.	Coins of The Malavas of Rajasthan	Shri Kalyan Kumar Das Gupta	७७
१२.	Tāntric Culture Eastern India	Dr. Upendra Thakur	८३
१३.	The Five Apabhramsa Verses Composed by Muñja, the Paramara King of Malava	Shri H. C. Bhayani	९०
१४.	Jainism And Vegetarianism	Dr. A. N. Upadhye	९४
१५.	Viśvāmitra in the Kalpasūtras	Dr. Umesh Chandra Sharma	९७
१६.	The Quest for a Proper Perspective in Vedic Interpretation	Prof. N. M. Kansara	१०१
१७.	8th Century Document on means of Earning Money	Prof. Prem Suman Jain	१०९
१८.	The Problem of Apadha in the Rgiveda	Dr. Smt. Y. S. Shah	११५
१९.	A Method of Grow Crooked Bamboos for Palanquin Beams	Shri K. V. Sarma	११८
२०.	राजस्थान के शिलालेखों का वर्गीकरण	श्री रामवल्लभ सोमानी	१२३

खण्ड २ : भाषा और साहित्य

२१.	पाणिनिकाल एवं संस्कृत में द्विवचन	श्री उदयवीर शास्त्री	१३७
२२.	संस्कृत के दो ऐतिहासिक चम्पू	डॉ० बलदेव उपाध्याय	१४२

२३. महो० क्षमाकल्याण गणि की संस्कृत साहित्य-साधना	डॉ० दिवाकर शर्मा	१४६
२४. प्राकृत के कुछ शब्दों की व्युत्पत्ति	डॉ० वसंत गजानन राहूरकर	१५३
२५. अपभ्रंश कथा काव्यों की भारतीय संस्कृतिको देन	डॉ० कस्तूरचन्द कासलीवाल	१५५
२६. अपभ्रंश का एक अचर्चित चरितकाव्य	डॉ० देवेन्द्रकुमार शास्त्री	१६०
२७. राजस्थान का युग-संस्थापक कथा-काव्य-निर्माता हरिभद्र	(स्व०) डॉ० नेमीचंद्र शास्त्री	१६७
२८. तथाकथित हरिवंशचरियं की विमलसूरि-कर्तृता : एक प्रश्न	(स्व०) डॉ० गुलाबचंद्र चौधरी	१७८
२९. महाकवि रइधू की एक अप्रकाशित सचित्र कृति 'पासणाहचरिउ'	प्रो० डॉ० राजाराम जैन	१८२
३०. शत्रुञ्जय तीर्थाष्टक	महो० विनयसागर	१८८
३१. दिल्ली पट्ट के मूलसंघीय भट्टारक प्रभाचन्द्र और पद्मनन्दि	पं० परमानन्द जैन शास्त्री	१९१
३२. अमरु शतक की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि	डॉ० अजयमित्र शास्त्री	१९८
३३. 'कान्हड़दे प्रबन्ध' और उसका ऐतिहासिक महत्त्व	डॉ० सत्यप्रकाश	२०७
३४. कान्हड़दे प्रबन्ध—सांस्कृतिक दृष्टि से	मूल लेखक—डॉ० भोगीलाल सांडेसरा अनुवादक—श्री जयशंकर शर्मा	२११
३५. रामरासोकार महाकवि माधवदास दधिवाड़िया	श्री सौभाग्यसिंह शेखावत	२२४
३६. मेवाड़प्रदेश के प्राचीन डिंगल कवि	श्री देव कोठारी	२२९
३७. राजस्थानी वातों में पात्र और चरित्र-चित्रण	डॉ० मनोहर शर्मा	२४५

खण्ड ३ : विविध

३८. जैनतर्कशास्त्र में हेतु प्रयोग	डॉ० दरबारीलाल कोठिया	२५९
३९. जैन दर्शन में नैतिक आदर्श के विभिन्न रूप	डॉ० कमलचन्द सौगानी	२६४
४०. ऐतरेय आरण्यकमें प्राण-महिमा	आचार्य विष्णुदत्त गर्ग	२६८
४१. प्राचीन भारतीय वाङ्मय में प्रयोग	श्री श्रीरंजन सूरिदेव	२७२
४२. श्री वल्लभाचार्यजी महाप्रभुजीका जीवन वृत्त	अध्या० केशवराम का० शास्त्री	२७६
४३. द्वैत-अद्वैत का समन्वय	श्री आनन्दस्वरूप गुप्त	२८९
४४. चित्रकाव्य का उत्कर्ष—सप्तसन्धान महाकाव्य	श्री सत्यव्रत तृषित	२९७
४५. शिवराज भूषण में गुसलखाना का प्रसंग	श्री वेदप्रकाश गर्ग	३०८
४६. होथल निगाभरी और ओढ़ आम की सुप्रसिद्ध लोक-कथा का वस्तुसाम्य एवं इसके आधार पर विचार	श्री पुष्कर चन्दरवाकर	३१२
४७. 'तेजा' लोक गीत का एक नया रूपांतर	श्री नरोत्तमदास स्वामी	३१९
४८. रणछोड़ भट्ट कृत कुमारकाव्य और महाराणा प्रतापसे सम्बन्धित दो विवादास्पद प्रश्न	डॉ० ब्रजमोहन जावलिया	३२६

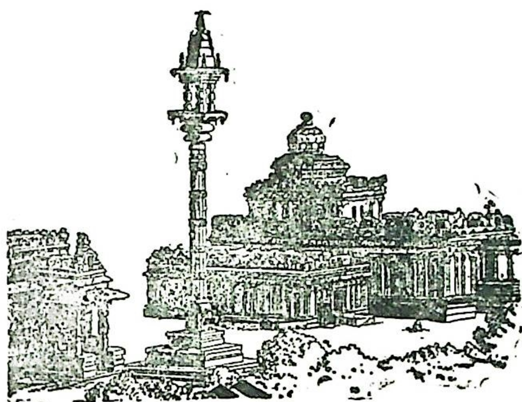
परिशिष्ट १. अगरचन्द नाहटा अभिनन्दनोत्सव समारोह का विवरण शुभ-कामना संदेश ३३१

परिशिष्ट २. बीकानेर में आयोजित अभिनन्दन समारोह के निमित्त सहयोगदाताओं की शुभ नामावली



प्रथम खण्ड





इतिहास और पुरातत्त्व





प्रतिहार काल में पूजित राजस्थान के कुछ अप्रधान देवी-देवता

डा० दशरथ शर्मा

ईश्वरको सर्वत्र देखने वाले हिन्दू धर्मके लिए सभी पूज्य देव-देवियोंमें ईश्वरत्वकी भावना करना आसान रहा है। चाहे मनुष्य किसी नामसे अपने इष्टदेवका पूजन करे, पूज्य वस्तु वही ईश्वरतत्त्व है। इसीलिए श्रीकृष्ण भगवद्गीता में कह सके हैं :—

येऽप्यन्यदेवता भक्ता यजन्ते श्रद्धयान्विताः।
तेऽपि मामेव कौन्तेय यजन्त्यविधिपूर्वकम् ॥ ९.२३ ॥

पूजन निष्काम हो तो श्रेष्ठ है। उसीसे कर्मकी हानि, और मुक्तिकी प्राप्ति हो सकती है किन्तु फल प्राप्तिके इच्छुक व्यक्ति प्रायः अनेक देव मूर्तियोंका पूजन करते ही हैं (७.२०); और उन्हें अपने लक्ष्यानुसार ईश्वरीय नियम द्वारा विहित प्राप्ति भी होती है।

प्रतिहार कालमें वैदिक धर्मानुसारिणी जनता प्रायः विष्णु, शिव, सूर्य और शक्तिकी पूजक थी। इनके एकत्वकी भावना उनके हृदयमें दृढ़मूल हो चुकी थी। अन्यथा यह कैसे सम्भव होता कि पिता एक देवका तो पुत्र अन्य किसी इष्टदेवका पूजन करे? प्रतिहार-राज देवशक्ति विष्णुका तो उसका पुत्र वत्सराज महेश्वरका भक्त था। वत्सराजके उत्तराधिकारी नागभट द्वितीयने भगवतीका पूजन किया तो उसके उत्तराधिकारी रामभद्रने सूर्यका। रामभद्रका पुत्र सम्राट् भोज भगवती-भक्त था; किन्तु अपने अन्तःपुरमें उसने अपनी रानियोंके लिए भगवान् नरकद्विष् विष्णुकी प्रतिमाका स्थापन किया था। महेन्द्रपाल प्रथमने भी भगवतीकी आराधना की; किन्तु उसका पुत्र विनायकपाल आदित्यका और विनायकपालका पुत्र महेन्द्रपाल द्वितीय महेश्वरका पूजक था।[1]

ब्रह्माका भी यत्र तत्र पूजन वर्तमान था। किन्तु हरिषेणीय बृहत्कथाकोश, कुवलयमाला, जिनेश्वरीय कथाकोशप्रकरण, उपमितिभवप्रपञ्चा आदि जैन ग्रंथोंके साक्ष्यसे यह सिद्ध है कि प्रतिहार-युगमें ब्रह्मा-पूजकोंकी संख्या प्रायः नगण्य थी। अभिलेखादि पुरातात्त्विक सामग्रीके आधारपर भी हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं। ब्रह्मा वेदोंके द्रष्टा हैं। जब वेदों का स्थान प्रायः स्मृतियों और पुराणोंने ग्रहण कर लिया तो सावित्रीपति ब्रह्माके गौरवमें कुछ अपकर्ष होना स्वभावतः निश्चित ही था।

किन्तु पुराणोक्त अनेक देवों और देवियोंका पूजन इस समय खूब बढ़ा। इनमें कुछ शिवकुलमें संख्यात हैं। अमरकोशने शिव और पार्वतीके ठीक बाद गणपतिको लेते हुए विनायक, विघ्नराज, द्वैमातुर, गणाधिप, एकदन्त, हेरम्ब, लम्बोदर, गजानन आदि उनके आठ नाम दिए हैं जिससे सिद्ध है कि पांचवीं शताब्दी में गणपतिका स्वरूप प्रायः वही था जो अब है और तद्विषयक अनेक पौराणिक कथाएँ पूरी तरह

---

१. विष्णु, शिव, सूर्य आदिके प्रधान देवोंके विवरणके लिए Rajasthan Through the Agos देखें।

२. पृष्ठ, ६८।

प्रसृत हो चुकी थीं। क्षीरस्वामीने उनका 'आखुरथ' नाम भी दिया है। आठवीं शताब्दीके महान् जैन साहित्यकार और दार्शनिक हरिभद्रसूरिने धूर्ताख्यानमें गणपतिके पार्वतीके मलसे उत्पन्न होनेकी कथा दी है। कुवलयमालाकथामें विनायक उन देवताओं में परिगणित हैं जिनका विपत्तिके समय लोग ध्यान करते थे।[२] गजेन्द्ररूपमें अनेक लोकदेवताओंके साथ इनकी चत्वरमें पूजा होती।[१] स्कन्दपुराणादिमें जो इनका विशद वर्णन है वह प्रायः सभी को ज्ञात है।

कक्कुकके घरियाले स्तम्भके संवत् ९१८के प्रथम अभिलेखका आरम्भ विनायकको नमस्कारसे होता है। इसी यशःस्तम्भ पर चतुर्मुख विनायककी सुन्दर मूर्ति है। नृत्य मुद्रामें गणपति की मूर्तियां भी पर्याप्त जनप्रिय रही होंगी। ये हरस, आबानेरी, आदि अनेक स्थानों से मिली हैं।[२] मण्डोर रेल्वे स्टेशनके निकट पहाड़ी पर शिव समेत गणपति और मातृकाओं की मूर्तियां भी दर्शनीय हैं। महाराजा जयपुरके संग्रहमें गणपतिनृत्यमुद्रामें सप्तमातृकासहित शिव उल्लेखनीय हैं।' अटरूमें भी इसी तरह गणपति की अनेक प्रकारकी प्रतिमाएँ मिली हैं, जो गणपति पूजाके विशेष प्रचार की द्योतक हैं। कहीं स्थानक, कहीं आसीन, कहीं शक्तियुत, तो एक स्थानमें चतुर्बाहु रूपमें ये गरुडासीन भी हैं।[3]

स्कन्द, कुमार या कार्त्तिकेय भी शैववर्गमें हैं। गुप्तकालमें स्कन्दके पूजनका बहुत अधिक प्रचार था। दो गुप्त सम्राट् स्कन्द और कुमार इन्हींके नामसे अभिहित हैं। कालिदासने इन्हींके गौरवगानमें कुमारसम्भव की रचना की। यौधेयोंके ये इष्टदेव थे। अमरकोशने गणपतिके आठ तो स्कन्दके सतरह नाम दिए हैं। किन्तु प्रतिहारकालमें स्कन्दकी यह जनप्रियता बहुत कुछ लुप्त हो चुकी थी। किसी प्रतिहार सम्राट्ने स्कन्दको इष्टदेवके रूपमें ग्रहण न किया। उपमितिभवप्रपञ्चा, यशस्तिलक, बृहत्कथाकोश, जिनेश्वरीकथाकोश प्रकरण आदि ग्रंथोंमें उनका स्थान नगण्य है। रोहीतक किसी समय स्कन्दका मुख्य स्थान था। किन्तु यशस्तिलकने स्कन्दकी गौणताके कारण यहाँ चण्डमारीको प्रतिष्ठित कर दिया है। कुवलयमालामें अनेक अन्य देवताओंके साथ स्कन्दका नाम है। स्कन्दपुराणके कौमारी खण्डमें स्कन्द की पर्याप्त प्रशंसा वर्तमान है; किन्तु उसमें भी स्कन्दके पूजनादिका विशेष विधान और वर्णन नहीं है। हरिभद्रसूरिने कुमारकी उत्पत्ति की कथा देते हुए उसका स्थान दक्षिण देशके अरण्यमें रखा है (३.८३)। शायद इससे यह अनुमान करना असंगत न हो कि हरिभद्रके समय स्कन्दकी पूजाका प्रचार मुख्यतः दक्षिणमें था। स्कन्दकी गुप्तकालीन मूर्तियां अवश्य राजस्थानमें प्राप्य हैं।

सूर्यकुलीन देवोंमें रेवन्तका उल्लेख कुवलयमालामें है। बृहत्संहिता और विष्णुधर्मोत्तरपुराणमें रेवन्त की मूर्तिका विधान है। कालिकापुराणके अनुसार इनका पूजन द्वारके निकट पूर्ण जलपात्र रखकर भी किया जाता। जलपात्रमें उनकी उपस्थिति मान ली जाती। जनताका विश्वास था कि आकस्मिक विपत्तियोंके समय रेवन्त विपद्गत व्यक्तियोंकी रक्षा करते हैं। इसलिए यह समुचित ही था कि समुद्रमें तूफान आनेपर कुवलयमाला कथाके जलयात्रियोंने रेवन्तकी प्रार्थना आरम्भ की। अमरकोशमें रेवन्तका नाम नहीं है। अन्यत्र इन्हें सूर्य और संज्ञाका पुत्र और गुह्यकोंका राजा कहा गया है जिससे प्रतीत होता है कि प्रथमतः मणिभद्रादिकी तरह ये भी जनदेव थे और समयानुक्रमसे सूर्यकुलमें परिगणित हुए।

---

१. पृष्ठ, २, १४, २५६।

२. देखें डॉ० रत्नचन्द्र अग्रवालके लेख, मरुभारती, ८, २, २९, आदि; जर्नल ऑफ इण्डियन हिस्ट्री, २८, पृष्ठ ४९७ आदि।

३. मरुभारती, ८, १, ६७।

इसी प्रकार अनेक अन्य देव हैं। जिनके लिए जैन ग्रंथोंमें व्यन्तर संज्ञा प्रयुक्त है। भारतमें आजकल मदन (कामदेव) की पूजा नहीं होती; किन्तु प्रतिहारकाल तक इस पूजाका पर्याप्त प्रचार था। चैत्र शुक्ला त्रयोदशी मदन त्रयोदशीके नामसे प्रसिद्ध थी। मदन पुष्पधन्वाके नामसे प्रसिद्ध हैं। किन्तु उपमितिभवप्रपञ्चादिसे प्रतीत होता कि मदन इक्षुधन्वा भी थे। मदनके पूजागृहका तोरण इक्षुका बना होता, और उसमें अशोकके नव-पल्लवोंकी बन्दनवार होती। अगर, सुगन्धित पुष्प और कर्पूरसे स्थान सुवासित रहता और भक्तगण इक्षुरस-पूर्ण भाण्ड, शालिधान्य और अनेक मिष्टान्न उपहारके रूपमें समर्पित करते। कन्याएँ सुन्दर वरकी अभिलाषासे और विवाहित स्त्रियां अपने सौभाग्यकी रक्षाके लिए मदनका पूजन करतीं।[1] भारतीय साहित्य मदनपूजनके वर्णनसे पूर्ण है। कर्कोटनगरसे प्राप्त मकरध्वजीय कामदेव और रतिका उल्लेख डॉ० रत्नचन्द्र अग्रवालने किया है।

व्यन्तरोंमें यक्ष मुख्य हैं। इनकी पूजा भारतमें प्राचीन समयसे चली आ रही है। अनेक जैन कथाओंमें यक्ष पूजाका वर्णन है। ज्ञानपञ्चमीसे प्रतीत होता है कि मथुरामें मणिभद्रके पूजनका पर्याप्त प्रचार था। मणिभद्रकी धार्मिक जनोंपर पर्याप्त कृपा रहती है। समराइच्चकहामें एक विचित्रप्रकृतिक क्षेत्रपालका वर्णन है जिसे छोटी-मोटी दुष्टता करनेमें ही आनन्द आता। जिनेश्वरीय कथाकोशमें क्षेत्रपाल द्वारा आवेश और पउमसिरिचरियमें क्षेत्रपालकी नटखट वृत्तिका वर्णन है। राजस्थानमें क्षेत्रपाल अब भी पूजित है; पर उसके रूपमें कुछ अन्तर अवश्य हुआ है।

यक्षोंमें, सबसे महत्त्वपूर्ण कुबेर थे। चित्तौड़ क्षेत्रसे प्राप्त उदयपुर म्यूज़ियमकी कुबेर प्रतिमाका शिल्प-सौष्ठवमें अद्भुत है। इसके मुकुट और मस्तककी जिनमूर्ति हमें कुवलयमालाके वर्णनका स्मरण दिलाती है। कुमार कुवलयचन्द्रको वनमें ऐसी ही एक यक्षप्रतिमा मिलती है जिसके मुकुटमें मुक्ताशैल विनिर्मित अर्हत्-प्रतिमा है। उसे नमस्कारकर कुमार सोचने लगता है "अरे, यह आश्चर्य है कि दिव्य यक्षप्रतिमाके मस्तकपर भगवान्‌की प्रतिमा है। या इसमें आश्चर्य ही क्या है कि दिव्य (देवादि) भी भगवान्‌को मस्तकपर धारण करें। वे तो इस तरह धारणके योग्य ही हैं।"[2] कुबेरकी ऐसी मूर्तियां अन्यत्र अब तक नहीं मिली हैं। किन्तु कुवलयमालाकथाके वर्णनसे सम्भावना की जा सकती है कि ऐसी कुछ मूर्तियां आठवीं शताब्दीके राजस्थानमें रही होंगी।

अजमेर म्यूज़ियममें कुबेरकी मूर्तियां हैं। इनमें एक ललितासनमें स्थित है। इसके दाहिने हाथमें बिजोरा और बाएँमें लम्बी थैली है।[3] म्यूज़ियमकी दूसरी कुबेर मूर्ति अढ़ाई दिनके झोंपड़ेसे प्राप्त हुई है। इसमें कुबेर प्रफुल्ल कमलपर खड़े हैं। नरहड आदि राजस्थानके अन्य स्थानोंसे भी कुबेरकी प्रतिमाएँ मिली हैं।

कुवलयमालाकथामें यक्ष, राक्षस, भूत, पिशाच, किन्नर, किंपुरुष, गन्धर्व, महोरग, गरुड़, नाग, अप्सरस् आदि अनेक अन्य व्यन्तरोंका निर्देश भी है जिनका सामान्यजन स्वार्थसिद्धिके लिए पूजन करते। किन्तु इस आधारपर उनके विषयमें कुछ अधिक कहना असम्भव है। नागपुर, अहिच्छत्रा, अनन्तगोचर आदि नामोंके आधारपर यह अवश्य कहा जा सकता है कि प्राचीन राजस्थानमें नागपूजाका पर्याप्त प्रसार रहा होगा।

नवग्रह पूजनका इस कालमें रचित धार्मिक साहित्यमें विधान है। भरतपुर क्षेत्रसे प्राप्त नवग्रहोंमें

---

१. विशेष विवरणके लिए Rajasthan Through the Ages देखें।

२. पृ० ११५।

३. रिचर्चर्ट, १. २३-२४।

केतुका अभाव[1] और बघेरासे प्राप्त नवग्रहोंमें उसकी विद्यमानता है। अढ़ाई दिनके झोंपड़ेसे सप्तनक्षत्रयुक्त एक विशिष्ट फलककी प्राप्ति हुई है।[2] इसमें सातनक्षत्र—मघा, पूर्वाफाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी, हस्त, चित्रा, स्वाति, और विशाखा सुखासनमें स्थित हैं; और इसी पर काल, प्रभात, प्रातः, मध्याह्न, अपराह्न और संध्या उत्कीर्ण हैं। शिल्प और उत्कीर्ण मूर्तियोंकी दृष्टिसे यह फलक अद्वितीय है।

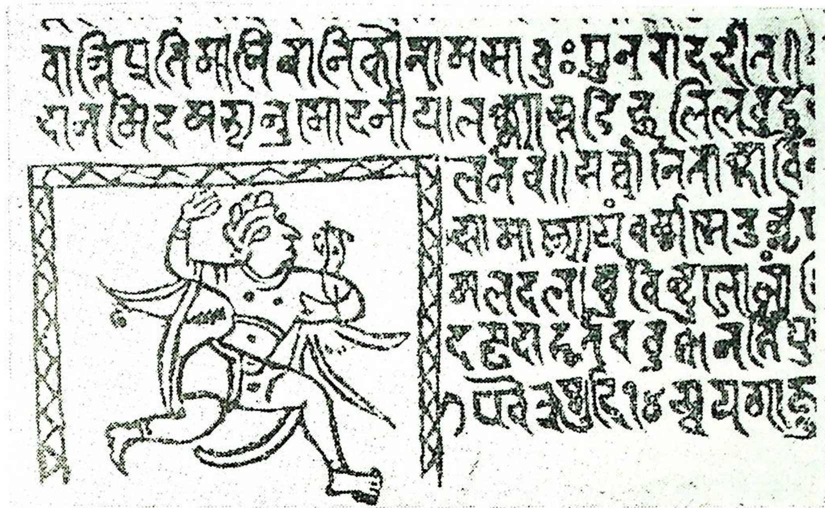
अन्य अप्रधान हिन्दू देवताओंमें हम दिक्पालोंकी गणना कर सकते हैं। नरहड़से वायु और वरुणकी उत्कीर्ण प्रतिमाएँ मिली हैं जो प्रतिमाविज्ञानकी दृष्टिसे ध्यानमें रखने योग्य हैं। दिनप्रतिदिन नवीन साहित्यके प्रकाश और पुरातत्त्व विभागके शोधकार्यसे हमारा देव और देवयोनिविषयक ज्ञान बढ़ रहा है। विष्णु, महेश्वर, सूर्य, अर्हत् आदिके विषयकी विपुल सामग्री छोड़कर हमने इस लेखमें केवल अप्रधान देवोंके विषयमें कुछ शब्द लिखे हैं। विषयकी पूर्णता इस विषयके विद्वानों द्वारा हो सकेगी।

भीनमालमें चण्डीनाथ-मंदिरकी बावलीके सामनेके चबूतरे पर आसवपेयी कुबेरकी प्रतिमा है जिसका समय डॉ० एम० आर० मजमुंदारके अनुसार सातवीं और आठवीं शताब्दीके बीचमें होना चाहिए। ओसियामें पिप्पलाद माताके मुख्य मंडपके सामने चबूतरे पर महिषमर्दिनी, गणेश और कुबेरकी बृहत्काय प्रतिमाएँ हैं। सकराय माताके सबसे प्राचीन अभिलेखमें धनद यक्षके आशीर्वादकी कामना की गई। भटूंदमें भी ओसियांकी सी कुबेरकी कुम्भोदर मूर्ति वर्तमान है। बांसीसे प्राप्त यक्ष प्रतिमा भी प्रायः सातवीं आठवीं शताब्दीकी है। अनेक अन्य यक्ष और कुबेर प्रतिमाओंके विशेष विवरण के लिए डॉ० रत्नचन्द अग्रवालका इसी सम्बन्धमें इंडियन हिस्टॉरिकल क्वार्टरली, १९५७ में प्रकाशित लेख पठनीय है।

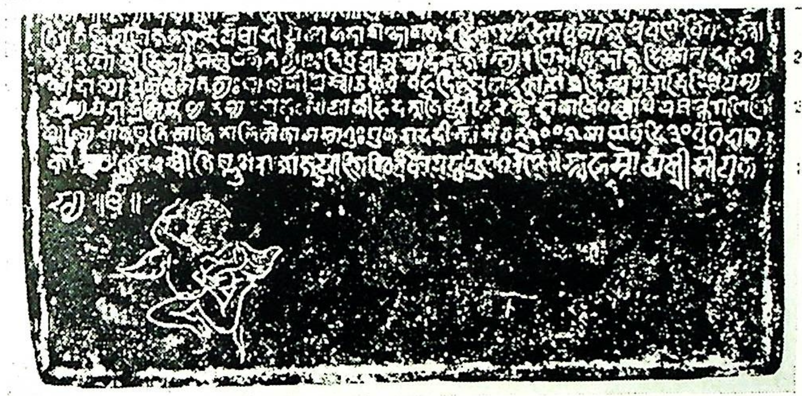
कृष्णनगर, दिल्ली
३१. ३. १९६४

---

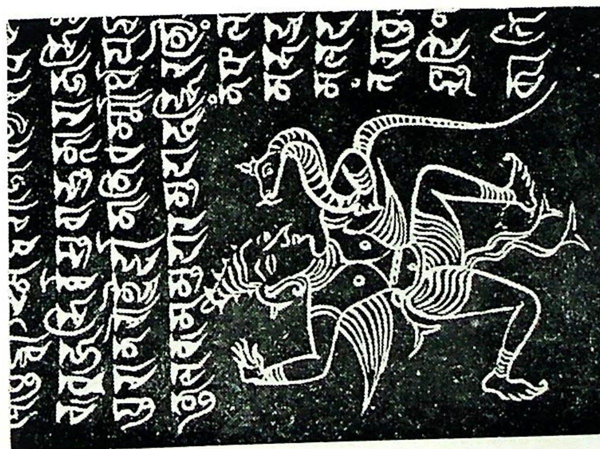
१. वही, १.२०।
२. वही, २. ११।



१–२. सं० १०७८ के दानपत्र में सपक्ष मनुष्याकृति गरुड़ मुद्रा
(परमार भोजदेव की राजमुद्रा ईस्वी सन् १०२१)



३. सं० १००५ (ई० सन् ९४८) परमार सोयक हरसोल से प्राप्त दानपत्र में गरुड़मुद्रा



सं० १०७८ के दानपत्र में समग्र मनुष्याकृति गरुड़ मुद्रा (परमार भोजदेव की राजमुद्रा ई० सन् १०२१)

केतुका अभाव[1] और बघेरासे प्राप्त नवग्रहोंमें उसकी विद्यमानता है। अढ़ाई दिनके झोंपड़ेसे सप्तनक्षत्रयुक्त एक विशिष्ट फलककी प्राप्ति हुई है।[2] इसमें सातनक्षत्र—मघा, पूर्वाफाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी, हस्त, चित्रा, स्वाति, और विशाखा सुखासनमें स्थित हैं; और इसी पर काल, प्रभात, प्रातः, मध्याह्न, अपराह्न और संध्या उत्कीर्ण हैं। शिल्प और उत्कीर्ण मूर्तियोंकी दृष्टिसे यह फलक अद्वितीय है।

अन्य अप्रधान हिन्दू देवताओंमें हम दिक्पालोंकी गणना कर सकते हैं। नरहड़से वायु और वरुणकी उत्कीर्ण प्रतिमाएँ मिली हैं जो प्रतिमाविज्ञानकी दृष्टिसे ध्यानमें रखने योग्य हैं। दिनप्रतिदिन नवीन साहित्यके प्रकाश और पुरातत्त्व विभागके शोधकार्यसे हमारा देव और देवयोनिविषयक ज्ञान बढ़ रहा है। विष्णु, महेश्वर, सूर्य, अर्हत् आदिके विषयकी विपुल सामग्री छोड़कर हमने इस लेखमें केवल अप्रधान देवोंके विषयमें कुछ शब्द लिखे हैं। विषयकी पूर्णता इस विषयके विद्वानों द्वारा हो सकेगी।

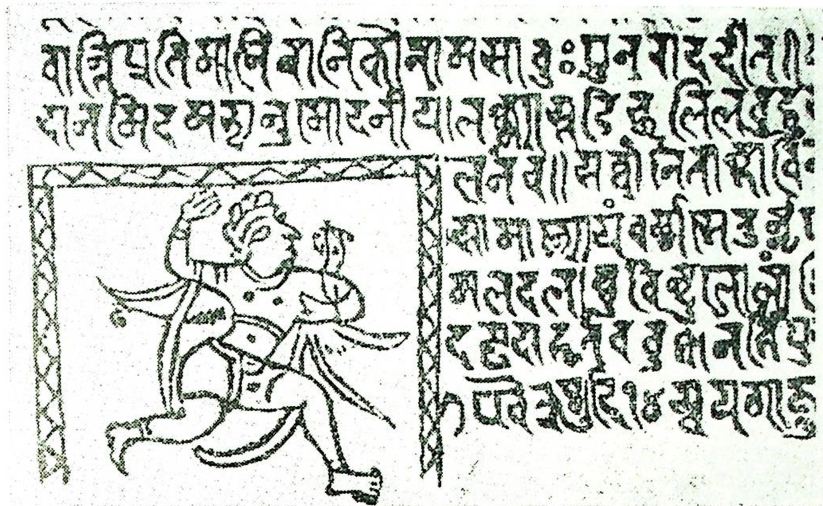
भीनमालमें चण्डीनाथ-मंदिरकी बावलीके सामनेके चबूतरे पर आसवपेयी कुबेरकी प्रतिमा है जिसका समय डॉ० एम० आर० मजमुंदारके अनुसार सातवीं और आठवीं शताब्दीके बीचमें होना चाहिए। ओसियामें पिप्पलाद माताके मुख्य मंडपके सामने चबूतरे पर महिषमर्दिनी, गणेश और कुबेरकी बृहत्काय प्रतिमाएँ हैं। सकराय माताके सबसे प्राचीन अभिलेखमें धनद यक्षके आशीर्वादकी कामना की गई। भटूंदमें भी ओसियांकी सी कुबेरकी कुम्भोदर मूर्ति वर्तमान है। वांसीसे प्राप्त यक्ष प्रतिमा भी प्रायः सातवीं आठवीं शताब्दीकी है। अनेक अन्य यक्ष और कुबेर प्रतिमाओंके विशेष विवरण के लिए डॉ० रत्नचन्द अग्रवालका इसी सम्बन्धमें इंडियन हिस्टॉरिकल क्वार्टरली, १९५७ में प्रकाशित लेख पठनीय है।

कृष्णनगर, दिल्ली
३१. ३. १९६४

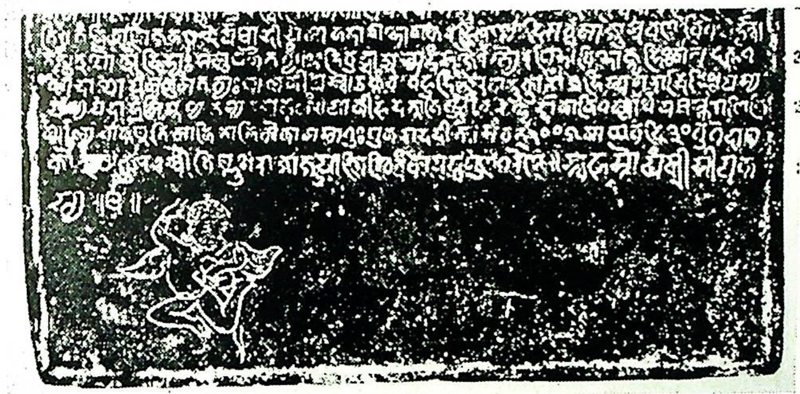
●

---

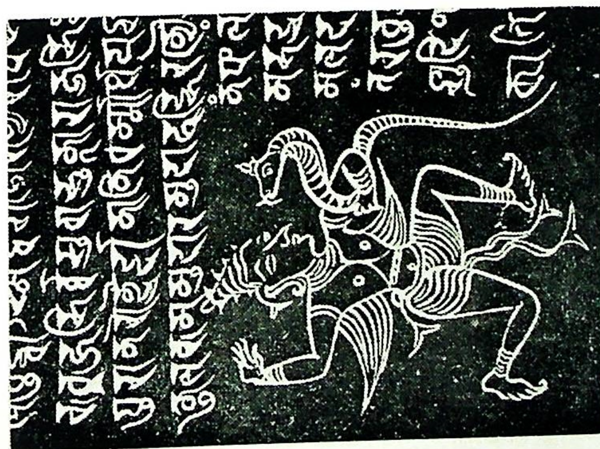
१. वही, १.२०।
२. वही, २. ११।



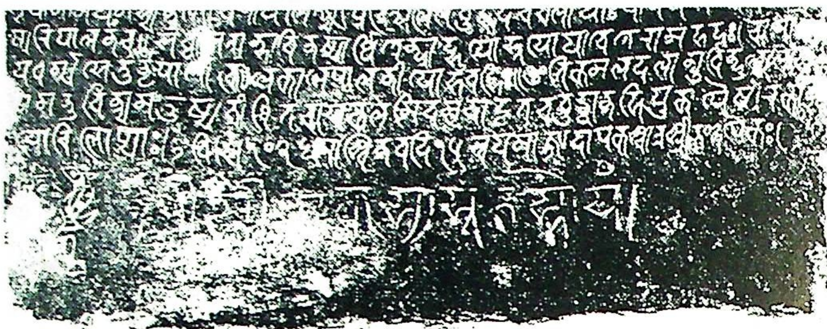
१–२. सं० १०७८ के दानपत्र में सपक्ष मनुष्याकृति गरुड़ मुद्रा
(परमार भोजदेव की राजमुद्रा ईस्वी सन् १०२१)



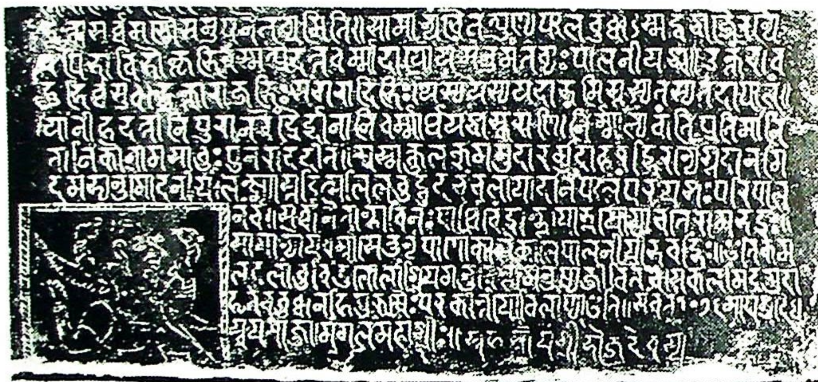
३. सं० १००५ (ई० सन् ९४८) परमार सीयक हरसोल से प्राप्त दानपत्र में गरुड़मुद्रा



सं० १०७८ के दानपत्र में समग्र मनुष्याकृति गरुड़ मुद्रा (परमार भोजदेव की राजमुद्रा ई० सन् १०२१)



४. सं० १०२६ (ई० सन् ९७०) परमार सीयक का दानपत्र



५. सं० १०७६ (ई० सन् १०१९–२०) बाँसवाड़ा से प्राप्त ताम्रपत्र से



६. महाकुमार हरिश्चन्द्र का भोपाल से प्राप्त ताम्रपत्र
वि० सं० १२१४ (ई० सन् ११५७) के आसपास

मध्यकालीन मारु-गुर्जर चित्रकलाके प्राचीन प्रमाण

डॉ० उमाकान्त प्रेमानन्द शाह

मध्यकालीन पश्चिमभारतीय चित्रकला हमें लघु-चित्र (miriature paintings) रूपमें, विशेषतः हस्तलिखित जैन ग्रन्थोंमें, मिलती है। उस कलाको पश्चिमभारतीय चित्रकला, अपभ्रंश शैली, गुजराती चित्रकला आदि नामोंसे भिन्न-भिन्न विद्वानोंने पेश की है। किन्तु, ज्यादा करके वह पश्चिमभारतीय चित्रकला नामसे पहचानी गई है। वह कला मुख्यतः राजस्थान और गुजरातके जैन भंडारोंमें और राजस्थान और गुजरातमें लिखी हुई प्रतियोंमें मिलती है इसलिए मैं उसको मध्यकालीन मारु-गुर्जर चित्रकला नामसे पहचानना पसंद करता हूँ। यह शब्द प्रयोग, जहाँ तक मुझे याद है, कवि श्री उमाशंकर जोशीने गुजराती और राजस्थानीका मूल स्रोतरूप भाषा, जिसको टेसिटोरीने Old Western Rajasthari कही है, उसके लिए प्रयुक्त किया था। वास्तवमें प्राचीन और मध्ययुगमें गुजरात राजस्थानका भाषाकीय. कलाविषयक और अन्य सांस्कृतिक ऐक्य रहा था। इसलिए भी मारु-गुर्जर शब्द प्रयो ग ज्यादा वास्तविक लगता है।

इस चित्रशैलीके विषयमें बहुत लिखा गया है। डॉ० कुमार स्वामी, डॉ० ब्राउन, डॉ० मजमुंदार, श्री०ओ०सी० गांगुली, डॉ० मोतीचन्द्र, डॉ० बॅरेट, डॉ० सिलग्रे, श्रीकार्ल खंडालावाला आदि विद्वानोंके संशोधन आदिके परिणामरूप यह बात स्पष्ट हुई थी कि इस शैलीके जो उपलब्ध लघुचित्र हैं उनमेंसे सबसे प्राचीन है संवत् ११५७ (ई०स० ११००) में भृगुकच्छमें लिखित विशीथचूर्णिकी ताडपत्रीय प्रति[1] जिसमें पत्रोंके बीचमें कमलआदिके सुशोभन हैं। एक दो गोलाकृति सुशोभनोंके बीचमें पशु (हाथी), नरनारी आदि भी हैं। किन्तु, ई०स० ११२७ वि०सं० ११८४ में लिखित ज्ञाता और दूसरे अंगसूत्रोंकी ताडपत्रीय प्रति (खंभात के शान्तिनाथ जैन भंडारमें सुरक्षित) में दो चित्र मिले हैं जिनसे इस कलाका विशेष परिचय होता है। इसमें प्रथम चित्र तीर्थंकर भगवान्का है[2] और दूसरा सरस्वती या श्रुतदेवता[3]का।

करीब इसी समयके भित्तिचित्र उत्तरप्रदेशके ललितपुर जिलेके मदनपुरमें विष्णुमंदिरके मंडपमें मिले हैं। वह मंदिर मदन वर्माके राज्यकालमें ई०स० ११३० से ११६५ के बीच बना। चित्र भी करीब इसी समयके आसपास बने होंगे। इन चित्रोंमें पंचतंत्रकी कथाके चित्र हैं।[4] चित्रोंमें यही मारु-गुर्जर चित्रकलाकी विशेषतायें उपलब्ध होती हैं।

इलोराकी कैलासमन्दिरगुहाके भित्तिचित्रोंमें मध्यके स्तरमें गरुडोपरिस्थित विष्णुके चित्रमें लम्बा नोक-

---

१. देखो, मोतीचन्द्र, जैन मिनिएचर पेइन्टींन्गझ् फ्रॉम वेस्टर्न इन्डिया, (अमदाबाद, १९४९), पृ० २८-२९, चित्र नं० १४।

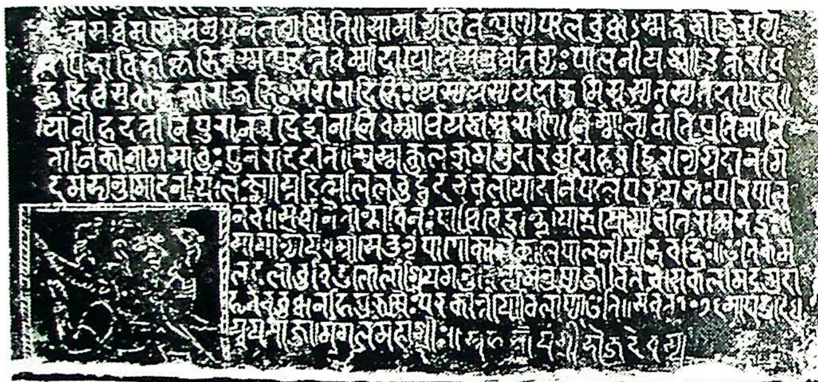
२. वही, चित्र नं० १५।

३. वही, चित्र नं० १६, पृ० २८।

४. स्टेला क्रामरिश, ए पेइन्टेड सीलिंग, जर्नल ऑफ ये इण्डीअन सोसायटी ऑफ ओरिएन्टल आर्ट, वॉल्युम, ७. पृ० १७६ और चित्रप्लेट।



४. सं० १०२६ (ई० सन् ९७०) परमार सीयक का दानपत्र



५. सं० १०७६ (ई० सन् १०१९–२०) बाँसवाड़ा से प्राप्त ताम्रपत्र से



६. महाकुमार हरिश्चन्द्र का भोपाल से प्राप्त ताम्रपत्र
वि० सं० १२१४ (ई० सन् ११५७) के आसपास

मध्यकालीन मारु-गुर्जर चित्रकलाके प्राचीन प्रमाण

डॉ० उमाकान्त प्रेमानन्द शाह

मध्यकालीन पश्चिमभारतीय चित्रकला हमें लघु-चित्र (miriaturc paintings) रूपमें, विशेषतः हस्तलिखित जैन ग्रन्थोंमें, मिलती है। उस कलाको पश्चिमभारतीय चित्रकला, अपभ्रंश शैली, गुजराती चित्रकला आदि नामोंसे भिन्न-भिन्न विद्वानोंने पेश की है। किन्तु, ज्यादा करके वह पश्चिमभारतीय चित्रकला नामसे पहचानी गई है। वह कला मुख्यतः राजस्थान और गुजरातके जैन भंडारोंमें और राजस्थान और गुजरातमें लिखी हुई प्रतियोंमें मिलती है इसलिए मैं उसको मध्यकालीन मारु-गुर्जर चित्रकला नामसे पहचानना पसंद करता हूँ। यह शब्द प्रयोग, जहाँ तक मुझे याद है, कवि श्री उमाशंकर जोशीने गुजराती और राजस्थानीका मूल स्रोतरूप भाषा, जिसको टेसिटोरीने Old Western Rajasthari कही है, उसके लिए प्रयुक्त किया था। वास्तवमें प्राचीन और मध्ययुगमें गुजरात राजस्थानका भाषाकीय. कलाविषयक और अन्य सांस्कृतिक ऐक्य रहा था। इसलिए भी मारु-गुर्जर शब्द प्रयोग ज्यादा वास्तविक लगता है।

इस चित्रशैलीके विषयमें बहुत लिखा गया है। डॉ० कुमार स्वामी, डॉ० ब्राउन, डॉ० मजमुंदार, श्री०ओ०सी० गांगुली, डॉ० मोतीचन्द्र, डॉ० वॅरेट, डॉ० सिलग्रे, श्रीकार्ल खंडालावाला आदि विद्वानोंके संशोधन आदिके परिणामरूप यह बात स्पष्ट हुई थी कि इस शैलीके जो उपलब्ध लघुचित्र हैं उनमेंसे सबसे प्राचीन है संवत् ११५७ (ई०स० ११००) में भृगुकच्छमें लिखित निशीथचूर्णिकी ताडपत्रीय प्रति[1] जिसमें पत्रोंके बीचमें कमलआदिके सुशोभन हैं। एक दो गोलाकृति सुशोभनोंके बीचमें पशु (हाथी), नरनारी आदि भी हैं। किन्तु, ई०स० ११२७ वि०सं० ११८४ में लिखित ज्ञाता और दूसरे अंगसूत्रोंकी ताडपत्रीय प्रति (खंभात के शान्तिनाथ जैन भंडारमें सुरक्षित) में दो चित्र मिले हैं जिनसे इस कलाका विशेष परिचय होता है। इसमें प्रथम चित्र तीर्थंकर भगवान्का है[2] और दूसरा सरस्वती या श्रुतदेवता[3]का।

करीब इसी समयके भित्तिचित्र उत्तरप्रदेशके ललितपुर जिलेके मदनपुरमें विष्णुमंदिरके मंडपमें मिले हैं। वह मंदिर मदन वर्माके राज्यकालमें ई०स० ११३० से ११६५ के बीच बना। चित्र भी करीब इसी समयके आसपास बने होंगे। इन चित्रोंमें पंचतंत्रकी कथाके चित्र हैं।[4] चित्रोंमें यही मारु-गुर्जर चित्रकलाकी विशेषतायें उपलब्ध होती हैं।

इलोराकी कैलासमन्दिरगुहाके भित्तिचित्रोंमें मध्यके स्तरमें गरुडोपरिस्थित विष्णुके चित्रमें लम्बा नोक-

१. देखो, मोतीचन्द्र, जैन मिनिएचर पेइन्टींग्गझ् फ्रॉम वेस्टर्न इन्डिया, (अमदावाद, १९४९), पृ० २८-२९, चित्र नं० १४।

२. वही, चित्र नं० १५।

३. वही, चित्र नं० १६, पृ० २८।

४. स्टेला क्रामरिश, ए पेइन्टेड सीलिंग, जर्नल ऑफ ये इण्डीअन सोसायटी ऑफ ओरिएन्टल आर्ट, वॉल्युम, ७. पृ० १७६ और चित्रप्लेट।

दार (Penrfed) नाक आदि विशेषतायें स्पष्ट रूपसे विकसित हैं।[1] अतः ई०स० ८वीं सदी और ११वीं सदीके बीच इस चित्रशैलीका प्रादुर्भाव हो चुका था यह निश्चित है। किन्तु, ग्रन्थस्थ चित्रकलाके इतने प्राचीन अन्य प्रमाण उपलब्ध नहीं हैं।

इस शैलीके अन्य प्राचीन प्रमाण, खासतौर पर जिसका समय निश्चित है ऐसे प्रमाणकी खोजमें डॉ० मंजूलाल मजमूंदारने एक नयी दिशाकी ओर हमारी दृष्टि खींची है। प्राचीन ताम्रपत्रीय दानपत्रों-राज्यशासनोंमें अन्तमें कभी-कभी दान देनेवाले राजाकी राजमुद्राका चिह्न रेखाकृतिमें उत्कीर्ण रूपसे मिलता है। ऐसे उदाहरणोंमें हमें रंगमिलावट और चित्राकृति वैविध्य नहीं मिलता, किन्तु रेखांकनकी परिपाटी, उस शैलीकी रेखांकन विशेषताका प्रमाण मिल जाता है। मारुगुर्जर शैलीकी जो विशेषतायें हैं उनमें नोकदार नाक, अर्द्धसन्मुख मुखाकृतिमें दूसरी आँखको भी दिखाना (farhor eye extended in space) और मुखकी और शरीरकी आकृतिमें विशेषतः कोणांकन (angularitces) दिखलाना, आदि हमें ऐसे ताम्रपत्रोंके रेखांकनोंमें दृष्टिगोचर हो सकते हैं। इस तरह डॉ० मजमूंदारने दो प्राचीन शासनोंकी ओर निर्देश किया है,[2] जिनमें एक है परमार राजा वाक्पतिराजका संवत् १०३१ = ई०स० ९७४ में उत्कीर्ण दान शासन जो उज्जयनी नगरीसे दिया गया है और दूसरा है परमार भोजराजका शासन जो संवत् १०७८ = ई०स० १०२१ में धारा नगरीसे दिया गया है जिसमें नागह्लदकी पश्चिम पथकमें वीराणक गाँव दानमें दिया है। इन दोनोंमें परमारोंकी राजमुद्राका चिह्न गरुडाकृति उत्कीर्ण है, और गरुडके हाथमें सर्प है। गरुडको वेगसे आकाशमें विचरता हुआ, मनुष्याकृति और सपक्ष दिखाया है। यहाँ यह दोनों आकृति चित्र १ और चित्र २ में पेश की हैं।

इन चित्रोंसे यह स्पष्ट है कि यह चित्रकला दशवीं सदीके उत्तरार्द्धमें मालव प्रदेश और परमारोंके आधीन प्रदेशमें प्रचलित हो चुकी थी।

इस दृष्टिसे मैंने उत्कीर्ण दानपत्रोंकी ओर खोज करनेका प्रयत्न किया जिनमें ऐसे राजचिह्न उत्कीर्ण किये हों। इससे अब हम निश्चित रूपसे कह सकते हैं कि ई०स० ९४८ में (अतः दशवीं शताब्दीके मध्य-कालमें) इस शैलीका आविष्कार और प्रचार हो चुका था। संभवतः दशवीं शताब्दीके सारे पूर्वार्द्धमें इस शैलीका होना माना जा सकता है क्योंकि राजमुद्रामें इसका आविष्कार होना तब ही हो सकता है जब उसको कलाकारों और कलापरीक्षकोंने अपनाया हो। साबारकांठा जिला (उत्तर गुजरात) हरसोला नामक प्राचीन नगरके किसी ब्राह्मणके पाससे मिला हुआ यह शासन हरसोला प्लेट्स ऑफ सीयक इस नामसे रायबहादुर के०एन० दीक्षितजीने और श्री०डी०वी० डीसकालकरने प्रसिद्ध किया था,[3] वह शासन सीयकने महीनदीके तट पर अपने कॅम्पमेंसे निकाला था और दानमें इसी प्रदेशमें मोहडवासक (हालका मोडासा) के पासके गाँव दिये गये हैं। इस शासनमें उत्कीर्ण गरुडाकृति मालव या गुजरातके किसी कांस्यकारने

१. मोतीचन्द्र, वही, पृ० ११–१२ और चित्र नं० ४।

२. डॉ० एम०आर० मजमुंदार, गुजरात–इट्स आर्ट-हेंरिटेइज, प्लेट १ और प्लेट १३। इन दोनों दानपत्रकी मूलप्रसिद्धिके लिए देखो, एन०जे० कीर्तने, श्रीमालव इन्स्क्रीप्शन्स, इन्डीअन एन्टीक्वेरी, वॉ० ६, पृ० ४९–५४ और प्लेटस्, यहाँ पर दिए हुए चित्र नं० १–२ इसी चित्रोंकी कॉपीसे साभार उद्धृत हैं।

३. देखो, के०एन० दीक्षित और डी०वी० डीसकालकर, दुहरसोला प्लेट्स ऑफ परमार सीयक, एपिग्राफिया इन्डिका, जिल्द १९, पृ० २३६ से आगे, और प्लेट।

उत्कीर्ण की होगी क्योंकि मालवके राजाने यह शासन गुजरातमें अपने कैम्पमेंसे निकाला था। अतः इस शासनमें दिखाई देती गरुडाकृतिकी कला गुजरात और मालवा दोनोंमें प्रचलित होनेका सम्भव है। यह आकृति यहाँ चित्र ३ रूपसे पेश की है।

चित्र ३ की गरुडाकृति पूरी एकचश्म नहीं है। सवाचश्म जैसी लगती है और परली आँख ही दिखाई देती है। गाल (cheek) नहीं किन्तु उसकी और मुखकी सीमारेखासे ऐसी बाहर वह परली आँख नहीं है जितनी पिछले समयके मारु-गुर्जर चित्रोंमें मिलती है। अतः हम यह कह सकते हैं कि ई०स० ९४८ के आसपास मुखकी सीमारेखाके बाहर परली आँख लाना अगर शुरू भी हुआ हो, तो फिर भी इतना प्रचलित, इतना सर्वमान्य नहीं हुआ था।

वास्तवमें जहाँ तक परली आँखको सीमारेखासे बाहर दिखाने की बात है वहाँ तक तो चित्र १ में बताया हुआ ई०स० ९७४ में खुदा हुआ गरुड और चित्र ३ के गरुडमें कोई ज्यादा भेद नहीं है। किन्तु शरीर रचना और मुखाकृति आदिमें सविशेष भेद है। चित्र ३ वाले गरुड की बालक जैसी आकृति मनोज्ञ है, सजीव तो है ही। चित्र १ के गरुडकी आकृतिमें angularites बढ़ गई है, नाक ज्यादा लम्बा और तीक्ष्ण अन्त (Printed end) वाला है।

चित्र ४ में पेश किया हुआ ताम्रपत्र वि०सं० १०२६ = ९६९ ई०स० में परमार सीयक द्वारा दिया हुआ दानपत्रका है।[1] इस आकृतिके मिलनेसे स्पष्ट हो गया है कि ई०स० ९६९–९७० में परली आँखको मुखरेखासे बाहर दिखाना शुरू हो गया था, प्रचलित भी हो गया था और राजमुद्रामें भी यह शैली स्वीकृत हो गई थी। अतः इस शैलीका आविष्कार ई०स० ९५० और ९७० के बीचमें होकर इसका सर्वमान्य स्वीकार प्रचार हो चुका था ऐसा माननेमें हमें कोई बाधा नहीं है। इस दानपत्रका यह पत्र अभी अहमदाबादके श्रीलालभाई दलपत भाई भारतीय संस्कृति विद्यालयमें संगृहीत है।

इसी शैलीका प्रचार और विकास हमें एक और दानपत्रमें मिला है। वह है भोजदेवका बाँसवाडाका दानपत्र जो वि०सं० १०७६ – ई०स० १०१९–२० में दिया गया।[2] वह पत्रकी गरुडमुद्राको चित्र नं० ५ में यहाँ पेश किया है।

एक और दानपत्रमें भी इस मारु-गुर्जर शैलीकी गरुडाकृति मिली है। वह है भोपालसे मिला हुआ महाकुमार हरिश्चन्द्रका दानपत्र जिसके सम्पादक डॉ० एन० पी० चक्रवर्तीने उसको करीब ई०स० ११५७ में दिया गया माना है।[3] इसका समय ज्ञातांगकी ताड़पत्रीय प्रतिमें चित्रित सरस्वतीका समय जैसा होता है। आकृति यहाँ पर चित्र ६ में पेश की है।

---

१. डी०बी० डीसकलकर, एन ऑड़ प्लेट ऑफ परमार सीयक, एपि० इन्डि०, जिल्द १९, पृ० १७७ से आगे और प्लेट।

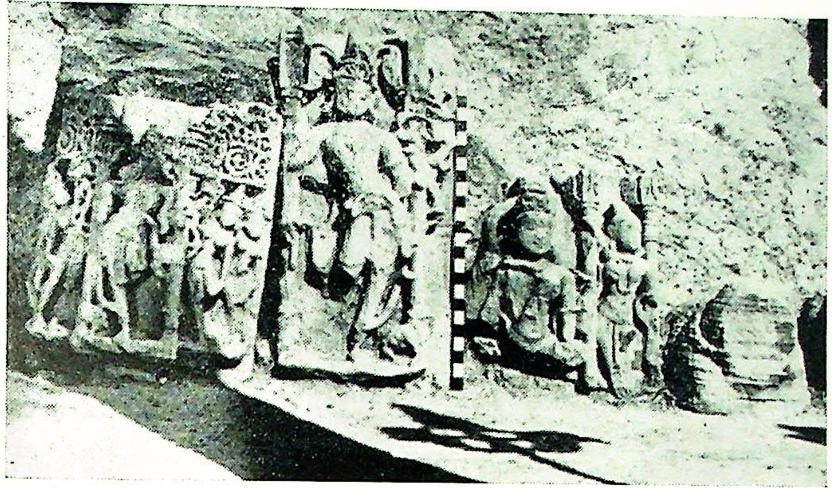
२. प्रो० इ० हुलूटझ्, बाँसवारा प्लेट्स् ऑफ भोजदेव, एपि० इन्डि०, वॉ० ११, पृ० १०१ से आगे और प्लेट।

३. एन०पी० चक्रवर्ती, भोपाल प्लेट्स् ऑफ महाकुमार हरिचन्द्रदेव, एपि० इन्डि०, वॉ० २४, पृ० २२५ से आगे और प्लेट्।

उमाकान्त शाहने अपने बनारस ओरिअन्टल कॉन्फ्रेन्सके कलाविभागके अध्यक्ष पदके व्याख्यानमें कुछ वर्ष पहले जैसलमेरकी वि०सं० ११११७ में लिखी हुई ओघनिर्युक्तिकी ताड़पत्रीय प्रतिके चित्रोंको पेश करके बताया था कि इन चित्रोंकी शैली वह मारु-गुर्जर (जैन, वेस्टर्न इन्डीअन, राजस्थानी, अपभ्रंश, गुजराती आदि नामोंसे पुकारी जाती) शैली नहीं है और वह शैली गुर्जर-प्रतिहारोंके समयमें सारे पश्चिम भारतमें जो प्रचलित शैली थी उसका आखिरी स्वरूप है।[1] यह बात इन चित्रोंसे स्पष्ट हो जाती है। क्योंकि, उस जैसलमेरके ओघनिर्युक्तिके चित्रोंकी शैली और चित्र १ से ६ की शैली स्पष्ट रूपसे भिन्न है।



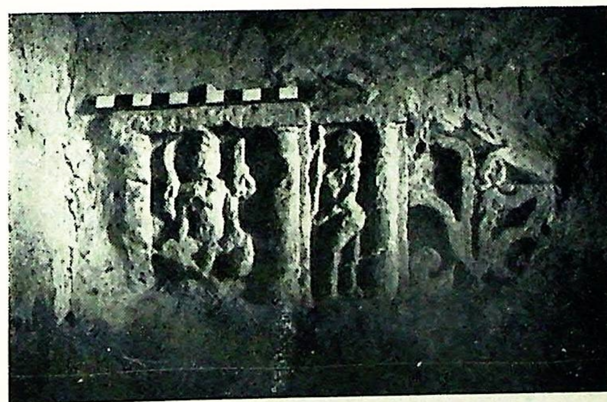
१. देखो, उमाकान्त शाह, प्रोग्रेस ऑफ स्टडिझ् इन फाइन आर्ट्स एन्ड टेक्निकल साइन्सीझ, जर्नल ऑफ दि ओरिएन्टल इन्स्टीट्यूट, बड़ोदा, वॉ० १८, अंक १–२ का परिशिष्ट, पृ० १-३६, विशेषतः पृ० १९, और प्लेट्स्।



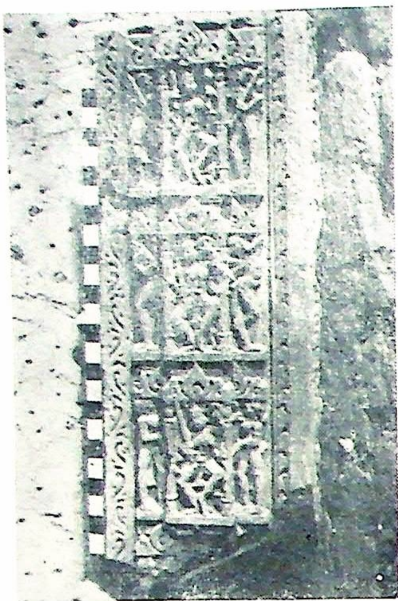
१. पल्लू ब्रह्माणी मन्दिर के उत्तर-पश्चिम स्थित शिल्प



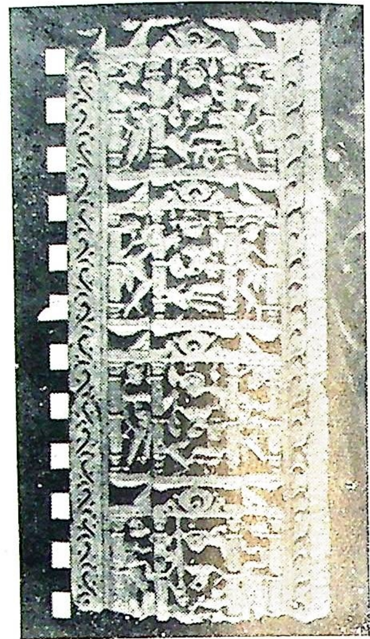
२. पल्लू गाँव में स्थित प्राचीन शिल्प



३. पल्लू गाँव के घर की दीवाल में बना प्राचीन शिल्प



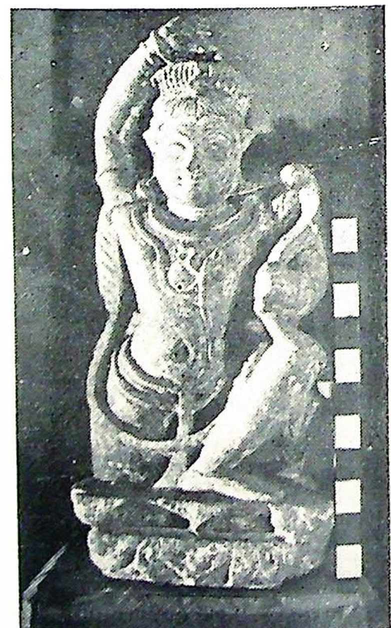
४. विभिन्न मुद्रा में दुर्गा (?) की ३ मूर्तियाँ परिचारिका युक्त (पल्लू) शिल्प का १ हिस्सा



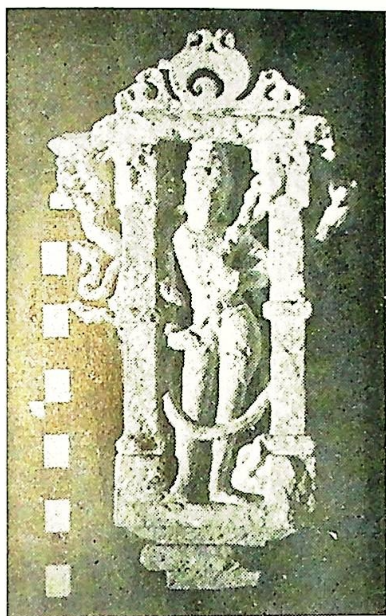
५. नोहर (गंगानगर) ध्यानमुद्रा स्थित लक्ष्मी व नृत्यमुद्रा युक्त



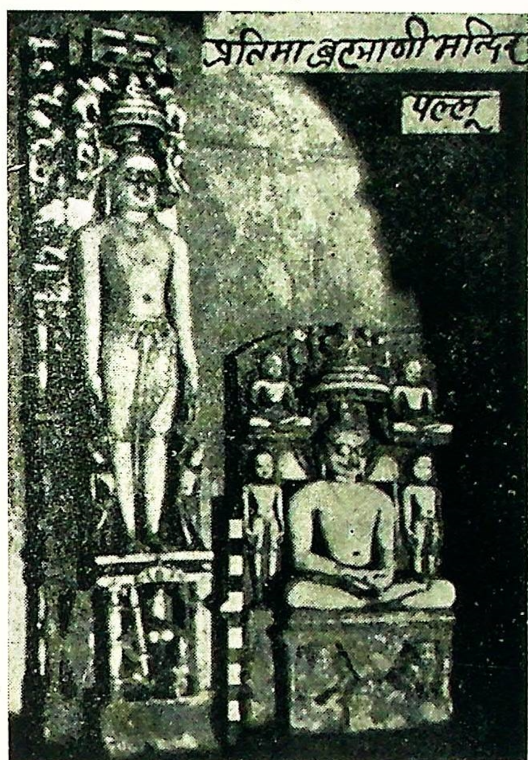
६. पल्लू १. स्तम्भ छतरी में लक्ष्मी अलंकृत (परिचारिकायुक्त उभय पक्ष में) २ नृत्य-गीत रत नर नारी समूह



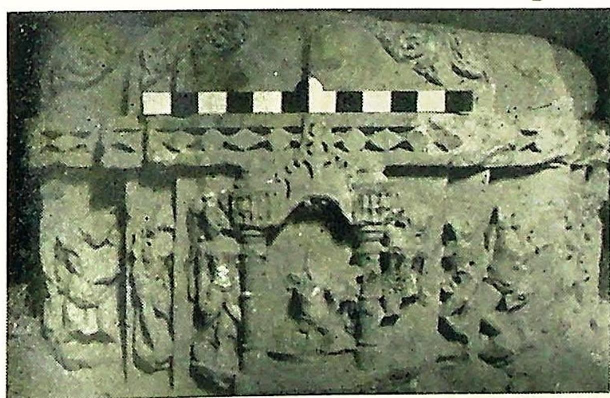
७. पल्लू—धनुर्धर



८. पल्लू—दाता या द्वारपाल



९. ब्रह्माणी माता के मन्दिर स्थित श्वे० जैन प्रतिमाएँ
१ पद्मासन १ खड्गासन



१०. पल्लू—स्तम्भ-तोरणयुक्त प्राचीन शिल्प

पल्लू की प्रस्तर प्रतिमाएं

श्री देवेन्द्र हाण्डा

पल्लू का नाम वहाँसे प्राप्त जैन सरस्वती प्रतिमाओंके कारण कला एवं पुरातत्त्व जगत्में सुविदित हैं. परन्तु बहुत कम लोगोंको अवगत होगा कि पल्लू मध्ययुगीन कलाकेन्द्र होनेके साथ-साथ एक महत्त्वपूर्ण धर्म-स्थान भी रहा है और लगभग दो सहस्राब्दियोंसे मनुष्य तथा प्रकृतिके आघात-प्रतिघात सहन करता हुआ बसा चला आ रहा है. प्रस्तुत लेखमें पल्लूसे प्राप्त प्रागवशेषोंके आधारपर इसकी प्राचीनता, मूर्त्तिकला, धार्मिक महत्ता आदि का ब्योरा विज्ञ पाठकोंके सम्मुख प्रस्तुत किया जा रहा है.[1]

पल्लू की स्थिति

पल्लू उत्तरी राजस्थानमें श्री गंगानगर जिलेकी नौहर तहसीलमें एक ऊंचे थेड़पर बसा छोटासा गाँव है जो सरदारशहर-हनुमानगढ़ सड़कपर सरदारशहरसे लगभग ४० मील उत्तर हनुमानगढ़से लगभग ५५ मील दक्षिण तथा नौहरसे लगभग ५० मील दक्षिण-पश्चिम कोणमें मरुप्रदेशमें स्थित है।

नामकरण

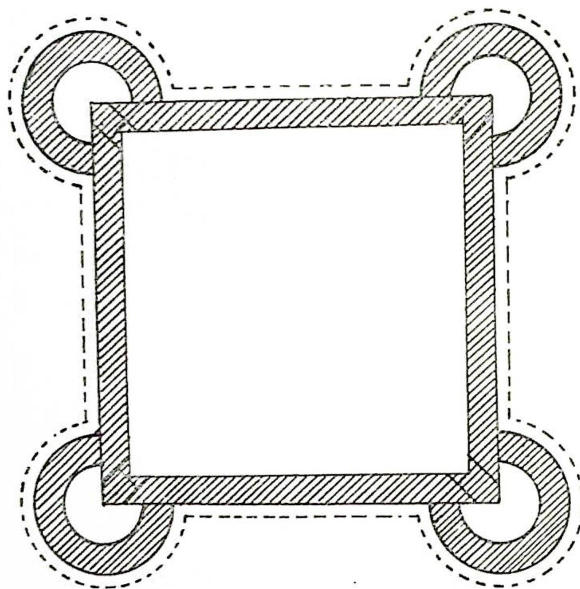
स्थानीय अनुश्रुति तथा 'पल्लू की ख्यात'से पता चलता है कि इसका पुराना नाम कलूर गढ़ (या कोट-कलूर) था और उत्तरमध्यकालमें यह जाटोंका एक महत्त्वपूर्ण ठिकाना था। कलूर गढ़के जाटों तथा पूगलके भाटियोंमें पारस्परिक वैमनस्य था। भाटियोंको नीचा दिखानेके लिए जाटोंने अपनी वीरांगणा राजकुमारी पल्लूका भाटी राजकुमारसे विवाहका षड्यन्त्र रचा। इसमें एक निश्चित योजना के अनुसार 'कंवर कलेवे'में भाटी राजकुमार तथा वर-यात्रामें आये भाटी सरदारोंको विष दे दिया गया। रात हुई तो राजकुमारी पल्लूको सुहागरातके लिए भेजा गया ताकि इस बात का निश्चय भी हो सके कि राजकुमार मर गया है या नहीं। परन्तु अपने पति के अनिन्द्य एवं अप्रतिम सौन्दर्य तथा अपने पिताकी कुभावना जानकर पल्लूका मन विचलित हो उठा और उसने सारी कथा शेष बचे भाटी वीरोंको कह दी। राजकुमार तथा उसके साथी सरदारों का उपचार कर लिया गया तथा जाटों का सफाया किया जाने लगा। एक एक कर पल्लूके सातों भाई भी मारे

---

१. जैन सरस्वती प्रतिमाओंको प्रकाशमें लाने वाले डा० एल० पी० टेस्सिटरीके बाद पल्लूकी सांस्कृतिक धरोहरकी रक्षा करने वाले व्यक्तियोंमें यदि सर्वप्रमुख नाम देखा जाए तो वह है पल्लू पञ्चायत समितिके भूतपूर्व मन्त्री नौहर निवासी श्री मौजीराम भारद्वाजका जिन्होंने कई वर्ष तक पल्लू में रहकर वहांकी सांस्कृतिक तथा ऐतिहासिक सामग्रीकी सुरक्षाके लिए अनेक विध प्रयत्न किए एवं वहां के सिक्के तथा मूर्त्तियां राष्ट्रीय संग्रहालय (नई दिल्ली), राजस्थान पुरातत्त्व विभाग, संगरिया संग्रहालय, गुरुकुल संग्रहालय, झज्झर (हरियाणा) तथा विभिन्न रुचिवान् व्यक्तियों तक पहुँचाये, प्रस्तुत लेखकी अधिकतर सामग्री एवं बहुमूल्य सूचनायें मुझे श्री मौजीरामजी से ही प्राप्त हुई हैं अतः उनके प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करता हूँ।

गये और कलूर गढ़ भाटियोंके अधीन हो गया। भाटियोंने पल्लूके शौर्यको चिर-स्थायी बनानेके लिए कलूर गढ़ का नाम बदलकर पल्लू गढ़ रख दिया जो अभी तक चला आ रहा है।[१]

पल्लूका समीकरण खरतरगच्छपट्टावलिके पल्हुपुर तथा चौहानअभिलेखीय स्थल प्रह्लादकूप से भी किया गया है।[२] किरातकूप से किराडू तथा जांगलकूपसे जांगलू के समान प्रह्लादकूपसे पल्लू की व्युत्पत्ति भाषा-वैज्ञानिक दृष्टिसे तर्क-संगत जान पड़ती है। परन्तु कलूरगढ़ नाम की व्युत्पत्ति अज्ञात है। गढ़ (=कोट) से स्पष्ट है कि उत्तर-मध्यकालमें यहांपर जाटोंका किला था। आज भी यदि पल्लूके थेड़का निरीक्षण ध्यानपूर्वक किया जाये तो इस किले की रूपरेखा कुछ स्पष्ट हो जाती है। चौकोर किलेके चारों किनारों पर गोल बुर्जों तथा चारों ओर परिखाकी सम्भावना चतुष्कोण थेड़ के किनारोंपर गोल-गोल बाहर को बढ़े हुए मिट्टीके ढेरों तथा चारों ओर के निकटवर्ती गड्ढोंसे सहज अनुमेय है। जाटोंका यह किला सम्भवतः निम्नांकित आकृतिका था—



कलूरमें 'ऊर' भाग सम्भवतः पुर का अवशेष है।

प्राचीनता

पल्लूके थेड़के ऊपर तथा इर्द-गिर्द कुछ दूरी तक इसकी प्राचीनताके परिचायक पुराने मृद्भाण्डोंके टुकड़े विकीर्ण हैं। थेड़ तथा आस-पासकी भूमिसे अबतक प्राप्त अवशेषोंमें प्राचीनतम है इण्डो-ग्रीक राजा फिलौक्सिनोस (Philoxenos) की एक ताम्र-मुद्रा[३] जो इस बात की परिचायक है कि पल्लू ईसा पूर्व द्वितीय

२. परमेश्वरलाल सोलंकी, "पल्लू घाटी और उसकी कलाकृतियां", वरदा, वर्ष ४, अंक २ (अप्रैल १९६१) पृष्ठ २०-२१।

३. Dr. Dasharatha Sharma, Early Chauhan Dynasties, Delhi, 1959, pp. 312 and 314.

१. मौजीराम भारद्वाज, 'पल्लू गांवका ब्राह्मणी मन्दिर", सत्य विचार (बीकानेर), दिनांक ८.६.६५, पृष्ठ ३।

शताब्दीमें अस्तित्वमें आ चुका था। थेड़के दक्षिण-पश्चिम भागसे प्रस्तुत लेखकको शुङ्ग-कुषाणकालके रक्त वर्ण मृद्भाण्डोंके टुकड़े भी प्राप्त हुए हैं जो ताम्र-मुद्रासे अनुमेय प्राचीनताकी पुष्टि करते हैं।

श्री मौजीरामजी के सौजन्यसे प्राप्त पल्लूके १०० सिक्कोंमें कुषाण तथा इण्डो-सासानियन राजाओं के ताम्बेके सिक्के (१२ + ५) पल्लूके द्वितीय शती ईसा पूर्वसे तृतीय-चतुर्थ शती ईस्वी तक निरन्तर बसे रहनेका प्रमाण हैं। परन्तु इसके पश्चात् ऐसा जान पड़ता है कि लगभग पांच शताब्दियों तक पल्लूमें कोई बस्ती नहीं रही क्योंकि इस कालके न तो कोई सिक्के ही मिले हैं और न कोई अन्य अवशेष ही[1], फिर भी उत्खननके अभावमें निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। नवीं-दसवीं शताब्दीमें पल्लू फिर बस गया और विभिन्न राजाओं के उत्थान-पतन देखता हुआ यह तबसे निरन्तर बसा चला आ रहा है। मुहम्मद बिन साम की मुद्राओं से ऐसा प्रतीत होता है कि मुस्लिम आक्रमण यहां भी हुआ था और सम्भवतः यहांपर मन्दिर मूर्त्तियोंको खण्डित किया गया। सामन्त देव तथा सोमल देवी की विभिन्न मूल्यों की लगभग ४५ (२० + २५) ताम्र-मुद्राओंके आधारपर यह कहा जा सकता है कि उनके समयमें पल्लू एक प्रसिद्ध स्थान था। जौनपुरके हुसेनशाहकी दो ताम्र-मुद्राएं इस बातकी द्योतक हैं कि चौदहवीं-पन्द्रहवीं शताब्दी में पल्लू तथा आस-पासके क्षेत्रके लोगोंका जौनपुरसे सम्भवतः व्यापारिक सम्पर्क था।[2]

पल्लू की प्रस्तर प्रतिमाएं

शैव प्रतिमाएँ

पल्लू की कलाकृतियोंमें प्राचीनतम है यहांसे प्राप्त भूरे वर्ण के बालुका प्रस्तरका अभिलिखित कीर्तिस्तम्भ, ३३" × १२" के चौकोर इस कीर्तिस्तम्भके एक ओर लिङ्ग रूपमें शिव-पूजन करते हुए एक दम्पति का चित्रण किया गया है तथा दूसरी ओर गणपतिका। स्त्री तथा पुरुष दोनों 'लांग'की धोती पहने दिखाये गये हैं। कण्ठहार, कर्ण कुण्डल, भुजबन्ध, करधनी आदि आभूषणोंसे सुसज्जित इन मूर्त्तियोंका अंकन क्षेत्रीय वस्त्राभूषणोंकी दृष्टिसे महत्त्वपूर्ण है। कीर्तिस्तम्भ पर दम्पति वाली ओर तीन पंक्तियोंके अभिलेखमें केवल प्रथम पंक्ति ही सुपाठ्य है जिसपर इसकी तिथि विक्रम संवत् १०१६ कार्तिक सुदि ११ अंकित है[3]। कीर्तिस्तम्भ दसवीं शताब्दीमें पल्लू क्षेत्रमें शिवपूजनका परिचायक होनेसे धार्मिक दृष्टिसे भी महत्त्वपूर्ण है। डा० हरमन गोयट्ज़का विचार है कि शाकम्भरी तथा अजमेरके चौहानोंने जांगल देशसे लगभग दसवीं शताब्दीमें प्रतिहारोंको हटाकर अपना अधिकार जमाया और इस क्षेत्रमें शैव मन्दिरों की स्थापना की।[4] पल्लूका मन्दिर सम्भवतः उन्हींमें से एक है जिसकी कुछ मूर्त्तियाँ अब भी इधर-उधर बिखरी पड़ी हैं। इनमें महत्त्वपूर्ण प्रतिमाएं निम्नलिखित हैं—

१. उमा-महेश्वरकी हल्के भूरे रंगकी आडावळा पत्थरकी प्रतिमा जो अब बीकानेर संग्रहालयमें है,

---

१. श्री मौजीरामजीके द्वारा राजस्थान पुरातत्त्व विभाग को लगभग २४५ सिक्के दिये गये थे जिनका पूरा विवरण विभागके द्वारा अभी तक प्रकाशित नहीं किया गया है क्योंकि इन मुद्राओंको अभी रासायनिक विधिसे साफ किया जा रहा है। पल्लूकी कुछ मुद्राएं "नगरश्री" संग्रहालय, चूरूमें हैं तथा कुछ अन्य विभिन्न व्यक्तियोंके पास। इन सिक्कोंमें चौथीसे नवीं शती तकका कोई सिक्का उपलब्ध नहीं है।

२. हुसेन शाहकी ताम्र-मुद्राएं धानसिया (तहसील नौहर, जिला श्री गंगानगर)से भी प्राप्त हुई हैं।

३. V. S. Srivastava, Catalogue And Guide To Ganga Golden jubilee Museum, Bikaner, Jaipur, 1961, p25, (185 B. M.) and plate, परमेश्वरलाल सोलंकी, वही, पृष्ठ २२।

४. H. Herman Goetz, Art and Architecture of Bikaner state, Oxford, 1950.

इसमें नन्दी पर सवार शिव पार्वतीको अपनी जंघा पर लिए बैठे हैं, दाईं ओर दण्डधारी ब्रह्मा दिखाए गए हैं तथा नन्दीके नीचे एक उपासक और एक उपासिका।[२]

२. पल्लूके ब्रह्माणी मन्दिरकी दीवारमें जड़ी निम्नांकित प्रतिमाएँ (चित्र १)—[२]

(क) जटामुकुट पहने एक आलेमें चित्रित पार्वतीकी एक सुन्दर स्थानक मूर्ति जिसकी बाईं टाँग टूटी हुई है। कर्णकुण्डल, कण्ठहार, सुन्दर एवं सुशोभित अधोवस्त्र तथा नूपुर स्पष्ट दिखाई देते हैं, दाएँ हाथमें कमण्डलु (?) दिखाया गया है और बाएँमें सर्प। दक्षिण पादके समीप एक छोटी-सी अस्पष्ट प्रतिमा है जो नन्दीकी हो सकती है, बाईं ओर एक सुचित्रित छज्जेके नीचे आलेमें दो स्त्रियाँ दिखाई गई हैं और दाईं ओर इसी प्रकारके आलेमें एक स्त्री।

(ख) भूरे रंगकी बालुका-प्रस्तरकी २'६" × १'६" आकारकी खण्डित चतुर्भुजी प्रतिमा सम्भवतः शिवकी है। मुकुट, कर्णकुण्डल, कण्ठहार, भुजबन्ध तथा अधोवस्त्र दर्शनीय हैं। बाईं ओर तथा सिरके पीछे लता-वेष्टणकी सज्जा है। बाएँ पाँवके पास बाईं ओर मुख किए नन्दीकी छोटी-सी प्रतिमा है।

(ग) जटामुकुट, कर्णकुण्डल, कण्ठी तथा कण्ठहार, भुजबन्ध, करधनी तथा अधोवस्त्र पहने ध्यान मुद्रामें बैठी प्रतिमा सम्भवतः पार्वतीकी है। प्रतिमा दाईं ओर तथा नीचेसे खण्डित है।

(घ) एक छोटेसे आलेमें त्रिभंग मुद्रामें जटा मुकुट, कर्णकुण्डल, कण्ठी, कण्ठहार, करधनी तथा अधोवस्त्र पहने यह प्रतिमा भी सम्भवतः पार्वतीकी है।

(ङ) नन्दीकी खण्डित प्रतिमा।

३. एक स्थानीय ग्रामीणके घरमें लगी हुई कङ्कर-पत्थरकी एक चौखट जिसमें बीचके आलेमें सिंहकी खालके आसन पर पद्मासनमें शिव आसीन हैं। चतुर्भुजी इस प्रतिमाके ऊपरी दाएँ हाथमें त्रिशूल है तथा ऊपरी बाएँ हाथमें कोई अस्पष्ट वस्तु, अन्य दोनों हाथ पद्मासन मुद्रामें अंकमें एक दूसरे पर रखे हैं। शिव जटा मुकुट, कर्णकुण्डल, कण्ठहार आदि अलंकरण धारण किए हैं तथा भुजाओंमें सर्प-वेष्टण है। दोनों ओर नृत्य-मुद्रामें एक-एक पुरुष दिखाया गया है। इन पुरुषोंने सुन्दर पारदर्शी अधोवस्त्र पहिन रखे हैं। कंकर-पत्थरकी होनेके कारण यह मूर्ति काफी घिसी हुई है (चित्र २)।

४. एक घरकी दीवारमें लगी यह प्रतिमा सम्भवतः सिंहवाहिनी दुर्गाकी है। चतुर्भुजी देवी वाम-मुख सिंह पर सुखासनमें विराजमान है। उसके ऊपरी दक्षिण हस्तमें खड्ग है तथा निचले हाथमें चक्र (?), ऊपरी वामहस्तमें पुस्तकके से आकारकी कोई वस्तु है और निचला हाथ वाम जंघा पर टिका है। बाईं ओरके संलग्न आलेमें हाथमें खड़ा दण्ड लिए देवीकी ओर मुख किए एक स्त्री दिखाई गई है। कंकर-पत्थरकी यह प्रतिमा भी काफी घिसी हुई है, फिर भी मूर्तिकारकी कुशलताकी स्पष्ट झलकी प्रस्तुत करती है (चित्र ३)।

५. इस खण्डित चौखटके मध्यमें तीन आलोंमें विभिन्न मुद्राओंमें तीन स्त्रियों, सम्भवतः दुर्गाके विभिन्न रूपोंका अंकन है। इसे दक्षिण हस्तमें खड्ग तथा वाम हस्तमें ऊपरी प्रतिमामें शक्ति (या कमल) तथा नीचेकी दो प्रतिमाओंमें ढाल लिए युद्ध-मुद्रामें दिखाया गया है, अधोवस्त्र का अंकन बहुत ही भव्य है। तीनों प्रतिमाओंमें दोनों ओर विभिन्न मुद्राओंमें परिचारिकाएँ खड़ी हैं जो हाथोंमें वाद्य-यन्त्र लिए हैं या नृत्य-मुद्रामें हैं (चित्र ४)।

---

१. परमेश्वरलाल सोलंकी, वही।

२. सभी चित्र भारतीय पुरातत्त्व विभागके सौजन्यसे प्राप्त हुए हैं।

६. वीकानेर संग्रहालयमें हलके लाल-भूरे बालुका प्रस्तरकी गरुड़ासनमें बैठे चतुर्भुज कीचककी दो प्रतिमाएँ भी सम्भवतः पल्लूके शिव मन्दिरका ही भाग हैं। इन मूर्तियोंमें कीचकका "पेट निकला हुआ है और सिर पीछे भीत पर टिका है। कानोंमें कुण्डल, हाथोंमें भुजबन्ध और मणिमाला, सिर पर मुकुट व छाती और पेटके मध्य बन्धा दुपट्टा बड़ा ही मनोहर है।"[१]

वैष्णव प्रतिमाएँ

पल्लूसे कुछ वैष्णव प्रतिमाएँ भी मिली हैं जिनका विवरण इस प्रकार है—

१. एक खण्डित चौखटके मध्य एकके ऊपर एक चार आलोंमें लक्ष्मी अंकित है, चतुर्भुजी इस देवीके ऊपरी दोनों हाथोंमें कमल दण्ड हैं तथा निचले दाएँ हाथ वरद मुद्रामें एवं निचले बाएँ हाथ कमण्डलु पकड़े हैं जो बाईं जंघाओं पर टिके हैं, लक्ष्मी सुखासनमें बैठी है, उसका वाम पाद आसन पर टिका है तथा दक्षिण पाद नीचे भूमि पर। दोनों ओर एक-एक परिचारिका दिखाई गई है। ये परिचारिकाएँ दो विभिन्न मुद्रा-वर्गोंमें एकके वाद एक बारी बारी से दिखाई गई हैं (चित्र ५)।

२. एक स्तम्भ अलंकृत छज्जेमें एक ऊँचे मञ्च पर बैठी चतुर्भुजी देवी जिसके ऊपरी दोनों हाथोंमें सनाल कमल हैं तथा निचला दक्षिण हस्त वरद मुद्रामें तथा वामहस्त कमण्डलु पकड़े है, लक्ष्मी प्रतीत होती है। देवी मुकुट, कर्णकुण्डल जो कन्धों पर टिके हैं, भुजबन्ध, मणिबन्ध, कण्ठी तथा कण्ठहार एवं नूपुर पहने सुखासनमें विराजमान है। दोनों ओर नृत्य मुद्रामें दो-दो परिचारिकाएँ हैं जिनकी शिरःसज्जा तथा वस्त्राभूषण समान हैं। नीचेकी पट्टिकामें सस्तम्भ आलोंमें और उनके अन्तरिम स्थानोंके बीच वाद्ययन्त्र लिए तथा नृत्य करते हुए आठ स्त्रियोंको विभिन्न मुद्राओंमें अंकित किया गया है। बाएँ हाथकी अन्तिम मूर्ति ऊपरी भागसे खण्डित है। यह पट्टिका मध्य-युगीन संगीतके वाद्य-यन्त्रों तथा तत्कालीन फैशनकी दृष्टिसे महत्त्वपूर्ण है। (चित्र ६)।

३. प्रत्यालीढ आसनमें विष्णुके वाहन गरुड़की भूरे बालुका पत्थरकी यह प्रतिमा जो अपने बाएँ हाथमें एक सर्प पकड़े है तथा दायाँ हाथ सिर पर रखे है पुरुष-रूपमें गरुड़ का एक सुन्दर उदाहरण है। गरुड़ कण्ठहार, भुजबन्ध, कङ्कन एवं अन्य वस्त्राभूषण धारण किए है। पीछेकी ओर कंघी किए बीचमें माँगकी रेखा बनाए बालोंको ऊपर करके फीतेसे बाँधा गया है। नासिका कुछ टूट गई है। पंख पीछेको फैले हुए हैं। ग्यारहवीं शताब्दीकी यह मूर्त्ति पल्लू क्षेत्रकी मध्य-युगीन मूर्त्तिकलाका एक उत्कृष्ट उदाहरण है (चित्र ७)। यह प्रतिमा श्री मौजीराम भारद्वाजके द्वारा राष्ट्रीय संग्रहालय, नई दिल्लीको समर्पित की गई थी और अब यह संग्रहालयकी प्रवेश-द्वारसे लगी वृत्ताकार दीर्घिकामें प्रदर्शित है।

जैन प्रतिमाएँ

पल्लूका नाम भारतके पुरातात्त्विक-मानचित्र पर १९२५-२६ में डा० एल. पी. टैस्सिटरी द्वारा यहाँसे दो जैन सरस्वती मूर्त्तियाँ प्राप्त करने पर आ पाया था। इनमेंसे एक अब वीकानेर संग्रहालयमें है

---

१. वहीं।

२. व्रजेन्द्रनाथ शर्मा, "राष्ट्रीय संग्रहालय, नई दिल्लीमें मध्यकालीन राजस्थानी प्रस्तर प्रतिमाएं" मरुभारती, अक्तूबर १९६४, पृष्ठ ८४; 'Some Medieval Sculptures from Rajasthan in the National Museum, New Delhi", Roop Lekha, vol.xxxv, Nos. 1-2, pp.30-1.

तथा दूसरी राष्ट्रीय संग्रहालय, नई दिल्लीमें सुशोभित हो रही है। लगभग एक-सी ये दोनों मूर्तियाँ कला एवं सुन्दरताकी दृष्टिसे विश्वविख्यात हैं।[1]

ये प्रतिमाएँ श्वेत संगमरमरसे बनी हैं। इनमें चतुर्भुजी सरस्वती देवी त्रिभंग मुद्रामें एक कमलपर खड़ी दिखाई गई है। देवी अपने ऊपरवाले हाथोंमें कमल तथा पुस्तक और नीचेवाले हाथोंमें अक्षमाला तथा कमण्डलु लिए है। देवीके सिरपर रत्नजटित सुन्दर मुकुट है, कानोंमें कुण्डल, कण्ठमें हार, हाथोंमें कङ्कन तथा पावोंमें पायल, मणि-मेखलासे सुशोभित साड़ी अपनेमें अनुपम छटा संजोए है। पीठ पर सरस्वतीका वाहन हंस तथा एक मानवीय चित्र उत्कीर्ण हैं तथा सिरके पीछे प्रभामण्डलके दोनों ओर माला-धारी विद्याधर, मुकुटके ऊपर पद्मासनमें 'जिन'की एक लघु प्रतिमा है तथा पैरोंके दोनों ओर हाथोंमें वीणा लिए परिचारिकाएँ खड़ी हैं। पास ही दानकर्त्ता एवं उसकी पत्नी हाथ जोड़े अंकित किए गए हैं।[2] बीकानेर-वाली प्रतिमा सुन्दर प्रभातोरणमें सुसज्जित है जिसपर वाहनारूढ़ परिवारदेवता, गजसवार तथा कायोत्सर्ग मुद्रामें जैनतीर्थङ्कर छोटे-छोटे आलोंमें प्रदर्शित हैं। इसको "The greatest masterpiece of Medieval Indian art" कहा गया है।[3]

पल्लूके ब्रह्माणी मन्दिरमें ब्रह्माणी देवी तथा उसकी बहिन समझकर पूजी जानेवाली प्रतिमाएँ वास्तवमें जैनतीर्थङ्करोंकी प्रतिमाएँ हैं जिन्हें वहाँके धूर्त पाखण्डी पुजारियोंने घाघरा-ओढ़ना पहनाकर रूप परिवर्तित कर मन्दिरमें स्थापित कर रखा है। इनमें एक स्थानक मूर्त्ति है तथा दूसरी पद्मासनमें, स्थानक तीर्थङ्कर प्रतिमा धोती पहिने है। दोनों पाँवोंके पास एक-एक परिचारककी लघुप्रतिमाएँ हैं। कन्धोंके ऊपर दोनों ओर माला लिए उड़नेकी मुद्रामें विद्याधर अंकित हैं तथा छत्रके दोनों ओर शुण्डिका ऊपर उठाए एक-एक गज प्रतिमा, प्रतिमाके आधारमें दाएँ हाथमें शक्ति लिए सुखासनमें एक देवी (?) अंकित है।[4]

पद्मासनवाली जिन प्रतिमाके आधार पर दो सिंह अंकित हैं, दोनों ओर स्थानक मुद्रामें एक-एक लघु जिन-प्रतिमा तथा उनके ऊपर पद्मासनमें एक-एक अन्य लघु प्रतिमा उत्कीर्ण है। छत्रके ऊपर बद्धाञ्जलि एक किन्नर (?) प्रतिमाके दोनों ओर हाथोंमें माला लिए एक-एक विद्याधर अंकित है। (चित्र ८)।

यह किसीको ज्ञात नहीं कि ये मूर्त्तियाँ कबसे इस मन्दिरमें स्थापित हैं। वर्तमान ब्रह्माणी मन्दिर थेड़के ऊपर स्थित है और १९वीं शताब्दीमें इसका निर्माण हुआ था। जैन सरस्वती प्रतिमाओंसे पल्लूमें एक या एकाधिक सरस्वतीके भव्य मन्दिरोंके अस्तित्वका अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है। पल्लू पर मुसलमानोंके किसी आक्रमणमें ये मन्दिर ध्वस्त किए गए होंगे। मूर्त्तियोंको खण्डित किए जानेकी आशंकासे सम्भवतः पुजारियोंने दोनों सरस्वती प्रतिमाओंको कहीं दबा दिया हो, तभी तो ये मूर्त्तियाँ अखण्डित मिल पाई हैं; यहाँ सरस्वती (ब्रह्माणी) के मन्दिरकी सत्ताकी अनुश्रुति बनी रही होगी और कालान्तरमें थेड़से प्राप्त तीर्थंकर-प्रतिमाओंको ही धूर्त पुजारियोंने अपने स्वार्थ एवं भोली जनताको ठगनेके लिए देवी रूप देकर स्थापित कर दिया होगा—

---

१. Goetz, op. cit., pp. 58 and 85; K. M. Munshi, Saga of Iudian Sculpture, pl. 8; Stella Kramrisch, Sculpture, of India, pp. 184-5, plate XXXIV. 84; Srivastava, op. cit., p.13, plate 1.

२. ब्रजेन्द्रनाथ शर्मा, वही, पृष्ठ ८२–४ तथा ३०–१।

३. Srivastava, op. cit.।

४. संगमरमरकी ऐसी ही एक प्रतिमा नोहरके जैनमन्दिरकी एक दीवारमें जड़ी हुई है।

अन्य प्रतिमाएँ

पल्लूसे कुछ ऐसी प्रतिमाएँ भी मिली हैं जिनका सम्बन्ध किसी धर्म या सम्प्रदाय विशेषसे स्थापित नहीं किया जा सकता। इनमें महत्त्वपूर्ण प्रतिमाएँ निम्नांकित हैं—

१. एक चतुष्कोण आधार पर खड़े दाढ़ी-मूँछोंवाले बद्धाञ्जलि दानीकी प्रतिमा जिसके सिरपर टोपकी तरहका शिरस्त्राण है, सिरके पीछे प्रभामण्डल है, कण्ठमें हार, भुजाओंमें भुजबन्ध तथा मणिबन्ध हैं तथा सुन्दर अधोवस्त्र धारण किए हैं। पार्श्व चैत्यसे उद्भूत कमलपर एक छोटी-सी प्रतिमा वाम-स्कन्धके पास सुशोभित है और बद्धाञ्जलि एकापर लघु-प्रतिमा दक्षिण पादके समीप खड़ी है। कंकर-पत्थरसे बनी इस प्रतिमामें इस क्षेत्रकी शिल्पकारीकी कलात्मक वास्तविकता तथा कलाकारकी सृजनात्मक प्रतिभाकी स्पष्ट झलकी मिलती है।[१]

२. १५"×७½" आकारकी एक प्रस्तर चौखट जिसपर परिचारिकाओं सहित एक स्त्री अपने शिशुको स्तन-पान करा रही है।[२]

३. पालकीमें बैठी एक स्त्रीकी प्रतिमा जिसे दो सेविकाएँ उठाए लिए जा रही हैं। पालकीके नीचे एक छोटा-सा बालक कलश लिए जा रहा है। कंकर-पत्थरकी यह छोटी-सी प्रतिमा अपने अत्यन्त जटिल एवं कलात्मक सम्पादनके लिए महत्त्वपूर्ण है।[३]

४. एक अलंकृत आलेमें मुकुट, कर्णकुण्डल, कण्ठहार, भुजबन्ध, मणिबन्ध, घुटनोंसे ऊपरतकका छोटा-सा पारदर्शी अधोवस्त्र तथा घुटनोंसे नीचे तक लटकती हुई माला पहिने, दायाँ हाथ जंघा पर रखे तथा वक्ष तक उठे वामहस्तमें रज्जुकी सी आकृतिकी कोई वस्तु पकड़े त्रिभङ्ग मुद्रामें खड़े दानी (या द्वारपाल) की कंकर-पत्थरकी यह प्रतिमा भी मूर्त्तिकारकी कुशलता तथा सृजनात्मक प्रतिभाका परिचय देती है। (चित्र ९)।

५. एक अलंकृत आलेमें शोभित खण्डित मूर्त्ति जिसके दोनों ओर विविध प्रकारके वस्त्राभूषण धारण किए तीन-तीन सेवक-सेविकाओंकी खण्डित प्रतिमाएँ हैं सम्भवतः किसी बृहत्स्तम्भका आधार भाग है। वस्त्राभूषणोंकी विविधताके लिए यह महत्त्वपूर्ण है। (चित्र १०)।

इनके अतिरिक्त पल्लूसे प्राप्त लगभग ६४ वास्तु-शिला-खण्ड जो किसी समय पल्लूके भव्य मन्दिरोंके भाग रहे होंगे श्री मौजीराम भारद्वाज द्वारा संगरिया संग्रहालयको दिए गए थे। इनका विस्तृत विवरण प्राप्त नहीं है।

जैन प्रतिमाओंको छोड़कर अन्य सभी प्रतिमाएँ तथा वास्तु-शिला-खण्ड लाल या भूरे बालुका पत्थरके हैं या पाण्डु वर्ण कंकर-पत्थरके। तिथिक्रमसे इन सब अवशेषोंको दसवींसे बारहवीं शताब्दीके बीच रखा जाता है, अवशेषोंसे स्पष्ट है कि इस समय पल्लू एक समृद्ध एवं महत्त्वपूर्ण कलाकेन्द्र तथा धार्मिक स्थल था। आज अगर पल्लूके बृहत् एवं उच्च थेड़का उत्खनन किया जाय तो निश्चय ही यहाँसे राजस्थानके इतिहास, कला तथा संस्कृति पर नवीन प्रकाश डालनेवाले अनेकानेक महत्त्वपूर्ण अवशेष प्राप्त होंगे। ●

---

१. B. N. Sharma, "Some Unpublished Sculhtptures From Rajasthan," The Researcher, vol. V-VI (1964-65), p. 34, plate XI।

२. Srivastava, op. cit., p. 14।

३. यह प्रतिमा श्री मौजीराम भारद्वाज द्वारा सरदारशहरके श्री बभूतमल दूगड़को भेंट दी गई और उन्होंने आगे इसे श्री ओमानन्द जी सरस्वतीको उपहार देकर गुरुकुल संग्रहालय, झज्झर (हरियाणा) पहुँचा दिया है।

ओसियां

डा० ब्रजेन्द्रनाथ शर्मा

ओसियाका वर्तमान ग्राम जोधपुरसे ३२ मील उत्तर-पश्चिममें स्थित है। प्राचीन शिलालेखों एवं प्रशस्तियोंमें इसका नाम उपेश, उपकेश, उवसिशल आदि मिलता है। ओसियाके प्राचीन इतिहासके वारेमें विशेप जानकारी प्राप्त नहीं है; परन्तु इतना ज्ञात है, कि आठवीं शताब्दीमें यह प्रतिहार साम्राज्यमें था। प्रतिहारोंके समयके बने लगभग एक दर्जन मन्दिर आज भी वहाँ विद्यमान हैं, जो उस समयकी उच्चतम भवन निर्माण कलाके परिचायक हैं। प्रतिहारोंकी शक्तिका ह्रास हो जाने पर ओसियां विशाल चौहान साम्राज्यका एक अंग बन गया था। वारहवीं शताब्दीके उत्तरार्धमें यह चौहान राजा कुमार सिंहके शासनमें था। इस समय तक यह एक विशाल नगरके रूपमें परिवर्तित हो चुका था और इसकी सीमायें दूर-दूर तक फैल गई थीं। उत्थानके बाद पतन प्रकृतिका शाश्वत नियम है। यही हाल ओसियांका भी हुआ। 'उपकेश-गच्छप्रवन्ध'से विदित होता है कि तुर्की सेना इस स्थानसे सन् ११९५में होकर गुजरी और उसने इस महत्त्व-पूर्ण एवं सुन्दर नगरको नष्ट कर डाला। यहाँके निवासी ओसवाल जैनी भी इसे छोड़कर दूर-दूरको पलायन कर गये।

मध्य प्रदेशमें स्थित खजुराहोकी भाँति ओसियां भी स्थापत्य एवं मूर्तिकलाके लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। खजुराहोकी भाँति यहाँ भी हिन्दू एवं जैन मन्दिर हैं। ओसियाँके कई मन्दिर तो खजुराहोके मध्य-कालीन मन्दिरोंसे कई शताब्दी प्राचीन हैं। उत्तरी भारतमें एक ही स्थान पर इतने अधिक मन्दिरोंका समूह खजुराहोके अतिरिक्त उड़ीसामें भुवनेश्वरमें ही प्राप्त है। परन्तु ओसियाँमें ही पंचायतन मन्दिरोंकी शैली सर्व प्रथम यहाँके हरिहर मन्दिर प्रस्तुत करते हैं। इन पर उत्कीर्ण देव प्रतिमाओंका अब हम संक्षेपमें वर्णन करेंगे।

हरिहर मन्दिर नं० १ (चित्र १)

यह मन्दिर ओसिया ग्रामके वाहर अलग स्थित है। मन्दिरके गर्भगृहमें कोई प्रतिमा नहीं है, परन्तु द्वार-शीर्षके ऊपर गरुड़ारूढ़ विष्णुकी प्रतिमा है। इसके नीचे चन्द्र, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि, राहु तथा केतु आदि नवग्रहोंका अंकन है। द्वार शाखाओं पर बेल-बूटे, नाग-दम्पतियों तथा नीचे गंगा व यमुना का अपनी सेविकाओंके साथ चित्रण है। इसके वांई ओर ही भीगी वेणियोंसे जल निचोड़ती एक सुन्दरी विशेप रूपसे दर्शनीय है। इस मन्दिरके बाह्य भाग पर नीचे वाली लाईनमें अपने वाहन भैंसे पर विराजमान तथा हाथमें खट्वांग लिये यमकी मूर्ति है। इससे आगे गणेशकी प्रतिमा है। मध्यमें त्रिविक्रमकी कलात्मक प्रतिमा है जिसमें उनका बायां पैर ऊपर उठा हुआ है। इससे आगे चन्द्रकी वैठी मूर्ति है, जिनके शीर्षके पीछे अर्द्ध-चन्द्र स्पष्ट है। अगली ताखमें अग्निकी मूर्ति है, जिनके पीछेसे ज्वाला निकल रही है। यह अपने वाहन मेढे पर विराजमान है। इस मन्दिरके पीछे ऐरावत हाथी पर बैठे इन्द्र हैं और मध्यमें विष्णु तथा शिवकी सम्मिलित प्रतिमा हरिहरकी है (चित्र २)। यह सुन्दर प्रतिमा कलाकी दृष्टिसे अनुपम है। इनके दाहिनी ओर त्रिशूलपुरुष तथा नन्दि और बाईं ओर गरुड़ है (चित्र ३)। इनसे आगे सूर्यकी स्थानक तथा

नन्दि पर बैठे शिवकी मूर्तियाँ हैं । मन्दिरके दाहिनी ओर कुवेरकी मूर्ति है । इसके बाद महिषासुरमर्दिनीकी चतुर्भुजी प्रतिमा है । इन्होंने एक हाथसे महिषमें त्रिशूल घुसेड़ रखा है तथा दूसरे हाथसे उसकी पूँछ पकड़ रखी है । इस आशयकी मूर्तियां मथुरासे भी प्राप्त हुई हैं । मध्यमें भगवान् विष्णुके नरसिंह अवतारकी मूर्ति है, जो गोदीमें लेटे दानव हिरण्यकशिपुका पेट फाड़ रहे हैं । इनके आगे वाली ताखमें बहुमुखी ब्रह्माकी मूर्ति है, परन्तु इसमें महत्त्वपूर्ण यह है कि इनके दाढ़ी नहीं है, जैसा सामान्यतः ब्रह्माकी मूर्तियोंमें देखनेको मिलता है । इनके साथ दो दिक्पालोंकी मूर्तियां हैं, जो काफी खण्डित हो गई हैं ।

इस मन्दिरके ऊपर वाली पंक्तिमें श्रीकृष्णके जीवनसे सम्बन्धित अनेक दृश्य उत्कीर्ण हैं, जिनका अनेक वैष्णव पुराणों जैसा कि भागवत पुराण आदिमें विस्तृत वर्णन मिलता है । इन दृश्योंमें कृष्ण जन्म, पूतना-वध, शकट-भंग, कालिय-दमन, अरिष्टासुर-वध, वत्सासुर-वध, कुवलयापीड-वध, गोवर्धनधारी कृष्ण, आदि अनेक दृश्य अंकित हैं ।

हरिहर मन्दिर नं० १ के चारों ओर एक-एक लघु देवालय है, जिसमेंसे एक तो पूर्ण रूपसे नष्ट हो गया है । इन पर बनी मूर्तियोंमें कंकाली महिषासुर-मर्दिनी तथा श्रृङ्गार-दुर्गा विशेष रूपसे उल्लेखनीय हैं । १२ भुजाओं वाली श्रृङ्गार दुर्गा जो सिंहवाहिनी है, अपने एक हाथसे मांग निकाल रही है तथा बायें हाथसे पैरमें पायल पहिन रही हैं । इस आशयकी अन्य मूर्तियों आवानेरी तथा रोडासे भी प्राप्त हुई हैं, जो सभी समकालीन (८ वीं शती ईसवी) हैं । मुख्य मन्दिरके पीछेके बाईं ओर वाले लघु देवालयमें सूर्यकी स्थानक तथा सूर्य व संज्ञाके पुत्र अश्वारोही रेवंतकी भी कलात्मक प्रतिमायें हैं । पीछेके दाहिनी ओर वाले लघु देवालय पर स्थानक विष्णु तथा गरुड़ासन विष्णुकी मूर्तियां विशेष महत्त्वकी हैं । मुख्य मन्दिरके सामने कौनों पर नृत्य गणपति एवं बैठे कुबेर की मूर्तियां हैं, जो सुख एवं सम्पदा की द्योतक हैं । इसी मन्दिरके बाईं ओर बुद्धावतारकी ध्यानमुद्रामें मूर्ति है ।

हरिहर मन्दिर नं० २

इस मन्दिरके पार्श्व भाग पर भी कृष्णलीलाके विभिन्न दृश्योंके अतिरिक्त, अष्ट-दिक्पाल, गणपति, त्रिविक्रम, विष्णु, हरिहर, सूर्य, शिव, महिषासुरमर्दिनी, नरसिंह भगवान् एवं ब्रह्मादिकी मूर्तियां हैं । यह भी पञ्चायतन प्रकारका मन्दिर था । यहीं पर हमें शिव-पार्वतीके विवाह 'कल्याण सुन्दर'का दृश्य देखनेको मिलता है, जैसी कि प्रतिमायें कामां (भरतपुर), कन्नौज, तथा अलोरा आदि में स्थित हैं ।

हरिहर मन्दिर नं० ३

इस मन्दिर पर भी उपर्युक्त वर्णित दोनों मन्दिरोंकी तरह न केवल कृष्णलीलाके अनेक दृश्य मिलते हैं, वरन् अष्ट-दिक्पाल, शिव, नरसिंह, त्रिविक्रम, सूर्य, गणेश व महिषासुरमर्दिनीकी भी मूर्तियां देखनेको मिलती हैं ।

मन्दिर नं० ४ एवं ५ में मूर्तिकला पहिले की ही तरह है । मन्दिर नं० ४ में सबसे ऊपरी भागमें विष्णुकी खड़ी प्रतिमा है । मन्दिर नं० ५ ओसियांमें बनी बावड़ीके समीप है । इस पर भी दिक्पालोंके अतिरिक्त गणेश, सूर्य, विष्णु एवं महादानवका विनाश करती महिषासुरमर्दिनीकी प्रतिमायें हैं ।

सूर्य मन्दिर

सूर्य पूजा राजस्थानमें विशेष रूपसे प्रचलित थी, जैसा कि वहाँके प्राचीन मन्दिरों एवं प्राप्त प्रतिमाओंसे विदित होता है । ओसियांका सूर्य मन्दिर जो १० वीं शतीमें निर्मित हुआ प्रतीत होता है, कलाकी दृष्टिसे वहाँके सभी मन्दिरोंमें श्रेष्ठ है । परन्तु अभाग्यवश इसके गर्भग्रहमें भी सूर्यकी प्रतिमा नहीं रह पाई

हैं। द्वारशाखाओं पर बनी गंगा व यमुनाकी मूर्तियां भी प्रतिहारकालीन कलाका श्रेष्ठ उदाहरण हैं। यदि इस मन्दिरका निरीक्षण बाईं ओर से आरम्भ करें, तो सर्व प्रथम सर्प-फणोंके नीचे खड़े बलरामकी मूर्ति मिलेगी। इसके बाद दिक्पाल निर्ऋति व कुबेरकी मूर्तियां हैं। अगली प्रतिमामें 'गणपति अभिषेख' दिखाया गया है। इससे अगली पृथ्वीका उद्धार करते भगवान् वराहकी मूर्ति है, जैसी उदयगिरी व एरण तथा महाबलिपुरम्में है। मन्दिरके पृष्ठ भाग पर अश्वारोही रेवन्तकी मूर्ति है, जिनके साथ 'शिकार पार्टी' तथा कुत्ता भी दिखाया गया है। इनके साथ ही सूर्यकी खड़ी प्रतिमा है, जिनके दोनों हाथ खण्डित हो चुके हैं। अगली मूर्तिमें एकमुखी दाढ़ीवाले ब्रह्मा दिखाये गये हैं। इस प्रकारकी ही अन्य प्रतिमा तीर्थराज पुष्करमें भी एक लघु देवालयमें सुरक्षित हैं। मन्दिरके दाहिनी ओर भी नरसिंह अवतार, पार्वती, विष्णु तथा अपने वाहन मकर पर खड़े वरुणकी मूर्तियाँ हैं। परन्तु इनमें सबसे सुन्दर मध्यमें स्थित दशभुजी देवी महिषासुर-मर्दिनीकी मूर्ति है, जो खड्ग, ढाल, धनुष, बाण आदि अनेक आयुध पकड़े हैं। सामनेवाले एक हाथमें पकड़े त्रिशूलसे वह महिषका वध कर रही है, जिसका कटा सिर उनके बायें पैरके पास पड़ा है और कटे धड़से खड्गधारी महिषासुर मानव रूप लेकर देवीसे युद्ध करनेको तत्पर है। कुशल कलाकारने देवीको घोर संग्राममें लीन होनेपर भी उनके मुख पर शांत भाव ही प्रकट किया है, जो इस मूर्तिकी विशेषता है (चित्र ४) इस प्रकारकी अन्य सुन्दर प्रतिमायें जगतके अम्बिका मन्दिर पर भी विद्यमान हैं।

पिप्पलाद माता मन्दिर

सूर्य मन्दिरके दाहिनी ओर गाँवके समीप ही पिप्पालाद माताका पुनीत एवं पवित्र मन्दिर है। इस मन्दिरका सामनेका बहुत अधिक भाग खण्डित हो चुका है। मन्दिरके स्तंभ बड़े ही कलात्मक हैं। इसके गर्भगृहमें एक वेदिका पर कुवेर, महिषासुर-र्मदिनी एवं गणेशकी विशाल प्रतिमायें हैं। धनद कुवेर अपनी पत्नी हरीतिके साथ दाहिने हाथमें चषक तथा बायेंमें धनकी थैली पकड़े बैठे हैं। महिषर्मादिनी तलवार, ढाल, चक्र, घंटा, तथा धनुष लिये हैं और सामनेवाले दाहिने हाथसे महिषका संहार कर रही हैं। इनके बाईं ओर बैठे लम्बोदर गणेश अक्षमाला, परशु, दन्त तथा मोदक लिए हैं। मथुरा तथा उत्तरी भागके अन्य भागोंसे प्राप्त प्रतिमाओंमें साधारणतया कुवेर, गजलक्ष्मी तथा गणेशकी सम्मीलित प्रतिमायें मिली हैं, परन्तु महिषर्मादिनी नहीं मिली हैं। जयपुरके निकट सकरायमाता मन्दिरके विक्रम संवत् ७४९ के एक शिलालेखमें कुवेर, गणेश तथा महिषासुरर्मादिनीकी वन्दना की गई है। सम्भवतः इसीको ध्यानमें रखकर कलाकारने पिप्पलादमाताके मन्दिरमें इन तीनोंकी मूर्तियाँ एक साथ स्थापित करी थी (चित्र ५)। इसी मन्दिरके बाहरी भाग पर भी अष्ट दिक्पालों तथा शिवकी मूर्तिके अतिरिक्त एक अन्य महिषासुरमर्दिनीकी सुन्दर प्रतिमा उत्खनित है। इनके अतिरिक्त कुछ अन्य मन्दिर भी हैं, परन्तु वह बहुत अधिक महत्त्वके नहीं हैं।

सच्चियायमाता मन्दिर

राजस्थानमें और विशेषकर मारवाड़ क्षेत्रमें सचियायमाताकी पूजा विशेष रूपसे प्रचलित थी। शिला-लेखोंमें इनके लिए 'सच्चिका' तथा 'संचिका' आदि नामोंका उल्लेख हुआ है। सचियायमाताका मन्दिर ओसियाँ ग्रामके मध्य एक ऊँची पहाड़ी पर बना है। इस मन्दिरकी स्थापना संभवतः आठवीं शताब्दीमें करी गई थी और उस समयसे बारहवीं शताब्दी तक इसके निरन्तर वृद्धि एवं सुधार होते गये। मन्दिरके गर्भगृहमें उस समय काले पत्थरकी रत्नजटित प्रतिमा प्रतिष्ठित है, जो सोलहवीं शताब्दीसे पूर्वकी प्रतीत नहीं होती। इसकी सुरक्षाके लिए चाँदीके द्वार हैं। अब भी प्रति वर्ष इसकी पूजा हेतु सहस्रों भक्तजन आते हैं, परन्तु किंवदन्तियोंके अनुसार कोई भी ओसवाल देवीके शापके कारण ओसियाँमें स्थायी रूपसे नहीं रहता है। प्रस्तुत प्रतिमामें भी देवीका महिषासुरमर्दिनीका ही स्वरूप है।

इस मन्दिरमें देवीके सौम्य एवं अघोर रूपोंवाली भी अनेक प्रतिमायें हैं। मन्दिरके बाह्य भागपर अनेक पौराणिक कथाओंके दृश्य अंकित हैं। इनके अतिरिक्त शिव-नटेश, सूर्य, गजानन, वराह, नरसिंह, शेषशायी विष्णु, महिषासुरमर्दिनीकी प्रतिमायें हैं। एक स्थान पर सागर-मन्थनका भी चित्रण है। इनके साथ ही साथ हिन्दूधर्मके विभिन्न देवताओंकी जैसे हरिहर, हरिहरपितामह, लक्ष्मीनारायण, उमामहेश्वर तथा अर्धनारीश्वर-शिवकी भी मूर्तियां बना हैं। दिक्पालोंके अतिरिक्त लोक जीवनसे सम्बन्धित भी अनेक दृश्य हैं। मिथुन दृश्योंकी भी झाँकी यहाँ प्रचुर मात्रामें देखनेको मिलती है। मन्दिरमें प्रवेश द्वारके बाईं ओर पवन-पुत्र हनुमान्की भी आदमकद प्रतिमा रखी है।

ओसियांके जैन मन्दिरोंमें महावीरजीका मन्दिर विशेष रूपसे महत्त्वपूर्ण है। यहाँ पर पहिलेसे ही जैनियोंके श्वेताम्बर सम्प्रदायकी प्रमुखता थी, जैसा कि इन मूर्तियों को देखनेसे विदित होता है। मन्दिरके अन्दर व बाहरी भाग पर अनेक जैन देवी-देवताओंकी मूर्तियोंके अतिरिक्त सामाजिक जीवनके दृश्य उत्कीर्ण हैं, जो उस समयके लोगोंके जीवनके अध्ययनके लिए बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। जैनमूर्ति कलाके अध्ययनके लिये भी यह मन्दिर विशेष महत्त्वका है, जिसका अभी तक पूर्ण रूपसे अध्ययन नहीं हो पाया है।

इस प्रकार हमें ओसियांमें विभिन्न धर्मोंका समन्वय देखनेको मिलता है। यहां पर न केवल हिन्दू व जैनधर्म ही पनपे थे, वरन् हिन्दूधर्मके विभिन्न सम्प्रदाय जैसे वैष्णव, शैव, शाक्त, सौर, एवं गाणपत्यके अनुयायी भी एक दूसरेके धर्मोंका आदर करते हुए रहते हैं, इस धारणाके अनुसार कि एक ही देवके अनेक रूप हैं, अतः चाहें उसकी पूजा किसी भी रूपमें क्या न की जाये, वह एक ही देवता की होती है :

'एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति'

—ऋग्वेद, १, १६४, ४६

मध्यप्रदेश की प्राचीन जैन कला

प्रो० कृष्णदत्त वाजपेयी

ललित कलाओंके विकासकी दृष्टिसे भारतके मध्यवर्ती क्षेत्रका विशेष महत्त्व है । प्रागैतिहासिक युगसे लेकर उत्तर-मध्यकाल तक इस भूभागमें ललित कलाएँ अनेक रूपोंमें संवर्धित होती रहीं । नर्मदाके उत्तर विंध्यकी उपत्यकाओंमें आदिम जन एक दीर्घकाल तक शिलाश्रयोंमें निवास करते थे । वे अपनी गुहाओंकी दीवालों और छतोंपर चित्रकारी करते थे । अधिकांश प्राचीन चित्र आज भी इन गुहाओंमें सुरक्षित हैं और तत्कालीन जन-जीवन पर रोचक प्रकाश डालते हैं ।

इस क्षेत्रमें से होकर अनेक बड़े मार्ग जाते थे । ये मार्ग मुख्यतः व्यापारिक सुविधा हेतु बनाये गये थे । धर्म-प्रचार तथा साधारण आवागमनके लिए भी उनका उपयोग होता था । एक बड़ा मार्ग इलाहाबाद जिलेके प्राचीन कौशाम्बी नगरसे भरहुत (जि० सतना), एरन (प्राचीन ऐरिकिण, जि० सागर), ग्यारस-पुर तथा विदिशा होते हुए उज्जैनको जाता था । उज्जैनसे गोदावरी-तट पर स्थित प्रतिष्ठान (आधुनिक पैठन) नगर तक मार्ग जाता था । अन्य बड़ा मार्ग मथुरासे पद्मावती (ग्वालियरके पास पवाया), कान्ति-पुरी (मुरेना जिलेका कुतवार), तुम्बवन (तुमैन, जि० गुना), देवगढ़ (जि० झांसी) होता हुआ विदिशा-को जाता था । तुम्बवनसे एक मार्ग कौशांबीको जोड़ता था । इन मार्गों पर अनेक नगरोंके अतिरिक्त छोटे गाँव भी थे । व्यापारी तथा अन्य लोग जो इन मार्गोंसे यात्रा करते थे, इन मार्गोंके उपयुक्त स्थानों पर मंदिरों, स्तूपों, धर्मशालाओं आदिका निर्माण कराते थे । बड़े नगरों, गांवों तथा वन्यस्थलोंमें अनेक मंदिरों आदिके अवशेष मिले । इनमें जैन स्मारकों तथा कलाकृतियोंकी संख्या बहुत बड़ी है । तुमैन, देवगढ़, चंदेरी, थूबौन, अहार, विदिशा, खजुराहो आदि स्थान जैन वास्तु तथा मूर्तिकलाके प्रमुख केन्द्र बने । मध्यकालमें देशके विभिन्न भागोंमें जैन धर्मका जो इतना अधिक प्रसार हुआ उसका एक मुख्य कारण व्यापारियों द्वारा बहुत बड़ी संख्यामें जैन मंदिरों, मठों, मूर्तियों आदिका निर्माण कराना तथा विद्वानोंको प्रोत्साहन प्रदान करना था ।

मध्यप्रदेश क्षेत्रमें भरहुत तथा सांची बौद्धकलाके आरंभिक केन्द्रोंके रूपमें प्रख्यात हैं । विदिशा, एरन, भुमरा, नचना आदि अनेक स्थलों पर वैष्णव तथा शैवधर्मोंका विकास मौर्य युगसे लेकर गुप्त-युग तक बड़े रूपमें हुआ । जहां तक जैन धर्मका संबंध है, अनुश्रुति द्वारा इस क्षेत्रमें इस धर्मके उद्भव तथा प्रारंभिक विकास पर रोचक प्रकाश पड़ता है । जैन साहित्यमें विदिशा नगरीका उल्लेख बड़े सम्मानके साथ किया गया है, और यह कहा गया है कि इस नगरीमें भगवान् महावीरकी पूजा प्रारंभमें 'जीवन्तस्वामी'के रूपमें होती थी । अनुश्रुतिके आधारपर, अवन्तिके शासक प्रद्योतने इस प्रतिमाको रोरुक (सिंध-सौवीर राज्य)से लाकर विदिशामें प्रतिष्ठापित किया था । इस प्रतिमाके सम्मानमें रथयात्राओंके उत्सव बड़े समारोहके साथ निकलते थे ।

विदिशाके अतिरिक्त उज्जयिनी (उज्जैन)में भी जैनधर्मके प्रारंभिक प्रचारका उल्लेख 'कालका-चार्य-कथानक' आदि ग्रन्थों में उपलब्ध है ।

शुंग-सातवाहन काल (ई० पूर्व दूसरी शतीसे लगभग २०० ई० तक)में विदिशामें यक्ष-पूजाका प्रचलन था। यक्षों तथा यक्षियोंकी अनेक महत्त्वपूर्ण मूर्तियां विदिशासे मिली हैं। कुछ वर्ष पूर्व बेतवा नदीसे यक्ष-यक्षीकी विशाल प्रतिमाएँ प्राप्त हुईं, जो अब विदिशाके संग्रहालयमें सुरक्षित हैं। नाग-पूजाका भी प्रचार विदिशा, पद्मावती, कान्तिपुरी आदि स्थानोंमें बड़े रूपमें हुआ। नाग-नागियोंकी प्रतिमाएँ सर्पाकार तथा मानवाकार दोनों रूपोंमें बनायी जाती थीं।

शक-कुषाण-युग (ई० पूर्व प्रथम शतीसे द्वितीय शती ई०के अंत तक)में कला-केंद्रके रूपमें मथुरा की बड़ी उन्नति हुई। वहां जैन तथा बौद्ध धर्मोका असाधारण विकास हुआ। मूर्ति शास्त्र के महत्त्वकी दृष्टिसे मथुरामें निर्मित प्रारंभिक जैन एवं बौद्ध कलाकृतियां तथा वैदिक-पौराणिक देवोंकी अनेक प्रतिमाएँ उल्लेख-नीय हैं। विविध भारतीय धर्म पूर्ण स्वातंत्र्य तथा सहिष्णुताके वातावरणमें साथ-साथ, बिना ईर्ष्या-द्वेषके मथुरा, विदिशा, उज्जयिनी आदि अनेक नगरोंमें शताब्दियों तक पल्लवित-पुष्पित होते रहे। यह धर्म-सहि-ष्णुता प्राचीन भारतीय इतिहासकी एक बहुत बड़ी विशेषता मानी जाती है।

शक-कुषाण कालमें मथुराके साथ विदिशाका संपर्क बहुत बढ़ा। इन वंशोंके शासकोंके बाद विदिशामें नाग राजाओंका शासन स्थापित हुआ। उनके समयमें मथुरा कलाका स्पष्ट प्रभाव मध्यभारतके पद्मावती, विदिशा आदि नगरोंकी कलाकृतियोंमें देखनेको मिलता है। कलामें बाह्य रूप तथा आध्यात्मिक सौंदर्यके साथ रसदृष्टिका समावेश इस कालसे मिलने लगता है, जिसका उन्मेष गुप्तकाल (चौथीसे छठी शती ई०)में विशेष रूपसे हुआ।

मुख्यतः मथुरामें जैन तीर्थंकर प्रतिमाओंको विशिष्ट लांछन या प्रतीक प्रदान करनेकी बात प्रारंभ हुई। श्रीवत्स चिह्नके अतिरिक्त विविध मंगलचिह्न तथा तीर्थंकरोंसे संबंधित उनके विशेष प्रतीकोंका विधान उनकी प्रतिमाओंमें मथुराकी प्राचीन कलामें देखनेको मिलता है। जैन सर्वतोभद्र (चौमुखी) प्रतिमाएँ भी मथुरामें कुषाणकालसे बनने लगी। इसका अनुकरण अन्य कला केन्द्रोंमें किया गया।

कुछ वर्ष पूर्व विदिशासे तीन दुर्लभ तीर्थंकर मूर्तियोंकी प्राप्ति हुई। इन तीनों पर ब्राह्मी लिपि तथा संस्कृत भाषामें लेख खुदे हैं। दो प्रतिमाओं पर तीर्थंकर चन्द्रप्रभका नाम तथा तीसरी पर तीर्थंकर पुष्पदंतका नाम उत्कीर्ण है। लेखोंसे ज्ञात हुआ है कि तीनों मूर्तियोंका निर्माण गुप्तवंशके शासक 'महाराजाधिराज' रामगुप्तके द्वारा कराया गया। यह रामगुप्त गुप्तसम्राट् चंद्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्यका बड़ा भाई था। उक्त लेखों तथा रामगुप्त नामवाले बहुसंख्यक सिक्कोंसे रामगुप्तकी ऐतिहासिकता सिद्ध हो गयी है।

इन तीनों मूर्तियोंकी कला निस्संदेह मथुरा शैलीसे प्रभावित है। ध्यानमुद्रामें पद्मासन पर स्थिति, अंगोंका विन्यास, सादा प्रभामंडल आदिसे इस बातकी पुष्टि होती है। मथुराकी प्रारंभिक मूर्तियोंकी तरह ये तीनों प्रतिमाएँ भी चारों ओरसे कोरकर बनायी गयी हैं। प्रत्येक तीर्थंकर मूर्तिके दोनों ओर चँवर लिए हुए देवताओंको प्रदर्शित किया गया है। मूर्तियोंकी चौकी पर चक्र बना है। विदिशासे प्राप्त ये तीनों नवीन मूर्तियाँ स्थानीय मटमैले पत्थरकी बनी हैं। उनके लेख सांची तथा उदयगिरिके गुप्तकालीन ब्राह्मी लेखों जैसे हैं।

गुप्तयुगमें जैन कलाकृतियोंका निर्माण विवेच्य क्षेत्रके विविध भागोंमें जारी रहा। विदिशाके पास उदयगिरिकी गुफा संख्या २०में गुप्त-सम्राट् कुमारगुप्त प्रथमके शासन-कालमें तीर्थंकर पार्श्वनाथकी अत्यंत कलापूर्ण मूर्तिका निर्माण हुआ। पन्ना जिलेमें सहेलाके समीप सीरा पहाड़ीसे एक तीर्थंकर प्रतिमा मिली है, जिसका निर्माणकाल लगभग ५०० ई० है।

झांसी जिलाकी ललितपुर तहसीलमें स्थित देवगढ़में गुप्तकालमें तथा पूर्वमध्यकाल (लगभग ६५० से १२०० ई०)में कलाका प्रचुर उन्मेष हुआ। गुप्तकालमें वहां विष्णुके प्रसिद्ध दशावतार-मंदिरका निर्माण हुआ। अगले कालमें यहां बेतवा नदीके ठीक तट पर अत्यंत मनोरम स्थल पर जैन मंदिरोंका निर्माण हुआ। यह निर्माण-कार्य सातवींसे बारहवीं शती तक होता रहा। इस कार्यमें शासकीय प्रोत्साहनके अतिरिक्त व्यवसायी वर्ग तथा जनसाधारणका सहयोग प्राप्त हुआ। फलस्वरूप यहां बहुसंख्यक कलाकृतियां निर्मित हुईं। देवगढ़में जैन धर्मके भट्टारक संप्रदायके आचार्योंने समीपवर्ती क्षेत्रमें जैन धर्मके प्रसारमें बड़ा कार्य किया।

चंदेरी, थूबोन, दुधई, चांदपुर आदि अनेक स्थलोंसे जैन धर्म संबंधी बहुसंख्यक स्मारक तथा मूर्तियां मिली हैं। ये इस बातकी द्योतक हैं कि पूर्वमध्यकालमें जैन धर्मका अत्यधिक विकास हुआ। पूर्वमें खजुराहो (जि० छतरपुर) इस क्षेत्रका एक केंद्र बना, जहां मंदिरोंके अतिरिक्त अनेक कलात्मक मूर्तियां दर्शनीय हैं। पूर्व तथा उत्तर मध्यकाल (१२०० से १८०० ई०)में मध्यप्रदेशके अनेक क्षेत्रोंमें कलाका प्रचुर विकास हुआ। अहार, बीना-बारहा, अजयगढ़, बानपुरा, मोहेन्द्रा, तेरही, दमोह, गंधरावल, ग्वालियर, ग्यारसपुर भानपुरा, बड़ोह-पठारी आदि कितने ही स्थलोंसे जैन कालकी प्रभूत सामग्री उपलब्ध हुई है। इसे देखनेपर पता चला कि वास्तुकला तथा मूर्तिकला अनेक रूपोंमें यहां विकसित होती रही। अधिकांश मंदिरोंका निर्माण नागर-शैली पर हुआ। मूर्तियोंमें प्रतिमा-लक्षणोंकी ओर विशेष ध्यान दिया गया।

पूर्व युगोंके अनुरूप बहुसंख्यक मध्यकालीन जैन कलाकृतियां अभिलिखित मिली हैं। उन पर अंकित लेखोंसे न केवल धार्मिक इतिहासके संबंधमें जानकारी प्राप्त हुई है अपितु राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक तथा भाषात्मक विषयों पर रोचक प्रकाश पड़ा है। मध्यप्रदेशके विभिन्न सार्वजनिक संग्रहालयों तथा निजी संग्रहोंके अतिरिक्त कलाकी विशाल सामग्री आज भी विभिन्न प्राचीन स्थलों पर बिखरी पड़ी है, जिसकी समुचित सुरक्षाकी ओर अब तुरंत ध्यान देना आवश्यक है।



प्राचीन ब्रजमंडलमें जैनधर्मका विकास

श्री प्रभुदयाल मीतल, मथुरा

जैन तीर्थंकरोंका सम्बन्ध—जैन धर्मके २४ तीर्थंकरोंमेंसे कईका घनिष्ठ सम्बन्ध शूरसेन जनपद अर्थात् प्राचीन ब्रजमंडलसे रहा है। जिनसेन कृत 'महापुराण'में जैन धर्मकी एक प्राचीन अनुश्रुतिका उल्लेख हुआ है। उसके अनुसार आदि तीर्थंकर भगवान् ऋषभनाथके आदेशसे इन्द्रने इस भूतलपर जिन ५२ देशोंका निर्माण किया था, उनमें एक शूरसेन भी था, जिसकी राजधानी मथुरा थी। सातवें तीर्थंकर सुपार्श्वनाथका मथुरा से विशेष सम्बन्ध रहा था, जिसके उपलक्षमें कुबेरा देवीने यहाँपर एक स्तूपका निर्माण किया था। उसमें सुपार्श्वनाथजीका बिम्ब प्रतिष्ठित था। वह स्तूप जैन धर्मके इतिहासमें बड़ा प्रसिद्ध रहा है। चौदहवें तीर्थंकर अनन्तनाथजीकी स्मृतिमें भी एक स्तूपके बनाये जानेका उल्लेख मिलता है। बाईसवें तीर्थंकर नेमिनाथजी जैन मान्यताके अनुसार वासुदेव कृष्णके भाई थे, जो शूरसेन जनपदके प्राचीन शौरिपुर राज्य (वर्तमान बटेश्वर, जिला आगरा) के यादव राजा समुद्रविजयके पुत्र थे। उनके कारण शूरसेन प्रदेश और कृष्णका जन्मस्थान मथुरा नगर जैनधर्मके तीर्थस्थान माने जाने लगे थे। तेईसवें तीर्थंकर पार्श्वनाथजी और अन्तिम चौबीसवें तीर्थंकर एवं जैनधर्मके प्रतिष्ठाता महावीरजीका मथुरामें विहार हुआ था। जिस कालमें भगवान् महावीरजी मथुरा पधारे थे, उस समय यहाँके राजा उदितोदय अथवा भीदाम, राजकुमार कंवल और शंवल, नगर सेठ जिनदत्तके पुत्र अर्हद्दास तथा अन्य राजकीय पुरुष एवं प्रतिष्ठित नागरिक जैनधर्ममें दीक्षित हुए थे। उनके कारण साधारण जनतामें भी जैनधर्मका प्रचार होने लगा था।

जम्बूस्वामीका साधना-स्थल—भगवान् महावीरके प्रशिष्य सुधर्म स्वामीसे प्रव्रज्या लेकर जम्बू स्वामीने मथुराके चौरासी नामक स्थलपर तपस्या की थी। २० वर्ष तक मुनिवृत्ति धारण कर तपस्या करनेसे वे कैवल्यज्ञानी हुए थे। ४४ वर्ष तक कैवल्यज्ञानी रहनेके उपरान्त उन्हें सिद्ध पद प्राप्त हुआ था। इस प्रकार ८० वर्षकी आयुमें उन्होंने मोक्ष लाभ किया। जम्बू स्वामी जैनधर्मके अन्तिम केवली माने गये हैं। उनकी तपस्या और मोक्ष-प्राप्तिका केन्द्र होनेसे मथुराका चौरासी नामक स्थल जैनधर्मका 'सिद्ध क्षेत्र' माना जाता है।

जम्बू स्वामीके प्रभावसे सद्गृहस्थोंके अतिरिक्त दस्युओंके जीवनमें भी धार्मिकताका उदय हुआ था। उस समयके कई भयंकर चोर अपने बहुसंख्यक साथियोंके साथ दुष्प्रवृत्तियोंको छोड़कर तप और ध्यानमें लीन हुए थे। मथुराके तपोवनमें उक्त दस्युओंको भी साधु-वृत्ति द्वारा परमगति प्राप्त हुई थी। कालान्तरमें जब चौरासीमें जम्बू स्वामीके चरण-चिह्न सहित मन्दिर बना, तब उनके समीप उन तपस्वी दस्युओंकी स्मृतिमें भी अनेक स्तूप बनवाये गये थे।

देव निर्मित स्तूप—सातवें तीर्थंकर सुपार्श्वनाथजी की स्मृतिमें कुबेरा देवीने मथुरामें जिस स्तूपका निर्माण किया था, वह अत्यन्त प्राचीन कालसे ही जैनधर्मके इतिहासमें प्रसिद्ध रहा है। 'मथुरापुरी कल्प' से ज्ञात होता है कि तेईसवें तीर्थंकर पार्श्वनाथजीके समयमें उसे ईंटोंसे पुनर्निमित किया गया था। वह जैन-धर्मका सबसे प्राचीन स्तूप था, जो कमसे कम तीन सहस्र पूर्व बनाया गया था।

आधुनिक कालके अनेक विदेशी पुरातत्त्व वेत्ताओंने मथुराके कंकाली टीलाकी खुदाई की थी। उसमें जैनधर्मसे सम्बन्धित बड़ी महत्त्वपूर्ण वास्तु-सामग्री प्राप्त हुई। उस सामग्रीमें कुषाण कालीन एक मूर्तिकी अभिलिखित पीठिका है, जो इस समय लखनऊ संग्रहालय (संख्या जे० २०) में है। उस पीठिकाके अभिलेखसे ज्ञात होता है कि कुषाण सं० ७९ (सन् १५७ ई०) में कोट्टिय गणकी वैर शाखाके आचार्य वृद्धहस्तिके आदेशसे श्राविका दिनाने उक्त अर्हत् प्रतिमाको देव निर्मित 'वोद्व स्तूप'में प्रतिष्ठापित किया था।

इस अभिलेखसे सिद्ध होता है कि कुवेरा देवोके स्तूपका नाम 'वोद्व स्तूप' था और यह मथुराके उस स्थलपर बनाया गया था, जिसे अब कंकाली टीला कहते हैं। दूसरी शताब्दीमें ही वह स्तूप इतना प्राचीन हो गया था कि उसके निर्माण-काल और निर्माताके सम्बन्धमें किसीको कुछ ज्ञान नहीं था। फलतः उस कालमें उसे देव निर्मित स्तूप कहा जाने लगा था।

उक्त स्तूपके सम्बन्धमें मान्यता है कि पहले एक मूल स्तूप था, बादमें पाँच बन गये। कालान्तरमें अनेक छोटे-बड़े स्तूप बनाये गये, जिनकी संख्या ५०० से भी अधिक हो गयी थी। उन स्तूपोंके साथ-साथ जैनधर्मके अनेक देवालय और चैत्य भी वहाँ पर समय-समय पर निर्मित होते रहे थे। उन स्तूपों और देवालयोंमें विविध तीर्थंकरोंकी प्रतिमाएँ प्रतिष्ठित की गई थीं। उन सबके कारण वह स्थल मथुरा मंडलमें ही नहीं, वरन् समस्त भारतवर्षमें जैनधर्मका सबसे महत्त्वपूर्ण केन्द्र हो गया था। इसका प्रमाण वहाँके उत्खननमें प्राप्त सैकड़ों मूर्तियाँ और वास्तु-कलावशेष हैं। जैनधर्मसे सम्बन्धित इतनी अधिक और इतने महत्त्वकी पुरातात्त्विक सामग्री किसी अन्य स्थानसे प्राप्त नहीं हुई है। जैन मूर्तियोंके साथ ही साथ कुछ मूर्तियाँ बौद्ध और हिन्दू धर्मोंसे सम्बन्धित भी मिली हैं, जो उस कालके जैनियोंकी धार्मिक उदारता और सहिष्णुताकी सूचक हैं। ऐसा जान पड़ता है, उस स्थलके भारतव्यापी महत्त्वके कारण अन्य धर्मवालोंने भी अपने देवालय वहाँ बनाये थे।

जैनधर्ममें तीर्थ-स्थलोंके दो भेद माने गये हैं, जिन्हें १–सिद्ध क्षेत्र और २–अतिशय क्षेत्र कहा गया है। किसी तीर्थंकर अथवा महात्माके सिद्ध पद या निर्वाण-प्राप्तिके स्थलको 'सिद्ध क्षेत्र' कहते हैं, और किसी देवताकी अतिशयता अथवा मन्दिरोंकी बहुलताका स्थान 'अतिशय क्षेत्र' कहलाता है। इस प्रकारके भेद दिगम्बर सम्प्रदायके तीर्थोंमें ही माने जाते हैं, श्वेताम्बर सम्प्रदायमें ये भेद नहीं होते हैं। दिगम्बर सम्प्रदायके उक्त तीर्थ-भेदके अनुसार मथुरा सिद्ध क्षेत्र भी है और अतिशय क्षेत्र भी। 'सिद्ध क्षेत्र' इसलिये कि यहाँके 'चौरासी' नामक स्थल पर जम्बू स्वामीने सिद्ध पद एवं निर्वाण प्राप्त किया था। यह 'अतिशय क्षेत्र इसलिये है कि यहाँ के कंकाली टीलेके जैन केन्द्रमें देव निर्मित स्तूप के साथ-साथ स्तूपों, देवालयों और चैत्योंकी अनुपम अतिशयता थी।

कंकाली टीलाके उत्खननमें सर्वश्री कनिंघम, हार्डिंग, ग्राउस, बर्गेस और फ्यूरर जैसे विख्यात विदेशी पुरातत्त्वज्ञोंने योग दिया था। वहाँसे जो महत्त्वपूर्ण सामग्री प्राप्त हुई थी, उसमेंसे अधिकांश लखनऊ संग्रहालयमें है। उसका अल्प भाग मथुरा संग्रहालयमें है, और शेष भाग भारत तथा विदेशोंमें बिखरा हुआ है। इसका परिचयात्मक विवरण डॉ० विंसेण्ट स्मिथकी पुस्तक, लखनऊ संग्रहालयके विवरण और डॉ० वोगल कृत मथुरा संग्रहालयके सूचीपत्रसे जाना जा सकता है।

कंकाली टीला प्रायः 1500 वर्ग फीटका एक ऊबड़-खाबड़ स्थल है। इसके एक किनारे पर कंकाली नामकी देवीका एक छोटासा मंदिर बना हुआ है, जिसके नामसे इस समय यह स्थल प्रसिद्ध है। इसकी खुदाईमें 47 फीट व्यासका ईंटोंका एक स्तूप और दो जैन देवालयोंके अवशेष मिले हैं। इसमेंसे जो सैकड़ों

मूर्तियाँ, वास्तु खंड और कलावशेष मिले हैं, उन सबका परिचय देना संभव नहीं है। इस संबंधमें पूर्वोक्त विवरण पुस्तिकाओंसे जाना जा सकता है।

मूर्तियोंमें जो सर्वाधिक महत्त्वकी हैं, उनका संक्षिप्त परिचय यहाँ प्रस्तुत है। कंधों तक जटा फैलाए हुए आदि तीर्थंकर ऋषभनाथजीकी मूर्ति, बलभद्र-वासुदेवके साथ अंकित २२ वें तीर्थंकर नेमिनाथजीकी मूर्ति, और सर्प-फणोंसे आच्छादित २३ वें तीर्थंकर पार्श्वनाथजीकी मूर्ति तो अपने विशिष्ट चिह्नोंसे पहिचान ली गई हैं। इनके अतिरिक्त अन्य तीर्थंकरोंकी जो बहुसंख्यक मूर्तियां हैं, वे विशिष्ट चिह्नोंके अभावमें नहीं पहिचानी जा सकती हैं। जिन मूर्तियोंपर उनके नाम अंकित हैं, उन्हें पहिचान लिया गया है। ये तीर्थंकर मूर्तियां कैवल्य-प्राप्तिके लिये दंडवत् खड़ी हुई और ध्यानावस्थित अवस्था में बैठी हुई—इन दोनों मुद्राओंमें मिली हैं। जैन देवियोंकी मूर्तियोंमें सर्वाधिक महत्त्वकी सरस्वती प्रतिमा है, जो लखनऊ संग्रहालय (सं० जे० २४) में है। यह अभिलिखित है, और अबतक मिली हुई सरस्वतीकी मूर्तियोंमें सबसे प्राचीन है। दूसरी आदि तीर्थंकर ऋषभनाथकी यक्षिणी चक्रेश्वरी देवीकी प्रतिमा है, जो दसवीं शतीकी है, और इस समय मथुरा संग्रहालयमें प्रदर्शित है। इनके अतिरिक्त सर्वतोभद्र अर्थात् चतुर्मुखी मूर्तियां भी हैं। इनमेंसे अनेक मूर्तियोंपर उनके निर्माण-काल और निर्माताओंके नाम अंकित हैं। इनसे जैन मूर्ति कलाके विकासको भली भांति समझा जा सकता है।

मूर्तियोंसे भी अधिक महत्त्वके वे आयाग पट हैं, जो जैन मूर्तियोंके निर्माणके पूर्वकी स्थितिके परिचायक हैं। जब जैनधर्ममें मूर्तियोंका प्रचलन नहीं हुआ था, तब शिलाखंडोंपर जैनधर्मके मांगलिक चिह्नोंका अंकनकर उन्हें तीर्थंकरोंके प्रतीक रूपमें पूजाके लिये प्रतिष्ठित किया जाता था। उक्त शिलाखंडोंको 'आयाग पट' कहते हैं। इस प्रकारके कई पट कंकालीकी खुदाईमें मिले हैं, जो लखनऊ और मथुराके संग्रहालयोंमें प्रदर्शित हैं। उक्त पूजनीय पटोंके अतिरिक्त अनेक कलात्मक पट भी कंकालीसे मिले हैं। उनमें सबसे प्राचीन पट शुंगकाल (दूसरी शती पूर्व) के हैं। ऐसे एक शिलापटमें भगवान् ऋषभनाथजीके समक्ष नीलांजना अप्सराके नृत्यका दृश्य अंकित है। यह प्राचीन भारतीय नृत्यकी मुद्राका अंकन है, जो मथुरा मंडलके विगत कलात्मक वैभवको प्रकट करता है। शुंग कालीन एक अन्य शिलापट किसी धार्मिक स्थलका तोरण है। इसके एक ओर यात्राका दृश्य है, और दूसरी ओर सुपर्णों तथा किन्नरों द्वारा स्तूप के पूजनका दृश्य है। अनेक पटोंपर सुंदरियोंकी विभिन्न चेष्टाओं और मुद्राओंके दृश्य अंकित हैं। इनसे प्राचीन जैनधर्मकी कलात्मक अभिरुचिका भली-भांति परिचय मिलता है।

मथुरामंडलके वे दोनों जैन केन्द्र—१. जम्बू स्वामीका निर्वाण-स्थल और २. देवनिर्मित स्तूप तथा उसके समीप बने हुए बहुसंख्यक देवालयोंसे समृद्ध कंकाली टीला—अपने निर्माणकालसे अनेक शताब्दियों पश्चात् तक समस्त जैनियोंके लिये समान रूप से श्रद्धास्पद थे। मगध जनपद और दाक्षिणात्य क्षेत्रोंके जैन-संघ कालांतरमें दिगंबर और श्वेतांबर नामक दो संप्रदायोंमें विभाजित हो गये थे, किन्तु प्राचीन व्रजमंडलका जैनसंघ उस भेद-भावसे अछूता रहा, और यहाँके देव-स्थान सभी संप्रदाय वालोंके लिये पूजनीय बने रहे थे।

प्राचीन व्रजमंडलमें जैनधर्मकी इन महत्त्वपूर्ण उपलब्धियोंके साथ ही साथ इस भू-भागमें समय-समय पर ऐसी अनेक महत्त्वपूर्ण घटनाएँ भी हुई हैं, जिन्होंने जैनधर्मके इतिहासमें गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त किया है। यहाँ पर ऐसी कतिपय घटनाओंका उल्लेख किया जाता है।

'सरस्वती'-आन्दोलन और 'जिन वाणी' का लेखन—जैनधर्म के मूल सिद्धांत भगवान् महावीर

द्वारा कथित अर्धमागधी प्राकृत भाषामें हैं, जिन्हें 'जिन-वाणी' अथवा 'आगम' कहा जाता है। वैदिक संहिताओंकी भांति जैन आगम भी पहले श्रुत रूप में थे। सम्राट् अशोकने बौद्धधर्मके प्रचारार्थ अपने साम्राज्य के विविध स्थानोंमें जो धर्म-लेख लिखवाये थे, उनसे जैनधर्मके विद्वानोंको भी आगमोंको लिखित रूपमें सुरक्षित करनेकी आवश्यकता प्रतीत होने लगी; किंतु जैनाचार्योंके प्रबल विरोधके कारण उन्हें लिपिबद्ध नहीं किया जा सका था। जब कई शताब्दियों तक अन्य स्थानोंके जैनाचार्य आगमोंको लिपिबद्ध नहीं कर सके, तब मथुरामंडलके जैन विद्वानोंने उक्त प्रश्नको उठाया, और 'सरस्वती आंदोलन' द्वारा इस विषयका नेतृत्व किया था।

विद्या बुद्धि और ज्ञान-विज्ञानकी अधिष्ठात्री देवीका नाम सरस्वती है। इसे ब्राह्मी, भारती, भाषा और गीर्वाणवाणी भी कहते हैं। यद्यपि सरस्वतीकी मूल कल्पना प्राचीन है, तथापि इसके स्वरूपका विकास और पूजनका प्रचार जैनधर्मकी देन है। मथुराके जैन विद्वानोंको यह श्रेय प्राप्त है कि उन्होंने परंपरागत श्रुत एवं कंठस्थ 'जिन वाणी' को लिखित रूप प्रदान करनेके लिये 'सरस्वती आंदोलन' चलाया था, और मथुराके मूर्ति-कलाकारोंने सर्वप्रथम पुस्तकधारिणी सरस्वती देवीकी प्रतिमाएँ निर्मितकर उस आंदोलनको मूर्त्त रूप प्रदान किया था। उक्त आंदोलन का यह परिणाम हुआ कि जिन-वाणीको लिपिवद्ध करनेका विरोध क्रमशः कम होता गया। पहिले दिगंबर विद्वानोंने आगम ज्ञानको संकलित कर लिपिवद्ध किया, बादमें श्वेतांबर विद्वान् भी उसके लिये सहमत हो गये। यद्यपि इस कार्यमें कई शताब्दियों तक ऊहापोह होता रहा था।

'माथुरी-वाचना'—दिगंबर विद्वानों द्वारा आगमोंके संकलन और लेखनसे उत्पन्न स्थितिपर विचार करनेके लिये सं 370 वि० के लगभग मथुरामें श्वेतांबर यतियोंका एक सम्मेलन हुआ, जिसकी अध्यक्षता आर्य स्कंदिलने की थी। उस सम्मेलनमें आगमोंका पाठ निश्चित कर उनकी व्याख्या की गई, जिसे 'माथुरी वाचना' कहा जाता है। उसी समय आगमोंको लिपिवद्ध करनेपर भी विचार किया गया, किंतु भारी मतभेद होनेके कारण तत्संबंधी निर्णय स्थगित करना पड़ा। बादमें विक्रमकी छठी शताब्दीके आरंभमें सुराष्ट्रके वल्लभी नगरमें देवर्धिगणी क्षमा-श्रमणकी अध्यक्षतामें श्वेतांबर मान्यताके आगमोंको सर्वप्रथम संकलित एवं लिपिवद्ध किया गया था। श्वेतांबर साधु जिनप्रभ सूरि कृत 'मथुरापुरी कल्प'में लिखा है, जब शूरसेन प्रदेशमें द्वादशवर्षीय भाषण दुर्भिक्ष पड़ा था, तब आर्य स्कंदिलने संघको एकत्र कर आगमोंका अनुयोग किया था। मथुराके प्राचीन देवनिर्मित स्तूपमें एक पक्षके उपवास द्वारा देवताकी आराधनाकर जिनप्रभ श्रमणने दीमकोंसे खाये हुए त्रुटित 'महानिशीथ सूत्र' की पूर्ति की थी।

साहित्य-प्रणयन—जैनधर्मका प्राचीन साहित्य अर्धमागधी प्राकृतमें है, जिसे 'जैन प्राकृत' कहा जाता है। बादका साहित्य संस्कृत, अपभ्रंश और प्रांतीय भाषाओंमें रचा हुआ उपलब्ध है। प्राचीन साहित्यमें प्रमुख स्थान आगमोंका है। उनके पश्चात् पुराणोंका महत्त्व माना जाता है। पुराणोंमें जैन तीर्थंकरोंकी महिमाका वर्णन किया गया है। उनके साथ राम और कृष्णका भी उल्लेख हुआ है; किंतु उनके चरित्र जैन विद्वानों ने वैष्णव विद्वानोंकी अपेक्षा कुछ भिन्न दृष्टिकोणसे लिखे हैं। वासुदेव कृष्णको तीर्थंकर नेमिनाथजीका भाई माना गया है, अतः कृष्णके पिता वसुदेव, भाई वलभद्र और पुत्र प्रद्युम्नके चरित्र लिखनेमें जैन विद्वानोंने बड़ी रुचि प्रकट की है। ऐसे ग्रंथोंमें जिनसेनाचार्य कृत 'हरिवंश पुराण' विशेष रूपसे उल्लेखनीय है। यह 66 सर्गोंका विशाल ग्रंथ है। इसकी रचना सं० 840 में हुई थी। इसके आरंभिक सर्गोंमें अन्य तीर्थंकरोंका संक्षिप्त कथनकर 18 वें सर्ग से 61 सर्ग तक तीर्थंकर नेमिनाथजीका और उनके साथ वसुदेव, वासुदेव, कृष्ण, वलभद्र तथा प्रद्युम्नका अत्यंत विशद वर्णन किया गया है। सबके अंतमें भगवान् महावीरका चरित्र वर्णित है।

उस कालके ग्रंथोंमेंसे जो ग्रंथ ब्रजमंडलमें रचे गये थे, उनका प्रामाणिक विवरण उपलब्ध नहीं है। ऐसा अनुमान है संस्कृत, शौरसेनी प्राकृत और शौरसेनी अपभ्रंशमें कुछ ग्रंथ अवश्य रचे गये होंगे, जो कालके प्रवाहमें नष्ट हो गये। कालांतरमें जो ग्रंथ ब्रजभाषामें रचे गये थे, वे अब भी विद्यमान हैं, और उनसे ब्रजमंडल के जैन विद्वानोंकी साहित्य-साधनापर अच्छा प्रकाश पड़ता है।

हूणों का आक्रमण—मौर्य-शुंग कालके पहिलेसे लेकर गुप्त शासनके बाद तक, अर्थात् एक सहस्रसे अधिक काल तक प्राचीन ब्रजमंडलमें जैनधर्मसे संबंधित इमारतें प्रायः अक्षुण्ण रही थीं। उस कालमें जैन धर्मकी उत्तरोत्तर उन्नति करता रहा था। गुप्त शासनके अंतिम कालमें जब असभ्य हूणोंने प्राचीन ब्रजमंडल पर आक्रमण किया, तब उन्होंने यहाँकी अन्य इमारतोंके साथ ही साथ जैन इमारतोंको भी बड़ी हानि पहुँचाई थी। यहाँका सुप्रसिद्ध देव निर्मित स्तूप उस कालमें क्षतिग्रस्त हो गया था, और अन्य स्तूप एवं मंदिर-देवालय भी नष्टप्राय हो गये थे।

देवस्थानोंका जीर्णोद्धार और धार्मिक स्थितिमें सुधार—हूणोंके आक्रमणसे प्राचीन ब्रजमंडलकी जो इमारतें क्षतिग्रस्त हो गई थीं, उनके जीर्णोद्धारका श्रेय जिन श्रद्धालु महानुभावोंको है, उनमें वप्पभट्टि सूरिका नाम उल्लेखनीय है। 'विविध तीर्थकल्प' से ज्ञात होता है कि वप्पभट्टि सूरिने अपने शिष्य ग्वालियर नरेश आमराजसे सं० 826 वि० में मथुरा तीर्थका जीर्णोद्धार कराया था। उसी समय ईंटोंसे बना प्राचीन 'देवनिर्मित स्तूप', जो उस समय जीर्णावस्थामें था, पत्थरोंसे पुनर्निर्मित किया गया और उसमें भ० पार्श्वनाथ-जीके जिनालय एवं भ० महावीरजीके बिम्ब की स्थापना की गई थी। वप्पभट्टि सूरिने मथुरामें एक मंदिरका निर्माण भी कराया था, जो यहाँपर श्वेतांबर संप्रदायका सर्वप्रथम देवालय था।

बौद्धधर्मके प्रभावहीन और फिर समाप्त हो जानेपर मथुरामंडलमें जो धर्म अच्छी स्थितिमें हो गये थे, उनमें जैनधर्म भी था। 10 वीं, 11 वीं और 12 वीं शताब्दियोंमें यहाँपर जैनधर्मकी पर्याप्त उन्नति होनेके प्रमाण मिलते हैं। उस कालमें मथुरा स्थित कंकाली टीलाके जैन केन्द्रमें अनेक मंदिर-देवालयोंका निर्माण हुआ था और उनमें तीर्थंकरोंकी मूर्तियाँ प्रतिष्ठित की गई थीं। उस कालकी अनेक लेखांकित जैन मूर्तियाँ कंकाली टीलेकी खुदाईमें प्राप्त हुई हैं। मथुराके अतिरिक्त प्राचीन शौरिपुर (बटेश्वर, जिला आगरा) भी उस कालमें जैनधर्मका एक अच्छा केन्द्र हो गया था और वहाँ प्रचुर संख्यामें जैन मंदिरोंका निर्माण हुआ था।

महमूद गज़नवीके आक्रमणका दुष्परिणाम—सं० 1074 में जब महमूद गज़नवीने मथुरापर भीषण आक्रमण किया था, तब यहाँके धार्मिक स्थानोंकी बड़ी हानि हुई थी। कंकाली टीलाका सुप्रसिद्ध 'देवनिर्मित स्तूप' भी उसी कालमें आक्रमणकारियोंने नष्ट कर दिया था, क्योंकि उसका उल्लेख फिर नहीं मिलता है। ऐसा मालूम होता है, उक्त प्राचीन स्तूपके अतिरिक्त कंकाली टीलाके अन्य जैन देवस्थानोंकी बहुत अधिक क्षति नहीं हुई थी, क्योंकि उससे कुछ समय पूर्व ही वहाँ प्रतिष्ठित की गई जैन प्रतिमाएँ अक्षुण्ण रूपमें उपलब्ध हुई हैं। संभव है, जैन श्रावकों द्वारा उस समय वे किसी सुरक्षित स्थानपर पहुँचा दी गई हों, और बादमें स्थिति ठीक होनेपर उन्हें प्रतिष्ठित किया गया हो।

महमूद गज़नवीके आक्रमण कालसे दिल्लीके सुल्तानोंका शासन आरंभ होने तक अर्थात् 11 वीं से 13 वीं शतियों तक मथुरामंडलपर राजपूत राजाओंका शासनाधिकार था। उस कालमें यहाँ जैनधर्मकी स्थिति कुछ ठीक रही थी। उसके पश्चात् वैष्णव संप्रदायोंका अधिक प्रचार होनेसे जैनधर्म शिथिल होने लगा था।

जैन तीर्थोंकी यात्रा—वैष्णव संप्रदायोंका अधिक प्रचार होनेसे इस कालमें जैनधर्मका प्रभाव तो घट गया था, किंतु जैन देवस्थानोंके प्रति जनताकी श्रद्धा बनी रही थी। वैष्णव संप्रदायोंका केन्द्र बननेसे पहिले मथुरा नगर जैनधर्म का प्रसिद्ध केन्द्र था। श्वेतांबर और दिगंबर दोनों संप्रदायोंके जैन साधु और श्रावकगण मथुरा तीर्थकी यात्रा करने आते थे। ऐसे अनेक तीर्थ-यात्रियोंका उल्लेख जैनधर्मके विविध ग्रंथोंमें हुआ है। सुप्रसिद्ध शोधक विद्वान् श्री अगरचंदजी नाहटाने उक्त उल्लेखोंका संकलनकर इस विषयपर अच्छा प्रकाश डाला है।[1] उनके लेखसे ज्ञात होता है कि प्रथम शतीसे सतरहवीं शती तक जैन यात्रियोंके आनेका क्रम चलता रहा था। मथुरा तीर्थकी यात्रा करनेवाले जैन यात्रियोंमें सर्वप्रथम मणिधारी जिनचंद्र सूरिका नाम उल्लेखनीय है। 'युग प्रधान गुर्वावली' के अनुसार उक्त सूरिजीने सं० 1214–17 के कालमें मथुरा तीर्थकी यात्रा की थी। उक्त गुर्वावलमें खरतर गच्छके 14 शताब्दी आचार्य जिनचंद्र सूरिके नेतृत्वमें ठाकुर अचल द्वारा संगठित एक बड़े संघ द्वारा भी यात्रा किये जाने का उल्लेख हुआ है। वह यात्री-संघ सं० 1374 में मथुरा आया था। उसने मथुराके सुपार्श्व और महावीर तीर्थोंकी यात्रा की थी। मुहम्मद तुगलकके शासन काल (सं० 1382–सं० 1408) में कर्णाटकके एक दिगंबर मुनिकी मथुरा यात्राका उल्लेख मिलता है। उसी कालमें समराशाहने शाही फरमान प्राप्तकर एक बड़े यात्री-संघका संचालन किया था। उसी संघके साथ यात्रा करते हुए गुजरातके श्वेतांबर मुनि जिनप्रभ सूरि सं० 1385 के लगभग मथुरा पधारे थे। उन्होंने यहाँके जैन देवालयोंके दर्शन और जैन स्थलोंकी यात्रा करनेके साथ ही साथ व्रजके विविध तीर्थोंकी भी यात्रा की थी। उक्त यात्राके अनंतर जिनप्रभ सूरिने सं० 1388 में 'विविध तीर्थ कल्प' नामक एक बड़े ग्रंथकी रचना प्राकृत भाषामें की थी, उसमें उन्होंने जैन तीर्थोंका विशद वर्णन किया है। इस ग्रंथका एक भाग 'मथुरापुरी कल्प' में है, जिसमें मथुरा तीर्थसे संबंधित जैन अनुश्रुतियोंका उल्लेख हुआ है। इसके साथ ही उसमें मथुरामंडलसे संबंधित कुछ अन्य ज्ञातव्य बातें भी लिखी गई हैं। उनसे यहाँकी तत्कालीन धार्मिक स्थितिपर अच्छा प्रकाश पड़ता है।

कृष्ण-भक्तिके प्रचार और सुलतानोंकी नीतिका प्रभाव—जब व्रजमंडलके कृष्ण-भक्ति का व्यापक प्रचार हुआ, तब यहाँके बहुसंख्यक जैनी जैनधर्मको छोड़कर कृष्ण-भक्तिके विविध संप्रदायोंके अनुयायी हो गये थे। नाभा जी कृत 'भक्तमाल' और वल्लभ संप्रदायी 'वार्ता' में ऐसे अनेक जैनियोंके नाम मिलते हैं। जैनधर्मकी उस परिवर्तित परिस्थितिमें व्रजमंडलके जैन स्तूप-मंदिर, देवालय आदि उपेक्षित अवस्थामें जीर्ण-शीर्ण होने लगे थे। फिर दिल्लीके तत्कालीन मुसलमान सुलतान अपने मज़हबी तास्सुबके कारण बार-बार आक्रमण कर उन्हें क्षति पहुँचाया करते थे। सेठ समराशाह जैसे धनी व्यक्ति समय-समय पर उनकी मरम्मत कराते थे, किन्तु वे बार-बार क्षतिग्रस्त कर दिये जाते थे। इस प्रकार मुगल सम्राट् अकबरके शासन-कालसे पहिले मथुरा तीर्थका महत्त्व जैन धर्मकी दृष्टिसे कम हो गया था, और वहाँके जैन देव-स्थानोंकी स्थिति शोचनीय हो गयी थी।

कृष्ण-भक्तिके वातावरणमें रचित जैन ग्रंथ—श्रीकृष्णके पुत्र प्रद्युम्नके संबंधमें जैन मान्यताका सर्वप्रथम व्रजभाषा ग्रंथ सुधार अग्रवाल कृत 'प्रद्युम्न चरित' है। यह एक सुन्दर प्रबंध काव्य है 'व्रजभाषाके अद्यावधि प्राप्त ग्रंथोंमें सबसे प्राचीन' होनेके साथ ही साथ यह हिन्दी जैन ग्रंथके रूपमें भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इसका रचना-काल १४वीं शताब्दी है। इस ग्रंथके पश्चात् जो हिन्दी जैन रचनाएँ प्रकाशमें आईं, उनमेंसे

---

१. 'व्रज भारती', वर्ष ११, अंक २ में प्रकाशित—'मथुराके जैन स्तूपादिकी यात्रा।'

अधिकतर मुगल सम्राट् अकबरके शासनकालकी, अथवा उसके बादकी हैं। उनमें भी अधिकांश अकबरकी राजधानी आगरा अथवा उसके निकटवर्ती स्थानोंमें रची गई थीं।

अकबर कालीन स्थिति—मुगल सम्राट् अकबरका शासनकाल व्रजमंडलके लिये बड़ा हितकर और यहाँके धर्म-सम्प्रदायोंके लिये बड़ा सहायक सिद्ध हुआ था। उससे जैन धर्मावलम्बी भी प्रचुरतासे लाभान्वित हुए थे। उस कालके पहिले व्रजमंडलमें मथुरा और बटेश्वर (प्राचीन शौरिपुर) और उनके समीपस्थ ग्वालियर जैन धर्मके केन्द्र थे। अकबरके शासनकालमें उसकी राजधानी आगरा नगर जैनधर्मका नया और अत्यन्त शक्तिशाली केन्द्र बन गया था। मथुरा, बटेश्वर और ग्वालियरका तो धार्मिक एवं सांस्कृतिक महत्त्व था; किन्तु आगरा राजनैतिक कारणोंसे जैन केन्द्र बना था।

सम्राट् अकबर सभी धर्म-सम्प्रदायोंके प्रति उदार थे। वे सबकी बातोंको ध्यानपूर्वक सुनते थे, और उनमेंसे उन्हें जो उपयोगी ज्ञात होतीं, उन्हें ग्रहण करते थे। वे जैनधर्मके मुनियोंको भी आमंत्रित कर उनका प्रवचन सुना करते। उन्होंने अन्य विद्वानोंके अतिरिक्त गुजरातके विख्यात श्वेतांबराचार्य हीरविजय सूरिको बड़े आदरपूर्वक फतेहपुर सीकरी बुलाया था, और वे प्रायः उनके धर्मोपदेश सुना करते थे। इस कारण मथुरा-आगरा आदि समस्त व्रजमंडलमें बसे हुए जैनियोंमें आत्म-गौरवका भाव जाग्रत हुआ था। वे मंदिर-देवालयोंके नव-निर्माण अथवा जीर्णोद्धारके लिये भी तब प्रयत्नशील होने लगे थे। आचार्य हीरविजय सूरि जी स्वयं मथुरा पधारे थे। उनकी यात्राका वर्णन 'हीर सौभाग्य काव्य' के १४वें सर्गमें हुआ था। उसमें लिखा है, सूरि जीने मथुरामें विहारकर वहां पार्श्वनाथ और जम्बूस्वामीके स्थलों तथा 527 स्तूपोंकी यात्रा की थी।

अकबरके शासनकालसे आगरा नगर जैनधर्मका प्रमुख साहित्यिक केन्द्र हो गया था। वहांके अनेक विद्वानों, कवियों और लेखकोंने बहुसंख्यक ग्रंथोंकी रचना कर जैनधर्मकी साहित्यिक समृद्धि करनेके साथ ही साथ व्रजभाषा साहित्यको भी गौरवान्वित किया था।

साहू टोडर और मंत्रीश्वर कर्मचंद—अकबरके शासनकालमें वे दोनों प्रतिष्ठित जैन-भक्त मथुरा तीर्थकी यात्रा करने गये थे। साहू टोडर भटानिया (जिला कोल, वर्तमान अलीगढ़) के निवासी गर्ग गोत्रीय अग्रवाल जैन पासा साहूके पुत्र थे। वे अकबरी शासन के एक प्रतिष्ठित राजपुरुष होनेके साथ ही साथ धनाढ्य सेठ भी थे। उन्होंने प्रचुर धन लगाकर मथुरामंडलके भग्न जैन स्तूपों और मंदिरोंके जीर्णोद्धारका प्रशंसनीय कार्य किया था। वह धार्मिक कार्य सं० 1630 की ज्येष्ठ शुक्ल 12 बुधवारको पूर्ण हुआ था। उसी समय उन्होंने चतुर्विध संघको आमंत्रित कर मथुरामें एक जैन समारोहका भी आयोजन किया था। तीर्थ-पुनरुद्धारके साथ ही साथ उन्होंने मथुराके चौरासी क्षेत्र पर तपस्या कर निर्वाण प्राप्त करनेवाले कैवल्यज्ञानी जम्बूस्वामीके चरित्र ग्रंथोंकी रचनाका भी प्रवन्ध किया था। फलतः उनकी प्रेरणासे संस्कृत और व्रजभाषा हिन्दीमें जम्बू-स्वामी चरित्र उस कालमें लिखे गये थे। संस्कृत 'जम्बूस्वामी चरित्र' का निर्माण उस समयके विख्यात जैन विद्वान् पांडे राजमल्लने सं० 1632 की चैत्र कृ० 8 को और व्रजभाषा छन्दोबद्ध ग्रंथकी रचना पांडे जिनदासने सं० 1642 में की थी। बीकानेरके राज्यमंत्री कर्मचन्द्रने भी मथुरा तीर्थकी यात्रा कर यहांके कुछ चैत्योंका जीर्णोद्धार कराया था। उसका उल्लेख 'कर्मचन्द्र वंशोत्कीर्तन' काव्यमें हुआ है।

पं० बनारसीदासकी महत्त्वपूर्ण देन—पं० बनारसीदास जौनपुर निवासी श्रीमाली जैन थे। वे मुगल सम्राट् जहाँगीरके शासनकालमें आगरा आये थे, और फिर उसी नगरके स्थायी निवासी हो गये थे। वे गृहस्थ होते हुए भी जैन दर्शन और अध्यात्मके अच्छे ज्ञाता, सुप्रसिद्ध साहित्यकार और क्रांतिकारी विद्वान्

थे। उन्होंने जैनधर्मके अन्तर्गत एक आध्यात्मिक पंथकी स्थापना की, और अनेक ग्रंथोंकी रचना की थी। उनके पंथको पहिले 'अध्यात्मी पंथ' अथवा 'बनारसी मत' कहा जाता था, बादमें वह 'तेरह पंथ' के नामसे प्रसिद्ध हुआ था। उस सुधारवादी मतके कारण उस कालके दिगम्बर सम्प्रदायी चैत्यवासी भट्टारकोंकी प्रतिष्ठामें पर्याप्त कमी हुई थी।

पं० बनारसीदास हिन्दीके जैन ग्रंथकारोंमें सर्वोपरि माने जाते हैं। उनकी ख्याति उनकी धार्मिक विद्वत्तासे भी अधिक उनके ग्रन्थोंके कारण है। उनकी रचनाओंमें 'नाटक समयसार' और 'अर्ध कथानक' अधिक प्रसिद्ध हैं। 'नाटक समयसार' अध्यात्म और वेदान्तकी एक महत्त्वपूर्ण रचना है। इसका प्रचार श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनों सम्प्रदायोंमें है। 'अर्ध कथानक' उनका आत्म-चरित्र है, जो उनके जीवनके प्रथम अर्ध भागसे संबंधित है। यह भी अपने विषयकी महत्त्वपूर्ण रचना है। उनकी दो अन्य रचनाएँ 'बनारसी नाम माला' और 'बनारसी विलास' हैं। ये सब ग्रंथ पद्यात्मक हैं। इनके अतिरिक्त उनकी एक गद्य रचना 'परमार्थ वचनिका' भी है। यह जैन साहित्यकी आरंभिक हिन्दी गद्य रचनाओंमेंसे है, अतः इसका भी अपना महत्त्व है।

औरंगजेबी शासनका दुष्परिणाम—मुगल सम्राट् अकबर, जहाँगीर और शाहजहाँके शासन-कालमें जैनधर्मकी जितनी उन्नति हुई थी, औरंगजेबके शासनमें उससे अधिक अवनति हो गयी थी। उस कालमें व्रजमंडलके गैर मुसलिम धर्म-सम्प्रदायोंके सभी देव-स्थान नष्ट कर दिये गये थे। उक्त धर्म-सम्प्रदायोंके अधिकांश आचार्य, संत, महात्मा, विद्वान् और गुणी-जन व्रजमंडल छोड़कर हिन्दू राज्योंमें आकर बस गये थे। उस कालमें जैनधर्मकी स्थिति भी अत्यन्त शिथिल और प्रभावशून्य हो गयी थी। मथुराके प्रसिद्ध जैन-केन्द्र कंकाली टीला और चौरासीमेंसे कंकाली टीला तो पहिले ही वीरान-सा था, फिर चौरासीका सिद्ध क्षेत्र भी महत्त्वशून्य हो गया। बटेश्वर और आगरा केन्द्रोंकी भी तब प्रतिष्ठा भंग हो गयी थी।

आधुनिककालकी स्थिति—औरंगजेबी शासनकालके बादसे अंग्रेजी राज्यकी स्थापना तक समस्त व्रजमंडलमें जैनधर्मकी स्थिति बिगड़ी हुई रही थी। अंग्रेजी शासनकालमें मथुराके सेठों द्वारा जैनधर्मको बड़ा संरक्षण मिला था। इस घरानेके प्रतिष्ठाता सेठ मनीराम दिगम्बर जैन श्रावक थे। वे पहिले ग्वालियर राज्यके दानाधिकारी श्रीगोकुलदास पारिखके एक साधारण मुनीम थे। जब पारिखजी अपने साथ करोड़ोंकी धर्मादा सम्पत्ति लेकर उससे व्रजमें मंदिरादिका निर्माण कराने सं० 1870 में मथुरा गये थे, तब मनीराम मुनीम भी उनके साथ थे। पारिखजी अपनी मृत्युसे पहिले मनीरामजीके ज्येष्ठ पुत्र लक्ष्मीचन्दको अपना उत्तराधिकारी बना गये थे। उनके बाद मनीराम लक्ष्मीचन्द पारिखजीकी विपुल सम्पत्तिके स्वामी हुए। उन्होंने व्यापार द्वारा उस सम्पत्तिको खूब बढ़ाया और विविध धार्मिक कार्योंमें उसका सदुपयोग किया। उन्होंने मथुराके 'चौरासी' सिद्ध क्षेत्रका जीर्णोद्धार कर वहाँ जैन मन्दिरका निर्माण कराया था। उसमें उन्होंने अष्टम तीर्थंकर भगवान् चन्द्रप्रभकी मूर्ति प्रतिष्ठित कर दिगम्बर विधिके अनुसार उनकी पूजाकी यथोचित व्यवस्था की थी। बादमें सेठ लक्ष्मीचन्दके पुत्र रघुनाथदासने वहाँ द्वितीय तीर्थंकर भगवान् अजितनाथकी संगमरमर प्रतिमाको प्रतिष्ठित किया था। मथुरामंडलके आधुनिक जैन देवालयोंमें यह मन्दिर सबसे अधिक प्रसिद्ध है। यहाँ पर कार्तिक कृ० 2 से कृ० 8 तक प्रति वर्ष एक बड़ा उत्सव होता है, जिसमें रथयात्राका भी आयोजन किया जाता है।

वर्तमान स्थिति—इस समय मथुरामें जैनधर्मका प्रसिद्ध केन्द्र चौरासी स्थित जम्बूस्वामीका सिद्ध क्षेत्र ही है। यहाँ पर 'अखिल भारतीय दिगम्बर जैन-संघ' का केन्द्रीय कार्यालय है। साप्ताहिक-पत्र 'जैन-

संदेश' इसी स्थानसे प्रकाशित होता है। यहाँके 'ऋषभ ब्रह्मचर्याश्रम' में जैनधर्म और संस्कृत भाषाके साथ ही साथ वर्तमान प्रणालीकी शिक्षा दी जाती है। इस स्थानके 'सरस्वती भवन' में जैनधर्मके ग्रन्थोंका अच्छा संग्रह है।

ब्रजमंडलमें जैनधर्मका सबसे बड़ा केन्द्र आगरा है। यहाँ पर मध्यकालसे ही जैन धर्मावलम्बियोंकी प्रचुर संख्या रही है। जैन-ग्रन्थकार तो अधिकतर आगराके ही हुए हैं। इस समय वहाँ जैनधर्मकी अनेक संस्थायें हैं, जो उपयोगी कार्य कर रही हैं। वहाँका जैन कालेज ग्रन्थभंडार भी प्रसिद्ध है।

मथुराके कंकाली टीलाका जैनकेन्द्र, जो 'देव निर्मित स्तूप' तथा अन्य स्तूपों और मन्दिर-देवालयोंके कारण विगतकालमें इतना प्रसिद्ध रहा था, इस समय वीरान पड़ा हुआ है। आश्चर्यकी बात यह है, जिस कालमें वह नष्ट हुआ, उसके बादसे किसीने उसका पुनरुद्धार करानेकी ओर ध्यान नहीं दिया। मथुराके सेठोंने भी उसके लिये कुछ नहीं किया, जबकि उन्होंने 'चौरासी' के सिद्ध स्थलका पुनरुद्धार कराया था। वास्तविक बात यह है कि कई शताब्दियों तक उपेक्षित और जड़ पड़े रहनेके कारण कंकाली टीलाकी गौरव-गाथाको लोग भूल गये थे। मथुराके सेठोंके उत्कर्ष-कालमें भी यही स्थिति थी। यदि उस समय उन्हें इस स्थलकी महत्ताका बोध होता, तो वे अपने विपुल साधनोंसे वहाँ बहुत कुछ कर सकते थे।

अबकी बार मथुरामें श्रीमहावीर जयन्तीका जो समारोह हुआ था, उसकी अध्यक्षता करनेके लिए मुझे आमंत्रित किया गया यद्यपि मैं जैन धर्मावलम्बी नहीं हूँ। मैंने उस अवसरका सदुपयोग कंकालीकी गौरव-गाथा सुनानेमें किया। उपस्थित जनसमुदायने मेरी बात बड़े कौतूहलपूर्वक सुनी। उन्हें इस बातका विश्वास नहीं हो रहा था कि मथुरामें किसी समय इतने महत्त्वका स्थल था। उत्सवकी समाप्तिके पश्चात् अनेक व्यक्तियोंने मुझसे पूछताछ की। जब मेरे बतलाये हुए ऐतिहासिक प्रमाणोंसे उन्हें विश्वास हो गया, तब वे उक्त स्थलका पुनरुद्धार करानेको व्यग्र होने लगे। उसी कालमें मुनि विद्यानन्दजी मथुरा पधारे थे। उनके समय इस चर्चाने और जोर पकड़ा। अब ऐसी स्थिति बन गई है कि निकट भविष्यमें इस पुरातन स्थलका पुनरुद्धार हो सकेगा।

●

भारतीय नौसेना ऐतिहासिक सर्वेक्षण

श्री गायत्रीनाथ पंत

समुद्रका आकर्षण अनादिकालसे मनुष्यको आकर्षित करता रहा है—प्रेरित करता रहा है, प्रारम्भमें मनोरंजन एवं उत्सुकतावश पर तत्पश्चात् यातायात, व्यापार, समुद्रमन्थन तथा युद्ध-संचालन हेतु। मानवकी अज्ञातको खोज निकालनेकी स्वाभाविक प्रवृत्तिसे सागर भी अछूता नहीं रहा संभवतः नदियोंके किनारे रहनेके कारण मानवके आदि पुरुषने मछली पकड़ने, तैरने एवं नदी पार करनेके लिये किसी लकड़ीके लट्ठेका सहारा लिया होगा। आवश्यकताओं, सुरक्षाकी भावना एवं सांस्कृतिक विकासके कारण इस दिशामें भी सुधार हुए। भारतीय नौकाका भी एक विकासक्रम है—स्वयंमें एक इतिहास है।

लट्ठेके बाद तरणीका युग आता है। भारतकी प्राचीनतम प्राग्ऐतिहासिक सैंधव सभ्यतामें हमें नौकाके दर्शन होते हैं। चूँकि इस सभ्यताका उद्गम स्थल एक महान् एवं व्यापारिक नदी (सिंध) थी इसलिये निश्चय ही जिज्ञासु मानवने इस दिशामें नाना प्रकारके प्रयोग किये और व्यापारिक सुविधाके लिये कतिपय नावोंका आविष्कार किया। यहाँ एक मुहरमें हमें 'मकर' के आकारकी नौकाका अंकन मिलता है जिसका आधा अंश जलमग्न है। एक नाविक ऊपरी सिरेमें बैठकर दो चप्पुओंके माध्यमसे, इसे खे रहा है। सन् १९५९–६०के मध्य किये गये पुरातत्त्व उत्खननसे लोथल (अहमदाबाद, गुजरात)में एक 'डाक्यार्ड' का पता चला है जिससे २५०० ई० पू० में होनेवाले जल व्यापारका स्पष्ट उल्लेख मिलता है। इस डाक्याईका स्वरूप 'आयताकार' प्रकारका है एवं इसका पूर्वी लगभग ७१० फीट लम्बा है। इसमें पूर्वकी ओर एक द्वार था जिसके माध्यमसे नावें आ सकती थीं।

वैदिक साहित्यके अवलोकनसे प्राचीन भारतीय श्रेष्ठ नौका परंपराके प्रमाण मिले हैं। उस समय सागरीय व्यापार भी प्रचलित था। ऋग्वेदमें समुद्रपर चलनेवाले जलयानोंका उल्लेख मिलता है। ऋग्वेद (१,११७) में वर्णित अश्विनोंका उल्लेख, जिन्होंने 'पंखयुक्त जहाजों' द्वारा भुज्यकी रक्षा की थी, होनेसे डॉ० दीक्षिततरने तो 'वायु-जल-व्यापार' होनेकी भी घोषणा कर दी है पर यह अधिक भावुकतापूर्ण है 'शतपथ ब्राह्मण' में स्वर्गकी ओर प्रस्थान करनेवाले जहाजका उल्लेख है। उस युगकी अन्य साहित्यिक उपलब्धियोंमें बंगाल, सिंध एवं दक्षिण भारतमें होनेवाले जल-व्यापारका विवरण मिलता है। 'युक्त कल्पतरु' जहाज निर्माण विषयक एक ऐतिहासिक ग्रंथ है जिसमें जहाजोंके स्वरूप, प्रकार, उपयोगके साथ-साथ निर्माणविधिका कलात्मक विवेचन है। इसमें जहाजोंको २० श्रेणियोंमें बाँटा गया है। सबसे लम्बा १७६ बालिस्त लम्बा, २० बालिस्त चौड़ा एवं १७ बालिस्त ऊँचा होता था, जबकि सबसे छोटेकी माप १६-४-४ बालिस्त दी गई है। जहाजोंके तीन प्रमुख प्रकार थे 'सर्वमन्दिर', 'मध्यमन्दिर' एवं 'अग्निमन्दिर'। अग्नि-मन्दिर एक युद्धक जहाज था जिसे केवल संग्राममें ही उपयोग किया जाता था जबकि प्रथम दोनों प्रकारोंका उपयोग जल-विहार, मछली पकड़ने एवं व्यापार आदिमें होता था। संभवतः ऐसे ही किसी जलयानमें प्रथम भारतीय नाविकने सागरकी हिलोरोंको झंकृतकर प्रथम जल-युद्धका आह्वान किया होगा। ऐसे ही एक

जहाजमें राजर्षि तुगुने अपने पुत्रको शत्रु पर आक्रमण करने हेतु भेजा था। और इसी प्रकारके पूर्णरूपेण सुसज्जित एवं शस्त्रोंसे युक्त एक जहाजमें पाण्डव-बन्धुओंने पलायन किया था।

'सर्ववातसहां नावं यंत्रयुक्तां पताकिनीम्।
शिवे भागीरथीतीरे नरैर्विश्रम्भिभिः कृताम्॥

(महाभारत, आदिपर्व) इसी महाकाव्यमें सहदेवकी समुद्री यात्रा एवं उसके द्वारा म्लेच्छोंसे कतिपय प्रायद्वीपोंके जीत लेनेका वर्णन है। एक बार निषाधराज गुहकने हजारों कैवर्त नवयुवकोंसे ५०० युद्धक जहाजोंको तैयार करने एवं भारतसे जलयुद्ध करनेका आह्वान किया था। इस तरह वैदिक युगके ये बिखरे उदाहरण इस बातके ज्वलन्त प्रमाण हैं कि वैदिक युगमें मानवने सागरकी अतल गहराइयों पर काफी हद तक नियंत्रण प्राप्त कर लिया था।

३२५ ई० पूर्वमें जहाज-निर्माणकला काफी उन्नत अवस्थामें थी और इस समय भारत विदेशी राष्ट्रोंसे जल सम्पर्क स्थापित कर चुका था। स्वयं सिकन्दरको सिंध नदी पार करनेके लिये भारतीय कारीगरों द्वारा निर्मित नावोंका सहारा लेना पड़ा था। सिंध नदीको पार करनेके लिये सिकन्दर महान्ने नावोंका पुल भी तैयार करवाया था। यदि कहीं भारतीय पोरसने भी इसी प्रणालीको अपनाकर सिकन्दरको मँझधारमें रोक दिया होता तो संभवतः इतिहासकी दिशा ही बदल गई होगी।

मौर्ययुगमें नौसेनाका राष्ट्रीयकरण कर दिया गया था और यह राज्यका एकाधिकार बन गया था। प्लिनीके अनुसार इस समयका औसतन जहाज लगभग ७५ टन वजन का था। बढ़ते हुए जलव्यापार एवं संभावित नौ-युद्धोंके कारण ही इस समय एक पृथक् नौ-विभागकी स्थापना कर दी गई थी जिसका प्रधान 'नावाध्यक्ष' कहलाता था। मोनाहनके इस विचारका, कि 'नावाध्यक्ष' पूर्णरूपेण एक नागरिक-प्रशासनिक अधिकारी था, डॉ० राय चौधरीने तर्कपूर्ण खंडन किया है और यह मत प्रतिपादित किया है कि 'नावाध्यक्ष' के अनन्य कार्योंमें एक कार्य हिमश्रिकाओं (समुद्री डाकुओं) द्वारा राष्ट्रीय जलयानोंकी सुरक्षा भी थी। चाणक्यने अपने अर्थशास्त्रमें इन समुद्री डाकुओं एवं शत्रुओंके जहाजोंको ध्वस्त करने एवं उनके द्वारा अपने बन्दरगाहोंकी रक्षा करनेका जोरदार समर्थन किया है। जब हम अशोक महान्के लंका एवं अन्य प्रायद्वीपोंसे सम्बन्धके बारेमें उसके लेखोंमें पढ़ते हैं तब उसके आधीन एक विशाल नौ-सेना विभाग होनेकी स्वतः ही पुष्टि हो जाती है।

प्रारंभिक कलात्मक चित्रणमें सातवाहन नरेशोंके तत्त्वावधानमें निर्मित द्वितीय शती ई० पू०के सांचीके स्तूप हमारा ध्यान आकर्षित करते हैं। सांची स्तूपके पूर्वी एवं पश्चिम द्वार पर एक छोटी सी तरणीका अंकन है जिसके छोटे चप्पू उस युगमें प्रचलित नौकाके परिचायक हैं। कन्हेरीकी मूर्तिकलामें भी हमें एक जहाजके दर्शन होते हैं जो बड़ी ही जीर्ण-शीर्ण अवस्थामें चित्रित है।

द्वितीय एवं तृतीय शती ई०के आन्ध्र नरेशोंके सिक्कोंमें हमें मस्तूल युक्त जहाजका उल्लेख मिलता है। यह जहाज अर्धचन्द्राकार है एवं इसमें दो मस्तूल लम्बाकार खड़े हैं। इसके चारों ओर जलराशि है एवं उसमें इसे खेनेवाले एक चप्पूका भी आभास मिलता है। इस युगके नरेश यज्ञ-श्रीने 'जहाज-प्रकार'का एक सिक्का भी प्रचलित किया था जो निश्चय ही उस समयके आर्थिक जीवनमें जलयानोंके योगदानकी ऐतिहासिक घोषणा है।

अजन्ताके चित्रकारोंके तत्कालीन भारतकी एक सुन्दरतम एवं हृदयग्राही झांकी प्रस्तुत की है और उनकी तीक्ष्ण दृष्टिसे ये नौकाएँ भी न बच सकीं। अधिकांश रूपका इनका चित्रण गुहा नं० २के भित्ति

चित्रों (५२२-६५० ई०)में हुआ है। इसमें एक जहाज काफी वेगयुक्त पानीमें बह रहा है पर दूसरे स्थान पर 'मकर आकार'के एक भारी भरकम जहाजको दर्शाया गया है जिसमें विजय द्वारा किये गये लंका-अभियानके संदर्भमें अनन्य सिपाहियों, घुड़सवारों एवं हाथियों को इसी जहाज पर सवार चित्रित किया गया है।

पल्लवयुगीन सिक्कों (७वीं शती ई०)में भी दो-मस्तूल युक्त जहाजोंका प्रदर्शन है। उस समय महाबलीपुरम एक प्रमुख केन्द्र था। जहाजोंके मार्गदर्शन हेतु निर्मित एक प्रकाश स्तम्भके अवशेष आज भी विद्यमान है।

गुप्तकालमें नौसेनाकी महत्ता पूर्णरूपेण सिद्ध हो चुकी थी। समुद्रगुप्तके पास अनन्य जहाज थे। चन्द्रगुप्त विक्रमादित्यने नौ-शक्तिके द्वारा ही शकोंको परास्तकर अरब सागरसे बंगालकी खाड़ी तक अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया था।

चालुक्य नरेश पुलकेशिन द्वितीयने पुरीपर नौसैनिक आक्रमण किया था और इसके वैभवको धूल धूसरित कर दिया था। यही नहीं वरन् भारतीय नौकाओंकी धूम विदेशोंमें भी मची, बौद्धकालीन जातक कथाओंमें तो अनेक बार समुद्री जलयानोंका प्रसंग आता ही है और यह भी कि इन्हीं जहाजोंमें बैठकर हमारे पूर्वज वर्मा, दक्षिण पूर्व एशिया, श्री लंका, अफ्रीका तथा चीन तक पहुँचे थे। जावाके प्रसिद्ध बोरोबदरके मन्दिरमें भारतीय जहाजोंका बहुत ही सुन्दर अंकन हुआ है। डा० राधाकुमुद मुकर्जीने इन्हें तीन श्रेणियोंमें विभाजित किया है। प्रथम कोटिमें लम्बे एवं चौड़े, दूसरेमें एकसे अधिक मस्तूलवाले तथा तीसरी कोटिमें वे जहाज आते हैं जिसमें केवल एक ही मस्तूल है साथ ही इनका अगला भाग कुछ मुड़ा हुआ होता है। इसी प्रकारका एक जहाज मदुराईके प्रसिद्ध मंदिरमें भी प्रदर्शित है। जावामें प्रचलित दन्त-कथाओंके अनुसार एक बार एक गुजरात नरेशने ६ बड़े एवं १०० छोटे जहाजोंमें सेना भरकर जावापर आक्रमण कर दिया एवं इसे विजित किया तथा एक मंदिरका निर्माण यहाँ करवाया जिसका नाम 'मेंदग कुमलांग' रखा गया। भारतीय सभ्यता एवं संस्कृतिका जावा, सुमात्रा, चम्पा, मलाया एवं कम्बोज आदिमें प्रसार करनेकी दिशामें भारतीय नौ बेड़ेने एक सराहनीय कार्य किया है।

बंगाल तो जल-पुत्र ही है। अति प्राचीनकालसे ही यहाँके लोग अपनी खाड़ीके रहस्यको समझने लगे थे। कालिदासके 'रघुवंश'में नायक रघु द्वारा बंग प्रदेशपर किये गये सफल आक्रमणका उल्लेख किया है जिससे पता चलता है कि बंगवासियोंके पास नौसेना भी थी।

> वंगानुत्खाय तरसा नेता नौसाधनोद्यतान्।
> निचखान जयस्तम्भान् गत्वा स्रोतोन्तरेषु सः॥
>
> (रघुवंश ४, ३६)

लेखोंमें ६ठी शती ई०में भी बन्दरगाहोंकी उपस्थितिका आभास मिलता है। ५३१ ई०के ताम्रपत्रीय लेखमें, जो धर्मादित्यका है, 'नवकेशनी' अथवा जहाज निर्माण करनेवाले कारखानों तथा बन्दरगाहका उल्लेख है।

पाल नरेशों द्वारा बंगला एवं बिहारमें आधिपत्य स्थापित कर लेनेके कारण उस युगमें नौसेनाकी महत्ता बहुत बढ़ गई थी और यह उनकी नियमित सेनाका एक प्रमुख अंग बन गई थी। इस संदर्भमें श्री बी० के० मजूमदार द्वारा उद्धृत तीन ताम्रपत्रोंका उल्लेख असंगत न होगा। धर्मपालके ताम्रलेखमें उल्लिखित है कि उसकी विजयवाहिनी नौसेना पाटलीपुत्रसे भागीरथीके तट तक पहुँची थी। दूसरा लेख वैदयदेवका है जो कमौलीसे प्राप्त हुआ है जिसमें कुमारपालके शासनकालमें उसके प्रिय नौसैनिक द्वारा दक्षिण बंगालपर

विजयका वर्णन है। तीसरा हरवा लेख ५५४ ई० गौड़ों द्वारा स्थापित उस नौ-परम्पराका वर्णन करता है जिसे बादमें पाल एवं सेन नरेशोंने अपनाया था। सेन कालमें सम्राट् विजयसेन (१०९६-११५८ ई०)ने गंगा नदी तक विस्तृत जल-क्षेत्र पर अधिकार कर लिया था।

दक्षिण-भारतीय जलयानोंका विश्वसनीय सूत्र तामिल साहित्य है। इनमें चोलकालीन प्रकाश स्तम्भ, उनकी निर्माणकला एवं उनमेंसे निकलनेवाले मार्ग दर्शक प्रकाशका सुन्दर विवरण है। चोलकालीन जहाज केवल तटों तक सीमित न रहे वरन् उन्होंने बंगालकी खाड़ीको भी पार किया। १०वीं शतीके अन्त तक तो सारे दक्षिण भारतमें चोल नरेशोंकी धाक जम गई। राजेन्द्र महान्ने तो अपनी विजय शृंखलाका प्रारम्भ ही ९५० ई०में चेर नौबेड़ेको हराकर किया था। उसके पुत्र राजेन्द्र चोलदेव (९७४-१०१३ ई०)ने अनेकों प्रायद्वीपोंपर अधिकार किया था। श्री लंका भी तब उसके साम्राज्यमें सम्मिलित था। तिरुमलाई लेखके अनुसार राजेन्द्र चोलदेवने कदरम नरेशके जहाजोंको महासागरमें डुबोकर उसपर विजय प्राप्त की थी।

सिंध प्रदेशने मध्यकालीन युगमें अपनी नौसैनिक प्रभुता खो दी थी। यहाँके शासक ब्राह्मण छाचके पास बहुत ही कमजोर बेड़ा था। यही कारण था कि उसके राज्यमें हमेशा समुद्री डाकुओंका भय बना रहता था।

अरबोंने भारत आक्रमणके समय अपना नौबेड़ाका भी प्रयोग किया था। ७१२ ई०में मुहम्मदबिन कासिमने थानाके निकट देवलके बन्दरगाहमें प्रवेश किया और नेरुनको रौंद डाला। तत्पश्चात् उसने नावोंका पुल बनाकर सिंध नदीको पार किया एवं अन्ततोगत्वा सम्पूर्ण सिंध प्रदेश पर अपना अधिकार कर लिया। ग्यारहवीं शतीमें सुल्तान महमूदने अपना १७वां एवं अन्तिम हमला जाटोंके विरुद्ध किया था। यह एक प्रसिद्ध जल-युद्ध था। इस समय सुल्तान महमूद गजनवीने १४०० जंगी नावोंका निर्माण कराया था जिनमें प्रत्येकके आगे लोहेकी भारी कीलें लगी हुई थीं। जाटोंने ४,००० नावोंसे सुल्तानका मुकाबला किया पर सुल्तानके नावोंके समक्ष जानेवाली हर जाट नाव लोहेकी कीलोंसे टकराकर नष्ट हो गई। जाटोंकी बड़ी भयंकर पराजय हुई।

तेरहवीं शतीकी महत्त्वपूर्ण -जलघटना गुलाम वंशके सुल्तान बल्बन (१२६६-८६ ई०)का बंगालके तत्कालीन गवर्नर तुगरिल खां पर किया गया आक्रमण है। एक बड़ी भारी फौजके साथ सुल्तानने सरयू नदी पार की। तुगरिलकी हत्या कर दी गई, उसके बेड़ेको नष्ट कर दिया गया एवं उसके सैनिकोंको लखनौतीके बाजारमें सामूहिक रूपसे फांसी दे दी गई। यह घटना 'लखनौती का हत्या कांड'के नामसे प्रसिद्ध है।

चौदहवीं शतीके भारतमें जहाजोंकी मरम्मत, निर्माण, रखरखाव आदिका कार्य जोरोंपर था। मार्कोपोलोने इस कलामें भारतीय कारीगरोंकी कुशलताकी भूरि-भूरि प्रशंसा की है। उसने यहाँ पर उस समय प्रचलित जहाजोंके प्रकारोंका भी उल्लेख किया है। सन् १३५३ एवं १३६०में सुल्तान फिरोजशाहने लखनौती पर आक्रमण किया था। उसका तीसरा जल-युद्ध १३७२में थट्टाके विरुद्ध हुआ। इसी शतीमें मंगोल हमलावर तैमूर लंगने १३८८में सिंध नदीको नावोंके पुल द्वारा ही पार किया था। उसे गंगा नदीपर अनेक बार देशी राजाओंसे युद्ध करना पड़ा था।

नौ-सेनाके इतिहासमें गुजरातका भी प्रमुख योग रहा। अति प्राचीन कालसे यह सामुद्रिक व्यापारके लिये अच्छे बन्दरगाह प्रदान करता आया है। सन् १५२१ ई०में गुजरात नरेशके एडमिरलने पुर्तगाली जहाजोंपर आक्रमण किया था और उसके एक जहाजको जल-समाधि दिला दी थी। पर इस दिशामें सबसे अधिक सामर्थ्यवान नरेश महमूद बर्धारा (१४५९-१५११) था। उसका नौ बेड़ा पूर्ण रूपेण अस्त्र शस्त्रोंसे सज्जित था।

सन् १५०७में उसने तुर्की सेनाकी मददसे पुर्तगालियोंपर आक्रमण किया था। इसमें मुस्लिम सेनाने विजयश्री प्राप्त की और उन्होंने बम्बईके दक्षिणमें छम्बके निकट पुर्तगालियोंके कतिपय बहुमूल्य वस्तुओंसे लदे जहाजोंको डुबो दिया था। पर यह विजय स्थायी न हो सकी। दो वर्षके पश्चात् ही सन् १५०९में काठियावाड़के ड्यू स्थान पर पुनः जल-युद्ध हुआ और पुर्तगालियोंने न केवल अपनी हारका बदला लिया वरन् मुस्लिम जल सेनाकी कमर ही तोड़ दी।

मुगल-कालमें सभी दिशाओंमें क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए। जल सेनाके महत्त्वको भी पहचाना गया। मुगल संस्थापक बाबर स्वयं एक प्रसिद्ध तैराक था और भारतकी कई नदियां उसने तैरकर पार की थीं। सन् १५२८में बाबरको कन्नौजके निकट गंगा तट पर युद्ध करना पड़ा था जिसमें उसने अपने शत्रुके ४० जलयानोंको पकड़ लिया था। 'बाबर नामा' एक सुन्दर चित्रमें बाबर द्वारा एक घड़ियालके शिकार-दृश्यमें मुगलकालीन नावोंका कलात्मक अंकन है। बाबरकी कुछ प्रसिद्ध नावोंके नाम 'असायश', 'आरायश', 'श्रुश्रं गुंजायश' एवं 'फरमायश' थे।

अकबरके समय तो मीर बेलेरीके आधीन पूरा जल सेना विभाग ही था। इस समय कई प्रकारके जहाज थे एवं जहाज निर्माणके प्रमुख केन्द्र थे बंगाल, काश्मीर, इलाहाबाद एवं लाहौर। प्रत्येक जहाजमें १२ कर्मचारी होते थे जिनके प्रधानको 'नारवोदा' कहा जाता था। ३ जून, १५७४को किये गये पटना पर, दाऊन खांके विरुद्ध, आक्रमणमें अकबरने जिन जहाजोंका प्रयोग किया था उनमें हाथी, घोड़े एवं अन्य कार्यालयों तथा कर्मचारियोंके रख-रखावकी पूरी व्यवस्था थी। सन् १५८०में राजा टोडरमलको गुजरातके विरुद्ध अभियानके लिये १,००० जहाजों-नावोंका लश्कर लेकर भेजा गया था। सन् १५९०में खाने सामानने थट्टाके जानी बेगको एक करारी हार दी थी। इसी वर्गमें सन् १६०४में मानसिंहके नेतृत्वमें श्रीपुरके नरेश केदारराय के विरुद्ध, किया गया जल-युद्ध भी आता था जिसमें मानसिंहने १०० जंगी जहाजोंका प्रयोग किया था।

अफगानों एवं मगोंके निरन्तर आक्रमणोंके भयसे जहाँगीरको अपना 'नौवारा' (नौविभाग) पुनः संगठित करना पड़ा। उसने १६२३में इस्लाम खांके नेतृत्वमें आसामके उन विद्रोहियोंके विरुद्ध एक जहाजी बेड़ा भेजा जिन्होंने बंगाल तक अधिकार कर लिया था। इसमें लगभग ४,००० आसामियोंका वध कर दिया गया एवं उनकी १५ नावें मुगलों द्वारा छीन ली गईं। जल सेनाकी सबसे अधिक आवश्यकता शाहजहाँने अनुभव की। पुर्तगालियोंके निरन्तर हमले मुगल-सम्राटके लिये एक भारी सिर दर्द बन गया था। उनकी धृष्टता इतनी बढ़ गई कि वे मुगल सेनानियोंको बन्दी बनाकर उन्हें दासों की भाँति बेचने लगे। एक बार उन्होंने बेगम मुमताज महलकी दो अंगरक्षिकाओंको भी बन्दी बना लिया। शाहजहां इसे अधिक सहन नहीं कर सका। उसने कासिम खां को पुर्तगालियोंके समूल नाश करनेका भार सौंपा। २४ जून, १६३२को हुगली पर घेरा डाल दिया गया। यह तीन महीनेसे अधिक समय तक चलता रहा। १० हजारसे अधिक पुर्तगाली मारे गये एवं ४,०००से अधिक बन्दी बना लिये गये।

जलयुद्धोंकी कहानी औरंगजेबके कालमें भी दुहराई गई। सन् १६६२ में मुस्लिम फौजोंने मीरजुमलाके नेतृत्वमें कूच-विहारके नरेशके ३२३ जलयानोंका सफलतापूर्वक सामना किया था और सन् १६६४ में तो शाइस्ताखांने मुगल नौ-सेनाको कई जंगी जहाजोंसे लैस कर दिया था। औरंगजेबकी सबसे प्रसिद्ध टक्कर तत्कालीन विश्वकी सबसे महती जलशक्ति अंग्रेजी नौ-सेनासे हुई। शाहजहाँने यद्यपि पुर्तगालियोंके विरुद्ध कार्यवाही की पर वह अंग्रेजोंके प्रति कृपालु था और उसने उन्हें १६५०–५१ में हुगली और कासिम-बाजारमें कारखाने बनानेकी आज्ञा दे दी थी। इसी समय ईस्टइंडिया कम्पनीने चार्ल्स द्वितीयसे बम्बईका द्वीप

६० पौंड वार्षिक किराये पर ले लिया था। पर उनकी बढ़ती हुई उच्छृंखलताओंको देखकर सन् १६८५ में तत्कालीन बंगालके राज्यपाल शाइस्ताखांने अंग्रेजों पर स्थानीय रूपसे टैक्स लगाकर उनकी गतिविधियोंको नियंत्रित करना चाहा। कम्पनीने खुले रूपसे औरंगजेबकी सत्ताकी उपेक्षा की फलस्वरूप मुगल सम्राट् एवं अंग्रेजोंके बीच अर्द्ध-सरकारी रूपसे संघर्ष छिड़ गया। कम्पनीकी मददके लिये इंग्लैंडके सम्राट जेम्स द्वितीय अनेकों जंगी जहाज भेज दिये। इन जहाजोंने चटगाँव पर अधिकार कर लिया। औरंगजेबने कूटनीतिसे काम लिया और उसने सूरत, मसौलीपट्टम एवं हुगलीकी अंग्रेजी फैक्ट्रियों पर कब्जा कर लिया। अंग्रेजोंके होश ठिकाने आ गये। १६८८में दोनोंमें संधि हो गई अधिकांश तट मुगलोंके आधीन हो गये। अंग्रेजोंको बंगालमें एक बस्ती बनानेकी आज्ञा दे दी गई। यह छोटी सी बस्ती बादमें आधुनिक कलकत्ता नगर बन गई।

मराठोंके समय भी जल-सेना उपेक्षित न थी। सन् १६४०में शाहजी भोंसलेने पुर्तगालियोंके विरुद्ध सफल जल-युद्ध किया था। शिवाजीके सामुद्रिक अभियानोंने अंग्रेजों एवं पुर्तगालियोंकी नींद हराम कर दी थी। उन्होंने इन विदेशियोंके अनेकों जहाजोंको लूटा एवं ध्वस्त कर दिया था। शिवाजीने एक अच्छे एवं बड़े समुद्री बेड़ेका निर्माण कराया जो कोलाबामें रहा करता था। इसीसे उन्होंने जंजीराके निवासी अबी-सीनियाके समुद्री लुटेरोंको रोका एवं धनसे भरे मुगलोंके जहाज भी लूटे थे।

आंग्रेकी कहानी वस्तुतः जल अभियानोंकी कहानी है। १६९४से १७५० तक आंग्रेने मालाबारसे त्रावनकोर तक अपना एकछत्र जल साम्राज्य स्थापित कर लिया था। सन् १६९८में कान्होजी आंग्रेने 'दरिया-सारंग'की उपाधि धारण की एवं उसे मरहठा जल सेनापति बनाया गया। सन् १७०७ एवं १७१२में दो बार बम्बईपर आक्रमण किया एवं १७१०में खंडगिरिपर अधिकार कर लिया। १७१०में अंग्रेजी जल-सेनाने कान्होजीके जहाजोंपर भारी बमबारी की एवं उसके जहाजी बेड़ेको काफी नुकसान पहुँचाया पर उसने शीघ्र ही क्षतिपूर्ति कर ली। सन् १७२०में अंग्रेजों एवं पुर्तगालियोंने एक साथ मिलकर आंग्रेपर आक्रमण किया एवं विजय-दुर्ग नदीपर स्थित १६ मरहठा जहाजोंको आग लगा दी गई। कान्हौजोने फिर भी साहस नहीं छोड़ा। १७२२में पुनः सम्मिलित प्रयास किया गया और कोलाबाके प्रसिद्ध मरहठा अड्डेपर आक्रमण किया। विरोधमें १७२६में कान्हौजीने बहुमूल्य वस्तुओंसे लदे हुए प्रसिद्ध अंग्रेजी जहाज 'डर्बी'को अपने कब्जेमें ले लिया और साथ ही अनेकों पुर्तगाली एवं डच जहाज भी। उस समय केवल ईस्ट इंडिया कम्पनीको अपने तटीय व्यापार की, आंग्रेसे, रक्षा करनेमें ५० हजार पौण्ड प्रति वर्ष व्यय करने पड़ते थे। कान्हौजीकी मृत्युके पश्चात् एक बार फिर १७५४में उसके उत्तराधिकारी तुलाजी आंग्रेके हाथों डच जहाजी बेड़ेको करारी हार खानी पड़ी।

पुर्तगाली हमेशा ही भारतकी समृद्धिको ललचाई आँखोंसे देखते रहे हैं। राजकुमार हेनरीने, जो एक प्रसिद्ध नाविक था, अपना सारा जीवन पुर्तगालसे भारतको होनेवाले सीधे जलमार्गके खोजनेमें ही व्यतीत कर दिया। उसकी मृत्युके पश्चात् उसके साहसी नाविकोंने यह प्रयास जारी रखा और २० मई सन् १४९८को वास्कोडिगामा सफल हो ही गया और कालीकट पहुँच गया। सन् १५००में पुर्तगालियोंने पेड्रो अलवारिस कैब्रालके नेतृत्वमें एक बड़ा जहाजी बेड़ा भेजा जिसने भारतके एक अंशमें पुर्तगालियोंका आधिपत्य किया एवं उनके लिये बस्ती बनाई। अलमेड़ा एवं अलबुकर्कके समय भारतमें पुर्तगाली जहाजी बेड़ा काफी सक्रिय रहा पर १६१२ ई०में अंग्रेजोंने पुर्तगालियोंको एक भयंकर जल-पराजय दी एवं सूरतपर अधिकार कर लिया। १६१५में अंग्रेजोंने पुनः पुर्तगालियोंको हराया एवं आरमिजपर अधिकार किया। १६२२ ई०में अंग्रेजोंकी

पुर्तगालियोंपर निर्णायक विजय हुई। इसके पश्चात् औरंगजेबकी मृत्युके आधी शताब्दी बाद ही जब बंगालपर भी अंग्रेजोंका अधिकार हो गया तब जहाजरानीके अधिष्ठाता अंग्रेजोंकी सामरिक शक्तिके आगे समस्त भारतने घुटने टेक दिये और धीरे-धीरे सारा भारत लाल हो गया।

अंग्रेजोंके आधीन जहाजरानीमें विशेष प्रगति हुई। भारतमें अंग्रेजी जलसेनाकी कहानीका प्रारम्भ सन् १६१३ ई०से होता है। जबकि कम्पनीकी व्यापारिक रक्षा एवं पुर्तगाली तथा समुद्री डाकुओंके भयसे एक 'स्क्वाड्रन'की स्थापना की गई थी। सन् १६१५में इसे स्थायी कर दिया गया और कुछ ही समय बाद 'बम्बई मेरीन'के नामसे बम्बईमें जहाज निर्माण कारखाना भी स्थापित कर दिया गया और उसका निदेशक श्री डब्ल्यू पेटको बनाया गया। इसी समय सूरत के डाक्यार्डमें फ्रेमजी तथा जमशेदजीके नेतृत्वमें १०० टन वजनके दो जहाज निर्मित हुए। १९वीं शतीके आरम्भ तक इन पारसी परिवारोंने अंग्रेजी सरकारके लिये केवल सूरतमें ही ९ व्यापारिक, ७ फ्रिगेट एवं ६ अन्य छोटे जहाज बनाये थे। १७८०में मैसूर नरेश हैदर अलीके आक्रमणोंसे बंगालके तटकी सुरक्षा खतरेमें पड़ गई अतः सिलहट, चिटगांव एवं ढाकामें जहाज निर्माणके कारखाने खोले गये। पर इस क्षेत्र में सबसे अधिक ख्याति अर्जित की कलकत्ताने। १७८१से १८००के बीच कलकत्तामें ३५ जहाजोंका निर्माण हुआ और इसके पश्चात् प्रति वर्ष लगभग २० जहाज निर्मित होते रहे।

ईस्ट इंडिया कम्पनीके इस जहाजी बेड़ेने प्रथम एवं द्वितीय बर्मा युद्ध तथा प्रथम चीनी युद्धमें सक्रिय भाग लिया और लाल सागर, पर्शियाकी खाड़ी एवं पूर्वी अफ्रीकाके किनारों तक टोह लगाई। १८४०के पश्चात् कम्पनीकी जहाजरानीका पतन प्रारम्भ हो गया और अप्रैल १८६३में यह पूर्णरूपेण बन्द कर दिया गया जब भारतीय शासन ब्रिटिश सम्राट् द्वारा संचालित होने लगा। इस युगके प्रमुख जहाज प्रकारोंमें 'ग्रेब' (तीन पतवारवाले नोकीले जहाज) 'पिनासी' या 'यच' (एक मस्तूलवाला पर कई कमरोंमें विभाजित) 'पत्तोआ' (एक मस्तूलवाला पर कई तख्तियोंपर निर्मित) आदि थे। इनके अतिरिक्त 'बौंगिलस, 'डोनी', ब्रिक' आदि छोटे जहाज भी थे।

प्रारम्भमें नौ बेड़ा समुद्रके ऊपरी तल तक लड़नेमें ही सीमित था। प्रथम विश्वयुद्धने अस्त्र-शस्त्रकी दिशामें व्यापक प्रेरणा दी। फलस्वरूप प्रत्येक क्षेत्रमें शोध किये गये एवं भयानक अस्त्रोंकी रचना की गई। इसी समय पनडुब्बियोंकी खोज हुई जिसने नौ बेड़ेके इतिहासमें क्रान्ति ला दी। आक्रमण एवं रक्षात्मक दोनों दृष्टिकोणोंसे इसका महत्त्व बहुत था। पनडुब्बीकी कल्पना अठारहवीं शतीके आरम्भमें डा० एडमन्ड हेलीने की थी जो अपने साथ ५ आदमियोंको ७० फीट पानीके नीचे ले गये थे और जहाँ वे १० मिनट तक रहे थे। इस कार्यमें प्रयुक्त पहली मशीन 'कार्नोलियस डेबेल'ने ईजाद की जिसने जेम्स प्रथमको १५ फीट पानीके नीचे विहार करवाया था। पानीके अन्दर आक्रमणको संभावनाको सबसे पहले 'डेविड बुशनैल'ने खोजा जिसने 'टर्टिल' नामक मशीन तैयार की पर आधुनिक पनडुब्बियोंके स्वरूपकी रचनाका समस्त श्रेय 'राबर्ट फुल्टन' को है।

साधारणतया ये पनडुब्बियां डीजल या बैटरीसे चलती हैं पर अब अणुचालित पनडुब्बियोंका भी व्यापक रूपसे प्रयोग होने लगा है। यह पानीके ऊपर एवं काफी नीचे तैर सकती हैं, एक स्थानपर स्थिर रह सकती हैं एवं पुनः सतहपर वापस आ सकती हैं। इनमें ऐसे आधुनिकतम यन्त्र लगे हैं कि रातमें भी ये बेरोकटोक चल सकती हैं, पानीके अन्दरसे ही सतहपर चलनेवाले जहाजोंको नष्ट कर सकती हैं, दूरसे ही शत्रुके बन्दरगाहोंको ध्वस्त कर सकती हैं एवं ऊपर उड़नेवाले गगनविहारी वायुयानोंको हमेशाके लिये जल-समाधि दिला सकती हैं। यद्यपि अब इन्हें नष्ट करनेके लिये 'टारपीडो' एवं 'एन्टी सबमेरिन'का भी प्रयोग हो गया है पर विश्वके लगभग तीस लाख वर्गमीलमें विस्तृत जल क्षेत्रकी अतल गहराईसे एक पनडुब्बीको

ढूँढ़ निकालना उतना ही दुष्कर है कितना अनाजके ढेरसे खोई हुई एक सुई। अब सतहके ऊपर चलनेवाले भारी भरकम एवं पूर्णरूपेण युद्धास्त्रोंसे सज्जित जलयानोंके लिए निरन्तर खतरा बना हुआ है। कोई भी पनडुब्बी, किसी भी समय एवं किसी भी दिशासे इनपर आक्रमण कर सकती है और जलमग्न होनेपर विवश कर सकती है।

द्वितीय विश्वयुद्ध के पूर्व नौबेड़ेका मुख्य साधन 'युद्धपोत' था। इसकी रचना इतनी सुदृढ़ थी कि यह एक किलेकी भाँति था। इसमें प्रहारके लिये शक्तिशाली तोपें एवं 'तारपीडो' लगे थे। पनडुब्बी एवं विमानके आक्रमणोंसे सुरक्षाके लिये इसके साथ 'फ्रिगेट' 'डेस्ट्रायर' (ध्वंसक) एवं क्रूसर होते थे जो छोटे होनेके कारण अधिक गतिशील थे। ब्रिटेनके दो विशालकाय तोप 'प्रिंस आफ वेल्स' एवं 'रिपल्स' जिन्हें विगत युद्धमें सिंगापुर भेजा गया था इन्हीं उपकरणोंके अभावमें जापानी विमानोंका शिकार बन गये। इसमें प्रयुक्त तोपें एवं हथियार निष्क्रिय रहे।

युद्धके लिये प्रयोग किये जानेवाले नौपोतोंके निर्माणके बीच सन्तुलन रखना आवश्यक है। उदाहरणार्थ तीन-चार हजार टन वजनके एक जहाजकी यदि सुरक्षामें ही ध्यान दिया जाय तो वह क्षतिग्रस्त होनेसे तो बच जायेगा पर शत्रुके जहाजोंको क्षति पहुँचानेमें असमर्थ रहेगा इसके विपरीत यदि रक्षार्थ उपकरण नहीं है तो संहार शक्ति प्रबल होने पर भी संभव है शत्रुका पहला गोला ही उसे नष्ट कर दे अतः सन्तुलन नितान्त आवश्यक है।

जल युद्ध प्रायः समान वर्गवाले नौपोतोंके मध्य होता है। युद्धपोत युद्धपोतसे, क्रूसर-क्रूसरसे एवं अन्य वर्गोंके नौपोत अपने समकक्ष नौपोतोंसे टकराते हैं। जहाँ ऐसे सादृश्यका अभाव होता है वहाँ 'क्रूसर' जैसे दो और तीन जहाज मिलकर एक युद्धपोतका मुकाबला करते हैं। इसका कारण स्पष्ट है एक युद्धपोत एक टनसे अधिक वजनका विस्फोटक गोला प्रायः ७० मीलकी दूरी तक फेंक सकता है और क्रूसर उससे कम दूरी तक फेंक सकता है और 'ड्रेस्ट्रायर' एवं 'फ्रिगेट' तो केवल ५० पौंडका गोला ७ मील तक ही फेंक सकते हैं। यदि कोई 'डेस्ट्रायर' किसी 'युद्धपोत'से भिड़ जाये तो 'डेस्ट्रायर' की मारसे पूर्व ही वह युद्धपोत द्वारा विनष्ट कर दिया जायेगा। यही कारण है कि नौसैनिक युद्धमें जहाज अपने वर्गके पोतोंसे ही भिड़ते हैं।

वर्तमान युगमें नौसैनिक युद्धका स्वरूप पूर्णरूपेण बदल गया है। अब सुदृढ़ता एवं आत्मरक्षाकी क्षमता घटाये बगैर तेज पनडुब्बियों द्वारा आक्रमणको सहन करनेकी क्षमताको बढ़ाना अनिवार्य हो गया है। नौ बेड़ेकी छोटी 'यूनिटोंने अपने ऊपर 'पनडुब्बी ध्वंसक' तथा 'विभान ध्वंसक'का काम भी ले लिया है। यह काम 'फ्रिगेट' करते हैं जो शत्रुकी पनडुब्बियोंसे अपनी रक्षा करते हैं। समुद्री बन्दरगाहों एवं शत्रुकी तटवर्ती सेनाके बीच संकट उत्पन्न करनेके लिये 'क्रूसर' नामक जलयानोंका प्रयोग होता है। पर नौबेड़ेकी कहानीका अन्तिम चरण 'विमान वाहक' है।

अब स्वतंत्र भारतीय सरकार भी नौसेनाके महत्त्वको समझने लगी है। २६ जनवरी, सन् १९५० में गणतन्त्रकी घोषणाके साथ ही हमारी 'नौसेना'का भारतीयकरण कर दिया गया एवं उसमेंसे 'रायल' शब्द हटाकर इसे 'भारतीय नौसेनाके नामसे सम्बोधित किया गया। २७ मई, १९५१ में तत्कालीन राष्ट्रपति डॉ० राजेन्द्र प्रसादने सशस्त्र सेनाके कमाण्डरके रूपमें नौसेनाको राष्ट्रपतिकी ध्वजा प्रदान की। सबसे पहले सन् १९४८ में ब्रिटेनसे ७१३० टन वजनका एक युद्धपोत 'एच० एम० एस० एचलिस' मँगाया गया जिसका नाम बदल कर 'आइ० एन० एस० देहली' रखा गया। इस जहाजने पिछले युद्ध में 'लिट' नदी पर काफी

सराहीय काम किया था। इसके पश्चात् भारतीय सरकारने तीन विध्वंसक जहाज प्राप्त किये इनके नाम 'सँदरहम', 'रिडाउट' और 'ऐंडरबाट' को बदलकर क्रमशः 'राजपूत', रणजीत 'और राणा' रखे गये। इसके साथ ही हन्ट श्रेणीके अन्य तीन विध्वंसक जहाज रायल नेवीसे खरीदे गये जिनके नाम'गोदावरी', 'गोमती' और 'गंगा' नामक नदियोंके नाम पर रखे गये।

भारतीय नौबेड़ेकी आधुनिकीकरणकी दिशामें विविध प्रकारके नवीन जहाज भी मँगवाये गये। इसमें कैयन, फ्रिगेट और सुरंग सफा करनेवाले जहाज थे। १९५७ के अन्तिम दिनोंमें 'कालोनी श्रेणीका युद्धपोत' आई० एन० एस० मैसूर शामिल हुआ। ८७०० टन वजनके इस जहाजका पूर्ववर्ती नाम एच० एम० एस० नाइजीरिया था। हमारे पास भारी सामानों, ट्रैक्टरों, बुल्डोजरों तथा अन्य वृहदाकार मशीनोंको एक स्थानसे दूसरी जगह ले जानेकी समस्याका समाधान 'आई० एन० एस० मगर' के द्वारा हुआ। इस जहाजने द्वितीय विश्वयुद्धमें भी सफलतापूर्वक प्रदर्शन किया था। यह अपने तरहका भारतमें अकेला 'लीण्डग शिप टैंक' नामक जहाज है।

सबसे अन्तमें भारतीय वेड़ेमें सम्मिलित होनेवाली विख्यात जहाज आई० एन० एस० विक्रान्त है। यह २०,००० टन वजनका 'विमानवाहक' जहाज है और इसका पूर्ववर्ती नाम 'एच० एम० एस० हरकुलिस' था। मार्च, १९६१ में इसे भारतीय नौसेनाने इंग्लैंडमें बुक कराया था जो ३ नवम्बर, १९६१ को बम्बई पहुँचा। यह 'मैजिस्टिक' श्रेणीका 'विमानवाहक' है और इसे पूर्णरूपेण आधुनिकतम शस्त्रास्त्रोंसे लेस किया गया है। इस विमानमें सी० हाक 'जेट लड़ाकू विमान', ब्रेक्वेट एलिजे' नामक टोह लगानेवाला विमान और सुरंग भेदी विमान हैं। यह भारतीय नौसेनाका 'फ्लेगशिप' है।

अब जहाज निर्माणकी दिशामें भी भारत आत्मनिर्भर होनेके लिये सचेष्ट है। पूनासे कुछ दूर स्थित खड़गवासलामें स्थित राष्ट्रीय प्रतिरक्षा एकेडमीका १९४९ में पुनर्गठन किया गया जहाँ सेनाके तीनों अंगोंके भावी अफसरोंको प्रशिक्षण दिया जाता है। इसके साथ ही आई० एन० एस० शिवाजी लोनावाला (पूनाके निकट) में मेकेनिक प्रशिक्षण संस्थान तथा आई० एन० एस वलसुरा (इलेक्ट्रिक स्कूल, जामनगर) आदि में भी देशकी आवश्यकता पूरी करनेमें संलग्न है। इस समय कोचीनका केन्द्र सबसे बड़ा है जहाँ सभी तरहकी ट्रेनिंग की जाती है। यह केन्द्र आधुनिकतम साज सामानोंसे सुसज्जित है। अब यहाँ कामनवेल्थ तथा अन्य विदेशी राष्ट्रोंके छात्र भी ट्रेनिंग लेने आते हैं।

अब बन्दरगाहों एवं डाकयार्डों पर भी सुधार किया जा रहा है। बम्बई डाकयार्डको काफी आधुनिकतम वनाया गया है। अब यहाँ 'क्रूसर एवं फ्रिगेट' के जानेकी भी व्यवस्था है। मई, १९५३ में कोचीनमें 'शोर वेस्ड फ्लीट रिक्वायरमेन्ट यूनिट' स्थापित की गई थी जिसका भारतीय नाम 'आई० एन० एस० गरुड़' रखा गया है। यह यूनिट बन्दरगाहोंकी समस्याओंका अध्ययन करता है। प्रारंभमें उसके पास 'सी लैन्ड' एवं 'फ्रीफ्लाई' नामक एयरक्राफ्ट ही थे पर अब इसमें वैम्पायर जेट भी शामिल कर लिये गये हैं ताकि नौसेना संबंधित हवाई ट्रेनिंग भी दी जा सके। कोचीनमें कतिपय अन्य एयर ट्रेनिंग स्कूल भी खोले गये हैं साथ ही जल-नभकी बढ़ती हुई आवश्यकताओंको पूरा करनेके लिये दक्षिण भारतके कोयम्बटूर नामक स्थान में 'आई० एन० एस० हंस' नामक एक एयर स्टेशन स्थापित किया गया था जिसे अब गोवामें स्थानान्तरित कर दिया गया है।

इस योजनाको, नौसैनिक जहाज भारतमें ही बने, प्रारंभ तो तभी कर दिया गया था जब यहाँ एक 'सर्वे-शिप' (टोह लेनेवाले जहाज), एक मूरिंग जहाज एवं कतिपय 'आक्सलरी नवल क्राफ्ट' बने थे। ये सभी विशाखापट्टम कलकत्तामें निर्मित हुए थे। अब डिस्ट्रायर एवं फ्रिगेट जैसे सामरिक महत्त्वके जहाजोंको

भी पूर्णरूपेण भारतमें ही बनानेकी योजना विचाराधीन है। यह कार्य ब्रिटिश जहाज निर्माण करनेवाली कम्पनियोंके साथ भारतीय 'मज़गाँव शिपयार्ड लिमिटेड' को सौंपा गया है। कलकत्ताकी 'गार्डन रीच वर्कशाप' ने भी नेवीके लिये कई 'आक्सीलरी क्राफ्ट' बनाये हैं। इस दिशामें सबसे सराहनीय कार्य किया है 'दि हिन्दुस्तान शिपयार्ड', विशाखापट्टम ने जिसने भारतीय नैवीका सर्वप्रथम 'हाइड्रोग्रेफिक' जहाज आई० एन० एस० दर्शकका निर्माण किया है। २१ फरवरी, १९६५ को इस जहाजका विधिवत् उद्घाटन तत्कालीन नौसेनाध्यक्ष पी० एस० सोमनने किया। भारतीय सागर एवं खाड़ियोंका सर्वेक्षण नौसेनाका उत्तरदायित्व है जिस कारण 'दर्शक' की प्राप्ति एक प्रसिद्ध उपलब्धि है क्योंकि इससे सर्वेक्षणके लिये आधुनिकतम उपकरणोंका उपयोग करनेमें नौसेनाको काफी सुविधा हो जायेगी। इसमें टोह लगानेके लिये एक हेलीकाप्टेरकी भी व्यवस्था है जिसके लिये जहाजमें विशेष उड़ान डेक एवं हैंगर बनाये गये हैं। २७,००० टनवाला यह जहाज भारतीय नौसेनाका प्रथम वातानुकूलित जहाज है। इसमें २२ अफसरों एवं २७० जवानोंके रहनेकी व्यवस्था है। प्रत्येक जवानका एक अलग बंक (सामान रखने एवं सोनेका कक्ष) है। इस जहाज के कर्मचारियोंका काम सागरी रास्तोंके नक्शे बनाना है ताकि नौसैनिक एवं व्यापारिक जहाज अपने-अपने मार्गों पर बिना किसी हिचकिचाहट एवं भयके आ जा सकें। लम्बा समुद्र तट होनेके कारण भारत जैसे देशके लिये निरन्तर चौकसीकी आवश्यकता है क्योंकि समुद्री तूफानों, बालूके टीलों, मूँगेकी चट्टानों एवं ज्वालामुखी पहाड़ोंके निरन्तर परिवर्तनोंसे मार्ग अवरुद्ध होता रहता है। इस शाखाका प्रधान कार्यालय देहरादूनमें है पर ग्रीष्मकालमें नक्शे निर्माणका कार्य दक्षिण भारतकी नीलगिरि पहाड़ियोंमें स्थित 'कोनार' नामक प्रदेशका आफिस करता है। हाइड्रोग्रेफिक शाखाके तीन अन्य जहाज 'यमुना', 'सतलज' एवं 'इनवेस्टीगेटर' हैं जिन्हें विशेष तौरसे भारतीय तटों एवं इसके निकटवर्ती प्रदेशोंके निरीक्षणार्थ नियुक्त किया गया हैं एवं ये अपना कार्य बड़ी मुस्तैदीसे कर रहे हैं।

इस तरह भारतीय नौसेनाकी कहानी एक गौरवमयी गाथा है। ये प्रेरणाके वे पावन प्रसून है जिनके अन्तरालमें विश्व-शक्ति, व्यापारिक उत्थान, अन्तर्राष्ट्रीय सौहार्द्र एवं आर्थिक प्रगति सन्निहित है साथ ही है एक उद्घोष कि भारत अपनी आत्मरक्षामें पूर्ण सजग है और आक्रान्ताओंको अनन्त जलसमाधि दिलानेकी पूर्ण क्षमता रखता है।

●

Chandra Images From Rajasthan

By R. C. Agrawala

Director, Archaeology & Museums, Jaipur.

Some early images of Chandra (Moon), one of the prominent planets (*grahas*), have already been published by Dr. M. R. Majmudar.[1] These include an excellent Gupta stone-head from Vidiśā (M. P.) and now preserved in Gwalior Museum; the male head therein is provided with a typical Gupta crown and a half-moon (*ardhachandra*) mark behind; the portion below the neck is missing. Earlier representations of moon are of course not repòrted so far. Standing Chandra from Pahārpur (Bengal) holds a beaded rosary in the right hand, a nectar-pot (*Kuṇḍikā*) in the left, as also enjoined by the Agni *Purāṇa*. The utter absence of any vehicle in the Pahārpur Chandra image is very important (*Fig. 1*); he is provided with the matted locks (*jaṭā*) on the head while the prominent half-moon (*ardha Chandra*) mark appears just above the head.[3] This led some scholars to interpret the Pahārpur relief as *Chandra Śekhara Śivamūrti* but the mistake was duly corrected by Majmudar[4] and Saraswati.[5] Dr. Majmudar has also published a mediaeval (12-13th century) marble relief from Vaḍnagar,[6] depicting Chandra and Sūrya standing side by side. The latter, appearing to right, carries two lotus-stalks in his hands whereas Chandra (to left) holds a water-pot in the stretched left hand, the right hand having been raised up to carry the beaded rosary; the crescent mark behind his head suggests identification with Chandra, the Moon-god.

The *Vishṇudharmottara Purāṇa*[7] refers to four-armed Chandra, seated on a chariot driven by 10 horses, a form which is depicted in a rather very late statue in Nagpur Museum.[8] Contemporary or mediaeval icons referring to this aspect of Chandra have of course not been reported so far. A few independent carvings

---

1. M. R. Majmudar, *Annals of Bhandarkar Oriental Research Institute*, Poona, XXIII, 1942, pp. 262-70 and plates.
2. *Ibid*, plate V.
3. *Ibid*, plate II.
4. *Ibid*, pp. 267-70.
5. S. K. Saraswati, *Journal of the Deptt. of Letters*, Calcutta, pp. 66-7.
6. M. R. Majmudar, *op. cit.*, plate IV. It is situated in North Gujarat.
7. Book III, edited by Dr, P. B. Shah in *G. O. Series*, Baroda. Vols. I (1958-text and II (1961-notes). Chapter 68, verse 5.
8. M. R. Majmudar, *op. cit.*, plate VI.



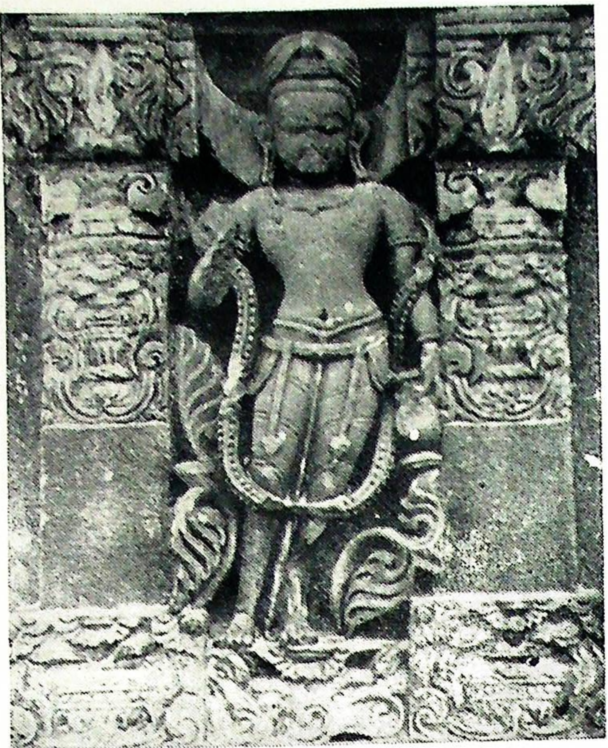
(1) Chandra with Crescent mark on Read above From Paharpur (Bengal).



(2) Seated Brahmā from Elephanta, sow of 'Swans' below the Lotus Seat Drawing by C. Sivarammurti.



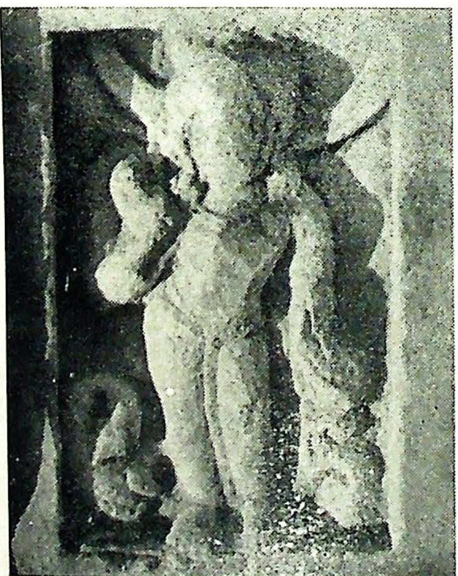
(3) Chandra with Vahan which is near his right Leg Osian (Jodhpur).



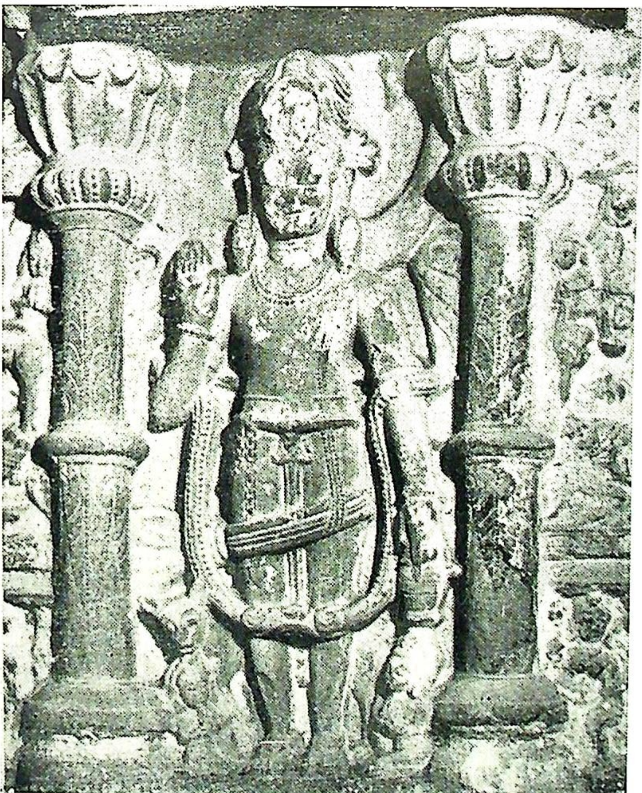
(4) Chandra without a vehicle, Road side Temple (Osian–Jodhpur).



(5) Chandra Seated with two Swans below Hari Har Temple No 1, (Osian–Jodhpur). Photo R. C Agrawal



(6) Chandra with a Single Swan, Pengore, Bharatpur. Discoverd by Sri R. C. Agrawal



(7) Standing Chandra under of Sun Temple at Chittorgarh (Rajasthan): 8th Century, Photo P. G. A., New Delhi

from Ṛajasthan are, therefore, worth scrutiny in this paper. On some mediaeval reliefs also we find various representations of Chandra with its *Vāhana* marked on the pedestal. A detailed study of such mediaeval reliefs, by Mrs. Debala Mitra,[1] has revealed the following vehicles of Chandra.

(1) Fish; because of Chandra's association with water. According to the *Vishṇu Purāṇa* (Book II, Chapter, Verse 3), the horses of Chandra sprang from the bosom of water, as rightly pointed out by Debala Mitra.[2]

(2) Horse; Mitra, *op. cit.*, plate XII, fig. 12, p. 22.

(3) Animal, probably lion (?), *ibid*, plate XVI, fig. 19, p. 23.

(4) Ram (*mesha*), *ibid*, p. 20, plate IX, fig. 9.

(5) Crocodile (*makara*), *ibid*, plate XII, fig. 15, p. 22, as also on the *Navagraha* slab from Gorakhpur and now in Lucknow Museum.[3] The crocodile is also the vehicle for Varuṇa, the lord of waters.

The *Vishṇudharmottara Purāṇa* (I, p. 191, Chapter 67, verse 1) states that the *Sun and Moon are respectively other forms of Agni and Varuṇa, and that seems to be the reason why the crocodile was associated with* Chandra *on some of the Navagraha reliefs*. The same Purāṇa (I, Chapter 52, verse 18) also refers to Varuna's chariot driven by 7 swans yoked to it—*sapta-haṃsarathe tasya Varuṇasya mahātmanaḥ*. A similar type of *Haṃsa-ratha* is prescribed by this Purāṇa (*ibid*, Chapter 44, verse 6) for Brahmā as well i. e. *jaṭādharaṃ chaturbāhuṃ saptahaṃse-rathasthitam*. This seems to corroborate the sculptural representation at Elephanta, where we find three-headed Brahmā[4] seated on a lotus seat which is marked by 7 swans in a single row. (*Fig. 2*). The close association of Brahmā with Soma (Chandra) is very well corroborated by a literary reference in the *Mārkaṇḍeya*[5] *Purāṇa*, Chapter 17, verses 10-12. These identifications and affiliations may have led to the transference of Brahmā's or Varuna's *haṃsa* (swan) to Chandra (Moon). Fal and Bhattacharya (*op. cit.*, *p.* 22) state that "Chandra rides a goose and only the *Kriyāsangraha Panjikā* gives the number of geese as seven. This must have therefore been the literary tradition followed by the artists in Nepal". According to them (Pal and Bhattacharya, *op. cit.*, p. 22). "*the earliest representation of Chandra riding a chariot of geese or swans occurs in the Buddhist paintings of Tun-huang, on the borders of* C. *Asia and China*".

---

1. *Journal of Asiatic Society of Bengal*, New Series, Calcutta, VII, (1-2), 1965, pp. 13 38 and figs. 1-21.
2. *Ibid*, p. 19, plate VII, figure. 8.
3. P. Pal & D. C. Bhattacharya, *The Astral Divinities of Nepal*, Varanasi, 1969, figure 7.
4. C. Sivaramamurti, *Indian Sculpture*, 1961, New Delhi, figure 10 on p. 58.
5. Cited by Pal & Bhattacharya, *op. cit.*, p 21.

The temple No. 2 at Osian[1], near Jodhpur in Rajasthan preserves, on the exterior south wall of the main sanctum, an image of standing and two armed Chandra with crescent mark at back; he carries a *Kamaṇḍalu* in his left hand while the right holds the *aksha-mālā*. The relief may still be seen between the niches containing images of Trivikrama and standing Agni; the vehicle of Chandra appears to be a lion (?) here (*Fig.3*), which is of course conspicuous by its absence in a somewhat similar type of standing Chandra in the back niche of roadside temple at the same site (*Fig. 4*). Most important of course is seated Chandra on the exterior of Hari Hara Temple No. 1 at Osian (*Fig. 5*); the face of the moon-god is partly peeled off; he has got matted locks on the head and holds a beaded rosary in the raised up right hand; the left hand carries a water-pot *Below the seat of Chandra appear two swans, each facing opposite directions*. This is quite an unusual sculpture (13 inches × 9 inches); the two swans may here suggest Chandra's association with *sapta-haṃsa-ratha*. There is nothing to reflect any Buddhist impact on it; the entire complex of these temples at Osian is Brahmanical and hence the existing carving of a *Chandra relief 'with two swans' on a Hari-Hara Temple at Osian is of great artistic and iconographic interest*. This motif appears to have travelled to Central Asia, under the impact of Indian art traditions. The symbolic representation of Sun and Moon, as weapons carried by Śiva, in early-mediaeval paintings from Dandānuiliq[2] and Bālāwaste[3] in Central Asia, should also be kept in view; Sun is represented by a 'wheel' and moon by a 'crescent' mark. The same motif should now be looked into the multi-headed representation of Śiva in a Shāhī relief[4], and also in the famous early-Gupta Śiva-Pārvatī terracotta from Raṅgamahal[5], now preserved in Bikaner Museum. What has till now been interpreted to be Gaṅga or some obscure Gaṇa figure, just above the central head of Śiva in the Bikaner terracotta, may well be identified as the Śiva bust, carrying a wheel (Sun) in the right hand and crescent (*ardha-Chandra*= Moon) in the left. The *Chaturmūrti* aspect of Śiva, in this early Śiva-Pārvati relief from Rajasthan, should therefore be carefully examined. The Sun & Moon as emblems, carried by Śiva in all sculptures & terracottas, may also be seen in the *Chaturmūrti* Śiva image recently discovered by Dr. N. P. Joshi at Mūsānagar,

---

1. Stella Kramrisch, *The Art of India*, 1965 edition, plate 116, p. 209, D. R. Bhandarkar, *Archaeological Survey of India- Annual Report*. 1908-9, plate 37-B.
2. Anand Coomaraswamy, A *History of Indian & Indonesian Art*, 1929. London, plate 94, figure 285.
3. M. Bussagli, *Painting of Central Asia*, Geneva, 1963, figure on p. 60.
4. Douglas Barret, *Oriental Art*, London, III (2), 1957, fig. 12 on p. 58.
5. *Lalit Kala*, 8, 1960, plate XXIV, figure 14. I have discussed this problem in detail in my paper published in the *Bulletin of Museums and Archaeology in U. P.*, Lucknow, No. 3, June 1969 pp. 9-13. and plates.

near Kanpur (U. P.); the relief is datable to the Kushāṇa period; the fourth Śiva bust is shown just above the central Śiva-head; here also he carries the sun and moon symbols in the upper arms. The inspiration for Central Asian and Shāhi representations therefore seems to have been derived from the earlier carvings from India. The famous inscribed Varāha from Mathura Museum[1] and datable to the Kushāṇa period holds two circular discs in his upper hands, the same bear, in the circular space, carvings of a male person seated on a chariot driven by two horses. It is likely that the sculptor associated Chandra and Sūrya with Mahā Varāha in this particular Kushāṇa panel and depicted them alike. The seven horses for Sun's chariot and ten horses for Chandra's chariot were probably not fully carved in this particular relief due to the paucity of space. The *Matsya Purāṇa* (More Edition, 247. 68) calls Varāha as the the 'holder of the eye of the day and night' and that may possibly be the reason for carving such discs, with solar figures, in the upper hands of Varāha. The entire problem needs further probe.

From Rajasthan may also be reported another interesting stone relief studded into the right exterior niche of Sun Temple at Chittor and datable to the 8th century (Fig. 6). Two armed and standing Chandra here appear in the company of an animal, which is equally unusual. The animal standing behind Chandra appears like a 'dog' (?) though we are not aware of such a *Vāhana* for the god. Other details, including the weapons, matted locks on the head and crescent mark behind, rope-like garland hanging down to the knees etc, have been delineated quite vividly; the rosary in the right hand and a *kamaṇḍalu* in the left hand of Chandra are very well preserved. Hardly do we come across any Sūrya temple wherein we notice an image of Chandra carved independently as the one from Chittor under review.

During my recent explorations in Bharatpur region I was able to discover at Pengore (near Kumher) a colossal stone relief where appear carving of two armed Chandra in standing pose. He holds a water-pot in the left hand and rosary in the other. *The tiny figure of a single swan near his right leg is very interesting.* The relief, now in Bharatpur Museum, is datable to the Pratihāra period (Fig. 7). All these are very important early-mediaeval representations of two armed moon god on Pengore panel in exterior niches of Osian temples.[2] The grouping of Ganeśa, Sūrya, Chandra and the Guardian of Quarters including Kubera on the exteriors of

---

1. N. P Joshi, *Mathura Sculptures*, 1965, Hindi, Mathura, plate 101, Appendix 2.
2. Figure 2 has been copied from *Indian Sculpture* by Mr. C. Sivaramamurti. Photograph of Figure 4 (Chittor Chandra) has been supplied by the Director General, Archaeological Survey of India, New Delhi, negative number being 2517-1962, figure 3 by the author and the rest by the Director, Archaeology and Museums, Rajasthan, Jaipur.

The temple No. 2 at Osian[1], near Jodhpur in Rajasthan preserves, on the exterior south wall of the main sanctum, an image of standing and two armed Chandra with crescent mark at back; he carries a *Kamaṇḍalu* in his left hand while the right holds the *aksha-mālā*. The relief may still be seen between the niches containing images of Trivikrama and standing Agni; the vehicle of Chandra appears to be a lion (?) here (*Fig.3*), which is of course conspicuous by its absence in a somewhat similar type of standing Chandra in the back niche of roadside temple at the same site (*Fig. 4*). Most important of course is seated Chandra on the exterior of Hari Hara Temple No. 1 at Osian (*Fig. 5*); the face of the moon-god is partly peeled off; he has got matted locks on the head and holds a beaded rosary in the raised up right hand; the left hand carries a water-pot *Below the seat of Chandra appear two swans, each facing opposite directions.* This is quite an unusual sculpture (13 inches × 9 inches); the two swans may here suggest Chandra's association with *sapta-haṃsa-ratha*. There is nothing to reflect any Buddhist impact on it; the entire complex of these temples at Osian is Brahmanical and hence the existing carving of a *Chandra relief 'with two swans' on a Hari-Hara Temple at Osian is of great artistic and iconographic interest.* This motif appears to have travelled to Central Asia, under the impact of Indian art traditions. The symbolic representation of Sun and Moon, as weapons carried by Śiva, in early-mediaeval paintings from Dandānuiliq[2] and Bālāwaste[3] in Central Asia, should also be kept in view; Sun is represented by a 'wheel' and moon by a 'crescent' mark. The same motif should now be looked into the multi-headed representation of Śiva in a Shāhī relief[4], and also in the famous early-Gupta Śiva-Pārvatī terracotta from Raṅgamahal[5], now preserved in Bikaner Museum. What has till now been interpreted to be Gaṅga or some obscure Gaṇa figure, just above the central head of Śiva in the Bikaner terracotta, may well be identified as the Śiva bust, carrying a wheel (Sun) in the right hand and crescent (*ardha-Chandra*= Moon) in the left. The *Chaturmūrti* aspect of Śiva, in this early Śiva-Pārvati relief from Rajasthan, should therefore be carefully examined. The Sun & Moon as emblems, carried by Śiva in all sculptures & terracottas, may also be seen in the *Chaturmūrti* Śiva image recently discovered by Dr. N. P. Joshi at Mūsānagar,

---

1. Stella Kramrisch, *The Art of India,* 1965 edition, plate 116, p. 209, D. R. Bhandarkar, *Archaeological Survey of India- Annual Report.* 1908-9, plate 37-B.
2. Anand Coomaraswamy, A *History of Indian & Indonesian Art,* 1929. London, plate 94, figure 285.
3. M. Bussagli, *Painting of Central Asia,* Geneva, 1963, figure on p. 60.
4. Douglas Barret, *Oriental Art,* London, III (2), 1957, fig. 12 on p. 58.
5. *Lalit Kala,* 8, 1960, plate XXIV, figure 14. I have discussed this problem in detail in my paper published in the *Bulletin of Museums and Archaeology in U. P.,* Lucknow, No. 3, June 1969 pp. 9-13. and plates.

near Kanpur (U. P.); the relief is datable to the Kushāṇa period; the fourth Śiva bust is shown just above the central Śiva-head; here also he carries the sun and moon symbols in the upper arms. The inspiration for Central Asian and Shāhi representations therefore seems to have been derived from the earlier carvings from India. The famous inscribed Varāha from Mathura Museum[1] and datable to the Kushāṇa period holds two circular discs in his upper hands, the same bear, in the circular space, carvings of a male person seated on a chariot driven by two horses. It is likely that the sculptor associated Chandra and Sūrya with Mahā Varāha in this particular Kushāṇa panel and depicted them alike. The seven horses for Sun's chariot and ten horses for Chandra's chariot were probably not fully carved in this particular relief due to the paucity of space. The *Matsya Purāṇa* (More Edition, 247. 68) calls Varāha as the the 'holder of the eye of the day and night' and that may possibly be the reason for carving such discs, with solar figures, in the upper hands of Varāha. The entire problem needs further probe.

From Rajasthan may also be reported another interesting stone relief studded into the right exterior niche of Sun Temple at Chittor and datable to the 8th century (Fig. 6). Two armed and standing Chandra here appear in the company of an animal, which is equally unusual. The animal standing behind Chandra appears like a 'dog' (?) though we are not aware of such a *Vāhana* for the god. Other details, including the weapons, matted locks on the head and crescent mark behind, rope-like garland hanging down to the knees etc , have been delineated quite vividly; the rosary in the right hand and a *kamaṇḍalu* in the left hand of Chandra are very well preserved. Hardly do we come across any Sūrya temple wherein we notice an image of Chandra carved independently as the one from Chittor under review.

During my recent explorations in Bharatpur region I was able to discover at Pengore (near Kumher) a colossal stone relief where appear carving of two armed Chandra in standing pose. He holds a water-pot in the left hand and rosary in the other. *The tiny figure of a single swan near his right leg is very interesting.* The relief, now in Bharatpur Museum, is datable to the Pratihāra period (Fig. 7). All these are very important early-mediaeval representations of two armed moon god on Pengore panel in exterior niches of Osian temples.[2] The grouping of Ganeśa. Sūrya, Chandra and the Guardian of Quarters including Kubera on the exteriors of

---

1. N. P Joshi, *Mathura Sculptures*, 1965, Hindi, Mathura, plate 101, Appendix 2.
2. Figure 2 has been copied from *Indian Sculpture* by Mr. C. Sivaramamurti. Photograph of Figure 4 (Chittor Chandra) has been supplied by the Director General, Archaeological Survey of India, New Delhi, negative number being 2517-1962, figure 3 by the author and the rest by the Director, Archaeology and Museums, Rajasthan, Jaipur.

these temples at Osian (distt. Jodhpur) is all the more interesting which amply proves that *Chandra did not represent any Dikpāla at that stage.* In Hari-Hara Temple No. 1 at Osian we notice seated Chandra (Fig. 3) on the southern side of the sanctum while *naravāhana* Kubera appears in a northern niche of the same shrine.

Let us also scrutinise the *dikpālas* as depicted on the upper portion of *Kalyānasundara* slab from Kannauj and datable to the Pratihāra period. Mr. Mohan Mukhopadhyaya has made a fresh study thereof (*Journal of Indian Society of Oriental* Art, Calcutta, New Series, 1967-68, Vol. II, pp. 4-6 & plate I, fig. 1) In the topmost left corner of Kannauj relief may be seen a male figure riding astride on a swan (*hamsa*), though some scholars have wrongly identified the same as Kārttikeya. Mr. Mukhopadhyaya likes to identify this figure as that of Chandra, the Moon god, but that does not seem to be reasonable in view of a noose (*pāśa*) in his right hand and not a lotus flower. The crescent mark is also absent. It probably represents Varuṇa, who is associated both with a noose and a swan. According to the *Vishṇu-dharmottara Purāṇa,* cited above, "Varuṇa even rides on a chariot driven by seven swans". More so, the entire grouping, in the upper portion of Kannauj relief, relates to the *dikpālas*, such as Indra on elephant, Vāyu on horse, Yama on a buffalo, Niriti on a man (he is not Kubera,......etc.; pot-bellied Kubera is there seated to right and just above appears seated Gaṇeśa, not identified by Mukhopadhyaya. We may also note the depiction of Varuṇa riding on a swan likewise in the early Pratihāra *Kalyāṇasundara* relief form Kāmān (Bharatpur) and now preserved in the National Museum at New Delhi. Varuna in Ellora panel of course rides over a crocodile (*makara*). It appears that some of the Pratihāra sculptors had also associated a swan with Varuṇa, the prominent *Dikpālas* in early Indian art. Varuṇa, therefore, should not be confused with Chandra (Moon). Dr. K. C. Panigrahi (*Archaeological Remains at Bhubaneshwar,* 1961, Calcutta, p. 72, figure 40) illustrates the two-armed statue which he calls Chandra, though there is utter absence of the crescent mark and the vehicle in the photograph of Paraśurāmeśvara relief published by him.

I have recently come across at Sikar, a 10th century panel depicting dancing Gaṇeśa, standing Sun & Moon in a single row. Chandra here has got a crescent mark behind his head. This combination is equally unusual.

•

1. It is an unpublished relief studded near the stair-case of modern temple on Harsha Hill, near Sikar in Rajasthan.

एन० मिश्रा के लेख प्रिहस्टोरिक बैकग्राउण्ड आफ राजस्थान कल्चर

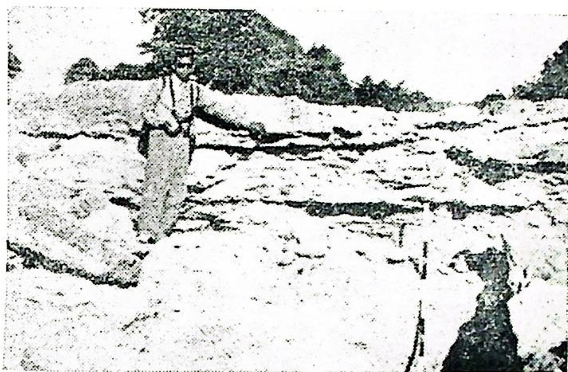


Plate No 1

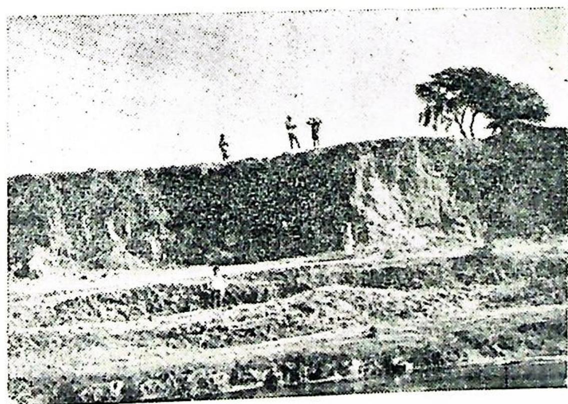


Plate No 2

these temples at Osian (distt. Jodhpur) is all the more interesting which amply proves that *Chandra did not represent any Dikpāla at that stage.* In Hari-Hara Temple No. 1 at Osian we notice seated Chandra (Fig. 3) on the southern side of the sanctum while *naravāhana* Kubera appears in a northern niche of the same shrine.

Let us also scrutinise the *dikpālas* as depicted on the upper portion of *Kalyānasundara* slab from Kannauj and datable to the Pratihāra period. Mr. Mohan Mukhopadhyaya has made a fresh study thereof (*Journal of Indian Society of Oriental Art*, Calcutta, New Series, 1967-68, Vol. II, pp. 4-6 & plate I, fig. 1) In the topmost left corner of Kannauj relief may be seen a male figure riding astride on a swan (*haṁsa*), though some scholars have wrongly identified the same as Kārttikeya. Mr. Mukhopadhyaya likes to identify this figure as that of Chandra, the Moon god, but that does not seem to be reasonable in view of a noose (*pāśa*) in his right hand and not a lotus flower. The crescent mark is also absent. It probably represents Varuṇa, who is associated both with a noose and a swan. According to the *Vishṇu-dharmottara Purāṇa*, cited above, "Varuṇa even rides on a chariot driven by seven swans". More so, the entire grouping, in the upper portion of Kannauj relief, relates to the *dikpālas*, such as Indra on elephant, Vāyu on horse, Yama on a buffalo, Niriti on a man (he is not Kubera,......etc.; pot-bellied Kubera is there seated to right and just above appears seated Gaṇeśa, not identified by Mukhopadhyaya. We may also note the depiction of Varuṇa riding on a swan likewise in the early Pratihāra *Kalyāṇasundara* relief form Kāmān (Bharatpur) and now preserved in the National Museum at New Delhi. Varuna in Ellora panel of course rides over a crocodile (*makara*). It appears that some of the Pratihāra sculptors had also associated a swan with Varuṇa, the prominent *Dikpālas* in early Indian art. Varuṇa, therefore, should not be confused with Chandra (Moon). Dr. K. C. Panigrahi (*Archaeological Remains at Bhubaneshwar*, 1961, Calcutta, p. 72, figure 40) illustrates the two-armed statue which he calls Chandra, though there is utter absence of the crescent mark and the vehicle in the photograph of Paraśurāmeśvara relief published by him.

I have recently come across at Sikar, a 10th century panel depicting dancing Gaṇeśa, standing Sun & Moon in a single row. Chandra here has got a crescent mark behind his head. This combination is equally unusual.

●

1. It is an unpublished relief studded near the stair-case of modern temple on Harsha Hill, near Sikar in Rajasthan.

एन० मिश्रा के लेख प्रिहस्टोरिक बैकग्राउण्ड आफ राजस्थान कल्चर

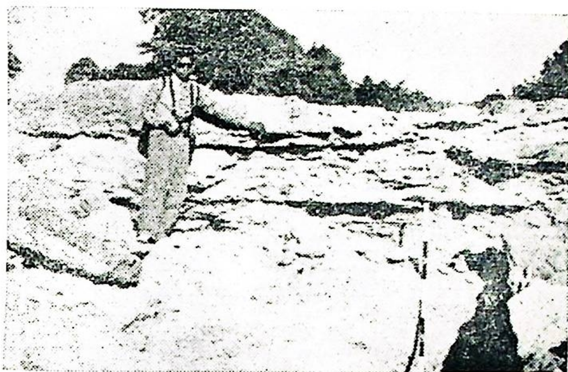


Plate No 1

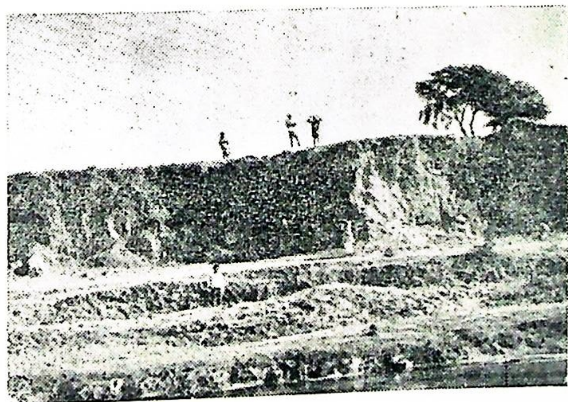


Plate No 2

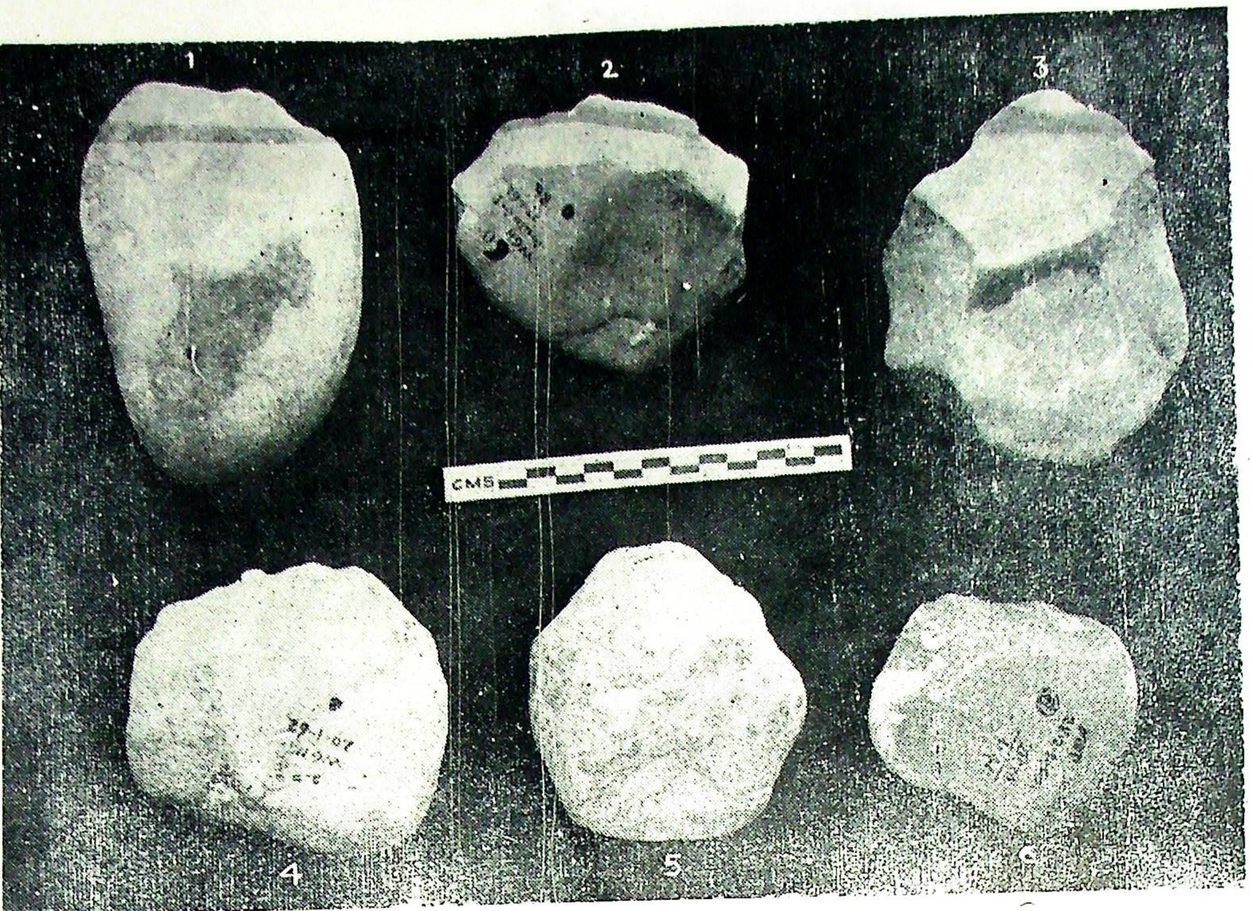


Plate No 3



Plate No 4

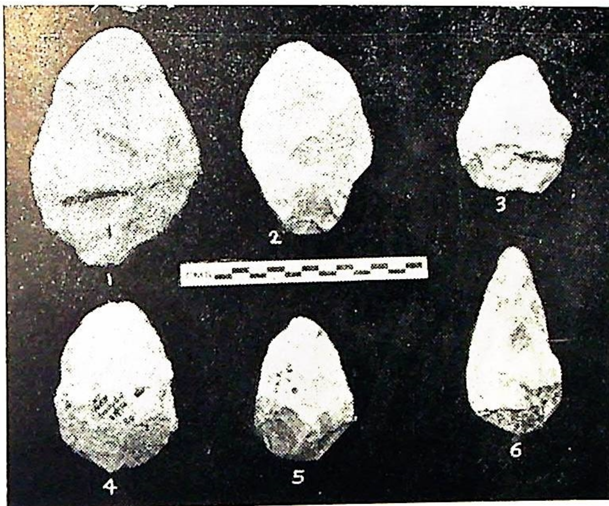


Plate No 5

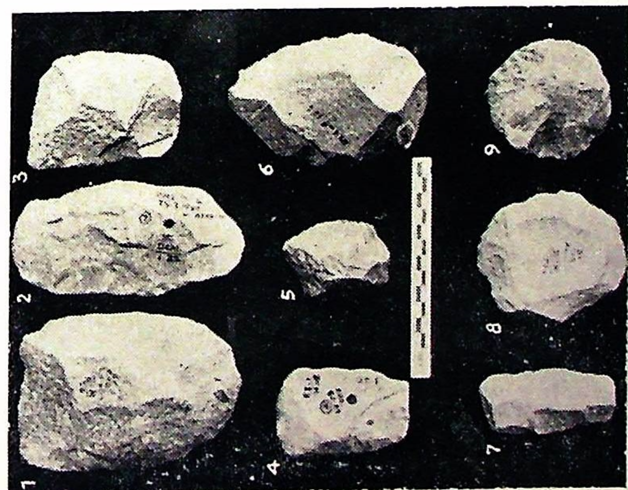


Plate No 6

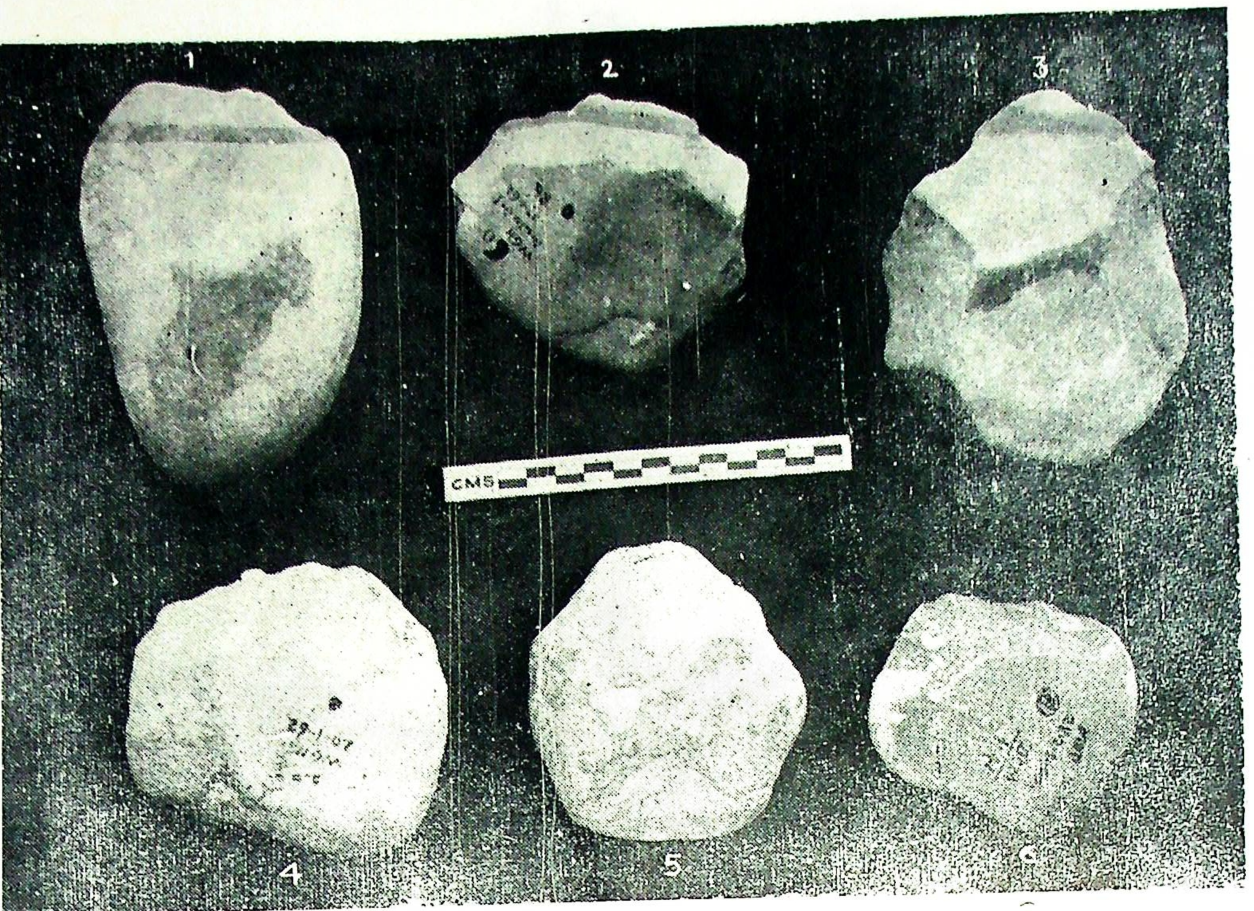


Plate No 3



Plate No 4

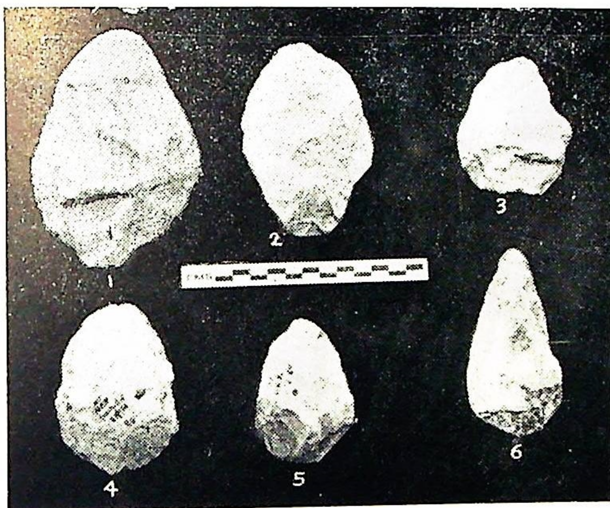


Plate No 5

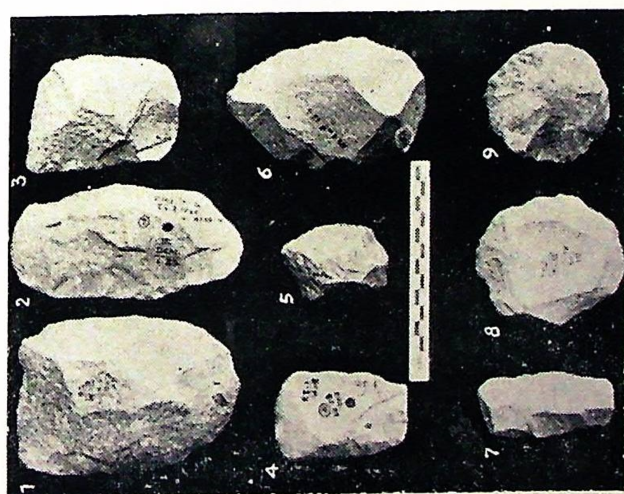


Plate No 6



Plate No 7

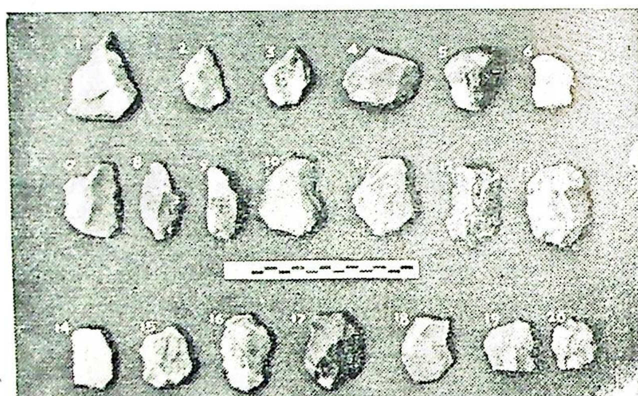


Plate No 8

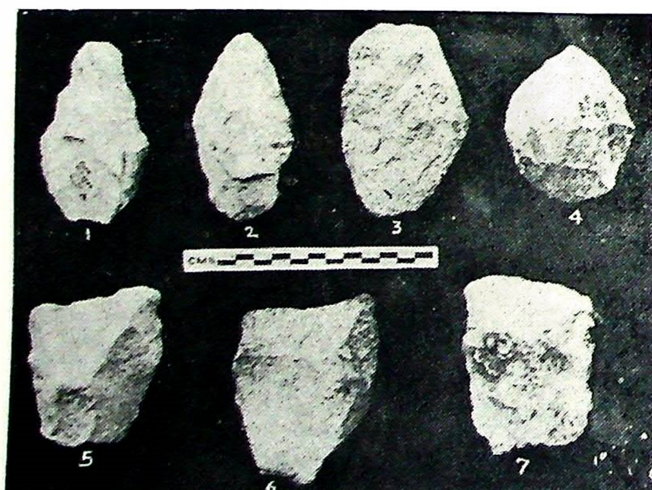


Plate No 9



Plate No 10

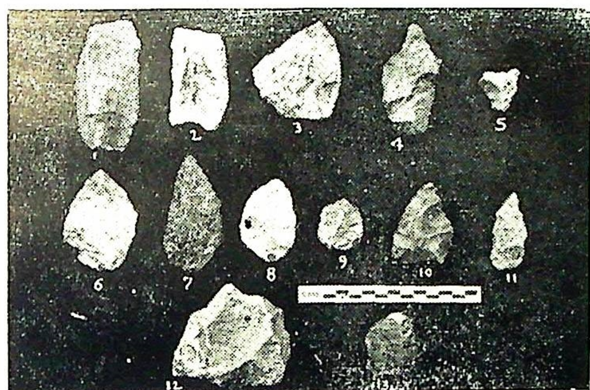


Plate Ne 11



Plate No 12



Plate No 7

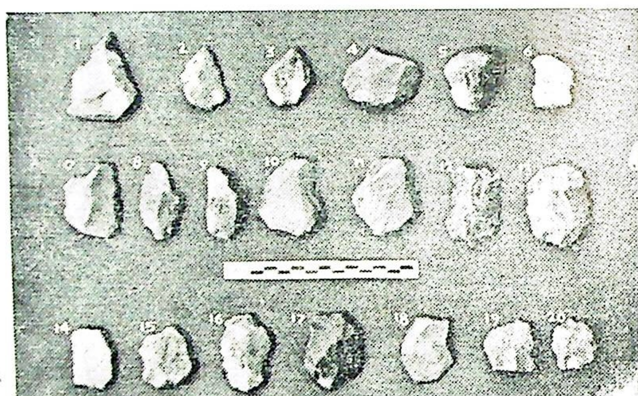


Plate No 8

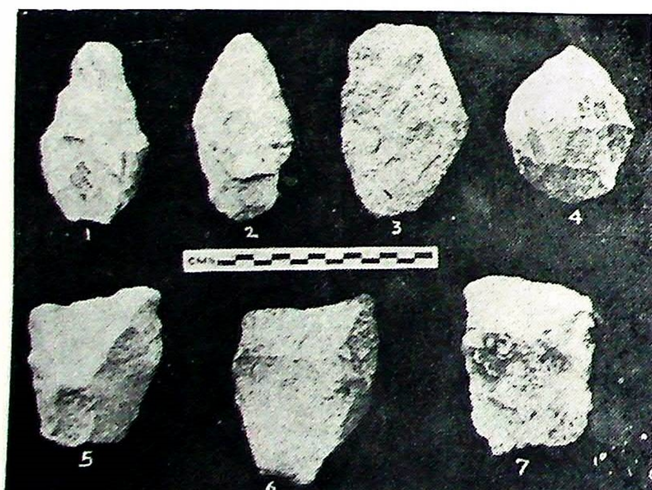


Plate No 9



Plate No 10

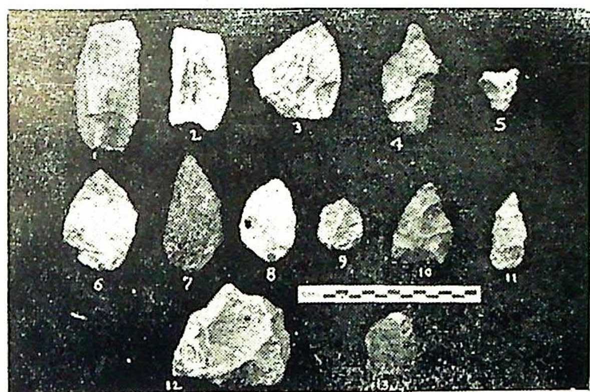


Plate Ne 11



Plate No 12

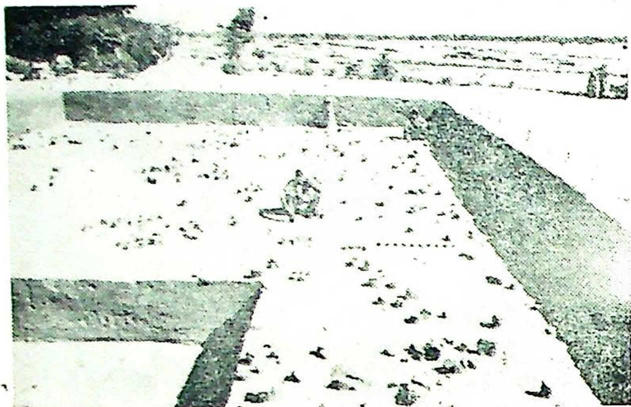


Plate No 13

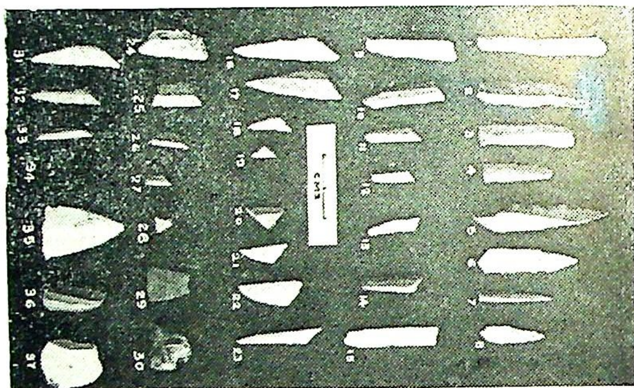


Plate No 14

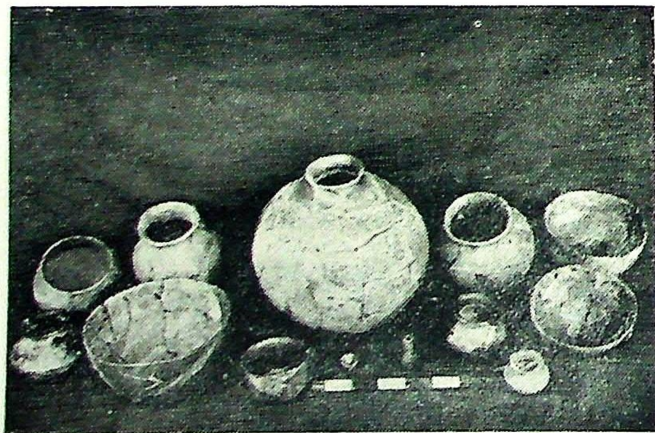


Plate No 15

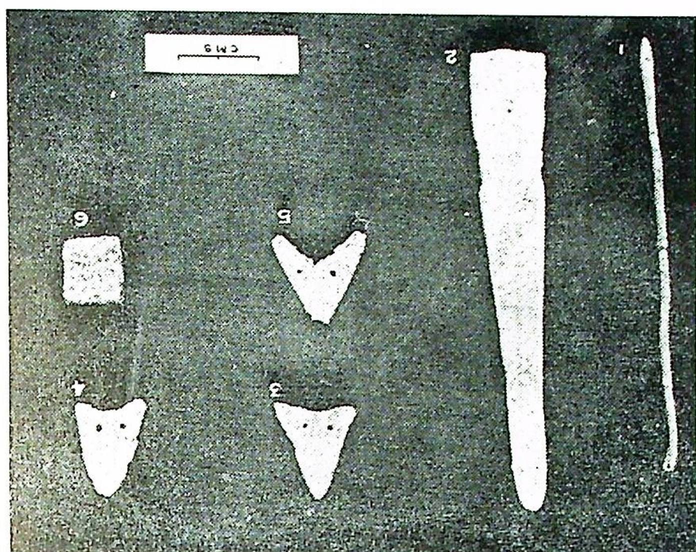


Plate No 16

Plate No 17

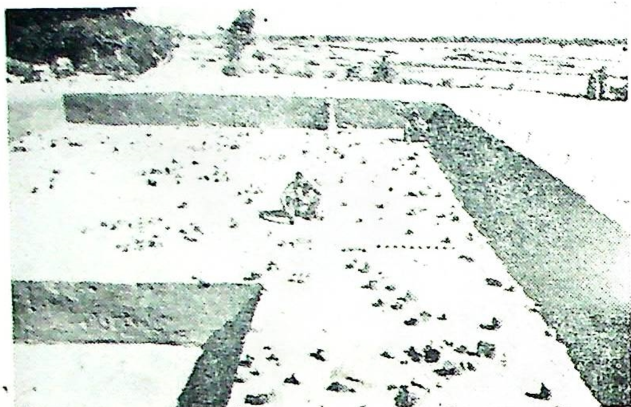


Plate No 13

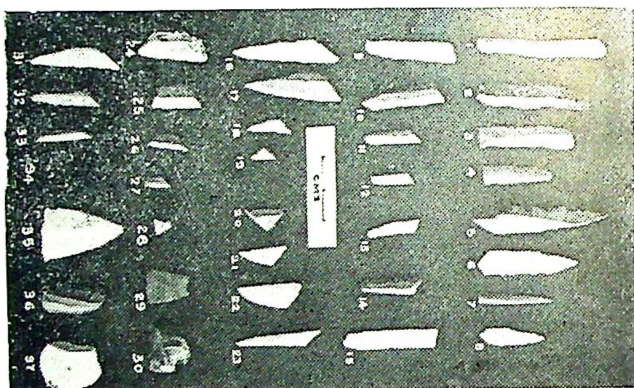


Plate No 14



Plate No 15

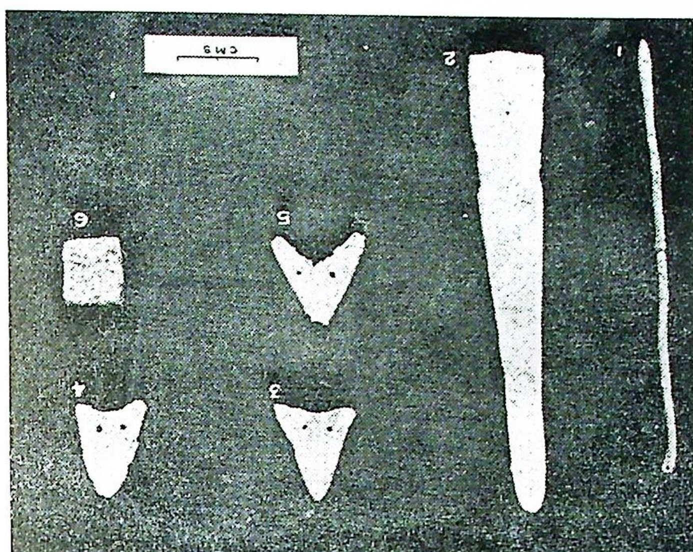
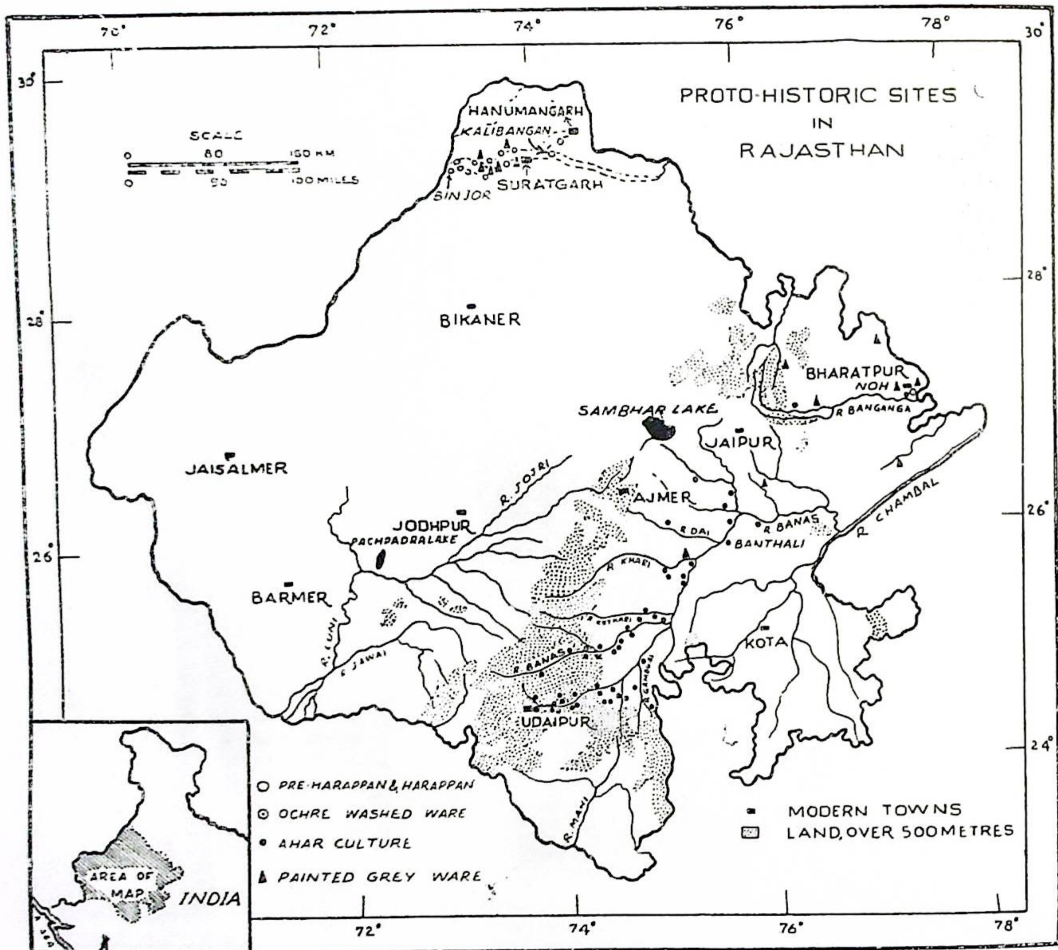
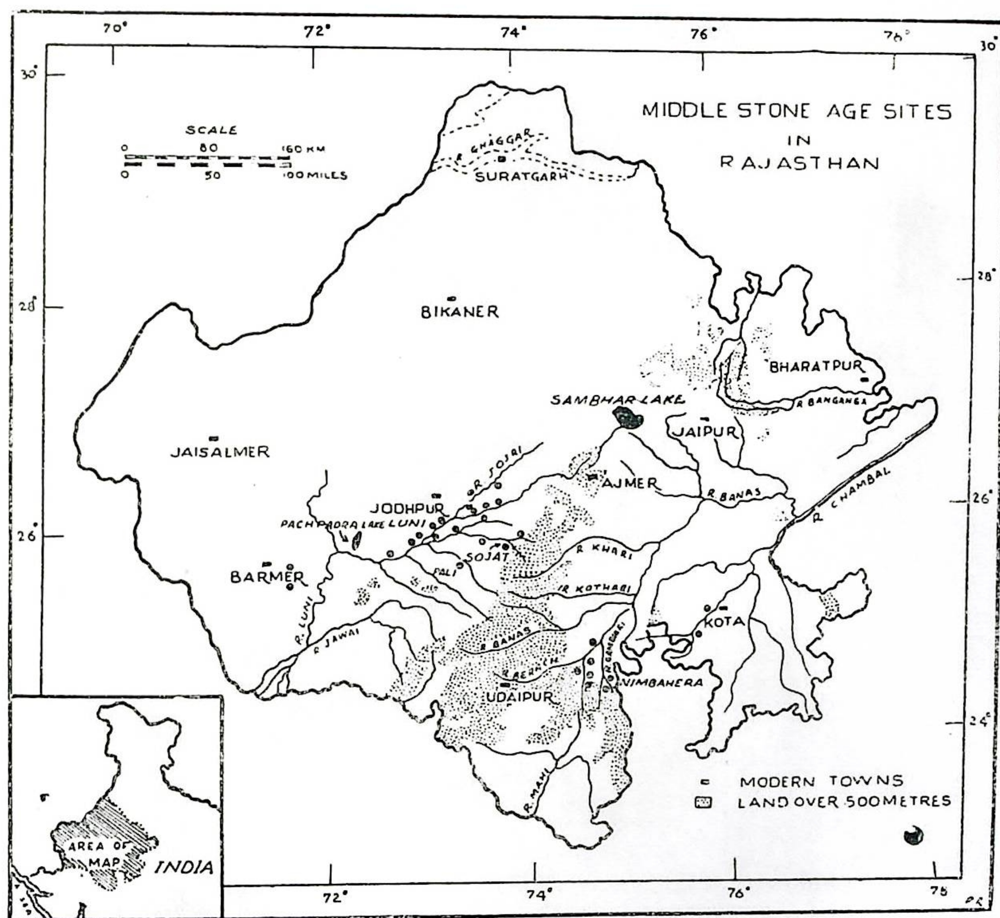
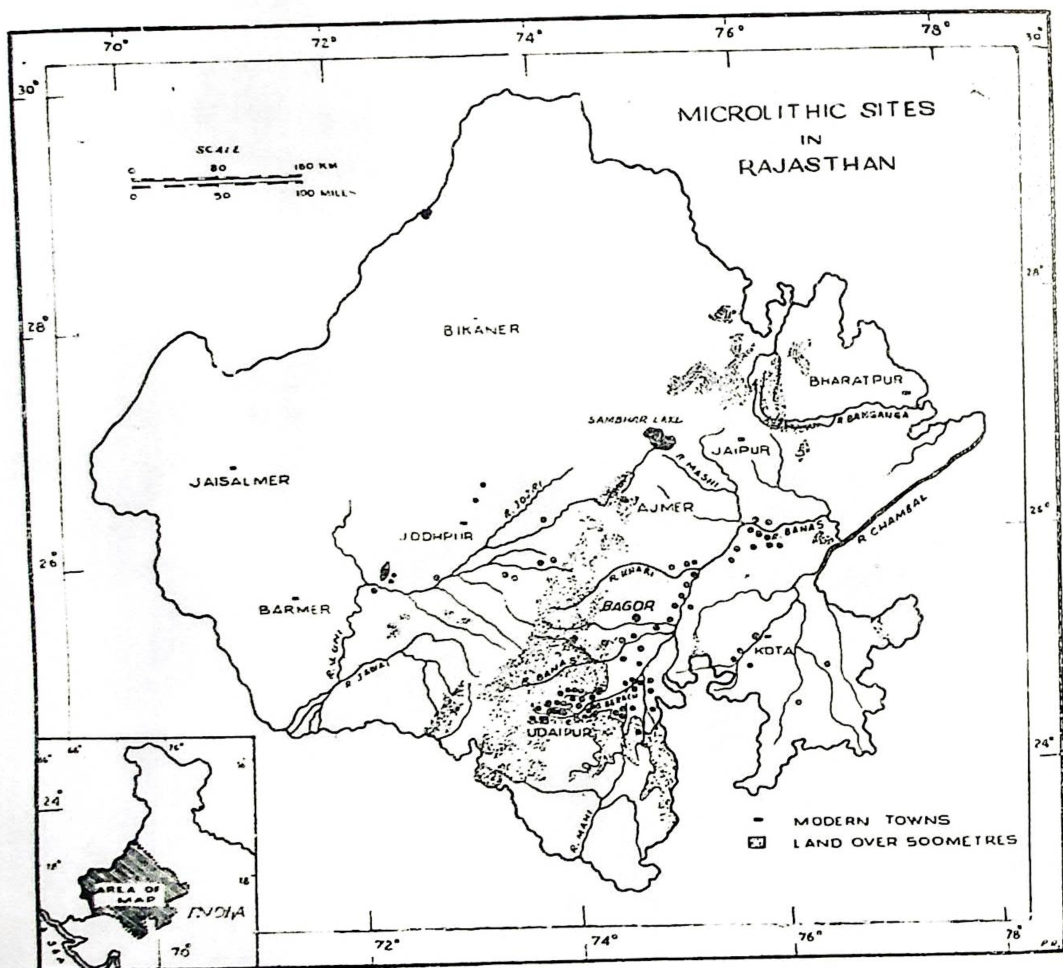


Plate No 16

Plate No 17


PROTO-HISTORIC SITES
IN
RAJASTHAN
SCALE
0 80 160 KM
0 50 100 MILES
HANUMANGARH
KALIBANGAN
SURATGARH
BINJOR
BIKANER
BHARATPUR
NOH
R BANGANGA
SAMBHAR LAKE
JAIPUR
JAISALMER
R. SOJRI
AJMER
R DAI
R BANAS
BANTHALI
R CHAMBAL
JODHPUR
PACHPADRA LAKE
R. KHARI
BARMER
R. LUNI
R. JAWAI
R BANAS
KOTA
UDAIPUR
R. MAHI
PRE-HARAPPAN & HARAPPAN
OCHRE WASHED WARE
AHAR CULTURE
PAINTED GREY WARE
MODERN TOWNS
LAND, OVER 500 METRES
AREA OF MAP
INDIA
70° 72° 74° 76° 78°
30° 28° 26° 24°


MIDDLE STONE AGE SITES
IN
RAJASTHAN
SCALE
0 80 160 KM
0 50 100 MILES
R. GHAGGAR
SURATGARH
BIKANER
BHARATPUR
R. BANGANGA
SAMBHAR LAKE
JAIPUR
JAISALMER
R. JOJRI
AJMER
R. BANAS
R. CHAMBAL
JODHPUR
PACHPADRA LAKE
LUNI
SOJAT
R. KHARI
PALI
BARMER
R. KOTHARI
R. LUNI
R. JAWAI
R. BANAS
KOTA
R. BERACH
NIMBAHERA
UDAIPUR
R. MAHI
MODERN TOWNS
LAND OVER 500 METRES
AREA OF MAP
INDIA
70°
72°
74°
76°
30°
28°
26°
24°


MICROLITHIC SITES
IN
RAJASTHAN
SCALE
BIKANER
JAISALMER
JODHPUR
BARMER
AJMER
JAIPUR
BHARATPUR
BAGOR
KOTA
UDAIPUR
R. CHAMBAL
R. BANAS
R. KHARI
R. MASHI
R. MAHI
MODERN TOWNS
LAND OVER 500METRES
AREA OF MAP
INDIA

Prehistoric Background of Rajasthani Culture

V. N. Misra

University of Poona.

Every Indian knows something of the heroism, chivalry and sacrifice of the Rajputs during the Medieval period of Indian history, and feels rightly proud of them. Educated and historically or artistically conscious people also know something of Rajasthan's rich and varied heritage of architecture, sculpture and painting. Historians, among whom the name of Shri Agar Chandji Nahata deserves special mention, have utilized the evidence from inscriptions, coins, manuscripts and other historical documents to illumine the rich historical past of Rajasthan. All these evidences, rich as they no doubt are, do not take our knowledge of Rajasthan's past beyond two or three centuries before Christ. Few people so far know that the history of Rajasthan (using the word history in its comprehensive sense as the story of man's past, both written and unwritten) goes back to a very remote past, at least a thousand years from now and probably more.

The great variety and complexity characterizing the Indian ethnic and cultural landscape is an oft-repeated statement, and it holds true for Rajasthan as much as for other parts of our country, Less adequately recognized and understood are the diversities in economic, technological and material culture patterns. Any one who is seriously interested in understanding the factors and processes which have created this diversity must look beyond the confines of the brief historical period. Archaeological discoveries show that many elements of our material culture are centuries or even millennia older than the recorded historical period. Basic items of our technology, economic patterns, many of the vessels used in our homes, our food habits and even our counting and measuring systems (before the change over to metric system) can be traced to prehistoric times. Thus a knowledge of prehistory (i. e. history before written documents of any kind came into existence) is essential for understanding not only our remote past but even our living present.

Stray discoveries of prehistoric objects and sites had been made in Rajasthan in the second half of the last century and the first half of the present century. But it is the systematic exploration and excavation in the last two decades that alone have substantially contributed to our knowledge of Rajasthan's prehistoric past. The institutions which have been responsible for this research are the Arch-

aeological Survey of India, the Department of Archaeology and Museums, Rajasthan and the Deccan College Research Institute and the University of Poona. The wo k done so farhas, however, covered only a part of the State; large areas remain completely unexplored. And planned and systematic excavation which alone can throw light on the many aspects of past cultures has been done on only a few sites. Indeed it is only a beginning and much more work is needed before we can write a true prehistory for the entire State. Yet with the work done so far it is possible to see a clear outline of the cultural history of Rajasthan from the beginning of Stone Age to the time when historical records begin to be available. This essay is an attempt to put before the scholars the results of the work done so far in this field.

For the convenience of treatment we can divide the period of Rajasthan's prehistory into the following sub-periods :

1. Earliest hunter-gatherers: The Lower Palaeolithic.
2. Advanced hunter-gatherers : The Middle Palaeolithic.
3. Final hunter-gatherers : The Mesolithic.
4. Beginnings of settled village life : The Chalcolithic.
5. Beginnings of urban life : The Indus Civilization.
6. Expansion of settled village life : ushering in of Iron Age.

Betore treating these periods individually it will be useful to briefly summarise the geographical setting of Rajasthan. A culture is an expression of man's adaptation to his environment and so can be understood only in the context of that environment. Though prehistoric environments were not always the same as the present one yet they were conditioned by the existing geographical features, and so the knowledge of present-day geographical conditions is useful to that end. The dominating feature of Rajasthan's geographical setting is the Aravalli range which divides the State into two unequal but distinct halves. The western part or Marwar is mainly a flat alluvial plain marked here and there by isolated hills and in the western and northern parts by numerous sand dunes. There are no large flowing rivers in the region. In the southern part there is a network of small streams with Luni as the principal river. All of them rise in the Aravallis and carry flowing water only for a few days during the monsoon. Their beds are largely choked with sand, with pools of stagnant water here and there. Yet there is plenty of geological evidence that during the remote past when stone-age man inhabited this region the rivers were regularly flowing, and the climate must have been different. In the desert to the north and west there are a number of saline lakes which too several millennia ago were fresh-water lakes. In the northernmost part of the State is the dried-up bed of the Ghaggar (ancient Saraswati) which as late as the Vedic period was a mighty flowing river.

The climate over most of the area is arid. Rainfall is generally well below 40 cm per annum and is very uncertain. There are frequent failures of rain and consequent famines. In these conditions agriculture is always pre-

carious and pastoralism has been an important element in the economy. The soil· however, is fertile and given adequate water can be made to yield rich harvest. This has been amply demonstrated in the Ghaggar bed in Sri Ganganagar District.

The eastern part or Mewar is mainly an undulating rocky plain. But it receives more rainfall and is consequently greener and fertile. The Chambal is the main river. It is perennial and has a large network of tributaries and sub-tributaries which carry water during at least half of the year. The southwestern portion of Mewar is hilly and thickly forested. At its eastern end it opens on to the fertile Malwa plain. In the north the cover of alluvium over the rocky plain increases and the country merges into the Indo-Gangetic plain.

Much of the population is dependent on agriculture. The Brahmins, the Rajputs, the Gujars, the Jats and the Dangis are the principal agricultural communities. The Garis and the Rewaris are pastoral. The former rear sheep while the latter keep herds of camels and cattle. The hilly and forested country of the Aravallis is inhabited principally by the Bhils, the Minas and the Garasias. Bhils and Minas are also found in other parts of the State where they have settled down in peasnat villages and become integrated in the peasant society. Those in the hilly areas still retain their distinctive culture. With the decline in the forest cover and wild life their dependence on hunting has declined, but Bhils still remain expert archers and exploit the resources of the forest for their living. They are inheritors of a distinct cultural tradition which can be traced to prehistoric times.

1. Earliest hunter-gatherers : The Lower Palaeolithic

Archaeological vestiges of this period constitute what prehistorians call the Acheulian culture. They consist only of stone tools. There is no doubt that the makers and users of these tools also used other materials like wood, animal hide, bone etc. for making their tools but the passage of time and the action of natural agencies must have destroyed them completely. Of their way of life we can have some idea only on the basis of comparative study with other areas. No living sites where their tools and the food-remains could have been preserved have been discovered. Their stone tools which have survived in plenty testify to a flourishing and large Acheulian population in Rajasthan. The principal tool types are handaxes, cleavers, choppers, chopping tools, scrapers and flakes besides the cores from which these flakes were removed. They are made mostly of quartzite and occasionally of sondstone or quartz by flaking or chipping from rounded river pebbles picked up from the river bed. These tools are found in thick bouldery and pebbly deposits which overlie either the basal bedrock or a white clayey deposit which is a product of the decomposition of the bedr ock and the fluvial action. These deposits indicate a relatively dry climate which produced plenty of rock debris in the hills. The climate must have, however, been marked by heavy rains during a part of the year so that the streams could transport heavy loads of boulders into the river beds where they were deposited. The countryside must, however, have had sufficient vegetation cover to support wild life which these people hunted.

Early man must have lived along the river banks. He utilized the pebbles from the river bed for making his tools. These tools he used for hunting and butchering animals, for skinning them and cutting their meat, and also for digging roots and tubers from the soil. He must no doubt have exploited wild fruits, seeds etc. for his food. Whether he used fire we do not know. But comparative evidence from other parts of the world would suggest that they knew the use of fire. They discarded their tools at their living and butchering sites from where in course of time they were washed down by rainwater and streams and deposited in the river beds. Only the discovery and excavation of their living camps can throw light on their living patterns. These people must have lived at least a hundred thousand years ago from now and probably earlier.

The remains of Acheulian culture have been found widely in Rajasthan but the area of their greatest concentration lies around Chitor. Here Acheulian tools have been found in large numbers in the beds of the rivers Gambhiri and Berach near Chitor itself, in the Wagan near Hajiakheri, in the Kadmali near Nimbahera, in the Berach near Chitor, Bichore and Bigod, in the Banas near Sarupganj and all the way up to Tonk and in the Chambal near Kota, Rawatbhata, etc. It appears that the Acheulian man avoided the thickly forested country of tbe Aravallis and the foothills for in spite of our intensive search only isolated tools of this culture have been found west of the Wagan river and none beyond Dabok in District Udaipur. In the north an Acheulian site is reported on the Sanwan Nadi, a tributary of the Banganga near Bangarh in District Alwar. The Lower Palaeolithie man also does not seem to have crossed the Aravallis except infrequently and did not venture into the interior ot the Marwar plain. The only pure Acheulian site known from west of the Aravallis—and it is not a rich site—is Govindgarh on the river Sagarmati some 15 km. west of Ajmer. Further exploration, especially in the Chambal basin, will no doubt bring many more Acheulian culture sites to light.

2. Advanced hunter-gatherers : The Middle Palaeolithic

The Acheulian culture was succeeded by a new culture which we call the Middle Palaeolithic. Before this transition took place, the rivers in Rajasthan had been active, and depositing new sediments in their beds. The older thick bouldery deposits had been covered by a white clayey deposit, and over it came fine sandy gravels. In eastern Rajasthan it is in these gravels that we find the tools of the Middle Palaeolithic. In western Rajasthan in the beds of the Luni and its tributaries there is no evidence of the older coarser gravels and the Lower Palaeolithic tools. Here the oldest deposit in the river beds is a white clay. Over this lie highly cemented fine sandy gravels, and it is in these gravels that the remains of the Middle Palaeolithic tools are found. These tools are made of finer rocks like chert and flint. They are also smaller in size than the Acheulian tools. There,

however, does not seem to have been a break in culture for some of the older tool forms like the handaxe continued to be used alongside the new tool forms.

The tools of this new culture were made mainly out of small and thin flakes and only occasionally out of complete stone pebbles or blocks. The Levall-oisian technique of removing flakes which was already in use in the Acheulian culture was now more frequently used for producing flakes. In this technique, named after a suburb of Paris where the flakes displaying it were first discovered, the outline of the final flake is determined on the core (or the parent body of the stone) beforehand by convergent flaking, and then the blake removed by a carefully struck blow. The flakes so obtained are thin and sharp-edged and of oval, pointed or circular shape. As their edges are already sharp all round they can be put to use for cutting etc. without much secondary retouch. The principal tool types of this period are a variety of scrapers (side, end and hollow type), points and borers. Blades or thin parallel-sade flakes also came to be more frequently produced in this age. The scrapers are beliicued to have been used mainly for working wood (preparing spears, etc.) skinning game and cutting meat and the borers for making holes in wood and animal hide. They indicate a greater reliance on wood for weapons and tools. The handaxes are now smaller and better made and many of them are indeed objects of beauty. Even in the Acheulian times some of the handaxes and cleavers had been very well made. Their even thickness and perfect symmetry of outline called for skilful work which went far beyond the necessity of producing an efficient tool or weapon. It only shows that from very early times man had been aware of the aesthetic quality of his creations even where the end product was of a purely utilitarian nature. In western Rajasthan the Middle Palaeolithic culture presents a more evolved picture. The Levallois technique here was more commonly in use. Backed knives and Bifacial points are also distinctive elements of the culture in this region.

The man of this period did not rely entirely on river pebbles for making his tools. He went to look for the raw material in geological formations where finer rocks occurred. Since he manufacured his tools there we find large quan-tities of his tools and their debris on rock outcrops. The richest of these factory sites are to be found in the limestone outcrops near Sojat in Pali District.

In eastern Rajasthan Middle Palaeolithic tools are found at several locali-ties in the river Wagan near Hajiakheri in Chitor District, in river Kadmali at Nimbahera in Chitorgarh District and in the Chambal at Kota. But the Luni basin is richer in the relics of this culture. Here at some twenty sites in the Luni and its tributaries these tools have been found. The Middle Palaeolithic culture of the Luni valley is a mixture of evolved Acheulian elements and the typical tools of the Middle Palaeolithic of other regions. It includes beautifully made handaxes and cleavers as well as the small flake scrapers, points etc.

In Western Europe and West Asia the Middle Palaeolithic culture was

followed by the Upper Palaeolithic. This period is characterized by elegant blade tools and burins (chisel-edged blade or core tools). During this period also appear for the first time men who are anatomically identical to the living human races, i.e. the *Homo sapiens.* Upper Palaeolithic type tools have been found at a few sites in south India. But by and large evidence for this period is lacking in India. And this observation applies to Rajasthan as well. Blades were produced in this region right from the Acheulian times and they are more common in the Middle Palaeolithic culture both in Eastern and Western Rajasthan. In the factory sites near Sojat slender blades are found together with Middle Palaeolithic and other tools. There is a strong possibility that further exploration in this region should yield the evidence of an independent Upper Palaeolithic culture. Upper Palaeolithic like blades are also present in the Middle Palaeolithic industries of the eastern region, and further investigation is needed in this area as well.

3. The Final Hunter-gatherers : The Mesolithic

Throughout the stone age while the tools have been becoming more efficient, there has also been a distinct tendency for them to get smaller and lighter. This tendency reached its climax during the Mesolithic age which began around 12,000 years ago, and persisted from a few centuries to several millennia in different parts of the world. The tools of this period are made on narrow blades or, more correctly, bladelets by steeply retouching or blunting one or more of their sides. Known as microlithis (meaning small tools) they are often of geometric shapes like crescents, triangles, trapezes, rhombs, etc. A number of such pieces were fitted in a slotted bone or wood to make tips and barbs of arrows, knives, sickles, etc. The presence of these tools at a site is almost certain proof of the use of bow and arrow and by implication of a more effiicient method of hunting. These composite tools were superior to the tools of the earlier stone ages in one more way : if a part of the tool was broken it could be easily replaced to make the tool serviceable again whereas the older single piece tools had to be discarded if their tip or edge was broken.

Rajasthan has produced unusually rich evidence of the Mesolithic age in India. Microliths had been found since 1955 in many places, especially in Mewar. They were usually found on rock elevations where necessary raw material for making them were easily available. But at these sites the material consisted mostly of cores and waste flakes and only occasionally of blades and finished tools. It was clear that these sites were essentially factory sites where prehistoric hunters, taking advantage of the easily available raw material, had manufactured their tools and taken them to their living camps for use, leaving the waste material behind. But until we found these camps we could have no idea of the way of life of the makers of these tools, nor of their antiquity. Circumstantial evidence, however, indicated that the tools were older than 2,000 B.C. In other parts of India microliths had also been used by earliest agri-

culturalists who appeared late in the third millennium B.C. or early in the second millennium B.C. But in Mewar excavation at early village sites showed that their occupants had not used microliths. Thus the microliths found at the surface sites referred to earlier could only have belonged to an older and perhaps hunting-culture. And as the first agricultural settlements were known to date from the beginning of the second millennium B. C. the microliths must be older than this date.

Our search for the living camps of these microlith-using people was rewarded in the winter of 1966-67 when we discovered two such sites—Bagor in Mewar and Tilwara in Marwar. Excavation at these sites has thrown a flood of light on the way of life of the microlith-users.

Bagor is a large village on the bank of the Kothari river, a tributary of the Banas, some 25 kilometers west of the Bhilwara town. A large sand dune overlooking the river near the village had been occupied by stone-using communities for nearly five millennia from c. 4,500 B.C. onwards. The people lived on the dune over floors which were made stable by paving them with pebbles picked up from the river bed and rock slabs quarried from the schist outcrops on the opposite bank of the river. The people appear to have erected circular huts and windbreaks of wattle to protect themselves from the elements. They produced beautiful little microliths in thousands for use in their hunting and cutting tools. These microliths are made of quartz and chert or chalcedony. The microliths and their debris lie littered on the stone floors together with animal bones and the numerous stone hammers which were used to manufacture the microliths and break the bones. The fairly uniform distribution of stone tools over the entire living area shows that every family must have been producing its own requirements of stone tools.

The economy of early Bagoreans was a combination of hunting, catching, stock-raising and collecting of wild plant food. Among the animals whose bones have been found at the site are cattle, sheep/goats, deer, antelopes, swines, canines, canines, turtle and fish. The bones are usually charred suggesting that meat was roasted on open fires. They were regularly broken and split open for the extraction of marrow. The inhabitants buried their dead within the settlement by putting the body in an extended position with its head to the west. Apparently these people had no material possessions other than their hunting and cutting tools, their humble houses, and flocks of their sheep/goats and probably cattle. Yet they were the first people in Rajasthan to have achieved a level of economic stability which enabled them to live a settled life. Thier settlement occupied an area of about 6,000 square meters. This suggests a fairly large population for a community that did not yet cultivate any food plants. These are probably also the people from whose culture should be derived the hunting and pastoral traditions still surviving in Rajasthan. Three radio-carbon dates suggest a period of about two thousand years from c. 4,500 B.C. to 2,800 B.C.

followed by the Upper Palaeolithic. This period is characterized by elegant blade tools and burins (chisel-edged blade or core tools). During this period also appear for the first time men who are anatomically identical to the living human races, i.e. the *Homo sapiens*. Upper Palaeolithic type tools have been found at a few sites in south India. But by and large evidence for this period is lacking in India. And this observation applies to Rajasthan as well. Blades were produced in this region right from the Acheulian times and they are more common in the Middle Palaeolithic culture both in Eastern and Western Rajasthan. In the factory sites near Sojat slender blades are found together with Middle Palaeolithic and other tools. There is a strong possibility that further exploration in this region should yield the evidence of an independent Upper Palaeolithic culture. Upper Palaeolithic like blades are also present in the Middle Palaeolithic industries of the eastern region, and further investigation is needed in this area as well.

3. The Final Hunter-gatherers : The Mesolithic

Throughout the stone age while the tools have been becoming more efficient, there has also been a distinct tendency for them to get smaller and lighter. This tendency reached its climax during the Mesolithic age which began around 12,000 years ago, and persisted from a few centuries to several millennia in different parts of the world. The tools of this period are made on narrow blades or, more correctly, bladelets by steeply retouching or blunting one or more of their sides. Known as microlithis (meaning small tools) they are often of geometric shapes like crescents, triangles, trapezes, rhombs, etc. A number of such pieces were fitted in a slotted bone or wood to make tips and barbs of arrows, knives, sickles, etc. The presence of these tools at a site is almost certain proof of the use of bow and arrow and by implication of a more effiicient method of hunting. These composite tools were superior to the tools of the earlier stone ages in one more way : if a part of the tool was broken it could be easily replaced to make the tool serviceable again whereas the older single piece tools had to be discarded if their tip or edge was broken.

Rajasthan has produced unusually rich evidence of the Mesolithic age in India. Microliths had been found since 1955 in many places, especially in Mewar. They were usually found on rock elevations where necessary raw material for making them were easily available. But at these sites the material consisted mostly of cores and waste flakes and only occasionally of blades and finished tools. It was clear that these sites were essentially factory sites where prehistoric hunters, taking advantage of the easily available raw material, had manufactured their tools and taken them to their living camps for use, leaving the waste material behind. But until we found these camps we could have no idea of the way of life of the makers of these tools, nor of their antiquity. Circumstantial evidence, however, indicated that the tools were older than 2,000 B.C. In other parts of India microliths had also been used by earliest agri-

culturalists who appeared late in the third millennium B.C. or early in the second millennium B.C. But in Mewar excavation at early village sites showed that their occupants had not used microliths. Thus the microliths found at the surface sites referred to earlier could only have belonged to an older and perhaps hunting-culture. And as the first agricultural settlements were known to date from the beginning of the second millennium B. C. the microliths must be older than this date.

Our search for the living camps of these microlith-using people was rewarded in the winter of 1966-67 when we discovered two such sites—Bagor in Mewar and Tilwara in Marwar. Excavation at these sites has thrown a flood of light on the way of life of the microlith-users.

Bagor is a large village on the bank of the Kothari river, a tributary of the Banas, some 25 kilometers west of the Bhilwara town. A large sand dune overlooking the river near the village had been occupied by stone-using communities for nearly five millennia from c. 4,500 B.C. onwards. The people lived on the dune over floors which were made stable by paving them with pebbles picked up from the river bed and rock slabs quarried from the schist outcrops on the opposite bank of the river. The people appear to have erected circular huts and windbreaks of wattle to protect themselves from the elements. They produced beautiful little microliths in thousands for use in their hunting and cutting tools. These microliths are made of quartz and chert or chalcedony. The microliths and their debris lie littered on the stone floors together with animal bones and the numerous stone hammers which were used to manufacture the microliths and break the bones. The fairly uniform distribution of stone tools over the entire living area shows that every family must have been producing its own requirements of stone tools.

The economy of early Bagoreans was a combination of hunting, catching, stock-raising and collecting of wild plant food. Among the animals whose bones have been found at the site are cattle, sheep/goats, deer, antelopes, swines, canines, canines, turtle and fish. The bones are usually charred suggesting that meat was roasted on open fires. They were regularly broken and split open for the extraction of marrow. The inhabitants buried their dead within the settlement by putting the body in an extended position with its head to the west. Apparently these people had no material possessions other than their hunting and cutting tools, their humble houses, and flocks of their sheep/goats and probably cattle. Yet they were the first people in Rajasthan to have achieved a level of economic stability which enabled them to live a settled life. Thier settlement occupied an area of about 6,000 square meters. This suggests a fairly large population for a community that did not yet cultivate any food plants. These are probably also the people from whose culture should be derived the hunting and pastoral traditions still surviving in Rajasthan. Three radio-carbon dates suggest a period of about two thousand years from c. 4,500 B.C. to 2,800 B.C.

The site of Tilwara is located on the river Luni some 16 km, west of the town of Balotra in District Barmer. The settlment lies about two kilometers south-west of Tilwara village on a sand dune in the old bed of the Luni river. But the Tilwara settlement was smaller and of shorter duration than that of Bagor, and the people here lived at a much later date. There must no doubt be older Mesolithic settlements in the region but these have not yet been discovered. The Tilwara people also made small stone tools or microliths but their tools do not always dis-play the same high degree of excellence in craftsmanship as do those of Bagor. Be-sides quartz and chert these people also used for making their tools rhyolite, a locally available rock which was very hard and resistant to weathering. These people too lived in circular huts which were lined on the outer periphery with stone pebbles or kankar nodules. Outside these huts have been found several hearths with ash and charred bones inside them.

Their economy was also a combination of hunting, stock-raising and collect-ing. They kept sheep/goats and cattle and hunted deer, pigs, etc. These people also had the domesticated dog to help in their chase. At a later stage in the life of their settlement they were also acquainted with pottery and stone and glass beads. The Tilwara settlement is likely to date between 500 B. C. and a couple of centu-ries beyond the Christian era. What is the explanation for the survival of the hunting-pastoral culture to such a late date in this region ? The explanation seems to lie in the geographical condition of the region. Barmer region is very arid and unfavorable for successful agricultural way of life. The present climatic condi-tions seem to have already been established more than two thousand years ago It was therefore unattractive for pioneering agriculturists. They did not move into this area until they had colonised more favourable areas. The stnne age hunter-gatherers and herders therefore continued their life undisturbed from the impact of culture contact with agriculturists until the early centuries of the Christian era. As in Mewar the present day surviving hunters and pastoralists are likely to be in the direct line of descent from their prehistoric forerunners.

4. The Beginnings of Settled Village Life : The Chalcolithic

Two areas where we have at present the earliest beginnings of full-fledged agriculture and settled village life are Mewar and the Ghaggar basin in north Raja-sthan. From these regions this new pattern of economic and social organisation seems to have spread to other areas.

In this context Bagor again occupies an important place. The middle levels of the archaeological deposit at this site reveal the introduction of new material traits into the economy. These include copper/bronze tools, pottery, perforated circular stones or mace heads and plentiful use of stone beads for ornaments. There was also a change in the burial practice. The dead were now buried in a flexed position and the orientation of the body was east-west. The graves were also richly furnished with offerings. Metal tools and pottery indicate greater prosperity of

economy and increased stability of the settlement. Ring stones or mace heads hint at the beginning of a primitive type of agriculture. Pottery is handmade and inadequately fired. But the shapes are sophisticated and suggest an earlier period of evolution elsewhere. The pottery is completely devoid of painted decoration and bears only incised designs. To that extent it belongs to a tradition entirely different from that of the other chalcolithic cultures. Some of the shapes do show similarities with the pottery of Ahar in Mewar and Kayatha in Malwa but it is not possible to connect the pottery securely with any known site. Metal tools include concave-based and barbed arrow-heads with tell-tale similarities with the arrowheads of the Harappa culture. The highly developed nature of pottery and metal tools rules out the possibility that these items of material cultüre were the invention of Bagoreans. They were certainly derived through culture contact with some other communities. Thus while Bagor itself was not a full-fledged agricultural setttlement, its early date hints at the possibility, indeed certainty, of the existence of well-developed village settlements somewhere in the region. Two radio-carbon dates from this phase of Bagor settlement are c. 2800 B.C. and 2100 B.C. Nowhere else in Rajasthan or in its immediate neighbourhood has so far any village settlement of this early date been found. Future exploration should, however, certainly bring to light settlements of this or even earlier date.

The earliest known full-fledged village settlements in the Mewar region date to about 2,000 B.C. Some fifty village settlements displaying a fairly uniform material culture have so far been discovered in the valleys of the river Banas and its tributaries in Udaipur, Chitorgarh, Bhilwara, Tonk and Ajmer Districts. But only two sites have been excavated. These are : Ahar near Udaipur and Gilund, on the river Banas in Chitorgarh District, some thirty kilometers south of Bagor. As Ahar was the first site to be discovered and as it alone has ben fairly excavated and fully published, the culture revealed at these sites has been named after this site. The Aharians were among the earliest people in India to cultivate rice. They almost certainly cultivated many other cereal and food plants. But direct evidence of agriculture in the archaeological record is always rare. Their material culture is, however, ample proof of their settled, agricultural economy. They also kept cattle and goat/sheep and to a small extent also relied on hunting. They lived in substantial houses made of mud, mud-brick and stone. At Gilund there is evidence even of the kiln-baked bricks and of monumental architecture. Their villages were of fairly large size, occupying an area of several acres. They were conversant with the art of smelting copper ores and casting metal tools. Remains of a smelting furnace and copper slag were found at Ahar. Indeed it is notable that unlike other contemporary chalcolithic peoples the Aharians made little or no use of stone tools. Their copper technology was therefore sufficiently advanced to enable the population to dispense with the use of stone tools. For this reason Ahar has been described as Copper Age culture and not as Chalcolithic (stone and

copper using). They also knew the art of spinning, probably of both cotton and wool and by implication of weaving. Their terra cotta spindle whorls are decorated with a variety of incised designs and suggest affinity with the prehistoric cultures of north Iran and Turkey. Their ornaments include a variety of stone-beads and their art consists of terra-cotta figurines of a variety of animals, some of them displaying a remarkable degree of realism.

The pottery of Aharian peasants was both well-made and varied in fabric, shape and decoration. The three main fabrics are : Red ware, Black-and-Red ware, and Grey ware. Red ware vessels are made of both coarse and fine clay, are generally treated with a bright red slip and are very well burnished. The vessel forms include large narrow-necked vessels with corrugated necks and shoulders, squat wide-mouthed vessels, narrow lota-like vessels, large flat platters, dishes (including some with a pedestal stand) and bowls. The decoration consists primarily of a variety af applique, incised and cut designs. Some vessels, especially in the late phase, are also decorated with painted designs in black pigment. Some vessels in red ware show clear affinities with the Harappa culture in fabric and shape.

The black-and-red ware pottery is almost entirely of table use. It includes a large variety of bowls of many sizes, small lota-like vessels and dishes (including some with a stand). The vessels are slipped in bright red, well burnished and fired by the inverted firing technique which turns the entire inner surface and the upper part of the outer surface black and the rest red. They are painted on the interior as well as the upper part of the exterior surfaces with a variety of dotted and linear designs in white pigment. Grey ware imitates the red ware in shapes and designs but the repertoire of both forms and decorative patterns in this ware is limited. For instance, there are no large narrow-necked vessels with corrugated necks in this ware. On the other hand, some vessels of this ware are decorated with painted designs in white pigment.

Radio-carbon dates suggest a period of 2,000 B.C. to 1,200 B.C, for this culture. Further investigation in the region should throw light on the origins of this culture, its relationship with the Bagor culture as well as with the later iron using cultures.

The other area in Rajasthan were early agricultural settlements first appeared is the Ghaggar valley in the extreme north of the State. Such settlements are known all along the Ghaggar bed in Sri Ganganagar District and even extend westward into Pakistan where the river is known as Hakra. Our knowledge of this early culture is derived mainly from Kalibangan, a site located midway between Suratgarh and Hanumangarh which has been extensively excavated. There are two mounds at Kalibangan, one larger lying on the eastern side and the other smaller on the western side. While both mounds were occupied by the Harappans, the smaller mound below the Harappan remains has also revealed traces of an older culture which has so far simply been called pre-Harappan culture, but Kalibangan

people seem to have been more prosperous than the Aharians. They had built a mud-brick wall around their settlement for protection against floods or enemies or both. Two phases of the construction of this wall are known. Its width initially was 1.80 m. but was later increased to 3.70 m. The wall has so far been traced only in parts but on one side it extends far well over 100 meters. The houses were made of mud-bricks and were sometimes separated from each other by lanes. Houses were provided with ovens of both overground and underground varieties. Both types were made of mud walls and periodically plastered.

The pre-Harappan Kalibangan people used long chert blades as cutting tools but they were also familiar with metal and used celts and other tools of copper and possibly bronze. Their ornaments comprised bangles of copper, terra-cotta and shell, and beads of steatite, shell, carnelian and terra-cotta. They used bullock carts for transport. Terra-cotta objects found at the site include bull figurines, and toy carts. Evidence of furrow marks at the site has provided tell-tale evidence of agriculture though it is not known what plants they cultivated. As with other agricultural communities their economy was a combination of plant cultivation and animal husbandry.

The pottery of these people is varied in fabric and shape. Some six fabrics have been distinguished and numbered A to F, Pots in Fabric A are light and thin as opposed to thick and heavy pots of the Harappa culture. They are without a slip and red to pinkish in colour. Vessel forms include vases with out-turned rim, bowls with tapering concave sides, and vases with pedestalled base They are painted in black pigment, sometimes coupled with white, with a variety of geometric and naturalistic designs. Vessels in Fabric B are better made and comprise globular jars. Their bottoms are rusticated by an application of sand and clay. The painted designs comprise animals, insects, birds and flowers. Fabric C is of finer clay. The vessels comprise globular and ovoid vases with disc base, lids, straight-sided bowls and offering stands. Decoration is in black and includes geometric and naturalistic designs, among them the scale pattern so characteristic of the Harappa culture. Fabric D vessels are thick and sturdy and include heavy jars, bowls, basins and troughs. Some of these are decorated with deep incisions and wavy lines on the inner surface. Fabric E and F are relatively less common. The former is characterized by cream slip and decoration in black with geometric and naturalistic designs, and the latter is of grey colour with decoration in black.

Some of the forms and designs of Kalibangan pottery bear similarities with the pre-Harappan pottery of Kot Di ji, Amri and Harappa and several pre-Harappan sites in Baluchistan. The early peasant colonisation of the Ghaggar valley seems to be part of the extension of the peasant communities from the Baluchi hills into the plains of the Indus below. A number of radio.carbon dates from Kalibangan show that the first occupation at the site took place around 2,300 B.C. and this pre-Har-

appan culture endured till about 2,100 B. C, when it was overwhelmed by the superior Harappan culture. At the moment we have no idea whether these pre-Harappan people had also spread outtide the Ghaggar valley, and only future exploration will reveal it.

5. Beginnings of Urban Life : The Indus Civilization

At Kalibangan the pre-Harappan settlement was followed by a full-fledged Harappan settlement. The Harappans came from the outside for there is no evidence of the new culture having grown of the local culture. The Harappans, however, did not drive out the existing occupants of the site for elements of both cultures are seen to flourish for some time. But with the passage of time the Harappan dominance obliterated the identity of the pre-Harappan culture. As at other urban centres of the Harappa culture, like Mohenjodaro and Harappa, the Harappan settlement at Kalibangan consisted of two occupational units : a citadel and a lower town. The citadel was formed by enclosing the southern part of the pre-Harappan occupation within massive walls. Inside the fortification huge mud-brick platforms were constructed on which the buildings were raised. The citadel was roughly rhomb-shaped. The length of its individual walls varies between a hundred and 125 meters. The walls were reinforced with rectangular salients and the corners were provided with massive square towers. Two phases of construction are seen in the citadel, with the size of the bricks becoming smaller in the second phase. There is also evidence that the fortification became ineffective in the final stages of the settlement. There were entrances on the northern and southern side to the citadel.

Considerable brick-robbing at the site has obliterated the details of the structures raised over the mud-brick platforms. But these probably included, in the excavators, a building meant for ritualistic purposes. The presence of an elaborate drainage at successive levels is one of the grounds of this surmise. Within the enclosure of a room were found rectangular fire-places aligned in a row. These were later cut through by a drain. A well was also found on the citadel.

The larger eastern mound contains the remains of a lower town. It has revealed the typical Indus chess-board plan with oblong blocks of houses sub-divided by lanes and thoroughfares. The main arterial thorough-fares ran in a north-south direction. The width of the streets and thorough-fares ranged between 1. 80 m. and 7. 20 m. The thorough-fares were generally unmetalled except in the last phase when the metalling material was terra-cotta nodules and bricks laid on edge. Throughout the occupation the streets and thoroughfares were rigorously maintained without any alteration and the only encroachment on them was of rectangular troughs and bazar platforms.

Houses were made of mud-bricks arranged in regular courses of headers and stretchers; the use of burnt brick was restricted to drains and wells. Their

alignment was different from that of the pre-Harappan houses. Each house possessed one courtyard, five to seven rooms aligned on three sides, a curious fire altar and sometimes a well. In the grid plan cach house faced at least two streets if not three. The floors were made of rammed clay and paved with terra-cotta nodules and charcoal. This practice survives in the region to this day. Paved platforms were also made on the front side of some of the houses. The roof of the houses was possibly made of mud laid over a cushioning of reeds supported over wooden rafters. the remains of which have survived embedded in mud. The discovery of a well-preserved stair-case with four treads intact in one house suggests the possibility of houses with two storeys. Houses were generally provided with covered burnt brick drains. In one house the drain was of wood, a log of wood scooped into a U shape. The streets were generally not provided with drains and the house drains discharged into soakage jars buried in the streets Each house had, in one of the rooms, one or more fire-places. These were shallow oval or rectangular pits in which fire was made and in the centre a cylindrical (sun-baked or pre-fired) or rectangular (baked brick) block was fixed. Terra-cotta cakes have also been found in these pits. Apparently, the fire-places were part of some elaborate ritual.

The pottery found at the site is typical of the Harappa culture. It is sturdy in fabric, has a red-slipped outer surface and is decorated with geometric and naturalistic designs in black pigment. The most common designs are intersecting circles, scales, pipal leaves and rosettes, The vessel forms are typical of the Harappa culture and include goblet with pointed base, perforated cylindrical jar, dish-on-stand, cylindrical beaker, tall jar with S shaped profile, etc.

Agriculture was no doubt the mainstay of the economy of such a prosperous society though at present we have no evidence of the food grains they cultivated. Stock-raising was an important part of the economy and hunting also played some role. Among the animals of which the bones have been found at the site are : zebu or Indian domestic humped cattle, Indian buffalo, pig, goat, sheep, elephant, domestic ass, barasingha, Indian rhinoceros, chital, turtle and among birds, fowl.

The material culture of the Harappans was quite varied. Objects recovered from the excavation include chert blades and cores, personal ornaments like beads of semi-precious stones, gold, faience, steatite, and terra-cotta. bangles of shell, copper and terra cotta, chert cubical weights, household tools or copper and bronze, terra cotta figurines of humans, animals and birds, and typical Harappan seals and sealings. Some of the animal figurines show a very vigorous and naturalistic rendering of the body. Some of the seals bear reed impressions on one face suggesting the type of packages they were employed to seal. Also noteworthy is the finding of a cylinder seal from the site. The evidence for textiles is provided by the impressions of a woven cloth on a copper object. There are a variety of terra-cotta cakes, triangular and circular, including ill-shaped nodules. These are

incised on both faces with some elusive figures, one of which is horned. Miscellaneous terra-cotta objects include a feeding bowl and gamesmen.

A cemetery found just 300 m. west of the citadel mound has thrown light on the burial practices of the Kalibangan Harappans. Three types of burials are revealed : 1. extended inhumation; 2. pot burial and 3, rectangular burial. The second and third types have not yielded skeletal remains yet from the cirumstantial evidence they appear to have been some kind of burials only. In the first type of burial the grave consists of an oblong pit in which the skeleton was laid in an extended position with the head to the north. Pots were arranged near the head as well as the feet. In one case as many as seventy pots were kept with the skeleton. Other grave goods associated with different burials include a bronze or copper mirror, one shell ring 6.5 cm in diameter and found near the left ear and beads of gold, jasper, agate, carnelian and steatite. Pot burials have been found for the first time at a Harappan site. In this type the urn was placed in a circular or oval pit and around the urn were placed pots varying from 4 to 29 in number. Other associated objects include shell bangles, beads and steatite objects. The third type of burial consists of rectangular or oval grave with its longer axis oriented north-south. These graves too were devoid of any skeletal material. The grave goods consisted of pottery and in one instance of a fragmentary shell bangle, a string of steatite disc beads, besides one of carnelian.

Kalibangan was not a solitary Harappan settlement in the Saraswati valley. Some 25 settlements are known in the Saraswati and the Drishadvati valleys. Most of the latter are small mounds, representing tiny peasnat settlements. The total picture is thus similar to that revealed in Sind or Saurashtra, namely, of a large town surrounded with numerous ancillary villages. Mr. B. B. Lal has suggested that if Mohenjodaro and Harappa were two metropolitan capitals of the Indus Empire, Kalibangan might have been a provincial capital guarding the Saraswati valley.

A large number of C–14 dates from Kalibangan give a time spread of roughly between 2,100 B. C. and 1,800 B. C. for the Harappan settlement. It is not clear how and why the Harappan culture in this area came to an end. One theory is that the changes in the river courses led to a sharp decline in the volume of water in the Saraswati and thereby forced the people to move to other areas.

Far to the east of Kalibangan the site of Noh, about six kilometers west of Bharatpur on the Agra road might give some answer to this problem. Limited excavation at this site which was occupied over a long period has revealed at the base of the deposit a layer containing what has come to be known as Ochre Coloured Pottery. No complete shapes are available, but the ware is similar to that found at Atranjikhera in western Uttar Pradesh and other sites. Ochre Coloured Pottery was first found in early fifties at Hastinapura in Meerut District of Uttar Pradesh below the Painted Grey ware levels. Since then the pottery has been found at a number of sites in western U. P., Haryana and Punjab. At Atranjikhera and

Noh the pottery occurs below a deposit that contains Black-and-Red ware which in turn lies below the Painted Grey ware. Unfortunately, so far at nearly all the sites where the Ochre Coloured Pottery has been found, it occurs in silty layers which appear to have been formed by river floods. Thus very little is known of the original nature of the pottery and the other items of material culture associated with it. But scholars who have considerable experience of handling Harappan pottery are inclined to believe that the Ochre Coloured Pottery is a degenerated version of Harappan pottery which has lost its original colour and sturdiness due to its long stay in the waterlogged Gangetic silt. The site of Noh located midway between the Harappan sites of the Saraswati valley and the O. C. P. sites in the Jumna valley would fit in well with this theory, and suggest that the Harappans from the Saraswati valley as also those from west Punjab moved towards the east in their decadent days. More field work in north Rajasthan is needed to throw light on this interesting problem.

6. The Spread of Settled Village Life : The Beginnings of Iron Age

While, as we have already seen, large areas of Rajasthan were colonised by peasant farmers during the Chalcolithic period, the universal extension of agricultural way of life had to wait for the introduction of irom tools. Iron was more plentifully available and cheap, and so only with its discovery could common man afford metal tools. With the universal availability of metal tools it became possible for peasant farmers to clear newer lands for agriculture and establish new settlements there. This event in north India is believed to have taken place around the beginning of the first millennium B. C. or soon thereafter for the first reliable evidence of iron in this area is associated with the Painted Grey ware. This ceramic, first found at Ahichchhatra in northern Uttar Pradesh in the early forties, has since been discovered at numerous sites in the Sutlej and Ganga basins. Many of these sites are closely linked with the story of the great epic, Mahabharata. In Rajasthan the Painted Grey ware is now known from many sites in two areas : The Saraswati valley in the west, and north-eastern region in the east. While in the Saraswati valley there is a clear break between the Harappan occupation and the Painted Grey ware, in the evidence from Noh, limited though it is, reveals a continuity from the O. C. P. to Painted Grey ware. At this site these two cultural phases are intervened by a deposit yielding black-and-red pottery. This pottery is said to be unpainted unlike that from Ahar and other sites. Nothing more is known about this pottery and its associations. But eastern Rajasthan is an important area for resolving the question of the relationship between the black-and-red ware and the Painted Grey ware.

In eastern Rajasthan Painted Grey ware is known from a number of sites in Bharatpur, Jaipur and Ajmer districts. Excavations have been done only on two sites, namely, Noh near Bharatpur and Bairat in District Jaipur. These are, however, so far of a limited nature and do not throw much light on the way of life of the

users of this ware. Besides the fine Painted Grey ware they used black-and-red ware. They were fully acquainted with iron tools. Axes, spear-heads and arrow-heads of this metal have been found. Other finds are stone-beads, cotta discs of indeterminate use, bone styluses and copper objects. Charred rice has also been found at Noh.

The dating of the Painted Grey ware has been a matter of controversy. Radio-carbon dates from Noh and other sites indicate a date of around 800 B. C. for the beginning of this ware.

The Painted Grey ware was followed by the appearance of a very high quality ceramic known as the Northern Black Polished ware in about 500 B. C. With this ceramic also come to light for the first time coins and many other items of material culture. The first urban settlements after the Chalcolithic Harappan cities came into existence, and civic life spread widely in north India. Historically identifiable dynasties now come to light, and from here onwards we enter the historical period the study of which is outside the scope of this paper. At Noh northern Black Polished ware deposits overlie the Painted Grey ware deposits and are succeeded by layers of Sunga-Kushana remains. In south Rajasthan the capital city of Madhyamika (present day Nagari near Chitor) came into existence soon after. In the Saraswati valley there was a revival of settlements in the Kushana period perhaps due to new changes in the river courses. By the beginning of the Christian era settled village life based on agriculture, animal husbandry and iron technology had been established over most of Rajasthan. But this consummation was the result of a long drawn out struggle that prehistoric man had waged against his environment. The kingdoms, empires, and all the great achievements of historical times—in architecture, sculpture, painting, literature, and so on—could be possible only on the firm foundations of settled life and a secure economic basis which had been laid by our prehistoric ancestors. It has been said that prehistory underlies all civilization, and this statement most suitably applies in the case of Rajasthan.

BIBLIOGRAPHY

1. Brown J. C. 1917. *Catalogue Raisonne of Prehistoric Antiquities in the Indian Museum*. Simla.
2. Carlleyle, A. C. L. 1878. Repport of a Tour in Eastern Rajputana in 1871–72 and 1872–73. *Archaeological Survey of India Reports*, Vo. VI. Calcutta.
3. Ghosh, A. 1952 "The Rajputana Desert–its Archaeological Aspect", in Hora, S. L. (ed), Symposium on Rajputana Desert, *Bulletin of the National Institute of Sciences of India*, Vol. I, pp. 37-42.
4. Heron, A. M. 1938. "The Physiography of Rajputana", Presidential Address Section of Geography and Geology, *Proceedings of the* 25th Indian *Science Congress*. pp. 1-14.
5. *Indian Archaeology-a Review* from 1953 to 1968.

6. Lal, B. B. 1962. "A New Indus Valley Provincial Capital Discovered : Excavations at Kalibangan in Northern Rajasthan", *Illustrated London News*, March 24. pp. 454-57.

7. La Touche, T. D. 1911. The Geology of Western Rajputana, *Memoirs of the Geological Survey of India*. Vol. Pt. I.

8. Misra, V. N. 1961. *The Stone Age Cultures of Rajputana*, Ph. D. Thesis, Poona University.

9.——— 1962 (a), "Palaeolithic Industry of the Banas, Eastern Rajputana", *Journal of the Asiatic Society of Bombay*, Vol. 33-4, pp. 138.60.

10.——— 1962 (b) "Palaeolithic Culture of Western Rajputana". *Bulletin of the Deccan College Research Institute*, Vol. 21, pp. 86-156.

11.——— 1964. "Palaeoliths from District Udaipur, Rajasthan", *Journal of ihe Asiatic Society of Bombay*, Vol. 36-7, pp. 55-9,

12.——— 1965. "Govindgarh, a Palaeolithic Sitei n Western Rajasthan", *Journal of the Asiatic Society of Bombay*, Vol. 38, pp. 295-08.

13.——— 1966. "Stone Age Research in Rajasthen – a Review". in Sen, D. and A. K. Ghosh (ed.), *Studies in Prehistory : Robert Bruce Foote Commemoration Volume*, pp. 122-36. Calcutta.

14.——— 1967. *Pre-and Proto-history of the Berach Basin. South Rajasthan*. Poona.

15.——— 1968 (a). "Late Stone Age in Rajasthan". *Proceedings of the Rajasthan History Congress*, 1st session, pp. 16-22. Jaipur.

16. Misra, V. N. 1968 (b). "Uttar Pashankalin Bagor aur Rajasthan ke Pragitihas men uska Sthan", *Anveshna*. Vol. I, No. 3. p, 173-84.

17.——— 1968 (c). "Midle Stone Age in Rajasthan", in *La Prehistoire : Problemes et Tendances*, pp. 295-302. Paris.

18.——— 1969. "Early Village Communities of the Banas Basin, Rajasthan", in Pradhan, M. C. et al (ed.), *Anthropology and Archaeology : Essays in Memory of Verrier Elwin*, pp. 296-310. Bombay.

19.——— 1969 (b). "Pre-and Proto-historic Mewar", in Paliwal. D. L. (ed.), *Mewar Through the Ages*, pp. 1-9. Udaipur.

20.——— 1979 (a). "Cultural Significance of three Copper Arrow-heads from Rajasthan, India", *Journal of Near Eastern Studies*, Vol. 29, no. 4, pp. 221-32. Chicago.

21.——— 1970 (b). "Evidence for a New Chalcolithic Culture in Rajasthan", *Indiau Antiquary*, Vol. IV, Nos. 1-4, pp. 85-95.

22.——— 1971 (a). "Two Microlithic Sites in Rajasthan - a Preliminary Investigation", *The Eastern Anthropologist*, Vol. XXIV. No. 3, (in Press).

23.——— 1971 (b). "Burials from Prehistoric Bagor, Rajasthan", *Proceedings of the Seminar in Indian Archaeology*, Nagpur. (in Press),

24.——— and Nagar, M. 1973. "Two Stone Age Sites on the River Chambal, Rajasthan", *Bulletin of the Deccan College Research Institute*, Vol. XXII, pp. 156-69.

25. Nagar, N. 1966. *The Ahar Culture : an Archaeological and Ethnographic Study.* Ph. D. Thesis, Poona University.

2·. 19·9. "Clues to Aharian Prehistory in Contemporary Mewar Village Life", *The Eastern Anthropologist*, Vcl XXII, No. 1, pp- 55-73.

27. Sankalia, H. D. 1 56. "Nathdwara - a Palaeolithic Site in Rajputana", *Journal of the Palaeontological Society of India*, Vol. I, pp. 99-100. Lucknow.

28. 1962. "New Links between Western Asia and the India of 4000 Years Ago : Excavations in the Huge "Dust Heap of Ahar near Udaipur", *Illustrated London News*, Sept. 1, pp. 322-25. London.

29.——— Deo, S. B. and Ansari, Z. D. 1969. *Excavations at Ahar (Tambavati)* 1961-2. Poona.

30. Seton-Karr, H. W. 1928. "Note on Prehistoric Implements in Some Indian Museums" *Man*, Vol. 28, No. 85, p. 122.

31. Singh, G. 1971. "The Indus Valley Culture seen in the Context of Climatic and Ecological Studies in Northern India", *Archaeology and Physical Anthropology in Oceania* (in Press).

32. Stein, Sir Aurel. 1942. "A Survey of Ancient Sites along the 'Lost' Saraswati River", *Geographical Journal*, Vol. XXIX, No. 4. pp. 173-12.

Prehistoric Background of Rajasthani Culture

Description of Illustrations

Fig. 1. Map of Rajasthan showing Early Stone Age sites.
Fig. 2. Map of Rajasthan showing Middle Stone Age sites.
Fig. 3. Map of Rajasthan showing microlithic sites.
Fig. 4. Map of Rajasthan showing Proto-historic sites.

Plates

Pl. I. Pleistocene deposits of the river Gambhiri near Chitorgarh. Man in the picture is pointing to a stone implement in the gravel with his left hand.

Pl. II Pleistocene deposits of the river Banas near Sarupganj. The figure at the bottom stands against the gravel deposit bearing Acheulian tools.

Pl. III. Lower Palaeolithic tools, choppers and chopping tools,

Pl, IV. Lower Palaeolithic tools : Abbevillian and Early Acheulian hand-axes.
Pl. V. Lower Palaeolithic tools : Advanced Acheulian hand-axes.
Pl. VI. Lower Palaeolithic tools : cleavers, Levallois flakes and blades.
Pl. VII. Middle Palaeolithic tools : Wagan and Kadamali rivers.
Pl. VIII. Middle Palaeolithic tools . Wagan and Kadamali rivers.
Pl. IX. Middle Palaeolithic tools : handaxes and cleavers. Luni river.
Pl. X. Middle Palaeolithic tools : Luni river.
Pl. XI. Middle Palaeolithic tools : Luni river.
Pl. XII. Middle Palaeolithic tools : Luni river.
Pl. XIII. Stone Floor. Bagor.
Pl. XIV. Microliths. Bagor.
Pl. XV. Pottery Phase II, Bagor.
Pl. XVI. Copper tools, Phase II. Bagor.
Pl. XVII. Chalcolithic Structures. Ahar.
Pl. YVIII. Pottery. Ahar.
Pl. XIX. Kitchen floor. Ahar.

Mewar Painting

Kumar Sangram Singh of Nawalgarh

Mewar, the land of Sisodia Rajputs, made great contributions to the Indian chivalry and patriotism. They faced the onslaught of the invading Muslim invaders to save their religion and sovereignty, whereas their women walked smilingly to perform Johar. Today the name of the invaders, their grandeur & kingdoms have disappeared completely, whereas the land of the Sisodias—Mewar—still remains very much alive and is prospering, with the efforts of all clans and castes.

Along with bravery, the rulers and the people were great worshippers of arts, literature and architecture. They made a great contribution to the cultural heritage of the country. Today we find oldest paintings from this region in Rajasthan.

Geographically Mewar enjoys a very important position, the hills, forests and lakes have made it a very fertile land, a good hide out in event of danger, without creating any food scarcity. Even during troubled times the artists and artisans continued their creative pursuits.

Amongst the Diwans of Iklangji, Rana Kumbha (1433-1468) was a great scholar, fond of music and a great builder. He wrote commentaries on Kumar Sambhava and Gita Govinda. Today his victory tower stands majestically at the Chittorgarh Fort. Then comes Rana Sanga (1509-28) amidst the first Mewar Rulers to face the Mughals. Bhojraj, his son, married the famous poetess MIRA whose devotional songs are sung from North to South and East to West of this vast country.

He was followed by a few rulers. Then came Maharana Udai Singh to face the armies of Akbar and who shifted his capital by founding the city of Udaipur, which is known as the Venice of India, as it has beautiful lakes, with houses and the majestic palace situated on the lake and the Jag Mandir as a pearl, in the midst of the famous Pichola lake. The painting upto this period belongs to Western Indian Style (Jain Scool) (Plate 1) and cannot be called as purely Mewar as the style was prevalent in Gujrat, Mewar, Marwar, Jaisalmer and other parts. Earliest being SUPASANAHA CHARIYAM dated 1423 of Mewar origin. and later the works of art of 1525 to 75 A. D. illustrating Geet Govind, Chaur panchacika etc were executed.

Now comes the period of the great Maharana Pratap (1572-1597) who was

a very bold man and had never learnt to bend before any power or force, at any cost. He faced the worst days, as did his people but under no circumstances he was prepared to yield and believed in keeping the banner of Mewar high. He received full co-operation, in facing powerful emperor Akbar, from his supporters, his people and specially the Bhils which fought shoulder to shoulder with his other soldiers. The battle of Haldighat was nobody's victory or defeat. He changed his capital from Udaipur to Chavanda to give a tough and rough time to his foes.

Maharana Pratap did not get much time of leisure to patronize arts as he was always busy in protecting his land and people from slavery and insult. We do find traces of Kulladar style (Plates 2) in about (1575-80). Unfortunately not a single authentic and contemporary portrait of this great son of Bharat has been traced so far, whereas portraits of many contemporaries to him at the court of Akbar have been found including those of Raja Man Singh of Amber (Bharat Kala Bhawan Collection-Varanasi) and of Raja Faisal Durbari (Chaster Betty Collection-Dublin-Ireland).

He was succeeded by his son Amar Singh (1597-1620) and circumstances compelled him to accept the sovereignty of the Mughals. The result was that the relations with the Mughal Emperor became closer and there was peace in the land of Mewar. The attention of the Ruler and his people were diverted from wars to creative side. Thus we find a set of Raga-Mala painted at Chavanda in 1605. From this set of dated paintings, one is in the collection of Shri Gopi Krishna Kanodia (Calcutta). These paintings are in typical Mewar style and were executed by Nirsaradi.

The areas influenced by the Mewar style are the whole of Udaipur, Banswara, Partapgarh, Dungarpur, Kushalgarh, and Shahpura. Being the neighbours of Mewar even the Malaea, Bundi, Sirohi Schools and Godvar district of Jodhpur did adopt certain qualities of the Mewar School.

Mewar played an important and a predominant role in evolving an individual style in Rajasthan from the traditions of the western India School (Plate 3) the other areas also by the beginning of the 17th century developed their own modes of expression in different styles according to their local traditions. They used bright colours, had a simple way of depicting the subject but is still full of great artistic qualities. According to Dr. Moti Chandra—'The beginning of the Mewar school, at least as seen in 1605, verge on a folkstyle, in which all the expedients of careful draughtsmanship or perspective are held subservient to the Joie de Vivre of folk art', We find a lot of material of Maharana Jagat Singh I (1628-61) (Plates No. 4, 5, 6, and 7) period for study. By the middle of the 17th century the art of painting of Mewar got more sophisticated and started adopting the qualities of the Moghal school.

In the period of Maharana Raj Singhji (1661-81) the statue of Srinathji was

installed at Nathdwara and the Vaishnava doctrinaire of the Vallabhacharya sect spread in the area, with Krishna becoming the supreme God and the Bhagwat Puran becoming the gospel of the Vaishnavas. We find many illustrated Bhagwats in various collections which are the splendid examples of art at its zenith. The Ramayana also became popular. The Ragamala and Barah-Masa also became very common. The theme of the Barah Masa was always very romantic and depicted the departure of a hero and the heroine finds one or the other pretext to stop him from leaving the home. In this theme festivals and seasons play a very important part in favour of the heroine.

The other important subject executed by the Mewar artists was the Rasikapriya of Keshvadasa. The works depict the classification of heroes and heroines, their mutual fascination, attachments, separations and reunions. Jaideva's Gita Govinda describing the love of RADHA and KRISHNA was also favourite due to the commentaries by Maharana Kumbha in Rajasthani language.

The mid- 17th century paintings of Mewar have brilliant colours such as lacquered red, saffrom, yellow, brown and lapis lazuli. The same painting may have two different backgrounds depicting two different subjects divided or partitioned by a tree or any other object. The figures have prominent noses with the nose-ring projecting out and not touching the chesk of the lady. The faces are oval with fish-stylized eyes but easily recognizable, find a variety of creepers and plants. The hills and rocks are depicted very simply and generally pink or mauve in colour. Water is painted black with strokes of white to depict waves and foam at the The faces are always profile and the paintings have less perspective. The main incident has greater importance than others in the same painting. The emotion is not depicted by expression but through the colours, surroundings and gestures or persons. The artists also dainted the animals and birds found in Mewar or kept by persons in that area as pets. The night sky is dark with moon and stars where as the hot season is depicted by a golden sun, just like the emblem of Mewar rulers. People are shown wearing the round Jama with a decorated patka and a turban representing the Akbar and Jahangir period. Earlier works have the pointed or the CHAKDAR JAMAH. Women are shown with skirts which has strips or plain or with floral patterns, the bodices (cholis) and a transparent Odhnis (wimples). The black pompons and tassels are very common up to the mid-17th century on the arms and wrists. The building, domes, arches, pillars etc. are not very decorative but are simple and pleasing (Plate 8).

LORD KRISHNA plays an important part as a lover or as a romantic person, he is a hero in all such subjects and also in the Ragamala and Baraha-Masa. The canvas becomes wider in scope by the middle of the 17th century and upto 1725. In later period very big size paintings were also executed. The artists painted court life depicting love-affairs, hunting expedition, processions, maffils, picnics, accidents, fights, battles, marriages in an artistic manner and present to us an

appropriate commentary on the social life in Mewar. The artists adopted very simple way of depicting their subjects in the best aesthetic manner. They lacked high technical excellence if one compares it with the contemporary Mughal draughtsmanship, perspective and fine finish. They applied on the canvas glowing colours which made a painting very charming and attractive. The paintings do not appeal to the court alone but to people in general bccause the subjects are well known to the people and they are wells-acquainted with and love them.

The period between 1652 to 1698 is a bit confusing a much dated material is not available, even then from the style and subjects some works could be placed in that period, for example the Gita Govinda paintings in my collection, some paintings in the Bharat Kala Bhawan collection and the Bhagavata Purana in Shri Gopi Krishna Kanodia collection

In the beginning of the 18th century paintings became very popular but quality suffers at the expense of quantity. Not only the rulers of Mewar patronised art but also the Thikanadars, business communities, religious leaders and others. Now more attention was paid to the social and court life of Mewar. Amarsingh period artists executed paintings in a different manner, using less colour and more in Shah-Kalam. Even his dog, monkeys and other animals were finely painted on big size canvases.

Maharana Sangramsingh II (plate 9) was very found of getting his portraits executed. The artists used large size canvases for portraits. They applied thick colours to depict different types of jewelleries and even used beatel wings to depict emeralds. The events connected with his life were also painted in large numbers, he is shown going out in procession, attending maffils and shooting wild animals. Many manuscripts too were illustrated and Written during his reign.

The art continued to be patronised during Jagat Singh II period and many dated material is available in Saraswati Bhandar There was less patronage between 1762 to 1760 A.D. When Arsi came to the throne again the art of painting received patronage. He was a ruler fond of hunting (plate 18). The artists depicted grass and bushes not with the help of a brush but with a cloth pad which was filled with cotton and dipped in green colour for giving patches on the paintings (plates 11 and 12). The effect is quite fascinating and natural. The same style was continuing during Hamir's time who was not a great patron of art).

Bhim Singh (1778-1828) was again a great patron of art and the atelier was probably headed by some competent artist who painted many paintings showing the Maharana returning successfully after hunts. The works are in big size and nice in colour scheme, composition and technique. Other artists of his court painted the life of Mewaris in general and have shown the Rasa in his harem with his queen (plates 13, 14, 15),

We find a lot of porrtraits of Maharana Jawan Singh (1828-1834) period

but the art now starts deteriorating in all respects, may be because a treaty was signed with British Government. and like other rulers of Rajasthan the Maharanas of Udaipur also started leaning towards the European art which was realistic and new to the Indian people. The traditional artist started losing the royal patronage, except when religious paintings were required (plate 16).

The palaces started to be decorated by European works which were either Litho prints or etchings or oil paintings. These were the techniques unknown to the local artists and they felt lost themselves and could not fulfil the desire and tastes of the feudal lords which was changing rapidly with the impact of the foreign cultures, even then to earn their bread and livelihood the artists kept on painting according to the whims and wishes of the rulers.

The quality suffered because they started using machine-made papers, brushes and pigments. Same was the fate of technique. Swaroop Singh and Sambhusingh were still fond of paintings which were confined only to hunting scenes and court life which continued to be painted even as late as late Maharana Bhopalsinghji's times. The artists continued to work under the royal patronage with lost traditions, till the independence was achieved in 1947, and the States were merged with the Indian Union. The retrenchment badly hit them and they were thrown out of employment, no body to sympathise with or patronise them. They adopted different professions and gave up that which they had followed and practised for centuries.

Another important centre of painting was Nathdwara where many artists still continue to work. In early days the work was as good as rest of the area (plate 18) but after 1850 it adopted a commercial leaning which completely ruined the art at that place. Though the talent is still there yet there is no body to guide them about technique and other important sides of art. Only tradition subject they paint is the image of Shri Nathji, rest of their works are neither traditional mor realistic.

The paintings executed at the courts of Pratapgarh, Deogarh and Shahpura slightly differ in style from what we call as Udaipur style. The artists at Pratapgarh named Kripa Ram (plate 21) was very good and always placed his seal at the back of the painting. The Jagirdars Ragho Das and Gokul Das at Deogarh were great patrons of art (plates 17, 19, & 20). The Shahpura artists painted elephants and literary painting in a very fine way.

Important Sets & Collections

'Saraswati Bhandar' Udaipur

1. Gita Govida : 1714 by Bhatta Roopji : 173 illustrations.
2. Bihari Satsai S. 1776/1719 A. D. by Jaggan Nath : 643 illustrations.
3. Panchatantra : Late 17th Century : 583 illustrations.
4. Prithvi Raj Raso : Late 17th Century : 628 illustrations.

5. Kashi Khand : 337 illustrations.
6. Shakunavati : 106 illustrations.
7. Kaji Dopiaya Mullah : 263 illustrations.
8. Hari Vansha : 677 illustrations.
9. Ikling Mahatma : [illegible]3 illustrations.
10. Gajendra Moksa : 17 illustrations.
11. Gaj Chikitsa : 139 illustrations.
12. Ashwa Laksana : 86 illustraions.
13. Yoga Vashistha : 34 illustrations.
14. Frobodh Chandrodaya : 1[illegible]0 illustrations.
15. Ekadashi Mahatmya : 134 illustrations.
16. Brihatakatha : 64 illustrations.
17. Krishna Awatar Charitra : 154 illustrations.
18. Raga Mala : 251 illustrations.
19. Kadambari : 66 illustrations.
20. Saranga Tatwa : 100 illustrations.
21. Saranga Tatwa : 136 illustrations.
22. Saranga Tatwa : 54 illustrations.
23. Saranga Dhar : 66 illustrations.
24. Saranga Dhar : 10[illegible] illustrations.
25. Kaliya Daman : 102 illustrations.
26. Panchakhyana : 448 illustrations.
27. Panchakhyana : 125 illustrations.
28. Raghuvansha : 150 illustrations.
29. Triya Vinod : 165 illustrations.
30. Gita Govinda : 224 illustrations.
31. Bihari Satsai : 392 illustrations.
32. Naishadh : 42 illustrations.
33. Sundar Sringar : 234 illustrations.
34. Veli Krishna : Rukmani-ke : 95 illustrations.
35. Prithvi Raj Raso : 628 illustrations.
36. Bhagwad Gita : 717 illustrations.
37. Maha Bharata : 3159 illustrations.
38. Rasik Priya : 88 illustrations.
39. Krishna Charitra : 328 illustrations.
40. Bara Masa : 112 illustrations.
41. Varaha Purana : 26 illustrations.
42. Arsha Ramayana : 72 illustrations.
43. Bhagwat : 10 illustrations.
44. Gokulavana : 4 illustrations.
45. Darshanas : 108 illustrations.

46. Darshanas : 32 illustrations.
47. Arsha Ramayana : 36 illustrations 1708/1651 Painted at Chittorgarh. The Balkand with Prince of Wales Museum, Bombay, dated 1649 paintings by Manohar.
48. Raga Mala : 251 illustrations—dated 1768 for Maharani Ranawatji by Bhai Dau s/o Ram Kishan.

Udaipur Museum

1. Krishna Charitra 145 illustrations (Arsiji).
2. Sarang Tatwa 54 illustrations (Arsiji).
3. Panchatantra 152 illustrations (18th cent),
4. Malti Madhava 67 illustrations (18th cent).
5. Sarang Dhar 66 illustrations (18th cent).

Umed Bhawan Colleetion—Jodhpur

1. Rasik Priya illustration 1640
2. Raga Mala illustration 1640
3. Bhagavata illustration.

National Museum of India—New Delhi

1. Raga Mala (Gem Palace Raga) 1650 A. D:
2. Raga Mala illustrations : 1628 by Sahibdin.
3. Rasikpriya series : 1650 A. D.
4. Bhagavata Purana Leaves : 1700 A. D.

Bharat Kala Bhawan—Varanasi

1. Raga Mala Series : 1628 by Sahibdin-1628.
2. Rasik Priya Series : 9650 A. D.
3. Bhagvata Purana Series : 1700 A. D.

Motichand Khazanchi—Bikaner

1. Raga Mala illustrations by Sahibdin : 1628.
2. Rasikpriya illustrations : 1650 A. D.
3. Bhagwat Purana illustrations : 1700 A. D.

Kumar Sangram Singh Collection—Jaipur

1. Illustration to Gita Govinda 1650-60
2. Illustration to Kumar Sambhava 1650-60
3. Illustration to Geet Gauri 1675
4. Illustration to Raga Mala 1700
5. Illustration to Ekadashi 1750

6. Many other dated paintings from 1625 to 1800 with names of artists, depicting all types of subjects connected with literature, court and social-life of Mewar are available in this collection.

Patrons—(Rulers)

1. Maharanas of Udaipur.
2. Maharawals of Dungarpur.
3. Maharawals of Banswara.
4. Maharawals of Pratapgarh.
5. Raja of Kushalgarh.
6. Rajadhiraj of Shahpura.
7. Maharaj of Nathdwara and Kankroli.

Patrons—(Jagirdars)

1. Bedla.
2. Deogarh.
3. Delwara.
4. Bansi.
5. Ghanerao (later it was transferred to Jodhpur state).
6. Badnor.
7. Kelwa.
8. Amet.
9. Kanor.
10. Begun.
11. Bhinder.
12. Asind.

Other Collections

1. Illustrated Bhagwata from Udaipur, dated 1648 and painted by Manohar-Prince of Wales Museum, Bombay.
2. Illustrated Bhagwata : Kotha Library.
3. Illustrated Ramayana : painted by Manohar dated 1649 Prince of Wales Museum, Bombay.
4. Rasikpriya : H. H. The Maharaja of Bikaner Collection of the Mid. 17th Century.
5. Sur Sagar Illustrations : 1650 Shri Gopi Krishan Kanodia Collection : Calcutta.

Maharanas of Mewar

1.	Udai Singh	1541-1572.
2.	Pratapsingh I	1672-1597.
3.	Amarsingh I	1597-1621.

4.	Karan-Singh	1621-1628.
5.	Jagatsingh I	1628-1661.
6.	Rajsingh I	1661-1681
7.	Jaisingh	1681-1700
8.	Amarsingh II	1700-1716.
9.	Sangramsingh II	1716-1734.
10.	Jagatsingh II	1734-1752.
11.	Pratapsingh II	1752-1755.
12.	Rajsingh II	1755-1762.
13.	Arsi	1762-1772.
14.	Hamirsingh	1772-1778.
15.	Bhimsingh	1778-1828.
16.	Jawansingh	1828-1838.
17.	Sardarsingh	1838-1842.
18.	Swroopsingh	1842-1861.
19.	Shambhusingh	1861-1874.
20.	Sajjansingh	1874-1884.
21.	Fatehsingh	1884-1933.
22.	Bhopalsingh	1933-1956.
23.	Bhagwatsingh	1956-

●

Coins of The Malavas of Rajasthan

Kalyan Kumar Dasgupta, M.A., D. Phil.

Department of Ancient Indian History
and Culture, University of Calcutta

Identical with the Malloi of the Classical accounts, the Mālavas of indigenous tradition were one of the celebrated tribes of ancient India remembered in history for their stubborn resistance to Alexander the Great in the fourth century B. C. Though their opposition to the Macedonian hero failed, they elicited admiration of foreign observers for their excellent fighting qualities.[1] During this period they were living in the Central Punjab, between the Chenab and the Ravi and the memory of their association with the State lingers in the name *Mālwā* denoting the region comprised of the districts of Ferozepur and Ludhiana, the old States of Patiala, Jind, Nabha and Malerkotla, The memory of the early Punjab association is further preserved in the name of the dialect *Mālāwaī* used in the region extending from Ferozepur to Bhatinda.[2] The tribe, however, subsequently migrated to Rajasthan most probably owing to the pressure of Greek invasions under Demetrius, Apollodotus and Menander.[3] Hencerth Rajasthan became their field of activity and the *Mālavaganā-vishaya*, an expression used in a third century record seems to have been made up of a considerable portion of south-eastern Rajasthan comprising parts of the old States of Udaipur, Jaipur, and Tonk and the district of Ajmer.[4] Still later they occupied the north-west part of Central India, the region which came to be known by the nams *Mālava* after them. In the early mediaeval period Malwa roughly denoted the region between the Gangetic Valley & and the Vindhyan mountain on the one hand and Bundelkhand and the Aravalli range on the other.[5]

Credit goes to the Mālavas for having issued extensive coinage. And indeed, they were one of the few tribal peoples of ancient India to have issued coins. So far more than 6000 coins issued by them have been recovered, all from

---

1. See R. C. Majumdar (edited), *Classical Accounts of India*, pp. 66, 68, 138, 199 etc.
2. George Abraham Grierson, *Linguistic Survey of India*. IX, 1, p. 709.
3. K. K. Dasgupta, *The Mālavas*, pp. 4-5, 23.
4. *Ibid*, p. 5.
5. *Ibid.*, p. 6.

eastern and south-eastern Rajasthan, the noted findspots being Karkotanagar or simply Nagar (15 miles to the south-west of Uniyara and about 25 miles to the south-south-east by south of Tonk) and Rairh (34 miles from Nagar).[1] Of these a piece weighing only 1,7 grain and having a diameter of ·2 inch constitutes 'one of the smallest coins in the world.'[2] While the majority of coins bear the tribal name (e. g. Jaya Malavana or Jayah Mālavānām). on some are inscribed legends of a peculiar character, such as *Bhapaṁyana, Mapojaya, Magajaśa* etc.[3] A lead seal, discovered at Rairh and now in the Amber Museum, Rajasthan, bears the legend *Mālavajanapadasa*, thus recalling the legend *Śibijanapadasa* appearing on the coins of another Rajasthan tribe, the Śibis.[4]

Generally Mālava coins are of round shape, but rectangular pieces are also not uncommon. The device and symbols appearing on them are human bust (an interesting feature, since it is frequently found on Satrapal coins, rarely on tribal issues), sqatting male figure, bull, peacock, lotus flower, pinnate palm leaf, vase with or without foliage, undulating line (a prominent feature of the Rairh specimens) and 'cross and ball' or the so-called Ujjain symbol. Toe date of the Mālava coinage ranges between the second century B. C. and fourth century A. D.

The earliest form of the tribal name, as R. O. Douglas[5] would have us believe, is *Mālaya*, i. e. *Malaya*,[6] which he finds on a few specimens in the collection of Nelson Wright. *Mala*, occurring on some other coins of the same collectlon, is regarded by Douglas[7] as the name of a king, the founder

1. *Ibid.*, p. 1. Also Alexander Cunningham (edited). *Archaeological Survey of India, Reports* (*henceforth CASR*), VI, p. 162 f. and K. N. Puri. *Excavations at Rairh*, (henceforth ER)
2. Dasgupta, *The Mālavas*, p. 6, pl. II, 19-20; Vincent A. Smith, *Catalogue of Coins in the Indian Museum* (henceforth *CCIM*), p. 178, no. 106.
3. Dasgupta, *The Mālavas*, p. llf, pl. II, 23 pl. III, 25-36.
4. Puri, *ER*, p. 71. pl. XXVI, no. 22. Also Dasgupta, *The Mālavas*, p. 1, pl. II, 17. For the Śibi coins see John Allan, *Catalogue of Coins in the British Museum*, Ancient India (henceforth *CCBM*), p. 213, pls. XLIV; *CCIC*, p. 180, JNST), IX, XIV.
5. *Numismatic Supplement* XXXVII, p. 45. Regarding the names *Malaya* and *Mālava* D. C. Sircar (See *Age of the Imperial Unity*, p. 163) suggests that the latter like the former which is known to be the name of a mountain range, is probably derived from Dravidian word *malai* meaning 'hill'. This can have at best only speculative value.
6. The Nasik inscription of Ushavadāta contains the form *Mālaya*, see *Epigraphia Indica* VIII, p. 71 f.
7. *Op. cit.*, p, 45.

of the tribe, but it appears to have been intended to be *Mālaya* or *Mālava*. The legends which are generally met with on the Mālava coins are *Mālavānām jayah*[1] (i. e. 'let the Mālavas be victorious') and its variant *Mālavaganasya jayah* (i. e. let the Mālava-*gaṇa* be victorious'). The legends are paralleled by those on the coins of the Ārjunāyanas and the Yaudheyas.[2] The significance of them is understandably clear, But expressions like *Bhapaṁyana*,[3] *Gajuva*, *Gojaua*, *Gojara*, *Maha* (*ā*) *rāya* (*mā* is not clear). *Jamaha*, *Jamapaya*, *Magachha*, *Magaja*, *Magajasa*, *Magojaba*, *Majupa*, *Mapaka*, *Mapojaya*, *Maraja*, *Masapa*, *Pachha*, *Paya*, *Yama* (may be read backwards as *Maya*) and *Maraja* found on a distinct group of Mālava coinage (the attribution of these coins to the Mālavas is not only on the basis of provenance, type and fabric. but also on the explirit occurrence of the tribal name along with one of the above-mentioned legends, *infrā* have for a long time been a riddle to scholars. Attempts have been made by scholars to solve the riddle, though without any substantial success as yet.

While Carlleyle[4] first discovered the Mālava coins in thousands at Karkotanagar, he recognised in these legends the names of about forty Mālava chiefs, Smith[5] traces only nineteen or twenty (if *Yama* is read as *Maya* or *Maya* as *Yama*, the number will be nineteen) such names on the coins all of which he regards as of foreign origin. If these legends stand for names at all, as Carlleyle and Smith think, it is true that they sound rather un-Indian. And if they are regarded as names of foreign rulers, it is a problem, to use the words of Allan[6], "what invaders could have struck them. They are too late for the Hūṇas; in addition, out of over twenty names, not one bears any resemblance to any Śaka or Hūṇa name." Allan[7] further points out that these legends cannot be regarded as names of rulers

---

1. Mālava coins, generally being small, legends on them are mostly incomplete or found in shortened form. Thus we come across *Mālava jaya* or *Mālavaṇa jaya*. Sometimes *Mālavahṇa jaya* is met with, which seems to be a mistake Similarly *Mālava jaya* or simply *Māiava* appears to be a shortened form of a completes legend like *Mālavānāṁ jāya*. The lack of space if the obvious reason for such shortened forms.

2. For the Ārjunāyana coins, see *CCBM*, p. 121. pl. XIV, 10-11, and *CCIM*. p. 166, pl. XX, 10; for the Yaudheya coins, see *CCBM*, p. 265f, pls. XXXIX-XL; *CCIM*, p, 180f, pl, XXI; *INSI*, II. XIII, XVIII etc. Also see my article on the Ārjunāyanas, *Journal of the Oriental Institute*, June, 1971 (in press).

3.. K. P. Jayaswal reads *Bhaṁpāyana*, *Hindu Poliiy* (henceforth *HP*, third impression), p. 381.

4. *CCSR*, TI, p. 174.

5. *CCIM*, p. 163.

6. *CCBM*, p. cvi.

7. *Ibjd.*, p. cvii.

since "in not one there is any trace of a genitive". According to him[1] most of these legends are to be treated as "meaningless attempts to reproduce parts or *Mālavānāṁ jaya*" and this suggestion, he avers, "may account for so many of the legends beginning with ma and for the frequency of *ma* as another letter of the inscription, and indeed, for the limited number of consonants which form these inscriptions". Allan is thus disinclined to regard these legends as names, far less names of foreign rulers.

The legends are, therefore, to be taken either as personal names or as attempts to reproduce a complete legend like *Mālavānāṁ jaya* partially. One point, however, is to be noted in this connection : the letter *ma* frequently occurs, as many as sixteen times, in a group of twenty legends and on eleven occasions it is initial letter. The frequency of this letter drew the attention of two Indian scholars, Jayaswal[2] and Bhandarkar[3], who discussed the meaning and significance of thes- legends before the publication of Allan's *Catalogue*. Jayaswal, who regarded these legends as personal names, suggested that these "seem to be abbreviations-*maraja*-*Mahārāja*; cf. 'Mahārāya'...*Mapojaya, Mapoya* and *Magaja* are probably *Mahā-* (*Mahārāja*) 'aya, *Mā* (*Mahārāja*) Paya and *Ma* (*Mahārāja Gaja*. Similarly, *Magajaśa*= *Ma* (*Mahā*) *Gaja* (*Gajaśa*), *Gajava*=*Gaja-pa*" etc. Bhandarkar[4] took the letter *ma* as the abbreviation not of *Mahā* or *Mahārāja*, but of the tribal name, *Mālava* and he interpreted the remaining letters also as contractions of words like *gana*, *jaya*, etc.; for instance *ga*=*gaṇa*, *ja*=*jaya*, *Magaja* thus standing for *Mālava-gaṇasya jaya*. Bhandarkar thus attempted to improve upon the suggestion of Jayaswal.

The smallness of the size of the Mālava coins and the consequent lack of space thereon give the suggestions of Jayaswal and Bhandarkar an appearance of probability. Allan[5], however, objects to the view of Jayaswal on two grounds first, even if *ma* is taken to stand for *Mahārāja*, the remaining letters of the legends do not offer any intelligible names and, second, there is no instance of a contraction in Indian numismatics As to the second objection of Allan, it may be pointed out that though we have no definite instance of a contraction or abbreviation, its probability cannot be totally ignored[6]. Allan's first argument has of course some force. Apparently unaware of Bhandarkar's suggestion, he has not referred to some of the letters, other than *ma*, having been interpreted as abbreviations of words

1. *Ibid.*
2. *HP*, p. 381.
3. For Bhandarkarś suggestion see *Annals of Bhandarkar Oriental Research Institute*, XXIII, p. 224.
4. *Loc. cit.*
5. *Op. cit.*, p. cvii.
6. Cf. *Mahārāja Gaṇa* on the Nāga coinage as an abbreviation for *Mahārāja Gaṇendra*, see S, K. Chakraverty, *Ancient Indian Numismatics*, p. 194,

like *gaṇa* and *jaya*. In spite of it, his objection cannot be disregarded, for the ingenious method of interpretation employed by Jayaswal and improved upon by Bhandarkar fails to explain letters like *chha, pa, bha* and *sa*, on whose meaning no light has been thrown. It is, therefore, difficult to regard the legends concerned as abbreviations of complete legends like *Mahārāja-paya* or *Mālavagaṇasya jaya.*

While Allan's objection to the view that these legends are not abbreviations has some weight, his own suggestion is open to criticism. It is difficult to understand how it could be possible for mint-masters to systematically make "meaningless attempts to reproduce parts of *Mālavānāṁ jaya* (are in *Mālavagaṇasya jaya*) the letters *chha, pa, bha*, and *sa* are conspicuous by their absence. The difficulty that appears as insuperable in accepting Allan's view is that there is at least one coin in the Indian Museum[1] which definitely bears the name of the tribe *Mālava* along with one of the curious expressions *Mājupa*, thereby showing that *Majupa* can in no way be regarded as a meaningless attempt to reproduce parts of *Mālavānāṁ jaya*. Thus we are to revert to the main suggestion offered by Carlleyle and Smith that these legends stand for names of Mālava chiefs. But we differ from Smith who regards these chiefs as of foreign extraction. Apparently these names sound non-Indian, but a foreign origin cannot be established merely on the basis of names, specially when no successful attempt has been made to connect them with any foreign stock.[1] While it has not so far been proved that they were of foreign extraction, the probability of their belonging to a non-Aryan stock may be considered.

Words of non-Sanskritic origin, like the present legends, are not altogether absent in Indian numismatics. An analogous case is furnished by words like *Rālimasa* (or *Tālimata*), Dojaka, *Atakatakā*, etc. appearing on a group of *negama* coins found at Taxila. They have been taken by scholars as proper names, either of the names of persons or of places. On this analogy, therefore, the outlandish words on Mālava coins may be regarded as proper names and, as has been suggested above, they seem to be the names of Mālava chiefs, probably of non-Aryan origin. Non-Sanskritic personal names like *Magasa* (*Bhavishya Purāṇa*) *Maṅkana* (*Mahābhārata* and the *Purāṇas*), *Majjala* (*Mahābhārata*), etc. also tempt us to consider the legends on Mālava coins as personal names.

Incidentally, it will be of interest to the recent discovery of a few coins with the legends *Hamugama, Valāka, Mahu, Dāsa* and *Sauma* at Ujjayinī and Vidiśā. According to K. D. Bajpai these legends stand for personal names and since they sound un-Indian, like the legends on our coins, they are to be attributed to Śaka chiefs ruling from 200 to 100 B. C. It is not necessary to suppose that there was a Śaka infiltration on this ground. Indeed, there is no definite evidence of the Śaka

1. *CCIM*, p. 175, no. 70.

occupation of Malwa before the beginning of the second century A. D. Hence the theory of the Śaka domination over Malwa in the second century B. C., as propounded by Bajpai, seems to be untenable.

Against taking the legends on the Mālava coins in question as personal names one may point out, as Allan has done, that they are without any normal genitive suffix. But actually there are definite instances of personal name in coin-legends having no genitive suffix. The Nāga coinage, to which some of the Mālava coins are closely related, is an illustration on the point. The non-use of the genitive sign is a feature shared by both the Mālava and the Nāga coinages generally unnoticed by scholars. Names like *Hamuguma*, *Vatakà*, *Mahu* as found on coins recently discovered and noted above furnish another example of the non-use of genitive suffix. Hence there is no strong case against the view of the legends being regarded as personal names.

Further, it will be an oversimplification of the chronological problem presented by these coins if they are assigned without any differentiation to one specific period, the third-fourth century A. D. Some of these coins, as we have mentioned before, are earlier than the rest. Thus there is no question of accommodating so many rulers in a limited period, a difficulty which some scholars have experienced in recent times.

To sum up, the coins bearing enigmatical legends like *Bhapaṁyana, Mapojaya, Magaja, Jamaka* etc. should be attributed to Mālava chiefs. Some of them such as the one bearing *Yama* may be placed in pre-Christian centuries, while others such as the one bearing *Magojava* may be assigned to the third-fourth century A. D.

•

Tantric Cult In Eastern India

Dr. Upendra Thakur

Professor and Head of the Department of Ancient Indian and Asian Studies, Magadh University, Bodh-Gaya.

BIHAR

The Tantras may rightly be termed as "so many encyclopaedias of the knowledge of their time" as they deal with all matters of "common belief and interest from the doctrine of the origin of the world to the laws which govern kings and the societies...medicine and science generally. The Tantra is...the repository of esoteric belief and practices, particularly those relating to yoga and *mantra-tattva*".[1] In them we find the description of the Supreme Being, the creation and destruction of the Universe, ihe classification of creatures, the origin and worship of the gods, the heavenly bodies different worlds and hells, man and hells, man and woman, *cakra* (centre of the human body), *dharma*, *āśramas* and the sacraments, *mantra, yantra* (magic diagram on which to worship), various forms of spiritual training, *Japa, Vrata*, worship (internal and external). medicine, science and many other things.

It has been argued that the Tantras are a recent Śāstra and are largely the creation of the people of Eastern India which is supposed to be its stronghold. The antiquity of the Tantra has, however, been proved beyond doubt to be as ancient as the Śruti itself.[2] In fact, not only in Eastern India, But throughout the whole of India the upper classes of Hindu community are governed by the Tantric religion as far as initiation (*dīkṣā*) is concerned. There are Śāktas, Vaiṣṇavas and Śaivas all over the country. The Śāktas are initiated by the Śakti-mantra, the Vaiṣṇavas by the Viṣṇu-mantra and the Śaivas by the Śiva-mantra. All these mantras are the exclusive properties of the Tantra. Like Mithilā, Madras, Bengal, Bombay, Kāśī (Banaras), Kashmir, Assam and other fuch notable places of India have Śaktas, Vaiṣṇavas and Śaivas in a large number following the Tāntric system. It is, therefore, absurd to argue that this system is the exclusive creation of the people of

---

1. Bhattacharya, *Mātṛkābheda Tantram*, Intro. 3, Avalon, *Principles of Tantras (Tantra-tattva)* pref. lff, 49-50
2. Bhattacharya, Intro. 7ff, Avalon, Jntro. 58ff, D. N. Bose, *Tantras : Their Philosophy and Occult Secrets*, pp. 2ff, Upendra Thakur, *Studies in Jainism and Buddhism in Mithilā*, chap. II, pp. 29-38.

Eastern India only. Sādhakas have appeared on the scene almost everywhere, and the Maithila Sādhakas and Paṇḍitas, like those of Bengal and other places, have "only prepared compendia and developed the practical side of it to a considerable extent" for the benefit of humanity at large.[1]

It is interesting to note that the Śakti-devatā (the Mother-Goddess) is worshipped and reverenced and the Śaktipīṭhas (the seat of the Mother-Goddess) are established in almost all parts of India : Kāmakhyā is worshipped at Kāmarūpa; Vindhyavāsinī on the Vindhya hills; Yogamāyā and Pūrṇamāsī at Vṛndāvana; Annapūrnā, Saṁkaṭā, Tripurābhairavī, sixtyfour Yoginīs, Kālabhairavi, Durgā, Śītalā, Maṅgalā and other Devīs at Kāśī; Guhyesvari in Nepal; Gāyatri and Sāvitri in Rajputana; Lalitā at Prayāga; Ugratārā in Mithilā (Tirhut); Jayakāli in Calcutta; Jvālāmukhī[2] and Chinnamastā in and near Jalandhar; Kṣīrabhavāni near Kashmir and other Devis in almost all parts of India. Vimalā, Sarasvatī, Bhuvaneśvarī, Kālī and Lakṣmī are worshipped and paid obeisance to in Utkala, the seat of Lord Jagannātha.[3] To say that Raghunandana Bhaṭṭācārya of Bengal was the first to prescribe for the worship of Durgā, as provided for in the Tantra, would be quite wrong and misleading, for we know that previous to him many other thinkers in Mithilā, Bengal and elsewhere had done so. Vidyāpati. Śridatta, Harinātha Upādhyāya, Vidyādhara, Ratnākara, Bhojadeva, Jimūtavāhana, Halāyudha, Vācaspati Miśra, Mādhavācārya and even Saṅkarācārya had admitted the authority of the Tantra while explaining philosophical doctrines. Vācaspati Miśra, the celebrated Maithila thinker and commentator on the six Darśanas, has in his commentary on the Patañjali-Darśana recommended *Dhyāna* of Devatās as prescribed in the Tantras.[4] Moreover, many well-known books written in Mithilā and elsewhere, before the age of Raghunandana, contain provisions for Durgā-Pūjā, such as the *Durgā-bhakti-taraṅgiṇī, Saṁvatsarapradīpa, Kālakaumudī, Jpotisāṇava, Smṛti-sāgara, Kalpa-taru, Kṛtya-masārṇava, Kṛtyaratnākara, Kṛtyatattvārṇava, Durgābhaktiprakāśa, Kāla-nirṇaya, Pūjā-ratnākara* and others pertaining to the worship of Durgā and Kālī.[5]

The Bengali practice of worshipping earthen images of Durgā or Kālī with great pomp and ceremony is followed all over eastern India. It is true that this practice does not receive the same favour, as in Mithilā and Bengal, in other parts of India but it is also true that She is everywhere worshipped in *ghaṭas* (earthen

1. Bhattacharya, 7, Avalon. 5 ff, Also, C. S. B. Dasgupta, *Obscure Religious ults*, 13ff.
2. Jvālāmukhī, Caṇḍī. Tārā, Kālī, Durgā etc. are also worshipped in Mithilā at different places. (Vide-U. Thakur, *op cit*, p. 31 fn 5).
3. For further details, see Avalon, 63-64, U. Thakur, *Op. cit*, pp. 31-32
4. Cf. Avalon, 67.
5. For other details, see *Ibid.*, 65ff, U-Thakur, pp. 31-32.

jars). Shrines containing her images are reverentially visited, nine-day *Vratas* performed, fasts duly observed and the sacred *Caṇḍī* read on the Mahāṣṭamī day. Even now women folk bathe in the rivers or tanks early every morning for the first nine days of the bright fortnight of the month of Āśvina and worship the small images of the Devī, made of clay, with all devotion. All these undoubtedly show that this practice of worshipping the Devī has been followed from times immemorial.

The most peculiar characteristic of this religion is that women and Śūdras are not at all prohibited from practising the Sādhana. The *Rudrayāmala* says that a woman may also be a Guru who is a Kulīna (practising Kulācāra), of auspicious appearance, fair-faced and lotus-eyed, endowed with intellect, calmness of mind, proficient in mantras and in their meanings, ever engaged in japa and devoted to the worrhip of her Iṣṭadevatā.[1] The *Gautamīya Tantra* declares that the people of all castes, irrespective of sex, may receive its mantras.[2] In the *Cakra* there is no caste at all, even the lowest Caṇḍāla being deemed, whilst therein, higher than the Brāhmaṇas. The *Mahānirvāṇa Tantra*[3] says : "That low Kaula who refuses to initiate a Caṇḍāla or a Yavana into the Kaula dharma, considering them to be inferior, or a woman out of disrespect for her, goes the downward way. All two-footed beings in this world, from the *vipra* (Brāhmaṇa) to the inferior castes, are competent for Kulācāra." This is no doubt the most revolutionary aspect of this religion which in the course of centuries attracted millions of followers to its fold.

Another great factor that contributed to its tremendous growth and popularity is that in the Tantras, the duties of each of the castes as well as those of the king are not prescribed much differently from Manu, the great law-giver. The *Mahānirvāṇa Tantra* speaks very highly of the family-life. It rigorusly prescribes that one should never be allowed to take to ascetic life who has children. wife or such like near relations to maintain. We have in the ninth chapter of the *Mahānirvāṇa* Tantra (*Saṁskāras*) "sacraments from conception until marriage". entirely in consonance with Brāhmaṇic texts. In the tenth chapter we have the direction for the disposal and the cult of the dead (*Śrāddha*). "A peculiarity of the Śāktas in conncetion with marriage consists in the fact that side by side with the Brāhma marriage for which the Brāhmaṇic prescriptions are valid, there is also a Śaiva marriage, that is, a kind of marriage for a limited period which is only permitted to the members of the circle (*cakra*) of the initiates. But children out of such marriage are not legitimate and do not inherit.[4]" Thus. the Brāhmaṇic raw also applied to the Śāktas and as such the section concerning civil and criminal law

1. *Ibid*. 807-08 ff.
2. Cf. "Sarva varnādhikārāśca nārīnāṁ yogyameva ca".
3. Chap, XIV, Vs. 137 and 134.
4. Avalon, 117. It is, however, incorrect to call them illegitimate children. on the other hand, off-springs of a Brāhma marriage are preferential inheritors.

in the eleventh and twelfth chapters of the *Mahānirvāṇa Tantra* substantially agrees with Manu.

The prevalent Vedic ritualism of the day was too powerless to face the new communities springing up all over the country. From the Karmakāṇḍa we have, there, to turn to Jñānakāṇḍa in the Vedic-religion which finds elaborate representation in the Upaniṣads. Besides the earliest ritualism of yajñas being philosophised upon in the earlier Upaniṣads, we find that the foundation for a new elaborate ritualism was fully laid in many of the latr Upaniṣads. Keeping in view the new changes, the philosophy of pañca-upāsanā (five-fold worship viz. the worship of Śiva, Devī, Sun, Gaṇeśa and Viṣṇu) was developed out of the mystery of Praṇava ('*Om*') of which some features are also to be clearly seen in the Brāhmaṇas.[1] As a matter of fact, such upakaraṇas of Tāntric worship as grass, leaves, water etc. seem to have been adopted from the Vedic worship along with their appropriate incantations This may thus be regarded as the earliest configuration which Tantricism had on the eve of "these silent but mighty social upheavals through which the Aryanisation of vast and increasing multitudes of new races proceeded in pre-Buddhistic India, and which had their culmination in the eventful centuries of the Buddhistic *coup-de-grace*."[2]

The great problem to be tackled was the aryanisation of this new India that was rising and surging furiously from every side against the fast-dwindling centres of the old Vedic orthodoxy struggling hard for its existence. The religious movements of the Bhāgavatas, Śāktas, Sauras, Śaivas. Gāṇapātyas. Jainas and Buddhists absorbed many of the non-Aryan races and cast their life in the mould of the Vedic spiritual ideal which largely minimised the gulf existing between them and the Vedic orthodoxy, ending in their gradual amal amalgamation in the course of a few centuries Thus, the pre-Buddhistic phase of Tāntric worship is a fact to be reckoned with in the early history of India much before the appearance of the Buddha. I ts foundation wrs so widely and firmly established that, notwithstanding the ceaseless cfforts, Buddhism could not dislodge it, but was in turn itself swallowed up by this Tantric worship within a short span of a few centuries. This wonderfully transformed Buddhism soon appeared on the arena in its new attractive garb as the Mahāyāna.[3]

The worship of Śakti was predominant throughout eastern Indi a. Like the worship of Śiva, the worship of Śakti was equally widespread. There is, however, a great difference in that there is a marked paucity of legends and stories recording attainment of Siddhis by the worshippers of lord Śiva whereas the stories regarding Śākta devotees attaining miraculous powers are numerous.

1. Cf. the discourse about the conception of Śiva.
2. Avalon, *op. cit.*, p. 554.
3. For other details see *Ibid.* 556 ff, U. Thakur *op. cit*, p, 37.

This is probably because Śakti was supposed to give Siddhis only, but the god who could award *mukti* or salvation was Lord Śiva, which was certainly a higher thing. Some of the greatest saints and upāsakas of Mithilā, such as Devāditya, Vardhamāna, Madana, Upādhyāya, Gokulanātha Upādhyāya, Mahārāja Rāmeśvara Siṁha, Gananātha Upādhyāya, Lakṣmīnātha Gosāin and a host of others, were associated with Śakti. Every house-hold has a *Gosāuni* (Śakti goddess). There are still many pīṭhas and centres of Tāntricism where Sādhakas from different parts of the country come to practise Sādhana. Moreover, the first verse taught to a child is in praise of Śakti. The popularity of *Aripana* or *Alipana* (painted Yantras on the ground); the names of Maithilis and Bengalis such as Tantradharī, Tantranātha, Śaktinātha, Khaḍgadhārī, Tārācaraṇa, Ādya-caraṇa etc, the *Sābara* rites of women, the vogue of fish and meat eating, Pāga or Tāntric head-dress, the offering of sweet cooked rice in milk and the feeding of *Kumāris* (Virgins) known as *Pātari* ceremony on all auspicious occasions, the widespread public worship of the earthen images of Durgā in Daśaharā or Vijayā-daśamī, the worship of the Liṅgam (a veritable Tāntric symbol), the Mātṛkā Pūjā, the performance of *Nainā-Yogina* and the prevalence of *Dikṣā* (*Iṣṭamantragrahaṇa*)—all these briefly point to the great importance of the Śakti cult in the life of the people of eastern India But, all told, the fact remains that the glory and honour that the Tantras had, and received, in the time of those great Sādhakas and Mahārājas Kṛṣṇacandra and Śivacandra of Bengal and Lakṣmīśvara Siṁha and Rameśvara Siṁha of Mithilā no longer exist. This is the reason why the Tāntric Sādhakas of Bengal and Mithilā are not so well-known at present.

This reverence for and adoration of Śakti has immensely influenced the script and literature of the land. Not only there are a large number of Tāntric works written and compiled in Sanskrit, not only there are almost all writers praising. Śakti or the Primal (*Ādyā*) Energy, but the very script of eastern India has developed in accordance with Tāntric Yantras. The history of this peculiar development of the Varṇas has been elaborately dealt with in the *Kāmadhenu* and the *Varṇoddhāra Tantra*[1] The *añji* (F) sign in the beginning of Maithilī alphabet is also due to the Tāntric influence, for it represents the *Kuṇḍalinī* (Mūlādhāra).[2]

Another very important result of this Tāntric predominance has been the composition of popular songs of the Goddess Durgā in local literature, without which no auspicious religious ceremony can ever begin. Besides a large number of songs, there is a great number of documents relating to incantations and charms which, though not fully understood now by the experts of the Mantra-Śāstra, nonetheless, serve their purpose very efficaciously.[3]

1. Also cf. Woodroffe, The Garland of Letters (Varnamala).
2. *Journal of the Assam Research Society*, Vol. I, p. 3; U. Thakur, *op. cit.* pp. 42-43.
3. JBRS., XXXIII. pts.-i-ii, pp. 50-52.

Thus, the influence of the Tantric practices has been so great upon the life of the people of eastern India, particularly Mithilā, Bengal and Assam, that all their daily activities are practically dominated and governed by the principles of the Tāntric religion. The Kaula and Daśa-mahāvidyā, however gained wide popularity in course of time. The Kaulas became the protagonists of Vāmacāra or Vāmamārga sect and Daśa-mahāvidyā. Kālī, Tārā and Bhuvāneśvarī have now prominent place in the life of the people. Āgama does not necessarily mean "a sacred book appealed to by Vāmācārins" as opposed to Nigama of the followers of Dakṣiṇācāra. Nor is the term Vāmācārin itself a synonym for Kaula, for a person may be the first without being the second.

In ancient times Dakṣiṇācāra was more popular and widely practised. It produced great Sādhakas. But in course of time (probably about a century ago) people came to be intensely influenced by the Vāmācāra practices. The mode of worship in the two mārgas is quite different. It is true, one who follows the Vāmācāra attains Siddhi soon; but it is very difficult to practise it successfully and as such there is every chance of a fall in this mārga. Vaśiṣṭha and other Sādhakas followed Dakṣiṇācāra and were great devotees of the goddess Tārā. Great Sādhakas have from timg to time appeared on the scene and inspired people to practise this religion. Dakśiṇācāra was therefore, (and is atill) looked upon with high regard innumerable Sādhakas followed this path, whose life-history, full of miraculous feats and wonderful achievements, ahs now passed into legends handed down from generation to generation and is yet an object of popular study and reverence.[1]

Side by side with Dakṣiṇācāra, Vāmācāra and Kaula also gained much popularity and soon gave rise to Abhicāra-Karma[2] (black magic, mummery, witch-crafts etc.) among the low classes and women. This had no doubt a dongerously demoralising effect on the morale of the common people, and it was this Karma that largely contributed to the unpopularity of the Tantras in general and the growing hatred for the Sādhakas in particular. Indeed, the divine qualities inherent in this sect are very difficult to practise, and, therefore, in the absence of the right interpretations and understanding people took to degrading forms of debauchery

---

1. Umesha Miśra, *Maithila Samskrti o' Sabhyatā* (in Maithili), pt. II. p. 181 U. Thakur, *op. cit* pp. 44-45.

2. This Abhicāra-karma was unfortunately the indirect result of the *Arimardana Homa* or *Nigraha Homa* i. e. "the object of punishing an enemy" fully dealt with and enumerated in the thirtyfirst chapter (*Arimardana Homa*) of the celebrated work *Tantrarāja-Tantra* (The King among Tantras), edited by Sir John Woodroffe (Arthur Avalon). verses 3-6 of this Chapter speak of certain things which should be known regarding the enemy before a Homa is begun (*Ibid.*, pp. 94-95)

under the garb of the Tantric Sadhana. The result was obvious. The divi e Tantras came to be stigmatised as a libidinous phallic necromancy.

Lakṣmīdhara, in his commentary on the thirty-first verse (*śloka*) of *Saundarya-Laharī* of Śaṅkarācārya ahs given the names of sixty-fore Tantras, i. e. *Candrakalā, Jyotsnāvatī, Kalānidhi, Kulārṇava, Kuleśvarī, Bhuvaneśvarī, Bārhaspatya* and *Durvāsamata*, in which the Brāhmaṇas, the Kṣatriyas, the Vaiśyas, the Śūdras and even the mixed castes have been given equal rights to perform meditation.[1] The first three are advised to attain Siddhi through Dakṣiṇācāra practices and the Śūdras and the mixed castes are required to undergo Sādhana through Vāmācāra. It is due to this liberal attitude that there has been no sect-rivalry since hoary past to the present day. One finds Śaivas, Śāktas and Vaiṣṇavas living together in perfect harmony in one and the same family. Whenever fish or meat is prepared in one family the members, though belonging to the different sects, sit together in one row and take their meals ungrudgingly, the only difference being that the Vaiṣṇavas keep away from taking fish or meat. The Brāhmaṇas daily worship the Śālagrāma (Viṣṇu) and rub Śrīkhaṇḍacandana and ashes (*bhasma*) of Śiva on their forehead, arms, ears and other parts of body. Side by side with these gods, they worship Iṣṭadevī, the symbol of Śakti and also put vermillion marks on their forehead. Durgā Pūjā is celebrated with the same zeal and vigour as Kṛṣṇāṣṭamī or Janmāṣṭamī and Śivarātri.[2] All this has resulted in wonderful blending of different religious sects and perfect harmony among their followers, a feature hardly to be seen elsewhere. Even the most orthodox Brāhmaṇas participate in Muslim religious festivals and also those of the low castes, and vice-versa. It is, therefore no exaggeration to say that in this part of the country we have the real Indian culture in all its broad aspects, still flourishing, to which the celebrated Tāntric religion has made its singular contributions.

1. Umesha Miśra, *op. cit.*, p. 18ff.
2. U. Thakur, *op. cit.* p. 45.

Thus, the influence of the Tantric practices has been so great upon the life of the people of eastern India, particularly Mithilā, Bengal and Assam, that all their daily activities are practically dominated and governed by the principles of the Tāntric religion. The Kaula and Daśa-mahāvidyā, however gained wide popularity in course of time. The Kaulas became the protagonists of Vāmacāra or Vāmamārga sect and Daśa-mahāvidyā. Kālī, Tārā and Bhuvāneśvarī have now prominent place in the life of the people. Āgama does not necessarily mean "a sacred book appealed to by Vāmācārins" as opposed to Nigama of the followers of Dakṣiṇācāra. Nor is the term Vāmācārin itself a synonym for Kaula, for a person may be the first without being the second.

In ancient times Dakṣiṇācāra was more popular and widely practised. It produced great Sādhakas. But in course of time (probably about a century ago) people came to be intensely influenced by the Vāmācāra practices. The mode of worship in the two mārgas is quite different. It is true, one who follows the Vāmācāra attains Siddhi soon; but it is very difficult to practise it successfully and as such there is every chance of a fall in this mārga. Vaśiṣṭha and other Sādhakas followed Dakṣiṇācāra and were great devotees of the goddess Tārā. Great Sādhakas have from timg to time appeared on the scene and inspired people to practise this religion. Dakśiṇācāra was therefore, (and is atill) looked upon with high regard innumerable Sādhakas followed this path, whose life-history, full of miraculous feats and wonderful achievements, ahs now passed into legends handed down from generation to generation and is yet an object of popular study and reverence.[1]

Side by side with Dakṣiṇācāra, Vāmācāra and Kaula also gained much popularity and soon gave rise to Abhicāra-Karma[2] (black magic, mummery, witch-crafts etc.) among the low classes and women. This had no doubt a dongerously demoralising effect on the morale of the common people, and it was this Karma that largely contributed to the unpopularity of the Tantras in general and the growing hatred for the Sādhakas in particular. Indeed, the divine qualities inherent in this sect are very difficult to practise, and, therefore, in the absence of the right interpretations and understanding people took to degrading forms of debauchery

1. Umesha Miśra, *Maithila Samskrti o' Sabhyatā* (in Maithili), pt. II. p. 181 U. Thakur, *op. cit* pp. 44-45.

2. This Abhicāra-karma was unfortunately the indirect result of the *Arimardana Homa* or *Nigraha Homa* i. e. "the object of punishing an enemy" fully dealt with and enumerated in the thirtyfirst chapter (*Arimardana Homa*) of the celebrated work *Tantrarāja-Tantra* (The King among Tantras), edited by Sir John Woodroffe (Arthur Avalon). verses 3-6 of this Chapter speak of certain things which should be known regarding the enemy before a Homa is begun (*Ibid.*, pp. 94-95)

under the garb of the Tantric Sadhana. The result was obvious. The divi e Tantras came to be stigmatised as a libidinous phallic necromancy.

Lakṣmīdhara, in his commentary on the thirty-first verse (*śloka*) of *Saundarya-Laharī* of Śaṅkarācārya ahs given the names of sixty-fore Tantras, i. e. *Candrakalā*, *Jyotsnāvatī*, *Kalānidhi*, *Kulārṇava*, *Kuleśvarī*, *Bhuvaneśvarī*, *Bārhaspatya* and *Durvāsamata*, in which the Brāhmaṇas, the Kṣatriyas, the Vaiśyas, the Śūdras and even the mixed castes have been given equal rights to perform meditation.[1] The first three are advised to attain Siddhi through Dakṣiṇācāra practices and the Śūdras and the mixed castes are required to undergo Sādhana through Vāmācāra. It is due to this liberal attitude that there has been no sect-rivalry since hoary past to the present day. One finds Śaivas, Śāktas and Vaiṣṇavas living together in perfect harmony in one and the same family. Whenever fish or meat is prepared in one family the members, though belonging to the different sects, sit together in one row and take their meals ungrudgingly, the only difference being that the Vaiṣṇavas keep away from taking fish or meat. The Brāhmaṇas daily worship the Śālagrāma (Viṣṇu) and rub Śrīkhaṇḍacandana and ashes (*bhasma*) of Śiva on their forehead, arms, ears and other parts of body. Side by side with these gods, they worship Iṣṭadevī, the symbol of Śakti and also put vermillion marks on their forehead. Durgā Pūjā is celebrated with the same zeal and vigour as Kṛṣṇāṣṭamī or Janmāṣṭamī and Śivarātri.[2] All this has resulted in wonderful blending of different religious sects and perfect harmony among their followers, a feature hardly to be seen elsewhere. Even the most orthodox Brāhmaṇas participate in Muslim religious festivals and also those of the low castes, and vice-versa. It is, therefore no exaggeration to say that in this part of the country we have the real Indian culture in all its broad aspects, still flourishing, to which the celebrated Tāntric religion has made its singular contributions.

1. Umesha Miśra, *op. cit.*, p. 18ff.
2. U. Thakur, *op. cit.* p. 45.

The Five Apabhramsa Verses Composed by Muñja, the Paramara King of Malava.

H. C. Bhayani

Gujarat University, Ahmedabad.

As an instance of the Saṁkīrṇa type of the Catuṣpadī Dhruvā used in the Apabhraṁśa Saṁdhibandha, Hemacandra has cited under *Ghandonuśāsana*[1] 6, 22 the following verse that illustrates an admixture of two different varieties of Catuṣpadī.

Cūḍullau bāhoha-jalu
mayaṇā kaṁcua visamathaṇa
ia Muṅsjiṁ raiā uūhaḍā
paṁca vi kāmahu paṁca sara

'*cūḍullau, bāhoha-jalu, nayaṇā, kaṁcua* and *viṣama-thaṇa* these five Dohās, like the five arrows of the Love-god, were composed by Muñja'.

This verse has a unique historical importance in that it records the suthor-ship of some Dohā verses composed by Vākpati Muñja, the famous Paramāra king of Mālava, who flourished during 975-995 A. D. He enjoyed great fame in legend and history for his romance, heroism, literary talent and patronage to literature. The laudatory verse gives five Pratikas or characteristic words one from each of the five verses of Muñja which had become famous among the literary circles due to their poetic excellence. It was a traditional device[2] to record in a fool-proof manner the authorship of some isolated Muktaka-like verses. Now the problem is that of identifying the five Apabhraṁśa verses credited to Muñja. Fortunately for us Hemacandra seems to have preserved them for the posterity. The *cūḍullau*-and the *bāhoha-jalu* verse are given in the *chandonuśāsana* at the same place as the commemorative stanza noted above, i. e. under 6, 22.

The *cūḍullan* verse occurs also in the *Siddhahemā* under 8, 4, 395 with slight slight variation in the third Pāda. The text according to the *Chandonuśāsana* is as follows :

Cūḍullau cuṇṇīhoisai
muddhi kaoli nihittau

1. Velankar's edition, Singhi Jaina Series No : 49, 1961, Pp, 209.
2. See e. g. *Prabandhacintāmaṇi* of Merututuṅga (ed. Muni Jinavijaya 1933); P.11, where verses no. 10 and 19 give the *pratikas* or characteristic words of some famous Gāthās of Sātavāhana which have been given under verses no. 11 to 18,

niddaddhan sāsāndaliṇa
bāha-salila-saṁsittan

The *Siddhahema* has *kavoli* for *kaoli* and *sāsānala-jālajhalakkiau* for the third Pāda.

The verse can be translated as follows :

'O simple girl, your bracelet, positioned as it is under your cheek will be reduced to powder, having been (first heated by fiery sighs and then sprinkled with water of your tears'.

The second i. e, the *bāhoha-jalu* verse is as follows :

tain tettiu bāhaha-jalu
sihiṇaṁtari vi na pattu
chimichimivi chimivi gaṁḍatthalili
simisimivi simivi samattu

Translation : Even though it was a flood of tears, it interspace her breasts it boiled up just on the cheeks sounding *chimi chimi* and so disappeared sounding *simi-simi*'.

The remaining three verses are to be identified from among citations given in the Apabhraṁśa section of the *Siddhahema*. There is some uncertainty about the identification of the third i. e. the *nayaṇā*-verse. Probably it is the same as the one cited under 8, 4. S14 to illustrate the use of *prāīva*. It is as follows :

aṁsu-jalē prāīva goriahē
sahi uvvattā nayaṇsara
teṁ saṁpesiā
deṁti tiricchī ghatta para

Translation : 'It seems that the arrows of glances of the fair damsel are deflected due to the stream of tears-hence, even though charged straight, they strike sideways'.

The fourth verse, i. e. the *kaṁcua*-verse is the same as the one cited under *Siddhahema* 8, 4, 431. It is as follows :

pahiā diṭṭhī goraḍī
diṭṭhī maggu niaṁta
aṁsūsāsēhī kaṁcuā
tiṁtuvvāṇa karaṃta

'O wayfarer, did you meet my fair lady ?' 'Oh yes, I saw her gazing at the road (of your return), and drenching and drying her blouse in turn with her tears and sighs'.

Lastly, the *visama-thaṇa* verse is the same as the one cited under *Siddhahema* 8, 4, 350 (as also under 362). It is as follows :

The Five Apabhramsa Verses Composed by Muñja, the Paramara King of Malava.

H. C, Bhayani

Gujarat University, Ahmedabad.

As an instance of the Saṁkīrṇa type of the Catuṣpadī Dhruvā used in the Apabhraṁśa Saṁdhibandha, Hemacandra has cited under *Ghandonuśāsana*[1] 6, 22 the following verse that illustrates an admixture of two different varieties of Catuṣpadī.

Cūḍullau bāhoha-jalu
mayaṇā kaṁcua visamathaṇa
ia Muṅsjiṁ raiā uūhaḍā
paṁca vi kāmahu paṁca sara

'*cūḍullau, bāhoha-jalu, nayaṇā, kaṁcua* and *viṣama-thaṇa* these five Dohās, like the five arrows of the Love-god, were composed by Muñja'.

This verse has a unique historical importance in that it records the suthor- ship of some Dohā verses composed by Vākpati Muñja, the famous Paramāra king of Mālava, who flourished during 975-995 A. D. He enjoyed great fame in legend and history for his romance, heroism, literary talent and patronage to literature. The laudatory verse gives five Pratikas or characteristic words one from each of the five verses of Muñja which had become famous among the literary circles due to their poetic excellence. It was a traditional device[2] to record in a fool-proof manner the authorship of some isolated Muktaka-like verses. Now the problem is that of identifying the five Apabhraṁśa verses credited to Muñja. Fortunately for us Hemacandra seems to have preserved them for the posterity. The *cūḍullau*-and the *bāhoha-jalu* verse are given in the *chandonuśāsana* at the same place as the commemorative stanza noted above, i. e. under 6, 22.

The *cūḍullan* verse occurs also in the *Siddhahemā* under 8, 4, 395 with slight slight variation in the third Pāda. The text according to the *Chandonuśāsana* is as follows :

Cūḍullau cuṇṇīhoisai
muddhi kaoli nihittau

1. Velankar's edition, Singhi Jaina Series No : 49, 1961, Pp, 209.
2. See e. g. *Prabandhacintāmaṇi* of Merututuṅga (ed. Muni Jinavijaya 1933); P.11, where verses no. 10 and 19 give the *pratikas* or characteristic words of some famous Gathās of Sātavāhana which have been given under verses no, 11 to 18,

niddaddhan sāsāndaliṇa
bāha-salila-saṁsittan

The *Siddhahema* has *kavoli* for *kaoli* and *sāsānala-jālajhalakkiau* for the third Pāda.

The verse can be translated as follows :

'O simple girl, your bracelet, positioned as it is under your cheek will be reduced to powder, having been (first heated by fiery sighs and then sprinkled with water of your tears'.

The second i. e, the *bāhoha-jalu* verse is as follows :

tain tettiu bāhaha-jalu
sihiṇaṁtari vi na pattu
chimichimivi chimivi gaṁḍatthalili
simisimivi simivi samattu

Translation : Even though it was a flood of tears, it interspace her breasts it boiled up just on the cheeks sounding *chimi chimi* and so disappeared sounding *simi-simi*'.

The remaining three verses are to be identified from among citations given in the Apabhraṁśa section of the *Siddhahema*. There is some uncertainty about the identification of the third i. e. the *nayaṇā*-verse. Probably it is the same as the one cited under 8, 4. S14 to illustrate the use of *prāīva*. It is as follows :

aṁsu-jalē prāīva goriahē
sahi uvvattā nayaṇsara
teṁ saṁpesiā
deṁti tiricchī ghatta para

Translation : 'It seems that the arrows of glances of the fair damsel are deflected due to the stream of tears-hence, even though charged straight, they strike sideways'.

The fourth verse, i. e. the *kaṁcua*-verse is the same as the one cited under *Siddhahema* 8, 4, 431. It is as follows :

pahiā diṭṭhī goraḍī
diṭṭhī maggu niaṁta
aṁsūsāsēhī kaṁcuā
tiṁtuvvāṇa karaṃta

'O wayfarer, did you meet my fair lady ?' 'Oh yes, I saw her gazing at the road (of your return), and drenching and drying her blouse in turn with her tears and sighs'.

Lastly, the *visama-thaṇa* verse is the same as the one cited under *Siddhahema* 8, 4, 350 (as also under 362). It is as follows :

phodeṃti jĕ hiadaũ appaṇaũ
tāhā parāī kavaṇa ghṛṇ
rakkhĕjjahu lovahõ appaṇā
bālalĕ jāyā visama thaṇa

Translation : 'Those who burst open their own heart—what compassion can they have for others ? Men, be on your guards-the breasts of the young girls have become terrific.'

Apart from the evidence from the *Chandonuśāsana*, some further evidence, although indirect, is now available in support of Muñjś authorship of the above-quoted verses. The Apabhraṃśa poem *Jaṁbūsāmcariya* was composed by Vīra in V. S. 1076 (= 1020 A. D.)[1] Vīra was connected with the places called Simdhuvarisi and Gulakheḍa in the Mālava country, which was ruled by King Bhoja from 1010 to 1055 A, D. Bhoja was preceded by Sindhurāja (995-1010 A. D.) and the latter by Muñja (975-995 A, D.) The *Jamūsāmicariya* was composed some twetyfive years after the death of Muñja. Now from this work of Vīra it can be seen quite clearly that not only he was familiar with important literary works of his times including the Apabhramśa works of Puṣpadanta (C. 930-980) and Svayambhū (end of the ninth century), but he was also intimately influenced by them. *Jambūsāmicariya* reveals numerous borrowings in ideas and words, from earlier well-known Apabhraṃśa, Prakrit and Sanskrit works. Thus Vīra cannot but be famliiar with the Apabhraṃśa compositions of the royal poet Mañja, who was famous also for his literary patronage—so much so that later on it was extolled in such terms as '*gate Muñje yasaḥ-puñje nirālambā sarasvatī*',[2] i. e. 'with the departure of the glorious Muñja, the Goddesss of Learning has become a homeless wanderer. And from one passage of the *Jambūsāmicariya* we get an actual indication of the influence of Muñja's Apabhraṃśa poems.[3] Describing the love-lorn condition of the ladies of Rājagṛha at the sight of Jambūsvāmin, the poet says :

kāhi vi virahāṇal saṃpalittu
aṃsujalohaliñ kavolĕlkhittu
pallaṭṭai hatthu karaṃtu suṇṇu
daṃtimu cūḍullau cuṇṇu euṇṇu
kahi vl harsyanṃdaṇarasu ramei
laggaṃtu aṅglĕ chamachamachamei
(*Jambūsāmcariya*, 4, 11, 1-3).

Translation : 'In the case of some lady the fire of separtion so flared up that it reduced to powder the ivory bracelet that was drenched with tears due to

1. Edited by V. P. Jain, Bhāratīya Jñānapiṭha, Varanasi, 1968.
2. *Prabandhacintāmaṇi*, P. 25, line 2.
3. In this connection it is also significant that Vīra has stated that he was closely associated with the state business. See *Jaṃbūsāmicariya*, Praśasti, V. 5.

its contact with the cheek, thus rendering the hand bare. The sandal paste applied to the body of some other lady emitted sizzling sounds'.

These lines clearly echo the ideas and the wording of the *Cūḍullau*-verse and the *bāhoha-jalu*-verse of Muñja quoted above. Especially *Cūḍullau* and *Chamachamachamei* in the *Jambūsāmicariya* passage are tell-tale words, and the sequence of the two poetic images here is the same as given in the commemorative verse recorded in the *Chandonuśāsana*. It means that to both of these authorities the two Muñja stanzas were known from a source where they appeared in this very order.[1]

The evidence from the *Jambūsāmicariya* confirms the *Chandonuśāsana* stanza abont Muñja's authorship of particular Apabhraṃśa verses, and it also establishes the fact that the *Cūḍullau*-verse and the *bāhajalu*-verse were closely associated and along with some other verses of Muñja they formed a close group.

●

1. It should be noted that the Gāthā-Dhavala no. 6 (*kasarekkacakkaoete.*) at the *Jamtusāni cariya* very closely resembles the Dohā-Dhavala under *Siddhahema* 4, 5, 350 (*dhanaln bisūrai Dāmiaho* etc.). they also must have a common source.

Jainism And Vegetarianism

Dr. A. N. Upadhye

Vegetarianism is understood with different significations in different contexts, but, viewed in the back-ground of Jainism, it rmounts to using a strictly vegetarian diet either in the procurement or in the constitution of which no harm or injury to apparently living beings is involved directly or indirectly. It is closely linked up with ihree fundamental principles of Jainism: *Ahiṃsā* or Non-injury, *Saṁyamı* or Self-control and *Tapas* or Austerity.

Ahiṃsā is the basic principle on which the Jaina moral code is built. In sinple words, 'Live and let live' is the creed of Jainism. As every one of us wants to live, enjoy pleasures and escape pain, so every other living being wants to live, enjoy comforts and avoid pain. If we want to exercise our right to live, we must concede the same right to others as well. It is a simple moral law of reciprocity. Naturally man has no right to slaughter animals for his food or for his pleasure, If he does so by his superiority in the cadre of biological evolution, his action is not justifiable in any way. And if he wants to lead a life of justice and equity in society, he must have the highest respect for the entire animal world, nay the sanctity of life as such. This necessitates that he musttake to a vegetarian diet.

Man is endowed with the faculty of discrimination between right and wrong, just and unjust, and fair and unfair. His superiority as man depends on his ability to exercise this faculty with the utmost sincerity. As an enlightened member of society he cannot aftord to arrogate to himself privileges and prerogatives which are not available to others. An individual cannot enjoy any rights without the responsibilities accruing from them : in fact, every respectable citizen has more duties than rights. He is expected to lead a life of self-control. Such a self-control, according to Jainism, amounts to various kinds of restrictions in the matter of foodx, in acquiring possessions, and in the enjoyment of pleasures. Moderation is the first step on the path of self-control. By observation, the Jaina teachers have concluded that animal food not only involves destruction of life but it is also stimulative to the animal passions, and every one, therefore, who wants to lead a sober, sensible and religious life should live on a vegetarian diet.

Austerities of various kinds are prescribed in Jainism, and a pious Jaina is expected to observe different austerities such as fasting, eating less than one's

fill, putting restrictions on the use of certain items of food, and renouncing delicacies : in fact, he is to eat to live but not live to eat. Of course these austerities are intended only for those who are sufficiently advanced on the path of religious life.

This doctrine of non-injury has led the Jaina Teachers to study in detail the whole range of the animal world and to classify the various living beings under different grades according to their development ane sense-faculties. This was a practical necessity. If injury to living being is to be avoided gradually, it was necessary to study what the various living beings are and how they stand graded. Living beings fall into two broad classes, *Trasa* or mobile and *Sthāvara* or immobile. Trasa beings are those which possess two, three, four and five sense-organs. Sthāvara beings are those which have only one sense-organ, namely, that of touch, and they are of five kinds : earth-bodied, water-bodied, fire-bodied, air-bodied, and vegetables. Jaina Teachers had realized long back that plants had life, and they had treated them as one-sensed beings.

When the Jaina Teachers studied the animate world in such detail, complete abstinence from injury to beings, in a strict sense, was practically impossible. Naturally every individual could not avoid injury to living beings in an absolute sense. The religious devotees, according to Jainism, are broadly divided into two groups, namely, monks and householders, again with various stages in themselves. A monk observes the vow of Ahimsā in a very strict sense : in fact, he is not liable to any injury to living beings, even in their potentiality, in his diet. To put it plainly, he does not use in his food seeds which are capable of growing into plants. Thus a monk avoids all kinds of harm to livings being, both Trasa and Sthāvara.

The case of a house-holder is slightly different. He has social obligations and practical duties. Naturally according to his religious stage, he does his best and avoids injury to Trasa beings. It is not always possible for him to avoid injury to Sthāvara beings. But even there he is ever struggling to see that he minimizes harm unto Sthāvara beings. Naturally in his diet he does not use such fruits, roots and green vegetables as contain living organisms.

The above details make it abundantly clear that Jainism not only insists on strict vegetarian food, but even there those items of vegetarian stuff which involve harm unto subtle organisms are also to be avoided by a pious Jaina. Apart from its religious aspect, vegetarian food has its value in various ways. It is only a strict vegetarian that can assure himself that he is a cultured citizen who is not living at the cost of any other life in this commonwealth of animate beings. Further, the vegetarian diet is conducive to a dispassionate and balanced mind and a detached

Jainism And Vegetarianism

Dr. A. N. Upadhye

Vegetarianism is understood with different significations in different contexts, but, viewed in the back-ground of Jainism, it rmounts to using a strictly vegetarian diet either in the procurement or in the constitution of which no harm or injury to apparently living beings is involved directly or indirectly. It is closely linked up with ihree fundamental principles of Jainism: *Ahiṃsā* or Non-injury, *Saṁyamा* or Self-control and *Tapas* or Austerity.

Ahiṃsā is the basic principle on which the Jaina moral code is built. In sinple words, 'Live and let live' is the creed of Jainism. As every one of us wants to live, enjoy pleasures and escape pain, so every other living being wants to live, enjoy comforts and avoid pain, If we want to exercise our right to live, we must concede the same right to others as well. It is a simple moral law of reciprocity. Naturally man has no right to slaughter animals for his food or for his pleasure, If he does so by his superiority in the cadre of biological evolution, his action is not justifiable in any way. And if he wants to lead a life of justice and equity in society, he must have the highest respect for the entire animal world, nay the sanctity of life as such. This necessitates that he musttake to a vegetarian diet.

Man is endowed with the faculty of discrimination between right and wrong, just and unjust, and fair and unfair. His superiority as man depends on his ability to exercise this faculty with the utmost sincerity. As an enlightened member of society he cannot aftord to arrogate to himself privileges and prerogatives which are not available to others. An individual cannot enjoy any rights without the responsibilities accruing from them . in fact, every respectable citizen has more duties than rights. He is expected to lead a life of self-control. Such a self-control, according to Jainism, amounts to various kinds of restrictions in the matter of foodx, in acquiring possessions, and in the enjoyment of pleasures. Moderation is the first step on the path of self-control. By observation, the Jaina teachers have concluded that animal food not only involves destruction of life but it is also stimulative to the animal passions, and every one, therefore, who wants to lead a sober, sensible and religious life should live on a vegetarian diet.

Austerities of various kinds are prescribed in Jainism, and a pious Jaina is expected to observe different austerities such as fasting, eating less than one's

fill, putting restrictions on the use of certain items of food, and renouncing delicacies : in fact, he is to eat to live but not live to eat. Of course these austerities are intended only for those who are sufficiently advanced on the path of religious life.

This doctrine of non-injury has led the Jaina Teachers to study in detail the whole range of the animal world and to classify the various living beings under different grades according to their development ane sense-faculties. This was a practical necessity. If injury to living being is to be avoided gradually, it was necessary to study what the various living beings are and how they stand graded. Living beings fall into two broad classes, *Trasa* or mobile and *Sthāvara* or immobile. Trasa beings are those which possess two, three, four and five sense-organs. Sthāvara beings are those which have only one sense-organ, namely, that of touch, and they are of five kinds : earth-bodied, water-bodied, fire-bodied, air-bodied, and vegetables. Jaina Teachers had realized long back that plants had life, and they had treated them as one-sensed beings.

When the Jaina Teachers studied the animate world in such detail, complete abstinence from injury to beings, in a strict sense, was practically impossible. Naturally every individual could not avoid injury to living beings in an absolute sense. The religious devotees, according to Jainism, are broadly divided into two groups, namely, monks and householders, again with various stages in themselves. A monk observes the vow of Ahimsā in a very strict sense : in fact, he is not liable to any injury to living beings, even in their potentiality, in his diet. To put it plainly, he does not use in his food seeds which are capable of growing into plants. Thus a monk avoids all kinds of harm to livings being, both Trasa and Sthāvara.

The case of a house-holder is slightly different. He has social obligations and practical duties. Naturally according to his religious stage, he does his best and avoids injury to Trasa beings. It is not always possible for him to avoid injury to Sthāvara beings. But even there he is ever struggling to see that he minimizes harm unto Sthāvara beings. Naturally in his diet he does not use such fruits, roots and green vegetables as contain living organisms.

The above details make it abundantly clear that Jainism not only insists on strict vegetarian food, but even there those items of vegetarian stuff which involve harm unto subtle organisms are also to be avoided by a pious Jaina. Apart from its religious aspect, vegetarian food has its value in various ways. It is only a strict vegetarian that can assure himself that he is a cultured citizen who is not living at the cost of any other life in this commonwealth of animate beings. Further, the vegetarian diet is conducive to a dispassionate and balanced mind and a detached

and equable attitude. It is thus the baser emotions and lower instincts are sublimated resulting in nobler virtues of universal kindness, equality, and brother-hood.

It is admitted by all that nowhere else, as in India, has the doctrine of Ahimsā, universal non-injury or non-violence, had so great and long continued an influence on national character. It is therefore, in the natural course of our national history and heritage that outstanding men and women of our land should adhere to vegetarianism, both in public and private, so that they might create a kindlier atmosphere round about them and prove themselves standards of high thinking and plain living.

●

Viśvāmitra in the Kalpasūtras

Dr. Umesh Chandra Sharma, M. A., Ph. D.
Senior Research Fellow, Centre of Advanced Study
in Sanskrit, University of Poona,
Poona–7.

The *Sūtras*. as it is quite natural, generally provide important data about the *gotra* and *pravara* system among the Viśvāmitras. They have devoted a considerably large portion for the Viśvāmitras who occupy a significant place in our national and cultural history.

The *ŚŚS*, however, appear to be an exception in this connection. It devotes a major portion to the legend of Śunaśśepa's sacrifice and the important role played by Viśvāmitra in it.[1] The narration runs parallel to that of the *AB*. The language and the style are also the same. It is certainly a repetition from the latter except minor verbal differences here and there which are of no importance. Viśvāmitra officiated as a *Hotṛ* priest in the said sacrifice (where Śunaśśepa was offered as a victim), Jamadagni, Vasiṣṭha and Ayāsya being the other prominent priests. Śunaśśepa could not be sacrificed partly due to good offices of Viśvāmitra. He adopted him as his own son and accorded to him the highest place among his sons. He was called Devarāta after this and became a famous Kuśika.

The *Sūtras* deal in detail with the *gotra* and the *pravara* systems of the family of the Viśvāmitras. These are as follows—

1. The Kuśikas[2] have three *ṛṣi-pravaras*—Vaiśvāmitra, Daivarāta and Audala.[3]

2. Viśvāmitra, Devaśravas nnd Devataras—these are Śraumata—Kāma-

---

1. *ŚŚS* XV. 17-57. Cf. also *AB* VII. 13-18.
2. According to the *BauŚS(p)* 31, the following are mentioned as the Kuśikas— Kuśikas, Pārṇajaṅghas, Vārakyas, Audaris, Māṇis, Bṛhadagnis, Ālavis, Āghaṭṭis, Āpadyapas, Antakas, Kāmantakas, Vāṣpakis, Cikitas, Lāmakāyanas, Śālaṅkāyanas, Sāṅkāyanas, Laukas, Gauras, Saugantis, Yamadūtas, Anabhimlātas, Tārakāyaṇas, Cauvalas, Jābālis, Yājñavalkyas. Vidaṇḍas. Bhauvanis, Saubabhravis. Aupadahanis, Audumbaris, Bhāriṣṭikis, Śyāmeyas, Caitreyas, Śālāvatas, Mayūras, Saumatyas, Citratantus, Manutantus, Mantus, others denoting the word 'Tantus' in the end, Bābhṛvyas, Kalāpas and Utsaris.
3. *BauŚS(P)* 31, *ĀpŚS* XXIV. 9. 2, *HirŚS* XXI. 3. 12.

and equable attitude. It is thus the baser emotions and lower instincts are sublimated resulting in nobler virtues of universal kindness, equality, and brother-hood.

It is admitted by all that nowhere else, as in India, has the doctrine of Ahimsā, universal non-injury or non-violence, had so great and long continued an influence on national character. It is therefore, in the natural course of our national history and heritage that outstanding men and women of our land should adhere to vegetarianism, both in public and private, so that they might create a kindlier atmosphere round about them and prove themselves standards of high thinking and plain living.

●

kāyanas. They have the following three *ṛṣi-pravaras*—Vaiśvāmitra, Daivaśravas and Daivataras.[1]

3. The Katas[2] also have three *ṛṣi-pravaras*—Vaiśvāmitra, Kātya and Ātkila.[3]

4. The Dhanañjayas[4] have these three *ṛṣi-pravaras*—Vaiśvāmitra, Mādhucchandas, and Dhānañjaya.

5. The Aghamarṣaṇa-Kuśikas have the following three ṛṣi-*pravaras*-Vaiśvāmitra, Āghamarṣaṇa and Kauśika.[5]

6. The Pūraṇa-Vāridhāpayantas have two *ṛṣi-pravaras*-Vaiśvāmitra and Pauraṇa.[6]

7. The Ajas also have three *ṛṣi-pravaras*-Vaiśvāmitra, Mādhucchandas and Ājya.[7]

8, The Aṣṭaka-Lohitas have three *ṛṣi-pravaras* Vaiśvāmitra, Āṣṭaka and Lauhita.[8]

9. The Raukṣaka-Raiṇavas have three *ṛṣi-pravaras*-Vaiśvāmitra, Raukṣaka and Raiṇava.[9]

10. The Indra-Kauśikas also have three *ṛṣi-pravaras*-Vaiśvāmitra, Aindra and Kauśika.[10]

11. The Rauhiṇas have three *ṛṣi-pravaras*-Vaiśvāmitra, Mādhucchandas and Rauhiṇa.[11]

12. The Śālaṅkāyanas also have three *ṛṣi-pravaras*-Vaiśvāmitra, Śālaṇkāyana and Kauśika.[12]

---

1. *BauŚS*(P) 33, *ĀpŚS* XXIV. 9. 3, *ĀśŚS* XII. 14. 3.
2. Katas, Sairindhas, Karabhas, Vājāyanas, Saṁhiteyas, Kaukṛtyas. Śaiśireyas, Audumbarāyanas, Piṇḍagrīvas, Nārāyaṇas and Nārāṭyas—these are the Katas.
3. *BauŚS*(P) 35, *ĀpŚS* XX. 9. 11, *HstŚS* XXI. 3. 12, *VśŚS* XII. 14. 6.
4. The Dhānañjayas are Kārīṣis, Āśvavatas, Tulabhyas. Saindhavāyanas, Uṣṭrākṣas and Mahākṣas.
5. *BauŚS*(P) 36, *ĀpŚS* XXIV. 9. 6, *HirŚS* XXI. 3. 12, *AśŚS* XII. 14. 4.
6. BauŚS 36, *ĀpŚS* XXIV. 9. 13, *HirŚS* XXI. 3. 12, ĀśŚS XII. 14. 6.
7. BauŚS(P) 40, *ĀpŚS* XXIV. 9. 9-10, *HirŚS* XXI. 3. 12, The *ĀśŚS* XII. 14. 5 and Daivarāta to this list.
8. BauŚS(P) 37. *ĀpŚS* XXIV. 14. 4.
9. BauŚS(P) 34. According to *ĀpŚS* XXIV. 9. 7-8 and *HirŚS* XXI. 3. 12, only two are there—Vaiśvāmitra and Āṣṭaka. According to *AśŚS XII*. 14. 4. the three *pravaras* are Vaiśvāmitra, Mādhucchandas and Āṣṭaka.
10. BauŚS(P) 34. According to *ĀśŚS* LII. 14. 6., the Reṇus have three *pravaras*—Vaiśvāmitra, Gāhina and Raiṇava.
11. BauŚS(P) 39.
12. *ĀśŚS* XII. 14. 4.

13. The Hiraṇyaretases have three *ṛṣi-pravaras*—Vaiśvāmitra, Hiraṇya and Retas.[1]

14. The Suvarṇaretases also have three *ṛṣi-pravaras*—Vaiśvāmitra, Sauvarṇa and Retas.[2]

15. The Kapotaretases have three *ṛṣi-pravaras*—Vaiśvāmitra Kāpota and Retas.[3]

16. The Ghṛta-kauśikas also have three *ṛṣi-pravaras*—Vaiśvāmitra. Ghārta and Kauśika.[4]

17. The Śāṭhara-māṭharas also have three *ṛṣi-pravaras*—Vaiśvāmitra, Śāṭhara and Māṭhara.[5]

18. The Sāhula.māhulas have three *ṛṣi-pravaras*—Vaiśvāmitra, Sāhula and Māhula.[6]

This is the picture of the *pravara* system of the Vaiśvāmitra in the *Sūtra* literature. The *Sūtras* refer to Vaiśvāmitra in other connections also. In the *ĀgGS*, he is mentioned among the *Saptarṣis*, the others being Jamadagni, Bharadvāja, Gautama, Atri, Vasiṣṭha and Kaśyapa. The context is the *Adhyāya-Utsarjanam* (leave after completion of studies). In this rite seats are prepared by the student for the above-metioned *Ṛṣis*[7]

The *BauŚS* refers to the selection of the priests. It enjoins that *Adhvaryu* priest should be an Aṅgiras, the *Brahmā* priest should be a Vāsiṣṭha, the *Hotṛ* should be a Vaiśvāmitra and the *Udgātṛ* should be an Ayāsya.[8] Again, in the context of the *Ṛṣi-ṣṭoma*, Viśvāmitra is connected with the seventeenth *stoma.*[9]

It has been prescribed in the *Sūtra* texts that a person desiring victory over enemies should perform the rite known as *'Sañjaya'* of Viśvāmitra.[10], It has been stated in the *TNB* (XXI. 12. 1-4) that Viśvāmitra performed this four-day rite, defeated his rivals with its grace and got kingdom.

The *VaiŚS* mentions that four chief priests should be descendants of Vasiṣṭha, Bhṛgu, Aṅgiras and Ayāsya respectively, remaining twelve priests can

---

1. *Ibid*, XII. 14. 6.
2. MāŚS XI. 8. 5. 17.
3. *Ibid*. XI. 8. 5. 18.
4. *Ibid*. XI. 8. 5. 19.
5. *Ibid*. XI. 8. 5. 20.
6. *Ibid*. XI, 8. 5. 31.
7. *Ibid*. XI. 8. 5. 22, 23. For the exhaustive list of the *pravaras* of the Viśvamitras, see JOHN BROUGH, *Early Brahmanical System of Gotra and Pravara*. Cambridge, 1953, p. 35.
8. *ĀgGS*. I. 2. 2.
9. *BauŚS*. II. 3.
10. *Ibid* XVIII. 22.

kāyanas. They have the following three *ṛṣi-pravaras*—Vaiśvāmitra, Daivaśravas and Daivataras.[1]

3. The Katas[2] also have three *ṛṣi-pravaras*—Vaiśvāmitra, Kātya and Ātkīla.[3]

4. The Dhanañjayas[4] have these three *ṛṣi-pravaras*—Vaiśvāmitra, Mādhucchandas, and Dhānañjaya.

5. The Aghamarṣaṇa-Kuśikas have the following three ṛṣi-*pravaras*-Vaiśvāmitra, Āghamarṣaṇa and Kauśika.[5]

6. The Pūraṇa-Vāridhāpayantas have two *ṛṣi-pravaras*-Vaiśvāmitra and Pauraṇa.[6]

7. The Ajas also have three *ṛṣi-pravaras*-Vaiśvāmitra, Mādhucchandas and Ājya.[7]

8, The Aṣṭaka-Lohitas have three *ṛṣi-pravaras* Vaiśvāmitra, Āṣṭaka and Lauhita.[8]

9. The Raukṣaka-Raiṇavas have three *ṛṣi-pravaras*-Vaiśvāmitra, Raukṣaka and Raiṇava.[9]

10. The Indra-Kauśikas also have three *ṛṣi-pravaras*-Vaiśvāmitra, Aindra and Kauśika.[10]

11. The Rauhiṇas have three *ṛṣi-pravaras*-Vaiśvāmitra, Mādhucchandas and Rauhiṇa.[11]

12. The Śālaṅkāyanas also have three *ṛṣi-pravaras*-Vaiśvāmitra, Śālaṇkāyana and Kauśika.[12]

---

1. *BauŚS(P)* 33, *ĀpŚS* XXIV. 9. 3, *ĀśŚS* XII. 14. 3.
2. Katas, Sairindhas, Karabhas, Vājāyanas, Saṁhiteyas, Kaukṛtyas. Śaiśireyas, Audumbarāyanas, Piṇḍagrīvas, Nārāyaṇas and Nārāṭyas—these are the Katas.
3. *BauŚS*(P) 35, *ĀpŚS* XX. 9. 11, *HstŚS* XXI. 3. 12, *VśŚS* XII. 14. 6.
4. The Dhānañjayas are Kārīṣis, Āśvavatas, Tulabhyas. Saindhavāyanas, Uṣṭrākṣas and Mahākṣas.
5. *BauŚS*(P) 36, *ĀpŚS* XXIV. 9. 6, *HirŚS* XXI. 3. 12, *AśŚS* XII. 14. 4.
6. BauŚS 36, *ĀpŚS* XXIV. 9. 13, *HirŚS* XXI. 3. 12, ĀśŚS XII. 14. 6.
7. *BauŚS*(P) 40, *ĀpŚS* XXIV. 9. 9-10, *HirŚS* XXI. 3. 12, The *ĀśŚS* XII. 14. 5 and Daivarāta to this list.
8. *BauŚS*(P) 37. *ĀpŚS* XXIV. 14. 4.
9. *BauŚS*(P) 34. According to *ĀpŚS* XXIV. 9. 7-8 and *HirŚS* XXI. 3. 12, only two are there—Vaiśvāmitra and Āṣṭaka. According to *AśŚS XII*. 14. 4. the three *pravaras* are Vaiśvāmitra, Mādhucchandas and Āṣṭaka.
10. *BauŚS*(*P*) 34. According to *ĀśŚS* LII. 14. 6., the Reṇus have three *pravaras*—Vaiśvāmitra, Gāhina and Raiṇava.
11. *BauŚS(P)* 39.
12. *ĀśŚS* XII. 14. 4.

13. The Hiraṇyaretases have three ṛṣi-pravaras—Vaiśvāmitra, Hiraṇya and Retas.[1]

14. The Suvarṇaretases also have three ṛṣi-pravaras—Vaiśvāmitra, Sauvarṇa and Retas.[2]

15. The Kapotaretases have three ṛṣi-pravaras—Vaiśvāmitra Kāpota and Retas.[3]

16. The Ghṛta-kauśikas also have three ṛṣi-pravaras—Vaiśvāmitra. Ghārta and Kauśika.[4]

17. The Śāṭhara-māṭharas also have three ṛsi-pravaras—Vaiśvāmitra, Śāṭhara and Māṭhara.[5]

18. The Sāhula.māhulas have three ṛṣi-pravaras—Vaiśvāmitra, Sāhula and Māhula.[6]

This is the picture of the *pravara* system of the Vaiśvāmitra in the *Sūtra* literature. The *Sūtras* refer to Vaiśvāmitra in other connections also. In the *ĀgGS,* he is mentioned among the *Saptarṣis,* the others being Jamadagni, Bharadvāja, Gautama, Atri, Vasiṣṭha and Kaśyapa. The context is the *Adhyāya-Utsarjanam* (leave after completion of studies). In this rite seats are prepared by the student for the above-metioned *Ṛṣis*[7]

The *BauŚS* refers to the selection of the priests. It enjoins that *Adhvaryu* priest should be an Āṅgiras, the *Brahmā* priest should be a Vāsiṣṭha, the *Hotṛ* should be a Vaiśvāmitra and the *Udgātṛ* should be an Ayāsya.[8] Again, in the context of the *Ṛṣi-ṣṭoma,* Viśvāmitra is connected with the seventeenth *stoma.*[9]

It has been prescribed in the *Sūtra* texts that a person desiring victory over enemies should perform the rite known as *'Sañjaya'* of Viśvāmitra.[10], It has been stated in the *TNB* (XXI. 12. 1-4) that Viśvāmitra performed this four-day rite, defeated his rivals with its grace and got kingdom.

The *VaiŚS* mentions that four chief priests should be descendants of Vasiṣṭha, Bhṛgu, Aṅgiras and Ayāsya respectively, remaining twelve priests can

1. *Ibid,* XII. 14. 6.
2. MāŚS XI. 8. 5. 17.
3. *Ibid.* XI. 8. 5. 18.
4. *Ibid.* XI. 8. 5. 19.
5. *Ibid.* XI. 8. 5. 20.
6. *Ibid.* XI. 8. 5. 31.
7. *Ibid.* XI. 8. 5. 22, 23. For the exhaustive list of the *pravaras* of the Viśvamitras, see JOHN BROUGH, *Early Brahmanical System of Gotra and Pravara.* Cambridge, 1953, p. 35.
8. *ĀgGS.* I. 2. 2.
9. *BauŚS.* II. 3.
10. *Ibid* XVIII. 22.

be selected from among the Kaśyapas, Bharadvājas, Bhṛgus Aṅgirases. One authority says that *Hotṛ* should be a descendant of Viśvāmitra.[1]

A *tarpaṇa* should be made to Viśvāmitra after daily bath according to the *VaiGS* and *VaiDS*.[2] In connection with the *upākaraṇa-visarjana*, Viśvāmitra is prayed.[3]

The MīDa mentions that because a Vaiśvāmitra should necessarily be a Hotṛ priest, therefore, the descendants of Bhṛgu, Śunaka and Vasiṣṭha do not have the right to be appointed as *Hotṛ* priests.[4]

Thus, it can be said in conclusion, that the Viśvāmitra family is one of the most important families of ancient India. There were several *gotras* and *pravaras* among the Viśvāmitras. It has been prescribed in the *Kalpasūtras* that a descendant of Viśvāmitra should officiate as Hotṛ priest in the sacrifices. Some of the *gotras* and *pravaras* of Viśvāmitra *pravara* system are followed among the Brāhmaṇa families of the present day India also. For instance the surname 'Kauśika' is applied by some of north Indian Brāhmaṇas.

Abbreviations

AB	*Aitareya Brāhmaṇa.*
ĀgGS	*Āgniveśya Gṛhya Sūtra.*
ĀpŚS	*Āpastamba Śrauta Sūtra.*
ĀśŚS	*Āśvalāyana Śrauta Sūtra.*
BauŚS	*Baudhāyana Śrauta Sūtra.*
BauŚS (*p*)	*Baudhāyana Śrauta Sūtra* (*pravara-Khaṇḍa*)
HirŚS	*Hiraṇyakeśī Śrauta Sūtra.*
MaŚS	*Mānava Śrauta Sūtra.*
MīDa	*Mimāṁsā Darśana.*
ŚŚS	*Śāṅkhāyana Śrauta Sūtra.*
TMB	*Tāṇḍya Mahā Brāhmaṇa.*
VaiDS	*Vaikhānasa Dharma Sūtra.*
VaiGS	*Vaikhānasa Gṛhya Sūtra.*

●

1. *ĀpŚ*S. XXII. 20. 2, *ĀśŚ*S X. 2. 25, *HirŚ*S XVII. 7. 12.
2. *VaiŚ*S XII. 1.
3. *VaiGS* I. 4, *VaiDS* II. 13.
4. *BhGS*, III. 10.
5. *MiDa* VI. 6. 26.

* I am grateful to Dr, V. G. Rahurkar, my supervisor, for useful suggestions in writing this paper.

The Quest for a Proper Perspective in Vedic Interpretation

Prof. N. M. Kansara,

Ahmedabad

The general impression that the proper interpretation of the Vedas is fraught with innumerable difficulties has persisted since the time of Yāska—about the eighth century B. C. Yāska's Nirukta, Pāṇini's Aṣṭādhyāyī, and the Vedic commentaries of Skandasvāmī, Udgītha, Veṇkaṭamādhava and Sāyaṇa do help us to some extent in affording a hazy glimpse into various aspects of the teachings of the Ṛgveda. But the difficulty lies in the fact that there is a yawning gap of at least a thousand years between, on the one hand, the authors of the above-mentioned Vedāṅgas and, on the other hand, the original seers of the Mantras; and this has mooted the question as to whether the commentators who came much later in point of time could have grasped the original sense or flavour of the Vedas.

Western Indologists have been constantly hurling this question, with renewed vigour, on our face since more than half a century. And a few indigenous supports too were quite handy for their purpose: Thus, Kautsa in Yāska's Nirukta is held to have branded the Mantras as "meaningless";[1] the Muṇḍakopniṣad relegated the Vedas to an inferior position in comparison to the Upaniṣadic lore.[2] the Bhagavadgītā was found to have thoroughly thrashed the Vedas as being mere "flowery speech" of the immature fools.[3] And, finally, the ritualistic interpretation of the Ṛgveda at the hand of no less an indigenous scholar like Sāyaṇa confirmed and ultimately uprooted the possible hope of ever searching for, or discovering, any mystic or philosophical values, except a few stray and crude ideas in it. The dictum of multifarious interpretative tendency (sarvatomukhā vai vedaḥ) as inherent in the Vedas, and resorted to by the commentators to extract their own outlook or interpretation, has added to the already prevalent confusion. The rejection of the Vedas as unauthoritative by the Buddhists and the Jains since

1. Yāska's Nirukta, I, v, 15 : अनर्थका: हि मन्त्रा: ।

2. Muṇḍakopaniṣad, I, 4-5 : द्वे विद्ये वेदितव्ये इति ह स्म यद्ब्रह्मविदो वदन्ति परा चैवापरा च ।।४।। तत्रापरा ऋग्वेदो यजुर्वेद: सामवेदोऽथर्ववेद: शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्दो ज्योतिषमिति । अथ परा यया तदक्षरमधिगम्यते ।।५।।

3. Bhagavadgītā, II, 42 : यामिमां पुष्पितां वाचं प्रवदन्त्यमनीषिण: । कामात्मान: स्वर्गपरां भोगैश्वर्यगतिं प्रति ।। etc., and II, 45 : त्रैगुण्यविषया वेदा:...etc.

very early times has also added weight to the general outlook of the Western Indologists regarding the non-mystic, non-philosophical, matter-of-fact and worldly—and hence "healthy"—approach of the Vedas towards life, thus testifying to the primitive nature of it.

Dr. Louis Renou has painstakingly tried to lay bare the "striking paradox" with regard to the Vedas in that, on the one hand, they are revered or recognised as the omniscient, infallible, eternal principle,...as the source itself of Dharma, as the authority from which arises the totality of Brāhmaṇic disciplines, on the other hand, the philological traditions, relating to the Vedas, that form the very substance of the constituent texts, are from the very early date, weakened, if not altered or lost, even in the most orthodox domains, the reverence to the Vedas has come to be a simple "raising of the hat", in passing, to an idol by which one no longer intends to be encumbered later on.[1]

It is generally conceded without controversy that the text of the Ṛgveda and other Vedas as we possess to-day, as one that has come down to us in the uninterrupted oral tradition, has remained uncorrupted for over at least last two thousand years, thanks to the text-preservative device of eightfold Vikṛtis.[2] Inspite of all these efforts of thousands of years on the part of Veda-reciters, aspersions are now being cast on the very authenticity of the uncorrupted nature of the text of the Ṛgveda by some Indologists who, of late, have been busy at going back to the so-called "ṛṣi-kavi original form of the ṚV" on the ground of its presupposed rhythmical regularity, the present traditional oral text actually preserved and written down being only a "palimpsest".[3] This is nothing short of an onslaught at the root of the authenticity of the notion of "uncorrupted text" which has so far been confidently accepted as "our basis...and which, even if we hold it in a few instances doubtful or defective, does not at any rate call for that often licentious labour of emendation to which some of the European classics lend themselves."[4]

Now, as regards the labours of many European and American scholars in unravelling the past of India, particularly the scholars like Sir Charles Wilkins, Sir William Jones, Sir Thomas Colebrooke, Friedrick Schlegel, James Prinsep, August Wilhelm Von Schlegel, Franz Bopp, Wilhelm Humboldt, Friedrick

---

1. Louis Renou, The Destiny of the Veda in India, 1965, pp. 1–2,
2. cf, Ṛgveda-Saṃhitā, ed. by Satavalekar, 1 57, p. 7,4 : जटा माला शिखा रेखा ध्वजो दण्डो रथो घनः । अष्टौ विकृतयः प्रोक्ताः क्रमपूर्वा महर्षिभिः ।।
3. Fr. Esteller, The Quest for the Original Ṛgveda, an article in B. O. R. I. Annals, Vol. L, 1909, cf. his other articles listed by Dr. R. N. Dandekar in Vedic Bibliography, Vol. II, pp. 3–4.
4. Shri Aurobindo, On the Vedas, 1956. p. 21.

Ruckert, Eugene Burnouf, Major General Alexander Cunningham, Franz Kielhorn, Hermann Jacobi, Major Seymour Sewell and many others will always be remembered by the students of Indian history with gratitude and admiration.[1] But, as has been pointed out by Shri K. C. Varma and Pandit Bhagavaddatta,[2] there was another band of scholars whose labours, though valuable in many respects, have been vitiated by political or religious or theological bias, and they were not objective in their studies hut were propagandists for the perpetuation of foreign domination of India and endeavoured to convert India to what they considered to be the "true faith", and it is rather strange that an appreciable number of Western authors who have written about India, during the last half a century or so, have been inspired mainly by the latter band. The very Boden Professorship of Sanskrit at the University of Oxford was founded by Colonel Boden with the special object of promoting the translation of the Scriptures into Sanskrit, so as "to enable his countrymen to proceed in the conversion of the natives of India to the Christian Religion"[3] as has been specifically stated most explicitly in his Will (dated August 15, 1811). Professor H. H. Wilson, the first holder of the Boden Chair and the first noble English translator of the ṚV along with Sāyaṇa's commentary, wrote his book, 'The Religions and Philosophical Systems of the Hindus', in order "to help candidates for a prize of 200/- given by John Muir, a well-known old Hailey man and great Sanskrit scholar, for the best refutation of the Hindu Religious system."[4] Rudolf Roth, who jointly edited with Otto Böehtlingk, the famous St. Petersberg Sanskrit-German Thesaurus, gave out his considered belief that a conscientious European exegete may understand the Veda much more correctly and better than Sāyaṇa, and further gave his ruling as a "conscientious European", in his "search for the meaning which the poets themselves gave to their songs and phrases", that the "writings of Sāyaṇa and of other commentators must not be an authority to the exegete, but merely one of the means of which he has to avail himself in accomplishment of his task..."[5] The concrete result of the labours of this scholar was the Sanskrit Wōrterbuch that has been held to this day as one of the most authoritative basis of modern Vedic exegesis.

1. K. C, Varma, Some Western Indologists and Indian Civilization, an article in "India's Contribution to World Thought and Culture", the Vivekananda Commemoration Volume, p. 165,
2. ibid.. also Pandit Bhagavaddatta, Bhāratavarṣa-kā Bṛhad Itihāsa, Vol. I, pp. 52-71.
3. Monier Williams, A Sanskrit-English Dictionary, Oxford, 1899, Preface to the New Edition, p. ix.
4. Eminent Orientalists, Madras, p. 72:
5. Theodor Goldstücker, Pāṇini, Varanasi. 1965, p. 266,

Now, as has been explicitly testified by Theodor Goldstücker, with regard to this Sanskrit Wörterbuch, no other work has come before the public with such unmeasured pretension of scholarship and critical ingenuity as this Wörterbuch, and which has, at the same time, laid itself open to such serious reproaches of the profoundest grammatical ignorance. And further, Goldstücker considers his duty to do so when he exposes Dr. Böethlingk to have been a Sanskrit scholar "incapable of understanding even easy rules of Pāṇini, much less those of Kātyāyana, and still ..capable of making use of them in the understanding of classical texts."[2] And the real worth of the magnum opus of both these scholars has been brought out by Goldstücker int hese words : "It is one of my most serious reproaches against the Sanskrit Wörterbuch, that it not only creates its own meanings, and by applying them to the most important documents of the literature, practically falsifies antiquity itself, but deliberately, and nearly constantly, supresses all the information we may derive from the native commentaries....Yet while the reader may peruse their Dictionary page after page, sheet after sheet, without discovering a trace of these celebrated Vaidika commentaries, while the exceptions to this rule are so rare as to become almost equal to zero, Professor Weber dares to speculate on the credulity of the public in telling that this Dictionary ALWAYS quotes the native exegesis !"[3]

Roth was supported by a self-opinionated American scholar, William Dwight Whitney, who stated that the "principles of the German School are the only ones which can ever guide us to a true understanding of the Veda."[4] And this method consisted of "the road which is prescribed by philology : to elicit the sense of the texts by putting together all the passages which are kindred either in regard to their words or their sense" and guess the sense of a word by "having before them ten or twenty other passages in which the same word recurs." Goldstücker has called the bluff of Roth's claim by pointing out to the fact that there are many instances in which a Vaidika word does not occur twenty or ten, nor yet five or four, times in the Saṁhitās; how does Roth, then, muster his ten or twenty passages, when, nevertheless, he rejects the interpretation of Sāyaṇa.[5] One wonders how Mādhava-Sāyaṇa. one of the profoundest scholars of India, the exegete of all the three Vedas and of the most important Brāhmaṇas and a Kalpa work, the renowned Mīmānsist, the great grammarian who wrote the learned commentary on the Sanskrit radicals had not the proficiency of combining in his mind or otherwise those ten or twenty passages of his own Veda, which Professor Roth

1. *Ibid.*, p. 272.
2. *Ibid.*, p. 275.
3. *Ibid.*, p. 286.
4. American Oriental Society Proceedings, October, 1867, quoted by Pandit Bhagavaddata. *op. cit.*, p. 39 ft. nt..
5. Theodor Goldstücker, *op. cit.*, p. 270.

has the powerful advantage of bringing together by means of his little memo-randa :[1]

Even the much-extolled Max Müller himself was, unfortunately, a bigoted and dogmatic Christian[2] as would be testified by some of his fulminations which make interesting reading as examples of a distorted judgment :

(a) "History seems to teach that the whole human race required gradual education before, in fullness of time, it could be admitted to the truths of Christianity"[3]

(b) "A large number of Vedic hymns are childish in the extreme : tedious, low, commonplace."[4]

(c) "The ancient religion of India is doomed and if Christianity does no, step in, whose fault will it be ?"[5]

Sir Monier-Williams, the successor of Professor H. H. Wilson to the Boden Chair at Oxford and the author of the Sanskrit-English and English-Sanskrit Dictionaries, minces no words when, in his defence against personal criticism to which he had for many years been content to acquiesce without comment, declares by way of an explanation in the following words :

"I have made it the chief aim of my professional life to provide facilities for the translation of our sacred Scriptures into Sanskrit, and for the promotion ot a better knowledge of the religions and customs of India, as the best key to a knowledge of the religious needs of our great Eastern Dependency. My very first public lecture delivered after my election in 1860 was on 'The Study of Sanskrit in relation to Missionary Work in India' (published in 1861)."[6]

Not only that, he has further expressed his cherished aspirations as follows :

"When the walls of the mighty fortress of Brahmanism are encircled, undermined, and finally stormed by the soldiers of the Cross, the victory of Christianity must be signal and complete."[7]

---

1. Ibid.
2. Kailash Chandra Varma, op. cit., p. 195.
3. Max Müller, A History of Ancient Sanskrit Literature, p. 32.
4. Pandit Bhagavaddatta, op. cit., p. 39, quoted from Chips from a German Workshop, Second Edition, 1866, p. 27; also India, What It Can Teach Us, Lecture iv.
5. Ibid. p, 38, quoted from a letter of Max Müller to Duke of Argyll, Under Secretary of State for India (dated the 16th December, 1868).
6. Monier-Williams, Sanskrit-English Dictionary, Preface to the New Edition, pp. ix-x.
7. Pandit Bhagavaddatta, op. cit., p. 9,

Now, as has been explicitly testified by Theodor Goldstücker, with regard to this Sanskrit Wörterbuch, no other work has come before the public with such unmeasured pretension of scholarship and critical ingenuity as this Wörterbuch, and which has, at the same time, laid itself open to such serious reproaches of the profoundest grammatical ignorance. And further, Goldstücker considers his duty to do so when he exposes Dr. Böethlingk to have been a Sanskrit scholar "incapable of understanding even easy rules of Pāṇini, much less those of Kātyāyana, and still ..capable of making use of them in the understanding of classical texts."[2] And the real worth of the magnum opus of both these scholars has been brought out by Goldstücker int hese words : "It is one of my most serious reproaches against the Sanskrit Wörterbuch, that it not only creates its own meanings, and by applying them to the most important documents of the literature, practically falsifies antiquity itself, but deliberately, and nearly constantly, supresses all the information we may derive from the native commentaries....Yet while the reader may peruse their Dictionary page after page, sheet after sheet, without discovering a trace of these celebrated Vaidika commentaries, while the exceptions to this rule are so rare as to become almost equal to zero, Professor Weber dares to speculate on the credulity of the public in telling that this Dictionary ALWAYS quotes the native exegesis !"[3]

Roth was supported by a self-opinionated American scholar, William Dwight Whitney, who stated that the "principles of the German School are the only ones which can ever guide us to a true understanding of the Veda."[4] And this method consisted of "the road which is prescribed by philology : to elicit the sense of the texts by putting together all the passages which are kindred either in regard to their words or their sense" and guess the sense of a word by "having before them ten or twenty other passages in which the same word recurs." Goldstücker has called the bluff of Roth's claim by pointing out to the fact that there are many instances in which a Vaidika word does not occur twenty or ten, nor yet five or four, times in the Saṁhitās; how does Roth, then, muster his ten or twenty passages, when, nevertheless, he rejects the interpretation of Sāyaṇa.[5] One wonders how Mādhava-Sāyaṇa. one of the profoundest scholars of India, the exegete of all the three Vedas and of the most important Brāhmaṇas and a Kalpa work, the renowned Mīmānsist, the great grammarian who wrote the learned commentary on the Sanskrit radicals had not the proficiency of combining in his mind or otherwise those ten or twenty passages of his own Veda, which Professor Roth

1. *Ibid.*, p. 272.
2. *Ibid.*, p. 275.
3. *Ibid.*, p. 286.
4. American Oriental Society Proceedings, October, 1867, quoted by Pandit Bhagavaddata. *op. cit.*, p. 39 ft. nt..
5. Theodor Goldstücker, *op. cit.*, p. 270.

has the powerful advantage of bringing together by means of his little memo-randa :[1]

Even the much-extolled Max Müller himself was, unfortunately, a bigoted and dogmatic Christian[2] as would be testified by some of his fulminations which make interesting reading as examples of a distorted judgment :

(a) "History seems to teach that the whole human race required gradual education before, in fullness of time, it could be admitted to the truths of Christianity"[3]

(b) "A large number of Vedic hymns are childish in the extreme : tedious, low, commonplace."[4]

(c) "The ancient religion of India is doomed and if Christianity does no, step in, whose fault will it be ?"[5]

Sir Monier-Williams, the successor of Professor H. H. Wilson to the Boden Chair at Oxford and the author of the Sanskrit-English and English-Sanskrit Dictionaries, minces no words when, in his defence against personal criticism to which he had for many years been content to acquiesce without comment, declares by way of an explanation in the following words :

"I have made it the chief aim of my professional life to provide facilities for the translation of our sacred Scriptures into Sanskrit, and for the promotion ot a better knowledge of the religions and customs of India, as the best key to a knowledge of the religious needs of our great Eastern Dependency. My very first public lecture delivered after my election in 1860 was on 'The Study of Sanskrit in relation to Missionary Work in India' (published in 1861)."[6]

Not only that, he has further expressed his cherished aspirations as follows :

"When the walls of the mighty fortress of Brahmanism are encircled, undermined, and finally stormed by the soldiers of the Cross, the victory of Christianity must be signal and complete."[7]

---

1. Ibid.
2. Kailash Chandra Varma, op. cit., p. 195.
3. Max Müller, A History of Ancient Sanskrit Literature, p. 32.
4. Pandit Bhagavaddatta, op. cit., p. 39, quoted from Chips from a German Workshop, Second Edition, 1866, p. 27; also India, What It Can Teach Us, Lecture iv.
5. Ibid. p, 38, quoted from a letter of Max Müller to Duke of Argyll, Under Secretary of State for India (dated the 16th December, 1868).
6. Monier-Williams, Sanskrit-English Dictionary, Preface to the New Edition, pp. ix-x.
7. Pandit Bhagavaddatta, op. cit., p. 9,

Even Winternitz is not free from the theological bias, when he upholds the sublimity of the poetry of the Old Testament and fails to allude to the sublimity of the Bhagavadgītā or the Nāsadīya-sūkta,[1] the latter being, in contrast, adjudged by no less a historian than Will Durant as the loftiest poem,[2] and which Zenaide A. Ragozin finds "reaching the uttermost bounds of philosophical abstractions ,... never obscure, unless to the absolutely uninitiated."[3]

As a net result of this combined and organized conspiracy of the past few generations of European Indologists in the direction of undermining the supreme sanctity of fundamental Scriptures of ancient Indian religion, the hymns of the Ṛgveda are nowadays almost readily accepted by educated Indians and most of the modern Sanskrit scholars to be nothing more than the sacrificial composition of a primitive and still barbarous race, written around a system of ceremonial and propitiatory rites, addressed to personified Powers of Nature and replete with a confused mass of half-formed myths and crude astronomical allegories yet in making; and that it is in the later hymns that the first appearance of deeper psychological and moral ideas are perceived, which, some think, are borrowed from the hostile Dravidians, identified with "robbers" and "Veda-haters" freely cursed in the hymns themselves.[4]

As has been very succinctly put by Shri T. V. Kapali Sastry, Europe, inspite of the scrupulous care associated with all scholarly labours that it brought to bear upon its Vedic studies, could not escape the limitations of its temperamental mould which is in fact diametrically opposed to the Indian spirit; it surmounted the difficulties in understanding the texts by partly drawing upon conjectures and; partly on certain inexact sciences, very often conjectural-comparative philology comparative mythology or comparative religion.[5] Indian students and seekers of knowledge of the Vedas especially in the last century followed the lines of European scholarship and swallowed as gospel-truth European opinion because it had gained in prestige by its association in their minds with European science and culture which is a different matter altogether, estimable indeed, based as they are on different firmer grounds.[6] Now, there is no reason why we should continue to repeat the same song of the nineteenth century Europe, be it the theory of imaginary migration of imaginary Indo-European race, the fancifully "reconstructed" Indo-European language, the imaginary chronology and consequent relative contemporaneity of the Ṛgveda in relation to Avesta and Ancient Greek of Homer, the pre-

---

1. Dr. M. Winternitz, History of Indian Literature. Vol. I, p. 79.
2. Will Durant, Story of Civilization, p. 409.
3. Vedic India,|1195, pp. 426-427.
4. Shri Aurobindo, op. cit., p. 3.
5. T. V. Kapali Sastry, Lights on the Veda, Pondichery, 1961, p. 10.
6. Ibid., p. 11.

Vedic chronological position of the Indus Valley civilization and also the Hittite one, and above all the unquestionable air of authority of St. Petersberg Sanskrit-Germam Wörterbuch, the compilers of which last have been called the "Saturnalia of Sanskrit Philology" by Goldstücker.[1] The religious prejudices of these scholars have been passed down to the last few generations of Indian Indology as "scientific" and hence "impartial" to such an extent that a modern critical Indologist like J. Gonda observes with astonishment : "It is indeed somewhat strange that scholars should have acquiesced for nearly a century in translation and interpretative method of Rudolf Roth and Hermann Grassman".[2]

It is for these reasons that a penetrating fresh inquiry into, and thorough revision of the opinions among scholars about the Vedic culture and Vedic worship is a desideratum, especially when times and conditions have changed; new facts and evidences have accumulated, modern sociologists have revised their old-world opinions of past generations of scholars in regard to human origins, the history, polity, psychology, religion and life in general of at least some of the early races and peoples whom we call primitive.[3]

What, then, is the way out ? Are we to continue to take the tradition about this most ancient sacred Scripture of India, the Ṛgveda, as the repository of the mystic wisdom of ancient seers of remote age, to be a big hoax carefully perpetuated for thousands of years ? Are we to rely upon the "impartiality" and "authoritative" scholarship of the generations of European scholars of last one century in the face of overwhelming evidence to the contrary recorded by themselves in their own works and memoirs ? The choice is too clear to be elaborated further. As has been aptly put by Shri G. K. Pillai, slightly in a different context, prejudices and preconceived notions should be given up, and one should approach the shrine of truth with the object of finding out the truth.[4]

What, then, are going to be our tools ? The question is not so baffling as might have been a century ago. Hundreds of scholars both Indian and non-Indian have contributed their mite to the study of the Vedas and have fashioned fresh tools in the forms of publication of a highly correct edition of the Ṛgveda, of the commentaries of Sāyaṇa, Veṇkaṭamādhava, Udgītha, Skandasvāmin and Dayānanda Sarasvatī, of the completely revised and fully exhaustive indices and concordance of the whole range of Vedic literature right from the Samhitās to the Vedāṅgas, of the studies of various Brāhmaṇas, Āraṇyakas and Upaniṣads, of the critical studies of various aspects of Vedic thought by scholars like Anand Coomaraswamy, Shri Aurobindo, Shri V. M. Apte, Shri B. K. Chattopadhyaya, Dr. J. Filliozat, J.

1. Theodore Goldstücker, op. cit., p. 290.
2. J. Gonda, The Vision of the Vedic Poets, The Hague, 1963, p. 7.
3. T. V. Kapali Sastry, op. cit., pp. 10-11.
4. Govind Krishna Pillai, Vedic History, Allahabad, 1959, p. 3.

Even Winternitz is not free from the theological bias, when he upholds the sublimity of the poetry of the Old Testament and fails to allude to the sublimity of the Bhagavadgītā or the Nāsadīya-sūkta,[1] the latter being, in contrast, adjudged by no less a historian than Will Durant as the loftiest poem,[2] and which Zenaide A. Ragozin finds "reaching the uttermost bounds of philosophical abstractions ,... never obscure, unless to the absolutely uninitiated."[3]

As a net result of this combined and organized conspiracy of the past few generations of European Indologists in the direction of undermining the supreme sanctity of fundamental Scriptures of ancient Indian religion, the hymns of the Ṛgveda are nowadays almost readily accepted by educated Indians and most of the modern Sanskrit scholars to be nothing more than the sacrificial composition of a primitive and still barbarous race, written around a system of ceremonial and propitiatory rites, addressed to personified Powers of Nature and replete with a confused mass of half-formed myths and crude astronomical allegories yet in making; and that it is in the later hymns that the first appearance of deeper psychological and moral ideas are perceived, which, some think, are borrowed from the hostile Dravidians, identified with "robbers" and "Veda-haters" freely cursed in the hymns themselves.[4]

As has been very succinctly put by Shri T. V. Kapali Sastry, Europe, inspite of the scrupulous care associated with all scholarly labours that it brought to bear upon its Vedic studies, could not escape the limitations of its temperamental mould which is in fact diametrically opposed to the Indian spirit; it surmounted the difficulties in understanding the texts by partly drawing upon conjectures and; partly on certain inexact sciences, very often conjectural-comparative philology comparative mythology or comparative religion.[5] Indian students and seekers of knowledge of the Vedas especially in the last century followed the lines of European scholarship and swallowed as gospel-truth European opinion because it had gained in prestige by its association in their minds with European science and culture which is a different matter altogether, estimable indeed, based as they are on different firmer grounds.[6] Now, there is no reason why we should continue to repeat the same song of the nineteenth century Europe, be it the theory of imaginary migration of imaginary Indo-European race, the fancifully "reconstructed" Indo-European language, the imaginary chronology and consequent relative contemporaneity of the Ṛgveda in relation to Avesta and Ancient Greek of Homer, the pre-

---

1. Dr. M. Winternitz, History of Indian Literature. Vol. I, p. 79.
2. Will Durant, Story of Civilization, p. 409.
3. Vedic India,|1195, pp. 426-427.
4. Shri Aurobindo, op. cit., p. 3.
5. T. V. Kapali Sastry, Lights on the Veda, Pondichery, 1961, p. 10.
6. Ibid., p. 11.

Vedic chronological position of the Indus Valley civilization and also the Hittite one, and above all the unquestionable air of authority of St. Petersberg Sanskrit-Germam Wörterbuch, the compilers of which last have been called the "Saturnalia of Sanskrit Philology" by Goldstücker.[1] The religious prejudices of these scholars have been passed down to the last few generations of Indian Indology as "scientific" and hence "impartial" to such an extent that a modern critical Indologist like J. Gonda observes with astonishment : "It is indeed somewhat strange that scholars should have acquiesced for nearly a century in translation and interpretative method of Rudolf Roth and Hermann Grassman".[2]

It is for these reasons that a penetrating fresh inquiry into, and thorough revision of the opinions among scholars about the Vedic culture and Vedic worship is a desideratum, especially when times and conditions have changed; new facts and evidences have accumulated, modern sociologists have revised their old-world opinions of past generations of scholars in regard to human origins, the history, polity, psychology, religion and life in general of at least some of the early races and peoples whom we call primitive.[3]

What, then, is the way out ? Are we to continue to take the tradition about this most ancient sacred Scripture of India, the Ṛgveda, as the repository of the mystic wisdom of ancient seers of remote age, to be a big hoax carefully perpetuated for thousands of years ? Are we to rely upon the "impartiality" and "authoritative" scholarship of the generations of European scholars of last one century in the face of overwhelming evidence to the contrary recorded by themselves in their own works and memoirs ? The choice is too clear to be elaborated further. As has been aptly put by Shri G. K. Pillai, slightly in a different context, prejudices and preconceived notions should be given up, and one should approach the shrine of truth with the object of finding out the truth.[4]

What, then, are going to be our tools ? The question is not so baffling as might have been a century ago. Hundreds of scholars both Indian and non-Indian have contributed their mite to the study of the Vedas and have fashioned fresh tools in the forms of publication of a highly correct edition of the Ṛgveda, of the commentaries of Sāyaṇa, Veṅkaṭamādhava, Udgītha, Skandasvāmin and Dayānanda Śarasvatī, of the completely revised and fully exhaustive indices and concordance of the whole range of Vedic literature right from the Samhitās to the Vedāṅgas, of the studies of various Brāhmaṇas, Āraṇyakas and Upaniṣads, of the critical studies of various aspects of Vedic thought by scholars like Anand Coomaraswamy, Shri Aurobindo, Shri V. M. Apte, Shri B. K. Chattopadhyaya, Dr. J. Filliozat, J.

1. Theodore Goldstücker, op. cit., p. 290.
2. J. Gonda, The Vision of the Vedic Poets, The Hague, 1963, p. 7.
3. T. V. Kapali Sastry, op. cit., pp. 10-11.
4. Govind Krishna Pillai, Vedic History, Allahabad, 1959, p. 3.

Even Winternitz is not free from the theological bias, when he upholds the sublimity of the poetry of the Old Testament and fails to allude to the sublimity of the Bhagavadgītā or the Nāsadīya-sūkta,[1] the latter being, in contrast, adjudged by no less a historian than Will Durant as the loftiest poem,[2] and which Zenaide A. Ragozin finds "reaching the uttermost bounds of philosophical abstractions ,... never obscure, unless to the absolutely uninitiated."[3]

As a net result of this combined and organized conspiracy of the past few generations of European Indologists in the direction of undermining the supreme sanctity of fundamental Scriptures of ancient Indian religion, the hymns of the Ṛgveda are nowadays almost readily accepted by educated Indians and most of the modern Sanskrit scholars to be nothing more than the sacrificial composition of a primitive and still barbarous race, written around a system of ceremonial and propitiatory rites, addressed to personified Powers of Nature and replete with a confused mass of half-formed myths and crude astronomical allegories yet in making; and that it is in the later hymns that the first appearance of deeper psychological and moral ideas are perceived, which, some think, are borrowed from the hostile Dravidians, identified with "robbers" and "Veda-haters" freely cursed in the hymns themselves.[4]

As has been very succinctly put by Shri T. V. Kapali Sastry, Europe, inspite of the scrupulous care associated with all scholarly labours that it brought to bear upon its Vedic studies, could not escape the limitations of its temperamental mould which is in fact diametrically opposed to the Indian spirit; it surmounted the difficulties in understanding the texts by partly drawing upon conjectures and; partly on certain inexact sciences, very often conjectural-comparative philology comparative mythology or comparative religion.[5] Indian students and seekers of knowledge of the Vedas especially in the last century followed the lines of European scholarship and swallowed as gospel-truth European opinion because it had gained in prestige by its association in their minds with European science and culture which is a different matter altogether, estimable indeed, based as they are on different firmer grounds.[6] Now, there is no reason why we should continue to repeat the same song of the nineteenth century Europe, be it the theory of imaginary migration of imaginary Indo-European race, the fancifully "reconstructed" Indo-European language, the imaginary chronology and consequent relative contemporaneity of the Ṛgveda in relation to Avesta and Ancient Greek of Homer, the pre-

---

1. Dr. M. Winternitz, History of Indian Literature. Vol. I, p. 79.
2. Will Durant, Story of Civilization, p. 409.
3. Vedic India,|1195, pp. 426-427.
4. Shri Aurobindo, op. cit., p. 3.
5. T. V. Kapali Sastry, Lights on the Veda, Pondichery, 1961, p. 10.
6. Ibid., p. 11.

Vedic chronological position of the Indus Valley civilization and also the Hittite one, and above all the unquestionable air of authority of St. Petersberg Sanskrit-Germam Wörterbuch, the compilers of which last have been called the "Saturnalia of Sanskrit Philology" by Goldstücker.[1] The religious prejudices of these scholars have been passed down to the last few generations of Indian Indology as "scientific" and hence "impartial" to such an extent that a modern critical Indologist like J. Gonda observes with astonishment : "It is indeed somewhat strange that scholars should have acquiesced for nearly a century in translation and interpretative method of Rudolf Roth and Hermann Grassman".[2]

It is for these reasons that a penetrating fresh inquiry into, and thorough revision of the opinions among scholars about the Vedic culture and Vedic worship is a desideratum, especially when times and conditions have changed; new facts and evidences have accumulated, modern sociologists have revised their old-world opinions of past generations of scholars in regard to human origins, the history, polity, psychology, religion and life in general of at least some of the early races and peoples whom we call primitive.[3]

What, then, is the way out ? Are we to continue to take the tradition about this most ancient sacred Scripture of India, the Ṛgveda, as the repository of the mystic wisdom of ancient seers of remote age, to be a big hoax carefully perpetuated for thousands of years ? Are we to rely upon the "impartiality" and "authoritative" scholarship of the generations of European scholars of last one century in the face of overwhelming evidence to the contrary recorded by themselves in their own works and memoirs ? The choice is too clear to be elaborated further. As has been aptly put by Shri G. K. Pillai, slightly in a different context, prejudices and preconceived notions should be given up, and one should approach the shrine of truth with the object of finding out the truth.[4]

What, then, are going to be our tools ? The question is not so baffling as might have been a century ago. Hundreds of scholars both Indian and non-Indian have contributed their mite to the study of the Vedas and have fashioned fresh tools in the forms of publication of a highly correct edition of the Ṛgveda, of the commentaries of Sāyaṇa, Veṅkaṭamādhava, Udgītha, Skandasvāmin and Dayānanda Śarasvatī, of the completely revised and fully exhaustive indices and concordance of the whole range of Vedic literature right from the Samhitās to the Vedāṅgas, of the studies of various Brāhmaṇas, Āraṇyakas and Upaniṣads, of the critical studies of various aspects of Vedic thought by scholars like Anand Coomaraswamy, Shri Aurobindo, Shri V. M. Apte, Shri B. K. Chattopadhyaya, Dr. J. Filliozat, J.

1. Theodore Goldstücker, op. cit., p. 290.
2. J. Gonda, The Vision of the Vedic Poets, The Hague, 1963, p. 7.
3. T. V. Kapali Sastry, op. cit., pp. 10-11.
4. Govind Krishna Pillai, Vedic History, Allahabad, 1959, p. 3.

Gonda, Dt. V. Raghavan, Swami Prabhavananda, Swami Satprakashananda, Professor H. D. Velankar, Dr. Vasudeva Sharan Agrawala, Pandit Satavalekar, Pandit Yudhiṣṭhira Mīmāṃsaka, Shri K. C. Varadachari, Dr. T. G. Mainkar and a host of others. All the help that can be requisitioned from the text-critical, exegetical, literary, linguistic, grammatical, lexicographical, historical, sociological, psychological and parapsychological studies of the ancient world should be most welcome, without, of course, losing the sight of the essentially mystic nature of the language and thought-content of the text, which should no longer be regarded as being a mere oldest linguistic record of primitive Indo-Aryans. At the same time the ancient interpretative traditions of the Brāhmaṇas. Āraṇyakas and Upaniṣads, of the Nighaṇṭus, the Prātiśākhyas, the Niruktas, the Pāṇinian and other contemporary ancient schools of Sanskrit Grammar, should also be given due weight in view of their comparative chronological vicinity to the Vedas. The Brāhmaṇas need no longer be mere "twaddles", since, on the contrary, they are now known to have preserved for us the proofs of living mystic tradition in continuity of the Vedas and afford a glimpse into the mystic background of the eternal sacrifice in Nature and its relation to the sacrificial ritual, and held a key to the Ādhidaivika and the Ādhyātmika aspects of Vedic mysticism.[1] And Yāska's Nirvacanas need no longer be the damned "fantastic, arbitrary and almost lawless" etymologies[2] in view of the fact that Yāska never intended to attempt at "deriving" the same obscure Vedic words from alternative strange roots and thus exhibit his uncertainty and ignorance; he rather tried to indicate the different shades of the meaning of the word in question by giving the corresponding equivalent sense-roots prevalent in his own day and thus supplement the vedic exegesis at a point where the contemporary Vyākaraṇa had exhausted its efforts.[3] And Pāṇini, with all his minute details about the Vedic idiom, grammar and accent, can help the Vedic interpreter of the RV to a great extent, as has been duly demonstrated by scholars like Dayānanda Sarasvatī, Goldstücker, Paul Theime, Dr. Vishvobandhu, Dr. S. S. Bhave and others. After all the path is now no longer so obscure if we settle to the task with proper perspective and always keep in mind the fact that we have in the hymns of the ṚV not merely prayers for worldly benefits, but rather "the riches of occult and spiritual truths, treasured hidden by the coverings of symbolic imagery deviced for the double values by the ancient mystics of the Ṛgveda."[4]

ŚIVĀH SANTU SATĀM PANTHĀNAH :

●

1. Dr. Nathulal Pathak, Aitareya Brāhmaṇa kā Eka Adhyayana, p. 185.
2. Shri Aurobindo, op. cit., p. 638.
3. Pandit Yudhiṣṭhira Mīmāṃsaka, Vaidic Chhandomīmāṃsā, p. 27.
4. T. V. Kapali Sastry, op. cit., p. 36.

8th Century Documents on Means of Earning Money

Prof. Prem Suman Jain
Shree Jain Post Graduate College, Bikaner

In ancient India though the chief source of Earning money was the buying and selling of goods, yet many other ways, right or wrong, were employed to earn it. Some of these means, which yielded good and quick returns, were ignoble, others, which were considered noble, yielded limited returns. Udyotana sūri has mentioned both these types of means in his work Kuvalaya mālākahā (779 A. D.).

Ignoble Means

When Māyāditya and Sthānu thought of earning money, the question was how to earn it. Without money, Dharma and Kāma can not be achieved'[1] them Māyāditya suggested 'Friend, if it is so, let us move on to Varanasi. There we shall gamble, break into the houses, snatch the ear-rings, loot the passengers, pick the pockets, indulge in jugglery and cheat the people. In other words we would do every thing by which we can earn money.[2] Sthānu was sorry to hear all this and he dubbed these means as ignoble as they were against gentlemanliness.

—(Hoe Mahanto doso 57.23).

Besides these means, earning money by selling creatures and animals was also regarded as ignoble in this work[3] The above means of earning money were prohibited by Jain writers on account of non-violent principles. In Dharmabindu and Upamitibhava-prapañcakathā, the use of these means is prohibited.[4]

Respectable Vocations

On being asked by Māyāditya, Sthānu described following noble means

---

1. धन्मन्थो कामो वि........तहवि करेमो अन्थं होहिइ अन्थाओ सेसं पि Kuv. 57. 12-15.
2. जइ एवं मित्त, ता पयह, वाणारसिं वच्चामो तन्थ जूयं खेल्लिमो खंतं खणिमो कण्णु' तोडिमो, गंठि छिण्णिमो, कूडं रइमो, जणं वंचमो, सव्वहा तहा तहा कुणिमो जह जहा अन्थ संपत्ती होहिइ ति 57. 16-17.
3. जइ-मउम्भत्तभणो जीवे विक्किणइ जो कयग्धोय ।
सो इंदभूइ, मारिडं दासत्तं वच्चए पुरिसो ॥—241.28.
4. See, Rajasthan through the Ages—Dr. Dashrath Sharma.

which have also been sanctioned by the rishis.

—(Risihiṃ eyam purā bhaṇiyam—57-23).

1. Going from one place to another (Disi gamanam)

There are many references to this means in the work. Māyāditya, Dhanadev, Sagardatta etc. The sons of merchants, have earned money by going to other countries. The reference to the assemblage of merchants of eighteen countries at one place points to first fact (152.24). In contemporary literature one comes across many references of this kinds.[1]

To go to other countries for business purposes was profitable from many points of view. A man could carry on business whole-heartedly and fearlessly living away from the cares and worries of the home. One could attract the people there by his way of living and the main thing was that a man could earn a lot by selling the home-made goods at other places at fancy prices and buying the goods of those places at cheap prices and selling them in his own country at high prices. Apart from this a man gathered a lot of experience of inter-state trade guilds. Young merchants got an opportunity to earn money by their own efforts for which they always remained eager.

—(aṇṇam apuvvam attham āharāmi bāhu-baleṇam 65.10).

2. *Partnership (Hoe mittakaraṇam ca)*

To do business in partnership has many advantages. First, one does not feel any danger in the journey. Secondly, if there was loss, it was shared. Thirdly, one could get advantage out of mūtual common sense and business-skill. In Kuvalayamālākahā Māyāditya and Sthānu went out together as partners and they earned a lot of money (57-28). Dhandeva and, Bhadraṣreshthi were also partners (66.33). Sagardatta had carried on business in a foreign country by entering into partnership with a merchant there (105-23). In the business field partnership was one of the common practices.[2]

Whereas, on the one hand, partnership had its advantages, sometimes it was also disadvantageous. If the partner was not honest, one had to bear loss. Out of greed, Māyāditya had thrown his partner Sthānu into the well (61.15.19). Dhandev had also pushed Bhadrashreshthi into the deep sea (57.20). They did it so that they may not have to give their share and get the whole of it themselves.

1. जातक (1.404, 2:30, 3.126), समराइच्चकहा, तिलकमंजरी, pp. and see for detail—S. K. Maity, Economic Life of Northern India in the Gupta Period, p. 138 etc., Roy—प्राचीन भारत में नगर तथा नगर जीवन, 323 ; मोतीचन्द्र—सार्थवाह, p. 162.173, Bajpei—भारतीय व्यापार का इतिहास, p. 152 etc.
2. समराइच्चकहा, VI Bhava ; see Awasthi, Studies in Skanda Purana, part I, p. 113.

There are many references to such dishonest partners in contemporary literature.[1]

3. *Pleasing the king* (*Naravar seva*)

Pleasing the king is absolutely essential every-where for earning money. Whenever any merchant reached the state of the king with his caravan, he waited on the king with valuable presents and sought permission to do business in his territory. As soon as Dhandeva landed in Ratnadeep[2], he took the presents, met the king and pleased him by his offerings.[3] It is clear that the permission of a king was essential for carrying on business in his state.

4. *Skill in weights and measures* (*kusalattaṇam ca māṇappamāṇesu*)

The two terms—'kusalattaṇam ca māṇappamānesu' mean that it is very necessary to have skill in judging the goods, Only a skilful merchant can judge the worth or worthlessness of various goods. Profits can be earned only when a merchant purchases pure goods. Dhandeva's father hinted that it is very difficult to judge the quality of goods unless one has sufficient proficiency in it.

—(Duppariyallam bhandam 65.15).

5. *Alchemy* (*Dhauvvāo*)

The art of making artificial gold from metals by various chemicals was also a source of earning money. In the eighth century 'Dhātuvāda' was current and had been developed as an art. Udyotanasūri has given a detailed description of Dhātu-vāda in his work, being practised in a secluded part of the Vindhya forest—(p. 195). It is said that the assembled Dhātuvādins or alchemists (Kemiyagāra) were failing in their attempt. Prince Kuvalayachandra tried his own knowledge and succeeded in the making of gold. It appears that one of the epithets of the Dhāta-vādins was Narendra, meaning a master of charms or antidotes. The word is also used in this sense in classical Sanskrit literature. Dhātuvāda is also called Narendra-Kalā 197.16).[4]

6. *Worship of the deity* (*Devayārāhan*)

While going on a journey to earn money, many ceremonials were performed. The favourable deities were worshipped. Worship of different means of deities was considered auespicious for different means of earning money. While going on their round thieves worshipped Kharpat, Mahākāla, Kātyāyani etc.[5]

---

1. This had become a literary motif as appears from Jayasi describing a similar situation of a storm and ship-wreck brought about by a Rākṣasa (Partner) 'A cultara note'—in Introduction to Kuv. by Dr. N. S. Agrawala, p. 120.
2. See for Ratnadeep—Dr. Buddha Prakash—'India and the world.'
3. उत्तिणो वणिया, गहियं दंसणीयं दिह्वो राया, कयो पसाधो, Kuv. 67.12.
4. See for detail my thesis—A Cultural Study of Kuvalayamala Kaha. III chapter.
5. J. C. Jain—जैन आगम साहित्य में भारतीय समाज, p. 71

which have also been sanctioned by the rishis.

—(Risihiṃ eyam purā bhaṇiyam—57-23).

1. Going from one place to another (Disi gamanam)

There are many references to this means in the work. Māyāditya, Dhanadev, Sagardatta etc. The sons of merchants, have earned money by going to other countries. The reference to the assemblage of merchants of eighteen countries at one place points to first fact (152.24). In contemporary literature one comes across many references of this kinds.[1]

To go to other countries for business purposes was profitable from many points of view. A man could carry on business whole-heartedly and fearlessly living away from the cares and worries of the home. One could attract the people there by his way of living and the main thing was that a man could earn a lot by selling the home-made goods at other places at fancy prices and buying the goods of those places at cheap prices and selling them in his own country at high prices. Apart from this a man gathered a lot of experience of inter-state trade guilds. Young merchants got an opportunity to earn money by their own efforts for which they always remained eager.

—(aṇṇam apuvvam attham āharāmi bāhu-baleṇam 65.10).

2. *Partnership (Hoe mittakaraṇam ca)*

To do business in partnership has many advantages. First, one does not feel any danger in the journey. Secondly, if there was loss, it was shared. Thirdly, one could get advantage out of mutual common sense and business-skill. In Kuvalayamālākahā Māyāditya and Sthānu went out together as partners and they earned a lot of money (57-28). Dhandeva and, Bhadraṣreshthi were also partners (66.33). Sagardatta had carried on business in a foreign country by entering into partnership with a merchant there (105-23). In the business field partnership was one of the common practices.[2]

Whereas, on the one hand, partnership had its advantages, sometimes it was also disadvantageous. If the partner was not honest, one had to bear loss. Out of greed, Māyāditya had thrown his partner Sthānu into the well (61.15.19). Dhandev had also pushed Bhadrashreshthi into the deep sea (57.20). They did it so that they may not have to give their share and get the whole of it themselves.

---

1. जातक (1.404, 2:30, 3.126), समराइच्चकहा, तिलकमंजरी, pp. and see for detail—S. K. Maity, Economic Life of Northern India in the Gupta Period, p. 138 etc., Roy—प्राचीन भारत में नगर तथा नगर जीवन, 323 ; मोतीचन्द्र—सार्थवाह, p. 162, 173, Bajpei—भारतीय व्यापार का इतिहास, p. 152 etc.
2. समराइच्चकहा, VI Bhava ; see Awasthi, Studies in Skanda Purana, part I, p. 113.

There are many references to such dishonest partners in contemporary literature.[1]

3. *Pleasing the king (Naravar seva)*

Pleasing the king is absolutely essential every-where for earning money. Whenever any merchant reached the state of the king with his caravan, he waited on the king with valuable presents and sought permission to do business in his territory. As soon as Dhandeva landed in Ratnadeep[2], he took the presents, met the king and pleased him by his offerings.[3] It is clear that the permission of a king was essential for carrying on business in his state.

4. *Skill in weights and measures (kusalattaṇam ca māṇappamāṇesu)*

The two terms—'kusalattaṇam ca māṇappamāṇesu' mean that it is very necessary to have skill in judging the goods, Only a skilful merchant can judge the worth or worthlessness of various goods. Profits can be earned only when a merchant purchases pure goods. Dhandeva's father hinted that it is very difficult to judge the quality of goods unless one has sufficient proficiency in it.

—(Duppariyallam bhandam 65.15).

5. *Alchemy (Dhauvvāo)*

The art of making artificial gold from metals by various chemicals was also a source of earning money. In the eighth century 'Dhātuvāda' was current and had been developed as an art. Udyotanasūri has given a detailed description of Dhātuvāda in his work, being practised in a secluded part of the Vindhya forest—(p. 195). It is said that the assembled Dhātuvādins or alchemists (Kemiyagāra) were failing in their attempt. Prince Kuvalayachandra tried his own knowledge and succeeded in the making of gold. It appears that one of the epithets of the Dhātavādins was Narendra, meaning a master of charms or antidotes. The word is also used in this sense in classical Sanskrit literature. Dhātuvāda is also called Narendra-Kalā 197.16).[4]

6. *Worship of the deity (Devayārāhan)*

While going on a journey to earn money, many ceremonials were performed. The favourable deities were worshipped. Worship of different means of deities was considered auespicious for different means of earning money. While going on their round thieves worshipped Kharpat, Mahākāla, Kātyāyani etc.[5]

---

1. This had become a literary motif as appears from Jayasi describing a similar situation of a storm and ship-wreck brought about by a Rākṣasa (Partner) 'A cultara note'—in Introduction to Kuv. by Dr. N. S. Agrawala, p. 120.
2. See for Ratnadeep—Dr. Buddha Prakash—'India and the world.'
3. उत्तिणो वणिया, गहियं दंसणीयं दिट्ठो राया, कयो पसाधो, Kuv. 67.12.
4. See for detail my thesis—A Cultural Study of Kuvalayamala Kaha. III chapter.
5. J. C. Jain—जैन आगम साहित्य में भारतीय समाज, p. 71

While going to a foreign country, merchants worshipped the sea-god (Pūiūna samudda devam 105.32) and remembered other favourable deities (Sumarijjanti itha devae, 67.2). Sagaradatta had worshipped Indra, Dharnendra, Dhaṇak and Dhanpāl for earning money by means of mining.[1]

7. Sea Voyage (Sāyar-Taranam)

In ancient India there were two chief trades—local trade and foreign trade. For foreign trade one had to go beyond the seas. So sea-faring was considered essential for earning money. Sea voyage was particularly profitable because goods of one's own country could be sold in other countries at high rates and gold could be brought from beyond the seas into one's country.[2] In Kuvalayamālā-kaha there are many references to sea-voyage (67.30, 89.8, 105.31 etc.), which have been detailed by Dr. Buddha Prakash in his article recently[3]. Though one could earn handsome profits by going across the seas one also faced many difficulties such as risking one's life.[4]

8. *Digging of the Rohanparvata (Rohanammi khananam)*

It was believed that Rohanparvata is situated in the a boys of inferno and was made of gold. People go there and bring gold by digging and thus become rich. There are two references in Kuvalayamala where a description has been given about the Rohan Khanan, Sagardatta, on leaving home because of insults, thinks over the means of earning money sitting in a garden of Jaishrinagari. Whether he should go beyond the sea infested by crocodiles or should dig up the Rohan-parvata situated in the inferno.[5]

The other reference is that when the poor young merchant of Champa-nagari were not able to earn money by other means they reached somehow other, the Rohan deep. Hearing its name their joy knows no bounds and they think that in this deep, when even the unlucky (impious) get wealth, why should not we get gems by digging the Rohandeep.[6]

From the above it is clear that Rohankhanana was the last means af earning money. Only a man who was not able to earn money by any other means thought of Rohankhanana and get money from there. It appears that this particular means of earning money was the symbolic of labour. It meant that just as it is very

1. णमो इंदस्स, णमो धरीणंदस्स, णमो धणयालस्स, Kuv. 104.31.
2. समराइच्चकहा VI Bhava.
3. "An eighth century Indian document on International Trade" published in the Bulletin of the Institute of Traditional Cultures, Dec. 1970, Madras—4.
4. दुत्तरो जलही सुदंरं वणिज्जं जस्स जिवियं ण वल्लहं, Kuv. 67.7-9.
5. जा पाताले पत्तो खणामि सा रोहणं चेय, 104.18.
6. एयं तं दीववरं जत्थ अउण्णो वि पावए अन्थं ।
   एंपइ ताव खणाभो जा एंपत्ताइं रयणाइ ॥—191.12.

difficult to bring gold from the inferno, so an unsuccessful merchant can get success by working hard again and again.

9. Other means

Besides the above means of earning money, many others have been detailed in Kuvalayamāla. The two young merchants of Champa have been shown to be using the following means which have not come earlier—

9. Agriculture (kisi karisaṇammi)
10. Loading of animals (Āroviya goṇi bhariyalla)
11. Slavery (Para gehe acchhik Samaḍhatta)
12. Begging (Bhikkam bhamanti)
13. Service (Dejjasu Amham Vitti)
14. Soldiery (lagga olaggium)
15. Using of Occult Powers (Anjana-jogesu)
16. Bilapravesh (Vilammi Pavisanti)
17. Mantra siddhi (Mantam gahiūṇa)
18. Exchange (Thora-Kammam)
19. Wrestling (Mallattaṇam)
20. Mining (Khaṇṇavae ; 104.20-31)

Often, even inspite of adopting these means, one could not earn money as he desired and faced disappointment. Hence he had no alternative but to seek solace in religion. For this purpose he construed the various means of eārning money in a religious and moral sense. For example—

Trade—Control the shop of body by the shop keeper of heart and buy and sell the goods of virtue. In this way one will earn the profit of happiness.[1]

Begging--If you have to beg then have the bowl of trust, put on the loin cloth of control and hang the sling of wisdom deed go about the houses of teachers, you will get the alms of knowledge.[2] etc.

In the opinion of Udyotanasūri all the above means are connected with violence in some form or another. Therefore, a man can not get release from this world by using them. Even then there are many worldly people who earn money by these means in order to support their families.[3] Udyotana does not

1. कुणमु मणं आमणयारयं ति देहामणेंसु वित्थिण्णे ।
पुण्णं गेण्हसु भंडं पडिभंडं होहिइ सुहं ते ।।—192.25

2. गेण्हसु दंसण-भंडं संजम-कच्छं गइं करंकं च ।
गुरुकुल-घरंगणंसु भम भिक्खं णाण-भिक्खट्ठा ।।—193.6

3. जइ होइ बहु धण्णं जीवेज्ज कुडुंबयं पियं मज्झ ।
ण च चिंतेइ अउण्णो कत्थ कुडुंबं कहिं अहयं ।।—186.13

approve of these means because of the violent overtones found in them. He wanted that the people should do religious deeds by which they could achieve permanent bliss (192.24).

From the above description of the means of earning money as described by Udyotana it is clear that various means were used in ancientI ndia to earn money, chief among which were trade, agriculture, sea-voyage. arts and crafts. Mining was also in vogue. In this connection an important point to note is that in the society of the period the division of labour was not rigid on the basis of caste. A merchant could adopt any type of profession.[1] Local and foreign all sorts of trades were current. Even at that time Varanasi was a centre of attraction for pilgrims, tourists and merchants. Because of the jostling crowds frauds such as looting and cheating were practised.

•

1. 'India's Foreign Trade in the Ancient Period—Its Impact on Society'—Dr. Lallanji Gopal, the Quarterly Review of Historical Studies, 1965-66, Vol. V No. 4. pp. 186-192.

The Problem of 'Apadha in the Rgveda

Dr. Smt. Y. S. Shah

Ahmedabad

Interpretation of Vedic hymns in general and of individual words in particular, has been a knotty problem right from the day of Yāska and not all the ingenuities of the commentators of the Ṛgveda and scholarly labours of the Western and Eastern Orientalists have been able to unveil the mystery about a number of obscure Vedic words. One of them is the Vedic word 'Apadhā' in the RV. II, 12, 3. The word occurs in the second quarter of the above Ṛk which is as follows :—

यो गा उदाजदपधा वलस्यं ।

Y o' gā' Udājad apadhā valasya.

The Pada text traditionally handed down to this day runs thus :

यः गाः । उतऽआजत् । अपऽधा । वलस्यं ।

Sāyaṇa interprets this quarter in the following manner :—

यश्च वलस्य वलनामकस्यासुरस्यापधा तत्कर्तृकान्निरुद्धा गा उदाजत् निरगमयत् ।

Here in his rendering of अपधा निरुद्धाः, he unwittingly reveals that the ultimate sense is 'imprisoned' and the word is an adjective of गाः. But while grammatically analysing, he seems to derive it from the root अप+√धा to which the termination अङ् is applied in the impersonal sense. The word thus becomes अपध आ is added. Thus it is supposed to be the ablative singular.

Venkaṭa Mādhava too renders the word as बिलान्तरपिहिताः and takes it as an adjective of गाः, which he renders as पशून्.

Western scholars have created more confusion in trying to identify the exact grammatical form. Thus Roth takes it to be the instrumental of अप + √धा

Ludmig[2] suggests that this word is instrumental in sense and we must take it to mean wedge or key (quasi reserator).

Hillebrandt[3] thinks that अपधि is a locative from अपधि. Grassman[4] translates it

1. Sanskrit-Wor, St Pt, 1855, p. 282
2. Peterson, *Hymns from the Rigveda*, Second Selection, Notes, p. 116
3. *Veda Chrestomathic*, p. 70
4. Worterbuch Zum Rigveda, p. 71

as 'a hiding place'. Griffith[1] translates it as 'from the cave'. Peterson remarks that this word is a Vedic locative of the same kind as 'guhā' in the next verse and translates it as 'cave' :

Zimmerman[3] translates it as 'from the enclosure'. He compares it with II, 14, 3 ; यो गा उदाजदप हि वलं वः ।

Macdonell[4] also translates it as 'by the unclosing', On the basis of feminine forms, he remarks that it can only be the instrumental singular of Apadhā'. He takes 'Valasya' as objective genitive i. e. by opening (the cave of) Vala. Velankar[5] seems to follow Roth when he takes 'Apadhā' as instrumental singular of Apadha on the analogy of एकया प्रतिधा – प्रतिधानेन in VIII; 77, 4,

Sāyaṇa[6] took it as irregularity for the ablative, by सुपां सुलुगिति पञ्चम्या आकारः ।

Durga,[7] the commentator on Nirukta explains the form by अपधानेन as meaning उद्घाटनेन by the enclosing.

As has been seen above, Venkaṭa Mādhava[8] too while explaining it as बिलान्तरपिहिताः has indicated indirectly to the feminine base with 'ā' ending.

It seems that अपधा is really अपधाः accusative plural of अपधा, feminine form from apa + dhā by applying the affix 'aṅ' in accordance with the Pāṇinian rule III, 3, 106.

An analogous case it that of the word निधा occurring in the form of निधया in R V, X, 73, 11 :

वयः सुपर्णा उप सेदुरिन्द्रं प्रियमेधा ऋषयो नाधमानाः ।
अप ध्वान्तमूर्णुहि पूर्धि चक्षु–र्मुमुग्ध्य ऽस्मान् निधयेव बद्धान् ।।

The word निधा is found in the Naigamakāṇḍa of the fourth chapter of Nirukta.

Mukund Jha Bakshi[9] in his notes on Nirukta explains निधा as "आतश्चोपसर्गे" इति (पा. ३०१.१३६) क प्रत्यये अङि (पा. ३.३.१०६) वा । टापि निधेति भवति ।

This supports our thesis about the nature of the form of अपधा. In point of accent too, the form अपधा resembles निधा.

1. *Hymns from the Rigveda*, Vol. II, p. 273
2. Peterson, *op. cit*,
3. *Vedic Selections*, Notes, p. 124
4. *Vedic Reader*, pp. 46 ff
5. *Ṛksūkta vaijayantī*, p. 72
6. Sāyaṇa's commentary on II/2, 3: अपधा-अप पूर्वाद्दधातेः 'आतश्चोपसर्गे' (पा. ३.३.१०६) इति भावेऽङ्प्रत्ययः । सुपां सुलुगिति पञ्चम्या आकारः ।
7. Durga's commentary on Nirukta, Adhyāya, 8, 1.
8. *Ṛgarthadīpikā*, Vol. III, p. 75.
9. Mukund Jha Bakshi, (Ed.,) *Nirukta*, p. 160

Now the Padapāṭhakāra has noticed the form as अपृथा without the final 'Visarga'. Can it not be possible that in the Samhitā-Pāṭha, there was elision of of original visarga of अपृथाः, the originally intended form and anyhow the author of Padapāṭha missed it ?

There are many instances in which the older authors of Padapāṭhas differed from one another in splitting Samhitā text into its component padas. This has been adduced to by Yāska himself. Thus Yāska takes note of difference of opinion of various authors of Padapāṭha with regard to the word आदित्य :—

शाकल्यात्रेयप्रभृतिर्निर्नावगृहीतम्, पूर्वनिर्वचनाभिप्रायेण । गार्ग्यप्रभृतिभिरवगृहीतमिति तदेव कारणम्, विचित्राः पदकाराणामभिप्रायाः, क्वचिदुपसर्गविषयेऽपि नावगृह्णन्ति यथा शाकल्येन "अधीवासम्" इति नावगृहीतम्, आत्रेयेण तु "अधिऽवासम्"—इत्यवगृहीतम् । तस्मादवग्रहोऽनवग्रहः।।[1]

Similarly with regard to the word मासकृत् in R V I, 105, 18, Yāska takes it as an Upapada compound and hence as one word, thus :

मासकृत् मासानां चार्धमासानां च कर्ता भवति चन्द्रमाः ।।[2]

But Śākalya splits the word into two padas, as मा । स कृ त् ।[3]

Thus this possibility of the presence of originally existent but morphophonemically elided Visarga sets at rest all the unnecessary efforts of the traditional commentators and modern orientalists.

1. *Nirukta*, II, 13.
2. *Nirukta*, V, 21
3. cf. Padapāṭha of ṚV I, 105, 18 in ṚV. Saṁhitā (Poona), Vol I, p. 649.

ŚIBIKĀ-VAKRAVAMŚA-LAKṢAṆAM :

A Method to Grow Crooked Bamboos for Palanquin Beams

K. V. Sarma

Curator, Vishveshvaranand Institute, Hoshiarpur.

The *Śibikā* (palanquin) has been popular in India from early times as a mode of conveyance for the royalty and the upper strata of the society. Its use in temple festivals as a *vāhana* (carrier) to take the image of the deity in procession along the outer corridors of shrines and through the city for public worship is also popularly known, especially in South India.[1] The *Mayamata*, is, perhaps, the earliest text on Indian architecture to give a detailed description of the *Śibikā* in its three types, *viz.*, *Pīṭhī*, *Śikharī* and *Mauṇḍi*, and also enunciate the measurements for their construction.[2] Ther is a parallel description also in the *Paddhti* Īśānaśivagurudeva.[3]

The basic structure of the *Śibikā* is succinctly indicated thus in the *Viśvākarma-vāstuśāstra*, in the context of the description of *Vāhanas* to be used in temple festivals (ch. 84 : *Kalpavṛkṣādivāhanalakṣaṇakramakathanam*) :

शिबिकां मानवैर्धार्यां पेटिकाकारसंयुताम् ।।18।।
अथ पार्श्वावरणकैर्हीनां वेण्वादिदण्डकाम् ।
भूतेशो वा वृषो नानालङ्क्रियामण्डितो मतः ।।19

The commentary on this passage by Anantakṛṣṇa Bhaṭṭāraka is elucidative and might be extracted here :

अथ शिबिकालक्षणमाह—शिबिकामिति, विविधरूपं शिबिकालक्षणं तु पुरोभागे पश्चाद्भागे दृढं संयोजितमाधारदण्डं मानवभटस्कन्धैर्धार्यं प्रकल्पयेत्, तादृशाधारदण्डस्तु वेणुकृतो वा वटकृतो वा सौकर्यदायीति समयः । एवं मानवस्कन्धबाह्याधारदण्डसहितस्य शिबिकाख्यस्य वाहनस्य निर्माणं तु पेटिकारूपं

1. For an account of the *Śibikā-vāhana* in Vaiṣṇavite temples, see the *Vimānārcanā-Kalpa* of Marīci, of the Vaikhānasa School (Madras, 1626), Sn, on *Śibikādi-yānotsavaḥ*, pp. 352-54
2. *Cf. Mayamata* of Mayamuni, ed. T. Ganapati Sastri, Trivandrum, 1919, Ch, 31, verses 1-29.
3. See *Īśanaśivgurudeva-Paddhati* of Īśānaśivagurudeva, ed. by T. Ganapati Sastri, pt, IV, Trivandrum, 1925, pp. 453-55 : Paṭala 40, *Nityotsaza-yāna-śanādi-paṭala*), verses 39.64.

पार्श्वयोः प्रवेशद्वारोपेतं कार्यम् । अयमेकः प्रकारः । प्रकारान्तरेण तु पार्श्वभागावरणहीनं मध्यमस्थदेववेर-स्थापनस्यकं देवबेरस्य मुखमण्डलस्फुरणार्थमग्रभागे मुकुरस्थानोपेतं विविधतचित्रपट्टिकावृतपार्श्वपट्टिकातलं शिविकाकल्पनं प्रकल्पयेत् ॥18॥

किञ्चात्र शिविकानिर्माणे क्वचित् पूर्वभागे भूतेशगणस्कन्धधारितपूर्वदण्डं वा नन्दिदेवधारितपूर्व-दण्डं वा गन्धर्वकिन्नरादिदेवगणस्कन्धधारितदण्डं वा कार्यमिति विकल्पः। अतोऽत्र तु शिविकानिर्माणे पुष्यशिबिका-दर्पणशिविकेत्यादिभेदश्चोह्यः क्रियासौकर्यार्थं शिल्पिभिरिति ॥19॥[1]

The essential elements of a *Śibikā,* thus, consist of a closed box-like structure with doors or an open structure without doors, fixed on a long beam of bamboo or wood which extends on both sides of the box. The seat is placed inside the box and the whole structure is carried on the shoulders of one or more persons at each end.

Now, the palanquin with the arched beam rising majestically in a steep curve over the box and with the two extending ends too slightly inclined uqwards is artistically superior to one with just a horizontal beam. It is dfficult to prepare curved beams of wood or procure naturally curved beams of wood of sufficient length. In practice, the bamboo is used exclusively for the purpose. The required bends are often made in the bamboo by the application, at the appropriate places, of strong hear when the bamboo is yet green and has not become dry and stiff. Naturally, the bamboo gets charred and injured, to some extent, in the process. An ingenious method has been developed to solve the problem, *viz.,* to grow bamboos with the necessary curves, of appropriate measures, at the required places, The short text, *Śibikā-vakravaṁśa-lakṣaṇam,* edited here enunciates a method to grow crooked bamboos. The method primarily consists of driving in appropriately curved iron structures on the sides of the bamboo plantling and making the bamboo through the said structure. Directions are given towards controlling its growth, so that, ultimately, a bamboo with bends and curves at the right places and in the right measures is produced.

The work is preserved in a single manuscript, being No. 1133 belonging to the collection of Sanskrit manuscripts of the Palace Library, Trivandrum, now deposited in the Kerala University Oriental Research Institute and Manuscripts Library, Trivandrum.[2] It is in palmleaf, in four folios, written in Malayalam script, The manuscript is well preserved and the writing is generally free from errors,

---

1. See *Visvakarma-Vāstuśāstram*, Ed. by Vasudeva Sastri and N. S. Gadre, Tanjore, 1958 (*Tanjore Sarasvti Mahal Series*, No. 85?3, p. 197,
2. For full details see the *Descriptive Catalogue of Sanskrit Manuscripts of* H. H. *the Mvharaja's Palace, Library,* Trivandum, 1938, Vol. IV. pp; 1547-58. I am thankful to the authorities of the Library for supplying me, with a copy of this manuscript.

शिबिकावक्रवंशलक्षणम्

[1]अभिवाद्य गणाधीशमभीष्टफलदायिनम् ।
शिबिकावक्रवंशस्य प्रमाणं किञ्चिदुच्यते ॥१॥
वेणोः शुभाङ्कुरं दृष्ट्वा यत्नेन परिपालयेत् ।
वराहशललीकीटभृङ्गदंशाद्युपद्रवात् ॥२॥
दृढया परिवृत्या च वचाचूर्णादिभिः पुनः ।
हस्तोन्नतात् पूर्वमस्य सुमुहूर्ते विनायकम् ॥३॥
सम्पूज्य जलगन्धाद्यैः सूपलाजादिभिस्तथा ।
वंशस्य पार्श्वयोः खात्वा यन्त्रस्तम्भौ विनिक्षिपेत् ॥४॥
यत्र रन्ध्रपथा गत्वा वक्रवेणुर्भविष्यति ।
यन्त्रमानमिति प्रोक्तं दशहस्तसमायतम् ॥५॥
मुनिसङ्ख्याङ्गुलं वीथ्या तदर्धं घनमेव च ।
एवं स्तम्भद्वये सूत्रं सिद्धे पञ्चदशं तु वा ॥६॥
त्रयोदशं वा हस्ताख्यपट्टिकास्तम्भवीथिवत् ।
एकाङ्गुलं द्व्यङ्गुलं वा घनं तासामुदीरितम् ॥७॥
सार्धैकहस्तं वा दीर्घं सपादं वात्र कल्पयेत् ।
स्तम्भयोर्मूलतस्त्यक्त्वा विंशत्यङ्गुलमात्रकम् ॥८॥
एकैकहस्तामायातां चतुरः पट्टिकां क्रियात् ।
पदाधिकद्विहस्तेन तस्मात् तु कुटिलायतम् ॥९॥
कुटिले पट्टिकाः सप्त पञ्चकं वा समांशके ।
स्तम्भयोः कल्पयेदस्मान्मूलवच्चतुरोऽग्रके ॥१०॥
तदाधिरोहिणी वेदं यन्त्रमन्त्री भविष्यति ।
मूलाग्रपट्टिकाष्टानां रन्ध्राणां विधिरुच्यते ॥११॥
स्तम्भयोः पट्टिकायोगात् प्रथमे त्र्यङ्गुलं त्यजेत् ।
द्वितीये च तृतीये च द्व्यङ्गुलं तु चतुर्थके ॥१२॥
त्र्यङ्गुलं कुटिलाग्रात्तु चतुर्थं पूर्ववत्तथा ।
त्यक्ताङ्गुलान्तरे रेखां कारयेदतिसूक्ष्मतः ॥१३॥
रेखामाश्रित्य पृष्ठे तु रन्ध्रान् वंशगतोपमान् ।
त्रियवाधिकमानेन सुवृत्तान् वक्रगम्यकैः ॥१४॥

---

१. The Ms. comnences with invocatory Statement : [हरिः] श्रीगणपतये नमः । अविघ्नमस्तु ।

कुटिलान्तःस्थिते खर्वपट्टिकासप्तके क्रमात् ।
घने द्व्यङ्गुलमाने च रन्ध्रान् कर्तुमिहोच्यते ॥१५॥
अंशाङ्कात् पट्टिकानां च कुर्यात् पूर्वापरं घनम् ।
तासामधश्चोपरि च वक्रगम्यायतं द्विधा ॥१६॥
ऊनाधिकत्रिपादार्धाङ्गुलैः कुटिलक्रमम् ।
स्तम्भादेकादिह प्रोक्तं पट्टिकाद्याद् यथाक्रमम् ॥१७॥
सपादनवकं चैव पादाधिकदिवाकरः ।
अर्धोनषोडशं चैव षोडशं च ततः परम् ॥१८॥
अष्टादश त्रिपादोनसार्धषोडशषोडशौ ।
अर्धाधिकमनुस्तेन सपादं तु त्रयोदश ॥१९॥
सपादनिधिशैलौ च सत्रिपादार्णवानलौ ।
पक्षान्तरमिहैवोक्तं चतुर्थशरयोः क्रमात् ॥२०॥
कलापञ्चदशा सार्धौ तत् सपादत्रयोदशम् ।
सपादमिहिरेणापि कुर्यान्मानं द्वयोरिति ॥२१॥
पट्टिकापञ्चके पक्षे रुद्रादित्यौ तु षोडशौ ।
तथैव च पुनः कुर्यात् तत्त्रयोदशभास्करौ ॥२२॥
रसबाणौ तृतीयात् तु पक्षान्तरमथोच्यते ।
मनुत्रयोदशौ सूर्यदिशौ रसशराविति ॥२३॥
विना पक्षान्तरेणैकं वक्रक्रममथोच्यते ।
दशार्कषोडशाः सप्तदशं चाष्टादशद्वयम् ॥२४॥
अर्धोनाष्टादशं चैव षोडशं च तिथिर्मनुः ।
एकादशं दशं सप्त रसमेतैश्च सप्तके ॥२५॥
पूर्वक्रमेण तद्वक्रं नृणां नेत्रप्रियावहम् ।
उक्तसङ्ख्याङ्गुलैरेवं कृत्वा रेखां ततः परम् ॥२६॥
वक्रगम्यैः सुरन्ध्राणि वेणोः पुष्टचैव पूर्ववत् ।
रन्ध्रैश्च वंशयात्येवं वक्रक्षेमकराय च ॥२७॥
नित्यं वंशादिकं दृष्ट्वा रज्जुकीलादिभिः सुधीः ।
कुर्यात् तत्रोचितं कर्म तथाप्यधिकसूक्ष्मतः ॥२८॥
पिपीलिकादंशकीटभृङ्गेभ्यः परिपालयेत् ।
सार्धे मास्यनलाङ्कोर्ध्वान् कण्टकान् दिनपञ्चकैः ॥२९॥
शराङ्गुलोर्ध्वमेकैकं स वहिश्चर्मकं त्यजेत् ।
त्रिमासानिड (?सेन व) चाचूर्णतैलं मासेन लेपयेत् ॥३०॥
अब्दान्ते लूनयेदग्रं रुद्रहस्तात् परं ततः ।
दिनवत्सरमासानां चतुर्थं वा तृतीयकम् ॥३१॥
नीत्वाथ सुमुहूर्ते तु दीपविघ्नेश्वरादिभिः ।
वेणोश्च लूनयेन्मूलं ततो तिथिदिनात् परम् ॥३२॥

शिबिकावक्रवंशलक्षणम्

[1]अभिवाद्य गणाधीशमभीष्टफलदायिनम् ।
शिबिकावक्रवंशस्य प्रमाणं किञ्चिदुच्यते ॥१॥
वेणोः शुभाङ्कुरं दृष्ट्वा यत्नेन परिपालयेत् ।
वराहशललीकीटभृङ्गदंशाद्युपद्रवात् ॥२॥
दृढया परिवृत्या च वचाचूर्णादिभिः पुनः ।
हस्तोन्नतात् पूर्वमस्य सुमुहूर्ते विनायकम् ॥३॥
सम्पूज्य जलगन्धाद्यैः सूपलाजादिभिस्तथा ।
वंशस्य पार्श्वयोः खात्वा यन्त्रस्तम्भौ विनिक्षिपेत् ॥४॥
यत्र रन्ध्रपथा गत्वा वक्रवेणुर्भविष्यति ।
यन्त्रमानमिति प्रोक्तं दशहस्तसमायतम् ॥५॥
मुनिसङ्ख्याङ्गुलं वीथ्या तदर्धं घनमेव च ।
एवं स्तम्भद्वये सूत्रं सिद्धे पञ्चदशं तु वा ॥६॥
त्रयोदशं वा ह्रस्वाख्यपट्टिकास्तम्भवीथिवत् ।
एकाङ्गुलं द्व्यङ्गुलं वा घनं तासामुदीरितम् ॥७॥
सार्धैकहस्तं वा दीर्घं सपादं वात्र कल्पयेत् ।
स्तम्भयोर्मूलतस्त्यक्त्वा विंशत्यङ्गुलमात्रकम् ॥८॥
एकैकहस्तामायातां चतुरः पट्टिकां क्रियात् ।
पदाधिकद्विहस्तेन तस्मात् तु कुटिलायतम् ॥९॥
कुटिले पट्टिकाः सप्त पञ्चकं वा समांशके ।
स्तम्भयोः कल्पयेदस्मान्मूलवच्चतुरोऽग्रके ॥१०॥
तदाधिरोहिणी वेदं यन्त्रमन्त्रौ भविष्यति ।
मूलाग्रपट्टिकाष्टानां रन्ध्राणां विधिरुच्यते ॥११॥
स्तम्भयोः पट्टिकायोगात् प्रथमे त्र्यङ्गुलं त्यजेत् ।
द्वितीये च तृतीये च द्व्यङ्गुलं तु चतुर्थके ॥१२॥
त्र्यङ्गुलं कुटिलाग्रात्तु चतुर्थं पूर्ववत्तथा ।
त्यक्ताङ्गुलान्तरे रेखां कारयेदतिसूक्ष्मतः ॥१३॥
रेखामाश्रित्य पृष्ठे तु रन्ध्रान् वंशगतोपमान् ।
त्रियवाधिकमानेन सुवृत्तान् वक्रगम्यकैः ॥१४॥

---

१. The Ms. comnences with invocatory Statement : [हरिः] श्रीगणपतये नमः । अविघ्नमस्तु ।

कुटिलान्तःस्थिते खर्वपट्टिकासप्तके क्रमात् ।
घने द्व्यङ्गुलमाने च रन्ध्रान् कर्तुमिहोच्यते ॥१५॥
अंशाङ्कात् पट्टिकानां च कुर्यात् पूर्वापरं घनम् ।
तासामधश्चोपरि च वक्रगम्यायतं द्विधा ॥१६॥
ऊनाधिकत्रिपादार्धाङ्गुलैः कुटिलक्रमम् ।
स्तम्भादेकादिह प्रोक्तं पट्टिकाद्याद् यथाक्रमम् ॥१७॥
सपादनवकं चैव पादाधिकदिवाकरः ।
अर्धोनषोडशं चैव षोडशं च ततः परम् ॥१८॥
अष्टादश त्रिपादोनसार्धषोडशषोडशौ ।
अर्धाधिकमनुस्तेन सपादं तु त्रयोदश ॥१९॥
सपादनिधिशैलौ च सत्रिपादार्णवानलौ ।
पक्षान्तरमिहैवोक्तं चतुर्थशरयोः क्रमात् ॥२०॥
कलापञ्चदशा सार्धौ तत् सपादत्रयोदशम् ।
सपादमिहिरेणापि कुर्यान्मानं द्वयोरिति ॥२१॥
पट्टिकापञ्चके पक्षे रुद्रादित्यौ तु षोडशौ ।
तथैव च पुनः कुर्यात् तत्त्रयोदशभास्करौ ॥२२॥
रसबाणौ तृतीयात् तु पक्षान्तरमथोच्यते ।
मनुत्रयोदशौ सूर्यदिशौ रसशराविति ॥२३॥
विना पक्षान्तरेणैकं वक्रक्रममथोच्यते ।
दशार्कषोडशाः सप्तदशं चाष्टादशद्वयम् ॥२४॥
अर्धोनाष्टादशं चैव षोडशं च तिथिर्मनुः ।
एकादशं दशं सप्त रसमेतैश्च सप्तके ॥२५॥
पूर्वक्रमेण तद्वक्रं नृणां नेत्रप्रियावहम् ।
उक्तसङ्ख्याङ्गुलैरेवं कृत्वा रेखां ततः परम् ॥२६॥
वक्रगम्यैः सुरन्ध्राणि वेणोः पुष्टचैव पूर्ववत् ।
रन्ध्रैश्च वंशयात्येवं वक्रक्षेमकराय च ॥२७॥
नित्यं वंशादिकं दृष्ट्वा रज्जुकीलादिभिः सुधीः ।
कुर्यात् तत्रोचितं कर्म तथाप्यधिकसूक्ष्मतः ॥२८॥
पिपीलिकादंशकीटभृङ्गेभ्यः परिपालयेत् ।
सार्धे मास्यनलाङ्कोर्ध्वान् कण्टकान् दिनपञ्चकैः ॥२९॥
शराङ्गुलोर्ध्वमेकैकं स बहिश्चर्मकं त्यजेत् ।
त्रिमासानिड (?सेन व) चाचूर्णतैलं मासेन लेपयेत् ॥३०॥
अब्दान्ते लूनयेदग्रं रुद्रहस्तात् परं ततः ।
दिनवत्सरमासानां चतुर्थं वा तृतीयकम् ॥३१॥
नीत्वाथ सुमुहूर्ते तु दीपविघ्नेश्वरादिभिः ।
वेणोश्च लूनयेन्मूलं ततो तिथिदिनात् परम् ॥३२॥

यन्त्रं चोत्पाट्य तेनैव सह भूमौ विनिक्षिपेत् ।
पट्टिकाभ्यस्ततः स्तम्भौ विमुच्यास्य तु कण्टकान् ।।३३।।
आमूलमेव विच्छिद्य वंशान्मुच्येत पट्टिकाः ।
परितः कण्टकस्थानं सुशिल्पं कारयेन्मृदु ।।३४।।
किञ्चित्तु तिलजं लिप्त्वा ततः सप्तदिनात् परम् ।
सत्रिपादद्विहस्तं वा सपादं मूलमप्यतः ।।३५।।
सवितस्त्यायतेनैव मूलाग्रे कारयेत्ततः ।
अयुगाङ्गुलयुक्तैर्वा हीनैरिष्टायतं द्वयोः ।।३६।।
स्वर्णेन रजतेनापि सूकरस्य गजस्य च ।
शीर्षमूलाग्रयोः कृत्वा हेमरूप्यारकूटकैः ।।३७।।
बद्ध्वा त्रिबाणमुनिभिरङ्गुलैरायतैर्द्वयोः ।
कल्पयेत् शिबिकायोग्यवक्रवेणुं महामतिः ।।३८।।
उक्तः वक्रोन्नतं त्वस्य शुभं पञ्चदशाङ्गुलैः ।
वक्रस्यान्तःस्थितानां तु पट्टिकानां तृतीयकात् ।।३९।।
पट्टिकापञ्चके पक्षे द्वितीयादेव च क्रमात् ।
त्रयोदशं च रुद्रश्च निधिश्च शुभदोन्नतम् ।।४०।।
आभ्यां तु कुटिलो[र्ध्वा]भ्यां निपुणैर्दृष्टलक्षणैः ।
केचिद् वक्रोच्चमित्याहुस्तथा वंशश्च दृश्यते ।।४१।।
स्तम्भयोरन्तरे द्वे वा त्रयं वाङ्कुरमस्ति चेत् ।
पूर्वरन्ध्रापरान्नेत्राङ्गुलं वार्धोनमेव वा ।।४२।।
त्यक्त्वातो वंशपुष्टयात्र कुर्याद् रन्ध्राणि पूर्ववत् ।
पुनरप्येवमेवैकां सुषिरालिं च कल्पयेत् ।
तथैव गत्वा स्वाविद्धाः सम्भविष्यन्ति वेणवः ।।४३।।
वक्राश्चायतमूलाग्रैक्याङ्गुलैष्टादिभिर्हृताः ।
ध्वजाद्ययुगे योन्याद्यां द्विजादिक्रमतः शुभाः ।।४४।।

वंशवक्रप्रकरणम्

•

राजस्थान के शिलालेखों का वर्गीकरण

डॉ० रामवल्लभ सोमानी

इतिहासकी साधन सामग्रीमें शिलालेखोंका स्थान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। राजस्थानमें मौर्यकालसे ही लेकर बड़ी संख्यामें शिलालेख मिलते हैं। इनको मोटे रूपसे निम्नांकित भागोंमें बाँट सकते हैं :—

१. स्मारक लेख

२. स्तम्भ लेख

३. प्रशस्तियाँ

४. ताम्रपत्र

५. सुरट्ट व अन्य धार्मिक लेख

६. मूर्ति लेख

७. अन्य

स्मारक लेखोंमें मुख्य रूपसे वे लेख हैं जिन्हें घटना विशेषको चिरस्थायी बनानेके लिए लगाये जाते हैं। राजस्थानमें "मरणे मंगल होय"की भावना बड़ी बलवती रही है। युद्धमें मृत वीरोंको मुक्ति मिलनेका उल्लेख मिलता है। राजस्थानके साहित्यमें इस प्रकारके सैकड़ों पद्य और गीत उपलब्ध हैं किन्तु शिलालेखोंमें भी इस सम्बन्धमें सामग्री मिलती है। वि० सं० १५३०के डूँगरपुर[1]के सूरजपोलके लेखमें उल्लेख है कि जब सुल्तान गयासुद्दीन खिलजीकी सेनाने डूँगरपुरपर आक्रमण किया तब शत्रुओंसे लोहा लेता हुआ रातिया कालियाने वीरगति प्राप्त कर सायुज्य मुक्ति प्राप्त की। लेखमें यह भी लिखा है कि स्वामीकी आज्ञा न होते हुए भी कुलधर्मकी पालना करता हुआ वह काम आया। इस प्रकार देशभक्तिसे ओत-प्रोत राजस्थानी जन-जीवन एक अनुपम उदाहरण प्रस्तुत करता आया है। हमारे राजस्थानके स्मारक लेखोंमें इसी प्रकारके लेख हैं जिन्हें मुख्यरूपसे इस प्रकार बाँट सकते हैं :—(१) सतियों के लेख (२) झुंझार लेख (३) गोवर्द्धन लेख (४) अन्य आदि।

सतियोंके लेख राजस्थानमें बड़ी संख्यामें मिले हैं। ये लेख प्रायः एक शिलापर खुदे रहते हैं। इसके ऊपरके भागमें सूरज, चाँद बने रहते हैं। मृत पुरुष और सती होनेवाली नारी या नारियोंका अंकन भी बराबर होता है। कई बार पुरुष घोड़ेपर सवार भी बतलाया गया है। १३वीं शताब्दी तकके लेखोंमें पुरुषोंके दाढ़ी आदि उस कालकी विशिष्ट पहिनावाकी ओर ध्यान अंगित करते हैं। इन लेखोंके प्रारूपमें मुख्य बात मृत पुरुषका नाम गोत्र आदि एवं सती होनेवाली स्त्रीका उल्लेख होता है। सती शब्दका प्रयोग प्रारम्भमें नहीं होता था केवल "उपगता" शब्द या इससे समकक्ष अन्य शब्द होता था। कालान्तरमें सती शब्दका प्रयोग किया गया है। इन लेखोंको "देवली संज्ञक" भी कहा जाता रहा है। १६वीं शताब्दी और उसके बादके उत्तरी राजस्थानके लेखोंमें प्रारम्भमें गणपतिकी वन्दना, बादमें ज्योतिषके अनुसार संवत्, मास, तिथि, वार, नक्षत्र, पल आदिका विस्तारसे उल्लेख मिलता है।

---

१. ओझा—डूँगरपुर राज्यका इतिहास।

यन्त्रं चोत्पाट्य तेनैव सह भूमौ विनिक्षिपेत् ।
पट्टिकाभ्यस्ततः स्तम्भौ विमुच्यास्य तु कण्टकान् ॥३३॥
आमूलमेव विच्छिद्य वंशान्मुच्येत पट्टिकाः ।
परितः कण्टकस्थानं सुशिल्पं कारयेन्मृदु ॥३४॥
किञ्चित्तु तिलजं लिप्त्वा ततः सप्तदिनात् परम् ।
सत्रिपादद्विहस्तं वा सपादं मूलमप्यतः ॥३५॥
सवितस्त्यायतेनैव मूलाग्रे कारयेत्ततः ।
अयुगाङ्गुलयुक्तैर्वा हीनैरिष्टायतं द्वयोः ॥३६॥
स्वर्णेन रजतेनापि सूकरस्य गजस्य च ।
शीर्षमूलाग्रयोः कृत्वा हेमरूप्यारकूटकैः ॥३७॥
बद्ध्वा त्रिवाणमुनिभिरङ्गुलैरायतैर्द्वयोः ।
कल्पयेत् शिबिकायोग्यवक्रवेणुं महामतिः ॥३८॥
उक्तं वक्रोन्नतं त्वस्य शुभं पञ्चदशाङ्गुलैः ।
वक्रस्यान्तःस्थितानां तु पट्टिकानां तृतीयकात् ॥३९॥
पट्टिकापञ्चके पक्षे द्वितीयादेव च क्रमात् ।
त्रयोदशं च रुद्रश्च निधिश्च शुभदोन्नतम् ॥४०॥
आभ्यां तु कुटिलो[र्ध्वा]भ्यां निपुणैर्दृष्टलक्षणैः ।
केचिद् वक्रोच्चमित्याहुस्तथा वंशश्च दृश्यते ॥४१॥
स्तम्भयोरन्तरे द्वे वा त्रयं वाङ्कुरमस्ति चेत् ।
पूर्वरन्ध्रापरान्नेत्राङ्गुलं वार्धोनमेव वा ॥४२॥
त्यक्त्वातो वंशपुष्टयात्र कुर्याद् रन्ध्राणि पूर्ववत् ।
पुनरप्येवमेवैकां सुषिरालिं च कल्पयेत् ।
तथैव गत्वा स्वाविद्धाः सम्भविष्यन्ति वेणवः ॥४३॥
वक्राश्चायतमूलाग्रैक्याङ्गुलैष्टादिभिर्हृताः ।
ध्वजाद्ययुगे योन्याद्यां द्विजादिक्रमतः शुभाः ॥४४॥

वंशवक्रप्रकरणम्

•

राजस्थान के शिलालेखों का वर्गीकरण

डॉ० रामवल्लभ सोमानी

इतिहासकी साधन सामग्रीमें शिलालेखोंका स्थान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। राजस्थानमें मौर्यकालसे ही लेकर बड़ी संख्यामें शिलालेख मिलते हैं। इनको मोटे रूपसे निम्नांकित भागोंमें बाँट सकते हैं :—

१. स्मारक लेख
२. स्तम्भ लेख
३. प्रशस्तियाँ
४. ताम्रपत्र
५. सुरट्ट व अन्य धार्मिक लेख
६. मूर्ति लेख
७. अन्य

स्मारक लेखोंमें मुख्य रूपसे वे लेख हैं जिन्हें घटना विशेषको चिरस्थायी बनानेके लिए लगाये जाते हैं। राजस्थानमें "मरणे मंगल होय"की भावना बड़ी बलवती रही है। युद्धमें मृत वीरोंको मुक्ति मिलनेका उल्लेख मिलता है। राजस्थानके साहित्यमें इस प्रकारके सैकड़ों पद्य और गीत उपलब्ध हैं किन्तु शिलालेखोंमें भी इस सम्बन्धमें सामग्री मिलती है। वि० सं० १५३०के डूँगरपुर[1]के सूरजपोलके लेखमें उल्लेख है कि जब सुल्तान गयासुद्दीन खिलजीकी सेनाने डूँगरपुरपर आक्रमण किया तब शत्रुओंसे लोहा लेता हुआ रातिया कालियाने वीरगति प्राप्त कर सायुज्य मुक्ति प्राप्त की। लेखमें यह भी लिखा है कि स्वामीकी आज्ञा न होते हुए भी कुलधर्मकी पालना करता हुआ वह काम आया। इस प्रकार देशभक्तिसे ओत-प्रोत राजस्थानी जन-जीवन एक अनुपम उदाहरण प्रस्तुत करता आया है। हमारे राजस्थानके स्मारक लेखोंमें इसी प्रकारके लेख हैं जिन्हें मुख्यरूपसे इस प्रकार बाँट सकते हैं :—(१) सतियों के लेख (२) झुंझार लेख (३) गोवर्द्धन लेख (४) अन्य आदि।

सतियोंके लेख राजस्थानमें बड़ी संख्यामें मिले हैं। ये लेख प्रायः एक शिलापर खुदे रहते हैं। इसके ऊपरके भागमें सूरज, चाँद बने रहते हैं। मृत पुरुष और सती होनेवाली नारी या नारियोंका अंकन भी बराबर होता है। कई बार पुरुष घोड़ेपर सवार भी बतलाया गया है। १३वीं शताब्दी तकके लेखोंमें पुरुषोंके दाढ़ी आदि उस कालकी विशिष्ट पहिनावाकी ओर ध्यान अंगित करते हैं। इन लेखोंके प्रारूपमें मुख्य बात मृत पुरुषका नाम गोत्र आदि एवं सती होनेवाली स्त्रीका उल्लेख होता है। सती शब्दका प्रयोग प्रारम्भमें नहीं होता था केवल "उपगता" शब्द या इससे समकक्ष अन्य शब्द होता था। कालान्तरमें सती शब्दका प्रयोग किया गया है। इन लेखोंको "देवली संज्ञक" भी कहा जाता रहा है। १६वीं शताब्दी और उसके बादके उत्तरी राजस्थानके लेखोंमें प्रारम्भमें गणपतिकी वन्दना, बादमें ज्योतिषके अनुसार संवत्, मास, तिथि, वार, नक्षत्र, पल आदिका विस्तारसे उल्लेख मिलता है।

---

१. ओझा—डूँगरपुर राज्यका इतिहास।

राजस्थानसे प्राप्त सतियोंका सबसे प्राचीन लेख सं० १०६का पुष्करसे मिला हुआ लेख था। इस लेखका उल्लेख श्री हरबिलासजी शारदाने किया था। यह लेख अब अज्ञात है। सम्भवत: ओझाजीने भी इसे नहीं देखा है अतएव इस सम्बन्धमें कुछ निश्चित तथ्यात्मक बात नहीं कही जा सकती है। अब तक ज्ञात लेखोंमें सं० ७४३, ७४५ और ७४९ के छोटी खाटूके लेख उल्लेखनीय हैं। इन लेखोंको डी० आर० भण्डारकर महोदयने प्रथम बार देखा था और सारांश प्रकाशित कराया[1] था। ये तीनों लेख लघु लेख हैं। सं० ७४३ के लेखमें "उवरक पत्नी गद्धिणी देवी उपगता" वर्णित है। धोलपुरके चण्डमहासेनके विस्तृत लेखमें इसुकके पुत्र महिषरामकी स्त्री कण्डुला, जो सती हुई थी, की मृत्युका उल्लेख है। ओसियाँसे सं० ८९५, घटियालेसे सं० ९४३, ९४७ और १०४२ के सतीके लेख मिले हैं। बीकानेरके खीदसरके कुँएके पाससे सं० १०२० का सतीका लेख मिला है। इन प्रारम्भिक सतीके लेखोंमें पति और पत्नीकी मृत्युका उल्लेख मात्र है। सं० ९४७ के घटियालेके प्रतिहार राणुकके लेखमें पतिकी मृत्युका लेख अलग है और पत्नीकी मृत्युका अलग। ऐसा लगता है कि दोनोंके लिए अलग-अलग देवलियाँ बनायी गयी थीं। बेरासर (बीकानेर) के सं० ११६१ के लेखमें "सुहागु राषसण" शब्द अंकित है। इससे स्पष्ट है कि पतिकी मृत्युके बाद वैधव्य दुःखसे पीड़ित न होकर पतिके साथ ही सती होनेका संकेत है। घडाव (जोधपुरके समीप) सं० ११८० के ३ शिलालेख मिले हैं जिनमें गुहिल वंशी हुरजाकी मृत्युका उल्लेख है एवं कई स्त्रियोंके सती होनेका अलग-अलग लेखोंमें उल्लेख है। इसी समयके वि० सं० १२१२के मंडोरके लेखमें एक लेखमें कई स्त्रियोंके सती होनेका उल्लेख है। अतएव इस सम्बन्धमें कोई निश्चित नीति नहीं अपनायी गयी प्रतीत होती है।

१३वीं शताब्दीसे "देवली बनाने" का उल्लेख भी शिलालेखोंमें किया जाता रहा है। वि० सं० १२३९ के केचल्लदेवीके गढ़ (अलवर[2]) के लेखमें राणी केचलदेवीकी मूर्ति बनानेका उल्लेख है। सामान्यतः उस समयतक लेखोंमें सती शब्दके साथ "काष्टारोहण" करना उल्लेखित किया गया है। केत्रलसरके वि० सं० १३२८ के लेखमें सांखला कमलसीके साथ उसकी पत्नी पूनमदेका काष्टारोहण करना वर्णित है। वि० सं० १३४८ के छापरके लेखमें भी उल्लेख किया है। वि० सं० १३३० का बीठूका लेख महत्त्वपूर्ण[3] है। इसमें मारवाड़में राठौड राज्यके संस्थापक राव सीहाकी मृत्यु और उसकी स्त्री सोलंकिनी पार्वतीका सहगमन करना वर्णित है। जैसलमेरके लेख श्री अगरचंदजी नाहटाने पड़े परिश्रमसे इकट्ठे किये हैं। इन लेखोंमें भट्टिक संवत् का प्रयोग हो रहा है। वि० सं० १४१८ और भट्टिक सं० ७३८ के घडसिंहके लेखमें उसकी राणियोंके सहगमन करनेका ही उल्लेख है। १६वीं शताब्दीसे वहाँके लेखोंमें भी सती शब्दका उल्लेख हुआ है। सं० १६८०के महारावल कल्याणदासकी मृत्युपर २ सतियाँ होनेका उल्लेख किया गया है।

इन लेखोंमें देवलीके लिए लोहटी शब्दका भी प्रयोग हुआ है। सं० १४१८ के रावल घडसिंहके एक लेखमें लोहटी (देवली) को महारावल केसरी द्वारा प्रतिष्ठापित करानेका उल्लेख है। सं० १३०९ के चूरू जिलेके हुडेरा ग्रामसे प्राप्त एक लेखमें "सत चढ़ना" लिखा है। यह लेख श्री गोविन्द अग्रवालने संगृहीत किया है। कुंभासरके सं० १६६९ के लेखमें माँ का पुत्रके साथ सती होना वर्णित है। इसी प्रकारके बीकानेर क्षेत्रसे और भी लेख मिले हैं। इनसे प्रतीत होता है कि माँ पुत्रके स्नेहके कारण उसकी मृत्युके बाद सती

---

१. वरदा वर्ष अप्रैल ६३ में प्रकाशित श्री रतनचन्द्र अग्रवालका लेख पृ० ६८ से ७९।

२. मरु भारती वर्ष १३ अंक २ पृ० ७२।

३. रेऊ—मारवाड़का इतिहास भाग १ पृ० ४०।

हो गयी लेकिन ऐसे मामले राजस्थानमें कम हैं। देवलियोंको बनानेके लिए "खणाव्रित" और जीर्णोद्धारके "उधारित" शब्दोंका प्राय: प्रयोग किया गया है। कई बार देवलियोंके स्थानपर छत्री और मंडप भी बनाये जाते हैं। चाड़वासके वि० सं० १६५० के २ लेखोंमें गोपालदास[1] बीदावतने वि० सं० १६२५ में मरे श्वेतसिंहके पुत्र रामसी और वि० सं० १६४५ में मरे कुम्भकर्णकी स्मृतिमें छत्रियों और मण्डपोंका निर्माण कराया था। कई बार सतियाँ अपने पतिकी मृत्युकी सूचना प्राप्त होनेपर होती थीं। ऐसी घटनायें वहाँ होती थीं जब पतिकी मृत्यु विदेशमें हो जाती थी तब उसकी सूचना प्राप्त होनेपर उसकी स्त्री जहाँ कहीं हो सती हो जाती थी। इस सम्बन्धमें कई लेख उपलब्ध हैं। खमनोर[2]के पास मचीन्दमें वि० सं० १६८३ (१६२६ ई०)के लेखमें भीम सीसोदियाकी मृत्यु बनारसमें हो जानेपर उसकी राणीके वहाँ सती होने और उन दोनोंकी स्मृतिमें वहाँ छत्री बनानेका उल्लेख है। भीम सिसोदिया, स्मरण रहे कि महाराणा अमरसिंहका पुत्र था जो खुर्रमकी सेनामें सेनापति था। खुर्रमने अपने पिता जहाँगीरके विरुद्ध विद्रोह किया था तब मुगल सेनाके साथ लड़ता हुआ भीम काम आया था। यह घटना सं० १६८१ में हुई थी। इस प्रकार इस घटनाके २ वर्ष बाद सती होना ज्ञात होता है। बीकानेर और जोधपुर क्षेत्रसे भी ऐसे कई लेख मिले हैं जिनमें दक्षिणमें युद्धमें मारे जानेपर सती होनेका उल्लेख किया गया है।

उस समय आवश्यक नहीं था कि सबकी रानियाँ सती होवें। कई बार रानियाँ जिनके पुत्र या तो ज्येष्ठ राजकुमार थे या गर्भवती होती थीं तो सती नहीं होती थीं। पुरुषोंके भी प्रेमिकाके साथ मरनेका उल्लेख मिलता है। ऐसी घटनायें अत्यन्त कम हैं। आबू क्षेत्रसे प्राप्त और वहाँके संग्रहालयमें रखे नगरनायका प्रेमीके एक लेखमें ऐसी घटनाका उल्लेख है। यह लेख सं० १५६५ का है। इसी प्रकारसे ताराचन्द कावड़िया जब गौड़वाड़का मेवाड़की ओरसे शासक था तब उसकी मृत्यु सादड़ीमें हो गयी थी। उसका दाह उसके द्वारा बनायी गयी प्रसिद्ध बावड़ीके पास ही हुआ था। उसके साथ उसकी पत्नियोंके साथ कई गायक भी मरे थे। दुर्भाग्यसे अब बावड़ीका जीर्णोद्धार हो जानेसे मूल लेख नष्ट हो गये हैं। इन पंक्तियोंके लेखकने ये लेख वहाँ देखे थे और उक्त बावड़ीका शिलालेख भी सम्पादित करके मरुभारतीमें प्रकाशित कराया था। इस प्रकार इन सतियोंके लेखोंसे तत्कालीन समाजके ढाँचेका विस्तृत ज्ञान हो जाता है। बहुविवाह प्रथा राजपूतोंके साथ वैश्य वर्गमें भी थी। ओसवालोंके कई लेखोंसे इसकी पुष्टि होती है। सतियोंका बड़ा सन्मान किया जाता रहा है। देवलियों की पूजा और मानता दी जाती रही है। जिस जातिमें सती होगी वे उसे बराबर पूजा करते रहते हैं।

युद्धमें मरनेपर वीरोंकी स्मृतिमें भी लेख खुदानेकी परिपाटी रही है। इन लेखोंको "झुंझार" लेख कहते हैं। इनमें सबसे प्राचीन ३री शताब्दी ई० पू० का खण्डेलाका लेख है। लेखमें मूला द्वारा किसी व्यक्तिकी मृत्युका उल्लेख है जिसकी स्मृतिमें महीश द्वारा उसको खुदानेका उल्लेख किया गया है। लेख खंडित है। लेकिन इससे ३री शताब्दी ई० पू०[3] से इस परम्पराके विद्यमान होनेका पता चलता है। चर्लुसे प्राप्त वि० सं० १२४१ के लेखोंमें मोहिल अरड़ कमलके नागपुरके युद्धमें[4] मरनेका उल्लेख है। वि० सं० १२४३ के रैवासाके शिलालेखमें चन्देल नानण, जो सिंहराजका पुत्र था, की मृत्युका उल्लेख है। लेखमें

---

१. मरुश्री भाग १ अंक १ में प्रकाशित मेरा लेख "बीदावतोंके अप्रकाशित लेख"।

२. राजपूताना म्युजियम रिपोर्ट वर्ष १९३२ लेख सं० ८०।

३. उक्त वर्ष १९३५ लेख सं० १।

४. अरली चौहान डाइनेस्टिज पृ० ९३-९४।

राजस्थानसे प्राप्त सतियोंका सबसे प्राचीन लेख सं० १०६का पुष्करसे मिला हुआ लेख था। इस लेखका उल्लेख श्री हरबिलासजी शारदाने किया था। यह लेख अब अज्ञात है। सम्भवत: ओझाजीने भी इसे नहीं देखा है अतएव इस सम्बन्धमें कुछ निश्चित तथ्यात्मक बात नहीं कही जा सकती है। अब तक ज्ञात लेखोंमें सं० ७४३, ७४५ और ७४९ के छोटी खाटूके लेख उल्लेखनीय हैं। इन लेखोंको डी० आर० भण्डारकर महोदयने प्रथम बार देखा था और सारांश प्रकाशित कराया[१] था। ये तीनों लेख लघु लेख हैं। सं० ७४३ के लेखमें "उवरक पत्नी गद्धिणी देवी उपगता" वर्णित है। धोलपुरके चण्डमहासेनके विस्तृत लेखमें इसुकके पुत्र महिषरामकी स्त्री कण्डुला, जो सती हुई थी, की मृत्युका उल्लेख है। ओसियाँसे सं० ८९५, घटियालेसे सं० ९४३, ९४७ और १०४२ के सतीके लेख मिले हैं। बीकानेरके खीदसरके कुँएके पाससे सं० १०२० का सतीका लेख मिला है। इन प्रारम्भिक सतीके लेखोंमें पति और पत्नीकी मृत्युका उल्लेख मात्र है। सं० ९४७ के घटियालेके प्रतिहार राणुकके लेखमें पतिकी मृत्युका लेख अलग है और पत्नीकी मृत्युका अलग। ऐसा लगता है कि दोनोंके लिए अलग-अलग देवलियाँ बनायी गयी थीं। बेरासर (बीकानेर) के सं० ११६१ के लेखमें "सुहागु राषसण" शब्द अंकित है। इससे स्पष्ट है कि पतिकी मृत्युके बाद वैधव्य दुःखसे पीड़ित न होकर पतिके साथ ही सती होनेका संकेत है। घडाव (जोधपुरके समीप) सं० ११८० के ३ शिलालेख मिले हैं जिनमें गुहिल वंशी हुरजाकी मृत्युका उल्लेख है एवं कई स्त्रियोंके सती होनेका अलग-अलग लेखोंमें उल्लेख है। इसी समयके वि० सं० १२१२के मंडोरके लेखमें एक लेखमें कई स्त्रियोंके सती होनेका उल्लेख है। अतएव इस सम्बन्धमें कोई निश्चित नीति नहीं अपनायी गयी प्रतीत होती है।

१३वीं शताब्दीसे "देवली बनाने" का उल्लेख भी शिलालेखोंमें किया जाता रहा है। वि० सं० १२३९ के केचल्लदेवीके गढ़ (अलवर[२]) के लेखमें राणी केचलदेवीकी मूर्ति बनानेका उल्लेख है। सामान्यतः उस समयतक लेखोंमें सती शब्दके साथ "काष्टारोहण" करना उल्लेखित किया गया है। केवलसरके वि० सं० १३२८ के लेखमें सांखला कमलसीके साथ उसकी पत्नी पूनमदेका काष्टारोहण करना वर्णित है। वि० सं० १३४८ के छापरके लेखमें भी उल्लेख किया है। वि० सं० १३३० का वीठूका लेख महत्त्वपूर्ण[३] है। इसमें मारवाड़में राठौड राज्यके संस्थापक राव सीहाकी मृत्यु और उसकी स्त्री सोलंकिनी पार्वतीका सहगमन करना वर्णित है। जैसलमेरके लेख श्री अगरचंदजी नाहटाने पड़े परिश्रमसे इकट्ठे किये हैं। इन लेखोंमें भट्टिक संवत् का प्रयोग हो रहा है। वि० सं० १४१८ और भट्टिक सं० ७३८ के घडसिंहके लेखमें उसकी राणियोंके सहगमन करनेका ही उल्लेख है। १६वीं शताब्दीसे वहांके लेखोंमें भी सती शब्दका उल्लेख हुआ है। सं० १६८०के महारावल कल्याणदासकी मृत्युपर २ सतियाँ होनेका उल्लेख किया गया है।

इन लेखोंमें देवलीके लिए लोहटी शब्दका भी प्रयोग हुआ है। सं० १४१८ के रावल घडसिंहके एक लेखमें लोहटी (देवली) को महारावल केसरी द्वारा प्रतिष्ठापित करानेका उल्लेख है। सं० १३०९ के चुरू जिलेके हुडेरा ग्रामसे प्राप्त एक लेखमें "सत चढ़ना" लिखा है। यह लेख श्री गोविन्द अग्रवालने संगृहीत किया है। कुंभासरके सं० १६६९ के लेखमें माँ का पुत्रके साथ सती होना वर्णित है। इसी प्रकारके बीकानेर क्षेत्रसे और भी लेख मिले हैं। इनसे प्रतीत होता है कि माँ पुत्रके स्नेहके कारण उसकी मृत्युके बाद सती

---

१. वरदा वर्ष अप्रैल ६३ में प्रकाशित श्री रतनचन्द्र अग्रवालका लेख पृ० ६८ से ७९।

२. मरु भारती वर्ष १३ अंक २ पृ० ७२।

३. रेऊ—मारवाड़का इतिहास भाग १ पृ० ४०।

हो गयी लेकिन ऐसे मामले राजस्थानमें कम हैं। देवलियोंको बनानेके लिए "खणावित" और जीर्णोद्धारके "उधारित" शब्दोंका प्राय: प्रयोग किया गया है। कई बार देवलियोंके स्थानपर छत्री और मंडप भी बनाये जाते हैं। चाड़वासके वि० सं० १६५० के २ लेखोंमें गोपालदास[1] बीदावतने वि० सं० १६२५ में मरे श्वेतसिंहके पुत्र रामसी और वि० सं० १६४५ में मरे कुम्भकर्णकी स्मृतिमें छत्रियों और मण्डपोंका निर्माण कराया था। कई बार सतियाँ अपने पतिकी मृत्युकी सूचना प्राप्त होनेपर होती थीं। ऐसी घटनायें वहाँ होती थीं जब पतिकी मृत्यु विदेशमें हो जाती थी तब उसकी सूचना प्राप्त होनेपर उसकी स्त्री जहाँ कहीं हो सती हो जाती थी। इस सम्बन्धमें कई लेख उपलब्ध हैं। खमनोर[2] के पास मचीन्दमें वि० सं० १६८३ (१६२६ ई०)के लेखमें भीम सीसोदियाकी मृत्यु बनारसमें हो जानेपर उसकी राणीके वहाँ सती होने और उन दोनोंकी स्मृतिमें वहाँ छत्री बनानेका उल्लेख है। भीम सिसोदिया, स्मरण रहे कि महाराणा अमरसिंहका पुत्र था जो खुर्रमकी सेनामें सेनापति था। खुर्रमने अपने पिता जहाँगीरके विरुद्ध विद्रोह किया था तब मुगल सेनाके साथ लड़ता हुआ भीम काम आया था। यह घटना सं० १६८१ में हुई थी। इस प्रकार इस घटनाके २ वर्ष बाद सती होना ज्ञात होता है। बीकानेर और जोधपुर क्षेत्रसे भी ऐसे कई लेख मिले हैं जिनमें दक्षिणमें युद्धमें मारे जानेपर सती होनेका उल्लेख किया गया है।

उस समय आवश्यक नहीं था कि सबकी रानियाँ सती होवें। कई बार रानियाँ जिनके पुत्र या तो ज्येष्ठ राजकुमार थे या गर्भवती होती थीं तो सती नहीं होती थीं। पुरुषोंके भी प्रेमिकाके साथ मरनेका उल्लेख मिलता है। ऐसी घटनायें अत्यन्त कम हैं। आबू क्षेत्रसे प्राप्त और वहाँके संग्रहालयमें रखे नगरनायका प्रेमीके एक लेखमें ऐसी घटनाका उल्लेख है। यह लेख सं० १५६५ का है। इसी प्रकारसे ताराचन्द कावड़िया जब गौड़वाड़का मेवाड़की ओरसे शासक था तब उसकी मृत्यु सादड़ीमें हो गयी थी। उसका दाह उसके द्वारा बनायी गयी प्रसिद्ध बावड़ीके पास ही हुआ था। उसके साथ उसकी पत्नियोंके साथ कई गायक भी मरे थे। दुर्भाग्यसे अब बावड़ीका जीर्णोद्धार हो जानेसे मूल लेख नष्ट हो गये हैं। इन पंक्तियोंके लेखकने ये लेख वहाँ देखे थे और उक्त बावड़ीका शिलालेख भी सम्पादित करके मरुभारतीमें प्रकाशित कराया था। इस प्रकार इन सतियोंके लेखोंसे तत्कालीन समाजके ढाँचेका विस्तृत ज्ञान हो जाता है। बहुविवाह प्रथा राजपूतोंके साथ वैश्य वर्गमें भी थी। ओसवालोंके कई लेखोंसे इसकी पुष्टि होती है। सतियोंका बड़ा सन्मान किया जाता रहा है। देवलियों की पूजा और मानता दी जाती रही है। जिस जातिमें सती होगी वे उसे बराबर पूजा करते रहते हैं।

युद्धमें मरनेपर वीरोंकी स्मृतिमें भी लेख खुदानेकी परिपाटी रही है। इन लेखोंको "झुंझार" लेख कहते हैं। इनमें सबसे प्राचीन ३री शताब्दी ई० पू० का खण्डेलाका लेख है। लेखमें मूला द्वारा किसी व्यक्तिकी मृत्युका उल्लेख है जिसकी स्मृतिमें महीश द्वारा उसको खुदानेका उल्लेख किया गया है। लेख खंडित है। लेकिन इससे ३री शताब्दी ई० पू०[3] से इस परम्पराके विद्यमान होनेका पता चलता है। चर्लुसे प्राप्त वि० सं० १२४१ के लेखोंमें मोहिल अरड़ कमलके नागपुरके युद्धमें[4] मरनेका उल्लेख है। वि० सं० १२४३ के रैवासाके शिलालेखमें चन्देल नानण, जो सिंहराजका पुत्र था, की मृत्युका उल्लेख है। लेखमें

१. मरुश्री भाग १ अंक १ में प्रकाशित मेरा लेख "बीदावतोंके अप्रकाशित लेख"।

२. राजपूताना म्युजियम रिपोर्ट वर्ष १९३२ लेख सं० ८०।

३. उक्त वर्ष १९३५ लेख सं० १।

४. अरली चौहान डाइनेस्टिज पृ० ९३-९४।

इसके खलुवानाके युद्धमें लड़ते हुए मरनेका उल्लेख किया है। इसकी स्मृतिमें जसराक द्वारा देवली बनानेका उल्लेख है। डुंगरपुरसे वि० सं० १४९८ और १५३० के लेख मिले हैं। वि० सं० १४९८ के लेखमें वर्णित है कि जब डूँगरपुर[1] पर शत्रुका आक्रमण हुआ तब रक्षा करते काम आनेवाले वीरोंका उल्लेख है। यह आक्रमण महाराणा कुम्भाने किया था। वि० सं० १५३० के लेखमें जैसा कि ऊपर उल्लेखित है सुल्तान गयासुद्दीन खिलजीके मालवाके आक्रमणकी ओर संकेत है। इसी प्रकार अकबर और गुजरातके सुल्तान अहमदशाहके बागदपर आक्रमणके समय मरनेवालोंकी स्मृतियोंमें लेख खुदे हुए मिले हैं। ये लेख चबूतरोंपर लगे हुए हैं। मेवाड़से भी कई लेख मिल हैं। करेड़ा जैन मंदिरमें लगे वि० सं० १३९२ के एक लेखमें युद्धमें मृत वीरकी स्मृतिमें "गोमट्ट" बनानेका उल्लेख है। बीकानेर क्षेत्रके उदासरसे वि० सं० १६३४ और १७५० के लेखोंमें भी ऐसा ही उल्लेख है। राजस्थानमें दीर्घकाल तक युद्ध होते रहे हैं। अतएव ऐसे लेखोंकी अधिकता होना स्वाभाविक है।

गायों की रक्षा करते हुए मरना भी गौरव और धार्मिक कर्त्तव्य माना जाता था। ऐसे कई लेख भारतके विभिन्न भागोंके मिले हैं। पश्चिमी राजस्थानमें गायोंकी रक्षा करते हुए मरना एक विशिष्ट घटना थी। इन वीरोंकी स्मृतिमें जो लेख लगाये गये हैं इन्हें "गोवर्द्धन" कहते हैं। इन स्तम्भोंपर गोवर्द्धन-धारी कृष्णका अंकन होनेसे इन्हें गोवर्द्धन कहते हैं। प्रारम्भमें गायोंकी रक्षा करते हुए मरनेवालोंके लिए ही थे बनते थे किन्तु कालान्तरमें इनको वाहरी मुस्लिम आक्रान्ताओंके साथ मरनेवालोंके लिए भी मान लिया गया। इस प्रकार इनका अर्थ व्यापक हो गया था। ये लेख राजस्थानके उत्तरी पश्चिमी सीमान्त प्रान्तसे लेकर नागौर डीहवागा साँभरके पास स्थित भादवा गाँव तकसे मिले हैं। इस क्षेत्रवासियोंको सदैव मुस्लिम आक्रान्ताओंसे लोहा लेना पड़ा था अतएव इस क्षेत्रमें ही ये लेख अधिक मिले हैं जो प्रायः १० वीं शताब्दीसे १३ वीं शताब्दी तकके हैं। इनमें जैसलमेरकी प्राचीन राजधानी लोद्रवासे सं० ९७० ज्येष्ठ शुक्ला[3] १५ का लेख अवतक ज्ञात लेखोंमें प्राचीनतम है। इसमें क्षत्रिय वंशमें उत्पन्न रामधरके पुत्र भद्रकद्वारा गोवर्द्धनकी प्रतिष्ठा करानेका उल्लेख है। नागौरके पास बीठनसे सं० १००२ के लेखमें भी गोवर्द्धनके निर्माणका उल्लेख है। पोकरण जैसलमेर और मारवाड़की सीमापर स्थित है यहाँसे २ लेख मिले हैं सं० १०७० आषाढ़[4] सुदि ६ (२६।७।१०१२) का और दूसरा लेख बिना तिथिका है। ऐसा प्रतीत होता है कि सुल्तान महमूद गजनीके आक्रमणके समयकी ये घटनायें हैं। उसके मुल्तान आदि क्षेत्रोंपर अधिकार हो जानेके बादकी टुकड़ियोंके साथ उसका संघर्ष सीमान्त प्रान्तके निवासियोंसे हुआ था। सं० १०७० के शिलालेखमें परमारवंशी गोगाका उल्लेख है। दूसरे लेखमें गुहिलोतवंशी शासकोंका उल्लेख है। इसे अत्यन्त पराक्रमी और रणभूमिमें युद्ध करनेका उल्लेख किया है। संभवतः यह गजनीके सोमनाथके आक्रमणके समय युद्ध करते हुए काम आया हो तो आश्चर्य नहीं। जोधपुरके पाससे पालगाँवसे वि० सं० १२१८ और १२४२ के गोवर्द्धन लेख मिले हैं। भांड़ियावास (नागौर) से वि० सं० १२४४ का एक गोवर्द्धन लेख मिला है। लेखमें गोवर्द्धनकी प्रतिष्ठाका सुन्दर वर्णन है। जैसलमेरमें भट्टिक सं० ६८५के कई लेख मिले हैं। इनमें स्त्रियों और गायोंकी रक्षा करते हुए प्राण देना वर्णित है। यह घटना जैसलमेर पर अलाउद्दीन खिलजीके आक्रमणके समयकी है। गायों की रक्षा करते हुए, मरना भी गौरव माना जाता था।

१. महाराणा कुम्भा पृ० ९६-९७।

२. उपरोक्त पृ० १९९ फुटनोट ५५।

३. वरदा वर्ष अप्रेल १९६३ पृ० ६८ से ७९।

४. शोध पत्रिका वर्ष २२ अंक २ पृ० ६७ से ६९।

हर्ष सं० ८४के भरतपुरके पास कोट गांवके लेखमें ब्राह्मण लोहादित्य द्वारा गायोंकी रक्षा करते हुए मृत्युको प्राप्त करना वर्णित है। अजमेरके राजकीय संग्रहालयमें संगृहीत और बयानासे प्राप्त एक पूर्वमध्यकालीन शिलालेखमें भी ऐसा ही उल्लेख है। इसमें गायोंकी कई आकृतियां उत्कीर्ण हैं और एक पुरुष पीछे अंकित बतलाया गया है।

स्मृतिलेखोंमें साधारणतया "चरणयुगल" बनाकर उनपर छोटा लेखा खुदा रहता है। राजस्थानमें ऐसे लेख बड़ी संख्यामें मिलते हैं। इन्हें "पगलिया" कहते हैं। जैन साधुओंकी मृत्युके बाद निषेधिकायें बनायी जाती थीं जिनपर कई लेख मिले हैं।

स्तम्भलेख भी महत्त्वपूर्ण है। स्तम्भोंको कई नामोंसे जाना जाता है। यथा यष्ठि, यट्टि, लष्टि, लग केतन, यूप आदि। राजस्थानसे प्राप्त स्तम्भलेखोंको निम्नांकित भागों में बांट सकते हैं—

(क) यज्ञस्तूप सम्बन्धी लेख (२) कीर्त्तिस्तम्भके लेख और अन्यस्तम्भ लेख

राजस्थानसे यक्षस्तूप बड़ी संख्यामें मिले हैं। ये स्तम्भ यक्षोंकी स्मृतिको चिरस्थायी रखनेके लिए बनाये जाते थे। धर्मग्रन्थोंमें काष्ठके स्तम्भ बनानेका उल्लेख है। दक्षिणी पूर्वी राजस्थान से ही ये लेख अधिक संख्यामें प्राप्त हुए हैं। यक्षोंकी पुनरावृत्ति मौर्योंके बादसे हुई थी। वैदिक यक्षोंकी प्रतिक्रिया स्वरूप बौद्ध और जैन धर्मोंका उदय हुआ था किन्तु कालान्तरमें इन धर्मोंकी क्रियाओंका जनमानसपर प्रभाव होते हुए भी वे वैदिक परम्परायें छोड़ नहीं सके थे। इसीलिए समय पाकर फिर वैदिक यज्ञोंका पुनरुद्धार हुआ। यह भावना इतनी अधिक बलवती हुई कि यहाँ तक जैन शासक खारवेल तक इससे अछूते नहीं रह सके। राजस्थानमें यज्ञोंसे सम्बन्धित प्राचीनतम लेख नगरीका है। यह लगभग[1] २री शताब्दी ई० पू० का है। इसमें 'अश्वमेध" करनेका उल्लेख है। इस प्रकारके एक अन्य लघुलेखमें वहीं वाजपेय यज्ञका उल्लेख है। शुंगकालके बाद भागवत धर्म तेजीसे बढ़ा। सं०२८२के नान्दशा[2]के यूपलेख बड़े महत्त्वपूर्ण हैं। ये मालव जातिसे सम्बन्धित हैं। यहां २ स्तम्भ हैं। इनमेंसे एकके ऊपरका भाग खंडित हो गया है। दूसरे स्तम्भपर एक ही लेखको एक बार आड़ा और एक बार खड़ा खोदा गया है। एक ही लेखको २ बार खोदनेका क्या प्रयोजन रहा होगा? स्पष्ट नहीं है। ऐसा प्रतीत होता है कि प्रारम्भमें लेख बहुत ही ऊपर खोदा गया था। जो जनसाधारण द्वारा सुविधासे पढ़ा नहीं जा सका होगा इसी कारण उसी भागको दुबारा फिर खोदा गया प्रतीत होता है। लेखके प्रारम्भमें, "प्रथम चंद्रदर्शनमिव मालवगण विषयमवतारयित्वा" शब्दोंका प्रयोग हो रहा है। संभवतः उस समय मालवोंने क्षत्रपोंको हटाकर अपने राज्यका उद्धार किया था। बरनालासे[3] सं० २८४ और ३३५के लेख मिले हैं। सं० २८४के लेखमें ७ स्तम्भ लगानेका उल्लेख है। इस समय केवल एक ही स्तम्भ मिला है। सं०३३५के लेखमें अन्तमें "धर्म्मो वर्धताम्" शब्द है। इसमें त्रिराज्ञ यज्ञ करने का उल्लेख मिलता है। कोटाके बड़वा गांवसे सं० २९५के यूप लेख[4] मिले हैं। इनमें मौखरी वंशके बलवर्द्धन सोमदेव बलसिंह आदि सेनापतियोंका उल्लेख है। णिचपुरिया (नगर) के मठसे[5] सं० ३२१का लघु यूप मिला है। इसमें धरकके

१. एपिग्राफिआ इंडिका भाग १६ पृ० २५। आर्कियोलोजिकल सर्वे ऑफ इंडिया मेमोयर सं० ४। राजपूताना म्युजियम रिपोर्ट १९२६-२७ पृ० २०४।
२. इंडियन एंटीक्वेरी भाग LVII पृ० ५६। एपिग्राफिआ इंडिका भाग २७ में प्रकाशित।
३. एपिग्राफिआ इंडिका भाग २६ पृ० ११८।
४. धोटाराज्यका इतिहास भाग १ परिशिष्ट सं० १।
५. मरुभारती भाग १ अंक २ पृ० ३८-३९। शोधपत्रिका वर्ष २० अंक २ पृ० २०-२७।

पुत्र अहि शर्माका उल्लेखहै। विजयगढ़का सं० ४२८का यूप स्तम्भ मिला है। यह ग्राम बयानाके समीप है। इस लेखमें वारिक विष्णुवर्द्धन जो यशोवर्द्धनका पुत्र और यशोराट्का पौत्र था का उल्लेख है। इसने पुंडरीक यज्ञ किया था। इसके बाद यज्ञोंकी परम्परासे सम्बन्धित लेख अपेक्षाकृत कम मिलते हैं। यज्ञस्तूप तो बादमें नहींके बराबर मिले हैं। एक अपवाद स्वरूप सवाई जयसिंह द्वारा किये गये यज्ञका शिलालेख अवश्य उल्लेखनीय है।

कीर्त्तिस्तम्भ स्थापित कराना गौरवपूर्ण कृत्य माना जाता था। राजस्थानसे अबतक ज्ञात लेखोंमें घटियालाका सं० ९१८का प्रतिहार[1] राजा कक्कुकका लेख प्राचीनतम और उल्लेखनीय है। इस लेखमें प्रतिहार राजा कक्कुककी बड़ी प्रशंसा की गयी है और उसे गुर्ज्जरता, मरुवल्ल तमणी माड आदि प्रदेशोंके लोगों द्वारा सन्मान दिया जाना भी वर्णित है। वह स्वयं संस्कृतका विद्वान् था। उसने २ कीर्तिस्तम्भ स्थापित किये थे एक मंदोरमें और दूसरा घटियालामें। चित्तौड़से जैनकीर्त्तिस्तम्भसे सम्बन्धित कई लेख मिले हैं। जो १३वीं शताब्दीके हैं। लगभग ६ खंडित लेख उदयपुर संग्रहालय में है। एक लेख केन्द्रीय पुरातत्त्व विभागके कार्यालयमें चित्तौड़में है और एक गुसाईजीकी समाधिपर लग रहा है जिसे अब पूरी तरहसे खोद दिया है। इस लेखकी प्रतिलिपि वीर विनोद लिखते समय स्व० ओझाजी ने ली थी जो महाराणा साहब उदयपुर के संग्रह में विद्यमान है। उसीके अनुसार मैंने इसे अनेकान्त (दिल्ली) पत्रिका[2] में सम्पादित करके प्रकाशित कराया है। लेखोंसे पता चलता है कि इसका निर्माण जैन श्रेष्ठि जीजाने कराया कराया था जो बघेरवाल जातिका था। कोडमदेसर (बीकानेर) में एक कीर्तिस्तम्भ बना है। यह लाल पत्थरका है। इसके पूर्वमें गणेश, दक्षिणमें विष्णु, उत्तरमें ब्रह्मा और पश्चिममें पार्वतीकी मूर्ति बनी हुई है। इसमें अरड़कमलकी मृत्युका उल्लेख है। बीकानेर क्षेत्रसे धांधल राठौरोंके कई लेख पाबूजीसे सम्बन्धित मिले हैं। वि० सं० १५१५ के फलोधीके बाहर लगे एक लेखमें "राठड धाँधल सुत महाराउत पाबूप्रसाद मूर्ति कीर्तिस्थम्भ कारावितं"[3] शब्द अंकित है। लगभग इसी समय चित्तौड़का कीर्त्तिस्तम्भका प्रसिद्ध लेख मिला है। यह कई शिलाओंपर उत्कीर्ण था। अब केवल २ शिलायें विद्यमान हैं। इस लेखमें महाराजा कुम्भाके शासनकालकी घटनाओंका विस्तृत[4] उल्लेख किया गया है। राणिकसरके बाहर वि० सं० १५८९ का कीर्त्तिस्तम्भ बना हुआ है। जैन मंदिरोंके बाहर जो लेख खुदे हुए हैं इन्हें "मानस्तम्भ" भी कहते हैं। इनके अतिरिक्त पट्टावली स्तम्भ भी कई मिलते हैं। इनमें विभिन्न गच्छोंकी पट्टावली स्तम्भोंपर उत्कीर्ण की हुई बतलायी गयी है। ये स्तम्भ कई खण्डोंके होते हैं जो कीर्त्तिस्तम्भके रूपमें होते हैं। सं० १७०४ के २ स्तम्भ आमेरके राजकीय संग्रहालयमें हैं जो चारसूसे लाये गये थे। आमेरको नसियामें १९ वीं शताब्दीका विस्तृत स्तम्भ बना हुआ है।

अन्य स्तम्भ लेखोंमें आंवलेश्वरका शिलालेख उल्लेखनीय है। इसमें कुलीनके पुत्र पौण द्वारा भगवानके निमित शैलग्रह बनानेका उल्लेख है। यह २री शताब्दी ई० पू०का है।

प्रशस्तियाँ शिलालेखोंमें सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण होती हैं। इनमें कुछ प्रशंसात्मक इतिवृत्तात्मक एवं

---

१. एपिग्राफिआ इंडिका भाग ९ पृ० २८०।

२. जैन लेख संग्रह भाग ५ पृ० ८४।

३. जर्नल बंगाल ब्रांच रावल एशियाटिक सोसाइटी १९११ पृ० ।

४. महाराणा कुम्भा पृ० ४०१ से ४११।

कुछ ऐतिहासिक तथ्योंसे युक्त होती है। राजस्थानसे कई प्रशस्तियाँ मिली हैं। वि० सं० ४८० के गंगधारके[1] लेखमें विष्णु वर्माके मंत्री मयूराक्ष द्वारा विष्णु और मातृकाओंके मन्दिर बनानेका उल्लेख है। विष्णु वर्माका अधिकार दक्षिणी पूर्वी राजस्थान और मदसौर क्षेत्रपर था। इसके पुत्र बन्धुवर्माका लेख सं० ४९३ का मन्दसोरसे मिला हैं। छोटी सादड़ीसे मिली वि० सं० ५४७की प्रशस्तिमें[2] गौरीवंशी शासकोंका उल्लेख है। इस लेखमें भगवान् महापुरुष (विष्णु) के मन्दिरके निर्माणका उल्लेख किया गया है। लेखमें महाराज गौरीके पूर्वज पुण्यसोम, राज्यवर्द्धन, राष्ट्र यशोगुप्त आदिका उल्लेख है। यह औलिकर वंशके शासकोंके आधीन था। खंडेलासे प्राप्त सं० (हर्ष सं०) २०१ के लेखमें धूसरवंशके[3] दुर्गवर्द्धन उसके पुत्र धंगक आदिका उल्लेख है। लेखमें अर्द्धनारीश्वरके मन्दिरके निर्माणका उल्लेख है। बसन्तगढ़के सं० ६८२ के लेखमें बर्मलातके सामन्त[4] बज्रभट्ट सत्याश्रयका वर्णन है और लेखमें देवीके मन्दिरमें गौष्टियोंकी गतिविधिका उल्लेख है। कुसुमाका ६९३ का छेख[5], सामोलीका सं० ७०३ का[6] लेख, नागदाका सं० ७१८[7] का लेख, नगरका सं० ७४१[8] का लेख, झालरापाटनका[9] सं० ७४६ का लेख, मानमोरीका[10] ७७० का लेख, कन्सुवाका[11] ७९५ का लेख, शेरगढ़का[12] ८७० का लेख, प्रतिहार[13] राजा बाऊकका सं० ८९४ का लेख, धोलपुरका[14] चण्डमहासेनका लेख सं० ८९८, आहडका सारणेश्वरका लेख[15] १०१० राजौरगढ़का[16] सं० १०१६ का लेख, एकलिंग[17] मन्दिरका सं० १०२८ का लेख, हर्षपर्वतका[18] १०३० का लेख, बीजापुरका सं० १०५३ राष्ट्रकूट[19] धवलका लेख, पूर्णपालका[20] सं० १०९९ का लेख, बिजोलियाका[21] सं० १२२६ का लेख,

---

१. गुप्ता इन्स्क्रिप्सन्स पृ० ७४।
२. ओझा निबन्ध-संग्रह भाग १ पृ० ८७-९०। एपिग्राफिआ इंडिका भाग ३० पृ० ११२।
३. एपिग्राफिआ इंडिका भाग ३४ पृ० १५९ से १६२।
४. उक्त भाग ९ पृ० १९१।
५. उक्त भाग ३४ पृ० ४७ से ४९।
६. नागरी प्रचारिणी पत्रिका भाग १ अंक ३ पृ० ३११ से ३२४। अन्वेषणा भाग अंक २।
७. एपिग्राफिआ इंडिका भाग ३ पृ० ३१-३२।
८. भारत कौमुदी पृ० २७३-७६।
९. इंडियन एंटिक्वेरी भाग ५ पृ० १५१।
१०. टॉड-एनल्स एण्ड एटिक्वीटिज भाग १ पृ० ६१५-६१६।
११. इंडियन एंटिक्वेरी भाग १९ पृ० ५७।
१२. उक्त भाग १४ पृ० ४५।
१३. एपिग्राफिया इंडिका १८ पृ० ९५।
१४. इंडियन एन्टिक्वेरी १९ पृ० ३५।
१५. वीर विनोद भाग १ शेष संग्रह।
१६. एपिग्राफिआ इंडिका भाग ३ पृ० २६६।
१७. जरनल बम्बई ब्रांच रायल एसियाटिक सोसाइटी भाग २२ पृ० १६६-६७।
१८. एपिग्राफिआ इंडिका भाग २ पृ० ११९।
१९. जैन लेख संग्रह भाग २ (मुनि जिनविजय) में प्रकाशित।
२०. एपिग्राफिआ इंडिका भाग ९ पृ० १२।
२१. जैन लेख संग्रह भाग ४ (माणिकचन्द्र जैन ग्रन्थमाला) में प्रकाशित।

पुत्र अहि शर्माका उल्लेखहै। विजयगढ़का सं० ४२८का यूप स्तम्भ मिला है। यह ग्राम बयानाके समीप है। इस लेखमें वारिक विष्णुवर्द्धन जो यशोवर्द्धनका पुत्र और यशोराट्का पौत्र था का उल्लेख है। इसने पुंडरीक यज्ञ किया था। इसके बाद यज्ञोंकी परम्परासे सम्बन्धित लेख अपेक्षाकृत कम मिलते हैं। यज्ञस्तूप तो बादमें नहींके बराबर मिले हैं। एक अपवाद स्वरूप सवाई जयसिंह द्वारा किये गये यज्ञका शिलालेख अवश्य उल्लेखनीय है।

कीर्त्तिस्तम्भ स्थापित कराना गौरवपूर्ण कृत्य माना जाता था। राजस्थानसे अबतक ज्ञात लेखोंमें घटियालाका सं० ९१८का प्रतिहार[1] राजा कक्कुकका लेख प्राचीनतम और उल्लेखनीय है। इस लेखमें प्रतिहार राजा कक्कुककी बड़ी प्रशंसा की गयी है और उसे गुर्ज्जरता, मरुवल्ल तमणी माड आदि प्रदेशोंके लोगों द्वारा सन्मान दिया जाना भी वर्णित है। वह स्वयं संस्कृतका विद्वान् था। उसने २ कीर्तिस्तम्भ स्थापित किये थे एक मंदोरमें और दूसरा घटियालामें। चित्तौड़से जैनकीर्त्तिस्तम्भसे सम्बन्धित कई लेख मिले हैं। जो १३वीं शताब्दीके हैं। लगभग ६ खंडित लेख उदयपुर संग्रहालय में है। एक लेख केन्द्रीय पुरातत्त्व विभागके कार्यालयमें चित्तौड़में है और एक गुसाईजीकी समाधिपर लग रहा है जिसे अब पूरी तरहसे खोद दिया है। इस लेखकी प्रतिलिपि वीर विनोद लिखते समय स्व० ओझाजी ने ली थी जो महाराणा साहब उदयपुर के संग्रह में विद्यमान है। उसीके अनुसार मैंने इसे अनेकान्त (दिल्ली) पत्रिका[2] में सम्पादित करके प्रकाशित कराया है। लेखोंसे पता चलता है कि इसका निर्माण जैन श्रेष्ठि जीजाने कराया कराया था जो बघेरवाल जातिका था। कोडमदेसर (बीकानेर) में एक कीर्त्तिस्तम्भ बना है। यह लाल पत्थरका है। इसके पूर्वमें गणेश, दक्षिणमें विष्णु, उत्तरमें ब्रह्मा और पश्चिममें पार्वतीकी मूर्ति बनी हुई है। इसमें अरड़कमलकी मृत्युका उल्लेख है। बीकानेर क्षेत्रसे धांधल राठौरोंके कई लेख पाबूजीसे सम्बन्धित मिले हैं। वि० सं० १५१५ के फलोधीके बाहर लगे एक लेखमें "राठड धाँधल सुत महाराउत पाबूप्रसाद मूर्ति कीर्तिस्थम्भ कारावितं"[3] शब्द अंकित है। लगभग इसी समय चित्तौड़का कीर्त्तिस्तम्भका प्रसिद्ध लेख मिला है। यह कई शिलाओंपर उत्कीर्ण था। अब केवल २ शिलायें विद्यमान हैं। इस लेखमें महाराजा कुम्भाके शासनकालकी घटनाओंका विस्तृत[4] उल्लेख किया गया है। राणिकसरके बाहर वि० सं० १५८९ का कीर्त्तिस्तम्भ बना हुआ है। जैन मंदिरोंके बाहर जो लेख खुदे हुए हैं इन्हें "मानस्तम्भ" भी कहते हैं। इनके अतिरिक्त पट्टावली स्तम्भ भी कई मिलते हैं। इनमें विभिन्न गच्छोंकी पट्टावली स्तम्भोंपर उत्कीर्ण की हुई बतलायी गयी हैं। ये स्तम्भ कई खण्डोंके होते हैं जो कीर्त्तिस्तम्भके रूपमें होते हैं। सं० १७०४ के २ स्तम्भ आमेरके राजकीय संग्रहालयमें हैं जो चारसूसे लाये गये थे। आमेरकी नसियामें १९ वीं शताब्दीका विस्तृत स्तम्भ बना हुआ है।

अन्य स्तम्भ लेखोंमें आंवलेश्वरका शिलालेख उल्लेखनीय है। इसमें कुलीनके पुत्र पौण द्वारा भगवानके निमित शैलग्रह बनानेका उल्लेख है। यह २री शताब्दी ई० पू०का है।

प्रशस्तियाँ शिलालेखोंमें सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण होती हैं। इनमें कुछ प्रशंसात्मक इतिवृत्तात्मक एवं

---

१. एपिग्राफिआ इंडिका भाग ९ पृ० २८०।

२. जैन लेख संग्रह भाग ५ पृ० ८४।

३. जर्नल बंगाल ब्रांच रावल एशियाटिक सोसाइटी १९११ पृ० ।

४. महाराणा कुम्भा पृ० ४०१ से ४११।

कुछ ऐतिहासिक तथ्योंसे युक्त होती है। राजस्थानसे कई प्रशस्तियाँ मिली हैं। वि० सं० ४८० के गंगधारके[1] लेखमें विष्णु वर्माके मंत्री मयूराक्ष द्वारा विष्णु और मातृकाओंके मन्दिर बनानेका उल्लेख है। विष्णु वर्माका अधिकार दक्षिणी पूर्वी राजस्थान और मदसौर क्षेत्रपर था। इसके पुत्र बन्धुवर्माका लेख सं० ४९३ का मन्दसोरसे मिला है। छोटी सादड़ीसे मिली वि० सं० ५४७की प्रशस्तिमें[2] गौरीवंशी शासकोंका उल्लेख है। इस लेखमें भगवान् महापुरुष (विष्णु) के मन्दिरके निर्माणका उल्लेख किया गया है। लेखमें महाराज गौरीके पूर्वज पुण्यसोम, राज्यवर्द्धन, राष्ट्र यशोगुप्त आदिका उल्लेख है। यह औलिकर वंशके शासकोंके आधीन था। खंडेलासे प्राप्त सं० (हर्ष सं०) २०१ के लेखमें धूसरवंशके[3] दुर्गवर्द्धन उसके पुत्र धंगक आदिका उल्लेख है। लेखमें अर्द्धनारीश्वरके मन्दिरके निर्माणका उल्लेख है। बसन्तगढ़के सं० ६८२ के लेखमें वर्मलातके सामन्त[4] वज्रभट्ट सत्याश्रयका वर्णन है और लेखमें देवीके मन्दिरमें गौष्टियोंकी गतिविधिका उल्लेख है। कुसुमाका ६९३ का छेख[5], सामोलीका सं० ७०३ का[6] लेख, नागदाका सं० ७१८[7] का लेख, नगरका सं० ७४१[8] का लेख, झालरापाटनका[9] सं० ७४६ का लेख, मानमोरीका[10] ७७० का लेख, कन्सुवाका[11] ७९५ का लेख, शेरगढ़का[12] ८७० का लेख, प्रतिहार[13] राजा बाऊकका सं० ८९४ का लेख, धोलपुरका[14] चण्डमहासेनका लेख सं० ८९८, आहडका सारणेश्वरका लेख[15] १०१० राजौरगढ़का[16] सं० १०१६ का लेख, एकलिंग[17] मन्दिरका सं० १०२८ का लेख, हर्षपर्वतका[18] १०३० का लेख, बीजापुरका सं० १०५३ राष्ट्रकूट[19] धवलका लेख, पूर्णपालका[20] सं० १०९९ का लेख, बिजोलियाका[21] सं० १२२६ का लेख,

---

१. गुप्ता इन्स्क्रिप्सन्स पृ० ७४।
२. ओझा निबन्ध-संग्रह भाग १ पृ० ८७-९०। एपिग्राफिआ इंडिका भाग ३० पृ० ११२।
३. एपिग्राफिआ इंडिका भाग ३४ पृ० १५९ से १६२।
४. उक्त भाग ९ पृ० १९१।
५. उक्त भाग ३४ पृ० ४७ से ४९।
६. नागरी प्रचारिणी पत्रिका भाग १ अंक ३ पृ० ३११ से ३२४। अन्वेषणा भाग अंक २।
७. एपिग्राफिआ इंडिका भाग ३ पृ० ३१-३२।
८. भारत कौमुदी पृ० २७३-७६।
९. इंडियन एंटिक्वेरी भाग ५ पृ० १५१।
१०. टॉड-एनल्स एण्ड एटिक्वीटिज भाग १ पृ० ६१५-६१६।
११. इंडियन एंटिक्वेरी भाग १९ पृ० ५७।
१२. उक्त भाग १४ पृ० ४५।
१३. एपिग्राफिया इंडिका १८ पृ० ९५।
१४. इंडियन एन्टिक्वेरी १९ पृ० ३५।
१५. वीर विनोद भाग १ शेष संग्रह।
१६. एपिग्राफिआ इंडिका भाग ३ पृ० २६६।
१७. जरनल बम्बई ब्रांच रायल एसियाटिक सोसाइटी भाग २२ पृ० १६६-६७।
१८. एपिग्राफिआ इंडिका भाग २ पृ० ११९।
१९. जैन लेख संग्रह भाग २ (मुनि जिनविजय) में प्रकाशित।
२०. एपिग्राफिआ इंडिका भाग ९ पृ० १२।
२१. जैन लेख संग्रह भाग ४ (माणिकचन्द्र जैन ग्रन्थमाला) में प्रकाशित।

आदि प्रशस्तियाँ महत्त्वपूर्ण हैं। आबूसे मिली प्रशस्तियाँ, १३२४ की धाघसाकी प्रशस्ति,[१] १३३० की चीखाकी[२] प्रशस्ति, सं० १४९६ की राणकपुरकी[३] प्रशस्ति, सं० १५१७ की कुंभलगढ़की[४] प्रशस्तियोंका मेवाड़ इतिहासकी साधन सामग्रीमें प्रमुख स्थान है। इनमें इतिहासकी कई उलझी गुत्थियाँ सुलझाई गई हैं। लगभग इसी समय की कई प्रशस्तियाँ केवल प्रशंसात्मक भी है जिनमें ऐतिहासिक सत्य कम और काव्यात्मक वर्णन अधिक हैं। इनमें वेदशर्माको बनाई सं० १३३१ की चित्तौड़की प्रशस्ति,[५] सं० १३४२ की अचलेश्वर-की प्रशस्ति,[६] १४८५ की चित्तौड़के समाधीश्वर[७] मन्दिरकी प्रशस्ति, मुख्य है। जगन्नाथराय मन्दिरकी प्रशस्ति[८] सं० १७०९, राजप्रशस्ति अपने समयकी महत्त्वपूर्ण प्रशस्तियाँ हैं। अनोपसिंहके समयकी बीकानेरकी प्रशस्ति भी महत्त्वपूर्ण है। इन प्रशस्तियोंमें राजाओंकी वंश परम्परा विजय यात्रायें विभिन्न युद्धों आदिका वर्णन रहता है। राजाओं या श्रेष्ठियों द्वारा कराये गये निर्माण कार्योंका भी विस्तृत उल्लेख है। इस प्रकार ये प्रशस्तियाँ मध्यकालीन राजस्थानके इतिहासकी महत्त्वपूर्ण साधन सामग्री है।

प्रशस्तियोंमें प्रारम्भमें देवी-देवताओंकी स्तुति होती है। कई बार इसके लिए कई श्लोक होते हैं। बादमें राजवंश वर्णन रहता है। अगर प्रशस्ति राजासे भिन्न किसी अन्य व्यक्ति की है तो उनका वंश वर्णन आदि रहता है। इसके बाद मन्दिर बावड़ी या अन्य किसी कार्यका उल्लेख जिससे वह प्रशस्ति सम्बन्धित है रहता है। बादमें प्रशस्तिका रचनाकार और उसका वर्णन अन्तमें संवत् दिया जाता है। उदाहरणार्थ डूँगरपुरके पास स्थित ऊपर गाँवकी सं० १४६१ की महारावल पाताकी अप्रकाशित प्रशस्ति, एवं १४९५ की चित्तौड़की प्रशस्तिको लें। ये दोनों लेख जैन हैं। प्रारम्भमें कई श्लोकोंमें जैन देवी-देवताओंकी स्तुतियाँ हैं। बादमें राजवंश वर्णन है। बादमें श्रेष्ठिवर्गका वर्णन है। बादमें साधुओंका उल्लेख है। इसके बाद प्रशस्तिकारका उल्लेख और अन्तमें संवत् दिया गया है। कुछ प्रशस्तियोंमें प्रारम्भमें भौगोलिक वर्णन भी दिया रहता है। सं० १३३१ की चित्तौड़की प्रशस्ति और १३४१ की अचलेश्वर मन्दिरकी प्रशस्तिमें प्रारम्भमें चित्तौड़ नागदा मेवाड़ - भूमिकी प्रशंसा की गई है। इसी प्रकार सं० १५१७ की कुंभलगढ़की प्रशस्तिमें, मेवाड़का भौगोलिक वर्णन, मेवाड़के तीर्थक्षेत्र, चित्तौड़दुर्ग वर्णन आदि दिये हैं। इसके बाद वंशा-वली दी गई है।

ताम्रपत्र या दानपत्र बहुत महत्त्वपूर्ण होते हैं और इनको लिखनेमें विशेष सावधानी बरती जाती रही है। लेख पद्धतिमें विभिन्न प्रकारके प्रारूप भी लिखे हैं ताकि इनको लिखते समय इसका ध्यान रखा जा सके। प्रशस्तियोंके प्रारूपसे इनके प्रारूपमें बड़ी भिन्नता रहती है। इनमें प्रारम्भमें "स्वस्ति" आदिके अंकनके बाद संवत्का अंक रहता है। इसके बाद राजाका नाम रहता है। दानपत्र प्राप्त करनेवाले व्यक्ति

१. वरदा वर्ष ५ अंक ४ में प्रकाशित।

२. वीर विनोद भाग १ शेष संग्रहमें प्रकाशित।

३. महाराणा कुम्भा पृ० ३८४ से ३८६।

४. उक्त पृ० ३९७ से ४०१।

५. वीरविनोद भाग १ शेषसंग्रहमें प्रकाशित।

६. उक्त।

७. उक्त।

८. एपिग्राफिआ इंडिका XXIV पृ० ५६।

और दानमें दी जानेवाली भुमि आदिका विस्तारसे उल्लेख होता है। जैसे भूमिकी सीमायें अंकित रहती है। उसके पूर्व पश्चिम उत्तर दक्षिणमें जिन-जिनके खेत या राजपथ होता था उनके नाम दिये रहते हैं। खेतकी संख्या या स्थानीय नाम भी दिया जाता है। ऊनालू सियालु आदि शाखोंसे जो लगान लिया जाता है उसका भी कभी-कभी उल्लेख रहता है। खेतकी लम्बाई भी कभी-कभी दर्ज रहती है। जैसे ५ हल, आदि। प्रत्येक हलमें ५० बीघा जमीन मानी जाती है। इसके बाद कुछ श्लोक जैसे "आपदत्तं परदत्तं" आदिसे शुरू होनेवाले होते हैं। इनमें वर्णित है कि यह दान शाश्वत रहे और इनको अगर कोई भंग कर देवे तो विष्ठामें कीड़ेके रूपमें उत्पन्न होवे आदि। इसके बाद "दूतक" का नाम होता है जिसके द्वारा उक्त दानपत्र दिया जाता है। ये लेख सामान्यत: एक या अधिक ताम्रपत्रोंपर उत्कीर्ण होता है। एकलिंग मन्दिरका महाराणा भीमसिंहका ताम्रपत्र जो लगभग ४ फुट लम्बा है एक अपवाद स्वरूप है। इस लेखमें समय-समय-पर दिये गये दानपत्रोंको एक साथ लिख दिया गया है। राजा लोग दान मुख्यरूपसे किसी धार्मिक पर्व जैसे संक्रान्ति, सूर्यग्रहण आदि अवसरपर देते थे। इसके अतिरिक्त पुत्र जन्म, राज्यारोहण, पूजा व्यवस्था, विशिष्ट विजय रथयात्रा आदि अवसरोंपर भी दान देते थे। मेवाड़में महाराणा रायमल और भीमसिंहके समय बड़े दानपत्र मिलते हैं। रायमलके समयके दानपत्रोंमें कई जाली भी हैं। भीमसिंह दान देनेमें बड़े प्रसिद्ध थे। छोटी-छोटो बातोंपर दान दिये गये हैं। कई लोगोंने पुराने दानपत्र खोनेका उल्लेख करके नये दानपत्र बनवाये हैं। इनमें "भगवान राम रो दत्त" कह करके दानपत्र ठीक किये गये हैं।

दानपत्रोंका विधिवत् रेकार्ड जाता रहा था। "अक्ष पट्टलिक" नामक अधिकारीका उल्लेख प्राचीन लेखोंमें मिलता है। यह दानपत्रोंका रिकार्ड रखता था।

इन दानपत्रोंके साथ-साथ कुछ ऐसे लेख भी मिले हैं जिनमें कुछ अधिकारियोंने अपनेको प्राप्त राशि जैसे तलाराभाव्य, आदिसे मंडपिकासे सीधा दान दिलाया है।

सुरहलेख एक प्रकारका आज्ञापत्र है। इसमें ऊपर सूरज चाँद बना हुआ है स्त्री और गन्दर्भ बना रहता है। सं० ११०४ का लेख टोकरा (आबू) से मिला है।[1] सं० १२२८ का लेख चंद्रावतीसे मिला है। कुम्भारियाजीसे सं० १३१२ और १३३२ के सुरहलेख मिलते हैं[2] जिनमें ग्रामके ५ मंदिरोंकी पूजाके निमित्तदान देनेकी व्यवस्था है। बाजणवाला (गिरवरके पास) ग्राममें १२८७ का सुरहलेख है जिसपर राज-राजेश्वर आदि शब्द ही पढ़े जा सके हैं। आबूके अचलेश्वर मंदिरके बाहर कई सुरहलेख लग रहे हैं। इनमें सं० १२२३, १२२८, १३९८ १५०९ आदिके लेख[3] उल्लेखनीय हैं। मडार ग्राममें बाहर जैराजके चौंतरेके पास सं० १३५२ का वीसलदेव द्वारा दान देनेका उल्लेख है। सं० १५०६ के सुरहलेख महाराणा कुम्भाके[4] आबूमें देलवाड़ा, माध्व, गोमुख और आबूरोड (रेल्वे हाईस्कूल) से मिले हैं। सं० १६५९ भादवा [5]शुक्का ७ का नाणाग्राममें सुरहलेख हैं इसमें मेहता नारायणदास द्वारा दान देनेका उल्लेख है। बरकानाके जैन मंदिर सं० १६८६ और १८ वीं शताब्दीके २ लेख महाराणा जगतसिंह (i) और (ii) के समयके हैं। चित्तौड़में रामपोलसे सं० १३९३-१३९६ के वणवीरके सुरहलेख,[6] महाराणा आरीसिंहके समयका कालिका

---

१. अर्बुदाचल प्रदक्षिणा पृ० ११४।

२. उक्त पृ० १४।

३. वरदा वर्ष १३ अंक २ में प्रकाशित मेरा लेख "अचलेश्वर मन्दिरके शिलालेख"।

४. महाराणा कुम्भा पृ० ३९२-९३।

५. अर्बुदाचल प्रदक्षिणा लेख संदोह II पृ० ३६२।

६. वरदामें प्रकाशित मेरा लेख महाराणा बणवीरके अप्रकाशित शिलालेख।

आदि प्रशस्तियाँ महत्त्वपूर्ण हैं। आबूसे मिली प्रशस्तियाँ, १३२४ की धाघसाकी प्रशस्ति,[१] १३३० की चीखाकी[२] प्रशस्ति, सं० १४९६ की राणकपुरकी[३] प्रशस्ति, सं० १५१७ की कुंभलगढ़की[४] प्रशस्तियोंका मेवाड़ इतिहासकी साधन सामग्रीमें प्रमुख स्थान है। इनमें इतिहासकी कई उलझी गुत्थियाँ सुलझाई गई हैं। लगभग इसी समय की कई प्रशस्तियाँ केवल प्रशंसात्मक भी है जिनमें ऐतिहासिक सत्य कम और काव्यात्मक वर्णन अधिक हैं। इनमें वेदशर्माको बनाई सं० १३३१ की चित्तौड़की प्रशस्ति,[५] सं० १३४२ की अचलेश्वर-की प्रशस्ति,[६] १४८५ की चित्तौड़के समाधीश्वर[७] मन्दिरकी प्रशस्ति, मुख्य है। जगन्नाथराय मन्दिरकी प्रशस्ति[८] सं० १७०९, राजप्रशस्ति अपने समयकी महत्त्वपूर्ण प्रशस्तियाँ हैं। अनोपसिंहके समयकी बीकानेरकी प्रशस्ति भी महत्त्वपूर्ण है। इन प्रशस्तियोंमें राजाओंकी बंश परम्परा विजय यात्रायें विभिन्न युद्धों आदिका वर्णन रहता है। राजाओं या श्रेष्ठियों द्वारा कराये गये निर्माण कार्योंका भी विस्तृत उल्लेख है। इस प्रकार ये प्रशस्तियाँ मध्यकालीन राजस्थानके इतिहासकी महत्त्वपूर्ण साधन सामग्री है।

प्रशस्तियोंमें प्रारम्भमें देवी-देवताओंकी स्तुति होती है। कई बार इसके लिए कई श्लोक होते हैं। बादमें राजवंश वर्णन रहता है। अगर प्रशस्ति राजासे भिन्न किसी अन्य व्यक्ति की है तो उनका वंश वर्णन आदि रहता है। इसके बाद मन्दिर बावड़ी या अन्य किसी कार्यका उल्लेख जिससे वह प्रशस्ति सम्बन्धित है रहता है। बादमें प्रशस्तिका रचनाकार और उसका वर्णन अन्तमें संवत् दिया जाता है। उदाहरणार्थ डूंगरपुरके पास स्थित ऊपर गाँवकी सं० १४६१ की महारावल पाताकी अप्रकाशित प्रशस्ति, एवं १४९५ की चित्तौड़की प्रशस्तिको लें। ये दोनों लेख जैन हैं। प्रारम्भमें कई श्लोकोंमें जैन देवी-देवताओंकी स्तुतियाँ हैं। बादमें राजवंश वर्णन है। बादमें श्रेष्ठिवर्गका वर्णन है। बादमें साधुओंका उल्लेख है। इसके बाद प्रशस्तिकारका उल्लेख और अन्तमें संवत् दिया गया है। कुछ प्रशस्तियोंमें प्रारम्भमें भौगोलिक वर्णन भी दिया रहता है। सं० १३३१ की चित्तौड़की प्रशस्ति और १३४१ की अचलेश्वर मन्दिरकी प्रशस्तिमें प्रारम्भमें चित्तौड़ नागदा मेवाड़ भूमिकी प्रशंसा की गई है। इसी प्रकार सं० १५१७ की कुंभलगढ़की प्रशस्तिमें, मेवाड़का भौगोलिक वर्णन, मेवाड़के तीर्थक्षेत्र, चित्तौड़दुर्ग वर्णन आदि दिये हैं। इसके बाद वंशा-वली दी गई है।

ताम्रपत्र या दानपत्र बहुत महत्त्वपूर्ण होते हैं और इनको लिखनेमें विशेष सावधानी बरती जाती रही है। लेख पद्धतिमें विभिन्न प्रकारके प्रारूप भी लिखे हैं ताकि इनको लिखते समय इसका ध्यान रखा जा सके। प्रशस्तियोंके प्रारूपसे इनके प्रारूपमें बड़ी भिन्नता रहती है। इनमें प्रारम्भमें "स्वस्ति" आदिके अंकनके बाद संवत्का अंक रहता है। इसके बाद राजाका नाम रहता है। दानपत्र प्राप्त करनेवाले व्यक्ति

---

१. वरदा वर्ष ५ अंक ४ में प्रकाशित।

२. वीर विनोद भाग १ शेष संग्रहमें प्रकाशित।

३. महाराणा कुम्भा पृ० ३८४ से ३८६।

४. उक्त पृ० ३९७ से ४०१।

५. वीरविनोद भाग १ शेषसंग्रहमें प्रकाशित।

६. उक्त।

७. उक्त।

८. एपिग्राफिआ इंडिका XXIV पृ० ५६।

और दानमें दी जानेवाली भुमि आदिका बिस्तारसे उल्लेख होता है। जैसे भूमिकी सीमायें अंकित रहती है। उसके पूर्व पश्चिम उत्तर दक्षिणमें जिन-जिनके खेत या राजपथ होता था उनके नाम दिये रहते है। खेतकी संख्या या स्थानीय नाम भी दिया जाता है। ऊनालू सियालु आदि शाखोंसे जो लगान लिया जाता है उसका भी कभी-कभी उल्लेख रहता है। खेतकी लम्बाई भी कभी-कभी दर्ज रहती है। जैसे ५ हल, आदि। प्रत्येक हलमें ५० बीघा जमीन मानी जाती है। इसके बाद कुछ श्लोक जैसे "आपदत्तं परदत्तं" आदिसे शुरू होनेवाले होते हैं। इनमें वर्णित है कि यह दान शाश्वत रहे और इनको अगर कोई भंग कर देवे तो विष्ठामें कीड़ेके रूपमें उत्पन्न होवे आदि। इसके बाद "दूतक" का नाम होता है जिसके द्वारा उक्त दानपत्र दिया जाता है। ये लेख सामान्यत: एक या अधिक ताम्रपत्रोंपर उत्कीर्ण होता है। एकलिंग मन्दिरका महाराणा भीमसिंहका ताम्रपत्र जो लगभग ४ फुट लम्बा है एक अपवाद स्वरूप है। इस लेखमें समय-समय-पर दिये गये दानपत्रोंको एक साथ लिख दिया गया है। राजा लोग दान मुख्यरूपसे किसी धार्मिक पर्व जैसे संक्रान्ति, सूर्यग्रहण आदि अवसरपर देते थे। इसके अतिरिक्त पुत्र जन्म, राज्यारोहण, पूजा व्यवस्था, विशिष्ट विजय रथयात्रा आदि अवसरोंपर भी दान देते थे। मेवाड़में महाराणा रायमल और भीमसिंहके समय बड़े दानपत्र मिलते हैं। रायमलके समयके दानपत्रोंमें कई जाली भी हैं। भीमसिंह दान देनेमें बड़े प्रसिद्ध थे। छोटी-छोटो बातोंपर दान दिये गये हैं। कई लोगोंने पुराने दानपत्र खोनेका उल्लेख करके नये दानपत्र बनवाये हैं। इनमें "भगवान राम रो दत्त" कह करके दानपत्र ठीक किये गये हैं।

दानपत्रोंका विधिवत् रेकार्ड जाता रहा था। "अक्ष पट्टलिक" नामक अधिकारीका उल्लेख प्राचीन लेखोंमें मिलता है। यह दानपत्रोंका रिकार्ड रखता था।

इन दानपत्रोंके साथ-साथ कुछ ऐसे लेख भी मिले हैं जिनमें कुछ अधिकारियोंने अपनेको प्राप्त राशि जैसे तलाराभाव्य, आदिसे मंडपिकासे सीधा दान दिलाया है।

सुरहलेख एक प्रकारका आज्ञापत्र है। इसमें ऊपर सूरज चाँद बना हुआ है स्त्री और गन्दर्भ बना रहता है। सं० ११०४ का लेख टोकरा (आबू) से मिला है।[1] सं० १२२८ का लेख चंद्रावतीसे मिला है। कुम्भारियाजीसे सं० १३१२ और १३३२ के सुरहलेख मिलते हैं[2] जिनमें ग्रामके ५ मंदिरोंकी पूजाके निमित्तदान देनेकी व्यवस्था है। बाजणवाला (गिरवरके पास) ग्राममें १२८७ का सुरहलेख है जिसपर राज-राजेश्वर आदि शब्द ही पढ़े जा सके हैं। आबूके अचलेश्वर मंदिरके बाहर कई सुरहलेख लग रहे हैं। इनमें सं० १२२३, १२२८, १३९८ १५०९ आदिके लेख[3] उल्लेखनीय हैं। मडार ग्राममें बाहर जैराजके चौंतरेके पास सं० १३५२ का वीसलदेव द्वारा दान देनेका उल्लेख है। सं० १५०६ के सुरहलेख महाराणा कुम्भाके[4] आबूमें देलवाड़ा, माध्व, गोमुख और आबूरोड (रेल्वे हाईस्कूल) से मिले हैं। सं० १६५९ भादवा [5]शुक्ला ७ का नाणाग्राममें सुरहलेख हैं इसमें मेहता नारायणदास द्वारा दान देनेका उल्लेख है। बरकानाके जैन मंदिर सं० १६८६ और १८ वीं शताब्दीके २ लेख महाराणा जगतसिंह (i) और (ii) के समयके हैं। चित्तौड़में रामपोलसे सं० १३९३-१३९६ के बणवीरके सुरहलेख,[6] महाराणा आरीसिंहके समयका कालिका

१. अर्बुदाचल प्रदक्षिणा पृ० ११४।

२. उक्त पृ० १४।

३. वरदा वर्ष १३ अंक २ में प्रकाशित मेरा लेख "अचलेश्वर मन्दिरके शिलालेख"।

४. महाराणा कुम्भा पृ० ३९२-९३।

५. अर्बुदाचल प्रदक्षिणा लेख संदोह II पृ० ३६२।

६. वरदामें प्रकाशित मेरा लेख महाराणा बणवीरके अप्रकाशित शिलालेख।

माताके मंदिरके बाहरका सुरहलेख, महाराणा हमीरसिंह (ii) के समयके रामपोलके २ लेख एवं अन्नपूर्णा मन्दिरके बाहरके सुरहलेख[1] मुख्य हैं। इन सारे लेखोंको मैंने सम्पादित करके प्रकाशित कराये हैं। एकलिंग मन्दिरके बाहर[2] महाराणा भीमसिंह और सज्जनसिंहके समयके ५ सुरहलेख हैं। उदयपुर शहरमें महाराणा अरिसिंहके समयका सुरहलेख मुख्य है। भीनमालमें महाराजा मानसिंहके समयका एवं मंडोरमें महाराजा तख्तसिंहके समयके सुरहलेख भी प्रसिद्ध हैं। इन लेखोंसे तत्कालीन शासनव्यवस्थाके सम्बन्धमें प्रचुर सामग्री मिलती है। स्थानीय अधिकारियोंके नाम, पद एवं स्थानीय कर जैसे, दाग, मुंडिककर, बलावीकर, रखवालीकर, घरगणतीकर, आदि का पूरा पूरा ब्यौरा रहता है। चित्तौड़, उदयपुर आदिके सुरहलेखोंमें मराठोंके आक्रमणोंका अच्छा वर्णन है। मराठा अधिकारीका सुरहलेख भी चार भुजाके मन्दिरसे सं० १८६७ का एवं गंगापुर (भीलवाड़ा) से सं० १८६२ का मिला है।

धार्मिक लेखोंमें मन्दिरकी व्यवस्था सम्बन्धी उल्लेख मिलता है। मन्दिरोंके लिए प्रायः गौष्ठिक बने रहते थे जो व्यवस्था करते थे। इनका उल्लेख ७ वीं शताब्दीके गोठ माँग लोदके लेख, खण्डेलाके हर्ष सं० २०१ के लेख, बसंतगढ़के ६८२ के लेख, सिकरायका ८७९ के लेख आदिमें होनेसे पता चलता है कि राजस्थानमें ७वीं शताब्दीके पहलेसे ही ऐसी व्यवस्था मौजूद थी। मन्दिर या धार्मिक संस्थानोंकी व्यवस्थाके निमित दानपत्रोंके रूपमें भी कई लेख मिले हैं। इनमें स्थानीय संस्थानोंसे कर लेकर मन्दिरको दिया जाता था। यह कार्य मण्डपिकाके द्वारा होता था। आहडका सं० १०१० का लेख, सं० ९९९ एवं १००३ का प्रतापगढ़का लेख, शेरगढ़ दुर्गके लघु लेख, आदि उल्लेखनीय हैं।

सम्राट् अशोकके वैराठके लेखोंमें धार्मिक आज्ञाओं एवं धर्मग्रन्थोंका उल्लेख है।

मूर्ति लेखोंमें मुख्यरूपसे जैनलेख आते हैं। राजस्थानसे ऐसे कई हजार मिल चुके हैं। इनमें बीकानेर क्षेत्रके लेख श्री नाहटाजीने सम्पादित किये हैं। पुण्यविजयजीने आबू क्षेत्रके लेख प्रकाशित किये हैं। श्री पूर्णचन्द्र नाहरने जैसलमेर एवं अन्य क्षेत्रोंके लेख सम्पादित किये हैं। दिगम्बर लेखोंमें ऐसा विशिष्ट प्रकाशन मूर्ति लेखोंका नहीं हुआ है इन लेखोंमें प्रारम्भमें अर्हत्का उल्लेख होता है। बादमें संवत् बना रहता है। इसके बाद लेखमें स्थानीय राजाका उल्लेख रहता है। मूर्ति लेखमें राजा का उल्लेख होना आवश्यक नहीं है। कई बार इसे छोड़ भी दिया जाता है। इसके बाद मूर्ति बनवानेवाले श्रेष्ठिका परिचय रहता है। उसके गाँवका नाम, पूर्वजोंका वर्णन, मूर्तिका वर्णन एवं जैन आचार्य, जिनके द्वारा प्रतिष्ठा की गयी हो, का वर्णन रहता है। कई बार मूर्ति बनानेवाले शिल्पीका नाम भी रहता है। संवत् कई बार बादमें मिलता है। मूर्ति लेखोंमें एक विशिष्ट बात यह है कि उस समयके नाम प्रायः एकाक्षर बोधक होते थे। मूर्ति लेखोंमें प्रायः बोलीमें आनेवाले शब्दोंका ही प्रयोग किया गया है जो उल्लेखनीय है। कई बार श्रेष्ठियों और उनकी पत्नियोंके नाम एकसे मिलते हैं जैसे मोहण-मोहणी आदि। बहुपत्नीवादकी प्रथाकी ओर भी इनसे दृष्टि डाली जा सकती है। जैनियोंके विभिन्न गोत्रों आदि जैन साधुगच्छोंपर भी विस्तारसे इन मूर्ति लेखों द्वारा अध्ययन किया जा सकता है। ये मूर्ति लेख इस दृष्टिसे महत्त्वपूर्ण हैं। राजस्थानमें कांस्य मूर्तियोंके लेख ७वीं, ८वीं शताब्दीसे मिलने लग गये हैं किन्तु पत्थरकी प्रतिमाओंपर ९००के बादके ही लेख अधिक मिलते हैं। राजपूत राजाओंके शासनकालमें १०वीं शताब्दीके बाद जैन श्रेष्ठियोंने अभूतपूर्व शासनमें योगदान दिया इसके फलस्वरूप जैन धर्मकी बड़ी उन्नति हुई। मूर्ति लेखोंसे एक बार प्रतिष्ठित हुई प्रतिमाके दुवारा प्रतिष्ठित होनेके भी रोचक वर्णन मिलते हैं।

---

१. शोधपत्रिका वर्ष २१ अंक १ में प्रकाशित मेरा लेख।

२. मज्झमिका (१९७१) पृ० १०४ से ११०।

अन्य लेखोंमें कूप बावडियोंके, तालाव आदिके वर्णन उल्लेखनीय हैं। प्रतिहारकालकी बावडियाँ, ओसियाँ, मण्डोर आदिसे मिली हैं। मण्डोरकी बावडीसे ७वीं शताब्दीका शिलालेख भी मिला है।[1] यह लेख सं० ७४२का है और ९ पंक्तियोंका है। सं० ७४१के नगरके शिलालेखमें वापी निर्माणका श्रेय भीनमालके कुशल शिल्पियोंको दिया गया है। चित्तौड़के वि० सं० ७७०के लेखमें भी इसी प्रकार मानसरोवरके निर्माणका उल्लेख किया गया है। कुवोंके लिए अरहट शब्दोंका प्रयोग भी मिलता है। जगत[2] गांवके अम्बिका माताके मन्दिरमें सं० १०१७का लघु लेख मिला है। इसमें वापी कूप तडागादि निर्माणका उल्लेख मिलता है। अहडसे प्राप्त स० १००१ के लेखमें गंगोद्भव कुण्डका उल्लेख है। १०९९ का पूर्णपालका बसंतगढ़का लेख है जिसमें बावडी बनानेका उल्लेख है। बिजोलियाके मन्दाकिनी कुण्ड, जहाजपुरके कुण्ड, गंगातटके कुण्डों, आबूके अचलेश्वरके कुण्डसे भी कई लेख मिले हैं। ये स्थान बड़े धार्मिक माने जाते रहे हैं अतएव ये लेख इस दृष्टिसे बड़े महत्त्वपूर्ण हैं। मध्यकालमें कूप तडाग और बावड़ियोंके लेख असंख्य मिले हैं। मालदेवके लेखमें बावडीमें होनेवाले व्यय का विस्तारसे उल्लेख है। उस कार्यमें काम आनेवाली सारी सामग्रीका भी जिक्र है। राज प्रशस्तिमें इसी प्रकारका पूर्ण व्यौरा है।

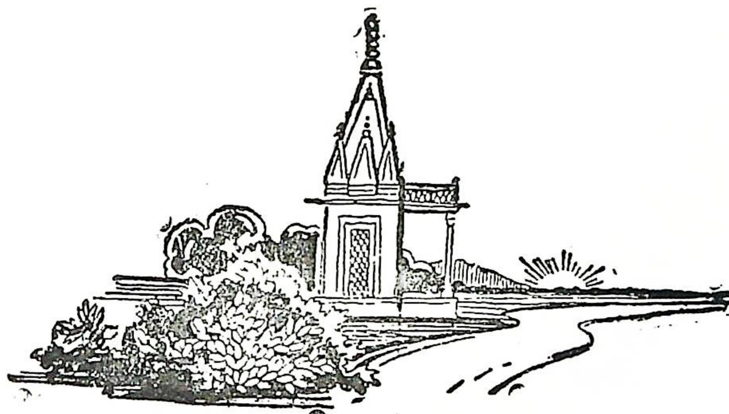
●

१. सरदार म्युजियम रिपोर्ट वर्ष १९३४ पृ० ५।
२. वरदा अक्टू० ६३ पृ० ५७ से ६३।



द्वितीय खण्ड





भाषा और साहित्य

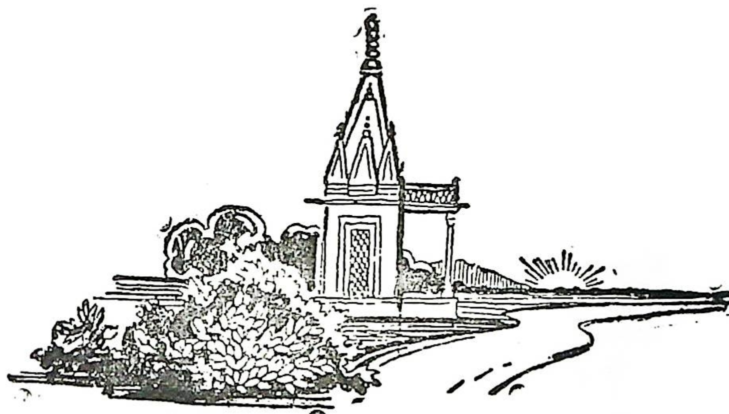






द्वितीय खण्ड





भाषा और साहित्य





पाणिनिकाल एवं संस्कृतमें द्विवचन

श्री उदयवीर शास्त्री, गाजियाबाद

पिछले दिनों जनवरी-फरवरी ७१ में फिनलैण्ड देशके निवासी डॉ० पारपोला दिल्ली आये हुए थे। उनके विषयमें सुना गया, कि उन्होंने मोइन्जोदड़ो[१] और हड़प्पा लिपि व भाषाको समझनेके लिए पर्याप्त प्रयत्न किया है। डॉ० महोदयका यह दावा मालूम हुआ, कि उक्त लिपि व भाषाको समझनेमें उन्होंने सफलता प्राप्त कर ली है। इसी धारणाको स्पष्ट कर लेनेके लिए केन्द्रीय पुरातत्त्व अनुसंधान विभागके भवनमें उनके दो प्रवचन हुए, एक दिनांक १-२-७१ को, तथा दूसरा ४-२-७१ को।

गाजियाबाद निवासी श्री कैलाशचन्द्र वर्माके सहयोगसे पहले प्रवचनमें सम्मिलित होनेका मुझे सुअवसर प्राप्त हो सका। डॉ० पारपोलाका कहना है कि, मोइन्जोदड़ो और हड़प्पाकी लिपि व भाषाका किसी आर्य लिपि व भाषासे कोई सम्बन्ध न होकर द्रविड़ लिपि ब भाषासे सम्बन्ध है। आर्योंकी किसी लिपि व भाषाका प्रसार भारतमें आर्योंके कहीं बाहरसे यहाँ आनेपर हुआ। उनके विचारसे आर्योंके भारतमें आनेका काल ईसापूर्व तेरह सौ वर्षसे सत्रह सौ वर्षके अन्तरालमें है। उससे पूर्व यहाँ द्रविड़ोंका निवास था, आर्योंने आकर उन्हें खदेड़ा, और इस भूभागपर अपना अधिकार जमा लिया।

उक्त लिपि व भाषाका द्रविड़ लिपि व भाषासे सम्बन्ध है, अपने इस साध्यको सिद्ध करनेके लिए डॉ० पारपोलाने प्रमाण प्रस्तुत किया। प्राचीन द्रविड़ लिपिके उत्कीर्ण लेखोंमें द्विवचनका प्रयोग देखा जाता है, मोइन्जोदड़ो व हड़प्पाकी भाषामें भी द्विवचनका प्रयोग है, संसारकी अन्य आर्यकुलकी भाषाओंमें द्विवचनका प्रयोग नहीं देखा जाता। केवल भारतीय आर्योंकी संस्कृत भाषामें द्विवचनका प्रयोग है, ईसापूर्व सत्रहसौ वर्षके अनन्तर कालमें जब आर्य बाहरसे भारतमें आये, तब उन्होंने यहाँकी प्रचलित भाषा द्रविड़से अपनी भाषामें द्विवचन उपाहरण (BORROW) किया। भाषामें मूलरूपसे द्विवचनकी मान्यता—मोइन्जोदड़ो आदिकी भाषाका द्रविड़ भाषासे सम्बन्ध समझनेमें पर्याप्त प्रबल प्रमाण है।

विचार करना चाहिए, इस धारणामें सचाईकी सम्भावना कहाँ तक है। डॉ० पारपोलाके भाषणके अनन्तर कहा गया, कि इस विषयमें किसीको अन्य वक्तव्य हो, तो कह सकते हैं।

पुरातत्त्व अनुसन्धान विभागके निदेशक डॉ० बी० बी० लाल महोदयने प्रथम इस अंशपर प्रकाश डाला, कि द्रविड़ भाषाके प्राचीन उत्कीर्ण लेखोंमें द्विवचनके प्रयोगको इस दिशामें प्रमाणरूपसे प्रस्तुत करना अत्यन्त शिथिल है, कारण यह है, कि द्रविड़ भाषाके अभी तक उपलब्ध लगभग ब्यालीस अभिलेखोंमेंसे केवल एकमें स्पष्ट और दूसरे एकमें अस्पष्ट द्विवचनका प्रयोग उपलब्ध है, इतना अत्यल्प प्रयोग द्रविड़ भाषामें मौलिक रूपसे द्विवचनके प्रयोगकी मान्यताके लिए उपयुक्त गवाही नहीं है। यह अधिक सम्भव है, द्रविड़ भाषाके किसी अभिलेखमें अन्यत्र से यह उधार लिया गया हो।

इस विषयमें अपने विचार अभिव्यक्त करनेके लिए मुझे भी अवसर प्रदान किया गया। उन्हीं भावोंको यहाँ लिपिबद्ध करनेका प्रयास है।

---

१. इसका उच्चारण 'मोहनजोदड़ो' अशुद्ध है। 'दड़ो' या 'दाड़ो' दो ढेरको कहते हैं। इधर भाषामें भी ढेरको 'दड़ा' कहते हैं। 'जो' छठी विभक्तिका चिह्न है। 'मोइन' का अर्थ है—मरे हुए। पूरे पदका अर्थ है—'मरे हुओंका ढेर'।

पाणिनिकाल एवं संस्कृतमें द्विवचन

श्री उदयवीर शास्त्री, गाजियाबाद

पिछले दिनों जनवरी-फरवरी ७१ में फिनलैण्ड देशके निवासी डॉ० पारपोला दिल्ली आये हुए थे। उनके विषयमें सुना गया, कि उन्होंने मोइन्जोदड़ो[१] और हड़प्पा लिपि व भाषाको समझनेके लिए पर्याप्त प्रयत्न किया है। डॉ० महोदयका यह दावा मालूम हुआ, कि उक्त लिपि व भाषाको समझनेमें उन्होंने सफलता प्राप्त कर ली है। ईसी धारणाको स्पष्ट कर लेनेके लिए केन्द्रीय पुरातत्त्व अनुसंधान विभागके भवनमें उनके दो प्रवचन हुए, एक दिनांक १-२-७१ को, तथा दूसरा ४-२-७१ को।

गाजियाबाद निवासी श्री कैलाशचन्द्र वर्माके सहयोगसे पहले प्रवचनमें सम्मिलित होनेका मुझे सुअवसर प्राप्त हो सका। डॉ० पारपोलाका कहना है कि, मोइन्जोदड़ो और हड़प्पाकी लिपि व भाषाका किसी आर्य लिपि व भाषासे कोई सम्बन्ध न होकर द्रविड़ लिपि ब भाषासे सम्बन्ध है। आर्योंकी किसी लिपि व भाषाका प्रसार भारतमें आर्योंके कहीं बाहरसे यहाँ आनेपर हुआ। उनके विचारसे आर्योंके भारतमें आनेका काल ईसापूर्व तेरह सौ वर्षसे सत्रह सौ वर्षके अन्तरालमें है। उससे पूर्व यहाँ द्रविड़ोंका निवास था, आर्योंने आकर उन्हें खदेड़ा, और इस भूभागपर अपना अधिकार जमा लिया।

उक्त लिपि व भाषाका द्रविड़ लिपि व भाषासे सम्बन्ध है, अपने इस साध्यको सिद्ध करनेके लिए डॉ० पारपोलाने प्रमाण प्रस्तुत किया। प्राचीन द्रविड़ लिपिके उत्कीर्ण लेखोंमें द्विवचनका प्रयोग देखा जाता है, मोइन्जोदड़ो व हड़प्पाकी भाषामें भी द्विवचनका प्रयोग है, संसारकी अन्य आर्यकुलकी भाषाओंमें द्विवचनका प्रयोग नहीं देखा जाता। केवल भारतीय आर्योंकी संस्कृत भाषामें द्विवचनका प्रयोग है, ईसापूर्व सत्रहसौ वर्षके अनन्तर कालमें जब आर्य बाहरसे भारतमें आये, तब उन्होंने यहाँकी प्रचलित भाषा द्रविड़से अपनी भाषामें द्विवचन उपाहरण (BORROW) किया। भाषामें मूलरूपसे द्विवचनकी मान्यता—मोइन्जोदड़ो आदिकी भाषाका द्रविड़ भाषासे सम्बन्ध समझनेमें पर्याप्त प्रबल प्रमाण है।

विचार करना चाहिए, इस धारणामें सचाईकी सम्भावना कहाँ तक है। डॉ० पारपोलाके भाषणके अनन्तर कहा गया, कि इस विषयमें किसीको अन्य वक्तव्य हो, तो कह सकते हैं।

पुरातत्त्व अनुसन्धान विभागके निदेशक डॉ० बी० बी० लाल महोदयने प्रथम इस अंशपर प्रकाश डाला, कि द्रविड़ भाषाके प्राचीन उत्कीर्ण लेखोंमें द्विवचनके प्रयोगको इस दिशामें प्रमाणरूपसे प्रस्तुत करना अत्यन्त शिथिल है, कारण यह है, कि द्रविड़ भाषाके अभी तक उपलब्ध लगभग ब्यालीस अभिलेखोंमेंसे केवल एकमें स्पष्ट और दूसरे एकमें अस्पष्ट द्विवचनका प्रयोग उपलब्ध है, इतना अत्यल्प प्रयोग द्रविड़ भाषामें मौलिक रूपसे द्विवचनके प्रयोगकी मान्यताके लिए उपयुक्त गवाही नहीं है। यह अधिक सम्भव है, द्रविड़ भाषाके किसी अभिलेखमें अन्यत्र से यह उधार लिया गया हो।

ईस विषयमें अपने विचार अभिव्यक्त करनेके लिए मुझे भी अवसर प्रदान किया गया। उन्हीं भावोंको यहाँ लिपिबद्ध करनेका प्रयास है।

---

१. इसका उच्चारण 'मोहनजोदड़ो' अशुद्ध है। 'दड़ो' या 'दाड़ो' दो ढेरको कहते हैं। इधर भाषामें भी ढेरको 'दड़ा' कहते हैं। 'जो' छठी विभक्तिका चिह्न है। 'मोइन' का अर्थ है—मरे हुए। पूरे पदका अर्थ है—'मरे हुओंका ढेर'।

भाषामें द्विवचन-प्रयोगका इतिहास जाननेके लिए हमें संस्कृत भाषाके व्याकरणपर दृष्टिपात करना होगा। उपलब्ध संस्कृत व्याकरणोंमें आचार्य पाणिनिका व्याकरण अधिक पूर्ण एवं मूर्द्धन्य है। इस विवेचनके प्रसंगसे हमारा यह समझनेका मुख्य लक्ष्य होगा, कि पाणिनिका काल क्या हो सकता है। इसी आधारपर यह समझनेमें सुविधा हो सकेगी, कि संस्कृत भाषामें द्विवचनका प्रयोग उधार लिया गया है, अथवा वह इसी भाषाका मौलिक रूप है।

इस विवेचनसे पूर्व एक और बात समझ लेना उपयुक्त होगा। कहा जाता है, आर्यकुलकी भाषाओंमें सिवाय संस्कृतके अन्यत्र कहीं द्विवचनका प्रयोग नहीं है। कल्पना की जाती है, संस्कृत और उसके समकक्ष-की युरोपीय भाषाओंकी जननी कोई, एक अन्य भाषा प्राचीन कालमें रही होगी, जिसमें द्विवचनके प्रयोगका अभाव था। उसीके अनुकूल उससे विकृत व परिवर्तित होनेवाली, युरोपीय भाषाओंमें द्विवचनका अभाव रहा। उसी प्राचीन अज्ञात भाषासे विकृत व परिवर्तित होनेवाली संस्कृतमें यह कहींसे उधार लिया गया है।

इस कथन की यथार्थताको समझनेके लिए हम भारतकी वर्तमान भाषाओंकी ओर विद्वान् पाठकोंका ध्यान आकर्षित करना चाहते हैं। इस विषयमें संभवतः किन्हीं भी विचारक विद्वानोंका मतभेद न होगा, कि दक्षिण भारतकी भाषाओंको इस विवेच्यकी सीमामें न लाकर उत्तर भारतकी जितनी प्रान्तीय भाषा हैं, उन सबका मूल संस्कृत है। इन भाषाओंमें मराठी, कोंकणी, गुजराती, काठियावाड़ी, राजस्थानी, पंजाबी, कश्मीरी, कनौरी, सिरमौरी, गढ़वाली, कुमायूँवी, हिन्दी (हिन्दीके अवान्तर-भेद—शूरसेनी, मागधी, अवधी आदि), उत्कल, बंगला, असमिया आदिका समावेश है। ये सब भाषा संस्कृत भाषासे विभिन्न धाराओंमें परिवर्त्तित व विकृत होती हुई अपने वर्तमान रूपमें पहुँची हैं। इनका मूल संस्कृत होनेपर भी इनमेंसे किसी भाषामें द्विवचनका प्रयोग नहीं है। क्या इस आधारपर यह कल्पना की जा सकती है, कि इन भाषाओंका मूल कोई अन्य ऐसी प्राचीन भाषा रही होगी, जिसमें द्विवचनके प्रयोगका अभाव था ?

वस्तुतः ऐसी कल्पना निराधार ही होगी। इसीके अनुसार क्या यह सुझाव दिया जा सकता है कि भारतीय भाषाओंके समान आर्यकुलकी अन्य युरोपीय आदि भाषाओंका मूल संस्कृत है। अपनी विभिन्न परिस्थितियों एवं परिवर्तनकालकी आवश्यताओंको देखते हुए इन भाषाओंमें द्विवचनके प्रयोगको त्याग दिया गया। अस्तु, जो हो, इस समय यूरोपीय भाषाओंकी जननीका विवेचन इस लेखका लक्ष्य नहीं है। हमें देखना चाहिए, भारतमें संस्कृत भाषाके प्रयोगका वह कौन सा काल संभव है, जब यह कहा जा सके, कि उसमें द्विवचनका प्रयोग द्रविड़ भाषासे उधार लिया गया, अथवा उसका अपना मौलिक रूप है।

संस्कृत भारतीय आर्योंकी भाषा रही है। व्याकरण सदा सर्वसाधारण जनतामें व्यवहृत होनेवाली भाषाका हुआ करता है। अति प्राचीनकालमें संस्कृतके अनेक व्याकरणोंका पता लगता है, परन्तु इस समय संस्कृतका सर्वोपरि मूर्द्धन्य व्याकरण पाणिनि आचार्यका बनाया हुआ है। व्याकरणमें निर्दिष्ट शब्द-प्रयोगोंकी रचनाके आधारपर यह निश्चित रूपसे कहा जा सकता है, कि पाणिनिने यह व्याकरण उस समय बनाया, जब उत्तर अथवा पश्चिमोत्तर भारत की सर्वसाधारण जनता—अपठित जनता भी—संस्कृत भाषाका प्रयोग करती थी। पाणिनिने अपनी रचना अष्टाध्यायीमें शतशः ऐसे प्रयोगोंके साधुत्वका उल्लेख किया है, जो नितांत ग्राम्य एवं प्रायः अपठित जनताके व्यवहारोपयोगी हैं। कतिपय प्रयोग इस प्रकार हैं—

(१) शाक आदि बेचनेवाले कूँजड़े बिक्रीकी सुविधाके लिए पालक, मूली, मेथी, धनियाँ, पोदीना आदि की गड्डी बाँधकर मूल्यके अनुसार आजकल आवाज़ लगाते हैं,—पैसा-पैसा, दो-दो पैसा आदि। पाणिनि कालमें ऐसा व्यवहार संस्कृत भाषामें होता था। उसके लिए—'मूलकपणः, शाकपणः, धान्यकपणः' आदि

प्रयोगोंके साधुत्वका निर्देश पाणिनिने एक सूत्र 'नित्यं पणः परिमाणे' (३-३-६६)में किया है। इन पदोंका प्रयोग बाजारमें शाक-भाजी वेचनेवाले किया करते थे।

(२) इसी प्रकार रसोई वनानेवाले पाचक, खेती करनेवाले किसानके दैनिक प्रयोगमें आनेवाले पदोंके साधुत्व का निर्देश अनेकत्र यथाप्रसंग अष्टाध्यायी (४.२.१६-२० तथा ४.४.२२-२६)में पाणिनिने किया है। उन निर्देशोंके अनुसार दही या मठेसे वना खाद्य 'दाधिकम्, औदरिवत्कम्' कहा जाता था, नमकीन शाकरसको 'लवणः सूपः' कहते थे।

(३) किसानोंके धान्योपयोगी विभिन्न क्षेत्रोंके वाचक--प्रैयङ्गवीनम्, व्रैहेयम्, यव्यम्, तैलीनम्, तिल्यम्, आदि पदोंके साधुत्वका निर्देश पाणिनिने अष्टाध्यायी (५.२.१-४)में किया है। ग्रामीण किसान जिन खेतोंमें विभिन्न अनाज बोते थे, उन खेतोंके लिए इन पदोंका प्रयोग करते थे।

(४) इसी प्रकार कपड़े रँगनेवाले रँगरेजोंके व्यवहारमें आनेवाले 'माञ्जिष्ठम्, काषायम्, लाक्षिकम्, रोचनिकम्' आदि पदोंके साधुत्वके लिए पाणिनिने 'तेन रक्तं रागात्, लक्षारोचनाट्ठक्' (अष्टा० ४.२.१-२) आदि सूत्र कहे हैं।

(५) इस विषयमें दो स्थलोंका और उल्लेख किया जाता है, जो विशेष ध्यान देने योग्य हैं। व्यास नदीसे उत्तर और दक्षिणकी ओर वने कुओंके नाम, बनानेवालोंके नामसे व्यवहृत होते थे। दत्तका बनवाया हुआ कुआं 'दात्तः' कहा जाता था। और गुप्तका वनवाया हुआ 'गौप्तः' (अष्टा० ४.२.७४, उदक् च विपाशः)। नदीके दोनों ओरके प्रदेशोंमें व्यवहृत होनेवाले इन पदोंका स्वरूप समान था, परन्तु दोनों ओरके उच्चारणमें थोड़ा अन्तर था। उत्तरकी ओरके लोग पदके अन्तिम अक्षरपर जोर देते थे अर्थात् वे इन पदोंका अन्तोदात्त उच्चारण करते थे तथा नदीके दक्षिणकी ओरके निवासी इन पदोंके पहले अक्षरपर जोर देते थे, अर्थात् वे इन पदोंका आद्युदात्त उच्चारण करते थे। उस प्रदेशमें निवास करनेवाली साधारण जनता द्वारा इन पदोंके उच्चारणकी विशेषतापर आचार्य पाणिनिने ध्यान देकर अन्तोदात्त उच्चारणके लिए 'अञ्' प्रत्यय और आद्युदात्त उच्चारणके लिए 'अण्' प्रत्ययका विधान किया, जिससे पदोंका स्वरूप समान रहे, और उच्चारणका अन्तर स्पष्ट किया जा सके।

काशिकाकारने सूत्र (४.२.७४)की व्याख्या करते हुए पाणिनिके विषयमें लिखा है—'महती सूक्ष्मेक्षिका वर्त्तते सूत्रकारस्य' अपने कालकी लोकभाषाके विषयमें आचार्य पाणिनिका इतनी गहराई व सूक्ष्मतासे विचार करना आश्चर्यजनक है, जो पदोंके उच्चारण भेदको भी अभिव्यक्त करनेका ध्यान रखकर उसके लिए नियमित व्यवस्था कर दी।

(६) अन्य एक प्रसंगमें पाणिनिने कहा—जातिके एक होनेसे जातिवाचक पदका एकवचनमें प्रयोग प्राप्त होता है, परन्तु लोकभाषामें एकवचन और बहुवचन दोनों रूपोंमें देखा जाता है, उसीके अनुसार आचार्यने उन पदोंके साधुत्वका निर्देश किया—'जात्याख्यायामेकस्मिन् बहुवचनमन्यतरस्याम्' (अष्टा० १.२.५८) जैसे—'यवः सम्पन्नः, यवाः सम्पन्नाः। व्रीहिः सम्पन्नः, व्रीहयः सम्पन्नाः', आज भी किसान यही प्रयोग करता है—जौ पक गया, जौ पक गये, काट डालो। धान पक गया, धान पक गये, इत्यादि। आजके और पाणिनिकालके व्यवहारमें कोई अन्तर नहीं, केवल भाषामें अन्तर है। आजका किसान हिन्दी बोलता है, उस समयका संस्कृत बोलता था। उसी व्यवहारके अनुरूप पाणिनिने नियमों का निर्देश किया।

पाणिनि व्याकरणकी उक्त अन्तःसाक्ष्योंके आधारपर यह स्पष्ट होता है कि पाणिनिके कालमें

संस्कृत लोक व्यवहारमें आनेवाली जनसाधारणकी भाषा थी। पाणिनिके यथार्थ कालका परिचय प्राप्त करनेके लिए इस स्थितिपर ध्यान देना होगा।

आज पाणिनिका काल ईसापूर्व पाँचवीं-छठी शताब्दी माना जाता है, इस विचारको प्रस्तुत करनेवाले विद्वानोंका कहना यह है, कि पाणिनिका काल ईसापूर्व पाँचवीं-छठीं शतीके और इधर नहीं खींचा जा सकता, लिहाजा वही समय मान लिया गया। भगवान् बुद्धका भी तथाकथित काल यही माना जाता है। पर यह सर्वसम्मत निर्विवाद सत्य है, कि भगवान् बुद्धके तथाकथित कालमें उत्तर अथवा पश्चिमोत्तर भारतके निवासी सर्वसाधारणकी भाषा संस्कृत नहीं थी। उस समय जनसाधारणके व्यवहारकी भाषा पाली अथवा प्राकृत थी। उस समयका बौद्ध साहित्य इसी भाषामें उपलब्ध होता है। भगवान् बुद्धने अपने विचारोंके साधारण जनतामें प्रचार-प्रसारके लिए उसी भाषाका अवलम्बन किया, जो जनताके व्यवहारकी भाषा थी। इसलिए पाणिनि का वह काल होना किसी प्रकार संभव नहीं है।

इस तथ्यको सभी विद्वान् स्वीकार करते हैं, कि उस कालकी पाली व प्राकृत भाषा उससे प्राक्तनकाल की जनभाषा संस्कृतका ही विकृत रूप है। संस्कृत भाषासे प्राकृतका वह रूप विकृत होनेमें कितना समय लगा होगा, इसका निश्चयपूर्वक कह सकना तो कठिन है, पर मोटा अन्दाज़ एक आधारपर लगाया जा सकता है। खजुराहोंमें उत्कीर्ण लिपि व उसकी भाषा वर्तमान नागरी लिपि व हिन्दी भाषासे बहुत समानता रखती है, उस भाषाको वर्तमान रूपमें आनेके लिए लगभग एक सहस्र वर्ष लग गये हैं। संस्कृत और बुद्धकालकी प्राकृत भाषामें उससे भी कहीं अधिक अन्तर है। संस्कृतको विकृत व परिवर्तन होकर उस रूपमें आनेके लिए कमसे कम हजार-बारह सौ वर्षका समय अवश्य माना जाना चाहिए।

इसके अनुसार तथाकथित बुद्धकालसे लगभग बारह सौ वर्ष पहले पाणिनिका काल माना जाना चाहिए। तब सत्रहसौ-अठारहसौ वर्ष ईसापूर्वके लगभग पाणिनिका काल आता है। डॉ॰ पारपोलाका कहना है, कि आर्य भारतमें ईसापूर्व तेरह सौसे सत्रह सौ वर्षके बीच आये। यदि अधिकसे अधिक पहलेका समय भी भारतमें आर्योंके आनेका मान लें, तो पाणिनि द्वारा व्याकरण-रचनाका तथा आर्योंके भारतमें आनेका एक ही समय रहता है? तब क्या यह कहा जायेगा, कि भारतमें आर्योंके आनेके साथ ही साथ पाणिनि अपने व्याकरणको लेकर यहाँ आया? क्योंकि जिस भाषाका वह व्याकरण है, वह भाषा उन आर्योंकी मानी जाती है, और है भी, जिनके विषयमें यह कहा जाता है, कि ये भारतमें कही बाहरसे आये।

व्याकरणके विषयमें यह कथन सर्वथा असंगत व निराधार है, कि भारतमें आर्योंके आगमनके साथ यह आया। अष्टाध्यायी व गणपाठमें उत्तर भारत व पश्चिमोत्तर भारतके अनेक नद, नदी, नगर, उपवन व विशिष्ट व्यक्तियोंके नामोंका उल्लेख हुआ है, जिससे यह स्पष्ट होता है, पाणिनिने इस व्याकरणकी रचना यहीं रहते की। इसके साथ यह भी विचारणीय है कि आर्योंने ईसापूर्व सत्रहवीं शताब्दीमें यहाँ आते ही उत्तर भारतकी समस्त साधारण जनता को संस्कृत कैसे सिखा दी? उपर्युक्त विवरणसे स्पष्ट है पाणिनि व्याकरणकी रचनाके समय उत्तर व पश्चिमोत्तर भारतकी सर्वसाधारण जनता किसान, खेतिहर, मजदूर, शाक सब्जी बेचनेवाले कूँजड़े तथा कपड़े रंगनेवाले रँगरेज, व रसोइये आदि तक की दैनिक व्यवहारकी भाषा संस्कृत थी। सत्रहवीं-अठारहवीं ईसापूर्वकी शताब्दीमें भारत आते ही आर्योंने सबको संस्कृत सिखा दी, क्या उनके पास कोई जादूकी छड़ी थी, जो हिलाते ही समस्त उत्तर भारत संस्कृत बोलने लगा?

वास्तविकता यह है, कि आर्य भारतमें बाहरसे कहीं नहीं आये, सदासे यहीं रहते हैं। द्वापर युगके अन्तकाल तक अर्थात् अबसे लगभग पाँच सहस्र वर्ष पूर्व तक यहाँकी सब जनता संस्कृत भाषाका प्रयोग करती थी। भारत युद्धके अनन्तर विशिष्ट व्यक्तियोंके न रहने और युद्धोत्तरकी आपदाओंने जनताको अवि-

द्यान्धकारमें ला पटका। लगभग डेढ़-दो सौ वर्ष बीतते-बीतते पाणिनिका प्रदुर्भाव हुआ, शब्दशास्त्रमें निष्णात होकर उसने देखा, कि सर्वसाधारण भाषामें तेजीसे परिवर्तन होनेकी आशंका है। विद्वत्समाजका संपर्क न रहनेसे प्रयोगमें विकार आनेको है। उस कालमें पाणिनिने व्याकरणकी रचना कर संस्कृत भाषाको सुसंबद्ध, व्यवस्थित व सुरक्षित बना दिया। उस समय तेजीसे भाषामें परिवर्तन हो रहा था, इसमें यह भी प्रमाण है, कि पाणिनिके तत्काल अनन्तर अन्य अनेक परिवर्तन व विकारोंकी व्यवस्थाके लिए आचार्य कात्यायनको अपने वार्तिकसन्दर्भकी रचना करनी पड़ी। तब कहीं आज तक संस्कृत भाषा उसी रूपमें सुरक्षित है। विकृत व परिवर्तित होती हुई वह भाषा अपने निरन्तर प्रवाहमें बहती आज वर्तमान प्रान्तीय भाषाओंके रूपमें आ पहुँची है।

अपने संघटनमें संस्कृत कभी द्रविड़ भाषासे प्रभावित नहीं हुई। इसकी रचना अपने रूपमें मौलिक व स्वतंत्र है। कालान्तरमें अन्य भाषाओं के शब्दोंको इसने आत्मसात् किया हो, यह साधारण बात है, इस विषयमें कुछ नहीं कहना। संस्कृतमें द्विवचनका प्रयोग अपनी मौलिक रचनाके अनुकूल है। कहींसे उपाहृत व अनुकृत नहीं। इसके प्रयोगका मूल आधार क्या है इसका विवेचन इस समय लक्ष्य नहीं, पर निःसन्देह उसका आधार विचारपूर्ण, विज्ञानमूलक व दार्शनिक भित्तिपर अवलम्बित है। इस लेख द्वारा केवल इस तथ्य पर प्रकाश डालनेका यत्न किया है, कि अबसे पाँच सहस्र वर्ष पूर्व भारतमें जनता द्वारा संस्कृतमें द्विवचनका प्रयोग अपना मौलिक है। मोइन्जोदड़ोके लेख अभी अज्ञात व अपठित हैं, उनके विषयमें पूर्ण जानकारीकी बात कहना दुस्साहस व सत्यज्ञानकी विडम्बनाका ही द्योतक है। प्रयत्नका मार्ग सबके लिए खुला है।

संस्कृतके दो ऐतिहासिक चम्पू

डॉ० बलदेव उपाध्याय

संस्कृतमें ऐतिहासिक काव्योंकी गणनामें इन महत्त्वपूर्ण चम्पुओंका भी समावेश नितान्त आवश्यक है। इन दोनों चम्पुओंके रचयिता दक्षिण भारतके निवासी थे जिनमें एक तो हैं महिला और वह भी राजाकी पट्ट-महिषी, और दूसरे हैं पुरुष और वह भी चरितनायकके सान्निध्यमें रहनेवाले विद्वान्। इनमेंसे प्रथमका नाम है **वरदाम्बिका परिणय**[1] **चम्पू** और दूसरेका **आनन्दरंगविजय चम्पू**। संक्षिप्त परिचयसे भी उनका ऐतिहासिक महत्त्व भलीभाँति जाना जा सकता है।

'वरदाम्बिकापरिणय' चम्पूकी रचयित्री हैं तिरुमलाम्बा, विजयनगरके शासक राजा अच्युतरायकी धर्मपत्नी। ग्रन्थके अन्तमें निर्दिष्ट परिचयमें ये अपनेको 'विविध विद्याप्रगल्भराजाधिराजाच्युतराय—सार्व-भौम—प्रेमसर्वस्वविश्वासभू' कहा है जिससे इनकी राजाकी पट्टमहिषी होनेकी बात स्पष्टतः द्योतित होती है। तिरुमलाम्बाकी काव्यप्रतिभा सचमुच श्लाघनीय है। एक बार ही सुनकर नव्य काव्य, नाटक, अलंकार, पुराणादिकोंकी धारणा करनेमें वे अपनेको जो समर्थ बतलाती हैं तो यह विशेष अत्युक्ति नहीं है। यज्ञ यागादिकोंमें ब्राह्मण वर्गको दान देने तथा उनसे आशीर्वादसे सौभाग्य पानेका वे स्वतः उल्लेख करती हैं। विजयनगरके कविजनोंके आश्रयदाता इतिहासविश्रुत राजा कृष्णदेव राय (ई० सन् १५०९–१५३०) के अनन्तर अच्युतराय १५२९ ईस्वीमें राजगद्दीपर बैठे तथा १५४२ ई० तक शासन किया। इन्हींकी पट्टमहिषी होनेका गौरव तिरुमलाम्बाको प्राप्त है। अच्युतराय इतिहासमें साधारण कोटिके शासक माने जाते हैं। इस तथ्यका समर्थन यह चम्पूकाव्य भी करता है, क्योंकि वह उनके किसी पराक्रम-प्रदर्शक शूरकार्यके विषयमें सर्वथा मौन है।

गद्य-पद्यकी मिश्रित शैलीमें निबद्ध यह काव्य आश्वास या उच्छ्वासमें विभक्त न होकर एक ही प्रकरणवाला मनोरंजक ग्रन्थ है। इसके आरम्भमें चन्द्रवंशका थोड़ा वर्णन है और विशेष वर्णन है अच्युत-रायके पूज्य पिता राजा नृसिंहका जिन्होंने दक्षिण भारतका दिग्विजय कर अपना प्रभुत्व प्रतिष्ठित किया। इन्हींकी धर्मपत्नी ओबाम्बाके गर्भसे तिरुपतिके आराध्यदेव भगवान् नारायणकी कृपासे अच्युतरायका जन्म हुआ। राज्यपर अभिषिक्त होनेके बाद राजाने कात्यायनीदेवीके मन्दिरमें एक सुकुमारसुभगा वरदाम्बिका नाम्नी राजकन्याको देखा और उसीके साथ राजाके विवाहके वृत्तका विस्तृत वर्णन इस चम्पूमें किया गया है। इस लघुवृत्तको लेखिकाने अपनी नैसर्गिक आलोकसामान्य प्रतिभाके सहारे खूब ही पुष्ट तथा विशद किया है। वीररस (नृसिंहका वर्णन) तथा शृंगाररसका चित्रण बड़ी सुन्दरतासे किया गया है। ऋतुवर्णन-भी चमत्कारी है।

तिरुमलाम्बाका यह चम्पूकाव्य विशेष साहित्यिक महत्त्व रखता है। इसमें पद्योंकी अपेक्षा गद्यका ही प्राचुर्य है। समासभूयस्त्व (समासकी बहुलता), जिसे अलंकारके आचार्य गद्यका जीवातु मानते हैं, इसमें

---

१. सम्पादक डॉ० सूर्यकान्त मूल अंग्रेजी अनुवादके साथ, चौखम्भा प्रकाशन, वाराणसी, १९७०।

सम्पूर्णरूपसे विद्यमान है। वर्णनकी कलामें कविको लोकातीत सामर्थ्य प्राप्त है। अच्युतरायके शारीरिक सौन्दर्यका, अंग-प्रत्यंगका, जितना आलंकारिक तथा विस्तृत विवरण तिरुमलाम्बाने किया है, उतना शायद ही किसी स्त्री कविकी लेखनीसे प्रसूत हो। लम्बे-लम्बे समास, शब्दोंका विपुल विन्यास, नवीन अर्थोंकी कल्पनायें समस्त विशेषता इस चम्पूको महत्त्वशाली बना रही हैं। गद्यके सौन्दर्यका परिचय तो काव्यके अध्ययनसे ही प्राप्य है। पद्योंका अलंकार चमत्कार इन उद्धरणोंकी सहायतासे सहज ही अनुमेय है।

तालाबमें स्नान करनेवाली रानीकी उपमा मेघके भीतर कौंधनेवाली बिजलीके साथ कितनी उपयुक्त है—

मुहुः सरोवारिषु केलिलोला निमज्जनोन्मज्जनमाचरन्ती।
बलाहकान्तःपरिदृश्यमाना सौदामिनीवाजनि चञ्चलाक्षी॥
(श्लोक १५१)

यह मालोपमा भी अपनी सुन्दरताके लिए श्लाघनीय है—

दुग्धाम्बुराशिलहरीव तुषारभानुम् अर्थं नवीनमनघा सुकवेरिवोक्तिः।
प्रत्यङ्मुखस्य यमिनः प्रतिभेव बोधं प्रासूत भाग्यमहितं सुतमोम्बमाम्बा॥
(श्लोक ६०)

इस कमनीय कल्पनाका सौन्दर्य निःसन्देह प्रशंसाका पात्र है। सन्ध्याका समय है। आकाश बहुमूल्य नीलमका केसर भरा बाक्स है। सूर्य ही जिसका माणिक्यका ढक्कन है। बाल चन्द्रमाने अपनी चपलतावश उस ढक्कनको हटा दिया है जिससे केसर सायं सन्ध्याके रूपमें चारों ओर छिटका हुआ बिखर गया है। सन्ध्याके स्वरूपका बोधक यह रूपक कितना सुन्दर तथा कितना नवीन निरीक्षणसे प्रसूत है—

अरविन्दबन्धु–कुरुविन्द–पिधाने चपलेन बालशशिना व्यपनीते।
घुसृणं वियन्मघवनीलकरण्डात् गलितं यथा घनमदृश्यत सन्ध्या॥
(श्लोक १५७)

दूसरा ऐतिहासिक चम्पू **आनन्दरंगविजय**[1] **चम्पू** ऐतिहासिक दृष्टिसे सातिशय महत्त्वशाली है। इसके प्रणेता श्रीनिवास कवि हैं जिन्होंने अपने आश्रयदाता आनन्दरंग पिल्लैके विषयमें यह महनीय चम्पू लिखा है। आनन्दरंग पिल्लै (१७०९–१७६१ ई०) १८वीं शतीमें एक विशिष्ट राजनयिक, व्यापारी तथा पाण्डिचेरोके फ्रांसीसी गवर्नर प्रसिद्ध डूप्लेके भारतीय कारिन्दा थे जिन्होंने फ्रान्सके शासनको सुदृढ़ तथा विस्तृत बनानेमें विशेष योग दिया था। ये साहित्यके भी उपासक थे। इनके द्वारा निर्मित तथा तमिल भाषामें निबद्ध डायरी (दैनन्दिनी) का अनुवाद मद्रास शासनकी ओरसे बारह जिल्दोंमें प्रकाशित हुआ है[2]। यह दैनन्दिनी प्रतिदिनकी घटनाओंका निर्देश करती है जो उस कालकी सामाजिक, आर्थिक तथा राजनैतिक दशा जाननेके लिए नितान्त उपयोगी है। इन्हींके जीवनचरितका रमणीय वर्णन श्रीनिवास कविने किया है। ग्रन्थके अन्तमें उन्होंने अपने पिता गंगाधरकी प्रशस्ति एक पद्यमें दी है।

आनन्दरंगविजय चम्पू आठ परिच्छेदों (स्तवकों) में विभक्त है। इसकी रचनाका समय ४८५४

---

१. डॉ० राघवनके सम्पादकत्वमें मद्रासमे प्रकाशित १९४८।

२. 'डायरी ऑफ आनन्दरंग पिल्लै'के नामसे १२ जिल्दोंमें यह ग्रन्थ मद्रास शासन द्वारा प्रकाशित है (१९०४–१९२८)।

संस्कृतके दो ऐतिहासिक चम्पू

डॉ० बलदेव उपाध्याय

संस्कृतमें ऐतिहासिक काव्योंकी गणनामें इन महत्त्वपूर्ण चम्पुओंका भी समावेश नितान्त आवश्यक है। इन दोनों चम्पुओंके रचयिता दक्षिण भारतके निवासी थे जिनमें एक तो हैं महिला और वह भी राजाकी पट्ट-महिषी, और दूसरे हैं पुरुष और वह भी चरितनायकके सान्निध्यमें रहनेवाले विद्वान्। इनमेंसे प्रथमका नाम है **वरदाम्बिका परिणय**[1] **चम्पू** और दूसरेका **आनन्दरंगविजय चम्पू**। संक्षिप्त परिचयसे भी उनका ऐतिहासिक महत्त्व भलीभाँति जाना जा सकता है।

'वरदाम्बिकापरिणय' चम्पूकी रचयित्री हैं तिरुमलाम्बा, विजयनगरके शासक राजा अच्युतरायकी धर्मपत्नी। ग्रन्थके अन्तमें निर्दिष्ट परिचयमें ये अपनेको 'विविध विद्याप्रगल्भराजाधिराजाच्युतराय—सार्व-भौम—प्रेमसर्वस्वविश्वासभू' कहा है जिससे इनकी राजाकी पट्टमहिषी होनेकी बात स्पष्टतः द्योतित होती है। तिरुमलाम्बाको काव्यप्रतिभा सचमुच श्लाघनीय है। एक बार ही सुनकर नव्य काव्य, नाटक, अलंकार, पुराणादिकोंकी धारणा करनेमें वे अपनेको जो समर्थ बतलाती हैं तो यह विशेष अत्युक्ति नहीं है। यज्ञ यागादिकोंमें ब्राह्मण वर्गको दान देने तथा उनसे आशीर्वादसे सौभाग्य पानेका वे स्वतः उल्लेख करती हैं। विजयनगरके कविजनोंके आश्रयदाता इतिहासविश्रुत राजा कृष्णदेव राय (ई० सन् १५०९–१५३०) के अनन्तर अच्युतराय १५२९ ईस्वीमें राजगद्दीपर बैठे तथा १५४२ ई० तक शासन किया। इन्हींकी पट्टमहिषी होनेका गौरव तिरुमलाम्बाको प्राप्त है। अच्युतराय इतिहासमें साधारण कोटिके शासक माने जाते हैं। इस तथ्यका समर्थन यह चम्पूकाव्य भी करता है, क्योंकि वह उनके किसी पराक्रम-प्रदर्शक शूरकार्यके विषयमें सर्वथा मौन है।

गद्य-पद्यकी मिश्रित शैलीमें निबद्ध यह काव्य आश्वास या उच्छ्वासमें विभक्त न होकर एक ही प्रकरणवाला मनोरंजक ग्रन्थ है। इसके आरम्भमें चन्द्रवंशका थोड़ा वर्णन है और विशेष वर्णन है अच्युत-रायके पूज्य पिता राजा नृसिंहका जिन्होंने दक्षिण भारतका दिग्विजय कर अपना प्रभुत्व प्रतिष्ठित किया। इन्हींकी धर्मपत्नी ओंबाम्बाके गर्भसे तिरुपतिके आराध्यदेव भगवान् नारायणकी कृपासे अच्युतरायका जन्म हुआ। राज्यपर अभिषिक्त होनेके बाद राजाने कात्यायनीदेवीके मन्दिरमें एक सुकुमारसुभगा वरदाम्बिका नाम्नी राजकन्याको देखा और उसीके साथ राजाके विवाहके वृत्तका विस्तृत वर्णन इस चम्पूमें किया गया है। इस लघुवृत्तको लेखिकाने अपनी नैसर्गिक अलोकसामान्य प्रतिभाके सहारे खूब ही पुष्ट तथा विशद किया है। वीररस (नृसिंहका वर्णन) तथा श्रृंगाररसका चित्रण बड़ी सुन्दरतासे किया गया है। ऋतुवर्णन-भी चमत्कारी है।

तिरुमलाम्बाका यह चम्पूकाव्य विशेष साहित्यिक महत्त्व रखता है। इसमें पद्योंकी अपेक्षा गद्यका ही प्राचुर्य है। समासभूयस्त्व (समासकी बहुलता), जिसे अलंकारके आचार्य गद्यका जीवातु मानते हैं, इसमें

---

१. सम्पादक डॉ० सूर्यकान्त मूल अंग्रेजी अनुवादके साथ, चौखम्भा प्रकाशन, वाराणसी, १९७०।

सम्पूर्णरूपसे विद्यमान है। वर्णनकी कलामें कविको लोकातीत सामर्थ्य प्राप्त है। अच्युतरायके शारीरिक सौन्दर्यका, अंग-प्रत्यंगका, जितना आलंकारिक तथा विस्तृत विवरण तिरुमलाम्बाने किया है, उतना शायद ही किसी स्त्री कविकी लेखनीसे प्रसूत हो। लम्बे-लम्बे समास, शब्दोंका विपुल विन्यास, नवीन अर्थोंकी कल्पनायें समस्त विशेषता इस चम्पूको महत्त्वशाली बना रही हैं। गद्यके सौन्दर्यका परिचय तो काव्यके अध्ययनसे ही प्राप्य है। पद्योंका अलंकार चमत्कार इन उद्धरणोंकी सहायतासे सहज ही अनुमेय है।

तालाबमें स्नान करनेवाली रानीकी उपमा मेघके भीतर कौंधनेवाली बिजलीके साथ कितनी उपयुक्त है—

> मुहुः सरोवारिषु केलिलोला निमज्जनोन्मज्जनमाचरन्ती।
> बलाहकान्तःपरिदृश्यमाना सौदामिनीवाजनि चञ्चलाक्षी॥
>
> (श्लोक १५१)

यह मालोपमा भी अपनी सुन्दरताके लिए श्लाघनीय है—

> दुग्धाम्बुराशिलहरीव तुषारभानुम् अर्थं नवीनमनघा सुकवेरिवोक्तिः।
> प्रत्यङ्मुखस्य यमिनः प्रतिभेव बोधं प्रासूत भाग्यमहितं सुतमोम्बमाम्बा॥
>
> (श्लोक ६०)

इस कमनीय कल्पनाका सौन्दर्य निःसन्देह प्रशंसाका पात्र है। सन्ध्याका समय है। आकाश बहुमूल्य नीलमका केसर भरा बावस है। सूर्य ही जिसका माणिक्यका ढक्कन है। बाल चन्द्रमाने अपनी चपलतावश उस ढक्कनको हटा दिया है जिससे केसर सायं सन्ध्याके रूपमें चारों ओर छिटका हुआ बिखर गया है। सन्ध्याके स्वरूपका बोधक यह रूपक कितना सुन्दर तथा कितना नवीन निरीक्षणसे प्रसूत है—

> अरविन्दबन्धु–कुरुविन्द–पिधाने चपलेन बालशशिना व्यपनीते।
> घुसृणं वियन्मघवनीलकरण्डात् गलितं यथा घनमदृश्यत सन्ध्या॥
>
> (श्लोक १५७)

दूसरा ऐतिहासिक चम्पू **आनन्दरंगविजय**[१] **चम्पू** ऐतिहासिक दृष्टिसे सातिशय महत्त्वशाली है। इसके प्रणेता श्रीनिवास कवि हैं जिन्होंने अपने आश्रयदाता आनन्दरंग पिल्लैके विषयमें यह महनीय चम्पू लिखा है। आनन्दरंग पिल्लै (१७०९–१७६१ ई०) १८वीं शतीमें एक विशिष्ट राजनयिक, व्यापारी तथा पाण्डिचेरीके फ्रांसीसी गवर्नर प्रसिद्ध डूप्लेके भारतीय कारिन्दा थे जिन्होंने फ्रान्सके शासनको सुदृढ़ तथा विस्तृत बनानेमें विशेष योग दिया था। ये साहित्यके भी उपासक थे। इनके द्वारा निर्मित तथा तमिल भाषामें निबद्ध डायरी (दैनन्दिनी) का अनुवाद मद्रास शासनकी ओरसे बारह जिल्दोंमें प्रकाशित हुआ है[२]। यह दैनन्दिनी प्रतिदिनकी घटनाओंका निर्देश करती है जो उस कालकी सामाजिक, आर्थिक तथा राजनैतिक दशा जाननेके लिए नितान्त उपयोगी है। इन्हींके जीवनचरितका रमणीय वर्णन श्रीनिवास कविने किया है। ग्रन्थके अन्तमें उन्होंने अपने पिता गंगाधरकी प्रशस्ति एक पद्यमें दी है।

आनन्दरंगविजय चम्पू आठ परिच्छेदों (स्तवकों) में विभक्त है। इसकी रचनाका समय ४८५४

१. डॉ० राघवनके सम्पादकत्वमें मद्राससे प्रकाशित १९४८।

२. 'डायरी ऑफ आनन्दरंग पिल्लै'के नामसे १२ जिल्दोंमें यह ग्रन्थ मद्रास शासन द्वारा प्रकाशित है (१९०४–१९२८)।

कलिवर्ष अर्थात् १७५२ ईस्वी है। चरितनायकके उत्कर्षकालका वर्णनपरक यह काव्य उनकी मृत्युसे नौ साल पहिले निर्मित हुआ था। आरम्भके स्तवकोंमें आनन्दरंगके जन्म, यौवन तथा विवाहका वर्णन बड़े विस्तारके साथ कविने किया है। इस चम्पूके षष्ठ-सप्तम स्तवकोंमें दक्षिण भारतमें १८वीं शतीमें होनेवाले कार्नाटिक युद्धोंका वर्णन तथा आनन्दरंगका उनमें महनीय योगदानका विवरण बड़े विस्तारसे किया गया है। इस वर्णनमें अनेक नवीन ऐतिहासिक तथ्योंका उद्घाटन है जिनकी जानकारी परिचित इतिहाससे नहीं होती[1]। अंग्रेजों तथा फ्रान्सीसियोंमें होनेवाले तत्कालीन इतिहासके परिज्ञानके लिए यह चम्पू अत्यन्त महत्त्वपूर्ण सिद्ध होता है।

ऐतिहासिक वृत्तके वर्णनके निमित्त समुचित गद्य-पद्यका प्रयोग यहाँ बड़े विवेकके साथ किया गया है। न लम्बे-लम्बे समासोंकी भरभार है और न श्लेषादि द्वारा अप्रचलित शब्दोंका प्रयोग। भाषापर कविका अधिकार है। शैली प्रसादमयी है। नये-नये विषयोंका भी समावेश मनोरंजक ढंगसे किया गया है। आनन्दरंगने पाण्डिचेरीमें अपने लिए विशाल वैभवपूर्ण महल बनवाया था जिसके ऊपर एक बड़ी घड़ी लगा रखी थी। उस युगके लिए नितान्त अभिनव इस वस्तुका वर्णन कविके शब्दोंमें देखिये। कितना विशद तथा आकर्षक है—

निर्यत्नं यत्र घण्टा ध्वनति च भवने बोधयन्ती मुहूर्तान्
दैवज्ञान् हर्षयन्ती समयमविरतं ज्ञातुकामानशेषान्।
प्राप्तुं श्रीरङ्गभूपात् फलमनुदिनमागच्छतां भूसुराणां
तत् सिद्धिं सूचयन्ती प्रकटयतितरामद्भुतां रागभङ्गीम्॥
(अनंगरंग चम्पू ४।२२)

फ्रान्सीसी शासकके लिए कविने 'हूणराज' शब्दका प्रयोग किया है। इस युगमें विधर्मी विदेशी व्यापारियोंके लिए 'हूण' शब्दका प्रयोग होने लगा था। वेंकटाध्वरीने भी अपने विश्वगुणादर्श चम्पूमें इसी शब्दका प्रयोग अंग्रेजोंके लिए किया है। शरद्के वर्णनमें यह उपमा बड़ी सामयिक है—

आसीन्निर्मलमम्बरं मन इव श्रीरंगनेतुर्महत्
तत्सम्पत्तिरिवाभिवृद्धिमगमत् क्षेत्रेषु शस्यावलिः।
हंसास्तत्र तदाश्रिता इव जना हृष्टा बभूवुस्तरां
भ्रष्टश्रीरदसीयशत्रुततिवत् जाता मयूरावलिः॥
—५।५८

इस पद्यमें ऋतुका वर्णन आनन्दरंगके प्रसंगीय वस्तुओंके साथ बड़ी सुन्दरतासे सम्पन्न है।

युद्धवर्णनमें बड़ा जोर-शोर है और नवीन तथ्योंका आकलन भी है। निजामपुत्रके युद्धका यह दृश्य देखिये जिसमें अपनी जान बचानेमें व्यग्र योद्धाओंके द्वारा परित्यक्त मूल्यवान् आभूषणोंको चाण्डाल (जनंगम) लोग बटोर रहे थे और हूण लोग (अंग्रेज लोग) रत्नकी पोटलियोंको लूट रहे थे—

प्राणत्राणपरायणारिसुभटत्यक्तोरुमूल्यस्फुरद्-
भूषान्वेषिजनंगमौघनिबिडक्रोडं निरस्तात्मनि।

१. द्रष्टव्य भूमिका भाग पृ० ४८–७८ जिसमें सम्पादकने समग्र घटनाचक्रका विशद वर्णन प्रस्तुत किया है।

स्कन्धावारमभूत् क्षणेन समरे तस्मिन्निजामात्मजे
वीरे हन्त धनौघरत्नपटलीलुण्टाकहूणोत्करम् ॥

आनन्दरंग ७।५०

मद्रासका तमिल नाम 'चेन्नपट्टन' या 'चेन्नपुरी' है। इस नामके रहस्यका उद्घाटन यह चम्पू करता है। मद्रासके किलेके पास ही 'चेन्नकेशव'का मन्दिर था और उन्हींके नामपर यह नगर 'चेन्नकेशवपुर' कहलाता था; उसीका संक्षिप्त रूप 'चेन्नपट्टन' है। इसका निर्देश दो वार इस चम्पूमें है[1]। फलतः इतिहास तथा साहित्य दोनों दृष्टियोंसे यह चम्पू महत्त्व रखता है।

---

१. (क) प्रध्वस्तसाध्वसः चेन्नकेशवपुरमेत्य, पृ० ६७।
(ख) आनिनाय स पुरं नवमेतत् चेन्नकेशवपुरार्यकसार्थम्, पृ० ६९।

कलिवर्ष अर्थात् १७५२ ईस्वी है। चरितनायकके उत्कर्षकालका वर्णनपरक यह काव्य उनकी मृत्युसे नौ साल पहिले निर्मित हुआ था। आरम्भके स्तवकोंमें आनन्दरंगके जन्म, यौवन तथा विवाहका वर्णन बड़े विस्तारके साथ कविने किया है। इस चम्पूके षष्ठ-सप्तम स्तवकोंमें दक्षिण भारतमें १८वीं शतीमें होनेवाले कार्नाटिक युद्धोंका वर्णन तथा आनन्दरंगका उनमें महनीय योगदानका विवरण बड़े विस्तारसे किया गया है। इस वर्णनमें अनेक नवीन ऐतिहासिक तथ्योंका उद्‌घाटन है जिनकी जानकारी परिचित इतिहाससे नहीं होती[1]। अंग्रेजों तथा फ्रान्सीसियोंमें होनेवाले तत्कालीन इतिहासके परिज्ञानके लिए यह चम्पू अत्यन्त महत्त्वपूर्ण सिद्ध होता है।

ऐतिहासिक वृत्तके वर्णनके निमित्त समुचित गद्य-पद्यका प्रयोग यहाँ बड़े विवेकके साथ किया गया है। न लम्बे-लम्बे समासोंकी भरभार है और न श्लेषादि द्वारा अप्रचलित शब्दोंका प्रयोग। भाषापर कविका अधिकार है। शैली प्रसादमयी है। नये-नये विषयोंका भी समावेश मनोरंजक ढंगसे किया गया है। आनन्दरंगने पाण्डिचेरीमें अपने लिए विशाल वैभवपूर्ण महल बनवाया था जिसके ऊपर एक बड़ी घड़ी लगा रखी थी। उस युगके लिए नितान्त अभिनव इस वस्तुका वर्णन कविके शब्दोंमें देखिये। कितना विशद तथा आकर्षक है—

> निर्यत्नं यत्र घण्टा ध्वनति च भवने बोधयन्ती मुहूर्तान्
> दैवज्ञान् हर्षयन्ती समयमविरतं ज्ञातुकामानशेषान्।
> प्राप्तुं श्रीरङ्गभूपात् फलमनुदिनमागच्छतां भूसुराणां
> तत् सिद्धिं सूचयन्ती प्रकटयतितरामद्भुतां रागभङ्गीम्॥
> (अनंगरंग चम्पू ४।२२)

फ्रान्सीसी शासकके लिए कविने 'हूणराज' शब्दका प्रयोग किया है। इस युगमें विधर्मी विदेशी व्यापारियोंके लिए 'हूण' शब्दका प्रयोग होने लगा था। वेंकटाध्वरीने भी अपने विश्वगुणादर्श चम्पूमें इसी शब्दका प्रयोग अंग्रेजोंके लिए किया है। शरद्‌के वर्णनमें यह उपमा बड़ी सामयिक है—

> आसीन्निर्मलमम्बरं मन इव श्रीरंगनेतुर्महत्
> तत्सम्पत्तिरिवाभिवृद्धिमगमत् क्षेत्रेषु शस्यावलिः।
> हंसास्तत्र तदाश्रिता इव जना हृष्टा बभूवुस्तरां
> भ्रष्टश्रीरदसीयशत्रुततिवत् जाता मयूरावलिः॥
> —५।५८

इस पद्यमें ऋतुका वर्णन आनन्दरंगके प्रसंगीय वस्तुओंके साथ बड़ी सुन्दरतासे सम्पन्न है।

युद्धवर्णनमें बड़ा जोर-शोर है और नवीन तथ्योंका आकलन भी है। निजामपुत्रके युद्धका यह दृश्य देखिये जिसमें अपनी जान बचानेमें व्यग्र योद्धाओंके द्वारा परित्यक्त मूल्यवान् आभूषणोंको चाण्डाल (जनंगम) लोग बटोर रहे थे और हूण लोग (अंग्रेज लोग) रत्नकी पोटलियोंको लूट रहे थे—

> प्राणत्राणपरायणारिसुभटत्यक्तोरुमूल्यस्फुरद्-
> भूषान्वेषिजनंगमौघनिबिडक्रोडं निरस्तात्मनि।

---

१. द्रष्टव्य भूमिका भाग पृ० ४८–७८ जिसमें सम्पादकने समग्र घटनाचक्रका विशद वर्णन प्रस्तुत किया है।

स्कन्धावारमभूत् क्षणेन समरे तस्मिन्निजामात्मजे
वीरे हन्त धनौघरत्नपटलीलुण्टाकहूणोत्करम् ॥

आनन्दरंग ७।५०

मद्रासका तमिल नाम 'चेन्नपट्टन' या 'चेन्नपुरी' है। इस नामके रहस्यका उद्घाटन यह चम्पू करता है। मद्रासके किलेके पास ही 'चेन्नकेशव'का मन्दिर था और उन्हींके नामपर यह नगर 'चेन्नकेशवपुर' कहलाता था; उसीका संक्षिप्त रूप 'चेन्नपट्टन' है। इसका निर्देश दो वार इस चम्पूमें है[1]। फलतः इतिहास तथा साहित्य दोनों दृष्टियोंसे यह चम्पू महत्त्व रखता है।

---

१. (क) प्रध्वस्तसाध्वसः चेन्नकेशवपुरमेत्य, पृ० ६७।
(ख) आनिनाय स पुरं नवमेतत् चेन्नकेशवपुरार्यकसार्थम्, पृ० ६९।

महोपाध्याय क्षमाकल्याण गणि की संस्कृत साहित्य-साधना

डॉ० दिवाकर शर्मा, एम० ए०, पी०-एच० डी०

बीकानेर मण्डलको अपनी विद्वत्ताकी सत्कीर्तिसे समस्त भारतमें प्रख्यात कर देनेवाले महोपाध्याय क्षमाकल्याण गणि अपने समयके जैन एवं जैनेतर विद्वानोंमें एक अग्रगण्य साहित्य-साधक माने जा सकते हैं। साहित्य-रचनाके साथ आप शास्त्रार्थके लिए भी सदैव कटिबद्ध रहते थे। आपकी इस शास्त्रार्थ-शक्ति और संस्कृत भाषणपर आपके इस असामान्य अधिकारका वर्णन करते हुए क्षमाकल्याणचरितकार कहते हैं कि क्षमाकल्याण सिंहके समान संस्कृतमें गर्जन करते हुए अपने प्रतिपक्षी पण्डितको इस रीतिसे परास्त कर दिया करते थे जैसे कि कोई दहाड़ता हुआ शेर उद्दण्ड शुण्डवाले हाथीको तत्काल पछाड़ देता है।

निर्मर्षणः सिंह इवोन्मुखः क्षमाकल्याणकः संस्कृत-गर्जितं दधत्।
उद्दण्डशुण्डारमिवाशु पण्डितं सम्यग्विजिग्येऽस्खलितोरुयुक्तिभिः।।

आपका जन्म बीकानेर मण्डलके केसरदेसर नामक स्थानपर विक्रम संवत् १८०१को हुआ था। आप ओशवंशमें मालुगोत्रके थे।[1] जन्मसे ही वैराग्यमें रुचि होनेके कारण आपने ११ वर्षकी अल्पायुमें ही पूज्येश्वर श्री अमृतधामजीसे विक्रम संवत् १८१२में पारमेश्वरी प्रव्रज्या स्वीकार कर ली थी।[2] म० म० श्री रत्नसोमजी तथा उपाध्याय श्री रामविजयजी आपके गुरु थे। दीक्षा-प्राप्तिके पश्चात् आपने राजस्थान, गुजरात, मध्यप्रदेश, बिहार, विदर्भ एवं उत्तरप्रदेशादिका भ्रमण किया।

आपने यतिधर्म स्वीकार करते ही सरस्वतीकी आराधना प्रारम्भ कर दी थी जिसके फलस्वरूप आपने राजस्थानी, प्राकृत एवं संस्कृतकी सैकड़ों लघु एवं वृहद् साहित्यिक रचनाओंका निर्माण किया। साहित्य-रचनाके अतिरिक्त आपने देवप्रतिष्ठा और उद्यापनादि अनेक धार्मिक कार्य करवाये। जीवनचरित सम्बन्धी सामग्रीसे यह भी ज्ञात होता है कि आपका बीकानेर, जैसलमेर व जोधपुरके राजाओं द्वारा सम्मान किया गया था।

गुरु परम्परा

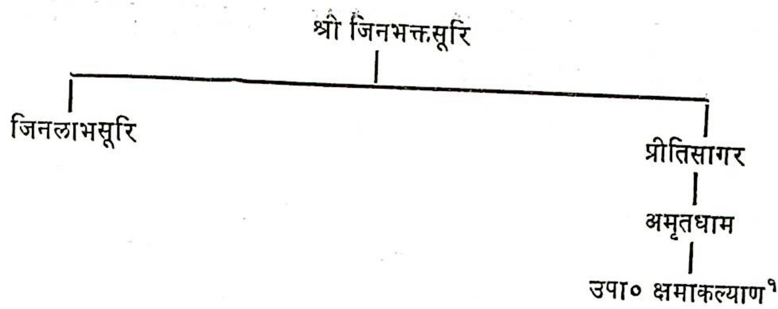
आपके गुरुजन भी धार्मिक सिद्धान्तोंके प्रसिद्ध व्याख्याता थे। आपने अपनी कृतियोंकी अन्तिम पुष्पिकामें और ऐतिहासिक महत्त्वकी स्वरचित खरतरगच्छ पट्टावलीकी प्रशस्तिमें गुरुपरम्पराका उल्लेख निम्न प्रकारसे किया है।[3]

---

१. ग्रामाग्रिमे केसरदेसराह्वये भूखाष्टभूमोमितविक्रमाब्दके (१८०१)
श्री ओशवंशे किल मालुगोत्रे जन्म प्रपेदे स मुनिः शुभेऽह्नि ।।--क्षमाकल्याणचरितम्

२. दृग्भूमिवस्विन्दुमितेऽथ वत्सरे (१८१२) वैराग्यमाजन्मत एव धारयन्।
धर्मामृतस्नानविवृद्धलालसे दीक्षां सिषेवेऽमृतधर्मसूरितः ।।--क्षमाकल्याणचरितम्

३. श्रीमंतो जिनभक्तिसूरिगुरवश्चांद्रे कुले जज्ञिरे तच्छिष्या जिनलाभसूरिमुनयः श्री ज्ञानतः सागराः।
तच्छिष्याऽमृतधर्मवाचकवरास्तेषां विनेयः क्षमाकल्याणः स्वपरोपकारविधयेऽकार्पिदिमां वृत्तिकाम् ।।



स्वर्गवास

आपका स्वर्गवास बीकानेरमें रहते हुए संवत् १८७३में हुआ था। आपके किसी शिष्यने आपके गोलोकवासी होनेपर उर्दूके मरसियाकी तरह संस्कृतमें एक शोकगीतकी रचना की थी। यह शोकगीत अत्यन्त मार्मिक वेदनासे पूर्ण एवं गुरुगुणसे परिपूर्ण है।[2]

साहित्यसाधना

संस्कृत, प्राकृत एवं राजस्थानीपर आपका स्पृहणीय अधिकार था और आपने अपने जीवनकालमें सब मिलाकर छोटे मोटे १५० ग्रन्थोंकी रचना की थी जिनमें २९ रचनाएँ केवल संस्कृतकी हैं। आपके इस साहित्यकी स्वहस्तलिखित अनेक प्रतियाँ बीकानेरके प्रसिद्ध साहित्यसेवी जैन-भास्कर श्री अगरचन्दजी नाहटाके अभयजैन ग्रन्थालयमें सुरक्षित हैं। इनकी इन समस्त कृतियोंमें सबसे अधिक संख्या टीका-ग्रन्थोंकी है। टीकाके विभिन्न प्रकारोंमें आपने टीका, वृत्ति, चूर्णि और फक्किका आदि टीकाके स्वरूपोंपर रचना की है। इन टीकात्मक रचनाओंमें जो-जो विशेष रूपसे प्रसिद्ध हैं वे निम्नलिखित हैं और इनके साथ ही उनकी अन्य प्रसिद्ध रचनाओंका उल्लेख किया गया है।

श्रीपालचरित्र टीका

श्रीपालचरित्र मूलरूपमें प्राकृत भाषामें लिखा गया है। इसके रचयिता श्री रत्नशेखर सूरि हैं। इसी ग्रन्थपर मुनिप्रवर क्षमाकल्याणने अवचूर्णि नामक टीका लिखी है। यद्यपि यह ग्रन्थ भावनगरसे पत्राकार रूपमें मुद्रित है किन्तु उसमें प्रशस्ति छोड़ दी गयी है। केवल मुद्रित प्रतिके "उपोद्घात"में यह लिख दिया गया है कि "परमत्रावचूर्णिर्या मुद्रिता सा श्रीक्षमाकल्याणकैर्विहितेति प्रघोषः" किन्तु श्री अगरचन्द नाहटाके अभय-जैन ग्रन्थालयमें स्वयं टीकाकार द्वारा लिखित इसकी प्रति प्राप्त है। इस प्रतिके अन्तमें प्रशस्ति दी गयी है।

वर्षे नन्दगुहास्यसिद्धिवसुधा-संख्ये शुभे चाश्विने मासे निर्मलचन्द्रके सुविजयाख्यायां दशम्यां तिथौ।
पूज्यश्रीजिनहर्षसूरिगणभृत्-सद्धर्मराज्ये मुदा श्रीश्रीपालनरेन्द्रचारुचरिते व्याख्या समन्तात् कृता॥

---

१. श्रीजिनभक्तिसूरीन्द्र-(सु) शिष्या बुद्धिवद्धियः। प्रीतिसागरनामानस्तच्छिष्या वाचकोत्तमाः।
श्रीमन्तोऽमृतधर्माख्यास्तेषां शिष्येण धीमता। क्षमाकल्याणमुनिना शुद्धिसम्पत्तिसिद्धये॥
—खरतरगच्छ-पट्टावली, पट्टावली संग्रह—पृ० ३९।

२. सर्वशास्त्रार्थ-वक्तृणां, गुरूणां गुरुतेजसाम्। क्षमाकल्याणसाधूनां विरहो मे समागतः।
तेनाहं दुःखितोऽजस्रं विचरामि महीतले। संस्मृत्य तद्गिरो गुर्वीर्धैर्यमादाय संस्थितः।
बीकानेरपुरे रम्ये चतुर्वर्ण्य-विभूषिते। क्षमाकल्याणविद्वांसो ज्ञानदीप्रास्तपस्विनः।
अग्न्यद्रि करि भू वर्षे (१८७३) पौषमासादिमे दले। चतुर्दशी-दिन-प्रान्ते सुरलोकगतिं गताः॥
—ऐ० जैन० काव्य संग्रह—पृ० ३०।

महोपाध्याय क्षमाकल्याण गणि की संस्कृत साहित्य-साधना

डॉ० दिवाकर शर्मा, एम० ए०, पी०-एच० डी०

बीकानेर मण्डलको अपनी विद्वत्ताकी सत्कीर्तिसे समस्त भारतमें प्रख्यात कर देनेवाले महोपाध्याय क्षमाकल्याण गणि अपने समयके जैन एवं जैनेतर विद्वानोंमें एक अग्रगण्य साहित्य-साधक माने जा सकते हैं। साहित्य-रचनाके साथ आप शास्त्रार्थके लिए भी सदैव कटिबद्ध रहते थे। आपकी इस शास्त्रार्थ-शक्ति और संस्कृत भाषणपर आपके इस असामान्य अधिकारका वर्णन करते हुए क्षमाकल्याणचरितकार कहते हैं कि क्षमाकल्याण सिंहके समान संस्कृतमें गर्जन करते हुए अपने प्रतिपक्षी पण्डितको इस रीतिसे परास्त कर दिया करते थे जैसे कि कोई दहाड़ता हुआ शेर उद्दण्ड शुण्डवाले हाथीको तत्काल पछाड़ देता है।

निर्मर्षणः सिंह इवोन्मुखः क्षमाकल्याणकः संस्कृत-गर्जितं दधत्।
उद्दण्डशुण्डारमिवाशु पण्डितं सम्यग्विजिग्येऽस्खलितोरुयुक्तिभिः॥

आपका जन्म बीकानेर मण्डलके केसरदेसर नामक स्थानपर विक्रम संवत् १८०१को हुआ था। आप ओशवंशमें मालुगोत्रके थे।[1] जन्मसे ही वैराग्यमें रुचि होनेके कारण आपने ११ वर्षकी अल्पायुमें ही पूज्येश्वर श्री अमृतधामजीसे विक्रम संवत् १८१२में पारमेश्वरी प्रव्रज्या स्वीकार कर ली थी।[2] म० म० श्री रत्नसोमजी तथा उपाध्याय श्री रामविजयजी आपके गुरु थे। दीक्षा-प्राप्तिके पश्चात् आपने राजस्थान, गुजरात, मध्यप्रदेश, बिहार, विदर्भ एवं उत्तरप्रदेशादिका भ्रमण किया।

आपने यतिधर्म स्वीकार करते ही सरस्वतीकी आराधना प्रारम्भ कर दी थी जिसके फलस्वरूप आपने राजस्थानी, प्राकृत एवं संस्कृतकी सैकड़ों लघु एवं बृहद् साहित्यिक रचनाओंका निर्माण किया। साहित्य-रचनाके अतिरिक्त आपने देवप्रतिष्ठा और उद्यापनादि अनेक धार्मिक कार्य करवाये। जीवनचरित सम्बन्धी सामग्रीसे यह भी ज्ञात होता है कि आपका बीकानेर, जैसलमेर व जोधपुरके राजाओं द्वारा सम्मान किया गया था।

गुरु परम्परा

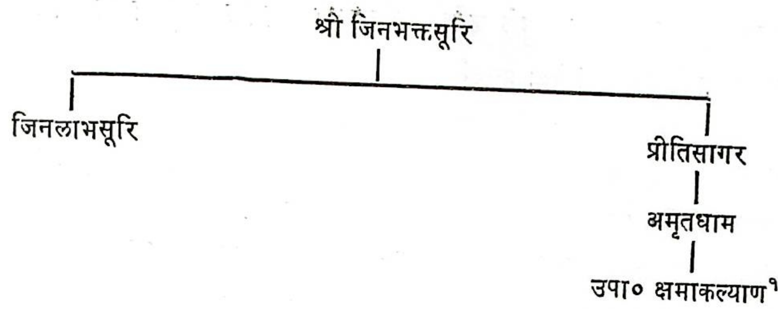
आपके गुरुजन भी धार्मिक सिद्धान्तोंके प्रसिद्ध व्याख्याता थे। आपने अपनी कृतियोंकी अन्तिम पुष्पिकामें और ऐतिहासिक महत्त्वकी स्वरचित खरतरगच्छ पट्टावलीकी प्रशस्तिमें गुरुपरम्पराका उल्लेख निम्न प्रकारसे किया है।[3]

---

१. ग्रामाग्रिमे केसरदेसराह्वये भूखाष्टभूमीमितविक्रमाब्दके (१८०१)
श्री ओशवंशे किल मालुगोत्रे जन्म प्रपेदे स मुनिः शुभेऽह्नि॥—क्षमाकल्याणचरितम्

२. दृग्भूमिवस्विन्दुमितेऽथ वत्सरे (१८१२) वैराग्यमाजन्मत एव धारयन्।
धर्मामृतस्नानविवृद्धलालसे दीक्षां सिषेवेऽमृतधर्मसूरितः॥—क्षमाकल्याणचरितम्

३. श्रीमंतो जिनभक्तिसूरिगुरवश्चांद्रे कुले जज्ञिरे तच्छिष्या जिनलाभसूरिमुनयः श्री ज्ञानतः सागराः।
तच्छिष्याऽमृतधर्मवाचकवरास्तेषां विनेयः क्षमाकल्याणः स्वपरोपकारविषयेऽकार्षिदिमां वृत्तिकाम्॥



स्वर्गवास

आपका स्वर्गवास बीकानेरमें रहते हुए संवत् १८७३में हुआ था। आपके किसी शिष्यने आपके गोलोकवासी होनेपर उर्दूके मरसियाकी तरह संस्कृतमें एक शोकगीतकी रचना की थी। यह शोकगीत अत्यन्त मार्मिक वेदनासे पूर्ण एवं गुरुगुणसे परिपूर्ण है।[2]

साहित्यसाधना

संस्कृत, प्राकृत एवं राजस्थानीपर आपका स्पृहणीय अधिकार था और आपने अपने जीवनकालमें सब मिलाकर छोटे मोटे १५० ग्रन्थोंकी रचना की थी जिनमें २९ रचनाएँ केवल संस्कृतकी हैं। आपके इस साहित्यकी स्वहस्तलिखित अनेक प्रतियाँ बीकानेरके प्रसिद्ध साहित्यसेवी जैन-भास्कर श्री अगरचन्दजी नाहटाके अभयजैन ग्रन्थालयमें सुरक्षित हैं। इनकी इन समस्त कृतियोंमें सबसे अधिक संख्या टीका-ग्रन्थोंकी है। टीकाके विभिन्न प्रकारोंमें आपने टीका, वृत्ति, चूर्णि और फक्किका आदि टीकाके स्वरूपोंपर रचना की है। इन टीकात्मक रचनाओंमें जो-जो विशेष रूपसे प्रसिद्ध हैं वे निम्नलिखित हैं और इनके साथ ही उनकी अन्य प्रसिद्ध रचनाओंका उल्लेख किया गया है।

श्रीपालचरित्र टीका

श्रीपालचरित्र मूलरूपमें प्राकृत भाषामें लिखा गया है। इसके रचयिता श्री रत्नशेखर सूरि हैं। इसी ग्रन्थपर मुनिप्रवर क्षमाकल्याणने अवचूर्णि नामक टीका लिखी है। यद्यपि यह ग्रन्थ भावनगरसे पत्राकार रूपमें मुद्रित है किन्तु उसमें प्रशस्ति छोड़ दी गयी है। केवल मुद्रित प्रतिके "उपोद्घात"में यह लिख दिया गया है कि "परमत्रावचूर्णिर्या मुद्रिता सा श्रीक्षमाकल्याणकैर्विहितेति प्रघोषः" किन्तु श्री अगरचन्द नाहटाके अभय-जैन ग्रन्थालयमें स्वयं टीकाकार द्वारा लिखित इसकी प्रति प्राप्त है। इस प्रतिके अन्तमें प्रशस्ति दी गयी है।

वर्षे नन्दगुहास्यसिद्धिवसुधा-संख्ये शुभे चाश्विने मासे निर्मलचन्द्रके सुविजयाख्यायां दशम्यां तिथौ।
पूज्यश्रीजिनहर्षसूरिगणभृत्-सद्धर्मराज्ये मुदा श्रीश्रीपालनरेन्द्रचारुचरिते व्याख्या समन्तात् कृता ॥

---

१. श्रीजिनभक्तिसूरीन्द्र-(सु) शिष्या बुद्धिवर्द्धयः। प्रीतिसागरनामानस्तच्छिष्या वाचकोत्तमाः।
श्रीमन्तोऽमृतधर्माख्यास्तेषां शिष्येण धीमता। क्षमाकल्याणमुनिना शुद्धिसम्पत्तिसिद्धये ॥
—खरतरगच्छ-पट्टावली, पट्टावली संग्रह—पृ० ३९।

२. सर्वशास्त्रार्थ-वक्तृणां, गुरूणां गुरुतेजसाम्। क्षमाकल्याणसाधूनां विरहो मे समागतः।
तेनाहं दुःखितोऽजस्रं विचरामि महीतले। संस्मृत्य तद्गिरो गुर्वीर्धैर्यमादाय संस्थितः।
बीकानेरपुरे रम्ये चतुर्वर्ण्य-विभूषिते। क्षमाकल्याणविद्वांसो ज्ञानदीप्रास्तपस्विनः।
अग्न्यद्रि करि भू वर्षे (१८७३) पौषमासादिमे दले। चतुर्दशी-दिन-प्रान्ते सुरलोकगतिं गताः ॥
—ऐ० जैन० काव्य संग्रह—पृ० ३०।

श्रीमन्तो जिनभक्तसूरि-गुरवश्चान्द्रे कुले जज्ञिरे तच्छिष्या जिनलाभसूरिमुनयः श्रीप्रीतितः सागरः।
(—कल्याणाख्या स्वपाठकेन सुधियां चेतः प्रसत्यै सदा)

इस टीकाकी रचना आपने अपने शिष्य श्री ज्ञानचन्द्रमुनिके कहनेपर की थी और इसमें अन्वयकी खण्डान्वय पद्धतिको अपनाया गया है। यथा—कीदृशान् अर्हतः? अष्टादशदोषैर्विमुक्तान् पुनर्विशुद्धं निर्मलं यत् ज्ञानं तत्स्वरूपमयानिति, पुनः प्रकटितानि तत्त्वानि यैः ते तान् इत्यादि।

आपकी टीकाकी दूसरी विशेषता यह है कि वह संक्षिप्त होनेकी अपेक्षा विस्तृतरूपसे पाठके प्रत्येक पदकी साङ्गोपाङ्ग व्याख्या व दार्शनिक स्थलोंका विशदीकरण भी प्रस्तुत करती है। यथा—सतो भावः सत्ता-ऽस्तित्वमित्यर्थः,सा सर्वेष्वपि एकैव वर्त्तते, च पुनर्द्विविधो नयः द्रव्यपर्यायादिस्वरूपः तथा कालत्रयं गतिचतुष्कं पञ्चैव अस्तिकाया धर्माधर्माकाशपुद्गलजीवस्वरूपाः सन्ति, च पुनर्द्रव्याणां धर्मास्तिकायादीनां कालद्रव्ययुक्तानां षट्कमस्ति तथा नैगमाद्याः सप्तनयाः सन्ति।

श्रीपालचरित–टीका

इसमें बीच-बीचमें अनेक सुन्दर कहावतोंका प्रयोग भी दर्शनीय है।

"पानीयं पीत्वा किल पश्चाद् गृहं पृच्छ्यते"

"दग्धानामुपरि स्फोटकदानक्रिया किं करोषि"

"पित्तं यदि शर्करया सितोपलया शाम्यति तर्हि पटोलया कोशितक्या क्षारवल्ल्या किम्"।

जीवविचारवृत्ति

श्रीजिन आगमके चार अनुयोगोंमें द्रव्यानुयोग मुख्य अनुयोग है। यह वृत्ति द्रव्यानुयोग शाखाके मुख्य अंश जीवविचारपर लिखी गयी है। यद्यपि इस मुख्यांशपर अनेक विद्वानोंने टीकाएं एवं वृत्तियाँ लिखी हैं किन्तु मुनिप्रवर क्षमाकल्याण द्वारा रचित यह वृत्ति विद्वत् समाजमें सर्वश्रेष्ठ मानी जाती है। इस वृत्तिका रचनाकाल भाद्रपद शुक्लपक्षकी सप्तमी संवत् १८५० है।[1] परम्परानुसार वृत्तिकारने इस वृत्तिमें भी अपने गुरुओंका आदरके साथ उल्लेख किया है। जिस श्लोक द्वारा गुरु-स्मरण किया गया है वह श्लोक श्रीपाल-चरितके श्लोकका ही २-३ शब्दोंके हेर-फेरसे किया हुआ एक रूपान्तर मात्र है।

जीवविचार भी मूलरूपमें प्राकृत भाषाका ग्रन्थ है। इसके प्राकृत सूत्रोंको स्पष्ट रूपसे समझानेके लिए मुनिवरने इस वृत्तिमें संस्कृतका आश्रय लेकर जिस रीतिसे सूत्रोंके सार मर्मको प्रकाशित किया है वह सर्वथा हृदयहारी है। यथा—

"सिद्धा पनरस भेया, तित्थ अतित्थाई सिद्धभेएण। एए सखेवेणं जीवविप्पा समखखाया"।

वृत्ति

सिद्धाः सर्वकर्मनिमुक्ता जीवाः, तीर्थंकरातीर्थंकरादिसिद्धभेदेन पञ्चदश भेदा ज्ञेयाः। अत्र सूत्रे प्राकृत-त्वात्करपदलोपः। तत्र तीर्थंकराः सतो ये सिद्धास्ते तीर्थकरसिद्धाः अतीर्थंकराः सामान्याः केवलिनः संतो ये सिद्धास्तेऽतीर्थंकरसिद्धाः। आदिपदात्तीर्थसिद्धाः अतीर्थसिद्धादिपंचदश भेदा नवतत्त्वादिभ्यो ज्ञातव्याः। इत्थं संक्षेपेण एते जीवानां विकल्पाः भेदाः समाख्याताः कथिताः।

—जीवविचारवृत्ति

---

१. संवद् व्योमशिलीमुखाष्ट वसुधा (१८५०) संख्ये नभस्ये सिते पक्षे पावन-सप्तमी सुदिवसे बौकादिनेराभिधे।
श्रीमति पूर्णतामभजत व्याख्या सुबोधिन्यसौ सम्यक् श्रीगुणचन्द्रसूरिमुनिये गच्छेशतां बिभ्रति॥

तर्कसंग्रह फक्किका

तर्कसंग्रह फक्किकाकी रचना मुनि क्षमाकल्याणने संवत् १८२८में की थी।[1] यह फक्किका श्री अन्नंभट्टके तर्कसंग्रहकी स्वोपज्ञदीपिकाटीकाकी एक सरल टीका है। तर्कसंग्रहकी दीपिकाके प्रतिपादनपर अपनी कोई स्वतन्त्र समालोचना न लिखकर दीपिकाके भावार्थको इस फक्किकामें जिस रीतिसे स्पष्ट किया गया है वह फक्किकाकारकी समझानेकी शैलीकी विशेषता है। मुनि क्षमाकल्याण दीपिकाकारके लक्षणों और स्वरचित लक्षणोंका पदकृत्य काव्यकी खण्डान्वय पद्धतिका अनुसरण करते हुए कहते हैं। यथा—किं नाम उद्देशत्वम्? "नाममात्रेण पदार्थसंकीर्तनम् उद्देशत्वं" ताल्वोष्ठव्यापारेणोच्चारणं संकीर्तनम्। इहवंशे पाठ्यमान-दलद्वयविभागजन्यचटचटाशब्दे अतिव्याप्तिवारणाय नामपदम्, वंध्यापुत्रे अतिव्याप्तिवारणाय पदार्थपदम्, लक्षणवाक्ये अतिव्याप्तिवारणाय मात्रपदम्।

साध्यव्यापकत्वे सति साधनाव्यापकत्वाद् आर्द्रेन्धनसंयोग उपाधिः। उपाधिके इस लक्षणपर दीपिका-कारने "उपाधिश्चतुर्विधः—केवल साध्यव्यापकः, पक्षधर्मावच्छिन्नसाध्यव्यापकः" आदिके द्वारा उपाधिका वर्गीकरण अवश्य किया है परन्तु लक्षणके प्रत्येक पदको समझानेका इसमें कोई प्रयत्न नहीं किया गया। मुनिप्रवर क्षमाकल्याणकी फक्किका इसके लिए विशेष सहायक होती है। यथा—साध्येति–साध्यो धूमः, तत्समानाधिकरणो योऽत्यत्रभाव आर्द्रेन्धनसंयोगाभावस्तु नायाति, तर्हि घटपटाद्यत्यन्ताभावः तस्य प्रतियोगित्वं वर्त्तते घटादौ, अप्रतियोगित्वम् वर्त्तते आर्द्रेन्धनसंयोगे।

इस उदाहरणसे यह स्पष्ट है कि मुनि क्षमाकल्याण पदपदार्थके रहस्यको पूर्णरूपेण समझा देनेकी अपूर्व क्षमता रखते हैं।

गौतमीय काव्यम् टीका

"गोतमीय काव्यम्" क्षमाकल्याणजीके गुरु पाठक श्रीकूपचन्द्र गणि द्वारा विरचित एक महाकाव्य है। इसपर गौतमीयप्रकाश नामकी यह विशद व्याख्या श्री क्षमाकल्याणने १८५२में लिखी थी।[2]

आपके द्वारा लिखित समस्त टीकाओं, वृत्तियों एवं व्याख्याओंमें यह टीका सर्वश्रेष्ठ मानी जाती है। इसमें मूल लेखकके गम्भीर एवं गूढ़ विचारोंको अत्यन्त सरल एवं मनोरम रूपमें स्पष्ट करनेका पूर्ण प्रयास किया गया है। इसमें जैनसिद्धान्तोंकी स्थापनाके लिए बौद्ध,[3] वेदान्त[4] और न्यायादि[5] दर्शनोंका युक्तियुक्त

---

१. तद्विनेयेन क्षमादिकल्याणेन मनीषिणा। तर्कसंग्रहसूत्रस्य संवृतेः फक्किका इमाः।
यथाश्रुता गुरुमुखात् तथा सङ्कलिताः स्वयम्। वसुनेत्रे सिद्धिचन्द्रप्रमिते हायने मुदा॥—तर्कसंग्रह फक्किका

२. (अ) बाहुज्ञानवसुक्ष्मा (१८५२) प्रमितिजे वर्षे नभस्युज्ज्वले।
एकादश्यां विलसत्तिथौ कुमुदिनीनाथान्वितायामिह॥
(आ) तच्छिष्यो वरधर्मवासितमतिः प्राज्ञः क्षमापूर्वकः कल्याणः कृतवानिमां कृति जनः स्वान्तप्रमोदाप्तये।
बुद्धेर्मन्दतया प्रमादवशतो वा किंचिदुक्तं मयाऽत्राशुद्धं परिशोधयन्तु सुधियो मिथ्याऽस्तु मे दुष्कृतम्॥

३. तथा तेषां शून्यवादिनां बौद्धैकदेशिनां शून्यता एव परं प्रधानं तत्त्वं विद्यते, तेषां वाचो गिरोऽर्थशून्यत्वाद-भिधेयहीनत्वात्कदापि कस्मिन्नपि काले न प्रतीताः स्युर्न प्रतीतियुक्ता भवन्ति। अयमर्थः ये खलु सर्वं-शून्यामेवास्तीति वदन्ति तेषां वाचोऽपि सर्ववस्त्वन्तर्गतत्वात् शून्या एव, ततश्चार्थशून्ये तद्वचने को विद्वा-न्प्रतीतिं कुर्वीतेति॥ सर्ग ७।७३।

४. वेदान्तिनां मतं वेदान्तिमतं तदाश्रित्य यद्यपि ब्राह्मण आत्मन ऐक्यमेकत्वं स्थितम्, तथापि हे गौतम लिङ्गस्य चिह्नस्य भेदेन आत्मनो जीवनस्य भेदं नानात्वमवधारय जानीहि। वेदान्ति-मतं तावदिदम् "एकएव हि

श्रीमन्तो जिनभक्तसूरि-गुरवश्चान्द्रे कुले जज्ञिरे तच्छिष्या जिनलाभसूरिमुनयः श्रीप्रीतितः सागरः।
(—कल्याणाख्या स्वपाठकेन सुधियां चेतः प्रसत्त्यै सदा)

इस टीकाकी रचना आपने अपने शिष्य श्री ज्ञानचन्द्रमुनिके कहनेपर की थी और इसमें अन्वयकी खण्डान्वय पद्धतिको अपनाया गया है। यथा—कीदृशान् अर्हतः ? अष्टादशदोषैर्विमुक्तान् पुनर्विशुद्धं निर्मलं यत् ज्ञानं तत्स्वरूपमयानिति, पुनः प्रकटितानि तत्त्वानि यैः ते तान् इत्यादि।

आपकी टीकाकी दूसरी विशेषता यह है कि वह संक्षिप्त होनेकी अपेक्षा विस्तृतरूपसे पाठके प्रत्येक पदकी साङ्गोपाङ्ग व्याख्या व दार्शनिक स्थलोंका विशदीकरण भी प्रस्तुत करती है। यथा—सतो भावः सत्ता-ऽस्तित्वमित्यर्थः,सा सर्वेष्वपि एकैव वर्त्तते, च पुनर्द्विविधो नयः द्रव्यपर्यायादिस्वरूपः तथा कालत्रयं गतिचतुष्कं पञ्चैव अस्तिकाया धर्माधर्माकाशपुद्गलजीवस्वरूपाः सन्ति, च पुनर्द्रव्याणां धर्मास्तिकायादीनां कालद्रव्ययुक्तानां षट्कमस्ति तथा नैगमाद्याः सप्तनयाः सन्ति।

श्रीपालचरित–टीका

इसमें बीच-बीचमें अनेक सुन्दर कहावतोंका प्रयोग भी दर्शनीय है।

"पानीयं पीत्वा किल पश्चाद् गृहं पृच्छ्यते"
"दग्धानामुपरि स्फोटकदानक्रिया किं करोषि"
"पित्तं यदि शर्करया सितोपलया शाम्यति तर्हि पटोलया कोशितक्या क्षारवल्ल्या किम्"।

जीवविचारवृत्ति

श्रीजिन आगमके चार अनुयोगोंमें द्रव्यानुयोग मुख्य अनुयोग है। यह वृत्ति द्रव्यानुयोग शाखाके मुख्य अंश जीवविचारपर लिखी गयी है। यद्यपि इस मुख्यांशपर अनेक विद्वानोंने टीकाएं एवं वृत्तियाँ लिखी हैं किन्तु मुनिप्रवर क्षमाकल्याण द्वारा रचित यह वृत्ति विद्वत् समाजमें सर्वश्रेष्ठ मानी जाती है। इस वृत्तिका रचनाकाल भाद्रपद शुक्लपक्षकी सप्तमी संवत् १८५० है।[1] परम्परानुसार वृत्तिकारने इस वृत्तिमें भी अपने गुरुओंका आदरके साथ उल्लेख किया है। जिस श्लोक द्वारा गुरु-स्मरण किया गया है वह श्लोक श्रीपाल-चरितके श्लोकका ही २-३ शब्दोंके हेर-फेरसे किया हुआ एक रूपान्तर मात्र है।

जीवविचार भी मूलरूपमें प्राकृत भाषाका ग्रन्थ है। इसके प्राकृत सूत्रोंको स्पष्ट रूपसे समझानेके लिए मुनिवरने इस वृत्तिमें संस्कृतका आश्रय लेकर जिस रीतिसे सूत्रोंके सार मर्मको प्रकाशित किया है वह सर्वथा हृदयहारी है। यथा—

"सिद्धा पनरस भेया, तित्थ अतित्थाई सिद्धभेएण। एए सखेवेणं जीवविप्पा समक्खाया"।

वृत्ति

सिद्धाः सर्वकर्मनिमुक्ता जीवाः, तीर्थंकरातीर्थंकरादिसिद्धभेदेन पञ्चदश भेदा ज्ञेयाः। अत्र सूत्रे प्राकृत-त्वात्करपदलोपः। तत्र तीर्थंकराः सतो ये सिद्धास्ते तीर्थकरसिद्धाः अतीर्थंकराः सामान्याः केवलिनः संतो ये सिद्धास्तेऽतीर्थंकरसिद्धाः। आदिपदात्तीर्थसिद्धाः अतीर्थसिद्धादिपंचदश भेदा नवतत्त्वादिभ्यो ज्ञातव्याः। इत्थं संक्षेपेण एते जीवानां विकल्पाः भेदाः समाख्याताः कथिताः।

—जीवविचारवृत्ति

---

१. संवद् व्योमशिलीमुखाष्ट वसुधा (१८५०) संख्ये नभस्ये सिते पक्षे पावन-सप्तमी सुदिवसे बौंकादिनेराभिधे। श्रीमति पूर्णतामभजत व्याख्या सुबोधिन्यसौ सम्यक् श्रीगुणचन्द्रसूरिमुनिये गच्छेशतां बिभ्रति॥

तर्कसंग्रह फक्किका

तर्कसंग्रह फक्किकाकी रचना मुनि क्षमाकल्याणने संवत् १८२८में की थी।[1] यह फक्किका श्री अन्नंभट्टके तर्कसंग्रहकी स्वोपज्ञदीपिकाटीकाकी एक सरल टीका है। तर्कसंग्रहकी दीपिकाके प्रतिपादनपर अपनी कोई स्वतन्त्र समालोचना न लिखकर दीपिकाके भावार्थको इस फक्किकामें जिस रीतिसे स्पष्ट किया गया है वह फक्किकाकारकी समझानेकी शैलीकी विशेषता है। मुनि क्षमाकल्याण दीपिकाकारके लक्षणों और स्वरचित लक्षणोंका पदकृत्य काव्यकी खण्डान्वय पद्धतिका अनुसरण करते हुए कहते हैं। यथा—किं नाम उद्देशत्वम्? "नाममात्रेण पदार्थसंकीर्तनम् उद्देशत्वं" ताल्वोष्ठव्यापारेणोच्चारणं संकीर्तनम्। इहवंशे पाठ्यमान-दलद्वयविभागजन्यचटचटाशब्दे अतिव्याप्तिवारणाय नामपदम्, वंध्यापुत्रे अतिव्याप्तिवारणाय पदार्थपदम्, लक्षणवाक्ये अतिव्याप्तिवारणाय मात्रपदम्।

साध्यव्यापकत्वे सति साधनाव्यापकत्वाद् आर्द्रेन्धनसंयोग उपाधिः। उपाधिके इस लक्षणपर दीपिका-कारने "उपाधिश्चतुर्विधः—केवल साध्यव्यापकः, पक्षधर्मावच्छिन्नसाध्यव्यापकः" आदिके द्वारा उपाधिका वर्गीकरण अवश्य किया है परन्तु लक्षणके प्रत्येक पदको समझानेका इसमें कोई प्रयत्न नहीं किया गया। मुनिप्रवर क्षमाकल्याणकी फक्किका इसके लिए विशेष सहायक होती है। यथा—साध्येति-साध्यो धूमः, तत्समानाधिकरणो योऽत्यत्रभाव आर्द्रेन्धनसंयोगाभावस्तु नायाति, तर्हि घटपटाद्यत्यन्ताभावः तस्य प्रतियोगित्वं वर्त्तते घटादौ, अप्रतियोगित्वम् वर्त्तते आर्द्रेन्धनसंयोगे।

इस उदाहरणसे यह स्पष्ट है कि मुनि क्षमाकल्याण पदपदार्थके रहस्यको पूर्णरूपेण समझा देनेकी अपूर्व क्षमता रखते हैं।

गौतमीय काव्यम् टीका

"गोतमीय काव्यम्" क्षमाकल्याणजीके गुरु पाठक श्रीकूपचन्द्र गणि द्वारा विरचित एक महाकाव्य है। इसपर गौतमीयप्रकाश नामकी यह विशद व्याख्या श्री क्षमाकल्याणने १८५२में लिखी थी।[2]

आपके द्वारा लिखित समस्त टीकाओं, वृत्तियों एवं व्याख्याओंमें यह टीका सर्वश्रेष्ठ मानी जाती है। इसमें मूल लेखकके गम्भीर एवं गूढ़ विचारोंको अत्यन्त सरल एवं मनोरम रूपमें स्पष्ट करनेका पूर्ण प्रयास किया गया है। इसमें जैनसिद्धान्तोंकी स्थापनाके लिए बौद्ध,[3] वेदान्त[4] और न्यायादि[5] दर्शनोंका युक्तियुक्त

---

१. तद्विनेयेन क्षमादिकल्याणेन मनीषिणा। तर्कसंग्रहसूत्रस्य संवृतेः फक्किका इमाः।
यथाश्रुता गुरुमुखात् तथा सङ्कलिताः स्वयम्। वसुनेत्रे सिद्धिचन्द्रप्रमिते हायने मुदा॥—तर्कसंग्रह फक्किका

२. (अ) बाहुज्ञानवसुक्ष्मा (१८५२) प्रमितिजे वर्षे नभस्युज्ज्वले।
एकादश्यां विलसत्तिथौ कुमुदिनीनाथान्वितायामिह॥
(आ) तच्छिष्यो वरधर्मवासितमतिः प्राज्ञः क्षमापूर्वकः कल्याणः कृतवानिमां कृति जनः स्वान्तप्रमोदाप्तये।
बुद्धेर्मन्दतया प्रमादवशतो वा किंचिदुक्तं मयाऽत्राशुद्धं परिशोधयन्तु सुधियो मिथ्याऽस्तु मे दुष्कृतम्॥

३. तथा तेषां शून्यवादिनां बौद्धैकदेशिनां शून्यता एव परं प्रधानं तत्त्वं विद्यते, तेषां वाचो गिरोऽर्थशून्यत्वाद-भिधेयहीनत्वात्कदापि कस्मिन्नपि काले न प्रतीताः स्युर्न प्रतीतियुक्ता भवन्ति। अयमर्थः ये खलु सर्वं-शून्यामेवास्तीति वदन्ति तेषां वाचोऽपि सर्ववस्त्वन्तर्गतत्वात् शून्या एव, ततश्चार्थशून्ये तद्वचने को विद्वा-न्प्रतीतिं कुर्वीतेति॥ सर्ग ७।७३।

४. वेदान्तिनां मतं वेदान्तिमतं तदाश्रित्य यद्यपि ब्राह्मण आत्मन ऐक्यमेकत्वं स्थितम्, तथापि हे गौतम लिङ्गस्य चिह्नस्य भेदेन आत्मनो जीवनस्य भेदं नानात्वमवधारय जानीहि। वेदान्ति-मतं तावदिदम् "एकएव हि

पूर्ण खण्डन जिस रीतिसे किया गया है उससे व्याख्याकारकी समर्थ विद्वत्ता, प्रौढ़ अनुभवशीलता तथा अनुपम विवेचनशक्तिका ज्ञान होता है।

यशोधरचरित्रम्

मुनि क्षमाकल्याण द्वारा रचित इस चरित्र का रचनाकाल संवत् १८३९ है।[1] इसमें एक पाप करनेसे किन-किन योनियोंमें भटकते हुए उस पापका प्रायश्चित्त करना होता है इसका साङ्गोपाङ्ग वर्णन एक माता द्वारा बलात् अपने पुत्रको एक मुर्गेका मांस भक्षण करा देनेसे उनके भिन्न-भिन्न १० जन्मोंका वर्णन किया गया है। वे मयूर-श्वान, नकुल-भुजङ्ग, मत्स्य-ग्राह, अज-मेष, मेष-महिष, मुर्गा-मुर्गी आदि योनियोंमें उत्पन्न होते रहे और अपने-अपने पूर्व जन्मानुसार उनका फल भोगते रहे।

इस चरित्रकी वर्णन-शैली और इसकी भाषापर बाण एवं दण्डीका प्रभाव स्पष्ट रूपसे परिलक्षित होता है। नीचे लिखे उपदेशमें कादम्बरीके शुकनाशोपदेशकी झलक स्पष्ट है। यथा—तात! दारपरिग्रहो नाम निरौषधो व्याधिः, आयतनं मोहस्य, सभा व्याक्षेपस्य, प्रतिपक्षः शान्तेः, भवनं मदस्य, वैरी शुद्धध्यानानाम्, प्रभवो दुःखसमुदायस्य, निधनं सुखानाम् आवासो महापापस्य।[2]

बाणकी इस अनुकृतिके साथ निम्नलिखित गद्यांशमें दशकुमारचरितकी गद्यशैली भी पूर्ण सफलताके साथ अपनायी गयी है। यथा—

अथ एवंविधे तत्राऽतीव भयङ्करे व्यतिकरे बहुभिस्तपोधनैः परिवृतः परमसंवृतः सदासुदृष्टिर्युगमात्रभूमि-स्थापितदृष्टिर्महोपयोगी।[3]

होलिका व्याख्यानम्

धार्मिक पर्वों पर व्रत-उपवासादिके महत्त्वको बतानेवाले प्रवचनों और कथाओंको जैनविद्वान् व्याख्यान कहते हैं। मौन एकादशी, दीपावली, होलिका, ज्ञानपञ्चमी, अक्षयतृतीया और मेरु त्रयोदशी आदि पर्वोंपर

भूतात्मा भूते भूते व्यवस्थितः। एकधा बहुधा चैव दृश्यते जलचन्द्रवत् यथा विशुद्धमाकाशं तिमिरोपप्लुतो जनः संकीर्णमिव मात्राभिर्भिन्नाभिरभिमन्यते। तथेदममलं ब्रह्म निर्विकल्पमविद्यया कलुषत्वमिवापन्नं भेदरूपं प्रकाशते। सर्ग ७।७४।

५. यदि केवलं चक्षुरिन्द्रियग्राह्यमेव प्रत्यक्षं स्यात् तदा गन्धादि-विषये गन्धरस-स्पर्शादिविषये निरुपाधिक-मुपाधिवर्जितं प्रत्यक्षं ज्ञानं किमुच्यते कथं प्रोच्यते? तस्मात्प्रागुक्तमेव तल्लक्षणं ज्ञेयम्। चाक्षुषमिति चक्षुषा गृह्यते इत्यर्थे विशेषे इत्यण्। निरित्यादि। निर्गत उपाधिर्यस्मात् स्वसमीपवर्तिनि स्ववृत्तिधर्म-सङ्क्रामकत्वमुपाधित्वमिति तल्लक्षणम्। ७।५०।

१. (अ) वर्षे नन्दकृशानु-सिद्धि-वसुधासङ्ख्ये (१८३९) नभस्य सिते पक्षे पावनपञ्चमी सुदिवसे॥

(आ) सूरिश्रीजिनभक्ति-भक्तिनिरताः श्रीप्रीतितः सागराः
तत् शिष्यामृतधर्मवाचकवराः सन्ति स्वधर्मादराः।
तत्पादाम्बुजरेणुराप्तवचनः स्मर्ता विपश्चित् क्षमा-
कल्याणः कृतवान् मुदे सुमनसामेतच्चरित्रं स्फुटम्॥—यशोधरचरित्रम्-अन्तिम प्रशस्ति।

२. यशोधरचरित्रम्-पृष्ठ ४९।

३. यशोधरचरित्रम्-पृष्ठ ३३।

इनका आयोजन विशेषरूपसे होता है। विक्रम संवत् १८३५ में रचित 'होलिका व्याख्यानम्' क्षमाकल्याण मुनिका सबसे पहला व्याख्यान है।[1] इसका पठन-पाठन होलिका पर्वपर किया जाता है।

इत्थं वृथैव संभूतं होलिकापर्व विज्ञाय सुधीभिः शुभार्थं कर्त्तव्यं किन्तु तस्मिन् दिने प्रतिक्रमण-व्रत-जिनपूजादिधर्मकार्यं विधेयम्, यो हि होलिकाज्वालायां गुलालस्यैकां मुष्टिं प्रक्षिपति तस्य दश उपवासाः प्रायश्चित्तम्, एककलशप्रमाण-जलप्रक्षेपणे शतमुपवासानां प्रायश्चित्तम्, एकपूंगीफलप्रक्षेपे पञ्चाशत् वाराः होलिकायां काष्ठप्रक्षेपे सहस्रशो भस्मीभवनं भवति।[2]

मेरुत्रयोदशीव्याख्यानम्

मेरुत्रयोदशीव्याख्यानम्की रचना महोपाध्याय क्षमाकल्याण द्वारा संवत् १८६० में बीकानेर प्रवासके समय की गयी थी।[3] इसमें मेरु त्रयोदशीके व्रतसे पङ्गुत्व दूर होनेकी कथा कही गयी है। गांगिल मुनिके उपदेशसे राजकुमारने यह व्रत किया था और अन्तमें स्वस्थ होकर उसने मलय देशकी राजकुमारीसे विवाह कर लिया।

इस कथानकको अत्यन्त सीधे शब्दोंमें जैन श्रावकोंको समझाया गया है। कथामें व्यावहारिक शैलीके अनुरूप शब्दोंका चयन किया गया है। वाक्य छोटे-छोटे होते हुए भी अत्यन्त सरस हैं। यथा—धर्मस्य मूलं दया, पापस्य मूलं हिंसा, यो हिंसां करोति, अन्यः कारयति, अपरोऽनुमन्यते एते त्रयोऽपि सदृश पापभाजः पुनर्यो हिंसां कुर्वन् मनसि त्रासं न प्राप्नोति, यस्य हृदये दया नास्ति, यो जीवो निर्दयः सन् बहून् एकेन्द्रियान् विनाशयति स परभवे वातपित्तादिरोगभाग् भवति।[4]

चैत्यवन्दन-चतुर्विंशतिका[5]

चैत्यवन्दन चतुर्विंशतिकामें महोपाध्याय क्षमाकल्याणने २४ तीर्थंकरोंकी स्तुति अलग-अलग छन्दोंमें की है। प्रत्येक चैत्यकी स्तुति ३ श्लोकों द्वारा की गयी है परन्तु मल्लिजिन चैत्यके वन्दनामें ५ श्लोक होनेसे इसकी सम्पूर्ण श्लोक संख्या ७४ है। भाषा-सौष्ठव और भावोंकी सुन्दर अभिव्यक्तिके कारण जैन स्तोत्र साहित्यमें इस स्तोत्रको सिद्धसेन दिवाकरके कल्याण मन्दिर और मेरुतुङ्गके भक्तामर आदि स्तोत्रोंकी श्रेणीमें रखा जाता है।

---

१. (क) श्रीमन्तो गुणशालिनः समभवन्, प्रीत्यादिमाः सागरास्तच्छिष्यामृतवाचकवराः सन्ति स्वधर्मादराः।
तत्पादाम्बुजरेणुराप्तवचनस्मर्ता विपश्चित् क्षमाकल्याणः कृतवानिदं सुविशदं व्याख्यानमाख्यानभृद्॥
—होलिका व्याख्यानम्-अन्तिम प्रशस्ति।

(ख) संवद्वाणकृशानुसिद्धिवसुवा १८३५ संख्ये नभस्येऽसिते पक्षे पावन-पंचमी सुदिवसे पाटोधिसंज्ञे पुरे॥
—होलिका व्याख्यानम्-अन्तिम प्रशस्ति।

२. होलिकाव्याख्यानम्-द्वादश कथा संग्रह-पृष्ठ २८।

३. संवद् व्योमरसाष्टेन्दु (१८६०) मिते फाल्गुन मासके। असितैकादशीतिथ्यां बीकानेराख्यसत्पुरे।
व्याख्यानं प्राक्तनं वीक्ष्य निबद्धं लोकभाषायां। अलेखि संस्कृतीकृत्य क्षमाकल्याणपाठकैः॥
—मेरु त्रयोदशी व्याख्यानम्-प्रशस्ति

४. मेरु त्रयोदशी व्याख्यानम्-पृष्ठ ४।

५. इत्थं चतुर्विंशति संख्ययैत्र प्रसिद्धिभाजां वरतीर्थभाजाम्।
श्रीजैन वाक्यानुसृतप्रबंधा वृतैरहीना प्रणुतिर्नवीना॥
गणाधिपश्रीजिनलाभसूरिप्रभुप्रसादेन विनिर्मितेयम्।
जिनप्रणीतामृतधर्मसेविक्षमादिकल्याणबुधेन शुद्धचै॥ —चैत्यवन्दन-चतुर्विंशतिका-प्रशस्ति

पूर्ण खण्डन जिस रीतिसे किया गया है उससे व्याख्याकारकी समर्थ विद्वत्ता, प्रौढ़ अनुभवशीलता तथा अनुपम विवेचनशक्तिका ज्ञान होता है।

यशोधरचरित्रम्

मुनि क्षमाकल्याण द्वारा रचित इस चरित्र का रचनाकाल संवत् १८३९ है।[1] इसमें एक पाप करनेसे किन-किन योनियोंमें भटकते हुए उस पापका प्रायश्चित्त करना होता है इसका साङ्गोपाङ्ग वर्णन एक माता द्वारा बलात् अपने पुत्रको एक मुर्गेका मांस भक्षण करा देनेसे उनके भिन्न-भिन्न १० जन्मोंका वर्णन किया गया है। वे मयूर-श्वान, नकुल-भुजङ्ग, मत्स्य-ग्राह, अज-मेष, मेष-महिष, मुर्गा-मुर्गी आदि योनियोंमें उत्पन्न होते रहे और अपने-अपने पूर्व जन्मानुसार उनका फल भोगते रहे।

इस चरित्रकी वर्णन-शैली और इसकी भाषापर बाण एवं दण्डीका प्रभाव स्पष्ट रूपसे परिलक्षित होता है। नीचे लिखे उपदेशमें कादम्बरीके शुकनाशोपदेशकी झलक स्पष्ट है। यथा—तात! दारपरिग्रहो नाम निरौषधो व्याधिः, आयतनं मोहस्य, सभा व्याक्षेपस्य, प्रतिपक्षः शान्तेः, भवनं मदस्य, वैरी शुद्धध्यानानाम्, प्रभवो दुःखसमुदायस्य, निधनं सुखानाम् आवासो महापापस्य।[2]

बाणकी इस अनुकृतिके साथ निम्नलिखित गद्यांशमें दशकुमारचरितकी गद्यशैली भी पूर्ण सफलताके साथ अपनायी गयी है। यथा—

अथ एवंविधे तत्राऽतीव भयङ्करे व्यतिकरे बहुभिस्तपोधनैः परिवृतः परमसंवृतः सदासुदृष्टिर्युगमात्रभूमिस्थापितदृष्टिर्महोपयोगी।[3]

होलिका व्याख्यानम्

धार्मिक पर्वों पर व्रत-उपवासादिके महत्त्वको बतानेवाले प्रवचनों और कथाओंको जैनविद्वान् व्याख्यान कहते हैं। मौन एकादशी, दीपावली, होलिका, ज्ञानपञ्चमी, अक्षयतृतीया और मेरु त्रयोदशी आदि पर्वोंपर

भूतात्मा भूते भूते व्यवस्थितः। एकधा बहुधा चैव दृश्यते जलचन्द्रवत् यथा विशुद्धमाकाशं तिमिरोपप्लुतो जनः संकीर्णमिव मात्राभिर्भिन्नाभिरभिमन्यते। तथेदममलं ब्रह्म निर्विकल्पमविद्यया कलुषत्वमिवापन्नं भेदरूपं प्रकाशते। सर्ग ७।७४।

५. यदि केवलं चक्षुरिन्द्रियग्राह्यमेव प्रत्यक्षं स्यात् तदा गन्धादि-विषये गन्धरस-स्पर्शादिविषये निरुपाधिकमुपाधिवर्जितं प्रत्यक्षं ज्ञानं किमुच्यते कथं प्रोच्यते? तस्मात्प्रागुक्तमेव तल्लक्षणं ज्ञेयम्। चाक्षुषमिति चक्षुषा गृह्यते इत्यर्थे विशेषे इत्यण्। निरित्यादि। निर्गत उपाधिर्यस्मात् स्वसमीपवर्तिनि स्ववृत्तिधर्मसङ्क्रामकत्वमुपाधित्वमिति तल्लक्षणम्। ७।५०।

१. (अ) वर्षे नन्दकृशानु-सिद्धि-वसुधासङ्ख्ये (१८३९) नभस्य सिते पक्षे पावनपञ्चमी सुदिवसे॥

(आ) सूरिश्रीजिनभक्ति-भक्तिनिरताः श्रीप्रीतितः सागराः
तत् शिष्यामृतधर्मवाचकवराः सन्ति स्वधर्मादराः।
तत्पादाम्बुजरेणुराप्तवचनः स्मर्ता विपश्चित् क्षमा-
कल्याणः कृतवान् मुदे सुमनसामेतच्चरित्रं स्फुटम्॥—यशोधरचरित्रम्-अन्तिम प्रशस्ति।

२. यशोधरचरित्रम्-पृष्ठ ४९।

३. यशोधरचरित्रम्-पृष्ठ ३३।

इनका आयोजन विशेषरूपसे होता है। विक्रम संवत् १८३५ में रचित 'होलिका व्याख्यानम्' क्षमाकल्याण मुनिका सबसे पहला व्याख्यान है।[१] इसका पठन-पाठन होलिका पर्वपर किया जाता है।

इत्थं वृथैव संभूतं होलिकापर्वं विज्ञाय सुधीभिः शुभार्थं कर्त्तव्यं किन्तु तस्मिन् दिने प्रतिक्रमण-व्रत-जिनपूजादिधर्मकार्यं विधेयम्, यो हि होलिकाज्वालायां गुलालस्यैकां मुष्टिं प्रक्षिपति तस्य दश उपवासाः प्रायश्चित्तम्, एककलशप्रमाण-जलप्रक्षेपणे शतमुपवासानां प्रायश्चित्तम्, एकपूंगीफलप्रक्षेपे पञ्चाशत् वाराः होलिकायां काष्ठप्रक्षेपे सहस्रशो भस्मीभवनं भवति।[२]

मेरुत्रयोदशीव्याख्यानम्

मेरुत्रयोदशीव्याख्यानम्की रचना महोपाध्याय क्षमाकल्याण द्वारा संवत् १८६० में बीकानेर प्रवासके समय की गयी थी।[३] इसमें मेरु त्रयोदशीके व्रतसे पङ्गुत्व दूर होनेकी कथा कही गयी है। गांगिल मुनिके उपदेशसे राजकुमारने यह व्रत किया था और अन्तमें स्वस्थ होकर उसने मलय देशकी राजकुमारीसे विवाह कर लिया।

इस कथानकको अत्यन्त सीधे शब्दोंमें जैन श्रावकोंको समझाया गया है। कथामें व्यावहारिक शैलीके अनुरूप शब्दोंका चयन किया गया है। वाक्य छोटे-छोटे होते हुए भी अत्यन्त सरस हैं। यथा—धर्मस्य मूलं दया, पापस्य मूलं हिंसा, यो हिंसां करोति, अन्यः कारयति, अपरोऽनुमन्यते एते त्रयोऽपि सदृश पापभाजः पुनर्यो हिंसां कुर्वन् मनसि त्रासं न प्राप्नोति, यस्य हृदये दया नास्ति, यो जीवो निर्दयः सन् बहून् एकेन्द्रियान् विनाशयति स परभवे वातपित्तादिरोगभाग् भवति।[४]

चैत्यवन्दन-चतुर्विंशतिका[५]

चैत्यवन्दन चतुर्विंशतिकामें महोपाध्याय क्षमाकल्याणने २४ तीर्थंकरोंकी स्तुति अलग-अलग छन्दोंमें की है। प्रत्येक चैत्यकी स्तुति ३ श्लोकों द्वारा की गयी है परन्तु मल्लिजिन चैत्यके वन्दनामें ५ श्लोक होनेसे इसकी सम्पूर्ण श्लोक संख्या ७४ है। भाषा-सौष्ठव और भावोंकी सुन्दर अभिव्यक्तिके कारण जैन स्तोत्र साहित्यमें इस स्तोत्रको सिद्धसेन दिवाकरके कल्याण मन्दिर और मेरुतुङ्गके भक्तामर आदि स्तोत्रोंकी श्रेणीमें रखा जाता है।

---

१. (क) श्रीमन्तो गुणशालिनः समभवन्, प्रीत्यादिमाः सागरास्तच्छिष्यामृतवाचकवराः सन्ति स्वधर्मादराः।
तत्पादाम्बुजरेणुराप्तवचनस्मर्ता विपश्चित् क्षमाकल्याणः कृतवानिदं सुविशदं व्याख्यानमाख्यानभृद्॥
—होलिका व्याख्यानम्-अन्तिम प्रशस्ति।

(ख) संवद्बाणकृशानुसिद्धिवसुवा १८३५ संख्ये नभस्येऽसिते पक्षे पावन-पंचमी सुदिवसे पाटोधिसंज्ञे पुरे॥
—होलिका व्याख्यानम्-अन्तिम प्रशस्ति।

२. होलिकाव्याख्यानम्-द्वादश कथा संग्रह-पृष्ठ २८।

३. संवद् व्योमरसाष्टेन्दु (१८६०) मिते फाल्गुन मासके। असितैकादशीतिथ्यां बीकानेराख्यसत्पुरे।
व्याख्यानं प्राक्तनं वीक्ष्य निबद्धं लोकभाषायां। अलेखि संस्कृतीकृत्य क्षमाकल्याणपाठकैः॥
—मेरु त्रयोदशी व्याख्यानम्-प्रशस्ति

४. मेरु त्रयोदशी व्याख्यानम्-पृष्ठ ४।

५. इत्थं चतुर्विंशति संख्ययैव प्रसिद्धिभाजां वरतीर्थभाजाम्।
श्रीजैन वाक्यानुसृतप्रबंधा वृत्तैरहीना प्रणुतिर्नवीना॥
गणाधिपश्रीजिनलाभसूरिप्रभुप्रसादेन विनिर्मितेयम्।
जिनप्रणीतामृतधर्मसेविक्षमादिकल्याणबुधेन शुद्ध्यै॥
—चैत्यवन्दन-चतुर्विंशतिका-प्रशस्ति

इस स्तोत्रकी प्रशस्ति अथवा इसके उपसंहारमें रचनाकालका उल्लेख नहीं है। श्लोकोंकी रचनासे यदि अनुमान करें तो वे सब एक समान काव्यशक्तिसे सम्पन्न दिखाई नहीं देते। कुछमें केवल शब्दानुप्रास है और कुछ उच्चकोटिकी प्रौढि और भावभक्तिसे पूर्ण दिखाई देते हैं। इससे ज्ञात होता है कि क्षमाकल्याणने इसकी रचना एक समय न करके विभिन्न समयोंमें की है।

इस स्तोत्रमें शार्दूलविक्रीडित, मालिनी, स्रग्धरा, द्रुतविलम्बित, उपेन्द्रवज्रा, भुजङ्गप्रयात, त्रोटक, वंशस्थ, वसन्ततिलका, हरिणी, रथोद्धता, मन्दाक्रान्ता, कामक्रीडा, गीतपद्धति, पंचचामर, उपजाति और पृथ्वी छन्दोंका प्रयोग किया गया है। छन्दोंकी इस तालिकासे स्पष्ट है कि क्षमाकल्याणका प्रत्येक छन्दपर अधिकार था और कुछ छन्द तो ऐसे हैं जिनका अन्य स्तोत्रोंमें दर्शन भी नहीं होता।

रचना सौन्दर्य एवं भक्ति-उद्रेक

स्तुतियोंमें क्षमाकल्याण जिन विशेषणोंका प्रयोग करते हैं वे विशेषण शरीरकी आकृतिसे सम्बन्ध न रखकर अपने इष्टदेवोंके उन गुणोंका स्मरण करते हैं जो उनके जीवनकी विशेषताके द्योतक हैं। संभवेश प्रशमरसमय हैं तो वीरप्रभु अपने ज्ञानप्रकाशसे विवेकिजनवल्लभ हैं।

विवेकिजनवल्लभं भुवि दुरात्मनां दुरन्तदुरितव्यथाभरनिवारणे तत्परम्।
तवाङ्गपदपद्मयोर्युगमनिन्द्य वीरप्रभो प्रभूतसुखसिद्धये मम चिराय सम्पद्यताम्॥

यद्भक्त्यासक्तचित्ताः प्रचुरतरभवभ्रान्तिमुक्ताः
संजाताः साधुभावोल्लसितनिजगुणान्वेषिणः सद्य एव।
स श्रीमान् संभवेशः प्रशमरसमयो विश्वविश्वोपकर्ता
सद्भर्ता दिव्यदीप्ति परमपदकृतेसेव्यतां भव्यलोकाः॥

जहाँ संभवेशकी स्तुतिमें क्षमाकल्याण भावोंसे ओतप्रोत दिखाई देते हैं वहाँ धर्मनाथ चैत्यकी वन्दनामें एक ही प्रकारके प्रत्ययान्त शब्दोंके प्रयोग और अनुप्रासकी छटामें ही आप अपनी विशेषता दिखाते प्रतीत होते हैं।

निःशेषार्थप्रादुष्कर्ता सिद्धेर्भर्ता संहर्ता
दुर्भावानां दूरेहर्ता दीनोद्धर्ता संस्मर्ता।
सद्भक्तेभ्यो मुक्तेर्दाता विश्वत्राता निर्माता।

आपके कुछ श्लोक ऐसे भी हैं जो मधुर और कोमलकान्त पदावलीके कारण विशेष रूपसे आकर्षक माने जा सकते हैं।

विशदशारद-सोमसमाननः कमलकोमल-चारुविलोचनः।
शुचिगुणः सुतरामभिनन्दनः जयतु निर्मलताञ्चितभूधनः॥

स्तोत्रके इन कतिपय उदाहरणोंसे इस स्तोत्रकी रचनशैली और इसके भावोंकी भूमिकाका सामान्य ज्ञान पाठक प्राप्त कर सकते हैं।

उपसंहारमें यही कहा जा सकता है कि इन समस्त ग्रन्थोंके अनुशीलनसे ज्ञात होता है कि महोपाध्याय क्षमाकल्याणका संस्कृत भाषापर पूर्ण अधिकार था। आपकी संस्कृत भाषा प्रत्येक विषयके प्रतिपादनमें सर्वथा प्रवाहशील रहती थी। होलिकाव्याख्यानम्में यदि यह भाषा कुछ स्थलोंमें समस्त हो गयी है तो अक्षयतृतीया व्याख्यानम्में यह विशेष रूपसे अभिव्यञ्जक बन गयी है। यशोधर चरित्रके उपदेशमें आपने कादम्बरीके शुकनासोपदेशका अनुसरण और अनुकरण भी परम सुन्दर रीतिसे किया है।

कथाओंके अतिरिक्त आपने जैन चरितों, काव्यों तथा दार्शनिक ग्रन्थोंपर जिन टीकाओं एवं वृत्तियोंको लिखा है, उन सबका विवेचन भी उत्तमकोटिकी टीकाशैली एवं वृत्तिशैलीके अनुकूल ही है। काव्योंमें आपकी गौतमीय काव्यकी टीका पाण्डित्यकी दृष्टिसे सर्वोत्तम है। इस काव्यमें बौद्धों, वेदान्तियों, नैयायिकों आदि समस्त दार्शनिकोंकी आलोचना सुन्दर रूप की गयी है।

प्राकृतके कुछ शब्दोंकी व्युत्पत्ति

डॉ० वसन्त गजानन राहूरकर, एम० ए०, पी-एच० डी०,

बम्बई विश्वविद्यालय द्वारा आयोजित तृतीय 'प्राकृत सेमिनार'में मैंने यह शोध निवन्ध प्रस्तुत किया था। इसमें मैंने प्राकृतके शब्दचतुष्टयकी व्युत्पत्ति देनेका प्रयास किया है। इन चार शब्दोंका उल्लेख 'पाइयसद्दमहण्णव'में 'देशी शब्द'के रूपमें किया गया है। 'धर्मोपदेसमालाविवरण', जो जयसिंहसूरिके 'धर्मोपदेसमाला' नामक ग्रन्थपर भाष्यरूप है, अनेक आख्यानोंका संग्रह है। इन आख्यानोंमें 'गामेल्लय-अक्खाणयं' नामका जो आख्यान है, उसमें 'स अंबाडिऊण सिक्खविओ' इस वाक्यका बार-बार प्रयोग हुआ है। यहाँ 'अंबाडिऊण' शब्दकी व्युत्पत्ति क्या है, यह विचारणीय है। इस शब्दके अन्तमें जो ऊण प्रत्यय है, उससे ज्ञात होता है कि यह 'अंवाड' धातुका पूर्वकालवाचक धातुसाधित अव्यय है। 'पाइयसद्दमहण्णव'में 'अंबाड'का पर्यायी धातु 'खरण्ट' दिया है। यहाँपर 'निशीथचूर्णि'से एक उद्धरण भी दिया गया है—'चमढेति खरंटेति अंवाडेति उत्तं भवति।' अर्थात् चमढ, खरंट और अंबाड इस धातुत्रयका समान ही अर्थ है। खरण्टका अर्थ, अतएव, डाँटना-फटकारना, दोषी ठहराना (to reprovc, to censure) होता है। दूसरी धातु 'अंबाड'का 'तिरस् + कृ' (विद्वेष करना, शब्दोंसे मनको विद्ध करना) अर्थ दिया है।

यहाँ समस्या यह है कि 'अंवाड'की व्युत्पत्ति क्या है? यह देशी शब्द है या नहीं, इसपर मेरा मत है कि संस्कृत शब्द 'आम्रातक'से प्राकृत नाम धातु 'अंवाडच' बन सकता है। 'आम्रातक'का अर्थ है—'The fruit of the hogplum, Spondias Mongiferra', (मराठी भाषामें इसे 'अंबाडा' कहते हैं)। इस फलका रस आम्रफल रसके समान दिखाई देता है (देखिये—आम्रम् अतति इति आम्रातकम्)।

जब इस फलका रस निकालना होता है, तो फलको जोरसे दबाना होता है और बीजको अन्दरसे छेदकर रस निकाला जाता है। अतः इस प्रतीकके उपयोगसे 'अंबाड' धातुका अर्थ 'शब्दोंके जोरसे मनका मर्दन करना' अथवा 'मनको विद्ध करना' ऐसा हो गया होगा।

मराठी भाषामें 'ओवालणें' एक धातु है जिसका अर्थ अभिनन्दन करते समय या शुभेच्छा व्यक्त करते समय 'दीपसे चेहरेके समीप नीराजना करना' होता है। इस मराठी धातुकी व्युत्पत्ति क्या होगी, इस समस्यापर जब मैंने विचार किया तो प्राकृतका 'ओमालिय' (शोभित, पूजित) शब्द ध्यानमें आया। किन्तु यहाँ अर्थमें बहुत अन्तर है। संस्कृतमें मङ्खक कविका 'श्रीकण्ठचरित' नामक महाकाव्य है। इसके प्रथम सर्गके तीसरे श्लोकमें शिवके तृतीय नेत्रकी अग्निका वर्णन है। इस वर्णनमें 'उन्मालक' शब्दका प्रयोग किया गया है।[1] यदि कोई व्यक्ति किसी अच्छी घटना या वस्तुको देखकर सन्तुष्ट हो जाता है तो किसी वस्तुकी नीराजना कर पारितोषिक दान करता है। इस पारितोषिक दानको यहाँ 'उन्मालक' कहा है। 'उन्मालक'-का प्राकृत रूपान्तर क्रमशः इस प्रकार हुआ होगा—उन्मालक > उन्मालय > ओमालय > ओवाळ।

मराठी भाषामें 'हातचा मल' नामका एक शब्द प्रयोग है। जो कार्य करनेमें सुकर मालूम पड़ता है

---

१. भालस्थलीरङ्गतले मृडस्य हुताशनस्ताण्डवकृत् स वोऽव्यात्।
यस्मिन् रतिप्राणसमः शरीरमुन्मालकायैव निजं मुमोच॥

इस स्तोत्रकी प्रशस्ति अथवा इसके उपसंहारमें रचनाकालका उल्लेख नहीं है। श्लोकोंकी रचनासे यदि अनुमान करें तो वे सब एक समान काव्यशक्तिसे सम्पन्न दिखाई नहीं देते। कुछमें केवल शब्दानुप्रास है और कुछ उच्चकोटिकी प्रौढि और भावभक्तिसे पूर्ण दिखाई देते हैं। इससे ज्ञात होता है कि क्षमाकल्याणने इसकी रचना एक समय न करके विभिन्न समयोंमें की है।

इस स्तोत्रमें शार्दूलविक्रीडित, मालिनी, स्रग्धरा, द्रुतविलम्बित, उपेन्द्रवज्रा, भुजङ्गप्रयात, त्रोटक, वंशस्थ, वसन्ततिलका, हरिणी, रथोद्धता, मन्दाक्रान्ता, कामक्रीडा, गीतपद्धति, पंचचामर, उपजाति और पृथ्वी छन्दोंका प्रयोग किया गया है। छन्दोंकी इस तालिकासे स्पष्ट है कि क्षमाकल्याणका प्रत्येक छन्दपर अधिकार था और कुछ छन्द तो ऐसे हैं जिनका अन्य स्तोत्रोंमें दर्शन भी नहीं होता।

रचना सौन्दर्य एवं भक्ति-उद्रेक

स्तुतियोंमें क्षमाकल्याण जिन विशेषणोंका प्रयोग करते हैं वे विशेषण शरीरकी आकृतिसे सम्बन्ध न रखकर अपने इष्टदेवोंके उन गुणोंका स्मरण करते हैं जो उनके जीवनकी विशेषताके द्योतक हैं। संभवेश प्रशमरसमय हैं तो वीरप्रभु अपने ज्ञानप्रकाशसे विवेकिजनवल्लभ हैं।

विवेकिजनवल्लभं भुवि दुरात्मनां दुरन्तदुरितव्यथाभरनिवारणे तत्परम्।
तवाङ्गपदपद्मयोर्युगमनिन्द्य वीरप्रभो प्रभूतसुखसिद्धये मम चिराय सम्पद्यताम्॥

यद्भक्त्यासक्तचित्ताः प्रचुरतरभवभ्रान्तिमुक्ताः
संजाताः साधुभावोल्लसितनिजगुणान्वेषिणः सद्य एव।
स श्रीमान् संभवेशः प्रशमरसमयो विश्वविश्वोपकर्ता
सद्भर्ता दिव्यदीप्ति परमपदकृतेसेव्यतां भव्यलोकाः॥

जहाँ संभवेशकी स्तुतिमें क्षमाकल्याण भावोंसे ओतप्रोत दिखाई देते हैं वहाँ धर्मनाथ चैत्यकी वन्दनामें एक ही प्रकारके प्रत्ययान्त शब्दोंके प्रयोग और अनुप्रासकी छटामें ही आप अपनी विशेषता दिखाते प्रतीत होते हैं।

निःशेषार्थप्रादुष्कर्ता सिद्धेर्भर्ता संहर्ता
दुर्भावानां दूरेहर्ता दीनोद्धर्ता संस्मर्ता।
सद्भक्तेभ्यो मुक्तेर्दाता विश्वत्राता निर्माता।

आपके कुछ श्लोक ऐसे भी हैं जो मधुर और कोमलकान्त पदावलीके कारण विशेष रूपसे आकर्षक माने जा सकते हैं।

विशदशारद-सोमसमाननः कमलकोमल-चारुविलोचनः।
शुचिगुणः सुतरामभिनन्दनः जयतु निर्मलताञ्चितभूधनः॥

स्तोत्रके इन कतिपय उदाहरणोंसे इस स्तोत्रकी रचनशैली और इसके भावोंकी भूमिकाका सामान्य ज्ञान पाठक प्राप्त कर सकते हैं।

उपसंहारमें यही कहा जा सकता है कि इन समस्त ग्रन्थोंके अनुशीलनसे ज्ञात होता है कि महोपाध्याय क्षमाकल्याणका संस्कृत भाषापर पूर्ण अधिकार था। आपकी संस्कृत भाषा प्रत्येक विषयके प्रतिपादनमें सर्वथा प्रवाहशील रहती थी। होलिकाव्याख्यानम्में यदि यह भाषा कुछ स्थलोंमें समस्त हो गयी है तो अक्षयतृतीया व्याख्यानम्में यह विशेष रूपसे अभिव्यञ्जक बन गयी है। यशोधर चरित्रके उपदेशमें आपने कादम्बरीके शुकनासोपदेशका अनुसरण और अनुकरण भी परम सुन्दर रीतिसे किया है।

कथाओंके अतिरिक्त आपने जैन चरितों, काव्यों तथा दार्शनिक ग्रन्थोंपर जिन टीकाओं एवं वृत्तियोंको लिखा है, उन सबका विवेचन भी उत्तमकोटिकी टीकाशैली एवं वृत्तिशैलीके अनुकूल ही है। काव्योंमें आपकी गौतमीय काव्यकी टीका पाण्डित्यकी दृष्टिसे सर्वोत्तम है। इस काव्यमें बौद्धों, वेदान्तियों, नैयायिकों आदि समस्त दार्शनिकोंकी आलोचना सुन्दर रूप की गयी है।

प्राकृतके कुछ शब्दोंकी व्युत्पत्ति

डॉ० वसन्त गजानन राहूरकर, एम० ए०, पी-एच० डी०,

बम्बई विश्वविद्यालय द्वारा आयोजित तृतीय 'प्राकृत सेमिनार'में मैंने यह शोध निबन्ध प्रस्तुत किया था। इसमें मैंने प्राकृतके शब्दचतुष्टयकी व्युत्पत्ति देनेका प्रयास किया है। इन चार शब्दोंका उल्लेख 'पाइयसद्दमहण्णव'में 'देशी शब्द'के रूपमें किया गया है। 'धर्मोपदेसमालाविवरण', जो जयसिंहसूरिके 'धर्मोपदेसमाला' नामक ग्रन्थपर भाष्यरूप है, अनेक आख्यानोंका संग्रह है। इन आख्यानोंमें 'गामेल्लय-अक्खाणयं' नामका जो आख्यान है, उसमें 'स अंबाडिऊण सिक्खविओ' इस वाक्यका बार-बार प्रयोग हुआ है। यहाँ 'अंबाडिऊण' शब्दकी व्युत्पत्ति क्या है, यह विचारणीय है। इस शब्दके अन्तमें जो ऊण प्रत्यय है, उससे ज्ञात होता है कि यह 'अंबाड' धातुका पूर्वकालवाचक धातुसाधित अव्यय है। 'पाइयसद्दमहण्णव'में 'अंबाड'का पर्यायी धातु 'खरण्ट' दिया है। यहाँपर 'निशीथचूर्णि'से एक उद्धरण भी दिया गया है—'चमढेति खरंटेति अंबाडेति उत्तं भवति।' अर्थात् चमढ, खरंट और अंबाड इस धातुत्रयका समान ही अर्थ है। खरण्टका अर्थ, अतएव, डाँटना-फटकारना, दोषी ठहराना (to reprovc, to censure) होता है। दूसरी धातु 'अंबाड'का 'तिरस् + कृ' (विद्वेष करना, शब्दोंसे मनको विद्ध करना) अर्थ दिया है।

यहाँ समस्या यह है कि 'अंबाड'की व्युत्पत्ति क्या है? यह देशी शब्द है या नहीं, इसपर मेरा मत है कि संस्कृत शब्द 'आम्रातंक'से प्राकृत नाम धातु 'अंबाडच' बन सकता है। 'आम्रातक'का अर्थ है—'The fruit of the hogplum, Spondias Mongiferra', (मराठी भाषामें इसे 'अंबाडा' कहते हैं)। इस फलका रस आम्रफल रसके समान दिखाई देता है (देखिये—आम्रम् अतति इति आम्रातकम्)।

जब इस फलका रस निकालना होता है, तो फलको जोरसे दबाना होता है और बीजको अन्दरसे छेदकर रस निकाला जाता है। अतः इस प्रतीकके उपयोगसे 'अंबाड' धातुका अर्थ 'शब्दोंके जोरसे मनका मर्दन करना' अथवा 'मनको विद्ध करना' ऐसा हो गया होगा।

मराठी भाषामें 'ओवालणें' एक धातु है जिसका अर्थ अभिनन्दन करते समय या शुभेच्छा व्यक्त करते समय 'दीपसे चेहरेके समीप नीराजना करना' होता है। इस मराठी धातुकी व्युत्पत्ति क्या होगी, इस समस्यापर जब मैंने विचार किया तो प्राकृतका 'ओमालिय' (शोभित, पूजित) शब्द ध्यानमें आया। किन्तु यहाँ अर्थमें बहुत अन्तर है। संस्कृतमें मङ्खक कविका 'श्रीकण्ठचरित' नामक महाकाव्य है। इसके प्रथम सर्गके तीसरे श्लोकमें शिवके तृतीय नेत्रकी अग्निका वर्णन है। इस वर्णनमें 'उन्मालक' शब्दका प्रयोग किया गया है।[१] यदि कोई व्यक्ति किसी अच्छी घटना या वस्तुको देखकर सन्तुष्ट हो जाता है तो किसी वस्तुकी नीराजना कर पारितोषिक दान करता है। इस पारितोषिक दानको यहाँ 'उन्मालक' कहा है। 'उन्मालक'-का प्राकृत रूपान्तर क्रमशः इस प्रकार हुआ होगा—उन्मालक > उन्मालय > ओमालय > ओवाळ।

मराठी भाषामें 'हातचा मल' नामका एक शब्द प्रयोग है। जो कार्य करनेमें सुकर मालूम पड़ता है

---

१. भालस्थलीरङ्गतले मृडस्य हुताशनस्ताण्डवकृत् स वोऽव्यात्।
यस्मिन् रतिप्राणसमः शरीरमुन्मालकायैव निजं मुमोच॥

उसे हिन्दी, गुजराती तथा मराठीमें 'हाथका मैल' कहते हैं। इस शब्दकी व्युत्पत्ति संस्कृत भाषामें ढूँढ़नी पड़ेगी। आपाततः इस शब्द प्रयोगसे जैसा दिखाई पड़ता है, वैसा मल (dirt) का यहाँ कोई सम्बन्ध नहीं। संस्कृत शब्द 'हस्तामलक'से ही उपर्युक्त शब्दका प्रत्यक्ष सम्बन्ध है, ऐसा निस्सन्देह कहा जा सकता है। 'हस्तामलक' शब्दका अर्थ है—'हाथपर रखा हुआ आँवलेका फल।' हाथपर रखे हुए आमलक फलका सर्वांगीण दर्शन एवं ज्ञान बड़ी सरलतासे होता है। अतः यह प्रतीक संस्कृत भाषासे प्राकृत भाषामें और वहाँसे प्रादेशिक भाषाओंमें संक्रान्त हुआ। संक्रान्त होते समय एक 'आ'का लोप स्वाभाविकतया हो जाता है। उदाहरणके लिए 'कादम्बरी'में जाबालिके वर्णन—'हस्तामलकवत् निखिलं जगत् अवलोकयताम्'की तुलना 'वसुदेवहिण्डी' तथा 'कुमारपालचरिय'में प्रयुक्त वाक्यांश 'मुख्खोवाओ आमलगो विअ करतले देसिओ भगवया'से की जा सकती है। 'ज्ञानेश्वरी'की प्राचीन मराठीमें हम 'जैसा की हातिचा आमळू' प्रयोग मिलता है। यही मराठीमें 'हातचा मळ' हो गया।

'जोहार' शब्द 'प्रवचन-सारोद्धार' तथा 'धर्मोपदेसमालाविवरण'में झुककर नमस्कार करनेके अर्थमें आता है। यथा—'वच्छ ! ता पढमं दूराओ दट्ठूण माणणिज्जं महया सद्देन जोहारो कीरइ।' मराठीमें भी 'जोहार' शब्दका प्रयोग इसी अर्थमें होता है। यथा—'जोहार मायबाप जोहार।' 'पाइयसद्दमहण्णवो' तथा अनेक मराठी-शब्दकोशोंमें इस शब्दको 'देशी' माना गया है तथा मराठी-शब्दकोश इस शब्दको फारसी शब्द 'जोहार'से जोड़ते हैं।

मेरा ऐसा विचार है कि यह शब्द न तो देशी है और न फारसीका ही। किन्तु व्युत्पत्तिकी दृष्टिसे संस्कृत शब्द योद्धृ (योद्धा)से अधिक समीप है। प्रजा द्वारा राजाओंका संबोधन 'हे वीर (हे योद्धा) ऐसा होता था और उनको नमन किया जाता था। संस्कृत शब्द 'योद्धृ'को प्राकृत शब्द 'जोहार'में सरलतापूर्वक बदला जा सकता है—योद्धृ > जोहृ > जोहार—तथा नमस्कार करनेसे इसको जोड़ा जा सकता है।[1]

●

१. प्रस्तुत निबन्धके हिन्दी रूपान्तर करनेमें मेरे शिष्य डॉ० उमेशचन्द्र शर्माकी मुझे सहायता मिली। अतः मैं उनका कृतज्ञ हूँ।

अपभ्रंश कथा-काव्योंकी भारतीय संस्कृतिको देन

डॉ० कस्तूरचन्द कासलीवाल

प्राकृत भाषाके समान अपभ्रंश भाषाको भी सैकड़ों वर्षों तक भारतकी लोकभाषा अथवा जनभाषा होनेका सौभाग्य मिला। भारतीय साहित्यमें इसकी लोकप्रियताके सैकड़ों उदाहरण उपलब्ध होते हैं। ईस्वी ६ठी शताब्दी पूर्व ही अपभ्रंशका खूब प्रचलन हो गया था। संस्कृत और प्राकृतके साथ अपभ्रंशका भी पुराणों व्याकरणों तथा शिलालेखोंमें उल्लेख होने लगा था। वैय्याकरणोंने प्राकृत व्याकरणोंमें प्राकृतके साथ अपभ्रंशपर भी खूब विचार किया। प्रारम्भमें यह प्रादेशिक बोलियोंके रूपमें आगे बढ़ी। आठवीं शताब्दी तक यह जन-भाषाके साथ-साथ काव्य भाषा भी बन गयी और बड़े-बड़े कवियोंका इस भाषामें काव्य-निर्माण करनेकी ओर ध्यान जाने लगा। यद्यपि अपभ्रंश भाषामें अभी तक स्वयम्भूके पूर्वकी कोई रचना उपलब्ध नहीं हो सकी है लेकिन स्वयं स्वयंभूने अपने पूर्ववर्त्ती एवं समकालीन जिन कवियोंका उल्लेख किया है उससे यह स्पष्ट हो जाता है कि इस भाषामें ८ वीं शताब्दीके पूर्व ही काव्यरचना होने लगी थी और यही नहीं उसे साहित्यिक क्षेत्रमें समादर भी मिलने लगा था।

८वीं शताब्दीके पश्चात् तो अपभ्रंश भाषाको काव्यरचनाके क्षेत्रमें खूब प्रोत्साहन मिला। देशके शासक वर्ग, व्यापारी वर्ग एवं स्वाध्याय प्रेमी जनताने अपभ्रंशके कवियोंसे काव्य निर्माण करनेका विशेष आग्रह किया। इससे कवियोंको आश्रयके अतिरिक्त अत्यधिक सम्मान भी मिलने लगा और इससे इस भाषामें काव्य, चरित, कथा, पुराण एवं अध्यात्म साहित्य खूब लिखा गया और इसी कारण उत्तरसे दक्षिण तक तथा पूर्वसे पश्चिम तककी भारतीय संस्कृतिको एकरूपता देनेमें अत्यधिक सहायता मिली। लेकिन ६० वर्ष पूर्व तक अधिकांश विद्वानोंका यही अनुमान रहा कि इस भाषाका साहित्य विलुप्त हो चुका है। सर्वप्रथम सन् १८८७में जब रिचर्ड पिशेलने सिद्ध-हेमशब्दानुशासनका प्रकाशन कराया तो विद्वानोंका अपभ्रंश भाषाकी रचनाओंकी ओर ध्यान जाना प्रारम्भ हुआ। हर्मन जैकोबीको सर्वप्रथम जब भविसयत्तकहाकी एक पाण्डुलिपि उपलब्ध हुई तो इस भाषाकी रचनाओंके अस्तित्वकी चर्चा होने लगी और जब उन्होंने सन् १९१८में इसका जर्मन भाषामें प्रथम प्रकाशन कराया तो पाश्चात्य एवं भारतीय विद्वानोंकी इस भाषाके साहित्यको खोजनेकी ओर रुचि जाग्रत हुई और सन् १९२३में गुणे एवं दलालने 'भविसयत्तकहा' का ही सम्पादन करके उसके प्रकाशनका श्रेय प्राप्त किया। इसके पश्चात् तो देशके अनेक विद्वानोंका ध्यान इस भाषाकी कृतियोंकी ओर जाने लगा और कुछ ही वर्षोंमें राजस्थान, मध्यप्रदेश, गुजरात और देहलीके ग्रन्थालयोंमें एकके बाद दूसरी रचनाकी उपलब्धि होने लगी। और आज तो इसका विशाल साहित्य सामने आ चुका है। लेकिन अपभ्रंशकी अधिकांश कृतियां अभी तक अप्रकाशित हैं। ८वीं शताब्दीसे लेकर १५ वीं शताब्दी तक इस भाषामें अबाध गतिसे रचनाएँ लिखी गयीं। किन्तु संवत् १७०० तक इसमें साहित्य निर्माण होता रहा। अब तक उपलब्ध साहित्यमें यदि महाकवि स्वयम्भूको प्रथम कवि होनेका सौभाग्य प्राप्त है तो पंडित भगवतीदासको अन्तिम कवि होनेका श्रेय भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। मृगांकलेखाचरित इनकी अन्तिम कृति है जिसका निर्माण देहलीमें हुआ था।

उपलब्ध अपभ्रंश साहित्य मुख्यतः चरित एवं कथामूलक है। पुराण साहित्यकी भी इसमें लोकप्रियता

उसे हिन्दी, गुजराती तथा मराठीमें 'हाथका मैल' कहते हैं। इस शब्दकी व्युत्पत्ति संस्कृत भाषामें ढूँढ़नी पड़ेगी। आपाततः इस शब्द प्रयोगसे जैसा दिखाई पड़ता है, वैसा मल (dirt) का यहाँ कोई सम्बन्ध नहीं। संस्कृत शब्द 'हस्तामलक'से ही उपर्युक्त शब्दका प्रत्यक्ष सम्बन्ध है, ऐसा निस्सन्देह कहा जा सकता है। 'हस्तामलक' शब्दका अर्थ है—'हाथपर रखा हुआ आँवलेका फल।' हाथपर रखे हुए आमलक फलका सर्वांगीण दर्शन एवं ज्ञान बड़ी सरलतासे होता है। अतः यह प्रतीक संस्कृत भाषासे प्राकृत भाषामें और वहाँसे प्रादेशिक भाषाओंमें संक्रान्त हुआ। संक्रान्त होते समय एक 'आ'का लोप स्वाभाविकतया हो जाता है। उदाहरणके लिए 'कादम्बरी'में जाबालिके वर्णन—'हस्तामलकवत् निखिलं जगत् अवलोकयताम्'की तुलना 'वसुदेवहिण्डी' तथा 'कुमारपालचरिय'में प्रयुक्त वाक्यांश 'मुख्खोवाओ आमलगो विअ करतले देसिओ भगवया'से की जा सकती है। 'ज्ञानेश्वरी'की प्राचीन मराठीमें हम 'जैसा की हातिचा आमळू' प्रयोग मिलता है। यही मराठीमें 'हातचा मळ' हो गया।

'जोहार' शब्द 'प्रवचन-सारोद्धार' तथा 'धर्मोपदेसमालाविवरण'में झुककर नमस्कार करनेके अर्थमें आता है। यथा—'वच्छ! ता पढमं दूराओ दट्ठूण माणणिज्जं महया सद्देन जोहारो कीरइ।' मराठीमें भी 'जोहार' शब्दका प्रयोग इसी अर्थमें होता है। यथा—'जोहार मायबाप जोहार।' 'पाइयसद्दमहण्णवो' तथा अनेक मराठी-शब्दकोशोंमें इस शब्दको 'देशी' माना गया है तथा मराठी-शब्दकोश इस शब्दको फारसी शब्द 'जोहार'से जोड़ते हैं।

मेरा ऐसा विचार है कि यह शब्द न तो देशी है और न फारसीका ही। किन्तु व्युत्पत्तिकी दृष्टिसे संस्कृत शब्द योद्धृ (योद्धा)से अधिक समीप है। प्रजा द्वारा राजाओंका संबोधन 'हे वीर (हे योद्धा) ऐसा होता था और उनको नमन किया जाता था। संस्कृत शब्द 'योद्धृ'को प्राकृत शब्द 'जोहार'में सरलतापूर्वक बदला जा सकता है—योद्धृ>जोहृ>जोहार—तथा नमस्कार करनेसे इसको जोड़ा जा सकता है।[1]

●

१. प्रस्तुत निबन्धके हिन्दी रूपान्तर करनेमें मेरे शिष्य डॉ० उमेशचन्द्र शर्माकी मुझे सहायता मिली। अतः मैं उनका कृतज्ञ हूँ।

अपभ्रंश कथा-काव्योंकी भारतीय संस्कृतिको देन

डॉ० कस्तूरचन्द कासलीवाल

प्राकृत भाषाके समान अपभ्रंश भाषाको भी सैकड़ों वर्षों तक भारतकी लोकभाषा अथवा जनभाषा होनेका सौभाग्य मिला। भारतीय साहित्यमें इसकी लोकप्रियताके सैकड़ों उदाहरण उपलब्ध होते हैं। ईस्वी ६ठी शताब्दी पूर्व ही अपभ्रंशका खूब प्रचलन हो गया था। संस्कृत और प्राकृतके साथ अपभ्रंशका भी पुराणों व्याकरणों तथा शिलालेखोंमें उल्लेख होने लगा था। वैय्याकरणोंने प्राकृत व्याकरणोंमें प्राकृतके साथ अपभ्रंशपर भी खूब विचार किया। प्रारम्भमें यह प्रादेशिक बोलियोंके रूपमें आगे बढ़ी। आठवीं शताब्दी तक यह जन-भाषाके साथ-साथ काव्य भाषा भी बन गयी और बड़े-बड़े कवियोंका इस भाषामें काव्य-निर्माण करनेकी ओर ध्यान जाने लगा। यद्यपि अपभ्रंश भाषामें अभी तक स्वयम्भूके पूर्वकी कोई रचना उपलब्ध नहीं हो सकी है लेकिन स्वयं स्वयंभूने अपने पूर्ववर्त्ती एवं समकालीन जिन कवियोंका उल्लेख किया है उससे यह स्पष्ट हो जाता है कि इस भाषामें ८ वीं शताब्दीके पूर्व ही काव्यरचना होने लगी थी और यही नहीं उसे साहित्यिक क्षेत्रमें समादर भी मिलने लगा था।

८वीं शताब्दीके पश्चात् तो अपभ्रंश भाषाको काव्यरचनाके क्षेत्रमें खूब प्रोत्साहन मिला। देशके शासक वर्ग, व्यापारी वर्ग एवं स्वाध्याय प्रेमी जनताने अपभ्रंशके कवियोंसे काव्य निर्माण करनेका विशेष आग्रह किया। इससे कवियोंको आश्रयके अतिरिक्त अत्यधिक सम्मान भी मिलने लगा और इससे इस भाषामें काव्य, चरित, कथा, पुराण एवं अध्यात्म साहित्य खूब लिखा गया और इसी कारण उत्तरसे दक्षिण तक तथा पूर्वसे पश्चिम तककी भारतीय संस्कृतिको एकरूपता देनेमें अत्यधिक सहायता मिली। लेकिन ६० वर्ष पूर्व तक अधिकांश विद्वानोंका यही अनुमान रहा कि इस भाषाका साहित्य विलुप्त हो चुका है। सर्वप्रथम सन् १८८७में जब रिचर्ड पिशेलने सिद्ध-हेमशब्दानुशासनका प्रकाशन कराया तो विद्वानोंका अपभ्रंश भाषाकी रचनाओंकी ओर ध्यान जाना प्रारम्भ हुआ। हर्मन जैकोबीको सर्वप्रथम जब भविसयत्तकहाकी एक पाण्डुलिपि उपलब्ध हुई तो इस भाषाकी रचनाओंके अस्तित्वकी चर्चा होने लगी और जब उन्होंने सन् १९१८में इसका जर्मन भाषामें प्रथम प्रकाशन कराया तो पाश्चात्य एवं भारतीय विद्वानोंकी इस भाषाके साहित्यको खोजनेकी ओर रुचि जाग्रत हुई और सन् १९२३में गुणे एवं दलालने 'भविसयत्तकहा' का ही सम्पादन करके उसके प्रकाशनका श्रेय प्राप्त किया। इसके पश्चात् तो देशके अनेक विद्वानोंका ध्यान इस भाषाकी कृतियोंकी ओर जाने लगा और कुछ ही वर्षोंमें राजस्थान, मध्यप्रदेश, गुजरात और देहलीके ग्रन्थालयोंमें एकके बाद दूसरी रचनाकी उपलब्धि होने लगी। और आज तो इसका विशाल साहित्य सामने आ चुका है। लेकिन अपभ्रंशकी अधिकांश कृतियां अभी तक अप्रकाशित हैं। ८वीं शताब्दीसे लेकर १५ वीं शताब्दी तक इस भाषामें अबाध गतिसे रचनाएँ लिखी गयीं। किन्तु संवत् १७०० तक इसमें साहित्य निर्माण होता रहा। अब तक उपलब्ध साहित्यमें यदि महाकवि स्वयम्भूको प्रथम कवि होनेका सौभाग्य प्राप्त है तो पंडित भगवतीदासको अन्तिम कवि होनेका श्रेय भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। मृगांकलेखाचरित इनकी अन्तिम कृति है जिसका निर्माण देहलीमें हुआ था।

उपलब्ध अपभ्रंश साहित्य मुख्यतः चरित एवं कथामूलक है। पुराण साहित्यकी भी इसमें लोकप्रियता

रही और महाकवि पुष्पदन्तने महापुराण लिखकर विद्वानोंका ध्यान आकृष्ट किया। वैसे प्राकृत साहित्यकी सभी मुख्य प्रवृत्तियां इस साहित्यको प्राप्त हुई हैं। इसलिए एक लम्बे समय तक अपभ्रंश कृतियाँ भी प्राकृत कृतियां समझ ली गयीं। प्राकृत भाषाका जिस प्रकार कथा साहित्य विशाल एवं समृद्ध है तथा लोक रुचिकारी है उसी प्रकार अपभ्रंशका कथा साहित्य भी अत्यधिक समृद्ध है। उसमें लोकरुचिके सभी तत्त्व विद्यमान हैं। यह साहित्य प्रेमाख्यानक, व्रतमाहात्म्यमूलक, उपदेशात्मक एवं चरितमूलक है। विलासवईकहा, भविसयत्तकहा, जिणयत्तकहा, सिरिवालचरित, धम्मपरिक्खा, पुण्णासवकहा, सत्तवसणकहा, सिद्धचक्ककहा आदिके रूपोंसे इसका कथा साहित्य अत्यधिक समृद्ध ही नहीं है किन्तु उसमें भारतीय संस्कृतिकी प्रमुख विधाओंका अच्छा दर्शन होता है। उसके साहित्यकी कितनी ही विधाओंको सुरक्षित रखा है और उनका पूर्णतया प्रतिपालन भी किया गया है। इन कथाकृतियोंसे सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक गतिविधियोंके खूब दर्शन होते हैं। इनमें वैभवके साथ-साथ देशमें व्याप्त निर्धनता एवं पराधीनताके भी दर्शन होते हैं। कथाओंके विवरणके अतिरिक्त काव्यात्मक वर्णन, प्रकृति चित्रण, रसात्मक व्यञ्जना एवं मनोवैज्ञानिकताकी उपलब्धि इन कथा काव्योंकी प्रमुख विशेषता है। लोक पक्षका सबल जीवन-दर्शन भी इन कथा-काव्योंमें खूब मिलता है।

सामाजिक स्थिति

ये कथा-काव्य तत्कालीन समाजकी सजीव मूर्ति उपस्थित करते हैं। इनमें सामाजिक स्थिति, विवाह, संयुक्त परिवार, वर्ण, जाति, भोजन, आभूषण, धार्मिक आचरण आदिके सम्बन्धमें रोचक बातोंका वर्णन मिलता है। ये कथा-काव्य इस दृष्टिसे भारतीय संस्कृतिके मूल पोषक रहे हैं। और सारे देशको एकात्मकतामें बांधनेमें समर्थ रहे हैं। यहाँ अब मैं आपके समक्ष लोकतत्त्वोंके बारेमें विस्तृत प्रकाश डाल रहा हूँ।

देशमें कितनी ही जातियाँ और उपजातियाँ थीं। जिणदत्त चौपाईमें रल्ह कविने २४ प्रकारकी नकार एवं २४ प्रकारकी मकार नामावलि जातियोंके नाम गिनाये हैं। ये सभी उस समय बसन्तपुरमें रहती थीं। कुछ ऐसी जातियाँ भी थीं जो अशान्ति, कलह, चोरी आदि कार्योंमें विशेष रुचि लेती थीं। समाजमें जुआ खेलनेका काफी प्रचार था। नगरोंमें जुआरी होते थे तथा वेश्याएँ होती थीं। कभी-कभी भद्र व्यक्ति भी अपनी सन्तानको गार्हस्थ जीवनमें उतारनेके पहिले ऐसे स्थानोंपर भेजा करते थे। जुआ खेलनेको समाज-विरोधी नहीं समझा जाता था। जिणदत्त एक ही बारमें ११ करोड़का दाव हार गया था।

खेलत भई जिणदत्तहि हारि, जूवारिन्हु जीति पच्चारि।
भणइ रल्हु हम नाहीं खोहि, हारिउ दव्वु एगारह कोडि॥

इन कथा-काव्योंके पढ़नेसे ज्ञात होता है कि उस युगमें भी वैवाहिक रीति-रिवाज आजकी ही भाँति समाजमें प्रचलित थे। विवाहके लिए मण्डप गाड़े जाते थे। रंगावली पूरी जाती थी। मंगल कलश और बन्दनवार सजाये जाते थे। मंगल वाद्योंके साथ भाँवरें पड़ती थीं और लोगोंको भोज दिया जाता था। बारात खूब सज-धजके साथ जाती थी। भविसयत्तकहामें धनवइ सेठके विवाहका जो वर्णन किया गया है उसमें लोकजीवनका यथार्थ चित्र मिलता है। विवाहमें दहेज देनेकी प्रथा थी लेकिन कभी-कभी वरपक्षवाले दहेजको अस्वीकार भी कर दिया करते थे। भविसयत्तकहामें सवर्ण मणि और रत्नोंका लोभ छोड़कर धनदत्तकी सुन्दर पुत्रीको ही सबसे अच्छा उपहार समझा जाता था लेकिन जिनदत्तको चारों विवाहोंमें इतना अधिक दहेज मिला था कि उससे सम्हाले भी नहीं सम्हलाता था। कोटि भट श्रीपालको भी मैना सुन्दरीके साथ विवाहके अतिरिक्त अन्य विवाहोंमें खूब धन-दौलत प्राप्त हुआ था। कभी-कभी राजा अपनी पुत्रीके विवाहमें वरको अपना आधा राज्य भी दिया करते थे।

समाजमें बहु-विवाहकी प्रथाको मान्यता प्राप्त थी। जिसके जितनी अधिक पत्नियाँ होती थीं उसको उतना ही ऐश्वर्यशाली एवं भाग्यवान समझा जाता था। भविष्यदत्तके पिता दो विवाह करते हैं। जिनदत्तने चार विवाह किये। श्रीपालने भी चारसे अधिक विवाह किये थे। पदुम्न जहाँ-जहाँ भी जाते हैं उन्हें उपहार-में वधू मिलती है। इसी तरह जीवन्धरके जीवनमें भी विवाहोंकी भीड़ लग जाती है। विलासवईकहाके नायक विलासवती इन्द्रावती एवं पहुपावतीके साथ विबाह करते हैं।

पुत्रजन्मपर आजके ही समान पहिले भी खूब खुशियाँ मनायी जाती थीं। गरीबों, अनाथों और अपाहिजोंको उस अवसरपर खूब दान दिया जाता था। जिनदत्तके जन्मोत्सवपर उसके पिताने दो करोड़का दान दिया था।

देहि तंबोलत फोफल पाण, दीने चीर पटोले पान।
पूत बधावा नाहीं खोरि, दीने सेठि दान कुइ कोडि॥

ज्योतिषियोंकी समाजमें काफी प्रतिष्ठा थी। भविष्यवाणियोंपर खूब विश्वास किया जाता था। राजा महाराजा भी कभी-कभी इन्हीं भयिष्यवाणियोंके आधारपर अपनी कन्याओंका विवाह करते थे। जिनदत्तका श्रृंगारमतीके साथ, श्रीपालका गुणमाला एवं मदनमंजरीके साथ विवाहका आधार ये ही भविष्यवाणियाँ थीं। इसी तरह सहस्रकूट चैत्यालयके किवाड़ खोलने, समुद्र पार करने एवं तैरते हुए विद्याधरोंके देशमें पहुँचनेपर भी विवाह सम्पन्न हो जाते थे। श्रीपालने एक स्थानपर नैमित्तिककी भी भविष्यवाणीपर अपना पूरा विश्वास व्यक्त किया है।

णिमित्तउ जे कहइ णरेसरु, मो किअ सव्वु होइ परमेसरु।

श्रृंगार एवं आभूषणोंमें स्त्रियोंकी स्वाभाविक रुचि थी। सिरिपालकहामें गुण सुन्दरी अपनेको सोनेके आभूषणोंसे सजाती है। सोनेका हार वक्षस्थलपर धारण करती है। जिणदत्तकी प्रथम पत्नी विमलमतीकी कंचुकी ही ९ करोड़में विकी थी वह कंचुकी मोती, माणिक एवं हीरोंसे जड़ी हुई थी।

माणिक रतन पदारथ जड़ी, विचि विच हीरा सोने घड़ी।
ठए पासि मुत्ताहल जोड़ि, लइ हइ मोलि सु णम धन कोड़ि॥

धार्मिक जीवन

सभी स्त्री-पुरुष धार्मिक जीवन व्यतीत करते थे। भगवान्की अष्टमंगल द्रव्यसे पूजा की जाती थी। श्रीपालका कुष्ट रोग तीर्थंकरकी प्रतिमाके अभिषेकके जलसे दूर हुआ था। गुणमालाके विवाहके पूर्व वह सहस्रकूट चैत्यालयके दर्शन करने गया था। जिनदत्त विमान द्वारा अकृत्रिम चैत्यालयोंकी एवं कैलासपर स्थित जिनेन्द्रदेवकी वन्दना करने गया था। जिनदत्तका पिता भी प्रतिदिन भगवान्की वन्दना-पूजा करता था। श्रीपाल, जीवन्धर, भविष्यदत्त, जिनदत्त, आदि सभी नायक जीवनके अन्तिम वर्षोंमें साधु-जीवन ग्रहण करते हैं और अन्तमें तपस्या करके मुक्ति अथवा स्वर्ग-लाभ लेते हैं। भविसयत्तकहाका मूल आधार श्रुत-पंचमीके माहात्म्यको बतलाना है। इसी तरह श्रीपालकी जीवन-कथा अष्टाह्निका व्रतका आधार है। पुण्णासव-कहा एवं सत्तवसणकहाका प्रमुख उद्देश्य पाठकोंके जीवनमें धर्मके प्रति अथवा सत् कार्योंके प्रति रागभाव उत्पन्न करना है। सात व्यसनोंसे दूर रखनेके लिए सत्तवसणकहाकी रचना की गयी। इन कथा-काव्योंके आधार-पर उस समयके राजनैतिक जीवनकी कोई अच्छी तस्वीर हमारे सामने उपस्थित नहीं होती है। देशमें छोटे-छोटे शासक ये और वे एक-दूसरेसे लड़ा करते थे। जिनदत्तचरितमें ऐसे कितने हीका उल्लेख आता है। जिनदत्त जब अतुल सम्पत्तिके साथ अपने नगरमें वापस लौटता है तो वहाँका राजा उसे अपने आधा

रही और महाकवि पुष्पदन्तने महापुराण लिखकर विद्वानोंका ध्यान आकृष्ट किया। वैसे प्राकृत साहित्यकी सभी मुख्य प्रवृत्तियां इस साहित्यको प्राप्त हुई हैं। इसलिए एक लम्बे समय तक अपभ्रंश कृतियाँ भी प्राकृत कृतियां समझ ली गयीं। प्राकृत भाषाका जिस प्रकार कथा साहित्य विशाल एवं समृद्ध है तथा लोक रुचिकारी है उसी प्रकार अपभ्रंशका कथा साहित्य भी अत्यधिक समृद्ध है। उसमें लोकरुचिके सभी तत्त्व विद्यमान हैं। यह साहित्य प्रेमाख्यानक, व्रतमाहात्म्यमूलक, उपदेशात्मक एवं चरितमूलक है। विलासवईकहा, भविसयत्तकहा, जिणयत्तकहा, सिरिवालचरित, धम्मपरिक्खा, पुण्णासवकहा, सत्तवसणकहा, सिद्धचक्ककहा आदिके रूपोंसे इसका कथा साहित्य अत्यधिक समृद्ध ही नहीं है किन्तु उसमें भारतीय संस्कृतिकी प्रमुख विधाओंका अच्छा दर्शन होता है। उसके साहित्यकी कितनी ही विधाओंको सुरक्षित रखा है और उनका पूर्णतया प्रतिपालन भी किया गया है। इन कथाकृतियोंसे सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक गतिविधियोंके खूब दर्शन होते हैं। इनमें वैभवके साथ-साथ देशमें व्याप्त निर्धनता एवं पराधीनताके भी दर्शन होते हैं। कथाओंके विवरणके अतिरिक्त काव्यात्मक वर्णन, प्रकृति चित्रण, रसात्मक व्यञ्जना एवं मनोवैज्ञानिकताकी उपलब्धि इन कथा काव्योंकी प्रमुख विशेषता है। लोक पक्षका सबल जीवन-दर्शन भी इन कथा-काव्योंमें खूब मिलता है।

सामाजिक स्थिति

ये कथा-काव्य तत्कालीन समाजकी सजीव मूर्ति उपस्थित करते हैं। इनमें सामाजिक स्थिति, विवाह, संयुक्त परिवार, वर्ण, जाति, भोजन, आभूषण, धार्मिक आचरण आदिके सम्बन्धमें रोचक बातोंका वर्णन मिलता है। ये कथा-काव्य इस दृष्टिसे भारतीय संस्कृतिके मूल पोषक रहे हैं। और सारे देशको एकात्मकतामें बाँधनेमें समर्थ रहे हैं। यहाँ अब मैं आपके समक्ष लोकतत्त्वोंके बारेमें विस्तृत प्रकाश डाल रहा हूँ।

देशमें कितनी ही जातियाँ और उपजातियाँ थीं। जिणदत्त चौपाईमें रल्ह कविने २४ प्रकारकी नकार एवं २४ प्रकारकी मकार नामावलि जातियोंके नाम गिनाये हैं। ये सभी उस समय बसन्तपुरमें रहती थीं। कुछ ऐसी जातियाँ भी थीं जो अशान्ति, कलह, चोरी आदि कार्योंमें विशेष रुचि लेती थीं। समाजमें जुआ खेलनेका काफी प्रचार था। नगरोंमें जुआरी होते थे तथा वेश्याएँ होती थीं। कभी-कभी भद्र व्यक्ति भी अपनी सन्तानको गार्हस्थ जीवनमें उतारनेके पहिले ऐसे स्थानोंपर भेजा करते थे। जुआ खेलनेको समाज-विरोधी नहीं समझा जाता था। जिणदत्त एक ही बारमें ११ करोड़का दाव हार गया था।

खेलत भई जिणदत्तहि हारि, जूवारिन्हु जीति पच्चारि।
भणइ रल्हु हम नाहीं खोहि, हारिउ दव्वु एगारह कोडि॥

इन कथा-काव्योंके पढ़नेसे ज्ञात होता है कि उस युगमें भी वैवाहिक रीति-रिवाज आजकी ही भाँति समाजमें प्रचलित थे। विवाहके लिए मण्डप गाड़े जाते थे। रंगावली पूरी जाती थी। मंगल कलश और बन्दनवार सजाये जाते थे। मंगल वाद्योंके साथ भाँवरें पड़ती थीं और लोगोंको भोज दिया जाता था। बारात खूब सज-धजके साथ जाती थी। भविसयत्तकहामें धनवइ सेठके विवाहका जो वर्णन किया गया है उसमें लोकजीवनका यथार्थ चित्र मिलता है। विवाहमें दहेज देनेकी प्रथा थी लेकिन कभी-कभी वरपक्षवाले दहेजको अस्वीकार भी कर दिया करते थे। भविसयत्तकहामें सवर्ण मणि और रत्नोंका लोभ छोड़कर धनदत्तकी सुन्दर पुत्रीको ही सबसे अच्छा उपहार समझा जाता था लेकिन जिनदत्तको चारों विवाहोंमें इतना अधिक दहेज मिला था कि उससे सम्हाले भी नहीं सम्हलाता था। कोटि भट श्रीपालको भी मैना सुन्दरीके साथ विवाहके अतिरिक्त अन्य विवाहोंमें खूब धन-दौलत प्राप्त हुआ था। कभी-कभी राजा अपनी पुत्रीके विवाहमें वरको अपना आधा राज्य भी दिया करते थे।

समाजमें वहु-विवाहकी प्रथाको मान्यता प्राप्त थी। जिसके जितनी अधिक पत्नियाँ होती थीं उसको उतना ही ऐश्वर्यशाली एवं भाग्यवान समझा जाता था। भविष्यदत्तके पिता दो विवाह करते हैं। जिनदत्तने चार विवाह किये। श्रीपालने भी चारसे अधिक विवाह किये थे। पदुम्न जहाँ-जहाँ भी जाते हैं उन्हें उपहार-में वधू मिलती है। इसी तरह जीवन्धरके जीवनमें भी विवाहोंकी भीड़ लग जाती है। विलासवईकहाके नायक विलासवती इन्द्रावती एवं पहुपावतीके साथ विबाह करते हैं।

पुत्रजन्मपर आजके ही समान पहिले भी खूब खुशियाँ मनायी जाती थीं। गरीबों, अनाथों और अपाहिजोंको उस अवसरपर खूब दान दिया जाता था। जिनदत्तके जन्मोत्सवपर उसके पिताने दो करोड़का दान दिया था।

देहि तंबोलत फोफल पाण, दीने चीर पटोले पान।
पूत बधावा नाहीं खोरि, दीने सेठि दान कुइ कोडि॥

ज्योतिषियोंकी समाजमें काफी प्रतिष्ठा थी। भविष्यवाणियोंपर खूब विश्वास किया जाता था। राजा महाराजा भी कभी-कभी इन्हीं भयिष्यवाणियोंके आधारपर अपनी कन्याओंका विवाह करते थे। जिनदत्तका श्रृंगारमतीके साथ, श्रीपालका गुणमाला एवं मदनमंजरीके साथ विवाहका आधार ये ही भविष्यवाणियाँ थीं। इसी तरह सहस्रकूट चैत्यालयके किवाड़ खोलने, समुद्र पार करने एवं तैरते हुए विद्याधरोंके देशमें पहुँचनेपर भी विवाह सम्पन्न हो जाते थे। श्रीपालने एक स्थानपर नैमित्तिककी भी भविष्यवाणीपर अपना पूरा विश्वास व्यक्त किया है।

णिमित्तउ जे कहइ णरेसरु, मो किअ सव्वु होइ परमेसरु।

श्रृंगार एवं आभूषणोंमें स्त्रियोंकी स्वाभाविक रुचि थी। सिरिपालकहामें गुण सुन्दरी अपनेको सोनेके आभूषणोंसे सजाती है। सोनेका हार वक्षस्थलपर धारण करती है। जिणदत्तकी प्रथम पत्नी बिमलमतीकी कंचुकी ही ९ करोड़में विकी थी वह कंचुकी मोती, माणिक एवं हीरोंसे जड़ी हुई थी।

माणिक रतन पदारथ जड़ी, विचि विच हीरा सोने घड़ी।
ठए पासि मुत्ताहल जोड़ि, लइ हइ मोलि सु णम धन कोड़ि॥

धार्मिक जीवन

सभी स्त्री-पुरुष धार्मिक जीवन व्यतीत करते थे। भगवान्‌की अष्टमंगल द्रव्यसे पूजा की जाती थी। श्रीपालका कुष्ट रोग तीर्थंकरकी प्रतिमाके अभिषेकके जलसे दूर हुआ था। गुणमालाके विवाहके पूर्व वह सहस्रकूट चैत्यालयके दर्शन करने गया था। जिनदत्त विमान द्वारा अकृत्रिम चैत्यालयोंकी एवं कैलासपर स्थित जिनेन्द्रदेवकी वन्दना करने गया था। जिनदत्तका पिता भी प्रतिदिन भगवान्‌की वन्दना-पूजा करता था। श्रीपाल, जीवन्धर, भविष्यदत्त, जिनदत्त, आदि सभी नायक जीवनके अन्तिम वर्षोंमें साधु-जीवन ग्रहण करते हैं और अन्तमें तपस्या करके मुक्ति अथवा स्वर्ग-लाभ लेते हैं। भविसयत्तकहाका मूल आधार श्रुत-पंचमीके माहात्म्यको बतलाना है। इसी तरह श्रीपालकी जीवन-कथा अष्टाह्निका व्रतका आधार है। पुण्णासव-कहा एवं सत्तवसणकहाका प्रमुख उद्देश्य पाठकोंके जीवनमें धर्मके प्रति अथवा सत् कार्योंके प्रति रागभाव उत्पन्न करना है। सात व्यसनोंसे दूर रखनेके लिए सत्तवसणकहाकी रचना की गयी। इन कथा-काव्योंके आधार-पर उस समयके राजनैतिक जीवनकी कोई अच्छी तस्वीर हमारे सामने उपस्थित नहीं होती है। देशमें छोटे-छोटे शासक ये और वे एक-दूसरेसे लड़ा करते थे। जिनदत्तचरितमें ऐसे कितने हीका उल्लेख आता है। जिनदत्त जब अतुल सम्पत्तिके साथ अपने नगरमें वापस लौटता है तो वहाँका राजा उसे अपने आधा

राज्यका स्वामी बना देता है। इन कथा-काव्योंमें युद्धका अत्यन्त विस्तारसे वर्णन हुआ है। युद्धके तत्कालीन अस्त्र-शस्त्रोंके बारेमें भी इन कथा-काव्योंसे अच्छी जानकारी मिलती है। नगरमें किले होते थे, युद्धकी मोर्चा-बन्दी उसमें की जाती थी।

जिणदत्तचौपईमें धनुष, तलवार, ढीकलु, गोफणी, आदि शस्त्रोंका नाम उल्लेख किया गया है। प्रत्येक शासकके पास चतुरंगी सेन होती थी। युद्धके विशेष बाजे होते थे तथा ढोल, भेरी, निशान बजनेसे सैनिकोंमें युद्धोन्माद बढ़ता रहता था। श्रीपालका अपने चर्चाके साथ होनेवाले युद्धका कविने बहुत ही सुन्दर वर्णन किया है। राजा हाथीपर बैठकर युद्धके लिए प्रस्थान करता था वह अपने चारों ओर अंगरक्षकोंसे घिरा रहता था।

जनतामें राजाका विशेष आतंक रहता था, कोई भी उसकी आज्ञाका उलंघन करनेकी सामर्थ्य नहीं रखता था। व्यापारियोंसे छोटे-छोटे राजा भी खूब भेंट लिया करते थे। भविष्यदत्तने तिलकद्वीप पहुँचकर वहाँके राजाको खूब उपहार दिये थे। इन राजाओंमें छोटी-छोटी बातोंको लेकर जब कभी युद्ध छिड़ जाता था। इनमें कन्या, उपहार आदिके कारण प्रमुख रहे हैं।

आर्थिक स्थिति

इन कथा-काव्योंमें समूचे देशमें व्यापारकी एक-सी स्थिति मिलती है। देशका व्यापार पूर्णतः वणिक् वर्गके हाथमें रहता था। वणिक्-पुत्र टोलियोंमें अपने नगरसे बाहर व्यापारके लिए जाते थे। समुद्री मार्गसे वे जहाजमें बैठकर छोटे-छोटे द्वीपोंमें व्यापारके लिए जाते थे और वहाँसे अतुल सम्पत्ति लेकर लौटते थे। जिणदत्त सागरदत्तके साथ जब व्यापारके लिए विदेश गया था तो उसके साथ कितने ही वणिक्-पुत्र थे। उनके साथ विविध प्रकारकी विक्रीकी वस्तुएँ थीं जो विदेशोंमें मंहगी थीं और देशमें सस्ती थीं। बैलोंपर सामान लादकर वे विदेशोंमें जाते थे। द्वीपोंमें जानेके लिए वे जहाजोंका सहारा लिया करते थे। छोटे-छोटे जहाजोंका समूह होता था और उनका एक सरदार अथवा नायक होता था, सभी व्यापारी उसके अधीन रहते थे। श्रीपालकहामें धवल सेठकी अतुल सम्पत्तिका वर्णन किया गया है। भविष्यदत्त, जिणदत्त और जीवन्धर आदि सभी श्रेष्ठिपुत्र थे जो व्यापारके लिए बाहर गये थे और वहाँसे अतुल सम्पत्ति लेकर लौटे थे। इन कथा-काव्योंमें जनताकी आर्थिक स्थिति अच्छी थी ऐसा आभास होता है लेकिन फिर भी सम्पत्तिका एका-धिकार व्यापारी वर्ग तक ही सीमित था।

उस समय सिंघल द्वीप व्यापारके लिए प्रमुख आकर्षणका केन्द्र था। जिणदत्त व्यापारके लिए सिंघल द्वीप गया था वहाँ जवाहरातका खूब व्यापार होता था। लेन-देन वस्तुओंमें अधिक होता था, सिक्कोंका चलन कम था। उन दिनों द्वीपोंमें व्यापारी खूब मुनाफा कमाते थे। सिंवल द्वीपके अतिरिक्त भविसयत्तकहामें मदनागद्वीप, तिलकद्वीप, कंचनद्वीप आदिका वर्णन भी मिलता है।

इन कथा काव्योंमें ग्राम एवं नगरोंका वर्णन भी बहुत हुआ है। भविसयत्तकहामें गजपुर नगरमें पथिक जन पेड़ोंकी छायामें घूमते हैं। हास-परिहास करते हुए गन्नेका रसपान करते हैं। जिणदत्तचौपईमें जो बसन्तपुरनगरका वर्णन किया गया है उसके अनुसार वहाँके सभी निवासी प्रेमसे रहते थे। कोली, माली, पटवा एवं सपेरा भी दया पालते थे। ब्राह्मण एवं क्षत्रिय समाज भी चरमके संयोगसे वृत्त रहते थे। नगरके बाहर उद्यान होते थे। सागरदत्त सेठके उद्यानमें विविध पौधे थे। नारियल एवं आमके वृक्ष थे। नारंगी, छुहारा, दाख, पिंड, खजूर, सुपारी, जायफल, इलायची, लौंग आदि-आदि फलोंके पेड़ थे। पुष्पोंमें मरूआ, मालती, चम्पा, रायचम्पा, मुचकुन्द, मौलसिरी, जयापुष्प, पाउल, गुडहल आदिके नाम उल्लेखनीय हैं।

प्रेमाख्यानक तत्त्व

अपभ्रंश भाषाके इन कथा-काव्योंमें प्रेमाख्यानक तत्त्वका अच्छी तरह पल्लवन हुआ है। हिन्दी भाषामें जिन प्रेमाख्यानक काव्योंकी सर्जना हुई उसमें अपभ्रंशके कथा काव्यका अत्यधिक प्रभाव है। विलासवईकहा, भविसयत्तकहा, जिणदत्तचौपई, श्रीपालकहा आदि सभीमें प्रेमाख्यानक काव्य भरा पड़ा है। भविसयत्तकहा एवं श्रीपालकहामें विवाह होनेके पश्चात् नवदम्पत्तिमें प्रेमका संचार होता है। भविष्यदत्त वास्तविक प्रेमके कारण ही भविष्यानुरूपाको चतुरतासे प्राप्त करता है और सुमित्राको युद्धके पश्चात् प्राप्त करता है। जिणदत्त पुतलीके रूपमें चित्रित विमलमतीके रूप-सौन्दर्यको देखकर आसक्त हो जाता है, वह अपने आपको भूल जाता है और रूपातीत उस सुन्दरीको पानेके लिए अधीर हो उठता है। इसी प्रसंगमें इस कथा-काव्यमें विमलमतीके सौन्दर्यका जो वर्णन हुआ है वह प्रेमाख्यानक काव्योंका ही रूप है।

चंपावण्णी सोहइ देह, गल कंदहल तिण्णि जसु देह।
पीणत्थणि जोव्वण मयसाय उर पोटी कडियल वित्थार ॥

विमलमतीको प्राप्त करनेके पश्चात् भी जिणदत्त उसके प्रेममें डूबा हुआ रहा और अपनी विदेश यात्रासे लौटनेके पश्चात् विरहाग्निमें डूबी हुई अपनी दो पत्नियोंके साथ विमलमतीको पाकर प्रसन्नतासे भर गया। विलासवती कथा तो आदिसे अन्त तक प्रेमाख्यानक काव्य है। इस कथा काव्यमें वर्णित प्रेम विवाहके पूर्वका प्रेम है। राजमार्गपर जाते हुए राजकुमार सनतकुमारके रूपको देखकर विलासवती उसपर मुग्ध हो जाती है और राजमहलकी खिड़कीसे ही फूलोंकी माला अपने प्रेमीके गलेमें डाल देती है। सनतकुमार भी विलासवतीके रूपलावण्यको देखकर उसपर आसक्त हो जाता है। धीरे-धीरे प्रेमकी अग्निमें दोनों ही प्रेमी-प्रेमिका जलने लगते हैं और एक-दूसरेको पानेकी लालसा करते हैं और दोनोंका उद्यानमें साक्षात्कार हो जाता है लेकिन प्रेम प्रणयको तबतक आत्मसात् नहीं करते जबतक कि विवाह बन्धनमें नहीं बँध जाते। इसके लिए उन्हें काफी वियोग सहना पड़ता है। प्रेमीके वियोगसे विकल होकर विलासवती मध्य रात्रिको सती होनेके लिए श्मशान की ओर प्रस्थान कर देती है। लेकिन मार्गमें वह डाकुओं द्वारा लूट ली जाती है। और एक समुद्री व्यापारी द्वारा खरीद ली जाती है। जहाजके टूट जानेसे वह एक आश्रममें पहुँच जाती है संयोगसे नायक सनतकुमार भी अपनी प्रेमिकाके वियोगसे सन्तप्त उसी आश्रममें पहुँच जाता है और विलासवतीके बिना अपने जीवनको व्यर्थ समझने लगता है। अन्तमें आश्रममें ही वैवाहिक बन्धनमें बँध जाते हैं। इसके पश्चात् भी एक-दूसरेका वियोग होनेपर मृत्युको आलिंगन करनेको तैयार होना नायक-नायिकाके आदर्श प्रेमको प्रकट करता है। इस प्रकार इन कथा-काव्योंमें जिस प्रेम कथानकका चित्रण हुआ है उसका प्रभाव हमें हिन्दीके कुछ प्रेमाख्यानक काव्योंके वर्णनमें मिलता है।

लेकिन इन सबके अतिरिक्त पुण्णासवकहा, धम्मपरिक्खा, सत्तवसणकहा जैसी कथाकृतियोंमें भारतीय जनजीवनमें सदाचार, नैतिकता, सत्कार्योंमें आस्थाका रूप भरनेका जो प्रयास किया है वह भारतीय संस्कृतिके पूर्णत: अनुरूप है। यह कथाएँ जनजीवनके स्तरको ऊँचा उठानेवाली हैं तथा गत सैकड़ों वर्षोंसे श्रद्धालु पाठकोंको अच्छे पथपर चलनेकी प्रेरणा देती हैं। इस प्रकार इन कथा काव्योंने भारतीय संस्कृतिके एकरूपात्मक स्वरूपको स्थायी रखनेमें तथा उसका विकास करनेमें जो योगदान दिया है वह सर्वथा स्तुत्य है।

अपभ्रंशका एक अचर्चित चरितकाव्य

डॉ० देवेन्द्रकुमार शास्त्री

अपभ्रंशके चरितकाव्योंकी सुदीर्घ परम्परा मिलती है, जिसका विकास प्राकृतके विकसनशील पौराणिक काव्योंसे हुआ जान पड़ता है। इन चरितकाव्योंमें महापुरुषके जीवन-विकासका वर्णन निबद्ध मिलता है। नियोजित घटनाओंमें क्रमबद्धता और पौराणिक परम्पराका यथेष्ट सन्निवेश है। इसलिए लगभग सभी चरित-काव्योंका शिल्प समान है। आकारकी दृष्टिसे ही नहीं साहित्यिक दृष्टिसे भी आलोच्य रचना महान् है। सम्पूर्ण काव्य १३ सन्धियोंमें निबद्ध है। और इसके रचनाकार हैं—महिन्दू। उनकी इस कृतिका नाम है-संतिणाहचरिउ।

अपभ्रंशके इस अचर्चित चरितकाव्यका सर्वप्रथम परिचय पं० परमानन्दजी शास्त्रीने जैन ग्रन्थ प्रशस्ति संग्रहमें निम्नलिखित शब्दोंमें दिया था[1]—

८७वीं प्रशस्ति संतिणाहचरिउकी है, जिसके कर्ता कवि महिन्दु या महाचन्द्र है। प्रस्तुत ग्रन्थमें १३ परिच्छेद हैं जिनकी आनुमानिक श्लोक सख्या पाँच हजारके लगभग है, जिनमें जैनियोंके सोलहवें तीर्थंकर शान्तिनाथ चक्रवर्तीका चरित्र दिया हुआ है।

अभी तक यह चरितकाव्य हस्तलिखित रूपमें एक अप्रकाशित रचना है। इसकी एकमात्र प्रति श्री दि० जैन सरस्वती भण्डार, धर्मपुरा, दिल्लीमें उपलब्ध है। यह हस्तलिखित १५३ पत्रोंकी रचना है। इसका अन्तरंग परिचय इस प्रकार है—

सर्वप्रथम जिन-नमस्कारसे काव्य प्रारम्भ होता है। नमस्कारमें चौबीसों तीर्थंकरोंको बन्दन किया गया है। तदनन्तर सरस्वतीकी वन्दना की गयी है। आत्म-विनय प्रकाशनके साथ ही कवि अपनी रचनाके सम्बन्धमें प्रकाश डालता हुआ कहता है कि मैंने कवि पुष्पदन्तके महापुराणके अन्तर्गत श्री शान्तिनाथ तीर्थंकरका यह चरित सुनकर रचना की है।

कइ पुप्फयंत सिरि मह पुराणु,
तहु मज्झि णिसिउ मइ गुणणिहाणु।
चरियउ सिरि संतिहु तित्थणाहु।,
अह णिविडु रइउ गुणगण अथाहु।

यही नहीं, कवि आत्म-विनय प्रकट करता हुआ कहता है कि काव्यके रूपमें जो कुछ कह रहा हूँ वह तुच्छ बुद्धिसे। वास्तवमें खलजनके समान यह अज्ञानका विस्तार है। उसके ही शब्दोंमें—

बोलिज्जइ कव्वंकिय मएण, महु तुच्छबुद्धि खलयण अएण।

तथा—

गंभीरबुद्धि दुल्लहु ण होइ, सो तुच्छ बुद्धि सुलहउ ण जोइ।
बुहयणहु जि एहु सहाउ हुंति, सव्वह हियत्तणु चिंतवंति।

१. पं० परमानन्द जैन शास्त्री : जैन-ग्रन्थ प्रशस्ति-संग्रह, दिल्ली, १९६३, पृ० १२३

अनन्तर सज्जन-दुर्जन वर्णन है। दुर्जन-वर्णनमें कविकी उक्ति है कि जिस प्रकार पित्तका रोगी सदा सभी वस्तुओंमें कड़वेपनका स्वाद लेता है इसी प्रकार दुर्जन भी मधुर काव्यरचनाको रसहीन समझते हैं। दोष देखना ही उनका स्वभाव है। दूसरेके दोष देखनेमें वे पिशुनस्वभावके होते हैं।

कविने पूर्ववर्ती अनेक कवियोंका उल्लेख किया है। उन कवियोंके नाम हैं—अकलंक स्वामी, पूज्यपाद, इन्द्रनन्दी, श्री नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती, चतुर्मुख, स्वयम्भू, पुष्पदन्त, मुनि यशःकीर्ति, पंडित रइधू, गुणभद्र-सूरि, और सहणपाल।

अकलंक सामि सिरि पायपूय, इंदाइ महाकइ अट्ठ हूय।
सिरि णेमिचंद सिद्धंतियाइं, सिद्धंतसार मुणि णविवि ताइं।
चउमुहु सुयंभु सिरि पुप्फयंतु, सरसइ णिवासु गुणगण महंतु।
जसकित्ति मुणीसरु जसणिहाणु, पंडिय रइधू कइ गुण अमाणु।
गुणभद्दसूरि गुणभद्द ठाणु, सिरि सहणपालु बहु बुद्धि जाणु।

पूर्वकवियोंके कीर्तनके उपरान्त कवि अपनी अज्ञानताको स्पष्ट प्रकट करता हुआ कहता है कि मैंने शब्द-शास्त्र नहीं देखा, मैं कर्त्ता, कर्म और क्रिया नहीं जानता। मुझे जाति (छंद), धातु और सन्धि तथा लिंग एवं अलंकारका ज्ञान भी नहीं है। कवि के शब्दोंमें—

णउ दिट्ठा णउ सेविय सुसेय, भइं सद्दसत्थ जाणिय ण भेय।
णो कत्ता कंमु ण किरिय जुत्ति, णउ जाइ धाउ णवि संधि उत्ति।
लिंगालंकारु ण पय समत्ति, णो वुज्झिय मइ इक्कवि विहत्ति।
जो अमरकोसु सो मुत्तिठाणु, णाणिउ मइ अण्णु ण णाम माणु।
णिग्घंटु वियाणिउ वणि गइंदु, सुछंदि ण ढोइउ मणु मइंदु।
पिंगल सुवण्णु तं वइ रहिउ, णाणिउ मइ अण्णु ण कोवि गहिउ।

इसलिये ज्ञानी जन इस काव्य-व्यापारको देखकर कोप न करें?

यहाँपर सहज ही प्रश्न उठता है कि जब तुम अज्ञानी हो और इस काव्य-व्यापारको जानते-समझते नहीं हो तब काव्य-रचना क्यों कर रहे हो? रचनाकारका उत्तर है—

जइ दिणयरु णहि उज्जोउ करइ, ता किं खुज्जोअउ णउ फुरइ।
जइ कोइल रसइ सुमहुरवाणि, किं टिट्टिर हइ तुण्हंतु ठाणि।
जइ वियसइ सुरहिय चंपराउ, किं णउ फूलइ किंसुय बराउ।
जइ पडहु विवज्जइ गहिरणाउ, ता इयरु म वज्जउ तुच्छ भाउ।
जइ सरवरि गमइ सुहंसु लील, किं णउ धरि पंगणि बहु सवील।
मण मित्त मुयहि तुहु कायरत्तु, करि जिणहु भत्ति हय दुव्वरित्तु।
बहु विणउ पयासिवि सज्जणाह, किं ण्हाण णु करि खलयणगणाह॥

अर्थात् यदि दिनकर (सूर्य) प्रकाश न करे तो क्या खद्योत (जुगनू) स्फुरण न करे? यदि कोयल सुमधुर वाणीमें आलाप भरती हैं तो क्या टिटहरी मौन रहे? यदि चम्पक पुष्प अपनी सुरभि चारों ओर प्रसारित करता है तो क्या बेचारा टेसूका फूल नहीं फूले? यदि नगाड़े गम्भीर नाद करते हैं तो क्या अन्य वाद्य वादित न हों? यदि सरोवरमें हंस लीला करते हैं तो क्या घरके आँगनमें अनेक सवील (अबाबील?) पक्षी क्रीडाएँ न करें? इत्यादि।

अपभ्रंशका एक अचर्चित चरितकाव्य

डॉ० देवेन्द्रकुमार शास्त्री

अपभ्रंशके चरितकाव्योंकी सुदीर्घ परम्परा मिलती है, जिसका विकास प्राकृतके विकसनशील पौराणिक काव्योंसे हुआ जान पड़ता है। इन चरितकाव्योंमें महापुरुषके जीवन-विकासका वर्णन निबद्ध मिलता है। नियोजित घटनाओंमें क्रमबद्धता और पौराणिक परम्पराका यथेष्ट सन्निवेश है। इसलिए लगभग सभी चरित-काव्योंका शिल्प समान है। आकारकी दृष्टिसे ही नहीं साहित्यिक दृष्टिसे भी आलोच्य रचना महान् है। सम्पूर्ण काव्य १३ सन्धियोंमें निबद्ध है। और इसके रचनाकार हैं—महिन्दू। उनकी इस कृतिका नाम है-संतिणाहचरिउ।

अपभ्रंशके इस अचर्चित चरितकाव्यका सर्वप्रथम परिचय पं० परमानन्दजी शास्त्रीने जैन ग्रन्थ प्रशस्ति संग्रहमें निम्नलिखित शब्दोंमें दिया था[1]—

८७वीं प्रशस्ति संतिणाहचरिउकी है, जिसके कर्ता कवि महिन्दु या महाचन्द्र है। प्रस्तुत ग्रन्थमें १३ परिच्छेद हैं जिनकी आनुमानिक श्लोक संख्या पाँच हजारके लगभग है, जिनमें जैनियोंके सोलहवें तीर्थंकर शान्तिनाथ चक्रवर्तीका चरित्र दिया हुआ है।

अभी तक यह चरितकाव्य हस्तलिखित रूपमें एक अप्रकाशित रचना है। इसकी एकमात्र प्रति श्री दि० जैन सरस्वती भण्डार, धर्मपुरा, दिल्लीमें उपलब्ध है। यह हस्तलिखित १५३ पत्रोंकी रचना है। इसका अन्तरंग परिचय इस प्रकार है—

सर्वप्रथम जिन-नमस्कारसे काव्य प्रारम्भ होता है। नमस्कारमें चौबीसों तीर्थंकरोंको बन्दन किया गया है। तदनन्तर सरस्वतीकी वन्दना की गयी है। आत्म-विनय प्रकाशनके साथ ही कवि अपनी रचनाके सम्बन्धमें प्रकाश डालता हुआ कहता है कि मैंने कवि पुष्पदन्तके महापुराणके अन्तर्गत श्री शान्तिनाथ तीर्थंकरका यह चरित सुनकर रचना की है।

कइ पुप्फयंत सिरि मह पुराणु,
तहु मज्झि णिसिउ मइ गुणणिहाणु।
चरियउ सिरि संतिहु तित्थणाहु।,
अह णिविडु रइउ गुणगण अथाहु।

यही नहीं, कवि आत्म-विनय प्रकट करता हुआ कहता है कि काव्यके रूपमें जो कुछ कह रहा हूँ वह तुच्छ बुद्धिसे। वास्तवमें खलजनके समान यह अज्ञानका विस्तार है। उसके ही शब्दोंमें—

बोलिज्जइ कव्वंकिय मएण, महु तुच्छबुद्धि खलयण अएण।

तथा—

गंभीरबुद्धि दुल्लहु ण होइ, सो तुच्छ बुद्धि सुलहउ ण जोइ।
बुहयणहु जि एहु सहाउ हुंति, सव्वह हिययत्तणु चिंतवंति।

---

१. पं० परमानन्द जैन शास्त्री : जैन-ग्रन्थ प्रशस्ति-संग्रह, दिल्ली, १९६३, पृ० १२३

अनन्तर सज्जन-दुर्जन वर्णन है। दुर्जन-वर्णनमें कविकी उक्ति है कि जिस प्रकार पित्तका रोगी सदा सभी वस्तुओंमें कड़वेपनका स्वाद लेता है इसी प्रकार दुर्जन भी मधुर काव्यरचनाको रसहीन समझते हैं। दोष देखना ही उनका स्वभाव है। दूसरेके दोष देखनेमें वे पिशुनस्वभावके होते हैं।

कविने पूर्ववर्ती अनेक कवियोंका उल्लेख किया है। उन कवियोंके नाम हैं—अकलंक स्वामी, पूज्यपाद, इन्द्रनन्दी, श्री नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती, चतुर्मुख, स्वयम्भू, पुष्पदन्त, मुनि यशःकीर्ति, पंडित रइधू, गुणभद्र-सूरि, और सहणपाल।

अकलंक सामि सिरि पायपूय, इंदाइ महाकइ अट्ठ हूय।
सिरि णेमिचंद सिद्धंतियाइं, सिद्धंतसार मुणि णविवि ताइं।
चउमुहु सुयंभु सिरि पुप्फयंतु, सरसइ णिवासु गुणगण महंतु।
जसकित्ति मुणीसरु जसणिहाणु, पंडिय रइधू कइ गुण अमाणु।
गुणभद्दसूरि गुणभद्द ठाणु, सिरि सहणपालु बहु बुद्धि जाणु।

पूर्वकवियोंके कीर्तनके उपरान्त कवि अपनी अज्ञानताको स्पष्ट प्रकट करता हुआ कहता है कि मैंने शब्द-शास्त्र नहीं देखा, मैं कर्त्ता, कर्म और क्रिया नहीं जानता। मुझे जाति (छंद), धातु और सन्धि तथा लिंग एवं अलंकारका ज्ञान भी नहीं है। कवि के शब्दोंमें—

णउ दिट्ठा णउ सेविय सुसेय, भइं सद्दसत्थ जाणिय ण भेय।
णो कत्ता कंमु ण किरिय जुत्ति, णउ जाइ धाउ णवि संधि उत्ति।
लिंगालंकारु ण पय समत्ति, णो वुज्झिय मइ इक्कवि विहत्ति।
जो अमरकोसु सो मुत्तिठाणु, णाणिउ मइ अण्णु ण णाम माणु।
णिग्घंटु वियाणिउ वणि गइंदु, सुछंदि ण ढोइउ मणु मइंदु।
पिंगल सुवण्णु तं वइ रहिउ, णाणिउ मइ अण्णु ण कोवि गहिउ।

इसलिये ज्ञानी जन इस काव्य-व्यापारको देखकर कोप न करें?

यहाँपर सहज ही प्रश्न उठता है कि जब तुम अज्ञानी हो और इस काव्य-व्यापारको जानते-समझते नहीं हो तब काव्य-रचना क्यों कर रहे हो? रचनाकारका उत्तर है—

जइ दिणयरु णहि उज्जोउ करइ, ता किं खुज्जोअउ णउ फुरइ।
जइ कोइल रसइ सुमहुरवाणि, किं टिट्टिर हइ तुण्हंतु ठाणि।
जइ वियसइ सुरहिय चंपराउ, किं णउ फूलइ किंसुय बराउ।
जइ पडहु विवज्जइ गहिरणाउ, ता इयरु म वज्जउ तुच्छ भाउ।
जइ सरवरि गमइ सुहंसु लील, किं णउ धरि पंगणि बहु सवील।
मण मित्त मुयहि तुहु कायरत्तु, करि जिणहु भत्ति हय दुव्वरित्तु।
बहु विणउ पयासिवि सज्जणाह, किं ण्हाण णु करि खलयणगणाह॥

अर्थात् यदि दिनकर (सूर्य) प्रकाश न करे तो क्या खद्योत (जुगनू) स्फुरण न करे? यदि कोयल सुमधुर वाणीमें आलाप भरती हैं तो क्या टिटहरी मौन रहे? यदि चम्पक पुष्प अपनी सुरभि चारों ओर प्रसारित करता हैं तो क्या बेचारा टेसूका फूल नहीं फूले? यदि नगाड़े गम्भीर नाद करते हैं तो क्या अन्य वाद्य वादित न हों? यदि सरोवरमें हंस लीला करते हैं तो क्या घरके आँगनमें अनेक सवील (अबाबील?) पक्षी क्रीडाएँ न करें? इत्यादि।

कविने अपने परिचयके सम्बन्धमें कुछ भी नहीं लिखा। केवल सन्धिके अन्तके उल्लेखसे यह पता चलता है कि वे इल्लिराजके पुत्र थे। इसी प्रकारसे अन्तिम प्रशस्तिसे स्पष्ट रूपसे ज्ञात होता है कि वे दिल्लीके आसपासके किसी गाँवके रहने वाले थे। उन्होंने इस काव्यकी रचना योगिनीपुर (दिल्ली) के श्रावक विद्वान् साधारण की प्रेरणासे की थी। उन दिनों दिल्लीके सिंहासनपर शाहनशाह बाबरका शासन था। ग्रंथका रचना काल विक्रम संवत् १५८७ है।[1] इस काव्य रचनाका ग्रंथ प्रमाण लगभग ५००० कहा गया है। पाँच सहस्र श्लोक प्रमाणसे रचना अधिक ही हो सकतीहै, कम नहीं है। क्योंकि तेरह सन्धियोंकी रचना अपने कायमें कम नहीं है।

काव्यमें निबद्ध तेरह सन्धियोंमें वर्णित संक्षिप्त विषय-वस्तु इस प्रकार है—

(१) प्रथम सन्धिमें मगध देशके सुप्रसिद्ध शासक राजा श्रेणिक और उनकी रानी चेलनाका वर्णन है। राजा श्रेणिक अपने युगके सुविदित तीर्थंकर भगवान् महावीरके समवसरण (धर्म-सभा) में धर्म-कथा सुननेके लिए जाते हैं। वे भगवान्की वन्दनाकर गौतम गणधरसे प्रश्न पूछते हैं। १२ कडवकोंमें समाहित प्रथम सन्धिमें इतना ही वर्णन है।

(२) दूसरी सन्धिमें विजयार्थ पर्वतका वर्णन, श्री अर्ककीर्तिकी मुक्ति-साधनाका वर्णन तथा श्री विजयांकका उपसर्ग-निवारण-वर्णन है। इस सन्धिमें कुल २१ कडवक हैं।

(३) तीसरी सन्धिमें भगवान् शान्तिनाथकी भवावलिका २३ कडवकोंमें वर्णन किया गया हैं।

(४) चतुर्थ सन्धि २६ कडवकोंमें निबद्ध है। इसमें भगवान् शान्तिनाथके भवान्तरके बलभद्रके जन्मका वर्णन किया गया है। वर्णन बहुत सुन्दर है।

(५) पाँचवी सन्धिमें १६ कडवक हैं। इसमें वज्रायुध चक्रवर्तीका वर्णन विस्तारसे हुआ है।

(६) छठी सन्धि २५ कडवकोंकी है। श्री मेघरथकी सोलह भावनाओंकी आराधना और सर्वार्थ-सिद्धिगमनका वर्णन मुख्य रूपसे किया गया है।

(७) सातवीं सन्धिमें भी २५ कडवक हैं। इसमें मुख्यतः भगवान् शान्तिनाथके जन्माभिषेकका वर्णन है।

(८) आठवीं सन्धि २६ कडवकोंकी है। इसमें भगवान् शान्तिनाथके कैवल्य प्राप्तिसे लेकर समवसरण-विभूति-विस्तार तकका वर्णन है।

(९) २७ कडवकोंकी इस सन्धिमें भगवान् शान्तिनाथकी दिव्य-ध्वनि एवं प्रवचन-वर्णन है।

(१०) दसवीं सन्धिमें केवल २० कडवक हैं। इसमें तिरेसठ महापुरुषोंके चरित्रका अत्यन्त संक्षिप्त वर्णन है।

(११) ३४ कडवकोंकी यह सन्धि भौगोलिक आयामोंके वर्णनसे भरित है, जिसमें केवल इस क्षेत्रका ही नहीं सामान्य रूपसे तीनों लोकोंका वर्णन है।

---

१. आयहॅ गंथपमाणु वि लक्खिउ, ते पाल सयइं गणि कइय ण अक्खिउ।
विण्हेण वि ऊधा पुत्तएण, भूदेवेण वि गुणमणजुएण।
लिहियाउ चित्तेण वि सावहाणु, इहु गंथु विवुह सर जाय भाणु।।
विक्कमरायहु ववगय कालइ, रिसिवसु सर भूय वि अंकालइ।
कत्तिय पढम पक्खि पंचमि दिणि, हुउ परिपुण्ण वि उग्गंतइ इणि।। —अन्त्य प्रशस्ति

(१२) १८ कडवकोंकी इस सन्धिमें भगवान् शान्तिनाथके द्वारा वर्णित चरित्र अथवा सदाचारका वर्णन किया गया है।

(१३) अन्तिम तेरहवीं सन्धिमें भगवान् शान्तिनाथका निर्वाण-गमनका वर्णन १७ कडवकोंमें निबद्ध है।

इस प्रकार इस काव्यका वर्ण्य-विषय पौराणिक है, जो लगभग सभी पौराणिकतासे भरित रचनाओंमें एक साँचेमें रचा गया है। इसमें कथा-वस्तु उसी प्रकारसे सम्पादित है। उसमें कोई विशेष अन्तर परिलक्षित नहीं होता।

कथा-वस्तुकी दृष्टिसे भले ही काव्यमें कोई नवीनता लक्षित न हो, किन्तु काव्य-कला और शिल्पकी दृष्टिसे यह रचना वास्तवमें महत्त्वपूर्ण है। आलोच्यमान रचना अपभ्रंशके चरितकाव्योंकी कोटि की है। चरितकाव्यके सभी लक्षण इस कृतिमें परिलक्षित होते हैं। चरितकाव्य कथाकाव्यसे भिन्न हैं[1]। अतएव पुराणकी विकसनशील प्रवृत्ति पूर्णतः इस काव्यमें लक्षित होती है। प्रत्येक सन्धिके आरम्भमें साधारणके नामसे अंकित संस्कृत श्लोक भी विविध छन्दोंमें लिखित मिलता है। जैसे कि नवीं सन्धिके आरम्भमें—

सुललितपदयुक्ता सर्वदोषैर्विमुक्ता, जडमतिभिरगम्या मुक्तिमार्गे सुरम्या।
जितमदनमदानां चारुवाणी जिनानां, परचरितमयानां पातु साधारणानाम्।

इसी प्रकार ग्यारहवीं सन्धिके आरम्भमें उल्लिखित है—

कनकमयगिरीन्द्रे चारुसिंहासनस्थः प्रमुदितसुरवृन्दैः स्नापितो यः पयोभिः।
स दिशतु जिननाथः सर्वदा सर्वकामानुपचितशुभराशेः साधु साधारणस्य ॥१०॥

जिस समय शान्तिनाथके मानसमें वैराग्य भावना हिलोरें लेने लगती हैं और वे घर-द्वार छोड़नेका विचार करते हैं तभी स्वर्गसे लौकान्तिक देव आते हैं और उन्हें सम्बोधते हैं।

चिंतइ जिणवरु णिय मणि जामवि, लोयंती सुर आगइ तामवि।
जय जयकारु करंति णविय सिर, चंगउ भाविउ तिहुयण णेसर।

कि भगवन्! आप तीर्थका प्रवर्तन करनेवाले हैं और भविकजनोंके मोह-अन्धकारको दूर करनेवाले हैं।[2]

अपभ्रंश के अन्य प्रबन्धकाव्योंकी भाँति इस रचनामें भी चलते हुए कथानकके मध्य प्रसंगतः गीतों की संयोजना भी हुई है। ये गीत कई दृष्टियोंसे महत्त्वपूर्ण हैं। उदाहरणके लिए—

अइ महसत्ती वर पण्णत्ती, मारुयगामिणि कामवि रूविणि।
हुयवह थंभणि णीरुग्गिसुंभणि, अंधीकरणी आयहु हरणी।
सयलपवेसिणि अविआवेसिणि, अप्पडिगामिणि विविहविभासिणि।
पासवि छेयणि गहणीरोयणि, वलणिद्धाडणि मंडणि ताडणि।
मुक्करवाली भीमकराली, अविरल पहयरि विज्जुल चलयरि।
देवि पहावइ अरिणिट्ठावइ, लहुवर मंगी भूमि विभंगी।

---

१. कथाकाव्य और चरितकाव्यमें अन्तर जाननेके लिए लेखकका शोधप्रबन्ध द्रष्टव्य है—'भविसयत्तकहा तथा अपभ्रंश कथा-काव्य', पृ० ७६-७९।

२. तित्थपवत्तणु करहि भडारा, भवियहं फेडहि मोहंधारा।
गय लोयंतिय एम कहेविणु, ता जिणवरिण भरहु घर देविणु। सन्धि ९, कडवक १६।

एक अन्य प्रकारके गीतका निदर्शन है—

सरोवरं पफुट्ट कंजरेण पिंजरं, समीयरं सगज्ज उब्भडं सुसायरं।
वरं सुआसणं मयारि रूव भीसयं, सरं मयंस दित्तयं सुदेव गेहयं।
अहिंद मंदिरं सुलोयणित्त सुंदरं, पकंत्ति जुत्तयं सुरण्ण संचयं वरं।
ण तित्ति इंधणं हुयासणं पलित्तयं, अधूमजाल देवमग्गु णं गिलंतयं।

एक अन्य रागका गीत पठनीय है—

हुल्लरु सुरवइ मण रंजिएण, हुल्लरु उवसग्ग विहंजिएण।
हुल्लरु मुणिमण संतोसिएण, हुल्लरु भवियण गण पोसिएण।
हुल्लरु तिल्लोयहु विहिय सेव, हुल्लरु ईहिय दय विगय लेव। ८,२

इस प्रकारके अन्य गीतोंसे भी भरित यह काव्य साहित्यका पूर्ण आनन्द प्रदान करता है। एक तो अपभ्रंश भाषामें और विशेषकर इस भाषामें रचे गये गीतोंमें बलाघातात्मक प्रवृत्ति लक्षित होती है। आज तक किसी भी भाषाशास्त्री तथा अपभ्रंशके विद्वान्का ध्यान इस ओर नहीं गया है। किन्तु अपभ्रंशके लगभग सभी काव्योंमें सामान्यरूपसे यह प्रवृत्ति लक्षित होती है। उदाहरण के लिए—

इक्कें वुल्लाविउ मुक्खगामि, इक्कें विहसाविउ भुवणसामि।
इक्कें गलिहारु विलंवियउ, इक्कें मुहेण मुहु चुंवियउ।

किन्तु वलाघात उदात्त न होकर किंचित् मन्द है। इसी प्रकारका अन्य उदाहरण है—

सुय सिरिदत्ता जणिय पहिल्ली, पंगु कुंटि अण्णिक्क गहिल्ली।
पुणु वहिरी कण्ण ण सुणइ वाय, पुणु छट्ठी खुज्जिय पुत्ति जाय।

तथा—

आराहिवि सोलहकारणाइ, जे सिवमंदिरि आरोहणाइ।
तिल्लोक्कचक्क संखोहणाइ, संपुण्ण तवें अज्जिय विसेण।

एवम्—

जेट्ठ वहल वारिस जाणिज्जहु, माहहु सिय तेरसि माणिज्जहु।
जेट्ठहु वहल चउद्दसि जाणहु, पइसाहहु सिय पडिव पमाणहु।
मग्गसिरहं दिय चउदसि जाणिया, पुणु एयारसि जिणवर काणिया।

संगीतात्मक ताल और लयसे समन्वित पद-रचना देखते ही वनती है। यथा—

झरंति दाण वारि लुद्ध मत्त भिंगयं, णिरिक्ख एसु दंति वेयदंत संगयं।
अलद्ध जुज्झु ढिक्करंतु सेयवण्णयं, घरम्मि मंद संपविस्समाणु गोवयं।
पउब्भियं कमं चलं व पिंगलोयणं, विभा सुरंधु लंतकंव केसरं घणं।
सणंकरं तुयंतु संतु लंब जीहयं, पकोवयं पलित्तु पिच्छए सुसीहयं।

काव्य भाव और भाषाके सर्वथा अनुकूल है। भावोंके अनुसार ही भाषाका प्रयोग दृष्टिगत होता है। फिर भी, भाषा प्रसाद गुणसे युक्त तथा प्रसंगानुकूल है। जैसे कि—

कालाणलि अप्पउ किणि णिहित्तु, आसीविसु केण करेण छित्तु।
सुरगिरि विसाणु किणि मोडियउ, जममहिससिंगु किणि तोडियउ।
जो महु विमाण थंभणु करेइ, सो णिच्छय महु हत्थें मरेइ।

प्रसंगत: अमर्ष संचारी भाव विभावसे संयुक्त होकर रोषके आवेगके साथ वीर रसका स्फुरण कर रहा है। इसी प्रकार अन्य रसोंसे युक्त होने पर भी रचना शान्तरस की है।

आलोच्यमान काव्यमें कई सुन्दर वर्णन हैं। प्रस्तुत है मगध देशका वर्णन––जहाँ पर सरोवर कमल-नालोंसे सुशोभित हैं, श्रेष्ठ हाथी जहाँ पर संचार करते हैं और राजहंश उड़ानें भरते हैं। जहाँ पर क्रीड़ागिरि रति-रसका निधान है और देव-मिथुन जहाँ पर लता-मण्डपोंमें क्रीड़ाएँ किया करते हैं। जलवाहिनी सरिता जहाँ पर अतिशय जल-प्रवाहके साथ बहती है मानो कामिनी-कुल पतियोंके साथ विचरण करता हो। जहाँ पर नन्दन-वन फल-फूलोंसे भरित हैं मानो भू-कामिनी घने यौवनसे सुशोभित हो रही हो। जहाँके गो-कुलोंमें गायोंके स्तनोंसे दुग्ध झर रहा है और चपल बछड़े अपनी पूँछें उठाकर दुग्ध-पान कर रहे हैं।

कविके शब्दोंमें––

तहु मज्झि सुरम्मउ मगहदेसु, महिकामिणि किउ णं दिव्ववेसु।
जहि सरवर सोहहि सारणाल, गयवर डोहिय उड्डिय मराल।
जहि कीलागिरि रइरस आणिहण, लइमंडवि कीलिर देवमिहुण।
जलवाहिणि गणु जलु वहलु वहइ, णं कामिणिउलु पइसंगु गहइ।
जहि णंदणवण फुल्लिय फल्लाइं, णं भूकामिणि जुव्वणु घणाइ।
जहि गोउलि गोहणु पय खिरंति, करि पुच्छ चवल वच्छा पिवंति। (१,७)

इसी प्रकार स्वयंवर-मण्डपमें सुलोचनाके द्वारा मेघेश्वरके कण्ठमें जयमाला निक्षिप्त करने पर अर्ककीर्ति रोषके साथ उठ खड़ा होता है, मेघेश्वर भी दर्पके साथ युद्धके लिए उठ बैठता है। घमासान युद्ध होता है। युद्धका चित्र है––

अक्ककित्ति मणु दुवणह चालिउ, दुवणु वि कत्थण चंगउ भालिउ।
तियरयण समाणी एह कण्ण, सामिहि सुउ मुइ कुलेइ अण्ण।
ता जाइउ संगरु अइ रउद्दु, उट्ठिउ मेहेसरु वेरि मद्दु।
बहु णरवर तज्जिय वाणसंधि, रवि कित्ति लयउ जीवंतु वंधि। (२,१९)

वस्तुत: उक्त पंक्तियोंमें युद्धका वर्णन न होकर उसकी तैयारीका उल्लेख मात्र है। पढ़ने पर यह लगता है कि अब जम कर युद्ध होगा, किन्तु कवि कुछ ही पंक्तियोंमें युद्धोत्तर स्थितिका वर्णन भी साथमें कर देता है। इसका कारण यही है कि कथानकमें गतिशीलता नहीं है। बहुत ही बँधी हुई बातें कविके सामने हैं, जिनका साहित्यके रूपमें प्रस्तुतीकरण करना कविका उद्देश्य प्रतीत होता है। अतएव वस्तुगत विविध आयामोंका भली-भाँति चित्रण नहीं हो सका है। किन्तु इसका यह भी अर्थ नहीं है कि रचनामें मार्मिक स्थल नहीं हैं; परन्तु कम अवश्य हैं।

काव्यके वर्णनोंमें जहाँ-तहाँ लोक-तत्त्वोंका सहज स्फुरण परिलक्षित होता है। उदाहरणके लिए––

जहाँ पर नदियाँ कुलटा नारीके समान वक्र गतिसे बहनेवाली हैं, निकटके गाँव इतने पास हैं कि मुर्गा उड़कर एक गाँवसे दूसरे गाँवमें सरलतासे पहुँच सकता है। जहाँके सरोवरोंमें विशाल नेत्रोंकी समता करनेवाले बड़े-पत्तोंसे युक्त कमल विकसित थे। जहाँ पर गोधन, गोरस आदिसे समृद्धि-सम्पन्न हैं। और जहाँ पर विख्यात उद्यान-वन आदि हैं। जहाँका क्षेत्र अन्न-जल आदिसे परिपूर्ण होनेके कारण सदा सुखदायक है। कविके ही शब्दों में––

एक अन्य प्रकारके गीतका निदर्शन है—

सरोवरं पफुट्ट कंजरेण पिंजरं, समीयरं सगज्ज उब्भडं सुसायरं।
वरं सुआसणं मयारि रूव भीसयं, सरं मयंस दित्तयं सुदेव गेहयं।
अहिंद मंदिरं सुलोयणित्त सुंदरं, पकंत्ति जुत्तयं सुरण्ण संचयं वरं।
ण त्तित्ति इंधणं हुयासणं पलित्तयं, अधूमजाल देवमग्गु णं गिलंतयं।

एक अन्य रागका गीत पठनीय है—

हुल्लरु सुरवइ मण रंजिएण, हुल्लरु उवसग्ग विहंजिएण।
हुल्लरु मुणिमण संतोसिएण, हुल्लरु भवियण गण पोसिएण।
हुल्लरु तिल्लोयहु विहिय सेव, हुल्लरु ईहिय दय विगय लेव। ८,२

इस प्रकारके अन्य गीतोंसे भी भरित यह काव्य साहित्यका पूर्ण आनन्द प्रदान करता है। एक तो अपभ्रंश भाषामें और विशेषकर इस भाषामें रचे गये गीतोंमें वलाघातात्मक प्रवृत्ति लक्षित होती है। आज तक किसी भी भाषाशास्त्री तथा अपभ्रंशके विद्वान्का ध्यान इस ओर नहीं गया है। किन्तु अपभ्रंशके लगभग सभी काव्योंमें सामान्यरूपसे यह प्रवृत्ति लक्षित होती है। उदाहरण के लिए—

इक्कें वुल्लाविउ मुक्खगामि, इक्कें विहसाविउ भुवणसामि।
इक्कें गलिहारु विलंवियउ, इक्कें मुहेण मुहु चुंवियउ।

किन्तु वलाघात उदात्त न होकर किंचित् मन्द है। इसी प्रकारका अन्य उदाहरण है—

सुय सिरिदत्ता जणिय पहिल्ली, पंगु कुंटि अण्णिक्क गहिल्ली।
पुणु वहिरी कण्ण ण सुणइ वाय, पुणु छट्ठी खुज्जिय पुत्ति जाय।

तथा—

आराहिवि सोलहकारणाइ, जे सिवमंदिरि आरोहणाइ।
तिल्लोक्कचक्क संखोहणाइ, संपुण्ण तवें अज्जिय विसेण।

एवम्—

जेट्ठ बहल वारिस जाणिज्जहु, माहहु सिय तेरसि माणिज्जहु।
जेट्ठहु बहल चउद्दसि जाणहु, पइसाहहु सिय पडिव पमाणहु।
मग्गसिरहं दिय चउदसि जाणिया, पुणु एयारसि जिणवर काणिया।

संगीतात्मक ताल और लयसे समन्वित पद-रचना देखते ही वनती है। यथा—

झरंति दाण वारि लुद्ध मत्त भिंगयं, णिरिक्ख एसु दंति वेयदंत संगयं।
अलद्ध जुज्झु ढिक्करंतु सेयवण्णयं, घरम्मि मंद संपविस्समाणु गोवयं।
पउब्भियं कमं चलं व पिंगलोयणं, विभा सुरंधु लंतकंव केसरं घणं।
सणंकरं तुयंतु संतु लंब जीहयं, पकोवयं पलित्तु पिच्छए सुसीहयं।

काव्य भाव और भाषाके सर्वथा अनुकूल है। भावोंके अनुसार ही भाषाका प्रयोग दृष्टिगत होता है। फिर भी, भाषा प्रसाद गुणसे युक्त तथा प्रसंगानुकूल है। जैसे कि—

कालाणलि अप्पउ किणि णिहित्तु, आसीविसु केण करेण छित्तु।
सुरगिरि विसाणु किणि मोडियउ, जममहिससिंगु किणि तोडियउ।
जो महु विमाण थंभणु करेइ, सो णिच्छय महु हत्थें मरेइ।

प्रसंगत: अमर्ष संचारी भाव विभावसे संयुक्त होकर रोषके आवेगके साथ वीर रसका स्फुरण कर रहा है। इसी प्रकार अन्य रसोंसे युक्त होने पर भी रचना शान्तरस की है।

आलोच्यमान काव्यमें कई सुन्दर वर्णन हैं। प्रस्तुत है मगध देशका वर्णन--जहाँ पर सरोवर कमल-नालोंसे सुशोभित हैं, श्रेष्ठ हाथी जहाँ पर संचार करते हैं और राजहंश उड़ानें भरते हैं। जहाँ पर क्रीड़ागिरि रति-रसका निधान है और देव-मिथुन जहाँ पर लता-मण्डपोंमें क्रीड़ाएँ किया करते हैं। जलवाहिनी सरिता जहाँ पर अतिशय जल-प्रवाहके साथ बहती है मानो कामिनी-कुल पतियोंके साथ विचरण करता हो। जहाँ पर नन्दन-वन फल-फूलोंसे भरित हैं मानो भू-कामिनी घने यौवनसे सुशोभित हो रही हो। जहाँके गो-कुलोंमें गायोंके स्तनोंसे दुग्ध झर रहा है और चपल बछड़े अपनी पूँछें उठाकर दुग्ध-पान कर रहे हैं।

कविके शब्दोंमें--

तहु मज्झि सुरम्मउ मगहदेसु, महिकामिणि किउ णं दिव्ववेसु।
जहि सरवर सोहहि सारणाल, गयवर डोहिय उड्डिय मराल।
जहि कीलागिरि रइरस आणिहण, लइमंडवि कीलिर देवमिहुण।
जलवाहिणि गणु जलु वहलु वहइ, णं कामिणिउलु पइसंगु गहइ।
जहि णंदणवण फुल्लिय फल्लाइं, णं भूकामिणि जुव्वणु घणाइ।
जहि गोउलि गोहणु पय खिरंति, करि पुच्छ चवल वच्छा पिवंति। (१,७)

इसी प्रकार स्वयंवर-मण्डपमें सुलोचनाके द्वारा मेघेश्वरके कण्ठमें जयमाला निक्षिप्त करने पर अर्ककीर्ति रोषके साथ उठ खड़ा होता है, मेघेश्वर भी दर्पके साथ युद्धके लिए उठ बैठता है। घमासान युद्ध होता है। युद्धका चित्र है--

अक्ककित्ति मणु दुवणह चालिउ, दुवणु वि कत्थण चंगउ भालिउ।
तियरयण समाणी एह कण्ण, सामिहि सुउ मुइ कुलेइ अण्ण।
ता जाइउ संगरु अइ रउद्दु, उट्ठिउ मेहेसरु वेरि मद्दु।
बहु णरवर तज्जिय वाणसंधि, रवि कित्ति लयउ जीवंतु वंधि। (२,१९)

वस्तुतः उक्त पंक्तियोंमें युद्धका वर्णन न होकर उसकी तैयारीका उल्लेख मात्र है। पढ़ने पर यह लगता है कि अब जम कर युद्ध होगा, किन्तु कवि कुछ ही पंक्तियोंमें युद्धोत्तर स्थितिका वर्णन भी साथमें कर देता है। इसका कारण यही है कि कथानकमें गतिशीलता नहीं है। बहुत ही बँधी हुई बातें कविके सामने हैं, जिनका साहित्यके रूपमें प्रस्तुतीकरण करना कविका उद्देश्य प्रतीत होता है। अतएव वस्तुगत विविध आयामोंका भली-भाँति चित्रण नहीं हो सका है। किन्तु इसका यह भी अर्थ नहीं है कि रचनामें मार्मिक स्थल नहीं हैं; परन्तु कम अवश्य हैं।

काव्यके वर्णनोंमें जहाँ-तहाँ लोक-तत्त्वोंका सहज स्फुरण परिलक्षित होता है। उदाहरणके लिए--

जहाँ पर नदियाँ कुलटा नारीके समान वक्र गतिसे बहनेवाली हैं, निकटके गाँव इतने पास हैं कि मुर्गा उड़कर एक गाँवसे दूसरे गाँवमें सरलतासे पहुँच सकता है। जहाँके सरोवरोंमें विशाल नेत्रोंकी समता करनेवाले बड़े-पत्तोंसे युक्त कमल विकसित थे। जहाँ पर गोधन, गोरस आदिसे समृद्धि-सम्पन्न हैं। और जहाँ पर विख्यात उद्यान-वन आदि हैं। जहाँका क्षेत्र अन्न-जल आदिसे परिपूर्ण होनेके कारण सदा सुखदायक है। कविके ही शब्दों में--

जहि तीरिणि गणु कुलटा समाणु, जहि वसहि गाम कुक्कुड उडाण :
जहि सरस कमल कमलविसलच्छि, जहि गोवासगोहण गोहण सवच्छि।
उज्जाण सवणवण जहि सविक्ख, जहि खित्त सकणजल जलसहक्ख।
जहि णिच्च वहेइ चउत्थु कालु, तहु देसहु वण्णणु को सुसालु। (५,१)

रचना प्रासादिक और सालंकारिक है। भाषाकी दृष्टिसे रचनामें क्रियापदोंकी तथा कृदन्तोंकी प्रचुरता है, जो हिन्दी भाषायुगीन प्रवृत्तिकी द्योतक है। कुछ नये शब्द इस प्रकार हैं—

उल्हसित—उल्लसित (९,१२)
टालणु—कम्पित होना, अपने स्थानसे हटना (९,१०)
उज्जालणु—उजाला करना, प्रकाशित करना (९,१०)
संडु (षण्ड, सं०)—समूह (९,९)
दसमउ कमलसंडु कर दल उज्जलु। (९,९)
कुच्छिउ—कुत्सित (९,३)
छिंक (?)
संघरहि छिंक जं भाइएण। (९,३)
तहि—तहीं, वहीं (९,४)
कोइ ण राउ रंकु तहि दीसइ (९,४)
सिय चंदकंति सुन्दर मुहेण, उज्जल चामीयर कुंचुएण। (९,२)
गिरिवरसुन्दर मणहर घणेहि, कंदलविलास वाहुल्लएहि। (९,२)
खड (षड्, सं०)—छह (८,२६)
तप्पर—तत्पर (८,२४)
मणुयतिरिय जिणसेवण-तप्पर। (८,२४)

इस प्रकार भाषा (बलाघात, नाद-योजना, नये शब्दोंका प्रयोग), प्रसाद शैली तथा गीतादि संयोजना आदिकी दृष्टिसे उक्त रचना महत्त्वपूर्ण है। इस अध्ययनसे यह भी स्पष्ट होता है कि छठी शताब्दी तक अनवच्छिन्न रूपसे अपभ्रंशके प्रबन्धकाव्योंकी परम्परा प्रचलित रही है, जिसमें काव्यात्मक विधाके रूपोंमें कथाकाव्य और चरितकाव्य जैसी स्वतन्त्र विधाएं भी जनविश्रुत रही हैं।

अभी तक सांस्कृतिक दृष्टिसे भी इस प्रकारकी रचनाओंका अध्ययन नहीं किया गया है। अतः इस ओर भी विद्वानोंका ध्यान जाना चाहिए।

•

राजस्थानका युग-संस्थापक कथा-काव्यनिर्माता हरिभद्र

(स्व०) डॉ० नेमिचन्द्र शास्त्री, एम०, ए०, पी-एच०डी०, डी० लिट्, ज्योतिषाचार्य

युग प्रधान होनेके कारण हरिभद्रकी ख्याति उनकी अगणित साहित्यिक कृतियोंपर आश्रित है। राजस्थानका यह बहुत ही मेधावी और विचारक लेखक है। इनके धर्म, दर्शन, न्याय, कथा-साहित्य, योग एवं साधनादि सम्बन्धी विचित्र विषयोंपर गम्भीर पांडित्यपूर्ण ग्रन्थ उपलब्ध हैं। यह आश्चर्यकी बात है कि 'समराइच्च कहा' और 'धूर्त्ताख्यान' जैसे सरस, मनोरंजक आख्यान प्रधान ग्रन्थोंका रचयिता 'अनेकान्त-जयपताका' जैसे क्लिष्ट न्याय ग्रन्थका रचयिता है। एक ओर हृदयकी सरसता टपकती है, तो दूसरी ओर मस्तिष्ककी प्रौढ़ता।

हरिभद्रकी रचनाओंके अध्ययनसे ज्ञात होता है कि ये बहुमुखी प्रतिभाशाली अद्वितीय विद्वान् थे। इनके व्यक्तित्वमें दर्शन, साहित्य, पुराण, कथा, धर्म आदिका संमिश्रण हुआ है। इनके ग्रन्थोंके अध्ययनसे ज्ञात होता है कि इनका जन्म चित्रकूट-चित्तौर राजस्थानमें हुआ था। ये जन्मसे ब्राह्मण थे और अपने अद्वितीय पांडित्यके कारण वहाँके राजा जितारिके राजपुरोहित थे। दीक्षाग्रहण करनेके पश्चात् इन्होंने राजस्थान, गुजरात आदि स्थानोंमें परिभ्रमण किया।

आचार्य हरिभद्रके जीवनप्रवाहको बदलनेवाली घटना उनके धर्मपरिवर्तनकी है। इनकी यह प्रतिज्ञा थी—'जिसका वचन न समझूँगा, उसका शिष्य हो जाऊँगा। एक दिन राजाका मदोन्मत्त हाथी आलान-स्तम्भको लेकर नगरमें दौड़ने लगा। हाथीने अनेक लोगोंको कुचल दिया। हरिभद्र इसी हाथीसे बचनेके लिए एक जैन उपाश्रयमें प्रविष्ट हुए। यहाँ याकिनी महत्तरा नामकी साध्वीको निम्नलिखित गाथाका पाठ करते हुए सुना।

चक्कीदुगं हरिपणगं चक्कीण केसवो चक्की।
केसव चक्की केसव दु चक्की केसव चक्की य॥

इस गाथाका अर्थ उनकी समझमें नहीं आया और उन्होंने साध्वीसे इसका अर्थ पूछा। साध्वीने उन्हें गच्छपति आचार्य जिनभद्रके पास भेज दिया। आचार्यसे अर्थ सुनकर वे वहीं दीक्षित हो गये और बादमें अपनी विद्वत्ता और श्रेष्ठ आचारके कारण पट्टधर आचार्य हुए।

जिस याकिनी महत्तराके निमित्तसे हरिभद्रने धर्मपरिवर्तन किया था उसको उन्होंने अपनी धर्ममाताके समान पूज्य माना है और अपनेको याकिनीसूनु कहा है। याकोबीने 'समराइच्च कहा' की प्रस्तावनामें लिखा है—'आचार्य हरिभद्रको जैन धर्मका गम्भीर ज्ञान रखकर भी अन्यान्य दर्शनोंका भी इतना विशाल और तत्त्वग्राही ज्ञान था, जो उस कालमें एक ब्राह्मणको ही परम्परागत शिक्षाके रूपमें प्राप्त होना स्वाभाविक था, अन्यको नहीं'।

समय

हरिभद्रके समयपर विचार करनेके पूर्व यह जान लेना आवश्यक है कि जैन साहित्य परम्परामें

जहि तीरिणि गणु कुलटा समाणु, जहि वसहि गाम कुक्कुड उडाण :
जहि सरस कमल कमलविसलच्छि, जहि गोवासगोहण गोहण सवच्छि।
उज्जाण सवणवण जहि सविक्ख, जहि खित्त सकणजल जलसहक्ख।
जहि णिच्च वहेइ चउत्थु कालु, तहु देसहु वण्णणु को सुसालु। (५,१)

रचना प्रासादिक और सालंकारिक है। भाषाकी दृष्टिसे रचनामें क्रियापदोंकी तथा कृदन्तोंकी प्रचुरता है, जो हिन्दी भाषायुगीन प्रवृत्तिकी द्योतक है। कुछ नये शब्द इस प्रकार हैं—

उल्हसित—उल्लसित (९,१२)
टालणु—कम्पित होना, अपने स्थानसे हटना (९,१०)
उज्जालणु—उजाला करना, प्रकाशित करना (९,१०)
संडु (षण्ड, सं०)—समूह (९,९)
दसमउ कमलसंडु कर दल उज्जलु। (९,९)
कुच्छिउ—कुत्सित (९,३)
छिंक (?)
संघरहि छिंक जं भाइएण। (९,३)
तहि—तहीं, वहीं (९,४)
कोइ ण राउ रंकु तहि दीसइ (९,४)
सिय चंदकंति सुन्दर मुहेण, उज्जल चामीयर कुंचुएण। (९,२)
गिरिवरसुन्दर मणहर घणेहि, कंदलविलास वाहुल्लएहि। (९,२)
खड (षड्, सं०)—छह (८,२६)
तप्पर—तत्पर (८,२४)
मणुयतिरिय जिणसेवण-तप्पर। (८,२४)

इस प्रकार भाषा (बलाघात, नाद-योजना, नये शब्दोंका प्रयोग), प्रसाद शैली तथा गीतादि संयोजना आदिकी दृष्टिसे उक्त रचना महत्त्वपूर्ण है। इस अध्ययनसे यह भी स्पष्ट होता है कि छठी शताब्दी तक अनवच्छिन्न रूपसे अपभ्रंशके प्रबन्धकाव्योंकी परम्परा प्रचलित रही है, जिसमें काव्यात्मक विधाके रूपोंमें कथाकाव्य और चरितकाव्य जैसी स्वतन्त्र विधाएं भी जनविश्रुत रही हैं।

अभी तक सांस्कृतिक दृष्टिसे भी इस प्रकारकी रचनाओंका अध्ययन नहीं किया गया है। अतः इस ओर भी विद्वानोंका ध्यान जाना चाहिए।

•

राजस्थानका युग-संस्थापक कथा-काव्यनिर्माता हरिभद्र

(स्व०) डॉ० नेमिचन्द्र शास्त्री, एम०, ए०, पी-एच०डी०, डी० लिट्, ज्योतिषाचार्य

युग प्रधान होनेके कारण हरिभद्रकी ख्याति उनकी अगणित साहित्यिक कृतियोंपर आश्रित है। राजस्थानका यह बहुत ही मेधावी और विचारक लेखक हैं। इनके धर्म, दर्शन, न्याय, कथा-साहित्य, योग एवं साधनादि सम्बन्धी विचित्र विषयोंपर गम्भीर पांडित्यपूर्ण ग्रन्थ उपलब्ध हैं। यह आश्चर्यकी बात है कि 'समराइच्च कहा' और 'धूर्त्ताख्यान' जैसे सरस, मनोरंजक आख्यान प्रधान ग्रन्थोंका रचयिता 'अनेकान्त-जयपताका' जैसे क्लिष्ट न्याय ग्रन्थका रचयिता है। एक ओर हृदयकी सरसता टपकती है, तो दूसरी ओर मस्तिष्ककी प्रौढ़ता।

हरिभद्रकी रचनाओंके अध्ययनसे ज्ञात होता है कि ये बहुमुखी प्रतिभाशाली अद्वितीय विद्वान् थे। इनके व्यक्तित्वमें दर्शन, साहित्य, पुराण, कथा, धर्म आदिका संमिश्रण हुआ है। इनके ग्रन्थोंके अध्ययनसे ज्ञात होता है कि इनका जन्म चित्रकूट-चित्तौर राजस्थानमें हुआ था। ये जन्मसे ब्राह्मण थे और अपने अद्वितीय पांडित्यके कारण वहाँके राजा जितारिके राजपुरोहित थे। दीक्षाग्रहण करनेके पश्चात् इन्होंने राजस्थान, गुजरात आदि स्थानोंमें परिभ्रमण किया।

आचार्य हरिभद्रके जीवनप्रवाहको बदलनेवाली घटना उनके धर्मपरिवर्तनकी है। इनकी यह प्रतिज्ञा थी—'जिसका वचन न समझूँगा, उसका शिष्य हो जाऊँगा। एक दिन राजाका मदोन्मत्त हाथी आलान-स्तम्भको लेकर नगरमें दौड़ने लगा। हाथीने अनेक लोगोंको कुचल दिया। हरिभद्र इसी हाथीसे बचनेके लिए एक जैन उपाश्रयमें प्रविष्ट हुए। यहाँ याकिनी महत्तरा नामकी साध्वीको निम्नलिखित गाथाका पाठ करते हुए सुना।

चक्कीदुगं हरिपणगं चक्कीण केसवो चक्की।
केसव चक्की केसव दु चक्की केसव चक्की य॥

इस गाथाका अर्थ उनकी समझमें नहीं आया और उन्होंने साध्वीसे इसका अर्थ पूछा। साध्वीने उन्हें गच्छपति आचार्य जिनभद्रके पास भेज दिया। आचार्यसे अर्थ सुनकर वे वहीं दीक्षित हो गये और बादमें अपनी विद्वत्ता और श्रेष्ठ आचारके कारण पट्टधर आचार्य हुए।

जिस याकिनी महत्तराके निमित्तसे हरिभद्रने धर्मपरिवर्तन किया था उसको उन्होंने अपनी धर्ममाताके समान पूज्य माना है और अपनेको याकिनीसूनु कहा है। याकोबीने 'समराइच्च कहा' की प्रस्तावनामें लिखा है—'आचार्य हरिभद्रको जैन धर्मका गम्भीर ज्ञान रखकर भी अन्यान्य दर्शनोंका भी इतना विशाल और तत्त्वग्राही ज्ञान था, जो उस कालमें एक ब्राह्मणको ही परम्परागत शिक्षाके रूपमें प्राप्त होना स्वाभाविक था, अन्यको नहीं'।

समय

हरिभद्रके समयपर विचार करनेके पूर्व यह जान लेना आवश्यक है कि जैन साहित्य परम्परामें

हरिभद्र नामके कितने व्यक्ति हुए और इनमें 'समराइच्च कहा'के लेखक कथाकार कौनसे हरिभद्र हैं? ईस्वी सन्की चौदहवीं शताब्दी तकके उपलब्ध जैन साहित्यमें हरिभद्र नामके आठ आचार्योंका उल्लेख मिलता है।[1] इन आठ आचार्योंमें 'समराइच्चकहा' और 'धूर्ताख्यान' प्राकृत कथा-काव्यके लेखक आचार्य हरिभद्र सबसे प्राचीन हैं। ये 'भवविरहसूरि' और 'विरहांककवि' इन दो विशेषणोंसे प्रख्यात थे।

'कुवलय[2]माला'के रचयिता उद्योतन सूरिने (७०० शक) इन्हें अपना प्रमाण और न्याय पढ़ानेवाला गुरु कहा है। 'उपमितभवप्रपंच कथा'के रचयिता सिद्धर्षि (९०६ ई०) ने "धर्मबोधकरो गुरु"के रूपमें स्मरण किया है।

मुनि जिनविजयजीने अपने प्रबन्धमें लिखा है—"एतत्कथनमवलम्ब्यैव राजशेखरेण प्रबन्धकोषे मुनिसुन्दरेण उपदेशरत्नाकरे, रत्नशेखरेण च श्राद्धप्रतिक्रमणसूत्रवृत्तौ, सिद्धर्षिहरिभद्रशिष्यत्वेन वर्णितः। एवं पडीवालगगच्छीयायामेकस्यां प्राकृतपट्टावल्यामपि सिद्धर्षिहरिभद्रयोः समसमयवर्त्तित्वलिखितं समुपलभ्यते"[3] इससे स्पष्ट है कि भवविरह हरिभद्र बहुत प्रसिद्ध हैं। इन्होंने स्वयं अपने आपको यामिनी महत्तराका पुत्र जिनमतानुसारी, जिनदत्ताचार्यका शिष्य कहा[4] है।

हरिभद्रके समयके सम्बन्धमें निम्नलिखित चार मान्यताएँ प्रसिद्ध हैं।

(१) परम्परा प्राप्त मान्यता—इसके अनुसार हरिभद्रका स्वर्गारोहणकाल विक्रम सं० ५८५ अर्थात् ई० सन् ५२७ माना जाता रहा[5] है।

(२) मुनि जिनविजयजीकी मान्यता—अन्तः और बाह्य प्रमाणोंके आधारपर इन्होंने ई० सन् ७०० तक आचार्य हरिभद्रका काल निर्णय किया[6] है।

(३) प्रो० के० बी० आभ्यंकरकी मान्यता—इस मान्यतामें आचार्य हरिभद्रका समय विक्रम संवत् ८००-९५० तक माना[7] है।

(४) पंडित महेन्द्रकुमारजीकी मान्यता—सिद्धिविनिश्चयकी प्रस्तावनामें पंडित महेन्द्रकुमारजीने आचार्य हरिभद्र का समय ई० सन् ७२० से ८१० तक माना है।

मुनि जिनविजयजीने आचार्य हरिभद्रके द्वारा उल्लिखित विद्वानोंकी नामावली दी है। इस नामावलीमें समयकी दृष्टिसे प्रमुख हैं धर्मकीर्ति, (६००-६५०), धर्मपाल (६३५ ई०), वाक्यपदीयके रचयिता भर्तृहरि (६००-६५० ई०), कुमारिल (६२० लगभग ७०० ई० तक), शुभगुप्त (६४० से ७०० ई० तक) और शान्तरक्षित (ई० ७०५-७३२)। इस नामावलीसे ज्ञात होता है कि हरिभद्रका समय ई० सन् ७०० के पहले नहीं होना चाहिये।

हरिभद्रके पूर्व समयकी सीमा ई० सन् ७ ० के आस-पास है। विक्रम संवत् ५८५ की पूर्व सीमा

---

१. अनेकान्त जयपताका, भाग २, भूमिका, पृ० ३०,

२. जो इच्छइ भव-विरहं भवविरहं को ण वंदए सुएपं समय-सम-सत्यगुरुणोसमरमियंका कहा जस्स ॥ कुवलयमाला, अनुच्छेद ६, पृ० ४,

३. हरिभद्राचार्यस्य समयनिर्णयः, पृ० ७,

४. आवश्यक सूत्र टीका प्रशस्ति भाग

५. पंचसए पणसीए.......धम्मरओ देउ मुक्खसु। प्रद्युम्न चरित, विचा० गा० ५३२.

६. हरिभद्रस्य समयनिर्णयः पृ० १७

७. विंशर्विशिकाकी प्रस्तावना

नहीं मानी जा सकती है। विचार सार प्रकरणमें आई हुई "पंचसए पणसीए" गाथाका अर्थ एच० ए० शाहने बताया है कि यहाँ विक्रम संवत्के स्थानपर गुप्त संवत्का ग्रहण होना चाहिए। गुप्त संवत् ५८५ का अर्थ ई० सन् ७८५ है। इस प्रकार हरिभद्रका स्वर्गारोहण काल ई० सन् ७८५ के लगभग आता है।

यतिवृषभकी 'तिलोयपण्णत्ति'के अनुसार वीर निर्वाण ४६१ वर्ष व्यतीत होनेपर शक नरेन्द्र (विक्रमादित्य) उत्पन्न हुआ। इस वंशके राज्यकालका मान २४१ वर्ष है और गुप्तोंके राज्यकालका प्रमाण २५५ वर्ष है। अत: ई० सन् १८५ या १८६ वर्षके लगभग गुप्त संवत्का आरम्भ हुआ होगा। इस गणनाके आधारपर मुनि जिनविजयजीने ई० सन् ७७० या ७७१ के आसपास हरिभद्रका समय माना है।

हरिभद्रके समयकी उत्तरी सीमाका निर्धारण 'कुवलयमाला'के रचयिता उद्योतन सूरिके उल्लेख द्वारा होता है। इन्होंने 'कुवलयमाला'की प्रशस्तिमें इस ग्रन्थकी समाप्ति शक संवत् ७०० बतलायी है और अपने गुरुका नाम हरिभद्र कहा है।[१]

उपमितिभव-प्रपञ्च कथाके रचयिता सिद्धर्षिने अपनी कथाकी प्रशस्तिमें आचार्य हरिभद्रको अपना गुरु बताया है।

विषं विनिर्धूय कुवासनामयं व्यचीचरद् यः कृपया मदाशये।
अचिन्त्यवीर्येण सुवासनासुधां नमोऽस्तु तस्मै हरिभद्रसूरये ॥[२]

अर्थात्—हरिभद्र सूरिने सिद्धर्षिके कुवासनामय मिथ्यात्व रूपी विषका नाश कर उन्हें अत्यन्त शक्तिशाली सुवासनामय ज्ञान प्रदान किया था, तथा उन्हींके लिये चैत्य वन्दन सूत्रकी ललितविस्तरा नामक वृत्तिकी रचना की थी। 'उपमितिभव प्रपंच कथा'के उल्लेखोंके देखनेसे ज्ञात होता है कि हरिभद्र सूरि सिद्धर्षिके साक्षात् गुरु नहीं थे, बल्कि परम्परया गुरु थे।

प्रो० आभ्यंकरने इन्हें साक्षात् गुरु स्वीकार किया है। परन्तु मुनि जिनविजयजीने प्रशस्तिके 'अनागतं' शब्दके आधारपर परम्परा गुरु माना है। इनका अनुमान है कि आचार्य हरिभद्र विरचित 'ललित विस्तरा वृत्ति'के अध्ययनसे सिद्धर्षिका कुवासनामय विष दूर हुआ था। इसी कारण उन्होंने उक्त वृत्तिके रचयिताको 'धर्मबोधक गुरु'के रूपमें स्मरण किया है।

अतएव स्पष्ट है कि प्रो० आभ्यंकरने हरिभद्रको सिद्धर्षिका साक्षात् गुरु मानकर उनका समय विक्रम संवत् ८००-९५० माना है, वह प्रामाणिक नहीं है और न उनका यह कथन ही यथार्थ है कि 'कुवलयमाला'में उल्लिखित शक संवत् ही गुप्त संवत् है।

वस्तुतः आचार्य हरिभद्र शंकराचार्यके पूर्ववर्ती हैं। सामान्यत: सभी विद्वान् शंकराचार्यका समय ईस्वी सन् ७८८से८२० ई० तक मानते हैं। हरिभद्रने अपनेसे पूर्ववर्ती प्रायः सभी दार्शनिकोंका उल्लेख किया है। शंकराचार्यने जैन दर्शनके स्याद्वाद सिद्धान्त सप्तभंगी न्यायका खण्डन भी किया है। इनके नामका उल्लेख अथवा इनके द्वारा किये गये खण्डनमें प्रदत्त तर्कोंका प्रत्युत्तर सर्वतोमुखी प्रतिभावान् हरिभद्रने नहीं दिया। इसका स्पष्ट अर्थ है कि आचार्य हरिभद्र शंकराचार्यके उद्भवके पहले ही स्वर्गस्थ हो चुके थे।

प्रो० आभ्यंकरने हरिभद्रके ऊपर शंकराचार्यका प्रभाव बतलाया है और उन्हें शंकराचार्यका पश्चात्-

---

१. सो सिद्धंतेण गुरु जुत्ती-सत्थेहि जस्स हरिभद्दो। बहु सत्थ-गंथ-वित्थर पत्थारिय-पयड-सव्वत्थो ॥
कुवलयमाला, अनुच्छेद ४३०पृ० २८२

२. हरिभद्राचार्यस्य समयनिर्णयः —पृ० ६ पर उद्धृत।

हरिभद्र नामके कितने व्यक्ति हुए और इनमें 'समराइच्च कहा'के लेखक कथाकार कौनसे हरिभद्र हैं ? ईस्वी सन्‌की चौदहवीं शताब्दी तकके उपलब्ध जैन साहित्यमें हरिभद्र नामके आठ आचार्योंका उल्लेख मिलता है।[१] इन आठ आचार्योंमें 'समराइच्चकहा' और 'धूर्ताख्यान' प्राकृत कथा-काव्यके लेखक आचार्य हरिभद्र सबसे प्राचीन हैं। ये 'भवविरहसूरि' और 'विरहांककवि' इन दो विशेषणोंसे प्रख्यात थे।

'कुवलय[२]माला'के रचयिता उद्योतन सूरिने (७०० शक) इन्हें अपना प्रमाण और न्याय पढ़ानेवाला गुरु कहा है। 'उपमितभवप्रपंच कथा'के रचयिता सिद्धर्षि (९०६ ई०) ने "धर्मबोधकरो गुरु"के रूपमें स्मरण किया है।

मुनि जिनविजयजीने अपने प्रबन्धमें लिखा है—"एतत्कथनमवलम्ब्यैव राजशेखरेण प्रबन्धकोषे मुनिसुन्दरेण उपदेशरत्नाकरे, रत्नशेखरेण च श्राद्धप्रतिक्रमणसूत्रवृत्तौ, सिद्धर्षिहरिभद्रशिष्यत्वेन वर्णितः। एवं पडीवालगगच्छीयायामेकस्यां प्राकृतपट्टावल्यामपि सिद्धर्षिहरिभद्रयोः समसमयवर्त्तित्वलिखितं समुपलभ्यते"[३] इससे स्पष्ट है कि भवविरह हरिभद्र बहुत प्रसिद्ध हैं। इन्होंने स्वयं अपने आपको यामिनी महत्तराका पुत्र जिनमतानुसारी, जिनदत्ताचार्यका शिष्य कहा[४] है।

हरिभद्रके समयके सम्बन्धमें निम्नलिखित चार मान्यताएँ प्रसिद्ध हैं।

(१) परम्परा प्राप्त मान्यता—इसके अनुसार हरिभद्रका स्वर्गारोहणकाल विक्रम सं० ५८५ अर्थात् ई० सन् ५२७ माना जाता रहा[५] है।

(२) मुनि जिनविजयजीकी मान्यता—अन्तः और बाह्य प्रमाणोंके आधारपर इन्होंने ई० सन् ७०० तक आचार्य हरिभद्रका काल निर्णय किया[६] है।

(३) प्रो० के० बी० आभ्यंकरकी मान्यता—इस मान्यतामें आचार्य हरिभद्रका समय विक्रम संवत् ८००-९५० तक माना[७] है।

(४) पंडित महेन्द्रकुमारजीकी मान्यता—सिद्धिविनिश्चयकी प्रस्तावनामें पंडित महेन्द्रकुमारजीने आचार्य हरिभद्र का समय ई० सन् ७२० से ८१० तक माना है।

मुनि जिनविजयजीने आचार्य हरिभद्रके द्वारा उल्लिखित विद्वानोंकी नामावली दी है। इस नामावलीमें समयकी दृष्टिसे प्रमुख हैं धर्मकीर्ति, (६००-६५०), धर्मपाल (६३५ ई०), वाक्यपदीयके रचयिता भर्तृहरि (६००-६५० ई०), कुमारिल (६२० लगभग ७०० ई० तक), शुभगुप्त (६४० से ७०० ई० तक) और शान्तरक्षित (ई० ७०५-७३२)। इस नामावलीसे ज्ञात होता है कि हरिभद्रका समय ई० सन् ७०० के पहले नहीं होना चाहिये।

हरिभद्रके पूर्व समयकी सीमा ई० सन् ७ ० के आस-पास है। विक्रम संवत् ५८५ की पूर्व सीमा

---

१. अनेकान्त जयपताका, भाग २, भूमिका, पृ० ३०,

२. जो इच्छइ भव-विरहं भवविरहं को ण वंदए सुएएं समय-सम-सत्यगुरुणोसमरमियंका कहा जस्स ॥ कुवलयमाला, अनुच्छेद ६, पृ० ४,

३. हरिभद्राचार्यस्य समयनिर्णयः, पृ० ७,

४. आवश्यक सूत्र टीका प्रशस्ति भाग

५. पंचसए पणसीए.......धम्मरओ देउ मुक्खसु। प्रद्युम्न चरित, विचा० गा० ५३२.

६. हरिभद्रस्य समयनिर्णयः पृ० १७

७. विंशतिविंशिकाकी प्रस्तावना

नहीं मानी जा सकती है। विचार सार प्रकरणमें आई हुई "पंचसए पणसीए" गाथाका अर्थ एच० ए० शाहने बताया है कि यहाँ विक्रम संवत्के स्थानपर गुप्त संवत्का ग्रहण होना चाहिए। गुप्त संवत् ५८५ का अर्थ ई० सन् ७८५ है। इस प्रकार हरिभद्रका स्वर्गारोहण काल ई० सन् ७८५ के लगभग आता है।

यतिवृषभकी 'तिलोयपण्णत्ति'के अनुसार वीर निर्वाण ४६१ वर्ष व्यतीत होनेपर शक नरेन्द्र (विक्रमादित्य) उत्पन्न हुआ। इस वंशके राज्यकालका मान २४१ वर्ष है और गुप्तोंके राज्यकालका प्रमाण २५५ वर्ष है। अत: ई० सन् १८५ या १८६ वर्षके लगभग गुप्त संवत्का आरम्भ हुआ होगा। इस गणनाके आधारपर मुनि जिनविजयजीने ई० सन् ७७० या ७७१ के आसपास हरिभद्रका समय माना है।

हरिभद्रके समयकी उत्तरी सीमाका निर्धारण 'कुवलयमाला'के रचयिता उद्योतन सूरिके उल्लेख द्वारा होता है। इन्होंने 'कुवलयमाला'की प्रशस्तिमें इस ग्रन्थकी समाप्ति शक संवत् ७०० बतलायी है और अपने गुरुका नाम हरिभद्र कहा है।[१]

उपमितिभव-प्रपञ्च कथाके रचयिता सिद्धर्षिने अपनी कथाकी प्रशस्तिमें आचार्य हरिभद्रको अपना गुरु बताया है।

विषं विनिर्धूय कुवासनामयं व्यचीचरद् यः कृपया मदाशये।
अचिन्त्यवीर्येण सुवासनासुधां नमोऽस्तु तस्मै हरिभद्रसूरये ॥[२]

अर्थात्—हरिभद्र सूरिने सिद्धर्षिके कुवासनामय मिथ्यात्व रूपी विषका नाश कर उन्हें अत्यन्त शक्तिशाली सुवासनामय ज्ञान प्रदान किया था, तथा उन्हींके लिये चैत्य वन्दन सूत्रकी ललितविस्तरा नामक वृत्तिकी रचना की थी। 'उपमितिभव प्रपंच कथा'के उल्लेखोंके देखनेसे ज्ञात होता है कि हरिभद्र सूरि सिद्धर्षिके साक्षात् गुरु नहीं थे, बल्कि परम्परया गुरु थे।

प्रो० आभ्यंकरने इन्हें साक्षात् गुरु स्वीकार किया है। परन्तु मुनि जिनविजयजीने प्रशस्तिके 'अनागतं' शब्दके आधारपर परम्परा गुरु माना है। इनका अनुमान है कि आचार्य हरिभद्र विरचित 'ललित विस्तरा वृत्ति'के अध्ययनसे सिद्धर्षिका कुवासनामय विष दूर हुआ था। इसी कारण उन्होंने उक्त वृत्तिके रचयिताको 'धर्मबोधक गुरु'के रूपमें स्मरण किया है।

अतएव स्पष्ट है कि प्रो० आभ्यंकरने हरिभद्रको सिद्धर्षिका साक्षात् गुरु मानकर उनका समय विक्रम संवत् ८००-९५० माना है, वह प्रामाणिक नहीं है और न उनका यह कथन ही यथार्थ है कि 'कुवलयमाला'में उल्लिखित शक संवत् ही गुप्त संवत् है।

वस्तुतः आचार्य हरिभद्र शंकराचार्यके पूर्ववर्ती हैं। सामान्यत: सभी विद्वान् शंकराचार्यका समय ईस्वी सन् ७८८से८२० ई० तक मानते हैं। हरिभद्रने अपनेसे पूर्ववर्ती प्रायः सभी दार्शनिकोंका उल्लेख किया है। शंकराचार्यने जैन दर्शनके स्याद्वाद सिद्धान्त सप्तभंगी न्यायका खण्डन भी किया है। इनके नामका उल्लेख अथवा इनके द्वारा किये गये खण्डनमें प्रदत्त तर्कोंका प्रत्युत्तर सर्वतोमुखी प्रतिभावान् हरिभद्रने नहीं दिया। इसका स्पष्ट अर्थ है कि आचार्य हरिभद्र शंकराचार्यके उद्भवके पहले ही स्वर्गस्थ हो चुके थे।

प्रो० आभ्यंकरने हरिभद्रके ऊपर शंकराचार्यका प्रभाव बतलाया है और उन्हें शंकराचार्यका पश्चात्-

---

१. सो सिद्धंतेण गुरु जुत्ती-सत्थेहि जस्स हरिभद्दो। बहु सत्थ-गंथ-वित्थर पत्थारिय-पयड-सव्वत्थो ॥
कुवलयमाला, अनुच्छेद ४३०पृ० २८२

२. हरिभद्राचार्यस्य समयनिर्णयः—पृ० ६ पर उद्धृत।

वर्ती विद्वान् माननेका प्रस्ताव किया है[1]। पर हरिभद्रके दर्शन सम्बन्धी ग्रन्थोंका आलोड़न करनेपर उक्त कथन निस्सार प्रतीत होता है।

स्वर्गीय न्यायाचार्य पंडित महेन्द्रकुमारजीने हरिभद्रके षड्दर्शन समुच्चय (श्लोक ३०) में जयन्तभट्टकी न्यायमंजरीके—

> गर्भितगर्जितारंभनिर्भिन्नगिरिगह्वरा।
> रोलम्बगवलव्यालतमालमलिनत्विषः॥
> त्वंगत्तडिल्लतासंगपिशंगीतुंगविग्रहा।
> वृष्टिं व्यभिचरन्तीह नैवं प्रायाः पयोमुचः॥[2]

इस पद्यके द्वितीय पादको जैसाका तैसा सम्मिलित कर लिया गया है और न्यायमंजरीका रचनाकाल ई० सन् ८००के लगभग है। अतएव हरिभद्रके समयकी सीमा ८१० ईस्वी तक रखनी होगी, तभी वे जयन्तकी न्यायमंजरीको देख सके होगें। हरिभद्रका जीवन लगभग ९० वर्षोंका था। अतः उनकी पूर्वावधि ई० सन् ७२०के लगभग होनी चाहिये।[3]

इस मतपर विचार करनेसे दो आपत्तियाँ उपस्थित होती हैं। पहली तो यह है कि जयन्त ही न्याय-मंजरीके उक्त श्लोकके रचयिता हैं, यह सिद्ध नहीं होता। यतः उनके ग्रन्थमें अन्यान्य आचार्य और ग्रन्थोंके उद्धरण वर्तमान हैं। जायसवाल शोधसंस्थानके निदेशक श्री अनन्तलाल ठाकुर ने न्यायमंजरी सम्बन्धी अपने शोध-निबन्धमें सिद्ध किया है कि वाचस्पति मिश्रके गुरु त्रिलोचन थे और उन्होंने एक न्यायमंजरीकी रचना की थी। सम्भवतः जयन्तने भी उक्त श्लोक वहींसे लिया हो अथवा अन्य किसी पूर्वाचार्यका ऐसा कोई दूसरा न्याय ग्रन्थ रहा हो जिससे आचार्य हरिभ्रद सूरि और जयन्तभट्ट इन दोनोंने उक्त श्लोक लिया हो यह सम्भावना तब और भी बढ़ जाती है जब कुछ प्रकाशित तथ्योंसे जयन्तकी न्यायमंजरीका रचनाकाल ई० सन् ८००के स्थानपर ई० सन् ८९० आता है।[4]

जयन्तने अपनी न्याय मंजरीमें राजा अवन्ति वर्मन (ई० ८५६-८८३)के समकालीन ध्वनिकार और राजा शंकर वर्मन (ई० सन् ८८३-९०२) द्वारा अवैध घोषित की गयी 'नीलाम्बर वृत्ति'का उल्लेख किया है। इन प्रमाणोंको ध्यानमें रखकर जर्मन विद्वान् डा० हेकरने यह निष्कर्ष निकाला है कि शंकरवर्मनके राज्यकालमें लगभग ८९० ई०के आस-पास जब जयन्तभट्टने न्याय मंजरीकी रचना की होगी, तब वह ६० वर्षके वृद्ध पुरुष हो चुके होंगे।[5]

उपर्युक्त तथ्योंके प्रकाशमें स्वर्गीय पंडित महेन्द्रकुमारजीका यह मत कि जयन्तकी न्याय मंजरीकी रचना लगभग ८०० ई०के आस-पास हुई होगी; अप्रमाणित सिद्ध हो जाता है और इस अवस्थामें आचार्य हरिभद्रके कालकी उत्तरावधि प्रामाणिक नहीं ठहरती। अतएव हमारा मत है कि 'षड्दर्शन समुच्चय'में ग्रहण

---

१. विंशति विंशिका प्रस्तावना।
२. न्यायमंजरी विजयनगर संस्करण, पृ० १२९।
३. सिद्धिविनिश्चयटीकाकी प्रस्तावना, पृ० ५३-५४।
४ विहार रिसर्च सोसाइटी, जनरल सन् १९५५, चतुर्थ खंडमें श्री ठाकुरका निबन्ध।
५. न्याय मंजरी स्टडीज नामक निबन्ध पूना ओरियन्टलिस्ट (जनवरी अप्रिल १९५७) पृ० ७७ पर डा० एच० भरहरी द्वारा लिखित लेख तथा उस पर पादटिप्पण क्रमांक २।

किये गये पद्यका स्रोत जयन्तकी 'न्यायमंजरी' नहीं अन्य कोई ग्रन्थ है, जहाँसे उक्त दोनों आचार्योंने पद्यको ग्रहण किया है।

हरिभद्रके समय निर्णयमें 'नयचक्र'के रचयिता मल्लवादीके समयका आधार भी ग्रहण किया जा सकता है। 'अनेकान्तजयपताका'की टीकामें मल्लवादीका निर्देश आया है। आचार्य श्री जुगलकिशोर मुख्तार ने लिखा है—"मालूम होता है कि मल्लवादीने अपने नयचक्रमें पद-पदपर 'वाक्यपदीय' ग्रन्थका उपयोग ही नहीं किया, वल्कि उसके कर्त्ता भर्तृहरिका नामोल्लेख एवं उसके मतका खण्डन भी किया है। इन भर्तृहरिका समय इतिहासमें चीनी यात्री इत्सिगके यात्रा विवरणादिके अनुसार ई० सन् ६०० से ६५० तक माना जाता है, क्योंकि इत्सिगने जब सन् ६९२में अपना यात्रावृत्तान्त लिखा, तब भर्तृहरिका देहावसान हुए ४० वर्ष बीत चुके थे। ऐसी अवस्थामें मल्लवादीका समय ई० सन् की सातवीं शताब्दी या उसके पश्चात् ही माना जायेगा।"[1]

डा० पी० एल० वैद्यने न्यायावतारकी प्रस्तावनामें मल्लवादीके समयका निर्धारणकर यह सुझाव दिया है कि हरिभद्रका समय विक्रम संवत् ८८४के बाद नहीं हो सकता। आचार्य जुगलकिशोर मुख्तारने हरिभद्रके समय पर विचार करते हुए लिखा है—"आचार्य हरिभद्रके समय, संयत जीवन और उनके साहित्यिक कार्योंकी विशालताको देखते हुए उनकी आयुका अनुमान १०० वर्षके लगभग लगाया जा सकता है और वे मल्लवादीके समकालीन होनेके साथ-साथ 'कुवलयमाला'की रचनाके कितने ही वर्ष बाद तक जीवित रह सकते[2] हैं।"

उपर्युक्त समस्त विचारोंके प्रकाशमें हमारा अपना अभिमत यह है कि जब तक हरिभद्रके ऊपर शंकराचार्यका प्रभाव सिद्ध नहीं हो जाता है तब तक आचार्य हरिभद्रसूरिका समय शंकराचार्यके बाद नहीं माना जा सकता। अतः मुनि जिनविजयजीने हरिभद्रसूरिका समय ई० सन् ७७० माना है, वह भी पूर्णतः ग्राह्य नहीं है। इस मतके मान लेनेसे उद्योतनसूरिके साथ उनके गुरु शिष्यके सम्बन्धका निर्वाह हो जाता है, पर मल्लवादीके साथ सम्बन्ध घटित नहीं हो पाता। अतएव इनका समय ई० सन् ७३० से ई० सन् ८३० तक मान लेनेपर भी उद्योतनसूरिके साथ गुरु-शिष्यका सम्बन्ध सिद्ध होनेके साथ-साथ मल्लवादीके सम्बन्धका भी निर्वाह हो जाता है।

रचनाएँ

हरिभद्रकी रचनाएँ मुख्यतः दो वर्गोंमें विभक्त की जा सकती हैं।

१. आगम ग्रन्थों और पूर्वाचार्योंकी कृतियों पर टीकाएँ।

२. स्वरचित ग्रन्थ (क) सोपज्ञ टीका सहित (ख) सोपज्ञ टीका रहित।

हरिभद्रके ग्रन्थोंकी संख्या १४४० या १४४४ बतायी गयी है। अब तक इनके लगभग ५० ग्रन्थ उपलब्ध हो चुके हैं। हमें इनकी कथा काव्य प्रतिभा पर प्रकाश डालना है। अतएव समराइच्च कहा, धूर्त्ताख्यान एवं उनकी टीकाओंमें उपलब्ध लघुकथाओं पर ही विचार करना है। निश्चयतः राजस्थानका यह कथाकाव्य रचयिता अपनी इस विधामें संस्कृतके गद्यकार वाणभट्टसे रंचमात्र भी कम नहीं है। यदि इसे हम राजस्थानका वाणभट्ट कहें तो कुछ भी अतिशयोक्ति नहीं। प्राकृत कथाकाव्यको नया स्थापत्य, नयी विचार-

---

१. जैन साहित्य और इतिहास पर विशद प्रकाश, पृ० ५५१-५५२।

२. जैन साहित्य इतिहास पर विशद प्रकाश, पृ० ५५३ का पाद टिप्पण।

और नया रूप देनेके कारण अपने क्षेत्रमें हरिभद्र अद्वितीय हैं। हरिभद्रने स्थापत्योंको नया गठन दिया है। तरंगवतीमें पूर्वजन्मकी स्मृतियाँ और कर्म विकास केवल कथाको प्रेरणा देते हैं, पर 'समराइच्च कहा'में पूर्व जन्मोंकी परम्पराका स्पष्टीकरण, शुभाशुभ कृतकर्मोंके फल और श्रोताओं या पाठकोंके समक्ष कुछ नैतिक सिद्धान्त भी उपस्थित किये गये हैं।

हरिभद्रके स्थापत्यकी मौलिकता

हरिभद्र मौलिक कथाकाव्यके रचयिता हैं। इन्होंने सर्वप्रथम काव्यके रूपमें कथावस्तुकी योजना की है। इनकी 'टेकनिक' वाणभट्टके तुल्य है। कलाके विभिन्न तथ्यों तथा उपकरणोंकी योजना अनुभूति और लक्ष्यकी एकतानताके रूपमें की है। जैसे कोई चित्रकार अपनी अनुभूतिको रेखाओं और विभिन्न रंगोंके आनुपातिक संयोगसे अभिव्यक्त करता है, अमूर्त्त अनुभूतिको मूर्त्तरूप देता है, उसी प्रकार कथाकाव्यका रचयिता भी भावोंको वहन करनेके लिए विभिन्न वातावरणोंमें पात्रोंकी अवतारणा करता है। आशय यह है कि निश्चित लक्ष्य अथवा एकान्त प्रमाणकी पूर्तिके लिए रचनामें एक विधानात्मक प्रक्रिया उपस्थित करनी पड़ती है, जिससे कथाकाव्य रचयिताका स्थापत्य महनीय बन जाता है। हरिभद्र ऐसे प्रथम कथाकार हैं, जिन्होंने सौन्दर्यका समावेश करते समय वस्तु और शिल्प दोनोंको समान महत्त्व दिया है। इनकी दृष्टिमें वस्तुकी अपेक्षा प्रकाश भंगी अभिव्यक्तिकी वक्रता अधिक आवश्यक है। अतः भाव विचार तो युग या व्यक्ति विशेषका नहीं होता, वह सार्वजनीन और सार्वकालिक ही होता है। नया युग और नये स्रष्टा उसे जिस कुशलतासे नियोजित करते हैं वही उनकी मौलिकता होती है।

अलंकारशास्त्रियोंने भी भावसे अधिक महत्त्व उसके प्रकाशनको दिया है। प्रकाशन प्रक्रियाको शैलीका नाम दिया जाता है। अतः जिसमें अनुभूति और लक्ष्यके साथ कथावस्तुकी योजना, चरित्रअवतारणा, परिवेशकल्पना, एवं भाव सघनताका यथोचित समवाय जितने अधिक रूपमें पाया जाता है, वह कथाकाव्य निर्माता उतना ही अधिक मौलिक माना जाता है।

हरिभद्रने 'समराइच्चकहा'में मौलिकता और काव्यात्मकताका समावेश करनेके लिए अलंकृत वर्णनोंके साथ कथोत्थप्ररोह, पूर्वदीप्ति प्रणाली, कालमिश्रण और अन्यापदेशिकताका समावेश किया है। कथोत्थप्ररोहसे तात्पर्य कथाओंके सघन जालसे है, जिस प्रकार केलेके स्तम्भकी परत एक पर दूसरी और दूसरीपर तीसरी आदि क्रमसे रहती हैं, उसी प्रकार एक कथापर उसकी उद्देश्यकी सिद्धि और स्पष्टताके लिए दूसरी कथा और दूसरीके लिए तीसरी कथा आदि क्रममें कथाएँ नियोजित की जाती हैं। हरिभद्रने वटप्ररोहके समान उपस्थित कथाओंमें संकेतात्मकता और प्रतीकात्मकताकी योजना की है। परिवेशों या परिवेश-मंडलोंका नियोजन भी जीवन और जगत्के विस्तारको नायक और खलनायकके चरित गठनके रूपमें उपस्थित किया है। रचनामें सम्पूर्ण इतिवृत्तको इस प्रकार सुविचारित ढंगसे नियोजित किया है, कि प्रत्येक खण्ड अथवा परिच्छेद अपने परिवेशमें प्रायः सम्पूर्ण-सा प्रतीत होता है और कथाकी समष्टि योजना-प्रवाहको उत्कर्षोन्मुख करती है। एक देश और कालकी परिमितिके भीतर और कुछ परिस्थितियोंकी संगतिमें मानव जीवनके तथ्यों की अभिव्यञ्जना की जाती है। जिस प्रकार वृत्त कई अंशोंमें विभाजित किया जाता है और उन अंशोंकी पूरी परिधिमें वृत्तकी समग्रता प्रकट हो जाती है, उसी प्रकार कथोत्थप्ररोहके आधारपर इतिवृत्तके समस्त रहस्य उद्घाटित हो जाते हैं। कथाकारकी मौलिकता वहीं समझी जाती है, जहाँ वह कथासूत्रोंको एक खूँटीपर टाँग देता है।

हरिभद्रने अपनी 'बीजधर्मी' कथाओंमें काव्यत्वका नियोजन पूर्वदीप्ति प्रणाली द्वारा किया है। इस

प्रणालीमें पूर्वजन्मके क्रियाकलापोंकी जाति स्मरण द्वारा स्मृति कराकर कथाओंमें रसमत्ता उत्पन्न की जाती है। इस स्थापत्यकी विशेषता यह है कि कथाकार घटनाओंका वर्णन करते-करते अकस्मात् कथाप्रसंगके सूत्रको किसी विगत घटनाके सूत्रसे जोड़ देता है; जिससे कथाकी गति विकासकी ओर अग्रसर होती है। आधुनिक कथाकाव्यमें इसे 'फ्लैशबैक' पद्धतिका नाम दिया गया है।

हरिभद्रने घटनाओंको या किसी प्रमुख घटनाके मार्मिक वर्णनको कथाके गतिमान सूत्रके साथ छोड़ दिया है पश्चात् पिछले सूत्रको उठाकर किसी एक जीवन अथवा अनेक जन्मान्तरोंकी घटनाओंका स्मरण दिलाकर कथाके गतिमान सूत्रमें ऐसा धक्का लगाता है, जिससे कथा जाल लम्बे मैदानमें लुढ़कती हुई फुटबॉल के समान तेजीसे बढ़ जाता है। हरिभद्र इस सूत्रको देहली दीपक न्यायसे प्रस्तुत करते हैं, जिससे पूर्व और परवर्त्ती समस्त घटनाएँ आलोकित होकर रसमय बन जाती हैं।

हरिभद्रने किसी बात या तथ्यको स्वयं न कहकर व्यंग्य या अनुभूति द्वारा ही प्रकट किया है। व्यंग्य-की प्रधानता रहनेके कारण 'समराइच्चकहा' और 'धूर्ताख्यान' इन दोनोंमें चमत्कारके साथ कथारस प्राप्त होता है। कथांश रहने पर व्यंग्य सहृदय पाठकको अपनी ओर आकृष्ट करता है। इस शिल्प द्वारा हरिभद्रने अपनी कृतियोंका निर्माण इस प्रकार किया है जिससे अन्य तत्त्वोंके रहनेपर भी प्रतिपाद्य व्यंग्य बनकर प्रस्तुत हुआ है। समुद्र यात्रामें तूफानसे जहाजका छिन्न-भिन्न हो जाना और नायक और उपनायकका किसी लकड़ी या पटरेके सहारे समुद्र पार कर जाना एक प्रतीक है। यह प्रतीक आरम्भमें विपत्ति, पश्चात् सम्मिलन-सुखकी अभिव्यञ्जना करता है। 'समराइच्चकहा'में अन्यापदेशिक शैलीका सर्वाधिक प्रयोग किया गया है। प्रथम-भवमें राजा गुणसेनकी अपने महलके नीचे मुर्दा निकलनेसे विरक्ति दिखलायी गई है। यहाँ लेखकने संकेत द्वारा ही राजाको उपदेश दिया है। संसारकी असारताका अट्टहास इन्द्रजालके समान ऐन्द्रिय विषयोंकी नश्वरता एवं प्रत्येक प्राणीकी अनिवार्य मृत्युकी सूचना भी हरिभद्रने व्यंग्य द्वारा ही दी है। हरिभद्रने कार्य-कारण पद्धतिकी योजना भी इसी शैलीमें की है।

'समराइच्चकहा'की आधारभूत प्रवृत्ति प्रतिशोध भावना है। प्रधान कथामें यह प्रतिशोधकी भावना विभिन्न रूपोंमें व्यक्त हुई है। लेखकने इसे निदान कथा भी कहा है। अग्निशर्मा और गुणसेन ये दोनों नायक और प्रतिनायक हैं। गुणसेन नायक है और अग्निसेन प्रतिनायक। इन दोनोंके जन्म-जन्मान्तरकी यह कथा नौभवों तक चलती है। और गुणसेनके नौभवोंकी कथा ही इस कृतिके नौ अध्याय हैं। प्रत्येक भवकी कथा किसी विशेषस्थान, काल और क्रियाकी भूमिकामें अपना पट परिवर्तन करती है। जिस प्रकार नाटकमें पर्दा गिरकर या उठकर सम्पूर्ण वातावरणको बदल देता है, उसी प्रकार इस कथाकृतिमें एक जन्मकी कथा अगले जन्मकी कथाके आने पर अपना वातावरण, काल और स्थानको परिवर्तित कर देती है। सामान्यतः प्रत्येक भवकी कथा स्वतंत्र है। अपनेमें उसकी प्रभावान्विति नुकीली है। कथाकी प्रकाशमान चिनगारियाँ अपने भवमें ज्वलन कार्य करती हुई, अगले भवको आलोकित करती हैं। प्रत्येक भवकी कथामें स्वतंत्र रूपसे एक प्रकारकी नवीनता और स्फूर्तिका अनुभव होता है। कथाकी आद्यन्त गतिशील स्निग्धता और उत्कर्ष अपनेमें स्वतंत्र है।

स्थूल जाति और धार्मिक साधनाकी जीवन प्रक्रियाको कलाके आवरणमें रख जीवनके बाहरी और भीतरी सत्योंकी अवतारणाका प्रयास प्रथम भवकी कथाका प्रधान स्वर है। सहनशीलता और सद्भावनाके बलसे ही व्यक्तिके व्यक्तित्वका विकास होता है। धार्मिक परिवेशके महत्त्वपूर्ण दायित्वके प्रति इस कथाका रूप विन्यास दो तत्त्वोंसे संघटित है। कर्म-जन्मान्तरके संस्कार और हीनत्वकी भावनाके कारण

अपने विकारोंको इतर व्यक्तियोंपर आक्षिप्त करना। अग्निशर्मा अपने बचपनके संस्कार और उस समयमें उत्पन्न हुई हीनत्वकी भावनाके कारण गुणसेन द्वारा पारणाके भूल जानेसे क्रुद्ध हो निदान बाँधता है। गुणसेनका व्यक्तित्व गुणात्मक गुणवृद्धिके रूपमें और अग्निशर्माका व्यक्तित्व भागात्मक भागवृद्धिके रूपमें गतिमान और संघर्षशील है। इन दोनों व्यक्तित्वोंने कथानककी रूप रचनामें ऐसी अनेक मोड़ें उत्पन्न की हैं, जिनसे कार्य व्यापारकी एकता, परिपूर्णता एवं प्रारम्भ, मध्य और अन्तकी कथा योजनाको अनेक रूप और संतुलन मिलते गये हैं। यह कथा किसी व्यक्ति विशेषका इतिवृत्त मात्र ही नहीं, किन्तु जीवन्त चरित्रोंकी सृष्टिको मानवताकी ओर ले जाने वाली है। धार्मिक कथानकके चौखटेमें सजीव चरित्रोंको फिटकर कथाको प्राणवन्त बनाया गया है।

देश-कालके अनुरूप पात्रोंके धार्मिक और सामाजिक संस्कार घटनाको प्रधान नहीं होते देते—प्रधानता प्राप्त होती है, उनकी चरित्र निष्ठाको। घटनाप्रधान कथाओंमें जो सहज आकस्मिक और कार्यकी अनिश्चित गतिमत्ता आ जाती है, उससे निश्चित ही यह कथा संक्रमित नहीं है। सभी घटनाएँ कथ्य हैं और जीवनकी एक निश्चित शैलीमें वे व्यक्तिके भीतर और बाहर घटित होती हैं। घटनाओंके द्वारा मानव प्रकृतिका विश्लेषण और उसके द्वारा तत्कालीन सामन्त वर्गीय जनसमाज एवं उसकी रुचि तथा प्रवृत्तियोंका प्रकटीकरण इन कथाको देश-कालकी चेतनासे अभिभूत करता है। इसके अतिरिक्त गुणसेनकी समस्त भावनाओंमें उसका मानस चित्रित हुआ है। क्रोध, घृणा आदि मौलिक आधारभूत वृत्तियोंको उनकी रूप व्याप्ति और संस्थितिमें रखना हरिभद्रकी सूक्ष्म संवेदनात्मक पकड़का परिचायक है। धार्मिक जीवनमें भागीदार बननेकी चेतना गुणसेनकी वैयक्तिक नहीं सार्वजनीन है। हरिभद्रने चरित्रसृष्टि, घटनाक्रम और उद्देश्य इन तीनोंका एक साथ निर्वाह किया है। अग्निशर्माका हीनत्व भावकी अनुभूतिके कारण विरक्त हो जाना और वसंतपुरके उद्यानमें तपस्वियोंके बीच तापसीवृत्ति धारण कर उग्र तपश्चरण करना तथा गुणसेनका राजा हो जानेके पश्चात् आनन्द विहारके लिए वसंतपुरमें निर्मित विमानछन्दक राजप्रासादमें जाना और वहाँ अग्निशर्माको भोजनके लिए निमंत्रित करना तथा भोजन सम्पादनमें आकस्मिक अन्तराय आ जाना; आदि कथासूत्र उक्त तीनोंको समानरूपसे गतिशील बनाते हैं।

इस कथामें दो प्रतिरोधी चरित्रोंका अवास्तविक विरोधमूलक अध्ययन बड़ी सुन्दरतासे हुआ है। गुणसेनके चिढ़ानेसे अग्निशर्मा तपस्वी बनता है, पुनः गुणसेन घटना क्रमसे अग्निशर्माके सम्पर्कमें आता है। अनेक बार आहारका निमंत्रण देता है। परिस्थितियोंसे बाध्य होकर अपने संकल्पमें गुणसेन असफल हो जाता है। उसके मनमें अनेक प्रकारका पश्चात्ताप होता है। वह अपने प्रमादको धिक्कारता है। आत्मग्लानि उसके मनमें उत्पन्न होती है, कुलपतिसे जाकर क्षमा-याचना करता है। पर अन्ततः अग्निशर्मा उसे अपने पूर्व अपमानके क्रमकी कड़ी ही मानता है। ईर्ष्या, विद्वेष और प्रतिशोधसे तापसी जीवनको कलुषित कर गुणसेनसे बदला लेनेका संकल्प करता है। यहाँसे गुणसेनके चरित्रमें आरोहण और अग्निशर्माके चरित्रमें अवरोहणकी स्थिति उत्पन्न हो जाती है। चरित्रोंके विरोधमूलक तुलनात्मक विकासका यह क्रम कथामें अत्यन्त मनोवैज्ञानिक ढंगसे नियोजित हुआ है।

चरित्र-स्थापत्यका उज्ज्वल निदर्शन अग्निशर्माका चरित्र है। अतः अग्निशर्माका तीन बार भोजनके आमन्त्रणमें भोजन न मिलनेपर शान्त रह जाना, उसे साधु अवश्य बनाता। वह परलोकका श्रेष्ठ अधिकारी होता, पर उसे उत्तेजित दिखलाये बिना कथामें उपचार वक्रता नहीं आ सकती थी। कथामें काव्यत्वका संयोजन करनेके लिए उसमें प्रतिशोधकी भावनाका उत्पन्न करना नितान्त आवश्यक था। साधारण स्वरका मानव जो मात्र सम्मानकी आकांक्षासे तपस्वी बनता है, तपस्वी होनेपर भी पूर्व विरोधियोंके प्रतिशोधकी

भावना निहित रहती है। उसका उत्तेजित होना और प्रतिशोधके लिए संकल्प कर लेना उसके चारित्रगत गुण ही माने जाएँगे।

द्वितीयादि सभी भवोंमें कथानक और उसका विन्यास ऋजुरूपमें हुआ है। कथाका कार्य एक विशेष प्रकारका रसबोध कराना माना जाय, तो यह कथा जीवनके यथार्थ स्वाभाविक पहलुओंके चित्रण द्वारा हमें विश्वासयुक्त रसग्रहणकी सामग्री देनी है। द्वितीय भवकी कथाका प्रारम्भ प्रेम प्रसंगकी गोपनीय मुद्रासे होता है। इस सम्पूर्ण कथा भागमें 'अहं' भावका सम्यक् चित्रण किया गया है। अन्तर्कथाके रूपमें अमरगुप्त आदिकी कथाएँ भी आई हैं।

तृतीय भवमें ज्वालिनी और शिखीकी कथाके प्रेरणा और पिण्ड भाव मूलतः जीवके उसी धातु विपर्यय और निदानके चलते हैं, जो इन धार्मिक कथाओंमें सर्वत्र अनुस्यूत है। मध्यकी कथा अजितकी है जो इसी मर्मकी घटनाओंकी परिपाटीके द्वारा उद्धारित करती है। कथा इस मर्मसे प्रकाशित होकर पुनः वापस लौट आती है और आगे बढ़ती है। आगे बढ़नेपर विरोधके तत्त्व आते हैं। और इस तरह गल्प-वृक्षके मूलसे लेकर स्कन्ध और शाखाओं तकके अन्तर्द्वन्द्वका फिर शमन होता है।

चतुर्थ भवमें धन और धनश्रीकी कथा है। इसका आरम्भ गार्हस्थिक जीवनके रम्य-दृश्यसे होता है। कथा-नायक धनका जन्म होता है और वयस्क होने पर अपने पूर्व भवके संस्कारोंसे आबद्ध धनश्रीको देखते ही वह उसे अपना प्रणय अर्पित कर देता है। धनश्री निदान कालुष्यके कारण अकारण ही उससे द्वेष करने लगती है। कथाकारने इस प्रकार एक ओर विशुद्ध आकर्षण और दूसरी ओर विशुद्ध विकर्षणका द्वन्द्व दिखलाकर कथाका विकास द्वन्द्वात्मक गतिसे दिखलाया है।

पञ्चम भवमें जय और विजयकी कथा अंकित है। इस भवकी कथामें मूल कथाकी अपेक्षा अवान्तर कथा अधिक विस्तृत है। सनतकुमारकी अवान्तर कथाने ही मूल कथाका स्थान ले लिया है। प्रेम, घृणा, द्वेष आदिकी अभिव्यञ्जना अत्यन्त सफल है। काव्यकी दृष्टिसे इस भवकी कथावस्तुमें शृंगार और करुण रसका समावेश बहुत ही सुन्दर रूपमें हुआ है।

षष्ठ भवमें धरण और लक्ष्मीकी कथा वर्णित है। गुणसेनकी आत्मा धरणके रूपमें और अग्निशर्माकी लक्ष्मीके रूपमें जन्म ग्रहण करती है। घटना बहुलता, कुतूहल और नाटकीय क्रम-विकासकी दृष्टिसे यह कथा बड़ी रोचक और आह्लादजनक है। कथाकी वास्तविक रञ्जन क्षमता उसके कथानक गुंफनमें है। स्वाभाविकता और प्रभावान्विति इस कथाके विशेष गुण हैं। पात्रोंमें गति और चारित्रिक चेतनाका सहज समन्वय इसकी जोरदार कथा-विद्याको प्रमाणित करता है। घटनाओंकी सम्बद्ध शृङ्खला और स्वाभाविक क्रमसे उनका ठीक-ठीक निर्वाह घटनाओंके माध्यमसे नाना भावोंका रसात्मक अनुभव कराने वाले प्रसंगोंका समावेश इस कथाको घटना, चरित्र, भाव और उद्देश्यकी एकता प्रदान करता है।

सप्तम भवमें सेन और विष्णुकुमारकी कथा निबद्ध है। उत्थानिकाके पश्चात् कथाका प्रारम्भ एक आश्चर्य और कौतूहलजनक घटनासे होता है। चित्रखचित मयूरका अपने रंग-बिरंगे पाँव फैलाकर नृत्य करने लगना और मूल्यवान हारका उगलना, अत्यन्त आश्चर्य-चकित करनेवाली घटना है। हरिभद्रने प्रबन्ध-वक्रताका समावेश इस भवकी कथामें किया है। गुणसेनका जीवसेनकुमार, उत्तरोत्तर पूतात्मा होता जाता है। और अग्निशर्माका जीव विषेणकुमार उत्तरोत्तर कलुषित कर्म करनेके कारण दुर्गतिका पात्र बनता जाता है।

इस प्रकार गुणसेनकी आत्माका पर्याप्त शुद्धीकरण हो जाता है। प्रतिद्वन्द्वी अग्निशर्मा वानमन्तर नामका विद्याधर होता है। और गुणसेन गुणचन्द्र नामका राजपुत्र। प्रथम भवकी कथामें जिन प्रवृत्तियोंका विकास प्रारम्भ हुआ था वे प्रवृत्तियाँ इस अष्टम भवकी कथामें क्रमशः पूर्णताकी ओर बढ़ती हैं। नवम भवकी कथा प्रवृत्ति और निवृत्तिके द्वन्द्वको कथा है। समरादित्यका जहाँ तक चरित्र हैं, वहाँ तक संसार निवृत्ति है। और गिरिषेणका जहाँ तक चरित्र है, संसारको प्रवृत्ति है। समरादित्यका चरित्र वह सरल रेखा है, जिसपर समाधि, ध्यान और भावनाका त्रिभुज निर्मित किया जाता है। गिरिषेणका चरित्र वह पाषाण स्थल है, जिसपर शत्रुता, अकारण ईर्ष्या, हिंसा, प्रतिशोध, और निदानकी शिलाएँ खचित होकर पर्वतका गुरुतर रूप प्रदान करती हैं। इस प्रकार हरिभद्रने कथा, उपकथा और अवान्तर कथाके संघटन द्वारा अपने कथातन्त्रको सशक्त बनाया है। चरित्र, काव्य-रस और कथा-तत्त्वका अपूर्व संयोजन हुआ है।

भारतीय व्यंग्य काव्यका अनुपम रत्न धूर्त्ताख्यान है। मानव में जो बिम्ब या प्रतिमाएँ सन्निहित रहती हैं, उन्हींके आधारपर वह अपने आराध्य या उपास्य, देवी देवताओंके स्वरूप गढ़ता है। इन निर्धारित स्वरूपोंको अभिव्यञ्जना देनेके लिए पुराण एवं निजन्धरी कथाओंका सृजन होता है।

हरिभद्रने अपने इस कथा काव्यमें पुराणों और रामायण, महाभारत, जैसे महाकाव्योंमें पायी जाने वाली असंख्य कथाओं और दन्तकथाओंकी अप्राकृतिक, अवैज्ञानिक और अबौद्धिक मान्यताओं तथा प्रवृत्तियोंका कथाके माध्यमसे निराकरण किया है। वास्तविकता यह है कि असम्भव और दुर्घट बातोंकी कल्पनाएँ जीवनकी भूख नहीं मिटा सकती हैं। सांस्कृतिक क्षुधाकी शान्तिके लिए सम्भव और तर्कपूर्ण विचार ही उपयोगी होते हैं। अतएव हरिभद्रने व्यंग्य और सुझावोंके माध्यमसे असंभव और मनगढ़न्त बातोंको त्याग करनेका संकेत दिया है। कृतिका कथानक सरल है। पाँच धूर्तोंकी कथा गुम्फित है। प्रत्येक धूर्त, असंभव अबौद्धिक और काल्पनिक कथा कहता है, जिसका समर्थन दूसरा धूर्त साथी पौराणिक उदाहरणों द्वारा करता है। कथाओंमें आदिसे अन्त तक कुतूहल और व्यंग व्याप्त हैं।

हरिभद्र लघुकथाकार भी हैं। व्यक्तिके मानसमें नाना प्रकारके बिम्ब—इमेज रहते हैं। इनमें कुछ व्यंग्योंके आत्मगत बिम्ब भी होते हैं जो घटनाओं द्वारा बाहर व्यक्त होते हैं। प्रेम, क्रोध, घृणा, आदिके निश्चित बिम्ब हमारे मानसमें विद्यमान हैं। हम इन्हें भाषाके रूपमें जब बाहर प्रकट करते हैं तो ये बिम्ब लघुकथा बनकर प्रकट होते हैं। कलाकार उक्त प्रक्रिया द्वारा ही लघुकथाओंका निर्माण करता है। इसके लिये उसे कल्पना, सतर्कता, वास्तविक निरीक्षण, अभिप्राय ग्रहण, एवं मौलिक सृजनात्मक शक्तिकी आवश्यकता होती है। वस्तुतः हरिभद्र ऐसे कथाकार हैं जिन्होंने बृहत् कथा-काव्योंके साथ-साथ लघु-कथाओंका भी निर्माण किया है। जीवन और जगत्से घटनाएं एवं परिस्थितियाँ चुनकर अद्भुत शिल्पका प्रदर्शन किया हैं। हरिभद्रकी शताधिक लघु-कथाओंको मानव प्रवृत्तियोंके आधारपर निम्नलिखित वर्गोंमें विभक्त किया जा सकता है। ये कथाएँ 'दशवैकालिक वृत्ति' और 'उपदेश पद'में पायी जाती हैं—

१. कार्य और घटना प्रधान, २. चरित्र प्रधान, ३. भावना और वृत्ति प्रधान, ४. व्यंग्य-प्रधान, ५. बुद्धि-चमत्कार प्रधान, ६. प्रतीकात्मक, ७. मनोरंजनात्मक, ८. नीति या उपदेशात्मक, ९. सौन्दर्य बोधक, १०. प्रेम-मूलक,

इस प्रकार हरिभद्र राजस्थानके ऐसे कथा-काव्यनिर्माता हैं, जिनसे कथा-काव्यके नये युगका आरम्भ होता है। इस युगको हम संघात युग कह सकते हैं। हरिभद्रने कथाओंके संभार और संगठनमें एक नयी दिशा

उपस्थित की है। शिल्प और कथ्य दोनों ही दृष्टियोंसे वे महनीय हैं। उनके पद-चिह्नोंका अनुसरण कुवलय-माला, सुरसुन्दरी चरियं, निर्वाणलीलावती आदिमें पाया जाता है। अतएव हम हरिभद्रको युग-संस्थापक युगप्रवर्तक कथा-काव्यनिर्माता मान सकते हैं। वस्तुतः वे बहुमुखी प्रतिभावान् कथारस और काव्य रसकी संगम प्रधान रचनाओंके लेखक हैं। इसे हम राजस्थानका सौभाग्य ही मानेंगे कि उसने बाणभट्टकी सम-कक्षता करने वाला अद्भुत कथा-काव्य निर्माता उत्पन्न किया। मैं हरिभद्रके चरण-चिह्नोंसे पवित्र हुई महा-राणा प्रतापकी वीर भूमि राजस्थानको शत-शत प्रणाम करता हूँ।

तथाकथित हरिवंसचरियंकी विमलसूरिकर्तृता : एक प्रश्न

(स्व०) डॉ० गुलाबचन्द्र चौधरी

इस शताब्दीके प्रारम्भमें विमलसूरि कृत प्राकृत पौराणिक महाकाव्य पउमचरियंका सम्पादन प्रसिद्ध जर्मन विद्वान् हर्मन याकोवीने किया था जिसका प्रकाशन सन् १९१४ में भावनगरसे हुआ था। तबसे लगभग २८ वर्षोंके बाद उक्त कृति और रविषेणके संस्कृत पद्मचरित (पद्मपुराण)के बीच तुलनात्मक अध्ययनके फल प्रकाशमें आये। सन् १९४२ की अनेकान्त पत्रिका, वर्ष ५ के अंक १–२ में स्व० पं० नाथूराम प्रेमीने "पद्मचरितं और पउमचरियं" लेख तथा उक्त वर्षके १०–११वें अंकोंमें पं० परमानन्द शास्त्रीने 'पउमचरियंका अन्तःपरीक्षण' नामक लेख लिखे। प्रेमीजीने अपने उक्त लेखको सन् १९४२ में प्रकाशित अपनी कृति 'जैन साहित्य और इतिहास'में भी प्रकाशित किया। इन लेखोंमें पउमचरियं और पद्मचरितके बीच साम्य और वैषम्यपर ऊहापोह किया गया है। परन्तु विमलसूरिने कोई और ग्रन्थ लिखे थे उसपर प्रकाश नहीं डाला गया। "जैन साहित्य और इतिहास"के प्रथम संस्करण (१९४२)में एक स्थल (पृ० ५२०) पर प्रेमीजीने प्रश्नोत्तरमालिकाके कर्त्ता किसी विमलसूरिके होनेकी सम्भावनाका खण्डन किया है पर उसी ग्रन्थके परिशिष्टमें दो छोटे पैराग्राफों द्वारा उद्योतन सूरि कृत तब अप्रकाशित कृति "कुवलयमाला" (शक सं० ७००) की प्रस्तावना गत एक गाथा—

> बुहयणसहस्सदइयं हरिवंसुप्पत्तिकारयं पढमं।
> वंदामि वंदियं पि हु हरिवंसं चेव विमलपयं ॥

के आधारसे (उस गाथाके पाठकी बिना परीक्षा किये और उस गाथाकी स्थिति और सन्दर्भका बिना विचार किये) सम्भावना की कि विमलसूरि कृत "हरिवंश चरियं" होना चाहिए और लिखा कि "विमलसूरिका वह हरिवंश अभी तक कहीं प्राप्त नहीं हुआ है, इसके प्राप्त होनेपर जिनसेनके हरिवंशका मूल क्या है इसपर कुछ प्रकाश पड़नेकी सम्भावना है और सम्भव है पद्मपुराणके समान वह भी विमलसूरिके हरिवंशकी छाया लेकर बनाया गया हो"।

उस समय वयोवृद्ध साहित्यिक प्रेमीजीकी उक्त सम्भावनाको किसीने चुनौती नहीं दी, बल्कि उनके अनुसरण और समर्थनमें ही सन् १९६६ तक कलमें चलती रहीं और सम्भवतः अब भी चल रही हों।

डॉ० ज्योतिप्रसाद जैनने सन् १९५७ से पूर्व लिखे अपने एक लेख—"विमलार्य और पउमचरियं"[1] में और सम्भवतः उससे पूर्व लिखे अपने शोध प्रबन्ध—'Studies in the Jain sources of the History of Ancient India' में उक्त सम्भावनाकी पुष्टिके साथ कुछ वकालत की है। उनका कहना है कि "कुवलयमाला"की गाथाके अनुसार विमलार्य न केवल अपने विमलांक काव्य (पउमचरियं)के रचयिता थे, वरन् सर्वप्रथम हरिवंश पुराणके भी रचयिता थे। उक्त पउमचरियंकी प्रशस्तिके "सोऊण पुव्वगए नारायणसीरिचरियाइं" शब्दोंसे भी यही ध्वनित होता है कि विमलार्यने श्री नारायणके चरित (अर्थात् कृष्ण-

---

१. श्री विजय राजेन्द्रसूरि स्मारक ग्रन्थ पृ० ४३७–४५१।

चरित या हरिवंश) की रचना पउमचरियसे भी पहले कर ली थी।" वे आगे चलकर लिखते हैं कि उद्योतन सूरिके समकालीन अपभ्रंश भाषाके महाकवि स्वयम्भू[1] (लगभग ७७५-७९५) ने भी विमलार्यका एक प्राचीन कविके रूपमें स्मरण किया है। रविषेणका भी स्मरण किया है किन्तु विमलके पश्चाद् सम्भव है कि जिस प्रकार स्वयम्भूकी रामायण विमलके पउमचरियंपर आधारित है, उसी प्रकार उनका "रिट्ठणेमिचरिउ" (हरिवंश) भी विमलके हरिवंशपर आधारित हो और क्या आश्चर्य कि पुन्नाटके जिनसेनके हरिवंश (७८३ ई०) का आधार भी विमलार्यका ही ग्रन्थ हो।"

डॉ० ज्योतिप्रसाद जैनकी उक्त वकालतका खण्डन पउमचरियंकी अंग्रेजी प्रस्तावनाके लेखक डॉ० व्ही० एम० कुलकर्णीने अच्छी तरह किया है। वे लिखते हैं कि "The word सीरि in the verse "सोउणं पुव्वगए नारायणसीरिचरियाइ" is misunderstood by Dr. J. P. Jain. The word सीरि is an equivalent of Sanskrit सीरि and stands for Baladeva or Haladhara, the elder brother of Narayana (or Vasudeva). Thus in the present content Narayaṇa and Siri stand for Lakṣmana and Rama. It is quite clear that he has entirely misunderstood the whole point. Here Vimala Suri points only to the trustworthiness of the source of his Paumacariya. His statement that Svayambhu pays[2] homage first to विमलसूरि (as an ancient poet) and then to रविषेण is open to doubt. The name विमलसूरि is nowhere mentioned in the passage concerned. If he has in mind the identity of विमलसूरि and कीर्तिधर the अनुत्तरवाग्मिन् he should have made the point explicit and given his reasons for the identification "

स्व० पं० प्रेमीने जिस समय (सन् १९४२ के लगभग) विमलसूरिके हरिवंश कर्तृत्वकी सम्भावना जिस उपरिनिर्दिष्ट गाथाके आधारसे की थी उन दिनों मुनि जिनविजयजी द्वारा कुवलयमालाके सम्पादन और प्रकाशनका उपक्रम चल रहा था। मुनिजीके समक्ष सन् १९४२ के मध्य तक कुवलयमालाकी कागजपर लिखी एकमात्र हस्तलिखित प्रति थी जिसका समय १५वीं शताब्दीके लगभग माना गया है। उस प्रतिमें प्रस्तावनाकी अनेक गाथाओं (२७-४४ तक) में उद्योतनसूरिने अनेक जैन (श्वेता०-दिग०) और जैनेतर कवियों और उनकी कृतियोंका आदर पूर्वक स्मरण किया है। सन् १९४२ से पूर्व उनमेंसे कुछ कवियों और रचनाओंपर विद्वानोंने विचार भी किया है। यहाँ वह सब देना सम्भव नहीं। केवल उन दो गाथाओंपर विचार किया जावेगा जिनसे कि विमलसूरिके हरिवंश कर्तृत्वकी सम्भावना की गई है। एक गाथा, जिसकी संख्या ३६ बतलायी गई है, द्वारा कहा गया है कि "विमलांकने जैसा विमल अर्थ प्राप्त किया वैसा कौन पायेगा, उसकी प्राकृत रससे सरस मानों अमृतमयी हो। इसमें विमलांक पद द्वारा पउमचरियंका स्मरण प्रतीत होता है।' इसके बादकी गाथामें—

(तिपुरिसचरियपसिद्धो सुपुरुषचरिएण पायडो लोए। सो जयइ देवगुत्तो वंसे गुत्ताण रायरिसी)

राजर्षि देवगुप्तको सुपुरुषचरितके कर्ताके रूपमें स्मरण किया गया है। इन देवगुप्तका कुवलयमालामें दो स्थानों पर उल्लेख किया गया है और इन्हें हूण नरेश तोरमाणका गुरु माना गया है। इसके बाद वह

---

१. डॉ० हरि० चु० भयाणीने स्वयम्भूका समय दशवीं शताब्दी बताया है।

२. पुणु पहवें संसाराराएं, कित्तिहरेण अणुत्तरवाएं।
पुणु रविसेणायरियपसाएं, बुहिए अवगाहिय कइराएं॥ (पउमचरिउ, १।८)

गाथा "बुहयणसहस्सदयियं" आदि आती है। स्व० प्रेमीजीने इसका अर्थ किया है "मैं हजारों बुधजनों को प्रिय हरिवंशोत्पत्तिकारक प्रथम वन्दनीय और विमलपद हरिवंश की वन्दना करता हूँ" । इसके बाद ही वे अनुमान करते हैं कि इस गाथामें जो विशेषण दिये गये हैं वे हरिवंश और विमल पद (विमलसूरिके चरण अथवा विमल हैं पद जिसके ऐसा ग्रन्थ) दोनों पर घटित होते हैं और निष्कर्ष निकाल बैठते हैं कि विमलसूरि कृत एक हरिवंश काव्य है । जो अभी तक अप्राप्य है ।

उस प्रारंभिक स्थितिमें जब कि कुवलयमालाकी एकमात्र प्रति उपलब्ध थी, उक्त पाठको चुनौती देना संभव नहीं था पर उक्त गाथाकी स्थितिको देखते हुए अर्थ निकालनेकी संभावनाको चुनौती दी जा सकती थी । प्रस्तावनागत गाथाओंके क्रमको एक बार हम पुनः देखें तो सहज ही समझ सकते हैं कि विमलांकको स्मरण करने वाली गाथा (गा० ३६)के साथ "बुहयणसहस्सदयियं—हरिवंसं चेव विमलपदं" वाली गाथाका क्रम नहीं दिया गया । उन दोनोंके बीचमें राजर्षि देवगुप्त वाली गाथा आती है । यदि कुवलयमालाकारको हरिवंशचरियंके कर्ताके रूपमें विमलसूरि इष्ट थे तो विमलांकके क्रममें ही इस बातका उल्लेख होना था । इससे विमलपयंकी पुनरावृत्ति न करना पड़ता पर वैसा न कर उसका उल्लेख एक गाथाके बाद किया है । इस तरह अन्तरसे दी गई गाथामें "हरिवंश चेव विमलपयं"से विमलसूरिकृत हरिवंशका अर्थ निकालना उचित नहीं । यह निष्कर्ष क्रमिक उल्लेखसे ही संभव था न कि व्यतिक्रम द्वारा । व्यतिक्रम द्वारा उल्लेखसे तो यह सिद्ध होता है कि हरिवंशचरियं विमलसूरिकी कृति नहीं, किसी औरकी है ।

गाथाके अर्थको खींच-तानकर की गई संभावनाने कालान्तरमें कैसे तिलका ताड़ रूप धारण कर लिया था यह हम देख चुके हैं । और उससे चल पड़ी अन्ध परम्पराका निराकरण समय रहते होना चाहिये ।

सौभाग्यसे सन् १९४२के अन्तमें कुवलयमालाकी एक अन्य प्रति जैसलमेरके बृहद् भण्डारसे मुनि जिनविजयजी को ताड़पत्रपर लिखी मिली जिसका लेखनकाल सं० ११३९ था । पूर्व कागजवाली १५वीं शता०की प्रतिके आधारपर डॉ० उपाध्येने कुवलयमालाका एक प्रामाणिक संस्करण तैयार किया जिसका मुद्रण कार्य सन् १९५०—५१से प्रारंभ हो १९५९में प्रथम भाग मूलकथा ग्रन्थके रूपमें प्रकाशित हुआ । डॉ० उपाध्येने कागज पर लिखी प्रतिसे ताड़पत्रीय प्रतिको कई कारणोंसे अधिक प्रामाणिक माना हैं, और प्रस्तावना गत "बुहजन सहस्सदयियं" गाथाके 'हरिवंसं चेव विमलपयं'की जगह ताड़पत्रीय प्रतिके आधारपर "हरिवरिसं चेव विमलपयं" पाठ निर्धारित किया है । डॉ० उपाध्येने "हरिवंसं चेव" पदको पूर्व चरणके पद (हरिवंसुप्पत्तिकारकं)की पुनरावृत्तिके कारण अर्थमें बाधा उपस्थित करने वाला होनेसे त्याज्य बतलाया है और प्राचीन प्रतिके पाठको मान्यकर उक्त गाथाका अर्थ किया है—मैं सहस्र बुधजनके प्रिय तथा हरिवंशोत्पत्तिके प्रथम कारक, यथार्थमें पूज्य (वन्द्यमपि) हरिवर्षको उनके विमल पदों (अभिव्यक्ति)के लिए वन्दना करता हूँ । इससे तो विमलसूरिका हरिवंश कर्तृत्व एकदम निरस्त्र हो जाता हैं । डॉ० उपाध्येने कुवलयमाला द्वितीय भागके टिप्पणोंमें[1] लिखा है कि उन्होंने इस सम्बन्धमें पं० प्रेमीजीसे उनके जीवनकालमें ही बात की थी और वे उक्त संभावनाको बदलनेके पक्षमें थे परन्तु १९५६में प्रकाशित जैन साहित्य और इतिहासके द्वितीय संस्करणमें अपने वार्धक्यके कारण वे वैसा न कर सके । डॉ० उपाध्येने संभवतः १९५३के पूर्व उनसे यह बात की होगी क्यों कि तब तक कुवलयमालाके प्रारंभिक फर्मे छप चुके थे । उक्त द्वितीय संस्करणमें डॉ० उपाध्येने अपनी अंग्रेजी प्रस्तावना लिखी है पर आश्चर्य कि वे उक्त संभावनाका वहाँ कुछ खण्डन भी नहीं कर सके ।

कुवलयमालाके प्रथम भागके प्रकाशित हो जानेके बाद भी कुछ विद्वानोंने अपनी विद्वत्तापूर्ण प्रस्ताव-

---

१. पृष्ठ १२६ ।

नाओंमें गतानुगतिकताका ही परिचय दिया है (जैसे डॉ० व्ही० एम० कुलकर्णीने पदुम चरियंकी अंग्रेजी प्रस्तावना पृ० १७-१८में और पं० अमृतलाल भोजकने चउप्पन्नपुरिस चरियंकी प्रस्तावना पृ० ४६७ में) और उक्त संभावनाकी बीन बजायी है।

इस तरह विचार करनेसे विमलसूरिका हरिवंश कर्तृत्व सिद्ध नहीं होता। वल्कि हरिवंशके उल्लिखित कर्ता एक हरिवर्ष ही सिद्ध होते हैं।

उद्योतनसूरि द्वारा उल्लिखित पूर्ववर्ती कवियों और रचनाओंने कुवलयमालापर अपना प्रभाव डाला था, इस बातका दिग्दर्शन डॉ० उपाध्येने 'Kuvalayamala influenced by earlier works'—प्रकरणमें[1] दिखाया है उसमें उनने परवर्ती रचना तरंगलोलासे मिलानकर उसकी आधारभूत "तरंगवती कथाका" प्रभाव भी दिखाया है तथा बाणकी 'कादम्बरी', विमूलसूरिके "पदुमचरियं" जटिलके "वरांग चरित" तथा हरिभद्रसूरि कृत "समरादित्य कथा" का प्रभाव कुवलयमालापर दिखाया है। यदि हरिवर्ष कृत 'हरिवंश चरियं" उद्योतन सूरिके समयमें विद्यमान था तो उसका भी प्रभाव कुवलयमालापर और कुवलयमालाके रचना क्षेत्र जालौरके पड़ौस बढ़वानामें ५ वर्ष बाद रचित जिनसेनके हरिवंशपुराणपर भी अवश्य पड़ा होगा। कुवलयमालापर उस प्रभावकी परवर्ती रचना जिनसेनके हरिवंशसे कतिपय अंशों या विवरणोंको मिलान कर यदि दिखाया जा सके तो हरिवर्षका अनुपलब्ध हरिवंश कैसा क्या था यह अनुमान लगाया जा सकता है और जिनसेनका मूल क्या था इसपर प्रकाश पड़ सकता है। दिग० सम्प्रदाय मान्य जिनसेन रचित हरिवंश पुराण एक विशिष्ट कृति है। इसमें प्रतिकूल कुछ बातें दी गई हैं जैसे महावीरके विवाह[2] का संकेत, नारदकी मुक्ति तथा सम्यग्दृष्टि कृष्ण द्वारा लोकमें अपनी प्रतिष्ठा बढ़ानेके लिये मिथ्या मूर्तिके निर्माणकी प्रेरणा। इसलिए इसके मूलका पता लगाना आवश्यक है। कुवलयमालामें उल्लिखित हरिवर्ष कृत हरिवंश संस्कृत और प्राकृत या किसी भाषामें हो सकता है क्यों कि उद्योतनसूरिने संस्कृत और प्राकृतके कवियोंका समान भावसे स्मरण किया है। इसलिये उसे प्राकृतकी रचना होना आवश्यक नहीं है।

१. पृष्ठ—८६-९१।

२. The tradition of Mahavir not having married is found in the स्थानांग समवायांग and भगवती texts the other tradition of his having married is well known since the days of kalpasutra.

D.D.M. स्थानांग अने सूत्रकृतांग p. 330.

महाकवि रइधूकी एक अप्रकाशित सचित्र कृति 'पासणाहचरिउ'

प्रो० डॉ० राजाराम जैन

१९वीं सदीके प्रारम्भसे ही भारतीय आचार, दर्शन, इतिहास एवं संस्कृतिके सर्वेक्षण-प्रसंगोंमें तीर्थङ्कर पार्श्वका व्यक्तित्व बहुचर्चित रहा है। पाश्चात्य विद्वानोंमें कोलब्रुक, स्टीवेंसन, एडवर्डटॉमस, शार्पेंटियर, गेरिनो, इलियट, पुसिन, याकोबी, एवं ब्लूमफील्ड तथा भारतीय विद्वानोंमेंसे डॉ० भंडारकर, बेल्वेल्कर, डॉ० दासगुप्ता, कोसम्बी एवं डॉ० राधाकृष्णन प्रभृति विद्वानोंने उन्हें सप्रमाण ऐतिहासिक महापुरुष सिद्ध किया है तथा उनके महान् कार्योंका मूल्यांकन करते हुए उनके सार्वभौमिक रूपका विशद विवेचन भी किया है। प्राचीन भारतीय जैनेतर साहित्य एवं कलामें भी वे किसी न किसी रूपमें चर्चित रहे हैं। जैन कवियोंने भी विभिन्न कालोंकी, विभिन्न भाषा एवं शैलियोंमें अपने विविध ग्रन्थोंके नायकके रूपमें उनके सर्वाङ्गीण जीवनका सुन्दर विवेचन किया है। इसी पूर्ववर्ती साहित्य एवं कलाको आधार मानकर मध्यकालीन महाकवि रइधूने भी गोपाचलके दुर्गके विशाल, सुशान्त एवं सांस्कृतिक प्राङ्गणमें बैठकर 'पासणाहचरिउ' नामक एक सुन्दर काव्यग्रन्थ सन्धिकालीन अपभ्रंश-भाषामें निवद्ध किया था, जो अभी तक अप्रकाशित है। उसकी एक प्रति दिल्लीके श्री श्वेताम्बर जैन शास्त्र भण्डारमें सुरक्षित है।[1] उसीके अध्ययनके निष्कर्ष रूपमें उसका संक्षिप्त परिचय यहाँ प्रस्तुत कर रहा हूँ।

उक्त 'पासणाह चरिउ' महाकवि रइधूकी अन्य रचनाओंकी अपेक्षा एक अधिक प्रौढ़ साहित्यिक रचना है। स्वयं कविने ही इसे 'काव्य रसायन'की संज्ञासे अभिहित किया है। ग्रन्थ-विस्तारकी दृष्टिसे इसमें कुल ७७ × २ पृष्ठ हैं तथा ७ सन्धियाँ एवं १३६ कड़वक हैं। इनके साथ ही इसमें मिश्रित संस्कृत-भाषा निवद्ध ५ मङ्गल श्लोक भी हैं। प्रथम एवं अन्तिम सन्धियोंमें ग्रन्थकारने अपने आश्रयदाता, समकालीन भट्टारक एवं राजाओंका विस्तृत परिचय देते हुए तत्कालीन सामाजिक, धार्मिक एवं ऐतिहासिक परिस्थितियोंकी भी सरस चर्चाएँ की हैं। अवशिष्ट सन्धियोंमें पार्श्व प्रभुके सभी कल्याणकोंका सुन्दर वर्णन किया गया है और प्रसंगवश स्थान-स्थानपर चित्रों द्वारा ग्रन्थकारकी भावनाको गहन बनानेके लिए चित्रोंका माध्यम भी अपनाया गया है। प्रति प्राचीन होनेके कारण जीर्ण-शीर्ण होनेकी स्थितिमें आ रही है। इसके प्रति पृष्ठमें ११-११ पंक्तियाँ एवं प्रति पंक्तिमें लगभग १४-१६ शब्द हैं। कृष्णवर्णकी स्याहीका इसमें प्रयोग किया गया है। किन्तु पुष्पिकाओंमें लाल स्याहीका प्रयोग हुआ है और संशोधन या सूचक चिन्हके रूपमें कहीं-कहीं शुभ्र वर्णकी स्याहीका भी प्रयोग हुआ है। रइधूकृत 'पासणाह चरिउ' की अन्य प्रतियाँ जयपुर, ब्यावर एवं आराके शास्त्र-भण्डारोंमें भी मुझे देखनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ है। किन्तु प्रस्तुत प्रतिकी जो कुछ विशेषताएँ एवं नवीन उपलब्धियाँ हैं वे निम्न प्रकार हैं :—

१. प्राचीनता, २. प्रामाणिकता, ३. पूर्णता, ४. सचित्रता एवं ५. ऐतिहासिकता,

---

१. उक्त प्रतिके सम्बन्धमें मुझे सर्वप्रथम श्रद्धेय बाबू अगरचन्द्रजी नाहटा सिद्धान्ताचार्यने सूचना दी थी। उनकी इस सौजन्यपूर्ण उदारताके लिए लेखक उनका आभारी है।

प्राचीनता एवं प्रामाणिकता

विविध अन्तर्बाह्य साक्ष्योंके आधारपर मैंने महाकवि रइधूका समय वि० सं० १४४०-१५३० के मध्य माना है। स्वयं कविद्वारा लिपिवद्ध अभीतक कोई भी रचना हमारे लिए हस्तगत नहीं हो सकी थी तथा उनके ग्रन्थोंकी प्रतिलिपियाँ भी प्रायः वि० सं० १५४८ के वाद ही की उपलब्ध होती हैं, इसके पूर्व की नहीं। किन्तु प्रस्तुत रचना इन सबके अपवाद स्वरूप ही उपलब्ध हुई है और लिपिकालकी दृष्टिसे रइधूसाहित्यकी यह प्राचीन प्रतिलिपि सिद्ध होती है। इसकी पुष्पिकामें इसका प्रतिलिपि काल वि० सं० १४९८ माघवदी २, सोमवार अंकित है।[1] इसके पाठ शुद्ध एवं लिपि सुस्पष्ट है। इसकी हस्तलिपि एवं स्याहीकी एकरूपता, लिपिकारकी सुबद्धता एवं साहित्यके प्रति उसकी आस्थापूर्ण अभिरुचि, ग्रन्थकारके जीवनकालमें ही किंवा उसके समक्ष ही अथवा निर्देशनमें लिपिबद्ध किये जाने तथा ग्रन्थकारके आश्रयदाताके धर्मनिष्ठ सुपुत्रकी ओरसे इस ग्रन्थकी प्रतिलिपिकी आयोजना होनेके कारण इस ग्रन्थकी प्रामाणिकतामें किसी भी प्रकारके सन्देहकी स्थिति नहीं रह जाती।

पूर्णता

प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थोंके साथ कई घोर दुर्भाग्योंमेंसे एक महान् दुर्भाग्य यह भी रहा है कि वे प्रायः अपूर्ण रूपमें उपलब्ध होते हैं। कुछ साहित्यिक-द्रोही, अवसर पाते ही उनके प्रथम एवं अन्तिम या कुछ मर्मस्थलों वाले पृष्ठोंको नष्ट-भ्रष्ट, अपहृत या उनका वाणिज्य करके ग्रन्थराजके सारे महत्त्वको समाप्त कर देते हैं। फिर सचित्र ग्रन्थोंके साथ तो यह द्रोह और भी अधिक रहा है। अभिमानमेरु पुष्पदन्त कृत जसहरचरिउ, महाकवि रइधूकृत जसहरचरिउ आदि ग्रन्थ इसके ज्वलन्त उदाहरण हैं किन्तु प्रस्तुत प्रति सौभाग्यसे पूर्णरूपमें सुरक्षित है। अतः चित्रकला और विशेषतः जैन चित्रकलापर ऐतिहासिक प्रकाश डालने वाली इस प्रतिकी परिपूर्णता स्वयंमें ही एक महान् उपलब्धि है।

सचित्रता

प्रस्तुत ग्रन्थकी सबसे प्रमुख विशेषता इसकी सचित्रता है। सम्पूर्ण ग्रन्थमें कुल मिलाकर ६४ चित्र हैं, कुछ तिरंगे, कुछ चौरंगे एवं कुछ बहुरंगे। इन चित्रोंका निरीक्षण करनेसे यह स्पष्ट प्रतिभासित होता है कि लिपिकारने लिपि करते समय पृष्ठोंपर यत्र-तत्र आवश्यकतानुसार चौकोर स्थान छोड़ दिये हैं, जिनपर चित्रकारने अपनी सुविधानुसार प्रसंगवश लघु अथवा विशाल चित्रोंका अंकन किया है। इन चित्रोंको अलंकृत बनानेका प्रयास स्पष्टरूपसे दिखाई पड़ता है। पुरुषाकृतियोंका अंकन करते समय उनके केशपाशोंको एक विचित्र पद्धतिसे पृष्ठ भागकी ओर मोड़कर बनाया गया है। दाढ़ी एवं मूँछ ऐसी प्रतीत होती है कि मानों कोई कूँची चिपका दी गई हो। नेत्र अधिक विस्तृत एवं बाहरकी ओर इस प्रकार उभरे हैं, जैसे उन्हें अलगसे जड़ दिया गया हो। नाक बड़ी नुकीली, टुनगे वाली तथा नीचेकी ओर झुकी हुई है। ठुड्डी आमकी गुठलीके सदृश, ग्रीवा वलियों युक्त एवं इठी हुई, हाथों एवं पैरोंकी अँगुलियाँ कुछ बेडौल तथा ऐसी प्रतीत होती हैं, जैसे कपड़ोंकी बत्तियाँ मढ़ दी गई हों। वक्ष स्थल इतना अधिक उभारा गया है कि वह कभी-कभी महिलाके वक्षस्थलका भ्रम पैदा कराने लगता है। वस्त्रोंमें कहीं कभी अंगरखा भी अंकित किया हुआ मिलता है, वैसे इनके शरीरपर वस्त्रोंकी संख्या अत्यल्प है—एक उत्तरीय एवं एक अधोवस्त्र।

१, दे० मूलप्रति पृष्ठ ७६.

उत्तरीय वस्त्रका छोर पार्श्वमें अथवा पीछेकी ओर फहराता हुआ अंकित है। मोटे किनारेवाले अधोवस्त्रको चुन्नट देकर पहिना हुआ दिखाया गया है। ये सभी वस्त्र कुछ मोटे किन्तु अलंकृत प्रतीत होते हैं।

आभूषणोंमें कहीं-कहीं माथेपर कलँगीदार रत्नजटित स्वर्णमुकुट, कानोंमें कुण्डल तथा हाथोंमें बाजूबंद एवं कड़े पहिने हुए हैं।

देवों एवं पार्श्वनाथके दि० मुनिपद एवं कैवल्यप्राप्तिके समयके चित्र भी इसमें अंकित किये गये हैं। देवोंको अर्धनग्न मुद्रामें प्रदर्शित किया गया है। वे एक मोटे किनारेवाला रंगीन अधोवस्त्र धारण किये हुए हैं, जो घुटनेसे कुछ नीचे तक लटका हुआ है तथा उसकी चुन्नट कुछ आगेकी ओर उड़ती हुई दिखाई गई है। उनका बायाँ हाथ आधा गिरा हुआ एवं दायाँ हाथ तीर्थङ्करपर चँवर ढुराता हुआ दिखाया गया है। उनके माथेपर मणिरत्न जटित कुछ निचली भित्ती वाला, कर्णपर्यन्त माथा ढकने वाला, कलँगीदार स्वर्णमुकुट है। वे कानोंमें विशाल चक्राकार कर्णफूल, गलेमें सटा हुआ दो लड़ीका मोटे गुरियों वाला हार, कलाईमें मोटे-मोटे कड़े एवं दो लड़ीका बाजूबन्द धारण किये हुए हैं।

प्रस्तुत ग्रन्थके मुखपृष्ठपर पार्श्वप्रभुका पद्मासन युक्त एक चित्र है, जिसके दोनों पार्श्वोंमें चँवर ढुराते हुए पार्श्वचर-सेवकके रूपमें दो देवोंका अंकन है। पीछेकी ओर कुछ ऊँचाईपर दो ऐरावत हाथी अपने शुण्डादण्डोंमें मंगलकलश लिये हुए दिखाये गये हैं। उसकी पृष्ठभूमिमें शिखरबन्द विशाल एक तोरणों-वाला द्वार है, जिसके दोनों ओर छोटी-छोटी ३-३ मठियाँ आलिखित हैं। बीचके शिखरपर दो विशाल ध्वजाएँ विपरीतमुखी होकर फहरा रही हैं।

तीर्थंकर मूर्त्तिके चित्रणके समय तदनुसार वातावरणकी व्यंजनाका प्रयास दिखाई पड़ता है। आजू-बाजूमें चँवर, माथे पर छोटे-बड़े छतों वाला तथा मोतीकी लड़ोंसे गुंथा हुआ फुंदनोंसे युक्त छत्र तथा अगल-बगलमें दो धर्मचक्र बने हुए हैं। प्रतिके प्रारम्भिक पृष्ठपर दो चित्र बड़े ही आकर्षक एवं भव्य बन पड़े हैं। एक चित्रमें पाँच व्यक्ति अंकित हैं। एकके पीछे एक, इस प्रकार तीन व्यक्ति एक पंक्तिमें तथा सभी अपने एक-एक घुटने के बलपर बैठे हैं। उनके सम्मुख ही आगे-पीछे अन्य दो व्यक्ति स्थित हैं। पाँचोंमेंसे मध्यवर्ती व्यक्तिका एक हाथ तो घुटनेपर स्थित है। तथा दूसरा हाथ धर्मोपदेश देनेके कारण ऊपरकी ओर संकेतकर कुछ समझाता हुआ दिखाया गया है। बाकीके सभी व्यक्तियोंके दोनों-दोनों हाथ जुड़े हुए हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि चित्रकारने इस चित्रमें महाकवि रइधूकी गुरु-परम्पराका अंकन किया है। उपदेशकके रूपमें भ० सहस्र कीर्ति हैं तथा श्रोताओंमें उनके शिष्य क्रमश: भट्टारक गुणकीर्ति तथा उनके भाई एवं शिष्य भ० यशःकीर्त्ति तथा यशःकीर्त्तिके शिष्य खेमचन्द्र एवं महाकवि रइधू। इस चित्रवाले पृष्ठपर वर्णनप्रसंग भी उक्त व्यक्तियोंका ही है। हमारे इस अनुमानका आधार पूर्ववर्त्ती अन्य सचित्र हस्तलिखित प्रतियाँ ही हैं। 'त्रिलोकसार' की सचित्र प्रतिलिपिमें उसके लेखक सि० च० नेमिचन्द्र (११वीं शती) एवं सुगन्धदशमी कथामें उसके लेखक जिनसागर (१२वीं शती) जिसप्रकार चित्रित हैं, ठीक वही परम्परा इस ग्रन्थमें भी अपनाई गई होगी, इसमें सन्देह नहीं। अत: यदि मेरा उक्त अनुमान सही है तब भट्टारकोंके साथ-साथ ही रइधू जैसे एक महाकविके अत्यन्त दुर्लभचित्रकी एक सामान्य रूपरेखा भी हमें आसानीसे उपलब्ध हो जाती है, जिसका कि अभाव अभीतक खटकता था। इस उपलब्धिको हम मध्यकालीन साहित्यकारों सम्बन्धी उपलब्ध अभीतक समस्त जानकारियोंमेंसे एक विशेष ऐतिहासिक महत्त्वकी उपलब्धि मान सकते हैं। दूसरा भव्यचित्र इसी चित्र की दायीं ओर चतुर्भुजी सरस्वतीका चित्रित है। उसके एक दायें हाथमें कोई ग्रन्थ सुरक्षित है तथा बायें हाथमें वीणा। बाकी दो हाथोंमें क्या है, यह स्पष्ट नहीं होता। उसके वाहनका भी

पता नहीं लगता। उसकी पृष्ठभूमिमें एक भवन है, जिसके मध्यमें एक विशाल शिखर तथा आजू-वाजूमें ३-३ छोटे-छोटे शिखर और उनके ऊपर विपरीत मुखी छोटी-बड़ी दो-दो विशाल फहराती हुई नुकीली ध्वजाएँ हैं। अन्य कई साक्ष्योंके आधार पर यह सिद्ध होता है कि महाकवि रइधू सरस्वतीके महान् उपासक थे। उन्होंने अपनेको 'सरस्वती निलय' एवं 'सरस्वती निकेतन' जैसे विशेषणोंसे विभूषित किया है। एक स्थान-पर उन्होंने यह भी लिखा है कि प्रारम्भिक जीवनमें अकस्मात् ही स्वप्नमें उन्हें सरस्वतीने आकर कवि बननेकी प्रेरणा दी थी और उसमें सभी प्रकारकी सफलता का उसने उन्हें आश्वासन दिया था। कविने उसीकी आज्ञाको मानकर कविताके क्षेत्रमें प्रवेश किया और फलस्वरूप वे विख्यात महाकविके रूपमें साहित्यिक क्षेत्रमें प्रसिद्ध हो गये[1]। कोई असम्भव नहीं, यदि महाकवि कालिदासके समान ही महाकवि रइधूको भी सरस्वती सिद्ध रही हो। क्योंकि अपने छोटेसे जीवनकालमें ही २३से भी अधिक महान् एवं विशाल ग्रन्थोंकी रचना कर पाना सामान्य कविके लिए सम्भव नहीं था। अपभ्रंशके क्षेत्रमें इतने विशाल समृद्ध साहित्यका प्रणेता रइधूको छोड़कर अभी तक अन्य कोई भी दूसरा कवि अवतरित नहीं हुआ।

जहाँ तक महिलाओंके चित्रालेखनके प्रसंग हैं, उनमें उनके नेत्र मत्स्याकृतिके विशाल, किन्तु उनकी पुतलियाँ छोटी चित्रित हैं एवं कटाक्षरेखा कर्णपर्यन्त चित्रित की गयी हैं। नेत्रोंको तो इतना अधिक उभारा गया है कि किसी अजनबीको उन्हें देखकर चश्मा लगानेका भ्रम हो सकता है। उनके केशपाश गुंथे हुए एवं माथेके पीछे कुछ ऊँचाई पर वर्त्तुलाकार जूड़ाकृतिमें बद्ध हैं। उनकी नाक बड़ी एवं नुकीली है। कहीं-कहीं नाक एवं मुख एक दूसरेमें प्रविष्ट करनेकी होड़ लगाये हुए जैसे दिखायी पड़ते हैं। ओष्ठ फैले हुए, चिबुक नुकीली एवं छोटी, श्रवण अंडाकृति वाले एवं लघु हैं, किन्तु दोनों पयोधर चक्राकार एवं बेतरह उन्नत हैं। ऐसा लगता है कि उनकी विशालता दिखानेमें चित्रकारने कुछ अधिक जबर्दस्ती की है कटिभाग अत्यन्त सूक्ष्म तथा कहीं-कहीं अदृश्य जैसा प्रतीत होता है। इनकी गर्दन कुछ लम्बी एवं रेखांकित दिखायी देती है, किन्तु सभीके शरीर सुपुष्ट अंकित किये गये हैं।

महिलाओं द्वारा प्रयुक्त वस्त्रोंमें लंहगा, ओढ़नी एवं चोली जिसमें उदर भाग स्पष्ट रूपसे दृश्यमान है, प्रधान हैं। कहीं-कहीं ओढ़नीका अभाव भी है।

आभूषणोंकी दृष्टिसे महिलाओंके कानोमें कानोंसे भी डेवढ़ा दुगुना, चक्राकार विशाल कर्णफूल, गलेमें बड़े-बड़े गुरियों वाली एकाधिक लड़ीकी माला एवं हाथोंमें ३-३या४-४ कड़े चित्रित किये गये हैं तथा नाकमें मोतीकी छोटी पोंगड़ी धारण किये हुए हैं। इनके हाथोंमें कंगन एवं पैरोंमें कड़े हैं, ललाटपर टीका भी दिखायी देता है। देवांगनाओंके चित्रणमें उक्त महिलाओंकी अपेक्षा बहुत कम अन्तर दर्शित किया गया है।

जहाँपर पुरुषों या महिलाओंको खड़ा अथवा बैठा दिखाया गया है वहाँ उन्हें देखनेसे ऐसा प्रतीत होगा, मानों वे चल रहे हों या चलनेके लिए उत्सुक हो रहे हों। तात्पर्य यह है कि उनमें स्फूर्तिकी झलक दिखायी देती है। कहीं-कहीं पुरुष दण्ड धारण किये हुए हैं किन्तु हाथों में उसे इस प्रकार चित्रित किया गया है, मानों वे कम वजनकी मामूली कोई छोटी-मोटी दातुन या सलाई पकड़े हुए हों।

प्रकृति चित्रणके प्रसंगोंमें नदी, नद, सरोवर, उद्यान, मैदान, वृक्ष, हरी-भरी घास एवं वन आदिके रंगीन चित्रण किये गये हैं, किन्तु उन्हें जैसे नयनाभिराम, रम्य, गम्भीर एवं सजीव होना चाहिए था, उस भावका उसमें अभाव है। उदाहरणार्थ वृक्षकी आकृति ऐसी प्रतीत होती है जैसे किसी छोटी लचीली डंडीपर पत्तोंका ढेर सजा दिया गया हो। जंगलकी आकृति भी ऐसी प्रतीत होती है जैसे दीवालपर आड़ी-तिरछी रंगीन

१. सम्मइजिणचरिउ १।४।२-४।

रेखाएँ खींच दी गयी हों। उद्यानके पेड़-पौधे या फुलवारी ऐसी दृश्यमान हैं जैसे घरमें गमलों या गुलदस्तोंपर कुछ कृत्रिम पेड़-पौधे या फूल सजा दिये गये हों।

युद्धके प्रसंगमें चित्र-विचित्र रंगोंसे भरे हुए सैनिकोंके चित्र हैं, जिनके हाथमें ढाल-तलवार एवं भाला है। चित्रके रंगोंकी दृष्टिसे उक्त चित्रोंमें प्रायः मौलिक रंगोंका ही प्रयोग पाया जाता है जैसे लाल, पीला, एवं सफेद। चित्रोंकी भूमिमें प्रायः लाल एवं पीले रंगोंका प्रयोग है, कहीं-कहीं हरे रंगका भी। कहीं-कहीं तो चित्रोंमें ये रंग इस प्रकारसे भरे गये हैं कि लगता है जैसे लीपा-पोती की गयी हो। इनमें सुन्दरता एवं सावधानीका अभाव आँखों को बहुत खटकता है। इसका एक कारण तो यह है कि चित्रकार जीवनसे प्रेरणा न लेकर रूढ़ियोंमें बँधे रहे, और दूसरा कारण यह रहा कि उसमें आध्यात्मिक भावनाकी पुट एवं धर्म वृत्तिकी गहरी छाप सर्वत्र रहनेके कारण श्रृंगारिकताका अंश खुलकर अपना साम्राज्य स्थापित न कर सका अथवा यों कहा जाय कि श्रृंगारिक वातावरण रहनेपर भी निर्वेदकी झलक उसमें समाहित रही। किन्तु इन सबके बावजूद भी श्री ब्राऊन, इस्टेल्ला क्रेमरेश, नानालाल मेहता प्रभृति विद्वानोंके अनुसार जैन-शैलीके इन चित्रोंमें निर्मलता, स्फूर्ति एवं गतिवेग है। भावाभिव्यञ्जनाकी दृष्टिसे ये चित्र बेजोड़ हैं। यद्यपि कम रंगोंका प्रयोग किया गया है, किन्तु यह काफी तेज है और उससे तात्कालिक रंग-प्रयोगकी विधिपर अच्छा प्रकाश पड़ता है। उनकी रेखाएँ यद्यपि मोटी हैं, फिर भी उनका भद्दापन, कुशल हाथोंकी स्वतन्त्रता, इस चित्र शैलीमें चित्रित अंग-प्रत्यंगों आदिका बेडौलपना, नेत्रोंको यद्यपि बहुत ही नयनाभिराम नहीं लगता, उनमें कठपुतलियोंका आभास सा होता है, किन्तु निस्सन्देह ही इस शैलीका भी अपना एक युग माना जायेगा। अपने युगमें गुजरात, मध्यप्रदेश, मालवा एवं दक्षिणी भारतमें भी यह शैली अत्यन्त प्रचलित रही। बिहार, बंगाल, उड़ीसा, नेपाल एवं तिब्बतमें भी इसका प्रभाव पहुँचा था। कुछ विद्वानोंका तो यहाँ तक कहना है कि चित्रकलाकी उक्त शैली ने बृहत्तर एशिया, मध्यएशिया, वर्मा एवं इंडोनेशिया प्रभृति देशोंको भी बहुत कुछ अंशोंमें प्रभावित किया था।

'पासणाहचरिउ'के चित्र क्रमागत चित्र-शैलीका एक परवर्त्ती रूप है, जो इतिहासकी दृष्टिसे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। यह इसका महान् दुर्भाग्य है कि इस प्रकारकी चित्र शैलीके नामकरणकी समस्या अभी तक भी बनी हुई है। कोई इसे जैन-शैलीका, तो कोई अपभ्रंश-शैली, तो कोई पश्चिमी या गुजराती-शैलीका कहकर इसके रूपको अनिश्चित किये हुए हैं। इस दिशामें विद्वानोंको गहन अध्ययन करनेकी तत्काल आवश्यकता है। प्राचीन चित्रकलाकी समग्र सामग्रीका संकलन एवं उसका सर्वांगीण अध्ययन विश्लेषण एवं नामकरण करके चित्रकलाके इतिहासमें उसका अविलम्ब स्थान निर्धारण किया जाना चाहिए। क्योंकि यह शैली एक ओर जहाँ प्राचीन चित्रकलाका परवर्ती रूप है वहीं रोरिक, टैगोर अवनीन्द्र, नन्दराय, यामिनीराय, रविवर्मा, रविशंकर रावल एवं अमृता शेरगिलकी आधुनिक चित्र शैलियोंका पूर्ववर्ती रूप भी सिद्ध हो सकता है। अतः जैन चित्रशैलीकी श्रृंखलाको जोड़नेके लिए एक महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक कड़ी सिद्ध हो सकती है। अतः विद्वानोंको इस उपेक्षित दिशामें कार्य करनेके लिए तत्पर होना ही चाहिए। यह समयकी माँग है।

इतिहास के नवीन तथ्य

इतिहासकी दृष्टिसे इस प्रतिकी सर्वप्रथम विशेषता यह है कि इसकी अन्त्य पुष्पिकामें तोमरवंशी राजाओंकी ग्वालियरी शाखाकी परम्परामें हुए महाराज डूँगरसिंहको 'कलिकाल चक्रवर्ती' पदसे विभूषित किया गया है। महाकवि रइधूके प्राप्त समस्त ग्रन्थों एवं उनकी प्रशस्तियोंके साथ-साथ तोमर राजाओंके आधुनिक शैलीमें लिखित इतिहास-ग्रन्थोंको पढ़नेका भी मुझे अवसर मिला है किन्तु डूंगरसिंहकी उक्त 'उपाधि' मुझे कहीं भी देखनेको नहीं मिली। यद्यपि डूंगरसिंहके प्रवल पराक्रम एवं राज्यकी सीमा-विस्तार के कारण उसे

उक्त उपाधि प्राप्त होनी ही चाहिए थी, ऐसी मेरी धारणा थी तथा उसकी खोजमें मैं बड़ा व्यग्र भी था। प्रस्तुत ग्रन्थ-प्रशस्तिने उस व्यग्रताको दूर ही नहीं किया, बल्कि आधुनिक इतिहासकारोंको तोमरकालीन इतिहासको नवीन रूपमें लिखनेके लिए नयी प्रेरणा देकर नया प्रकाशन भी दिया है। इतिहासकी दृष्टिसे निस्सन्देह ही यह एक बहुत बड़ी उपलब्धि है तथा इस रूपमें एक महान् नरव्याघ्र, पराक्रमी, कर्त्तव्यनिष्ठ एवं जैनधर्म-परायण राजाके महान् कार्योंका सही एवं न्यायपूर्ण मूल्यांकन कर उसे यथार्थ ही गौरव प्रदान किया गया है।

इसी प्रकार तोमर राजाओंकी परम्पराका वर्णन करनेवाले कुछ ग्रन्थोंमें राजा डूंगरसिंहके पिता गणपतिदेवका नामोल्लेख नही मिलता तथा विक्रमके बाद उनके पौत्र डूंगरसिंकके गद्दीपर बैठनेकी तुक समझ-में नहीं आती थी किन्तु इसका स्पष्टीकरण प्रस्तुत ग्रन्थके लिपिकारकी प्रशस्तिसे हो जाता है। उसने जो लिखा है जिससे यह स्पष्ट हो जाता है कि विक्रमके बाद डूंगरसिह नहीं, बल्कि गणपति गद्दीपर बैठे, भले ही वे अत्यल्पकालके लिए राजा बने हों और किसी कारणवश शीघ्र ही उनके पुत्र डूंगरसिंहको राजगद्दी सम्हालनी पड़ी हो। अतः वर्त्तमान कालमें प्रचलित तोमरोंकी वंशपरम्परा सम्बन्धी मान्यता भी उक्त प्रमाणके आधारपर भ्रामक सिद्ध हो जाती है।

''प्रस्तुत प्रतिकी दूसरी ऐतिहासिक महत्त्वकी विशेषता यह है कि इसकी लिपिकारकी प्रशस्तियोंमें पैरोज (फ़िरोज़) नामक सुल्तानकी चर्चा आती है। रइधूने अपने अन्य ग्रन्थोंमें भी सुल्तान पैरोज साह (फ़ीरोज़ शाह) की चर्चा करते हुए उसके द्वारा हिसारनगरके बसाये जानेकी चर्चा की है। एक अन्त्य-प्रशस्तिसे यह भी स्पष्ट है कि रइधूके एक आश्रयदाता तोसउ साहूका पुत्र वील्हा साहू पैरोज साहके द्वारा सम्मानित था। इससे यह प्रतीत होता है कि पैरोज साह जैनसमाज एवं जैनधर्मके प्रति काफी आस्था बुद्धि रखता था। असम्भव नहीं, यदि, उसके मन्त्रिमण्डलमें वील्हा जैसे कुछ राजनीतिज्ञ एवं अर्थशास्त्री श्रीमन्त जैन भी सम्मिलित रहे हों। रइधू-साहित्यके मध्यकालमें हिसार नगर जैनियों एवं जैन-साहित्यका बड़ा भारी केन्द्र था।

प्रस्तुत प्रतिकी तीसरी विशेषता यह है कि इसकी प्रतिलिपि कविके आश्रयदाता खेउसाहूके चतुर्थ पुत्र होलिवम्मुने करायी थी। ये होलिवम्मु या होलिवर्म्मा वही हैं जो सदाचारकी प्रतिमूर्ति थे तथा जिन्होंने अपने पिताकी तरह ही स्वयं भी महाकविको आश्रयदान देकर अपने जीवनमें आध्यात्मिक ज्योति जगानेवाली 'दशलक्षणधर्म जयमाला'[1] नामक रचनाका प्रणयन कराया था। इस दृष्टिसे प्रतिकी प्रामाणिकतामें दो मत नहीं हो सकते। यह भी सम्भव है कि होलिवम्मु द्वारा लिखित अथवा लिखवायी हुई अन्य रचनाएँ भी हों, जिनका प्रकाशन भविष्यके गर्भमें है।

इस प्रकार महाकवि रइधूकी प्रस्तुत 'पासणाहचरिउ'की विशेष प्रतिके सम्बन्धमें यहाँ चर्चा की गयी है। उसके कलापक्ष एवं भावपक्ष अथवा अन्य विषयोंको मैंने स्पर्श नहीं किया। इसी प्रकार कविके विषयमें भी मैंने कुछ भी चर्चा नहीं की। क्योंकि यहाँ मात्र उपलब्ध नवीन सचित्र प्रतिकी सचित्रता एवं उसकी अन्त्यप्रशस्तिमें उपलब्ध तथ्योंके अनुसार उसका ऐतिहासिक मूल्यांकन करनेका यत्किंचित् प्रयास किया है। कविके व्यक्तित्व एवं कृतित्वपर मैं कई शोध-निबन्धोंमें विस्तृत विचार कर चुका हूँ। यहाँ उनकी पुनरावृत्ति मात्र ही होती।



---

१. दे० दहलक्खणजयमालका अन्तिम पद्य।

कलिकाल सर्वज्ञ श्री हेमचन्द्राचार्यकी अपभ्रंश-भाषामें एक अनुपम रचना

शत्रुञ्जयतीर्थाष्टक

महोपाध्याय विनयसागर

युगप्रधान दादा जिनदत्तसूरि प्रणीत 'गणधरसार्द्धशतक-प्रकरण'के प्रथम पद्यकी व्याख्या करते हुए, युगप्रवरागम श्रीजिनपतिसूरिके शिष्य श्रीसुमतिगणिने, श्रीहेमसूरि प्रणीत निम्नाङ्कित स्तोत्र उद्धृत किया है।

सुमतिगणि कृत 'वृद्धवृत्ति'का रचनाकाल विक्रम संवत् १२९५ होनेसे इस स्तोत्रका रचनाकाल १२–१३वीं शताब्दी निश्चित है। अष्टककी अन्तिम पंक्तिमें 'हेमसूरिहि' उल्लेख है। १२वीं शतीमें हेमचन्द्र-सूरि नामक दो आचार्य हुए हैं—१. मलधारगच्छीय हेमचन्द्रसूरि और २. पूर्णतल्लगच्छीय कलिकाल सर्वज्ञ हेमचन्द्रसूरि। ये दोनों समकालीन आचार्य थे और दोनों ही गुर्जराधिपति सिद्धराज जयसिंहके मान्य एवं पूज्य रहे हैं।

मलधारगच्छीय हेमचन्द्रसूरिकी देश्यभाषाकी रचनाएँ प्राप्त नहीं है। कलिकाल सर्वज्ञकी 'देशीनाम-माला' प्राकृत-व्याकरण आदि साहित्यमें अपभ्रंश कृतियोंका प्रयोग होनेसे प्रस्तुत अष्टकके प्रणेता इन्हींको माना जा सकता है।

इस अष्टकमें सौराष्ट्र प्रदेश स्थित शत्रुञ्जय (सिद्धाचल) तीर्थाधिराजकी महिमाका वर्णन किया गया है। इसकी भाषा अपभ्रंश है और देश्यछन्द-षट्पदीमें इसकी रचना हुई है। अद्यावधि अज्ञात एवं भाषा-विज्ञानकी दृष्टिसे इसका महत्त्व होनेसे इसे अविकल रूपमें यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है।

सं० १२०० में रचित कृतिमें उद्धृत होनेसे इसका प्राचीन मार्मिक पाठ सुरक्षित रक्खा है यह भी विशेष रूपसे उल्लेखनीय है।



श्रीहेमसूरिप्रणीतापभ्रंशभाषामयं

शत्रुञ्जय तीर्थाष्टकम्

खुडियनिविड दढनेहा नियदु वम्मह मयभंजणु,
पढमपयासियधम्ममग्गु सिवपुरहसंदणु।
निवसइ जत्थ जुयाइदेउ जिणवरु रिसहेसरु,
सो **सित्तुंजगिरिंदु** नमहु तित्थह अग्गेसरुं।
सिरिपुंड**रीय** सुइ निव्वयइ जहि कारिउ भरहेसरिणं।
वंदिवजइ अज्जवि सुरनरिहरिसहभवणु भत्तिब्भरिणं ॥१॥

पंचकोडिमुणिवरसमजु गुणरयणसमिद्धउ।
पढमजिणह सिरिपुंड**रीय**गणहरु जहि सिद्धउ।
पंडुसुअह पंचह वि सिद्धिकामिणि सुरकारउ।
सो **सित्तुंजगि**रिंदु जयउ जगि तित्थह सारउ।
मिल्लेविणु **नेमि**जिणिंद परि कित्तिभरिय भुवणंतरिहि।
जो फरूसिउ नियपयपंकयहि तेवीसिहि तित्थंकरिहि ॥२॥

जहि दसकोडिहि द्रविड-वा**लिखि**ल्लहि नरनांह हो।
पाविय-सिद्धि-समिद्धि खवियनियपावपवाह हा।
दसरहसुय-सिरिरा**म भरह**कय सिवसुहसंगमु।
सो **सित्तुंज** सुतित्थ जयउ तित्थह सव्वत्तमु।
निणु गुरुमाहुप्पु जसु अइमुत्तयकेवलि कहिओ।
आरूह वि जित्थु नारयरिसिहि पत्तु मुक्ख दुक्खिहि रहिओ ॥३॥

सिरिविज्जाहरचक्कवट्टि नमि-विनमि-मुणिदिहिं।
विहिकोडसि सहु मुणिवराह नयसुरवर विंदिहिं।
जह पत्तओ सुरसुक्खु भवदुक्खनिवारणु।
सो **सेत्तुंज** सुतित्थ नमह सासयसुहकारणु।
गुणवियलु पसु वि अणसणु करवि जहि हरिसिय सुरयणमहिउ।
तित्थाणुभावमित्तिण सुहइ भुंजइ सुरकामिणिसहिउ ॥४॥

घरपरियणसुहनेह नियउ निट्ठुरभंजेविणु।
खउकंटयकक्करकरालकाणणपविसेविणु।
भीसणवग्घवराहभमिरतक्करजगणेविणु।
गुरुगिरिवरसरसरिरउउरत्तु वि लंघेविणु।

कलिकाल सर्वज्ञ श्री हेमचन्द्राचार्यकी अपभ्रंश-भाषामें एक अनुपम रचना

शत्रुञ्जयतीर्थाष्टक

महोपाध्याय विनयसागर

युगप्रधान दादा जिनदत्तसूरि प्रणीत 'गणधरसार्द्धशतक-प्रकरण'के प्रथम पद्यकी व्याख्या करते हुए, युगप्रवरागम श्रीजिनपतिसूरिके शिष्य श्रीसुमतिगणिने, श्रीहेमसूरि प्रणीत निम्नाङ्कित स्तोत्र उद्धृत किया है।

सुमतिगणि कृत 'वृद्धवृत्ति'का रचनाकाल विक्रम संवत् १२९५ होनेसे इस स्तोत्रका रचनाकाल १२–१३वीं शताब्दी निश्चित है। अष्टककी अन्तिम पंक्तिमें 'हेमसूरिहि' उल्लेख है। १२वीं शतीमें हेमचन्द्र-सूरि नामक दो आचार्य हुए हैं—१. मलधारगच्छीय हेमचन्द्रसूरि और २. पूर्णतल्लगच्छीय कलिकाल सर्वज्ञ हेमचन्द्रसूरि। ये दोनों समकालीन आचार्य थे और दोनों ही गुर्जराधिपति सिद्धराज जयसिंहके मान्य एवं पूज्य रहे हैं।

मलधारगच्छीय हेमचन्द्रसूरिकी देश्यभाषाकी रचनाएँ प्राप्त नहीं है। कलिकाल सर्वज्ञकी 'देशीनाम-माला' प्राकृत-व्याकरण आदि साहित्यमें अपभ्रंश कृतियोंका प्रयोग होनेसे प्रस्तुत अष्टकके प्रणेता इन्हींको माना जा सकता है।

इस अष्टकमें सौराष्ट्र प्रदेश स्थित शत्रुञ्जय (सिद्धाचल) तीर्थाधिराजकी महिमाका वर्णन किया गया है। इसकी भाषा अपभ्रंश है और देश्यछन्द-षट्पदीमें इसकी रचना हुई है। अद्यावधि अज्ञात एवं भाषा-विज्ञानकी दृष्टिसे इसका महत्त्व होनेसे इसे अविकल रूपमें यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है।

सं० १२०० में रचित कृतिमें उद्धृत होनेसे इसका प्राचीन मार्मिक पाठ सुरक्षित रक्खा है यह भी विशेष रूपसे उल्लेखनीय है।



श्रीहेमसूरिप्रणीतापभ्रंशभाषामयं

शत्रुञ्जय तीर्थाष्टकम्

खुडियनिविड दढनेहा नियदु वम्मह मयभंजणु,
पढमपयासियधम्ममग्गु सिवपुरहसंदणु।
निवसइ जत्थ जुयाइदेउ जिणवरु रिसहेसरु,
सो **सित्तुंजगिरिंदु** नमहु तित्थह अग्गेसरुं।
सिरिपुंड**रीय** सुइ निव्वयइ जहि कारिउ भरहेसरिणं।
वंदिवजइ अज्जवि सुरनरिहरिसहभवणु भत्तिब्भरिणं ॥१॥

पंचकोडिमुणिवरसमजु गुणरयणसमिद्धउ।
पढमजिणह सिरिपुंड**री**यगणहरु जहि सिद्धउ।
पंडुसुअह पंचह वि सिद्धिकामिणि सुरकारउ।
सो **सित्तुंजगिरिं**दु जयउ जगि तित्थह सारउ।
मिल्लेविणु **नेमि**जिणिंद परि कित्तिभरिय भुवणंतरिहि।
जो फरूसिउ नियपयपंकयहि तेवीसिहि तित्थंकरिहि ॥२॥

जहि दसकोडिहि द्रविड-वालिखिल्लहि नरनांह हो।
पाविय-सिद्धि-समिद्धि खवियनियपावपवाह हा।
दसरहसुय-सिरिराम भरहकय सिवसुहसंगमु।
सो **सित्तुंज** सुतित्थ जयउ तित्थह सव्वत्तमु।
निणु गुरुमाहुप्पु जसु अइमुत्तयकेवलि कहिओ।
आरूह वि जित्थु नारयरिसिहि पत्तु मुक्ख दुक्खिहि रहिओ ॥३॥

सिरिविज्जाहरचक्कवट्टि नमि-विनमि-मुणिंदिहिं।
विहिकोडसि सहु मुणिवराह नयसुरवर विंदिहिं।
जह पत्तओ सुरसुक्खु भवदुक्खनिवारणु।
सो **सेत्तुंज** सुतित्थ नमह सासयसुहकारणु।
गुणवियलु पसु वि अणसणु करवि जहि हरिसिय सुरयणमहिउ।
तित्थाणुभावमित्तिण सुहइ भुंजइ सुरकामिणिसहिउ ॥४॥

घरपरियणसुहनेह नियउ निट्ठुरभंजेविणु।
खउकंटयकक्करकरालकाणणपविसेविणु।
भीसणवग्घवराहभमिरतक्करजगणेविणु।
गुरुगिरिवरसरसरिरउउरत्तु वि लंघेविणु।

कलिकाल सर्वज्ञ श्री हेमचन्द्राचार्यकी अपभ्रंश-भाषामें एक अनुपम रचना

शत्रुञ्जयतीर्थाष्टक

महोपाध्याय विनयसागर

युगप्रधान दादा जिनदत्तसूरि प्रणीत 'गणधरसार्द्धशतक-प्रकरण'के प्रथम पद्यकी व्याख्या करते हुए, युगप्रवरागम श्रीजिनपतिसूरिके शिष्य श्रीसुमतिगणिने, श्रीहेमसूरि प्रणीत निम्नाङ्कित स्तोत्र उद्धृत किया है।

सुमतिगणि कृत 'वृद्धवृत्ति'का रचनाकाल विक्रम संवत् १२९५ होनेसे इस स्तोत्रका रचनाकाल १२–१३वीं शताब्दी निश्चित है। अष्टककी अन्तिम पंक्तिमें 'हेमसूरिहि' उल्लेख है। १२वीं शतीमें हेमचन्द्रसूरि नामक दो आचार्य हुए हैं—१. मलधारगच्छीय हेमचन्द्रसूरि और २. पूर्णतल्लगच्छीय कलिकाल सर्वज्ञ हेमचन्द्रसूरि। ये दोनों समकालीन आचार्य थे और दोनों ही गुर्जराधिपति सिद्धराज जयसिंहके मान्य एवं पूज्य रहे हैं।

मलधारगच्छीय हेमचन्द्रसूरिकी देश्यभाषाकी रचनाएँ प्राप्त नहीं है। कलिकाल सर्वज्ञकी 'देशीनाममाला' प्राकृत-व्याकरण आदि साहित्यमें अपभ्रंश कृतियोंका प्रयोग होनेसे प्रस्तुत अष्टकके प्रणेता इन्हींको माना जा सकता है।

इस अष्टकमें सौराष्ट्र प्रदेश स्थित शत्रुञ्जय (सिद्धाचल) तीर्थाधिराजकी महिमाका वर्णन किया गया है। इसकी भाषा अपभ्रंश है और देश्यछन्द-षट्पदीमें इसकी रचना हुई है। अद्यावधि अज्ञात एवं भाषाविज्ञानकी दृष्टिसे इसका महत्त्व होनेसे इसे अविकल रूपमें यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है।

सं० १२०० में रचित कृतिमें उद्धृत होनेसे इसका प्राचीन मार्मिक पाठ सुरक्षित रक्खा है यह भी विशेष रूपसे उल्लेखनीय है।

•

श्रीहेमसूरिप्रणीतापभ्रंशभाषामयं

शत्रुञ्जय तीर्थाष्टकम्

खुडियनिविड दढनेहा नियडु वम्मह मयभंजणु,
पढमपयासियधम्ममग्गु सिवपुरहसंदणु।
निवसइ जत्थ जुयाइदेउ जिणवरु रिसहेसरु,
सो **सित्तुंजगि**रिंदु नमहु तित्थह अग्गेसरुं।
सिरिपुंड**रीय** सुइ निव्वयइ जहि कारिउ भरहेसरिणं।
वंदिवजइ अज्जवि सुरनरिहरिसहभवणु भत्तिब्भरिणं ॥१॥

पंचकोडिमुणिवरसमजु गुणरयणसमिद्धउ।
पढमजिणह सिरिपुंड**रीय**गणहरु जहि सिद्धउ।
पंडुसुअह पंचह वि सिद्धिकामिणि सुरकारउ।
सो **सित्तुंजगि**रिंदु जयउ जगि तित्थह सारउ।
मिल्लेविणु **नेमि**जिणिंद परि कित्तिभरिय भुवणंतरिहि।
जो फरूसिउ नियपयपंकयहि तेवीसिहि तित्थंकरिहि ॥२॥

जहि दसकोडिहि द्रविड-वा**लि**खिल्लहि नरनांह हो।
पाविय-सिद्धि-समिद्धि खवियनियपावपवाह हा।
दसरहसुय-सिरिरा**म** भर**ह**कय सिवसुहसंगमु।
सो **सित्तुंज** सुतित्थ जयउ तित्थह सव्वत्तमु।
निणु गुरुमाहुप्पु जसु अइमुत्तयकेवलि कहिओ।
आरूह वि जित्थु नारयरिसिहि पत्तु मुक्ख दुक्खिहि रहिओ ॥३॥

सिरिविज्जाहरचक्कवट्टि नमि-विनमि-मुणिदिहिं।
विहिकोडसि सहु मुणिवराह नयसुरवर विंदिहिं।
जह पत्तओ सुरसुक्खु भवदुक्खनिवारणु।
सो **सेत्तुंज** सुतित्थ नमह सासयसुहकारणु।
गुणवियलु पसु वि अणसणु करवि जहि हरिसिय सुरयणमहिउ।
तित्थाणुभावमित्तिण सुहइ भुंजइ सुरकामिणिसहिउ ॥४॥

घरपरियणसुहनेह नियउ निट्ठुरभंजेविणु।
खउकंटयकक्करकरालकाणणपविसेविणु।
भीसणवग्घवराहभमिरतक्करजगणेविणु।
गुरुगिरिवरसरसरिरउउरत्तु वि लंघेविणु।

आरुहि वि जाव **सित्तु**ंजि न दिट्ठउ **रिसह**जिणिंदमुह ।
सिरिपुंडरीउगणहरसहिउ ताव कि लब्भइ जीवसुह ।।५।।

काइ मूढ पविसहि अयाणु जि व सलहु महानलि ।
काइ मधु जिम्ब भमिय चित्तु बुड्डहि गंगाजलि ।
काइ अकज्जि वि मूढ धरि वि सिरि गुग्गुलुजालहि ।
काइ इयर तित्थिहि भमंतु अप्पहु संतावहि ।
कहिउ मुणिहि तित्थह पवरु तहि सित्तुंजि चडे वि पुण ।
किर काहि न पुज्जहि **रिसह**जिणु जिम्व छिंदहि जम्मण जरमरण ।।६।।

काइ तेण वि हविण न जेणउ वयरिउ सुपत्तह ।
काइ तेण जोविइण जुगउ दालिद्द-दुहत्तह ।
काइ तेण जुव्वणिण जु किर बोलिउ सकलं कह ।
काइ तेण सज्जणिण हुयउ जु न विहु र पडंतह ।
किरि काइ मणुयजम्मिण न जहि वंदिउ सुरनरवरमहिउ ।
सित्तुंजसिहरिसंढिउ रिसहु पुंडरीयगणहरसहिउ ।।७।।

अहह कवडजक्खपभाउ जहि फुरइ असंभवु ।
कटरि करइ जो पणयजणह निच्छउ अपुणब्भवु ।
अररि कलिहि अज्जवि अखंड जसु कित्ति सिलीसइ ।
वपुरि गुरयपुत्रिहि पि जो भवि इहि दीसइ ।
जहि अणेयकोडहि सहिय सिद्ध मुणीसर सुरमहिउ ।
सो नमहु तित्थ **सित्तु**ंज पर विहिय **हेमसूरिहि** कहिउ ।।८।।

(गणधरसार्द्धशतकबृहद्वृत्ति सुमतिगणिकृत, प्रथमपद्यव्याख्या, दानसागर जैन ज्ञान भंडार, बीकानेर ग्रन्थांक १०६१, ले० सं० १६७९ पत्रांक ३९ A)



दिल्ली पट्टके मूलसंघीय भट्टारक प्रभाचन्द्र और पद्मनन्दि

पं० परमानन्द जैन शास्त्री

प्रभाचन्द्र नामके अनेक विद्वान् हो गये हैं। एक नामके अनेक विद्वानोंका होना कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। जैन साहित्य और इतिहासको देखनेसे इस बातका स्पष्ट पता चल जाता है कि एक नामके अनेक आचार्य विद्वान् और भट्टारक हो गये हैं। यहाँ दिल्ली पट्टके मूलसंघीय भट्टारक प्रभाचन्द्रके सम्बन्धमें विचार करना इस लेखका प्रमुख विषय है।

पट्टे श्रीरत्नकीर्त्तेरनुपमतपसः पूज्यपादीयशास्त्र-
व्याख्या विख्यातकीर्तिगुणगणनिधिपः सत्क्रिचारुचंचुः ॥
श्रीमानानन्दधामा प्रति बुधनुतमामान संदायि वादो
जीयादाचन्द्रतारं नरपतिविदितः श्रीप्रभाचन्द्रदेवः ॥

(—जैन सि० भा० भाग १ किरण ४)

पट्टावलीके इस पद्यसे प्रकट है कि भट्टारक प्रभाचन्द्र रत्नकीर्ति भट्टारकके पट्टपर प्रतिष्ठित हुए थे। रत्नकीर्ति अजमेर पट्टके भट्टारक थे। दूसरी पट्टावलीमें दिल्ली पट्टपर भ० प्रभाचन्द्रके प्रतिष्ठित होनेका समय सं० १३१० बतलाया है और पट्टकाल सं० १३१० से १३८५ तक दिया है, जो ७५ वर्षके लगभग बैठता है। दूसरी पट्टावलीमें सं० १३१० पौष सुदी १५ प्रभाचन्द्रजी गृहस्थ वर्ष १२ दीक्षा वर्ष १२ पट्ट वर्ष ७४ मास ११ दिवस २३। (भट्टारक सम्प्रदाय पृ० ९१)

भट्टारक प्रभाचन्द्र जब भ० रत्नकीर्तिके पट्टपर प्रतिष्ठित हुए उस समय दिल्लीमें किसका राज्य था, इसका उक्त पट्टावलियोंमें कोई उल्लेख नहीं है। किन्तु भ० प्रभाचन्द्रके शिष्य धनपालके तथा दूसरे शिष्य ब्रह्म नाथूरामके सं० १४५४ और १४१६ के उल्लेखोंसे ज्ञात होता है कि प्रभाचन्द्रने मुहम्मद बिन तुगलकके मनको अनुरंजित किया था और वादीजनोंको वादमें परास्त किया था—जैसा कि उनके निम्न वाक्योंसे प्रकट है—

'तहिं भव्वहिं सुमहोच्छव विहियउ, सिरिरयणकित्ति पट्टेणिहियउ।
महमंद साहि मणु रंजियउ, विज्जहि वाइय मणु भंजियउ॥

—बाहुबलिचरित प्रशस्ति

उस समय दिल्लीके भव्यजनोंने एक उत्सव किया था। मुहम्मद बिन तुगलकने सन् १३२५ (वि० सं० १३८२) से सन् १३५१ (वि० सं० १४०८) तक राज्य किया है। यह बादशाह बहुभाषाविज्ञ, न्यायी, विद्वानोंका समादर करनेवाला और अत्यन्त कठोर शासक था। अतः प्रभाचन्द्र इसके राज्यमें सं० १३८५ के लगभग पट्टपर प्रतिष्ठित हुए हों। इस कथनसे पट्टावलियोंका वह समय कुछ आनुमानिक सा जान पड़ता है। वह इतिहासको कसौटीपर ठीक नहीं बैठता। अन्य किसी प्रमाणसे भी उसकी पुष्टि नहीं होती।

प्रभाचन्द्र अपने अनेक शिष्योंके साथ पट्टण, खंभात, धारानगर और देवगिरि होते हुए जोयणिपुर (दिल्ली) पधारे थे। जैसा कि उनके शिष्य धनपालके निम्न उल्लेखसे स्पष्ट है—

पट्टणे खंभायच्चे धारणयरि देवगिरि।
मिच्छामय विहुणंतु गणि पत्तउ जोयणपुरि ॥ —बाहुवलिचरिउ प्र०

आराधना पंजिकाके सं० १४१६ के उल्लेखसे स्पष्ट है कि वे भ० रत्नकीर्तिके पट्टको सजीव बना रहे थे।[1] इतना ही नहीं, किन्तु जहाँ वे अच्छे विद्वान्, टीकाकार, व्याख्याता और मंत्र-तंत्रवादी थे, वहाँ वे प्रभावक व्यक्तित्वके धारक भी थे। उनके अनेक शिष्य थे। उन्होंने फीरोजशाह तुग़लकके अनुरोधपर रक्ताम्बर वस्त्र धारण कर अन्तःपुरमें दर्शन दिये थे। उस समय दिल्लीके लोगोंने यह प्रतिज्ञा की थी कि हम आपको सवस्त्रजती मानेंगे। इस घटनाका उल्लेख बखतावरशाहने अपने बुद्धिविलासके निम्न पद्यमें किया है—

'दिल्लीके पातिसाहि भये पेरोजसाहि जब।
चांदो साह प्रधान भट्टारक प्रभाचन्द्र तब ॥
आणे दिल्ली मांझि वाद जीते विद्यावर।
साहि रीझिकैं कही करै दरसन अंतःपुर ॥
तिहि समै लंगोट लिवाय पुनि चाँद विनती उच्चरी।
मानिहैं जती जुत वस्त्र हमसब श्रावक सौगंद करी ॥'६१६

यह घटना फीरोजशाहके राज्यकालकी है, फीरोजशाहका राज्य सं० १४०८ से १४४५ तक रहा है। इस घटनाको विद्वज्जन बोधकमें सं० १३०५ की बतलाया है जो एक स्थूल भूलका परिणाम जान पड़ता है; क्योंकि उस समय तो फीरोजसाह तुग़लकका राज्य नहीं था, फिर उसकी संगति कैसे बैठ सकती है। कहा जाता है कि भ० प्रभाचन्दने वस्त्र धारण करनेके बादमें प्रायश्चित्त लेकर उनका परित्याग कर दिया था, किन्तु फिर भी वस्त्र धारण करनेकी परम्परा चालू हो गयी।

इसी तरह अनेक घटना क्रमोंमें समयादिकी गड़बड़ी तथा उन्हें बढ़ा-चढ़ाकर लिखनेका रिवाज भी हो गया था।

दिल्लीमें अलाउद्दीन खिलजीके समय स्थित राघो चेतनके समय घटने वाली घटनाको ऐतिहासिक दृष्टिसे विचार किये बिना ही उसे फीरोजसाह तुग़लकके समयकी घटित बतला दिया गया है। (देखो, बुद्धि विलास पृष्ठ ७६) और महावीर जयन्ती स्मारिका अप्रैल १९६२ का अंक पृ० १२८)।

---

1. सं० १४१६ चैत्र सुदी पंचम्यां सोमवासरे सकलराजशिरोमुकुटमाणिक्यमरीचिपिंजरीकृतचरणकमल-पादपीठस्य श्री पेरोजसाहेः सकलसाम्राज्यधुरीविभ्राणस्य समये श्री दिल्यां श्री कुन्दकुन्दाचार्यान्विये सरस्वतीगच्छे बलात्कारगणे भ० श्री रत्नकीर्तिदेवपट्टोदयाद्रि तरुणतरणित्वमुर्वी कुर्वाणे भट्टारक श्री प्रभाचन्द्रदेव तत्शिष्याणां ब्रह्म नाथूराम इत्याराधना पंजिकायां ग्रन्थ आत्य पठनार्थे लिखापितम।

दूसरी प्रशस्ति सं० १४१६ भादवो सुदी १३ गुरुवारके दिन लिखी हुई ब्रह्मदेव कृत द्रव्यसंग्रह टीकाकी है, जो जयपुरके ठोलियोंके मन्दिरके शास्त्र भंडारमें सुरक्षित है। ग्रन्थ-सूची भाग ३ पृ० १८०।

यद्यपि राघोचेतन ऐतिहासिक व्यक्ति हैं और अलाउद्दीन खिलजीके समय हुए हैं। यह व्यास जातिके विद्वान्, मंत्र-तंत्रवादी और नास्तिक थे। धर्मपर इनकी कोई आस्था नहीं थी, इनका विवाद मुनि महासेनसे हुआ था, उसमें यह पराजित हुए थे।

ऐसी ही घटना जिनप्रभसूरि नामक श्वेताम्बर विद्वान्‌के सम्बन्धमें कही जाती है—एक बार सम्राट् मुहम्मदशाह तुग़लककी सेवामें काशीसे चतुर्दश विद्या निपुण मंत्र-तंत्रज्ञ राघव चेतन नामक विद्वान् आया। उसने अपनी चातुरीसे सम्राट्‌को अनुरंजित कर लिया। सम्राट्‌पर जैनाचार्य श्रीजिनप्रभसूरिका प्रभाव उसे बहुत अखरता था। अतः उन्हें दोषी ठहराकर उनका प्रभाव कम करनेके लिए सम्राट्‌की मुद्रिकाका अपहरण कर सूरिजीके रजोहरणमें प्रच्छन्न रूपसे डाल दी (देखो जिनप्रभसूरि चरित पृ० १२)। जबकि यह घटना अलाउद्दीन खिलजीके समयकी होनी चाहिये। इसी तरह की कुछ मिलती-जुलती घटना भ० प्रभाचन्द्रके साथ भी जोड़ दी गई हैं। विद्वानोंको इन घटनाचक्रोंपर खूब सावधानीसे विचार कर अन्तिम निर्णय करना चाहिये।

टीका-ग्रंथ

पट्टावलीके उक्त पद्यपरसे जिसमें यह लिखा गया है कि पूज्यपादके शास्त्रोंकी व्याख्यासे उन्हें लोकमें अच्छा यश और ख्याति मिली थी। किन्तु पूज्यपादके 'समाधितंत्र' पर तो पं० प्रभाचन्द्रकी टीका उपलब्ध है। टीका केवल शब्दार्थ मात्रको व्यक्त करती है उसमें कोई ऐसी खास विवेचना नहीं मिलती जिससे उनकी प्रसिद्धिको बल मिल सके। हो सकता है कि वह टीका इन्हीं प्रभाचन्द्रकी हो, आत्मानुशासनकी टीका भी इन्हीं प्रभाचन्द्रकी कृति जान पड़ती है, उसमें भी कोई विशेष व्याख्या उपलब्ध नहीं होती।

रही रत्नकरण्ड श्रावकाचार टीकाकी बात, सो उस टीकाका उल्लेख पं० आशाधरजीने अनगार धर्मामृतकी टीकामें किया है।

'यथाहुस्तत्र भगवन्तः श्रीमत्प्रभेन्दुपादा रत्नकरण्डटीकायां चतुरावर्तत्रितय इत्यादि सूत्रे द्विनिषद्य इत्यस्य व्याख्याने देववन्दनां कुर्वता हि प्रारम्भे समाप्तौ चोपविश्य प्रणामः कर्तव्य इति।'

इन टीकाओंपर विचार करनेसे यह बात तो सहज ही ज्ञात होती है कि इन टीकाओंका आदि-अन्त मंगल और टीकाकी प्रारंभिक सरणीमें बहुत कुछ समानता दृष्टिगोचर होती है। इससे इन टीकाओंका कर्त्ता कोई एक ही प्रभाचन्द्र होना चाहिये। हो सकता है कि टीकाकारकी पहली कृति रत्नकरण्डक टीका ही हो और शेष टीकाएँ बादमें बनी हों। पर इन टीकाओंका कर्ता पं० प्रभाचन्द्र ही है पर रत्नकरण्ड टीकाके कर्ता रक्ताम्बर प्रभाचन्द्र नहीं हो सकते। प्रमेयकमल मार्तण्डके कर्ता प्रभाचन्द्र इनके कर्ता नहीं हो सकते। क्योंकि इन टीकाओंमें विषयका चयन और भाषाका वैसा सामंजस्य अथवा उसकी वह प्रौढ़ता नहीं दिखाई देती, जो प्रमेयकमलमार्तण्ड और न्यायकुमुदचन्द्रमें दिखाई देती है। यह प्रायः सुनिश्चित-सा है कि धारावासी प्रभाचन्द्राचार्य जो माणिक्यनन्दिके शिष्य थे उक्त टीकाओंके कर्ता नहीं हो सकते।

समय-विचार

प्रभाचन्द्रका पट्टावलियोंमें जो समय दिया गया है, वह अवश्य विचारणीय है। उसमें रत्नकीर्तिके पट्टपर बैठनेका समय सं० १३१० तो चिन्तनीय है ही। सं० १४८१ के देवगढ़ वाले शिलालेखमें भी

रत्नकीर्तिके पट्टपर बैठनेका उल्लेख है, पर उसके सही समयका उल्लेख नहीं है। प्रभाचन्द्रके गुरु रत्नकीर्तिका पट्टकाल पट्टावलीमें सं० १२९६-१३१० बतलाया है। यह भी ठीक नहीं जँचता, संभव है वे १४ वर्ष पट्टकालमें रहे हों। किन्तु वे अजमेर पट्टपर स्थित हुए और वहीं उनका स्वर्गवास हुआ। ऐसी स्थितिमें समयकी सीमाको कुछ और बढ़ाकर विचार करना चाहिये, यदि वह प्रमाणों आदिके आधारसे मान्य किया जाय तो उसमें १०-२५ वर्ष की वृद्धि अवश्य होनी चाहिये, जिससे समयकी संगति ठीक बैठ सके। आगे पीछेका सभी समय यदि पुष्कल प्रमाणोंकी रोशनीमें चर्चित होगा, वह प्रायः प्रामाणिक होगा। आशा है विद्वान लोग भट्टारकीय पट्टावलियोंमें दिये हुए समयपर विचार करेंगे, अन्य कोई विशेष जानकारी उपलब्ध हो तो उससे भी मुझे सूचित करेंगे।

पद्मनन्दी

सन्त पद्मनन्दि भट्टारक प्रभाचन्द्रके पट्टधर विद्वान् थे।[1] विशुद्ध सिद्धान्त रत्नाकर और प्रतिभा द्वारा प्रतिष्ठाको प्राप्त हुए थे। उनके शुद्ध हृदयमें आलिङ्गन करती हुई ज्ञानरूपी हंसी आनन्द पूर्वक क्रीड़ा करती थी, वे स्याद्वाद सिन्धुरूप अमृतके वर्धक थे।[2] उन्होंने जिन दीक्षा धारणकर जिनवाणी और पृथ्वीको पवित्र किया था। महाव्रती पुरन्दर तथा शान्तिसे रागांकुर दग्ध करने वाले वे परमहंस निर्ग्रन्थ पुरुषार्थशाली अशेष शास्त्रज्ञ सर्वहित परायण मुनिश्रेष्ठ पद्मनन्दी जयवन्त रहें।[3] इन विशेषणोंसे पद्मनन्दीकी महत्ताका सहज ही बोध हो जाता है। इनकी जाति ब्राह्मण थी। एक बार प्रतिष्ठामहोत्सवके समय व्यवस्थापक गृहस्थकी अविद्यमानतामें प्रभाचन्द्रने उस उत्सवको पट्टाभिषेकका रूप देकर पद्मनन्दीको अपने पट्टपर प्रतिष्ठित किया था। इनके पदपर प्रतिष्ठित होनेका समय पट्टावलीमें सं० १३८५ पौष शुक्ला सप्तमी बतलाया गया है। वे उस पट्टपर संवत् १४७३ तक तो आसीन रहे ही हैं। इसके अतिरिक्त और कितने समय तक रहे यह कुछ ज्ञात नहीं हुआ। और न यह ही ज्ञात हो सका कि उनका स्वर्गवास कहाँ और कब हुआ है?

कुछ विद्वानोंकी यह मान्यता है कि पद्मनन्दी भट्टारक पद पर संवत् १४६५ तक रहे हैं। इस सम्बन्धमें उन्होंने कोई पुष्ट प्रमाण तो नहीं दिया, किन्तु उनका केवल वैसा अनुमान मात्र है। अतः इस मान्यतामें कोई प्रामाणिकता नहीं जान पड़ती। क्योंकि सं० १४७३ की पद्मकीर्ति रचित पार्श्वनाथ चरितकी लिपि प्रशस्तिसे स्पष्ट जाना जाता है कि पद्मनन्दी उस समय तक पट्टपर विराजमान थे, जैसा कि प्रशस्तिके निम्नवाक्यसे प्रकट है—

---

१. श्रीमत्प्रभाचन्द्रमनीन्द्रपट्टे, शश्वत्प्रतिष्ठाप्रतिभागरिष्ठाः।
विशुद्धसिद्धान्तरहस्यरत्नरत्नाकरा नन्दतु पद्मनन्दी॥ —शुभचन्द्र पट्टावली

२. हंसो ज्ञानमरालिकासमसमाश्लेषप्रभुताद्भुतो,
नंदः क्रीडति मानसेति विशदे यस्यानिशं सर्व्वतः।
स्याद्वादामृतसिन्धुवर्धनविधोः श्रीमत्प्रभेन्दुप्रभोः,
पट्टे सूरिमतल्लिका स जयतात् श्रीपद्मनन्दी मुनिः॥ —शुभचन्द्र पट्टावली

३. महाव्रति पुरन्दरः प्रशमदग्धरागांकुरः, स्फुरत्यपरमपौरुषस्थिरशेषशास्त्रार्थवित्।
यशोभरमनोहरी-कृतसमस्तविश्वंभरः, परोपकृतितत्परो जयति पद्मनन्दीश्वरः॥
—श्रावकाचार सारोद्धार प्रशस्ति, जैन ग्रन्थ प्र० सं० भा० १

'सं० १४७३ वर्षे फालग्न (ल्गुन) वदि ९ बुधवासरे। महाराजाधिराज श्रीवीरभान देव......श्रीमूलसंघे बलात्कारगणे सरस्वतीगच्छे नंदीसंघे—'कुन्दकुन्दाचार्यान्वये भ० श्रीरत्नकीर्तिदेवास्तेषां पट्टे भट्टारक श्रीप्रभाचन्द्रदेवास्ततपट्टे भ० श्रीपद्मनन्दि देवास्तेषा पट्ट प्रवर्तमाने....।'

—(मुद्रित पार्श्वनाथ चरित प्रशस्ति)

इससे यह भी ज्ञात होता है कि पद्मनन्दी दीर्घजीवी थे। पट्टावलीमें उनकी आयु निन्यानवे वर्ष अट्ठाईस दिनकी बतलाई गई है। और पट्टकाल पैंसठ वर्ष आठ दिन बतलाया है।

यहाँ इतना और प्रकट कर देना उचित जान पड़ता है कि वि० सं० १४७९में असवाल कवि द्वारा रचित 'पासणाहचरिउ' में पद्मनन्दीके पट्टपर प्रतिष्ठित होनेवाले भ० शुभचन्द्रका उल्लेख निम्न वाक्योंमें किया है—'तह्रो पट्टंवर ससिणामें, सुहससि मुणि पयपंकयचंद हो।' चूंकि सं० १४७४में पद्मनन्दी द्वारा प्रतिष्ठित मूर्तिलेख उपलब्ध है, अतः उससे स्पष्ट ज्ञात होता है कि पद्मनन्दीने सं० १४७४के बाद और सं० १४७९से पूर्व किसी समय शुभचन्द्रको अपने पट्टपर प्रतिष्ठित किया था।

कवि असवालने कुशार्त देशके करहल नगरमें सं० १४७१में होनेवाले प्रतिष्ठोत्सवका उल्लेख किया है। और पद्मनन्दीके शिष्य कवि हल्ल या जयमित्रहल तथा हरिचन्द्र द्वारा रचित 'मल्लिणाह' काव्यकी प्रशंसाका भी उल्लेख किया है। उक्त ग्रन्थ भ० पद्मनन्दीके पदपर प्रतिष्ठित रहते हुए उनके शिष्य द्वारा रचा गया था। कवि हरिचन्दने अपना वर्धमान काव्य भी लगभग उसी समय रचा था। इसीसे उसमें कविने उनका खुला यशोगान किया है:—

"पद्मणंदि मुणिणाह गणिदहु, चरण सरणुगुरु कइ हरिइंदहु।" (वर्धमान काव्य)

आपके अनेक शिष्य थे, जिन्हें पद्मनन्दीने स्वयं शिक्षा देकर विद्वान् बनाया था। भ० शुभचन्द्र, तो उनके पट्टधर शिष्य थे ही, किन्तु आपके अन्य तीन शिष्योंसे भट्टारक पदोंकी तीन परम्पराएँ प्रारम्भ हुई थीं, जिनका आगे शाखा-प्रशाखा रूपमें विस्तार हुआ है। भट्टारक शुभचन्द्र दिल्ली परम्पराके विद्वान् थे। इनके द्वारा 'सिद्धचक्र'की कथा रची गई है[1]। जिसे उन्होंने सम्यग्दृष्टि जालाकके लिये बनाई थी। भट्टारक सकलकीर्तिसे ईडरकी गद्दी और देवेन्द्रकीर्तिसे सूरतकी गद्दीकी स्थापना हुई थी। चूंकि पद्मनन्दी मूलसंघकी परम्पराके विद्वान् थे, अतः इनकी परम्परामें मूलसंघकी परम्पराका विस्तार हुआ। पद्मनन्दी अपने समयके अच्छे विद्वान्, विचारक और प्रभावशाली भट्टारक थे। भ० सकलकीर्तिने इनके पास आठ वर्ष रहकर धर्म, दर्शन, छन्द, काव्य, व्याकरण, कोष और साहित्यादिका ज्ञान प्राप्त किया था और कवितामें निपुणता प्राप्त की थी। भट्टारक सकलकीर्तिने अपनी रचनाओंमें उनका ससम्मान उल्लेख किया है। पद्मनन्दी केवल गद्दीधारी भट्टारक ही नहीं थे, किन्तु जैनसंस्कृतिके प्रचार प्रसारमें सदा सावधान रहते थे।

पद्मनन्दी प्रतिष्ठाचार्य भी थे। इनके द्वारा विभिन्न स्थानोंपर अनेक मूर्तियोंकी प्रतिष्ठा की गई थी। जहाँ वे मंत्र-तंत्र वादी थे, वहाँ वे अत्यन्त विवेकशील और चतुर थे। आपके द्वारा प्रतिष्ठित मूर्तियाँ विभिन्न स्थानोंके मन्दिरोंमें पाई जाती हैं। पाठकोंकी जानकारीके लिये दो मूर्ति लेख नीचे दिये जाते हैं—

---

१. राजस्थान जैन ग्रन्थ-सूची भा० ३ पृ० ८१।
श्री पद्मनन्दी मुनिराजपट्टे शुभोपदेशी शुभचन्द्रदेवः।
श्री सिद्धचक्रस्य कथाऽवतारं चकार भव्यांबुजभानुमाली (जैनग्रन्थ प्र० सं० भा० १ पृ० ८८)

रत्नकीर्तिके पट्टपर बैठनेका उल्लेख है, पर उसके सही समयका उल्लेख नहीं है। प्रभाचन्द्रके गुरु रत्नकीर्तिका पट्टकाल पट्टावलीमें सं० १२९६-१३१० बतलाया है। यह भी ठीक नहीं जँचता, संभव है वे १४ वर्ष पट्टकालमें रहे हों। किन्तु वे अजमेर पट्टपर स्थित हुए और वहीं उनका स्वर्गवास हुआ। ऐसी स्थितिमें समयकी सीमाको कुछ और बढ़ाकर विचार करना चाहिये, यदि वह प्रमाणों आदिके आधारसे मान्य किया जाय तो उसमें १०-२५ वर्ष की वृद्धि अवश्य होनी चाहिये, जिससे समयकी संगति ठीक बैठ सके। आगे पीछेका सभी समय यदि पुष्कल प्रमाणोंकी रोशनीमें चर्चित होगा, वह प्रायः प्रामाणिक होगा। आशा है विद्वान लोग भट्टारकीय पट्टावलियोंमें दिये हुए समयपर विचार करेंगे, अन्य कोई विशेष जानकारी उपलब्ध हो तो उससे भी मुझे सूचित करेंगे।

पद्मनन्दी

सन्त पद्मनन्दि भट्टारक प्रभाचन्द्रके पट्टधर विद्वान् थे।[1] विशुद्ध सिद्धान्त रत्नाकर और प्रतिभा द्वारा प्रतिष्ठाको प्राप्त हुए थे। उनके शुद्ध हृदयमें आलिङ्गन करती हुई ज्ञानरूपी हंसी आनन्द पूर्वक क्रीड़ा करती थी, वे स्याद्वाद सिन्धुरूप अमृतके वर्धक थे।[2] उन्होंने जिन दीक्षा धारणकर जिनवाणी और पृथ्वीको पवित्र किया था। महाव्रती पुरन्दर तथा शान्तिसे रागांकुर दग्ध करने वाले वे परमहंस निर्ग्रन्थ पुरुषार्थशाली अशेष शास्त्रज्ञ सर्वहित परायण मुनिश्रेष्ठ पद्मनन्दी जयवन्त रहें।[3] इन विशेषणोंसे पद्मनन्दीकी महत्ताका सहज ही बोध हो जाता है। इनकी जाति ब्राह्मण थी। एक बार प्रतिष्ठामहोत्सवके समय व्यवस्थापक गृहस्थकी अविद्यमानतामें प्रभाचन्द्रने उस उत्सवको पट्टाभिषेकका रूप देकर पद्मनन्दीको अपने पट्टपर प्रतिष्ठित किया था। इनके पदपर प्रतिष्ठित होनेका समय पट्टावलीमें सं० १३८५ पौष शुक्ला सप्तमी बतलाया गया है। वे उस पट्टपर संवत् १४७३ तक तो आसीन रहे ही हैं। इसके अतिरिक्त और कितने समय तक रहे यह कुछ ज्ञात नहीं हुआ। और न यह ही ज्ञात हो सका कि उनका स्वर्गवास कहाँ और कब हुआ है?

कुछ विद्वानोंकी यह मान्यता है कि पद्मनन्दी भट्टारक पद पर संवत् १४६५ तक रहे हैं। इस सम्बन्धमें उन्होंने कोई पुष्ट प्रमाण तो नहीं दिया, किन्तु उनका केवल वैसा अनुमान मात्र है। अतः इस मान्यतामें कोई प्रामाणिकता नहीं जान पड़ती। क्योंकि सं० १४७३ की पद्मकीर्ति रचित पार्श्वनाथ चरितकी लिपि प्रशस्तिसे स्पष्ट जाना जाता है कि पद्मनन्दी उस समय तक पट्टपर विराजमान थे, जैसा कि प्रशस्तिके निम्नवाक्यसे प्रकट है—

---

१. श्रीमत्प्रभाचन्द्रमनीन्द्रपट्टे, शश्वत्प्रतिष्ठाप्रतिभागरिष्ठाः।
विशुद्धसिद्धान्तरहस्यरत्नरत्नाकरा नन्दतु पद्मनन्दी॥ —शुभचन्द्र पट्टावली

२. हंसो ज्ञानमरालिकासमसमाश्लेषप्रभुताद्भुतो,
नंदः क्रीडति मानसेति विशदे यस्यानिशं सर्व्वतः।
स्याद्वादामृतसिन्धुवर्धनविधौः श्रीमत्प्रभेन्दुप्रभोः,
पट्टे सूरिमतल्लिका स जयतात् श्रीपद्मनन्दी मुनिः॥ —शुभचन्द्र पट्टावली

३. महाव्रति पुरन्दरः प्रशमदग्धरागांकुरः, स्फुरत्यपरमपौरुषस्थिरशेषशास्त्रार्थवित्।
यशोभरमनोहरी-कृतसमस्तविश्वंभरः, परोपकृतितत्परो जयति पद्मनन्दीश्वरः॥
—श्रावकाचार सारोद्धार प्रशस्ति, जैन ग्रन्थ प्र० सं० भा० १

'सं० १४७३ वर्षे फालग्न (ल्गुन) वदि ९ बुधवासरे। महाराजाधिराज श्रीवीरभान देव……श्रीमूलसंघे बलात्कारगणे सरस्वतीगच्छे नंदीसंघे—'कुन्दकुन्दाचार्यान्वये भ० श्रीरत्नकीर्तिदेवास्तेषां पट्टे भट्टारक श्रीप्रभाचन्द्रदेवास्ततपट्टे भ० श्रीपद्मनन्दि देवास्तेषा पट्ट प्रवर्तमाने…।'

—(मुद्रित पार्श्वनाथ चरित प्रशस्ति)

इससे यह भी ज्ञात होता है कि पद्मनन्दी दीर्घजीवी थे। पट्टावलीमें उनकी आयु निन्यानवे वर्ष अट्ठाईस दिनकी बतलाई गई है। और पट्टकाल पैंसठ वर्ष आठ दिन बतलाया है।

यहाँ इतना और प्रकट कर देना उचित जान पड़ता है कि वि० सं० १४७९में असवाल कवि द्वारा रचित 'पासणाहचरिउ' में पद्मनन्दीके पट्टपर प्रतिष्ठित होनेवाले भ० शुभचन्द्रका उल्लेख निम्न वाक्योंमें किया है—'तहो पट्टंवर ससिणामें, सुहससि मुणि पयपंकयचंद हो।' चूंकि सं० १४७४में पद्मनन्दी द्वारा प्रतिष्ठित मूर्तिलेख उपलब्ध है, अतः उससे स्पष्ट ज्ञात होता है कि पद्मनन्दीने सं० १४७४के बाद और सं० १४७९से पूर्व किसी समय शुभचन्द्रको अपने पट्टपर प्रतिष्ठित किया था।

कवि असवालने कुशार्त देशके करहल नगरमें सं० १४७१में होनेवाले प्रतिष्ठोत्सवका उल्लेख किया है। और पद्मनन्दीके शिष्य कवि हल्ल या जयमित्रहल तथा हरिचन्द्र द्वारा रचित 'मल्लिणाह' काव्यकी प्रशंसाका भी उल्लेख किया है। उक्त ग्रन्थ भ० पद्मनन्दीके पदपर प्रतिष्ठित रहते हुए उनके शिष्य द्वारा रचा गया था। कवि हरिचन्दने अपना वर्धमान काव्य भी लगभग उसी समय रचा था। इसीसे उसमें कविने उनका खुला यशोगान किया है:—

"पद्मणंदि मुणिणाह गणिंदहु, चरण सरणुगुरु कइ हरिइंदहु।" (वर्धमान काव्य)

आपके अनेक शिष्य थे, जिन्हें पद्मनन्दीने स्वयं शिक्षा देकर विद्वान् बनाया था। भ० शुभचन्द्र, तो उनके पट्टधर शिष्य थे ही, किन्तु आपके अन्य तीन शिष्योंसे भट्टारक पदोंकी तीन परम्पराएँ प्रारम्भ हुई थीं, जिनका आगे शाखा-प्रशाखा रूपमें विस्तार हुआ है। भट्टारक शुभचन्द्र दिल्ली परम्पराके विद्वान् थे। इनके द्वारा 'सिद्धचक्र'की कथा रची गई है[1]। जिसे उन्होंने सम्यग्दृष्टि जालाकके लिये बनाई थी। भट्टारक सकलकीर्तिसे ईडरकी गद्दी और देवेन्द्रकीर्तिसे सूरतकी गद्दीकी स्थापना हुई थी। चूंकि पद्मनन्दी मूलसंघकी परम्पराके विद्वान् थे, अतः इनकी परम्परामें मूलसंघकी परम्पराका विस्तार हुआ। पद्मनन्दी अपने समयके अच्छे विद्वान्, विचारक और प्रभावशाली भट्टारक थे। भ० सकलकीर्तिने इनके पास आठ वर्ष रहकर धर्म, दर्शन, छन्द, काव्य, व्याकरण, कोष और साहित्यादिका ज्ञान प्राप्त किया था और कवितामें निपुणता प्राप्त की थी। भट्टारक सकलकीर्तिने अपनी रचनाओंमें उनका ससम्मान उल्लेख किया है। पद्मनन्दी केवल गद्दीधारी भट्टारक ही नहीं थे, किन्तु जैनसंस्कृतिके प्रचार प्रसारमें सदा सावधान रहते थे।

पद्मनन्दी प्रतिष्ठाचार्य भी थे। इनके द्वारा विभिन्न स्थानोंपर अनेक मूर्तियोंकी प्रतिष्ठा की गई थी। जहाँ वे मंत्र-तंत्र वादी थे, वहाँ वे अत्यन्त विवेकशील और चतुर थे। आपके द्वारा प्रतिष्ठित मूर्तियाँ विभिन्न स्थानोंके मन्दिरोंमें पाई जाती हैं। पाठकोंकी जानकारीके लिये दो मूर्ति लेख नीचे दिये जाते हैं—

---

१. राजस्थान जैन ग्रन्थ-सूची भा० ३ पृ० ८१।
श्री पद्मनन्दी मुनिराजपट्टे शुभोपदेशी शुभचन्द्रदेवः।
श्री सिद्धचक्रस्य कथाऽवतारं चकार भव्यांबुजभानुमाली (जैनग्रन्थ प्र० सं० भा० १ पृ० ८८)

१. आदिनाथ—ओं संवत् १४५० बैशाख सुदी १२ गुरौ श्री चाहुवाणवंश कुशेशयमार्तण्ड सारवै विक्रमन्य श्रीमत स्वरूप भूपान्वय झुंडदेवात्मजस्य शुक्लस्य श्रीसुवानृपतेः राज्ये प्रवर्तमान श्रीमूलसंघे भ० श्रीप्रभाचन्द्र देव तत्पट्टे श्रीपद्मनन्दिदेव तदुपदेशे गोलाराडान्वपे········।

—(भट्टारक सम्प्रदाय ८९२)

२. **अरहंत**—हरितवर्ण, कृष्णमूर्ति—सं० १४६३ वर्षे माघसुदी १३ शुक्ले श्रीमूलसंघे पट्टाचार्य श्रीपद्मनन्दिदेवा गोलाराडान्वये साधु नागदेव सुत········।

—(इटावाके जैनमूर्ति लेख—प्राचीन जैनलेख सं० पृ० ३८)

ऐतिहासिक घटना

भ० पद्मनन्दीके सांनिध्यमें दिल्लीका एक संघ गिरनारजीकी यात्राको गया था। उसी समय श्वेताम्बर सम्प्रदायका भी एक संघ उक्त तीर्थकी यात्रार्थ वहाँ आया हुआ था। उस समय दोनों संघोंमें यह विवाद छिड़ गया कि पहले कौन वन्दना करे, जब विवादने तूल पकड़ लिया और कुछ भी निर्णय नहीं हो सका, तब उसके शमनार्थ यह युक्ति सोची गई कि जो संघ सरस्वतीसे अपनेको 'आद्य' कहलायेगा, वही संघ पहले यात्राको जा सकेगा। अतः भ० पद्मनन्दीने पाषाणकी सरस्वती देवीके मुखसे 'आद्य दिगम्बर' शब्द कहला दिया। परिणामस्वरूप दिगम्बरोंने पहले यात्रा की, और भगवान् नेमिनाथकी भक्तिपूर्वक पूजा की। उसके वाद श्वेताम्बर सम्प्रदायने की। उसी समयसे बलात्कारगणकी प्रसिद्धि मानी जाती है। वे पद्य इस प्रकार है—

पद्मनन्दिगुरुर्जातो बलात्कारगणाग्रणी। पाषाणघटिता येन वादिता श्रीसरस्वती ।।
ऊर्जयन्तगिरौ तेन गच्छः सारस्वतोऽभवत्। अतस्तस्मै मुनीन्द्राय नमः श्रीपद्मनन्दिने ।।

यह ऐतिहासिक घटना प्रस्तुत पद्मनन्दीके जीवनके साथ घटित हुई थी। पद्‌मनन्दी नाम साम्यके कारण कुछ विद्वानोंने इस घटनाका सम्बन्ध आचार्य प्रवर कुन्दकुन्दके साथ जोड़ दिया। वह ठीक नहीं है क्योंकि कुन्दकुन्दाचार्य मूलसंघके प्रवर्तक प्राचीन मुनिपुंगव हैं और घटनाक्रम अर्वाचीन है। ऐसी स्थितिमें यह घटना आ० कुन्दकुन्दके समयकी नहीं है। इसका सम्बन्ध तो भट्टारक पद्‌मनन्दीसे है।

रचनाएँ

पद्‌मनन्दीकी अनेक रचनाएँ हैं। जिनमें देव-शास्त्र-गुरु पूजन संस्कृत, सिद्धपूजा संस्कृत, पद्‌मनन्दि-श्रावकाचार सारोद्धार, वर्धमान काव्य, जीरापल्लि पार्श्वनाथ स्तोत्र और भावना चतुर्विंशति प्रधान हैं। इनके अतिरिक्त वीतरागस्तोत्र, शान्तिनाथस्तोत्र भी पद्‌मनन्दीकृत हैं। पर दोनों स्तोत्रों, देव-शास्त्र-गुरुपूजा, तथा सिद्धपूजामें पद्‌मनन्दिका नामोल्लेख तो मिलता है। जबकि अन्य रचनाओंमें भ० प्रभाचन्द्रका स्पष्ट उल्लेख है, इसलिये उन रचनाओंको विना किसी ठोस आधारके प्रस्तुत पद्‌मनन्दीकी ही रचनाएँ नहीं कहा जा सकता। हो सकता है वे भी इन्हींकी कृति रही हों।

श्रावकाचार सारोद्धार संस्कृत भाषाका पद्यबद्ध ग्रन्थ है, उसमें तीन परिच्छेद हैं जिनमें श्रावक धर्मका अच्छा विवेचन किया गया है। इस ग्रन्थके निर्माणमें लंबकंचुक कुलान्वयी (लमेचूवंशज) साहू वासाधर प्रेरक हैं। प्रशस्तिमें उनके पितामहका भी नामोल्लेख किया है जिन्होंने 'सूपकारसार' नामक ग्रन्थकी रचना की थी। यह ग्रन्थ अभी अनुपलब्ध है। विद्वानोंको उसका अन्वेषण करना चाहिए। इस ग्रन्थकी अन्तिम प्रशस्तिमें कर्ताने साहू वासाधरके परिवारका अच्छा परिचय कराया है। और बतलाया है कि गोकर्णके पुत्र

सोमदेव हुए, जो चन्द्रवाडके राजा अभयचन्द्र और जयचन्द्रके समय प्रधानमन्त्री थे। सोमदेवकी पत्नीका नाम प्रेमसिरि था, उससे सात पुत्र उत्पन्न हुए थे। वासाधर[1], हरिराज, प्रह्लाद, महराज, भवराज, रत्नाख्य और सतनाख्य। इनमेंसे ज्येष्ठ पुत्र वासाधर सबसे अधिक बुद्धिमान, धर्मात्मा और कर्तव्यपरायण था। इनकी प्रेरणा और आग्रहसे मुनि पद्मनन्दीने उक्त श्रावकाचारकी रचना की थी। साहू वासाधरने चन्द्रवाडमें एक जिनमन्दिर बनवाया था और उसकी प्रतिष्ठा विधि भी सम्पन्न की थी। कवि धनपालके शब्दोंमें वासाधर सम्यग्दृष्टि, जिनचरणोंका भक्त, जैनधर्मके पालनमें तत्पर, दयालु, बहुलोक मित्र, मिथ्यात्व-रहित और विशुद्ध चित्तवाला था। भ० प्रभाचन्द्रके शिष्य धनपालने भी सं० १४५४ में चन्द्रवाड नगरमें उक्त वासाधरकी प्रेरणासे अपभ्रंश भाषामें बाहुबलीचरितकी रचना की थी।[2]

दूसरी कृति वर्धमान काव्य या जिनरात्रि कथा है, जिसके प्रथम सर्गमें ३५९ और दूसरे सर्गमें २०५ श्लोक हैं। जिनमें अन्तिम तीर्थंकर भगवान् महावीरका चरित अंकित किया गया है, किन्तु ग्रन्थमें रचनाकाल नहीं दिया जिससे उसका निश्चित समय बतलाना कठिन है। इस ग्रन्थकी एक प्रति जयपुरके पार्श्वनाथ दि० जैनमन्दिरके शास्त्र भण्डारमें अवस्थित है जिसका लिपिकाल संवत् १५१८ है और दूसरी प्रति सं० १५२२ की लिखी हुई गोपीपुरा सूरतके शास्त्रभण्डारमें सुरक्षित है। इनके अतिरिक्त 'अनन्तव्रतकथा' भी भ० प्रभाचन्द्रके शिष्य पद्मनन्दीकी बनाई उपलब्ध है। जिसमें ८५ श्लोक हैं।

पद्मनन्दीने अनेक देशों, ग्रामों, नगरों आदिमें विहारकर जनकल्याणका कार्य किया है, लोकोपयोगी साहित्यका निर्माण तथा उपदेशों द्वारा सन्मार्ग दिखलाया है। इनके शिष्य-प्रशिष्योंसे जैनधर्म और संस्कृतिकी महती सेवा हुई। वर्षोंतक साहित्यका निर्माण, शास्त्रभण्डारोंका संकलन और प्रतिष्ठादि कार्यों द्वारा जैन-संस्कृतिके प्रचारमें बल मिला है। इसी तरहके अन्य अनेक सन्त हैं जिनका परिचय भी जनसाधारणतक नहीं पहुँचा है। इसी दृष्टिकोणको सामने रखकर पद्मनन्दीका परिचय दिया गया है। चूँकि पद्मनन्दी मूल-संघके विद्वान् थे, वे दिगम्बर वेषमें रहते थे और अपनेको मुनि कहते थे। और वे यथाविधि यथाशक्य आचार विधिका पालनकर जीवनयापन करते थे। आपकी शिष्य परम्पराके अनेक विद्वानोंने जैनसाहित्यकी महान् सेवा की है। राजस्थानके शास्त्रभण्डारोंमें मुनि पद्मनन्दीके शिष्य-प्रशिष्योंकी अपभ्रंश, प्राकृत और संस्कृत, राजस्थानी-गुजराती आदिमें रची हुई अनेक कृतियाँ मिलती हैं।

●

---

१. श्री लम्बकंचुकुलपद्मविकासभानुः, सोमात्मजो दुरितदारुचयकृशानुः।
धर्मैकसाधनपरो भुवि भव्यबन्धुर्वासाधरो विजयते गुणरत्नसिन्धुः॥
—बाहुबलीचरित सन्धि ४

२. जिणणाहचरणभत्तो जिणधम्मपरो दयालोए।
सिरिसोमदेवतणओ णंदउ वासद्धरो णिच्चं॥
सम्मत्तजुत्तो जिणपायभक्को दयालुरत्तो बहुलोयमित्तो।
मिच्छत्तचत्तो सुविशुद्धचित्तो वासाधरो णंदउ पुण्णचित्तो॥
—बाहुबलीचरित सन्धि ३

१. **आदिनाथ**—ओं संवत् १४५० बैशाख सुदी १२ गुरौ श्री चाहुवाणवंश कुशेशयमार्तण्ड सारवै विक्रमन्य श्रीमत स्वरूप भूपान्वय झुंडदेवात्मजस्य शुक्लस्य श्रीसुवानृपतेः राज्ये प्रवर्तमान श्रीमूलसंघे भ० श्रीप्रभाचन्द्र देव तत्पट्टे श्रीपद्मनन्दिदेव तदुपदेशे गोलाराडान्वये·······।

—(भट्टारक सम्प्रदाय ८९२)

२. **अरहंत**—हरितवर्ण, कृष्णमूर्ति—सं० १४६३ वर्षे माघसुदी १३ शुक्ले श्रीमूलसंघे पट्टाचार्य श्रीपद्मनन्दिदेवा गोलाराडान्वये साधु नागदेव सुत·······।

—(इटावाके जैनमूर्ति लेख—प्राचीन जैनलेख सं० पृ० ३८)

ऐतिहासिक घटना

भ० पद्मनन्दीके सांनिध्यमें दिल्लीका एक संघ गिरनारजीकी यात्राको गया था। उसी समय श्वेताम्बर सम्प्रदायका भी एक संघ उक्त तीर्थकी यात्रार्थ वहाँ आया हुआ था। उस समय दोनों संघोंमें यह विवाद छिड़ गया कि पहले कौन वन्दना करे, जब विवादने तूल पकड़ लिया और कुछ भी निर्णय नहीं हो सका, तब उसके शमनार्थ यह युक्ति सोची गई कि जो संघ सरस्वतीसे अपनेको 'आद्य' कहलायेगा, वही संघ पहले यात्राको जा सकेगा। अतः भ० पद्मनन्दीने पाषाणकी सरस्वती देवीके मुखसे 'आद्य दिगम्बर' शब्द कहला दिया। परिणामस्वरूप दिगम्बरोंने पहले यात्रा की, और भगवान् नेमिनाथकी भक्तिपूर्वक पूजा की। उसके बाद श्वेताम्बर सम्प्रदायने की। उसी समयसे बलात्कारगणकी प्रसिद्धि मानी जाती है। वे पद्य इस प्रकार हैं—

पद्मनन्दिगुरुर्जातो बलात्कारगणाग्रणी। पाषाणघटिता येन वादिता श्रीसरस्वती ॥
ऊर्जयन्तगिरौ तेन गच्छः सारस्वतोऽभवत्। अतस्तस्मै मुनीन्द्राय नमः श्रीपद्मनन्दिने ॥

यह ऐतिहासिक घटना प्रस्तुत पद्मनन्दीके जीवनके साथ घटित हुई थी। पद्मनन्दी नाम साम्यके कारण कुछ विद्वानोंने इस घटनाका सम्बन्ध आचार्य प्रवर कुन्दकुन्दके साथ जोड़ दिया। वह ठीक नहीं है क्योंकि कुन्दकुन्दाचार्य मूलसंघके प्रवर्तक प्राचीन मुनिपुंगव हैं और घटनाक्रम अर्वाचीन है। ऐसी स्थितिमें यह घटना आ० कुन्दकुन्दके समयकी नहीं है। इसका सम्बन्ध तो भट्टारक पद्मनन्दीसे है।

रचनाएँ

पद्मनन्दीकी अनेक रचनाएँ हैं। जिनमें देव-शास्त्र-गुरु पूजन संस्कृत, सिद्धपूजा संस्कृत, पद्मनन्दि-श्रावकाचार सारोद्धार, वर्धमान काव्य, जीरापल्लि पार्श्वनाथ स्तोत्र और भावना चतुर्विंशति प्रधान हैं। इनके अतिरिक्त वीतरागस्तोत्र, शान्तिनाथस्तोत्र भी पद्मनन्दीकृत हैं। पर दोनों स्तोत्रों, देव-शास्त्र-गुरुपूजा, तथा सिद्धपूजामें पद्मनन्दिका नामोल्लेख तो मिलता है। जबकि अन्य रचनाओंमें भ० प्रभाचन्द्रका स्पष्ट उल्लेख है, इसलिये उन रचनाओंको बिना किसी ठोस आधारके प्रस्तुत पद्मनन्दीकी ही रचनाएँ नहीं कहा जा सकता। हो सकता है वे भी इन्हींकी कृति रही हों।

श्रावकाचार सारोद्धार संस्कृत भाषाका पद्यबद्ध ग्रन्थ है, उसमें तीन परिच्छेद हैं जिनमें श्रावक धर्मका अच्छा विवेचन किया गया है। इस ग्रन्थके निर्माणमें लंबकंचुक कुलान्वयी (लमेचूवंशज) साहू वासाधर प्रेरक हैं। प्रशस्तिमें उनके पितामहका भी नामोल्लेख किया है जिन्होंने 'सूपकारसार' नामक ग्रन्थकी रचना की थी। यह ग्रन्थ अभी अनुपलब्ध है। विद्वानोंको उसका अन्वेषण करना चाहिए। इस ग्रन्थकी अन्तिम प्रशस्तिमें कर्त्ताने साहू वासाधरके परिवारका अच्छा परिचय कराया है। और बतलाया है कि गोकर्णके पुत्र

सोमदेव हुए, जो चन्द्रवाडके राजा अभयचन्द्र और जयचन्द्रके समय प्रधानमन्त्री थे। सोमदेवकी पत्नीका नाम प्रेमसिरि था, उससे सात पुत्र उत्पन्न हुए थे। वासाधर[1], हरिराज, प्रह्लाद, महराज, भवराज, रत्नाख्य और सतनाख्य। इनमेंसे ज्येष्ठ पुत्र वासाधर सबसे अधिक बुद्धिमान, धर्मात्मा और कर्तव्यपरायण था। इनकी प्रेरणा और आग्रहसे मुनि पद्मनन्दीने उक्त श्रावकाचारकी रचना की थी। साहू वासाधरने चन्द्रवाडमें एक जिनमन्दिर बनवाया था और उसकी प्रतिष्ठा विधि भी सम्पन्न की थी। कवि धनपालके शब्दोंमें वासाधर सम्यग्दृष्टि, जिनचरणोंका भक्त, जैनधर्मके पालनमें तत्पर, दयालु, बहुलोक मित्र, मिथ्यात्व-रहित और विशुद्ध चित्तवाला था। भ० प्रभाचन्द्रके शिष्य धनपालने भी सं० १४५४ में चन्द्रवाड नगरमें उक्त वासाधरकी प्रेरणासे अपभ्रंश भाषामें बाहुबलीचरितकी रचना की थी।[2]

दूसरी कृति वर्धमान काव्य या जिनरात्रि कथा है, जिसके प्रथम सर्गमें ३५९ और दूसरे सर्गमें २०५ श्लोक हैं। जिनमें अन्तिम तीर्थंकर भगवान् महावीरका चरित अंकित किया गया है, किन्तु ग्रन्थमें रचनाकाल नहीं दिया जिससे उसका निश्चित समय बतलाना कठिन है। इस ग्रन्थकी एक प्रति जयपुरके पार्श्वनाथ दि० जैनमन्दिरके शास्त्र भण्डारमें अवस्थित है जिसका लिपिकाल संवत् १५१८ है और दूसरी प्रति सं० १५२२ की लिखी हुई गोपीपुरा सूरतके शास्त्रभण्डारमें सुरक्षित है। इनके अतिरिक्त 'अनन्तव्रतकथा' भी भ० प्रभाचन्द्रके शिष्य पद्मनन्दीकी बनाई उपलब्ध है। जिसमें ८५ श्लोक हैं।

पद्मनन्दीने अनेक देशों, ग्रामों, नगरों आदिमें विहारकर जनकल्याणका कार्य किया है, लोकोपयोगी साहित्यका निर्माण तथा उपदेशों द्वारा सन्मार्ग दिखलाया है। इनके शिष्य-प्रशिष्योंसे जैनधर्म और संस्कृतिकी महती सेवा हुई। वर्षोंतक साहित्यका निर्माण, शास्त्रभण्डारोंका संकलन और प्रतिष्ठादि कार्यों द्वारा जैन-संस्कृतिके प्रचारमें बल मिला है। इसी तरहके अन्य अनेक सन्त हैं जिनका परिचय भी जनसाधारणतक नहीं पहुँचा है। इसी दृष्टिकोणको सामने रखकर पद्मनन्दीका परिचय दिया गया है। चूँकि पद्मनन्दी मूल-संघके विद्वान् थे, वे दिगम्बर वेषमें रहते थे और अपनेको मुनि कहते थे। और वे यथाविधि यथाशक्य आचार विधिका पालनकर जीवनयापन करते थे। आपकी शिष्य परम्पराके अनेक विद्वानोंने जैनसाहित्यकी महान् सेवा की है। राजस्थानके शास्त्रभण्डारोंमें मुनि पद्मनन्दीके शिष्य-प्रशिष्योंकी अपभ्रंश, प्राकृत और संस्कृत, राजस्थानी-गुजराती आदिमें रची हुई अनेक कृतियाँ मिलती हैं।

●

---

१. श्री लम्बकंचुकुलपद्मविकासभानुः, सोमात्मजो दुरितदारुचयकृशानुः।
धर्मैकसाधनपरो भुवि भव्यबन्धुर्वासाधरो विजयते गुणरत्नसिन्धुः॥
—बाहुबलीचरित सन्धि ४

२. जिणणाहचरणभत्तो जिणधम्मपरो दयालोए।
सिरिसोमदेवतणओ णंदउ वासद्धरो णिच्चं॥
सम्मत्तजुत्तो जिणपायभत्तो दयालुरत्तो बहुलोयमित्तो।
मिच्छत्तचत्तो सुविशुद्धचित्तो वासाधरो णंदउ पुण्णचित्तो॥
—बाहुबलीचरित सन्धि ३

अमरु-शतककी सांस्कृतिक पृष्ठभूमि

डॉ० अजयमित्र शास्त्री

१. इस विषयमें दो मत नहीं हो सकते कि अमरुक[1] कविका अमरुक-शतक संस्कृतके शृङ्गारपरक गीतिकाव्योंमें बेजोड़ है। कालिदासोत्तर कालके गीतिकाव्योंके रचयिताओंमें अमरुकके श्लोक संस्कृत काव्य-शास्त्रीय ग्रन्थोंमें सबसे अधिक उद्धृत मिलते हैं। एक श्लोकके दायरेमें प्रेमके विविध भावों और परिस्थितियोंके आकर्षक चित्र प्रस्तुत करने वाले श्लोकोंके सङ्ग्रहके रूपमें संस्कृत साहित्यमें अमरुक शतकका उतना ही उच्च स्थान है जितना प्राकृत साहित्यमें हाल सातवाहनकी गाथासप्तशतीका। काव्यरसिकोंके बीच अमरुकको कितना अधिक आदर प्राप्त था यह स्पष्ट करनेके लिए आनन्दवर्धनका मत उद्धृत करना पर्याप्त होगा। ध्वन्यालोकमें आनन्दवर्धनने अमरुकका उल्लेख ऐसे कवियोंके उदाहरणके रूपमें किया है जिनके मुक्तक उतने ही रसपूर्ण होते हैं जितने कि प्रबन्धकाव्य। उन्होंने लिखा है कि अमरुक कविके शृङ्गाररसको प्रवाहित करने वाले मुक्तक वस्तुतः अपने आपमें प्रबन्ध हैं।[2] भरत टीकाकारने कहा है कि अमरुकका एक एक श्लोक सौ प्रबन्धोंके बराबर है।[3]

२. दुर्दैववश अनेक प्राचीन साहित्यकारोंकी भाँति अमरुकके जीवन और कालके विषयमें भी हमारी जानकारी नहींके बराबर है, और निश्चित जानकारीके अभावमें कविके जीवनके सम्बन्धमें अनेक किंवदन्तियां प्रचलित हो गयी हैं। उदाहरणार्थ शङ्करदिग्विजयमें माधवने एक किंवदन्तीका उल्लेख किया है जिसके अनुसार मण्डनमिश्रकी पत्नी भारतीके प्रेमविषयक प्रश्नोंका उत्तर देनेके लिए आवश्यक कामशास्त्र विषयक जानकरी प्राप्त करनेके उद्देश्यसे शङ्कराचार्य राजा अमरुके मृतशरीरमें प्रविष्ट हुए, उन्होंने अन्तःपुरकी सौ युवतियोंसे रति की और वात्स्यायन कामसूत्र तथा उसकी टीकाका अनुशीलन कर कामशास्त्रपर एक अनुपम ग्रन्थकी रचना की। इस किंवदन्तीके आधारपर परवर्तीकालमें यह विश्वास प्रचलित हुआ कि काश्मीरके राजा अमरुकके रूपमें प्रच्छन्न शङ्कराचार्य ही अमरुशतकके रचयिता थे। इस किंवदन्तीका उल्लेख अमरुशतक के टीकाकार रविचन्दने किया है।[4] यह किंवदन्ती अन्य महापुरुषोंके सम्बन्धमें प्रचलित असङ्ख्य अनर्गल एवम् निराधार विश्वासोंकी श्रेणीकी है। ऐतिहासिक दृष्टिसे इसका कुछ भी महत्त्व नहीं है।

३. अमरुक भारतके किस प्राप्तमें हुआ, यह भी ज्ञात नहीं है। श्री चिन्तामणि रामचन्द्र देवधरने अत्यन्त आधारहीन तर्कोंके बलपर यह सम्भावना व्यक्त की है कि अमरुक दाक्षिणात्य था। उन्होंने यहाँ तक

---

१. अमरु, अमरुक, अमर, अमरक, और अम्रक ये कविके नामके अन्य रूप हैं। द्रष्टव्य—चि० रा० देवधर (सम्पादक), वेमभूपालकी शृङ्गारदीपिका सहित अमरुशतक (पूना, १९५९), प्रस्तावना, पृ०९।

२. मुक्तकेषु प्रबन्धेष्विव रसबन्धाभिनिवेशिनः। यथा आमरुकस्य कवेर्मुक्तकाः शृङ्गाररसस्यन्दिनः प्रबन्धाय-मानाः प्रसिद्धा एव।

३. अमरुककवेरेकः श्लोकः प्रबन्धशतायते।

४. चि० रा० देवधर, पूर्वोक्त, प्रस्तावना, पृ० ११-१२।

कल्पना की है कि अमरुक केवल दाक्षिणात्य ही नहीं अपितु चालुक्य राजधानी वातापि (आधुनिक बादामी)का निवासी था ।[1] किन्तु उनकी यह धारणा समीचीन प्रतीत नहीं होती ।

इसके विपरीत अमरुकके नामकी ध्वनि जो शङ्कुक जैसे नामोंसे मिलती जुलती है और इस तथ्यसे कि अमरुकका सनाम उल्लेख और उसके श्लोकोंको उद्धृत करने वाले प्राचीनतम काव्यशास्त्री कश्मीरी थे, ऐसा लगता है कि अमरुक भी कश्मीरी था । किन्तु निश्चित प्रमाणोंके अभावमें इस सम्बन्धमें कोई भी मत पूर्णतः प्रामाणिक नहीं माना जा सकता ।

४. पीटर्सन द्वारा अमरुशतककी एक टीकासे उद्धृत एक श्लोकके अनुसार अमरुक जातिसे स्वर्णकार था ।[2] यद्यपि यह असम्भव नहीं है तथापि इस विषयमें निश्चित रूपसे कुछ भी कहना कठिन है क्योंकि अमरुकके कई शताब्दियों पश्चात् हुए इस टीकाकारको कविके जीवन विषयक सत्य जानकारी थी या नहीं, यह जाननेका कोई साधन नहीं है ।[3]

५. अमरुकने अपने शतकके प्रथम श्लोकमें अम्बिका और दूसरे श्लोकमें शम्भुकी वन्दना की है । अतः यह निर्विवाद रूपसे कहा जा सकता है कि वह शैव था ।

६. अमरुकका सनाम उल्लेख सर्वप्रथम आनन्दवर्धन (ई० ८५०के आसपास)ने किया है ।[4] उसके समयमें अमरुकके महान् यशको देखते हुए लगता है कि वह आनन्दवर्धनसे बहुत पहिले हुआ । इसके पूर्व वामन (ई०८००)ने बिना कवि और उसकी रचनाका उल्लेख किये अमरु-शतकसे तीन श्लोक उद्धृत किये हैं ।[5] इससे यह सूचित होता है कि अमरुकका काल आठवीं शताब्दीके पूर्वार्धके पश्चात् नहीं रखा जा सकता । सम्भव है कि वह बहुत पहले रहा हो ।

७. अमरुक शतक एकाधिक संस्करणोंमें उपलब्ध है । आर० साइमनने इस प्रश्नका विस्तृत अध्ययन कर अधोलिखित चार संस्करणोंका उल्लेख किया है जो एक दूसरेसे श्लोक सङ्ख्या और श्लोक क्रममें भिन्न हैं—

१. वेम भूपाल[6] और रामानन्दनाथकी टीका सहित दाक्षिणात्य संस्करण,

२. रविचन्द्र[7]की टीका सहित पूर्वी अथवा बंगाली संस्करण,

३. अर्जुनवर्मदेव[8] और कोक सम्भव[9]की टीका सहित पश्चिमी संस्करण, तथा

---

१. चि० रा० देवधर, अमरुशतक, मराठी अनुवाद, प्रस्तावना, पृ० ५ ।

२. विश्वप्रख्यातनाडिन्धमकुलतिलको विश्वकर्मा द्वितीयः ।

३. अमरुक द्वारा विशिखा = स्वर्णकारोंकी गली (वेमभूपालका श्लोक क्र०८७) और सन्दंशक = संड़सी (अर्जुन वर्मदेवका श्लोक-७४)में श्री देवधर इस कथनकी पुष्टि पाते हैं ।

४. द्रष्टव्य-पाद टिप्पणी—२ ।

५. काव्यालङ्कार सूत्रवृत्ति, ३-२-४; ४-३-१२; ५-२-८ ।

६. देवधर द्वारा सम्पादित, पूना, १९५९ ।

७. वैद्य वासुदेव शास्त्री द्वारा सम्पादित, बम्बई, वि० स० १९५० ।

८. काव्यमाला, सङ्ख्या १८, दुर्गाप्रसाद व परब द्वारा सम्पादित्त, द्वितीय आवृत्ति, बम्बई, १९२९ ।

९. चि० रा० देवधर द्वारा सम्पादित, भाण्डारकर प्राच्य विद्या प्रतिष्ठानकी पत्रिका, खण्ड ३९, पृ० २२७-२६५) खण्ड ४०, पृ० १६-५५ ।

४. रुद्रमदेव[1] और रामरुद्र इत्यादिकी टीका सहित एक विविध संस्करण ।[2]

इन संस्करणोंमें केवल ५१ श्लोक समान हैं । किन्तु, जैसा कि सुशील कुमार डे ने सुदृढ़ आधारोंपर प्रतिपादित किया है[3], यदि हम साइमनके चतुर्थ संस्करण, जो वस्तुतः विविध पाण्डुलिपियोंका विलक्षण समन्वय मात्र है, की ओर ध्यान न दें तो इन विविध संस्करणोंके समान श्लोकोंकी सङ्ख्या ७२ हो जाती है । देवधरने सुझाया है कि यदि रविचन्द्रके भ्रष्ट और त्रुटित पाठको छोड़ दिया जाय, जैसा कि उचित प्रतीत होता है, तो अर्जुनवर्मदेव, वेमभूपाल और रुद्रमदेवमें पाये जाने वाले समान श्लोकोंकी सङ्ख्या बढ़कर ८४ हो जाती है ।[4] यह प्रश्न बड़ा जटिल है और इस विषयका विस्तारसे विवेचन करना यहाँ हमारा प्रयोजन नहीं है । यहां इतना कहना पर्याप्त होगा कि कुछ स्पष्ट कारणोंसे[5] हमें बूलर,[6] एच० बेलर[7], कीथ[8] तथा देवधरका[9] यह मत अधिक तर्कसङ्गत प्रतीत होता है कि रसिक संजीवनी टीका सहित तथाकथित पश्चिमी संस्करण मूलपाठके सबसे अधिक निकट है ।

किन्तु मूलपाठके विषयमें निश्चित जानकारी न होनेके कारण प्रस्तुत लेखमें हमने अमरुशतकके समस्त संस्करणोंमें पाये जाने वाले श्लोकोंका उपयोग किया है । इस प्रयोजनके लिए अर्जुन वर्मदेवकी टीका सहित काव्यमाला आवृत्ति (edition)को हमने आधारभूत माना है । दक्षिणी संस्करणमें पाये जाने वाले अतिरिक्त श्लोक इसी आवृत्तिमें श्लोक सङ्ख्या १०३-११६के रूपमें और रुद्रमदेवके पाठमें उपलब्ध अतिरिक्त श्लोक क्र० ११७-१३०के रूपमें दिये गये हैं । केवल रविचन्द्रके बंगाली संस्करणमें प्राप्य श्लोक इसी आवृत्तिमें क्र० १३२-१३५, १३७-१३८में दिये गये हैं । इस प्रकार सब संस्करणोंको मिलाकर अमरुशतकमें १३६ श्लोक हैं जिनका उपयोग प्रस्तुत लेखमें किया गया है । इनके अतिरिक्त संस्कृत सुभाषित सङ्ग्रहोंमें अमरुकके नामसे कुछ और श्लोक भी दृष्टिगत होते हैं[10] । ये श्लोक अमरुशतकके किसी भी संस्करणमें नहीं पाये जाते । सुभाषित सङ्ग्रहोंमें यदाकदा एक ही कविकी रचनाएँ दूसरे कविके नामसे और एक ही रचना विभिन्न लेखकोंके नामसे दी हुई पायीं जाती है । अतः यह श्लोक वस्तुतः अमरुकके हैं या नहीं, यह निर्णय करना कठिन है और फलस्वरूप उनका उपयोग यहाँ नहीं किया गया है ।

---

१. सुशीलकुमार डे द्वारा सम्पादित्त, अवर हेरिटेज, ख० २, भाग २, १९५४ ।

२. आर० साइमन, डास अमरुशतक, कील, १८९३; जेड० डी० एम० जी०, ख० ४९ (१८९५), पृ० ५७७ इत्यादि ।

३. अवर हेरिटेज, ख०, २, भाग १, पृ० ९७५ ।

४. चि० रा० देवधर (सं०), वेमभूपाल रचित टीका सहित अमरुशतक, पृ०१२—२० ।

५. अर्जुनवर्मदेव प्रणीत रसिक संजीवनी अमरुशतककी प्राचीनतम टीका है । उसमें एक समीक्षकका विवेक था और उसने मूल और प्रक्षेपके बीच भेद करनेका प्रयत्न किया । उसका पाठ सुशीलकुमार डे द्वारा निर्धारित पाठसे बहुत समानता रखता है ।

६. जेड० डी० एम० जी०,खण्ड ४७ (१८९३), पृ०९४ ।

७. विन्टरनित्स, ए हिस्ट्री ऑफ इण्डियन लिटरेचर, खण्ड ३, भाग १, कलकत्ता, १९५९, पृ० ११०, टिप्पणी, ४ ।

८. ए हिस्ट्री ऑफ संस्कृत लिटरेचर, ऑक्सफोर्ड, १९२०,पृ० १८३ ।

९. वेमभूपालकी टीका सहित अमरुशतक, प्रस्तावना, पृ० १२—२१ ।

१०. द्रष्टव्य-काव्यमाला आवृत्तिके श्लोक क्र० १३९-१६३ ।

८. अधिकांश संस्कृत काव्यों और नाटकोंकी भाँति अमरुशतक भी नागर संस्कृतिकी उपज है। अमरुक द्वारा चित्रित पुरुष और स्त्री नागरिक वातावरणमें साँस लेते हैं। वे नागरिक जीवनकी सुखसुविधाओंके अभ्यस्त हैं। उनके भावों और अभिव्यक्तियोंमें भी नागरिक परिष्कार दृष्टिगोचर होता है। किन्तु अमरुकके शतक तथा नागरिक संस्कृतिमें साँस लेनेवाली अन्य साहित्यिक कृतियोंमें एक मौलिक भेद है। जबकि अधिकांश संस्कृत काव्य और नाटक प्रमुखतः दरबारी संस्कृतिके प्रतीक हैं और घिसे पिटे जैसे लगते हैं, वहाँ अमरुशतक सामान्यजन द्वारा अनुभूत शृङ्गारिक भावों और परिस्थितियोंका चित्रण करता है और फलतः अधिक मर्मस्पर्शी बन पड़ा है।

नैतिक दृष्टिसे अन्य अनेक काव्यों और नाटकोंकी अपेक्षा अमरुशतक उच्च धरातलपर स्थित है। उसमें विधिपूर्वक विवाहित स्त्री और पुरुषके प्रेम जीवनका चित्रण है। प्राचीन परम्पराके अनुसार पुरुषकी एकाधिक पत्नियाँ हो सकती हैं और हो सकता है कि वह उनमेंसे प्रत्येकके प्रति पूर्णतः निष्ठावान् न हो, किन्तु सारे काव्यमें कहीं भी कोई स्त्री अपने पतिके अतिरिक्त किसी अन्य पुरुषसे प्रेम करती हुई अङ्कित नहीं की गयी; उसके लिए अपने पतिके प्रेमपगे स्पर्शसे बड़ी प्रसन्नता और उसके विरहसे अधिक दुःख नहीं नहीं हो सकता। प्रेमी-प्रेमिकाके बीच कलह दुर्लभ नहीं है, वस्तुतः बहुसङ्ख्यक श्लोकोंका यही विषय है; किन्तु वे बहुधा क्षणिक हैं और सरलतासे समाप्त हो जाते हैं। अमरुक की दृष्टिमें उन्मुक्त और मनचाहे प्रेमके लिए कोई स्थान नहीं है।

९. काव्यका क्षेत्र अत्यधिक सीमित होनेके कारण स्वभावतः उसमें तत्कालीन जीवनकी वह विविधता दृष्टिगोचर नहीं होती जो महाकाव्यों और नाटकोंमें। साथ ही कविका निश्चित देशकाल ज्ञात न होनेसे यह निर्णय करना भी कठिन है कि वह किस देशके किस भाग अथवा कालका चित्रण कर रहा है। किन्तु जैसा कि हम कह आये हैं अमरुक संभवतः कश्मीरका निवासी था और आठवीं शतीके मध्यके पूर्व किसी समय हुआ। अतः मोटे तौरपर हम कह सकते हैं कि अमरुशतकमें मध्यकालीन कश्मीरी जीवन चित्रित है। केवल प्रेम-जीवन काव्यका वर्ण्य विषय होनेके कारण विशेषतः स्त्रियोंकी वेश-भूषा, आभूषण, प्रसाधन और केश विन्यास जैसे विषयोंपर ही इधर-उधर बिखरे हुए उल्लेखोंसे प्रकाश पड़ता है। सम-सामयिक जीवनके अन्य पहलुओं-पर प्राप्त सामग्री अत्यल्प है।

१०. जैसा कि हमने ऊपर कहा है, अमरुक शैवमतका अनुयायी था और इसलिए स्वभावतः ही उसने काव्यके आरम्भमें भगवान् शिव (श्लो० २) और देवी अम्बिका (श्लो० १)की वन्दना की है। शिव द्वारा त्रिपुर (राक्षसोंके तीन नगर)के विनाश और त्रिपुरकी युवतियोंके शोकका उल्लेख किया गया है (श्लो० २)। हरिहर (विष्णु और शिवका मिश्रित रूप)[1] स्कन्द (श्लो० ३) और यम (श्लो० ६७)की भी चर्चा की गयी है। यमको दिन गिननेमें कुशल (दिवसगणनादक्ष) तथा निर्दय (व्यपेतघृण) कहा गया है। देवों द्वारा सागर मन्थनकी पौराणिक गाथाकी ओर श्लोक ३६में संकेत किया गया है। प्रेम जीवनका वर्णन करनेवाले काव्यमें कामका उल्लेख होना स्वाभाविक ही है। उसके लिए मन्थन (श्लो० ११५), मकरध्वज (श्लो० ११६) और मनोज (श्लो० १३७) शब्दोंका प्रयोग किया गया है और उसे तीन लोकोंका महान् धनुर्धर (त्रिभुवन महाधन्वी) कहा गया है (श्लो० ११५)।

तीर्थयात्राका इतिहास भारतमें अत्यन्त प्राचीन है। तीर्थोंमें मृतकको जलकी अञ्जलि (तोयाञ्जलि) देनेकी प्रथा लोकप्रिय थी (श्लो० १३२)।

---

१. हरि और हरका उल्लेख भी अभिप्रेत हो सकता है। टीकाकारोंका यही मत है।

११. समाजके निर्धन वर्गकी ओर भी कुछ संकेत मिलते हैं। एक स्थानपर वर्षाऋतुमें टूटे-फूटे घरमें रहनेवाली एक दरिद्र गृहिणी (श्लो० ११८) का उल्लेख है तो दूसरी जगह वर्षाऋतुमें वायुके वेगसे ध्वस्त झोंपड़ीमें हुए छिद्रोंसे जलके प्रवेश (श्लो० १२६)का उल्लेख भी मिलता है।

धाय (धात्री, श्लो० १११) और गुरुजनों (श्लो० १६)का उल्लेख भी मिलता है।

१२. घी और मधु भोजनके महत्त्वपूर्ण अंग थे (श्लो० १०९)। एक स्थलपर कहा गया है कि खारे पानीसे प्यास दुगुनी हो जाती है (श्लो० १३०)।

मद्यपान सामान्यतः प्रचलित था। मद्य चषकमें किया जाता था। स्त्रियाँ भी सुरापान करनेमें नहीं हिचकती थीं (श्लो० १२०)। एक श्लोकमें मद्यपानसे मत्त स्त्रीकी चर्चा की गयी है (श्लो० ५५)।

१३. चीनी रेशम (चीनांशुक) भारतमें अत्यन्त प्राचीनकालसे बहुत लोकप्रिय था। इसका प्राचीनतम ज्ञात उल्लेख कौटिलीय अर्थशास्त्र (ई० पू० चतुर्थ शती)में प्राप्त होता है।[1] केवल इसी एक वस्त्रका उल्लेख अमरुशतकमें मिलता है जिससे पूर्व मध्यकालीन भारतमें विशेषतः स्त्रियोंमें, इसकी लोकप्रियता सूचित होती है (श्लो० ७७) स्त्रियोंका सामान्य वेष सम्भवतः दो वस्त्रों का था—अधोवस्त्र, जो वर्तमान धोतीकी तरह पहना जाता था, और उत्तरीय (श्लो० ७८, ११३) जो गुलुबन्दकी तरह कन्धोंपर डाल दिया जाता था। अधोवस्त्र कटि पर गांठ (नीवी, श्लो० १०१, नीवी बन्ध, श्लो० ११२) लगाकर बांधा जाता था।

सिले हुए कपड़े भी पहने जाते थे। कञ्चुक (श्लो० ११) अथवा कञ्चुलिका (श्लो० २७), जो आजकलकी चोलीकी तरह था, की चर्चा मिलती है। स्तनों के विस्तारके कारण कञ्चुकके विस्तारके टांकों (सन्धि)के टूटनेका उल्लेख है (श्लो० ११)। कञ्चुलिका गाँठ (वीटिका) बाँधकर पहनी जाती थी (श्लो० २७)। अर्जुनवर्मदेवके अनुसार यह दक्षिणी चोली थी, क्योंकि उसीको बाँधनेमें तनीका व्यवहार किया जाता था।[2] किन्तु यह ठीक प्रतीत नहीं होता क्योंकि उत्तर भारतमें भी तनी बाँधकर चोली पहनने की प्रथा प्रचलित रही हो तो कोई आश्चर्य नहीं। आजकल भी उत्तरी भारतमें यह ढंग दिखाई देता है।

कञ्चुक स्त्री वेशके रूपमें गुप्तकालके बाद ही भारतीय कलामें अंकित दिखाई देता है।[3]

---

१. अर्थशास्त्र (२-११-११४)। चीनपट्टके स्रोतके रूपमें चीन भूमिका उल्लेख कभी-कभी अर्थशास्त्रके परवर्ती होनेका प्रमाण माना जाता है। कुछ चीन विद्या विशारदोंके अनुसार समस्त देशके लिए चीन शब्दका प्रयोग सर्वप्रथम प्रथम त्सिन् अथवा चीन राजवंशके काल (ई० पू० २२१-२०९)में हुआ। इस कठिनाई-को दूर करनेके लिए स्व० डॉ० काशीप्रसाद जायसवालने भारतीय साहित्यमें उल्लिखित चीनोंकी पहचान गिलगितकी शीन नामक एक जनजातिसे करनेका सुझाव दिया था। द्रष्टव्य—हिन्दु पॉलिटी पृ० ११२, टिप्पणी १। डॉ० मोतीचन्द्र इसकी पहचान काफिरीस्तान, कोहिस्तान और दरद प्रदेशसे करते हैं जहाँ शीन बोली बोली जाती है। देखिये प्राचीन भारतीय वेशभूषा, पृ० १०१। किन्तु यह अधिक सम्भव है कि यह नाम उत्तर-पश्चिमी चीनके त्सिन् नामक राज्य, जो चुनचिन काल (ई० पू० ७२२-४८१) तथा युद्धरत राज्यके काल (ई० पू० ४८१-२२१)में विद्यमान था, से निकला। इसी राज्यके माध्यमसे भारत समेत पश्चिमी संसार और चीनके सम्बन्ध स्थापित हुए। द्रष्टव्य—एज ऑफ इम्पीरियल यूनिटी, पृ० ६४४, भाण्डारक प्राच्य विद्या प्रतिष्ठानकी पत्रिका, खण्ड ४२ (१९६१), पृ० १५०-१५४; आर० पी० कांगले, दी कौटिलीय अर्थशास्त्र : ए स्टेडी, पृ० ७४-७५।

२. कञ्चुलिका चयं दाक्षिणात्य चोलिकारूपैव। तस्या एव ग्रन्थनपदार्थे वीटिकाव्यपदेशः।

३. वासुदेवशरण अग्रवाल, हर्षचरित : एक सांस्कृतिक अध्ययन, चित्र, २७।

कपड़े (सम्भवतः धोती)के पल्लू के लिए अंशुकपल्लव शब्दका व्यवहार किया गया है (श्लो० ८५)।

१४. स्त्रियों द्वारा शरीरके विभिन्न अंगों पर पहने जानेवाले अनेक आभूषणोंकी चर्चा प्रसंगवश अमरुशतकमें आयी है। कानोंमें कुण्डल पहने जाते थे (श्लो० ३) प्रतीत होता है कि कभी-कभी एक ही कानमें एकाधिक कुण्डल पहननेका रिवाज भी प्रचलित था (कुण्डल-स्तवक, श्लो० १०८)। श्लोक १६में कानोंमें पद्मराग मणि पहननेका उल्लेख है। बाँहोंमें बाजूबन्द (केयूर) पहनते थे (श्लो० ६०)। वक्ष पर मोतियोंका हार (तारहार, श्लो० ३१; गुप्ताहार, श्लो० १३८) पहना जाता था। हार कामाग्निका ईंधन कहा गया है (श्लो० १३०)। हाथोंमें वलय पहननेका रिवाज था। पैंतीसवें श्लोकमें प्रियतमके प्रवास पर जानेका निश्चय करनेपर प्रियतमके हाथसे दौर्बल्यके कारण बलयके ढीले हो जाने अथवा हाथसे वलयके गिर जानेका वर्णन बहुधा मिलता है और यह एक प्रकारका कवि समय बन गया था।[1]

कमरमें करधनी पहनी जाती थी, जिसके लिए मेखला (श्लो० १०१) और काञ्ची (श्लो० २१, ३१, १०९) शब्दोंका व्यवहार किया गया है। यह कटिको अलंकृत करनेके अतिरिक्त धोतीको बाँधने अथवा सम्हालनेके काम आती थी (श्लो० २१, १०१)। करधनीमें घुँघरू (मणि)भी बाँधे जाते थे, जिनसे कलकल ध्वनि होती थी (श्लो० ३१, १०९)। पैरोंमें नूपुर पहने जाते थे (श्लो० ७९, ११६, १२८)।[2] कभी-कभी नूपुरमें भी घुँघरू बाँध देते थे जिनसे पैर हिलने पर मधुर ध्वनि निकलती थी (श्लो० ३१)।

एक स्थलपर विशिखाका भी उल्लेख मिलता है (श्लो० १११)। जो कौटिल्यके अनुसार सुनारोंकी गलीके अर्थमें प्रयुक्त होता था। संदंशक अथवा संडसीका भी उल्लेख आता है जिसे सुनार अपने व्यवसायमें काममें लाते होंगे। श्लो० ५९में चन्द्रकान्त और वज्र (हीरा)का उल्लेख आया है। वज्र अपनी कठोरताके लिए प्रसिद्ध था और फलस्वरूप कठोर व्यक्तिके लिए वज्रमय शब्दका प्रयोग प्रचलित था।

फूल और पत्ते भी विभिन्न आभूषणोंके रूपमें पहने जाते थे। इस रिवाजका उल्लेख प्राचीन भारतीय साहित्यमें बहुधा मिलता है। अमरुकने फूलोंकी माला (श्लो० ९०) और कानोंमें मञ्जरी समेत पल्लवोंके कनफूल (कर्णपूर), जिसके चारों ओर लोभसे भौंरे चक्कर लगाया करते थे (श्लो० १) पहननेका उल्लेख किया है।

१५. केश विन्यासकी विभिन्न पद्धतियाँ प्राचीन भारतमें प्रचलित थीं। इनमेंसे अमरुशतकमें धम्मिल्ल (श्लो० ९८, १२१) और अलकावलि (श्लो० १२३)की चर्चा की है। धम्मिल्ल बालोंके जूड़ेको, जो फूलों और मोतियों इत्यादिसे सजाया जाता था, कहते थे।[3] यह प्रायः सिरके ऊपरी भागमें बाँधा जाता था। इसका उल्लेख भारतीय साहित्यमें बहुधा आता है।[4] कलामें भी इसका चित्रण प्रायः मिलता है।[5] अमरुकने धम्मिल्लके मल्लिका पुष्पोंसे सजानेका उल्लेख किया है (श्लो० १२१)।

---

१. द्रष्टव्य-मेघदूत, १०२; अभिज्ञानशाकुन्तल, ३-१०; कुट्टनीमत, २९५।

२. कोक सम्भवने ८७वें श्लोककी टीकामें नूपुरोंको पुरुषोंके लिए अनुचित कहा है।

३. तुलनीय, धम्मिल्लः संयताः कचाः, अमरकोश, २०६-९७।

४. द्रष्टव्य—भर्तृहरिका शृङ्गारशतक, श्लो० ४९; गीतगोविन्द, २; चौरपञ्चविंशिका, ७९। डॉ० वासुदेव-शरण अग्रवालके अनुसार धम्मिल्ल सम्भवतः द्रविड़ था द्रमिड़ या दमिल शब्द से निकला है। द्रष्टव्य—हर्षचरित : एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० ९६।

५. पन्त प्रतिनिधि, अजन्ता, फलक ७९; एन्शिएण्ट इण्डिया, संख्या ४, फलक ४४।

अलकावलिमें, जैसा कि नामसे ही स्पष्ट है, बाल इस प्रकारसे सजाये जाते थे कि उनकी घुँघराली लटें माथे पर आती थीं। इस प्रकारका केशविन्यास अहिच्छत्राकी मृण्मूर्तियोंमें सुन्दर रूपमें अंकित है।[1] इस सन्दर्भमें अहिच्छत्राके शिव मन्दिर (ई० ४५० और ६५० के बीच)में प्राप्त पार्वतीके अत्यन्त कलापूर्ण सिरका उल्लेख करना चाहिए, जिसमें धम्मिल्ल व अलकावली दोनोंका अंकन एक साथ मिलता है।[2]

केशोंको सजानेका दूसरा प्रकार भी था—कबरी या चोटी बाँधना। यह भी फूलोंसे सजायी जाती थी (श्लो० १२४)। विरहमें लम्बी बिखरी लटें रखनेका रिवाज था (श्लो० ८८)।

१६. प्राचीन भारतमें स्त्रियोंको प्रसाधनमें आजसे अधिक रुचि थी। यदि यह कहा जाय कि यह उनके जीवनका एक अनिवार्य अंग था तो कोई अतिशयोक्ति न होगी। अमरुशतकमें स्त्रियोंके प्रसाधनोंकी चर्चा स्वभावत: अनेक स्थलों पर आती है। शरीरपर विविध प्रकारके सुगन्धित पदार्थोंका लेप किया जाता था। इनमें चन्दन (श्लो० ७३, १२४, १०५, १३५) कुङ्कुम (श्लो० ११३, ११९) और अगुरु (श्लो० १०७) का उल्लेख अमरुकने किया है। इन लेपोंके लिए पङ्क (श्लो० १०७) और अङ्गण (श्लो० १७) तथा विलेपन (श्लो० २६) शब्दोंका प्रयोग किया गया है। स्तनों पर अङ्गराग लगानेकी चर्चा प्राय: मिलती है।

पान या ताम्बूल खानेकी प्रथा भारत में अत्यन्त प्राचीन कालसे प्रचलित थी और स्वास्थ्य सम्बन्धी कारणोंके अतिरिक्त इसका एक प्रमुख उद्देश्य था—अधरोंमें आकर्षक लाली पैदा करना (श्लो० १८, ६०, १०७, १२४)। आँखोंमें काजल (कज्जल, श्लो० ६०) अथवा आञ्जन (अञ्जन, श्लो० १०५, १२४) लगानेकी प्रथा थी। अधरोंमें लाली लगायी जाती थी (श्लो० १०५)। गालों पर विविध प्रकारकी फूल पत्तोंकी आकृतियाँ सुगन्धित पदार्थोंसे अंकित की जाती थीं। उनके लिए विशेषक (श्लो० ३) और पत्राली (श्लो० ८१) शब्दोंका उपयोग किया गया है। पैरोंमें आलता (अलक्तक, श्लो० १०७, ११६, १२८, लाक्षा, श्लो० ६०) लगाया जाता था।

धारायन्त्र अथवा फौवारेसे स्नान करनेका उल्लेख श्लो० १२५में आया है।

१७. मनोरञ्जनके साधनोंका उल्लेख अमरुशतकमें नहींके बराबर है। केवल घरमें तोता पालनेके रिवाज की चर्चा आयी है। गृहशुककी वाणीके अनुकरणमें प्रवीणताका उल्लेख कई श्लोकोंमें किया गया है (श्लो० ७, १६, ११७)। उसे अनार खानेका शौक था।

स्त्रियाँ कमलसे प्राय: खेलती थीं (लीलातामरस, श्लो० ६०)। स्त्रियों द्वारा अपने प्रियतमोंको लीला कमलसे मारनेका उल्लेख है (श्लो० ७२)।

१८. घरोंको बन्दनवार (वन्दनमालिका)से सजानेकी प्रथा थी। विशेषत: किसी प्रिय व्यक्तिके आगमन पर मङ्गलके रूपमें बन्दनवार सजायी जाती थी। इसके लिए कमल भी काम में लाया जाता था (श्लो० ४५)।

१९. घरेलू उपयोगकी वस्तुओंमें पलंग (तल्प, श्लो० १०१), आसन (श्लो० १८-१९) बिछानेकी चादर (प्रच्छदपट, श्लो० १०७), प्रदीप (श्लो० ७७, ९१), कलश (श्लो० ११९), कुम्भ (श्लो० ४५,)

१. पूर्वोक्त, मृण्मूर्ति क्रमांक १७०, २६७, २७४, २७५।
२. पूर्वोक्त, फलक, ४५।

१३७), और ईन्धन (श्लो० १३४)का उल्लेख मिलता है। श्लो० १३७में सोनेके घड़े (शातकुम्भ कुम्भ)की चर्चा है।

२०. कुछ तत्कालीन शिष्टाचारोंका भी उल्लेख मिलता हैं। जब कोई प्रिय यात्रापर रवाना होता था तो पुण्याह किया जाता और यात्राके सकुशल सम्पन्न होनेके लिए मंगलकामना की जाती थी (श्लो० ६१)। प्रिय अतिथिके स्वागतके लिए बन्दनवार सजायी जाती, फूलोंका गुच्छा भेंट किया जाता और घड़ेसे पानीका अर्घ दिया जाता था (श्लो० ४५)। प्रार्थना अथवा याचना करते समय अञ्जलि बाँधनेका रिवाज था (श्लो० ८५)। दान देते समय अञ्जलिसे जल देनेकी प्रथा बहुत प्राचीन कालसे प्रचलित थी और प्राचीन ताम्रपत्र लेखोंमें इसका बहुधा उल्लेख मिलता है। जलाञ्जलि देना किसी वस्तुके स्वामित्वके पात्रका सूचक था (श्लो० ५४)।

२१. एक स्थलपर डौढ़ी (डिण्डिम) पीटनेका उल्लेख मिलता है। यह आहत प्रकारका वाद्य था (श्लो० ३१)। श्लोक ५१-५२ में चित्रकलाके मूल सिद्धान्तका उल्लेख किया गया है। रेखान्यास चित्रकला-का मूल है।

२२. प्राचीन साहित्यके बारेमें अमरु शतकमें केवल एक ही उल्लेख आया है। १२वें श्लोकमें धनञ्जय (अर्जुन)को गाय लौटानेमें समर्थ कहा गया है। यह निश्चय ही महाभारतमें आयी हुई पाण्डवों द्वारा विराटकी गायोंकी रक्षा करनेकी कथाका संकेत है।

२३. पहले श्लोकमें खटकामुख नामक मुद्राका उल्लेख आया है। इस मुद्राका वर्णन भरतके नाटच-शास्त्रमें प्राप्त होता है।[1]

२४, तत्कालीन राजनीतिक विचारों और संघटनके विषयमें अमरु शतकसे कोई जानकारी नहीं मिलती। केवल कुछ प्रहरणों, जैसे धनुष (चाप, श्लो० १३५), बाण (शर श्लो० २), धनुषकी प्रत्यञ्चा (ज्या, श्लो० १) और ब्रह्मास्त्र (श्लो० ५२)का उल्लेख प्राप्त होता है। एक स्थानपर स्कन्धावारकी भी चर्चा की गयी है (श्लो० ११५)। श्लो० १३७में वेदि पर आसीन राजाके सोनेके घड़ोंसे अभिषेक किये जानेका उल्लेख है। वेदिके दोनों ओर केलेके दण्ड लगाये जाते थे।

२५. वासगृह अथवा शयनकक्ष (श्लो० ८२) घरका एक अनिवार्य अंग था। घरके आँगनमें बगीचा (अंगण-वाटिका) लगाया जाता था। उसमें लगाये जानेवाले वृक्षोंमें आम जैसे बड़े वृक्षका भी समावेश था (श्लो० ७८)।

२६. प्रसंगवश निम्ननिर्दिष्ट पशु-पक्षियोंकी भी चर्चा आई है—गाय (श्लो० ३२), हिरण (मृग, श्लो० ६०; सारङ्ग श्लो० ७३; हरिण श्लो० १३८), मोर (शिखी, श्लो० ११८), खंजरीट (श्लो० १३५), तोता, भौंरा (भ्रमर, श्लो० १, अलि, श्लो० ९६) और भौंरी (भृंगांगना, श्लो० ७८)। स्त्रियोंके नेत्रोंकी हिरणकी आँखोंसे तुलना एक प्रकारका कवि समय बन गया था। फलस्वरूप उनके लिए मृगदृक्ष, हरिणाक्षी और सारंगाक्षी जैसे शब्दोंका प्रयोग होता था। वर्षा ऋतुमें मोरोंके पंख ऊँचे कर बादलोंसे गिरती बूँदोंको देखनेका वर्णन है। भौंरों-भौंरियोंके फूल-पत्तियोंके आसपास मँडराने और गुंजारनेका उल्लेख है।

२७. वृक्ष-वनस्पतियोंमें सबसे अधिक उल्लेख कमलके हैं। उसके लिए उत्पल (श्लो० २,२९),

---

१. नाटचशास्त्र।

तामरस (श्लो० ६०,७२), नलिन (श्लो० ११७), राजीव (श्लो० १२३), शतदल (श्लो० ११७) और पंकज (श्लो० १३२) शब्दोंका प्रयोग आया है। कमलकी डण्डीके लिए नलिनीनाल (श्लो० १०४) और उसके पत्तोंके लिए नलिनीदल (श्लो० १३४) शब्द व्यवहृत हुए हैं। नीलकमल (इन्दीवर)के बन्दनवार सजानेकी चर्चा श्लोक ४५ में आई है। मल्लिका ग्रीष्म-ऋतुमें फूलती (श्लो० ३१) और उसके फूल केशपाश शजानेमें काम आते थे (श्लो० १२१)। प्रसंगवश कुन्द, जाति (श्लो० ४५), आमकी मंजरी (श्लो० ७८) अनारके फल (श्लो० १६), कल्हार, सप्तच्छद (श्लो० १२२), कन्दल (श्लो० १२६) और केले (कदल)के काण्ड (श्लो० १३७) का उल्लेख हुआ है।

'कान्हड़दे प्रबन्ध' और उसका ऐतिहासिक महत्त्व

डॉ० सत्यप्रकाश

'कान्हड़दे प्रबन्ध कवि पद्मनाथ विरचित माना जाता है। इसका सम्पादन कुछ समय पूर्व प्रसिद्ध गुजराती विद्वान् और लेखक श्रीकान्तिलाल बलदेव रामव्यास ने किया था। इसका प्रकाशन १९५५ ई० में हुआ था।

यह ग्रन्थ अनेक दृष्टियों से असाधारण महत्त्व का है। जिस छन्द में उसकी रचना तिथि दी हुई है उसके जो दो परस्पर भिन्न पाठ हैं वे इस प्रकार हैं—

१. पचतालीस ३ पूर्ण बरीस, मास मागसिर पूनिम दीस।
संवत् पंनर बारो तरउ, तिणिदिनि सोमवार विस्तरु॥
२. संवत् पनर बारोतर सार, माह् साम पुम्यम सोमवार।
जाल्हुर गढ़ घण उलट धरी, गायु कान्ह् विशेष करी॥

इन दोनोंमें रचना संवत् १५१२ ही आता है। ग्रन्थकी एक अन्य प्रति सं० १५९८ वर्षे कात्ती वदी ९ गुरुवार की लिखी हुई है। कुछ भी हो यह अब सिद्ध-सा है कि यह ग्रन्थ सं० १५१२ में लिखा गया होगा। ऐतिहासिक दृष्टिसे इस ग्रन्थका बहुत महत्त्व है। ग्रन्थकार उसी राजवंशसे सम्बन्धित था जिसको ग्रन्थ के कथानकने पवित्र किया था। यह भी सम्भव हो सकता है कि उसको कथाकी समस्त सामग्री उस राजवंश के लिखित और अलिखित इतिहासोंसे प्राप्त हुई हो। उस युगके इतिहासको जाननेके लिये यह एक अपूर्व ज्ञान भण्डार है।

यही नहीं, कविता की दृष्टिसे एवं आदर्शों के लिये जीवनोत्सर्ग काव्य के रूपमें इसका स्थान साहित्य के इतिहासमें सदा अमर रहेगा। आइये अब इसमें वर्णित कथापर दृष्टिपात करें और इसके आधार पर तत्कालीन मारवाड़ के इतिहासको जानें। विशेषकर जालौरके इतिहास को जानने का यह अनूठा स्त्रोत है। इसके आधार पर उस क्षेत्रका इतिहास घटनामें इस प्रकार वर्णित है। मारवाड़ देश में १६ की शताब्दी में सोनगरा चौहान वंश का राज्य जालौर नगर पर था। कान्हड़दे उसका प्रतिभावान शासक उस समय था। वह इतिहास प्रसिद्ध मात्रदेवका भाई था। उसके पुत्रका नाम वीरमदे था। उस समय गुर्जर का राजा सारंदे था। उसने एक दिन माधव नामक ब्राह्मण को अपमानित कर दिया। इसी दुर्घटना के कारण ही विग्रहका प्रारम्भ हो गया।

अपमानको सहन न करके माधवने प्रतिज्ञा की कि वह भोजन तभी करेगा जब वह गुजरातपर तुर्कोंको ला उपस्थित करेगा।

कुछ ही समयमें वह दिल्ली चल दिया वहाँ पहुँचकर खिलजी सुलतान अलाउद्दीनसे मिला। अला-उद्दीनसे उसने सारी कथा बताई उसने इस बातके लिये भी उसे प्रेरित किया कि वह गुजरातपर आक्रमण कर दे। सुल्तानने उसपर विचार किया और उसने उसकी बात जँच गई। उसने उसकी बात मानकर गुजरात

पर आक्रमणकी आज्ञा दे दी। पर उस समय गुजरात पहुंचनेका मार्ग मारवाड़ प्रदेश स्थित जालौरसे रोका था। उसने उस दशामें जालौरके राजा कान्हड़देके पास एक दूत भेजा कि वह उसकी सेनाको मार्ग दे दे। कान्हड़देने सुल्तानकी इस प्रार्थनाको मानना ठीक न समझा। उसने उसे मार्ग देनेसे अस्वीकार दिया। इसपर सुल्तानकी सेनाने मेवाड़ होकर गुजरातपर चढ़ाई की। मेवाड़के रावल समरने उसे मार्ग दे दिया।

सुल्तानकी विशाल सेनाके सामने गुर्जराधीश टहर न सका और पाटणपर सुल्तानकी सेना आधिपत्य हो गया। तत्पश्चात् सुल्तानकी सेना बढ़ती ही चली गई और उसने एक एक करके गुजरात और सौराष्ट्र के सम्पूर्ण स्थानोंपर अधिकार कर लिया। सोमनाथकी रक्षाका प्रयत्न राजपूतोंने बड़ी ही वीरताके साथ किया किन्तु वे असमर्थ रहें और उन्होंने वीरताके साथ युद्ध करते हुए अपने प्राणोंको न्यौछावर कर दिया।

गुजरात और सौराष्ट्रपर अधिकार करनेके अनन्तर सुल्तानकी सेना मारवाड़की तरफ बढ़ी। कान्हड़-देने अपनी सेनाको उसकी सेनाका सामना करनेके लिये उद्यत कर दिया था। अतः सुल्तानकी सेनाका सामना डट कर सोनगरा चौहान सेनाने किया। भीषण युद्ध हुआ। सुल्तानकी सेना इस बार विजय न प्राप्त न कर सकी। जालौरपर पुनः आक्रमण करनेकी सुल्ताननने ठानी। पर इसबार जालौरपर सीधा आक्रमण न होकर जालौरके समीपस्थ स्थान समीयाणेपर आक्रमण किया गया। उस स्थानपर कान्हड़देका भतीजा सीतल सिंह राज्य कर रहा था। भतीजेको संकट ग्रस्त देखकर कान्हड़देने उसकी सहायता की। सुल्तानकी सेनाको पुनः पराजय स्वीकार करनी पड़ी।

इन दोनों पराजयोंसे सुलतानको वहुत ही खेद हुआ। वह लज्जाके मारे चिन्तित था और सदा इसी चिन्तामें था कि वह किस प्रकार उनसे बदला ले। पहलेके उपर्युक्त आक्रमणोंमें सैन्यका सञ्चालन उसके सेनापतियोंने किया था। इस बार उसने स्वतः सैन्यसञ्चालन की ठान ली। सैन्यसञ्चालनका भार अपने ऊपर लेकर उसने अवसर पाकर समीयाणेका घेरा डाल दिया। दलबादलसे आक्रमण करनेपर भी उसको सैन्यभार स्वयं लेना मंहगा पड़ा। यह घेरा सात वर्षों तक समीयाणेके चारों ओर डाले पड़ा रहा और अथक परिश्रमके पश्चात् भी उसपर अधिकार न कर सका। बल द्वारा गढ़पर अधिकार न कर सकनेमें समर्थ अनुभव करके अलाउद्दीनने एक घृणित उपायका सहारा लिया। गढ़की दीवालों से डट कर बने हुए गढ़के भीतरके जलाशयको उसने अपवित्र करनेकी ठान ली। वह जलाशय ही एकमात्र जल प्राप्त करनेका साधन समीयाणे की जनताके लिए था। समस्त जनताका जीवन उसपर निर्भर था। ऐसा समझ कर उसने उस जलाशयमें गौवें कटवाकर डालनेका निश्चय किया। उस निश्चयके आधार पर उसने वहुतसी गौवोंके मारे जानेका आदेश दिया। उन्हें मारे जानेपर उसने बोरोंमें बंधवाया और रातों रात उन्हें गढ़की दीवलपरसे जलाशयमें डलवा दिया।

प्रातः होनेपर जब समीयाणेकी जनताने यह दुष्कृत्य देखा तो उनके सम्मुख केवल दो ही विकल्प रह गये थे। वे या तो उस जलको ग्रहण करें जो दूषित ही नहीं वरन अपेय था अथवा जल त्याग कर अपने प्राणोंका उत्सर्ग करदें। वीर प्रसविनी भूमि राजस्थानके निवासी उस समय दूसरे विकल्पको स्वीकार कर अपने प्राणोंको देनेपर तत्पर हो गये। उनके साथ ही समस्त वीराङ्गनाओंने भी जौहर व्रतका पालन किया।

इस समाचारको जब अलाउद्दीनने सुना वह स्तब्ध रह गया और उसने सान्तलके पास सन्देश भेजा कि वह उसका आधिपत्य मात्र ही स्वीकार कर लें और घेरा उठा लिया जाय। किन्तु सान्तल इस शर्तपर तैयार न हुआ। तदनन्तर सम्पूर्ण राजपूतसेनामें उत्साहका सञ्चार हो गया। उसने खुलकर सुल्तानी सेनासे एक साथ युद्ध किया और प्रत्येक वीरने लड़ते-लड़ते अपने जीवनकी बलि दे दी।

समीयाणे पर आधिपत्य कर लेनेके पश्चात् अलाउद्दीनने कान्हड़देके पास सन्देश भेजा कि वह उसके

आधीन हो जावे । किन्तु कान्हड़देने उसके प्रस्तावको अस्वीकार कर दिया, अलाउद्दीनने जालौरपर आक्रमण कर दिया । उसकी सेनाने जालौरके समीप ही पड़ाव डाल दिया । इस आक्रमणके समय सुल्तानके साथ उसकी कन्या फीरोज़ा भी साथ थी । वह कान्हड़देके कुमार वीरमदेके गुणोंकी ख्याति सुनकर उसपर आसक्त हो चुकी थी । वीरमदेके साथ उसकी विवाहकी इच्छा ज्ञात कर सुल्तान अलाउद्दीनने विवाह सम्बन्धी प्रस्ताव कान्हड़देके पास भेजा । किन्तु अपनी जाति एवं वंशकी मर्यादाका ध्यान कर कान्हड़देने अलाउद्दीन का यह प्रस्ताव ठुकरा दिया । अलाउद्दीनको यह असह्य हो गया । उसने आगे बढ़कर जालौर का घेरा डालनेका निश्चय किया और अन्तमें उसने घेरा डाल भी दिया । पर इस बार भी सुल्तानको सफलता हाथ न लगी अलाउद्दीनने विवश होकर अपनी राजधानी को लौटनेकी तैयारी की । किन्तु सुल्तानकी कुमारी फीरोज़ा वीरमदेवके दर्शनोंके लिए व्यग्र थी । उसने सेनाकी एक टुकड़ी लेकर गढ़के भीतर जानेका विचार किया । वह सेनाकी एक छोटी-सी टुकड़ी लेकर भीतर पहुँच गई भी । कान्हड़देने जब उसे वहाँ देखा तो उसने उसका स्वागत किया । वीरमदेव भी उससे आकर वहाँ मिला । उस समय राजकुमारीने स्वतः वीरमदेवसे विवाहका प्रस्ताव किया । वीरमदेवने अपनी जाति कुलकी प्रतिष्ठाका ध्यान रखते हुए उस प्रस्तावको अस्वीकार कर दिया । राजकुमारीने तब जालौर देखनेकी इच्छा प्रकट की । कान्हड़देने उसे सम्पूर्ण सुविधायें जालौर देखनेकी प्रदान कर दीं । जब वह जालौर देख चुकी तब कान्हड़देने उसे प्रचुरमात्रामें भेंट दी और सम्मान एवं प्रसन्नतापूर्वक विदाई भी दी । अलाउद्दीन और उसकी राजकुमारी इस प्रकार कान्हड़देके आतिथ्यसे प्रभावित होकर अपनी राजधानीको लौट गये ।

समय बीतता गया और आठ वर्ष बाद अलाउद्दीनकी सेनाने सुल्तानके आदेशको पाकर जालौरपर पुनः आक्रमण कर दिया । इस बार राजकुमारी फीरोज़ स्वयं जालौर न आई । उसने अपनी धायको सेनाके साथ भेज दिया । उसने उससे कहा कि यदि वीरमदे युद्धमें बन्दी हो जावे तो वह उसके पास जीवित ले जाया जाये और वह युद्धमें वीरगतिको प्राप्त हो तो वह उसका सिर उसके पास ले आवे ।

यथासमय योजनानुसार जालौरके चारों ओर घेरा डाल दिया गया । युद्ध चार वर्ष चलता रहा । जालौर का घेरा डालनेवालोंका मुकाबला चार वर्ष तक मालदेव और वीरमदेके नेतृत्वमें जालौरकी जनताने किया । उन्होंने सुल्तानी सेनाके छक्के छुड़ा दिये किन्तु राजकीय भण्डार रिक्त-सा हो गया । उस स्थानके व्यवसायियोंने अपने समस्त भण्डार एकत्र करके देशकी रक्षाके लिये अर्पित कर दिये । ऐसे त्याग तथा बलिदानने योद्धाओंका साहस बढ़ा दिया और जालौरकी जनताने आठ वर्षोंतक आगे शत्रुका सामना किया । बारह वर्षोंके लम्बे समयमें जलाभावका भी एकसे अधिक बार भय हुआ । किन्तु ईश्वरकी कृपासे वह पूर्ण होता चला गया । किन्तु विश्वासघातपर वश नहीं हो पाया और एक ऐसी दुर्घटना हो गई । सुल्तानकी सेनाके योद्धाओंने प्रलोभनके आधारपर एक सेजवाल वीकमसे एक ऐसा गुप्त मार्ग जान लिया जिससे शत्रुसेना गढ़में घुस सकती थी । उस मार्गको अपनाकर सारी सेना जालौर गढ़के भीतर घुस गई । पर जब सेजवालकी स्त्री हीरादेवीको यह पता चला कि उसके पतिने अपने राजाके साथ ही नहीं अपने देशके साथ विश्वासघात किया उसने राजस्थानकी वीराङ्गनाओंके समान अपने सुहागकी चिन्ता न करके उसका वध अपने हाथों ही कर डाला और शत्रुसेनाके गढ़के अन्दर आनेकी सूचना अपने राजाको दे दी । उस समय शत्रुसेना सारीकी सारी धीरे-धीरे गढ़के भीतर पहुँच गई थी । राजा तथा उसके सैनिक राजपूत योद्धा उनकी संख्याको देखकर हताशसे थे क्योंकि राजपूत सैनिक घेरेके बारह वर्षोंकी अवधिमें संख्यामें अत्यल्प रह गये थे । उनके सामने दो ही विकल्प थे—या तो वश्यता स्वीकार करें या प्राणोंकी आहुति दें । सच्चे राजपूत पहलेकी

अपेक्षा दूसरे विकल्पको ही वरण कर सकते थे। ऐसा ही हुआ भी। सबने प्राणोंकी बाजी लगा दी। घमासान युद्ध छिड़ गया। कान्हड़दे युद्ध करता हुआ मारा गया। साठ दिनतक राजकुमार वीरमदेने भी युद्ध किया। इसी बीच रानियोंने जौहर किया। वीरमदेवने जब देखा कि युद्धको उस समय चालू रखनेकी सम्भावना नहीं थी और उसका पराजित होकर बन्दी होना निश्चित-सा ही था तो उसने विवश होकर स्वयं अपने उदरमें कटार भोंक दी और शत्रु पक्षके अनेक सामन्तोंको मौतके घाट उतार करके उसने अपने प्राण दे दिये। फ़ीरोज़ाकी धाय उसके सिरको लेकर दिल्ली चल दी और उसने फीरोजाको भेंट कर दिया। राजकुमारीने वीरमदेवकी वीरता एवं क्षत्रिय-वंश-परम्परागत-हठ एवं बलिदानसे मुग्ध होकर उसके सिरको स्वयं लेकर यमुनातटपर पहुँचनेका निश्चय किया और वह वहाँ पहुँच भी गई। वहाँ पहुँचनेपर उसने उसका विधिवत् संस्कार किया और तदनन्तर वह यमुनामें उसके सिरको लेकर कूद पड़ी। इस प्रकार फ़ीरोज़ाने अपने हार्दिक प्रेमको जो वह अपने अन्तस्तलमें छिपाये थी स्वयं आत्मसात् होकर प्रमाणित कर दिया।

उपरोक्त रोचक एवं ऐतिहासिक वृत्त हमें केवल कान्हड़दे प्रबन्धसे ही विस्तारपूर्वक ज्ञात होता है। सम्भव है कि इस कथामें कुछ अतिशयोक्तिका पुट हो पर फीरोज़ा और वीरमदेके प्रेमका वर्णन और ग्रन्थोंसे भी ज्ञात होनेसे कान्हड़देके ऐतिहासिक ग्रन्थ होनेकी पुष्टि होती है। यह एक ही ऐतिहासिक ग्रन्थ है जिसके द्वारा एक मुस्लिम राजकुमारीका एक राजपूत कुमारके प्रति सच्चा प्रेम तथा बलिदानका ज्वलन्त प्रमाण प्रस्तुत किया गया है।

कुछ भी हो, कान्हड़दे प्रबन्ध जालौर तथा अलाउद्दीन द्वारा उसपर किये गये आक्रमणोंके सम्बन्धमें जाननेका अपूर्व ग्रन्थ है।

•

कान्हड़देप्रबन्ध-सांस्कृतिक दृष्टि से[1]

मूल गुजराती लेखक : श्रीभोगीलाल ज० सांडेसरा

अनुवादक : जयशंकर देवशंकरजी शर्मा (श्रीमाली) बीकानेर

गुजरात विश्वविद्यालयकी विद्याविस्तार भाषणमालामें इस भाषणको देने हेतु निमंत्रण देनेके लिये सेठ लालभाई दलपतभाई भारतीय संस्कृति विद्यामंदिरके नियामक श्री दलसुखभाई मालवणियाका मैं अन्तःकरणपूर्वक आभार मानता हूँ। आजके भाषणके लिये कान्हड़देप्रबन्धका विषय उन्हींकी अनुमतिसे निश्चित हुआ है। श्री डाह्याभाई देरासरी द्वारा सम्पादित इस ग्रन्थकी प्रथमावृत्ति प्रायः मुझे देखने का अवसर सन् १९३०में मिला और उस समय मैंने इसे समझे-बिना समझे ही पढ़ लिया। यह मेरा प्राचीन गुजराती अवलोकनका प्रथमावसर था। तत्पश्चात् इस रचनाको मैंने अपने कालेज अध्ययनके अवसरपर भी पढ़ा है और इसके अध्यापनका भी अवसर आया है। साहित्य, भाषा और संस्कृति-इतिहास इस प्रकारसे विविध दृष्टिसे विचार करते समय इसका आकर्षण बढ़ता ही रहा है तथा इसका महत्त्व समझमें आता गया है। इस भाषण के निमित्त 'कान्हड़देप्रबन्ध' से सम्बन्धित अपने विचारोंको लेखबद्ध करनेका मेरा मन हुआ।

'कान्हड़देप्रबन्ध' सं० १५१२ (ई० स० १४५६) में पश्चिमी राजस्थानमें········ भूतपूर्व जोधपुर राज्यके, गुजरातसे सटे हुए दक्षिण विस्तारमें········आया हुआ जालौर नामक स्थानमें निर्मित काव्य है। (यह भारतीय संस्कृति विद्यामंदिरकी स्थापना जिसके नामसे हुई है उन सेठ लालभाई दलपतभाईके पूर्वज लगभग साँच सौ वर्ष पूर्व अपने मूल पितृ स्थल ओसियासे निकलकर जालौरके आसपासके पुरोहित ब्राह्मणोंमें ठोस प्रचलित अनुश्रुतिके अनुसार जालौरसे केवल छह माइलकी दूरीपर स्थित सांकरणा नामक गाँवमें कुछ पीढ़ियों तक निवास करनेके बाद गुजरातमें आये थे। यह योगानुयोग, मुझे यहाँ स्मरण हो जाता है। जालौर नगरके ध्वंस हो जानेपर वहाँके जालौरा (झालौरा-झारौला) ब्राह्मण एवं वणिक् दक्षिणकी ओर आकर राधनपुरके पास जालौर-जाल्यौघो (वर्तमानका देवगाम)में कुछ समय तक रहकर गुजरातमें अन्यत्र फैल गये। इनकी कुलदेवी हिमजामाता और ज्ञातिपुराण 'वालखिल्यपुराण' है।

'कान्हड़देप्रबन्ध'की भाषा प्राचीन गुजराती किंवा प्राचीन पश्चिमी राजस्थानी या मारू-गुर्जर है। इसके रचयिता वीसलनगरका नागर कवि पद्मनाभ है। प्राचीन गुजराती साहित्यकी सबसे विशिष्ट एवं विख्यात रचनाओंमेंसे यह एक कान्हड़देप्रबन्ध है। यह एक वीर एवं करुणरससे परिपूर्ण सुदीर्घ कथा-काव्य है। दिल्लीके सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी द्वारा गुजरातके अन्तिम हिन्दू शासक कर्णदेव वाघेलाके शासन-कालमें किया गया गुजरातपर आक्रमण और सोमनाथ भंगके अवसरपर दिल्लीसे गुजरातके मार्गपर स्थित जालौर राज्यमेंसे निकलने (जाने देने)के लिये वहाँके राजा सोनगिरा चौहान कान्हड़देवके पाससे माँगी गई अनुज्ञा, किन्तु इस माँगका कान्हड़देव द्वारा अस्वीकार और सुल्तानके योद्धाओंका

१. गुजरात विश्वविद्यालयकी विद्याविस्तार भाषणमालामें सेठ लालभाई दलपतभाई भारतीय संस्कृति विद्यामंदिर, अहमदाबाद में ता० २९ जनवरी, १९७० को दिया गया भाषण।

सोमनाथ शिवलिंगके टुकड़े लेकर गुजरातमेंसे जब वापस लौट रहा था उस समय इसपर आक्रमण कर कान्हड़देव द्वारा उसका पराजय, अन्तमें प्रचण्ड सेनाको लेकर अलाउद्दीन द्वारा जालौरके चारों ओर घेरा डालना, इस घेरेके अनेक वर्षों तक रहनेके बाद एक विश्वासघाती राजपूतकी हीनताके कारण गढ़ (किले)का पतन और राजपूतानियों द्वारा जौहर—अन्य कुछेक उपकथाओंको छोड़ देनेपर कान्हड़देप्रबन्धका मुख्य कथानक कहानी ही है।

इस काव्यका सृजन मुख्य रूपसे दोहे-चौपाइयोंमें किया गया है। यद्यपि बीच-बीचमें योग्य स्थानपर करुणरस-परिप्लावित पद—उर्मिगीत भी आये हैं। पद्मनाभ कविकी वाणी ओजस्वी, प्रवाहबद्ध, प्रासादिक एवं देशभक्तिकी सचोट ध्वनिवाली है। कविका भाषा प्रभुत्व एवं शब्द-निधि असाधारण है। यह कथा काव्य युद्ध-विजयी होनेपर भी मुस्लिम सत्ताके साथ संघर्षका निरूपण होते हुए, युद्धकी परिभाषाके और फारसी-अरबीके मूल शब्द[1] भी इसमें प्रचुर मात्रामें आये हैं। पद्मनाभ, कान्हड़देवके वंशज जालौरके शासक अखेराजके राजकवि होनेके कारण इन्हें ऐतिहासिक तथ्य एवं पार्श्वभूमिकाका पूर्ण ज्ञान है। हिन्दू और मुस्लिम राजनीतिका इन्हें प्रत्यक्ष अनुभव है और इसी कारण ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक-दृष्टिसे भी 'कान्हड़देप्रबन्ध' एक महत्त्वपूर्ण रचनाके रूपमें सर्व स्वीकृत है। इसमें तात्कालिक सामाजिक परिस्थितिका पूर्ण आभास मिलता है। इस प्रकारसे भाषा साहित्य एवं ऐतिहासिक-ज्ञानपिपासुओंके लिए यह 'कान्हड़देप्रबन्ध' अनेक रूपसे विशेष महत्त्वकी रचना है। गुजरात निवासी कविने राजस्थानके एक प्रमुख शहर जालौरमें इसकी रचना की हो। वास्तवमें १६वीं शताब्दि तक गुजरात और राजस्थानकी जो भाषा विषयक एकता थी यह, इस बातका परिचायक बन जाता है। बादके समयमें विकसित हुई अर्वाचीन गुजराती और राजस्थानी इन जुड़वां-भाषाओंका एक एवं असंदिग्ध पूर्व रूप, अन्यब हुसंख्यक रचनाओंके समान 'कान्हड़देप्रबन्ध' में भी उपलब्ध है।

किन्तु, हमारे प्राचीन साहित्यका अध्यापन करने वालोंको और प्राचीन समयके कवियोंकी रचनाओंको मुख परम्परा द्वारा किंवा अन्य रीतिसे सुरक्षित रखनेवाले जन-समुदायको भी 'कान्हड़देप्रबन्ध' और इस ग्रन्थके रचयिताका विस्मरण हो गया था। अर्वाचीन कालमें इसकी खोजका श्रेय संस्कृत प्राकृतादि सहित भारतीय विद्याके प्रकाण्ड विद्वान् डॉ० ज्योर्ज ब्यूलरको है। अनुमानतया सौ वर्ष पूर्व बम्बई सरकारकी योजनाके अनुसार संस्कृत हस्तलिखित प्रतियोंकी खोज करते समय थरादके जैन ग्रन्थ भण्डारमें प्रथम बार इस 'कान्हड़देप्रबन्ध' की प्रति देखनेमें आई। डॉ० ब्यूलर बम्बई क्षेत्रके शिक्षाविभागीय एक उच्च अधिकारी थे। इन्होंने अपने ही विभागके श्री नवलराम लक्ष्मीराम पण्ड्या जो गुजराती साहित्यके अग्रगण्य अपितु विशिष्ट विवेचक थे। गुजराती भाषाके अधिकारिक-विद्वान्के रूपमें आपको इनके प्रति बहुत आदर था। 'कान्हड़दे-प्रबंध' की नकल करा कर उसे ब्यूलरने नवलरामके पास भेजी। इन दोनोंमें नवलराम 'गुजरात शालापत्र'

---

१. प्रमाण-दृष्टिसे देखें तो प्राचीन गुजराती साहित्यकी किसी अन्य रचनामें फारसी-अरबीके इतने शब्द नहीं हैं। सन् १९५३-५४में जब मैं बी० ए०के छात्रोंको 'कान्हड़दे प्रबंध' का अध्यापन करा रहा था उस समय इसमेंके इस प्रकारके शब्दोंकी सार्थ सूची मेरे एक छात्र श्री नलिनकान्त पंड्याकी सहायतासे एवं बड़ौदा विश्वविद्यालयके फारसी विभागके तत्कालीन अध्यक्ष श्री एम० एफ० लोखण्डवालाके सहयोगसे तैयार की थी। (बुद्धिप्रकाश, जून १९५४) कान्हड़देप्रबंधमें फारसी-अरबीके १११ शब्द हैं। एक ही शब्दकी पुनरावृत्ति की तथा फारसी-अरबीके विशेष नामोंका इस संख्यामें समावेश नहीं है। तथापि इस प्रकारके समस्त प्रयोगोंकी भी जानकारी प्रस्तुत सूचीमें अंकित कर दी गई है।

के सम्पादक थे। प्राप्त हुई नकल बहुत ही अशुद्ध थी फिर भी यह व्यर्थ ही नष्ट न हो जाय अतः इन्होंने गुजरात शालापत्रके सन् १८७७-७८ के अंकों में इसे क्रमशः प्रकाशित कर दिया। तत्पश्चात् गुजरात और राजस्थानमें विभिन्न स्थानोंसे इसकी अन्य हस्तलिखित प्रतियाँ उपलब्ध होती गई हैं। 'कान्हड़देप्रबन्ध' का प्रथम बार व्यवस्थित सम्पादन श्री डाह्याभाई देरासरी ने किया (प्रथमावृत्ति १९१३ द्वितीयावृत्ति १९२६) उस समय इन्होंने पाँच प्रतियोंका आधार लिया था। राजस्थान पुरातन ग्रन्थमालामें श्री कान्तिलाल व्यासने कान्हड़देप्रबन्धका पुनः सम्पादन किया (सन् १९५३) इसमें समस्त ११ हस्तलिखित प्रतियोंका उपयोग किया गया है। इसके बाद में भी कान्हड़देप्रबन्ध की कतिपय हस्तलिखित प्रतियाँ प्राप्त हुई हैं जिनमें बड़ौदा प्राच्यविद्यामंदिरको भेंट मिले हुए यति श्री हेमचन्द्रजीके भण्डार की सं० १६१० में लिखी हुई प्रति ध्यान में देने योग्य है। कतिपय अन्य प्राचीन शिष्ट कवियोंकी रचना जैसी समादृत की गई थी वैसी ही लोकप्रियता 'कान्हड़देप्रबन्ध' को प्राप्त न हुई हो यह इसकी वस्तु स्थिति देखे जाने पर स्वाभाविक है फिर भी गुजरात और राजस्थानके इस काव्यका एक समय विस्तृतरूपसे प्रचार हुआ था इस प्रकारसे जो दूर दूरके स्थानोंमें इसकी हस्तलिखित प्रतियाँ लिखी गई हैं एवं विभिन्न स्थानोंके ग्रन्थभण्डारोंमें वे सुरक्षित रखी गई हैं, यह उपरोक्त वर्णन से सिद्ध हो जाता है।

इस रचनाको 'प्रबन्ध' कहा गया है तो यह 'प्रबन्ध' क्या है? वैसे तो 'प्रबन्धका शब्दार्थ मात्र 'रचना' ही है। संस्कृत साहित्यकी बात करें तो प्रबन्ध यह गुजरात और मालवाका एक विशिष्ट साहित्यिक रूप है और मध्यकालमें विशेषकर जैन लेखकोंका यह प्रयास है। सामान्यतया सादे संस्कृत गद्यमें और यदा-कदा पद्यमें रचे हुए ऐतिहासिक किंवा अर्द्ध-ऐतिहासिक कथानकोंको 'प्रबन्ध'के नामसे पहचाना जाता है। मेरुतुंगाचार्यकृत 'प्रबन्धचिन्तामणि', राजशेखरसूरिकृत 'प्रबन्धकोष' 'जिनप्रभसूरिकृत' विविधतीर्थकल्प', वल्लालकृत 'भोजप्रबन्ध' आदि गद्यमें लिखे हुए प्रबन्धोंका नमूना है। जब कि प्रभाचंद्रसूरिकृत 'प्रभावक-चरित' पद्यमें रचा हुआ प्रबन्ध संग्रह है। यह तो हुई मध्यकालीन संस्कृत साहित्यकी बात। इसके कुछ प्रभावके कारण गुजराती साहित्यमें ऐतिहासिक कथावस्तुवाली रचनाको पहचाननेके लिए, 'प्रबन्ध', शब्दका व्यवहार किया गया हो, ऐसा हो सकता है। जैसे कि 'कान्हड़देप्रबन्ध', लावण्यसमय कृत 'विमल प्रबन्ध', सारंग कृत 'भोजप्रबन्ध', आदि। किन्तु यह परिभाषा पूर्ण रूपसे निश्चित नहीं है। क्योंकि 'कान्हड़देप्रबंध' की हस्तलिखित प्रतियाँ जिनका श्री कान्तिलाल-व्यासने उपयोग किया है में की कुछकी पुष्पिकामें उसे 'रास', 'चरित', 'पवाड़ा', तथा चौपाई कहा गया है। 'विमलप्रबन्ध' के संपादनमें श्री धीरजलाल धनजी भाई शाह द्वारा व्यवहृत (श्री मणिलाल बकोरभाई व्यासके मुद्रित पाठ सिवायकी) दो हस्तलिखित प्रतियोंमेंसे एककी पुष्पिकामें इस रचनाको, 'रास' बताया गया है और दूसरीकी पुष्पिकामें उसे, 'प्रबन्ध' इसी प्रकारसे 'रास' इन दोनों नामोंका निर्देश किया गया है। 'विमलप्रबन्ध' की अन्य अनेक हस्तलिखित प्रतियोंकी पुष्पिकाओंमें इसे, 'रास' के रूपमें निर्देश देखनेका मुझे स्मरण है तिसपर भी 'रेवंतगिरी रास', 'समरा रास', 'पेथड रास', 'कुमारपाल रास', 'वस्तुपाल-तेजपाल रास' आदि ऐतिहासिक व्यक्ति किंवा इहवृत्तके आधारपर निर्मित अनेक रचनाओं को कहीं भी 'प्रबन्ध' नहीं कहा गया है। जयशेखरसूरि कृति त्रिभुवनदीपक प्रबन्ध 'केवल उपदेशप्रधान रूपक ग्रन्थ है इसमें पौराणिक या ऐतिहासिक कोई इतिवृत्त नहीं है। मात्रामेल छंदोंमें रची हुई ऐतिहासिक रचनायें 'प्रबन्ध' कहीं जाँय और देशियोंमें रची गई अन्य रचनायें 'रास' कहीं जाय, ऐसी एक मान्यता है, किन्तु ये भी साधार नहीं हैं। क्योंकि, देशी बद्ध रासकी जैसे मात्रामय छन्दोंमें रचे गये रास भी बड़ी संख्यामें प्राप्त होते हैं। नाकर और विष्णुदास जैसे आख्यानकारोंने तो अपने कतिपय आख्यानोंको

'रास' कहा है। इसपरसे देखा जा सकता है कि प्राचीन गुजरातीमें रास और प्रबन्धके मध्य भेद रेखा पूर्णरूपसे स्पष्ट नहीं है अपितु, इन दोनोंको एक पृथक् साहित्यिक रूपमें मानना यह भी बहुत उचित नहीं है।

श्री डाह्याभाई दैरासरी संपादित 'कान्हड़देप्रबन्ध' की द्वितीयावृत्तिके पुरोवचन (पृ० ७-१७)में श्री नरसिंहराव दिवेटियाने इस रचनामें व्यक्त की गई धार्मिक सामाजिक स्थितिके सम्बन्धमें, जन मण्डलकी स्थिति और योद्धाओं आदिकी स्थितिके सम्बन्धमें, नगर रचना, गृह रचना, शास्त्रोंके सम्बन्धमें एवं राजपूतोंके शौर्यपरायण संप्रदायके सम्बन्धमें संक्षिप्त किन्तु साधार विवेचन किया है। इसकी पुनरावृत्ति किये बिना इस ग्रन्थमें से उपस्थित होते हुए कुछ महत्त्वके और व्यापक प्रसंगोंकी चर्चा मैं इस भाषणमें करूँगा।

साहित्य और भाषाकी दृष्टिसे इस प्रशिष्ट काव्यका अध्ययन करते-करते मेरा राज्य-प्रबन्धकी बारीकी-में कैसे उतरना हुआ, इस सम्बन्धमें कुछ कहूँ। सन् १९४०-४१ में बी० ए० की परीक्षाके लिए 'कान्हड़दे प्रबन्ध' मैं पढ़ रहा था। श्री डाह्याभाई देरासरी द्वारा सम्पादित दो प्रतियाँ और सन् १९२४में इनके द्वारा प्रकाशित गुजराती पद्यानुवाद—यह सामग्री हमारे अवलोकनके लिए उपलब्ध थी। मूल प्रतिके सम्पादनमें खण्ड १ कड़ी १३ का पूर्वार्द्ध इस प्रकारसे था—

तिणि अवसरि गूजरधरराई, सारंगदे नाभि बोलाई।

इसके उत्तरार्द्धके रूपमें श्री देरासरीने निम्न कल्पित पाठ रखा है—

भत्रीजउ तेहनउ बलवन्त, करणदेव युवराज भणंत।

यह कल्पित पाठ दूसरी आवृत्तिमें ही जोड़ा गया है। प्रथवावृत्तिमें यह नहीं है। किसी अन्य हस्तलिखित प्रतिमें भी इससे मिलता-जुलता कुछ नहीं है। श्री देरासरीके सम्पादनके पश्चात् कई वर्षोंके बाद प्रकाशित हुए श्री कान्तिलाल व्यासका वाचन भी यही बताता है। हस्तलिखित प्रतियोंमें तो १३वीं कड़ीका उत्तरार्द्ध इस प्रकारसे है—

तिणि अवगुणिउ माधव बंभ, तही लगइ विग्रह आरम्भ।

अर्थात् उसने (तात्पर्य यह है कि सारंगदेव वाघेलाने) मन्त्री माधव ब्राह्मणकी अवगणना की। इस कारणसे विग्रहका प्रारम्भ हुआ।

तब प्रश्न यह प्रस्तुत होगा कि श्री देरासरीने उपर्युक्त कल्पित पंक्ति क्यों जोड़ी? कर्णदेव वाघेलाके दुराचारसे दुःखी माधव महतो २३वीं कड़ीमें सुल्तान अलाउद्दीनके सम्मुख कर्णके सम्बन्धमें फरियाद करते हुए कहता है कि--

खित्री तणउ धर्म लोपिउ, राउ कर्णदे गहिउल थयउ।

अर्थात् क्षत्रिय-धर्मका लोप कर दिया है और राजा कर्णदेव पागल हो गया है।

इस प्रकारसे केवल दस ही कड़ीके अन्तरपर दो विभिन्न व्यक्तियोंका—सारंगदेव ओर कर्णदेव—गुजरातके राजाके रूपमें कान्हड़देप्रवन्धमें निर्देश है। इससे राजा और युवराज दोनों ही साथ-साथ राज्य व्यवस्थाका संचालन करते हों इस प्रकारके दो अमली राज्यकी श्री देरासरी द्वारा अपने सम्पादनकी टिप्पणी (द्वितीयावृत्ति पृ० १२१)में कल्पना कर तथा सारंगदेव और कर्णदेवका राज्यकर्ताके रूपमें एक साथ उल्लेख मूल काव्यमें हुआ है। इसमेंका विद्यमान विरोधाभास दूर करनेके लिये उपरोक्त प्रथम कल्पित पाठ जोड़ा गया है। कल्पित पाठको जोड़नेकी पद्धति शास्त्रीय सम्पादनमें उचित नहीं है। किन्तु दो अमली राज्यके सम्बन्धमें श्री देरासरीने जो अनुमान किया है वह वास्तविक है।

दो शासकोंके हाथमें राज्य-सत्ता हो इस प्रकारकी परम्परा प्राचीन भारतमें कतिपय स्थानोंपर थीं। जिस समय सिकन्दरने भारतपर आक्रमण किया था उस समय वर्तमान दक्षिण सिन्धमें स्थित पाताल राज्यमें विभिम्न कुलके दो राजाओंके हाथमें राज्य-सत्ता थी। (मैकक्रिण्डल, अलेक्जांडर्स इनवेजन, पृ० २९६) इस प्रकारके दो अमली राज्यके लिये कौटिल्यके अर्थशास्त्रमें द्वैराज्य (इसे डायर्की-द्विमुखी राज्य व्यवस्था कहा जायगा ?) शब्दका प्रयोग हुआ है। कौटिल्य, पूर्वाचार्योंके मतको अंकित करके कहता है कि 'दो पक्षोंमें द्वेष, वेमनस्य एवं संघर्षके कारण' द्वैराज्य नष्ट हो जाता है। (अर्थशास्त्र ८-२) भाइयों और पितृव्योंके मध्य भूमि बाँटनेकी अपेक्षा वे संयुक्त प्रबन्ध करें इस हेतु भी ऐसी व्यवस्था करनी पड़ी होगी। यद्यपि, ऐसे राज्यमें आन्तरिक विद्वेष—कलहका प्रमाण अधिक होजाना स्वाभाविक है। जैन आगमोंमेंके आचारांग सूत्रमें ऐसे राज्यका (प्रा० दोरज्जाणि, सं० द्विराज्यानि)का उल्लेख है और साधु ऐसे राज्यमें विचरण नहीं करे, इस प्रकारका विधान है। कान्हड़देप्रबन्धमें जिस पद्धतिका उल्लेख है वह वस्तुतः द्वैराज्य पद्धति है। गुजरातके वाघेला शासकोंमें यह पद्धति विशेणतः प्रचलित हो, ऐसा प्रतीत होता है। धोलकाके वाघेला राणा लवणप्रसाद और उसके पुत्र वीरधवलके सम्बन्धमें प्रबन्धात्मक वृत्तान्त इस प्रकार का है कि, वास्तवमें मुख्य शासक कौन है यह स्पष्ट रूपसे जान लेना कठिन है। लवणप्रसादके देहान्तका वर्ष निश्चित हो तत्पश्चात् ही अमुक घटना घटित हुई उस समय मुख्य शासक—युवराज नहीं—कौन था इसका पता लग सकता है। लवणप्रसादका देहान्त सं० १२८०-८२ और १२८७के मध्य कभी हुआ होगा ऐसा प्राप्त प्रमाणोंपरसे प्रतीत होता है (श्री दुर्गाशंकर शास्त्री गुजरात नो मध्यकालीन राजपूत इतिहास, द्वितीयावृत्ति पृ०सं० ४५०) किन्तु इसकी विशेष चर्चा यहाँ करना उपयुक्त नहीं है।

परन्तु द्वैराज्य-पद्धतिका वाघेलाओंमें अच्छा प्रचार था इस हेतु विशेष आधार चाहिये। अर्जुनदेव वाघेलाके ज्येष्ठ पुत्र रामदेवने अपने पिताके जीवन कालके मध्य ही राज्यभार वहन कर लिया था। समकालीन शिलालेखों द्वारा यह भली भाँति स्पष्ट ज्ञात हो जाता है। खंभातमेंके चिन्तामणि पार्श्वनाथके मंदिरके सं० १३५२ (ई० स० १२९६) के शिलालेखमें वर्णन है—

रिपुमल्लप्रमर्द्दी यः प्रतापमल्ल ईडितः। तत्सूनुरर्ज्जुनो राजा राज्येऽजन्यर्ज्जुनोऽपरः ॥८॥
ऊ·······क्ति विजयीपरेषाम्। तन्नन्दनोऽनिन्दितकीर्तिरस्ति ज्यष्ठोऽपि रामः किमु कामदेवः ॥९॥
उभौ धुरौ धारयतः प्रजानां पितुः पदस्यास्य च धुर्यकल्पौ। कल्पद्रुमौ····णौ भुवि रामकृष्णौ ॥१०॥

(आचार्य जिनविजयजी, 'प्राचीन जैन लेख संग्रह,' भाग २, लेखांक ४४९)

वीरधवल बाघेलाके दो पुत्र थे—प्रतापमल्ल और वीसलदेव। प्रतापमल्लका तो वीरधवलके जीवन-कालमें ही अर्जुनदेव नामक पुत्रको छोड़कर स्वर्गवास हो गया था। वीरधवलके बाद, वीसलदेव धोलका राणा बना और तत्पश्चात् कुछ समयोपरान्त वह पाटणका महाराजाधिराज बना। वीसलदेव अपुत्र होगा। वह अपने भाई प्रतापमल्लके पुत्र अर्जुनदेवका राज्याभिषेक कर स्वर्गवासी हो गया। ऐसा, सं० १३४३ (ई०स० १२८७)की त्रिपुरान्त प्रशस्तिमें कहा गया है—

श्रीविश्वमल्लः स्वपदेऽभिषिच्य प्रतापमल्लात्मजमर्जुनं सः।
साकं सुधापाकमभुंक्त नाकनितम्बिनीनामधरामृतैन ॥

(श्री गिरिजाशंकर आचार्य, 'गुजरातना ऐतिहासिक लेखो' भाग ३ लेखांक २२२)

अर्जुनदेव और उसके पुत्र युवराज रामदेवने राज्य-शासनका भार एक साथ ही अपने अपने हाथोंमें ले लिया था। किन्तु रामदेवका अपने पिताका जीवन-कालमें ही देहान्त हो गया प्रतीत होता है। क्योंकि, अर्जुनदेवके पश्चात् रामदेव नहीं अपितु इसका भाई सारंगदेव पाटणकी राज्यगद्दीपर आता है।

ईडरके पास भीलोड़ा ताल्लुकामें भुवनेश्वरके सुप्रसिद्ध मंदिरके सम्मुख एक मुरलीधर मंदिर है। इसकी दीवारमें किसी प्राचीन सूर्यमंदिरमेंका सारंगदेवका बाघेलाके समयका सं० १३५४ (ई०स०१२९८) का शिलालेख लगा हुआ है। श्री नीलकण्ठ जीवतरामने 'बुद्धिप्रकाश,' १९१०में इसे प्रकाशित कराया है। तत्पश्चात् इसका शुद्धतर पठन श्री तनसुखराम त्रिपाठीने 'बुद्धिप्रकाश,' मार्च अप्रैल १९१०में विवेचन सहित प्रकाशित किया है, (श्री गिरिजाशंकर आचार्य द्वारा सम्पादित और फार्बस गुजराती सभा द्वारा प्रकाशित किया गया 'गुजरात ना ऐतिहासिक लेखों'में यह महत्त्वपूर्ण शिलालेख संग्रहीत नहीं है।) इसमें दी गई वाघेलाओंकी वंशावलिपरसे उस कालमें द्वैराज पद्धति होनेका ज्ञान स्पष्ट हो जाता है। उपर्युक्त रामदेव कि जिसका कोई उत्कीर्ण लेख अथवा पुष्पिका अभी तक उपलब्ध नहीं हुई है इसका भी राज्यकर्ताके रूपमें उल्लेख है। (तस्याङ्गजः संप्रति राजतेऽसौ श्रीरामनामा नृपचक्रवर्ती। श्लोक १२) चिन्तामणि पार्श्वनाथके मंदिरकी प्रशस्तिमेंके रामदेवके संबंधी उल्लेखके साथ इसकी तुलना करनेपर इसके निर्णायक अर्थके सम्बन्धमें किसी प्रकारकी शंका नहीं रहती।

वाघेलाओंके समकालीन राजवंश, सुवर्णगिरी—जालौरके सोनगिरी चौहाणोंमें भी यह पद्धति थी। 'कान्हड़दे प्रबन्ध'के नायक कान्हड़देके सम्बन्धमें तो इस विषयमें स्पष्ट समकालीन प्रमाण है। जालौरके सं० १३५३ (ई०स० १२९७)के एक लेखमें कान्हड़देवको अपने पिता सामन्त सिंहके साथ राज्य करते हुए बताया गया है—

ऑं। (सं०)वत् १३५३ (वर्षे) वे (शा)ख वदि ५ (सोमे) श्री सुवर्णगिरी अद्येह महाराजकुल श्रीसाम् (मं)त सिंहकल्याणं (ण) विजयराज्ये तत्पादपद्मोपजीविनि (रा)जश्रीकान्हड़देवराज्यधु रा(मु)द्वहमाने इहैव वास्तव वास्तव्य—

(प्राचीन जैन लेखसंग्रह, भाग २ लेखांक ३५३)

तदनुसार जालौरके पास चोटण गाँवमेंसे प्राप्त और जालौरमें सुरक्षित सं० १३५५ (ई० सं० १२९९) के एक लेख में (बुद्धिप्रकाश, ऐप्रिल १९०, पृ० १११) इसी प्रकार से सं० १३५६ (ई० सं० १३००) के एक अप्रसिद्ध शिलालेखमें (दशरथ शर्मा, 'अर्ली चौहाण डाइनेस्टिज,' पृ० १५९) में भी सामन्तसिंह और कान्हड़देव का राज्यकर्त्ताके रूपमें साथ-साथ ही उल्लेख है।

इस प्रकारके शासनप्रबन्धमें ऐसा भी होता था कि पिताकी अपेक्षा पुत्र अधिक प्रतापी हो तो साहित्य और अनुश्रुतिमें पुत्रको ही अधिक स्मरण किया जाता है। सामन्तसिंहके लेख सं० १३३९ से १३६२ (अर्थात् ई० सं० १२८३ से १३०६) तकके उपलब्ध होते हैं (शर्मा उपर्युक्त पृ० १५९) सं० १३५३ की अवधिमें कान्हड़देव अपने पिता सामन्तसिंहके साथ राज्य-प्रबन्धमें सम्मिलित हुआ हो, ऐसा उत्कीर्ण लेखोंपरसे विदित होता है (गुजरातके सारंगदेव वाघेलाका देहावसान सं० १३५३ में हुआ और इसी वर्ष कर्णदेव पाटणकी गद्दीपर आया यह ऐतिहासिक प्रमाणोंसे निश्चित है। इतना होते हुए इसके बाद डेढ सौसे भी अधिक वर्षके पश्चात् 'कान्हदेप्रबन्ध'के रचयिता पद्मनाभने उस समय गुजरातमें सारंगदेव और कर्णदेवका साथ-साथ राज्य होनेका वर्णन किया है; जो द्वैराज्य पद्धतिकी बलवान परम्पराका द्योतक है) गुजरातका हिन्दु राज्य अलाउद्दीन खिलजीसे पराजित हुआ यह एक मतसे सं० १३५६ (ई० सं० १३००) में और दूसरे मतसे सं० १३६० (ई० सं० १३०४) में किन्तु १३६० से अधिक बादमें तो नहीं है।

पाटण और सोमनाथपर अलाउद्दीनका आक्रमण हुआ और वहाँसे लौटते समय जालौरके चौहाणोंने मुस्लिम सेनाको पराजित किया वह यही समय था। उस समय जालौरकी राज्यगद्दीपर सामन्तसिंह था इस संबंधमें समकालीन उत्कीर्ण लेखों द्वारा असंदिग्ध प्रमाण प्राप्त होते हैं। किन्तु इसके वंशज अखेराजका

राजकवि पद्मनाभ 'कान्हड़दे प्रबन्ध'के प्रारम्भमें सामन्तसिंहका केवल नामोल्लेख करके कान्हड़देवका चरित्र ही वर्णन कर देता है। कान्हड़देव, पृथ्वीराज एवं हम्मीरकी श्रेणीका वीर योद्धा, नेतृत्व शक्ति सम्पन्न था और उसकी स्मृति साहित्यमें उसके पितासे भी विशेष रूपसे सुरक्षित है। सामन्तसिंहका देहान्त सं० १३६२ या १३६३ (ई० सं० १३०६ या १३०७) में हुआ था। अर्थात् पाटन और सोमनाथके पतनके पश्चात् शीघ्र ही मुस्लिम सैन्य और जालौरके चौहानोंके प्रथम युद्धमें वह विद्यमान था। किन्तु, इस सम्बन्धमें पद्मनाभ मौन ही है। काव्यके प्रारम्भमें कान्हड़देवका उल्लेख सामन्तसिंहके पुत्रके रूपमें इतना ही किया है—

जालहुरउ जगि जाणीइ, सामन्तसी सुत जेउ
तास तणा गुण वर्णवूं, कीरति कान्हडदेउ

'कान्हड़देप्रबन्ध'के कथनानुसार जालौर का पतन सं० १३६८ (खंड १ कड़ी ५) (ई० सं० १३१२) में हुआ था और इस अंतिम युद्धमें कान्हड़देव वीरगतिको प्राप्त हो गया।

राजस्थानके चौहान राजा—जालौर, नाडौल, सपादलक्ष और चन्द्रावतीके शासक गुजरातके माण्डलिक थे। इसमें जालौर और चन्द्रावतीके साथ पाटणका सम्बन्ध सर्वोत्तम था। सं० १३४८ में फिरोज खिलजीने जालौरके राज्यपर आक्रमण किया और दक्षिणकी ओर ठैठ सांचोर तक वह आ पहुँचा। तब सारंगदेव वाघेलाने जालौरके चौहाणोंकी सहायताकर मुल्लिम सेनाको वापस खदेड़ दिया था। ('विविधतीर्थ कल्प', पृ० ३०) इसके कुछ वर्षोंके पश्चात् अलाउद्दीनका आक्रमण हुआ था। पारस्परिक सहायताके इस सम्बन्धके कारण भी कान्हड़देवने अलाउद्दीनकी सेनाको मार्ग देनेसे इन्कार किया होगा।

गुजरातके राजाने माधव ब्राह्मणका जब तिरस्कार किया तभी उस घटनामेंसे विग्रह हुआ—इस आशयका उल्लेख 'कान्हड़देप्रबन्ध'के प्रथम खण्डकी तेरहवीं कड़ीके उत्तरार्द्धमें हम पहले देख चुके हैं। इसके बाद २५-२६ वीं कड़ीमें अलाउद्दीनके दरबारमें कर्ण वाघेलाके व्यवहारके सम्बन्धमें फरियाद करते समय माधव महेताके मुखके निम्न शब्द पद्मनाभने रखे हैं—

पहिलु राइ हूँ अवगण्यउ, माहरउ बंधव कैसव हण्यउ
तेह धरणी धरि राखि राइ, एवडु रोस न सहिणउजाइ।

कर्णने मंत्रीकी पत्नीका अपहरणकर लेने की अनुश्रुति सही रूपये प्राचीन होना चाहिये किन्तु इसका विधिवत् वर्णन करनेवाले लेखकोंमें पद्मनाभ अग्रगण्य है। इस अनुश्रुतिकी विश्वनीयताके सम्बन्धमें इतिहास शोधकोंमें मतभेद है। हम, यहाँ इस चर्चामें नहीं उतरते हैं। किन्तु ईतना तो निश्चित है कि कर्ण और माधवके मध्य वैमनस्य होनेका कारण मात्र कर्णके राज्यारंभके समान ही पुराना था और बादमें पीछेसे इस सम्बन्धमें अन्य कारण सम्मिलित हो गये होंगे। संस्कृतके 'नैषधीय चरित' महाकाव्य परकी चण्डू पंडित द्वारा की गई सुप्रसिद्ध टीका सं० १३५३ में धोलकामें की गई थी। सारंगदेवका देहान्त भी इसी वर्षमें हुआ था। सारंगदेवके शासनकालका यह अन्तिम वर्ष और कर्णके शासनकालका प्रथम वर्ष था। चण्डू पण्डितने प्रस्तुत काव्यके आठवें सर्गके ५९ में श्लोककी टीकामें लिखा है—"वर्तमान महामात्य माधवदेवने उदयराजको गद्दीपर बिठानेका प्रयत्न करते समय महाराज श्रीकर्णदेवकी भूमिमें सर्वत्र लूट-खसोट चलनेसे द्वैराज्यके कारणसे लोगोंमें विरक्ति उत्पन्न हो गई (यथा—इदानीं महामात्य श्री माधवदेवेन श्री उदयराजे राजनि कर्तुमारब्धे सति महाराजश्रीकर्णदेवस्य भूमौ सर्वत्र सर्वजनानां वित्तेऽपह्रियमाणे द्वैराज्यात् लोके विरक्तिरजनि।) इसका यह अभिप्राय हुआ कि माधव मंत्री ऐसा नहीं चाहते थे कि कर्ण राज-गद्दीपर

बैठे। सम्भव है कि कर्णके दुर्गुण इसमें कारणभूत हों। माधवने किस उदयराजको राज्य सौंपनेका प्रयत्न किया था वह वाघेला वंशका ही कोई व्यक्ति होगा। किन्तु इस सम्बन्धमें उपलब्ध साधनोंमेंसे विशेष कुछ जानकारी नहीं प्राप्त हो सकी। राज्य-शासन परिवर्तनके प्रयत्न निष्फल हो जानेपर माधवने कर्णके साथ व्यावहारिक समाधान कर लिया होगा और प्रतिष्ठित एवं कार्य कुशल पुराने मंत्रीको एकाएक पदभ्रष्ट कर देनेका साहस कर लेना भी कर्णको उचित प्रतीत नहीं हुआ हो। किंतु इसके बाद इन दोनोंके परस्पर सम्बन्ध ठीक न रहे थे अन्तमें इसीका अत्यन्त गम्भीर परिणाम गुजरात राज्यको भोगना पड़ा।

'कान्हड़देप्रबन्ध'के रचनाकालसे लगभग डेढ़ सौ शताब्दी पूर्व घटित घटनाओंकी यह बात हुई किन्तु इस समयकी सांस्कृतिक परिस्थितिके सम्बन्धमें भी 'कान्हड़देप्रबन्ध'मेंसे इतनी वैविध्यपूर्ण सामग्री उपलब्ध होती है और अन्य उपलब्ध प्रमाणोंके साथ इसका विभिन्न प्रकारसे संयोजन इतना महत्त्वपूर्ण बन जाय यह ऐसा है कि यह विषय अन्तमें एक महानिबन्धकी क्षमता रखता है। इस भाषणकी मर्यादामें मैं स्थालीपुलाक न्यायानुसार कतिपय प्रमाणोंकी ओर ही आपका ध्यान आकर्षित करूँगा।

'कान्हड़देप्रबन्ध' की रचना पद्यमें होने पर भी इसमें प्रसंगोपात भडाउलि-भटाउलि शीर्षकके अन्तर्गत गद्य वर्णक आता है। 'वर्णक' अर्थात् किसी भी विषय का परम्परा से लगभग निश्चित किया गया एक मार्ग, अक्षरोंके रूपके मात्रा और लयके बंधनोंसे मुक्त होते हुए भी इसमें ली गई समस्त छूटका लाभ लेते हुए। प्रास मुक्त 'गद्य-बोली'में बहुत कुछ वर्णकोंका सृजन किया हुआ है जो अब प्राचीन गुजराती साहित्यके शोधकोंको सुविदित है। प्राचीन भारतीय साहित्य प्रणालीमें—संस्कृत, पालि इसी प्रकारसे प्राकृत-में वर्णकोंकी परम्पराका मूल खोजा जा सके, ऐसा है। पालिमें ऐसे वर्णन 'पैथ्याल' नामसे पहचाने जाते हैं और जैन आगम साहित्यमें वे 'वण्णओ' कहे जाते हैं। प्राचीन गुजराती वर्णकोंके समुच्चय प्रकाशित हुए हों तथा वस्त्रालंकार, भोजनादि, शस्त्रास्त्रों एवं विविध आनुषंगिक विषयोंके सम्बन्धमें विधिवत् वर्णक सुलभ होकर 'कान्हड़देप्रबन्ध'में की भटाउलियों के अध्ययन हेतु अब उचित साहित्यिक एवं सांस्कृतिक संदर्भमें अवलोकन किया जा सके, ऐसा है। वीररस प्रधान वर्णकको भटाउलि कहा जाता होगा यह भी समझा जाय, ऐसा है।

'कान्हड़देप्रबन्ध'के प्रथम खण्डके लगभग मध्यमें (श्रीव्यासकी आवृत्ति पृ० ४०-४८) आई हुई भटाउलिमें कान्हड़देवके घोड़े और उसके श्रृंगार सैन्य, सैनिक एवं दण्डायुधका वर्णन है। तृतीय खण्ड की भटाउलि (पृ० १५६-५९)में जालौरके किलेका और कान्हड़देवकी सभाका उज्ज्वल वर्णन है। पद्मनाभ द्वारा इसमें अखेराजकी राज-सभाका उल्लेख किया जाना वस्तुतः सम्भवित हो। (गंगाधर कृत गंगादासप्रतापविलास नाटकमें चांपानेरका वर्णन करते हुए चित्रपटका यहाँ स्मरण हो आता है।) चतुर्थ खण्ड (कड़ी ९-५८)में जालौर नगर और इसमेंकी विविध प्रकृतियोंका जो सांगोपांग वर्णन है वह पद्मनाभके समकालीन जालौरका होगा किन्तु, उस समयके गुजरात-राजस्थानके अनेक नगरोंको समझने के काम आवे, ऐसा है। इसमें :

कागल कापड़ नइ हथियार, साथि सुदागर तेजी सार

(खण्ड ४ कड़ी १६)

इस पंक्तिमें शस्त्रोंके व्यापारके साथ-साथ तेजी-घोड़े बेचनेवाले सम्भवतः विदेशी सौदागरों का भी स्पष्ट निर्देश है।

'कान्हड़देप्रबन्ध'में विभिन्न जातिके घोड़ों की विस्तृत सूची है। अन्य वर्णकोंमें एवं संस्कृत

साहित्यमें और संस्कृत कोषोंमें भी इसी प्रकारके घोड़ोंके नाम मिलते हैं। इन नामोंमें कुछ तो उनके रंगपरसे और कुछेक शरीराकृति परसे हैं। कतिपय नाम देशवाचक हैं (जैसे कि, सिंधूया, पहिठाणा, उत्तर देशके ऊंदिरा, कनूज देशके कुलथा, मध्य देशके महूयड़ा, देवगिरा, बाहड़देशके बोरिया-पृ० ४२-४३) कुछेक तो स्पष्टरूपसे परदेशी है (जैसे कि, स्पाणीपंथा, नई खुरसाणी, एक तुरकी तुरंग, खण्ड १ कड़ी १८५ इसके उपरान्त देखें-तोरका-खेत्र, खुरासाणी, पृ० ५२-५३) आज तो इनमेंके कुछेक नामोंका अर्थ सर्वथा समझमें ही नहीं आता है। यह सम्भव हैं कि इनमेंसे अमुक विदेशी हों। संस्कृत कोषोंमें भी इसी प्रकारके नाम आये हैं। उच्च श्रेणीके युद्धोपयोगी घोड़ोंका विदेशोंसे भारतमें आयात होता रहता था। संस्कृत-प्राकृत साहित्यमें ईरानी किंवा अरबी घोड़ोंके सौदागरोंके सम्बन्धमें उपलब्ध अनेकों वार्तायें इसका सूचक है। जिस प्रकारसे गौका घण, महिषका खांडु और भेड़-बकरीका बाघ उसी प्रकारसे तेज उपयोगी घोड़ोंके समुदायके सम्बन्धमें प्राचीन गुजरातीमें 'लास' शब्दका व्यवहार हुआ है। सुल्तान अलाउद्दीनके सम्मुख माधव मेहता द्वारा 'घोड़ों-की लास' भेंट कराते हुए 'कान्हड़देप्रबन्ध'कारने वर्णन किया है—

धरी भेटी **घोड़ानी लास,** मीर ऊँबरे करी अरदास
बडउ मुकर्दम माधव नाम, पातिसाहनइ करइ सिलाम (खण्ड १, कड़ी २०)

ठेठ विक्रमके तेरहवें शतकके 'भरत-बाहुवलि रास'में 'हय लास' शब्दका प्रयोग आया है और सत्रहवें शतक तक यह शब्द यदा-कदा दिखाई देता रहा है। सं० लक्ष्मीपरसे इसकी व्युत्पत्ति उचित प्रतीत नहीं होती है। घोड़ोंके समूहका अर्थ व्यक्त करते समय किसी विदेशी शब्दका यह रूपान्तर होना सम्भव है। अर्वाचीन गुजराती भाषाके उत्तम अश्ववाचक कुछेक शब्द—'केकाण', 'तोरवार', 'ताजी-तेजी', विदेशी हैं।

युद्ध सम्बन्धी काव्य होनेके कारण यह स्वाभाविक है कि 'कान्हड़देप्रबन्ध'में अस्त्र-शस्त्रोंका उल्लेख हो। खड्ग एवं खांडु एक ही अर्थवाचक अनुक्रमसे तत्सम और तद्भव शब्द हैं और उसके अनेक प्रकारके नाम वर्णकोंमें उपलब्ध होते हैं ('वर्णक-समुच्चय', भाग २ सूचीयें पृ० १८७)। जो सीधे फलकवाला और चौड़ाई लिये हुए हो उसे खड्ग, टेढ़े फलकवाली तलवार, सीधी तलवारके समान पतले फलक का जो मुड़ जाय ऐसे खड्गको पटा कहते हैं। इस खड्ग द्वारा खेले जानेवाले खेलको पटाबाजी कहते हैं। करण वाघेला बिना म्यानका पटा अपने हाथमें रखता था।' कान्हड़देप्रबन्धमें इस सम्बन्धमें ऐसा वर्णन आया है—

एहवउ अंग तणउ अनुराग, नितनित मच्छ करइ वछनाग
विण पडियार **पटउ** कर वहइ, न को अंगरखजमलउ रहइ
(खण्ड १, कड़ी २४)

फिर आगे चलकर खांडा और तलवारसे पृथक् पटाका उल्लेख है वहाँ भी यह भिन्नता स्पष्ट हो जाती है। कान्हड़देवकी सहायतामें छत्तीसों राजवंशी एकत्र होते हैं और वे अपने-अपने शस्त्रोंको धारण करते हैं—

अंगा टोप रंगाउलि खांडा, खेडां **पटा** कटारी
सींगणि जोड भली तड्यारी, लीजइ सार विसारी (खण्ड १, कड़ी १८१)
खांडा **पटा** तणा गजवेलि, अलवि आगिला हींडइ गेलि (खण्ड ४, कड़ी ४७)

'कान्हड़देप्रबन्ध'में कुछेक अल्पज्ञात शस्त्रोंमें 'गुर्जर'का उल्लेख है और 'वर्णक-समुच्चय' (भाग २ सूचीयें पृ० १८८) में भी इसका 'गुरुज' नामसे नामान्तर प्राप्त होता है। कान्हड़देवका भतीजा सांतलसिंह रात्रिके समय सुल्तानकी छावनीमें जाकर निद्रामग्न सुल्तानका गुरुज अपने साहसिक निशानी स्वरूप ले आता है—

वलीं विमासी पासइ हुंतउ, **गुर्ज** लीउं अहिनाण
विण संकेत कहीइ केतलइ नही मानइ सुरताण (खण्ड २, कड़ी १३७)
अवधि एतलइ पहुतउ काल, ग्यउ आकाशि धूप विकराल
सातल भणइ **गुरज** मोकलउ, पातिसाह कहसि हुं भलउ,
(खण्ड २, कड़ी १५९)

गुरज, लोहेके हत्थेवाला और गदाके समान छोटा, सिरेपर लोहा लगा हुआ और धारियें डाला हुआ एक शस्त्र होता है। अधिकतर फकीरोंके पास छोटी गुरज होती है। जिसे वे अपने हाथमें रखते हैं।

संनाह—बख्तरके विभिन्न प्रकार—जरहजीण, जीवणसाल, जीवरखी, अंगरखी, करांगी, वज्रांगी, लोहबद्धलुडि—'कान्हड़देप्रबन्ध'की भटाउलि (पृ० ४७)में वर्णित है। इनके अतिरिक्त अंगा और रंगाउलि इन भेदोंका भी उल्लेख है (खण्ड १ कड़ी १८९, पृ० ८१ की टिप्पणीमें अंकित प्रक्षेप पंक्ति ७) इन सभी भेदोंका प्रत्यक्ष ज्ञान करने हेतु जिज्ञासुओं और विद्यार्थियोंको किसी सिलहखानेको देखना चाहिए।

तोप और दारूगोलोंका कुछ उल्लेख भी 'कान्हड़देप्रबन्ध'में है। प्रो० पी० के० गोडेके मतानुसार (ए वोल्युम आफ इण्डियन एण्ड इरानियन स्टडीज पृ० १२१-२२), भारतमें तोपके व्यवहारका सर्वप्रथम उल्लेख मूलत: एक चीनीका है और वह ई० पू० १४०६ जितना प्राचीन है। दारू गोला और तोप-बन्दूकके सम्बन्धमें भारतीय मुस्लिम उल्लेखोंमें अनुक्रमसे ई० सं० १४७२ और १४८२ है। नालिका किंवा तोपका और दारूगोलाका प्राचीनसे प्राचीन उल्लेख उपलब्ध संस्कृत साहित्य —'आकाश भैरवकल्प'में का—ईसाकी सोलहवीं शताब्दीके उत्तरार्द्धका है। इसकी अपेक्षा 'कान्हड़देप्रबन्ध'का उल्लेख लगभग एक शताब्दी जितना पुराना है। अहमदावादमें देवशा पांडेके ग्रन्थ भण्डारकी 'कल्पसूत्र'की एक सचित्र हस्तलिखित पत्रमें बन्दूकधारी सैनिकका चित्र है। (कार्ल खंडालावाला और मोतीचन्द्र, न्यू डोक्युमेण्ट्स आफ इण्डियन पेइण्टिग, बम्बई १९६९ चित्र सं० ६२) इस हस्तलिखित पत्रके अन्तिम पत्र गुम हो जानेके कारण इसका लेखन-वर्ष ज्ञात न हो सके ऐसा नहीं किन्तु लिपि एवं चित्रकी शैली परसे यह ई० सं० १४७४ के आसपास-का होनेका अनुमान कतिपय जानकारोंने लगाया है। इस 'कान्हड़देप्रबन्ध'को रचना ई० सं० १४५६ की है इस दृष्टिसे यह वास्तविक प्रतीत होता है। दूसरा, भारतीय चित्रकलाकी खोज करनेवाले कतिपय पाश्चात्यों-ने 'कल्पसूत्र'की प्रस्तुत हस्तलिखित प्रतिमेंके बन्दूकके आलेखको ठेठ सोलहवीं शताब्दीमें रखनेका प्रयास किया है यह भी 'कान्हड़देप्रबन्त्र'मेंके तोप दारूगोले आदिका व्यौरेवार वर्णनको अनुलक्षित करनेपर उचित प्रतीत नहीं होता। अब 'कान्हड़देप्रबन्ध'में प्रस्तुत अवतरण की ओर दृष्टिपात करना चाहिए।

जालौरके पास समियाणाका किला, जिसका रक्षा कान्हड़देवका भतीजा सांतलसिंह कर रहा था उसके घेरे जानेका वर्णन देखें—

तुरक चड़ी गढ साहमा आवइ, उठवणी असवार
साम्हा सींगिणि तीर विछूटइ, **निरता** वहइ **नलीयार**,
उपरि धिकूं ढील ज धाइ, झाडवीड सहू भांजइ
हाड गूड मुख करइ काचरां पडतउ पाहण वाजइ,
आगिवर्ण उडता आवइ, **नालइ नांख्या गोला**
भूका करइ भीति भांजीनइ, तणखा काढइ डोला,
यंत्र मगरबी गोला नांखइ, दू सांधी सूत्रहार
जिहां पडइ तिहां तरुवर भांजइ, पडतउ करइ संहार

पडइ त्रास भटकियां बिछूटइ, नइ धूधूइ **निफात**
वीज तणि परि झलकती दीसइ, जेहबी ऊलकापात,

(खण्ड २, कड़ी १२५-२९)

'तुर्क घोड़े सवार होकर आक्रमण करते हुए गढ(किले)की ओर आते हैं। सामने से धनुषमेंसे तीर छूट रहे है और तोपचीलोग (नलीयार, सं० नलिकाकार) तोप ('निरता')[1] खींचते हुए जा रहे हैं। (किलेमेंके लोग) ऊपरसे बड़े-बड़े पत्थर फेंक रहे हैं और इन गिरते हुए पत्थरोंसे चोट पहुँच रही है। तोपमें ('नालि') डाले हुए अग्निवर्णके गोले उड़ते आ रहे हैं वे (किलेकी) दीवारको तोड़कर चूर-चूर कर देते हैं और उनमेंसे मोटी-मोटी ज्वालायें निकलती हैं। सूत्रधार लोग, निशाना साधकर मगरबी यन्त्रमेंसे—पत्थर फेंकनेवाले यन्त्रोंमें से (पत्थरके) गोले[2] फेंक रहे हैं। ये जहाँ भी गिरते हैं वहाँके पेड़ पौधोंको नष्ट कर देते हैं और संहार करते हैं। बड़े फटाके ('भटकीयाँ') छूटते हैं और 'नफात' (इस नामका बारूद[3] खाना) प्रज्वलित हो जाता है। यह विद्युतवत् चमकता हुआ दिखाई देता है मानो उल्कापात ही हो रहा है।

घोर मध्य रात्रिमें किलेपरसे कटक—छावणीमें हवाइ आते रहनेका खण्ड २ कड़ी ११३में है।

'कान्हड़देप्रबन्ध'के द्वितीय खण्डकी भटाउलि (पृ०१५८-५९)में राजाधिकारियोंकी एक छोटी-सी सूची आती है—

आमात्य प्रधान सामन्त मांडलिक, मुकुट बर्द्धन श्री गरणा वइगरणा धर्मादिकरणा
मसाहणी टावरी बारहीया पुरुष वइडा छइ,

पाठान्तरमें 'पटवारी, कोठारी' और 'परघु' ये कर्मचारीगण हैं। इनके अतिरिक्त 'खेलहुत'—शेलत (प्रथम खण्डकी भटाउलि, पृ० ५१, खण्ड ४ कड़ी ४०) और नगर—तलार, पौलिया-द्वाररक्षक, सूआर—

---

१. प्राचीन गुजराती साहित्यमें अन्यत्र कहीं भी इस 'निरता' पाठ (पाठान्तर 'नरता') शब्द मेरे देखनेमें नहीं आया किन्तु यहाँ संदर्भ देखते हुए उसका अर्थ 'तोप' ही प्रतीत होता है। १२७ वीं कड़ीमें 'नालि' का अर्थ 'तोप' है इसमें तो शंका नहीं। 'आकाश भैरवाकल्प'में तथा रुद्र कविके 'राष्ट्रीयवंश महाकाव्य' (ई०सं० १५०६)में तोपके लिये 'नालिकास्त्र' ओर 'नालिका' शब्दोंका प्रयोग हुआ है। श्री अगरचन्द नाहटाको मिले हुए लगभग सत्रहवीं शताब्दीके 'कुतूहलम्' नामक एक राजस्थानी वर्णक-संग्रहमें वर्षाके वर्णनमें 'मेह गाजइ, आणै नालगोला वाजइ' (राजस्थान-भारती पु० १ पृ० ४३) इस प्रकारसे हैं वहाँ भी 'नाल' शब्दका अर्थ तोप है।

२. जालौरके किलेकी शस्त्रसज्जताके वर्णनपरसे विदित होता है कि ऐसे गोलोंका बहुत बड़ा संग्रह किलेपर रहता था—

गोला यंत्र मगरवी तणा, आगइ गढ उवरि छइ घणा
ऊपरि अन्न तणा कोठार, व्यापारीया न जाणूंपार (खण्ड ४, कड़ी ३५)

राजस्थानके कतिपय किलोंपर अद्यापि पत्थरोंके ऐसे गोलोंका संग्रहीत ढेर दिखाई देता है।

३. 'निफात' शब्द सं० निपातका तद्भव नही है अपितु यह एक प्रकारका बारूदघर है। यह मधुसूदन व्यास रचित 'हंसवती विक्रम चरित्र विवाह' (ई०स० १५६०)में बरातके जुलूसके वर्णनपरसे सिद्ध होता है। हवाइ छूटइ अनइ नफात, 'जिस पूरण गाजइ वरसात' (कड़ी ६५३) इसमें, इस प्रकारका निर्देश है।

पाकशालाका ऊपरि अधिकारी अवधानियाँ (१) दहेरासरी—देवस्थानोंकी देखरेख रखनेवाला एवं भण्डारी (खण्ड ४ कड़ी ३९-४२) का 'पान कपूर देनेवाला थईआत' (खण्ड ४, कड़ी ५१) का तथा 'महिता कुंडलिया टावरी' (खण्ड ४, २६२) और सेजपाल (खण्ड ४, कड़ी १८१-१९३) का भी उल्लेख है। खण्ड ४, कड़ी १२-२०में जालौर-वर्णनमें नगरके व्यवसाय और व्यवसायियोंका निर्देश ध्यान देने योग्य है इसमें वणिक ज्ञातिके सम्बन्धमें कहा है—

वीसा दसा विगति विस्तरी, एक श्रावक एक माहेसरी

जो, गुजरात एवं राजस्थानके लिए वर्तमानमें भी सत्य सिद्ध होता है। वर्णकोंमें राजलोग और पौरलोगोंकी अपेक्षा अधिक विस्तृत नामावलि उपलब्ध होती है। (वर्णक समुच्चय, भाग २ सूचीयें पृ० १७६-१८५) जो तुलनात्मक रूपसे इसके साथ करते हुए अध्ययन करने योग्य है।

'कान्हड़देप्रबन्ध' के तृतीय खण्ड (कड़ी ३७-६८) और चतुर्थ खण्ड (कड़ी ४३-४५) में कान्हड़देवकी सेवामें सज्जित विभिन्न वंशोंके राजपूतोंकी वार्ता है उसमें 'हूण' वंश भी है—

बलवन्ता वारड नई हूण, तेह तणइ मुखि मांडइ कूण (खण्ड ३ कड़ी ३८)
एक राउत चाउडा हूण, अति फुटरा उतारा लूण, (खण्ड ४ कड़ी ४४)

'कान्हड़देप्रबन्ध' के नायकसे पूर्व हुए शाकंभरीके चौहाण बीसलदेव अथवा विग्रहराजने अजमेरमें सं० १२१०में बनाई हुई पाठशालामेंके (जिसको बादमें मस्जिदके रूपमें बदल दिया गया था और जो वर्तमानमें ढाई दिनका झोंपड़ा, के नामसे पहचानी जाती है) उत्कीर्ण दो संस्कृत नाटक—विग्रहराज स्वरचित 'हरकेलि' और उसके सभापंडित सोमदेव रचित 'ललितविग्रहराज' शिलाखण्ड पर लिखकर बादमें खोदनेवाले पंडित भास्कर 'हूण' राजवंशमें जन्मे हुए एवं भोजराजके प्रतिपात्र विद्वान् गोविन्दके पुत्र पंडित महिपालका पुत्र था, ऐसा इन नाटकोंके अन्तमें वर्णित है। ('इण्डियन एण्टीक्वेरी' पु० २० पृ० २१०-१२) माणिक्यसुन्दर सूरि कृत पृथ्वीचन्दचरित्र, (प्राचीन गुर्जर काव्यसंग्रह पृ० १२५) में तथा 'वर्णक समुच्चय' भाग १ (पृ० ३३ पंक्ति १२) में भी राजवंश वर्णनमें 'हूण' है। गुजरातके रेवारियोंमें 'हूण' अटक है तथा श्री सुन्दरम्की 'गट्ठो' नवलिकामें बारैया ज्ञातिका युवक जब अपनी ससुराल आता है तो उसका स्वागत उसकी सालियें 'आशा होण 'हूण' आये! आशा होण आये!! कहते हुए करती हैं। यहाँ प्रजामें हूण जाति किस प्रकारसे समाविष्ट हो गई होगी, इसका कुछेक अनुमान इन प्रयोगोंपरसे हो आता है।

'कान्हदेप्रबन्ध' में से स्थापत्य एवं नगर-रचना सम्बन्धी उल्लेख पृथक् करके श्री नरसिंहराव ने सूची के रूपमें संक्षिप्त विवरण दिया है (पुरोवचन, पृ० १३-१४) इसी परम्पराके अनुरूप लगभग समकालीन वर्णन और इसका विस्तारपूर्वक उल्लेख वर्णकोंमें भी देखनेको मिलता है। ('वर्णक समुच्चय', भाग २ सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० ८८-९४, सूचीयें पृ० १७१-७५) इसके साथ-साथ मध्यकालीन गुजरात राजस्थानमें रचे गये मारू-गुर्जर एवं संस्कृत साहित्यमेंके विभिन्न वर्णन और विपुल उल्लेखोंके साथ तुलनासे तथा शक्य हो सके वहाँ तत्कालीन स्थापत्य, शिल्प एवं चित्रोंके साथ संयोजन करनेसे इस विषयमें बहुत नवीन जानकारी प्राप्त होती है अथवा ज्ञात वस्तुओंमें महत्त्वपूर्ण वृद्धि हो सकती है, ऐसा है।

पद्मनाभने 'कान्हड़देप्रबन्ध'में जालौरके किलेपरके तथा इसकी तलहटीके नगरमेंके प्रसंगवश वर्णनको लक्षमें रखकर जिन विविध स्थलोंका निर्देशन किया है वे समस्त आज भी देखे जा सकते हैं, पहचाने जा सकते हैं अथवा उनका स्थान निर्णय हो सकता है। प्राचीन साहित्य रचनामें निर्दिष्ट भूगोलका प्रत्यक्ष परिचय इस विशिष्ट रीतिसे एक आकर्षक विषय है। इस काव्यमें वर्णित स्थानोंका प्रत्यक्ष-दर्शन कर लेनेके

पश्चात् इसमेंके वर्णन किंवा निर्देशनोंके यथाशक्य संयोजनका प्रयत्न मैंने एक लेखमें ('जालौर और श्रीमालकी विद्यायात्रा,' 'बुद्धि प्रकाश' अप्रैल १९६७) किया है अतः यहाँ विस्तार नहीं करूंगा।

इस प्रकारसे भाषा एवं साहित्य दोनों दृष्टिकोणसे मारु-गुर्जर साहित्यमें 'कान्हड़देप्रबन्ध' अत्यन्त महत्त्वका है। मध्यकालीन भारतीय इतिहासके लिये निर्मित साधन-ग्रन्थोंमें इसका अति विशिष्ट स्थान है। मुस्लिम राज्यकालके अमुस्लिम मूल साधनोंकी—कतिपय विद्वानोंके शब्दोंमें कहा जाय तो—नोन-पर्सियन सोर्सिजकी—शोध और अध्ययनका प्रयत्न विशेष रूपसे हो रहा है तब तो 'कान्हड़देप्रबन्ध'के प्रति सविशेष ध्यानाकर्षण करना होगा, ऐसा है। चौहान वंशके विशिष्ट पुरुषोंपर रचे गये संस्कृत महाकाव्य, जयनक कृत 'पृथ्वी राजविजय', और नयचन्द्रसूरिकृत 'हम्मीरमहाकाव्य'के समकक्ष ही 'कान्हड़देप्रबन्ध'का स्थान है। ('पृथ्वीराज रासो', एक प्रकारसे अपभ्रंश महाभारत होनेपर भी इसका विवेचन एक पृथक् विचार करने योग्य है।) प्रशस्ति अत्युक्तियोंके होनेपर भी सामान्यतः ये कवि स्थितिकी वास्तविकताका निरूपण करनेसे नहीं चूके हैं। इतना होते हुए भी उपयुक्त संस्कृत महाकाव्योंके समान साहित्यशास्त्रके दृढ़ बंधनोंसे अलिप्त ऐसी पद्मनाभकी काव्य रचनाके पठन और परिशीलनसे एक प्रकारकी मुक्तताका अनुभव होता है।

मैं, इस परिशीलनका अवसर देने हेतु इस संशोधन संस्थाके नियामक महोदयका पुनः उपकार मानता हूँ।

(बुद्धिप्रकाश फरवरी सन् १९७०के पृ० ५९ से ६९ तकसे)



पाकशालाका ऊपरि अधिकारी अवधानियाँ (१) दहेरासरी—देवस्थानोंकी देखरेख रखनेवाला एवं भण्डारी (खण्ड ४ कड़ी ३९-४२) का 'पान कपूर देनेवाला थईआत' (खण्ड ४, कड़ी ५१) का तथा 'महिता कुंडलिया टावरी' (खण्ड ४, २६२) और सेजपाल (खण्ड ४, कड़ी १८१-१९३) का भी उल्लेख है। खण्ड ४, कड़ी १२-२०में जालौर-वर्णनमें नगरके व्यवसाय और व्यवसायियोंका निर्देश ध्यान देने योग्य है इसमें वणिक ज्ञातिके सम्बन्धमें कहा है—

वीसा दसा विगति विस्तरी, एक श्रावक एक माहेसरी

जो, गुजरात एवं राजस्थानके लिए वर्तमानमें भी सत्य सिद्ध होता है। वर्णकोंमें राजलोग और पौरलोगोंकी अपेक्षा अधिक विस्तृत नामावलि उपलब्ध होती हैं। (वर्णक समुच्चय, भाग २ सूचीयें पृ० १७६-१८५) जो तुलनात्मक रूपसे इसके साथ करते हुए अध्ययन करने योग्य है।

'कान्हड़देप्रबन्ध' के तृतीय खण्ड (कड़ी ३७-६८) और चतुर्थ खण्ड (कड़ी ४३-४५) में कान्हड़देवकी सेवामें सज्जित विभिन्न वंशोंके राजपूतोंकी वार्ता है उसमें 'हूण' वंश भी है—

बलवन्ता वारड नई हूण, तेह तणइ मुखि मांडइ कूण (खण्ड ३ कड़ी ३८)
एक राउत चाउडा हूण, अति फुटरा उतारा लूण, (खण्ड ४ कड़ी ४४)

'कान्हड़देप्रबन्ध' के नायकसे पूर्व हुए शाकंभरीके चौहाण बीसलदेव अथवा विग्रहराजने अजमेरमें सं० १२१०में बनाई हुई पाठशालामेंके (जिसको बादमें मस्जिदके रूपमें बदल दिया गया था और जो वर्तमानमें ढाई दिनका झोंपड़ा, के नामसे पहचानी जाती है) उत्कीर्ण दो संस्कृत नाटक—विग्रहराज स्वरचित 'हरकेलि' और उसके सभापंडित सोमदेव रचित 'ललितविग्रहराज' शिलाखण्ड पर लिखकर बादमें खोदनेवाले पंडित भास्कर 'हूण' राजवंशमें जन्मे हुए एवं भोजराजके प्रतिपात्र विद्वान् गोविन्दके पुत्र पंडित महिपालका पुत्र था, ऐसा इन नाटकोंके अन्तमें वर्णित है। ('इण्डियन एण्टीक्वेरी' पु० २० पृ० २१०-१२) माणिक्यसुन्दर सूरि कृत पृथ्वीचन्दचरित्र, (प्राचीन गुर्जर काव्यसंग्रह पृ० १२५) में तथा 'वर्णक समुच्चय' भाग १ (पृ० ३३ पंक्ति १२) में भी राजवंश वर्णनमें 'हूण' है। गुजरातके रेवारियोंमें 'हूण' अटक है तथा श्री सुन्दरम्‌की 'गट्ठो' नवलिकामें बारैया ज्ञातिका युवक जब अपनी ससुराल आता है तो उसका स्वागत उसकी सालियें 'आशा होण 'हूण' आये ! आशा होण आये !! कहते हुए करती हैं। यहाँ प्रजामें हूण जाति किस प्रकारसे समाविष्ट हो गई होगी, इसका कुछेक अनुमान इन प्रयोगोंपरसे हो आता है।

'कान्हदेप्रबन्ध' में से स्थापत्य एवं नगर-रचना सम्बन्धी उल्लेख पृथक् करके श्री नरसिंहराव ने सूची के रूपमें संक्षिप्त विवरण दिया है (पुरोवचन, पृ० १३-१४) इसी परम्पराके अनुरूप लगभग समकालीन वर्णन और इसका विस्तारपूर्वक उल्लेख वर्णकोंमें भी देखनेको मिलता है। ('वर्णक समुच्चय', भाग २ सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० ८८-९४, सूचीयें पृ० १७१-७५) इसके साथ-साथ मध्यकालीन गुजरात राजस्थानमें रचे गये मारू-गुर्जर एवं संस्कृत साहित्यमेंके विभिन्न वर्णन और विपुल उल्लेखोंके साथ तुलनासे तथा शक्य हो सके वहाँ तत्कालीन स्थापत्य, शिल्प एवं चित्रोंके साथ संयोजन करनेसे इस विषयमें बहुत नवीन जानकारी प्राप्त होती है अथवा ज्ञात वस्तुओंमें महत्त्वपूर्ण वृद्धि हो सकती है, ऐसा है।

पद्मनाभने 'कान्हड़देप्रबन्ध'में जालौरके किलेपरके तथा इसकी तलहटीके नगरमेंके प्रसंगवश वर्णनको लक्षमें रखकर जिन विविध स्थलोंका निर्देशन किया है वे समस्त आज भी देखे जा सकते हैं, पहचाने जा सकते हैं अथवा उनका स्थान निर्णय हो सकता है। प्राचीन साहित्य रचनामें निर्दिष्ट भूगोलका प्रत्यक्ष परिचय इस विशिष्ट रीतिसे एक आकर्षक विषय है। इस काव्यमें वर्णित स्थानोंका प्रत्यक्ष-दर्शन कर लेनेके

पश्चात् इसमेंके वर्णन किंवा निर्देशनोंके यथाशक्य संयोजनका प्रयत्न मैंने एक लेखमें ('जालौर और श्रीमालकी विद्यायात्रा,' 'बुद्धि प्रकाश' अप्रैल १९६७) किया है अतः यहाँ विस्तार नहीं करूंगा।

इस प्रकारसे भाषा एवं साहित्य दोनों दृष्टिकोणसे मारु-गुर्जर साहित्यमें 'कान्हड़देप्रबन्ध' अत्यन्त महत्त्वका है। मध्यकालीन भारतीय इतिहासके लिये निर्मित साधन-ग्रन्थोंमें इसका अति विशिष्ट स्थान है। मुस्लिम राज्यकालके अमुस्लिम मूल साधनोंकी—कतिपय विद्वानोंके शब्दोंमें कहा जाय तो—नोन-पर्सियन सोर्सिजकी—शोध और अध्ययनका प्रयत्न विशेष रूपसे हो रहा है तब तो 'कान्हड़देप्रबन्ध'के प्रति सविशेष ध्यानाकर्षण करना होगा, ऐसा है। चौहान वंशके विशिष्ट पुरुषोंपर रचे गये संस्कृत महाकाव्य, जयनक कृत 'पृथ्वी राजविजय', और नयचन्द्रसूरिकृत 'हम्मीरमहाकाव्य'के समकक्ष ही 'कान्हड़देप्रबन्ध'का स्थान है। ('पृथ्वीराज रासो', एक प्रकारसे अपभ्रंश महाभारत होनेपर भी इसका विवेचन एक पृथक् विचार करने योग्य है।) प्रशस्ति अत्युक्तियोंके होनेपर भी सामान्यतः ये कवि स्थितिकी वास्तविकताका निरूपण करनेसे नहीं चूके हैं। इतना होते हुए भी उपयुक्त संस्कृत महाकाव्योंके समान साहित्यशास्त्रके दृढ़ बंधनोंसे अलिप्त ऐसी पद्मनाभकी काव्य रचनाके पठन और परिशीलनसे एक प्रकारकी मुक्तताका अनुभव होता है।

मैं, इस परिशीलनका अवसर देने हेतु इस संशोधन संस्थाके नियामक महोदयका पुनः उपकार मानता हूँ।

(बुद्धिप्रकाश फरवरी सन् १९७०के पृ० ५९ से ६९ तकसे)



रामरासोकार महाकवि माधवदास दधिवाड़िया

सौभाग्य सिंह शेखावत

कविकुल गौरव माधवदास दधिवाड़िया चारणोंकी एक सौ बीस शाखाओंमें देवल गोत्रके चारण थे। यह शाखा क्षत्रियोंके सांखला राजवंशकी पोलपात्र थी। राजस्थानमें सांखला कुलके क्षत्रियोंका राज्य मारवाड़की रूंण पट्टी और जांगलू (बीकानेर) भूभागपर था। जांगलूपर शासन रहनेके कारण जांगलूवा सांखला और रूंणपर आधिपत्य होनेसे रूंणेचा सांखला प्रसिद्ध हुए। जांगलुवाँ सांखलोंने वीठू चारणोंको अपना बारहठत्व प्रदान किया और रूंणेचाने दधिवाड़िया चारणोंको[1]। रूंणका शासक राजा सोड़देव सांखला, बादशाह अलाउद्दीन खिलजीका समसामयिक था। अलाउद्दीनने राजा सोढ़देवकी राजकुमारीसे बलपूर्वक पाणिग्रहण किया और सांखलोंपर आक्रमणकर उन्हें शक्तिहीन बना दिया। शक्तिहीन और राज्यच्युत सांखला जाति राजनैतिक दृष्टिसे प्रभावहीन और निर्बल हो गई। उस समय सांखलोंका पोलपात्र चारण मेंहाजल देवल बड़ा वाक्पटु, नीतिमान् और प्रभावशाली व्यक्ति था। वह अपने निराश्रित आश्रयदाताओंका पक्ष ग्रहणकर बादशाह अलाउद्दीनके पास गया और अपनी काव्य शक्तिसे बादशाहको 'कुर्वा समुद्र'से सम्बोधितकर प्रसन्न किया। कूर्वा समुद्रका अर्थ है सामानका समुद्र जो कभी समाप्त नहीं होता है। अलाउद्दीनने इस गौरवसे प्रसन्न होकर सांखलोंको रूंणका क्षेत्र पुनः लौटा दिया। तब रूंणके कारण देवल चारणोंकी दधिवाड़िया शाखा प्रसिद्ध हुई। कालान्तरमें मारवाड़के राव रणमल्लने रूंणका राज्य सांखलोंसे छीन लिया। मेवाड़के शासक महाराणा कुम्भकर्ण रूंणके सांखलोंके भागनेय थे। सांखलोंके पोलपात्र होनेके कारण दधिवाड़िया चारण अपने आश्रित सांखलोंके साथ मेवाड़में चले गए। महाराणा कुम्भकर्णने दधिवाड़िया जैताको नाहर मगराके समीपस्थ धारता और गोठियाँ नामके दो ग्राम दिये। जैताके चार पुत्र हुए महपा, मांड़ण, देवा और बरसी। संवत् १५७५ वि० में महाराणा संग्रामसिंह प्रथमने मांडवके बादशाहको पराजितकर बंदी बनाया तब विजय दरबारका आयोजन किया और अपने योद्धाओं और कवियोंको सम्मानित किया। संग्रामसिंहने उस अवसर पर महपाको शावर ग्राम दिया। देवाको धारता और बरसी गोठियाणपर अधिष्ठित रहा। मांडण चित्तौड़से मारवाड़में लौट आया था। वह उच्चकोटिका भक्त हृदय कवि था। उसकी संतान मारवाड़में बासनी, कूंपड़ास और बलूदा आदि ग्रामोंमें है।[2] माधवदासका जन्म मारवाड़के बलूदा ग्राममें चूंडा दधिवाड़ियाके घरमें हुआ था। चूंडा अपने समयका राज्य और भक्त समाजमें समादृत पुरुष था। डा० हीरालाल माहेश्वरीने माधवदासको महाराजा शूरसिंह जोधपुरका आश्रित माना है।[3] पर, प्राप्त प्रमाणोंसे यह उचित नहीं जान पड़ता है। वस्तुतः माधवदास बलूंदाके स्वामी ठाकुर रामदास चांदावत राठौड़का आश्रित था। बलूंदा कावास माधवदासके पिता चूंडाको राव

---

१. मुंहता नैणसीरी ख्यात सं० बदरिप्रसाद साकरिया भाग १५-३५३।

२. वीरविनोद कविराजा श्यामलदास प्रथम भाग पृ० १८०-१८१।

३. राजस्थान भाषा और साहित्य डा० माहेश्वरी पृ० १६९।

चांदा वीरभदेवोतने अपना पोलपात्र बनाकर प्रदान किया था। यह तथ्य चूंडा द्वारा राव चांदाकी प्रशंसामें कथित कवित्तोंमें अभिव्यक्त है—

दीघ धरा दस सहंस जरी पञ्च दूण सजामां।
दोय दीघ दंताळ नरिन्द कीधा जगनामां॥
सात दूण अस व्रवी साज सुवन्न बणावै।
मोती आखा समण हाथ इण विध मंडावै॥
दधवाड़ कह घूहड़धणी, कमधज दाळिद कप्पियौ।
चंद री पोळ रवि चंद लग थिर कव चूंडौ थप्पियौ॥१॥

मेड़तिये मन मोट इळा कीधी अखियातां।
जावै नंह जसवास जुगां चहुंवै ही जातां॥
दीघ कड़ा मूंदड़ा हेक मोताहलं माळा।
दीघ चंद नरिन्द दुझल वीरमदे वाळा॥
लाख कर दिया मोटे कमंध चंदरा होय सो देवसी।
सोह नेग तोरण घोड़ा सहत चूंड रा होय सो लेवसी॥२॥

सांमेलै हिक मोहर अनै सरपाव स बागो।
हथळेवै वर तह चौक हिक मोहर चौ भागो॥
सरे मोहर हिक सहत कड़ा मूंदड़ा करग्गां।
अवर रीझ अणमाप बघेती खटत्तीस वरग्गां॥
वीरम तणा बीरे चूंडा समै महपत थपै मंगणां।
चंद कमंध दिया कव चूंड नै जेता नेग आखंड इणां॥३॥

अतः चूड़ा दधिवाड़िया राव चांदा वीरमदेवोत मेड़तियाका पोळपात्र तथा आश्रित कवि था। चूडाको चांदाने दस हजार बीघा भूमि, मोहरें आदि देकर अपना पोलपात्र नियत किया था। चूंडाने राव चांदाके चौदह पुत्रोंका नामोल्लेख अपने एक छप्पयमें किया है—

पाट पति 'गोपाल' 'रामदास' तिम राजेसर।
'दयाल' 'गोइंददास' 'राघव' 'केसवदास' 'मनोहर'॥
'भगवंत' 'भगवांनदास' 'सांवळदास' अनै 'किसनसिंघ'।
'नरहरदास' 'बिसन' हुवौ चवदमो 'हरीसिंघ'॥
चवदह कंवर चन्दा तणा एक-एक थी आगळा।
नव खंड नाँव करिवा कमंध खाग त्याग जस त्रम्मळा॥

चूंडाजी अपने युगके प्रतिष्ठा प्राप्त भक्त कवि थे। इनके रचित गुण निमंधा निमंध, गुण चाणक्य वेली, गुण भाखड़ी, और स्फुट कवित्त (छप्पय) उपलब्ध हैं। इन्हीं भक्त कवि चूंडाके पुत्र रत्न माधवदास थे। माधवदास बलूंदाके ठाकुर रामदासके पास बलूंदाका बास उपग्राममें रहता था। यह ग्राम राव चांदा द्वारा प्रदत्त दस हजार बीघा भूमिमें आबाद किया गया था। माधवदासने गुण रासो और गजमोख नामक दो ग्रन्थोंका प्रणयन किया था। गजमोख छोटी-सी कृति है और रामरासो राजस्थानी का प्रथम महाकाव्य है। रामरासो जैसा कि नामसे ही प्रकट है मर्यादापुरुष श्री रामचंद्रपर सर्जित है। रामरासोका राजस्थानमें

रामरासोकार महाकवि माधवदास दधिवाड़िया

सौभाग्य सिंह शेखावत

कविकुल गौरव माधवदास दधिवाड़िया चारणोंकी एक सौ बीस शाखाओंमें देवल गोत्रके चारण थे। यह शाखा क्षत्रियोंके सांखला राजवंशकी पोलपात्र थी। राजस्थानमें सांखला कुलके क्षत्रियोंका राज्य मारवाड़की रूंण पट्टी और जांगलू (बीकानेर) भूभागपर था। जांगलूपर शासन रहनेके कारण जांगलूवा सांखला और रूंणपर आधिपत्य होनेसे रूंणेचा सांखला प्रसिद्ध हुए। जांगलुवाँ सांखलोंने वीठू चारणोंको अपना बारहठत्व प्रदान किया और रूंणेचाने दधिवाड़िया चारणोंको[1]। रूंणका शासक राजा सोड़देव सांखला, बादशाह अलाउद्दीन खिलजीका समसामयिक था। अलाउद्दीनने राजा सोढ़देवकी राजकुमारीसे बलपूर्वक पाणिग्रहण किया और सांखलोंपर आक्रमणकर उन्हें शक्तिहीन बना दिया। शक्तिहीन और राज्यच्युत सांखला जाति राजनैतिक दृष्टिसे प्रभावहीन और निर्बल हो गई। उस समय सांखलोंका पोलपात्र चारण मेंहाजल देवल बड़ा वाक्पटु, नीतिमान् और प्रभावशाली व्यक्ति था। वह अपने निराश्रित आश्रयदाताओंका पक्ष ग्रहणकर बादशाह अलाउद्दीनके पास गया और अपनी काव्य शक्तिसे बादशाहको 'कुर्वा समुद्र'से सम्बोधितकर प्रसन्न किया। कूर्वा समुद्रका अर्थ है सामानका समुद्र जो कभी समाप्त नहीं होता है। अलाउद्दीनने इस गौरवसे प्रसन्न होकर सांखलोंको रूंणका क्षेत्र पुनः लौटा दिया। तब रूंणके कारण देवल चारणोंकी दधिवाड़िया शाखा प्रसिद्ध हुई। कालान्तरमें मारवाड़के राव रणमल्लने रूंणका राज्य सांखलोंसे छीन लिया। मेवाड़के शासक महाराणा कुम्भकर्ण रूंणके सांखलोंके भागनेय थे। सांखलोंके पोलपात्र होनेके कारण दधिवाड़िया चारण अपने आश्रित सांखलोंके साथ मेवाड़में चले गए। महाराणा कुम्भकर्णने दधिवाड़िया जैताको नाहर मगराके समीपस्थ धारता और गोठियाँ नामके दो ग्राम दिये। जैताके चार पुत्र हुए महपा, मांड़ण, देवा और बरसी। संवत् १५७५ वि० में महाराणा संग्रामसिंह प्रथमने मांडवके बादशाहको पराजितकर बंदी बनाया तब विजय दरबारका आयोजन किया और अपने योद्धाओं और कवियोंको सम्मानित किया। संग्रामसिंहने उस अवसर पर महपाको शावर ग्राम दिया। देवाको धारता और बरसी गोठियाणपर अधिष्ठित रहा। मांडण चित्तौड़से मारवाड़में लौट आया था। वह उच्चकोटिका भक्त हृदय कवि था। उसकी संतान मारवाड़में बासनी, कूंपड़ास और बलूंदा आदि ग्रामोंमें है।[2] माधवदासका जन्म मारवाड़के बलूंदा ग्राममें चूंडा दधिवाड़ियाके घरमें हुआ था। चूंडा अपने समयका राज्य और भक्त समाजमें समादृत पुरुष था। डा० हीरालाल माहेश्वरीने माधवदासको महाराजा शूरसिंह जोधपुरका आश्रित माना है।[3] पर, प्राप्त प्रमाणोंसे यह उचित नहीं जान पड़ता है। वस्तुतः माधवदास बलूंदाके स्वामी ठाकुर रामदास चांदावत राठौड़का आश्रित था। बलूंदा कावास माधवदासके पिता चूंडाको राव

---

१. मुंहता नैणसीरी ख्यात सं० बदरिप्रसाद साकरिया भाग १५-३५३।

२. वीरविनोद कविराजा श्यामलदास प्रथम भाग पृ० १८०-१८१।

३. राजस्थान भाषा और साहित्य डा० माहेश्वरी पृ० १६९।

चांदा वीरमदेवोतने अपना पोलपात्र बनाकर प्रदान किया था। यह तथ्य चूंडा द्वारा राव चांदाकी प्रशंसामें कथित कवित्तोंमें अभिव्यक्त है—

दीघ धरा दस सहंस जरी पञ्च दूण सजामां।
दोय दीघ दंताऴ नरिन्द कीधा जगनामां॥
सात दूण अस व्रवी साज सुवन्न बणावै।
मोती आखा समण हाथ इण विध मंडावै॥
दधवाड़ कह घूहड़धणी, कमधज दाऴिद कप्पियौ।
चंद री पोऴ रवि चंद लग थिर कव चूंडौ थप्पियौ॥१॥

मेड़तिये मन मोट इऴा कीधी अखियातां।
जावै नंह जसवास जुगां चहुंवै ही जातां॥
दीघ कड़ा मूंदड़ा हेक मोताहलं माऴा।
दीघ चंद नरिन्द दुझल वीरमदे वाऴा॥
लाख कर दिया मोटे कमंध चंदरा होय सो देवसी।
सोह नेग तोरण घोड़ा सहत चूंड रा होय सो लेवसी॥२॥

सांमेलै हिक मोहर अनै सरपाव स बागो।
हथऴेवै वर तह चौक हिक मोहर चौ भागो॥
सरे मोहर हिक सहत कड़ा मूंदड़ा करग्गां।
अवर रीझ अणमाप बघेती खटत्तीस वरग्गां॥
वीरम तणा बीरे चूंडा समै महपत थपै मंगणां।
चंद कमंध दिया कव चूंड नै जेता नेग आखंड इणां॥३॥

अतः चूडा दधिवाड़िया राव चांदा वीरमदेवोत मेड़तियाका पोलपात्र तथा आश्रित कवि था। चूडाको चांदाने दस हजार बीघा भूमि, मोहरें आदि देकर अपना पोलपात्र नियत किया था। चूंडाने राव चांदाके चौदह पुत्रोंका नामोल्लेख अपने एक छप्पयमें किया है—

पाट पति 'गोपाल' 'रामदास' तिम राजेसर।
'दयाल' 'गोइंददास' 'राघव' 'केसवदास' 'मनोहर'॥
'भगवंत' 'भगवांनदास' 'सांवऴदास' अनै 'किसनसिंघ'।
'नरहरदास' 'बिसन' हुवौ चवदमो 'हरीसिंघ'॥
चवदह कंवर चन्दा तणा एक-एक थी आगऴा।
नव खंड नांव करिवा कमंध खाग त्याग जस त्रम्मऴा॥

चूंडाजी अपने युगके प्रतिष्ठा प्राप्त भक्त कवि थे। इनके रचित गुण निमंधा निमंध, गुण चाणक्य वेली, गुण भाखड़ी, और स्फुट कवित्त (छप्पय) उपलब्ध हैं। इन्हीं भक्त कवि चूंडाके पुत्र रत्न माधवदास थे। माधवदास बलूंदाके ठाकुर रामदासके पास बलूंदाका बास उपग्राममें रहता था। यह ग्राम राव चांदा द्वारा प्रदत्त दस हजार बीघा भूमिमें आबाद किया गया था। माधवदासने गुण रासो और गजमोख नामक दो ग्रन्थोंका प्रणयन किया था। गजमोख छोटी-सी कृति है और रामरासो राजस्थानी का प्रथम महाकाव्य है। रामरासो जैसा कि नामसे ही प्रकट है मर्यादापुरुष श्री रामचंद्रपर सर्जित है। रामरासोका राजस्थानमें

तुलसीदासके रामचरित मानसकी भाँति घर-घरमें प्रचार और सम्मान रहा है। भक्ति कालके इस महान् कविने रामरासोकी संरचना आदि कवि वाल्मीकिकी रामायण, अध्यात्म रामायण और हनुमन्नाटककी कथा भूमिपर की है। राजस्थानके विद्वानोंमें कतिपय विद्वानोंने रामरासोकी पद्य संख्याकी गणना अलग-अलग प्रकट की है। माधवदासके जीवन सम्बन्धमें भी उनमें मतभेद है। श्री सीताराम लालसने माधवदास का स्वर्गवास सं० १६९० वि० माना है[1]। लालसने महाराजा अजितसिंह जोधपुरके राजकवि द्वारिकादास दधवाड़ियाको माधवदासका पुत्र माना है।[2] इस प्रकार उसकी संततिके विषयमें अनेक तथ्यविपरीत असंगत मान्यताएँ चल पड़ी हैं और माधवदासके जीवनके सम्बन्धमें भी आधार विरुद्ध प्रवाद फैले हुए हैं।

माधवदासका निधन वि० सं० १६८० जेठ सुदि ८ मंगलवारको मूंगदड़ा ग्राममें हुआ था। घटना यह है कि उक्त संवत्में मेड़ताके शाही हाकिम अब्बू महमदने राजा भीमसिंह अमरावत सीसोदिया टोडाकी सहायता प्राप्त कर नीम्बोलाके धनाढ्य नन्दवाना ब्राह्मणोंपर आक्रमण कर उनकी अतुलित सम्पत्ति लूट ली थी और उनके मुखियोंको बंदी बना लिया था। यह सूचना जैतारणमें ठाकुर किसनसिंह और जैतारणके हाकिम राघवदास पंचोलीको मिली। तब किशनसिंह और राघवदासने अबू महमद का पीछा किया। और बलूंदाके ठाकुर रामदाससे भी अपनी निजी सेना सहित शीघ्र उनके साथ आकर युद्धमें सम्मिलित होनेकी प्रार्थना की। ठाकुर रामदास अपने सरदारोंको साथ लेकर युद्धारंभ समयपर मूंगदड़ा जा पहुंचा। माधवदास भी ठाकुर रामदासके साथ था। जोधपुर और मेड़ताकी शाही सेनामें जमकर युद्ध हुआ। ठाकुर रामदास, माधवदास और कनौजिया भाट वरजांग प्रभृति अनेक वीर मारे गए। यह युद्ध महाराजा गजसिंहके शासन कालमें हुआ था।[3] अतः माधवदासका निधन संवत् १६९० मानना उचित नहीं है। बलूंदामें माधवदासकी छत्रीके लेखमें भी निधन तिथि सं० १६८० ही अंकित है।[4]

द्वारिकादासको माधवदासका पुत्र बतलाना भी उचित नहीं है। माधवदासका देहावसान १६८०में हुआ था और द्वारिकादासने संवत् १७७२में महाराजा 'अजित सिंहकी दवावैत' नामक रचना की थी। द्वारिकादासने कहा है—

दवावेत द्वादस दुवा, तीन कवित दोय गाह।
सतरे संवत बहोतरे, कवि द्वारे कहियाह॥

अतः द्वारिकादास १७७२ में विद्यमान था और माधवदासका १६८० में निधन हो गया था। दोनोंके मध्य ९२ वर्षका अन्तर स्पष्ट ही द्वारिकादासको माधवदासका पौत्र सिद्ध कर देता है। माधवदासके पिता चूंडा-को राठौड़ रतनसिंह रायमलोतने मेड़तावाटीका ग्राम जारोड़ो बेणां शासनमें दिया था। नेणसीकी परगनोंकी विगतमें लिखा है—तफे राहण दधवाड़िया चूडा मांडणोत नुं। हिमे पं० सुन्दरदास मोहणदास माधोदासोतने विसनदास सांमदासोत छै।[5] उपरिलिखित प्रसंगसे दो तथ्य प्रकट होते हैं। पहला तो यह कि माधवदास और श्यामदास दो भाई थे। माधवदास ज्येष्ठ और श्यामदास लघु था। दूसरा यह कि माधवदासके सुन्दरदास

---

१. राजस्थानी सबद कोस प्रस्तावना पृ० १४३।
२. वही ,, ,, ,, पृ० १५७।
३. कूपावतोंका इतिहास पृ० २७१-२७२।
४. श्री माधव प्रसाद सोनी शोध छात्रके संग्रहकी प्रतिलिपि।
५. मारवाड़ रा परगनां री विगत, सं० नारायणसिंह भाटी, भा० २ पृ० ११२।

और मोहनदास नामके दो पुत्र थे। ये दोनों राजा जसवंतसिंह प्रथम जोधपुरके शासनकाल १७२१ वि० तक विद्यमान थे। अतः द्वारिकादासको माधवदासका पुत्र प्रकट करना प्रमाणोंसे गलत ठहरता है। काल क्रमसे भी यह कथन तथ्य संगत नहीं सिद्ध होता है। राजस्थानी कवियोंके सम्बन्धमें इस प्रकारकी असंगतियाँ राजस्थानी और हिन्दी साहित्यके विद्वानोंमें बहुधा प्रचलित है।

राजस्थानीके आदि महाकाव्य रामरासोकी छंद संख्याको लेकर भी विद्वान् एक मत नहीं हैं। रामरासोकी प्राप्त प्रतियोंमें छंद संख्या भिन्न-भिन्न मिलती है। इसका कारण रामरासोकी प्रतिलिपियोंका बाहुल्य ही रहा है। कई प्रतियोंमें क्षेपक पद भी हैं। कुछ पद ऐसे हैं जो रामरासो, पृथ्वीराज रासो और प्राकृतकी गाहा सतसईमें न्यूनाधिक परिवर्त्तनके साथ उपलब्ध हैं। ऐसे उपलब्ध छंद गाहा सतसईके हैं जो विद्वान् लिपिकारोंकी रुचि और लिपिकौशलका परिणाम है। रामरासोकी कतिपय प्रतियोंमें घटनाओं और प्रसंगोंके अनुसार शीर्षक और अध्याय भी अंकित मिलते हैं। जिन प्रतियोंमें अध्यायोंका क्रम है उनमें अलग-अलग अध्यायोंकी अलग-अलग छंद संख्या पाई जाती हैं और जिस प्रतिमें यह क्रम नहीं है वहाँ सम्पूर्ण पद्योंकी क्रमशः छंद संख्या ही दी हुई मिलती है।

महाकवि माधवदासके काव्य गुरुके सम्बन्धमें श्री लालस प्रभृति विद्वानोंने लिखा है कि माधवदासने अपने पितासे ही अध्ययन किया था। यह कथन भी कल्पना प्रसूत ही लगता है। माधवदासने रामरासोके प्रारम्भमें ही अपने गुरुके लिए स्पष्ट संकेत किया है।

····श्रवण सुमित्र सबदं, जास पसाय पाय पद हरिजस।
····मुनिवर करमाणंदं, निय गुरदेव तुभ्यो नमः।।२।।

मुनिवर कर्मानन्द ही माधवदासके काव्य गुरु थे। 'निय गुर देव तुभ्यो नमः' मंगलाचरणकी ये पंक्तियाँ ही प्रमाण हैं। रामरासोकी रचना तिथि सभी प्राप्त प्रतियोंमें १६७५ वि० अंकित मिलती है। यद्यपि रामरासोके सर्जनके पश्चात् माधवदास बहुत कम वर्ष ही जीवित रहे, पर रामकथा तथा भक्ति वर्णनके प्रतापसे रामरासोका राजस्थानके शिक्षित परिवारोंमें अत्यधिक प्रचार रहा। और रामरासोके अनेक छंद 'पिंगल शिरोमणि' जैसे छंद शास्त्र ग्रन्थोंमें मिले हुए मिलते हैं। रामरासोके छंदोंका पिंगल शिरोमणिमें पाया जाना पिंगल शिरोमणिके कर्त्ताओं रावल हरराज भाटी(?) अथवा कुशललाभ(?) दोनों ही के लिए सन्देह उत्पन्न कर देते हैं। रामरासोका रचनाकाल १६७५ है और पिंगल शिरोमणिका सर्जनकाल संवत् १६१८ वि० से पूर्व माना जाता है। दोनोंके रचनाकालमें भारी अन्तर है। इस प्रकार पिंगल शिरोमणिका रचनाकाल भी एक प्रश्न रूपमें अध्येताओंके सामने खड़ा हुआ है।

माधवदास राजस्थानी (डिंगल) और संस्कृत दोनों भाषाओंका विद्वान् था। राजाओं और जागीरदारोंके आश्रय एवं सम्पर्कके कारण उसको अरबी, फारसी और तुर्की भाषाओंकी भी जानकारी रही हो तो कोई विस्मय नहीं। रामरासोमें अरबी, फारसी और तुर्कीके शब्दोंका प्रयोग हुआ है। इतना ही नहीं रामरासोमें व्यवहृत लोकोक्तियों और मुहावरोंसे यह भी पता चलता है कि माधवदास राजस्थानीके लोकभाषा रूपका भी सुज्ञाता था।

रामके माया मृगके पीछे जानेपर रामकी सहायताके लिए लक्ष्मणको भेजते समय सीताके मुखसे कहलवाया है—

लखमण धां म्हांलार, मात भरतरी मेल्हियो।
भोलो भो भरतार, देखे सोह धोलो दुगध।।

तुलसीदासके रामचरित मानसकी भाँति घर-घरमें प्रचार और सम्मान रहा है। भक्ति कालके इस महान् कविने रामरासोकी संरचना आदि कवि वाल्मीकिकी रामायण, अध्यात्म रामायण और हनुमन्नाटककी कथा भूमिपर की है। राजस्थानके विद्वानोंमें कतिपय विद्वानोंने रामरासोकी पद्य संख्याकी गणना अलग-अलग प्रकट की है। माधवदासके जीवन सम्बन्धमें भी उनमें मतभेद है। श्री सीताराम लालसने माधवदास का स्वर्गवास सं० १६९० वि० माना है[1]। लालसने महाराजा अजितसिंह जोधपुरके राजकवि द्वारिकादास दधवाड़ियाको माधवदासका पुत्र माना है।[2] इस प्रकार उसकी संततिके विषयमें अनेक तथ्यविपरीत असंगत मान्यताएँ चल पड़ी हैं और माधवदासके जीवनके सम्बन्धमें भी आधार विरुद्ध प्रवाद फैले हुए हैं।

माधवदासका निधन वि० सं० १६८० जेठ सुदि ८ मंगलवारको मूंगदड़ा ग्राममें हुआ था। घटना यह है कि उक्त संवत्में मेड़ताके शाही हाकिम अब्बू महमदने राजा भीमसिंह अमरावत सीसोदिया टोडाकी सहायता प्राप्त कर नीम्बोलाके धनाढ्य नन्दवाना ब्राह्मणोंपर आक्रमण कर उनकी अतुलित सम्पत्ति लूट ली थी और उनके मुखियोंको बंदी बना लिया था। यह सूचना जैतारणमें ठाकुर किसनसिंह और जैतारणके हाकिम राघवदास पंचोलीको मिली। तब किशनसिंह और राघवदासने अबू महमद का पीछा किया। और बलूंदाके ठाकुर रामदाससे भी अपनी निजी सेना सहित शीघ्र उनके साथ आकर युद्धमें सम्मिलित होनेकी प्रार्थना की। ठाकुर रामदास अपने सरदारोंको साथ लेकर युद्धारंभ समयपर मूंगदड़ा जा पहुंचा। माधवदास भी ठाकुर रामदासके साथ था। जोधपुर और मेड़ताकी शाही सेनामें जमकर युद्ध हुआ। ठाकुर रामदास, माधवदास और कनोजिया भाट वरजांग प्रभृति अनेक वीर मारे गए। यह युद्ध महाराजा गजसिंहके शासन कालमें हुआ था।[3] अतः माधवदासका निधन संवत् १६९० मानना उचित नहीं है। बलूंदामें माधवदासकी छत्रीके लेखमें भी निधन तिथि सं० १६८० ही अंकित है।[4]

द्वारिकादासको माधवदासका पुत्र बतलाना भी उचित नहीं है। माधवदासका देहावसान १६८०में हुआ था और द्वारिकादासने संवत् १७७२में महाराजा 'अजित सिंहकी दवावैत' नामक रचना की थी। द्वारिकादासने कहा है—

> दवावेत द्वादस दुवा, तीन कवित दोय गाह।
> सतरे संवत बहोतरे, कवि द्वारे कहियाह ॥

अतः द्वारिकादास १७७२ में विद्यमान था और माधवदासका १६८० में निधन हो गया था। दोनोंके मध्य ९२ वर्षका अन्तर स्पष्ट ही द्वारिकादासको माधवदासका पौत्र सिद्ध कर देता है। माधवदासके पिता चूंडा-को राठौड़ रतनसिंह रायमलोतने मेड़तावाटीका ग्राम जारोड़ो वैणां शासनमें दिया था। नेणसीकी परगनोंकी विगतमें लिखा है—तफे राहण धधवाड़िया चूडा मांडणोत नुं। हिमे पं० सुन्दरदास मोहणदास माधोदासोतने विसनदास सांमदासोत छै।[5] उपरिलिखित प्रसंगसे दो तथ्य प्रकट होते हैं। पहला तो यह कि माधवदास और श्यामदास दो भाई थे। माधवदास ज्येष्ठ और श्यामदास लघु था। दूसरा यह कि माधवदासके सुन्दरदास

---

१. राजस्थानी सबद कोस प्रस्तावना पृ० १४३।
२. वही ,, ,, ,, पृ० १५७।
३. कूपावतोंका इतिहास पृ० २७१-२७२।
४. श्री माधव प्रसाद सोनी शोध छात्रके संग्रहकी प्रतिलिपि।
५. मारवाड़ रा परगनां री विगत, सं० नारायणसिंह भाटी, भा० २ पृ० ११२।

और मोहनदास नामके दो पुत्र थे। ये दोनों राजा जसवंतसिंह प्रथम जोधपुरके शासनकाल १७२१ वि० तक विद्यमान थे। अतः द्वारिकादासको माधवदासका पुत्र प्रकट करना प्रमाणोंसे गलत ठहरता है। काल क्रमसे भी यह कथन तथ्य संगत नहीं सिद्ध होता है। राजस्थानी कवियोंके सम्बन्धमें इस प्रकारकी असंगतियाँ राजस्थानी और हिन्दी साहित्यके विद्वानोंमें बहुधा प्रचलित है।

राजस्थानीके आदि महाकाव्य रामरासोकी छंद संख्याको लेकर भी विद्वान् एक मत नहीं हैं। रामरासोकी प्राप्त प्रतियोंमें छंद संख्या भिन्न-भिन्न मिलती है। इसका कारण रामरासोकी प्रतिलिपियोंका बाहुल्य ही रहा है। कई प्रतियोंमें क्षेपक पद भी हैं। कुछ पद ऐसे हैं जो रामरासो, पृथ्वीराज रासो और प्राकृतकी गाहा सतसईमें न्यूनाधिक परिवर्त्तनके साथ उपलब्ध हैं। ऐसे उपलब्ध छंद गाहा सतसईके हैं जो विद्वान् लिपिकारोंकी रुचि और लिपिकौशलका परिणाम है। रामरासोकी कतिपय प्रतियोंमें घटनाओं और प्रसंगोंके अनुसार शीर्षक और अध्याय भी अंकित मिलते हैं। जिन प्रतियोंमें अध्यायोंका क्रम है उनमें अलग-अलग अध्यायोंकी अलग-अलग छंद संख्या पाई जाती हैं और जिस प्रतिमें यह क्रम नहीं है वहाँ सम्पूर्ण पद्योंकी क्रमशः छंद संख्या ही दी हुई मिलती है।

महाकवि माधवदासके काव्य गुरुके सम्बन्धमें श्री लालस प्रभृति विद्वानोंने लिखा है कि माधवदासने अपने पितासे ही अध्ययन किया था। यह कथन भी कल्पना प्रसूत ही लगता है। माधवदासने रामरासोके प्रारम्भमें ही अपने गुरुके लिए स्पष्ट संकेत किया है।

····श्रवण सुमित्र सबदं, जास पसाय पाय पद हरिजस।
····मुनिवर करमाणंदं, निय गुरदेव तुभ्यो नमः।।२।।

मुनिवर कर्मानन्द ही माधवदासके काव्य गुरु थे। 'निय गुर देव तुभ्यो नमः' मंगलाचरणकी ये पंक्तियाँ ही प्रमाण हैं। रामरासोकी रचना तिथि सभी प्राप्त प्रतियोंमें १६७५ वि० अंकित मिलती है। यद्यपि रामरासोके सर्जनके पश्चात् माधवदास बहुत कम वर्ष ही जीवित रहे, पर रामकथा तथा भक्ति वर्णनके प्रतापसे रामरासोका राजस्थानके शिक्षित परिवारोंमें अत्यधिक प्रचार रहा। और रामरासोके अनेक छंद 'पिंगल शिरोमणि' जैसे छंद शास्त्र ग्रन्थोंमें मिले हुए मिलते हैं। रामरासोके छंदोंका पिंगल शिरोमणिमें पाया जाना पिंगल शिरोमणिके कर्त्ताओं रावल हरराज भाटी(?) अथवा कुशललाभ(?) दोनों ही के लिए सन्देह उत्पन्न कर देते हैं। रामरासोका रचनाकाल १६७५ है और पिंगल शिरोमणिका सर्जनकाल संवत् १६१८ वि० से पूर्व माना जाता है। दोनोंके रचनाकालमें भारी अन्तर है। इस प्रकार पिंगल शिरोमणिका रचनाकाल भी एक प्रश्न रूपमें अध्येताओंके सामने खड़ा हुआ है।

माधवदास राजस्थानी (डिंगल) और संस्कृत दोनों भाषाओंका विद्वान् था। राजाओं और जागीरदारोंके आश्रय एवं सम्पर्कके कारण उसको अरबी, फारसी और तुर्की भाषाओंकी भी जानकारी रही हो तो कोई विस्मय नहीं। रामरासोमें अरबी, फारसी और तुर्कीके शब्दोंका प्रयोग हुआ है। इतना ही नहीं रामरासोमें व्यवहृत लोकोक्तियों और मुहावरोंसे यह भी पता चलता है कि माधवदास राजस्थानीके लोकभाषा रूपका भी सुज्ञाता था।

रामके माया मृगके पीछे जानेपर रामकी सहायताके लिए लक्ष्मणको भेजते समय सीताके मुखसे कहलवाया है—

लखमण धां म्हांलार, मात भरतरी मेल्हियो।
भोलो भो भरतार, देखे सोह धोलो दुगध।।

विभीषणने रावणको समझाते हुए कहा—

पांणो पहिली बंधि पालि, रहे जिम पांणी रांमण ।

\+ + +

सोवन लंक कुल पौलसत, **जासी जिम संकर** जरा ।

लक्ष्मणके शक्ति प्रहारसे चेतना शून्य होनेपर कथित पंक्तियोंमें—

धूजी धरा सेस धड़हड़ियो, **पड़ती संध्या** लखमण पड़ियो ।

\+ + +

राम समरभूमिमें रावणको ललकारते हुए कहते हैं—

हूँ आयो पग मांडि चोर हव, देखवि कर म्हारा कर दाणव ।

इस प्रकार माधवदासने राजस्थानीके लोक प्रचलित रूपका भी रामरासोमें अनेकधा प्रयोग किया है ।

महाकवि माधवदासके गुरु, संतति और निधन तिथि अब अनिश्चित नहीं रही है । पर रामरासोकी सभी प्राप्त प्रतियोंमें यह दोहा मिलता है—

रासो निज जस रामरस, वदियो निगम बखांण ।
कथितं माधवदास कवि, लिखतं भगत कल्याण ।।११३५

'लिखतं भगत कल्यांण'में कल्याण स्पष्टतः ही रामरासोका प्रथम लिपिकार है । यहाँ कल्याण व्यक्ति सूचक है । अतः रासोके अध्ययन-रत विद्वान् कल्याणके विषयमें भी अनुसंधान करेंगे, ऐसी आशा है ।



मेवाड़ प्रदेशके प्राचीन डिंगल कवि

श्री देव कोठारी

प्राचीन संस्कृत शिलालेखों एवं पुस्तकोंमें मेदपाट[1] नामसे प्रसिद्ध वर्तमानका मेवाड़, राजस्थान प्रान्तके दक्षिणी भूभागमें उदयपुर, चित्तौड़गढ़ व भीलवाड़ा जिलोंमें फैला हुआ प्रदेश है। शताब्दियों तक यह प्रदेश शौर्य, साहस, स्वाभिमान और देशगौरवके नामपर मर मिटने वाले असंख्य रणबांकुरोंकी क्रीड़ा-स्थलीके रूपमें प्रसिद्ध रहा है तथा यहाँके कवियोंने रणभेरीके तुमुलनादके बीच विविध भाषाओंमें विपुल साहित्यका सृजन किया है और उसे सुरक्षित रखा है।

दिवंगिर[2] जो आगे चलकर डिंगलके नामसे अभिहित की जाने लगी, आचार्य हरिभद्रसूरि (वि० सं० ७५७-८२७) से लेकर लगभग वर्तमान समय तक इस प्रदेशके कवियोंकी प्रमुख भाषा रही। प्रारंभमें डिंगल, अपभ्रंशसे प्रभावित थी किन्तु धीरे-धीरे उसका स्वतंत्र भाषाके रूपमें विकास हुआ। अब तक किये गये अनुसंधान कार्यके आधारपर विक्रमकी चौदहवीं शताब्दीके उत्तरार्द्ध तक इस प्रदेशमें जैन साधुओं द्वारा निर्मित काव्य ही मिलता है। महाराणा हमीर (वि० सं० १३८३-१४२१) के शासनकालमें सर्वप्रथम सोदा बारहठ बारूजी नामक चारण कविके फुटकर गीत मिलते हैं और उसके बाद जैन साधुओंके साथ-साथ चारणोंका काव्य भी क्रमशः अधिक मात्रामें उपलब्ध होता है। यह परम्परा वर्तमान समय तक कम अधिक तादाद में चालू रही है। यहाँके राजपूत, भाट, ढाढी, ढोली आदि जातियोंके कवियोंने भी काव्य निर्माणमें योग दिया है परन्तु परिमाणकी दृष्टिसे वह कम है। चारण कवियोंका काव्य परिनिष्ठित डिंगलमें मिलता है तो जैन साधुओं व अन्य जातिके कवियोंका काव्य लौकिक भाषासे प्रभावित डिंगलमें मिलता है। यही कारण है कि चारणोंके काव्यमें तद्भव शब्दोंका प्रयोग अधिक है तो चारणेतर काव्यमें लौकिक भाषाके शब्दोंका। यहाँ प्रस्तुत लेखमें मेवाड़में इस प्रकारके प्रसिद्ध प्राचीन चारण और चारणेतर कवियों तथा उनके काव्यका संक्षिप्त परिचय दिया जा रहा है—

(१) हरिभद्रसूरि—प्रभाचन्द्रसूरी द्वारा वि० सं० १३४४ में रचित 'प्रभावक चरित' थे अनुसार डिंगल भाषाके आदि कवि आचार्य हरिभद्रसूरि चित्तौड़के राजा जितारिके राजपुरोहित थे।[3] पद्मश्री मुनि जिनविजयजीने इनका जन्म स्थान चित्तौड़ और जीवनकाल वि० सं० ७५७ से ८२७ के मध्य माना है।[4]

---

१. नागरी प्रचारिणी पत्रिका, भाग २ पृष्ठ ३३४-३३५।

२. (i) डॉ० ब्रजमोहन जावलिया डिंगल: एक नवीन संवीक्षण, मधुमती मार्च ६९, पृष्ठ ८३-८४
(ii) डिंगल शब्दकी व्युत्पत्तिके सम्बन्धमें अनेक विद्वानोंने अपने मत प्रस्तुत किये हैं, किन्तु डॉ० जावलियाका यह मत ही अधिक समीचीन जान पड़ता है।

३. श्री अगरचन्द नाहटा—जैन साहित्य और चित्तौड़, शोध पत्रिका—मार्च १९४७ (भाग १, अंक १) पृष्ठ ३४।

४. जैन साहित्य संशोधक, पूना, भाग १, अंक १ में मुनि श्री जिनविजयजीका लेख—'हरिभद्रसूरिका समय-निर्णय'।

'गणधर सार्द्धशतक'की सुमतिगणिकी बृहद् वृत्तिमें इन्हें स्पष्टतः ब्राह्मण वंशमें उत्पन्न माना है।[१] ये अनेक शास्त्रोंके ज्ञाता और बहुश्रुत विद्वान् थे। प्रतिक्रमण अर्थ दीपिकाके आधारपर इनके द्वारा कुल १४४ ग्रन्थ लिखे गये, जिनमेंसे वर्तमानमें छोटी-बड़ी १०० रचनाएँ उपलब्ध हैं।[२] णेमिणाह चरिउ, धूर्ताख्यान, ललित विस्तरा, सम्बोध प्रकरण, जसहर चरिउ आदि ग्रन्थोंमें अपभ्रंशसे अलग होती हुई तत्कालीन डिंगलका स्वरूप स्पष्ट दिखाई देता है। 'णेमिणाह चरिउ'के प्रकृति वर्णनके निम्न उदाहरणसे इस तथ्यका पता चल सकता है—

भमरा धावहिं कुमुइणिउ डब्भिबि कमल वणेसु,
कस्सव कहिं पडिवधु जगे चिरपरिचिय गणेसु,
विरह विहुरिय चक्कमिहुणाइं मिलि ऊण साणंद,
हुम तुट्ठ भमहिं पहियण महियले,
कोसिय कुलु एक्कु परिदुहिउ रविहि,
आरूढे नहयले।[३]

(२) हरिषेण—दिगम्बर मतावलम्बी हरिषेण चित्तौड़के रहनेवाले थे। धक्कड़ इनकी जाति थी। पिताका नाम गोवर्धन और माताका नाम धनवती था।[४] विक्रम सं० १०४४ में इन्होंने 'धम्म परिक्खा' ग्रन्थकी रचना की[५]। इस ग्रन्थमें ११ सन्धियोंमें १०० कथाओंका वर्णन किया गया है।[६] जिनमें २३८ कडवक हैं।[७] राजस्थानमें यह ग्रन्थ बहुत प्रसिद्ध रहा है। इसकी अनेक हस्तलिखित प्रतियाँ हैं। 'धम्म परिक्खा'की रचनाका प्रयोजन व उपादेयता बतलाते हुए कवि कहता है कि—

मणुए-जम्मि वुद्धिए किं किज्जइ। मणहरजाइ कव्वु ण रहज्जइ॥
तं करत अवियाणिय आरिस। होसु लहहिं भड़ रड़ि गय पोरिसा॥[८]

अभी तक इस ग्रन्थका प्रकाशन नहीं हुआ है। विस्तृत जानकारीके लिए 'वीरवाणी'का राजस्थान जैन साहित्य सेवी विशेषांक द्रष्टव्य है।[९]

(३) जिनवल्लभसूरि—बारहवीं शताब्दीके पूर्वार्द्धमें अर्थात् वि० सं० ११३८के पश्चात् जिनवल्लभ-

---

१. श्री रामवल्लभ सोमानी—वीरभूमि चित्तौड़, पृष्ठ ११४।
२. श्री अगरचन्द नाहटा—राजस्थानी साहित्यकी गौरवपूर्ण परम्परा, पृष्ठ २६।
३. श्री राहुल सांकृत्यायन—हिन्दी काव्य धारा, पृष्ठ ३८४ व ३८६।
४. श्री रामवल्लभ सोमानी—वीरभूमि चित्तौड़, पृष्ठ १२२।
५. वही, पृ० १२२।
६. डॉ० कस्तूरचन्द कासलीवाल—राजस्थानी जैन सन्तोंकी साहित्य साधना, मुनि हजारीमल स्मृति ग्रन्थमें प्रकाशित लेख, पृ० ७६६।
७. श्री रामवल्लभ सोमानी—वीरभूमि चित्तौड़, पृ० १२२।
८. वही, पृ० १२२।
९. श्री रामवल्लभ सोमानी द्वारा लिखित 'हरिषेण' शीर्षक लेख, 'वीरवाणी' राजस्थान जैन साहित्य सेवी विशेषांक, पृ० ५२-५५।

सूरि पाटण (गुजरात)में आचार्य अभयदेवसूरिसे दीक्षा लेकर चित्तौड़ आये।[१] और यहाँ कई वर्षों तक रहकर विधि मार्गका प्रचार किया तथा अपने प्रभावके उद्गमका केन्द्र स्थान बनाया।[२] वि० सं० ११६७में जिनदत्त-सूरिको अपना पट्टधर नियुक्त कर इसी वर्ष कार्तिक कृष्णा १२को चित्तौड़में इनका देहावसान हो गया।[३] कवि, साहित्यकार व ग्रन्थकारके रूपमें इनकी बड़ी प्रतिष्ठा थी।[४] इनके द्वारा रचे गये ग्रन्थोंमें 'व्रद्धनवकार' ग्रन्थ बड़ा प्रसिद्ध है। ग्रन्थका रचनाकाल विवादास्पद है। इसमें विकसित होती हुई डिंगल भाषाका निम्न स्वरूप मिलता है—

चित्रावेली काज किसै देसांतर लंघउ। रयण रासि कारण किसै सायर उल्लंघउ।
चवदह पूरब सार युगे एक नवकार। सयल काज महिलसैर दुत्तर तरै संसार।[५]

(४) जिनदत्तसूरि— आचार्य जिनवल्लभसूरिके पट्टधर आचार्य जिनदत्तसूरिके संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश एवं तत्कालीन लोक भाषाके प्रकांड पंडित हुए हैं। 'गणधर सार्द्धशतक' इनका प्रसिद्ध ग्रन्थ है। मेवाड़के साथ-साथ सिन्ध, दिल्ली, गुजरात, मारवाड़ और बागड़ प्रदेशमें भी ये विचरण करते रहे।[६] इनका स्वर्गवास वि० सं० १२११में अजमेरमें हुआ।[७] श्वेताम्बर जैन समाजमें ये युगप्रधान, बड़े दादा साहब व दादा गुरुके रूपमें प्रसिद्ध हैं।[८] चर्चरी, उपदेश रसायन, काल स्वरूप कुलकम् इनकी अपभ्रंश-डिंगलकी रचनाएँ हैं।[९] 'उपदेश रसायन'में कवि गुरुकी महिमाका वर्णन करते हुए तत्कालीन डिंगल भाषाका निम्न स्वरूप मिलता है—

दुलहउ मणुय-जम्मु जो पत्तउ। सह लहु करहु तुम्हि सुनि रुत्तउ।
सुह गुरू दंसण विष्णु सो सहलउ। होइ न कीपइ वहलउ वहलउ ॥३॥
सु गुरु सु वुच्चइ सच्चउ भासइ। पर परिवायि-नियरु जसु नासइ।
सव्वि जीव जिव अप्पउ रक्खइ। मुक्ख मग्गु पुच्छियउ ज अक्खइ ॥४॥[१०]

(५) सोदा बारहठ बारू जी— ये मूलतः गुजरातमें खोड़ नामक गाँवके रहने वाले थे। इनकी माताका नाम बरबड़ीजी (अन्नपूर्णा) था जो शक्तिका अवतार मानी जाती थी। महाराणा हम्मीर (वि०सं०-१३७३-१४२१) द्वारा चित्तौड़ विजय (वि० सं० १४००) करनेमें इन्हीं बरवड़ीजी और बारूजीका विशेष हाथ था।[११] चित्तौड़ विजयकी खुशीमें महाराणाने इन्हें करोड़ पसाव, आंतरी गाँवका पट्टा आदि देकर अपना

१. श्री रामवल्लभ सोमानी—वीर भूमि चित्तौड़, पृ०११६।
२. श्री शान्ति लाल भारद्वाज—मेवाड़में रचित जैन साहित्य, मुनि हजारीमल स्मृति ग्रन्थ, पृ० ८९३।
३. (i) खरतरगच्छ पट्टावली, पृ० १८।
   (ii) श्री रामवल्लभ सोमानी—वीर भूमि चित्तौड़, पृ० ११७-१८।
४. श्री शान्तिलाल भारद्वाज—मेवाड़में रचित जैन साहित्य, मुनि हजारीमल स्मृति ग्रन्थ, पृ० ८९३।
५. सीताराम लालस कृत राजस्थानी सबद कोस, प्रथम खण्ड, भूमिका भाग, पृ० १०१।
६. श्री शान्तिलाल भारद्वाज—मेवाड़में रचित जैन साहित्य, मुनि हजारीमल स्मृति ग्रन्थ, पृ०, ८९४।
७. श्री अगरचन्द नाहटा—राजस्थानी साहित्यकी गौरवपूर्ण परम्परा, पृ० २९।
८. वही, पृ० २९।
९. वही, पृ० ४३।
१०. श्री राहुल सांकृत्यायन, हिन्दी काव्य धारा, पृ० ३५६-५८।
११. मलसीसर ठाकुर श्री भूरसिंह शेखावत द्वारा सम्पादित-महाराणा यश प्रकाश, पृ० १७।

पालपोत बनाया। इस अवसरपर बारूजीका बनाया हुआ गीत मिलता है।[1] इन्हें प्रथम राष्ट्रीय कवि कहा जा सकता है।[2] क्योंकि चित्तौड़से विदेशी शासकोंको हटानेमें इन्होंने अपने गीतोंके द्वारा महाराणा हम्मीरको बहुत उत्साहित किया था।[3] महाराणाकी मूल प्रेरक शक्ति चारिणी थी। हम्मीरके उत्तराधिकारी महाराणा क्षेत्रसिंह या खेता (वि० सं० १४२१-१४३९)के कालमें किसी समय बारूजी बून्दीके हाड़ा लाल सिंह (जिसकी कन्या महाराणा क्षेत्रसिंह)के लिये कुछ अपशब्द कहे इसपर बारूजीने पेटमें कटार मारकर आत्महत्या कर ली।[5]

(६) **मेलग मेहड़ू**—महाराणा मोकलके शासनकाल (वि० सं० १४५४-१४९०) के मध्य किसी समय यह चारण कवि मेवाड़में आया। महाराणा इसकी काव्य प्रतिभासे बहुत प्रसन्न हुए और उसे रायपुर-के पास बाड़ी नामक गाँव प्रदान किया।[6] कविके बहुतसे फुटकर गीत उपलब्ध होते हैं।[7]

(७) **हीरानन्दगणि**—ये महाराणा कुम्भा (वि० सं० १४९०-१५२५) के समकालीन तथा पिपल-गच्छाचार्य वीरसेनदेवके पट्टधर थे।[8] महाराणा इन्हें अपना गुरु मानते थे। दरबारमें इनका बड़ा सम्मान था तथा इन्हें 'कविराजा'की उपाधि भी महाराणाने प्रदान की थी।[9] देलवाड़ामें लिखे इनके 'सुपाहनाथ चरियं'के अतिरिक्त कलिकालरास, विद्याविलासरास, वस्तुपालतेजपालरास, जम्बूस्वामी विवाहलउ, स्थूलिभद्र बारहमासा आदि ग्रन्थ भी मिलते हैं।

(८) **जिनहर्षगणि**—ये आचार्य जयचन्द्रसूरिके शिष्य थे। महाराणा कुम्भाके शासनकालके समय इन्होंने चित्तौड़में चातुर्मास किया था।[11] इसी अवसरपर वि० सं० १४९७ में इन्होंने वस्तुपाल चरित काव्यकी रचना की।[11] इनका प्राकृत भाषाका 'रमणसेहरीकहा' नामक ग्रन्थ बड़ा प्रसिद्ध है।

(९) **पीठवा मीसण**—चारण पीठवा मीसण, महाराणा कुम्भाके समकालीन थे। इनके फुटकर गीत उपलब्ध होते हैं। सिवाना सिवियाणेके जैतमाल सलखावतकी प्रशंसामें इनका रचा हुआ एक गीत प्रसिद्ध है।[12] इससे अधिक जानकारी उपलब्ध नहीं होती।

(१०) **बारूजी बोगसा**—बोगसा खांपके चारण बारूजीका रचनाकाल वि० सं० १५२० के आस-पास है। ये महाराणा कुम्भाके आश्रित थे।[13] इनके फुटकर गीत प्रसिद्ध हैं। एक गीतकी दो पंक्तियाँ निम्नलिखित हैं—

---

१. मलसीसर ठाकुर भूरसिंहकृत महाराणा यशप्रकाश, पृष्ठ १८-१९।
२. डॉ० हीरालाल माहेश्वरी—राजस्थानी भाषा और साहित्य, पृष्ठ १३७।
३. मलसीसर ठाकुर भूरसिंह कृत महाराणा यश प्रकाश, पृ० २०-२१।
४. डॉ० मनोहर शर्मा—राजस्थानी साहित्य भारतकी आवाज, शोध पत्रिका, भाग-३, अंक-२ पृ० ६।
५. रामनारायण दूगड़ द्वारा सम्पादित मुंहणोत नैणसीकी ख्यात, प्रथम भाग, पृ०-२२।
६. सांवलदान आशिया—कतिपय चारण कवियोंका परिचय, शोध पत्रिका, भाग १२, अंक-४ पृ०६१।
७. वही पृ० ५१।
८. रामवल्लभ सोमानी, महाराणा कुंभा, पृ० २१७।
९. वही, पृ० २१७।
१०. शान्तिलाल भारद्वाज—मेवाड़में रचित जैन साहित्य, मुनि हजारीमल स्मृति ग्रन्थ, पृ० ८९५।
११. रामवल्लभ सोमानी—वीर भूमि चित्तौड़, पृ० ११९।
१२. डॉ० हीरालाल माहेश्वरी—राजस्थानी भाषा और साहित्य, पृ० १४९।
१३. डॉ० मोतीलाल मेनारिया—राजस्थानी साहित्यकी रूपरेखा, पृ० २२२।

जद घर पर जोवती दीठ नागोर धरंती।
गायत्री संग्रहण देख मन मांहि डरंती।[१]

(११) खेंगार मेहडू—महाराणा कुम्भा के समकालीन मेहडू शाखाके चारण कवि खेंगारके कुछ गीत साहित्य संस्थान, उदयपुरके संग्रहालयमें विद्यमान हैं। संभवतः ये कुंभाके आश्रित थे। कुम्भाकी अजेयता एवं वीरताके वर्णनसे युक्त इनके फुटकर गीत मिलते हैं।[२]

(१२) टोडरमल छांधड़ा—महाराणा रायमल (वि० सं० १५३०-१५६६) के बड़े पुत्र कुँवर पृथ्वीराज 'डड़ना' द्वारा टोड़ाके लल्ला खाँ पठानको मारनेसे सम्बन्धित इनका एक गीत बड़ा प्रसिद्ध है।[३] टोडरमल महाराणा रायमलके समकालीन थे। इनके गीतोंमें भावोंका अंकन बड़ा सुन्दर हुआ है।

(१३) राजशील—ये खरतर गच्छीय साधु हर्षके शिष्य थे।[४] इन्होंने वि० सं० १५६३ में महाराणा रायमलके शासनकालमें 'विक्रम-खापर चरित चौपई'की चित्तौड़में रचना की।[५] यह लोक कथात्मक काव्य विक्रम और खापरिया चोरकी प्रसिद्ध कथापर आधारित है। इनकी तीन रचनाएँ और भी उपलब्ध होती हैं।

(१४) जमणाजी बारहठ—जमणाजीको राष्ट्रीय कविके रूपमें याद किया जाता है।[६] ये महाराणा संग्रामसिंहके समकालीन थे।[७] बाबरके साथ हुए युद्धमें महाराणा सांगाको मूर्छा आनेपर राजपूत सरदार उन्हें बसवा ले आये और जब महाराणाकी मूर्छा खुली तब जमणाजीने 'सतबार जरासंघ आगल श्री रंग' नामक प्रथम पंक्ति वाला प्रसिद्ध गीत[८] सुनाकर शत्रुके विरुद्ध पुनः तलवार उठानेके लिए महाराणाको प्रेरित किया था। इनके और भी फुटकर गीत मिलते हैं।

(१५) गजेन्द्र प्रमोद—ये तपागच्छीय हेमविमलसूरिकी शिष्य परम्परामें हुए हैं। महाराणा सांगाके समकालीन थे। चित्तौड़ गढ़ चातुर्मास कालमें तत्कालीन डिंगल भाषामें लिखी हुई 'चित्तौड़ चैत्य परिपाटी' नामक कृति मिलती है।

(१६) केसरिया चारण हरिदास—इनकी कवित्व शक्ति और स्वामी भक्तिसे प्रभावित होकर महाराणा सांगाने चित्तौड़का राज्य ही दान कर दिया था। इसपर केसरिया चारण हरिदासने 'मोज समंद मालवत महाबल' तथा 'धन सांगा हात हमीर कलोधर' नामक प्रथम पंक्ति वाले दो गीत बनाकर महाराणा सांगाका यश ही चिरस्थायी बना दिया।[९] इनके और भी फुटकर गीत मिलते हैं।

(१७) महपेरा देवल—इनके पूर्वज मारवाड़के धधवाड़ा ग्रामके रहने वाले थे। महपेरा धधवाड़ा छोड़कर चित्तौड़ के महाराणा संग्रामसिंह (सांगा) के पास चला आया। महाराणा इनकी काव्य प्रतिभासे

---

१. वही, पृ० २२२।
२. प्राचीन राजस्थानी गीत, भाग ३, साहित्य संस्थान—उदयपुर प्रकाशन, पृ० २१।
३. वही, पृ० २७।
४. डॉ० हीरालाल माहेश्वरी—राजस्थानी भाषा और साहित्य, पृ० २५७।
५. शान्तिलाल भारद्वाज—मेवाड़में रचित जैन साहित्य, मुनि हजारीमल स्मृति ग्रन्थ, पृ० ८९५।
६. डॉ० मनोहर शर्मा—राजस्थानी साहित्यकी आवाज, शोध पत्रिका, भाग ३, अंक २, पृ० ८।
७. डॉ० हीरालाल माहेश्वरी—राजस्थानी भाषा और साहित्य, पृ० १३७।
८. मलसीसर ठाकुर भूरसिंह कृत महाराणा यश प्रकाश, पृ० ७०-७१।
९. मलसीसर ठाकुर भूरसिंह कृत महाराणा यश प्रकाश, पृ० ५८-५९।

बहुत प्रभावित हुए और जहाजपुरके पास ढोकल्या गाँव प्रदान किया। इनके वंशज आजकल खेमपुर, धारता, व गोटियामें हैं। महपेराके फुटकर गीत मिलते हैं।[१]

(१८) धर्मसमुद्र गणि—थे महाराणा सांगाके समकालीन जैन साधु थे। खरतरगच्छीय जिनसागर सूरिकी पट्ट परम्परामें विवेकसिंह इनके गुरु थे। इनकी कुल सात रचनाएँ—सुमित्रकुमार रास, कुलध्वज कुमार रास, अवंति सुकुमाल स्वाध्याय, रात्रि भोजन रास, प्रभाकर गुणाकर चौपई, शकुन्तला रास और सुदर्शन रास मिलती हैं। इन सात रचनाओंमेंसे वि० सं० १५७३ में 'प्रभाकर गुणाकर चौपई'की रचना धर्मसमुद्रने मेवाड़में विचरण करते हुए की।[२]

(१९) बारहठ भाणा मीसण—गौड़ोंका बारहठ चारण भाणा मीसण महाराणा रत्नसिंह (वि० सं० १४८४-८८) का समकालीन था। चित्तौड़के पास राठकोदमियेका रहनेवाला था और अपने समयका प्रसिद्ध कवि था।[३] बून्दीके सूरजमलने इन्हें लाख पसाव, लाल लश्कर घोड़ा और मेघनाथ हस्ती दिया था। महाराणा, सूरजमलसे नाराज थे। एक समय महाराणाके सामने भाणाने सूरजमलकी तारीफ की और उसे लाख पसाव, घोड़ा व हाथी देनेकी बात कही, इसपर महाराणा बड़े क्रोधित हुए तथा भाणाको मेवाड़ छोड़कर चले जानेको कहा। भाणा तत्काल मेवाड़ छोड़कर बून्दी चला गया।[४] भाणाके फुटकर गीत मिलते हैं।

(२०) मीरांबाई—मीरांबाईके जन्म, परिवार व मृत्युके सम्बन्धमें विद्वान् एक मत नहीं हैं। अधिकांश विद्वान् इसका जीवनकाल वि० सं० १५५५ से १६०३ तक मानते हैं।[५] यह मेहताके राठौड़ राव दूदाके चतुर्थ पुत्र रत्नसिंहकी बेटी तथा महाराज सांगाके पाटवी कुँवर भोजराजकी पत्नी थी।[६] इसका जन्मस्थान कुड़की नामक गांव और मृत्यु स्थान द्वारका था।[७] इसके जीवनसे सम्बन्धित अनेक कथाएँ प्रचलित हैं।

मीरांबाईके पदोंकी संख्या कई हजार बतलाई जाती है।[८] हिन्दी साहित्य सम्मेलनसे 'मीरांबाईकी पदावली' नामक पुस्तकमें २०० पदोंका तथा राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुरसे १०००से अधिक पदोंका संग्रह प्रकाशित हुआ है। डॉ० मोतीलाल मेठारियाके अनुसार मीरांबाईके पदोंकी संख्या २२५-२५०से अधिक नहीं है।[९] इसके रचे पाँच ग्रन्थ[१०] भी बतलाए गये हैं किन्तु उनकी प्रामाणिकता संदिग्ध है। श्री कृष्ण

---

१. सांवलदान आशिया—कतिपय चारण कवियोंका परिचय, शोध पत्रिका वर्ष १२ अंक ४, पृ० ३७।
२. (i) जैन गुर्जर कवियो, भाग १ पृ० ११६, भाग ३ पृ० ५४८।
   (ii) डॉ० हीरालाल माहेश्वरी, राजस्थानी भाषा और साहित्य, पृ० २५२
३. रामनारायण दूगड़—मुहणोत नैणसीकी ख्यात, प्रथम भाग, पृ० ५१।
४. वही, पृ० ५१-५२।
५. डॉ० हीरालाल माहेश्वरी, राजस्थानी भाषा और साहित्य, पृ० ३१४।
६. ओझा : राजपूतानेका इतिहास, दूसरी जिल्द (उदयपुर राज्यका इतिहास), पृ०-६७०।
७. डॉ० मोतीलाल मेनारिया—राजस्थानी भाषा और साहित्य, पृ० १४५-४६।
८. सीताराम लालस कृत राजस्थानी सबदकोस (भूमिका) पृ० १२६।
९. राजस्थानी भाषा और साहित्य, पृ० १४७।
१०. डॉ० हीरालाल माहेश्वरी, राजस्थानी भाषा और साहित्य, पृ० ३२३।

चन्द्र शास्त्री द्वारा मीरा कला प्रतिष्ठान, उदयपुरसे मीरांबाईसे सम्बन्धित प्रामाणिक जानकारी शीघ्र ही प्रकाशित की जा रही है। मीरांकी भाषा राजस्थानी है जो डिंगलके सरल शब्दोंसे पूरी तरह प्रभावित है।

(२१) **महाराणा उदयसिंह**—महाराणा सांगाके पुत्र और उदयपुर नगरके संस्थापक महाराणा उदयसिंह (वि० सं० १५९४-१६२८)की साहित्यके प्रति विशेष रूचि थी। ये स्वयं डिंगलमें कविता करते थे। कवि गिरवरदानने 'शिवनाथ प्रकाश' नामक अपने प्रसिद्ध ग्रन्थमें इनके दो गीत उद्धृत किये हैं।[1] उदाहरणके लिये एक गीतकी चार पंक्तियां निम्न हैं—

कहै पतसाह पता दो कूंची, धर पलटिया न कीजै धौड़।
गढ़पत कहे हमे गढ़ म्हारौ, चूंडाहरौ न दे चीतौड़॥[2]

(२२) **रामासांदू**—ये महाराणा उदयसिंहके समकालीन थे।[3] इन्होंने महाराणाकी प्रशंसामें 'बेलीराणा उदयसिंहरी'[4]की वि० सं० १६२८के आस-पास रचना की। इस वेलिमें कुल १५ वेलिया छन्द हैं।[5] वेलिके अतिरिक्त फुटकर गीत भी मिलते हैं। रामासांदूके लिये ऐसा प्रसिद्ध है कि जोधपुरके शासक मोटाराजा उदयसिंह (वि० सं० १६४०-१६५१)के विरुद्ध चल रहे चारणोंके आन्दोलनको छोड़कर मुगल विरोधी संघर्षमें मेवाड़में चले आये।[6] ये हल्दीघाटीकी लड़ाईमें महाराणा प्रतापकी ओरसे मुगलोंके विरुद्ध लड़ते हुए मारे गये।[7]

(२३) **कर्मसी आसिया**—इनके पूर्वज मारवाड़में थकुके समीप स्थित भगु ग्रामके रहने वाले थे। महाराणा उदयसिंहके आश्रित कर्मसीके पिताका नाम सूरा आसिया था। जालौरके स्वामी अक्षयराजने कर्मसीकी कार्य पटुतासे मोहित होकर इन्हें अपने दरबारमें नियुक्त कर दिया।[8] जब महाराणा उदयसिंहका अक्षयराजाकी पुत्रीसे हुआ, उस समय महाराणाने कर्मसीको अक्षयराजसे मांग लिया। चारण कवि सुकवि-रायका कहा हुआ इस घटनासे सम्बन्धित एक छप्पय[9] प्रसिद्ध है। चित्तौड़ गढ़पर उदयसिंहका अधिकार होनेपर कर्मसीको रहनेके लिये महाराणाने एक हवेली दी थी और इनकी पुत्रीके विवाहोत्सवपर स्वयं महाराणा उदयसिंह इनके मेहमान हुए थे। तथा इस अवसरपर महाराणाने इन्हें पसंद गाँव (राजसमन्द तहसीलके अन्तर्गत) रहनेके लिये दिया था। इस घटनाका भी एक छप्पय[10] प्रसिद्ध है। वर्तमानमें इनकी संतति पसूंद, कड़ियाँ, मंदार, मेंगटिया, जीतावास तथा मारवाड़के गाँव बीजलयासमें निवास करती है। फुटकर डिंगल

---

१. महेन्द्र भागवत द्वारा सम्पादित ब्रजराज काव्य माधुरी, डॉ० मोतीलाल मेनारियाकी भूमिका, पृ० ५।
२. डॉ० मोतीलाल मेनारिया–राजस्थानी साहित्यकी रूपरेखा, पृ० २२३।
३. रामनारायण दूगड़ द्वारा सम्पादित मुहणोत नैणसीकी ख्यात, प्रथम भाग, पृ० १११।
४. टेसीटरी-डिस्क्रप्टीव केटलॉग, सेक्सन ii, पार्ट i, पेज-६।
५. सीताराम लालस कृत राजस्थानी सबद कोस, (भूमिका) पृ० १३०।
६. डॉ० देवीलाल पालीवाल–डिंगल गीतोंमें महाराणा प्रताप, परिशिष्ट (कवि परिचय) पृ० १११,१२।
७. गिरधर आसिया कृत सगत रासो, हस्त लिखित प्रति, छन्द सं० ७३।
८. सांवलदान आसिया–कतिपय चारण कवियोंका परिचय, शोध पत्रिका, वर्ष १२ अंक ४ पृ० ४२-४३
९. प्राचीन राजस्थानी गीत भाग ८ साहित्य संस्थान, उदयपुर प्रकाशन, पृ० २०।
१०. वही, पृ० २०।

गीतोंके अलावा नाडोलके सूजा बालेछा (सामंत सिंह चौहानका पुत्र)के शौर्यकी प्रशंसामें ६१ छप्पयका एक लघुकाव्य भी इनका मिलता है।[१] इसी प्रकार सीरोहीके राव रायसिंह (वि० सं० १५९०-१६००)के सम्बन्धमें इनके रचे गये फुटकर गीत[२] मिलते हैं।

(२४) सुकविराय—ये संभवतः महाराणा सांगा, विक्रमादित्य और उदयसिंह के समकालीन कवि थे। इनके अबतक ३१ छप्पय प्रकाशमें आये हैं।[३] जिनमें किया गया वर्णन उपरोक्त तीनों महाराणाओंका समसामयिक लगता है। भाषापर इनके अधिकारको देखते हुए अनुसंधान करनेपर और भी इनकी रचनाएँ उपलब्ध हो सकती हैं।

(२५) महाराणा प्रतापसिंह—वीर शिरोमणि माहराणा प्रताप (वि०सं० १६२८-१६५३) डिंगलमें कविता करते थे।[४] बीकानेरके पृथ्वीराज राठौड़ तथा इनके बीच डिंगलके दोहोंमें जो पत्र व्यवहार हुआ था, वह प्रसिद्ध है।[५] इसके अलावा प्रतापने अपने प्रिय घोड़े चेटककी स्मृतिमें १०० छप्पयोंका एक शोकगीत (Elegy) भी बनाया था। इसकी हस्तलिखित प्रति सोन्याणा (जिला-उदयपुर) निवासी तथा 'प्रताप चरित्र' महाकाव्यके रचयिता केसरीसिंहजी बारहठने राजनगर कस्बेके किसी मालीके पास देखी थी।[६]

(२६) गोरधन बोगसा—ये महाराणा प्रतापके समकालीन[७] और डींगरोलवालोंके पुरखे थे।[८] इनका रचनाकाल वि० सं० १६३३के आसपास माना जाता है।[९] हल्दीघाटीके युद्ध (वि० सं० १६३३)में ये प्रतापके साथ लड़े थे।[१०] युद्धका आँखों देखा वर्णन इन्होंने फुटकर गीतोंमें किया है। गीत वीररससे परि-पूर्ण हैं।[११]

(२७) सूरायच टापरिया—टापरिया शाखाके चारण[१२] सूरायच भी प्रतापके समकालीन थे।[१३] दिल्लीमें पृथ्वीराज राठौड़से इनकी एक बार भेंट हुई थी। पृथ्वीराजने इनकी खूब आवभगत की और बादशाह अकबरसे भी मिलाया। अकबर इनकी कवित्व शक्तिसे बहुत प्रभावित हुआ। सूरायच वीरताका उपासक और राष्ट्रभक्त कवि था। इसके दोहों व सोरठोंकी भाषा ओजपूर्ण व शब्द चयन विषयानुकूल है।[१४]

१. वही, पृ० ५८से ९४।
२. (i) रामनारायण दूगड़ द्वारा सम्पादित मुहणोत नैणसीकी ख्यात, भाग १ पृ० १४३।
   (ii) डॉ० हीरालाल माहेश्वरी–राजस्थानी भाषा और साहित्य, पृ० ३५३।
३. प्राचीन राजस्थानी गीत, भाग ८, पृ० १से २५।
४. डॉ० महेन्द्र भानावत द्वारा सम्पादित ब्रजराज काव्य माधुरी, डॉ० मोतीलाल मेनारियाकी भूमिका पृ०—७।
५. ओझा—राजपूतानेका इतिहास (उदयपुर राज्यका इतिहास) दूसरी जिल्द, पृ० ७६३-६५।
६. डॉ० भानावत द्वारा सम्पादित ब्रजराज काव्य माधुरी, डॉ० मोतीलाल मेनारियाकी भूमिका, पृ० ७।
७. डॉ० हीरालाल माहेश्वरी—राजस्थानी भाषा और साहित्य, पृ० १३८।
८. प्राचीन राजस्थानी गीत (साहित्य संस्थान प्रकाशन) भाग ३, पृ० ४३।
९. सीताराम लालस कृत राजस्थानी सबदकोसकी भूमिका, पृ० १३२।
१०. वही, पृ० १३२।
११. वही, पृ० १३२।
१२. वही, पृ० १३२।
१३. डॉ० हीरालाल माहेश्वरी—राजस्थानी भाषा और साहित्य, पृ० १३८।
१४. सीताराम लालसकृत राजस्थानी सबदकोसकी भूमिका, पृ० १३२।

(२८) जाड़ा मेहडू—इनका वास्तविक नाम आसकरण था किन्तु शरीर मोटा होनेके कारण लोग इन्हें 'जाड़ाजी' कहते थे ।[१] एक जनश्रुतिके अनुसार मेवाड़के सामन्तोंने जब गोगुन्दामें जगमालको गद्दीसे उतारकर प्रतापको सिंहासनासीन किया उस समय जगमालने जाड़ाजीको अकबरके पास दिल्ली भेजा था । जाड़ाजी रास्तेमें अजमेर रुके और अकबरके दरबारी कवि व प्रसिद्ध सेनापति अब्दुल रहीम खानखानाको अपनी कवित्व शक्तिसे प्रभावित किया । इस सम्बन्धमें इनके चार दोहे मिलते हैं ।[२] रहीमके माध्यमसे यह अकबरके पास पहुँचा और जगमालके लिए जहाजपुरका परगना प्राप्त किया । इसपर जगमालने प्रसन्न होकर इन्हें सिरस्या नामक गाँव प्रदान किया । मेवाड़में मेहडूओंकी शाखा इन्हींके नामसे प्रचलित है, जिसे जाड़ावत[3] कहते हैं । जाड़ाजीका जीवनकाल वि० सं० १५५५ से १६६२ तक माना जाता है ।[४] इनकी फुटकर गीतों[५] के अलावा पंचायणके पौत्र और मालदेव परमारके पुत्र शार्दूल परमारके पराक्रमसे सम्बन्धित ११२ छन्दोंकी एक लम्बी रचना[६] भी मिलती है । प्रतापसे सम्बन्धित गीत भी मिलते हैं ।

(२९) हेमरत्न सूरि—ये पूर्णिमागच्छके वाचक पद्मराजगणिके शिष्य थे ।[७] इनका समय अनुमानतः वि० सं० १६१६-१६७३ है । मेवाड़-मारवाड़ सीमापर स्थित सादड़ी नगरमें वि० सं० १६४५ में ये चातुर्मास करनेके निमित्त आये थे । उस समय यहाँ भामाशाहका भाई और महाराणा प्रतापका विश्वास-पात्र व हल्दीघाटी युद्धका अग्रणी योद्धा ताराचन्द राज्याधिकारीके रूपमें नियुक्त था । ताराचन्दके कहनेसे हेमरत्नने 'गोरा बादल पदमिणी चउपई' बनाकर मगसिर शुक्ला १५ वि० सं० १६४६ में पूर्ण की ।[८] इसकी अनेक हस्तलिखित प्रतियाँ मिलती हैं । श्वेताम्बर जैनोंमें इस कृतिका सर्वाधिक प्रचार है । रचनामें अल्लाउद्दीनसे युद्ध, गोरा बादलकी वीरता एवं पद्मिनीके शीलका वर्णन है । हेमरत्नकी कुल ९ रचनाओं[९] के अलावा एक दसवीं रचना 'गणपति छन्द'[10] और मिली है ।

(३०) नरेन्द्रकीर्ति—जैन मतावलम्बी नरेन्द्र कीर्तिने जावरपुर (वर्तमान जावरमाइन्स-उदयपुर जिला) में वि० सं० १६५२ में 'अंजना रास'की रचना की । इस पौराणिक काव्यमें रामभक्त हनुमानकी माता अंजनाके चरित्रका वर्णन है । रचना जैन धर्मसे प्रभावित है ।

(३१) महाराणा अमरसिंह—महाराणा प्रतापके उत्तराधिकारी महाराणा अमरसिंह (वि० सं० १६५३-१६७६) अपने पिताकी तरह स्वाभिमानी और स्वतंत्रता प्रिय व्यक्ति थे । कविके साथ-साथ ये कवियों एवं विद्वानोंके आश्रयदाता भी थे । ब्राह्मण बालाचार्यके पुत्र धन्वन्तरिने इनकी आज्ञासे 'अमरविनोद'

---

१. डॉ० हीरालाल माहेश्वरी—राजस्थानी भाषा और साहित्य पृ० ३५३ ।
२. मायाशंकर याज्ञिक द्वारा सम्पादित रहीम रत्नावली, पृ० ६६-७६ ।
३. सांवलदान आसिया—कतिपय चारण कवियोंका परिचय, शोधपत्रिका, भाग १२ अंक ४, पृ० ३९ ।
४. वही, पृ० ३९ ।
५. प्राचीन राजस्थानी गीत, भाग ३, पृ० ३६ (साहित्य संस्थान प्रकाशन) ।
६. प्राचीन राजस्थानी गीत, भाग ११, पृ० १ से ४२ (साहित्य संस्थान प्रकाशन) ।
७. जैन गुर्जर कवियो, तृतीय भाग, पृ० ६८० ।
८. मुनि जिनविजयजी द्वारा सम्पादित गोरा बादल पदमिणी चउपई, पृ० ७ ।
९. डॉ० पुरुषोत्तमलाल मेनारिया—राजस्थानी साहित्यका इतिहास, पृ० १०९ ।
१०. 'गणपति छन्द'की हस्तलिखित प्रति डॉ० ब्रजमोहन जावलिया, उदयपुरके निजी संग्रहमें है ।

गीतोंके अलावा नाडोलके सूजा बालेछा (सामंत सिंह चौहानका पुत्र)के शौर्यकी प्रशंसामें ६१ छप्पयका एक लघुकाव्य भी इनका मिलता है।[1] इसी प्रकार सीरोहीके राव रायसिह (वि० सं० १५९०-१६००)के सम्बन्धमें इनके रचे गये फुटकर गीत[2] मिलते हैं।

(२४) सुकविराय—ये संभवतः महाराणा सांगा, विक्रमादित्य और उदयसिंह के समकालीन कवि थे। इनके अबतक ३१ छप्पय प्रकाशमें आये हैं।[3] जिनमें किया गया वर्णन उपरोक्त तीनों महाराणाओंका समसामयिक लगता है। भाषापर इनके अधिकारको देखते हुए अनुसंधान करनेपर और भी इनकी रचनाएँ उपलब्ध हो सकती हैं।

(२५) महाराणा प्रतापसिह—वीर शिरोमणि माहराणा प्रताप (वि०सं० १६२८-१६५३) डिंगलमें कविता करते थे।[4] बीकानेरके पृथ्वीराज राठौड़ तथा इनके बीच डिंगलके दोहोंमें जो पत्र व्यवहार हुआ था, वह प्रसिद्ध है।[5] इसके अलावा प्रतापने अपने प्रिय घोड़े चेटककी स्मृतिमें १०० छप्पयोंका एक शोकगीत (Elegy) भी बनाया था। इसकी हस्तलिखित प्रति सोन्याणा (जिला-उदयपुर) निवासी तथा 'प्रताप चरित्र' महाकाव्यके रचयिता केसरीसिंहजी बारहठने राजनगर कस्बेके किसी मालीके पास देखी थी।[6]

(२६) गोरधन बोगसा—ये महाराणा प्रतापके समकालीन[7] और डींगरोलवालोंके पुरखे थे।[8] इनका रचनाकाल वि० सं० १६३३के आसपास माना जाता है।[9] हल्दीघाटीके युद्ध (वि० सं० १६३३)में ये प्रतापके साथ लड़े थे।[10] युद्धका आँखों देखा वर्णन इन्होंने फुटकर गीतोंमें किया है। गीत वीररससे परिपूर्ण हैं।[11]

(२७) सूरायच टापरिया—टापरिया शाखाके चारण[12] सूरायच भी प्रतापके समकालीन थे।[13] दिल्लीमें पृथ्वीराज राठौड़से इनकी एक बार भेंट हुई थी। पृथ्वीराजने इनकी खूब आवभगत की और बादशाह अकबरसे भी मिलाया। अकबर इनकी कवित्व शक्तिसे बहुत प्रभावित हुआ। सूरायच वीरताका उपासक और राष्ट्रभक्त कवि था। इसके दोहों व सोरठोंकी भाषा ओजपूर्ण व शब्द चयन विषयानुकूल है।[14]

---

१. वही, पृ० ५८से ९४।
२. (i) रामनारायण दूगड़ द्वारा सम्पादित मुहणोत नैणसीकी ख्यात, भाग १ पृ० १४३।
   (ii) डॉ० हीरालाल माहेश्वरी–राजस्थानी भाषा और साहित्य, पृ० ३५३।
३. प्राचीन राजस्थानी गीत, भाग ८, पृ० १से २५।
४. डॉ० महेन्द्र भानावत द्वारा सम्पादित व्रजराज काव्य माधुरी, डॉ० मोतीलाल मेनारियाकी भूमिका पृ०—७।
५. ओझा—राजपूतानेका इतिहास (उदयपुर राज्यका इतिहास) दूसरी जिल्द, पृ० ७६३-६५।
६. डॉ० भानावत द्वारा सम्पादित व्रजराज काव्य माधुरी, डॉ० मोतीलाल मेनारियाकी भूमिका, पृ० ७।
७. डॉ० हीरालाल माहेश्वरी—राजस्थानी भाषा और साहित्य, पृ० १३८।
८. प्राचीन राजस्थानी गीत (साहित्य संस्थान प्रकाशन) भाग ३, पृ० ४३।
९. सीताराम लालस कृत राजस्थानी सबदकोसकी भूमिका, पृ० १३२।
१०. वही, पृ० १३२।
११. वही, पृ० १३२।
१२. वही, पृ० १३२।
१३. डॉ० हीरालाल माहेश्वरी—राजस्थानी भाषा और साहित्य, पृ० १३८।
१४. सीताराम लालसकृत राजस्थानी सबदकोसकी भूमिका, पृ० १३२।

(२८) जाड़ा मेहडू—इनका वास्तविक नाम आसकरण था किन्तु शरीर मोटा होनेके कारण लोग इन्हें 'जाड़ाजी' कहते थे।[१] एक जनश्रुतिके अनुसार मेवाड़के सामन्तोंने जब गोगुन्दामें जगमालको गद्दीसे उतारकर प्रतापको सिंहासनासीन किया उस समय जगमालने जाड़ाजीको अकबरके पास दिल्ली भेजा था। जाड़ाजी रास्तेमें अजमेर रुके और अकबरके दरबारी कवि व प्रसिद्ध सेनापति अब्दुल रहीम खानखानाको अपनी कवित्व शक्तिसे प्रभावित किया। इस सम्बन्धमें इनके चार दोहे मिलते हैं।[२] रहीमके माध्यमसे यह अकबरके पास पहुँचा और जगमालके लिए जहाजपुरका परगना प्राप्त किया। इसपर जगमालने प्रसन्न होकर इन्हें सिरस्या नामक गाँव प्रदान किया। मेवाड़में मेहडूओंकी शाखा इन्हींके नामसे प्रचलित है, जिसे जाड़ावत[3] कहते हैं। जाड़ाजीका जीवनकाल वि० सं० १५५५ से १६६२ तक माना जाता है।[४] इनकी फुटकर गीतों[५] के अलावा पंचायणके पौत्र और मालदेव परमारके पुत्र शार्दूल परमारके पराक्रमसे सम्बन्धित ११२ छन्दोंकी एक लम्बी रचना[६] भी मिलती है। प्रतापसे सम्बन्धित गीत भी मिलते हैं।

(२९) हेमरत्न सूरि—ये पूर्णिमागच्छके वाचक पद्मराजगणिके शिष्य थे।[७] इनका समय अनुमानतः वि० सं० १६१६-१६७३ है। मेवाड़-मारवाड़ सीमापर स्थित सादड़ी नगरमें वि० सं० १६४५ में ये चातुर्मास करनेके निमित्त आये थे। उस समय यहाँ भामाशाहका भाई और महाराणा प्रतापका विश्वास-पात्र व हल्दीघाटी युद्धका अग्रणी योद्धा ताराचन्द राज्याधिकारीके रूपमें नियुक्त था। ताराचन्दके कहनेसे हेमरत्नने 'गोरा बादल पदमिणी चउपई' बनाकर मगसिर शुक्ला १५ वि० सं० १६४६ में पूर्ण की।[८] इसकी अनेक हस्तलिखित प्रतियाँ मिलती हैं। श्वेताम्बर जैनोंमें इस कृतिका सर्वाधिक प्रचार है। रचनामें अल्लाउद्दीनसे युद्ध, गोरा बादलकी वीरता एवं पद्मिनीके शीलका वर्णन है। हेमरत्नकी कुल ९ रचनाओं[९] के अलावा एक दसवीं रचना 'गणपति छन्द'[10] और मिली है।

(३०) नरेन्द्रकीर्ति—जैन मतावलम्बी नरेन्द्र कीर्तिने जावरपुर (वर्तमान जावरमाइन्स-उदयपुर जिला) में वि० सं० १६५२ में 'अंजना रास'की रचना की। इस पौराणिक काव्यमें रामभक्त हनुमानकी माता अंजनाके चरित्रका वर्णन है। रचना जैन धर्मसे प्रभावित है।

(३१) महाराणा अमरसिंह—महाराणा प्रतापके उत्तराधिकारी महाराणा अमरसिंह (वि० सं० १६५३-१६७६) अपने पिताकी तरह स्वाभिमानी और स्वतंत्रता प्रिय व्यक्ति थे। कविके साथ-साथ ये कवियों एवं विद्वानोंके आश्रयदाता भी थे। ब्राह्मण बालाचार्यके पुत्र धन्वन्तरिने इनकी आज्ञासे 'अमरविनोद'

---

१. डॉ० हीरालाल माहेश्वरी—राजस्थानी भाषा और साहित्य पृ० ३५३।
२. मायाशंकर याज्ञिक द्वारा सम्पादित रहीम रत्नावली, पृ० ६६-७६।
३. सांवलदान आसिया—कतिपय चारण कवियोंका परिचय, शोधपत्रिका, भाग १२ अंक ४, पृ० ३९।
४. वही, पृ० ३९।
५. प्राचीन राजस्थानी गीत, भाग ३, पृ० ३६ (साहित्य संस्थान प्रकाशन)।
६. प्राचीन राजस्थानी गीत, भाग ११, पृ० १ से ४२ (साहित्य संस्थान प्रकाशन)।
७. जैन गुर्जर कवियो, तृतीय भाग, पृ० ६८०।
८. मुनि जिनविजयजी द्वारा सम्पादित गोरा बादल पदमिणी चउपई, पृ० ७।
९. डॉ० पुरुषोत्तमलाल मेनारिया—राजस्थानी साहित्यका इतिहास, पृ० १०९।
१०. 'गणपति छन्द'की हस्तलिखित प्रति डॉ० ब्रजमोहन जावलिया, उदयपुरके निजी संग्रहमें है।

नामक मेवाड़ी भाषाका ग्रन्थ बनाया था।[1] इसमें हाथियों सम्बन्धित अनेक तरहकी जानकारी दी गई है। अकबरका दरबारी कवि अब्दुर्रहीम खानखाना महाराणाका मित्र था। खानखानाको भेजे हुए इनके दोहे मिलते हैं।[2]

(३२) मानचन्द्र—ये आचार्य जिनराजसूरिके शिष्य थे। इन्होंने वि० सं० १६७५ में 'बच्छराज हंसराज रास'की रचना की। इस रचनामें बच्छराज और हंसराज नामक दो भाई कथाके प्रमुख पात्र हैं।[3] मानचन्दको मानमुनिके नामसे भी जाना जाता है। ये महाराणा अमरसिंह तथा महाराणा कर्णसिंह (वि० सं० १६७६-१६८४)के समकालीन थे।

(३३) गोविन्द—महाराणा जगतसिंह (वि० सं० १६८४-१७०९)के समकालीन रोहड़िया शाखाके चारण गोविन्दजीका रचनाकाल वि० सं० १७०० के आस-पास माना जाता है। इनके बहुतसे फुटकर गीत प्रकाशमें आये हैं। जगतसिंहकी प्रशंसामें रचे गये गीत प्रसिद्ध हैं।[4] भाषाका लालित्य और शब्द चयन सुन्दर है।

(३४) कल्याणदास—ये मेवाड़के सामेला गांवके रहनेवाले थे। इनके पिता लाखणोत शाखाके भाट बाघजी थे। इन्होंने वि० सं० १७०० में महाराणा जगत सिंहके शासनकालमें 'गुण गोविन्द' नामक ग्रन्थ[5] की रचना की। ग्रन्थमें कुल ११७ छन्द हैं, जिसमें भगवान् राम और कृष्णकी विविध लीलाओंका भक्तिपूर्ण वर्णन है। साहित्यिक सौन्दर्यकी दृष्टिसे ग्रन्थ श्रेष्ठ हैं।

(३५) लब्धोदय—ये महामहोपाध्याय ज्ञानराजके शिष्य थे। दीक्षासे पूर्व इनका नाम लालचन्द था। वि० सं० १६८० के लगभग इनका जन्म माना जाता है।[6] खरतरगच्छाचार्य श्री जिनरंगसूरिकी आज्ञासे ये उदयपुरमें आये। इसके बाद इनका बिहार मेवाड़में ही अधिक हुआ। इसका प्रमाण उदयपुर, गोगुन्दा, तथा धुलेवा (ऋषभदेव)में रचित इनकी कृतियाँ हैं। इनकी सर्वप्रथम रचना 'पद्मिनी चरित चउपई' मेवाड़के महाराणा जगतसिंहकी माता जंबूमतीके मंत्री खरतरगच्छीय कटारिया केसरीमलके पुत्र हंसराज और भागचंदकी प्रेरणासे लिखी गई उपलब्ध होती है। यह रचना चैत्र पूर्णिमा वि० सं० १७०७ में सम्पूर्ण हुई। इसमें ४९ ढाल तथा ८१६ गाथाएँ हैं। भागचन्दकी ही प्रेरणासे इन्होंने उदयपुरमें वि० सं० १७३९ की बसंत पञ्चमीको 'रत्नचूड़ मणिचूड़ चउपई'की रचना की। इसमें ३८ ढाले हैं। भागचन्दकी सन्ततिका इसमें पूरा परिचय दिया गया है। इस रचनासे पूर्व कविने तीन और भी रचनाएँ की थीं, जिनके नाम गाँव गोगुन्दामें रचित 'मलयसुन्दरी चउपई'में मिलते हैं। 'मलयसुन्दरी चउपई'की रचना वि० सं० १७४३ में धनतेरसके दिन गोगुन्दामें की थी। 'गुणावली चउपई'की रचना भागचन्दकी पत्नी भावलदेके लिए केवल १२ दिनमें (अर्थात् वि० सं० १७४५ को फाल्गुन कृष्णा १३ से फाल्गुन शुक्ला १० तक) रचकर

---

१. डॉ० महेन्द्र भानावत द्वारा सम्पादित ब्रजराज काव्यमाधुरी, डॉ० मोतीलाल मेनारियाकी भूमिका, पृ० ८।
२. वही, पृ० ८।
३. शान्तिलाल भारद्वाज—मेवाड़में रचित जैन साहित्य, मुनि हजारीमल स्मृति ग्रन्थ, पृ० ८९६।
४. सीताराम लालसकृत राजस्थानी सबदकोस, भूमिका, पृ० १५०।
५. राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, शा० का० उदयपुर, हस्तलिखित ग्रन्थ सं० ५९१।
६. भंवरलाल नाहटा द्वारा सम्पादित 'पद्मिनी चरित्र चौपई, पृ० २९।

समाप्त की। 'धुलेवा ऋषभदेव स्तवन' (वि० सं० १७१०) तथा 'ऋषभदेव स्तवन (वि० सं० १७३१) नामक दो रचनाएँ जैनियोंके प्रसिद्ध तीर्थ ऋषभदेव या केसरियाजी (जिला—उदयपुर)से सम्बन्धित हैं। डॉ० ब्रजमोहन जावलियाके संग्रहमें चैत्र पूर्णिमा छन्द, शनिचर छन्द और 'करेड़ा पार्श्वनाथ स्तवन' नामक तीन रचनाएँ और उपलब्ध होती हैं। कविका स्वर्गवास वि० सं० १७५१के आसपास माना जाता है।

(३६) राव जोगीदास—ये महाराणा जगतसिंह (वि० सं० १६८४-१७०९)के समकालीन गाँव कुंवारियाके रहनेवाले थे। इनके फुटकर गीत मिलते हैं। 'दाखे इम राण जगो देसोतां, कैलपुरो जाणियां कल' नामक पंक्ति वाले गीतमें इन्होंने महाराणा जगतसिंहके समान-उदार व दानी होनेके लिये अन्य राजाओंको उपदेश दिया है।[१]

(३७) धर्मसिंह—जैन मतावलम्बी मुनि धर्मसिंहकी एक रचना 'शिवजी आचार्य रास' प्राप्त हुई है। इसका रचनाकाल वि० सं० १६९७ और रचना स्थान उदयपुर है। इस समय महाराणा जगतसिंह शासन कर रहे थे। इस रासमें श्वेताम्बर अमूर्ति पूजक आचार्य शिवजीका वर्णन है। लोंकागच्छीय साधुओंमें इस कृतिका ऐतिहासिक महत्त्व है।[२]

(३८) भुवनकीर्ति—ये खरतगच्छीय जिनसूरिके आज्ञानुवर्ती थे। इन्होंने वि० सं० १७०६में उदयपुर नगरमें 'अंजना सुंदरी रास'की रचना बीकानेरके मंत्री श्री कर्मचन्दके वंशज भागचन्दके लिये की।[३] उन दिनों मेवाड़में जगतसिंहका राज्य था। इनकी 'गजसुकमाल चउपई' तथा 'जम्बूस्वामी रास' नामक रचनाएँ भी मिलती हैं।

(३९) महाराणा राजसिंह—महाराणा जगतसिंहके उत्तराधिकारी महाराणा राजसिंह (वि० सं०-१७०९-१७३७) स्वयं कवि और कवियोंके आश्रयदाताके रूपमें प्रसिद्ध हैं। इनके शासन कालमें संस्कृत, डिंगल व पिंगल ग्रन्थ तथा अनेक फुटकर गीत लिखे गये। राजविलास, राजप्रकास, संगत रासो आदि इनके राज्य कालके प्रमुख डिंगल काव्य ग्रन्थ हैं। डॉ० मोतीलाल मेनारियाने इनका बनाया हुआ 'कहाँ राम कहाँ लखण, नाम रहिया रामायण' नामक छप्पय[४] ब्रजराज काव्य माधुरीकी भूमिकामें उद्धृत किया है।

(४०) किशोरदास—ये महाराणा राजसिंहके आश्रित गोगुन्दा जाने वाले मार्गपर स्थित चीकलवास गाँवके रहने वाले सिसोदिया शाखाके दसौंदी राव थे।[५] इनके पिताका नाम दासोजी था। दासोजीके दो पुत्र श्यामलजी और किशोरदास थे। किशोरदासके कोई संतान नहीं थी। श्यामलजीके वंशधर अब भी चीकलवासमें रहते हैं। किशोरदासका लिखा 'राजप्रकास' १३२ छन्दोंका उत्कृष्ट ऐतिहासिक डिंगल काव्य है।[६] इसमें महाराणा राजसिंहके राज्यारोहणके उपरांत वि०सं० १७१४में 'टीका-दौड़'की रस्म पूरी करनेके लिये महाराणा द्वारा मालपुराकी लूट तथा उनके गुण गानका वर्णन है।[७]

---

१. प्राचीन राजस्थानी गीत, भाग-३ (साहित्य संस्थान प्रकाशन) पृ० ५२।

२. शान्तिलाल भारद्वाज—मेवाड़में रचित जैन साहित्य, हजारीमल स्मृति ग्रन्थ, पृ० ८९६।

३. शान्तिलाल भारद्वाज—मेवाड़में रचित जैन साहित्य, मुनि हजारीमल स्मृति ग्रन्थ, पृ० ८९७।

४. ब्रजराज काव्य माधुरी (संपादक—महेन्द्र भानावत) पृ० ८।

५. वरदा (त्रैमासिक) वर्ष ५ अंक ३में प्रकाशित श्री बिहारीलाल व्यास 'मनोज'का लेख—किशोरदासका परिचय

६. डॉ० मोतीलाल मेनारिया, राजस्थानी भाषा और साहित्य, पृ० २१२।

७. वरदा (त्रैमासिक) वर्ष ५ अंक २ पृ० १८-२६ श्री बिहारीलाल व्यास 'मनोज'का लेख ऐतिहासिक काव्य—राज प्रकास

नामक मेवाड़ी भाषाका ग्रन्थ बनाया था।[1] इसमें हाथियों सम्बन्धित अनेक तरहकी जानकारी दी गई है। अकबरका दरबारी कवि अब्दुर्रहीम खानखाना महाराणाका मित्र था। खानखानाको भेजे हुए इनके दोहे मिलते हैं।[2]

(३२) मानचन्द्र—ये आचार्य जिनराजसूरिके शिष्य थे। इन्होंने वि० सं० १६७५ में 'बच्छराज हंसराज रास'की रचना की। इस रचनामें बच्छराज और हंसराज नामक दो भाई कथाके प्रमुख पात्र हैं।[3] मानचन्दको मानमुनिके नामसे भी जाना जाता है। ये महाराणा अमरसिंह तथा महाराणा कर्णसिंह (वि० सं० १६७६-१६८४)के समकालीन थे।

(३३) गोविन्द—महाराणा जगतसिंह (वि० सं० १६८४-१७०९)के समकालीन रोहड़िया शाखाके चारण गोविन्दजीका रचनाकाल वि० सं० १७०० के आस-पास माना जाता है। इनके बहुतसे फुटकर गीत प्रकाशमें आये हैं। जगतसिंहकी प्रशंसामें रचे गये गीत प्रसिद्ध हैं।[4] भाषाका लालित्य और शब्द चयन सुन्दर है।

(३४) कल्याणदास—ये मेवाड़के सामेला गांवके रहनेवाले थे। इनके पिता लाखणोत शाखाके भाट बाघजी थे। इन्होंने वि० सं० १७०० में महाराणा जगत सिंहके शासनकालमें 'गुण गोविन्द' नामक ग्रन्थ[5] की रचना की। ग्रन्थमें कुल ११७ छन्द हैं, जिसमें भगवान् राम और कृष्णकी विविध लीलाओंका भक्तिपूर्ण वर्णन है। साहित्यिक सौन्दर्यकी दृष्टिसे ग्रन्थ श्रेष्ठ हैं।

(३५) लब्धोदय—ये महामहोपाध्याय ज्ञानराजके शिष्य थे। दीक्षासे पूर्व इनका नाम लालचन्द था। वि० सं० १६८० के लगभग इनका जन्म माना जाता है।[6] खरतरगच्छाचार्य श्री जिनरंगसूरिकी आज्ञासे ये उदयपुरमें आये। इसके बाद इनका बिहार मेवाड़में ही अधिक हुआ। इसका प्रमाण उदयपुर, गोगुन्दा, तथा धुलेवा (ऋषभदेव)में रचित इनकी कृतियाँ हैं। इनकी सर्वप्रथम रचना 'पद्मिनी चरित चउपई' मेवाड़के महाराणा जगतसिंहकी माता जंबूमतीके मंत्री खरतरगच्छीय कटारिया केसरीमलके पुत्र हंसराज और भागचंदकी प्रेरणासे लिखी गई उपलब्ध होती है। यह रचना चैत्र पूर्णिमा वि० सं० १७०७ में सम्पूर्ण हुई। इसमें ४९ ढाल तथा ८१६ गाथाएँ हैं। भागचन्दकी ही प्रेरणासे इन्होंने उदयपुरमें वि० सं० १७३९ की बसंत पञ्चमीको 'रत्नचूड़ मणिचूड़ चउपई'की रचना की। इसमें ३८ ढाले हैं। भागचन्दकी सन्ततिका इसमें पूरा परिचय दिया गया है। इस रचनासे पूर्व कविने तीन और भी रचनाएँ की थीं, जिनके नाम गाँव गोगुन्दामें रचित 'मलयसुन्दरी चउपई'में मिलते हैं। 'मलयसुन्दरी चउपई'की रचना वि० सं० १७४३ में धनतेरसके दिन गोगुन्दामें की थी। 'गुणावली चउपई'की रचना भागचन्दकी पत्नी भावलदेके लिए केवल १२ दिनमें (अर्थात् वि० सं० १७४५ को फाल्गुन कृष्णा १३ से फाल्गुन शुक्ला १० तक) रचकर

---

१. डॉ० महेन्द्र भानावत द्वारा सम्पादित ब्रजराज काव्यमाधुरी, डॉ० मोतीलाल मेनारियाकी भूमिका, पृ० ८।
२. वही, पृ० ८।
३. शान्तिलाल भारद्वाज—मेवाड़में रचित जैन साहित्य, मुनि हजारीमल स्मृति ग्रन्थ, पृ० ८९६।
४. सीताराम लालसकृत राजस्थानी सबदकोस, भूमिका, पृ० १५०।
५. राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, शा० का० उदयपुर, हस्तलिखित ग्रन्थ सं० ५९१।
६. भंवरलाल नाहटा द्वारा सम्पादित 'पद्मिनी चरित्र चौपई, पृ० २९।

समाप्त की। 'धुलेवा ऋषभदेव स्तवन' (वि० सं० १७१०) तथा 'ऋषभदेव स्तवन (वि० सं० १७३१) नामक दो रचनाएँ जैनियोंके प्रसिद्ध तीर्थ ऋषभदेव या केसरियाजी (जिला—उदयपुर)से सम्बन्धित हैं। डॉ० ब्रजमोहन जावलियाके संग्रहमें चैत्र पूर्णिमा छन्द, शनिचर छन्द और 'करेड़ा पार्श्वनाथ स्तवन' नामक तीन रचनाएँ और उपलब्ध होती हैं। कविका स्वर्गवास वि० सं० १७५१के आसपास माना जाता है।

(३६) राव जोगीदास—ये महाराणा जगतसिंह (वि० सं० १६८४-१७०९)के समकालीन गाँव कुंवारियाके रहनेवाले थे। इनके फुटकर गीत मिलते हैं। 'दाखे इम राण जगो देसोतां, कैलपुरो जाणियां कल' नामक पंक्ति वाले गीतमें इन्होंने महाराणा जगतसिंहके समान-उदार व दानी होनेके लिये अन्य राजाओंको उपदेश दिया है।[१]

(३७) धर्मसिह—जैन मतावलम्बी मुनि धर्मसिहकी एक रचना 'शिवजी आचार्य रास' प्राप्त हुई है। इसका रचनाकाल वि० सं० १६९७ और रचना स्थान उदयपुर है। इस समय महाराणा जगतसिंह शासन कर रहे थे। इस रासमें श्वेताम्बर अमूर्ति पूजक आचार्य शिवजीका वर्णन है। लोंकागच्छीय साधुओंमें इस कृतिका ऐतिहासिक महत्त्व है।[२]

(३८) भुवनकीर्ति—ये खरतगच्छीय जिनसूरिके आज्ञानुवर्ती थे। इन्होंने वि० सं० १७०६में उदयपुर नगरमें 'अंजना सुंदरी रास'की रचना बीकानेरके मंत्री श्री कर्मचन्दके वंशज भागचन्दके लिये की।[3] उन दिनों मेवाड़में जगतसिंहका राज्य था। इनकी 'गजसुकमाल चउपई' तथा 'जम्बूस्वामी रास' नामक रचनाएँ भी मिलती हैं।

(३९) महाराणा राजसिंह—महाराणा जगतसिंहके उत्तराधिकारी महाराणा राजसिह (वि० सं०-१७०९-१७३७) स्वयं कवि और कवियोंके आश्रयदाताके रूपमें प्रसिद्ध हैं। इनके शासन कालमें संस्कृत, डिंगल व पिंगल ग्रन्थ तथा अनेक फुटकर गीत लिखे गये। राजविलास, राजप्रकास, संगत रासो आदि इनके राज्य कालके प्रमुख डिंगल काव्य ग्रन्थ हैं। डॉ० मोतीलाल मेनारियाने इनका बनाया हुआ 'कहाँ राम कहाँ लखण, नाम रहिया रामायण' नामक छप्पय[४] ब्रजराज काव्य माधुरीकी भूमिकामें उद्धृत किया है।

(४०) किशोरदास—ये महाराणा राजसिंहके आश्रित गोगुन्दा जाने वाले मार्गपर स्थित चीकलवास गाँवके रहने वाले सिसोदिया शाखाके दसौंदी राव थे।[५] इनके पिताका नाम दासोजी था। दासोजीके दो पुत्र श्यामलजी और किशोरदास थे। किशोरदासके कोई संतान नहीं थी। श्यामलजीके वंशधर अब भी चीकलवासमें रहते हैं। किशोरदासका लिखा 'राजप्रकास' १३२ छन्दोंका उत्कृष्ट ऐतिहासिक डिंगल काव्य है।[६] इसमें महाराणा राजसिंहके राज्यारोहणके उपरांत वि०सं० १७१४में 'टीका-दौड़'की रस्म पूरी करनेके लिये महाराणा द्वारा मालपुराकी लूट तथा उनके गुण गानका वर्णन है।[७]

---

१. प्राचीन राजस्थानी गीत, भाग-३ (साहित्य संस्थान प्रकाशन) पृ० ५२।

२. शान्तिलाल भारद्वाज—मेवाड़में रचित जैन साहित्य, हजारीमल स्मृति ग्रन्थ, पृ० ८९६।

३. शान्तिलाल भारद्वाज—मेवाड़में रचित जैन साहित्य, मुनि हजारीमल स्मृति ग्रन्थ, पृ० ८९७।

४. ब्रजराज काव्य माधुरी (संपादक—महेन्द्र भानावत) पृ० ८।

५. वरदा (त्रैमासिक) वर्ष ५ अंक ३में प्रकाशित श्री बिहारीलाल व्यास 'मनोज'का लेख—किशोरदासका परिचय

६. डॉ० मोतीलाल मेनारिया, राजस्थानी भाषा और साहित्य, पृ० २१२।

७. वरदा (त्रैमासिक) वर्ष ५ अंक २ पृ० १८-२६ श्री बिहारीलाल व्यास 'मनोज'का लेख ऐतिहासिक काव्य—राज प्रकास

(४१) गिरधर आसिया—ये आसिया शाखाके चारण थे। इनका रचना काल वि० सं० १७२०के लगभग है।[१] लगभग पाँच सौ छन्दोंका एक उत्कृष्ट डिंगल भाषाका ग्रन्थ 'सगतसिंघ रासो' इनका बनाया हुआ मिला है। जिसकी प्रति इनके वंशज मेंगटिया निवासी ईश्वरदान आसियाके पास दोहा, भुजंगी, आदिसे युक्त इस ऐतिहासिक काव्यमें महाराणा प्रतापके कनिष्ठ भाई शक्तिसिंहका चरित्र वर्णन हैं। इनकी मुलाकात मुहणोत नैणसीसे भी हुई थी।[२]

(४२) जती मानसिंह—कविराजा बांकीदासके अनुसार ये मानजो जती (यति) थे।[३] इनका सम्बन्ध श्वेताम्बर विजयगच्छसे था। इन्होंने महाराणा राजसिंहके जीवन चरित्रसे सम्बन्धित 'राजविलास' नामक प्रसिद्ध ऐतिहासिक काव्य बनाया। इसकी भाषा डिंगलसे पूरी तरह प्रभावित है।[४] कुल अठ्ठारह विलासोंमें समाप्त इस ग्रन्थमें महाराणा राजसिंहके जीवनसे सम्बन्धित अधिकांश घटनाओंका इसमें सजीव वर्णन है। इसका रचना काल वि० सं० १७३४-३७ है।[५] जती मानसिंहकी उदयपुरमें रचित 'संयोग बत्तीसी' नामक रचना भी मिली है। इसे मान मंजरी संयोग द्वात्रिंशिका, संयोग बत्तीसी मान बत्तीसी भी कहते हैं।[६] बिहारी सतसईकी भी इन्होंने टीका की थी।[७]

(४३) साईदान—ये झाड़ोली गाँवके निवासी सीलगा खाँपके चारण मेहाजालके पुत्र थे। इनका रचना काल महाराणा राजसिंहका शासन काल है। लगभग २७७ पद्योंकी एक अपूर्ण रचना 'संमतसार' इनके नामसे प्राप्त हुई है। यह वृष्टि विज्ञापनका ग्रन्थ है, जिसमें दोहा, छप्पय, पद्धति आदि छन्दोंका प्रयोग हुआ है। ग्रन्थ शिव-पार्वती संवादके रूपमें है।[८]

(४४) पीरा आसिया—महाराणा राजसिंहके समकालीन ये आसिया शाखाके चारण थे। इनका रचना काल वि० सं० १७१५के आसपास माना जाता है। इनकी फुटकर गीतोंके अलावा कोई बड़ी रचना अभी तक प्राप्त नहीं हुई है। फुटकर गीतोंमें 'खटके खित वेध सदा खेहड़तो' नामक प्रथम पंक्ति वाला गीत जिसमें अकबरकी दृष्टिमें प्रताप व अन्य हिन्दू नरेश कैसे हैं का वर्णन किया गया है।[९]

(४५) माना आसिया—महाराणा जयसिंह (वि० सं० १७३७-१७५५)के समकालीन मानाजी आसिया मदारवालोंके पूर्वज थे। इनके फुटकर गीत प्रसिद्ध हैं। औरंगजेबने हिन्दुओंको मुसलमान बनानेके उद्देश्यसे जब आक्रमण किया था, उस समय खुमाण वंशी जयसिंहने हिन्दूधर्मकी रक्षा की थी। इस सम्बन्धका इनका गीत[१०] बड़ा प्रसिद्ध है।

---

१. डॉ० मोतीलाल मेनारिया, राजस्थानी भाषा और साहित्य, पृ० २१३।
२. रामनारायण दूगड़ द्वारा सम्पादित मुहणोत नैणसीकी ख्यात, प्रथम भाग पृ० ५४।
३. नरोत्तम दास स्वामी द्वारा सम्पादित बांकीदासकी ख्यात, पृ० ९७
४. डॉ० गोवर्धन शर्मा—प्राकृत और अपभ्रंशका डिंगल साहित्यपर प्रभाव, पृ० १९१-९२।
५. मोतीलाल मेनारिया व विश्वनाथ प्रसाद मिश्र द्वारा सम्पादित, राज विलास, भूमिका भाग, पृ० ६।
६. शान्तिलाल भारद्वाज–मेवाड़में रचित जैन साहित्य, मुनि हजारीमल स्मृति ग्रन्थ, ग्रन्थ पृ० ८९७।
७. वही, पृ० ८९७।
८. डॉ० मोतीलाल मेनारिया—राजस्थानी भाषा और साहित्य, पृ० २०९।
९. डॉ० देवीलाल पालीवाल द्वारा सम्पादित डिंगल काव्यमें महाराणा प्रताप, पृ० ११४।
१०. प्राचीन राजस्थानी गीत, भाग ३ (साहित्य संस्थान प्रकाशन) पृ० ६९-७०।

(४६) उदयराज—डॉ० मोतीलाल मेनारियाने इन्हें मेवाड़ प्रदेशका जैन यति बतलाया है।[1] इनका रचनाकाल महाराणा जयसिंहका शासन काल है। डॉ० मेनारियाने इनका एक छप्पय[2] अपनी पुस्तक में उद्धृत किया है।

(४७) राव दयालदास—ये राशमी (चित्तौड़गढ़) के पास गलून्ड परगनेके रहनेवाले थे। फूलेर्‌या मालियोंके यहाँ पर इनकी यजमानी थी। इनका बनाया हुआ 'राणा रासो' नामक ग्रन्थ साहित्य संस्थानके संग्रहालय[3] में उपलब्ध है। इसमें मेवाड़के आदिकालसे लेकर महाराणा कर्णसिंह (वि० सं० १६७६-१६८४) के राज्याभिषेक तकके शासकोंका वर्णन है। कर्णसिंहके बाद महाराणा जगतसिंह, राजसिंह और जयसिंहका भी इसमें नामोल्लेख है किन्तु इनका वर्णन नहीं किया गया है। इस कारण इसका रचनाकाल संदिग्ध है। ग्रन्थमें कुल ९११ छन्द हैं। साहित्य संस्थान द्वारा इसका सम्पादन किया जा रहा है।

(४८) दौलतविजय—खुमाण रासोके रचयिता दौलतविजय तपागच्छीय जैनसाधु शान्तिविजयके शिष्य थे। दीक्षासे पूर्व इनका नाम दलपत था। अद्यावधि 'खुमाण रासो' की एक ही प्रति मिली है जो भंडारकर ओरियन्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट, पूनाके संग्रहालयमें सुरक्षित है। इसमें खुमाण उपाधिसे विभूषित मेवाड़के महाराणाओंका वर्णन बापा रावल (वि० सं० ७९१) से लेकर महाराणा राजसिंह तक दोहा, सोरठा, कवित्त आदि छन्दोंमें हुआ है। डॉ० कृष्णचन्द्र श्रोत्रियने इसका सम्पादन किया है। इसका रचनाकाल वि० सं० १७६७से १७९०के मध्य किसी समय है।[4]

(४९) बारहठ चतुर्भुज सौदा—ये महाराणा अमरसिंह द्वितीय (१७५५-१७६७)के समकालीन व आश्रित चारण कवि थे। महाराणाने इन्हें बारहठकी उपाधिसे विभूषित किया था, इस सम्बन्धका इनका ही बनाया हुआ एक गीत[5] मिलता है। अन्य फुटकर गीत भी साहित्य संस्थान संग्रहालयमें हैं।

(५०) यति खेता—महाराणा अमरसिंह द्वितीयके राज्यकालमें इन्होंने उदयपुरमें रहते हुए 'उदयपुर गजल' की रचना की। इसमें उदयपुर नगर व बाहरके दर्शनीय स्थानोंका सरस वर्णन है। ये खरतरगच्छीय दयावल्लभके शिष्य थे। 'चित्तौड़ गजल'[6] नामसे एक और रचना भी मिलती है।

(५१) करणीदान—कविया शाखाके चारण करणीदान शूलवाड़ा गाँव (मेवाड़) के रहनेवाले थे। गरीबीसे तंग आकर ये शाहपुराके शासक उम्मेदसिंह (वि० सं० १७८६-१८२५) के पास आये और अपनी कवितासे उन्हें खुश किया, इस पर उम्मेदसिंहने इनके घरपर आठ सौ रुपये भेजे। यहाँसे करणीदान डूंगरपुरके शासक शिवसिंह (वि० सं० १७८७-१८४२) के पास गये। वहाँ शिवसिंहने इनकी कवित्व शक्तिसे प्रभावित हो लाख पसाव दिया। इसके बाद ये महाराणा संग्रामसिंह द्वितीय (वि० सं० १७६७-१७९०) के आश्रयमें चले आये। महाराणाने इन्हें लाख पसाव देकर सम्मानित किया तथा इनकी माताजीको मथुरा, वृन्दावन

---

१. डॉ० मोतीलाल मेनारिया—राजस्थानी साहित्यकी रूपरेखा, पृ० २२९।

२. वही, पृ० २२९।

३. हस्तलिखित प्रति सं० ८४।

४. (i) नागरी प्रचारिणी पत्रिका, वर्ष ४४ अंक ४, अगरचन्द नाहटाका लेख।
   (ii) भँवरलाल नाहटा द्वारा सम्पादित पद्मिनी चरित्र चौपई, पृष्ठ ४१।

५. प्राचीन राजस्थानी गीत, भाग-३ (साहित्य संस्थान, प्रकाशन), पृष्ठ ७३-७४।

६. यह गजल डॉ० ब्रजमोहन जावलिया, उदयपुरके निजी संग्रहमें हैं।

(४१) गिरधर आसिया—ये आसिया शाखाके चारण थे। इनका रचना काल वि० सं० १७२०के लगभग है।[१] लगभग पाँच सौ छन्दोंका एक उत्कृष्ट डिंगल भाषाका ग्रन्थ 'सगतसिंघ रासो' इनका बनाया हुआ मिला है। जिसकी प्रति इनके वंशज मेंगटिया निवासी ईश्वरदान आसियाके पास दोहा, भुजंगी, आदिसे युक्त इस ऐतिहासिक काव्यमें महाराणा प्रतापके कनिष्ठ भाई शक्तिसिंहका चरित्र वर्णन हैं। इनकी मुलाकात मुहणोत नैणसीसे भी हुई थी।[२]

(४२) जती मानसिह—कविराजा बांकीदासके अनुसार ये मानजो जती (यति) थे।[3] इनका सम्बन्ध श्वेताम्बर विजयगच्छसे था। इन्होंने महाराणा राजसिंहके जीवन चरित्रसे सम्बन्धित 'राजविलास' नामक प्रसिद्ध ऐतिहासिक काव्य बनाया। इसकी भाषा डिंगलसे पूरी तरह प्रभावित है।[४] कुल अठ्ठारह विलासोंमें समाप्त इस ग्रन्थमें महाराणा राजसिंहके जीवनसे सम्बन्धित अधिकांश घटनाओंका इसमें सजीव वर्णन है। इसका रचना काल वि० सं० १७३४-३७ है।[५] जती मानसिंहकी उदयपुरमें रचित 'संयोग बत्तीसी' नामक रचना भी मिली है। इसे मान मंजरी संयोग द्वात्रिंशिका, संयोग बत्तीसी मान बत्तीसी भी कहते हैं।[६] बिहारी सतसईकी भी इन्होंने टीका की थी।[७]

(४३) साईदान—ये झाडोली गाँवके निवासी सीलगा खाँपके चारण मेहाजालके पुत्र थे। इनका रचना काल महाराणा राजसिंहका शासन काल है। लगभग २७७ पद्योंकी एक अपूर्ण रचना 'संमतसार' इनके नामसे प्राप्त हुई है। यह वृष्टि विज्ञापनका ग्रन्थ है, जिसमें दोहा, छप्पय, पद्धति आदि छन्दोंका प्रयोग हुआ है। ग्रन्थ शिव-पार्वती संवादके रूपमें है।[८]

(४४) पीरा आसिया—महाराणा राजसिंहके समकालीन ये आसिया शाखाके चारण थे। इनका रचना काल वि० सं० १७१५के आसपास माना जाता है। इनकी फुटकर गीतोंके अलावा कोई बड़ी रचना अभी तक प्राप्त नहीं हुई है। फुटकर गीतोंमें 'खटके खित वेध सदा खेहड़तो' नामक प्रथम पंक्ति वाला गीत जिसमें अकबरकी दृष्टिमें प्रताप व अन्य हिन्दू नरेश कैसे हैं का वर्णन किया गया है।[९]

(४५) माना आसिया—महाराणा जयसिंह (वि० सं० १७३७-१७५५)के समकालीन मानाजी आसिया मदारवालोंके पूर्वज थे। इनके फुटकर गीत प्रसिद्ध हैं। औरंगजेबने हिन्दुओंको मुसलमान बनानेके उद्देश्यसे जब आक्रमण किया था, उस समय खुमाण वंशी जयसिंहने हिन्दूधर्मकी रक्षा की थी। इस सम्बन्धका इनका गीत[१०] बड़ा प्रसिद्ध है।

---

१. डॉ० मोतीलाल मेनारिया, राजस्थानी भाषा और साहित्य, पृ० २१३।
२. रामनारायण दूगड़ द्वारा सम्पादित मुहणोत नैणसीकी ख्यात, प्रथम भाग पृ० ५४।
३. नरोत्तम दास स्वामी द्वारा सम्पादित बांकीदासकी ख्यात, पृ० ९७
४. डॉ० गोवर्धन शर्मा—प्राकृत और अपभ्रंशका डिंगल साहित्यपर प्रभाव, पृ० १९१-९२।
५. मोतीलाल मेनारिया व विश्वनाथ प्रसाद मिश्र द्वारा सम्पादित, राज विलास, भूमिका भाग, पृ० ६।
६. शान्तिलाल भारद्वाज—मेवाड़में रचित जैन साहित्य, मुनि हजारीमल स्मृति ग्रन्थ, ग्रन्थ पृ० ८९७।
७. वही, पृ० ८९७।
८. डॉ० मोतीलाल मेनारिया—राजस्थानी भाषा और साहित्य, पृ० २०९।
९. डॉ० देवीलाल पालीवाल द्वारा सम्पादित डिंगल काव्यमें महाराणा प्रताप, पृ० ११४।
१०. प्राचीन राजस्थानी गीत, भाग ३ (साहित्य संस्थान प्रकाशन) पृ० ६९-७०।

(४६) उदयराज—डॉ० मोतीलाल मेनारियाने इन्हें मेवाड़ प्रदेशका जैन यति बतलाया है।[1] इनका रचनाकाल महाराणा जयसिंहका शासन काल है। डॉ० मेनारियाने इनका एक छप्पय[2] अपनी पुस्तक में उद्धृत किया है।

(४७) राव दयालदास—ये राशमी (चित्तौड़गढ़) के पास गलून्ड परगनेके रहनेवाले थे। फूलेर्‍या मालियोंके यहाँ पर इनकी यजमानी थी। इनका बनाया हुआ 'राणा रासो' नामक ग्रन्थ साहित्य संस्थानके संग्रहालय[3] में उपलब्ध है। इसमें मेवाड़के आदिकालसे लेकर महाराणा कर्णसिंह (वि० सं० १६७६-१६८४) के राज्याभिषेक तकके शासकोंका वर्णन है। कर्णसिंहके बाद महाराणा जगतसिंह, राजसिंह और जयसिंहका भी इसमें नामोल्लेख है किन्तु इनका वर्णन नहीं किया गया है। इस कारण इसका रचनाकाल संदिग्ध है। ग्रन्थमें कुल ९११ छन्द हैं। साहित्य संस्थान द्वारा इसका सम्पादन किया जा रहा है।

(४८) दौलतविजय—खुमाण रासोके रचयिता दौलतविजय तपागच्छीय जैनसाधु शान्तिविजयके शिष्य थे। दीक्षासे पूर्व इनका नाम दलपत था। अद्यावधि 'खुमाण रासो' की एक ही प्रति मिली है जो भंडारकर ओरियन्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट, पूनाके संग्रहालयमें सुरक्षित है। इसमें खुमाण उपाधिसे विभूषित मेवाड़के महाराणाओंका वर्णन बापा रावल (वि० सं० ७९१) से लेकर महाराणा राजसिंह तक दोहा, सोरठा, कवित्त आदि छन्दोंमें हुआ है। डॉ० कृष्णचन्द्र श्रोत्रियने इसका सम्पादन किया है। इसका रचनाकाल वि० सं० १७६७से १७९०के मध्य किसी समय है।[4]

(४९) बारहठ चतुर्भुज सौदा—ये महाराणा अमरसिंह द्वितीय (१७५५-१७६७)के समकालीन व आश्रित चारण कवि थे। महाराणाने इन्हें बारहठकी उपाधिसे विभूषित किया था, इस सम्बन्धका इनका ही बनाया हुआ एक गीत[5] मिलता है। अन्य फुटकर गीत भी साहित्य संस्थान संग्रहालयमें हैं।

(५०) यति खेता—महाराणा अमरसिंह द्वितीयके राज्यकालमें इन्होंने उदयपुरमें रहते हुए 'उदयपुर गजल' की रचना की। इसमें उदयपुर नगर व बाहरके दर्शनीय स्थानोंका सरस वर्णन है। ये खरतरगच्छीय दयावल्लभके शिष्य थे। 'चित्तौड़ गजल'[6] नामसे एक और रचना भी मिलती है।

(५१) करणीदान—कविया शाखाके चारण करणीदान शूलवाड़ा गाँव (मेवाड़) के रहनेवाले थे। गरीबीसे तंग आकर ये शाहपुराके शासक उम्मेदसिंह (वि० सं० १७८६-१८२५) के पास आये और अपनी कवितासे उन्हें खुश किया, इस पर उम्मेदसिंहने इनके घरपर आठ सौ रुपये भेजे। यहाँसे करणीदान डूंगरपुरके शासक शिवसिंह (वि० सं० १७८७-१८४२) के पास गये। वहाँ शिवसिंहने इनकी कवित्व शक्तिसे प्रभावित हो लाख पसाव दिया। इसके बाद ये महाराणा संग्रामसिंह द्वितीय (वि० सं० १७६७-१७९०) के आश्रयमें चले आये। महाराणाने इन्हें लाख पसाव देकर सम्मानित किया तथा इनकी माताजीको मथुरा, वृन्दावन

१. डॉ० मोतीलाल मेनारिया—राजस्थानी साहित्यकी रूपरेखा, पृ० २२९।
२. वही, पृ० २२९।
३. हस्तलिखित प्रति सं० ८४।
४. (i) नागरी प्रचारिणी पत्रिका, वर्ष ४४ अंक ४, अगरचन्द नाहटाका लेख।
   (ii) भँवरलाल नाहटा द्वारा सम्पादित पद्मिनी चरित्र चौपई, पृष्ठ ४१।
५. प्राचीन राजस्थानी गीत, भाग-३ (साहित्य संस्थान, प्रकाशन), पृष्ठ ७३-७४।
६. यह गजल डॉ० ब्रजमोहन जावलिया, उदयपुरके निजी संग्रहमें हैं।

आदि तीर्थोंकी यात्रा कराई ।[1] किन्तु अन्तमें ये जोधपुरके महाराजा अभयसिंहके पास चले गये ।[2] और अपने अन्तिम समय तक वहीं रहे । इनकी पाँच रचनाएँ—सूरजप्रकाश, विड़द सिणगार, अभयभूषण, जतीरास, ठाकुर लालसिंह यश तथा कई फुटकर गीत मिलते हैं ।[3] मेवाड़के महाराणा संग्रामसिंह द्वितीयकी प्रशंसामें बनाया हुआ इनका एक गीत 'ग्रहाँ हेक राजा सिधा हेक राजा अंगज' प्रसिद्ध है ।[4]

(५२) पताजी आसिया—ये आसिया शाखाके चारण महाराणा संग्राम सिंह द्वितीयके समकालीन थे । इनके फुटकर गीत साहित्य संस्थान संग्रहालयमें हैं । एक 'सुरतांण गुण वर्णन' नामक ऐतिहासिक काव्य ग्रन्थ भी मिला है, जिसका रचनाकाल वि० सं० १७७२ है । इस ग्रन्थमें बेदला ठीकानेके पूर्वज सुरतांणसिंह-के चरित्रका वर्णन है ।

(५३) जीवाजी भादा—ये संभवत: महाराणा अरिसिंह (वि० सं० १८१७-१८२९) के समकालीन कवि थे ।[5] इनके फुटकर गीत मिलते हैं ।[6] जिनमें महाराणा अरिसिंहका यश वर्णन है ।

(५४) जसवंतसागर—ये तपागच्छीय जैनाचार्य जससागरके शिष्य थे । इनकी 'उदयपुरको छन्द' नामक एक रचना[7] उपलब्ध हुई है । इसका रचनाकाल वि० सं० १७७५-९०के आसपास है । इसमें उदयपुर नगरकी विस्तृत जानकारी दी गई है ।

(५५) कुसलेस—जाटोंका याचक (ढोली) कुसलेस अंटाली (आसिंद-भीलवाड़ा) का रहनेवाला था । यह महाराणा अमरसिंह द्वितीय व संग्रामसिंह द्वितीयका समकालीन था । इसका एक लम्बा गीत 'बत्तीस खान वर्णन'[8] मिला है, जिसमें ढाल, तलवार, किला, घी, आदिकी उत्पत्ति व प्रसिद्ध स्थानका वर्णन है ।

(५६) नाथ कवि—यह कुसलेसका पुत्र था । अपने पिताके समान यह भी प्रसिद्ध कवि था । महाराणा अरिसिंहके शासनकालमें वि० सं० १८२०में 'देव चरित' नामक एक काव्य ग्रन्थकी रचना की । इसमें बगड़ावतों तथा देवनारायणके कृत्योंकी कथा है । डॉ० ब्रजमोहन जावलियाने हाल ही में इसका सम्पादन किया है । इसकी हस्तलिखित प्रति भी डॉ० जावलियाके निजी संग्रहमें है ।

(५७) सुग्यानसागर—ये तपागच्छीय श्यामसागरके शिष्य थे । महाराणा हम्मीरसिंह द्वितीय (वि० सं० १८२९-१८३३) के शासनकालमें उदयपुर चातुर्मासके अवसरपर यहाँके सेठ कपूरके आग्रहपर उसके पुत्रोंके स्वाध्यायके लिए वि० सं० १८३२को मृगसिर शुक्ला-१२ रविवारको इन्होंने ढालमंजरी अथवा राम रासकी रचना की ।

(५८) किशना आढ़ा—प्रसिद्ध कवि दुरसा आढ़ाके वंशज किशना आढ़ा महाराणा भीमसिंह (वि० सं० १८३४-८५) के आश्रित कवि थे । इनके पिताका नाम दुल्हजी था, जिनके किशनाजी समेत

---

१. वीर विनोद, भाग-२ पृष्ठ ९६५-६६ ।
२. वही पृष्ठ ९६६-६७ ।
३. डॉ० जगदीश प्रसाद श्रीवास्तव—डिंगल साहित्य, पृष्ठ ३७ ।
४. मलसीसर ठाकुर भूरसिंह शेखावत द्वारा सम्पादित महाराणा यश प्रकाश, पृष्ठ १७९-८० ।
५. डॉ० जगदीश प्रसाद श्रीवास्तव—डिंगल साहित्य, पृष्ठ ३८ ।
६. ठा० भूरसिंह शेखावत-महाराणा यशप्रकाश पृष्ठ १८८ ।
७. मुनि कान्तिसागर, जसवन्तसागर कृत उदयपुर वर्णन, मधुमती, वर्ष ३, अंक ३ ।
८. इसकी हस्तलिखित प्रति डॉ० ब्रजमोहन जावलियाके निजी संग्रहमें है ।

छः पुत्र थे। किशनाजी उनमेंसे तीसरे थे। रघुबरजस प्रकाश नामक इनके प्रसिद्ध ग्रन्थमें इन्होंने अपने वंशका परिचय दिया है।[1] इनका प्रथम ग्रन्थ 'भीमविलास' है, जिसे कविने महाराणाकी आज्ञासे वि० सं० १८७९ में लिखा।[2] इसमें महाराणा भीमसिंहका चरित्र तथा उनके शासन प्रबन्धका वर्णन है। दूसरा ग्रन्थ 'रघुबरजसप्रकास' है। रीति साहित्यके इस प्रसिद्ध ग्रन्थमें संस्कृत व डिंगल भाषाके प्रमुख छन्दोंके लक्षण भगवान् रामके यशोगानके साथ समझाये हैं। यह ग्रन्थ वि० सं० १८८१ में सम्पूर्ण हुआ। किशनाजीने तत्कालीन इतिहासज्ञ कर्नल टॉडको ऐतिहासिक सामग्री संगृहीत करनेमें बड़ी मदद की थी।[3]

(५९) ऋषि रायचन्द्र—ये जैनश्वेताम्बर तेरापंथी सम्प्रदायके तीसरे आचार्य तथा महाराणा भीमसिंह (वि० सं० १८३४-८५) व महाराणा जवानसिंह (वि० सं० १८८५-१८९५) के समकालीन थे। इनका जन्म चैत्र कृष्ण १२ वि० सं० १८४७ में तथा स्वर्गवास माघ कृष्ण १४ वि० सं० १९०८ में हुआ। गोगुन्दासे तीन मील दूर बड़ी रावल्या इनका जन्म स्थान था। पिताका नाम चतुरोजी व माताका नाम कुशलांजी था। इनका लिखा हुआ अधिकांश साहित्य तेरापंथी सम्प्रदायके वर्तमान आचार्य व उनके आज्ञानुवर्ती साधुओंके पास है जो अभी तक अप्रकाशित है।[4]

(६०) दीन दरवेश—लोहार जातिके दीनजी एकलिंगजी (कैलाशपुरी) के रहने वाले थे। इनके गुरुका नाम बालजी था जो गिरनारके रहनेवाले थे।[5] इनका रचनाकाल वि० सं० १८५९ के आसपास है तथा इनकी बनाई हुई कक्का बत्तीसी, चेतावण, दीन प्रकाश, नीसांणी, भरमतोड़ तथा राजचेतावण नामक रचनाएँ उपलब्ध होती हैं।[6] समस्त रचनाओंका उद्देश्य ज्ञानोपदेश है। महाराणा भीमसिंह इनका बहुत आदर करते थे और जब तक महाराणा जीवित रहे ये मेवाड़में ही रहे। महाराणाके स्वर्गवासके बाद ये कोटा चले गये, जहाँ चम्बल नदीमें स्नान करते समय वि० सं० १८९० के आस-पास देहान्त हो गया। इनकी रचनाओंमें इनका नाम दीन दरवेश मिलता है।

(६१) ऋषि चौथमल—इन्होंने वि० सं० १८६४ में कार्तिक शुक्ला १३ को देवगढ़में रहते हुए 'ऋषिदत्ता चौपई'की रचना की। इस चौपईमें कुल ५८ ढाले हैं। इस उपदेशात्मक रचनामें नारीके आदर्श चरित्रको चित्रित किया गया है।

(६२) कवि रोड़--जैन मतावलम्बी कवि रोड़ चित्तौड़ जिलेमें स्थित सावा गाँवके रहने वाले थे। इनके तिता मलधार गोत्रके गिरिसिंह (डूंगरसिंह) थे।[7] इनका लिखा हुआ 'रीषबदेव छन्द'[8] नामक काव्य मिलता है। इस काव्यमें महाराणा भीमसिंहके कालमें मराठों द्वारा ऋषभदेव (केशरियाजी) के मन्दिरको

---

१. सीताराम लालस द्वारा सम्पादित रघुबरजस प्रकास, पृ० ३४०।
२. डॉ० मोतीलाल मेनारिया—राजस्थानी भाषा और साहित्य, पृ० २७७।
३. डॉ० जगदीश प्रसाद श्रीवास्तव—डिंगल साहित्य, पृ० ४१।
४. इनका कुछ फुटकर काव्य लेखकके निजी संग्रहमें है।
५. डॉ० मोतीलाल मेनारिया—राजस्थानी भाषा और साहित्य, पृ० २७८।
६. राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, शा० का० उदयपुर, ग्रन्थ सं० १९६, २०८, २१६, २२२, २४०, २५२।
७. डॉ० ब्रजमोहन जावलिया—कवि रोड़ कृत रीषबदेवजों रो छन्द, शोध पत्रिका वर्ष १४ अंक १।
८. यह प्रति डॉ० ब्रजमोहन जावलिया उदयपुरके निजी संग्रहमें है।

आदि तीर्थोंकी यात्रा कराई।[1] किन्तु अन्तमें ये जोधपुरके महाराजा अभयसिंहके पास चले गये।[2] और अपने अन्तिम समय तक वहीं रहे। इनकी पाँच रचनाएँ—सूरजप्रकाश, विड़द सिणगार, अभयभूषण, जतीरास, ठाकुर लालसिंह यश तथा कई फुटकर गीत मिलते हैं।[3] मेवाड़के महाराणा संग्रामसिंह द्वितीयकी प्रशंसामें बनाया हुआ इनका एक गीत 'ग्रहाँ हेक राजा सिधा हेक राजा अंगज' प्रसिद्ध है।[4]

(५२) पताजी आसिया—ये आसिया शाखाके चारण महाराणा संग्राम सिंह द्वितीयके समकालीन थे। इनके फुटकर गीत साहित्य संस्थान संग्रहालयमें हैं। एक 'सुरतांण गुण वर्णन' नामक ऐतिहासिक काव्य ग्रन्थ भी मिला है, जिसका रचनाकाल वि० सं० १७७२ है। इस ग्रन्थमें बेदला ठीकानेके पूर्वज सुरतांणसिंह-के चरित्रका वर्णन है।

(५३) जीवाजी भादा—ये संभवत: महाराणा अरिसिंह (वि० सं० १८१७-१८२९) के समकालीन कवि थे।[5] इनके फुटकर गीत मिलते हैं।[6] जिनमें महाराणा अरिसिंहका यश वर्णन है।

(५४) जसवंतसागर—ये तपागच्छीय जैनाचार्य जससागरके शिष्य थे। इनकी 'उदयपुरको छन्द' नामक एक रचना[7] उपलब्ध हुई है। इसका रचनाकाल वि० सं० १७७५-९०के आसपास है। इसमें उदयपुर नगरकी विस्तृत जानकारी दी गई है।

(५५) कुसलेस—जाटोंका याचक (ढोली) कुसलेस अंटाली (आसिंद-भीलवाड़ा) का रहनेवाला था। यह महाराणा अमरसिंह द्वितीय व संग्रामसिंह द्वितीयका समकालीन था। इसका एक लम्बा गीत 'बत्तीस खान वर्णन'[8] मिला है, जिसमें ढाल, तलवार, किला, घी, आदिकी उत्पत्ति व प्रसिद्ध स्थानका वर्णन है।

(५६) नाथ कवि—यह कुसलेसका पुत्र था। अपने पिताके समान यह भी प्रसिद्ध कवि था। महाराणा अरिसिंहके शासनकालमें वि० सं० १८२०में 'देव चरित' नामक एक काव्य ग्रन्थकी रचना की। इसमें बगड़ावतों तथा देवनारायणके कृत्योंकी कथा है। डॉ० ब्रजमोहन जावलियाने हाल ही में इसका सम्पादन किया है। इसकी हस्तलिखित प्रति भी डॉ० जावलियाके निजी संग्रहमें है।

(५७) सुग्यानसागर—ये तपागच्छीय श्यामसागरके शिष्य थे। महाराणा हम्मीरसिंह द्वितीय (वि० सं० १८२९-१८३३) के शासनकालमें उदयपुर चातुर्मासके अवसरपर यहाँके सेठ कपूरके आग्रहपर उसके पुत्रोंके स्वाध्यायके लिए वि० सं० १८३२को मृगसिर शुक्ला-१२ रविवारको इन्होंने ढालमंजरी अथवा राम रासकी रचना की।

(५८) किशना आढ़ा—प्रसिद्ध कवि दुरसा आढ़ाके वंशज किशना आढ़ा महाराणा भीमसिंह (वि० सं० १८३४-८५) के आश्रित कवि थे। इनके पिताका नाम दुल्हजी था, जिनके किशनाजी समेत

१. वीर विनोद, भाग-२ पृष्ठ ९६५-६६।
२. वही पृष्ठ ९६६-६७।
३. डॉ० जगदीश प्रसाद श्रीवास्तव—डिंगल साहित्य, पृष्ठ ३७।
४. मलसीसर ठाकुर भूरसिंह शेखावत द्वारा सम्पादित महाराणा यश प्रकाश, पृष्ठ १७९-८०।
५. डॉ० जगदीश प्रसाद श्रीवास्तव—डिंगल साहित्य, पृष्ठ ३८।
६. ठा० भूरसिंह शेखावत-महाराणा यशप्रकाश पृष्ठ १८८।
७. मुनि कान्तिसागर, जसवन्तसागर कृत उदयपुर वर्णन, मधुमती, वर्ष ३, अंक ३।
८. इसकी हस्तलिखित प्रति डॉ० ब्रजमोहन जावलियाके निजी संग्रहमें है।

छः पुत्र थे। किशनाजी उनमेंसे तीसरे थे। रघुबरजस प्रकाश नामक इनके प्रसिद्ध ग्रन्थमें इन्होंने अपने वंशका परिचय दिया है।[1] इनका प्रथम ग्रन्थ 'भीमविलास' है, जिसे कविने महाराणाकी आज्ञासे वि० सं० १८७९ में लिखा।[2] इसमें महाराणा भीमसिंहका चरित्र तथा उनके शासन प्रवन्धका वर्णन है। दूसरा ग्रन्थ 'रघुबरजसप्रकास' है। रीति साहित्यके इस प्रसिद्ध ग्रन्थमें संस्कृत व डिंगल भाषाके प्रमुख छन्दोंके लक्षण भगवान् रामके यशोगानके साथ समझाये हैं। यह ग्रन्थ वि० सं० १८८१ में सम्पूर्ण हुआ। किशनाजीने तत्कालीन इतिहासज्ञ कर्नल टॉडको ऐतिहासिक सामग्री संगृहीत करनेमें बड़ी मदद की थी।[3]

(५९) ऋषि रायचन्द्र—ये जैनश्वेताम्बर तेरापंथी सम्प्रदायके तीसरे आचार्य तथा महाराणा भीमसिंह (वि० सं० १८३४-८५) व महाराणा जवानसिंह (वि० सं० १८८५-१८९५) के समकालीन थे। इनका जन्म चैत्र कृष्ण १२ वि० सं० १८४७ में तथा स्वर्गवास माघ कृष्ण १४ वि० सं० १९०८ में हुआ। गोगुन्दासे तीन मील दूर बड़ी रावल्या इनका जन्म स्थान था। पिताका नाम चतुरोजी व माताका नाम कुशलांजी था। इनका लिखा हुआ अधिकांश साहित्य तेरापंथी सम्प्रदायके वर्तमान आचार्य व उनके आज्ञानुवर्ती साधुओंके पास है जो अभी तक अप्रकाशित है।[4]

(६०) दीन दरवेश—लोहार जातिके दीनजी एकलिंगजी (कैलाशपुरी) के रहने वाले थे। इनके गुरुका नाम बालजी था जो गिरनारके रहनेवाले थे।[5] इनका रचनाकाल वि० सं० १८५९ के आसपास है तथा इनकी बनाई हुई कक्का बत्तीसी, चेतावण, दीन प्रकाश, नीसांणी, भरमतोड़ तथा राजचेतावण नामक रचनाएँ उपलब्ध होती हैं।[6] समस्त रचनाओंका उद्देश्य ज्ञानोपदेश है। महाराणा भीमसिंह इनका बहुत आदर करते थे और जब तक महाराणा जीवित रहे ये मेवाड़में ही रहे। महाराणाके स्वर्गवासके बाद ये कोटा चले गये, जहाँ चम्बल नदीमें स्नान करते समय वि० सं० १८९० के आस-पास देहान्त हो गया। इनकी रचनाओंमें इनका नाम दीन दरवेश मिलता है।

(६१) ऋषि चौथमल—इन्होंने वि० सं० १८६४ में कार्तिक शुक्ला १३ को देवगढ़में रहते हुए 'ऋषिदत्ता चौपई'की रचना की। इस चौपईमें कुल ५८ ढाले हैं। इस उपदेशात्मक रचनामें नारीके आदर्श चरित्रको चित्रित किया गया है।

(६२) कवि रोड़--जैन मतावलम्बी कवि रोड़ चित्तौड़ जिलेमें स्थित सावा गाँवके रहने वाले थे। इनके तिता मलधार गोत्रके गिरिसिंह (डूंगरसिंह) थे।[7] इनका लिखा हुआ 'रीषबदेव छन्द'[8] नामक काव्य मिलता है। इस काव्यमें महाराणा भीमसिंहके कालमें मराठों द्वारा ऋषभदेव (केशरियाजी) के मन्दिरको

१. सीताराम लालस द्वारा सम्पादित रघुबरजस प्रकास, पृ० ३४०।
२. डॉ० मोतीलाल मेनारिया—राजस्थानी भाषा और साहित्य, पृ० २७७।
३. डॉ० जगदीश प्रसाद श्रीवास्तव—डिंगल साहित्य, पृ० ४१।
४. इनका कुछ फुटकर काव्य लेखकके निजी संग्रहमें है।
५. डॉ० मोतीलाल मेनारिया—राजस्थानी भाषा और साहित्य, पृ० २७८।
६. राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, शा० का० उदयपुर, ग्रन्थ सं० १९६, २०८, २१६, २२२, २४०, २५२।
७. डॉ० ब्रजमोहन जावलिया—कवि रोड़ कृत रीषबदेवजों रो छन्द, शोध पत्रिका वर्ष १४ अंक १।
८. यह प्रति डॉ० ब्रजमोहन जावलिया उदयपुरके निजी संग्रहमें है।

लूटनेका प्रयास, उनकी असफलता तथा मन्दिरके रक्षकोंकी वीरताका वर्णन है। इस घटनाके समय कवि स्वयं वहाँ मौजूद था। इस काव्यका रचनाकाल वि० सं० १८६३ की आश्विन कृष्णा १ बृहस्पतिवार है।

उपसंहार—मेवाड़ प्रदेशमें उपरोक्त प्रमुख कवियोंके अतिरिक्त प्राचीनकालमें अनेक कवि और भी हुए हैं, जिनका परिचय लेखके विस्तार भयसे यहाँ नहीं दिया जा रहा है। अन्य लेखमें शीघ्र ही देनेका प्रयत्न करूँगा। इनके बनाये हुए अनेक फुटकर गीत और अन्य रचनाएँ तत्र-तत्र बिखरी हुई मिलती हैं, जिनपर व्यापक अनुसंधानकी आवश्यकता है। इस प्रकारके कतिपय कवि निम्नलिखित हैं—

चारण डूला, कालु देवल, आसियामाला, बाघजीराव, ठाकुरसी बारहठ, रतनबरसड़ा, चारण पीथा, शूजी कवि, चारण भल्लाजी गांधण्यां, बारहठ गोविन्द, विदुर, कम्माजी, वेणा, नन्दलाल भादा, कीरतराम, वखतराम, विनयशील, महेश, मोहन विमल, ओपा आढ़ा, भीमा आसिया, इसरदास भादा, आईदान गाइण, साह दलीचन्द (हीताका निवासी) ठाकुर राजसिह (हीताका निवासी), केसर, सीहविजय, खेतल, हेम विजय, केतसी, करुणा उदधि आदि।

इन कवियोंके अलावा डिंगलके सहस्रों गीत ऐसे मिलते हैं, जिसका विषय मेवाड़के महाराणा, युद्ध व योद्धा, शस्त्र प्रशंसा, शत्रु निन्दा, अध्यात्म आदि है किन्तु इनके रचयिता अज्ञात हैं। इन गीतोंकी उपस्थिति स्वयं किन्हीं अज्ञात कवियोंकी ओर संकेत करती है, जो समयके व्यतीत होनेके साथ-साथ उनके गीतोंमें उनके नामोंके उल्लेखके अभावमें पीछे छूट गये हैं। व्यापक अनुसंधानके द्वारा ऐसे अज्ञात कवियों और जैन सन्तोंका परिचय व साहित्य मेवाड़के साहित्यिक गौरवको स्पष्ट कर सकता है।



राजस्थानी 'बातों'में पात्र और चरित्रचित्रण

डॉ० मनोहर शर्मा

कहानीमें पात्रोंका कार्य-व्यापार उनके चरित्रका प्रकाशन करता है। अतः उनका सजीव होना आवश्यक है, वे निर्जीव नहीं होने चाहिए। उनमें स्वाभाविकताका गुण जरूरी है। इसीसे पाठकोंको वास्तविक रसानुभूति होती है। पात्रोंकी अलौकिक अथवा असाधारण शक्तिसे कुतूहल भले ही पैदा हो जाए परन्तु उनके साथ हृदयका संबंध नहीं जुड़ सकता। उनमें मानवीय हृदयके शाश्वत मनोभावोंका प्रकाशन होना चाहिए, जिससे कि पाठक उनको अपने जैसा ही मान कर उनके साथ सहानुभूति प्रकट कर सकें।

कहानीमें पात्रोंकी अधिकता भी वांछनीय नहीं। कई राजस्थानी बातोंमें यह गुण सुन्दर रूपमें देखा जाता है परन्तु अनेक बातोंमें पात्रोंकी संख्या काफी बढ़ी हुई मिलती है। पात्रोंकी इस अधिकताका कारण उनके इतिवृत्तके रूपमें उपस्थित किया जाता है। जिन बातोंमें किसी ऐतिहासिक पात्रका विवरण देना अभीष्ट होता है, उनमें अनेक प्रकारके और बहुत अधिक पात्र देखे जाते हैं, जैसे अमरसिंघ राठौड़ गजसिंघोघोतरी बात,[1] महाराज श्रीपदमसिंघरी बात[2] आदि।

राजस्थानी बातोंमें ऐतिहासिक पात्रों की प्रधानता है। ऐसा प्रतीत होता है, मानों बातोंका संसार उन्हींसे बसा हुआ है। इतना ही नहीं, वहाँ कल्पित पात्रोंको भी ऐतिहासिक रूपमें प्रस्तुत करनेकी चेष्टा की गई है और अनेक लोककथाओंमें उनको चतुराईके साथ नायकके पदपर प्रतिष्ठित कर दिया गया है।

मोटे तौरपर राजस्थानी बातोंमें पात्रोंको तीन वर्गोंमें विभाजित किया जा सकता है—

१. मानव। २. देव-दानव आदि। ३. पशु-पक्षी आदि।

इनमें प्रथम वर्गके पात्र प्रधान हैं तथा द्वितीय वर्गके पात्र गौड़ हैं। वे बातोंमें कहीं-कहीं ही प्रकट होते हैं और उनका सम्बन्ध तत्कालीन लोकविश्वाससे है। तृतीय वर्गके पात्र यत्रतत्र बालोपयोगी बातोंमें प्रकट होते हैं। कहीं-कहीं उनपर मानव-जीवनका बड़ी ही कुशलतासे आरोपण भी किया गया है।

राजस्थानी बातोंमें पात्रोंका चरित्रचित्रण दो रूपोंमें हुआ है। एक रूपमें पात्रकी वर्गगत विशेषताएँ प्रकट होती हैं और दूसरेमें उनके व्यक्तिगत गुणोंका प्रकाशन होता है। बातोंमें प्रधान, मोहता, पुरोहित, कोटवाल, दांणी आदि पदोंपर काम करने वाले पात्रोंके प्रायः व्यक्तिगत नाम नहीं मिलते और उनको पदके नामसे ही पुकारा जाता है। ये पात्र वर्गगत विशेषताओंको प्रकट करते हैं। यही स्थिति डूम, दास, दासी, रैंबरी, गोहरी, एवाल़ आदिकी है। इनके भी बातोंमें प्रायः नाम नहीं मिलते।

असलमें इस प्रकारके पात्रोंका कोई विशेष महत्त्व नहीं होता और बातमें इनकी उपस्थिति कहीं-कहीं ही प्रकट होती है। यदि इस तरहका कोई पात्र महत्त्व ग्रहण करता है तो उसका नाम भी प्रकट होता

---

१. राजस्थानी बात-संग्रह (परम्परा)

२. वही,

लूटनेका प्रयास, उनकी असफलता तथा मन्दिरके रक्षकोंकी वीरताका वर्णन है। इस घटनाके समय कवि स्वयं वहाँ मौजूद था। इस काव्यका रचनाकाल वि० सं० १८६३ की आश्विन कृष्णा १ बृहस्पतिवार है।

उपसंहार—मेवाड़ प्रदेशमें उपरोक्त प्रमुख कवियोंके अतिरिक्त प्राचीनकालमें अनेक कवि और भी हुए हैं, जिनका परिचय लेखके विस्तार भयसे यहाँ नहीं दिया जा रहा है। अन्य लेखमें शीघ्र ही देनेका प्रयत्न करूँगा। इनके बनाये हुए अनेक फुटकर गीत और अन्य रचनाएँ तत्र-तत्र बिखरी हुई मिलती हैं, जिनपर व्यापक अनुसंधानकी आवश्यकता है। इस प्रकारके कतिपय कवि निम्नलिखित हैं—

चारण डूला, कालु देवल, आसियामाला, बाघजीराव, ठाकुरसी बारहठ, रतनबरसड़ा, चारण पीथा, शूजी कवि, चारण भल्लाजी गांधण्यां, बारहठ गोविन्द, विदुर, कम्माजी, वेणा, नन्दलाल भादा, कीरतराम, वखतराम, विनयशील, महेश, मोहन विमल, ओपा आढ़ा, भीमा आसिया, इसरदास भादा, आईदान गाइण, साह दलीचन्द (हीताका निवासी) ठाकुर राजसिह (हीताका निवासी), केसर, सीहविजय, खेतल, हेम विजय, केतसी, करुणा उदधि आदि।

इन कवियोंके अलावा डिंगलके सहस्रों गीत ऐसे मिलते हैं, जिसका विषय मेवाड़के महाराणा, युद्ध व योद्धा, शस्त्र प्रशंसा, शत्रु निन्दा, अध्यात्म आदि है किन्तु इनके रचयिता अज्ञात हैं। इन गीतोंकी उपस्थिति स्वयं किन्हीं अज्ञात कवियोंकी ओर संकेत करती है, जो समयके व्यतीत होनेके साथ-साथ उनके गीतोंमें उनके नामोंके उल्लेखके अभावमें पीछे छूट गये हैं। व्यापक अनुसंधानके द्वारा ऐसे अज्ञात कवियों और जैन सन्तोंका परिचय व साहित्य मेवाड़के साहित्यिक गौरवको स्पष्ट कर सकता है।



राजस्थानी 'बातों'में पात्र और चरित्रचित्रण

डॉ० मनोहर शर्मा

कहानीमें पात्रोंका कार्य-व्यापार उनके चरित्रका प्रकाशन करता है। अतः उनका सजीव होना आवश्यक है, वे निर्जीव नहीं होने चाहिए। उनमें स्वाभाविकताका गुण जरूरी है। इसीसे पाठकोंको वास्तविक रसानुभूति होती है। पात्रोंकी अलौकिक अथवा असाधारण शक्तिसे कुतूहल भले ही पैदा हो जाए परन्तु उनके साथ हृदयका संबंध नहीं जुड़ सकता। उनमें मानवीय हृदयके शाश्वत मनोभावोंका प्रकाशन होना चाहिए, जिससे कि पाठक उनको अपने जैसा ही मान कर उनके साथ सहानुभूति प्रकट कर सकें।

कहानीमें पात्रोंकी अधिकता भी वांछनीय नहीं। कई राजस्थानी बातोंमें यह गुण सुन्दर रूपमें देखा जाता है परन्तु अनेक बातोंमें पात्रोंकी संख्या काफी बढ़ी हुई मिलती है। पात्रोंको इस अधिकताका कारण उनके इतिवृत्तके रूपमें उपस्थित किया जाता है। जिन बातोंमें किसी ऐतिहासिक पात्रका विवरण देना अभीष्ट होता है, उनमें अनेक प्रकारके और बहुत अधिक पात्र देखे जाते हैं, जैसे अमरसिंघ राठौड़ गजसिंघोघोतरी बात,[1] महाराज श्रीपदमसिंघरी बात[2] आदि।

राजस्थानी बातोंमें ऐतिहासिक पात्रों की प्रधानता है। ऐसा प्रतीत होता है, मानों बातोंका संसार उन्हींसे बसा हुआ है। इतना ही नहीं, वहाँ कल्पित पात्रोंको भी ऐतिहासिक रूपमें प्रस्तुत करनेकी चेष्टा की गई है और अनेक लोककथाओंमें उनको चतुराईके साथ नायकके पदपर प्रतिष्ठित कर दिया गया है।

मोटे तौरपर राजस्थानी बातोंमें पात्रोंको तीन वर्गोंमें विभाजित किया जा सकता है—

१. मानव। २. देव-दानव आदि। ३. पशु-पक्षी आदि।

इनमें प्रथम वर्गके पात्र प्रधान हैं तथा द्वितीय वर्गके पात्र गौड़ हैं। वे बातोंमें कहीं-कहीं ही प्रकट होते हैं और उनका सम्बन्ध तत्कालीन लोकविश्वाससे है। तृतीय वर्गके पात्र यत्रतत्र बालोपयोगी बातोंमें प्रकट होते हैं। कहीं-कहीं उनपर मानव-जीवनका बड़ी ही कुशलतासे आरोपण भी किया गया है।

राजस्थानी बातोंमें पात्रोंका चरित्रचित्रण दो रूपोंमें हुआ है। एक रूपमें पात्रकी वर्गगत विशेषताएँ प्रकट होती हैं और दूसरेमें उनके व्यक्तिगत गुणोंका प्रकाशन होता है। बातोंमें प्रधान, मोहता, पुरोहित, कोटवाल, दांणी आदि पदोंपर काम करने वाले पात्रोंके प्रायः व्यक्तिगत नाम नहीं मिलते और उनको पदके नामसे ही पुकारा जाता है। ये पात्र वर्गगत विशेषताओंको प्रकट करते हैं। यही स्थिति ड़ूम, दास, दासी, रैंबरी, गोहरी, एवाल़ आदिकी है। इनके भी बातोंमें प्रायः नाम नहीं मिलते।

असलमें इस प्रकारके पात्रोंका कोई विशेष महत्त्व नहीं होता और बातमें इनकी उपस्थिति कहीं-कहीं ही प्रकट होती है। यदि इस तरहका कोई पात्र महत्त्व ग्रहण करता है तो उसका नाम भी प्रकट होता

---

१. राजस्थानी बात-संग्रह (परम्परा)

२. वही,

है और उसकी व्यक्तिगत विशेषताएँ भी सामने आती हैं। इस सम्बन्धमें बीजड़ियों खवास (बात वीरमदे सोनगरा री)[1] और फोगसी एवाल़ (बात फोगसी एवाल़ री)[2] आदिके नाम उदाहरणस्वरूप लिये जा सकते हैं।

राजस्थानी बातोंमें प्रायः शीर्षक किसी पात्रके नामके अनुसार मिलता है। इसका स्पष्ट कारण यही है कि वहाँ पात्रको प्रधानता दी गई है और उसका जीवन तथा चरित्र प्रकट करना बातका मूल उद्देश्य है।

पात्रोंकी चारित्रिक विशेषताओंका प्रकाशन भी राजस्थानी बातोंमें दो प्रकारसे हुआ है। प्रथम प्रकारमें लेखक द्वारा पात्र विशेषके गुण अथवा अवगुणोंका उद्घाटन कर दिया जाता है। प्रायः ऐसा बातके प्रारंभमें ही हो जाता है और आगे चलकर पात्र तदनुसार ही कार्य करता है। एक उदाहरण द्रष्टव्य है—

''पातसाह री बेटी परणीयों, देपाल़ धंघ रजपूत अठै देपाल़पुर राज करैं। अठै औ भोमीयौचारौ करैं। सो ईयैं पासैं असवार २५ रहै। सो बड़ा सामंत, बड़ा तरवारीया। अर देपाल पिण बड़ौ तरवारीयों। जैसोई दातार, बड़ौ रजपूत। सो औ भौमीचारौ करै। परखंडां रा माल ले आवै। तठै गांम मांहे ले नै खावै-खरचै। गांम मांहे बड़ी गढ़ी, बल़वंत। सु देपाल अठै ईमै भांत सु ं रहै।[3]

चरित्र-चित्रणका दूसर प्रकार वह है, जिसमें लेखक स्वयं अपनी तरफसे पात्रकी विशेषताएँ प्रकट न करके उसके कार्यों एवं शब्दों द्वारा ही ऐसा करवाता है। यही तरीका श्रेष्ठ है। अधिकतर राजस्थानी बातोंमें यही तरीका अपनाया गया है।

पात्रोंके चरित्र-चित्रणमें आदर्श और यथार्थका विभेद महत्त्वपूर्ण विषय है। इस विषयमें दोनों ही पक्ष अपनी-अपनी विशेषताएँ रखते हैं। इनके द्वारा कलात्मक-सामग्रीके मूल उद्देश्यका प्रकाशन होता है। मानव-चरित्रमें जहाँ आदर्शका महत्त्व है, वहाँ यथार्थका भी है। असलमें आदर्श और यथार्थके समन्वित रूपका नाम ही मानव-जीवन है। ऐसी स्थितिमें मानवजीवनके इन दोनों पक्षोंपर ध्यान देनेसे ही कलात्मक-सामग्रीका उद्देश्य सफल होता है। कहीं एक पक्ष कुछ अधिक बलवान् हो सकता है तो कहीं दूसरा।

राजस्थानी बातोंमें पात्रोंके चरित्रपर ध्यान देनेसे प्रकट होता है कि वहाँ आदर्श और यथार्थ दोनों रूपोंमें चित्रण हुआ है। बातोंमें जहाँ बहुत अधिक आदर्श पात्र हैं तो यथार्थ पात्र भी कम नहीं हैं। राजस्थानी बातोंकी यह एक विशेषता है।

आदर्श

भारतीय साहित्यकी मूल प्रवृत्ति सदासे आदर्श चरित्रोंको प्रकट करनेकी रही है। प्रधान रूपमें यहाँ कथापात्र अनेक गुणोंसे विभूषित देखे जाते हैं। लेखकोंने पाठकोंके सामने दिव्य-चरित्र प्रस्तुत करनेमें अपनी कलाको सार्थक माना है। यही प्रेरणा राजस्थानी बातोंमें भी है। वहाँ इस प्रकारके बहुसंख्यक पात्र हैं, जो आश्चर्य-जनक रूपसे गुणान्वित हैं। समाजको बल देनेके लिए इस प्रकारके चरित्रोंको बातोंमें प्रकाशमान किया गया है। इस सम्बंधमें कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

(१) जगदेव पँवारकी बातमें—जगदेव अपनी बिमाताकी डाहके कारण राज्य छोड़कर चला जाता है और सिद्धराजकी सेवा स्वीकार करता है। वहाँ वह अपने स्वामीकी आयुवृद्धिके लिए अपने पूरे

---

१. राजस्थानी वातां (श्री सूर्यकरण पारीक)

२. वरदा, भाग ५, अंक ४।

३. बातां रो झूमखो, दूजो।

परिवारके सिर तक देनेको तैयार होता है। इसपर उसे प्रचुर सम्पत्ति और सम्मान मिलता है। दानी वह ऐसा है कि अपना सिर तक काटकर कंकाळी भाटणी को सहर्ष भेंट कर देता है। इस दानके आगे सिद्धराज भी हार मान जाता है। कंकाळी शक्तिस्वरूपा है। वह जगदेवको पुनर्जीवित कर देती है। इस प्रकार जगदेव पँवार स्वामिभक्ति और दानशीलताका उज्ज्वल आदर्श प्रकट करता है।[१]

(२) पाबूजी राठौड़की बातमें—पाबूजी देवळदे नामक चारणीसे उसकी काळमी नामक घोड़ी इस शर्तपर लेते हैं कि जब कभी उसके धन (गाय आदि) पर संकट उपस्थित होगा तो वे अपना सिर देकर भी उसकी रक्षा करेंगे। कालान्तरमें पाबूजीका विवाह निश्चित होता है और जब वे वर-रूपमें फेरे (भाँवर) लेते हैं, तब उन्हें देवळदेपर आए हुए संकटकी सूचना मिलती है। वे वैवाहिक कार्य बीचमें ही छोड़ देते हैं और अपना वचन निभानेके लिए शत्रुओंसे युद्ध करते हुए काम आते हैं। इस प्रकार पाबूजी प्रणवीरताके आदर्श हैं।[२]

(३) राव रणमल्लकी बातमें—अखा संखला सींघल राजपूतोंके साथ धाड़े (लूट) के लिए जाता है और वे इंदा राजपूतोंके बाहलवे गाँवसी सांडें (ऊँटनियाँ) लेकर वापिस लौटने लगते हैं। इसी समय पीछेसे इन्दा-सरदार आते हैं। सींघल भाग छुटते हैं परन्तु अखा सांखला वहीं डट जाता है। वह युद्धमें इन्दोंके हाथ मारा जाता है परन्तु मरते समय कहता है कि मेरा स्वामी रणमल्ल इसका बदला लेगा। जब यह खबर रणमल्लके पास पहुँचती है तो वह तत्काल सब काम छोड़कर अपने थोड़ेसे योद्धाओं सहित इन्दोंके गाँव आता है और उनकी घोड़ियाँ लेकर चलता बनता है। इसपर इन्दा-सरदार सेना सहित पीछा करते हैं। युद्ध होता है, जिसमें इन्दोंकी पराजय होती है। इस प्रकार रणमल्ल बदला लेने तथा सेवक-सहानुभूतिका आदर्श उपस्थित करता है।[३]

(४) पताई रावलकी बातमें—गुजरातका बादशाह महमूद बंगड़ा उसके किले पावागढ़का घेरा डालता है और पताई बड़ी दृढ़तापूर्वक उसकी रक्षा करता है। अन्तमें उसे धोखा होता है और गढ़का पतन हो जाता है। पताई और उसके सब साथी युद्ध करते हुए प्राण त्याग देते हैं। किलेमें रानियाँ जौहर व्रतका अनुष्ठान करके भस्म हो जाती हैं। इतना होनेपर बादशाह किलेमें प्रवेश कर पाता है। इस प्रकार पताई रावळ जन्मभूमि-प्रेम और सर्वस्व-बलिदानका आदर्श उपस्थित करता है।[४]

(५) सयणी चारणीकी बातमें—वीजाणंद चारण सयणीके प्रति आकर्षित होकर उसके साथ विवाहका प्रस्ताव रखता है परन्तु इस विवाह हेतु एक शर्त आती है, जिसकी ६ मासमें पूर्त्ति होनी आवश्यक है। वीजाणंद शर्तकी पूर्त्ति हेतु पर्यटन करता है। जब वह काम पूरा करके लौटता है तो ६ मास पूरे हो चुकते हैं और सयणी हिमालयपर गलनेके लिए घरसे निकल जाती है। बीजाणंद उसके पीछे जाता है परन्तु सयणी हिमालयपर पहुँचकर गल चुकती है। ऐसी स्थितिमें बीजाणंद भी वहीं गल जाता है। इस प्रकार बीजाणंद प्रेमका आदर्श उपस्थित करता है।[५]

---

१. राजस्थानी वातां (श्री सूर्यकरण पारीक)
२. वही।
३. वरदा (७।३)
४. राजस्थानी वातां, भाग १ (श्रीनरोत्तमदास स्वामी)
५. वही।

(६) अरजन हमीर भीमोतकी बातमें—मुर्गोंकी लड़ाई करवाते समय हमीर दृढ़तापूर्वक प्रकट करता है कि गर्दन कटनेपर भी शूरवीर अपने शत्रुको समाप्त कर सकता है। उसका ऐसा कहना आश्चर्यजनक प्रतीत होता है परन्तु जब सोमैया महादेवपर शाही-सेना आती है तो हमीर युद्धमें अपना सिर कटनेके बाद भी मारने वाले शत्रुको समाप्त कर देता है। इस प्रकार हमीर 'जूझार'का कार्य करता है। वह एक साथ ही धर्मवीर और युद्धवीर दोनोंका आदर्श है।[1]

(७) कवलसी सांखलै और भरमलकी—बातमें कवलसीका यह नियम है कि वह किसी कन्याकी सगाईके लिए उसके पास आया हुआ नारियल वापिस नहीं लौटाता। सांखला-वंश और खरल-वंशका बैर है। खरल किसी प्रकार बदला लेनेकी चिन्तामें हैं। वे अपनी अंधी लड़की भरमलकी सगाईका नारियल कवलसीके पास भेजते हैं और विवाहके समय उसे मार डालनेका षड़यंत्र रचते हैं। कवलसीका पिता यह नारियल अस्वीकार कर देता है परन्तु जब जङ्गलमें शिकारके लिए कवलसीको यह नारियल दिया जाता है तो वह इसे ग्रहण कर लेता है। फिर विवाहके लिए बारात जाती है। फेरोंमें ग्रंथिबंधन होते ही पतिके सत्याचरणके प्रभावसे भरमलके नेत्रोंमें ज्योति आ जाती है और वह उसे षड्यंत्रका संकेत कर देती है, जिससे कवलसी बचकर निकल जाता है। फिर वह अपनी ससुरालके प्रदेशमें भरमलके पास अकेला ही हिम्मत करके आता है। वहाँ उसे छिपाकर ६ मास तक महलमें रख लिया जाता है। अंतमें वह चतुराईसे भरमलको साथ लेकर विदा हो जाता है। इस प्रकार कवलसी सत्यपरायणता और साहसका आदर्श उपस्थित करता है।[2]

ऊपर सात आदर्श पात्रोंके चरित्रकी चर्चा की गई है। ये सभी पुरुष-पात्र हैं। इसी प्रकार राजस्थानी बातोंमें आदर्श नारीपात्रोंका चरित्र भी द्रष्टव्य है।

(१) जसमा ओडणीकी बातमें—जसमा ओड जातिकी स्त्री है, जो मिट्टी खोदनेका धंधा करती है। उसके रूप-सौन्दर्यपर मुग्ध होकर राजा उसे अनेक प्रकारसे प्रलोभन देता है परन्तु वह सर्वथा अस्वीकार कर देती है। अंतमें ओड लोग डर कर एक रात भाग छुटते हैं। राजा सेना भेजकर उनको मरवा देता है। जसमा सती हो जाती है। इस प्रकार जसमा ओडणी दृढ़ता एवं सतीत्वका आदर्श प्रकट करती है।[3]

(२) वीरमदे सलखावतकी बात—में शाही सेना वीरमदेका पीछा करती है और वह भाग कर जांगलूकी धरतीमें पहुँचता है। वहाँके राजा ऊदा मूंजावतसे वह सारी स्थिति बतला कर शरण देनेकी प्रार्थना करता है। ऊदा अपनी माताके सामने समस्या प्रस्तुत करता है। उसकी माता उसे कहती है कि वीरमदेको शरण अवश्य दी जावे। तदनुसार वीरमदेको जांगलूके कोटमें रख लिया जाता है। पीछे लगी हुई शाही सेना भी वहाँ आ पहुँचती है। ऊदा उसके प्रधानको समझाकर बाहर ही एक रात भर डेरोंमें रोक देता है और इसी बीच वीरमदेको जोईयोंकी धरतीमें भेज दिया जाता है। दूसरे दिन कोटमें वीरमदेके न मिलनेपर शाही-सेनापति ऊदाको पकड़ता है और पैरोंकी ओरसे उसकी खाल खेंचनेकी तैयारी होती है। उसकी माता कोटकी दीवारसे यह दृश्य देखकर जोरसे आवाज देती है कि वीरमदे ऊदाके पैरोंमें नहीं है, वह उसकी खोपरीमें हैं, अतः खोपरीकी खाल उतारी जावे। वृद्धाके इस वचनसे प्रसन्न होकर सेनापति ऊदाको छोड़ देता है और वहाँसे

१. साधना, अंक ७।

२. बात कवलसी सांखलैरी (हस्तप्रति, अभय जैन पुस्तकालय, बीकानेर)

३. राजस्थानी वातां, भाग १ (श्री नरोत्तमदास स्वामी)

लौट जाता है। इस प्रकार ऊदाकी माता एक अनुपम आदर्श उपस्थित करती हैं। वह शरणागतकी रक्षाको अपना धर्म समझने वाली वीर माता है।[1]

(३) कूंगरे बलोचकी बातमें महाबली कूंगरेकी बेटी हांसू अपने मृत पिताकी इच्छापूर्तिके लिए पुरुषवेषमें जैसलमेरके घोड़े लूटनेके लिए चल पड़ती है। मार्गमें उसकी ओढे सरदारसे भेंट होती है और वे साझेमें 'धाड़ा' (डाका) करनेके लिए आगे बढ़ते हैं। वे जैसलमेरके घोड़े घेरकर ले आते हैं। पीछेसे सेना आती है। ओढा घोड़े लेकर आगे बढ़ता है और हांसू अकेली सारी सेनाको रोककर छका देती है। सेना हार कर लौट जाती है। आगे आनेपर लूटमें प्राप्त घोड़ोंका हिस्सा होता है और ओढा हांसूको पहचान लेता है कि वह लड़की है। फिर उनका आपसमें विवाह होता है और हांसूके गर्भसे वीर जखड़ा जन्म लेता है। इस प्रकार हांसू एक वीर पुत्रीका आदर्श उपस्थित करती है।[2]

(४) महींद्रो सोढो सम्बंधी बातमें मोमलका प्रेमी महेन्दरा सोढा उसके पास प्रति रात्रि बड़ी दूरसे चलकर पहुँचता है एक रात उसके बड़ी देरसे आनेके कारण सब सो जाते हैं और दरवाजा नहीं खुल पाता। इससे वह नाराज हो जाता है। प्रेमीकी नाराजीका पता लगानेके लिए मोमल स्वयं उसके यहाँ पहुँचती है। महेन्दरा बागमें जाकर बैठ जाता है। और मोमलको झूठा संदेश भिजवा देता है कि सांप द्वारा काटे जानेके कारण उसकी मृत्यु हो चुकी है। इस समाचारको सुनते ही मोमल अपना शरीर छोड़ देती है। इस प्रकार वह एक आदर्श प्रेमिकाके रूपमें प्रकट होती है इस बातका रूपान्तर भी मिलता है, जिसमें महेन्दराकी नाराजीका कारण दूसरा ही दिखलाया गया है।[3]

(५) राजा नरसिंघकी बातमें अजमेरके राजा वैरसी गौड़के मरनेपर उसका पुत्र नरसिंघ बालक अवस्थामें होता है और रानी दैहड़ (दहीया वंशकी पुत्री)के ऊपर सारा भार आ पड़ता है। इसी समय अजमेर पर पठानोंका हमला होता है। रानी स्वयं वीरता पूर्वक युद्ध करती है परन्तु कोटकी रक्षा होना कठिन प्रतीत होता है, अतः अपने लोगोंको साथ लेकर वह दूर चली जाती है। आगे नरसिंघका बचपनमें ही विवाह करके उसे अपनी ससुरालमें छोड़ दिया जाता है। फिर रानी दैहड़ हाड़ोंकी धरतीमें जाकर शक्ति-संग्रह करती है। नरसिंघ सयाना हो जाता है तो उसका एक विवाह और कर लिया जाता है। फिर अवसर देख-कर रानी अजमेरपर आक्रमण करती है और विजयके बाद नरसिंघ राजा बनता है। इसके बाद रानी दैहड़ सती हो जाती है। इस प्रकार रानी एक साथ ही शौर्य, सहनशीलता, बुद्धिमत्ता एवं पतिभक्तिका आदर्श उपस्थित करती है।[4]

यहाँ राजस्थानी बातोंके कुछ चुने हुए आदर्श पात्रोंकी साधारण चर्चा मात्र की गई है, वैसे बातोंमें आदर्श पात्रोंकी संख्या बहुत बड़ी है और वे अनेक प्रकारके आदर्श उपस्थित करते हैं। इसी प्रसंगमें पात्रोंकी शारीरिक शक्तिका नमूना भी देखने योग्य है—

(१) कूंगरो बलोच अरोड़ सखर रहै तिलोकसीह जसहड़ौत जैसलमेर राज करै। कूंगरौ छै ताकड़ी री अहार करै। एक बैर (पत्नी) कूंगरै। री हाडी परबत छै, ओथ रहै। मा सू अरोड़ रहै। सू पहाड़ इसड़ौ

१. वीरवांण, परिशिष्ट भाग (रानी लक्ष्मीकुमारी चूंडावत)।

२. राजस्थानी वातां, भाग, १ (श्री नरोत्तमदास स्वामी)।

३. राजस्थानी प्रेमकथाएँ (श्री मोहनलाल पुरोहित)।

४. वातां रो झूमखो, दूजो।

(६) अरजन हमीर भीमोतकी बातमें—मुर्गोंकी लड़ाई करवाते समय हमीर दृढ़तापूर्वक प्रकट करता है कि गर्दन कटनेपर भी शूरवीर अपने शत्रुको समाप्त कर सकता है। उसका ऐसा कहना आश्चर्यजनक प्रतीत होता है परन्तु जब सोमैया महादेवपर शाही-सेना आती है तो हमीर युद्धमें अपना सिर कटनेके बाद भी मारने वाले शत्रुको समाप्त कर देता है। इस प्रकार हमीर 'जूझार'का कार्य करता है। वह एक साथ ही धर्मवीर और युद्धवीर दोनोंका आदर्श है।[1]

(७) कवलसी सांखलै और भरमलकी—बातमें कवलसीका यह नियम है कि वह किसी कन्याकी सगाईके लिए उसके पास आया हुआ नारियल वापिस नहीं लौटाता। सांखला-वंश और खरल-वंशका बैर है। खरल किसी प्रकार बदला लेनेकी चिन्तामें हैं। वे अपनी अंधी लड़की भरमलकी सगाईका नारियल कवलसीके पास भेजते हैं और विवाहके समय उसे मार डालनेका षड्यंत्र रचते हैं। कवलसीका पिता यह नारियल अस्वीकार कर देता है परन्तु जब जङ्गलमें शिकारके लिए कवलसीको यह नारियल दिया जाता है तो वह इसे ग्रहण कर लेता है। फिर विवाहके लिए बारात जाती है। फेरोंमें ग्रंथिबंधन होते ही पतिके सन्याचरणके प्रभावसे भरमलके नेत्रोंमें ज्योति आ जाती है और वह उसे षड्यंत्रका संकेत कर देती है, जिससे कवलसी बचकर निकल जाता है। फिर वह अपनी ससुरालके प्रदेशमें भरमलके पास अकेला ही हिम्मत करके आता है। वहाँ उसे छिपाकर ६ मास तक महलमें रख लिया जाता है। अंतमें वह चतुराईसे भरमलको साथ लेकर विदा हो जाता है। इस प्रकार कवलसी सत्यपरायणता और साहसका आदर्श उपस्थित करता है।[2]

ऊपर सात आदर्श पात्रोंके चरित्रकी चर्चा की गई है। ये सभी पुरुष-पात्र हैं। इसी प्रकार राजस्थानो बातोंमें आदर्श नारीपात्रोंका चरित्र भी द्रष्टव्य है।

(१) जसमा ओडणीकी बातमें—जसमा ओड जातिकी स्त्री है, जो मिट्टी खोदनेका धंधा करती है। उसके रूप-सौन्दर्यपर मुग्ध होकर राजा उसे अनेक प्रकारसे प्रलोभन देता है परन्तु वह सर्वथा अस्वीकार कर देती है। अंतमें ओड लोग डर कर एक रात भाग छुटते हैं। राजा सेना भेजकर उनको मरवा देता है। जसमा सती हो जाती है। इस प्रकार जसमा ओडणी दृढ़ता एवं सतीत्वका आदर्श प्रकट करती है।[3]

(२) वीरमदे सलखावतकी बात—में शाही सेना वीरमदेका पीछा करती है और वह भाग कर जांगलूकी धरतीमें पहुँचता है। वहाँके राजा ऊदा मूंजावतसे वह सारी स्थिति बतला कर शरण देनेकी प्रार्थना करता है। ऊदा अपनी माताके सामने समस्या प्रस्तुत करता है। उसकी माता उसे कहती है कि वीरमदेको शरण अवश्य दी जावे। तदनुसार वीरमदेको जांगलूके कोटमें रख लिया जाता है। पीछे लगी हुई शाही सेना भी वहाँ आ पहुँचती है। ऊदा उसके प्रधानको समझाकर बाहर ही एक रात भर डेरोंमें रोक देता है और इसी बीच वीरमदेको जोईयोंकी धरतीमें भेज दिया जाता है। दूसरे दिन कोटमें वीरमदेके न मिलनेपर शाही-सेनापति ऊदाको पकड़ता है और पैरोंकी ओरसे उसकी खाल खैंचनेकी तैयारी होती है। उसकी माता कोटकी दीवारसे यह दृश्य देखकर जोरसे आवाज देती है कि वीरमदे ऊदाके पैरोंमें नहीं है, वह उसकी खोपरीमें हैं, अतः खोपरीकी खाल उतारी जावें। वृद्धाके इस वचनसे प्रसन्न होकर सेनापति ऊदाको छोड़ देता है और वहाँसे

१. साधना, अंक ७।

२. बात कवलसी सांखलैरी (हस्तप्रति, अभय जैन पुस्तकालय, बीकानेर)

३. राजस्थानी वातां, भाग १ (श्री नरोत्तमदास स्वामी)

लौट जाता है। इस प्रकार ऊदाकी माता एक अनुपम आदर्श उपस्थित करती है। वह शरणागतकी रक्षाको अपना धर्म समझने वाली वीर माता है।[1]

(३) कूंगरे बलोचकी बातमें महाबली कूंगरेकी बेटी हांसू अपने मृत पिताकी इच्छापूर्तिके लिए पुरुषवेषमें जैसलमेरके घोड़े लूटनेके लिए चल पड़ती है। मार्गमें उसकी ओढे सरदारसे भेंट होती है और वे साझेमें 'धाड़ा' (डाका) करनेके लिए आगे बढ़ते हैं। वे जैसलमेरके घोड़े घेरकर ले आते हैं। पीछेसे सेना आती है। ओढा घोड़े लेकर आगे बढ़ता है और हांसू अकेली सारी सेनाको रोककर छका देती है। सेना हार कर लौट जाती है। आगे आनेपर लूटमें प्राप्त घोड़ोंका हिस्सा होता है और ओढा हांसूको पहचान लेता है कि वह लड़की है। फिर उनका आपसमें विवाह होता है और हांसूके गर्भसे वीर जखड़ा जन्म लेता है। इस प्रकार हांसू एक वीर पुत्रीका आदर्श उपस्थित करती है।[2]

(४) महींद्रो सोढो सम्बंधी बातमें मोमलका प्रेमी महेन्दरा सोढा उसके पास प्रति रात्रि बड़ी दूरसे चलकर पहुँचता है एक रात उसके बड़ी देरसे आनेके कारण सब सो जाते हैं और दरवाजा नहीं खुल पाता। इससे वह नाराज हो जाता है। प्रेमीकी नाराजीका पता लगानेके लिए मोमल स्वयं उसके यहाँ पहुँचती है। महेन्दरा बागमें जाकर बैठ जाता है। और मोमलको झूठा संदेश भिजवा देता है कि सांप द्वारा काटे जानेके कारण उसकी मृत्यु हो चुकी है। इस समाचारको सुनते ही मोमल अपना शरीर छोड़ देती है। इस प्रकार वह एक आदर्श प्रेमिकाके रूपमें प्रकट होती है इस बातका रूपान्तर भी मिलता है, जिसमें महेन्दराकी नाराजीका कारण दूसरा ही दिखलाया गया है।[3]

(५) राजा नरसिंघकी बातमें अजमेरके राजा वैरसी गौड़के मरनेपर उसका पुत्र नरसिंघ बालक अवस्थामें होता है और रानी दैहड़ (दहीया वंशकी पुत्री)के ऊपर सारा भार आ पड़ता है। इसी समय अजमेर पर पठानोंका हमला होता है। रानी स्वयं वीरता पूर्वक युद्ध करती है परन्तु कोटकी रक्षा होना कठिन प्रतीत होता है, अतः अपने लोगोंको साथ लेकर वह दूर चली जाती है। आगे नरसिंघका बचपनमें ही विवाह करके उसे अपनी ससुरालमें छोड़ दिया जाता है। फिर रानी दैहड़ हाड़ोंकी धरतीमें जाकर शक्ति-संग्रह करती है। नरसिंघ सयाना हो जाता है तो उसका एक विवाह और कर लिया जाता है। फिर अवसर देख-कर रानी अजमेरपर आक्रमण करती है और विजयके बाद नरसिंघ राजा बनता है। इसके बाद रानी दैहड़ सती हो जाती है। इस प्रकार रानी एक साथ ही शौर्य, सहनशीलता, बुद्धिमत्ता एवं पतिभक्तिका आदर्श उपस्थित करती है।[4]

यहाँ राजस्थानी बातोंके कुछ चुने हुए आदर्श पात्रोंकी साधारण चर्चा मात्र की गई है, वैसे बातोंमें आदर्श पात्रोंकी संख्या बहुत बड़ी है और वे अनेक प्रकारके आदर्श उपस्थित करते हैं। इसी प्रसंगमें पात्रोंकी शारीरिक शक्तिका नमूना भी देखने योग्य है—

(१) कूंगरो बलोच अरोड़ सखर रहै तिलोकसीह जसहड़ौत जैसलमेर राज करै। कूंगरो छै ताकड़ी री अहार करै। एक बैर (पत्नी) कूंगरै। री हाडी परवत छै, ओथ रहै। मा सू अरोड़ रहै। सू पहाड़ इसड़ो

१. वीरवांण, परिशिष्ट भाग (रानी लक्ष्मीकुमारी चूंडावत)।

२. राजस्थानी वातां, भाग, १ (श्री नरोत्तमदास स्वामी)।

३. राजस्थानी प्रेमकथाएँ (श्री मोहनलाल पुरोहित)।

४. वातां रो झूमखो, दूजो।

परबत, सू पहाड़ कोरि नै माहे घर कियौ। सू घर रै मुंहड़ै दीयै। सू उवा चिटां कूंगरौ खेसवै, बीजै कंही खुलै नहीं। पहाड़ नै अरोड़ साठ कोस रौ आंतरौ। एक दिन पहाड़ रहै, एक दिन अरोड़ रहै। हम थको रहै।[१]

(२) ताहरां सूरिजमल सादड़ी छाडी। सूरिजमल देवलीयै गयौ। आगै देवलीयै मैंणों मरि गयो। मैंणी राज करै। उठे जाइ नै सूरिजमल पग टेकिया। सु नैंणी इसड़ी बलाइ, वागो पहिर घोड़ै चढ़ै। सु छै ताकड़ी री बूडी, इसड़ी बरछी पकड़ीयै। देश मांहे चौथल्यै। अठै सूरिजमल प्रिथीराज रो धकायो धको मैंणी कन्है जाइ रह्यौ[२]।

इन दोनों उद्धरणोंमें क्रमशः, कूंगरा बलोच और एक यीणी राणीकी शारीरिक शक्ति प्रकट की गई है, जो सामान्य जनसे कहीं अधिक है। राजस्थानमें जिस प्रकार अगणित व्यक्ति शौर्य सम्पन्न हुए हैं, उसी प्रकार यहाँ शारीरिक शक्ति भी कम नहीं रही है। ऐसे व्यक्तियोंकी आज भी लोग चर्चा करते हैं। बातोंके रूपमें उनकी स्मृतिको लेकर बनाए रखा गया है।

यथार्थ

पात्रोंके यथार्थ चरित्र चित्रणकी दृष्टिसे भी राजस्थानी बातें अपना विशेष महत्त्व रखती हैं। उनमें मानव-मनकी विविध स्थितियोंका सच्चा चित्र प्रस्तुत किया गया है। ऐसे चित्र बहुत अधिक हैं। कुछ उदाहरण देखिए—

(१) केसे उपाधीयैकी बातमें जांगलूके स्वामी अजैसी दहियाका कुलपुरोहित केसा है। राज्यमें उसका बड़ा सम्मान है। परन्तु वह राजाकी अनुमति प्राप्त किए बिना ही कोटके सामने तालाब बनवाना आरम्भ कर देता है। कोटके लिए यह तालाब हानिकारक हो सकता है, अतः राज अजैसी उसे रोक देता है। इसपर केसा मन ही मन बड़ा नाराज होता है और वह रायसी सांखलासे गुप्त रूपसे मिलकर षड्यन्त्र रचता है। तय होता है कि केसा रायसीको जांगलूका राज्य दिलवा देगा और बदलेमें उसे कोटके सामने तालाब बनवा लेने दिया जायगा। फिर कपटपूर्वक दहिया-दलके लोगोंको वर रूपमें विवाहके लिए बुलवा लिया जाता है और क्रूरताके साथ उनको आगमें जला दिया जाता है। केसा पुरोहित चालाकीसे जांगलू कोटका दरवाजा भी खुलवा लेता है और उसपर सांखला रायसीका अधिकार हो जाता है। कोटके सामने तालाव बनता है। इस प्रकार केसाकी प्रतिहिंसा पूरी होती है। वह तुच्छ स्वार्थके लिए परम्परागत सम्बन्धोंको भुला देता है।[३]

(२) कछवाहैकी बातमें नरवरगढ़के पतनके समय बालक सोढको लेकर उसकी माता दासीके रूपमें जान बचा कर भाग जाती है और वह खोहमें मीणोंके राज्यमें पहुँचती है। ऐसी दुरवस्थामें वहाँ एक किसान-मीणा उन माँ-बेटोंको दयावश अपने घरमें शरण देता है। सोढकी चर्चा खोहके राजाके पास पहुँचती है और वह उसे अपनी सेवामें बुलवा लेता है। कुछ समय बाद खोहपर शाही सेनाकी चढ़ाई होती है और मीणोंका राजा ६ लाख रुपए नकद तथा ३ लाखके बदले सोढको अपने पुत्र-रूपमें बादशाहके पास भेजकर सन्धि कर लेता है। राजा सोढको कहता है कि वह धीरज धारण किए रहे, उसे जल्दी ही छुड़वा लिया

---

१. राजस्थानो वातां, भाग १, पृ० ४२।

२. वात सूरिजमल री (हस्तप्रति, अनूप संस्कृत पुस्तकालय, बीकानेर)।

३. केसे उपाधीयैं री वात (हस्तप्रति, अ० जै० ग्रन्थालय, बीकानेर)।

जाएगा। परन्तु बादशाहके सामने भेद खुल जाता है कि सोढ मीणोंके राजाका पुत्र न होकर कछवाहा राजपूत है। वहाँ बादशाह सोढको सैनिक सहायता देता है और फिर वह मीणोंको मारकर खोहपर अपना अधिकार स्थापित कर लेता है। इस प्रकार सोढ अपने शरणदाताका ही घातक बनता है।[1]

(३) मारू सूघारीकीं बातमें फूलकी मृत्युके बाद लाखा राजा बनता है और ठाकुर तथा भोमिये उससे मिलनेके लिए आते हैं। वीरण राठौड़ भी वहाँ पहुँचता है। लाखा प्रसन्न होकर उसको अपनी बहिन विवाहमें देनेके लिए कह देता है। परन्तु यह बहिन उसकी संगी न होकर विमाता बलोचणी रानीकी बेटी है। इस सम्बन्धसे रानी नाराज होती है परन्तु उसका कोई वश नहीं चलता। वीरण विवाहके लिए आता है, उस समय उसकी बहली (गाड़ी)के तेज दौड़नेवाले रोझ (पशु) देखकर लाखा उनको माँग लेता है। ये रोझ वीरणके नहीं थे, धारा सूंघारके थे, जो वहीं साथमें था। अतः तय हुआ कि धारापर कोई दोष लगा कर उसके रोम छीन लिए जावें। उसका डेरा बलोचणी रानीकी कोटड़ी (निवासस्थान)में किया गया। फिर दोनोंको पकड़नेका षड्यन्त्र था। बलोचणीको इसकी सूचना मिल जाती है और वह धाराको खबर देती है कि यदि वह उसे लेकर भाग छुटे तो प्राण बच सकते हैं। धारा मंजूर कर लेता है और वे दोनों चुपचाप बहलीमें बैठकर भाग जाते हैं। इसपर लाखा बड़ा क्रोधित होता है क्योंकि बलोचणी रानी आखिर उसकी विमाता तो थी ही। वह वीरणके साथ अपनी बहिन (बलोचणींकी पुत्री)का विवाह करके उसे ससुरालके लिए विदा करते समय समझा देता है कि किसी प्रकार वह ससुरालके गाँवमें जाकर अपनी माता (बलोचणी रानी)को जरूर समाप्त कर डाले। वह इसके लिए तैयार हो जाती है और अपनी ससुरालमें माताको बुलवा कर कपटपूर्वक भोजन में विष दे देती है। इस प्रकार बेचारी बलोचणी रानीकी जीवन-लीला समाप्त होती है।[2]

(४) ठकुरै साहकी बातमें एक सेठ ठकुरेके घरसे निकले हुए पुत्रसे अपना काम निकालकर उसे धोखेसे समुद्रमें डाल देता है। किसी तरह लड़का बच जाता है और एक नगरमें राजाके यहाँ 'जगाली'-के रूपमें नौकरी करने लगता है। समय पाकर उसे समुद्रमें डालनेवाला सेठ वहाँ आता है और जगात (चुंगी) चुकानेसे पूर्व यह पता लगवा लेता है कि वहाँ जगाती कौन है। सेठको सूचना मिलती है कि वहाँ वही व्यक्ति जगाती है, जो समुद्रमें फेंका गया था। अब सेठ राजाके 'ओलगू' (गानेवाले, डूम) लोगोंको दस मोहर देकर कहता है कि वहाँका जगाती उसका 'गोला' (दास) है, यह खबर राजाके पास किसी तरह पहुँचाई जावे। डूम लोग तैयार हो जाते हैं और गाते समय चतुराईसे राजाके सामने जगातीके बारेमें कह देते हैं कि वह तो उनका 'भांडणी' (भांड जातिकी स्त्री)के पेटसे पैदा हुआ भाई है। राजा इस सूचनासे बड़ा क्रोधित होता है कि जगातीने अपनी जाति छिपाई। जब जगाती को बुलवा कर पूछताछ की जाती है तो सारा भेद खुल जाता है। इस समय डूम (गवैये) तत्काल सेठसे प्राप्त दस मोहर निकाल कर राजाके सामने रख देते हैं कि सारा काम उन मोहरोंने करवाया है, जो उन्हें सेठसे मिली हैं।[3]

ऊपर केवल चार बातोंमें-से उदाहरण प्रस्तुत किए गए हैं। इस प्रकारका यथार्थरूप राजस्थानी बातोंमें अनेकशः देखा जाता है।

---

१. कछवाहै री बात (हस्तप्रति, अ० जै० ग्रन्थालय, बीकानेर)।

२. वरदा (७।१)।

३. ठकुरै साह री बात (वातां रो झूमखो, दूजों)।

आदर्श और यथार्थका मिश्रण

राजस्थानी बातोंमें अनेक पात्रोंके चरित्रमें आदर्श और यथार्थका मिश्रण प्रकट हुआ है। ऐसे पात्रोंमें कुछ विशेष गुण हैं तो कुछ मानवीय दुर्बलताएँ भी हैं। उदाहरण देखिए—

(१) राज बीजकी बातमें लाखाका भानजा राखायच अपने मामाके पास रहता है और वहाँ उसका पूरा सम्मान है। परन्तु राखायच गुप्त रूपसे घोड़ेपर चढ़कर मूलराजके पास जाता है और उसे लाखापर आक्रमण करनेका अवसर बतला देता है। वह अपने मामा लाखासे अपने पिताकी मृत्युका बदला लेना चाहता है। परन्तु जब मूलराजकी सेना आक्रमण करती है तो राखायच लाखाके पक्षमें लड़ता हुआ प्राण त्याग देता है। इस प्रकार वह लाखाके अन्तका स्वयं कारण बनकर उसके साथ ही अपना जीवन दे देता है। राखायच जानबूझ कर धोखा देनेपर भी अन्तमें स्वामिभक्ति प्रकट करता है।[१]

(२) राजा नरसिंहकी बातमें एक घोड़ेके सम्बन्धमें विवाद हो जानेके कारण हरा अजमेर छोड़कर पठानोंकी सेवामें चला जाता है। जब पठान अजमेरपर आक्रमण करनेकी सोचते हैं तो हरा सारी सूचना गुप्त रूपसे अजमेर भेज देता है। इसी प्रकार वह चढ़ाईके समय भी अजमेरके गौड़ोंके लिए उचित परामर्श छिपकर पहुँचाता रहता है। इतना होनेपर भी जब अन्तमें युद्ध होता है तो हरा पठानोंके पक्षमें लड़ते हुए प्राण त्याग करता है। गौड़ विजयी होकर हराका संस्कार करते हैं। इस प्रकार हरा अपने स्वामीको धोखा देते हुए भी उसके लिए प्राण त्याग देता है, जो ध्यान देने योग्य है।[२]

(३) देपाळ घंघकी बाटमें मुलतानका बादशाह देपाळसे पराजित होकर उसको अपनी बेटी विवाहमें दे देता है। फिर बादशाह अपनी बेटीको गुप्त रूपसे अपने पक्षमें करके उसके द्वारा यह मालूम करवा लेता है कि देपाळ किस प्रकार मारा जा सकता है। देपाळकी पत्नी अपने पतिको बातोंमें बहला कर उससे यह भेद पूछ लेती है। अन्तमें जब देपाळ युद्धमें मारा जाता है तो बादशाह की बेटी उसके साथ सती होती है। इस प्रकार वह पहिले पतिद्रोह और फिर पतिभक्ति प्रकट करती है।[३]

चरित्र-विकास

राजस्थानी वातोंमें पात्रों की चारित्रिक विशेषताएँ प्राय: स्थिर हैं और उनका विकास कम ही दृष्टि-गोचर होता है। फिर भी कई पात्रों की मनोदशामें परिस्थितिवश विशेष परिवर्तन देखा जाता है। यही उनका चारित्रिक विकास है। उदाहरण देखिए—

(१) उमादे भटियाणी की बातमें—रानी उमादे अपने पतिको एक दासीकी ओर आकृष्ट देखकर रूठ जाती है और फिर उसे मनानेके लिए अनेक प्रयत्न किए जानेपर भी वह नहीं मानती। सर्वसाधारणमें उसका नाम ही 'रूठी राणी'के रूपमें प्रसिद्ध है। अन्तमें जब उसके पति राव मालदेवका देहान्त हो जाता है तो वह सती होती है और अपने जीवनका अनुभव संदेश-रूपमें प्रकट करती है कि उसकी तरह कोई स्त्री संसारमें 'मान' (रूसणो) न करे। इस प्रकार अत्यन्त आग्रहके साथ जन्म भर 'मान' पर डटी रहनेवाली उमादे अन्तमें उसकी निस्सारताके प्रति ग्लानि प्रकट करके पतिके साथ ही अपनी जीवन-लीला भी समाप्त कर लेती है।[४]

---

१. राज बीज री बात (हस्तप्रति, अ० जै० ग्रं० बीकानेर)।

२. वातां रो झूमखो, दूजो।

३. वातां रो झूमखो, दूजो।

४. राजस्थानी वातां, भाग १ (श्री नरोत्तमदास स्वामी)

(२) लाखा फूलाणी की बातमें जब लाखा दूर देश जाता है तो अपनी प्रियतमा सोढी रानीके पास गायनके द्वारा मन बहलाने हेतु मनभोलिया नामक डूमको छोड़ जाता है। पीछेसे सोढी रानी कामातुर होकर मनभोलिया डूमको अपने महलमें रखने लगती है। यह खबर किसी तरह लाखाके पास पहुँच जाती है और एक रात वह चुपचाप आकर सोढी रानीका चरित्र देख लेता है। इस पर लाखा उसे मारनेके लिए तलवार निकालता है परन्तु अपने पूर्व वचनका स्मरण करके उसको नहीं मारता। अगले दिन सोढी रानी उसी डूमको सौंप दी जाती है। वह मनभोलियाके साथ चली जाती है। कुछ समय बाद वे दोनों पाटणमें लाखाको देखते हैं। इस समय सोढी प्रतिज्ञा करती है कि लाखाके हाथका 'सूळा' खाए बिना वह अन्न-पानी ग्रहण नहीं करेगी। यह प्रतिज्ञा सुनकर लाखा अपने हाथका बनाया हुआ 'सूळा' सोढीके लिए भेजता है। उसे देखते ही सोढी प्राण त्याग देती है। इस प्रकार सोढी रानी पतिको दगा देनेपर भी अन्तमें उसके व्यवहारको देखकर आत्मग्लानिके कारण अपनी जीवन-लीला समेट लेती है।[१]

(३) काम्बळो जोईयो और तीडी खरल की बातमें—कांवळा एकदम भोले स्वभावका व्यक्ति है। यहाँ तक कि उसकी सास अपनी बेटीको उसके घर भेजनेके लिए भी तैयार नहीं होती। अन्तमें किसी तरह समझाने पर वह उसे कांबळाके साथ विदा कर देती है। जब उसका गाँव निकट आता है तो उसकी पत्नी कपड़े आदि ठीक करनेके लिए ऊँटसे नीचे उतरती है और उसे कुछ दूर खड़ा होनेके लिए कहती है। कांबळा समझता है कि वह अकेली आ जाएगी और स्वयं घर चला जाता है। रात पड़ जाती है और तीड़ी ससुरालका घर जानती नहीं, अतः वह रोने लगती है। इसी समय एक 'धाड़ी' उधर आ निकलता है और सारी स्थिति समझकर तीड़ीको कहता है कि ऐसे व्यक्तिके साथ उसका निर्वाह नहीं होगा। यदि वह चाहे तो उसके घर चल सकती है, जहाँ उसे पूरा सम्मान मिलेगा। इस पर तीडी उसके साथ चली जाती है। इधर कांबळा तीडीके लिए भगवां धारण करके उसकी खोजमें निकलता है और घूमते-घूमते अन्तमें उसी गाँवमें चला जाता है, जहाँ तीडी रहती है। धाड़ी की अनुपस्थितिमें उनका मिलाप होता है। जब तीड़ी देखती है कि उसके लिए कांबळने घर छोड़ दिया है तो वह उसके साथ जानेके लिए तैयार हो जाती है और इस कार्यके लिए स्वयं तरकीब भी बतला देती है। फिर कांबळा अपने बहनोईके साथ वहाँ आता है और धाड़ी की अनुपस्थितिमें वे तीडीको ले भागते हैं। इस प्रकार तीडीका मन अपने पति की मूर्खताके कारण उससे फिर जाता है परन्तु अन्तमें उसके त्यागको देखकर उसका प्रेम उमड़ पड़ता है और वह भयंकर खतरा उठाकर भी उसके साथ वापिस लौट आती है।[२]

मानसिक संघर्ष

बातोंमें मानसिक-संघर्ष की अनेक परिस्थितियाँ प्रकट होती हैं परन्तु वहाँ इस प्रकारका मनोवैज्ञानिक चित्रण दृष्टिगोचर नहीं होता। वहाँ सीधे-सादे रूपमें घटना की ओर संकेत कर दिया जाता है और मनोभावों की सूक्ष्मताके चित्रण की ओर ध्यान नहीं दिया जाता। इस सम्बन्धमें कहीं-कहीं साधारण चर्चा भले ही मिल सकती है। उदाहरण देखिए—

(१) इतरैमें नागोर ओर बीकानेर आपसमें कजियो हुवो, गाँव जखाणियाँ बाबत। सो नागेर री फोज भागी, बीकानेर री फतह हुई।..........सो आ खबर अमर सिंहजी नूं गई। सो सुणत सुवां काळो

---

१. लाखा फूलाणी री वात (हस्तप्रति, अ० जै० ग्रं०, बीकानेर)

२. बातां रो झूमखो, पहलो।

मरट हुय गयौ। हाथ पटकै, दांतां सूं हथेली नूं बटका भरै। कटारी सूं तकियौ फाड़ नांखियौ। 'जे म्हांरी भणा दिनां री संची जाजम बीकानेर रा खाली कर दीवी। मैं तो इहां नूं जोधपुर रै पगां संचिया था, सो हमें जोधपुर री आस तौ चूकी दीसै छै।' मुत्सद्दी अमराव हजूर री धीरज बंधावै, परचावै। पण अमरसिंह तो बावलै रीं सी बात करै।[1]

राव अमरसिंह की ऐसी मनोदशा उस समय प्रकट की गई है, जब उसे अपनी जागीर (नागौर)से पराजयका संवाद मिलता है और शाही दरबारसे घर जानेके लिए उसे छुट्टी प्राप्त नहीं हो रही है।

(२) एकै दिन राजड़िया रो बेटो वीजड़ियौ वीरमदेजी री खवासी करै छै। तिण आँख भरी, चौसरा छूटा। वीरमदेजी पूछियौ—"वीजड़िया क्यूं, किण तोनैं इसो दुख दीधो?" तह वीजड़ियौ कह्यौ—"राज, माथै धणी, मोनैं दुख दै कुण? पिण नींबो म्हारा बाप रौ मारण हारौ, गढां-कोटां मांहि बड़ा-बड़ा सगां मांहे धणीयां रो हांसा रो करावणहारौ बलै गढ़ मांहे खंखारा करै छै नैं पोढै छै। तीण रौ दुख आयो।"[2]

इस प्रसंगमें वीजड़ियाका हृदय उसके पिताको मारनेवाले नींबाको राजमहलमें आरामसे रहते देखकर जल रहा है। परन्तु वह सेवक है, अतः उसकी मानसिक पीड़ा नेत्रों की राह बह चली है।

(३) अचलदासजी नूं आंख्यां ही न देखै छै, तरै ऊमांजी झीमी नूं कहियो—"हिमैं क्यों कीजसी? एकेक रात वरस बराबर हुई छै। आखी खाधी, तिका आधो ही न पावूं, इसड़ी हुई।" तरै ऊमांजी झीमा नूं कहै छै—कासूं कींजसूं? कोइक विचारणा करणो, ओ जमारो क्यों नीसरै? जो तूं वीण वजावै, तरै रन रा मृग आवै नै आगै ऊभा रहता, सो तूं अचलजी नूं मोहै नै ल्यावै तो तूं खरी सुघड़राय।" तरै झीमी कहियो—"जो अचलदासजी नां एक बार आंख्यां देखूं तो मगन करां। आंख्यां ही न देखूं तो किसो जोर लागै?"[3]

इस प्रसंगमें सौतसे वशीभूत पतिके द्वारा परित्यक्ता पत्नी की मनोवेदना प्रकट हुई और किंकर्तव्यविमूढ़ता की स्थितिने इस वेदनामें विशेष रूपसे वृद्धि कर दी है।

(४) रात रै समीमै सींधल आपरै ठिकाणै पधारिया। त्यों सुपियारदे पिण कपड़ा पेहर अर महलमें सींधल कन्हैं गई। त्यों कपड़ां री सुगंध आई। त्यों सींधल कह्यौ—"आ सुवासनी काहिण री आवै छै?" त्यों सुपियारदे वोली—"राज, मोनूं खबर नहीं।" इतरै सींधल वोलियौ—"जू म्हे कह्यौ हुवै म्हो जांणायौ जू जांणीजै बैनोई भेंट कीवी छै।" तद सींधल चादर तांण नैं पौठि रह्यौ अर सुपियारदे नै किम कह्यौ नहीं। राति पोहर ४ उठै ही ज ठोड सुपियारदे खड़ी रही। तद सुपियारदे दूहो कह्यौ—

प्री सूतौ धण ओजगै, राति विहाणी जाइ।
सींधल बोल्या बोलड़ा, कहूँ नरबद नैं जाइ॥[4]

इस प्रसंगमें सुपियारदेको उसका पति जली-कटी वात सुनाकर उसके चरित्र पर लांछन लगाता है। और फिर वह चादर तानकर सो जाता है। सुपियारदे रात भर खड़ी हुई चिन्ता करती है। इस समय उसके

१. राजस्थानी वात-संग्रह (परम्परा), पृष्ठ १५६।
२. राजस्थानी वातां, पृष्ठ ७६-७७।
३. पँवार वंश दर्पण, परिशिष्ट।
४. सुपियारदें री वात (हस्तप्रति, श्री अ० सं० पुस्तकालय, बीकानेर)

हृदयमें उथल-पुथल मची हुई है। उसे अपने पतिके शब्दों पर भारी रोष है, जिसे बातमें एक दोहेके द्वारा प्रकट किया गया है।

(५) जाट साहरण भाडंग मांहे रहै अर गोदारो पांडो लाधड़ीयै रहै, वडो दातार। सु साहरण रै नायर (पत्नी) बाहणोवाल मलकी। सु मलकी मांही (पति) नूं कह्यौ—"जु गोदारो वणो कहावै छै।" दूहो--

घड़ बंधी बरसे गोदारो, बत भांडको भीजै।
पांडो कहै सुणो रे लोगो, रहै सु डूमां दीजै॥

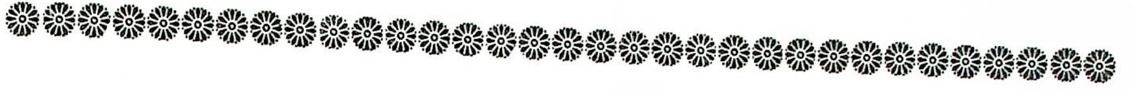
मांटी नुं कह्यो—"चौधरी, रसो दे, जिसो गोदारो। ता ऊपर नांव हुवै। जोट तो दारू रो छाकीयो हंतो, सु चोधरण रै चाबखै री दीवी। तो जाहरां कह्यौ—"पांडो केरो, जो रोधो छै।" जाहणी कह्यौ—"घरवूडा, मैं तो बात कही थी।" जाटणी कह्यौ—"थारै माचै आवूं तो भाई रै आवूं।" जाट सूं अबोलणो घातीयौ। मास १ पांडू गोदारै नूं कहाय मेलीयो—"जु तै बदलै मोनुं ताजणो वाह्यौ।" पांडू कहायौ--"जो आवै तो हूँ आय लेवा।" ओर ही त मास दे हूवा।[1]

इस प्रसंगमें बिना अपराध ताड़ित नारी की रोषपूर्ण आत्मा पुकार कर रही है। ऐसी स्थितिमें वह आत्म सम्मानके लिए सब कुछ छोड़नेके लिए तैयार हो जाती है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि राजस्थानी बातोंमें पात्रोंका एक अलग ही संसार बसा हुआ है। इस संसारमें भले-बुरे सभी तरहके व्यक्ति हैं। वहाँ छोटे-बड़े, ऊँच-नीच, बली-निर्बल आदि सभी प्रकारके लोग अपने-अपने कार्यमें व्यस्त दिखलाई देते हैं। बातों की इस दुनियामें विचरण करके यहाँके निवासियों की प्रकृति तथा चरित्रका अध्ययन करना बड़ा ही रोचक तथा रसदायक है।

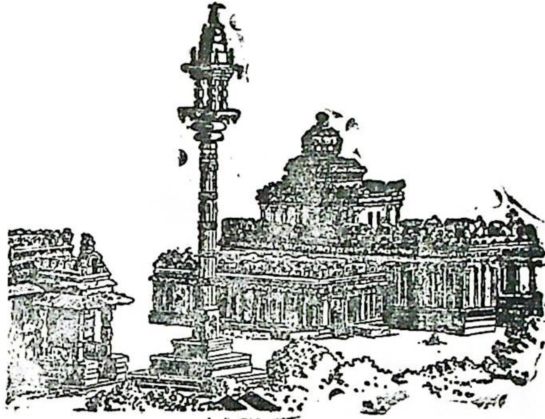
●

१. वात राव बीकै री (हस्तप्रति, अ०जै० ग्रं० बीकानेर)



तृतीय खण्ड





विविध





जैनतर्कशास्त्रमें हेतु-प्रयोग

डॉ० दरबारीलाल कोठिया
भूतपूर्व रीडर, जैन-बौद्धदर्शन काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

प्रमाणशास्त्रमें अनुमान प्रमाणका महत्त्वपूर्ण स्थान है। उससे उन पदार्थोंका ज्ञान किया जाता है जो इन्द्रियगम्य नहीं होते। अतः इन्द्रियागम्य सूक्ष्म, अतीत-अनागत और दूर पदार्थ अनुमेय हैं[1] और उनकी व्यवस्था अनुमानसे की जाती है। जहाँ किसी साधनसे किसी साध्यका ज्ञान किया जाता है उसे अनुमान कहा गया है।[2] इसे और भी सरल शब्दोंमें कहा जाय तो यों कह सकते हैं कि ज्ञातसे अज्ञातका ज्ञान करना अनुमान है। उदाहरणार्थ नदीकी बाढ़को देखकर अधिक वर्षाका ज्ञान, सूँड़को देखकर पानीमें डूबे हाथीका ज्ञान, धुआँको अवगतकर अग्निका ज्ञान अनुमान है। इसे चार्वाकदर्शनको छोड़कर शेष सभी भारतीय दर्शनोंने माना है।

अनुमानके कितने अङ्ग (अवयव) हैं, इस विषयमें भारतीय दर्शन एकमत नहीं हैं। यों कमसे कम एक और अधिकसे-अधिक दश अवयवोंकी मान्यताएँ दर्शनशास्त्रमें मिलती हैं। एक अवयव बौद्ध तार्किक धर्मकीर्तिने[3] और दश अवयव सांख्यविद्वान् युक्तिदीपिकाकारने[4] स्वीकार किये हैं। जैन परम्परामें भी दश अवयव आचार्य भद्रबाहुने[5] माने हैं। यतः हेतुको सभी दार्शनिकोंने अङ्गीकार किया है और उसे प्रधान अङ्ग बतलाया है। अतः यहाँ इस हेतुका ही विशेष विचार किया जावेगा।

अनुमेयको सिद्ध करनेके लिए साधन (लिङ्ग) के रूपमें जिस वाक्यका प्रयोग किया जाता है वह हेतु कहलाता है।[6] साधन और हेतुमें यद्यपि साधारणतया अन्तर नहीं है और इसलिए उन्हें एक-दूसरेका पर्याय मान लिया जाता है। पर ध्यान देनेपर उनमें अन्तर पाया जाता है। वह अन्तर है वाच्य-वाचकका। साधन वाच्य है, क्योंकि वह कोई वस्तु होता है। और हेतु वाचक है, यतः उसके द्वारा वह कहा जाता है। अतएव 'साधनवचनं हेतुः' ऐसा कहा गया है।

अक्षपादने[7] हेतुका लक्षण बतलाते हुए लिखा है कि उदाहरणके साधर्म्य तथा वैधर्म्यसे साध्य (अनुमेय) को सिद्ध करना हेतु है। उनके इस हेतुलक्षणसे हेतुका प्रयोग दो तरहका सिद्ध होता है। एक साधर्म्य और

---

१. आप्तमी० का० ५।

२. साधनात्साध्यविज्ञानमनुमानम्।—न्यायवि० द्वि० भा० २।१। प० मु० ३।१४।

३. हेतुबिन्दु, पृ० ५५।

४. युक्तिदी० का० १ की भूमिका, पृ० ३ तथा का० ६, पृ० ४७-५१।

५. दशवै० नि० गा० ४९, ५०।

६. 'परमाणवः सन्ति स्कन्धान्यथानुपपत्तेः' इस अनुमान-प्रयोगमें अनुमेय 'परमाणुओं' को सिद्ध करनेके लिए प्रयुक्त साधन 'स्कन्ध अन्यथा नहीं हो सकते' हेतु है।

७. न्याय सू० १।१।३४, ३५।

दूसरा वैषर्म्य । साधर्म्यका अर्थ अन्वय है और वैधर्म्यका व्यतिरेक । साधर्म्य और वैधर्म्य अनुमेयसिद्धिमें हेतुके निर्दोषत्वको पुष्टकर उसे साधक बनाते हैं । व्याख्याकार वात्स्यायन[1] और उद्योतकरने इन[2] दोनों प्रयोगोंका समर्थन किया है । इन तार्किकोंके मतानुसार हेतुको साध्य (पक्ष) में तो रहना ही चाहिए, साधर्म्य उदाहरण (सपक्ष) में साध्यके साथ विद्यमान और वैधर्म्य उदाहरण (विपक्ष) में साध्याभावके साथ अविद्यमान भी होना चाहिए । फलतः हेतुको त्रिरूप होना आवश्यक है ।

काश्यप[3] (कणाद) और उनके व्याख्याता प्रशस्तपादका[4] भी मत है कि जो अनुमेय (साध्य) के साथ सम्बद्ध है, अनुमेयने अन्वित (साधर्म्य उदाहरण—सपक्ष) में प्रसिद्ध है और उसके अभाव (वैधर्म्य उदाहरण—विपक्ष)में नहीं रहता वह हेतु है । ऐसा त्रिरूप हेतु अनुमेयका अनुमापक होता है । इससे विपरीत अहेतु (हेत्वाभास) हैं और वह अनुमेयको नहीं साधता ।

बौध तार्किक न्याय प्रवेशकार[5] भी त्रिरूप हेतुके प्रयोगको ही अनुमेयका साधक बतलाते हैं । धर्मकीर्ति,[6] धर्मोत्तर[7] आदिने उनका समर्थन किया है ।

सांख्य विद्वान् माठरने[8] भी त्रिरूप हेतुपर बल दिया है ।

इस प्रकार नैयायिक, वैशेषिक, बौद्ध और सांख्य तार्किक हेतुको त्रिरूप मानते हैं ।

तर्क-ग्रन्थोंमें त्रिरूप हेतुके अतिरिक्त द्विरूप, चतुःरूप, पञ्चरूप, षड्रूप और सप्तरूप हेतुकी भी मान्यताएँ मिलती हैं । द्विरूप, चतुःरूप और पञ्चरूप हेतुका उल्लेख उद्योतकर,[9] वाचस्पति[10] और जयन्त भट्टने[11] किया और उनका सम्पोषण किया है । इससे ज्ञात होता है कि उक्त त्रिरूप हेतुकी मान्यताके अलावा ये मान्यताएँ भी नैयायिकोंके यहाँ रही हैं । षड्रूप हेतुका धर्मकीर्तिने[12] और सप्तरूपका वादिराजने[13] सूचन किया है । पर वे उनकी मान्यताएँ नहीं हैं । उन्होंने उनका केवल समालोचनार्थ उल्लेख किया है । फिर भी इतना तो तथ्य है कि ये भी किन्हीं तार्किकोंकी मान्यताएँ रही होंगी ।

जैन तार्किकोंका हेतु-प्रयोग

जैन तार्किकोंने केवल एक अविनाभावरूप हेतुको स्वीकार किया है । उनका मत है कि हेतुको साध्याविनाभावी होना चाहिए—उसे, जिसे सिद्ध करना है उसके अभावमें नहीं होना चाहिए, उसके

---

१. न्यायभा० १।१।३४, ३५ ।
२. न्यायवा० १।१।३४, ३५; पृ० ११८-१३४ ।
३. ४. प्रश० भा०, पृ० १०० ।
५. न्याय प्र०, पृ० १ ।
६. न्याय वि०, पृ० २२, २३; हेतु वि०, पृ० ५२ ।
७. न्याय वि० टी०, पृ० २२, २३ ।
८. सांख्यका० माठरवृ० का० ५ ।
९. न्यायवा० १।१।३४; पृ० ११९ । वही १।१।५; पृ० ४६ तथा ४९ ।
१०. न्यायवा० ता० टी० १।१।५; पृ० १७४ ।
११. न्यायकलिका पृ० १४ ।
१२. हेतुबिन्दु पृ० ६८ ।
१३. न्याय वि० वि० २।१४५; पृ० १७८-१८० ।

सद्भावमें ही होना चाहिए। अविनाभावीका अर्थ है—अनुमेयके बिना न होना, अनुमेयके होनेपर ही होना अन्यथानुपपन्नत्व और अन्यथानुपपत्ति उसीके पर्याय हैं। इसका तात्पर्य यह है कि ऊपर जो हेतुको द्विरूप, त्रिरूप, चतुःरूप, पञ्चरूप, षड्रूप और सप्तरूप विभिन्न दार्शनिकोंने बतलाया है उसे स्वीकार न कर जैन विचारक हेतुको मात्र एकरूप मानते हैं। वह एक रूप है अविनाभाव, जिसे अन्यथानुपन्नत्व और अन्यथानुपपत्ति भी कहा जाता है। समन्तभद्रने[1] आप्तमीमांसामें हेतुका लक्षण देते हुए उसमें एक खास विशेषण दिया है। वह विशेषण है 'अविरोध'। इस विशेषण द्वारा उन्होंने बतलाया है कि हेतु त्रिरूप या द्विरूप आदि हो, उसमें हमें आपत्ति नहीं है, किन्तु उसे साध्यका अविरोधी अर्थात् अविनाभावी होना नितान्त आवश्यक है। अकलङ्कदेवने[2] उनका आशय उद्घाटित करते हुए लिखा है कि 'सधर्मणैव साध्यस्य साधर्म्यात्' इस वाक्यके द्वारा समन्तभद्रस्वामीने हेतुको त्रिरूप सूचित किया और 'अविरोधतः' पदसे अन्यथानुपपत्तिको दिखलाकर केवल त्रिरूपको अहेतु बतलाया है। उदाहरणस्वरूप 'तत्पुत्रत्व' आदि असद् हेतुओंमें त्रिरूपता तो है, पर अन्यथानुपपत्ति नहीं है और इसलिए वे अनुमापक नहीं हैं। किन्तु जो त्रिरूपतासे रहित हैं तथा अन्यथानुपपत्तिसे सम्पन्न हैं वे हेतु अवश्य अनुमापक होते हैं। फलतः 'नित्यत्वैकान्तपक्षेऽपि विक्रिया नोपपद्यते' [आप्त मी० का० ३७] इत्यादि प्रतिपादनोंमें अन्यथानुपपत्तिका ही आश्रय लिया गया है। विद्यानन्दने[3] भी समन्तभद्रके उक्त 'अविरोधतः' पदको हेतुलक्षणप्रकाशक बतलाया है।

पात्रस्वामीका कोई तर्कग्रन्थ यद्यपि उपलब्ध नहीं होता, किन्तु अनन्तवीर्यके[4] उल्लेखानुसार उन्होंने 'त्रिलक्षणकदर्थन' नामका महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ रचा था, जिसमें त्रिरूप हेतुका निरसन किया गया होगा। तत्त्वसंग्रहकार शान्तरक्षितने[5] तो उनके नामसे उनकी अनेक कारिकाओंको अपने तत्त्वसंग्रहमें उद्धृत भी किया है जो सम्भवतः उक्त 'त्रिलक्षणकदर्थन' की होंगी। शान्तरक्षितके विस्तृत उद्धरणका कुछ उपयोगी अंश निम्न प्रकार है—

अन्यथेत्यादिना पात्रस्वामिमतमाशंकते--

अन्यथानुपपन्नत्वे ननु दृष्टा सुहेतुता। नासति त्र्यंशकस्यापि तस्मात्क्लीवास्त्रिलक्षणाः॥
अन्यथानुपपन्नत्वं यस्यासौ हेतुरिष्यते। एकलक्षणकः सोऽर्थश्चतुर्लक्षणको न वा॥
नान्यथानुपपन्नत्वं यत्र तत्र त्रयेण किम्। अन्यथानुपपन्नत्वं यत्र तत्र त्रयेण किम्॥
तेनैकलक्षणो हेतुः प्राधान्याद् गमकोऽस्तु नः। पक्षधर्मत्वादिभिस्त्वन्यैः किं व्यर्थैः परिकल्पितैः॥

इस उद्धरणमें तीसरे स्थानपर स्थित 'नान्यथानुपपन्नत्वं' कारिका जैन न्याय-ग्रन्थोंमें भी पात्रस्वामीके नामसे उद्धृत मिलती है। अतः तत्त्वसंग्रह और जैन ग्रन्थोंमें उपलब्ध यह कारिका पात्रस्वामीरचित है और उसमें त्रिरूप हेतुका निरास तथा एकरूप (अन्यथानुपपन्नत्व) हेतुका प्रतिपादन है।

---

१. आप्त मी० १०६।

२. अष्टश० अष्टस०, पृ० २८९; आप्तमी० का० १०६।

३. अष्टस०, पृ० २८९; आप्तमी० का० १०६।

४. सिद्धि वि० ६।२; पृ० ३७१-३७२।

५. तत्त्व सं० का० १३६४, १३६५, १३६९, १३७९; पृ० ४०५-४०७।

सिद्धसेनने[1] भी उपर्युक्त कारिकाकी शब्दावलीमें ही 'अन्यथानुपपन्नत्वं हेतोर्लक्षणमीरितम्' कहकर अपना हेतुलक्षण निरूपित किया है। 'ईरितम्' क्रियापद द्वारा तो उक्त हेतुलक्षणकी उन्होंने पूर्व प्रसिद्धि भी सूचित की है।

जैन न्यायको विकसित करने और उसे सर्वाङ्ग पूर्ण समृद्ध बनाने वाले भट्ट अकलङ्कदेवने[2] सूक्ष्म और विस्तृत विचारणा द्वारा उक्त हेतुलक्षणको बहुत सम्पुष्ट किया तथा न्यायविनिश्चयमें पात्रस्वामीकी उक्त प्रसिद्ध कारिकाको ग्रन्थकी ३२३ वीं कारिकाके रूपमें देकर उसे अपने ग्रन्थका भी अङ्ग बना लिया है।

उत्तरकालमें कुमारनन्दि,[3] वीरसेन,[4] विद्यानन्द,[5] माणिक्यनन्दि,[6] प्रभाचन्द्र,[7] अनन्तवीर्य,[8] वादिराज,[9] देवसूरि,[10] शान्तिसूरि,[11] हेमचन्द्र,[12] धर्मभूषण,[13] यशोविजय,[14] चारुकीर्ति[15] प्रभृति जैन तार्किकोंने उक्त हेतुलक्षणको ही अपने तर्कग्रन्थोंमें अनुसृत करके उसीका समर्थन किया और त्रैरूप्य, पांचरूप्य आदि हेतुलक्षणोंकी मीमांसा की है।[16]

इस प्रकार जैन चिन्तकोंने साध्याविनाभावी—अन्यथानुपपन्न हेतुके प्रयोगको ही अनुमेयका साधक माना है। त्रिरूप, पंचरूप आदि नहीं। उसके स्वीकारमें अव्यापकत्व, अतिव्यापकत्व आदि दोष आपन्न होते हैं।

ध्यातव्य है कि यह हेतु प्रयोग दो तरहसे किया जाता है[17]—(१) तथोपपत्ति रूपसे और (२) अन्य-

---

१. न्याया व० का० २१। २. न्याय वि० का० २।१५४, १५५।
३. प्रमाण प० पृ० ७२ में उद्धृत।
४. षट्ख० धवला ५।५।१, पृ० २८० तथा ५।५।४३, पृ० २४५।
५. प्रमाणप० ७२। त० श्लो० १।१३।१९३, पृ० २०५।
६. परी० मु० ३।१५।
७. प्रमेयक० मा० ३।१५, पृ० ३५४।
८. प्रमेयर० मा० ३।११।
९. न्या० वि० वि० २।१, पृ० २। प्र० नि०, पृ० ४२।
१०. प्रमा० न० त० ३।११ पृ० ५१७।
११. न्यायाव० वा० ३।४३, पृ० १०२।
१२. प्रमाणमी० २।१।१२।
१३. न्याय० दी०, पृ० ७६।
१४. जैन तर्क भा०, पृ० १२।
१५. प्रमेय रत्नालं० ३।१५, पृ० १०३।
१६. विशेषके लिए देखिए, लेखकका 'जैन तर्क शास्त्रमें अनुमान विचार : ऐतिहासिक एवं समीक्षात्मक अध्ययन' शोध प्रबन्ध, प्रकाशक, वीर सेवामन्दिर-ट्रस्ट, डुमरॉव कालौनी, अस्सी, वाराणसी-५ (उ० प्र०); १९६९।
१७. व्युत्पन्नप्रयोगस्तु तथोपपत्त्याऽन्यथानुपपत्त्यैव वा। अग्निमानयं देशस्तथैव धूमवत्त्वोपपत्तेर्धूमवत्त्वान्यथानुपपत्तेर्वा।
—परीक्षामुख ३।९५।
हेतुप्रयोगस्तथोपपत्त्यन्यथानुपपत्तिभ्यां द्विप्रकारः इति।
—प्रमाणनयतत्त्वा० ३।२९। न्यायाव० का० १७। प्र० मी० २।१।१४।

थानुपपत्ति रूपसे। तथोपपत्तिका[1] अर्थ है साध्यके होनेपर ही साधनका होना; जैसे अग्निके होनेपर ही धूम होता है। और अन्यथानुपपत्तिका[2] आशय है साध्यके अभावमें साधनका न होना; यथा अग्निके अभावमें धूम नहीं ही होता। यद्यपि हेतुके ये दोनों प्रयोग साधर्म्य और वैधर्म्य अथवा अन्वय और व्यतिरेकके तुल्य हैं। किन्तु उनमें अन्तर है। साधर्म्य और वैधर्म्य अथवा अन्वय और व्यतिरेकके साथ नियम (एवकार) नहीं रहता, अतः वे अनियत भी हो सकते हैं। पर तथोपपत्ति और अन्यथानुपपत्तिके साथ नियम (एवकार) होनेसे उनमें अनियमकी सम्भावना नहीं है—दोनों नियतरूप होते हैं। दूसरे ये दोनों ज्ञानात्मक हैं, जब कि साधर्म्य और वैधर्म्य अथवा अन्वय और व्यतिरेक ज्ञेयधर्मात्मक हैं। अतः जैन मनीषियोंने उन्हें स्वीकार न कर तथोपपत्ति और अन्यथानुपपत्तिको स्वीकार किया तथा इनमेंसे किसी एकका ही प्रयोग पर्याप्त माना है[3], दोनोंका नहीं।



१. प्र० न० त० ३।३०। त० श्लो० १।१३।१७५।

२. वही, ३।३१।

३. वही, ३।३३। न्यायाव० का० १७। प्र० मी० २।१।५,६।

जैन दर्शनमें नैतिक आदर्शके विभिन्न रूप

डॉ० कमलचन्द सौगानी

जैन दर्शन भारतका एक महत्त्वपूर्ण दर्शन है। इसने मनुष्यके सर्वतोमुखी कल्याणके लिए गहन चिंतन प्रस्तुत किया है। नैतिकताके बिना मनुष्य जीवन सामाजिक एवं आध्यात्मिक दृष्टिकोणसे निरर्थक होता है, और नैतिक जीवन बिना नैतिक आदर्शके संभव नहीं हो सकता। जैन आचार्योंने इस रहस्यको समझा और इस जगत्के बाह्य परिवर्तनशील रूपोंसे प्रभावित न होकर आत्माके अंतरंग छिपे हुए शक्ति-स्रोतोंका अनुभव कर नैतिक आदर्शके विभिन्न रूप हमारे सामने प्रस्तुत किये, यद्यपि ये सब आदर्श मूल रूपसे एक ही हैं केवल मात्र अभिव्यक्तिका अंतर है।

प्रथम, जैन आचार्योंने कर्मोंसे मुक्त होनेको उच्चतम आदर्श घोषित किया है। उनके अनुसार प्रत्येक मानवको कर्म-बंधनोंसे मुक्त होनेके लिए कठोर परिश्रम करना चाहिए, जिससे वह सांसारिक सुख-दुःखके चक्करसे मुक्त हो सके। सूत्रकृतांगके अनुसार मोक्ष अर्थात् आत्म स्वातन्त्र्य सर्वोत्तम वस्तु है जिस प्रकार चन्द्रमा तारोंमें सर्वोत्तम[1] है। आचारांगके कथनानुसार वह जीव जो आत्म समाहित है वह ही अपने कर्मोंको नष्ट कर सकता[2] है। आत्मसमाहित होना ही आत्म स्वातन्त्र्यकी प्राप्ति है। इस अवस्थामें सांसारिक जीव आत्मानुभवकी एक ऐसी ऊँचाईपर स्थित हो जाता है जहाँ वह सुख-दुःख, निन्दा-प्रशंसा, शत्रु-मित्र आदि द्वन्द्वोंसे प्रभावित नहीं होता।[3] यही वास्तविक आत्म स्वातंत्र्य है। इस अवस्थाको ही अर्हत् अवस्था कहते हैं। अर्हत् पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण सारी दिशाओंमें सत्यमें प्रतिष्ठित होते[4] हैं। लौकिक जन सुखकी तृष्णाके वशीभूत होकर दिनमें श्रम करते हैं और रातमें सो जाते हैं। परन्तु अर्हत् रात दिन प्रमाद रहित होकर विशुद्धिके मार्गमें जागते ही रहते[5] हैं। जिस प्रकार माता अपने बालकको हितकी शिक्षा देती है और चतुर वैद्य रोगियोंको निरोग बनानेका पूर्ण प्रयत्न करता है, उसी प्रकार अर्हत् सांसारिक रोगोंसे पीड़ित जन समूहको हितका उपदेश देते[6] हैं। इस तरहसे वे जन समुदायका नेतृत्व करते[7] हैं। उनका सारा जीवन लोक कल्याणके लिए ही होता है। अतः स्पष्ट है कि आत्म स्वातन्त्र्यकी प्राप्तिके पश्चात् ही पूर्ण लोक-कल्याण संभव होता है।

द्वितीय, आचार्य कुन्दकुन्दके अनुसार बहिरात्माको छोड़कर अन्तरात्माके द्वारा परमात्माकी प्राप्ति

---

१. सूत्रकृतांग १,११,२२।
२. आचारांग १,२,२।
३. प्रवचनसार ३-४१।
४. आचारांग १,४,२९।
५. स्वयंभूस्तोत्र ४८।
६. स्वयंभूस्तोत्र ११,३५।
७. स्वयंभूस्तोत्र ३५।

उच्च मतआदर्श[१] है। ये तीनों आत्माकी अवस्थाएँ हैं जहाँ जीव विभिन्न भूमिकाओंपर स्थित होता है। बहिरात्मा आत्म-ज्ञानसे पराङ्मुख होता है। और शरीरादिमें ही आत्म-तत्त्वका अध्यवसाय करता रहता है तथा कार्मण शरीर रूपी कांचलीसे ढके हुए ज्ञान रूपी शरीरको नहीं पहचानता[२]। इसका परिणाम यह होता है कि मित्रादिकोंके वियोगकी आशंका करता हुआ अपने मरणसे अत्यन्त डरता रहता[३] है। बहिरात्मा कठोर तप करके भी अपने लक्ष्यको प्राप्त नहीं कर सकता[४]। यद्यपि पाँचों इन्द्रियोंके विषयोंमें ऐसा कोई पदार्थ नहीं है जो आत्माका भला करनेवाला हो तथापि यह अज्ञानी बहिरात्मा अज्ञानके वशीभूत होकर इन्द्रियोंके विषयोंमें आसक्त रहता है और तप करके सुन्दर शरीर और उत्तमोत्तम स्वर्गके विषय भोगोंकी इच्छा करता[५] है। उपर्युक्त कारणोंसे बहिरात्मावस्था उच्चतम आदर्शकी प्राप्तिमें बाधक है अत: त्याज्य है। इसके विपरीत अन्तरात्मा आत्मा और शरीरमें विवेक बुद्धि उत्पन्न करता है। अत: शरीरके विनाशको तथा उसकी विभिन्न अवस्थाओंको आत्मासे भिन्न मानता है और मरणके अवसरपर एक वस्त्रको छोड़कर दूसरा वस्त्र ग्रहण करनेकी तरह निर्भय रहता[६] है। इसका परिणाम यह होता है कि वह आत्माको ही निवास स्थान मानता[७] है। अन्तरात्म वृत्तिके कारण ही आत्मा अपने आदर्शकी ओर बढ़नेमें समर्थ होता है। परमात्मा सम्पूर्ण दोषोंसे रहित और केवल-ज्ञानादि परम वैभवसे संयुक्त होता[८] है। वह जन्म, जरा, मरण रहित अनन्त ज्ञान, अनन्त सुख आदिका अनुभव करनेवाला तथा अविनाशी होता है। परमात्म अवस्था ही निर्वाण अवस्था है, जहाँ न दुख है न सुख, न पीड़ा न बाधा, न निद्रा न क्षुधा, न पुण्य न पाप[९]। वह तो अतीन्द्रिय, अनुपम, नित्य अचल और निरालम्ब अवस्था[१०] है।

तृतीय; अशुभ और शुभ उपयोगको छोड़कर शुद्धोपयोगकी प्राप्तिको उच्चतम आदर्श स्वीकार किया गया है। जब जीव नैतिक और आध्यात्मिक क्रियाओंमें रत रहता है तो शुभोपयोगी होता है किन्तु जब वह हिंसादि अशुभ कार्योंमें रत रहता है तो वह अशुभोपयोगी कहा जाता है। ये दोनों उपयोग कर्मके कारण जीवमें उत्पन्न होते हैं और ये जीवको अनन्त संसारमें परिभ्रमण कराते रहते हैं। अतः ये उपयोग मनुष्य जीवनके आदर्श नहीं बन सकते। जब तक जीव अपनी शक्तिको इन दोनों उपयोगोंमें लगाता रहता है तब तक वह अपने आदर्शसे कोसों दूर रहता है। परन्तु ज्योंही इन दोनों उपयोगोंको जीव त्यागता है त्योंही वह शुद्धोपयोग ग्रहण कर लेता है। दूसरे शब्दोंमें इस प्रकार कहा जा सकता है कि जैसे ही शुद्धोपयोगका अनुभव हुआ, वैसे ही जीवसे अशुभ और शुभ उपयोग विदा हो जाते हैं। वह शुद्धोपयोगी जीव एक ऐसे

---

१. मोक्ष पाहुड ४,७।
२. समाधिशतक ७१,६८।
३. वही ७६।
४. वही ४१।
५. वही ४२,५५।
६. वही ७७।
७. वही ७३।
८. नियमसार ७।
९. नियमसार १७९,१८०।
१०. नियमसार १७८।

सुखका अनुभव करता है जो आत्मोत्पन्न, विषयातीत, अनुपम, अनन्त और अविच्छिन्न[1] है। वह सारे लोकमें किसीके द्वारा न छिन्न होता है, न भिन्न, न दग्ध होता है और न निहत। उसने राग और द्वेष रूपी दोनों अंतोंको छोड़ दिया[2] है।

चतुर्थ, जैनाचार्योंने पंडित-पंडित-मरणको उच्चतम आदर्श घोषित किया है। इसका अभिप्राय यह है कि जीव पंडित-मरण, बाल-पंडित-मरण, बाल-मरण और बाल-बाल-मरणको पण्डित-पण्डित मरण रूपी आदर्शकी प्राप्तिमें बाधक समझें[3]। जो जीव मिथ्या दृष्टिवाले होते हैं उनका मरण बाल-बालमरण कहलाता है। ऐसे जीव पूर्णतया आत्मविमुख होते हैं। जिन जीवोंमें सम्यक् दृष्टि उत्पन्न हो चुकी है अर्थात् जो जीव आत्म-रुचिवाले हैं उनका मरण बाल-मरण कहलाता[4] है। जिन जीवोंने आत्मरुचिके साथ पञ्चाणुव्रतोंको धारण कर लिया है उनका मरण बाल-पण्डित-मरण कहलाता है। किन्तु जिन्होंने पञ्च महाव्रतोंको धारण किया है उनका मरण पण्डित-पण्डित-मरण अलौकिक है। इसे ही विदेह मुक्ति कहते हैं।

पंचम, परादृष्टिकी प्राप्तिको भी उच्चतम ध्येय स्वीकार किया गया है। आचार्य हरिभद्रने अपने ग्रन्थ योगदृष्टिसमुच्चयमें इसका सूक्ष्म विवेचन किया है। उनके अनुसार आठ दृष्टियाँ—मित्रा, तारा, दीप्रा, स्थिरा, कान्ता, प्रभा और परा—योग दृष्टियाँ कहलाती[5] हैं। हरिभद्रने इन दृष्टियोंकी तुलना क्रमशः तृणाग्नि, गोमयाग्नि, काष्ठाग्नि, दीपक, रत्न, तारा, सूर्य और चन्द्रमाके प्रकाशोंसे की है। मित्रा दृष्टिका प्रकाश न्यूनतम और परादृष्टिका प्रकाश उच्चतम होता[6] है। प्रथम चार दृष्टियोंको प्राप्त करनेके पश्चात् भी साधक अपनी प्रारम्भिक भूमिका पर लौट सकता है। अतः ये दृष्टियाँ अस्थिर हैं। किन्तु पाँचवीं स्थिरा दृष्टि प्राप्त करनेके पश्चात् साधकका अपनी आध्यात्मिक भूमिकासे नीचे गिरना असम्भव है। अतः अन्तिम चार दृष्टियाँ स्थिर हैं। और साधक इनमें शनैः शनैः उच्चतम ध्येय की ओर अग्रसर होता चला जाता है। मित्रा दृष्टिका प्रकाश अतिमन्द होता है और साधकको शुभ कार्य करते जरा भी खेद नहीं होता। तारा दृष्टिमें तत्त्व ज्ञानकी जिज्ञासा उत्पन्न होती है। बला दृष्टिमें तत्त्व श्रवणकी उत्कट इच्छा उत्पन्न होती है। दीप्रा दृष्टिमें यद्यपि सूक्ष्म बोधका अभाव होता है तथापि साधक प्राणार्पण करके भी सदाचरणकी रक्षा करता है। स्थिरा दृष्टिमें रत्नप्रभाके समान सूक्ष्म बोध उत्पन्न हो जाता है और साधक मिथ्यात्वकी ग्रन्थिका भेदन कर देता है। उसे बाहरी पदार्थ मायाके रूपमें दिखाई देते हैं। उसमें पूर्ण आत्मरुचि उत्पन्न हो जाती है। कान्ता दृष्टिमें साधक चित्तकी चंचलताको कम करता है जिससे मन अपने लक्ष्यकी ओर स्थिर किया जा सके। जैसे तारा एक-सा प्रकाश देता है वैसे ही इस दृष्टिवाले प्राणीका बोध एक-सा स्पष्ट एवं स्थिर होता[7] है। प्रभा दृष्टिमें ध्यान उच्चकोटिका होता जाता है। इसमें बोध सूर्यकी प्रभाके समान होता है जो लम्बे समय तक अति स्पष्ट रहता है। इसके पश्चात् परादृष्टिकी प्राप्ति होती है जो अन्तिम और उच्चतम है।

---

१. प्रवचनसार १३।
   आचारांग १, ५, ७३।
२. आचारांग १,३,४८।
३. भगवती आराधना २५।
४. वही ३०।
५. योगदृष्टि समुच्चय १३।
६. वही, १५।
७. जैन आचार पृ० ४६, द्वारा डॉ० मोहनलाल मेहता।

इसमें साधक पूर्ण कर्म दोषोंसे मुक्त हो जाता है और केवलज्ञानी संज्ञाको प्राप्त होता है। इसमें बोध चन्द्रमाके प्रकाशके समान शान्त और स्थिर होता है। यही मोक्ष है और परम आनन्दकी अवस्था है।

षष्ठ, नैतिक आदर्शकी अभिव्यक्ति पूर्ण अहिंसाकी प्राप्तिमें भी होती है। यहाँ यह कहना अप्रासंगिक न होगा कि जैन साधनामें अहिंसा प्रारम्भ और अन्त है। समन्तभद्रने इसे परब्रह्मकी संज्ञा दी है[1]। सूत्रकृतांगमें अहिंसाको निर्वाणका पर्यायवाची माना है[2]। आचारांगमें कहा गया है कि न जीवोंको हनन करना चाहिए, न उन्हें पीड़ित करना चाहिए, न उनपर बलपूर्वक शासन करना चाहिए, न उन्हें दास बनानेके लिए आधीन करना चाहिए। यही धर्म ध्रुव है, नित्य है और शाश्वत[3] है। अहिंसाकी दृष्टिमें प्राणी मात्र आत्मतुल्य है।····हे पुरुष, जिसे तू मारनेकी इच्छा करता है, विचार कर वह तेरे जैसा ही सुख-दुःखका अनुभव करनेवाला प्राणी है; जिसपर हुकूमत करनेकी इच्छा करता है, विचार कर वह तेरे जैसा ही प्राणी है, जिसे दुख देनेका विचार करता है, विचार कर वह तेरे जैसा ही प्राणी है, जिसे अपने वशमें करनेकी इच्छा करता है, विचार कर वह तेरे जैसा ही प्राणी है, जिसके प्राण लेनेकी इच्छा करता है, विचार कर वह तेरे जैसा ही प्राणी[4] है।····इस विवेचनको हम अहिंसाका व्यवहार दृष्टिकोणसे वर्णन कह सकते हैं। परन्तु निश्चय दृष्टिकोणसे आत्मामें किसी भी प्रकारकी कषाय उत्पन्न होना हिंसा है और उन कषायोंका न होना वास्तविक अहिंसा है[5]। पूर्ण अहिंसाकी प्राप्ति उच्चतम स्थिति है और साधककी अन्तिम अवस्था है।

सप्तम, ज्ञान चेतनाकी प्राप्ति साधकका अन्तिम ध्येय है। यह ज्ञान चेतना कर्म चेतना और कर्म फल चेतनासे अत्यन्त भिन्न[6] है। कर्म चेतनासे अभिप्राय है—शुभ, अशुभ भावोंमें चेतनाको स्थापित करना और कर्मफल चेतनासे अभिप्राय है—चेतनाको सुख, दुःख रूप स्वीकार करना। चेतनाको शुभ अशुभ रूप क्रियाओं तथा सुख दुःख रूप भावोंसे नितान्त भिन्न अनुभव करना ज्ञान चेतना[7] है। कर्म चेतना और कर्मफल चेतना ये दोनों ही अज्ञान अवस्थाके परिणाम हैं। अतः ज्ञान चेतनाकी प्राप्तिके लिए इन दोनोंसे विमुख होना अत्यन्त आवश्यक है। सर्व स्थावर जीव-समूह सुख दुख रूप कर्मफलका ही अनुभव करते हैं और दो इन्द्रियोंसे पंचेन्द्रियों तक जीव कार्य सहित कर्मफलको वेदते हैं। किन्तु जो जीव इन दोनों प्रकारके अनुभवोंसे अतीत हैं वे ही ज्ञान-चेतनाका अनुभव करते[8] हैं। यह ही अन्तिम अवस्था है, अन्तिम आदर्श है।

इस तरहसे हम देखते हैं कि आत्मस्वातन्त्र्य और परमात्माकी प्राप्ति, शुद्धोपयोग और अहिंसाकी उपलब्धि, पण्डित पण्डित-मरण, परादृष्टि और ज्ञान चेतनाकी अनुभूति—ये सब ही नैतिक आदर्श भिन्न-भिन्न प्रतीत होते हुए भी मूलभूत रूपसे एक ही हैं।

●

---

१. स्वयंभूस्तोत्र, ११७।
२. सूत्रकृतांग, १. ११. ११।
३. आचारांग, १. ४. १।
४. अहिंसा तत्त्व दर्शन द्वारा मुनि नथमल पृ० १८।
५. पुरुषार्थ सिद्ध्युपाय ४४।
६. पंचास्तिकाय ३८।
७. प्रवचनसार—१२४।
८. पंचास्तिकाय ३९।

ऐतरेय आरण्यकमें प्राण-महिमा

आचार्य विष्णुदत्त गर्ग

'ऐतरेयब्राह्मणेऽस्ति काण्डमारण्यकाभिधम्।
अरण्य एव पाठ्यत्वात् आरण्यकमितीर्यते ॥'

आरण्यक तथा उपनिषद् ब्राह्मणोंके परिशिष्ट ग्रन्थके समान हैं, जिनमें ब्राह्मण ग्रन्थोंके सामान्य प्रतिपाद्य विषयसे भिन्न विषयोंका प्रतिपादन सर्वत्र दृष्टि गोचर होता है। इनका मुख्य विषय यज्ञ नहीं, प्रत्युत यज्ञ-यागोंके भीतर विद्यमान आध्यात्मिक तथ्योंकी मीमांसा है। संहिताके मन्त्रोंमें जिस विद्याका सङ्केत मात्र उपलब्ध होता है, आरण्यकोंमें उन्हीं बीजोंका पल्लवन है। चारों वेदोंसे सम्बद्ध जैसे अलग अलग सबके ब्राह्मण ग्रन्थ हैं वैसे ही उनपर आश्रीयमाण आरण्यक भी। एतरेय आरण्यक ऋग्वेदके आरण्यकोंमें अन्यतर है, जो ऐतरेय ब्राह्मणका ही परिशिष्ट भाग है। इसमें ५ पाँच भाग है जो विषय-विभाग व सम्प्रदाय भेदसे पृथक्-पृथक् ग्रन्थके रूपमें माने जाते हैं। तथाहि—

'तत्र गवामयनमित्याख्यस्य संवत्सरात्मकसत्रस्य शेषो महाव्रतनामकं कर्म प्रथमारण्यकस्य विषयः। द्वितीयस्य तृतीयस्य चारण्यकस्य ज्ञानकाण्डं विषयः। चतुर्थारण्यकेऽरण्याध्ययनार्थाः 'विदामघवन्' महानाम्न्याख्यायमन्त्राः प्रोच्यन्ते। पञ्चमे त्वारण्यके महाव्रताख्यकर्मण एव प्रयोग उच्यते। तदेवमैतरेयारण्यके प्रथमं चतुर्थं पञ्चमं चारण्यकं कर्मपरम्, द्वितीयं तृतीयं च ज्ञानकाण्डमित्यवसीयते।'

वैसे तो इसमें वाणी एवं मनके स्वरूप व उसकी महिमा, स्वाध्याय धर्म व अध्यापन नियम, मानव जीवनके आदर्श उद्देश्य, राजनीति, यज्ञ, चन्द्रमा-आदित्य-प्रजापति-वरुण आदि देवोंका वर्णन, स्वर्गादिलोकों की कल्पना, अन्न, ऋतु, ओषधि, वनस्पतियोंका वर्णन, मनुष्य, पशु आदिके स्वभावका वर्णन, अध्यात्म-विद्या व ब्रह्मविद्याका निरूपण, जैसे विविध विषयोंका विवेचन किया गया है किन्तु द्वितीय प्रपाठकके प्रथम तीन अध्यायोंमें उक्थ या निष्केवल्य शस्त्र तथा प्राण विद्या और पुरुषका जो व्याख्यान है, वह सर्वथा स्पृहणीय है। इन सबमें प्राणविद्याका महत्त्व आरण्यकका विशिष्ट विषय प्रतीत होता है। अरण्यका शान्त वातावरण इस विद्याकी उपासनाके लिए नितान्त उपादेय है। इस प्रकार आरण्यक न केवल प्राण-विद्याको अपनी अनोखी सूझ बतलाते हैं, अपितु ऋग्वेदके मन्त्रों[1] को भी अपनी पुष्टिमें उद्धृत करते हैं, जिससे प्राण विद्याकी दीर्घ कालीन परम्पराका इतिहास मिलता है।

किम्बहुना—

'प्राणेनेमं लोकं सन्तनोति।····प्राणेनान्तरिक्षलोकं सन्तनोति।····प्राणेन अमुं लोकं सन्तनोति।' (ऐ० आ० १।४।३।) प्राणकी महिमासे ही लोकत्रयका विस्तार होता है। सब इन्द्रियोंमें प्राणोंकी

---

१. अपश्यं गोपामनिपद्यमानमा च परा च पथिभिश्चरन्तम्।
स सध्रीचीः स विषूचीर्वसान आ वरीवर्ति भुवनेष्वन्तः ॥ऋ० १।१६४।३१
अपाङ् प्राङेति स्वधया गृभीतोऽमर्त्यो मर्त्येना सयोनिः।
ता शश्वन्ता विषूचीना वियन्ता न्यन्यं चिक्युर्न नि चिक्युरन्यम् ॥ऋ० १।१६४।३८

श्रेष्ठता सुन्दर आख्यायिकाके द्वारा सिद्ध की गई है। 'यत्र प्राणं विना सर्वाणीन्द्रियाणि विद्यमानान्यपि अविद्यमानवद् भान्ति।' अस्तु--

'सोऽयमाकाशः प्राणेन बृहत्या विष्टब्धः, तद्यथाऽयमाकाशः प्राणेन बृहत्या विष्टब्धः। एवं सर्वाणि भूतानि आपिपीलिकाभ्यः प्राणेन बृहत्या विष्टब्धानीत्येवं विद्यात्।' (ऐ० आ० २।१।६।) अर्थात् प्राण इस विश्वका धारक है। प्राणकी ही शक्तिसे ही यह आकाश अपने स्थानपर स्थित है, उसी तरह सबसे विशालतम जीवसे लेकर पिपीलिका पर्यन्त समस्त जीव इस प्राणके द्वारा ही विधृत है। यदि प्राण न होता तो विश्वका महान् संस्थान, जो यह हमारे नेत्रोंके समक्ष है, वह कहीं भी नहीं रहता।

जीवात्माका प्राण वायुके साथ अन्वय व्यतिरेकि संबन्ध है। इसके विना प्राणिजगत्की सत्ता सुरक्षित नहीं, और इसीलिए अनुभव कोटिमें प्रतिष्ठित ऋषि उसके साथ अपना अटूट सम्बन्ध बताता हैं कि तुम हमारे हो और हम तुम्हारे हैं।[१] 'दिन ही प्राण है रात्रि अपान है' यह प्राण ही इन्द्रियोंका अधिष्ठातृदेव होता हुआ सबका रक्षक है। यह कभी अपने व्यापारसे उपरत नहीं होता, यह भुवनोंके बीच अतिशय करके वर्तमान है, तथा दृश्यमान सम्पूर्ण जगत् इसी प्राणसे आच्छादित है।[२] प्राण ही आयुका कारण है। कौषीतकि उपनिषद्में भी प्राणके आयुष्कारके होनेकी बात स्पष्ट कही गई है--'यावद्धि अस्मिन् शरीरे प्राणो वसति तावदायुः।' अतः प्राणके लिए गोपा शब्द युक्तियुक्त है।

प्राणकी महिमा जब समाजमें पर्याप्त प्रतिष्ठित हो गई तो वह उपास्य बन गया। जिसने उसकी उपासना की उसीने जीवनमें अमरत्व प्राप्त किया तथा जो प्राणकी उपासनासे वञ्चित रहा वह विनाशको प्राप्त हुआ भी यह प्राण मृत्यु व अमृत[३] भी कहलाया। इसके निकलनेसे देहके मरने (निष्क्रिय होने) में ही प्राणका मृत्युत्व व इसकी सत्ताके सद्भावमें देहकी अविनश्यत् दशा (सक्रियावस्था) में ही इसका अमृतत्व है।[४] प्राणको, अन्तरिक्ष तथा वायु दोनोंका स्रष्टा व पिता कहा गया है, अतः दोनों प्राणकी परिचर्या करते रहते हैं।[५] देहसे प्राणोंकी तुलना करते समय देहको मर्त्य व प्राण देवताको अमृत कहा है। एक पराश्रित है तो दूसरा स्वाश्रित—

'मर्त्यानि हीमानि शरीराणि, अमृतैषा देवता·······। निचिन्वन्ति (अन्नादिना वृद्धिमुपगच्छन्ति) हैवेमानि शरीराणि अमृतैषा देवता। (ऐ० आ० २।१।८।)

अद्भुत महिमाके ही कारण प्राणको सूर्य भी कहा गया है। 'प्राणो ह्येष य एष तपति।' (ऐ० आ० २।१।१) के व्याख्यानमें सायणाचार्यने कहा है कि—'हमारे दृश्यमान, (आकाश) मण्डलमें स्थित होता हुआ जो यह तपता है, वह प्राण ही है, आदित्य एवं प्राणमें भेद नहीं हैं। केवल स्थानगत भेद है। एक अध्यात्म संज्ञक है तो दूसरा अधिदैव।'[६] प्राणोंको आदित्यरूप देनेमें उपनिषद् भी प्रमाण है—'आदित्यो

---

१. तदप्येतदृषिणोक्तम्। त्वमस्माकं तव स्मसीति। ऐ० आ० २।१।४

२. अहरेव प्राणः रात्रिरपानः २।१।५। एष वै गोपाः, एष हीदं सर्वं गोपायति नह्येष कदाचन संविशति। एष ह्यन्तर्भुवनेषु आवरीवर्ति सर्वं हीदं प्राणेनावृतम् २।१।६।

३. स एष मृत्युञ्चैवामृतञ्च। (ऐ० आ० २।१।८)।

४. स्वनिर्गमनेन देहमरणात् प्राणस्य मृत्युत्वम्। स्वावस्थानेन देहमरणाभावात् अमृतत्वम्।

५. प्राणेन सृष्टावन्तरिक्षं च वायुश्च। एवमेतौ प्राणपितरं परिचरतोऽन्तरिक्षं च वायुश्च।—सायण।

६. य एष मण्डलस्थोऽस्माभिर्दृश्यमानस्तपति स एष प्राणो हि। न खल्वादित्यप्राणयोर्भेदोऽस्ति। अध्यात्ममधिदैवं च इत्येव स्थानभेदमात्रम्।—सायण।

ह वै बाह्यः प्राण उदत्येष ह्येनं चाक्षुषं प्राणमनुगृह्णानः ।' प्रश्नोपनिषद् ३।८ । परिणामतः आदित्य व प्राणकी एक रूपता भी है । एक ही पदार्थ, देह प्रवर्तन हेतु, प्राणरूपसे अन्तः अवस्थित है, तो वही चक्षुको अनुगृहीत करनेके लिए सूर्यरूपमें बहिः अवस्थित है ।[1] अतः प्राणकी भाँति सूर्यको भी 'सूर्य आत्मा जगत-स्तस्थुषश्च' (ऐ० आ० २।२।४) कहा है । सूर्यकी अर्चनाके कारण ही पुरुष शतायु है ।[2]

यह प्राण देवात्मक होता हुआ ऋषि रूप भी है, अतएव इसे कहीं विश्वामित्र तो कहीं वामदेव, कहीं भरद्वाज तथा कहीं वशिष्ठ नामोंसे भी अभिहित किया गया है, भले ही यह नाम रूढि न होकर अन्वर्थ हों । यथा—'प्रजा वै वाजः ता एष बिभर्ति एष उ एव बिभ्रद्वाजः 7 भरद्वाजः । तं देवा अब्रुवन्नयं वै नः सर्वेषां वशिष्ठ इति । तस्येदं विश्वं मित्रमासीत्....तं देवा अब्रुवन्नयं वै नः सर्वेषां वाम इति ।'.... (ऐ० आ० २।२।२.२) ।

हिरण्यदन्वेद नामक एक ऋषिने प्राणके देवात्मक स्वरूपको जाना था, तथा प्राणकी देवतारूपसे उपासना की थी । इस उपासनाका विपुल फल भी उसे प्राप्त हुआ । (ऐ० आ० १०३-१०४) एक ही प्राण कहीं सात, कहीं नव, कहीं दश तथा कहीं बारह प्रकारका बताया गया है ।[3] अस्तु—इस प्रकार इस आरण्यकमें प्राणकी अत्यन्त महिमा गाई गई है । इसके अनुसार जितनी ऋचायें हैं, जितने वेद हैं, जितने घोष हैं वे सब प्राणरूप हैं । प्राणको ही इन रूपोंमें समझना चाहिए तथा उसकी उपासना करनी चाहिए ।[4] किम्बहुना—

'प्राणो वंश इति विद्यात्' (ऐ० आ० ३।१।४) अर्थात् लोकमें जैसे वंश गृहका धारक होता है वैसे ही यह प्राण देह गृहका धारक है ।[5] इस प्राणकी इतनी अधिक महिमाका महत्त्व तो तब बढ़ जाता है जब हम उसी शास्त्रमें वर्णित इसकी इयत्ताको देखते हैं । 'एतावता वै प्राणाः संमिता.' (ऐ० आ० १।२।४) यह एक वाक्य खण्ड है जिसका विवेचन करते हुए सायण कहते हैं कि—

'प्राणवायवो हि देहस्यान्तर्हृदयादूर्ध्वं प्रादेशमात्रं संचरन्ति । मुखाद्बहिरपि सञ्चरन्तः प्रादेशमात्रेण संम्मिता भवन्ति ।'

इन शतशः उपलब्ध निर्वचनोंसे सिद्ध होता है कि प्राणके इन गुणोंको जानकर तत्तद्रूपोंसे उसकी उपासना करनी चाहिए, नानारूपोंसे भावनाको दृढ़कर उपासना करनेसे फल भी तदनुरूप उपासकको प्राप्त होंगे ।

देवासुर संग्राममें रिपुविजयकी कामनासे देवोंने ऐश्वर्यके प्रतीकके रूपमें इस प्राण देवताकी उपासना की थी, अतः विजयी हुए; और इसके विपरीत असुर उसे (प्राणदेवताको) असमृद्धिका हेतु समझ

---

१. एक एव पदार्थो देहं प्रवर्तयितुमन्तःस्थितो दृष्टिमनुगृहीतुं बहिः स्थित इति एतावदेव द्वयो-र्वैषम्यम् ।—सायण ।

२. य एष तपति । तं शतं वर्षाण्यभ्यार्चत्तस्माच्छतं वर्षाणि पुरुषायुषो भवन्ति—ऐ० आ० २।२।१ ।

३. सप्त वैशीषन् प्राणाः (ऐ० आ० १।५।२) नव प्राणा आत्मैव दशमः (ऐ० आ० १।३।७) नव वै प्राणाः (ऐ० आ० १।३।८) द्वादशविधा वा इमे प्राणाः (ऐ० आ० १।५।१) ।

४. सर्वा ऋचः सर्वे वेदाः सर्वे घोषा एकैव व्याहृतिः प्राण एव प्राणः ऋच इत्येव विद्यात्—(ऐ० आ० २।२।१०) ।

५. लोके यथा वंशो गृहस्य धारकस्तथैव प्राणोऽयं देहगृहस्य धारक इति भावः ।—सायण ।

बैठे अतः पराजित हुए।[1] इसीलिए महर्षि विश्वामित्रके सन्देह प्रकट करनेपर देवराज इन्द्रने भी कहा कि 'हे ऋषे ! मै प्राण हूँ, तुम प्राण हो, चराचर दृश्यमान जगत् सब प्राण हैं।'[2]

इस प्रकार जो प्राण शब्द वैदिक साहित्यमें श्वासके अर्थमें आरण्यकों एवं उपनिषदोंमें एकताके प्रतीकके रूपमें, शारीरकशास्त्रमें जो इन्द्रियों, शीर्षरंध्रोंके बोधकके रूपमें तथा वागिन्द्रिय व रसनेन्द्रियके रूपमें देखा गया, वह वस्तुतः अन्वर्थतया जीवनाधायक है।[3] परवर्ती साहित्यमें इसके चिन्तनका श्रेय केवल योग[4]शास्त्रको ही मिला, जिसमें यमादि अष्टाङ्गोंमें प्राणायामको विशेष स्थान दिया गया। 'प्राणवायोर्निरोधनमेव विशेषतो नियमेन प्राणायाम इत्युपचर्यते।' अर्थात् विशेषविधिसे प्राणवायुके निरोधको ही प्राणायाम कहते हैं। प्राण निरोध प्रक्रियासे जन्य अद्‌भुत चमत्कार आज भी लोगोंको आश्चर्यमें डाल देते हैं। अस्तु—विषयकी गम्भीरता स्पष्ट है। 'ह्रस्वस्यावर्णस्य प्रयोगे संवृतम्, प्रक्रियादशायां तु विवृतमेव' (सिद्धान्त कौमुदी) की भाँति प्रस्तुत विषयसे सम्बद्ध शब्दात्मक ज्ञान चाहे जितना प्रस्तुत कर दिया जाय किन्तु व्यावहारिक ज्ञान अत्यन्त जटिल एवं आचार्यपरम्परागत गम्य हैं। कुछ भी हो किन्तु फिर भी प्राण विषयक जिन विचारोंका अंकुर संहितादिमें मिलता है, उनका विशेष पल्लवन प्रस्तुत आरण्यक बहुत अच्छा बन पड़ा है। 'प्राणो वै युवा सुवासाः' 'प्राणो वै तनूनपात्' 'प्राणे वै सः' इत्यादि रूपमें वह (प्राणदेवता) स्वयं भोक्ता एवं भोग्यरूपमें सर्वतोभावेन प्रतिष्ठित है।



---

१. तं (प्राणदेवम्) भूतिरिति देवा उपासाञ्चक्रिरे ते बभूवुः।····अभूतिरिति असुरास्ते पराबभूवुः। (ऐ० आ० २।१।८)।

२. तम् (विश्वामित्रम्) इन्द्र उवाच। प्राणो वा अहमस्मि ऋषे, प्राणस्त्वम्, प्राणः सर्वाणि भूतानि···। (ऐ० आ० २।२।३।)

३. उद्यन्नु खलु आदित्यः सर्वाणि भूतानि प्रणयति तस्मादेनं प्राण इति आचक्षते। (ऐ० ब्रा० ५।३१।)

४. योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः।

प्राचीन भारतीय वाङ्मयमें प्रयोग

श्री श्रीरंजन सूरिदेव

एम० ए० (प्राकृत-जैनशास्त्र)

वैदिक ऋषियोंने मानव-जीवनकी साधनाके रूपमें ज्ञान, कर्म और उपासना—इन तीनोंको ही अत्यावश्यक है। इन तीनोंके समन्वित रूपकी वैदिक संज्ञा 'त्रयी विद्या' है। त्रयी विद्याकी समन्वित साधना ही वैदिक दृष्टिमें योग है। यही योग मानव-जीवनको परिपूर्ण बनाता है और उसे उसके अन्तिम लक्ष्यकी प्राप्ति करा सकता है। मृत्यु पर विजय प्राप्त करनेके लिए उक्त योगको छोड़ और कोई दूसरा रास्ता नहीं है—

तमेव विदित्वातिमृत्युमेति, नान्यः पन्था विद्यते अयनाय।

अज्ञेय तत्त्वको जानना आसान नहीं है। उसके लिए साधनाकी आवश्यकता है। जिसने सारे लोकोंको उत्पन्न किया और जो प्रत्येक मनुष्यके भीतर विद्यमान है, वह निश्चय ही ज्ञान और कर्मकी सम्मिलित शक्ति-साधनासे जाना जा सकता है। वेदमें ज्ञान और कर्मके योगको ही 'यज्ञ' कहा गया है। 'यज्ञ'का बड़ा व्यापक अर्थ है। सामान्यतः, ज्ञानपूर्वक अपने-अपने कर्मोंको योग्य रीतिसे करते जाना ही 'यज्ञ' माना गया है। वेदोत्तर कालमें यही 'यज्ञ' 'योग'में परिणत हो गया, ऐसा हमारा विश्वास है।

'यज्ञ' अपने-आपमें एक अद्भुत पद है और वैदिक ऋषियोंका विस्मयकारी आविष्कार भी। यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म कहकर यज्ञको सर्वोपरि स्थान दिया गया है। साथ ही, यज्ञको कर्मका प्रतीक भी माना गया है। वैदिक ऋषियों द्वारा यज्ञकी अनिवार्यता इसलिए बतलाई गई कि मनुष्य यज्ञ द्वारा निरन्तर क्रियाशील बना रहे। योग भी मनुष्यके क्रियाशील या गतिशील बने रहनेका शरीराध्यात्म साधन है। अष्टांग योगका पूर्वार्द्ध शारीरिक पक्षसे सम्बद्ध है, तो उत्तरार्द्ध मानसिक पक्ष से। इससे स्पष्ट है कि क्रिया और विचार या ज्ञानका सन्तुलन ही योग है। वेदोंमें साधना या योगके सन्दर्भमें इसी दृष्टिको पल्लवित किया गया है, 'योग' शब्दका स्पष्ट उल्लेख वहाँ प्रायः नहीं मिलता। वेद परवर्त्ती कालमें 'योग' शब्दको आध्यात्मिक-धार्मिक सन्दर्भोंसे जोड़ दिया गया।

वेदकी विभिन्न व्याख्याएँ हुई हैं एवं वेदाधृत अनेक ग्रन्थ भी निर्मित हुए हैं। इनमें रामायण, महाभारत, महापुराण, उपपुराण, स्मृतियों और धर्मशास्त्रों की गणना होती है। इन ग्रन्थोंमें योग की ही चर्चा नहीं है, अपितु योगियोंकी कथाएँ और योगाभ्यास-सम्बन्धी विस्तृत उपदेश भी हैं। पुराणोत्तर कालमें योगपर स्वतन्त्र ग्रन्थ भी लिखे गये और देव-देवियोंके वर्णनमें उन्हें 'योगिगम्य', 'योगविभूतियुक्त' आदि विशेषण दिये गये।

वैदिक धाराके अतिरिक्त बौद्ध एवं जैन धारामें योग और योगियोंकी चर्चा है। बौद्धधारामें तो योग-चर्चा भरपूर है, किन्तु, जैनधारामें अपेक्षाकृत कम है। बौद्धतन्त्रसे ही नाथों और सिद्धों तथा वहाँसे सन्तकवि दरियादास तक योगकी परम्परा चर्चित और अर्पित है। कहना न होगा कि भारतके कई सहस्र वर्षोंके इतिहासमें योग और उससे सम्बन्ध रखनेवाले शब्दोंका व्यवहार होता रहा है। आज भी योग, न केवल आस्तिक, अपितु नास्तिक परिवेशमें भी बड़ी अभिरुचिके साथ अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर स्वीकार किया जा रहा है—

वेदमें अघोर-मन्त्र और अघोर-मार्ग की चर्चा है। यजुर्वेदमें शिवोपासनापरक एक प्रसिद्ध मन्त्र इस प्रकार है—

अघोरेभ्योऽथ घोरेभ्यो घोराघोरतरेभ्यः।
सर्वेभ्यः सर्वशर्वेभ्यो नमस्ते अस्तु रुद्ररूपेभ्यः॥

योग-सम्बन्धी आदेशों और उपदेशों की प्रचुरता उपनिषद्-ग्रन्थोंमें मिलती है। श्वेताश्वतर उपनिषद्के दूसरे अध्यायमें 'योग' शब्दका सुस्पष्ट उल्लेख मिलता है—

त्रिरुन्नतं स्थाप्य समं शरीरं हृदीन्द्रियाणि मनसा सन्निवेश्य।
ब्रह्मोडुपेन प्रतरेत विद्वान् स्रोतांसि सर्वाणि भयावहानि॥
नीहारधूमार्कानिलानलानां खद्योतविद्युत्स्फटिकशशिनाम्।
एतानि रूपाणि पुरस्सराणि ब्रह्मण्यभिव्यक्तिकराणि योगे॥
पृथिव्यप्तेजोऽनिलखे समुत्थिते पञ्चात्मके योगगुणे प्रवृत्ते।
न तस्य रोगो न जरा न मृत्युः प्राप्तस्य योगाग्निमयं शरीरम्॥
लघुत्वमारोग्यमलोलुपत्वं वर्णप्रसादं स्वरसौष्ठवं च।
गन्धः शुभो मूत्रपुरीषमल्पं योगप्रवृत्तिं प्रथमां वदन्ति॥

अर्थात्, विद्वान् साधकको चाहिए कि वह अपने सिर, कण्ठ और वक्षको ऊँचा उठाये और शरीरको सीधा रखे। फिर, मनके द्वारा इन्द्रियोंका हृदयमें निरोधकर प्रणव-रूप नौकासे सब भयावने स्रोतोंसे पार हो जाय। योगीके समक्ष कुहरा, धुआँ, सूर्य, वायु, अग्नि, जुगनू, विद्युत्, स्फटिकमणि और चन्द्रमाके समान अनेक दृश्य दिखाई पड़ते हैं, यह सब योगकी सफलता के सूचक हैं। पंचमहाभूतोंका भले प्रकार उत्थान होने पर और पंचयोग-सम्बन्धी गुणोंके सिद्ध हो जानेपर योगसे तेजस्वी हुए देहको पा लेनेके बाद साधक रोग, जरा और मृत्युसे मुक्त हो जाता है। देहका हल्का होना, आरोग्य, भोग-निवृत्ति, वर्णकी उज्ज्वलता, स्वर-सौष्ठव, श्रेष्ठगन्ध, मलमूत्रकी कमी, यह सब योगकी प्रथम सिद्धि बताई गई है।

इस प्रकार, उपनिषत्कालमें योग और यौगिक क्रियाओंकी प्रत्यक्ष चर्चा मिलती है। ध्यानबिन्दूपनिषद्में ध्यानयोगकी महत्ता बतलाते हुए उपनिषत्कारने कहा है—

यदि शैलसमं पापं विस्तीर्णं बहुयोजनम्।
भिद्यते ध्यानयोगेन नान्यो भेदः कदाचन॥

अर्थात्, यदि पर्वतके समान अनेक योजन विस्तारवाले पाप भी हों, तो भी वे ध्यानयोगसे नष्ट हो जाते हैं। इसके अतिरिक्त, और किसी तरह उनका नाश नहीं होता।

शिवसंहिताके प्रथम पटलमें महादेवका वचन है--'सब शास्त्रोंको देख और बार-बार विचार करके यह निश्चित हुआ कि योगशास्त्र ही सबसे उत्तम है। योगशास्त्रके मान लेने पर सब कुछका ज्ञान हो जाता है। इसलिए, योगशास्त्रमें ही परिश्रम करना चाहिए, अन्य शास्त्रोंका कुछ प्रयोजन नहीं है। गोरक्षवचन-संग्रहमें तो योग-प्रक्रियाकी अनेक गूढ़ बातोंको विशदतापूर्वक बताया गया है। योगिनीहृदयमें कहा गया है कि जिस व्यक्तिकी कम-से-कम छह महीने साथ रहकर परीक्षा कर ली गई हो, उसे ही योगविद्या देनी चाहिए। योगविद्या जानने पर तत्काल आकाश-संचरणकी शक्ति प्राप्त हो जाती है।

विष्णुपुराणमें 'धारणा'के सम्बन्धमें बड़ी विशदतासे चर्चा की गई है। इस छठें अंग धारणासे ही

प्राचीन भारतीय वाङ्मयमें प्रयोग

श्री श्रीरंजन सूरिदेव

एम० ए० (प्राकृत-जैनशास्त्र)

वैदिक ऋषियोंने मानव-जीवनकी साधनाके रूपमें ज्ञान, कर्म और उपासना—इन तीनोंको ही अत्यावश्यक है। इन तीनोंके समन्वित रूपकी वैदिक संज्ञा 'त्रयी विद्या' है। त्रयी विद्याकी समन्वित साधना ही वैदिक दृष्टिमें योग है। यही योग मानव-जीवनको परिपूर्ण बनाता है और उसे उसके अन्तिम लक्ष्यकी प्राप्ति करा सकता है। मृत्यु पर विजय प्राप्त करनेके लिए उक्त योगको छोड़ और कोई दूसरा रास्ता नहीं है—

तमेव विदित्वातिमृत्युमेति, नान्यः पन्था विद्यते अयनाय।

अज्ञेय तत्त्वको जानना आसान नहीं है। उसके लिए साधनाकी आवश्यकता है। जिसने सारे लोकोंको उत्पन्न किया और जो प्रत्येक मनुष्यके भीतर विद्यमान है, वह निश्चय ही ज्ञान और कर्मकी सम्मिलित शक्ति-साधनासे जाना जा सकता है। वेदमें ज्ञान और कर्मके योगको ही 'यज्ञ' कहा गया है। 'यज्ञ'का बड़ा व्यापक अर्थ है। सामान्यतः, ज्ञानपूर्वक अपने-अपने कर्मोंको योग्य रीतिसे करते जाना ही 'यज्ञ' माना गया है। वेदोत्तर कालमें यही 'यज्ञ' 'योग'में परिणत हो गया, ऐसा हमारा विश्वास है।

'यज्ञ' अपने-आपमें एक अद्भुत पद है और वैदिक ऋषियोंका विस्मयकारी आविष्कार भी। यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म कहकर यज्ञको सर्वोपरि स्थान दिया गया है। साथ ही, यज्ञको कर्मका प्रतीक भी माना गया है। वैदिक ऋषियों द्वारा यज्ञकी अनिवार्यता इसलिए बतलाई गई कि मनुष्य यज्ञ द्वारा निरन्तर क्रियाशील बना रहे। योग भी मनुष्यके क्रियाशील या गतिशील बने रहनेका शरीराध्यात्म साधन है। अष्टांग योगका पूर्वार्द्ध शारीरिक पक्षसे सम्बद्ध है, तो उत्तरार्द्ध मानसिक पक्ष से। इससे स्पष्ट है कि क्रिया और विचार या ज्ञानका सन्तुलन ही योग है। वेदोंमें साधना या योगके सन्दर्भमें इसी दृष्टिको पल्लवित किया गया है, 'योग' शब्दका स्पष्ट उल्लेख वहाँ प्रायः नहीं मिलता। वेद परवर्त्ती कालमें 'योग' शब्दको आध्यात्मिक-धार्मिक सन्दर्भोंसे जोड़ दिया गया।

वेदकी विभिन्न व्याख्याएँ हुई हैं एवं वेदाधृत अनेक ग्रन्थ भी निर्मित हुए हैं। इनमें रामायण, महाभारत, महापुराण, उपपुराण, स्मृतियों और धर्मशास्त्रों की गणना होती है। इन ग्रन्थोंमें योग की ही चर्चा नहीं है, अपितु योगियोंकी कथाएँ और योगाभ्यास-सम्बन्धी विस्तृत उपदेश भी हैं। पुराणोत्तर कालमें योगपर स्वतन्त्र ग्रन्थ भी लिखे गये और देव-देवियोंके वर्णनमें उन्हें 'योगिगम्य', 'योगविभूतियुक्त' आदि विशेषण दिये गये।

वैदिक धाराके अतिरिक्त बौद्ध एवं जैन धारामें योग और योगियोंकी चर्चा है। बौद्धधारामें तो योग-चर्चा भरपूर है, किन्तु, जैनधारामें अपेक्षाकृत कम है। बौद्धतन्त्रसे ही नाथों और सिद्धों तथा वहाँसे सन्तकवि दरियादास तक योगकी परम्परा चर्चित और अर्पित है। कहना न होगा कि भारतके कई सहस्र वर्षोंके इतिहासमें योग और उससे सम्बन्ध रखनेवाले शब्दोंका व्यवहार होता रहा है। आज भी योग, न केवल आस्तिक, अपितु नास्तिक परिवेशमें भी बड़ी अभिरुचिके साथ अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर स्वीकार किया जा रहा है—

वेदमें अघोर-मन्त्र और अघोर-मार्ग की चर्चा है। यजुर्वेदमें शिवोपासनापरक एक प्रसिद्ध मन्त्र इस प्रकार है—

अघोरेभ्योऽथ घोरेभ्यो घोराघोरतरेभ्यः।
सर्वेभ्यः सर्वशर्वेभ्यो नमस्ते अस्तु रुद्ररूपेभ्यः॥

योग-सम्बन्धी आदेशों और उपदेशों की प्रचुरता उपनिषद्-ग्रन्थोंमें मिलती है। श्वेताश्वतर उपनिषद्के दूसरे अध्यायमें 'योग' शब्दका सुस्पष्ट उल्लेख मिलता है—

त्रिरुन्नतं स्थाप्य समं शरीरं हृदीन्द्रियाणि मनसा सन्निवेश्य।
ब्रह्मोडुपेन प्रतरेत विद्वान् स्रोतांसि सर्वाणि भयावहानि॥
नीहारधूमार्कानिलानलानां खद्योतविद्युत्स्फटिकशशिनाम्।
एतानि रूपाणि पुरस्सराणि ब्रह्मण्यभिव्यक्तिकराणि योगे॥
पृथिव्यप्तेजोऽनिलखे समुत्थिते पञ्चात्मके योगगुणे प्रवृत्ते।
न तस्य रोगो न जरा न मृत्युः प्राप्तस्य योगाग्निमयं शरीरम्॥
लघुत्वमारोग्यमलोलुपत्वं वर्णप्रसादं स्वरसौष्ठवं च।
गन्धः शुभो मूत्रपुरीषमल्पं योगप्रवृत्तिं प्रथमां वदन्ति॥

अर्थात्, विद्वान् साधकको चाहिए कि वह अपने सिर, कण्ठ और वक्षको ऊँचा उठाये और शरीरको सीधा रखे। फिर, मनके द्वारा इन्द्रियोंका हृदयमें निरोधकर प्रणव-रूप नौकासे सब भयावने स्रोतोंसे पार हो जाय। योगीके समक्ष कुहरा, धुआँ, सूर्य, वायु, अग्नि, जुगनू, विद्युत्, स्कटिकमणि और चन्द्रमाके समान अनेक दृश्य दिखाई पड़ते हैं, यह सब योगकी सफलता के सूचक हैं। पंचमहाभूतोंका भले प्रकार उत्थान होने पर और पंचयोग-सम्बन्धी गुणोंके सिद्ध हो जानेपर योगसे तेजस्वी हुए देहको पा लेनेके बाद साधक रोग, जरा और मृत्युसे मुक्त हो जाता है। देहका हल्का होना, आरोग्य, भोग-निवृत्ति, वर्णकी उज्ज्वलता, स्वर-सौष्ठव, श्रेष्ठगन्ध, मलमूत्रकी कमी, यह सब योगकी प्रथम सिद्धि बताई गई है।

इस प्रकार, उपनिषत्कालमें योग और यौगिक क्रियाओंकी प्रत्यक्ष चर्चा मिलती है। ध्यानबिन्दूपनिषद्में ध्यानयोगकी महत्ता बतलाते हुए उपनिषत्कारने कहा है—

यदि शैलसमं पापं विस्तीर्णं बहुयोजनम्।
भिद्यते ध्यानयोगेन नान्यो भेदः कदाचन॥

अर्थात्, यदि पर्वतके समान अनेक योजन विस्तारवाले पाप भी हों, तो भी वे ध्यानयोगसे नष्ट हो जाते हैं। इसके अतिरिक्त, और किसी तरह उनका नाश नहीं होता।

शिवसंहिताके प्रथम पटलमें महादेवका वचन है—'सब शास्त्रोंको देख और बार-बार विचार करके यह निश्चित हुआ कि योगशास्त्र ही सबसे उत्तम है। योगशास्त्रके मान लेने पर सब कुछका ज्ञान हो जाता है। इसलिए, योगशास्त्रमें ही परिश्रम करना चाहिए, अन्य शास्त्रोंका कुछ प्रयोजन नहीं है। गोरक्षवचन-संग्रहमें तो योग-प्रक्रियाकी अनेक गूढ़ बातोंको विशदतापूर्वक बताया गया है। योगिनीहृदयमें कहा गया है कि जिस व्यक्तिकी कम-से-कम छह महीने साथ रहकर परीक्षा कर ली गई हो, उसे ही योगविद्या देनी चाहिए। योगविद्या जानने पर तत्काल आकाश-संचरणकी शक्ति प्राप्त हो जाती है।

विष्णुपुराणमें 'धारणा'के सम्बन्धमें बड़ी विशदतासे चर्चा की गई है। इस छठें अंग धारणासे ही

सातवें अंग 'ध्यान'को साध्य बताया गया है। श्रीमद्भगवद्गीतामें योगकी त्रिविधतापूर्ण, बारीक एवं व्यावहारिक परिभाषाएँ उपलब्ध होती हैं। गीताके अट्ठारहों अध्याय अट्ठारह योगके रूपमें वर्णित हैं। इन अट्ठारहों योगोंमें भगवान् कृष्णने कर्मयोगकी श्रेष्ठता सिद्ध की है (२।३८-४१) और कर्मके प्रति कुशलताको ही 'योग' कहा है ('योगः कर्मसु कौशलम्')। कर्मका स्वभाव कषाय या बन्धन उत्पन्न करना है। कर्मके प्रति समत्वबुद्धि-रूप कौशलको अपनानेसे ही कर्मकी स्वाभाविक बन्धनशक्ति नष्ट होती है। कर्मके बन्धनसे मुक्त व्यक्ति ही ब्रह्म और आत्माके एकत्व-दर्शन-रूप 'योग'के प्रतिलाभमें समर्थ होता है।

गीताके छठें अध्यायमें भगवान् कृष्णने कहा है कि कर्मफलकी आशा न करके जो अपने नित्यकर्तृक कर्मका सम्पादन करते हैं, वही योगी और संन्यासी है। क्योंकि, कर्मफलका त्याग करनेवाला ही कर्मयोगी होता है। ध्यानयोगके अन्तरंग साधनमें अशक्त व्यक्तिके लिए निष्कामभावसे कर्मका अनुष्ठान ही बहिरंग साधन है। जो व्यक्ति बहिरंग साधनमें समर्थ होता है, वही धीरे-धीरे अन्तरंग साधन द्वारा योगारूढ होनेकी शक्ति प्राप्त कर लेता है। शुद्ध मनवाला व्यक्ति अपना उद्धार आप कर लेता है और विषयासक्त मनवाले बन्धनमें पड़ जाते हैं। जितेन्द्रिय, प्रशान्त और योगारूढ व्यक्तिको ही अभिज्ञान होता है और आत्मज्ञान-सम्पन्न ही जीवन्मुक्त होते हैं और जो जीवन्मुक्त हैं, वे शीत-उष्ण, सुख-दुःख तथा मानापमानकी स्थितिमें भी कभी विचलित नहीं होते। उनके लिए मिट्टी, पत्थर, सोना सब बराबर होते हैं : समत्वं योग उच्यते।

आसन और ध्यानकी महत्ता प्रतिपादित करते हुए गीता कहती है कि योगी निर्जन एकाकी स्थानमें निराकांक्ष और परिग्रहशून्य होकर देह और मनमें संयमपूर्वक अन्तःकरणको समाहित करे। स्वभावतः या संस्कारतः शुद्ध स्थानमें कुश, वस्त्र या मृगचर्म द्वारा रचित न अधिक ऊँचे, न अधिक नीचे आसनपर आत्माको स्थिर करना चाहिए। योगी अधिक भोजन और अधिक निद्रासे बचे, साथ ही अनाहार और अनिद्राको वर्जनीय समझे। गीताका उपदेश है कि योग उसीके लिए सुखप्रद हो सकता है, जिसके आहार-विहार, निद्रा-जागरण और सभी प्रकारकी कर्मचेष्टाएँ नियमित हैं। योगी तभी योगसिद्ध हो सकता है, जब वह चित्तनिरोधपूर्वक सभी कामनाओंसे मुक्त एवं बाह्य चिन्तासे दूर रहकर अपनी आत्मामें अवस्थित होता है। योगीका चित्त निर्वात वातावरणमें स्थित निष्कम्प दीपशिखाकी भाँति होता है। चैतन्य ज्योतिस्वरूप आत्मज्ञान प्राप्त कर लेनेपर योगीके लिए अन्य कोई भी सांसारिक वस्तु अप्राप्य नहीं प्रतीत होती। सम्पूर्ण दुःखोंसे आत्यन्तिक निवृत्ति-रूप आत्मावस्थिति ही 'समाधि' है, जिसे गीताने 'ब्राह्मी स्थिति' कहा है।

इस प्रकार, भारतीय प्राचीन ग्रन्थोंमें योगकी चर्चा बड़ी विशदता और प्रचुरतासे हुई है। किन्तु, योगकी व्यावहारिक व्याख्याके लिए श्रीमद्भगवद्गीता और पुराण-परवर्त्ती कालमें योगकी शास्त्रीय व्याख्याके लिए योगसूत्र ('पातंजलदर्शन')—ये दोनों अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं। प्रसिद्ध भारतीय छह दर्शनोंमें 'योगदर्शन'का अपना महत्त्व है। अगर हम यह कहें कि योगदर्शनका ज्ञान होनेपर ही अन्य सारे दर्शन हृदयंगम हो सकते हैं, तो अत्युक्ति नहीं होगी।

वैदिकोत्तर दर्शनोंमें प्रमुख बौद्धदर्शन और जैनदर्शनमें योगकी पुंखानुपुंख चर्चा हुई है। सम्पूर्ण बौद्ध-दर्शनको 'योगदर्शन'का ही पर्याय कहा जाना चाहिए। हठयोग तथा राजयोगमें षडंग या अष्टांग दोनों ही प्रख्यात हैं। किन्तु, बौद्धोंका षडंगयोग इससे विलक्षण है। प्रसिद्ध तन्त्रवेत्ता महामहोपाध्याय पं० गोपीनाथ कविराजने आचार्य नरेन्द्रदेवके बौद्ध-धर्म-दर्शनकी भूमिकामें लिखा है कि बौद्धोंके षडंग योगका प्राचीन विवरण गुह्यसमाजमें तथा मंजुश्रीकृत कालचक्रोत्तरमें पाया जाता है। परवर्त्ती साहित्यमें, विशेषतः नडपादकी सेकोद्देशटीकामें तथा मर्मकलिकातन्त्रमें इसका वर्णन है। इसे 'बौद्धयोग'के नामसे भी अभि-

हित किया जाता है। प्रत्याहार, ध्यान, प्राणायाम, धारणा, अनुस्मृति और समाधि ये षडंग योग हैं। समाजोत्तरतन्त्रके अनुसार, षडंगयोगसे ही बुद्धत्व सम्यक् सम्बोधि प्राप्त हो सकती है।

हीनयानियोंकी दृष्टिसे, योग द्वारा ही भवकी प्रवृत्तिका निरोध और निर्वाणमें प्रवेश होता है। महायानियोंके अनुसार, योगी समाधिके द्वारा तथता या समताका प्रत्यक्षीकरण करते हैं। कुशल या शुभमें चित्तकी एकाग्रता ही समाधि है। योगमें समताकी भावनाका पक्ष लेते हुए भगवान् बुद्धने कहा है : 'योगी-की प्रज्ञा इष्ट-अनिष्टमें तादिभाव, यानी समभावका आवाहन करती है। बौद्धोंके अनुसार, 'योगानुयोग' ही कर्म है और 'कर्मस्थान' ही योगका साधन है। यही 'कर्मस्थान' 'समाधि'की परिणति की ओर ले जाता है। भगवान् बुद्धने आनन्दसे कहा था कि वे स्वयं कल्याणमित्र हैं; क्योंकि उनकी शरणमें जाकर ही जीव जन्मके बन्धनसे मुक्त होते हैं : ममं हि आनन्द कल्याणमित्तमागम्म जातिधम्मा सत्ता जातिया परि-मुच्चन्ति। (संयुत्तनिकाय, १।८८)।

इस प्रकार, श्रीमद्भगवद्गीता, योगसूत्र तथा बौद्धदर्शनकी योगसम्बन्धी धारणाएँ और व्याख्याएँ प्रायः समानान्तर रूपसे चलती हैं। किन्तु, जैनदार्शनिकोंने योगके मूलाधारके अन्तरंग साम्यको स्वीकारते हुए भी अपनी यौगिक व्याख्या अपने ढंगसे की है। इस प्रसंगमें मुनि मंगलविजयजी महाराजका योगप्रदीप ग्रन्थ योगकी व्यापक विवेचनाकी दृष्टिसे पर्याप्त महत्त्व रखता है। मंगलविजयजी भी पातंजल योगदर्शनसे अतिशय प्रभावित हैं। फिर भी, उन्होंने योगकी भव्यशैलीमें वर्णना की है। मंगलविजयजीने पतंजलि-निर्दिष्ट योगके अष्टांगकी स्वीकृति दी है, किन्तु उन्होंने 'चित्तवृत्तिनिरोध'को योग न मानकर 'धर्मव्यापाररूपता'को योग कहा है। 'धर्मव्यापार'की व्याख्या करते हुए उन्होंने कहा है कि 'समताकी रक्षा' ही धर्मका व्यापार है।

जैनसाहित्यके सूत्रकृतांग जैसे प्राचीन सूत्रमें 'योग' शब्दका व्यवहार हुआ है। जैनतत्त्वविद्यामें मन, वाणी और शरीरकी प्रवृत्तिको भी योग कहा गया है। किन्तु, साधनाके अर्थमें 'संवर' या 'प्रतिमा'का प्रयोग अधिक प्रचलित है। आचार्य हरिभद्रने उन सारे धार्मिक व्यापारोंको योग कहा है, जो व्यक्तिको मुक्तिसे जोड़ते हैं : मोक्खेणं जोयणाओ जोगो सव्वो वि धम्मवावारो। आधुनिक कालके प्रसिद्ध जैनाचार्य आचार्यश्री तुलसीने अपने 'मनोनुशासनम्' ग्रन्थमें 'योग'को 'मनका अनुशासक' बतलाया है।

अन्तमें हम योगदर्शन पुस्तकके लेखक तथा प्रसिद्ध योगवेत्ता डॉ० सम्पूर्णानन्दके शब्दोंमें कहें कि भारतके कई सहस्र वर्षोंके इतिहासमें योग और उससे सम्बन्ध रखनेवाले शब्दोंका व्यवहार धार्मिक और आध्यात्मिक वाङ्मयमें, जो भारतीय आत्माकी अभिव्यक्तिका सबसे विशद और व्यापक माध्यम है, सर्वत्र व्याप्त हो गया है। अन्ततः कहना होगा कि जहाँ-जहाँ भारतीय प्रभाव पहुँचा है, वहाँ-वहाँ योगाचार भी पहुँच गया है। क्योंकि, भारतीयता और योग दोनोमें अविनाभावि सम्बन्ध है। इसलिए, भारतीय योगकी किरणें दिग्दिगन्तमें प्रसार पा रही हैं। इस सन्दर्भमें यह कहना अनुचित न होगा कि ज्यों-ज्यों विश्वमें भौतिकताका साम्राज्य विस्तार पाता जायगा, त्यों-त्यों भारतीय ऋषि-मुनियों द्वारा आविष्कृत योग-संजीवनी-की माँग नित्य-निरन्तर बढ़ती ही चली जायगी।

●

श्रीवल्लभाचार्यजी महाप्रभुजीका जीवन वृत्त

अध्या० केशवराम का० शास्त्री, 'विद्यावाचस्पति'

देशकी धार्मिक-सामाजिक परिस्थिति

श्री शंकराचार्यजीके समयमें बौद्धसंप्रदायके अनुयायी लोग प्राय: करके सनातन वैदिक परंपराके अन्तर्गत आ चुके थे। बौद्ध संप्रदायका वर्चस् करीष नष्ट हो चुका था। जैन संप्रदाय भी गुजरात मारवाड़ एवं दक्षिणके भूभागोंमें सीमित था। श्री शंकराचार्यजीके प्रस्थापित किये हुए ज्ञानमार्गका और पाञ्चरात्र भागवत संप्रदायके भक्तिमार्गके प्राचीन प्रवाहका अनुसरण काफी स्वरूपमें होता चला था। शाक्त संप्रदाय भी अन्यान्य शक्तिपीठोंमें चालू रहा था। भागवत संप्रदायकी शाखाओंका विकास दक्षिणमें ठीक-ठीक होता रहा था, उत्तरपूर्व-पश्चिममें भी उसकी प्रणाली अविरत चालू थी। सूर्यके देवालयोंका भी सर्जन होता ही रहा था। ईसाकी ग्यारहवीं शतीकी दूसरी पचीसीके आरम्भमें ही जब कि महमूद गज़नवी सौराष्ट्रमें सोमनाथ तक पहुँचा तबसे मुस्लिम विदेशियोंकी भारतवर्षपर शासन करनेकी भूख प्रदीप्त होने लगी। इस पूर्व सिन्धमें अरबोंने अपनी सत्ता जमानेका कुछ प्रयत्न आठवीं शतीसे ही शुरू कर दिया था, एवं वहाँ कुछ सफलता भी मिली थी, किन्तु वह वहाँ ही सीमित थी। गज़नवीके अफगान पठानोंके आक्रमणोंकी परंपरा चली, और हम देखते हैं कि गोरीवंशके सुल्तानोंने दिल्हीपत्ति पृथ्वीराज चौहाणको परास्त करके भारतवर्षमें साम्राज्यकी स्थापना करनेका तेरहवीं शतीमें आरम्भ किया। अब आइस्तां-आइस्तां मुस्लिम सत्वका प्राबल्य बढ़ता रहा, वह न केवल सत्ताप्राप्तिमें सीमित रहा, बलात्कारसे धर्मपरिवर्तनमें भी आगे बढ़ा। आपस-आपसके विद्वेषमें राजपूत सत्ताएँ भी उत्तरोत्तर निर्वल बनती जा रही और अनेक स्थानोंमें देवालयोंके स्थानोंमें मस्जिदें बनती जा रही। भारतीय-प्रजाकी विदेशीय पराधीनता रूढ़मूल होने लगी। उस समय, खास करके दक्षिणके देशोंमें विष्णुस्वामी, श्रीरामानुजाचार्यजी, श्रीनिम्बार्क एवं श्रीमध्वाचार्यजीने अपनी-अपनी प्रणालियोंका विकास करके लोगोंके धर्मका एवं समाजका रक्षण करनेका प्रयत्न किया। विद्यापति, कबीर, नरसिंह मेहता जैसे सन्त और भक्तोंने अपने-अपने प्रदेशमें लोगोंके आत्मविश्वासको दृढ़ करनेका प्रबल प्रयत्न किया। उनसे पूर्व ही विदर्भमें महानुभाव संप्रदायके भक्तोंने कृष्णभक्तिका प्रवाह अच्छी तरहसे बढ़ाया था और महाराष्ट्रमें ज्ञानीभक्त ज्ञानेश्वर-ज्ञानदेव और नामदेवने श्रीविठोवा श्रीकृष्णकी भक्तिको अच्छा बना दिया था। राजकीय दृष्टिमें विचारी बनती जाती प्रजाको इससे अपनी भारतीय संस्कृति, सभ्यता, धर्मप्रणाली आदिका रक्षण करनेका बल मिला—हम जब ईसाकी पन्दरहवीं शतीमें आते हैं तब ई० सं० १४१२ में दिल्हीके तख़्त पर सैयद वंशका वर्चस् और ई० सं० १४५० में लोदीवंशका वर्चस् देखते हैं। दक्षिणमें ई० सं० १३४७ में हसन गंगू ब्राह्मणी नामक सूपेने गुलबर्गमें मुस्लिम राज्यकी स्थापना कर दी थी, किन्तु बुक्क और हरिहर नामक दो कर्णाटकी राजपूत भाइयोंने विजयनगरकी नई वसाहत करके एक प्रबल हिन्दू राज्यकी वहाँ जड़ डाल दी, इस कारण दक्षिणमें मुस्लिम वर्चस् कामयाव इतना नहीं हुआ, जितना उत्तरमें हुआ। मालवेमें ई० सं० १४०१ में मुस्लिम स्वतन्त्र राज्य अतित्वमें आया, तो अयोध्याके निकट गङ्गाके तट प्रदेशमें जौनपुरमें भी ऐसा मुस्लिम एक स्वतन्त्र राज्य अस्तित्वमें आ गया। गुजरातमें ई० सं० १३०० करीव दिल्हीकी सत्ता आ चुकी थी और ई० सं० १३५९ से वहाँ

मुस्लिम स्वतन्त्र सल्तनतकी जड़ मजबूत हो गई थी। श्रीवल्लभाचार्यजीके शब्दोंमें कहा जाय तो 'म्लेच्छाक्रान्तेषु देशेषु पापैकनिलयेषु'—ऐसी परिस्थितिमें लोगोंकी क्या परिस्थिति होगी उसका पता चलता है। अस्वतन्त्र होती जाती प्रजाको आत्मविश्वास देनेवाला कोई भी प्रयत्न हो तो वह उस समय केवल भक्तिका ही था। श्रीवल्लभाचार्यजी एवं उनके उत्तर समकालीन श्रीगौरांग चैतन्य महाप्रभुने उत्तर और पूर्वमें भक्तिमार्गका प्रबल प्रसार सोलहवीं शतीमें किया और भारतीय प्रजामें आत्मविश्वाससे जीनेका बल दिया।

श्रीवल्लभाचार्यजीका प्रादुर्भाव

ईसाकी प्रथम शतीसे भारतवर्षके प्रदेशोंमें आन्ध्र साम्राज्यकी जहोजलाली थी और वहां भारतीय संस्कृति एवं सभ्यताका विशिष्ट प्रवाह बढ़ता ही रहा था और उसका असर नीचेके अन्य द्रविड़ प्रदेशोंमें भी अच्छी तरहसे चालू था। विद्वत्ताके विषयमें समग्र द्रविड़ प्रदेशोंकी करीब अग्रिमता ही रही थी। भारतवर्षने जो अनेक महान् आचार्योंका प्रदान किया, प्रायः वे सभी द्रविड़ भूभागके ही थे। महान् श्रीशंकराचार्य, श्रीविष्णुस्वामी, श्रीनिम्बार्क, श्रीमध्व, और वेदभाष्यकार सायणाचार्य, सर्वदर्शनसंग्रहकार माधवाचार्य एवं श्रीविद्यारण्य स्वामी आदि वहांके ही रत्न थे।

द्रविड़देशान्तर्गत आन्ध्रप्रदेशके कांकर तहसीलमें कांकर पाढू गाँव भी परम्परासे श्रीविष्णुस्वामीके संप्रदायका स्थान था और वहाँ श्रीवल्लभाचार्यजीके पूर्वजोंका निवास था। इस संप्रदायके आराम्भकालमें इष्ट श्रीनृसिंह थे, पीछेसे श्रीगोपाल कृष्णकी भक्तिकी प्रचुरता होती चली थी। श्रीवल्लभाचार्यजीके पूर्वजोंमें यज्ञयागादिक वैदिक धर्मके आदरवाली भक्तिका प्राचुर्य था। इनके पूर्वजोंमें श्रीयज्ञनारायण भट्टसे कुछ माहिती मिलती हैं। वे आन्ध्र तैलंग ब्राह्मण थे। उनका वेद कृष्ण यजुर्वेद (तैत्तिरीय संहिता), शाखा तैत्तिरीय, गोत्र भरद्वाज, सूत्र आपस्तम्ब, देवी रेणुका, कुल वेल्लनाडु, और आख्या खम्भपट्टीवारू थी। उनके घरमें वैदिक परिपाटीका अग्निहोत्र चालू था। सोमयाग जैसे यज्ञ भी करते रहते थे। यज्ञनारायण भट्टजीने ३२, इनके पुत्र गङ्गाधर भट्टने २७, इनके गणपति भट्टने ३०, इनके वल्लभ भट्टने ५, और इनके पुत्र लक्ष्मण भट्टने ५, इस प्रकार पाँच पूर्वजोंने मिलकर १०० सोमयाग किये थे, जिसका ही फल देवांश श्रीवल्लभाचार्यजी माने गये हैं, लक्ष्मण भट्टजीके हृदयमें किस प्रकारकी श्रद्धा होगी वह तो कैसे कहा जाय, किन्तु अन्तिम यज्ञ पूर्ण करके प्रयागमें त्रिवेणीस्नान करनेकी और प्रयाग एवं काशीमें ब्रह्मभोजन करानेकी उनकी महेच्छा थी। लक्ष्मण भट्टजीका लग्न उस समयके सुप्रसिद्ध विजयनगर साम्राज्यके पुरोहितकी बहिन एल्लम्मागारूके साथ हुआ था। यज्ञपूर्णाहुतिके बाद प्रयाग-काशीका धर्मकार्य पूर्ण करनेके बाद अनुकूलता हो तो काशीमें ही शेष जीवन बितानेकी भावना थी। उस समय स्वजातीय अनेक तैलङ्ग ब्राह्मणोंका निवास काशीमें था भी, अनेक संप्रदायोंके अनुयायियोंकी भी वहाँ अच्छी तादात थी, विष्णुस्वामी-संप्रदायके अनुयायी भी वहाँ थे, इस कारणसे भी काशी निवास करनेमें बल मिला था। ई० सं० १४७० के वर्षमें लक्ष्मण भट्टजी अपने वतन कांकरपाढूमें अपने बड़े लड़केको अपने कुलके श्रीरामचंद्रजीके मन्दिरकी सेवाका कार्य सौंपकर काशी बाजू सकुटुम्ब चल पड़े, अन्य रिश्तेदार लोग कांकरपाढूमें थे, इस कारण लड़केको एकाकीपन लगे ऐसा नहीं था। घरसे निकलकर (वि० सं० १५२७) के द्वितीय आषाढ़की अमावास्या एवं गुरुवारके दिन भट्टजी प्रयागमें आ पहुँचे और सूर्यग्रहणके योग पर त्रिवेणीस्नान करनेका लाभ उठाया; करजकी परवाह किये बिना ब्रह्मभोजन भी अच्छी तरहसे करवाया, काशीमें आनेके बाद वहाँ भी ब्रह्मभोजन करवाया और वहाँ ही ठहर गये, काशीमें दक्षिणके एक विद्वान् माधवेन्द्र यतिकर थे। उनके संपर्कमें लक्ष्मण भट्टजी आये। माधवेन्द्रयति सुप्रसिद्ध श्रीगौरांग चैतन्य महाप्रभुके बड़े भाई नित्यानन्दजीके गुरुभाई थे। काशीमें

यतिजीकी पाठशाला थी और कहा जाता है कि लक्ष्मणभट्टजीने वहाँ ज्योतिष शास्त्रका अभ्यास किया था। काशीमें स्वेष्ट अनुकूल वातावरणमें लक्ष्मणभट्टजी यागादिकके उत्तर कार्योंसे निवृत्त होकर आनन्दसे स्वाध्याय और श्रीगोपालकृष्णको विष्णुस्वामी संप्रदायकी प्रणालीसे भक्ति करनेमें अपने दिन व्यतीत कर रहे थे, इतनेमें अचानक एक आपत्ति आई।

काशी जौनपुरके मुस्लिम राज्यकी सत्तामें था। दिल्लीके बहलोल लोदी (ई० सं० १४५०-८९) और जौनपुरके सुल्तान हुसेनके बीच संघर्ष चालू था। बेशक, आरम्भमें उसका असर पूर्वमें काशी तक नहीं पहुँचा था, और काशीवासी लोग निश्चिन्त रहते थे। आहिस्ता आहिस्ता जौनपुरका प्रदेश दबाते-दबाते दिल्हीके सैन्य पूर्वमें आगे बढ़ते जाते थे। ऐसा एक हल्ला काशीके प्रान्तप्रदेशमें होनेका भय खड़ा हुआ और काशीके लोगोंमें नास भाग शुरू हो गई। एल्लमागारूजी सगर्भा थी और काशी छोड़ना अनिवार्य बन गया था। लक्ष्मण भट्ट अपने दूसरे रिश्तेदारोंके साथ, निकल पड़े, प्रवास लम्बा था। कितने दिनोंके बाद वे अपने वतनके सीमाप्रान्त आ पहुँचे। जब महानदीके तीर प्रान्तके चम्पारण्य नामक अरण्यमें आये तब ई० सं० १४७२ (वि० सं० १५२९)के व्रज वैशाख वदि ११ एवं शनिवारके दिन प्रवासके असामान्य कष्टके कारण श्री एल्लमागारूजीको सातवें मासमें कुछ अपक्वसे बालकका एक शमीवृक्षके नीचे प्रादुर्भाव हो गया, साथके प्रायः सभी लोग कांकरपाढू पहुँच गये थे। लक्ष्मणभट्टजी और एल्लम्मागारूजी अपनी दो बच्चियोंके साथ थे। रात्रिका आरम्भ हो गया था और ६ घड़ी और ४४ पल पर यह प्रसूतिका प्रसंग बन गया। सातवें मासमें जात बालकको मृतवत् समझकर वस्त्रमें लपेट लिया और शमीवृक्षके कोटरमें रखकर, अन्य प्राणियोंसे बचानेके लिए वृक्षके चारों ओर अग्निका वर्तुल कर दिया। रात्रि वहाँ ही पूर्ण की; माताजीके उस समय कुछ स्वस्थता प्राप्त हुई तब बोल उठीं। मेरा बच्चा कहाँ है? बच्चा शमीवृक्षके कोटरमें बताया गया। रात्रिभरके जलते अग्निके कारण बच्चेके देहमें शक्ति आ गई थी। वह रोने लगा, माताने अग्निको हटाकर बच्चेको गोदमें तो लिया। मान लिया गया कि भौतिक अग्निने ही अपने आधिदैविक स्वरूपको धारण करके जगत् के समक्ष दर्शन दिया। उस समय वहाँ जो कोई भी हरिजन थे उन सबोंको आनन्द हो गया। स्वस्थताके बाद आहिस्ता-आहिस्ता शेष लोग नज़दीकके चौड़ा गाँवमें आ पहुँचे—वहाँका रईस लक्ष्मण भट्टजीका परिचित था; उनको वहाँ अच्छा आश्रय मिल गया। छट्ठीके दिन काशीसे माधवेन्द्र यति और मुकुन्ददास नामक एक विरक्त वैष्णव उस चौड़ामें ही आ पहुँचे; भट्टजीके वहाँ पुत्रका जन्म सुनकर उन दोनोंको बड़ी प्रसन्नता हुई। करीब डेढ़ मासका समय चौड़ामें ही निकला, जातकर्मादि सभी संस्कार करनेके बाद भट्टजी अब कांकरपाढू अपने घर पर आ गये।

काशीसे अशान्तिके समाचार आते रहते थे। ई० सं० १८७६के शीतकालमें दिल्हीके सैन्योंने हुसेनका पराजय पूरा कर लिया और बहलोल लोदी एवं हुसेनके बीच तीन सालोंका तह हुआ। अब काशीमें शान्ति हुई और वह समाचार कांकरपाढूमें आनेके बाद आये हुए लोगोंने काशी वापस लौटनेका उद्यम किया। इन तीन वर्षोंके बीच भट्टजीके वहाँ एक ओर पुत्रका जन्म हुआ था। भट्टजीका प्रथम पुत्र रामकृष्ण कांकरपाढूमें ही था, दूसरा अग्निरक्षित पुत्रका नाम 'वल्लभ' रखा गया था और तीसरेका नाम रामचन्द्र दिया था। पिताजीकी भावना थी कि वल्लभको यथा समय विद्याभ्यासके लिए काशीमें ही व्यवस्था करनी चाहिए। माधवेन्द्र यतिजी की पाठशाला काशीमें ही थी, अतः सुविधा थी ही। लक्ष्मणभट्टजी अपने छोटे कुटुम्बके साथ काशी जा पहुँचे। अब जब श्रीवल्लभको पाँचवें वर्षका आरम्भ गया तब (वि० सं० १५३३ ई० सं० १४७६) आषाढ़ सुदि २ और रविवारके रथयात्राके दिन पिताजीने खुदने ही श्रीवल्लभको अक्षरारम्भ करवाया और पाँचवें वर्षके अन्त भागमें (वि० सं० १५३४ ई० सं० १४७७) चैत सुदि ९ और रविवारको यज्ञोपवीत-

संस्कार बड़ी धामधूमसे किया गया। इसके बाद तुरन्त ही अपने स्नेही यतिराज माधवेन्द्रयति की पाठशालामें श्रीवल्लभके विद्याभ्यासका प्रबन्ध कर लिया गया। करीब डेढ़ वर्ष अध्ययन हुआ इतनेमें माधवेन्द्र यतिका व्रजमें जानेका हुआ और इनके शिष्य माधवानन्दजीके हाथमें अध्यापनकार्य चालू रहा। जब सातवां जन्मदिन आया उस समय संभवतः पिताजी द्वारा विष्णुस्वामी-संप्रदायकी दीक्षा बाल श्रीवल्लभ की हुई। पीछेसे यह बात विस्मृत हो गई और उस दिनको ही संप्रदायमें जन्ममाङ्गल्यदिन माना गया। संप्रदायमें यह दिन वि० सं० १५३५ (ई० सं० १४७८)के व्रज वैशाख वदी १०मी उपरान्त ११ और रविवारका माना है, और 'एकादसी दूसरो याम'--जो स्पष्ट रूपमें जन्मका नहीं, दीक्षामांगल्यका ही समय है। सगुणदासजीके निम्न पदमें यह बात ही दीख पड़ती है--

"कांकरवारे तैलंग-तिलक-द्विज वंदों श्रीमदलक्ष्मणनंद।
श्रीव्रजराजशिरोमनि सुंदर भूतल प्रगटे बल्लभचंद॥
अवगाहत श्रीविष्णुस्वामि पद नवधाभक्तिरत्न-रसकंद।
दर्शन ही ते प्रसन्न होत मन प्रगटे पूरन परमानंद॥
कीरति विरुद कहां लों बरनों गावत लीला श्रुति सुरछंद।
सगुणदास-प्रभु षट्गुणसंपन कलिजन-उद्धरन आनंदकंद॥

दक्षिणके देशोंमें आज पर्यन्त यह रिवाज चालू है कि बालकको विशिष्ट दीक्षा दी जाती है तब उस दिनकी मुहूर्तकुण्डली बनवाकर उस दिनको जन्मदिन जितना गौरव दिया जाता है।

बरोबर इस प्रसंग पर गुरुके शोधमें निकले हुए एक क्षत्रिय भक्तका आगमन हुआ। शरणार्थी यह क्षत्रिय कृष्णदास मेघन श्रीवल्लभाचार्यजीके समग्र जीवनकालमें अहोरात्र परिचर्यामें लगातार चालू रहा था।

विजयनगरमें वास

काशीमें श्रीमाधवानन्दजीके पास श्रीवल्लभका अध्ययन व्यवस्थित चालू था। १६ वर्षमें सामान्य शास्त्रोंका अध्ययन हो गया और अब विशिष्ट शास्त्रोंके अध्ययनकी सुविधा दक्षिणमें सुलभ होनेके कारण मौसालमें जानेकी श्रीवल्लभकी इच्छा जानकर पिताजी सहकुटुम्ब विजयनगरकी ओर निकल पड़े। बीचमें यात्राके स्थानोंमें फिरते-फिरते भट्टजी विजयनगर आ पहुंचे और राज्यके दानाध्यक्ष अपने मामाजीके द्वारा की हुई सुविधाके कारण श्रीवल्लभका शास्त्रों एवं दर्शनोंका अध्ययन सुचारुरूपसे आगे बढ़ता जा रहा। यहाँ अन्यान्य आस्तिक-नास्तिक दर्शनोंके अध्ययनके साथ-साथ पूर्वमीमांसाका अध्ययन विशिष्ट रूपसे हुआ।

विजयनगरमें अच्छी तरहसे सुस्थिर होनेके बाद पिताजीकी इच्छा दक्षिणके तीर्थ स्थानोंके दर्शन की हुई। इस कारण कांकरपाढ़ूसे बड़े पुत्र रामकृष्णको बुलवा लिया और तीनों पुत्रोंको लेकर माता-पिता यात्राके लिए निकले। दोनों पुत्रियोंके लग्न होनेके कारण उस विषयमें निश्चिन्तता थी। यात्रा करते-करते जब यह कुटुम्ब श्रीलक्ष्मण बालाजीके पवित्र धाममें गया (वि० सं० १५४४-ई० सं० १४८७) तब श्री····को शृंगार कराते-कराते लक्ष्मणभट्टजीका देहान्त हो गया। उस समय श्रीवल्लभका वय १६ वर्षोंका और छोटे रामचन्द्रका वय १४ वर्षोंका था। वहाँ ही पिताजीकी अन्त्येष्टि करके यह कुटुम्ब विजयनगर वापस लौट आया, रामकृष्ण कांकरपाढ़ू गया। उनका दिल शुरूसे ही विरक्त होनेके कारण परम्पराके श्रीरामचन्द्रजीकी सेवा अपने दूसरे कुटुम्बीजनोंको सौंपकर उन्होंने मध्वसंप्रदायकी दीक्षा ली और 'केशवपुरी' नाम धारण करके घरसे निकल गये।

यतिजीकी पाठशाला थी और कहा जाता है कि लक्ष्मणभट्टजीने वहाँ ज्योतिष शास्त्रका अभ्यास किया था। काशीमें स्वेष्ट अनुकूल वातावरणमें लक्ष्मणभट्टजी यागादिकके उत्तर कार्योंसे निवृत्त होकर आनन्दसे स्वाध्याय और श्रीगोपालकृष्णको विष्णुस्वामी संप्रदायकी प्रणालीसे भक्ति करनेमें अपने दिन व्यतीत कर रहे थे, इतनेमें अचानक एक आपत्ति आई।

काशी जौनपुरके मुस्लिम राज्यकी सत्तामें था। दिल्लीके बहलोल लोदी (ई० सं० १४५०-८९) और जौनपुरके सुल्तान हुसेनके बीच संघर्ष चालू था। बेशक, आरम्भमें उसका असर पूर्वमें काशी तक नहीं पहुँचा था, और काशीवासी लोग निश्चिन्त रहते थे। आहिस्ता आहिस्ता जौनपुरका प्रदेश दबाते-दबाते दिल्हीके सैन्य पूर्वमें आगे बढ़ते जाते थे। ऐसा एक हल्ला काशीके प्रान्तप्रदेशमें होनेका भय खड़ा हुआ और काशीके लोगोंमें नास भाग शुरू हो गई। एल्लमागारूजी सगर्भा थी और काशी छोड़ना अनिवार्य बन गया था। लक्ष्मण भट्ट अपने दूसरे रिश्तेदारोंके साथ, निकल पड़े, प्रवास लम्बा था। कितने दिनोंके बाद वे अपने वतनके सीमाप्रान्त आ पहुँचे। जब महानदीके तीर प्रान्तके चम्पारण्य नामक अरण्यमें आये तब ई० सं० १४७२ (वि० सं० १५२९)के व्रज वैशाख वदि ११ एवं शनिवारके दिन प्रवासके असामान्य कष्टके कारण श्री एल्लमागारूजीको सातवें मासमें कुछ अपक्वसे बालकका एक शमीवृक्षके नीचे प्रादुर्भाव हो गया, साथके प्रायः सभी लोग कांकरपाढू पहुँच गये थे। लक्ष्मणभट्टजी और एल्लम्मागारूजी अपनी दो बच्चियोंके साथ थे। रात्रिका आरम्भ हो गया था और ६ घड़ी और ४४ पल पर यह प्रसूतिका प्रसंग बन गया। सातवें मासमें जात बालकको मृतवत् समझकर वस्त्रमें लपेट लिया और शमीवृक्षके कोटरमें रखकर, अन्य प्राणियोंसे बचानेके लिए वृक्षके चारों ओर अग्निका वर्तुल कर दिया। रात्रि वहाँ ही पूर्ण की; माताजीके उस समय कुछ स्वस्थता प्राप्त हुई तब बोल उठीं। मेरा बच्चा कहाँ है? बच्चा शमीवृक्षके कोटरमें बताया गया। रात्रिभरके जलते अग्निके कारण बच्चेके देहमें शक्ति आ गई थी। वह रोने लगा, माताने अग्निको हटाकर बच्चेको गोदमें तो लिया। मान लिया गया कि भौतिक अग्निने ही अपने आधिदैविक स्वरूपको धारण करके जगत् के समक्ष दर्शन दिया। उस समय वहाँ जो कोई भी हरिजन थे उन सबोंको आनन्द हो गया। स्वस्थताके बाद आहिस्ता-आहिस्ता शेष लोग नज़दीकके चौड़ा गाँवमें आ पहुँचे—वहाँका रईस लक्ष्मण भट्टजीका परिचित था; उनको वहाँ अच्छा आश्रय मिल गया। छट्टीके दिन काशीसे माधवेन्द्र यति और मुकुन्ददास नामक एक विरक्त वैष्णव उस चौड़ामें ही आ पहुँचे; भट्टजीके वहाँ पुत्रका जन्म सुनकर उन दोनोंको बड़ी प्रसन्नता हुई। करीब डेढ़ मासका समय चौड़ामें ही निकला, जातकर्मादि सभी संस्कार करनेके बाद भट्टजी अब कांकरपाढू अपने घर पर आ गये।

काशीसे अशान्तिके समाचार आते रहते थे। ई० सं० १८७६के शीतकालमें दिल्हीके सैन्योंने हुसेनका पराजय पूरा कर लिया और बहलोल लोदी एवं हुसेनके बीच तीन सालोंका तह हुआ। अब काशीमें शान्ति हुई और वह समाचार कांकरपाढूमें आनेके बाद आये हुए लोगोंने काशी वापस लौटनेका उद्यम किया। इन तीन वर्षोंके बीच भट्टजीके वहाँ एक ओर पुत्रका जन्म हुआ था। भट्टजीका प्रथम पुत्र रामकृष्ण कांकरपाढूमें ही था, दूसरा अग्निरक्षित पुत्रका नाम 'वल्लभ' रखा गया था और तीसरेका नाम रामचन्द्र दिया था। पिताजीकी भावना थी कि वल्लभको यथा समय विद्याभ्यासके लिए काशीमें ही व्यवस्था करनी चाहिए। माधवेन्द्र यतिजी की पाठशाला काशीमें ही थी, अतः सुविधा थी ही। लक्ष्मणभट्टजी अपने छोटे कुटुम्बके साथ काशी जा पहुँचे। अब जब श्रीवल्लभको पाँचवें वर्षका आरम्भ गया तब (वि० सं० १५३३ ई० सं० १४७६) आषाढ़ सुदि २ और रविवारके रथयात्राके दिन पिताजीने खुदने ही श्रीवल्लभको अक्षरारम्भ करवाया और पाँचवें वर्षके अन्त भागमें (वि० सं० १५३४ ई० सं० १४७७) चैत सुदि ९ और रविवारको यज्ञोपवीत-

संस्कार बड़ी धामधूमसे किया गया। इसके बाद तुरन्त ही अपने स्नेही यतिराज माधवेन्द्रयति की पाठशालामें श्रीवल्लभके विद्याभ्यासका प्रबन्ध कर लिया गया। करीब डेढ़ वर्ष अध्ययन हुआ इतनेमें माधवेन्द्र यतिका व्रजमें जानेका हुआ और इनके शिष्य माधवानन्दजीके हाथमें अध्यापनकार्य चालू रहा। जब सातवां जन्मदिन आया उस समय संभवतः पिताजी द्वारा विष्णुस्वामी-संप्रदायकी दीक्षा बाल श्रीवल्लभ की हुई। पीछेसे यह बात विस्मृत हो गई और उस दिनको ही संप्रदायमें जन्ममाङ्गल्यदिन माना गया। संप्रदायमें यह दिन वि० सं० १५३५ (ई० सं० १४७८)के व्रज वैशाख वदी १०मी उपरान्त ११ और रविवारका माना है, और 'एकादसी दूसरो याम'--जो स्पष्ट रूपमें जन्मका नहीं, दीक्षामांगल्यका ही समय है। सगुणदासजीके निम्न पदमें यह बात ही दीख पड़ती है--

> "कांकरवारे तैलंग-तिलक-द्विज वंदों श्रीमदलक्ष्मणनंद।
> श्रीव्रजराजशिरोमनि सुंदर भूतल प्रगटे बल्लभचंद॥
> अवगाहत श्रीविष्णुस्वामि पद नवधाभक्तिरत्न-रसकंद।
> दर्शन ही ते प्रसन्न होत मन प्रगटे पूरन परमानंद॥
> कीरति विरुद कहां लों बरनों गावत लीला श्रुति सुरछंद।
> सगुणदास-प्रभु षट्गुणसंपन कलिजन-उद्धरन आनंदकंद॥

दक्षिणके देशोंमें आज पर्यन्त यह रिवाज चालू है कि बालकको विशिष्ट दीक्षा दी जाती है तब उस दिनकी मुहूर्तकुण्डली बनवाकर उस दिनको जन्मदिन जितना गौरव दिया जाता है।

बरोबर इस प्रसंग पर गुरुके शोधमें निकले हुए एक क्षत्रिय भक्तका आगमन हुआ। शरणार्थी यह क्षत्रिय कृष्णदास मेघन श्रीवल्लभाचार्यजीके समग्र जीवनकालमें अहोरात्र परिचर्यामें लगातार चालू रहा था।

विजयनगरमें वास

काशीमें श्रीमाधवानन्दजीके पास श्रीवल्लभका अध्ययन व्यवस्थित चालू था। १६ वर्षमें सामान्य शास्त्रोंका अध्ययन हो गया और अब विशिष्ट शास्त्रोंके अध्ययनकी सुविधा दक्षिणमें सुलभ होनेके कारण मौसालमें जानेकी श्रीवल्लभकी इच्छा जानकर पिताजी सहकुटुम्ब विजयनगरकी ओर निकल पड़े। बीचमें यात्राके स्थानोंमें फिरते-फिरते भट्टजी विजयनगर आ पहुंचे और राज्यके दानाध्यक्ष अपने मामाजीके द्वारा की हुई सुविधाके कारण श्रीवल्लभका शास्त्रों एवं दर्शनोंका अध्ययन सुचारुरूपसे आगे बढ़ता जा रहा। यहां अन्यान्य आस्तिक-नास्तिक दर्शनोंके अध्ययनके साथ-साथ पूर्वमीमांसाका अध्ययन विशिष्ट रूपसे हुआ।

विजयनगरमें अच्छी तरहसे सुस्थिर होनेके बाद पिताजीकी इच्छा दक्षिणके तीर्थ स्थानोंके दर्शन की हुई। इस कारण कांकरपाढूसे बड़े पुत्र रामकृष्णको बुलवा लिया और तीनों पुत्रोंको लेकर माता-पिता यात्राके लिए निकले। दोनों पुत्रियोंके लग्न होनेके कारण उस विषयमें निश्चिन्तता थी। यात्रा करते-करते जब यह कुटुम्ब श्रीलक्ष्मण बालाजीके पवित्र धाममें गया (वि० सं० १५४४-ई० सं० १४८७) तब श्री····को शृंगार कराते-कराते लक्ष्मणभट्टजीका देहान्त हो गया। उस समय श्रीवल्लभका वय १६ वर्षोंका और छोटे रामचन्द्रका वय १४ वर्षोंका था। वहाँ ही पिताजीकी अन्त्येष्टि करके यह कुटुम्ब विजयनगर वापस लौट आया, रामकृष्ण कांकरपाढू गया। उनका दिल शुरूसे ही विरक्त होनेके कारण परम्पराके श्रीरामचन्द्रजीकी सेवा अपने दूसरे कुटुम्बीजनोंको सौंपकर उन्होंने मध्वसंप्रदायकी दीक्षा ली और 'केशवपुरी' नाम धारण करके घरसे निकल गये।

प्रथम लघुयात्रा

श्रीवल्लभ एवं रामचन्द्र विजयनगरमें आकर मौसालमें स्थिर हुए। यहाँ पिताजीके वार्षिक श्राद्धको पूर्णकर पिताजीकी यात्राकी अपूर्ण इच्छा पूर्ण करनेके लिए और माताजीको भी यथापुण्यका लाभ देनेके लिए अल्प समयके लिए सं० १५४५ (ई० स० १४८८)में प्रवासमें आगे बढ़े। प्रथम कांकरपाढ़ू आये और माताजी की शोकमुक्ति करवाई। वहाँसे अब आप, श्रीमाताजी और सेवक कृष्णदास मेघन तीन आगे बढ़कर श्रीपुरुषोत्तम शेष श्रीजगदीशमें पहुंचे। उस समय ओरिस्सामें गजपति पुरुषोत्तम नामक परम धार्मिक राजा था। श्रीजगन्नाथपुरीमें उसके दरबारमें वाद-विवाद चलता था कि—(१) मुख्य शास्त्र क्या, (२) मुख्यदेव कौन, (३) मुख्य मन्त्र क्या, और (४) मुख्य कर्म क्या? श्रीजगदीश मन्दिरके विशाल प्रांगणमें वादविवाद हो रहा था उसी समय अकस्मात् श्रीवल्लभ श्रीजगदीशके दर्शनके लिए आ पहुंचे। यह बाल ब्रह्मचारी श्री····के दर्शनके बाद कुतूहलवशात् उस वादसभामें बैठे। प्रश्न सरल थे, किन्तु वे गम्भीर। श्रीवल्लभको आश्चर्य हुआ कि यहाँ श्रीजगदीशके मन्दिरमें ही बैठकर इस प्रकारकी बालिश चर्चा होती है। इन प्रश्नोंका उत्तर मात्र चतुराईकी अपेक्षा तीर्थगोरकृष्णजीको पूछने लगे कि मैं इस चर्चामें भाग ले सकूँ? गोरने राजा-जीसे निवेदन किया। अनुज्ञा मिलनेपर श्रीवल्लभ खड़े हुए और साश्चर्य निवेदन किया कि यहाँ हम सब आस्तिक लोग इकट्ठे हुए हैं। हमारी सबोंकी अपने शास्त्रोंमें श्रद्धा है। वेद-उपनिषद्, गीताजी और ब्रह्मसूत्रों-में हमारी पूरी श्रद्धा है। इन तीन प्रस्थानोंमें हमारी गीताजीकी ओर परम श्रद्धा है। क्या गीताजी पन्द्रहवें अध्यायके अन्त भागमें जो कहतो है, क्या हमें वह बाध्य नहीं है? इस बातको हम प्रमाणके रूपमें यदि स्वीकार करते हैं तो अपने आपसे ऊपरके चार प्रश्नोंका उत्तर मिल जाता है; जैसा कि—

> एकं शास्त्रं देवकीपुत्रगीतं, एको देवो देवकीपुत्र एव।
> मन्त्रोऽप्येकस्तस्य नामानि यानि, कर्माप्येकं तस्य देवस्य सेवा॥

(१) भगववान् देवकीनन्दन श्रीकृष्ण द्वारा गाई हुई गीता एकमात्र शास्त्र,
(२) वे देवकीनन्दन श्रीकृष्ण एकमात्र देव,
(३) उनके जितने नाम वे एकमात्र मन्त्र, और
(४) उनकी सेवा वह एकमात्र कर्म।

इस निर्णयात्मक कथनसे सभी लोगोंके मनका उत्तमोत्तम समाधान करके श्रीवल्लभ तुरन्त वहाँसे निकल गये, मानव समूहमें सम्मिलित हो गये। इस बालसरस्वतीको यश या विजय या प्रतिष्ठाका कोई खयाल नहीं था, न मानकी कोई भावना भी अब तक खड़ी नहीं हुई थी। वे दूसरे दिन यात्रा में आगे बढ़े। इस प्रवासमें ही वर्षामें उनको एक दूसरे महत्त्वके शिष्य-सेवक आ मिला, जो दामोदरदास हरसानीके नामसे प्रसिद्ध है। [इस ऐतिहासिक प्रसंगका निर्देश जगन्नाथपुरीके इनके गोर गुच्छिकार कृष्णने वि० सं० १५९५ (ई० स० १५३८)में श्रीवल्लभाचार्यजीके बड़े पुत्र श्रीगोपीनाथजी श्रीजगदीश दर्शनके लिए गये थे तब उनको कहा था, और गोरके चोपड़ेमें इस बातके लिखे हुए निर्देश पर श्रीगोपीनाथजीके हस्ताक्षर भी प्राप्त हुए हैं।]

श्रीवल्लभ इस लघुयात्रामें आगे बढ़ते हुए दूसरे वर्षमें उज्जैन आ पहुंचे और अपने तीर्थगोर नरोत्तम-के चोपड़ेमें सं० १५४६ चैत्र सुदि १के दिन कन्नड़ लिपिमें हस्ताक्षर दिये। वे आज भी सुलभ हैं—'श्रीविष्णु-स्वामिमर्यादानुगामिना वल्लभेन अवन्तिकायां नरोत्तमशर्मा पौरोहित्येन सम्माननीयः सं० १५४६ चैत्र शुद्ध प्रतिपदि।' इस समय श्रीवल्लभका वय १७ का था। इस लघुयात्राको समाप्त कर अल्प समयमें विजयनगर वापस आ पहुंचे और अध्ययन कार्यको फिरसे शुरू कर दिया।

ग्रन्थलेखनारम्भ

विजयनगरके कुछ लम्बे निवासमें छोटी मोटी वाद सभाओंमें भाग लेनेके प्रसंग आये थे इस कारण स्वसिद्धान्त प्रतिपादनकी शक्ति और प्रतिपक्षियोंके समक्ष अपनी बात सुचारुरूपसे रखनेकी युक्तिमत्ता सिद्ध हो गई थी। पूर्वमीमांसाका बलिष्ठ अभ्यास हुआ ही था, इससे स्वतन्त्र विचार करनेकी भी शक्ति सिद्ध हो चुकी थी। अपने विजयनगरके निवास दरम्यान श्रीवल्लभने अपने प्रवासमें भी रखनेकी सुविधा हो इस कारण रूपरेखात्मक 'तत्त्वार्थदीपनिबन्ध' नामक बड़े प्रकरण ग्रन्थकी रचना भी की थी।

इस ग्रन्थसे श्रीवल्लभने विचार विमर्शकी एक नयी ही दिशा खोल दी, आज तक आचार्योंने उपनिषद्, गीता, एवं ब्रह्मसूत्रोंको तीन प्रस्थानोंके रूपमें स्वीकार किया था, श्रीवल्लभने व्यासकी समाधि भाषा—श्रीमद्भागवतको चतुर्थ प्रस्थानका मान दिया, इस पूर्व मध्वसंप्रदायमें भागवतका और आदर था, किन्तु प्रस्थान के रूपमें स्वीकार नहीं किया गया था, इसके आगे यह भी बात श्रीवल्लभने की थी कि इंन चारों प्रस्थानोंको अनुकूल रखकर किसीने आज भी कोई विधान किया हो तो भी वह प्रमाण है। प्राचीनतम हो, किन्तु चारों प्रस्थानोंके खिलाफ हो तो वह सर्वथा अप्रमाण—अमान्य है।

'तत्त्वार्थदीपनिबन्ध'का अध्ययन करनेसे एक बात अन्यन्त स्पष्ट है कि श्रीवल्लभके दिलमें उस समय कोई नया मत प्रस्थापित करनेका खयाल नहीं था, कलियुगमें मात्र कृष्णसेवा ही उद्धार करने वाली है यह बात उन्होंने स्पष्ट रूपमें कही थी, इस निबन्धके प्रथम 'शास्त्रार्थप्रकरण'में वेदान्त सिद्धान्त—'अविकृत परिणाम वाद' किंवा 'अखण्ड ब्रह्मवाद'का स्वरूप स्पष्ट किया था, जिसके पीछे श्री विष्णुस्वामीकी परम्परा होना संभव है। उनको पिताजीकी ओरसे उस परंपराके भागवत मार्गके जो संस्कार मिले थे उनकी प्रतिच्छाया इस निबन्ध ग्रन्थमें मिली थीं, श्रीमद्भागवतके अर्थोंका भी उन्होंने विचार किया था। वह इस निबन्धके तीसरे 'भागवतार्थ प्रकरण'में मिलता है, इस निबन्धके प्रथम शास्त्रार्थ प्रकरणकी पुष्पिका इस बातका ही समर्थन करती है, जैसा कि 'श्रो कृष्ण वेदव्यास विष्णुस्वामी मतानुवर्ति श्रीवल्लभदीक्षित विरचिते तत्त्वदीपे शास्त्रार्थ प्रकरणं नाम प्रथमं प्रकरणम्।' संभव है इस निबन्धका तीसरा प्रकरण कितनेक समय बाद ही लिखा हो।

प्रथम भारत परिक्रमा—

अपनी २० वर्षोंकी वयमें श्रीवल्लभने विजयानगरमें काफी अध्ययन-परिशीलन और ग्रन्थ लेखन शक्तिकी प्राप्ति कर ली थी। अब देशाटन एवं यात्रा करके अपने ज्ञानको मजबूत करनेकी भावना हुई, इस समय तकमें वर्धाके दामोदर दास हरसानी करके भावुक भक्त सेवक भी सेवामें आ पहुँचे थे। श्री वल्लभ कृष्णदास मेघन और दामोदरदास हरसानी ये तीन अब भारतवर्षके तीर्थोंकी परिक्रमा करनेके लिए निकल पड़े। अब विजयनगरसे निकलकर यात्रा करते करते वे पंढरपुर आये। श्रीवल्लभने भीमरथी नदीके तटपर प्रथम ही श्रीमद्भागवतका पारायण किया। संभव है कि श्रीमद्भागवतकी उनकी प्रथम सूक्ष्म टीकाका आरम्भ भी यहाँसे हुआ हो। इस टीकामें श्रीभागवतके प्रकट शब्दार्थ बतानेका प्रयत्न था। इस प्रवासमें ही १. जैमिनिके पूर्वमीमांसा धर्म सूत्रोंके भाष्यका और बादरायणके उत्तरमीमांसा ब्रह्मसूत्रोंके भाष्यका भी आरम्भ किया हो। इससे पूर्व 'तत्त्वार्थ दीप निबन्ध'के दूसरे 'सर्व निर्णय' प्रकरणमें पूर्वमीमांसाके मूलतत्त्व देकर वहाँ ही भागवत मार्गकी उपयोगिता बतानेका प्रारंभिक प्रयत्न किया ही था। अब भाष्य द्वारा उस प्रयत्नोंको सनाथ करनेका मनोभाव असंभवित नहीं है।

शुद्धाद्वैत वेदान्त—उनके शब्दमें तो 'ब्रह्मवाद', उसकी वैसी ही स्थिति थी। श्री विष्णु स्वामीका

वही मत था। किन्तु उनका कोई ग्रन्थ बचा नहीं था, अतः उस सिद्धान्तका सविशेष प्रकाश 'ब्रह्म सूत्रों'के 'अणुभाष्य' में बताना समुचित समझा गया।

इस परिक्रकासे आप सं० १५५४ (ई० सं० १४६७) वैशाख सुदि ३ के दिन श्रीवल्लभ अपने दोनों सेवकोंके साथ विजयनगर आ पहुँचे। संभव है कि इस परिक्रमाके समयमें श्रीवल्लभने श्रीमद्भागवतकी सूक्ष्म टीका, पूर्वमीमांसा भाष्य एवं अणुभाष्य संपन्न करनेकी संभावना है। इन सभी ग्रन्थोंमें और बालबोध, सिद्धान्त मुक्तावलि, भक्ति वर्धिनी जैसे प्रकरण ग्रन्थोंमें कोई नया मत संप्रदाय प्रस्थापित करनेका पता चलता नहीं है।

द्वितीय भारत परिक्रमा :

एक वर्षके लिए विजयनगरमें ठहरकर सं० १५५५ (ई० सं० १४९९) चैत्र सुदि २ रविवारके दिन माताजीकी आज्ञा लेकर अपने उन दोनों सेवकोंके साथ निकल पड़े और वहाँसे यात्रा करते करते पंढरपुर फिरसे आ पहुँचे। वहाँकी यात्रा पूर्ण करके गुजरात सौराष्ट्रके अनेक तीर्थोंमें गये और बहुतसे स्थानोंमें श्रीमद-भागवत पारायणका लोगोंको श्रवण कराया, वहाँसे मालवेमें आकर फिर बुंदेलखण्डमें वेत्रवतीके तीर प्रान्तपर आये हुए ओड़छाके प्रदेशमें आ पहुँचे। उस समय 'ओड़छा' प्रसिद्धिमें आया नहीं था; राजधानी गढकुंडार नामक किलामें थी। उस समय वहाँ मलखान सिंह नामक राजपूत राजा (ई० स० १४६९-१५०२) था और उसके दरबारमें शांकरों एवं वैष्णवोंके बीच वादचर्चा चल रही थी। घटसरस्वती नामक एक शांकर विद्वान् केवला-द्वैत वादका प्रबलतासे समर्थन कर रहा था। उसके सामने वैष्णवोंके लिए टिकना असंभव बन गया था। बरो-बर उसी मौकेपर श्रीवल्लभ वहाँ आ पहुँचे, उनकी ख्याति इस पूर्व भारतके विद्वानोंमें स्थापित हो गई थी। उनका आगमन सुनते ही राजा एवं श्रीवल्लभके सजातीय राजपण्डित विद्या देव और अन्य वैष्णव विद्वानोंको आनन्द हुआ। इस समय श्रीवल्लभका वय २७-२८का था। दोनों मीमांसा एवं भगवच्छास्त्रोंपर अच्छा काबू आ गया था। विजयनगरमें ही वाद शक्ति तो विकसित हो चुकी ही थी उन्होंने शास्त्रार्थमें भाग लिया और अन्तमें शांकर विद्वानोंको पराजित किया। राजाने प्रसन्न होकर श्रीवल्लभका कनकाभिषेक किया। यह उस समयका विद्वानोंके लिए एक बड़ा मान था।

इस मानकी प्राप्ति करके श्रीवल्लभ तीर्थराज प्रयागमें त्रिवेणी स्नानके लिए पहुँचे। और वह कार्य सम्पन्न करके काशी पहुँचे, जहाँ वि० सं० १५५९ (ई० सं० १५०२) वैशाख वदी २ के दिन मणिकर्णिका घाटपर स्नान करके वहाँ इकट्ठे हुए विद्वानोंके साथ विविध चर्चाका लाभ उठाया।

भारतवर्षके विविध तीर्थोंमें जो दूषित परिस्थितिका अनुभव किया था उसका चित्र आपने अपने एक छोटे ग्रन्थ 'कृष्णाश्रय'में व्यक्त किया है। ऐसे जटिल समयमें सुकृती लोगोंको मार्गदर्शन देकर सत्पथपर लानेकी उनकी भावना बलवत्तर होती जाती थी। काशीमें उस समय चौड़ा गाँवके पूर्वपरिचित कृष्णदास चौपड़ा नामक क्षत्रियके पुत्र सेठ पुरुषोत्तमदास रहते थे और अपने निवास दरम्यान वहाँ उन्होंने ठीक-ठीक प्रतिष्ठा भी प्राप्त कर ली थी। मणिकर्णिका घाटपर उनको श्रीवल्लभका दर्शन एवं उनकी भक्तिपूर्ण विद्वत्ताका परिचय होनेपर शिष्य बननेकी भावना हुई। पूर्वपरिचयके कारण श्रीवल्लभने उनको भागवती दीक्षा दी और उनके घरपर जा ठहरे, जहाँ आपने दिनों तक श्रीमद्भागवतका व्याख्यान दिया। सबसे प्रथम, जन्माष्टमीके उत्सवपर, उनके घरपर नन्दमहोत्सव किया गया। पुरुषोत्तमदास सेठकी योग्यता देखकर श्रीवल्लभने उनको शरणार्थियोंको शरणदीक्षा देनेकी आज्ञा दी थी। 'कृष्णसेवामें तत्परता, दम्भादिदोष-रहितता, श्रीमद्भागवतके तत्त्वका सबल ज्ञान जिनमें हो वह गुरु हो सके' ऐसा विधान 'तत्त्वार्थ दीपनिबन्ध'-के दूसरे 'सर्वनिर्णय प्रकरण'में इस पूर्व किया ही था; उसका यहाँ पुरुषोत्तमदास सेठमें सबूत मिलता है।

काशीपुरी विद्याका बड़ा धाम थी। बाल्यकाल यहाँ ही व्यतीत किया था, इस कारण कोई अपरिचितता नहीं थी। यहाँ चातुर्मासके दिनोंमें अनेक विद्वानोंके चर्चाविचारणाका मौका मिला, और इसके फलस्वरूप 'पत्रावलम्बन' नामक सुमधुर वादग्रन्थकी श्रीवल्लभके पाससे प्राप्ति हुई। पूर्वमीमांसा एवं उत्तर-मीमांसा—दोनोंके सिद्धान्तोंका समन्वय इस ग्रन्थमें दीख पड़ता। दुःखका विषय है कि ग्रन्थका मध्यका कितनाक भाग नष्ट हो गया है। काशी विश्वनाथपर कितना श्रीवल्लभको आदर था वह भी इस ग्रन्थके अन्तभागको देखकर समझमें आता है; जैसा कि—

स्थापितो ब्रह्मवादो हि सर्ववेदान्तगोचरः।
काशीपतिस्त्रिलोकेशो महादेवस्तु तुष्यतु ॥३॥

काशीमें उस समय करीब सात मासों जितना समय भगवच्चर्चा एवं शास्त्रचर्चामें और शरणार्थी जीवोंको भागवती दीक्षा देनेमें एवं ग्रन्थलेखनमें व्यतीत करके आप वि० सं० १५५९ (ई० स० १५०२)—व्रज मार्गशीर्ष वदी ७ शनिवारके दिन श्रीजगदीशके दर्शनके लिए निकल पड़े। जिस दिन आप जगन्नाथपुरीमें पहुँचे वह दिन एकादशीका था। जब दर्शनके लिए मन्दिरके प्रांगणमें पहुँचे उस समय किसी पण्डेने आकर श्रीजगदीशका महाप्रसाद आपके हस्तमें दे दिया। श्रीवल्लभने आदरपूर्वक ले लिया और वहाँ ही द्वादशीके सूर्योदय तक प्रभुके भजन-कीर्तनोंमें मशगूल बन रहे और सूर्योदय होते ही स्नान-संध्याकी झंझट किये बिना ही प्रेमपूर्वक प्रसादका प्राशन किया। यों एकादशीके व्रतको और प्रसादके सम्मानको अविचलित रखा। माताजोंको यहाँ ही बुला लिया और फिर काशीकी ओर गये।

श्रीवल्लभका वय तीस वर्षोंका हो गया था। माताजीको एक भारी व्यथा थी। बड़ा पुत्र रामकृष्ण विरक्त होकर चला गया था, छोटा पुत्र (भविष्यका एक अच्छा कवि) रामचन्द्र मौसालमें विजयनगर दत्तक गया था। माताजीकी व्यथा श्रीवल्लभ लग्न करे तब ही दूर हो सके ऐसा था। श्रीवल्लभका दिल विरक्ततामें जीवन व्यतीत करनेका था, किन्तु माताजीके ही आग्रहसे काशीमें ही अपने सजातीय गोपालोपासक देवन भट्टकी पुत्री श्रीमहालक्ष्मीके साथ लग्न किया। लग्नके बाद पत्नीको उसके पिताके वहाँ ही रखा और माताजीको यात्रा करानेके लिए साथ लेकर निकल पड़े और अल्प समयमें विजयनगरमें आ पहुँचे। यहाँ मामाजीके वहाँ ठहरकर, लिखे हुए ग्रन्थोंका संस्करण कर लिया।

मध्यस्थता और कनकाभिषेक

उस समय विजयनगरमें राजकीय दंगा शान्त हो चुका था और सेनापति तुळुव नरसिंहने साळुव वंशके निर्बल राजा इम्मड़ि नरसिंह (ई० स० १४८२-१५०५)को एक छोटे स्थानका राज्य सौंपकर अपना राजत्व स्थापित कर दिया। सेनापति नरसिंह स्वल्प समयमें ही मर गया और इसके बाद उसके बड़े पुत्र वीरनरसिंह (ई० स० १५०७-१५०९)के हाथमें राज्यधुरा आई। उसका मुख्य अमात्य नरास नायक था और राजाका छोटा भाई कृष्णदेव रायलु सेनापति था। दोनोंने मिलकर विजयनगरके राज्यको अच्छी स्थिरता दी। दो ही वर्षमें नरसिंहका देहान्त हुआ और कृष्णदेवको राजत्व मिला। वह राजा बड़ा धार्मिक था। सेनापतिकी हैसियतसे भी मन्दिरों एवं तीर्थोंके उद्धारका कार्य बहुत किया था। वह प्रतिवर्ष विद्वानोंको बुलाकर भिन्न-भिन्न विषयोंपर शास्त्रार्थ करवाता था और विजेताको कनकाभिषेक करवाकर मान देता था। उस समय विजयनगरमें मध्व सम्प्रदायके आचार्य व्यासतीर्थ (ई० स० १४४६-१५३९)का बड़ा मान था। कृष्णदेव पिताके समयमें जब सेनापति था उसी समय ई० स० १५०५ में द्वैत और अद्वैत सिद्धान्तोंकी एक बड़ी चर्चासभा रखी गई थी। एक ओर द्वैतमतवादी व्यासतीर्थ और दूसरी ओर केवलाद्वैतवादी शांकर

पण्डितगण था। श्री अप्यण दीक्षितके रचे हुए 'व्यासतात्पर्यनिर्णय' नामक ग्रन्थ पराजित आचार्यको सर्वथा पराजित मान लेना नहीं चाहिए। यों कहकर मास तक चले हुए शास्त्रार्थका निर्देश किया है। शायद यही प्रसंगपर मध्यस्थके रूपमें पूर्वमीमांसाके उस समयमें अपने पूर्वमीमांसा भाष्यके कारण मान्य कोटिके और तब काशीसे आकर तीन सालसे ठहरे हुए दार्शनिक विद्वान् श्रीवल्लभको चुना गया। द्वैत और अद्वैत सिद्धान्तोंकी चर्चाके अन्तमें श्रीवल्लभने दिया हुआ निर्णय दोनों पक्षोंको बाध्य था। उस समय मध्यस्थतामें कोई उत्तरमीमांसक होता तो निर्णयके विषयमें आपत्तिका भय रहता। श्रीवल्लभका पूर्वमीमांसापर पूरा काबू था—भाष्य तो लिखा ही था, उत्तरमीमांसापर भी 'अणुभाष्य' लिखा था। वादके अन्तमें 'इच्छा-द्वैत' निर्णयमें देकर दोनों पक्षोंका समुचित समाधान किया और नियमानुसार राजा एवं सभी विद्वानोंकी ओरसे 'कनकाभिषेक'के पात्र बने। कनकाभिषेक सम्पन्न होनेपर विरक्त-प्रकृतिके श्रीवल्लभने उस निमित्त मिले हुए द्रव्य स्नानजलवत् गिनकर वादी-प्रतिवादियोंके बीच बाँट दिया। तब राजाने उनका तुलापुरुष-समारम्भ किया। राजाने १६००० मुद्रा श्रीवल्लभके चरणमें रखी, जिनमेंसे ८००० के आभूषण बनवाकर विजयनगरमें प्रसिद्ध श्रीविट्ठलनाथजीको अर्पित कर दिये; ४००० अपने पिताजीके कर्जमें दे दी, और ४००० अपने गृहस्थ जीवनमें उपयुक्त हो इस कारण राजाके वहाँ जमा रखी।

इस प्रसंगके बाद श्रीव्यासतीर्थ श्रीवल्लभको मिले और मध्वसम्प्रदायको स्वीकार करनेको कहा, किन्तु श्रीवल्लभ अपने सिद्धान्तमें अचल थे।

विजयनगरके इस संमानमहोत्सवमें श्रीवल्लभको मध्यस्थी बननेके कारण सबोंसे आचार्यत्व मिल पाया था और अब आप श्रीवल्लभाचार्य बन पाये थे। विजयनगरके निवास दरम्यान 'तत्त्वार्थदीपनिबन्ध' का तीसरा प्रकरण की स्वोपज्ञ टीकाका भी आरम्भ किया हो ऐसा प्रतीत होता है; कितनेक प्रकरण ग्रन्थ, गायत्री भाषादिक भी लिखे गये थे।

तीसरी परिक्रमा और पुष्टिमार्गका विकास

आज तक श्रीआचार्यजी सामान्य विष्णुस्वामि संप्रदायानुयायी विद्वान्के रूपमें भारतवर्षमें पर्यटन कर रहे थे। एक लघुयात्रा और दो बड़ी यात्राएँ कर चुके थे। अब स्वतन्त्र आचार्यके रूपमें प्रस्थापित होनेके कारण गौरवसे वे यात्राके लिए निकले, तो भी साथमें तो माताजी एवं दामोदरदास हरसानी और कृष्णदास मेघन ही थे। विजयनगरसे निकलकर रामेश्वर गये और वहाँसे लौटकर श्रीबालाजी आदिके तीर्थ करते-करते पंढरपुर आकर श्रीविठोबाके दर्शन किये और अपने पूर्वके स्थानमें ही दूसरी दफे श्रीमद्भागवत-पारायण श्रवण करवाया। वहाँसे नाशिक आदि तीर्थ करते-करते जनकपुर आये और माणेकतालावपर श्रीमद्भागवत-पारायण श्रवण करवाया। इस समय विष्णुस्वामी संप्रदायके केवलराम नागा अपने ५०० शिष्योंके साथ शरण आया। आचार्य श्रीने उसको भागवती दीक्षा दी और उसके ही द्वारा उसके ५०० शिष्योंको दीक्षा दिलवाई।

वहाँसे गुजरात-सौराष्ट्रके प्रसिद्ध तीर्थोंमें श्रीमद्भागवत पारायण श्रवण कराते-कराते और शरणार्थियोंको भागवती दीक्षा देते-देते मारवाड़की पूर्व सरहदके झारखण्ड नामक स्थलमें आ पहुँचे, यहाँ आचार्यश्रीके सुननेमें आया कि अपने विद्यागुरु माधवेन्द्रयति व्रजमें गिरिराज गोवर्धनपर प्रगट हुए श्रीगोवर्धनधरण देवदमनकी सेवामें मस्त रहते थे उनकी कितनेक वर्षों पूर्व ही (ई० सं० १४८४ में ही) सद्गत होनेके कारण श्री····की सेवाकी बहुत अव्यवस्था हो गई थी। आचार्य श्री झड़पसे व्रजभूमिमें आ पहुंचे और व्रजमें आकर प्रथम मुकाम गोकुलमें गोविन्दघाटपर किया। वह दिन वि० सं० १५६३ (ई० सं० १५०६) श्रावण

सुदि ११ गुरुवारका था। सारे दिनका उपवास था; प्रभु श्रीगोवर्धनधरणके दर्शनकी बड़ी उत्कटता थी। उसी उत्कटतामें कहा गया है कि वहाँ मध्यरात्रिके समय आपको भगवान् श्रीगोवर्धनधरणका साक्षात्कार हुआ। उस आचार्यश्रीने प्रभुको सर्वात्म भावपूर्वक आत्मनिवेदन किया और रेशमका कण्ठसूत्र प्रभुके कण्ठमें पहिराया। संप्रदायमें यह दिन तबसे 'पवितरा एकादशी'की संज्ञासे पुष्टिमार्गके प्राकट्य-दिनकी हेसियतसे माना जाता है। यों प्रतिवर्ष 'श्रावण शुक्ला एकादशी' पुष्टिमार्गीय वैष्णवोंके लिए परमोत्सवका दिन हो रहा है। इस प्रसंगका खयाल आचार्यश्रीने अपने 'सिद्धान्त रहस्य' नामक छोटे प्रकरणग्रन्थके आरम्भमें दिया है। जैसा कि—

'श्रावणस्यामले पक्ष एकादश्यां महानिशि। साक्षाद्भगवता प्रोक्तं तदक्षरश उच्यते ॥१॥
ब्रह्मसंबन्धकरणात् सर्वेषां देहजीवयोः। सर्वदोषनिवृत्तिः .... ॥२॥'

पुष्टिमार्गका आविष्कार

पुष्टिमार्ग-कृपामार्ग-अनुग्रहमार्ग यों तो कोई नई बात नहीं है। सृष्टिके आरम्भसे ही सबोंके लिए भगवान्की कृपा अनिवार्य बन रही है। तारतम्य इतना ही है कि जीवोंका लक्ष्य सृष्टिके प्रवर्तक ब्रह्म-परमात्मा-भगवान्की ओर नहीं रहता है, केवल भौतिक तुच्छ सुखोंकी ओर ही सीमित रहता है—किसी जीवको ही इन तुच्छ, सुखोंके पार निःसीम-सुखात्मक भगवान्की ओर जाता है। मेरा कुछ ही नहीं है, यहाँ जो कुछ भी है वह क्षणिक है और मृत्युके बाद कुछ कामका नहीं, यहाँ एवं मृत्युके बाद जो कोई अविचलित वस्तु है वह केवल भगवान् ही है, अतः जगत्के अपने सब कुछ व्यवहार प्रामाणिक रूपमें चलाते-चलाते भी भगवदर्पण बुद्धिसे ही किया जाय, सतत भगवान्की शरणभावना ही रहे।' गीतामें जिसकी सुस्पष्टता मिलती है वह शरणमार्ग ही 'पुष्टिमार्ग'के मूलमें पड़ा है। दूसरे दिन प्रातःकालमें श्रीआचार्यजीने अपने प्रिय शिष्य और सेवक दामोदरदास हरसानीको प्रथम ही यह आत्मनिवेदन दीक्षा दी। उस दिन तक, जबसे श्रीवल्लभके सामान्यरूपमें आप दीक्षा देते थे वह विष्णुस्वामि-परंपराकी गोपाल मन्त्रवाली भागवती दीक्षा थी। पिताजीसे आपको यह दीक्षा मिली थी और कृष्णसेवापर दम्भादिरहित और श्रीभागवतके जाननेवाले किसी भी अधिकारी वैष्णवराजके द्वारा भी होती थी; पुष्टिमार्गीय आत्मनिवेदन दीक्षा अब अधिकृत गुरुसे ही होनेका प्रघात शुरू हुआ, क्योंकि इस आत्मनिवेदन-दीक्षा स्वयं भगवान्ने श्रीवल्लभाचार्यजीको दी और आपने अपने प्रिय शिष्य दामोदरदास हरसानीको देकर प्रणालीका आरम्भ किया। श्री आचार्यजीकी कोटिका पुरुष ही यह दीक्षा दे सके इतना इस दीक्षाका गौरव रहा। इसी कारणसे श्रीवल्लभ कुलमें ही गुरुत्व भावना स्थिर रही है। इतर किसी भी वैष्णवको एवं श्रीवल्लभवंशमें पुत्रियों और वधुओंका यह अधिकार नहीं रहा है।

आज पुष्टिमार्गमें क्रमिक दो दीक्षाएँ होती हैं। १. प्राथमिक दीक्षाको 'नामनिवेदन' या 'शरणदीक्षा कहते हैं और २. द्वितीय सर्वोच्चदीक्षाको 'आत्म निवेदन' या 'ब्रह्मसंबन्ध दीक्षा' कहते हैं। प्रथम दीक्षाओंमें शरणके लिए आये हुए किसी भी जीवको 'श्री कृष्णः शरणं मम' यह अष्टाक्षर मन्त्र गुरुकी ओरसे कानमें बोला जाता है। और तुलसी कण्ठी गलेमें पहिनाई जाती है। दूसरी दीक्षामें ऐसे नाम निवेदन प्राप्त जीवको पूर्व दिनके लिए शुद्धि पूर्वक उपवास व्रत कराया जाता है। दूसरे दिन प्रातः कालमें स्नानादिकसे निवृत्त होकर अत्यन्त शुद्ध रूपमें आये हुए दीक्षार्थीको गुरुके समक्ष शरण भावना पूर्वक जानेका होता है। गुरु दीक्षार्थीके दाहिने हाथमें तुलसी पत्र रखवाकर आत्म निवेदन मन्त्रका अर्पण कराते हैं। माना गया है कि यह मूल मन्त्र 'दासोऽहं, कृष्ण, तवास्मि' इतना छोटा ही था, जो श्रीआचार्यजीको भगवान्की ओरसे मिला, श्रीआचार्यजीने

इसके आगे 'सहस्रपरिवत्सरमितकालजात-कृष्णवियोगजनिततापक्लेशानन्दतिरोभावोऽहं भगवते कृष्णाय देहेन्द्रियप्राणान्तःकरणानि तद्धर्मांश्च दारागारपुत्राप्तवित्तेहपराणि आत्मना सह समर्पयामि'—(असंख्य वर्षोंका समय व्यतीत हो गया है। इस कारण, भगवान्‌से वियुक्त होनेका जो ताप क्लेश होना चाहिए वह तिरोहित है वैसा मैं (शरण प्राप्त जीव) देह, इन्द्रिय, प्राण, अन्तः करण और इनके धर्मों, एवं स्त्री, घर, पुत्र, रिश्तेदारों, संपत्ति, ऐहिक और पारलौकिक सभीका आत्मा सह भगवान् श्रीकृष्णको समर्पण करता हूँ) इतना भाग स्पष्टताके लिए संमिलित किया। श्रीआचार्यजीके पौत्र श्रीगोकुलनाथजीके घरमें 'भगवते कृष्णाय श्रीगोपीजनवल्लभाय' ऐसा कहा जाता है।

'सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज' (भ० गी० १८।५४) और 'ये दारागारपुत्राप्तान् प्राणान् वित्तमिमं परम्।' (भाग०, ९-४-६५), 'दारान् सुतान् गृहान् प्राणान् यत् परस्मै निवदेनम्।' (भाग० ११-३-२८), एवं 'कायेन वाचा मनसेन्द्रियैर्वा बुद्धयात्मना वानुसृतस्वभावात्। करोति यद् यत् सकलं परस्मै नारायणायेति समर्पयेत् तत्।' (भाग० ११-२-३६)—इन वाक्योंका ही यह संक्षेप है। यों कुछ भी नयी बात न कहते प्राचीन प्रणालीका ही पुनरुज्जीवन किया गया है।

दामोदरदास हरसानीको प्रथम दीक्षा देकर फिर तुरन्त कृष्णदास मेनन, और नये शिष्यों—प्रभुदास जलोरा क्षत्रिय, रामदास चौहाण आदि वैष्णवोंको दीक्षा दी। इस कार्यकी विशिष्टताका कुछ खयाल 'तत्त्वार्थ दीपनिबन्ध'के दूसरे प्रकरणके 'सर्वत्यागेऽनन्यभावे····' (२१८-२१९) आदि दो श्लोकोंमें मिलता है।

सामान्य भक्तिमार्ग-भागवतमार्गसे आगे बढ़कर श्री आचार्यजीने विशिष्ट भक्तिमार्ग-पुष्टिमार्गका आविष्कार किया, और अब आप ही इस मार्गके प्रधान सुकानी बने। इनके पूर्व सिद्धान्तमें साधन भक्ति और शुद्धाद्वैत ब्रह्मवाद था, माहात्म्यज्ञानसे पूर्ण भक्तिकी चरम कोटिमें अक्षर ब्रह्मके साथ किसी भी एक प्रकारका मोक्षमें ही इतिकर्तव्यता थी। अब जो नया आविष्कार हुआ वह किसी भी प्रकारके ज्ञानसे निरपेक्ष निःसाधन प्रेमलक्षणाके फलस्वरूप किसी भी दशामें भगवल्लीलाका साक्षात् अनुभव और देहान्तके बाद भगवल्लीला-सहभागिताकी कोटिका था।

श्रीगोवर्धनधरण श्रीनाथजी

श्रावण शुक्ला द्वादशीके पुष्टिमार्गके नये आविष्कारको सम्पन्न करके आप शिष्योंके साथ श्रीगोवर्धन पर्वतपर पहुंचे और सबसे प्रथम मयूरपिच्छका मुकुट एवं पीताम्बर काछनीका श्रीगोवर्धनधरणके स्वरूपको श्रृंगार करके भोग धराया। संप्रदायमें उस दिनसे श्री···का श्रीनाथजी नाम आपने प्रसिद्ध किया। आचार्य-श्रीने पुष्टिमार्गीय सेवाप्रकार—नन्दालयकी भावनासे शुरू किया और श्री····की सेवाका अधिकार रामदास चौहाणको एवं कीर्तनकी सेवाका कुम्भनदासजीको सौंपा। प्रभुको गायों पर बहुत प्रेम है इस कारण अपनी ओरसे एक गाय खरीद करवाकर श्री····की सेवाके लिए दी। और थोड़े ही समयमें वहाँ बड़ी गोशाला बन गई।

द्वादशवनी व्रजपरिक्रमा

इस असामान्य कार्य को सम्पन्न करके आपने भगवान् बाल कृष्णके विहार स्थान व्रजभूमिके बारह वनोंकी भक्ति भावपूर्ण परिक्रमाका वि० सं० १५६३ (ई० स० १५०६) व्रज आश्विन वदि १२ के दिन मथुरामें विश्रामघाटपर संकल्प करके गोरको साथ लेकर आरम्भ किया। आगे जाकर श्रीगोकुलनाथजीके व्रजचौरासी कोस-परिक्रमा प्रघात पाड़ा इसका यह द्वादशवनी परिक्रमा मूल था। परिक्रमामें जब आप भांडरी वनमें आये तब वहाँ मध्व संप्रदायके विजयनगर वाले आचार्य व्यासतीर्थजी मिले। उन्होंने श्रीवल्लभाचार्यजीके

समक्ष अपनी पूर्वकी विज्ञप्तिका पुनरुच्चारण किया, किन्तु आपने सविवेक अनिच्छा बताई, आगे बढ़कर अब तो स्वतन्त्र निर्गुण भक्ति मार्ग-पुष्टिमार्गके प्रचारकी ही अपनी भावना व्यक्त की। भिन्न-भिन्न वनोंकी परिक्रमा करके आप फिर श्रीगोवर्धन गिरिपर आये वहाँ श्रीनाथजीका प्रथम अन्नकूटोत्सव संपन्न किया। दूसरे दिन भाई दूजको मथुरा प्रातः कालमें पहुँचकर विश्राम घाटपर परिक्रमा पूर्ण करके अपने गोर उजागर चौवेको एक सौ रुपये दक्षिणामें दिये, यों श्रीयमुनाजीका और यमद्वितीयाके दिनका आपने माहात्म्य बढ़ाया।

काशी निवास : सुबोधिनी लेखन

श्रीगोवर्धन पर्वतपर श्रीनाथजीके सेवा क्रमकी व्यवस्था करके, एवं द्वादशवनी परिक्रमा और श्रीयमुनाजीके माहात्म्यको बल देकर—यों नयी प्रणालियोंके साथ पुष्टिमार्गका नये स्वरूपमें आविष्कार करके अपनी चालू भारतवर्षकी परिक्रमा आगे बढ़ानेके लिए आप झारखण्डमें वापस जा पहुँचे वहाँसे आगे अनेक तीर्थ करते करते तीसरी दफे श्रीजगन्नाथ पुरी आये और वहाँ पूर्वके नगर द्वारके नजदीक एक सुन्दर स्थानपर श्रीमद्भागवत पाराणयका श्रवण कराया। आगे दूसरे महत्त्वके तीर्थ करते करते आप माताजी और सेवकोंके साथ काशीमें वापस आ पहुँचे। काशीमें पुरुषोत्तमदास सेठके यहाँ रहनेकी व्यवस्था थी ही, यहाँ आनेके बाद पत्नीका द्विरागमन संपन्न हुआ और स्वस्थता प्राप्त करके श्रीमद्भागवतकी दूसरी टीका 'सुबोधिनी' लिखनेका आरम्भ किया। आपका नियम था कि आप बोलते जाँय और उनके शिष्य माधवभट्ट काश्मीरी लिखते जाँय। प्रवासमें भी यही क्रम चालू था। दूसरे भी पुष्टिमार्गपर छोटे छोटे प्रकरण ग्रन्थमें यहाँ बनते जाते थे।

काशीके निवास दरम्यान विद्वानोंके साथ वाद विवाद और चर्चाओंकी झंझट रहती थी, सुबोधिनी लेखनमें यह बाधारूप था। इस कारण आपने प्रयाग त्रिवेणी नजदीक पश्चिम तीरपर अडेलके पासका एक स्थान पसन्द किया और पारंपरिक चले आते अग्निहोत्रको भी वहाँ स्थिर किया। बीच बीच यात्राके लिए आप व्रजमें आते थे। ऐसे ही एक समय गौरांग श्रीचैतन्य महाप्रभुका मिलाप हो गया था। वि० सं० १५६८ (ई० स० १५११)में फागुण सुदि ६ के दिन आप वृन्दावन आये तब वहाँ चार मास ठहरे थे। और दो स्कन्धोंकी सुबोधिनी टीकाका लोगोंको श्रवण करवाया था; भाण्डीरवनकी कुञ्जोंमें रूप, सनातन और जीव गोस्वामीके साथ भगवच्चर्चा भी हुई थी। आप अपने कुटुम्बको वृन्दावनमें ही रखकर उत्तराखण्डकी यात्रामें गये थे। सं० १५६८ (शक १४३३-ई० स० १५११)के अन्तमें आप बदरी नारायण पहुँचे थे। और वहाँके गोर वासुदेवको वृत्तिपत्र लिख दिया था। वृन्दावन वापस जाकर आ गये तब बारंबार प्रकाण्ड भगवद्भक्त श्रीमधुसूदन सरस्वतीका आवागमन और भगवच्चर्चा चालू थी। एक प्रसंगपर गौरांग श्रीचैतन्य महाप्रभुजी अडैलके पाससे निकले और श्रीआचार्यजीके वहाँ मिलनेके लिए आये। उस समय मध्याह्नका था और श्री····का राजभोग हो गया था। सब लोग प्रसाद लेकर निवृत्त हो बैठे थे। श्री आचार्यजीने पत्नीको सामग्री तुरन्त तैयार करनेको कहा। एक ओर भगवच्चर्चा होती रही और दूसरी ओर पाक संपन्न होता चला। तयारीपर पत्नीने श्री····को जगानेके लिये विज्ञप्ति की, जिससे सामग्री श्री····को समर्पित की जाय और बादमें श्रीचैतन्यजीको प्रसाद लिवाया जाय-क्या भगवद्भाव! आचार्यजीने कहा कि 'श्री····को जगानेकी कोई जरूरत नहीं है। श्रीचैतन्यजीके हृदयमें निरन्तर बिराजते हुए भक्ताधीन भगवान् साक्षात् अरोगेंगे; अतः सब सामग्री उनके समक्ष ही धर दो', इस प्रसंगके बाद भी एक दो दफे श्रीचैतन्य महाप्रभु और श्रीआचार्यजी महाप्रभुका मिलाप हुआ था।

अडेलमें स्थिर होनेके बाद विजयनगरमें राज्यमें जमा रखी हुई ४००० मोहरोंकी रकम मंगवा ली

और तीन सोमयाग बड़े समारम्भोंसे संपन्न किया। अडेलके निवास कालमें आप ब्रजमें जाते थे और भारतवर्षके अन्य तीर्थोंमें भी जाते थे। आचार्यश्रीकी धर्माचार्य रूपकी ख्याति अब सर्वत्र प्रसृत हो गई थी। सिकन्दर लोदी (ई० स० १४८८-१५१९) का आचार्यश्रीकी ओर बड़ा आदर था और अपने चित्रकारको भेजकर 'दामोदरदास हरसानी दण्डवत् प्रणाम करते हैं', कृष्णदास मेघन बैठे हैं और माधवभट्टकाश्मीरीको श्रीआचार्यजी सुबोधिनीजी लिखाते हैं इस प्रकारका चित्र भी बनवाया था, जो आज किशनगढ़ नरेशके पास सेवामें है। सिकदर लोदीसे हुकम हो गया था इस कारण ब्रजभूमिमें भारतवर्षकी हिन्दू प्रजाको यात्राकी सुविधा हो गई थो; कितनेक लोग अडेल तक भी आचार्यश्रीके दर्शनके लिए जाते थे यों अब शिष्योंकी तादात भी उत्तरोत्तर वढ़ती जाती थी।

पुत्रप्राप्ति और प्रयाण

अडेलके स्थायी निवासमें सं० १५७० (ई० स० १५१३) व्रज आश्विनवदि १२ के दिन श्रीगोपीनाथजीका प्राकट्य हुआ। बाद जब काशी पधारे तब वहाँ न ठेरते नजदीकके पूर्वपरिचित चरणाट नामक स्थानमें रहे, जहाँ सं० १५७२ (ई० स० १५१५)—व्रज पौस वदि ९ शुक्रवारके दिन दूसरे पुत्र श्रीविट्ठलनाथजीका प्राकट्य हुआ। यहाँ तकमें भागवत सुबोधिनीके १-२-३ स्कन्धके लेखन कार्य हो चुका था। अब शायद देह छोड़नेका प्रसंग आ जाय, इस शंकासे आपने १० वें स्कन्धकी टीका लिखना शुरू किया। अडेल एवं चरनाटके निवास दरम्यान ब्रजयात्राका उनका क्रम चालू था। और एक बार तो सं० १५७५ (ई० स० १५२७) में सौराष्ट्रमें द्वारका भी गये थे ऐसा प्रमाण मिला है। जब यह देह छोड़नेका प्रसंग आया तब ११ वें स्कन्धके तीन अध्यायकी टीका पूर्ण हुई थी और ४ थे अध्यायके आरम्भ मात्र किया था। आप खुद कहते हैं कि भगवान्की तीसरी आज्ञा हुई और आपने आतुर संन्यास लिया। आप काशी पधारे और वहाँ हनुमान घाटपर तेज पुंजके रूपमें देहत्याग किया—सं० १५८७ (ई० स० १५३०) के आषाढ़ वदि २ ऊपर ३ को रथयात्राके उत्सवकी समाप्तिके समय ही।

दोनों पुत्रोंकी आयु इतनी वड़ी नहीं थी। आपके शिष्योंने रक्षण भार उठा लिया। श्रीगोवर्धन पर्वत पर श्रीनाथजीकी सेवाका वहीवट सुव्यवस्थित रूपमें चला जा रहा था। उत्तरावस्थामें गुरु माधवानन्दजी और इनके बाद बंगाली वैष्णव सेवामें रहते थे। क्रममें कुछ वाधा उपस्थित हुई तब आचार्यजीके एक शिष्य गुजराती कृष्णदासजीने वही वट कबज करके पुष्टिमार्गीय पद्धतिसे सेवा प्रकार चलनेकी व्यवस्था की। श्रीगोपीनाथजीको एक पुत्र हुआ था। बचपनमें उसका देहान्त हुआ। श्रीगोपीनाथजी भी युवावस्थामें गये और पुष्टिमार्गके प्रसार प्रचारका भार श्रीविट्ठलनाथजी पर आया। आप चरणाटमें ज्यादा करके रहते थे। वे अब मथुराजीमें आ बसे, वे बड़े दार्शनिक पण्डित एवं कवि भी थे। पिताजीकी ग्रन्थ लेखन और संप्रदाय प्रसारकी प्रणालीको उन्होंने प्रबलतासे आगे बढ़ाया। इस संप्रदायने ब्रजभाषाकी अपार सेवा की है। आचार्यश्रीके चार सेवक कुम्भनदासजी, सूरदासजी, परमानन्ददासजी और गुजराती कृष्णदासजी ने श्रीनाथजीकी कीर्तन सेवामें, कृष्ण लीलाके सहस्रों पदोंकी रचना दी, तो श्रीविट्ठलनाथ गुसांईजीके चार सेवक चत्रभुजदासजी, नन्ददासजी गोविन्द स्वामी और छीत स्वामीने उनमें बड़ी भारी संख्याका प्रदान किया। आगे भी अनेक कवियोंने अपनी कीर्तन सेवासे ब्रजसाहित्यको बड़ा महत्त्व दिया।

श्रीविट्ठलनाथजीके सात पुत्र हुए और उनके सात घरोंकी सात गादी हुई। इस सिवा समग्र भारतवर्षमें अनेक नगरोंमें, गाँवोंमें पुष्टिमार्गीय मन्दिरोंमें भगवान् श्रीकृष्णके ही भिन्न भिन्न लीला स्वरूपोंकी सेवाका क्रम चलता है। पुष्टिमार्गका आज प्रधान स्थान मेवाड़में पधारे हुए श्री नाथजीका नाथद्वारमें है।

●

द्वैत-अद्वैत का समन्वय

श्री आनन्दस्वरूप गुप्त

प्राच्य तथा पाश्चात्य देशोंके सभी अध्यात्म-दर्शन द्वैतपरक या अद्वैतपरक इस प्रकारके दो विभागोंमें विभक्त किये जा सकते हैं। ऊपरी दृष्टिसे ये एक दूसरेके विपरीत प्रतीत होते हुए भी ये दोनों ही प्रकारके दर्शन (तत्त्वज्ञान) वस्तुतः परस्पर समन्वयात्मक हैं, और मनुष्यजीवनके विकासस्तरके भेदसे मानवजीवनके लिए दोनोंका ही उपयोग है। परन्तु पाश्चात्य दर्शनका मुख्य उद्देश्य जहाँ परमतत्त्व (ultimate Reality) का प्रायः बौद्धिक ज्ञान प्रदान करना है वहाँ प्राच्य दर्शनका—विशेषतः भारतीय दर्शनका—लक्ष्य मनुष्यको बुद्धिसे ऊपर उठाकर उसे परमतत्त्वका दर्शन (साक्षात्कार) कराना है और पुनः जीवनके व्यावहारिक क्षेत्रमें उस दर्शन या साक्षात्कारका अवतरण कराना है। अतः द्वैत तथा अद्वैत दोनों ही प्रकारके भारतीय आध्यात्मिक दर्शन केवल बुद्धिकी ही वस्तु न रहकर सम्पूर्ण जीवनकी वस्तु बन गये। इसीलिए प्रायः भारतके सभी दार्शनिक तथा मनीषी सच्चे अर्थमें तत्त्ववेत्ता तथा आत्मदर्शी थे। उनका दर्शन-ज्ञान उनके जीवनमें ओतप्रोत था। वैसे तो पश्चिममें भी हमें शोपनहार जैसे कुछ दार्शनिकोंके रूपमें ऐसे उदाहरण मिलते हैं। परन्तु ये पाश्चात्य दार्शनिक प्रायः भारतीय तत्त्वज्ञान तथा आध्यात्म ग्रन्थों (गीता, उपनिषद् आदि) से प्रभावित थे।

द्वैत तथा अद्वैत तत्त्वज्ञानका जीवनके व्यवहारक्षेत्रमें जहाँ अलग अलग भी उपयोग है, वहाँ इन दोनोंका जीवनमें समन्वय भी सम्भव है। ऐसा समन्वय ही प्रस्तुत लेखका विषय है। भारतीय दृष्टि प्रायः समन्वयात्मक हो रही है और है; भारतीय दृष्टिसे जीवनमें द्वैत अद्वैतके इस प्रकारके समन्वयका कुछ दिग्दर्शन यहाँ उपस्थित किया जा रहा है।

इन्द्रियजन्य ज्ञानकी सापेक्षता तथा अनेकरूपता

सभी इन्द्रियजन्य ज्ञान सापेक्ष हैं। किसी भी इन्द्रिय द्वारा जब हमें किसी पदार्थका बोध होता हैं तो हमारा वह इन्द्रियजन्य बोध किसी विशेष दृष्टिकोण तथा विशेष परिस्थितिके विचारसे ही यथार्थ कहा जा सकता है, क्योंकि किसी भिन्न दृष्टिकोण तथा भिन्न परिस्थितिके विचारसे वही बोध अयथार्थ भी कहा जा सकता है। इन्द्रियजन्य ज्ञानकी भाँति हमारा मानसिक तथा बौद्धिक ज्ञान भी सापेक्ष ही है। विश्वकी जिस रूपमें हमें प्रतीति होती है वह प्रतीति ज्ञाता और ज्ञेयकी विशेष परिस्थितिपर, तथा ज्ञान-ग्राहक इन्द्रियोंकी विशेष रचना तथा अवस्था पर भी निर्भर होती है। यदि हम (ज्ञाता) और बाह्य प्रपंच (ज्ञेय) किसी भिन्न परिस्थितिमें होते, और हमारी इन्द्रियों की रचना भी भिन्न प्रकार की होती, तो यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है, कि उस दशामें विश्वविषयक हमारे ज्ञानका स्वरूप कुछ और ही होता। सीधी लकड़ी भी जलके भीतर तिरछी प्रतीत होती है और नेत्र तिरछा करके देखनेसे कभी-कभी एक चन्द्रमाके दो चन्द्रमा प्रतीत होते हैं। पाण्डु रोगके कारण नेत्रोंके पीत वर्ण होनेसे सभी वस्तुएं पीली दिखाई पड़ती हैं। अणुवीक्षण यन्त्रसे छोटी वस्तु बहुत बड़ी, तथा दूरवीक्षण यन्त्रसे दूरस्थ वस्तु समीपस्थ प्रतीत होती है, दूर-

पर स्थित होकर देखनेसे बड़ी वस्तु भी छोटी प्रतीत होती है, तथा अत्यन्त निकट होनेसे दिखाई देने योग्य वस्तु (अक्षर इत्यादि) भी दिखाई नहीं देती। प्रेमीको कुरूप प्रिय भी सुन्दर प्रतीत होने लगता है, ज्वरार्दित व्यक्तिको मीठी वस्तु भी कड़वी लगती है। ऐसी स्थितिमें यही कहा जा सकता है कि हमारा सारा ज्ञान सापेक्ष ही है। अतः यह निश्चय पूर्वक नहीं कहा जा सकता कि व्यक्त जगत् जैसा हमें प्रतीत हो रहा है वह वस्तुतः वैसा ही है। यदि हमारे इन्द्रियोंका निर्माण अन्य प्रकारका होता तो सम्भव है जगत्की प्रतीति भी हमें कुछ भिन्न प्रकार की होती। और यदि मानव जातिके सौभाग्यवश मनुष्यमें किसी छठी ज्ञानेन्द्रियका भी विकास हो जाय अथवा किसी कारणसे वर्त्तमान पंच इन्द्रियोंका अलौकिक विकास या दिव्यीकरण हो जाय तो सम्भव है बहुत सी सत्ताएं जिसका हमें किंचित्मात्र भी अनुमान नहीं है, प्रत्यक्ष होकर मनुष्य की सारी ज्ञानधाराको ही परिवर्तित कर दें।

निरपेक्ष पारमार्थिक तत्त्वज्ञानका स्वरूप

अतएव प्रतीत होने वाला रूप वस्तुका यथार्थ रूप नहीं है। भिन्न-भिन्न व्यक्तियोंको यदि एक पदार्थ की समान रूपमें भी प्रतीति होती है तो उसका कारण केवल यही है कि उन भिन्न-भिन्न व्यक्तियों की उन उन ग्राहक इन्द्रियोंमें समानता है और फिर भी किसी भी पदार्थके विषयमें किन्हीं भी दो व्यक्तियों की प्रतीति शतप्रतिशत एक समान ही है, यह कभी भी सिद्ध नहीं किया जा सकता। पुनः एक ही वस्तु ज्ञानविशेष तथा परिस्थिति विशेषके कारण प्रिय, अप्रिय, सुखरूप, दुःखरूप, सुन्दर, कुरूप, छोटी बड़ी इत्यादि भिन्न-भिन्न रूपोंमें प्रतीत होती है। इसलिए भिन्न-भिन्न प्रतीत होने वाला रूप वस्तुका यथार्थ रूप नहीं है, वस्तुतत्त्व नहीं है। अतः कोई भी इन्द्रियजन्य प्रतीति तत्त्वज्ञान नहीं कही जा सकती। तत्त्व अर्थात् वस्तुके यथार्थ स्वरूपमें तो कोई भी भेद होना सम्भव नहीं है। अतः तत्त्वज्ञानमें भी भेद नहीं होना चाहिए, वह ज्ञान पारमार्थिक तथा निरपेक्ष होना चाहिए। इसलिए जितनी भी सभेद प्रतीति है वह सभी अयथार्थ है, मिथ्या है। तत्त्व तो सदैव ही भेदरहित और एकरस बना रहेगा। जो तत्त्व है एवं वस्तुतः सत् है वह तो अद्वैत और अद्वयके अतिरिक्त कुछ और हो ही नहीं सकता। सभी भेद केवल प्रतीतिमात्र है- सत्का विवर्तमात्र है, वह वस्तुका, सत्का, पारमार्थिक स्वरूप नहीं है। सभी विकार नाशवान् है, अतएव असत् है वाचारम्भणमात्र है।[1] विकारों की प्रकृति अर्थात् मूल पारमार्थिक सत्ता ही यथार्थ सत् और शाश्वत है, और वह स्वरूपतः अविकार्य है। वह मूलतत्त्व, वह पारमार्थिक सत्ता, चेतन है अथवा जड़ यह एक अलग प्रश्न है। परन्तु है वह मूलतत्त्व एक और अखण्ड। इस अद्वैत तत्त्व की बाहर भीतर सर्वत्र यथार्थ उपलब्धि ही मानव की जीवनयात्राका चरम लक्ष्य है।

मानव जीवन की साध—अद्वैत तत्त्वका साक्षात्कार

अनादिकालसे मानव हृदय उस अद्वैत तत्त्वकी प्राप्तिके लिए व्याकुल होता चला आ रहा है, मानव उसी अनादि तथा अनन्त तत्त्वकी खोजके लिए अनादिकालसे अपनी अनन्त यात्रा चला रहा है। और उसकी सारी चेष्टाओंका पर्यवसान उसी एक तत्त्वके ज्ञानमें होना सम्भव है। मानव ही क्या, विश्वका अणु-अणु तीव्रतम वेगसे गतिशील है। मानों वह अपने किसी प्रियतमसे मिलनेके लिए छटपटा रहा है, और उस सुखद मिलनके लिए थोड़ा भी विलम्ब सहन करनेके लिए तैयार नहीं है। वह किसी

१. यथा सौम्यैकेन मृत्पिण्डेन सर्वं मृन्मयं विज्ञातं स्याद्, वाचारम्भणं विकारो नामधेयं, मृत्तिकेत्येव सत्यम्। (छा० उप० ६-१-४)

अनिर्वचनीय सत्यकी अनुभूतिके लिए एक ऐसी लम्बी दौड़ लगा रहा है जिसका विराम कहीं भी होने वाला प्रतीत नहीं होता।[१]

परन्तु इन्द्रिय सोपान द्वारा इस पारमार्थिक तत्त्व, इस परम सत्य, तक पहुँचने की आशा मनुष्य के लिए केवल दुराशामात्र ही रही है। मनुष्य-हंस अपनी मधुर कल्पनाके सुन्दर पंखों द्वारा उस एकमात्र परम-तत्त्व की प्राप्तिके लिए निरन्तर ऊपर-ऊपर उड़ता जा रहा है, सहस्रों दिन बीत गये, पर उसके वे पंख अभी तक फैले ही हुए हैं।[२] संसारके विविध प्रकारके अनुभवों को लेता हुआ, प्रकृतिके अनेक दुर्भेद्य रहस्यों को भेदन करता हुआ, अद्‌भुत अद्‌भुत आविष्कारों द्वारा अपने बुद्धि-वैभवका चमत्कार दिखाता हुआ वह निर्बाध गतिसे ऊपर उड़ा चला जा रहा है। और उस स्वर्ग, उस आनन्दपद को प्राप्तिके लिए लालायित है, जिसको प्राप्त करनेके लिए ही उसने अपनी यह अद्‌भुत उड़ान आरम्भ की है।

अद्वैत तत्त्व या परम सत्य की अवाङ्‌मनसगोचरता

जिन सौभाग्यशाली व्यक्तियों को, जिन क्रान्तदर्शी ऋषियों को, कभी इस परम सत्य की झांकी मिली उन सभीका यही अनुभव है कि वह परमतत्त्व अवाङ्‌मनसगोचर है, क्योंकि वाणी तो सापेक्ष वस्तुका ही सापेक्ष वर्णन कर सकती है, और मन भी सापेक्ष वस्तुका सापेक्ष चिन्तन, संकल्पन करनेमें ही समर्थ है। नेत्रों तथा श्रोत्रों की तो वहाँ पहुँच ही क्या हो सकती है? अतएव जिन ऋषियोंको उस अद्वैत तत्त्वका साक्षात्कार हुआ, उनका वह अनुभव उन्हीं तक सीमित रहा। अपने उस साक्षात्कारका वे न तो वाणी द्वारा ही वर्णन कर सके, और न किसी प्रकारसे परम तत्त्व की अपनी उस अनुभूतिको वे सामान्य जनता की चीज बना सके वे तो नेति नेति कहकर ही चुप हो गए, उनके लिए उनका वह अनुभव गूंगेका गुड़ ही बना रहा। उन्होंने स्पष्ट कह दिया कि "परम तत्त्व को यह हमारी अनुभूति उपदेशका विषय नहीं, क्योंकि न तो वहाँ चक्षु की ही पहुँच है न वाणी की और न मन ही अपने सारे विद्युद्वेगसे वहाँ पहुँचनेमें समर्थ है। अतः हम नहीं जानते कि किस प्रकार इसका अनुशासन (उपदेश) करें।"[३] इस प्रकारके साक्षात्कर्ता ऋषि सभी देशोंमें होते आए हैं। यद्यपि वे सभी परम तत्त्वका वर्णन विधिमुखेन न कर सके, फिर भी उन्होंने उसकी ओर निर्देश किया और अपने जीवन की उच्चता तथा महत्तासे मानवको श्रद्धाका अवलम्बन दिया। श्रद्धाके उस संबलको पाकर ही जिज्ञासु पथिक उत्साह सम्पन्न होकर आगे बढ़ता चला जा रहा है। उसका लक्ष्य है परम सत्य, अद्वैत तत्त्वकी प्राप्ति, भेदमें अभेद (unity in divesity)की अनुभूति, तथा अखिल प्रपंचके मूलमें निहित किसी अनिर्वचनीय अखण्ड सत्ताका साक्षात्कार।

ज्ञानका आधार तथा लक्ष्य–भेदमें अभेदकी अनुभूति

वस्तुतः देखा जाय तो मनुष्यके सारे ज्ञानका आधार तथा लक्ष्य भेदमें अभेदकी अनुभूति ही है, चाहे वह ज्ञान इन्द्रियज हो किंवा अतीन्द्रिय। व्यक्ति विषयक ज्ञान अनेक व्यक्तियोंमें समवेत एकजाति (सामान्य सत्ता)के ज्ञान पर ही अवलम्बित है, जातिसे विच्छिन्न व्यक्तिकी प्रतीति असम्भव है। नैयायिकोंका निर्विकल्पक तथा बौद्धोंका स्वलक्षण ज्ञान तो केवल कहने की ही बात है प्रतीतिका विषय नहीं। वह ज्ञान रेखागणितके बिन्दुके समान कोरी कल्पनाका विषय है। अतः हमारे व्यावहारिक ज्ञानका आधार भी अनेकतामें एकता की

---

१. कथं वातो नेलयति कथं न रमते मनः।
किमापः सत्यं प्रेरयन्ती नेलयन्ति कदाचन॥ (अथर्ववेद १०-७-३७)

२. "सहस्राह्ण्यं वियतौ अस्य पक्षौ हरेर्हंसस्य पततः स्वर्गम्" (अथर्ववेद १०-८-१८)

२. "न तत्र चक्षुर्गच्छति न वाग्गच्छति न मनो न विद्मो न विजानीमो यथैतदनुशिष्याद्" (केनोप० १-३)

अनुभूति ही है। क्योंकि अनेकता ज्ञानके लिए एकताका ज्ञान अपेक्षित है। "गो" व्यक्तिके ज्ञानके लिए गो व्यक्तियोंमें समवेत "गोत्व" जातिका ज्ञान अनिवार्य है।

जहाँ हमारे व्यावहारिक ज्ञानका आधार भेदमें अभेद, अनेकतामें एकताकी अनुभूति है, वहाँ शास्त्रीय ज्ञानका आधार तथा लक्ष्य भी भेदमें अभेद, द्वैतमें अद्वैत को अनुभूति ही है। कुशल वैज्ञानिक अनेक प्रकारके पदार्थोंका निरीक्षण करके उनमें कुछ समान तत्त्वोंका अनुसंधान करता है, तथा उनका वर्गीकरण करता है, पुनः अनेक वर्गों या श्रेणियोंको भी एक बड़े तथा व्यापक वर्ग या श्रेणीमें निबद्ध करता है, इस प्रकार क्रमशः उच्च, उच्चतर वर्गीकरण (classibication) द्वारा वह अनेकतासे एकता की ओर अग्रसर होता चला जाता है। और उस एकताको प्राप्त करके सारी अनेकताओंमें उसी एकताका दर्शन करता है। पहले वैज्ञानिकोंके अनुसार सृष्टिके मूल तत्त्वों की संख्या अनेक थी, किन्तु यह संख्या अब घटते-घटते एकत्व की ओर जा रही है। पहले वे द्रव्य (matter) और शक्ति (energy)को दो भिन्न पदार्थ समझते थे, किन्तु अब द्रव्यको शक्ति का ही परिवर्तित रूप समझा जाने लगा है। अब भौतिक विज्ञानके अनुसार भी शक्तिके भिन्न भिन्न रूप एक दूसरेमें परिवर्तित किए जा सके हैं। शब्द विद्युत्धारामें और फिर विद्युत्धारा शब्दमें परिवर्तित हो जाती है। इस प्रकार भौतिक विज्ञान भी उत्तरोत्तर भौतिक अद्वैतवाद की ओर बढ़ रहा है।

दर्शनशास्त्र की प्रगति–द्वैतसे अद्वैत की ओर

इसी प्रकार दर्शन अर्थात् आध्यात्मिक विज्ञान की प्रगति भी द्वैतसे आध्यात्मिक अद्वैतवाद की ओर ही अग्रसर हुई। नैयायिकोंने विश्वको सोलह पदार्थोंमें बाँटा, वैशेषिकोंने सात पदार्थोंमें, परन्तु सांख्योंने प्रकृति (अव्यक्त, प्रधान) तथा पुरुष ये दो ही मूल तत्त्व माने। महत् (बुद्धि), अहंकार आदि शेष पदार्थोंको सांख्यने अव्यक्त प्रकृतिके ही व्यक्त विकार माने—किन्तु वेदान्त और आगे बढ़ा, और इस अखिल प्रपंचके मूलमें एक अद्वैत, अखण्ड-चेतन तत्त्वको ही स्वीकार किया। इतना ही नहीं इससे आगे बढ़कर व्यक्त जगत् की केवल व्यावहारिक सत्ता ही स्वीकार की गई, पारमार्थिक सत्ता केवल आत्मा या ब्रह्म की ही मानी गई, और सारी सृष्टिको उस ब्रह्मका, उस अद्वैत चेतन तत्त्वका ही विवर्त (अविद्यमान प्रतीतिमात्र) मान लिया गया। इस प्रकार भौतिक विज्ञान तथा दर्शन दोनों का ही चरम लक्ष्य उत्तरोत्तर भेदमें अभेद, द्वैतमें अद्वैतकी अनुभूति ही रहा है।

अद्वैत की अनुभूतिसे ही परम शान्तिलाभ

यह अभेदानुभूति ही मानव-हृदय की चिरन्तन साध है, और यही वस्तुतः तत्त्वज्ञान है। हमारी सारी चेष्टाओंका पर्यवसान इसी ज्ञानमें है।[1] अभेद की इस अनुभूतिके विना मानवको चैन नहीं। जब तक मनुष्यको इस अद्वैत तत्त्व की, अनेकतामें एकता की, सच्ची अनुभूति नहीं होती तभी तक उसका जीवन मोह और शोकसे व्याप्त रहेगा। एकत्व की अनुभूति होने पर ही मोह और शोकके द्वन्द्वका नाश सम्भव है।[2] अनेकतामें एकता का, विभक्तमें अविभक्तका साक्षात्कार ही सच्चा सात्त्विक ज्ञान है।[3] (भ० ग० १८-२०)

विभक्तमें अविभक्त की अनुभूति ही जीवनमें परम शान्तिका लाभ सम्भव है। वस्तुतः तो एकत्व

१. तु०–"सर्वं कर्माखिलं पार्थ ज्ञाने परिसमाप्यते" (भ० गी० ४-३३)
२. तु०–"तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः" ईशोप० ७
३. तु०–"सर्वभूतेषु येनैकं भावमव्ययमीक्षते।
अविभक्तं विभक्तेषु तज्ज्ञानं विद्धि सात्त्विकम्॥ भ० गी० १८-२०

दर्शन तथा परम शांतिलाभ एक ही वस्तु है, इन दोनोंमें कारण कार्यका बन्धन होनेसे तात्त्विक दृष्टिसे कोई भेद नहीं है, दोनों एक ही सिक्केके दो पक्ष हैं। व्यवहारमें भी हम देखते हैं कि जिन व्यक्तियों तथा वस्तुओं-के साथ हमारा तादात्म्य–एकत्व–अभेद स्थापित हो जाता है उन्हींसे हमें परम सुख मिलता है, और जिनके साथ हमारा भेद बना रहता है, अर्थात् जिनमें हमें आत्मीयताका अनुभव नहीं होता वे व्यक्ति अथवा वस्तुएं हमारे लिए उपेक्षा अथवा दुःखका विषय बनी रहती हैं। हमें अपने पुत्र, मित्र, बन्धु इत्यादि के (जिनके साथ हमारा निजत्व या अभेद स्थापित हो जाता है) उत्कर्षसे सुख मिलता है, परन्तु अन्य वस्तुओं या व्यक्तियोंके उत्कर्षसे (जिनके साथ हम निजत्व की अनुभूति नहीं कर पाते) हमें वैसा सुख प्राप्त नहीं होता। उल्टा मात्सर्यवश कभी कभी तो हमारे असंस्कृत हृदयको उससे आघात ही पहुँचता है। परन्तु ज्यों ज्यों मनुष्यके भीतर निजत्वभावना का, इस अभेदानुभूति का, विस्तार होता है त्यों त्यों उसके जीवनका विकास होता जाता है और जो परिमित निजत्वभावना उसके जीवनमें निकृष्ट स्वार्थभावना या संकीर्णताको उत्पन्न करती थी, वह भावना विस्तृत होकर उसके हृदयको उदार बना देती है। ऐसा मनुष्य सर्वत्र निजत्व, आत्मत्वका, दर्शन करता है वह सर्वभूतात्मभूतात्मा बन जाता है, सारी वसुधा ही उसका कुटुम्ब बन जाती है, अपने परायेका भेद तिरोहित हो जाता है, वह अपने अस्तित्वका अनुभव केवल अपने छोटेसे परिमित शरीरमें ही न करके सर्वत्र अपने आत्माके विभुत्वका ही अनुभव करता है, और इस प्रकार अपने आपको खोकर सच्चे अर्थमें अपने आपको पा लेता है। ऐसे महात्माको तुच्छसे तुच्छ प्राणी तथा वस्तुसे भी विजुगुप्सा, घृणा, द्वेष, ईर्ष्या नहीं होती, उसके विशाल हृदयमें सबके लिए स्थान होता है।[1] उसका मानस राग, द्वैत, भय क्रोधादि की तरंगोंसे विक्षुब्ध न होकर सदा प्रसन्न तथा स्थिर बना रहता है, और तब वह परम शांतिका अनुभव करता है जिसके लिए उसके सम्पूर्ण जीवन की साधना थी। ऐसी स्पृहणीय अवस्थाको प्राप्त करने की कामना किसको न होगी ?

निरतिशय सुखका स्रोत भूमा और उसका स्वरूप

परन्तु कामनामात्रसे ही तो लक्ष्य की प्राप्ति नहीं होती, लक्ष्य प्राप्तिके लिए तो उद्यम करना पड़ता है, निरन्तर कठोर साधना करनी पड़ती है। और जितना ऊंचा लक्ष्य होगा उतनी ही ऊंची साधना होनी चाहिए। मनुष्य की सारी चेष्टाओं तथा प्रवृत्तियोंका एकमात्र स्रोत तथा उसकी सारी सुप्त अथवा उसकी जागरित इच्छाओंका एकमात्र प्रत्यक्ष किंवा परोक्ष आधार तो उसके अन्तरतममें निहित चिर सुख की कामना ही है। मनुष्य सुख प्राप्तिके लिए एक पदार्थके बाद दूसरे पदार्थ का, एक विषयके बाद दूसरे विषय-का भोग करता है, परन्तु थोड़े ही समयके पश्चात् उसे ज्ञात हो जाता है कि कोई भी पदार्थ अथवा विषय उसे स्थायी अथवा पूर्ण सुख प्रदान करनेमें समर्थ या पर्याप्त नहीं है। प्रत्येक पदार्थ तथा विषय सुखके नापसे अल्प अर्थात् छोटे पड़ जाते हैं, अतएव इन पदार्थोंसे, इन विषयोंसे प्राप्त होनेवाला सुख अल्प तथा सापेक्ष है। आज जो पदार्थ सुखरूप है कल वही पदार्थ दुःखरूप हो जाता है। एकके लिए जो सुखरूप है दूसरेके लिए वह उपेक्षणीय है अथवा दुःखरूप है। अतएव अल्प अथवा सापेक्ष सुखसे मनुष्य की आत्यन्तिक तृप्ति होना सम्भव नहीं। उपनिषदोंमें ऋषियोंने यह घोषणा की कि अल्पमें सुख नहीं है भूमामें ही सुख है।[2] जो

---

१. यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्येवानुपश्यति ।
सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विजुगुप्सते ॥ ईशोप० ६

२. "यो वै भूमा तत्सुखं नाल्पे सुखमस्ति, भूमैव सुखम्" (छा० उप० ७-२३)

निरपेक्ष तथा निरतिशय है, जिससे अधिक तथा महान् कोई अन्य सत्ता नहीं है, वही भूमा है, बृहत्तम है, ब्रह्म है शेष सब कुछ अल्प है। भूमाको लक्ष बनाकर जब मनुष्य उसकी ओर निरन्तर गतिसे बढ़ता जाता है, तब उसका जीवन भी उच्च से उच्चतर, महत्से महत्तर बनता चला जाता है। सचमुच लक्ष की ऊंचाईसे ही मनुष्य की ऊंचाई तथा महत्ता मापी जा सकती है।

परन्तु उस भूमा की प्राप्तिके लिए, उस महान् निरपेक्ष शाश्वत सुखकी अनुभूतिके लिए तो मनुष्यको अपना सारा जीवन ही साधनामय बनाना होगा। अपने जीवनको एक विशेष साँचेमें ढालना होगा, दूसरे शब्दों-में उसे अपने जीवनका पुनर्निर्माण करना होगा। परन्तु जिस प्रकार ईंट, लकड़ी, लोहा, सीमेंट इत्यादि उप-करणोंको एक ही स्थान पर अव्यवस्थित रूपमें ही इकट्ठा कर देनेसे ही किसी भवनका निर्माण नहीं हो जाता, उसी प्रकार अव्यवस्थित, निरुद्देश्य, लक्ष्यहीन, कर्मों तथा विचारोंके ढेरसे ही जीवनका निर्माण नहीं हो सकेगा। उत्तम भवनके निर्माणके लिए वास्तुकलाका अध्ययन आवश्यक है, जीवन निर्माणके लिए भी जीवनकला अथवा जीवनयोग सीखने की आवश्यकता है, और आवश्यकता है उस जीवनकलाको जीवनमें उतारने की।

तो हमारे सम्पूर्ण ज्ञानका, तथा सारे कर्मोंका लक्ष्य है भूमा की प्राप्ति और विश्वके मूलमें जो अमृत, अद्वैत, चेतन तत्त्व है वही वस्तुतः भूमा है। इस भूमामें द्वैतका सर्वथा अभाव है। एकमात्र भूमा ही अमृत है, शेष जो कुछ भी अल्प है अर्थात् भूमासे निम्न है, वह भी मर्त्य है, नाशवान् है।[1] भूमा ही एकमात्र परम ज्ञेय है, उसका ज्ञान ही सच्चा ज्ञान है। वेद की सब ऋचाएं उसी अक्षर परम व्योममें प्रतिष्ठित हैं, सब उसी एकमात्र अक्षरका प्रतिपादन कर रही हैं। जो उस अक्षर भूमा को, अद्वैत तत्त्वको नहीं जान सका वह वेद पढ़कर भी क्या करेगा,[2] विश्वके सारे ज्ञानसे भी वह कौनसे लाभ की प्राप्ति कर सकेगा?

अद्वैत की प्राप्तिके लिए द्वैतका सहारा अनिवार्य

परन्तु इस अद्वैत तत्त्वको, अमृत भूमाको, द्वैत पर आश्रित मर्त्य देहधारी कैसे जाने? मनुष्य और उसका सम्पूर्ण जीवन ही द्वैतके अन्तरगत है। विश्वका सारा व्यवहार ही द्वैत पर आश्रित है। द्वैतसे बाहर जाकर ही अद्वैत प्राप्त किया जा सकता है। परन्तु क्या मनुष्यके लिए द्वैतका अतिक्रमण करना सम्भव है, शक्य है? यह एक ऐसा प्रश्न है जो प्रत्येक सच्चे जिज्ञासुके मनमें उठा करता है। और जिसको सुलझानेका तत्त्वदर्शी ऋषियोंने, संसारके सभी मनीषियोंने अपने-अपने ढंगसे प्रयत्न किया है।

द्वैत की चाहे पारमार्थिक सत्ता न हो, व्यावहारिक सत्ता तो है ही, इसे कौन इनकार कर सकता है? मनुष्य, उसका जीवन, और संसार तथा उसका सारा व्यवहार सभी व्यावहारिक रूपसे सत्य हैं, उसकी उपेक्षा करना उसका उचित उपयोग न करना किसी भी प्रकारसे वांछनीय नहीं है। मानव जीवन द्वैत वृक्षपर लगा हुआ एक सुन्दर फल है। जब तक वह इस वृक्षसे अपनी पूरी पुष्टि, पूरा विकास, नहीं प्राप्त कर लेता तब तक वह द्वैतसे, मृत्युके बन्धनसे छुटकारा नहीं पा सकता, और तब तक उसका अमृतसे वियोग बना ही रहेगा। इस लिए अद्वैतके साक्षात्कारका, भूमा की प्राप्तिका, मृत्युसे पार होनेका उच्च लक्ष्य रखते हुए द्वैतके सहारे

---

१. यत्र नान्यत्पश्यति नान्यच्छृणोति नान्यद्विजानाति स भूमा····यो वै भूमा तदमृतमथ यद्अल्पं तन्मर्त्यम् (छान्दोग्योपनिषद् ७-२४)

२. ''ऋचोऽक्षरे परमे व्योमन् यस्मिन्देवा अधिविश्वे निषेद्धः।
यस्तत्र वेद किमृचा करिष्यति य इत् तद् विदुस्त इमे समासते॥ (ऋग्वे० १-१६४)

शनैः-शनैः ऊपर उठता है। मनुष्यके लिए वेदका अमर आदेश है "उद्यानं ते पुरुष नावयानम्" (अथर्ववेद ८-१-६) "हे पुरुष, तेरा निरन्तर उद्यान, (ऊर्ध्वगमन), हो, अवयान (अधोगमन, अधोगति) न हो।" वेदके इस उच्च आदेशको भगवान् कृष्णने गीतामें पुनः दोहराया "उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत्" (६-५), "मनुष्य अपने आत्माका उद्धार करे, उसे ऊपर उठावे नीचे न गिरावे।" कौन है ऐसा अभागा जो उद्यान (ऊपर उठना) आत्मोद्धार नहीं चाहता।

जैसा कि पहले कहा गया है उद्यान अर्थात् आत्मोद्धारके लिए आवश्यकता है साध्य तथा साधनके सही ज्ञान की, लक्ष्य तथा साधनाके उचित सामंजस्यकी अर्थात् जीवनकला सीखकर उसे ठीक प्रकारसे जीवनमें उतारने की। मनुष्यका जीवनकाल अत्यन्त ही परिमित है। अनन्त कालके अपार सागरके एक बूंदसे भी अल्प है हमारा जीवनकाल; ऐसी परिस्थितिमें क्या नहीं जानना है और क्या जानना है, क्या नहीं करना है और क्या करना है, इसका हमें विवेकपूर्ण चुनाव कर लेना होगा, फल्गुको त्यागकर सारको ग्रहण करना ही बुद्धिमत्ता है। सभी प्रकारका ज्ञान उपादेय नहीं है, सभी प्रकारका कर्म करणीय नहीं है। ऐसा कोरा ज्ञान जिसका जीवन-निर्माणसे, आत्मविकाससे, आत्मोद्धार तथा उद्यानसे कोई भी सम्वन्ध न हो भाररूप है क्योंकि वह जीवनको ऊपर उठनेसे रोकता है। गीताके अनुसार जिस ज्ञानसे जीवनमें कोई उच्च परिवर्तन न हो, जिस ज्ञानसे जीवनमें दैवी सम्पद्की वृद्धि न हो, संक्षेपमें जिस ज्ञानसे जीवनका विकास तथा उत्थान न हो वह ज्ञान वस्तुतः अज्ञान ही है।[1] इसी प्रकार जिस कर्मसे मनुष्य अपने लक्ष्यकी ओर अग्रसर न हो, जिस कर्मसे मनुष्य अपने चारों ओरके द्वैतके आवरणको, त्रिगुणात्मक मायाके वन्धनको, ढीला न कर सके, संक्षेपतः जिस कर्म द्वारा, जीवनकी जिस गति द्वारा, वह भूमाके, अद्वैत अमृततत्त्वके अधिकाधिक निकट न पहुँच सके वह कोरा अकर्म या विकर्म है। और उसके द्वारा केवलमात्र जीवकी शक्तिका ह्रास ही होता है।

व्यवहारमें अद्वैत तथा द्वैतके समन्वयका स्वरूप

अतएव द्वैत से पार होनेका, अद्वैतकी प्राप्तिका, एक मात्र उपाय है जीवनोपयोगी ज्ञान तथा कर्मके द्वैतका सहारा लेकर दृढ़तापूर्वक निरन्तर आगे वढ़ते रहना। ज्ञानके दायें पगको आगे रखते हुए कर्मके वाँए पगसे उसका अनुसरण करते जाना, ज्ञान और कर्मके दोनों पंखोंमें संतुलन (Balance) रखते हुए अवाध गतिसे ऊपर ऊपर उड़ते जाना। ज्ञान और कर्मके इस संतुलनमें जहाँ अन्तर पड़ा कि ऊपरके उड़नेमें, उद्-यानमें, बाधा पड़ जाती है और मनुष्य फिर द्वैतकी ओर लौटने लगता है। ज्ञानके साथ कर्मका मेल न हो तो ज्ञान पंगु है, और कर्मका आधार ज्ञान न हो तो कर्म अन्धा है। ज्ञान और कर्मके सही संतुलनसे, ठीक समन्वयसे ही जीवनकी ऊर्ध्वगति संभव है। द्वैतसे ऊपर उठकर ही अद्वैतकी प्राप्ति शक्य है।

अद्वैतकी प्राप्तिके निमित्त आसक्तिका त्याग तथा अभेद भावनाका अभ्यास होना आवश्यक है। ज्यों-ज्यों मनुष्यके हृदयमें अनासक्तिकी वृद्धि होती जाती है, त्यों-त्यों उसके अन्तस्थलमें अभेद भावनाकी प्रतिष्ठा होती जाती है। आसक्तिके त्यागका सर्वोत्तम उपाय है अपनी दृष्टिको, अपने विचारोंको उदात्त, विशाल और व्यापक बनाना, और अपने प्रत्यंक कार्यको विशाल और व्यापक दृष्टिसे करना। क्षुद्र दृष्टि

---

१. भगवद्गीता १३। ७-११।

तथा संकुचित विचारधारा ही आसक्तिको जन्म देती है। तथा फिर यह आसक्ति भेदभावनाकी वृद्धिमें सहायक होती है। अतएव अपने प्रत्येक कर्तव्यको, प्रत्येक कार्यको (चाहे वह कार्य जनसमाजमें कितना ही छोटा या तुच्छ क्यों न समझा जाता हो) जब मनुष्य स्वार्थबुद्धि या आसक्तिका त्याग करके पूरे कौशल तथा मनोयोग पूर्वक करने लगता है, और उस कार्यको करनेमें अपने वैयक्तिक स्वार्थ साधनकी अपेक्षा समाज-कल्याणको, भूतहितको, ही अधिक महत्त्व देने लगता है, तभी उसके अन्दर विशाल और व्यापक दृष्टिका उत्तरोत्तर विकास सम्भव है। और जब मनुष्यकी दृष्टि इतनी विशाल और व्यापक हो जाती है कि उसका प्रत्येक कार्य, उसके शरीरकी प्रत्येक चेष्टा, श्वासोच्छ्वाससे लेकर भोजन करने तथा सोने तककी उसकी प्रत्येक क्रिया सहज भावसे ही विश्व सेवाके रूपमें, यज्ञके रूपमें, भगवदर्चाके रूपमें, होने लगती है, तब उसका अहंभाव समाप्त हो जाता है; क्योंकि उस अवस्थामें उसके सभी कर्म उसी प्रकार सहजसाध्य हो जाते हैं जिस प्रकार उसकी श्वसन क्रिया। इस स्थितिमें मनुष्यका संसारमें अपना कुछ नहीं रहता और सभी कुछ उसका हो जाता है। तब वह स्वयं इतना विशाल तथा व्यापक बन जाता है कि यद्यपि उसके पैर द्वैतकी भूमिपर टिके रहते हैं, परन्तु उसका सिर अद्वैतके उच्च तथा निर्मल आकाशको छूता रहता है। और तब उसके जीवनमें द्वैत-अद्वैतका सच्चा समन्वय हो जाता है। तब शाश्वत तथा विस्तृत दृष्टिसे द्वैत भूमि पर किया हुआ पृथक्-पृथक् देवका यजन भी उसी अद्वैत तत्त्व या परब्रह्म देवको स्वतः समर्पित होता रहता है।[1]

•

१. यच्चिद्धि शश्वता तना देवं देवं यजामहे।
त्वे इद् हूयते हविः॥ ऋग्वेद १-२६-६

चित्रकाव्य का उत्कर्ष—सप्तसन्धान महाकाव्य

श्री सत्यव्रत 'तृषित' श्रीगंगानगर

अपनी विद्वत्ता तथा रचना कौशलके प्रदर्शनके लिए संस्कृत कवियोंने जिन काव्य-शैलियोंका आश्रय लिया है, उनमें नानार्थक काव्योंकी परम्परा बहुत प्राचीन है। भोजकृत श्रृंगार प्रकाशमें दण्डीके द्विसन्धान काव्यका उल्लेख हुआ है। दण्डीका द्विसन्धान तो उपलब्ध नहीं, किन्तु उनकी चित्र काव्य-शैलीने परवर्ती कवियोंको इतना प्रभावित किया कि साहित्यमें, शास्त्रकाव्योंकी भाँति नानार्थक काव्योंकी एक अभिनव विद्याका सूत्रपात हुआ तथा इस कोटिकी रचनाओंका प्रचुर संख्यामें निर्माण होने लगा। जैन कवियोंने सप्त-संधान, चतुर्विंशति संधान तथा शतार्थक काव्य लिखकर इस भाषायी जादूगरीको चरम सीमा तक पहुँचा दिया। अनेक संधान काव्यमें श्लेषविधि अथवा विलोमरीतिसे एक-साथ एकाधिक कथाओंके गुम्फनके द्वारा काव्य-रचयिताको भाषाधिकार तथा रचना-नैपुण्य प्रदर्शित करनेका अबाध अवकाश मिल जाता है। अतः, आत्मज्ञापनके शौकीन पण्डित कवियोंका इधर प्रवृत्त होना बहुत स्वाभाविक था।

जैन कवि मेघविजयगणि (सतरहवीं शताब्दी) का सप्तसन्धान महाकाव्य[1] चित्रकाव्य शैलीका उत्कर्ष है। साहित्यका आदिम सप्तसन्धान काव्य कलिकाल सर्वज्ञ आचार्य हेमचन्द्रकी उर्वर लेखनीसे प्रसूत हुआ था। उसकी अप्राप्तिसे उत्पन्न खिन्नताको दूर करनेके लिये मेघविजयने प्रस्तुत काव्य रचना की।[2] नौ सर्गोंके इस महाकाव्यमें जैन धर्मके पाँच तीर्थंकरों—ऋषभदेव, शान्तिनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ, महावीर तथा पुरुषोत्तम राम और कृष्ण वासुदेवका चरित श्लेषविधिसे गुम्फित है। काव्यमें यद्यपि इन महापुरुषोंके जीवनके कतिपय महत्त्वपूर्ण प्रकरणोंका ही निबन्धन हुआ है, किन्तु उन्हें एक साथ चित्रित करनेके दुस्साध्य कार्यकी पूर्तिके लिए कविको विकट चित्र शैली तथा उच्छृंखल शाब्दी क्रीडाका आश्रय लेना पड़ा है, जिससे काव्य वज्रवत् दुर्भेध बन गया है। टीकाके जल-पाथेयके बिना काव्यके मरुस्थलको पार करना सर्वथा असम्भव है। विजयामृत सूरिने अपनी विद्वत्तापूर्ण 'सरणी'से काव्यका मर्म विवृत करनेका प्रशंसनीय प्रयास किया है, यद्यपि कहीं-कहीं 'सरणी' भी काव्यकी भाँति दुरूह बन गयी है।

सप्तसन्धान का महाकाव्यत्व

सप्तसन्धानके कर्त्ताका मुख्य उद्देश्य चित्रकाव्य-रचनामें अपनी वैदग्धीका प्रकाशन करना है, और इस लक्ष्यके सम्मुख, उसके लिये काव्यके अन्य धर्म गौण हैं; तथापि इसमें प्रायः वे सभी तत्त्व किसी न किसी रूपमें विद्यमान हैं, जिन्हें प्राचीन लक्षणकारों ने महाकाव्यके लिये आवश्यक माना है। संस्कृत महाकाव्यकी रूढ़ परम्पराके अनुसार प्रस्तुत काव्यका आरम्भ चार मंगलाचरणात्मक पद्योंसे हुआ है, जिनमें जिनेश्वरों तथा वाग्देवीकी वन्दना की गयी है। काव्यके आरम्भमें सज्जनप्रशंसा, दुर्जननिन्दा, सन्नगरी वर्णन आदि बद्धमूल

---

१. जैन-साहित्य-वर्धक सभा, सूरतसे 'सखी' सहित प्रकाशित, विक्रम संवत् २०००।

२. श्री हेमचन्द्रसूरीशैः सप्तसन्धानमादिमम्।
रचितं तदलाभे तु स्तादिदं तुष्टये सताम्॥ प्रशस्ति, २।

रूढ़ियोंका भी निर्वाह हुआ है। रघुवंशकी भाँति सप्तसन्धान नाना नायकोंके चरितपर आधारित है, जो धीरोदात्त गुणोंसे सम्पन्न महापुरुष हैं। इसका कथानक जैन साहित्य तथा समाजमें, आंशिक रूप से जैनेतर समाजमें भी, चिरकाल से प्रचलित तथा ज्ञात है। अतः इसे 'इतिहास प्रसूत' (प्रख्यात) मानना न्यायोचित है। सप्तसन्धान-में यद्यपि महाकाव्योचित रसार्द्रताका अभाव है, तथापि इसमें शान्तरसकी प्रधानता मानी जा सकती है। शृंगार तथा वीर रसकी भी हल्की-सी रेखा दिखाई देती है। चतुर्वर्गमेंसे इसका उद्देश्य मोक्षप्राप्ति है। काव्यके चरितनायक (तीर्थंकर) कैवल्यज्ञान-प्राप्तिके पश्चात् शिवत्वको प्राप्त होते हैं। मानवजीवनकी चरम परिणति सतत साधनासे जन्म-मरणके चक्रसे मुक्ति प्राप्त करना है, भारतीय संस्कृतिका यह आदर्श ही काव्यमें प्रतिध्वनित हुआ है।

सप्तसन्धानकी रचना सर्गबद्ध काव्यके रूपमें हुई है। काव्यका शीर्षक रचना-प्रक्रिया पर आधारित है तथा इसके सर्गोंके नाम उनमें वर्णित विषयके अनुसार रखे गये हैं। छन्दोंके प्रयोगमें भी मेघविजयने शास्त्रीय विधानका पालन किया है। प्रत्येक सर्गमें एक छन्दकी प्रधानता है। सर्गान्तमें छन्द बदल दिया गया है। सातवें सर्गमें नाना छन्दोंका प्रयोग भी शास्त्रानुकूल है। इसके अतिरिक्त इसमें भाषागत प्रौढ़ता, विद्वत्ता-प्रदर्शनकी अदम्य प्रवृत्ति, शैलीकी गम्भीरता, नगर, पर्वत, षड्ऋतु आदि वस्तु-व्यापारके महाकाव्यसुलभ विस्तृत तथा अलंकृत वर्णन भी दृष्टिगोचर होते हैं। अतः सप्तसन्धानको महाकाव्य माननेमें कोई हिचक नहीं हो सकती। स्वयं कविने भी शीर्षक तथा प्रत्येक सर्गकी पुष्पिकामें इसे महाकाव्य संज्ञा प्रदान की है।

कवि-परिचय तथा रचनाकाल

अन्य अधिकांश जैन कवियोंकी भाँति मेघविजयका गृहस्थजीवन तो ज्ञात नहीं, किन्तु देवानन्दाभ्युदय, शान्तिनाथचरित, युक्तिप्रबोधनाटक आदि अपनी कृतियांमें उन्होंने अपने मुनिजीवनका पर्याप्त परिचय दिया है। मेघविजय मुगल सम्राट् अकबरके कल्याणमित्र हीरविजयसूरिके शिष्यकुलमें थे। उनके दीक्षा-गुरु तो कृपाविजय थे, किन्तु उन्हें उपाध्याय पदपर विजयदेवसूरिके पट्टधर विजयप्रभसूरिने प्रतिष्ठित किया था।[1] विजयप्रभसूरिके प्रति मेघविजयकी असीम श्रद्धा है। न केवल देवानन्द महाकाव्यके अन्तिम सर्गमें उनका प्रशस्तिगान किया गया है अपितु दो स्वतन्त्र काव्यों—दिग्विजय महाकाव्य तथा मेघदूतसमस्यालेख-के द्वारा कविने गुरुके प्रति कृतज्ञता प्रकट की है। ये दोनों काव्य विजयप्रभसूरिके सारस्वत स्मारक हैं।

मेघविजय अपने समयके प्रतिभाशाली कवि, प्रत्युत्पन्न दार्शनिक, प्रयोगशुद्ध वैयाकरण, समयज्ञ ज्योतिषी तथा आध्यात्मिक आत्मज्ञानी थे। उन्होंने इन सभी विषयोंपर अपनी लेखनी चलायी तथा सभीको अपनी प्रतिभा तथा विद्वत्ताके स्पर्शसे आलोकित कर दिया। प्रस्तुत महाकाव्यके अतिरिक्त उनके दो अन्य महाकाव्य—देवानन्दाभ्युदय तथा दिग्विजय महाकाव्य सुविज्ञात हैं। मेघविजय समस्यापूर्तिके पारंगत आचार्य हैं। देवानन्द, मेघदूतसमस्यालेख तथा शान्तिनाथ चरितमें क्रमशः माघकाव्य, मेघदूत तथा नैषधचरितकी समस्यापूर्ति करके उन्होंने अद्भुत रचनाकौशलका परिचय दिया है। मेघविजयने किरातकाव्यकी भी समस्यापूर्ति की थी, किन्तु वह अब उपलब्ध नहीं है। लघुत्रिषष्टिशलाका पुरुषचरित, भविष्यदत्तकथा तथा पंचाख्यान उनकी अन्य ज्ञात काव्यकृतियाँ हैं। विजयदेव माहात्म्य विवरण श्रीवल्लभके सुविख्यात विजय-देव माहात्म्यकी टीका है। युक्तिप्रबोधनाटक तथा धर्ममंजूषा उनके न्यायग्रन्थ हैं। चन्द्रप्रभा, हैमशब्दचन्द्रिका,

---

३. गच्छाधीश्वरहीरविजयाम्नाये निकाये धियां प्रेष्यः श्रीविजयप्रभाख्यसुगुरोः श्रीतपाख्ये गणे।
शिष्यः प्राज्ञमणेः कृपादिविजयस्याशास्यमानामग्रणीश्चक्रे वाचकनाममेघविजयः शस्यां समस्यामिमाम्॥
शान्तिनाथचरित, प्रतिसर्गान्ते

हैमशब्दप्रक्रिया उनके व्याकरण-पाण्डित्यके प्रतीक हैं। चन्द्रप्रभामें हैमव्याकरणको कौमुदी रूपमें प्रस्तुत किया गया है। वर्ष प्रबोध, रमल शास्त्र, हस्तसंजीवन, उदयदीपिका, प्रश्नसुन्दरी, वीसायन्त्रविधि उनकी ज्योतिष रचनाएँ हैं। अध्यात्मसे सम्बन्धित कृतियोंमें मातृकाप्रसाद, ब्रह्मबोध तथा अर्हद्‌गीता उल्लेखनीय हैं। इन चौबीस ग्रन्थोंके अतिरिक्त पंचतीर्थस्तुति तथा भक्तामरस्तोत्रपर उनकी टीकाएँ भी उपलब्ध हैं।

संस्कृत की भाँति गुजराती भाषाको भी मेघविजयकी प्रतिभाका वरदान मिला था। जैनधरमदीपक, जैन शासनदीपक, आहारगवेषणा, श्रीविजयदेवसूरिनिर्वाणरास, कृपाविजयनिर्वाणरास, चोविशजिनस्तवन, पार्श्वनाथस्तोत्र आदि उनकी राजस्थानी गुजराती रचनाएँ हैं। यह वैविध्यपूर्ण साहित्य मेघविजयकी बहुश्रुतता तथा बहुमुखी प्रतिभा का प्रतीक है।

प्रान्तप्रशस्तिके अनुसार सप्तसन्धानकी रचना संवत् १७६० (सन् १७०३ ई०में) हुई थी।

> वियद्रसेन्दूनां (१७६०) प्रमाणात् परिवत्सरे।
> कृतोऽयमुद्यमः पूर्वाचार्यचर्याप्रतिष्ठितः ॥

मेघविजयने अपनी कुछ अन्य कृतियोंमें भी रचनाकालका निर्देश किया है। उससे उनके स्थितिकालका कुछ अनुमान किया जा सकता है। विजयदेवमाहात्म्यविवरणकी प्रतिलिपि मुनि सोमगणिने संवत् १७०९ में की थी।[1] अतः उसका इससे पूर्वरचित होना निश्चित है। यह मेघविजयकी प्रथम रचना प्रतीत होती है। सप्तसन्धान उनकी साहित्य-साधना की परिणति है। यह उनकी अन्तिम रचना है। विजयदेवमाहात्म्य विवरणकी रचनाके समय उनकी अवस्था २०-२५ वर्षकी अवश्य रही होगी। अतः मेघविजयका कार्यकाल १६२७ तथा १७१० ई० के बीच मानना सर्वथा न्यायोचित होगा।

कथानक—सप्तसन्धान नौ सर्गोंका महाकाव्य है, जिसमें पूर्वोक्त सात महापुरुषोंके जीवनचरित एक साथ अनुस्यूत हैं। बहुधा श्लेषविधिसे वर्णित होनेके कारण जीवनवृत्तका इस प्रकार गुम्फन हुआ है कि विभिन्न नायकोंके चरितको अलग करना कठिन हो जाता है। अतः कथानकका सामान्य सार देकर यहाँ सातों महापुरुषोंके जीवनकी घटनाओंको पृथक्-पृथक् दिया जा रहा है।

अवतार वर्णन नामक प्रथम सर्गमें चरितनायकोंके पिताओं की राजधानियों, इनकी शासन-व्यवस्था तथा माताओं के स्वप्नदर्शनका वर्णन है। द्वितीय सर्गमें चरित नायकों का जन्म वर्णित है। उनके धरा पर अवतीर्ण होते ही समस्त रोग शान्त हो जाते हैं तथा प्रजा का अभ्युदय होता है। तृतीत सर्गमें नायकोंके जन्माभिषेक, नायकरण तथा विवाह का निरूपण किया गया है। पूज्यराज्यवर्णन नामक चतुर्थ सर्गके प्रथम चौदह पद्योंमें आदि प्रभुके राज्याभिषेकके लिये देवताओंके आगमन, ऋषभदेवकी सन्तानोत्पत्ति तथा उनकी प्रजाकी सुख-समृद्धिका वर्णन है। अगले सौलह पद्योंमें कृष्णचरितके अन्तर्गत कौरव-पाण्डवोंके वैर, द्रौपदीके चीरहरण तथा दीक्षाग्रहण आदिकी चर्चा है। सर्गके शेषांशमें तीर्थंकरों द्वारा राज्यत्याग तथा प्रव्रज्याग्रहण करने का वर्णन है। पंचम सर्गमें काव्यमें वर्णित पाँच तीर्थंकरोंके विहार, तपश्चर्या तथा कष्ट सहन का प्रतिपादन हुआ है। उनके प्राकृतिक तथा भौतिक कष्ट सह कर वे तपसे कर्मों का क्षय करते हैं। उनके उपदेशसे प्रजाजन रागद्वेष आदि छोड़कर धार्मिक कृत्योंमें प्रवृत्त हो जाते हैं। छठे सर्गमें जिनेन्द्र कैवल्यज्ञान

---

१. लिखितोऽयं ग्रन्थः पण्डित श्री ५ श्रीरंग सोमगणिशिष्यमुनिसोमगणिना सं०१७०९ वर्षे चैत्रमासे........ श्रीविनयदेवसूरीश्वरराज्ये। विजयदेव माहात्म्य, प्रान्तपुष्पिका।

प्राप्त करके स्याद्वाद पद्धतिसे उपदेश देते हैं। सातवें सर्गमें छह परम्परागत ऋतुओंका वर्णन किया गया है। तीर्थंकरोंके समवसरणके अवसरपर भावी चक्रवर्ती भरत, अन्य राजाओंके साथ उनकी सेवामें उपस्थित होते हैं। दिग्विजय वर्णन नामक अष्टम सर्गमें आदि तीर्थंकर ऋषभदेवके पुत्र, चक्रवर्ती भरतको दिग्विजय, सांवत्सरिक दान तथा जिनेश्वरोंकी मोक्षप्राप्तिका निरूपण हुआ है। नवें सर्गमें मुख्यतः जिनेश्वरोंके गणधरों-का वर्णन किया गया है।

इस प्रकार काव्यमें सामान्यतया सातों नायकोंके माता-पिता, राजधानी, माताओंके स्वप्नदर्शन, गर्भाधान, दोहद, कुमारजन्म, जन्माभिषेक, बालक्रीड़ा, विवाह, राज्याभिषेक आदि सामान्य घटनाओं तथा पांच तीर्थंकरोंकी लौकान्तिक देवोंकी अभ्यर्थना, सांवत्सरिक दान, दीक्षा, तपश्चर्या, पारणा, केवलज्ञानप्राप्ति, समवसरण-रचना, देशना, निर्वाण, गणधर आदि प्रसंगोंका वर्णन है। विभिन्न महापुरुषोंके जीवनकी जिन विशिष्ट घटनाओंका निरूपण काव्यमें हुआ है, वे इस प्रकार हैं।

आदिनाथ—भरतको राज्य देना, नमिविनमिकृत सेवा, छद्मावस्थामें बाहुबलीका तक्षशिला जाना, समवसरणमें भरतका आगमन, चक्रवर्ती भरतका षट्खण्डसाधन, दिग्विजय, भगिनी सुन्दरीकी दीक्षा आदि।

शान्तिनाथ—अशिवहरण तथा षट्खण्डविजय द्वारा चक्रवर्तित्वकी प्राप्ति।

नेमिनाथ—राजीमतीका त्याग।

महावीर—गर्भहरणकी घटना।

रामचन्द्र—सीतास्वयंवर, वनगमन, सीताहरण, रावणवध, दीक्षाग्रहण, बहुविवाह, शम्बूकवध, रावणका कपट, हनुमानका दौत्य, जटायुवध, धनुर्भंग, सीताकी अग्नि परीक्षा, विभीषणका पक्षत्याग, विभीषणका राज्याभिषेक, युद्ध, रावणवध, शत्रुंजययात्रा, मोक्षप्राप्ति, सपत्नी-द्वेषके कारण सीता-त्याग, सीता द्वारा दीक्षाग्रहण आदि रामायणकी प्रमुख घटनाएँ।

कृष्णचन्द्र—रुक्मिणी-विवाह, कंसवध, प्रद्युम्न-वियोग, मथुरानिवास, प्रद्युम्न द्वारा उषाहरण, जरासन्धका आक्रमण, कालियदमन, द्वारिकादहन, शरीरत्याग, बलभद्रका कृष्णके शवको उठाकर घूमना, दीक्षाग्रहण, शिशुपाल एवं जरासन्धका वध। इसके साथ ही कृष्ण एवं नेमिनाथका पाण्डवोंके साथ घनिष्ठ सम्बन्ध होनेके कारण पाण्डवजन्म, द्रौपदीस्वयंवर, द्यूत, चीरहरण, वनवास, गुप्तवास, कीचकवध, अभिमन्युका पराक्रम, महाभारत-युद्ध एवं दुःशासन, द्रोण, भीष्म आदिका वध आदि महाभारतकी प्रमुख घटनाओंका उल्लेख भी काव्यमें हुआ है।

कथानकके प्रवाहकी ओर कविका ध्यान नहीं है। वस्तुतः काव्यका कथानक नगण्य है। चरित-नायकोंके जीवनके कतिपय प्रसंगोंको प्रस्तुत करना ही कविको अभीष्ट है। इन घटनाओंके विनियोगमें भी कविका ध्येय अपनी विद्वत्ता तथा कवित्व शक्तिको बघारना रहा है। अतः काव्यमें वर्णित घटनाओंका अनुक्रम अस्तव्यस्त हो गया है; विशेषतः, रामके जीवनसे सम्बन्धित घटनाओंमें क्रमबद्धताका अभाव है। उदाहरणार्थ रामके किष्किन्धा जानेका उल्लेख पहले हुआ है, उनके अनुयायियोंके अयोध्या लौटनेकी चर्चा बाद में। सीता-स्वयंवर तथा वनगमनसे पूर्व सीताहरण तथा रावणवधका निरूपण करना हास्यस्पद है। इसी प्रकार हनुमानके दौत्यके पश्चात् जटायुवध तथा धनुर्भंगका उल्लेख किया जाना कविके प्रमादका द्योतक है।

काव्यमें रामकथाके जैन रूपान्तरका प्रतिपादन हुआ है। फलतः रामका एकपत्नीत्वका आदर्श यहाँ

समाप्त हो गया है। वे बहुविवाह करते हैं। उनकी चार पत्नियोंके नामोंका उल्लेख तो काव्यमें ही हुआ है। सपत्नियोंके षड्यन्त्रके कारण रामको सीताकी सच्चरित्रतापर सन्देह हो जाता है, जिसके परिणामस्वरूप वे उस गर्भिणीको राज्यसे निष्कासित कर देते हैं। रामके सुविज्ञात पुत्रों, कुश और लवका स्थान यहाँ अनंगलवण तथा मदनांकुश ले लेते हैं। जैन रामायणके अनुरूप ही राम शत्रुंजयकी यात्रा करते हैं तथा प्रव्रज्या ग्रहण करके मोक्ष प्राप्त करते हैं।

काव्यका सप्तसन्धानत्व

सात व्यक्तियोंके चरितको एक साथ गुम्फित करना दुस्साध्य कार्य है। प्रस्तुत काव्यमें यह कठिनाई इसलिए और बढ़ जाती है कि यहाँ जिन महापुरुषोंका जीवनवृत्त निबद्ध है, उनमें से पाँच जैनधर्मके तीर्थंकर हैं तथा अन्य दो हिन्दू धर्मके आराध्य देव, यद्यपि जैन साहित्यमें भी वे अज्ञात नहीं हैं। कविको अपने लक्ष्यकी पूर्तिमें संस्कृतकी संश्लिष्ट प्रकृतिसे सबसे अधिक सहायता मिली है। श्लेष ऐसा अलंकार है जिसके द्वारा कवि भाषाको इच्छानुसार तोड़-मरोड़कर अभीष्ट अर्थ निकाल सकता है। इसीलिए सप्तसन्धानमें श्लेषकी निर्बाध योजना की गयी है, जिससे काव्यका सातों पक्षोंमें अर्थ ग्रहण किया जा सके। किन्तु यहाँ यह ज्ञातव्य है कि सप्तसन्धानके प्रत्येक पद्यके सात अर्थ नहीं हैं। वस्तुतः काव्यमें ऐसे पद्य बहुत कम हैं, जिनके सात स्वतन्त्र अर्थ किये जा सकते हैं। अधिकांश पद्योंके तीन अर्थ निकलते हैं, जिनमेंसे एक, जिनेश्वरोंपर घटित होता है; शेष दोका सम्बन्ध राम तथा कृष्णसे है। तीर्थंकरोंकी निजी विशेषताओंके कारण कुछ पद्योंके चार, पाँच अथवा छह अर्थ भी किये जा सकते हैं। कुछ पद्य तो श्लेषसे सर्वथा मुक्त हैं तथा उनका केवल एक अर्थ है। यही अर्थ सातों चरितनायकोंपर चरितार्थ होता है। यही प्रस्तुत काव्यका सप्तसन्धानत्व है। कवि यह उक्ति—काव्येऽस्मिन्नत एव सप्त कथिता अर्थाः समर्थाः श्रियै (४/४२) भी इसी अर्थमें सार्थक है।

जो पद्य भिन्न-भिन्न अर्थोंके द्वारा सातों पक्षोंपर घटित होते हैं, उनमें व्यक्तियोंके अनुसार एक विशेष्य है, अन्य पद उसके विशेषण। अन्य पक्षमें अर्थ करनेपर वही विशेष्य विशेषण बन जाता है, विशेषणोंमेंसे प्रसंगानुसार एक पद विशेष्यकी पदवीपर आसीन हो जाता है। इस प्रकार पाठकको सातों अभीष्ट अर्थ प्राप्त हो जाते हैं। उदाहरणार्थ सातों चरितनायकोंके पिताओंके नाम प्रस्तुत पद्यमें समविष्ट हो गये हैं।

अवनिपतिरिहासीद् विश्वसेनोऽश्वसेनोप्यथ दशरथनाम्ना यः सनाभिः सुरेशः।
बलिविजयिसमुद्रः प्रौढसिद्धार्थसंज्ञः प्रसृतमरुणतेजस्तस्य भूकश्यपस्य ॥ १/५४

सातोंकी जन्मतिथियोंका उल्लेख भी एक ही पद्यमें कर दिया गया है।

ज्येष्ठेऽसिते विश्वहिते सुचैत्रे वसुप्रमे शुद्धनभोऽर्थमेये।
सांके दशाहे दिवसे सपोषे जनिर्जिनस्याजनि वीतदोषे ॥ २/१६

प्रस्तुत पद्यमें काव्यनायकोंके चारित्र्यग्रहण करनेका वर्णन एक-साथ हुआ है।

जातेर्महाव्रतमधत्त जिनेषु मुख्यस्तस्मात्परेऽहनि स-शान्ति-समुद्रभूर्वा।
श्रीपार्श्व एव परमोऽचरमस्तु मार्गे रामेऽक्रमेण ककुभामनुभावनीये ॥ ४/३९

कविकी शैलीका विद्रूप वहाँ दिखाई देता है जहाँ पद्योंसे विभिन्न अर्थ निकालनेके लिए उसने भाषाके साथ मनमाना खिलवाड़ किया है। पद्योंको विविध पक्षोंपर चरितार्थ करनेके लिए टीकाकारने जाने-माने पदोंके ऐसे चित्र-विचित्र अर्थ किये हैं, कि पाठक चमत्कृत तो होता है, किन्तु इस वज्रसे जूझता-

-जूझता वह हताश हो जाता है। तथाकथित ऋतुवर्णनको भी कविने चरितनायकोंपर घटानेकी चेष्टा की है। निम्नोक्त पद्य मुख्यतः पाण्डवचरितसे सम्बन्धित हैं, किन्तु टीकाकारने इससे सातों काव्यनायकोंके पक्षके अर्थ भी निकाले हैं। टीकाकी सहायताके बिना कोई विरला ही इसके अभीष्ट अर्थ कर सकता है।

भीष्मोऽग्रतो यमविधिः स्वगुरोरनिष्टः कृष्णालकग्रहणकर्म सभासमक्षम्।
वैराग्यहेतुरभवद् भविनो न कस्य दैवस्य वश्यमखिलं यदवश्यभाविः॥ ४/२६

श्लोकार्धयमकसे आच्छन्न निम्नोक्त प्रकारके पद्योंके भी पाठकसे जब नाना अर्थ करनेकी आकांक्षा की जाती है, तो वह सिर धुननेके अतिरिक्त क्या कर सकता है?

नागाहत-विवाहेन तत्क्षणे सदृशः श्रियः। नागाहत-विवाहेन तत्क्षणे सदृशः श्रियः॥ ६/५४

भाषा—सप्तसन्धान भाषायी खिलवाड़ है। काव्योंका नाना अर्थोंका बोधक बनानेकी आतुरताके कारण कविने जिस पदावलीका गुम्फन किया है, वह पाण्डित्य तथा रचनाकौशलकी पराकाष्ठा है। सायास प्रयुक्त भाषामें जिस कृत्रिमता एवं कष्टसाध्यताका आ जाना स्वाभाविक है, सप्तसन्धानमें वह भरपूर मात्रामें विद्यमान है। सप्तसन्धान सही अर्थमें क्लिष्ट तथा दुरूह है। सचमुच उस व्यक्तिके पाण्डित्य एवं चातुर्यपर आश्चर्य होता है जिसने इतनी गर्भित भाषाका प्रयोग किया है जो एक साथ सात-सात अर्थोंको विवृत कर सके। भाषाकी यह दुस्साध्यता काव्यका गुण भी है, दुर्गुण भी। जहाँतक यह कविके पाण्डित्य की परिचायक है, इसे, इस सीमित अर्थमें, गुण माना जा सकता है। किन्तु जब यह भाषात्मक क्लिष्टता अर्थबोधमें दुर्लंघ्य बाधा बनती है तब कविकी विद्वत्ता पाठकके लिए अभिशाप बन जाती है। विविध अर्थों की प्राप्तिके लिए पद्योंका भिन्न-भिन्न प्रकारसे अन्वय करने तथा सुपरिचित शब्दोंके अकल्पनीय अर्थ खोजने में बापुरे पाठकको असह्य बौद्धिक यातना सहनी पड़ती है। एक-दो उदाहरणोंसे यह बात स्पष्ट हो जाएगी।

सवितृतनये रामासक्ते हरेस्तनुजे भुजे प्रसरति परे दौत्येऽदित्याः सुता भयभंगुराः।
श्रुतिगतमहानादा-देवं जगुर्निजमग्रजं रणविरमणं लीभक्षोभाद्विभीषणकायतः॥ ५/३७

इस पद्यमें जिनेन्द्रोंकी कामविजयका वर्णन है। यह अर्थ निकालनेके लिए शब्दोंको कैसा तोड़ा-मरोड़ा है, इसका आभास टीकाके निम्नोक्त अंशसे भली-भाँति हो जायेगा।

हरेर्जिनेन्द्रस्य भुजे भोग्यकर्मणि तनुजे अल्पीभूते सवितृतनये प्रकाशविस्तारके जिनेन्द्रे रामे आत्मध्याने आसक्ते परे अत्युत्कृष्टे मोक्षे इत्यर्थः दौत्ये दूतकर्मणि प्रसरति ध्यानमेव मोक्षाय दूत-कर्मकृदिति भावः दित्याः सुताः कामादयः भयभंगुराः भयभीता जाताः विभीषणकायतः भयोत्पाद-ककायोत्सर्गविधायकशरीरात् जिनेन्द्रात् लोभक्षोभात् लोभस्य तद्विषयकजयाशारूपस्य क्षोभात् आघातात् जयाशात्यागात् प्रत्युत निजपराजयभीतेः श्रुतिगतः महानादा भयादेव महाशब्दकारका दीर्घविराविणः रणविरमणम् जिनेन्द्रतो विग्रहनिवर्त्तनं निजमग्रजमग्रेसरं देवं द्योतनात्मकं मोहराजं जगुः निवेदयामासुः।

प्रस्तुत पद्यमें केवलज्ञानप्राप्तिके पश्चात् जिनेश्वरका वर्णन है। यह अर्थ कैसे सम्भव है, इसका ज्ञान टीकाके बिना नहीं हो सकता।

सुमित्रांगजसंगत्या सदशाननभासुरः। अलिमुक्तेर्दानकार्यसारोऽभाल्लक्ष्मणाधिपः॥ ६/५७

सुमित्रं सुष्ठु मेद्यति स्निह्यतीति केवलज्ञानं तदेवांगजं तस्य संगत्या केवलज्ञानयोगेन दशाननभासुरः दशसु दिक्षु आननं मुखमुपदेशकाले यस्य स दशाननस्तेन भासुरः लक्ष्मणाधिपः

लक्ष्म चिह्नमेव लक्ष्मणं तत् अधिपाति स्वसंगेन धारयतीति लक्ष्मणाधिपः अलिमुक्तेः अलेः सुरायाः मुक्तेस्त्यागात् दानकार्यसारः दानकार्यमुपदेशनमेव सारो यस्य स अभात् ।

किन्तु यह सप्तसन्धानका एक पक्ष है । इसके कुछ अंश ऐसे भी हैं जो इस भाषायी जादूगरीसे सर्वथा मुक्त हैं । माताओंकी गर्भावस्था, दोहद, कुमारजन्म तथा गणधरोंके वर्णनकी भाषा प्राञ्जलता, लालित्य तथा माधुर्यसे ओतप्रोत है । दिक्कुमारियोंके कार्यकलापोंका निरूपण अतीव सरल भाषामें हुआ है ।

काश्चिद् भुवः शोधनमादधाना जलानि पुर्यां ववृषुः सपुष्पम् ।
छत्रं दधुः काश्चन चामरेण तं वीजयन्ति स्म शुचिस्मितास्याः ॥ २/२१

नवें सर्गकी सरलता तो वेदना-निग्रह रसका काम देती है । काव्यके पूर्वोक्त भागसे जूझनेके पश्चात् नवें सर्गकी सरल-सुबोध कविताको पढ़कर पाठकके मस्तिष्ककी तनी हुई नसोंको समुचित विश्राम मिलता है ।

सुवर्णवर्णं गजराजगामिनं प्रलम्बबाहुं सुविशाललोचनम् ।
नरामरेन्द्रैः स्तुतपादपंकजं नमामि भक्त्या वृषभं जिनोत्तमम् ॥ ९/३०

प्रकृति-चित्रण—तत्कालीन महाकाव्य-परम्पराके अनुसार मेघविजयने काव्यमें प्राकृतिक सौन्दर्यका चित्रण किया है । तृतीय सर्गमें सुमेरुका तथा सप्तम सर्गमें छह परम्परागत ऋतुओंका वर्णन हुआ है । किन्तु यह प्रकृतिवर्णन कविके प्रकृति प्रेमका द्योतक नहीं है । सप्तसन्धान जैसे चित्रकाव्यमें इसका एकमात्र उद्देश्य महाकाव्य रूढ़ियोंकी खानापूर्ति करना है ।

ह्रासकालीन कवियोंकी भाँति मेघविजयने प्रकृतिवर्णनमें अपने भावदारिद्र्यको छिपानेके लिए चित्र-शैलीका आश्रय लिया है । श्लेष तथा यमककी भित्तिपर आधारित कविका प्रकृतिवर्णन एकदम नीरस तथा कृत्रिम है । उसमें न मार्मिकता है, न सरसता । वह प्रौढोक्ति तथा श्लेष एवं यमककी उछल-कूद तक ही सीमित है । वास्तविकता तो यह है कि श्लेष तथा यमककी दुर्दमनीय सनकने कविकी प्रतिभाके पंख काट दिये हैं । इसलिए प्रकृतिवर्णनमें वह केवल छटपटाकर रह जाती है ।

मेघविजयने अधिकतर प्रकृतिके स्वाभाविक पक्षको चित्रित करनेकी चेष्टा की है, किन्तु वह चित्र-काव्यके पाशसे मुक्त होनेमें असमर्थ है । अतः उसकी प्रकृति श्लेष और यमकके चक्रव्यूहमें फँसकर अदृश्य-सी हो गयी है । वर्षाकालमें नद-नदियोंकी गर्जनाकी तुलना हाथियों तथा सेनाकी गर्जना भले ही न कर सके, यमककी विकराल दहाड़के समक्ष वह स्वयं मन्द पड़ जाती है ।

न दानवानां न महावहानां नदा नवानां न महावहानाम् ।
न दानवानां न महावहानां न दानवानां न महावहानाम् ॥ ७/२२

शीतके समाप्त हो जानेसे वसन्तमें यातायातकी बाधाएँ दूर हो जाती हैं, प्रकृतिपर नवयौवन छा जाता है, किन्तु इस रंगीली ऋतुमें जातीपुष्प कहीं दिखाई नहीं देता । प्रस्तुत पद्य में कविने वसन्तके इन उपकरणोंका अंकन किया है, पर वह श्लेषकी परतोंमें इस प्रकार दब गया है कि सहृदय पाठक उसे खोजता-खोजता झुँझला उठता है । फिर भी उसके हाथ कुछ नहीं आता ।

दुःशासनस्य पुरशासनजन्मनैव संप्रापितोऽध्वनियमो विघटोत्कटत्वात् ।
अन्येऽभिमन्युजयिनो गुरुगौरवार्हास् ते कौरवा अपि कृता हृतचौरवाचः ॥ ७/१२

सप्तसन्धानमें कहीं-कहीं प्रकृतिके उद्दीपन पक्षका भी चित्रण हुआ है । प्रस्तुत पद्यमें मेरुपर्वतको प्राकृतिक सम्पदा तथा देवांगनाओंके सुमधुर गीतोंसे कामोद्रेक करते हुए चित्रित किया गया है ।

यस्मिन्नलं फलललद्दलशालिशाल-वृन्दावनी सुरजनी रजनीश्वरास्या।
गीतस्वरैः सुरमणी रमणीप्रणीतैस्तन्तन्यते तनुभृतामतनूदयं सा ।। ३।३

इन अलंकृति प्रधान वर्णनोंकी बाढ़में कहीं-कहीं प्रकृतिका सहज सरल चित्र देखनेको मिल ही जाता है। पावसकी रातमें कम्बल ओढ़कर अपने खेतकी रखवाली करनेवाले किसान तथा वर्षाके जलसे भींगे हुए गलकम्बलको हिलानेवाली गायका यह मधुर चित्र स्वाभाविकतासे ओतप्रोत है।

रजनिबहुधान्योच्चैः रक्षाविधौ धृतकम्बलः सपदि दुधुवे वारांभाराद् गवा गलकम्बलः।
ऋषिरिव परक्षेत्रं सेवे कृषीबलं पुंगवश्चपलसबलं भीत्या जज्ञे वलं च पलाशजम् ।।७।२९

कुमारोंके जन्मके अवसरपर प्रकृति आदर्श रूपमें प्रकट हुई है। यहाँ वह स्वभावतः निसर्ग विरुद्ध आचरण करती है। कुमारोंके धरापर अवतीर्ण होते ही दिशाएँ शान्त हो गयीं, आकाश में दुन्दुभिनाद होने लगा तथा जल और आकाश तुरन्त निर्मल हो गये।

शान्तासु सर्वासु दिशासु रेणुर्न रेणुबाधां तु मनाग् व्यधासीत्।
दध्वान देवाध्वनि दुन्दुभीनां नादः प्रसादो नभसोऽम्भसोऽभात् ।। २।११

वसन्तके मादक वातावरणमें मद्यपानका परित्याग करनेका उपदेश देते समय जैन यतिकी पवित्रतावादी प्रवृत्ति प्रबल हो उठी है। किन्तु उसका यह उपदेश भी श्लेषका परिधान पहनकर प्रकट होता है।

सीतापहारविधिरेष तवोपहारव्याहारनिर्भयविहारविनाशनाय।
तेनाधुनापि मधुनाशनतां जहीहीत्याहेव रावणमिह स्वधियालिजन्यम् ।। ७।८

इस प्रकार अन्य अधिकांश ह्रासकालीन काव्योंकी भाँति सप्तसन्धानमें प्रकृति वर्णनके नामपर कविके रचनाकौशल (अलंकार प्रयोग कौशल) का प्रदर्शन हुआ है। प्रकृतिके प्रति यहाँ वाल्मीकि अथवा कालिदासके-से सहज अनुरागकी कल्पना करना व्यर्थ है।

सौन्दर्य-चित्रण—प्राकृतिक सौन्दर्यकी भाँति मानव-सौन्दर्यके चित्रणमें कविकी वृत्ति अधिक नहीं रमी है। चरितनायकोंकी माताओंके शारीरिक लावण्यकी ओर सूक्ष्म संकेत करके ही मेघविजयने संतोष कर लिया है। प्रस्तुत पंक्तियोंमें माताओंके मुखके अतिशय सौन्दर्य, स्तनोंकी पुष्टता तथा कटिकी क्षीणताका उत्प्रेक्षाके द्वारा वर्णन किया गया है।

सौरभ्यवित्तं जलजं प्रदाय चन्द्रः कलाकौशलमुज्ज्वलत्वम्।
जाने तदास्यानुगमाद् विभूतिं प्राप्तौ कजेन्दू समयं प्रपद्य ।। १।६३
उच्चैर्दशा स्यान्नु परोपकाराद् युक्ता तदुच्चैस्तनता स्तनांगे।
सतां न चात्मम्भरिता कदाचित् तनु स्वमध्यं तत एव तस्याः ।। १।७१

रस-योजना—सप्तसन्धानमें मनोरागोंका महाकाव्योचित रसात्मक चित्रण नहीं हुआ है। चित्र-काव्यमें इसके लिए अधिक स्थान भी नहीं है। जब कवि अपनी रचनाचातुरी प्रदर्शित करनेमें ही व्यस्त हो, तो मानव-मनकी सूक्ष्म-गहन क्रियाओं-विक्रियाओंका अध्ययन एवं उनका विश्लेषण करनेका अवकाश उसे कैसे मिल सकता है? अतः काव्यमें किसी भी रसका अंगीरसके रूपमें परिपाक नहीं हुआ है। काव्यकी प्रकृतिको देखते हुए इसमें शान्तरसकी प्रधानता मानी जा सकती है, यद्यपि जिनेन्द्रोंके धर्मोपदेशोंमें भी यह अधिक नहीं उभर सका है। तीर्थंकरकी प्रस्तुत देशनामें शान्तरसकी हल्की-सी छटा दिखाई देती है।

त्यजत मनुजा रागं द्वेषं धृतिं दृढसज्जने भजत सततं धर्मं यस्मादजिह्मगतारुचिः।
प्रकुरुत गुणारोपं पापं पराकुरुताचिराद् मतिरतितरां न व्याधेया परव्यसनादिषु ।। ५।४९

तृतीय सर्गमें सुमेरु-वर्णनके अन्तर्गत देव-दम्पतियोंके विहारवर्णनमें सम्भोग श्रृंगारकी मार्मिक अवतारणा हुई है।

गोपाः स्फुरन्ति कुसुमायुधचापरोपात् कोपादिवाम्बुजदृशः कृतमानलोपाः।
क्रीडन्ति लोलनयनानयनाच्च दोलास्वान्दोलनेन विबुधाश्च सुधाशनेन ॥ ३।४

काव्यमें यद्यपि भरतकी दिग्विजय तथा राम एवं कृष्णके युद्धोंका वर्णन है किन्तु उसमें वीर रसकी सफल अभिव्यक्ति नहीं हो सकी है। कुछ पद्योंके राम तथा कृष्ण पक्षके अर्थमें वीररसका पल्लवन हुआ है। इस दृष्टिसे यह युद्धचित्र दर्शनीय है।

तत्राप्तदानवबलस्य बलारिरेष न्यायान्तरायकरणं रणतो निवार्य।
धात्रीजिघृक्षु शिशुपालकराक्षसादिदुर्योधनं यवनभूपमपाचकार ॥ ३।३०

अलंकारविधान—चित्रकाव्य होनेके नाते सप्तसन्धानमें चित्रशैलीके प्रमुख उपकरण अलंकारोंकी निर्बाध योजना हुई है। किन्तु यह ज्ञातव्य है कि काव्यमें अलंकार भावानुभूतिको तीव्र बनाने अथवा भाव-व्यंजनाको स्पष्टता प्रदान करनेके लिये प्रयुक्त नहीं हुए हैं। वे स्वयं कविके साध्य हैं। उनकी साधनामें लग कर वह काव्यके अन्य धर्मोंको भूल जाता है जिससे प्रस्तुत काव्य अलंकृति-प्रदर्शनका अखाड़ा बन गया है।

मेघविजयने अपने लिये बहुत भयंकर लक्ष्य निर्धारित किया है। सात नायकोंके जीवनवृत्तको एक-साथ निबद्ध करनेके लिये उसे पग-पगपर श्लेषका आँचल पकड़ना पड़ा है। वस्तुतः श्लेष उसकी वैसाखी है, जिसके बिना वह एक पग भी नहीं चल सकता। काव्यमें श्लेषके सभी रूपोंका प्रयोग हुआ है। पाँचवें सर्गमें श्लेषात्मक शैलीका विकट रूप दिखाई देता है। पद्योंको विभिन्न अर्थोंका द्योतक बनानेके लिये यहाँ जिस श्लेषगर्भित भाषाकी योजना की गयी है, उससे जूझता-जूझता पाठक हताश हो जाता है। टीकाकी सहायताके बिना यह सर्ग अपठनीय है। निम्नोक्त पद्यके तीन मुख्य अर्थ हैं, जिनमेंसे एक पाँच तीर्थंकरोंपर घटित होता है, शेष दो राम तथा कृष्णके पक्षमें।

श्रुतिमुपगता दीव्यद्रूपा सुलक्षणलक्षिता सुरबलभृताम्भोधावद्रौपदीरितसद्गवी।
सुररववशाद् भिन्नाद् द्वीपान्नतेन समाहृता हरिपवनयोर्धर्मस्यात्रात्मजेषु पराजये ॥ ५।३६

यह अनुष्टुप् इससे भी अधिक विकट है। कविको इसके चार अर्थ अभीष्ट हैं।

कुमारी वेदसाहस्रान् सराज्यान् यत्कृते दधत्।
इक्ष्वाकुवंशवृषभः शं-के-वलश्रिया श्रितः ॥ ६।५९

अपने कथ्यके निबन्धनके लिये कविने श्लेषकी भाँति यमकका भी बहुत उपयोग किया है। आठवाँ सर्ग तो आद्यन्त यमकसे भरा पड़ा है। नगरवर्णनकी प्रस्तुत पंक्तियोंसे श्लोकार्धयमककी करालताका अनुमान किया जा सकता है।

न गौरवं ध्यायति विप्रमुक्तं न गौरवं ध्यायति विप्रमुक्तम्।
पुनर्नवाचारभसा नवार्था-पुनर्नवाचारभसा नवार्थाः ॥ १।५२

शब्दालंकारोंमें अनुप्रासका भी काव्यमें पर्याप्त प्रयोग हुआ है। यमक तथा श्लेषसे परिपूर्ण इस काव्य में अनुप्रासकी मधुरध्वनि रोचक वैविध्य उपस्थित करती है। चरितनायकोंके पिताओंकी शासनव्यवस्थाके वर्णनके प्रसंगमें अनुप्रासका नादसौन्दर्य मोहक बन पड़ा है।

सांकर्यंकार्यं प्रविचार्य वार्यं विरोधमुत्सार्य समर्त्तवस्ते।
सामान्यमाधाय समाधिसाराधिकारमीयुर्भुवि निर्विकाराः ॥ २।६

अन्त्यानुप्रासमें यह अनुरणनात्मक ध्वनि चरम सीमाको पहुँच जाती है।

शब्दालंकारोंके अतिरिक्त काव्यमें प्रायः सभी मुख्य अर्थालंकार प्रयुक्त हुए हैं। कुमारवर्णनके प्रस्तुत पद्यमें अप्रस्तुत वटवृक्षकी प्रकृतिसे प्रस्तुत कुमारके गुणोंके व्यंग्य होनेसे अप्रस्तुत प्रशंसा है।

नम्रीभवेत् सविटपोऽपि वटो जनन्यां भूमौ लतापरिवृतो निभृतः फलाद्यैः।
कौ-लीनतामुपनतां निगदत्ययं किं सम्यग्गुरोर्विनय एव महत्त्वहेतुः॥ ३।१९

अप्रस्तुत आरोग्य, भाग्य तथा अभ्युदयका यहाँ एक 'आविर्भाव' धर्मसे सम्बन्ध है। अतः तुल्ययोगिता अलंकार है।

आरोग्य-भाग्याभ्युदया जनानां प्रादुर्बभूवुर्विगतै जनानाम्।
वेषाविशेषान्मुदिताननानां प्रफुल्लभावाद् भुवि काननानाम्॥ २।१३

वसन्तवर्णनकी निम्नलिखित पंक्तियोंमें प्रस्तुत चन्द्रमा तथा अप्रस्तुत राजाका एक समानधर्मसे संबंध होनेके कारण दीपक है।

व्यर्था सपक्षरुचिरम्बुजसन्धिवन्धे राज्ञो न दर्शनमिहास्तगतिश्च मित्रे।
किं किं करोति न मधुव्यसनं च दैवादस्माद् विचार्य कुरु सज्जन तन्निवृत्तिम्॥ ७।९

प्रस्तुत पद्यमें अतिशयोक्तिकी अवतारणा हुई है, क्योंकि जिनेन्द्रोंकी कीर्त्तिको यहाँ रूपवती देवांगनाओंसे भी अधिक मनोरम बताया गया है।

मनोरमा वा रतिमालिका वा रम्भापि सा रूपवती प्रिया स्यात्।
न सुत्यजा स्याद् वनमालिकापिकीर्त्तिर्विभोर्यत्र सुरैर्निपेया॥ ९।१६

दुर्जननिन्दाके इस पद्यमें आपाततः दुर्जनकी स्तुति की गयी है, किन्तु वास्तवमें, इस वाच्य स्तुतिसे निन्दा व्यंग्य है। अतः यहाँ व्याजस्तुति है।

मुखेन दोषाकरवत् समानः सदा-सदम्भः-सवने सशौचः।
काव्येषु सद्भावनयानमूढः किं वन्द्यते सज्जनवन्न नीचः॥ १।५

इस समासोक्तिमें प्रस्तुत अग्निपर अप्रस्तुत क्रोधी व्यक्तिके व्यवहारका आरोप किया गया है।

तेजो वहन्नसहनो दहनः स्वजन्महेतून् ददाह तृणपुञ्जनिकुञ्जमुख्यान्।
लेभे फलं त्वविकलं तदयं कुनीतेर्भस्मावशेषतनुरेष ततः कृशानुः॥ ३।२०

काव्यमें प्रयुक्त अन्य अलंकारोंमेंसे कुछके उदाहरण यहाँ दिये जा रहे हैं।

अर्थान्तरन्यास—क्वचन विजने तस्यौ स्वस्यो ररक्ष न रक्षकम्।
न खलु परतो रक्षापेक्षा प्रभौ हरिणाश्रिते॥ ५।९

विरोधाभास—ये कामरूपा अपि नो विरूपाः कृतापकारेऽपि न तापकाराः।
सारस्वता नैव विकर्णिकास्ते कास्तेजसां नो कलयन्ति राजीः॥ १।३८

परिसंख्या—जज्ञे करव्यतिकरः किल भास्करादौ दण्डग्रहाग्रहदशा नवमस्करादौ।
नैपुण्यमिष्टजनमानसतस्करादौ छेदः सुसूत्रधरणात् तदयस्करादौ॥ ३।४१

उदात्त—पात्राण्यमर्त्या ननृतुः पदे पदे समुन्ननादानकदुन्दुभिर्मुदे।
घनावनस्य भ्रमतो वदावदे मयूरवर्गे नटनान्निसर्गतः॥ २।८

अर्थापत्ति—प्रीत्या विशिष्टा नगरेषु शिष्टाः काराविकारा न कृताधिकाराः।
बाधा न चाधान्नरकेऽसुरोऽपि परोऽपि नारोपितवान् प्रकोपम्॥ २।१४

विशेषोक्ति—जाते विवाहसमये न मनाग्मनोऽन्त-
र्लीनो मलीनविषयेषु महाकुलीनः॥ ३।३७

छंद

मेघविजयने छन्दोंके विधानमें शास्त्रीय नियमका यथावत् पालन किया है। प्रथम सर्ग उपजातिमें निबद्ध है। सर्गके अन्तमें मालिनी तथा स्रग्धराका प्रयोग किया गया है। द्वितीय सर्गमें इन्द्रवज्राकी प्रधानता है। सर्गान्तके पद्य शिखरिणी, मालिनी, उपेन्द्रवज्रा, उपजाति तथा शार्दूलविक्रीडितमें हैं। तृतीय तथा चतुर्थ सर्गकी रचनामें वसन्ततिलकाका आश्रय लिया गया है। अन्तिम पद्योंमें क्रमशः स्रग्धरा तथा शार्दूलविक्रीडित प्रयुक्त हुए हैं। पाँचवें तथा छठे सर्गका मुख्य छन्द क्रमशः हरिणी तथा अनुष्टुप् है। पाँचवें सर्गका अन्तिम पद्य स्रग्धरामें निबद्ध है। छठे सर्गके अन्तिम पद्योंकी रचना वसन्ततिलका तथा शार्दूलविक्रीडितमें हुई है। सातवें सर्गमें जो छह छन्द प्रयुक्त हुए हैं, उनके नाम इस प्रकार हैं—हरिणी, शार्दूलविक्रीडित, वसन्ततिलका, इन्द्रवज्रा, स्वागता तथा शिखरिणी। अन्तिम दो सर्गोंके प्रणयनमें क्रमशः द्रुतविलम्बित तथा उपजातिको अपनाया गया है। इनके अन्तमें शार्दूलविक्रीडित, वंशस्थ तथा स्रग्धरा छन्द प्रयुक्त हुए हैं। कुल मिलाकर सप्तसन्धानमें तेरह छन्दोंका उपयोग किया गया है। इनमें उपजातिका प्राधान्य है।

उपसंहार——मेघविजयकी कविता, उनकी परिचारिकाकी भाँति गूढ़ समस्याएँ लेकर उपस्थित होती है (२।७)। उन समस्याओंका समाधान करनेकी कविमें अपूर्व क्षमता है। इसके लिये कविने भाषाका जो निर्मम उत्पीडन किया है, वह उसके पाण्डित्यको व्यक्त अवश्य करता है, किन्तु कविताके नाम पर पाठकको बौद्धिक व्यायाम कराना, उसका भाषा तथा स्वयं कविताके प्रति अक्षम्य अपराध है। अपने काव्यकी समीक्षा की कविने पाठकसे जो आकांक्षा की है,[१] उसके पूर्तिमें उसकी दूरारूढ़ शैली सबसे बड़ी बाधा है। पर यह स्मरणीय है कि सप्तसन्धानके प्रणेताका उद्देश्य चित्रकाव्य-रचनामें अपनी क्षमताका प्रदर्शन करना है; सरस कविताके द्वारा पाठकका मनोरंजन करना नहीं। काव्यको इस मानदण्डसे आंकनेपर ज्ञात होगा कि वह अपने लक्ष्यमें पूर्णतः सफल हुआ है। बाणके गद्यकी मीमांसा करते हुए वेबरने जो शब्द कहे थे, वे सप्तसन्धानपर भी अक्षरशः लागू होते हैं। सचमुच सप्तसन्धान महाकाव्य एक बीहड़ वन है, जिसमें पाठकको अपने धैर्य, श्रम तथा विद्वत्ताकी कुल्हाड़ीसे झाड़-झंखाड़ोंको काटकर अपना रास्ता स्वयं बनाना पड़ता है।

●

१. काव्येक्षणाद्वः कृपया पयोवद् भावाः स्वभावात्सरसाः स्युः। १।१५

शिवराज भूषणमें 'गुसलखाना'का प्रसंग

श्री वेदप्रकाश गर्ग

अनेक बार भारी हानि उठाकर और हार खाकर, अन्तमें औरंगजेबने बहुत सोच-विचारके बाद शिवाजीका दमन करनेके लिए दिलेर खाँ आदि अनेक सेनापतियों तथा चौदह हजार फौज सहित आम्बेराधिपति मिर्जा राजा जयसिंह कछवाहाको नियुक्त किया।

मिर्जा राजा जयसिंहने तेजी और फुर्तीसे दक्षिण पहुँचकर अत्यन्त बुद्धिमानी और चालाकीसे शिवाजीको संधि और अधीनताके लिए विवश किया। संधिके पश्चात् बादशाहने भेंट करनेके लिए शिवाजीको दरबार बुला भेजा। जयसिंहके आश्वासन पर शिवाजीने भी औरंगजेबसे भेंट करना स्वीकार कर लिया।

अपने राज्यका सत्र प्रबन्धकर ५ मार्च, सन् १६६६ ई० को अपने पुत्र सम्भाजी तथा कुछ सैनिकोंके साथ शिवाजी, बादशाहसे भेंट करनेके लिए उत्तर भारतको रवाना हुए। आगरा पहुँचकर वे दरबारमें हाजिर हुए। शिवाजीने अपने प्रति जैसे राजकीय व्यवहारकी आशा की थी, वैसा व्यवहार या सत्कार उन्हें दरबारमें नहीं मिला। उन्हें दरबारमें पाँच हजारी मनसबदारोंकी पंक्तिमें लाकर खड़ा कर दिया गया। वे उस अपमानको सहन न कर सके। क्रोधसे उनका चेहरा तमतमा उठा और वे मूर्च्छित-से हो गये। इस घटनाका महाकवि भूषणने अपने 'शिवराज भूषण' नामक ग्रंथके कई छन्दोंमें वर्णन किया है और इस प्रसंगमें 'गुसलखाना' शब्दका प्रयोग किया है। 'गुसलखाना'से भूषणका क्या अभिप्राय था, इस पर अब तक किसी विद्वान्ने सप्रमाण स्पष्ट प्रकाश नहीं डाला है। इतिहासकारोंने इस घटनाका स्थल दरबारको ही बताया है, पर 'गुसलखाना'का नाम भूषणने बार-बार लिया है और उनका कथन प्राणहीन या निराधार नहीं है। यद्यपि सामान्य रूपमें 'गुसलखाना'का अर्थ स्नानागार है, किन्तु इस शब्दार्थकी कोई संगति इस प्रसंगमें नहीं है।

इस लेख द्वारा प्रामाणिक उल्लेख्य सामग्रीके आधार पर इस प्रसंगका स्पष्टीकरण जिज्ञासु पाठकोंके सम्मुख प्रस्तुत किया जा रहा है।

आगरेमें 'शिवाजी-औरंगजेब-भेंट'का सर्वाधिक प्रामाणिक वृत्तान्त, जयपुर राज्यके पुराने दफ्तरसे प्राप्त ऐतिहासिक सामग्रीके आधार पर डा० यदुनाथ सरकारने अपने 'शिवाजी' नामक ग्रंथमें किया है। उक्त ग्रंथसे ज्ञात होता है कि औरंगजेबकी सालगिरहके[1] दिन (१२ मई, १६६६ ई०) शिवाजीका दरबारमें उपस्थित होना निश्चित हुआ था, किन्तु शिवाजीको आगरा पहुँचनेमें एक दिनकी देरी हो गई थी। ११ मई को शिवाजी आगरेसे एक मंजिलकी दूरी पर सराय-मलूकचन्द तक ही आ पाये थे और वहीं उन्होंने मुकाम किया था[2]। इस कारण १२ मईको शिवाजी दरबारमें उपस्थित नहीं हो सके। शिवाजी आगरेमें १३ मई

---

१. चाँद तिथिके अनुसार बादशाहका ४९वाँ जन्म-दिन, जो १२ मई सन् १६६६ ई० को पड़ा था।

२. शिवाजी, डा० सर यदुनाथ सरकार, द्वितीय हिन्दी संस्करण, पृ० ७३।

की सुबहको पहुँचे थे । इस दिन भी दरबारमें उपस्थित होनेमें उन्हें काफी देर हो गयी थी । बादशाह दीवान आमका दरबार समाप्त कर किलेमें भीतरी दीवान खासमें चले गये थे । कुमार रामसिंह शिवाजीको लेकर, भेंटके लिए वहीं उपस्थित हुए ।[१]

सफेद पत्थरका बना हुआ यह दीवान खास भी जन्म-दिनके उपलक्षमें अच्छी प्रकारसे सजाया गया था । यहाँ भी ऊँचे दर्जेके अमीर-उमरा और राजा लोग सजधजकर अपने-अपने दर्जेके अनुसार खड़े थे । इसी दरबारमें शिवाजीकी भेंट औरंगजेबसे हुई थी और यहीं अपमानकी घटनासे लेकर, उसके बादकी घटनाएँ घटी थीं ।

महाकवि भूषणने इसी दीवान खासके लिए, अपने ग्रंथ 'शिवराजभूषण'में बार-बार 'गुसलखाना' शब्दका प्रयोग किया है । प्रसिद्ध इतिहास-ग्रंथ 'मआसिरुल् उमरा,' जिसमें मुगल दरबार तथा उससे सम्बद्ध अमीरों, सरदारों और राजाओंकी जीवनियाँ लेख बद्ध हैं, में 'सादुल्ला खाँ अल्लामी'की जीवनीके अन्तर्गत इस 'गुसलखाने'का स्पष्टीकरण इस प्रकार दिया हुआ है[२]—

"यह जानना चाहिए कि दौलतखाना खास एक मकान है, जो बादशाही अन्तःपुर तथा दीवान खास व आमके[३] बीचमें बना है और दरबारसे उठने पर उसी मकानमें कुछ वादोंका निर्णय करनेके लिए बादशाह बैठते हैं, जिसकी सूचना सिवा खास लोगोंके किसीको नहीं मिलती । यह स्थान हम्मामके पास था इसलिए यह अकबरके राज्यकालसे गुसलखानेके नामसे प्रसिद्ध है । शाहजहाँने इसे दौलतखाना खास नाम दिया था ।"

जहाँगीरने भी अपने आत्मचरित्रमें इस 'गुसलखाने'का उल्लेख किया है । वह एक स्थानपर लिखता है कि—"१९वीं आबाँकी रात्रिमें प्रतिदिनके अनुसार हम गुसलखानेमें थे । कुछ अमीरगण तथा सेवक और संयोगसे फारसके शाहका राजदूत मुहम्मद रजाबेग उपस्थित थे ।"[४] एक दूसरे स्थानपर वह फिर लिखता है—"हलका भोजनकर नित्य प्रति हम नियमानुसार दीवानखानोंमें जाते और झरोखा तथा गुसलखानेमें बैठते थे ।"[५]

इन उल्लेखोंसे स्पष्ट है कि 'गुसलखाना' एक भवन विशेष था, जहाँ बादशाहका खास दरबार लगा करता था । यद्यपि शाहजहाँने इसका नाम 'दौलतखाना खास' कर दिया था, फिर भी यह अपने पूर्व प्रचलित 'गुसलखाने'के नामसे ही पुकारा जाता था । वास्तवमें यह मुगल सम्राट्का मंत्रणा-गृह था । शासन की बारीक समस्याएँ यहीं हल होती थीं और विभिन्न सूबोंके बारेमें यहींसे आज्ञाएँ प्रचारित की जाती थीं । भूषणने भी इस भवनके लिए इसके पूर्व प्रचलित नाम 'गुसलखाना'का ही उल्लेख किया है ।

यहाँ यह बात विशेष रूपसे ध्यान रखनेकी है कि इतिहासकारोंका उक्त घटनाविषयक स्थान शब्द 'दरबार' सामान्य अर्थका बोधक है । बादशाहका दरबार जहाँ भी लगता था, चाहे वह दीवान आम व

---

१. शिवाजी, डॉ० यदुनाथ सरकार, द्वितीय हिन्दी संस्करण, पृ० ७३ ।

२. मआसिरुल उमरा अर्थात् मुगल दरबार (हिन्दी-संस्करण), पृ० ३३२, ५वाँ भाग, ना० प्र० सभा, काशी ।

३. दरबार आम खासका स्थान—ले० ।

४. जहाँगीरनामा (हिन्दी, प्र० संस्करण), पृ० ४०१, ना० प्र० सभा, काशी ।

५. वही, पृ० ३३५ ।

खास (दरबार आम खास, पब्लिक एसम्बली हॉल) हो अथवा दीवान खास (दरबार खास, कौन्सिल चेम्बर) हो, दरबार ही कहलाता था। दूसरी बात ध्यान देने की यह है कि भेंट वाले दिनका दौलतखाना खास (दीवान खास)का दरबार, प्रतिदिनका विशेष मंत्रणा दरबार नहीं था, अपितु बादशाहके जन्म-दिनके उत्सव में एक प्रकारसे सामान्य दरबार खास था। यद्यपि सभी आम व्यक्तियोंको वहाँ पहुँचनेकी आज्ञा नहीं थी।

इस घटना-प्रसंगके विषयमें इतिहासकारोंने लिखा है कि "जब शिवाजीका अपमान दरबारमें हुआ तो वे क्रोधाभिभूत दशामें निकट स्थित एक अन्य कमरे या स्थानपर चले गये थे। यह कमरा या स्थान दरबारसे सटा हुआ था, पर दरबारसे भिन्न था। यहाँ उन्हें बादशाह नहीं देख सकता था। दरबारमें अपमानित होनेकी घटनाके तुरन्त बादकी घटनाएँ यहीं घटित हुई थीं।"[1]

इतिहासकारोंके उक्त उल्लेखके आधारपर हिन्दीके कुछ विद्वानोंने अनुमान किया है कि उक्त दूसरे कमरे या स्थान ही को भूषणने बार-बार 'गुसलखाना' कहा है, किन्तु उपर्युक्त उल्लेखोंके आधारपर प्रामाणिकताकी दृष्टिसे यह अनुमान सही नहीं है। साथ ही भूषणके कथन भी इस अनुमानसे मेल नहीं खाते।

यह ध्यान रहे कि भूषणने उस पूरे भवनको ही गुसलखाना कहा है, जहाँ बादशाहका खास दरबार लगा करता था, किसी केवल कमरे-विशेषको नहीं। औरंगजेब द्वारा उपयुक्त आदर-सत्कारकी प्राप्ति न होने पर, शिवाजीका अपनेको अपमानित अनुभव करना, ग्लानि और क्रोधसे उनके तमतमा उठनेपर दरबार में आतंक छा जाना, औरंगजेबके संकेतसे रामसिंह द्वारा पूछे जानेपर, निडरतापूर्वक कटु वचनोंको कहना-आदि घटनाएँ इस दरबारमें घटित हुई थीं और भूषणने शिवाजीकी इसी क्रोध पूर्ण स्थितिका जिससे दरबारमें आतंक छा गया था, वर्णन शिवराज भूषणमें किया है, उनके दरबारसे चले जानेके बादकी घटनाओंका नहीं।

महाकवि भूषणने शिवराज भूषणमें गुसलखानेकी घटनाका वर्णन छन्द सं० ३३, ७४, १६९, १८६, १९१, २४२ और २५१ में किया है[2]। वे कहते हैं कि औरंगजेबने शिवाजीको पाँच हजारियोंके बीच खड़ा किया, जिसपर शिवाजी अपनेको अपमानित अनुभव कर बिगड़ उठे। उनकी कमरमें कटारी न देकर इस्लाम ने गुसलखानेको बचा लिया। अच्छा हुआ कि शिवाजीके हाथमें हथियार नहीं था, नहीं तो वे उस समय अनर्थ कर बैठते—

> "पंच-हजारिन बीच खरा किया मैं उसका कुछ भेद न पाया।
> भूषन यौं कहि औरंगजेब उजीरन्न सों बेहिसाब रिसाया॥
> कम्मर की न कटारी दई इसलाम ने गोसलखाना बचाया।
> जोर सिवा करता अनरत्थ भली भई हत्थ हथ्यार न आया।" (१९१)

गुसलखानेमें आते ही उन्होंने कुछ ऐसा त्यौर ठाना कि जान पड़ा वे औरंगके प्राण ही लेना चाहते हों—

> "आवत गोसल खाने ऐसे कछू त्यौर ठाने, जानौ अवरंगहूँ के प्राननको लेवा है।" (७४)

---

१. शिवाजी दि ग्रेट, डॉ० बालकृष्ण, पृ० २५६।

२. दे० भूषण, सं० पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, प्र० सं०, वाणी वितान, वाराणसी।

एक अन्य छंदमें शिवाजीकी वीरताका वर्णन करते हुए उनका दिल्लीपतिको जवाव देने, समस्त दरवारियोंको आतंकित करने और विना हाथमें हथियार या साथमें फौज लिये माथ न नवानेका उल्लेख इस प्रकार किया है—

"दीनी कुज्वाव दिलीस को यौं जु डर्‌यौ सब गोसलखानो डरारौ।
नायौ न माथहिं दच्छिन नाथ न साथ में सैन न हाथ हथ्यारौ।" (१६९)

एक और छंदमें भूषण लिखते हैं कि औरंगजेवसे मिलते ही शिवाजी क्रुद्ध हो उठे, जिसपर उमराव आदि उन्हें मनाकर गुसलखानेके बीचसे ले चले—

"मिलत ही कुरुख चिकत्ता कौं निरखि कीनौ, सरजा साहस जो उचित बृजराज कौं।
भूषन कै मिस गैर मिसल खरे किये कौं किये, म्लेच्छ मुरछित करिकै गराज कौं।
अरतैं गुसुलखान बीच ऐसें उमराव, लै चले मनाय सिवराज महाराज कौं।
लखि दावेदार कौ रिसानौ देखि दुलराय, जैसे गड़दार अड़दार गजराज कौं। (३३)

छंद सं० १८६ में पुनः गुसलखानेमें ही दुःख देनेका प्रसंग है—

"ह्याँ तें चल्यौ चकतैं सुख देन, कौं गोसलखाने गए दुख दीनौ।
जाय दिली-दरगाह सलाह कौं, साह कों बैर बिसाहि कै लीनौ।"(१८६)

२४२वें छंदमें भी गुसलखानेमें साहसके हथियारसे, औरंगकी साहिवी (प्रभुत्व) को हिला देनेका उल्लेख है—

"भूषन भ्वैसिला तें गुसुलखाने पातसाही, अवरंग साही बिनु हथ्थर हलाई है।
ता कोऊ अचंभो महाराज सिवराज सदा, बीरन के हिम्मतै हथ्यार होत आई है।"(२४२)

शिवाजीकी प्रशस्तिमें लिखे हुए एक प्रकीर्णक छंदमें तो भूषणने स्पष्ट उल्लेख कर दिया है कि आतंकित औरंगजेबने बड़ी तैयारी और सावधानीके साथ गुसलखानेमें शिवाजीसे भेंट की थी—

"कैयक हजार किए गुर्ज-बरदार ठाढ़े, करिकै हुस्यार नीति सिखई समाज की।
राजा जसवन्त कों बुलायकै निकट राखे, जिनकों सदाई रही लाज स्वामि-काजकी।
भूषन तबहुँ ठिठकत्त ही गुसुलखाने, सिंह-सी झपट मनमानी महाराज की।
हठ तें हथ्यार फेंट बाँधि उमराव राखे, लीन्ही तब नौरंग भेंट सिवराजकी।" (४४२)

उपर्युक्त उद्धरणोंसे यह पूर्णतः स्पष्ट है कि भूषणने इस भेंटका जो वर्णन किया है, वह इतिहास-सम्मत है और स्थानका निर्देश सही है। यह बात दूसरी है कि कविके वर्णनमें कुछ अतिशयोक्ति और चमत्कार आया हुआ प्रतीत होता है। ऐसा हो जाना स्वाभाविक है, क्योंकि कविने शिवाजीकी वीरताके वर्णनोंको अलंकारोंके उदाहरणके रूपमें उपस्थित किया है।

शिवराजभूषणके कुछ सम्पादकोंने प्रसंगके आधारपर यद्यपि 'गुसलखाना' शब्दका अर्थ दरवार खास किया भी है, किन्तु यह अर्थ अभी तक अनुमानपर ही आधारित था। इस स्पष्टीकरणसे यह अनुमान अव वास्तविकतामें परिणत हो गया है।

●

होथल निगामरी और ओढा जामकी सुप्रसिद्ध लोककथाके वस्तुसाम्य एवं इसके आधार-बीजपर विचार

श्री पुष्कर चन्दरवाकर, राजकोट

सौराष्ट्र, कच्छ और राजस्थान में होथल एवं ओढा जाम की प्रेम कथा बहुत ही लोकप्रिय तथा सुप्रसिद्ध है, जो अपने-अपने प्रदेशकी जनवाणी अथवा लोक-कथाके रूपमें आज भी वहाँ-वहाँके लोगोंकी जिह्वापर स्थित है, साथ ही यह उन-उन प्रदेशोंकी जन-वाणीमें ग्रन्थस्थ भी कर दी गई है।

होथल-पद्मिणीकी लोक-कथाके महत्त्वके दो पाठ गुजराती भाषामें उपलब्ध होते हैं। उनमें[१] एक है स्व० श्री झवेरचन्द मेघाणी द्वारा सम्पादित कथा 'होथल' में और दूसरा पाठ प्राप्त होता है स्व० श्री जीवराम अजरामर गौर द्वारा सम्पादित 'उठोकेर अने होथल निगामरी'[२] में।

इसके आधार-बीजके विचारके लिये ये दोनों पाठ महत्त्वपूर्ण हैं। इन दोनों पाठों वाली होथलकी कथा वार्तालापका Trait-Study तुलनात्मक अध्ययनके लिये अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हो सकती है। इसे लोकभोग्य बनानेके लिये इसमें आवश्यक परिवर्तन किया गया है। लोक-कथाका गठन कैसा हो सकता[3] है, इस हेतु स्व० श्री झवेरचन्द मेघाणीकी कथा 'होथल'को विस्तारपूर्वक समझ लेना आवश्यक है। जब श्री स्व० गौरकी लोक-कथा 'निगामरी अने उठो केर'के आधारबीजके निर्णय हेतु विशेषरूपसे यह उचित प्रतीत होती है। डॉ० स्टिथ थोम्पसन[४] द्वारा बताई गई लोक-वार्ताके व्यावर्तक लक्षणोंपर दृष्टिपात करते हुए लोकवार्ताका अध्ययन करने हेतु भी ये दोनों पाठ उपयोगी लग सकते हैं। इस प्रकारसे ये लोक-कथायें अनेक दृष्टिसे लोक-शास्त्रज्ञको अध्ययन-सामग्रीकी पूर्ति कर सके, जैसी है।

किन्तु, यहाँ केवल आधारबीजके अध्ययन हेतु चर्चा-विचार-करनेकी आवश्यकता होनेके कारण स्व० श्री गौरकी लोक-कथाका पाठ विशेष उपयोगी सिद्ध होगा, ऐसा प्रतीत होता है। क्योंकि, उसका सम्पादन विशेष करके मूल लोककथाके आधारपर स्थित है, ऐसा स्पष्ट और वैज्ञानिक विचार मानसपर उभर आता है। उसकी वार्ताका सार निम्न है। इस लोक-वार्ताका काल नवमी शताब्दी का है।

---

१. सौराष्ट्र नी रसधार, भाग ४, संपादक : श्री झवेरचंद मेघाणी, प्रकाशक · श्री गुर्जर ग्रन्थरत्न कार्यालय, अहमदाबाद, पंचमावृत्ति ई० स० १९४७, पृ० १५ से ४९।

२. कच्छकी गुजराती लोकवार्ताओं, संपादक : स्व० श्री कवि जीवराम अजरामर गौर, प्रकाशक : राजारामजी गौर झांझीबार, प्रथमावृत्ति ई० स० १९२९, पृ० १९७ से २६४।

३. The Occen of Story, vol VIII, by C. H. Towny & N. M. Penzer, Pub. by Motila lBanarasidas, Varanasi, Indian Reprint, 1968, Forward, p. 10, 20, 21.

४. The Folk Tale, by Dr. Stith Thompson, Pub. by Holt Rinchart and Winston, Inc. New York, 1946, p. 456.

होथलके पालक पिताका नाम सांगण निमागरा था। यह कच्छके किसी एक गाँव, जिसका नाम उपलब्ध नहीं हो रहा है, का निवासी था। इसे होथल जंगलमें पड़ी मिली थी। रूपवती होनेके कारण इसे सभी लोग सम्पन्न परिवारकी कन्या होना मानते थे। इसके सौन्दर्यके कारण लोग इसे इन्द्रकी अप्सरा भी कहते थे। तथा दैवी-स्त्री मानते थे। वह देवांगनामें गिनी जाती थी।

जब होथल वयस्क हो गई तब इसके साथ विवाह करने हेतु अनेक स्थानोंसे माँगणी की गई। किन्तु स्वयं होथलने ही अपने पालक-पितासे अपने विवाहके सम्बन्धमें अनिच्छा व्यक्त कर दी थी।

यह (होथल) रायर तालुकाके साई गाँवके नैॠत्यमें लगभग १ मीलकी दूरीपर होथलपुराके पहाड़में खोदे गये एक भूमि-गृहमें कुछेक दिनों तक एकान्तमें रही। वहाँ इसने लूट-फाट करनेकी इच्छासे निकले हुए होथी निमागरा नाम धारण कर घलूड़ाके सरदार बाँभणिया समाके ढोर समूहको घेर लेने हेतु निकली। उस समय इसका मार्गमें भाई द्वारा देश निकाला दिये हुए ओढा जाम और उसकी फौजसे मिलन हुआ। इस समय होथल अपने वेशमें परिवर्तन कर पुरुष-वेश में थी। इन दोनोंने मिलकर बांभणियाके ढोरसमूह (पशुओं) को घेर लिया और लगभग आठ दिन साथ-साथ ही विताये। इनका तबसे हो प्रेमालाप प्रारम्भ हुआ।

जब ये दोनों एक दूसरेसे पृथक् हुए, तब इन्हें दुःख एवं वेदनाका अनुभव हुआ। लगातार आठ दिन तक स्नान नहीं किया जानेके कारण होथल अपने वस्त्र उतार कर चकासरके सरोवरमें स्नान करने लगी। ओढा अकेला ही रवाना हो गया। इसका घोड़ा कहीं दूर चला गया था। अतः उसकी खोज करने हेतु नजर दौड़ानेके लिये जब यह ऊँचाईके स्थान—तालावकी पाल—पर चढ़ा तो उसने होथलके घोड़ेको एक पेड़से बंधा हुआ देखा। इसके वस्त्र उसे पेड़के नीचे पड़े हुए दिखाई दिये। साथ ही साथ तालावमें होथलको तैरते हुए भी देखा। ओढा जाम वृक्षके नीचे आकर होथलके वस्त्रोंपर बैठ गया। उस समय होथलने उसे वस्त्र छोड़ कर जानेके लिए कहा। किन्तु ओढा जामने इसकी कोई परवाह नहीं की। तब इसने किंचित् क्रोधित होते हुए कहा, "तुम अभी यहाँसे दूर हट जाओ। पश्चात् हम परस्पर बात करेंगे।"

ऐसा सुनकर ओढा जामने कहा, "यदि तुम मुझसे विवाह करनेका वचन दो तो मैं तुम्हें तुम्हारे वस्त्र दे दूँ।"

उस समय होथलने एक पद्य कहा :

> "ऊठा अरगोथी से, लंगे सरवर पार।
> कंधासु सेज गाल, जिका तोजे मन में॥"

अर्थात् हे ओढा! तू सरोवरकी पालको लाँघ कर दूर चला जा। तत्पश्चात् ही जो तुम्हारे मनमें है, उसपर हम परस्पर विचार करेंगे। तात्पर्य यह है कि तुम्हारे साथ विवाह करूँगी।

होथलने ओढाके सम्मुख निम्न शर्तें रखीं :—

१. हमारे परस्पर विवाहित हो जानेके बाद मैं तुम्हारे घरपर नहीं आऊँगी और जहाँ-जहाँ मैं रहूँ वहाँ-वहाँ तुम्हें भी रहना होगा।

२. मैं कौन हूँ, मेरा नाम क्या है, इस सम्बन्धमें किसीको कुछ भी नहीं बताया जाय।

३. इन शर्तोंके भंग होनेपर मैं तुरन्त ही तुम्हें त्याग दूँगी।

ओढा जामने इन शर्तोंको स्वीकार कर लिया और इनका परस्पर विवाह हो गया। लगभग दस

वर्ष तक वे पहाड़ोंकी गुफाओंमें रहे और इनके जबरा और जैसंग नामक दो पुत्र हुए। एक दिन ओढा जाम अपने दोनों पुत्रोंके साथ प्रस्तर-शिलापर बैठा था, तब किसी मोरने अपनी गरदनको तीन बार हिला-हिलाकर ध्वनि की। जबराने मोरपर पत्थरसे घाव कर दिया। उस समय ओढा जामने जबरासे कहा : यह मोर, विस्मृत सगे-सम्बन्धियोंकी स्मृतिको ताजी करा रहा है। अतः इसे मारना नहीं चाहिए। इसी समय ओढा-को अपना प्रिय स्वदेश, प्यारे परिजन आदि याद आ गये और यह उदास हो गया। उसी समय होथल वहाँ आ पहुँची और ओढा जामको उदास देखकर जब इसका कारण पूछा तो ओढा जामने कहा कि, स्वदेशका स्मरण हो आनेके कारण उदासी आ गई है। अब तो सगे-सम्बन्धियोंका विछोह खटक रहा है।

इस सम्बन्धमें दोनोंके मध्य लम्बा वार्तालाप हुआ और अन्तमें यही निश्चय किया गया कि ओढ़ा जामके देशमें जाया जाय अवश्य किन्तु, वहाँ होथलसे कोई स्त्री पुरुष नहीं मिलेगा और ओढ़ा जाम द्वारा होथलके सम्बन्धमें कोई बात नहीं कही जावेगी।

ये अपने देशमें गये। होथीने अपने छोटे भाईके कथनको स्वीकार कर लिया। उसकी पत्नी मीणावतीका देहान्त हो गया था। इससे ओढाके कष्टका अब कोई कारण नहीं था। होथीने शासन-सत्ता ओढाको सौंप दी। ओढा जाम अपने पूर्व भवनमें होथलके साथ रहने लगा। यहाँ होथल किसीसे मिलती नहीं थी। अतः इसके सम्बन्धमें सगे-सम्बन्धियों द्वारा समय-समय पर ओढासे पूछा भी जाता रहा। किन्तु, उसके सम्बन्धमें वह अपने मुखसे एक भी शब्द नहीं कहता था। परिणामस्वरूप यह एक लोकचर्चाका विषय बन गया कि ओढा जामने किसी अनजान महिलाको रखेल स्वरूप रख लिया है। अतः इन दोनों (ओढा जाम और होथल) की यह निन्दा होने लगी कि नामालूम यह हलके वंशकी स्त्री कौन है?

एक बार ओढा जाम नशेमें मदमस्त था। उस समय उसके और उसकी स्त्री होथलके सम्बन्धमें लोग निन्दा करने लगे। तब ओढाने कह दिया कि मेरे घरमें अनेक सिद्धियोंको प्राप्त हुई स्वर्गकी देवांगना है-और बाँभणसारके घड़ूला सोढाके विरुद्ध डाका डालनेवाली प्रसिद्ध सांगण निगामराकी पालित-पुत्री है और हम परस्पर लग्न-ग्रन्थि द्वारा जुड़े हुए हैं।

इस प्रकारसे इस गुप्त बातको ओढा जामने प्रकाशित कर दिया। जब यह समाचार होथलके कानोंपर पड़े तो उसने तुरन्त ही पृथक्-पृथक् निम्न चार पत्र लिखे।

१. आपने, अपने द्वारा स्वीकार की गई शर्तोंका भंग किया है। अतः मैं आपको त्याग रही हूँ।

२. मैं सदैव आपको देखती रहूँगी, किन्तु आप मुझे नहीं देख सकेंगे।

३. मैं आपकी एवं आपके दोनों पुत्रोंकी रक्षा अंतरिक्षमें रहते हुए भी करती रहूँगी।

४. अपने दोनों पुत्रोंके विवाह संस्कारके अवसरोंपर वैवाहिक-विधानानुसार मेरी आवश्यकताकी पूर्ति हेतु (पौखनेकी क्रियार्थ) उपस्थित रहूँगी।

होथल इन चिट्ठियोंको देकर रवाना हो गई। ओढाको जिस समय यह सूचना मिली तो यह वियोगके कारण पागल-सा बनकर दिवस व्यतीत करने लगा।

जब ओढा जामके पुत्र वयस्क हो गये तो थलके दो सोढा सरदारोंकी सुन्दर कन्याओंके साथ इन दोनोंका वाग्दान (सगाई) हुआ और विवाह भी हो गया। जिस समय ये दोनों विवाहकर वापस घर आये, उस समय होथल वैवाहिक-क्रियानुसार अपने दायित्वको पूर्ण करने हेतु उपस्थित हो गई। बड़ी बहूने साससे एक नवलखा हार मांगा जो इसने उसे दे दिया, किन्तु छोटी बहूने अपनी सासकी देख-रेखमें रहना और इसका निरन्तर सामीप्य माँगा।

होथलने इस माँगको स्वीकार कर लिया और सदाके लिए ओढा जामके साथ रहने लग गई।

कच्छकी भूमिपर की यह प्रचलित दन्तकथा ऋग्वेदकालके जितनी ही पुरानी है। ऋग्वेदमें उर्वशी पुरुरवाकी एक कथा आती है। उसके साथ इस कथाका अनुबन्ध है। उर्वशी-पुरुरवाकी कथाके साथ इस लोककथाका अत्यन्त साम्य है, समानता है।[1]

पुरुरवा पृथ्वीपर का एक मृत्युलोकी-मानव है, जबकि उर्वशी एक अप्सरा है। होथल भी एक अप्सरा ही थी[2], ऐसा कहा गया है। ये दोनों गान्धर्व विवाह द्वारा विवाहित वन जाते हैं और विवाहके अवसरपर उर्वशी भी शर्तें प्रस्तुत करती है—

१. दिनमें तीनसे अधिक बार आलिंगन न किया जाय।

२. पुरुरवा, नग्नदेहसे उर्वशीकी दृष्टिके समीप नहीं आना चाहिए।

३. उर्वशीकी इच्छाके विरुद्ध सह-शयन न किया जाय और यदि इनमेंसे किसी भी एक शर्तका भंग किया जायगा तो उर्वशी शीघ्र ही पुरुरवाको त्यागकर चली जाएगी।

इन शर्तोंको पुरुरवाने विवाहसे पूर्व ही स्वीकार कर लिया था ही।

स्वर्गको त्यागकर पृथ्वीपर आई हुई उर्वशीका वियोग गन्धर्व नहीं सह सके। इसलिये वे इन शर्तोंका भंग कराने हेतु युक्तियाँ लड़ाने लग गये। अन्तमें पुरुरवा निर्वसन-स्थितिमें उर्वशीके समीप उपस्थित हो गया। उस समय अन्धकार अवश्य था, किन्तु गन्धर्वोंने विद्युत-चमक उत्पन्न कर दी, ताकि उर्वशी इसे नग्न देख सके। पुरुरवाके नग्न शरीरपर दृष्टिपात होते ही उर्वशीको शर्त भंग हो जाना प्रतीत हुआ और जिसप्रकारसे होथल चली गई थी, उसी प्रकार उर्वशी भी चली गयी। उर्वशीके चले जानेपर पुरुरवा पागल हो गया। इस रूपमें स्नान करती हुई उर्वशीने, कुरुक्षेत्रके सरोवर तटपर पुरुरवाको देखा। यह दयार्द्र हो गई और जब उर्वशी पुरुरवाके समीप प्रकट हुई तब उसने उर्वशीसे प्रार्थना की कि तुम वापस आ जाओ।

अन्तमें देवताओंके वरदान स्वरूप पुरुरवाने पुनः उर्वशीको प्राप्त कर लिया।

इस प्रकारसे लगभग तीन हजार वर्ष पूर्वकी इस पुराणकथा Myth के साथ ही साथ होथल-पद्मिणीका ठीक-ठीक सम्बन्ध दिखाई देता है। उर्वशी-पुरुरवाकी कथा अत्यन्त प्राचीन प्रेमकथा है।[3] इसे अमर बनानेके लिए इसका दृढ़तर कला-पक्ष है। फिर भी यह कथानक एक प्रतीकात्मक रूपक है।[4] पुरुरवा उर्वशीकी सुनियोजित समस्त कथा ऋग्वेदमें नहीं मिलती है। किन्तु शतपथ ब्राह्मणमें यह उपलब्ध होती है। ऋग्वेदमें केवल अठारह संवादात्मक सूक्त उपलब्ध होते हैं परन्तु शतपथ ब्राह्मणमें तो यह समस्त कथानक विद्यमान है। श्री पेन्झरके मतानुसार महाभारत, विष्णुपुराण एवं अन्य पुराणोंमेंसे भी यह कथा मिल आती है।[5]

---

१. ऋग्वेद, संपादक : पं० श्रीराम शर्मा आचार्य, प्रकाशक : संस्कृति संस्थान, बरेली चतुर्थ संस्करण १, ३१, ४ : ५ : ३ : ४१ : ७, २३, ११ : ८, १८, ९५, ऋग्वेद कथा, सं० : रघुनाथ सिंह, प्रकाशक नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, पृ० २२६ से २४५।

२ कच्छनी जूनी वार्ताओ, पृ० २४१, सौराष्ट्रनी रसधार भा० ४, पृ० ४७।

३. The Occen of Story, vol. II, p. 245.

४. एजन, पृ० २४४, २५१, २५२।

५. एजन, पृ० २४८।

उर्वशी-पुरुरवाके इस कथानकमें तुलनात्मक निम्न मुद्दे ये हैं[1]—

१. अमर्त्य-नारी, मानवके साथ विवाह करती है।

२. लग्न हेतु देवांगना मानवको शर्तें स्वीकार करनेके लिए कहती है।

३. शर्त भंग हो जाती है और देवांगना मानवका त्याग कर देती है।

४. देवांगना, हंसकुमारीके रूपमें परिवर्तन करती है।

५. देवांगना एकान्त-वादन करती है।

६. व्यथित मानवके प्रति देवांगनामें अनुकम्पा उत्पन्न होती है और अन्तमें

७. इनका पुनः मिलन हो जाता है।

होथल की लोक-कथाके वस्तुतत्त्वमेंसे महत्त्वके मुद्दे निम्न हैं, जो उर्वशी पुरुरवाकी पुराण-कथासे मिलते-जुलते हैं—

१. देवांगना जैसी होथल-नारीका ओढा जामके साथ लग्न होना।

२. लग्नके सम्बन्धमें होथलकी शर्तें।

३. शर्त-भंग और ओढा जामका त्याग।

४. होथलका एकान्तवास।

५. पुनरागमन और ओढा जामके साथ होथल का स्थायी निवास।

इस प्रकारसे ओढा जाम और होथलकी दन्त-कथा ऋग्वेद और शतपथ ब्राह्मणकी उर्वशी-पुरुरवाकी कथाके साथ अकल्पनीय साम्यता सिद्ध करती है।

उर्वशी-पुरुरवाकी कथा, पुराण कथा (Myth) है, जब कि होथलकी कथा मात्र स्थानीय दन्त-कथा (Local Legend) बन गई है। इस कथाको नवम शताब्दीकी होना बताया जाता है। इसी प्रकारसे उसके राजवंश-कुल, पिता-भ्राताके नाम, निवासस्थान, भ्रमण-स्थल, युद्ध इत्यादिके नाम निश्चित रूपसे मिलते हैं। इस प्रकारसे भ्रमणशील और विसरित होकर Hoaling पुराण कथा दन्तकथा बनी हुई है। किन्तु मूलमें तो यह उर्वशी पुरुरवाकी कथा ही है। श्री पेन्झर लिखते हैं कि यह आधार-बीज हंसकुमारीका (Swan-maiden) है और यह प्राचीन संस्कृत साहित्यमें उपलब्ध होती है।[2]

इस पुराण-कथानकने पूर्वरूपसे संस्कृत साहित्यमें विकसित होकर कथाका रूप प्राप्त कर लिया है। तत्पश्चात् ही यह अन्य भारतीय भाषाओं एवं लोक-वार्तामें जन-साधारण योग्य बन पाई[3] और ऐसा करनेके लिए ठीक-ठीक समय भी व्यतीत होता गया।

उर्वशी-पुरुरवाकी पुराण-कथा पूर्व एवं पाश्चात्य देशोंमें प्रसरित होकर फैल रही है।[4] ग्रीसमें यह

---

१. एजन, पृ० २४८।

२. The Occen of Story, vol. 8, p. 234.

३. ,, ,,

४. ,, Appendix 1 p. 213–234.

कथा "क्युपिड और साइक"[१] की कथाके नामसे, जर्मनीमें "स्वान मेइडन"[२] के नामसे, फ्रांसमें "मेलु-सिना"[3] की कथाके रूपमें, स्काटलैण्डमें "दी सील वुमन"[४] के रूपमें प्रचलित है। जिप्सियोंकी लोक-कथामें "दी विण्ड मेइडन"[५] के रूपमें पहचानी जाती है। "कथा सरित्सागर" में मरुभूतिकी कथा है। वह भी इसी आधार-बीजकी कथा है।[६] भागवत पुराणमें कृष्ण गोपियोंके वस्त्रोंका हरण करते हैं। यह प्रसंग भी ऐसा ही है, जो यहाँ ध्यान देने योग्य है।[७] इस प्रकारसे ऋग्वेदमेंसे उत्पन्न यह कथा भारतभूमिपर लिखे गये शतपथ ब्राह्मण, विष्णुपुराण, भागवतपुराण एवं अन्य पुराणोंमें विकसित हुई, इस पृथ्वीपर लालन-पालन प्राप्त कर रहा है।[८]

यह पुराण-कथा बाद में पाश्चात्य देशोंमें भ्रमणार्थ निकलती है। ग्रीस की ठीक-ठीक पुराण कथाओं में यही आधारबीज मिलता है।[९] श्री एन० एम० पेन्झरने इसका वर्णन विस्तारपूर्वक किया है।[१०] और अनुमान लगाते हैं कि यूरोपकी प्राचीन मूल लोककथामें "हंसकुमारी" के आधारबीजका लेशमात्र भी अनुमान नहीं मिलता है।[११] वह कथा और उसका आधारबीज भारतवर्षमेंसे यूरोपीय देशोंमें आया है। इसी प्रकारसे ही यह पुराण कथा अफ्रीकाके और मध्य एशियाके देशोंमें प्रसरित हुई है जो भारत पर किये गये यवन-आक्रमणोंके कारण ही।[१२]

यह पुराण कथा और इसका आधारबीज पूर्व देशोंमें भी घूमता हुआ दृष्टिगोचर हो रहा है। जापान-में उर्वशी-पुरुरवाकी पुराण कथाने अपना नाम बदल लिया और वहाँ यह "हिकोहोहो-डेमी[१३]" के नामसे

---

१. A Handbook of Greek mythology, by J. H. Rose, Pub. by Methuen University, paperback, London, 1964, p. 287.
लोकसाहित्यविज्ञान, डॉ० सत्येन्द्र, प्रकाशक : शिवलाल अग्रवाल एण्ड कं० आगरा, प्रथमावृत्ति, पृ०२२२.
२. The Dictionary of Folklore Mythology & Legends, vol. II, Maria Leach, p.1091.
The Folk Tale, p. 88.
३. The Dictionary of folklore Mythology & Legends, vol. II, p. 705.
लोकसाहित्यविज्ञान, पृ० २२२।
४. Folk-Tales from Scotland, by Philippa Gallomay, Pub. by Collins, London, reprint, 1945, p. 8.
५. The Gipsy Folk-Tales, by Dora B. Yeats, Pub. by Phonix House Ltd., London, 1948 p. 56.
६. The Occen of Story, vol. VIII, p. 58.
214.
७. ,,
८. एजन, पृ० २१७।
९. एजन, पृ० २२६।
१०. एजन, पृ० २२६।
११. एजन, पृ० २२६।
१२. The Occen of Story, vol. VIII, p. 227.
१३. The Dictionary of Folklore Mythology and Legends, vol. II, p. 705.

प्रख्यात हुई है। महाभारतमें शान्तनु और गंगाकी पुराण कथा भी इसी आधारबीजकी कथा है। राजस्थानमें की धाँधलकी कथा भी इसीका परिवर्तित रूप प्रतीत होता है।

इस प्रकारसे यह पुराण कथा अत्यन्त ही व्यापक Universal है[१] क्योंकि, उसका कथावस्तुतत्त्व अति मोहक है।[२] संसारके वार्ता-साहित्यमें इस प्रकारका अद्वितीय अन्य कथावस्तुतत्त्व कदाचित् ही दृष्टि-गत होता है। इस कथाका कथावस्तुतत्त्व है, दिव्य प्रेम।

डा० स्टिथ थोम्सनने अपने ग्रन्थ "दी फाक्टेल" मे ऐसी कथाओंके लक्षण एवं आधारबीजकी चर्चा विस्तारपूर्वक की है[3] और सारांशके रूपमें बताया है कि देवांगनाके साथ पुरुष शर्तोंको स्वीकार कर विवाह करता है तथा शर्त-भंग होते ही स्त्री, पुरुषको छोड़कर चली जाती है। संक्षेपमें कहा जाय तो दो प्रेमी परस्पर लग्न-ग्रन्थि द्वारा जुड़ते हैं किन्तु उनके मध्य शर्तें निश्चित होती हैं और शर्त-भंग होते ही देवांगना चली जाती है। ऐसा प्रतीत होता है कि डा० स्टिथ थोम्पसनने अपने "दी फाक्टेल" में मानों होथल और ओढाकी बात उन्हें ज्ञात ही हो और वे उसी पर ही लिख रहे हों, ऐसी अदासे लिखा है। आपने उसमें बताया है कि नायक, देवांगनाके साथ विवाह करता है और अपने दिन सुखपूर्वक व्यतीत करता है।[४] किसी एक प्रसंगपर नायकको अपने देश (वतन) को जाना याद आता है और पत्नी भी इसके लिये सहमत हो जाती है....और स्त्री, नायकको स्पष्ट शब्दोंमें कहती है कि देखना शर्त-भंग न हो, इसका भली प्रकारसे ध्यान रखना। वह भी कह देती है कि अपने मुखसे उसका नाम तक उच्चारित न हो जाय या उसकी जिह्वा से उसके नामसे आवाज तक न दे।

नायक स्वदेश जाता है और अपनी पत्नीके सम्बन्धमें जब बढ़ा-चढ़ाकर बातें करता है तब वह अपनी पत्नीको खो बैठता है। पति, अपनी पत्नीको खोजने निकलता है और वह अनेक कठिनाइयोंमें जा पड़ता है। उन्हें पार कर लेनेपर अन्तमें दोनोंका पुनर्मिलन होता है।

होथल और ओढा जामकी यही लोक-कथा है जिसका आधारबीज भी प्रेमीकी ओरसे "शर्त-भंग और त्याग" का है। अतः डा० स्टिथ थोम्पसन अपनी ओरसे इसके मानक एवं आधारबीजका क्रमांक लिखते हुए कहते हैं[५]—"This Series of notifes is frequently found in Type 400"

इस प्रकारसे होथल और ओढा जामकी स्थानीय दन्त-कथाका महत्त्व संसारकी अनेक लोक-कथाओंके साथ जोड़ा जा सकता है और संसार भरकी लोक-कथाओंके क्षेत्रमें उसको भी सम्मानपूर्ण स्थान अवश्य प्राप्त हो।

●

१. The Occen of Story, vol. VIII, p. 234.
२. ,, 233.
३. The Folk-Tale, pp. 87–93.
४. ,, 91.
५. ,, 88.

'तेजा' लोकगीतका एक नया रूपान्तर

श्री नरोत्तमदास स्वामी
पीठपति, राजस्थानी ज्ञानपीठ, बीकानेर

तेजाजी राजस्थानके एक बहुत प्रसिद्ध लोक-देवता हैं। वे जातिके जाट थे और नागोर परगनेके कसबे परबतसरके पास स्थित खरनाल गाँवके निवासी थे। उनका विवाह किशनगढ़के पास स्थित पनेर गाँवमें हुआ था। उनकी पत्नीका नाम बोदल बताया जाता है (गीतोंमें कहीं पेमल और कहीं सुन्दर बताया गया है)। जब वे अपनी पत्नीको लाने पनेर गये हुए थे तब वहाँकी लांछा गूजरीकी गायोंको धाड़वी मीणे घेर कर ले गये। लांछाकी पुकारपर तेजाजी उन्हें छुड़ानेके लिए 'वार' चढ़े। गायोंको छुड़ानेमें उन्हें प्राणान्तक घाव लगे और वे स्वर्गवासी हुए। यह घटना भादवा सुदी १० के दिन हुई। तभी से तेजाजी देवताके रूपमें पूजे जाने लगे। राजस्थानमें स्थान-स्थानपर उनकी 'देवलियां' पायी जाती हैं।

तेजाजीका सम्बन्ध नागोंसे भी है, साँपके काटे हुए को तेजाजीकी 'हाँती' बाँधते हैं जिससे जहर नहीं चढ़ता।

तेजाजीका गीत, जिसे 'तेजो' कहते हैं, बहुत प्रसिद्ध और कृषक जनतामें बहुत लोकप्रिय है। बहुत लोकप्रिय होनेके कारण उसके अनेक रूपान्तर बन गये हैं। हिन्दी और राजस्थानीके सुप्रसिद्ध अन्वेषक श्री अगरचन्द नाहटाने पिलाणीके गणपति स्वामीद्वारा संगृहीत और अनुवादित रूपान्तरको मरुभारतीके प्रथम भागके द्वितीय अंकमें प्रकाशित करवाया था। एक दूसरा रूपान्तर किशनगढ़के पं० वंशीधर शर्मा बुक्सेलरने 'वीर कुंवर तेजाजी' नामक पुस्तकमें दूसरे खंडके रूपमें प्रकाशित किया था। श्री नाहटाजीने 'मरुभारती'के पाँचवें भागके प्रथम अंकमें श्री भास्कर रामचन्द्र भालेरावका एक लेख प्रकाशित कराया था जिसमें हाड़ौती में प्रचलित तेजा विषयक एक गीतके अंश दिये गये हैं। नाहटाजीने राजस्थान भारतीके पाँचवें भागके दूसरे अंकमें तेजाजीके सम्बन्धमें एक लेख लिखा जिसमें प्रस्तुत लेखकके गीत-संग्रहके तीन अपूर्ण गीतों को भी प्रकाशित कराया। तेजाजीसे सम्बन्धित एक अन्य गीत अजमेरके श्रीताराचन्द ओझा द्वारा प्रकाशित 'मारवाड़ी स्त्री-गीत संग्रह'में छपा है जो घटनात्मक नहीं है।

तेजाजीसे सम्बन्धित लोक-गाथायें भी जनतामें प्रचलित हैं। हाड़ौतीमें प्रचलित लोकगाथाको डॉ० कन्हैयालाल शर्माने प्रकाशित करवाया है। एक दूसरी लोकगाथाका प्रकाशन डॉ० महेन्द्र भानावतने 'लोककलाके अंक १७में किया है।

प्रस्तुत लेखकके संग्रहागारमें लोकगीतोंका विशाल संग्रह है जो अनेक सूत्रोंसे प्राप्त हुआ है। इस संग्रहको सँभालते समय अभी पीले कागजकी एक कापीमें पेन्सिलसे लिखा हुआ तेजा गीतका रूपान्तर उपलब्ध हुआ। यह कापी लेखकको कोई पैंतीस-छत्तीस वर्ष पूर्व प्राप्त हुई थी।

उपलब्ध रूपान्तर गणपति स्वामीद्वारा संगृहीत रूपान्तरसे पर्याप्त भिन्नता रखता है। भाषाभेद भी है और कथाभेद भी। पं० वंशीधर शर्मा द्वारा प्रकाशित रूपान्तरके साथ इसका किसी अंशमें साम्य है। वंशीधर शर्मावाले रूपान्तरमें कुछ घटनायें लोकगाथावाली कथा की मिल गयी हैं जो इस रूपान्तरमें नहीं हैं। इस रूपान्तरका अंतका अंश खंडित है।

यह रूपान्तर आगे दिया जाता है।

प्रख्यात हुई है। महाभारतमें शान्तनु और गंगाकी पुराण कथा भी इसी आधारबीजकी कथा है। राजस्थानमें की धांधलकी कथा भी इसीका परिवर्तित रूप प्रतीत होता है।

इस प्रकारसे यह पुराण कथा अत्यन्त ही व्यापक Universal है[१] क्योंकि, उसका कथावस्तुतत्त्व अति मोहक है।[२] संसारके वार्ता-साहित्यमें इस प्रकारका अद्वितीय अन्य कथावस्तुतत्त्व कदाचित् ही दृष्टि-गत होता है। इस कथाका कथावस्तुतत्त्व है, दिव्य प्रेम।

डा० स्टिथ थोम्सनने अपने ग्रन्थ "दी फाक्टेल" मे ऐसी कथाओंके लक्षण एवं आधारबीजकी चर्चा विस्तारपूर्वक की है[3] और सारांशके रूपमें बताया है कि देवांगनाके साथ पुरुष शर्तोंको स्वीकार कर विवाह करता है तथा शर्त-भंग होते ही स्त्री, पुरुषको छोड़कर चली जाती है। संक्षेपमें कहा जाय तो दो प्रेमी परस्पर लग्न-ग्रन्थि द्वारा जुड़ते हैं किन्तु उनके मध्य शर्तें निश्चित होती हैं और शर्त-भंग होते ही देवांगना चली जाती है। ऐसा प्रतीत होता है कि डा० स्टिथ थोम्पसनने अपने "दी फाक्टेल" में मानों होथल और ओढाकी बात उन्हें ज्ञात ही हो और वे उसी पर ही लिख रहे हों, ऐसी अदासे लिखा है। आपने उसमें बताया है कि नायक, देवांगनाके साथ विवाह करता है और अपने दिन सुखपूर्वक व्यतीत करता है।[४] किसी एक प्रसंगपर नायकको अपने देश (वतन) को जाना याद आता है और पत्नी भी इसके लिये सहमत हो जाती है····और स्त्री, नायकको स्पष्ट शब्दोंमें कहती है कि देखना शर्त-भंग न हो, इसका भली प्रकारसे ध्यान रखना। वह भी कह देती है कि अपने मुखसे उसका नाम तक उच्चारित न हो जाय या उसकी जिह्वा से उसके नामसे आवाज तक न दे।

नायक स्वदेश जाता है और अपनी पत्नीके सम्बन्धमें जब बढ़ा-चढ़ाकर बातें करता है तब वह अपनी पत्नीको खो बैठता है। पति, अपनी पत्नीको खोजने निकलता है और वह अनेक कठिनाइयोंमें जा पड़ता है। उन्हें पार कर लेनेपर अन्तमें दोनोंका पुनर्मिलन होता है।

होथल और ओढा जामकी यही लोक-कथा है जिसका आधारबीज भी प्रेमीकी ओरसे "शर्त-भंग और त्याग" का है। अतः डा० स्टिथ थोम्पसन अपनी ओरसे इसके मानक एवं आधारबीजका क्रमांक लिखते हुए कहते हैं[५]—"This Series of notifes is frequently found in Type 400"

इस प्रकारसे होथल और ओढा जामकी स्थानीय दन्त-कथाका महत्त्व संसारकी अनेक लोक-कथाओंके साथ जोड़ा जा सकता है और संसार भरकी लोक-कथाओंके क्षेत्रमें उसको भी सम्मानपूर्ण स्थान अवश्य प्राप्त हो।

●

१. The Occen of Story, vol. VIII, p. 234.
२. ,, 233.
३. The Folk-Tale, pp. 87–93.
४. ,, 91.
५. ,, 88.

'तेजा' लोकगीतका एक नया रूपान्तर

श्री नरोत्तमदास स्वामी
पीठपति, राजस्थानी ज्ञानपीठ, बीकानेर

तेजाजी राजस्थानके एक बहुत प्रसिद्ध लोक-देवता हैं। वे जातिके जाट थे और नागोर परगनेके कसबे परबतसरके पास स्थित खरनाल गाँवके निवासी थे। उनका विवाह किशनगढ़के पास स्थित पनेर गाँवमें हुआ था। उनकी पत्नीका नाम बोदल बताया जाता है (गीतोंमें कहीं पेमल और कहीं सुन्दर बताया गया है)। जब वे अपनी पत्नीको लाने पनेर गये हुए थे तब वहाँकी लांछा गूजरीकी गायोंको धाड़वी मीणे घेर कर ले गये। लांछाकी पुकारपर तेजाजी उन्हें छुड़ानेके लिए 'वार' चढ़े। गायोंको छुड़ानेमें उन्हें प्राणान्तक घाव लगे और वे स्वर्गवासी हुए। यह घटना भादवा सुदी १० के दिन हुई। तभी से तेजाजी देवताके रूपमें पूजे जाने लगे। राजस्थानमें स्थान-स्थानपर उनकी 'देवलियां' पायी जाती हैं।

तेजाजीका सम्बन्ध नागोंसे भी है, साँपके काटे हुए को तेजाजीकी 'हाँती' बाँधते हैं जिससे जहर नहीं चढ़ता।

तेजाजीका गीत, जिसे 'तेजो' कहते हैं, बहुत प्रसिद्ध और कृषक जनतामें बहुत लोकप्रिय है। बहुत लोकप्रिय होनेके कारण उसके अनेक रूपान्तर बन गये हैं। हिन्दी और राजस्थानीके सुप्रसिद्ध अन्वेषक श्री अगरचन्द नाहटाने पिलाणीके गणपति स्वामीद्वारा संगृहीत और अनुवादित रूपान्तरको मरुभारतीके प्रथम भागके द्वितीय अंकमें प्रकाशित करवाया था। एक दूसरा रूपान्तर किशनगढ़के पं० वंशीधर शर्मा बुक्सेलरने 'वीर कुंवर तेजाजी' नामक पुस्तकमें दूसरे खंडके रूपमें प्रकाशित किया था। श्री नाहटाजीने 'मरुभारती'के पाँचवें भागके प्रथम अंकमें श्री भास्कर रामचन्द्र भालेरावका एक लेख प्रकाशित कराया था जिसमें हाड़ौती में प्रचलित तेजा विषयक एक गीतके अंश दिये गये हैं। नाहटाजीने राजस्थान भारतीके पाँचवें भागके दूसरे अंकमें तेजाजीके सम्बन्धमें एक लेख लिखा जिसमें प्रस्तुत लेखकके गीत-संग्रहके तीन अपूर्ण गीतों को भी प्रकाशित कराया। तेजाजीसे सम्बन्धित एक अन्य गीत अजमेरके श्रीताराचन्द ओझा द्वारा प्रकाशित 'मारवाड़ी स्त्री-गीत संग्रह'में छपा है जो घटनात्मक नहीं है।

तेजाजीसे सम्बन्धित लोक-गाथायें भी जनतामें प्रचलित हैं। हाड़ौतीमें प्रचलित लोकगाथाको डॉ० कन्हैयालाल शर्माने प्रकाशित करवाया है। एक दूसरी लोकगाथाका प्रकाशन डॉ० महेन्द्र भानावतने लोक-कलाके अंक १७में किया है।

प्रस्तुत लेखकके संग्रहागारमें लोकगीतोंका विशाल संग्रह है जो अनेक सूत्रोंसे प्राप्त हुआ है। इस संग्रहको सँभालते समय अभी पीले कागजकी एक कापीमें पेन्सिलसे लिखा हुआ तेजा गीतका रूपान्तर उपलब्ध हुआ। यह कापी लेखकको कोई पैंतीस-छत्तीस वर्ष पूर्व प्राप्त हुई थी।

उपलब्ध रूपान्तर गणपति स्वामीद्वारा संगृहीत रूपान्तरसे पर्याप्त भिन्नता रखता है। भाषाभेद भी है और कथाभेद भी। पं० वंशीधर शर्मा द्वारा प्रकाशित रूपान्तरके साथ इसका किसी अंशमें साम्य है। वंशीधर शर्मावाले रूपान्तरमें कुछ घटनायें लोकगाथावाली कथा की मिल गयी हैं जो इस रूपान्तरमें नहीं हैं। इस रूपान्तरका अंतका अंश खंडित है।

यह रूपान्तर आगे दिया जाता है।

परिशिष्ट २

तेजो गीत का रूपांतर

[१]

गाज्यो गाज्यो जेठ-असाढ कंवर तेजाजी लगतो ही बूठो सावण-भादवो
धरती-रो मांडण मेव कंवर तेजाजी आभै-री मांडण चमकै वीजळी
छतरी-रो मांडण छाजो कंवर तेजाजी कूवै रो मांडण मरवो केवड़ो
... गोरी-रो मांडण परण्यो सायवो

सूतो सुख भर नींद कंवर तेजाजी ! थारा साथीड़ा वीजै कांकड़ वाजरो
झूठी झूठ मत बोल अे जरणी माता ! म्हारा साथीड़ा हींडै रंग-रै पालणै
झूठी बोलूं तो राम दुवाई कंवर तेजाजी ! थारा साथीड़ा वीजै कांकड़ बाजरो

कुण भातो भरै अे जरणी माता ! कुण वै ला बैलां-री नीरणी ?
भावज भात भरै रे कंवर तेजाजी ! बैनड़ लावै बैलां-री नीरणी

कठै भात उतारूं कंवर तेजाजी ! कठै उतारूं बैलां-री नीरणी ?
खेजड़ हेठै भात उतारो भावज म्हारी ! धौरै तो उतारो बैलां-री नीरणी
भातो मोड़ो लायी ए भावज म्हारी ! दूजां-रो दोपारो तेजाजी-रो जीमणो
घरै म्हांरै काम घणो रे नानड़िया देवर ! भैंसां-री दुवारी दिन ऊगियो
इसड़ो कांई भूखो रे ल्होड़िया देवर ! इसड़ो भूखाळू है तो लावै नी घर-री गोरड़ी
कुण म्हारी सगाई करी भावज म्हारी ! कुण परणायो पीळा पोतड़ां
वावल थारी करी सगाई रे कंवर तेजाजी ! मामां तो परणायो पीळा पोतड़ां

आ लै थारी रास-पिराणी भावज म्हारी ! खोज्यो तो खळकायो आडा ऊमरां
भोजन तो जीम पधारो ल्होड़िया देवर ! भूखा तो गयां तो धोखा मारसी
भोजन तो थारो माफ राखो भावज म्हारी ! तेजोजी उदमादियो चाल्यो सासरै

खोलो ए भचड़-किंवाड़ जरणी माता ! वारै ऊभो कंवर लाडलो
दोपारां घरै क्यूं आयो रे कंवर तेजाजी !.......................
कांई थारै हळ-री हाल टूटी कंवर तेजाजी ! कांई टूटी थारै नाडी बाधली
नहीं टूटी हळ-री हाल जरणी माता ! नहीं तो टूटी नाडी बाधलो
................................जरणी माता ! तेजो जासी उदमादियो सासरै

कुण तनै चाळा चाळ्या कंवर तेजाजी ! कुण तो चुड़लाळी मोसो बोलियो !
साथीड़ां चाळा चाळ्या अे जरणी माता ! भावज चुड़लाळी मोसो बोलियो
साथीड़ां-री रांड मरो रे कंवर तेजाजी ! भावज रहजो अे जुग-में वांझड़ी
साथीड़ां-री वेल वधो अे जरणी माता ! भावज तो फळजो कड़वै नींब ज्यूं

हंसकर हुकम दो जरणी माता ! तेजोजी उदमादियो जासी सासरै
घड़ी दोय जेज करो कंवर तेजाजी ! मोरतियो कढावां सस्वरै वार-रो
घर जोसी-रै जावो अे भूवा तेजा-री !............................
वांचो वेद-पुराण बेटा जोसी-का ! कांई सुगनां-नै जासी तेजोजी सासरै
वांचां वेद-पुराण भूवा तेजा-री ! म्हारै तो सुगनां-में तेजाजी-री देवळी
वांसां खाल फोड़ाऊं बेटा जोसी-का ! ऊंचो टेराऊं हरियै नींब-रै
हिंदू धरम हटो कंवर तेजाजो ! थारो बाबल देतो गायां दूझती
गायां म्हारै गोर भरी बेटा जोसी-का ! सखरी तो ले जा धो ली दूझती
वांचां वेद-पुराण कंवर तेजाजी ! म्हारै सुगनां-में जासी सासरै

बागां करो वणाव कंवर तेजाजी ! बाबल-री छतड़्यां वांधो मोळियो
पग देर बारै आवो भावज म्हारी ! किसोयक बागो देवर लाडलो
कठै करो वणाव देवर म्हारा ! कुणां-रै छतड्यां-में बांधो मोळियो
बागां-में वणाव करां अे भावज म्हारी । बाबल री छतड़्यां में बांधो मोळियो
सूका बागां करो रे वणाव कंवर तेजाजी ! मुड़दां-री छतड़्यां बांधो मोळियो

घोड़ै पर झाटक जीण कसे रे छोरा चाकर-का ! सखरो पिलाण रेवत पागड़ो
कठै पड़्यो पिलाण कंवर तेजाजी ! कठै पड़्यो लीलै-रो ताजणो ?
पड़वै पड़्यो पिलाण छोरा चाकर-का ! खूंटै पड़्यो लीलै-रो ताजणो
घोड़ो जीण नहीं झेलै रे कंवर तेजाजी ! आंसूड़ा नाखै कायर मोर ज्यूं
अणतोलो घी दीनो तनै लीला रेवत ! कारज-री बेळा माथो धूणियो
लीला-नै धीरज देवो छोरा चाकर-का ! आंसूड़ा पूंछो हरियै रूमाल-सूं
घोड़ै जीण मांडो रे कंवर तेजाजी ! सखरो पिलाण रेवत पाणड़ो
हंसकर हुकम देवो जरणी माता ! तेजोजी उदमादियो चाल्यो सासरै

[२]

सड़वड़ चाल चालो रे लीला रेवत ! दिन तो उगायो माळीजी-रै बाग-में
खोलो भचड़ किंवाड़ बेटा माळी-का ! बारै तो ऊभो कंवर लाडलो
ताळा सजड़ जड़्या लीलै घोड़ै आळा ! कूंची तो ले गयी गढ-री गूजरी
लै सायब-को नांव बेटा माळी-का ! सायब-कै नांव-लै ताळा खुल पड़ै
कठै वास वसै लीलै घोड़ै आळा ! किसै राजा-री चालो चाकरी ?
खड़नाल म्हांरो वास वसै बेटा माळी-का ! रायमल मूंता-रै सिगरथ पावणा

करियो गजब इन्याय कंवर तेजाजी ! ताळा तो तोड़्या बीजळसार-रा
घोड़ै-नै ठाण बंधावो कंवर तेजाजी !..................
घोड़ै-नै घास नीरावो कंवर तेजाजी ! करलै-नै नीरावो नागर-वेलड़ी
खड़नाळै घास घणो रे बेटा माळी-का ! वेलड़ी वन छाया नागाणै-रै गोरवै
पोतो ला रे छोरा चाकर-का ! अमल-री मनवारां तेजाजी-रै साथ-री
अमलां में तो पूर छकिया बेटा माळी-का ! अमलां-रा छकिया जासां सासरै

तूं छै भरम-रो वीर बेटा माळी-का ! मारगियो वता दै सहर पनेर-रो
डावी डूंगर जावै रे कंवर तेजाजी ! जीवणी जावै सहर पनेर-नै
गोठां जीम पधारो कंवर तेजाजी !.....................

कुणां-रा बाग-बगीचा बेटा माळी-का ! कुणां-रा कहीजै कूवा-वावड़ी ?
राजाजी-रा बाग-बगीचा कंवर तेजाजी ! रायमल-मूंतै-रा कूवा-वावड़ी
काय-सूं बाग लगावो बेटा माळी-का ! काय-सूं खोदावो कूवा-वावड़ी ?
हळ-सूं बाग लगावां रे कंवर तेजाजी ! हाथां-सूं लगावां मरवो-केवड़ो
काय-सूं बाग सिंचावो बेटा माळी-का ! काय-सूं सिंचावो मरवो-केवड़ो ?
दूधां बाग सिंचायो कंवर तेजाजी ! दहियां सिंचायो मरवो-केवड़ो
काय-सूं बाग निनाणो बेटा माळी-का ! काय-सूं निनाणो मरवो-केवड़ो ?
खुरपां बाग निनाणां कंवर तेजाजी ! नख-सूं निनाणां मरवो-केवड़ो
बागां-में कांई रसाल रे बेटा माळी-का !..................
बागां-में दाड़म-दाख कंवर तेजाजी ! धोळा फूळां मरवो-केवड़ो

किण गळ फूल-माळा रे बेटा माळी-का ! कुणां-रै पेचां मरवो-केवड़ो ?
राजा-रै गळ फूल-माळा कंवर तेजाजी ! रायमल मूंता-रै सिर-रो सेवरो
तनै सोनै-री मुरकी रे बेटा माळी-का ! थारी माळण-नै पैराऊं बांको वाड़लो
तनै पंचरंग पाघ रे बेटा माळी-का ! थारी माळण-नै ओढाऊं बो-रंग चूनड़ी

[३]

खड़िया धमल पुराना कंवर तेजाजी ! दिनड़ो तो उगायो सहर पनेर-में
घोड़ै हींस करी रे कंवर तेजाजी पणिहारयां चमकी सहर पनेर-री
चळू दोय पाणी पावो......................
कठै वास वसै रै लीलै घोड़ै आळा ! किसै राजा-री चालो चाकरी ?
खड़नाल वास वसै...................रायमल मूंता-रै सिगरथ पावणा
पानीड़ो कांई मांगो रे ल्होड़ा बैनोई ! झारी तो भर लाऊं काचै दूध-री

देवां लाख वधाई भोळी नणदल ! पातळियो नणदोई बागां ऊतरयो
झूठी झूठ बोलै ए भावज महारी ! म्हारो तो परण्योड़ो नागाणै देस-में
झूठ वोलूं तो रामदुहाई भोळी नणदल ! पातळियो नणदोई बागां ऊतरयो

बुगचो हाजर ला अे छोरी नायां-को ! गहणो तो पहरो रतन-जड़ाव-रो
नानी मींढां सीस गुंथावो भोळी नणदल ! चोटी घालो वासग-नाग ज्यूं
सींपां भर सुरमो सारो भोळी नणदल ! टीकी देवो लाल सिंदूर-री
पहरो हांस गळा-में भोळी नणदल ! ऊपर तो पहरो वांको वाड़लो
साड़ी-रै सळ घालो अे भोळी नणदल ! कालै रेसम-री पैरो कांचळी
लूम-लूमाळा कसणा बांधो ए भोळी नणदल ! गोरोड़ै पूंचां पर गजरो गैंद-रो

क्यां-री ईंढोणी करूं ए भावज म्हारी ! क्यां-रो तो करूं जल-रो बेवड़ो ?
मोत्यां-री करो ईंढोणी अे नणदल म्हारी ! रूपै-रो तो करो अे जल-रो बेवड़ो
चालो पाणीड़ै तलाव अे नणदल म्हारी ! निजरां-रो मेळो परण्यो सायबो
झूठी जोर बोलै अे भोळी भावज ! म्हारो तो परण्योड़ो नागाणै देस-में
झूठी बोलूं तो रामदुहाई भोळी नणदल ! म्हारो तो नणदोई थारो सायबो
ले लो साथ सहेली भोळी नणदल !··········

परण्यै-री करो पिछाणा भोळी नणदल ! कांई तो सैनाणी परण्यो सायबो ?
भंवर परा वल घणो भोळी भावज ! वांकड़ली मूछाळो परण्यो सायबो
परणी-री पिछाण करो ल्होड़िया बैनोई ! कांई तो सैनाणी तेजाजी-री गोरड़ी
सगळां-में सुघड़ घणी ·······सहंस किरणां में तो सूरज ऊगियो

[४]

साला नै जाय जुंहारया कंवर तेजाजी साला नै जुंहारया चौपड़ खेलता
मानो राम-जुहारा साळां म्हारां ! मुजरो तो मानो तेजाजी-रै साथ-रो
मान्या राम-जुहारा ल्होड़ा बैनोई ! मुजरो तो मान्यो तेजाजी-रै साथ-रो
पोतो हाजर ला रे छोरा चाकर-का ! अमलां-री मनवारां तेजाजी-रै साथ-री

सासू-नै जाय जुंहारी कंवर तेजाजी सासू-नै जुंहारी महीड़ो घमोड़ती
मानो राय-जुहारा सासू म्हांरी ! मुजरो मानो तेजाजी-रै साथ-रो
नित-रा क्यां-रा राम-जुहारा लीलै घोड़ै आळा ओ घर खायो नुगरा पावणां
आया ज्यूं रे पाछा घिरो लीला रेवत । ················

मुखड़ा-सैं बोल संभाळ जरणी माता ! घर आया साजन-नै दीनो ओळभो
ले लै रुपियो रोक अे लालां पाडोसण ! घड़ी दोय विलमावो परण्यै स्याम-नै
थारा-नै तूं ही मनाय पेमल गोरी ! ··········· ····

साळी थारी लूंबी लगाम कंवर तेजाजी ! गोरी तो लूनी पग-रै पागड़ै
साळी-नै सेल वायो रे कंवर तेजाजी ! गोरी-नै वायो वळतो ताजणो
करी गजब इन्याय अे जरणी माता ! घर आया साजन-नै दीनो ओलभो
खाजो काळो नाग कंवर तेजाजी ! म्हारी कूंकूं-री ढेरी-नै वायो ताजणो

मुखड़ा-सूं बोल संभाळ अे जरणी माता ! नाग खाजो ल्होड़ा वीर-नै
कळजुग जोर वरतायो अे छोरी पेमल ! वीरै-सूं वाल्हो परण्यो सायवो
कद तैं लाड लडायो अे छोरी पेमल ! कद साज्या पीव़र-सासरा
हथलेव़ै-में लाड लडायो अे जरणी माता ! चंवरी-में साज्या पीव़र-सासरा
मनड़ा-में हुबस घड़ो परण्या सायब ! खरनाळै चालूं तो पीळो ओढसूं
पौढण-नै ठोड़ बतावो साळी म्हांरी डाबरिया नैणां-में निंदरा घुळ रही
साळी थारो नेग मांगै रे कंव़र तेजाजी ! गोरी तो मांगै खांडियो खोपरो
नागाणो सहर वसै अे साळी म्हारी ! बाळद भर लाऊं खारक-खोपरा
वांटूं लूंग-सुपारी साळी म्हारी ! गोरी-नै देऊं खारक-खोपरा

रेसम बेज वणो रे कंव़र तेजाजी ! दाव़ण तो धोळा पीळा पाट-री
फूलां थांरै सेज बिछाऊं कंवर तेजाजी ! ओसीचो दे लै रे चुड़लाळी बांय-रो
सूतां नीदं न आवै अे पेमल गोरी ! गूजरी कुरळायी वळतै काळजै

[५]

सूरो थारो नांव़ सुण्यो कंवर तेजाजी ! गायां तो घेरी मीणां चोरटां
घर भोमीयै जी-रै जावो लाछां गूजरी ! भोम तो खाव़ै सहर पनेर-री
भोमियां नैर वसै कंव़र तेजाजी ! भोमियां-रै भेदां गायां नीकळी
घर गांव-धणी-रै जाव़ो ए लाछां गूजरी ! हासल तो खाव़ै सहर पनेर-री
घर गांव-धणी-रै गयी अे लाछां गूजरी.......
गांव-धणी-नै जाय जुहारी लाछां गूजरी गायां तो घेरी मीणां चोरटां
गांव-धणी घर नहीं अे लाछां गूजरी ! कंव़र तो भोळा घोड़ा दूबळा

घर भांभी-रै जा अे लाछां गूजरी ! हेलो तो पाड़ै चढती वार-रो
कूंडां म्हारै पाण ठरै लाछां गूजरी ! तुरियां नर चढिया तेजाजी-रा धोतिया
नित-रा पाण ठारो रे बेटा भांभो-रा ! नित-का रेजो तागा टूटता

घर ढोली-रै जा अे लाछां गूजरी ! ढोल बजाव़ै तिरव़ी (?) वार-रो
ढोली जाय जुहारी लाछां गूजरी...............
ढोलां डोर नहीं अे लाछां गूजरी ! डांको ले गया वाळक खेलता
रेसम-री डोर करो बेटा ढोली-का ! डांको करो वीजळसार-रो

सूरो थारो नांव सुण्यो कंव़र तेजाजी ! गोरां-में रांभै वाळक-वाछड़ा
घोड़ा पर जीण मांडो छोरा चाकर-का !..............

कठै पड़यो पिलाण कंवर तेजाजी ! कठै तो पड़यो लीला-रो ताजणो
पड़वै पड़यो पिलाण छोरा चाकर-का ! खूंटै तो पड़यो लीला-रो ताजणो

घोड़ो जोण नहीं झेलै कंवर तेजाजी ! आंसूड़ा नाखै कायर मोर ज्यूं
अणतोलो घी दीनो लीला रेवत ! कारज-री विरियां माथो धूणियो
लीलै-नै धीरज दे रे छोरा चाकर का ! सखरो तो पिलाण रेवत पागड़ो
घोड़ा पर जीण मांडो सूरा बळवंत ! सखरो पिलाणो रेवत पागड़ो

दे दे अे भंवर-बंदूक सुंदर गोरी ! ढाल तरवार दादाजी-रै हाथ-री
महंदी हाथ भरया ओ कंवर तेजाजी ! दस्तो लागैला भंवर-बंदूक-रै
लागै तो लागण दे अे सुंदर गोरी ! सैणां-री सैनाणी साथै हालसी

साथै तो ले र पधारो कंवर तेजाजी ! झगड़ै-री विरियां घुड़लो ढावसूं
लुगायां-रो काम नहीं अे सुंदर गोरी ! सूरा तो जूझसी कायर कांपसी
लुळकर सात सिलाम ओ सूरज नारायण ! परतंग्या राखजो परण्यै स्याम-री

डूंगर चढ हांक करी कंवर तेजाजी चुग-चुग मारया मीणा चोरटा
ओ अे डागळियै चढ़ जोय छोरी दासी !............
अेवड़-छेवड़ गायां वैव लाछां गूजरी ! विच-में वैव गजबी घूमतो
खोल फळसै-री खील अे लाछां गूजरी ! गिण-गिण मेल्हो बाळक वाछुड़ा
गामां म्हारी सगळी आयी ओ कंवर तेजाजी ! गायां-रो मांझी आयो नहीं काणो केरड़ो
कै तो सूरज-रो सांड करती कंवर तेजाजी ! कै करती रथ-रो बैलियो

आयो ज्यूं पाछो घिर ज्या लीला रेवत ! लोयां-री तिसायी लाछां गूजरी
मारगिया-सूं दूर हो जा ओ राजा वासग ! लीलै-रै खुरां में चींथ्यो जावसी
मुखड़ै-सूं बोल संभाल कंवर तेजाजी ! घोड़ै सूधी कर देऊं देवळी
वचन देयर पधारो कंवर तेजाजी !........

कुण साख भरै ओ राजा वासग ! कुण तो कहीजै रिंद-में सामदी
चांद-सूरज साख भरै ओ लीलै घोड़ै आळा ! रिंद-में सायदी खांडियो खेजड़ो
म्हां पर महर करो ओ राजा वासग !........
बावन भैरूं साथ मेलो रे राजा वासग ! जूनै तो खेड़ै-री चौसट जोगण्यां

गायां म्हारी सगली आयी रे मीणां चोरटा ! गायां-रो मांझी नहीं आयो काणो केरड़ो
कै सूरज-रो सांड ......कै रथ-रो बैलियो
आयो ज्यूं रे पाछो घिर जा रे लीलै घोड़ै आळा ! घोड़ै सूधी कर दूं थारी देवळी
काणो केरड़ो हाजर लावो रे....चुग-चुग तो मारूं मीणा चोरटा
मुख-सूं तो बोल संभाल कंवर तेजाजी ! बैनड़ रे-कहीजै पुतर अेकलो
कद-री बैन लागै रे मीणां चोरटां ! कद तो दीनी बैनड़-नै कांचळी
गंगाजी में बैन करी रे कंवर तेजाजी ! पुसकर-दी पैड़यां-में दीनी कांचळी



रणछोड़भट्ट कृत अमर काव्य और महाराणा प्रतापसे संबन्धित दो विवादास्पद प्रश्न

डॉ० व्रजमोहन जावलिया, एम० ए०, पी०-एच०-डी०

अकबरने, सिंहासन संभालनेके उपरान्त राजस्थानके राजपूत राजाओंको अनेक प्रकारके राजनीतिक दावपेचोंके प्रयोगसे अपने अधीन करनेका प्रयास किया और इसमें संदेह नहीं कि उसने इस उद्देश्यमें बहुत कुछ सफलता भी प्राप्त की—पर मेवाड़के शासक महाराणा प्रतापपर उसकी किसी भी नीतिका कोई असर नहीं पड़ा। अकबर की ओरसे समय-समयपर कई प्रतिनिधि भी महाराणाको अकबरकी अधीनता स्वीकार कर लेनेके लिये समझाने हेतु मेवाड़में आये। महाराणाने उन्हें राज्योचित सम्मान दिया—पर बिना किसी सफलताके उन्हें खाली हाथ ही लौटना पड़ा। इनमें प्रमुख थे जलालखाँ कोर्ची, भगवन्तदास, टोडरमल और मानसिंह। मेवाड़में इन सभी राजदूतोंको यथोचित सम्मान दिया गया—पर दुर्भाग्यसे मानसिंहको एक सामान्य सी घटनापर मेवाड़से अपमानित होकर लौटना पड़ा। इस घटनाके विषयमें मेवाड़के इतिहाससे संबंधित लगभग सभी राजस्थानी, संस्कृत आदि भाषाओंमें लिखित ऐतिहासिक काव्य ग्रंथोंमें विवरण मिलता है। स्वयं मानसिंहके राजकुलसे संबंधित ऐतिहासिक काव्य ग्रंथों और ख्यातोंमें इस घटनाका उल्लेख हुआ है। फिर भी कतिपय विद्वान् नवीन प्राप्त सामग्रीके आधारपर अथवा ज्ञात सामग्रीपर ही पुनः मनन करते हुए नई स्थापनाएँ समय-समयपर इस विषयपर करते रहे हैं। कुछ दिनों पूर्व मेवाड़के ही निवासी एक विद्वान् डा० देवीलाल पालीवाल, निदेशक, साहित्यसंस्थान, राजस्थान विद्यापीठ, उदययुरने मेवाड़ राज्य इतिहाससे संबंधित और मेवाड़के महाराणा राजसिंहके आश्रयमें रणछोड़भट्ट द्वारा विरचित संस्कृत काव्य ग्रंथ "अमर काव्य"को प्रमाण रूपमें प्रस्तुत करते हुए अपने एक लेखमें यह संकेत दिया था कि उक्त काव्य ग्रंथमें मेवाड़में किये गये मानसिंहके अपमानका कोई उल्लेख नहीं है अतः ऐसी कोई घटना घटी भी होगी उसमें संदेह है—और अन्य राजस्थानी और मेवाड़ी काव्योंमें दिया गया विवरण कल्पित है।[१]

यदि अन्य ग्रंथोंको अप्रामाणिक मानकर अमरकाव्यमें इस घटनाका उल्लेख मिलनेपर ही इसे सत्य माना जा सकता हो तो मैं सविनय निवेदन करना चाहूँगा कि अमरकाव्यमें इस घटनाका सविस्तर विवरण प्राप्त है। इस ग्रंथमें संवत् १६३० वि०में घटी घटनाओंसे संबंधित विवरण विषयक श्लोक सं० २३से ५० जो इस लेखके परिशिष्ट भागमें दिये जा रहे हैं, ये महाराणा प्रताप द्वारा युक्ति-पूर्वक किये गये मानसिंहके अपमानका स्पष्ट शब्दोंमें उल्लेख हैं यह अंश स्वयं डा० देवीलाल पालीवाल द्वारा संपादित "महाराणा प्रताप-स्मृति-ग्रंथ"में भी प्रकाशित हो गया है।[२] अन्य ऐतिहासिक स्रोतोंसे इस काव्यमें स्वल्प अंतर अवश्य है, और वह है अपमानकी अनुभूतिके समय मात्र का। अन्य काव्योंके अनुसार मानसिंहने भोजनके समय ही अपने अपमानका अनुभव करके रोष प्रकट किया था, परन्तु अमरकाव्यके अनुसार महाराणा मानसिंहको

---

१. शोधपत्रिका वर्ष १९ अंक ४ पृ० ४४–४९।

२. महाराणा प्रताप स्मृति ग्रंथ—साहित्य संस्थान, राजस्थान विद्यापीठ, उदयपुर।

भोजन कराकर और कपूर युक्त बीड़ा देकर प्रेम-पूर्वक विदा कर देते हैं, और उसके बाद मानसिंहको पता चलता है कि महाराणाने उस स्थानसे रसोईके बर्तन आदि हटाकर उस स्थानका जलसे प्रक्षालन करवाकर पवित्र मिट्टी और गोबरसे सफाई करवायी तथा गंगाजलका छिड़काव किया है—तब वह पूछता है कि यह क्या बात है, और एक वयोवृद्ध सामन्त उसे सारा कारण बताता है। और तभी मानसिंह क्रुद्ध होकर अपमानका बदला लेनेकी प्रतिज्ञा करता हुआ अकबरके पास जाकर सब वृत्तान्त कहता है।[१]

अतः यह मान लेना कि इस घटनाका राजस्थानी और मेवाड़ी काव्योंमें दिया गया विवरण काल्पनिक है—कोई अर्थ नहीं रखता विशेषरूपसे उस समय जबकि संबद्ध दोनों पक्षोंके ऐतिहासिक स्रोत उसकी पुष्टि करते हों।

एक दूसरा महत्त्वपूर्ण प्रश्न, जो अकबर और प्रतापके ही सम्बन्धोंको लेकर, अबुलफजल द्वारा अकबरनामेमें किये गये उल्लेखकी[२] पुष्टिमें पुनः खड़ा किया गया है! वह है महाराणा प्रतापका अकबरके द्वारा भेजी गई खिलअत पहनना और पाटवी कुमार अमरसिंहको मुगल दरबारमें भेजनेसे संबंधित। मेवाड़से विफल लौटे राजदूतोंने अपनी संतुष्टि और अपने स्वामीकी संतुष्टिके लिए जो कुछ भी कहा या विवरण लिखा वह स्वाभाविक था। अकबरनामेमें अबुलफज़लका वर्णन भी कुछ ऐसा ही है। आत्मश्लाघाके अतिरिक्त इसे और कुछ नहीं कहा जा सकता। यदि वीरविनोदके लेखक कविराजा श्यामलदास, श्री गौ० ही० ओझा, राजस्थानका इतिहास लिखनेवाले अन्य इतिहासकार या राजस्थानी साहित्यकार अबुलफजलके इस कथनको असंभव और असत्य मानते हैं तो कौनसा अन्याय करते हैं। इस घटनासे संबंधित कोई लिखित प्रमाण मिल पाता अथवा इस घटनाके तुरन्त बाद इसके फलस्वरूप किसी अनुकूल प्रमाणकी झलक भी कहीं दिखाई दे जाती तब तो उन्हें अकबरनामेकी इस सूचनाको सत्य माननेमें कोई आपत्ति नहीं होती—पर कोई प्रमाण मिलता तभी न!

यदि महाराणा प्रतापने खिलअत पहन ली होती, अमरसिंहको अकबरके दरबारमें भेज दिया होता—तो फिर हल्दीघाटीकी लड़ाई और उसके बाद भी पूरे दो युगों तक मेवाड़के साथ संघर्ष छेड़े रखनेकी अकबरको क्या आवश्यकता आ पड़ी थी? क्या अपने फर्जन्द मानसिंहकी आत्मतुष्टिके लिए ही यह आवश्यक हो गया था। स्थिति स्पष्ट है, प्रताप आत्माभिमानी था—स्वतन्त्रताके मूल्यको समझता था—और इसीलिए उसने वह सब कृत्य नहीं ही किया जिसका उल्लेख अबुलफजल करता है और यही कारण था मेवाड़पर अकबरके आक्रमण का।

यदि अबुलफजलका कथन सत्य है तो जहाँगीरनामेमें जहाँगीरको यह लिखनेकी आवश्यकता क्यों आ पड़ी थी कि "राणा अमरसिंह और उसके बाप-दादोंने घमंड और पहाड़ी मकानोंके भरोसे किसी बादशाहके पास इससे पहले हाजिर होकर ताबेदारी नहीं की है। यह मुआमिला मेरे समयमें बाकी न रह जावे।"[३] इससे पूर्व भी महाराणा अमरसिंहपर परवेजको भेजते समय उसने लिखा है—'राणा तुमसे आकर मिले और अपने बड़े बेटेको हमारे पास भेजे तो सुलह कर लेना। राणाकी उपस्थिति तो सर्वथा असंभव थी ही मुगलोंके दरबारमें, पर पाटवी पुत्रकी मुगलोंके दरबारमें उपस्थितिको भी आत्मसमर्पणका सूचक मान लिया गया था। जहाँगीरनामाके उपर्युक्त वाक्योंसे स्पष्ट है कि मुगलबादशाह अपनी इज्जत बचानेके लिए

१. अमरकाव्य—पत्र सं० श्लोक सं० (राज० प्राच्यविद्याप्रतिष्ठान शा० का उदयपुर ग्रंथ सं० ७२०)

२. अकबरनामा—बिवरीज़ द्वारा संपादित—जि० ३ पृ० ८९-९२-९८

३, जहाँगीरनामा—अनुवादक ब्रजरत्नदास –(नागरी प्रचारिणी सभा) प्रथम संस्करण—पृ० सं ३४१।

महाराणाके पाटवी कुँवरको अपने दरबारमें उपस्थित देखकर ही संतुष्ट हो जाना चाहते थे। अबुलफज़लका अकबरनामेमें यह उल्लेख भी अकबरकी झूठी शानको बचानेके लिए एक प्रयास मात्र था, और कुछ नहीं। जहाँगीर द्वारा भी अबुलफजलके उल्लेखपर कोई ध्यान नहीं दिया गया——स्पष्ट है अबुलफजलका कथन झूठा था।

और अबुलफ़जलके इस कथनको झुँठलानेका दूसरा प्रयास किया सर टामस रोने[1], जो जहाँगीरके दरबारमें अजमेरमें उपस्थित था। वह भी जहाँगीरके कथनकी पुष्टि करता है कि महाराणा अमरसिंह और उसके बाप-दादोंने किसी बादशाहके पास हाजिर होकर ताबेदारी नहीं की।

तीसरी पुष्टि उस सम्मान और समारोहसे हो जाती है जो महाराणाके वंशके पाटवी कुँवरको पहली बार मुगलदरबारमें उपस्थित होनेपर जहाँगीर द्वारा किये गये थे। अकबरके लिए भी मेवाड़को अपने अधीनकर महाराणाओंको अपने वशमें करनेका वही महत्त्व था जो जहाँगीरके लिए। फिर जहाँगीर कर्णसिंहके मुगल दरबारमें उपस्थित होनेपर इतनी खुशियाँ मना सकता है तो अकबरने ऐसी खुशियाँ क्यों नहीं मनायीं। विचारणीय है। इस प्रकार वर्षों पूर्व विद्वान् लेखक डा० पालीवालने निर्णीत समस्याको फिरसे उभारा है। अबुलफ़जलकी पुष्टि करनेवाला अब तक कोई अन्य स्रोत उपलब्ध नहीं था। डा० पालीवालने पूर्वोक्त अमरकाव्य ग्रन्थको ही अबुलफ़जलकी पुष्टिके लिए प्रस्तुत किया है।[1] अमरकाव्य महाराणा राजसिंहके कालमें विरचित मेवाड़के इतिहाससे सम्बधित उतना ही प्रामाणिक ग्रंथ है, जितनी राजप्रशस्ति। इसे राज-प्रशस्ति महाकाव्यका ही पूर्वार्द्ध कह दिया जाय तो अनुचित नहीं होगा। उन्होंने अमरकाव्यसे निम्नलिखित अंश इसकी पुष्टिके उद्धृत किया है—

> अकब्बरस्य पार्श्वेऽगादमरेशः कुमारकः।
> यदा तदा मानसिंहो डोडियाभीममुख्यकैः ॥७७
> अमरेशस्य वीरैः सह वार्तां क्रतौ लघु।
> कांश्चिद्वार्तामकथयत्तदा भीमोऽवदत्क्रुधा ॥७८
> भवांस्तत्र समायातु मया घोररणे तदा।
> जुहारस्तत्र कर्तव्यः पूर्वोक्तं वाक्यमित्यहो ॥७९

आश्चर्य होता है विद्वान् लेखकने इस श्लोकसे अमरसिंहका अकबरके पास भेजा जाना या उसका स्वयं अकबरके दरबारमें उपस्थित होना अर्थ कैसे लगा लिया। वैसे भी जिस रूपमें अपने सोचे हुए उद्देश्यकी सिद्धिके लिए उन्होंने पूर्वाग्रह सहित विना पूर्वापरका प्रसंग उद्धृत किये हुए, इन श्लोंकोको उद्धृत किया है अतः यह कोई विशेष अर्थ नहीं रखता है। और यदि कोई अर्थ निकाला भी जाय तो कमसे कम वह अर्थ तो नहीं ही निकलेगा जो उन्होंने निकाला है।

ये श्लोक हल्दी घाटीके युद्धमें महाराणा प्रताप और मानसिंहमें होनेवाली सीधी टक्करकी वेलासे सम्बन्धित हैं। महाराणा प्रतापके साथ भीमसिंह डोडिया मानसिंहके सामने खड़ा है। यह भीमसिंह डोडिया वही सरदार है जिसने उदयसागर तालाबपर मानसिंहके अपमानकी दुर्घटनाके समय मानसिंह और महा-राणा प्रतापके मध्य होनेवाली बातचीतमें राजकुमार अमरसिंहके साथ दौत्यकर्म किया था। और जिसने स्वयं ही मानसिंहकी गर्वोक्तिका उत्तर देते हुए कहा था कि यदि वह मानसिंह मेवाड़से निपटना ही चाहता है तो उसके साथ दो-दो हाथ अवश्य होंगे। यदि वह अपने ही बलपर आक्रमण करने आया तो उसका

१. शोधपत्रिका——वर्ष १९, अंक ४ पृ० ४४-४९।

सामना मालपुरेमें किया जायगा और यदि अपने फूफा अकबरके बलपर आया तो मेवाड़में जहाँ कहीं भी उचित स्थान और अवसर मिलेगा उसका यथोचित स्वागत किया जायगा। मानसिंहके साथ हुई इस तकरार में भीमसिंहने यह भी प्रतिज्ञा की थी कि वह स्वयं उस हाथीपर भाला फेंकनेमें पहल करेगा जिसपर बैठकर मानसिंह आयगा। मानसिंह और भीमसिंहके मध्य हुए इस उग्र संवादका उल्लेख रावल राणाजी री वात[1], मेवाड़की वंशावलियों और वीरविनोद[2] में स्पष्ट रूपमें लिखा मिलता है।

हल्दीघाटीके युद्धस्थलमें भीमसिंह मानसिंहके सामने खड़ा है। उसे आज मानसिंहका स्वागत कर अपनी प्रतिज्ञा पूरी करनेका अवसर प्राप्त हुआ है। वह उदयसागर पर मानसिंहके साथ हुई अपनी तकरार में अपने वचनोंका स्मरणकर मानसिंहका स्वागत कर रहा है। अमरकाव्यके डॉ० पालीवाल द्वारा उद्धृत अंश उसी प्रसंगसे सम्बद्ध हैं। उस अंशके पूर्वके श्लोक निम्न प्रकार हैं, जिन्हें उन्होंने उद्धृत नहीं किया—

प्रतापसिंहस्य पुरस्सरस्स उद्दण्डसांडावत एव वीरः।
स डोडियाजातिभवश्च भीमो भीमप्रभावः समरेषु भीमः ।।७४
सेनावृतं वीक्ष्य स मानसिंहं, गजस्थितं संश्रितलोहकोष्ठम्।
सिंहप्रकोष्ठं किल लोहकोष्ठं, पूर्वोक्तवाक्यं विवदत्सु इत्ययम् ।।७५
विशिष्टकट्टारकमुत्कटाक्षः चिक्षेप पादे क्षतकारितस्य।
एव् विधायैव जुहारशब्दं, स्वस्या जगादेति जगत्प्रसिद्धम् ।।७६

और इससे आगे ही श्री पालीवाल द्वारा उद्धृत अंश है—

अकब्बरस्य पार्श्वेऽगाद् अमरेशः कुमारकः। यदा तदा मानसिंहो डोडियाभीममुख्यकैः ।।७७
अमरेशस्य वीरैः सह वार्ता क्रतौ लघुः। कांश्चिद्वार्ताम् अकथयत्तदा भीमोऽवदत् क्रुधा ।।७८
भवांस्तत्र समायातु, मया घोररणे तदा। जुहारस्तत्र कर्तव्यः पूर्वोक्तं वाक्यं इत्यहो ।।७९

और इससे आगेके श्लोकमें महाराणा प्रताप द्वारा मानसिंह पर भालेसे वार करनेका विवरण है।

प्रतापसिंहोऽथ परप्रतापः परंपराप्रापितपूर्णतापः।
तन्मानसिंहस्य करीन्द्रकुंभे, चिक्षेप कुंतं च शिवेव शुंभे ।।८०

स्थिति सर्वथा स्पष्ट है। यहाँ भीमसिंह अपने पूर्वकथित वचनोंका स्मरणकर मानसिंहका जुहार करना चाह रहा है और वह अपनी विशिष्ट कटार फेंककर मानसिंहके पाँवमें घाव करता हुआ उसका पालन करता है। राजप्रशस्तिमें भी यह प्रसंग थोड़ा भिन्न रूपमें पर इन्हीं शब्दोंमें दिया गया है। उसमें भीमसिंहके बजाय अमरसिंह मानसिंहके हाथी पर भालेसे वार करता है।[3] वीर विनोदमें भी भीमसिंह द्वारा मानसिंह पर इन शब्दोंके साथ कि "लो मैं आ गया हूँ" भाला फेंकनेका विवरण दिया है।[4]

भीमसिंहकी मानसिंहके साथ तकरार और प्रतिज्ञासे संबद्ध श्लोकोंके साथ श्लोक सं० ७७ में प्रथम चरण "अकब्बरस्य पार्श्वेऽगाद् अमरेशः कुमारकः—यदा" ही इस भ्रांतिका मूल कारण है। जिसमें निस्संदेह सीधा सा अर्थ यही निकलता है कि "जब अमरसिंह कुमार अकब्बरके पास गया।" और अगले चरणोंका

१. रावल राणाजी री वात—राज-प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, ग्रंथांक ८७६ पृ० १०४-६।
२. वीरविनोद—(कुँवर मानसिंहसे विरोध)—पृ० १४६.
३. राजप्रशस्ति महाकाव्य—प्रताप विषयक अंश -श्लोक २४।
४. वीरविनोद—(कुँवर मानसिंहसे विरोध)—पृ० १४६।

अर्थ होगा तब मानसिंहने अमरसिंहके वीरोंमें मुख्य भीम डोडियाको बातचीतके दौरान कोई ओछी बात कह दी और भीमने क्रोधित होते हुए कहा 'जब मेरा घोर युद्ध होगा वहाँ आप आयेंगे तो आपका जुहार करूँगा। ये पूर्वमें कहे हुए वाक्य थे।' पूर्वमें बताया जा चुका है कि भीमसिंह और मानसिंहके मध्यका यह झगड़ा और भीमसिंहका उपर्युक्त कथन उस समय हुआ था जब मानसिंह अपमानित होकर कटु और ओछे वचन कहता हुआ अकबरके पास गया था। तो प्रथमचरणमें उसी वेलाका जिक्र होना चाहिए। राज-प्रशस्तिमें इस प्रसंगके अंतर्गत श्लोक सं० २२ में 'अकब्बरप्रभोः पार्श्वे मानसिंहस्ततो गतः। गृहीत्वा दलं ग्रामे खंभनोरे समागतः ॥२२॥ अमर काव्यमें ही श्लोक सं० ५० में—'कोपाकुल स्मश्रु मुहु स्पृशः च। जगाम दिल्लीश्वरपार्श्वमेवं, वार्तामिमां तत्र जगाद सर्वं' और सदाशिव नागरकृत राजरत्नाकर[1] में 'स्मश्रु प्रमृज्य करजेन सवाहनीक. शीघ्रं जगाम च चकत्तनेशगेहं, की भाषा और शब्द विन्याससे अमरकाव्यके अंश 'अकब्बरस्य पार्श्वेऽगाद् अमरेशः कुमारकः' पाठको मिलाने पर स्थिति साफ हो जायगी कि यह अंश किससे सम्बधित होना चाहिए। इन सारी बातोंको देखते हुए हमें यह मान लेना चाहिए कि अमरकाव्यकी प्राप्त प्रतिमें, जो यद्यपि बहुत प्राचीन है[2] और सम्भवतः मूल आदर्श प्रति भी हो सकती है—इस चरणमें अशुद्धि हो गई है। यहाँ पाठ होना चाहिए 'अकब्बरस्य पार्श्वेऽगाद अंबरेश कुमारकः' अर्थात् अम्बर या आमेराधि-पतिका कुमार (मानसिंह) जब अकबरके पास गया। मूल लेखकसे 'अंबरेश'के स्थानपर अमरेशः पाठ इससे आगे आने वाले चरणोंमें 'अमरेश' शब्दको बैठानेके प्रयासमें ध्यान विकेन्द्रित हो जानेके कारण हुआ है—ऐसा सम्भव है। ऐसी अशुद्धियोंका हो जाना एक मनोवैज्ञानिक सत्य है। यदि यह मूल प्रति न होकर प्रति-लिपि हो तो प्रतिलिपिकारके अज्ञानके कारण भी ऐसा होना सम्भव है। शोधार्थीको पूर्ण अधिकार है कि वह निष्पक्ष होकर सम्यक् विचारके उपरान्त सत्यका अनुसंधान करता हुआ पांडुलिपियोंके अशुद्ध पाठोंका संशोधन करता हुआ अपनी खोजमें आगे बढ़े—उसी अधिकारका उपयोग करते हुए मैं यह संशोधन प्रस्तुत कर निवेदन करना चाहूँगा कि अबुलफजलके कथनकी इस ग्रन्थसे पुष्टि नहीं होती है। अमरसिंह कभी अकबर के दरबारमें उपस्थित नहीं हुआ। जब तक और कोई पुष्ट प्रमाण नहीं मिल जाते श्री श्यामलदास और श्री गौ० ही० ओझा द्वारा अनेक विचार मंथनके उपरान्त दिए गये निर्णयको ही अन्तिम माना जाना चाहिए।

१. राजरत्नाकर—(राज-प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान) ग्रं० सं० ७१८।

२. अमरकाव्य—ग्रंथ सं० ७२०—राज० प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, शा० का० उदयपुर।

परिशिष्ट

अमरकाव्यमें भोजनार्थ निमंत्रित मानसिंहके अपमानका विवरण

[1]शते षोडशके त्रिशन्मितेऽब्दे गुर्जरस्थिते ।
मानसिंहो मेदपाटे आयातः पुनरुद्भटः ॥२३॥

अथैकदा प्रोद्धतमानसिंहं प्राघूर्णिकीभृतमभूतपूर्वम् ।
निमंत्रयामास सुग्रमंत्रः प्रतापसिंहः प्रचुरप्रतापः ॥२४॥

उदयसागरनामजलाशयप्रविलसत्तट उत्कटमानसः ।
रसवतीकरणाय तदादिशत् द्विज(ज)नानवनीशशिरोमणिः ॥२५॥

तदा नरैस्तत्र तु पाकशाला कृता प्रयुक्ता सकलैव शाला ।
मिष्टैः शुभान्नैर्घृतपक्वयुक्तैर्लेह्यादिपेयादिक भोज्य सं······ ॥२६॥

आकारितस्तत्र तु मानसिंहः समागतो भाग्यमिहेति जानन् ।
सुभोजनं राणमहीश्वरेण सहैकपंक्तौ मम भावि तस्मात् ॥२७॥
मुदोपविष्टः सुविशिष्टशिष्टः कुलीनराजन्यपवित्रपंक्तौ ।
महानसे वीरगणैः समेतः स मानसिंहो विरराज सिंहः ॥२८॥
प्रतापसिंहो बहुवस्तुसिद्ध्यै, उच्चैः समुत्सार्य विशालचालं ।
बाह्वोः समाज्ञापयति स्वकीयसमस्तलोकेभ्यः उदारवीरः ॥२९॥

स्वर्णादिपात्रेषु समस्त····वस्तूनि सूदैः परिवेषितानि ।
अपूर्वरूपानि च तानि दृष्ट्वा सुविस्मयं प्राप स मानसिंहः ॥३०॥

स मानसिंहो निजगाद वाक्यं प्रतापसिंहं प्रति देव शीघ्रं ।
आयाहि पंक्तौ शुभभोजनार्थमुच्चासने चोपविशत्वितीश ॥३१॥

प्रतापसिंहस्तु तदीयवाक्यं चक्रे श्रुतं वाश्रुतवत्तदैव ।
पुनर्जगादाथ स मानसिंहस्तदेव वाक्यं महता स्वरेण ॥३२॥

राणेश्वरो मे जठरे स्मिष्टभार इत्यब्रवीत्कूर्म नरेशपुत्र ।
कुमारस्त्वायात्त्ववदत्तदेति प्रतापसिंहस्तु पुनर्बभाषे ॥३३॥

स वस्तुसिद्धि विदधाति धन्यां श्रुत्वाखिलं निर्मलमानसः सः ।
ज्ञात्वा तथैवेति च मानसिंहश्चकार सद्भोजनमादरेण ॥३४॥

वीरैः प्रवृद्धैस्तु तदा तदीयः प्रतापसिंहाशयशौर्यविद्भिः ।
कृतो विचारो मनसा दृशा च मिथो न युक्तात्र भुजिक्रियेति ॥३५॥

---

१. गते शते षोडश एकहीन त्रिशद्गतेऽब्दे शुभ फाल्गुनेऽभूत् ।

कूर्मेशपुत्रस्य वृते प्रवीरैरेवं विचारेथ विचक्षणैस्तु ।
राजेन्प्रवीरैरपि तद्विचारं ज्ञात्वा दृशा तान्प्रति सूचितं च ॥३६॥

एतादृशेस्मिन्समये त्वभोजने भाव्येष युष्माकमनर्थ उत्कटः ।
एवं विचार्योचितमत्र यद्भवेत्कार्यं भवद्भिस्तु तदेव दक्षिणैः ॥३७॥

ज्ञात्वेति राणेश्वरवीरतत्त्व कूर्मेशपुत्रस्य महाप्रवीरैः ।
विचारितं चेति विचारदक्षैर्बलादकृत्वा खलु भोजनानि ॥३८॥

उत्थानमस्माभिरितः कृतं चेदुपद्रवस्तत्र महांस्तदा स्यात् ।
भुजिक्रिया तत्र कृतेति सर्वैर्लज्जा विनम्रीकृतनेत्रशीर्षैः ॥३९॥

ततस्तु शुद्धाचमनं समस्तैः सन्मानसिंहेन सहैव सर्वे ।
यथोचित स्थानकृतोपवेशाः राणासभायां नितरां विरेजुः ॥४०॥
जिष्णोः सभायां त्रिदशा यथैव ततः सभामंडपमध्यशोभी ।
प्रतापसिंहोति पवित्र वीरः ॥४१॥
दत्त्वाथ कर्पूरविराजितानि तांबूलवृन्दानि स तानि तेभ्यः ।
संप्रेषयामास च मानसिंहं प्रति प्रेम परिप्लुतोयं ॥४२॥

प्रतापसिंहोथ तदाजवेन स्वाचारिभिः कारयतिस्म सूदैः ।
उल्लेखनं वा रसवत्त्यवन्या भांडादिनिः सारणमेव विश्वक् ॥४३॥

प्रक्षालन भूमिविलेपनं च पवित्रमृत्स्ना शुचिगोमयैश्च ।
अत्राथ गंगाजलसेकमुच्चैः पाकं ततः कारयति स्म तत्र ॥४४॥

कृत्वा ततः पुण्यदवैश्वदेवं कुलीनवीरैः सहितोत्ति काले ।
मुदाकरोत् भोजनमत्र राणा—प्रतापसिंह प्रचुरप्रतापः ॥४५॥

श्रुत्वेति वार्ता परिपूर्णकोप स्तदा स्वकीयान्परिपृच्छतिस्म ।
कूर्मेशपुत्रः किमिदं तदोक्तं तेष्वेव केनापि वयोधिकेन ॥४६॥

हेतुं शृणुष्व क्षितिपाल पुत्र कोपो विधेयो व मयि, त्वा तु ।
म्लेच्छेशमानीय गृहेथ तस्मै कन्यां प्रयच्छंति कलत्रदोला ॥४७॥

अथार्पयंत्येव सुखेन लब्ध्यै जवराति तृप्त्यै ।
ये कच्छवाहादिनृपा अनच्छा स्तान्मानयंत्यत्र पवित्रवीराः ॥४८॥

न राणवंश्याः किमु भोजनानि कुर्वन्ति तैः साकभिमे कथंचित् ।
श्रुत्वा वचस्तत्किल मानसिंहः कोपाकुल स्मश्रु मुहुः स्पृशंश्च ॥४९॥

जगाम दिल्लीश्वरपार्श्वमेवं वार्तामिमां तत्र जगाद सर्वां ।
प्रतापसिंहस्य महोन्नतत्वं श्रुत्वैव कोपारुवक्त्रनेत्रः ॥५०॥

●



डा० दौलतसिंह जी कोठारी–अभिनंदन ग्रंथ विमोचन करते हुए
पासमें खड़े हैं अभिनंदन समितिके मंत्री भँवरलालजी कोठारी
एवं श्रीनाहटाजी



श्री पूज्यजी श्री जिनचंद्रसूरिजी महाराज प्रवचन करते हुए
पासमें बैठे हैं ठाकुर जुगलसिंह बार० एट० ला और पं० हीरालालजी जैन

कूर्मेशपुत्रस्य वृते प्रवीरैरेवं विचारेथ विचक्षणैस्तु ।
राजेन्प्रवीरैरपि तद्विचारं ज्ञात्वा दृशा तान्प्रति सूचितं च ॥३६॥

एतादृशेस्मिन्समये त्वभोजने भाव्येष युष्माकमनर्थ उत्कटः ।
एवं विचार्योचितमत्र यद्भवेत्कार्यं भवद्भिस्तु तदेव दक्षिणैः ॥३७॥

ज्ञात्वेति राणेश्वरवीरतत्त्व कूर्मेशपुत्रस्य महाप्रवीरैः ।
विचारितं चेति विचारदक्षैर्बलादकृत्वा खलु भोजनानि ॥३८॥

उत्थानमस्माभिरितः कृतं चेदुपद्रवस्तत्र महांस्तदा स्यात् ।
भुजिक्रिया तत्र कृतेति सर्वैर्लज्जा विनम्रीकृतनेत्रशीर्षैः ॥३९॥

ततस्तु शुद्धाचमनं समस्तैः सन्मानसिंहेन सहैव सर्वे ।
यथोचित स्थानकृतोपवेशाः राणासभायां नितरां विरेजुः ॥४०॥

जिष्णोः सभायां त्रिदशा यथैव ततः सभामंडपमध्यशोभी ।
प्रतापसिंहोति पवित्र वीरः ॥४१॥

दत्त्वाथ कर्पूरविराजितानि तांबूलवृन्दानि स तानि तेभ्यः ।
संप्रेषयामास च मानसिंहं प्रति प्रेम परिप्लुतोयं ॥४२॥

प्रतापसिंहोथ तदाजवेन स्वाचारिभिः कारयतिस्म सूदैः ।
उल्लेखनं वा रसवत्त्यवन्या भांडादिनिः सारणमेव विश्वक् ॥४३॥

प्रक्षालनं भूमिविलेपनं च पवित्रमृत्स्ना शुचिगोमयैश्च ।
अत्राथ गंगाजलसेकमुच्चैः पाकं ततः कारयति स्म तत्र ॥४४॥

कृत्वा ततः पुण्यदवैश्वदेवं कुलीनवीरैः सहितोति काले ।
मुदाकरोत् भोजनमत्र राणा—प्रतापसिंह प्रचुरप्रतापः ॥४५॥

श्रुत्वेति वार्ता परिपूर्णकोप स्तदा स्वकीयान्परिपृच्छतिस्म ।
कूर्मेशपुत्रः किमिदं तदोक्तं तेष्वेव केनापि वयोधिकेन ॥४६॥

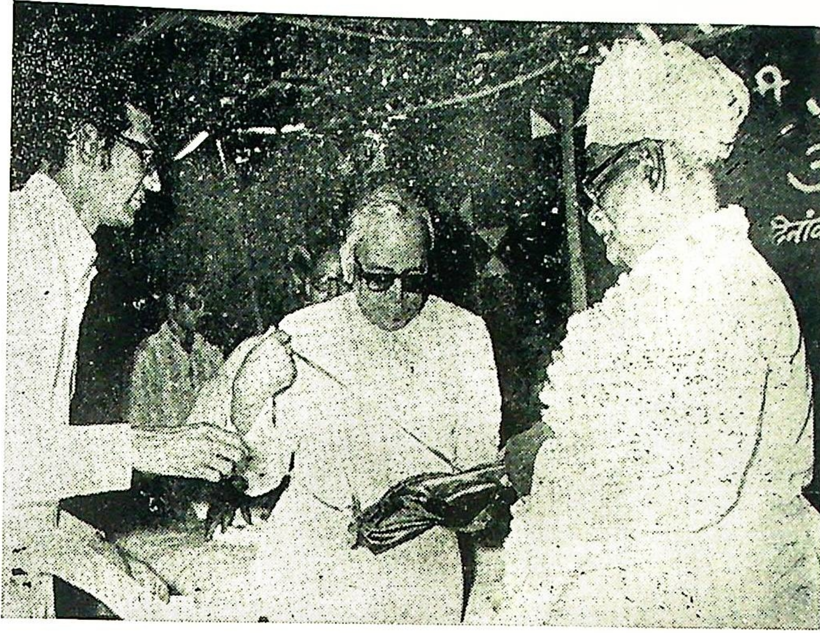
हेतुं शृणुष्व क्षितिपाल पुत्र कोपो विधेयो व मयि, त्वा तु ।
म्लेच्छेशमानीय गृहेथ तस्मै कन्यां प्रयच्छंति कलत्रदोला ॥४७॥

अथार्पयंत्येव सुखेन लब्ध्यै जवराति तृप्त्यै ।
ये कच्छवाहादिनृपा अनच्छा स्तान्मानयंत्यत्र पवित्रवीराः ॥४८॥

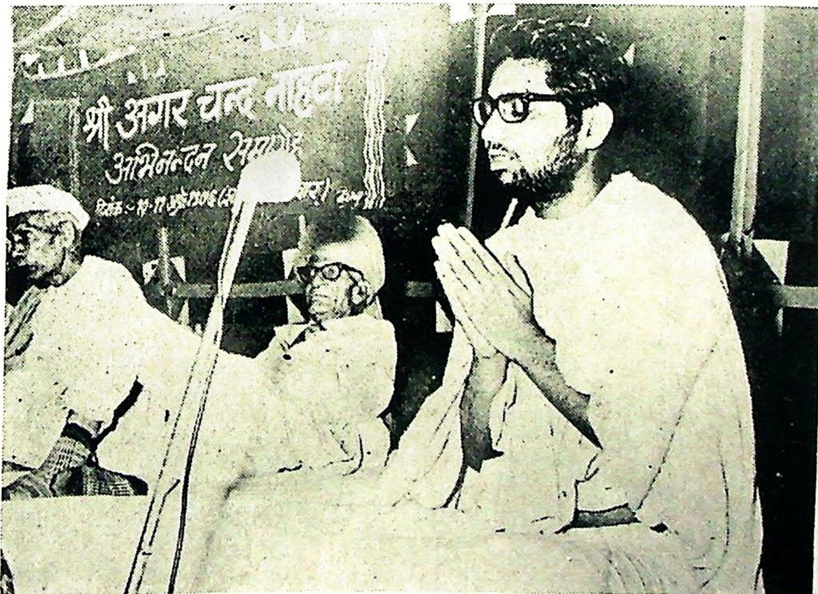
न राणवंश्याः किमु भोजनानि कुर्वन्ति तैः साकमिमे कथंचित् ।
श्रुत्वा वचस्तत्किल मानसिंहः कोपाकुल स्मश्रु मुहुः स्पृशंश्च ॥४९॥

जगाम दिल्लीश्वरपार्श्वमेवं वार्तामिमां तत्र जगाद सर्वां ।
प्रतापसिंहस्य महोन्नतत्वं श्रुत्वैव कोपारुवक्त्रनेत्रः ॥५०॥

●



डा० दौलतसिंह जी कोठारी—अभिनंदन ग्रंथ विमोचन करते हुए
पासमें खड़े हैं अभिनंदन समितिके मंत्री भँवरलालजी कोठारी
एवं श्रीनाहटाजी



श्री पूज्यजी श्री जिनचंद्रसूरिजी महाराज प्रवचन करते हुए
पासमें बैठे हैं ठाकुर जुगलसिंह बार० एट० ला और पं० हीरालालजी जैन



अभिनंदन समारोहमें भाषण करते हुए—अखिल भारतवर्षीय
स्थानकवासी जैन संघके अध्यक्ष श्री गुमानमलजी चोरड़िया



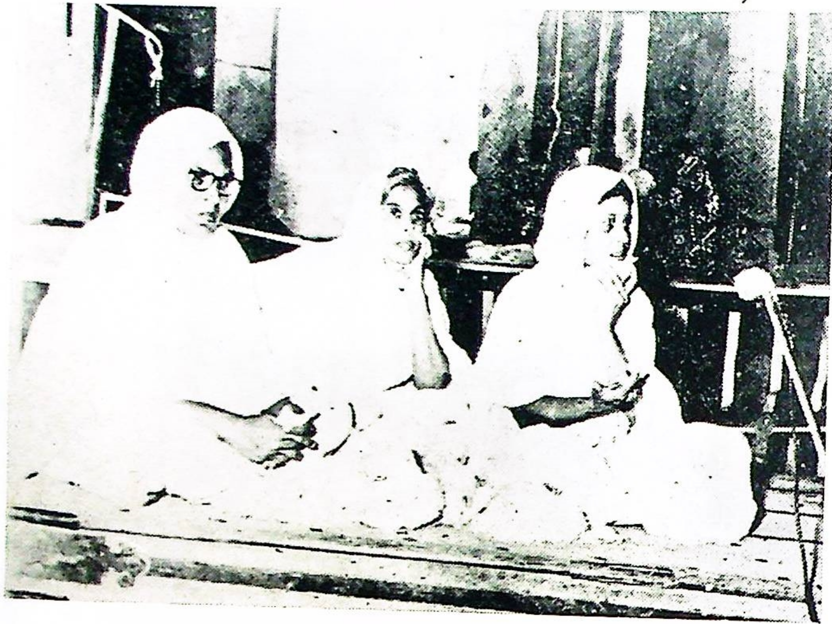
मंच पर विराजित श्री दौलतसिंहजी कोठारीके साथ
श्री अगरचंद नाहटा व श्री भँवरलाल नाहटा



अभिनंदन समारोहमें भाषण करते हुए अभिनंदन ग्रंथ के
संयोजक श्री हजारीमल बाँठिया



श्री भँवरलाल नाहटाको अभिनंदन ग्रंथ भेंट करते हुए
सांसद् श्री मुहम्मद उसमान आरिफ



समारोहमें प्रवचन करती हुई विदुषी आर्यारत्न
श्री हेमप्रभाश्री जी आदि



डॉ० दौलतसिंह जी कोठारी
श्री अगरचंद नाहटाको अभिनंदन ग्रंथ भेंट करते हुए

श्री अगरचंद नाहटा अभिनंदनोत्सव-समारोह का विवरण

शोध-मनीषी, पुरातत्त्ववेत्ता, तत्त्वचिंतक, समत्वयोगी श्री अगरचंद नाहटा के अभिनंदनोत्सव का प्रथम समारोह चैत्र शुक्ला १० तथा ११ सं० २०३३, तदनुसार दिनांक १० और ११ अप्रैल सन् १९७६, को उनकी जन्मभूमि एवं कर्मभूमि बीकानेर में आयोजित किया गया। समारोह के लिए एक व्यापक समारोह-समिति का गठन किया गया था जिसके अध्यक्ष राष्ट्र के महान् शिक्षाशास्त्री विश्वविद्यालय-आयोग के अवकाश प्राप्त **प्रधान डॉ० दौलतसिंहजी कोठारी** थे। अन्य पदाधिकारीगण इस प्रकार थे—

उपाध्यक्ष—विद्यावाचस्पति पं० विद्याधर शास्त्री,
आचार्य नरोत्तमदास स्वामी,
डा० छगन मेहता।

मंत्री—श्री भँवरलाल कोठारी।

सहमंत्री—श्री मूलचंद पारीक,
श्री जसकरण सुखाणी,
श्री प्रकाशचंद सेठिया।

कोषाध्यक्ष—श्री लालचंद कोठारी।

संयोजक—श्री हजारीमल बांठिया।

संरक्षक—डॉ० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या राष्ट्रीय प्रोफेसर, सुप्रसिद्ध भाषाविद्, अध्यक्ष, भारतीय साहित्य अकादमी, दिल्ली
श्री हरिदेव जोशी भूतपूर्व मुख्यमंत्री, राजस्थान
श्री राजबहादुर भूतपूर्व केंद्रीयमंत्री
श्री रामनिवास मिर्धा, भूतपूर्व केंद्रीय राज्यमंत्री,
श्री चंदनलाल बैद भूतपूर्व वित्तमंत्री, राजस्थान
डॉ० करणीसिंह भूतपूर्व बीकानेर-महाराजा व संसद सदस्य
सेठ कस्तूरभाई लालभाई, अहमदाबाद
साहू श्री शांतिप्रसाद जैन, दिल्ली
श्री शादीलाल जैन, बम्बई,
सेठ अचलसिंह, भूतपूर्व संसद सदस्य, आगरा
श्री मोहनमल चौरडिया, मद्रास
श्री विजयसिंह नाहर भूतपूर्व उप मुख्यमंत्री, पश्चिम बंगाल, कलकत्ता,
श्री अक्षयकुमार जैन, दिल्ली

श्री प्रभुदयाल डाबलीवाल, कलकत्ता
श्री सीताराम सेकसरिया, कलकत्ता
श्री भागीरथ कानोडिया, कलकत्ता
श्री गणपतराज बोहरा, बड़ौदा
श्री राजरूप टाक, जयपुर
श्री भँवरमल सिंघी, कलकत्ता
श्री आनंदराज सुराणा, दिल्ली
श्री गुमान मल चोरडिया, जयपुर

इनके अतिरिक्त कार्यसंचालन हेतु कार्यकारी मंडल एवं परामर्श-मंडल का भी गठन किया गया जिनके नाम परिशिष्ट में दिये जा रहे हैं।

समारोह का शुभारंभ दिनांक १०-४-१९७६ को दोपहर के एक बजे हुआ। प्रथम दिन 'राजस्थान के साहित्य' विषय पर विचारगोष्ठी हुई। इसकी अध्यक्षता भारतीय विद्यामंदिर के निदेशक श्री सत्यनारायण पारीक ने की तथा संयोजन श्री महावीर राज गेलड़ा, प्राध्यापक, डूंगर कालेज, बीकानेर, ने किया। गोष्ठी में प्रमुख वक्ता अपने विषय के अधिकारी विद्वान् थे, जिनने राजस्थान की विभिन्न भाषाओं के साहित्यों के विस्तृत विवरण प्रस्तुत किये—डॉ० नरेंद्र भानावत ने हिंदी साहित्य का, डा० हीरालाल माहेश्वरी ने राजस्थानी साहित्य का, महोपाध्याय श्री विनयसागर ने संस्कृत साहित्य का और श्री भँवरलाल नाहटा ने प्राकृत और अपभ्रंश साहित्य का विवेचन किया। उसी दिन रात्रि के साढ़े आठ बजे बृहत् कवि सम्मेलन का आयोजन किया गया जिसमें स्थानीय कविवरों के अतिरिक्त वनस्थली विद्यापीठ की डा० लक्ष्मी शर्मा ने भी अपने गीत एवं कविता-पाठ प्रस्तुत किये। डा० नरेंद्र भानावत ने सम्मेलन का संयोजन किया।

समारोह के दूसरे दिन, दिनांक ११ अप्रेल, १९७६ को 'राजस्थान का जैन पुरातत्त्व' विषय पर एक बृहद् गोष्ठी का आयोजन किया गया। इसकी अध्यक्षता राजस्थान राज्य के अभिलेखागार विभाग के निदेशक श्री जे० के० जैन ने, तथा इसकी संयोजना श्री दीनदयाल ओझा ने की, इस गोष्ठी में जैन पुरातत्त्व के विविध पक्षों पर विशेषज्ञ विद्वानों ने निबंध वाचन किया, श्री विजयशंकर श्रीवास्तव ने जैन मंदिर एवं मूर्ति कला पर, श्री मोतीचंद खजानची और भँवरलाल नाहटा ने जैन चित्रकला एवं लेखनकला पर तथा श्री रामवल्लभ सोमाणी ने जैन अभिलेखों पर शोधपूर्ण एवं नवीन जानकारी युक्त निबंध पढ़े। उसी दिन तीसरे पहर १.३० बजे माननीय दौलतसिंहजी कोठारी की अध्यक्षता में मुख्य समारोह संपन्न हुआ। प्रारंभ में छात्राओं ने सरस्वती-वंदना की, तदनंतर समारोह के मंत्री श्री भँवरलाल कोठारी ने स्वागत भाषण किया, उसके बाद भू० पू० नगर विधायक श्री गोपाल जोशी ने माल्यार्पण किया तत्पश्चात् मंत्री ने विभिन्न स्थानों से आये संदेशों को पढ़कर सुनाया जो परिशिष्ट में दिये जा रहे हैं।

इसके बाद सर्वश्री नरेंद्र भानावत, डा० हीरालाल माहेश्वरी, श्री महावीरराज गेलड़ा, श्री विनय-सागर, श्री विजयशंकर श्रीवास्तव, डा० छगन मोहता, श्री सत्यनारायण पारीक, श्री उस्मान आरिफ सांसद, श्री गोपाल जोशी विधायक, श्री मुन्नालाल गोयल (जिलाधीश), श्री श्रीलाल नथमल जोशी, डा० मनोहर शर्मा, श्री प्रकाशचन्द सेठिया, जुगलसिंह खीची, पंडित श्री हीरालाल सिद्धान्तशास्त्री (ब्यावर), श्री दीन-दयाल ओझा, प्रो० कन्हैयालाल शर्मा, श्री गुमानमल चोरडिया जयपुर, श्री यादवेंद्र शर्मा 'चन्द्र', श्री हरीश भादानी, श्री जानकीनारायण श्रीमाली, डा० लक्ष्मी शर्मा वनस्थली, श्री रायचंद्र जैन एडवोकेट (गंगानगर)

तथा आचार्य नरोत्तमदास स्वामी (समारोह के उपाध्यक्ष) आदि ने नाहटाजी के व्यक्तित्व और कृतित्व के विविध पक्षों पर प्रकाश डाला, श्री जसराज सोनार ने अपनी भावांजलि पद्य रूप में प्रस्तुत की ।

अभिनंदन ग्रंथ समिति के संयोजक श्री हजारीमल बांठिया तथा प्रबंधक संपादक श्री रामवल्लभ सोमानी ने अभिनंदन ग्रन्थ विषयक विवरण प्रस्तुत किया, अध्यक्ष डा० कोठारी और संपादन-मंडल के प्रतिनिधि तथा उपाध्यक्ष प्रो० नरोत्तमदास स्वामी ने श्री नाहटाजी को अभिनंदन ग्रन्थ की प्रति भेंट की, ग्रन्थ के साथ ही अभिनंदन-पत्र, उत्तरीय एवं श्रीफल भी भेंट किये गये, शोधकार्य में नाहटाजी के निरंतर सहयोगी और सह-कार्यकर्त्ता उनके भतीजे श्री भँवरलालजी नाहटा को भी ग्रन्थ की एक प्रति के साथ उत्तरीय तथा श्रीफल भेंट किये गये, तदनंतर श्री नाहटाजी ने मार्मिक एवं प्रेरक उद्बोधन भाषण किया । अंत में समारोह-मंत्री श्री कोठरी ने मनीषी नाहटाजी के प्रेरक जीवन पर प्रकाश डालते हुए आयोजन को सफल बनाने में सहयोगी सभी सज्जनों और कार्यकत्ताओं के प्रति आभार प्रकट किया, इस धन्यवाद-भाषण के साथ समारोह संपूर्ण हुआ ।

नाहटा अभिनंदनोत्सव का दूसरा समारोह शीघ्र ही राजधानी दिल्ली में संपन्न किया जायगा, जिसमें नाहटाजी को अभिनंदन ग्रन्थ का दूसरा खंड भेंट किया जायगा ।

भँवरलाल कोठारी
मंत्री

अभिनंदनोत्सव समारोह पर प्राप्त आशीर्वाद एवं शुभ कामनाओं के संदेश

आचार्य श्री तुलसी चण्डवास

बहुमुखी व्यक्तित्व के धनी अगरचन्दजी नाहटा जैन समाज के विशिष्ट श्रावक हैं। जैन साहित्य और इतिहास के क्षेत्र में एक दृष्टि से उन्होंने उल्लेखनीय सेवाएँ दी हैं और दे रहे हैं। एक जन्मना व्यवसायी व्यक्ति पारिवारिक दायित्व निर्वाह के साथ जैन शासन और जैन साहित्य सेवा का इतना बड़ा संकल्प कर सकता है, यह अनुकरणीय आदर्श है। इस प्रसंग पर नाहटा जी के लिए मेरा यही संदेश है कि वे साहित्य सेवाओं के साथ अपने जीवन को आध्यात्म की ओर विशेष गतिशील बनायें।

आचार्य श्री विजयधर्म सूरिजी

समारोह की सफलता की कामना चाहता हूँ।

श्री देवेन्द्रमुनिजी-विजयपुर

नाहटा जी को शुभाशीर्वाद।

साध्वी श्री विचक्षणाश्री जी, जयपुर

जैन समाज एवं धर्म सभी क्षेत्रों में नाहटा जी का यशस्वी जीवन दीर्घकाल तक सभी को गौरवशाली बनाता रहे, यही गुरुदेव से प्रार्थना है।

आचार्य श्री आनन्द ऋषिजी, पूना

सरस्वती के पुजारी नाहटा जी का जीवन साहित्य सृजन क्षेत्र में काफी ऊँचा रहा है। सतत प्रयत्न ने उन्हें देश मूर्धन्य साहित्यकारों की श्रेणी में बिठा दिया है, शोध साहित्य में आपकी कलम वे जोड़ रही है।

भारत सरकार के उपराष्ट्रपति माननीय श्री जत्ती महोदय

बड़ी प्रसन्नता होती कि ऐसे मौके पर मैं स्वयं उपस्थित हो पाता।

आन्ध्रप्रदेश के राज्यपाल श्री मोहनलालजी सुखाड़िया

श्री अगरचन्द जी की जिन क्षेत्रों में सेवाएँ हैं उनसे हम भली-भाँति सभी प्रकार से परिचित हैं। मुझे यह जानकर बड़ी खुशी हुई है कि ऐसे व्यक्ति का अभिनन्दन समारोह मनाया जा रहा है। परमात्मा उनको दीर्घायु करें।

राजस्थान के मुख्य मन्त्री श्री हरिदेवजी जोशी

श्री नाहटा जी का साहित्य क्षेत्र में एक विशेष स्थान है और उनके अभिनन्दन से संबंधित होना सौभाग्य की बात है।

राजस्थान के वित्तमन्त्री श्री चंदनमलजी बैद

श्री अगरचन्द नाहटा के अभिनन्दन समारोह में उपस्थित होने की बड़ी इच्छा थी, परन्तु निजी आवश्यक कार्यों के कारण उन दिनों जयपुर नहीं छोड़ सका।

शिक्षाआयुक्त श्री जगन्नाथसिंहजी मेहता, जयपुर

मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई कि राजस्थान के निवासियों की ओर से सुप्रसिद्ध विद्वान् श्री अगरचन्द नाहटा का गुणप्रेरक अभिनन्दन किया जा रहा है।

श्रीयुत् रतनचन्दजी अग्रवाल, पुरातत्त्व संग्रहालय विभाग, जयपुर

प्रभु से करबद्ध प्रार्थना है कि राजस्थान के मूर्धन्य विद्वान् श्री अगरचन्द जी नाहटा चिरायु हों ताकि वे राजस्थान एवं भारत के साहित्य में उत्तरोत्तर वृद्धि कर सकें।

सेठ श्रीयुत् अचलसिंहजी, संसद सदस्य, दिल्ली

श्री नाहटा को इस देश, समाज व साहित्य के प्रति अनेक सेवाएँ हैं, यह कार्य बहुत पहले हो जाना चाहिए था फिर भी आपके प्रयास एवं आयोजन के लिए मेरी शुभ कामनाएँ हैं।

लक्ष्मी कुमारी चूड़ावत, संसद सदस्य, दिल्ली

श्री नाहटा जी का अभिनन्दन समारोह को जानकर प्रसन्नता हुई, हम सभी का कर्तव्य है कि इसे सफल बनाने का प्रयत्न करें।

श्रीमती कान्ता खतूरिया, सदस्या राजस्थान विधान सभा

इस शुभ कार्य के लिए मेरा सक्रिय सहयोग आपके साथ है।

मूर्धन्य साहित्यकार बनारसीदास चतुर्वेदी, फिरोजाबाद

श्रद्धेय अगरचन्दजी नाहटा ने हिन्दी साहित्य की जो अद्भुत सेवा की है, उससे उनका अभिनन्दन होना ही चाहिए था। इस सुअवसर पर मैं अपनी हार्दिक बधाई देता हूँ।

श्रीयुत अक्षयकुमार जो जैन, संपादक, नवभारत टाइम्स, दिल्ली

समारोह की सफलता की शुभकामना।

श्री परमेष्ठी दास जी जैन, संपादक, वीर

मैं विद्यापति श्री अगरचन्दजी नाहटा की साहित्य सेवाओं पर मुग्ध हूँ, उनका अति प्रशंसक हूँ। समारोह के समय मेरी ओर से भी हार्दिक अभिनन्दन दीजिए। नाहटा जी के शतायु होने की कामना करता हुआ, और भावना भाता हूँ कि वे सौ वर्ष तक सतत साहित्य सेवा में लगे रहें।

श्री जमनालालजी जैन, सह संपादक, श्रमण, वाराणसी

नाहटा जी ने अपने जीवन में जितना कार्य मां भारती के लिए किया वैसा और उतना कार्य अगर मैं अतिशयोक्ति नहीं करता तो कहना चाहता हूँ कि एक सर्वसाधन सम्पन्न विश्व विद्यालय भी करने में असमर्थ है। वे हम सबको सेवा एवं कर्मठता का मंगल आशीष निरन्तर देते रहें, यही प्रभु से प्रार्थना है।

श्री राजनाथजी, संपादक सुधाबिन्दु, अहमदाबाद

आपकी बहुमुखी सेवाएँ साहित्य समाज की मूल्यवान निधि हैं। प्रभु से प्रार्थना करते हैं कि नाहटा जी शतजीवी बन कर मां भारती के चरणों में अन्य कई ग्रन्थ पुष्प रखने के लिए सक्षम बनें।

श्री चन्दनमलजी चांद, प्रबन्ध संपादक, जैन जगत

श्री नाहटा जी का मण्डल, जैन जगत एवं मेरे से अत्यन्त घनिष्ठ सम्पर्क है और उनकी विद्वत्ता विनम्रता आदि भावों से जन-जन परिचित है।

श्री यशपालजी जैन, सस्ता साहित्य मण्डल, दिल्ली

श्री नाहटा जी को मेरी आन्तरिक बधाई दीजिए। उन्होंने अपने साहित्य द्वारा समाज को जो सेवा की है वह निःसन्देह सराहनीय है। मेरी कामना है कि वे दीर्घायु हों, स्वस्थ रहें, और अपनी लेखनी द्वारा चिरकाल तक समाज की सेवा करें।

डा० ज्योतिप्रसाद जी जैन, लखनऊ

नाहटजी हमारी समाज के ही नहीं वरन् सम्पूर्ण देश के गौरव हैं और हिन्दी साहित्य जगत् के सूर्य हैं। उनका अभिनन्दन करना साक्षात् सरस्वती का अभिनन्दन करना है।

पं० हीरालाल जी सिद्धान्तशास्त्री, व्याबर

सरस्वती के वरद पुत्रों का सम्मान होना चाहिये। मैं उनके दीर्घजीवी होने की मंगल कामना करता हूँ।

डा० कस्तूरचन्दजी कासलीवाल, जयपुर

नाहटा जी देश की विभूति हैं तथा समाज उनसे गौरवान्वित है।

डा० जगदीशचन्दजी जैन, व श्रीमती जगदीश जैन, बम्बई

हम आशा करते हैं कि भविष्य में भी आपका जीवन विद्या देवी की साधना में व्यतीत होगा।

पं० अमृतलालजी शास्त्री, संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी

नाहटा जी चलती फिरती लाइब्रेरी हैं, साहित्य साधना से उन्होंने समूचे जैन समाज का गौरव बढ़ाया है।

श्री अनूपचन्दजी न्यायतीर्थ, जयपुर

नाहटा जी ने अपनी सतत साधना से मां भारती का मस्तिष्क ऊँचा कर राष्ट्र को गौरवान्वित किया है। उनका सम्पूर्ण जीवन साहित्यमय है।

प्रो० पृथ्वीराजजी जैन, अम्वाला

विविध क्षेत्रों में उनके कार्यों की गणना तारों की गणना के समान दुःसाध्य है। जैन साहित्य की अनमोल सेवा करते हुए वर्तमान व भावी पीढ़ी के लिए मार्गदर्शक प्रकाश स्तंभ बने रहें यही प्रार्थना है।

पं० मूलचन्दजी शास्त्री, श्रीमहावीरजी

नाहटा जी समाज में अपने बुद्धिजीवियों के प्रति आदर भाव की जागृति बनाने मे अग्रदूत बनें।

श्री शोभाचन्द जी भारिल्ल, बम्बई

नाहटा जी चिरजीवी हों।

श्री दलसुख मालवणिया, अहमदाबाद

इनकी साहित्य के इतिहास की दृष्टि पैनी है और एक एक पत्रों में से इतिहास की बहुमूल्य सामग्री का चयन सैकड़ों लेखों में उन्होंने किया है।

डा० राजाराम जैन, एच. डी. जैन कालेज, आरा

श्रद्धेय नाहटा जी साहित्य जगत् के गौरव गुरु हैं। उनमें गुणाढ्य से लेकर चन्दर वरदाई, ह्यूनात्सांग फाहियान से लेकर बर्नियर और पाणिनि से लेकर टेसिटरी तक की आत्म शक्तियां समाहित हैं।

हास्यकवि श्री हजारीलाल जैन सकरार

जिनका सत् साहित्य कराता मोक्ष मार्ग दर्शन है,
जिनकी कलम कराती रहती सदा ज्ञान वर्धन है,
शोध मनीषी विद्या वारिधि उन्हीं नाहटा जी का
इस पुनीत वेला पर 'काका' शत-शत अभिनन्दन है।

प्रो० श्रीचंदजी जैन, उज्जैन

व्यक्ति विशेष का अभिनन्दन न होकर मैं इसे धर्म का, साहित्य का, संस्कृति का एवं कला का पुनीत सत्कार मान रहा हूँ।

श्री पन्नालालजी साहित्याचार्य, मंत्री, भारतवर्षीय दिगम्बर जैन विद्वत् परिषद, सागर

श्री नाहटा जी की साहित्य सेवा जैन समाज के गौरव को बढ़ाने वाली है।

श्री आनन्दराज सुराना, स्थानकवासी जैन क्रान्फ्रेन्स, दिल्ली

श्री नाहटा जी एक विद्वान् समाज सेवी, कर्मठ कार्यकर्ता एवं लेखक आदि सभी से सम्पन्न व्यक्तित्व वाले हैं।

श्री भंवरलाल सिंघी, अध्यक्ष अखिल भारतीय मारवाडी सम्मेलन, कलकत्ता

श्री अगरचन्दजी नाहटा जी ने जीवन भर जो विद्या साधना की है और समाज एवं साहित्य को जो अवदान किया है वह सदा अभिनन्दनीय रहा है व रहेगा। उनकी जैसी साधना बहुत कम लोगों में मिलती है।

श्री दौलतसिंहजी जैन, मन्त्री, अखिल भारतीय खरतरगच्छ, दिल्ली

श्री नाहटा जी राष्ट्र के लब्ध प्रतिष्ठ विद्वान् हैं। सहस्रों अमूल्य ग्रन्थों का संग्रह एवं अवलोकन कर इतिहास एवं साहित्य की महान् सेवा की है। उन्होंने इस गच्छ का नाम रोशन किया है।

श्री केसरमलजी सुराना, मन्त्री, जैन श्वेताम्बर तेरापंथी मानव हितकारी संघ, रानावास

श्री अगरचन्द जी नाहटा हमारे समाज के अग्रणीय नेता हैं। उन्होंने जो हमारे समाज की सेवा की है वह जैन इतिहास के स्वर्ण अक्षरों में लिखी जायेगी।

श्री सेठ भागचन्दजी सोनी, अध्यक्ष, अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महासभा, अजमेर

वे जैन पुरातत्त्व के गतिशील अध्येता तथा अनुसंधित्सुओं के प्रेरणास्रोत हैं। लक्ष्मी और सरस्वती की उन पर समान रूप से कृपा है।

श्री विजयसिंहजी नाहर, भूतपूर्व उपमुख्य मन्त्री, पश्चिमी बंगाल, कलकत्ता

उनका साहित्य, उनका विभिन्न विषयों पर पांडित्यपूर्ण लेख उनकी विद्वत्ता का परिचायक हैं। उनका साहित्य एवं पुरातत्व विषयक संग्रह अपूर्व है।

श्री के० एल० बोरदिया उदयपुर

नाहटा जी की इतिहास तथा धार्मिक ग्रन्थों के संबंध में शोध अत्यन्त सराहनीय रही है उन्होंने कठिन परिश्रम तथा सत्य की खोज का एक आदर्श प्रस्तुत किया है।

श्री वृन्दावनदास, मथुरा

नाहटा का अभिनन्दन वास्तव में हिन्दी शोध का अभिनन्दन है। हिन्दी के साहित्य क्षेत्र में उनका व्यक्तित्व वन्दनीय है।

श्री यशपालजी जैन, सस्ता साहित्य मण्डल, दिल्ली

श्री नाहटा जी को मेरी आन्तरिक बधाई दीजिए। उन्होंने अपने साहित्य द्वारा समाज को जो सेवा की है वह निःसन्देह सराहनीय है। मेरी कामना है कि वे दीर्घायु हों, स्वस्थ रहें, और अपनी लेखनी द्वारा चिरकाल तक समाज की सेवा करें।

डा० ज्योतिप्रसाद जी जैन, लखनऊ

नाहटजी हमारी समाज के ही नहीं वरन् सम्पूर्ण देश के गौरव हैं और हिन्दी साहित्य जगत् के सूर्य हैं। उनका अभिनन्दन करना साक्षात् सरस्वती का अभिनन्दन करना है।

पं० हीरालाल जी सिद्धान्तशास्त्री, व्याबर

सरस्वती के बरद पुत्रों का सम्मान होना चाहिये। मैं उनके दीर्घजीवी होने की मंगल कामना करता हूँ।

डा० कस्तूरचन्दजी कासलीवाल, जयपुर

नाहटा जी देश की विभूति हैं तथा समाज उनसे गौरवान्वित है।

डा० जगदीशचन्दजी जैन, व श्रीमती जगदीश जैन, बम्बई

हम आशा करते हैं कि भविष्य में भी आपका जीवन विद्या देवी की साधना में व्यतीत होगा।

पं० अमृतलालजी शास्त्री, संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी

नाहटा जी चलती फिरती लाइब्रेरी हैं, साहित्य साधना से उन्होंने समूचे जैन समाज का गौरव बढ़ाया है।

श्री अनूपचन्दजी न्यायतीर्थ, जयपुर

नाहटा जी ने अपनी सतत साधना से मां भारती का मस्तिष्क ऊँचा कर राष्ट्र को गौरवान्वित किया है। उनका सम्पूर्ण जीवन साहित्यमय है।

प्रो० पृथ्वीराजजी जैन, अम्बाला

विविध क्षेत्रों में उनके कार्यों की गणना तारों की गणना के समान दुःसाध्य है। जैन साहित्य की अनमोल सेवा करते हुए वर्तमान व भावी पीढ़ी के लिए मार्गदर्शक प्रकाश स्तंभ बने रहें यही प्रार्थना है।

पं० मूलचन्दजी शास्त्री, श्रीमहावीरजी

नाहटा जी समाज में अपने बुद्धिजीवियों के प्रति आदर भाव की जागृति बनाने में अग्रदूत बनें।

श्री शोभाचन्द जी भारिल्ल, बम्बई

नाहटा जी चिरजीवी हों।

श्री दलसुख मालवणिया, अहमदाबाद

इनकी साहित्य के इतिहास की दृष्टि पैनी है और एक एक पत्रों में से इतिहास की बहुमूल्य सामग्री का चयन सैकड़ों लेखों में उन्होंने किया है।

डा० राजाराम जैन, एच. डी. जैन कालेज, आरा

श्रद्धेय नाहटा जी साहित्य जगत् के गौरव गुरु हैं। उनमें गुणाढ्य से लेकर चन्दर बरदाई, ह्यूनात्सांग फाहियान से लेकर वर्नियर और पाणिनि से लेकर टेसिटरी तक की आत्म शक्तियां समाहित हैं।

हास्यकवि श्री हजारीलाल जैन सकरार

जिनका सत् साहित्य कराता मोक्ष मार्ग दर्शन है,
जिनकी कलम कराती रहती सदा ज्ञान वर्धन है,
शोध मनीषी विद्या वारिधि उन्हीं नाहटा जी का
इस पुनीत बेला पर 'काका' शत-शत अभिनन्दन है।

प्रो० श्रीचंदजी जैन, उज्जैन

व्यक्ति विशेष का अभिनन्दन न होकर मैं इसे धर्म का, साहित्य का, संस्कृति का एवं कला का पुनीत सत्कार मान रहा हूँ।

श्री पन्नालालजी साहित्याचार्य, मंत्री, भारतवर्षीय दिगम्बर जैन विद्वत् परिषद, सागर

श्री नाहटा जी की साहित्य सेवा जैन समाज के गौरव को बढ़ाने वाली है।

श्री आनन्दराज सुराना, स्थानकवासी जैन क्रान्फ्रेन्स, दिल्ली

श्री नाहटा जी एक विद्वान् समाज सेवी, कर्मठ कार्यकर्ता एवं लेखक आदि सभी से सम्पन्न व्यक्तित्व वाले हैं।

श्री भंवरलाल सिंघी, अध्यक्ष अखिल भारतीय मारवाडी सम्मेलन, कलकत्ता

श्री अगरचन्दजी नाहटा जी ने जीवन भर जो विद्या साधना की है और समाज एवं साहित्य को जो अवदान किया है वह सदा अभिनन्दनीय रहा है व रहेगा। उनकी जैसी साधना बहुत कम लोगों में मिलती है।

श्री दौलतसिंहजी जैन, मन्त्री, अखिल भारतीय खरतरगच्छ, दिल्ली

श्री नाहटा जी राष्ट्र के लब्ध प्रतिष्ठ विद्वान् हैं। सहस्रों अमूल्य ग्रन्थों का संग्रह एवं अवलोकन कर इतिहास एवं साहित्य की महान् सेवा की है। उन्होंने इस गच्छ का नाम रोशन किया है।

श्री केसरमलजी सुराना, मन्त्री, जैन श्वेताम्बर तेरापंथी मानव हितकारी संघ, रानावास

श्री अगरचन्द जी नाहटा हमारे समाज के अग्रणीय नेता हैं। उन्होंने जो हमारे समाज की सेवा की है वह जैन इतिहास के स्वर्ण अक्षरों में लिखी जायेगी।

श्री सेठ भागचन्दजी सोनी, अध्यक्ष, अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महासभा, अजमेर

वे जैन पुरातत्त्व के गतिशील अध्येता तथा अनुसंधित्सुओं के प्रेरणास्रोत हैं। लक्ष्मी और सरस्वती की उन पर समान रूप से कृपा है।

श्री विजयसिंहजी नाहर, भूतपूर्व उपमुख्य मन्त्री, पश्चिमी बंगाल, कलकत्ता

उनका साहित्य, उनका विभिन्न विषयों पर पांडित्यपूर्ण लेख उनकी विद्वत्ता का परिचायक हैं। उनका साहित्य एवं पुरातत्व विषयक संग्रह अपूर्व है।

श्री के० एल० बोरदिया उदयपुर

नाहटा जी की इतिहास तथा धार्मिक ग्रन्थों के संबंध में शोध अत्यन्त सराहनीय रही है उन्होंने कठिन परिश्रम तथा सत्य की खोज का एक आदर्श प्रस्तुत किया है।

श्री वृन्दावनदास, मथुरा

नाहटा का अभिनन्दन वास्तव में हिन्दी शोध का अभिनन्दन है। हिन्दी के साहित्य क्षेत्र में उनका व्यक्तित्व वन्दनीय है।

श्री देवेन्द्रकुमारजी हिरण, राजसमन्द

श्री अगरचन्द जो नाहटा साहित्य जगत् के उज्ज्वल नक्षत्र हैं और श्री नाहटा जी बात के धनी हैं।

श्री धीरजलाल शाह, बम्बई

उनकी साहित्य साधना अपूर्व है।

श्री प्रभुदयाल मित्तल, मथुरा

ऐसे महान् साहित्य साधक का जितना सम्मान किया जाय कम है।

श्री विद्याधरजी शास्त्री, चुरू

आपकी यह साधना सदैव प्रगति पर है आज भी आप अपने संग्रह को समृद्ध कर रहे हैं।

डा० लक्ष्मीनारायण दुबे, सागर विश्व विद्यालय, सागर

श्री अगरचन्दजी नाहटा जैनधर्म साहित्य और राजस्थानी वाङ्मय के जीवित इनसाइक्लोपीडिया हैं।

श्री पूरनचन्दजी जैन, जयपुर

भारतीय पुरातत्व, विशेषतः जैन धर्म, और संस्कृति-शोध तथा ग्रन्थों के गुणाधार हैं।

डा० लालचन्द जैन, वनस्थली विद्यापीठ,
डा० छगनलाल जी शास्त्री, सरदार शहर
श्री बालकवि वैरागी, मनासा
डा० शिवगोपाल मिश्र, इलाहाबाद
श्री हरिहर निवाद द्विवेदी, ग्वालियर
श्री ज्ञानचन्द स्वतंत्र, गंजबासौदा
श्री के०डी० वाजपेयी, सागर
श्री रघुवीरसिंह जी, सीतामऊ
श्री कन्हैयालाल जी सेठिया, कलकत्ता
श्री जिनदत्तसूरी जैन मण्डल, मद्रास
श्री रिषभदासजी करनावत, जोधपुर
श्री धनराज सिरोहिया, कलकत्ता
श्री शांतिलाल जी जैन, भारत जैन महामण्डल, भीलवाड़ा
श्री केसरीमल दीवान, सीकर
श्री कैलासचन्द जैन, उज्जैन
श्री सुन्दरलालजी तातेड, बीकानेर
श्री प्रकाश नाहटा, अनूपगढ़
श्री गुलाबचन्द बड़जात्या, भोपाल
श्री मानकचन्द नाहर, मद्रास
श्री पुष्कर, चंदरवाकर, गुजरात
श्री सुन्दरलाल नाहटा, मद्रास
श्री तेजराज बाफना, सिरोही
श्री गोपालनारायण बहुरा, जयपुर
श्री हीराभाई, इन्दौर
श्री साराभाई नवाब, सूरत
श्री रावतमल ताराचन्द सेठिया, सिलीगुडी
श्री हरीशचन्द्र बडेरा, जयपुर
श्री बृजेन्द्रनाथ शर्मा, गाजियाबाद

राष्ट्रभाषा प्रचार समिति वर्धा के श्री रामेश्वर दयाल दुबे, सहायक मंत्री श्री अ० भा० जैन श्वे० तेरापंथी समाज, कलकत्ता एवं श्री श्रीचन्द जी जैन, आदि की भी समारोह की सफलता हेतु शुभ कामनाएँ प्राप्त हुईं।

■

बीकानेर में आयोजित
श्री अगरचन्द नाहटा अभिनन्दन समारोह निमित्त
आर्थिक सहयोग दाताओं की शुभ नामावली

१००१) सेठ आनन्दराज जी सुराणा दिल्ली
१०००) सेठ कस्तूर भाई लाल भाई ट्रस्ट अहमदाबाद
५०१) सेठ गुमानमलजी चोरड़िया जयपुर
५००) सेठ श्रीचन्दजी गोलेछा जयपुर
५००) सेठ हरिश्चन्द्र बड़ेर जयपुर
५००) सेठ राजमलजी सुराणा जयपुर
५००) सेठ पुगलियाजी परिवार जयपुर
५००) सेठ जुगराजजी से सेठिया बीकानेर
२५१) श्री रावतमलजी ताराचन्दजी सेठिया गंगाशहर
१५१) श्री दुरजनदासजी हुलासचन्दजी सेठिया भीनासर
१०१) श्री रिखबचन्दजी बैद बीकानेर
१०१) श्री रायचन्दजी जैन बीकानेर
१०१) श्री तन सुखरायजी डागा बीकानेर
१०१) श्री विजयराजजी पगारिया बीकानेर
१०१) श्री भंवरलालजी कोठारी बीकानेर
१०१) श्री गुप्तनाम
५१) डॉ० नन्दलालजी वोर्दिया बीकानेर
५१) श्री जुगलसिंहजी खिच्ची बीकानेर
५१) श्री बालचन्दजी सांड बीकानेर
५१) श्री गिरधरजी बैद बीकानेर

श्री अगरचन्द नाहटा अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशनार्थ
आर्थिक सहयोग देनेवालों की शुभ नामावली

१०००) साहू शांतिप्रसाद जैन ट्रस्ट दिल्ली
१०००) सेठ भागीरथी कानोड़िया कलकत्ता
५०१) सेठ तोलारामजी दोसी देशनोक
५०१) सेठ मणिलालजी डोसी दिल्ली
२५१) मे० नवरतनमल निर्मलकुमार कानपुर
२५१) मे० सत्यनारायणराय रामानन्दप्रसाद कानपुर
२५१) मे० हीरालाल रतनलाल कानपुर

श्री देवेन्द्रकुमारजी हिरण, राजसमन्द

श्री अगरचन्द जो नाहटा साहित्य जगत् के उज्ज्वल नक्षत्र हैं और श्री नाहटा जी बात के धनी हैं।

श्री धीरजलाल शाह, बम्बई

उनकी साहित्य साधना अपूर्व है।

श्री प्रभुदयाल मित्तल, मथुरा

ऐसे महान् साहित्य साधक का जितना सम्मान किया जाय कम है।

श्री विद्याधरजी शास्त्री, चुरू

आपकी यह साधना सदैव प्रगति पर है आज भी आप अपने संग्रह को समृद्ध कर रहे हैं।

डा० लक्ष्मीनारायण दुबे, सागर विश्व विद्यालय, सागर

श्री अगरचन्दजी नाहटा जैनधर्म साहित्य और राजस्थानी वाङ्मय के जीवित इनसाइक्लोपीडिया हैं।

श्री पूरनचन्दजी जैन, जयपुर

भारतीय पुरातत्व, विशेषतः जैन धर्म, और संस्कृति-शोध तथा ग्रन्थों के गुणाधार हैं।

डा० लालचन्द जैन, वनस्थली विद्यापीठ,
डा० छगनलाल जी शास्त्री, सरदार शहर
श्री बालकवि वैरागी, मनासा
डा० शिवगोपाल मिश्र, इलाहाबाद
श्री हरिहर निवाद द्विवेदी, ग्वालियर
श्री ज्ञानचन्द स्वतंत्र, गंजबासौदा
श्री के०डी० वाजपेयी, सागर
श्री रघुवीरसिंह जी, सीतामऊ
श्री कन्हैयालाल जी सेठिया, कलकत्ता
श्री जिनदत्तसूरी जैन मण्डल, मद्रास
श्री रिषभदासजी करनावत, जोधपुर
श्री धनराज सिरोहिया, कलकत्ता
श्री शांतिलाल जी जैन, भारत जैन महामण्डल, भीलवाड़ा
श्री केसरीमल दीवान, सीकर
श्री कैलासचन्द जैन, उज्जैन
श्री सुन्दरलालजी तातेड, बीकानेर
श्री प्रकाश नाहटा, अनूपगढ़
श्री गुलाबचन्द बड़जात्या, भोपाल
श्री मानकचन्द नाहर, मद्रास
श्री पुष्कर, चंदरवाकर, गुजरात
श्री सुन्दरलाल नाहटा, मद्रास
श्री तेजराज बाफना, सिरोही
श्री गोपालनारायण बहुरा, जयपुर
श्री हीराभाई, इन्दौर
श्री साराभाई नवाब, सूरत
श्री रावतमल ताराचन्द सेठिया, सिलीगुडी
श्री हरीशचन्द्र बडेरा, जयपुर
श्री बृजेन्द्रनाथ शर्मा, गाजियाबाद

राष्ट्रभाषा प्रचार समिति वर्धा के श्री रामेश्वर दयाल दुबे, सहायक मंत्री श्री अ० भा० जैन श्वे० तेरापंथी समाज, कलकत्ता एवं श्री श्रीचन्द जी जैन, आदि की भी समारोह की सफलता हेतु शुभ कामनाएँ प्राप्त हुई।

■

बीकानेर में आयोजित
श्री अगरचन्द नाहटा अभिनन्दन समारोह निमित्त
आर्थिक सहयोग दाताओं की शुभ नामावली

१००१) सेठ आनन्दराज जी सुराणा दिल्ली
१०००) सेठ कस्तूर भाई लाल भाई ट्रस्ट अहमदाबाद
५०१) सेठ गुमानमलजी चोरड़िया जयपुर
५००) सेठ श्रीचन्दजी गोलेछा जयपुर
५००) सेठ हरिश्चन्द्र बड़ेर जयपुर
५००) सेठ राजमलजी सुराणा जयपुर
५००) सेठ पुगलियाजी परिवार जयपुर
५००) सेठ जुगराजजी से सेठिया बीकानेर
२५१) श्री रावतमलजी ताराचन्दजी सेठिया गंगाशहर
१५१) श्री दुरजनदासजी हुलासचन्दजी सेठिया भीनासर
१०१) श्री रिखबचन्दजी बैद बीकानेर
१०१) श्री रायचन्दजी जैन बीकानेर
१०१) श्री तन सुखरायजी डागा बीकानेर
१०१) श्री विजयराजजी पगारिया बीकानेर
१०१) श्री भंवरलालजी कोठारी बीकानेर
१०१) श्री गुप्तनाम
५१) डॉ० नन्दलालजी वोर्दिया बीकानेर
५१) श्री जुगलसिंहजी खिच्ची बीकानेर
५१) श्री बालचन्दजी सांड बीकानेर
५१) श्री गिरधरजी बैद बीकानेर

श्री अगरचन्द नाहटा अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशनार्थ
आर्थिक सहयोग देनेवालों की शुभ नामावली

१०००) साहू शांतिप्रसाद जैन ट्रस्ट दिल्ली
१०००) सेठ भागीरथी कानोड़िया कलकत्ता
५०१) सेठ तोलारामजी दोसी देशनोक
५०१) सेठ मणिलालजी डोसी दिल्ली
२५१) मे० नवरतनमल निर्मलकुमार कानपुर
२५१) मे० सत्यनारायणराय रामानन्दप्रसाद कानपुर
२५१) मे० हीरालाल रतनलाल कानपुर

२५०) मे० वृषभान इन्द्रचन्द कानपुर
७०१) यू० पी० आयल मील एशोसियेसन
कानपुर के सदस्य मा० पी० सी० कानोड़िया
२००) मे० झंवर ब्रादर्स कानपुर
२५१) मे० नानूराम जयगोपाल कानपुर
२५१) में० रामलाल मनोहरलाल दिल्ली
२५१) सेठ बच्छराजजी मुणोत कानपुर
२५१) मे० हरीशचन्द्र राजेन्द्रकुमार
२५१) मे० गोपाल दाल मील कानपुर
२५१) मे० पुरुषोत्तमदास अशोककुमार कानपुर
२५१) सेठ मांगीलालजी वेंगाणी कानपुर
१००) मे० अजीत दाल मील कानपुर
१०१) मे० कैलाश दाल मील इंदौर
१००१) सेठ रामप्रसादजी पोद्दार प्रेसीडेन्ट सेन्चुरी मील बम्वई
२५१) श्री माँगीलालजी वैंभाणी
२५१) श्री दुर्गाप्रसादजी कानपुर